



श्री १०८ नारायण स्वामी

श्रीशिवरंजिलाल बाजोरिया

के

उर्दू-प्रेमको संस्कृत-प्रेममें

परिवर्तित करनेके निमित्त

साशीर्वाद समर्पित



श्री १०८ नारायण स्वामी

श्रीचिरंजीलाल काजोरिया

के

उर्दू-प्रेमको संस्कृत-प्रेममें

परिचित करनेके निमित्त

साशीवाद् समर्पित

प्रस्तावना

श्रीनारायण स्वामी वैदिक तथा संस्कृत साहित्य, दर्शन, ज्योतिष तन्त्र तथा उर्दू, अंगरेजी आदि अनेक भाषा-साहित्योंके मर्मज्ञ विद्वान् तथा अत्यन्त मनीषी अब्धूत हैं अपने अध्ययन प्रवाहमें कुतूहलवश आपने अनेक भाषाओंकी रमणीय और सरल सूक्तियों मस्तीमें आनन्द समय-समयपर संगृहीत कीं। उनमेंसे हिन्दी और उर्दू के सूक्ति संग्रहके अतिरिक्त संस्कृतकी सूक्तियोंका अनुवाद भी कर लिया। अब यह संग्रह अग्राध, अथाह और अस्त-सागरका रूप धारण करने लगा तब उनकी इच्छा हुई कि अब इसे लोकर जनक दृष्टिसे और संस्कृत साहित्यका प्रचार करनेके लिये प्रकाशित भी कर दिया जाय।

उस विचारसे अब इसके प्रकाशनके सम्बन्धमें विचार-विमर्श किया गया और आदिसे अन्त-तक उसका पारायण कर लिया गया तब यह प्रतीत हुआ कि इस संग्रहमें संस्कृत साहित्यका कोई ऐसा क्षेत्र तथा कोई लोकप्रसिद्ध ग्रंथ नहीं रह गया जो इस संग्रहकी सीमासे बाहर छूट गया हो। किन्तु अनुवादकी भाषा निश्चय ही साधुश्रीमाली ऐसी नम्र थी कि बहुतसे पाठक निश्चय ही उसकी विवेचना-शक्ति तथा उसके मायत्वपर नाच-भौं सिकोड़ सकने थे।

इस संग्रहकी लोक मुलम बनानेकी दृष्टिसे और पाठकोंके लिये अधिकसे अधिक सुविधाजनक करनेकी दृष्टिसे इसके प्रत्येक प्रसंगके सब श्लोकोंको अकारादि क्रमसे रस दिया गया है जिससे उसके श्लोकोंका अलग अकारादि क्रम न देखना पड़े जैसा अन्य सुभाषित-ग्रन्थोंमें प्राप्त है। इसके अतिरिक्त इसके अनुवादकी भाषा भी इतनी सरल तथा साधु कर दी गई जो साधारण जन-समाज तथा विद्वान्मंडल दोनोंको समान रूपसे प्राण्य ही और सब लोग इसका आनन्द लेते हुए उसे मली प्रसर हृदयंगम करते और समझते चलें।

यद्यपि संस्कृतमें अनेक सूक्ति संग्रह और सुभाषित संग्रह अनेक नामों और आकारोंके साथ प्रकाशित हुए और हांते भी जा रहे हैं किन्तु सरल और सरस अनुवाद साथ न होनेके कारण वे केवल गिने-चुने संस्कृतके विद्वानोंके ही काम आ पाए। सबसाधारणका उनसे कोई विशेष लाभ नहीं हो सता। आजकल देश अपना होनेसे और हिन्दी भाषाका व्यापक प्रचार होनेके कारण संस्कृतकी ओर स्वभावतः सबकी प्रवृत्ति बढ़ चली है और सब लोग संस्कृतका अध्ययन करनेकी ओर अभसर हो रहे हैं। विभिन्न राज्य सरकारोंकी ओरसे हिन्दीके पाठ्यक्रमक साथ संस्कृतका अध्ययन भी अनिवार्य कर दिया गया है। यों भी भारतके प्रत्येक विद्वान्, नेता, उपदेष्टा, सभीकी यह इच्छा होती है कि हम अपने लैसों, भाषणों और प्रवचनोंमें अपने प्राचीन संस्कृत साहित्यके रत्नोंका आभास यदा-कदा देते चलें। उनकी ओरसे भी अनंतर यह गोंग हांती रही कि संस्कृत साहित्यके अमूल्य सुभाषितर लोकां ऐसा संग्रह प्रकाशित हा जिसमें उसका सरल अनुवाद भी दिया गया हो और जिनमेंसे सुभाषित चुनकर लोग अपने लैसों और प्रवचनोंमें निर्द्वन्द्व होकर प्रयोग भी कर सकें। यह संग्रह इसी दृष्टिसे अत्यन्त सरल और

सुबोध नागरी भाषाके अनुवादके साथ इतना उपयुक्त और उपादेय बना दिया गया है कि प्रत्येक रसिक उसका आनन्द ले सकता है और जन साधारण भी उसका अध्ययन करके संस्कृत के प्रतिभाशाली श्युलभ कवियोंकी अलौकिक कल्पना तथा सरस वाणीका आनन्द ले सकते हैं ।

यह संग्रह इतना विशाल है कि एक ही जिल्दमें सम्पूर्णा ग्रन्थको समाविष्ट करना सम्भव नहीं हो सका । इसलिये इस प्रथम खण्डमें केवल देव-सूक्तियों और रस-सूक्तियों ही दी जा रही है । यह नहीं समझना चाहिए कि संस्कृतके कवियोंने केवल देवताओंकी स्तुतियों ही की हैं । उन्होंने देवताओंके स्वरूप और उनकी रीति-नीतिपर ऐसे विचित्र, सरस, आकर्षक और चुटीले व्यंग्य किए हैं कि बिना उन्हें पढे उनका रस नहीं प्राप्त हो सकता । रस सूक्तियोंमें भी रसरान शृङ्गारका विस्तारके साथ तथा अन्य आठ रसोंका संक्षिप्त विवरणके साथ सूक्ति-संग्रह किया गया है । रस और उसके अङ्गों तथा विभिन्न रसोंके उपादानोंका सूक्ष्म अध्ययन करने और उसका रस लेनेवालोंको इसमें पर्याप्त उदाहरण तो मिलेंगे ही साथ ही संस्कृतके कवियोंकी अनुपम कल्पनाका भी उन्हें आनन्द मिलता रहेगा ।

अनेक प्रकारकी कठिनाइयों और व्याघातोंके कारण यह ग्रन्थ लगभग तीन वर्षतक यत्रकी रंगणा सहता रहा । आज भगवान्की कृपासे इसने आलोक के दर्शन किए और इसका प्रथम खण्ड आज प्रकाशित हो रहा है ।

सूक्तिसागरके इस खंडमें केवल दो उर्मियोंका ही साक्षात्कार कराया जा सका है । इसके द्वितीय खण्डमें चित्र सूक्तियों, नीति-सूक्तियों तथा अन्य अनेक विषयोंपर कवियोंद्वारा कही हुई पूर्ण श्लोकों अथवा संडोक्तियोंमें सूक्तियोंका विशाल संग्रह होगा ।

यद्यपि आकार प्रकारमें वह दूसरा खंड इस खंडकी अपेक्षा कहीं अधिक विशाल और विस्तृत होगा किन्तु परिपक्व विचार है कि उसका मूल्य भी इसीके समान रक्खा जाय । इस ग्रन्थकी रचना और प्रकाशनमें कितना परिश्रम हुआ होगा यह इसी बातसे स्पष्ट है कि अनेक विद्वानोंका सहयोग होनेपर भी केवल ग्रन्थ प्रस्तुत करनेमें ही लगभग तीन वर्ष लग गए । किन्तु ग्रन्थ पूर्ण हो गया है । अतः, दूसरा खंड छपनेमें एक वर्षसे अधिक विलंबकी आशंका नहीं है । हम अपने उन कृपालु प्राहकोंको हृदयसे धन्यवाद देते हैं जिन्होंने पूर्व-ग्राहक होकर अत्यन्त सन्तोष और धैर्यके साथ इतने दिनोंतक प्रतीक्षा की । हमें विश्वास है कि इस खंडके प्रकाशित हो जानेसे उन्हें सन्तोष होगा । हम परिपक्व औरसे श्रीनारायण स्वामीको भी हृदयसे धन्यवाद देते हैं कि उन्होंने परिपक्व इस ग्रन्थके प्रकाशनका भार देकर अनुग्रहीत किया ।

तुलसी-जयन्ती,
सं० २०१४

प्रधात मंत्री,
अखिल भारतीय विक्रम परिपद्,
काशी

विषय-विन्यास

१. देवसूक्तयः

परम्रदा	१
त्रिमूर्त्तयः	४
प्रदा	५
सरस्वती	५
हरिद्वी	७
विष्णुः	८
लक्ष्मीः	१४
शंखः	१७
चक्रम्	१७
शेषः	१७
समुद्रः	१७
दशावताराः	१८
मातृयः	१९
कूर्मः	२०
वराहः	२१
नृसिंहः	२३
धामनः	२६
परशुरामः	२७
रामः	२८
सीता	३०
हनुमान्	३०
रामकृष्णौ	३१
ब्रह्मद्रः	३१
कृष्णः	३१
देवकी	४५
राधा	४५
रुक्मिणी	४५
वैष्णुः	४५
नन्दकः	४६
सुदः	४६
कल्किः	४७
पार्यती	६४
चण्डिका	७१
अर्चनारीश्वरः	७१
गंगा	७२
भराजुटः	७४

शशिलेखा	७५
लोचनम्	७५
कंठः	७६
मुंडमाला	७६
पद्मगः	७७
ताण्डवम्	७७
गणेशः	७९
पद्मलः	८३
गणेशकुमारी	८४
गथाः	८४
नन्दी	८४
कटाहः	८४
मन्मथः	८५
रतिः	८५
सूर्यः	८५
चन्द्रः	८७
पृथ्वी	८८
वारणः	८८

२. रससूक्तयः

शृङ्गारप्रकरणे काम-प्रशंसा	८९
नायकभेदाः	९३
चटवारो नायकाः	९५
शृंगारनायकाः	९६
सात्त्विकनायकगुणाः	९६
तरुणीवर्णनम्	९७
वयःमन्त्रिवर्णनम्	१०२
युवतीवर्णनम्	११०
नखशिखवर्णनम्	११२
ललाटः	११४
भ्रुवौ	११४
नेत्रे	११५
नासा	११८
कर्णौ	११८
कपोलौ	११८
अघरः	११९
दन्ताः	१२०

चिबुकः	१२१
मुल्लम्	१२१
कंठः	१२९
बाहु	१३०
करो	१३०
हस्तरेखा	१३०
श्रृंगुल्यः	१३१
स्तनौ	१३१
नाभिः	१३६
मध्यदेशः	१३७
रोमावली	१३८
वलित्रयम्	१४१
पृष्ठभागः	१४२
नितम्बः	१४२
जघनम्	१४३
काममन्दिरम्	१४३
जघनोरु	१४३
ऊरु	१४३
जघे	१४४
गुल्फी	१४५
चरणौ	१४५
पादांगुल्यः	१४६
नलाः	१४६
समप्रस्त्रीस्वरूपवर्णनम्	१४६
नायिका-प्रशंसा	१५५
नायिकाभेदाः	२५७
अष्टनायिकाः	१६२
अभिसारिकाः	१६२
कृष्णाभिसारिका	१६३
सुक्लाभिसारिका	१६४
स्वाधीनभर्तृका	१६५
वासकधन्वा	१६६
उत्का	१६७
खडिता	१६८
कलहान्तरिता	१७०
विप्रलम्बा	१७३
प्रोपितभर्तृका	१७५

श्री चेटाः	१७६	वर्पापयिककामिनो	१८२	सखी प्रति नायिकावाक्यम्	३७७
कटाक्ष	१७६	खद्योत	२८४	सखाय प्रति नायकोक्ति	३७८
अभूषि	१७७	हृष	२८४	नायिका प्रति सखीवाक्यम्	३७८
निद्रा	१७८	शरद्वर्षानम्	२८४	मदन प्रत्युक्तय	३७८
स्मितम्	१७८	अलिकेलि	२८३	चन्द्र प्रत्युक्तय	३८०
हसितम्	१७९	शरदनिला	२८४	रोहणी प्रत्युक्ति	३८१
वाणी	१७९	शरत्वा-य	२८४	पवन प्रत्युक्तय	३८२
जम्भा	१८०	कलमलङ्घिनो	२८५	मेघ प्रत्युक्तय	३८२
गमनम्	१८०	हेमन्तवर्षानम्	२८५	अशोक प्रत्युक्तय	३८२
वहीपनविभावा	१८०	वन्दुकक्रीडा	३०	तमाल प्रत्युक्ति	३८२
प्रभातवर्षानम्	१८०	हेमन्तवायव	३०१	मृगालहार प्रत्युक्ति	३८२
सूर्योदयवर्षानम्	१८४	हेमन्तपथिक	३०२	मधुकर प्रत्युक्तय	३८३
सूर्यास्त वर्षानम्	१८६	शिशिरवर्षानम्	३०३	चकोर प्रत्युक्ति	३८३
रत्नवर्षानम्	२०५	हृदयलीलनक्रीडा	३०६	कृष्णसार प्रत्युक्ति	३८३
मृष्यरात्रिक्रीडावर्षानम्	२०६	शिशिरवायव	३०६	सारग प्रत्युक्ति	३८३
तमोवर्षानम्	२०६	शिशिरवा-य	३०७	मयूरविषयकोक्ति	३८४
नक्षत्रोदयवर्षानम्	२११	संयोगशृंगार	३०७	मुक्ताकलाप प्रत्युक्ति	३८४
चन्द्रोदयवर्षानम्	२११	नायकदर्शनम्	३०७	अभिसारिकासचारकथनम्	३८४
सकलकचन्द्र वर्षानम्	२२५	नायिकादर्शनम्	३०८	संयोग वरगणम्	
चन्द्रकलावर्षानम्	२२७	देशान्तरोपगतो नायक	३१४	नायकागमनावस्थावर्षानम्	३८६
श्यामनावर्षानम्	२२७	वियोग शृंगार		नायकागमने नायिका प्रति	
चन्द्रास्त वर्षानम्	२२९	विरह	३१४	सखीवचनम्	३८७
कोकशा वर्षानम्	२३०	विद्योगिन्यवस्थावर्षानम्	३१४	नायिकातिथ्यवर्षानम्	३८७
षड्विंशत्यवर्षानम्	२३२	विद्योगिनोविप्रलापा	३२२	नायिका प्रति नायकस्य प्रश्ना	३८८
वसन्तवर्षानम्	२३२	दूतीशुष्या	३२९	प्रणयकलहे नायिकानुनय	३८८
मदनपूर्वा	२४५	स्वयदूती	३२९	सख्यनुनय	३९६
कुसुमायचय	२४५	दूती प्रति स्वावस्थाकथनम्	३३६	कलाहा-तरिताप्रलापाख्यानम्	३९९
वसन्त वायव	२४६	नायिका प्रति सखीवचनम्	३३०	नायिकानुनय	४००
वसन्तपथिका	२४८	नायक प्रति दूतीप्रेषणम्	३३५	नायिकयोक्तिकप्रत्युक्तय	४०२
कोकिलालाप	५०	नायक प्रति नायिका सन्देश	३३६	नायकशिखा	४०४
सहकार	२५०	नायकस्याग्रे द्रुत्युक्तय	३३७	नायिकाप्रसाद	४०५
श्रीधमवर्षानम्	२५०	दूती प्रति नायिकाप्रश्ना	३५०	परस्परप्रसाद	४०६
मध्याह्नवर्षानम्	२५९	द्रुत्युपहासप्रश्ना	३५१	प्रियचाद्रुक्तय	४०९
कलक्रीडा	२६०	विद्योगिन्यवस्थावर्षानम्	३५३	नववधूत्सवम्	४१७
प्रपा पालिका	२६५	विद्योगिनो विप्रलापा	३५४	नववधूत्सवमे संयोगप्रसंगा	४२०
श्रीधमवायव	२६६	नायिका प्रति सन्देशप्रेषणम्	३६९	आलिंगनम्	४२४
श्रीधमपथिका	२६७	नायिका प्रति नायकसन्देश	३७०	सुम्बनम्	४२५
वर्षावर्षानम्	२६७	नायिका प्रति		विहार	४२५
दोलाकेलि	२७९	नायकावरथाकथनम्	३७५	सुरतकेलिकथनम्	४२६
वर्षावायव	२८०	नायक प्रति नायिकोक्तय	३७६	विपरीतरतक्रिया	४३२
वर्षापथिका	२८०	नायक प्रति सखीवाक्यम्	३७७	सुरतवर्षानम्	४३५

सुरतनिवृत्तिः	४३६	ललितम्	४५८	शौर्यगर्वः	४६२
प्रियप्रस्थानावस्थाकथनम्	४४०	विद्वतम्	४५८	आलारयम्	४६२
नायिकानिर्गमनम्	४४३	सम्भोगनर्म	४५८	अमर्षः	४६२
पानगोष्ठी-वर्णनम्	४४३	मयनर्म	४५८	श्रीस्तुत्यम्	४६२
शतक्रीडा-वर्णनम्	४४६	संलापकः	४५८	श्रवदित्या	४६३
सज्जाविधानम्	४५०	उत्थापकः	४५८	उन्मादः	४६३
सीमन्तरचनम्	४५०	परिवर्तकः	४५८	शका (स्वदुर्नयात्)	४६३
सीमन्तसिन्दूरम्	४५१	वस्तुस्थापनम्	४५८	शंका (परकौर्यात्)	४६३
तिलकः	४५१	श्रवपातः	४५६	रमृतिः	४६३
कर्णभूषणम्	४५२	मौग्यम्	४५६	मतिः	४६३
कंचुकी	४५३	विक्षेपः	४५६	असूया	४६३
कंकणम्	४५४	कुतूहलम्	४५६	दोर्जन्यादसूया	४६३
मुद्रिका	४५५	अग्नेनानिष्टप्राप्तिकृतसम्भ्रमः	४५६	दर्पः	४६४
कान्तिः	४५५	इष्टप्राप्तिकृतः	४५६	विषादः	४६४
सहजार्जकाराः	४५५	वह्निजः	४५६	श्रुतिः	४६४
भावः	४५५	करिजः	४५६	धृतिः (शानात्)	४६४
हावः	४५५	आवेगः	४६०	चापलम्	४६४
हेला	४५६	सारिवकमावाः	४६०	चिन्ता	४६४
शोभा	४५६	तत्त्वज्ञानान्निर्वेदः	४६०	वितर्कः	४६४
कान्तिः	४५६	आपदः निर्वेदः	४६०	स्त्रीप्रशसा	४६५
माधुर्यम्	४५६	ईर्ष्यातः	४६०	सतीवर्णनम्	४७१
दीप्तिः	४५६	वीरशृङ्गारयोर्व्यभिचारि-		स्त्रीस्वभाव निन्दा	४७५
प्रगल्भता	४५६	निर्वेदः	४६०	असती-चरित्रम्	४८१
श्रीदार्यम्	४५६	स्वतंत्रो निर्वेदः	४६०	पान्यषकेतः	४८८
धैर्यम्	४५६	केलिः	४६१	वेदया-निन्दा	४९०
हावः	४५७	दिहमात्रम्	४६१	रसाः	
लीला	४५७	दैन्यम्	४६१	वीररसः	४९१
त्रिलासः	४५७	भ्रमः	४६१	कक्षररसः	४९८
विच्छिद्युतिः	४५७	मदः	४६१	हास्यरसः	५०३
विभ्रमः	४५७	मरणम्	४६१	अद्भुतरसः	५११
विब्लोकः	४५७	जडता इष्टदर्शनात्	४६१	रौद्ररसः	५१३
किलकिंचितम्	४५७	अनिष्टश्रवणार्त्	४६१	मयानकरसः	५१५
मोह्यापितम्	४५७	अपस्मारः	४६२	बीमत्वरसः	५१७
कुहमितम्	४५७	गर्वः	४६२	शांतरसः	५१८

संस्कृत-सूक्तिसागरः

या दुग्धाऽपि न दुग्धेव कविदोग्धृगिरन्वहम् । हृदि नः सविद्यतां सा सूक्तिधेनुः सरस्वती ॥ १ ॥
किं कवेस्तस्य काव्येन किं काण्डेन घनुष्मतः । परस्य हृदये लग्नं न घूर्णयति यच्चिरः ॥ २ ॥

शुद्धार्थमात्रमपि ये न विदन्ति तेऽपि यां मूर्च्छन्तार्थिव मृगाः श्रवणैः पिबन्तः ।

संरुद्ध-सर्व-करण-प्रसरा भवन्ति चित्रस्थिता इव कवीन्द्रगिरं मुमस्ताम् ॥ ३ ॥

[नित्य प्रति फविरूपी दूहनेवालोसे दूही जानेपर भी जो सूक्तिरूपी गौ यनी हुई सरस्वती कधी दूधरहित नहीं होती, वे हमारे हृदयमें आकर विराजमान हो जायें ॥ १ ॥ उस कविके काव्यसे और उस घनुषधारीके बाण चलानेसे क्या लाभ, जो दूसरेके हृदयपर चोट करके उसे भूमनेके लिये बाण्य न कर दे ॥ २ ॥ जैसे सङ्गीतकी मूर्च्छन्ता मुनकर मृग अपनी सब इन्द्रियोंके व्यापार रोककर चित्रालखे-से हो जाते हैं, वैसे ही शब्द और अर्थतक न जाननेवाले लोग भी महाकविकी जिस वाणीको केवल कानोंसे सुनकर अपनी मुग्ध-मुग्ध खोकर तन्मय हो जाते हैं, उस कवि-वाणीको हम प्रणाम करते हैं ॥ ३ ॥]

देवसूक्तयः

परब्रह्म

अथ स्वस्थाय देवाय नित्याय हतपात्रने । त्यक्तक्रम-
धिमागाय चैतन्यज्योतिषे नमः ॥ १ ॥ अथ्यस्तान्धम-
पूर्वमर्थधिपसैप्रांहां पुमर्यास्पदं लक्ष्यं लक्षणभेदनः श्रुति-

गतं निर्धूतसाध्यार्थकम् । आम्नायान्तचिभातविश्वविभवं
सर्वाविरुद्धं परं सत्यं ज्ञानमनर्थसार्थविधुं ब्रह्म प्रपद्ये
सद्गोम् ॥ २ ॥ अनन्तनामधेयाय सर्वाकारविधायिने ।

देवताश्रोंपर सूक्तियाँ

परब्रह्म

जो ब्रह्म सदा एक-सा रहता है, जिसमें कभी किसी प्रकारका भी हेर-फेर या निगाड़-मुधार नहीं होता, जो पापोंका नाश करनेवाला है, जो किसी भी ढँङ्गके नियम या बन्धनमें बँधा हुआ नहीं है, उस सदा धमरुने रहनेवाले चेतन प्रकारको नमस्कार है ॥ १ ॥ जगत्में सम्बन्ध न होनेपर भी जिसमें जगत्का हाँगा माना जाता है, जिसमें पहले कोई वस्तु नहीं रही, जिसे केवल योगी लोग ही समझ पाते हैं, जो धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष नामक चारों पुरुषार्थोंका भयदार है, जिसे अनेक प्रकारके लक्षणोंसे

ही समझा जा सकता है, वेदोंमें जिसका वर्णन किया है, सब कुछ कर चुकनेके कारण जिसे कुछ करना शेष नहीं है, जिसके प्रभावका वर्णन वेदान्तमें भली प्रकार किया गया है, जिसका जिसीसे कोई विरोध नहीं है, जो सब तत्वोंसे परे है, जो सत्य-स्वरूप और ज्ञान-स्वरूप है, जो अर्थ-रहित और अर्थ-सहित दोनोंके फलमेंसे दूर है, ऐसे सब तथा श्रोत्र नामवाले ब्रह्मकी मैं शरण लेता हूँ ॥ २ ॥ जिस ब्रह्मके अनगिनत नाम हैं, जो सब ब्रह्मके रूपोंमें अपनेको ढाल सकता है, संसारके सब मन्त्र

समस्तमन्त्रवाच्याय विश्वैकपतये नमः ॥३॥ कर्णिकादि-
ष्विव स्वर्णमर्षवादिष्विवोदकम् । भेदिष्यभेदि यत्तस्मै
परस्मै महत्से नमः ॥ ४ ॥ गगनमिव विकारैर्हीनमासञ्च
विष्णुप्रतिविपयमनन्यस्फूर्त्तिमत्स्वात्मरूपम् । श्रुति-
शिरसि महीयः सत्प्रमोदैकहेतुं सकलवृत्तिभ्रमङ्गं
ज्योतिरेकं सदाद्यम् ॥ ५ ॥ चराचरजगत्स्फारस्फुरत्ता-
मात्रधर्मिणे । दुर्विज्ञेयरहस्याय युक्तैरप्यात्मने नमः ॥६॥
त्रिभुवनविकाशनिदानं निरुपममनन्तरूपम् । परिहृत-
धिकारमनन्तं सद्बुभयमात्रमुपासे ॥ ७ ॥ विकाशाद्य-
नवच्छिन्नानन्तचिन्मात्रमूर्त्तये । स्वानुभूत्येकमानाय नमः
शान्ताय तेजसे ॥ ८ ॥ नमोवाङ्मनसालीतमहिच्छे परमे-
ष्ठिने । त्रिगुणाष्टगुणानन्तगुणनिर्गुणमूर्त्तये ॥ ९ ॥ नमः
स्वतन्त्रविच्छक्तिमुद्गितस्वधिभूतये । अथक्त्वक्यकरुपाय

कस्मैचिन्मन्त्रमूर्त्तये ॥ १० ॥ न यस्य जन्मादिविकार-
लिङ्गं तद्यस्य सत्तावशतः सदाभम् । मायाधिहीनं
तदुदारमोदं स्वात्मस्वरूपं ननु तद्यकास्तु ॥ ११ ॥ न खी
न ना न च नपुंसकमायतं न नात्पं महन्न च चीनम-
पीनतो नम् । नासन्न सद्य विकलं सकलं च यन्न तत्केवलं
स्फुरति भास्वरूपमेकम् ॥ १२ ॥ नित्यं निरावृत्ति
निजातुभवेकमानं श्रानन्दधाम जगद्ङ्करवीजमेकम् ।
दिग्देशकालकलनादिसमस्तहस्तमर्दासहं दिशतु शर्म
महन्महो वः ॥ १३ ॥ निषेधे कृते नेति नेत्यादिवाक्यैः
समाधिस्थितानां यदाभाति पूर्णम् । अथस्थात्रयातीतमेकं
तुरीयं तदेकं स्वमात्रप्रकाशं प्रपद्ये ॥ १४ ॥ परिमितिशून्यं
प्रकृतिविशुद्धम् । त्रिभुवनद्वयं निरवयवं तत् ॥१५॥ ब्रह्मा
दक्षः कुबेरो यमवराणमरुद्वह्निचन्द्रन्द्रधराः शैला नद्यः

जिस अकेले ब्रह्मका ही बर्णन करते हैं और जो अकेला इन
संसारका स्वामी है उस ब्रह्मको नमस्कार है ॥ ३ ॥ कानमें पढ़ने
जानेवाले कुण्डल आदि गहनोंमें जो सोना बनकर रमा हुआ
है, समुद्र आदिमें जो जल बनकर रमा हुआ है, संसारकी सब
नाम होनेवाली बस्तुओंमें जो अमर बनकर घुला हुआ है, उस
सभसे बड़े प्रकाशमान तेजको नमस्कार है ॥ ४ ॥ जो आकाशके
समान शुद्ध होकर संसार-भरमें फैली हुई है, जो संसारकी सब
बस्तुओंमें स्थिति और चेतना भरनेवाले परमात्माका तेज है, वेद
भी जिसे बहुत बड़े सच्चे श्रानन्दका कारण मानते हैं, जो सब
पापोंका नाश करनेवाली है उस परम शुद्ध ज्योतिके नमस्कार है
॥ ५ ॥ इस समूचे चल और अचल संसारको बढ़ाना और
गढ़ना जिसका काम है और जिसका भेद योगी भी नहीं
जान पा सकते, उस परमात्माको नमस्कार है ॥ ६ ॥ जो तीनों
लोकोंको चमकाने और फैलानेवाला है, जिसके समान कोई नहीं
है, जिसके अनभिन्न रूप हैं, जिसमें कभी कोई बनाव बिगाड़ या
हेर-फेर नहीं होता, जिसका अन्त नहीं है और जो अनुभवसे ही
समझा जा सकता है उसको मैं उपासना करता हूँ ॥ ७ ॥ जो
दिशा और कालके बन्धनोंमें बँधा नहीं है, जिसका कोई पार
नहीं पा सकता, जो साक्षात् ज्ञान रूप है और जो अनुभवसे ही
समझा जा जाना जा सकता है, उस शान्त और तेजस्वी रूपवाले
देवताको नमस्कार है ॥ ८ ॥ जिसके पासतक वाणी और मन
दोनोंकी पहुँच नहीं हो पाती, उस महा शक्तिवाले और तीन
गुण (सरद, रज और तम), आठ गुण (दया, चमा, धनसूया,
शीघ्र, अनापास, मद्रल, अकृपणता और अरुद्रा), साध्यमें

बताए हुए चौबीस गुण और अनन्त गुण होनेपर भी जो
गुणरहित बना रहता है उस ब्रह्मको नमस्कार है ॥ ९ ॥ अपनी
ज्ञान-शक्तिसे अपने ऐश्वर्यको अपनेमें छिपाए रखनेवाली उस
मन्त्र रूपी किसी मूर्त्तिको नमस्कार है, जो दिखाई भी देती है
और नहीं भी दिखाई देती ॥ १० ॥ जिसका न कभी जन्म
हुआ, न धारम्भ हुआ, जिसमें कभी कोई बनाव बिगाड़
नहीं होता, जो अपनी शक्तिसे सदा चमकता रहता है,
माया जिसे बँध नहीं पाती, वह फैले हुए श्रानन्दवाला अपना
स्वरूप चमकता रहे ॥ ११ ॥ जो न खी है, न पुरुष है, न
नपुंसक है, न फैला है, न छेड़ा है, न बड़ा है, न मोटा है, न
पतला है, न है, न नहीं है, न अपूर्ण है, न पूर्ण है, वह केवल
प्रकाशमय रूपवाला (ब्रह्म) ही चमक रहा है ॥ १२ ॥ जो सदा
रहता है, जो न कभी जन्म लेता है न मरता है, जो अपने
अनुभवसे ही जाना जा सकता है, जो श्रानन्दका धाम है, जो
संसार रूपी श्रेण्डुएको उगानेवाला अकेला योज है, जो दिशा,
देश, काल और गिनतीके बन्धनसे बहुत दूर है, वह बड़ेसे
भी बड़ा परमात्मा छुहारा सदा महल करे ॥ १३ ॥ वेदोंमें
जिसका यह कहकर पूरा बर्णन नहीं हो पाया है कि 'इतना
ही नहीं है', समाधि लगायेवाले योगी जिसे पूर्ण रूपमें
देखते हैं और जो न उलझ होता है, न रहता है, न नष्ट होता
है, उस अपने आप चमकनेवाले परमात्मवी शरणमें जाता
है ॥ १४ ॥ जो किसी भी बन्धनमें बँधा हुआ नहीं है, जो
स्वभावसे ही शुद्ध है, जो निराकार होते हुए भी तीनों लोकोंके
रूपमें दिखाई पड़ता है, वही ब्रह्म है ॥ १५ ॥ यह विश्वरूप या

समुद्रा प्रह्लाणमनुजा दैत्यगन्धर्दनागाः । द्वीपाः नञ्ज-
तारारथियसुमुनयो व्योमभूरश्विनो च संलीना यस्य सर्वे
वपुषि स भगवान् पातु यो विश्वरूपः ॥ १६ ॥ मच्या-
हार्कर्मरीचिकास्त्रिव पयःपूने यदधानतः सं वायु-
ज्वलनो जलं क्षितिरिति त्रैलोक्यमुन्मीलति । यत्तत्त्वं
विदुषां निर्मीलति पुनः स्रग्भोगिभोगोपमं सान्द्रानन्द-
मुपास्महे तदमलं स्वात्मावबोधं महः ॥ १७ ॥ यथा
तथापि यः पूज्यो यत्र यत्रापि योऽर्चितः । योऽपि वा
सोऽपि वा योऽस्तौ देवस्तस्मै नमोस्तु ते ॥ १८ ॥ यथा
स्थाणौ प्रेतो जलमिव मरौ व्योम्नि पुरवद्भुजङ्गो वा
रज्जायिव भुवनमेतत्सदुपमम् । भ्रमाद्यत्राभातं तदधि-
फलमेकं निरुपमं सदा सर्वत्रातं किमपि कमनीयं स्फुरति
तत् ॥ १९ ॥ यदनघगमताऽसदपि सदिव तत् । प्रकृति-
विलसितं सदमलमुदितम् ॥ २० ॥ यस्माद्द्विभुमुदेति
यत्र रमते यस्मिन्पुनर्लोयते भासा यस्य जगद्भ्रामति

सहजानन्दोऽज्वलं यन्महः । शान्तं शश्वतमत्रियं यम-
पुनर्भावाय भूतेभ्यं त्रैलोक्यान्तमपास्य यान्ति कृतिनः
प्रन्तामि तं पूरुपम् ॥ २१ ॥ यः सृष्टिस्थितितं हनीति-
तनुते प्रह्लादिमूर्त्तित्रिकैर्यस्याधीनतया स्थितानि मद्-
सत्कर्मण्यपि प्राणिनाम् । नियेच्छद्गहननिबुद्धिमानघ
परो जीवात्परात्मा म्वयं सोऽयं यो विदुवातु पूर्णमधि-
राश्वेतोगतं यद्भवेत् ॥ २२ ॥ होऽत्रयस्थितिलयोदय-
केलिकारः कार्येण यो हरिहरदुहिण्यमेति । देवः स
विश्वजनयाङ्गनसातिवृत्तशक्तिः शिवं दिशतु शश्वद-
नभ्यं वः ॥ २३ ॥ विश्वाम्मिज्जगति समन्ततः प्रका-
शस्याघाने कुशलमनन्तरं प्रभूतम् । उद्गीतं विरुत्ति-
विहीनमेकमाद्यं किञ्चित्प्रकृतिपरञ्चकास्ति वस्तु ॥ २४ ॥
विश्वेशो वः स पायात्त्रिगुणसचिवतां योवलम्ब्यानुवारं
विश्वद्रीचीनसृष्टिस्थितिविलयमजः स्वेच्छुया निर्मिर्माते ।
यस्येयत्तामतीत्य प्रभवति महिमा कोऽपि लोकज्यतीतः

संसारके रूपमें दिवाई देनेवाला भगवान् तुम्हारी रक्षा करे
जिसके शरीरमें ब्रह्मा, दत्त, कुंजर, यम, वरुण, वायु, अग्नि,
चन्द्र, इन्द्र, रुद्र, पशुपति, नदी, समुद्र, सम्पूर्ण ब्रह्म, मनुष्य, दैत्य,
गन्धर्व, नाग, द्वीप, तारे, सूर्य, वसु, सुनि, आकाश, पृथ्वी और
दोनों अधिनीडुमार आदि सब समाप्त हुए हैं ॥ १६ ॥ जैसे
दोपहरको सूर्यकी किरणोंकी चमकने दिवाई देनेवाली भिल-
मिलीको लोग पानीका कुण्ड समझ बैठते हैं, वैसे ही जिस
ब्रह्मको अग्रानपनमें लोग आकाश, वायु, जल, अग्नि और पृथ्वीके
रूपमें देखते हैं और जिस आत्मज्ञान रूपी शुद्ध महातत्वके
कारण विद्वान् या ज्ञानी भी मालाको सर्प समझ बैठते हैं, उस
अत्यन्त आनन्दकी मैं उपासना करता हूँ ॥ १७ ॥ जो देव सब
प्रकारसे, सब स्थानोंमें और सब रूपोंमें पूज्य है उमे मेरा प्रणाम
है ॥ १८ ॥ जैसे सुखे पेड़के हूँडमें प्रेतका, मरत्यलमें जलका,
आकाशमें नगरका और रस्सामें साँपका भ्रम होता है उसी प्रकार
जिसमें भ्रममे जगत्का भ्रान होता है और जो पूर्ण, एक, अद्वितीय
तथा सर्वत्र व्यापक कोई एक सौन्दर्य भासित होता है वही
ब्रह्म है ॥ १९ ॥ जिस ब्रह्मको द्रीक-श्रीक न जाननेके कारण असत्य
पदार्थ भी सत्यसे प्रतीत होते हैं, जो स्वयं ऐसा प्रकाश है कि
उमे प्रकाशित करनेके लिये दूसरे किसी प्रकाशकी आवश्यकता
नहीं है और वेदोंने जिसे सत्य तथा शुद्धरूप बताया है, वही ब्रह्म
है ॥ २० ॥ जिस पुरण (ब्रह्म) से यह संसार उत्पन्न होता
है, जिसमें वास करता है और जिसमें लय हो जाता है, जिसके

प्रकाशमे यह जगत् चमक रहा है, जो स्वभावनः आनन्दस्वरूप,
शान्त, अनरवर और क्रियाशून्य है और ज्ञानी लोग अपने
ज्ञान-अभोगिसे भेदका अन्धकार दूर करके सब प्राणियोंके जिस
स्वामीमें मिल जाते हैं उसकी मैं स्तुति करता हूँ ॥ २१ ॥
जो परमात्मा अपने ब्रह्मा, विष्णु और महेश-रूपोंमें संसारका
सर्जन, पालन और संहार करता है, जिसके अर्थान सब
प्राणियोंके अच्छे-बुरे कर्म हैं, जिन्की इच्छा, प्रयत्न और ज्ञानका
कभी नाश नहीं होता और जो जीवाममे कहीं बदर है वह
शीघ्र आप लोगोंके मनकी अभिलाषापूर्णे पूर्ण करे ॥ २२ ॥ जो
तीनों लोकोंकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयका खेल खेलता रहता
है और जो काम पड़नेपर ब्रह्मा, विष्णु या शिव बन जाता है,
जिसके पासतक किसीके मन और वचनकी पहुँच नहीं हो पाती
(जिसकी न मनमें कल्पना की जा सकता है, न वाणीमे बर्णन
क्रिया जा सकता है), ऐसी वह विचित्र शक्ति (ब्रह्म) सदा
आप लोगोंका अलखड महल करे ॥ २३ ॥ जिसके प्रत्येक
अंशमें उसी प्रकार प्रकाश व्याप्त है जैसे रूडेमें मिट्टी, वह
पूर्ण, ब्रह्माण्डमें श्रेष्ठ, महलनय, अवकाशरहित, प्रकाशरूप,
अपरिवर्त्तनीय, एक, अनादि, सत्य, रज और तम गुणवाली प्रकृतिमे
परे जो दुष्ट भासमान है वही ब्रह्म है ॥ २४ ॥ वह संसारका
स्वामी आप लोगोंकी रक्षा करे जो स्वयं उपन्न होनेवाला न
होकर भी सत्य, रज और तम गुणोंकी सहायतामे निरन्तर
चर-अचरकी रचना, पालन और संहार करता रहता है, जिसकी

त्यक्तो यश्चतुराचैरपि निपुणतमैर्विद्वणादिक्रियासु ॥२५॥
 विष्णुर्वा त्रिपुरान्तको भवतु वा ब्रह्मा सुरेन्द्रोऽथवा
 भानुर्वा शशलज्जणोऽथ भगवान्नुद्धोऽथ सिद्धोऽथवा ।
 रागद्वेषविपात्तिमोहरहितः सत्वानुकम्पोद्यतो यः सर्वैः
 सह संस्कृतो गुणगणैस्तस्मै नमः सर्वदा ॥ २६ ॥ शक्यं
 यद्म विशेषतो निगदित्तुं प्रेम्णैव यच्चिन्तितं शूद्रक्री-
 यदनेन्दुमण्डलाभिव स्वान्ते विघत्ते मुदम् । यन्मुग्धानय-
 नान्तचेष्टितमिवाप्यत्नेऽपि नो लज्जितं तच्चेजो यिनया-
 दमन्द्रहृदयानन्दाय वन्दामहे ॥ २७ ॥ शान्तं युद्धं पुराणं
 त्रिभुवनभवर्षं भावि भूतं भवच्च नित्यं बुद्धं प्रभूतं
 सकृतामनवरं भव्यमेकं प्रसिद्धम् । पूर्णं विष्णुप्रकाशं
 शरणात्मनुपमं निर्विक्रयं निर्विकारं रुद्रं सन्तुष्टमब्जा करण-
 विषयताशुभ्यमुद्भानि शश्वत् ॥२८॥ शिवमनुपधिसद्भ्राजं
 सकलमयमानन्दम् । अमृतमुदितमालैकानुभवविषय-

रूपं सत् ॥२९॥ सर्वः किलायमवशः पुरुषाद्युक्तम-काया-
 विकारणवाणो यदनुग्रहेण । विश्वप्रपञ्चरचनाचतुस्त्वमेति
 स त्रायतां त्रिभुवनैकमहेभ्यरो वः ॥ ३० ॥

त्रिमूर्त्तयः

नमस्त्रिमूर्त्तये तुभ्यं प्राक्सृष्टेः केवलात्मने । गुणत्रय-
 विभागाय पश्चाद्भेदमुपेयुषे ॥ १ ॥ नमोविश्वसृजे पूर्वं
 विश्वं तदनु विभ्रते । अथ विश्वस्य संहर्त्रे तुभ्यं वेधा
 स्थितात्मने ॥ २ ॥ रजोमुपे जन्मनि सत्त्ववृत्तये स्थितां
 प्रज्ञातां प्रलये तमःसृष्टे । अजाय सर्गस्थितिनाशहेतवे
 त्रयोमयाय त्रिगुणात्मने नमः ॥ ३ ॥ श्यामश्वेतारुणाङ्गा
 जलधरणिधरोत्फुल्लपङ्केरुहस्था मोमा-सावित्र्युपेता
 रथचरणपिनाकोप्रहङ्कारशखाः । देवा द्विज्यष्टनेत्रा जग-
 द्यनसमुच्छेदनी-पत्तिदत्ताः प्रीता वः पान्तु नित्यं हरि-
 हरविधयस्तादर्यगोहंसपत्राः ॥ ४ ॥ श्यामश्वेतासि-

महिमाकी कोई सीमा नहीं है, जो सब लोकोंसे परे है तथा
 देवने, सुनने, दूने, सूँघने और चलनेमें समर्थ इन्द्रियों भी जिसके
 पासतक नहीं पहुँच पाती ॥२५॥ जो राग और द्वेष रूपी विष
 तथा दुःख और मोहसे शून्य है, जो सदा सावधान होकर
 प्राणियोंपर कृपा करता रहता है और जो सब गुणोंसे अलङ्कृत
 है, उसे हमारा सदा नमस्कार है, चाहे वह विष्णु हो, शङ्कर हो,
 ब्रह्मा हो, सूर्य हो, चन्द्र हो, बुद्ध हो या सिद्ध ही बर्षों न हो ॥२६॥
 जिसका रीक-टीक वर्णन नहीं किया जा सकता, जो प्रेमेसे स्मरण
 करने मात्रसे कोमलाद्री नायिकाके मुण्डचन्द्रके समान हृदयको
 ध्यानद्वित करता है, जो किसी भोली नायिकाके कटावपातके
 समान सम्पुत्र होनेपर भी देखा नहीं जा सकता (सहा नहीं
 जा सकता), उस तेज (मह) धर्म में इसलिये विनयपूर्वक प्रणाम
 करता हूँ कि मुझे अपने हृदयमें सपसे यदा ध्यानन्द मिले ॥२७॥
 जो पूर्णतः शान्त, शुद्ध, सबसे पुरातन, सारे ससारका आधार,
 भूत, भविष्य तथा वर्त्तमान-स्वरूप, सदा रहनेवाला, ज्ञानरूप,
 सर्विष्वस्युक्त, सर्वमय, सर्वधेय, अमय, एक, प्रसिद्ध, पूर्ण,
 सब धर्मोंमें प्रशस्तवान्, सबका आधार, अनुपम, त्रियाईन,
 विकार-रहित, रूद्ररूप, सदा सन्तुष्ट, चाणोच्य, शून्य तथा सदा
 प्रदारावान् है, यही प्रसन्न है ॥२८॥ जो स्वयं कल्पानु-स्वरूप है, जो
 सब उपाधियोंसे परे है, जो सूर्य चादि सबमें अधिक प्रकाशवान्
 है, जो पूर्णतः निष्पाप है, जो ध्यानन्द-स्वरूप है, जिसे लोग
 धन्य कहते हैं, जो केवल ध्यानज्ञानमें ही समाप्त जा सकता
 है और जो सदा है, यही प्रसन्न है ॥ २९ ॥ तीनों लोकोंका यह

सबसे बड़ा स्वामी आप लोगोंकी रक्षा करे, जिसकी इच्छासे
 सभी पुरुष, परमात्मा, कर्म, शरीरादि सब कारण स्वयं पराधीन
 होते हुए भी इस विलुप्त ससारका निर्माण करनेमें समर्थ हो
 जाते हैं ॥ ३० ॥

तीनों मूर्त्तियाँ

सृष्टिके पहले केवल शकले ही एक रूपवाले और फिर
 तीनों गुणोंकी अलग अलग करनेके लिये तीन अलग अलग
 रूपोंवाले आपको प्रणाम है ॥ १ ॥ पहले ब्रह्मा-रूपसे इस
 संसारकी रचनेवाले, फिर विष्णु रूपसे इसे पालनेवाले और फिर
 रुद्र-रूपसे इस ससारकी नष्ट कर देनेवाले तीन रूपोंमें रहने-
 वाले आपको प्रणाम है ॥ २ ॥ जो रजोगुणसे युक्त होकर
 संसारकी रचना करते हैं, सत्वगुणसे युक्त होकर ससारका पालन
 करते हैं और तमोगुणसे युक्त होकर ससारका नाश करते हैं, ऐसे
 रज, सत्व और तमोगुणवाले तथा इस संसारकी रचना, पालन
 और नाश करनेवाले ब्रह्मा, विष्णु और शिव रूपवाले
 अजन्मा (ब्रह्म) की प्रणाम है ॥ ३ ॥ क्रमशः सँवले, उजले
 और लाल रूपवाले, सद्युद्ध, पर्वत और तिले हुए कमलमें रहने-
 वाले, चक्र, पिनाक (धनुष) और भयङ्कर हुङ्कार रूपी राक्षसवाले,
 दो तीन और धातु शक्तिवाले तथा गरुड, नन्दी और हंसपर
 चढ़कर चलनेवाले, ससाङ्का पालन, नाश और रचना करनेवाले
 सपत्नी, पार्वती और सारस्वतीमें संयुक्त रहनेवाले तीनों देव
 (विष्णु, शिव और ब्रह्मा) प्रसन्न होकर आपको रक्षा करें ॥४॥
 क्रमशः सँवले, उजले और लाल रङ्गके धनी, प्रसन्नके यह

तस्याऽप्य प्रणतार्त्तिनिवारिणी । संसारोत्तारणे दक्षा मुदे
देवत्रयी भवेत् ॥ ५ ॥

ब्रह्मा

अधिरताभ्युजसङ्गतिसङ्गलद्ब्रह्मलकेसरसंवलितेयवः ।
ललितवस्तुविधानसुगोह्लसत्सुनुरुहा तनुरात्मसुगोऽव-
नात् ॥ १ ॥ आगस्कारिणि कैटभप्रथमने तत्ताड-
नार्थं रुपा नाभीपङ्कजमखत्तां गमयितुं जाते प्रयत्ने
श्रियः । स्वाधासोन्मथनोपपादितभयध्वान्तात्मनस्तत्त्व-
शाद्ब्रह्मण्यपराः पुरातनमुनेर्व्याभ्युत्सयः पान्तु वः ॥ २ ॥
कुलशैलदलं पूर्णसुवर्णगिरिकर्णिकम् । नमोऽधितिष्ठतेऽ-
नन्तनालं कमलविष्टरम् ॥ ३ ॥ कृतकान्तकेलिङ्कुतकथ्री-
शीतश्वाससेकनिद्राणः । घोरितविततालिङ्कते नाभि-
सरोजे विधिर्जयति ॥ ४ ॥ जातस्तेऽधरखड्गनात्परि-
भवः कापालिकादभ्य यत्तद्ब्रह्मादिषु कथ्यतामिति

दूर करनेवाले और प्राणियोंको संसारसे पार करनेमें चतुर तीनों
देव आपका कल्याण करें ॥ ५ ॥

ब्रह्मा

ब्रह्माका यह अपने आप ही उत्पन्न शरीर आपकी रक्षा करे
जो नाना प्रकारकी सुन्दर-सुन्दर वस्तुओंकी बना चुकनेकी
सफलताके मुखमें रोमाञ्चित होकर ऐसा जान पड़ता है मानो वने
कमलोंके बीचमें रहनेमें उनसे गिरे हुए परागके ढेरमें रँग गया
है ॥ १ ॥ अपराधी कैटभासुरसे युद्ध करते समय क्रोध होनेपर
जब उसे भारनेको कुछ न मिला तब विष्णुकी नाभिमें उगे हुए
कमलको ही शरके रूपमें लेनेको जैसे ही लक्ष्मीजी उठीं जैसे ही
अपना घर उजड़ जानेके ढरमें घबराकर 'रक्षा करो, रक्षा करो'
चिल्ला उठनेवाले प्राचीन मुनि ब्रह्माकी बे पुराणें आपकी रक्षा
करें ॥ २ ॥ कुलाचल पर्वत ही जिसकी पँखुड़ी है, सभूवा सुमेरु
पर्वत ही जिसका घुत्ता है और जिसके नालका कहीं अन्त ही
नहीं है, ऐसे कमलपर बैठे हुए ब्रह्माजीको प्रणाम है ॥ ३ ॥ अपने
प्रियसे विलास करनेके पश्चात् लक्ष्मीजीने जो ठण्ठी साँसें लीं
उनकी तरावटमें विष्णुकी नाभिके कमलपर बैठकर ऊँचते हुए उन
ब्रह्माजीकी जय हो जिनके आसपास मीरे बलपूर्वक गुंजार करते
हुए मँडरा रहे हैं ॥ ४ ॥ 'हे माँ ! उस अधोर्तने आपका नाँचेका
थोट काट लिया, इसीसे जो आपकी हार हुई यह समाचार ब्रह्मा
आदि देवताओंसे भी कहिए !' यह बात जब सचपनके कारण
स्वामी वात्तिकेयने कही और उनके लः सुप्त केवल अपने दो
हाथोंसे पार्वतीजी न बँद पाइं' तब उसी बातको धतुरतासे अपने

घनो बाल्याच्छिशां जल्पति । गौरौ पाण्डियुगेन पगमुप-
वचो रोद्धुं निरोध्यात्तमं वैलज्याघतुराननन्य धदना-
चृत्तिश्चिरं पातु वः ॥ ५ ॥ तं वन्दे पद्मसद्मानमुपवीत-
च्छटाच्छलात् । गङ्गा स्रोतस्त्रयेणैव यं सदैव निपे-
धते ॥ ६ ॥ मूर्त्तिः स्मर्त्तमोहारा सहचरी वाचां परा
देवता व्याहाराः श्रुतयः कुटुम्बकमिदं विश्वज्जम्घाव-
रम् । यस्यैतच्छृत्तिमूलमूलरुतया सन्दर्शितप्रक्रियं
स्वारम्भमगयन्तमन्तरहितम्ब्रह्माण्मीडामहे ॥ ७ ॥

रुजति कमलसंस्थो दृश्यमात्रं सदा यो निषिलनिगम-
तस्त्वसानिताश्च प्रधानम् । अपरिहृतसमाधि सन्यसङ्क-
ल्पमेतं परिषिमलचरित्रं तं नुवे हंसवाहम् ॥ ८ ॥

सरस्वती—आशासु राशीभयदङ्गवर्षीभासैव दासीरुन-
दुग्वासिन्धुम् । मन्दस्मितनिन्दितशरदेन्दुं वन्देऽरविन्दा-
सनसुन्दरि त्वाम् ॥ १ ॥ करवदरसदृशमणिलं भुवनतलं

चारों मुखोंमें दुहरानेवाले ब्रह्माजी आपकी रक्षा करें ॥५॥ कमलके
भयनमें रहनेवाले उन ब्रह्माजीको प्रणाम करता हूँ जिनके शरीरमें
अपनी तीनों धाराओंमें जनेऊकी तीन लड्डोंकी शोभा बनाती हुई
गङ्गाजी सदा उनकी सेवा करती रहती हैं ॥ ६ ॥ जिनका स्वल्प
ध्यान करनेवालोंका नमोगुणरूपी शँधरा दूर करता है, वचनोंकी
एक मात्र स्वामिनी देवी सरस्वती जिनको गृहियाँ हैं, जिनके सुँदमें
निकले हुए बोल ही चारों वेद हैं, सारा घर और अचर विश्व
ही जिनका परिवार है, अपने सब कार्य वेदोंमें प्रमाणित करके
जिन्होंने वेदोंकी प्रामाणिकता दिग्गई, जो एक-आध अपनी शक्तिमें
ही चाहे जो रचना कर डालते हैं और जिनका अन्त ही नहीं है
ऐसे ब्रह्माजीकी हम स्तुति करते हैं ॥ ७ ॥ कमलमें बैठे हुए ही
जो इस दिखाई देनेवाले सारे विश्वको रच डालते हैं, वेदोंके
रहस्यको जाननेवालोंमें जो सबसे प्रधान है, जिनकी समाधि कर्मी
रखित नहीं होती, जिनके मनके सङ्कल्प मर्यादा सत्य होने हैं, ऐसे
पवित्र और विचित्र चरित्रवाले एवं इंसपर सवारी करनेवाले
ब्रह्माजीको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ८ ॥

सरस्वती : दसों दिशाओंमें जिसकी अङ्गरूपी लताएँ फैली
हैं, जिसने अपनी देहके उजलेपनमें दूधके ससुद्रको भी नीचा
दिग्ग दिया है और जिसकी मन्द मुसकान देवकर शरदका
चन्द्रमा भी लजा जाता है, ऐसी हे कमलपर बैठी हुई अत्यन्त
सुन्दरी सरस्वती देवी ! मैं आपको प्रणाम करता हूँ ॥ १ ॥ उस
सरस्वती देवीकी जय हो, जिसकी कृपाने पैनी समझवाले कवि
योग सारे संसारको ऐसी मरलतासे देख लेते हैं मानो वह

यत्प्रसादतः कवयः । पश्यन्ति सूक्ष्ममतयः सा जयति सरस्वती देवी ॥ २ ॥ जलदुग्धनिर्णयविधां यस्यावा-
होऽपि विश्रुतो दक्षः । सा सदसस्वविबोधकवागींशा
स्तान्ममाद्य गतिः ॥ ३ ॥ ज्योतिस्तमोहोरमलोचनगोचरं
तजिह्वादुरासदरसं मधुनः प्रवाहम् । दूरे त्यचः पुलक-
चन्धि परं प्रपद्ये सारस्वतं किमपि कामदुग्धं रहस्यम् ॥ ४ ॥
तद्विद्व्यमव्ययं धाम सारस्वतमुपास्महे । यत्प्रसादात्प्र-
लीयन्ते मोहान्धतमसच्छ्रुताः ॥ ५ ॥ तमोगणविनाशिनी
सफलकालमुद्योतिनी धरातलविहारिणी जडसमाज-
विद्वेषिणी । कलानिधिसहायिनी लसदलोलसंदाभिनी
मदन्तरालस्मिनी भवतु कापि कादम्बिनी ॥ ६ ॥ तव
करकमलस्थां स्फाटिकीममृतालां नखकिरणविभिन्नां
दाडिमीवीजवृद्धया । प्रतिकलमनुकर्षत्येन कीरो
निपिद्धः स भवतु मम भृत्ये वाणि ते मन्दहासः ॥ ७ ॥
धातुश्रुतुर्मुखीकण्ठश्लोकविहारिणीम् । नित्यं प्रग-

ल्भवाचालामुपसिष्टे सरस्वतीम् ॥ ८ ॥ पातु वो निकप-
प्रावा मतिहेमः सरस्वती । प्राङ्गेतरपरिच्छेदं वचलैव
करोति या ॥ ९ ॥ यस्याः प्रसाद्विरहे मूकत्वं सर्वदा
स्फुटम् । तामेकां वागधिष्ठात्रं महादेवीमुपास्महे ॥ १० ॥
या कुन्देन्दुतुपारहारधवला या शुभ्रवस्त्रावृता या
वीणावरद्वयमङ्गितकरा या श्वेतपद्मासना । या ब्रह्म-
च्युतशङ्करप्रभृतिभिर्देवैः सदा वन्दिता सा मां पातु सर-
स्वती भगवती निःशेषजाड्यापहा ॥ ११ ॥ वचांसि वाच-
स्पतिमत्सरेण साराणि लब्धुं प्रहमण्डलीव । मुक्ताक्षस्-
त्रत्वमुपैति यस्याः सा प्रसादास्तु सरस्वती वः ॥ १२ ॥
वीणावादनदम्भेन शास्त्रतत्त्वविकासिका । हंसासनमु-
पासीना वान्देवी श्रेयसेऽस्तु नः ॥ १३ ॥ शरणं करवाणि
शर्मदं ते वरणं वाणि चराचरोपजीव्यम् । कद्वणामसृगैः
कटाक्षपातैः क्रुद्धमाम्ब्व छतार्थसायंवाहम् ॥ १४ ॥
शारदा शारदाम्भोजवदना वदनाम्बुजे । सर्वदा सर्वदा-

उनके हाथपर रत्ना हुआ बर हो ॥ २ ॥ वाणीकी स्वामिनी वे
सरस्वती देवी आज मुझे शरण हूँ जो शब्दे और धुंके भेद
करनेकी शक्ति देती है और जिनका वाहन हंस भी जल और
दूधके घोलका शलग-शलग कर सकनेकी चतुराईके लिये ससारमे
प्रसिद्ध है ॥ ३ ॥ सब इच्छायोंको पूर्ण करनेवाली सरस्वतीजीकी
उस रहस्य-भरी शक्तिकी मैं शरण लेता हूँ जो अंधेरा मिटानेवाली
चकाचौध भरी चमकसे युक्त होनेपर भी नेत्रोंसे दिखाई नहीं
पड़ती, अमृतकी सीठी धारा होनेपर भी जीभ जिसका स्वाद नहीं
पा सकती और जो दूर रहते हुए भी शरीरमें रंभाब उलपन्न कर
देती है ॥ ४ ॥ सरस्वतीजीके उस देवी और कभी भी न घटनेवाले
तेजकी मैं उपासना करता हूँ जिसकी कृपासे मोह रूपी घने
धँधरेकी कजिमाका नाश हो जाता है ॥ ५ ॥ घने अंधेरेको
मिटानेवाली, सदा उजाला करती रहनेवाली, प्रत्येक धूमती
रहनेवाली, जड़ों (मूलों और प्राणहीन पत्थर आदि) से दूर
रहनेवाली, कलाकी रान, चन्द्रमा और विद्वानोंको सहायता देने-
वाली और सदा चमकती रहनेवाली विजली (चमक) से सबी
काँई उजली चमकीली बदली (सरस्वतीजी) मेरे हृदयमें
थाकर फैल जाय ॥ ६ ॥ हे सरस्वती देवी ! आपके कमल जैसे
मुन्दर हाथनी उँगलियोंके नखोंकी लाल छाया पड़नेसे साल हो
उठनेवाली चिन्मी स्फटिकी मालाको अनाकरके दाने समझकर
उसपर पांच मारनेके लिये उतावले तोतेको आपने जिस मुस्कराहटसे
रंका, यह मन्द मुस्करान मेरा कवयाय करे ॥ ७ ॥ उन सरस्वती

देवीको नमस्कार करता हूँ जो बोलनेमें सदा बहुत निटर और
चतुर हैं तथा जो ब्रह्मके चौराहेके समान चारों कण्ठोंमें सदा
धूमती रहती हैं ॥ ८ ॥ वे सरस्वती देवी आप लोगोंकी रक्षा
करें जो बुद्धि-रूपी साँकेके लिये कसीटी है और जो वचनोंसे ही
विद्वानों और मूर्खोंको सदा भेद बताती रहती है ॥ ९ ॥ मैं उन
सबसे बड़ी सरस्वती देवीको उपासना करता हूँ जो वाणीकां
शक्ती ही स्वामिनी है और जिनकी कृपा न मिलनेसे क्रितीकी
बोली ही नहीं खुल पा सकती ॥ १० ॥ कुन्दके फूल, चन्द्रमा, हिम
और मोतियोंकी मालाके समान उजली, उजले ब्रह्म पहननेवाली,
मुन्दर लगनेवाली, उजले कमलपर बैठी हुई, सारी मूर्खताको नष्ट
करनेवाली तथा ब्रह्मा, विष्णु और शङ्कर आदि देवताओंसे पूनी
जानेवाली सरस्वती देवी मेरी रक्षा करें ॥ ११ ॥ जिनके गलेमें
मोतियोंकी माला ऐसी शोभा दे रही है मानी बृहस्पतिसे ईर्ष्या
करके उनके समान वाणीका तत्व प्राप्त करनेके लिये सारी
प्रह-मण्डली कण्ठसे आ चिपटी हो, वे सरस्वतीजी आप लोगोंपर
प्रसन्न हों ॥ १२ ॥ वे सरस्वती देवी हम लोगोंका कवयाय करें
जो ईसके ऊपर बैठी हुई वीणाध्वजा-ध्वजाकर उसके स्वरोंसे ही सब
शास्त्रोंके गुप्त भेद समझाती रहती हैं ॥ १३ ॥ हे सरस्वती देवी !
मैं थापके उन कवयाय करनेवाले चरणोंकी शरण लेता हूँ जिनके
सहारे सारा जड़ और चेतन संसार जीता है । हे माता ! आप मुझे
अपनी दया-भरी तिरछी चितवनसे देखकर ऐसा बना दें कि मेरे
मुँहसे निकली हुई वाणी सदा सफल होती रहे ॥ १४ ॥ भक्तोंकी

स्माकं सधियाधि सन्निधि क्रियात् ॥ १५ ॥ सूत्रमाय शुचये तन्मै नमो वाक्त्वत्तन्व्यते । यिधिभ्रो यस्य विन्यासो विदधाति जगत्पटम् ॥ १६ ॥ हंसासीना हसन्ती मृदुमधुरकलां वाद्यन्ती स्वधीणां तत्त्वग्रामं समन्तं प्रकटमधिकलं सन्यन्ती विक्रासम् । मुकामालां दवाना गुणगणमहिना स्वयमाना सुरन्द्रेवांगीशा सुमसत्रा निवसतु चदानाम्भोस्वहान्तः सदा मे ॥ १७ ॥

हिरिहरी

अपलाटग्रविग्रहश्रीरमर्त्यनतिरत्नमालयोपेतः । पञ्चक्रमोदितमुखः पायात्परमेश्वरो मुहुरनादिः ॥ १ ॥ गर्वी-

शपरो नगजातिहारी कुमारततः शशिमल्लमौलिः । लङ्केशसम्पूजितपादपद्मः पायादनादिः परमेभ्यो वः ॥ २ ॥ गार्ह्यामुनयोगेन तुल्यं हारिहरं वपुः । पातु नाभिगतं पत्रं यस्य तन्मध्यगं यथा ॥ ३ ॥ जाह्नवी मूर्ध्नि पादे वा कालः कण्ठे वपुष्यथ । कामार्णि कामततं वा कञ्जिदेवं भजामहे ॥ ४ ॥ पञ्चगधारिकगमो गङ्गोमानसितोऽङ्गदोऽग्रमुजः । शशिमल्लेशेवर उमापरिच्छो मुहुग्नादिग्घतु त्वाम् ॥ ५ ॥ पायात्कुमारजनकाप्य उमायिलासः शूद्रप्रमथ निधनेऽगर्वाशयानः गङ्गाञ्च पद्मगन्धश्च पिनाकसक्त आद्याक्षरेण सहितो रहितोऽथवा

सन कुङ्क देनगाली और शरदके कमलके समान सुन्दर मुगवाती सरस्वती देवी हम लोगोंके सुग रूपी कमलमें रहकर सदा हमें ज्ञानका भण्डार देती रहें ॥ १५ ॥ उन सरस्वती देवीकी प्रणाम हैं जो सुन्दर बोलीका रूप धारण करके ऐसे पवित्र और पतले डोरके समान सारे संसारमें फैली हैं जिसके विचित्र ताने-बानेमें ही यह संसार-रूपी बन्ध युना हुआ है ॥ १६ ॥ इसपर बैठकर हैंसनी हुई, अपनी कोमल और सरस रागवाली वीणा धराकर ही सारे शाश्वतके तत्त्वको मली-भौति प्रकट करती तथा उसे और भी निगवाती हुई, मोतीकी माला धारण की हुई, उत्तम गुणोंकी महत्ताये वड़ी हुई महिमावाली तथा इन्द्र आदि देवताओंमें स्तुति की जाती हुई, वचनोंकी स्वामिनी (सरस्वतीजी) अति प्रसन्न होकर सदा मेरे सुग-श्रमलमें निवास करें ॥ १७ ॥

धिपणु और शिव

गिनतीमें पाँच मुँहवाले (पञ्चक्रमोदितमुखः), अञ्जमाला धारण किए हुए (अञ्जमालयोपेतः), देवताओंमें प्रणाम किए जाने हुए (अमन्यनतिः) तथा आधे भागमें विराजमान स्त्रीरूपमें सुगोमित देहवाले (अजलाश्रविग्रहश्रीः) अञ्जना भगवान् अर्धनारीश्वर सदा ही रचा करें तथा इन विशेषणोंमेंसे पहला अक्षर निकाल देनेपर शक्ति की अधिकतामें सुन्दर देहवाले (यलाटविग्रहश्रीः), मनुष्योंमें प्रणाम किए जानेवाले (मर्त्यनतिः), कामके भण्डारमें युक्त (चमालयोपेतः) भगवान् विष्णु सदा ही रचा करें जिन्का मुँह चक्र धारण करते ही प्रसन्न हो उठता है (चक्रमोदितमुखः) ॥ १ ॥ गीर्वाणके स्वामी नन्दकी सर्वांगीणाले (गर्वीशपः), हिमालयकी पुत्री पार्वतीके कट दूर करनेवाले (नगजातिहारां), कात्तिकेयके पिता (कुमारततः), चन्द्रमाकी कला सिरपर धारण करनेवाले (शशिमल्लमौलिः), लङ्काके अधिपति रावण-द्वारा

पूजित चरण-कमलोंवाले (लङ्केशसम्पूजितपादपद्मः), अञ्जना भगवान् (शिव) आपकी रचा करें तथा इन विशेषणोंमेंसे प्रथम अक्षर निकाल देनेपर पत्नियोंके स्वामी गङ्गकी मारगवाले (वि-शंशपद्मः), गङ्गकी पीड़ा दूर करनेवाले (गङ्गातिहारी), कामदेव (प्रयुज) के पिता (मारततः), सिरपर मोरपुच्छ धारण करनेवाले (शिमल्लमौलिः) तथा ब्रह्मा और गिमे पूजित चरणकमलोंवाले (क-शंशसम्पूजितपादपद्मः), भगवान् (विष्णु) आपकी रचा करें ॥ २ ॥ गङ्गा और यमुनाके सहस्रके समान जान पड़नेवाले विष्णु और शिवके श्याम और श्वेत रङ्गवाले मिले हुए शरीरकी नामिमें निकला हुआ वह कमल रचा करे जो पैमा जान पड़ता है मानो गङ्गा और यमुनाके सहस्रमें ही उत्पन्न हुआ हो ॥ ३ ॥ गङ्गा जिनके मस्तक या चरणमें निकली हैं, काल जिनके गले या शरीरमें हैं, ऐसे किमी देव-कामके गणु (शिव) या पिता (विष्णु) की हम स्तुति करते हैं ॥ ४ ॥ हाथके अग्रेके भागमें नाग लपेटे हुए, गङ्गा और पार्वतीमें संयुक्त, बाँहमें सर्पका सुवन्ध पहने हुए, देहा चन्द्रमा सिरपर धारण किए हुए तथा आधे शरीरमें पार्वतीजीके रूपवाले अञ्जना भगवान् शिव सदा तुम्हारी रचा करें तथा इन विशेषणोंमेंसे पहला अक्षर निकाल देनेपर गोवर्धन पर्वतकी हाथकी उँगलियोंमें उठाए हुए, गौ तथा लक्ष्मीमें संयुक्त, श्रेष्ठ हाथमें गदा धारण किए हुए, मोरमुकुट पहने हुए तथा लक्ष्मी जीकी पत्नीवाले (भगवान् विष्णु) आपकी सदा रचा करें ॥ ५ ॥ स्वामी कात्तिकेयके पिता, पार्वतीके साथ विवाह करनेवाले, शङ्कके समान शूद्र, काल और धैलपर सवारी करनेवाले, गङ्गा तथा सौर धारण करनेवाले और पिनाक घनुपमें रचि रखनेवाले भगवान् शिव आपकी रचा करें तथा इन विशेषणोंमेंसे प्रथम अक्षर निकाल देनेपर कामके पिता, लक्ष्मीके साथ विवाह करनेवाले, आकाशके

त्वाम् ॥ ६ ॥ यस्मादासीत्कुमारः कुचलयदलवल्लीलयो-
चाह गङ्गां यामा यस्याङ्गसङ्गा पिहितजनचयो यो-गवीश-
ध्वजोऽपि । लङ्केशायेकनाथो हिमकररुचिभृद्भूविशेषाश-
योऽसौ वर्णस्याद्यस्य लोपादपहरत् हरिः पातक वः स्म-
रारिः ॥ ७ ॥ यो तो शङ्खकपालभूपतिकरो मालास्थिमम
लाघरो देवो द्वारवतीशमशाननिलयो नागारिगोवाहनो ।
द्वित्र्यज्ञो यलिद्वज्यद्वमथनो श्रीयैलजावल्लभो पापं
चो हर्ता सदा हरिहरो श्रीवत्सगद्गाधरो ॥ ८ ॥
लोले ब्रुहि कपालकामिनि पिता कस्ते पतिः पाथर्था कः
प्रत्येति जलादपत्यजनन प्रत्येति यः प्रस्तरात् । इत्थं
पर्वतसिन्धुराजसुतयोपाकर्ण्य वाक्चातुरो सस्मेरस्य
हरेर्हरेस्य च मुदीं निगन्तु विघ्नं तु व ॥ ६ ॥ श्यामिज्ञा
धवलिज्ञा च यमुनाजाह्वयीभाम् ॥ तीर्थराजचद्व्यर्था

दधती कापि देवता ॥ १० ॥ सम्प्राप्तं मकरध्वजेन मयं
त्वतो मर्त्ये पुरा तद्यत्क वहुमार्गां मम पुरो निर्लज्ज
बोडुस्तव । तामेवातुनयस्व-भाचकुटिलां हे कृष्ण कण्ठ-
ग्रह मुञ्जेत्याह रुपा यमद्वितनया लक्ष्मीश्च पायात्स
वः ॥ ११ ॥ स्फटिकमरकतश्रीहारियोः प्रीतियोगात्तद
धतु चपुरेकं कामकंसद्विपूर्वः । भवति गिरिसुतायाः
सार्धमम्भोधिपुत्र्या सदृशमहसि कण्ठे यत्र सीमावि
वादः ॥ १२ ॥

विष्णुः

अतिकरणं निजशरणं प्रार्थयमानं निरस्तहन्मानम् ।
स्मावति चाहोपज्ञायानो यः श्रेयसे स हरिः ॥ १ ॥
अतिविपुलं कुचयुगलं रर्हास करैरामृशन्मुहुर्लक्ष्म्याः ।
तदपहन्तं निजहृदयं जयति हरिर्दृगयमाप इव ॥ २ ॥

समत आभावाले, ऐश्वर्यके स्वामी, गरडकी सगरीवाले, पृथ्वी
पृथ गोपधन परत धारण करनेवाले तथा वेकुण्ड निवासी भगवान्
विष्णु आपकी रक्षा करें ॥ ६ ॥ स्वामी कान्तिकेशके पिता, गङ्गाको
कमलकी पेंखुडीकी भौति सज्ज ही धारण मिष्ट हुष्ट, शरारके
बाई भागम ही पत्नीको रहनेवाचे, प्रलय-कालमें जन समूहका
गाय कर देनेवाले, नन्दीके चिखकी पताकावाले, रामचन्द्रके
पुरुमात्र स्वामी, चन्द्रमाकी कान्तिवाले तथा पृथ्वीके एक विशेष
भाग (केदास्त) में रहनेवाले वे कामके शत्रु शिपनी आपके पापोंका
हरण करें तथा इन विशेषणोंमेंसे प्रथम अक्षर निम्नले देनेपर
कामदेवके पिता, पृथ्वीको कमलकी पेंखुडीकी भौति सरलतासे ले
आनेवाले, सदा लक्ष्मीको साथ रखनेवाले, सत्र प्रतियोगोंका
उपकार करनेवाले, गरुड़में चिह्नित पताकावाले, वज्रा और
शिवके एकमात्र स्वामी, मन्वरहुडलेसे सुसोभित तथा गरुडकी
सवारी पृं शेषनागकी शैयावाले विष्णु भगवान् आपके पाप
नष्ट करें ॥ ७ ॥ क्रमशः शङ्ख और खोपडीसे शोभित हाथोंवाले,
कुन्दा और सुएडोंकी आज्ञा धारण करनेवाले, द्वारकापुरी और
रमशानमें रहनेवाले, गरुड और नन्दीकी सवारीवाले, दी और
तोन मेंरवाले, बलि और दूषक यज्ञकी नष्ट करनेवाले,
लक्ष्मी और पार्वतीकी मित्र लगनेवाले तथा श्रीवत्स (चारण
चिह्न) और गङ्गाको धारण करनेवाले दोनों देव आपके पाप
हर ॥ ८ ॥ पार्वतीने लक्ष्मीपाको समर्थित करके कहा—
प्रभवे ! शुद्ध पापों तो ! लक्ष्मीना योहीं—इहां श्रीवत्सही
पत्नी ! पार्वतीना योहीं—गुहादि पिता कीन है ? लक्ष्मीनी
योहीं—मेरे पिता समुद्र है । पार्वतीनी योहीं—अला समुद्रसे

सन्तान उत्पन्न होनेकी बातपर कीन विश्वास करेगा ? लक्ष्मीनी
योहीं—वही जो पत्थरसे सन्तान उत्पन्न होनेपर विश्वास कर
सकता है । इस प्रकार पर्वतराज हिमालय और सिन्धुराज
शरिसमुद्रकी कन्याओंको वचन चातुरी सुनकर मुस्कराते हुए शिव
और विष्णुकी प्रसन्नता आपके विघ्न दूर करे ॥ ६ ॥ कोई देवता
अपने नीलेपन और उजलेपनसे तीर्थराज प्रयागकी भौति गङ्गा
और यमुनाके सङ्गमकी शोभा धारण कर रहा है ॥ १० ॥
मुझे ही पानेके लिये तुमने कामदेवको नष्ट किया या समुद्रको
मथा और अब उस कुमार्ग या अनेक मार्गोंसे चहनेवाली कुन्दा
या गङ्गाको सिरपर धैरसे तुम्हें लज्जा नहीं आती । अतः अब
हे कृष्ण या नीलकण्ठ ! उसी दुः स्वभाववाली या स्वभावसे
ही टेडी चचनेवाली कुन्दा या गङ्गाके ही जावर मनाओं, मेरा
गला छोड़ो, इस प्रकार कोपपूर्ण लक्ष्मी या पार्वतीने जिनसे
ये बातें कहीं वे आपके रक्षा करें ॥ ११ ॥ स्फटिक और
नीलमणिकी सी कान्तिवाले तथा कस और कामदेवके शत्रु विष्णु
और शिवका अत्यन्त प्रेमके कारण यह मिला हुआ एक ही शरीर
आपकी रक्षा करे जिसके पूरु सी कान्तिवाले गलेकी सीमाके
निपयमें पार्वतीके साथ लक्ष्मीका यह विवाद होने लगा कि
यहाँसे शिवका गला है या यहाँसे विष्णुका ॥ १२ ॥

विष्णु

जिन विष्णु भगवान्ने शीघ्रताके कारण सवारीका भौ
निरस्कार करके अपनी शरणा म आकर प्रार्थना करते हुए अत्यन्त
दयनीय तथा अभिमानरहित गन्नेदृशी नहें पर दीवकर रक्षा
की थी, उनकी जय है ॥ १ ॥ उद विष्णु भगवान्की जय ही जो

अनाहतचमपतिमहितहस्तमस्वीरुतप्रणीतमणियादुकं
 किमिति विस्मितान्तःपुरम् । अवाहनपरिष्कृतं पतन-
 राजमारोहतः करिप्रवर्द्धहिते भगवतस्वरायै नमः ॥३॥
 आकल्पं मुखजिन्मुपेन्द्रुमधुरोन्मीलनमरुन्माधुरीशीरोदा-
 त्तमनोहरः सुखयतु त्वां पाञ्चजन्यध्वनिः । लीलालिङ्गि-
 तमेघनादविभयो यः कुम्भकर्णव्यथादायी दानवदान्तिनां
 दशमुखं दिक्चक्रमाकामति ॥४॥ आदिमध्यात्तरहितं
 दशाहीनं पुरातनम् । अद्वितीयमहं घन्दे मद्रससदृशं
 हरिम् ॥५॥ आश्रित्य नूनममृतयुतयः पदं ते देहजयो-
 पनतदिव्यपदाभिमुत्थाः । लावण्यपुण्यनिचयं सुहृदि
 त्यदास्ये विन्यस्य यान्ति मिहिरं प्रतिमासभिन्नाः ॥६॥
 उद्घाट्य योगकलया हृदयाञ्जकोशं घनैश्चिरार्दापि
 यथास्मिन् गृह्यमाणः । यः प्रस्फुरत्यविरतं परिपूर्णरूपः
 श्रेयः स मे दिशतु शाश्वतिकं मुकुन्दः ॥७॥ एकस्यं जीवि-

देशे त्वयि सकलजगत्सारमालोक्यमानः श्यामे चतुस्त-
 वास्मिन्वपुषि निविशते नालपुण्यस्य पुंसः । कस्यान्य-
 श्चाभूतेऽस्मिन्नतिरतिविपुला दृष्टिरेवाभूत् ते दैत्यैरित्यु-
 च्यमानो मुनिमिरपि हरिः खैरणुरोऽवतादः ॥ ८ ॥
 कचकुचचिवुकाश्रे पाणिषु व्यापृतेषु प्रथमजलधिपत्रो-
 सङ्गमेऽनङ्गयामि । प्रथितनिविडनीधीवन्धनिर्माचनार्थं
 चतुरधिककराशः पातु वञ्चनपाणिः ॥ ९ ॥ कमलाकु-
 चकनकाचलजलवरमाभीरसुन्दरीमदनम् । अघित-
 तश्रेयस्फलावलि- कमलयनमृद्गमच्युतं घन्दे ॥ १० ॥
 किञ्चिन्मुच्यमाने गगन इव मुपे शाठ्यनिद्रापयो-
 दैर्घ्यकुर्याथे स्वभासा फणिपतिशिरसां रत्नदोषांशुजा-
 लम् । पायास्तां वो मुरारः शंशितपनमये लोचने
 यद्विभासा लक्ष्म्या हस्तस्यमर्थं विकसति कमलस्यार्ध-
 मभ्येति निद्राम् ॥ ११ ॥ केलिचलाङ्गुलिलम्भितलम्बी-

लक्ष्मीजीके विराल स्तनपर वारन्वार अपने हाथ फेरते हुए ऐसे
 जान पड़ते थे मानो अपना रोंगया हुआ हृदय हँद रहे हों ॥२॥
 सङ्कटमें पड़े हुए गणेशदेवके लिये गरुड़की नङ्गी पीरपर बैठते हुए
 भगवान् विष्णुको उस शीघ्रताकी जय हो जिसमें उन्होंने सहराके
 लिये बड़ाप हुए सेनापतिके हाथका अनादर कर दिया तथा
 पैरोंमें पहनाई जाती हुई मणियाँकी पातुकाओंको भी टुकरा दिया
 जिसमे अन्तःपुरकी छियाँ 'क्या हो गया ! क्या हो गया !' कह-
 कर आश्चर्य करने लगी ॥३॥ मुर राक्षसको मारनेवाले भगवान्
 विष्णुके मुर-चन्द्रकी हल्की-सी छूँकमे यत्ने हुए उनके पाञ्चजन्य
 शङ्खकी बह धोर, गम्भीर ध्वनि आपका प्रलयकालतक सुख
 पहुँचाती रहे जिसके आगे अनायास ही बादलोंकी गड़गड़ाहट
 मन्द पड़ गई तथा जो राक्षसोंके हाथियोंके कान फोड़ती
 हुई दसों दिशाओंके छोरोंतक जा फँली ॥ ४ ॥ मैं उन विष्णु
 भगवान्को प्रणाम करता हूँ जो मेरे अत्यन्त पुराने वस्त्रके समान
 न जाने कबसे हैं और कनक रहेंगे, जो सदा एकमे रहते हैं
 तथा जो अपने ढङ्गके एक अकेले ही हैं ॥ ५ ॥ भगवन्क जय
 शरीरका अन्त करने लगते हैं तो वे अपने सब सुकृत अपने
 मित्रोंको बँटकर ही सूर्य-मण्डलको जाते हैं । इस ध्रुति-प्रसिद्ध
 विषयको लेकर यह सूक्ति भी है—हे भगवन् ! प्रत्येक मासके
 सब मित्र-मित्र चन्द्रमा, मीच पानीकी अभिलेखापाने ख्युके समय
 अपनी देह क्षीण करके आपके चरण (आकाश) का सहरा लेकर
 जाते समय अपना सौन्दर्यरूपी सुकृत अपने मित्र आपके मुखको
 समर्पित करके अत्रावस्थाको सूर्य-मण्डलमें चले जाते हैं ॥ ६ ॥

वड़े भाव्यवाद् योगी लोग योगसाधनसे अपने हृदयका कमल
 तिलाकर जिन भगवान्को अपनी-अपनी रचिके श्रुतसार उत्तम
 बैठते हैं और जो सदा उनके हृदयमें अपने पूर्ण रूपमे विराज-
 मान रहते हैं वे सुवन्द भगवान् मुझे ऐसा पेश्यें दे जो कर्मा
 नष्ट न हो ॥७॥ मोहिनीरूप धारण किए हुए वे विष्णु भगवान्
 आपकी रक्षा करें जिनसे दैत्य तथा मुनि भी मोहमें पड़कर ऐसा
 कहने लगे कि 'हे जीवनकी स्वामिनी ! सारे संसारका सार इन
 आपमें ही एकत्र हुआ देखते हैं, हे श्याम रंगमाली ! इस कम
 पुण्यवाले पुरपकी और आपकी दृष्टि नहीं पड़ती किन्तु अब कहीं
 दूसरे स्थानपर अमृत आदिमें किसाने रचि नहीं रह गई हैं क्योंकि
 आपकी दृष्टि ही तो अमृत है ॥८॥ समुद्रकी कन्या लक्ष्मीजीमे
 प्रथम संयोगके समय कामकी अधिकता होनेपर लक्ष्मीजीके केश,
 दोनों स्तनोंके अग्रभाग और टोढ़ीमें जन विष्णुजीके बाराँ हाथ
 उलक गए उस समय अत्यन्त कसकर बर्षी हुई साड़िकी गाँठ
 खोलनेके लिये जिनके मनमें दो और हाथ प्राप्त करनेकी लालसा
 हुई वे विष्णु भगवान् आपकी रक्षा करें ॥ ९ ॥ उन विष्णु
 भगवान्को प्रणाम करता हूँ जो लक्ष्मीजीके स्तनरूपी मुनेर
 पर्वतके लिये मेघ है, गोपिकाओंके लिये कामदेव है तथा शय्या
 बने हुए शेषीके फरारूपी कमलवनके लिये भीरु हैं ॥ १० ॥
 सृष्टिके प्रारम्भमें भेषगव्यापर सौंपे हुए भगवान् विष्णुके
 आकाशरूपी मुँहसे जन बादलरूपी योगनिद्राकी जड़ता छुड़ूर
 हुई उस समयके उनके सूर्य और चन्द्रमांरूपी वे दोनों नेत्र
 आपकी रक्षा करें जिनके प्रकाशसे शेषके फरोंमें रिफन

अनादृतचमूपतिप्रहितहस्तमस्वीकृतप्रणीतमणिपादुकं
किमिति विस्मितान्तःपुरम् । अघाहनपरिप्लूतं पतग-
राजमारोहतः करिप्रचरवृंहिते भगवतस्स्वरायै नमः ॥३॥
आकल्पं सुरजिन्मुनेन्दुमधुरोन्मीलनमरुमाधुरीधीरोदा-
त्तमनोहः सुपयतु त्वां पाञ्चजन्यध्वनिः । लीलालङ्घि-
तमेघनादविभजो यः कुम्भकर्णव्यथादायी दानवदन्तिनां
दशमुखं दिक्चक्रमात्मानमिति ॥४॥ आदिमध्यान्तरहितं
दशाहीनं पुरातनम् । अद्वितीयमहं वन्दे मद्भ्रूसदृशं
हरिम् ॥५॥ आश्रित्य नूनममृतद्युतयः पदं ते देहज्यो-
पनतदिव्यपदाभिमुखाः । लावण्यपुण्यनिचयं सुहृदि-
त्वदास्ये चिन्त्यस्य यान्ति मिहिरं प्रतिमासमिन्नाः ॥६॥
उद्घाट्य योगफलया हृदयाभ्यङ्गकोशं धन्यैश्चिरार्दापि
यथाकृचि गृह्णामाणः । यः प्रस्फुरत्यविरतं परिपूर्णरूपः
श्रेयः स मे विशतु शाश्वतिकं मुकुन्दः ॥७॥ एकस्थं जीवि-

तेश्चै त्वयि सकलजगत्सारमालोकयामः श्यामे चतुस्त-
वास्मिन्वपुषि निविशते नाल्पपुण्यस्य पुंसः । कस्यान्य-
त्रामृतेऽस्मिन्धरतिविपुला दधिरेवामृते ते देवैरित्यु-
च्यमानो मुनिभिरपि हरिः खैरणरूपोऽथतादः ॥ ८ ॥
कचकुचचिचुकाध्रे पाणिषु व्यापृतेषु प्रथमजलधिपत्री-
सङ्गमेऽनुङ्गवान्नि । अथितनिविडनीवीबन्धनिमौचनार्थं
चतुरधिककराशः पातु वञ्चनपाणिः ॥ ९ ॥ कमलाकु-
चकनकाचलजलधरमाभीरसुन्दरीमदनम् । अथित-
तशेषफणाचलि- कमलवनभृङ्गमच्युतं वन्दे ॥ १० ॥
किञ्चिन्निमुच्यमाने गगन इव मुने शाठ्यनिद्रापयो-
दैर्न्यैर्कुर्वाणे स्वभासा फणिततिशिरस्तां रत्नदायांशुजा-
लम् । पायास्तां घो मुरारिः शंशितपनमये लोचने
यद्विभासा लक्ष्म्या हस्तस्वयमर्धं विकसति कमलस्यार्ध-
मभ्येति निद्राम् ॥ ११ ॥ केलिचलाहुलिललिम्बितलक्ष्मी-

लक्ष्मीजीके विशाल स्तनपर वार-वार अपने हाथ फेरते हुए ऐसे
जान पड़ते थे मानो अपना चोया हुआ हृदय हँव रहे हैं ॥२॥
सङ्कटमें पड़े हुए गजेन्द्रके लिये गण्डकी नदी पीठपर बैठते हुए
भगवान् विष्णुकी उस शीघ्रताकी जय हो जिसमें उन्होंने सहरके
लिये बड़ाप हुए सेनापतिके हाथका अनादर कर दिया तथा
पैरोंमें पहनाई जाती हुई मणियोंकी पादुकाओंको भी टुकरा दिया
जिससे अन्तःपुरकी खियाँ क्या हो गया ! क्या हो गया ! कह-
कर आश्चर्य करने लगीं ॥३॥ सुर राक्षसको मारनेवाले भगवान्
विष्णुके मुख-चन्द्रकी हल्की सी फूँकते बजे हुए उनके पाञ्चजन्य
शङ्खकी वद धोर, गम्भीर ध्वनि आपको प्रलयकालतक सुख
पहुँचाती रहे जिसके आगे अनायास ही बादलोंकी गड़गड़ाहट
मन्द पड़ गई तथा जो राक्षसोंके हाथियोंके कान फोड़ती
हुई दसों दिशाओंके छोरोंतक जा फौली ॥ ४ ॥ मैं उन विष्णु
भगवान्को प्रणाम करता हूँ जो मेरे अत्यन्त पुराने वखके समान
न जाने कबसे हैं और कबतक रहेंगे, जो सदा एकसे रहते हैं
तथा जो अपने दमके एक अकेले ही हैं ॥ ५ ॥ भगवद्रक्ष जब
शरीरका अन्त करने लगते हैं तो वे अपने सब सुकृत अपने
मित्रोंको बँटकर ही सूर्य-मण्डलको जाते हैं । इस ध्रुति प्रसिद्ध
विषयको लेकर यह सूक्ति भी है—हे भगवन् ! प्रत्येक मासके
सब भिन्न भिन्न चन्द्रमा, मोच पानेकी अभिलाषासे मृत्युके समय
अपनी देह सीप करके आपके चरण (आकाश) का सहारा लेकर
जाते समय अपना सौन्दर्यरूपी सुकृत अपने मित्र आपके मुखकी
समर्पित करके अभावस्याको सूर्य-मण्डलमें चले जाते हैं ॥ ६ ॥

बड़े भाग्यवान् योगी लोग योगसाधनसे अपने हृदयका कमल
विलाकर जिन भगवान्को अपनी अपनी रचिके अनुसार उसमें
बैठाते हैं और जो सदा उनके हृदयमें अपने पूर्ण रूपसे विराज-
मान रहते हैं वे सुन्दर भगवान् मुझे ऐसा पेश्यें दें जो कभी
नष्ट न हो ॥७॥ मोहिनीरूप धारण किए हुए वे विष्णु भगवान्
आपकी रचा करें जिससे देव तथा मुनि भी मोहमें पड़कर ऐसा
बहने लगे कि 'हे जीवनकी स्वामिनी ! सारे ससारका सार हम
आपमें ही एकत्र हुआ देखते हैं, हे श्याम रगवाली ! इस कम
पुण्यवाले पुरपकी और आपकी दृष्टि नहीं पड़ती किन्तु अब कहीं
दूसरे स्थानपर अमृत आदिमें किसीकी रचि नहीं रहे गई है क्योंकि
आपकी दृष्टि ही तो अमृत है ॥८॥ ससुन्दरी कन्या लक्ष्मीजीके
प्रथम सयोगके समय कामकी अधिक्रता होनेपर लक्ष्मीजीके बेरा,
दोनों स्तनोंके अग्रभाग और ठोड़ीमें जब विष्णुजीके चारों हाथ
उलझ गए उस समय अत्यन्त कसकर बँधी हुई साड़ीकी गाँठ
खोलनेके लिये जिनके मनमें दो और हाथ प्राप्त करनेकी लालसा
हुई वे विष्णु भगवान् आपकी रचा करें ॥ ९ ॥ उन विष्णु
भगवान्को प्रणाम करता हूँ जो लक्ष्मीजीके स्तन-रूपी सुमेर
पर्वतके लिये मेघ हैं, गोपिकाओंके लिये वामद्वेष्ट हैं तथा शय्या
बने हुए शेषजीके फणरूपी कमलवनके लिये और हैं ॥ १० ॥
सृष्टिके प्रारम्भमें शेषशय्यापर सोए हुए भगवान् विष्णुके
आकाशरूपी सँसूँसे जब बादलरूपी योगनिद्राकी जड़ता कुछ दूर
हुई उस समयके उनके सूर्य और चन्द्रमा-रूपी वे दोनों नेत्र
आपकी रचा करें जिनके प्रकाशसे शेषके पर्यायोंमें स्थित

त्वाम् ॥ ६ ॥ यस्मादासीत्कुमारः कुचलयदलवञ्जलीयो-
वाह गङ्गां वामा यस्याङ्गसङ्गा पिहितजनचयो यो-गवीश-
ध्वजोऽपि । लङ्केशाद्येकनाथो हिमकररुचिभृद्भूविशेषाश-
योऽसौ वर्णस्याद्यस्य लोपादपहरतु हरिः पातकं वः स्म-
रारिः ॥ ७ ॥ यौ तां शङ्खकपालभूषितकरी मालास्थिमा-
लाधरो देवौ द्वारवतीशमशाननिलयां नागारिगोवाहनौ ।
द्वित्र्यौतौ बलिदल्यज्ञमथनो श्रीशैलजावल्लभौ पापं
वो हरतां सदा हरिहरो श्रीवत्सगङ्गाधरौ ॥ ८ ॥
लोले ब्रह्मि कपालकामिनि पिता करते पतिः पाथसां कः
प्रत्येति जलादपत्यजननं प्रत्येति यः प्रस्तरात् । इत्थं
पर्वतसिन्धुराजसुतयोराकर्ण्य वाक्चातुरीं संस्मेरस्य
हरेर्हरस्य च मुदो निग्नन्तु विघ्नं तु वः ॥ ९ ॥ श्यामिन्ना
धवलिन्ना च यमुनाजाह्नवीप्रभाम् । तीर्थराजवदव्यग्रं

दधती कापि देवता ॥ १० ॥ सम्प्राप्तं मकरध्वजेन मधनं
त्वसो मधेर्षं पुरा तद्युक्तं बहुमार्गां मम पुरो निर्लज्ज
वोदुस्तव । तामेवा नुनयस्व-भावकुटिलां हे कृष्ण कण्ठ-
ग्रहं मुञ्चेत्याह रुपा यमद्वितनया लक्ष्मीश्च पायात्स
यः ॥ ११ ॥ स्फटिकमरकतश्रीहृद्वारिणोः प्रीतियोगात्तद-
वतु वपुरेकं कामकंसद्रिपोर्वः । भवति गिरिसुतायाः
साधर्मम्भोधियुज्या सटशमहसि कण्ठे यत्र सीमावि-
वादः ॥ १२ ॥

विष्णुः

अतिकरुणं निजशरणं प्रार्थयमानं निरस्तहन्मानम् ।
स्मावति वाहोपेक्षायातो यः श्रेयसे स हरिः ॥ १ ॥
अतिविपुलं कुचयुगलं रहसि करैरामृशन्मुहुर्लक्ष्म्याः ।
तदपहृतं निजहृदयं जयति हरिर्मृगयमाण इव ॥ २ ॥

समान आभावले, ऐश्वर्यके स्वामी, गरुड़की सवारीवाले, पृथ्वी
पूर्वं गोवर्धन पर्वत धारण करनेवाले तथा वैकुण्ठ-निवासी भगवान्
विष्णु आपकी रक्षा करें ॥ ६ ॥ स्वामी कान्तियेक पिता, गङ्गाको
कमलकी पैँबुड़की भेंटि सदा ही धारण किए हुए, शरीरके
बाएँ भागमें ही पत्नीको रखनेवाले, प्रलय-कालमें जन-समूहका
नाश कर देनेवाले, नन्दीके चिह्नकी पताकावाले, रामचन्द्रके
पुरुमात्र स्वामी, चन्द्रमाकी कान्तिवाले तथा पृथ्वीके एक विशेष
भाग (कैलाश) में रहनेवाले वे कामके शत्रु शिवजी आपके पापोंका
हरण करे तथा इन विशेषणोंमेंसे प्रथम अक्षर निवाल देनेपर
कामदेवके पिता, पृथ्वीको कमलकी पैँबुड़की भेंटि सरलतामे ले
आनेवाले, सदा लक्ष्मीको साथ रखनेवाले, सब प्राणिपौंका
उपकार करनेवाले, गरुड़से चिह्नित पताकावाले, प्रसा और
शिवके एकमात्र स्वामी, मकड़कुंडलमे सुर्योमित तथा गरुड़की
सवारी एवं गोपनागकी शैयावाले विष्णु भगवान् आपके पाप
नष्ट करें ॥ ७ ॥ क्रमशः शङ्ख और लोपडूमे शोभित हाथोंवाले,
मूलां और मुखडोंकी मात्रा धारण करनेवाले, द्वारकापुरी और
शमशानमें रहनेवाले, गरुड़ और नन्दीकी सवारीवाले, दो और
तीन नेत्रवाले, बलि और दणके यज्ञको नष्ट-भष्ट करनेवाले,
नक्षत्री और पार्वतीको प्रिय लगनेवाले तथा श्रीरत्न (चरण-
चिह्न) और गङ्गाको धारण करनेवाले दोनों देव आपके पाप
हरे ॥ ८ ॥ पार्वतीतने लक्ष्मीजनोंकें सम्गोभित करके कहा—
‘अस्यै ! इदु यतायो तो ! लक्ष्मीनी बोलीं—कहो श्रीवदकं
पत्नी ! पार्वतीनी बोलीं—गुहारे पिता कौन है ? लक्ष्मीनी
बोलीं—मेरा पिता समुद्र है । पार्वतीनी बोलीं—भला समुद्रे

सन्तान उत्पन्न होनेकी बातपर कौन विश्वास करेगा ? लक्ष्मीनी
बोलीं—यही जो पत्थरसे सन्तान उत्पन्न होनेपर विश्वास कर
सकता है । इस प्रकार पर्वतराज हिमालय और सिन्धुराज
शिरसमुद्रकी कन्याओंकी वचन-चातुरी सुनकर मुस्कराते हुए शिव
और विष्णुकी प्रसन्नता आपके विघ्न दूर करें ॥ ९ ॥ कोई देवता
अपने नीजियन और उल्लेपनसे नीर्यतरा प्रयागकी भेंटि गङ्गा
और यमुनाके सङ्गमकी शोभा धारण कर रहा है ॥ १० ॥
सुके ही पानेके लिये तुमने कामदेवको नष्ट किया या समुद्रको
मथा और अब उस कुमारी या अनेक मागोंसे चलनेवाली कुञ्जा
या गङ्गाकी सिरपर बेठाते तुम्हें लज्जा नहीं आती ! अतः अब
हे कृष्ण वा नीलकण्ठ ! उसी दुःस्वभाववाली या स्वभावसे
ही देवों चजनेवाली कुञ्जा या गङ्गाको ही जाकर मनाओ, मेरा
गला छोड़ो, इस प्रकार क्रोधपूर्वक लक्ष्मी या पार्वतीने जगते
ये बातें कहीं ये आपके रक्षा करें ॥ ११ ॥ स्फटिक और
नीलमणिकी-सी कान्तिवाले तथा कंस और कामदेवके शत्रु विष्णु
और शिवका अत्यन्त प्रेमके कारण वह मिला हुआ एक ही शरीर
आपकी रक्षा करे जिसके एक-सी कान्तिवाले गलेनी सीमाके
विषयमें पार्वतीके साथ लक्ष्मीका यह विवाद होने लगा कि
यहाँसे शिवका गलर है या यहाँसे विष्णुका ॥ १२ ॥

विष्णुः

जिन विष्णु भगवान्ने शीघ्रतासे कारण सवारीका भी
तिरस्कार करके अपनी शरणमें आकर प्रार्थना करते हुए अत्यन्त
दयनीय तथा अभिमानरहित गजेन्द्रकी नङ्ग पैर दौड़कर रक्षा
की थी, उनकी जय हो ॥ १ ॥ उन विष्णु भगवान्की जय हो जो

अनादृतचमूपतिप्रहितहस्तमस्वीकृतप्रणीतमणिपादुकं
किमिति विस्मितान्तःपुरम् । अवाहनपरिच्छृतं पतग-
राजमारोहतः करिप्रवरचूडिते भगवतस्वरपयैः नमः ॥३॥
आकल्पं मुरजिन्मुखेन्दुमधुतोन्मीलन्मरुमाधुरीधीरोदा-
त्तमनोहरः सुखयतु त्वां पाञ्चजन्यध्वनिः । लीलालङ्घि-
तमेघनादधिभवो यः कुम्भकर्णव्यथादायी दानवदन्तिनां
दशमुखं दिक्चक्रमाकामति ॥४॥ आदिमध्यान्तरहितं
दशाहीनं पुरातनम् । अद्वितीयमहं चन्दे मद्रुखसदृशं
हरिम् ॥५॥ आधित्य नूनममृतद्युतयः पदं ते देहज्ञयो-
पनतदिव्यपदाभिमुख्याः । लाघण्यपुण्यनिचयं सुहृदि
त्वदास्ये विन्यस्य यान्ति मिहिरं प्रतिमासभिन्नाः ॥६॥
उद्धाट्य योगफलया हृदयाञ्जकोशं धन्यैश्चिरार्दापि
यथारुचि गृह्यमाणः । यः प्रस्फुरत्यविरतं परिपूर्णरूपः
श्रेयः स मे दिशतु शाश्वतिकं मुकुन्दः ॥७॥ एकस्यं जीवि-

तेषु त्वयि सकलजगत्सारमालोकयामः श्यामे चक्षुस्त-
वास्मिन्प्रपुपि निचिश्यते नादपुण्यस्य पुंसः । कस्यान्य-
त्रामृतेऽस्मिन्नतिरिचिपुला दृष्टिरेवामृतं ते दैत्यैरित्यु-
च्यमानो मुनिभिरपि हरिः स्मैरुणरूपोऽथतादः ॥ ८ ॥
कचकुचचिचुकाप्रे पाणिषु व्यापृतेषु प्रथमजलधिपञ्ची-
सङ्गमेऽनङ्गयाम्नि । प्रथितनिचिडनीधीचन्यनिर्मोचनायै
चतुरधिककराशः पातु वञ्चकपाणिः ॥ ९ ॥ कमलाकु-
चकनकाचलजलधरामीरसुन्दरीमदनम् । अधित-
तशेषफणावलि - कमलवनभृङ्गमच्युतं चन्दे ॥ १० ॥
किञ्चिन्निर्मुच्यमाने गगन इव मुपे शाश्वनिद्रापयो-
दैर्न्यकुण्ठौ स्वभासा फणिततिरिस्तां रन्दीपांशुजा-
लम् । पायास्तां यो मुरारोः शंशितपनमये लोचने
यद्विभासा लक्ष्म्या हस्तस्यमर्थं विकसति कमलस्यार्ध-
मध्येति निद्राम् ॥ ११ ॥ केलिचलाहुलिलम्बितलक्ष्मी-

लक्ष्मीजीके विशाल स्तनपर धार-धार अपने हाथ फेरते हुए ऐसे
जान पड़ते थे मानो अपना सोया हुआ हृदय हँव रहे हों ॥२॥
सदृशं पड़े हुए गजेश्वरके लिये गरुड़की नहीं पीठपर बैठते हुए
भगवान् विष्णुकी उस शीघ्रताकी जग ही जिसमें उन्होंने सहराके
लिये बढ़ाए हुए सेनापतिके हाथका अनादर कर दिया तथा
पैरोंमें पहनाई जाती हुई मणियोंकी पादुकाओंको भी ठुकरा दिया
जिसमें अन्तःपुरकी खियाँ 'क्या हो गया ! क्या हो गया !' कह-
कर आश्चर्य करने लगीं ॥३॥ मुर राजसकं मारनेवाले भगवान्
विष्णुके मुख-चन्द्रकी हल्की-सी फूँकसे बजे हुए उनके पाञ्चजन्य
शङ्खकी वह घोर, गर्भीर ध्वनि आपको प्रलयकालातक सुख
पहुँचाती रहे जिसके आगे अनायास ही बादलोंकी गद्गद्गदहट
मन्द पड़ गई तथा जो राजसकंके हाथियोंके कान फोड़ती
हुई दसों दिशाओंके छोरोंतक जा फैली ॥ ४ ॥ मैं उन विष्णु
भगवान्को प्रणाम करता हूँ जो मेरे अत्यन्त पुराने बचके समान
न जाने कबसे हैं और कबतक रहेंगे, जो सदा एकसे रहते हैं
तथा जो अपने दनके एक अकेले ही हैं ॥ ५ ॥ भगवन्नक जब
शरीरका धन्त करने लगते हैं तो वे अपने सब सुष्ठुत थपने
मिग्रांकी वॉटर ही सूर्य-मण्डलको जाते हैं । इस धुति-प्रसिद्ध
विषयको लेकर यह सूक्ति भी है—हे भगवान् ! त्वया मासकं
सय भिन्न-भिन्न चन्द्रमा, मोक्ष पातेकी अभिलाषामे सृष्टिके समय
अपनी देह धीय करके आपके चरण (आकाश) का सहारा लेकर
जाते समय आपन सौन्दर्यरूपी मुकृत अपने भिन्न आपके मुखकी
समर्पित करने अभावस्थाको सूर्य-मण्डलमें चले जाते हैं ॥ ६ ॥

बड़े भाग्यवान् योगी लोग योगसाधनसे अपने हृदयका कमल
खिलाकर जिन भगवान्को अपनी-अपनी रचिके अनुसार उसमें
बैठाते हैं और जो सदा उनके हृदयमें अपने पूर्ण रूपमें विराज-
मान रहते हैं वे मुकुन्द भगवान् मुझे ऐसा ऐश्वर्य दें जो कभी
नष्ट न हो ॥७॥ मोहिनी रूप धारण किए हुए वे विष्णु भगवान्
आपकी रचा करें जिनसे दैत्य तथा मुनि भी मोहमें पड़कर ऐसा
कहने लगे कि 'हे जीवनकी स्वामिनी ! सारे संसारका सार हम
आपमें ही एकत्र हुआ देखते हैं, हे श्याम रंगवाली ! इस कम
पुण्यवाले पुरपद्मी और आपकी दृष्टि नहीं पड़ती किन्तु अर्थकी
दूसरे स्थानपर अमृत आदिमें किसीकी रचि नहीं रह गई है क्योंकि
आपकी दृष्टि ही तो अमृत है ॥८॥ ससुद्रकी कन्या लक्ष्मीजीमे
प्रथम संयोगके समय कामनी अधिकता होनेपर लक्ष्मीजीके केज,
दोनों स्तनोंके अग्रभाग और टोड़ोंमें जब विष्णुजीके चारों हाथ
उलक गए उस समय अत्यन्त कसकर बँधी हुई साड़ीकी गाँठ
खोलनेके लिये जिनके मनमें दो और हाथ प्राप्त करनेकी लालसा
हुई वे विष्णु भगवान् आपकी रचा करें ॥ ९ ॥ उन विष्णु
भगवान्को प्रणाम करता हूँ जो लक्ष्मीजीके स्तन-रूपी मुखे
पर्वतके लिये मेघ हैं, गोपिकाओंके लिये कामदेव हैं तथा शय्या
बने हुए शेषजीके फण्यरूपी कमलवनके लिये मीर हैं ॥ १० ॥
सृष्टिके प्रारम्भमें शेषशय्यापर सोए हुए भगवान् विष्णुके
आकाशरूपी मुँहसे जन बादलरूपी योगनिद्राकी जड़ता कुछ दूर
हुई उस समयके उनके सूर्य और चन्द्रारूपी वे दोनों नेत्र
आपकी रचा करें जिनके प्रकारसे शेषके चरणोंमें रिपन

नाभिर्मुद्रद्विपञ्चरत्नः । स जयति येन श्रुता श्रोत्ररूपया
पद्मनाभस्य ॥१२॥ चक्रं ब्रूहि विमो गदे जय हरे कम्बो
समाहापय भो भो नन्दक जीव पद्मगरिपो किं नाथ
मिन्नो मया । को दैत्यः कतमो हिरण्यकशिपुः सत्यं
भवद्भवः श्रेयः केनाख्येय नपैरिति प्रवदतो विष्णोर्मुपं
पातु यः ॥ १३ ॥ चत्वारः प्रथयन्तु विद्रुमलतात्काङ्गु-
लिश्रेण्यः श्रेयः शोणसरोजकोरकरुचस्ते शाङ्गिणः
पाण्यः । भातेष्वञ्जमुचो लिपन्ति युगपद्ये पुण्यवर्णा-
वलीः पस्तूरीमकरीः पयोधरयुगे गण्डद्वये च श्रियः
॥ १४ ॥ जयति स नाभिर्जगतां स्वनाभिर्नमोऽब्रुव-
ज्जगद्बीजः । दामोदरो निजोदरगद्दन्निधिष्ठजग-
द्वृष्टः ॥ १५ ॥ जयति स भगवान् रुष्णः श्रेते यः श्रेप-
मोगश्रय्यायाम् । मध्ये पयः पयोधेरपर इचाम्भोनिधिः

हृष्णः ॥१६॥ जयत्युपेन्द्रः स चकार दूरतो विभित्तया
यः क्षणलक्ष्मणस्यया । दशैव कोपाहृत्था रिपोऽहः
स्वयं भयार्द्रिन्निमिवास्त्रपाटलम् ॥१७॥ जीयादम्बुधित-
नयाधररसमास्वाद्ययन्मुरारिरयम् । अम्बुधिमथनक्षेत्रं
कलयन्विकलञ्च सफलञ्च ॥ १८ ॥ तापत्रयापघचरस्य
तव स्मितस्य निःश्वासमन्दमदता निवृत्तीकृतस्य । पते
कडङ्करवया इव धिप्रकीर्णा जैवावृकस्य किरणा जगति
भ्रमन्ति ॥ १९ ॥ त्वद्वक्त्रसाम्भयमम्बुजकोशमुद्राम-
ङ्गासतसुपममिञ्चकोरपङ्कज्या । लब्ध्वापि पर्वणि
विद्युः द्रमहीयमानः शंसत्यनीत्युपचितो श्रियमाशुभा-
शाम् ॥ २० ॥ दृक्पातः कमलासनेऽस्तु भवतो ज्ञानं
मनाङ्गारते श्रीकण्डोऽयमितः सुरानिति नतांस्तार्क्ष्येण
विज्ञापितः । प्रेयस्याः क्व तदासनं क्व हृदं हतं

गणियोंकी वार्ति भी मलिन हो गई और लक्ष्मीजीके हाथका
कमल धाधा रिलने और धाधा सुँदने लगा ॥ ११ ॥ खे-
लनेमें अपने पैकी चञ्चल उँगलियोंसे लक्ष्मीजीकी नाभि
पुद्गुदाने हुए विष्णु भगवान्के उस चरखीकी जय हो जिसके
धारा धाँदुं देरके लिये लक्ष्मीजी भी नाभिमें कमल उगाए
हुए विष्णुके समान जान पड़ने लगी ॥ १२ ॥ हिरण्यकशिपुको
भारतके पद्माय धावेरामे भरे हुए विष्णु भगवान् अपने पार्षदके
पास पहुँचे और एकएक उर्दनें धरने थावेरामे कहा—धरे चक्र,
शंख ! चक्र— (घबराकर) प्रभो ! विष्णु—धरे गदा ! गदा—
(घबराकर) हृत्की जय हो ! विष्णु—धरे बाणु (शङ्ख) !
बाणु— (नम्रतापूर्वक) राजा दीप्ति ! विष्णु—धरे, धरे
नन्दक ! नन्दक— (दरदर) महाराज ! विष्णु—धरे गरुड !
गरुड— (उल्टुकापने) क्या नाथ ! विष्णु—मैंने कहाँ दान्त !
गरुड— (क्षयताने) किसे ? विष्णु—श्रेयसो ! गरुड—
(इत्थलने) किन दैवको ? विष्णु—हिरण्यकशिपुकी । गरुड—
(प्रसन्नगने) क्या मय ? विष्णु—युम लोगोंकी मौगण्य !
गरुड—दौरे ! विष्णु— (भयङ्कर नग दिगाने हुए) धरे इत
नमोरे । इस प्रकार धावेरामे भरत दानवीन करने हुए विष्णु
भगवान्के समनमाता दुष्य सुग धारणी रण करे ॥ १३ ॥
विष्णु भगवान्के वे पारो मूँगेकी लनाके ममान लानलाल
उँगलियोंवाले और लार पसन्दकी बरिनियोंके समान धानिमाने
हाथ (दुष्ये) दूँ जो पृथ मय ही हवाके माधेदर परित्र धपर
विन्ने दे तथा लक्ष्मीजीके दोनों गानों और दोनों बगोलीपर
कन्तने पियशर्ती भी बने हैं ॥१४॥ तां संसारके नाभिरूप

उन विष्णु भगवान्की जय हो जिन्होंने सारे संसारके बीच
(रचनेवाले) ब्रह्मानी अपनी नाभिसे निकले हुए कमलसे उषन्न
किया और जो उस सारे संसारके धाराधर-दृष्टके समान
कमलनीनालने अपने पैमें छिपाए हुए हैं ॥१२॥ नीले रङ्गवाले
उन भगवान् विष्णुकी जय हो जो दूधके समुद्रमें शेषनी
शम्पापर सोए हुए पैसे जान पड़ते हैं मानो दूधके समुद्रपर नीले
रङ्गका कोई दूसरा पानीका समुद्र हो ॥ १३ ॥ उन नृसिंह-वेप-
धारी भगवान् विष्णुकी जय हो जिन्होंने फाड़ डालनेकी हुँदइते
जय श्रेयपूर्वक अपने लाल-लाल नेत्रसे दूरसे देव भर दिया
नि शत्रु (हिरण्यकशिपु) का हृदय डरके मारे अपने धारा
पङ्कर रकने लाल हो गया ॥१७॥ उन भगवान् मुरारिजी जय
हो जो समुद्रकी पुत्री लक्ष्मीजीके शरर रसका स्वाद लेते हुए येमे
जान पड़ते हैं मानो समुद्र मणनेकी थकाउट वा तो दूर कर
रहे हों या सकल कर रहे हों ॥ १८ ॥ हे विष्णु ! चन्द्रमाकी ये
फैली हुई चिरयों ऐसी जान पड़ती हैं मानो तीनों प्रकारके
दुःखोंका नाश करनेवाली चापकी मुखान चापकी ही सौँसके
हल्के पवनसे फैलकर कडङ्कर सुरासी फैली हो ॥ १९ ॥ हे
विष्णु ! यद्यपि कमलके सुकुलित (चन्द्र) कोण (भयङ्कर)
गोलवर उनकी सुन्दरता हर ले जातेवाली सूर्य-चिरयों चार
वह चन्द्रमा इनका चपिक सुन्दर हो गया कि वृषिमारको धारके
सुँदरी ही समता करने तगा तथापि पृथिमाके धारा संय
होना गुप्ता यह मानो यह बनलता है कि श्रव्यापने बसाई हुई
सगणति बहुत दिन टिकती गयी ॥ २० ॥ योगनिद्रामे जब
भगवान् जागे तब आगपाम गदे हुए देवतायोंका परिचय

कण्डः ऋ चेत्युल्लसन्नभ्यावासितमजसो विजयते
सुप्तप्रबुद्धो हरिः ॥ २१ ॥ नरुप्रस्तपदं समुद्धृत-
करं ब्रह्मादयो भो सुता रत्नन्तामिति दीनवान्प्रकरिणं
देवेष्वशक्येणु यः । मा भैरीरिति तस्य नरुहनेन चक्रा-
युधः श्रीधरो विश्वत्राणपरायणो विजयते नाथः स
नारायणः ॥ २२ ॥ नमस्त्रिभुवनोत्पत्तिस्थितिसंहारहे-
तव्यः । विष्णोऽपारसंसारपापोत्तरणसेतव्ये ॥२३॥ नाथ
स्वदृष्टिघ्ननखवायनतोलग्नस्तत्कान्तिलेशरुणिका ज-
लार्धं प्रविष्टाः । ता एव तस्य मथनेन घनीभवन्त्यो
नूनं समुद्रनवनीतपदं प्रपन्नाः ॥ २४ ॥ नाभीप्रभवसन्ध-
तुमुखमुखाद्ग्रीतस्तवाकर्णनप्रोन्मीलत्कमनीयलोचनकला-
खेलन्मुखन्दुयुतिः सकोध मधुकोटभा सकरणस्नेहं सुता-

मथ्युधेः स्तोत्रासप्रणयं सगेजघसति पश्यन्हरिः पातु
घः ॥२५॥ नामैव ते वरद वाञ्छितदादाभावं व्यान्या-
स्यतो न वहने वरदानमुद्राम् । विश्वमसिद्धतरविमकुल-
प्रस्तैर्यत्रोपधीतघहनं हि न खल्वपश्यम् ॥२६॥ निर्मणिं
मयाम्भसि स्मरभरादालिः समालिङ्गिताकेनालीरुमिदं
तवाद्य कथितं राधे मुचा ताम्यसि । इत्युत्स्यपरमप-
रासु शयने श्रुत्वा वचः शार्ङ्गिणः सन्याजं शिथिलीकृत-
कमलया कण्डग्रहः पातु घः ॥२७॥ निष्प्रत्यूहमुपासमहे
भगवतः कामोदकोलदमणः कोकमीतिचकोरपारणपट्ट
ज्योतिष्मती लोचने । याभ्यामर्धविधोधमुधमधुश्रीर-
र्धनिद्रायितो नाभीपल्लवपुण्डरीकमुकुलः कम्बोः सप-
त्कीकृता ॥ २८ ॥ पद्मापयोधरतटीपरिरम्भलद्रकाम्भी-

देत हुप गरुडजाने उनसे कहा—'ये कमलपर वटे ब्रह्माजी है,
इनपर आपकी कृपासिद्धि है, ये परमदेव है, इन्हें आप पहचानें,
ये श्रीशिवजी है तथा ये प्रणाम करते हुप सब देवता खड़े हुप
हैं।' पर श्रपनी विष्णुमा श्रीलक्ष्मीजीका न देवकर जो यह कहते
हुप चिन्ता प्रकट कर रहे हैं 'श्रीलक्ष्मीजी कहां बंटी है, उनकी
बाली भी नहा सुनाई पड़ती, न उनका कण्ड हा दिखाई पड़ता'
उन परम सुन्दरी लक्ष्मीजीमें ही जिनका चित बसा है उन
विष्णु भगवान्की जय हा ॥२१॥ मगरसे पर पकड़ लिए जानेपर
श्रपनी सँद ऊपर उठाकर कातर बाणसे 'हे ब्रह्मा आदि
देवताओ ! यचाह्ये, यचाह्ये !' पुनरनेवाले गजराजको जन
काई भी देवता न बचा सका तत्र 'मत डरो, मत डरो,' कहते
हुप उस मगरको मारनेके लिये हाथमें चक्र लेकर दौड़नेवाले
तथा इसी प्रकार लक्ष्मीसे युक्त होकर सारे ससारकी रचा
करनेवाले नारायण भगवान्की जय हा ॥ २२ ॥ तीनों लोकोंको
उपग्र करने तथा उनका पालन और नाथ करनेवाले उन
भगवान् विष्णुका प्रणाम है जा इस ससाररूपी श्रपन समुद्रसे
पार जानक लिय मानागुल ही है ॥ २३ ॥ है स्वामा ! आपके
पर घात समय आपके नजोमें लगी जलकी धँदोंके साथ गुलकर
जा उन नजोका कान्ति (सुन्दरता) का नन्हा सा कण्य समुद्रमें
चला गया था वहा मये जानेपर 'सिमटकर मरुतनके रूपमें (लक्ष्मी
वनकर) निकल आया है ॥२४॥ नाभिसे निकले हुप कमलपर
वटे ब्रह्माजीके चारो मुँहोंसे गाईं हुई स्तुति सुनकर सुन्दर
नेत्रों का वृद्ध सुलनेसे मिले हुप उजले चन्द्रमाके समान
सुन्दर मुँहाग्रे वे विष्णु भगवान् आपके रचा करे' जिन्होंने
मजु और कंडम रापसंकी क्रोधमे, समुद्रकी कन्या लक्ष्मीजीको

श्रयन्त दया और स्नेहसे और कमलपर वटे ब्रह्माजीको व्यग-
भरे प्रेमसे देवा ॥२५॥ हे वरदान् देनेवाले ! तुम्हारा नाम ही
यह बतलाता है कि तुम चाही हुई वलु देनेवाले हो इसलिये
तुम दूसरे देवताओंके समान श्रपनेको वरदान देनेवाला सिद्ध
करनेके लिये कोई विशेष विद्म नहीं रखते क्योंकि जा ससारमें
प्रसिद्ध ब्राह्मण-कुलमें उत्पन्न हुआ है उसे श्रपनेको माहण
घतानेके लिये यज्ञपवीत पहननेको आभरणकता नहीं हातीं
॥२६॥ 'हे राधे ! पानीमें डुबकी लगाकर मैंने कामासक हाकर
तुम्हारी सखीका आलिङ्गन किया है, यह मूठी बात तुमसे किसने
कही ! तुम क्यों व्यर्थ ही बाधित हा रही हो ?' यह बात
श्रपने पास सोप हुप विष्णुजीकी नीदमें जो लक्ष्मीजीने सुनी तो
उन्होंने रुठकर विष्णुजीके गलेमें कसकर लिपटे हुप श्रपने
हाथ शिथिल कर दिए । उनका वह रुठकर हाथ शिथिल
कर देना आपका कल्याण करे ॥ २७ ॥ कौमोदकी नामकी
गदा धारण करनेवाले विष्णुके मूर्धे श्रीर चन्द्रमथ उन दोनों
नेत्रोंकी हम उपासना करते हैं जिनमेंमे एक सूर्यवाला नेत्र
सुलनेपर तो चक्रवाचक्रवामे प्रेम उत्पन्न होता है, चन्द्र-
वाला नेत्र सुल जानेपर चकोर प्राणन्दसे भोजन करनेको दौड़ता
है और दोनोंके सुले रहनेपर उनके नाभिरूपी सरोवरमें उगा
हुआ कमल धाधा सिलनेसे श्रयन्त सुन्दर और आधा मुँहा
होनेसे उनके क्रजु नामके शङ्खकी वरारती करता-सा जान पड़ता
है ॥२८॥ मजुसुन्दर भगवान्का वह वर-स्थल आपके इन्द्राई
पुर्ण वरे जो श्रीलक्ष्मीजीके स्तनका आलिङ्गन करनेसे उनमें
लगे हुप वस्तुओंके खेपसे रँग गया है और जो रतिके परिधमके
कारण पसिनेकी धँदें निकल आनेसे पेना जान पड़ता है

रमुद्रितमुतो मधुसूदनस्य । व्यक्तानुरागमिव खेलदन-
 क्रोदस्नेदाभ्युत्पूरमनुपूरयतु प्रियं वः ॥ २६ ॥ पर्यङ्कीकृ-
 तनागनायकफणाश्रेणीमणीनां गणे सक्रान्तप्रतिविम्ब-
 संवलनया विभ्रद्वपुर्भिक्षियाम् । पादाम्भोरुहधारिया-
 रिधिसुतामकणां दिहन्तुः शतेः काप्यव्यूहमिवाच-
 रन्तुपचितकृतो हरिः पातु वः ॥ ३० ॥ पायोधेः
 परिमथ्यमानसलिलादद्भौतियतायाः शिथः सानन्दो-
 ह्मिततभ्रया फुटिलया ह्यष्टयैव पीताननः । अज्ञा-
 तस्वफरद्वर्षाविगलितव्यालोलमन्धोरगशृण्वे वाहुग-
 तागतानि रचयन्नारायणः पातु वः ॥ ३१ ॥ प्रतिविम्बि-
 तप्रियातनु सक्रास्तुर्भं जयति मधुभिदो वलः । पुरुपा-
 यितमभ्यस्यति लक्ष्मीर्यद्रीक्ष्य मुकुरमिव ॥ ३२ ॥ मत्प्रत्रो-
 न्नेपाजिह्वा क्षणमनभिमुजो रत्नदीपप्रभाशाम्बव्यापा-
 र्युषां जनितजललवाज्जम्भितः साङ्गभङ्गः । नागाङ्गं भो-
 क्रुमिच्छोः शयनमुपफणोचक्रुवालोपधानं निद्राच्छेदा-

भिताम्ना चिरमवतु हरेर्द्विप्राकेकरा वः ॥ ३३ ॥ भक्तिप्र-
 द्धविलोकनप्रणयिनी नीलोत्पलरूपधिनी ध्यानलम्बनतां
 समाधिनिरतैर्नति हितप्राप्तये । लाचरयैकमहानिधी
 रक्षिकां लक्ष्मीदशोत्तन्वती युष्माकं कुरुतां भवाचि-
 श्मनं नेत्रे तनुर्वा हरेः ॥ ३४ ॥ भातुनिशाशु भवदं-
 धिमयुशशोभालोभात्यताय किरणोत्करमाप्रभातम् ।
 तत्रोद्भूते हुतवहात्क्षणलुभरागे तापम्भजत्युक्तिं स
 हि मन्दतापः ॥ ३५ ॥ ध्याम्यन्मन्दरकन्दरोदरदरीव्या-
 धत्तिभिर्वोरिधेः कल्लोलैरलमाकुले कलयतो लक्ष्म्या
 मुखाम्भोरुहम् । श्रौत्सुक्यातरलाः स्मरार्द्रकसिता
 भीत्या समाकुञ्चिताः क्रोधेन ज्वलिता मुदा मुकुलिताः
 शारेर्दशः पान्तु वः ॥ ३६ ॥ मन्धच्चावचूणितायां
 वपयःपुरान्तरालोलसल्लक्ष्मीकन्दलकोमलाङ्गद्वयनप्रा-
 दुर्भवत्सम्भ्रमाः । ह्योत्कण्टकितत्वचो मधुरिपोर्द्वेषा-
 राकर्षणव्यापारोपरमाय पान्तु जगतीमावञ्जवीप्ता

मानो लक्ष्मी नारायणका पात्स्परिक प्रेम प्रकट कर रहा हो
 ॥ २६ ॥ वे विष्णु भगवान् आपकी रक्षा करें जो पल्लवके
 समान बनाए हुए शेषमीके फणोंके मणियोंमें अपने शरीरकी
 अनगिनत परछाई पढ़नेसे ऐसे जान पड़ते हैं मानो अपने चरख
 दावली हुई समुद्र-पुत्रा लक्ष्मीजीको सैकड़ों नेत्रोंसे देखनेकी
 हृच्छासे ही अपने सैकड़ों रूप बनाए हुए हैं ॥ ३० ॥ मये
 जात हुए समुद्रके जलसे जैसे ही लक्ष्मीजी शायी बाहर निकली
 तैसे ही आपन्त प्रसन्नतासे भीहे नचाकर निरखी जितवनसे
 ही माना लक्ष्मीजीके सुलज्जो पिपु जाते हुए वे भगवान् नारायण
 आपकी रक्षा करें जिनके दोनों हाथोंसे अनजाने ही मधनी बने
 हुए चञ्चल नागराव धूट गप और जो आकारमें ही अपने दोनों
 हाथका ऐसा चलाने लगे मानो समुद्र मथ रहे हों ॥ ३१ ॥
 भगवान् विष्णुके उस वच स्थलकी जय हो जिसमें कौस्तुभ
 मणि पदा हुआ है और जो लक्ष्मीजीकी परछाई पढ़नेसे
 ऐसा जान पड़ता है मानो दर्पणके समान उस वच स्थलमें
 अपनी परछाई देखती हुई लक्ष्मीजी विपरित रतिका धम्बास
 पर रही हा ॥ ३२ ॥ शेषनागके मणियोंकी धमकके
 कारण जो स्थिर नहा हा पानी, शैंगदाई और जैसाई आनेसे
 जिनम तनिक-सा पानां भी भर आया है और भी नान्के टूट

जानेसे लाल लाल होकर पूरी खुल नहीं पातीं ॥ ३३ ॥
 अपना कल्याण करने पूव मनोरथ सफल होनेके लिये समाधिमें
 स्थित लोगोंसे ध्यान किए जाते हुए तथा भक्तिके कारण अत्यन्त
 नम्र भलोंको यद्द स्नेहसे देखनेवाले, अपने सौवलपनसे नीले
 कमलोंकी समता करनेवाले, लक्ष्मीजीके नेत्रोंको आनन्दित
 करनेवाले तथा सुन्दरताके महासागर वे विष्णुजीके दोनों
 नेत्र या शरीर आपकी सांसारिक बाधाएँ नष्ट करें ॥ ३४ ॥
 हे भगवान् ! सुषं रात्रिमें आपके चरखोंकी किरणोंकी सुन्दरताके
 लालचसे आपके पास ही विश्राम करके प्रतापयुक्त होकर अभिसे
 कुछ ताप ले लिए जानेपर कुछ समयके लिये मन्द होकर पुन-
 उसी तापसे दिनभर तपता रहता है, वस्तुत उसमें ताप देनेका
 सामर्थ्य नहीं है ॥ ३५ ॥ विष्णु भगवान्की वह छद्म
 आपकी रक्षा करें जो समुद्रमें घूमते हुए मन्दराचलकी गुफाओं
 और खाइयोंसे टपराती हुई बर्षावर्षी लहरोंके थपड़ते
 व्याहल लक्ष्मीजीके कमलके समान मुखको देखकर चावसे
 चञ्चल हो उठी, कामके कारण खिल उठी, 'दूसरोंकी कन्या जिना
 दिए कैसे पाई जा सकती है' यह सोचकर डरसे सिकुड़ गई,
 कापसे चमक उठी और फिर आनन्दके मारे भँप गई ॥ ३६ ॥
 देवता और असुरोंकी लींघातानी मान्न करनेके लिये यही गई,
 प्रसन्नतासे रोमाञ्चित देखवाले विष्णुजीके वे वाचिण्यें सत्कारणी
 रचा करें जो मधनी बने हुए मन्दराचलसे 'मये जात हुए
 समुद्रके भरे हुए जलके भीतरसे निकली आती हुई लक्ष्मीके

गिरः ॥३७॥ मुखे मुञ्ज चिपादमत्र बलभित्कम्पो गुरु-
स्त्यज्यतां सद्भावममज पुण्डरीकनयने मान्यानिमान्मा-
नय । इत्यं शिञ्जयतः स्वयंवरविधौ धन्वन्तरेर्याकृष्टलाद-
न्यत्र प्रतिपेद्यमात्मनि धिधिं शृण्वन्हरिः पातु वः ॥३८॥
मोहं जगन्त्रयमुवा मपनेनेतुमदादाय रूपमखिलेश्वरदेह-
भाजाम् । निस्सीमकान्तिरसनीरघिनाऽमुनैव मोहं प्रव-
र्धयसि मुग्धविलासिनीनाम् ॥३९॥ यस्योयद्वाणयाहु-
द्रुमगहनवनच्छेदगोष्टीकुडाश्चक्रन्निष्कान्ततीव्रानलव-
हलकणाकीर्णधारं विचिन्त्य । जातप्रासाद्यसायो दिवस-
कृति लसन्मांसलांशुप्रवाहे मुखत्यथापि राहुः स दहतु
दुरितान्याशु दैत्यान्तको वः ॥४०॥ येनोत्थाप्य समूल-
मन्दरगिरिशृङ्गश्रीकृतो गोकुले राहुयुगे महाबलः सुर-
रिपुः कार्यादेश्येरीकृतः । कृत्वा त्रीणि पदानि येन वसुधा
वदो वलिलींलया सोऽयं पातु युगे युगे युगपतिस्रैलो-

क्यनायो हरिः ॥ ४१ ॥ यं शैवाः समुपासते शिव इति
ब्रह्मेति वेदान्तिनो बौद्धा बुद्ध इति प्रमाणपटत्रः कर्मेति
मीमांसकाः सोऽयं घो विदद्यातु वाञ्छितफलं चैलोक्त्य-
नाथो हरिः ॥ ४२ ॥ रोमावली सुरारः श्रीवन्मनिधे-
शिताप्रभागा वः । उन्नालनाभिनलिनच्छायेघोत्ताप-
मपहरतु ॥ ४३ ॥ लक्ष्मीकपोलसंक्रान्तकान्तपत्रलतो-
ज्वलाः । दोर्दुमाः पातु वः शौरैर्यनच्छाया महा-
फलाः ॥ ४४ ॥ लक्ष्मीपाणिद्वयविरचितं मूलमूर्धश्र-
तीनां व्यक्तं चन्द्रे चरणकमलद्वन्द्वमाद्यस्य पुंसः । यत्रै-
कस्य व्यधितवल्लिनापाद्यतोयैर्वितीर्णैर्दारुस्यैव प्रपति-
तरलः क्षालनं पद्मयोनिः ॥ ४५ ॥ लक्ष्मीलासितपादप-
ङ्कजयुगं भोगीन्द्रभोगासनं क्षीर्गन्दार्णवचिन्दुभिः परि-
चृतं काश्यपकल्पैः सदा । नाभ्युन्नतकुण्डश्यान्तरधि-

मांसल श्रीर कामल अह्नोके मर्दनकी कल्पनासे जपपदाने
'लगी थीं और जो लक्ष्मीको प्राप्त करनेकी इच्छासे ही
'कही जा रही थीं ॥ ३७ ॥ 'हे सुन्दरी! शोक न करो,
'वह बलका नाश करता है, इतना अधिक न काँपो, हे
'कमलके समान नेत्रवाली ! अपनेमें सुन्दर भाव ले आओ और
'इन आदरणीय व्यक्तियोंका आदर करो, दूसरे पक्षमें—हे सुन्दरी !
'शङ्करजीको छोड़ो, इन्द्र, वरुण और बृहस्पतिको भी छोड़ो और
'कमलके समान नेत्रवाले विष्णु भगवान्में सुन्दर भाव रखो
'तथा इन आदरणीय व्यक्तियोंका न्यागत करो !' इस प्रकार
'स्वयंवरमें धन्वन्तरिने लक्ष्मीको छलमरी वार्षोमि अपने वरण
'करने और दूसरोंको छोड़नेकी भेदमरी शिवा दी उसे सुनते
'हुए विष्णु भगवान् आपकी रक्षा करें ॥ ३८ ॥ हे सारे संसारके
'स्वामी विष्णु ! तीनों लोकोंके प्राणियोंका मोह दूर करनेके
'लिये जो आपने सुन्दरता और सुन्दर 'वह अथवा रूपका समुद्र
'धारण किया है उससे आप सुन्दरी स्त्रियोंका मोह और भी बढ़ा
'देते हैं ॥ ३९ ॥ दैत्योंका नाश करनेवाले वे विष्णु भगवान्
'आपके पापोंका शीघ्र नष्ट कर दें जिनके उस चक्रका
'स्मरण करके दिनकी रचना करनेवाले श्रीर मांसल किरणोंसे
'भरे सूर्यको सुँदमें दबाकर भी राहु हिचक जाता है जो शशुश्रोंकी
'वाण छोड़नेवाली भुजास्वी बृहतीके वनके काटनेके लिये
'इच्छाईके समान है तथा अपनी धारसे भयङ्कर आगकी
'देरसी चिनगारिची उड़ाता है ॥ ४० ॥ तीनों लोकोंके तथा
'चारों युगोंके स्वामी वे विष्णु भगवान् प्रत्येक युगमें सबकी रक्षा

करें जिन्होंने मन्दर पर्वतको जड़ने उन्नाङ्कुर उसे गोकुलपर
'छत्रकी तरह तान दिया, जिन्होंने देवताओंके बड़े बलवान् शशु
'राहुको बुद्ध भी करने-योग्य न रहने दिया और जिन्होंने पृथ्वीको
'तीन पगोंमें नापकर बलिको सहज में ही बाँध लिया ॥ ४१ ॥
'तीनों लोकोंके स्वामी वे विष्णु भगवान् आपके मनोरथ सफल
'करें जिन्हें शिवको माननेवाले शिव-रूपमें, वेदान्ती ब्रह्म-रूपमें,
'बुद्धके माननेवाले बुद्धरूपमें, प्रमाण देनेमें चतुर श्याय शास्त्रवाले
'कचाके रूपमें, जैन लोग अर्हत्के रूपमें और मीमांसक लोया कर्मके
'रूपमें मानते हैं ॥ ४२ ॥ भगवान् विष्णुकी यह रोमावली आपके
'ताप दूर करे जिसके आगे श्रीवत्स चिह्न है और जो नाभिसे
'निकलकर ऊपर बढ़े हुए कमलकी छायाके समान जान पड़ती है
'॥ ४३ ॥ श्रीलक्ष्मीजीके कपोलोंपर लिखी सुन्दर कस्तूरीके चिह्नरूपी
'लतासे संयुक्त विष्णु भगवान्के वे भुजा-रूपी वृत्र आपके रक्षा
'करें जो अत्यन्त घनी छाया (आश्रय) वाले तथा अत्यधिक फल
'देनेवाले हैं ॥ ४४ ॥ आदिपुरण विष्णु भगवान्के उन दोनों
'चरणोंके प्रणाम करता हूँ जिन्हें लक्ष्मीजी सदा अपने दोनों
'हाथोंसे सहलती रहती है, जो दोनों वेदोंके आदि श्रीर अन्तके
'समान हैं और जिनमेंसे एकको जैसे ही बलिने धोया वैसे ही
'उन्हे प्रणाम करते हुए ब्रह्माजीने भी उस गीले ही पैरोंको धो
'लिया ॥ ४५ ॥ सारे संसारकी रचना करनेवाले ब्रह्माको अपनी
'नाभिसे निकले कमलमेंसे उपपन्न करके विना कारण ही सारे
'संसारको आनन्दित करनेवाले उन अनादि, निष्पाप, परमेश्वर
'सुबुद्धको प्रणाम करता हूँ जिनके दोनों चरणोंकी सेवा लक्ष्मीजी

लक्ष्मणमुद्रायै निर्व्याजं नन्दितयिष्वमाद्यमनघं धन्दे
मुकुन्दं प्रभुम् ॥ ४६ ॥ यक्षस्थली रज्जुत सा जगन्ति
जगत्पद्मतेर्गडध्वजस्य । श्रियोऽङ्कारगेण विभाव्यते
या सौभाग्यहेलः कपपट्टिकेव ॥ ४७ ॥ विरमति महा-
कल्पे नाभीपथैकनिकेतनलिभुवनपुरःशिल्पी यस्य
प्रतिक्षणमात्मभूः । किमधिकरणं कीदृकस्य व्यवस्थि-
तिरित्यसावुदरमविशुद्धं तस्मै जगन्निधये नमः ॥ ४८ ॥
वृन्दारका यस्य भवन्ति भृङ्गा मन्दाकिनी यन्मकरन्द-
विन्दुः । तवारविन्दाल पदारविन्दं धन्दे चतुर्धर्गचतु-
ष्पदं तत् ॥ ४९ ॥ शरणां भवभीतानां भक्तमन्वयार्थभा-
गुक्तः । भाव्यमानः सुरेरन्तविष्णुर्भवतु भूतये ॥ ५० ॥
श्यामं श्रीकुचकुङ्कुमपिङ्गलितसुरो मुदद्विषो जयति ।
दिनमुपनभ इव फास्तुभविभाकरो यद्विभूषयति ॥ ५१ ॥
श्रीकरपहितञ्जलः सुखयतु वः पुण्डरीकनयनस्य ।
जघनमिवेक्षितुमागतमञ्जनिभं नाभिसुपिरेण ॥ ५२ ॥

करती रहती है, जो शोपनागके शरीरकी शक्यपर सतते हैं और जो
दूधके समुद्रकी डूँडोंसे गिरे ऐसे जान पड़ते हैं माना चारों धोरसे
दया ही उमड़ रही हो ॥ ४६ ॥ सारे संसारको उत्पन्न करनेवाले
गडध्वज भगवान्का यह वचनस्थल सारे संसारकी रक्षा करे जा
लक्ष्मीके शरारतें लगे लंपसे रँगकर सौभाग्यरूपां सोनेकी
कसाँटीसा जान पड़ता है ॥ ४७ ॥ सारे संसारके श्रेष्ठ
सम्पत्तिरूपी उन भगवान् विष्णुको प्रणाम करता है जिनकी
नाभिमें तीनों लोकोंकी सयसे पहले रचना करनेवाले चतुर
कारोंकर प्रह्लाद सदा महाप्रलयके समय रहते हैं, मानो यह
जाननेके लिये ही गह्वानी उनके पैरमें घुस जाते हैं कि हलने
यद् भगवान् किसके सहारे तथा कैसे रहते हैं ॥ ४८ ॥ हे
कमलके समान नेत्रवाले भगवान् ! मैं आपके उन चरण-
कमलोंमें प्रणाम करता हूँ जिनमें सब देवता-रूपी भोरे गुञ्जार
करते हैं, गङ्गा ही जिनमें रसरूपसे स्थित है तथा जो धर्म,
धर्म, काम और मोक्ष देनेवाले चतुष्पद ही हैं ॥ ४९ ॥ वे विष्णु
भगवान् सयना कल्याण करें जो संसारमें बरे हुए जीवोंका
शरण देनेवाले हैं, जो भक्तकी श्रेष्ठ भागनासे ही प्रसन्न रहते
हैं तथा देवता अपने मनमें जिनका ध्यान करते रहते हैं ॥ ५० ॥
सुर राक्षसोंको मारनेवाले विष्णु भगवान्के उस श्याम रङ्गके
पथ स्थलकी जय हो जो लक्ष्मीजीके स्नानपर लगे तुकुम्भके लोपसे
रँग गया है और जिसे कीटुभ मणिकी किरणें ऐसे चमकाती हैं
जैसे नीले आकाशमें सूर्य चमका देता है ॥ ५१ ॥ कमलके समान

श्रीधासि तुधोदधिपुण्डरीके यच्चञ्चरीकद्युतिमात-
नोति नीलोत्पलयस्यामलदेहकान्तिः स वोऽस्तु भूयै
भगवान्मुकुन्दः ॥ ५३ ॥ श्रीराजीवालयवत्स्थलनिलय-
रमाहस्तवास्तव्यलोललालाञ्जानिस्सरन्ती मधुरमधु-
भरी नाभिपत्रे सुरारेः । अस्तोकं लोकमात्रा द्विभुमभु-
खशिशोरानतेष्वर्प्यमाणं शङ्खमान्तेन दिव्यं पय इति
विद्युधैः शङ्खयमाना पुनातु ॥ ५४ ॥ श्रेयः सदा दिशतु
सालसपन्नपाते निद्रायिते अपि दृशो भृशमुन्नम्य ।
संवाह्यमानचरणाम्बुजजातहर्षो लक्ष्मीमुखेक्षणपरः पर-
मेश्वरो वः ॥ ५५ ॥ सकलभुवनवन्द्योर्वैरमिन्दोः
सरोजैरनुचितमिति मत्वा यः स्वपादारविन्दम् । घट-
यितुमिव मायी योजयत्याननेन्दौ घटद्वलपुटशायी
मङ्गलं वः कुरीष्ट ॥ ५६ ॥

लक्ष्मी— श्रेष्ठभुवनामोदमादधानां शुद्धिसि-
ताम् । फरुणामधुराकारां लक्ष्मीदेवीमुपास्महे ॥ १ ॥

नेत्रवाले विष्णु भगवान्के लक्ष्मीजीके हाथोंसे भूँद गए उस नेत्रकी
जय हो जो मानो जघनको देखनेके लिये नाभिके छेदसे कमलके
रूपमें प्रकट हुआ है ॥ ५३ ॥ दूधके समुद्रमें लिले लक्ष्मीरूपी
कमलसे जो भौरोंके समान प्रेम आचरण करते हैं तथा नीले
कमलकी भोंति जो नीले रङ्गवाले हैं वे भगवान् मुकुन्द थापका
कल्याण करे ॥ ५४ ॥ कमलके समान नेत्रवाले विष्णु भगवान्के
यह स्थलपर रकते हुए लक्ष्मीजीके हाथके कमलके हिलनेसे
नाभिके कमलपर भङ्गकर गिरती हुई वह रसकी धारा सबको
पवित्र करे जिसे देखकर देवतायाँको यह शङ्का हो गई कि
जगन्मनी लक्ष्मीजी किसी आठ सुँहवाले बचको, शङ्कमें भरकर
स्वगाय दूध पिना रही है ॥ ५५ ॥ लक्ष्मीजीके चरण दाबनेसे
जिन्हें बड़ा आनन्द मिल रहा है ऐसे वे विष्णु भगवान् सदा
आपकी ऐश्वर्य दे जो नीदके योग्यसे दूधे हुए उर्नादे नेत्रोंकी भी
पलपूर्वक खोलकर लक्ष्मीजीका सुँह देखते रहते हैं ॥ ५६ ॥ सारे
संसारकी प्रिय लगनेवाले चन्द्रमाका कमलाले वैर होना अनुचित
जानकर उस वैरको भेद-मिलापसे नष्ट कर देनेके लिये ही मानो
जो अपने चरण-कमलका सुखुचन्द्रसे संयोग कराते रहते हैं
(शँगड़ा चूसते रहते हैं) ऐसे वे घटके पत्तेपर सोनेवाले भगवान्
आपका आनन्द ॥ ५६ ॥

लक्ष्मीः सारं संसारको सुख देनेवाली, पवित्र मुरकानवाली,
दयालयी तथा मधुर रूपवाली लक्ष्मी देवीकी हम उपासना करते
हैं ॥ १ ॥ स्वयंवरके समय जब भाट (प्रन्त्यरि) एक-एकका परिचय

आख्याते हसिनं पितामह इति प्रस्तङ्गपालीति च
 व्यावृत्तं गुररित्ययं दहन इत्याधिपकृता भीरुता ।
 पौलोमीपतिरित्यस्युचितमथ श्रीटाविनप्रथिया पायाद्वः
 पुरुषोत्तमोऽयमिति यो न्यस्तः स पुष्पाङ्गलिः
 ॥ २ ॥ उत्तिष्ठन्त्या रतान्ते भरमुत्तरापतां पाणिनेकेन
 कृत्वा धृत्या चान्येन वासो विगलितकवरीभार-
 मंसे वहन्त्याः । भूयस्तत्कालकान्तिद्विगुणितसुरतमी-
 तिना शोरिणा वः शय्यामालङ्कय नीतं चपुरलसल
 सद्वाहु लक्ष्म्याः पुनातु ॥ ३ ॥ उचुङ्गस्तनमण्डलोपरि
 लसत्प्रालम्भमुकामणेरन्तर्विभ्रितमिन्द्रनीलनिकरच्छा-
 यानुकारि द्युतिः । लज्जाज्याजमुपेत्य नम्रयदना स्पष्टं
 सुरारेर्वपुः पश्यन्ती मुद्रिता मुदेऽस्तु भवतां लक्ष्मीवि-
 याहोत्सवे ॥ ४ ॥ कमलासनकमलेच्छकमलारिकिरी-
 टकमलधृदाद्वैः । सुतपदकमलाकमला करधृतकमला

करोतु मे कमलम् ॥५॥ किञ्जल्कगजिरिच नीलसरोज-
 लम्ना लेपेय काञ्चनमयी निरूपोपलम्बा । सांदाभिनी
 जलदमण्डलगाभिनीय पायादुरःस्थलगतता कमला
 सुरारेः ॥ ६ ॥ श्रीटाभिन्नहिरण्यशुक्तिकुहरे रक्तात्मना-
 वस्थितान्दारं हारमुदारकुङ्कुमरसानध्याजभज्यान्नगैः ।
 वीरश्रीकुचकुम्भसीन्नि लिखतो घोरस्य पत्रायलीम्न-
 त्कालोचितभाजन्यधमधुरं मन्दस्मितं पातु यः ॥ ७ ॥
 जयन्ति जगतां मातुः स्तनकुङ्कुमविन्दवः । मुकुन्दाश्ले
 पसंक्रान्तकोस्तुभथीविडम्बिनः ॥ ८ ॥ तल्पीकृताहिर-
 गणितगरुडो हाराभिहतविधिर्जयति । फणशतपीन-
 श्वासो रागान्धायाः श्रियः केलिः ॥ ९ ॥ दन्तै कोट-
 किता स्मितेधिकमिता भूधिभ्रमैः पत्रिता टोभ्यां पल्ल-
 विता नरैः कुसुमिता लीलाभिरुद्वेसिता । उचुङ्गस्तन-
 मण्डलेन फलिता भकामिहापे हिता काचित्कल्पलता

देने लगे उस समय लक्ष्मीजी मद्भाग्यीको देवकर हैंस पर्वी,
 शिखरीको देवकर सहम गडं, वृहस्पतिजीको देवकर सङ्कुचित
 हो गडं, अग्निदेवरी देवकर डर गडं, इन्द्रादीको पति इन्द्ररी
 देवकर उन्हें उड्ड इत्यां हुई तथा पुरगोत्तम भगवान् विष्णुको
 जब देवा तो लताकर प्रसन्नतामे सिर नीचा करके उन्हांने
 फूलोंको जो अञ्जलि विष्णुजीपर धींसे छोड दी वह आपकी
 रचा करे ॥ २ ॥ रतिके पश्चात् अपनी देहके भातको एक हाथमे
 शेषनागरी शीयापर बन्धर उठनी हुई तथा दूसरे हाथमे अपने
 खुले हुए वर्रांको सँगालनी हुई उन लक्ष्मीजीका शरीर आपकी
 पवित्र करे तिनके सिरका जूडा खुलकर कन्धोपर गिरर गया
 था और फिर उसी क्षण रतिके लिये दुगुने चाव और सुन्दरताके
 साथ भगवान् विष्णुने आलससे दिथिल बाँहवाले जिस शरीरका
 आखिन्न करके उमे अपनी शीयापर टीच लिया था ॥ ३ ॥
 विनाहके समय अपने ऊँचे-ऊँचे स्तनां पर बठकती हुई मालाके
 मोतियों और मणियोंमे भगवान् विष्णुके नीले कमलोंकी
 फान्तिके समान सुन्दर नीली कान्तिवाले शरीरकी पडती हुई
 परदाईको लम्बाके यहाने सिर नीचा करके प्यानसे देवकर
 प्रसन्न होती हुई वे लक्ष्मीजी आपको मुल दें ॥ ४ ॥
 कमलमें रहनेवाले द्रुमा, कमलके समान नेत्रमाले विष्णु और
 कमलके गणु चन्द्रमाना सुन्दर पहननेवाले शिव तथा कमलकी
 धारण करनेवाते देवागत हाथीके बाहनवाले दुन्दु आदि जिनके
 चरण-कमलद्वारे प्रणाम करते हैं तथा जो कमलको धारण किए
 रहती हैं, ऐसी लक्ष्मीजी मेरा कल्याण करें ॥ ५ ॥ नीले

रत्नवाले विष्णुजीके वज्र स्थलपर लेटी वे पीले रत्नवाली लक्ष्मीजी
 रचा करे जो नीले कमलपर लगे हुए पराग-सी, कर्मादीपर
 लगे मोनेकी लकीर-सी तथा मेघोके बीचमें चमकती हुई
 चिन्नी-सी जान पडती हैं ॥६॥ खिलनाडमें ही फाड डाले हुए
 हिरण्यकशिपुके वज्र स्थलरूपी सीपोंमें भरे हुए रत्नरूपी बैराके
 रसको स्वभापमे ही सुन्दर नजरूपी वृत्तिकार्योसे निकाल-
 निकालकर लक्ष्मीजीके वीर (पुट) स्तनां पर चित्रकारी करते
 हुए वीर (गरडकी सवारोपाने या शूर) वृत्तिकाकी उस
 समयके भारसे प्रथिक सुन्दर मन्द मुस्वान आपकी रचा करे ।
 भाव यह था कि हिरण्यकशिपु जैसे महापराक्रमीके वज्र स्थलकीं
 ही फाड डालनेवाले मेरे वे कठोर और वीर नरज तिन स्तनांका
 बाष्प होकर आदृक् करते हैं उनकी कठोरता तथा वीरताकी क्या
 सीमा हो सकती है ॥ ७ ॥ जगन्माता श्रीलक्ष्मीजीके स्तनां पर
 लगी हुई बुद्धमकी उन वृद्धाकी जय हो जो विष्णुजीके आखिन्न
 करते समय कौस्तुभ मणिके समान शोभित होती है ॥ ८ ॥
 कामके मद्से अत्यन्त मतवाली होकर कौ जानेवाली लक्ष्मीजीनी
 उस श्रीटाकी जय हो जिसमें शेषनागको शय्या घना लिया गया,
 जिसमें गरडकी बोई आडू न की गई, हातकी भकनेरसे मद्भाग्यो
 भी चोट लगती गई और जिसमें वेगसे निरली सौतियोंको शेषनाग
 अपने सिरके फणोसे पीते चले गए ॥९॥ देवताओं और असुरोंमे
 प्रणाम की जाती हुई कल्प-वृक्षकी तलाके समान वे ससुद्रवी
 पुत्री लक्ष्मीजी रचा करे जिनके दाँत लताकी कजियोक समान हैं,
 जिनकी मुस्वान ही उस लताका खिलना है, भींहे कोपल है,

सुरासुरनुता पायात्सुधाभ्यः सुता ॥ १० ॥ दरिद्रतो-
न्मूलनकर्मदत्ता प्रत्यक्षसिद्धेभ्यस्तानिदानम् । सम्प्रति-
धात्री कल्याणिधात्री धात्रीव सा सांख्यपदस्य दात्री
॥ ११ ॥ देवेऽर्पितवरणस्रजि बहुमाये वहति कैटमीरु
पम् । जयति सुरासुरहसिता लज्जात्रिलोदण्णा लक्ष्मीः
॥ १२ ॥ पञ्चायाः स्तनहेमसद्यनि गन्धिधैर्यीसमाकर्षके
क्राञ्चत्कञ्चकलम्बिसधिप्रियते शोरेः करे तस्करे ।
सद्यो जागृहि जागृहीति धलयध्वानेधुयं गर्जता कामेन
प्रतियोगिताः प्रहरिका रोमाञ्जुराः पान्तु चः ॥ १३ ॥
पयोधिसन्मूतवया समन्ताङ्गधस्य विन्दूनिव गात्रल-
ज्जात्र । लावण्यस्तनानमिषेण विष्वग्निभावावयन्ती भव-
ताभिभूत्यै ॥ १४ ॥ पायात्पयोधिदुहितुः कपोलामल-
चन्द्रमाः । यत्र संक्रान्तविष्येन हरिणा हरिणापितम्
॥ १५ ॥ पीनश्रोणि गर्भारनाभि निभूतं भूभृद्गोष्यस्तनं
पायाद्गः परिरुधमधुदुहितुः कान्तेन कान्तं वपुः ।

भुजाएँ कोमल पत्ते हैं, नख फूल हैं, हाव-भाव लताका
हिलावा है, ऊँचे-ऊँचे स्तन विसर्क फल हैं और जो भक्तोंकी
इच्छाओंके लिये हितकारिणी है ॥ १० ॥ दरिद्रताका नाश
करनेसे लुर, ऐश्वर्य और सिद्धियोंको उत्पन्न करनेवाली,
सम्पत्तियोंकी रक्षा करनेवाली तथा दुष्टाकी खान लक्ष्मीजी
माताके समान सुख देनेवाली है ॥ ११ ॥ स्वयंवरमें
जयमाला पहनाते समय बड़े मायावी विष्णु भगवान्ने जय
कैटमीका रूप धारण कर लिया उस समय देवताओं और
देवियोंके हँस पड़नेसे लज्जकर तिरछी चितवन कर लेनेवाली
लक्ष्मीजीकी जय हो ॥ १२ ॥ मणि आदिसे घिरे हुए लक्ष्मीजीके
स्तनरूपी सोनेके धारमें चोलीकी तनिकली सन्निभसे विष्णुजीके
चौररूपी हाथके घुसनेपर तुलन्त ही हाथके कदनेके 'जागो !
जागो !!' इस प्रकार चिल्लाते ही कामके द्वारा जगाए गए
रोमाञ्ज रूपी रखवाले शपकी रक्षा करे ॥ १३ ॥ दूधके समुद्रसे
उत्पन्न होनेके कारण देहमें जमी दूधकी वृद्धिको सुन्दरताके
कण्ठीकी भाँति चारा धार चमकवाती हुई लक्ष्मीजी कल्याण
करनेवाली है ॥ १४ ॥ समुद्रकी पुत्री लक्ष्मीजीका स्वच्छ
चन्द्रमाके समान वह कणोल रक्षा करे जिसमें पड़ती हुई
विष्णुजीकी परदार्य हरिण सी जान पड़ती है ॥ १५ ॥
प्रियतमसे आभिन्न किया हुआ वह पुष्ट नितम्बवाला, गहरी
नाभियाला तथा पर्वतकार ऊँचे स्तनोंवाला समुद्र-पुत्री
लक्ष्मीजीका सुन्दर शरीर आपकी रक्षा करे, जिसका विष्णुजीकी

स्वावासानुपघातनिर्घृतमनास्तकालमीलहशे यस्यै
सोऽच्युतनाभिपद्मवसतिर्वैधाः श्रियं ध्यायति ॥ १६ ॥
मनाकप्रपञ्जोऽपि कृपाकटाये यस्याः कृतार्था सकला-
धिराय । सा निर्मलाऽऽसेचनकस्वरूपा पायाद्पायात्
कमलात्मना माम् ॥ १७ ॥ यादृग्जातामि जाम्भुतदग्नि-
रिशिखरे कान्तिरिन्दोः कलानामित्यौत्सुभ्येन पत्यौ
स्मितमधुरसुखाम्भोरहं भापमायें । लीलादोलाथमान-
श्रुतिकमलमिलद्दृङ्गसङ्गातसाची पायाद्भूमोधिजायाः
कुसुमशरकलानाट्यनान्दीनकारः ॥ १८ ॥ राजाधिरा-
जस्य सखापिनश्रोऽनुपेत्य यां भ्राम्यति भिन्नमाणः ।
उपेतवान् हन्त जनार्दनेऽपि शोतेऽस्तचिन्तं मम सा
श्रिये श्रीः ॥ १९ ॥ लोकेषु लोकोत्तरतानिघाननिदान-
भूता विभवाधिधैवी । मन्दाररूपा नमताञ्जनानान्
कस्य चन्द्या विबुधस्य लक्ष्मीः ॥ २० ॥ सद्गोदरत्वं
प्रतिपद्य यस्याः स्फुरत्कलङ्कोऽपि भतो द्विजेशः । सम-

नाभिले निकले कमलमें रहनेवाले प्रहावे अपने निवास-स्थानके
सकुशल वच जानेपर स्वस्थचिन्त होकर भेद्र वन्द्य करके ध्यान
क्रिया था ॥ १६ ॥ जिनकी तनिक-सी कृपामयी तिरछी चितवन
पड़ते ही सब लोग सदाके लिये सन्तुष्ट (निहाल) हो जाते
हैं और जिनके स्वच्छ स्वरूपको देखते रहनेपर भी मन नहीं भरता,
वे कमलपर बैठी हुई लक्ष्मीजी सदा मेरी रक्षा करे ॥ १७ ॥
लक्ष्मीजीके सुमेरु पर्वत जैसे गोरे एवं ऊँचे स्तनोंसे ऊपर उनके
मुखचन्द्रको शोभाको देखकर मुखराते हुए मुखकमलवाले लक्ष्मी-
पति विष्णुजीने लक्ष्मीजीसे पूछा—'तुम जानती हो, सुमेरु
पर्वतकी चोटीके ऊपर स्थित हुए चन्द्रमाकी कलाओंकी कैसी
शोभा होती है ?' इसके उत्तरमें 'नहीं' कहनेके लिये जो
लक्ष्मीजीने सिर हिलाया, उससे उनके कानोंके कमलोंपर
मँडराते भौंरोंकी गुञ्जा सुनकर ऐसा जान पड़ा मानो
कामदेवकी कला (रति) रूपी नाटकके पूर्व भौंरोंके
गुञ्जाररूपी सङ्गानके साथ लक्ष्मीजीने सिर हिलाकर नान्दी
(नाटकका प्रारम्भ) किया हो । लक्ष्मीजीना वह नान्दी कार्य रखा
करे ॥ १८ ॥ बुधरेके मित्र होते-हुए भी शिवजी जिन्हें न पानेके
कारण भीरु भाँगते फिरते हैं और खेद है कि जिन्हें पाकर विष्णु
विश्रान्त होकर सोते ही रहते हैं, ऐसी लक्ष्मीजी मेरा कल्याण
करे ॥ १९ ॥ संसारमें शक्यधिक ऐश्वर्यको जन्म देनेवाली,
ऐश्वर्योंकी स्वाग्निनी देवी तथा प्रथम करनेवालोंके लिये कल्याणके
समान लक्ष्मी देवीको कौन देवता प्रथम नहीं करेगा ॥ २० ॥

स्तसाग्दुर्णविधानदक्षा सदा शरण्या मम सास्तु
लक्ष्मीः ॥ २१ ॥ स्मेराननेन हरिणा ससृष्टभाकारवे-
दिनाकलितम् । जयति पुरुषायितायाः कमलायाः
कैटभीध्यानम् ॥ २२ ॥ स्वपादपीठं चिनमत्सु सत्सु
स्मितच्छलेन श्रियमादधाना । पद्मासना पद्मभयादिव-
न्द्या सा मे शरण्या विभवाय पद्मा ॥ २३ ॥ हिरण्यका-
न्तापि निजस्मिताभाधितानसम्बन्धमुपेत्य शुभ्रा ।
श्रवद्यजातं निपुणा निहन्तु सदा शरण्यास्तु महेश्वरी
सा ॥ २४ ॥

शुद्धः—वायत्स वः कुमुदकुन्दमृणालगौरः शुद्धो
हरेः करतलाम्बरपूर्णचन्द्रः । नादेन यस्य सुरशशुवि
लासिनीनाङ्कान्यो भवन्ति शिथिला जघनस्थलीषु
॥ १ ॥ भिन्दन्नपतिहृदयानि हरेः पुनातु निःश्वासघा-
तमुखरीकृतकोटरो वः । संक्रान्तकुचिकुहरास्प-

दसससिन्धुसहृद्योरतरघोष इवाशु शुद्धः ॥ २ ॥
चक्रम—उद्धृत्तदैत्यप्रतनापतिरुण्टपीठच्छेदोच्छ्रुलद्ध-
हलशोणितशोणधारम् । चक्रं त्रियाद्भिमतानि हरेर्य-
दारदिग्दाहदावणनमः श्रियमुद्धहृदः ॥ १ ॥ दृष्टस्य
यस्य हरिणा रणमूर्ध्नि मूर्च्छिगद्भूतःसहमहःप्रमरा
समन्तात् । तल्लोचनस्थितरविमतिविम्बगर्भेनामाति
चक्रमरिचक्रनुदेऽस्तु तद्वः ॥ २ ॥

शेषः—ब्रह्माण्डकुम्भकारं मुजगाकारञ्जनार्वन-
नौमि । स्फारे यत्क्षणचक्रे धरा शरावश्रियं वहति ॥ १ ॥

गर्हः—सौवर्णाङ्कितपनमास्यतदृताहिमातकान्ता-
कुचस्कूर्जनीमौक्तिकभूपणः खगपतिः पूर्णदुधिविमाननः ।
पद्माधीश्वरपादपद्मयुगलस्पर्शमलाङ्गनतः पायाङ्गं
चिन्तासुतो हरिःखपालोकैकपात्रोद्धतः ॥ १ ॥

समुद्रः—आयान्ति यत्र निवसन्ति चिराय चेष्टं

जिनका सगा माई होनेके नाते स्पष्ट कलङ्कवाला चन्द्रमा भी
आदरणीय हो गया, वे सत्र सद्गुण रचनेमें चतुर लक्ष्मीजी
सदानुके अपनी शरणमें रखे ॥ २१ ॥ पुरष्की भौति आचरण्य
करनेवाली लक्ष्मीजी द्वारा किए जाते हुए उस कैटभी-रूपके प्यानकी
जय हो जिसे सुन्दर मुन्दरवाले विष्णु भगवान् पहले चाबसे
लक्ष्मीजीका मुख देखते ही समझ गए ॥ २२ ॥ अपने पैरोंमें नन्न
होकर प्रणाम करनेवालोंको सुस्वराहट मात्रसे सुर-सम्पत्ति
देनेवाली, कमलपर बैठी हुई, सबको शरण देनेवाली तथा
ब्रह्मा आदि देवताओंमें प्रणाम भी जाती हुई वे लक्ष्मीजी मुझे
प्रेक्ष्य दे ॥ २३ ॥ सोनेके समान कान्तिवाली होती हुई भी अपनी
सुन्दरवादी घनी कान्तिसे धिरवर उजले रूपवाली तथा सारे
पाप-समूहको नष्ट करनेमें चतुर वे सबसे बड़ी स्वामिनी लक्ष्मीजी
सदा शरण दें ॥ २४ ॥

शुद्धः चन्द्रमा, सुन्दरके पूल और कमलके दोनोंकी भौति
उजले रत्नमाला तथा हथेली रूपी आराधनेमें पूर्ण चन्द्रमाकी
भौति रहनेवाला विष्णु भगवान्का वह शङ्ख आपकी रक्षा करे
जिसके गम्भीर शब्दकी सुनकर देवताओंके शत्रु राक्षसोंकी
क्रियांकी क्रूरपरिहारके मारे सरबकर जपन-स्थलमें आ जाती
है ॥ १ ॥ (पूर्वक्रमेण) जिसके जोरजलमें ऐसा शब्द होने लगता
है जो शत्रुओंके हृदयको भाङ्ग डालता है, वह विष्णुजीका
शङ्ख आप सबसे पवित्र करे जो ऐसा जान पड़ता है मानो
सुँहसे निकले पवनके वेगसे उसके जोरजलमें भरे सारों समुद्रोंके

धर्ममें टकर हो जानेसे ही उसमेंसे इतनी गम्भीर ध्वनि निकल
पड़ती है ॥ २ ॥

चक्रः दैविके सेनापतिका गला वाटनेसे बहुत वेगसे बड़े
हुए रक्तसे रंगी हुई धारवाला तथा ऊपरकी बड़े हुए आरोंवाला
वह विष्णु भगवान्का चक्र आपकी इच्छापूर्व पूर्ण करे जो देता
दिशाओंमें आग लग जानेपर आकाशके समान अत्यन्त भयङ्कर
दियाई पड़ता है ॥ १ ॥ भगवान् विष्णुका वह चक्र आपके
शत्रुओंका नाश करे जो युद्धस्थलमें विष्णुजीके देव लेने-मात्रमें
असहनीय तेजमाला हो जाता है और जो उस समय
ऐसा जान पड़ता है मानो भगवान् विष्णुके नेत्रमें स्थित सूर्यकी
चमचमाती हुई परछाई हो ॥ २ ॥

शेषः ब्रह्माण्ड रूपी घडेकी रचना करनेवाले, नागके आकार-
वाले उन जनार्दन भगवान्को भी प्रणाम करता हूँ जिनके पङ्केके
ऊपर रक्ती हुई यह पृथ्वी परदके समान जान पड़ती है ॥ १ ॥

गर्हः लक्ष्मीपति भगवान् विष्णुके दोनों चरण-कमलोंके
चू जानेसे अत्यन्त निर्मल शङ्खवाले, सुककर प्रथम करले
हुए, संसार भरमें भगवान्की कृपाके सबसे बड़े अधिकारी,
जिनताके पुत्र तथा पूर्ण चन्द्रमाके समान सुँहवाले वे पश्चिमोंके
स्वामी गरुडजी आपकी रक्षा करे जो सोनेमें सजे अपने पङ्कोंके
पवनके वेगसे स्थिचे हुए नागोंकी शिखोंके स्तनकी भौतियांमें
सजे हुए हैं ॥ १ ॥

समुद्रः ये असंख्य नदियाँ सदाके जिये जहाँ आकर

निर्यान्ति चैवममिताः सरितो यतोऽमी । देवैर्हतेषु
 बहुलेषु मणिव्यापीभ्यो यः पूर्ववत्स जयतादभूतैकभूमिः
 ॥१॥ वत्से मम गा विपदां श्वसनमुरुज्वं सन्त्यजोर्ध्वप्र-
 वृत्तं कम्प को वा गुरुस्ते किमिह वल्लभिदा जृम्भिते-
 नात्र याहि । प्रत्याख्यानं सुराणामिति भयशमनच्छु-
 श्ना कारयित्वा यस्मै लक्ष्मीमदाद्यः स ददतु उरितं
 मन्थमुग्धः पयोधिः ॥ २ ॥

दशावताराः

पाठानः कमठः किठिनैरहरिः सर्वाकृतिर्भागवो
 रामः कंसनिपूद्वनो दशबलः कल्की च नारायणः ।
 युष्माकं स विभूतयेऽस्तु भगवान्सेतुर्भवाम्मोनि-
 धाडुत्ताराय युगे युगे युगपतिस्त्रैलोक्यनाथो हरिः
 ॥ १ ॥ यस्यालीयत् शकसीन्नि जलधिः पृष्टे जगन्म-

निवास वरती है और इच्छानुसार जहाँसे निकलकर चली जाती
 है तथा देवताओं द्वारा मणियोंके बार-बार निवाले जानेपर भी
 जिसमें तनिक भी कमी नहीं आती उस श्रुतको जन्म देनेवाले
 समुद्रकी जय हो ॥ १ ॥ 'हे बेटी ! शोक न करो, श्रयन्त
 वेगसे चलते हुए ऊर्ध्वथासको छोड़ दो, यह तुम बड़े
 वेगसे क्यों क्यों रही हो ? अरे, बलका नाश करनेवाली यह
 जैभाई क्यों लेती हो ? यहाँ आओ !' दूसरे पक्षमें—'हे बेटी !
 विपमची (शिव) के पास न जाओ, अत्यन्त वेगवान्, उपर-
 तक बड़े हुए इस पवनको भी छोड़ दो, ये गुरु अथवा वरुण
 भी तुम्हारे कौन हैं ? कोई नहीं, इन अँगड़ते हुए हृद्गसे
 भी क्या सम्बन्ध है ? यहाँ विष्णुके पास जाओ, इस
 प्रकार दर झुड़ानेके बहाने दूसरे देवताओंका वरण करनेसे
 रोकते हुए वे भगवान् विष्णुको लक्ष्मीका दान करनेवाले तथा
 मगधसे थके हुए समुद्र पाषाणका नाश करें ॥ २ ॥

दशावतारः तीनों लोकों और युगोंके स्वामी वे विष्णु
 भगवान् आपका कल्याण करें जो मछली, कछुआ, वराह, रुसिंह,
 धामन, परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध, कल्की और नारायण आदि
 वेगोंसे प्रत्येक युगमें संसार-समुद्रसे जीवोंका पार उतारनेके लिये
 सेतु हैं ॥ १ ॥ मत्स्यवेपसे जिन भगवान् अपने आपकी साखमें
 सारा समुद्र समा लिया, कछुआ-वेपसे जिन्होंने अपनी पीठपर
 सारे संसारका भार रक्का, वराह वेपसे जिन्होंने अपनी हाड़ोंमें
 पृथ्वीको लटकवा लिया, रुसिंह-वेपसे जिन्होंने अपने नखोंसे
 दैव्योंके स्वामी हिरण्यकशिपुको फाड़ डाला, वामन वेपसे

एडलं दंप्रयां धरणी नखे दितिसुताधीशः पदे रोदसी ।
 क्रोधे चक्रगणः शरे दशमुखः पार्यौ प्रलम्बासुरो ध्याने
 विश्वमत्सावधार्मिककुलं कस्मैचिदस्मै नमः ॥२॥ वेदानु-
 ङ्करते जगन्निवहते भूगोलमुद्भिन्नते दैत्यं वारयते वलिं
 छलयते चक्रचर्यं कुर्वते । पौलस्त्यञ्जयते हलं कलयते
 कारुण्यमातन्वते म्लेच्छान्मूर्च्छयते दशकृतिरुते
 कृष्णाय तुभ्यंनमः ॥३॥ वेदा येन समुद्रता यमुमती पृष्टे
 धृतान्युद्धता दैत्येशो नवरैर्हृतः फणिएतेलोकं वलिर्मा-
 पितः । क्माऽक्षत्रा जगती दशास्परहिता माता कृता
 रोहिणी हिंसा दोषवती धराप्ययचना पायात्स नारा-
 यणः ॥ ४ ॥ वेदोद्धाररुते गिरिं धृतवते पृथ्वीतलोद्धारि-
 रिणे दैत्योरःस्थलदारकाय ददते त्रैलोक्यराज्यं
 सरान् । राजन्यान्वयशत्रवे हतवते रक्षोऽर्कजां कर्पते
 कारुण्यं दधते कृतं श्रुतवते भूयो नमः शार्ङ्गिणे ॥ ५ ॥

जिन्होंने अपने पैरोंमें सारे आकाश-पृथ्वीको समा लिया, परशुराम-
 वेपसे जिनके क्रोधमें सब ह्रिय जल मरे, राम-वेपसे जिन्होंने
 अपने बाणसे रावणको मार डाला, कृष्ण-वेपसे जिन्होंने अपने
 पैरसे प्रलम्बासुरको मार डाला तथा कल्कि-वेपसे जिन्होंने अपने
 खड्गसे सारे अश्वर्षी संसारका नाश कर दिया, ऐसे उस किसी
 परमात्माको प्रणाम है ॥२॥ मत्स्यरूपसे वेदोंकी रक्षा करनेवाले,
 कच्छपरूपसे संसारका भार सँभालनेवाले, वराहरूपसे पृथ्वीको
 उठा लानेवाले, रुसिंहरूपसे हिरण्यकशिपुको मारनेवाले, वामन-
 रूपसे बलिको छलनेवाले, परशुराम-रूपसे क्षत्रियोंका नाश
 करनेवाले, रामरूपसे रावणको जीतनेवाले, बलभद्र-रूपसे हल
 पलानेवाले, बुद्ध-रूपसे सत्पर दया करनेवाले और कलिरूपसे
 सब ग्लेच्छोंको दख देनेवाले हे कृष्ण भगवान् ! आपको प्रणाम
 है ॥ ३ ॥ वेदोंकी रक्षा करनेवाले, पृथ्वीको पीठपर धारण करके
 उसकी रक्षा करनेवाले, दैव्योंके स्वामीको नखोंसे मारनेवाले,
 बलिको पाताल भेजनेवाले, पृथ्वीको क्षत्रिय-रहित कर देनेवाले,
 रावणको पृथ्वीसे नष्ट करनेवाले, रोहिणीको माता बनानेवाले,
 'शार्ङ्गियोंको कष्ट देना महापराय है' यह बतानेवाले तथा पृथ्वी-भरके
 यवनोंका नाश करनेवाले, वे भगवान् नारायण आपकी रक्षा करें
 ॥ ४ ॥ वेदोंका उद्धार करनेवाले, पर्वतको धारण करनेवाले,
 पृथ्वीकी रक्षा करनेवाले, दैत्यकी छाती फाड़नेवाले, तीनों लोकोंका
 राज्य देवताओंको देनेवाले, क्षत्रिय-कुलका नाश करनेवाले,
 रावण राक्षसको मारनेवाले, यमुनाकी धाँचनेवाले, दया धारण
 करनेवाले तथा कलियुगमें सतयुग ले आनेवाले उन विष्णुको
 बार-बार प्रणाम है ॥ ५ ॥

मत्स्यः—आदिमत्स्यस्त जयतायः श्वासोल्लासितै-
र्जलैः । विदधे गननेऽम्भोधिं गगनञ्च महोदधौ ॥ १ ॥
चन्द्रादित्योहनेत्रः कमलभवभवस्फारपुष्टप्रतिष्ठो भास्व-
त्कालाग्निजिह्वः पृथुलगलगुहादृष्टनिःशेषविश्वः । अग्निः
पुच्छोत्थिताभिश्चक्रितसुरधुनेत्रसञ्चालिताभिर्मत्स्य-
शिङ्घान्नाग्धिधेवं गगनतलमलं क्षालयन्व्यः पुनातु ॥ २ ॥
जीयासुः शकुलाकृतेर्भगवतः पुच्छच्छुद्धाच्छोदनादु-
घन्तः श्रुतचन्द्रिताम्बरतलं ते विन्द्वयः सैन्धवाः ।
यैर्ध्यावृत्य पतद्भिरौर्वशिखिनस्तेजोजटालं ययुः पाना-
भ्मानवशार्दरोचकरुजां चक्रे चिरायास्पदम् ॥ ३ ॥
जृम्भाविस्तृतचक्रपङ्कजविधेर्हृत्वा श्रुतीः सागरे लीनं
व्रस्तसमस्तनक्रनिकरं शङ्खं जवानाजिरे । पुच्छोत्थित-
जलोत्करैः प्रतिदिशं सन्तर्प्य यो वै धरां पायाद्भः स
मृणालकोमलतनुर्मानाभिधानो हरिः ॥ ४ ॥ दिङ्मूढं तं
सुरारिं किल श्रितदशनैः पीड्यमानं रटन्तं हृत्वा तरे

पयोधेः करतलकलितं पूरयामास शङ्खम् । नादेनात्तो-
भ्य विश्वं प्रमुदितवियुधं व्रस्तदैत्यं स देवैर्दत्तार्घः पद्म-
योनेः प्रहसितवदनः पातु यो दत्तचेदः ॥ ५ ॥ दिश्या-
द्भः शकुलाकृतिः स भगवान्मैःश्रेयसां सम्पदं यस्य
स्फूर्जदंतुच्छुपुच्छुशिखरप्रेङ्गोलनश्रीडनैः । विश्वग्याधि-
समुच्छलजलभरैर्मन्दाकिनीसङ्घैर्गङ्गासागरसङ्गमप्रप-
यिनी जाता विहायःस्थली ॥ ६ ॥ पुच्छञ्चैदहमुन्नयाभ्य-
नवधिस्तुच्छो भवेदम्युधिः क्रीडाञ्चैत्कल्पे मनागपि
जले पीडा परं यादसाम् । निष्पन्दो मृशमामृशान्निवित
भरत्रहाण्डभाण्डल्यत्तोमाकुञ्चितयेप पद्म भगवान्श्री-
णानु मीनाकृतिः ॥ ७ ॥ मग्ने भेरीं पतति तपने तोय-
विन्दाधिचेन्द्रावन्तलीने जलधिसलिले व्याकुले देव-
लोके । मात्स्यं रूपं मुखपुटदटादृष्टनिर्मुक्त्वाधि श्री-
कान्तस्य स्थलजलगतं चेत्यल्लं पुनातु ॥ ८ ॥ माया-
मीनतनोस्तनोतु भवतां पुण्यानि पङ्कस्थितः पुच्छञ्च-

मत्स्यः उन सबसे प्रथम मछली रूपवाले भगवान्की
जय हो जिन्होंने अपनी साँसें जल उद्दालकर आकाशमें समुद्र
और समुद्रमें आकाश रच डाला ॥ १ ॥ चन्द्रमा और सूर्यरूपी
बड़े-बड़े नेत्रवाले, ब्रह्माजीसे उत्पन्न हुलने बड़े ब्रह्माण्डको अपनी
पीठपर रखनेवाले, प्रलयकालके अग्निके समान लपलपाती
जीमवाले, अत्यन्त मोटे गलेकी सन्धिमे सारे संसारकी
देखनेवाले तथा अपनी पूँछसे उद्दाले गए और देवताओंकी
स्त्रियों-द्वारा अचरजमे देखे गए जलसे समुद्रकी मर्यादा
साँझकर आकाशका मूल पोते हुए-से वे मत्स्यरूपी भगवान्
आपको पवित्र करें ॥ २ ॥ मत्स्य-रूपधारी भगवान्की पूँछकी
फटकारमे उड़कर आकाशमें सैकड़ों चन्द्रमाकी भौंठि जान पड़ने-
वाली उन समुद्रकी बूँदोंकी जय हो जिन्होंने आकाशमे गिरकर
अत्यन्त तेजवाले बड़बानलकी सद्भाके लिये 'अधिक पानी
पीनेसे उत्पन्न अरचि' रोगका रोगी बना दिया ॥ ३ ॥
जैसाई लेते समय सुँहके फूलते ही वेदोंको सुराकर समुद्रमें
छिपे हुए 'तथा घड़ियाल आदि सब जलचरोंको डरानेवाले
शङ्खामुकी युद्धमें जिसने मार डाला और अपनी पूँछसे जल
उद्दालकर सब दिशाओंको साँचकर पृथ्वीको चचा लिया वे
कमलकी जड़के समान कोमल उँड़वाले मत्स्य-रूपवाले भगवान्
आपकी रक्षा करें ॥ ४ ॥ देवताओंके शत्रु शङ्खसुरको अपने पीने
पतितसे पकड़कर, अत्यन्त व्याकुल होकर चिल्लाते हुए ही उसे
समुद्रके तीरपर लाकर, हाथोंसे पकड़कर जिसने बड़े वेगसे

फूँकर बजा डाला, जिसके गम्भीर नादसे संसार व्याकुल हो
उठा, देवता प्रसन्न हो गए, सब देव्य डर गए, सब देवता प्रसन्न
होकर अर्घ्य देने लगे और ब्रह्माजी वेदोंको पाकर जिन्हें देखकर
हँस पड़े, वे आपकी रक्षा करें ॥ ५ ॥ मत्स्य-रूपवाले वे
भगवान् आपको कल्याणकारी पेरवयं दे जिगकी बड़ी भारी पूँछके
वेगमे समुद्र उड़लकर आकाश-गङ्गातक पहुँच गया और गङ्गा-
सागर तीर्थका समीपमें ही आनन्द लेते हुए आकाशरूपी धल
प्रसन्न हो गया ॥ ६ ॥ 'यदि मैं पूँछ ऊपर उठाता हूँ तो इस
समुद्रकी मर्यादा टूट जायगी, यदि जलमें तनिक भी क्रीडा करूँगा
तो जलचरोंको बड़ा कष्ट होगा' इस प्रकार सोचकर जो अपनी
देहको तनिक भी हिला नहीं पाते तथा 'ऊपर रक्षा यह ब्रह्माण्ड
रूपी घड़ा फूट न जाय' इस डरमे जो अपने रूपको सिकोड़े हुए
हैं ऐसे वे मछली-रूपवाले भगवान् प्रसन्न हों ॥ ७ ॥ जब सुमेरु
पर्वत समुद्रमें डूब गया, पानीकी बूँदोंमें सूर्य छिप-सा गया,
चन्द्रमा समुद्रमें डूब-सा गया और देवता व्याकुल होने लगे
तब अपने सुँहके ओठोंके किनारोंसे समुद्रको खींचते-झोड़ते
हुए मछली रूपवाले भगवान्के उस शरीरको जय हो जिसे
देखकर समझमें नहीं आता या कि यह जलमें है या धरतीमें
है ॥ ८ ॥ मायासे मछलीका रूप धारण करनेवाले नारायण
भगवान्का वह कीचड़में रहना आपके पुण्याँकी रक्षा करे जब
उन्की पूँछके वेगमे हिलनेके कारण समुद्रका सारा जल उड़ल
गया और नीचे पातालके छेदमें बड़े सडोच और बहुत कठके

च्छोटसंमुच्छलजलगुरुभाररिक्तोदधेः । पातालाव-
 टमध्यसङ्घटतया पर्याप्तकप्रस्थितेर्वेदोद्धारपरायणस्य
 सततं नारायणस्य प्रभोः ॥ ६ ॥ यं दृष्ट्वा मीनरूपं
 स्फुरदनलशिखामुक्तसंरक्तनेत्रं लोलद्विस्तीर्णकर्णोलुभित-
 जलनिधिं नोलजीमूतवर्णम् । श्वास्तोच्छ्वासानिलौघैः
 प्रचलितगगनं पीतवारिं मुरारिं दिङ्मादौ भूत्स शङ्खः स
 भवतु भवतां भूतये मीनरूपः ॥१०॥ वियत्पुच्छातुच्छो-
 च्छलितजलगर्भं निधिरपामपायनाथः पाथः पृथुलव-
 दुस्यो वियदभूत् । निधिर्भासामोघां दिनपतिरभूदौर्वद-
 हनश्चलत्काये यस्मिन्स जयति हरिर्मीनवपुता ॥ ११ ॥
 हं हो मीनतनो हरे किमुदधे किं वेपसे शैत्यतः स्थिन्नः
 किं यडवानलात्पुलकितः कस्मात्स्वभावादहम् । इत्थं
 सागरकन्यकामुलशशिष्यालो कनेनाधिकमोघत्कामज-
 चिह्ननिह्वितपरः शौरिः शिवायास्तु वः ॥ १२ ॥

श्रुमः—दृग्भ्यां यस्य विलोकनाय जगतो द्वागीपदुत्तो-
 लितप्रवीधाम्रपरि विस्फुरद्गहगणे ह्यत्रायितायाम्भुवि ।

साथ वे वेदोंकी रचा करनेके लिये कीचड़ में पड़े रहे ॥ ६ ॥
 मछली रूपवाले, चमकती हुई अग्निकी लपटोंसे युक्त लाल-लाल
 नेत्रवाले, अपने बड़े-बड़े कानोंको हिलाकर समुद्रको मथनेवाले,
 नीले मेघकैसे रङ्गवाले, अपनी सांसके तीम चायुसे आकाशको
 उड़ानेवाले और समुद्रका जल पी लेनेवाले विष्णु भगवान्क
 वह मत्स्य रूप आपकी ऐश्वर्य दे जिसे देखते ही शङ्खसुर
 दिशाएँ भूल गया था ॥१०॥ उन मछली वेपवाले भगवान्की
 जय हो जिनकी पूँछके वड़े वेगसे चलनेके कारण समुद्रका
 सारा पानी उड़लकर आकाशमें चला गया अतः वहाँ सूर्यरूपी
 वडवानलके रहनेसे आकाश समुद्र-सा जान पड़ने लगा और
 समुद्रमें वडवानलरूपी सूर्य रहनेसे वह आकाश-सा जान
 पड़ने लगा ॥११॥ समुद्रने मछली वेपवाले भगवान्से पूछा—
 'हे मत्स्य रूपवाले विष्णु ! भगवान्-कहो समुद्र ! समुद्र-आप
 कंपते क्यों है ? भगवान्-श्रीत लगनेके कारण । समुद्र-वह
 पर्साना क्यों आ रहा है ? भगवान्-वडवानलके कारण आप
 पुलकित क्यों हो रहे है ? समुद्र-भगवान्-वह तो मेरा स्वभाव
 ही है । इस प्रकार समुद्रकी कन्याका चन्द्र-मुख देखकर बड़े हुए
 कामके वेगके चिह्न छिपाते हुए वे विष्णु भगवान् आपका
 कल्याण करें ॥ १२ ॥

श्रुमः : वे कछुप रूपवाले भगवान् बलपूर्वक आपके
 पापांघा नाश करें जो संसारको अपने नेत्रोंसे देखनेके लिये

हा धिम्भूः किमभूदभूतवितरत्किञ्चेति पर्याकुलो हन्या-
 वेप हृडादधानि कमठाधीशः फटोरणि वः ॥ १ ॥ नम-
 स्कुर्मः कूर्मं नमदमरकोटीरनिकरप्रसर्पन्माणिक्यच्छुवि-
 मिलितमाङ्गिप्रवपुपम् । जरीजम्भद्विम्भमभ्रमणिरमणोयां-
 शुलहरीपरीरम्भस्फूर्जद्वलभिडुपलाद्रिप्रतिभटम् ॥ २ ॥
 निरवधि च निराश्रयश्च यस्य स्थितमनिवर्तितकौतुक-
 प्रपञ्चम् । प्रथम इह भवान्स कूर्मंमूर्त्तिर्जयति चतुर्दश-
 लोकावलिक्तन्दः ॥ ३ ॥ निष्प्रत्यूहमनल्पकल्पचरित-
 खैलोक्यरत्नायुगः क्रीडाकूर्मकलेवरः स भगवान् दि-
 श्यादमन्दां मुदम् । कल्पान्तोदधिर्मध्यमजनवशाद्वास-
 पंतः संलुप्तपृष्ठे यस्य बभूव सैकतकणच्छ्रयं धरित्रीत-
 लम् ॥ ४ ॥ पृष्ठध्रान्यदमन्दमन्दरगिरियावाप्रकण्ड्यनै-
 निद्रालोः कमठाद्यतेर्भगवतः श्वासानिलाः पांतु वः ।
 यत्स्वस्कारकलानुवर्त्तनवशाद्ग्रेलाञ्जलेनाम्भसां यताया-
 तमतन्द्रितजलनिधेर्नाद्यापि विश्रान्यति ॥ ५ ॥ ध्र-
 म्यन्महागिरिनिधर्षणलब्धपृष्ठकण्डूयनक्षणसुखायिताग-

अपने गलेको कुड़ मोड़ते ही गलेके आगेके भागपर रखी
 पृथ्वीके चक्रकी भाँति हो जानेपर तथा ग्रहोंके चमक उठनेपर
 'हा यह क्या हो गया ! पृथ्वी कहाँ चली गई !' इस प्रकार
 चिन्ता उठे थे ॥ १ ॥ प्रथम करते हुए देवताओंके मुकुटोंसे
 निकली हुई मणियोंकी कान्ति पड़नेसे लाल देहवाले उन
 कछुआ-रूपधारी भगवान्को प्रथम करते हैं जो अत्यन्त
 चमकीले दोपहरके सूर्यकी सुन्दर रिराणोंसे टकरानेसे दूसरे
 इन्द्रनील पर्वतके समान जान पड़ते हैं ॥ २ ॥ असीम, स्वतन्त्र
 और खेलवाड़ोंसे भरी हुई सत्तावाले, कछुआ रूपवाले उन
 अनादि भगवान्की जय हो जो चौदहों लोकरूपी लताके
 कन्द हैं ॥ ३ ॥ प्रत्येक कल्पमें बिना किसी विघ्नके अपनी
 लीलाएँ करनेवाले, तीनों लोकोंकी एकमात्र रचा करनेवाले,
 लीला करनेके लिये कछुपकी देह धरनेवाले तथा प्रलय-समयके
 समुद्रके बीचमें तैरते हुए वे भगवान् अत्यधिक सुख दें जिनकी
 पीठपर पड़ी हुई इतनी बड़ी पृथ्वी बालूके कण-सी जान पड़ती
 है ॥४॥ पीठपर वेगसे घूमते हुए मन्दराचलके मुकीले पथरोंकी
 सुजलाहटसे भींद लेते हुए कछुप रूपवाले उन भगवान्के
 सौँसोंके वायु थापकी रचा करें जिनके 'प्रबल वेगसे बेलाके
 बहाने लहराता हुआ समुद्र-जल आज भी शान्त नहीं होता ॥१॥
 पीठपर वेगसे घूमते हुए मन्दराचलकी रगड़से पीठ खुजलानेका
 चयिक आनन्द पाकर गहरी नींदमें सोनेवाले तथा वेगसे गम्भीर

दनद्रिः । सुध्याप दीर्घतरघर्घरघोरघोपः श्वासाभि-
भूतजलधिः कमठस्स वीऽध्यात् ॥ ६ ॥ मेधाभूय
महाविधिमन्थनविधौ पृष्ठे निजे भ्राभ्यतो माऽभू-
न्मन्दरपर्वतस्य च परिभ्रंशः समुद्रस्य च । इत्यङ्गे सह
सञ्जहार किल यः श्वासान्स्वो रक्षतास्वेच्छावसि-
तकच्छुपायिततनुस्त्रैलोक्यरघो हरिः ॥ ७ ॥ यन्नि-
श्वाससमीरमेदुरतया दूरं समुल्लासिता धत्ते शेषमुज-
ङ्गभोगकालिता भूरातपत्रश्रियम् । स्तोत्रे यस्य चतुर्भुजा
श्रुतिकवेः कुण्डलमभ्यस्यति क्रीडाकर्मतनुर्जगन्ति स
धिभुः पायादपायाद्धरिः ॥ ८ ॥ यो धत्ते शेषनागं तद-
नु वसुमतीं स्वर्गपातालयुक्तां युक्तां सर्वैः समुद्रैर्हिम-
गिरिकनकमथसमुत्थैर्नगेन्द्रैः । एतद्ब्रह्माण्डमस्यामृत-
घटसदृशं भाति वंशे सुरारोः पायाद्ब्रह्मैः प्रकटित-
महिमा माधवः कामरूपी ॥ ९ ॥

वराहः—अष्टौ यस्य दिशो दलानि विपुलः कोशः
सुवर्णाचलः कान्तं केसरजालमर्ककिरणाः भृङ्गाः पयो-

दायली । नालं शेषमहोरगः प्रथिततं चारानिचेर्लीलयो
तद्रः पातु समुद्ररन्कुचलयं क्रीडाकृतिः केशवः ॥ १ ॥
क्रीदानीं दृषितास्ते घनमदमदिरामोदिनो दिग्घिणेन्द्रा हे
मेरो मन्दराद्रे मलय हिमगिरे माधु यः द्वाघरत्वम् ।
शेष श्लाघ्योऽसि दीर्घः पृथुभुवनभरोच्चरदङ्गाण्डैः
शिरोभिः शंसन्सोत्प्रासमुच्चैरिति धरणिभृतः पातु
युष्मान् वराहः ॥ २ ॥ इत्यद्वैत्यनितम्बिनीजनमनः-
सन्तोषसङ्कोचनः कुर्याद्विभवमनश्चरं स भगवान्कोडाय-
तारो हरिः । यहं द्रुङ्गुरकोटिकोटरकुटीकोणान्तरस्थे-
यसी पृथ्वी भात्यवदातकेतकदलालीनेय भृङ्गाङ्गना ॥३॥
न पङ्कुरालेपं कलयति धरिरोज्ययभयान्मुस्तामादत्ते-
ऽप्युरगनगरभ्रंशभयतः । न धत्ते ब्रह्माण्डसङ्कटनभयतो
घर्घरखं महाक्रोडः पायादिति सकलसङ्कोचितसुरः
॥ ४ ॥ नमस्तस्मै वराहाय हेलयोद्धरते महीम् । रुरम-
ध्यगतो यस्य मेरुः खुरखुरायते ॥५॥ न मृद्धीयान्मृद्धी
कथमिव मही पात्रनिकपेर्मुखाग्निज्वालाभिः कनकगि-

रारिं भरनेवाले वे कटुश्रा वेपवाले भगवान् आपकी रचा करें
जिसकी सर्साँके वेगसे समुद्र लहरा उठा ॥६॥ वे भगवान् विष्णु
आपकी रचा करें जिन्होंने महासमुद्रके मन्थनमें अपनी
पीठपर मन्दराचलके धूमते समय 'यह मन्दर पर्वत और समुद्र
दोनों ही कहीं नष्ट न हों जायें' ऐसा सोचकर अपनी सर्साँका
वेग कम करनेके साथ अपने अर्धोंको भी सिंकोड लिया ॥ ७ ॥
लीलाके लिये कटुश्रा शरीर धारण करनेवाले वे परमेश्वर सदा
रचा करें जिनके श्रासाँके वेगसे दूरसे ही चमकनी हुई शेषनागके
फायपर रखी हुई पृथिवी, उनपर तने हुए छत्र-सो सुन्दर जान
पड़ती थी, और जिनकी स्तुति करनेमें वेदोंके रचयिता ब्रह्माकी
चार सुँखाली बाणों भी हार मान रही थी ॥ ८ ॥ इच्छातुसार
रूप धारण करनेवाले, प्रत्यक्ष प्रभाववाले, कटुश्रा-शरीरवाले वे
विष्णु भगवान् आपकी रचा करें जिनकी पीठपर स्वर्ग, पाताल,
समुद्र, हिमालय और सुमेरु आदि पर्वतोंसे युक्त पृथ्वीको धारण
करनेवाले शेषनाग-सहित रचना हुआ यह ब्रह्माण्ड अमृतके
घड़े-सा जान पड़ता है ॥ ९ ॥

वराहः खिले कमलके समान जान पड़नेवाली उस
पृथ्वीको समुद्रसे ऊपर निकालते हुए वराह-रूपधारी विष्णु
भगवान् आपकी रचा करें जिसमें आठ दिशाएँ ही मानो
पंखुदियों हैं, सुमेरु पर्वत ही कोय है, सूर्यकी किरणें ही सुन्दर
केसर हैं, मेघ ही सारे हैं और शेषनागजी ही उस कमलकी

सुन्दर डण्डी हैं ॥१॥ 'वे भारी घमण्डके मदसे मतवाले दिग्गज
कहाँ गए ? हे मेरु पर्वत ! हे मन्दराचल ! हे मलयाचल ! हे
हिमालय ! आप लोगोंका पृथ्वीको धारण करना सार्थक है, हे
शेषनाग ! तुम अपने सिरोंपर पृथ्वीका छिन्ना भारी बोझ
रकते हुए हो, धन्य हो !' ऊँचे स्वामे इस प्रकार हँसकर कदते
हुए, पृथिवीको धारण किए हुए वराह भगवान् आप लोगोंकी
रचा करें ॥ २ ॥ घमण्डकी दैव्योंकी छियाँके मनका मुल-
सन्तोष नष्ट करनेवाले वे वराह भगवान् इस संसारकी
सदा रचा करें जिनके दंतकी नोकपर रची पृथ्वी ऐसी जान
पड़ती है मानों केतकीके उजले फूलपर कोई भारी घड़ी हो ॥३॥
'समुद्र और पृथ्वीसे वने कीचड़में मेरे लोटनेसे यह पृथ्वी मेरी
देहमें लिपटकर ही न समाप्त हो जाय, मेरे मोया खोदकर खानेमें
यह सारा पाताल ही नष्ट न हो जाय—तथा मेरे शक्ति-
बोलने (घर्षण शब्द करने) से यह सारा ब्रह्माण्ड ही न फट
जाय' इस प्रकार सोचकर जो न इच्छातुसार कीचड़में लोट
पाते हैं, न मोया खा पाते और न स्वच्छन्दतामें घोल
ही पाते है ऐसे वे सिमटे-सिमटे-से रहनेवाले वराह भगवान्
रचा करें ॥४॥ खेल-भेलमें ही समूची पृथ्वीको सींच लानेवाले
उन वराह-शरीरवाले भगवान्को प्रणाम है जिनके सूर इतने बड़े थे
कि सुमेरु पर्वत भी उनके बीचमें पड़कर छोटे कड़की भाँति
खरखराता था ॥ ५ ॥ 'मेरी धूयन-रूपी कसीटीसे बिसद्व

रिरीयान्न विलयम् । न शुष्येयुः श्वासैस्सलिलनिधयः
सप्त च कथं वराहो वः पायादिति विपुलचिन्तापरिकरः
॥ ६ ॥ पातु श्रीणि जगन्ति सन्ततमकृपात्स्वमभ्युद्धर-
न्धात्रीं कोलकलेपरस्स भगवान्-वस्यैकदंष्ट्राङ्कुरे । कूर्मः
फन्दति नालति द्विरक्षनः पन्नति दिग्दन्तिनो मेरुः
फोशति मेदिनी जलजति व्योमापि रोलन्वति ॥ ७ ॥
पातु वो मेदिनीदोला वालेन्दुच्युतितस्करा । दंष्ट्रा महाव-
राहस्य पाताल-गृहदीपिका ॥ ८ ॥ पातु वः कपटकोल-
फोशयो यस्य निश्चलितमारुतोद्धता । उच्छ्रितप्रपतनै-
रचीकूपत्केलिकन्दुकतुलामिला मुहुः ॥ ९ ॥ पातु श्री-
स्तनपत्रभङ्गिमकरीमुद्राङ्कितोरःस्थलो देवो वः स जग-
त्पतिर्मधुवधुचक्राञ्जचन्द्रोदयः । क्रोडाक्रोडतनोर्नवे-
न्दुविशदे दंष्ट्राङ्कुरे यस्य भूर्माति स्म प्रलयाब्धिप-
ल्यलतलोत्खातैकमुस्ताकृतिः ॥ १० ॥ विभ्रायोऽभिन-
वेन्दुकोटिकुटिलं दंष्ट्राङ्कुरं लीलया क्रोडाकारघरो

हरिः स भगवान्भूयाद्विभूतिप्रदः । यस्योत्तिस्वतः
क्षमाकमलिनीमालम्बमानः क्षणं लोलद्वालशृणालनाल-
तुलनाम्भेजे भुजङ्गेश्वरः ॥ ११ ॥ भूयादेप सतां हिताय
भगवान्कोलावतारो हरिः सिन्धोः क्लेशमपास्य यस्य
दशनमान्ते नटन्त्या भुवः । तारा हारति वारिदस्तिल-
कति स्वर्वाहिनी माल्यति क्रोडादर्पणति नृपापतिरहर्द-
चथ ताटङ्कति ॥ १२ ॥ मुक्तैर्यस्यति कुत्रचिद्वसुभती
दंष्ट्राङ्कुरस्थेयसी कुक्षौ क्षोभमवाप्स्यति त्रिभुवनं रुद्धै-
र्माभिः क्रमान् । इत्यस्वल्पविकल्पमीलितमतेः कण्ठे
लुटन्तो मुहुः क्रोडाकारघरस्य कैटभजितः श्वासानि-
लाः पान्तु वः ॥ १३ ॥ मेरुवकेसरमुद्रादिगन्तपत्रमा-
मूललम्बिचलशेषशरीरनालम् । येनोद्धतङ्कुयलर्यं सलि-
लात्सलीलानुसंसकार्यमिव पातु स वो वराहः ॥ १४ ॥
लीने श्रोत्रैकदेशे नभसि नयनयोः तेजसि कापि नष्टे
श्वासप्रासोपमुक्ते मरुति जलनिधौ पादरन्ध्राधरति ।

यह श्रान्त कोमल पृथ्वी नष्ट क्यों न हो गई ! मेरे मुँहके
सापसे यह सुमेरु पर्वत पिघल क्यों न गया और मेरी साँसोंके
शीघ्र पवनसे ये साँसें समुद्र वरह क्यों न गए !' इस प्रकार
यह सोच-विचारमें पड़े हुए वे वराह भगवान् आपकी रक्षा करें'
॥ ६ ॥ पृथ्वीको समुद्रमेंसे निकालकर लाले हुए वे वराह
भगवान् सदा तीनों लोकोंकी रक्षा करें' जिनके कमलके
शँकुएके समान उजले दौतिके नीचे चिपटे कच्छपर उस शँकुएके
फन्दके ध्रुमान, उसपर स्थित शोपनाग उस कमलके नालके
समान, नदिगज पत्तोंके समान, सुमेरु पर्वत कोशके समान,
पृथ्वी खिले कमलके समान और आकाश मेंडराते हुए
धौंरोंके समान जान पड़ता है ॥७॥ वड़े भारी शूकर भगवान्का
यह देदे चन्द्रमाके शौंदनीको सुराकर उजला दिखार्द देनेवाला
दौंर आपकी रक्षा करे जो ऐसा जान पड़ता है मानो पृथ्वीका
भूला हो। अथवा पाताल-गृहका दीपक हो ॥ ८ ॥ शूकरका
मायाभयशरीर धारण करनेवाले वे विष्णु भगवान् आपकी रक्षा
करें' जिनकी साँसोंके वायुसे बार-बार उद्धतती-गिरती यह पृथ्वी
गँद-सी जान पड़ती है ॥ ९ ॥ शरणां छातीपर लक्ष्मीजीके
शोनोंके चित्रकारीकी विगद्दी हुई छापवाले तथा मनु दीपकी
शोनोंके मुल-कमलको उदास करनेके लिये चन्द्रोदयके समान ये
साँसारे स्वामी तथा लीला करनेके लिये शूकर-देह धारण
करनेवाले भगवान् आपकी रक्षा करें' जिनके देदे चन्द्रमाके समान
उजले दौंररूपी शँकुएमें, मलय-समयकी गर्दीके समान समुद्रसे

निकाली गई पृथ्वी मोथा-सी जान पड़ती थी ॥ १० ॥ लोकोंके
लिये शूकर-देह धारण करनेवाले तथा देदे चन्द्रमाकी भाँति
उजले दौंरवाले वे विष्णु भगवान् ऐश्वर्य दे' जिनके पृथ्वीरूपी
कमलिनीको ऊपरकी और फेंकनेपर उसके नीचे तिर लगाए
शोपनाग एक लणके लिये ऐसे जान पड़े मानो हिलनी हुई कोमल
कमलकी जड़वाले कमल-नाल हों ॥ ११ ॥ वराह अवतारवाले वे
विष्णु भगवान् सज्जनोंकी भलाई करें' जिनके दौंरपर पृथ्वीरूपी
नर्तकीके नाचते समय तारा उस नर्तकीके हारके समान,
मेघ तिलकके समान, आकाश-गद्गा हारके समान, चन्द्रमा
खिलवाड़ेके दर्पणके समान और सूर्य कनफूलके समान जान
पड़ते थे ॥ १२ ॥ 'यदि मैं साँस छोड़ता हूँ तो दौंरपर रखी
पृथ्वी उड़कर न जाने कहाँ चली जायगी, यदि नहीं छोड़ता तो
इसके रुकनेमें कोलमें स्थित तीनों लोकोंको बड़ा कष्ट होगा' इस
प्रकारके असमझसमें पड़े हुए शूकर देहवाले विष्णु भगवान्के
गलेमें ही रुककर मचलनेवाले वे साँसके पवन आपकी रक्षा
करें' ॥ १३ ॥ वे वराह भगवान् आपकी रक्षा करें' जिन्होंने
सुमेरुकी केसरवाले, दूरकत कीड़ी हुई दिशाकी पत्तोंवाले और
नीचेतरफ फैले हुए शोपनागके हिलते हुए शरीररूपी नालवाले
इस समुची पृथ्वीरूपी कमलको रोल-खेलमें ही मानो गहना
बनानेके लिये उखाड़ लिया ॥ १४ ॥ अपने कानोंमें सारे
आकाशके समान जानेपर, वेनोंके किररी कोनेमें तेजके लीन हो
जानेपर, साँसोंके द्वारा पवन साँच लिए जानेपर, सुराँके

पोत्रप्रान्तैकरोमान्तरवियरगतां मार्गतच्चक्रपाणैः क्रो-
डाकारम्य पृथ्वीमकलितविभवं वैभवं वः पुनातु
॥ १५ ॥ स जयति महावराहो जलनिधिजठरे चिरं
निमग्नोऽपि । येनान्त्रैरिय सह फण्णिर्यैर्लाडुद्धृता
धरणी ॥ १६ ॥ सिन्धुष्यङ्गावगाहः खुरविधरविशुत्तु-
च्छ्रतोयेषु नासः प्राप्ताः पातालपङ्के न लुडितरुच्यः
पोत्रमात्रोपयोगात् । दंष्ट्राविष्टेषु नासः शिखरिषु च
पुनः स्क्रन्धकण्डूविनोदो येनोद्धारे धरित्र्याः स जयति
विशुतायिम्नितेच्छो वराहः ॥ १७ ॥ हरेलौलावराहस्य
दंष्ट्रादण्डः स पातु वः । हेमाद्रिकलसा यत्र धात्री
द्युश्रियं दधौ ॥ १८ ॥

वृत्तिहः—अन्तःक्रोधोजिह्वानज्वलनभवशिखाकार-
जिह्वाचलीदमौढ्रहाण्डमाण्डः पृथुमुवनगुहागर्भगम्भी-

रनादः । दृष्यत्यात्तन्द्रमूर्त्तिमुरजिद्वतु वः सुप्रभामण्ड-
लीभिः कुर्चधिरुमधुमध्यजनिचिनमिय व्योम रोमच्छु-
टानाम् ॥ १ ॥ आदित्या किं दशैते प्रलयमयहृतः स्वी-
कृताकाशदेशाः किं योत्कामण्डलानि त्रिसुवनदहना-
योद्यतानीतिमीतः । पायासुर्नारसिंहं वपुरमरणैवि-
भ्रतः शार्ङ्गपाणैष्ट्रा दसासुरोरःम्यलदरगुणलद्रकरका
नखा वः ॥ २ ॥ किं किं सिंहमनतः किं नरसदृश्यपुद्वै
चित्रं गृहीतो नैतादकापि जीवोऽद्भुतमुपनय मे देव
सम्प्राप्त एषः । चापञ्चापं न चापित्यहहहहहहा फरुशुन्यं
नखानामित्यं दैत्येन्द्रचक्रः परनगमुगुरैर्जिघ्रियान्यः
स वोऽप्यात् ॥ ३ ॥ केदं गर्जितमेप किन्नु दलति मन्मो
नृसिंहस्ततस्सोऽप्राचायति कोत्र मो धनुरसी हँहँति
दैत्येभ्यरम् । जल्पन्तं निजगजितेन वलक्षत्स्मान्नि-

ऐदके आधे भागसे ही समुद्रके पी लिए जानेपर तथा अपने
ध्यानके किसी एक रोमकूपमें पृथ्वीके घुस जानेपर, उस पृथ्वीको
हँदनेवाले, बराहरूपवाले, उन भगवान्का असीन ऐश्वर्यं आप
लोगोंको पवित्र करे ॥ १५ ॥ उन भारी बराह शरीरवाले
भगवान्को जय हो जो समुद्रके गर्भमें बहुत समयतक रहकर
मानो श्रैतद्वियों जैसे सर्पोंसे उलभे-पुलभे चलपूर्वक पृथ्वीको
रोंचे निकले चले आ रहे हैं ॥ १६ ॥ पृथ्वीका उदार
करते समय अपने खुरोंमें ही सारे समुद्रोंके जलके समा
जानेमे जो समुद्रमें गोता लगाकर स्थान करनेका आनन्द न ले
सके, अपने धूपनकी नोकमें ही पातालके समूचे कीचड़के लिपट
जानेसे जो कीचड़में लोटनेका आनन्द न ले सके, अपने दाँतोंमें
ही सारे पर्वतोंके समा जानेमे जो पर्वतोंसे राड़कर कन्धोंको
गुजलानेका आनन्द नहीं पा सके तथा इस प्रकार अपनी
व्यापकृताके कारण ही जिनकी हृच्छा पूरी न होने पाईं ऐसे उन
बराह भगवान्की जय हो ॥ १७ ॥ लीला करनेके लिये बराह-
शरीरधारी विष्णु भगवान्का वह दंतिलुपी दण्ड आपकी
रक्षा करे विसर्प सुमेरु पर्वतरुपी कलशवाली पृथ्वी तने हुए
छत्रके समान सुन्दर जान पड़ती है ॥ १८ ॥

नृसिंहः—अत्यन्त वेगमे दहादते हुए सिंह-रूपवाले
वे दैत्यको मारनेवाले नृसिंह भगवान् आपकी रक्षा करें
जो अपने भीतर बड़े हुए क्रोधसे उत्पन्न आभिकी लपटोंके
समान रहवाली जीभसे इतने बड़े महाएण्डरुपी चड़ेको चाटे
जा रहे हैं, जिनके गरजनेसे संसारमें ऐसा गम्भीर शब्द होता
है जैसा गुफाके भीतर सिंहके दहादनेसे होता है और

जिनके गलेके फँले हुए चमकीले बालोंमे मरा धागारा ऐसा
जान पड़ता है मानो विना धुएँकी आगमे मर गया हो
॥ १ ॥ 'अरे ! क्या आकाशमें ये प्रलय समयके मयङ्कर दमों
सूर्य हैं ! अथवा तीनों लोकोंको जला देनेके लिये ये उल्काएँ
ही आकाशमें निकल आई हैं !' इस प्रकार हड़बड़ाकर
देवताओंने नृसिंह रूप धारण करनेवाले जिन विष्णु भगवान्का
नृसिंह-रूप देखा उनके वे नव आपकी रक्षा करें जो भ्रमण्डी
हिरण्यकशिपुकी छाती फाड़नेपर उसमे बड़े हुए रक्तमें सनकर
लाल-लाल हो गए हैं ॥ २ ॥ नृसिंह भगवान्को चले आने देखकर
दरके मारे मेवक जब भागकर हिरण्यकशिपुके पाम आए तो
उन्हें धयदाते देखकर हिरण्यकशिपुने उनमे पृष्टा—'अरे क्या है ?
सेवक—महाराज ! सिंह है ! हिरण्यकशिपु—तो इसमें दरनेकी
क्या बात है ! सेवक—महाराज ! मनुष्यके समान शरीर धारण
किए है ! वड़ा विचित्र है ! हम लोगोंने ऐसा विचित्र जीव कहीं
नहीं देखा । हिरण्यकशिपु—तो मेरे पास वे आथो पकड़कर !
सेवक—महाराज ! वह तो ह्यर ही....वह आ ही गया....!
हिरण्यकशिपु—धनुष कहीं है धनुष ? पनु...अरे ! अरे ! हाय !
आह ! ये कितने कठोर नख हैं !' इस प्रकार अपने धीने !
नखोंसे निहाने हिरण्यकशिपुकी छाती फाड़कर उसे मार
डाला, वे आपकी रक्षा करें ॥ ३ ॥ नृसिंहजीकी दहाद सुनकर
हिरण्यकशिपु पड़ने लगा—यह गर्जना कहीं हो रही है ? क्या
फट रहा है ? क्या मन्मा फट रहा है ? मेवकोंने उठर दिया—
नृसिंह हैं, वे इसी ओर दौड़े आ रहे हैं । हिरण्यकशिपु बोला—
अरे यहाँ कोई है ! अरे धनुष, तबवार लाओ....., 'इस प्रकार

रीयावर्षादेकस्मिन्क्षणे एव हा नरहरिस्त्राता स
 एयास्तु वः ॥ ४ ॥ चटच्चटिति चर्मणि च्छमिति चो-
 च्छल्लच्छोयिते धगद्धगिति मेदसि स्फुटरवोऽस्थिनि
 प्रागिति । पुनातु भवतो हरेरभरवैरिवत्तस्थलकणक्-
 रजपञ्जरकफचकापजन्मानलः ॥ ५ ॥ चञ्चय्यएडनधा-
 म्रभेदविगलहैव्येन्द्रयत्तःक्षरद्रकाभ्यकसुपालोद्भटसटा-
 सम्भ्रान्तमीमाननः । तिर्यककण्ठकटीरवोपघटनास-
 चाङ्गपर्याभवद्विद्भ्रातङ्गनिरीक्षितो विजयते वैकुण्ठ-
 फण्डीरवः ॥ ६ ॥ चन्द्रार्घाथितनिषिधानदशनो
 व्योमाथितान्तर्मुण्डो बालार्घाथितलोचनः सुरधनु-
 र्लीलाथितभ्रूलतः । अन्तर्नादिनोर्धपीवरगलनभङ्गप-
 निर्यक्तडिचारास्फारसटावद्वरगगनः पाथान्मुसिहो
 जगत् ॥ ७ ॥ जयन्ति नरसिंहस्य स्फुरन्मपशि-
 राङ्कुराः । हरिणमोधरुण्डेन्दुकलापरण्डैरियाङ्कितः ॥ ८ ॥
 दिश्यात्सुखं नरहरिर्भुवनैकवीरो यस्याहवे दितिसुतो-

इलनोद्यतस्य । क्रोधोद्धतं मुखमवेक्षितुमक्षमत्व्याने-
 ऽभवन्निजनेप्येवपि यन्मतास्ते ॥ ६ ॥ दैत्यानामधिपे
 नपाङ्कुरकुटीकोशप्रविष्टात्मनि स्फारीभूतकरालकेसर-
 सटासहातधोराकृते । सक्रोधञ्च सविस्मयञ्च समु-
 वीडञ्च सान्त स्मितं क्रीडाकेसरिणो हरेर्विजयते तत्का-
 लमालोकितम् ॥ १० ॥ दैत्यास्थिपञ्जरविदारणलञ्छर-
 न्धरक्ताभ्युनिर्जरसरिदधनजातपङ्काः । बालेन्दुकोटिकु-
 टिलाः शुक्चञ्चुभासा रञ्जन्तु सिंहवपुषो नपरा हरेर्वे-
 ॥ ११ ॥ दंष्ट्रासङ्कटयकत्रकन्दरललजिह्वस्य हव्याशन-
 ज्यालाभासुरभृषिकेसरसटाभारस्य दैत्यद्रुहः । व्याव-
 ल्गद्वलयद्विरण्यकशिपुकोडस्थलास्फालनस्फारप्रस्फुट-
 दक्षिपञ्जररवन्मूरा नपाः पान्तु वः ॥ १२ ॥ नमस्तस्मै
 नृसिंहाय दैत्यराजान्तकारिणे । अन्तःक्रोधशिवा
 यस्य समुत्पन्नः सटामिपात् ॥ १३ ॥ पाथान्माथाम्-
 वेन्द्रो जगदखिलमसौ यत्तनूदधिरचिञ्चालाजात्पाव-

वदयद्गते हुप हिरण्यकशिपुको सुदृढ रत्नमेते निकलकर दहाद
 माते हुप एक ही षण्मे जिन नृसिंहजोमे मार डाला, वे ही
 नरहरि आपकी रक्षा करें ॥४॥ नररूपी दौतांवाला विष्णुजीवा
 हाप रूपी आरा जय देरताप्यंके शठु हिरण्यकशिपुकी छाती
 कीरने लगा उस समय उसकी रगड़से उत्पन्न हुई वह आग
 आपको पत्रिप करे जो उसकी पालपर पडकर चटचट,
 उधलते हुप रत्नमे पडकर धम्-धम्, चर्ममे धग्-धग् और
 हड्डिमें पडकर स्पट रूपसे कड़ाकू-वड़ाकू शब्द करने लगी
 ॥ ५ ॥ उन सिंहवेशवाले विष्णु भगवान्की जय हो जो
 धपने चबल और मांगे जगोंकी नोरमे पाड़ी जाती हुई
 हिरण्यकशिपुकी छातीमे बहते हुप रातमे सनकर फौली हुई
 गनेरी केमरोंमे षडे भयङ्कर हो रहे हैं और जिनके
 निरपा गला करके दहाइनेमे उमे सुनकर दिमागोंकी सारी
 रेंद धरा उठी और वे डरके मारे इन्हें देगने लगे ॥ ६ ॥
 वे नृसिंह भगवान् संभारकी रक्षा करें जिनके सुले हुप
 हौन आपे चन्द्रके समान देदे हैं, सुगरा भीनरी भाग
 धाआरके मामान गहन है, नेत्र उदय होते हुप सूर्यके समान
 लाल-लाल हैं, भीहें इन्द्र धनुषके समान पौरी हैं तथा भीनरने
 विक्रमगी हुई दहाइये शोरगेमे जिनके गनेवे पून जानेपर
 विश्वकी रणापोंके समान केमरोंके विगर जानेमे धाआरा
 निर-भा गपा है ॥ ७ ॥ नृसिंहजो उन क्षत्रिजी क्षपटोंके
 धमान चमईये मरौंकी जय हो, जो ऐसे जान पडते हैं

मानो चन्द्रमाके भीतर स्थित हिरण्यकर क्रोध करके भपटकर
 पांचे हुप चन्द्रमाकी देदी कलाएँ हों ॥ ८ ॥ युद्धमे दितिके
 पुत्र हिरण्यकशिपुको मारनेकी तैयार हुप, चौदहों शुकनामें
 सबसे वडे चीरे वे नृसिंह भगवान् आपको मेधुर्ध्वं दें जिनके
 क्रोधसे भरे सुँहको देगनेकी शक्ति जान पडता है उनके नखोंमें
 भी नहीं है, तभी तो वे नीचेको नचे हुप हैं ॥ ९ ॥ अपने नरोंके
 छेदके एक कोनेमें ही राक्षसराज हिरण्यकशिपुके समा जानेपर
 लीला करनेके लिये सिंह वेष धारण करनेवाले उन विष्णु
 भगवान्के क्रमशः क्रोधित होते हुप, आश्चर्य करते हुप, खजते
 और मुस्हराते हुप देगने की जय हो, जो सनकर फौली हुई
 भयङ्कर केसरोंके हिलनेसे और भी भयङ्कर रूपवाले दिराई पडते
 हैं ॥ १० ॥ हिरण्यकशिपु दैत्यरी हड्डियोंके टूटनेपर उनसे बही
 रत्नरूपी गत्राके बीचदसे सनकर तोतेरी चांचके समान
 वाग्निवाले तथा द्दितीयार्थके चन्द्रमाके समान देदे वे सिंह वेषधारी
 विष्णुके तीक्ष्ण नय आपकी रक्षा करें ॥ ११ ॥ दौतांकी बाइसे पिरी
 सुँहरूपी गुपामें लपलपाती हुई जीभवाले और अक्षिजी क्षपटोंकी
 भंगति चमकीले केमरोंका थोरू धारण करनेवाले, दैत्यके शठु
 नृसिंह भगवान्के वे नय आपकी रक्षा करें जो धलवाद्
 हिरण्यकशिपुको गोदमें रखकर पादनेमें उसकी कटनी-दृटवी
 हड्डियोंके चद्-चद् गन्दमे और भी भयङ्कर हो गप हैं ॥ १२ ॥
 हिरण्यकशिपुका नाश करनेवाले उन नृसिंह भगवान्को प्रणाम
 है जिनके भीतरके क्रोधकी क्षपटें केसरके रूपमें धार निकल

लीढं वत भुधि सकलं व्याकुलं किन्न भूयात् । न
स्याद्येदाशु तस्याधिकचिकटसटाकोटिभिः पात्र्यमाना-
दिन्द्रोदानन्दकन्द्राचतुपरि तुहिनासारसन्दोहदृष्टिः
॥ १४ ॥ पूर्यन्तो जलराशयो घसुमती मज्जत्यथो लुप्यते
पातालं शतघा गतं निपतति ब्रह्माण्डपण्डं विद्यः ।
निचितेन सुरद्विपोऽस्य घपुषा मत्वेति मन्ये वहन्नुत्स-
ङ्गेन हतं हिरण्यकशिपुं सिद्धो हरिः पातु घः
॥ १५ ॥ प्रोज्ज्वलन्ज्वलनज्वालाधिकदोहसटाच्छट्टः ।
श्वान्निहतकुलज्जामृपातु यो नरकेसरी ॥ १६ ॥
भूयः कण्ठावभूतिव्यतिकरतरलोत्तंसनचत्रमालावाले-
न्दुचुद्रघण्टारणितदशदिशदन्तिचीत्कारकारी । अ-
व्याहो दैत्यराजप्रथमयमपुत्रीयानवदानिनादो नादो
दिग्भिचित्मेदप्रसरसरभसः कूटकण्ठीरवस्य ॥ १७ ॥
घपुर्दलनसम्भ्रमात्स्वनपरं प्रविष्टे रिपौ क्व यात इति
विस्मयात्प्रहितलोचनसर्ववतः । वृथेतिकरताडनात्रि-

पतितं पुरो दानवं निरोच्य भुधि रेणुवज्जयति जात-
हासो हरिः ॥ १८ ॥ विद्युच्चक्ररुरालकेसरसटामारम्य
दैत्यद्रुहः शोणन्नेत्रहुताशुऽम्बरभृनः सिंहाकृतेः
शाङ्गिणः । विस्फूर्जदलगर्जितजितककुम्मातद्गदपौ-
दयाः संरम्भाः सुपयन्तु घः खरनपजुण्णपिण्डघ्नसः
॥ १९ ॥ व्याधूतकेसरसटाधिकरालवन्नं हन्माप्रधि-
स्फुरितशङ्खगदासिचक्रम् । आधिष्ठतं सपदि येन
नृसिंहरूपं नारायणं तमपि विव्यसृजं नमामि ॥ २० ॥
शत्रोः प्राणानिलाः पञ्च चयं दश जयोऽत्र कः ॥ इति
कोपादिवातात्राः पान्तु शो नृहेनेजाः ॥ २१ ॥ सन्ध्या-
रञ्जितशीतदीधितिक्लासौन्दर्यभाजो नयाः प्रीति-
पीधरयन्तु कौटभरिपोः क्रीडानृसिंहस्य घः । दैत्योर-
स्यलपीडकुण्डिततया दीनेन दम्भोलिना सासूर्यं सकु-
तुहलं सचिनयं साश्रयंमालोकिताः ॥ २२ ॥ ससत्त्व-
रमितस्ततस्ततविहस्तहस्ताऽपीनिःसुचसुःशुनुहत्तत-

पदी है ॥ १३ ॥ मायावी सिंहरूपवाले वे भगवान् सारे संसारकी
रक्षा करें तिनकी देहमें केसर रूपमें निकली आगकी लपटें जन
बलपवाने लगनी हैं उस समय उन्हींकी कौड़ों मयङ्कर केसरोंमें
टके हुए आनन्दके ढेर चन्द्रमामे यदि संसारपर हिमकी मोटी
घासकी वर्षा न होने लगे तो कहे तो मजा, सारे संसारके प्राणी
व्यों न व्याकुल हो जायें ! ॥ १४ ॥ 'यदि मैं इस देवताओंके
शत्रुकी देहको पँकना हूँ तो समुद्र उमड़ पड़ेगे, पृथिवी घँस
जायगी, पानाल लुप्त हो जायगा, ब्रह्माण्डके टुकड़े-टुकड़े हो जायेंगे
और स्वर्ग नीचे गिर पड़ेगा ।' यह सोचकर ही मानो मरे हुए
हिरण्यकशिपुको गोठमें ही रकते रहनेवाले सिंहरूपधारी विष्णुजी
आपकी रक्षा करें ॥ १५ ॥ वेगमें जलती हुई आगकी लपटोंके समान
मयङ्कर यद्दी-शर्दी धनी केसरवाले वे नृसिंहजी आपकी रक्षा करें
जो अपनी मौंसिमे हुताचल पर्वतको भी उड़ाले दे रहे हैं ॥ १६ ॥
दिग्गधोंकी दूबालोंको मानो फाड़ डालनेके लिये वेगमें दौड़ते
हुए मयङ्कर नृसिंह भगवान्की यह घोर दहाड़ आपकी रक्षा करें
जो उनके बार-बार ढिलते हुए गलेमें पड़ी फहराती हुई मालाके
समान ताराओंके समूहमें बँधे चन्द्रमारूपी घण्टेके उस शब्दके
ममान हैं जिसे सुनकर दगों टिंशार्णै और दिग्गज चिन्नाड
उठते हैं तथा जो पेरनी जान पड़नी है मानो हिरण्यकशिपुके
यमलोकपर मर्गप्रथम चढ़ाई करते समय बगए जाते हुए
घण्टेझ नाद हो ॥ १७ ॥ जन अपनी देहके फाड़े जानेके
मयने हिरण्यकशिपु नृसिंह भगवान्के नगमें घुसकर छिप

गया तो वे आश्चर्यसे 'कहाँ गया, कहाँ गया ?' कहते हुए चारों
ओर देगने लगे, जन वह न दिखाई दिया तो 'अरे, सन व्यर्थ
होगया !' ऐसा कहकर जो उन्हींके सुँ मलाकर हाथ फटकारा तो
वह नीचे गिर पड़ा, उस समय उस हिरण्यकशिपु दैत्यको
शुष्कीपर धूलकी भाँति पड़ा देगकर हैंस पड़नेवाले उन नृसिंह
भगवान्की जय हो ॥ १८ ॥ विजलीके समूहके समान मयङ्कर
केसरोंके भारवाले, लाल-लाल नेत्रोंसे अग्निकी बराबरी करनेवाले,
तीले नगमें हिरण्यकशिपुकी छाती चौरनेवाले, सिंहरूपवाले
सारा हिरण्यकशिपुके शत्रु विष्णुजीके फड़कते हुए गलेकी
दहाड़में दिग्गजोंके घमसकने कुचल देनेवाली वे चेठार्णै आपको
सुर पँहुँचायें ॥ १९ ॥ इस संसारकी रचना करनेवाले उन
नारायण भगवान्को प्रणाम करता हूँ जिन्होंने पृकाएक हितती हुई
केसरोंमें मयङ्कर मुगवाला, पेसा नृसिंह-बेष प्रकट कर दिया
जिसके हाथोंके अग्रभागमें शङ्ख, गदा, तलवार और चक्र
घमचना रहे थे ॥ २० ॥ नृसिंह भगवान्के वे नख आपकी रक्षा
करें जो मानो यह विचारकर बोधमें लाल-लाल हो रहे हैं कि
'शत्रुके प्राणवायु तो पाँच ही है और हम दस हैं, अतः कैसे
शत्रु हमें जीत पावेगा ?' ॥ २१ ॥ सन्ध्यामालीन लाल
चन्द्रमाकी कलाकी मुन्दरसाके समान कान्तिवाले वे लालके
लिये नृसिंह रूपधारी, कौटमारुके शत्रु (विष्णु) के नख
आपका आनन्द बढ़ावें जिन्हें हिरण्यकशिपुकी छाती फाड़नेमें
असमर्थ वज्रने ढाह, कुतुहल, नम्रता और अचरजपूर्वक देखा

जसिक्तवत्स्थलः । स्फुरद्गरुडगमस्तिभिः स्थगितसप्त-
सप्तसिद्धतिः समस्तनिगमस्तुतो बृहदरिस्तु नः स्वस्तये
॥ २३ ॥ सुरासुरशिरोरत्नकान्तिविच्युतिताड्यत्रये ।
नमस्त्रिभुवनेशाय हरये सिंहरूपिणे ॥ २४ ॥

वामनः—अष्टत्रिदशदो ह्येरुर्ध्वमुत्तिष्ठती वलिनिग्रहे ।
विधिविष्टरपद्मस्य नालदशदो मुदेऽस्तु नः ॥ १ ॥ अप-
सर पृथिवि समुद्राः संवृणुताम्बुनि भूधरा नमत ।
वामनहरिलघुतुन्दे जगतां कलहः स वः पायात् ॥ २ ॥
अश्याद्दो वामनो यस्या कोस्तुमप्रतिविम्बितः । कान्तु-
फालोकिनी जाता जाडरीच जगत्त्रयी ॥ ३ ॥ आरुष्टः
शिक्षया नक्षैर्विलिखितः स्फुटः फपोलस्थले मौलौ
दामभिराहतः प्रतिदिशं प्राग्मन्सलीलं पथि । इत्थं
पारघितासिनीकृतपरीहासस्य दैत्याध्वरे विष्णोवाम-

नवेपविभ्रमभृतो हासोर्मयः पान्तु वः ॥ ४ ॥ कस्त्वं
ब्रह्मन्पूर्वः क्व च तव वसतिर्याखिला ब्रह्मसृष्टिः कस्ते
नाथो ह्यनाथः क्व च तव जनको नैव तातं स्पष्टामि ।
किं तेऽभीष्टं ददामि धिपदपरिमिता भूमिरल्पं किमेत-
त्रैलोक्यं भावगर्भं वलिमिदमवदद्गामनो वः स पायात्
॥ ५ ॥ खर्वग्रन्थिविमुक्तसन्धिविलसद्गङ्गाः स्फुरत्कौ-
स्तुभं निर्यन्नाभिसरोजकुण्डमलपुटीगम्भीरसामध्वनि ।
पात्रावाप्तिसमुत्सुकेन वलिना सानन्दमालोकितं पा-
याद्गः क्रमवर्धमानमहिमार्थ्यं सुरारं देपुः ॥ ६ ॥ ब्रह्माण्ड-
च्छद्गदशदः शतधृतिभवनान्मोहहो नालदशदः क्षीणी-
नौकूपदशदः क्षरदमरसरित्पट्टिकाकेतुदशदः । ज्यो-
तिश्चक्राक्षदण्डखिमुधनविजयस्तम्भदशदोऽष्टत्रिदशदः ।
श्रेयस्त्रैविक्रमस्ते वितरन्तु विशुधद्वेषिणां कालदशदः

॥ २२ ॥ अपनी श्रेष्ठ चमकीली कैसररूपी किरणोंसे सूर्यके
प्रकाशको ढीप देनेवाले तथा वेदोंसे स्तुति निपु जाते हुए वे
नृसिंह भगवान् हमारे लिये कल्याणकारी हैं जो हृदयदाहटके
मारें यहाँ यहाँ फैले हुए शत्रुके ध्वजल राधाँरूपी धनको
घाट डालनेके लिये उल्लासी हैं तथा देवताओंके शत्रु
हिरण्यकशिपुके फटे हुए हृदयसे बहते हुए रक्तसे जिनका
पद स्थल रंग गया है ॥ २३ ॥ तीनों लोकोंके स्वामी
उन नृसिंहरूपी विष्णुको प्रणाम है जिनके चरण देवता और
राक्षसोंके मुकुटोंके रत्नोंकी वान्तितसे चकमका उठे हैं ॥ २४ ॥

वामनः । वलिनो यौषते समय ऊपर उठा हुआ
भगवान् विष्णुका वह चरण हम लोगोंकी मुल दे जो ऐसा
जान पदता है मारो ब्रह्माजीको उत्पन्न करनेवाले कमलका
नालदशद हो ॥ १ ॥ छोटेसे पेटवाले वामन भगवान्के
त्रिपदमें उठा हुआ वह सारे संसारका कलह आपकी रक्षा करे
जिसमें यह धोपणा की गई कि 'हे पृथिवी । दूर हट जाओ,
हे समुद्र ! आप अपना जल सँभालिए और हे पर्वत ! आप
और नव जाइए ।' ॥ २ ॥ वे वामन भगवान् आपकी रक्षा करें
जिनके चमकते हुए शैलुभ मणिमें तीनों लोकोंकी परछाईं
पड़कर ऐसा कौतुक उत्पन्न कर रहें यी मानो तीनों लोक
उनके पैदमें टिपन हों ॥ ३ ॥ बलिके चक्रमें चारों ओर लीलापूर्वक
पूमने हुए, वामन-वेशारी शोभा धारण करनेवाले उन भगवान्
विष्णुकी हँसारी छटाई आपकी रक्षा करें चित्तसे बेरपाओंने
उनकी धोटी सँचकर, नगोंसँ उनकी देहमें चिह्न बनाकर, उनके
गारोंमें धूसर तथा सिरपर रस्मिये मात्सर परिहास दिया

या ॥ ४ ॥ ध्राए हुए वामन भगवान्को देखकर बलिने
उत्तरे पृष्ठा—हे विचित्र रूपवाले तुम कौन हो ? वामन—मैं
ब्रह्मण हूँ । बलि—तुम्हारा निवास-स्थान कहाँ है ? वामन—यह
सारी ब्रह्माकी रचना मेरा निवास स्थान ही तो है । बलि—
आपका स्वामी कौन है ? वामन—मैं अनाथ हूँ, मेरा कोई स्वामी
नहीं है । बलि—आपके पिता कौन है ? वामन—मुझे अपने
पिताका स्मरण नहीं है । बलि—तुम क्या चाहते हो, तुम्हें क्या
दूँ ? वामन—केवल तीन पग पृथ्वी चाहता हूँ । बलि—यह तो
बहुत कम है, यह क्या तुमने माँगा ? वामन—अरे, उसमें तीनों
लोकोंकी माँगनेका भाव है । इस प्रकार बलिते कहनेवाले वे
वामन भगवान् आपको रक्षा करें ॥ ५ ॥ दानके शोथ पात्रको
डूँडनेकी चिन्ता करनेवाले बलिते प्रसन्नतापूर्वक देखा जाता हुआ
विष्णुका वह वामन-नेप आपकी रक्षा करे जिसकी बीच
छातीमें कौस्तुभ मणि चमचमा रहा है, जिसमें नागिते निकले
कमलमें वैदे ब्रह्माजीके साम-गानका गम्भीर स्वर सुनाई
पड़ रहा है तथा जो धीरे धीरे थडकर इतना बड़ा हो गया
कि देखकर अचरज होने लगा ॥ ६ ॥ वामन नेपवाले त्रिविक्रम
भगवान्का वह उठा हुआ समूचा पैर तुम्हारा कल्याण करे
जो सारे ब्रह्माण्डरूपी छातीके, डण्डोंके समान, ब्रह्मानो उत्पन्न
करनेवाले कमलके नालदशदके समान, पृथ्वीरूपी नावके
मसल्लके समान, उपरसे कर-कर बहती हुई आकाश गङ्गारूपी
पतिकामें लगे दशदके समान, सारे नक्षत्रोंसे भरे आकाशरूपी
पहिपकी धुरीके समान और तीनों लोक जीत लेनेके परचात् गाई
हुए त्रिनेपस्तम्भके समान जान पड़ता है तथा जो देवताओंके

॥ ७ ॥ यस्मादाक्रामतो धां गरुडमपिशिलाकेतुद्वयडाय-
मानादाश्च्योतन्व्याचभासे सुरस्तरिद्रमला वैजयन्तीय
कान्ता । भूमिप्रो यस्तथान्यो भुवनपृष्ठमहास्तम्भशोभां
दधानः पातामेतां पयोजोदरललिततलो पङ्कजाक्षस्य
पादां ॥ ८ ॥ स्वस्ति स्वागतमश्वहं वद विभो किं
दीयतां मेदिनी का मात्रा मम विक्रमत्रयपदं दत्तं जलं
दीयताम् । मा देहीत्युशनाप्रवीक्षरिखं पात्रं किमस्मा-
त्परञ्चैत्येयं वलिनाचिती मखमुखे पायात्स यो धामनः
॥ ९ ॥ स्वामी सन्भुवनत्रयस्य विकर्ति नीतोऽसि किं
याञ्चया यद्वा विश्वरुजा त्वेयव न कृतं तद्दीयतां ते
कुतः । दानं श्रेष्ठतमार्थं तुभ्यमतुलं वन्धाय नो मुंकेये
विश्रंती वलिना निरुत्तरतया हीतो हरिः पातु वः

॥ १० ॥ हस्ते शूक्ष्णकिणाङ्कितोऽरुणयामिकामिर्नितोर-
स्थलो नाभिप्रेङ्खदलिखिलोचनयुगप्रोद्गतशीतातपः ।
वाहूमिथितवह्निरपे तदिति व्याप्तिर्य चाभ्यं फवेस्ता-
रैरभ्ययनेहैरन्वलिमनः पायाज्जगद्गामनः ॥ ११ ॥

परशुरामः—किं दोष्यां किमु कामुकोपनिपदा भग-
प्रसादेन किं वेदाधिगमेन भास्वति भृगोर्वेगे च किं
जन्मना । किं वानेन ममाद्भूतेन तपसा पीडां कृता-
न्तोऽपि चेद्विप्राणां कुर्वतेऽन्तरित्यनुशयो रामस्य
पुण्यातु वः ॥ १ ॥ कुलाचला यस्य मदीं द्विजेभ्यः
प्रयच्छतः सीमदपत्यमापुः । यभूयुस्तत्सर्गजलं समुद्राः
स रैणुकेयः श्रियमाननोतु ॥ २ ॥ द्वारे कल्पततं गृहे
सुरगर्वां चिन्तामणीनङ्गदे पीयूषं सरसीपु विप्रवदने

शत्रुओंका नाम करनेके लिये कालद्वय ही है ॥ ७ ॥ आकाशकी
श्रौर यद्वते हुए कमलके समान नेत्रवाले वामन भगवान्के
कमलके भीतर भागके समान लाल-लाल वे दोनों चरण रचा
करे जिनमेंसे एक चरण मरकत मणिले बने उस केतुद्वयके
समान जान पड़ता है जिसपरसे कर्ती हुई निर्मल आकाश-
गद्ग मुन्दर पताकाभी जान पड़ती है तथा दूसरा धरतीपर
रखा पर ऐसा सुन्दर जान पड़ता है मानो चौदहों भुवनरूपी
बड़े भारी घरका खम्भा हो ॥ ८ ॥ वामनरूपी भगवान्ने श्राते ही
आशीर्वाद देनेका मुद्रामें बलिसे कहा—आपका कल्याण हो ।
बलिने कहा—आइए, आपका स्वागत है । वामन—मैं भिद्यारी
हूँ । बलि—कहिणु नाथ ! आपको क्या दिया जाय ! वामन—
मुझे पृथ्वी चाहिए । बलि—कितनी चाहिए महाराज ! वामन—
मेरे पाँसे नापकर केवल तीन पग ! बलि—अच्छा महाराज
दिया, (शुक्राचार्य पुरोहितसे) जल दीजिए तो ! शुक्राचार्य—
शरे मत दो, वे विष्णु हैं । बलि—तो इनसे अच्छा दानका
पात्र दूसरा कौन होगा ! इस प्रकार अपने यज्ञमें बलिने जिनका
पूजन किया था वे वामन भगवान् आपकी रक्षा करें ॥ ९ ॥
'आप तीनों लोकोंके स्वामी होते हुए भीष माँगकर क्यों अपने
हाथों अपनेको छोड़ा (हीन) बनते हैं ! अथवा संसारको अपने
हाथोंसे रचते हुए भी आपने जो वस्तु नहीं बनाई वह आपको
कहाँसे दी जाय ? आप जैसे दानके श्रेष्ठ पात्रको दिए गए दानका
फल तो बन्धनोंसे छूटना है, बन्धनमें पड़ना नहीं, और मैं आपको
इतना बड़ा दान दे रहा हूँ कि भी आप ही मुझे बाँते हैं !'
बलिकी इन बातोंको सुनकर निरुत्तर होनेसे लजित होते हुए वे
वामन भगवान् आपकी रक्षा करें ॥ १० ॥ 'अरे, इनके हाथोंमें

शस्त्र धारण करनेका चिह्न है अर्थात् वे सुदर्शन चक्रधारी हैं, इनकी
छातीपर लाल-लाल चकमकाइट है अर्थात् वे कौस्तुभ मणि
धारण करनेवाले हैं, इनकी नाभिपर भीरे मेंद्र रह है अर्थात्
इनकी नाभिमें कमल है, इनकी आँसोंमेंसे एकले ढण्डक और
एकले गर्मी निकल रही है अर्थात् चन्द्रमा और सूर्य दोनों इनके
नेत्र हैं, अरे वे विष्णु भगवान् बाहुकनी लहरोंके भीतर द्विपे
बड़ाबानल हैं, इन्हें दान न देना', धारण हुए वामन भगवान्को
दान देनेसे बलिको रोक्ते हुए शुक्राचार्यकी इन बातोंको
अनुमति करके अपने ऊँचे स्वरके वेदपाठ आदिसे बलिके
मनको अपनी श्रौर आकर्षित करनेवाले वे वामनरूपी भगवान्
संसारकी रक्षा करें ॥ ११ ॥

परशुरामः 'मेरी इन गुजाओंके बलवान् होनेसे, मुझे
धनुर्विद्यारूपी वेदोंके रहस्यका ज्ञान होनेसे, शिरजीवी कृपा-
शक्ति प्राप्त होनेसे, वेदोंकी पढ़नेसे, सूर्यके समान तेजस्वी
शुशुर्वशमें जन्म लेनेसे अथवा मेरी इतनी बड़ी श्रुत तपस्यासे
ही क्या लाभ हुआ ! जब कि यमराज अर्थात् भी ब्राह्मणोंको कष्ट
दे ही लेता है ! परशुरामके भीतरका इस प्रकारका सोच-विचार
आपको स्वस्थ रखे ॥ १ ॥ वे रेणुकादेवीके पुत्र परशुरामकी
प्रेमार्थ है जिन्होंने ब्राह्मणोंको इतनी अधिक पृथ्वी दानमें
दी कि कुलाचल पर्वतसे ही एक-एकके भागकी सीमा बर्षों गई
और जिनके दानका सङ्कलप करते समय छोड़े हुए जन्तसे सारे
समुद्र भर गए ॥ २ ॥ सारे चरित्रमेंका नाम करनेवाले, ब्राह्मणोंको
सजानेवाले मणिल तथा शूद्रके वंशके आभूषणके समान
वे परशुराम भगवान् आपकी रक्षा करें जो केवल इसलिये तपस्या
करते हैं कि ब्राह्मणोंके द्वारपर कल्पवृक्ष लग जायँ, उनके घर-घर

विद्याश्चतस्रो दश । एवं कर्तुमयं तपस्यति भृगोर्वैशा-
चतस्रो मुनिः पायाद्वेऽखिलराजकक्षयकरो भूदेवभूया-
मसिः ॥ ३ ॥ नाशिष्यः किमभूद्भयः किमभयन्नापुत्रिणी
रेणुका नाभूद्विश्वमकामुं किमिति वः प्रीणतु राम-
त्रया । विप्राणां प्रतिमन्दिरं मण्डिगणोन्मिश्राणि दृष्ट्वा-
हतेनार्थानां स मया यमोऽपि महिषेणाम्नासि नो-
द्वाहितः ॥ ४ ॥ नो सन्ध्यां समुपासते यदि तदा
लोकापवादाद्भयं सा चेत्स्वीक्रियते भविष्यति तदा
राजन्वयीजे नतिः । इत्थं चिन्तयतश्चरं भृगुपतेर्निष्वा-
सकोष्णीकृतो नेत्रान्तःप्रतिविम्बकोणसलिलः सन्ध्या-
ञ्जलिः पातु वः ॥ ५ ॥ पायाद्वो जमदग्निंशतिलको
वीरवतालङ्कृतो रामो नाम मुनीश्वरो नृपपथे भास्व-
कुटारायुधः । येनाशेषहताहिताङ्गरुधिरैः सन्तपिताः

कामधेनुर्पुं हो जायँ, उनके पुत्रवन्दनं चिन्तामणि जड़ जायँ,
उनकी तल्लेयों-श्रावलिपोंम अमृत भर जाय और मुँहमे ही चौदहों
विद्याएँ रहने लगें ॥३॥ 'शिवजी शिष्य-रहित ही क्यों न हुए !
रेणुका पुत्ररहित क्यों न हुई ! विश्व कर्मशीलोंसे रहित क्यों
न हुआ ! जब कि मेरे डरसे यमराज अपने भैसेको डण्डसे पीटता
हुआ उसपर समुद्रोंका मणियोंसे मिला हुआ पानी लादकर
ब्राह्मणोंके घट-घर नहीं पहुँचा आता !' धीपरशुरामजीको
इस प्रकारकी खानि आपको प्रसन्न करे ॥ ४ ॥ 'यदि
सन्ध्या नहीं करता तो धारें ससारमें बड़ी निन्दा होगी, यदि
सन्ध्या करता हूँ तो राजाओंके ही वशवाले सूर्योंके सिर नवाना
पड़ेगा', सन्ध्या-समय वैरतक ऐसे सोच-विचारमें पड़े हुए
परशुरामजी ही सौँलोंसे गरम होकर उनके नेत्रके कोनेसे बहते
हुए श्राव्यरूपी जल-झरना दी जाती हुई वह अञ्जलि आपकी
रचा करे ॥५॥ जमदग्निवशके तिलकसे सुन्दर जान पड़नेवाले,
वीर-व्रतसे सुशोभित होनेवाले, 'राम' नामवाले, राजाओंको
मारते समय चमचमाती हुई कुल्हाड़ीरूपी शस्त्रवाले, वे मुनियोंके
स्वामी परशुरामजी आपको रचा करे जिन्होंने सगुणों मारे गए
राजाओंके रक्तसे पितरोंको सन्तुष्ट किया और अश्वयज्ञमें भक्तिके
मारे समुद्रसे घिरी शृण्धोको ही हन्तकार (दानकी वस्तु) बना
दिया ॥६॥ तदा युद्धसे ही प्रेम रखनेवाले, परशुरूपी शस्त्रवाले
तथा राजाओं का नाश करनेवाले वे परशुरामजी आपको ऐश्वर्य दें
जिन्होंने सहजमें ही राजाओंसे श्रेष्ठ सहस्राङ्गुणके शिर, पैर और
कन्धके पाससे बाहुएँ काटकर (सहज ही सहस्राङ्गुन
शृचकी जड़ें, कुनगी तथा चारों ओरकी डालियाँ काटकर उसे

पूर्वजा भक्त्या चाश्वमेदे समुद्रयसना भूर्हन्तकारी
कृता ॥ ६ ॥ लीलोलूमूलितमौलिमस्तचरणं मूर्धस्थपि
दमाभृतामास्कन्धादपयोहृशापरमभितः कृत्वा सहस्रा-
ङ्गुनम् । यश्चक्रे भुवने तमेव विजयस्तम्भं कुटारायुधो
दत्तां वः शिवमाहावैकरसिको रामः स राजान्तकः ॥७॥

रामः—अधिपञ्चयटीकुटीरर्षित्सफुटितेन्द्रीवरसुन्द-
रोरमूर्च्छितः । अपि लक्ष्मणलोकनैकसख्यं भजत ब्रह्म
सरोरहायताक्षम् ॥ १ ॥ उत्फुल्लामलकमलोलोत्पलदल-
श्यामाय रामामनःकामाय प्रथमाननिर्मलगुणप्रामाय
रामात्मने । योगारूढमुनीन्द्रमानससरोरहंसाय संसार-
विध्वंसाय स्फुरदोजसे रघुकुलोत्तंसाय पुंसे नमः ॥१॥
ऋक्षाणां भूरिधासां श्रितमधिपतिना प्रस्फुरन्दीमतां
स्फारं नेत्रानलेन प्रसभनियमितोचापमीनध्वजेन । रा-

पर्वतकी चोटियार गढ़ार) उमे ही अपना विजयस्तम्भ
बनाया ॥ ७ ॥

रामचन्द्र : पञ्चवटीमें कुटीके भीतर रहनेवाले, कमलके
समान विशाल नेत्रवाले उत्त ब्रह्मका भजन करो जो खिले हुए
नीले कमलके समान सुन्दर कान्तिवाले है और केवल लक्ष्मणजीके
नेत्रोंसे ही जिनकी मित्रता है अर्थात् जिन्हें लक्ष्मणजी एकटक
निहारते रहते हैं ॥१॥ रिले हुए स्वच्छ नीले कमलकी पँसुरीके
समान रयाम रत्नवाले, सीताजीके मनको प्यारे लगनेवाले,
ससारमें प्रसिद्ध सुन्दर गुणोंवाले, बड़े-बड़े योगी और मुनियोंके
हृदय रूपी मानसरोवरमें हंसकी भाँति विहार करनेवाले, संसार
(जन्म-मरण) का नाश करनेवाले तथा रघुबलकी शोभा
बढ़ानेवाले, राम-नामवाले तेजस्वी पुरुषको प्रथमान है ॥२॥ दस
सिरवाले रावणके सिर कटानेवाली पन्द्रहोंकी सेना या शिवजीकी
देह ऐश्वर्य दे जो बड़े तेजस्वी रीढ़ोंके स्वामी जानबवान्से युक्त है
अथवा अत्यन्त तेजस्वी नग्नको स्वामी चन्द्रमासे युक्त है, जिसमें
तार नामका भयङ्कर बन्दर बृह रहा है अथवा जिसमें तीसरे
नेत्रकी भयावनी पुतली चमक रही है, नल सेनापतिको पाकर जो
अत्यन्त बलवाली जान पड़ती है अथवा जो तीसरे नेत्रकी अगले
चमचमा रही है, अँधी-अँधी लहरोंवाला समुद्र जिसका रास्ता
रोंके हुए है अथवा कामदेवने धनुष उठाकर जिसपर हठाव चढ़ाई
कर दी है, जो रामजीके वशमें रहनेवाली है अथवा जो पार्वतीजीके
अर्धांग है, जो कुमुद बन्दरके रहनेमें अत्यन्त उजली है अथवा
जो कुमुद फूलके समान उजली है, जो नील और सुभीमे दानरोंसे
सुशोभित है अथवा जो सुन्दर नीले रङ्गके गलेसे सुशोभित

मायचं पुरारेः कुमुदशुचि सलन्तीलसुप्रीधमङ्गं षायङ्गं
वापि सैन्यं दशवदनशिरश्छेदेहेतुः श्रियेऽस्तु ॥३॥ एतौ
द्वौ दशकण्ठकण्ठकदलीकान्तारफान्तिच्छिद्वौ वैदेहीकु-
चकुम्भकुङ्कुमरजःसान्द्रारुणाङ्गाङ्कितौ । लोकत्राणवि-
धानसाधुसवनप्रारम्भयूषां भुजौ देयास्तामुदविक्रमौ
रघुपतेः श्रेयांसि भूयांसि वः ॥ ४ ॥ कनकनिक्रमसासा
सीतयालिङ्गिताङ्गो नयकुचलयद्गामश्यामवर्णाभिरामः ।
अभिनव इव विद्युन्मरिडितो मेघपरण्डः शमयतु मम
तापं स्वर्धतो रामचन्द्रः ॥५॥ कल्याणान्निधिधानङ्गलिमल-
मथनं पावनं पावनानां पायेयं यन्मुसुल्लोः सपदि परप-
व्प्रभास्ये प्रस्थितस्य । विश्रामस्थानमेकं कथिवरवचसां
जीवनं सज्जनानां वीजं धर्मद्रुमस्य प्रभवतु भवतां भूतये
रामनाम ॥ ६ ॥ कल्याणोत्साससीमा कलयतु कुशलं
कालमेघाभिरामा काचित्साकेतधामा भवगहनगति-
फलान्तिहारिप्रणामा । सौन्दर्यहीणकामा धृतजनकुसु-

तासादरापाङ्गधामा दिक्षु प्रप्यातभूमा दिवपदभिजुता
देवता रामनामा ॥ ७ ॥ कारुण्यामृतनीरमाश्रितजन-
श्रीचातकानन्दं शार्ङ्गारण्डजवापमभ्युजभयाग्नीन्द्रा-
दिवर्हीपदम् ॥ चारुस्मेरमुपोल्लसज्जनकजासां दामिनी-
शोभितं श्रीरामाभ्युदमाश्रयेऽखिलजगत्संसारनापाप-
हम् ॥ ८ ॥ कूर्मो मूलवदालवालवदपां राशिर्लतावहि-
शो मेघाः पल्लववत्प्रसूनफलवत्प्रत्नत्रस्यैन्दवः । स्वामि-
न्योमततः क्रमे मम कियान्द्रुत्विति गां मारुतेः सीता-
न्येपणमादिशन्दिशतु यो रामः सलज्जः श्रियम् ॥ ९ ॥
नमो रामपद्मभोजं रेणुवो यत्र सन्ततम् । कुर्वन्ति
कुमुदप्रीतिमरण्यगृहमेधिनः ॥ १० ॥ परिणयविधौ
भङ्गकल्याणङ्गद्वियो धनुरप्रतो जनकसुतया दत्तां कण्ठे
रजं इदि धारयन् । कुसुमधनुषा पाशेनेव प्रसह्य वशी-
कृतोऽननवदत्तो रामः पायात्प्रपायिनयान्वितः ॥११॥
वालनीडनमिन्द्रुशेखरधनुर्भङ्गावधिप्रदता ताते कानन-

है ॥ १ ॥ रामचन्द्रजीकी अत्यन्त शक्तिशाली वे दोनों मुजाय्र
आपको अत्यन्त सुख-सम्पत्ति दे' जो दस सिरवाले रावणके गले
रूपी केलेके घने वनकी सुन्दरता नष्ट करनेवाली है, जो जानकीजीके
दोनों स्तनोंमें लगे कुङ्कुमकी रज लगानेसे सुन्दर लाल चिह्नवाली
है और जो तीनों लोकोंकी रक्षाके लिये साधुओं-द्वारा किए
जाते हुए यज्ञके आरम्भ-न्यूप है ॥ ४ ॥ जिले हुए नीले कमलकी
भौंति अत्यन्त सुन्दर नीले रहनेवाले वे रामचन्द्र सब शीरसे मेरे
दुःख दूर करें' जो जानकीजीसे आतिद्वन्द्वन करके सोनेकी कसीयोंके
समान दिपाई देते हुए ऐसे सुन्दर जान पड़ते हैं मानों विजलसे
भरे नये यादलके टुकड़े हों ॥ ५ ॥ कलियुगके पापोंका
नाश करनेवाला, वैकुण्ठ पानेके लिये चले हुए मोषकी
हच्छावाले पुरुषके मार्गका भोजन, सुख-सम्पत्तिका भण्डार,
पवित्र वस्तुओंमें सबसे अधिक पवित्र तथा धर्मरूपी वृक्षना बीज
वह राम-नाम आपका कल्याण करें जिसका वर्णन करनेपर
ही कवियोंकी वाणीको शान्ति मिलती है ॥ ६ ॥ अधिकसे
अधिक कल्याण और सुख-सम्पत्तिवाले, काले मेघोंकी भौंति
सुन्दर दिपाई देनेवाले, अयोध्यामें रहनेवाले, प्रणाम करने-
मात्रसे जावोंकी संसारके आड़े-देड़े मार्गसे चलनेकी थकावट दूर
करनेवाले, अपनी सुन्दरतासे कामदेवको भं लज्जित करनेवाले
और दसों दिशाओंमें प्रसिद्ध बशवाले—'राम' नामवाले
वे भगवान् कुशलता दे' जिन्हें श्रीजानकीजी अपनी चञ्चल
तिरकी चितवनसे देपती है और देवता प्रणाम करते हैं ॥ ७ ॥

मेवके समान जान पड़नेवाले उन श्रीरामचन्द्रजीकी मैं शरण
लेता हूँ जो दयारूपी अमृतके समान जलने भरे हुए हैं, अपने
भक्त और अधीनरूपी चातकको सन्तुष्ट करनेवाले हैं, जिनका
'शार्ङ्ग' नामवाला धनुष ही इन्द्रधनुषके समान है, जो ब्रह्मा,
अग्नि, इन्द्र आदि देवतारूपी मोरोंको सन्तुष्ट करनेवाले हैं,
अत्यन्त प्रसन्न सुखवाली जानकीजीरूपी विजलीमें सुन्दर दिपाई
देनेवाले हैं तथा सारे संसारकी तपन (कष्ट) नष्ट कर देनेवाले
हैं ॥ ८ ॥ सीतारो ईडनेके लिये आदेश देने समय जब
हनुमत्प्रीति कहें कि 'हे नाय! कङ्कुमारूपी जड़वाला, समुद्ररूपी
थालेवाला, दिशारूपी लतावाला, मेघोंरूपी पर्तोंवाला,
ताराओंरूपी फूल और सूर्य-चन्द्ररूपी फलवाला यह ब्रह्माकारूपी
वृक्ष मेरी उड़ावके सामने कितना है !' तब उनको इस बातकी
सुनकर लज्जा जानेवाले रामचन्द्रजी आपको ऐश्वर्य दें ॥ ९ ॥
श्रीरामचन्द्रजीके उस चरणकमलको प्रणाम है जिसमें उड़ी हुई
रज वनमें रहनेवाले गृहस्थोंको हनुमिनीका आनन्द देती थी अर्थात्
रामचन्द्रजीके चन्द्रमाके समान सुखके सामने उनके कोमल चरण
खिली हुई हनुमिनीसे जान पड़ते थे ॥ १० ॥ निवाहके समय
कामदेवके शत्रु शिवजीका धनुष तोड़कर सामनेमे आती हुई
जानकीजी-द्वारा पहनाई गई जपमाला हृदयमें धारण करते हुए,
नक्षत्रापूर्वक लज्जामें मोचे मुँह कर लेनेवाले वे रामचन्द्रजी रक्षा
करें जो ऐसे जान पड़ते हैं मानों फूलोंका धनुष धारण करनेवाला
कामदेव अपने कथनसे उन्हें बलपूर्वक बाँध रहा हो ॥ ११ ॥

सेवनावधि कृपा सुभीन्नसख्यावधि। आज्ञा वारिधिव-
न्धनावधि यशो लङ्केशनाशावधि श्रीरामस्य पुनातु
लोकवशता जानक्यपेक्षावधि ॥ १२ ॥ यस्तीर्थानामुपा-
स्त्यागलितमलभरं मन्यते स्म स्वमेयं नाज्ञासीज्जिह्विरे
यममचरणरजःपादपूतान्यमृति। पादस्पर्शेन कुर्वन्म-
टिति विघटितत्रायभावामहल्यां कौसल्यासूनुकृत्
व्यपनयत स यः श्रेयसा च श्रिया च ॥ १३ ॥ योऽद्वा
योद्वावधीत्तान्सपदि पलभुजः सम्पराये परा ये येना-
येनाश्रितानां स्तुतिरचनमितेशानचापेन चापे। लङ्काल-
ङ्कारहर्त्ता ककुभि-ककुभि यः कान्तया सीतयासीदूनी
दूनीऽथ हृष्टः स विभुरचतु यः स्वःसभार्यः सभार्यः
॥ १४ ॥ यो रामो न जघान वक्षसि रणे तं रावणं सा-
यकैर्हृद्यस्य प्रतिवासरं वसति सा तस्या हाहं रावणः ।
मथ्यास्ते भुवनावली परिवृता द्वीपैः समं सप्तभिः स
श्रेयो विदधातु नखिभुवनत्राणैकचिन्तापरः ॥ १५ ॥

श्रीरामजीका वह खेल जिसमें उन्होंने शिवजीका धनुष तोड़
ढाला, वह उल्लास, जो घन जाते समय भी था, वह नम्रता,
जो पिताके प्रति थी, वह कृपा, जिससे सुग्रीवसे भी मित्रता
की गई; वह आज्ञा, जिससे समुद्रमें भी पुल दौंध गया; वह
यश, जो रावणका नाश होनेसे बढ़ा; वह ससारेमें विश्व रहना
पवित्र करे, जिसके कारण ये वनोंमें सीताके वियोगमें रोते फिरे
॥ १२ ॥ अपने परेसे छूकर पत्थर बनी हुई ग्रहल्याका उद्धार
करते हुए वे कौसल्याके पुत्र रामचन्द्रजी अपने शोभा और
प्रेमवर्षसे आपके दुःख दूर करें जो यह तो जानते हैं कि तीर्थोंमें
स्नान करनेसे मेरे सय पाप धुल गए, पर यह नहीं मानते कि
मेरे ही चरणोंकी धूलि लगनेसे ये सब तीर्थ पवित्र हो रहे
हैं ॥ १३ ॥ युद्धमें मांसभली शत्रुओंका विनाश करनेवाले,
शिवजीका धनुष चढ़ानेवाले, बड़े-बड़े भायस्थालियोंसे स्तुति की
जानेवाले, लङ्काकी सारी शोभा धूलमें मिला डालनेवाले, सीताके
वियोगसे पहले तो सर्वत्र दुखी होनेवाले किन्तु उसके परचाव
शुद्धका नाश करके अपनी प्राणप्रियासे मिलकर प्रसन्न होनेवाले
तथा देवताओंकी सभामें सम्मान प्राप्त करनेवाले व्यापक भगवान्
रामचन्द्र भगवती जानती सहित आपकी रक्षा करें ॥ १४ ॥
‘रायणके हृदयमें सदा जानकी बसती है, जानकीके हृदयमें मैं
बसता हूँ’ और मेरे हृदयमें सातो हीन और चौदहों भुवन रहते
हैं, अतः मेरे वायुके बगले हीं सबका नाश हो जायगा’, इस प्रकार
तीनों लोकोंको बचानेकी चिन्ता करते हुए जिन्होंने लिख-भूमिमें

राज्यं येन पदान्तलस्रतण्यस्यक्तं गुरोराज्ञया पाथेयं
परिगृह्य कार्मुकवरं घोरं वनं प्रस्थितः । स्वाधीनः श-
शिर्मौलिचापविषये प्राप्ते न वै विक्रियां पायाद्दः स
विभीषणाप्रजननिहा रामाभिधानो हरिः ॥ १६ ॥ चन्द्रा-
महे महेशानचण्डकोदण्डखण्डनम् । जानकीहृदयानन्द-
चन्दनं रघुनन्दनम् ॥ १७ ॥ स्वर्णैणाजिनशायिनो यो-
जितनयनो दशस्वदिग्भागे । मुद्गरवलयोक्तितचापः
कोऽपि दुरापः स नीलिमा शरणम् ॥ १८ ॥
सीता—उन्मृष्टं कुचसीञ्जि पत्रमकरं दृष्ट्वा हृष्टा-
लिङ्गनात्कोपो मास्तु पुनर्लिखाम्यमुमिति स्मेरे रघूणां
वरे । कोपेनारुणितोऽश्रुपातदलितः प्रेम्णा च विस्ता-
रितो दचो मैथिलकन्यया दिशतु नः क्षेमं कटाचा-
ङ्कुरः ॥ १ ॥

हृन्मान्—अश्रेयपलङ्कापतिसैन्यहन्ता श्रीरामसेवा-
चरणैककर्त्ता । अनेकदुःखाहतलोकगोप्ता त्वसौ हनू-

भी रावणके हृदयमें वाण नहीं मारा वे रामचन्द्रजी कल्याण
करें ॥ १६ ॥ विभीषणके बड़े भाई रावणको मारनेवाले वे
‘राम’ नामवाले भगवान् आपकी रक्षा करें जिन्होंने अपने पिताकी
आज्ञा मानकर सारे राज्यको वखते छोरमें लगे पानीकी भीति
छोड़ दिया, एकमात्र धनुषका सहारा लेकर जो भयङ्कर वनको चल
पड़े तथा चन्द्रमाका मुकुट पहननेवाले शिवजीका धनुष तोड़कर
सबको जीत लेनेपर भी जिन्हें तनिक भी घमण्ड नहीं
हुया ॥ १७ ॥ उन रामचन्द्रजीको प्रणाम करता हूँ जिन्होंने
शङ्करजीका अत्यन्त कठोर धनुष तोड़ ढाला और जो जानकीजीका
हृदय प्रसन्न करनेके लिये चन्दन है ॥ १७ ॥ उन किसी
अत्यन्त कठिनतासे प्राप्त होनेवाले नीलेपनकी शरय लेता हूँ
जो सोनेके मृगकी खालपर सोए हुए भी दस सुँदवाले रावणकी
दिशा (दक्षिण) की ओर देखकर धार-धार अपने धनुषको
ताकते हैं ॥ १८ ॥

सीता : वलपर्यंक्त आलिङ्गन करनेसे स्तनोंकी चित्रकारी
मिठी हुई देखकर ‘जानकीजीको क्रोध न हो’ ऐसा सोचकर
‘मैं फिरसे वैसी ही चित्रकारी छिपू देता हूँ ?’ ऐसा कहकर
हँसते हुए रामजीको तिरछी चितवनसे देखती हुई जानकीजीके
ये कटाक्ष हम लोगोंको ऐश्वर्य दे’ जो क्रोधके ‘मारो लात-लात,
ध्रॉसू गिरानेसे भाँगे हुए और प्रेमके कारण फैले हुए हैं ॥ १ ॥

हनुमान् : रावणकी सारी सेनाका नाश करनेवाले, श्री-
रामजीके चरणोंकी सेवा करनेवाले और अनेक प्रकारके दुखसे

मांस्तव सौख्यकर्ता ॥ १ ॥ कृतप्रोथे यस्मिन्मरनगरी
मङ्गलरथा नचातङ्गा लङ्गा समजनि वनं वृष्टति सति ।
सदा सीताकान्तप्रसूतिमतिविप्यातमहिमा हनुमान-
व्याहः कपिकुलशिरोमण्डनमणिः ॥ २ ॥

रामकृष्णौ—चातः काकोदरो येन द्रोघ्यापि करुणा-
त्मना । पूतनामारण्यथातः स मेऽस्तु शरणं प्रभुः ॥२॥
मदितराचणकंसां सरयूयमुनाविहारिणाम् देवां । अर्पित-
विप्रकुमारै हरिपतिहरिकेतनप्रियां चन्दे ॥ २ ॥ यः
पूतनामारण्यलब्धकीर्त्तिः काकोदरो येन चिनीतदर्पः ।
यशोदयालेङ्कृतसूत्रिव्याप्तितर्यदृनामथवा रघुणाम् ॥३॥
बलमद्रः—उष्णालु कश्चिदर्कधामनि मनाङ् निद्रालु
शीतानिले हालानां गृह्यालु सुख्येदसकृत्तज्जालु ज्ञाया-
मुयम् । नित्यं निष्पतयालु तिर्यगवनीशब्ध्यांश्यालु ज्ञं
गातेभ्यः स्पृहयालु धामघलं दीने दयालु श्रये ॥ १ ॥

नष्ट होते हुए संसारकी रक्षा करनेवाले वे हनुमान्जी आपकी
सुखी रक्षक ॥ १ ॥ बन्दरोंके कुलरूपी सिरमें जाड़े मणिके
समान अत्यन्त श्रेष्ठ वे हनुमान्जी आपकी रक्षा करें जो
सीतापति रामजीके चरणोंको प्रक्षालन करनेमें अपना मन लगाए
रहते हैं, जिनकी महिमा सारे संसारमें प्रसिद्ध है तथा जिनके
क्रोधपूर्वक श्लोकवाटिकाको उजाड़ते समय लङ्कामें एक नये
प्रकारका भय द्या गया और देवताओंके नगरमें आनन्दसे
गाते-बजानेका स्वर गूँजने लगा ॥ २ ॥

राम और कृष्ण : वे दयालु कृष्ण भगवान् मुझे शरण दें
जिन्होंने सबसे द्रोह करनेवाले कालिय नागकी भी रक्षा की और जो
पूतना राजसीको मारनेके लिये प्रसिद्ध है तथा पवित्र नामधाले श्री
शुद्धमें यश पानेवाले वे रामचन्द्रजी मुझे शरण दें जिन्होंने अत्यन्त
निडर और अपराध करनेवाले वीएकी भी रक्षा की ॥३॥ क्रमशः
रावण और कंसका मर्दन करनेवाले, सरयू और यमुनामें विहार
करनेवाले, ब्राह्मणोंको उनके भरे हुए पुत्र देनेवाले तथा सुग्रीव
और अर्जुनके अत्यन्त प्यारे उन दोनों देवों (राम और कृष्ण)को
प्रणाम करता हूँ ॥ २ ॥ पूतनाको मारकर यश पानेवाले,
नागके घमण्डको चूँच करकेबलि तथा यशोदा-द्वारा सजाई गई
मुन्दर देहवाले वे यदुबंधके स्वामी (कृष्णजी) अथवा
पवित्र नामवाले, शुद्धमें यश पानेवाले, डीठ कौरका घमण्ड नष्ट
करनेवाले तथा यश और दयासे सजी हुई मुन्दर देहवाले वे रघु-
वंशके स्वामी (रामचन्द्रजी) रक्षा करें ॥ ३ ॥

बलमद्रः दीनोंपर दया करनेवाले, कहीं सूर्यकी कड़ी पूर्णमें

निष्पात्याशु हिमांशुमण्डलमयः पीन्या तदन्तःसुधां
कृत्यैव चपकं हन्मन्त्रिति हलापानाय फौन्हलात् । भो
देव द्विजराजि मादृशि सुगस्पशोऽपि न श्रेयमे मां
मुञ्चेति तदपि तो हलचरः पायादपायाऽजगत् ॥ २ ॥
प्रेमोद्यामितरेवतीमुखंगतामोस्वाद्य कादम्बरीमुन्मत्तं
कचिदुपतत्कचिदपि भ्राम्यत्कचिन्म्रम्लत् ॥ रक्षापा-
ङ्गमधीरलाङ्गलमेलिष्यामान्चराडम्ब्यं ज्ञेशं नः फयनी-
फरोतु सरुलं पाकाभिरामं महः ॥ ३ ॥ फालाप्रैण समु-
द्धरन्कुचपुरं द्रष्टममादं हरन्स्मारं स्मारमनादरोक्ति-
मचिदां तां तां किरन्मुस्मितम् । संहारोऽसमये कुनो-
ऽयमिति तैर्निमुक्तदपैः स्तुतः शान्तो दीनदयानिधिः
स भगवान्पायात्प्रलम्बान्तकः ॥ ४ ॥

कृष्णः—अशुभ्यां कः कपाटं प्रहरति कुटिले माध-
वः किं घसन्तो नो चक्री किङ्कालो नहि धरणिधरः

किञ्चित् उष्ण होनेवाले, ठण्डे धातुमें थोड़ा सोनेवाले, हल प्रहण
करनेवाले, पत्नीके मुखना वारन्वार चुम्बन करनेमें लजानेवाले,
सदा ही लैंची नीची पृथिवीके त्रिद्वीनेपर सोनेवाले और गानेमें भी
थोड़ा प्रेम करनेवाले उस उज्ज्वल नेत्रकी भी शरण लेता हूँ ॥ १ ॥
हल धारण करनेवाले वे बलमद्र सदा सारे संसारकी रक्षा करें
जिन्होंने चन्द्रमण्डलको नीचे गिराकर उसमेंका सप्त अग्रज पीकर
जन मदिता पीनेके लिये उसे खिल-खिलमें ही प्याला बना
लिया तब चन्द्रमा जिनसे यह प्रार्थना करके ही छूट पाए कि 'हिं
देव ! मैं द्विजराज हूँ, मुझसे मदिता छू भी गई तो मेरा कल्याण
नहीं है अतः मुझे कृपया छोड़ दीजिए' ॥ २ ॥ प्रेमपूर्वक
देवतीके सुँहको नचाकर उसमेंकी मदिता पचकर, मतवाले होकर
कहीं घूमते, कहीं गिरते, कहीं उठते हुए, लाल नेत्रवाले, चञ्चल
हलवाले तथा भौरोंके समान श्याम वस्त्र पहननेवाले वे
सिद्धिमेंसे शोभित तेज हमारे सप्त दुःख नष्ट कर दें ॥ ३ ॥
प्रलम्बासुरको मारनेवाले तथा दीनोंपर अत्यन्त दया करनेवाले वे
वे भगवान् बलमद्र रक्षा करें जिन्होंने मूर्ख कौरवोंको अपमान-
भरी बोलिका स्मरण कर-करके एक-एक बातपर मुष्करते हुए
कुरपुरको अपने हलकी नाथसे खींचकर उन घमण्डियोंका
घमण्ड चूर कर डाला और तब 'अरे यह अस्समयमें ईश्वर
प्रलय होने लगा' इस प्रकार डरते हुए, घमण्ड छोड़कर उनके
प्रार्थना करनेपर प्रसन्न हुए ॥ ४ ॥

कृष्णः जैमें ही कृष्णजीने सत्येभामाका द्वार मन्थ्यताया
तो सत्येभामा भीतरसे बालों—कौन उँगलियाँसे किशोर्कर

किं द्विजिह्वः फणीन्द्रः । नाहं घोराहिमदीं किमुत खग-
पतिनां हरिः किङ्कपीन्द्र इत्येवं सत्यभामाप्रतिवचन-
जितः पातु वञ्चक्रपाणिः ॥ १ ॥ अतस्तीकुसुमोपमेय-
कान्तिर्यमुनातीरकदम्बमध्यवर्षी । नवगोपवधूयिनोद-
शाली वनमाली वितनोतु मङ्गलं वः ॥ २ ॥ अन्तमोह-
नमौलिधुशूनवलान्मन्दारविहङ्गसनः स्वस्था कर्षणदृष्टिह-
रणमहामन्त्रः कुरङ्गीदशाम् । हृष्यद्दानवदृयमानदिधि-
पदुवारदुःखापदां श्रंगः कंसरिपोर्व्यपोहयतु योऽश्रे-
यांसि वंशोरयः ॥ ३ ॥ अभिनवनवनीतमीतमातात्रनेत्रं
विकचनलिनलक्ष्मीरुपधिसानन्दधञ्जम् । हृदयभवन-
मध्ये योगिभिर्ध्यानगम्यं नवगगनतमालश्यामलं कञ्चि-
दीष्टे ॥ ४ ॥ अभिनवनवनीतस्निग्धमापीतदुग्धं दधि-
कणपरिदिग्धं मुग्धमङ्गं सुरारैः । दिशतु भुवनकृच्छ्रकृच्छ्रे-

दितापिच्छुगुच्छुच्छुचि नवशिखिपिच्छालाञ्छित्तं वा-
ञ्छित्तं वः ॥ ५ ॥ अम्ब श्राम्यसि तिष्ठ गोरसमहं
मथ्नामि मन्थानकं प्रालम्ब्य स्थितमीश्वरं सरभसं दीना-
ननो वासुकिः । सासूर्यं कमलालया सुरगणः सानन्द-
मुद्यद्भयं राहुः प्रैक्षत यं स वोऽस्तु शिवदो गोपालबालो
हरिः ॥ ६ ॥ अधोन्मीलितलोचनस्य पिधतः पर्याप्तमेकं
स्तनं सद्यः प्रस्तुतदुग्धदिग्धमपरं हस्तेन सम्मार्जतः ।
माया चाङ्गुलिलालितस्य चिबुके स्मेरायमाणे मुखे
विष्णोः क्षीरकणाम्बुधामचयला दन्तद्युतिः पातु वः
॥ ७ ॥ अयल्लोकितमनुमोदितमालिङ्गितमङ्गनाभिर्जु-
रामैः । अधिवृन्दाचनकुञ्जं मरकतपुञ्जं नमस्यामः ॥ ८ ॥
अवेमव्यापारकलनमतुरीरुस्पर्शमचिरादानुन्मीलकन्तुम-
करघटनायासमस्कृतं । विपीदत्पाञ्जालीविपदपनयैक-

खटवट करता है ? बाहरसे श्रीकृष्णजी बोले—मैं हूँ माधव ।
सत्यभामा—माधव कौन ? क्या बसन्त हो ? श्रीकृष्ण—नहीं
चक्री (चक्र धारण करनेवाला) हूँ । सत्यभामा—क्या कुम्हार
हो ? श्रीकृष्ण—नहीं, मैं धरणीधर (पृथ्वीको धारण करनेवाला)
हूँ । सत्यभामा—क्या द्रो जो भयानके सोंप हो ? श्रीकृष्ण—नहीं
मैं भयङ्कर सोंपका मर्दन करनेवाला हूँ । सत्यभामा—क्या गरुड़
हो ? श्रीकृष्ण—नहीं मैं हरि (विष्णु) हूँ । सत्यभामा—अरे,
चन्द्र हो ? बातचीतमें इस प्रकार सत्यभामासे हारे हुए वे
कृष्णजी आपकी रक्षा करें ? १ ॥ अलम्बीके फूलकी कान्तिके
समान श्याम रत्नवाले वे वनमाली (श्रीकृष्णजी) आपका कल्याण
करें जो यमुनाके तटपर कदम्बके नीचे खड़े हुए नई-नई
गोपियोंकी मनबहलाव करते हैं ॥ २ ॥ कसके शत्रु भगवान्
श्रीकृष्णकी वंशीसे निकले हुए वे स्वर आप लोगोंके दुःख दूर
करें जो गोपियोंके भीतर घुसकर उन्हें मोहित करके उनके
सिर हिला हिलाकर उनके माथेमें मन्दारपुष्प गिरा देते हैं,
जो मृगके समान नेत्रवाली स्त्रियोंको ज्यों की त्यों छुला लेने
और उनकी दृष्टिको प्रसन्न करनेके लिये मानी मन्दा है और
जो अत्यन्त मतवाले राक्षसके कट पाते हुए देवतायोंकी भारी
विपत्तियोंके अन्त हैं ॥ ३ ॥ भगवान् कृष्णके उस ताजे
मन्थनको चाहनेवाले, लाल लाल नेत्रवाले तथा अत्यन्त प्रसन्न
सुरीको प्रणाम करता हूँ जो लिले हुए कमलकी सुन्दरतासे मानों
रोए कर रहा है, योनी लोग अपने हृदयरूपी घरमें ध्याल करके
ही जिसे देख पाते हैं तथा जो स्वच्छ आकाश और तमालके
समान श्याम रत्नवाला है ॥ ४ ॥ संसारके सारे दुःख दूर करनेवाला

तमालके गुच्छोंकी कान्तिके समान कान्तिवाला तथा मोरोंकी
नई-नई पंखोंसे सजा हुआ वह श्रीकृष्णका मुख आपकी
इच्छाएँ पूर्ण करे जो तत्काल निकला हुआ मक्खन खानेसे खिन्न
है, अभी ही दूध पी चुका है और जिसमें अभी भी दहीके कण
लिपटे हैं ॥ ५ ॥ 'हे माँ ! तुम थक गई हो, रहुर जाओ, अब
मैं दूध मये देता हूँ' ऐसा कहकर मथनी हाथमें लेती जिन्हें
वासुकिने यह सोचकर अत्यन्त दीन होकर देखा कि 'कहीं फिर
मुझे मथनीमें न लिपटना पड़े', लक्ष्मीने यह सोचकर ईर्ष्याके
साथ देखा कि 'फिर मेरी कोई दूसरी सौत (लक्ष्मी) न निकल
आवे', देवताओंसे यह सोचकर प्रसन्नतासे देखा कि 'फिर अष्ट
पिनेको मिलेगा' और राहुने यह सोचकर डरके साथ देखा
कि 'फिर सिर कटनेका समय आया जान पड़ता है', वे गोपके
बालक कृष्णजी आपको सुख दें ॥ ६ ॥ आधी आँखें मूँदकर, जी
भरकर मँबि हुए स्तन पीते हुए, दूध भरते हुए दूसरे स्तनपर
हाथ फेरते हुए एक माताकी डँगलियोंसे ढोड़ी सहजाए जानेपर
मुस्कराते हुए श्रीकृष्णजीके दाँतोंकी वह कान्ति आपकी रक्षा करे
जो अपने तेजसे दूधकी बूँदोंके समान चमचमा रही है ॥ ७ ॥
मरकत मणिके ढेरकी भौँत श्याम रत्नवाले उन कृष्णजीको
प्रणाम करता हूँ जिन्हें वृन्दावनके कुञ्जोंमें गोपियोंने बड़े
प्रेमसे देखा, जिनकी प्रशंसा की और जिनका आलिङ्गन किया
॥ ८ ॥ श्रेष्ठपूर्वक सङ्कष्टमें पड़ी हुई मैथिलीकी विपत्ति दूर
करनेके लिये गरुड़के विह्वाली रत्नाकावाले कृष्ण भगवान्का
यह तत्काल वरुका बुनना हमारी पता करे जिसमें न तो वैभका
दिहना दिखाई पड़ा, न तुरी दिखाई दी और न बार-बार

प्रणयिनः पटानां निर्माणं पतगपत्तिकेतोरयतु नः ॥ ६ ॥
 अव्यक्तमन्त्रमुपास्य वभूध कश्चित्स्त्रं लब्धवर्णमव-
 गत्य कृतार्थमानो । सद्यस्त्रिभङ्गललितस्फुरणादमन्दन-
 न्द्रोत्थया जडतयैव वयं कृतार्थाः ॥ १० ॥ अस्मिन्कुञ्जे
 विनापि प्रचलति पयनाद्द्रुचते कोऽपि नूनं पश्यामः किं
 न गत्वैत्यनुसर्पति गणै भीतभीतेऽर्भकाणाम् । तस्मि-
 न्पाशासप्तो वः सुपयतु विलसल्लीलया कैटभारिव्यात-
 न्वाना मृगारिप्रलधुरधुरापावरोद्राघिनादान् ॥ ११ ॥
 आताम्रे नयने स्फुरन्कुचभरः श्वासो न विश्राम्यति
 स्वदेहाम्भःकणदन्तुरं तव मुखं हेतुस्तु नो लक्ष्यते ।
 धिक्को वेद मनः स्त्रिया इति गिरा कथां प्रियां भीषयै-
 स्तस्यास्तत्त्वणकातरेत्तणपरिस्पृष्टो हरिः पातु वः
 ॥ १२ ॥ आनन्दधामनि धिदेकरदेऽद्वितीये तस्मिन्प-
 देऽस्तु मम चित्तमगोचरेऽपि । यत्सद्भ्रजस्यितित्तुपां
 सुहृदां कुमारादीनामधोनमिच गोचरतामुपैति ॥ १३ ॥

आनन्दमादधतमायतलोचनानामानीलमायनितकन्धर-
 मात्तर्वशम् । आपादमामुकुटमाकलितामूर्त्ताधमाकार-
 माकलयताममुमान्तरद्वः ॥ १४ ॥ आनन्देन यशोदया
 समदनं गोपाङ्गनाभिश्चिरं साशङ्कं बलविधिपा सक्तुमुमं
 सिद्धैः पृथिव्याकुलम् । सेष्यै गोपकुमारकैः सकरुणं
 पौरैः सुरैः सस्मितं यो दृष्टः स पुनातु धो मधुरिपुः
 प्रोत्क्षिप्तगोवर्धनः ॥ १५ ॥ इन्द्रीवरदत्ताश्यामामिन्दिरा-
 नन्दकन्दलम् । वन्दारुजनमन्दारं वन्देऽहं यदुनन्दनम्
 ॥ १६ ॥ उत्कृष्णमानसरसीरुहवारमध्यनिर्धन्मधुव्रतभ-
 रद्यतिद्वारिणीभिः । राधाविलोचनकटाक्षपम्परभि-
 द्रष्टो हरिस्तव सुपानि तनोतु कामम् ॥ १७ ॥ अंसा-
 लम्बितचामकुरडलधरं मन्दोन्नतभ्रूलतं किञ्चित्कुञ्चित-
 कोमलाधरपुटं साचिप्रसारीक्षणम् । आलोलानुलिप-
 ल्लवैर्मुर्लिकामापूरयन्तं मुदा मूले कल्पनरोत्रिभङ्ग-
 ललितं ध्याये जगन्मोहनम् ॥ १८ ॥ कठिनतरदामवेप-

सूतको सँजोने-सँभालनेका परिश्रम ही करना पदा ॥ १ ॥
 दियाई न पड़नेवाले तथा माया-जालसे परे रहनेवाले निर्गुण
 ब्रह्मकी उपासना करके कोई अपनेको भले ही कृतकृत्य समझकर
 धन्य हो जायँ पर हम तो उन तिरछे लड़े हुए श्रीकृष्णकी
 कर्माँकी दृशनसे उत्पन्न हुए आनन्दकी मस्तीमें ही
 अपनेको धन्य समझते हैं ॥ १० ॥ राधाके प्रिय और कैटभके
 शत्रु वे श्रीकृष्णजी आपके मुख पहुँचाने जिन्होंने खेल-रोलमें
 ही कुञ्जमें द्विपकर सिहके समान ऐसा भयङ्कर घुरघुर शब्द किया
 कि साथके सब ग्वालवाल ऐसा कहकर डरके मारे एकके पीछे
 एक होकर उस कुञ्जकी ओर चल पड़े 'यहाँ कुञ्ज आइट ही रही
 है, घायु भी नहीं बहता, अवरय ही कोई इस कुञ्जमें होगा,
 चलो, देखें, कौन है !' ॥ ११ ॥ 'तुम्हारे नेत्र लाल हैं, स्तन
 ऊपर-नीचे हो रहे हैं, साँस नहीं धम रही है और मुँहपर
 पसीनेकी धँदँ निकल आई है, कुञ्ज समझ में नहीं आता
 क्या कारण है ! विश्कार है ! खोके मनकी बात कौन जान

वालकोंके वशमें हों ॥ १३ ॥ बड़े-बड़े नेत्रमाली स्त्रियाँ
 आनन्द देनेवाले, श्याम रङ्गवाले, सुके हुए गोल थौर ऊँचे
 कन्धवाले, श्रेष्ठ वंशमें उत्पन्न तथा सिरसे पीरतक अमृतके डरके
 समान जान पड़नेवाले श्रीकृष्णजी इस लोगोंके हृदयके भीतर
 आकर अपना रूप दिखायें ॥ १४ ॥ मधु रावलकां मारनेवाले
 वे कृष्ण भगवान् आपको पवित्र करें जिन्हें गोवर्धन पर्वत
 उठाते समय यशोदाने आनन्दसे, गोपियोंने वाम-भासे,
 कंसने शङ्कित होकर, सिद्धोंने फूल बरसाकर, प्रथिवोंने व्याकुल
 होकर, ग्वालमालोंने हँप्याके साथ, गौवयालोंने व्यापूरंर
 और देवताओंने सुस्काराहटके साथ देना था ॥ १५ ॥
 नीले कमलकी पँखुड़ीके समान श्याम रङ्गमालं, लक्ष्मीजीका
 आनन्द अव्यधिक बढ़ानेवाले तथा यदुःप्रियोंमें आनन्द
 देनेवाले उन श्रीकृष्णको प्रणाम करता हूँ जो मन्दाई दृष्ट्या पूर्ण
 करनेके लिये मानो करपृष्ट हैं ॥ १६ ॥ वे दृष्णनी आपकी
 इच्छाएँ पूर्ण करें और आपकां मय हैं जिन्हे राधाजी अपनी

नलेखासन्देशदायिनो यस्य । राजन्ति वलिधिमङ्गाः स
पातु दामोदरे भवतः ॥ १९ ॥ करटालिङ्गनमङ्गलं घन-
कुचाभोगोपभोगोत्सवं श्रोणीसङ्गमसौभगञ्च सततं
मदप्रेयसीनां पुरः । प्राप्तुं कोऽयमितोर्ष्यैव यमुनाकूले
वलाघः स्वयं गोपीनामहरदुकूलनिचयं कृण्वः स
पुष्पातु नः ॥ २० ॥ कनककलशस्थच्छेद राधापयोधर-
मुण्डले नवजलधरश्यामाताम्बद्यति प्रतिविम्बिताम् ।
अस्तिस्वित्प्रान्तध्रान्त्या मुहुर्मुहुर्कृत्स्नपञ्जयति जनि-
तवीडाहासप्रियाहसितो हरिः ॥ २१ ॥ कपोले पत्राली
पुलफिनि विधातुं व्यधसितः स्वयं धीराधायाः करक-
लितवर्षिर्मधुरिपुः । अम्बुद्वक्त्रेन्दौ यत्रिद्वितनयनः
कम्पितभुजसन्देवत्सामर्थ्यं तदभिनवरूपस्य जयति
॥ २२ ॥ कस्तूरीतिलकं ललाटपटले वक्षःस्थले कौस्तु-
भं नासाभ्रे धरमौक्तिकं करतले वेणुं करे कङ्कणम् ।

सर्वाङ्गे हरिचन्दनं सुललितं करटे च मुक्तावलीं विभ्र-
त्स्त्रीपरिवेष्टितो विजयते गोपालचूडामणिः ॥ २३ ॥
कस्त्यं कृष्णमवेष्टि मां किमिह ते मममन्दिराशङ्कया युक्तं
तद्ववनीतभाजनपुटे न्यस्तः किमर्थं करः । कर्तुं तत्र
पिपीलिकापनयनं सुताः किमुद्दोषिता याला घस्रगति
धिवेकमिति सञ्जल्पन्हरिः पातु वतः ॥ २४ ॥ कान्ते
धिलासिति कलाघति पद्मनेत्रे नित्यं त्वयि प्रियतमे
रमते मनो मे । इत्थं भवन्तमुकभावनया वदन्तं श्री-
कृष्ण मां बुधजना अप्रि हा हसन्ति ॥ २५ ॥ कालिन्दी-
पुलिनेदरेषु मुसली यावद्वतः क्रीडितुं तावत्कर्तुरिका-
पयः पिव हरे वर्धिष्यते ते शिखा । इत्थं बालतया
प्रतारणपराः श्रुत्वा यशोदागिरः पायाद्गः स्वशिखां
स्पृशन्प्रमुदितः क्षीरेऽर्धर्षति हरिः ॥ २६ ॥ कालिन्ध्याः
पुलिनेषु केलिकर्तापतामुत्सृज्य रासे रसं गच्छन्तोमनु-

नीचेके कोमल श्रोत्रको कुङ्कु सिकोड़ लिया है और जो सारे
संसारको मोहित किए हुए हैं ॥ १९ ॥ वे दामोदर भगवान्
आपकी रक्षा करें जिनके पेटपर शोभित होनेवाली श्रिवलीको
देखकर यह भ्रम होने लगा है कि रस्सीसे कसकर बाँधे
जानेके कारण उसकी ही तीन साँठें पड़ गई हैं ॥ १९ ॥ 'मेरी
प्यारी गोपियोंको गले लगानेका सुख, उनके पुष्ट स्तनोंके
उपभोगका आनन्द और उनके नितम्ब भागसे सयोग करनेका
सौभाग्य मेरे रहते कौन पाना चाहता है' इस प्रकारकी
ईर्ष्यासे ही मानो जिसने यमुनाके तीरपर बलपूर्वक गोपियोंके
बच सुराप हों वे कृष्णजी हमारा पालन करें ॥ २० ॥
संनिके कलाशिके समान कान्तिवाले राधाके स्तनोंपर पड़ती हुई
नये मेघोंके समान श्याम रङ्गवाली अपनी परछाईको भ्रमते
काली साड़ीका शॉचल समझकर उसे बार-बार हटानेका प्रयत्न
करते हुए उन कृष्ण भगवान्की जय हों जिन्हें देखकर लजाती
और हँसती हुई राधा उनकी खिल्ली उड़ा रही हैं ॥ २१ ॥
उस निराले चित्रकारके रूपवाले श्रीकृष्णजीकी उस कलाकी
जय हो कि राधाजीके पुलकित गालोंपर चित्रकारी करनेके लिये
गँधी हाथमें मुलिका लेकर तैयार हुए कि उनके सामने पहुँचते
ही वे एकटक होकर चित्रकारी भूलकर उनका कमल जैसा
मुँह ताकने लगे और उनके हाथ बाँधने लगे ॥ २२ ॥ गोपियोंसे
धिरे हुए तथा न्वालोंमें चूड़ामणिके समान उन कृष्णजीकी
जय हो जो अपने बाँड़े माथेपर कस्तूरीका तिलक,
घातीपर कौस्तुभ मणि, भाकके मधनेमें मोतीका बेसर,

हाथमें बंशी, गलेमें मोतियोंकी माला, हाथमें कङ्कन तथा
सारी देहमें हरिचन्दनके लेपसे सुशोभित हैं ॥ २३ ॥ कोई
गोपी अपने घर आकर दही चुराते हुए कृष्णसे बहती
है—'तुम कौन हो ?' कृष्णजी बोले—'मैं कृष्ण हूँ,'
गोपी—'तुम यहाँ कैसे आ पहुँचे ?' कृष्ण—'मैं धोखेसे अपना
घर समझकर चला आया।' गोपी—'ठीक है, पर इस मक्खनकी
मटकीमें क्या हाथ डाला ?' कृष्ण—'उसमें चाँदियों पड़ी हुई
थी, उन्हींको हटा रहा था।' गोपी—'अच्छा, तो तुमने सोते
हुए बालकोंको क्या जगाया ?' कृष्ण—'बच्चे सब जाने वहाँ
चले गए होंगे, उन्हें हँदनेके लिये ही मैंने हँदें जगाया है।'
इस प्रकार गोपीसे बातें करनेवाले कृष्णजी आपकी रक्षा करें
॥ २४ ॥ हे श्रीकृष्णजी ! यद्यपि मैं शुद्ध भावनासे ही आपसे
बहती हूँ कि 'अन्यन्त सुन्दर, विलासी, चतुर, कमलके समान
नेत्रवाले और श्रयन्त प्रिय आपमें ही मेरा मन सदा रमता
है,' तथापि लेद है कि बड़े-बड़े बुद्धिमान् लोग भी यह
तुनकर मेरी हँसी उड़ाते हैं ॥ २५ ॥ वे कृष्णजी आपकी रक्षा
करें जिनसे मैंने खिलवाड़के लिये जैसे ही कहा कि 'कृष्ण !
जबतक बलराम यमुना किनारे खेलने गए हैं तबतक तुम
बपरी गायका दूध पी लो तो तुम्हारी चोटो बढ जायगी,'
जैसे ही वे उस गायका दूध पीने लगे और आधा दूध
पीकर तत्काल ही चोटो छुकर देखने लगे कि बढ़ी या
नहीं ॥ २६ ॥ यमुनाके तीरपर खेल-खेलमें रुठी हुई,
आँसू बहाती हुई तथा रास छोड़कर जाती हुई राधाके पीछे-

गच्छतोऽश्रुकलुषो फंसद्विषो राधिकाम् । तत्पादप्रति-
मानिवेशितपदस्योद्भूतरोमोद्भूतेरक्षुण्णोऽनुनयः प्रसन्न-
द्वयितादृश्य पुष्पातु वः ॥ २७ ॥ कासि त्वं वद चौर-
कारिणि कुतः फस्त्वं पुरो यामिकः किं द्रूपे मुषितं
सुघर्णफलशौ भूपस्य केन त्वया । कुत्र स्तः प्रकटौ तवा-
ञ्जलतदे कुभ्रेति तत्पश्यतामित्युक्ते धृतवल्लवीकुचयु-
गस्त्वां पातु पीताम्बरः ॥ २८ ॥ किं विश्राम्यसि कृष्ण
भोगिभवने भाएडोरभूमीरुहि आतयांसि न दृष्टिगोच-
रमितः सानन्दनन्दास्पदम् । राधाया वचनं तदध्वग-
मुखास्रन्दान्तिके गोपतो गोविन्दस्य जयन्ति सायमति-
धिप्राशस्त्यगर्भा गिरः ॥ २९ ॥ किं युक्तं यत मामनन्य-
मनसां वक्षःस्थलस्यायिनां भकामप्यघधूय कर्तुमधुना
कान्तासहस्रं तव । इत्युक्त्वा फणभ्रुकफणामणितानां

स्वामेव मत्या तनुं निद्राच्छेदकरं हरेरवतु धो लक्ष्या
विलज्जस्मितम् ॥ ३० ॥ कुञ्जिताधर्युटेन पूरयन्त्र-
शिकां प्रचलदङ्गुलिभ्रमः । मोहयश्चिखिलयामलोचनाः
पातु कोऽपि नयनीरदृच्छविः ॥ ३१ ॥ कृष्ण त्वं नयया-
वनोऽसि चपलाः प्रायेण गोपाद्भनाः फंसो भूपतिर-
प्यजनालमुदुलप्रीवा वयं गोदुहः । तयाचैऽञ्जलिना भव-
न्तमधुना वृन्दावधं मद्भिना मा यासीरिति नन्दगोपव-
चसा नत्रो हरिः पातु वः ॥ ३२ ॥ कृष्ण त्वं पठ किं
पठामि नतुरे शास्त्रं किमु द्रापते तत्त्वं कस्य विभोः स
फस्त्रिभुवनाधीशश्च तेनापि किम् । धानं भक्तिरयो
चिरकिरनया किं मुक्तिरेवास्तु ते दध्यादीनि भजामि
मानुस्त्वितं वाक्यं हरेः पातु वः ॥ ३३ ॥ कृष्णेनाम्य
गतेन रन्तुमसकृन्मृद्वक्षिता स्वेच्छया सत्यं कृष्ण क

पीठे उन्हें मनानेके लिये चले हुए कृष्णजी उनके न लौटनेपर
उनकी प्रतिमाके चरणमें ही अपना चरण उलकाकर
(रासका सुप्त प्राप्त करते हुए) रोमाञ्जित हो गए ।
कंसके शत्रु कृष्णका वह शनोखा मनायन आपका पालन करे
जिससे राधाजी तत्काल प्रसन्न होकर उन्हें देपने लगीं
॥ २७ ॥ किसी गोपीको देपकर कृष्णजीने सहसा उससे
पूछा—'ऐ चोरी करनेवाली ! तू कौन है ? कहाँ रहती है ?'
गोपीने पड़ा—'तुम कौन हो ?' कृष्ण—'मैं नगर-रक्षक हूँ ।'
गोपी—'क्या बात है ?' कृष्ण—'राजाके दो सौनेके कलश
चोरी गए हैं ।' गोपी—'किसने चुराए ?' कृष्ण—'तुने और
किसने !' गोपी—'मेरे पास कहाँ है ?' कृष्ण—'सामने ही तो
तेरे आँचलके भीतर दिखाई दे रहे हैं ।' इस बातको सुनकर जैसे
ही उसने यह कहकर अपना आँचल उधाड़ा कि 'देख लो,
कहाँ हैं, वैसे ही उसके दोनों स्तन पकड़कर, 'यही सौ
हैं' कहनेवाले पीताम्बरधारी कृष्णजी आपकी रक्षा करें
॥ २८ ॥ नन्द बाबाके घर रातको अतिथिके रूपमें टिकनेवाले
किसी व्यक्तिने आकर कृष्णसे राधाका मन्देश कहा—
'कृष्ण ! सौंपके घर इस भाएडोर नामक वट-वृक्षके तले
क्यों धूमते हो । सन्ध्या हो गई है । शानन्दसे अपने (नन्दके)
घर क्यों नहीं चले जाते जो यहाँसे दिखाई पड़ रहा है ।'
इस बातको मन्दकीके आगे छिपानेके लिये उन्होंने उस
समय उस अतिथिके जो हृदर-उपरकी चापलूसीकी बातें कीं,
उनकी जय हो ॥ २९ ॥ उन लपमोतीकी चरंग-भरी
सुस्कार आपकी रक्षा करे जिन्होंने शेषनागके फयोंमें अपनी

ही परछाईं देकर यह कहकर विष्णुजीकी मीढ़ उचाट दी थी
कि 'आपमें ही मन लगाए रहनेवाली, आपकी छातीपर लेटी
रहनेवाली मुझ भक्ताको छोड़कर क्या आपका सहलों छियाँ
रख लेना अच्छा है ?' ॥ ३० ॥ नये मेयोंके समान श्याम
रङ्गवाला वह कोई रक्षा करे जो अँगलियाँ नचा-नचाकर, अपने
नीचेके श्रोतको सिंकोड़कर, वंशों बजाते हुए सब बर्क
चितवनवाली छियाँको मोहित कर रहा है ॥ ३१ ॥ 'हे
कृष्ण ! तुम्हारी नई अवस्था है और गोपियाँ प्रायः सभी चञ्चल
(डौंठ) हैं, यहाँका राजा कंस बड़ा दुष्ट है और हम सब ग्वालोकें
गले कमलकी डण्डीके समान कोमल हैं, अतः मैं इस समय हाथ
जोड़कर तुमसे भील मोगता हूँ कि तुम मेरे जिना वृन्दावन मत
जाया करो ।' नन्दजीकी ऐसी बातें सुनकर सहसा जानेवाले
कृष्णजी आपकी रक्षा करें ॥ ३२ ॥ यशोदाने कृष्णसे कहा—
'कृष्ण ! तुम ऊँच पढ़ा करो !' कृष्ण बोले—'हाँ, क्या पढ़ें ?
यशोदा—'अरे, शाख पढ़, और क्या पढ़ेगा !' कृष्ण—'शरत्र
पढ़नेसे क्या ज्ञान होगा ? यशोदा—'बेटा ! उससे तत्वका ज्ञान
होगा ।' कृष्ण—'किस तत्वका ? यशोदा—'अरे, परमात्माके
तत्वका ।' कृष्ण—'वह परमात्मा कौन है ?' यशोदा—'बेटा,
वह तीनों लोकोंका स्वामी है ।' कृष्ण—'तो उससे क्या लाभ
होगा ?' यशोदा—'अरे, ज्ञान होगा, भक्ति होगी और वैराग्य
होगा ?' कृष्ण—'फिर, इनसे क्या लाभ होगा ?' यशोदा—
'इन्हें जाननेसे मुक्ति मिलेगी ।' कृष्ण—'मिला करे मुक्ति, मैं
तो तुम्हारे घरका दही, दूध आदि ही खाया करूँगा ।' इस
प्रकारकी यशोदा और कृष्णकी बातचीत आपकी रक्षा करे

पवमाह मुसली मिथ्याम्य पश्याननम् । व्यादेहीति
विकासिते च यदने दृष्टा समस्तं जगन्माता यस्य
जगाम विस्मयपदं पायात्स वः श्रीपतिः ॥३४॥ कृष्णो
गोरसर्चात्मम्य कुरुते किं कृष्ण मातः सुरापानं न
प्रकरोमि राम किमिदं नाहं परस्त्रीरतः । किं गोविन्द
वदत्यसो हलधरो मिथ्येति तां व्याहरन्गोपीगोपकद-
म्यकं विहसयन्मुग्धो मुकुन्दोऽवतु ॥ ३५ ॥ केयं भाग्य-
वती तवोरसि मर्षां द्रुपेऽप्रवर्षां विना कृत्वास्याः प्रथमं
विना क सहजो वर्षां मण्येस्तादृशः । स्त्रीरूपं कथमस्य
लिङ्गनियमात्पृच्छामि बध्वाकृतिं मुग्धे त्वत्प्रतिविम्ब-
मित्यपलपनाद्यां हरिः पातु धः ॥ ३६ ॥ कोऽयं द्वारि
हरिः प्रयाह्युपवनं शाखासृगस्यात्र किं कृष्णोऽहं दयिते
विभेमि सुतरां कृष्णादहं वानरात् । राधेऽहं मधुसूदने

प्रज लतां तामेव पुष्पान्वितामित्थं निर्वचनीकृतो
दयितया हीर्यो हरिः पातु धः ॥३७॥ कोन्तेयस्य सहा-
यतां करुणया गत्वा विनीतात्मनो येनोल्लङ्घितसत्पथः
कुरुपतिश्चक्रे कृताभ्नातिथिः । त्रैलोक्यस्थितिसूत्रधार-
तिलको देवः सदा सम्पदे साधुनामसुराधिनाथमथगः
स्ताहैवकीनन्दनः ॥ ३८ ॥ कंसं धंसयते मुरं तिर-
यते हंसं तथा हिंसते धारुं क्षीणयते धकं लघयते
पौरुहं तथा लुम्पते । भौमं क्षामयते वलाद्बलभिदो दुर्षं
परकुर्वते क्लिष्टं श्लिष्टगणं प्रखम्भयते कृष्णाय तुभ्यं
नमः ॥ ३९ ॥ कयासि पलु चोरिके प्रमुपितं स्फुटं
दृश्यते द्वितीयमिह मामकं यदसि कन्दुकं कञ्चके ।
त्यजेति नवगोपिकाकुचयुगं प्रमथन्वलाहसत्पुलकप-
ञ्जरो जयति गोकुले केशवः ॥ ४० ॥ खिन्नोऽसि मुञ्च

॥ ३३ ॥ बलभद्रने यशोदासे कृष्णकी चुगली करते हुए कहा—
देख माँ ! कृष्ण खेलने गया था, वहाँ इसने बार-बार जान-
बूझकर मिठीं छाई है । यशोदाने कृष्णसे पूछा—क्यों कृष्ण यह
वात सच है ? कृष्ण—कौन कहता है माँ ! यशोदा—यही
बलभद्र तो कह रहा है । कृष्ण—यह झूठ कह रहा है माँ ! तुम
मेरा मुँह देख लो न ! यशोदा—अच्छा खोल अपना मुँह !
ऐसा सुनकर मुँह खोलते ही जिसके मुँहमें सारा संसार देखकर
यशोदा थारचर्य-व्यक्त रह गईं वे लक्ष्मीपति भगवान् कृष्ण
आपकी रचा करें ॥ ३४ ॥ बलभद्रने यशोदासे चुगली की—
माँ ! कृष्ण दूध चुराया करता है । यशोदाने कृष्णसे पूछा—
क्यों रे कृष्ण ? कृष्ण—माँ ! मैं इसकी भाँति मदिरा नहीं पीता ।
यशोदाने बलभद्रसे पूछा—क्यों राम ! यह क्या बात है ?
बलभद्रने कृष्णकी शीर उँगली उठाकर कहा—मैं दूसरोंकी
छियाँमें नहीं फँसा रहता । यशोदाने कृष्णसे कहा—
क्यों कृष्ण ? यह राम क्या कह रहा है ! बलभद्र झूठ कह रहे
हैं ? यह कहकर सारे ग्वाल-बालोंको हँसाते हुए कृष्णजी रचा
करें ॥ ३५ ॥ राधाने कृष्णसे पूछा—तुम्हारे हृदयमें यह कौन
भागवती पैठी है ? कृष्ण—यह मण्ठी है । राधा—क्या उस
(रमणी) का पहला अक्षर (र) छोड़कर कह रहे हो ? कृष्ण—
मण्ठीके पहले आनेवाले 'र' से अधिक सरल, स्वाभाविक अक्षर
श्रीर हो ही क्या सकता है ? राधा—इसका स्त्री-रूप क्यों है ?
कृष्ण—यह मन्द तो ग्रीलिह है ही । राधा—मैं पूछती हूँ—
यह मण्ठी स्त्री-जैसी क्यों दिखाई पड़ रही है ? कृष्ण—प्रिये ! यह
तो तुम्हारी परदाईं इसपर पड़ रही है । इस प्रकारकी

बातोंसे राधाको ब्रकते हुए कृष्ण आपकी रचा करें ॥ ३६ ॥
राधाने पूछा—द्वारपर कौन है ? कृष्ण—मैं हूँ हरि । राधा—
तो वनमें जाओ, यहाँ हरि (बन्दर) का क्या काम है ?
कृष्ण—प्रिये ! मैं कृष्ण हूँ । राधा—काले बन्दरसे तो मैं श्री
भी अधिक डरती हूँ । कृष्ण—राधे ! मैं मधुसूदन (झूल
चूसनेवाला) हूँ । राधा—तो किसी फूली हुईं लतापर जानर बैठो ।
इस प्रकार अपनी प्रेमिकाको उत्तर न दे सकनेके कारण लजाए हुए
कृष्णजी आपकी रचा करें ॥३७॥ तीनों लोकोंके श्रेष्ठ सबालक,
असुरोंके स्वामी तथा कसकी मारनेवाले वे देवकीके पुत्र कृष्णजी
सम्भनोंको ऐश्वर्य दे जिन्होंने दयाके मारे अत्यन्त सुशाल
(उद्धत) भीमकी सहायता करते हुए श्रेष्ठ मार्ग छोड़कर
चलनेवाले (अन्ध्यायी) क्रुशंशके स्वामी दुर्गंधनको
बलना डाला ॥ ३८ ॥ कंसका नाश करनेवाले, सुर राक्षसोंकी
मिटा डालनेवाले, हँसासुरकी हिंसा करनेवाले, बाघासुरको
मार डालने वाले, यकासुरका प्राय हर लेनेवाले, पौरुहको काट
डालनेवाले, भीमसुरको धूलमें मिला देनेवाले, इन्द्रका धमस्य
बलपूर्वक चूर करनेवाले तथा विपत्तिमें पड़े हुए श्रीर प्रणाम करते
हुए सुशालि भक्तोंकी रचा करनेवाले हे कृष्ण ! आपकी प्रणाम है
॥३९॥ 'शरी चाँदी ! मेरी दुशारी गेद चुराकर खोलोंमें छिपाए
कहाँ भागी जा रही है । यह देख सामने सो दिसाई दे रही है,
रख दे मेरी गेद ' ऐसा कहकर बलपूर्वक गोकुलमें नई गोपीके
दोनों स्तन मसलकर रोमाञ्चित होनेवाले कृष्ण भगवानकी
जय हो ॥४०॥ ग्वालबालोंने गोवर्धन धारण किए हुए कृष्णजीसे
कहा—'हे कृष्ण ! आप थक गए होंगे; लाइए इस पर्वतको

शैलं विभ्रमो घयमिति वदन्तु शिथिलमुजः । भरमुन्-
चिनतवाहुषु गोपेषु हसन्ह्रिर्जयति ॥ ४१ ॥ गच्छा-
म्यच्युत दर्शनेन भयतः किं वृत्तिरुपघते किन्त्येवं
विजनस्थयोर्हृतजनः सम्भावयत्यन्यथा । इत्यामन्त्रशम-
क्षिसूचितवृथाप्रस्थानपेदालसामाश्लिष्यन्पुलकाङ्कुरा-
श्चितवपुर्गोपां हरिः पातु वः ॥ ४२ ॥ गायन्तीनां गोप-
सीमन्तिनीनां स्फोताकाङ्क्षामशिरोलम्बमालाम् । निध्या-
ञ्जल्यामालम्बयन्त्रारविन्दे कुर्धन्तव्याद्देवकीनन्दनो वः
॥ ४३ ॥ गीतायैणवमन्द्रगानमधुराः सम्भावयन्निर्भर-
स्वेदाम्बुष्ठापितं धिलोक्य पुरतो राधामुष्णाम्भोरुहम् ।
उत्कम्पस्वलदङ्गलिः परिगलद्वेषु निर्मिलध्वनिः स्थिर-
त्पायिरपाकरोतु डुरितं गोपालवेषो हरिः ॥ ४४ ॥
गोपीलोचनयुग्मगोतधसतिगांपालगोष्ठीरतगौरत्ताधृ-
तगोपेषपद्मशिरो गोवर्द्धनागोद्धरः । गोलोकाधिपतिः
खगोत्तमरथो गोत्रासमुद्धाररुद्रोचिन्दोऽधतु गोकुला-

हतरसो गोपालगोत्रोद्धरः ॥ ४५ ॥ गोवर्धनोद्धर-
णहृद्यसमस्तगोपनान्स्तुतिश्रयगलजितमानसस्य ।
स्मृत्वा वराहवपुरिन्दुकलाप्रकाशदंष्ट्राङ्कितनिति हरेर-
यतु स्मितं वः ॥ ४६ ॥ चण्डचाण्डोर्दोर्दण्डमण्डलो-
रण्डमण्डितम् । श्रव्याहो बालवेषस्य धिष्णोर्गोपतनो-
र्घुषुः ॥ ४७ ॥ जयश्रीधिन्त्यन्मर्हीहित इय मन्दापकुसुमैः
स्वयं सिन्दूरेण द्विपरपमुदा मुद्रित इय । मुजापीड-
क्रीडाहृतकुचलयापीडफरिणः प्रकीर्णाधुग्विन्दुर्जयति
मुजदण्डो मुरजितः ॥ ४८ ॥ तप्तं फेनं तपोभिः
फलितं तद्रोपयालानाम् । लोचनयुगले शसामङ्गनमा-
सीन्निरञ्जनं ब्रह्म ॥ ४९ ॥ तिर्थैरगण्डधिलोत्तर्मांलिनर-
लोत्तंसस्य वंशोच्चरद्गीतस्थानहनावधानलललालल्लैर्न
संलक्षिताः । सम्मुग्धं मधुसूदनम्य मधुरे राधामुनेन्द्रं
मृदुस्पन्दं पल्लविताश्चिरं ददतु वः क्षेमं फटाक्षामर्थः
॥ ५० ॥ त्वाममाय मयि स्वयंवरपरे क्षीरोदतीरोदरे

ह्यार दीजिष, हम उठाए लिए लेते हैं । उनके पैसा कहनेपर
ज्योंही कृष्णने ध्रपना हाथ बाँला किया त्योंही भालबालोंके
हाथ पर्वतके बोमसे द्यने लगे, उस समय उन्हें देखकर हँस
पड़नेवाले कृष्णजीकी जय हाँ ॥ ४१ ॥ एकान्तमें उदासीन
भावसे बैठे हुए कृष्णके पास बैठी हुई गोंगी यह कहकर जैसे ही
जानेका ढोंग रचती हुई चलने लगी कि 'हे अच्युत ! मैं यहाँसे
जाती हूँ । तुम्हारे देरते रहने-मात्रसे क्या लाभ है, वरन् दुष्ट
लोग बुद्धका बुद्ध समझ बैठते हैं,' जैसे ही दुग्नी होती हुई उस
गोपीरत्ना शालिङ्गन वरके रोमाञ्जित होनेवाले कृष्णजी आपकी
रक्षा करें ॥ ४२ ॥ गान्ती हुई गोपिकायोंके चारुसे भरे नेत्र-
रूपी मौराँकी पाँत जिनके मुखकमलपर स्थिर हो गई है
वे देवकीके पुत्र कृष्णजी आपकी रक्षा करें ॥ ४३ ॥ वंशीयने
मन्द्र तानका मधुर गीत गाकर उसका ध्यानन्द लेते हुए,
गोपाल वेषमाले वे कृष्ण पाए नष्ट करें जिनकी उँगलियाँ तानने
राधाका मुन पसीने-पसीने हुआ देरते ही, कपक इपर-
उपर पड़ने लगीं, वंशी हाथमें छूटने लगीं, ध्वनि मन्द्र पद गई
और हाथोंमें पसीना छूटने लगप ॥ ४४ ॥ गोपियोंके नेत्रोंकी
धुलिलियोंमें धसनेवाले, भाल-बालोंको समासे प्रेम रखनेवाले,
गोवर्धकी रक्षाके लिये सुन्दर ग्वालका वेष बनानेवाले,
गोवर्धन पर्यंत धारण करनेवाले, गण्डकी सजावटीके, गोंशीकी
विपत्ति दूर करनेवाले, ग्वालबालोंके प्रेमभा आदर करनेवाले
तथा गोपालगोत्रमें उत्पन्न होनेवाले, गोलोक (वैकुण्ठ) के

स्वामी रक्षा करें ॥ ४५ ॥ गोवर्धन पर्वतके उठनेमें मगन
हो उठनेवाले, ग्वालकों प्रशंसा मुनकर सजाने हुए तथा ध्रपने
वराह ध्रतारके समय चण्डमार्की कलाके सभान धमकने हुए
दाँवमें टूट्याँके उठानेका स्मरण करते हुए भगवन्की मुन्कराहट
आपकी रक्षा करें ॥ ४६ ॥ ग्वालके बालकका रूप धारण करनेवाले
भगवान् कृष्णकी वह देह आपकी रक्षा करें जो अत्यन्त बलिष्ठ
तथा भयङ्कर चारुकी बाँहें तोड़कर उनके उड़ते घ्राण करके
शंभित हो रही थीं ॥ ४७ ॥ खेल-नेलमें ही कुचलयापीड
हाथोंको ध्रपनी मुजाओंमें मसलकर मार डालनेवाले तथा
मुर राजसको पीतनेवाले भगवान् कृष्णके उस भुजदण्डकी वय
हो जिसमें लटकते हुए रूपवृचके पूल ऐसे जान पड़ते हैं मानों
जीत जानेपर जयमालामें उसकी पूजा की गई हो तथा उसपर
द्विदृक्कर मदी रत्नकी वृद्धिमें जान पड़ती है मानों हाथोंमें बुद्ध
करनेकी प्रसवतामें सिन्दूरसे उसपर चित्रकारी की गई हो
॥ ४८ ॥ जैसे तो बटुतोंने तपस्या की है पर वषट्काका फल
उन गोपियोंको ही मिला है जिनके नेत्रोंमें उस निरञ्जन ब्रह्म
श्रीकृष्णका स्थान रूप ऐसा बस गया है जैसे नेत्रोंमें काजल
लग जाता है ॥ ४९ ॥ श्रीराधाके मधुर चन्द्रधुमनर विकसित
होकर मन्द्र-मन्द्र, लगातार, एकटक पड़ती हुई भगवान् श्रीकृष्णकी
वह तिरछीं चितवन थापको ऐश्वर्य दे जिये तिरछीं गर्दन करके
मुकुट हिला-हिलाकर वंगी बजाते हुए कृष्णकी वंशी-ध्वनि
मुननेमें दूयी हुई गोपिनी देव ही नहीं पाई ॥ ५० ॥ 'हे

शङ्खे सुन्दरि कालकूटमपिवन्मूढो मृडानीपतिः । इत्थं
 पूर्वकथाभिरन्यमनसो विचित्रिय वासोऽञ्चलं राधायाः
 स्तनकोरकोपरिलसन्नेत्रो हरिः पातु वः ॥ ५१ ॥ त्वां
 पातु नीलनलनीदलदामकान्तेः कृष्णस्य पाणिसरसो-
 वदकोशवन्धः । राधाकपोलमकरीलिखनेयु योऽयं कर्णा-
 वत्सकमलं विपुलीचकार ॥ ५२ ॥ दर्पणापितमालोक्य
 मायास्त्रीरूपमात्मनः । आत्मन्येवानुरक्तो वः शिवं
 दिशतु केशवः ॥ ५३ ॥ दूरं यातु भुजङ्गपुङ्गवपतिः पेयं
 दिनेशात्मजातोयं चास्तु खलमसङ्गवशतो मोच्या च
 निर्दूषणा । इत्थं पातितकन्दुकोद्धृतिक्ते मोल्कूर्ध्वं
 नीपाद्भ्रतान्चृत्यन्दुर्दमभोगिर्मूर्धसु मुदे वेणुं स मे वाद-
 यन् ॥ ५४ ॥ दृढागामेभ्यति विमुः स्वयमित्यमन्दान-
 न्दाशया न गणिता विपदो दुरन्ताः । पीयूषसागरतरङ्ग-
 निमैरपाह्नैः श्रोतन्दन्दनन्दन द्योदय नन्दयास्मान् ॥ ५५ ॥

दृष्टः कापि स केशवो प्रजवधूमादाय काञ्चिद्व्रतः सर्वा
 पव हि वञ्चिताः खलु वयं सोऽन्वेपरीयो यदि । द्वे द्वे
 गच्छत इत्युदीर्य सहसा राधां गृहीत्वा करे गोपीवे-
 पधरो निकुञ्जमघनप्राप्तो हरिः पातु वः ॥ ५६ ॥ दृष्टया
 केशव गोपरागद्वृतया किञ्चिन्न दृष्टं मया तेनात्र स्त-
 लितास्मि नाथ पतितां किं नाम नालम्बसे । एकस्यं
 विपमेयु खिन्नमनसां सर्वावलानां गतिगोर्व्येवं गदितः
 सलेशमवताद्गोष्ठे हरिर्वञ्चिरम् ॥ ५७ ॥ देवः पायात्प-
 यसि विमले यामुने मज्जतीनां याचन्तीनामनुनयपदै-
 र्वञ्चितान्यंशुकानि । लज्जालोलैरलसवलितैरग्नमपत्प-
 ञ्चवाणैर्गोपलीखान्यनकुसुमैरञ्चितः केशवो नः ॥ ५८ ॥
 देवः पायादपायान् स्मरेन्दीवरलोकनः । संसारस्व-
 सविष्यंसहसंरक्षसनिपूदनः ॥ ५९ ॥ देहि मत्कन्दुकं
 राधे परिधाननिगृह्णितम् । इति विष्णुसयन्तीर्वा तस्याः

सुन्दरी राधे ! जान पड़ता है श्रीरसमुद्रके तीरपर स्वयंवरमें
 जब तूम मुझे बरनेका निश्चय कर चुकीं तब तुम्हें न पा सकनेके
 कारण ही दुःखके सारे पार्वतीके स्वामी शिवजीने कालकूट
 विप पी लिया था । इस प्रकार पहलेकी बीती हुई कथापर
 मन लगाई हुई राधाका थोचल उचाड़कर उसके स्तनोंके
 अग्रभागपर दृष्टि गड़ाए हुए कृष्णजी आपकी रचा
 करें ॥ ५१ ॥ नीली कमलिनिकी पैँखड़ीके समान रयाम
 रङ्गवाले कृष्णजीका वह कमलके कोशके समान हाथ आपकी
 रचा करे जिससे राधाकी कनपटीपर चित्रकारी करते समय
 उसके कानपर लगे कमलके भूपणकी सुन्दरता और भी बढ़
 गई थी ॥ ५२ ॥ दर्पणमें अपने वनावाटा स्त्रीरूपकी परछाईं
 देखकर उसीपर मोहित हो जानेवाले कृष्णजी आप लोगोंको
 सुख दे ॥ ५३ ॥ 'वह सर्पराज कहीं दूर चला जाय और सूर्य-
 पुत्री यमुनाका जल पीने योग्य हो जाय तथा वह निर्दोष यमुना
 दुष्टके साथसे छूट जाय', ऐसा सोचकर ही अपनी गंद
 फेंककर फिर उसे ले आनेके बहाने कदम्बके धृष्टसे कूदकर
 अत्यन्त भयङ्कर नागके सिरपर सुरली बजा-बजाकर नाचते हुए
 कृष्णजी मुझे सुख दे ॥ ५४ ॥ 'वे व्यापक भगवान् आप
 ही कृपा करके दर्शन देंगे' इस बड़े भारी सुखकी आशामें
 यद्दी-यद्दी दुखवाड़े विपत्तियोंकी भी मैंने कुछ नहीं समझा
 (किन्तु अचरम आपका दर्शन न हुआ) अतः नन्दको सुख
 देनेवाले हे दयालौ ! धय तो आप अश्रुत-सिन्धुकी सरङ्गके
 समान सुखदाईं अपनी सिरिड़ी चितवनसे देखकर हमें आनन्द

दीजिए ॥ ५५ ॥ 'उस कृष्णको किसिने देखा है ? वह किसी
 गोपीको लेकर न जाने कहीं चला गया ? उसने तो हग सबको
 धका दिया । उसे ढूँढना ही तो चलो, दो-दो मिलकर उसे यहाँ-
 वहाँ ढूँढा जाय । गोपीका घेरा धारण करके सब गोपियोंसे ऐसा
 कहकर स्वयं राधाका हाथ पकड़कर एक कुञ्जमें घुस जानेवाले
 कृष्णजी आपकी रचा करें ॥ ५६ ॥ 'हे कृष्ण ! गोष्ठीके सुरोंसे उड़ी
 हुई धूलके कारण मुझे कुछ दिवाई नहीं पड़ा, इसीसे मैं यहाँ
 गिर पड़ी । हे नाथ ! विपत्तिके समय सब दुखी स्त्रियोंके आप
 ही तो पूव-भात्र रक्षक हैं । मुझ गिरी हुईको आप सहारा क्यों
 नहीं देते !' अथवा 'हे केशव ! आपके प्रेममें अन्धी होनेसे मुझे
 कुछ भी नहीं सूझता, इसीसे मैं इस प्रकार पतित हो गई हूँ ।
 हे नाथ ! कानके वाणोंसे कट पाती हुई सब स्त्रियोंके एकमात्र
 आप ही तो रक्षक हैं, फिर आप मुझ पतिताको क्यों नहीं
 लँभालते ?' गौष्ठीके स्थानमें इस प्रकार किसी गोपीसे ऐसी बातें
 सुननेवाले श्रीकृष्णजी सदा भली-भाँति आपकी रचा करें ॥ ५७ ॥
 वे कृष्ण भगवान् हमारी रचा करें जिनसे यमुनाके निर्मल
 जलमें स्नान करता हुई गोपियों प्रार्थना करता हुई, अपने हाथके
 कारण चञ्चल, थालससे मुझे हुए तथा कानके कारण खिजे हुए
 फूलोंके समान नेत्रोंसे भरनेके डककी पूजा करती हुई अपने बुएए
 हुए वक्ष भौंगती हैं ॥ ५८ ॥ पिछले हुए लाल कमलके समान
 नेत्रवाले तथा कंसका नाग करनेवाले वे कृष्ण भगवान् सदा
 हमारी रचा करें जो संसाररूपी घना अँधेरा नष्ट करनेके लिये
 सूर्य हैं ॥ ५९ ॥ 'राधे ! अपने बस्त्रोंमें छिपाई हुई मेरी गंद

कृष्णो मुदेऽस्तु नः ॥ ६० ॥ दैत्यं परासुमपि निर्दहदु-
 श्रमेकं बालं स्वभक्तममृतैरिव सिञ्चदन्त्यत् । आभ्यास-
 यत्सुरगणानपरं भयात्तान्नेत्रध्रयं नरहरेर्दिशतात्सुग-
 नः ॥ ६१ ॥ नामोदस्ताखिलामो दमनियमयुजां
 यः प्रकामोदवाहृश्यामो दर्पात्प्रधामोदयमिलितयशो-
 धारया मोदते यः । वामोदन्यासदामोदरतरलहृशां
 दत्त-कामोदयो यः सामोदः श्रीललामो दलयत दुरितं
 सोऽत्र दामोदरो वः ॥ ६२ ॥ नीतन्नवनघनीतं किय-
 दिति पृष्टो यशोदया कृष्णः । इयदिति गुरुजनसंसदि
 करधृतराधापयोधरः पातु ॥ ६३ ॥ नीलाम्बोदहृकोश-
 कोमलतनुं स्मेराननं मालिनं सुस्निग्धं दधतं दुकूलयु-
 गलं वाचैभवस्यास्पदम् । स्वीयानामुदितामृतेन हृदयं
 सन्तर्पयन्तं सतां राधाकेलिकयासु सन्ततरतं श्रीकृष्ण-
 चन्द्रं नुमः ॥ ६४ ॥ नूतनजलधररुचये गोपवधूटीदुकूल-
 चोराय । तस्मै कृष्णाय नमः संसारमहीरुहस्य योजाय

॥ ६५ ॥ पद्मे त्वन्नयनं स्मरामि सततं मावो भवत्यु-
 न्तले नीले मुद्यति किं करोमि महितैः प्रीतोऽस्मि ते
 विभ्रमैः । इत्युत्सवप्रचो निशुष्य सदया निर्भस्मितो
 राधया कृष्णस्तपस्मेय तद्व्यथपदिशन्नीडाचिटः पातु
 वः ॥ ६६ ॥ पातु घो जलदश्यामाः शार्ङ्गस्याचातक-
 र्कशाः । शैलोन्यमण्डपस्तम्भाश्चत्वारो हरिवाहवः
 ॥ ६७ ॥ पीठे पीठनिपण्णवालकगले तिट्णस गोपालको
 यन्त्रान्तःस्थितदुग्धभाण्डमवभियाच्छाद्य घण्टारचम् ।
 यन्त्रोपान्तकृताञ्जलिः कृतशिरःकम्पं पियन्मः पयः
 पायादागतगोपिकानयनयोगैरहृषकृन्कारकृन् ॥ ६८ ॥
 पुञ्जीभूतं प्रेम गोपाङ्गनानां मूर्च्छीभूतं भागधेयं यदु-
 नाम् । एकीभूतं गुतचित्तं श्रुतीनां श्यामोभूतं ब्रह्म म
 सन्निधत्ताम् ॥ ६९ ॥ प्रातर्नालनिचोलमच्युतमुरःमं
 वीतपोतांशुकं राधायाश्चकितं विलोम्य हसति स्वैरं
 सखीमण्डले । व्रीडाचञ्चलमञ्जलं नयनयोपधाय राधा-

दो । १) ऐसा कहकर उनकी धोतीकी गाँठ खोल देनेवाले कृष्ण हमें
 सुख दें ॥ ६० ॥ नृसिंह-नेत्रपथारी भगवान् कृष्णके वे तीनों नेत्र हमें
 सुख दें जिनमेंसे एक नेत्रने तीक्ष्ण होकर भयहृदय दैत्यको जला
 डाला, एक नेत्रने अपने भक्त बालक प्रह्लादको मानो अमृतसे सींच
 दिया और एक नेत्रने ढरे हुए देवताओंको धीरज दिया ॥ ६१ ॥
 निनका नाम लेते ही इन्द्रियोंको वशमें रखनेवालों तथा नियमसे
 रहनेवालोंकी दरिद्रता भाग जाती है, जो अपने पराक्रमसे बढ़े
 हुए तेजसे मिली यशकी धारासे मानो प्रसन्न रहते हैं, जिन्हें
 देयते ही प्रसन्न तथा चञ्चल नेत्रवाली कामिनियोंमें कामके
 भाव उत्पन्न हो जाते हैं ऐमे मेघोंके समान श्याम वर्णवाले
 तथा सदा प्रसन्न रहनेवाले लक्ष्मीके सहित परम सुन्दर विष्णु
 आपके पाप नष्ट करें ॥ ६२ ॥ जैसे ही यशोदाने पूजा कि
 'कृष्ण ! तुमने टटका मक्खन कितना लिया है ?' वैसे ही सब
 बढ़े-बूढ़ोंके सामने अपने हाथसे राधाका स्तन पकड़कर
 'इतना लिया है' बतानेवाले कृष्ण रत्ना करें ॥ ६३ ॥ नील
 कमलके कोशके समान कोमल देहवाले, प्रसन्न मुँहवाले,
 वनमालाधारी, स्नेह-भरे, हुएडा और पीताम्बर धारण करनेवाले,
 उत्तम वायुके भण्डार, राधाकी क्रीडाकी बातोंमें सदा मग्न
 रहनेवाले और अपने मित्रों एवं भक्तोंके हृदयको (समुद्रसे
 निकले) अमृतसे सन्तुष्ट करनेवाले श्रीकृष्णजीको हम प्रणाम
 करते हैं ॥ ६४ ॥ नये मेघोंकी-सी कानिवाले और गोपियोंके
 वक्ष सुरानेवाले उन कृष्णकी नमस्कार है जो इस सारे संसार-

रूपी वृक्षके बीज हैं ॥ ६५ ॥ 'हे कमलवदनी ! मैं यदा ही तुम्हारे
 नेत्रोंका स्मरण करता रहता हूँ, तुम्हारे हुँघराले काले बालोंमें
 मेरा चित्त उलझा रहता है और तुम्हारे सुन्दर हाव-भावपर तो
 मैं बिना मोल विक गया हूँ' ऐसा स्वप्नमें वरते हुए वे चतुर
 खेलाड़ी कृष्ण आपकी रत्ना करें जिन्होंने राधाके क्रींचित होकर
 ढँडेपर तुरन्त ही कह दिया कि 'राधे ! यह सब तुममे
 ही तो कह रहा था,' ॥ ६६ ॥ बादलोंकेसे रत्नवाली विष्णुकी
 वे चारों भुजाएँ आपकी रत्ना करें जो गहरे घनुपकी ढोरी
 खींचनेसे कड़ी हो गई हैं और जो त्रैलोक्य-रूपी मण्डपके
 चार स्तम्भ हैं ॥ ६७ ॥ अद्वैतके वे बालक रत्ना करें जो पीठपर
 चढ़े हुए गजालवालोंके कर्णपर चढ़कर झीकेंमें रत्नी दूधकी
 मटकी फोड़कर सिर हिला-हिलाकर अञ्जलिमें दूध पी रहे हैं,
 उस झीकेंमें बँधे घण्टेको बजनेसे रोके हुए हैं और जो 'कृ-' करके
 उसका समय आई हुई गोपीके मुँहपर अपने मुँहमें भरा दूध
 छोड़ रहे हैं ॥ ६८ ॥ श्याम रहनेवाले वे मद्र मुग्धे
 अपने पास रत्नों जो ऐमे जान पड़ते हैं मानो गोपियोंके
 प्रेमके ढेर हों या ग्वालोंका सुन्दर भाग्य ही मूर्ति धारण
 करके आ गया हो अथवा वेदोंका रहस्य ही इकट्ठा होकर
 प्रत्यक्ष हो गया हो ॥ ६९ ॥ प्रातःकाल नीले वस्त्र पहने हुए
 श्रीकृष्णकी और पीले वस्त्रोंसे लिपटा राधाका वक्षस्व
 देखकर जब सखियों चकित होकर हैंसने लगीं तब लाजके
 मारे चञ्चल तिरछी चितवनमे राधाका मुँह और नेत्र देखकर

नते म्नादुस्मेसुयोऽयमस्तु जगदानन्दाय नन्दात्मजः
 ॥ ७० ॥ प्रीतिं वस्तुतः हरिः कुवलयपीडनं सार्धं
 रणे राधापीतपयोधरस्मरणकृन्मुग्धेन सम्भेदयान् ।
 पत्रे विभ्यति मीलति क्षणमपि क्षिप्रं तदालोकना-
 द्यामोहेन जितञ्जितञ्जितमभूद्यालोलकोलाहलः ॥ ७१ ॥
 प्रीतिस्तथास्ति मधुपेण विष्टेण चरैरेण्यथापि हन्त
 यदि दुर्जनं नो जहासि । गोपीविष्टे च मधुपे नवनीत-
 चारे तां क्वापि धामनि वधानं धृत्वावधानः ॥ ७२ ॥
 वलिनोऽपि वलान्निहत्य मल्लान्ननु मध्ये यदुवीरवृ-
 न्दमद्वा । चिनिगृह्य कचेपु कंसमेव प्रजवालैर्विहरन्
 मुदेऽस्तु कृष्णः ॥ ७३ ॥ भक्तान्क्षन्मलानिग्नन्विर-
 क्तानुद्धरन्भवात् । अथमथ ददहीनाब्धुरणं मे चतु-
 र्भुजः ॥ ७४ ॥ भुजप्रभादण्ड इवोर्ध्वगामी स पातु यः
 कंसरिपोः कृपाणः । यः पाञ्चजन्यप्रतिविम्बमद्भूथा
 धारामसः फेनमिव व्यनक्ति ॥ ७५ ॥ मकरीविरचन-

मद्भूथा राधाकुचकलशपीडनव्यसनी । ऋजुमपि रेखां
 लुम्पन्वल्लवधेपो हरिर्जयति ॥ ७६ ॥ मदमयमदमयदुरगं
 यमुनामवतीर्य वीर्यशाली यः । मम रतिममरतिरस्कृ-
 तिशमनपरः स क्रियाकृष्णः ॥ ७७ ॥ मातः किं यदु-
 नाथ देहि चपकं किं तेन पातुं पयस्तन्नास्त्यथ कदास्ति
 तन्निशि निशा का वान्धकारोदये । आमील्याक्षियुगं
 निशाप्युपगता देहीति मातुः पुनर्वह्नोऽजामरकर्णशोध-
 तकरः कृष्णः स पुण्यातु नः ॥ ७८ ॥ मातस्तर्णकर-
 णाय यमुनाकच्छं न गच्छाम्यहं कस्माद्वत्स पिनष्टि
 पीवरकुचद्वन्द्वेन गोपीजनः । भ्रुसंशचिनिवारितोऽपि
 वहुशो जल्पन्यशोदाग्रतो गोपीपाणिसरोजमुद्रितमुषो
 गोपीपति पातु सः ॥ ७९ ॥ मामेकमेव शरणं प्रज मा
 स्म शोचीरित्यर्जुनञ्जिनदियोः परमस्य पुंसः । तत्का
 लजातकरुणोद्गतगद्गदत्वह्रस्वाक्षर जयति मा शुच
 इत्यसौ वाक् ॥ ८० ॥ मालावर्हमनोद्भक्तुलभरं वन्यप्र-

मुकरा उदनेवाले नन्दके पुत्र कृष्ण संसारको सुख दें ॥ ७० ॥
 उस कुवलयपीड हार्थीको युद्धमें मार डालनेवाले कृष्ण भगवान्
 आपको सुख दे जिसका गण्डस्थल देकर उन्हे राधाके
 स्तनोका स्मरण हो गया था और जिसके डरकर भागते समय
 घबराकर देखते ही 'जीत गए, जीत गए, जीत गए', ऐसा
 हल्का मच गया ॥ ७१ ॥ हे दुर्जन मनुष्य । यदि तू मधु पीनेवालों,
 लम्पटों या चोरोंकी ही सद्गति करना चाहता है और तू अथ
 भी उनका प्रेम नहीं छोडता तो गोपियोंमें लगपट, मधु पीनेवाले
 तथा मन्खन चुरानेवाले उन किसी तेजस्वी शक्ति कृष्णसे क्यों
 नहीं मन लगाता ॥ ७२ ॥ वे कृष्णजी आनन्द दें जिन्होंने सब
 वीर यदुवशियोंके देरते-देरते बड़े-बड़े मरलोंको मार डाला और
 जो कसके बाल पकड़कर उसे मारकर ग्यालवालोंके साथ रेलने
 लगे ॥ ७३ ॥ भक्तोंकी रचा करनेवाले, दुर्जनोंको मारनेवाले,
 देरते-देरते सत्सर-सागरसे पार करनेवाले, दीनोंको अभयदान
 देनेवाले तथा चार भुजावाले भगवान् कृष्णकी शरणमें हूँ ॥ ७४ ॥
 कसके शत्रु श्रीकृष्णकी वह ऊपर उठती हुई तलवार आपकी
 रचा करे जो उनकी भुजाओंकी कान्तिसे जान पड़ती हुई
 पाञ्चजन्य शङ्खके परछाईं-रूपी जलकी धारामें तैरते हुए फेनकी
 भौंति शोभित होती है ॥ ७५ ॥ गोपवेषधारी उन कृष्णजीकी
 जय हो जो राधाके स्तनोंपर चित्रकारी करते हुए उन्हें अधिक
 देरतक दयाते रहनेकी इच्छासे सीधी रेलको भी दया दयाकर
 मिटा देते हैं ॥ ७६ ॥ देवताओंके शपमानका बदला लेनेवाले वे

पराक्रमशाली कृष्ण मुझसे प्रेम करें जिन्होंने यमुनामें घुसकर
 मतवाले नागका दमन कर डाला था ॥ ७७ ॥ श्रीकृष्णने यशोदाको
 पुकारा—मैं ! यशोदा बोली—क्या है यदुवशके स्वामी !
 श्रीकृष्ण—मैं ! पानपात्र दे । यशोदा—उसे ! क्या करोगे ?
 श्रीकृष्ण—दूध पीना है । यशोदा—यह अभी नहीं मिलेगा ।
 कृष्ण—कय मिलेगा ? यशोदा—रत्रिमें । कृष्ण—रत्रि कय
 होगी ? यशोदा—जय शौंघरा हो जायगा । यशोदाके ऐसा कहते
 ही शौंघरे बन्द करके 'अब तो रात हो गई मैं ! अब दे', ऐसा
 कहते हुए मँका धाँचल खींचनेको हाथ धड़ाए हुए कृष्णजी
 हमारा पालन करें ॥ ७८ ॥ कृष्णने यशोदासे कहा—मैं ! मैं
 अथ वज्रके चरानेके लिये यमुना किनारे नहीं जाऊँगा । मैंने
 पछा—क्यों बेटा ! वे बोले—'मैं ! गोपियोंं मुझे अपने बड़े-बड़े
 स्तनोंसे दवा डालती है ।' यह सुनते ही पासमें खड़ी हुई
 गोपीने कृष्णको हाथसे लुप रहनेका सङ्केत किया पर जब वे न
 माने और यशोदाके सामने कहते ही चले गए तो गोपीने
 जिन कृष्णके शौंघर हाथ रखकर उनकी बोली बन्द कर दी, वे
 गोपीपति कृष्ण आपकी रचा करें ॥ ७९ ॥ 'हे अर्जुन ! शोच न करो,
 एक मेरी ही शरणमें आ जाओ', ऐसा अर्जुनसे कहना चाहते
 हुए हरन्त ही दयासे गद्गद कण्ठ हो जानेके फारख घड़ी कठिनतासे
 उन परम पुरप भगवान्के मुँहसे निकल पाई हुई—'शोच न
 करो' इस बोलीकी जय हो ॥ ८० ॥ सुन्दर मारपट्टने सजें
 केशवाले, वनमाला धारण करनेवाले, कस्तूरी और अग

मनोक्षितां शैलेयागुरुसकचित्रतिलकां शश्वन्मनोहारिणीम् । लीलावेगुरवामृतेकरसिकां लाघयलक्ष्मीमयीं बालतमालनीलवपुषं वन्दे परं देवताम् ॥ ८१ ॥ मीमांसार्षयसोमं लसदकं तर्कपन्नस्य । वेदान्तविपिनसिंहं वन्दे गोविन्दस्ताभिधं ब्रह्म ॥ ८२ ॥ भेषैर्भदुरमभ्वरं वनभुवः श्यामास्तमालद्रुमैर्नक्तं भीकरयं त्वमेव तदिदं राधे गृहं प्रापय । इत्थं नन्दनिदेशतश्चलितयोः प्रत्यघ्वकुञ्जद्रुमं राधामाधवयोर्ययन्ति यमुनाकूले रहःकेलयः ॥ ८३ ॥ मौली केकिश्रिखण्डिनी मधुरिमाधाराधरे वंशिनी पीनांस वनमालिनी हृदि हस्तकारुण्यकल्लोलिनी । श्रेयसां पीतडुकूलिनी चरणयोर्व्यत्यस्तविन्यासिनी लीला काचन मोहिनी विजयते वृन्दावनायासिनी ॥ ८४ ॥ यत्किञ्चिदस्ति विगुणं विरसं विरुषं तद्वस्तु मोः कृतधियः स्वदत्ता भवद्भयः । लोकोत्तरा-

खिलगुणं मथुरालयं यत्समिन्नितान्तरुचिरे रुचिरन्तु नस्तु ॥ ८५ ॥ यामिन्यां परिवृत्तिभाजि चरिते चाराय वृन्दे गवां गोपानाञ्च विषाणवेणुतुमुलघ्वानि समुत्सपीति । गाढालिङ्गितराधिकाभुजलतावल्गस्य कंसद्विपो यातुं स्थातुमनीश्वरस्य मनसो दोलायितं पातु यः ॥ ८६ ॥ यावन्निरञ्जनमजं पुरुषं जरन्तं सञ्चिन्तयामि सकले जगति स्फुरन्तम् । तावद्ब्रह्मास्फुरति हन्त हृदन्तरे मे गोपस्य कोऽपि शिशुरञ्जनपुञ्जमङ्गुः ॥ ८७ ॥ यां दृष्ट्वा यमुनापिपासुरनिशं व्यूहो गवां गाहते विद्युत्सानिति नीलकण्ठनिबहो यां द्रुपुमुत्कण्ठते । उत्तसाय तमालपल्लयमितिच्छिन्दन्ति यां गोपिकाः कान्तिः कालियशासनस्य वपुषः सा पावनी पातु यः ॥ ८८ ॥ राधामधुसूदनयोरनुदिनमुपवीयमानस्य । प्रणयतरोरिव कुसुमं मियोऽयलोकस्मितं पायात् ॥ ८९ ॥

मिलारु रङ्गविरजा तिलक लगानेवाले, सदा मन हरनेवाले, गेल-नेलमें ही बॉसुरी बजाकर अमृतके समान मधुर स्वर निशालनेवाले, अश्वधिक लाघयवाले तथा तमालके छोटेमे वृक्षके समान श्याम रङ्गवाले बालरूप सवमे बड़े देवता (कृष्ण) को प्रणाम करता हूँ ॥ ८१ ॥ गोविन्द नामवाले उन ब्रह्मको प्रणाम करता हूँ जो मीमांसारूपी समुद्रको प्रसन्न करनेके लिये चन्द्र, न्यायरूपी कमलको विकसित करनेके लिये सुन्दर सूर्य और वेदान्तरूपी वनके मिह हूँ ॥ ८२ ॥ कृष्णको साथ लेकर कहीं जाते हुए नन्दजीको मार्गमें राधा मिल गईं । कृष्ण और राधा दोनों एकान्तमें गेलना चाहते थे अतः भगवान्ने तल्लाल अपनी मायासे आकाशमें मेवाँकी पुँसी घटाएँ द्वा दी कि रात हुई जान पड़ने लगी और नन्दजीने राधासे ही कहा कि 'राधे ! आकाशमें यादल द्वा गए हैं, तमालके इन काले-काले पृष्णोंसे जङ्गली मार्ग और भी श्रेयिधारे जान पड़ने लगे हैं, रात हो गई है और यह (कृष्ण) यदा दरपोक है । अतः तुम ही इत्से अपने साथ घरतर पहुँचाती जाओ ।' नन्दजीको यह आज्ञा पाकर लुञ्जोंमें होकर यमुना तटकी ओर चले हुए राधा और कृष्णकी एकान्तकी श्रीदाश्रीनी जय हो ॥ ८३ ॥ वृन्दावनमें निवास करनेवाली उस मनमोहनी भानुवतीलाक्ष्मी जय हो । जिसके लिये भगवान्ने मस्तकपर मौरपहुँ लगाए हैं, गौरार्धन पर्वतपर मधुर वंशी बजाई, मोंटे-मोंटे कर्णोपर वनमाता लटकाई, हृदयमें कदव्यासी नदी लहराई, कमरमें पीताम्बर पहाराया तथा वे पैर तिरपै रगकर रखे हुए ॥ ८४ ॥ हे गोदी शुद्धिवालो ! इस संसारमें जो भी गुरे रूप,

रस, और गुणवाली वस्तुएँ हों उनका आप लोग ही स्वाद लें । हम तो चाहते हैं कि संसारमें सबसे अधिक उत्तम गुणवाले और श्रव्यन्त सुन्दर मथुरा-निवासी कृष्णमें ही हमारा प्रेम रहे ॥ ८५ ॥ बुद्ध रात्रि शेष रहते ही जब गीर्षे वृष्टर चरनेके लिये उमुक्त हो उठीं और बाहर ग्वाल-बालोंके सिँगों और वंशियोंका तीव्र बोलाहल होने लगा, उस समय कसनर राधाका आलिङ्गन किए हुए तथा उसकी भुजलताओंमें बँधे हुए कृष्णजी यह दुविधा आपकी रचा करे जिसके कारण न तो वे उठकर जा ही मन्ते धे, न सो ही सक्ते थे ॥ ८६ ॥ 'खेद है कि जैमे ही मैं निविचार, अज्ञान्मा, अपने प्राप प्रकाशवान् और सारे संसारमें चमकते हुए उस पुरपरा चिन्तन करता हूँ, वैमे ही बलपूर्वक मेरे हृदयमें काजलकी पिण्डोंके समान सुन्दर कोट गोपका बालक चमचमाने लगता है ॥ ८७ ॥ कालिय नागपर शासन करनेवाले भगवान् कृष्णके देहकी वह पवित्र कान्ति आपकी रचा करे जिसे यमुनाका जल समझकर उसे पीना चाहती हुई गीर्षे सदा घेरे रहती हैं, जिसे विजलीमरा मेघ समझकर मोर देपनेको छुटपटाते रहते हैं तथा गोपियों जिसे तमालके पत्ते समझकर गहना बनानेके लिये मोचनी रहती हैं ॥ ८८ ॥ आपसमें एक दूसरेकी ओर देखते हुए राधा और कृष्णकी यह सुम्कराट रचा करे जो ऐसी जान पड़ती है मानो उन दोनोंके क्रममे बड़े हुए प्रेमरूपी वृक्षका पुष्प हो ॥ ८९ ॥ देवकीको आनन्दित करनेवाले तथा पृथ्वीका भार उतारनेमें समर्थ के कृष्ण सदा तुम्हारी रचा करें जो राधाके

राधासुधसुधारविन्दमधुपखलौक्यमौलिस्थितोनेपथ्यो-
 वितनीलरत्नमवनीभारायतारत्नमः । स्वच्छन्दमजसुन्द-
 रीजनमनस्तोपप्रदोपश्चिरं कंसध्वंसनधूमकेतुरवतु त्वां
 देवकीनन्दनः ॥ ६० ॥ राधामोहनमन्दिरं जिगमिपोश्च-
 न्द्रावलीमन्दिराद्राधे जेममिति प्रियस्य वचनं श्रुत्वाह
 चन्द्रावली । जेमं कंस ततः प्रियः प्रमुदितः कंसः क
 रप्रस्तवया राधा क्वेति तयोः प्रसन्नमनसोर्हसोहमः
 पातु व ॥ ६१ ॥ रामो नाम वभूव हुं तद्वला सीतेति हुं
 तो पितुर्वाचा पञ्चधटीवने निवसतस्तामाहरद्रावणः ।
 कृष्णेनेति पुरातनीं निजकथामाकर्ण्य माचेरितां सौमित्रे
 क धनुर्धनुर्धनुरिति प्रोक्ता गिरः पान्तु वः ॥ ६२ ॥
 रासोहासभरेण विभ्रमधृतामाभीरवामध्रुवामभ्यर्णै
 परिरेभ्य निर्भरमुदः प्रेमान्धया राधया । साधु त्वद्वदनं
 सुधामयमिति व्याहृत्य गीतस्तुतिव्याजातुद्वन्द्वभ्रुवितः

स्मितमनोहारी हरिः पातु वः ॥ ६३ ॥ ललितगमना
 नार्यो राजन्मनोजनितान्तभाः सुरतिसदृशस्ताः सन्मु-
 ख्यो भवानपि तद्भूवे । वनभुवभ्रितो गेहादेको न गच्छतु
 मां विनेत्यसकृदुदितः पुत्रः पित्रा जयत्यनघो हरिः
 ॥ ६४ ॥ लुभ्यन्मवन्मधुरिमातुभवाय कृष्ण न प्राप्तुवंस्त-
 महमेव न वञ्चितोऽस्मि । श्रुत्याभमप्यशुचि मे नवनी
 तवुद्धया वेतो हरंस्त्वमपि वञ्चक वञ्चितोऽसि ॥ ६५ ॥
 वामांसस्थलशुम्बिकुरडलरचा जातोत्तरीयच्छुचि धंशी-
 गीतिभवद्विभङ्गवपुषं भ्रूलास्यलीलापरम् । किञ्चित्क-
 स्तशिखण्डेशेखरमतिखिग्धालिनीलालकं राधादिप्रम
 दाशतावृतमहं वन्दे किशोराकृतिम् ॥ ६६ ॥ विलिख्य
 सत्याकृचकुम्भसीक्षि पञ्चावलिन्यासमिमेण राधाम् ।
 लीलाखरविन्देन तया सरोपं पायाद्विष्टः कोऽप्यभिहन्त्य-
 मानः ॥ ६७ ॥ विहाय पीयूषरस मुनीश्वरा ममांघ्रि-
 रा

मुखमलला रस पीनेवाले भंरे हैं, जो त्रैलोक्यके सिरपर
 स्थित मुकुटमें जड़े हुए गीलमणि हैं, जो ब्रजकी रवतग्र
 सुन्दरियोंका मन सन्तुष्ट करनेके लिये रात्रि है और जो बसका
 नारा करनेके लिये धूमकेतु हैं ॥ ६० ॥ चन्द्रावलीके घरसे
 राधाके सुन्दर घरकी ओर जाना चाहते हुए कृष्णने चन्द्रावलीसे
 पूछा—‘राधे! सब इयाल तो है!’ चन्द्रावलीने अपने प्रियतमकी
 इस (विचित्र) बातको सुनकर उत्तर दिया—‘हाँ, कंस !
 सब कुशलता है !’ फिर प्रसन्न होकर कृष्णने जैसे ही पूछा—
 ‘तूने इसको कहाँ देखा ?’ वैसे ही चन्द्रावली बोल उठी—
 ‘आपने राधाको कहाँ देखा ?’ इस प्रकार आपसमें परिहास करते
 हुए उन दोनोंकी हँसी आपकी रचा करे ॥ ६१ ॥ यशोदाजी
 कृष्णको पुरानी कथा सुना रही थीं और कृष्ण हुँकारी भर रहे
 थे । यशोदा बोली—‘बेटा ! पुराने समयमें ‘राम’ नामके
 एक राजा थे । कृष्ण—हुँऽ । यशोदा—उनकी स्त्रीका नाम सीता
 था । कृष्ण—हुँऽ । यशोदा—वे दोनों पिताकी आज्ञा मानकर
 पञ्चधटीमें रहते थे, जहाँसे रावणने सीताको हर लिया ।
 कृष्ण—अरे लक्ष्मण ! धनुष कहाँ है ? धनुष ? धनुष ? इस
 प्रकार मौंसे कही हुईं अपनी पहले शवतारकी कथा सुनकर
 श्रावणमें कृष्णजीके मुँहमें निकले थे वचन आप लोगोंकी रचा
 करें ॥ ६२ ॥ अपनी मुसकानसे सत्रवा मन हरनेवाले वे कृष्ण
 आपकी रचा करें जिन्हें रासके परमानन्दसे भरी, प्रेममें अन्धी
 राधाने मदमाती गोपियोंके सामने ही छातीसे लगा लिया और
 ‘घापका भयनमय (अमृतके समान मधुर गीतोंसे भरा हुआ)

सुल बहुत ही सुन्दर है’ इस प्रकार प्रशंसा करते हुए जी भरकर
 उनका मुँह चूसा ॥ ६३ ॥ ‘बेटा ! (इस गाँवमें) सुन्दर चालवाली,
 कामकी मरतीसे श्रायधिक कान्तिवाली और रतिके समान
 सुन्दर मुखवाली किर्याँ अधिक हैं और तुम भी अत्यन्त मधुर
 गीत गाते हो, कामकी सुन्दरता भी तुम्हारे सामने कुछ नहीं
 है, कामक्रीडामें बड़े चतुर तथा रति करने योग्य हो, तुम्हारे
 जैसा कोई श्रेष्ठ (पुरुष) है ही नहीं, इसलिये मैं तुमसे कहता
 हूँ कि अकेले घरसे निकलकर बिना मुझे साथ लिए वृन्दावनकी
 ओर कभी न जाना ।’ इस प्रकार पिता (नन्दबाबा) से बार
 बार समझाए जाते हुए निष्पाप पुत्र श्रीकृष्णकी जय हो
 ॥ ६४ ॥ हे पूरंराज (कृष्ण) ! आपकी सुन्दरताका दर्शन
 पानेका लालच होते हुए भी जो मैं उसे न पा सका, इससे
 केवल मैं ही नहीं ठगा गया, वरन् पवित्रसे जान पड़नेवाले मेरे
 अपवित्र मनको मक्खन समझकर सुराते हुए आप भी ठगे ही
 गए ॥ ६५ ॥ तिरछे खड़े होकर और मौँहें नचा नचाकर कधी
 बजानेवाले, भौरोंके समान काले और श्रवणत चिकने केशवाले
 तथा राधा आदि सैकड़ों मतवाली किर्याँसे घिरे हुए उन किशोर
 श्वरराधावले कृष्णको प्रशान्न करता हूँ जिनके बाएँ कन्धेतक
 लटवते हुए कृष्णबलकी कान्ति तुपट्टेस्ती जान पड़ती है और
 जिनका मोसुकुट कुछ देहा-सा हो गया है ॥ ६६ ॥ विप्रवारीके
 बहाने सत्याके स्तनोपर राधाका चित्र बनावानेवाले वे कोई भूत
 (कृष्ण) रचा करें जिन्हें प्रेममें क्रोधित होकर सत्या हाथमें लिए
 हुए क्रीडाकमलसे ही भारने लगी थी ॥ ६७ ॥ ‘सय श्रेष्ठ मुनि

जीघर्षं पिबन्ति किम् । इति स्वपादाम्बुजपानकौतुकी
स गोपबालः श्रियमातनोतु वः ॥ ६८ ॥ चन्द्रारण्ये
चरन्ती चिभुरपि सततं भूर्बुधः स्वः सृजन्ती नन्दोद्ग-
ताप्यनादिः शिशुरपि निगमैर्लक्षिता वीक्षितापि ।
विद्युत्लेपाघनद्वोद्यमदमलमहाम्मोदसञ्छाद्यफाया मा-
या पायादपायादधिदितमहिमा कापि पैताम्बरी वः
॥ ६६ ॥ चन्द्रारण्ये तपनतयतीरव्यानीरकुले गुह्यन्म-
ञ्जुभ्रमरपटलीफाकलीनेलिभाजि । आमीराणां मधुरसुर-
लीनादसम्मोहितानां मध्ये क्रीडन्नयतु नियतं नन्दगो-
पालबालः ॥ १०० ॥ वृष्टिध्याकुलमोक्तुलावनरसादुद्भू-
त्य गोवर्धनं विश्रद्धलवचल्लमामिरधिकानन्दाच्चिर-
ञ्चुम्बितः । कन्दर्पेण तदपिताघरतटीसिन्दूरमुद्राङ्कितो
थाहुगुपतनोस्तनोतु भवतां श्रेयांसि फसद्विपः ॥ १०१ ॥
व्रजजनघनितामिहैर्मपुष्पमभाभिः सद्भजलद इयातश्च-
ञ्चलाभिः समन्ताद् । सपादि निविडतापोल्लासयान्ती

प्रवीणो मृगमदरमणीयो हन्तु दैन्यं दयातुः ॥ १०२ ॥
शत्रुबलक्षमणुयुतो दलितोऽग्रयन्वा गोवर्धनोद्भ-
रुत्कृन्धर्मलक्ष्याः । सम्पादितार्जुनशशाश्चतुराङ्गनिर्धः
श्रेयः प्रसुदिशत्रु कोऽपि मनुष्यमूर्तिः ॥ १०३ ॥
शरणं व्रजजनतायाः हरणं कंसादिदानधान्यवयायन्व ।
भरणं प्रणतकुलस्य प्रणये बल्लधीमनोहरणम् ॥ १०४ ॥
शिरश्छायां कृष्णः क्षणमहत राधाचरणयोर्मुजावल्लि-
च्छायाभिमयमपि तदीयप्रतिहृता । इति क्रीडाज्ञोपि
निभृतमुभयोऽप्यनुययप्रसादा जीयास्तामपि गुरसमर्चं
स्थितयतोः ॥ १०५ ॥ श्रीमद्रोपधधूस्यवग्रहपरिवृङ्खेपु
तुह्रस्वनध्यामदांश्रलितेऽपि चन्दनरजस्यङ्गे बहन्दीर-
मम् । कश्चिज्जागरजातरागनयनद्वन्द्वः प्रभाते श्रियं
विभ्रत्कामपि वेणुनादरसिको जात्रप्रणीः पातु वः
॥ १०६ ॥ श्रुतिमपरे स्मृतिमपरे भारतमपरे भजन्तु
भवभीताः । अहमिह नन्दं धन्दे यस्यालिन्दे परं

असूक्तको द्योदकर मेरे चरणकमलका रस क्यों पीते है ? देवों
तो इनमें क्या है ! यह सोचकर अपने चरणकमलको चूसनेकी
इच्छा करनेवाले बालक (कृष्ण) आपको प्रेरणार्थे ॥ ८॥
भूः, सुवः श्रार स्वः लोकाँको रचनेवाली वह कोई पीताम्बर-
धारिणी माया (कृष्ण) आप लोकाँकी सदा रचा करे जो सदा
व्यापक होकर भी वृन्दावनमें घूमती दिखाई पड़ती है, जिसे
देवोंने अनादि कहते हुए भी नन्दके बालके रूपमें देखा है, जो
विजलीसे भरकर मुके हुए बड़े-बड़े स्वच्छ मेवाँकी-मी कान्ठियाली
है और जिसकी महिमा कोई भी नहीं जानता ॥ ११ ॥ यमुनाके
किनारे मधुर गुञ्जार करके मँडराते हुए भौरोंवाले धानीरके
छुआमें बँगीकी ध्वनि सुनकर मोहित हुई गोपियोंके बीचमें
मिलकर खेलनेवाले तथा नन्दकी गीर्ण चरानेवाले बालक सदा
रचा करें ॥ १०० ॥ कंसको मारनेवाले कृष्णको वह सुजा
आपका कल्याण करे जिसने धनी बपोंमें गोकुलको बचानेकी
धुनमें जय गोवर्धन पर्वतको उठा लिया था गोपियों अत्यन्त
प्रसन्न होकर जिसे चूमने लगीं तथा कामके कारण उनके
अधर चिपकानेसे जिनमें सिन्दूरके चिह्न लग गए हैं ॥ १०१ ॥
एष भरमें सारे कष्ट नष्ट कर देनेमें चतुर तथा कस्तूरी लागानेसे
अत्यन्त सुन्दर पै देवातु कृष्ण शनता दूर करें जो हेमपुष्पके
समान कान्ठियाली व्रजकी छिमाँमें विरे ऐसे जान पड़ते हैं
मानो विजलियाँसे विरे हुए तालाल ही तपन मिटानेवाले मेघ
हैं ॥ १०२ ॥ शत्रुघ्न और कश्मणके साथ रहनेवाले, अति

कठोर धनुष तोड़नेवाले, पृथ्वीका विन्मार और उद्धार करनेवाले
धर्मपूर्वक मग्नतिमा उपार्जन करनेवाले, उज्ज्वल यश प्राप्त
करनेवाले तथा चार वेपोंवाले अथवा शत्रुविनाशक चिह्न
(चक्र, गदा आदि) धारण करनेवाले, उग्रधन्वाको मारनेवाले,
गोवर्धन पर्वतका उद्धार करनेवाले, युधिष्ठिरको सम्पत्ति देनेवाले,
अर्जुनका यश फैलानेवाले तथा सुन्दर आकृतिवाले वे कोट
मनुष्य रूपधारी इंद्रवर आपका कल्याण करें ॥ १०३ ॥ सारी
व्रज-जनताको शरण देनेवाले, कंस आदि दानवाँका कुलमहित
नाश करनेवाले, भक्ताँका पालन करनेवाले और गोपियोंका
मन हरनेवाले श्रीकृष्णको मैं मली भाँति प्रणाम करता हूँ
॥ १०४ ॥ खेल-नेनमें रुठी हुई राधाके पैरोंपर बैमे ही चपनर
कृष्णजीने अपने सिरकी छाया ढाली (पैरों पड़नेका भाव
दिखाया) वैमे ही राधाजीने प्रसन्न होन्व उनकी प्रदर्याहँपर
अपनी दोनों भुजाओंकी छाया कर दी (आलिङ्गन करनेका
भाव दिखाया) । इस प्रकार बड़े-बूढोंके बीच वैरे-वैरे ही
उन दोनोंके मनाने और प्रसन्न होनेकी जय गौं ॥ १०५ ॥
जारीके सुगंधिया, बँगीकी ध्वनिका रस लेनेवाले तथा रानभर
जागनेके कारण लाल-लाल नेत्र हो जानेमे एरु निराली शोभा
धारण किए हुए वे कृष्णजी आपकी रचा करें जिनकी द्वातीपर
वनपूर्वक गोपीका आलिङ्गन करते समय उसके मोटे-मोटे
रत्नोंकी रगड़से उनपर लगा धन्दुन गिर पड़नेपर भी चन्दनकी
सुगन्ध बग गई ॥ १०६ ॥ मले ही संभारने डरनेवाले लोग वैदों,

ब्रह्म ॥ १०७ ॥ स पातु वो यस्य हतावशेषास्ततुल्यव-
शाञ्जनरञ्जितेषु । लावण्ययुकेष्वपि विवशसन्ति दैत्याः
स्वकान्तानयनोत्पलेषु ॥ १०८ ॥ साकूतस्मितमाकुला-
कुलगलङ्गिमिलसुललासितभ्रवह्लोकमलीकदशितभुजा-
मूलार्धद्वष्टस्तनम् । गोपीनां निभृतं निरीक्ष्य ललितं
काञ्चिच्चिरञ्चिन्तयन्मन्तमुर्धमनोहरो हरतु वः क्लेशं
नवः केशवः ॥ १०९ ॥ सान्द्रानन्दपुरन्दरादिदिविपद्-
न्दैरमन्दावरादानम्रैर्मुकुन्दैर्नलीमणिभिः सन्दर्शिते-
न्द्वीवरम् । स्वच्छन्दं भकरन्दसुन्दरगलभमन्दाकिनीमि-
दुरं श्रीगोविन्दपदारविन्दमशुभस्कन्दाय वन्दामहे
॥ ११० ॥ सुपर्णः स्वर्णादौ रचितमणिष्टके जलधिजा-
मुषाम्भोजे भृङ्गो निगमविलसत्पञ्जरशुकः । त्रिलोकी-
कस्तूरीतिलकमनीयो ब्रजवधूविहारी श्रीकृष्णो दिशतु
भवतां शर्म सत्वतम् ॥ १११ ॥ संसक्तानिव पातु मौप-

निपदव्याहारमाध्वीरसानुष्णार्थं ब्रजसुन्दरीकुचतटी-
पाटीररेखनिव । उन्मीलनमुरलीनिनादवृत्तामोदोपली-
द्वद्वीजिह्वालीडमलीकवदलवशिथोः पादाभ्युजं पातु
घः ॥ ११२ ॥ स्तनन्धयन्तस्जजननीमुखार्जं विलोक्य
मन्दस्मितमुज्ज्वलाङ्गम् । स्पृशन्तमन्थं स्तनमद्गुलीभि-
र्धन्दे यशोदाङ्गत्वं मुकुन्दम् ॥ ११३ ॥ स्वमासादित-
दर्शनामनुनयन्प्राणेश्वरीमादरादंसेऽस्मिन्पतितेरपाङ्गव-
लितैर्यद्वोदधितोऽप्यध्रुभिः । प्रत्यास्यस्वमतो मया ननु
हरे कोऽयं क्रमव्यत्ययः पातु त्वां ब्रजयोपितेत्यभिहितं
लज्जाकरं शाङ्गिणः ॥ ११४ ॥ स्वामी मुग्धतरो वनं
धनमिदं चालाहमेकाकिनी ह्योषीमाकृणुते तमालमलिन-
च्छाया तमःसंहतिः । तन्मे सुन्दर कृष्ण मुञ्च सहसा
धत्तमिति गोप्या गिरः ध्रुत्वा तां परिरभ्य मन्मथकला-
सक्तो हरिः पातु घः ॥ ११५ ॥ हृदयं कोस्तुमोद्भासि

स्तुतियां (धर्मशास्त्र) या महाभारतको मानते रहें, पर मैं
तो उन नन्दजीको प्रथाम करता हूँ जिनके श्रोगनमें ही परब्रह्म
विराजमान हैं ॥ १०७ ॥ वे कृष्णजी रक्षा करें जिनके भारनेसे
बचे हुए देख्य थापनी छियांके परम सुन्दर कनकरमनयनमें आंज
हुए कृष्णजीके रत्नका अञ्जन देखकर डर जाते हैं ॥ १०८ ॥
वे सुन्दर नवयुवक कृष्ण आपके कट हर्से जो कहीं छिपकर
सुपचाप एकान्तमें बैठी गोपियांकी मुस्कराहट, फिलरे हुए केश,
तर्नी हुई आँदें, आँगुवाई-आँमाई लेते समय अथखुले स्तन और
हाव-भाव देखकर उनमेंसे किसी एकका देरतक चिन्तन करते
हुए भीतर ही भीतर प्रसन्न होते रहे ॥ १०९ ॥ पाप नष्ट करनेके
लिये श्रीगोविन्दके उस चरण-कमलको प्रणाम करते हैं जो उस
समय नीलकमलसे जान पड़ते हैं जब इन्द्र थादि सब देवताओंके
आमन्त्रित होकर अत्यन्त आदरपूर्वक इन्द्रनील मणि-जडित
सुकुट नाकर प्रणाम करते समय उनपर मणियांकी कान्ति
पड़ती है और जिनमें परागमे सुवासित जल बहावेवाली स्वच्छ
राज्ञा भरी हुई है ॥ ११० ॥ स्वर्णमय सुमेरु पर्वतके मणिजडित
शिलारपर सिन्धु-पुत्री लक्ष्मीके मुखकमलको आँरेके समान
चाहनेवाले, ब्रजकी गोपियाँसे विहार करनेवाले, वेदरूपी
पित्रर्द्धमें तोतेके समान शोभित होनेवाले तथा त्रिलोकीके
निलपतेके समान सुन्दर भगवान् वासुदेव (श्रीकृष्णजी)
आपको सदा प्रेरणें दें ॥ १११ ॥ गोप-बालक कृष्णजीका वह
चरणकमल आपका रक्षा करे जिसे उन्की धरतीकी चरणक गूँतली
हुई भ्रमि सुनवर अत्यधिक आनन्दसे विह्वल गौएँ, मानो

उसमें लिपटा हुआ उपनिषद्वाँका सूक्तिरूपी माध्वीरस (महुएसे
वनी सुरा) पीनेके लिये अथवा ब्रजकी सुन्दरी गोपियाँके
स्तनसे गिरकर उसमें लिपटी हुई चन्द्रन रज हटानेके लिये ही,
चाट रही हैं ॥ ११२ ॥ यशोदाकी गोदमें लेटकर दूध पीनेवाले,
माँका मुखकमल देख-देखकर मुस्करानेवाले, उँगलियाँसे दूसरा
स्तन छुनेवाले तथा उजली देहवाले बालक मुकुन्दको प्रणाम
करता हूँ ॥ ११३ ॥ 'मैंने थापको जगानेके लिये नेत्रके कोनोंसे
आपके कन्धेपर आँसू भी गिराए, पर थाप तो स्वप्नमें प्राप्त
हुई प्राणेश्वरीको ही आदरपूर्वक मनानेमें मग्न थे ! हे कृष्ण !
यह क्या गडबड है ? थय क्या थाप मेरे विरवासके योग्य रहे
गए हैं ?' इस प्रकार ब्रजकी गोपीने कृष्णको लजित करनेवाली
जो वाणी कही वह आपकी रक्षा करे ॥ ११४ ॥ 'हे सुन्दर
कृष्ण ! मेरा पति मुझे बहुत चाहता है (मुझे जल्दी
जाना चाहिए), यह वन बहुत घना है, एक तो मैं
नई-नवेली दूसरे अकेली हूँ, इन तमालोंकी काली-काली
छाया भी धरती ढँके लेती है और अन्धकार घना होता
जाता है अतः मुझे छोड़ दो (अर्थात् देर न करो)।' इस
प्रकार मार्गमें गोपीकी थात सुन्दर एकएक उसका आलिङ्गन
करके कामकला (रति) में लुट जानेवाले श्रीकृष्ण आपकी
रक्षा करें ॥ ११५ ॥ कौस्तुभ मणिकी कान्तिसे चमकता हुआ
श्रीकृष्णजीका वह हृदय आपका प्रेरणार्थ बड़ावे जाँ पूसा जान
पड़ता है मानो उसमें राधाको नू-सुप्तने देनेके लिये लक्ष्मी
वाला लगा दिया हो ॥ ११६ ॥ हे गोपबालक (कृष्ण) !

हरेः पुण्यातु वः श्रियम् । राधाप्रवेशरोधाय दत्तमुद्र-
मिव श्रिया ॥ ११६ ॥ हे गोपबालक भवानवलम्ब्य
लीलां चित्रेण नः किमिति हन्त ! तमोन्वकूपे । अस्यां
महाधिपदि सन्ततमर्दितान्स्वं पश्यन् कदा नु करणाम-
वलम्बितासे ॥ ११७ ॥ हे मुक्तिदेवि बहुजनमभिरप्यल-
भ्यामर्च्यापि गोपशिशुकस्य करं गतासि । पर्यस्य
चण्डमपि हन्त निरेद्य यस्मै क्रीणन्ति मङ्गं भवतीं वत
मिन्नवोऽपि ॥ ११८ ॥

देवकी—अध्यात्स्वलोचकचूडामणिपटलशिवाश्रेणि-
शोशीकृताङ्घ्रिः क्षीणीभारं विनेतुं जडरजुपि जगद्भान्वये
देवकी वः । राजामुद्दामदोष्णां रणशिरसि रणत्कीकस-
च्छेदमीमाः शशाणां चण्णकारा, प्रतिहतगुरोर्षो यच्छू-
तेदोहदोऽभून् ॥ १ ॥

राधा—राधा पुनातु जगदच्युतदत्तचित्ता मन्धा-
नमाकलयती दधिरिकपात्रे । यस्याः स्तनस्तवकचूचु-
फलोत्तदृष्टिद्वेषि दोहनधिया वृषमं उदोह ॥ १ ॥

आपने लीलाका आश्रय लेकर हमें तमोगुणरूपी अन्वकूपमें
क्यों डाल दिया ? हाय ! इस वीर निपत्तिसे निरन्तर कद
पाते हुए हमें देखकर अब आप कन दयालु होंगे ॥ ११७ ॥
हे मुक्ति देवि ! येद है । अनेक जन्मोंमें भी प्राप्त न होनेवाली
तथा श्रयन्त श्रेष्ठ होकर भा तुम ऐसे अहोकारके उच्चे (कृष्ण)
के हाथ लगी जिसे भिरमङ्ग भी पत्तेका दुग्डा (तुलसीदल)
अपश्य करके तत्काल उस मूल्यमें तुम्हें ले जात है ॥ ११८ ॥

देवकी : स्वर्गके चूडामणियोंकी कान्ति पढ़नेमें लाल-
लाल चरणवाली तथा ससाराका भार हटानेकी अत्यन्त
होनेवाले ससारके हितैरी प्रभुको गर्भमें धारण करनेवाली
वे देवकीकी आपकी रक्षा करें निन्के गर्भके बालकके सस्कार भी
उस समय युद्धभूमिमें अपनेमें बडौंता भी बध करनेवाले उदबध
राजाधोंकी मारकाट तथा शशांकी भयङ्कर ध्वनि सुननेमें वैसे
ही बन रहे थे ॥ १ ॥

राधा : वे राधा ससारकी पत्रि करं जिनका चित्त
कृष्णमें ऐसा जमा हुआ है किन्ने विना दही डाले ही मटकेमें
मयनी चलाने लगी थीर जिनके स्तनोंके अन्नभागपर दृष्टि
जमाए कृष्ण भी चले तो गौ बुढ़ने, पर धूलको ही बुढ़ने लगे
॥ १ ॥ 'हे पाण्यप्यारी ! तुम्हारे मुखकमलने मुंर गुणोंसे
लगाकर ही मानो इस अमृतके भण्डार चन्द्रमासा तान्ति मन्द
पढ़ने लगी' ऐसा आपने प्रिय कृष्णके मुँहसे निकलते ही

सुधाधातुः नान्तिस्तव वदनपद्मेकहृत्पुणैर्जिनेच म्ला-
नत्वं व्रजति सहसा प्राणदयिते । वदत्येवं कान्ते दिग्मस
विरहातङ्कचकिता तदङ्गे संलग्ना तव दिशतु राधा
प्रियशतम् ॥ २ ॥ हे लोदस्वमहो धरम्य तनुतामालो न्य
दोष्णो हेरहेस्तेनांस्तदोऽवलम्ब्य चरणधारोन्पतत्पाद-
कम् । शैलोद्धारसहायतां जिगमिपोरन्पृष्टगोधर्धना
राधाया भगने जयन्ति सुचिर वन्ध्या, करभ्रान्तयः ॥ ३ ॥

रत्निमणी—श्लाघ्याशेषतनुं सुदर्शनमरः सर्वाङ्गली-
लाजितत्रैलोक्यां चरणारविन्दलहितेनाभ्रान्तलोने
हरिः । विश्राणां मुपमिन्दुसुन्दररुचञ्चन्द्रात्मचतुर्ध्वत्
स्थाने यां भगतनोरपश्यदधिकं सा रत्निमणी वोऽव-
तात् ॥ १ ॥

वेणुः—केङ्कागः स्मरकामुकस्य सुरतरीडापिनीनां
रघो भङ्कारो रतिमञ्जरीमधुलिहां लीलाचक्रोरीध्वनिः ।
तन्ध्याः कञ्जुलिकापासराणभुजाक्षेपस्वलत्कङ्कणकाण्यः
प्रेम तनोतु वो नवयवोलास्थाय वेणुस्वन, ॥ १ ॥

दिन भर उनसे न मिल पानेके भयसे चकित होकर तुरन्त ही
कृष्णकी देहसे लिपट जानेवाली राधा आपकी नीकडो इच्छाएँ
पूर्ण करें ॥ २ ॥ जब श्रीकृष्णने खेल-खेलमें ही पर्वत उड़ा
लिया तब उनके हाथोंको निराल समझकर पर्वत उठानेमें
सहायता करनेकी इच्छामें धरतीसे उचक-उचककर भी गोवर्धन
पर्वतने न छू सकनेवाली राधाकी कृष्णकीके कन्धोंतक ही
पहुँचनेवाली भुजाओंके व्यर्थ ही आकारमें हिलनेकी जय हो ॥ ३ ॥

रत्निमणी : अपने सन अङ्गके हावभावमें तीनों लोकोंको
जाँतेवाली, चन्द्रमाके समान सुन्दर कान्तिपुत्र मुँहवाली
तथा बडाई करनेयोग्य सारे शरीरवाली वे रत्निमणी आप
लामोंका रक्षा करें जिन्हें अपने चरणकमलकी सुन्दरतामें सारे
ससारका जीत लेनेवाले, हाथमें सुदर्शनचक्र धारण करनेवाले,
तथा चन्द्रमाको नेत्ररूपमें धारण करनेवाले विष्णु भगवान्ने
अपनी देहसे भी अधिक आदरपूर्वक देखा ॥ १ ॥

वंशी : वशीका वह मयुर स्वर आपके मनमें नई अवस्थामें
नृत्यके प्रति प्रेम उत्पन्न करे जो ऐसा जान पड़ता है मानो
कामदेवके धनुषकी टङ्गा हो, या रति कीदा करती हुई कोंयलोंका
मोटा स्वर हो, या रितरपी मन्त्रीका रस लेनेवाले भौरोंकी
गुञ्जार हो, या कीटा करती हुई चक्रोरीका स्वर हो, या नवयुवती
सुन्दरीके कसुकी (चौली) उतारत समय उमके हाथोंके हिलनेमें
बने हुए कङ्कणोंकी मयुर ध्वनि हो ॥ १ ॥

नन्दकः—सान्द्रां मुदं यच्छतु नन्दको वः सोल्लास-
लक्ष्मीप्रतिधिभ्यगर्भः । कुर्वन्नस्रं यमुताप्रवाहसलील-
राधास्मरणं मुरारेः ॥ १ ॥

बुद्धः आयाहृदतमण्डलाप्ररुचयः सन्नद्धयत्न-
स्थलाः सोप्माणां वशिणो विपद्दहदयप्रोन्माथिनः
कर्कशाः । उत्सृष्टाम्बरदृष्टिविभ्रमभरा यस्य स्मराप्रे-
सपा योधा धारवधूस्तनाश्च न दधु क्षोभं स वोऽव्या-
जिनः ॥ १ ॥ कामिनाकृष्य चापं हतपटुपटहं वल्लुभि-
मार्थीरैर्भ्रमज्ञोत्पेपज्जम्भास्मितललितदृशा दिव्यनारी-
जनेन । सिद्धैः प्रहोत्तमज्ञैः पुलकितवपुषा विस्मयाद्वा-
सवेन ध्यायन्पो योगपीठादचलित इति वः पातु दृष्टो
मुनीन्द्रः ॥ २ ॥ किं स्याद्वास्वान्न भानोरमृतघनरस-
स्यन्दिनः सन्ति पादाः किं वा राकाशशार्ङ्गे न हि
तुहिनदृचिः कुत्रचिन्निष्कलङ्कः । साक्षाच्चिन्तामणिः
किं विपुलफलमयैः संकुमार्यं कुतस्त्यं सन्देहान्मुग्ध-
धीभिः प्रथममिति मुनेः पातु दृष्टं वपुर्वैः ॥ ३ ॥ ध्यान-

नन्दकः वह 'नन्दक' नामका खड्ग आपकी अत्यधिक
शानन्द दे जो हैसती हुई लक्ष्मी तथा सौन्दर्य कृष्णश्रीकी परछाईं
अपने भीतर धारण करके हिलाता हुआ, कृष्णकी सदा लहरती
हुई यमुनाके तीरपर मुन्दर हाज-भाववाली राधाका स्मरण
दिलाता है ॥ १ ॥

बुद्धः वे बुद्ध भगवान् आपकी रक्षा करें जिनका मन
कामदेवके आगे चलनेवाली प्रधान अस्त्रराशिके छातीपर
भुजाशोक उभरे हुए, आगेकी ओर कामिवाग्, नखचिह्नसे
शुशोभित, दूसरोंके हृदय मथ डालनेवाले, आँचल उधड़ जानेपर
देगने-मात्रसे ग्याबुल कर देनेवाले उष्य तथा कठोर स्तन
भी नहीं डिंगा सके ॥ १ ॥ ध्यानमें भ्रम तथा यासनसे
न दिगनेवाले वे बुद्ध भगवान् आपकी रक्षा करें जिन्हें कामदेवने
पतुप गींचते हुए, कामदेवके रीनिकोंने ढंका यजाते हुए, योंकी
चितवनवाली अस्त्रराशिके मुखराकर, भौहें नच-नचकर अँगड़ाई,
जैभाई लेते हुए, सिद्धोंने प्रसन्नतापूर्वक सिर मवाते हुए तथा
इन्द्रने आशयवंचित होकर पुलकित होते हुए देखा ॥ २ ॥
वे तेजस्वी बुद्ध भगवान् आपकी रक्षा करें जिन्हें सवमे पहले
देवकर लोग मोहित होकर हत प्रयाशंका करने लगे कि 'क्या
पह सृष्टे है । नहीं, सृष्टीकी किरणें हम प्रयाश घटत जैसा मुन्दर
रस नहीं परसती, वे तो बहुत उष्य होती हैं, तो क्या यह
धुँपमाका अन्दर है । नहीं, अन्दर क्या अहरे निषर्जक होता

व्याजमुपेत्य चिन्तयसि कामुन्मील्य चक्षुः क्षणं पश्या-
नङ्गशरातुरं जनमिमं त्रातापि नो रक्षसि । मिथ्या
कारुणिकोऽसि निर्दुःखतरस्त्यक्तः कुतोऽन्यः पुमाब्धुश्च-
न्मारवधुभिरित्यभिहितो बुद्धो जिनः पातु वः ॥ ४ ॥
निःशेषापि त्रिलोकीं विनयपरतया सन्नमन्ती
पुरस्ताद्यस्याद्धि इन्द्रसकाङ्गुलिधिमलनखादर्शसङ्कात-
देहा । निर्मातिस्थानलीना भवदभवमहारातिभीत्यव-
भाति श्रोमन्त्वर्षज्ञेदेवः स भवतु भवतां शर्मणे कर्ममकः
॥ ५ ॥ वद्धा पञ्चासनं यो नयनयुगमिदं न्यस्य नासा-
श्रदेष्टे धृत्या मूर्त्तौ च शान्ती समरसमिलितौ चन्द्रस्-
र्याख्यवातौ । पश्यन्नन्तर्विशुद्धं किमपि च परमज्यो-
तिराकारहीनं सौख्याम्भोधौ निमग्नः स दिशतु भवतां
ज्ञानबोधं बुधोऽयम् ॥६॥ रेतोरक्तमयाव्यमूनि भविनां
वियमूत्रपूर्णंदाराण्यालोक्येव फलेवराणि विगलतोया-
द्रैरन्योणि यः । मायाजालनियन्त्रतानि वृणुया नोन्मी-
लयत्यक्षिणीं निर्व्याजप्रणिधाननिश्चलमतिर्बुद्ध्यै स

है । हो सकता है यह प्रत्यक्ष चिन्तामणि ही हो ! पर उसमे
इतनी फोमलता कहाँ होती है ! ॥३॥ वे महाभोगी बुद्ध आपकी
रक्षा करें जिन्हें उन्मत्तज करनेके लिये कामदेवकी चिराईं यार-यार
रसने कहतीं 'तुम ध्यानके बहाने न किये खीका काम कर रहे
हो ? क्या भरके लिये नेत्र खोलकर देखाँ तो हम कामकी पीड़ासे
कितनी व्यकुल हैं, तुम रक्षक होकर भी हमारी रक्षा नहीं करते !
तुम फूठपूड़ अपनेको दयालु कहते हो, तुमसे अधिक विदुर
तुम्हारे सिवाय दूसरा कौन हो सकता है ! ॥ ४ ॥ वे शोभा-
सम्पन्न तथा कर्ममार्गपर चलनेवाले सर्वज्ञ (बुद्ध) भगवान्
आपकी रक्षा करें जिनके चरणोंकी रँगिलियोंके स्पर्शक मलक्ष्मी
दुर्षलमें सामने झुककर प्रणाम करते हुए अँलोक्यके प्राणियोंकी
पढ़ती हुई परछाईं देकर ऐसा जान पड़ता है भानो आगेहोने-
वाले कित्ती भयङ्कर महाप्रलयके अयसे वे सत्य हस सत्य प्रकारसे
सुरचित स्थानमें था क्षिपे हैं ॥ ५ ॥ वे बुद्ध भगवान् आपकी
ज्ञान-मार्गाका बोध दें जो पश्चात्तन लगाकर नासिकाके अग्रभागपर
दृष्टि स्थिर करके, शरीरके पूर्ण शान्त हो चुकनेपर, चन्द्र और सूर्य
नारीके पुकानर होते ही अपनेमें अत्यन्त विशुद्ध निराकार
ज्योतिस्वरूप प्रभुता दर्शन पाकर अज्ञानन्दमें मग्न हो गए ॥६॥
मायाजालमें फँसे हुए संसारी प्राणियोंके रक्त-वीर्यमय तथा मल-
मूत्र-भरे शरीरोंका मत्वेक चिद्र रहते हुए जलसे भींगा देकर
पृथक्के भारे नेत्र न खोलनेके बहाने प्राणायाम-द्वारा बुद्धि स्थिर

बुद्धोऽस्तु वः ॥७॥ पट्टत्रके क्रमभावनापरिगतं हृत्पद्म-
मध्यस्थितं सम्पश्यच्छिब्ररूपिणं लयवशादात्मानमघ्या-
थितः । युष्माकं मधुसूदनो बुधवपुष्पारी स भूया-
न्मुदे यो संस्थः कमलासने कृतरुचिर्बुद्धैकलिङ्गा-
कृतिः ॥ ८ ॥

कल्किः—उद्यत्करकरवालः शक्तिमिरध्वंसने महा-
निपुणः । कल्किहरिर्वः पायादपायतः कलिनिशा-
न्तोत्थः ॥ १ ॥ प्रेङ्गद्वाजितरङ्गमुम्दगजग्राहप्रगल्भं
भटव्याघलगतस्फुटपुण्डरीकनिलयं डिण्डीरपिण्डाव-
लिम् । म्लेच्छानीकमद्धार्षवं सुविपुलं संप्रामकल्पवधौ
यश्चोर्वाशिरिचामवद्यवतु स वः कल्पानि कल्की हरिः
॥२॥ यवनीनयनाम्बुधोरणीभिर्धरिणीनामपनीय ताप-
घङ्गिम् । सुकृतद्रुमसेकमाचरन्तं धृतकटकं प्रणमामि
निर्विकल्पम् ॥ ३ ॥

शिवः

शरुणनयनं सभ्रूमङ्गं दरस्फुरिताधरं सुतनु शशिनः
क्लिष्टां कान्तिं करोतु तवाननम् । कृतमनुनयैः कोपोऽप्यन्ते
मनस्विनि वर्धतामिति गदितया श्लिष्टो देव्या शिवाय
शिवोऽस्तु वः ॥१॥ असोदा तत्कालोल्लसदसहभासस्य
तपसः कथानां विश्रम्भेव्यपि च रसिकः शैलदुहितुः ।
प्रमोदं वां दिश्यात्कपटवटुधेपापनयने त्वराशोधित्याभ्यां
युगपदभियुक्तः स्मरहरः ॥ २ ॥ अहिभूपणोऽप्यभयदः
सुकलितहालाहलोऽपियो नित्यः । दिग्यसतोऽप्यखिलेश-
स्तं शशधरशेखरं वन्दे ॥३॥ आर्युवाञ्छति भस्मसूत्र-
हरणं व्यालस्तथा मूपकं व्यालं वहिरथ हरिश्च वृषभं
गङ्गा तथा चन्द्रकम् । इत्थं दुःखमर्हनिशं शृणु विभो
सोद्वेग्यमेतत्कथं शम्भोरात्मदशानियोषनपरं त्वां पातु
दीनं वचः ॥ ४ ॥ आदाय चापमचलं कृत्वाहीनं गुणं

किं हुं बुद्ध भगवान् आपको बुद्धि दें ॥ ७ ॥ क्रमशः
मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहत, विद्युदि और आज्ञा
चक्रोंपर ध्यान करनेसे दिग्गई पड़े हुए तथा हृदय-कमलपर
विराजमान कल्याणमय परमात्माका एकप्र होकर दर्शन करनेमें
लीन होकर आत्मानं स्थित, पद्मासन लगाकर बैठे हुए, बुद्धके
वेपमें श्रवणार लेनेवाले, ज्ञानमय स्वरूपवाले मधुसूदन (कृष्ण)
भगवान् आपको ध्यानन्द दें ॥ ८ ॥

कल्किः कलियुगरूपी रात्रि नष्ट करनेके निमित्त उठे हुए
हाथमें त्रिशूलरुपी शस्त्र धारण किए हुए तथा अन्धकार नष्ट
करनेमें चतुर वे उद्यम होते हुए सूर्यके समान कल्कि
भगवान् आपको नारायण बचावें ॥ १ ॥ वे कल्कि भगवान्
आपके पाप नष्ट करें जो म्लेच्छोंकी सेनाके उस समुद्रको
सोमनेवाले यद्वानलके समान हैं जिसमें दीड़ते हुए घोड़े ही
सहृद हैं, मतवाले हाथी ही मगर हैं, योद्धाओंके कटे हुए निर
ही कमल हैं और पिपट ही फेन हैं ॥ २ ॥ यवनोंकी स्त्रियोंकी
श्रीस्वरूपी जलधारारसे धरतीकी तपन उष्णकर धर्मरूपी वृषको
सींचनेवाले तथा कन्क धारण किए हुए उन निर्विकल्प
भगवान्को प्रणाम करता हूँ ॥ ३ ॥

शिव

रुची हुई पार्वतीजीको मनानेके लिये भगवान् शङ्करजीने
कहा—हे सुन्दरी ! लाल-लाल आँसों, टंड़ी भीहों तथा नीचेके
कुङ्कुमद्विन्दते हुए ओंठोंवाला तुम्हारा मुग हमारे माथेपर बैठे
हुए चन्द्रमाकी मुन्दरताके लज्जित कर दें । मैं चाहता हूँ कि

ज्यों-ज्यों मैं तुम्हें मनाऊँ त्यों-त्यों तुम और भी रुठती जाओ ।
यह सुनते ही पार्वतीजीने शिवजीका जो आलिङ्गन किया उस
आलिङ्गनसे थुक भगवान् शङ्कर आप लोगोंका कल्याण करें
॥ १ ॥ [पार्वतीजीका तप देखकर उनकी स्नेह-परीक्षाके लिये
जब स्वयं शङ्करजी ब्रह्मचारीका वेप बनाकर गए उस समय]
कोमल शरीरवाली पार्वतीजीकी कठोर तपस्याका दुःख सहन
न करनेके कारण जो आपना ब्रह्मचारी-वेप छोड़नेको उतावले
हो रहे थे, साथ ही पार्वतीजीको विश्वास करने योग्य बातोंमें
अत्यन्त रस पानेके कारण वेप छोड़नेमें ढिलाई भी कर रहे थे,
वे एक साथ उतावलापन और शिथिलता दोनोंका साथ-साथ
अनुभव करनेवाले शङ्करजी आपको अत्यधिक ध्यानन्द दें ॥ २ ॥
चन्द्रमाका सुकुट पहने हुए उन शङ्करजीको प्रणाम करता हूँ जो
सौंपोंके गहने पहने हुए भी दूसरोंको भयसे घबराते हैं, जो
भयङ्कर विष पीकर भी श्रमर हैं और जो नङ्गे रहते हुए भी सारे
महायुद्धके स्वामी हैं ॥ ३ ॥ विष्णुजीसे अपनी दशाका वर्णन
करते हुए शङ्करजीके ये दीन वचन आपकी रक्षा करें कि 'बृहा
तो भस्म और जनेऊपर दाँत लगाए है, चूहेको सौंप गटक जाना
चाहता है, सौंपको मोर खा लेना चाहता है, सिंह नन्दीकी
दूधोचनेके लिये रूपटना चाहता है और गङ्गा चन्द्रमाको पाना
चाहती है, इस प्रकार हे भगवान् ! दिन-रातका यह दुःख कैसे
सहा जाय ! ॥४॥ उन तीन नेत्रवाले शङ्कर भगवान्को प्रणाम
है निम्नाने अटल हिमालय पर्वतको घनुप बनाकर शेषनागकी
ठोरी उसपर लगाए और विष्णुका थूक साथ चढ़ाकर ही

विपमदधिः । यच्चित्रमच्युतशरो लक्ष्यमभाङ्गीन्म-
न्ममै ॥ ५ ॥ आदत्तकूपितभवानीकृतकरमालादिव-
न्धनव्यसनः । केलिकलाकलहादीं देवो वः शङ्करः
पायान् ॥ ६ ॥ आनन्दश्लथिताः समाधिपु मुपे गोर्या
चिलासोन्नसः सम्भ्रान्ताः क्षणमुद्रताः क्षणमथ स्मेरा
निजे वैकृते। द्रुवाः कृष्टशरासने मनसिजे दग्धे वृणाकू-
णितस्तत्कान्ताकृदितेऽशुभ्रतरलाः शम्भोर्दशः पान्तु
वः ॥ ७ ॥ आसत्राय सुदूराय गुप्ताय प्रकटादरने। सुल-
भायातिदुर्गाय नमश्चित्राय शम्भवे ॥ ८ ॥ आसीने पूणि
वृष्णो व्यसनिनि शशिनि व्योम्नि कृष्णे सतुष्णे दैत्यन्द्रे
जातनिद्रे द्रयति मघयति क्लान्तकान्तौ कृतान्ते।
अप्रह्लाप्यं युवाणे कमलपुटकुटीशोत्रिये शान्त्युपाये पा-
याद्। कालकूटभट्टिति कवलथैल्लीलय नीलकण्ठः ॥ ९ ॥
उज्जिमत्वा दिशमभ्यर्चं वरतरं वासी वसानश्चिरं हित्वा

त्रिपुरामुरी मार डाला ॥ ५ ॥ वे शङ्कर भगवान् आप लोगोंकी
रक्षा करें जिन्होंने रतिके समय स्त्री हुई पार्वतीजीको
मनानेके लिये उन्हें अपने दोनों हाथोसे इस प्रकार चिपटा
लिया मानो उन्हें माला बनाकर पहनना चाहते हों ॥ ६ ॥
शङ्करजीके वे नेत्र आपकी रक्षा करें जो समाधि लगाते समय
आनन्दसे भर जाते हैं, पार्वतीके मुँहके हाव-भाव देखकर
खिल जाते हैं, जो वामदेवके पीड़ा पहुँचानेपर अपनेमें
कामका विचार देकर घबराहते भरकर ऊपर उठ गए, फिर
पद पाण्यें ईसरीसे भर गए और कामदेवकी स्त्री (रति) का
विलस मुनकर शौम्नू यहासे लगे थे ॥ ७ ॥ उन निराले
रत्न-दण्डवाले शङ्करजीको प्रणाम है जो बहुत पस भी है, बहुत
दूर भी है, पीये भी है और सामने भी है, जो सरलतासे पाए
जा सकते हैं और कठिनतासे भी नहीं पाए जा सकते ॥ ८ ॥
समुद्र मयनेपर ठसते निरले हुए महाशिवकी भयङ्करतासे जब
सूर्य हारकर चुपचाप धैर्य गए, चन्द्रमा उदास हो गए, आशय
डाला पड़ गया, यमराज मलिन पड़ गए और महा जप
'बषाघो, बषाघो!' चिल्लाते हुए अपनी कमलकी बुटियामें प्राण
बषानेको घुमे उस समय शानि करनेके लिये तिन शंकरजीने
मन्द्यट खलतामे यह कालकूट नामक महाशिव पूँडर
धरना माला नीला कर लिया ये आप सबोंकी रक्षा करें ॥ ९ ॥
जिन्होंने दिशास्वी यम्र धोदकर (मन्त्रे रहना धोदकर) मदके
लिये धरपुं धरपुं मूल्यवान् धरपुं पहन लिए, जो यमराजमें
रहना धोदकर ईश्वरमें मदल बनाकर रहने लगे, शरीरमें भरम

वासरसं पुनः पितृवने कैलासहर्म्याश्रयः । त्यक्त्वा
भम्म कृताङ्गरागनिचयः श्रीखण्डसारङ्गवैद्यैः पातु-
हिमाद्रिजापरिणयं कृत्वा गृहस्थः शिवः ॥ १० ॥ उद्दाम-
भ्रमिवेगविस्तृतजटावल्लीप्रणालीपतस्वर्गङ्गाजलदरिड-
काचलपितं निर्माय तरपञ्जरम् । सम्भ्राम्यद्भुजदण्डप-
क्षपटलदन्धेनं हंसायितखैलोक्यव्ययनाडिकानयनदः
स्वामी जगत्त्रायताम् ॥ ११ ॥ उपहरणं विभवानां संह-
रणं सकलदुरितजालस्य । उद्धरणं संसाराच्चरणं वः
श्रेयसेऽस्तु विश्वपतेः ॥ १२ ॥ एकैर्ध्वर्यस्थितोऽपि प्रणत-
वहुफलौ यः स्वयं कृत्विचासाः कान्तासमिथदेहोऽ-
प्यधिपयमनसां यः पुरस्ताद्यतीनाम् । अप्राभिर्यस्य
कृत्स्नं जगदपि तनुभिर्विभ्रतो नाभिमानः सन्मार्गा-
लोकनाय व्यपनयतु स नस्तामसा वृत्तिमीशः ॥ १३ ॥
एकोऽन्ते द्विसमखिलोचन इति ख्यातश्चतुर्भिः स्तुतो

रमाना छोड़कर चन्द्रनादिके तेलसे बने सुन्दर लेप लगाने लगे
और सब प्रकारसे सुन्दर होकर जो पार्वतीसे व्याह करके गृहस्थ
हो गए ऐसे शङ्कर भगवान् मन्त्री रक्षा करें ॥ १० ॥ संसारकी
नद होनेसे बचानेवाले नादकके नायक, सबके स्वामी वे भगवान्
शङ्कर संसारकी रक्षा करें जिन्होंने आकाश-गङ्गाको उतरने
देकर बड़े भयकेसे सिर घुमाकर अपनी जटास्त्री लताएँ
कैला दी, जो आकाश-गङ्गाकी उजली धाराओंके उनमें
समा लेनेपर, उन्हें लपेटकर बाँधे जानेपर ऐसी जात पड़ने लगीं
मार्गो ईसका शरीर है और उसके ऊपर उठकर चुनपे हुए म्हाके
दोनों हाथ हसके दोनों पङ्क्तिके समान दिखाई देने लगे ॥ ११ ॥
संसारके स्वामी शङ्करके वे चरण आप सबका कल्याण करें जो
सब प्रकारका ऐश्वर्य देनेवाले, सारे पाप-तापोंका नाश
करनेवाले और संसारके प्राणियोंका उद्धार करनेवाले हैं ॥ १२ ॥
एक प्रकारकी सम्प्रतिवाले होते हुए भी जो अपने भक्तोंको कई
प्रकारकी सुख-सम्पत्ति देनेवाले हैं तथा स्वयं खाल ओढ़े रहते
हैं, आपसे देह स्त्रीकी होते हुए भी जो विषय-व्यसनारसे दूर
रहनेवाले संन्यासियोंमें सर्वश्रेष्ठ माने जाते हैं और अपने
आद शरीरोंमें भली-भाँति संसारना पीपण करते हुए भी जिन्हें
तनिक भी घमण्ड नहीं होता वे शङ्कर भगवान् हमारी
तमोगुणों बुद्धि दूर करें, निमसे हम अपने मार्गपर चल सकें
॥ १३ ॥ वे शङ्करजी सबकी रक्षा करें जो महाप्रह्लापके परभाव
बनेले बच रहनेमें निरनामें एक ही रह जाते हैं, जो पार्वती-
समेत हो है, जो तीन नेत्रवाले हैं, चारों वेद तिनके गुण माने

वेदैः पञ्चमुपः पञ्चाननपिना सतर्पिभिर्विन्दितः। अग्राहो
नवतुल्य आमरगणे वासो वशाशा दधन्वश्चैकादश
सोऽप्यनान् विजितो यो द्वादशान्मांशुभिः ॥ १४ ॥ एकं
दन्तच्छुद्धस्य स्फुरति जयवशादर्धमन्यत्वकोपादेकः
पाणिः प्रणन्तुं शिरसि कृतपटः क्षेप्तुमन्यस्तमेव । एकं
ध्यानाग्निमौल्यपरमविपदं वीक्षितुञ्जुलिरित्यं तुल्यानि-
च्छापि वामा तनुरयतु स वो यन्य सन्ध्यावसाने ॥१५॥
एषा ते हर का सुगात्रि कतमा मूर्ध्नि स्थिता किञ्चटा
हंसः किं भजते जटां नहि शशी चन्द्रो जलं मेवते ।
मुग्धे भूतिरित्यं कुतोऽत्र सलिलं भूतिस्तरङ्गायते यश्चंद्रं
धिनिगृहते त्रिपथगां पायात्स वः शङ्करः ॥ १६ ॥ आं
नमः परमाथंकरुपाय परमान्धने । स्वेच्छायभासिता-

सत्यमेवमित्राय शम्भवे ॥१७॥ अङ्गं येन रथीकृतन्यन-
योयुग्मं रथाङ्गीकृतं पत्रं स्वं रथकर्मसाग्धकृतं ध्यासा-
न्तुरङ्गीकृताः । कोदग्डीकृतमाम्धीर्यमचिरान्मौयौकृतं
भूषणं वामाङ्गं विशिखीकृतं दिशतु नः तेमं स धन्यां
पुमान् ॥१८॥ कथयत कथमेषा मेनया विप्र दत्ता शिव
शिव गिरिपुत्री वृद्धकापालिकाय । इति यद्विनि पुनश्चीम-
ण्डले सिद्धिलेशचयय कृतवरचेपः पातु चः श्रीमहेष्ट ॥१९॥
कल्पान्ते शुभितत्रिविक्रममहाकङ्कालनञ्जुरच्युपस्यू-
तनुसिद्धपाणिनखरप्रोतादिकोलामिपः। पियैकार्णवना-
चिशेषमुदितौ तौ मन्स्यकूर्माशुभौ कर्पन्धावरतां गतः
स्यतु सतां मोहं महाभैरवः ॥ २० ॥ कल्पान्तनूरुकेलितः
ऋतुकदनकरः कुन्दकपूर्कान्तिः क्रीडन्कैलासकृते कलित-

रहते है, जिनके पाँच सुँह (सद्योजाव, वामदेव, तपुरप, अघोर
और ईगान) हैं, जो छः सुँहवाले कार्तिकेयजीके पिता है,
सानों ऋषि (विद्यामित्र, जमदग्नि, ब्रह्मह्वज, गौतम, अत्रि,
वशिष्ठ और कश्यप) जिनकी प्रार्थना करते हैं, जिनके आठ
(धृष्या, जल, अग्नि, वायु, आकाश, यजमान, चन्द्र और सूर्य)
अङ्ग है, जो नवग्रहोंके समान तेजस्वी देवताओंमें विरे रहते है,
जो उगों किगायों (पूर्ण, अग्रमेय, दक्षिण, वैश्वदेव, पश्चिम,
वायव्य, उत्तर, ईगान, उपर और नीचे) को अपनेमें टिकाए
हुए हैं और जिनके ग्यारह (अज, एकपाद, अग्निजन्म,
पिशङ्गी, अपराजित, प्राग्भक्त, महेश्वर, शुभाक्षि, शम्भु, हरप
और ईश्वर) रूप हैं और बारहों (विन्धवान्, अथैमा, पूषा,
त्वष्टा, सविता, भग, चाना, विधाना, वरुण, मित्र, शक्र और
उरजम) मयूरीं निरलें भी जिनके तेजसी बराबरी नहीं कर
सकतीं ॥ १४ ॥ वे अर्धनारीश्वर शिवजी आपकी रक्षा करें
जिनका पार्वतीजीजाला बायाँ अङ्ग सन्ध्याके पश्चात् रूठ गया
है, जिनके आठना आधा गिरजावा भाग पार्वतीजीके रूठनेके
अभये काँप रहा है और दूसरा गौरीजाला आधा भाग क्रोधसे
कड़क रहा है, जिनका दाहिना शिवजाला हाथ चमा-याचानाके
लिये निर धूर रहा है और बायाँ पार्वतीजाला हाथ उसे हटा
रहा है, जिनका दाहिना नेत्र पार्वतीके ध्यानमें सुँदा है और
बायाँ नेत्र बाएँ अङ्गों न देवनेकी हृदयसे बन्द है ॥ १५ ॥
पार्वतीजीने शङ्करजीसे गजराजों की शर सङ्केत करके पूछा—
शङ्करजी ! ये तुम्हारी कीन है ? शङ्करजीने कहा—हे सुन्दर
देहवाली ! किसे पूछ रही हो ? पार्वती—उसे, जो सिरपर बुद्धी
धैरी है । शङ्करजी—यह तो जटा है । पार्वतीजी—तो जटापर

हंस कैमे बैठा है ? शङ्करजी—यह तो चन्द्रमा है । पार्वतीजी—
चन्द्रमा क्या जलके पाम रहता है ? शङ्करजी—भगली ! यह
तो भस्म है, जल कहीं है ! पार्वतीजी—भस्ममें क्या लहरें
उठतीं है ? इस प्रकार जो शङ्करजी बराना कर-करके पार्वतीजीसे
गद्गारो छिपा रहे है वे थाप सककी रखा करें ॥ १६ ॥ जिन्हे
लोग शोम, सत्यस्वरूप और परमात्मा कहते है पर जो
सचमुच देवनेपर अपनी हृदयसे न जाने किनने असत्य प्रतीत
होनेवाले स्वरूप धारण कर लेते है, उन गद्गारोंको प्रणाम है
॥ १७ ॥ धनुषधारी पुररुके रूपमें वे शङ्करजी हमें आनन्द दे
जो अपने शरीरको रघ, दौनों नेत्रको दौनों पहिए, मनरो रप
हॉनेनेवाला, सॉमोंको बोझ, अपने बलको धनुष, सूर्यको धनुषकी
ढोरी और बाएँ अङ्गको बाण बनाए हुए ऐसे लगेते हैं मानो
सजा हुआ धनुष बाँचे हुए रथपर बंटे हों ॥ १८ ॥ वे शङ्कर
भगवान् आप लोगोंकी रक्षा करें जिन्होंने बड़ी-बूढ़ी त्रिभोंके सुँदमे
उयाँ ही यह सुना कि ' शिवा ! शिव ! इस बूढ़े औमङ्गकी मैनाने
कैमे अपनी कन्या दे दी ! ' लों ही थोड़ी-सी ही सिद्धिसे अपना
रूप बहुत सुन्दर बना लिया था ॥ १९ ॥ वे महा भयङ्कर रूपवाले
शङ्करजी सजनोंका मोह दूर करें जो कल्पके अन्तमें विराट् रूप
धारण किए हुए बामन भगवान्में भी बड़े दिवाइँ देने लगे,
अपने उतने बड़े हड्डिबोंके ढोपेमें लिपटे शेपनागसे जिन्होंने
सृष्टिह रूपवाले विष्णुको बॉधररर उनके हाथके तीले नलामें
बराहान्तराको उलाम लिया तथा सारे संसारके जलमग होनेपर
आयन् प्रसन्न होते हुए मत्स्य और कच्छप अवतारको बॉधरर
रॉचते हुए मङ्गलौ मारनेवाले मत्स्यके समान जान पड़ने लगे
॥ २० ॥ जिनका खेल भी महाप्रलयके समान भयङ्कर होता है,

तनुमुदिनीकामुकः कान्तकायः । कङ्कालक्रीडनोक्तः
फलितफलकलः कालकालीकलत्रः कालिन्दीकालकण्ठः
कलयतु कुशलं कोऽपि कापालिको नः ॥२१॥ कल्पान्ते
मोधनस्य त्रिपुरविजयिनः क्रीडया सञ्चरिणोः कृत्वापि
प्राणिजातेनिजमुपकुहरातिथ्यमप्रासवृत्तः । दिग्मन्त्रीः
मेघ शून्याः प्रलयजलनिधिप्रेक्षितात्मीयमूर्त्तिप्रासव्या-
सक्तमौयश्रमजनितरुपः पान्तु घो गञ्जितानि ॥ २२ ॥
कल्पाणं यः क्रियासुमिलदृष्टनियुगस्थास्त्रुगीर्वाणभो-
गिस्त्रैण्यन्त्यस्तकल्पद्रुमनवसुमनोनागहाराधलीनि । ना
लीकाशिलप्रलवमीकरतलकमलद्वान्त्वामध्वीकधाराति -
म्भफालेक्षणाणि त्रिपुरहरधनुर्जालताकर्षणानि ॥२३॥
कस्त्वं श्ली मृगय भिपजं नीलकण्ठः प्रियेऽहं फेकामेकां

कुरु पशुपतिर्नैव दृश्ये विपाथे । स्थाशुर्मुग्धे न यदति
तरुजीवितेशः शिवायाः गच्छाटव्यामित हतवचाः पातु
वध्वन्द्रचूडः ॥ २४ ॥ कान्तां कामपि कामयत्यनुदिनं
ध्यानापदेशादयं येनासुं मुनयोऽप्यनादिनिधनं ध्यायन्ति
धीतस्पृहाः । इत्यङ्गात्स्वकरो हृते गिरिजया पादे च
पद्मासनाच्चिप्यं पातु पुरन्ध्रनड्वचपुषः शम्भोः समाधि-
व्ययः ॥ २५ ॥ किं गोत्रं किमु जीवनं किमु धनं वा
जन्मभूः किं वयः किञ्चारित्रममुष्य के सहवराः के
वंशजाः प्राक्नाः । का माता जनकः शिवस्य क इति
प्रहेष पृथ्वीभृता पृष्टाः सस्मितनभ्रमूकवदनाः सप्तर्षयः
पान्तु यः ॥२६॥ कुसुमशरचिलासे भङ्गुरस्वाद्रिपुत्रीक-
रतलवलयस्य क्षमागतस्याधर्मिकम् । निजमिव शशिपण्डं

त्रिहंनि दृशका यश्च विष्वस क्रिया, जिनकी कान्ति कुन्दके फूल
और शरके समान उजली है, जिनका शरीर कैलास पर्वतकी
चोंटीपर कामी होकर कुसुदिनीसे खेलते समय बहुत सुन्दर
लगता था, जो प्रलयके समय हड्डियोंके दाँवोंसे खेलनेको उत्सुक
रहते हैं, जो भयङ्कर कलकल करके हैं, अत्यन्त भयङ्कर
वालीकी जिनकी स्त्री है और जिनका कण्ठ यमुनाके समान
रसाम है, ऐसे कोई भीयद हमारा क्याणु करे ॥ २१ ॥
त्रिपुरामुर्कको मारनेवाले शङ्करजी जब महाप्रलय करते हुए
मोहित होकर सरलतासे रहलते हुए संसारके सब प्राणियोंको
अपने सुँहमें भावने लगे पर चेत न भरा तब उन्होंने सब
दिशाओंकी ओर दूरतक देखा पर कैवल्य अपने समान
मलय-मालके बड़े हुए भयङ्कर समुद्रके अतिरिक्त कुछ न
दिखाई पड़ा, उस समय चला डालनेकी बुद्ध पानिका प्रयत्न
करनेपर भी बुद्ध न मिलनेसे पीरकर जा बहुत वेगसे
उन्होंने गर्जनाई की, ये गर्जनाई आपकी रक्षा करे ॥ २२ ॥
[त्रिपुरामुर्कको जीतनेके लिये शिवजीने जब शेषनागकी प्रत्यक्षा
बनाई और त्रिभुको बाण बनाया उस समय] जब भनुपके दोनों
पुत्रोंपर शेषनाग दैधे धे और विजयकी आशासे प्रसन्न होकर
शेषनागकी मित्रता करपृष्टकी हिलाकर उनके गिरे हुए पृल्लि
सर्पके सामान बुधडलीवाली गोल मानाई बनाकर धनुष
गाँवनेवाले शिवजीको समर्पण कर रही थी तथा बाणके रूपमें
लगे हुए विष्णुकी पाम राई दुई लक्षकोंके हाथके कमलसे
निकलनी दुई रमकी धारा शङ्करके मालकके तीमरे नेत्रकी क्षमि
बुम्पा दे रही थी उस समयका शिवजीका प्रत्यक्षा गाँवना
घाप लोमोंका क्याणु करे ॥ २३ ॥ द्वार गटपणनेवाले

शङ्करजीसे पार्वतीजीने भीतरसे पूछा—आप कौन हैं? शङ्करजीने
कहा—मैं हूँ श्ली (त्रिभुलवाला या पीडावाला) ।
पार्वतीजीने कहा—तो जानर औपधि हूँवे । शङ्करजी—प्यारी !
मैं नीलकण्ठ (नीले कण्ठवाला या मोर) हूँ । पार्वतीजी—
मोर तो एक कूक सुनाओ । शङ्करजी—मैं पशुपति
(प्राणियोंका वा पशुओंका स्वामी) हूँ । पार्वतीजी—पर आपके
सींग तो दिखाई नहीं देते । शङ्करजी—मैं स्थाशु (स्थिर या
हूँठ) हूँ । पार्वतीजी—हूँठ तो बोलता नहीं ! शङ्करजी—मैं
शिवा (पार्वती या सियारी) का पति हूँ । पार्वतीजी—तो
जङ्गलोंमें जाकर धूमो । पार्वतीजीके इस प्रकार बहनेपर कोई
उत्तर न दे सकेवाले शङ्करजी स्वकी रक्षा करे ॥ २४ ॥ 'जान
पड़ता है कि ध्यान करनेवा बहना करके ये किसी दूसरी स्त्रीका
ही चिन्तन करते रहते हैं और इच्छाओंका दमन करनेवाले मुनि
लोग भी धोरमें पढ़कर ही इन जन्म-मरणसे रहित शङ्करजीका
ध्यान करते हैं' ऐसा मनमें आते ही पार्वतीजीने शङ्करजीकी
गोरसे अपने आकाश हाथ और पद्मासनेसे अपने आकाश
पैर पीच लिया । ऐसा होनेसे जिन शिवजीकी समाधि टूट
गई वे संसारकी रक्षा करे ॥ २५ ॥ शङ्करजीके बिनाहने समय
पृथ्वीको धारण करनेवाले हिमालयने जब नष्ट होकर पूछा कि
'इनका (शङ्करजीका) क्या पौरु है, क्या जीवन-व्याप है, क्या
सम्पत्ति है, कहीं जन्म भूमि है, क्या अन्त्या है, चरित्र क्या है,
इनके साथी कौन-कौन है, इनके पूर्वज कौन हैं और इनके
माता पिता कौन हैं ?' उस समय मुसुहानके साथ मिर
सुम्भकर पुप हो जानेवाले सप्तर्षि आपटी रक्षा करे ॥ २६ ॥
पृल्लीकी सेगपर विलास करते समय जो कङ्कन टूटकर घायी

याचमानस्य शम्भोर्भवतु सह विवादाः कान्तया कान्तु-
काय ॥ २७ ॥ केयूरीकृतकङ्कलीकृतजटाजूटावतंसीकृत-
ज्यावल्लीकृतकुण्डलीकृतकट्टीकृतताहीश्वरः । पायाङ्-
स्तिलक्रीकृतप्रियतमाद्रोहितालीकृतघृतारम्भपर्णीकृते-
न्दुशरुलः कात्यायनीकामुरुः ॥२८॥ केयं मूर्धन्यकारे
तिमिरमिह कुतः शुभ्रु कान्तेन्दुयुके कान्तायत्रास्ति
काचिन्ननु भवतु मया पृष्टमेतावदेव । नाहं इन्द्रं
करोमीत्यपनय शिरसन्तूर्णमेनामिदानीमित्यं प्रोक्तो
भवान्था प्रतिघचनजितः पातु वधमन्द्रचूड ॥२९॥ कैला-
साद्राबुदस्ते परिचलति गणेषुल्लसत्कान्तुकेषु क्रोडं मातुः
कुमारं विशति विपमुचि प्रेक्षमाणे सरोपम् । पादा-
वष्टम्भीसीदद्गुपि दशमुखे याति पातालमूलं क्रुद्धोऽप्या-
श्लिष्टमूर्त्तिर्भयवनममया पातु हृद्यो शिषो नः ॥३०॥ ऋते-

इन्मन्दरकन्दरोद्वरवलन्मन्दारवृन्दायने क्रोधान्पान्यक-
दातटासुहरणे जृम्भन्तिशूलोद्गमः प्रैतोऽन्यासिलसद्भट्टो-
त्कटमयोद्वेलान्यकारांशुमान्पायाङ्गलिपुरप्रमायनपट्ट-
द्वैवो हि पन्थाननः ॥३१॥ क्रोधेद्वैर्द्विप्रपातंस्त्रिभिरुपश-
मिता बह्वयोऽमी त्रयोऽपि त्रासात्तार्त्तु त्रिविजोऽप्यथ्रपल-
गणहृतोऽप्युपपट्टाः पतन्ति । दत्तः स्तौत्यस्य पत्नी विल-
पति रूपं चिद्रुतं चापि देवैः शंसन्धित्याचहासः मप-
मयनविधौ पातु देव्यै शिषो वः ॥ ३२ ॥ क्व तिष्ठतस्ते
पितरं ममेवेत्यपर्ययोके परिहासपूर्वम् । क्व वा ममेव
श्वसुरौ तवेति तार्मारयन्सस्मितमोश्वरोऽप्यात् ॥३३॥
क्षितो हस्तावलग्नः प्रसभमभिहतोऽप्याददानोऽशुकान्तं
शृङ्गकेशेष्यपास्तश्चरणनिपातितो नेक्षितः सम्भ्रमेण ।
शालिङ्गन्योऽप्यधूतस्त्रिपुरयतिभिः साधनेत्रोत्पलाभिः

पृथ्वीपर गिर पड़ा उमे अपना टेड़ा चन्द्रमा ममभर जव
पार्वतीजीमे शङ्करजी मींगने लगे उस समय उन दोनोंमें जो
विवाद हुआ वह सबके लिये आनन्द देनेवाला हो ॥ २७ ॥
कान्यायनी देवीको चाहनेवाले वे शङ्करजी आप लोगोंकी रचा
करें जो मीलोंके स्वामी ब्रामुक्तिको ही मुचरन्द, कङ्कन, जटाजूट,
मुकुट या कुण्डल बना लेते हैं, उसे ही लपेटकर कमरकी
तगड़ी और उसीको धनुषकी डोरी बनाते हैं तथा चन्द्रकलाको
तिलक और प्रियतमा गौरीका दर्पण बनाते हैं और बुधा खिलते
समय उनीचो पासा और पँसा बना लेते हैं ॥२८॥ शङ्करजीकी
जटापर गङ्गाको देववर पार्वतीजीने उनमे पड़ा—हे अन्धकारे !
(अन्धकारमुरके शठ) तुम्हारे मिरपर वह कौन है ?
शङ्करजी—हे सुन्दर भाँहनाली ! मेरे मस्तकपर तो चन्द्र
वैदा हुआ है, वहाँ शँभेरा कैमे हो सकता है ! पार्वतीजी—
वहाँ कोई म्नी भी तो है । शङ्करजी—होगी कोई, मैं तो केवल
यहाँ पड़ना चाहता था कि वहाँ शँभेरा कैमे हो सकता है ?
पार्वतीजी—मैं म्गाड़ा नहीं करना चाहती। आप इसे शीघ्र ही
अपने मिरसे अलग कर दें । इस प्रकार पार्वतीजीले बातचीतमें
हारकर कोई उचर न दे पानेवाले शिपजी आपकी रचा करें
॥ २९ ॥ रावणके कैलास पर्वत उठा लेनेपर उसके हिलनेसे
उसपर आनन्दसे हँसते-खिलते शिपजीके गण जन बल-विचल
होने लगे, न्यामिर्जात्रिकेय दके मारे मीँकी गोदमें घुसने लगे,
साँप क्रोषित होकर देखने लगे तथा शिपजीके पैरोंकी हुमकमे
दयना हुआ रामथ पातालमें घँसने लगा, उस समय अल्पन्व
क्रोषिन होनेपर भी जो बत्ती हुई पार्वतीजीके चिपट जानेमे

प्रसन्न हो गए, वे शङ्करजी हम सबको रचा करें ॥३०॥ जिन्होंने
मन्दरावलकी शुक्राके भीतर लगे हुए मन्दार और तुलसीके
वनमें खेलते हुए ही क्रोधमे अन्ध अन्धकारके कपाल फाड़कर
उसके प्राण लेनेको चमकता हुआ त्रिशूल उठा लिया था, जो
तीनों लोकोंके दुःख और बढ़ने यदा भय-रूपी शँभेरा नष्ट
करनेके लिये साचात् सूर्य है और जिन्होंने त्रिपुरासुरको बढ़ी
चतुरतामे मार डाला था वे पाँच युँहवाले भगवान् शङ्कर
आप लोगोंकी रचा करें ॥ ३१ ॥ अष्टहास कर-करके सर्तोंके
अप्रमानका यद्दला लेनेके लिये दृक्का यज्ञ विष्वम करनेमें
लगे हुए वे शङ्करजी आप लोगोंकी रचा करें जिनकी क्रोषमे
तीली तीन दृष्टियोंके पड़नेमे तीनों अग्निर्वा (गार्हपत्य,
दक्षिणाग्नि और आहवनीय) शान्त हो गईं, जिनके
चञ्चल गणोंने भटकेमे ऋतुजनोंकी पगडिपों उठार लीं
और वे दरके मारे गिरने लगे, दृच जिनकी स्तुति करने लगे,
दृक्की स्त्री जिनके सामने आकर दुग्नी होकर विलाप करने
लगी और देवता हृदयडाकर जहाँ-नहीं भगने लगे ॥ ३२ ॥
जय पार्वतीजीने शङ्करजीमे पड़ा कि 'मेरे माता-पिताके समान
आपके माता-पिता कहाँ है ?' तब उसके उत्तरमे हँमकर
जिन्होंने कहा कि 'मेरे सास-ससुरके समान तुम्हारे सास-
ससुर कहाँ है ?' वे शिवजी सबको रचा करें ॥ ३३ ॥
शङ्करजीके बाणकी यह अग्नि सरके पाप भस्म करे जो रोती
हुई त्रिपुरासुरकी मित्रियोंके रोकनेपर भी परस्वोगामी कामीके
समान उनके हाथ पकड़ लेता था, भटका देनेपर भी बलपूर्वक
साड़ीना अँचल पकड़ लेता था, मिर हटानेपर भी केश

कामीवाद्रापराधः स दहतु दुरितं शाम्भयो वः
शराग्निः ॥ ३१ ॥ गर्जन्दीमभुजङ्गभूषणकणाकुलकारभीति-
प्रदः क्रोडमेतपिशाराचराक्षसगणः प्रत्यक्षतः प्रान्ततः ।
भालस्थप्रलयानलोद्भेदशिशुः सडक्रान्तसर्वास्पदः शा-
हूलाजिनभृद्भयायानकभयो भूयाद्भुजो भूतये ॥ ३१ ॥ गौरी-
चुम्बनचञ्चलं परिचलद्गण्डप्रभामण्डलं व्यावहगतफणि-
कुण्डलं रतिगसप्राम्बिजगण्डस्थलम् । प्रौढप्रमपरम्प-
रापरिचयमोन्मुल्लनप्राञ्चलं शम्भोरस्तु चिभूतये हि
भवतामुन्मत्तगङ्गं शिगः ॥ ३६ ॥ चिन्ताचक्रिणि हन्त
चक्रिणि भिया कुःजासनेऽजासने नश्यद्भामनि तिम-
धामनि धृताशङ्के शशाङ्के भृशम् । भ्रश्यञ्चेतसि च
प्रचेतसि शुचा तान्ते कृतान्ते चयः व्यग्रोऽभूत्कटुकाल-
कृटकफलीकाराय पायात्स धः ॥ ३७ ॥ चञ्चलान्द्रक-
चन्द्रचारुकुसुभो माद्यजटापत्नयो द्यवहास्यदन्दश-

प्रहण कर लेता था, आँवें फेर लेनेपर भी गिरा पड़ता था
और मटक देनेपर भी आलितन निप ले रहा था ॥ ३५ ॥
वे शिवजी विश्वका कल्याण करें जिनके पुफकारते हुए यड़े-यड़े
सौँसों भयानक फूकारते सन लोग डरे रहते हैं, जिनके चारों
और प्रेत, पिशाच और राक्षस लेलते रहते हैं, जिनके मस्तकके
तीसरे नेत्रमे प्रलय-नालकी आगिके समान लयवें उडती रहती
है, जो सर्वत्र व्यापक है, जो वायवी खाल आँवें रहते हैं और
जिनहें देवदर भयानक जीव भी भयभीत हो जाते हैं ॥ ३६ ॥
लहराती हुई गदगमे युक्त वह शङ्करजीस मन्त्रक आप लोंगोका
कल्याण करें जो पार्वतीजीनों चूम लेनेके लिये चबल होकर चमक
उठता है, निमपर बुधकी मारे हुए सौंप मन्त्र होकर डोलते हैं,
जिसके माधेपर रतिके आनन्दसे पसोनेरी बूँदें मलक आई हैं
और धपना धना प्रेम जताते समय जिसकी आँवें और भी अधिक
गिल उठती हैं ॥ ३६ ॥ महाविपरी उठती हुई गजलाओंसे
जय मुद्रांन चक्र धारण करनेवाले निष्पु अधिक विन्तत हो
गए, प्रसा प्राण पचानेको कमलमें घुम गए, सूर्य नितेन हो
गए, चन्द्रमा घसमझसमे पद गए, कुबेरस चित्त प्याउल
हो गया और यमराज शोमने मूर्च्छित हो गए उस समय उस
भयदर कालहृद नामक महाविपरी गिल जानेकी उतावलीमें
हृदयदाकर उठ गये होनेवाले शङ्करजी आपनी रचा करें
॥ ३७ ॥ 'व्याणु' (दूँट) नामगाने तथा कणपृष्ठके समान
पे चन्द्र भयान् मेरी हृदयार्ण रण्य करें जिनके मिरपर
द्विटी हुई प्योदनीवाला चन्द्रमा मानो सुन्दर वृत्त है, निम्नी
हई जटाण मानो पत्ते हैं, गलेमें मिर उठाए हुए मणिगाले

कमणिसौस्तत्यञ्चशालालयः । स्थालुमें फलदो भव-
त्यतितरं गौरीमुखेन्दुद्वयपीयूषद्वयदोहदादिव द्यधे-
चद्रमत्वं सदा ॥ ३८ ॥ चन्द्रानानार्थदेहाय चन्द्राणुसित-
मूत्तये । चन्द्राकानलनेत्राय चन्द्रार्धशिरमे नमः ॥ ३९ ॥
चूडाभस्मकणाङ्किताधिव जटापत्राञ्जलेनामृशन्नेत्राग्नि-
द्युतितपिताधिव करैस्सिञ्चन्मुधादीधितेः । नागध्या-
सकलङ्किताधिव मुहुर्गङ्गाजलेः क्षालयन्मानिन्याश्चरणौ
गिरीन्द्रुहितिभूत्यै गिरीशोऽवतु ॥ ४० ॥ चूडोत्तसित-
चारुचन्द्रकलिकाचञ्चिच्छ्रुत्वाभसुरो लीलादग्धविलो-
लकामशलभः श्रेयो दशात्रे स्फुरन् । अन्तर्गुहदुरन्तमो-
हतिमिरप्राग्भारमुच्छेद्येद्वयैतःसन्ननि योगिनां विजयते
बोधप्रदीपो हरः ॥ ४१ ॥ च्युतामिन्दोलेखां रतिकलह-
भञ्जञ्च चलयंद्दयं चक्रोक्त्यं प्रहसितमुखी शैलतनया ।
अयोचर्चं पश्येत्यवतु स शिवः सा च गिरिजा स च

भयङ्कर पौंच सौंप ही डालियाँ हैं और पार्वतीके चन्द्रमुखसे
दपकता हुआ रस ही मानो अमृत है ॥ ३८ ॥ उन शङ्करजीको
प्रणाम है जिनकी आधी देहमें चन्द्रमुखी पार्वतीजी विराजमान
हैं, जो चन्द्रमाकी किरणोंसे उजले दिखती पड़ते हैं, चन्द्रमा और
सूर्य दोनों जिनके नेत्र हैं और जो टेढा चन्द्रमा सिरपर
धारण किए हैं ॥ ३९ ॥ वे गिरीश (शिवजी) आपकी
पेशवर्ष दें जो रूठी हुई पार्वतीजीके पंर पड़ते हुए ऐसे
जान पड़ते हैं मानो आपनी जटाओंसे उनके पिराँसे अपने
मस्तककी लगी हुई भस्म पाँव रहे हों, अपने तीसरे
नेत्रके तापसे तपे हुए उनके चरणोंपर चन्द्रमाकी अट्ट-
मयी किरणें बरसाकर उन्हें शीतल कर रहे हों प्रथमा
नागकी विपैली सौँसोंकी भापसे मैले किए हुए उनके चरण
गद्गजलसे धो रहे हों ॥ ४० ॥ मस्तककी शोभा बढ़ानेवाली
चन्द्रकलानी उजली कान्तिसे चमचमाते हुए, स्वभावसे
ही चञ्चल कामरूपी पतङ्गके जला देनेवाले, योगियोंके
चित्तरूपी भजनमें विराजमान तथा उनके भीतर सिधे हुए
धपार मोहरूपी धने अन्धकारकी धटाका विनाश करनेवाले
क्याणरूपी बर्तके अग्रभागमें चमरनेवाले ज्ञान-दीपक शिवकी
जय हो ॥ ४१ ॥ रतिके समए कलहमें गिरे हुए शङ्करजीके
देहें चन्द्रमाकी और दूटकर गिरे हुए अपने हायके आधे कदमकी
मिलाकर उसे चन्द्रमाके समान गोल बनाकर हिमालयनी पुत्री
पार्वतीजीने हँसते हुए जिन शङ्करजीनों 'यह देगिए' कहकर
दिनाया, तथा दौतीनी कान्तिसे जिसका सारा शरीर चमक रहा
है वे शङ्करजी, वे पार्वतीजी और शङ्कर पार्वतीने दौतीनी चमकते

क्रीडाचन्द्रो दशानकिरणपूरितननुः ॥४२॥ जगज्जीव-
नमध्याह्नः शम्भोरम्भोमयं वपुः । ब्रह्माण्डमपि यस्या-
न्तस्मरत्तुम्भीफलायते ॥ ४३ ॥ जगन्मिसृष्टाप्रलयक्रि-
याविधौ प्रयत्नमुन्मेषनिमेषविभ्रमम् । घटन्ति यम्ये-
क्षुण्णलोलपद्मशां पराय तस्मै परमेष्ठिने नमः ॥ ४४ ॥
जयति जटाकिञ्चलैर्गङ्गामधु सुगटवलयवीजमयम् ।
गलगगलपङ्कसम्भवमम्भोरुहमाननं शम्भोः ॥ ४५ ॥
जयति प्रियापदान्ते गगलद्रैवेयक. स्मगरातिः । विषम-
विशिष्टे विशिष्टिव शरयं गलचङ्कक्यालः ॥४६॥ जीर्ण-
ऽप्युन्मटकालकूटगरले प्लुष्टे तथा मन्मथे नीते भासुर-
भालनेत्रननुनां कल्पान्तदावानले । यः शन्त्या समलङ्क-
तोऽपि शशिनं शैलान्मजां स्मर्युनीं घत्ते कांतुकराजनी-
तिनिपुणः पायात्स वः शङ्करः ॥ ४७ ॥ ज्वाला जातु
कपलनां न दधत्तां भाले कृशानोरिति स्वर्गज्ञा विहिता
कपर्दनिलया प्रागेव येन स्वयम् । ज्येष्ठत्रासहते सुधाक-

रकला मूर्धाचिन्ता येन च प्राप्नोऽर्था भयभीतिशान्ति-
विषये भूयात्पिनाकी शिवः ॥ ४८ ॥ तन्कालागम्भीवि-
ज्जमखुपरित्रान्मादिब अश्रयता वामायेन तद्रेकोपेकरगुं
विभ्रष्टमुर्भरवम् । तुल्यञ्जाम्बिसुजङ्गभूषणमर्मां भागा-
न्द्रकङ्कालकैविधारायः पग्मेथरो विजयते कल्पान्तकमां-
न्तकः ॥ ४९ ॥ तातं तत्तातनातं कथय हृकुलेऽलङ्कृते
सम्प्रदाने तच्छृत्वा चन्द्रमूर्धालिनंतमुपकमलो जातलजो
वभूव । ब्रह्मावादीत्तवानां शृणुत हृकुलं वेदकण्डोषर-
रुष्टौ श्रीकण्ठात्रीलकण्ठः प्रहसितवदनः पातु धञ्जन्द्रचूटः
॥५०॥तादृक्ससतममुद्रमुद्रितनहोभूसृष्टिग्नध्रुपैः श्रोतो-
भिः परिव्यापिता दिशि दिशि द्वीपैः समन्तादयम् । यस्य
स्फारफणावलीमणिक्ये मञ्जुकलङ्कारितः शेषः सोऽ-
प्यगमयद्रुद्रपदं तस्मै नमः शम्भवे ॥५१॥ तारागायकशे-
खराय जगदाधाराय धाराधरच्छ्रियाधारककन्धराय
गिरिजासङ्करुभ्रारिणे । नद्या शेखरिणे दशा तिलकिने

चमकना हुद्या खेल-नेत्रमेथना वह चन्द्रमा, ये सय संसारकी
रक्षा करे ॥ ४२ ॥ सारे संसारके जीवन, शङ्कर भगवान्का वह
जलमय शरीर आपकी रक्षा करे जिसमें तरता हुद्या सारा
ब्रह्माण्ड सृष्टिके समान जान पड़ता है ॥४३॥ जिनके विषयमें
खोग कहते हैं कि उन्हें संसारकी सृष्टि और प्रलय करनेमें
बेशक अपने नेत्रोंकी चञ्चल पलके गिराने और उठाने-मात्रका
प्रयत्न करना पड़ता है उन सर्वश्रेष्ठ परमपदरूप भगवान्
गिवकी प्रणाम है ॥ ४४ ॥ गलेके काले विषरूपी कीचड़से
उत्पन्न कमलके समान जान पड़नेवाले उस शङ्करजीके
मुपकी जय हां जिसमें जटाएँ हां वेशर हैं, गदा ही मकरन्द
है और सिरका घेरा हां मानों कोण है ॥ ४५ ॥ कामदेवके
शत्रु उन नीले कण्ठवाले भगवान् गिवकी जय हो जो प्रियाके
पर पड़ने समय ऐसे जान पड़ने है मानों गलेमें पड़्या
कीचड़ कामदेवकी शरय जा रहे हां ॥ ४६ ॥ खेल और
रामनिमित्त चतुर वे शङ्करजी आप लोगोंकी रक्षा करे जिनमें
कालकूट निपटों पचा लेनेपर, कामदेवको भस्म कर देनेपर और
महाप्रलयके समय भयङ्कर वासुधि उत्पन्न करनेमें चमकते हुए
बलाघटके नेत्रके शान्त हो जाने (सुँद जाने) पर भी इतनी
शक्ति है कि वे श्रावशा-गङ्गा, पार्वती और वज्रमातों एक साथ
गिरपर धरे रहते हैं ॥ ४७ ॥ अत्यन्त बुद्धिमान तथा पिनाक
धनुष धारण किए हुए वे भगवान् शङ्करजी ममारका भय शान्त
करे जिन्होंने पहलेसे ही साँपोंके विषमें धचानेके लिये चन्द्रमाकी

सिरपर धारण कर लिया और माथेकी शक्तिकी लपटोंको
अत्यधिक प्रयत्न न होने देनेके लिये गदाको जटाधामें ही समा
लिया ॥ ४८ ॥ सयमा सहार करके एक धकेले वच रहनेवाले,
हड्डियों और नागोंका आभूषण धारण करनेमें हड्डियोंके ढाँचे
और वासुकिके समान ही भयावने दिवाई देनेवाले, घोर
वेप धारण करके महाप्रलयके समय शारमती नृत्य करनेवाले
उन परमामा शिवकी जय हां जिनके जैभाई लेते समय
भयके मारे बाएँ भागमें स्थित पार्वती गिरने लगी थीं
॥ ४९ ॥ विवाहमें गाथांचार होते समय जब पुरोहितने
शिवजीमें पृष्टा कि 'आप अपने पिता, पितामह और
प्रपिनामहका नाम बनाएँ' उस समय शङ्करजीने तो लज्जित
होकर अपना मुँह नीचा कर लिया किन्तु महाजीने टोककर कहा—
'सुनिप, इनने पूर्वजके नाम है क्रमय.—वेदकण्ठ, उग्रकण्ठ और
श्रीकण्ठ !' यह सुनते ही मुष्करा देनेवाले तथा सिरपर
चन्द्रमा मजाए हुए शङ्करजी आप लोगोंका रक्षा करे ॥ ५० ॥
इतने बड़े मान समुद्रोंमें पिरा हुई, आकाशको चूमनेवाले ऊँचे-
ऊँचे पर्वतोंमें भरी हुई तथा स्थान-स्थानपर बहते हुए सैकड़ों
भक्तनों और शीपोंवाली पृथ्वी जिसके चमकते हुए कणोंमें
रक्षनी ऐसे जान पड़ती है मानों मयिमें छोटा-सा काला धना
लग गया हां, ऐसे शेषको सो जिन्होंने हाथका कटन बनाकर लपेट
रख्या है उन शिवजीको प्रणाम है ॥ ५१ ॥ उन स्वामी भगवान्
शङ्करकी सदा प्रणाम है जो मेवाँके समान उजले कथेवाले है,

नागायणेनाश्रिते नागैः कङ्कशिने नगेन गृह्णित्वा नाथाय
नित्यन्नतिः ॥५२॥ ज्ञाना भीतिभृतां पतिश्चिदचित्तां क्लेशं
सतां शंसतां हन्ता भक्तिमतां सतां स्वसमतां कर्तापकऽ-
र्त्तासताम् । देवः सेचकमुक्तिमुक्तिरचनाभूर्भुवुं स्वख-
यीनिर्माणमित्यसिंहतिप्रकटितप्रीडो मृडः पातु वः ॥५३॥
द्राम्येऽहं परिरम्भणानि फितव धृतं जितानि त्वया धैर्यं
धेहि यतः कृतः शतमहोरात्राणि तत्रावधिः । इत्युक्त-
शिवया निशादिवसकृञ्जयोतिर्मयाच्छिद्रथद्रागुम्भेपनिमे-
पफोटिघटनाव्यत्रां हरः पातु वः ॥५४॥ दिक्कालात्मसमेध
यस्य विश्रुता यस्तत्र विद्योतते यत्रामुष्य सुधीर्भवन्ति
किरणा राशेः स यासांमभूत् । यस्तपित्तमुपःसु योऽस्य

हविषे यस्तस्य जीवातवे वोढायद्गुणमेप मन्मथरिपोस्ताः
पान्तु नो मूर्त्यः ॥५५॥ दिग्म्बरनितम्बिन्याः किम्बर-
विभूपणम् । इत्यम्बरहरः पायात्परीरम्भपरो हरः ॥५६॥
दिव्यं वारि कथंयतः सुरधुनी मौलौ कथं पावको दिव्यं
तद्धि विलोचनं कथमहिर्दिव्यं स चान्ने तव । तस्माद्युत-
धिघो त्वयाच मुपितो हारः परित्यज्यतामित्यं शैलभुवा
विहस्य लपितः शम्भु शिवायास्तु वः ॥५७॥ दिश्यात्स
शीतकिरणाभरणः शिवं घो यस्योत्तमाद्भुवि विस्फुर-
दूमिपत्ता । हंसीव निर्मलशशाङ्ककलाभृणालकन्दार्थिनी
सुरसरिभ्रमसः पपात ॥५८॥ दीव्यन्मौलि त्रिदशपरिप-
जीवनीयेन धाम्ना पश्यद्भालं बलभितकरं प्राणता कङ्क-

वां सारे ससारको अपने ऊपर टिकाए हुए हैं, जो एकमात्र
पार्वतीजीके साथ विहार करते हैं, चन्द्रमा और गङ्गासे जिनका
सुकुट सजा हुआ है, जिनका तीसरा नेत्र ही तिलक है, भगवान्
विष्णु ही जिनके अस्थि हैं, सौंप ही जिनके कङ्कण हैं और
हिमालय ही जिनका पर है ॥ ५२ ॥ वरे हुए लोगोंको डरसे
घचनेवाले, जड़ और घेतनके स्वामी, सज्जनोंको कष्ट देनेवालोंको
मारनेवाले, भक्तोंको अपने समान करनेवाले, दुष्टोंका दण्ड
देनेवाले, अपने सेवकोंको साक्षात्कि सुख और माधु देनेवाले
तथा भू भुव स्व. लोक आदिको देख लेलमें ही बनाते,
भिगादने या पाखते रहनेवाले शङ्कर भगवान् आप लोगोंकी रक्षा
करें ॥ ५३ ॥ जब पार्वतीजी शिवजीको आलिङ्गन करनेकी
पान्तो लगाएर लुपमें हार गईं तब उन्होंने शङ्करगीते कहा—
'हे परमात्मा ! मैं सुन्दे' लुपमें हारे हुए आलिङ्गन एक सौ
दिनोंके पश्चात् दूँगी, तबतक तुम धीरज रखो ।' तपसे जो
शङ्कर भगवान् मूर्त्य और चन्द्रमाकी पुतलियाँवाले दिन और
रातरूपी नेत्रोंको कराँदों वार जल्दी-जल्दी भूदने-बोलनेमें लगे
हुए अपना समय बिना रहे हैं, वे आपकी रक्षा करें ॥ ५४ ॥
१-जो दिशा और कालमें अपनी ध्यापकता समान रखता है
(धारण), २-जो उम धारणमें प्रकाश देता है (मूर्त्य),
३-जहाँ उस मूर्त्यकी विरथें अष्टतमयी हो जाती हैं (चन्द्रमा),
४-जो उन अष्टत विष्णुधर्मोंका विष्णु रूप हुआ (जल),
५-धर्मि, ६-जो धर्ममें हविष्य शालता है (यजमान),
७-जो जपनको घटन करता है (वायु), और ८-जो
उममें सज्जन करनेका गुण है (शुष्मी), वे मन्मथपरिणु शिवजीकी
पाठ मूर्त्तियाँ हमारी रक्षा करें ॥ ५५ ॥ 'नङ्गे रहनेवालेकी
रक्षाको वस्तु पहननेकी क्या धारणरचना है !' ऐसा करते

हुए आलिङ्गन करनेके लिये पार्वतीके वस्त्र खींचनेवाले
शिवजी ससारकी रक्षा करें ॥ ५६ ॥ लुप्रा खेलेते हुए
शिवजीने पार्वतीजीका हार जीत लिया, उस हारको लौटानेके
लिये पार्वतीजीने कहा—आपको जलकी सौगन्ध है जो आप हार
न लौटा दें । शिवजीने कहा—जल कैसा ? पार्वतीजी बोली—
यही जो गङ्गास्वरूपमें आपके सिरपर है (अर्थात् आपको अपने
सिरकी सौगन्ध है जो आप हार न लौटावें) । जब शिवजीने
न दिशा जो पार्वतीजीने अग्निकी सौगन्ध दिखाई । शिवजीने
पूछा—यह क्यों ? पार्वतीजी बोली—वह आपका नेत्र है न !
(अर्थात् आपको अपने तृतीय नेत्रकी सौगन्ध है जो आप हार
न लौटावें) । इसपर भी असफल होकर पार्वतीजीने सूर्यकी
सौगन्ध दिखाई, शिवजीने पूछा—यह क्यों ? पार्वतीजी बोली—
वह आपके शरीरपर है न ! (अर्थात् आपको अपने शरीरकी
सौगन्ध है !) आज जो आपने लुपमें मेरा हार भ्रष्ट किया है
उसे सीपेसे लौटा दीजिए । इस प्रकार पार्वतीजी-द्वारा हँसे
गए महादेवजी आप लोगोंका कल्याण करें ॥ ५७ ॥ शीतल
निरर्थाँवाले चन्द्रमाकी गहना बनाकर पहले हुए वे शङ्करकी
आपको आनन्द दे जिनके सिरपर स्थित चञ्चल लहररूपी
पहोंगालो गङ्गास्त्री हसिनी मानाँ उजले टरडे चन्द्रमाको कमल-
नाल समझकर उसे खानेके लिये ही आकाशसे मपट पड़ी
हो ॥ ५८ ॥ देवताधर्मकी सभाकी जिलानेवाले तेज (चन्द्रमा)
से चमकते हुए मस्तकवाले, धार्ष्ट अहमें प्रत्यक्ष ही काम-कला-
रूपी प्रक्षयिवापाना उपदेश करनेवाले (काम-कला स्वरूपिणी
तथा प्रक्षयिवा-स्वरूपिणी पार्वतीजीको धारण करनेवाले)
तथा प्रियुरामुकी सुरानी धर्मोंके नन्द, कपोल आदिकी
चित्रमारीरूपी सताहो कानेवाले धार्ष्टरूपी उन शिव-स्वरूप

ऐन । वामाङ्गेन स्फुटमभिदधन् मान्मर्थी ब्रह्मविद्यां
जीयादोजस्त्रिपुरवतीपत्रवल्लीलवित्रम् ॥ ५६ ॥ दूरे
दादवनाभिसारक वृथाचाटूनि मुञ्चाधना भूयस्त्व-
स्पुनरप्यहं यदि तदा चन्द्रः क्षितिं यास्यति ।
इत्युक्तं शशिमौलिरद्रिसुतया चूडेन्दुभूलभवनव्याज-
व्यञ्जितपादपद्मपतनप्रीतप्रियः पातु वः ॥ ६० ॥ दृष्टः
सप्रेम देव्या किमिदमिति भयात्सम्भ्रमाच्चासुरीभिः
शान्तान्तस्तत्त्वसारैः सकरुणस्मृपिभिर्विष्णुना सस्मि-
तेन । आदायाह्नं सगर्धरश्मिमितवधूसम्भ्रमैर्द्वैत्यवीरैः
सानन्दं देवताभिर्मयपुरदहने धूर्जटिः पातु युष्मान् ॥ ६१ ॥
देव्याः प्राक्परिरम्भणे किल करौ द्वौ द्वौ पुनस्तत्करो
रोक्षुं तन्मुयमुन्मुपं रचयितुं द्वौ चाधरास्वादाने । द्वौ
नेत्रान्तपलालकापनयने मोकञ्च नीवीं दडों ह्यवित्थं

सफलीकृताखिलकरः पायात्स वः शङ्करः ॥ ६२ ॥ देहाधा-
नन्दकान्ताकचकुसुमचयो भालनेत्रानलशिः पीनोष्मा-
मौलिलेखलन्मुपसुरन्दनीनीरप्यो जगन्ति । स्फीतोत्त-
सेन्दुकान्तिद्विदृददतिदृढाच्छदानव्यकशीतः शम्भुर्भू-
पास्थिगुन्दप्रकरपरिवृतः पातु सर्वचतुर्मूतिः ॥ ६३ ॥
धन्या केयं स्थिता ते शिरसि शशिकला किन्तु नामैतद्
स्याः नामेवास्यास्तदेतत्परिचितमपि ते विस्मृत वक्ष्य
हेतोः । नारां पृच्छामि नेन्दुं कथयतु विजया न प्रमाणं
यदीन्दुर्देव्या निहोतुमिच्छोरिति सुरसरितं शाठ्यम-
व्याष्टिर्भोर्वः ॥ ६४ ॥ न क्रोधः क्रियतां प्रिये स तु भवन्मो-
लित्यगद्गदरे मुग्धे मानमपूजितं त्यज कृतं युष्मन्नि-
योगद्वयम् । वक्त्रे श्लेषममुं निराकुरु कदा शिल्पेऽसि
वक्त्रे मया वामाङ्गयेति हतोत्तरः स्मरहरः स्मराननः

तेजकी जय हो जाँ अपने उस मस्तकको देख रहे हैं जिसपर
स्थित चन्द्रमाको समानताके कारण ही बाएँ भाग (पार्वती)
वाला प्राणमिय कहन प्रेमपूर्वक सहला रहा है ॥ ६१ ॥
'हे दाम्जनमे श्रमि सरप करननाले । दूर हटो । व्यर्थनी चाटुकारी
मत करो, यदि हम और तुम बने रहे तो फिर भी चन्द्रमा
पृथ्वीपर दिग्गई देगा ।' पार्वतीके ऐसा कहते ही आशुपथ्य बने
हुए चन्द्रमाको पृथ्वीपर रखनेके वहाने पार्वतीजीके चरणकमलमें
सिर रखकर उन्हें प्रेमपूर्वक मनानेवाले शिवजी आपको रचा
करें ॥ ६० ॥ त्रिपुरासुरना नगर जलाए डालते हुए वे शङ्करजी
आप लोगोंनी रचा करें जिन्हें उस समय पार्वतीने प्रेमपूर्वक,
'अरे यह क्या' इस प्रकार कहकर डरती हुई राक्षसियोंने
घयदाकर, गान्त धन २रगथाले तबज्ञानी ऋषियोंने दधा-
पूर्वक, विष्णुने मुक्तकाले हुए, चमपकी वीर देव्योंने अपनी
धनराती हुइ शिवियोंके गान्त (निर्भय) करके हाथोंमें शस्त्र
लेते हुए और देवताओंने यडे आनन्दपूर्ण देवना था ॥ ६१ ॥
वे शङ्करजी आप लोगोंनी रचा करें जिन्होंने पार्वतीजीका
सर्पप्रथम आलिङ्गन करते समय वो हाथोंसे पार्वतीजीके
पञ्चल हाथ पकडे, और दो हाथोंसे पार्वतीजीका मुँह
ऊपर उठाया, दूसरे दो हाथोंने सहायतामे पार्वतीजीका अधर
पान किया, और दो हाथोंने पार्वतीजीनी श्रोणोंपर आते हुए
बालोंको पीछे हटाया तथा शेष दो हाथोंसे पार्वतीजीनी
कमरमें बसकर रँधी हुई साक्षीनी गॉठि रोलकर अपने दसों
हाथोंपर वर लाए ॥ ६२ ॥ वे शङ्करजी सबकी रचा
करें जो अपनी देहसे सटी हुई पार्वतीके बालरूपी पूजासे वसन्त

ऋतुवाले, माथेके नेत्रकी आभिके तापसे गर्मा ऋतुवाले,
मस्तकपर कलकल करके बहती हुई सुन्दर जलवाली गङ्गासे वर्षा
ऋतुवाले, बिले हुए चन्द्रमाकी सुन्दर चाँदनीमे शरद् ऋतुवाले
और उजली हड्डियों और बुन्दके-फूलोंकी सजावटमे हेमन्त
ऋतुवाले, अथाव एक साथ ही छहों ऋतुआंवाले जान
पढते हैं ॥ ६३ ॥ पार्वतीजीने शङ्करजीसे पूजा—आपके सिरपर
पह कीन भाग्यवती है ? शङ्करजीने कहा—यह चन्द्रमाकी कला है ।
पार्वतीजी—इसना नाम क्या है ? शङ्करजी—इसका यही नाम
है । यह तो तुम जानती ही हो, भूल कैसे गई ? पार्वतीजी—
मैं रीतको पृथुती हूँ, चन्द्रमाना नहीं । शङ्करजी—विजयाको
ही कहा वह देखकर बता दे कि यह चन्द्रमा है या नहीं ।
इस प्रकार अपने सिरपर स्थित गङ्गाको पार्वतीजीसे छिपाना चाहते
हुए शिवजीके यह धूर्तता आप लोगोंकी रचा करे ॥ ६४ ॥
शिवजीने कहा—प्रिये ! क्रोध न करो (न क्रोध क्रियताम्) ।
पार्वतीजीने कहा—नक (यच्चिवाल) तो तुम्हारे सिरपर
स्थित गङ्गामें है । शिवजी—मान करना अच्छा नहीं, तुम मान
झूठ दो । पार्वतीजी—वह (मान=प्रतिष्ठा) तो तुम्हारे मिल जानेसे
और बढ़कर दूना हो गया । शङ्करजी—प्रिये ! अपने मुँहका
यह श्लेष (ध्यय) दूर करो । पार्वतीजी—तुम मेरे मुँहसे
बच सते हो जो मैं अलग करूँ ? इस प्रकार अपने बाएँ भागमें
ठीठी पार्वतीजीनी बातीका उच्छे न दे सकते हुए तथा हैसते हुए
शिवजी आप लोगोंकी रचा करें ॥ ६१ ॥ उन शिवजीको प्रणाम
है जिनके ऊँचे सिरको चूमनेवाला चन्द्रमा चँवरके समान
सुन्दर जान पड़ता है और जो प्रैलोक्यरूपी नगरको सँभाले

पातु वः ॥६५॥ नमन्तुः शिरश्चुम्बिनन्द्रचामरचारवे ।
 त्रैलोक्यनगररम्भमूलस्तम्भाय शम्भवे ॥ ६६ ॥ नमस्तु-
 भ्यं देवासुरमुकुटप्रामाणिक्यकिरणप्रणालिसम्भेदक्षपि-
 तचरणाय स्मरजिते । महाकरपस्थाहाकृतभुवनचक्रेऽपि
 नयने निरोद्धं भूयस्ताप्रसरमिय काम हुतवते ॥ ६७ ॥
 नमः शिवाय निःशेषकलेशमशमशालिने । त्रिगुणग्रन्थि-
 दुर्भेदप्रवन्धविभेदिने ॥ ६८ ॥ निरुपादानसम्भारम-
 भित्ताविषय तन्वते । जगत्त्रिं नमस्तस्मै कलाशलाघाय
 शूलिने ॥ ६९ ॥ नृत्यारम्भरसत्रसङ्घिरिमुनारिकार्ध-
 सप्तसूक्तिय निर्व्यूढभ्रमिचिभ्रमाय जगतामीशाय तुभ्यं
 नमः । यच्चूडाभुजगेश्वरप्रभृतिभिस्नादभ्रमन्तीर्दिशः
 पर्याङ्गर्भनघूर्णमाननयनैः शान्तोऽपि न श्रद्धे ॥ ७० ॥
 पर्यङ्गग्रन्थिग्रन्थिप्रसुणितभुजगश्लेषसंवीतजानोरन्तः-
 प्राणावरोधघट्यपरतसकलानरुद्धेन्द्रियस्या । आत्मन्या-

त्मानमेव व्यपगतकरणं पथ्यतस्तत्त्वदृष्ट्या शम्भोर्भ्यः
 पातु शून्येक्षणघटितलयब्रह्मलसः समाधिः ॥७१॥ पाणि-
 ग्रहे पर्वतराजपुत्र्याः पादाभ्युजं पाणिसरोहवाभ्यां ।
 श्रममानमारोपयत स्मरारोर्मन्स्मितं मङ्गलमातनोतु
 ॥ ७२ ॥ पाणिग्रहे पुलकितं वपुरैशं भूतिभूपितज्वयति ।
 त्रङ्कुणित इव मनोभूर्भस्मिन्भस्मावशेषोऽपि ॥ ७३ ॥ पाणो
 कङ्कणमुक्तकणं फणिपतिनेत्रं लसत्पावकं कण्ठ . कुण्डित
 कालकूटविपमो वक्षं गजेन्द्राजिनम् । गौरालोचन-
 लोभनाय सुभगो वेपो वरस्यास्ति मे गर्दङ्गाङ्गासविभा-
 यितः पशुपतेर्हासोद्गमः पातु वः ॥ ७४ ॥ पादस्याविर्भ-
 वन्तीमघननिमघने रक्षत . स्वैरपातेः सङ्कोचेनैव दोष्णां
 मुहुर्भिनयतः सर्वलोकातिगानाम् । दृष्टि लक्ष्येषु नोघ्र-
 ज्वलनकण्ठमुचं यध्नतो दाहमीतेरित्याधाराभुरोधाति-
 पुरविजयिनः पातु वो दुःखनृत्तम् ॥ ७५ ॥ पाश्वस्थपृथ्वी-

रग्नके लिये सुदृढ़ रगभे है ॥ ६६ ॥ देवता और असुरोंके
 सुदृष्टीं लगे मलिन्योत्री उजली चमकने धोंप गण परशोवाले,
 कामदेवको जीतनेवाले तथा महाप्रलयके समय तीसरे नेत्रकी
 श्रमिने भङ्गनेमे रोगनेके लिये उसमे चौदहे भुजगकी
 श्राहुनि देवर 'निर भी वह न भडक उठे' इसलिये कामदेवकी
 श्राहुनि छोड़कर उस श्रमिने शान्त कर देनेवाले है शिवजी !
 चापको प्रणाम है ॥ ६७ ॥ सम्पूर्ण बगैको मिटा डालनेवाले
 तथा सन्, रज और तमरूपी तीन डोर की बहुत कड़ी
 गोंठीवाले मंसारवा यन्धन गाल डालनेवाले शिवजीको
 प्रणाम है ॥ ६८ ॥ शूल धारण किए हुए उन वडे भारी
 कलाकार शिवजीका प्रणाम है जिन्होंने विना किसी सामग्रीके
 इतना बड़ा ससाररूपी चित्र शून्यमे ही रच डाला ॥ ६९ ॥
 अर्धनारीशर शिवजीने जय नाचना आरम्भ किया उस समय
 डरके मारे पार्वतीके गिर जानेमे चापे रीते हुए शङ्करो पुन
 अरनेके लिये जिन्होंने नाचना बन्द तो कर दिया पर उतने
 बेगने धूमती हुई दिशाओंको देवनेमे घना घनर पानेवाली
 शौनोथाले वर्षोंके डोलने रहनेमे जो श्रमों भा शान्त नहीं हो
 पाए, ऐमे भारे मंसारके ग्यामी है गिवापी । चापको प्रणाम है
 ॥ ७० ॥ चपक घामन लगानेपर साँपाके निजने लिपट जानेमे
 जिगमे घुटने टपे हुए है, जिम्के द्वारा प्राणायाम रोक लेनेके
 कारण किन्तो प्रसवका ज्ञान न रहे जानेमे मय इन्द्रियाँ शान्त
 हो चुकी हैं, जिम्के द्वारा अपने आभारी भव निपाएँ
 प्राणामें ही खीन करके दिम्प रहिमे भी वे मसार प्रपद्यो न

देवते हुए अपने मनको एकाग्र करके ब्रह्ममे मिल गए है ऐसी
 शिवजीकी समाधि आप लोगोंकी रक्षा करे ॥ ७१ ॥ हिमालयकी
 पुत्री पार्वतीका पाणिग्रहण करने समय उनके कमल जैसे
 कोमल पैरोंको मुस्कराते हुए अपने कमल जैसे हाथोंमे पथरपर
 रगनेवाले तथा कामदेवको जला देनेवाले शिवजीकी मन्द
 सुसकान आनन्द देती रहे ॥ ७२ ॥ शंकरजीकी वह राखने
 लिपटी हुई देह विजयी हो जिसमें पार्वतीजीका पाणिग्रहण
 करते समय रामात्र होनेमे ऐसा जान पडा मानो शरीर जल
 जानेपर भी भस्मरूपमे बचे हुए कामदेवके शत्रु निरुल रहे
 हों ॥ ७३ ॥ 'मेरे हाथोंमे फण उड़ाए हुए साँपाके बदन है,
 श्रॉयिमे श्रमि चमक रही है, गलेमे भयदर कालरूट निप श्रटका
 हुआ है और हाथीकी गाल चर्राका काम दे रही है, पार्वतीके
 नेत्रोंमे लुभाकेके लिये मेरा यह दुलहा रूप बहुत सुन्दर है'
 ऐसा सोचकर शङ्करजीके कणों निरस हैंसाँमे गित उठे वह
 हैंसी आप लोगोंकी रक्षा करे ॥ ७४ ॥ त्रिपुरामुखा जीतनेकी
 प्रसन्नतामे शिवजीका यह दुःखपूर्वक नाचना आपकी रक्षा करे
 जिसमे धमरसे तृथ्याके नठ हानिके डरसे तृथ्याके आग्रहमे वे
 स्वद्वन्द्व होकर फिर न पटक पाएँ, सब लोकामे परे पहुँचनेवाली
 साहुकाँको हृदय न रहत हुए भी उन्हे सन्तुचित करना पडा
 तथा ब्रैलकथने जल जानेके डरमे भयङ्कर चिनगादिवाँ उड़ती
 हुई शिरो मे बही गिधर न घर पाए ॥ ७५ ॥ मयनाल
 बाएँ भागमे शिम्भ, पर्वतोंमे धेर हिमालयकी पुत्री पार्वतीके
 श्रोत्रमे क्षीपती हुई देए डरके मारे 'माँ ! तुम्हे प्रणाम है' ऐसा

धरराजकन्याप्रभोपविस्फूर्जथुकातरस्य । नमोऽस्तु ते
मातरिति प्रणामाः शिवस्य सन्ध्याविपया जयन्ति ॥७६॥
पिना रुफणियालेन्दुभस्ममन्दाकिनीयुता । पवर्गा रचिता
मूर्त्तिरपवर्गप्रदास्तु वः ॥७७॥ पौलस्त्यपीनभुजसम्पद्-
दस्यमानकैलाससम्भ्रमविलोलदृशः प्रियायाः । श्रेयांसि
यो दिशतु निहितकोपचिह्नमालिङ्गनोत्पुलकमासितमि-
न्दुमौलेः ॥ ७८ ॥ प्रणयकुपितप्रियापदलाक्षासन्ध्यानु-
पन्धमधुरेन्दुः । तद्वल्यकनकनिकपद्रावग्रीवः शिवो
जयति ॥ ७९ ॥ प्रणयकुपितां दृष्ट्वा देवो ससम्भ्रमवि-
स्मितस्त्रिभुवनगुरुभौत्या सद्यः प्रणामपरोऽभवत् । नमि-
तशिरसो गङ्गालोकं तथा चरणाहतावचतु भवतस्व्यक्त-
स्यैतद्विलक्ष्मधरिथतम् ॥ ८० ॥ प्रतिविम्बितगौरीमुच-
विलोकनोत्कम्पशिशिलकरगलितः । स्वेदभरपूर्यमाणः
शम्भोः सलिलावलिर्जयति ॥ ८१ ॥ विभ्रत्प्रायः कपदं

सुरनगरनरीमिन्दुलेखां ललाटे नेत्रान्तः कालवर्हि गर-
लमपि गले व्याघ्रचर्मङ्गभागे । पञ्चान्यो वै त्रिनेत्रो वृष-
भगतितरिचामभागार्धवामः सन्दिश्यान्सम्पद् वः सह
सकलगुरैरुत्तराकार ईशः ॥ ८२ ॥ भस्मान्धोरगफुक्क-
तिस्फुटभवद्भालस्यवैवानरज्वालास्विन्नसुधांशुमण्डल-
गलत्पीयूषधारारसैः । सर्त्रीचद्विपचर्मगजितभयभ्रा-
म्यदृषा रुर्णव्यासक्तः सहसाद्रिजोपहृमितो नमो हरः
पातु वः ॥ ८३ ॥ मिलुकोऽपि सकलेप्सितदाना प्रेतभूमि-
निलथोऽपि पवित्रः । भूतमित्रमपि योऽभयसत्री तं
विचित्रचरितं शिवमीडे ॥ ८४ ॥ भीतिनांस्ति भुजङ्गपुङ्ग-
वविपात्मीतिर्न चन्द्रामृताक्षाशौचं हि कपालदाम-
लुलनाच्छौचं न गङ्गाजलात् । नोद्वेगश्चित्तमभस्मना न
च सुपुं गौरीस्तनालिङ्गनादात्मारामतया हिताहित-
समः स्वस्थो हरः पातु वः ॥ ८५ ॥ भुजङ्गकुरण्डलीव्य-

वहकर शङ्करजी-द्वारा क्रिपु गण प्रणामोंकी जय हो ॥ ७६ ॥
पिनाक (धनुष), फणी (सोंप), बालेन्दु (देवा चन्द्रमा),
भम्म (राग) और मन्दाकिनी (गङ्गा) इन पवर्गके पाँच
अक्षरोंसे शारतम होनेवाले नामकी वस्तुएँ धारण करनेवाले
शिवजी आपकी अपवर्गा (मोक्ष) दें ॥ ७७ ॥ रावणकी
बलवान् सुजाओंपर उठे हुए कैलास पर्वतके ढगमगानेपर डरके
मारे चबल आँसोंवाली पार्वतीका क्रोध छिपाकर शङ्करजीसे
लिपटकर पुलकित होना और शङ्करजीना वैठ जाना आप
लोगोंका कर्याए करता रहे ॥ ७८ ॥ उन शङ्करजीकी जय हो जो
सायद्वाल प्रेममें क्रोधित हुई पार्वतीके पैरोंमें लगे महापरसे
रँग हुए लाल रङ्गवाले सुन्दर चन्द्रमानो माथेपर धरे है और
पार्वतीजीना हाथ अपने कण्ठमें डालनेसे जिनका गला ऐसा
जान पड़ता है मानो पार्वतीके हाथोंमें पहने हुए सोनेके कङ्कनकी
परम करनेवाली कसीटी हो ॥ ७९ ॥ पार्वतीजीने प्रेममें
क्रोधित करनेर हृदयदाते हुए अचरजमें पड़कर तीनों लोकोंके
स्वामी भगवान् शङ्कर तुरन्त डरके मारे जैसे ही उन्हे प्रणाम
करने लगे वैसे ही सिर नधाप हुए शङ्करजीके सिरकी गङ्गा
और चन्द्रमा दोनोंकी पार्वतीने लाव मार दिया । सीन नेत्रवाले
भगवान् शङ्करना यह अनोखा रङ्ग-रङ्ग आप लोगोंकी रक्षा करे
॥ ८० ॥ अजलिके पानीमें पड़नी हुई पार्वतीजीकी परछाईं देगनेपर
दायोंके कौपकर धीले पड़ जानेके कारण पानी गिर जानेसे रीती
हुई, पर तुरन्त ही बहते हुए पसीनेसे कि भरी हुई शङ्करजीकी
अजलिकी जय हो ॥ ८१ ॥ देवलोककी सुपरीके समान जाग

पड़नेवाली चन्द्रमानी कला तथा गङ्गाको अपने जदामुकुटमें
तथा प्रलय कर देनेवाली शन्निको माथेके तीसरे नेत्रमें धारण
क्रिपु हुए, गलेमें महाविष धरे हुए तथा देहपर धावकी खाल
ओढ़े हुए, पाँच मुँह तथा तीन नेत्रोंवाले, बैलकी सवारीको हाँ
अच्छा समझनेवाले, अपनी देहके आधे बाएँ भागमें
पार्वतीजीको धारण क्रिपु रहनेवाले तथा इन सब गुणोंसे अगने
रङ्ग-रङ्गवाले शङ्कर भगवान् आपकी सम्पत्ति दें ॥ ८२ ॥
शिवजीकी देहमें लगी भस्मके उदकर आँखोंमें पड़नेसे अन्धमे
होते हुए सर्पिकी फुकारसे माथेकी शन्निके घघक पड़नेपर,
उसके तापके कारण चन्द्रमासे पसीने-रूपमें टपकना हुआ
अमृत जन हाथीकी खालपर पड़ा तो वह जी उठा और उसके
चिन्ताइनेसे डरके मारे भागते हुए बैलको र्छितते हुए तिन
नहे शिवजीको देखकर हिमालयकी पुत्री पार्वतीजी हँस पड़ीं
वे शङ्कर भगवान् आपकी रक्षा करे ॥ ८३ ॥ उन अनोखे रङ्ग-
रङ्गवाले शिवजीको मैं प्रणाम करता हूँ जो भितमझे होकर
भी भतोंकी सब प्रकारकी हृदयश्योंकी पूर्ण करेवाले है, जो
रमराममें रहते हुए भी पवित्र है और भूत-प्रेतोंके मित्र होते
होते हुए भी जो डरसे बुढ़ानेवाले हैं ॥ ८४ ॥ ब्रह्मानन्दमें
मस्त रहनेके कारण जिन्हें न विपैले सौँपावा डर है, न अमृतमें
भरे चन्द्रमासे ही प्रेम है, न लुबकनी हुई सोपडिँगीकी मालासे
अपवित्रता है, न गङ्गाजलसे कोई अपवित्रता है, न चित्तकी
राखसे जिन्हें कोई कष्ट है, न पार्वतीजीके स्तनोंका आसिंहन
करनेमें आनन्द ही है, इस प्रकार अपनी भलाई और

कशशिशुभ्रांशुश्रीतगुः । जगन्त्यपि सदापायाद्व्याधे-
तोहरः शिवः ॥ ८६ ॥ भूत्यालेपनभूषितः प्रथिलसन्ने-
प्राग्निदीपाङ्कुरः वरुडे पन्नगपुष्पदामसुभगो गङ्गाजलैः
पूरिनः । ईपत्ताप्रजटाप्रपल्लवयुतो न्यस्तो जगन्मण्डपे
शम्भुमङ्गलकुम्भनामुपगतो भूयात्सतां श्रेयसे ॥ ८७ ॥
महोत्तमालधिया सुधाकरकलां कण्ठश्रियं कज्जल-
भ्रान्त्या भालविलोचनानलशिषां सिन्दूरपूषाशया ।
कैलासे प्रतिविम्बितास्त्वयपुपो गृह्णन्हसन्त्या मृदुः
पार्यत्या । मतिकर्मकर्मणि चिं मुधोहरः पातु वः ॥ ८८ ॥
मातर्जीव किमेतद्दङ्घुलिपुटे तातेन गोपाय्यते घत्स स्वा-
दु फलं प्रयच्छति न मे गत्या गृहाण स्वयम् । मानैवं
प्रहिते गुहे विघटयत्याकृष्य सन्ध्याञ्जलिं शम्भोर्भिन्नसमा-

पुराईं वरनेगालोंने साथ एक-मा धर्माव करेवाले शांत शिव
भगवान् आपकी रक्षा करें ॥ ८६ ॥ वे मनकी हरण वरनेवाले
शिवजी मदा समारको मठ होनेसे यचां जिनके वृक्षडल धने
हुए सौम्यं एक साथ ही उनके नेत्रोंमें स्थित मूर्ध, चन्द्र और
धमिरी परदाईं पङ्कुर चमक रही है ॥ ८६ ॥ शुभ कार्यों में
सजाए हुए मङ्गल-कलशके समान, ये समाररूपी मण्डपमें स्थित
शिव भगवान् सज्जनोंका कन्याश करे जिनकी देहमें कलशमें लगे
लेपनी भक्ति राग लिपटी है, कलशके ऊपर जलते हुए दिपके
समान माथिरी धर्मोंमें अग्नि चमक रही है, कलशमें लिपटी
पूल-मालाधारे समान चिनके गलेमें सौं सजे हैं, कलशमें
भरे गङ्गाजलके समान जिनके माथेमें स्वयं गङ्गा भरी है तथा
कलशमें रखे पद्म-गजवने समान जिनके निरपर बुद्ध
माल सात जटाएँ सजी हैं ॥ ८७ ॥ कैलाश परतपर
पङ्कनी हुई अपनी परदाईं पर सजी हुई चन्द्रकला जय
शिवजीके पार्वतीकीके वेशोंमें सजी मरलीकी मालके समान
जा पङ्की, गङ्गा बालाव पार्वतीकीकी धर्मोंमें लगे काजल
मा जान पदा, माथेमें चमकमाना सागरों ली पार्वतीकीके
माथेपर लगे सिन्दूर-मी जान पदां गो उभ परदाईंको पार्वती
ही समस्तकर धीमे ही शिवजी उभे पङ्कने चने धीमे ही श्रद्धा
करती हुई पार्वतीकी यह देवकर हैस पङ्की, तप अपनी
धार्मिक पार्वतीका श्रद्धा देवकर जो मराने लिए उभ
श्रद्धापर मोहित हो गए थे शिव भगवान् आपकी रक्षा करें
॥ ८८ ॥ मरणा करने हुए शिवजीको हाथ जोड़कर प्यान
सगाएँ के देवकर धार्मिकशिवजीके माता पार्वतीके पास
आकर बहा—मौं ! पार्वतीका बोमों—जिसे वेदा ! क्या है ?

धिरुद्धरभसो हासोद्गमः पातु वः ॥ ८६ ॥ मा चम संवृणु
विषमिदमिति सातङ्कं पितामहेनोक्तः । प्रातर्जयति
सलज्जः कज्जलमलिनाधरः शम्भुः ॥ ९० ॥ मुक्तिर्हि नाम
परमः पुरुषार्थ एकस्तामन्तरायमवयन्ति यदन्तराः ।
किं भूयसा भवतु सैव सुधामयूखलेखाशिषाभरणभ-
क्तिरभङ्गुरा वः ॥ ९१ ॥ मौनादस्तमितेव चाट्टभणितिः
स्रस्तैकहस्ताद्गतं दूरेऽप्यञ्जलिन्यन्धनं प्रणमनं स्त-धा-
धर्मभ्रंः कुतः । इत्थं सङ्घटितेकधिप्रहतया व्यग्रो
गिरित्रामणीजांयाञ्जानरूप-जयत्यनुनयन्देवखिलोर्वी-
गुरुः ॥ ९२ ॥ मोलिस्रग्गृहिणां दग्धिद्वयस्विना-
र्द्धचन्द्रामृतप्रत्युज्जीवितदेवदेव्यशिरसामन्योन्यविद्वेषि-
शाम् । जाते वाकलहे प्रदासनपरे तन्द्रायितारे परं किं

वासिंवेयजी—पिताजी अपनी उँगलियोंके बीचमें क्या छिपाए
हुए है ? पार्वतीजी—वेदा, उसमें कोई भीठा फल है जिसे वे
मुझे नहीं देते, तुम स्वयं जान लो लो । इस प्रकार माता
पार्वतीजीके भेजेवर वात्तिकेयजीने जैसे ही जाकर शिवजीके
उके हाथोंमें खींचकर अलग अलग किया धीसे ही शिवजीकी
वह समाधि टूट गई जिसमें वे वेगसे आत्म-वर्तकोंकी और बंधे
जा रहे थे । माता पार्वतीके त्रिपु इस परिहासका ध्यान करके
हैस पङ्कनेवाले शिवजीकी हँसी आपकी रक्षा करें ॥ ८६ ॥
प्रात काल अपने धाँठमें लगे बाजलको छिपाते हुए शिवजीसे
सँभालकर कण्ठमें ही रसिष्ट उस समय अत्यन्त लजित
होनेवाले शिवजीकी जय हो ॥ ९० ॥ अधिक कहनेसे क्या
लाभ । अशुभसे भरी हुई निरधोवाले, चन्द्रमासा सुकृत पङ्कने
हुए शिवजीके चरणोंमें आपकी वह भक्ति ही और अधिक बढ़
हो, जिसके आनन्दको जाननेवाले लोग सबसे बड़ा पुण्यार्थ
(लाभ) समझी जानेवाली मुक्तिकी भी विना ही समझते हैं
॥ ९१ ॥ अपनी आपी बाँईं देहमें बैठी पार्वतीजीके प्रोथित
होकर चुप हो जानेसे शिवजीकी आपलुमी भरी बोली भी
बन्द हो गई, पार्वतीजीके अपनीका हाथ रीच लेनेपर जो हाथ
भी नहीं जोड़ सकते, पार्वतीजी स्वयं निर नहीं हिलाती तो
शिवजी निर भी धीसे मुखा सबने हैं, इस प्रवाह एक ही
शरीरमें दोनों रूप होनेके कारण इतनी कण्ठके वा पङ्कनेसे
मह आए हुए, प्रोथित पार्वतीके मनाते हुए, के नामरूपी
गर्वके मुखिया और त्रिजनोंके स्वामी शिवजीकी जय हो
॥ ९२ ॥ गंगरे नेत्रधौ उठी हुई कपटोंके तापने पिपनकर

कुर्यादिति तद्वचःस्मितमुखः पायात्स वः शङ्करः
॥ ६३ ॥ मौलो किन्तु महेश मानिनि जलं किं वक्त्र-
मम्भोरुहं किं नीलालकुरेणिका मधुकरा किं भ्रूलता
वीचिका । किं नेत्रे शफरां त्रिमुस्तनयुगं प्रेक्षद्द्रथाङ्ग-
द्वयं साशङ्कामिति वक्ष्यन्गिरिसुतां गङ्गाधरः पातु
वः ॥६४॥ यत्तत्त्वं श्रुतिभिस्तथोपनिषदां वृन्देन चन्दा-
रुचन्नित्यं गीयत ईशता निरर्थधिर्यत्रैव सर्वात्मना ।
पूर्णानन्दतुं द्यैकजलधिं शुद्धं प्रयुज्जं सदा मायेशान-
मनन्तमव्ययमज वन्दे परं शङ्करम् ॥ ६५ ॥ यच्चाष्टवभ्र-
मिपूर्णमानवसुधाचक्राधिरुढे भृशं मेरो पार्थनि-
वासिवासरनिशाचित्रे परिभ्राभ्यति । तंजस्यस्तडितो

भवन्तु शतशो दृष्टा हि तान्ताः कथं तामस्योऽपि स वः
पुनातु जगतामन्येष्टियञ्चा विभु ॥६६॥ यन्मिन्दुदु-
सङ्गरा इव वष्ट्रप्रहाण्डपरवाः फचचिद्भ्रान्ति फ्यापि च
सीकरा इव विगिन्ञ्याद्याः स्फुरन्ति भ्रमात् । चिद्रूपा
लहरीव विध्वज्जनी शक्तिः कचिद्दशोत्ते स्वानन्दाशु-
तनिर्भरं शिचमहापाथोनिधिं तन्नुमः ॥ ६७ ॥ यस्या-
दुरागमविद्ः परिपूर्णशक्तेरंशे क्रियत्यपि निविष्टममु
प्रपञ्चम् । तस्मै तमालरुचिभासुरकन्धराय नारायणी
सहचराय नमः शिवाय ॥ ६८ ॥ यो सृष्टिः स्रष्टुराद्या
वहति विधिरुतं या हृदियां च होनी ये द्वे फाले
विधत्तः श्रुतिविषयगुणा या स्थिता व्याप्य विष्यम् ।

देवें चन्द्रमाने गिरा हुया अश्रुत पङ्गोसे मुखमलाकामे रूँधे हुप
एक दूसरेके वैरी देवताओं और देवोंके सिर जय जी उठे
और आपसमें लड़ने लगे, उपेचा-पूर्वक हँसने लगे तथा चक्कर
ऊँधने लगे उस समय 'अत्र क्या करना चाहिए' कहकर
मुखरुता देनेवाले शिवजी आपनी रक्षा करें ॥ ६६ ॥ शिवजीके
सिरपर गङ्गाको देगकर सीतियाडाहने पार्वतीजीने उनसे
पूछा—हे शिव ! यह मस्तक पर क्या है ? शिवजी बोले—
मानिनि ! यह तो जल है । उहाँने पूछा—उसमें मुख कहाँसे
आया ? शिवजी बोले—मुख कहाँ, यह तो उसी जलका कमल
है । पार्वतीजीने पूछा—तब यह कालीकाली चोटी वैसी है ?
शिवजी बोले—यह तो कमलपर मैडरानेवाली भीरोंकी पति है ।
पार्वतीजीने पूछा—ये भीड़ कैसे दिगाई पड रही है ? शिवजी
बोले—ये तो लहरें हैं । पार्वतीजीने पूछा—तब इनमें आँसें
कहाँसे आईं ? शिवजी बोले—ये तो मड़लियों हैं । पार्वतीजीने
पूछा—इनके स्तन कैसे हैं ? शिवजी बोले—ये तो चक्री-
चक्रने हैं । इस प्रकार मस्तकपर बैठी हुई गङ्गासे सीतियाडाह
करनेवाली पार्वतीजीको चक्रमा देते हुए शिवजी आप लोंगोंकी
रक्षा करें ॥६७॥ प्रधानन्दने भरे हुए, दयाके एक अनेके समुद्र,
अत्यन्त शुद्ध, सदा ज्ञानमय, मायाके स्वामी, अपार, अमित,
अजन्मा तथा सत्यसे बड़े उन भगवान् शिवजीको मैं प्रणाम
करता हूँ जिनके तपको सब वेद और उपनिषद् एक साथ
मिलकर भादोंकी भाँति गाया करते हैं और जिनमें सब प्रकारकी
अपार शक्ति भरी हुई है ॥ ६८ ॥ संसारका अन्तिम सत्पर
करनेवाले वे शिवजी आप लोंगोंकी पत्रिण करें जिनके नाचने
समय घने चक्कर लागने वेगसे घूमती हुई पृथ्वीरूपी चक्रपर
स्थित सुमेरुके आन पास रहनेवाले दिन और रात्रिरूपी विष

(सूर्य, चन्द्र) जय वेगसे घूमने लगे तो ऐसा जान पड़ा
मानो उन चन्द्रसूर्यके सङ्घों टुकड़े होकर चारों ओर
गिर गये हो या रिजलीके सङ्घों टुकड़े निरकर चमक
रहे हो जो अधिक तेजके कारण देखे नहीं जाने ॥ ६६ ॥
बड़े भारी समुद्रके समान उन शिवजीको हम प्रणाम करते
हैं जिनमें कहीं-कहीं निकले हुए अनेक प्रहाण्ड पानीके
उलउलोंके समान दिगाई देते हैं और प्रहा आदि देवता भ्रमके
कारण कहीं-कहीं उठी हुई बूँदोंके समान जान पड़ते हैं, सारे
संसारको उपजानेवाली चिर् गक्ति महामाया जिनमें कहीं
उठी हुई लहर-सी जान पड़ती है और जो अपने ही आनन्द-
रूपी अपार जलसे भरे हुए है ॥ ६७ ॥ यह सारा दिगाई
देनेवाला जड चेतन संसार जिनके निमी एक अणुमें जमा
रुथा है, जो तमालके रङ्गके समान चमचमाते हुए नीले
कण्डलाके हैं और नारायणीके सङ्कर हैं उन बहुत बड़ी शक्तिमें
भरे हुए भगवान् शिवको प्रणाम है ॥ ६८ ॥ शिवजी उस
जलके रूपमें हमें प्रत्यक्ष दिगाई देते हैं जिसे प्रह्लादने सङ्घने
पहले बनाया, उस अघिके रूपमें दिगाई देते हैं जो निधिके
साथ ही हुई हवन्-सामग्री ग्रहण करती है, उम होतारके रूपमें
दिगाई देते हैं जिसे यज्ञ करनेका काम मिला है, उन सूर्य
और चन्द्रमाने रूपमें दिगाई देते हैं जो दिन और रातका
समय निश्चित करते हैं, उन आकाशके रूपमें दिगाई देते हैं
जिसका गुण शब्द है और जो मंदार-मरमें रमा हुआ है,
उम पृथ्वीके रूपमें दिगाई देते हैं जो मय वस्तुओंको
उत्पन्न करनेवाली घाई जमी है और उम वायुके रूपमें
दिगाई देते हैं जिनके कारण मय प्राणी जी रहे हैं । उन
अग्नि, शंका, सूर्य, चन्द्र, आकाश, पृथ्वी, जल

यामाहुः सर्ववीजप्रकृतिरिति यया प्राणिनः प्राणवन्तः
मन्यन्तामिः प्रपन्नस्तवुभिरवतु वस्ताभिरष्टाभिरिरीशः
॥ ६६ ॥ योगिध्येयं चिमलविशदप्रस्फुरद्रम्यफान्तिं
शान्तं बुद्धं सुरपरिवृष्टैरानतेरर्च्यमानम् । कारुण्यार्द्रं
हसितसुपामादीताशेषविश्वं साज्ञात्तत्त्वप्रतिष्ठति-
मुमासंयुतं नामि शम्भुम् ॥ १०० ॥ यं वेदा. सततं
स्तुयन्ति नितरां ध्यायन्ति यं योगिनो यः सृष्ट्यादि-
निदानमुष्णकिरणेन्द्रग्रीच्छणो यः पुमान् । यस्मिन्शील-
सुताकृतार्धवपुषि प्रज्ञात्मके शाश्वते मच्चिन्तं रमतां
सदा भयद्वे श्रीमत्परब्रह्मणि ॥ १०१ ॥ यः कन्दुर्केरिय
पुरन्दरप्रसन्नप्रपञ्चापतिप्रभृतिभिः प्रभुरभयेयः । खेलत्य-
लङ्घयमहिमा स हिमाद्रिकन्याकान्तः कृतान्तदलनो
लघयत्यर्थ यः ॥ १०२ ॥ रचयति सहस्रा यच्चिभ्रमेतत्प्रपञ्चं
प्रथमयति च तद्वह्नेनचिच्छक्तोऽनुकेन । अचिदितमपरैस्त-
द्यत्तमुण्डादिनानादनुजदलनदस्रं श्रयंसर्वसंयमध्यात् ॥
१०३ ॥ राजा राजाचिन्ताद्विरेणुपचितकलो यस्य

चूडामणित्वं नागा नागात्मजाश्चै न भसितधवलं यद्गु-
भूयन्ति । मा रामारागिणी भूमन्तिरिति यमिनं येन
वोऽदाहि मारः सप्ताः सप्ताश्वयुत्रारुणकिरणनिभाः
पातु विभ्रत्त्रिनेत्रः ॥ १०४ ॥ लीलाद्युतजितां कलाधर-
कलां मौलौ हृदं कीलितं स्वैकचुं युगमुन्मम्य भुज-
योविश्लेषयन्त्यास्तदा । पार्वत्याः कुचकुम्भपार्श्वयुगले
समेददत्तक्षयः कालक्षेपणमिन्दुमोचनविधौ देवः स
नो रक्षतु ॥ १०५ ॥ वक्त्राणि पञ्च कुचयोः प्रतिविम्बि-
तानि हृष्टा दृशाननसमागमनभ्रमेण । भूयोऽपि शैल-
परिवृत्तिभयेन गाढमालिङ्गितो गिरिजया गिरिशः
पुनातु ॥ १०६ ॥ वक्त्राम्मोरुहि विस्मिताः स्तथकिताः
वक्षोरुहि स्फारिताः श्रोणीसीमनि गुम्फिताश्चरणयो-
रक्षणेः पुनर्विस्तृताः । पार्वत्या. प्रतिगात्रचित्रगतयस्त-
न्वन्तु भद्राणि यो चिद्धस्यान्तिककुप्पसायकशरैरीशस्य
दृग्भङ्गयः ॥ १०७ ॥ वामाङ्गीकृतवामाङ्गि कुण्डलीकृत-
कुण्डलि । आधिरस्तु पुरो वस्तु भूतिभूत्यम्बराम्भ-

ह्न घ्रात प्रत्यक्ष रूपोंमें जो भगवान् शिव सबका दिलाई देते
हैं वे धारणा कल्याण करे ॥ ११६ ॥ योगियोंसे ध्यात किए
जानेवाले, धारा धार फैलती हुई स्वच्छ कान्तिवाले, देवतायोंके
द्वारा मुक्त-मुक्तकर पूत जानवाले, दयाका वादसे भांगे
हुए, ज्ञानमय, अत्यन्त शान्त तथा अपनी अत्यन्त सुन्दर
हैंसोसे सारे संसारको सुन्दर बना देनेवाले, पार्वतीजीके साथ
रह चुप उन शङ्करजीका प्रणाम करता हूँ जो प्रलोक साक्षात्
दूसरे रूप हा है ॥ १०० ॥ बुद्धिके भयद्वार, तीना कालमें
रहनेवाले, भय हर लेनेवाले, उस ज्योति स्वरूप परब्रह्ममें
मेरा मन सदा रमता रहे जिनकी स्तुति वेद सदा ही करते
हैं, जो संसारके उलटन होनेके प्रधान कारण हैं, सूर्य, चन्द्र और
अग्नि वे तीनों जिनके नेत्र हैं और जिन्होंने अपने धारधे वाएँ
शरीरमें हिमालयकी पुरी पार्वतीको बैठा लिया है ॥ १०१ ॥
इन्द्र, ब्रह्मा, विष्णु आदि देवोंको जो गेद पनाकर घेलेते हैं,
जिन्हें बुद्धि द्वारा समझ नहीं जा सकता, जिनकी महिमाकी
काई धार नहीं लगा सकता और जो कालके भी महाकाल हैं वे
पार्वतीजीके पति भगवान् शङ्कर धार लोंगोंके धार दूर करे
॥ १०२ ॥ गेल-गेलमें ही जो ह्म धनोपे संसारको एकएक
रच जानते और नष्ट कर डालते हैं, जिन्हें कोई भी जान नहीं
पाया वे चण्ड-मुण्ड आदि बहुतसे राक्षसोंके यहाँ चतुरनाम
मार जाननेवाले भगवान् शिव सदा सबको रक्षा करे ॥ १०३ ॥

तीन नेत्रवाले तथा तीसरे नेत्रमें सूर्यसे निकलती हुई लाल
किरणोंके समान सात अग्नि-शिखाएँ धारण करनेवाले, कुबसे
पूजे जात हुए चरणवाले वे शिवजी रक्षा करें जिनके सिरके
आमूषणके रूपमें देवीप्यमान चन्द्रकला विराजमान हैं तथा
जिनके बाई ओरके पार्वतीवाले भस्म-रहित भागकी शोभा साँप
वदा रहे है ॥ १०४ ॥ शिवजीकी जटामें अच्छे वस्त्रसे बँधी हुई
चन्द्रमाकी कलाको लुपमें जीतकर पार्वतीजी जन अपने फेले हुए
दोनों हाथोंको ऊपर उठाकर उसे जटासे निकालने लगीं तब
उनके दोनों स्तनोंको यद् प्रेमसे बारी-बारीसे देखकर चन्द्रमा
निकलनेमें देर करनेवाले शिवजी हमारी रक्षा करें ॥ १०५ ॥
अपने स्तनोंमें शिवजीके पाँच मुँहोंको परदाई देकर दस
सिरवाले रावणके धा धमकनेके भ्रमसे कैलास पर्यन्तके पुन-
दगमगानेके भयसे पार्वतीजी जिनसे भली-भाँति विपट गईं, वे
शिव भगवान् सबको पतित्र करें ॥ १०६ ॥ कामदेवके बालोंसे
पीड़ित होनेपर पार्वतीजीके कमलके समान मुँहपर अचरमने,
मनोपर गुच्छोंके समान गोल होकर, नितम्बोंपर चौड़ी होकर
तथा पैरोंपर सिमटकर पढ़नेवाली शिवकी अनोगी टटियाँ धार
लोंगोंको सुन्दरें ॥ १०७ ॥ अपनी देहके आधे बाएँ भागमें
पार्वतीजीको रमनेवाले, साँपोंको लुण्डल बनाकर पहननेवाले,
कल्याणमयी भस्म संपदे हुए तथा धाराशरूपी वषट्वाले
(नष्टे रहनेवाले) गिय भगवान् प्रत्यक्ष प्रकट हों ॥ १०८ ॥

रम् ॥ १०८ ॥ विष्णोरामगमनं निश्चय सहसा कृत्वा
फलीन्द्रं गुणं कौपीनं परिधाय चर्म करिणः शम्भौ पुरो
धावति । इन्द्रा विष्णुपुरं स कम्पहृदयः सपौऽपतद्भूतले
कृत्तिविस्खलिता ह्रियानतमुखो नमो हरः पातु
वः ॥ १०६ ॥ वृत्ताभिन्यां हृतार्यां श्रितविधिधगणां
छन्दसां वर्णनीयां यातां सर्वादिमत्त्वं सुरगणकलितां
भासमत्त्वं प्रधानाम् । युक्तं स्थानं नयन्तीं लघुमपि
सकलं विधत्तां मालयायान्न्दे वाधोभयर्णां धृतमुनिय-
तिकान् च्छगणं शम्भुर्नृत्तिम् ॥ ११० ॥ वृषाङ्गाय नम-
स्तस्मै यस्य मौलिधितम्बिनी । जटावेष्टनजां शोभां
विभायति जाह्वयी ॥ १११ ॥ वेदान्तेषु यमाहुरेकपुरयं

व्याप्य स्थितं रोदसी यस्मिन्नीश्वर इत्यनन्यधिपयः
शश्वो यथार्थात्तरः । अन्तर्यश्च मुमुक्षुभिर्नियमितप्राणा-
दिभिर्नृग्यते स स्वाणुः स्थिरभक्तियोगमुलभो निःश्रे-
यसायास्तु वः ॥ ११२ ॥ वन्दे देवं जलधिशर्धधि देवता-
सार्वभौमं व्यासप्रष्टा भुवनविदिता यस्य वाहाधि-
वाहाः । भूषापेटी भुवनमधरं पुष्करं पुष्पवाटी शार्टी-
पालाः शतमखमुखाश्चन्दनद्रुमनोभूः ॥ ११३ ॥ व्योम्नीच
नीरदभरः सरसीध धीचिव्यूहः सहस्रमदसीध सुधांशु-
धाम । यस्मिन्निद्रं जगदुदेति च लीयते च तच्छ्यामव्यं
भवतु वैभवमृदये वः ॥ ११४ ॥ युद्धान्ते सीधुपानोन्मद-
मदनमदोन्मादमत्तालिकालीतालीसन्ताड्यमानोद्भट्टमु-

ज्योही शिवजीने मुना कि विष्णुजी आ रहे हैं त्योंही वे साँप-
रूपी ढोरेके सहारे बँधी हुई हाथीकी खालका कौपीन पहने हुए
उनसे मिलने दीधे, पर विष्णुकी सवारी (गह्व) को देखते ही
ढोरेके मारे कँपते हुए साँपके धरतीपर जिसक पढ़नेसे जिनका
कौपीन भी गिर पड़ा और लाजके मारे जिन्होंने अपना सिर
नांचे कर लिया वे नङ्गे शिव भगवान् आपकी रक्षा करें ॥ १०६ ॥
लोकप्रसिद्ध पार्वतीजीको तथा अनेक गणोंको धारण करनेवाले,
वेदोंमें वर्णन किए जानेवाले, सबसे पहले गिने जानेवाले,
देवताओंसे बिरे रहनेवाले, प्रकाश धारण करनेवाले, मांशपद
देनेवाले, सब द्दीन-दुखियोंका भार संभालनेवाले, चन्द्रगसे
युते हुए अन्नवाले, श्रीसागरकी-सी कान्तिवाले, यति-मुनियोंका
धारण-पोषण करनेवाले तथा माला धारण किए हुए शिवजीके
उस स्वरूपको प्रणाम करता हूँ जो लोक-प्रसिद्ध आपा छन्दको
धारण करनेवाले, अनेक गणोंवाले, छन्द-शास्त्रमें वर्णन किए
जानेवाले, सब छन्दोंमें प्रधान, सगण और रगणवाले, समान
रूपसे भगण्यपुत्र, उचित स्थान (राजसभा या पथिदत-सभा
आदि) में पहुँचानेवाले, लघु अक्षर धारण करनेवाले, चन्दनकी
गन्धके समान हृदयको रीतल करनेवाले, अक्षरोंके भयङ्कारसे
समुद्रके समान जान पढ़नेवाले, मगण और नगणपर यतिवाले
तथा कर्ण्याङ्कारो सम्भरा छन्दके समान है ॥ १०७ ॥ धैलके
चिह्नवाले उन शिवजीको प्रणामाई जिनके माथेपर बहती हुई
गङ्गा उनको लिपटी हुई जटाकी सुन्दरताको और भी बढ़ा रही
है ॥ १११ ॥ वेदान्ती लोग जिन्हें ऐसा अनेकला पुरुष बतते हैं
जो पृथ्वी और आकाशमें रमा हुआ होनेपर भी सत्यसे अलग
घना रहता है, जिनका 'ईश्वर' नाम ऐसा सटीक और सच्चा है
कि और किसीको भी इस नामसे नहीं पुकारा जा सकता

और मोक्ष पानेकी इच्छा करनेवाले लोग जिन्हें प्राणायाम
साधकर अपने हृदयके भीतर जोरते हैं वे सच्ची भक्तिसे
मिलनेवाले शिवजी आप सब लोगोंका कल्याण करें
॥ ११२ ॥ विष्णुको बाण बनाकर त्रिपुरामुक्ते मारनेवाले तथा
देवताओंके सत्यसे बड़े स्वामी उन भगवान् शिवको प्रणाम
करता हूँ जिनकी सत्ताके ज्ञानको अपनेमें धारण कर रखनेसे
भगवान्के निवास-स्थान कहे जानेवाले वेदोंको संसारमें
प्रसिद्ध व्यास आदि मुनि अपनेमें धारण किए हैं, साँपका
आभूषण पहने रहनेसे साँपोंको अपनेमें रखनेवाला पाताल
जिनकी शृङ्गारकी पिटाही-सा जान पड़ता है, चन्द्रमाको खिले
हुए फूलके समान अपने सिरपर रखनेसे उसे अपनेमें
रखनेवाला आकाश जिनकी ऐसी फुलवारी-सा जान पड़ता है
जिसमें उनके दिशास्पी बच्चोंकी सदा रसवाली करते रहनेवाले
इन्द्र आदि देवता उगे हुए वृषके समान जान पड़ते हैं और
कामदेवकी राफको अपनी देहमें चन्दनके समान लगाए रहनेसे
कामदेव भी जिसमें उगा हुआ चन्दनका वृक्ष-सा जान पड़ता
है ॥ ११३ ॥ मेघ जैसे आकाशमें दिखाई देते और मिटते
रहते हैं, तहें जैसे तालाबमें उठती और विलीन होती रहती
है और चोदनी या फिरणें जैसे चन्द्रमासे ही निकलती और
उसीमें लीन हो जाती हैं ठीक वैसे ही यह सारा संसार
जिसमें उत्पन्न होता और नष्ट होकर उसीमें फिर मिल
जाता है ऐसा शिवजीका देरवर्ष आपकी उन्नति करें
॥ ११४ ॥ जिस कालीकी सखियों मदिरा पानेसे बड़े हुए कामके
वेगसे उन्मत्त हो गईं थीं उस कालीने जब विरगल मुदङ्गपर
वेगसे थाप लगाईं तब उसकी प्रचण्ड ध्वनि सुनकर शिवजीका
शरीर हँपसे हतना फूल उठा कि वे रतिवासमें ही लाज झोड़

रजरवाडम्परोत्तासिताङ्गः । नृपयज्ञो विलज्जलविधि-
 टटटैः स्रस्तयै चिनापैर्दृष्टः स्त्रीभिः सहस्रं महसन-
 मुदितः पातु यो वामदेवः ॥११५॥ शैलेन्द्रप्रतिपद्यमान-
 निगिरिजाहस्तोपगूढोल्लसद्गोमाञ्चादिबिंशुलाखिलवि-
 धिव्यासङ्गभङ्गाकुलः श्राः शैत्यं तुहिनाचलस्य कर्यारि-
 त्यूचिवान्त्वसिमन्तः शैलान्तःपुरमाद्यमण्डलगतशैर्दृष्टोऽव-
 ताङ्गः शिवः ॥११६॥ श्रीकण्ठस्य सकृत्सिकात्तैरभयणीम्-
 त्तः सदा रोहिणी उपेष्टा भाद्रपदा पुनर्वसुयुक्ता चित्रा-
 विशापाश्विना । दिश्यादक्षतहस्तमूलघटितापादा मघा-
 लञ्चुता श्रेयो वैश्रवणाश्रित्या भगवतो नक्षत्रपालीव घः
 ॥११७॥ श्रेयांसि यो दिशतु यस्य सिताश्रुश्रा विधाज-
 ते सुरसरिद्वरमौलिमाला । ऊर्ध्वेक्ष्यज्वलनतापविलीय-
 मानचन्द्रामृतमयितामृतपादिनीय ॥११८॥ स जयति
 हिमकरलेपा चकास्ति यस्योमयोत्सुकान्निहिता । नय-

नमदीपकज्जलजिघृक्षया रजतशक्तिरिव ॥११९॥ सदस-
 त्वेन भावानां युक्ता या द्वितयी स्थितिः । तामुल्लङ्घ्य
 तृतीयस्मै नमश्चित्राय शम्भवे ॥१२०॥ सन्ध्यानतौ नर-
 पुरन्ध्रतनोः सरोपमुस्तारिते गिरिजया निजपाणि-
 पद्मे । उत्सर्पिकङ्कणकणोन्द्रफणापणैः पूष्योऽञ्जलिर्जयति
 वरलम्बाङ्गमौलेः ॥१२१॥ सन्ध्यासलिलाञ्जलिमपि कङ्क-
 णफणिपीयमानमविजानन् । गोरीमुखार्पितमान विज
 याहसितः शिवो जयति ॥ १२२ ॥ स पातु यो यस्य
 जटाकलापे स्थितः शशाङ्कः स्फुटहारगारः । नीलोत्प-
 लानामिव नालपुञ्जे निद्रायमाणः शरद्वीथ हंसः ॥१२३॥
 समस्तलक्षणायोग्य एव यस्त्योपलक्षणम् । तस्मै नमोऽ-
 स्तु देवाय कस्मैचिदपि शम्भवे ॥ १२४ ॥ सह
 स्राक्षैरङ्गैर्नमसितरि नीलोत्पलमयीमिवात्मानमाला-
 मुपनयति प्रत्यो दिविपदाम् । जिघृक्षौ च फ्रीडार-

वर नङ्ग धदङ्ग नाचने लगे, उस समय रनिवासकी स्त्रियों जो
 अपने चमल श्रवणुली श्रोतिले आश्रयमें भरी उन्हें देख देल
 हेस रही थी, उनको हँसते मगन होते हुए शिवजी आप
 पारंगीकी रवा करे ॥११५॥ हिमालयके द्वारा समर्पित की गई
 पारंगीकी हाथोंकी धूनेसे उपनन्त हुए स्यान्दका द्विपणेर
 भी रोमाङ्क द्वारा उसे प्रकट होते देख व्याकुल हाकर मुस्कराते
 हुए 'आह ! हिमालयके हाथ किन्ने दण्डे हैं ।' ऐसा कहते हुए,
 हिमालयके अन्त पुरकी माताकोसे देले जाते हुए शिवजी
 आपकी रवा करे ॥११६॥ जाल धारण करनेवाला, दीन-नुरियेकर
 भरण-पोषण करनेवाला, सतोपुषी स्थितिमें रहनेवाला,
 सयने पदा, कल्याणका भण्डार, ऐश्वर्य-सम्पन्न, नेत्रमें अग्नि
 धारण करनेवाला, धरयन्त निचित्र, कुचेसे सयुक, मेघपुष्पसे
 शोभित तथा कन्धेपर पलाशका दण्ड (प्रक्षारिका चिह्न)
 धारण करनेवाला वह शिव स्वरूप आपका कल्याण करे जो
 भारत, हृत्किता, रोहिणी, भाद्रपदा, पुनर्वसु, चित्रा, विशापा,
 हन, मूल, पूर्वाषाढा, मघा, वैश्रव्य आदि नक्षत्रीकी पणिके
 समान है ॥ ११७ ॥ ये शिवजी आपका धानन्द दें जिनके
 माधेपर माला धनी हुई उजले मेघोंके समान स्वरूप गङ्गाजी
 ऐसी जान पड़ती है मानों साँसेनेत्रकी धमिके तापसे पिपलकर
 चन्द्रमासे देे हुए चन्द्राजी नदी है ॥ ११८ ॥ उन शिवजीकी
 जय हो जिनकी चन्द्रकला चादरद्वारा पारंगीकीने माधेपर रानी
 जाकर ऐसी सुन्दर मान पड़ती है मानो उनसे नेत्र रूपी
 दिवका कान्त उदारनेकी सौंपी है ॥ ११९ ॥ मण् धौर चसत्

रूपसे पदार्थोंकी दो प्रकारकी स्थितिकी भी पार वरके किसी
 तीसरी स्थितिमें रहनेवाले विचित्र शिवजीको प्रथम है
 ॥ १२० ॥ सायङ्काल आधे बाँधे भागमें बेठी पारंगीजीने
 जय कोपित होकर अपना हाथ हटा लिया तब उन्हें
 माननेके लिये हाथ जोड़ते समय कङ्कन बने हुए साँपके उठे हुए
 कन्धकी चौड़ा करके बाँधे हाथके स्थानपर लगा देनेसे दूजके
 चन्द्रमाका मुकुट धारण किए हुए शिवजीके उठे हुए दोनों
 हाथवाली अञ्जलिकी जय हो ॥ १२१ ॥ सन्ध्या करते समय
 पारंगीजीके मुँहको एक टक देखते रहनेके कारण 'अञ्जलिका
 पानी कङ्कन बने हुए साँपने पी लिया' यह न जाननेवाले जिन
 शिवजीको देखकर विजया हँस पड़ी थी उन शिवजीकी जय
 हो ॥ १२२ ॥ ये शिवजी आपका कल्याण करे जिनके जटा-
 मुकुटपर चमकते हुए हारके समान उजला चन्द्रमा ऐसा जान
 पड़ता है मानो शरद ऋतुमें तिले नीले कमलके उच्छलकों बीच
 कोई हसिनी सो रही है ॥ १२३ ॥ किसी प्रकारके कोई लपण न
 पड़ता ही जिसका लक्षण है ऐसे किसी 'शम्भु' नामवाले
 भगवान्की प्रथम है ॥ १२४ ॥ देवताओंके स्वामी इन्द्र जब
 सायङ्क प्रथम वरके सहस्रों नयनोंसे दर्शन करने लगे तो
 ऐसा जान पड़ा मानो ये शिवजीकी नीले कमलकी माला पहना
 रहे हों ! उस समय अपने गणोंके साथ भाँदने केममें भरे हुए
 स्वामी फाँतिके यैने ही इन्द्रके नयनोंकी कमल समझकर उन्हें
 सँपने चले जैसे ही उन्हें देगकर हँस पड़नेवाले पारंगीजीने
 आलङ्कित शिवजी आपका ऐश्वर्य दिपर करे ॥ १२५ ॥ साँपके

मसिनि कुमारे सह गणैःसन्धो भद्राणि दृढयतु
 मृडानीपरिवृद्धः ॥ १२५ ॥ सहस्रास्यो नागः प्रभुरपि
 मतः पञ्चदशः पञ्चास्यो हन्तेकस्तनय इतरो वारुण-
 मुखः । सदा भैद्यं शक्यप्रभवतु कथं वर्त्तनमिति
 श्वसन्त्यां पार्वत्यामथ जयति शम्भुः स्मितमुखः ॥ १२६ ॥
 सन्ध्यां यत्रणिवप्य लोकपुरतो वज्राङ्गलियांचमे धत्ते
 यच्च नदीं विलज्ज शिरसा तन्नाम सौढं मया । शीघ्रां-
 तामृतमन्थने यदि हरिं कस्माद्विषं भञ्जितं मा स्त्री-
 लम्पट मां स्पृशेति गदितो गौर्या हरः पातु वः ॥ १२७ ॥
 संसारैकनिमिच्छाय संसारैकविरोधिने । नमः संसा-
 ररूपाय निःसंसायाय शम्भवे ॥ १२८ ॥ संसेवितभृंगुतुङ्गं
 विद्योतितवेद्वेद्योद्गमम् । परिनिश्चितभयरङ्गं मनसिजमङ्गं
 समाश्रये लिङ्गम् ॥ १२९ ॥ आतः स्वर्गतरङ्गिणीजलभरै-
 नैत्रोत्पलेनाञ्जितः पार्वत्याः सितभूतिचन्द्रनचयैरालिप्त-
 गात्रोज्ज्वलः । देवश्चन्द्रफलासितभ्रूतिलको गौरी वि-

वाहोत्सवारम्भे शैलरुताहर्षणमिजगतामच्यौ हरः पातु
 वः ॥ १३० ॥ स्पष्टव्याकुलदृष्ट्याविकटमुपगतोचालद्वैपान्त-
 रालन्यस्तब्रह्माण्डपरदप्रसनयनदण्डाकारकोलहस्ति-
 न्यः । चण्डीनाथस्य युष्मानविरलविलसज्जत्रालालाट-
 नेत्रज्वालाहेलानिपीतप्रलयजलधयः पान्तु कल्पास्तली-
 लाः ॥ १३१ ॥ स्वर्भानुः सुरधर्मनानुभरति आसाभिल-
 पादसाविन्दोरिन्दुमुपि प्रमेत किमुन आन्या भवत्या
 मुखम् । इत्थं नाथगिरानभोऽपितदृशो वक्त्रे भवान्या
 भृशं मानिन्याः कृतचुम्बनस्त्रिनयनस्तादिष्ट सिद्धयै
 सताम् ॥ १३२ ॥ हृषीकेशभोजनमभृति द्विविधदां
 संसदि प्रीतिमत्या श्वश्या मौली पुरारुर्द्विहितुपरिणये
 सानुतच्युभ्यमने । तद्वक्त्रं मौलिवक्त्रे मिलिनमिति
 भृशं वीन्य चन्द्रः सहस्री दृष्ट्वा तद्वृत्तमाशु स्मितसुभ-
 गमुखः पातु वः पञ्चवक्त्रः ॥ १३३ ॥ हेयोपादेयशून्यं
 मुनिगणमनस्तामद्रयानन्दहेतुः संतुः संसारयाराधिधि-

तो हजार मुँह हैं, पति स्वयं पाँच मुँहवाले हैं, एक लड़का
 छः मुँहवाला और दूसरा हाथोंके मुँहवाला है, सदा भीत ही
 मॉगनेसे कमार्ह होती है, इस प्रकार कैसे काम चलेगा !' इस
 प्रकार कहकर लम्बी साँसें रींचती हुई शिवाको देवदर
 मुस्कुरानेवाले भगवान् शिवकी जय हो ॥ १२९ ॥ 'सारे
 संसारके सामने तुम हाथ जोड़-जोड़कर भीतर मॉगते हो और
 निर्लज्ज होकर जो नदीको सिरपर चढ़ाए हो वह तो मैंने किसी
 प्रकार सह लिया पर समुद्र मयकर श्रुत्य निकालते समय
 लक्ष्मी यदि विष्णुके पास चली गई तो तुमने विप क्यों पी
 लिया ? तुम परस्त्रीगामी हो, मुझे न छूना !' सायङ्काल ऐसा
 कहते हुए पार्वतीजीने जिन्हें फिटकू दिया था वे शिवजीं आपकी
 रण करें ॥ १३० ॥ जो संसारके उत्पन्न और नष्ट करनेमें
 पुरुषमात्र कारण हैं तथा जो संसारसे सदा दूर रहते हुए भी
 उसमें व्याप्त (संसार-स्वरूप) हैं ऐसे शिवजीको प्रणाम है
 ॥ १३१ ॥ भृगुकी लैषी छोटीमें रहनेवाले, वेद और
 वेदाङ्गोंकी प्रकाशिन करनेवाले, संसाररूपी नाटकको चलानेवाले
 और कामदेवका नाश करनेवाले जिद्रूपी शिवजीकी शरण लेता
 हैं ॥ १३२ ॥ वे त्रिसुवनके पूज्य शिवजी आप लोगोंकी रक्षा करें
 जिनकी पूजा पार्वतीजीके विवाहके प्रारम्भमें हिमालयने की, जो
 बहराती हुई आनाश-गङ्गाके जलसे स्नान किए हुए थे, जिनकी
 छुवि पार्वतीजी अपने कमलनयनसे पृष्ठक निहार रही थीं,
 जिनके स्वेच्छ शरीरपर भेन अस्मरूपी चन्दन गुता हुआ था

और जो चन्द्रमाकी उजली कलाको श्वेत अन्नकके तिलकके
 समान मसकपर लगाए हुए थे ॥ १३० ॥ चण्डीपति
 भगवान् रद्रकी वे करपके अन्तकी प्रलयकारी लीलाएँ आपकी
 रक्षा करें जिनमें उनके अत्यधिक फौले हुए भयङ्कर मुँहके सीवर
 रक्ते हुए चड़े भारी ब्रह्माण्डकी निगल जानेके मयसे उसमें
 विचित्र कोलाहल हो रहा था और जिनमें उन्होंने ब्रह्माण्डमें
 अपनी चमकती हुई ललाटकी प्रवल शक्ति उवालाओंसे ही
 प्रलयकालीन समुद्र सोप डाले थे ॥ १३१ ॥ 'हे चन्द्रमुषी !
 चन्द्रमाको प्रसनेके लिये आकाश-मार्गसे चला आता हुआ
 यह राहु कहीं धोमसे गुहारे मुँहको ही न प्रस ले !' अपने
 पतिकी ऐसी बात सुनकर जय मान करनेवाली पार्वतीजीने
 ऊपरकी मुँह उठाया उस समय यत्पूर्वक उनका मुँह
 चूम लेनेवाले तीन आँसुवाले शिवजी सज्जनोंका कल्याण करें
 ॥ १३२ ॥ कमलसे जन्म लेनेवाले ब्रह्मा थादि देवताओंकी
 भरी सभामें अपनी कन्याके विवाहके समय बड़े प्रमेसे मैंना
 जब अश्रुत लेजर शिवजीका सिर चूमने लगी तो सिरपर बैठी
 गङ्गाके और मैंनाके सिरको मिलते देवदर चन्द्रमा हैं पड़े।
 यह सब कीतुक देवदर हैंस पड़नेवाले, पाँच मुँहवाले सुन्दर
 शिवजी आपकी रक्षा करें ॥ १३३ ॥ भीतर फौले हुए घने
 श्रेणैकी घटाओंका विनाश करनेमें बतुर, सुपर्वक संसार-
 सागर पार करनेके लिये पुल, मुनियोंके मनको अद्वितीय
 आनन्द देनेवाले, अच्छे और बुरेके पचड़ोंसे दूर रहनेवाले

सुयतरणे श्रीमहेशानसंज्ञम् । प्रालेयञ्ज्योतिरन्तः-
परिखततिमिरव्यूहचिच्छेददक्षं किञ्चिद्वाचामधीशं स्फु-
रतु मम हृदि व्यचरं विश्वस्ताञ्चि ॥ १३४ ॥

पार्वती—अङ्क निलीनगजाननशङ्क।कुलवाहुलेयद्वत-
पसनौ । सस्मितहरकरकलितौ हिमगिरितनघास्तनौ
जयतः ॥१॥ अपरांघ्रं लता सेव्या विद्वद्भिरिति मे मतिः।
यथा वृतः पुराणोऽपि स्थाणुः सत्तेऽमृतं फलम् ॥ २ ॥
आद्रीं प्रेमकपायिता हरमुपव्यापारलोला शनैर्ब्रीडाभा-
रचिघृक्षिता मुकुलिता धूमोद्गमव्याजतः । पत्युः सम्मि-
लिता दशा सरमसव्याघर्त्तनव्याकुला पार्वत्याः परिष्पि-
तमङ्गलविधौ दृष्टिः शिवायास्तु वः ॥ ३ ॥ आनन्दम-
न्धरपुरन्दरमुक्तमाल्यं मौलौ हठेन निहितं महिषासुर-
स्य। पादाम्बुजं भवतु वो विजयाय मञ्जुमञ्जीरशिक्षित-
मनोहरमम्बिकायाः ॥ ४ ॥ आस्ये पूर्णसुधानिधिश्चर-
ण्योः फाल्पद्मं वैभवं देहे काञ्चनकान्तता त्वचि पुन-
र्द्वयङ्गयीनं स्वयम् । यस्या लोचनयोनिरूपधिसद्वीदीता-

नुकम्पाततिः सा माता जगतां प्रसादपदवीं साञ्जान्मु-
वेस्तादुमा ॥५॥ उद्धाहरोपिताद्राज्ञतनजपदयोः सङ्ग-
तामिन्दुमीलावानम्रं यां सुधाशोर्व्यधित किल कलां तूर्ण-
मेवान्पूर्णांम् । सकानामत्तानाममृतदहनलोपाधितः
पक्वभावान्नानार्थरन्नपूर्णां प्रणतजनततेः पूर्णतामात-
नोतु ॥ ६ ॥ उन्नालनामिपङ्केरुह इव येनाद्यभाति शम्भु-
रपि । जयति पुरुषायितायास्तदाननं शैलकन्यायाः ॥७॥
औत्सुक्येन कृतत्यरा सहसुवा व्यायर्त्तमाना हिया तै-
स्तैर्वन्धुवधूजनस्य घञ्जैर्नीताभिमुख्यं पुनः । दृष्ट्वात्रै वर-
मात्सत्साध्यसरसा गौरौ नये सङ्गमे संरोहपुलका हरेण
हसताश्लिष्टा शिवायास्तु वः ॥ ८ ॥ कण्ठोचितोऽपि
हुङ्कृतितमात्रनिरस्तः पदान्तिके पतितः । यस्याश्चन्द्र-
शिखः स्मरभल्लनिभो जयति सा चण्डी ॥ ९ ॥ कैला-
सालयभाललोचनरुचा निर्वीचितालककव्यक्तिः पाद-
नखद्युतिगिरिभुवः सा यस्सदा त्रायताम् । स्पर्धाय-
न्धसमृद्धयेव सुदृढं रुढा यया नेत्रयोः कान्तिः

(उदासीन), वार्ष्णेके स्वामी, कोई सीन अचरके 'महेश'
नामवाले उक्वृष्ट ज्योति.स्वरूप परमात्मा मेरे हृदयमें प्रकाशित
हो ॥ १३४ ॥

पार्वती : 'गोदीमें छिपा-छिपा गणेश ही माँका दूध पिप
लेता है,' ऐसी शङ्कासे स्वामी कात्तिकेयने जैसे ही वध अलग
निए वैने ही मुकराते हुए शिवजीके हाथों-द्वारा प्रहय किए
गए पार्वतीजीके स्तनोन्मी जय हो ॥ १ ॥ मेरी बुद्धिसे तो
विद्वानोंको अपर्या (विना पचाँवाली) लता (पार्वतीजी)
का ही सेवन करना चाहिए जिससे लिपटे हुए (वरय
किए हुए) स्थाणु (कूँट या शिवजी) भी अमृतमय फल देने
लगते हैं ॥ २ ॥ पार्वतीकी वे दृष्टिमें आपका कव्याथ करें जो
विवाहके समय पहले तो प्रेमके कारण अलसाईसी थी फिर
शिवजीको देखकर चञ्चल होकर लज्जामे भर उठीं, फिर पुत्रों
छानेके पढ़ाने मुँद ली गई और शिवजीकी नेत्रोंमें मिलकर
पेगमे पहाई दृष्ट जानेको ब्याकुल हो उठीं ॥३॥ नपुराँकी मयुर
फनकारसे श्रयन्त मनोहर थे पार्वतीजीके चरण आपकी विजय
दें जिनपर शिगिल होकर इन्द्रने मालाएँ चढाई थी तथा
जो रूपपूर्वक महिषामुके तिर पर रखते गए थे ॥ ४ ॥ सापात्
प्रमदन्तकी मूर्ति से जगन्मत्ता पार्वती आपकी सुग दें जिनके
मुँदमें पर्ये चन्द्रमा विराजमान है, चरणोंमें कण-मृपना सारा
पेरवर्ष जोट रहा है, देहमें सोनेके समान सुन्दरता है, लघामें

मस्खनके समान कोमलता है और जिनकी आँखें ऐसी जान
पड़ती हैं मानो अबाध रूपसे कृपाकी पति हों ॥५॥ वे पार्वतीजी
अनेक प्रकारकी सम्पत्ति देकर प्रणाम करनेवालोंकी मनोकामनाएँ
पूर्ण करें जिनके चरणोंकी और विवाहके समय मुके हुए शिवजीकी
चन्द्रबलापर उनके चरणोंपर लगे हुए गीले अक्षत चिपक जानेसे
ऐसा जान पड़ रहा था मानो प्रणाम करते हुए शिवजीके
चन्द्रबलास्वी भिषापात्रको अन्नपूर्णाजीने अन्नसे भर दिया
हो और वह शिवजीके तीसरे नेत्रकी धमिले पक रहा हो
॥ ६ ॥ पुरपके समान आचरण्य करती हुई हिमालयकी पुत्री
पार्वतीके उस मुँहकी जय हो जिससे शिवजी भी ऐसे विष्णुके
समान शोभित होने लगे जिनकी नाभिमें यही हुई नालवाला
बमल खिलार रहता है ॥७॥ वे पार्वतीजी आपका कव्याथ करें
जो शिवजीसे प्रथम समागमके समय पहले तो मिलनेके लिये
शीघ्रता करती हुई भी स्वामाविक लानके कारण लौट आईं, फिर
जब सखियों कह-सुनकर शिवजीके सामने ले गईं तो वे उन्हें
देखकर भयभीत हो गईं और फिर रोमाञ्चित होती
देखकर हँसते हुए शिवजीने जिनका आलिङ्गन कर लिया ॥८॥
क्रोधमें भरी हुई उन पार्वतीजीकी जय हो जिनके 'हुँ' करने-मापसे
कण्ठमें धारण्य करने योग्य चन्द्रबला फेंकोंके पास गिरकर
ऐसी जान पड़ती थी मानो कामदेवका भाला हो ॥ ९ ॥
[स्त्री हुई मियतमाके पीर पड़कर उन्हें मनाते हुए] कैलास-

कोकनदांशुकारस्तरसा सद्यः समुत्सायते ॥ १० ॥
 क्रीडासरोपगिरिजाचरणरविन्दं वन्दे यदप्रयतिता
 हरिणाङ्गलेखा । कामापहस्तिवृषध्वजवैरलक्ष्मीपा-
 तावमप्रवलयाईनिभा विभाति ॥ ११ ॥ गोनासाय
 नियोजितागदरजाः सर्पाय वदौपधिः कण्ठस्थाय
 धिपाय धीर्यमहतः पाणौ मणीन्निभ्रती । भञ्जुर्भूतगणाय
 गोत्रजरीनिर्दिष्टमन्त्राचरा रत्नवद्रिसुता विवाहस-
 मये प्रीता च भीता च यः ॥ १२ ॥ चण्डीजहाकाण्डः
 शिरसा चरन्स्पृशे प्रिये जयति । शङ्करपर्यन्तजितो वी-
 रस्तम्मः स्मरस्वयं ॥ १३ ॥ चिरमाविष्कृतप्रीतिभीतयः
 पान्तु यो द्विषाम् । बलयज्यारवोन्मिश्राञ्चक्ष्वाः कौद्-
 एडरुप्रयः ॥ १४ ॥ जन्मान्तरीणरमणस्याङ्गसङ्गसमु-
 त्सुका । सलज्जा चान्तिके सत्याः पातु नः पार्वती

सदा ॥ १५ ॥ जहाकाण्डोरनालो नपफिरणलसत्केसरा-
 लीकरालः प्रत्यप्रालककामाप्रसरकिसलयो मञ्जमञ्जीर-
 भृङ्गः । भञ्जुर्नुञ्जानुकारे जयति निजतनुम्यचत्रुलाचण्य-
 वार्पीसम्भूताम्भोजशोभां विदधदभिनभो दण्डपादो
 भवान्याः ॥ १६ ॥ ज्याकृष्टिवद्वलकामुयपाणिपृष्टप्रेहुन्न-
 खांशुचयसंवलितोऽम्बिकायाः । त्वां पातु मञ्जरितप-
 ल्लवकर्णपूरलोभमञ्जमञ्जरविभ्रमभृत्कटाजः ॥ १७ ॥ ज्यो-
 त्सनासन्दीहरूपा प्रमुदितवदना मस्फुटत्कान्तिकान्ता
 भकान्तस्था पुरस्तान्नयनविषयतामानयन्ती स्वरूपम् ।
 देवीभिः सेव्यमाना परभयहरणप्रेक्षणप्रेक्षणीया कारु-
 ण्याधारभूता मम भवतु मुदे सर्वदा सा भवानी ॥ १८ ॥
 तद्वः प्रमाण्डं विपद्ः प्रणतात्तिहन्त्या न्यस्तं पदं महिप-
 मूर्धनि चरिडकायाः । वैरी यदीयनखरांशुपरीतश्टङ्कः

वासी शिवजीके मन्त्रके नेत्रकी लाल कान्ति पढ़नेसे महावर
 लगे-मे जान पढ़नेवाले पार्वतीजीके नरतीनी वह कान्ति सदा
 आपकी रचा करे जो शिवजीका क्रोध शाप्त हो जानेमे उनके
 नेत्रकी ललाई मिटनेपर ऐसी जान पड़ती है मानो शिवजीके
 नेत्रकी लाल कमलकी कान्तिवाली ललाईमे होइ करके उमे
 मिटाकर पुनः तन्वाल शान्त हो गई हो ॥ १० ॥ खेल ही खेलमे
 रूठी हुई पार्वतीके उर चरखमन्त्रकी प्रणाम करता हूँ जिसके
 पैतोंपर पड़ी शिवजीके मापेपरके चन्द्रमाकी कला ऐसी लगती
 है मानो कामदेवके धन्नेमे गिरी हुई गिरजीकी धीरजरूपी
 लक्ष्मीके दृटे हुए कलनका आया टुकड़ा हो ॥ ११ ॥ विवाहके
 समय एक माघ (अपनी नपस्या सफल होती देखकर) प्रमन्न
 तथा (शिवजीका वेप देखकर) भयभीत होनेवाली ये पार्वतीजी
 आपकी रचा करें जिन्होंने अपने पतिके गोनासमे यचनेके लिये
 श्रौचधिया चूर्ण लगा लिया था, सर्पोंमे यचनेके लिये जड़ी
 बाँध ली थी, गलेके पिपके तापमे यचनेके लिये मणियाँ पहन
 ली थी और भूत-प्रेतोंमे यचनेके लिये अपने घरकी बड़ी-बूढ़ी
 स्त्रियोंमे मन्त्र-मन्त्र सींग लिए थे ॥ १२ ॥ मोघमें भरी
 पार्वतीजीकी मनानिके त्रिये जरा शिवजी उनके पैरे पढ़ने
 लगें उस समयकी पार्वतीजीकी उम जाँवनी जप हो जो ऐसी
 जान पड़ती थी मानो कामदेवके शत्रु (शिव) जैमे विरागी-तकको
 जीव लगेका विनयस्तम्भ हो ॥ १३ ॥ पार्वतीजीका यह बार-बार
 कन्धन और प्रयश्नाकी मिस्री हुई कलकारसे युक्त धनुष
 श्रीचिन्ता सदा आपकी रचा करे जिससे शत्रुओंको (धनुषकी
 टडार सुनकर) डर भी लगता था और (कलनकी कलनार

सुनकर) मोह भी होता था ॥ १४ ॥ अपने पिङ्गले जन्मके पति
 (शिवजी) का आखिङ्गन करनेको उत्सुक होते हुए भी सर्पोंके
 सामने लजानेवाली पार्वतीजी सदा हमारा कल्याण करें
 ॥ १५ ॥ शिवजीके नृत्यका अनुकरण करते समय उजली
 देहरूपी पावड़के सौन्दर्यरूपी जलमे उत्पन्न होनेवाले,
 जाँवरूपी लम्बी डण्डावाले, नखोंकी सुन्दर किरण-रूपी
 फेरवाले, तन्वाल लगाए हुए महानरकी फीली हुई कान्ति-रूपी
 कोमल पत्तोंवाले, नृपुत्रकी कलनाररूपी भौरोंकी गुञ्जारवाले
 तथा आकाशकी और उठार कमलके समान शोभित होनेवाले
 भवानीके चरण-दण्डकी जय हो ॥ १६ ॥ धनुषकी डोरी खींचने
 समय मुँहके पासतक हाथका ऊपरी भाग पहुँचते ही नखोंकी
 घनी कान्ति पढ़नेसे अत्यधिक सुन्दर दिखाई देनेवाली तथा
 कानोंमे पहने हुए मञ्जरीवाले कोमल पत्तोंसे बने कनपूलोंके
 रसके लोभसे मँडराते हुए भौरोंके समान सुन्दर शोभित
 होनेवाली पार्वतीजीकी बाँकी चितवन आपकी रचा करे ॥ १७ ॥
 चोदनीके डेरके समान जान पढ़नेवाली, प्रसन्न मुग्धवाली,
 भक्तोंके हृदयमें बसनेवाली, भक्तोंके नेत्रोंको अपने स्वरूपका
 प्रत्यक्ष दर्शन भी करानेवाली, देखने-नाग्रमे दूधरांका भय
 हरनेवाली, सत्र हुद देनेवाली, अपनी विश्वरती हुई कान्तिके
 कारण अधिक सुन्दर तथा दर्शन करने योग्य वे भगवती पार्वती
 शुके मुप दें जिनके सहारे दया टिकी है और सत्र देवियाँ
 जिनकी सेवा करती हैं ॥ १८ ॥ भक्तोंकी पीडा हरनेवाली
 तथा क्रोधमें भरी पार्वतीजीका वह महिपासुरके मत्स्यवर लखा
 हुआ चरण आपकी विपत्तियाँ दूर करे जिसके नखोंकी किरणें

शकामुधाङ्कितनवाभ्युधरप्रभोऽभूत् ॥१६॥ तपस्वी कां गतोऽवस्थामिति स्मेराननायिव । गिरिजायाः स्तनौ वन्दे भयभूतिसिताननौ ॥ २० ॥ दिश्यान्महासुरशिरःसरसीप्सितानि प्रेङ्गनजावलिमयूखमृणालनालम् । चण्डव्याश्वलच्यङ्गलनूपुत्रचञ्चरीकभङ्कारहारिचरणश्रु-म्युरहृद्यं घः ॥ २१ ॥ दीप्तजुह्वयोगाद्बदनलहलह-ल्लभ्यजिह्वाप्रलीढब्रह्मा एङ्गौद्रिचिन्दुप्रयलतरभवजाउर-पिनस्फुलिङ्गाम् । कालोद्कालोद्योपामतुलगलचलन्मुण्ड-मालाकरालीङ्गुजासंधादिनेत्रामजिननिवसनान्नौमि पा-शासिहस्ताम् ॥२२॥ दुर्गा दानवनाशिनी हरजटाश्रेणी-न्यलोत्पलासिनी धीणाशङ्कपालतोमरधरा मुण्डब्रह्मजा शोभिता । रक्षाक्षी ननु रक्तवीजमथिनी भक्त्या सदान-न्दिनी पायात्सा परमेश्वरी प्रतिदिनं कल्याणमुक्तिप्रदा ॥ २३ ॥ देवीं सुचर्योत्चिरां परिभाष्यमानभूपाविभाति-

शयतां प्रकृतेर्दधानाम् । कामं द्विपन्तमपि कामघशं नयन्ती स्मेराननां भगवती शिरसा नमामि ॥ २४ ॥ धूमव्याकुलदृष्टिरिन्दुकिरणैराह्लादिताक्षी पुनः पर्य-न्तीघ समुत्सुका नतमुखी भूयो ह्रिया ब्रह्मणः । सेष्यां पादनखन्दुदर्पणगते गङ्गां दधाने हरे स्पर्शादुत्सुलका करग्रहविधौ गौरी शिवायास्तु वः ॥ २५ ॥ नमामि यामिनीनाथलेखालङ्कृतकुन्तलाम् । भवानां भवस-न्तापनिर्वाणस्तुधानदीम् ॥ २६ ॥ पादाप्रस्थितया मुहुः स्तनभरणानीतया नम्रतां शम्भोः सस्पृहलोचन-त्रयपथं याम्या तदाराधने । ह्रीमत्या शिरसीहितं सपु-लकस्वेदोद्गमोक्तम्पया विशिलष्यन्कुसुमाञ्जलिगिरिजया च्छितोऽन्तरे पातु घः ॥ २७ ॥ पार्वतीमोपधीमेकामपण्यां मृगयामहे । शूलो ह्यालाहलं पीत्वा यया मृत्युञ्जयोऽभवत् ॥२८॥ पुरारितनुहारिणी दुरितसङ्घसंहारिणी भजन्मति-

पद्मेसेशु (महिषासुर) का सिर उन नये मेघोंके समान शोभित होता है जिनमें इन्द्रधनुष चमक रहा हो ॥ १६ ॥ शिवजीकी भस्मसे जिनका अग्रभाग उजला हो गया है उन पार्वतीजीके स्तनोंको मैं प्रणाम करता हूँ जो मानो यह सोचकर मुखरा रहे है कि शिव जैसे तपस्वी भी कैसे हमारे पद्ममें पद्म गए ! ॥ २० ॥ महिषासुरके भस्मरूपी यावर्द्धीमें गिरेले बमलोंके समान वे दोनों श्रीपार्वतीजीके चरण आपकी मनोकामनाएँ पूर्ण करे जिनके भगवसे निकलनेवाली रिरणों ही मृणाल और माल है तथा हिलते हुए नूपुरोंकी मलकार ही भीतरकी गुज़ार है ॥ २१ ॥ धुँपकीके समान लाल नेत्रोंवाली तथा हाथोंमें तलवार और पाश (पशु) धारण करनेवाली उन भयवर रूपवाली फालीजीने प्रणाम करता हूँ जो गल्लेंमें पड़ी बहुतसे मुण्डोंकी मालके हिलनेसे अत्यन्त भयंकर लग रही है, अत्यन्त वेगसे भूरा लागनेपर मुँहमें लपलपाती हुई लन्वी जीभके चम्रमागसे छुँदीन्ती बूँद जैसे सारे ब्रह्माण्डकी घाट खेनेपर जिनके पेटकी ज्वालाकी चिनगारिची और भी प्रबल हो उठी हैं, जो माल-भर पहने हैं और जिनका शरीर हड्डियोंका ढाँचा-मात्र रह गया है ॥२२॥ दानवोंका नाश करनेवाली, शिवजीकी जटाओंसे गेलवाद् करनेवाली, पीपा, शङ्ख, गोपदी और तोमर धारण करनेवाली, मुण्डमालाये शोभित होनेवाली, लाल चोंचोंवाली, रथवीजकी मय डालनेवाली, भक्तिने ही सदा प्रसन्न होनेवाली तथा भक्त्याधर और मुक्ति देनेवाली सबसे बड़ी स्वामिनी दुर्गा प्रति दिन मेरी रक्षा करे ॥२३॥ मौनेकी कान्तिके समान

सुन्दर कान्तिवाली, इच्छानुसार शत्रुओंको भी कामदेवके बशमें कर देनेवाली तथा प्रसन्न मुखवाली उन भगवती पार्वतीको सिर नवाकर प्रणाम करता हूँ जिनके चमकते हुए श्राभूपण्यांकी सजावटसे उनकी स्वाभाविक सुन्दरता अत्यधिक बढ़ गई है ॥२४॥ विवाहके समय धुआँ लागनेसे कङ्कुआनेपर शिवजीके भस्मके चन्द्रमाकी शीतले किरणें पद्मेसे प्रसन्न शालोंवाली, शिवजीको देखनेके लिये उनकी श्रोर सुँह करते ही ब्रह्माजीको सामने देखकर लाजसे सिर नीचे कर लेनेवाली, चन्द्रमाके समान चमरीले अपने पैरके नररूपी दर्पणमें गङ्गा धारण किए हुए शिवजीकी परछाई देखनेवाली तथा पाण्डिप्रहणके समय शिवजीसे छू जानेपर रोमाञ्चित हो उठनेवाली पार्वतीजी आपका कल्याण करें ॥ २५ ॥ रातके स्वामी चन्द्रमाकी कलासे शोभित केशों-वाली उन भवानीजीने प्रणाम करता हूँ जो सांसारिक कष्टोंको यहाँनेके लिये अमृतमयी नदी है ॥ २६ ॥ शिवजीके सिरकी पूजा करनेके लिये उनके चाहसे भरे तीनों नेत्रोंके सामने आकर परके पक्षके सहारे पड़ी हुई, स्तनोंके भारसे मुकी हुई और लजाती हुई पार्वतीजीके हाथोंमें शिवजीके माथेपर चदानेके लिये रखती हुई वह पुष्पाञ्जलि धारणी रखा करे जो शिवजीको देगवर पार्वतीजीके रोमाञ्चित होने और बँप उठनेके कारण पहले ही गिर पड़ी ॥२७॥ पर्यन्तये उत्पन्न होनेवाली (पार्वती नामवाली) और विना पत्तोवाली (अषण्यां नामवाली) उस एक धीपथिको हम देवते है जिते पीरर पेटकी पीड़ावाले (शिशुल धारण करनेवाले शिवती) भयङ्कर महारदिय पीरर भी

विद्यर्चिनी भवत्तदानवोन्मर्दिनी । तुषारगिरिनम्बिनी
मुनिहृदन्तरालम्बिनी कुमारमुखलुम्बिनी हरनितम्बिनी
पातु वः ॥ २६ ॥ प्रचण्डचण्डमुण्डयोर्महावलैकव-
रिण्डनी ह्यनेकदण्डमुण्डयुग्रे वलैकदायिनी । कश्चित्-
शक्तिकारिणी रमाविलासदायिनी मुदेऽस्तु कालिका
सदा स्मस्तपापहारिणी ॥ ३० ॥ प्रत्यासन्नविचाहम-
ङ्गलविधौ देवार्चनव्यग्रया दृष्ट्वाप्रे परिशोतुरेव लिखितां
गङ्गाधरस्याकृतिम् । उन्मादस्मितरोपलज्जितधिया
गौर्या कथञ्चिच्चिराद्बृद्धस्त्रीधचनात्मिये विनिहितः
पुष्पाञ्जलिः पातु वः ॥ ३१ ॥ प्रातः कालाञ्जनपरिचितं
धीच्य जामातुरोष्ठं कन्यायाश्च स्तनमुकुलयोरङ्गुलीभ-
स्ममुद्राम् । प्रेमोल्लासाज्जयति मधुरं सस्मिताभिः
सरोभिर्गोरोमातुः किमपि-किमपि व्याहृतं कर्णमूले
॥ ३२ ॥ मियकण्डपरिप्यङ्गमीलितार्त्वा नमान्युभाम् ।

कालकूटस्थ संस्पर्शाज्ञातमूच्छांगमामिष ॥३३॥ पाली-
युतश्रयणपालीयुगा ललितचूलीधिराजियकुला केलीग-
तानुगमरालीकुला मधुस्मालीभिपादतकथा । नालीक-
द्वक्षुसुमनालीकपाणिरिह कालियशासितहजा तालीद-
त्ताभतनुमाली सदा भवतु काली शुभाय मम सा ॥३४॥
ब्रह्मादयोऽपि यदपाङ्गतत्तद्भङ्गया छष्टिस्वितप्रलभ-
कारणतां व्रजन्ति । लावण्यधारिनिधिवीचिपरिप्लुतायै
तस्यै नमोऽस्तु सततं हृत्पल्लभायै ॥ ३५ ॥ भिन्नार्थो स
कथातः सुतनु चलिमये ताण्ड्यं काय भद्रे मन्ये
वृन्दावनान्ते क तु स मृगशिशुर्नयं जाने वराहम् ।
वाले कश्चिन्न दृष्टो जटट्टपपतिर्गोप पवास्य धेत्ता
लीलासंलाप इत्थं जलनिधिद्विमवत्कन्ययोस्त्रायतां वः
॥ ३६ ॥ भिन्नः कास्ति वलेर्मखे पशुपतिः किं नास्वसौ
गोकुले मुग्धे पन्नगभूषणः सखि सदा श्येते च तस्यो-

'मृग्युजय' (मृग्युजा नाश करनेवाले) हो गप ॥३८॥ शिवजीके
आपे बाएँ शरीरको अपना शरीर बना लेनेवाली, पापोंके डेरका
नाश करनेवाली, भक्तोंकी बुद्धि बढ़ानेवाली, अत्यन्त धलवान्
दानवाँनों मार डालनेवाली, मुनियोंके हृदयोंमें रहनेवाली और
कार्तिकेयका मुँह चूमनेवाली शिवजीकी पत्नी तथा हिमालयकी
पुत्री पार्वतीजी आपकी रचा करें ॥ २६ ॥ अत्यन्त धलवान्
वयद और मुण्डकी बहुत बड़ी सेनाका नाश करनेवाली, बहुतसे
विर और घड़ोंसे भरी हुई युद्ध-भूमिमें लड़नेकी शक्ति देनेवाली,
कहाँ मधुसूक्तकी शक्ति का नाश करनेवाली, वहाँ लक्ष्मीका
प्रेरवर्ष देनेवाली तथा सारे पापोंका नाश करनेवाली कालीजी
सदा आनन्द देती रहें ॥ ३० ॥ विद्याहमें देव-पूजनके लिये
सामने भावी पति (शिवजी) की ही गङ्गा धारण की हुई मूर्ति
स्थापित देतकर धराहट, हँसी, क्रोध और लज्जासे भरी हुई
पार्वतीजीकी यह पुष्पाञ्जलि आपकी रचा कने जिसे बड़ी-बूढ़ी
स्त्रियोंके बहुत सम्माने-सुमानेपर उन्होंने शिवजीकी मूर्तिपर
पढ़ाया था ॥ ३१ ॥ प्रातःकाल रामाद् (शिवजी) के नीचेके
श्रोत्रमें लगा काला अञ्जन और कन्या (पार्वतीजी) के
सन्तानपर ७गङ्गीके भरमयुक्त चिह्न देतकर अत्यधिक प्रेम और
आनन्दसे मुकुटवाली हुई सभियोंने पार्वतीजीकी माँ (मीना) के
कानमें जाँ धीरे-धीरे कोई मधुर बार्णें वहाँ, उनकी जय हो ॥३२॥
शिवजीके गलेसे लिपटकर आनन्दसे आँरें मुँह लेनेवाली उन
पार्वतीजीको प्रणाम धरना हूँ जो ऐसी जान पड़ती है मानो
धूम्रशिवजीके कण्ठका विप जानेमे धेनुव हो गई हों ॥३३॥ दोनों

कानोंमें वाली, वालोंमें मौलसिरिके फूल और हाथोंमें फूलके
वाद्य धारण किए हुए वे तादृशमें-जैसी सौवली कमलनयनी
कालीजी मेरा कन्याप करेँ जिनकी लीलामयी चालका हँसिनी
अनुगमन करती हैं, जिनकी वातांका सखियों 'प्रेमपूर्वक आदर
करती हैं तथा जो कालिय नामको शिष्या देनेवाले श्रीकृष्णजीकी
वहन हैं (दुर्गाजी यशोदाकी कन्या थीं) ॥ ३५ ॥ सुन्दरताके
समुद्रमें उठनेवाली लहरोंसे श्रोत-श्रोत उन शिवजीकी मियतमा
पार्वतीजीको प्रणाम है जिनकी तिरिछी धितवनका थोड़ा-थोड़ा
सङ्केत पानेपर ही दग्ध, विष्णु और शिवजी सारे संसारका
निर्माण, पालन और नाश करनेमें समर्थ होते हैं ॥ ३६ ॥
लक्ष्मीधीने पार्वतीजीसे पूजा—भिषगमङ्गे (शिवजी) कहाँ गप
है ? पार्वतीजीने कहा—हे सुन्दर देहवाली ! वे (वामन) तो
बलिकी यज्ञशालामें होंगे । लक्ष्मीजी—क्याही ! आज नृत्य
(ताण्ड्य) कहाँ होगा ? पार्वतीजी—मैं तो सोचती हूँ
कि (रास) कृन्दावनमें ही कहाँ होगा । लक्ष्मीजी—और वह
पशु-बालक (गणेश) वाला (शिव) कहाँ गषा ? पार्वतीजी—
उसे (वराहको) तो र्भ नहीं जानती । लक्ष्मी—वाले ! तुड़डे
वैलके स्वामी (शिवजी) नहीं दिरगाईं पड़े ? पार्वती—उसे तो
म्याल (गीर्णें धरानेवाले कृष्ण) ही जानें ! इस प्रकार ससुदसे
उत्पन्न लक्ष्मी और हिमालय पर्वतसे उत्पन्न पार्वतीजीकी
थापसकी मन-बहलावके लिये होनेवाली बातचीत आपकी
रचा करे ॥ ३६ ॥ लक्ष्मीजीने पार्वतीजीसे पूजा—भीर
मौंगनेवाले (शिवजी) वदो है ? पार्वतीजीने कहा—वे (वामन

परि । आर्ये मुञ्च विपादमाशु कमले नाहं प्रकृत्वा चला
 वेत्यं वै गिरिजासमुद्रसुतयोः सम्भाषणं पातु वः ॥३७॥
 मातस्तातजडासु किं सुरस्तरिणिकं शेखरे चन्द्रमाः किं
 भाते हृतमुग्धुठत्युरसि किं नागाधिपः किं कटौ ।
 कृत्वाः किञ्जघनद्वयान्तरगतं यद्दीर्घमालक्ष्यते श्रुत्वा
 पुनवचोऽम्बिका स्मितमुखी लज्जामुखी पातु वः ॥३८॥
 मृणालन्यासचलयार वेणीवन्धकपर्दिनी । ह्यराणुकारिणी
 पातु लीलया पार्वती जगत् ॥ ३६ ॥ यस्याङ्घ्रिद्वितयं
 नमन्ति विनुषाः स त्येककः सर्वविचं मृत्युञ्जयमाम-
 नन्ति मुनयः सोऽद्यापि यातिव्रताः । इत्याकर्ण्य
 कथां रहस्यपि यया पत्युर्विवाहात्पुरा भङ्क्त्वाङ्गानि
 विजृम्भितं गिरिभुवो मोद्घायितं पातु वः ॥ ४० ॥ या
 याचः साधुतायास्त्रिभुवनयुवनस्याङ्गने सञ्चरन्ती

धामांसासकवीणाध्वनिगणविलसन्मूर्च्छनानन्दपूर्णा ।
 सन्तोषोत्सासिमौलिः स्फुरदमलमणिः स्वर्णताडङ्कभूपा
 विश्राजत्सुस्मितास्या भवतु भवमुदे भव्यभाण्यभवानो
 ॥ ४१ ॥ रचयति सहसा यच्चित्रमेतत्प्रपञ्चं प्रथमयति
 च तद्वत्केनचित्कौतुकेन । अविदितमपरैस्तच्चवदमु-
 एडादिनादानुजदलनदत्तं शर्वसर्वस्वमव्यात् ॥ ४२ ॥
 रामाद्याचय मेदिनीं धनपतेर्वीजं बलाङ्गलं प्रेतेशान्म-
 ह्विषं तयास्ति वृषभः फालं त्रिगुलं तव । शकाहं तव
 चान्नदानकरणे स्कन्दोऽस्ति गोरक्षे सिन्हाहं हर
 भिक्षया कुरु कृपि गौरीवचः पातु वः ॥ ४३ ॥ रामा-
 चिताङ्घ्रिभिरामाकृतिः कृताचिरामा सुपर्वाविपदां
 कामाचिहृत्सफलकामा निदेशरतकामादिनिर्जरवधूः ।
 भामा हरस्य नुतभामा जपासदश्रमा माननीयचरिता

भगवान्) ता बलिकी यज्ञशालामें होंगे । लक्ष्मीजी—पशुपति
 (नन्दके स्वामी) कहाँ है ? पार्वतीजी—क्यों क्या (पशुओंके
 स्वामी हृष्य) गोडुलमें (गोडुल नगर या गौडिके बीचमें)
 नहीं है? लक्ष्मीजी—शरी पगली! पन्नगशृणु (सर्पविभूषित)
 यो पृथ्वी है । पार्वती—सखी ! वे (सर्पोंकी शोभा
 पन्नगेवाले विष्णु) तो उन्हींपर (शेषनागपर) ही सांते
 होंगे । लक्ष्मीजी—आर्य ! विपाती (विपभली) की
 छोड़ो । पार्वतीजी—हे लक्ष्मी ! मैं चञ्चल स्वभाषवाली नहीं
 हूँ । समुद्र और हिमालयकी पुत्रियाँको यह बातचीत आपकी
 रस करे ॥ ३७ ॥ गर्गेशजीने पार्वतीजीसे पूछा—नौ !
 वितार्चनी जयमें क्या है ? पार्वतीजीने कहा—उनकी जयमें
 गद्गा है । गणेशजी—उनके सिरपर क्या है ? पार्वतीजी—बह
 चन्द्रमा है । गणेशजी—उनके मस्तकमें क्या है ? पार्वतीजी—
 यह धर्म है । गणेशजी—उनके हृदयपर क्या खोत रहा है ?
 पार्वतीजी—बह शेषनाग है । गणेशजी—उनकी कमरमें क्या
 है ? पार्वतीजी—बह छाल है । गणेशजी—उनकी दोनों जँघोंके
 बीचमें यह सग्यान्ता क्या लटक रहा है ? पुत्रकी हृत्स पातकी
 सुनकर मुष्मन्धर राजा जानेवाली भगवती पार्वती आपकी
 रस करे ॥ ३८ ॥ सर्पोंके समान मृषालोकके कन्नर पहनकर
 और चपनी छोटीमें जयमुद्रत घोंपकर शिवजीका धनुकराय
 धरनेवाली पार्वतीजी अपने रौलवायुने संसारकी रस करे
 ॥ ३९ ॥ विवाहमें पहले शिवजीके विषयमें जय यज्ञोन्नी
 प्रियां ऐंम् । चर्पां करने लगनी थी कि 'उनने धरयोमें
 देवा भी प्रथाम करते हैं, वे ही एक मयंग है, उन्हें सब

मुनि 'मृत्युञ्जय' (मृत्युको जीतने वाला) कहते हैं और श्वेतक
 वे तपस्या ही कर रहे हैं', उसे सुनकर उनके सामने वैठी
 हुई पार्वतीजीका कान सुजलाने या थँगड्राई-जैभाई लेने
 आदिकी चेष्टाएँ आपकी रस करे ॥ ४० ॥ जो सरस्वती बनकर
 प्राणिके रूपमें तीनों लोकोंके सज्जनता रूपी घरके प्रांगणमें
 नाचती रहती है (सज्जनोंके मुँहमें बसती है) तथा अपने
 कर्णोपर रखी हुई धीराके श्रयन्त मीठे स्वरोंके श्रानन्दमें मस्त
 है, जिनका मुँह सन्तोषसे खिला रहता है, जिनके उजले मण्डि
 बमक रहे हैं, जो सोनिके कर्णशूल पहने है तथा जिनका मुँह मीठी
 मुस्कानसे सजा हुआ है, ऐसी कृत्याणकारी सीभावके समान
 पार्वतीजी सारे संसारकी आनन्द दे ॥ ४१ ॥ चण्ड-मुण्ड आदि
 अनेक दानवोंका विनाश करनेमें जो चतुर है और जिन्हें दूसरे
 जान नहीं पा सकते हैं, जो पक्कापक हृत्स विचित्र संसारकी
 रच ढालती है और न जाने किस खेलमें ही उसे नष्ट कर
 ढालती है वे शिवजीकी सय-हुद्द श्रीपार्वतीजी रस करे ॥ ४२ ॥
 'हे शिव ! तुम पशुराम (अपने शिष्य) से धरती (लेग), डूबेर
 (अपने मित्र) से धन, बलभद्रसे हल और यमराजसे गैसा
 मींग लो, एक बैल तुम्हारे पास है ही, तुम्हारा त्रिगुल ही बने-
 बनाए फालना काम देगा, मैं उन्हें शत्रु दे सकती हूँ और यह
 फालिंकेय वैलोक्य देव-भाल कर ही लेगा, अथ तुम खेती करो
 क्योंकि भोगमें तो मैं ऊन चुकी हूँ।' शिवजीने पार्वतीजीका
 यह कथन आपकी रस करे ॥ ४३ ॥ लक्ष्मी जिनके चरयोकी
 पूजा करती है वे सुन्दर रूपवाली, राधसंभ (देवोपर)
 धानेवाली विपत्ति नष्ट करनेवाली, यज्ञी हुई पीकाको हरनेवाली

सा मामवत्यखिलसामादतस्तुतिरसामान्यमुक्तिखुखदा
॥ ४३ ॥ लग्नः केलिकचग्रहप्रलयजटालग्ननेन निद्रान्तरे
मुद्राङ्कः श्रितिकचन्येन्दुशरुलेनान्तःकपोलस्थलम् ।
पार्वत्या नखलक्ष्मशङ्कितसखीनर्मस्मितव्रीडया प्रोन्मुष्टः
करपल्लवेन कुटिलताम्रचञ्चविः पातुः चः ॥४५॥ यत्रत्रं
शीतकरोऽधरो घनरसः कामप्रदो विग्रहः श्वासो गन्ध-
वहः सरोरुहसुहृत्पाण्डिः स्मिताभा शुचिः । वक्षः पीन-
पयोधराधिकरणं पृथ्वी नितम्बस्थलीत्यष्टौ धूर्जटिम्-
र्त्तयः स्मरमयाहर्गुर्गुश्रिताः पान्तु वः ॥ ४६ ॥ वक्षःपोडे
निरीड्य स्फटिकमणिशिलामण्डलस्वच्छमासि स्वां
द्यायां साभ्यस्यां त्वमियमिति मुहुः सत्यमाश्वसि-
तापि । वामे मे दक्षिणोऽस्याः श्रवसि कुयलयन्नाहमि-
त्यालपन्ती दत्ताग्लेया सहासं मदनयिजयिना पार्वती

चः पुनातु ॥ ४७ ॥ वहन्ती सिन्दूरं प्रमलकेरुमारति-
मिरत्विषां धृन्दैर्वन्दीकृतमिध नवीनार्फकिरणम् ।
तनोतु चेमं नस्तव वदनसोन्दर्यलटरीपरीवाहस्रोतःसर-
णिरिव सीमन्तसरणिः ॥४८॥ चिद्राण्ये रटवृन्दे सविन-
रि तरले वज्रिणि ध्वस्तचञ्चे जातराङ्के शशाङ्के विरमति
मरुति त्यकचैरे कुचैरे । वैकुण्ठे कुण्डिताश्रे महिपमति-
रुपं पोरुपोपन्ननिग्नं निधिग्न निग्नती वः शमयतु दुर्गतं
भूरिभावा भवानी ॥ ४९ ॥ विरिञ्चिनारायणसुन्दरीयो
मानं विनेतुं गिरिशोऽपि यस्याः । रुपाकटाक्षेण निरी-
क्षणानि व्यपेक्षते साऽप्यतु वो भवानी ॥ ५० ॥ वेणीय-
न्धकपर्दिनी सिततनुः श्रोत्रण्डापांसुन्दरैः केतन्येकद-
लेन्दुशृङ्खलताव्यालोपयोतिन्यपि । प्राक्पाणिग्रहणा-
द्विनोदरभसा सख्याः पुरो लीलया कुर्वाणानुकृति

(कामकी पीढा नष्ट करनेवाली), भर्षांगी इच्छार्थं पूर्ण करने-
वाली (पूर्णकाम रहनेवाली), राक्षसांका नाश करनेके लिये
क्रोध करनेवाली, जपातुमुमके रङ्गके समान कान्तिवाली और
श्रेष्ठ आचरणवाली वे शिवजीकी पत्नी सदा ही मेरी रचा करें
जिनकी आज्ञाके वशमें कामदेव आदि सब देवोंकी सिरर्थ रहती
हैं, सामदेवके श्रेष्ठ मन्त्र जिनकी स्तुति करते रहते हैं तथा
जो अत्यन्त श्रेष्ठ मुक्ति देनेवाली हैं ॥ ४४ ॥ कामर्षाङ्गके समय
पार्वतीजीने शिवजीकी ब्रीली जटाओंको रींथा सो उसके साथ
ठेंडे चन्द्रमाके लटकने और सोती हुई पार्वतीजीके गालोंके
नीचे द्रव जानेसे उनके गालोंपर जो चिह्न पड़ गया, जिसे
देवकर सतिर्षा पतिङ्गा नन्वचिह्न समकर सुखराने लगी और
पार्वतीजीने जिसे लगाकर अपने हाथोंसे पोंछ डाला उस ठेंडे
चिह्नकी लाल कान्ति आपकी रचा करे ॥ ४५ ॥ कामदेवके
ब्रमे गिबजीके पाससे भागकर पार्वतीजीके देहरूपी दुर्गमें
थैदा गिबजीकी वे आठ मूर्तियों आपका कन्पाय करें जिनमेंसे
चन्द्रमाने पार्वतीजीके सुँहमें, श्रेष्ठ जलने उनके नीचेके श्रोत्रमें,
वज्रमानने शरीरमें, पयनने सोंसमें, सूर्यने हाथोंमें, अग्निने
मन्त्र सुखानमें, वट-वट्टे पयोधर (यादलों) ने हृदयमें और
पृथ्वीने नितम्बोंमें द्विपदर मानो अपने प्राय बचाए ॥ ४६ ॥
श्रीशिवजीकी स्फटिक मणिके समान उजली छातीकी चमकनें
पार्वतीजीने अपनी परदाई देवी नो वे सौलिया घासे भर गईं ।
गिबजीने धन्त सममाया कि 'यह तुम्हारी ही परदाई है, दूसरी
कोई नहीं' पर पार्वतीजीको विश्वास नहीं हुआ और वे कहनेलगीं
कि 'यह अवश्य ही कोई दूसरी स्त्री है । देखो न, मेरे नो बाएँ

कानमें कुमुदिनीका फूल दे और इसके दाहिने कानमें, अतः यह
मेरी परदाई नहीं है ।' इस प्रकार कहती हुई जिन पार्वतीजीका
कामदेवको जीनेवाले शिवजीने हैंसते हुए आलिङ्गन किया वे
आपको पवित्र करें ॥ ४७ ॥ हे पार्वतीजी! आपके घने बालोंके
बीचमें चमकती हुई लाल रहवाली वह माँगके सिन्दूरकी रेखा
हमारा कर्पाय करे जो उदय होते हुए सूर्यकी ऐसी किरणके
समान जान पड़ती है जिसे मानो शंभेरेकी काली रेखाओंने बन्दी
बना रक्ता हो या जो आपके सुँहकी सुन्दरतारूपी नदीके उधलते
हुए जलकी सौधी रहती हुई प्रशंसा हो ॥ ४८ ॥ जिससे दरकर
रुद्र गण भाग गए, सूर्य निस्तेज हो गए, इन्द्रका वज्र टूट गया,
चन्द्रमा शङ्कामें पड़ गए, पवनका बहना रुक गया, कुचैरेने शङ्क
डाल दिए और विष्णुसा चक्र कुण्डित हो गया, उस वट-वट्टे
घलवानोंको मारनेवाले तथा देवताओंके भी धरुके बुदानेवाले
आत्यन्त क्रोधी महिषासुरको सहज ही मारनेवाली, अपरा
शक्तिवाली, शिवजीकी पत्नी आपके पायोंका नाश करें ॥ ४९ ॥
जिन शिवजीको प्रह्ला और विष्णुका प्रणाम करते हैं वे भी
जिनके रूठ जानेपर उन्हें मनाते समय उनकी दयाभरी तिरछी
चितवन पानेके लिये खालायित रहते हैं वे पार्वतीजी आपके
रक्षा करें ॥५०॥ वे पार्वतीजी आपके ऐश्वर्य दें जिन्होंने बिबाह
होनेसे पहले सतिर्षाके साथ खेलेते समय अपनी चौंटीको जटाके
समान लपेटकर, उजली भस्मके स्थानपर देहमें चन्द्रका चूर्ण
लपेटकर, ठेंडे चन्द्रमाके स्थानपर केतकीके पूजकी पँचुकी
लगाकर तथा सोंपोंके जनके स्थानपर कमलनाल धारण करके
अपना रूप शिवजीके समान बनाया था ॥ ५१ ॥ अपने मिय-

हरस्य दिशतु श्रेयांसि यः पार्यती ॥ ५१ ॥ ध्यानप्राः
दयितानने मुकुलिता शार्दूलचर्माम्बरे सोत्कम्पा भुजगे
निमेषरहिता चन्द्रेऽमृतस्यन्दिनि । मीलद्भ्रुः सुरसिन्धु-
दर्शनविधौ म्लाना कपालोदरे पार्यत्या नवसङ्गमप्रण-
यिनी दृष्टिः शिवायास्तु वः ॥ ५२ ॥ शम्पाकरुच रजः
प्रमृज्य चरणे दत्तो मया यावको निर्मृज्य स्तनकुण्ड-
मले च भसितं पत्राङ्गुरो निर्मितः । स्वच्छन्दं विहरेति
जल्पितगिरं साकृतमालीजनं दृष्टया केवलमाप्रती
कुटिलया द्वाद्यायणो पातु वः ॥ ५३ ॥ शिरसि धृतसुप-
रागे स्मरापारुष्यमुखेन्दुश्चिगिरीन्द्रपुत्री । श्रय चरण-
युगानते स्वकान्ते स्मितसरसा भवतेऽस्तु भूतिहेतुः
॥ ५४ ॥ श्रुत्वा पदाननजनुमुदितान्तरेण पद्माननेन
सहसा चतुराननाय । शार्दूलचर्मं भुजगामरणं समभ्रम
दत्तं निशम्य गिरिजाहसितं पुनातु ॥ ५५ ॥ सत्त्वादि-
स्यैरगणितगुणैर्हन्त विश्वं प्रसूय व्यक्तं धत्ते प्रहसनकरा

(शिवजी) का मुँह देखकर नीचेरी मुक जानेवाली, बाघम्बर
देकर कुज मुँह जानेवाली, मागकी देखकर कौप उठनेवाली,
अमृत पुद्गलनेवाले चन्द्रमाको एकटक देखनेवाली, गङ्गाको देखते
हो यन्त्र हो जानेवाली, सुरङ्गमाला देखकर भलिन हो जानेवाली,
तथा शिवजीके मये समागममें प्रेम रखनेवाली पार्वतीजीकी
दृष्टि आपना कल्याण करे ॥ ५१ ॥ 'मैंने अमलतासकी पुष्प-रज
पोंछकर पैरोंमें मढ़ाकर लगा दिया तथा स्तनमें लगी हुई भस्म
झलग करके यहाँ चिमटारो रच दो, धय तुम स्वच्छन्द होकर
विहार करो अर्थात् अथकोई न जान पायगा कि तुमने शिवजीसे
रमण किया है' ऐसा कहनेवाली सखीको तिरछी दृष्टिसे क्रांणपूर्वक
देखनेवाली भगवती आपकी रक्षा करे ॥ ५२ ॥ चन्द्रमाकी
कान्तिके समान बान्तिबुक मुँहवाली ये हिमालयकी पुत्री
पार्वतीजी आपना कल्याण करे जो कामदेवको नाश करनेवाले और
गङ्गाको सिरपर धारण करनेवाले पति शिवजीको अपने पैरों परते
देखकर प्रसन्न होकर मुस्कराने लगी थी ॥ ५३ ॥ 'बालिकेयव
जन्म सुनकर आपन्त प्रसन्न होकर पौंच मुँहवाले शिवजीने
पार मुँहवाले प्रह्लादको अपनी बायकी लाल, सौंपके गहने और
भस्म दे डाला' यह सुनकर ईसनेवाली पार्वतीजी सखदा कल्याण
करे ॥ ५४ ॥ मत्, रज, तम आदिमें स्थित अज्ञानित गुणोंसे
रुग्ने यह संसारको उपग्रह करके भी अपनी ईसने योग्य 'हुमारी'
नाम रत्ननेवाली, मोँदरूपी यने भीषेके रँसावकी होकनेवाली,
रुग्ने यह संसारके रूपवाली, सयने यह और प्रथम शक्ति

या कुमारीति संज्ञाम् । मोहध्वान्तप्रसरविरतिविश्व-
मूर्तिः समन्तादाद्या शक्तिः स्फुरतु मम सा दीपवद्देह-
गेहे ॥ ५६ ॥ सन्ध्यारागवती स्वभावकुटिला गङ्गा
द्विजिह्वः फणी चक्राङ्गैर्मलिनः शशी कपिमुखो नन्दी च
मूर्खो वृषः । इत्यं दुर्जनसङ्घटे पतिगृहे वस्तव्यमेतत्कथं
गौरीस्थं नृकपालपाणिकमला धिन्तान्धिता पातु च
॥ ५७ ॥ सत्रीडा दयितानने सकरुणा मातङ्गचर्माम्बरे
सनासा भुजगे सविस्महरसा चन्द्रेऽमृतस्यन्दिनि ।
सेर्पा जह्नुसुतावलोकनविधो दीना कपालोदरे पार्यत्या
नवसङ्गमप्रणयिनी दृष्टिः शिवायास्तु वः ॥ ५८ ॥ सिंहा-
रुद्धैकपादा दशभुजविलसच्चापचर्मसिचक्रप्रोद्यत्पा-
शाङ्गुशालीदेवरचविलसत्तर्जनीवाणरम्या । इन्तरे शलेन
चत्स्यसुरमहिहरिप्रतहस्तन्तु काञ्चीपीतसोमार्ध-
चन्द्रा धिनयनललिता सा भयान्यस्तु सिद्धयै ॥ ५९ ॥
स्वेदस्ते कथमीदृशः प्रियतमे त्वञ्जेवज्जोधिभो कस्माद्दे-

(स्वामी) मेरे हृदयमें दीपकी भाँति चमकती रहें ॥ ५६ ॥
'जहाँ लाल रङ्गवाली सन्ध्या, जन्मसे देवी (हुट स्वभाववाली)
गङ्गा, दो जीभवाला (बुगलसोर) साँप, देहे अङ्गोनाला मलिन
श्रीर कान्तिहीन (कुरूप) चन्द्र जैसे मुँहवाला नन्दी और मूर्ख
यैल आदि एक साथ रहते हों, ऐसे दुष्टोंसे भरे पतिके घरमें
कैसे रहा जाय !' इस प्रकार अपने हाथमें खोपड़ी लेकर सोचमें
पडी हुई पार्वतीजी आपकी रक्षा करे ॥ ५७ ॥ शिवजीसे पहले
पहल मिलनके लिये उत्सुक पार्वतीजीकी नह दृष्टि आपका
कल्याण करे जो शिवजीका मुँह देखकर लजित हो उठती
है, हाथीकी लाल देकर दयासे भर-जाती है, साँप देखते ही
डर जाती है, अश्वत्थ रथवाते हुए चन्द्रमाको देखकर घबरानेसे
भर जाती है, गङ्गाको देखकर डारसे भर उठती है और
खोपड़ियोंके भीतर ऋषिकर प्रयासे भर उठती है ॥ ५८ ॥ सिंहकी
पीठपर एक पैरसे खड़ी हुई, अपने दसों हाथोंमें धनुष, डाल,
तलवार, चक्र, धमरते हुए पाश, शङ्ख आदि धारण की हुई,
अपनी तर्जनी उँगलोंने बाण रीधने ली हुई, उस राक्षसी
घातीमें प्रियल घुसेड़नेवाली जिसका एक हाथ पारसे बँधा है
तथा एक हाथ सिंहने द्योच लिया है, करघनी, पीले रेशमी वस्त्र
और आधे चन्द्रमाके धारण करनेवाली तथा तीन नेत्रोंमें
शय्यन्त सुन्दर दिग्गाई देनेवाली भवानी सखी सिद्धि दे
॥ ५९ ॥ शिवजीने पार्वतीजीसे पूजा—प्रियतमे ! तूहें
परमिता क्यों दूट रहा है ? पार्वतीजी—स्वामी ! आपने

पितमेतदिन्द्रुचदने भोगीन्द्रभीतेस्तव । रोमाञ्चः कथमेप
देवि भगवन्गङ्गाभ्रमां सौकरैरित्यं भर्त्तरि भावगोपन-
परा गौरी चिरं पातु वः ॥ ६० ॥ स्वेदम्यन्दितसान्द्र-
चन्दनचयं दोर्बल्लितग्रन्थश्रमादूर्ध्वं श्वासपरिस्फलत्स्मर-
कथं सन्दृष्टदन्तच्छुद्धम् । सीत्काराञ्चितलोचनं सपुलकं
भ्रान्तभ्रु नृत्यत्करं पार्यत्यां सुरतं मुदे रसघतामास्तां
मृडानीपतेः ॥ ६१ ॥ हे गङ्गाधरपति चक्रियधु किं कुत्रा-
स्त्यसौ नर्त्तको वृन्दारण्यधुचि फव सर्पकुतुकी स्यात्का-
लियस्य हृदे । भिजुः कुत्र गतोऽस्ति यज्ञसदने फयासौ
धिपाद्री वकीप्रोडे स्यादिति पञ्जागिरिजयोर्धाम्नङ्गयः
पान्तु वः ॥ ६२ ॥ हे देवस्य किमस्य रोदिपि कथं कर्णौ
शुडत्यशिशूः किन्ते स्फुन्द धिचेष्टितं मम पुरा संस्प्या
श्रुता चतुषाम् । नैतत्तेऽप्युचितं गजास्य चरितं नासां

मिमोतेऽस्य मे ताषेयं सहसा विलोक्य हसितव्यग्रा
श्रिया पातु वः ॥ ६३ ॥

चण्डिकाशुङ्गिरी—देवी सुनुमसुत श्रुत्यत गणाः
किं तिष्ठतेत्युद्भुजे हर्षाद्भृङ्गिरिटावयाञ्चितगिरा वामु-
ण्ड्यालिक्रिते । श्रव्यातो हतदेवदुन्दुभियनध्वाना-
तिरिक्तस्तयोरन्योन्यत्प्रचलास्थिपञ्जरजरत्कङ्कालजन्मा
रवः ॥ ५५ ॥

अर्धनारीश्वरः—अद्विष्टमेप्रलमल-वदढोपगुहमप्रा-
प्तसुम्यनमनीक्षितवक्त्रवान्तिः । कान्तायिमिश्रयुपुः
हृतचिप्रलम्भसम्मोगसत्यमिच पातु धपुः पुरारेः ॥ १ ॥
अर्धाङ्गनापुंचपुपुः पुरारेर्मूर्तिः श्रियं नौरिध घन्तनोतु ।
प्रेमादिभारादपरं यमर्धं ममज्ज शृङ्गाररत्साम्युराशी ॥ २ ॥
आम्लेषाधरविम्वसुम्यनसुखालापस्मितान्यासतां दूरे

नेत्रनी अक्षिके तापसे पत्नीना छूट रहा है । शिवजी—
तुम्हारा चन्द्रसुर काँप क्यों रहा है ? पार्वतीजी—आपने
शेषनागके डरसे काँप रहा है । शिवजी—देवि ! तुम्हें रोमाञ्च
क्यों हो रहा है ? पार्वतीजी—भगवन् ! आपकी गङ्गाकी फुहारोंने
रोमाञ्च हो रहा है । ऐसा कहकर अपना काम-भाव छिपानेवाली
पार्वतीजी सदा आपकी रक्षा करें ॥ ६० ॥ पुलकित होकर हाथ
और भौंह नचानचाकर शिव और पार्वतीजीकी वह रतिक्रीड़ा
रसिकोंको आनन्द दे जिसमें पार्वतीजीके स्तनोपर लगा हुआ
चन्द्रमकर लेप पस्त्रिसे भीग गया एक दूसरेके कम्कम
आलिङ्गन करनेके कारण यहाँके धरु जानेसे साँसें फूलने लगीं
और रतिका योग कम हो गया, शिवजीने पार्वतीजीका

तेरा इसने क्या त्रिगाड़ा है ? स्फुन्द—यह मेरी अर्धिं गिनता
था । पार्वतीजी—गणेश ! तुझे ऐसा नहीं करना चाहिए भा !
गणेशजी—माँ ! ये मेरी नाक मसल रहे थे । इन दोनोंके इस
प्रकार देपरर हैंसनेवाली पार्वतीजी आपकी रक्षा करें ॥ ६३ ॥

चण्डिकाके द्वारपाल : जब अत्यन्त प्रसन्न होकर
चामुण्डाका आलिङ्गन करके पार्वतीजीके द्वारपालने हाथ
उठाकर कहा कि 'देवि (पार्वती) ने तुझको जन्म दिया है,
हे गण ! तुम नाचो । यैडे क्यों हो ?' उस समय उन दोनोंके
हृदियोंके दर्बोंकी रगड़से उत्पन्न उस भीषण गद्गद्वाहटकी
जय ह्रीं जिसके सामने देवताओंके पाँटे हुए नगादोंकी ध्वनि भी
मन्द पड़ गई ॥ १ ॥

तावदिदं मिथो न सुखलं जातं मुखालोकनम् । इत्थं
व्यर्थद्वैतकदेहघटनोपन्यासयोरारवयोः केयं प्रेमविडम्ब-
नेत्यवतु चः स्मेरोऽर्धनारीश्वरः ॥ ३॥ एकः स्तनस्तुह-
सरः परस्य वार्त्तामिव प्रष्टुमगन्मुखाग्रम् । यस्याः
प्रियार्थस्थितिमुद्दहन्त्याः सा पातु चः पर्वतराज-
पुत्री ॥ ४ ॥ गिरितनयैकपयोधरनिहितकरः पातु
वधिरं गिरिशः । विश्वासयितुं मनसिजमिव स्पृशन्
काञ्चनं लिङ्गम् ॥ ५ ॥ तद्वहः पुनातु शिवयोरर्धनारी-
श्वरं वपुः । भवेदिव यदच श्वः शिवः एव शिवैव वा
॥ ६ ॥ देहाङ्गुलुपावर्षति स्थिरपदं हस्ते घनुर्धारय
स्वेदाद्रं यदि मृज्यतां फरतलं भस्माङ्गरागेण मे ।
एवं जल्पत एव वाणशिखिनि प्रोक्ष्य शिञ्जाफशिथ्यासैः
प्रज्वलिते पुरेषु जयति स्मेरं पुरारैर्मुञ्जम् ॥ ७ ॥
मन्दारमालालुलितालकायै फपालमालाङ्कितशेखराय ।
दिव्याम्बरायै च दिगम्बराय नमः शिवायै च

नम शिवाय ॥ ८ ॥ यस्योपवीतगुण एव फणावृतेकव-
द्योरुहः कुचपटीयति वामभागे । तस्मै ममास्तु तमसा-
मयसानवीक्षे चन्द्रार्धमौलिशिरसे महसे नमस्या ॥ ९ ॥
सम्भोगानतिरिच्यमानविभयो यद्विप्रलम्भो रसस्तद्विष्यं
मिथुनं परस्परपरिस्स्यूतं नमस्कृमद्दे । एकस्याः प्रतिवि-
म्बसम्भृतविपर्यासे मुहुर्दृर्पणे सव्याङ्गस्थितिकौतुकं
शमयति स्वामी स यत्रापरः ॥ १० ॥ स्वच्छन्दैकस्तनश्री-
रुभयदलमिलनमौलिचन्द्रः फणीन्द्रप्राचीनावीतवाही
सुखयतु भगवानर्धनारीश्वरो वः यस्यार्धे विश्वदाहृष्य-
सनविस्मरज्ज्योतिरर्धे रूपोद्यद्ग्राणं चान्योन्यवेगप्रहति
सिमसिमाकारि चक्षुस्तृतीयं ॥ ११ ॥ स्वेदाद्रं वामकुच-
मण्डलपत्रभङ्गसंशोपिदक्षिणकराङ्गुलिभस्मेरेणुः । स्त्री-
पुनपुंसकपदव्यतिलङ्घिनी वः शम्भोस्तनुः सुखयतु
प्रकृतिश्वतुर्थी ॥ १२ ॥

गङ्गा—इयं चिद्रूपापि प्रकटजडरूपा भगवती यदी-

इस प्रकार वार्त्ता के मुस्कानेवाले, श्री और उरुप दोनोंके
हृदयै रूपवाले भगवान् शिव आपकी रक्षा करें ॥ ३ ॥ अपने
प्यारे शिवजीकी आधी देह डोनेवाली वे (लोटी हुई) पर्वतराज
हिमालयकी पुत्री आपकी रक्षा करें जिनका एक ऊँचा वार्त्ता
स्तन सुन्दर मानो दूसरे दाहिने (छोटे) स्तनका कुशल-
समाचार पढ़ रहा हो ॥ ४ ॥ आपके शरीरमें स्थित पार्वतीके
एक धकेले स्तनपर हाथ रखे हुए वे गिरिश (शिवजी)
आपकी सदा रक्षा करें जो मानों कामदेवको निरवास दिलानेके
लिए स्वर्णमय लिङ्गको छूकर शपथ ले रहे हों ॥ ५ ॥ पार्वती
और शिवका वह अर्धनारीश्वर शरीर आपको पवित्र करे जो
मानों आरुहलमें या तो शिव ही हो जायगा या पार्वती ही हो
जायगा ॥ ६ ॥ 'हे पार्वती ! अपने आपके शरीरको स्थिर करके
हारमें पड़पु ले लो, यदि द्रव्य पसींगता हो तो मेरी देहमें
लगावेवाली भस्मसे हाथ मल लो ।' ऐसा शिवजी वह ही रहे
थे कि भूषण बने हुए सौंपाँरी फूफकारमे प्रज्वलित होकर तीसरे
नेत्रकी अग्निने पुर राससको भस्म ही तो कर दिया । यह
देहदम्ब मुम्कारा उठनेवाले शिवजीके मुखको जय हो ॥ ७ ॥ उन
पार्वती और शिवजीको प्रणाम है जिनमेंने एकके सिरके बाह
मन्दार पुष्पोंकी मालासे सजे हैं और दूसरेके सिरमें लोपदियोंकी
माना शोभित है तथा एक तो अति सुन्दर वस्त्रोंसे
निर्मूषित है और दूसरे दिगम्बर अधोप नष्टे है ॥ ८ ॥
जिनके एक धकेले वार्त्ता स्तनपर यज्ञोपवीतके समान पड़े हुए

सर्पका फण ही चोली के समान है ऐसे उन अर्धनारीश्वर
रूपवाले अत्यन्त तेजस्वी शिवजीको मेरा प्रणाम है जो अंधेरा
दूर करनेवाला चन्द्रमा सिरपर धारण किए हुए हैं ॥ ९ ॥ सम्भोग
श्वरारके रसको भी निन्दित कर देनेवाले उस विप्रलम्भ और
सम्भोग श्वरारके मिले हुए अनासे जोड़े (शिव और
पार्वतीके मिये हुए रूप) को हम प्रणाम करते हैं जिसे
दर्पणमें देखकर पार्वतीजीको दाहिनी ओर देखते ही शिवजीने
दर्पण हटा दिया ॥ १० ॥ अपने एक ही स्तनकी शोभासे
सुन्दर दिखाई देनेवाले वे अर्धनारीश्वर शिवजी आपको
सुरज दें जिनके सिरके दोनों भागोंपर चन्द्रमा सजा हुआ
है, जो पुराने सौंपका जनेऊ धारण किए हैं जिनका तीसरा
नेत्र आधे भागकी ज्योतिसे सारे सप्तासको जला डालनेके
लिये निकली पढ़ने और आधे भागकी दयासे भरनेके
दोनों भाव एक साथ उत्पन्न होनेसे चिपचिपाने लगी
है ॥ ११ ॥ वार्त्ता भागमें धारण की हुई पार्वतीके स्तनपर
लगे लेपको नष्ट करनेवाला पसीना सुखानेके लिये एक
शुटकीमें भस्म लिए हुए शिवजीका वह शरीर आपको देखवर्ष
दे जो मानो पुलिन्द, स्त्रीलिङ्ग और नपुंसक लिङ्गको भी पार
करके कोई भीप्री प्रकृतिवाचा बन रहा हो ॥ १२ ॥

गङ्गा : वे अंतन रूपवाली भगवती गङ्गाजी सदा ही सारे
सप्तासको नारासे बचावें जो सप्तासमें जड़ रूपसे प्रकट हैं, जिनकी
एक ही ईद जीवको शिव बना देती है और जो सदा ही संसार-

याम्भोविन्दुर्वितरति च शम्भोरपि पदम् । पुनाना
धुन्वाना निखिलमपि नानाविधमयं जगत्कन्धं पाया-
दुद्युदिनमपायात्सुरधुनी ॥१॥ एषा धर्मपताकिनी तट-
सुधासेवावसन्नाकिनी शुष्यन्वातकिनी भगीरथतपः-
साफल्यहेवाकिनी । प्रेमाकूटपिनाकिनी गिरिसुतास्या-
केकरालोकिनी पापाडम्बरं डाकिनी त्रिसुवनानन्दाय
मन्दाकिनी ॥ २ ॥ गंभीरविभज्यमानार्धसङ्कीर्णै ह्र-
मूर्धनि । अथ द्विगुणमभ्भीरं भागीरथि नमोऽस्तु ते
॥ ३ ॥ चूडाशीतकरस्तनन्धयसुधानीरन्ध्रगन्धस्पृशः
क्रीडाकङ्कणनगेश्वरफणापीतावशिष्टा मुहुः । अङ्गा-
सीनगिरिन्द्रजास्तनतटीहरावर्लीलोलनाः सन्तापं
शमयन्तु वो हरजटागङ्गातरङ्गानिलाः ॥४॥ जङ्गलस्कृ-
जं दुर्जस्वलकरिमकरमौडसम्मर्दपेलकल्लोलोत्फुल्लविन्दु-
स्त्वयकतिलकितव्योमकुक्षिम्भरीणि । घारीणि स्वर्गसि-
न्धोस्त्रिपुरहरजटाजूटरव्याध्वनीनान्युच्चैरुच्यन्डजा-

श्रत्कलिकलुपमपीशोपमुत्पोपयन्तु ॥ ५ ॥ तावत्कर्गा-
ध्वयाता जनघनकलुपाधुनेने गन्धवाहा दृष्टाः किं दृष्य-
वाहाः सङ्कृद्यदहने स्वर्गतां पुण्यवाहाः । मृष्टाः
संसारहाहाखरकङ्कमहाम्भोधिमन्त्रे वराहाः पीनाः
पीयूषधाराधिकतरम्धुराः पान्तु गोदोदवाहाः ॥ ६ ॥
दृष्टाः सङ्कष्टदाहाः श्रवणधमताः पुण्यपुञ्जावगाहाः
सृष्टाः संसारपाथोनिधिपतितधरोद्धारधुर्यां वराहाः ।
पीतास्तापोपशान्तिप्रजननपटयस्ते सुधावारिवाहाः
कल्याणं कल्पयन्तां कलिकलुपहरा विष्णुपद्याः
प्रवाहाः ॥७॥ पर्वतभेदि पवित्रं जैत्रं नरकस्य बहुमन-
ङ्गहनम् । हरिमिव हरिमिव हरिमिव सूरसरिदम्भः
पतन्मत ॥ ८ ॥ मुक्ताभा नृकपालशुक्तिपु जटावह्नीपु
मल्लानिभा वह्नी लाजनिभा दशोर्मणिनिभा भोगान्कोर
भोगिना । नृत्यावर्चविवर्त्तेरिततपयःसम्पुच्छन्नेच्छा-
लिताः खेलन्तो हरमूर्धनि पान्तु भवतो गङ्गापयो-

मरुके सय पापांका नाश करती रहती हैं ॥३॥ धर्मकी ध्वजा-सी
जान पड़नेवाली तथा उत्कृतापूर्वक भगीरथकी तपस्या सफल
करनेवाली पाव'तीजीके सुखकी श्रौर तिरछी दृष्टिसे देखनेवाली
श्रौर पापांके समूहका नाश करने तथा सुखा डालनेवाली वे गङ्गाती
तीनों लोगोंको आनन्द दें जिनके तीरपर सब देवता अत्यंत
पिनेके लिये बैठे हैं तथा जिन्हें शिवजी इतना चाहते हैं कि सिरपर
बैठा रक्ता है ॥ २ ॥ पार्वतीजी-द्वारा आधे यदाए हूप शिवजीके
मस्तककी सन्धिमें रहनेसे दुगुनी गहरी हे मों गङ्गे ! आपको
पथाम है ॥ ३ ॥ शिवजीकी जटायें बहती गङ्गाकी लहरोंका वह
पवन आपके हुःप दूर करे जो शिवजीके मस्तकपर बैठे बच्चके
समान चन्द्रमाके अमृतकी घनी गन्धसे भरा है, जो खेलवाड़में
कड़न बने हुए साँपके फणोंसे बार-बार पिंपु जानेपर भी बचा
हुया हैं और जो शिवजीकी गोदमें बैठी पार्वतीजीके स्तनोंपर
लटके द्वारको हिलाता रहता है ॥४॥ त्रिपुरासुरके शत्रु शिवजीकी
जटाधोंके मार्गोंसे होकर अत्यन्त वेगसे बहता हुया, आकाशकी
कोप भरता हुया वह गङ्गाजीका जल कलियुगकी प्रचण्ड पाप-
रूपी कालिकाको सुखाता हुया संसारका पोषण करे जिसमें बड़े-
पड़े घड़ियाल आदि उछल रहे हैं। यद्दी-यद्दी लहरें उठ रही हैं,
यद्दी-यद्दी हैं उड़ रही हैं तथा जो ऐसा जान पड़ता है मानो
आकाशका तिलक हो ॥ ५ ॥ गङ्गाका वह जल आप लोगोंकी
रचा करे जिसका नाम सुनना ही मनुष्योंके धड़े-बड़े पापांको उड़ा
देनेके लिये पवनके समान है, जिसका दर्शन सुरत ही पापांको
जलानेके लिये अग्निके समान है, जो स्वर्ग जाते समय साय-

साय पुण्य होता चलता है, जो दू लेनेपर संसारके यशोर 'हा !
हा !!' शब्द-रूपी बड़े भारी समुद्रमें डूबे हुए प्राणियोंके
बचानेके लिये बराह भगवान्के समान है और जो पीनेमें
अमृतकी धारसे भी अधिक मीठा है ॥६॥ दर्शन करनेसे कर्तोंका
नाश करनेवाला, अपनी चर्चा सुननेपर पुण्योंके ढेरने नहला
देनेवाला, स्वर्ग-मात्रमे संसार-रूपी समुद्रमें डूबनेवालोंको
बचानेके लिये बराह भगवान्के समान, पी लेनेसे नरुन्त दुःख
मिटानेवाला, अमृतकी धाराके समान जान पड़नेवाला,
कलियुगके पाप नष्ट करनेवाला और विष्णुके चरणोंमें बहना
हुया गङ्गाजल सबका कल्याण करे ॥७॥ इस गिरते हुए अत्यन्त
श्रेष्ठ और गहरे गङ्गाजलको प्रथाम करो जो पर्वतको तंड़-कोड़कर
बहनेके कारण पर्वतोंके पङ्क काटनेवाले इन्द्रके समान है, पवित्र
होनेसे विष्णुके समान है और नरकको नष्ट करनेवाला होनेसे
नरकासुरको मारनेवाले कृष्णके समान है ॥८॥ शिवजीके गलेमें
पड़ी खोपड़ियों-रूपी सीपोंमें पड़कर मोतीके समान, जटाकी
घोटीमें पड़कर उनमें शृंगे मलिककाके फूलोंके समान, शिवजीके
तीसरे नेत्रकी अग्निमें पड़कर धानकी खीलोंके समान, साँपके
फैले हुए फणोंमें पड़कर मणिके समान जान पड़नेवाली तथा
भँवरोंके पड़नेसे धूमते हुए तथा रुककर उड़लते हुए जलसे
उत्पन्न होकर शिवजीके माथेपर खेलनेवाली गङ्गाजीकी हैं
आपका कल्याण करें ॥ ९ ॥ जिसके 'भागीरथी' नामका पहला
अक्षर 'भा' भातु (सूर्य) के नाममें शोभा पाता है, दूसरा
अक्षर 'गी' (वाणी) सदा श्रेष्ठ कवियोंके मुँहमें नाचता रहता

विन्द्वः ॥ ६ ॥ यचाङ्गः प्रथमाक्षरं विजयते भानो
द्वितीयाक्षरं नित्यं नृत्यति सत्कवीन्द्रचन्दने भूवा-
न्त्यर्षेण्यम् । रामो रावणमाजवान समरे शम्भोः
शिरःशालिनी सा सर्वाक्षरमातिनी भवतु मे भा-
ग्याय भागीरथी ॥ १० ॥ वाते वाति यदङ्ग-
सङ्गमवशाच्चद्रीशम्भुरूपप्रदे गौरी स्यति तुष्यति
त्वहित्पतिर्विन्ध्याटवी शोचति । चन्द्रखस्यति कुप्यते
हरिरपि ब्रह्मा परं कम्पते सा गङ्गा निखिलं
फलङ्गनचयं भङ्गं तरङ्गनेयिव् ॥ ११ ॥ शाङ्गीं
ब्रह्मकमण्डलोरधिगतैर्यैः प्रापि तीर्थाङ्घ्रितानं यैस्त्यु-
ख्यतामनाधि गरलप्रस्तो जटाजूटगैः । येभ्योऽशिक्षत
माधुरां मृदुजटाजूटे मटे चन्द्रमास्तानीमानि पर्यासि
गौतमि तव श्रेयांसि यच्छन्तु नः ॥ १२ ॥ शैवालश्रेणि-
शोमां दधति ह्रजटावहस्यो हन्त यस्यास्तद्दासोएला-
स्येह्लठरशफरतुलां यत्र धत्ते कलावान् । उन्मीलद्रो-
गिभोगाधनिधुप्रगसिताम्भोजसम्भाविताम्भा गङ्गान-

ङ्गा रिसङ्गा महति तव विधौ मङ्गलान्यातनोतु ॥ १३ ॥
स्वच्छन्दोच्छ्वसद्च्छुक्च्छुक्छुहरच्छ्यतेतराभ्युच्छुटा भू-
च्छुन्मोहमर्हपिहर्षविहितखानाहिकाहाय वः । भिन्या-
दुद्युदवारदुर्दुर्दरीदीर्घा दरिद्रद्रुमद्रोहोद्रेकमहोमिमेदु-
रमदा मन्दाकिनी मन्दाताम् ॥ १४ ॥

जटाजूट — गङ्गावारिमिखत्तिताः फणियुटेऽपह-
वास्तच्छिखारत्नैः कोरकिताः सितांशुकल्या स्मेरै-
क्युपपश्रियः । आनन्दाश्रुपरिसुताक्षिद्रुतमुधुमैमि-
लहोहदा नास्यं कल्पलताः फलं ददतु वोभीष्टं
जटा धूर्जटेः ॥ १ ॥ चूडापीडकपालसङ्कुलगल-
न्मन्दाकिनीचारयो विद्युत्तायललाटलोनपुटज्योति-
विमिश्रत्विपः । पान्तु त्वामकठोकेतकशिखास-
न्दिग्धमुग्धेन्दवो भूतेशस्य भुजङ्गवह्नियलयन्नङ्ग-
ङ्गजूटाजटाः ॥ २ ॥ जयति हरजटाभरो यदन्त-
र्बहति निराकुलमेव देवसिन्धुः । लहरिपु तरलेन्दुप्राज-
हंसा चिततविरिञ्चिकपालफेनमाला ॥ ३ ॥ स धूर्जटि-

है और रामजीने जिसके जन्तके दो अक्षर (रथी) होकर रावणको
बुझमें मार डाला, ऐसी अक्षरवाली तथा शिवजीके सिरपर
शोभा पानेवाली 'भागीरथी' नामवाली गङ्गाजी मेरा सौभाग्य
बढ़ाये ॥ १० ॥ जिनको धूर्वर शिवजीका रूप देनेकी शक्तिवाले
पवनके चलनेपर पार्वतीजी क्रोधित हो जाती हैं, सौंप प्रसन्न हो
जाते हैं, विन्ध्याचल शोचमें पड़ जाता है, चन्द्रमा डर जाता है,
विष्णु भी क्रोधित हो जाते हैं और मग्न कर्षण लगते हैं,
ऐसी गङ्गाजी अपनी लहरोंमें सारे पापोंका नाश कर डाले
॥ ११ ॥ हे गौमती गङ्गा ! मग्नके कमण्डलुमें भरे आपके जिस
जलने विष्णुके चरणोंकी पवित्र कर दिया, शिवजीकी जटाओंमें
भरे हुए जिस जलने रिपुके प्रसन्न शिवजीको 'मृद्युजय' (मृद्युघ्ने
जीतनेवाला) बना दिया और शिवजीके जटामुद्र-रूपी मठमें
रहकर चन्द्रमाने जिससे मधुरता (मिठास) सीपी वह आपका
जल हमें आनन्द दे ॥ १२ ॥ शिवजीकी जटाएँ जिस जलमें
शैली सेवान्नी दिग्गर्ह देती हैं, चन्द्रमा जिस जलकी उदाल-
रूपी हँसियों मुन्दर मण्डलीने समान जान पड़ता है और सौंय
मैंदे हुए सौंपके सिरपर रानी पृथ्वी गिम जलमें मुन्दर कमलके
समान दिग्गर्ह पड़ती हैं, ऐसी शिवजीके साप रहनेवाली
गङ्गाजी आप लोगोंको बड़े-बड़े कार्यों में वश दे ॥ १३ ॥ जिनके
व्यथ्यन्द उल्लते हुए, व्यथ्य पीर पासरी गुफाओंमें शैलर
दितराप हुए जलकी क्षमित्ते प्रसन्न गट हो पाता है, जिनके

जलमें मर्हप लोग अत्यन्त प्रसन्न होकर अपनी स्नान आदि
नित्यकर्म करते हैं, जिसमें मेंडकोंकी धनुत बढ़ी-बढ़ी गड़हियों
यनी हैं और जिसकी बड़ी-बड़ी लहरोंके तीम प्रवाहसे निगल
चल भी उलड़कर बह जाते हैं, वे गङ्गाजी तत्काल आपका
अभयाय नष्ट करें ॥ १४ ॥

जटाजूट : कल्पवृक्षकी लताओंके समान जान पड़नेवाली
यह शिवजीकी जटा आपकी सब हृच्छाएँ पूर्ण करे जिसे गङ्गाजल
ही मानो सींचता है, सौंपोंके फल ही जिसके पते हैं, उन
फलोंमें चमकनेवाले मणि ही जिसकी कलियों हैं, चन्द्रमाकी बला
ही जिसका एक पिन्ना हुआ पूल है और आनन्दके शक्तिप्रयोग
भर जानेपर अग्निसे भरे नेत्रसे उठनेवाला धुक्की ही जिसपर
मैंदराते हुए भीरोंके समान है ॥ १ ॥ शङ्करजीके माथेपर शैली
हुई उनकी वे जटाएँ आपकी रचा करें जिनमेंसे गङ्गाजल बह
रहा है, जो विजलीके समान चमचमाते हुए मस्तक और
नेत्रोंकी चमकके समान चमकती हैं और जो बोगल
केतकीके पुलकी कलीके तमान जान पड़नेवाले मुन्दर
चन्द्रमासे हुशोभित हो रही हैं ॥ २ ॥ शिवजीके जटाएँ उस
पर्वतकी जय हो जिसमें स्वच्छन्द रूपसे लहराती हुई गङ्गारूपी
समुद्रकी लहरोंके बीचमें देखा चन्द्रमा हुँसके समान तथा ब्रह्माकी
गोंपदियोंकी माला बनके समान शोभित होती है ॥ ३ ॥
शङ्करजीका यह जटाजूट आपकी जीत करता रहे जिनमें बहती

जटाजूटो जायतां विजयाय वः । यत्रैकपलितभ्रान्तिं करोत्यद्यापि जाह्नवी ॥ ४ ॥

शशिलेपा—जयति परिमुषितलक्ष्मा भयाद्दुषमर्ष-
तेव हरिणेन । इह केसरिकरजाङ्कुरकुटिला हरमालि
विधुलेखा ॥१॥ दिश्याद्भूर्जटिजूटकोटिसरिति ज्योत्स्ना-
लवोद्गामिनी चान्द्री वः कलिका जलभ्रमिवशादाकृष्ट-
नष्टा मुदम् । याञ्चञ्चकृफरीभ्रमेणमुकुतीकुर्वन्कषालो
मुहमुहलक्ष्महिजिघृन्तितमामाकुञ्चनभोजनैः ॥ २ ॥
देहप्रविष्टाद्रिसुतामुनेन्दुद्वितीयगण्डार्थमिवागतो यः ।
श्रवास्तुकामः परिपुष्भावं स पातु वः शम्भुजटार्थ-
चन्द्रः ॥ ३ ॥ पूर्णमेन्दुद्विगुणितमञ्जिरा प्रेमश्ट-
ह्वला जयति । हृद्यशिलेपा गौरीचरणाङ्गुलिमध्यगु-
ल्फेषु ॥ ४ ॥ लसतीलाचन्द्रश्चरखगतमालेः स्मर-
जितः किरट्टिः सुज्योत्स्नां नक्षमणिमिरापूरितफलः ।
व्यलीके पाथेत्याः परिलघुलघैरञ्जननुपः पतद्भिर्वा-

प्यस्य प्रमलखितलक्ष्मा विजयते ॥ ५ ॥ श्रीकण्ठस्य
कपर्द्वन्धनपरिआन्तोर्गग्रामणीसन्दर्शं मुकुटावतंस-
कलिकां वन्दे कलामेन्दवीम् । या विम्बप्रतिपूरणाय
परितो निष्पीड्य संदंष्ट्रिकायन्त्रेणैव ललाटलोचनशि-
खिज्वालभिरावर्त्यते ॥ ६ ॥

लोचनम्—अन्तर्नाडीनियमितमरुत्तितप्रह्वरञ्चं
स्यान्ते शान्तिप्रणयिनि समुन्मालदानन्दसान्द्रम् ।
प्रत्यङ्ग्योतिर्जयति यमिनः स्पष्टलालाटनेत्रय्याज्य-
कीकृतमिव जगद्भ्यापि चन्द्रार्चमालेः ॥१॥ एकं ध्यान-
निर्मालनाम्सुकुलितञ्चञ्चिद्वितीयं पुनः पार्थत्या वदना-
म्युजस्तनतटे शृङ्गारभारालसम् । अन्यदूरविकृष्टचा-
पमदनक्रोधानलोदीपितं शम्भोभिन्नरत्नं समाधिसमये
नेत्रत्रयं पातु वः ॥२॥ जयति ललाटकटाक्षः शशिमालेः
पद्मलः प्रियाप्रणतौ । धनुषि स्मरेषु निहितः सकण्ठकः
केतकेषुरिव ॥ ३ ॥ नीललोहितललाटलान्धने लोचने

हुई गद्गाकी उजली धाराको देवधर आज भी यह भ्रम हो
जाना है कि पूरी जटा पक गई है ॥ ४ ॥

शशिलेपा : मलिन कान्तिवाले और सिंहके नगोंके
समान देहे रूपवाने उस चन्द्रमाकी जय हो जो भयके मारे न
भाग सकनेवाले हरिणके समान जान पड़ता है ॥ १ ॥
शिवजीकी जटाशोंकी छोरपर लगी हुई वह चन्द्रकला आपकी
आनन्द दे त्रिमे गद्गाकी लहरोंके बीचमें पड़कर हिलनेमे चञ्चल
मधुली ममककर सौंप बार-बार भ्रममें पड़कर अपने कण्ठको
सिकोदते-रौलाने हुए सँयते है ॥ २ ॥ शिवजीकी जटामें
लगा वह आधा चन्द्रमा आपकी रक्षा करे जो ऐसा जान
पड़ता है मानो शिवजीकी देहमें बैठे पार्वतीके सुलक्ष्मलका
दूसरा आधा भाग बनकर उसे पूर्ण बनानेकी इच्छासे धा गया
हो ॥ ३ ॥ शिवजीके सिरपर स्थित उस चन्द्रकलाकी जय हो
जो पर्वतीजीके पैर पड़ते समय ऐसी जान पड़ती है मानो
उन्की डँगलियों और शिवजीके मस्तकके बीचमें पड़ी हुई, बड़े
हुए नयनरूपी पर्ण चन्द्रमाके दुगुनी जान पड़नेवाली प्रेमकी सँकल
हो ॥ ४ ॥ कामको जीतनेवाले, शिवजीकी उस चन्द्रकलाकी
जय हो जो स्त्री हुई पार्वतीजीके पैर पड़ते समय उसके नापरुपी
मणियोंकी उजली छिरगोंमें झोल-झोल है तथा जिसपर
पार्वतीजीके श्रौंभोंके काननयुक्त श्रौंभ गिरनेमे ऐसा जान
पड़ता है मानो उगमें क्रमपूर्वक चिह्न बनाए जाते हैं ॥ ५ ॥
शिवजीके मुकुटमें मञ्जी कञ्जीके समान जान पड़नेवाली उस

चन्द्रकलाको प्रणाम करता हूँ जो शिवजीकी जटा बाँधनेसे बके
हुए सौंपोंके लिपट जानेसे ऐसी सुन्दर दिशाई पड़ती है मानो
शिवजीके नेत्रकी धमिरूपी संसामे दयाया जाकर गोल किया जा
रहा हो ॥ ६ ॥

लोचन : बड़े भारी योगी शङ्करजीके तीसरे नेत्रकी उस
नवीन ज्योतिरकी जय हो जो ऐसी जान पड़ती है मानो उनकी
नादियोंके भीतर बँधे पवनके द्वारा बहारन्त्रको लाँच जानेवाली,
हृदयमें शान्ति पहुँचानेवाली, धने आनन्दसे सुँडे हुए नेत्रमें
रहनेवाली तथा नीचेकी और पड़नेवाली योग-शक्ति ही नेत्रके
वहाने प्रकट हो गई हो ॥ १ ॥ शङ्करजीके उन तीनों
नेत्रोंकी जय हो जिनमेंसे एक तो भगवान्का ध्यान करते हुए
सुँदा हुआ है, दूसरा गौरीके कमलके समान सुँद और स्तनोंको
देखकर मन्त हो रहा है और तीसरा समाधि लगानेके समय
धनुष सँचते हुए कामदेवपर बड़े हुए क्रोधरूपी धनिके तेजसे
जलकर रसमद्ग करता हुआ-सा जान पड़ता है ॥२॥ चन्द्रमाको
सिरपर धारण किए हुए शङ्करजीके माथेके उस पलकवाले
नेत्रकी जय हो जो अपनी प्रिया पार्वतीके पैर पड़ने समय
ऐसा जान पड़ता था मानो कामदेवने अपने धनुषपर कार्टोवाली
केनकीके फूलका बाण चढ़ा रक्खा हो ॥ ३ ॥ शिवजीके नीले
और लाल चिह्नवाले नेत्रमें स्थित उस किसी धनिकी जय हो
जिन्का प्रलयके लिये जलना ही अगली गृहिके लिये प्रस्यारूप
हो जाता है ॥ ४ ॥ जिस नेत्रके पलककी पूर्णमें लगी भूरे

जपति कोऽपि पावकः । रक्षितस्य जगदन्तहेतवे यस्य सञ्ज्वलनमालभूरभूत् ॥ ४ ॥ पद्मालीपिङ्गलिनः कण इव तद्धितां यस्य कृत्स्नः समूहो यस्मिन्महाएडमीप-
द्विषदितसुकुले कालयज्वा जुहाव । अचिन्दिष्टसू-
डाशिशगलितसुधाघोरभ्राङ्गारिकोर्णं ताचींयं यत्पु-
रारेस्तदवतु मदनसोपणं लोचनं यः ॥ ५ ॥ पाया-
त्कृतानङ्गपतङ्गदाहः खट्वाङ्गिनो नेत्रशशिप्रदीपः ।
यस्यान्तिके शुभ्रदशानिवेशश्रियं किरीटेन्दुकलाः श्र-
यन्ते ॥ ६ ॥ सानन्दा गणनायके सपुलका गौरीसु-
याम्मोक्ते सन्तोधा कुसुमायुधे सकरुणाः पादान्ते
वज्रिणि । सस्मेरा गिरिजासखीषु सनयाः शैलाधिनाथे
वहन्भूमिन्द्र प्रदिशन्तु शर्म विपुलं शम्भोः कटाच-
च्छुटाः ॥ ७ ॥

कण्टः—कस्तूरीतिलकान्ति भालफलके देव्या मुखा-
म्मोक्ते रोलम्बन्ति तमालवालमुदुलोत्संसन्ति मौलिं
प्रति । याः कर्णं विकच्योत्पलन्ति कुचयोर्से च कालागु-

रुद्रवाली यतीनिर्वां विजलीकी चिनगारीके समान दिखाई देती
है, जिस धापे तुले हुए नेत्रमें स्वयं भगवान् शङ्कर प्रलय-यश्च
वरते समय इनने वदे महाएडकी आहुति दे देते हैं, जिसके
तापसे पिथलनर शिवजीके माथेपर स्थित चन्द्रमासे अमृत
दपन्नेसे उसके कोने छन-छना उठते हैं, वह कामदेवकी जला
ढालनेवाला शङ्करजीका तीसरा नेत्र सबकी रक्षा करे ॥ ५ ॥
कामदेवस्त्री पतङ्गकी जला ढालनेवाला, वह शिवजीके तीसरे
नेत्रमें स्थित अग्निदीपक रक्षा करे जिसके पास लगा हुआ
द्वेधा चन्द्रमा उस दीपकमें सगनेवाली यतीके समान जान
पढ़ता है ॥ ६ ॥ हे रानन् ! गणेशजीकी देपकर अगनन्दते भर
जानेवाले, पार्वतीजीका सुपुत्रमल देसवर पुलकित हो उठनेवाले,
कामदेवकी देप्पर मोहित हो उठनेवाले, पेर पढ़ते हुए इन्द्रकी
देप्पर बरपासे भर जानेवाले, गौरीकी सलियाँकी देपकर
सुन्दर उठनेवाले और हिमालयके सामने सँभले रहनेवाले
शङ्करजीके तिरपे नेत्रोंकी सुन्दरता आत्यधिक आनन्द यदाने ॥ ७ ॥

कण्टः : शङ्करजीके गलेकी यह कान्ति धापका कल्याण
करे जो गौरीजीके माथेपर कस्तूरीके तिलकके समान, उनके
गुण-कमलपर औरके समान, सिरपर तमालकी गिली हुई
शोटी-मो वनीके समान, कानोंपर गिलने हुए कमलके समान
तथा हननं घोर कर्णोंपर काले अगरेके समान शोभित होंगी
है ॥ १ ॥ विपुरामुक्तों मारनेवाले शङ्करजीके गलेकी यह नीली

रुधासन्ति प्रथयन्तु तास्तव शिवं श्रीकण्ठकण्ठचिपः
॥१॥ कस्तूर्यन्ति भाले तदनु नयनयोः कज्जलीयन्ति
कर्णप्रान्ते नीलोत्पलीयन्त्युरसि मरकतालङ्कृतीयन्ति
देव्या । रोमालीयन्ति नामरुपरि हरिमणी मेखलीयन्ति
मध्ये कल्याणं कुसुरेते त्रिजगति पुरजितकण्ठभासां
विलासाः ॥२॥ पातु यो नीलकण्ठस्य कण्ठः श्यामाम्बु-
दोपमः । गौरीभुजलता यत्र चिद्युल्लेखेय राजते ॥ ३ ॥
पातु यः शितिकण्ठस्य तमालश्यामलो गलः । संस-
कपार्वतीबाहुसुवर्णनिकपोपलः ॥ ४ ॥

गुण्डमाला—पिन्धोः पादाञ्जसेवागतगिरितनया-
पुत्रपत्रातिमीतञ्जुभ्यङ्गपामुजङ्गभवनगुमरुहीसनेत्रा-
भ्रितापास् । स्वधन्मौलीन्दुखण्डस्रुतपहुलसुधासेकस-
ञ्जातजीवा पूर्वाधीतं पठन्ती ह्यवतु विधिशिरोमालिका
शूलिनो वः ॥१॥ भूत्यै योऽस्तु कपालदाम जगतां पत्यु-
र्यदीयां लिपिं क्वापि-क्वापि गणाः पठन्ति पद्मो ना-
तिमसिद्धाक्षत्म् । विध्वं स्रक्ष्यति वक्ष्यति क्षितिमपा-

चमक कल्याण करे जो गिरिजाके माथेपर कस्तूरीके समान,
नेत्रोंमें कज्जलके समान, कानोंमें खिले नीले कमलके समान,
झातीमें मरकत मणिके गहनेके समान, नाभिपर रोईकी पतौके
समान और कमरमें हरे मणियाँकी करघनीके समान शोभित
होती है ॥ १ ॥ काले बादलके समान सुन्दर दिखाई पढ़नेवाला
शङ्करजीका वह नीला कण्ठ सबकी रक्षा करे जिसमें पढ़ी
पार्वतीजीकी गोरी बाँह विजलीके समान सुन्दर जान पड़ती
है ॥ ३ ॥ शङ्करजीका वह तमालके समान सँभला गला धापकी
रक्षा करे जो पार्वतीकी सोनेके समान बाँहोंकी परल करनेवाली
कसीयोंके समान जान पढ़ता है ॥ ४ ॥

गुण्डमाला : हिमालयकी पुत्री पार्वतीजी जब अपने
माता-पिताकी सेवा करने चली गईं, उस समय उनके पुत्र
स्वामिकर्णिकेयके वाहन मोरसे उबरकर अत्यन्त घबड़ाते हुए,
सूषण बने हुए सौंपकी कुपकारसे शङ्करजीके तीसरे आँसुकी धपकी
हुई अग्निके तापसे तपकर पसीजते हुए चन्द्रमासे टपकती हुई
अमृतकी धारा पी-पीकर फिर जी उठनेवाली, पहले पढ़े हुए वेदका
पाठ हुहरनेवाली शङ्करजीके गलेमें पढ़ी हुई महाके सिरोंकी
माला समकी रक्षा करे ॥ १ ॥ संसारके स्वामी शिवजीकी यह
गुण्डमाला धापको ऐश्वर्य दे जिसमें महा-द्वारा लिखे हुए
अस्पष्ट पदोंको उनके गाय बर्ही-बर्ही इस प्रकार पढ़ पाते थे—
निरवकी रचना करेगा—भोलोगा—पृथ्वीको—जलका—

मीश्रियते शिष्यते भागै राशिषु रंस्यतेऽस्त्यति जग-
न्निर्वैश्वति धामिति ॥ २ ॥

पन्नगः—फण इव पुरां बह्वैर्माघपूलनसङ्गतो
जयति बहुलालोकस्फारायधूतनिशोदयः । स्मरहरजटा-
यन्धग्रन्थिर्मुजङ्गफणामणिस्त्रिदशशतटिनीपूरानीतः स्फु-
रन्निव तारकः ॥ १ ॥

ताण्डवम्—अस्थीन्वस्थीन्वजिनमजिनं भस्म भस्मे-
न्दुरिन्दुर्गङ्गा गङ्गोरग उरग इत्युल्लसत्सम्भ्रमाणाम् ।
भूयविषोपकरणकरणप्रापणव्यापृतानां नृत्तारम्भप्रण-
यिनि शिवे पान्तु घात्रो गणानाम् ॥ १ ॥ आर्द्रां कण्ठे
मुखान्जज्ञजमुपनयत्यम्बिका जानुलम्बां स्थाने कृत्वेन्दु-
लेखां निचिडयति जटाः पन्निगन्द्रेण नन्दी । कालः कृत्ति
नियन्नात्युपनयति करे कालरात्रिः फपालं शम्भोर्नृत्ता-
घतारे परिपदिति पृथग्व्यापृता घः पुनातु ॥ २ ॥ आसी-
नैः स्वं विमानं कृतिपरिवृतिभिः सुन्दरीसङ्गतैस्ते देवैः

पद्मावेगा—सिरावेगा—राशिषोमं भागोते रमय करेगा—ता
डालेगा—गृध्वी और आकाशसे मुक्त करेगा आदि ॥ २ ॥

सौंप : कामदेवको नष्ट करनेवाले शिवजीकी जयानं गाँठ
लागाकर धँचे हुए सौंपके फणमें चमकने हुए उस मणिकी जय हो
जो देसा जान पड़ता है मानो पुर रासको जलाकर उसकी राख
उड़ाले समय कोई अग्निका कण चिपक गया हो अथवा अत्यन्त
तेजस्वी तेजसे तिरस्कृत होकर रात्रिमें कोई छोटा तेज उदय
हुआ हो अथवा देवन्दरी गङ्गाकी बाढ़में बहकर कोई चमकता
तारा था लगा हो । ॥

ताण्डव : ताण्डव नृत्यके लिये तैयार होते हुए शिवजीको
सजाते समय उनके शृङ्गारकी सामग्री जुटानेमें व्यस्त गाणोंकी
ये व्यापिणी रचा करें कि—‘अरे ! हृद्विर्वा, हाथीकी खाब,
भस्म, चन्द्रमा, गङ्गा, सौंप आदि (कहाँ है, शौंप लाओ) ’ ॥ १ ॥
शिवजीके ताण्डव नृत्य करनेको तैयार होते समय, उन्हें मजानेमें
लगे हुए उनके ये सब सामग्री आपको पवित्र करें जिनमेंसे
पार्वतीजी उनके गलेमें घुटनंतरक लटकनेवाली मुण्डोंकी गीली
माला पहनाने लगीं, नन्दी जटुर्घु सँमालकर उनमें सौंप और
चन्द्रमाला सजाने लगे, काल हाथीकी गाल बाँधने लगे और
कालरात्रि उनके हाथमें गोपदी देने लगीं ॥ २ ॥ साधुधामि
विरकर, अघनी-अपनी स्त्रियोंके माथ विमानोंपर बैठे देवता,
सिद्ध और यक्ष आदि जिसे यद्दे भाजते पृच्छक देवते थे
और बीच-बीचमें गद्गद्भाते हुए नगाधुँके समान जान

सिद्धैश्च यक्षैरनिमिपयनैर्दृश्यमानः सतृष्णम् । मध्ये
मध्ये पयोदैर्मुखसदृशतां घोषयद्भिः सुमन्दमम्मः
सम्पात्य पुणैरिव ननु महिनस्ताण्डवः श्रेयसे स्तात्
॥ ३ ॥ इन्द्रोः किं दुहितृण्य वा सुरपतेः किं वा कृता-
न्तस्य वा किं भूतेश दिशस्थिमृपणगणेष्वारुष्य देयं
मया । इत्यम्मएडनमन्दिरोदरचरव्याहारतो भीकरात्
भीता यस्य सुराः प्रसाधनविधां पायात्स वः शङ्करः ॥ ४ ॥
उच्चैरुत्तापिलेन्द्रजवनपवनोद्भूतशैलीघपातरुफारोदञ्च-
त्पयोधिप्रकटितमुकुटस्वर्धुनीसङ्गमानि । जीयासुस्ता-
ण्डवानि स्फुटविकटजटाकोटिसङ्घटभूरिअश्रयन्नस्रच-
क्रव्यवसितसुमनोवृष्टिपातानि शम्भोः ॥ ५ ॥ चञ्चद्दे-
न्द्रकुट्यश्चलितदशदिशाकीर्णकोटीरकोट्यः सङ्गायत्स्व-
र्धुध्रुवः सरभसचिनमत्सिद्धगन्धर्वधात्र्यः । विदितप्य-
धर्मपट्यो विगलितशतपत्रासनोद्यत्कोट्यस्तुट्यत्कैला-
सतट्यस्त्रिपुरविजयिनः पान्तु मामारभट्यः ॥ ६ ॥ देवा

पढ़नेवाले वादल जिसपर इस प्रकार धरे-धरे पानीकी धूँदे
परसाते थे मानों फूल बरसा रहे हों, वह शङ्करजीका ताण्डव
सबका कल्याण करे ॥ ३ ॥ ये शिवजी आपकी रचा करें जिनके
नृत्य करनेको तैयार होते समय जब उन्हें सजानेके लिये उनके
सेवक शृङ्गार-धरके भीतरमें पहुँचे लगे कि ‘हे प्रभो ! आशा
दीजिए—चन्द्रमा, मसा, इन्द्र, यमराज आदिमेंसे किसकी
हड्डी सौंचकर ले आवें ?’ तब सब देवता टर गए थे ॥ ४ ॥
शिवजीके उस ताण्डवकी जय हो जिसमें ऊपर उठकर नाचते
हुए शिवजीके हाथरूपी वृच्चोंकी मोंकके पवनसे उड़े हुए पदाङ्गोंके
गिरनेसे फटकर उड़ले हुए समुद्रसे उनके तिरपर मुकुटके समान
घाण्य की हुई आकाश गङ्गाका सङ्गमन्ता होता जान पड़ता
है और फैली हुई जयाधोंकी तीक्ष्ण फटकारसे सारे आकाशमें
गिरते हुए ऐसे सुन्दर जान पड़ते हैं मानो फूल बरस रहे हों
॥ ५ ॥ त्रिपुरासुरको जीतनेवाले भगवान् शङ्करके ताण्डव
नृत्यकी यह प्रचण्डता सेरी रचा करें जो इन्द्रभयनको भी
दिलाकर कङ्कमोर डालती है, जिसके कारण जटाकी धोरें
लहराती हुईं दसों दिशाधामों फैल जाती हैं, जिसके साथ
देविर्वा त्वर भरकर तारों ले रही है, जिसकी मोंकमें निह-
गन्धर्वोंकी नगरियाँ वेगसे बड़ी पड़ रही हैं, जिसके कारण
शिवजीके व्याघ्र-चर्मके वस्त्र नीले पड़ गए हैं, जिसके वेगसे
अपना कमलासन हिलता हुआ देवकर महा भी आश्चर्यसे
सिर ऊपर उठा लेते हैं और जिसकी चपटसे कैलास पर्वतकी

द्विपतयः प्रयात परतः सं मुच्यताम्भोजुवः पातालं
 ब्रज मेदिनि प्रविशत क्षीणीतलं भूधराः । ब्रह्मनुग्रय
 दूरमात्मभुवनं नाथस्य नो नृत्यतः शम्भोः सङ्कटमेतद्वि-
 त्यवतु धः प्रोत्सारणा नन्दिनः ॥ ७ ॥ देवस्वैःपुण्यभेदा-
 त्खजति वितनुते संहरत्येपलोकानस्यैव व्याप्तिभिस्त-
 नुभिरिष जगन्नासमष्टाभिरेव । चन्द्यो नास्पेति पश्य-
 त्त्रिव चरत्पगतः पातु पुष्पाञ्जलिर्विः शम्भोर्नृत्यावतारे
 घलयमशिंगणफल्कतैर्विमफीर्णः ॥ ८ ॥ दोर्दण्डइयलील-
 या चलगिरिआम्ब्यत्तदुच्चैरवघाध्नोद्गीतजगद्भूमत्पदभ-
 रालोलत्फणाप्रथोरगम् । भृङ्गापिङ्गजटादवीपरिसरोद-
 श्रोमिमालाचलचन्द्रञ्जाल महेश्वरस्य भवतां निःश्रेयसे
 ताण्डवम् ॥ ९ ॥ पादस्याधिर्भवन्तीमवन्तितमवने रक्षतः
 स्वैरपातैः सङ्कोचेनैव दोष्णां मुहरभिनयतः सर्वलो-
 कातिगानाम् । द्रष्टिं लक्ष्येषु नोप्राञ्ज्यलनकणमुचं वप्रतो

बहानं भी दृट्-दृटकरे गिरने लगती हैं ॥ १ ॥ 'हे देवताओं
 और दिग्पालों ! तुम लोग कहीं और सरक जाओ, वादलों !
 तुम आकाशसे हट जाओ, पर्वतों ! तुम पृथ्वीमें बैठ जाओ,
 पृथ्वी ! तुम पातालमें जा छिपो और हे ब्रह्मा ! तुम भी अपने
 लोकोंमें कहीं दूर ले जाओ क्योंकि अब हमारे स्वामी शङ्करजी
 नाचना चाहते हैं !' इस प्रकार शङ्करजीके ताण्डव नृत्य करते
 समय आनेवाली वापाओंकी दूर करनेके लिये सयकों दी हुई
 मन्दीकी चेतावनी आप लोगोंका कल्याण करे ॥ ७ ॥ शङ्करजीके
 ताण्डव नृत्य करते समय उनके हाथोंके कन्न भने हुए साँपोंकी
 फुफ्फुससे उड़कर गिरी हुई वह फूलोंकी अञ्जलि आपकी रचा
 करे जो यह सोचकर शङ्करजीके चरणोंपर गिर जाती है कि
 'यही शङ्कर भगवान् सत्, रज और तम इन गुणोंसे सत्ताकी
 रचना करते हैं, यही प्रलय-समयमें उसका धार करते हैं और
 इन्हींकी आठ मूर्तियोंसे संसार भरा हुआ है भारत. इनसे बड़ा
 कोई नहीं जान पड़ता है' ॥ ८ ॥ हिलते हुए दोनों
 हाथोंसे पर्वतोंको ढगमगा देनेवाला, यदे-यदे पर्वतोंके
 गिरनेके दरसे डरे हुए संसारको घुमानेवाला, शिवजीके पैरोंके
 भारसे शैलनागके फणके आगेके भागको भुजा देनेवाला और
 भीरुके समान सँभले दृढ़की जटाओंमें लहराती हुई गदाकी
 बाड़ी-थड़ी लहरोंसे चन्द्रमाको चमल कर देनेवाला शङ्करजीका
 ताण्डव आपका कल्याण करे ॥ १ ॥ पृथ्वीके प्राग्भार करनेपर
 शङ्करजी अपने जिस ताण्डवमें पृथ्वीको बैठ जानेसे बचानेके
 लिये इच्छासुप्तार अपने पैर नहीं चला पाते, सब लोकोंसे परे

दाहभीतेरित्याधारानुरोधान्निपुरविजयिनः पातु वो
 दुःखनुत्तम् ॥ १० ॥ भद्रञ्जन्द्रकले शिवं सुरनदि श्रेयः
 कपालावले कल्याणं भुजगेन्द्रवलि कुशलं विष्वजटास-
 न्तते । इत्याहुर्मिलिताः परस्परममू यस्मिन्प्रशान्तिं
 गते कल्पान्तरभटोनटस्य भवतात्तद्वः श्रिये ताण्ड-
 वम् ॥ ११ ॥ मूर्ध्व्याधूयमानध्वनदमरघुनीलोल-
 कल्लोलजालोद्भूताम्भःजोददम्भाप्रसन्नमभिनभः क्षिप्त-
 नक्षत्रलक्ष्मम् । ऊर्ध्वन्यस्ताङ्घ्रिदण्डभ्रमिभवरभसो-
 धश्चभस्वतःप्रवेशशान्तब्रह्माण्डखण्डं प्रविशतु शिवं शा-
 म्भवं ताण्डवं वः ॥ १२ ॥ यस्यां मौलितिलत्सुधांशुकल्या
 सन्पूर्णाविम्बायितं भालावस्थितलोचनेन सहसैवालात-
 चक्रायितम् । आद्यर्चायितमाकपर्दममरकोतस्वती
 धारया पातु त्रीणि जगन्ति खण्डपरशोः सा ताण्ड-
 वाङ्गभ्रमिः ॥ १३ ॥ शर्वाशीपाणितालैश्चलवलयरूप-

फैल जानेवाली भुजाओंको भली प्रकार फैला नहीं पाते और
 सबको जलनेसे बचानेके लिये अपनी तीसरी आँखकी दृष्टिको
 लक्ष्यपर भली भँति स्थिर नहीं कर पाते, इस प्रकार शिवुर राक्षसको
 मारनेवाले शङ्करजीका कठपूणं ताण्डव आपकी रचा करे ॥ १० ॥
 प्रलय-कालमें आरभती नृत्य करनेवाले शिवजीका वह ताण्डव
 आपकी ऐश्वर्य दे जिसके शान्त होनेके पश्चात् आपसमें मिलकर
 सबने एक दूसरेसे इस प्रकार कुशलता पृथ्वी कि 'हे चन्द्रकले !
 कल्याण तो है ? कहीं ब्रह्मा ! अर्धुकी तो हो ! सोपदिवियोंकी माला !
 सुरक्षित तो हो ? क्यों संपराज ! क्यों जटाओं ! क्या स्थिति
 है ? आदि' ॥ ११ ॥ शिवजीका वह ताण्डव आपकी ध्यानन्द
 देता रहे जिसमें सिरपर हिलकर शब्द करती हुई गदाकी
 चमल लहरोंके वेगसे उड़कर फैली हुई पानीकी धुँद आकाशमें
 फैले तारोंके समान जान पड़ती हैं और ऊपर उठकर घूमते
 हुए वैरोंके वेगसे उत्पन्न तीव्र चायुके कारण जिसमें सारा
 महापण्ड घुमता-सा जान पड़ता है ॥ १२ ॥ ताण्डव नृत्य करते
 समय शिवजीके अग्रोंका वह घुमान तीनों लोकोंकी रचा करे
 जिसमें घूमते हुए भाषेपर स्थित चन्द्रमाकी कलासे सारा
 संसार चमकने लगेगा जान पड़ता है, माथेके तीसरे नेत्रके
 चमकनेसे सारा संसार चारों ओरसे आधा जला-सा जान पड़ता
 है तथा जटाजटमें सजी गदाकी धारासे सारा संसार ऐसा जान
 पड़ता है मानो वह गदासे घिरा हो ॥ १३ ॥ शिवजीका
 वह ताण्डव आपकी प्रसन्नता दे जिसमें अचानक गणेशजीके
 गरजनेसे शिवजीमें उत्साह आ गया था, जिसमें पार्वतीजीके

त्कारिभिः ग्लाध्यमानं स्थाने सम्भाव्यमानं पुलकितव-
पुपा शम्भुना प्रेक्षणेयम् । गेलत्पिचञ्चालिनेलाकलकल-
कलितं क्रौञ्चमिद्विद्विन्ना हेरम्यानाएडवृहातरलितमन-
सस्ताएडवं त्वां धिनोतु ॥ १४ ॥ सन्ध्याताएडवडम्बर-
व्यसनिनो भर्गस्य चण्डभ्रमिव्यान्त्युद्गजदएडमएडल-
भुवो भन्तानिलाः पान्तु वः । येपामुच्छलतां जयेन
भगिति व्यूहेषु भूर्माभृतामुडुनेषु विडौजसा पुनरसा
दम्भोलिरालौकितः ॥ १५ ॥ सरम्भाद्विभाषितत्रिभु-
वनापासस्य कामद्विपो नृचारम्प्रविजृम्भितैरवयवैर्ब्र-
ह्माखडमुद्रिन्दतः । निर्धर्मांलि विनिर्गताप्रचरणं प्रोह्ला-
नि दौःपल्लवं पायाष्टो वहिरम्मसः प्रविचलत्कूर्माय-
माणं वपुः ॥ १६ ॥

गणेशः—अग्रजाननपद्मार्क गजाननमहनिशम् । अ-
नेपदं तं भक्तानामेकदन्तमुपासहम् ॥१॥ अन्तरायतिमि-

रोपशान्तये शान्तपावनमचिन्त्यवैभवंम् । तत्ररं वपुपि
कुञ्जरं मुले मन्महे विमपि तुन्दिलंमहः ॥२॥ श्रीमोपि-
तार्थसिद्धयर्थं पूजितो यः सुरामुग्गैः । सर्वाधिप्रदस्तस्मै
गणाधिपतये नमः ॥३॥ अघिरलविगलन्मदजलकपोल-
पालीनिर्लीनमधुपकुलः । उड्भवनवशमश्रेणिरिचि छिप-
सुरो जयति ॥४॥ अघिरलमदधाराधौतुम्भः शरण्यः
फणिवरवृत्तगानः सिद्धसाध्यादियन्धः त्रिमुधनजनवि-
प्रध्वान्तविध्वंसदुक्तो वितरतु गजवक्त्रं सन्ततं मङ्गलं
वः ॥५॥ अशेषविघ्नप्रतिषेधदन्मन्त्रानुगतानामिव विडु-
रेषु । विघ्नेपलीलकरशीकराणां करोतु वः प्रीतिमिभा-
ननस्य ॥६॥ आनन्दमात्रमधरदन्मन्तगन्धं योगीन्द्रमु-
स्थिरमिलिन्दमपास्तवन्धम् । वेदान्तसूर्यकिरणैकविका-
सशीलं हेरम्बपादशरदभ्युजमानतोऽस्मि ॥७॥ आलम्ब्ये
जगदालम्ब्ये हेरम्बचरणाम्बुजे । शुष्यन्ति यद्रजःस्पर्शा-

कद्रांकी भूतकार मिली तालियाँ बच रही थीं, जिसमें स्वामी-
वर्तिकेयका वाहन मोर अपनी विचित्र पूँज फैलानर मनोहर
कृक सुनाने लगा था और दशक रूपमें पुलकित होते हुए
शिवजीने भी निसर्वा प्रशंसा की थी ॥ १४ ॥ सन्ध्या समय
ताएडव नृत्य करनेके प्रेमी शङ्करजी जप श्रव्यत वेगसे घूमकर
नाचने लगे तब उनके हाथोंके सञ्चालनसे उत्पन्न हुई वह
झाँसी आपकी रचा करे जिसके वेगसे पर्वतोंको उठते हुए
देखर इन्द्रको फिर अपना वज्र देरना पडा ॥ १५ ॥ ताएडव
नृत्य करनेसे पहले श्रैंगदार्ह-गैमाई लेते हुए अपने अश्रंसि
प्रहायदको ढोडे डालते हुए तथा प्रनल उल्साहके कारण तीनों
लोकोंके चौभका ध्यान न रखनेवाले कामके शत्रु शिवजीका
जलके बाहर ही कडुएके आकारवाला वह शरीर आपकी रचा
करे जिसमें सिर, पैर और हाथ धीरे धीरे ममग उठर चञ्चल हो
रहे हैं ॥ १६ ॥

गणेशः हाथीके मुँहवाले तथा एक दाँतवाले उन
गणेशजीकी हम उपासना करते हैं जो हिमालयकी पुत्री
पार्वतीजीके सुपन्नमलको मिला देनेके लिये सूर्य हैं और
जो दिन रात भक्तोंकी मनुन-त्री इन्द्राएँ पूर्ण करते रहते
हैं ॥ १ ॥ जो विघ्नरूपी श्रेष्ठरा नष्ट करनेवाले हैं, जो गिलडुल
सीधे धीर पवित्र हैं, जिनके पास इतना ऐश्वर्य है कि समन्ता
नहीं जा सकना, जिनका पूरा शरीर मनुष्यका और केवल
मुँह ही हाथीका है, ऐसे बड़ी ताँदवाले तेजस्वी देवको हम
प्रणाम करते हैं ॥ २ ॥ उन गणेशजीको नमस्कार है जो अपने

गणोंके सुरिया और सब विघ्नोंको नाश करनेवाले हैं और
अपने मनोरथोंको पूरा करनेके लिये सब देवताओंने मिलकर
जिनकी पूजा की थी ॥ ३ ॥ उन गणेशजीकी जय हो जिनका
मुँह हाथोंका है और जिनके गण्डस्थले लगातार धार बंधकर
बहती हुई मज्जलकी लीकमें वैदी भौतोंकी कतारें ऐसी जान
पडती हैं मानो उन्हें नई दाढ़ी-मुँह मिलर रही हो ॥ ४ ॥
लगातार बहनेवाली मदकी धारासे जिनका सिर सदा डुलता
रहता है, बडे भारी साँप जिनके शरीरपर पडे हैं, सिद्ध और
देवता जिनके आगे सदा सिर नवाते रहते हैं, जो तीनों लोकोंमें
रहनेवालोंके सब विघ्नोंका नाश करनेमें बडे चतुर हैं, ऐसे सबको
शरण देनेवाले हाथीके मुँहवाले गणेशजी आपको सदा आनन्द
बँटते रहें ॥ ५ ॥ जो गणेशजी अपनी सूँड चारों ओर
उड़ावते तथा साँस छोड़ने चलते हैं और उससे कुहरें उडती
हैं तो ऐसा जान पडता है मानो सब विघ्नोंको नष्ट करनेमें
चतुर गणेशजी उन विघ्नोंको नाश करनेके लिये सुपचाप मन्त्र
पठ-बदकर अपने हाथोंसे अचत पैक रहे हैं । हाथीके मुँहवाले
गणेशजीकी यह लीला आप सबको सुख पहुँचावे ॥ ६ ॥
शरद्व भेतुमें खिले हुए कमलके समान गणेशजीके उम
परपोंको प्रणाम करता हूँ जिनमेंका आनन्द ही मानो पराग है,
जिनकी कीर्तिरूपी सुगन्ध यहल दूतक फैल रही है, जिनमें
मन लगाए योगी लोग ही मानो कीरे हैं, जो विरारी प्रणारके
यन्धनमें नहीं हैं इसलिये खिले हुए हैं तथा जो मेतभ
वेदान्तरूपी सूर्यकी कयाशोंरूपी किरणोंकी ही गिरावे हैं धामां

त्सद्यः प्रन्यूह्यार्धयः ॥ ८ ॥ उच्चैर्ब्रह्माण्डपण्डितिय-
सहचरं कुम्भयुग्मं दधानः प्रेङ्गुभागारिपन्नप्रतिभटविक-
टश्रोत्रतालाभिरामः । देवः शम्भोरपर्यं भुजगपतितनु-
स्पर्धिवधिष्णुहस्तस्त्रैलौक्यध्वर्यमूर्तिः स जयति जग-
तामीश्वरः कुङ्करास्यः ॥ ९ ॥ उच्चैरुत्तालगण्डस्थलवहु-
लगलदानपानप्रमत्तस्फीतालिद्रातर्गातिश्रुतिविधृतिक-
लोन्मीलिताधोधिपद्मा । भक्तप्रन्यूहपृथ्वीरुहनिवहसमु-
न्मूलनोच्चैरुदञ्चञ्जुलदादण्डाप्र उग्रार्भकः श्मभवदनी-
यः स पायादपायात् ॥१०॥ एकदन्तयुतिसितः शम्भोः
सुनुः श्रियेऽस्तु वः । विद्याकन्दद्योद्भिन्नजन्वाङ्कुरमनो-
हरः ॥ ११ ॥ एकरद द्वैमातुर निस्त्रिगुण चतुर्भुजोऽपि
पञ्चकरः । जय परमुलनुत सप्तञ्जद्वगन्धिमदाष्टतनुतनय

॥१२॥ कल्याणं यो विद्यतां करटमदधुनीलीलकल्लो-
माला खेलद्रोलम्बकोलाहलमुखरितदिवचक्रवालान्तरा-
लम् । प्रत्नं वेतएडरत्नं सततपरिचलत्कर्णतालप्ररोहद्व-
ताङ्कुराजिहीर्षादरविधृतफणाशृङ्गभूषाभुजङ्गम् ॥ १३ ॥
कुम्भोपान्तात्पतद्भिर्मदजलनिवहैर्लङ्घसेकातिरेका प्रो-
न्मीलद्वालचन्द्राकृतिदशनमिपाद्भुकरं धारयन्ती । श्रालो-
लत्कर्णतालमचलमधुकरा शीकरासारपुष्पा विस्तीर्णा
हस्तवल्ली दिशतु गणपतेः प्रार्थ्यमानं फलं वः ॥ १४ ॥
फोडं तातस्य गच्छन्विशद्विसधिया शावकं शीतभानो-
राकर्णभालवैश्वानरनिशितशिखारोचिपा तथ्यमानः ।
गङ्गाम्भः पातुभिच्छुभुजगपतिफणाफूत्कृतैर्द्वयमानो मा-
धा सम्बोध्य नीतो दुरितमपनयेद्वालवेपो गणेशः ॥१५॥

प्रसन्न होते हैं ॥ ७ ॥ गणेशजीके उन दोनों शरणाङ्गी में
शरय लेता हूँ जिनके बलपर सारा संसार टिका हुआ है और
जिनकी भूलिके स्पर्श-मात्रसे पापोंके समुद्र अपने आप सूख
जाते हैं ॥ ८ ॥ शङ्करजीके पुत्र उन हाथीके मुँहवाले और
तीनों लोकोंमें आरच्य-भरी मूर्तिवाले गणेश भगवाणकी जय
हो जो संसारके स्वामी हैं, जिनका सिर ऐसा जान पड़ता है
मानो इस बड़े ब्रह्माण्डके दोनों गोलोंके समान हो एक दूसरा
घोटा ब्रह्माण्ड इन्होंने ऊपर उठाकर अपनी दोनों कनपटीमें
शाखा-शाखा धर लिया है, जिनके कानोंको देखनेसे जान पड़ता
है मानो उड़ने हुए साँपोंके घेरी गरदके बड़े-बड़े पहाँकी बराबरी
करनेके लिये ही वे इतने बड़े-बड़े ताड़के पत्तोंजैसे सुन्दर कान
हिलाते रहते हैं और जिनकी सूँढ़ देरनेसे ऐसा जान पड़ता है
मानो साँपोंके स्वामी धातुक्रिके लम्बे शरीरसे जोड़ करनेके
लिये ही इन्होंने अपनी सूँढ़ इतनी लम्बी बढ़ा ली हो ॥ ८ ॥
वे अत्यन्त उम वालक गणेशजी आप लोगोंकी रक्षा करें जो
अपने सिरसे लगातार बहनेवाले मदके पीनेसे मस्त होकर
गानेवाले भौँतोंके गीत सुनकर ध्यानन्दसे चरिँ सूँढ़ हुए हैं और
जो भद्रोंके विरहरी पीपोंके उपाद फँकनेके लिये ही मानो
अपनी सूँढ़ बराबर झटनेसे फटवाते रहते हैं ॥ १० ॥ वे
शङ्करजीके पुत्र गणेशजी आप लोगोंकी योग्य बन्दायें जो अपने
एक ही दाँतकी स्पष्ट चमकने उजले हैं और जिनका दाँत ऐसा
मुन्दर जान पड़ता है मानो विद्यास्फी कन्दसे बौमल शैलुभा
निकला पा रहा हो ॥ ११ ॥ हे गणेशजी ! आपके एक दाँत है,
पार्वती और गङ्गा दो आपकी माता हैं, आप तीनों एक ही (सप्त,
रथ, तम) से बहुत दूर हैं, आप चार हाथवाले होकर भी सूँढ़

समेत पाँच हाथोंवाले जान पड़ते हैं, छः मुँहवाले स्वामिकात्तिके
आपकी बहुत चाहते हैं, आप सदा सप्तर्षय (छत्तिवन) के
समान सुगन्धित मदजल बहाते रहते हैं तथा आठ मूर्तिवाले
शङ्करजीके पुत्र हैं । आपकी जय हो ॥ १२ ॥ वे अत्यन्त पुराने
तथा हाथियोंमें रल (गणेशजी) आपका कल्याण करें जिनके
सिरसे बहनेवाली मदकी नदीमें उठती हुई चबल लहरोंमें
खेलते हुए भौँतका हल्ला धरतीके कोने-कोनेमें भर गया है,
और जिनके हिलते हुए कानोंके पास पहुँची हुई सूँढ़ पेसी
सुन्दर जान पड़ती है मानो ताड़के हिलते हुए पत्तोंके निकले
हुए बापुको कोई साँप अपने फणके शरणाङ्ग भाग थोड़ा
फँलाकर पी लेना चाहता हो ॥ १३ ॥ गणपतिजी वह बड़ी
भारी सूँढ़रूपी लता आपको मनचाहा फल दे जो उनके गण्ड-
स्थलेसे बहते हुए मद-जलकी मोटी धारसे मानो भली प्रकार
साँपोंका रहती हो, जिसमेंसे द्वितीयाके चन्द्रमाके समान देवा
चमकीला एक दाँतरूपी शैलुभा निकल रहा हो, जिसमेंसे
ताड़प्रभके समान बड़े-बड़े बानोंके हिलनेसे भीरे उड़ रहे हों तथा
जिससे उड़ती हुई पानीकी कुहारे ही मानो पुष्प हो ॥ १४ ॥ अपने
पिता शङ्करजीके सिरपर सजे हुए चन्द्रमाकी कलाकी कमलकी
नालका बोरा समझकर उसे खींच लानेके लिये शङ्करजीके गोदमें
बढ़कर ऊपरनी बड़े हुए, उनके माथेकी तीसरी शँखसे निकलती
हुई लपटकी भर लानेपर उनकी जटाशॉमें बहनेवाली गङ्गाजीका
पानी पीनेको लपके हुए किन्तु शिवजीके गलेमें पड़े हुए साँपके
फनकी फुफकारने ठरे हुए वे बच्चे रूपवाले धरपाए हुए
गणेशजी संसारके सब पाप मिटा दालें जिन्हें माता पार्वतीजी
बहला-पुसलाकर साथ ले गईं ॥ १५ ॥ मनुष्यजी-सौ देरवाले,

गजयदनं मनुजतनुं नुत्तिलमध्यं फणीश्वगामरक्षम् ।
भाले लोचनवन्तं विधुमालं नौमि विघ्नेशम् ॥१६॥ गजा-
ननाय महसे प्रत्यृहतिमिरच्छिद्ये । अपारकरुणाप्र-
तरङ्गितदशे नमः ॥१७॥ गण्डस्थलीगलदमन्द्रमदप्रवाह-
माद्यद्विरेफमधुरस्वरदत्तकर्णं । हर्षादिवाहसन्निमीलि-
तनेत्रयुग्मो विप्रच्छिद्ये भवतु भूतपतिर्गणेशः ॥१८॥
चलत्कर्णानिलोद्भूतसिन्दूरारणिताम्बरः । जयत्यफाले-
ऽपि सृजन् सन्ध्यामिव गजामनः ॥१९॥ जेतुं यस्त्रिपुरं
हरेण हरिणा व्याजाङ्गलिं बध्नात् स्रष्टुं वारिभधोद्भवेन
सुवनं शेषेषु धर्तुं धराम् । पार्थव्या महिषासुरप्रमथने
मिन्दाधिपैः सिद्धये ध्यातः पञ्चशरेण विश्वजितये पाया-
त्स नागाननः ॥ २० ॥ ते दूरोद्दण्डशुभ्राङ्गुहकरकवल-
तोक्षितससाधिलक्ष्मण्येच्छासिद्धमोदप्रभयनवरधद्रा-
धिताश्यागजेन्द्राः । देवस्याकारुण्डकरकरटतटाटो-

पसहृद्भ्रमसोशीभृचुङ्गश्टहाः पुग्मथनशिरोः पान्तु धो
दुर्विलासाः ॥ २१ ॥ ध्यानं भृङ्गालीमनिश्रमले गण्ड-
युगले ददानं सर्वाश्रीभिजिन्नररुणमेवासुकृतिने द्याधार्गं
सारं निजितनिगमानामनुदिनं गजास्यं संसर्गस्यं तमिह
कल्पये चित्तनिलये ॥२२॥ दन्ताग्रनिभिर्घटिहालयोर्वी-
रन्प्रोरिथताहीन्द्रमणिप्रमोद्ये । नागाननः स्तम्भाधिया
कपोलौ धर्षन्पितृभ्यां हसिनः पुनतु ॥२३॥ दन्ताञ्जलेन
धरणीतलमुद्यमस्य पातालकेलिपु भूतादिवराहलीलम् ।
उल्लाघनोत्फणफणाधरणीयमानान्नाटावदानमिभराजमु-
त्तं नमामः ॥२४॥ दानस्रोतस्सहस्रैर्दशनरुचिचयैः कु-
म्भसिन्दूरपूरैरुत्तैरेककालं प्रकटितरजनीघ्नसन्ध्या-
विलानाः । आस्फालस्फारणद्यावहलकलकलन्याकुला-
हीन्द्रदागाः हेरम्भन्याङ्गाङ्गप्रचलदवनयः पान्तु धो नृ-
चलीलाः ॥२५॥ दुरितसमूहबलाहकपटलीसंहर्षण्यवमा-

हाथीके मुँहवाले, यड़ी तोंदनाले, माथेपर तीसरा नेत्र रत्ननेत्राले,
चन्द्रमात्रा सुष्ट पहननेत्राले, सर्पोंका गङ्गा शरीरपर
सजाप रत्ननेत्राले तथा सन त्रिगोंका नाश करनेवाले गणेशजीकीं
में प्रणाम करता हूँ ॥ १६ ॥ हाथीके मुँहवाले, यड़े तेनस्वो,
त्रिन्नरूपी शँधेरा मिटा डालनेत्राले तथा अत्यन्त दयाकी वादसे
झलझली हुई शीर्षोंवाले गणेशजीको प्रणाम है ॥ १७ ॥
माथेने लगातार बहता हुआ मद् पीर मल्लोमे गुणगुनाते हुए
नीरोंकी मधुर गुञ्जार सुनकर अत्यन्तमे दोनों शीर्षों मुँदकर
थेंदें हुए वे गणेशजी मय त्रिगोंका नाश करें जो संसारके सय
जीमोंके स्वामी हैं ॥ १८ ॥ हाथीके मुँहवाले उन गणेशजीकी
जय हो जिनके हिलते हुए कानोरी बयासे माथेपर लगे
मिन्दूरके उदनेमे आकाश लग हो जाता है और निना सँभके
ही मौलकी जान पड़ने लगती है ॥ १९ ॥ त्रिपुरासुरको मारते
समय शङ्करजीने, झलसे बलिको धँपने समय त्रिगुणे, संसारकी
रचना करने समय कमलसे जन्म लेनेवाले ब्रह्माने, अपने सिरपर
पृथ्वी धारण करते समय शेषनागने, महिषासुरको मारते
समय पार्वतीजीने, संसारको जीतनेके समय कामदेवने
और सिद्धि पानेके लिये मिद्वीने जिनका ध्यान किया था ये
हाथीके मुँहवाले गणेशजी सनकी रक्षा करें ॥ २० ॥
गणेशजीने अपनी अत्यन्त लम्बी मुँदके छिद्रसे सारों ससुधोका
जल पीकर उते झोंदा और उससे जो सुमन्ध उपन्न हुई
उसे सूँधकर अत्यन्त मस्त होकर जो उन्होंने नार्जनाई की उन्हें
सुनकर दिग्गज भाग नये हुए और वड़े-वड़े पर्वतोंके करारोंपर

जो उन्होंने मयङ्कर रूपसे अपना माथा खुलवाना प्रारम्भ
किया उससे पार्वतीके डँचे-डँचे शिरपर दृष्ट-दृष्टकर गिरने लगे ।
यह सन त्रिपुरासुरके शत्रु शिवजीके पुत्र गणेशजीकी नटपटी
आपकी रक्षा करें ॥ २१ ॥ मैं अपने मनमें उन हाथीके
मुँहवाले प्रसन्न गणेशजीमा ध्यान करता हूँ जिनकी दोनों
उजली कनपटियोंपर मृदा भीरोंके मुण्ड मँडराते रहते हैं,
जो अपने चरणोंकी सेवा करनेवाले भक्तोंकी सन इच्छाएँ
पूरी करते हैं और जो सदा उस दयाको धारण किए हुए हैं
जिसे वेदोंने जीवनका सार बताया है ॥ २२ ॥ अपने वीरते
हिमालयकी धरती फाड़ते समय जब पातालतट छुड़े हो गया
और उमनेसे शेषनागके माथेकी मणिका चमकीला उजाला
ऊपर निजल आया तब उने यन्मा सममर उससे अपना माथा
रगदनेको यड़े हुए वे गणेशजी संसारको पवित्र करें जिन्हें इस
दहने पटने देवमर शङ्कर और पार्वती हैंम पड़ेये ॥२३॥ हाथीके
मुँहवाले तथा पेल-पेलमें ही पराक्रम दिग्गजवाले उन
गणेशजीको हम प्रणाम करते हैं जिन्होंने पातालका पेल पेलते
हुए अपने दौनकी नोकने पृथ्वीको ऊपर उठाने बराह अचतारकी
लौला कर दिग्गद और जिन्हें देवकर शेषनागने भी प्रसन्नतासे
अपना फन ऊपर उठाकर खुलिकी थी ॥ २४ ॥ गणेशजीके
वे नाचनेके दह आपकी रक्षा करें जिनमें उमने धन दिलने-
मानये पृथ्वी बँप उठती थी, जिनमें उनके गलेके दिशात हुए
यड़े भारी चण्डिका धोर शन्द सुनकर नागराजकी शिर्षां ब्यासुत
हो जाती थी और जिनमें उनकी कनपटीते बहते हुए मद्-नशाकी

नम् । शिवयोरङ्काभरणं चन्दे कश्चिद्भजननं तेजः ॥२६॥
 दोषोत्तद्दन्तपरदः सकलसुरगणाडम्बरेषु प्रचरदः सि-
 न्दूराकीर्णगणधः प्रकटितघिलसच्चारुचान्द्रीयखण्डः ।
 गण्डस्थानन्तधण्डः स्मरहरतनयः कुराडलीभूतशृण्डो
 विप्रानां कालदण्डः स भवतु भवतां भूतये चक्रतण्डः
 ॥२७॥ नमस्तस्मै गणेशाय यत्कण्डः पुष्करायते । मदा-
 भोगधनध्वानो नीलकण्ठस्य तारण्डये ॥ २८ ॥ पायाङ्ग-
 जेन्द्रवदनः स इमां त्रिलोकीं यस्त्योद्वेतेन गगने महता
 फरेत् ॥ मूलाचलप्रसितदन्तविसाङ्कुरेण नालायितं तपन-
 विम्बसरोरुहस्य ॥२९॥ मङ्गलकलशद्वयमयकुम्भमदम्भेन
 भजत गजवदनम् । यद्दानतोयतरलैस्तिस्तलतुलनालभ्य
 रोत्सव्यैः ॥ ३० ॥ युगपत्स्यगण्डचुम्ब्यनलोलौ पितरौ
 निरीदय हेरम्बः । तन्मुषमेलनकुतुफी स्वाननमपनीय

परिहसन्पायात् ॥३१॥ यः सिन्धौ फेनराशिर्मुषि कुमुद-
 वनं व्योम्नि नलत्रलचमीरब्धौ मुक्तासमूहस्तरुपु सुमनसो
 मानसे हंससङ्घः । श्रीकण्ठे भूतिलेशः शिखरिपु मण्यो
 दिक्षु नीहारपातः पारदः शृङ्गाप्रजन्मा जयति गणपतेः
 श्रीकराणां विलासः ॥ ३२ ॥ रक्ताम्बराय फणिराजवि-
 भूषणाय प्रोद्धतभस्मकाणकीर्णसुमोत्कराय । सङ्कीयमान-
 यशसे मदपानलुब्धेभृङ्गेः सुरैरिय नमोऽस्तु नणाधिपाय
 ॥ ३३ ॥ लक्ष्मीं तनोतु सुतरामितरनेषुमङ्गद्विद्वयं नि-
 गमशाखिशिखाप्रवालम् । हैरम्बमन्बुवहङ्गम्बरचौर्यनिघ्नं
 चिप्राद्रिभेदशतधारधुरन्धरं नः ॥३४॥ चन्दे तं गणन-
 यकं गुणनिधिं गणयं विभूतां पुरो रम्यं भक्तजनस्य विप्र-
 पटलं दुर्नीयं सम्पद्भिर्धौ । यस्याराधनमन्तरेण जगतां
 कश्चिन्न सिद्धिं गतो यश्चाराध्य चिराय विन्दति पतं

सहस्रौ धाराधौकी फाली चमक, दाँतकी उजली चमक और
 मस्तकके सिन्दूरी लाल चमकसे एक साथ ही रात,
 दिन और साँझकी शोभा उत्पन्न हो जाती थी ॥ २२ ॥
 हाथीके मुँहवाले तथा शङ्कर और पार्वतीकी गोदकी शोभा
 धरासेवाले उन शयन्त तेजस्वी गणेशजीको मैं प्रणाम करता
 हूँ जो बादलजैसे पापांवा नाश करनेके लिये पवन हैं ॥ २६ ॥
 देवी सँदवाले वे गणेशजी आप लोगोंका कल्याण करें जिनकी
 सँदके पास उनका एक दाँत चमकता रहता है, जो सब
 देवताओंमें चड़ेले शयन्त बलशाली हैं, जिनके माथेपर सिन्दूर
 पुता हुआ है और सुन्दर टेढ़ा चन्द्रमा सजा हुआ है, जिनकी
 कानपट्टीपर बहुतसे भीरें जुटे हुए हैं, जिनकी सँद गोल जलेबाँके
 समान हैं, जो विमोहरा नाश करनेके लिये बमराजके दण्डके
 समान हैं और जो कामदेवके शत्रु शङ्करजीके पुत्र हैं ॥ २७ ॥
 महादेवजीके साण्डवके समय जिनका कण्ठ मद पीनेसे बादलके
 समान ध्वनि फरतस हुआ शृङ्ग बनकर धोलने लगता है,
 उन गणेशजीको नमस्कार है ॥ २८ ॥ हाथीके मुँहवाले वे
 गणेशजी सँतो लोचनोंरी रत्ना बरें जिनकी सँद ऊपर चाक्राणमें
 उठी हुई ऐसी जान पड़ती है मानो सूर्यकी और मुँह ऊपर
 हुए कमलकी भाँल हो और सँदकी जड़में निरूला हुआ उजला
 दाँत ऐसा सुन्दर जान पड़ता है मानो वह उस कमलकी जड़
 हो ॥२९॥ हाथीके मुँहवाले उन गणेशजीकी शरण लो, जो शुभ
 कार्योंमें सजाप जानेवाले फलशोंके समान अपने दोनों पवित्र
 माथोंमें सदा मद भरे रहते हैं और जिनके माथेसे बहते हुए
 मदमें खिचते हुए भीरे ऐसी जान पड़ते हैं मानो उन कलशोंपर

फाले तिल चिपके हुए हों ॥ ३० ॥ जब दोनों ओर बैठे हुए
 शिव और पार्वतीजी दोनों ओरसे गणेशजीके गाल घूमनेके
 लिये अपने-अपने मुँह बढाने लगे उस समय गणेशजीने
 गदखटपन करनेके लिये अपनी सिर पीछे हटा लिया
 और उससे शिव और पार्वतीजीके मुँह परस्पर मिल गए
 यह देखकर ठहाना भाकर हँसनेवाले गणेशजी सबकी
 रत्ना करें ॥ ३१ ॥ गणेशजीकी सँदसे निकली हुई उन
 उजली-उजली सँदोंकी फुहारोंकी बरसातकी जय हो जो फेन
 बनकर समुद्रका, कमलका समूह बनकर पृथ्वीका, तारोंकी
 कुण्ड बनकर आकाशका, मोतियोंके गुच्छे बनकर समुद्रका,
 फूल बनकर घुँघोंका, हंस बनकर मानसरोवरका, भस्म बनकर
 शङ्करजीके गलेका, मण्य बनकर पर्वतोंका और पाला बनकर
 सब दिशाओंका शृङ्गार करती रहती हैं ॥ ३२ ॥ गण्योंके
 स्वामी उन गणेशजीको प्रणाम है जो लाल पराँसे सजें हुए
 हैं, साँपोंके स्वामी वासुकिंको ही जिन्होंने अपना आभूषण
 बनाया है, आकाशमें उठी हुई जिनकी सँदमें उजली भस्म
 पुनी हुई है और जिनका मद पीकर मस्त हुए भीरे ही
 देवताओंके समान उनकी कीर्ति गाते रहते हैं ॥ ३३ ॥ सब
 बुद्ध करनेमें समर्थ गणेशजीके वे दोनों चरण हों पैरुपर्यं दे
 जो वेदरूपी वृक्षकी टालीकी काँपलें हैं, जो कमलोंकी सब
 शोभा धीने बैठे हैं और जो विप्रका पहाड़ तोड़नेके लिये
 पीने पत्र हैं ॥३४॥ जो सभी चरणे गुणोंके भयदार हैं, संसारकी
 बड़ी-बड़ी शक्तियोंमें जो सबसे पहले गिने जाते हैं, जो ब्रह्मन्त
 सुन्दर हैं, जो अपने भक्तोंके विमोहोंको दूरचर्य बना डालते

सुप्तोऽपि मालां श्रियाम् ॥३५॥ वन्दे वन्दारुमन्दारमि-
न्दुभूपखनन्दनम् । श्रमन्दानन्दसन्दोहवन्धुरं सिन्धुरान-
नम् ॥ ३६ ॥ विप्रध्वान्तनिघारणैकनरणिविघ्नाटचीह-
व्यवाट् विप्रव्यालकुलामिमानगरुडो विघ्नेभपञ्चाननः ।
विघ्नोत्सुहृगिरिप्रभेदनपविविघ्नास्तुथौ वाडवो विघ्नायो-
घयनप्रचण्डपवनो विघ्नेश्वरः पानुवः ॥३७॥ विघ्नेशोघः
स पायाद्विहृतिपु जलधीनुष्कराग्रेण पीत्वा यस्मिन्नुद्धृ-
तोयं वमति तदखिलं दृश्यते व्योम्नि देवैः । क्वाप्यम्भः
क्वापि विष्णुः क्वचन कमताभूः क्वाप्यनन्तः क्वचि-
च्छ्रीः क्वाप्यौर्यः क्वापि शैलाः क्वचन मणिगणाः
क्वापि नकादिसत्त्वाः ॥ ३८ ॥ विघ्नेशः सर्वविघ्नान्परि-
हरतु स यत्कर्णतालाडुदञ्जहायुव्याधूतकण्डस्थलयुग-
लगलद्रूरिसिन्दूरपूरैः । आरुण्याद्वैतभायं गतवति
जगति क्वापि नो भाति भानुर्नवासां शीतभानुः

क्वचिदपि नितरां भासते वा कृशानुः ॥३९॥ शिवयोः
सुधाहरिद्रादीतिमतोः सारभृजगर्भिणोः । त्रिसुघन-
विप्रध्वंसी करिकल्पः कश्चिदरुणिमा जयति ॥ ४० ॥
सानन्दं नन्दिहस्ताहतमुरजरवाहृतकौमारवहिन्नासा-
न्नासाग्ररन्ध्रं विशति फणितर्ता भोगसङ्कोचभार्ज ।
गण्डोर्ध्वनालिमालामुपरितककुमस्ताण्डवे शूलपाणैर्घ-
नायक्यश्चिरं वो वदनविधुतयः पान्तु चीत्कारयत्यः
॥ ४१ ॥ सुचर्णगिरिकर्णिके तरलतराकरकेसरे चल-
जलदपदपदे स्फुटदिगन्तपत्राष्टके । स वः प्रथमनायकः
प्रदिशतु धियं यत्करः करोति जगदम्बुजे वलितनाल-
लीलायितम् ॥४२॥ हस्तपङ्कजनिविघ्नमोदकव्याजसञ्च-
रदशोपपुमर्थम् । नांमि किञ्चिद्वधून्तियुगण्डादण्डकु-
ण्डलितमण्डितगण्डम् ॥ ४३ ॥
परमुखः—अचिन्मन्ति विदित्यं वक्रकुहरायासृजितो

है, जिनकी पूजा किए बिना आजतक किसीकी सिद्धि नहीं
मिली थीर जिनका पूजन करके अत्यन्त नीच मनुष्य भी
सदाके लिये धन-धान्यसे पूर्ण हो जाता है उन गुणोंके
स्वामी गणेशजीकी मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ३१ ॥ शिवजीको
आनन्द देनेवाले उन हाथीके मुँहवाले गणेशजीको प्रणाम
करता हूँ जो अपने भक्तोंकी इच्छा पूरी करनेके लिये कल्पवृक्ष
हैं तथा जो अत्यन्त आनन्दसे पूर्ण होनेके कारण श्रीर भी
मुन्दर लगते हैं ॥ ३२ ॥ विघ्नोका नाश करनेवाले वे गणेशजी
आप लोगोंकी रक्षा करें जो विघ्नरूपी घने अंधेरेको मिटा
बालनेके लिये सूर्य हैं, विघ्नरूपी जहलको जला डालनेके लिये
धूमि है, विघ्नरूपी सर्पोंका अग्निमान नष्ट करनेके लिये
गण्ड है, विघ्नरूपी मतवाले हाथीको मारनेके लिए वज्र है,
विघ्नरूपी समुद्रको सोरनेके लिये बद्धवानल है और भयङ्कर
पाप-समूहके विघ्नरूपी बादलोंकी घटा उड़ानेके लिये प्रचण्ड

सिन्दूरके उड़नेसे सारे संसारके लाल हो जानेपर यही नहीं
जान पड़ा कि कौन सूर्य है, कौन चन्द्रमा है और कौन अग्नि है
॥ ३३ ॥ अमृतके समान उजले शिवजी और हर्षिके समान
पीली कान्तिवाली पार्वतीजी जो माता-पिताके समान संसारका
पालन-पोषण करते हैं उनकी किसी ललाई (गणेशजी) की जय
हो जो त्रिलोकीके विघ्न मिटा डालनेवाले हाथीके रूपवाली है
॥ ४० ॥ शिवजीका ताण्डव आरम्भ होते समय जैसे ही नन्दिने
मस्त होकर मुद्रङ्कर थाप दी वैसे ही उस शब्दको सुनकर
वहाँ आ पहुँचनेवाले स्वामिकातिकेयके मोरके दरमे गणेशजीके
शरीरमें लिपटा हुआ सौंभे जय अपने प्राण बचानेके लिये
फण सिकोद्वर उनकी सूँड़के छेदमें हुसने लगा उस समय
उन गणेशजीका चिम्पाद्वर सूँड़ फटकारना सदा आपकी
रक्षा करे जिनके मन्त्ररूपर मँडराते हुए नैराँवरे गुनारने क्षुण्
दिगाएँ भर गई थीं ॥ ४१ ॥ वे सर्वमपन गणनायक गणेशजी

वासुकेरुद्धुल्या विपकवुराण्यणयतः संस्पृश्य दन्ताङ्क-
रान् । एकं त्रीणि च सप्त पञ्च पडिति प्रथमस्य संख्या-
क्रमा वाचः कौञ्चरिपोः शिशुत्वविकलाः श्रेयांसि
पुष्पन्तु वः ॥ १ ॥ विकसदमरनारीनेत्रनीलास्त्रख-
एडान्यधिवसति सदा यः सयमाशःकृतानि । न तु
वचिरकलापे वर्चते यो मयूरे वितरतु स कुमारो ब्रह्म-
चर्यश्रियं वः ॥ २ ॥ शरस्यः सर्धदेवानां दनुयंशदवा-
नलः । शक्तिमान्भृतिमांशान्तः कात्तिकेयोऽस्ति मे
गतिः ॥ ३ ॥ शैलराजतनवास्तनयुग्मध्यावृतास्ययुग-
लस्य गृहस्य । शेषवक्रक्रमलानि मलं वो दुग्धपानवि-
धुराणि हरन्तु ॥ ४ ॥ श्वेच्छारभ्यं त्रुटिवा पितुसरसि
चिताभस्मधूतीसिताङ्गो गङ्गावारिखणगाभे भटिति
पृथुजाजुटती दत्तभूम्यः । सयः सीत्कारकारी
जलजडिमरुणहस्तपङ्क्तिर्गुहो वः कम्पो पाथादपायाउज्ज-
लितशिरिशिषे चक्षुपि न्यस्तहस्तः ॥ ५ ॥

चमते और विषके कारण चितकमरे सुँहेंको बचपनकी खेलवाड़में
खोल-खोलकर अपनी उँगलीसे उनके दाँत छू-चूकर उलटे-
पुलटे ममसे एक, तीन, सात, पाँच, छ. आदि गिननेवाले
स्फन्दकी तोतली बोली आपको आनन्द दे ॥ १ ॥
देवताओंकी क्रियाँके खिले हुए नीले कमलके समान सुन्दर और
सयमसे खुके हुए नेत्रोंसे जो कभी प्रभावित नहीं होते और
सुन्दर पूँछवाले अपने मोरपर ही जो सदा बैठा करते हैं वे
स्वामिनातिकेय आप लोंगाको ब्रह्मचर्यका तेज दें ॥ २ ॥
अत्यन्त शक्तिवाले, धैर्यवाले और शान्त उन स्वामिकातिकेयकी
ई शरण लेता हूँ जी राक्षसोंके कुलरूपी योंसेके लिये दानामि
हूँ और सबको शरण देनेवाले हूँ ॥ ३ ॥ पर्वतोंके राजा
हिमालयकी पुत्री पार्वतीमीके दोनों स्तनोंको अपने दो सुँहसे
पीते हुए स्फन्दके वे शेष चार मुखकमल आपके पाप हर लें
जो दूध नहीं पी पा रहे हैं ॥ ४ ॥ वे स्वामि कातिकेय आपको
विनाशसे बचावें निनकी देह पिताजी (शिवजी) की क्षीणपर जी
भर लोटेनेसे उमपर लगी हुई चिताकी भस्म लिपट जानेसे जब
उजली हैं, गईं तो वे तत्काल शिवजीके भारी जटावटपरसे गङ्गाके
अगाध जलमें धूँद पड़े बिन्तु गङ्गा-जलकी दृष्टक लगते ही जब
वे सींसा बरके डिडुरने लगे और उनके दाँत किटकिटाने लगे
तब तत्काल पिताजीके वीसरे नेत्रमी जलती हुई अग्निरी लपटोंमें
हाथ संकुने लगे ॥ ५ ॥

गणेश और स्फन्द : भौका दूध पीने हुए उन स्वामि-

गणेशकुमारों—दत्तस्तन्यरसं कराग्रिमभुवा वक्रा-
न्तरे स्वादराहोविद्येनेगिपिक्रुम्भविचरन्मत्तिरेको-
त्करम् । अन्यायाः पिवतोः पयोधरयुगं तिर्यङ्गियः
पश्यतोर्वाल्यब्रह्मेहविजुम्भितं विजयते हैमातुरस्फन्दयोः
॥ १ ॥ पित्रोरुत्सङ्गसंस्थां विबुधगणानुतौ विघ्नदैत्यात्ति-
निघ्नौ स्वैस्वै पाश्वे च कन्दुं शिखिनमभिरुचिप्रैजना-
शौ प्रहृष्टौ । विभ्राशौ पाण्डिपत्रैः कमलमथ गदामकुशा-
दिश्च चञ्चलैशौ सिग्धं सुभूवावचिरतमवतां कौच-
नैशौ कुमारौ ॥ २ ॥

गणाः—सन्ध्याताएडवडन्यरप्रणयिनोर्देवस्य चएडी-
पतेभ्रंष्टापीडविशीर्णमुडस्यचयनव्यग्रागणाः पान्तु वः ।
धैर्यैःसुक्यवश्रीकृतेप्रहंगणान्नाहौ गृहते हटात्सूर्याच-
न्द्रमसौमिथः स्मितवनोर्जातं करास्फालनम् ॥ १ ॥

नदी—कण्डालङ्कारएटावण्यणरगिताष्मत्तारोदः
कटाहः कण्डे कालाधिराहोचितघनसुभगं भावुक-

कातिकेय और गणेशकी जब हो जो अपने हाथकी उँगलियोंसे
माँके स्तन पन्द्रक वड़े चाससे सुँहमें डाले हैं, गण्डस्थलमें
उड़ते हुए भोरोंको हाथ और सूँड हिला-हिलाकर उड़ते हैं,
तिरछी चितवनसे एक दूसरेको देखते हैं तथा बचपनके कारण
श्रंगदाई-जैसाई लेते जा रहे हैं ॥ १ ॥ क्रमशः विघ्नौ और
राक्षसी पीडाका नाश करनेवाले, अपने अपने परस बैठे चूहे
और मोरको प्रेमसे देखनेवाले, कमलके समान हाथोंमें कमल
तथा गदा और अक्षुश आदि धारण करनेवाले, सुन्दर केशवाले,
सुन्दर सजावटवाले, कमल देहवाले, पिताजीकी गोदमें बैठे
हुए वे कोई शिवजीके दोनों बालक सदा रक्षा करें जिन्हें देवता
प्रणाम कर रहे हैं ॥ २ ॥

गण : सन्ध्याकी हो चुकनेवाले ताएडव नृत्यका आनन्द
लेनेवाले तथा शङ्करजीकी टूटी हुई मालासे गिरी हुई
पोपडियोंको हड़टा करनेमें लगे हुए वे गण आपकी रक्षा करें
जिन्होंने खेल-खेलमें ही जब अहाँके वीचसे राहुकी बलपूर्वक पकड़
लिया तो सूर्य और चन्द्रमा प्रसन्नतासे मुस्कराते हुए अपनी
त्रिरखे फैलाने लगे ॥ १ ॥

नदी : गलेमें गहनेके रूपमें धँधे घबड़ेके घनघन शब्दसे
आनाश और पृथ्वीरूपी सखडकी भर देनेवाले, शङ्करजीके
पाँटपर बैठ जानेसे और भी अधिक सुन्दर दिवाई देनेवाले,
भावुकोंके अनुरक्त बर देनेवाले, चिन्नी पीठवाले, अपने उजले
डिटरते फैलासकी उँची घोड़ीमें भी नीचा दिरानेवाले तथा

स्निग्धपृष्ठः । साक्षाद्भ्रमो वपुष्मान्धवलककुदनिर्धूतकैला
सकूटः कूटस्थो चः ककुद्भ्रात्रिचिडतरतमः स्तोमतृण्यं
वितृण्यत् ॥ १ ॥

मन्मथः

स एव भुवनत्रयमथितलंयमः शङ्करो विभर्त्ति चपु-
पाधुना विरहकातरः कामिनीम् । अनेन किल निजिता
घयमिति प्रियायाः करं करेण परिताडयन्नयति जात-
हासः स्मरः ॥ २६ ॥

रतिः—देवी रतिर्विजयते मृगनाभिचित्रपत्राघली
पृथुपयोधरस्त्रीमि यस्याः । भाति त्रिलोकविजयोपन-
तस्यकान्तप्रकान्तसायकनिशातनकालिकेव ॥ १ ॥

सूर्यः

अतिचिततगगनसरणिप्रसरणपरिमुक्तविभ्रामानन्दः ।
मरुदुल्लासितसौरभकमलाकरहासकृद्विर्जयति ॥ १ ॥
आदां रक्तं पुना रक्तं मध्य उज्ज्वलभास्वरम् । दुर्निरी-

पहादुपर बसनेवाले धमकं साशाव स्वरूप नन्दो अत्यन्त
घने तथा भयानक पापरूपी घासका डेर चर जायै ॥ १ ॥

कामदेव

'यही वे तीनों लोकोमें प्रसिद्ध शङ्करजी हैं जिन्होंने हमें
जीत लिया है । अथ देवो वे विद्योयो व्याकुल होकर म्रियतमाओ
घपने शरीरमें ही धारण किए हैं ।' ऐसा कहकर हैंसते हुए
रतिके हाथपर वेगले हाथ मारनेवाले कामदेवकी जय हो ॥ १ ॥

रतिः : उन रतिदेवीकी जय हो जिनके मांटे स्तनोंपर
शोभा पाती हुई कस्तूरीकी चित्रकारी पैनी जान पड़ती है
मानों त्रिलोकीकी जीतनेके लिये कामदेवके द्वारा तेज किए जाते
हुए वायुकी कालिमा हों ॥ १ ॥

सूर्य

वायु जिनकी मुगन्धि उड़ाता फिरता है उन कमलोंके
भयङ्कर तालावकी हैंसानेवाले (विभसित करनेवाले) उन सूर्यकी
जय हो जिन्होंने अत्यन्त लम्बे-चौड़े आकाश-मार्गमें निरन्तर
चलते रहनेके लिये अपना त्रिश्राम और ध्यानन्द सब छोड़
दिया है ॥ १ ॥ सारे जगत्को देखनेवाले उन सूर्यकी
शरयमें जाता हूँ जो उदय और अस्त होते समय लाल तथा
शोषहरमें इतने अधिक चमकीले रहते हैं कि देते नहीं
जाते ॥ २ ॥ अपने एक ही नेत्रसे अत्यधिक तपनेवाले,
प्रलयकालमें क्रमशः अपना साप बढ़ानेवाले, आकाशके अंशके
समान वे सबसे बढ़े देव सूर्य हमारी रक्षा करें जिन्हें उदय

स्यप्रभावन्तं दृश्यं द्रष्टारमाश्रये ॥ २ ॥ एकस्मिन्मयने
भृशं तपति यः काले स दाहकमो येनातन्यत यन्प्रकाश-
समयेनौपा पदं दुर्लभम् । सा व्योमावयवस्य यत्र
यिदिता लोके गतिः शाश्वती श्रीसूर्यः सुरनेविनोऽपि
हि महादेवः स नखायताम् ॥ ३ ॥ कटुभिरपि फोरोच-
क्रयाकोत्करविरहज्वरशान्तिशीतघोषैः । तिमिरहृतमयं
महोभिरङ्गलयति जगन्नयनौघमुष्णभातुः ॥ ४ ॥ फरजा-
लनपूर्वचेष्टितं घन्तदभीष्टप्रदमस्तु तिग्ममासः । क्रियते
भयवन्धनाङ्घ्रिसुक्तिः प्रणतानामुपनेवितेन येन ॥ ५ ॥
किं छत्रं किन्तु रत्नं तिलकमुत तथा कुण्डलं कौस्तुभो
वा चक्रं वा वारिजं चेत्यभरयुयतिभिर्भृङ्गिद्वेषिदेहे ।
ऊर्ध्वं मौली ललपटे श्रयसि हृदि करे नाभिदेशे च दष्टं
पाया सङ्घोर्कविभ्यं स च दनुजैरुपुर्वर्धमानः क्रमेण ॥ ६ ॥
खं येऽप्युज्ज्वलयन्ति लूनतमसो ये चानघोद्वासिनो
ये पुष्पन्ति सरोरुहश्रियमधिष्ठितान्जभासश्च ये । ये

होनेके परचाए कोई पा नहीं सकता तथा जिनकी नित्य गतिके
संसारमें कोई नहीं जानता ॥ ३ ॥ उन सूर्यकी जय हो जिनकी
किरणें तीक्ष्ण होते हुए भी चक्रवाचकके भयङ्कर वियोगरूपी
ज्वरको नष्ट करते समय शीतल हो जाती हैं और उन किरणोंमें
संसारका अंधेरा दूर करते हुए जो जैसे जान पड़ते हैं मानों
अंधेरसे अन्धे हुए संसारके प्राणियोंके नेत्रोंमें प्रकाशका अंजन
लगा रहे हों ॥ ४ ॥ अत्यन्त तेजस्वी सूर्यकी अद्भुत चाल-
वाली वे किरणें आपके मनोरथ पूर्ण करें जो स्मरण करने
मात्रसे भर्त्सो संसारके बन्धनोंसे मुक्त कर देती हैं ॥ ५ ॥
बलिको छलते समय जब वामन भगवान् क्रमशः ऊपरकी
ओर बढ़ने लगे उस समय जिस सूर्य-मण्डलको देखकर
देवताओंकी छियाँ क्रमशः यह सोचने लगीं कि—'क्या
यह वामन भगवान्के ऊपर तथा हुआ छत्र है या उनके मुकुटमें
जड़ा हुआ रत्न है या उनके मस्तकमें लगा हुआ तिलक है
या कानोंपर पहना हुआ कुण्डल है, या हृदयमें धारण किया
हुआ कौस्तुभ-मणि है या हाथोंमें धारण किया हुआ चक्र या
कमल है अथवा उनकी नाभिले निकला हुआ फलक है, वह सूर्यका
मण्डल तथा वे दैत्यको मारनेवाले वामन भगवान् आपकी रक्षा
करें ॥ ६ ॥ दिनके स्वामी सूर्यकी वे किरणें हमें प्रेक्ष्य
देनेवाली हों, जो अंधेरा नष्ट करके आकाशको अत्यन्त उज्ज्वल
करती रहती हैं, जो सिरसे पैर तक चमकीली रहती हैं, जो
कमलोंकी शोभा बढ़ाती और उनमें कानि भरती रहती

मूर्धस्ववभासिनः चित्तिभृतां ये चामरणां शिरांस्या
 क्रामन्त्युभयेऽपि ते दिनपतेः पादा श्रिये सन्तु नः
 ॥ ७ ॥ एण्डितानेत्रकञ्जालिमञ्जुरञ्जनपरिडताः । मण्डि
 तारिलदिक्प्रमात्ताश्चण्डशोः पान्तु भानवः ॥ ८ ॥
 चम्री चक्रारपरिह्वं हरिरपि च हरीन्धूर्जटिधूर्ध्वजान्ता-
 नलन्नक्षत्रनाथोऽरुणमपि चरुणः क्रुराभ्रं कुधेरः । रंह,
 सवहः सुराणां जगद्गुपकृतये नित्ययुक्तस्य यस्य स्तौति
 मीतिप्रसन्नोऽन्वहमहिमरचेः सोऽद्यतात्प्यन्दनो चः
 ॥ ९ ॥ जम्भारातीमकुम्भोद्भवमिव दधतः सान्द्रसिन्दू-
 रेरथुं रक्तैः सिक्का इवौघैरुद्यगिरितटीधातुधाराद्-
 वस्य । आयान्त्या तुल्यकालं कमलवनरुचेयारुणा वो
 चिभूधै भूयासुर्भासयन्तो भुधनमभिनवा भानवो भान-
 चीयाः ॥ १० ॥ निपीतध्वान्ताय प्रसूमरकरायोप्रमहसे
 निकामं कामानां धितरख्यचिनोदव्यसनिने । समस्तप्रत्यू-
 हप्रशमनकृते श्रीदिनकृते नमस्तस्मे यस्मै स्पृहयति
 समस्ताभ्युजततिः ॥११॥ प्राचीकुडुममितलकं पूर्वाचल-

रोहणैकमाशिक्ष्यम् । त्रिभुवनगृहेकदीपं चन्द्रे लोकैक
 लोचनं देवम् ॥ १२ ॥ ब्रह्माण्डसम्पुटकलेधरमध्यवति
 चैतन्यपिरण्डमिव मण्डलमस्ति यस्य । आलोकितोऽपि
 दुरितानि निहन्ति यस्तं मार्तण्डमादिपुरुषं प्रणामामि
 नित्यम् ॥ १३ ॥ भक्तिप्रहाय दातुं मुकुटपुटकुटीकोटर-
 क्रोडलीनां लक्ष्मीमाकण्डुकामा इव कमलवनोद्घाटनं
 कुर्वते ये । कालाकारान्धकाराननपतितजगत्साध्वस
 ध्वंसकल्या कल्याणं वः त्रियासु' किसलयरुचयस्ते
 करा भास्करस्य ॥ १४ ॥ यद्विभ्रमम्बरमणियैर्दपां
 प्रसूतिर्नकं निपिञ्चति यदग्निशिखासु भासः । जगोत्तमा
 निशासु हिमघाञ्जि च यन्मयूखाः पूषा पुराणपुरुषः स
 नमोऽस्तु तस्मै ॥ १५ ॥ युष्माकमम्बरमणोः प्रथमे मयू-
 खास्ते मङ्गल विदधत्तद्वयरागभाजः । कुर्वन्ति ये
 दिवसजन्ममहोत्सवेषु सिन्दूरपाटलमुचीरिव दिक्पु-
 रन्म्रीः ॥ १६ ॥ यो रक्तताम्रतितरामतुलं दधानो
 विक्रमौढदारचूड मोहनवात्सवासः । योपिद्भयीपतिवि-

है, जो महाराजाओंके मुकुटोंमें चमकती रहती हैं और जो
 देवताओंके सिरके ऊपर घूमती रहती हैं ॥ ७ ॥ सखिता
 नायिकाके कमल-नयनोंके विकसित करनेमें चतुर तथा सय
 दिशाओंकी शोभा बढ़ानेवाली सूर्यकी किरणें रखा करें ॥ ८ ॥
 सदा संसारकी भलाईमें लगे रहनेवाले तथा उज्य शिखरवाले
 सूर्यका बहुरथ धारकी रखा करे जिसके पहिपुकी लिप्यु भगवान्,
 घोड़ीकी इन्द्र, सामनेके भागरी शिवजी, घुरेकी चन्द्रमा,
 अरण्य (सारथी) की धरण्य, लुपकी हुनेर तथा वेगर्दी सत्र
 देवता स्तुति करते हैं ॥ ९ ॥ जम्भानुरके शत्रु इन्द्रके पेशावत
 हाथीके मल्लजमें लगे हुए घने सिन्दूरकी धूलकी भीति लाली
 धारण्य करके उदय होते हुए सूर्यकी वे नई लाल-लाल किरणें
 धारको पेशवर्धें जो ऐसी जान पड़ती हैं मानो उदयाचलसे
 बहती हुई गेरुकी धारासे रेंगी हुई हों अथवा जलवाले खिलनेके
 भाव ही उदय होनेसे जिनपर उन कमलोंकी ललाई पड़ रही हो
 ॥ १० ॥ सय प्रकारके विप्र शान्त करनेवाले तथा छँपरा पी
 शालनेवाले उन ध्यन्त तेजस्वी सूर्यको प्रणाम है जो जी भरकर
 भर्षाके मनोरथ पूर्ण करके अपना मन बहलाते रहते हैं तथा
 त्रिहैं कमलोंके समुदाय सदा चाहते हैं ॥ ११ ॥ सारे संसारके
 पृथ-भाज नेत्ररूपी उन धीसूर्यको प्रणाम करता हूँ जो मानो पूर्ण
 दिशामें लगे हुए कुडुमके त्रिकण्ड हैं अथवा प्रिलोकीरूपी गुरके
 पृथ-भाज दीपक हैं अथवा उदयाचलके शिगररूपी मुकुटमें जड़े

हुए एकमात्र माशिक्ष्य है ॥ १२ ॥ सबसे पहले उत्पन्न होनेवाले
 उन सूर्यको सदा प्रणाम करता हूँ जिनका मण्डल ब्रह्माण्डकी
 द्विधियाके बीचमें चेतन गोलके समान चमकता है तथा जिन्हें
 देख लेने-मार्गसे सारे पाप नष्ट हो जाते हैं ॥ १३ ॥ अन्धकाररूपी
 कारागारके मुँहमें पड़े सारे संसारके पापोंका नाश करनेमें चतुर
 तथा नये पतोंके समान लाल वान्तिराली वे सूर्यकी किरणें
 धारका कल्याण करे जो भक्तिसे पुलकित भक्तोंकी पंशुधीरुपी
 कुटियाकी गोदमें सोती हुई लक्ष्मी देनेके निमित्त कमलकी
 (लक्ष्मी) से स्वीकृति लेनेके लिये ही मानो कमल-वनको विकसित
 करते हों ॥ १४ ॥ उन प्राचीन पुरण सूर्यको प्रणाम है जिनका
 मण्डल आनाराममें मणिके समान चमरता है, जो जल उपग्रह
 करनेवाले है, जो रातको अग्निकी लपटोंमें तेज बरसा देते हैं
 तथा जिनकी किरणें रातको चन्द्रमामें चँदनी भर देती हैं ॥ १५ ॥
 उदय होते हुए आनारके मणि (सूर्य) की वे लाल-लाल किरणें
 धारका कल्याण करें जो ऐसी जान पड़ती हैं मानो दिनेके
 जगोत्सवमें दिशास्त्री धियोंने मुँह सिन्दूरसे रंगा रही हों ॥ १६ ॥
 दो धियाँ (संशा और धारया) के पति होनेकी विडम्बना धारण्य
 करनेवाले (दो छिवाले), पाप-समूहको हरनेवाले तथा अन्त
 गादी ललाई धारण्य करनेवाले वे सूर्य सदा हमारी रखा करें
 जिन्होंने मानो दिशाओं-रूपी युवतियोंको रिम्बनेके लिये ही लाल
 परध धारण्य कर रखे हों ॥ १७ ॥ कमलके वनोंकी खिला देनेवाले,

उभयन्तमृत्स शब्दत्पायादपायसमुदायहरो रविर्नः ॥१७॥
 लालयन्तमरविन्दयनानि चालयन्तमभितो भुवनानि ।
 पालयन्तमथ कोककुलानि ज्योतिषां पतिमहं महयामि ॥ १८ ॥
 शीर्षेणाणाट्प्रिपाणीन्प्रणिभिरपवर्धैर्वराव्य-
 क्तयोपान्दीर्घात्प्रानातानर्धैः पुनरपि घटयत्येक उल्लाघ-
 यन्धः । धर्माशौस्तस्य वोऽन्तद्विगुणधमवृणानिधनिधि-
 प्रवृत्तैर्दत्तार्घाः सिद्धसङ्घैर्विदधत घृणयः शीघ्रमहो-
 विघ्नतम् ॥ १९ ॥ शुक्लुगडच्युवि सधितुपचण्डरुचेः
 पुण्डरीकवनयन्धोः । मण्डलमुदितं चन्द्रे कुण्डलमाय
 एडलाशयाः ॥ २० ॥ साटोपधयोमहद्दोषितरजनिषण्ण-
 ङ्नायकोन्मुक्ततारा मुक्ताहारापहाराचरलयगरवप्रो-
 त्थिताकीर्त्तिशान्त्यै । कर्मभम्भोजकुम्भोदकुहरवटिनिः-
 सरत्पट्पदालीकालव्यालीं करेणाकलयतु दिनरुत्कलम-
 पोन्मूलनं घः ॥ २१ ॥ सिन्दूरस्पृहया स्पृशन्ति करिणां
 कुम्भस्थमाघोरणा भिल्लीपल्लवशङ्कया विचिन्तुते सान्द्र-
 द्रुमद्रोणिषु । कान्ताः कुङ्कुमशङ्कया करतले मृदन्ति

लज्ज यत्तज्जः प्रथमोद्भवं भ्रमररं सौरश्चिरं पातु
 वः ॥ २२ ॥ सिन्दूराणीव सीदन्कणकुलवधूमृद्धि ये
 सञ्चरन्तः प्रेक्षन्ते दिक्षु शैलाः शिष्यरमुधि लसत्पद्मग-
 गाङ्करा यैः । धुन्वन्ते धौतधाराः सह दुरितचयैर्दूर-
 दृश्याः सुदृश्या पान्तु त्वां पद्मवन्धोरकरणकिरराः
 पूरणाः पद्मवन्धोः ॥ २३ ॥

सूर्यतुरगाः—अथतु नः सधितुन्तुरगावली समतिल-
 द्वितलरूपयोधरा । स्फुरितमध्यगतारुणनायका मरु-
 तैरुल्लेखे नभश्चियः ॥ १ ॥ निरालम्भमपि प्राप्यान्नाम-
 न्तोऽनुदिनजगत् । अनुरोर्यमनायत्ताः श्रिये सन्तु
 रवेर्हयाः ॥ २ ॥

चन्द्रः

नित्यं कुचलयोज्जासवर्धनेकपरायणः । आदधत्स-
 र्वतः शान्तिमेप भाति द्विजेश्वरः ॥ १ ॥ भो भो चन्द्र !
 कलानिधानमसि यस्यां तन्न पूर्णं सदा द्रष्टुं वाञ्छति

सप्त लोकोंको चारों ओरमे धो देनेवाले, चक्रमा चक्रवर्तिका
 पानन करनेवाले तथा नक्षत्रों एवं ग्रहोंके स्वामी सूर्यका मैं
 आदर करता हूँ ॥ १८ ॥ जिन लोगोंके हाथ, पैर, नाक आदि
 अन्न सद्गुण हैं, शरीरोंमें घात होनेके कारण जो अस्पष्ट घर घर
 शब्द कर रहे हैं तथा जिन्हें बहुत समयसे पापोंके समूह प्रसे
 हुए हैं, ऐसे लोगोंको भी स्वन्ध करके एकसा बना देनेवाले
 श्रीर अथने भीतरकी अथन्ध कृपाके कारण निदोष आचरणवाले
 सूर्यकी वे क्रियाँ शीघ्र ही आपके पाप नष्ट करें जिन्हें सिद्धोंके
 समूह अर्घ्य दिया करते हैं ॥ १९ ॥ सुगंधी घोंचके समान खाल
 कान्तिवाले, प्रचण्ड तेजवाले तथा कमल-जनके प्यारे, तत्काल
 उदय हुए सूर्यके उस मण्डलकी प्रणाम करता हूँ जो मानो
 इन्द्रकी पूर्ण दिशास्त्री नायिकाके हुएदल हों ॥ २० ॥ पड़े
 भारी आकाशरूपी हाटमें बैठी रात्रिन्ध्री नायिकाके लिये चन्द्र-
 रूपी नायकने जो धारास्त्री मोतियोंके हार फैलाए तो उन्हें
 शुराते समय बीचमें ही पविष्योंके कोलाहल किए जानेपर
 हम अर्कितिको दवानेके लिये तत्राल कमलरूपी पद्मोंके भीतरमे
 यादर निरुत्तनी हुई भीरोंकी पतितरूपी काली नागिनको
 क्रियाँ (हाथों) से गींचते हुए, दिनको रचनेवाले सूर्य आपके
 पापोंको जड़मे नष्ट कर दें ॥ २१ ॥ हाथियोंके मस्तकों, पृष्ठीं
 और क्रियोंके हाथोंपर पड़ी हुई तन्काल उदय हुए सूर्यकी वह
 कान्ति सदा आपकी रचा करे लिये प्रमथः महान्त भ्रमसे

सिन्दूर समभर घुते हैं, भीलनी नये कोमल पत्ते समभर
 तोड़ती हैं और खियों कुङ्कुम समभर मलती हैं ॥ २२ ॥
 पापोंके साथ-साथ अथन्धकारका भी नाश करनेवाली, दूरसे ही
 सुन्दर दिवाड़े देनेवाली तथा कमलोंकी इच्छाएँ पूर्ण करनेवाली
 वे निना देहवाली सूर्यकी क्रियाँ आपकी रचा करें जो कृपणके
 घरोंकी सिन्दूर न पानेवाली हुरी खियोंकी माँगोंमें पडकर
 सिन्दूरके समान तथा पर्वतकी चोटियोंपर पडकर पप्राराग मणिके
 चमकीले अक्षुरोंके समान शोभित होती हैं ॥ २३ ॥

सूर्यके घोड़े : ऊँच-ऊँच भेदोंको लाँघनेवाले सूर्यके
 घोड़ोंकी वह पति हमारी रचा करे जिसके बीचमें चमकते हुए
 अरथ (सारथी) ऐसे जान पड़ते हैं मानो आकाशकी शोभा
 (नीलिमा) रूपी मरकत मणिकी मालामें लाल रहना सुमेरु
 गूँया गया हो ॥ १ ॥ अन्तर (सारथी) के शासनमें चलनेवाले
 वे सूर्यके घोड़े ऐश्वर्य दें जो प्रतिदिन शून्य आकाशमें चलकर
 सारे संसारका भ्रमण करते रहते हैं ॥ २ ॥

चन्द्रमा

सदा तुमुदिनियोंको विनसित करनेमें लगे हुए तथा चारों
 ओर शान्ति रचनेवाले ये चन्द्रमा चमक रहे हैं ॥ १ ॥ हे
 चन्द्रदेव ! आप कलायोंके भयदार हैं, इसीलिये सारे संसारको
 तपानेवाला तेजस्वी सूर्य आपकी पूर्णता नहीं देख सकता ।
 छोड़िए इस यातको, आप कृपा अथनी शान्ति न छोड़िए तथा

लोकतापनपरस्तेऽस्मिन्तागर्भश्च । तत्स्थाने द्विजराज
किन्तु भवता हेया न सा शान्तता स्वोत्पलासाय कला
विलासय यतः सोऽस्तं स्वयं पत्स्यते ॥ २ ॥ रथिमाव-
सते सतां क्रियायै सुधया तर्पयते सुरान्पितॄन् ।
तमसां निशि मूर्च्छतां विहन्त्रे हरचूडानिहतात्मने
नमस्ते ॥ ३ ॥ स्वर्मानुप्रतिवारपारणमिलहन्तांघयन्त्रो-
द्भवध्वभ्रालीपतयालुदीधितिसुधासारस्तुपारद्युतिः ।
पुण्येभ्यासनतस्त्रियापरिख्यानन्दाभिषेकोत्सवे देवः प्राप्त-
सद्दक्षधारकलशधीरस्तु नस्तुष्टये ॥ ४ ॥

पृथ्वी

अथि सर्वसहे देवि त्वां नमामि पुनः पुनः । यदिमं
दुर्भरं भारं वहन्त्यपि न विद्यसि ॥ १ ॥ नानाम्भोनि-

धयः शिलोच्चयगणाः सिद्धाश्च सिंहादयो वाधन्ते भवतीं
सदैव वसुधे मूर्त्तिः क्षमायाः मता । किं त्रयामितरङ्ग-
चन्ति पतयो येऽभी भवत्या मताः सैन्यौघैर्वत तेऽपि
भूरि सततं वरधन्त एयोद्धताः ॥ २ ॥ स्वर्गांकोभिदो-
निवासिपुरुषारध्यातिशुद्धाधरस्वाहाकारवपट्क्रियो-
त्थममृतं स्वादीय आदीयते । आज्ञायप्रघणैरलङ्कितकु-
पेऽमुष्यै मनुष्यैः शुभैर्दिव्यक्षेत्रसरित्पवित्रवपुषे देव्यै
पृथिव्यै नमः ॥ ३ ॥

वारणः

कुम्भद्वयं तदमरद्विरदस्य वोऽज्यादुद्दिग्धमानमुद-
धेर्मथनाधसोने । प्रोद्यद्द्वितीयकमलाकुचशङ्किनीभिः
सेष्यै यदैक्षत सुरासुरसुन्दरीभिः ॥ १ ॥

॥ इति श्रीमन्नारायणस्वामिभिः सङ्कलिते सूक्तिसागरे देवसूक्तय इत्यभिधानकं

साधुवादं प्रथमप्रकरणं सम्पूर्णम् ॥

देवताओंके आनन्दके लिये अपनी कलाएँ बढ़ाते रहिए,
क्योंकि सूर्य तो अस्त होकर गिरगा ही ॥२॥ सज्जनोंके धार्मिक
कार्य पूरे करनेके लिये सूर्यम निवास करनेवाले, देवताओं
तथा पितरोंको अमृतसे सम्पन्न करनेवाले, रातमें अंधेरा नष्ट
करनेके लिये अमृत करनेवाले तथा शिवजीके मस्तकमें निवास
करनेवाले चन्द्रदेवको प्रणाम है ॥३॥ पालेके समान कान्तिवाले
ये चन्द्रदेव हमें मन्तोष दे तिनपर धार-धार निगलनेवा। प्रथम
करनेवाले राहुके दौतरूपी कीलोंके चुभनेसे बने हुए बहुतसे
देहोंमेंसे अमृत जैसा श्रेष्ठ पदार्थ चू रहा है तथा जो रति और
धामदेवके विवाहमें सहज धारावाले कलशके समान शोभित
होते थे ॥ ४ ॥

पृथिवी

सब कुछ सहन करनेवाली है देवि ! घाय इतना भारी
बोझ बोते हुए भी नहीं धरती ? मैं धारको धार-धार प्रणाम
करता हूँ ॥ १ ॥ है पृथ्वी देवि ! अनेक समुद्र, पर्वनोंके समूह

तथा सिंह आदि हिंसक प्राणी आपको सदा कष्ट देते हैं । अधिक
क्या बहें, आपकी ही कृपासे आपके स्वामी बने हुए ये महाराज
भी उद्दण्ड होकर अपनी बड़ी-बड़ी सेनाओंके समूहोंसे आपको
सदा कष्ट ही देते हैं । आप सचमुच क्षमाशील मूर्त्त ही हैं ॥ २ ॥
अनेक तीर्थ और नदियोंसे पवित्र देहवाली उस पृथ्वी देवीको
प्रणाम है, जिसमें वेद-पुराण आदिके माननेवाले सब मनुष्य
आभूषणके समान हैं और जिसमें बसनेवाले मनुष्योंके
पनित्र यज्ञोंमें स्वाहा और वपट्कारामक क्रियाओंसे उत्पन्न
अमृतको स्वर्गके निवासी देवता भी बड़े स्वादके साथ पखते
हैं ॥ ३ ॥

पेराचत

समुद्र मथनेपर उससे निकलते हुए देवताओंके हाथी
(पेराचत) के वे दोनों गण्डस्थल (कनपटी) आपकी रक्षा
करें जिन्हें देवता और असुरोंकी छियोंने दूसरी निकलती हुई
लक्ष्मीके स्तन समभरत हँव्योंपरक देता था ॥ १ ॥

॥ श्री १०८ नारायण-स्वामी द्वारा सङ्कलित सूक्तिसागरका देवसूक्ति नामक प्रथम
प्रकरण अनुवादसहित पूर्ण हुआ ॥

रससूक्तयः

तामनङ्गजयमङ्गलश्रियं किञ्चिदुच्चभुजमूललोकिताम् ।

नेत्रयोः कृतवतोऽस्य गोचरे कोऽप्यजायत रस्तो निरन्तरः ॥ १ ॥

नायकनायिकयोर्विलासचरितं दृष्ट्वा सुधापूरितं नानाहायसुभावरागललितं वागङ्गचेष्टायुतम् ।

सद्यो यद्रसराडूंसङ्गहृदये सञ्जायते सद्रसस्तच्छृङ्गाररसः रसाशनप्रियः प्रेयस्सदा पातु वः ॥ २ ॥

[कामदेवकी शोभाको जीतनेवाली यह कन्यायाचारी शोभावाली कामिनी जब अपने हाथ उठाती है उस समय दिखाई देनेवाले उसके स्तनोंको देखकर इस युवकके हृदयमें कोई (शृङ्गार) रस निरन्तर उत्पन्न होने लगा ॥ १ ॥ नायक और नायिकाकी अनेक हाव-भान, अनुराग तथा वाणी और अङ्गकी चेष्टाओंमें भरी अमृतमयी प्रेम-खीलाएँ देखकर रसका स्वाद लेनेवाले रसिक सङ्घट्टके हृदयमें जो सच रसोंका राजा 'शृङ्गाररस' नामक सुन्दर और प्रिय आनन्द उत्पन्न होता है वह आप लोगोंकी रक्षा करे ॥ २ ॥]

शृङ्गारप्रकरणे कामप्रशंसा

अनङ्गेनायलासङ्गाजिता येन जगन्नयि । स चित्र-
चरितः कामः सर्वकाममदोऽस्तु च ॥ १ ॥ अथला
अपि धीरेणान्यत्साहाय्यमुपाश्रिताः । परामवन्ति
दृक्कोणपातेनैव स मन्मथः ॥ २ ॥ अथलानां दृश्याथ
यो निहन्ति यलीयसः । तस्मै कुसुमयाणाय नमो लोको-
त्तरौजमे ॥ ३ ॥ इत्युर्ध्वं शराः प्रसून्धिततिर्द्वायली
शिञ्जिनी यस्याशाघशक्तिनः प्रमनसो निर्धिष्टराष्ट्रादयः ।

यद्वाणामिहता विरिञ्चिमुजरजिन्मृन्वु ज्येन्द्रादयो व्यासा-
श्रेणमगा इव त्रिभुवनं पायादजेयः स्मरः ॥५॥ एकं वस्तु
द्विधा कर्तुं बहवः सन्ति धन्विनः । धन्वी स मार
एवैको द्वयोरैक्यं करोति यः ॥ ५ ॥ कर्पूर इव दग्धो-
ऽपि शक्तिमान्यो जने जने । नमोऽस्यपारवीर्याय
तस्मै मकरकेतवे ॥ ६ ॥ काम्नेत्युत्पललोचनेति विपुल-
श्रीणीभरेत्युल्लसतीनोत्तुङ्गपयोधरेति सुमुयाम्मोजेति

शृङ्गार रसके प्रकरणमें कामदेवकी प्रशंसा

बिना शरीरवाला होनेपर भी जिसने अथला (निर्बल
यो) के सद्व्योगमें तीनों लोक जीत लिए, वह अद्भुत
करतव करनेवाला कामदेव आप लोगोंकी सच कामनाएँ
पूरी करे ॥ १ ॥ यह कामदेव ही है जिसका सहारा
पाकर बन्दे-बन्दे धीरोंको भी केवल अपनी तिरछी चितवन
मात्रमें खिचो घायल कर डालती है ॥ २ ॥ जो कुलोंके
बाण धारण करनेवाला केवल अथलाओंके नेत्रोंसे ही
बन्दे-बन्दे धीरोंको घायल कर डालता है उस अद्वितीय
शक्तिवाले कामदेवको नमस्कार है ॥ ३ ॥ इन्हें ही जिसका
धनुष है, कुलोंके समूह ही जिसके बाण हैं, भीरे ही
जिसके धनुषकी शंती है, जैसे मनवाले विभिन्न राष्ट्रोंके

लोग ही जिसकी आज्ञा पालन करनेवाले सेवक हैं, वरदा,
विष्णु, शङ्कर तथा इन्द्र आदि भी जिसके बाणसे घायल किए जा
सुके हैं और जो सच यज्ञोंके समान तीनों लोकोंमें व्याप्त है,
यह किसीसे भी जीता न जा सकनेवाला कामदेव आप लोगोंकी
रक्षा करे ॥ ४ ॥ ऐसे ही बहुतेरे धनुषधारी धीरे हैं जो
किसी वस्तुके दो टुक कर दें किन्तु दो (चिन्तों) को एकमें
मिला देनेवाला धनुषधारी धीरे यदि कोई है तो वह केवल कामदेव
ही है ॥ ५ ॥ कर्पूरके समान जल जानेपर भी जो संसारके
प्रत्येक व्यक्तिपर अपनी घात जमाए हुए है, उस मकरकी ध्वजा-
धाले अपार बलशाली कामदेवको प्रणाम है ॥ ६ ॥ आह !
कामदेवकी ये चेष्टाएँ कैसी अनुचित और अचरन-भरी है कि

सुधूरिति । द्रुया माद्यति मोदतेऽभिरमते प्रस्तौति विद्वानपि प्रत्यक्षाशुचिपुत्रिकां स्त्रियमहो कामस्य दुष्प्रे-
रितम् ॥ ७ ॥ कुमारा वा जरन्तो वा सन्तु काममुपे-
क्षिताः । इतरे किन्तु सर्वेऽपि कन्दर्पेण सुमर्दिताः ॥८॥
कुलगुरुवरवलाणां केलिद्वीचाप्रदाने परमसुहृदन्तर्ज्ञो रोहि-
णीवल्लभस्य । श्रपि कुसुमपृष्णकैर्द्वैधेयस्य जेता जयति
सुरतलीलानाटिकासूत्रधारः ॥ ९ ॥ को नाम त्रिषु
लोकेषु कामेन न पराजितः । वयं तु विजितं येन
पश्यामो भुवनत्रयम् ॥ १० ॥ चन्द्रं शीतलयन्त्यलोकन-
यनं शम्भोः सुधाशीकरैर्विष्वग्याकुलयत्सु संयमधना-
न्कान्तादगन्तेषु च । लीलायै परमैक्षयं धनुरिष्विन्ध्र-
त्प्रसूनात्मनः स्वच्छन्दं रतिवल्लभो विजयते त्रैलोक्य-
धरः स्मरः ॥ ११ ॥ चेतोभुवश्चापवति प्रसङ्गे का वा

कथा मानुषलोकभाजाम् । हस्तुः पुरामन्यलिकेक्षणस्य
तथाविधं पौरुषमर्ममासीत् ॥ १२ ॥ जयति मनसिजः
सुल्लेकहेतुमिथुनकुलस्य चियोगिनां कठोरः । वपुषि
यदिपुपातवारणार्थं वहति वधूं शशिखण्डमण्डनोऽपि
॥ १३ ॥ न कठोरं न वा तीक्ष्णमायुधं पुण्यधन्वनः ।
तथपि जितमेवासीद्मुना भुवनत्रयम् ॥ १४ ॥ न
गम्यो मन्त्राणां न च भवति भैषज्यविषयो न चापि
प्रध्वलं व्रजति विधिधैः शान्तिकशतैः । भ्रमावेशादङ्गे
किमपि विदधद्भङ्गमसमं स्मरापस्मारोऽयं भ्रमयति
दृशं घूर्णयति च ॥ १५ ॥ प्रासादीयति वैश्ववादिगहनं
दीपीयति द्राक्कामः पर्यङ्गीयति भूतलं द्यवपि श्लक्ष्णो-
पधानीयति । कस्तूरीयति कर्दमः किमपरं यूनो रसा-
विष्टयोर्धनालौकिकतयोस्स घन्धमहिमा देवो नमस्यः
स्मरः ॥ १६ ॥ वाशेष्वारोऽय गुणान्विधाय चापं वियो-

अपवित्रताको पुतली नारीको देवकर विचारवान् पुरप भी
उसे कान्ता (सुन्दरी), कमलके समान नेत्रोंवाली, बड़े-बड़े
नितम्बोंवाली, मोटे-मोटे और उठे हुए स्तनोंवाली, कमलके
समान सुन्दर मुखवाली और सुन्दर भौंहोंवाली कहकर उसपर
मस्त होता है, प्रसन्न होता है, रीमता है और उसके गुण
यथानता है ॥ ७ ॥ केवल बालक और बृद्ध ही ऐसे बचे हुए हैं
जो कामदेवकी अपेक्षमें नहीं आते अन्वया इनके अतिरिक्त
सभसे कामदेवने पुटनीसे मसल दिया है ॥८॥ अनेक पीढ़ियोंसे
त्रिप्रयोंको काम प्रीड़ाका उपदेश देनेवाला, रोहिणीके पति
चन्द्रमारा लँगोटिया पार, फूलके बाणोंसे भगवान् शङ्करको भी
जात लेनेवाला और काम-श्रीदाके नाटकको आरम्भ करनेवाला
मृग्यार कामदेव ही सबसे अधिक जय प्राप्त करनेवाला
है ॥ ९ ॥ तीनों लोकोंमें कौन ऐसा माईका लाल है जिसे
कामदेवने पीड़ित न कर दिया हो! हम तो समझते हैं कि तीनों
लोकोंमें पति, कोई जात पाया है तो यह कामदेव ही है ॥ १० ॥
जब इन्द्रियोंको यशमें रचनेवाले महामायोंको भी श्रियोंकी
बौद्धी चितवन पायल कर देनी है और जब अपनी शिरियोंकी अमृत-
वर्षमें भगवान् शङ्करके नेत्रोंको टपटा करनेवाला चन्द्रमा भी सपको
ब्यापुत्र कर सकता है तब निर्भय होकर शिरियों परात लगने
वाला और तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध वीर कामदेव यदि हेमके
धनुषपर पूंजोंके बाण चङ्गार धातरी-धाममें विजय प्राप्त कर
ले रहा है तो आश्चर्य क्या है ! उमे तो तीनों लोकोंपर विजय
पानी ही पादि ॥ ११ ॥ जब त्रिपुरका नाश करनेवाले तथा

अनिके नेत्रवाले भगवान् शङ्करजीका बल भी धनुषभरी
कामदेवके सामने धाया ही गया तब साधारण मनुष्य
निस गिनतीमें हैं ॥ १२ ॥ जिसके बाणोंकी वर्षासे वचनेके लिये
चन्द्रमाको अपना भूयण बनानेवाले शङ्करजी भी अपनी पत्नीके
साथ ही निवास करते हैं, यह एक साथ रहनेवाले पति पत्नीको
मुप देनेवाला, वियोगियोंको दुःख देनेवाला और मनसे उलपन
होनेवाला कामदेव सचको जातला चला जा रहा है ॥ १३ ॥ फूलोंका
धनुष धारण करनेवाले कामदेवके अछ न तो कठोर ही है और
न बहुत तीसे ही, फिर भी आश्चर्य तो यह है कि उसने तीनों
लोक जीतकर अपनी मुट्टोंमें कर लिए हैं ॥ १४ ॥ जिसमें न
तो मन्त्र उड़ कर सकते हैं, न औषधियोंसे काम चल सकता है,
न शान्तिके उपायोंसे ही कुछ लाभ होता है वह एक विचित्र
(प्रेमका) रोग सारे शरीरमें सहसा फैलन उलपन करता हुआ,
स्मरण मात्रसे उलपन होनेवाले मिरगी रोगके समान शरीरमें
ऐसा आ घुसता है कि माया धूमने लगता है और शीतें चका
जाती हैं ॥ १५ ॥ जिस कामदेवकी टटि पदनेपर वैद्यपरीकी
उपद-न्यायद्ध घरती ही अटारियोंके समान आनन्द देनेवाली
बन जाती हो, घना धँघरा ही दीपकके समान प्रकाश दाता हो
जाता हो, घरती ही सुन्दर पल्लव बन जाती हो, पत्थरके
टुकड़े आयत्त ही सुन्दर तकिपुत्रा आनन्द देने लगते हैं,
यहाँतक कि कीचड़ भी कस्तूरीके समान सुहावनी लगनी
लगनी हो, यह महिमाशाली कामदेव सचमुच प्रथम
करने योग्य है ॥ १६ ॥ संसारके सय धनुषधारियोंमें यह

गिनीनयने । स्वयमतनुर्जगदेतज्जयति सुमाखो विचि-
त्रधानुष्कः ॥ १७ ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशाना अपि कामेन
निजिताः । इतरे तत्पराभूता इति किं चरितं महत् ॥ १८ ॥ ब्रह्मा वा मधुहापि वा पुररिपुर्यापि त्रिलोकी-
श्वरम्मन्या वायुपरे भयन्तु कृतिनस्तावस्तुतास्त-
र्षतः । यावत्पुष्पशरस्य लक्ष्यविपर्ययीभूता न हा तत्परं
स्वस्त्रीणामपि किङ्कराः किमु भवेत्तुल्यं बलं तादृशम् ॥
१९ ॥ भस्मीभूतशरीरोऽपि पुष्पधन्यापि वा भवात् ।
विश्वं व्याकुलयत्येव स एव परमेश्वरः ॥ २० ॥ याभि-
रनङ्गः साङ्गीकृतः स्त्रियोऽस्त्रीकृताश्च ता येन । यामा-
चरणप्रवणौ प्रणमत तौ कामिनीकामौ ॥ २१ ॥ वक्षः-
स्थलीयदनयामशरीरभागैः पुष्यन्ति यस्य विभुतां
पुरुषास्त्रयोऽपि । सोऽयं जगन्नितयजित्वरचापधारी
मारः परान्महरतीति न विस्मयाय ॥ २२ ॥ वयं वीरा

वयं वीरा इति गर्जन्तु तेऽनिशम् । ताञ्जयन्त्यवला
यस्य सङ्गात् स स्तौमि मन्मथम् ॥ २३ ॥ शतशो धन्यिनः
सन्तु धीरम्मन्या वतस्ततः । वयं त्येकं मृतुमः कामं
तादृशमपि यो जयी ॥ २४ ॥ शम्भुस्वयम्भुहरयो हरि-
शेक्षणां येनाक्रियन्त सततं गृहकर्मदासाः । वाचाम-
गोचरचरित्रविचित्रिताय तस्मै नमो भगवते कुसुमा-
युधाय ॥ २५ ॥ शिव शिव हि शिवेन पुष्पधन्वा प्रल-
यन्टेन किमित्यकारि भस्म । स हि पुनरुदितशङ्कलाय
लोके स तु मखिमन्महोपधैरसाध्यः ॥ २६ ॥ स एव-
स्त्रीणि जयति जगति कुसुमायुधः । हरतापि तनुं यस्य
शम्भुना न हतं यत्नम् ॥ २७ ॥ सन्त्यज्य देहमपि यो
निशिताम्शरीरं कृत्वाऽयलैकनिचयं स सहायधराम् ।
यो देवदानवमनुष्यसरीसुपादीन्सर्वान्विजित्य हृदि न
स सुमेपुरीढ्यः ॥ २८ ॥ सम्पद्मतरललभ्यामानन्यसा-

कोई निराला ही धनुषधारी है जो बिना शरीरका होकर
बाणोंपर गुण (डोरी) चढ़ाने वियोगिनी स्त्रियोंके नेत्रोंका
धनुषलेकर फूलोंके अश्रुतोंसे ही तीनों लोकोंको जीतता चला
जा रहा है ॥ १७ ॥ इस कामदेवने जब ब्रह्मा, विष्णु तथा
शिवजीको भी धृष्टा दिया है तब अन्य साधारण लोग
यदि उससे हार गए हों तो कौन यड़ी यात है ॥ १८ ॥
अपनेको त्रिलोदीश्वर माननेवाले ब्रह्मा, विष्णु तथा शङ्करजी जैसे
अथवा अन्य लोग तभीतक प्रसंसाके योग्य हैं जबतक वे
कामदेवके आलेख नहीं बना जाते हैं क्योंकि कामदेवकी चपेटमें
आ जानेपर तो वे सबके सब अपनी अपनी पत्नियोंके दास
बन जाते हैं ॥ १९ ॥ शङ्करजीके तीसरे नेत्रसे भस्म ही
जानेपर और बैरल फूलोंके धनुषमें काम लेनेपर भी जो सारे
संसारको व्याकुल कर देता है, वही (कामदेव ही) वास्तवमें
सत्यसे बड़ा परमेश्वर है ॥ २० ॥ हे मनुष्यो ! जिन कामिनियोंने
बिना शरीरवाले कामदेवको भी सब अहंसे पूर्ण कर दिया है और
जिस कामदेवने स्त्रियोंकी ही अपना अस्त्र बना रखा है इन दोनों
बलदा आचरण करनेवाली कामिनी और कामको सिर मुकावर
प्रणाम करो ॥ २१ ॥ ब्रह्मा, विष्णु और शङ्कर ये तीनों भी
जब अपनी-अपनी पत्नियोंको प्रमसाः अपने मुख, हृदय
और गरीरके बाएँ भागमें बसाकर कामदेवका लोहा मान
रहे हैं तब वह तीनों लोपोंको जीतनेके लिये धनुष धारण
करनेवाला कामदेव यदि अन्य लोगोंको भी चपेटे बाल रहा हो
तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं ॥ २२ ॥ जो लोग यह बहक

अपनी डींग हाँका करते हैं कि 'हम वीर हैं, हम वीर हैं'
उन्हें भी कामिनी लक्ष्म भरमें जीत लेती है । इसका श्रेय मैं
कामदेवको ही देता हूँ क्योंकि उसीके सहाये तो वह सबको जीत
पाती है ॥ २३ ॥ ऐसे सैकड़ों धनुषधारी हो सकते हैं जो अपने
आपको बड़ा धीर मानते हों किन्तु हम तो उस कामदेवका ही
लोहा मानते हैं जो उन धनुषधारियोंको भी जीत लेता है ॥ २४ ॥
बाणोंकी पहुँचसे परे और अजुत चरित्रवाले उस फूलोंके अक्ष
धारण करनेवाले भगवान् कामदेवको प्रणाम है जिसने शङ्कर,
ब्रह्मा और विष्णुको भी अपनी हरिणके नेत्रोंके समान शॉल्लोवाली
पत्नियोंके धरोंमें काम करनेवाला चारु बना दिया है ॥ २५ ॥
शिव ! शिव ! भला वताइए तो कि प्रलयकालके समय ताचने
वाले शिवने फूलोंका धनुष धारण करनेवाले कामदेवको भस्म
करके किया क्या, क्योंकि वह तो अय मण्डि, मन्त्र और श्रापधि,
सबके प्रभावसे निक्कलकर संसारको ठगनेके लिये फिर संसारमें
आ घमका है ॥ २६ ॥ जिसका शरीर नष्ट करके भी भगवान्
शङ्कर उसका बल नहीं नष्ट कर सके वह कामदेव अपने फूलोंके
अक्षसे बिना किसी सहायनाके ही अकेला तीनों लोकोंको
जीतता रहता है ॥ २७ ॥ जो अपनी देहका त्याग करके
भी अपने सुकीले बाणों तथा धसन्त आदिकी सहायतासे देवना
राजस, मनुष्य तथा सर्व आदि जीवोंको जीत चुका है, उस
फूलोंका धनुष धारण करनेवाले कामदेवका हम अपने हृदयमें
आवर करते हैं ॥ २८ ॥ गम्भीर स्वभाववाले व्यक्तियोंको भी
न मिल सकेवाली सम्पत्तिका जो स्वामी है, असाधारण

मान्यबहलवर्षान्धिः । पुष्पातु चित्तयोनेरघटितघटना-
पटीयसी विभ्रुता ॥ २६ ॥ स्तोकास्त्रसाधनवता भवता
मनोज स्वैर जगज्जितमनङ्गतयापि सर्वम् । स्याद्येद्भ-
वायव्यशूरः प्रतिस्त्रधगात्रः कुर्यास्ततो यदपि कर्म
क्रियत्र जाने ॥ ३० ॥ स्वाभाक्षं यत सर्वतोऽप्रतिहतां
सञ्चार्य धन्यो यदि त्रैलोक्ये ननु केवले मनसिजो देवः
समुद्रीयते । अन्ये त्वस्य शूरप्रतापभयतः सम्पीडिताः
प्राणिनः स्वस्वस्त्रीः पुरतो विधाय रूपणा कुर्वन्ति
वीरा अपि ॥ ३१ ॥ हारो जलार्द्रवसनं नलिनीदलानि
मालेयसीकरमुचस्तुहिनांशुभासः । यस्येन्धनानि सर-
सानि च चन्दनानि निर्वाणमेप्यति कथं स मनोभवा-
ग्निः ॥ ३२ ॥ हृदयच्छणकुटीरे दीप्यमाने स्मरान्नायुञ्जित-
मनुचितं वा वेत्ति कः पण्डितोऽपि । किमु कुवलय-
नेत्राः सन्ति नो नाकनार्यैस्त्रिदशपतिरहृदयां तापसां
यस्तिपेवे ॥ ३३ ॥

लोगोंमें रहनेवाले गर्वका जो भयङ्कर है और जिसका जन्म मनसे
हुआ है, उस कामदेवकी वह शक्ति थाप सयको पुष्ट करे
जिसकी सहायतासे वह यशो-श्रेष्ठ अनहोनी बातें कर डालता है
॥ २६ ॥ हे मनसे उत्पन्न होनेवाले कामदेव । जब तुम थोड़ेसे
घरत्र लेकर और शत्रु म होनेपर भी केवल अपनी इच्छासे ही
सम्पूर्ण जगत्को जीत लेते हो तब यदि तुम शरीरवाले होते
और तुम्हारे पास बहुतसे बाण होते तब तो तुम न जाने क्या-क्या
कर डालते ॥ ३० ॥ तीनों लोकोंमें यदि कोई अठिग आशा
देनेवाला है तो वह कामदेव ही है क्योंकि अत्यन्त मज्जितने
भी धीरे हैं वे सब कामदेवके बाणके भयसे ध्याकुल होकर
अपनी-अपनी स्त्रियोंके आगे कायर बने बैठे हैं ॥ ३१ ॥
जब हार, जलसे भीगा हुआ वस्त्र, कमलिनीके पत्ते, उखड़ी
फुहारें ढोढ़नेवाली चन्द्रमाके किरणकी धौंढनी और गीला
चन्दन भी मनसे उत्पन्न होनेवाली (कामगी) धनिके लिये
हृद्यन बने हुए हैं तब क्या यह अग्नि किसीके पुष्पाटु पुष्क
सकती है ॥ ३२ ॥ जब यह हृदयरूपी कोपद्मी कामदेवरूपी
आगसे जलने लगती है तब विचारवान् लोग भी उचित-
प्रयुक्तिका विचार छोड़ बैठते हैं । पताइए, क्या देवलोकमें
कमलके समान नेत्रोंवाली देवाग्रनाएँ कम थीं कि स्वर्गके
स्वामी इन्द्रने तपस्वीकी पत्नी भद्रव्याके साथ सम्भोग
किया ॥ ३३ ॥

शृङ्गारस्य आलम्बनविभावाः—नायकप्रशंसा
दाने शौचै कथित्वे वा पारिडल्ये साधुतार्जने ।
सुयशः प्रथितं येषां जन्मवन्तस्त एव कौ ॥ १ ॥ मदनः
स्त्रीणां करुणो दीनानां दृष्टभृत्तथा द्विपताम् । धर्मः
साक्षान्महतां विभाति यः कोऽपि धन्योऽस्तौ ॥ २ ॥
यद्यपि लावण्यकलाधरं भृतं मार्दवेन गात्रं स्यात् ।
तदपि रिपूणां विजये पविष्वत्कठिना भवन्ति ते केऽपि
॥३॥ लज्जा कृतापराधेव कुलीनानां मृगीदृशाम् । येषु
दृष्टेषु निर्याति त एव युवनायकाः ॥ ४ ॥ यज्रादपि
कठोराणि मृद्नि कुसुमादपि । लोकोत्तराणां चैतांसि
को नु विश्रामर्हति ॥ ५ ॥ वयं कृतार्था विभ-
वप्रपूर्णा मन्यन्त एवान्तरिति प्रभूताः । तथा भवन्तो
ऽपि पुनर्नता ये गीताः परैरेव त एव केचित् ॥ ६ ॥
यसनं सुदृशं मानो मानिनां दीनताथिनाम् । येषु दृष्टेषु
लोचैरस्त एव भुवि भायुकाः ॥ ७ ॥ स्त्रीणां नितम्बाद्

शृङ्गाररसके आलम्बन विभावः नायक-प्रशंसा
पृथ्वीपर उन्हीका जन्म सफल है जिन्होंने दान, वीरता,
कवित्व, विद्वत्ता तथा सज्जनतामें नाम कमाया हो
॥ १ ॥ वह व्यक्ति धन्य है जो स्त्रियोंको कामदेवके समान,
दीनोंको रूपाके समान, शत्रुओंको दृढधारीके समान और
महायुरोंको साक्षात् धर्मके समान प्रतीत होता है ॥ २ ॥ वे
कोई विचित्र ही पुरुष होते हैं जिनका शरीर यद्यपि लावण्यकी
कलासे भरा हुआ और कोमलतासे पूर्ण होता है किन्तु जो शत्रुओंपर
विजय पाते समग्र यज्ञके समान कठोर हो जाते हैं ॥ ३ ॥
जिन्हें देख लेनेपर हरिणोंके नेत्रोंके समान धौंढीवाली कुलीन
महिलाओंके मुखपरसे अपराधीकी भाँति लज्जा भाग जाती है
वे ही वास्तवमें युवा नायक हैं ॥ ४ ॥ ससामें निराले उन
महापुरुषोंके मनकी भवनाओंको कौन जान सकता है जो वज्रसे
भी कठोर और फूलसे भी अधिक कोमल हो जाती हैं ॥ ५ ॥
ऐसे बहुतसे लोग हैं जो अपनेको समझते हैं कि 'हम सब
कुछ कर चुके हैं, हमारे पास सब प्रकारकी सम्पत्ति है और
आप भी वैसे ही हैं' किन्तु ऐसे लोग इने गिने होते हैं जो सब
बैभव पाकर भी नष्ट होते हैं और जिनकी प्रशंसा शत्रु भी
करते हैं ॥ ६ ॥ जिन्हें देखकर सुन्यनी युवतियोंके चरित्र झीले
पड़ जाते हैं, अभिमानियोंका गुन चूर चूर हो जाता है और
कहनालोंकी दीनता दूर हो जाती है, वे ही वास्तवमें पृथ्वीपर
भायुक बहलानेके योग्य हैं ॥ ७ ॥ जिन्हें देखते ही स्त्रियोंके

सनं शस्त्रञ्च द्विपतां करात् । पततो येषु दृष्टेषु त एव
छतिनो नराः ॥ ८ ॥

नायम्भेदाः

विनीतः—यद्ब्रह्मादिभिर्गुणसितवन्द्यपादे विद्या-
तपोनतनिधौ तपसां वरिष्ठे । देवात्कृतस्त्वयि मया
विनयापचारस्तत्र प्रसीद् भगवन्नयमञ्जलिस्ते ॥ १ ॥

प्रियदर्शनः—राम राम नयनाभिरामतामाशयस्य
सदृशो सद्ब्रह्मन् । अमृतफर्यगुणरामणीयकः सर्वथैव
हृदयङ्गमोऽसि मे ॥ २ ॥ त्यागी—त्वंच कर्णः शिवि-
मसिं जीवं जीमूतवाहनः । दधीं दधींचिरस्थीनि नास्त्य-
देयं महात्मनाम् ॥ ३ ॥ दक्षः—सूर्जर्ज्ज्वमहद्व्रणनिर्मि-
तमिव प्रादुर्भवत्यप्रतो रामस्य त्रिपुरान्तकृद्विषदां
तेजोभिरिदं धनुः । शूराडारः कलमेन यद्दक्षले वत्सेन
दौर्दण्डकस्तस्मिन्नाहित एव गजितगुणं कृष्टं च भ्रंशं

नितग्नेये वरत्र और शत्रुओंके हाथसे शस्त्र खिसक पड़ते हैं वे
ही मनुष्य वास्तवमें भाग्यशाली हैं ॥ ८ ॥

नायकोंके भेद

नम्र : परशुरामने राम कहते हैं—जिसके बन्दनीय वरणोंकी
उपासना प्रद्वज्ञानी लोग करते हैं, जो विद्या, तप और अतके निधान
हैं और जो तपस्विधर्म श्रेष्ठतम हैं, ऐसे आप महाशूरके प्रति मेरे
जो ईश्वरगर्भमे विद्याई और अस्त्रिनय किया है, उमे हे भगवन्! आप
भना करें, मैं आपके सम्मुख अत्यन्त नम्रतामे हाथ जोड़ता हूँ
॥१॥ प्रियदर्शन या मधुर : हे राम ! मेरी माननाके अनुदल
सुन्दरता धारण्य किये हुए, अपने अद्वितीय गुणकी सुन्दरता
लेकर आप पूर्ण रूपमे मेरे हृदयमें निराममान हैं ॥२॥ त्यागी :
कर्णने अपनी गाल (कनच) दे दी, शिविने (कनूतकी रक्षाके
लिये) अपनी मांस दे दिया, जीमूतगहनने अपने प्राण दे
दाले और दधीचिने अपनी हड्डी दे डाली क्योंकि महात्मा लोग
बुद्ध भी देनेमें सङ्कोच नहीं करते ॥ ३ ॥ दक्ष : हाथीके
पथ्यांशे दूँदोंके समान गोभा देनेवाली रामकी दोनों
सुजाधोंपर जब प्रशुरामुर शिवजीका यह धनुष रक्ता गया
जो देवताओंके तजसे पुष्ट था तथा अत्यन्त प्रमाशाली
सदृशो वज्रोमि निर्मित जान पड़ता था तब ऐसा प्रतीत हुआ
मानो यह उनके हाथपर रक्तानरक्ता पण्यभरमें गूँतकर
धीर विषयकर अपने आप ही टूट गयाहो ॥ ४ ॥ प्रियवादी :
रामपञ्चमी परशुरामसे कहते हैं—जमदग्नि आपके पिता
हैं, भगवान् महादेवजी आपके गुरु हैं, आपका परामम वाणीमे

च तत् ॥ ४ ॥ प्रियवदः—उपत्तिर्जमदग्निस्तस्व भगवा-
न्देयः पिताकी सुवर्णीयं यन्तु नतद्विरा पथि न तु व्यक्तं
हित्कर्मभिः । त्यागः सतममुद्रमुद्रितमहीनिर्ज्यांज-
दानावधिः सत्यब्रह्मतपोनिधैर्भगवतः किं वा न लोको-
त्तरम् ॥ ५ ॥ रक्तनीकः—स्नेहं दयां तथा सौख्यं यदि
वा जानकीमपि । आराधनाय लोकस्य मुञ्चतो नास्ति
मे व्यथा ॥ ६ ॥ शुचि—का त्वं शुभे कस्य परिग्रहो वा
किं वा मद्भ्यागममारणं ते । आचक्ष्व मत्या वशिष्ठा
रघूणां मनः परस्त्रीविमुक्तप्रवृत्तिः ॥ ७ ॥ वामी—वाहो-
र्घलं न विदितं न च कार्मुकस्य त्रैयम्बकस्य तनिमा
तत एव दोषः । तच्चापलं परशुराम मम क्षमस्य
डिम्भस्य दुर्विलसितानि मुदे शुरुणाम् ॥८॥ रूढवंशः—
ये चत्वारो दिनकरकुलजन्मन्तानमल्लोमालाम्भान-
स्तयकमधुपा जग्निरे राजपुजाः । रामस्तेयामचरमभव-

नहीं कहा जा सकता, वरन् आपके कर्मोंसे ही प्रकट होता है
क्योंकि आप जैसे प्रतापी शूरमे सारतों समुद्रोंले विरो हुई पृथ्वी
तत्काल दानमें दे दी, इसे त्यागकी पराकाष्ठा कहना चाहिये।
सचमुच सत्य, ब्रह्मज्ञान और तपकी निधिवाले आप जैसे
भगवान्की कीन-सी बातें ससारमें निराली नहीं होतीं ॥ ५ ॥
रक्तलोक या लोक-सेवक : अपने बहनोई श्वरी ऋषिके यज्ञमें
पहुँचे हुए वशिष्ठजीका सन्देश पाकर उनके उत्तरमें रामने उन्हें
कहालाया—‘यदि प्रजाके सुखके लिये मुझे स्नेह, दया, सुख
यहाँतक कि जानकीका भी परित्याग करना पड़े तो मुझे कोई
व्यथा नहीं होगी ॥६॥ पवित्र : जन कुशने अपनी राजधानी
अयोध्यामे हटाकर कुशावतीमें बना ली थी उस समय
अयोध्याकी राज्य लक्ष्मीने कुशके अन्त पुरमें स्त्रीका रूप बनाकर
प्रवेश किया । उसे देखकर पवित्र मनवाले कुशने कहा—‘ह
शुभे ! तुम कौन हो ? किसकी स्त्री हो और तुम मेरे पास
क्यों आई हो ? तुम यह समझकर मुँह रोलना कि रघुवशी
यदे संयमी होते हैं और वे कभी परस्त्रीकी और आँत नहीं
उठाते ॥ ७ ॥ वामी : श्रीरामपञ्चमी परशुरामसे कहते हैं—
‘हे परशुरामजी ! मैं न तो आपकी सुजायोंका बल जानता था
और न महादेवजीके धनुषकी कोमलता जानता था इसीलिये
मुझमे यह भूल हो गई । कृपया मेरी डिठाई चना कीजिए
क्योंकि यदि बालक बुद्ध नदरदयन करें भी तो बड़े लोग उससे
प्रसन्न ही होते हैं ॥ ८ ॥ सूर्यकुलकी अश्रिय-सन्तानरूपी
मल्लिकाका मालाके रिले हुए गुच्छेके भीरोंके रूपमें जो चार

स्ताडकाकालरात्रियत्युयोऽयं सुचरितकथाकन्दलीमूलकन्दः ॥ ६ ॥ स्थिरः—प्रायश्चित्तं चरिष्यामि पूज्यानां चो व्यतिक्रमात् । न त्वेव दूषयिष्यामि शत्रुप्रहमहा व्रतम् ॥ १० ॥ प्रारभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचेः प्रारभ्य विघ्नविहता धिरमन्ति मध्याः । विघ्नैः पुनः पुनरपि प्रतिहन्त्यमानाः प्रारब्धमुत्तमजना न परित्यजन्ति ॥ ११ ॥ युवा—महोद्गतां वत्सतरः स्पृशन्वियद्विपेन्द्रभावं कलभः श्रयन्निव । रघुः क्रमाद्यौवनभिन्नशैशव्यः पुषोप गाम्भीर्यमनाहूरं वधुः ॥ १२ ॥ बुद्धिमन्वितः—श्रुतस्य यायाद्वमन्तमर्भकस्तथा परेषां युधि चेति पाथिवः । अवेद्य धातोर्गमनार्थमर्थविच्चकार नास्त्रा रघुमात्मसम्भवम् ॥ १३ ॥ उत्साहसमन्वितः—स्थलौकलक्ष्मीकचर्कपर्णाय दोर्मण्डलं घल्गति यस्य चण्डम् । इहेव तच्छोणितपानकेलिमहाय कुर्वन्तु शरा

ममैते ॥ १४ ॥ स्मृतिसमन्वितः—कार्यां सैकतलीनहंसमिथुना स्रोतोवहा मालिनी पादास्तामभितो निपण्णहरिणा गौरिगुरोः पावनाः । शाखालम्बितवल्कलस्य च तरोर्निर्मातुमिच्छाम्यथः शृङ्गे कृष्णमृगस्य धामनयनं करङ्कयमानां मृगीम् ॥ १५ ॥ प्रज्ञावान्—इत्यर्थ्यपात्रावुमितव्ययस्य रघोखद्वारामपि गां निशम्य । स्वाधोपपत्तिं प्रति दुर्वलाशस्तमित्यवोचद्वरतन्तुशिष्यः ॥ १६ ॥ कलावान्—स स्वयं प्रहतपुष्करः कृती लोलमाल्यवलयो ह्यस्मनः । नक्तंकरमि न याति लङ्घिनीः पार्श्ववर्त्तिषु गुरुष्वलङ्कयत् ॥ १७ ॥ मानसमन्वितः—ततः प्रहस्यापभयः पुरन्दरं पुनर्वभापे तुरगस्य रक्षिता । गृह्णाण शत्रुं यदि सर्गं पप ते न खल्वनिर्जित्य रघुं कृती भवान् ॥ १८ ॥ शूरः स पञ्चमुक्त्वा मघवन्तमुन्मुखः करिष्यमाणः सशरं शरासनम् । अतिष्ठदालीढविशेष-

रानयुत्र (राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न) हुए हैं उनमें राम सर्वप्रथम है । वे ताडकास्त्री कालरात्रिके प्रातःकाल हैं और संसारेके श्रेष्ठ मनुष्योंकी कथारूपी लताके स्वादिष्ट कन्द हैं ॥ ११ ॥ स्थिरः यदि आप जैसे पूज्यांका धनादू करनेका प्रायश्चित्त मैं नहीं करूँगा तो शस्त्र ग्रहण करनेके महाव्रतको कलङ्क लगाऊँगा ॥ १० ॥ बाधा पड़नेके भयसे नीच लोग कोई काम प्रारम्भ ही नहीं करते, जो दुर्लभलु लोग होते हैं वे प्रारम्भ ही कर देते हैं किन्तु बाधा पड़नेपर रोक देते हैं किन्तु उत्तम मनुष्य वे ही हैं जो बार-बार बाधाएँ पड़नेपर भी प्रारम्भ किए हुए कामको कभी पूरा किए बिना नहीं छोड़ते ॥ ११ ॥ युवा : जैसे गायका बड़ड़ा बड़ा होकर सौँड़े हो जाता है और हाथीका बच्चा बड़कर गजराज हो जाता है वैसे ही जय रघुने अपना बचपन त्रिताकर युवावस्थामें पैर रमलात्व उनका शरीर यौवनसे और भी लिल उठा ॥ १२ ॥ बुद्धिसे युक्त : शत्रुओंके ठीक अर्थ पहचाननेवाले राजाने 'दिवि' धातुका 'गमन' अर्थ समझकर अपने पुत्रका नाम इसलिये रघु रखा कि वह सम्पूर्ण शास्त्रोंकी भी पार कर लेगा और युद्ध-क्षेत्रमें शत्रुओंके व्यूहोंको तोड़कर उनके भी पार जायगा ॥ १३ ॥ उत्साहसे युक्त : देवलोकपर अतिकार किए हुए तारकके दरसे जब देवता लोग देवलोकमें जानेसे डरने लगे तब देवताओंकी सेनाया नेगुव करते हुए कुमार कार्तिकेयने कहा—'हे देवताओ ! मैं तो चाहता हूँ कि जिस तारक असुरकी युवाएँ मल-पर्वक लक्ष्मीके बाल पञ्चदर उनकी दुर्दशा करते हुए उन्हें मीनयनेके लिये मचली

रहती हैं, उसका लहू पीनेका आनन्द मेरे बाणोंकी मरसे यहींपर मिल जाय' ॥ १४ ॥ स्मृतिमान् : राजा दुष्यन्त अपनी प्रिया शकुन्तलाका मित्र बनाने लगे हुए पुराने दरयोकी स्मरण करके मादण्यसे कहते हैं—'सुनो ! यहाँ अभी मालिनी नदी बनानी है जिसकी रेतमें हंसके जाँड़े बैठे हों, उसके दोनों ओर हिमालयकी वह तलहटी दिलानी है जहाँ हरिण बैठे हुए हों, इसीके साथ मैं एक ऐसा वृक्ष भी बनाना चाहता हूँ जिसपर बरकलके वस्त्र टेंगे हुए हों और जिसके नीचे एक हरिणी काले हरिणके संगसे रगड़कर अपनी बाँईं धौल खुजला रही हो ॥ १५ ॥ प्रज्ञावान् : कोऽने ध्यानेसे रघुकी उदार बातें सुनीं पर देता तो उनके हाथमें केवल मिट्टीका पात्र बचा था अतः उन्होंने इसीसे समझ लिया कि यहाँ काम नहीं बनेगा और वे उनसे बोले ॥ १६ ॥ कलावान् : राजा अतिवर्ण नर्तकोंके नाचते समय जब स्वयं शृङ्ग वजाने लगता था, तब उसके गलेकी माला हिल उठती थी और उस समय वह ऐसा सुन्दर लगता था कि नर्तकियाँ सुत्र-युत्र रोककर नाचना भी भूल जाती थीं । इसका फल यह होता था कि उन्हें नाचना सितानेवाले उनके जो गुरु वहाँ बैठे रहते थे उनके आगे उन नर्तकियोंको लजित होना पड़ता था ॥ १७ ॥ मानसमन्वितः : जय रघुके ललकारनेपर भी इन्द्रने दिल्लीपका धोड़ा हुआ धोड़ा नहीं लौटाया वरन् युद्धके लिये सुनीती दी तब अथके रचक रघुने निदर होकर हँसते हुए कहा—'यदि आपने यही निरचय किया हो तो शस्त्र उठाएँ और युद्ध कीजिये, रघुकी जीते बिना आप धोड़ा नहीं ले

शोभिना वपुःप्रकर्षेण विडम्बितेश्वरः ॥ १६ ॥ दृढः—
 क्षत्रात्किल प्रायत इत्युद्भूतः क्षत्रस्य शब्दो भुयनेप हृद्भः।
 राज्येन किं तद्विपर्ययवृत्तेः प्राणैरुपक्रीड्यमानसैर्वा
 ॥ २० ॥ तेजस्वी—न प्रहर्तुमलमस्मि निर्दयं विप्र इत्य-
 भिमभवत्यपि त्वयि। शंस किं गतिमनेन पत्त्रिणा हस्मि
 लोकमुत ते मखाजितम् ॥ २१ ॥ शश्वत्तुः—कामं
 कर्णान्तविश्रान्ते विश्राले तस्य लोचने। चक्षुष्मता तु
 शान्त्रेण सूक्ष्मकार्यार्थदर्शिना ॥ २२ ॥ धार्मिकः—भया-
 नपीदं परवानवैति महान्दि यत्नस्तव देवदारौ। स्थातुं
 नियोक्तुर्नहि शस्यमग्रे विनाश्रय रश्यं स्वयमज्जतेन ॥ २३ ॥

चत्वारो नायकाः

धीरललितः—राज्यं निजितशत्रु योग्यसच्चिवे
 न्यस्तः समस्तो भरः सम्यग्पालनलालिताः प्रशामि-

ताशेषोपसर्गाः प्रजाः। प्रद्योतस्य सुता वसन्तसमय-
 स्त्यं चेति नाज्जा धृतिं कामः काममुपैत्यं मम पुन-
 र्मन्ये महानुत्सवः ॥ १ ॥ धीरशान्तः—तन उद्यमिरेरिगैरू
 एव स्फुरितगुण्युतिमुन्दरः कलावान्। इह जगति
 महोत्सवस्य हेतुनयनयतामुदिष्याय बालचन्द्रः ॥ २ ॥
 धीरोदात्तः—आहतस्याभिपेकाय विस्फुट्य वनाय च।
 न मया लक्षितस्तस्य स्वल्पोऽप्याकारविभ्रमः ॥ ३ ॥
 शिरामुखैः स्यन्दत एव रक्तमद्यापि देहे मम मांस-
 मस्ति। वृत्तिं न पश्यामि तवैव तावत्किं भ्रूणारस्यं
 विरतो गरुमन् ॥ ४ ॥ स्वसुगुणिरभिलाषः पिचमे
 लोकहेतोः प्रतिदिनमथवा ते वृत्तिरेधंविधैव। अनुभ-
 वति हि भूर्भा पादपस्तीक्षणमुष्णं श्रमयति परित्तापं
 द्याययोपाश्रितानाम् ॥ ५ ॥ धीरोदतः—किं ब्रूथ रे
 व्योमचरा महासुराः स्मरारिसूनुप्रतिपद्यचितिनः।

जा सक्ते' ॥ १२ ॥ शूरः यद्द कदकर रघुने धनुषपर बाण
 चढ़ाया और पैतरा साधकर वे इन्द्रकी ओर ऊपर मुँह करके खड़े
 हो गए। उस समय वे ऐसे लग रहे थे मानो इन्द्रसे बुद्ध करनेके
 लिये स्वयं शङ्कर भगवान् आ बडे हों ॥ ११ ॥ दृढः जब सिंहने
 वशिष्ठजीकी गायपर आक्रमण किया तब दिलीपने उस गायकी
 रचा करनेके लिये उसमे कहा—'हे सिंह! 'क्षत्रिय' शब्दका अर्थ
 ही 'दूसरेको नष्ट होनेमे बचानेवाला' है। यदि मैंने यह काम नहीं
 किया तो मेरा राज्य करना ही किम कामका और अपयश लेकर
 जाँते रहना ही किस कामका' ॥ २० ॥ तेजस्वीः रामने परशुरामसे
 कहा—'यद्यपि आपने हमारा अपमान किया है पर आप वाहाण
 हैं हमलिये मैं निर्दय होकर आपको मारूँगा नहीं। पर यह
 बताइए कि थय इस बाणसे मैं आपकी गति रोहूँ या आपका
 उन दिव्य लोकमें पहुँचना रोहूँ जो आपने यज्ञ करके जात
 लिए हैं' ॥ २१ ॥ शास्त्रचक्षुः यद्यपि रघुके नेत्र कानांतरक फँले
 हुए और बहुत बड़े-बड़े थे पर उन्हें सबसे अधिक भरोसा अपने
 उस शास्त्रचक्षुपर था जिससे वे सूक्ष्ममे सूक्ष्म बात भी समझ
 जाते थे ॥ २२ ॥ धार्मिकः अपने गुरुकी गायकी रचा करनेके
 लिये दिलीपने सिंहसे कहा—'हे भाई! तुम भी दूसरेके सेवक
 हो और बन्दी लगानमे देवदारुकी रचा कर रहे हो। तुम यह जानते
 होगे कि जिसकी रक्षाका भार सेवकको मिलता है यदि वह नष्ट
 हो जाय और सेवक जीता रह जाय तो वह अपने स्वामीके आगे
 क्या मुँह लेकर जायगा' ॥ २३ ॥

चार प्रकारके नायक

धीरललितः उद्यमके समर्थमें कहा गया है—
 'उत्सने शत्रुओंको जीतकर अपनी भली प्रकार लाजित
 और पालित प्रजाके दुःख दूर करके राज्यका सब भार
 योग्य मन्त्रियोंको सौंप दिया है, अथ वे प्रद्योतकी पुत्री
 वासवदासको साथ लेकर वसन्त समयमें आनन्द लें। मैं
 इसीको अपना सबसे बड़ा उत्सव मानता हूँ' ॥ १ ॥
 धीरशान्तः उद्याचलके गुण और प्रकाशमे सुन्दर तथा
 कलावान् एक ही बालचन्द्र (बुद्ध) उद्यम हुआ है जो संसारमें
 श्रौंभवालोंके लिये सबसे बड़े महोत्सवका कारण है ॥ २ ॥
 धीरोदात्तः रामको जब अभिपेकके लिये निमन्त्रित किया
 गया और वन जानेकी आज्ञा दी गई तब भी उनके मुखपर
 किसी प्रकारके हर्ष या शोककी तनिकसी भी रेशा नहीं दिखाई
 पड़ी ॥ ३ ॥ जीमूतवाहन गरुडसे कहते हैं 'हे गरुड! अभी भी
 मेरी नसांसे रक्त बहा रहा है, मेरे शरीरमें मांस भी बचा हुआ
 है और मैं यह भी देख रहा हूँ कि तुम्हारा पेट नहीं भरा, तब
 वताओ तुम स्वाते-खाते रक्त क्यों गए' ॥ ४ ॥ एक वैतालिक
 दुष्पुन्यका बर्णन करता है—'अपने मुखको इच्छा छोड़कर आप
 प्रजाको भलाईमें लगे रहते है या यह कहना चाहिए कि इस
 प्रकार आप अपना धर्म ही पाल रहे हैं क्योंकि वृद्ध अपने सिरपर
 तो कढ़ी धूप सह लेता है पर अपने तले बैठे हुए जीवोंको छाया
 ही देता रहना है' ॥ ५ ॥ धीरोदतः • तारकानु देवताओंकी

मदीयवाणप्रणवेदना हि साऽधुना कथं विस्मृतिगोचरीकृता ॥ ६ ॥

शृङ्गारनायकः

दक्षिणः—प्रसीदेत्यालोके किमपि किमपि प्रेमगुरवो रतिक्रीडाः कोऽपि प्रतिदिनमपूर्वोऽस्य विनयः । सविश्रम्भः कश्चित्कथयति च किञ्चित्परिजनो न चाहं प्रत्येमि प्रियसखि किमप्यस्य विकृतिम् ॥ १ ॥ शठः—शठोऽन्यस्याः काञ्चीमणिरखितमाकर्ण्य सहसा यदाश्लिष्यन्नेव प्रशिथिलभुजग्रन्थिरभवः । तदेतत्स्वाचक्षे घृतमधुमयं त्वद्दृष्टवचोविपेक्षाघूर्णन्ती किमपि न सखी मे गणयति ॥ २ ॥ घृष्टः—लान्तालवम ललाटपट्टमभितः फेयूरसुद्रा गले वक्त्रे कज्जलकालिमा नयनयोस्ताम्बूलरागोऽपरः । दृष्ट्वा कोपविधायिमण्डनमिदं प्रातश्चिरं प्रेयसो लीलातामरसोदरे मृगदशः श्वासाः समाप्तिं गताः ॥ ३ ॥ अत्रुकूलः—अद्वैतं सुखदुःखयोरनुगतं सर्वास्वपस्थासु यद्विधामो हृदयस्य यत्र जरसा यस्मिन्नहारायौ

ललकारकर बहता है—‘अरे कार्तिकेयकी यदाई करनेवाले तथा आकाशचारी देवताओ ! क्या आज तुम्हें मेरे बाणोंके घावोंकी पीड़ा भूल गई है जो इस प्रकार बटवक कर रहे हो ॥ ६ ॥

शृङ्गार रसके नायक

दक्षिण नायक : उसे देखकर बड़े-बड़े प्रेमी लोग कुछ न कुछ आनन्द ही पाते हैं, वह प्रतिदिन कोई न कोई नई रतिक्रीड़ा करता है, उसका विनय भी कुछ निराला ही है, उसके परिजन भी अत्यन्त विश्वासके साथ उससे बातचीत करते रहते हैं । हे सखी ! मैं उसमें कोई भी तो दोष नहीं पाती ॥ १ ॥ **शठ नायक :** मुझे अपनी भुजाओंमें लिपटाए हुए जब शठनायकने किसी दूसरी नायिकाकी तगड़ीकी मणियोंकी खनखनाहट सहसा सुनी तो अपने हाथ ढीले कर दिए, उस समय जब मैंने पूछा कि ‘यह क्या?’ तब उसने बड़ी मीठी-मीठी धाँतें बनाकर मुझे बहला दिया । मैं विपकी आँखोंसे उसे घूरती भी रही फिर भी उसने मेरी तनिक भी परवाह न की और बात बनाकर चलाता गया ॥२॥ **घृष्ट (डीठ) नायक :** ‘उसके माथेपर लागका चिह्न बना हुआ था, गलेमें सुजबन्दकी धाप पड़ी हुई थी, सोटोंपर काजलकी कालिमा थी, दोनों नेत्रोंमें पानकी खालोंकी धाप थी’ इस प्रकार अपने प्रियके इस मोघ उत्पन्न करनेवाले शृङ्गारको प्रातःकाल देरतक देखकर उस मृगनपनीके श्वास लीला-कमलमें ही समाप्त हो गए ॥ ३ ॥

रसः । कालेनावरणात्प्रायत्परिणते यत्स्नेहसारे स्थितं भद्रं तस्य सुमानुपस्य कथमप्येकं हि तत्प्राप्यते ॥ ४ ॥ **प्रतिनायकः—**इत्युक्तवन्तमवदत्त्रिपुरारिपुत्रं दैत्यः क्रुधोद्यमधरं किल निर्विभिय । युद्धार्थमुद्रदभुजावल्दपितोऽसि वाणान्तहस्व मम सादितशत्रुघृष्टान् ॥५॥

सात्त्विकनायकगुणः

घृष्टा—उत्तालताडकोत्पातदर्शनेऽप्यप्रकम्पितः । नियुक्तस्तत्प्रमाथाय ह्यैरेण विचिकित्सति ॥१॥ **स्पर्धा—**एतां पश्य पुरःस्थलीमिह किल क्रीडाकिरातो हरः कोदद्वेने किराटिना सरभसं चूडान्तरे ताडितः । इत्याकर्ण्य कथाद्भुतं हिमनिधावद्रौ सुभद्रापतेर्मन्दं मन्दमकारि येन निजयोर्दोर्द्वैदयोर्मण्डलम् ॥ २ ॥ **शौचशोभा—**रथी निपद्मी कचची धनुष्मान्दसस राजन्यकमेकवीरः । निवारयामास महावराहः कल्पद्रयोद्भूतमिवाण्वाम्भः ॥ ३ ॥ **विलासः—**एवंविधेनाहवचे-

अनुकूल : जो सुख और दुःख दोनोंमें एक सा रहता है, सब अवस्थाओंमें साथ देता है, जिससे हृदयको बुढ़ापेमें विश्राम मिलता है, जिसमें सदा प्रेम बना रहता है तथा जो बहुत काल भीत जानेपर भी प्रेमपात्र बना रहता है, ऐसा स्नेही मनुष्य कोई बिरला ही प्राप्त होता है ॥ ४ ॥ **प्रतिनायक :** कुमार कार्तिकेयकी बात सुनकर तारकने क्रुद्ध होकर, कार्तिकेयपर दौँत पाँसकर दौँतसे आँठ चबाते हुए कहा—‘यदि तुम्हें सुदके लिये अपनी प्रचण्ड भुजाओंका घमण्ड है तो आओ और शत्रुओंके पीठको चलनी बना देनेवाले मेरे बाणोंकी चोट चलो ॥ १ ॥

सात्त्विक नायकके गुण

घृष्टा : जो राम भयङ्कर ताड़काके उत्पातको देखकर भी घडिग रहे वे ही जब उस ताड़काको मारनेके लिये नियुक्त किए गए तब उन्हें यह हिचकिचाहट होने लगी कि स्त्रीपर कैसे बाण चलावें ॥ १ ॥ **स्पर्धा :** ‘देखिए, यही प्रागे वह स्थली है जहाँ किराट-वेशधारी शिवजीके सिरपर अर्जुनने अपने धनुषसे चोट की थी ।’ हिमालय पर्वतपर अर्जुनकी यह कथा सुनकर उन्होंने भी अपनी दोनों भुजाएँ धीरे-धीरे मिलाकर गोल कर लीं ॥ २ ॥ **शौच्य :** जैसे प्रलयके समय बराह भगवान् समुद्रके बड़े हुए जलबर्धोंसे चलते थे वैसे ही बोधेपर चने, शूषीर बोधे, स्वामिमानी धीर आज अकेले ही शत्रुओंकी सेनाओं कीरते चले जा रहे थे ॥ ३ ॥ **विलास :** जब अजने अपने

धितेन त्वं प्रार्थ्यसे हस्तगत ममैभिः । तस्याः प्रति-
द्वन्द्विमवाह्निपादात्सद्यो धिमुक्तं मुखमायमासे ॥ ४ ॥
माधुर्यम्—कपोले जानक्याः करिकलमदन्तद्युतिमुपि
स्मरस्मेरं गण्डोडुभरपुलकं वक्त्रकमलम् । मुहुः पश्य-
च्छृण्वन्नजनिचरसेनाकलकलं जटाजूटग्रन्थिं द्रव्यति
रघूणां परिवृष्टः ॥ ५ ॥ गाम्भीर्यम्—प्रसन्नतां यो न
गतोऽभियेकतस्तथा न मल्लौ वनवासदुःखनः । मुखा-
म्बुजः श्रीरघुनन्दनस्य सदास्तु मे मन्जुलमङ्गलप्रदः
॥ ६ ॥ स्वयंम्—श्रुतान्सरोगीतिरपि क्षणेऽस्मिन्ह्यः
प्रसंख्यानपरो वभूय । आत्मेध्वराणां नहि जातु विप्राः
समाधिभेदप्रभवो भवन्ति ॥ ७ ॥ तेजः—व्रत नूतनकू-
प्पाण्डफलानां के भवन्त्यमी । अह्लोदीदर्शनार्थेन न
जीवन्ति मनस्विनः ॥ ८ ॥ ललितम्—लायत्यमन्मथ-
विलासविजृम्भितेन स्वामाचिकेन सुकुमारमनोहरेण ।
किं वा ममेव सखि योऽपि ममोपदेश्य तस्यैव किं न
विषमं विदधीत तापम् ॥ ९ ॥ श्रौदार्यम्—गृहीतप्रति-

मुक्तस्य स धर्मविजयी नृपः । श्रियं महेन्द्रनाथम्
जहार न तु मेदिनीम् ॥ १० ॥ सदुपग्रहः—एते धयममो
दाराः कल्प्यं कुलजीवितम् । व्रत येनात्र घः कार्यम-
नास्या याहावस्तुप ॥ ११ ॥

तरुणीवर्णनम्

अदम्भा हि रम्भा विलम्बा च लक्ष्मीधृताधी द्विया
चीरसन्ध्यादितास्या । अहो जायते मन्द्यर्णोप्यर्णो
समाकार्थं तस्या गुणस्यैकदेशम् ॥ १ ॥ अपाङ्गतरले
दृशो तरलयकवर्णा गिरो विलासभरमन्यरा गनिरतीय
कान्तं मुखम् । इति स्फुरितमङ्गके मृगदृशां स्वतो
लीलया तदत्र न महोदयः कृतपदोऽपि संलज्यते ॥ २ ॥
अमन्दानन्दनिप्यन्दमपासान्त्यक्रियाक्रमम् । जगज्ज-
न्मोत्सवे तस्याः पीतामृतमिधामयम् ॥ ३ ॥ अमलसू-
खाकण्डकमनीषकपोलवृक्षेतरलसलीलनीलनीलिनप्र-
तिफुल्लदृशः । धिकसदृशोऽप्योष्करकान्तिभृतः सुतनो-

सव शशुओंको हरा दिया तब उसने इन्दुमती को बुद्ध-भूमि
दिखाते हुए कहा—हे इन्दुमती ! यहाँ राजा लोग इस
प्रकार सोए पड़े हैं कि बालक भी उनके शय्य छीन लावें,
देखो, इसी बलपर ये तुम्हें मेरे हाथोंसे छीनने चले थे ॥ ४ ॥
माधुर्यं : धीज्ञानकीर्णिके कपोलपर हाथोंके चक्के दृतिकी
चमक चुरानेवाली सुन्दर सुस्कराहट थी और कपोलोंपर
सुन्दर पुलक विराजमान थी, उसे बार-बार देखते हुए और
राक्षसोंकी सेनाका कोलाहल सुनते हुए रामचन्द्रजी अपने
जटाजूटकी गाँठ कसते जा रहे थे ॥ ५ ॥ गम्भीरता : जो
अपने राज्याभिषेककी बात सुनकर प्रसन्न नहीं हुए और
वनवासकी बात सुनकर दुःखी नहीं हुए ऐसे धीरामचन्द्रजीका
मुलकमल सदा हमारा मङ्गल करे ॥ ६ ॥ स्थिरता : उस
समय अस्सरायोंका सुन्दर गीत सुनकर भी महादेवजी समाधि
लगाकर बैठ गए क्योंकि जो आमेरवर होते हैं उनकी समाधि
किसी प्रकारके विघ्न नहीं तोड़ पाते ॥ ७ ॥ तेजः कहाँ तो, ये
सेजस्वी कौन हैं जिनके उँगलीं दिखाने-मात्रमे लोग कुन्हड़-
वतिया जैसे सूए जाते हैं ॥ ८ ॥ ललितः सुन्दर, स्वामाविक,
सुकुमार, कोमल और मनोहर काम-चेष्टाओंके द्वारा जिस प्रियने
सुके ताप दिया है, दे सखी ! यह न समझना कि वह ताप मुझे
ही प्राप्त हुआ है, उसे मुझमे भी बढ़कर हुआ होगा ॥ ९ ॥
उदारता : राजा रघु तो धर्म-सुद्ध करते थे इसीलिये उन्होंने

महेन्द्र पर्वतके राजाको बन्दी तो बना लिया पर जब उसने
इनकी अधीनता स्वीकार कर ली तब उसे छोड़ भी दिया ।
इस प्रकार उन्होंने महेन्द्रके राजाकी राज्यधी तो ले ली पर राज्य
उन्हींको लौटा दिया ॥ १० ॥ कृपा : हम आपके सम्मुख हैं, ये
हमारी पत्नियाँ हैं, यह हमारी कुलकी प्राण-कन्या हैं, अब आप
कहिए कि हम आपको क्या सेवा कर सकते हैं क्योंकि अन्य सब
बाद वस्तुओंमें हमारी कोई श्रद्धा नहीं है ॥ ११ ॥

नयेलीला चर्चन

उसके गोदमे गुएकी चर्चामात्र सुनकर रम्भाका गर्व गल
गया, लक्ष्मी लजित हो गई, शृतापीने लाजमे अपने मुखपर
सब टक लिखा और पार्वतीजी भी फक पड़ गई ॥ १ ॥ तिरुड़ी
चितवनवाली चञ्चल श्रॉयें, तीम गतिमे कटोर वचन धाँवने-
वाली वाणी, हाव भावमे मरी हुई मन्द-मन्द चाव, अयन्त
सुन्दर मुख, ये सब गुण अपने आप ही मृगले नेत्रके समान
श्रॉयेंवाली श्रॉयेंके अङ्गमें प्रकट हो गए किन्तु छाती पर जो
उभार आने लगा है वह आना हुआ भी दिव्याई नहीं पढ़ा रहा है
॥ २ ॥ अत्यन्त आनन्दमें निमान होकर और सब काम छोड़कर
यह संसार स्त्रीके जन्मोत्सवपर इस प्रकार आनन्दित हुआ मानां
उसे अमृत पानेको मिल गया हो श्रॉयें स्त्रीके उदयन होनेके
समय संसारकी अमृत पानेका-सा आनन्द मिला ॥ ३ ॥ स्वच्छ
कमलकी नावके समान सुन्दर जिसके गाव है, चञ्चल और

मंदलुलितानि हस्त ललितानि हरन्ति मनः ॥ ४ ॥
 अमुष्या लावण्यं मृदुलमृदुलानप्यवयवान्मनोलौल्यं
 धातुं फरकठिनतां मे विमृशति । पदं चित्ते धत्ते
 मतिरिति पुरा पद्मजश्रवा प्रथं कल्याणीयं कलितसुकु-
 नैरेव रचिता ॥ ५ ॥ अमृतं तदधरचिमे वचनेष्वमृतं
 विलोकनेऽप्यमृतम् । अमृतभृतौ कुचकुम्भो सत्यं सा
 च्छिरपरैव ॥ ६ ॥ अलिकुलमञ्जलकेशी परिमलयहृला
 रसावहा तन्वी । किसलयपेशलपाणिः कोकिलकल-
 भापिणी प्रियतमा मे ॥ ७ ॥ अस्याश्चेद्वहति सौवमार्यम-
 धुना हंसस्य गर्वरत्नं संलापो यदि धार्यतां परभूनेर्वा-
 च्यमत्यप्रतम् । अद्धानामकठोरता यदि ह्यत्प्रायैव सा
 मालती कान्तिश्चेत्कमला किमत्र यद्गुना कापायमालम्ब्य-
 ताम् ॥ ८ ॥ अस्याः सर्गविधौ प्रजापतिरभूवन्दो नु
 कान्तिप्रदः शृङ्गारैकरसः स्वयं नु मदनो मासो नु
 पुष्पाकरः । वेदाभ्यासजडः कथं नु विषयव्यावृत्तकौ-

तृहलो निर्मातुं प्रभवेन्मनोहरमिदं रूपं पुराणो मुनिः
 ॥ ९ ॥ अतन्द्रचन्द्राभरणा समुद्दीपितमन्मथा । तार-
 कातरला श्यामा सानन्दं न करोति कम् ॥ १० ॥
 अभ्यासः कर्मणां सम्पत्कृपादयति कौशलम् । विधिना
 तावदध्यस्तं यावत्सृष्टा मृगेक्षण ॥ ११ ॥ आयाति
 श्रियमञ्जसा नयनयोरम्मोरुहमेयसी सद्ग्राहः स्तनयोर्यं
 कलयते सम्भोगयोग्यां दशाम् । वैदग्ध्येन सहासिकां
 वितनुते वाचामिथं प्रक्रिया मुग्धायाः पुनरैन्दवीं न
 सहते मुख्यामभिख्यां मुखम् ॥ १२ ॥ आस्यप्रोज्जित-
 पार्वणेन्दुशयलं नेत्रावधृतोत्पलश्रीगर्वां दशनचन्द्रव्य-
 यद्विताशोकप्रयालुतिम् । एतां दृष्टिसुधाप्रपां त्रिज-
 गतः शिल्पी विधाय स्वयं मन्ये हर्षवशाद्जायत निज-
 स्तोत्रप्रचण्डः कविः ॥ १३ ॥ इयं व्याधायते वाला
 धूरस्याः कामुकायते । कटाक्षाश्च शरायन्ते मनो मे
 हरिणायते ॥ १४ ॥ उचुक्स्तनभरतान्तान्तमथं विशिल-

लीलासे भरे हुए नीले कमलके समान खिली हुई जिसकी आँसू
 हैं और फूले हुए अशोकके पत्तोंके समान जिसके हाथोंकी लाल
 कान्ति है, उस सुन्दरी नायिकाकी मदसे भरी हुई सुन्दर
 शीशुई हाथ ! हमारा मन चुराए लिए जा रही है ॥ ४ ॥ इसकी
 सुन्दरता, अत्यन्त कोमल श्रद्धा, और मनकी चञ्चलता के साथ
 मद्भाग के हाथकी कठोरताका लय हम स्मरण करते हैं तब यही बात
 जैचती है कि मद्भागजीने यह कृत्याखमयी भायिका निश्चय ही अपने
 सद्चित्त सुष्यंसे ही गड़ी होगी ॥ ५ ॥ उसका निचला श्रोत्र, बोलती,
 आँसू और पड़ेके समान उठे हुए स्तन सभी अमृतते भरे हैं ।
 सचमुच यह मद्भागजीकी कोई निराली ही रचना है ॥ ६ ॥ भौरोंके
 समूहके समान सुन्दर बाले बालोंवाली, सुगन्धसे भरी हुई,
 रसीली, पत्तोंके समान चित्रने हाथोंवाली और कोयलके समान
 मधुर बोलनेवाली यह दुबली-पतली नायिका मुझे बड़ी प्यारी
 लगती है ॥ ७ ॥ इसकी सुन्दर गतिने हंसोंकी पाल ध्ययं
 कर दी है, हमरी सुन्दर बोलती सुनकर कोयलोंकी भी अपना
 मुँह सी लेना चाहिए, हमके श्रद्धांकी कोमलताके आगे
 मालतीकी छता पत्थर-सी लगती है, अर्पिक बवा कड़े, इसकी
 कान्तिरे आगे लपटोंकी तो भगवा रंगार रस्यसिन्धी धन जाना
 चाहिए ॥ ८ ॥ हमे (उर्वशीके) धनानेके लिये या तो चोँदनी
 देनेवाले चन्द्रना ही स्वयं मद्भाग बने होंगे या शृङ्गाररसके देवता
 स्वयं बामदेवने इसे बनाया होगा या फिर धमन्त भक्तुने ही
 हमका निर्माण किया होगा, नहीं तो बवाद्द मला, वेद पद-

पदकर पथराए हुए और भोग-विलाससे दूर रहनेवाले वे धूर्
 मुनि मद्भागजी ऐसा सुन्दर रूप कैसे बना सकते थे ॥ ९ ॥
 पृथिमाके चन्द्रमाके समान चमकीले आभूषणोंसे सजी हुई,
 चञ्चल चितवनवाली और कामको उकसानेवाली यह सोलह
 धरंकी कुमारी जिते आनन्द नहीं देती ॥ १० ॥ अभ्यास करते-
 करते ही मनुष्य कुशल होता है। अतः जन्म प्रदाने स्त्रीकी रचना
 की तो समझ लेना चाहिए कि उससे पहलेतक वे अभ्यास
 ही कर रहे थे ॥ ११ ॥ कमलके समान प्यारी लगनेवाली
 यह भोली-भाली नायिका नेत्रोंकी शोभा बढ़ाती है, अपने बड़े
 बड़े स्तनोंसे सम्भोगके योग होनेकी दृशा बतती है, चतुर्दशे
 बोलनेकी कला दिखाकर साधनं वैदनेकी योग्यता सिद्ध करती
 है और उसका यह मुद्र तो चन्द्रमाकी मुल्य शोभाको भी
 लजाए जा रहा है ॥ १२ ॥ पृथिमाके चन्द्रका यश उसके मुलने
 हारण कर लिया है, कमल-दलकी शोभा उसके नेत्रोंने कम कर
 दी है और उसके श्रोत्रोंने अशोकके पत्तोंकी शोभा फीकी कर दी
 है, इस प्रकार नेत्रोंके लिये अमृतकी बावड़ीके समान उस
 नायिकाको बनाकर मद्भाग इतने हर्षसे विद्वल हो गए हैं कि वे
 दिन रात बैठे अपने प्रशंसकोंके ही गीत गाया करते हैं ॥ १३ ॥ यह
 वाला हमारे मनरूपी हरिकेलके लिये ऐसा यहद्विधा बनी जा
 रही है कि इसकी भाँद धनुष बन रही है और इसकी तिरछी
 चिनचनं बाण बनी जा रही है ॥ १४ ॥ अपने उठे हुए स्तनोंके
 भारमे जिसकी कमर लचक गई हो, जिसके गँधे हुए घने बालोंमें

प्यद्धानकचवान्तयान्तसूनम्। यक्राञ्जभ्रमदलिभीतभी-
तनेत्रं मुग्धाली भ्रम घुरि मन्दमन्दमेति ॥१७॥ उदयदुदय-
दीक्षणाय पत्युध्रपलदशरूपया निरुध्यमानम्। मन
इव कृपणस्य दानकाले कति न ततान गनागतानि
चक्षुः ॥ १६ ॥ उदासीनालीनामपि घचसि लीनातनु-
सत्रपाधीना दीनालपनपदवीनायकच्युता। कवीनामा-
सीना हृदि कुमुदिनीनाथवदना नवीना भीनाली व्यथ-
यति मुनीनामपि मनः ॥ १७ ॥ एकान्तसुन्दरविधान-
जडः क वेधाः सर्वाङ्गकान्तिचतुरं क च रूपमस्याः।
मन्ये महेश्वरभयान्मकरध्वजेन प्राणार्थिना युवतिरूप-
मिदं गृहीतम् ॥ १८ ॥ एताः स्तलद्वलयसंहतितेजलो-
त्थभङ्गारनूपुररवाहतराजहंसाः। कुर्वन्ति कस्य न
मनो विवशं तरुण्यो विध्वस्तमुग्धहरिणीसदृशैः फटालैः
॥ १६ ॥ एषा भविष्यति विनिद्रसरोरुहाक्षी कामस्य
कापि द्यिता तनुजातुजा वा। यः पश्यति क्षणमिमां

कथमन्यथासौ फामस्नमस्नकरणुस्नकरां शिनन्ति
॥ २० ॥ कापूरैण स्थलविरचना कुकुमैनालघातं भाष्यी-
कानि प्रतिदिनपयः पञ्चवारणः कृपाणः। नशोत्पन्ना
यदि किल भवेत्काञ्चनी वापि धली सा चन्द्र्याः
किमपि लभते सुध्रवः सौकुमार्यम् ॥२१॥ किं कांमुडी
शशिकलाः सरला विच्युर्ण्य संयोज्य चामृत्तग्मेन पुनः
प्रयत्नात्। कामस्य घोरहरकुंठनिदग्धमूत्तंः सखीप-
नोपधिरियं विहिता विधात्रा ॥ २२ ॥ किमिन्दुः कि
पत्रं किमु मुकुण्ठियं किमु मुपं किमजः कि मीनां
किमु मदनवाणौ किमु हर्षा। रगौ वा गुच्छां वा
कनककलशौ वा किमु कुर्चां तद्विहा ताग वा कनक-
लतिका वा किमवला ॥ २३ ॥ कुकुमपद्मेनाङ्कितदेहा
गौरपयोधरकम्पितहारा। जूपुरहंसरूपपदपथा फं न
घशीकुरते भुवि रामा ॥ २४ ॥ कुचाभ्यां भास्यन्ती
विजितलकुचाभ्यां युवमनो हरन्ती विद्योक्तैः सरसि

फूल खोसे हुए हैं, जो अपने मुख-कमलपर भेंडराते हुए भैंरोंको
सकपकाए हुए नेत्रोंसे देख रही हो, यह भोले-भाले नेत्रोंवाली
धोरे-धोरे मेरे पास आ रही है ॥ १६ ॥ उस चञ्चल नेत्रवाली
नायिकाके नेत्र अपने पतिरा दर्शन करनेके लिये उसी प्रकार कई
वार ज़िले और फिर लाजसे झुक गए, जैसे किसी बन्धुसका
मन दान देते समय बहुत आगा-पीड़ा करता है ॥ १६ ॥
किसी बातमें चित्त न लगनेपर भी जो सखियोंके कहनेमें चलती
है, नायककी बातमें घात मिलाते समय लज्जाके मारे सिङ्गु
जाती है, कवियोंके हृदयमें स्याई रहती है, चन्द्रमाके
समान मुखवाली है और मद्युलीके समान नेत्रवाली है, वह
नई-नबेली एक वार मुखियोंका मन भी झूझकर देती है ॥ १७ ॥
कहाँ तो अज्ञोंको सुन्दर बनानेकी बलासे धनभिन्न प्रज्ञानी,
और कहाँ यह सब अज्ञोंकी कान्तिसे सजा हुआ इसका रूप !
इससे मैं तो यह समझता हूँ कि शङ्करजीके क्रोधसे अपने प्राण
बचानेके लिये कामदेवने ही युवतीका रूप धारण कर लिया है
॥ १८ ॥ अपने डीले कन्ननोंको संभालती हुई, अपनी करधनीके
धुँपरु बजाती हुई, अपने निद्युधोंकी मधुर खनखनाहटसे
राजहंसोंको पास उलानेवाली और विरवासमें भरी हुई भोली-
भाली हरिणीके मैनोंके समान चितवनवाली ये तरुणी स्त्रियों
किमका मन नहीं हर लेती ॥ १९ ॥ जिले हुए कमलके समान
धौंखोवाली यह नायिका निरवय रूपसे या तो कामदेवकी पत्नी
है या कन्या है या बहन है, नहीं तो उसकी ओर तनिक-सा

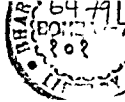
देपनेवाले उस युवकको कामदेव इतनी निर्दयताके साथ क्यों
मार डालता ॥ २० ॥ यदि कपूरकी धरती हो, उद्गुमकी क्यारी
हो, प्रतिदिन दापकी मटिराले सींची जानी हो और कामदेव
ही किसान हो, तब उसमेंसे यदि कोई सोनेकी लता उलपन्न
हो तो वह वहीं इस सुन्दर भौंहोंवाली नायिकाकी कामलता-
तक कुड़-कुड़ पड़ेंच पा सकती है ॥ २१ ॥ क्या प्रज्ञानीने चोड़ना
और चन्द्रमाकी बलाधोका चूर्ण बनाकर उमें बड़े जगनसे
अमृतके रसमें मिगोकर भगवान् शङ्करकी मयानक हुंकारसे
जले हुए शरीरवाले कामदेवको जीवित करनेके लिये ही तो
यह नायिकारूपी संजीवनी औपधि नहीं बनाई है ॥ २२ ॥
जब कोई व्यक्त इस नायिकाका मुख देख लेता है तो उसे
भ्रम होने लगता है कि यह चन्द्र है या कमल है, या दर्पण
है या मुख। इसकी श्रॉलंको देपकर भ्रम होता है कि ये कमल
हैं या मद्युलियाँ हैं या कामदेवके बाण हैं या नेत्र हैं। उसके
स्तनोंको देखकर भ्रम होता है कि ये चक्रवे हैं या फूलोंके पुच्छे
है या सोनेके घंटे हैं या स्तन हैं और उस पूरी नायिकाके
शरीरको देखकर यह भ्रम होता है कि यह विजयों है या तारा
है या सोनेकी लता है या नारी है ॥ २३ ॥ जिनके शरीरपर
कुकुम पुता हुआ है, जिनके गौर स्तनोंपर हार कर्प रहे हैं और
जिनके चरण-कमलके पास बिद्युधोंकी रनटुनमें हंसकी बोली
शूँ रही है ऐसी रमणियों किसे धरममें नहीं कर लेती ॥ २४ ॥
मिसने अपने पद्मरको जीतनेवाले सुन्दर स्तनोंमें युवकोंका मन

विहरन्ती मधुरगीः। तदस्या लावण्यं किमपि विदधानामर्कविधौ नवीना मीनाक्षी व्यथयति मुनीनामपि मनः ॥ २५ ॥ क्वचित्सभ्रमङ्गैः क्वचिदपि च लज्जापरिणतैः क्वचिद्रीतिवस्तैः क्वचिदपि च लीलाविलसितैः । नवोदानामेभिर्बर्धनकमलेनैत्रचलितैः स्फुरन्नीलालीनामकरपरिपूर्णा इव दृशः ॥ २६ ॥ गुणाक्षरन्यायतया विधात्रा विनिर्मितेयं मृगशावकाक्षी । जाने पुनः कौशलमेतदीयमेतादृशां यद्यपरां विधत्ते ॥ २७ ॥ चन्द्रो जडः कदलिकाएडमकाएडशीतमिन्दीवराणि च विमुद्रितविभ्रमाणि । येनाक्रियन्त सुतनोः स कथं विधाता किं चन्द्रिकां क्वचिदशीतदृचिः प्रवृत्ते ॥ २८ ॥ चित्ते निवेश्य परिकल्पितसत्त्वयोगाम्प्रोच्येन विधिना विहिता कृशाक्षी । स्त्रीरक्षप्रष्टिरपरा प्रतिभाति सारं धातुर्धिभुत्वमनुचिन्त्य यपुश्च तस्याः ॥ २९ ॥ तनुस्पर्शादस्या दरमुकुलिते हन्त नयने उदञ्चद्रीभाञ्जं

यजति जडतामङ्गमखिलम् । फपोलौ घर्माद्रौ भ्रवमुपरताशेषविषयं मनः सान्द्रानन्दं स्पृशति भटिति प्रह्लपरम् ॥ ३० ॥ दग्धो विधिर्विधत्ते न सर्वगुणमुन्दरं जनं कमपि । इत्यपवादभयादिव मुग्धाक्षी निर्मिता विधिना ॥ ३१ ॥ दृशः पृथुतरिकृता जितनिजाज्जपत्रत्यिपश्चतुर्भिरापि साधुसाध्विति मुखैः समं व्याहृतम् । शिरांसि चलितानि विस्मयवशाद्भुवं वेधसो विधाय ललनां जगन्नयललामभूतामिमाम् ॥ ३२ ॥ न देवकन्यकानापि गन्धर्वकुलसम्भवा । तथाप्येषा तपोमङ्गविधातुं वेधसोऽप्यलम् ॥ ३३ ॥ निर्माणकौशलं धातुश्चन्द्रिका लोकचतुष्पाम् । फ्रीडागृहमनङ्गस्य सेयमिन्दीवरेक्ष्णा ॥ ३४ ॥ निर्माल्यं नयनश्रियः कुवलयं यकत्रस्य दासदृशशी भ्रूयुग्मस्य सनाभि-मन्मथधनुज्यात्सनास्मितस्थाञ्चलः । सङ्गीतस्य च मत्तकोकिलरतान्धुच्छिष्टमेणीदृशस्सर्वाङ्गीणमहो विधेः परिणतं विज्ञानविज्रं

लुभा लिया है, जिसकी बोली अत्यन्त मधुर है, जो अनेक हाव भावके साथ ताखायोंमें विहार करती है वह मधुलीके समान नेत्रवाली नहीं नवेली मुनियोंका मन भी झरझोर डालती है ॥ २५ ॥ कभी भौंई चढ़ाकर, कभी लाजसे भौंकर, कभी दासे पयरावर, कभी हाव-भावासे खेल करके हूत नवेली नारियोंके मुग्धकमलकी चञ्चल चितवन शौलिको अनेक प्रकारकी सुन्दर लीलाओंमें भरे डालती है ॥ २६ ॥ प्रह्लादे केवल अटकलसे हो हुन मृगके समान शर्मोन्मोवाली नारीको बना डाला है, शर्मिके उममें कोई भीशल है यह तो हम तय जानें जब यह समय ही कोई दूसरी यना दे ॥ २७ ॥ चन्द्रना जड़ है, यह चेतनतासे भरी है, कलाअत्यन्त दृष्टा होता है पर इसे धुनेसे गरमी घाती है, कमल कभी-कभी सुँदे रहते हैं पर इसका शरीर सदा पित्रा रहता है, तप उन वस्तुओंसे प्रह्लादी इस सुन्दर शरीरवालीकी घातृति कैसे बना सकते हैं? कहीं गम किरणवाले गर्वसे शौदनी उपन्न हुआ करती है ॥ २८ ॥ प्रह्लादीकी शक्ति थीर उसको सुन्दर देह दोनोंका विचार करके मेरी समझमें तो पड़ी बना है कि सुन्दरियोंके बनानेकी यह कोई नई निराली कला है क्योंकि प्रह्लादीने अपने मनमें पहले इसके रूपका टीक प्यान करके और मये-मये रूपों गुणवाले पदार्थोंकी रचनाका धन्याम करके सब कहीं इस दुषले-वतले भद्रवाली नायिकाका शरीर बनाया होगा ॥ २९ ॥ जब इस नायिकाके शरीरका स्पर्श करते हैं तब शर्मसे पद हो जाती है, रोंगे उर पड़े होंगे है,

सय अङ्गोंको काठ मार जाता है, सुँदर परसोना छूटने लगता है और मन संसारके सय विषयोंसे हटकर अत्यन्त घने आनन्दमें मस्त होकर परमानन्दका अनुभव करने लगता है ॥ ३० ॥ प्रह्लादीने इस भोली-भाली शौलियाली नायिकाकी इसलिये रचना कर दी कि कहीं कोई उन्हें यह कलङ्क न लगाये कि इस गुण प्रह्लादे सय गुणोंसे भरा हुआ कोई व्यक्ति बनाया ही नहीं ॥ ३१ ॥ जब प्रह्लादीने इस त्रिलोक-सुन्दरी नायिकाकी रचना की होगी उस समय वे निरचय हो कमलकी पल्लुदियोंकी कान्ति जितनेवाले अपने नेत्र आश्रयसे फाड़कर चारों सुँहोंसे एक साथ 'वाह, वाह' कहकर विल्लाए होंगे और अपने चारों सिर हिला-हिलाकर प्रसन्नतासे मूम उठे होंगे ॥ ३२ ॥ यद्यपि यह नायिका न तो देवलोकरी कन्या है, न गणधर्मके ललमें ही उत्पन्न हुई है, फिर भी इतनी रसीली है कि प्रह्लादीकी सारी वपराय एक क्षणमें विगाड़ सकती है ॥ ३३ ॥ यह कमलके समान नेत्रवाली नायिका प्रह्लादीके विज्ञानकी सारी चतुराई है, संसारके नेत्रोंको उदक देनेवाली शौदनी है और कामदेवका फ्रीडा-मवन है ॥ ३४ ॥ प्रह्लादे उसके नेत्रकी रोमाके निर्माल्यके रूपमें कमल बनाया, चन्द्रमाको इस नायिकाके मुखका दास बनाया, उसकी दोनों भौंहासे कामदेवका धनुष बनाया, क्षीरमाय सुक्कराहसे शौदनी बनाई, सन्नाहसे ही मत्तवाजे कोयलके स्वर बनाए और यषे-सुषेसे हरिणोंकी शौलें बना दीं, इस प्रकार प्रह्लादा जितना विचित्र विज्ञान था वह



चिरात् ॥ ३५ ॥ निर्मित्तुः सुदृतीमजो चिरचिते चक्रे
शशिभ्रान्तिः कोशीभूतनिजाम्बुजासनमधिष्ठातुं न
शक्तो विधिः । मध्यं विस्मृतवान्कुचौ च कठिनौ पीनौ
नितम्बौ कचान्वक्राक्षिमित्तवान्मतिः स्फुरति हि स्वस्ये
चूषां चेतसि ॥ ३६ ॥ निलीना घेप्रमान्तः कथमपि
सर्पीनामभिहितैः कृताधीना हीनाकृतिरपि मतीनाम-
धिपया । कधीनामशत्वं ध्रपयति विपीना तनुतया
नधीना मीनाक्षी व्यथयति मुनीनामपि मनः ॥ ३७ ॥
निर्मुक्तशैशवदशाशिशिरा नधीनसम्प्रातयौयनवसन्तम-
नोरमश्रीः उन्मीलितस्तनवस्तवका निकाममेणीदृश-
स्तनुलता तनुते मुदं नः ॥ ३८ ॥ नीलोत्पलोल्लसितख-
ञ्जनमञ्जुनेत्रा सम्पूर्णशारदसुधाकरकान्तवक्रा । बाला
जगन्नितयमोहनदिव्यमूर्त्तिर्मध्ये विभाति जगति स्मर-
धीरकीर्तिः ॥ ३९ ॥ नन्दं मुखं मृगधियुक्तशशाङ्कविम्बं

नेमी स्तनायमृतपूरितहेमकुम्भी । नैयातकाचालिरियं
मदनाखशाला नैवेदमक्षियुगतं निगडं हि यूनाम्
॥ ४० ॥ प्रेहणप्रेक्षणालापास्फुर्यत्यः स्मिन्मत्तवपम् । न
धीणायाः प्रवीणायाः रजन्तं स्मररञ्जनम् ॥ ४१ ॥ भज-
क्षासीचन्द्रापरिचयमुपेन्द्रः पलु तदा यद्वा नामीपेन्द्र-
रुहयसतिनाऽसज्जि विधिना । इयं यद्यायाता क्षणमपि
भवेल्लोचनपथं कथं तस्य म्यान्ते निवसति तद्द्यापि
कमला ॥ ४२ ॥ मधुरवचनैः सधूमङ्गैः कृताङ्कलितज-
नेरलसवतिरैरङ्गन्यासैर्महोत्सववन्धुभिः । असट-
दसकृत्स्नास्फारैरपाङ्गविलोकितैस्त्रिभुवनजये स्वा
पञ्चैपोः करोति सहायताम् ॥ ४३ ॥ मनोऽपि शङ्कमा-
नाभिर्बालामिरुपजीव्यते । अप्रडलीणपाङ्गुपुष्पमन्त्री
मकरकेतनः ॥ ४४ ॥ मन्दमन्दगमना करिणी किं वा
विशाललयना हरिणी किम् । पूर्णचन्द्रवदना रजनी किं

वही देरमें सर्वाङ्गीय होकर इस नायिकाके रूपमें रचया जा सका
॥ ३५ ॥ बुद्धिमान् लोगोंके मनमें यह बात समझमें आती है
कि जब प्रह्लादे सुन्दर दातोंवाली नारियोंका निर्माण करनेकी
इच्छासे इस नायिकाका मुँह बना दिया तब उनका आसन
अर्थात् कमल उस मुँहको चन्द्रमा समझकर मुँहने लगा और
प्रह्लादीका उसमें बैठना भी कठिन हो गया इसलिये वे इस
वन्धनमें कसे जानेके कारण इतने धरवा गए कि उसके शरीरमें
कमर बनना भूल गए, स्तन कटोर कर दिए, नितम्ब
मोटे-मोटे बना दिए और बाल टेढ़े-मेढ़े (बुँधराले) बना दिए
॥ ३६ ॥ यद्यपि सखियोंने उसे समझा-बुझाकर भीतर घरमें
घेड़ा दिया और वही कठिनार्इसे वह बुद्धिकी पहुँचने बाहर
दुबली-पतली नायिका किसी-किसी प्रकार स्थिर भी किया
कि भी वह इतनी दुबली है कि उसने सब कवियोंको मूर्ख
बना डाला क्योंकि कोई भी उसकी सुबलताका ठीक वर्णन नहीं
कर पा रहा है । वही मछलीके समान नेत्रोंवाली नई-नवेली
मुनियोंका भी मन मये डाल रही है ॥ ३७ ॥ जिसमें बचपन-
रूपी स्थिर धीत गया, मनकी रिम्बानेवाली नये वीचनके
बसन्तकी शोभा चढ़ आई, स्तनरूपी मये फूलोंके गुच्छे लिल
उठे, वह हरिणीने नेत्रोंके समान आँखोंवाली नायिका रूपी लता
हमारा मन मस्त किए डाल रही है ॥ ३८ ॥ नीले कमलके
समान बड़े-बड़े, कजरीर और फुदकते हुए पञ्जन पक्षीके समान
चञ्चल नेत्रोंवाली, शरद ऋतुकी पौषमाके समान सुन्दर
मुखवाली और तीनों लोकोंको मोह लेनेके योग्य सुन्दर देहवाली

यह बाला ऐसी प्रतीत होती है मानो धीर कामदेवकी कीर्ति ही
संसारमें शोभा पा रही हो ॥ ३९ ॥ यह इस सुन्दरी नायिकाका
मुँह नहीं है, यह तो बिना कालिमाजाला चन्द्रमा है, ये
उसके स्तन नहीं हैं, ये तो अमृतने भरे हुए सौंके कलश हैं,
यह उसके बालोंकी लट नहीं है, यह तो कामदेवके अस्त्र
बनानेकी प्रयोगशाला है और जिन्हें तुम आँखें समझने हो, ये
आँखें नहीं हैं, ये तो युवकोंको बाँधनेवाली बँधियाँ हैं ॥ ४० ॥
मौप और सुसकानके साथ मुद-मुदकर देरने और बेलनेवाली
स्त्रियोंके वचनोंके सामने अच्चीसे अच्ची वीचानी गूँज भी इस
योग्य नहीं होती कि वह कामको उत्तेजित करे ॥ ४१ ॥ जिस
समय भगवान् विष्णुके नामि-कमलपर बैठकर प्रह्लादे इन
नायिकाको रचना की होगी उस समय भगवान् विष्णु निश्चित
रूपसे गहरी नोंद लेते रहे होंगे क्योंकि यदि यह कहीं बणमारके लिये
भी विष्णुके आँखोंके सामने आ जाती तो क्या आत्र लक्ष्मी उनके
पास रह पाती अर्थात् लक्ष्मीको छोड़कर वे इसे ही पत्नी बना
लेते और लक्ष्मी हीतिथादाहने उनके पासमे चली जाती
॥ ४२ ॥ अपनी मधुर वाणीसे, कटीली भाँहोंसे, उँगली उठा-
उठाकर दाटनेमे, धानन्दसे भरे हुए अलसाए अङ्गोंकी चटक-
मटकमे और बार-बार अपने बड़े-बड़े नेत्रोंकी चिनचनमे यह
नायिका ऐसी जान पड़ती है मानो त्रिभुवनपर विजय प्राप्त
करनेवाले कामदेवकी सहायता कर रही हो ॥ ४३ ॥ शङ्का
करनेवाली बालाएँ अपने मनको किसी-किसी प्रकार पाल रही
हैं क्योंकि उनका पाँच पाँचोंवाला समर्थ और दुः गुणोंमे युक्त

पश्य गञ्जुति सपे तस्यो किम् ॥ ४५ ॥ मीनयती नय-
नाभ्यां चरत्वाभ्यामपि सुकुलकमलवती । शैवालिनौ च
फैत्रैः सुरसेयं मुन्दरी सरसी ॥ ४६ ॥ लावण्यपुण्यपर-
माशुदत्तं तदन्यदन्यस्स चापि निपुणः खलु कोऽपि
वेधाः । येनाद्भुता कृतिरियं विहिता विशिष्टकार्येषु
कारणविशेषगुणोऽनुमेयः ॥ ४७ ॥ लावण्याशुतद्वीचिका
कुलशुद्धं सान्द्र्यलाम्गयोरौलोम्भाकरत्नकन्दलि-
रियं जीव्यात्सदृशं समाः । रूपालोककतलुकेन चहुना
शिल्पश्रमेणाद्रान्मन्ये यां विधिना विधाय विहितं
सृष्टध्वंजारोपणम् ॥ ४८ ॥ यत्र चन्द्रविकासि पङ्कज-
परीहाससूत्रे सोच्येन वयंः स्वणमपाकरिणुरलिनो-
जिप्लुः कचानां चयः । यज्ञाजायमकुम्भविभ्रमहरी
गुप्तं नितम्बस्थली यात्रां हारिच मादयं युवतिषु
स्वामाविकं मण्डनम् ॥ ४९ ॥ समीचीना चीनांशुकप-
रिवृताङ्गो प्रथिलसत्कुचापीना हीना जघनघनभागेऽ-
भ्रजपदान । न दीना दीनान्तःकलितमदना सेयमधुना

नवीना मीनाली व्यथयति मुनीनामपि मनः ॥ ५० ॥
सर्गव्यापारविभ्रस्य बहोः कालाद्विधेरपि । श्यासी-
दिर्मां विनिर्माय श्लाघ्यः शिल्पपरिश्रमः ॥ ५१ ॥
सौन्दर्यस्य तरङ्गिणी तरुणिमोक्षर्यस्य हृषोङ्गमः
कान्तेः काम्यकुर्मं नर्मरहसामुज्ज्वलनायासभूः । विद्या
यकागिरां विधेरनयधिमावीर्यसाक्षात्किया राणाः
पञ्जशिलीमुपस्य ललनाद्युडामणिः सा मिया ॥ ५२ ॥
स्तनकलशरूपलदम्बरसंघरण्यप्रपाणिकमलायाः ।
निपतन्ति भाग्यभाजासुपरि फटाकाः सरोज्यायाः
॥ ५३ ॥ स्फुरद्गानारत्नाकणितवयसना वृत्तमण्डलस्तना
पीना मत्ता तरलजघना हंसगमना । स्मरार्थीनासीना
फविहृदि जिताशेषललना नवीना मीनाली व्यथयति
मुनीनामपि मनः ॥ ५४ ॥

वयंसन्धिवर्णनम्

अचलः चलदिव चतुः प्रकृतमपीदं समुद्यदिव

मन्त्री उनवी मदायता वरता रहता है ॥ ४४ ॥ देवो मित्र ! यह
सामने धीरे धीरे चलनेवाली क्या काहे हृषिणी है या बड़े-बड़े
नेत्रावाला कोई हरिणी है या धारण-धामे धारणमाका चन्द्र किणु हुण
शक्ति है या काह नखला हा खला धा रहा है ॥ ४५ ॥ यह वाला
रमाये भराहुँ एक बावण-सा जान पड़ता है क्योंकि इसकी श्रौति
मण्डलाके समान है, इसक चरवा गिल हुण कमलके समान है और
इसके लम्बे-लम्बे बाल सधारक समान हैं ॥ ४६ ॥ मुन्दरताक पुण्यका
यह परमाशु-समुद्र भा बाहू निराला हा है धार उन मुन्दरताके
परमाशुभाले हस नाविकाका रचना करनवाला चतुर मझा मो
काहू निराला हा है क्याक विशेषकार्यका कारण भी काहू विशेष
गुणवाला हा समझना चाहू ॥ ४७ ॥ मुन्दरता रूपा अमृतकां
बावणो, मुन्दरता धीर सौभाग्य दानका उपार्त्त-स्थान तथा
पीना क्षार रूपा मानने उपपन्न दृविवाली यह सनको क्ली-
रुपां नाविका राहता वरं निपुण्यकार्य रूप देगनके लाभो मझा-
जोने बड़े परिश्रम, धारद धार कलाके साथ ह्ये बनार पठि-
निमात्के विभवका मयहा गाहू दिया है ॥ ४८ ॥ चन्द्रमाकां निताने-
वाला मुण, कमलको लज्जानेवाके मित्र, स्वर्गीको जल देनेवाला रत्न,
भीरुका पीनाकां हातेवाका सुवर्णाकी सट्टे, हाथोके मरहट्टो
मुन्दरताका पराग कर देनवाला कठार लन, बड़े-बड़े निगम
धीर मन इनेवाके कामल रमाये बैन, प मृच तो नरेत्रियोंके
व्यापारिक श्रद्धा है ॥ ४९ ॥ रेणुको रचना परन्तर मुन्दर

लगनेवाली, मोटे-मोटे स्तनांसे तिल उठनेवाली, पतली कम-
वाली, कमलके समान सुन्दरवाली, सदा प्रसन्न रहनेवाली, काम-
रमये भरे हुण मगवाली तथा मञ्जुलीके समान कर्त्तव्याली नई
नयेली मुनियोंका मन भी कर्मकरे डाल रहा है ॥ ५० ॥ बहुत
दिगंतक रचना करते करते थके हुण मझाकी कारीपरीका
परिश्रम इस नाविकाको बनानेके पश्चात् प्रसंसनीका ही
गया ॥ ५१ ॥ यह मेरो मित्रतमा सुन्दरताकी नदी, धीरकी
श्रेष्ठताके धानन्दका केन्द्र, कान्ति बनानेकी कला, गोपनीय
रहस्योंकी उत्पत्तिका घर, बडोर बोलीवी विद्या, मझाकां
अपरिमित चतुर्गाहका साधारण रूप, पाँच बाणोंवाले कामदेवका
बाण और सव रिपयोंमें विरोधणि है ॥ ५२ ॥ कलरुको
स्तनोमें गिरते हुण श्रौणलको सौभाग्यनेमें लगे हुण परकर्मको
वाली कमलनपरी सुयतीकी तिरछी चिनवने भाग्यबानीपर ही
पड़ती है ॥ ५३ ॥ धनेक धमको हुण रत्नोंमें खाल कान्तिवाजे
पर्योमें सती हुहुँ, गोल, चिकने गोल और मोटे रत्नोंवाली,
धमन जघनवाली, दुसुशुद्रसुशुकर चलनेवाली, सदा काममें
मनवाली, कवियोंके हृदयमें सदा बसनेवाली, सव नाविकाओंके
जल सुबनेवाली और मण्डलोंके समान कर्त्तव्याली नई-नईको
मुनियोंका भी मन कर्मकरे डालती है ॥ ५४ ॥
वचनपन और यांधनके मिलनकी अयस्थाका वर्णन
हम देती भीरुवाली नाविकाकी शौनं वन रही रही है कि

वक्षः । अतद्विद्य तदपि शरीरं सम्प्रति वामध्रुवो जयति
॥ १ ॥ अत्युद्यतस्तनमुपो नयने सुदीर्घे धमे भ्रूवावति-
तरां चबनं ततोऽपि । मध्योऽधिकं तनुरनूनगुर्गनि
तम्यो मन्दा गतिः किमपि चाद्भुतलोचनायाः ॥ २ ॥
अधरः किसलयरागः कोमलविद्यपानुकारियाँ बाहू ।
कुसुममिव लोभनीयं यौवनमद्भेषु सन्नद्धम् ॥ ३ ॥
अनाकूतैरेव म्रियसहचरीणां शिशुतया वनोभिः पाञ्च-
लीमिश्रुनमधुना सङ्गमयितुम् । उपादत्ते नो वा विर-
मति न वा केवसमियं कपोलौ कल्याणी पुलकमुकुलै
र्दन्तुरत्यति ॥ ४ ॥ अनाघ्रातं पुण्यं किसलयमल्लं करण
हैरनाधिदं रत्नं मधु नवमनास्थादितरसम् । अग्रगण्डं
पुण्यानां फलमिव च तद्रूपमनघं न जाने भोक्तां
कमिह समुपस्थास्यति विधिः ॥ ५ ॥ अनायासदृश्यं
मध्यमशङ्कतरले दृश्यां । अभ्रूपणमनोहारि वपुर्नयसि
सुध्रयः ॥ ६ ॥ अन्तरङ्गमङ्गस्य शृङ्गारकुलदैवतम् ।

अङ्गीकरोति तन्यङ्गी सा धिताममयं वयः ॥७॥ आन्येयं
रूपसम्पत्तिरन्या वैदग्ध्यधोरणी । नैवा नतिनपत्रावी
सृष्टि माधारणी विधेः ॥८॥ अप्रपन्ने वात्ये तर्गणि-
मनि चागन्तुमनमि प्रयाते मुग्धये चतुर्गिणिणि चाञ्जे-
परसिके । न केनापि स्पृष्टं यदित्थं वयन्मा मर्म परमं
तदेतपञ्चेपोर्जयति वपुर्जिन्दीरदृश ॥ ९ ॥ अग्रमङ्ग-
भाज पञ्च तावत्तुचयोः कर्पति लोभलोचनानि । इतरे-
तरपीडनीमरुस्थां गतयोः श्रीरनयोः कथं भजित्री
॥ १० ॥ असम्भृतं मण्डनमङ्गप्रेरनासचार्यं कस्य
मदस्य । कामस्य पष्पत्यतिगित्तमकं थाट्यान्परं माधु
वयः प्रपेदे ॥ ११ ॥ आङ्गणार्पितकञ्जापितमुरो
दस्ताहुलं मुदृणामात्रास्त्रितहाभ्यमाभ्यमलसा. पा-
ञ्चालिकाकेलयः । तिर्यग्लोचनवह्निगनानि वचसां
लेकोक्तिसंज्ञान्तयस्तम्यास्सीदति शैशये मतिमल
कोऽन्येष केलिक्रमः ॥ १२ ॥ आलापान्धूपिलासो विर-

भी चलती-सी जान पडती हैं, छाती भी जैसी थी वैसी ही है पर कुञ्ज
उठती सी जान पडती है और शरीर भी है तो वैसा ही निन्दु कुञ्ज
नया-नया-सा लग रहा है । इन सब परिवर्तनोंमें यह नायिका
संसारको जीते ले रही है ॥ १ ॥ उस अनेकी श्रीलॉयालीकी
छातीपर कुछ उँचे-उँचे उठे हुए स्तन, उसकी बढ़ी-बढ़ी श्रोत्रें, टेंडी-
टेंडी भौंहें, अत्यन्त टेढ़े वचन, पतली कमर, बड़े बड़े नितम्ब और
मन्द मन्द चाल यह सब कुछ नये दङ्गा दिवाई पद रहा
है ॥ २ ॥ कोमल पत्तोंके समान उसके लाल-लाल थोट हैं,
बोमल नई ढालियाँके समान उसकी दोनों सुजाएँ हैं और
उसके अद्भुत अद्भुत फूलके समान लुभावना यौवन भिदा
हुआ है ॥ ३ ॥ यद्यपनके कारण गुडिया खेलती हुई उसकी
सल्लिर्षाँ हँसी-हँसीमें जन उससे गुडे-गुडियाका व्याह
रचाँकी कहती हैं तब उसकी ऐसी दृशा हो जाती है कि वह
न तो उन्हे उठाती है न छोडती ही है वरन् यात सुनकर ऐसी
गँप जाती है कि उसके गालोंपर रोमाञ्ज हो आता है ॥४॥ उसका
रूप त्रिना स्ये हुए फूल, नरोंमें ध्रुवते पत्ते, त्रिना त्रिना हुआ
रत्न, त्रिना चटा हुआ नया मधु और त्रिना भोगे हुए पुण्याँके
फलके समान है । ऐसे पधिर रूपको भोगनेके लिये प्रदान
न जाने किसे चुन रक्ता है ॥ ५ ॥ परिभ्रम न करनेपर भी
उसकी कमर पतली हो गई है, त्रिना त्रिनी शङ्काके ही उसकी
श्रोत्रें चम्रल होने लगी हैं और त्रिना आभूपण्यके ही इस सुन्दर
भौंहोंवाली नायिकाना शरीर इस समय मनोहर हो गया है

॥ ६ ॥ यह दुन्दुबे पतले अद्भौंगली नायिका उस रसौली
अस्थायीके पहुँच रही है निसका साथी कामदेव है और निसका
हुल देवता शृङ्गार रस है ॥७॥ इस नये दङ्गके रूप लावण्यसे
और नये दङ्गकी बतुराईसे भरी चालसे जान पडता है कि
कमलकी पल्लुवियोंके समान श्रोत्रोंवाली यह नायिका मङ्गाकी
कोई अनेकी रचना है ॥ ८ ॥ जब वचन बोल गया और
तरणार्थने आनेना विचार किया, भोगापन चना गया और
बतुराईने उसे गले लगाया, उस बालापन और यौवनके सन्धिके
श्वरस्थाके समय कामदेवका वह मर्म कोई नहीं समझ सका
जिसके कारण उस कमलके समान नेत्रवाली नायिकाका शरीर
जिसके जीतने लगा ॥ ९ ॥ जब उस नायिकाके उभरने हुए
स्तनके श्रुंहुए ही संसारके नेत्रोंको बरबस खींचे ले रहे हैं तब उस
समय इनकी क्या शोभा होगी तब ये बड़े होकर एक दूरसे
सटने लगेंगे ॥ १० ॥ बालापनके पश्चात् उस नायिकाकी अद्भ-
रूपी लतामें त्रिना मदिराके ही मादरुता लानेवाले और काम-
देवके पौँचों फूलोंके बालाँके अतिरिक्त नये बाणके रूपमें अपने
चाप आनेवाला सौन्दर्य बनकर नया यौवन का पहुँचा है
॥ ११ ॥ मल्लतक बन्द चोलोमे ढँके हुए स्तनोंवाली, श्रोत्रोंपर
डँगली रजकर धारे धारे सुकरानेवाली और निरुद्धे श्रोत्रें करके
बातचीत करनेवाली उस नायिकामें यद्यपनमें ही यह निराला
खेल धारम हो गया है ॥ १२ ॥ हरिणके बन्धके श्रोत्रोंके
समान श्रोत्रोंवाली नायिकाके यौवनकी शोभा ऐसी जान पडती

लयति लसद्वाहुविचित्रि यातं नीचिग्रन्थि प्रथिद्धा प्रत-
नयति मनाद्ध्यनित्तो नितम्भः । उत्पुप्यत्पार्श्वमूर्च्छ-
कुचशिखरमुरो नूनमन्तः स्मरेण स्पृष्टा कोदण्ड-
फोड्या हरिखण्डशो दृश्यते यौवनधीः ॥ १३ ॥
श्राव्णोति यदि सा मृगीदृशी स्वाश्रलेन कुचकाञ्चना-
चलम् । भूय एव दहिरैति गौरवादुक्तो न सहते
तिरस्क्रियाम् ॥ १४ ॥ इदं परमसुन्दरं तनुपुरं कुरङ्गीदृशां
नियार्थं प्लु शैशवं स्वयमनेन नीतं पलान् । तदागम-
नशुद्ध्या मकरकेतुना किं कृतं पयोधरधराधरो त्रिघ-
लियाहिनीदुस्तरां ॥ १५ ॥ इमे तारुण्यधीनवपरिमलाः
प्रौढसुरतप्रतापप्रारम्भाः स्मरविजयदानप्रतिभुवः ।
चिरं चेतश्चोरा अभिनवधिकारैकरुचयो विलासव्या-
पाराः किमपि विजयन्ते मृगदृशाः ॥ १६ ॥ उच्चालाल-
कमञ्जनानि कयरीपाशेषु शिञ्जारसो दन्तानां परिकर्म
नीविनहनं धूलास्ययोम्याग्रहः । तिर्यग्लोचनचेष्टितानि

वचसां ह्ये नोक्तिसंक्रान्तयः स्त्रीणां श्लायति शैशवे प्रति-
कलं कोऽप्येव केलिक्रमः ॥ १७ ॥ उद्द्वद्भ्रजो जह्यतदम-
रत्नोभितकटि स्फुरद्दग्भ्यां मन्दीकृतविलसदिन्दीवर
युगम् । समुच्चमङ्गं प्रविहितघनुर्भङ्गमनिशं वपस्तप-
द्माद्याः कथमिव मनो न व्यथयतु ॥ १८ ॥ उदयति
तरुणितरुणौ शैशवशशिनि प्रशान्तिमायाते । कुच-
चक्रवाकयुगलं तरुणितट्टिन्यां मिथो मिलति ॥ १९ ॥
उन्मीलितं त्वलिकयेव चित्रं सूर्यांशुभिर्भिन्नमिधारेवि-
न्दम् । वभूव तस्याश्चतुरस्रोभि वपुर्धिमक्तं नवयोव-
नेन ॥ २० ॥ एतस्यां रतिवज्रभक्तिपतेः क्रीडासरस्यां
शनैः संशोपं नयतीव शैशवजलं तारुण्यतिग्मद्युतिः ।
श्रन्तःस्था च यथा यथा विकसति प्रायः कुजोच्चस्थली
स्थोर्त्यं हन्त तथा तथा वित्युते दृक्पीनमीनायती ॥
२१ ॥ कलितगरिमा श्रोत्रिर्मध्यं विवृद्धवलिरयं
हृदयमुदयल्लज्जं मज्जचिचरन्तनचापलम् । मुकुलित-

है मानो निश्चय ही उसके हृदयको कामदेवने अपने धनुषकी
कोरसे छू दिया है क्योंकि बाताचीत भरते-भरते उसकी तिरछी
चितवन धापा देती रहती है, बार-बार उसके हाथ चलते रहते
हैं, कमरके नाड़ेकी गाँठ वह बसकर बाँधती जाती है, उसके
नितम्भका निचला भाग भी झुल्लू गहरा हो गया है, उसके हृदय-
पर दोनों धोर स्तन उठ आए हैं और उनकी घुण्डियों काली पड़
गई हैं ॥ १३ ॥ जब-जब वह हरिखण्डे समान धौंसीवाली
नायिका अपने धौंचलसे स्तनरूपी मेरु पर्वतको टक लेती है तब-
ह व के फिर बाहर आ ही जाते हैं क्योंकि त्रिनना जन्म गौरव
(उचता) के साथ होता है वे तिरस्कार (अपमान या परदा)
नहीं सह सकते ॥ १४ ॥ हरिखण्डे समान सुनयनी नायिकाओंके
प्रायन्त सुन्दर शरीररूपी नगरोंसे बचपनको बलापूर्वक हटाकर
उसपर कामदेवने चपना अधिकांश जमा लिया है और
हस भयसे कि कहीं बचपन पुनः लौट न आवे उसने आदके
लिये दूरी स्तन रूपी पर्वत और त्रिवली (पेटपर पड़ी हुई तीन
रेखाएँ) रूपी धनेप सेना गढ़ी कर रक्की है ॥ १५ ॥ हरिखण्डे
धौंसीके समान नेत्रोंवाली नायिकाके ये विलास-भरे व्यापार
विजय पर रहे हैं जो कामदेवकी विजयमें सहायात देनेवाले तथा
वीरकी शोभा बढ़ानेवाले नयान गण्य हैं, उसका कामक्रीडारूपी
प्रतापको धारण करनेवाले हैं, परकालतक चित्तको हरण
करनेवाले हैं और त्रिन्दे नये विदार उत्पन्न करनेमें ही सदा
धानन्द धापा करता है ॥ १६ ॥ बालाशोके बचपन बीतनेही

इस वेलामें यह कोई बड़ा बलेदुा खड़ा हो गया है क्योंकि देखो,
उसकी भाँसे बाँधी हो चली हैं, बाल सँवारेनेकी कलामें
उसे रचि हो चली है, दाँतोंकी रँगवाट और स्फुटतापर ध्यान
जाने लगा है, वह बार-बार अपनी कमर बाँधने लगी है, भाँह
नचानचानर आग्रह करने लगी है, तिरछी चितवन बनाने
लगी है और ऐसी थोली थोलने लगी है जिसे चतुर लोग ही
समझ सकते हैं ॥ १७ ॥ उभरते हुए दोनों स्तनोंके भारसे
उसकी कमर टूटी जा रही है, उसके दोनों चञ्चल नेत्र देवकर
सुन्दर कमल भाँसुरमाया जा रहा है और उसकी चलती हुई भाँह
निरन्तर घनुष बनी जा रही है, तब वताहए, उस कमलनयनीकी
यह श्रवस्था युवकोंका हृदय क्यों न बेधती चले ॥ १८ ॥
यौवनरूपी सूर्यके उदय और वचपनरूपी चन्द्रमारे भरत होनेकी
वेलामें दोनों स्तन रूपी चक्रवा-चक्रवी इस युवतीरूपी नदीके
तटपर परस्पर गले मिल रहे हैं ॥ १९ ॥ त्वलिकासे रँग हुए चित्रके
समान श्रववा सूर्यकी किरणोंसे खिलाए हुए कमलके समान
उसकी नवयौवनसे विकसित देह सज प्रकारसे भली लग
रही है ॥ २० ॥ यह नायिका कामदेवरूपी राजाकी जलरतीदारी
उस थावरीके समान है जिसमें जब यौवनरूपी तीव्र किरणोंवाला
सूर्य धीरे-धीरे वचपनरूपी लाल साएने लगा तब उसके धीचने
स्तनरूपी चकली निकलने लगी । पर सचसे बड़े प्रायश्चित्तकी बात
तो यह है कि नेत्ररूपी मोटी-मोटी मद्गलियाँ और भी मोटी हाने
लग गई हैं ॥ २१ ॥ उसके हृदयके नीचे नाभिके पास तीन रेखाएँ

कुचं वक्षश्चूर्मनाग्भूतयक्रिमन्मपरिगलद्वालयं तस्या
वपुस्तनुते श्रियम् ॥ २२ ॥ केलीकौतुकमदराच्छयण-
योरालीभिराश्राव्यते वालाभिस्तु पुरः पुरेव रजसि
क्रीडाधर्ममाह्वयते । चेतो याति न धा ततस्तदुभयोरैरणी-
दशः साम्प्रतं मध्ये शुभ्यकयोरयःशुक्लवर्णिपक्षपातं
मनः ॥ २३ ॥ क्षणं सरलवीक्षणं क्षणमपाङ्गसंवीक्षणं
क्षणं रजसि खेलनं क्षणमतीव भूपादरः । क्षणं द्रुततरा
गतिः क्षणमतीव मन्दा गतिः क्षणक्षणविलक्षणं जयति
चेष्टितं सुभ्रुवः ॥ २४ ॥ क्षीभं धत्ते यदतिवहलः क्रिग्ध-
लावण्यपूरः प्रत्यङ्गं यत्तटमनुसरन्त्यूर्ध्वयो विभ्रमा-
णाम् । उन्मङ्गं यत्स्फुरति च मानककुम्भयोर्द्वन्द्वमेतत्त-
न्मन्वेऽस्याः स्मरगजयुधा गहाते हृत्तडागम् ॥ २५ ॥
गण्डे मण्डनमात्मनैव क्रुद्धते वैदग्ध्यगर्वाद्दसौ त्यक्त्या
हेमविभूषणानि तनुते तालीदलेष्वाम्रहम् । मन्दा

कन्दुकपेलेनाय भजते शारीपु शिद्यारम्भं तन्व्या चित्र-
मकाण्ड एव लटभामाये निवद्धो भरः ॥ २६ ॥ चाञ्चल्यं
चरणीं विहाय नयनप्रान्तं प्रतिष्ठामते! वस्तुं वान्कृति
वाचि काचिद्वृत्यत्सर्पाकरी माधुरी । कान्तिः काचन
वक्षसो विजयते तन्व्या दुकूलाञ्चलं तन्मन्ये दिवसेः
कियद्भिरतनुजंता जगन्मण्डलम् ॥ २७ ॥ तत्तस्याः
कमनीयकान्तिविजितत्रैलोक्यनारीपुपुः शृङ्गारस्य
निकेतनं समभवत्संसारसारं वयः । यस्मिन्विन्मृतप-
द्मपालिचलनाः कामालसा दृष्टयो नो यूनां पुनरुत्प-
तन्ति पतिताः पाशे शकुन्ता इव ॥ २८ ॥ तदाव्यमोन्मी-
लन्प्रदिमरमणीयाः फडिनतां विचित्य प्रत्यङ्गादिव
तरुणभावेन घटितौ । स्तनीं सम्बिधाया क्षणविनयवै-
यात्यमसृणस्मरोम्भेपाः केपामुपरि न रसानां युवतयः
॥ २९ ॥ द्रोक्षानं चक्षुः कलितविरलापाङ्गचपलं

पढ़ती जा रही है, स्तनके उदय होनेसे हृदय लज्जित हो रहा है (धीरे-धीरे हृदयपर स्तन निकल आए हैं), दृष्टि तिरछी चितवन चलाने लगी है अतः निश्चय ही उस कामिनीके शरीरसे बचपन चला गया थीर यौवन अपनी छटा दिखाने लगा है ॥ २२ ॥ बचपन और यौवनके मिलापके समय हरिषाके नेत्रोंके समान आँसूवाली नायिकाका चित उस समय दो चुम्बकोंके बीचमें पड़े हुए लोहेके टुकड़ेके समान दोनों और लिखकर रफ जाना है जब एक और उसकी सखियाँ उसके कामनीमें कामक्रीड़ाकी नई-नई बात सुनाती हैं और दूसरी और छोटी-छोटी कल्पार्थ उसे भूलमें खेलनेके लिये बुलाती हैं ॥ २३ ॥ उस सुन्दर भँहँवालीकी चण चणपर होनेवाली अश्लीली चेष्टा संसारको जीत रही है । वह चणभर तो सौधी चितवनसे देरती है, दूसरे ही चण तिरछी चितवन चलाने लगती है, चणभर भूलमें खेलती है, दूसरे ही चण शरीरपर धाम्भूपण सजाने लगती है तथा चणभर हृदयङ्कादर फटपट चलती है और दूसरे ही चण धीरे-धीरे पैर रखने लगती है ॥ २४ ॥ इस नवेलीके अङ्गमें जो कोमल सुन्दरताका प्रवाह लहरें ले रहा है, जिलासकी जो लहरियाँ अङ्गके घोरतक आ-जा रही है और यह जो उसके हृदयपर उठा हुआ धक्का जोड़ा दिपाई पड़े रहा है वह सब ऐसा लगता है मानो इसके हृदयरूपी सरावरमें कामदेवरूपी वह तरङ्ग हाथी डुबकी लगा रहा हो जिसके मस्तकके उठे हुए दोनों कोर ऊपर दिपाई दे रहे हैं ॥ २५ ॥ यह नायिका चित्रकार वननेका धमण्ड करके

अपने-आप अपने गाल चीतने लगी है, सोनेके धाम्भूपण छोड़कर साढ़के पन्नोंके धाम्भूपण बनाने लगी है, गंद रौतना बन्द करके मीमाको सिपानेमें अधिक रस लेने लगी है अतः उस नायिकामें कुछ ऐसी विचित्र बात होने लगी है कि वह दिन-रात अपनेको आकर्षक बनानेके फेरमें पड़ी रहती है ॥ २६ ॥ उस नवेलीके स्तनपर ढका हुआ पल्लु कुछ विचित्र छटा उत्पन्न करता हुआ ऐसा लग रहा है मानो थोड़े ही दिनोंमें कामदेव इस संसारपर उसका गण्डा फहरानेवाला है क्योंकि उसके शरीरमें उसके पैरोंकी बखलता नेत्रोंमें पहुँचना चाहती है और अत्यन्तसे होड़ करनेवाली मिठास उसकी वाणीमें बसना चाहती है ॥ २७ ॥ उसकी वह प्यार करने-योग्य सुन्दरता, तीनों लोकोकी नारियाँको जीतनेवाली सुन्दर देह और संसारका सार बनी हुई बचपन और यौवनके मिलापकी श्रवस्था वास्तवमें शृङ्गार रसका ऐसा घेरा है जिसमें कामसे अलसाई हुई युवकोंकी आँखें फन्देंमें पड़े हुए पक्षियोंकी भाँति पकू हिलाना भूल गई हैं ॥ २८ ॥ बचपन और यौवनकी सन्धिके समय अपनी कोमलताके कारण सुन्दर लगनेवाली तथा चण-चणपर अपने सुलभलेपनसे कोमल कामदेवको उमाहनेवाली युवतियों सन अङ्गोंकी कठोरता अपने यड़े-वड़े दोनों स्तनोंमें भरकर कितनी रसीली नहीं हो जाती ? ॥ २९ ॥ भयसे खुली हुई सी बड़ी-बड़ी आँखें, सुन्दर सजी हुई तिरछी चितवन, भजियमें बड़े होकर उभरनेवाले दोनों स्तनोंके भारसे अलसाया हुआ उसका हृदय और उसके नितम्ब उस गोरे शरीरपर

भविष्यद्विस्तारिस्तनयुगलगर्भाङ्कसमुद्रः । नितम्बं
सङ्क्रान्ताः धृतिपयकला गौरव्युपो चपुर्मुञ्चद्वार्यं
किमपि कमनीयं मृगदृशः ॥ ३० ॥ दृशोः सीमावादः
श्रवणमुगलेन प्रतिकलं स्तनाभ्यां संरुद्धे हृदि मनसिज-
स्तिनष्टति यदात् । नितम्बः साक्रन्दं क्षिपति रश्नादाम
परतः प्रवेशस्तन्वङ्गयाचपुपि तरुणिको विजयते ॥ ३१ ॥
दृश्यं दृशां सङ्क्रामेनसामयुतेधिभावनीयञ्च । सुकृतश-
तकोटिभोग्यं किमपि वयः सुभ्रुवो जयति ॥ ३२ ॥
दृष्टिः शैशवमण्डना प्रतिकलं लाघयमभ्यस्यते पूर्व-
फारमुस्तथापि कुचयोः शोभां नवामीहते । सम्भाता
गुदतां तथा म्युपचितामोगा नितम्बस्थली तन्व्याः
स्वीकृतमन्मथं विजयते तन्नेत्रपेयं वयः ॥ ३३ ॥ दोलायां
जघनस्थलेन चलता लोलेक्षणा लज्जते साशङ्कं तनु-
फण्टकक्षतभिया क्रीडावने क्रीडति । धत्ते दिक्षु निरीक्ष्यं
स्मितमुष्णीं पाराचतानां दत्तेः सज्जं मौग्ध्यविसर्जनाय

सुतनोः शृङ्गारमिदं वयः ॥ ३४ ॥ न दन्तुरमुद्रःस्थलं
वचसि नाश्रिता चातुरी विकारि न विलोकितं भ्रुवि
न वक्रिमोपक्रमः । तथापि हरिणीदृशो वपुपि कापि
कान्तिचञ्चटा पटावृतमहामणियुतिरिवात्र संलद्यते
॥ ३५ ॥ न शीलं दम्भङ्गी कलयति कुरङ्गीनयनयोः
कुचध्रीः कर्कन्धूफलमपि न वन्धूकृतवती । सुधायाः
सध्रीची न च वचनवीचीपरिचिता तथापि श्रीरस्या
युवजननमस्या विजयते ॥ ३६ ॥ निशितशरधियार्य-
त्यनङ्गो दृशि सुदृशः स्वबलं वयस्स्यराले । दिशि निप-
तति यत्र सा च तत्र व्यतिक्रमेत्य समुन्मिपन्त्यवस्थाः
॥ ३७ ॥ न्यञ्जति वयसि प्रथमे समुदञ्जति तरुणिमि
सुदृशः । दधति स्म मधुरिमाणं चाचो गतयश्च विभ्र-
माश्व भृशम् ॥ ३८ ॥ परिहरति यथा यथा वयोऽस्याः
स्फुरदुष्कन्दलशालियालभावम् । द्रष्टयति धनुपस्तथा
तथा ज्यां स्पृशति शरानपि सज्जयन्मनोभूः ॥ ३९ ॥

उद्य ऐसे धनोले दृष्टते यद् चले हें कि उस मृगनयनीके सुन्दर
शरीरते धचन सरकता चला जा रहा है ॥ ३० ॥ नवेलीकी देहमें
आनेवाले उस यौवनकी विजय हो जिसके कारण नेत्रों और
कानोंमें सीमाका फगड़ा खड़ा हो गया है, स्तनोंसे शूरित
हृदयमें भी कामदेवने बलपूर्वक प्रवेश कर लिया है और नितम्ब
भी चिल्लाती हुई करघनीको दूर फेंके डाल रहा है ॥ ३१ ॥ इस
सुन्दर भीहवाली नवेलीकी यह वचन और यौवनके मिलनकी
धवस्था सबको जीत रही है जिसे सहलां श्रॉलॉवाला ही भली-
भाँति देग सकता है, जिसका दस सहस्र मनगला ही ध्यानद
ले सकता है और जिसने सीं फरोद पुण्य .किये हों वही इसे
भोग सकता है ॥ ३२ ॥ उस पतली नायिकाकी कामदेवसे
विभूषित यह धवस्था ससारको जीत रही है जो श्रॉलभर
देवने योग्य है क्योंकि अपनी श्रॉलोपर वचनकी कलक
हते हुए भी वह सौन्दर्यका अभ्यास करने लगी है, हृदय
वद्यपि पदले ही बैसा है फिर भी उसमें स्तनोंकी कुछ निराली
शेमा भर छाई है और यद्यपि उसके नितम्ब यद् नहीं हुए हैं
फिर भी उन्होंने अपने फंतासका पूरा चक्र घोंप लिया है
॥ ३३ ॥ मृग मूलते समय जब उस चमल नेत्रोंवाली नवेलीके
पद्मे दृष्टे नितम्ब दिलने लगते हैं तब वह लता उठती है, परोंमें
बाँटे गद् जानेकी प्रायश्चामे यह दम्भ-उधर न देतकर
केवल श्रॉदृषयमें ही खेलती है और क्यूतरका शब्द सुनते ही
सुमनातके माप पातों और देवने लगती है, धत. जान पड़ता

है कि इस सुन्दर देहवाली नायिकाका भोलापन दूर करनेके
लिये शृङ्गारका नित्र यौवन पैर बड़ाए चला आ रहा है ॥ ३० ॥
श्रीमी उस नवेलीके हृदयपर न तो कुछ उभार ही थाया है, न
उसकी वार्धामें ही कोई चतुराई था पाई है, न थीमी उसकी
चितवन ही किसीको धायल करने योग्य हुई है, न उसकी मँहें
ही बाँकी हुई हैं फिर भी हरिणोंके नेत्रोंके समान श्रॉलॉवाली
उस नायिकाके शरीरकी शोभाकी दमक ऐसी मनोहर जान पड़ती
है मानो किसी चञ्चले टके हुए मणिले कान्ति फूटी पद रही हो
॥ ३५ ॥ यद्यपि इसके नेत्रोंने हरिणियोंके नेत्रोंकी चितवन नहीं
पाई, स्तनोंका उभार श्रीमी बेर जितना भी नहीं हुआ और
इसके वचन भी श्रीमी श्रुतके समान मनोहर नहीं हुए, फिर
भी इसकी जिस अनोकी शोभाकी युवकोंमें चर्चा है उसकी
चार्शोंकी विजय हो रही है ॥ ३६ ॥ यौवनकी अवस्थामें
पहुँची हुई सुन्दर श्रॉलॉवाली नवेलीके नेत्रोंको तीला बाय
समभ्वर कामदेव प्रोत्साहन देता चलता है क्योंकि जिस जिस
शोर उसकी दृष्टि पड़ती है उस उस दिशामें रहनेवाले लोंगोंतक
पहुँचकर वह दृष्टि उनको दर्शाएँ (अभिलाष, चिन्ता, स्मृति,
गुण-कथन, उद्देग, प्रलाप, उन्माद, व्यापि, जड़ता और मरण)
कर डालती है ॥ ३७ ॥ यद्यपनके धीनने और यौवनके प्रागमनके
समय इस सु द श्रॉलवालीकी बोली, चाल और हावभावमें
वही मिटास था गई है ॥ ३८ ॥ इस नवेलीकी धवस्था अर्थात्
ज्यों वचन छोड़ रही है त्यों-त्यों कामदेव अपने धनुषकी शी

पाञ्चाली मिथुनेषु नातिरसिका लोला विभूपाधिधौ
सोत्कण्ठा कलगीतिषु म्रियतमालापेषु लज्जालसा ।
स्मारंस्मारमहर्निशं म्रियसपीसम्भोगवातां पुनस्त-
न्दिष्टा मद्देनेन तत्र विडुषा बाला चिरं लोयते ॥ ४० ॥
प्रगल्भानामन्तः प्रविशति शृणोति म्रियकथां स्वयं
तत्तद्योशतमभिनयैर्वञ्चयति च । सृष्टहामन्तः कान्ते
वहति न सम्भ्येति निकटं यथैत्र्यं वाहा हरति हि
तथा चित्तमधिकम् ॥ ४१ ॥ प्रायो दास्यति नो पयोधर-
तटी गन्तुं पुरस्तादिति ध्यानेनेन चकास्ति साचिगमने
शिञ्जारस्तश्चक्षुषोः । अन्तःस्थानमिव प्रदातुमधुना
कस्यापि पुण्यात्मनो निर्गन्तुं वहिरुन्नतं स्तनतटं
चिस्तारि सन्नद्यते ॥ ४२ ॥ प्रेमाशङ्कि च भङ्गि च प्रति-
षचोऽप्युक्तं च गुप्तं तथा यत्नाद्याचितमाननं प्रति
समाधाने च हाने च धीः । इत्यन्यो मधुरस्स कोऽपि

शिषुताताकथयोरन्तरे वसिष्णुर्मृगचक्षुषो विजग्ने
द्वैविध्यमुग्धो रसः ॥ ४३ ॥ बाल्ये गेहपतौ निमीलति
ययःसन्धि विद्याय स्मरश्चौरश्चादतरं विदेश निभृतं
बालाशरीरालयम् । चाश्लयं चरगे पृथुत्वमुदरे निर्ल-
ज्जतां चेतसि क्षामत्वं हृदये दृशोः सरलतां सर्वस्वम-
स्यादरत् ॥ ४४ ॥ भ्रुव्यां काचिल्लिता परिणतिरप्युयां
नयनयोः स्तनाभोगो व्यक्तस्तरुणिसमसारम्भसमये ।
इदानीं बालाया किमनृतमयः किं विषमयः किमानन्दः
साक्षाद्भूषितमधुर पञ्चमरवः ॥ ४५ ॥ भ्रूपल्लवो धनु-
पाङ्कतरङ्गितानि वाशा गुणा श्रयणपालिरिति स्मरेण ।
तस्यामनङ्गजयजङ्गमदेवतायामखाणि निञ्जितजगन्ति
किमपितानि ॥ ४६ ॥ मध्यस्थ मधिमानमेति जयनं
वक्षोऽजयोर्मन्दता दूरं यात्युदरं च रोमलतिषां नेत्रार्जवं
धावति । कन्दर्पं परिवीच्य नूतनमनोरज्याभिषिक्तं

कसता जा रहा है और अपने बाणोंको ठीक करता हुआ इसे
स्पर्श कर रहा है ॥ ३६ ॥ वह नवेली श्रव गुड्डा गुकिया रोने नेमें
रस न लेकर अपनी सजावट करनेमें लगी रहती है, सुन्दर
गीतोंमें आजकल उसे बड़ा रचि हो गई है, म्रियतमके सम्बन्धमें
पातपीत चलानेपर वह लजाने और श्लसने लगती है और
रात दिन अपनी प्यारी सखीके सम्भोगकी बातें स्मरण किया
करती है । अतः पेशा जान पड़ता है कि परम विद्वान् काम-
देवने जो उसे पाठ पढ़ाया है, वह श्रव उसीमें मग्न रहती है
॥ ४० ॥ वह नवेली चतुरांके बीच घुसकर प्यारी बातें सुनती है,
उन बातोंके अनुसार लेकड़ों हावभावका अभिनय करके उन्हें
ठगती भी है तथा उसके प्रति जय उसे पास बैठाना चाहते हैं
तन पासमें नहीं बैठती, फिर भी वह इस समय बैसी है
पैसी ही बिच हरती है ॥ ४१ ॥ पेशा नहीं है कि वह
नवेली किसीको अपने स्तनोंकी कोर ही छूने देती हो
कि कोई उसी लोभसे उसके पास जा पहुँचे । सच बात यह है
उसकी आँखोंने ही कुछ पेशा रस सोख लिया है (आँखें पेशी
रसाली ही गई हैं) कि जो उनका ध्यानमात्र कर ले उसे ही
साय लगनेको उकसा देती हैं । इतना होने पर भी वह बाला
जय आजतक किसीको नहीं अपना सकी है तो जान पड़ता है कि
किसी पुण्यात्माको भीतर हृदयमें स्थान न देनेके लिये ही ये
ऊँचे ऊँचे बड़े-बड़े स्तन धाड़ बनकर खड़े हो गए हैं ॥ ४२ ॥
बचपन और बौवनके बीचमें विचरनेवाली इन हरियन्त्री-सी
आँखोंवाली बालाओंका दुरङ्गी बालसे भरा हुआ मनोहर रस

सदा जीवता रहता है जिसमें प्रेमकी आराङ्ग भी भरी रहती
हुई है और शङ्काका विनाश भी, वह कभी उत्तर भी देती है कभी
बातको गुप्त भी रखती है, बड़े बलसे यदि उसका मुख लुभ्यगके
लिये मिल भी जाता है तो उसमें कभी सफकता मिलती है
और कभी असफलता अर्थात् बचपन और बौवनके सम्मिलनके
समय रसिकोंको संयोग और वियोग दोनोंका एक साथ
अनुभव मिलता रहता है ॥ ४३ ॥ बचपन-रूपी गृहस्थामोके सोए
रहनेपर कामदेयरूपी चोर, बचपन और बौवनकी मित्रन रूपी
संध लगाकर उस नवेलीके सुन्दर शरीररूपी घरमें छुपचाप घुस
गया और वहाँसे पैरोंकी चञ्चलता, कमरकी मोटाई, मनकी
निर्लज्जता, हृदयकी दुबैलता तथा आँखोंकी सरलता, सब कुछ
सुरा ले गया ॥ ४४ ॥ बचपन और बौवनके इन मित्रनके
समय उसकी भौंहोंमें कुछ यथा बाँकापन, आँखोंमें कुछ अपूर्ण
परिवर्तन तथा स्तनोंमें कुछ विचित्र विस्तार हो चला है और
उसकी जो मधुर कोकिल-नासी है उसे अमृतमय कहे,
विषमय कहे या आनन्दमय कहे कुछ सम्बन्ध नहीं आता
क्योंकि वह बोली मारे भी डाल रही है, विलाप भी डाल रही
है और तन्मय भी किए डाल रही है ॥ ४५ ॥ वह गाविका पैसां
जान पड़ती है मानो कामदेवके विजयको चलने फिरनेवाली
देवी हो जिसमें कामदेवन भौंहरूपी फलबोका धनुष, नेत्रोंका
चितवनके बाण और धानोंकी सीमाकी डोरें बनाकर ससाराको
जीतनेवाले अपने घब रनापित कर दिए हैं ॥ ४६ ॥ सुन्दर
भौंहोंवाली नवेलीके नये मनोरोगपर कामदेवका अभिरेक

क्षणाद्धानीय परस्परं विदधते निर्लुण्ठनं सुध्रुवः ॥४७॥
 मन्दं मन्दं श्रवणपुटकोपातगन्ता द्यन्तः किञ्चित्कि-
 ञ्चिद्विरमति मनो धूलिकेलीरसेभ्यः । आचिर्भावः
 स्तनमुकुलयोः कापि कान्तिः समन्तादद्य भ्यो वा
 कुसुमधनुषो यौवराज्याभिषेकः ॥ ४८ ॥ मात्रा नर्तन-
 परिडितभ्रुवदन् किञ्चित्प्रगल्भे दृशौ स्तोकोद्भेदनिवे-
 शितस्तनमुषो मध्यं दृष्टिद्राति च । श्रस्या यज्जघनं घनं
 घ कलया प्रत्यङ्गमेणीदृशः सत्यश्चारमिघ स्मरैकसुहृदा
 तद्यौघेनापितम् ॥ ४९ ॥ मुखं विकसितस्मितं वशित-
 यक्रिमप्रेक्षितं समुच्छलितविभ्रमा गतिरपास्तस्तंस्था
 मतिः । उरो मुकुलितस्तनं जघनमंसयन्धोद्धूतं वतेन्दुव-
 दनातनौ तक्षिमोद्गमो मोदते ॥५०॥ मृदुलवलिललित-
 मध्यं पृथुलकुचं चारु विपुलभूजघनम् । पुद्गलगृह्णणीयं
 स्फुरति घनं यौवनञ्च नारीणाम् ॥ ५१ ॥ यथा यथा

विशत्यस्या हृदये हृदयेश्वरः । तथा तथा बहिर्यातो
 मन्ये सङ्कोचतः कुचौ ॥ ५२ ॥ यथा यथास्माः कुचयोः
 समुन्नतिस्तथा तथा लोचनमेति वक्रताम् । अहो सहन्ते
 यत नो परोदयं निसर्गतोऽन्तर्मलिना ह्यसाधवः ॥५३॥
 यद्वधि विलासमवनं यौवनमुदियाय चन्द्रवदनायः ।
 दहनं यिनैव तद्वधि यूनां हृदयानि दहन्ते ॥ ५४ ॥
 रेखा काचन कज्जलस्थं नथनाम्भोजे मिथः कौशलादा
 लीभिः सरलीकृतापि कुटिलीभावं समालभ्यते । लय्या
 चक्षुसि पाण्डिपन्नविपमस्पर्शोदयादुन्नतिर्जानीमो घयमे-
 शाशघनयने वाल्यं न पाल्यं तव ॥५५॥ लब्ध्वा मण्डल-
 मुन्नतं कुचतटं स्फीता जघन्यश्रियस्ताः क्रान्ता यलि-
 भिश्च मध्यमभ्रुवो भ्रूभ्यां धृतो वक्रिमा । पञ्चैपुर्विजिगी-
 पते त्रिजगती तद्वालयतारुण्ययोर्द्वैराज्ये समुपस्थिते
 मृगदृशः किं केन नारभ्यते ॥ ५६ ॥ लावण्यामृतनिर्म्

हुषा देवतर उसके धर एक दूसरेके गुणोंकी इस प्रकार लूट-
 पाट करने लगे हैं कि कमरकी भोटाई नितम्बोंके, स्तनोंका
 छायापन कमरके और नेत्रोंका सीधापन रोमाघलीने लो लिया
 धारां स्तन मोटे तथा नेत्र चञ्चल और कुटिल हो गए ॥ ४७ ॥
 उस नवेलीकी आँसु धीरे-धीरे कानके पासतक फैल आई हैं,
 उसका मन भी धूलमें खेलनेके आनन्दसे लुब्ध-लुब्ध हट चला है,
 उसके हृदयपर भी स्तनरूपी वली प्रकट होने लगी है और उसके
 शरीरपर चारों ओर सुन्दर कान्ति बढ रही है । इसके जान
 पदा है कि बस धाजकलमें ही इसके शरीररूपी शयनपर
 फूलोंके धनुषगाला कामदेव युवराज बनया जानेवाला है
 ॥ ४८ ॥ इस नवेलीके मुखपरकी भी हैं उचित उन्नते नाचनेमें
 चतुर हो चली हैं, कानिं वीठ होती जा रही हैं, छातीपर स्तनोंका
 उभार झलका था रहा है, कमर पतली होती जा रही है और
 जघन (पद) कड़ा हो रहा है । इस प्रकार इस हरिणिके नेत्रोंके
 समान आँसुवाली नायिकाके प्रत्येक भ्रूको कामदेवके छकेले
 सिम यौवनने ही ठीक-ठीक सजा दिया है ॥ ४९ ॥ चन्द्रमाके
 समान मुखवाली इस नवेलीके शरीरमें यौवनके धा जानेसे
 किसी हुई सुसजानवाला मुख, तिरछी चितवन, हावभाव-भरी
 हुई चाल, चञ्चल मुद्रि, उभरे हुए स्तनोंवाला हृदय तथा कड़ा
 और उभरा हुआ जघनस्पर्श बड़ा सुहायना लग रहा है ॥ ५० ॥
 एक ओर कौमल स्वयंकी क्षता, यद्-यद् बद्धलके फल, सखी-
 चौड़ी सुन्दर भूमि तथा नागसेमरके वृष इस समय घनको सुन्दर
 और धारुण बना रहे हैं, दूसरी ओर स्वयंकी क्षताके समान

पतली कमर, बद्धलके समान मोटे स्तन, विस्तृत भूमिके
 समान यद्-यद् नितम्ब तथा नागकेसरके चौंधोंके समान सुन्दर
 त्रिपलियाँ छियाँके यौवनको आरुणिक रूपसे सुशोभित कर रही
 हैं ॥ ५१ ॥ इस नवेलीके दोनों स्तनोंको यदते देवकर ऐसा
 प्रतीत होता है कि इसका प्राण-धारा ज्यों-ज्यों इसके हृदयमें
 प्रवेश कर रहा है त्यों-त्यों ये सङ्कोचके मारे बाहर निकले चारे
 हैं ॥५२॥ इस नवेलीके स्तन ज्यों-ज्यों बढ़ते जा रहे हैं त्यों-त्यों
 नेत्रोंकी चितवन देवी होती जा रही है । सचमुच जिन दुर्गेका
 मन प्योटा होता है वे स्वभावसे ही दूसरेकी उन्नति नहीं सह
 सकते ॥ ५३ ॥ जबसे इस चन्द्रमाके समान मुखवाली
 नवेलीमें यह आनन्द देनेवाला यौवन उभरने लगा है तबसे
 युवकोंके हृदय बिना आगके ही जलने लग गए हैं ॥ ५४ ॥ हे
 मृगके छुनेके नेत्रोंके समान चञ्चल नेत्रोंवाली ! हम समझ
 गए कि तुम शय वचनपरकी रक्षा नहीं कर सकती क्योंकि
 घुम्हारी सखियाँने तुम्हारे नेत्रोंमें जो पृकान्तमें कज्जलकी सीधी
 रेखाएँ बना दी थी वे देड़ी हो चली हैं और हाथ-रूपी कमलके
 स्पर्शसे दुपनेवाली छातीका उभार भी अब स्पष्ट दिखाई पड़ने
 लगा है ॥५५॥ जब बालापन और जवानीका दुराग था जाता है
 और कामदेव तीनों लोकोँकी जीतनेके लिये कमर बस लेता है
 तब हरिणके नेत्रोंके समान आँसुवाली नायिकाका कौनसा धर
 क्या उल्लास नहीं करता ? देवरे, स्तन सो अपनी घेरा यद्-यद्-के
 हो जाते हैं, नितम्ब चौड़े हो जाते हैं, उदरपर बहिर्याँ पढ जाया
 है और भीमोंमें भी रिकानन था जाता है ॥ ५६ ॥ उस सुन्दर

रेण सुदृशः सिकायिलाङ्गस्थली जातम्नत्र नवीन-
 यौवनकलालीलालनामण्डपः । तन्मिन्नेपविशेषेपशीतल-
 तरच्छायासु सुसोस्थितः कन्दर्पखिजगज्जयौघमपरोऽ-
 प्यघापि निद्रालसः ॥५७॥ लावण्यामृतमाहितं वरतनो-
 रङ्गे स्थितं यत्पुरा तत्तारुण्यघनोद्येन बहुधा सम्ब-
 द्धितं पद्मम् । वीक्ष्य स्पन्दनशुद्धितः कुचयुगाव्याजा-
 न्नितम्बस्थलाचक्रे सेतुयुगं न चेद्विह कुतम्भादप्रसस्था-
 स्नुता ॥ ५८ ॥ लास्याभ्यासमिषेण चित्रमनया गात्रा-
 र्पणं शिञ्चितं लीलापञ्चमडोलनेन दलिता कण्ठस्य कुण्ठा
 गतिः । किं व्यावर्णनया समस्तलटभालङ्कारतामिष्यति
 स्वल्पेनैव परिभ्रमेण रमणीं देवस्य रामागुरोः ॥ ५९ ॥
 चक्षुस्यावराणादरस्तनयुगोद्भेदं विनायुह्वलीमुद्रासूचि-
 तद्दास्यमाम्यमधिकं नो पुत्रिकादां रसः । तिर्यग्लोच-
 नवीक्षितानि घचसां छेकोकिसंज्ञान्यस्तस्थास्तीदति
 श्रेष्ठेव समभयत्कोऽप्येव नव्यः क्रमः ॥ ६० ॥ श्रोणीय-
 न्वस्त्यजति तनुतां सेव्यते मध्यभागः पद्मार्थां मुक्तास्त-

रलगतयः संधिता लोचनभ्याम् । घचे वज्रः कुचस-
 चिवतामद्वितीयं तु यत्रं तद्गात्राणां गुणविनिमयः
 फलिपती यौवनेन ॥ ६१ ॥ सन्नद्धोऽयं नवतरुणिमा
 काममास्क्रन्दुकामो नैनां मुञ्जव्यहह सहमा फीतुनी
 यालभायः । तद्वैराजं धरतरतनुम्यर्णभूमीं प्रवृत्तं प्राय-
 स्वस्मादनुदिनमयं क्षीयते मध्यवेगः ॥ ६२ ॥ सभ्रमङ्गं
 करकिसलयावचनैरालपन्ती सा पश्यन्तीं ललितललिनं
 लोचनन्याञ्जलेन । विन्यस्यन्ती चरणक्रमले लीलया
 स्वैरप्यातेनिःसङ्गीतं प्रथमवयसा नत्तिता पद्मजादी
 ॥ ६३ ॥ समं यिलासोऽङ्कुरितः स्तनाभ्यां प्रपार यिला-
 सेन सहावतीर्णा । अयर्चतान्यरूपयैव साकं कान्तः
 प्रकाशो वचसां कृशाङ्गथाः ॥ ६४ ॥ सम्मिधयोरमुप्या
 वयसोः पयसोरिवाङ्गेषु । अनयो रसभिदेदं मानस-
 जन्मा परं वेद ॥ ६५ ॥ स्तनतटमिदमुकुङ्गं निन्नो मध्यः
 समुन्नतज्ञघनम् । विपमे मृगशावाच्या वपुषि नये क
 इव न स्पलति ॥ ६६ ॥ स्थिरत्वमचिरघतां तमसि

श्रीलौवाली नवेलीके सुन्दरतारुणी अमृतके भरनेमे सींचे
 हुए अरुणी खेलमेंसे सुन्दर वेग-रचनाकी अत्यन्त शीतल
 ध्यायावाला तथा नये यौवनकी कलारूपी लतावाला जो मण्डप
 निकल आया है उसमेंसे तीनों लोकोंके जीतनेके फेरमें पढ़ा
 रहनेवाला कामदेव सांकर उठा हुआ अभीतक भी अँगड़ाई
 ले रहा है ॥ ५७ ॥ प्रह्लाजाने उस नवेलीकी सुन्दर देहमें
 तरपाईं रूची मेघोंके आनेसे बड़े हुए सौन्दर्यरूपी अमृतको जन
 आता देखा तब इस उरमे कि वह कहीं वह न जाय, उन्हींने
 दोनों स्तनों और नितगोंके दो बाँध बना दिए, नहीं तो
 इस प्रकारका रस यहाँ टहर कैसे पाता ॥ ५८ ॥ कामल
 नृत्य सीमनेके बहाने इस नवेलीने कुछ अनाला हाव-भाव
 साँस लिया है और खिलवावमें पद्म स्वर साधकर उसने
 अपने गलेका बेसुरापन भी दूर कर दिया । हम और उसका
 क्या बर्णन करें, वह तो बाँधे ही परिधरमसे बनाव तिरागमें
 हप्तराश्रोंके भी कान काटने लगी ॥ ५९ ॥ बचपन समाप्त
 होनेके समय उसमें ये नई बातें होने लगीं है कि दोनों स्तनोंके
 निना उभरे ही वह धारतें दकती चलती है, अपने मुँहपर उँगली
 रग-रगकर मुसकराती है, गुड़ियोंमे खेलनेमें रम नहीं लेती,
 तिरड़ी चितवनने देखती है और बात-चीत भी बड़ी चतुराईके
 साथ करने लगी है ॥ ६० ॥ यौवनने उस नवेलीके अङ्गमें गुणोंकी
 कुछ ऐसी अनोखी अदला-बदली कर दी है कि नितम्बका

पल्लापन कमरमें चना गया, पैरोंकी चञ्चलता नेत्रोंमें चली गई,
 हृदयने स्तनोंको अपनी मन्त्री बना लिया और मुख अद्वितीय
 (अकेला या अनुपम) हो गया ॥ ६१ ॥ इस नवेलीके
 शरीरमें एक और तो कामदेवको परास्त करनेके लिये नया
 यौवन फकर कमे पड़ा है, दूसरी आर कौतुकी बचपन हमे
 छोड़नेका नाम नहीं लेता, इसलिये उस नवेलीके सुन्दरशरीररूपी
 स्वयंराज्यपर दो-दो राजाशोक अक्रमण हां रहा है जिसकी
 चिन्तामे उसकी कमर झीजती चली जा रही है ॥ ६२ ॥ देवी,
 उस कमलके समान नेत्रवाली नवेलीको यह तरपाईं विना
 गीतके ही नचा रही है क्योंकि वह हाथ नचानचाकर और भीह
 मटका-मटकाकर बातें करता है, अपनी आँखोंकी सुन्दर लुभावनी
 चितवनके साथ देखती है और मनमाने वस्से बड़े हाव-भावके
 साथ धरवापर पर धरती चलती है ॥ ६३ ॥ इस पल्ले शरीरवाली
 नवेलीमें स्तनोंके साथ-साथ कोंदाई उभरीं, त्रींदाश्रोंके साथ
 लज्जा था गई और लज्जाके ही साथ सुन्दर बोलनेका वङ्ग भी
 आ गया ॥ ६४ ॥ जैसे मानस (मानसरोवर)में उपनन्न होनेवाला
 हस ही दूध और जलका भेद करना जानना है वैसे ही मानस
 (मन) में जन्म लेनेवाला कामदेव ही हम नवेलीके अङ्गमें
 मिलती हुई अन्त्याश्रोंके रसोंका भेद जान सकता है ॥ ६५ ॥
 ऊँचे-ऊँचे स्तन, पल्लो तथा लचकीनी कमर और ऊँचे
 बड़े-बड़े नितम्बोंमे स्तनी-ऊँची इस हरिणके नेत्रोंके समान

काऽपि घन्धग्रहो विधो किमपि सौरभं मधुनि कापि
घर्णात्मता। शिरोपनघदामनिस्फुरति कोऽपि शैलोद्यो
ययोऽभिनवघेषस्तद्विह मन्महे कौशलम् ॥ ६७ ॥
स्मितं किञ्चिद्घने सरलतरलो दृष्टिभिभव. परिस्थन्दो
पाचामभिनवविलासोक्तिसरसः। गतीनामारम्भः किल-
सयितलोलापरिकर. स्पृशन्त्यास्ताहृष्यं किमिह नहि
रम्यं मृगदृशः ॥ ६८ ॥

युवतीवर्णनम्

अधारि पद्मेषु तद्विष्णु घृणा कथं तच्छ्रयच्छ्राय-
लवोऽपि पल्लवे। तदास्पदास्येऽपि गतोऽधिकारितां न
शारद. पार्विकशर्वरीश्वर ॥१॥ अमुष्य द्यौर्भ्यामरिदुर्मा-
लुएन्द्रे ध्रुवं गृहीतानर्लदीर्घीनिता। उरःश्रिया तत्र च
गोपुरस्फुरत्कपाटदुर्भरतिर प्रसारिता ॥२॥ ऊरुद्वन्द्व-
मनिन्दितं प्रथयता श्रोणां समातन्वता रोमालां सृजता

श्रीर्गोवाली नवेलीकी देह देखकर कोन नहीं विचलित हो
जाता ॥ ११ ॥ इस नवेलीकी इस अवस्थाका निमांश धरनेमें
किसी नराले मद्धाने कोई विचित्र ही कौशल किया है क्योंकि
उमने निजली स्थिर कर ही अन्धकार बाँध दिया, अन्धमामें
सुगन्ध भर दी, मधुमें सुन्दर स्वरूप भर दिया और शिरीषके
पूलोंकी नई मालामें विचित्र उठते हुए पर्वत बना दिए अर्थात्
उस नायिकाकी देह स्थिर बिजलीके समान प्रकाशमान, उसके
दोपे हुए घने केश अन्धकारके समान काले, उसका मुख सुगन्धसे
सुसन्त, उसकी घाहूति मधुर और उसके हृदयमें उठते हुए स्तन
धायन्त सुन्दर लग रहे हैं ॥ ६७ ॥ इस मृगके नेत्रोंके समान
श्रीर्गोवाली नवेलीका क्या सुन्दर नहीं लगता ? अर्थात् उसके
मुखकी मन्द मुसकान, सीपों और चमक चितवन, नई विलास
भरी उल्लोखित सरस बाणों, हान-भाव एवं चलनेका दम और
बोमल पशुके समान चिकना स्पर्श आदि सभी कुछ अद्भुत
लगता है ॥ ६८ ॥

युवतीका वर्णन

जब उस युवतीके परयात्तने लाल कमलकां नीचा दिसाना
प्रारम्भ कर दिया तब भला बेचारी कौपलोंमें उसके हाथकी
छलारकी मन्तकनक भी कहीं मिल सकती है ? और तो और,
शारदकी एतकी रातका स्वामी अन्धमा भी उसके सामने
पैसा कीका जान पड़ने लगा है कि उसके सुगन्ध दाम
धरने तकका भी वह अधिकाारी नहीं रह पाया ॥ १ ॥ इस
नवेलीके हाथोंने शयुर्भोगा कुगं स्तद्वर उसके फाटकी धरणा

समागमयता नाभिं गभीरश्रिया। मध्यं क्षामयता
स्तनौ घनयता फान्त्या मुखं लिम्पता तन्मङ्गया
नवयौघनेन किमपि प्रत्यङ्गमुन्मीलितम् ॥३॥ किमस्य
रोम्णां कपटेन कोटिभिर्विधिर्न लेखाभिरजीगण-
द्रुणाम्। न रोमकूपौघमिपाज्जगट्कृता कृताश्च किं
दृषण्यस्यविन्दवः ॥ ४ ॥ गतं कर्णाश्रुणं प्रसरति
तथाऽप्यक्षिगुलं कुचौ कुम्भारम्भौ तदपि चिदुक्तो-
म्भनरुची। नितम्बप्राग्भारो गुरुरपि शुरुवं मृगयते
कथञ्चिन्नो तृप्तिस्तरुणिमनि मन्थे मृगदृशः ॥ ५ ॥
तरत्तारञ्जलु जपयति मुनीनामपि दृशः कुचद्वन्द्वानां
हृदयमहदद. कान् न कुरुते। गतिमैन्द्रीभृता हरति
गमनं मन्मथयतामहो तुल्यं तन्व्यास्तरुणिमनि सर्वं
विजयते ॥६॥ तरन्तीघाहानि स्वलदमललाघयजलधौ
प्रथिन्नः प्रागल्भ्यं स्तनजघनमुमुद्रयति च। दशोली-

(अगरी, र्घोऽपि) की गोलाई और लम्बाई तथा छाती ने उस
फाटकी कठोरता तथा ऊंचाई अवश्य ले ली है उसकी
बाहे गोल्-गोल लम्बी और छाती कठोर तथा ऊँची हो गई
है ॥ २ ॥ नई जवानोंने उस नवेलीके अंग-अंगको कुछ अनोखे
दंगसे पैसा लिला दिया है कि उसकी दोनों बाँवें धायन्त
शोभाके साथ मोटी हो गई हैं, नितम्ब फैल गए हैं, छातीके
नीचे रोम-पंक्ति फूट आई है, नाभि गहरी हो चली है, कमर
पतली हो गई है, स्तन मोटे हो गए हैं और सुँहर चमक
आ गई है ॥ ३ ॥ मद्धाने इस नवेलीके शरीरपर जो रोम बनाए
हैं वे ऐसे जान पड़ते हैं मानों इसके गुणोंकी गिनती करनेके
लिये ही उसने कपटेने उपाय रचा है और उनके साथ अन्यके
समान रोमके चिद्र यही बतानेके लिये बनाए हैं कि इसमें एक
भी दोष नहीं है अर्थात् वह दोषरहित है ॥ ४ ॥ हरिणकी शरीरों
जैसे नेत्रोंवाली युवतीको जवानोंमें किसी प्रकार भी सन्तोष नहीं
होता क्योंकि यद्यपि उसकी दोनों श्रोतों कानके पास तक
जा पहुँची है फिर भी बढ़ती हो जा रही हैं, उसके स्तन पक्षों
नितने बढ़े होंवेपर भी दौड़तीक उठनेके लिये मचन रहे हैं
और उसके नितम्ब भी यद्यपि पहलेसे ही बढ़े और भारी हैं फिर
भी और बढ़े जाना चाहते हैं ॥ ५ ॥ उठती हुई जवानोंमें उस
नवेलीके साथ अन्न सबको समान रूपसे जीतते पक्षे जा रहे हैं
क्योंकि उसकी चमक शक्ति मुनिपोंकी शरीरोंकी भी विचलित
किए चलती हैं, उसके दोनों स्तन किन हृदयवालोंको बिना
हृदयका नहीं कर रहे हैं और उसकी मतवाली चाल न जाने

लारम्भास्सुकुम्भपचन्द्रे सरलतामहो सारङ्गाद्या-
स्तकण्ठिमनि गाढः परिकरः ॥ ७ ॥ न का निशि स्वन्-
गतं ददर्श तं जगाद् गोत्रस्पलिते च का न तम् ।
तदात्मताप्यातधवा त्ते च का चकार वा न स्वमनो-
भवोद्भवम् ॥ ८ ॥ निमीलनध्रंशुषा दृशा श्रृंषं निषीय
तं यस्त्रिदशीभिरजितः । अमुस्तमभ्यासभरं विद्वृष्यते
निमेषनि स्वैरधुनापि लोचनैः ॥ ९ ॥ पर्याप्तस्तनभार-
पीडितसुरस्तेनैव मथ्यो हत पुंसां चित्रवधं धृतेविदधते
काश्चिद्दृशोर्धृचयः । किं भूयः कथितेन पद्मलदृशः
पूर्णं तथा यौवने कन्दर्पः परिपूर्णविश्वविजयः किं
दर्पतो नाचरेत् ॥ १० ॥ विलोक्यन्तीभिरजत्रभाव-
नायलादमुं तत्र निमीलनेष्वपि । अलम्बि मर्त्याभिरमुष्य
दृशे न विम्लशोऽपि निमेषनिमित्तः ॥ ११ ॥
शारीयूतकलाकुवहलि मनश्छेकोकिशित्तरतिः ह्यर्धं

दर्पणपाणिना स्वकयरीयन्धेन चाचार्यकम् । प्रौढश्री-
चरितानुवृत्तिपु रसो धाल्ये च लज्जा मनाम्नोमा-
रोहिण्यौ यौवने मृगदृशः कोऽन्येय केलिक्रमः ॥ १२ ॥
सरोरुहं तस्य दृशौ तजित जिताः स्मितेनैव विधोरपि
श्रियः । कुतः परं भव्यमहो मर्तीयसो तदाननम्योप-
मितौ दरिद्रता ॥ १३ ॥ स्मिनपरिच्युता वृत्तिर्वाचाम-
पाङ्कतदङ्कितं नयनचरितं पादङ्गासो निगमभराकृतः ।
हहह सुतनोर्लोलासूत्रैः फलं पद्मद्वके चहुतु मदनः
शोभाभात्रं धनुर्नु सम्पति ॥ १४ ॥ स्वकेलिलेशस्मि-
निन्दितेन्दुनो निजांशुडकजितप्रपसम्पदः । अतद्दृश्यो-
जित्वरसुन्दरान्तरे न तन्मुखस्य प्रतिमा चराचरे ॥ १५ ॥
स्वयालभारन्ध्र तदुत्तमाङ्गजैः समं चमयैव तुलाभिला-
पतः । अनागसे शंसति यालचापलं पुनः पुनः पुञ्ज-
विलोलनच्छलात् ॥ १६ ॥

कितने कामियोंकी चाल बन्द कर रही है ॥ ९ ॥ आह ! उठती
जवानियोंमें हरिणके शीर्षोत्थी-सी शीर्षवाली नवेलीके साथ बड़ी
कठिनाई उत्पन्न हो जाती है क्योंकि उसके अङ्ग स्वच्छ सौन्दर्यके
समुद्रमें तैरते हुएसे जान पड़ते हैं, स्तनों और नितम्बोंका
भारीपन उसकी चञ्चलताको रोक डालता है और नेत्रोंमें जो
नई चञ्चलता आ रही है वह स्वच्छ रूपसे उनकी सरलता
दूर कर रही है ॥ ७ ॥ इस अवस्थामें किसने अपने मनकी
चाहसे शतको स्वप्नमें अपने मिथको नहीं देखा, अचानक भूलसे
उसका नाम नहीं लिया और अपने मनमें ही अपने सोचे
हुए प्रियके साथ रमण नहीं किया ॥ ८ ॥ अपलक नेत्रोंसे भली
प्रकार देखनेका जो अभ्यास देवलोककी अत्पराधोने किया है
वही अभ्यास यह नवेली धात्र अपने अपलक नेत्रोंसे देखकर
प्रकट कर रही है ॥ ९ ॥ अब और क्या कहा जाय, उस
कटीली शीर्षोत्थीकी शरीरपर नई जवानी चढ़ आनेपर मानो
कामदेवने अपना विरवविजय पूर्ण कर लिया अतः थय वह
अपने धर्मद्वमें क्या-क्या नहीं कर सकता ! देजो, एक और तो
स्तनोंके अत्यन्त भारसे हृदय पीडित है और उसी भारसे
उसकी कमर पतली हुई जा रही है और उसकी चितवन
पेसी अगोली चल रही है कि विचित्र प्रकारसे वह लोगोंके
धैर्यकी हत्या करती चली जा रही है ॥ १० ॥ शीर्षोत्थी
जानेपर भी अपनी हृद् भावनाके बलसे मनुष्य-लोककी स्त्रियोंने
उस युवकको निरन्तर देखते-देखते अपनी पलकें पेसी सिद्ध
कर लीं कि उन्हें पलक गिर जानेपर भी उसके दर्शनमें तनिक-

सी भी बाधा नहीं हुई ॥ ११ ॥ पासा और लुभाखेलेनेकी कलामें
मन लगानेवाली, बात बनानेकी कला सीतनेमें रचि दिवानेवाली,
स्वयं हाथसे दर्पण लेकर अपना जूडा बाँधनेमें चतुर, वचनके
कारण कुछ लज्जा करनेवाली पर प्रौढ़ स्त्रियोंके समान आचरण
करनेमें रस लेनेवाली रसीली नवेलियोंका उस समय ऐसा ही
खेल होता है जब वे कुछ-कुछ जवानियोंकी सीढ़ीपर चढ़ने
लगती हैं ॥ १२ ॥ कमलको उसकी धौलोंने हरा दिया और
चन्द्रमाकी सारी कान्ति उसकी मुसकानने जीत ली, इमोलिये
उसके मुखकी उपमा देनेमें इतनी बड़ी दरिद्रता त्रिचाई पडने
लगी है ॥ १३ ॥ मुसकानसे घुली हुई उसकी बातें, लहराही
हुई चितवन तथा नितम्बोंके भारके कारण मन्द गति देवकर
जान पड़ता है कि उस कोमलाङ्गीके अङ्गोंमें कुछ नये हाव-
भावके सूत्रोंने प्रवेश कर लिया है । अब इसके सामने
कामदेव अपने धनुषको शोभाभात्रके लिये भले ही धारण किए
रहे किन्तु वह इनके सामने कुछ नहीं है ॥ १४ ॥ जब उसने अपनी
खिलवाड़की तनिकसी मुसकानसे चन्द्रमाकी लजा दिया और
अपनी चितवनकी एक रूपकसे कमलकी शोभा फीकी कर दी तब
चन्द्रमा और कमलको जीतनेवाली तीसरी कोई वस्तु रह ही
नहीं गई; इसीलिये उस नवेलीके मुखकी उपमा चर और
अचर कहीं भी नहीं मिल सती ॥ १५ ॥ चँवरी गौँए बार-बार
अपनी पूँछें हिला हिला कर मानो यह सिद्ध कर रही है कि हम
निरपराध हैं और यह हमारे बालोंका लड़कपन है कि वे उस
नवेलीके सिरपर शोभा पानेवाले बालोंकी बराबरी चाहते हैं ॥ १६ ॥

नवार्गसप्तर्षीनाम्

केशशाशः—अस्याः फचानां शिखिनदच किन्तु विधिं कलापी विमतेरगाताम् । तेनायमेभिः किमपूजि पुणैरर्भस्ति दत्त्वा स किमर्धचन्द्रम् ॥ १ ॥ अस्या मनोहराकारकवरीभारनिजिताः । लज्जयेव वने वासं चक्रुश्चमरवर्हिणः ॥ २ ॥ अस्या यदास्येन पुरस्तिरश्च तिरस्कृतं शीतलचान्धकारम् । स्फुटस्फुरद्भङ्गिकचच्छलेन तदेव पश्चाद्विदमस्ति वद्धम् ॥ ३ ॥ अस्याः सपत्नैकविधोः फचौघः स्थाने मुखस्यापरि धासमाप । पत्नस्थतावद्बहुचन्द्रकोऽपि कलापिनां येन जितः कलापः ॥ ४ ॥ आभाति शोभातिशयं प्रपञ्चद्वेषीदृशोऽस्या रमणीयशोभा । वेषी लसत्कुन्तलधोरणीनां श्रेणीय किं चास हरिमणीनाम् ॥ ५ ॥ इयं मुवाल्मोषहसन्निधाने विलम्बिधम्मिल्लततिच्छलेन । समागतां सादरमेघ वाला द्विरेफमालामुत वा दधाति ॥ ६ ॥ उन्मीलद-

नवशिख-वर्षान्

केशः । मोरंते इसके बालोंके निर्माणके समय प्रजाजीका क्या विगाधा था कि उन्होंने इन बालोंको तो फूलोंसे पूजा और मोरोंको फूलको अर्धचन्द्र देकर उनका अनादर किया ॥ १ ॥ चँवरी गीर्षु और मोर जो वनमें रहते हैं उसका कारण यही है कि इसके मनोहर जूड़ेसे पराजित होकर उन्होंने धनयास प्रारण कर लिया है ॥ २ ॥ इसके सिरके पीछे जो चमकते हुए चोट्टीके रूपमें बाल बँधे हुए हैं वे ऐसे जान पड़ते हैं मानो इसके चन्द्रमाकरूपी मुणके सामनेसे और अगल-बगलसे जो धपेटा हटा यही पीछे बाँध दिया गया है ॥ ३ ॥ उस नवेलीके चन्द्रमाके समान मुणके पास उचित स्थानपर स्थापित यह जूड़ा सचमुच यदा सुन्दर लगता है क्योंकि हूने घट्टन-से चन्द्रिकानाले मोरोंके समूहोंको अपनी शोभासे जीत लिया है ॥ ४ ॥ इस हरिणके समान श्रॉंवाली भायिकाकी सुन्दरता और विभासाँसे भरी हुई उसकी शोभा उस सुन्दर दुपरी हुई बालोंकी चोट्टीके कारण और भी अधिक बढ़ गई है जो नीलमकी पत्रिके समान सुन्दर लग रही है ॥ ५ ॥ इस नवेलीके मुणकमनपर लहराते हुए बाल ऐसे जान पड़ते हैं मानो भीरोंकी पारंटा आदरपूर्वक चली आईं हों ॥ ६ ॥ उसके बाल हूने काले हैं कि वे ऐसे लगते हैं मानो जय धपेटा इस नवेलीके पास धावा हों पहले निकलने हुए चन्द्रमाके समान मुणकी चमकने, उसे दूर कर दिया, मोटे

नेन्दुकान्तिविसरे दूरे समुत्सारितं भङ्गं पीनकुचस्थलस्य च रुचा हस्तप्रभाभिर्हतम् । एतस्याः फलचिद्विकारव्य-दलीकल्पं मिलत्कोतुकादमाताङ्गसुखं रूपेव सहसा केशेषु लङ्गं तमः ॥ ७ ॥ एशीदृशः पाणिपुटे निहन्ना वेषी विरेजे शयनोस्थितायाः । सरोजकोशादिव निष्प-तन्ती श्रेणी घनीभूय मधुप्रतानाम् ॥ ८ ॥ एतां नवाय्मु-धरकान्तिमुदीच्य वेषीमेणीदृशो यदि वदन्ति वदन्तु नाम । प्रमो वयं मुखसुधांशुसुधाभिलापादभ्यागतं भुजगिनीं मणिमुद्रहन्तीम् ॥ ९ ॥ एशीदृशो विजयते वेषी पृष्टायलम्बिनी । कश्चेव पञ्चवाणस्य युवतर्जनहे-तवे ॥ १० ॥ केशान्मुमनसां सेव्यान्वामा व्रमन्ति निर्दयम् । स्थाने तथाचिधानां वा प्रमदानां समीहितम् ॥ ११ ॥ फोटिल्याच्छन्नमाहात्यस्तदीयोऽलकसञ्चयः । कृष्णद्युतिः पुरस्तिप्रघ्नादधे कं समाकुलम् ॥ १२ ॥ चलत्कामिमनोमीनमादातुं चित्तजन्मनः । गलयष्टिरि-

स्तनोंकी कान्तिने उसे तोड़ दिया और हाथोंकी दमकने उसे चूर चूर कर दिया तब वह बड़े क्रोधसे गीरीयाके गलेके समान उसके सुन्दर अङ्गोंको न चू सकनेके कारण उछलकर उसके बालों पर ही कूट बैठा ॥ ७ ॥ वह हरिदीके नेत्रोंके समान श्रॉंवाली नवेली जब शीयासे उठी तो उसके हाथोंमें उलकी हुई चोट्टी ऐसी शोभा पर रही थी मानो कमलोंके कोशाँसे भीरोंके झुण्डके सुगन्ध पाँत बाँधकर निकले चने आ रहे हों ॥ ८ ॥ हरिणोंके नेत्रोंके समान श्रॉंवाली नवेलीकी नये बादलोंके समान सुन्दर चोट्टीकी यदि कुछ लोग 'चोट्टी' कहते हैं तो भले कहें, पर हम तो यही कहेंगे कि मुक्तरूपी चन्द्रमाका अमृत पीनेगी दृष्टाते कोई मणिधर सँघिणी वहाँ आ पहुँची है ॥ ९ ॥ हरिणोंके नेत्रोंके समान श्रॉंवाली उस नवेलीकी पीठपर लटकती हुई चोट्टी ऐसी लगती है मानो युवकोंके घमकानेके लिये कामदेवका कोड़ा हो ॥ १० ॥ सुन्दर मनवाले लोगों (फूलों) से जो सेवा कराते हैं उन बालोंकी चिरियाँ जो बसकर बाँधती हैं वह ठीक ही है । ऐसे दुयोंको दून भरार बाँधना ही ठीक है (क्योंकि वे शत्रुसे मनवालोंसे घपनी सेवा कराते हैं) ॥ ११ ॥ सामने लहराते हुए उसके बाल सचमुच यदे हुटिल (धुँधाले, दुष्ट) हैं क्योंकि उनकी काली चमक किये ब्यातुङ्ग नहीं कर देती ॥ १२ ॥ इस नवेलीकी जो चोट्टी मोतियाँवाँ लडियाँसे चमक रही है वह ऐसी जान पड़ती है मानो चञ्चल कामियोंके मनरूपी मण्डलियोंकी कान्तिने लिये कामदेवकी बँटी हो ॥ १३ ॥

वाभाति बालावेषी गुणोज्ज्वला ॥ १३ ॥ चिकुरप्रकरा जयन्ति ते विदुषी मूर्धनि यान्विर्भाति सा । पशुनाय्य-पुग्स्थतेन तत्सुलनामिच्छति चामरेण फः ॥ १४ ॥ तमस्तोम भृशं सोममण्डलोपरि राजसे । धूमपानेन किं नाम धाम गम्यमतः परम् ॥ १५ ॥ तस्याः कचम रव्याजात्तनयक्रेहलाक्षितः । आरूढः पार्वतीबुद्ध्या गुह्य-यहीष मूर्धनि ॥ १६ ॥ ध्रुनोतु ध्यान्तं नस्तुलितदलितेन्द्रीवरचनं घनकिङ्गं श्लक्ष्णं चिकुरमिन्दुरम्यं तव शिपे । यदीयं सौरभ्यं सहजमुपलभ्युं सुमनसो वसन्त्य-स्मिन्मन्ये पलमथनवाटीविटपिनाम् ॥ १७ ॥ न जीमू-तच्छ्रेद्द स हि गगनचारी न च तमो न तस्येन्दोर्मैत्री न च मधुररास्ते हि मुखराः । न पिच्छं तत्केकिन्यु-चितमसितोऽयं न च मणिर्मुदुत्वादाह्वतं घनचिकुर-पाशो मृगदृशः ॥ १८ ॥ बाला बालान्वशीकृत्य निवध्मा-

तीति नाद्गुनम् । किन्तु तैः सह हा हन्त पथिकानपि दर्शयान् ॥ १६ ॥ भाति धिन्वन्तन्हानं सुकेभ्याः केश सञ्जयम् । शोणितारैः शूरैः पूरुं तृणीरमिन् मान्मथम् ॥ २० ॥ मलिता अपि संयमनात्कुटिला अपि सुमनसां समागतः । बाला अपि मुचानामनुपक्रान्तिर्जरन्वमु पयान्ति ॥ २१ ॥ यं यं त्वं प्रमद्रे मनागपि दृशोर्लक्ष्यं विधत्सेऽध्वगं द्यिन्नप्राण इव क्षणा स सक्तो व्यापयत्रते हा क्षणात् । तज्जन्यं घृतिनं समुचितमिदं मन्ये न केशो ध्ययं न ध्वान्तं न हि तस्य सम्भवति संयोगो मुग्नेन्द्री स्थिते ॥ २२ ॥ हसन्मौक्तिक्यप्रेणिकङ्गातरङ्गा स्वयं नन्दिनी भास्वतो नीलवर्णा । ससीमन्तसिन्धूरसारम्प ताभा त्रिवेणीयमेणीदृशो मौलिवेणी ॥ २३ ॥ धिकचक-चकलापः किञ्चिदाकुञ्चितोऽयं कुचकलशनिर्देशो शोभते श्यामलाच्या । मधुरसपरितोपात्किञ्चिदु-कुल रीये

इस विदुषीने अपने मस्तकपर जो बालोंके गुच्छे धारण किए हैं वे ससारको जीत रहे हैं क्योंकि जब बँवरी गौ, पशु होकर भी इन बालोंसे हारकर अपने बाल धागं न रखकर पीछे पँडुपर रग छोडती है तब भला इन बालोंसे और दूसरा कौन तुलना करना चाहेगा ॥ १३ ॥ बालोंको सन्तोषित करके कवि कहता है कि हे अन्धकार समूह ! तुम तो यों ही चन्द्रमण्डल (सुख) के ऊपर धावन्त योंभा पा रहे हो तिसपर यह शगरका धुआँ पीकर तुम और किस ऊँचे पदपर चढ़ जाना चाहते हो ॥ १४ ॥ उस नायिकासे मस्तकपर बाल ऐसे लग रहे हैं मानों पुत्र-स्नेहसे पला हुआ काँचिकेंयका मोर उसे पार्वती समझकर उसके मस्तकपर जा बैठा हो ॥ १५ ॥ सबसा करयाण करनेवाली है भवानी ! बादलके समान काला और लीले हुए नीले कमलके समान सुन्दर आपका वह केश-पाश हमारे चित्तका अन्धकार दूर करे तिमकी स्वामाविक सुगन्ध लेनेके लिये देवता लोग शूल बनकर नन्दनवनके घुँघोर पर चलते हैं क्योंकि नन्दनवनके कल्प-वृक्षके फूलोंसे ही भवानीके जूडेका श्रद्धार होता है ॥ १७ ॥ उस नायिकाके जूडेको देवकर कवि करपना करता है कि यह बादल नहीं हो सकता क्योंकि वह आकाशमें चलता है, यह अन्धकार भी नहीं है क्योंकि डमकी चन्द्रमाके साथ मिश्रता नहीं होती और यह चन्द्रमा (सुख) के पास है, यह भीरोंका समूह भी नहीं है क्योंकि वे तो गँडते रहते हैं, यह पूँछ भी नहीं है क्योंकि यह तो मोरोंके होती है और यह मणि भी नहीं है क्योंकि काला है किन्तु इसकी कामलता देवकर समझमें आ जाता है

कि यह हरिणके नेत्रोंके समान श्रौंलाबाली नायिकाके घने बालोंना जूडा ही है ॥ १८ ॥ यदि वह नायिका अपने बाल समेटकर कसकर बाँधनी है तो बाँधे, इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है किन्तु हुए तो यह है कि वह उन बालोंके साथ दृगंक पथिकोंको भी कसकर बाँध लेती है ॥ १९ ॥ उस सुन्दर केशवाली के बाल लाल कमलोंसे गुणे हुए ऐसे प्रतीत हो रहे हैं मानो वह रक्तसे भीगे हुए धायाँसे भरा हुआ कामदेवका तरकम हो ॥ २० ॥ जैसे इन्द्रियोंको वशमें रखकर मलिन स्वभाववाले, देवताओंका ससर्ग करके दुष्ट स्वभाववाले और जीवन्मुक्तोंके साथ रहनेसे बच्चे भी देवता बन जाते हैं वैसे ही ये काले-काले बाल भी माँग कानदेसे, पुण्योंमें गँडेनेसे और मोतियोंमें गुँडे जानेके कारण जराशून्य (कमी न गिनेवाले) हो रहे हैं ॥ २१ ॥ हे कामिनी ! जो पथिक चण भरके लिये भी तुम्हें देव लेता है वह तत्काल मृतक होकर गिर तो पडता है किन्तु तत्काल जी भी उठता है पर उसका कारण तुम्हारे बाल नहीं है यरन् बालोंके साथ लगा हुआ तुम्हारा मुखरूपी चन्द्रमा है जिसके अश्रुवसे वह मर नहीं पाता ॥ २२ ॥ उस हरिणिके समान नेत्रोंवाली नायिकाके सिरकी चोटी त्रिवेणीके समान लागती है क्योंकि उसमें गुँथी हुई मोतियोंकी लड़ी तो गगानीकी तरंग है, काले बाल ही यमुनाकी धारा है और माँगमें सिन्धूरकी रेखा ही सरस्वती लहरा रही है ॥ २३ ॥ इन कनारो नयनोंवाली नायिकाके स्तन रूपी बरगँधोंपर जो कुञ्चुलकर लट बनकर लटदार बाल फैले हैं वे ऐसे योंभा दे

कमल इव निलीनाः पेटकाः पट्टपदानाम् ॥२४॥ विधिः
 किमस्या नितराममान्तमङ्गेषु ष्टङ्गाररसं सुकेश्याः ।
 जिग्धोऽङ्गसत्कुलकैतधेन निधाय मूर्ध्नि स्तवकीचकार
 ॥ २५ ॥ वेणीश्यामा भुजङ्गीयं नितम्बान्मस्तकं गता ।
 वक्त्रचन्द्रसुधां लेदुं सान्द्रसिन्दूरजिह्वया ॥ २६ ॥
 श्यामा मिलिन्दमाला वालाया वदनपद्मकरन्दम् ।
 आस्वादिनुमिव मिलिता ललिता वेणीमिपादेवा ॥२७॥
 स्तनाभोगे पतन्भाति कपोलाकुटिलोऽलकः । शशाङ्क-
 विम्बतो मेरो लम्बमान इधोरगः ॥ २८ ॥ ज्ञानार्द्रसु-
 क्तेष्वनुधूपवासं विन्यस्तसायंतनमल्लिकेयु । कामो
 दसन्तात्पयमन्दधीर्यः केशेषु लेभे यलमङ्गनानाम् ॥२९॥
 रथभानुराकलयितुं स समुद्यतोऽभूद्राकां विनाननसु-
 धांशुमहो यदस्याः । मन्ये तदस्य न च तिष्ठति पूरि-
 भायं भावो हि किन्तु परिपूर्णकले सुधांशौ ॥ ३० ॥

हृतं यद्यपि नीलाब्जं हृतामदमपी गजात् । अललातां
 तथाप्यस्याः प्रापुः कान्ति न पट्टपदाः ॥ ३१ ॥

ललाटः—आस्वादितोन्मुक्तमिषार्थविष्यं तमोमुषा
 द्रन्त सुधाकरस्य । सीमन्तसीमान्तमुदाररूपमिदं
 ललाटं ननु पङ्कजाध्याः ॥ १ ॥ केशान्धकारादथ दृश्य-
 भालस्थलार्थचन्द्रा स्फुटमष्टमीयम् । पनां यदासाय
 जगज्जायस मनोभुवा सिद्धिरसाधि साधु ॥ २ ॥

भ्रुवौ—असितात्मा समुन्नद्धः समाविष्कृतचापल ।
 भुजङ्गकुटिलस्तस्या भ्रूविक्षेपः खल्यते ॥ १ ॥ काम
 कार्मुकतया कथयन्ति भ्रूलतां मम पुनर्मतमन्वत् ।
 लोचनाम्बुरुहयोरुपरिस्थं भृङ्गशावकततिद्वयमेतत्
 ॥ २ ॥ किञ्चित्सविभ्रमोद्भिञ्चिभ्रूलता भाति भामिनी ।
 बालक्रीडाप्रतिद्वन्द्वि तर्जयन्तीथ यौवनम् ॥ ३ ॥ जड
 स्येन्द्रीर्लक्ष्मी गतमपि मदान्धस्य करिणः किशोरस्य

रहे हैं मानो मकरन्द पीकर वृत्त हुए औरे लिले हुए कमलके
 कोपर बैठे ऊँच रहे हों ॥ २४ ॥ इस नवेलीके सिरके सुन्दर
 चमकीले बाल देखकर ऐसा प्रतीत होता है मानो इस सुन्दर
 केशवाली नायिकाके श्रगोंमें जो श्वाभाररस इसके शरीरमें न
 समा सक्नेके कारण उफान पड़ा उसे हट्टा करके महाने
 टनके सिरपर बालोंके गुच्छेके रूपमें स्थापित कर दिया
 हो ॥ २५ ॥ माँगके सिन्दूरसे सुशोभित उसकी लम्बी
 चोंटी ऐसी जान पड़ती है मानो कोई बाली नागिन उस
 नायिकाके मुख रूपी चन्द्रमाका अमृत लाल जीभसे चाटनेके
 लिये नितम्बसे नाथितक चढ़ी हुई हो ॥ २६ ॥ इस
 बालाकी सुन्दर चोंटी ऐसी प्रतीत होती है मानो इसके
 मुख-चमलका रस पीनेके लिये काले भँतोंकी पॉत आकर उड़
 गई हो ॥ २७ ॥ उस नायिकाके गालोंसे होकर स्तनोतक
 लटकी हुई घुंघराली कुटिल अलकें ऐसी जान पड़ती है मानो
 चन्द्रमण्डलसे मर पर्यंतक कोई नागिन लटकी हुई हो ॥२८॥
 वनन्तके घीत जानेपर भी कामदेवको नवेलिशंके उन केशोंका
 महारा मिल ही रहा है जो स्नानसे भीग जानेके पश्चात् भूपकी
 गन्धके लिये खोल दिए जाते हैं और सायंवाल मलिकामके
 फूलोंसे गूँघ दिए जाते हैं ॥ २९ ॥ इसके मुखरूपी चन्द्रमाको
 प्रसनेके लिये यह जो पृथिमाने विना भी वैशरूपी राहु
 दिग्गर्द देता है यह बड़े आश्चर्यकी बात है । इससे हम
 समझते हैं कि राहु पृथिमाकी प्रतीका नहीं करता, यह
 तो बहरा भी पूर्ण चन्द्रमा देगता है वही प्रतनेके लिये या

दरता है ॥३०॥ यद्यपि भौरोंने नीले कमल और हाथीके मढ़की
 कालिमाकी हरा दिया है फिर भी उस कामिनीके अलकोंकी
 चमक भौरोंमें नहीं ही आ पाई ॥ ३१ ॥

माथा : उस कमलकी सी आँखवाली नवेलीका माँगक
 कैला हुआ माथा ऐसा जान पड़ता है मानो अन्धकारके मुल्ले
 निगले जाते हुए चन्द्रमाका आधा विष्य चुड़कर बचा लिया
 गया हो ॥३१॥ उस नायिकाके सिरके बाल अ-धकारके समान हैं
 और उसका माथा अष्टमीके आधे चन्द्रमाके समान । इनके
 साथ यह नवेली ऐसी प्रतीत हो रही है मानो इस श्रग्रीका
 आधार लेकर ही कामदेवने विश्व-विजयकी कामना सिद्ध की हो
 क्योंकि अष्टमीको मन्त्र साधे जाते हैं ॥ २ ॥

भौँदें : इस नवेलीकी ये काली, बड़ी-बड़ी, चञ्चल और
 सॉपके समान लहरनेवाली, भौँदें मनके काले, अमिमानी, वीठ
 (चपल) और छोटे दुटोंका सा आचरण कर रही हैं ॥३॥ इत
 लोग इन भौँदोंके कामदेवका धनुष बसाते हैं किन्तु मेरा तो
 मत यह है कि ये भौँदें नहीं वरन् नेत्ररूपी दो कमलॉपर बैठे हुए
 भौँदोंके बच्चोंकी दो पॉतें हैं ॥२॥ बड़े हाव-भावसे अपनी भौँदें
 टेकी किए हुए वह कामिनी ऐसी प्रतीत होती है मानो बाल-
 क्रीडासे होइ लेनेवाले यौवनको ढाट रही हो ॥३॥ इस सॉवली
 युवतीमें धरयण ही कोई विचित्र बात है क्योंकि सीधे-सादे
 चन्द्रमा, मतवाले हाथीके बच्चे तथा हिरनोंके भेड़ोंकी शोना
 तो इसने जे ही की साथ ही दयते-दयते कामदेवके सामने ही
 इसने अपनी चञ्चल भौँदें चलाकर उस बेचारेका धनुष भी धीन

छायां हरतु हरिणस्येज्जगताम् । इन्द्रं तु श्यामाङ्गयाः
किमपि ललितं यन्मदनतः समलं भ्रूलेपधनुरपि विद-
ग्धादपहतम् ॥ ४ ॥ तस्याः शलाकाञ्जननिर्मितेव
कान्तिभ्रूवोरायतलेष्वोर्या । तां वीक्ष्य लीलाचतुराम-
नङ्गः स्वचापलौन्दर्धमदं मुमोच ॥ ५ ॥ भ्रूरेषामुगलं
भाति तस्याश्चट्टलचलुप । पद्मद्वयीव हरिता नासाव-
शविनिर्गता ॥ ६ ॥ भ्रूम्यां प्रियाया भवता मनोभूचापेन
चापे घनसारभाचः । निजां यदक्षोपदशामपेक्ष्य सम्प्र-
त्यनेनाधिकरुधीर्यताजि ॥ ७ ॥ स्मरकल्पद्रुमो वाले तव
भाले द्विपन्नकः । पद्मयोरनयोश्चाया भ्रुवोर्व्याज्जुद-
ञ्चति ॥ ८ ॥ स्मारं धनुर्यद्विधुनोज्जिह्वातास्या यास्येन
भूतेन च लक्ष्मलेखा । पतञ्जयौ जन्म तदाप युगं लीला-
चलत्वोचितवालभावम् ॥ ९ ॥

नेत्रे—अतिपूजिततारेयं दृष्टिः श्रुतिलङ्घनजमा
सुतनुः । जिनसिद्धान्तस्थितिरिव सवासना कं न मोह-

यति ॥ १ ॥ अनङ्गमङ्गलभुवस्तदपाङ्गस्य भङ्गयः । जन-
यन्ति मुद्गुर्यनामन्तः सन्तापसन्ततिम् ॥ २ ॥ अमुष्य
मुपिता लक्ष्मीश्चक्षुपेति न नृतनम् । न वेधि कथय-
त्यस्याः कर्णे लक्षं किमुपलम् ॥ ३ ॥ अर्जुनः कृष्णमं
युक्तः कर्णे यत्रानुधावनि । तत्रेवं तु कुरुक्षेत्रमिति
मुग्धे सृशामहे ॥ ४ ॥ आधूर्णितं पद्मलमक्षिपत्रं प्रान्त-
द्यति श्वेत्यजितामृतायु । अस्या इवास्याश्चलादिन्द्रनी-
लगोलामलश्यामलतारतारम् ॥ ५ ॥ आशामिनोस्तद-
ङ्गोरञ्जनरेषाविधि वितन्वन्त्या । पाणिः प्रमाधि-
कायाः प्रापदपाङ्गं चिरेण विश्रम्य ॥ ६ ॥ आसां व्रतम-
तीवाक्षणेय्यपुरः परिसर्पणम् । सह यातं मनस्तत्र
त्यक्त्वा भूयो निवर्त्तनम् ॥ ७ ॥ इन्द्रीवरं लोचनयोस्तु-
लापे निर्माय यत्नेन विधिः कदाचिन् । अतुल्यतां वीक्ष्य
ततो रजांसि निक्षिप्य चित्ते स पङ्कमये ॥ ८ ॥
इषुत्रयेरौव जगत्त्रयस्य विनिर्जयात्पुष्पमयायुगेन ।

लिया अर्थात् इसकी भौंहें कामदेवके धनुषके समान हैं ॥४॥ उस
नये-नये खेल करनेवाली नायिकाकी काजलकी सलाईसे बनाई हुई
लम्बी लम्बी सुन्दर भौंहें देखकर कामदेवने भी अपने धनुषकी
सुन्दरताका गर्व करना छोड़ दिया ॥ २ ॥ उस चंचल नेत्रवाली
नवेलीकी भौंहें ऐसी जान पड़ती हैं मानां उसकी नाकरूपी
बाँसकी टाळीसे निरूली हुई दो पत्तियाँ हों ॥३॥ कामदेवके
धनुषपे इस प्यारीकी भौंहें अधिक कठोरता था गई है क्योंकि
इस भौंहोके धनुषने जन देखा कि कामदेवका धनुष तो जल
गया था पर मैं जल नहीं पाया तब उसमें और भी
अधिक गुरना भर आई ॥ ७ ॥ हे वाले ! तुम्हारे माथेपर
दो पत्तोंवाला जो कामदेव रूपी कल्पद्रुम उग आया है उसकी
छाया यह भौंहोके रूपमें दिखाई पड़ रही है ॥८॥ अपने मुखकी
शोभासे चन्द्रमाकी हरानेवाली नायिकाके मुखपर यह कामदेवका
धनुष ही इसकी भौंहोके रूपमें उत्पन्न हुआ है जिसमेंसे अभी
लक्ष्मणकी चञ्चलता गई नहीं है ॥ ९ ॥

श्रौंलैः—इस सुन्दरीकी श्रौंलैं जैन सिद्धान्तके अनुसार
तारादेवीको अत्यन्त पूजनेवाली (अत्यन्त रसीली सुतलियों-
वाली) वेदोंकी मयांश लोचनेवाली (कानको पार करके आगे
बढ़नेका दम भरनेवाली) और वासना या इच्छासे ही संसारका
मोहित होना माननेवाली (चाहते भरी हुई) श्रौंलैं किने
नहीं मोहित करती ॥ १ ॥ उस नवेलीकी जो भौंहें कामदेवकी
मंगलमयी वेदी यनी हुई हैं उनके बाँकेपने शुषकोके

हृदयमें निरन्तर सन्तारकी धारा बहा दी ॥१॥ कमलकी शोभा
श्रौंलैंने चुरा ली है यह कोई नई बात नहीं है । मैं देख रहा हूँ
कि इस नवेलीके कानोंसे लगा हुआ कमल कानोंसे यही बात
कह रहा है ॥ ३ ॥ हे भोली ! तैरे जिन नेत्रोंमें कृष्ण (काली
सुतली) को साथ लेकर अर्जुन (रवेत कोप) आगे बढकर
कण (कान) तक दौडने लगे हैं उन्हें मैं कुरुक्षेत्र ही
मानता हूँ (अर्थात् जब श्रौंलैं बड़ी-बड़ी होकर कानतक फैलने
लगीं हैं तब महाभारत ही मचा हुआ समझना चाहिये) ॥३॥
इस नवेलीकी श्रौंलैंकी जिन कोरोंने चन्द्रमाकी रवेतता भी
जित ली है वे चंचल इन्द्रनीलमणिके समान गोल और सुन्दर
चमकीले तारोंसे सुशोभित नेत्ररूपी कमलकी पलकें चक्कर
खाती-सी जान पड़ रही हैं ॥ २ ॥ उस नवेलीकी श्रौंलैं इतनी
बड़ी-बड़ी हैं कि जन उनमें अर्जुन लगाया जाता है तब
इस कोनेसे उस कानतक अर्जुन देनेमें हाथकी थडुत मुस्ता-
मुस्ताकर चलाना पड़ता है ॥ ६ ॥ इसकी श्रौंलैंने वेगसे
चलनेका ऐसा व्रत ले रखा है कि उसके साथ चलनेवाला मन
वीचसे ही धक्कर लौट आता है ॥ ७ ॥ द्रष्टाशोने नेत्रोंकी
उपमाके लिये एक बार बड़े प्रयत्नसे कमलका निमाय किया,
किन्तु जब देखा कि यह किसी प्रकार भी नेत्रोंकी समानता
नहीं कर सकता तब पहले तो उसपर धूल (पराग) फेंकी
और फिर उसे कीचड़में डाल दिया ॥ ८ ॥ कामदेवने अपने
फूलोंसे बने हुए और वेगसे चलनेवाले तीन धारोंसे ती तीनों

शेषा द्विवाणी सफलीकृतैर्ष प्रियादग्नम्भोजपदेऽभि-
 पिच्य ॥ ६ ॥ ऋणीकृता किं हरिणीभिःरासीदस्याः
 सकाशाद्यनद्वयधीः । भूयोशुण्यै सकला यत्ता-
 भ्योऽनयालभ्यत विभ्यतीभ्यः ॥ १० ॥ एकमेवात्ति
 यामात्ति रज्जया ज्वनलेखया । जायतामैन्द्वे विभ्ये खज-
 नाम्बुजसङ्गमः ॥ ११ ॥ कर्णोत्पलेनापि मुखं सनाथं
 लभेत नेत्रद्युतिनिर्जितेन । यद्येतदीयेन ततः कृतार्था
 स्वचक्षुषी किं कुरुते कुरङ्गी ॥ १२ ॥ कामिनीनयनकज-
 लपद्भ्रातुतिथितो मदनमचचराहः । कामिमानसघनान्त-
 रचारी मूलमुत्पन्नति मानलतायाः ॥ १३ ॥ केदारभाजा
 शिश्रमवेशात्पुण्याय मन्ये मृतमुत्पलिन्या । जाता
 यतस्तल्लुःसुमेधरेणं यतश्च तत्कोरकटफचकोरः ॥ १४ ॥
 चकोरेनेत्रैण्यदृशुत्पलानां निमेषयन्त्रेण किमेप कष्टः ।
 सारः सुधोद्गारमयः प्रयत्नैर्विधातुमेतन्नयने विधातुः
 ॥ १५ ॥ तस्याः श्रवणमार्गेण चलिते यदि लोचने । कुतः

लोक जीत लिए और शेष जो दो बाघ बचे, जान पड़ता है
 उन्हींको उसने प्रियतमाके नेत्रमलके स्थानपर ररकर उन्हे भी
 सफल पर दिया ॥६॥ यों तो हस नवेलीकी श्रॉलोंकी लुगाईसे
 हरिणियोंकी श्रॉलें पहले ही भरीया हा गई थीं किन्तु उनकी
 श्रॉलेंको बरते देरकर हसकी श्रॉलोंने उनकी बची-सुची शोभा भी
 एकपूर्वक ध्यान की ॥१०॥ हे योंके नैनोवाली ! तुम अपनी केवल
 एक ही श्रॉलमें अज्ञान लगाया जिससे कि एक चन्द्रविम्बपर
 गज्जन और कमल दोनों साथ साथ दिखाई पड़ने लगे ॥११॥
 जब हस नवेलीने श्रॉलोंकी कामितसे हारे हुए उन कमलोंकी
 ही अपने वानपर ररकर अपने मुखकी समावट करके उन्हे
 कृतार्थ पर दिया तब हरिणी अपनी श्रॉलें लेकर क्या करेगी
 क्योंकि ये तो हतनी समावटके भी काम नहीं था सकता ॥१२॥
 कामिनीके नेत्रोंमें लगे हुए काजलरूपी कीचड़में निकला हुआ
 कामदेवरूपी मतथाया श्रृंखर कामियोंके मनरूपी वनमें चलता
 हुआ उनकी मानरूपी सतार्की जड़ तादे डाल रहा है ॥१३॥
 पद धरा घग्गा हुआ कि क्यारियोंमें रहनेजाली कमलिनी
 शिशिर भ्रतुरे प्राते दो जल गई क्योंकि धप पुनः यह फलोंकी-
 सी श्रॉलोंके रूपमें जन्म लेकर हतनी रसाला बन गई है कि
 उनकी सुन्दरता देनेके लिये उसकी श्रॉलोंके कोर ही चकोर
 बन गए हैं ॥ १४ ॥ मझाजीने चकर, हरिणोंके ने । तथा काज
 कमलके घग्गन-गुण्य रसोंकी पलकके यन्त्रसे रीचकर बड़े
 परिपन्नसे हसके नेत्र बनाए हैं ॥ १५ ॥ उगरे उजले-उजले

प्रकामधवल्ले धत्तः कृष्णानुरक्तताम् ॥ १६ ॥ त्वचः
 समुत्तार्यं दलानि रीत्या मोचात्त्वचः पश्यपाटलानाम् ।
 सारैर्गृहीतेर्विधिरत्पलौघादस्यामभूद्दीक्षणरूपशिवी
 ॥ १७ ॥ दृशौ किमस्याश्चपलस्वभावे न दूरमाकन्य
 मिथो मिलेताम् । न चेच्छतः स्यादनयोः प्रयाणे विघ्नः
 श्रयःकूपनिपातभोत्या ॥१८॥ नतभ्रुवो लोचनखञ्जरीदौ
 विहारमानङ्गमिहारभेते । कथं न सानन्ददृष्टौ युवाव-
 स्तारुण्यमन्तर्निधिसुन्नयन्तु ॥ १९ ॥ नयनच्छलेन सुत-
 नोर्वदनजिते शशिन कुलपतौ क्रोधात् । नासानादनि-
 यञ्जं स्फुटितमिचेन्द्रीवरं द्वेषा ॥ २० ॥ नलिनं मलिनं
 विद्वृण्वती पृथतीमस्पृशती तदीक्षणे । अपि खञ्जलमञ्ज-
 नाञ्जिते विदधते रुचिगर्वदुर्विधम् ॥ २१ ॥ निःशीम-
 शोभासाभाग्यं नताङ्गया नयनद्वयम् । अन्वोन्यालोरु-
 नानन्दविरहादिव चञ्चलम् ॥ २२ ॥ नूनमाशाकर-
 स्तस्याः सुश्रुवो मकरध्वजः । यतस्तन्नेत्रसञ्चारसूचि-

नेत्र यदि कानोंकी और चले हैं तो वे काले और (वेद मार्ग)
 लाल क्यों हो उठे हैं (कृष्णके श्रुतुरागी या वैष्णव क्यों हा
 गए हैं) ॥ १६ ॥ मझाजीने कमलकी पद्मद्विया लेकर उनपरसे
 पाँच-छः परते छीलकर उनके भीतरकी कोमल गुदी भली भाँति
 निचोड़कर उस रससे ही दूसकी श्रॉलें बनाई हैं ॥ १७ ॥ हस
 नवेलीकी चञ्चल श्रॉलें सिरका चकर लगाकर आपसमें धवरव
 मिल जातीं यदि इनके मागमें वानरूपी कुण्डें पोटकर हूँके दटा न
 दिया गयाहोता ॥१८॥ नीची भीहोवाली उस नायिकाके चररूपी
 सज्जन उसे जग कामदेवकी प्रीवारथली बना ही रहे है तब भला
 थानन्द भरे हृदयवाले युवक अपने भीतरकी तरखाई रूपी
 निधिका क्यों न उकसावें ॥ १९ ॥ उस नवेलीकी श्रॉलोंकी
 देखकर ऐसा जान पड़ता है मानो जब उस सुन्दरोंके मुखने
 चन्द्रमाकी जीत लिया तब चन्द्रमारूपी कुलपतिके क्रोपसे नाभ
 रूपी नालमें दौधा हुआ नीला कमल दो भागोंमें फट गया हो
 ॥ २० ॥ जब उस नवेलीकी श्रॉलें अज्ञानकी सलाई विना हुए
 ही कमलके मलिन बनाए रहती है तब यदि उनमें प्रीजन
 लग जाय तो तब पलुना ही क्या है ! तब तो बेचारे राजन भी
 अपनी सुन्दरताका अधिमान गर्व समझने लगेंगे ॥ २१ ॥
 उस कामलाद्वाके अर्शाम शोभासे भरे हुए दाना नेत्र मानो
 हसलिये चञ्चल हो रहे हैं कि वे एक दूसरका देख नहीं पर रहे
 हैं ॥ २२ ॥ निरधर्य है कि कामदेव उस सुन्दर भीहोवालीकी
 धाशाभा अन्तर पालन करता है क्योंकि वे श्रॉलें जिधर

तेषु प्रवर्तते ॥ २३ ॥ नेत्रयोरनयोश्चन्द्रमुख्या सुन्दर-
रङ्गयोः । वा स्तुतिः क्रियते लोके, कुन्दाक्षीः परा-
जये ॥ २४ ॥ प्रयातनीलोत्पलनिविशेषमधीरविप्रैर्घ्नित-
मायताक्ष्या । तथा गह्वीतं तु मृगाङ्गनाभ्यस्ततो गृहीतं
तु मृगाङ्गनाभिः ॥ २५ ॥ भास्वत्कुण्डलमाणिः प्रभा-
प्रतिहृतेरिच । नताङ्गथाः श्रवणोत्सङ्गमारूढा नयनद्वयी
॥ २६ ॥ मुखविभुषणवृत्तोत्तानताटङ्कपाशावधिचकितच-
कोरीकान्तिचोरं तदङ्गि । त्रिभुवनयुधचेतोवन्धसङ्केत-
हेतोः सहचरमिव कर्तुं पाशमाशङ्क्य याति ॥ २७ ॥
मुखारविन्दोपरिभागसंस्थं नेत्रद्वयं खड्गनामनन्ति ।
प्रफुल्लचक्राम्बुजपार्श्ववर्ति दलद्वयं भृङ्गयुतं मतं मे
॥ २८ ॥ मृगसम्बन्धिनी दृष्टिरसौ यदि न सुभ्रुवः ।
धायति श्रवणोत्तंसलीलादृर्धाङ्कुरे कुतः ॥ २९ ॥ यदि
स्यान्मण्डले सकमिन्दारिन्दोवरद्वयम् । तदोपमीयते

तस्या वदनं चारुलोचनम् ॥ ३० ॥ रामाविलोलनयने
किमु मीनवालौ नीलोत्पले किमथवा किमु रज्जुरीटा ।
किं वा जगत्प्रयजयाय कृतिर्न जाने कन्दर्पभूपरचिता
नयकार्मणस्य ॥ ३१ ॥ लोचने हरिखण्डगर्वमोचने मा विदु-
पय नताङ्गि कज्जलेः । सायकः सपदि जीवहारकः किं
पुनर्हि गरलेन लेपितः ॥ ३२ ॥ श्रमयति शरीरमधिकं
श्रमयति चेतः कराति सन्तापम् । मोहं मुग्धश्च कुरुते
धिर्वापम धीक्षणं तस्याः ॥ ३३ ॥ श्रुतिलङ्घनमीदृमा-
नयोर्मखिनाभ्यन्तरयोः रधीरयोः । स्मृतितापकरत्वमेत-
योरुचितं लोचनयोर्मृगीदृशः ॥ ३४ ॥ श्रुयता कौतुकं
सोऽपि स्मरः शृङ्गारिणां गुरुः । श्रमुप्याशिश्रुयतामेति
श्रवणोन्मुखयोर्दृशोः ॥ ३५ ॥ सेयं मृदुः कोऽमुमचापयधिः
स्मरस्य मुष्टिप्रदण्डार्हमध्या । तनोति नः श्रीमदपाङ्ग-
सुकां मोहाय या दृष्टिशरोवमृष्टिम् ॥ ३६ ॥ स्वदृश-

धूम जाती है उधर ही कामदेव भी धूम जाता है ॥ २३ ॥
नवेली चन्द्रमुखीके इन रसाले नयनोंने जिन हरिणीके नेत्रोंको
पराजित कर दिया है उनकी प्रशंसा क्या की जाए ॥ २४ ॥
बड़ी-बड़ी आँवोंवाली नायिकाकी आँधीसे हिलते हुए नीले
कमलोंके समान चञ्चल चितवनको देखकर यही ज्ञात नहीं होता
या कि यह कला हरिणियोंने इनसे सीखी है या हरिणियोंसे
इन्होंने सीखी है ॥ २५ ॥ उस नवेलीके कानतक फैले हुए
दोनों नेत्रोंको देवमर ऐसा प्रतीत होता है मानो कानोंमें
चमकते हुए हुएदलमें जड़ी हुई मणियोंकी कान्तिसे चिदकर
दोनों नेत्रोंने कानोंपर धामा घोल दिया हो ॥ २६ ॥ उसके
मुगचन्द्रने चिपके हुए श्रीर सीधे लटकें हुए हुएदलको देखती
हुई उसकी आँवें चक्रारिरी शोभा भी हरण्य करती है । उनकी
(कानोंकी) आँर बढ़ती हुई ये आँवें पसी जान पड़ती हैं
मानो त्रिभुवनके पुष्पकोंने चित्तको बाँधेवेना आघार बनानेके
लिये ये आँवें उन हुएदलोंको पाश समझकर उन्हें साथी
बनानेके लिये आगे बढ़ी जा रही हैं ॥ २७ ॥ कवि लोग मुख-
रूपी कमलपर स्थित दोनों आँवोंको राजन कहते हैं किन्तु मेरा
मत तो यह है कि ये ता खिले हुए मुख-कमलके दोनों आँरकी
दो पशुदिव्य हैं जिनपर आँरे धँट हुए हैं ॥ २८ ॥ यदि उस सुन्दर
भाँहावाली नवेलीकी आँवें मृगाकी आँवें नहीं हैं तो कानपर
खटके हुए बनावटी दूयके अङ्गुरोंकी आँर क्यों दीड़ती है ॥ २९ ॥
सुन्दर नेत्रोंने सजे हुए उसके मुगरी उपमा चन्द्रमासे तभी
दी जा सकती है जब उसके मण्डलमें दोनों आँर दो कमल

हैंक जाँवें ॥ ३० ॥ यह समझमें नहीं आता कि ये रमणीकी
आँवें ह या छोटी-प्योटी मद्धलियों है या नीले कमल है या
तीनों लकेंको जीवनेके लिये कामदेवने कोई नया श्रद्ध ही रच
ढाला है ॥ ३१ ॥ हे कोमलाङ्गी ! हारणियोंका श्रमिमान चूर
करनेवाले अपने इन नेत्रोंको वाजलसे क्यों कावा किए ढाल
रही हो क्योंकि जो बाण वों ही सबके प्राण हर लेता हो उसपर
विपका लेप करनेकी आवश्यकता क्या है ॥ ३२ ॥ उसकी विपेली
चितवन शरीरको चूर कर ढालती है, बुद्धि चक्रा देती है,
दिन रात तपाए रखती है और उसपर भी वह बार बार मूढ़ित
किए रहती है ॥ ३३ ॥ हरिणियोंके समान आँवोंवाली इन
नवेलियोंकी आँवें कान (श्रुति अथात् वेदमार्ग) को भी
लौंघ जाना चाहती हैं, भीतरसे मलिन हैं, अधिक चञ्चल ह
और स्मरण करनेपर वैसे ही कट देती हैं जैसे कोई वेदका
उलट्टन करनेवाला, मलिन हृदयवाला, चञ्चल बुद्धिवाला तथा
स्मृतियोंकी व्यवस्थाको नष्ट करनेवाला व्यक्त सबको कट
देता है ॥ ३४ ॥ एक नया कौतुक तो सुनिष्ट ! जब इस
नवेलीकी आँवें कानोंकी आँर चल पड़ती हैं तब शृङ्गारियोंका
गुरु कामदेव भी उनका शिष्य बनकर उनके पीछे पीछे चल
पड़ता है ॥ ३५ ॥ कामदेवकी पुष्पधरुर्हाके समान सुद्वीभरकी
कमरवाली यह कोमलाङ्गी अपनी सुन्दर आँवोंकी कोरोंकी
चितवनसे कटाणके धार्योंकी बर्षा करके हम सब लोगोंको मूढ़ित
किए ढाल रही है ॥ ३६ ॥ वनमें जो मृग अपने सुरोंसे अपने
नेत्र सुजला रहे हैं वे ऐसे प्रतीत होते हैं मानो नायिकाकी

जन्यन्ति सान्धतां खुरकएङ्गयनकैतवान्मृगाः । जित-
योरुदयत्प्रमीलपोस्तदस्वर्वाण्यशोभया भयात् ॥ ३७ ॥

नासा—केचित्तिलस्य कुसुम शुक्लचञ्चुमन्ये नासां
वदन्ति कथयाम्यहमन्यदेव । संरञ्जितो निजशरासन-
सन्निधाने कामेन केतकदलैकमयो निपङ्गः ॥१॥ दन्ता
लिदाडिमीवीजमन्त्रोत्कण्ठचेतसः । मन्ये मारशुक-
स्येयं नासा चञ्चुविराजते ॥ २ ॥ नासादसीया तिलपु-
प्पतृणं जगन्नयन्यस्तशरत्रयस्य । श्वासानिलाभोदभरा-
नुमेयां दधुद्विवासीं कुसुमायुधस्य ॥ ३ ॥ पुराणवाण-
त्यागाय नूतनाखकुवृहलात् । तन्नासा भाति कामेन
वृणीवाधोमुखीकृता ॥ ४ ॥

कर्णौ—अस्या पदघटादश संविभज्य चिद्याः ध्रुती
दधुपुरार्धमर्धम् । कर्णान्तघर्तकीर्णगीरीरेराः किं तस्य
सहयैव न वा शशाङ्कः ॥ १ ॥ आत्मेव तातस्य चतुर्भुं-

जस्य जातश्चतुर्दोश्चितः स्मरोऽपि । तच्चापयोः कर्णौ-
लते भ्रुवोर्ज्ये वंशत्वगंशो चिपिटे किमस्याः ॥ २ ॥
इहाविशयेन पथातिवक्र शस्त्रौघनिष्पन्दरसमवाहः ।
सोऽस्याः श्रव.पञ्चयुगे मण्णालीरेखेव धावत्यभिकर्ण
कूपम् ॥ ३ ॥ कमनीयतानिवासः कर्णस्तस्या विचित्र-
मखिभूयः । सविधप्रसूतरत्नं शङ्खनिधि दूरतरमकरोत्
॥ ४ ॥ तालीदलं वाञ्छनकर्णपाशौ प्रसारयन्तीं सुननुः
कराभ्याम् । रराज कर्णान्तनिपण्णदृष्टिः शशैरे दधानेय
कटाञ्जवाएान् ॥ ५ ॥ मन्येऽमुता कर्णलतामयेन पाश-
द्वयेन चिञ्चुदुरेरेण । पकाकिपाशं वरुणं विजिग्येऽ-
नङ्गीकृतायासतती रतीशः ॥ ६ ॥ वियोगवाप्याञ्जिते-
त्रपञ्चच्छन्वान्वितोत्सर्गपयःप्रसूनौ । कर्णौ किमस्या
रतितल्पतिभ्यां निवेद्यपूपां विधिधिल्लपमोदक् ॥ ७ ॥

कभीली—आवध्न्यरिचेयमएडलमलं वक्त्रेन्दुविन्या-

सीधी सी चितवनकी शोभासे हारे हुए अपने दुर्खी नेत्रांको
दादस देखा रहे हों ॥ ३७ ॥

नाकः उज्ज्वल लोम इस नवेलीकी नाकको तिलका फूल
कहते हैं, उज्ज्वल इसे सुगंधी टोंग कहते हैं पर मेरा मत तो यह
है कि कामदेवने अपने धनुष (भौंहों) के पास यह वैवदेके
पूलका तरबस बनाकर रग छोड़ा है ॥ १ ॥ नवेलीकी यह नाक
पेसी शोभा पा रही है मानो द्रोतांकी पत्निरूपी अनारदानांकी
सुगंधके लिये कामके पालतू सुगंधी चोंच हो ॥ २ ॥ कामदेवने
अपने पाँच बाणों (कमल, शकंका फूल, आमकी थीर,
नयमरिलका तथा नीलकमल) मेंसे वैवल तीनको लेकर सीनीं
नोक जीत लिए हैं, श्रय (दमयन्तीके) श्वास-वायुकी प्रति
सुन्दर सुगन्धमें देखकर ऐसा जान पड़ता है मानो इसरी
नासिका कामदेवके शेष दो बाणोंको रगनेके लिये तिलके
पूलका तरबस बन रही हो ॥ ३ ॥ उस नवेलीकी नाक ऐसी
प्रतीत होती है मानो नये बाण रखनेकी चाहसे कामदेवने पुराने
बाणोंको उलटकर गिरानेके लिये अपने वृणीरका मुँह उलट
दिया हो ॥ ४ ॥

फानः नवेलीके इन दोनों कानोंका आकार जो नौ (९)के
घड्डके समान दिनाई पड़ता है उससे यह जान पड़ता है मानो
इसने चट्टारहीं विद्याओंको आधा धारा शङ्खर जो दोनों कानोंमें
मार्तण्डित कर दिया है उन्हींकी सूचना ये नौके घड्डके रूपवाले
कान दे रहे हैं ॥ १ ॥ हम नासिकाके दोनों चिपटे हुए कान
देने जान पड़ते हैं मानो इसके भौंहरूपी दो धनुषाके लिये

बौंसकी छिनीतीकी दो प्रत्यङ्गाई हो क्योंकि जित कामदेवके लिये
ये दो धनुष बने हैं वह यदि चार हाथवाला हो तो श्रावर्ष ही
क्या है क्योंकि वह चार भुजावाले (कृष्ण) का ही तो पुत्र
(प्रयुज्म) है ॥२॥ इस युवतीके कान देखकर यह भ्रम होता है
कि कहींये ब्रह्मणे अपनी श्रुत कलासे वियोंगिनीके नेत्रकमलोंते
वहे हुए श्रुत्स्वरूपी दूधसे रति और कामदेवको श्रपण करनेके
लिये वैवेचके निमित्त पुष्ट तो नहीं बनाकर रख छोड़े हैं
॥ ३ ॥ उस नासिकाके सौम्यंधाम तथा श्रेक प्रकारकी
मणियोंसे अलकृत कानने अपने पासमें स्थित शङ्ख (गला)
नामकी उस निधि (शङ्ख) को लज्जित कर दिया जो
निरन्तर रान उपर्जन करता रहता है ॥ ४ ॥ कानोंक पीली
हुई श्रौंलोवाली सुन्दरी जब अपने सोनेके समान चमकते हुए
बानोंमें अपने हाथोंसे सोनेके सुवहल पहनती है तब ऐसी
शोभित होती है मानो अपने कटाक्षरूपी बाणोंपर शान चढ़ा रही
हो ॥ ५ ॥ इस नवेलीके कानों देकर हमें ऐसा समझमें
आता है कि इसके दोनों कानरूपी कभी न फटनेवाले दो जाल
लेकर कामदेवने बिना परिश्रमके ही एक पाशवाले धरयकी जीत
लिया है ॥ ६ ॥ इस नवेलीके कानमें बनी हुई देदी-मेदी
नासिकाओंको देखकर यह जान पड़ता है कि जिन माणोंसे
शथ्यन्त देवे-मेदे कटाक्षरूपी शण्डोंकी रसीली घाटा इन कानोंकी
धोर बहती है, वे ही माणों गधुचर चक्कर घाते हुए
कानरूपी घुडामें समा रहे हैं ॥ ७ ॥

शालः उस नवेलीके मुखरूपी चन्द्रमाके बाहरकी धोर जो

द्वहिः । कुर्यात्पङ्कजजम्भमाणकलिकारुण्यितसक्रियाम् । तन्वद्गथाः परिच्युत्यतीव हसतीगोत्सर्पतीवोत्सवं लावण्यं ललतीव काञ्चनशिलाकान्ते कपोलस्थले ॥ १ ॥ कपोलपाली तथ तन्वि मन्ये लावण्यधन्ये दिशसुत्तराख्याम् । विभाति यस्यां ललितालकायां मनोहरा वैश्रवणस्य लक्ष्मीः ॥ २ ॥ स्वर्णच्छयीनामसितेक्षणानां कर्णांस्ततो गण्डलतातलानि । शृङ्गाः सहेलं यदि नापतिप्यन्कोऽचेदपिप्यन्नवचम्पकानि ॥ ३ ॥

अधरः—अधरं खलु विम्बनामकं फलमाभ्यामिति भव्यमन्वयम् । लभतेऽधरविम्ब इत्यदः पदमस्या रदनच्छदे वदत् ॥ १ ॥ अधरममृतं कः सन्देहो मधून्यपि नान्यथा मधुरमधिकं द्राक्षायाश्च प्रसन्नरसं फलम् । सहृदपि पुनर्मध्यस्थः संरसास्तरविज्ञानो वदतु यदिहान्यत्स्वादु स्यात्प्रियादशनच्छदात् ॥ २ ॥ अधरोऽय-

मधीराख्या चन्धुजीवममाहरः । अन्यजीवममां हन्त हरतीति किमद्भुतम् ॥ ३ ॥ अधरोऽसौ पुरङ्गाख्याः शोभते नासिकातले । सुवर्णनलिकामध्यान्माणिक्यमिव विच्युतम् ॥ ४ ॥ श्रमिलपन्ति तवाधरमाधुरीं तदिह किं हरिणास्ति मुखा बुधाः । सुगसुधामधुरीकुरुते यतस्त्वधरोऽधरतामगमसतः ॥ ५ ॥ अपि मृगास्ति तवाधरपल्लवे द्ययितदन्तपदं न भवत्यदः भुवनमोहनमन्त्रपदाङ्कितं किमुत यन्त्रमिदं स्मरयन्त्रिणः ॥ ६ ॥ अल्पेनापि सुरक्तेन साधनेन प्रयोजनम् । श्रोष्ठद्वयसहायेन कान्तास्थेन जगज्जितम् ॥ ७ ॥ अस्या मुपेन्द्रावधरः सुधाभूविम्बस्य युक्तः प्रतिविम्ब एषः । तस्याधवा श्रीर्द्रुमभाजि देशे सम्भाव्यमानास्य तु विद्रुमेऽसौ ॥ ८ ॥ जानेऽतिरागादिदमेव विम्बं विम्बस्य च व्यक्तमितोऽधरत्वम् । द्वयोर्विशेषावगमाद्यमाणां नास्ति भ्रमो-

कमलकी रिलती हुई कलीके कर्णमूषणका वदता हुआ सौन्दर्यं गोल भण्डल बना रहा है वह सोनेकी पटियाके समान उसके सुन्दर गालोंपर नाचता, हँसता, फेलाता और उछलता-सा जान पड़ता रहा है ॥ १ ॥ हे सुन्दरी कोमलशङ्गी ! मैं तुम्हारे गालोंको वह उत्तर दिशा समझता हूँ जिसमें सुन्दर अलकापुरी और कुथरकी सुन्दर सम्पत्ति है अथवा जिसमें सुन्दर लट्टे लटकी हुई हैं और कानोंकी गोमा दीह है ॥ २ ॥ स्वर्णके समान कानितवाली और काले नेत्रोंवाली युवतियोंके गाल ऐसे सुनहरे रङ्गके हैं कि कानसे गालोंतक लटके हुए नई चम्पाके फूलोंपर यदि अचानक भौरे न आ टूटते तो यह जानना ही बटिन था कि उनपर चम्पाके फूल भी लटके हैं ॥ ३ ॥

रहा है मानो सोनेकी नलीसे बहकर गिरा हुआ कोई लाल मणि हो ॥ ४ ॥ हे हरिणके नेत्रोंके समान श्रौल्लोवाली ! क्या कारण है कि बुद्धिमान् लोग तुम्हारे अधर (श्रोष्ठ और तुच्छ वस्तु) की मिठासको व्यर्थ ही अछा समझते हैं ? मैं तो समझता हूँ कि तुम्हारे श्रोष्ठने देवताओंके अमृतको भी जो अधर (नीची वस्तु) बना दिया है इसीलिये वह अधर कहा जाने लगा, इसलिये नहीं कि वह तुच्छ है ॥ ५ ॥ हे मृगके नेत्रोंके समान श्रौल्लोवाली ! तुम्हारे श्रोष्ठ-र पी पंचपर यह विश्व तुम्हारे पतिके दाँतोंका नहीं है वरन् यह तो कामरूपी तान्त्रिकका वह यन्त्र है जिसपर उसने जगत्को बराम करेबल्ले मन्त्र अक्रिय कर रचने हैं ॥ ६ ॥ यदि अपने प्रेमी सहायक वच्चे हों और मर्यामं क्त

ऽभूदनयोजनानाम् ॥ ६ ॥ तवैप विद्रुमच्छाया मरुमार्गं
 द्वाघरः । करोति कस्य नो मुग्धे पिपासाकुलितं
 मनः ॥ १० ॥ त्वं पीयूष दिवोऽपि भूषणमसि
 द्राक्षे परीक्षित को माधुर्यं तव विश्वतोऽपि विदितं
 माघ्नीक माघ्नीकता । एतन्किं तु मनागरन्तु
 दमिव ब्रह्मो न चेत्कुप्यसि यः कान्ताधरपञ्चवे
 मधुरिमा नान्यत्र कुत्रापि सः ॥ ११ ॥ द्विजसङ्गतिमा-
 साद्य सर्वो रागाद्विमुच्यते । रक्तस्थापि तन्मङ्गला
 विन्मोष्टः केन हेतुना ॥ १२ ॥ प्रियामुखीभूय सुखी
 सुधांशुर्वसत्यसौ राहुभयव्ययेन । इमां दधाराधरविम्ब-
 लीलां तस्यैव बाल करचक्रयालम् ॥ १३ ॥ यन्धूकयन्धू
 भवदेतदस्या मुपेन्दुनानेन सहोर्जिह्वानम् । रागधिया
 शेषययाघनीयां स्वमाह सन्ध्यामधरोष्ठलेपा ॥ १४ ॥
 सुखारविन्दतथीः सुतनोरदयोऽधरः । कुर्वते हार-

माणिक्यप्रदीपान्पारडूरत्विपः ॥ १५ ॥ सन्ततोदयस-
 न्धवेव यदनेन्दोरनिम्बिता । तदोष्ठमुद्रा लावण्यसमुद्र-
 स्येव विद्रुमः ॥ १६ ॥ सर्वस्यैव हि रत्नस्य ब्रह्मेऽर्धः परि-
 हीयते । दयिताधररत्नं तु प्रथितं यात्पनर्घताम् ॥ १७ ॥

दन्ताः— चन्द्राधिकैतन्मुखचन्द्रिकाणां दरायतं
 तन्किरणाञ्जनानाम् । पुरःपरिस्त्रस्तपुपद्वितीयं स्वा-
 वलिङ्गन्नति विन्दुवृन्दम् ॥ १ ॥ द्विधा विधाय
 शीतांशुं कपोलौ कृतवान्निधि । तन्व्यास्तद्रसनिय-
 न्दविन्दवो रदनावलिः ॥ २ ॥ भाति दन्तच्छूदेनास्या-
 स्स्वच्छा दशनमल्लिका । सरस्वत्यक्षमालेव पूजापश-
 दलाञ्जिता ॥ ३ ॥ यावद्यावत्कुशलयद्गशा मुञ्चते दन्त-
 पालिस्तावत्तावद्विगुणमधरच्छायाया शोणशोचिः ।
 काचिस्वस्याः परिमलकलाहृतमात्रालिकान्त्या यत्रा
 भासे प्रसरति मुहुः श्यामिकाप्याविरासीत् ॥ ४ ॥

वर विमोष्ठको अधरत्रिग तथा अधरविम्ब (तुच्छ विम्ब)
 कुँडरुको विम्बा कहने लगे ॥ ६ ॥ हे सुन्दरी ! मुँगेकी सी
 कान्तिवाला तुम्हारा अधर मारवाडके रेतिले और उष्ण मार्गके
 समान किसके मननेो प्याससे व्याकुल नहीं कर देता ॥ १० ॥
 हे अमृत ! तुम सचमुच स्वर्गके भूषण हो । हे अग्र ! भला
 तुम्हारी मिठासतक क्या कोई पहेच सकता है ! हे मदिरा !
 तुम्हारी मधुरता तो सब जानते हा हैं किन्तु यदि सुरा न माने तो
 मैं तुम्हारा जी दुजानेवाली यह यात कहूँ कि प्रियाके थोठेमें
 ही मिठास है वह ससारमें अन्यत्र वही नहीं है ॥ ११ ॥ द्विज
 (माह्वय) की सङ्गति पाकर सभी लोग रागों (संसारिक विषयों)
 से हीन हो जाते हैं फिर भी क्या कारण है कि इस कोमलाङ्गीका
 अधर, द्विज (द्वीप) का संग पाकर भी त्रिगके समान
 (रागवृष, लाल) घना दुःखा है ॥ १२ ॥ वह चन्द्रमा था इस
 नायिकाका मुग धनवर राहसे निर्भय होकर सुख-पुष्क निवास
 घर रहा है ॥ १३ ॥ मुग रूपी चन्द्रमाके साथ निजलनेवाली
 इस नायिकाके नीचे थोठकी रेगा यन्धूक (जपात्रमुम)
 के समान यह मुखना दे रही है जि यह इस नायिकाके
 बचपन और बौध्मकी सन्ध्या (बँचरी अयया) है
 ॥ १४ ॥ इस सुन्दर शरीरवाली नायिकाका लाल अधर रूपी
 सूर्य जहाँ मुगकमलको मिला रहा है वहाँ हासमें जड़े हुए लाल
 माणिक्य रीपकोकी निम्नन भी बना रहा है ॥ १५ ॥ उसके
 मुखरूपी चन्द्रमासे ऐसा प्रतीत होता है माने सदा निर्दोष

सन्ध्या ही उदय होती रहती है और उसके थोठोंकी मुद्रा
 ऐसी प्रतीत होती है माने वह सौन्दर्य-सिन्धुका मूँग
 हो ॥ १६ ॥ जब किसी रत्नमें खोद या दोष आ जाता है तब
 उसका मूल्य कम हो जाता है पर इस नायिकाका अधर रूपी
 रत्न दाँतके चिह्न रूपी घात लगनेपर और भी अधिक मूल्यवान्
 (सुन्दर) हो गया है ॥ १७ ॥

द्वीपः चन्द्रमासे भी अधिक सुन्दर इसके मुखकी
 चँदिनीकी किरणोंसे जो मुँदें गिरी उनमेंसे पहले गिरी हुई मुँदें
 तो नीचेकी दाँतोंका पक्ष है और पीछे गिरी हुई मुँदें ऊपरकी पक्ष
 हैं ॥ १ ॥ प्रधान चन्द्रमाके दो टुकड़े करके जब इस नायिकाके
 गाल बनाए तब उन्हीं टुकड़ोंसे जो रसकी मुँदें टरकी वे ही
 दाँतकी पंक्ति बन गई ॥ २ ॥ इस कामिनीके थोठोंसे भी
 अधिक स्वच्छ इसके दाँत ऐसे प्रतीत होते हैं माने पद्मलौमें
 सरस्वताकी अक्षमालाकी पूजा की जाती हो ॥ ३ ॥ वह कमलनयनी
 नायिका ज्यों-ज्यों अपने दाँत मौजकर उजले करती जा रही है
 है त्यों-त्यों थोठोंकी ललाईसे वे और भी अधिक लाल दिलाई
 देते जा रहे हैं, और फिर जब उसके मुखकी सुगन्धयुक्त साँसेके
 कारण मुँहपर भीरे मँडराने लगते हैं तब उननी चमकने
 दर्शनोंपर कालापन भी मलक पडता है ॥ ४ ॥ इस नायिकाके
 दाँतोंके रागा धागेके चार दाँत हैं जो मज्जनमे ऐसे उजले कर
 दिए गए हैं कि उनपरसे रीर-मुगारोंके चिह्न मिट गए हैं और वे
 मोतीके समान हो गए हैं । वे दाँत चित्तही पडलता,
 अतुराग तथा द्वेष न होनेसे विचार-शून्य है इसलिये

राजौ द्विजानामिह राजदन्ताः सन्धिभ्रति श्रोत्रिय-
चिभ्रमं यत् । उद्वेगरागादिमुजावदानाश्चत्वार एते
तद्वैमि मुक्ताः ॥ ५ ॥

चक्रुः — विलोकितास्या सुप्रमुन्नमस्य किं वेध-
सेयं सुप्रमासमाप्तौ । धृत्युद्धवा यच्चिबुके चकास्ति
निम्ने मनागद्गुलियन्त्रणैव ॥ १ ॥

सुप्रम् — अघातेन्दुपरामर्षं परिलसद्यालोलनेत्राञ्जं
श्रान्तभ्रूलतमेणनाभितिलकं श्रीपण्डपञ्चालकम् । वन्धू-
काधरसुन्दरं सुरमुनिव्यामोहि वाक्यामृतं त्रैलो-
क्याद्गुणपङ्कजं वरतनोत्सास्यं न कस्य प्रियम् ॥ १ ॥
अनाकाशे चन्द्रः सरसिजदलद्वन्द्ववहितो गृहीतः
पद्मचायं कुटिलकुटिलैः सोऽपि तिमिरैः । सुधां मुञ्च-
त्युच्चैरशनिमथ सम्मोहजननी किमुत्पातालीयं वदत
जगतः कर्तुं सदिता ॥ २ ॥ अमुच्छिद्यो देवैरपरिदलितो

राहुदृशनेः कलङ्केनाम्पृष्टो न यत्तु परिभूतो दिनरुता ।
कुहभिर्नो लुप्तो न च युवनिचक्रेण विजितः कलानाथः
फोऽयं फनकलतिवागमुदयते ॥ ३ ॥ अनेन रम्पोर
तयाननेन पीयूषमानोन्तुलया धृतस्य । ऊनस्य नूनं
परिपूरणाय ताराः स्फुरन्ति प्रतिमानपरशदाः ॥ ४ ॥
अपि सुभगं तव वदनं पश्यति सुभगे यदा यदा चन्द्रः ।
ग्लपयति हन्त पिधत्ते सपदि मुन्यं स्वं पयोदान्तः ॥ ५ ॥
अयले सलिले व्ययस्यता ते सुप्रभायो गमितो न पङ्क-
जेन । कथमादिमधर्षतान्त्यजस्य छिजराजेन हृतोय-
निग्रहस्य ॥ ६ ॥ अमृतनिधानं रुचिरं सन्तापनिवर्त्तने
सदा निरतम् । चन्द्रमुयं तव सुन्दरि सुस्मितभासा
धिकालते परितः ॥ ७ ॥ अमृतजमम्बुनि मग्नं त्रासादा-
काशमाश्रितश्चन्द्रः । सम्प्रति कः परिपन्थी यं प्रति
कोपाद्यं ददनम् ॥ ८ ॥ अयं ज्योत्स्नाजानिस्तव घटन-

वेदपाठोद्य रूप धारण कर रहे हैं और इसीलिये हम इन्हें
सुवन (मोनी या जीवन-सुक) समझ रहे हैं ॥ २ ॥

टोडी : इस नायिकी टोकीमें पदे हुए गद्दके दो देवकर
ऐसा जान पटना है मानो ब्रह्माने इसकी रचना करके जय इसके
सौन्दर्यकी पूर्णता परगनेके लिये टोडीमें डँगली लगाकर
उसे ऊपर उठाकर देना होगा कि यह सुन्दर यनी है या नहीं
तब ब्रह्माजीकी डँगली लगनेसे ही यह बन गया है ॥ १ ॥

सुप्रः तीनों लोकोंको आश्चर्यमें डाल देनेवाला इस
नायिकाका वह कमल-सुग विले प्यारा नहीं लगता जिसने
आजतक चन्द्रमासे धारण नहीं जाना, जिसके चञ्चल नेत्र
आँजनेसे रसीले हो गए हैं, जिसकी भाँई निरन्तर चलती
रहती है, जिसके माथेपर कम्बूरीका तिलक लगा है, जिसके
वालमें चन्द्रनके पत्ते सूँभे हुए हैं, जिसके श्रोत्र बुधहरियाके
फूलके समान सुन्दर लाल हैं और जिसके मुगमें देवता
और मुनियोंको लुभानेवाला वाणी-रूपी अमृत भरा हुआ
है ॥ १ ॥ नायिकाका सुप्र दिग्गकर कवि कहता है— 'यह देतो,
पृथ्वीपर कैसा चन्द्रमा निकला है, जिसमें दो नीले कमल (नेत्र)
उगे हैं, जिसे पीढ़ेसे लहराता हुआ अन्धकार (घुँघराले बाल)
पनडे हुए हैं, जो उपरसे निरन्तर अमृत (सुसुकान) और
विजले (कटाव) बरमा रहा है, यथाइए तो, यह प्रस्त कर
देनेवाली उपद्रवोंकी जड़ संसारमें किसे मिटानेपर तुल्यी हुई है'
॥ २ ॥ नायिकाका सुग दिग्गकर कवि कहता है— 'उस सोनेकी
लता (नायिका) में यह कैसा चन्द्रमा (सुप्र) उग आया

है, जिसकी कलाएँ देवता भी नहीं पाए, जिसे राहुने अपने
दौँतसे चबाया नहीं, जिसे कलङ्कने स्पर्श नहीं किया, जिसे सूर्य
भी अपनी ज्योतिसे मन्द नहीं कर पाया, जो अमावास्याके
दिन भी अस्त नहीं हुआ और जिसे संसारकी स्त्रियोंके
सुव भी कभी हरा नहीं पाए' ॥ ३ ॥ हे केलके रम्भेके समान
ज्योंवाली ! इन तारोंको देवकर यह निरचय हो गया कि
जब तुम्हारे सुप्रके समान तौलनेके लिये चन्द्रमा लाया गया
तब तुलापर चढ़े हुए उस चन्द्रमाकी कमी पूरी करनेके लिये
ये तारोंके बहुतेरे प्रकारके टुकड़े बढे यानेको इच्छे कर लिए
गए ॥ ४ ॥ हे सुन्दरी ! जब जब चन्द्रमा तुम्हारा सुन्दर
सुप्र देयता है तब-तब लजाकर वह ऋत्से यादलोंमें अपना सुँद
द्विपा लेता है ॥ ५ ॥ हे अयले ! जलमें रहनेवाला पंज
(कमल) तुम्हारे सुलकी बराबरी नहीं कर पा सकता क्योंकि
द्विजराज (चन्द्रमा या ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ) ने जिसे संकुचित रहनेका
दयद दिया है और जिसका अन्तिम अक्षर 'ज' है (जो चाणक्य
अर्थात् चाणक्य या पङ्कज) है वह आदिम पण (गिराक
पहला अक्षर 'म' अर्थात् सुग या प्राण्य) परे तो राजमा
है ॥ ६ ॥ हे सुन्दरी ! तुम्हारा सुग सप्तसुप्त सप्तसुप्त है
क्योंकि यह अमृतका सुन्दर भयदार है, नारा पृथ्वीका नाथ
हरण करनेमें लगा रहता है और पारों और सुग (पृथ्वी) का
बिलेखना रहता है ॥ ७ ॥ हे प्यारी ! यव भी तुम्हारा कोई
विरोधी भी नहीं रहा, फिर भी तुम्हारा सुँद तोभी कभी काह
है ? एक कमल था, वह तुम्हारे अनेक पानीमें बुबा पड़ा है क-

दृनोऽम्बरगुहां प्रविष्टस्तत्रापि प्रवृत्तमिदमेतं दृढतमः ।
इति प्रासोद्रेककमगलितसस्व क्षयगदी विधिर्दग्धो
दीनं व्यथयति निदानं हि सुदुता ॥ ६ ॥ अथि दयिते
तय वदन्नं सुधानिधानं द्वितीयमभ्युदितम् । तदसहृद-
यमवलोक्य अस्वेदितं निश्चितं स्थाने ॥ १० ॥ अथि
सुन्दरि तय वदन्नं नित्यं पूर्णं सुधानिधिर्मत्वा । हन्त
पतत्युपरिष्ठान्मध्येऽभ्युधि नित्यमेवासी ॥ ११ ॥ अल-
कतम.परिपीतं सुस्मितसुपमापुरस्कृतं मधुरम् । को न
सुधानिधिसहजं सुमुखि मुपं हन्त सम्मनुताम् ॥ १२ ॥
असावन्तश्चन्द्रिकचनवलीलाभ्यज्युगलस्तलसर्जुक्त-
स्तुधिलसदलिसह्रात उपरि । विना दोषासङ्गं सततप-
रिपूर्णापिलकलः कुतः प्रासदचन्द्रो विगलितकलङ्कः
सुमुखि ते ॥ १३ ॥ अस्यामपूर्वं इव कोऽपि कलङ्करिक्त-
श्चन्द्रोऽपरः किमुत तन्मकरध्वजेन । रोमावलीगुणमि-

लत्कुचमन्दरेण निर्मथ्य नाभिजलधिं ध्रुवमुद्धतः स्यात्
॥ १४ ॥ अस्या मुखध्रीप्रतिविम्बमेव जटाच तातान्मु-
कुराद्य मित्रात् । अभ्यर्थ्य धत्तः खलु पद्मचन्द्रो विभू-
पणं याचितकं कदाचित् ॥ १५ ॥ अस्या मुखन्यास्तु
न पूर्णिमास्यं पूर्णस्य जित्वा महिमा हिमांशुम् ।
भ्रूलक्ष्मखण्डं दधदर्धमिन्दुर्भालस्तृतीयः खलु यस्य
भागः ॥ १६ ॥ अस्या मुखनैव विजित्य नित्यस्पर्शी
मिलत्कुङ्कुमरोपभासा । प्रसह्य चन्द्रः खलु नह्यमानः
स्यादेव तिष्ठन्परिवेपपाशः ॥ १७ ॥ आननं मृगशा-
वास्या वीक्ष्य लोलालकावृतम् । भ्रमङ्गमरसङ्कीर्णं
स्मराम सरसीरुहम् ॥ १८ ॥ आरुधे दयितामुख-
प्रतिसमे निर्मांशुमस्मिन्नपि व्यक्तं जन्मसमानमेव
मिलितामंशुच्छृङ्गां वर्षति । आत्मद्रोहिणि रोहिणीप-
रिवृद्धे पर्यङ्कपङ्कुरहः सङ्कोचादथ दुःस्थितस्य न विषे-

दूसरा चन्द्रमा था, वह आकाशमें छिप गया है ॥८॥ यह निगोड़ा
महान जाने इस बेचारे चन्द्रमाके क्यों बध दिए जा रहा है? एक
तो वह तुम्हारे मुखसे बरकर आकाशकी गुफामें चँदनी उत्पन्न
करता है पर यहाँतक भी प्रकाने इस मुखकी चकाचौंधभी चमक
पहुँचा ही है । इसी चिन्तामें धुलधुलकर वह तिरन्तर क्रमसे
अपनी कलापँखोर हतना चीप हो गया है कि अन्तमें कुछ भी
नहीं रह जाता ॥१॥ हे मित्रे ! तुम्हारा जो मुख अथ दूसरा चन्द्र
वनकर निरल छाया है वह यदि आकाशमें स्थित उस कलङ्की
चन्द्रमानो देपनर इस आरुद्धासे दरे तो ठीक है कि कहीं इस
समान बहुलानेवाले चन्द्रमाके कलङ्के कारण मुझे भी लोग
कलङ्की न कहने समझने लगें ॥१०॥ हे सुन्दरी ! यह चन्द्रमा
नित्य तुम्हारे मुखचन्द्रको पूर्ण ही पाता है इसीलिये वह नित्य
उससे हारकर प्रतिदिन उपराने समुद्रमें डूब मरनेके लिये क्रुद
पड़ता है ॥ ११ ॥ हे सुन्दर मुखवाली ! कौन ऐसा व्यक्ति है
जो तुम्हारे इस मुखको स्वाभाविक चन्द्रमा न समझ ले, जो
पालरूपी सँभरा पी रहा है और जिससे तुम्हारे सुस्काररूपी
मधुर चँदनी बाहर बिगरी पड़ रही है (चन्द्रमामें भीतर
बालापन होता है किन्तु बाहर प्रकाश होता है) ॥ १२ ॥ हे
सुन्दर मुखवाली ! हमने पेना चन्द्रमा (सुग) वहाँ पाया जिसके
भीतर किले हुए तथा नई-नई षट्क-भटकने भरे हुए दो कमल
(नेत्र) पड़क रहे हैं, जिसके नीचे शङ्ख (कण्ठ) शोभा दे
रहा है, जिसके ऊपर भीरोंका समूह (केश) गँदरा रहा है,
त्रिममें दीया (दीपके समूह, रात) के बिना ही सदा, परे

कलाधौंसे भरा रहता है और जिसमें कलङ्क (उदासी या
कालेपन) का नाम नहीं है ॥ १३ ॥ इस नायिकाका मुख बँद
दूसरा ही बिना कलङ्कवाला अनोखा चन्द्रमा है जिसे कामदेवने
नाभिरूपी समुद्रमें स्तनरूपी मन्दर पर्वतकी मथानी बनाकर
रोमावलीरूपी रस्सीसे मथकर उत्पन्न किया हो ॥ १४ ॥ कमल
और चन्द्रमाकी थोड़ी बहुत सुन्दरता ऐसी लगती है मागे
उस नायिकाने जल और दर्पणमें जो अपनी छाया देखी है वही
छाया कमलने अपने पिता जलसे और चन्द्रमाने अपने मित्र
दर्पणसे मॉँगकर उसीसे अपनेको सजा लिया हो ॥ १५ ॥
जब इसके मुखका तीसरा भाग (माथा) ही भींहरूपी
कलङ्कसे युक्त थावे चन्द्रमाके बराबर है तब इसका पूर्ण मुख तो
देव चन्द्रमाके समान हुआ । इसलिये यदि नायिकाके इस देव
चन्द्रमाके समान मुखने उस एक चन्द्रमाको हरा भी दिया तो
कौन यद्दा काम किया है ॥ १६ ॥ चन्द्रमाके चारों ओर जो
मण्डल (परिवेप) दिखाई पड़ता है वह मण्डल नहीं है, वह तो
पन्दा है, जिससे उस नायिकाके मुखने सदा बराबरीकी
होड़ करनेवाले चन्द्रमाको जीतकर बल-पूर्वक बाँध लिया है
और उस नायिकाके माथेपर जो केशर लगा है वही मानो
उसके मोपकी जलाई है ॥ १७ ॥ इतिथके हीनेके समान
शँखोंवाली इस नायिकाके लहराते हुए पालोंसे घिरे मुखको
देखकर उड़ते हुए भीरोंसे विरा हुआ कमल स्मरण हो जाता
है ॥ १८ ॥ प्रकाने उस रोंदिथीके पति चन्द्रमाको नायिकाके
मुखके समान नहीं धरन् अपना शयु बनाकर उत्पन्न किया क्योंकि

स्तञ्चीलमुनीलितम् ॥ १६ ॥ आसायं सलिलमेरु
सवितारमुपास्य सादरं तपसा । अधुनाऽत्रेण मनाकथ
मानिनि तुलना मुखस्यात्ता ॥ २० ॥ इयं सुनयना दासी-
रुततामरसश्रिया । श्राननेनाकलङ्केन जयतीन्दु कलङ्कि-
नम् ॥ २१ ॥ उत्थितो निशि कलानिधिर्भवेदेतदीयमु-
खतुल्यतातये । प्रापितो मलिनभायमेतया लज्जया
नमसि यात्यदृश्यताम् ॥ २२ ॥ उपरि स्थितः सुधा-
निधिरत्र पुनस्ते स्थितं मुखं सुभगे । उभयोरनयोर्भूयः
स्पृहणीयं दर्शनं कस्य ॥ २३ ॥ कपोलपद्मानमकरात्सके-
तुर्भ्रंभ्यां जिगीषुर्धनुया जगन्ति । इहावलम्ब्यास्ति रतिं
मनोभू रज्यद्वयस्यो मधुनाधरेण ॥ २४ ॥ कलङ्कहीनः
ज्यदोपश्लयः सदा निवृत्तस्तमसो भयाच्च । वताभवि-
ष्यद्विजनायकोऽपि तदापि मन्ये न तवाननाभम् ॥ २५ ॥

उत्पन्न होते ही उसने जो अपनी किरणें मिलाकर फैलाई,
तो उमे देपते ही ब्रह्माजीका आसन कमल मुँदने लगा
और ब्रह्माजी उसीके भीतर बस गए । इससे क्या ब्रह्माजी
बुद्धिमानीका परिचय नहीं मिलता ॥ १६ ॥ हे रूद्रेसे लाल
मुख कर लेनेवाली ! देवो, सार्यकालतक गहरे जलमें जब
श्रयन्त लगनके साथ लाल कमलने सूर्यकी उपासना की तब
कहीं वह तुम्हारे इस जोधसे लाल मुखकी कुङ्कु-कुङ्कु समानता
कर पाया है ॥ २० ॥ इस सुन्दर नेत्रोंवाली नायिकाके कमलकी
फान्ति हरनेवाले अपने कलङ्क-रहित मुखसे इस कलङ्क-सहित
चन्द्रमापर विजय प्राप्त कर ली है ॥ २१ ॥ कलाशौसे भरा
हुआ चन्द्रमा इस नायिकाकी समानता पानेके लिये ही रातमें
निकलता है, पर ज्योंही वह इस नायिकाके सामने आता है
व्यों ही लज्जामर, उदास होकर भट आकाशमें मुँह छिपा
लेता है ॥ २२ ॥ हे सुन्दरी ! ऊपर आकाशमें निकला हुआ
चन्द्रमा और यहाँ पृथ्वीपर चमकता हुआ तुम्हारा मुख
इन दोनोंमेंसे अधिक चाहने योग्य दर्शन किसका है ?
(तुम्हारे मुखका ही) ॥ २३ ॥ इस नायिकाका देवप्रभ
यह निश्चय निरवास हो जाता है कि कामदेव इसके शरीरमें
अवश्य निवास करता है क्योंकि इसके गालोंपर चँता हुआ
भगर ही कामना कस्यदा है, इसके भौंहरूपी धनुषसे ही वह
सँसारकी जीवना चाहता है, इसमें जो रति (प्रियका प्रेम)
है यही मानो इसके साथ रहनेवाली रति (कामकी पत्नी) है
और इसका मुष्कानसे भरा हुआ अघर ही मनो कामका
मित्र बसन्त है ॥ २४ ॥ यदि कोई ऐसा चन्द्रमा बना भी

कस्ते शशाङ्क मोहः सुधाकरोऽहं न कोऽपि मद्रिन्न ।
किं ननु पश्यसि निजभाजयि चनिताया मुग्धं मूढ
॥ २६ ॥ कस्यामोदं कमलं वदनमिदं ते प्रिये न सन्तु-
यात् । अचलमन्य मित्रमेकं विकसति न यदन्यथा जातु
॥ २७ ॥ कान्तामुपस्वाद्यपराद्मुखा यत्पान्थाः शशाङ्कस्य
करैविमृष्टाः । सुदु सहं तापमिमे प्रयान्ति मन्ये ततो
नेत्र सुधेततर ॥ २८ ॥ कोप स्फोटतरः स्थितानि
परित पत्राणि मुग्धं जलं मैत्रं मण्डलमुज्ज्वलं चिरमयो
नोतास्तथा कण्टकाः । इत्यारुप्रशिलीमुपेन रचनां
कृत्या तदत्यद्भवं यत्पत्रेण जिगीषुणापि न जितं मुग्धे
त्वदीयं मुखम् ॥ २६ ॥ चन्द्रं कलङ्करहितं शफरद्वयं
च निस्तोयमन्थतमसञ्च सुगन्धि तन्ग्या । वक्रचञ्च-
लेन भुवि स्पृष्टवतो विधातुर्वर्ण्यैतं केन करकोशलम-

दिया जाय जिसमें कलङ्क न हो, जो चीप न हुआ करे और
जिसे कभी राहुका डर न हो, तब भी मैं समझना हूँ कि
वह तुम्हारे मुखकी शोभा नहीं प्राप्त कर सकता ॥ २६ ॥
हे चन्द्रमा ! यह तुम्हें कैसा भ्रम हो गया है कि मैं चन्द्रमा
हूँ और मुझमें वदकर कोई नहीं है ? अरे सुन्दे ! क्या तूने अपनी
शाभाका जीतनेवाला उस नायिकाका मुँह नहीं देखा ॥ २६ ॥
हे प्यारी ! तुम्हारा यह मुखकमल जिसे आनन्द नहीं देता जो
अपने एकमात्र मित्र (पति या सूर्य) के सामने आनेपर ही
खिलता है, अन्यथा नहीं ॥ २७ ॥ अपनी पत्नियोंके अघराष्टकके
स्वादसे बद्धित पथिक लोग जब चन्द्रमाकी किरणोंसे छू जानेपर
श्रयन्त जले जा रहे हैं, तब यह निश्चय है कि चन्द्रमाकी
किरणोंमें अमृत नहीं, विष भरा हुआ है ॥ २८ ॥ हे मौली-
वाली नायिका ! कमलने तुम्हारा मुख जीतनेके लिये कोप
(कमलगद्दा, घन) एकत्र किया, चारों ओर पत्र (वाहन,
पहुँची) सजाए, जलको उसने दुर्ग (पहुँचसे बाहर, गड)
बनाया, मित्र (सूर्य, मित्र) उसके साथी रहे, कर्दों
(शत्रुओं, काटों) को उसने पहले ही नीचे (पदात्मान्त) कर
रक्या है, इतना सब प्रबन्ध करके वह स्वयं शिलीमुख (भँरे,
बाण) रत्नचकर जीतना चाह रहा है पर आश्चर्य तो है कि इतनी
अल्पन्त विचाल वैवारी कर लेनेपर भी वह तुम्हारे मुखको
जीत नहीं पा रहा है ॥ २६ ॥ जिस ब्रह्मणे यह विना कलङ्कका
चन्द्रमा (नायिकारा मुख) बनाया है उसकी विविध कारीगरीका
कौन वर्णन कर सकता है क्योंकि उस चन्द्रमामें बिना जलके
ही दो मण्डलियाँ (शौलें) बनी हुई हैं और उसके ऊपर सुगन्धित

द्वृतं सत् ॥ ३० ॥ चलद्वृद्धमिवाम्भोजमधीरनयनं
मुपम् । तदीयं यदि दृश्येत कामः क्रुद्धोऽस्तु किं ततः
॥ ३१ ॥ चातुर्यस्यैकाचिह्नं फलममलागिरां मूलमुत्ताप-
शन्तेः पन्नायाः सप्तसादं स्थलमपि च रचां कौशभृतं
फलानाम् । शृङ्गारस्यातिमानं शरदमृतकरस्पृधिं
सौभाग्यसिन्धोरारस्यं तस्याः सहास्य मनसि न मृदुले
कस्य लास्यं तनोत ॥ ३२ ॥ जगन्नानन्दं वदनममुल
पदमलदशः कथङ्कारपङ्केरुहमनुविधातु प्रभवति । अयं
चेदाकाङ्क्षो सह मदनमोददण्डलतया चरको राकेन्दुः
कुवलययुगं किं न वहति ॥ ३३ ॥ जनानन्दश्चन्द्रो
भवति न कथं नाम सुकृती प्रयातोऽवस्थाभिस्तिसृ-
भिरपि यः फोटिभियतीम् । भ्रूलालां चाल । अथम-
ल्लिकपट्टस्य तरुणो मुलेन्द्रास्सवस्यं हरति हारखाद्या-
परिणतः ॥ ३४ ॥ जितेन्दुपद्मलावण्य क कान्तावदनं

जयेत् । मुक्त्वा तदेव सुरनश्रमजिह्वितलोचनम् ॥ ३५ ॥
तव वदनेन तिरस्कृतमश्वरुहं तपति पायसो मध्ये ।
अभ्रान्तर्विधुमण्डलमिदमपि धावति विलीनं सत् ॥ ३६ ॥ तस्या मुखस्यातिमनोहरस्य कर्तुं न शक्तः
सदृशं प्रियायाः । अद्यापि शीतयुतिरात्मविभ्यं निर्माय
निर्माय पुनर्भिनसि ॥ ३७ ॥ तस्या वदनचन्द्रस्य
कान्तिरन्यैव जायते । कलङ्कतुलनां धत्ते यत्र नासाप्र-
मौक्तिकम् ॥ ३८ ॥ तानि प्राञ्चि दिनानि यत्र रजनी
सेहे तमिन्नापदं सा सृष्टिविरराम यत्र भवति ज्योत्स्ना-
मयो नातपः । अद्यान्यः समयस्तथाहि तिथयोऽप्यस्या
मुखस्योदये हस्ताहस्तिकया हरन्ति परिणो राकावरा-
कीयशः ॥ ३९ ॥ त्वरितं पिधेहि वदनं वहिरथवा मैव
मोददे यालीः । प्रस्फुरदमृतनिधानं पातुं समयः सदै-
वास्ते ॥ ४० ॥ दिवावरज्यो रविसोमभीते चन्द्राम्बुजे

घना अन्धकार (जडा) स्थापित किया हुआ है ॥ ३० ॥ यदि
चञ्चल भौंरसे युक्त कमलक समान चञ्चल नेत्रोवाली उस
नायिकाका मुख दिखाई पड़ जानेपर कामदेव भी हमपर
विगद वैडा हो तो हमें उसकी काई चिन्ता नहीं ॥ ३१ ॥
उस नयलीका हँसता हुआ मुख चतुराईका सूचक है,
स्तोत्रपाठ आदि निर्मल वाणीका फल है, बढ़े हुए
तापको दूर करनेकी जड़ी है, लक्ष्मीके निवासका भवन है,
शोभाका धाम है, सुन्दर फलोंका भंडार है, शृङ्गारको
उकसानेवाला है, शरद ऋतुके चन्द्रमाकी समानता करनेवाला
है और सीमायुक्त समुद्र है, वह किसके कामल चित्तमें नहीं
नाचता ॥ ३२ ॥ सुन्दर बरीनियंसे युक्त शोखोताली इस
नायिकाका जो अद्वितीय मुपकमल सारे ससारकी शौंलोंको
घानन्द देता है इसकी समानता यह बेचारा युगका चन्द्रमा
कैसे कर सकता है । यदि उसे इस मुपकी पराधीन करनेका
हृत्ता थाव ही है तो कामदेवके धनुषमें दो नीले कमल
जोड़कर क्यों नहीं अपने मुँह टँक लेता क्योंकि तभी वह
उसके मुपकी समानता कर पा सकता है ॥ ३३ ॥ बेचारा
चन्द्रमा ससारके सभी प्राणियोंको मुग देना रहता है फिर भी
उसके माथे यश नहीं है । यद्यपि वह भी बाल, तरण और
पूर्ण तीनों अयथास्थानों हारकर बढ़ता है फिर भी इस
मुगनयनीका मुखरुमी चन्द्रमा भाँडार्थ लालाका बालपन,
मौत बादनेन जबानी और पूर्ण चन्द्रमाकी प्रियावस्था
के ३सरी कामि हर ही लेता है ॥ ३४ ॥ उस मु की

विल मुखने चन्द्रमा और कमलकी सुन्दरता हर ली है उसे,
सगमोगकी थकावटसे उनींदे नेत्रवाले उसको मुखको छोड़कर,
और कौन जीत सकता है ॥ ३५ ॥ तुम्हारे मुखसे हारा हुआ
कमल तो जलके भीतर घुसकर तपस्या कर रहा है और चन्द्र
मण्डल बेचारा भागकर बादलोंके बीचमें अपना मुँह छिपा
रहा है ॥ ३६ ॥ चन्द्रमाने उस प्यारीके अत्यन्त सुन्दर मुखके
समान अपनेको बनानेका बहुत प्रयत्न किया पर बना न
पाया, तभीसे आजतक वह उसी उधेड़-पुनमें अपना स्वरूप
बार-बार बनाया और बिगाड़ा करता है ॥ ३७ ॥ उसके मुख-
चन्द्रकी तुच्छ निराली ही छुटा है जिसने कि वहाँ बँसरका
मोती कलङ्क जैसा जान पड़ने लगा है ॥ ३८ ॥ वे दिन गए, अब
कि बेचारी रायिको अँधेरेकी लात सहनी पड़ती थी, वह युग भी
चला गया जब चन्द्रमाकी चाँदनी धुँधली हुआ करती थी, अब
तो वह युग आ गया है कि इस नायिकाका मुख-चन्द्र निकलते
ही सब तिथियों पूर्णिमाका यश लूटनेके लिये धक्का-मुक्की करने
लगी हैं ॥ ३९ ॥ हे प्रिये ! तुम तो ऋतपट अपना मुँह ढक
लो या बाहर निकलनेका विचार ही छोड़ दो क्योंकि सामने
उमड़ता हुआ अमृत पीनेके लिये प्यासकी आवरकता नहीं पड़ती
अर्थात् तुम मुँह ढक लो, कहीं कोई तुम्हारे भौंठोंका अश्रुन
न पी ले ॥ ४० ॥ दिनमें सूर्यके तेजसे ढरकर चन्द्रमा और
रातमें चन्द्रमासे ढरकर कमल अपनी अपनी शोभा इस
नायिकाके मुखमें शोहर रत छोड़ते हैं इसीलिये इस नयनीका
मुग रात दिन शोभामें मग रहता है ॥ ४१ ॥ उस सूर्य गुप्प

निकृपितः स्वल्पमीम् । अस्या यदास्ये न तदा तयोः
श्रृंगिकश्चिदेदं तु कदा न कान्तम् ॥ ४१ ॥ धिक्कस्य
मन्दमनसः कुक्कयेः कथित्वं यः स्त्रीमुपं च शशिनं च
समं करोति । भ्रूमङ्गविभ्रमकटाक्षनिरीक्षितानि कोप-
प्रसादहसितानि कुतः शशाङ्के ॥ ४२ ॥ नताङ्गि त्वङ्कन-
श्रियमसहमानः कृशतनुर्जटारण्ये स्थित्वा गलदम-
लगङ्गे गृहगुरोः । त्रियामाप्रणेशः शृणु निजकलङ्कं
शमयितुं समुद्यत्सङ्कल्पः परिव्रजति मन्ये तप इति
॥ ४३ ॥ न दिवा सुधानिधानं विकसति नक्तं न हन्त
या कमलम् । पक्वं पुनस्त्वदीयं सुभगे वदनं दिवानिशं
विकसत् ॥ ४४ ॥ ननु नीलाञ्जलसञ्चृतमाननमामाति
हरिणनयनाया । प्रतिविम्बित इव यमुनागभीरनीरा-
न्तरेणाङ्कः ॥ ४५ ॥ न हसति वर्धते न च मलिनं न च
दृश्यते मनाक्क्यापि । वदनमिदं तव सुभगे स्फुरति
न कस्य प्रमोदाय ॥ ४६ ॥ पियन्ति कान्तावदनं मुदा

ये त पव धन्याः अनुमातुमिष्टाः । अन्ये तु केचित्प-
थिका भ्रमन्ति केचिद्विषया जटिलाश्च केचित् ॥ ४७ ॥
पुंसान्दर्शय सुन्दरि मुगेन्दुमीपत्रपामपाठव्य । जाया-
जित इति रुद्रा जनश्रुतिमं यशो भवतु ॥ ४८ ॥ प्रविश
ऋटिति गेहं मा वहिस्तिष्ठ कान्ते प्रहणसमयवेला
वर्त्तते शीतरभेः । तव मुखमकलङ्कं वीच्य नूनं स गह-
र्णसति तव मुगेन्दुं पूर्यचन्द्रं विहाय ॥ ४९ ॥ विभ्राणो
मृगसत्पथमेव किमपि प्राडं तपस्तप्यतामाग्राभेतु
निरन्तरं द्विधिपद्ः पीयूषसत्रेण च । देहाधेन पुनः
करोतु यदि वा भूतेश्वरस्यार्चनं तद्वन्त्रेण समस्तथापि
भविता शङ्के न शीतद्युतिः ॥ ५० ॥ भाति विलास्युप-
रिष्टानुचिमादधद्विष्टमस्य लोक्तस्य । वदनमिदं रम-
णीयं सुभगं तमसो भयान्मुक्तम् ॥ ५१ ॥ मध्येऽस्तु
तपति कमलं निपतति मध्येऽन्धि चन्द्रका नित्यम् ।
सुभगे तव मुपमेकं जयति चिकाशं दधन्नितराम्

कविनी कविताको धिक्कार है जो अपनी कवितामें स्त्रीके मुखको
उपमा चन्द्रमासे देता है । भला यथावत् तो, भाँहाका बाँकापन,
हाव-भाव भरी चेतापूँ, तिरझी चितवन, क्रोध, प्रसन्नता और
हँसी आदि चन्द्रमामें कहीं मिल पाती है ॥ ४२ ॥ हे कोमलाङ्गी !
महादेवजीके मस्तकपर स्थित द्वितीयाके चन्द्रमाको देखकर
पेसा प्रतीत होता है कि जब चन्द्रमा तुम्हारे मुखकी शोभा
नहीं प्राप्त कर सका तब वह सीम्बर महादेवजीकी जटाके
वनमें अपना शरीर मुखा-सुजाकर वहीं तपस्या कर रहा है और
अपना कलङ्क धोनेके लिये महादेवजीके सिरसे बहती हुई स्वच्छ
गङ्गाजीमें दूदनेका सङ्कल्प किए बैठा है ॥ ४३ ॥ अमृतका
भयदार चन्द्रमा तो दिनमें नहीं निकलता और कमल रातको
नहीं खिलता किन्तु हे सुन्दरी ! तुम्हारा मुख अवश्य पेसा
है जो रात-दिन सदा खिला रहता है ॥ ४४ ॥ उस हरिणोंके
नेत्रोंके समान श्रौंजोवाली नायिकाका मुख नीले श्रौंचलसे
ढका हुआ पेसा जान पड़ता है मानो यमुनाके गहरे जलमें
चन्द्रमाकी परछाईं मिलमिला रही हो ॥ ४५ ॥ हे सुन्दरी !
तुम्हारा मुख न कभी छोटा होता है, न बड़ता है और न कहींसे
भी मलिन दिखाई पड़ता है, तब भला यथावत्, इसकी कान्तिसे
निसे नहीं आनन्द मिलता है ॥ ४६ ॥ हम तो उन्हीं लोगोंको
धन्य समझते हैं जो प्रसन्न होकर अपनी कान्ताका अधराहत
पीते हैं, इसके अतिरिक्त जितने लोग हैं वे या तो यात्री होकर
या नहें या जटा शयिकर धूमते हैं ॥ ४७ ॥ हे सुन्दरी !

सङ्कोच छोड़कर तनिक उन लोगोंको अपना मुखचन्द्र तो
दिया दो जिससे मेरा यह अपथय बदलकर बश बन जाय कि
यह अपनी स्त्रीके वशमें रहता है अर्थात् लोभ यह सामक लें
कि ऐसी सुन्दरी स्त्रीके वशमें रहना ठीक है ॥ ४८ ॥
प्रहणके समय एक रसिक अपनी सुन्दरी प्रेयसीसे कहता है—
'हे प्यारी ! तुम ऋष्ट घरेमें घुस जाओ, धार न बँडे,
क्योंकि अब चन्द्रमाके प्रहणका समय हो ही रहा है, कहीं पेसा
न हो कि रातु उस पूर्य चन्द्रमाको छोड़कर तुम्हारे इस कलङ्क-
रहित मुखचन्द्रमाका ही निगल जाय' ॥ ४९ ॥ मृगके
साथ मित्रता करके अत्यन्त उग्र तपस्या करनेसे देवता लोभ
अश्रुतके लिये चन्द्रमाकी भले ही निरन्तर धाराधना करें और
वह चन्द्रमा अपने आपे शरीरसे भले ही शिवजीकी पूजा भी
करता रहे किन्तु फिर भी वह उस नायिकाके मुखकी समारता
कभी नहीं कर सकता ॥ ५० ॥ ऊपर आकाशमें इस संसारका
प्रिय चन्द्रमा भले ही शोभा दे किन्तु इस नायिकाका मुख
जो अन्धकार और भय दोनोंसे मुक्त है यह उससे कहीं अधिक
सुन्दर प्रतीत हो रहा है ॥ ५१ ॥ कमल ती जलमें खड़ा
तपस्या करता है और चन्द्रमा नित्य जाकर समुद्रमें दूबता
है किन्तु हे सुन्दरी ! तुम्हारा मुख ही अकेला पेसा है
जो निरन्तर प्रकाशधारण करता हुआ सबको जीतता रहता है ।
॥ ५२ ॥ हे सुन्दरी ! कामदेवके समान पतिरूपी मित्र (मूर्त्ये)
पाकर जब तुम्हारा मुख प्रसन्नतासे खिल उठता है तब

॥ ५२ ॥ मानससम्भवदयितं मित्रमुपेयं प्रहृष्यदास्य-
यच्चि । सरसिजविकाससहजं सुमुषि तवेदं मुखं
भुवने ॥ ५३ ॥ मुखं ते दृष्टुं ललिततममिन्दुर्मुगपदप्रहारं
हस्ताभ्यामुपसि तनुते मे मतिरिति । न चेद्ब्रह्म श्यामं
वहति किमसौ स्मेरपदने मनस्वी को नाम प्रतुदति न
दूनो निजतनुम् ॥ ५४ ॥ मुखं वहति बन्धूकयन्धुरेणा-
धरेण सा । पूर्णैन्दुमिव सौन्दर्यादङ्गलालितकौस्तुभम्
॥ ५५ ॥ मुखेन तन्व्या ननु तोल्यमानं सुधांशुविष्वं
विधिना कदाचित् । आकाशमापन्नमदस्तदैव स्थिरं
तथैवेदमिहेति चित्रम् ॥ ५६ ॥ मुखे स्मायं स्मायं हन्त
किमेतान्निहसि दैवहृतात् । हननं सुकृतं सुकृती सुकृ-
तिति नहि कोऽपि निर्वृत्ति ॥ ५७ ॥ मृगमदतिलकित-
निटिलं केशच्छट्टयापि सर्वदाऽधरितम् । नित्यं विक-
सनशीलं विकसत्येवाननं सुभगे ॥ ५८ ॥ मैवं तमस्तवक
मूर्ध्वमपाकृथास्त्वमेणं त्यजास्य विमले नयने गृहाण ।

गुहारे उस मुखकी शोभा भयनमें सहज ही खिलनेवाले
कमलकी-सी हाने लगती है ॥ ५३ ॥ हे मुखकानसे भरे
मुखवाली ! मैं तो समझता हूँ कि चन्द्रमामें यह कालिमा
नहीं है वरन् ऐसा जान पड़ता है कि वह गुहारा सुन्दरतम
मुख देखकर स्वयं अपने हाथोंसे अपनी छातीपर हरिणकी
लात सह रहा है, क्योंकि ऐसा कौन मनस्वी है जो दुखी
होकर अपनी छाती नहीं पीट लेता ॥ ५४ ॥ उस नायिकाके
मुखपर जो दुपहरियाके फूलके समान खाल-खाल अधर ह
उसके साथ वह मुख ऐसा जान पड़ता है माना पूर्ण चन्द्रमाने
अपना सौन्दर्य बढ़ानेके लिये अपनी छातापर बँसुभ मण्डि
बाँध ला हा ॥ ५५ ॥ एक बार जब महाजी उस सुन्दरके
मुखसे चन्द्रमाके भिम्बका तोलने लगे तो वह चन्द्रमाका
सिंग ऊपर आकाशमें उड़ गया और सुन्दरीका मुख भारी
होनेसे नीचे पृथ्वी आ गया । उसीसे चन्द्रमा आजतक
आकाशमें ही खटका रह गया है । यह सचमुच बड़े आश्चर्यका
घटना है ॥ ५६ ॥ हे भाली-भाली ! तुम बार-बार मुखरा-
मुकराकर उन दैवसे मारे हुआका फिर क्यों मारे डालता हा ?
हे सुन्दर मर्मवाली ! तुम कामोंमें किसीने हत्याका भला नहीं
करा है ॥ ५७ ॥ हे सुन्दरी ! गुहारे बालोंकी छटाने कस्तूरीका
निलक सगे हुए माथेको सदा नीचे ही रक्ता है फिर भी
गुहारा सदा खिलता रहनेवाला मुख निरन्तर खिलता ही आ
रहा है ॥ ५८ ॥ हे चन्द्रमा ! यदि तुम हम गृहानयनोंके

लोलालकं तरलवीक्षितमायताच्यास्ताद्धान्मुखं यदि
भवाननुकर्तुंकाम ॥ ५६ ॥ यः ससर्ज कमलं रमागृहं
विश्वलोचनमहोत्सवं विधिः । एष तादृगसृजन्मृगी-
दृशो मीनकैतननिकेतनं मुखम् ॥ ६० ॥ यदमरशनेः
सिन्धोरन्तः कथञ्चिदुपाजितं सकलमपि तद्भाना
कान्तामुखे चिन्निवेशितम् । सुरसुमनसः श्वासामोदे
शशी च कपोलयोरमृतमधरे तिर्यग्भूते विपञ्च दिलो
चने ॥ ६१ ॥ यन्मञ्जुसिञ्जितमिती रसनामणीनां यच्छू-
ससौरभवलादलयां वदन्ति । यन्नीतयः स्वल्दलङ्कृत-
यश्च लोला दोलाविलासतरलस्तदयं मुखेन्दुः ॥ ६२ ॥
राकायामकलङ्कचेदमृतांशोर्भेदेषुः । तस्या मुखं
तदा साम्यपराभवमवाप्नयात् ॥ ६३ ॥ लावण्यमधुभिः
पूर्णमास्यमस्या विकस्वरम् । लोकोचनरोलम्बक-
दम्बैः कैर्न पीयते ॥ ६४ ॥ लोके कलङ्कमपहातुमयं
शशाङ्को जातो यतस्तव मुखं तरलायतात्ति । तत्रापि

चञ्चल अलकं (केशों), बड़े-बड़े नेत्रों और सहज सुन्दर
चितवनवाले मुखकी समानता करना ही चाहते हो तो अपने
ऊपर कालिमा धारण करते मात्रसे काम नहीं चलेगा । इसके
लिये तुम अपने मुखको हटाकर केवल उसके दोनों सुन्दर नैनभर
रख लो ॥ ६१ ॥ जिस ब्रह्माने संसारकी आँखोंको भ्रान्त देने-
वाला वह कमल बनाया जिसमें लक्ष्मी निवास करती है, उसी
ब्रह्माने हरियोंके समान नेत्रोंवाली नायिकाका वह मुख भी बना
दिया जिसमें मण्डलीके ऋषडेभाला कामदेव आकर निवास करता
है ॥ ६० ॥ संकटों देवताओंने मिलकर समुद्रके भीतरसे जो भी
उड़ बड़ी कठिनाईसे प्राप्त किया वे सभी वस्तुएँ ब्रह्माजीने खीके
सुगमें लाकर सञ्चित कर दीं । देखिए, उसने उसकी सौतकी
सुगन्धमें लता कल्पके फूल, दोनों गालोंमें चन्द्रमा, शोभमें
अमृत और बाँकी चिनचनमें विप लाकर रख दिया है ॥ ६१ ॥
यह जो हृषभ कहीं धरणीके मण्डिका-सा मनोहर शब्द सुनाई
पड़ रहा है, सौतकी सुगन्धसे लिचकर भीरे गुँज रहे हैं, गीत-
सा सुनाई पड़ रहा है और गहने खिसके जा रहे हैं, इन सब
लौजाओंसे ऐसा जान पड़ता है कि किसी नायिकाका मुखरूपी
चन्द्रमा उसके हाव-भावके मूलेपर गूल रहा है ॥ ६२ ॥ यदि
कभी किसी पृथिवीकी रातमें चन्द्रमा कलङ्क-रहित हो जाय
तब कहीं यह मुख चन्द्रमाके समान हो सकेगा और इस
नायिकाके मुखको परामय हो सकेगी ॥ ६३ ॥ इस नवेलीके
जिस मुखरूपी कमलमें सुन्दरतारूपी पुष्पस भरा हुआ है

कल्पयसि तन्व्य कलङ्कलेगां नार्यः समाश्रितजनं हि
कलङ्कयन्ति ॥ ६५ ॥ यन्त्रं जेष्यामि चन्द्रः प्रतिदिव-
समसां कान्तिमभ्येति गुर्वो नेत्रच्छायां हरिष्याम्यह-
मिति विकसत्युत्पलं दीधिकायाम् । कुर्वाणै ते तथापि
श्रियमधिकतरां चीन्व्य लोलोत्पलाया वैलन्व्यात्वीण
एको विघटितमपरं मत्सरे नास्ति मद्रम् ॥ ६६ ॥
यदनमिवैकं कमलं कमलमिवेदं सुचारु वा यदनम् ।
सुदमाघातं मधुपां क्षममिति सम्भाव्यते कथिभिः
॥ ६७ ॥ यदनसुधानिधिरसि ससि सुस्मितकलया
सुधारसाञ्जुतया । कस्य निपिच्यारनङ्गं साङ्गं कर्तुं
समुल्लसति ॥ ६८ ॥ यदनसुधानिधिरेप प्रमदे न पुन-
स्त्वया तथा चिद्रितः । तद्विति सुधानिधिमपरं चीन्व्य
कृतार्था मुघा मनसि ॥ ६९ ॥ बलितश्रु मुकुलितार्त्तं

वीटीरसरञ्जिताघरं तन्व्याः । सौन्काराञ्जिनमधुरं
यदनं रुचिरं सुधासदनम् ॥ ७० ॥ विक्रमवतु कमलं
राजतु सुधानिधिरां मुदा किमेतेन । मम तु पर न य
यदनं रुचये रुचिरं सुवर्णायाः ॥ ७१ ॥ विक्रमकमलं
समुदितमिन्द्रं पीयूषसागरं चापि । समुत्ति यदैव
विलोके तदा तदैव प्रमोदेऽहम् ॥ ७२ ॥ विचरसि
यतो यतो यतस्त्वं मधुपा श्रुतयान्ति तत्र हन्त त्वाम् ।
केनापि रहसि दृष्टं हन्त तवेदं प्रिये यदनम् ॥ ७३ ॥
विधायापूर्वपूर्णेन्द्रमस्या मुपमभूद्भयम् । घाता निजा-
सनाम्भोजविनिमीलनदुःस्थितः ॥ ७४ ॥ विघोविधि-
विन्ध्यशतानि लोपं लोपं कुहरात्रिषु मासि मासि ।
श्रमह्वरथीरुममुं किमस्या मुगेन्द्रमस्थापयदेकज्येयम्
॥ ७५ ॥ विना सायं कोऽयं समुदयति सारभ्यसुनाः

उसे किन्के नेत्ररूपी भौर नहीं पा रहे हैं अर्थात् सभी लोग
उसके सुन्दर मुखकी ओर टकटकी लगाए देल रहे हैं ॥ ६५ ॥
हे चञ्चल तथा बड़े-बड़े नेत्रोंवाली नवेली ! चन्द्रमाने संसारमें
कलङ्क-रहित बहलानेके लिये तो तुम्हारे मुखका रूप धारण
किया है और तुम उसपर भी कलङ्क (काली हँसी
विन्दी) लगाए डाल रही हो । ठीक ही है, खियाँका जो सह
करना है उसे स्थिराँ क्या कलङ्कित किए बिना मानती है ॥ ६६ ॥
चन्द्रमा प्रतिदिन अपनी कान्ति यह समझकर बढ़ता है कि मैं
बढ़ते-बढ़ते एक दिन उस कामिनीके मुखको जीत लूँगा ।
तलैयामें कमल भी यही सोचकर फैलता जा रहा है कि मैं
इसके नेत्रोंकी शोभा हर लूँगा । किन्तु जब इन दोनोंने ही उस
चञ्चल चितयनवालीके मुपमें अपनेसे अधिक विलक्ष्य शोभा
देखी तो हसी सोचमें बेचारा चन्द्रमा तो दुबला होने
लगा और कमल छितराकर बिखर गया । तात्पर्य यह कि
हृत्वां करनेसे किसीका भी कल्याण नहीं होता ॥ ६९ ॥
'कमल ही उसके मुखके समान है और उसका सुन्दर मुख
ही कमलके समान है ।' यह कल्पना कवियोंने हसीलिये
की है कि ये दोनों ही भौरों (नेत्रों) को प्रसन्न होकर
(खिलकर, हँसकर अपनी ओर खींच लेते हैं ॥ ६७ ॥ हे सपी !
अश्रुतेके रससे भरी हुई मुस्कानकी सुन्दरतासे यह तुम्हारा मुख-
चन्द्र आज किस अनङ्ग (कामदेव धरधर विना अङ्गवाले) को
सौचकर अङ्ग-सहित करनेके लिये उतावला हो रहा है ॥ ६८ ॥
हे नवेली ! जिसे तू दूसरा चन्द्रमा समझे बैठी है और जिसे
देख-देखकर तू मनमें फूली नहीं समझ रही है वह दूसरा

चन्द्रमा नहीं है, वह तो तेरा चन्द्रमुप ही है ॥ ६९ ॥ नवेलीका
यह मुख कोई निराला ही सुन्दर चन्द्रमा है जिसमें देडों
भींहें हैं, हँसती हुई आँखें हैं, पानके बीदेमें रंगे हुए आंठ हैं तथा
जिसमेंसे सी-सीकों मधुर वार्या निकल रही है ॥ ७० ॥ भले
ही कमल विलें और चन्द्रमा भी चाँदनी फैलावे, किन्तु मुझे
उनकी शोभासे क्या लेना देना ! मैं तो तुम्हें सोने जैसी
सुन्दरीके सुन्दर मुखकी शोभापर ही लट्टू हूँ ॥ ७१ ॥
हे सुन्दर मुखवाली ! खिलते हुए कमल और उदय होते हुए
अश्रुतेसे भरे चन्द्रमाको मैं जब-जब देखता हूँ तब-तब विल
उठता हूँ अर्थात् उन्हें देखकर तुम्हारा मुख स्मरण ही घाता
है ॥ ७२ ॥ हे प्यारी ! जहाँ-जहाँ तुम जाती हो वहाँ-वहाँ भौर
भी तुम्हारे साथ लगे चले जाते हैं । जान पड़ना है किंसाने
गुप्तगुप्त तुम्हारा मुँह देख लिया है इसलिये उसकी कुंठ
बचानेके लिये ये भौरें डिट्टीना बने साथ लगे रहते हैं ॥ ७३ ॥
महाने जब इस नायिकाका यह निराला मुखचन्द्र बनया जो
कभी अस्त नहीं होता तब उसे बढ़ा पड़ता हुआ क्योंकि
उसके बनते ही वह कमल सदा मुँहा रहने लगा जिसपर वे बैठे
थे ॥ ७४ ॥ इस नवेलीके मुखको देखकर यह प्रश्न उठता है
कि क्या महाने प्रत्येक मासकी अमावास्याकी रातमें चन्द्रमाके
सैकड़ों मण्डल तोड़-तोड़कर ही तो इस स्थिर शोभावाले
नवेलीके मुखचन्द्रकी रचना नहीं की है ॥ ७५ ॥ उस नायिकाके
मुखचन्द्रको देखकर कविको भ्रम हो गया है और वह कहता
है कि सायंकाल हुए बिना ही पृथ्वीपर यह कौनसा चन्द्रमा
निकल रहा है जो मुगन्धसे भरा हुआ है, चारों ओर चाँदनीकी

किरञ्ज्योत्प्लाधागमधिधरणि तागपरिवृढः । धनु-
र्घत्ते रमार तिरयति विहार न तमसां निर्गानङ्क-
पङ्के रह-गलमङ्कं नटयति ॥ ७६ ॥ विलसन्माननं तस्या
नासाग्रस्थितमौक्तिकम् । श्रालक्षितबुधाश्लेषं गान्धे-
रिव मण्डलम् ॥ ७७ ॥ विलसन्मृदुहृणीयहचिर्मित्रमेष्णा
धिमुकचन्द्रमनाः । जीवनदिव्यविभूतिः पश्चिनी
मानसमुपेतसि ॥ ७८ ॥ व्यधत्त धाता मुखपद्ममस्याः
सप्राजमम्भोजकुलेऽपिलेऽपि । सरोजरजो रजतोऽ-
दसीयां नेत्राभिधेयावत पय सेवाम् ॥ ७९ ॥ शरत्का-
लसमुल्लासिपुष्पिमाशर्यरीप्रियम् । करोति ते मुखंतन्वि
चपेटापातनातिधिम् ॥ ८० ॥ शरदराकाचन्द्रो मुखम-
नुकर्त्तुं क्षमेत चेदग्रमदे । पुनरपि दर्पं कथमिध न पर-
प्रास्याशतोऽप्याभा ॥ ८१ ॥ साधु चन्द्रमसि पुष्करैः
कृतं मीलितं यदभिरामताधिके । उच्यते जयिनि

कामिनीमुखे तेन साहसमनुष्ठितं पनः ॥ ८२ ॥ सुधा-
करश्चन्द्र इति प्रवृत्ता वदन्तु कामं यमराजदृष्टाः ।
धन्यास्तु कान्तावदन्यतौऽप्य पाना- मोदौ नतु तस्य
जातु ॥ ८३ ॥ सुधावद्वरासैरुपवनचकौरैरनुसूतां
किरञ्ज्योत्प्लाप्रच्छां नवलवलिपाकमण्यिनीम् । उप-
प्राकाराग्रं प्रह्लिणु नयने तर्कय मनागनाकाशे कोऽयं
गलितहरिणः शीतकिरणः ॥ ८४ ॥ सुधाधिश्चन्द्रः
स्थाद्यदि कथमयं तत्स्वयमपि प्रयाति क्षीणत्वं कथम-
मृततां वा व्रजति नो । ततो मन्ये कान्तावदनमिद-
मेकं ननु परं यदीयं सम्पद्य स्मितमपि कृणार्याः सहृदयाः
॥ ८५ ॥ सुभगे तव मुखमिन्दुमानसजातं वत प्रफुल्ल-
यति । श्रीजन्मेतत्सस्यैतस्य पुनः सङ्गतो मृत्युः ॥ ८६ ॥
सुभगे तव मुखमेकं पश्यन्सुकृती कृतार्थतां मनुते ।
भ्रमति स पय सुतप्तः क्वचिदपि विन्दुश्च चान्यदा शर्म

धारा फैला रहा है, कामदेवका धनुष (भौंहे) लिए हुए है, अथवा (केस) के फैलावको भी नहीं रोक रहा है, किसी (राहु)से इतना भी नहीं है और अपनी गोदमें दो नीले कमलों (चाँदों) को उड़ाकता जा रहा है ॥ ७६ ॥ नाकमें लटके हुए बेसरेके साथ उस नवेलीका मुख ऐसा सुन्दर जान पड़ता है मानो पुष्पिमाके चन्द्रमण्डलमें उभय आ गया हो ॥ ७७ ॥ सुन्दर मुखवाली कामिन को सम्बोधित करके कवि कहता है— 'हे कमलिना (कमलके समान मुखवाली) ! तुम्हारी शोभा मित्र (सूर्य, प्रिय) के प्रेमसे अत्यन्त आकर्षक हो जाती है, तुम चन्द्रमा (चन्द्रके समान अस्थिर चित्तवाले लोगों) से मुक्त हो और जीवन (जल) की दिव्य विभूति हो, इसीलिये तुम मानस (मन और सरोवर) में समाई हुई हो ॥ ७८ ॥ प्रह्लादे इम नवेलीके मुखकमलों समी कमलोंका सप्राद बना दिया है इसीलिये कमलोंके नेत्र नामके दो राजा निरन्तर हसकी सेवा किया करते हैं अर्थात् मुखकमलपर दो नेत्र-कमल मानों उसकी सेवाके लिये नियुक्त हैं ॥ ७९ ॥ हे कामलाक्षी ! तुम्हारा सुन्दर मुख तो शरदमें उगे हुए पुष्पिमाके चन्द्रमाके भी चपेटे बाळ रहा है ॥ ८० ॥ शरदकी पुष्पिमाका चन्द्रमा तुम्हारे मुखकी सन्तुष्टा कर तो सक्षता या पर है नवेली । उसमें तुम्हारी धामका एक चंद्र भर भी तो नहीं है, तब क्या वह बार-बार लक्ष्मिमान करता है ॥ ८१ ॥ भावन्त सुन्दरताये भरे चन्द्रमाके सामने कमल सङ्घा गप, यह उन्होंने शिखाका काम किया किन्तु उस कामिनाके जिस मुखने चन्द्रमाके दरा दिया है

उसके सामने भी चन्द्रमा निकलता है यह सचमुच बड़े साहसकी बात है ॥ ८२ ॥ जो लोग बड़े यमराजकी दृष्टिमें आ गए हों वे भले ही चन्द्रमाको अमृतका भण्डार कहें किन्तु वास्तवमें नवेलीका मुख ही धन्य है जिसके अधर-पानसे आनन्द मिलता है, चन्द्रमासे तो कुछ भी हाथ नहीं लगता ॥ ८३ ॥ पासरी चहारदीवारीपर आँसू जमाकर देखिए तो सही कि पृथ्वीपर यह बिना कलद्वपा कौनसा चन्द्रमा निकला हुआ है जो पकी हुई हरका रेवडीके समान ऐसी उजली चाँदनी फैला रहा है जिसकी और अमृत पीनेके लोभी इस उपवनके चकौर उड़े चले जा रहे हैं ॥ ८४ ॥ यदि कहें कि चन्द्रमा अमृतका समुद्र है तो यह हो नहीं सकता क्योंकि यदि उसमें अमृत होता तो जब यह क्षीण होता चलता है उस समय वह अपनेको अमर न बना लेता । इससे तो हम यहाँ परिणाम निकालते हैं कि धामत्वमें सुन्दरीका मुख ही सुधाका समुद्र है जिसरी एक मुखराहत भी सहृदयोंको या रसिकोंको कृतार्थ कर देती है ॥ ८५ ॥ हे सुन्दरी ! तुम्हारा मुख चन्द्रमा तो है किन्तु वह मनसे उत्पन्न कामदेवको खिलाता जा रहा है क्योंकि वह उसीका खिलाता है । इसके साथ जिसका मेल हुआ कि वह मृत्युका घाटेत बना ॥ ८६ ॥ हे सुन्दरी ! तुम्हारे इम एक मुखका देणकर बटे-बटे उत्पन्नाद् भी अपनेको कृतार्थ समझ लेते हैं किन्तु जो लोग दूसरोंसे आनन्द प्राप्त करनेके परमं पद रहते हैं वे पद्मासे प्याकुल होकर धूमते ही रह जाते हैं उनके मुख हाथ नहीं लगता ॥ ८७ ॥ जब देवता लोग चन्द्रमाका अमृत पीने

॥ ८७ ॥ सुमनोनिपीयमानो याति सुधांशुः शनैः शनै-
ह्रांसम् । सुमुखि मुखं ते भूयो मधुरिसमम्भारसम्भृतं
सततम् ॥ ८८ ॥ सुमुखि मनोजो मदनः सुधानिर्वापि
विश्रुतः परितः । इति तद्य वदनसुधानिधिरहति
मदनात्मना भवितुम् ॥ ८९ ॥ सुमुखि मुखं ते रुचिरं
स्वमिव न केनापि तुल्यमन्येन । इति यत्पश्यन्हसति
प्रवर्धमानोऽपि हन्त शशी ॥ ९० ॥ सुमुखि मुखं ते
शशिना तुलितं न च तेन तद्वरं मन्ये । रत्नस्य गुञ्जया
स्यान्नास्य तथा तोलनं दृष्टम् ॥ ९१ ॥ सुविरलमौकि-
कतारे धयलांशुकचन्द्रिकाचमत्कारे । वदनपरिपूर्व-
चन्द्रे सुन्दरि राकास्ति नात्र सन्देहः ॥ ९२ ॥ सुपमा-
धिपये परीक्षणे निरपिलं पद्ममभाजि तन्मुखात् । अधु-
नापि न भङ्गलक्षणं सलिलोन्मज्जनमुज्जकति स्फुटम्
॥ ९३ ॥ स्मयते यथा यथेदं सुमुखि मुखं ते तथा तथा

हन्त । सहृदयहृदये मदनो निदधाति शगन्त्यलान्नि-
शितान् ॥ ९४ ॥ श्मितज्योत्स्नागङ्गा तपनतनया श्याम-
लरुचिः सरस्वत्योऽग्रामाण्णकिरणसौन्दर्यजयिनी ।
इमास्तिलस्तीर्थाधिप इय मुने सभु मिलितास्तथेदं
सेयन्को न संभत इहानन्दलहरिम् ॥ ९५ ॥ स्मितसद-
शानि सुमानि त्यन्मुखसुधया सुपिच्यमाणानि । प्राण-
प्रिये मनोभव आदाय जगन्ति संहरति ॥ ९६ ॥

फण्डः—अदृष्टपूर्वः कण्डोऽयं कान्ताया भुवनप्रये ।
यस्माद्वीणानिनादम्य समुद्भूतिविभाज्यते ॥ १ ॥ अयं
त्रयाणां प्रामाणां विधानं मधुरध्वनि । रेवाप्रयमिती-
वास्याः सूत्रितं कण्डकन्दले ॥ २ ॥ असावृहेललायय-
रत्नाकरसमुद्भवः । जगद्विजयमाह्वययज्ञः कुसुमध-
न्वनः ॥ ३ ॥ अहं लोकैर्नितम्बिन्याः कण्डेन सदृशो मतः ।
इति स्वं हृतिनं मत्त्वा प्रणदन्त्यह्ण उच्यते ॥ ४ ॥ कण्डस्य

लगते हैं तब वह धीरे-धीरे क्षीण होता चलता है किन्तु हे सुन्दर
मुखवाली ! तुम्हारा मुख तो निरन्तर माधुर्यके भण्डारसे भरा
रहता है ॥ ८८ ॥ हे सुन्दरी ! चारों ओर मुना जा रहा है
कि मनसे उत्पन्न कामदेवने अमृत समात कर दिया है
इसीलिये मानो मदनका आत्मा उसके प्रायश्चित्तके लिये
तुम्हारे मुखरूपी अमृत-भण्डारके रूपमें अपनेको प्रकट
करना चाहता है ॥ ८९ ॥ हे सुन्दरी ! तुम्हारा मुख तुम्हारे मुखके
ही समान है, उसकी उपमा किसी दूसरेसे नहीं की जा सकती
क्योंकि पूर्णिमाका चन्द्रमा तो यही देव-देवकर तुलना जा
रहा है ॥ ९० ॥ हे सुन्दर मुखवाली ! यदि चन्द्रमासे तुम्हारे
मुखकी तुलना की जाय तो वह तुम्हारे मुखसे श्रेष्ठ थोड़े ही हो
सकता है क्योंकि यद्यपि रत्नोंको गुञ्जा (झुंघची या रत्नी) से
तौला तो जाता है पर वे रत्नके समान हो नहीं जातीं ॥ ९१ ॥ हे
सुन्दरी ! इसमें सन्देह नहीं कि तुम पूर्णिमाकी रात हो क्योंकि
तुम्हारे शरीरपर धँधी हुई मोतियोंकी मालाएँ ही स्वर्ण तारे हैं,
तुम्हारा उज्वल वस्त्र ही चाँदनीका प्रकाश है और तुम्हारा मुख
ही पूर्ण चन्द्रमा है ॥ ९२ ॥ जब सुन्दरताकी परीक्षा होने लगी
तब सारे कमल उस परीक्षामें नायिकाके मुखसे हार गए ।
ये कमल अब भी उस हारका लक्षण दिखाते हुए जलपर उतराना
नहीं छोड़ रहे हैं क्योंकि जब जलमें डूबनेकी होड़ लगती
है तब उसमें जो पहले बाहर निकल आता है वह हार जाता
है । अतः जलके ऊपर निकले हुए कमल मानो अपनी हार
मान रहे हैं ॥ ९३ ॥ हे सुन्दर मुखवाली ! जब-जब तुम्हारा वह

मुख मुस्करा देता है तब-तब रसिकोंके हृदयमें कामदेव बलपूर्वक
अपने पने बाण घेघता चलता है ॥ ९४ ॥ हे सुन्दर माँहवाली
नवेली ! तुम्हारा मुख इस समय प्रयागके समान वह पवित्र
तीर्थराज हो गया है जिसमें तुम्हारी मुनिकानरूपी चाँदनी हो
गङ्गा है, तुम्हारे (बालोंकी) साँवली चमक ही यमुना है और
सूर्यकी किरणोंकी चमकको हरानेवाली तुम्हारे ओटकी कान्ति
ही सरस्वती है, अतः इस मुनकी सेवा करनेवाला ऐसा कौन
है जो निरन्तर आनन्द न प्राप्त करता हो ॥ ९५ ॥ हे प्राण-
प्यारी ! तुम्हारे मुखके अमृतसे मलाई प्रकार सँघे हुए
सुसकानरूपी फूल लेकर ही कामदेव आज सम्पूर्ण संसारको
मारे डाल रहा है ॥ ९६ ॥

गाला : इस नवेलीका कण्ड तीनों लोकोंमें कुड़ ऐसा
अद्भुत है जिसमें निरन्तर वीणाकी गूँज निकलती ही रहती
है ॥ १ ॥ इसका मधुर गला तीनों ग्रामों (सप्तकों) का मानो
निवासस्थल है इसीलिये तो इसके गलेमें तीन तारोंके समान
तीन रत्नाएँ बनी हुई हैं ॥ २ ॥ इसका वह कण्ड ऐसा जान
पड़ता है मानो फूलोंका घनुष धारण करनेवाले कामदेवका वह
शङ्ख हो जो अत्यन्त यद्दी हुई सुन्दरताके समुद्रसे उत्पन्न हुआ
हो और जो संसारको जीतनेके लिये मङ्गल-सूचक शब्द करता
हो ॥ ३ ॥ शङ्ख इसीलिये बहुत ऊँचे स्वरसे चिल्लाता है कि
वह अपनेको इस बातसे उपयवान् मानता है कि लोग मुझे
उस कामिनीके कण्डके समान मानते हैं ॥ ४ ॥ स्तनोंकी
ऊँचाईके कारण कुड़ मुके हुए गलेमें जब गोल मोतियोंकी

तस्याः स्तनबन्धुरस्य मुक्ताकलापस्य च निस्तलस्य ।
 अन्योन्मशोभाजननाहभूव साधारणो भूषणभूष्यभावः
 ॥ ५ ॥ कण्ठस्य विदधे कान्तिं मुक्ताभरणता यथा ।
 नास्याः स्वभावरम्यस्य मुक्ताभरणता तथा ॥ ६ ॥
 फवित्वगानप्रियषादसत्यान्वस्य विधाता न्यविताधि-
 कण्ठम् । रेखात्रयन्यासमिपादमीपां वासाय सोऽयं
 विवभाज सीमाः ॥ ७ ॥ मनोजेन निजः फभ्युर्विजित्य
 भुवनत्रयम् । मन्ये कण्ठं नितम्बिन्याः सर्मापित इति प्रिये
 ॥ ८ ॥ मुक्तोत्करः सङ्कटशुकिमध्याङ्घ्रिनिर्गतः सारस-
 लोचनायाः । जानीमहेऽस्याः कमनीयफभ्युप्रीवाधिषा
 सागदुग्धवत्त्वमाप ॥ ९ ॥ श्रोत्रपीयूषगरद्गुपैः फाकली-
 कलगीतिभिः । कण्ठः कुण्डितचातुर्यं विपञ्चीपञ्चम-
 ध्वनेः ॥ १० ॥

बाहू—अजीयतावर्तशुभंयु नाभ्या दोभ्यां मृणालं
 किमु कोमलाभ्याम् । निःस्रग्नास्ते धनपद्मस्तु मूर्त्ता-

माला पहनाई जाती है तब वे दोनों एक दूसरेकी शोभा
 बढ़ाते हैं इसलिये दोनों एक दूसरेके भूषण भी थे और एक
 दूसरेसे भूषित या सज्जित भी थे ॥ ५ ॥ इसका गला
 स्वभावसे ही इतना सुन्दर है कि वह बिना भूषणके जिनना
 मनोहर लगता है उतना मोतियोंकी माला पहनकर नहीं
 ॥ ६ ॥ महान्ने इस नवेलीके गलेमें जब कविता, संगीत, मधुर
 वाणी तथा सत्य इन चारोंकी स्थापित कर दिया तब मानो इन
 चारोंके अलग-अलग करनेके लिये ही उसने तीन रेखाओंके बहानेसे
 सीमाएँ बना दी हैं ॥ ७ ॥ इस कामिनीके कण्ठको देखकर ऐसा
 प्रतीत होता है मानो कामदेवने तीनों लोक जीतकर अपना शङ्ख
 इसके कण्ठको सौंप दिया हो ॥ ८ ॥ मोतियोंका ढेर जब
 कटोर सीपियोंसे निकलकर इस कमलनयनी पदवलीके गलेमें
 पहुँचा तभी मानो वह गुण्यी (गुणवाला, डोरेके सहित) हो
 पाया ॥ ९ ॥ कानोंकी अश्रुतकी धाराके समान मधुर
 लगनेवाले कोमल पतले स्वरसे इसका गला जब अलाप लेता
 है तो उसके अग्रे वीणाके पञ्चम स्वरकी मधुरता भी नीरस
 जान पड़ने लगती है ॥ १० ॥

भुजापैः : इस गहरी तथा सुमवादार सुन्दर नाभिवाली
 नवेलीकी कोमल बाँहोंने क्या सचमुच कमलकी नालकी
 जीत लिया है कि वह लासके मारे घने कीचड़की मिट्टीकी
 शकीर्षिमें अशहाप होकर जा दूबा है ॥ १ ॥ इस नवेलीकी ये
 दोनों भुजाएँ कुछ ऐसे विचित्र प्रवारका जाल बन गई हैं कि

सुनाकीर्षिषु तन्निमग्नम् ॥ १ ॥ दयितायाहुपाशस्य
 कुतोऽयमपरो विधिः । जीवत्यर्पितः कण्ठे मारयत्य-
 पवर्जितः ॥ २ ॥ बाहू तस्याः कुचाभोगनिकृद्धान्यो-
 न्यदर्शनी । मन्त्रितं फधमेताभ्यां मृणालीकीर्षितिलुण्ठ-
 नम् ॥ ३ ॥ बाहू मियाया जयतां मृणालं द्रुद्धे जयो
 नाम न विस्मयोऽस्मिन् । उच्चैस्तु तच्चिद्रममुष्य
 भग्नास्यालोभयते निर्व्यथं यदन्तः ॥ ४ ॥ शब्दवद्भि-
 रलङ्कारैरुपेतमतिकोमलम् । सूत्रं फाव्यवद्रेजे तद्बाहु-
 लतिकाह्वयम् ॥ ५ ॥ सरले अपि दोलंखे चित्रञ्जल-
 चक्षुषः । अमुग्धाभ्यो मृणालीभ्यः फपमाजहदुः
 भ्रियम् ॥ ६ ॥

करी—अस्याः फरस्पर्शनगर्धनद्विर्वालत्वमापत्बलु
 पल्लवो यः । भूयोऽपि नामाधरसाम्यगर्थं कुर्वन्कथं
 वास्तु न स प्रवालः ॥ १ ॥ अस्यैव सर्गाय भवत्करस्य
 सरोजसृष्टिमं हस्तलेखः । इत्याह धाता हरिशेख-

जब वे किसीके गलेमें पड़ती हैं तो उसे जिला देती हैं और
 गलेसे हट जाती हैं तो उसके प्राण ले लेती हैं ॥ २ ॥ नवेलीके
 बड़े-बड़े ऊँचे स्तनोंके फैलावसे जो बाँहें आपसमें मिल-जुल-
 तक नहीं पातीं उन्हींके कमलकी नालका यश लूटनेके लिये
 मिलकर पडापन्न कैसे कर लिया ॥ ३ ॥ उस प्यारीकी दोनों
 बाँहोंने कमलनालको जीत लिया हो तो कोई आश्चर्यकी बात
 नहीं क्योंकि युद्धमें एक न एककी तो जीत होती ही है पर सबसे
 बड़ा आश्चर्य तो यह है कि उस बेचारे हारे हुए कमलनालके
 हृदयमें निर्व्यथन (दुःखका अभाव, द्वेद) हो गया है ॥ ४ ॥ इस
 नवेलीकी दोनों कोमल बाँहें काव्यके समान सुन्दर हैं क्योंकि
 जैसे काव्यमें शब्दालङ्कार भरे होते हैं, वैसे ही इसकी बाँहें भी
 शब्द करते हुए या बचते हुए गहनोंसे सजी हुई हैं, जैसे काव्यमें
 कोमल वर्ण होते हैं वैसे ही इसकी बाँहें भी कोमल वर्णवाली हैं,
 तथा जैसे काव्यमें सुन्दर छन्द (छन्द) होते हैं वैसे ही इसकी
 बाँहें भी सुन्दर गोल हैं ॥ ५ ॥ इस चञ्चल नेत्रोंवाली नवेलीकी
 सीपरी सुन्दर लम्बी बाँहें उस अमुग्ध (अचक्षुर, असुन्दर)
 कमलनालकी शोभा कैसे जीत पाई, यही बड़ा आश्चर्य है ॥ ६ ॥

हाथः : कौपलका यही बड़ा लक्ष्मण था कि वे इस
 नवेलीके हाथोंकी बराबरी करने चली थीं । और फिर जब वे
 शोडकी बराबरीका दम भरेंगी तब भला उन्हें कौन प्रवाल
 (मूँख, कौपल) नहीं कहेगा ॥ १ ॥ उस हरिणके नेत्रोंके
 समान आँखोंवाली नायिकाके हाथमें बनी हुई कमलकी रेखा

यायां किं हस्तलेखीकृतया तथा स्याम् ॥ २ ॥ कुसुमा-
युधकोदरादे हस्तौ विस्तीर्णचक्षुषः । अशोकपल्लवा-
खाणां प्रतिहस्तत्वमागतौ ॥ ३ ॥ नाहं धार्यमधीराक्षि
मुपेन्द्रोः सम्मुखं त्वया । इतीय लीलापद्मेन करोऽस्याः
कान्तिरर्पिता ॥ ४ ॥ मुग्धे प्रतारयसि किं कुसुमानि
हर्षमेतान्यशोकविटपस्य कुतूहलेन । अस्थैव तन्मि
नयपल्लवडम्बरेषु त्वं हारयिष्यसि नतु स्वयमेव पाणौ
॥ ५ ॥ स्पृष्टस्त्वयैव दयिते स्मरपूजाव्यापृतेन हस्तेन ।
उद्दिन्नापरमृदुतराकसलय इव लक्ष्यतेऽशोक ॥ ६ ॥
हस्तरत्ना—आयूरेणां चकारास्याः करे द्राघीयसां
विधिः । शौण्डिर्गवर्गनिर्वाहमत्याशां च मनोमुघः ॥ १ ॥
ध्वजाकारा रथाभासा गजभासा पविमास्वरा । पाण्डिरे
श्रेति कन्दर्पसर्वस्वं निश्चितं स्थितम् ॥ २ ॥
अङ्गुल्यः—रज्यन्नपस्याङ्गुलिपञ्चकस्य मिपादसां

हैङ्गुलपञ्चतये । हैमैकपुङ्गुस्ति विशुद्धपर्वा प्रियाकरे
पञ्चशरी स्मरस्य ॥ १ ॥ सुदीर्घा रागशालिन्यो बहुप-
र्वमनोहराः । तस्या विरेजुत्कृत्यः कामिनां सङ्घथा
इव ॥ २ ॥
स्तनी—अन्योन्यमुत्पीडयदुत्पलाद्याः स्तनद्वयं
पाण्ड तथा प्रवृद्धम् । मध्ये यथा श्याममुपस्य तस्य
मृशालिष्वान्तरमप्यलभ्यम् ॥ १ ॥ अपि तद्वपुषि प्रस-
र्पतेर्गमितः कान्तिकरेण्यगधताम् । स्मरयीचनयोः
पलु द्वयोः स्रवकुम्भौ भवतः कुचाभुभौ ॥ २ ॥ अल्पं
निमित्तमाकाशमनालोच्यैव वेधसा । इदमेवंविधं
भावि भवत्याः स्तनमण्डलम् ॥ ३ ॥ अविधेकि कुच-
द्वन्द्वं हन्तु नाम जगन्नयम् । श्रुतिप्रणयिनोररक्षोरयुक्तं
जनमारणम् ॥ ४ ॥ अस्थ्यप्रतिसमाधेयं स्तनद्वन्द्वस्य
दूषणम् । स्फुटतां कञ्चुकानां यन्नायात्यावरणीयताम्

मानो यही सिद्ध करती है कि प्रह्लाते यह सूचना देनेके
लिये हाथमें यह रेखा बना दी है कि मैंने तुम्हारा हाथ
बनानेमें पहले कमलकी रचना करके इन हाथोंका निर्माण
किया था ॥ २ ॥ उस बड़ी-बड़ी शीलवाली नायिकाके हाथ
पेने जान पड़ते हैं मानो कामदेवके धनुषपर अशोकके पत्ते
बाणोंके प्रतिनिधि बनाकर चढ़ा लिए गए हों ॥ ३ ॥ उस
नवेलीने अपने हाथमें खेलके लिये जो कमल ले रखा है
यह ऐसा लगता है मानो कमलने यह कहकर अपनी
मुन्दरता उस नवेलीके हाथमें रर दी हो कि 'हे चञ्चल
नेत्रवाली ! तूपाकर मुझे अपने गुणरूपी चन्द्रमाके सामने न
कर देना, मैं तुम्हारी शरण हूँ' ॥ ४ ॥ हे मोली ! अशोककी
शरणके फूल तोड़नेकी उमङ्गमें तुम क्यों घोरता चढ़ा कर
रही हो ? क्योंकि हे कामलाङ्गी ! अशोकके इन नये पर्णोंमें
तुम्हारे हाथ भी नहीं पहचान पड़ेंगे ॥ ५ ॥ वसन्तके दिन
कामदेवकी पूजाके समय तुमने जो अशोकको हाथ लगाया
तब ऐसा जान पड़ा मानो इसमेंसे अत्यन्त कामल बुद्ध नये
ही पत्ते निकल आए हों ॥ ६ ॥

हाथकी रेखा : प्रह्लाते इस नवेलीके हाथमें आयुकी
लम्बी रेखा बना दी कि कामदेवको यह आशा हो चली
कि मेरी वीरताके अभिमानकी अथ सुरक्षा हो जायगी ॥ १ ॥
इस नवेलीके हाथकी रेखाओंमें ध्वजा, रथ, हाथी, वज्र आदि
देव्यकर ऐसा जान पड़ता है कि प्रह्लाते कामदेवकी चढ़ाईकी
सब सामग्री लाकर इसमें इकट्ठी कर डाली है ॥ २ ॥

उँगलियाँ : इस प्रियाका हाथ ऐसा जान पड़ता है
मानो कमलको ईगुरले रँगकर ऐसा दूषीर बना लिया गया
हो जिसमें लाल-लाल नखोंवाली पंख उँगलियोंके रूपमें
कामदेवके मुनहरे पङ्कवाले और पैनी नोंकवाले पंख बाण
हों ॥ १ ॥ उस नवेलीकी उँगलियाँ कामियोंकी बातचीतके
समान लम्बी, प्रेमकी बातोंसे भरी तथा अनेक प्रसङ्गोंसे
युक्त हैं अर्थात् वे लम्बी हैं, लाल हैं और अनेक मुन्दर
पोरोंवाली हैं ॥ २ ॥

स्तन : उस कमलनयनी नवेलीके परस्पर रगड़ खानेवाले
तथा काली घुघड़ीवाले उन दोनों गारे-गारे स्तनोंके बीच
कमलकी नाकके पतले सूतोंके लिये भी स्थान नहीं बचा ॥ १ ॥
यद्यपि उस नवेलीके शरीरकी शोभाके जलकी गहराई अथाह
है किन्तु ये दोनों स्तन ऐसे प्रतीत होते हैं मानो काम और
शौचन दोनोंके हृदयेकी सुविधाके लिये दो घड़े वीर रहे हों ॥ २ ॥
हे नवेली ! ब्रह्माको यह ज्ञात नहीं था कि तुम्हारे स्तन फलते-
फलते इतने बड़े हो जायेंगे नहीं तो वे आकाश-मण्डलको बुद्ध
और फला देते ॥ ३ ॥ हे नवेली ! तुम्हारे ये दोनों अविधेकी
स्तन दोनों लोंकी हत्या भले ही कर दाले पर तुम्हारी
ये श्रुतिप्रणयी (वेदका अभ्यास करनेवाली, कानतक पीती
हुई) आँसों भी हत्या करना प्रारम्भ करें यह ठीक नहीं ॥ ४ ॥
इन दोनों स्तनोंका दोष (किसीसे सशर्) किने एक सङ्गना है
क्योंकि बोधोका बन्धन टूट जानेपर ये शक ही नहीं रहते धरातः
जो दोष रोके नहीं जाने उनका बाँध उपाय ही नहीं है ॥ ५ ॥

॥५॥ आभ्यां कुचाभ्यामिभकुम्भयोः श्रीरादीयतेऽस्तानयोः क्व ताभ्याम् । भयेन गोपायितमौक्तिकौ तौ प्रथक्कुम्भाभरणाविमौ यत् ॥ ६ ॥ उच्छ्वसन्मण्डलप्रान्तर-स्त्रमावदकुडमलम् । अपर्याप्तमुरो वृद्धे रसस्यस्याः स्तनद्वयम् ॥७॥ उद्धिन्नं किमिदं मनोभयनृपक्रीडारविन्दद्वयं स्तौ तत्कथमेकतः किल लसद्रोमावलीनालतः । चक्रद्वन्द्वमिदं ज्ञमं तदपि न स्थातुं मुखेन्दोः पुरो लावण्याम्बुनिमग्नयीचनगजस्याधैमि कुम्भद्वयम् ॥८॥ उद्धेदं प्रतिपद्य पक्ष्यदरीभावं समेत्य क्रमात्पुन्नागाकृत्तिमाव्य पूनपदवीमाराह्य विल्यधियम् । लब्ध्या तालफलोपमां च ललितामासाद्य भूयोऽधुना चञ्चकाञ्चनकुम्भजृम्भणमिभावस्याः स्तनौ विभ्रतः ॥ ९ ॥ पतत्कुचपधि-तया घटस्य स्यातस्य शाखेपु निदर्शनत्वम् । तस्माच्च

इस नवेलीके स्तनोंने हाथीके माथेकी शोभा तो ले ली है पर हाथीका माथा इनकी शोभा नहीं ले पा रहा है इसलिये हाथीके मस्तकमें खजाकर अपना मोती भीतर छिपा रक्खा है और इन स्तनोंने अपने मोतीके गहने बाहर खोलकर लटका रखे हैं ॥ ६ ॥ इस नवेलीके जिन स्तनोंके घेरेके चारों ओर रेखाएँ (झुर्रु) निकल आई हैं और जिनमें घुलदीरूपी कलियौं लग गई हैं वे मानी यह कह रहे हैं कि हमारे फैलनेके लिये उस नवेलीकी छाती पर्याप्त नहीं है ॥ ७ ॥ इस नवेलीके स्तन क्या कामदेवरूपी राजाके खेलनेके लिये खिले हुए कमल हैं ? नहीं, घुसा नहीं है क्योंकि ये तो शोभासे भरी रोमावलीरूपी बरदलले हृदकर निकले हुए हैं । तो क्या वे चक्रवाचकी हैं ? नहीं, ऐसा भी नहीं है क्योंकि चक्रवाचकी होते तो मुखरूपी चन्द्रमाके सामने तनिक भी न टहर पाते । तब तो यही जान पड़ता है कि ये सौन्दर्यके जलमें दूबे हुए जीवनरूपी हाथीके दो कुम्भ (मस्तक) ही हैं ॥ ८ ॥ इस नवेलीके जो स्तन पहले तनिकसे उभरकर पके बेरके समान हुए, फिर धीरे-धीरे नागकेरारकी कलीके समान फूलकर सुपारीके समान बढ़े हो गए, फिर पके हुए बेलकी शोभा पाकर ताड़के फलके बराबर हो गए, वे स्तन इस समय चमकते हुए सोनेके धड़के समान बढ़े-बढ़े हो गए हैं ॥ ९ ॥ इस नवेलीके स्तनोंकी बराबरी करनेके कारण ही घड़ा इतना प्रसिद्ध हो गया कि शास्त्रोंमें उसका उदाहरण दिया जाने लगा तथा गायत्री आदि पात्र बनानेवाले भी 'कुम्हार'के नामसे प्रसिद्ध हो गए ॥ १० ॥ हे सुन्दर चोंचोवाली ! ये स्तन किस सौभाग्यशालीके भागमें

शिल्पान्मणिकादिकानी प्रसिद्धनामाजनि कुम्भकारः ॥ १० ॥ कनकक्रमुकायितं पुरस्ताद्य पद्मेरुहकोरकायमाणम् । कमशः कलशायमानास्ते सुदृशो वक्षसि कस्य भागधेयम् ॥ ११ ॥ करतलयुगपरिणद्धे कुचकलशे कुकुमारणे तस्याः । सिन्दूरिते करिपतेः कुम्भे नक्षत्रमालेव ॥ १२ ॥ कराग्रजाग्रच्छ्रुतकौटिरथी ययोः रिमौ तौ तुलयेत्कुचौ चेत् । सर्वं तदा धीफलमुन्मदिष्णु जातं वटीमन्यधुना न लुब्धम् ॥ १३ ॥ कलशे निजहेतुदण्डजः किमु चक्रभ्रमिकारिता गुणः । स तदुच्चकुचौ भवन्प्रभाभ्रचक्रभ्रमिमातनोति यत् ॥ १४ ॥ काठिन्यमङ्गैरखिलैरिस्तं कुचौ युवत्याः शरणं जगाम । अधः पतिष्याद्य इतीव भीत्या न शक्नुतस्तावपि हातुमेतत् ॥ १५ ॥ कामिन्याः कुचयोः

पढ़नेवाले हैं जो तुम्हारी छातीपर पहले सुपारीके समान फिर कमलकी कलीके समान और अब धीरे-धीरे बढ़के समान बढ़ते जा रहे हैं ॥ ११ ॥ अपने दोनों स्तनोंपर हाथ रखकर खड़ी हुई नवेलीको देखकर कवि कहता है कि 'केशरसे रंगे हुए बाल स्तनोंपर उस नवेलीके दोनों हाथ और चमकीले नख ऐसे जान पड़ते हैं मानो हाथीके सिन्दूरसे रंगे हुए मस्तकपर तारोंकी माला टँगी हुई हो' ॥ १२ ॥ हाथमें पहना हुआ चमकीला हीरा भी जिससे (कठोरताकी) भीख माँग रहा है उन स्तनोंकी बराबरी करनेके लिये यदि बेलके फल मचलें तो उन्हें लोग पागल कहेंगे और कोई कौड़ीके मोल भी न पड़ेगा ॥ १३ ॥ जब कुम्हार घड़ा बनाता है तब वह दरडेसे चाक घुमाता है अतः बढ़का कारण हुआ वह डबडा, जिसमें कुम्हारका चाक घुमानेकी शक्ति है । नवेलीके स्तनोंको देखकर कवि प्रश्न करता है कि 'क्या यह घुमानेकी शक्ति दरडेसे बढ़ेमें भी आ गई है क्योंकि आज यही घड़ा इस नवेलीके ऊँचे ऊँचे स्तन बनकर अपनी सुन्दरताकी अधिकताके कारण देखनेवालोंको चकरमें डाल रहा है (या चक्रवाचकीका भ्रम उत्पन्न कर रहा है) ॥ १४ ॥ उस नवेलीके सब अङ्गोंने जब कठोरता छोड़ दी तब वह कठोरता उस नायिकाके स्तनोंकी शरणमें पहुँची और मानी स्तन उसे छोड़नेमें इस डरसे समर्थ नहीं हो रहे हैं कि वहाँ इसे छोड़ने (शरणागतता परिल्याग करने) के कारण मैं भी नीचे न लटक जाऊँ (नीच न कहलाऊँ) ॥ १५ ॥ इस नवेलीके स्तनोंकी जो शोभा मोटाईसे बढ़ गई है वह अब मेरे पर्वतकी चोटियोंको जीतनेकी तैयारी कर

कान्तिः पोनत्वेन पुरस्कृता । सुवर्णाचलशृङ्गामां विनि-
ज्जैतु समुद्यता ॥ १६ ॥ किं नर्मदाया मम सेयमस्या
द्वयाभितो वाहुलतामृणाली । कुचौ किमुत्तस्थतुरन्त-
रपि स्मरतेऽप्युत्तरवात्यवारः ॥ १७ ॥ कुचद्वये
चकोराक्षी चिम्बुकमान्तचुम्बिनि । मर्मोकिपु न
शक्नोति स्थातुं लज्जानतानना ॥ १८ ॥ कुचावस्थाः
कामद्विपकलमकुम्भायिति परे वदन्त्यन्ये वत्तःसरसि
कमले काञ्चनघटां । ममार्य सिद्धान्तः स्फुरति मद्नेन
त्रिजगतीं विनिर्जित्य न्युच्चजीकृतमिच निजं दुन्दुभि-
युगम् ॥ १९ ॥ कुम्भौ सदम्भौ करिणां कलशौ मन्द-
काश्लौ । चक्रवाकौ वराकौ च तद्वीयकुचयोः पुरः
॥ २० ॥ चञ्चत्काञ्चनशैलावस्था पत्नोरुहौ तन्व्याः । नो
चेत्तावधिरुद्धा कथमनिमित्पतां भजेत मे दृष्टिः ॥ २१ ॥
जम्बीरं वा कमलमुकुलं हेमशुच्छं यथेच्छं माङ्गल्यं

वा कलयतु जनो भूतेर्मन्मथस्य । पदद्वन्द्वं कलयति
मतिर्मा मकीना नवीना केनाऽयस्या हृदि विनिहितं मन्म-
थानन्दकन्दम् ॥ २२ ॥ जम्बीरश्रियमतिरङ्गव लीलयैव
व्यानप्रीकृतकमनीयहेमकुम्भौ । नीलाम्भोचहतयने-
ऽधुना कुचौ ते स्पधैते किल कनकाचलेन सार्धम्
॥ २३ ॥ तत्कुचौ चरतः किञ्चिन्नूनं मनसिजप्रतम् ।
नित्योन्मुखौ यदासाते मौलीरत्नस्य भास्वतः ॥ २४ ॥
तन्वङ्गथाः स्तनयुग्मेन सुखं न प्रकटौकृतम् । हाराय
गुणिने स्थानं न दक्षमिति लज्जया ॥ २५ ॥ तयोपक-
ण्ठस्थितवारहारस्फुरत्प्रभाशुशैवलिनीजलेषु । हानो
मनोजद्विप एव तस्य व्यक्तां नु गण्डां किमुरोज-
पिण्डौ ॥ २६ ॥ तस्यास्तुङ्गस्तनचङ्गाया चकास्ति त्रिव-
लीतटे । लीना तिमिरलेपेय वदनेन्दारगोचरे ॥ २७ ॥
तस्याः स्मितप्रणयिपूर्णमुखेन्दुविम्बान्निर्गच्छदच्छदश-

रही है ॥ १६ ॥ मुझे आनन्द देनेवाली इस प्यारीके दोनों थोर
लटकनेवाली बाँहें क्या कमलकी नाल हैं और इसके ये दोनों स्तन
ही क्या दो शीप हैं जो कामदेवकी तपनसे बालपनरूपी जलके
मूल जानेपर ऊपर उठ आए हैं ॥ १७ ॥ चकोरके समान चञ्चल
नेत्रोंवाली उस नायिकाकी सरियाँ जय उससे छेड़-झड़ करती
हैं तब वह लाजमे अपना मुँह नीचा करके दोनों स्तनोंकी ऊँचाईके
कारण उनमे अपनी टोड़ी टकरा जानेसे वहाँ नहीं टहर पा रही है
॥ १८ ॥ किसीका कहना है कि इसके स्तन ऐसे लगते हैं मानो
कामदेव-रूपी हथियार (हाथीके बचे) के मस्तक हो, कोई इन्हें
घातीरूपी तालके कमल चताते हैं तथा कोई इन्हें सोनेका
घड़ा कहते हैं; पर मेरा तो मत यह है कि ये कामदेवके दो
नगाड़े हैं जिन्हें उसने तीनों लोक जीत लेनेपर श्राधा करके
रग दिया है ॥ १९ ॥ उस नवेलीके स्तनोंके सामने हाथीके
मस्तक ढोंग जान पड़ते हैं, घड़ेकी रचना निरर्थक जान पड़ती
है और पक्षे-चक्रवीपर भी बड़ी दया आने लगती है ॥ २० ॥
सुमेरु पर्वतपर उस देवशाशोक वास है जिनकी पलकें कभी नहीं
गिरती, इन यातको प्यानमें रगड़र उसके स्तनोंको देकर
कवि कहता है—'इस कामलाक्षीकी घातीपर चमकते हुए
सोनेके पहाड़ (सुमेरु) के समान स्तनोंपर यदि हमारी दृष्टि
न पड़ती तो निमित्त (पलकेंके गिरने) से शून्य न होती
[अर्थात् हमारी दृष्टि निरन्तर उस नवेलीके बड़े-बड़े स्तनोंपर
ही गड़ी रहती है] ॥ २१ ॥ लोग भले ही इसके दोनों स्तनोंको
पन्ननी-अपनी भायनाके अनुसार, जैमिरी नीच, कमलकी

कली, सोनेका गुच्छा या कामदेवरूपी राजाकी महल वस्तुएँ
समर्थ पर मेरी निराली बुद्धिमें तो ये ऐसे जान पड़ते हैं कि किसीने
इसकी घातीपर कामदेवका रसभरा कन्द रल दिया है ॥ २२ ॥
हे नीले कमलके समान शरणावाली नवेली ! तुम्हारे स्तनों
पहले तो विना परिश्रमके ही जैमिरी नीचकी शोभा फीकी
कर दी फिर उसने सुन्दर सोनेके घड़ेको नीचा ड़िपाया और
अब वे सोनेके पहाड़ (सुमेरु) की बराबरी करनेपर मचले
हैं ॥ २३ ॥ उसके स्तन निरचय ही कोई कामदेवका व्रत कर
रहे हैं इसीलिये तो वे उस नवेलीके मस्तकपर सुशोभित
रत्नरूपी सुथंकी और अपने मुख ऊँचा किए हुए डटे हैं
॥ २४ ॥ इस कामलाक्षीके दोनों स्तन मानां इस लाजसे
अपना मुँह नहीं खोलते (अर्थात् बचे रहते हैं) कि हमने
गुर्था (गुणवान्, डारेवाले) हारका अपने ऊपर नहीं टहरने
दिया ॥ २५ ॥ हे नवेली ! तुम्हारे दोनों स्तन ऐसे जान पड़ते
हैं मानो तुम्हारे गलेमें पड़े हुए चमकीले हारकी चमकरूपी
बावजूके जलम ड़ुबकी लगानेवाले कामदेवरूपी हाथीके
मस्तक हों ॥ २६ ॥ उस नवेलीके पैदकी रेखाशोपर जा उसके
ऊँचे-ऊँचे स्तनोंकी परछाईं पड़ रही है वह ऐसी जान पड़ती
है माना मुखरूपा चन्द्रमाके बरसे भागकर अन्धकारकी राशि क्षिपी
थी ही ॥ २७ ॥ उस नवेलीके मन्द मुखानसे भरे मुखचन्द्रके
विषये निकलते हुए उजले दाँतोंकी चमकका अमृत रखनेके
लिये मानां ब्रह्माने लोभसे इन दोनों स्तनोंके रूपमें
सोनेके घड़े सजाकर रख दिए हों ॥ २८ ॥ इस नवेलीके

नांशुसुधां निधातुम् । पीनस्तनद्वयमिपात्तपनीयकुम्भौ
लोभाद्धः प्रगुणितोविष पञ्चजेन ॥ २८ ॥ तालं प्रभु
स्यादनुकुर्त्तमेताद्युत्थानसुस्थौ पतितं न तावत् । परं
च नाश्रित्य तदं महान्तं कुचो कृशाङ्गव्याः स्वत पय
तुङ्गौ ॥ २९ ॥ दिवानिशं धारिणि करठदभ्रे दिवाकरा-
राधनमाचरन्ती । घञ्जोजतास्यै किमु पदमलाद्यास्त-
पञ्चरत्यम्बुजपङ्क्तिरेषा ॥ ३० ॥ भूतघनकचिरद्युतिना
विलसद्भारेण भग्दलाग्रेण । दलयति कं नामिसुख
वाला कुचमग्दलाग्रेण ॥ ३१ ॥ नयननीरजं किं
भवता कृतं मुखशशी यदयं रिपुराश्रितः । इति घञो
चितरीतुमिवोन्मुखं घरतनोः स्तनचक्रयुगं यमौ ॥ ३२ ॥
नार्थं शशी तत्प्रतिरूपमन्यद्यस्मान् विश्लेषयति द्रयं
नौ । इति स्म तर्कादिव पश्यतस्तौ तस्या मुपेन्दुं कुच-
चक्रयाको ॥ ३३ ॥ निःशङ्कसङ्कोचितपङ्क्तौऽयमस्त्वामु-
दीतो मुखमिन्दुविम्बः । चित्रं तथापि स्तनकोकयुग्मं न

स्तोकमन्यञ्चति धिप्रयोगम् ॥ ३४ ॥ निखिलैर्निरस्तमङ्ग-
रङ्गीकृत्यापि भाधिपरिमर्दम् । शरणागतमिव रत्नति
वाठिन्यं कुचयुगं तन्व्याः ॥ ३५ ॥ पङ्क्तौऽन्यत्त्वपरिवाद-
भयान्मुमाद्या जातं सरोजयुगलं कुचवेपथारि । शक्यं
न धातुविहितं परिहर्त्तुमस्य भूयोऽपि येन घनचन्दन-
पङ्क्तयोगः ॥ ३६ ॥ पटविघटितमपि कुचतटमकपटम-
नसः कुरङ्गनयनायाः । मणिभयमयूषपटलीपटलीनतया
न सम्यगालोचि ॥ ३७ ॥ पयोधरघनीभावस्तावदभ्यर
मध्यगः । आश्लेषोपगमस्तत्र यावन्नैव प्रयसति ॥ ३८ ॥
पीनोन्नतत्वे न परत्र दृष्टे अस्मादृशे इत्यभिमानयोगः ।
कान्ताकुचौ नो भयतोः सुयुक्तो सुदुर्लभौ दन्तिघटौ न
यस्मात् ॥ ३९ ॥ पुण्येयोरभिपेकहेमकलशो हारप्रभाया
हिनीचक्राहो मदनोन्मदद्विपपतेः कुम्भौ रतेः
कन्दुको । कन्दो बाहुमृणालिकायुगलयोर्लोलालतास-
त्फलै नव्यो रत्नसमुद्रको यद्वति सा लावण्यपूर्णास्तनौ

इन दोनों उठे हुए तथा सुन्दर स्तनोंकी समता ताडका
फल तभीतक कर सकता है जबतक वह नीचे नहीं गिरता
बसोंकि वह ऊँचे पेड़के सहारे रहकर ऊँचा रहता है किन्तु इस
कोमलाङ्गीके स्तन तो बिना किसीके आचारके ही ऊँचे बने
हुए हैं ॥ २९ ॥ रातदिन गलेतक पानीमें खड़े रहकर सूर्यकी
उपासना करनेवाली यह कमलोंकी पंक्ति क्या उस सुन्दर
बरीनियोंकी आँखोंवाली नायिकाके स्तन बननेके लिये तपस्या
कर रही है ॥ ३० ॥ वनी सुन्दर कान्ति धारण किए हुए तथा
हासे शोभित इन स्तनोंके लुकीले धरेके द्वारा यह युवती
किसका मन वहीं हरती ॥ ३१ ॥ जान पड़ता है नेत्रोंसे यही
कहनेके लिये इस सुन्दरी नायिकाके चकवके समान दोनों
स्तन ऊपर मुँह उठाए हुए बड़े सुन्दर प्रतीत हो रहे
हैं कि 'हे नेत्ररूपी कमल ! तुमने यह क्या किया कि
घनने शत्रु मुख-कमलका आधय ले लिया !' ॥ ३२ ॥
'इस नवेलीका मुख वास्तव में चन्द्रमा नहीं है, यह तो उसका
दूसरा प्रतिरूप है तभी तो यह इन दोनोंमें वियोग नहीं
करता !' यही तर्क करते हुए ही मानो स्तनरूपी चकवा-
चकवी उस कामिनीके मुखचन्द्रकी ओर देख रहे हैं ॥ ३३ ॥
यह बड़े आश्चर्य की बात है कि इस नवेलीमें कमलोंको सङ्कुचित
करनेवाले चन्द्रमाके निर्भय होकर उदय हो जानेपर भी दोनों
स्तनरूपी चकवी-चकवा अभीतक एक दूसरेसे अलग नहीं हो
रहे हैं ॥ ३४ ॥ इस नवेलीके स्तन यह जानते हैं हम आगे मसजे

जानेवाले हैं फिर भी वे शरीरके अन्य अङ्गोंसे निकल बाहर
की हुई कठोरताको शरणागतके समान पाले जा रहे हैं ॥ ३५ ॥
इस नवेलीकी छातीपर बैठे हुए दोनों स्तन ऐसे प्रतीत होते हैं
मानो दो कमलोंने इसलिये स्तनका रूप धारण किया हो कि
अब हमें कोई यह दोष न लगावे कि हम कीचड़से उत्पन्न
हुए हैं । पर इतना होनेपर भी ब्रह्माका बनाया हुआ दोष ये
दूर नहीं कर सके बसोंकि इनपर घने चन्दनका चोवा (कीचड़)
फिर भी पोता ही जाता है ॥ ३६ ॥ निश्छल मनवाली और
हरिखी आँखोंके समान नेत्रोंवाली नायिकाके स्तन यद्यपि
कपड़ेसे ढके नहीं थे फिर भी उनके चारों ओर लटकी हुई
चमकीली मणियोंकी किरणोंका ही ऐसा वज्र उनपर छा
गया कि वे भली-भाँति देखे नहीं जा सके ॥ ३७ ॥
जैसे आकाशमें तभीतक अधिक बादल रहते हैं जबतक
आश्लेषा नचक्रका योग नहीं आ जाता, इसी प्रकार
स्तनकी कठोरता भी तभीतक वज्रोंमें छिपी रहती है जबतक
आश्लेष (प्यालिङ्गन) नहीं होता ॥ ३८ ॥ हे नवेलीके स्तनो !
तुम्हारा यह अभिमान मुझे तनिक नहीं आँचता कि 'हमारे
समान ऊँचे और मोटे संसारमें कोई हैं ही नहीं' बसोंकि
हाथियोंके मस्तक अभी संसारसे उठ नहीं गए हैं ॥ ३९ ॥ उस
नायिकाके सौन्दर्यसे भरे हुए दोनों स्तन ऐसे प्रतीत हो
रहे हैं मानो कामदेवके स्तानके लिये सोनेके दो घड़े रख दिए
गए हों । हासे धिरे हुए ये ऐसे लगते हैं मानो किसी नदीके

॥ ४० ॥ प्रतिपद्ये यदि वक्षोरुहपरिणहः कुरङ्गनय-
नायाः । आकाशवासतपसः श्रीफल विफलस्तवायासः
॥४१॥ प्रायश्चित्तं न गृह्णीतस्तन्वङ्गयाः पतितौ स्तनौ ।
अत एव तयोः स्पर्शं लोकोऽयं शिथिलादरः ॥ ४२ ॥
वदरामलकाम्रदाडिमानामपहन्व श्रियमुन्नतौ क्रमेण ।
अधूना हरणे कुचौ यत्ते दयिते ते करिशाचकुम्भल-
क्ष्म्याः ॥ ४३ ॥ भाति निधियरे तस्याश्चित्रं कुचयुगा-
न्तरे । श्रीङ्गाकुण्डलितोच्चण्डकोदण्डः कुसुमायुधः
॥ ४४ ॥ मध्यं तन्कुच्य यदीदमीयं घेघान न दध्यात्कम-
नीयमंशम् । केन स्तनौ सम्प्रति यौवनेऽस्याः रुजेदन-
न्यप्रतिमाङ्गयष्टेः ॥ ४५ ॥ मध्येन तनुमध्या मे मध्यं
जितवतीत्ययम् । इमकुम्भां भिनत्यस्याः कचकुम्भ-
निर्मा हरिः ॥ ४६ ॥ मध्येऽयं वलिस्रम दृष्टिरधिकं
पृथ्वी स्रुप्यालयो वाहुस्तत्कमलेनणा त्रिजगतीमेकैव

संरक्षति । इत्येवं स्तनयोर्मिषेण कनकक्षोणीभृता
संभृतौ यस्यामात्मशिखोरकौ पविमयव्यम्रेण जम्भ-
द्विपः ॥४७॥ मुगेन्दुचन्द्रिकापरसाव्यमानौ पुनः पुनः ।
शीतमीताविधान्योऽन्यं तस्याः पीडयतः स्तनौ ॥४८॥
मुद्गङ्गि कठिनौ तन्वि पीनौ सुमुखि दुर्मुखौ । अत एव
वहिर्याती हृदयाचे पयोधरौ ॥ ४९ ॥ यन्न माति तद्-
ङ्गेपु लाचण्यमतिसम्भृतम् । पिण्डौकृतपुरोदेशे तत्प-
योधरतां गतम् ॥ ५० ॥ यूनौ मोहमहाफलप्रसविनीं
नाभ्यालवालोत्थितां सेकुं रोमलतां सुप्तामृतनिवेर्ला-
वय्यनामाभृतम् । नेष्यन्सारणिकां विभज्य कृतवान्कु-
ट्टहयं पार्श्वयोः पञ्चेपुस्तदिदं पयोधरयुगं लोकाः
समाचक्षते ॥ ५१ ॥ रत्यासप्रियलान्धने कठिनतावासे
रसालिक्षिते प्रह्लादैकरसे क्रमादुपचिते भूभृद्गुरुत्वा-
पहे । कोकस्पर्धिनि भोगभाजि जनितानङ्गे खलीनो-

यीचमं दो चक्रे हों या कामरूपी मतवाले हाथीके मस्तक हों
या कामदेवकी स्त्रीके गेद हों या वहिरूपी कमलनालके कन्द हों
या श्रीङ्गा-लताके सुन्दर फल हों या रत्नकी दो निराली पिटा-
रिनी हों ॥४०॥ हे बेलके फल ! यदि इस मृगनयनीके स्तनोंके
फैलावकी ही तुम्हें जलन हो तो भैया, उससे बदला चुकानेके लिये
तुम्हारा आकारामें लटककर तपस्या करना व्यर्थ है ॥४१॥ उस
कोमलाक्षीके पतित (नीच और लटके हुए) स्तन प्रायश्चित्त
नहीं करते (पाप दूर करनेका उपाय नहीं करते या प्रायः
मन नहीं करते) इसीलिये पतित होनेके कारण लोग उन्हें
नहीं धूना चाहते ॥ ४२ ॥ हे प्यारी ! तुम्हारे ये दोनों स्तन
घंरि-घंरि बेर, आँबला, आम और अनारकी शोभा लटक
हवने मोटे हुए हैं । अब तो ये हाथीके बच्चेके मस्तककी शोभा
धीननेके लिये मचले जा रहे हैं ॥ ४३ ॥ परस्पर सटे हुए
उसके दोनों स्तनोंका घेरा ऐसा सुन्दर जान पड़ता है मानो खेल
ही खेलमें अपने विशाल धनुषको र्वाँचकर गोल करके साङ्गत्
कामदेव उभरमें बैठा हो ॥४४॥ यदि महा इसकी कमर छोटकर
उसका सुन्दर भाग अपने पास न रच छोड़ना तो इस
अनुपम भद्रिवाली नायिकाके यौवनके समय इसके स्तन किस
बन्दुमे बनाना ॥ ४५ ॥ 'इस पतली कमरवाली नवेलीने
अपनी पतली कमरसे मेरी कमरको हरा दिया' यह समझकर
नायिकापर कोई वर न चलनेसे सिंह उस नायिकाके पद जैसे
पदे स्तनोंके समान हाथीके मन्थककी ही फाड़ डालता है
॥ ४६ ॥ यह कमलनयनी नवेली अकेली ही त्रैलोक्यकी रचा

कर रही है क्योंकि इसका मध्यभाग (उदर) बलि (राजा बलि,
पेड़की रेखाओं) का स्थान (पाताल) है, और ही अत्यन्त
गम्भीर मूलोक है, वहाँ ही वेणुलियां (देवताओं) का आधार
अर्थात् स्वर्ग है । इर्माणिये इन्द्रके वज्रसे घरावर सुन्दर
पर्वतने इन स्तनोंके रूपमें मानो अपने दो बच्चे रचाके लिये
इस नवेलीके पास रत्न छोड़े है ॥ ४७ ॥ इस नवेलीके दोनों
स्तन एक दूसरेसे मानो इसलिये चिपके हुए हैं कि बार-बार
सुखरूपी चन्द्रमाकी चाँदनीकी धारामें छुडकी खानेसे कहीं अधिक
शीत न लग जाय ॥ ४८ ॥ हे नवेली ! ये तुम्हारे स्तन
इसलिये हृदयसे पाहर निकल आए हैं कि इनके स्वभावसे
तुम्हारा स्वभाव नहीं मिलता क्योंकि तुम कोमल अङ्गवाली
हो, ये कठोर हैं; तुम पतली हो, ये मोटे हैं; तुम्हारा मुँह
गोरा है और इनका काला है ॥ ४९ ॥ जब सुन्दरता हवनी
अधिक इच्छी हो गई कि इसके शरीरमें न समा सकी तब
वही गोल निपट्टी बनकर छातीपर स्तन बन गई है ॥५०॥ नामि
रूपी थालेमे उठकर युवकोंके मोहरूपी विशाल फलको दल्प
करनेवाली रोमावली रूपी लताकी सींचनेके लिये कामदेवने
सुखरूपी चन्द्रमासे सुन्दरता-रूपी अमृतको क्षयारीतक ले
जानेके लिये उस नालीके दोनों ओर ऊँची मेड़ बना दी है,
उसी ऊँची मेड़को लोग पयोधर (जल धारण करनेवाला,
स्तन) कह रहे हैं ॥ ५१ ॥ हे नवेली ! सम्भोगके समय पतिके
नर तथा अहरागके चिह्न धारण करनेवाले तुम्हारे स्तनमें
विपणुके दूगों अवतार दिखाई पड़ते हैं । ये मानो रतिके परम-

न्मुये भाति श्रीरमणावतारदशकं चाले भवत्याः स्तने
॥ १२ ॥ शङ्के तच्चित्तमङ्गेशसाध्यं कसुमधन्वनः ।
फात्रिण्यं वह्नित्वास्याः स्तनाभ्यां येन धारितम् ॥१३॥
शुक्रोच्चञ्चत्वात्तच्छ्रुति फलयुगं यौवनतरोरयःशङ्कुचुरणं
मदनकरणैः कुम्भयुगलम् । समुद्रं भोगायामृतकलश-
युगमं सुकृतिनः कुचद्वन्द्वं तन्व्या नवनसपदाङ्गं विज-
यते ॥ १४ ॥ सतां समालोकयतां विवेकान्दर्वीपि
एत्या स्मरथाणवह्नौ । धत्ते स्तनः श्यामशितोमिषेण
तनूदरि श्यायुषभस्मयिन्दुम् ॥ १५ ॥ सा धारयत्यधी-
राक्षी दुर्धहं स्तनमण्डलम् । गर्वपर्वतमारूढविचित्रं कसु-
मफामुकः ॥१६॥ सा स्तनाञ्जलियन्धेन मन्मथं प्रथमा-
गतम् । फतोतीचोन्मुगं चाला चान्धयं यौवनधियः

॥ १७ ॥ स्तनरात्रौ तथान्योऽन्यं मण्डलाक्रमणोद्यतौ ।
कर्तुं यथैतयोस्सन्धिधिधात्राऽपि न शन्यते ॥ १८ ॥
स्वकीयं हृदयं मित्त्वा निर्गतो यौ पयोधरौ । हृदयस्या-
न्यदीयस्य भेदने का कृपा तयोः ॥१९॥ स्वयम्भूः शम्भु-
रम्भोजलोचने त्वत्पयोधरः । नखेन कस्य धन्यस्य
चन्द्रचूडो भविष्यति ॥ २० ॥

नाभिः—उरोजवचक्रमनोहरूपा केशावलीव भ्रमरा-
जिता वा । सङ्गीतवत्सत्पुटभेदहृद्या विद्येत नाभीसरसी
मृगाद्याः ॥ १ ॥ कुचकुम्भी समालम्ब्य तरन्ती
कान्तिनिम्नगाम् । भ्रमादितस्ततो दृष्ट्वा दृष्टिर्नाभौ
निमज्जति ॥२॥ नाभं हारस्य मध्ये तरलमरकतो नाभि-
देशे कृशाङ्गयाः नैपाऽन्यत्र त्रियामारमण्युचिरुचिः

प्रिय पति वामके चाह्न मत्स्य है, ये कठोरताके आधार होनेसे
(कस्युप) है, इनके अनुरागसे आलिङ्गन होता है अथवा ये
पृथीसे आलिङ्गित (वराह) है, ये अल्पन्त आनन्दमद है अथवा
हृसमें मद्राद्रका अयन्त धनुसराग है अथान् ये नृसिंह है, ये क्रमसे
बढ़े हुए है अथान् वामन है, ये पहाड़की विशालताओं नीचा
दिशानेवाले तथा राजाओंका गौरव मिटानेवाले परशुराम हैं, ये
पत्रयारुपर्णके समान गोल हैं अथवा सीताके विचोगमें चत्रवाकको
शाप देनेवाले राम हैं, ये सुव्य भोगनेवाले अथवा फणोंवाले शेष
हैं, ये देवनेवालोंके मनमें कामविकार उत्पन्न करते हैं अथवा
शरीरके विरोधी मीनमत तपस्या आदि स्वीकार करनेवाले
पुत्र हैं तथा हनवर इन्द्रियोंके वशीभूत होनेवाले लोग आसक-
रते हैं अथवा ये पोंदेकी रास पकड़े हुए बल्कि हैं ॥१२॥
सै सामझना हैं कि कामदेव उस नवेलीके मनको सरलतासे
परामें कर सरता है क्योंकि उसके चित्तकी कठोरता कामदेवने
हमके मननोंके रूपमें बाहर ही रोक दी है ॥ २३ ॥ नरके
नये चिह्ने युक्त ये दोनों स्तन ऐसे जान पड़ते हैं मानो
यौवनरूपी पुत्रके ऐसे दो फल हों जिनपर सुगंधी ठौरकी
पत्तोंप गोमा दे रही हो या खोंदेके प्रदुग्धसे पिड़े हुए कामदेव
रूपी हाथीसे दो मन्त्रक हों या पुण्यामाओंके लिये भांगके
मागररूपी दो घमूकके घड़े हों ॥ २४ ॥ हे पत्नीक कमरवाली !
पुत्र देमनेवाले सज्जनोंके विचाररूपी इत्रिकों कामदेवके वाय-
की भागिमें इतन करके तुम्हारे ये मन कान्ते मन्त्रक
(पुच्छी) के रूपमें मानो श्यायुष भग्न (बच्चेके घन्तमें
सगाप जानेवाली भग्न) की विन्दी फारप कर रहे है ॥२५॥
पह बढ़े आभयकी बात है कि उस अज्ञान नेत्रवाली नायिकाको

भारी बोझीले विशाल स्तन धारण किए देपकर ही कामदेव
अहङ्काररूपी पर्वतपर चढ़ गया ॥ २६ ॥ वह भौली नवेली
अपने यौवनकी मोभाके पहले-पहल आप हुए सन्धयी
कामदेवको मानो स्तनरूपी अञ्जलि बाँधकर अपनी ओर
आकृष्ट कर रही हो ॥ २७ ॥ ये दोनों स्तन-रूपी राजा परस्पर
एक दूसरेके मण्डल (घेरे) पर इस प्रकार आक्रमण करनेके
लिये लीयार हो गए है कि मद्रा भी अब इनमें सन्धि नहीं
करा सकता (अर्थात् ये दोनों स्तन हूतने बढ़े हो गये हैं कि
इनके बीचकी सीमाका भी पता नहीं चलता) ॥ २८ ॥ जो
स्तन स्वयं अथवा हृदय फोड़कर बाहर निकल आ सकते हैं
उन्हें दूसरेका हृदय फोड़नेमें क्या सङ्कोच है ॥ २९ ॥ हे
कमलनयनी ! तुम्हारे स्तन स्वयम्भू (अपने आप उपर
होनेवाला मद्रा) और स्वभू (स्वयं उत्पन्न होनेवाला विष्णु)
तो हैं पर यह नहीं ज्ञात होता कि किस पुण्यामाके नस
लगनेपर यह मरतकर बालचन्द्रको धारण करनेवाले शङ्क
बन पावेंगे ॥ ३० ॥

नाभिः—इस मृगानयनी नायिकाकी नाभि ऐसी झील है
जिसमें स्तनरूपी चक्रे शोभित है, बुँधराके केशरूपी भारे हैं
और उसके गीत ही सत्पर शब्द बरनेवाली पानीकी लहरियाँ
हैं ॥ १ ॥ उसकी नाभिको देपकर ऐसा प्रतीत होता है कि
दृशकको रटि स्तनरूपी घड़ेके सहारे सुन्दरता-रूपी नदीमें
ढरती हुई, अन्तर नानी हुई, इतर-उपर देपती हुई नाभि-रूपी
अँवरमें दूबी जा रही हो ॥ २ ॥ उस कामलादीकी नाभिर
न सो यह मरुतका हाट है न चन्द्रमाकी पवित्र कान्तिके
समान मोतियाँकी माला है वरन् ऐसा जान पड़ता है मानो

पद्धतिर्माँकिकानाम् । नाभीलावण्ययाप्यामयमसमश-
रस्यञ्जकोपाग्निदग्धो मग्नस्तस्यापि क्कृष्णापतनसमु-
दिता शीकरश्रेणिरया ॥ ३ ॥ मन्ये समाप्तलावण्यसारे
सर्गे मृगीदृशः । अपूरयित्वेव गतो नाभिरन्ध्रं चतुर्मुखः
॥ ४ ॥ स्तनौ तुङ्गो समाकृते चापन्यस्तभरे स्मरे ।
कोदण्डाटनिमुद्रेव जाता नामो नतभ्रुवः ॥ ५ ॥

मध्यदेश — अंगुकेन जघनं तिरोदधे कञ्चुकेन च कुक्षौ
मृगीदृशाम् । पीयमानमनिशं प्रियेक्षणेः क्षामतामिच
जगाम मध्यमम् ॥ १ ॥ अस्मिन्प्रकृतिमनोजे लग्ना
प्रायेण मान्मथी दृष्टिः । सुन्दरि यतो भयल्याः प्रति-
क्षणं क्षीयते मध्यः ॥ २ ॥ आक्रान्ते शैशवेऽस्मिन्नभिन-
ययसा शासनान्मीनकेतोर्वालाया नेत्रयुग्मं श्रुतियुग-
मविशङ्क्युगेनापि सार्यम् । वक्षोजङ्घमुच्चैर्धिरिह
निरगाच्छ्रोणिष्विभ्येन साकं मध्यः सङ्गृह्य यदस्त्रियलि-
मिरमितः कार्श्यमङ्गीकरोति ॥ ३ ॥ काञ्चीगुणैर्विर-

चिता जघनेषु लक्ष्मीर्लक्ष्या स्थितिः स्तनतटेषु च रत्न-
हारैः । नो भूयिता वयमितीय नितम्बिनीनां कार्श्यं
निरगलमचार्यत मध्यभागैः ॥ ४ ॥ तुङ्गामोगे स्तनगि-
रियुगे प्रौढविभ्ये नितम्बे सीमादेशंहरति नृपतः यांयने
जुम्भमाणे । मध्यो भीरुः क्वचिदपि यथा पद्मपत्रेज-
णयाः शून्यं मध्यस्थलमिति ततः कियदन्तां वदन्ति
॥ ५ ॥ देहं हेमद्युतिपरिहृतात्मो जट्टपृष्टिं च दृष्टिं राशो-
भूतभ्रमरपटलीचारुचेशं च केशम् । दृष्ट्वा सद्यो विपुल-
हृदयानन्दमृद्वेन घ्रात्रा सारङ्गादयाः किमु रचयितुं
विस्मृतो मध्यदेशः । ६ ॥ वज्रा ह्रियोमा त्रियली
गुणेन गृह्णाति रोमायलिनेत्रयङ्गाम् । इनीय चिन्ताकु-
लमङ्कुरोऽयं मध्यो मृगादयाः कृशतामुपैति ॥ ७ ॥ मध्यं
तव सरोजाक्षि पयोधरभरार्दितम् । अस्ति नास्तीति
सन्देहः कस्य चित्ते न भास्ते ॥ ८ ॥ युक्तं मध्ये शृङ्गा
तन्यां कार्मुकीकरणाय यत् । अत्रैव कुसुमाख्येण पीड्यते

शङ्करजीके श्लोचसे विषम बाणवाले कामदेवके जलनेपर नामि
रुपी सुन्दरताकी बावड़ीमें उसके कूदनेपर उड़ी हुई बूँदोंकी
पंक्ति हो ॥ ३ ॥ इस नवेली भृगनयनी नायिकाकी गहरी नाभिको
देखकर ऐसा जान पड़ता है मानो इसे बनाते-बनाते सुन्दरताका
सब सार समाप्त हो जानेके कारण ब्रह्माने नाभिका विद्र
विना भरे ही छोड़ दिया ॥ ४ ॥ उस सुकी हुई भाँहोंवाली
नवेलीकी नाभिका गढ़ा ऐसा जान पड़ता है मानो जब कामदेव
अपने घनुषका सहारा लेकर उसके ऊँचे स्तनोंपर उड़लकर
बढ़ा तो उसकी कोरका धल पड़नेसे गढ़ा बन गया ॥ ५ ॥

कमर : उस नवेलीकी नाभिके पास कमरपर ही प्रियकी
दृष्टि पड़ती है और वह अपने नेत्रोंसे कमरको ही पीता रहता
है इसलिये वही भाग पतला पड़ गया है और जॉर्ज तथा
दोनों स्तन इसलिये मोटे रह गए कि कपड़ेसे ढके रहनेके
कारण उनपर प्रियकी दृष्टि नहीं पड़ पाई ॥ ३ ॥ हे सुन्दरी ! जान
पड़ता है कि स्वभावसे ही सुन्दर तुम्हारी कमरपर कामदेवकी

इतनी दुबली हो गई है कि 'नितम्बोंपर तो करघनी लटकी हुई है
और स्तनोंपर रत्नके हार हैं पर हमारी सजावटके लिये कुछ भी
नहीं है' ॥ ४ ॥ ऐसा कहा जाता है कि यौवन रूपी उत्साही
राजाने अत्यन्त बड़े-बड़े स्तनरुपी दोनों पहाड़ों तथा फले हुए
दोनों बड़े-बड़े नितम्बोंकी सीमाको जब छपना लिया तब उस
कमलकी पहुँचोड़ी-सी भाँखवाली नायिकाकी कमर दरकर कहीं
भाग खड़ी हुई, इसीलिये उसका मध्यभाग सूना पड़ गया
॥ ५ ॥ ब्रह्माज्ञी उस भृगनयनी नायिकाको बनाते समय
उसका सुनहली कान्तिचाला शरीर, नीले कमलोंको हरा देनेवाली
दृष्टि और भीरोंकी भीड़के समान सुन्दर चमकीले बाल देवकर
ही कहीं धानन्दमें इतने मस्त तो नहीं हो गए कि उस मन्नीमें
उसकी कमर बनाना ही भूल गए हों ॥ ६ ॥ उस नायिकाको
पतली कमर देखनेसे जान पड़ता है मानो वह इन चिन्ताने मूर-
सूखकर दुबली हुई जा रही हो कि 'जो कामदेव मुझे प्रियली
रूपी रस्तीसे बाँध चुका है वही अब मुझे द्वारा बाँधनेके

श्लिष्टमुष्टिना ॥ ६ ॥ वयमकर्मपांडुपचीयमानस्तनद्वय-
स्मोद्ग्रहनश्रमेण ॥ अत्यन्तकार्श्यं धनजायतावया मय्यो
जगामिति ममैष तर्कः ॥ १० ॥ सुहृत्तमावेकत उन्नतौ
स्तनौ गुरुर्मित्तमोऽप्ययमन्यतः स्थितः । कथं भजे
कान्तमितीव चिन्तया ततान तन्मध्यमतीव तानवम्
॥ ११ ॥ स्तनो भारार्पणव्यग्रीं काञ्चीं फलकलोन्मुखीं ।
कस्यां दिशि न मध्यस्थ तस्या कार्श्यं सहेतुकम् ॥ १२ ॥
स्फुटमनद्वयलक्षं नन्वि निश्चिन्वते ते तदनुपलभमाना-
स्तर्कयन्तोऽपि लोकाः । कुचगिरिवरयुग्मं यद्विनाधा-
रमास्ते तदिह मकरकेतोरेन्द्रजालं प्रतीमः ॥ १३ ॥
स्मरमानसिकसमस्याः स्वात्स्तनिमा निरवधिर्मध्यः ।
श्रीरेव पूरयति यां न गिरां देवी न चापि गुरुरस्याः
॥ १४ ॥

रोमावली—अतिवहुतरलजाण्टहुलायदपादो मद्-
नृपतिपादो योवनोन्मत्तहस्ती । प्रकटितकुचकुम्भो

लोमराजीकरेण पिवति सरसि नाभीमण्डलाख्ये
पयोसि ॥ १ ॥ अमुग्मिह्लावण्यामृतसरसि नूनं मृग-
दशः स्मरः शर्वण्युष्टः पृथुजघनभागे निपतितः । यद-
ङ्गाङ्गाराणां प्रशमपिथुना नाभिकुहरे शिखा धूमस्येयं
परिणामति रोमावलिमिपात् ॥ २ ॥ आनीलचुचुकिशि-
लीमुखमुन्नतेकरोमावलीविपुलनालमिदं प्रियाया ।
उचुङ्गसङ्गतपयोधरपद्मयुग्मं नाभेरधः कथयतीव महा-
निघानम् ॥ ३ ॥ इयं सृष्टा चञ्चलकनकलतिका पङ्कज-
भुजा निपिका लावण्यामृतरसमरेणावुदिवसम् ।
अकस्माद्गोमालीमधुपपटलीह स्फुरति यत्ततः शङ्गे
पुष्पोद्गमसमयायातमधुना ॥ ४ ॥ उचुङ्गस्तनपर्वता-
दधतरद्वन्द्वेव हारावली रोमाली नवनीलनीरजहचिः
सेयं फलिन्दात्मजा । जातं तीर्थमिदं सुपुण्यजनकं
यज्ञानयोः सद्गमश्चन्द्रो मज्जति लाञ्छनापहृतये नूनं
नखाङ्कच्छलात् ॥ ५ ॥ उचुङ्गस्तनभार एष तरले नेत्रे

कमर इसके भारी शरीर तथा जवानीके कारण बड़े हुए दोनों
स्तनोंका बोझ दोले-डोले इतनी पतली हो गई है ॥ १० ॥ उस
नवेलीकी कमर मानो इती सोचमें दुबली हुई जा रही है कि
‘युक्त शरीर तो दोनों त्वच कोटिके (श्रेष्ठ, ऊँचे ऊँचे) सहृदय
(मित्र, हृदयके ऊपर) स्तन लड़े हैं, दूसरी शरीर यह गुरु (बड़े
लोग, भारी) नितम्ब स्थित है, श्रम में अपनेप्यारसे कैये मिले ॥
॥ ११ ॥ जब एक शरीरसे स्तन उभे अपने बोझमें चौप रहे हैं
श्रीर दूसरी शरीरसे कश्चन दिनरात चिल्ल पाँ मघाती रहती है
तब बेचारी कमर क्यों नहीं दुबली होगी ॥ १२ ॥ है दुर्बल
शरीरवाली ! तुम्हारी कमर न देखकर लोग बहुत सोच-विचार
करके यही निश्चय करते हैं कि तुम्हारे कमर ही नहीं हैं, फिर
भी ये स्तन रूपी दो पहाड़ जो बिना सहारेके टिके हुए हैं इन्हें
कामदेवका इन्द्रजाल ही समझना चाहिए ॥ १३ ॥ इस
नायिकाके दुर्बल शरीर और उसकी पतली कमर वास्तवमें
कामदेवकी मनसे बनाई हुई समस्या है जिसको पुरात लफ्फो
(श्री तथा मन्दरता) ही कर सकनी है, सरस्वती या उसके
गुरु (आशान्) धूम्रपति) नहीं पूरा कर सकते ॥ १४ ॥

रोमावली : उस नायिकाकी नाभिएर उठी हुई रोमावली
ऐसी जान पड़ती है मानो महाराज कामदेवकी सवारोंका यीजन-
रूपी महाबल कापी हूय रोमावलीरूपी सँदेसे नाभिपण्डलरूपी
तालाबमें जल पी रहा है जिसके पीर खजनारूपी सँकलसे बँधे
हुए हैं और जिसका मस्तक स्तनोंके रूपमें सरत दिखाई दे रहा

है ॥ १ ॥ इस नवेली मृगयनीकी नाभिएर निकली हुई
रोमावली ऐसी जान पड़ती है मानो इस विशाल जवन
(पेंडू) के सुन्दरता रूपी अमृतके तालाबमें शिवजीके क्रोधसे
जलकर बूड़े हुए कामदेवके शरीरसे उठते हुए धुँएकी लहरें हों
॥ २ ॥ उस प्यारीके उठे हुए स्तनोंकी सुविद्योतक चड़ी हुई
रोमावली कमलके नालके समान जान पड़ती है, जिसके
ऊपर उठे हुए स्तनरूपी कमल यह सूचना देते हैं कि नाभिके
नीचे कोई गहरो निधि छिपी हुई है ॥ ३ ॥ प्रथमने यह
सुन्दर नायिका वास्तवमें सोनेकी लता बनाई है जिसे वह
प्रतिदिन सौन्दर्यके अमृततरसे सींचता रहता है, पर इसपर
जो अचानक यह रोमावली-रूपी भीरोंकी पाँत दिखाई पड़ रही
है वह ऐसी जान पड़ती है मानो अत्र हसके फूलने (चुबती
होने) का समय आ गया हो ॥ ४ ॥ नवेलीके ऊँचे स्तन रूपी
पर्वतोंपर हारकी लड़ें पर्वतसे उतरती हुई गङ्गाके समान जान
पड़ती हैं और नये नीले कमलके समान सुन्दर रोमावली ही
मयुनाके समान है और जहाँ हन दोनोंका सङ्गम होता है वहाँ
सुन्दर पुण्य-देनेवाला तीर्थ है जिसपर बने हुए नखके बिन्दु ऐसे
जान पड़ते हैं मानो अपना कलङ्क धोनेके लिये चन्द्रमा उस
दिवेकी डुबकी छागा रहा हो ॥ ५ ॥ इस नवेलीके बड़े-बड़े स्तन,
मनोहर श्रोत्रें, चम्राल भीहें तथा फलके समान हिलते हुए
अपर यदि प्रेमियोंको मारे काखते हों तो टीक ही पर जिसे
कामदेवने सौभाग्यके अर्पणोंकी पंक्ति-सा बनाकर लिख दिया है

चले भ्रूलते रागान्वेषु तदोपप्रलम्बमिदं कुर्वन्तु नाम व्यधाम् । सौभाग्यान्तरपङ्क्तिरेव लिखिता पुण्यायुधेन स्वयं मध्यस्थापि कृतेति तापमधिकं रोमावली केन सा ॥ ६ ॥ उन्मूलितालानविलामनाभिश्चिद्रुद्रस्खलच्छृङ्खलरोमद्रामा । भक्तस्य सेवं मदनद्विपस्य प्रस्थापवप्रोथ-कुचास्तु वास्तु ॥ ७ ॥ कुचदुर्गाराजधान्योर्मध्येमार्गं मृगी-दृशो मदनः । किमकृत नामीवापीमपि रोमाली तमाल-वनरेखाम् ॥ ८ ॥ गभीरनामीहृद्पाथर्वधचिनी चिराजते लोमतती मृगीदृश । मुचारविन्दस्य रसामिलापिणी द्विरेफपङ्क्तिश्चलितेव नीरवा ॥ ९ ॥ गम्भीरनाभिहृद-सन्निवेशे रराज तन्वी नवरोमराजिः । मुखेन्दुभीतस्त-नचक्रवाकहृद्दोऽजिम्ना शैवलमञ्जरीव ॥ १० ॥ गौरीव पत्या सुभगा कदाचित्कत्रोयमप्यर्धतनूसमस्याम् । इतीव मध्ये निदधे विधाता रोमावलीमेककूत्रमस्याः ॥ ११ ॥ जाने रात्रिपु तन्मध्ये ददाति शनैः पदम् ।

गम्भीरनाभिमुहुरप्रवेशशङ्कया स्मरः ॥ १२ ॥ तस्याः प्रविष्टा नतनाभिरन्ध्रं रराज तन्वी नवरोमराजि । नीवीमतिक्रम्य सितेतस्य तन्मेघलामध्यमणेरिवाधिः ॥ १३ ॥ दत्तं मया पदमिदं नवर्षायनाय त्वं सत्वरं कचन शैशव साधयेति । कामस्य हस्तलिपितात्कृत्मा-लिकेव रोमावली विजयते जलजेक्षणयाः ॥ १४ ॥ नाभिरन्ध्रं प्रविष्टास्याः श्यामला रोमवल्ली । प्रभता तिमिरलेखेव मेघलामणिक्कान्तितः ॥ १५ ॥ नाभिसङ्गेन गौराङ्गयाः शोभते रोममञ्जरी । कन्दर्पेहमकटवाह्ला-च्चाधारेव निर्गता ॥ १६ ॥ नामीविलान्तरविनिर्गतप-न्नगीयं सम्प्रस्थिता नयनखड्गनमनुषया । नासामुदीच्य गरुडभ्रममुद्गहन्ती गुतेव पीनकुचपर्यतयोरधस्तात् ॥ १७ ॥ नामीवलयसम्बद्धा रोमाली भाति मुद्गवः । सहिता निगडेनेव गृह्णला स्मरदन्तिनः ॥ १८ ॥ निर्वो-तव्यो मनसिजकलातन्त्रसिद्धान्तसारे जेतव्या च

यह मध्यम्य (बीचमें रहनेवाली, बीच-बिचाव करनेवाली) रोमावली क्यों इतनी प्राणकी गाहक हो रही है ॥ १॥ इस नवेलीकी नामि ऐसी जान पड़ती है मानो यहाँसे कामदेव रूपी हाथीको बाँधनेका यन्त्रा उन्माड़ दिया गया है जिससे गढ़ा पड़ गया और यह उसके पेटपर बनी हुई रोमावली ही उस हाथीकी दृष्टी हुई सँकलके समान है जिसे ताँदकर कामदेव-रूपी हाथी ऊँचे टीलेके समान स्तनोपर विश्राम करने चढ़ गया है ॥ ७ ॥ हरियोके नेत्रोंके समान श्रोत्रोवाली नवेलीके स्तन-रूपी दुर्ग और शोभि रूपी राजधानीके बीच कामदेवने रामावला-रूपी तमालवनमे मजाकर यह नामि-रूपी बाणवी तो नहीं बना दी है ॥ ८ ॥ इस मृगनयनी नवेलीके शरीरपर रोमावली ऐसी जान पड़ती है मानो नामि-रूपी गहरे तालाबके पास रहनेवाली मीन भीरोंकी पीत, मुख रूपी कमलकी गन्ध लेनेकी इच्छासे ऊपर उढ़ी चली जा रहा हा ॥ ९ ॥ गहरे नामि-रूपा तालानसे उठी हुई पतलासी नई रोमावली ऐसी जान पड़ता है माना मुख-रूपी चन्द्रमाके दरसे भागत हुए स्तन-रूपा चक्रवा-चक्रवाके जोड़के साथ सेनारकी खतार्प उलकी हुई हैं ॥ १० ॥ सौभाग्यवती नवेलीके उदरपर यह बालोंकी रेखा ऐसी जान पड़ती है मानो प्रह्लासे इसके शरीरके बीचमें यह समझकर काले सुतसे मीमा बाँध दी हा कि कहीं यह सौभाग्यवती, नवेली पार्वतीके समान अपने पतिसे धाधे शरीरमें मिल न जाय ॥ ११ ॥ हम नवेलीके शरीरपर रोमावली ऐसी जान पड़ती है मानो

नामि रूपी गहरे गडुमें गिर पड़नेके दरसे राके समय इस नाथिकामें प्रवेश करनेके लिये कामदेव धीरे-धीरे टग रत्न रहा हो ॥ १२ ॥ उस नवेलीकी गहरी नामिके गडुमें घुसती हुई बड़ रोमावलीकी रेखा ऐसी जान पड़ती है मानो करघनेके बीचमें जड़े हुए नीलमके प्रकाशकी रेखा धाँवकी गाँठकी लॉयकर ऊपरको उठी जा रही हो ॥ १३ ॥ इन कमलनयनी नवेलीकी रोमावली ऐसी जान पड़ती है मानो कामदेवने अपने हाथसे यह अचर पंक्ति लिख दी हाँ कि 'हे बचपन ! मैंने यह नाथिका रूपी स्थान नये बीचनेके लिये सुरचित कर लिया है इसलिये तुम शीघ्र कहीं चले जाया ॥ १४ ॥ उस नवेलीकी गहरी नाभिमें घुसी हुई काली रोमावली ऐसी जान पड़ती है मानो कमरमें बाँधी हुई करघनेके मणिकी चमकमे डरी हुई धींधरेका पीत हो ॥ १५ ॥ उस गौरी नवेलीकी गोल नाभिले उठी हुई रामावली ऐसी जान पड़ती है मानो कामदेवके सानेके कड़ेसे लाखकी धारा पिघलकर बही चली था रहा हा ॥ १६ ॥ इस नवेलीकी रामावला पूसा जान पड़ता है माना नत्र रूपा सखनका निगलनके लिये चली हुई नामि-रूपी बिलसे निकला हुई साँपिन, नाकका गरुड समझकर डरके मारे विशाल स्तन-रूपा पर्वतोंके नीचे जा झिपी हो ॥ १७ ॥ उस सुन्दर भीहोंवाली नाथिकाकी गोत्र नाभिले मिली हुई रामावला ऐसी जान पड़ती है मानो कामदेव-रूपी हायाकी जोहकी सँकलमें उढ़ी बनी हुई हो ॥ १८ ॥

त्रिदशसुदृशामङ्गलावयलदमी । रोमश्रेणीलिखनसु-
भगं पत्रमादर्शयन्ती पत्रालम्बं जगति कुर्वते सुभ्रुवो
यौवनश्रीः ॥ १६ ॥ पयोधरस्तावदयं समुन्नतो रसस्य
वृष्टिः सविधे भविष्यति । अतः समुद्रच्छति नाभिर-
न्ध्रतो विसारि रोमालिपिपालिकावलिः ॥ २० ॥ भाति
रोमावली तस्याः पयोधरभरोन्तौ । जाता रत्नशला
केव श्रोणिवैदूर्यभूमितः ॥ २१ ॥ यूनां धैर्यव्याङ्करं
फलवयन्त्रीडाभ्युपूरं पिवन्शुक्लारो हरिणस्तव स्तन-
गिरेः सीमानमारोहति । नामैः काचन तस्य निःसृत-
वती कस्तूरिकामालिका रोमश्रेणिमहोत्सवं वितनुते
कल्याणि जानीमहे ॥ २२ ॥ रचयति युधनेत्रनेत्रपीयू-
पवृष्टिं नवजलधररेखा रोमराजिच्छलेन । यदुदयति
फलापिप्रक्रियेयं तदुच्चैः स्तनघनसमयोऽस्यामाचित-
स्ताति विश्वः ॥ २३ ॥ रोमावलिभ्रुकुसुमैः स्वमौर्वी-

चापेपुभिर्मध्यललाटमूर्ध्नि । व्यस्तैरपि स्यान्नुभिरेतदी-
यैर्जैत्रः स चित्रं रतिजानिधीरः ॥ २४ ॥ रोमावली-
रञ्जुमुरोजकुम्भौ गम्भीरमासाद्य च नाभिकूपम् ।
मदृष्टिदृष्ट्या विरमेद्यदि स्यान्नैपं वतैषा सिवयेन
मुष्टिः ॥ २५ ॥ रोमावली विलासिन्याः प्रविष्टा नाभि-
मण्डलम् । कियद्गाम्भीर्यमत्रेति तात्पर्यमिव विश्रती ॥
२६ ॥ लिखन्त्याः कामसाप्राज्यशासनं यौवनश्रियः ।
गलितेव मयीधारा रोमाली नाभिगोलकात् ॥ २७ ॥
वयसो शिशुतातदुत्तरे सुदृशि स्वामिचिधि विधि-
त्सुनो । विधिनापि न रोमरेखया कृतसीम्नि प्रविभजा
रज्यतः ॥ २८ ॥ समुद्रितकुचकुम्भमङ्गनाया हृदयमन-
ङ्कमतङ्गजोऽधिरोते । तद्विल्लपदवन्धनाय रोमावलि-
रिह शृङ्खलिका विलोकयते यत् ॥ २९ ॥ सौन्दर्यस्य
मनोभवेन गयनारेखा किमेवा कृता लावण्यस्य विलो-

सुन्दर भौहोंवाली नवेलीकी रोमावली ऐसी जान पड़ती है
मानो उसके यौवनकी कान्ति, रोमावली रूपी लेखते सजें हुए
पत्रको दिखला दिखलाकर इस अभिमानके साथ ससारको
चुनीती दे रही हो कि मैं कामके कलाशास्त्रका वास्तविक
तत्व परल सकयी हूँ और देवियोंके शरीरकी सुन्दरता
जीत सकती हूँ ॥ १६ ॥ उस नवेलीके शरीरपर उठी हुई
रोमावली ऐसी जान पड़ती है मानो उठे हुए (उमड़े हुए)
पयोधर (स्तन और बादल) तत्काल रस (आनन्द और
जल) की वषा करेगे इसीलिये नाभि-रूपी विलसे चाँदियोंकी
पाँत धन्यत्र उठ चली हो ॥ २० ॥ उस नायिकाके शरीरपर
रोमावली ऐसी जान पड़ती है मानो स्तनोंका बोझ सँभालनेके
लिये उदर-रूपी भूमिपर बैदूर्यमणिका पतलासा उम्मा
रपा कर दिया गया हो ॥ २१ ॥ हे महलमयी नवेली !
तुम्हारे शरीरपर रोमावली ऐसी सुन्दर जैच रही है मानो
सुवकोंके धैर्य-रूपी पासके शत्रु घर जानेवाला तथा लम्बा-
रूपी जल पी जानेवाला श्वार-रस-रूपी मृग तुम्हारे स्तन-
रूपी पर्वतपर चढ़ते हुए अपनी नाभिले कस्तूरी बरसाता जा
रहा हो ॥ २२ ॥ सुवकोंके नेत्र-रूपा रेतोंमें धमृतकी वषा
करनेवाले बादलकी पतली-सी रेखा ही इस नवेलीका रोमावली
वनकर (नकल) थाई है इसालिये इस नवेलीमें मयूराकी क्रिया
(घोंती) सुनाई पड़ने लगी है जिससे जान पड़ता है कि
पयोधर (स्तन, बादल) उमड़ थाई है (बढ़ चले हैं)
॥ २३ ॥ यह वदं आरपर्वशी बात है कि इस नायिककी

रोमावली रूपी डोरी तो पेटपर है, भौह-रूपी धनुष माथेपर
है और फूल-रूपी बाण मस्तकपर है, फिर भी वीर कामदेव
सबको जीतता ही चला जा रहा है ॥ २४ ॥ रोमावलीकी
रेखा-रूपी रस्ती, स्तन-रूपी घड़े और गहरी नाभि रूपी कुर्छी
यदि बखसे ढके न होते और तलवार (भौहों) से इनकी
रखवाली न की गई होती तो निरचय ही इन वस्तुओंको पाकर
हमारी आँखोंकी प्यास बुझ जाती ॥ २५ ॥ इस नवेलीकी
गहरी नाभिमें घुसती हुई-सी रोमावली ऐसी जान पड़ती
है मानो वह नाभिकी गहराई नापनेके लिये भीतर घुसी जा
रही हो ॥ २६ ॥ इस नवेलीकी रोमावली ऐसी जान पड़ रही
हो मानो कामदेवके साध्याश्रयके नियम लिखते समय यौवनकी
शोभाके नाभि-रूपी मसीपात्रसे स्याहीकी धारा यह चली
हो ॥ २७ ॥ उस नवेलीके शरीरपर रोमावली ऐसी शोभा
पा रही है मानो उस सुनयनीपर श्रपना-श्रपना अष्टिकार
जमानेकी हृद्वा रत्ननेवाले शचपन और यौवनकी श्रलग-श्रलग
रत्ननके लिये मद्दाने सीमा बना दी हो जिससे वे निर्विवाद
शोभा पाते रहें ॥ २८ ॥ उस नवेलीके शरीरपर रोमावली
ऐसी जान पड़ती है मानो इसके हृदयमें सोते हुए कामदेव-
रूपी जिस हाथीके दो स्तन-रूपी माथे दिखाई पड़ रहे हैं
उसके पैर बाँधनेके लिये सौँरुल गड़ दी गई हो ॥ २९ ॥ इस
नवेलीके उदरपर रोमावली नापकर यह प्रदन होता है कि
कामदेवने सुन्दरताकी सीमा देनेके लिये यह कौई रेखा बनाई
है या तीनोँ लोकोंकी सुन्दरता देपनेके लिये यह स्या

किंतु चित्रगतामेवा किमुद्धीयिका। आनन्दद्रुमकन्दली
नयनयोः किंचा समुच्चमते सुन्दर्याः किमु वा स्वमा-
यसुमगा रोमालिङ्गमलति ॥ ३० ॥ स्वर्णवदातद्यति-
कायकाएडे सम्पूर्णपीयूषमयूखसुख्यः। पूर्णादशः पृष्ठ-
धिलम्बिवेणीविभ्यः पुरो राजति रोमराजी ॥ ३१ ॥
हरक्रोधज्यालावलिभिरचलीदिने वपुषा गभीरे ते नामी-
सरसि हनक्रुणो मनसिजः। समुत्तस्यां तस्मादचल-
तनये धूमलतिका जनस्तां जानीते तय जननि रोमाय-
लिरिति ॥ ३२ ॥

वलिप्रयम्—अनन्यसाधारणकान्तिकान्ततनोरमुष्याः
किमु मध्यदेशः। जगत्त्रयीजन्मभृतां निपल्लणा चित्ता-
यलीयं त्रिवलीमिषेण ॥ १ ॥ एकमेव यल्लि यद्वा जगाम
हरिरुन्नतिम्। तन्व्यात्रिवलियन्वेऽपि सैव मध्यस्य
नप्रता ॥ २ ॥ तत्रिविष्टपमारुयातं तन्व्यरूपा यद्वलि-
प्रयम्। येनानिमिषद्वष्टित्वं नृणामप्युपजायते ॥ ३ ॥
तदीयत्रिवलीमार्गसोपानारोहणभ्रमः। अनहत्यादन्-

ङ्गस्य जातो रत्येकगोचरः ॥ ४ ॥ तनुन्वरमणीयस्य
मध्यस्य च भुजस्य च। अभवन्नितरामस्या बलयः
कान्तिशुद्धये ॥ ५ ॥ दरिद्रमुदरं दृष्ट्वा चक्रो लावण्यपू-
र्णयोः। पन्थानं स्तनयोस्तस्याखिवलीधिपमं विधिः
॥ ६ ॥ परिहृत्य दुर्गागोहं तस्याः स्तनतटं कृता।
कन्दर्परथसञ्चारमार्गालीय वलिप्रयी ॥ ७ ॥ मत्या
चापं शशिमुषि निजं मुष्टिना पुष्पधन्वा तन्वीमेनां
तव तनुलतां मध्यदेशे यभार। यस्मादत्र त्रिभुवनव-
शीकारमुद्रानुकारास्तिष्ठो भान्ति त्रिवलिकपटादङ्ग-
लीसन्निवेखाः ॥ ८ ॥ मध्यत्रिवलीत्रिपथे पीवरकुचच-
त्यरे च चपलदृश्याम्। छलपति मदनपिशाचः पुरुषं हि
मनागपि स्पलितम् ॥ ९ ॥ मध्यात्समानीय सुसार-
भागं वक्षोजमुन्पादयिता विधाता। अतिप्रयत्नातित्रय-
लीमिषेण सोपानवर्त्मत्रितयं चकार ॥ १० ॥ मध्वेन
सा चेद्विलिप्तमध्या वलिप्रयं चारु यभार बाला।
आरोहणार्थं नवयौवनेन कामस्य सोपानमिव प्रयुक्तम्

गता ई या श्रौंकी गृह्णिके त्रिये आनन्द-रूपी पृथमं
अदुर आ रहा ई या यह हम सुन्दरीकी स्वभावतः सुन्दर
रामान्ती है ॥ १० ॥ इस नवेली चन्द्रमुखीके पेटपर उठी
हुई रोमान्ती ऐसी जान पड़ती है मानो इसके सानेकी भाँति
म्यप्य कान्तिगते शरीरमेंये पीठपर लटकी हुई घाँटीका ही
प्रतिबिम्ब रोमावलीके रूपमें सामने दिखाई पड़ रहा हो
॥ ११ ॥ हे पारंगतीनी! जब महादेवजीकी क्रीपासिकी लपटमें
मत्ता हुआ कामदेव चापके नाभि-रूपी तुर्पमें पड़ पड़ा तब
पुष्टीकी जो लहरें ऊपरकी उठी उरुकी लोंग रोमावली कहने
लागे ॥ १२ ॥

तीन सिन्दुर्नः उभ नवेलीके पेटपर जो तीन सिन्दुर्न
पड़ी हैं वे ऐसी जान पड़ती हैं मानो इस अनोखी सुन्दरीके
उदरपर इन तीन रेखाओंके रूपमें तीनों धाँकोंके लोमोका मन-
समूह का रचना हो ॥ १ ॥ भगवान् त्रिपुणे एक वलि (राजा
वलि) का बाँधकर अपनेको बद्ध किया अर्थात् विराट्-रूप
बनाया पर इन नवेलीकी कमर तीन वलि (सिन्दुर्न) बाँधकर
भी कुटी (लक्ष्मीकी) ही रह गई ॥ १२ ॥ उस कामिनीके उदरपर
तीन रेखाएँ ही ता सचमुच स्वर्ण हैं जिनकी धार मनुष्य एक-
टक हाँकर देखने रह जाते हैं ॥ ३ ॥ उस नवेलीके पेटपर
तीन रेखाएँ देगकर कामदेवकी पत्नी (रति) ने यह समझा
कि मेरे शरीररहित पति (कामदेव) ने ऊपर चढ़नेके लिये

ये सीढ़ियाँ बना ली होंगी ॥ ४ ॥ पतली होनेके कारण सुन्दर
लगनेवाली कमरकी शोभा बलयः (पेटपर पड़ी हुई रेखाओं)
से धीरे हाथोंकी शोभा बलयः (कमरों) से बढ़ती ही है ॥ ५ ॥
मझाने देगा कि उस नायिकाका उदर अत्यन्त दरिद्र (पतला) है
इसलिये सुन्दरतासे भरे हुए स्तनोंसे लेकर उदरतक उसने
तीन रेखाओंका मार्ग बना दिया कि इनसे होकर सुन्दरता-
रूपी धन कमरमें भी चला आवे ॥ ६ ॥ इस नवेलीके उदरपर
बनी हुई तीन रेखाएँ ऐसी जान पड़ती हैं मानो इसके स्तन-
रूपी दुर्गम पर्वतके शिरारसे उतरते हुए कामदेवके रथके लिये
लाँके बना दी गई हो ॥ ७ ॥ हे चन्द्रमुखी! फूलोंका धनुष
ररनेवाले कामदेवने अथर्व ही तुम्हारे दुर्बल शरीरको अथर्व
धनुष समझकर मुहूर्तिसे पकड़ा होगा उसीसे वैगलियोंके बाँधकी
तीन रेखाओंसे ताव सिन्दुर्न पड़ गई होंगी जो ऐसी जान
पड़ती हैं मानो तीनों लाँकोंके वराम कर लेंगी ॥ ८ ॥ इन
चञ्चल नेत्रोंवाली स्त्रियोंके पेटकी तीन रेखा-रूपी तिराहेपर
तथा मोटे स्तन-रूपी धौराहेपर जो लोम तनिक भी भटक कि
कामदेव-रूपी पिशाचने उन्हे चक्करमें डाला ॥ ९ ॥ मझाने इस
नायिकाको कमरसे सार निकालकर स्तन तो बना दिए किन्तु
उसके पश्चात् जब बुद्ध भी सामग्री नहीं पची तब बड़ी
फट्टाहाईसे उसने तीन रेखाओंके रूपमें तीन सीढ़ियाँ बना
दीं ॥ १० ॥ धैर्यके समान बीचसे दिपुली उस नायिकाके पेटपर

॥११॥ राजति त्रिवली तस्याः स्तनभारोन्नतिक्रमात् ।
उपर्युपरि जातेव हारमुद्रापरम्पर ॥ १२ ॥ स्तनमा-
रय मध्येन त्रिवलिव्याजतः कृताः तस्याः शङ्कित-
भङ्गेन भ्रूमङ्गानमिवावलिः ॥ १३ ॥

पृष्ठभाग — अस्याः खलु ग्रन्थिनिवद्धकेशमङ्गीकद-
म्बप्रतिविम्बवेशात् । स्मरप्रशस्ती रजताचरेयं पृष्ठस्थ-
लीढाटकपट्टिकायाम् ॥ १ ॥

नितम्ब — अर्पयांसुजायामः सखेदोऽस्याः सखी-
जनः । श्रोतार्यां कथञ्चित्कुरुते रशनादामयन्धनम् ॥१॥
अमृतमधुरैः काञ्चीनादैः कृताभयङ्गिण्डमे त्रिवलिल-
ह्वरीलाघयाम्भःकण्ठोत्करकुर्वरे । विपमनयनज्वाला-
जालावलीढपरक्रमो लुठति मदनस्तन्वङ्गीनां नितम्ब-
शिलातले ॥ २ ॥ चक्रेण विश्वं युधि मत्स्यकेतुः पितु-

जितं द्यौच सुदर्शनेन । जगज्जिभीपत्यमुना नितम्ब-
येन किं दुर्लभदर्शनेन ॥ ३ ॥ तन्नितम्बस्य निन्दन्ति
वृद्धि परिजनाङ्गनाः । काञ्चीनयनप्रन्थिग्रथनेन कद-
यिताः ॥ ४ ॥ नितम्बमोरवेशासौ गौराङ्गी शिघते
दृढम् । हारयत्यपरिस्पन्दा कन्दुकं क्रीडितेषु यत् ॥५॥
नितम्बविम्बं विम्बोष्ठी चन्द्रकान्तशिलाघनेम् । धत्ते
कन्दर्पदोःस्तम्भप्रशस्तिकलकोपमम् ॥ ६ ॥ पृष्ठवर्तुल-
तन्नितम्बकृन्मिहिरस्यन्दनशिल्पशिलया । विधिरेक-
कचक्रचारिणं किमु निभर्त्सति माम्भयं रथम् ॥ ७ ॥
रोमाधलीवृण्णितम्बचक्रे मुखम्व लाघयजलम्व
चाला । तारुण्यमूर्त्तः कुचकुम्भकर्तुर्विभर्ति शङ्के सहका-
रिचक्रम् ॥ ८ ॥ विस्तारिणा मुहुस्तस्याः श्रोणीविम्बेन
पीडिता । वृष्टिता वृष्टितास्मीनि पूत्करोतीव मेखला
॥ ९ ॥ स कथं न स्पृहणीयो विपयर्त्तैस्तन्नितम्बवि-

पट्टी हुई तीन रेखाएँ ऐसी जान पड़ती हैं मानो कामदेवको
ऊपर चढ़ानेके लिये चौबनने सोवियॉं बना दी हो ॥ ११ ॥
इस नायिकाके शरीरपर तीन रेखाएँ ऐसी जान पड़ती हैं मानो
उसके स्तनोंके बढ़ते जानेपर ज्या-ज्या हार ऊपर उठता गया
त्यों त्यों उस हारकी रगड़के चिह्न इन रेखाओंके रूपमें बने रह
गए ॥ १२ ॥ उस नवेलीके शरीरपर तीन रेखाएँ ऐसी जान
पड़ती हैं मानो उसके उदरने स्तनका थोक भाँपकर अपने देव
जानेके सन्देहसे स्तनोंपर क्रोध किया हो जिससे ये तीन रेखाएँ
ऐसी बन गईं मानो उदरकी टढ़ी भौंहें हों ॥ १३ ॥

पीठः इस नवेलीके जूड़ेमें गुँथे हुए वेलेके फूलोंका
प्रतिबिम्ब पीठपर पड़ता हुआ ऐसा जान पड़ता है मानो पीठ-रूपी
सोनेकी पटियापर चाँदीके अचरोंमें कामदेवकी प्रशंसाके लेख
लिख दिए गए हों ॥ १ ॥

नितम्बः उस नवेलीके नितम्ब हटने बड़े बड़े है कि
उसकी सलियोंके दोनों हाथोंके धेरेंमें नहीं आते इसलिये वे
बेचारी बड़ी कठिनाईसे उसके नितम्बोंपर तगड़ीकी लड़ें बाँध
पाती हैं ॥१॥ तगड़ीमेंसे गूँजनेवाले अमृतके समान मधुर शब्दसे
अपनी निर्भयताका डङ्गा पीठनेवाला, त्रिवली-रूपी सहर्वाली
नदीके सौर्य-रूपी जलकण्ठसे चित्त-कवरा बना हुआ तथा
शंकरजीके नेत्रोंकी ज्वालासे जल जानेपर भी अपना प्रताप
दिखानेवाला यह कामदेव कामिगियोंके नितम्ब-रूपी चहानपर
लेट रहा है ॥२॥ वैसे कामदेव (प्रद्युम्न) के पिता (कृष्ण)
ने युद्धमें सुदूरान चक्रसे सारे विश्वको जीत लिया, वैसे ही क्या

कामदेव भी इन दोनों दुर्लभदर्शन (देखनेके न मिलनेवाले)
नितम्बोंसे संसारको जीतना चाहता है ॥ ३ ॥ इस नवेलीकी
दासियों उसके नितम्बोंके बड़े होनेकी इसलिये निन्दा कर रही
हैं कि उसकी तगड़ी बड़ी करनेके लिये बार-बार गूँथते-गूँथते
वे तंग था गईं हैं ॥ ४ ॥ वह गौरी नायिका अपने नितम्बोंके
भारीपनसे बहुत दुखी हो गई है क्योंकि उनके बोझसे न चल
पानेके कारण यह गँदके खेलमें बार-बार हार जाती है ॥ ५ ॥
पके हुए बिम्बाके समान ओठोंवाली ऐ नवेली ! चन्द्रकान्त
मणिकी पटियाके समान कड़ा तुम्हारा यह नितम्ब ऐसा
जान पड़ता है मानो कामदेवके बाहुरूपी लम्बेपर उसकी
प्रशंसासे अङ्कित पत्थरकी पटिया हो ॥ ६ ॥ ब्रह्मने सूर्यके लिये
एक पहिपुका रथ बनाया था तो उसने क्या फिर इस कामिनीके
विद्याल निम्ब बनाकर अपनी पुरानी कारीगरीके अनुसर
कामदेवके लिये भी एक ही पहिपुका रथ बनाकेका सकल
किया है ? ॥७॥ मैं समझता हूँ कि जब इस नवेलीमें रोमावण
रूपी डण्डों, नितम्बरूपा चाक और उदारता आदिका गुण
(धोरी) तथा सुन्दरता-रूपी जल है ही ता निश्चय ही स्तन
रूपी घड़ा बनानेवाले चौबन-रूपी कुम्हारके लिये इसके पास
सभी सामग्री उपस्थित है ॥८॥ इस नवेलीके प्रतिदिन फूलनेवाले
नितम्बपर कसी हुई यह तगड़ी प्रतिदिन फीजती हुई ऐसी प्रतीत
होती है मानो यह कराट-अरहक कह रहा हो—“हाय मैं दूदी !
मैं दूदी !” ॥९॥ जब विपयोंसे विमुक्त तथा अति शान्त ब्रह्मने
नितम्बोंमें वड़ापन और भारीपन डालकर इनका आदर किया है

न्यासः। शान्तात्मनापि विहितं विश्वसृजा गौरवं यत्र ॥ १० ॥

जघनम्—अनङ्गरङ्गपीठोऽस्याः शृङ्गारस्वर्णविष्टरः । लावण्यसारसङ्घातः सा घना जघनस्थली ॥ १ ॥ तद्री-यजघनाभोगगरिमा विस्मयास्पदम् । दूरपातीपृष्ठत्कोऽभूधेनानङ्गस्थ साङ्गना ॥ २ ॥ तस्याः पद्मपलाशाद्या-स्तन्यास्तज्जघनं घनम् । दृष्टं सखीभिर्याभिस्ताः पुम्भावं मनसा ययुः ॥३॥ मुक्तेरपि प्रियतमाजघनोप-भोगः श्रेयाच्च मृग्यमिह वस्तुनि नः प्रमाणम् । यत्प-प्रयतायतदृशो रश्नाकलापे मुक्ता अपि स्वयमहो पुन-रेव ब्रह्माः ॥ ४ ॥ चपुरुपुमं नामेरुर्ध्वं विधाय मृगो-दृशां ललितललितैरङ्गन्यासैः पुरा रमसादिव । तदनु सहसा खिन्नैरेव प्रजापतिना भृशं पृथुलपृथुला स्थूल-स्थूला कृता जघनस्थली ॥ ५ ॥

मदनमन्दिरम्—अङ्गेन केनापि विजेतुमस्या गवेप्यते

तव विपयोंके प्रेमी लोग उन नितन्योंसे क्यों न स्नेह करें ॥ १० ॥

पेटू : इस नायिकाका कठोर पेटू वास्तवमें कामदेवके नाटकका रहस्य है, शृङ्गार रसका पलंग है तथा सुन्दरताका तत्त्व है ॥ १ ॥ उस नवेलीके पेटूकी चौड़ाईकी पेंसी ध्यामर्थ-जनक महत्ता है कि उसके कारण यह नायिका कामदेवका दूरवैधी बाण बन गई है ॥ २ ॥ कमलकी पंखुड़ियोंके समान बढ़ी-बढ़ी आँखोंवाली उस पतली नायिकाके कठोर पेटूकी जिन सखियोंने देखा वे मनमें तरसने लगीं कि 'हाय! हम पुरुष क्यों नहीं हुईं कि इनका उपभोग हमें भी प्राप्त हो जाता' ॥ ३ ॥ 'इस मियतमाका जवन-भाग मुक्तिमें भी कहीं श्रेष्ठ है' इस सान्त्वयमें हमें प्रमाण नहीं हूँदना पड़ेगा क्योंकि इसकी यह विचित्र बात हम प्रत्यक्ष देखते हैं कि मुक लोग (मोती) भी इस बढ़ी-बढ़ी आँखोंवालीकी तगड़ीमें स्वयं धाकर बँध गए हैं ॥ ४ ॥ ब्रह्माने हरिणीके समान नेत्रोंवाली नायिकाओंका शरीर नाभिसे ऊपर तो अद्वितीय ढंगसे बनाकर उसमें अत्यन्त सुन्दर षंग सजा दिए किन्तु नाभिसे नीचे चौड़ी-चौड़ी तथा मोटी-मोटी आँखें देकर ऐसा जान पड़ता है मानो ब्रह्माने थक जानेके कारण वेगार टाली हो ॥ ५ ॥

योनि : इस नवेलीका क्या कोई अंग (योनि) पीपलके पत्तेकी जीतनेके लिये मचल उठा है? यदि यह बात न होती तो दूसरे पत्तोंकी अपेक्षा एकमात्र पीपलके पत्ते ही किसके बरसे निरन्तर काँपते रहते ॥ १ ॥ पेटूके बीचमें एक बढ़ी गुफामें जो

कि चलपन्नपन्नम् । न चेद्विशेषादितरच्छुद्धेभ्यस्तम्यास्तु कम्पस्तु कुतो भयेन ॥ १ ॥ जघनान्तराले विधरे विशाले हाधोमुखी तिष्ठति काऽपि वन्या । कुण्डालि-भाटान्तमुखे पतन्तं दन्तैर्विना भञ्जति चर्मदण्डम् ॥२॥

जघनोरुहा — गौरमुखयनिताचराङ्गके रेजुस्थित-तनूरुहाङ्गराः । तर्पणाय मदनस्य वेधसा स्वर्णशुक्ति-निहितास्तिला इव ॥ १ ॥

ऊरू—अस्यां मुनीनामपि मोदमूहे भृगुर्महान्यत्क-चशैलशीली । नानारदाहादि मुषं श्रितोरुष्यांलो महाभारतसर्गायोग्यः ॥ १ ॥ ऊरुः कुरङ्गकदम्बश्चल-चेलाञ्जलो भाति । सपताकः कनकमयो विजयस्तम्भः स्मरस्येव ॥ २ ॥ ऊरुमकाण्डद्वितयेन तस्याः करः पराजीयत वारणीयः । युक्तं हिया कुण्डलनच्छुलेन गोपायति स्वं मुखपुष्करं सः ॥ ३ ॥ कदली कदली

कोई अनोखी नीचे मुँह लिए बैठी है वह माड़ियोंके जङ्गलके मुँहर धा पट्टेवाले चामके डण्डेको विना दंतके ही सा डालती है ॥ २ ॥

योनिके चाल : इस गौरी नवेलीकी योनिपर निकलते हुए चालके अंतुर ऐसे सुन्दर जान पड़ते हैं मानो ब्रह्माने कामदेवका तर्पण करनेके लिये सोनेकी सीपी (योनि) में काले तिल छार रखे हों ॥ १ ॥

टाँगें : ऐसा जान पड़ता है कि इस नवेलीकी टाँगें देखकर बड़े-बड़े मुनियोंको भी भ्रम हो गया होगा क्योंकि श्रेष्ठ मृगमुनि (अत्यन्त डालुपन) इसके स्तनरूपी पहाड़पर रहते हैं, इसका मुख नारद मुनिको (अनेक दंतोंके कारण) आनन्द देता है और महाभारतकी रचना करनेवाले व्यासमुनि इसका सहारा लेते हैं (जों अत्यन्त सुन्दर कामकीड़ाके लिये विलुप्त हैं) ॥ १ ॥ टाँगोंपर उड़ते हुए साड़ीके पल्ले हरिणीकी आँखोंके समान नेत्रोंवाली नवेलीके शरीरपर पेंसी शोभा दे रहे हैं मानो कामदेवकी विजयके सुनहरे गम्भीरप पायाक फहरा रही हो ॥ २ ॥ इस नवेलीके टाँग-रूपी लगभगे हाथीकी सूँढ़ धारकर लजा गई है इसलिये वह अपनी सूँढ़के आगेका भाग बार-बार मोड़कर झिपाता जाता है, यह ठीक ही है ॥ ३ ॥ केला केला ही है अर्थात् जड़ मात्र रह गया है, बरम (कानी डँगलीकी शोरका हथेलीका भाग) भी बरम ही है अर्थात् बहुत छोटा है और हाथीकी सूँढ़ भी हाथीकी सूँढ़ ही है

करभः करभः करिराजकरः करिराजकरः । भुवनवि-
 तयेऽपि विभक्ति तुलाभिदमूरुगुं न चमूरुदृशः ॥ ४ ॥
 तरुमूरुगुणेषु सुन्दरी किमु रम्भां परिणाहिना परम् ।
 तरुणीमपि जिष्णुरेष तां धनदापत्यतपःफलस्तनीम् ॥ ५ ॥
 नागेन्द्रहस्तास्त्वचि कर्कशवादेकान्तशैत्यात्क-
 दलीविशेषाः । लब्धापि लोके परिणाहि रूपं जाता-
 स्तदूर्वांरुपमानवाहाः ॥ ६ ॥ पश्यन्हतो मन्मथवाण-
 पातेः शक्तो विधातुं न निर्मील्य चक्षुः । ऊरु विधात्रा
 हि कथं कृतौ तौ विन्यासवत्याः सुमतेर्घितकः ॥ ७ ॥
 मन्थे तदूरु सम्भाव्य हस्तस्वस्वहारिणौ । वहन्त्यस्पृ-
 श्यताहेतोर्मतिङ्गत्वं मतङ्गजाः ॥ ८ ॥ रम्भापि किं
 चिद्ब्रूयति प्रकाण्डं न चात्मनः स्वेन न चैतदूरु ।
 स्वस्यैव येनोपरि सा ददाना पत्रापि जागर्त्यनयोर्भूमिष्य ॥ ९ ॥
 लम्बिताः कदलीस्तम्भास्तदूरुभ्यां परामवम् ।

अत्यन्तमृदुभिर्लब्धो जडैः क्व जयडिण्डिमः ॥ १० ॥
 विधाय मूर्धानमधश्चरं चेन्मुञ्चेत्तपोभिः स्वमसारमा-
 वम् । जात्यव्यच नाञ्चेत्कदलीं वलीयस्तदा यदि स्यादि-
 दमूरुचक्रः ॥ ११ ॥

जधे—क्रमोद्गता पीवघरताधिजङ्गं वृक्षाधिर्बुद्धं विदुषी
 किमस्याः । अयि भ्रमीभङ्गिभिरावृताङ्गं वासो लता-
 वेष्टितकप्रवीणम् ॥ १ ॥ जङ्गे तदीये सन्तर्पां यजनस्या-
 नुरागिणः । जनयाञ्चक्रतुस्तीमं तत्र हेतुर्विलोमता ॥ २ ॥
 मरुते मरुते तस्याः मुग्धानामिति का कथा ।
 तरुणानामपि प्रशंसां प्रवर्धत इमे यतः ॥ ३ ॥ लीलाग-
 तितस्तत्र निसर्गसिद्धा मत्तो न दन्ती मुपितो न हंसः ।
 इतीय जङ्गायुगलं यदीयञ्चक्रे तुलाकोट्यधिरोहणानि ॥ ४ ॥
 वृत्तानुपूर्वं च न चातिदीर्घं जङ्गे शुभे खृद्यत-
 स्तदीये । श्रेयाङ्कनिर्माणविधौ विधातुर्जावण्य उत्पाद्य

अर्थात् लुरदरी है । तात्पर्य यह कि इस मृगनयनी नवेलीकी
 दोनों टाँगोंकी बराबरी संसारमें कोई नहीं कर सकता ॥ ११ ॥ उस
 नवेलीने अपनी दोनों मोटी-मोटी टाँगोंसे केवल रम्भा (केले)
 को ही नहीं बरन्, कुबेरके पुत्र गलकूबरकी तपस्या ही जिस रम्भाके
 स्तन बनकर फले हैं उस अप्सराको भी जीत लिया है ॥ ५ ॥
 हाथीकी सूँड़ बहुत रुखी होती है और केलेके खम्भे अत्यन्त
 शीतल होते हैं इसलिये संसारमें बहुत सुन्दर होते हुए भी
 वे इस नवेलीकी टाँगके बाहरी रूपकी ही बराबरी कर पाए,
 गुणाँकी नहीं ॥ ६ ॥ इस नवेलीकी जो सखी उसके शरीरपर
 चित्रकारी कर रही है उस बुद्धिमान् स्त्रीके मनमें यह शंका हुई
 कि जब इस नवेलीका उपरी भाग बनाकर ब्रह्मा कामके बाणोंसे
 पीठित होकर आँसूँ सूँड़ बैठे और आगे कुब्ज न बना पाए तब
 ये नवेलीकी टाँगें बन कैसे गईं ॥ ७ ॥ हाथियोंने जब देखा कि
 इस नवेलीकी टाँगें हमारे सूँड़की सुन्दरता हर ले जायेंगी तब
 वे लाजके मारे यह सोचकर मातङ्ग (चाण्डाल) बन गए कि
 कि हम अछूत होकर समाजके बाहर ही रहने लग जायें
 ॥ ८ ॥ रम्भा (केले) का पेड़ भी क्या इस नवेलीकी टाँग
 और अपने खम्भेको एक ही समझ बैठा है क्योंकि दोनोंके
 उपर पत्र (पत्ते तथा चित्रकारी) जो दिखाई दे रहे हैं उससे
 उसे भ्रम हो गया है कि इन दोनोंमें हमारा खम्भा कौन सा
 है ॥ ९ ॥ यदि उस नवेलीकी टाँगोंसे केलेके खम्भे हार खा गए
 तो आश्चर्य क्या है क्योंकि अत्यन्त कोमल और जड़ (शीतल
 और मूर्ख) लोकोको विजयका यश मिलता ही कहाँ है ॥ १० ॥

यदि केला अथवा सिर नीचा करके अर्थात् उलटा होकर तपस्या
 करके अपनी निःसारता तथा अत्यन्त जड़ता (मूर्खता और
 शीतलता) छोड़ दे तब कहीं वह इसकी टाँगोंके समान हो
 पा सकता है ॥ ११ ॥

जाँघें : इस नवेलीकी जाँघोंमें क्रमसे उपरको जो मोटाई बढ़
 रही है वह क्या वृषाधिर्बुद्ध (उठते हुए पतिके गलेमें हाथ
 डालकर उसकी गोदमें चढ़ना) जानती है और इसके चारों
 ओर लिपटनेवाला वच क्या लतावेष्टितक (बैठे हुए पतिके
 सोती हुई स्त्री द्वारा लपेटा जाना) सील चुका है ॥ १ ॥ इस
 नवेलीकी जाँघोंने रसिकोंके मनमें जो भयंकर जलन उपाया
 है उसका कारण है इसकी विलोमता (उल्टी चाल, बाल न
 होना) ॥ २ ॥ इस नायिकाकी जिन जाँघोंने फैलते-फैलते बढ़े-
 बढ़े जवागोंकी बुद्धितक बाँध दी है वे यदि भोले-भाले लोगोंको
 फँसा लेती हों तो कौन बड़ी बात है ॥ ३ ॥ 'इस नवेलीकी
 यही चाल ही है, इसे न तो मतवाला हाथी समझे, न यह
 समझे कि इसने हंसकी गति चुराई है', यही कारण है कि
 इसकी जाँघें तुलाके समान बना दी गई है कि जिस समानता
 करनी हो वह आकर अपनेको तौल ले ॥ ४ ॥ ब्रह्माने जब इस
 नवेलीके गोलढलवाँ और ठीक मोटाहवाली जाँघें बना दीं तब वे
 इतनी सुन्दर बन गईं कि अन्य प्राणियोंकी उसी अनुपातमें सुन्दर
 बनानेके लिये उन्हें बढ़ा परिश्रम करना पड़ा ॥ ५ ॥ सोनेकी
 धुँवरुदार तगड़ीके साथ उसकी दोनों जाँघें ऐसी सुन्दर जान

इवास यत्नः ॥ ५ ॥ हेममञ्जीरमालाभ्यांभाति जङ्गल-
तादृश्यम् । लायण्यशाखिनः स्थानं कुङ्कुमेनेव वेष्टि-
तम् ॥ ६ ॥

गुल्मी—अरुन्धतीकामपुरन्धिलत्मीजम्भद्विपदार-
नवाम्बिकानाम् । चतुर्दशीयं तदिहोचितैव गुल्फद-
याता यदृश्यसिद्धिः ॥ १ ॥

चरणी—अत्यपूर्वस्य रागस्य पूर्वपञ्चाय पञ्चवाः ।
पञ्चानि पादयुग्मस्य प्रत्युदाहरणानि च ॥ १ ॥ अननु-
रणन्मणिमेलमधिरलसिद्धानमञ्जमञ्जीरम् । परिसरण-
मरणचरणे रण्यरण्यरुमकारणं कुरुते ॥ २ ॥ अभ्युन्न-
ताष्टुष्टनखप्रभाभिर्निनेपणाद्रागमिवोद्विरेन्ती । आज-
हतुस्तच्चरणी पृथिव्यां स्थलारविन्दश्रियमव्यवस्थाम्
॥ ३ ॥ अमृत्यस्य मम स्वर्णतुलाकोटिद्वयं कियत् ।
इति कोपादिवातात्रं पादयुग्मं सृगीदृशः ॥ ४ ॥ अस्याः
पदौ चारुतया महान्तायपेक्ष्य सौन्दर्याल्लवभावमाजः ।

जाता प्रवालस्य महीरहाणां जानीमहे पञ्चशयन्दलधिः
॥ ५ ॥ चरणकमलं तदीयं लान्त्रावालायेन संयलितम् ।
अध्यास्त भृङ्गमालायलिभिर्मणिरचितनूपुरध्याजात्
॥ ६ ॥ जगद्वधूमूर्धसु रूपदर्पाद्यदेतयाद्याधि पदारवि-
न्दम् । तत्सान्द्रसिन्दूरपरानागेद्वयं प्रवालप्रवालरुणं
तत् ॥ ७ ॥ जात्रतः कमलाल्लवर्मा यजप्राह तदद्भुतम् ।
पादद्वन्द्वस्य मत्तेभगतित्स्थे तु का स्तुतिः ॥ ८ ॥
दशकैरव्यान्धवान्दधानौ जडसंसर्गविमुक्तिसाधवानौ ।
चरणी नतिनेन तोलयन्तः कथमस्याः कथयो न यान्ति
लज्जाम् ॥ ९ ॥ दृश्यन्ते मानलोत्संसा राजहंसाः
कचिद्यदि । गतौ चरणयोस्तस्याः प्रदयते थायदन्तरम्
॥ १० ॥ नितम्बपीठ्यमानेन पादयुग्मेन सुध्रुवः । कुना
क्षुफुटिभङ्गव नीलनूपुरमालया ॥ ११ ॥ म्रियासजी-
भूतयतो मुदेदं व्यथाद्विधिः साधुदृशत्वमिन्द्रोः । एत-
त्पदच्छद्मसरागपञ्चसौभाग्यमाग्यं कथमन्यथा स्यात्

पद रही हैं मानो सुन्दरताकी शृङ्खली जड़में चारों ओर केसरकी
पादू लगा दी गई हो ॥ ६ ॥

सुद्रीः—अवतक तो अरुन्धती, रति, लक्ष्मी, इन्द्रायी और
नय दुर्गा इन तरह देवियोंके ही अचानक अन्तर्यामि (अस्तित्वे
श्रोमल) होनेकी बात सुनी जाती थी पर यह सुद्री चौदहवीं
देवी था गई जो दिवाई नहीं पड़ रही है । टीका भी है क्योंकि
चतुर्दशीमें जप करने वालेको सिद्धि भी मिल जाती है ॥ १ ॥

पैरः—इम नवेलीके पैरोंनी अनेगी ललाईकी यरात्रीके
लिये पकोका रङ्ग ही उदाहरणमें दिया जाता है किन्तु वास्तवमें
उनकी समता यदि कोई कर सकता है तो उस कमल ही कर
सकता है ॥ १ ॥ है लाल-लाल पैरोंवाली ! तुम्हारी जिस चालके
साथ मणिकी तगड़ी और सुन्दर पायल निरन्तर वजते जा
रहे हैं वही दिना कारण ही मनमें हृदयही उजजा दे रही है
॥ २ ॥ चलते समय जब हम नवेलीके पैर धरतीपर पड़ते हैं
तब हमके ठटे हुए श्रृंगुठके नयकी चमकने भूमिपर बिखरी हुई
ललाईसे स्थलकमलकी गोमा भी फीकी दिगाई पड़ने लगती है
॥ ३ ॥ हम नवेलीके पैर मानो हम कोपसे लाल हो गए
हैं कि मुझ अमूल्यकी तुलनाके लिये दोनों प्रकारका स्वर्ण
क्यों छाया जाता है, वे मेरे आगे हैं क्या ॥ ४ ॥ इस
नवेलीके सुन्दरतामें बहुत बड़े-छड़े पैरोंके आगे पैदोंके नये पते
बहुत खप (नीचे) हैं इसीलिये हम समझते हैं कि पद
(पैर) से खप (हीन) होनेके कारण ही वे 'पल्लव' कहे जाने

लगे हैं ॥ ५ ॥ महावत्से रंगे हुए और मणिले जड़े बिदुप पहले
हुए उस नवेलीके पैरपेमे कमलोंके समान जान पड़ते हैं जिनपर
प्रातःकालकी धूप पड़ रही हो और भीरे बिरे हुए हो ॥ ६ ॥
इस नवेलीके पैरकी ललाई नई कोंपलोंसे भी अधिक देखकर
जान पड़ता है मानो इसने अपनी सुन्दरताके अभिमानसे
संसारकी सभी बियोंके सिरपर जो अपना चरणकमल रख
दिया उससे बियोंकी माँगपर लगे हुए घने सिन्दूरकी ललाई
हिनमें लिपट गई हो ॥ ७ ॥ इस नवेलीने यदि मतवाले
हाथीकी चाल छीन ली तो कौन बड़ी बात है । पर आश्चर्य तो
यह है कि इसके दोनों पैरोंने जिले हुए तथा सावधान
कमलकी भी सारी शोभा छीन ली ॥ ८ ॥ दस उँगली-रूपी
कुमुद-चन्द्रश्रीको साथमें रखनेवाले तथा जड़ (मूर्ध) से
दूर रहनेवाले इसके पैरोंकी उपमा जिन कवियोंने कमलसे
ही है उन्हीं लज्जा क्यों नहीं आती, क्योंकि कमल तो थकेला
ही निकलता है और जड़ (पानी) से ही सगर्भ भी
रम्यता है ॥ ९ ॥ यदि कहीं मानसरोवरकी शोभा बढ़ानेवाले
राजहंस मिल जाते तो उनसे पूछा जाता कि तुम्हारी और
इस नवेलीकी चरणोंकी चालमें क्या अन्तर है (पर वे तो
लाजके मारे सामने ही नहीं आते) ॥ १० ॥ नितम्बोंके भारसे
योक्कल और सुन्दर मीहोंवाली नवेलीके दोनों पैर नीलमके
बिदुश्रीके साथ पेमे जान पड़ते हैं मानो वे पैर भी भींदे देवी
किप धँसे हो ॥ ११ ॥ ब्रह्मणे इस प्यारीका उँह चन्द्रभासे बनाकर

॥ १२ ॥ यानेन तन्वया जितदन्तिनाथो पदाञ्जराजो
परिशुद्धपाष्णीं । जाने न शुश्रूषयितुं स्वमिच्छू नतेन
मूर्ध्ना कतरस्य राहः ॥ १३ ॥ स्तनभारोऽत्र घक्रन्दुच-
न्द्रिकावरणं मम । इति तत्पादयोर्लज्जा वैत्रि प्राङ्गणप-
द्मिनी ॥ १४ ॥

पादाङ्गुल्यः—एष्यन्ति यावद्गणनाद्दिगन्ताद्घ्रापाः
स्मरात्ताः शरणे प्रवेष्टुम् । इमे पदाञ्जे विधिनापि
सुष्टास्तावत्य एवाङ्गुलयोऽत्र रेखाः ॥ १ ॥

नला — तत्पादनखरत्नानां यदलककमार्जुनम् । इदं
श्रीखण्डलेपेन पाण्डुरीकरणं विधोः ॥ १ ॥ तद्वक्रं
नेत्रपत्रं प्रकटितमसकृत्सर्पधितं यन्मथैतज्जातं तस्मान्क-
शात्वं ग्रहणमपि ततो जायमानः कलङ्कः । तत्सर्वं
क्षम्यतां मे पुनरपि न करोम्येवमुक्त्वा तु तस्या गाढं
लज्जः शशाङ्कश्चरणखमणिच्छन्नना पाद्युग्मम् ॥ २ ॥

चन्द्रमाका बड़ा कल्याण किया नहीं तो उसे लाल कमलों
(चार्यों) का सहवास प्राप्त कहाँसे होता ॥ १२ ॥ इस
नायिकाके चरखरूपी राजा कमल, अपने यान (चढ़ाई, चाल)
से गजराजोंके जीसते हुए तथा अपनी शुद्ध (निष्कपट, सुन्दर)
पाँख (पीछेकी सेना, पदों) लेकर न जाने किस राजाके झुके
हुए मस्तकसे अपनी सेवा कराना चाह रहे हैं ॥ १३ ॥ इस
नवेलीके दोनों पैर ऐसे जान पड़ते हैं मानो दो स्थल-कमलिनियों
उसके पैरोंमें यह सोचकरथा छिपी हों कि इसके मुखरूपी
चन्द्रमाकी चाँदनी इसके बड़े-बड़े स्तनोंसे रुकनेके कारण हमतक
नहीं पहुँच पावेगी ॥ १४ ॥

पैरकी उँगलियों । इस नवेलीके पैरोंमें प्रह्लादे दस
उँगलियोंकी रेखा मानो इसलिये बना दी है कि दसों दिशाओंके
अनेक कामपीडित राजा इन चरखोंकी शरण लेंगे ॥ १ ॥

नला : उस नवेलीके पैरोंके नखरूपी रत्नोंपर लगा
हुआ सहावर ऐसा जान पड़ता है मानो चन्द्रमाकी लाल
चन्द्रसे रँग दिया गया हो ॥ १ ॥ इस नवेलीके पैरोंके नख
ऐसे जान पड़ते हैं मानो चन्द्रमा यह कहता हुआ उसके पैरोंसे
लिपट गया है कि नेत्ररूपी कमलसे तुक धारके मुखचन्द्रसे
मैंने बार-बार बराबरी करनेके फेरमें मैं दुबला भी हो गया
हूँ (नख पतले हैं), सुन्दर राहु भी आकमण करने लगा
(नख बढ़नेके कारण उसमें कालिमा आ गई और ग्रहणरूपी
कलङ्क भी आ गया) अतः अब आप मेरा अपराध चमाकर
धीनए धप में फिर ऐसा कभी नहीं करूँगा ॥ २ ॥ उस

तस्याः पादनखध्रेणिः शोभते किल सुभ्रुवः । रत्नाव-
लीव लायण्यरत्नाकरसमुद्रता ॥ ३ ॥ प्रसीद मेवं परि-
भूदखण्डं नाराधिपं ते वदनामृतांशुः । इतीन्दुमुख्याः
पतितेव पादे ताराततिर्दंष्ट्रनखच्छ्रुत्नेन ॥ ४ ॥

समग्रस्त्रीभ्वरूपवर्णनम्

अरुणं नितम्बभागे क्षामं मध्ये समुद्यतं कुचयोः ।
अत्यायतं नयनयोर्मम जीवितमेतदायाति ॥ १ ॥ अङ्गं
भूपणनिकरो भूपयतीत्येव लौकिको वादः । अङ्गानि
भूपणानां कामपि सुपमामजीजर्नस्तस्याः ॥ २ ॥ अधरे
मधुरा सरस्वती हृदि गङ्गा तदधः कलिन्दजा ।
शिरसि प्रतिभाति चारुवेली कथमेखीनयना न तीर्थ-
राजः ॥ ३ ॥ अलीकरूपं यदि मध्यभागः पयोधराका-
रभृतश्च केशाः । उत्सङ्गशोभापि सरोरुहाद्याः करस्य
शोभां फलयेद्य कस्मान् ॥ ४ ॥ अद्याजसुन्दरौ तां

सुन्दर भौंहोंवाली नवेलीके पैरोंके नख ऐसे सुन्दर जान पड़
रहे हैं मानो सुन्दरताके समुद्रसे निकली हुई रत्नोंकी पॉत
हो ॥ ३ ॥ तुम्हारे मुखरूपी चन्द्रमासे हारकर चन्द्रमा
अपने साथ तारोंको लेकर जो तुम्हारे पैरोंसे लिपटा है वे ही
नखोंके रूपमें दिखाई पड़ रहे हैं, अब तो तुम प्रसन्न हो
जाओ ॥ ४ ॥

स्त्रीके पूरे स्वरूपका वर्णन

यह मोटे नितम्बोंवाली, पतली कमरवाली, ऊँचे उठे हुए
स्तनोंवाली और बड़ी-बड़ी आँखोंवाली मेरी प्राणप्रिया ही आ
रही है ॥ १ ॥ यह सब कहनेकी बात है कि आभूपणोंसे उसके
अङ्गोंकी शोभा बढ़ती है । सच्ची बात तो यह है कि उसके
अङ्गोंसे ही आभूपणोंमें चमक आती है ॥ २ ॥ जब इस
सृगनयनीके अधरमें मधुर सरस्वती है, हृदयमें गङ्गा है,
उसके नीचेकी रोमावली यमुना है और शिरपर सुन्दर वेणी
शोभा दे रही है तब उसे तीर्थराज त्रिपेणी कहनेमें क्या सङ्कोच
है ॥ ३ ॥ एक नायिका अपनी कमरपर हाथ रक्ले खड़ी है
और उसके सिरके बाल स्तनोंतक लटकते हुए हैं । साथ ही
उसकी कमर हृत्तनी पतली है कि दिखाई नहा देती इसीपर
कवि कहता है—'यद्यपि इसकी कमर शून्य-रूप है तब भी
कोई चिन्ताकी बात नहीं क्योंकि इसके स्तनोंकी गोलाईका
भार बालोंने सँभाल लिया है और जब बालोंने हृत्तना काम
नहीं लिया है तब इस कमल-नयनीके हाथ नितम्बोंकी
शोभा क्यों न बढ़ावें ॥ ४ ॥ उस स्वाभाविक सुन्दरीकी अपने

विज्ञानेनाद्भुतेन योजयता। उपकल्पितो विद्यात्रा बाणः
कामस्य विपदिन्धः ॥ ५ ॥ अस्याश्चेदलकायली कृत-
मलित्रेणोभिरणोदृष्टः सान्द्र्यं यदि अत्रुपोस्तरलयोः
किं मन्मथस्यायुधैः। का प्रीतिः कनकारविन्दमुकुले
पीनौ स्तनौ चेदतो मन्ये काचिदियं मनोभवकृता
माया जगन्मोहिनी ॥ ६ ॥ आलपति पिकवधूरिव
पश्यति हरिणीय चलति हंसीय। स्फुरति तडिल्लति-
केय स्वदते तुहिनांष्ट लेख ॥ ७ ॥ आलोक्ष्य चिकुर-
निकरं सततं सुमनोऽधियासयोग्यं ते। कामो निर्ज-
नियङ्गं परिवृत्य पराममर्यं साशङ्कः ॥ ८ ॥ इदं वक्त्रं
साक्षाद्विरहितकलङ्कः शशधरः सुधाधाराचारधिर-
परिणतं विम्बमधरः। इमे नेत्रे रात्रिन्दियमधिकशोभे
कुचलये तनुलांघण्यानां जलधिरवगाहं सुखतरः ॥ ९ ॥
इन्द्रुल्लिप्त इयाञ्जनेन जडिता दृष्टिर्मृगीणाभिव प्रम्लाना-
रणिमेव चिद्रुमदलं श्यामेव हेममभा। फाकर्यं कलयता

च फोकिलवधूकण्डेषिव्य प्रस्तुतं सुन्दर्याः पुरतश्च
हन्त गिखिनां यहाँः सगर्हा इय ॥ १० ॥ ऊरुद्वयं मृग-
दृशः कदलेश्च फाण्डौ मध्यञ्च वेदिरतुनौ स्तनयुग्म
मस्याः। लावण्यचारिपरिपूरितशतकुम्भकुम्भा मनो-
जन्पतेरभिपेचनाय ॥ ११ ॥ ऊर्ध्वं नीरदृन्दुन्दुमन्द-
मिदं विन्ध्यं त्ययो निर्मितं ज्योत्नः पल्यलाचित्रस्य
निहितौ शैलायुपभ्रुतौ। किञ्चायः पुलिनोचयस्य
कदलीकारण्डावयारोपितौ तन्मन्ये चतुरस्य पुण्ययुगः
सगोऽयमन्यादृशः ॥ १२ ॥ पतस्याः स्तनपद्मकार-
युगं यस्थानेन्दोः सितज्योत्स्नाभिर्न भजत्यदो मृग-
दृशः शङ्के विकासं पुनः। तस्मिँल्लोचनपङ्कजं विक-
सितं श्रुभृङ्गसंसेधितं स्वान्ते संश्रयमातनोति सुतरा-
मेतन्ममैयासकृत् ॥ १३ ॥ कमलशरधिरम्भासैकतानु-
क्रमाढ्यं कनककलयामाराक्रान्तसीदामिनीकम्। किस-
लयितमृगालं ह्यारामप्रवालं कुचलयितशशाङ्कं कौशलं

अद्भुत कौशलसे यनाकर वद्वाने मानो कामदेवका बाण
विषमं बुम्भकर घर दिया हो ॥ ५ ॥ इस कमलनयनीके
केगोंके समुप भौरोंके समूहको कौन पदुवा है, इसकी चञ्चल
चित्रवनके सौन्दर्यके आगे कामदेवके बाणोंकी गिनती ही
क्या है, इसके मोटे मोटे स्तनोंके सामने सोनेके कमलकी
कलियाँमे कोई क्या प्रेम करेगा! अतः इसे देपकर तो मुझे
ऐसा जान पड़ने लगा है कि यह संसारकी मोहित करनेवाली
कामदेवकी रची हुई कोई माया है ॥ ६ ॥ वह नवेली कौशलके
समान बोलती है, हरियाँके समान देरती है, इतकी समान
पग धरती है, विनलीके समान चमकती है और चन्द्रमाकी
रेखाके समान रसीली लगती है ॥ ७ ॥ उसके बालोंमें फूल
और सुन्दर मन बने देपकर और अपने तूषारमें यही
गुण न पाकर धरराटके मारे कामदेव अपने तूषारमें
उलटकर डूबने लगा कि कहींमे कोई ऐसा बाण निकल आवे जो
इसके केगोंमें भी अधिक प्रभावशाली हो ॥ ८ ॥ इस नवेलीका
मुग प्रायश्च कलङ्क-रहित चन्द्रमा है, इसके आँठ अमृतकी
धारासे भरे हुए पके चिन्ब्याके समान हैं, इसके नेत्र दिवरात
अत्यन्त शोभा देनेवाले नीले कमल हैं और इसका शरीर भी
लावण्य (सुन्दरता, नमकनयन) का समुद्र है जिसमें स्नान
करनेमे अत्यन्त मुग मिलता है ॥ ९ ॥ उस सुन्दरीके मुखके
सामने चन्द्रमा काला लगता है, उसकी आँवोंके आगे
हरिणियोंकी पितवन स्त्री जान पड़ती है, उसके आँठोंके

सामने मृगेकी लालिमा फाँकी दिखाई पड़ती है, उसके गारे
शरीरके आगे सोना भी सौबला दिखाई देता है, उसकी मधुर
बाणोंके समुप कौशलकी फूक कानको कदनी लगती है और
उसके केशके सामने मोरोंके पट्टु अत्यन्त तुच्छ जान पड़ते
हैं। इस प्रकार उस सुन्दरीके आगे अहाँके सब उपमान भोंदे
जान पड़ते हैं ॥ १० ॥ उस मृगनयनीके दोनों पैर केल्लेके खम्भे
हैं, उसकी कमर ही यज्ञकी वेदी है, वधा उसके श्रद्धितीय स्तन
ही राजा कामदेवके अभियेकके लिये सौन्दर्यरूपी जलसे भरे हुए
सोनेके दो घड़े हैं ॥ ११ ॥ यह क्या है जिसके ऊपर बादलोंका
समूह (केश) है, फिर उसके नीचे आकाशकी तलैया
(हृदय) पर दो ऊँचे-ऊँचे पर्वत रकले हुए हैं, इस द्वीप (नितम्ब)
के नीचे दो केल्लेके खम्भे (दर्शिन) लगे हुए हैं इले देखकर
मैं तो समझता हूँ कि यह चतुर कामदेवकी कोई निराली ही
रचना है ॥ १२ ॥ इस मृगनयनीकी स्तनरूपी कमलकी कलियाँ
उसके मुखरूपी चन्द्रमाकी चाँदनी पड़नेपर भी मिल नहीं
रही हैं, उलटे उसके मुखरूपी चन्द्रमामें भीहरूपी भौरोंसे घिरे
हुए नेत्ररूपी कमल लिले हुए हैं। यह सब उलट-पलट देपकर
मेरे मनमें बार-बार न जाने क्यों बड़ा सन्देह होता जा रहा
है ॥ १३ ॥ यह वद्वका बुद्ध विधिपर कौशल है कि उसने
कमसे कमल (चर्या), तूषार (पिण्डली), फेलेका
रग्मा (जईयं), नदीका उदा हुआ तट (नितम्ब), सोनेके
कलशों (स्तनों) के धोक्से दबी हुई विनवी (भायिकाकी

सा विधातुः ॥ १४ ॥ करे वेपीमेखीसदशनयनाह्वान-
विरतौ दधाना हर्ष्यांभ्रे हरनयनतेजोहुतमपि । इयं
मुग्धा दुग्धान्बुधियहलकज्जोलसदश दशा धारंघारं
मनसिजततं पल्लवयति ॥ १५ ॥ कर्णाच्चिदन्तच्छ्रुदवाह-
पाणिपदादिनः स्वाखिललुत्युद्देतुः । उद्रेगभागद्व-
यताभिमानादिहैव धेधा व्यधित द्वितीयम् ॥ १६ ॥
कर्णाद्यन्तुदमेव कोकिलरुतं तस्याः श्रुते भापिते चन्द्रे
लोकवचिस्तदाननरुचेः प्रागेव सन्दर्शनात् । चञ्चुर्माल-
नमेघ तन्नयनयोऽग्रे सृगीणां घरं हैमी वल्लवपि तावदेव
ललिता यावन्न सा लज्यते ॥ १७ ॥ कर्णात्सङ्गविसर्पिणी
नयनयोः कान्तिर्यतंसोत्पल्लं लाक्षासम्भ्रमनिर्व्यपेक्षम-
धरं लावण्यमेधाञ्छति । हारोऽस्याः स्मितचन्द्रिकैव
कुचयोरङ्गप्रभाकञ्चुकी तन्व्याः फेचलमङ्गभ्रमधुना

मन्ये परं भूपणम् ॥ १८ ॥ कलयति कुचलयमालाल-
लितं कुटिलः कटाक्षचित्तेपः । अधरः किसलयलीला-
माननमस्याः कलानिधिविलासम् ॥ १९ ॥ कात्स्न्येन
निर्वर्णयितुं च रूपमिच्छन्ति तत्पूर्वसमागतानाम् । न
तु प्रियेष्वायतलोचनानां समग्रपातीनि विलोचनानि
॥ २० ॥ किं तारुण्यतरोरियं रसभरोद्भिन्ना नया
वल्लरी वेलाम्रोच्छ्रुलितस्य किं लहरिका लावण्यवारा-
क्षितेः । उद्गाढोत्कलिहायतां स्वसमयोपन्यासविश्र-
म्भियाः किं साक्षादुपदेश्याष्टरथवा देवस्य शृङ्गारिणः
॥ २१ ॥ गतिर्वैशी च नागेन घणुरुरु च रम्भया । पाणी
प्रवालैरोष्ठी च यस्यास्तुल्यत्वमाथयुः ॥ २२ ॥ गुरुणा
स्तनभारेण मुखचन्द्रेण भास्वता । पादाभ्यां पत्रा
गाभ्यां रेजे रत्नमयीव सा ॥ २३ ॥ चञ्चुर्मचकमभुञ्जं

झाली), पत्नीवाले कमल (उँगलियोंसे युक्त मुवापूँ), हारको
भीतर बन्द किए हुए भूँगा (लाल ओठोंके बीच दाँतोंकी पंक्ति)
और कमल धारण किए हुए चन्द्रमा (आँखोंके साथ मुख) बना
दिया ॥ १४ ॥ इस भोली-भाली मृगनयनीने स्नान करके
छतपर पहुँचकर जब अपने हाथसे अपनी चोटी पकड़ी और
शीर सागरकी विशाल लहरके समान अपनी चितवन चलाई
तब शङ्करजीके नेत्रकी अग्निसे भस्म हुए कामदेवरूपी वृचमें
नये झँडुए फूटने लगे ॥ १५ ॥ ब्रह्मने इस (दमयन्ती) के
शरीरमें पहले एक-एक कान, आँख, आठ, बाँह, हाथ और पैर
बनाए । वे इतने सुन्दर बने कि उन्होंने अपने समान दिखाई
पड़नेवाली सब वस्तुओंको अपनी शोभासे हरा दिया । इससे
ब्रह्माजीको इतना अभिमान हुआ कि वे उसी प्रकारके सुन्दर
अन्न बनानेके फेरमें पड़कर ऐसी सुघृण भूले कि उन्होंने
वेसे ही एक-एक अन्न बनाए तो सही किन्तु भौंकेमें वे अन्न
उसीके शरीरमें लगा दिए अर्थात् उसके कान, आँख, आठ,
बाँह, हाथ और पैर उसके ही कान, आँख, आठ, बाँह, हाथ
और पैरके समान हैं, कहीं उनकी समानता नहीं हो सकती
॥ १६ ॥ उस नवेलीकी बोली एक बार सुन लेनेपर कोयलकी कूक
कान फोड़ने लगती है और चन्द्रमा भी लोगोंको तभीतक अचूका
लगता है जबतक लोग उसके मुखकी शोभा नहीं देख लेते ।
उसकी आँखें इतनी रसीली हैं कि उनके आगे हरिश्चियोंको
अपनी आँखें मूँद लेनी चाहिँ और सोनेकी लता भी तभीतक
भली जान पड़ती है जबतक यह नवेली आँखोंके आगे नहीं
था जाती ॥ १७ ॥ इस नवेलीकी कानोंतक फैली हुई आँखोंकी

भलक ही कानको शोभित करनेवाला कमल है, उसके आँठ
स्वभासे ही इतने सुन्दर लाल हैं कि उन्हें लालसे रँगनेकी
आवश्यकता ही नहीं है, इसकी मुस्कराहटकी फैली हुई चमक
ही इसके स्तनोंका हार है, इसके शरीरकी दमक ही इसकी
बोली है इसलिये मैं तो यह मानता हूँ कि इसके जो अन्य
आभूषण हैं वे सब शरीरपर बोझ ही हैं ॥ १८ ॥ उस नवेलीकी
तिरछी चितवन नीले कमलके समान मनीहर है, उसके आँठ
नई कोंपलोंके समान लाल और पतले हैं और उसका मुख
चन्द्रमाके समान आनन्द दे रहा है ॥ १९ ॥ अपने पतिके
साथ पहले पहल समागमके समय खियों अपने पतिके सब
अङ्गोंकी सुन्दरता भली भाँति देखना तो चाहती हैं किन्तु उन
बड़ी बड़ी आँखोंवाली नायिकाओंकी दृष्टि सकोपके मारे अपने
पतियोंपर पूरी पड़ भी तो नहीं पाती ॥ २० ॥ नवेलीके
शरीरको देखकर कवि कल्पना कर रहा है कि यह नवेली जीवन-
रूपी वृचकी रसभरी मञ्जरी है या कगारतक लहराते हुए
सौन्दर्य सागरकी लहर है या अपने निधनोंको पूरा पालन
करानेवाले कामदेवकी वह झुड़ी है जिससे वह रसिकोंको
शिखा देता रहता है ॥ २१ ॥ इस नवेलीके बाल और चोटी
तो सर्प जैसे, शरीर और जाँच केलेके खम्भे जैसी और इसकी
हथेलियाँ और आठ मूँगेके समान हो चले हैं ॥ २२ ॥ अपने स्तनोंके
योक्ते (गुरु) भारी और मुखरूपी चन्द्रमाके कारण दमकती हुई
अपने पीलेराजके समान चरणोंसे वह नवेली रत्नमयी-सी जान
पड़ती है ॥ २३ ॥ इस नवेलीकी आँखोंकी शोभा नीले कमलकी
हराए डाल रही है, चन्द्रमा इसके मुखका मित्र है, कामदेवकी

विजयते वक्रस्य मित्रं शशी भ्रूसूनस्य सनाभि मन्मथ
घनुर्लावण्यपणयं वपुः । लेखा कापि रदच्छद्रे च सुत-
नोगात्रि च तत्कामिनीमेनां वर्णयिता स्मरो यदि भवे-
द्वैदग्ध्यमभ्यस्यति ॥ २४ ॥ जानीमो वदनं सरोरुहदृशो
निर्माय पश्यन्मुहुर्हृष्यन्कामकठोरपायकशिखासन्ता-
पितः पद्मभूः । रम्भामूरुतटौ स्तनं रसघटीं पीयूषवीचीं
वचो बाहू बालविसं करं किसलथं नार्भो सरो निर्ममै
॥ २५ ॥ जानीमो वयमासनस्य कमले तस्या मुपेन्दो-
स्त्विया सङ्घोचं समुपागते स भगवान्दुःस्थः सरोजा
सनः । मुग्धं भूलतिकायुगं विहितवान्प्रके दृशो सृष्ट-
वान्मर्ष्यं विस्मृतवान्मर्चाश्च कृटिलान्यामभ्रुवः सृष्ट-
वान् ॥ २६ ॥ जिघ्रत्यनानमिन्दुकान्तिरधरं विम्बप्रभा
सुम्बति स्प्रष्टुं धाञ्छति चारुपद्ममुकुलचञ्चयाविशेषः
स्तनी । लक्ष्मीः कोकनदस्य खेलति करावालम्ब्य

किञ्चादरादेतस्याः सुदृशः करोति पदयोस्सेवां प्रया-
लयुतिः ॥ २७ ॥ तदा तदङ्गस्य विभक्ति सम्भ्रमं विले-
पनामोदमुचः स्फुरद्गुचः । दस्फुरत्काञ्चनकेतकीदला-
त्सुवर्णमभ्यस्यति सौरभं यदि ॥ २८ ॥ तद्वक्त्रं यदि
मुद्रिता शशिकथा तत्रोत्सितं का सुधा तच्चक्षुर्यदि
हारितं कुबलयैस्ताश्चेद्दिरो विद्वद्गु । धिक्चन्द्रपद्मनु-
भ्रुवो यदि च ते किं वा बहु द्रूमहे यस्तस्य पुनरुक्तज-
स्तुविरसः सर्गक्रमो वेधसः ॥ २९ ॥ तद्वक्त्रस्य कलङ्क
पत्र तुलना पीयूषधाम्नापि यत्कन्दर्पस्य घनुर्निदर्शन-
मिदं निन्दास्पदं तद्भुवोः । सा तल्लोचनयोस्त्रया कुबल-
यैस्साधर्म्यचिन्तापि या तस्यास्तत्प्रतिविम्बमेव नियतं
मात्रा विसंवादिनी ॥३०॥ तन्वी शरत्त्रिपथगापुलिने
कपोलो लोल दृशो रचिरचञ्चलपञ्चरीटो । तद्वन्धनाय
सुचिरापितसुभ्रुवापचाण्डालापशुशुगलायिच श्यन्-

धनुष इतकी भौहोंके समान है, इसका शरीर सुन्दरताकी दृकान
है और इस सुन्दरीके श्रोत्र और शरीरमें अनोखी रेखाएँ हैं
इसलिये इसका वर्णन केवल कामदेव ही तब कर सकता है
जब वह कहीं जाकर वर्णन करनेकी चतुराई सीख ले ॥ २४ ॥
मद्माने उस नायिकाके शरीरमें जो इतनी सुन्दर जाँवें,
स्तन, मधुरवाणी, बाँहें, हाथ और नाभि बनाई हैं उसका
कारण यह है कि जब उसने इस कमलनयनी नायिकाका
मुग्ध वनाया और चारों ओर देगच्छर उसे अपनी सबसे सुन्दर
कृति समझी उसी समय वे हर्षसे फूल उठें और सहसा वाम-
रूपी अग्निही विशाल लपटोंसे जलने लगे । उस पापको दूर
करनेके विचारसे उन्होंने इसकी जाँवोंके रूपमें कलेका रम्भा,
स्तनोंके रूपमें जलके पदों, वाणीके रूपमें अमृतकी लहर,
बाँहोंके रूपमें नये पत्ते और नाभिके रूपमें साक्षात् बना दिए
जिनसे टंडक पाकर वामका ताप दूर किया जा सके ॥ २५ ॥
इस नायिकाके शरीरमें जो देवी भाँहें, तिरछी चितवन, कमरका
अमान और देडे (घुँघराले बाल) दिखाई पड़ते हैं उसका
कारण यह है कि जब मद्माने इस सुन्दर भाँहोंवाली नायिकाका
मुग्धरूपी चन्द्रमा बनाया तब उसकी चाँदनीसे मद्माके घैठनेका
आसन (वमस) सिद्ध गया और मद्मा उसी सिद्ध देहुप आसनमें
घैठनेसे कस गए । उसी कठके कारण उन्होंने भाँहोंको देवा, चाँवोंको
बाँह और केशोंको घुँघराला बना दिया और कमर तो बनाना
ही मूल गए ॥ २६ ॥ यह नवेली इतनी सुन्दरी है कि पद्ममानी
बाँदनी इससे अधिक प्रशंसा लेनेके लिये इसका घुँह घुँह रही

है, मित्रानी ललाई और भी अधिक लाल होनेके लिये इसके
श्रोत्र चूम रही है, सुन्दर कमलकी कलियाँकी शोभा अपनी
वनावट आकर्षक करनेके लिये इसके स्तन छूना चाहती है, लाल
कमलोंकी शोभा बड़े आदरसे इसका हाथ पकड़कर खैल रही
है और मूँगेकी दमक और भी अधिक लालिमा पानेके लिये
इस मुनयनीके चरणोंकी सेवा कर रही है ॥ २७ ॥ उस नवेलीके
सुगन्ध फैलानेवाले और दमकते हुए अङ्गोंकी शोभाकी तुलना
तभी ही सकती है जब विले हुए और दमकते हुए सोनेकी
पहलुधियाँसे सुन्दर रंग और गन्ध फटकर निकलने लगे ॥ २८ ॥
जब उस नवेलीका मुख है ही तब चन्द्रमानी बात चलानी ही
नहीं चाहिए । जब उसकी मुस्कराहट है ही, तब अमृतका
बया मूल्य है । जब उसकी चाँवें हैं ही तो कमलकी हारा ही
समझना चाहिए । जब उसकी बायाँमें इतना मिठास है तो
धिहार है मधुका । जब इसकी भाँहें हैं ही तब कामदेवका धनुष
व्यर्थ है । हम और अधिक क्या कहें, सच्ची बात तो यह है
कि उस नायिकाके अन्न बनानेके पश्चात् मद्माने जितनी भी
सृष्टि रची है वह सब अनुकरणकी वस्तु होनेके कारण नीरस
हो गई है ॥ २९ ॥ अमृत धारण करनेवाला चन्द्रमा उस
नवेलीके मुखकी समानता कर सकता था किन्तु वह कलकी है,
कामदेवका धनुष भी डुङ्गु आदर पाता किन्तु उसे तो भाँहोंने
ही नीचा दिव्या दिया है । यदि उसके नेत्रोंकी मँपकी तुलना
कमलोंके साथ करें भी तो वे डुङ्गु-डुङ्गु फूटें प्रतिविम्ब-जैसे
प्रतीत होते हैं ॥ ३० ॥ उस दुबली-नवेली नायिकाके शरद्वकी

सा विधातुः ॥ १४ ॥ करे वेषीमिणीसदृशनयनालान-
विरतौ दधाना हर्म्यांश्चे हरनयनेतेजोहुतमपि । इयं
मुग्धा दुग्धाम्बुधिवहलकल्लोलसदृशा दृशा धारंधारं
मनसिजतर्कं पल्लययति ॥ १५ ॥ कर्णाच्छिदन्तच्छृदवाह-
पाशिपदादिनः स्वाखिलतुल्यहेतुः । उद्वेगभागद्व-
यताभिमानादिद्वैहव वेधा व्यधित द्वितीयम् ॥ १६ ॥
कर्णांयन्तुदमेव कोकिलयतं तस्याः श्रुते भाषिते चन्द्रे
लोककचिस्तदाननरुचेः प्रागेव सन्दर्शनात् । चक्षुर्माल-
नमेव तन्नयनयोरेते मृगीणां धरं हैमी पल्लयति तावदेव
ललिता यावन्न सा लक्ष्यते ॥ १७ ॥ कर्णोत्सङ्गविषमिणी
नयनयोः कान्तिर्वर्तसोत्पलं लाक्षासम्भ्रमनिर्वपेत्तम-
धरं लावण्यमेवाश्नुति । हारोऽस्याः स्मितचन्द्रिणैव
कुचयोरङ्गप्रभाकञ्चुकी तन्व्याः केवलमङ्गभारमधुना

मन्ये परं भूषणम् ॥ १८ ॥ कलयति कुचलयमालाल-
लितं कुटिलाः कटाक्षविलेपः । अधरः किसलयलीला-
माननमस्याः कलानिधिविलासम् ॥ १९ ॥ कान्त्यैत-
निर्वर्णयितुं च रूपमिच्छन्ति तत्पूर्वसमागतानाम् । न
तु मियेव्यायतलोचनानां समप्रपातीनि विलोचनानि
॥ २० ॥ किं तारुण्यतरोरिथं रसभरोद्भिषा नवा
वल्लरी घेलाभोच्छ्रलितस्य किं लहरिका लावण्यधारा-
न्निधेः । उद्गढोत्कलिकावतां स्वसमयोपन्यासविश्र-
म्भिसः किं साक्षादुपदेश्यष्टिस्थया देवस्य षट्कारिणः
॥ २१ ॥ गतिर्वैशी च नागेन यपुरूरु च रम्भया । पाणी
प्रधातौरोष्ठौ च यस्यास्तुल्यत्वमाययुः ॥ २२ ॥ गुरुणा
स्तनभारेण मुलचन्द्रेण भास्यता । पादाभ्यां पद्मरा
गाभ्यां रेजे रत्नमयीव सा ॥ २३ ॥ चक्षुर्मैत्रकामस्युजं

घाती) , पत्तोवाले कमल (उँगलियाँसे युक्त गुजाएँ) , हारको
भीतर बन्द किए हुए मूँग (लाल ओठोंके बीच दाँतोंकी पक्ति)
और कमल धारण किए हुए चन्द्रमा (आँलोकके साथ गुप्त) बना
दिया ॥ १४ ॥ इस भोली-भाली मृगनयनीने स्नान करके
छत्रपर पहुँचकर जब अपने हाथसे अपनी चांदी पकड़ी और
धीर-सागरकी विशाल लहरके समान अपनी चितवन पचाई
सप शङ्करजीके नेत्रकी अग्निसे भरम हुए कामदेवरूपी वृचमें
नये रँडुप धूने लगे ॥ १५ ॥ गद्गाने इस (दमयन्ती) के
शरीरमें पहले एक-एक फान, आँव, आठ, बाँह, हाथ और पैर
बनाए । ये इतने सुन्दर बने कि उन्होंने अपने समान दिखाई
पढ़नेवाली सब घट्टुआँको अपनी गोभासे हरा दिया । इससे
गद्गानोंकी इतना अभिमान हुआ कि ये उसी प्रकारके सुन्दर
आइ बनानेके परंमें पढ़कर ऐसी मुग्ध मुग्ध भूले कि उन्होंने
धैसे ही एक-एक आइ बनाए तो सही किन्तु आँकमें ये आइ
उसीके शरीरमें लगा दिए अर्थात् उसके कान, आँव, आँठ,
बाँह, हाथ और पैर उसके ही कान, आँव, आँठ, बाँह, हाथ
और पैरके समान हैं, कहीं उनकी समानता नहीं हो सकती
॥ १६ ॥ उस नवेलीकी बोली एक बार मुन लेनेपर कोयलकी पूक
कान फोड़ने लगती है और चन्द्रमा भी लोगोंके तभीतक अर्धा
लगता है अथवा कोग उसके गुप्तकी गोभा नहीं देए लेते ।
उनकी आँतें इतनी रसीली हैं कि उनके प्रागे हरियियोंकी
घपती आँतें मूँद खेनीं आँहएँ और सामेकी लता भी तभीतक
भली जान पड़ती है अथवा यह नवेली आँतोंके प्रागे नहीं
घा जाती ॥ १७ ॥ इस नवेलीकी कानोंक फेनी हुई आँतोंकी

कमल ही कानको गोभित करनेवाला कमल है, उसके आँठ
स्वभावसे ही इतने सुन्दर लाल हैं कि उन्हें लाखसे रंगनेकी
आवश्यकता हो नहीं है, इसकी मुस्कराहटकी फेनी हुई बमक
ही इसके स्तनोंका हार है, इसके शरीरकी दमक ही इसकी
पोली है इसलिये मैं तो यह मानता हूँ कि इसके जो अन्य
आभूषण हैं वे सब शरीरपर योग ही हैं ॥ १८ ॥ उस नवेलीकी
तिरड़ी चितवन नीले कमलके समान मनोहर है, उसके आँठ
नई कोंपलोंके समान लाल और पतले हैं और उसका मुन
चन्द्रमाके समान आनन्द दे रहा है ॥ १९ ॥ अपने पतिके
साथ पहले पहल समागमके समय स्त्रियों अपने पतिके सब
अङ्गोंकी सुन्दरता भली भाँति देखना तो चाहती हैं किन्तु उन
यड़ी यड़ी आँखोंवाली नायिकाओंकी दृष्टि सकोचके मारे अपने
पतियाँपर पूरी पढ़ भी तो नहीं पाती ॥ २० ॥ नवेलीके
शरीरको देखकर कवि कल्पना कर रहा है कि यह नवेली जीवन-
रूपी वृष्टकी रसभरी मञ्जरी है या फगरतक लहराते हुए
सौन्दर्य-सागरकी लहर है या अपने नियमोंको पूरा पालन
करानेवाले कामदेवकी बह छड़ी है जिससे यह रतिकी
शिखा देता रहता है ॥ २१ ॥ इस नवेलीके बाल और चाँदी
तो सर्प जैसे, शरीर और जाँव केलेके एग्मे जैसे और इसकी
हथेलियाँ और आँठ मूँगेके समान हो चले हैं ॥ २२ ॥ अपने स्तनोंके
धोमने (गुट) भारी और मुररूपी चन्द्रमाके कारण दमकती हुई
अपने फोखराजके समान चरणोंसे यह नवेली रत्नमयी सी आन
पड़ती है ॥ २३ ॥ इस नवेलीकी आँतोंकी गोभा नीले कमलकी
हराए घाल रही है, चन्द्रमा इसके गुप्तका मित्र है, कामदेवका

विजयते वक्रस्य मित्रं शशी भूस्वस्य सनाभि मन्मथ धनुर्लावण्यपण्यं वपुः । लेखा कापि रदच्छेदे च सुत-
नोग्रात्रे च तत्कामिनीमेनां वर्णयिता स्मरो यदि भवे-
द्द्वैदग्ध्यमभ्यस्यति ॥ २४ ॥ जानीमो वदनं सरोरुहदृशो
निर्माय पश्यन्मुहुर्द्वेष्यन्कामशोरपावकशिलासन्ता-
पितः पद्मभूः । रम्भामरुतटीं स्तनं रसघटीं पीयूषवीचीं
वचो बाहू वालाविसं करं किसलयं नाभौ सरो निर्ममि
॥ २५ ॥ जानीमो वयमासनस्य कमले तस्या सुतेन्दो-
स्त्विषा सद्भोचं समुपांगते स भगवान्दुःस्थः सरोजा-
सनः । मुञ्चं भ्रूलतिकायुगं विहितवान्बन्धे दृशौ सृष्ट-
वान्मध्वं विस्तृतवान्मरुच्चैश्च कुटिलान्यामभ्रुवः सृष्ट-
वान् ॥ २६ ॥ जिघ्रत्यननमिन्दुकान्तिरधरं विभ्वप्रभा
सुम्बति स्फुटं वान्द्यति चारुपद्ममुकुलच्छायाविशेषः
स्तनी । लवमीः कोकनदस्य रेलति करावालम्ब्य

किञ्चादरादेतस्या सुदृशः करोति पदयोम्भेयां प्रवा-
लयति ॥ २७ ॥ तदा तदङ्गस्य धिभति सम्भ्रमं विले-
पनामोदमुचः स्फुरदुच । दरस्फुरत्काञ्चनकेतकीदला-
त्सुवर्णमभ्यस्यति सारमं यदि ॥ २८ ॥ तद्वचनं यदि
मुद्रिता शशिक्रया तर्कोस्मितं का सुष्या तच्चतुर्यदि
हारितं कुचलयैस्ताञ्चेङ्गिरो विद्यायु । धिक्नन्दर्पधनु-
र्भुवौ यदि च ते किं वा बहु ब्रूमहे यत्सत्यं पुनरुक्तव-
स्तुविरसः सर्गक्रमो वेधसः ॥ २९ ॥ तद्वचनस्य कलङ्क
एव तुलना पीयूषधान्नापि यत्कन्दर्पस्य धनुर्निदर्शन-
मिदं निन्दास्पदं तद्भुयोः । सा तल्लोचनयोश्चपा कुचल-
यैस्ताधर्म्यचिन्तापि या तस्यास्तत्प्रतिविम्बमेव नियतं
मात्रा त्रिसंवादिनी ॥३०॥ तन्वी शरत्त्रिपधगापुलिने
कपोली लोलं दृशौ रचिरचञ्चलपङ्करीटो । तद्वन्धनाय
सुचिरार्पितसुभुवापचाण्डालपाशयुगलाविद्य शस्य-

धनुष इसकी भीहोंके समान है, इसका शरीर सुन्दरताकी दृकान
है और इस सुन्दरीके श्रोत और शरीरमें अनोखी रेखाएँ हैं
इसलिये इसका वर्णन केवल कामदेव ही तब कर सकता है
जब वह कहीं जाकर वर्णन करनेकी चतुर्थाई सीख ले ॥ २४ ॥
प्रधाने उस नायिकाके शरीरमें जो इतनी सुन्दर जाँघें,
स्तन, मधुवापी, बाँहें, हाथ और नाभि बनाई है उसका
कारण यह है कि जन उसने इस कमलनयनी नायिकाका
मुग्ध बनाया और चारों ओर देगदर उसे अपनी सबसे काम-
दृति समझी उसी समय वे हर्षते फूल उठे और सहसा काम-
रूपी शशिक्री विगल लपटाँसे जलने लगे । उस पापको दूर
करनेके विचारसे उन्होंने इसकी जाँघोंके रूपमें केलका रम्भा,
स्तनोंके रूपमें जलके पंखे, बायाँके रूपमें श्रमृतकी लहर,
बाँहोंके रूपमें नये पत्ते और नाभिके रूपमें तालाब बना दिए
जिनसे टटकर पाकर कामका ताप दूर किया जा सके ॥ २५ ॥
इस नायिकाके शरीरमें जो देवी भीहें, तिरछी चितवन, कमरका
अभाव और देहे (घुँघराले बाल) दिखाई पड़ते हैं उसका
कारण यह है कि जब प्रधाने इस सुन्दर भीहोंवाली नायिकाका
गुरुरूपी चन्द्रमा बनाया तब उसकी चौँदनीसे प्रधाने पैडनेका
आसन (कमल) सिद्ध गया और प्रधाने उसी सिद्धे हुए आसनमें
पैडनेसे कस गए । उसी कष्टके कारण उन्होंने भीहोंको देवी, बाँहोंको
बाँका और केयाँको घुँघराला बना दिया और कमर तो बनाता
ही भूल गए ॥२६॥ यह नवेली इतनी सुन्दरी है कि चन्द्रमाकी
चौँदनी इससे अधिक प्रकाश लेनेके लिये इसका मुँह सूँघ रही

है, चिन्माकी ललाई और भी अधिक लाल होनेके लिये इसके
श्रोत चूम रही है, सुन्दर कमलकी कलियोंकी शोभा अपनी
बनाकर आकर्षक करनेके लिये इसके स्तन छूना चाहती है, लाल
कमलोंकी शोभा बढ़े आदरसे इसका हाथ पकड़कर खेल रही
है और मुँगकी दमक और भी अधिक लालिमा पानेके लिये
इस सुनयनीके चरणोंकी सेवा कर रही है ॥२७॥ उस नवेलीके
सुगन्ध फैलानेवाले और दमकते हुए अङ्गोंकी शोभाकी तुलना
तभी हो सकती है जन तिले हुए और दमकते हुए सोनेकी
पहँदियाँसे सुन्दर रंग और गन्ध फटकर निकलने लगे ॥ २८ ॥
जन उस नवेलीका मुग्ध है ही तब चन्द्रमाकी बाल चलानी ही
बढ़ी चाहिए । जब उसकी मुस्कहाट है ही, तब श्रमृतका
क्या मूल्य है । जन उसकी आँसूँ हैं ही तो कमलको हारा ही
समझना चाहिए । जब उसकी बायाँमें इतना मिठास है तो
विचार है मधुको । जब इसकी भीहें है ही तब कामदेवका धनुष
ब्यर्थ है । हम और अधिक क्या कहें, सच्ची बात तो यह है
कि उस नायिकाके अद्भुत बनानेके पश्चात् प्रधाने जितनी भी
सृष्टि रची है यह सब अनुकरणकी वस्तु होनेके कारण नीरस
हो गई है ॥ २९ ॥ श्रमृत धारण करनेवाला चन्द्रमा उस
नवेलीके मुग्धकी समानता कर सकता या किन्तु वह कलकी है,
कामदेवका धनुष भी बुद्ध आदर पाता किन्तु उसे तो भीहोंने
ही नीचा दिया दिया है । यदि उसके नेत्रोंकी मँपनी तुलना
कमलोंके साथ करे भी तो वे बुद्ध-बुद्ध कृते प्रतिविम्ब जैसे
प्रतीत होते हैं ॥ ३० ॥ उस दुबली-पतली नायिकाके शरदकी

कर्णां ॥ ३१ ॥ तन्वी श्यामा शिखरिदशना पन्धविम्बा-
धरोष्ठी मध्ये क्षामा चकितहरिणी चक्षु निम्ननाभिः ।
शोणीभारादलसगमना स्तोत्रकनत्रा स्तनाभ्यां या तत्र
स्याद्युवतिधियेषु सृष्टिराघेय धातुः ॥ ३२ ॥ तमःस्तोमः
पुंयं तदनु सकलः शीतकिरणस्ततः फोकद्वन्द्वं तदनु
च न किञ्चित्पुनर्भूर् । अथस्तस्यावर्तस्तदनु कदलो-
काएडयुगलं ततोऽघाञ्चौ पञ्चां शिव शिव ! विधेः
शिवपरचन ॥ ३३ ॥ तदशिमनि कलयति कलामनु
मदनघनुर्ध्रुवोः पठत्यग्रे । अधिवसति सकलललनामो-
लिमिय चकितहरिखचलनयना ॥ ३४ ॥ दन्तप्रभापुष्प
चित्ता पाखिपल्लवशोभिनी । केशपाशाखिलद्वन्द्वेन सुषेपा
हरिणैश्चक्षु ॥ ३५ ॥ दायादत्वं मनसिजघनुर्भ्रूविलासस्य
धत्ते योगक्षेमो यद्वति नयनद्वन्द्वमिन्द्रीधराणाम् ।

तद्वात्राणां पुनरिह जगज्जैत्रलायथयभाजामाभात्यग्रे
मलवदखिलं म्लानवर्णं सुवर्णम् ॥ ३६ ॥ दीर्घाक्षं शरदि
न्दुकान्ति वदनं चाह्व नतार्थसयोः सङ्घित निविडोन्नत-
स्तनमुरः पार्श्वे प्रमृष्टे इव । मध्यः पाणिमितो नितमि
जघनं पादाद्बुदग्राङ्गुली छन्दो नर्तयितुयर्थैव मनस
सृष्टं तथास्या वपु ॥ ३७ ॥ दृष्टिः कापि सुरा सुधा
स्मितमिदं वक्रं कलानां निधिवर्द्धं कुम्भि भूयो दशो
विजयते धन्वन्तरिः सत्कृपा । कान्तिः श्रीखिलवलीत
रङ्गलहरी नामी गतावर्ततामेतस्यामचिरेण भाधिकलने
लावण्यवाराञ्जिधो ॥ ३८ ॥ नयनसुगातेचनकं भास
वृत्त्यापि दुष्प्रापम् । रूपमिदं मदिराद्व्या मद्यपि
दृढयं दुनोत्यपि च ॥ ३९ ॥ नीलाधजाना नयनसुगल
द्राधिमा दसपत्रः कुम्भाधैमौ कुचपरिकरः पूर्वपक्षीच-

आकाश - गंगाके समान कपोल-रूपी वटपर जो चञ्चल
श्रॉलोकें रूपमें दो सुन्दर चपल खज्जन हैं, उन्हें बाँधनेके
लिये ही मानो बहुत देरसे सुन्दर भौहके धनुष रूपी
ग्याधने दो जालोंके समान सुने कान फैला दिए हैं ॥ ३१ ॥
मेघको देखकर यक्ष उसे अपने विरहिणी परनीका परिचय
देता है कि 'श्रलकामें जो दुबली-पतली, नन्हें-नन्हें दाँतों-
वाली, पके हुए बिम्बाके समान लाल-लाल श्रॉलेंवाली,
पतली कमरवाली, डरी हुई हरिणीके समान श्रॉलेंवाली, गहरी
नाभियाली, नितम्बोंके बाफसे धीरे चलनेवाली और स्तनोंके
भासे कुछ आगेको सुकी हुई युवती इन्हें दिखाई दे उसे
संसारकी सब युवतियोंमें प्रह्लादकी सर्वश्रेष्ठ कृत समझना' ॥ ३२ ॥
शिव शिव ! प्रह्लादे यह क्या उत्पटौंग रचना की है कि ऊपर
बाँपेका समूह (केश) घनाया उसके नीचे पूरा चन्द्रमा
(मुख) बना दिया, उसके नीचे चक्रके जोड़ा (स्तन)
पैठा दिया, उसके नीचे रिक्त स्थान (कमर) छोड़ दिया,
उसके नीचे भँवर (नाभि) बना दी, उसके नीचे दा केंलेके
राम्ने (पैर) रखे कर दिए और नीचे दा कमल (चरण)
रखा दिए हैं ॥ ३३ ॥ चकित हरिणीके समान चञ्चल नेत्रोंवाली
यह नवेली आज जो संसारकी समस्त नवेलियोंकी सिरमौर ही
रही है उसका कारण यह है कि उसने तो अपने सुवाचनमें
कलार्पण सीमां किन्तु उसकी भीहोंने कामदेवके धनुषके साथ-साथ
पदलेसे धन्यधन कर लिया है ॥ ३४ ॥ दाँतोंकी चमक-रूपी मूलोंसे
सजी हुई, हाथ-रूपी पक्षीके मुशोभित घोर जूड़े रूपी भौंरोंके
समूहसे घिरी हुई गुग्गुनमयी इस समय धन्यन्त सुन्दर खनाके

समान प्रतीत हो रही है ॥ ३५ ॥ कामदेवका धनुष उस नवेलीके
भौहोंकी शोभासे अपना नाता जोड़ रहा है, उसके दाँतों नेत्र
कमलोंकी देखभाल कर रहे हैं और सम्पूर्ण सौन्दर्यवालोंको
जीतनेवाले उसके अश्रोंके आगे संसारका समस्त स्वर्ण मिला
और छोटा प्रतीत हा रहा है ॥ ३६ ॥ इस नवेलीके अश्रोंको
देखकर ऐसा जान पड़ता है कि संसारको नशानेवाले प्रह्लादके
मनमें जैसा जैसा भाव आता गया वैसा-वैसा इसका शरीर
भी बनता चला गया, जिससे श्रॉलें बढ़ी बढ़ी हो गईं, मुख
शरदके चन्द्रमा-सा सुन्दर हो गया, कन्धोंसे बाँहें झुक गईं,
कसी हुई छातीपर कठोर ऊँचे स्तन निकल आए, छाती
दोनों ओर खिच गई, कमर मुड़ी भरकी रह गई, जघन
नितम्बोंके बीचमें आ गया और उसके पैर ऊँची-ऊँची उँगलियों
वाले हो गए ॥ ३७ ॥ इस सुन्दरताकी खान नवेलीको देखकर
ऐसा जान पड़ता है कि इस सुन्दरताके ससुन्दरका शीघ्र ही
मन्यन हानेवाला है क्योंकि इसकी दृष्टि ही मदिरा (मनवाला
यना देनेवाली) है, इसकी मुसबान ही अमृत है, इसका मुख
ही चन्द्रमा है, इसके दोनों स्तन ही ऐरावत हाथी हैं, इसकी
श्रॉलें ही मधुलियों हैं, इसकी कृपा ही पञ्चन्तरि है, इसके
शरीरकी शोभा ही लक्ष्मी है, इसके वटपर यनी हुई तीन
सिद्धिद्वन्द्वें ही लहरें हैं और नाभि ही पानीकी भँवर ही ॥ ३८ ॥
इन मदनमें नयनोंवाली नवेलीमा जो सौन्दर्य हमारी श्रॉलेंको
शीतल कर रहा है और जिसके सुन्दरताकी कोई मनसे भी
थाह नहीं पा सकता उसका सौन्दर्य हृदयको जिलाए भी जा
रहा है और जलाए भी जा रहा है ॥ ३९ ॥ उसको श्रॉलें

कार । भ्रूविश्रान्तिर्मदनधनुषो विभ्रमानन्वयादीहृक्प्र-
ज्योन्क्त्वा शय्यवररुचं दृषयामास तन्याः ॥ ४० ॥
नेत्रोपान्तवर्तसिते श्रनिपुटे गोलोत्पलं निष्फलं हासश्री-
परिक्रमिसे स्तनतटे हागेऽन्यहागः कथम् । पिएडाल-
ककपातनं चरणयोः पीडाफलं ताप्रयोर्वामाभ्या यषुपि
स्वभावधनुस्रमौ व्यर्थानुलेपव्यथा ॥ ४१ ॥ पदाभ्यामुद्भि-
द्रामधरयति शोणाम्बुजरुचि करभ्यामादत्ते नयकिस-
ल्लयानामरुणताम् । प्रवालस्य च्छायां दशनवसनप्रेष
पिवति स्मितज्योन्क्त्वापूरैरुपहसति कान्ति हिमरुचेः
॥ ४२ ॥ पदे वाक्ये प्रमाणे च परां काष्ठामुपागता ।
श्रतो विद्वज्जनस्यापि स्पृहणीया मृगेलणा ॥ ४३ ॥
पानायाधरतोऽमृतं वसतयेऽप्यस्या स्तनवमाधरोऽ-
धस्तास्तजघनान्तकन्दरधरः सप्याय चक्षुर्मृगः ।
जप्यो मन्त्रधरो मनोहरकथा ध्यानाय वक्राम्बुजञ्जेत्थं

देहतपःस्थले सति कथं सन्तो घनान्तं गता ॥ ४४ ॥
मत्यङ्गमस्यामभिनेन रत्नां कर्तुं मघोनेव निजास्त्रमस्ति ।
यज्ञञ्च भूयामणिमृतिधारि नियोजितं तद्युतिनाशु-
कञ्च ॥ ४५ ॥ फलायते कुचद्वन्द्वमियं हेमलतायते ।
अङ्गानि कुसुमायन्ते मनो मे भ्रमरायते ॥ ४६ ॥ वन्-
कयन्धुरधरः सितनेतकामं चक्षुर्मधूकलिनमधुरः
कपोलः । दन्तायली विजितदाडिमयीजराजिरास्यं
पुनर्विकचपङ्कजदत्तदास्यम् ॥ ४७ ॥ बाहू हां च
मृणालमास्यकमलं हावयलीलाजलं श्रोणीतीर्थशिला
च नेत्रशफरीधम्मिल्लशैवालकम् । कान्ताया स्तनचक्र-
घाक्युगलं कन्दर्पवारानलैर्द्वेषानामवगाहनाय विधिना
रम्यं सरो निर्मितम् ॥ ४८ ॥ भ्रूयुग्मसुखैर्धुरुज्जि-
तज्यं बाणाः कटाक्षाः कुटिला नितान्तम् । तथापि
यूनां हृदयं भिनत्ति कोऽयं विलासो युवतीजनस्य

नीले कमलको और उसके स्तन हाथीके मस्तकको निरन्तर
चुनौनी दे रहे हैं, उसकी भौंहे कामदेवके धनुषको तुच्छ कर
रही हैं और उसके मुखकी शोभा चन्द्रमाकी चाँदनीको फीकी
फिप डाल रही हैं ॥ ४० ॥ तिरछी चितवनवाली जिस नवेलीके
कान उसके नेत्रोंकी कोरसे ही पर्याप्त मुशोमित हैं उन्हें नीले
कमलसे सजाना और जिसके स्तन उसकी हँसीकी चमकसे
ही सजे हुए हैं उनपर हार पहनाना व्यर्थ है । इसी प्रकार
उसके जो चरण स्वभावसे ही लाल हैं उनमें महावरका बोक
बाँधनेसे उसे कट ही होगा और उसके जिस शरीरसे स्वामाविक
सुगन्ध निकलती है उसपर चन्दन खादि लगाना निरर्थक ही
है ॥ ४१ ॥ वह नवेली अपने पैरोंकी ललाइसे गिले हुए लाल
कमलोंकी शोभाको नीचा दिवा रही है, उसके हाथोंकी
लालिमासे नई कोपलोंकी ललाइ फीकी जान पड़ रही है,
उसके लाल-लाल श्रोणोंसे मूँगकी लालिमा मन्द पड़ रही है
और उसकी मुसकानकी चाँदनी चन्द्रमाकी चाँदनीकी हँसी
उड़ा रही है ॥ ४२ ॥ वह नायिका पद (पैरोंकी चाल), वाक्य
(बोलती) और प्रमाण (उँचाई में श्रत्यन्त बढ़ गई है
हमलिये भी, वाक्य और प्रमाणका पाण्डित्य प्राप्त करनेवाले
विद्वान् भी उस मृगनयनीको इतना चाहते हैं ॥ ४३ ॥ मेरा
समकर्म नहीं थाता कि इस नवेलीकी देहरूपी तपोभूमिमें
जन् साधु-सन्तोंको पीनेके लिये अपराधमृत, ऊँचाईपर रहनेके
लिये स्तनरूपी पर्वत, भीतर बन्द हाँकर रहनेके लिये
जवनरूपी गुफा, मिश्रताके लिये नेत्ररूपी मृग, जप करनेके

लिये उसकी मनोहर चर्चके मन्त्र और ध्यान करनेके लिये
उसका सुन्दर सुगन्ध कमल ही है तब वे लोग वनमें क्या
करने जाते हैं ॥ ४४ ॥ इस नायिकाने अपने प्रत्येक अङ्गपर जो
हीरके आभूषण पहने हैं उन्हें देगकर प्रतीत होता है कि इस
नवेलीके प्रत्येक अङ्गकी रक्षा करनेके लिये इन्तने हन हीरोंके
रूपमें अपना वज्र स्थापित कर दिया है और उन हीरोंकी जो
गोल-गोल चमक है वही मानो इन्द्रका धनुष है जो उसके
अङ्गोंकी रक्षा करनेमें बज्रका साथ दे रहा है ॥ ४५ ॥ वह
नवेली सोनेकी लता बनती जा रही है, इसके अङ्ग अङ्ग फूलसे
खिले जा रहे हैं, इसके दोनों स्तन फलके समान बढ़ते जा रहे
और मेरा मन ही इसपर भँरा बना जा रहा है ॥ ४६ ॥ इस
नवेलीका नाँचेका ओठ जपातुसुमके समान लाल है, अर्धों
स्वच्छ केवड़ेके फूलके समान खिली हुई हैं, गाल मधुवेकी
कलीके समान गोल हैं, दाँतोंकी पंक्ति धनारके बीजोंकी नाँचा
दिला रही है और इसका हँसता हुआ मुख गिले हुए कमलको
लजा रहा है ॥ ४७ ॥ इस नवेलीको सुन्दर तालाव समकना
चादिप जिसे ब्रह्मने कामके याणोंकी अग्निसे जले हुए लोगोंको
हुबकी लगानेके लिये बना दिया है और जिसमें दोनों वीहें ही
कमलको गाल हैं, मुख ही कमल है, सुन्दरना ही जल
है, नितम्ब ही चहान है, अर्धों ही मड़लियाँ हैं, केगपाग
ही सेवार है और स्तन ही चकवा-चकवा हैं ॥ ४८ ॥ जियोंको
न जाने कैसी निराली कला आती है कि वे अपनी भौंहोंके
विना डोरीवाले धनुषसे चितवनके टेढ़े ही बाण बजाकर

॥ ४६ ॥ भृश्विजरेखा च तिलोत्तमास्या नासा च रम्भा च यद्वन्दुसृष्टिः । दृष्टा ततः पूर्यतीयमेकानेकाप्सरः-
प्रेक्षणकौतुकानि ॥ ५० ॥ भृङ्गालीमुदरे क्षिपन्ति शतशः
पद्मानि शशीमिव प्रत्यागच्छन्ति लङ्घनार्थमजकृद्योमा-
ङ्गलं चन्द्रमा । वक्रोष्णपद्मे कुरङ्गसुदशकूलोक्थरूपो-
द्ये प्रत्यावर्तनवाञ्छयेव कति न क्लेशं समातन्वते
॥ ५१ ॥ मधुरः सुधावदधरः पल्लवतुल्योऽतिपेलवः
पाणि । चकितमृगलोचनाभ्यां सदृशी चपले च लोचने
तस्याः ॥ ५२ ॥ मध्यं विष्णुपदं कुञ्चौ शिवपदं वक्रं
विधातुः पदं धम्मिल्लः सुमन पदं प्रविलसत्काञ्ची
नितम्बस्थली । वाणी चेन्मधुराधरोऽरुणधर श्रीरङ्ग-
भूमिर्वयुस्तस्याः किं कथयामि पुण्यचरितं मान्या
सदा निर्जरैः ॥ ५३ ॥ मुक्ता विद्रुममन्तरा मधुरसः

पुपं परं धूर्ध्वं प्रालेयद्यतिमण्डले खलु तयोरेकासिका
नारुणैः । तद्योदञ्चति शङ्खभूमिं न पुनः पूर्वाचलाभ्य-
न्तरे तानीमानि विकल्पयन्ति त इमे येषां न सा
दृक्पथे ॥ ५४ ॥ मुखं यदि किमिन्दुना यदि चलाञ्चले
लोचने किमुत्पलकदम्बकैर्यदि तरङ्गमङ्गी भ्रूवौ । किमा-
त्मभवधन्वना यदि सुसंयताः कुन्तलाः किमिन्दुवह-
डम्बरैर्यदि तनूरिर्यं किं श्रिया ॥ ५५ ॥ मुखेन चन्द्र-
कान्तेव महानीलैः शिरोरुहैः । पादाभ्यां पञ्चरागाभ्यां
रेजे रत्नमयीव सा ॥ ५६ ॥ यतो यतोऽङ्गादपयाति
कञ्चुकं ततस्ततः स्वर्णमरीचिवीचयः । यतो यतोऽस्या
निपतन्ति दृष्टयस्ततस्ततः श्यामसरोजवृषयः ॥ ५७ ॥
यत्तीर्थोम्बु मुखाम्बुजासवरसो नेत्रे नवेन्दीवरे दन्तध्रे-
शिरःप्रण्डिताक्षतचयो दूर्यां च रोमावली । उजुङ्गं च

युवकोंके हृदय चेष डालती हैं ॥ ४६ ॥ इस नवेलीको देख
लेनेपर अनेक अप्सराओंके दर्शनकी सब उमङ्ग डण्डी पड़ जाती
है क्योंकि इसकी भाँह ही चित्रेस्ता नामकी अप्सरा (सुन्दर
देवतावाली) है, इसकी नाक ही तिलोत्तमा (तिलके फूलसे
भी सुन्दर, तिलोत्तमा अप्सरा) है और इसकी जाँँ ही रम्भा
(केला, अप्सरा) है ॥ ५० ॥ उस मृगनयनीके जिस मुखने
सप्सराकी सगुण्यं सुन्दरता खींच ली है उसे लौटा लेनेके लिये
कौन कौन व्याकुल नहीं हो रहे हैं ? देखो, उस नायिकाके
मुपपर सुन्दर काले नेत्र दैप्रसर कमलोंको भी यह चाव उठा
कि मैं भी वीसा ही सुन्दर बन जाऊँ और इसीलिये वे छुरीके
समान कट देनेवाले भौंँके समूहको धपने पेटमें बसा रहे हैं ।
उपर चन्द्रमा भी उसके मुखकी चमक पानेके लिये दार-दार
घातार-रुपी श्रान्तमें घा जा रहा है ॥ ५१ ॥ इस नवेलीका
नाथका धोड़ धमृतके समान मधुर है, उसके हाथ पतेके समान
अच्यन्त कोमल हैं और उसके नेत्र चकित हरिणके नेत्रोंके
समान चञ्चल हैं ॥ ५२ ॥ इस नवेलीकी कमर विष्णुपद
(शून्य) है, इसके स्तन शिवपद (कैलासके समान उठे हुए)
हैं, इसका मुख मङ्गलाका स्थान (कमलके समान खिला हुआ
और सुन्दर) है, इसका जूड़ा देवताओं (पूजों) का स्थान
है, इसके निवर्णमें काञ्ची (करपनी, काञ्ची नगरी) है, इसकी
नापर वाणी ही सरस्वती है, इसके अघर अरण्य (सुन्य)की
खलिमा) धारय किए हुए हैं तथा इसकी दह भी रङ्गभूमि
(अधुनीका नृत्यस्थल, शोभाके पूर्ण) है । इसलिये जिसका
आदर देवताउठ करते हैं उसके पवित्र आचारपद्धि भी क्या

वतानेकी आवश्यकता है ॥ ५३ ॥ जिन लोगोंने उस नवेलीको
भर आँख नहीं देला है वे उसे दूरसे देखकर ऐसा ही तर्क
करते हैं कि मोती (द्वैत) और मूँगमें (छोटोंके बीचमें ही
वास्तविक मकरन्द) अथरामृत रहता है, फूल तो केवल
मकरन्दका भार ढोते हैं । ये मोती और मूँग भी चन्द्रमण्डल
(सुख) में साथ-साथ रहते हैं समुद्रमें नहीं और पर
चन्द्रमण्डल भी शङ्ख (गले) के ऊपर है, उदयावधपर नहीं
॥ ५४ ॥ जब इस नवेलीका सुख है ही तब चन्द्रमात्रा क्या
प्रयोजन है, इसकी चञ्चल आँखोंके आगे नीलकमलका क्या
मूल्य है, इसकी तिरङ्गी भाँँके होते हुए कामके धनुषकी
क्या आवश्यकता है, इसके सुन्दर बँँके हुए जूँँके आगे मेघ
भी व्यर्थ हैं और जब इस नवेलीका यह सुन्दर शरीर है ही तब
लक्ष्मीकी कोई आवश्यकता नहीं ॥ ५५ ॥ चन्द्रमाके समान
चमकीले (चन्द्रकान्त मणिके समान) मुखसे, धार्यन्त नीले
(महानीलमणिके समान) काले धालेंसे और पञ्चराग (पोलराज)
के समान पैरोंसे वह ऐसी जान पडती है मानो रत्न जड़ी ही
॥ ५६ ॥ इस गोरी नवेलीके जिस जिस अङ्ग परसे साड़ी
हटती है यहाँ-यहाँसे सुनहरी किरणोंकी लहरें निकलने लगती
हैं और जिधर जिधर वह देरती है उधर-उधर नीले कमलोंकी
धर्पा होने लगती है ॥ ५७ ॥ जान पडता है कि इस नवेलीने
अपने शरीरके अङ्गोंमें ही कामदेवकी पूजाके लिये सब
सामग्री जुटा ली है क्योंकि इसके मुगुरुपी कमलका रस ही
गंगाजल है, इसके नेत्र ही नये नीले कमलके पूल हैं, इसके
दर्नोंकी पंक्ति ही सद्देवायल (अचल) है, इसकी रोमावली

कुचद्वयं फलयुगं पात्रं कराम्भोरुहं तन्मन्ये मदनाच-
नार्हितमतिः स्वाङ्गीपहारैरियम् ॥ ५८ ॥ यशः पदाहु-
ष्टमुपौ मुपञ्च विभक्तिं पूर्णोच्चतुष्टयं या । वहाचतु-
पष्टिर्ष्येति वासं तस्यां कथं सुध्रुवि नाम नास्याम्
॥ ५९ ॥ येनोत्पलानि च शशी च मृणालिकाश्च रम्भा-
लताश्च कमलानि च निर्मितानि । नूनं स एव मृगशा-
वदशोऽपि वेधाः सृष्टिर्भो यद्यमेकतया चकास्ति
॥ ६० ॥ राजीव जीयसि मुधा न सुधाकर त्वमस्या-
स्समः पदनस्य कुतो मुखस्य । अग्रे दशोर्मुगदशः
कतम कुरङ्गस्तत्खञ्जन त्वमपि किं जनरञ्जनाय ॥ ६१ ॥
वक्रं निर्मलमुद्रता वुचतटी मध्यप्रदेशः कृश श्रोणी-
मण्डलमङ्गनाकु लगुरोर्देवस्य सिंहासनम् । कृत्वा चारु-
दशश्चतुष्टयमिदं तुष्टाय मन्ये विधिर्हर्षाद्भद्रदगचपय-
चनागर्भेश्चतुर्भिर्मुखैः ॥ ६२ ॥ वक्त्रे गुरुत्वं यदि ते

छन्दःशास्त्रविदो विदुः । कठिने कुचयुग्मेऽस्याः चद्रतां
किमु हीयते ॥ ६३ ॥ वहत्यस्या दृष्टिर्निश्चनजनीलो-
त्पलतुलामप्यण्डम्याभिरुषां चदनमिदमिन्द्रोः फल-
यति । कुचौ किञ्चिन्मीलकमलतुलनां कन्दलयतस्त-
मःशोभां चित्रं चितुरनिकुरम्यं हि कुरते ॥ ६४ ॥
वापी कापि स्फुरति गगने तत्परं सूक्ष्मपद्या सोपाना-
लोमधिगतयती काञ्चनीमैन्द्रनीली । अग्रे शैली सुरति-
सुगमो चन्दनच्छुन्नदेशो तत्रत्यानां सुलभममृत सन्नि-
धानात्सुधांशोः ॥ ६५ ॥ विरुसन्नेजनीला-जे तथा
तन्व्याः स्तनद्वयी । तव दत्तां सदा मोदं लसत्तरलहा-
रिणी ॥ ६६ ॥ चिनेयाम्भोवाहं वहलरुचिदोतामरतला-
त्तडिल्लेखा हेमद्युतिविततिरम्या विलसति । विनैत्र
स्वर्गङ्गां नभसि रभसत्र्यप्रशफरीपरीवर्त्तस्वार्यं स्फुरति
चिकचेन्द्रीवरवनम् ॥ ६७ ॥ वेषीन्धमहीनं कृष्णं

ही दृक्के शैकुने हैं, इसके दोनों बड़े-बड़े स्तन ही फल हैं और
इसके कर-कमल ही पचपात्र है ॥ ५८ ॥ जन इस नवेलीमें
एक तो उसके यशका चन्द्रमा, पैरके शैगुठीके नलोंके दो चन्द्रमा
और मुखरूपी एक चन्द्रमा मिलकर चार चार चन्द्रमा हैं तब
इस सुन्दर भौंहोंवाली नायिकामें सोलह कलावाले चन्द्रमासे
चौगुनी अर्थात् चौसठ कलाएँ क्यों न निवास करें ॥ ५९ ॥
जिस ब्रह्माने नीला कमल, चन्द्रमा, कमलनाल, कैला तथा
कमल बनाया उसीने यह हरिणके वन्चेकी श्रौंणोंके समान
नेत्रोंवाली नायिका भी बनाई है क्योंकि इन सभीके बनानेवा
ब्रह्म एक-सा ही है अर्थात् ये सभी कोमल और मनोहर
हैं ॥ ६० ॥ हे कमल ! इस नायिकाके रहते तुम व्यर्थ जी रहे
हो । हे चन्द्रमा ! तुम जब इस नवेलीके पैरके नलकी भी
बराबरी नहीं कर सकते तब मुलकी बराबरीकी तो बात ही क्या
है ! इस मृगनयनीकी श्रौंणोंके सामने हरिणकी क्या विज्ञात है !
हे राजन ! तुम भी क्यों व्यर्थ लोगोंको प्रसन्न करनेकर प्रयत्न
कर रहे हो क्योंकि तुम्हारा भी उसके नेत्रोंके सामने कोई
महाव नहीं है ॥ ६१ ॥ जब ब्रह्माने उस नवेलीके शरीरमें सुन्दर
मुख, ऊँचे स्तन, पतली कमर और खियोंके कुलगुण कामदेवका
सिंहासन नितम्ब बना लिया तब वे इतने फूले नहीं समाए
और अपने चारों सुल्लोंसे गद्य और पद्यमें स्वयं अपनी प्रशंसा
करने लगे ॥ ६२ ॥ छन्द शास्त्रके पठित लोग यदि तुम्हारे
वक्त्र (मुँह) तथा वक्त्र (शब्द) में गुरुता (महाव और गुरु-
मात्रा) मानते हैं तब इस नायिकाके दोनों कठोर स्तनोंमें

लोग गुरुता (विशालता) बताते हैं तो उनका अपराध ही
क्या है । क्योंकि जब वक्त्र शब्दमें सयुक्ताचर 'व' के पहले
आनेवाला 'व' अक्षर गुरु हो सकता है तब जो स्तन एक साथ
दो हैं वे गुरु (दीर्घ) क्यों न कहलायें ॥ ६३ ॥ इसकी
चितवन खिले हुए नीले कमलके समान जान पड़ रही है,
इसका मुल पूरे चन्द्रमाके समान शोभा दे रहा है इसके स्तन
मुँदे हुए कमलके समान दिखाई पड़ रहे हैं और इसके केश
अन्धकारकी विचित्र शोभा फैलाते हैं ॥ ६४ ॥ एक सुन्दरीकी
देहकर कवि कल्पना करता है कि आन्धर (सूक्ष्म तथा
अलक्षित कमर) में एक यावडी (नाभि) है, उसके ऊपर
सोनेकी सीखियों (उदरकी त्रिवली) से सजी हुई इन्द्रनील-
मखिकी बनी सक्की बटिया (रोमावली) है । उसके ऊपर
स्वभावसे ही सुन्दर पर्वत (स्तन) हैं जो चन्द्रमा (मुल) के
समीपतक पहुँचे हुए हैं । धरा जो वहाँ पहुँच जाता है उसे
अमृत (अक्षररस) अनायास मिल ही जाता है ॥ ६५ ॥
उस नवेलीके चमकते हुए चञ्चल तथा मनोहर नेत्ररूपी दो
नीले कमल तथा हिलते हुए हारसे सुशोभित उसके दोनों
स्तन तुम्हें सदा आनन्द दें ॥ ६६ ॥ एक नवेलीकी सुन्दरता
और उसकी श्रौंणोंका वर्णन करते हुए कवि कहता है कि
'बिना बादलके ही सुन्दर स्वच्छ अमरतरल (आकाश, वरुणके
नीचे) से सानेके समान दमकती हुई बिजली (शरीरकी
गौराई) चमक रही है और आकाश-गगनके बिना ही आकाश
(ऊपर मुल) में सहसा डरी हुई मद्युतियों (श्रौंणके फीयों)

नेघ्रान्तमचलरूपं तम् । कुचमस्याः स्वीकुर्वन्पुरुषो
लीलां बहृत्यहो शम्भोः ॥ ६८ ॥ वेणी विडम्बयति
मत्तमधुप्रतालीमङ्गीकरोति गुणमैन्दवमास्यमस्याः ।
याह मृणाललतिकाश्रियमाश्रयेते पुहानुपङ्कयति काम-
शरान्कटाक्षः ॥ ६९ ॥ वेणीवैरलनमङ्गलं किमु बलन्ने-
लीदशो मध्यमं संव्यानं किमिदं चित्कृत्तविपमाद्वासः
स्तनात्स्नंसेते । नृत्यन्तीव किमन्तिके चलितयोः स्निग्धा
दशोः कान्तयः साकृतस्मितगर्भितं किमु मुखं वक्तुं
सखीं वाञ्छति ॥ ७० ॥ व्याकोशकोकनदशोकफरः
करोऽयं खेलच्चकोमदचोरमिदञ्च चतुः । उद्भिन्नवि-
द्रुमरहस्यहरोऽधरोऽयं तस्यादराण्यमपि वषयमवश्य-
मस्याः ॥ ७१ ॥ संन्यस्तभूपापि नवैव नित्यं चिनापि
हारं हसतीव कान्त्या । मदं चिनापि स्वलतीव भावै-

वाचं विना व्याहरतीव दृष्टा ॥ ७२ ॥ सर्वोपमाद्रव्य-
समुच्चयेन यथाप्रदेशं विनिवेशितेन । सा निर्मिता
विश्वसृजा मयत्नादैकस्थसौन्दर्यदिदृक्षयेत् ॥ ७३ ॥ सा
कान्ता यदि का सुवर्णलतिका पादौ यदाऽस्या पुन
किं पशं कुचमण्डलं यदि पुनः कल्पद्रुमीयं फलम् ।
पाणी चेत्किमु तर्हि विद्रुमदलं वाणी यदा का सुधा
तस्याञ्चन्नु सद्गमः किमु पुनः स्वर्गोऽधिकं स्यात्सुखम्
॥ ७४ ॥ सा दुग्धसुग्धमधुरच्छुविरङ्कयधित्से लोचने
तरुणकेतकप्रपद्मीये । कन्वोविडम्बनकाश्च स एव
फण्डः सैवेयमिन्दुवदना मदनापुषं वा ॥ ७५ ॥ सा
दृष्टा यैर्न वा दृष्टा मुपितास्सममेव ते । हृदयं हृत्तमे-
केयामन्येषाञ्चलुपोः फलम् ॥ ७६ ॥ सा रामणीयकनि-
धेरधिदेवता वा सौन्दर्यसारसमुदायनिकेतनं वा ।

के फरकनेके साथ खिला हुआ मीलकमल (शॉलॉकी फलकें) का
पन दियाई पद् रहा है' ॥ ६७ ॥ जो पुरुष उस नवेलीके
चोटी-रूपी सर्पको, उसके काले नेत्रोंके कोर-रूपी कृष्ण (बिन्दु)
को और उसके स्तन रूपी पर्वतको धारण कर लेता है वह
साधारण शिवजीके समान बन जाता है क्योंकि शिवजी शरीरपर
सर्प धारण करते हैं, हृदयमें बिन्दुका ध्यान करते हैं और कैलास
पर्वतपर निवास करते हैं ॥ ६८ ॥ इस नवेलीकी चोटी देखकर
मतवाले भीरोंका भ्रम हो जाता है, इसके मुखने चन्द्रमाके सब
गुण हथिया लिए हैं, इसकी बाँहें कमलनालके समान हैं और
इसकी घितवन कामदेवके घाणोंका काम करने लगी है ॥ ६९ ॥
धपनी सबीसे बात करनेके लिये जाती हुई नवेलीकी देखकर
कवि कहता है कि 'उस मृगनयनीकी लहराती हुई चोटी क्या
कमर-रूपी भाँगनकी घोर बड़ी जा रही है ? इसके शरीरकी
ढकनेवाला पक्ष क्या इसके स्तनोंसे नीचे सरका जा रहा है ?
क्या इसके शॉलॉकी सुन्दर शोभा इसकी चम्रल चितवनके पास
नाच रही है ? और क्या इसका भेद और मुस्कान-भरा मुख
सप्रीसे लुप्त बोलनेके लिये उतावला हो रहा है ?' ॥ ७० ॥ इस
नवेलीने मिश्रण ही सारे जंगलको धपने वशमें कर लिया है
इसीसे तो इसके हाथोंने सिले हुए कमलको चिन्तामें डाल
दिया है, इसके नेत्रोंने खेलते हुए चरोरका धमिमान घूर किया
है और इसके ये धपन पके हुए मूँगेकी शोभाको भी नीचा
दिया रहे हैं ॥ ७१ ॥ वह नवेली विना भूपयोंके भी सदा
बढ़ती खगती है, विना हार पढ़ने भी वह धपनी सुन्दरतासे
ही हँसती-सी जान पड़ती है, मदका सेवन न करनेपर

भी वह डगमग पैर रखती चलती है और विना बोले ही
देखनेपर ऐसी जान पड़ती है मानो वह बातचीत कर रही
हो ॥ ७२ ॥ ब्रह्माने एक ही स्थानपर सब सौन्दर्य देवनेकी
दृच्छसे श्रयन्त परिश्रम करके उस नवेलीका निर्माण किया
है और इसीलिये उसके शरीरमें यथास्थान उपनाके सब पदार्थ
इकट्ठे करके स्थापित कर दिए हैं ॥ ७३ ॥ उस प्रियतमाकी
देहके सामने सोनेकी लताका क्या मूल्य है, उसके पीरोंके प्रागे
कमलका क्या महत्व है, उसके स्तनोंके समुत्पल कल्पवृषके
फल किस कामके हैं, उसके कोमल हाथोंके सामने मूँगेके बने
हुए पर्लौका क्या आदर हो सकता है और उसकी मधुर बोलनेके
सामने अमृत लेकर क्या होगा ? ऐसी श्रुतपम सुन्दरताका
यदि कहीं सम्भोग मिल जाय तब क्या स्वर्गमें उससे बढ़कर
सुख देनेवाली कोई वस्तु मिल सकेगी ॥ ७४ ॥ इस नवेलीकी
देहरूपी लतामें दूषके समान स्वच्छ और मधुर शोभा है,
इसके नेत्र केतकीके सिले हुए फूलकी पंजुदियोंके समान बढ़े
बढ़े हैं और इसका गला गहूँके समान सुन्दर है । इसे देखकर
यह सन्देह होता है कि यह बड़ी चन्द्रमुषी है या कामदेवका
कोई नया पक्ष है ॥ ७५ ॥ उस नवेलीको जिन्होंने देना है
ये भी ठगे गए और जिन्होंने नहीं देया ये भी, क्योंकि जितने
देया उसका तो मन हरण कर लिया गया और जिसने नहीं
देया उसकी चॉलौका जन्म लेना ध्वय हो गया ॥ ७६ ॥ उन
नवेलीको देखकर ऐसा लगता है कि या तो वह सुन्दरतारा
राज्य करनेवाली उसकी ध्यामिनी है या सुन्दरताके सब
सप्योंका एकमात्र भयदाह है । देवो मित्र ! तुमने तो ऐसा

तस्यास्तखे नियतमिन्दुसुधामृणालज्योत्स्नादि कारण-
मभ्युन्नदन्श्च वेधाः ॥ ७७ ॥ सौरभ्यं मृगलाञ्छने यदि
भवेदिन्द्रोचरे चक्रता माधुर्यं यदि विद्रुमे तरलता
कन्दर्पचापे यदि । रम्भायां यदि विप्रतीपगमनं प्रातोप-
मानं तदा तद्वक्त्रं तदुदीक्षणं तदधरन्तस्त्रुत्नदुरुगुग्म
॥ ७८ ॥ सौरभममोहहृद्यमुलस्य कुम्भाविद्य स्तनौ
पीनौ । हृद्यं मद्यति वदनं तव शग्दिन्दुर्यथा घाले
॥ ७९ ॥ स्निग्धमेरविलोलमुग्धमधुरा यन्नेत्रयोर्विभ्रमा
यद्यामृष्टविलासपत्रलतिका धर्माद्रमाद्गडयोः । यच्च
प्रोढकदम्बकुडुमलसर्गौ काप्यङ्गके विक्रिया तत्तस्यां
किमपि स्फुटं रतिपतेः कोदण्डविस्फुजितम् ॥ ८० ॥
स्निग्धेन्द्रोपलसुन्दरः कचभरो यत्रं सगोत्रं विधोर्व-
ज्ञौजौ मणिकुम्भहम्बरमुपां मथ्योऽस्ति वा नास्ति वा ।
श्रीणीमण्डलमूरुदुर्बहमहो शोणाञ्जतुल्ये पदे मन्ये

मञ्जुगिरो मरालमहिलाप्येयो गतेर्विभ्रमः ॥ ८१ ॥

नायिकाप्रशंसा

अञ्जनमिपतः स्त्रीणां दृशोर्विपं शब्ददायसति ।
कथमन्यथा तदीपपतातेऽपि हता युवानः स्युः ॥ १ ॥
अभविष्यंस्तपःसिद्धाः स्रष्टारो बहवः परे । नास्त्र-
च्यन्त कुरङ्गाव्यो यदि नाम मनोहराः ॥ २ ॥ अमृष्टे
राहुमीत्याऽहनि निशि च समे कल्पपच्छाययोनिहास-
त्रासाद्धिदूरे समुपचितविभावैभ्ये हृद्यगन्धे । पायो-
दाच्छादहीने घग्णितलगातादुल्लभे सर्वलोकाह्लादं
चाप्यादधाने सुमुखि तव मुखौपम्यलेशः सुधांशौ
॥ ३ ॥ कान्ते त्वेत्रकान्तं पुरु कमलयनं त्वन्मुपम्यो-
पमैयश्चन्द्रः प्रत्यक्षसिद्धः पिककुलमपि च त्वत्स्वरस्था-
नुकारि । रम्भाकाण्डस्त्वदूरुच्छ्यविरपि सुलभः कन्व-
यश्च त्वदीयकण्ठाकाराः शिखण्डास्तव कचसदशास्त-

जान पद्ता है कि चन्द्रमा, अमृत, कमलकी डंडी और चाँदी
आदि सामग्रियों लेकर स्वयं कामदेवने ही ब्रह्मा बनकर
उसकी रचना की है ॥ ७७ ॥ यदि चन्द्रमामें सुगन्ध बस जाय,
कमलोंमें बाँधपन आ जाय, मूँगमें मिठाण भर जाय, काम
देवका धनुष दयालु हो जाय और केला उलटा हो जाय तब
कहीं वे सव उसके सुगन्ध, चितवन, निचले श्रोत्र, भौंह और
जोंबोंकी समानता प्राप्त कर सकेंगे ॥ ७८ ॥ हे प्यारी !
तुम्हारे सुगन्ध सुगन्ध कमलकी गन्धके समान है, तुम्हारे स्तन
पदके समान बड़े-बड़े हैं और तुम्हारा मुख शरदके पूर्ण चन्द्रमाके
समान हृद्यको आनन्दसे मन्त कर देता है ॥ ७९ ॥ उस
नखेलीके नेत्रोंकी चितवन प्रेमसे भरी, चञ्चल और मधुर
सुम्भानसे पूर्ण है, गालोंपर पर्वतीकी डूँडें आ निकलनेसे उनपर
बनी हुई सुन्दर चित्रकारी घुँघली पद्दती जा रही है और उसके
अङ्गोंमें पके हुए कदम्बके फूलके समान विगार (रोमाञ्च) आने
लगा है । अतः जान पद्ता है कि कामदेवके धनुषकी टङ्गा
उसके शरीरमें गूँज चुकी है ॥ ८० ॥ उस नखेलीके बाल
हृद्गनील मणिके समान चमकीले और नीले हैं, उसका मुँह
चन्द्रमाके समान चमकीला है, उसके स्तन मणियाँसे बने
हुए घर्षकी शोभाकी भी फीकी कर रहे हैं, उसकी कमर इतनी
पतकी है कि कहना कठिन हो रहा है कि वह है भी या नहीं,
उसके नितम्ब इतने भारी हो चले हैं कि ज्यों उन्हीं सँभाल
नहीं पारती । उसके पैर कमलके समान लाल हैं और उस
मिठशोरीकी चाल तो ऐसी है कि इन्जिनियों भी वैसी मनोहर

चाल सीगनेके लिये उसका मुँह जोहा करती है ॥ ८१ ॥

नायिकाकी प्रशंसा

द्वियोंके नेत्रोंमें जिसे आप काजल समझते हैं वह वास्तवमें
विप है इसलिये यदि उस विप (दृष्टि) के तनिकमें धू जाने-
मात्रसे ही युवक मरने लगते हैं तो आश्चर्य क्या है ॥ १ ॥ यदि
संसारमें मनोहर मृगनयनी बालार्द्र न रही गई होती तो आत्र
सिद्ध लोग तपस्या करके दूसरे ब्रह्मा बन जाते धर्मात् केवल
तपस्या करनेके ही कारण ब्रह्मानी ब्रह्मा नहीं बने हैं धरन्
वे इसलिये ब्रह्मा बने हैं कि उन्होंने सुन्दरी मारियोंकी सृष्टि
भी की है । साथ ही इन मृगनयनी बालाओंके कारण सिद्धोंकी
तपस्या नहीं पूरी हो पाती और वे ब्रह्मा नहीं बन पाते ॥ २ ॥
हे सुन्दर मुखवाली ! यदि कोई ऐसा निराळा चन्द्रमा उलपन्न
हो जाय जिसे राहुका हर धू भी न गया हो, जो दिन-रात
एक-सा बना रहे, जिसमें तनिक भी कलङ्की छाया न
हो, जिसकी कोई हँसी न उड़ा सके, जिसमें सदा पूरा प्रकाश
भरा रहे, जिसमें अत्यन्त मधुर गन्ध बसी हुई हो, जिसे
बादल कभी डक न सकें, जो धरतीपर सरलतासे प्राप्त हो
सके और जो समान रूपसे विश्वके सभी प्राणियोंको सुख
पहुँचा सके तब कहीं जाकर वह तुम्हारे सुखकी अङ्गुष्ठ
समानता प्राप्त कर सकता है ॥ ३ ॥ हे प्यारी ! अत्यन्त
श्रेष्ठ कमल तुम्हारे सुन्दर नेत्रोंके समान हैं, चन्द्रमा प्रत्यक्ष
ही तुम्हारे सुखके समान है, कोयलकी धूक तुम्हारे
स्वरके समान है, फेलेके रामे तुम्हारी जोंबों जैसे चिकने

त्कथं वेऽसमत्वम् ॥ ४ ॥ दृशः सञ्चारमात्रेण हरन्ति
सुदृशो मनः । यदि स्याज्जातु संश्लेषो जीवितेच्छा
पुनः कुतः ॥ ५ ॥ नान्यः स्यान्मादृश कश्चिद्विधाता
तपसोजितः । इत्येव विहिताः कान्ता मुनीनामपि
मोहदाः ॥ ६ ॥ नाभिर्वापी त्रिवलिः सोपानं रोमराजि-
रिन्द्रमणिः । ललिताङ्गया उच्चकूर्चो मदनशखरवन्ध-
मन्दिरामासौ ॥ ७ ॥ मनः सूक्ष्मं न तद्वर्षु शक्यं
शिवापि कीदृशी । अथापि सुदृशो धन्या दृष्टमात्रा
हरन्ति याः ॥ ८ ॥ मनसिजविहरणविपिनं युधजनम-
नसो वशीकरं शक्यम् । अमृतकलासर्वस्वं कुरङ्गशायक-
विलोलाक्षी ॥ ९ ॥ यष्टिनो काञ्चनी सा नहि सुरभि-
भृता नापि कस्तूरिका सा नो कान्ता नाञ्जिनी सा न
जड (ल) विरहिता नाप्युमा सा हि भीमा । नो

पद्मा सा न पद्मासनमनधिगता नापि गायत्र्यसौ यत्ता
नो वेदानिदानं जनयति नितरां मोहमेवेति केयम्
॥ १० ॥ लतायाः सौवर्ण्या जयति जलदीयोपरि घटा
ततोऽधोऽर्धश्चन्द्रः स्फुरति तदधश्चाम्बुजयुगम् ।
स्वभूयाश्रमेरी धिलसति पुनर्विद्रुमदलं ततः कम्बुवी-
णाध्वनिभरगभीरो यत महान् ॥ ११ ॥ घटोजातो
कोको घटनं राकाशरस्तुघालिन्धुः । तनुरेवं स्वर्णलता
तन्व्या हसितं स्मराखसम्भारः ॥ १२ ॥ वशिनो वष-
मित्यास्था तावदेव तपस्विनाम् यावन्न तदवशित-
पद्मयोर्लक्ष्यतां गताः ॥ १३ ॥ धामां मृषेव सुमुखीति
वदन्ति बालाः किं तन्न तच्चमिति न प्रतिभासते न ।
किं त्वीदृशा स्मृतवतामपि मार्गगानां संवधते सपदि
चेतसि कोऽपि दाहः ॥ १४ ॥ वामाः सुदृशः कथमिय

श्रीर गोल हैं, शङ्ख तुम्हारे गलेके समान सुन्दर है श्रीर
भोर तुम्हारे केश के समान हैं, तब यथाथो तुम्हारी समानता
कहाँ नहीं है ॥ ४ ॥ जो सुनयनी बालाएँ अपनी चितवन
चलाकर ही मन हर लेती है उनका यदि कहीं आलिङ्गन प्राप्त
हो जाय तब तो इतनी तृप्ति हो जाय कि जीनेतककी इच्छा
न रह जाय ॥ ५ ॥ प्रज्ञाने मुनिप्रांतकका मन मोहित
कर डालनेवाली तरुणियोंकी रचना मानो इस अभिमानसे की
कि कोई तपस्या करके भी सुभ जैसा रचयिता नहीं बन सकता
॥ ६ ॥ मनोहर बालाके सब अङ्ग अत्यन्त सुन्दर हैं । इसकी
नाभि मानो बावड़ी है, जिसके ऊपर बनी हुई तीन सलबटें
ही सीढ़ियाँ हैं, रोमावली ही इन्द्रनीलमणिते जड़ी हुई बटिया
है श्रीर उसके ऊँचे-ऊँचे स्तन मानो कामदेवके निवास्तेके
लिये ऊँचे शिखरवाले मन्दिर हैं ॥ ७ ॥ मन इतना सूषम
है कि किसी प्रकारकी शिषा पाकर भी कोई उसे बंध नहीं
सकता (जान नहीं सकता) किन्तु धन्य है वे सुनयनी नारियाँ
जो केवल देखने-मात्रसे उस मनको हर लेती हैं ॥ ८ ॥ कवि
सोचता है कि मृगके धुँनके नेत्राके समान चञ्चल नेत्रवाली
यह बाला कामदेवके विहारका उपवन है या युवकोंका मन
पैसनेवाला काई वन्य है या संपूर्ण कलाभ्रंसे भरा हुआ
अमृत है ॥ ९ ॥ एक नयेजाका देखकर कवि साधता है कि
'यह सोनेकी दुर्गा भा नहीं है, न यह सुगन्ध-भरा कस्तुरि
हो है, न यह विद्रु-लता ही है, न यह कमलिनी ही है
क्योंकि यह जल रहित नहीं होती, न यह पावती है क्योंकि वे
तो बहुत भयङ्कर (काली) हैं, यह लक्ष्मी भी नहीं है क्योंकि

पद्मासनपर नहीं बैठती है, यह गायत्री भी नहीं है क्योंकि उसका
ठिकाना बेदोंने भी नहीं बताया है, तब यह कौन है जो हमें
अपनी श्रीर आकृष्ट किए डाल रही है !' ॥ १० ॥ उस सोनेकी
लता (नयेली) की जय हो जिसके ऊपर (सिरपर) नेवकी
घटाएँ (केश) उमड़ रही हैं, नीचे आधा चन्द्रमा (माया)
धमक रहा है, उससे नीचे दो कमल (नेत्र) लिले हुए हैं,
उससे नीचे कामदेवकी विजय-यात्रामें वजनेवाली भेरी (नाक)
विराजमान है, उससे नीचे भूरेकी पंखुदियाँ हैं श्रीर उससे भी
नीचे वीणाके समान मधुर वाणवाला शङ्ख (गला) शोभा दे
रहा है ॥ ११ ॥ उस पतली कामिनीकी देह ऐसी सोनेकी
लता है जिसपर उठे हुए स्तन ऐसे लगते हैं मानो चक्रेका
जाड़ा पैदा हो, मुख ऐसा लगता है मानो उस लतापर लिला
हुआ शरद ऋतुका अमृतमय पूर्ण चन्द्र हो श्रीर जिसके
खिलते (हँसते) ही ऐसा जान पड़ता है मानो कामदेवने
अपने अख-शख संभाल लिए हैं ॥ १२ ॥ तपस्वियोंको सभी-
तक अपनी इन्द्रियों अपने वशमें समझनी चाहिए जपक
वे किसी युवतीके कमलनयनोंके आलेश नहीं बन जाते ॥ १३ ॥
वे लोग मूर्ख हैं जो सूटे ही नारीको 'सुमुखी' कहते हैं । हमें तो
प्राजतक यही समझमें नहीं आया कि उनमें सुमुखी होनेके
लक्षण क्या हैं । उलटे हमने तो यह देखा है कि विद्वानमें गपहुए
पथिक जाहों अपनी नारीको स्मरण करते हैं वहाँ वृत्त्य उनके
हृदयमें एक विचित्र दाह उत्पन्न हाकर बदन लगता है ॥ १४ ॥
केवल मूर्ख लोग ही इन मवेलियोंको सुनयनी कहते हैं क्योंकि
वे उलटे चालवाली नवेलियाँ हैंसे सुनयनी कही जा सकती हैं,

तथापि मूढा वदन्ति हन्त तथा । यद्दर्शनमुपयाताः । स्वभावसरलं धन्यानां शूदे कलनाशाम् ॥ २ ॥ स्वीया-
सकला विकला महान्तोऽपि ॥ १५ ॥ शृङ्गारसरसा-
शाला भव्याभरणा नितम्बधिस्तारा । रतिरिव परि-
स्फुरन्ती हरति न बाला मन कस्य ॥ १६ ॥ सान्दर्भ-
सारमपहृत्य यतस्ततोऽपि निर्माति पवनयनां द्रुहिणः
कथञ्चित् । ज्योत्स्नाकरादिषु यद्मन्तराचिरास्ते तत्स-
म्भयो हि तत एव न चान्यथा स्यात् ॥ १७ ॥ हेतिरिव
होलिकायां विद्युदिव द्योतमानकान्तिचया । शारदपा-
र्वणचन्द्रं विद्युद्यै निष्कासितेव सुतनुः ॥ १८ ॥

नायिकाभेदाः

स्वीयामुग्धा—कृतवालिकायाः प्रेक्ष्यं यौवनलाप-
यविभ्रमधिलासाः । प्रवसन्तीव प्रवसिते प्रागञ्च-
न्तीव प्रिये शहमागते ॥ १ ॥ स्वीयामुग्धा—हृसितमधि-
चारमुग्धं भ्रमितं विरहितविलाससुच्छायम् । भणितं

स्वभावसरलं धन्यानां शूदे कलनाशाम् ॥ २ ॥ स्वीया-
प्रपत्न्या—लज्जापर्याप्तमसाधनानि पगृह्णन्तिपिपासा-
नि । अचिनयदुर्मोक्षांसि धन्यानां शूदे कलनाणि ॥ ३ ॥
वधोमुग्धा—विस्तारी स्तनमार एव गमितो न म्बोचि-
तामुद्गतं रेणोऽनासिद्धतं बलिभयमिदं न स्पष्टनिज्ञो-
घतम् । मध्येऽस्या ऋजुपायतावर्कपिशा रोमावली
निमिता रम्यं यौवनशैशव्यव्यतिकरोन्मिध्र वधो वचते ॥४॥
कममुग्धा—दृष्टिः सालसतां विमर्त्सि न शिशुर्नो-
डासु चन्द्रादरा श्रात्रे प्रेषयति प्रवर्त्तितसपीसम्भागवा-
र्त्तस्वपि । पुंसामङ्कमपेतशङ्कमधुना नाराहति प्राग्वथा
बाला नूतनयावन्वथितकरावप्रभयमाना शनैः ॥ ५ ॥
रतनामा—व्याहृता प्रतिवचो न सन्दधे गन्तुमैच्छद्वयल-
म्बितंशुका । सेवत स्म शयनं पराद्भुषी सा तथापि
रतये पिनाकिनः ॥ ६ ॥ दृष्टा दृष्टमधो ददाति कुर्वते

जिनकी दृष्टि पढ़ते ही बड़ेसे बड़े लोग भी व्याकुल हो जाते हैं
॥ १५ ॥ यह सुन्दर धामुपयोसे सजी, बड़े-बड़े नितम्बोंगली
तथा रतिकी भाँति चमकनेगली बाला किसका मन नहीं
हर लेती जो शृङ्गार रसके मदिशालयके समान मदिरे हैं ॥ १६ ॥
महा इधर-उधरसे सौन्दर्यका तब सुतकर तब कहीं किसी
कमलनयनीका बनाता है । ये जो आकाशमें चमकनेवाले
चन्द्रमा आदि हैं वे सत्र भी तो उसी कमलनयनीसे उत्पन्न हुए
हैं और वहाँसे बने हैं, नहीं तो ये किसी दूसरे प्रकारके हाते
अर्थान् इतने न चमकते ॥ १७ ॥ यह सुन्दर देहवाली नवेली
पेरीं जान पदती है माने जलती हुई होलीकी चिनगारी हो
या चमकती हुई कान्तिले भरी निजली हो या शरद् ऋतुकी
पूर्णिमामें उदय हुए चन्द्रमाका पेट फाड़कर उससे निकाली
गई हो ॥ १८ ॥

नायिकाओंके भेद

मुग्धा स्वीया : इय लुलीन युवतीके यौवनकी सुन्दरता,
चमक - दमक और हाव -भाव तो देते कि जब उसका
प्राणप्यारा घर रहता है तब तो वे इस युवतीमें रहते हैं और
जब प्रियतम बाहर चलने लगता है तो वे उसके साथ ही
चल देते हैं ॥ १ ॥ स्वीया मध्या : वे लोग धन्य हैं जिनके
घरोंमें उनकी छियाँ सदा अनायास ही भौली हैंसी हैंसती
रहती हैं, बिलासकी सामप्रियोंसे रहित होकर भी वे प्रसन्न
धूमनी हैं और सदा स्वभावसे ही सरल तथा निरदुल बाणो
बोलती हैं ॥ २ ॥ स्वीया प्रसल्लभा : वे लोग धन्य हैं जिनके

घरकी छियाँ केवल उतना ही शृङ्गार करती हैं जितना लज्जा
रकनेके लिये पयास हो, वे इतनी वृत्त रहती हैं कि उन्हें किसी
वस्तुकी चाह नहीं रहती और जो कभी मनमें भी उदरद
नहीं होती ॥ ३ ॥ वधोमुग्धा : इस नवेलीकी यह क्रिया
और युवावस्थाके मिलनकी सुन्दर स्थिति चल रही है जिसमें
स्तनोंके फैलावका घेरा तो बँध गया है पर वे अपनी पूरी
ऊँचाईतक नहीं पहुँच पाए हैं, पेटपर त्रिवलीकी रेखाएँ
तो पड़ चुकी हैं, किन्तु वे भली-भाँति ऊँची-नीची नहीं हो पाई
हैं तथा बीचमें सीधी और लगी रोमावली तो बन गई है
पर वह अभीतक आधी भूरी ही है ॥ ४ ॥ काममुग्धा :
नये यौवनकी चहल-पहलसे भरी हुई उस नवेलीका धर्म
क्रमसे धीरे-धीरे आलस्य आने लगा है, छोटे-छोटे बच्चोंके
साथ खेलना उसे भा नहीं रहा है, सर्पियोंकी सम्भोग-
सम्बन्धी बातोंमें वह कान लगाए रहती और जैसे पहले वह
किसी भाँ पुरपके गोदमें निःशङ्क होकर चढ़ जाती थी वैसे अब
नहीं चढ़ती ॥ ५ ॥ रतनामा : यद्यपि शिवजीके बुद्ध पड़नेपर
पार्वतीजी उठर नहीं देती थीं और उठकर जानेको तैयार हो
जाती थीं पर उस समय उनके डीले वस्त्र रिसकने लगते थे ।
इसा प्रकार यद्यपि वे रोयापर कबूट बदलकर साँती थीं फिर
भी उनकी इच्छा यही होती थी कि शिवजीके साथ रति करें
॥ ६ ॥ काँई अपनी प्रेयसीका वर्णन करते हुए कहता है—
'मेरी प्रेयसी मिलते ही अपनी धाँसें नीचा कर लेती है, बार-बार
बाँसें देहनेपर भी एक शब्द नहीं बोलती, पहँगेपर साय

नालापमाभापिता शय्यायां परिवृत्य तिष्ठति चला-
दालिङ्गिता वेपथे । निर्यान्तीषु सखीषु वासमयनादि-
गन्तुमेवेहते जाता वामतयेव सम्प्रति मम प्रीत्यै
नवोद्धा प्रिया ॥ ७ ॥ मृदु श्रौणे—प्रथमजनिते वाला
मन्थौ विकारमजानती कितवचरिते नासज्याङ्गे चिन-
प्रभुजैव सा । चिवुकमलिकं चोन्नम्यौघैरकृत्रिमवि-
भ्रमा नयनसलिलस्यन्दिन्योष्ट्रे रुदत्यपि चुम्बिता
॥ ८ ॥ सा पत्युः प्रथमापराधसमये सख्योपदेशं विना
नो जानाति सविभ्रमाङ्गवलनावक्रोकिंसंस्खनम् ।
स्यच्छैरच्छकपोलमूलगतैः पर्यस्तनेत्रोत्पला वाला
केवलमेव रोदिति लुडल्लोलालकैरश्रुभिः ॥ ९ ॥
श्रन्त्येऽपि मुग्धाव्यवहारा—न मध्ये संस्कारं कुसुम-
मपि वाला विपद्यते न निश्वासेः सुश्रूञ्जनयति तरङ्ग-

व्यतिकरम् । नवोद्धा पश्यन्ती लिखितमिव भक्तुः प्रति-
मुखं प्ररोहद्रोमाञ्चान पिबति न पात्रञ्चलयति ॥१०॥
समधिकलज्जावती—दत्ते सालसमन्धरं भुवि पदं निर्याति
नान्त-पुराप्रोद्गामं हसति क्षणात्कलयते हीयन्त्रणां
कामपि । किञ्चिद्वावगभीरवक्रिमलस्रष्टुष्टं मनाग्भापते
सञ्भ्रमङ्गमुदीक्षते प्रियकथामुल्लापयन्ती सखीम् ॥ ११ ॥
मथ्यावाचनसुरता प्ररूढरमरा च—कान्ते तथा कथमपि
प्रथितं मृगाद्यवा चालुर्यमुद्धतमनोभवया रतेषु ।
तत्कृजितान्यनुवदङ्गिरनेकवारं शिष्यायितं गृह-
कपोतशतैर्यथास्याः ॥ १२ ॥ यौवनवती (प्ररूढ-
यौवना)—नेत्रे सखनगङ्गने सरसिजमर्त्यथि पाण्डुर्यं
यक्षोजौ करिकुम्भविभ्रमकरीमत्युन्नति गच्छतः ।
कान्तिः काञ्चनचम्पकप्रतिनिधिवाणी सुधास्पन्दिनी

बैठी भी है तो मुँह फेर लेती है, यदि मैं बलपूर्वक गले भी
लगाता हूँ तो बर्ष जाती है और उसकी सखियाँ जब उसे
अकेली छोड़कर भगवसे बाहर जाने लगती हैं तो वह भी उनके
साथ चलनेके लिये उठ जाती है । इस प्रकार मेरी नई
विवाहिता प्रिया जो यह सब उलटा आचरण करती है उससे
भी मुझे बड़ा सुख मिलता है' ॥ ७ ॥ मथुर कोपवाली :
किसी नवेलीका पति पहली बार जब किसी दूसरी स्त्रीसे
सम्भोग करके लौटा उस समय उस नवेलीकी यह तो ज्ञात
था नहीं कि अपने पतिपर क्रोध आनेपर क्या-क्या करना चाहिए
अतः वह अपनी भुजाएँ तो ढीली किए रही किन्तु पतिकी
गोदमें नहीं बैठी और श्रौं बहाकर रोने लगी । उस समय
उसके पतिने अपनी उस रोती हुई स्वाभाविक व्यवहार
करनेवाली प्रियतमाकी ढोड़ी उठाकर उसका श्रोत चूमकर उसे
मना लिया ॥ ८ ॥ जब उस नई नवेलीका पति दूसरी स्त्रीसे
सम्भोग करके लौटा उस समय उसे यह तो ज्ञात था नहीं कि
ऐसे पतिके आनेपर मुँह फेर लेना चाहिए और जली-कटी बातें
सुनानी चाहिएँ क्योंकि किसी सखीने ये बातें उसे सिखाई
ही नहीं थीं । किन्तु वह अपने सुन्दर गालोंपर गिरते
हुए और घुँघराके बालोंसे उलके हुए मोंतियोंके समान स्वच्छ
भाँसे बहाकर ब्याजुल होकर केवल रोती रही ॥ ९ ॥
मुग्धाके अन्य व्यवहार : वह नई ब्याही हुई सुन्दर
भाँसेवाली नवेली अपने प्रियतमपर रीमकर हतमी मस्त हो
गई है कि वह अपने और प्रियतमके हृदयोंके बीचमें बाधा
देनेवाली फूलोंकी मालातक भी अपने गलेमें नहीं पहनती और

वह इसलिये लम्बी साँसें नहीं लेती कि उससे वह उड़कर
प्रियके दर्शनमें बाधा न पहुँचा दे । अतः वह चित्रमें बनी हुई-
सी स्थिर होकर एकदक मियका मुँह देख रही है, उसे रोमाञ्च
हो आया है जिससे वह अपने प्रियके विपु हृदय आसके
प्यालेकी न तो पीती ही है न हटाती ही है ॥ १० ॥ अधिक
लज्जावाली : जिस नायिकाके मनमें पहली बार कामका विचार
उत्पन्न हुआ है और जो बहुत लजीली है वह धीरेसे अपने
सगमग पैर धरतीपर रखती चलती है, रनिवाससे बाहर नहीं
निकलती, खिलखिलाकर हँसती नहीं, थोड़ी-थोड़ी देरमें
विचित्र प्रकारसे भेंपकर ठक् रह जाती है, बहुत धीरेसे गम्भीर
भावाँवाले कुछ चमत्कारभरे थोड़े वचन बोलती है और
जब उसकी सखी उससे प्रियतमकी कथा कहने लगती है
तब उसकी ओर श्रौंसे तरेने लगती है ॥ ११ ॥ मुग्धा
विचित्रसुरता तथा प्ररूढरमरा : अत्यन्त कामाचंचित
मृगनयनीने ऐसा चमत्कार दिखाया कि उसने रतिके समय
जो अनेक बार मुँहसे ध्वनियाँ निकालीं उन्हे सुनकर ऐसा जान
पड़ता था मानो उसके घरके कञ्चतरोंने अपनी 'गुटररी' उठी
प्रकार सीखी हो जैसे वेदपाठियोंके शिष्य गुरुका उच्चारण
सुनकर उसका अनुकरण करते हैं ॥ १२ ॥ यौवनवती या
प्ररूढयौवना : उस सुन्दरीके नयन सञ्जनकी चञ्चलताको
परास्त कर रहे हैं, दोनों हाथ कमलोंको चुनती देते हैं, दोनों
स्तन हाथोंके मस्तकेके समान अत्यन्त उन्नत हैं, शरीरकी चमक
स्वर्ण और चाम्पके फूलके समान है, मधुर वाणी शरत्की
बहर उठानेवाली है और उसकी चित्तवक्त्री धृदा खिले

स्मेरेन्द्रीवरदामसोदरध्वस्तन्या फटालच्छट्टा ॥ १३ ॥
 कामवती—स्मरनयनदीपूरेणोदा. पुनर्गुरुमेतुभिर्यदपि
 विधृतास्निष्ठन्त्यारादपूर्गमनोरथा. । तदपि लिपि-
 तप्रच्यैरहैः परस्परमुन्मुखा नयननलिनोनालाकृष्टं
 पियन्ति रसं प्रिया ॥ १४ ॥ मध्यासभोग—तावदेव
 रतिसमये महिलानां विश्रमा विराजन्ते । यावन्न कुत्र
 लयदलस्वच्छभानि मुमुलयन्ति नयनानि ॥ १५ ॥
 मध्यामानसवृत् - न खलु धयममुष्य दानयोग्याः पिप-
 ति च पाति च यासकौ रहस्त्वाम् । व्रज विटपमसुं
 ददस्व तस्यै भवतु यतः सदशोश्चिराय योगः ॥ १६ ॥
 मध्याधीरा—तदचित्तधमवादीर्यन्म त्वं प्रियेति प्रिय-

जनपरिमुक्तं यहुकूलं ध्यान । मद्रधिपसनिमागाः
 कामिनां मद्रइन्ध्रीर्भजति हि सफलत्वं वल्लभालोभनेन
 ॥ १७ ॥ मध्याधीराधीरा—वाले नाथ विमुञ्ज मानिनि
 रूपं रोपान्मया किं कृतं वेदोऽस्मासु न मेऽपराध्यति
 भगान्सर्वेऽपराधा मयि। तांकि रोदधि गद्रेदेन घचसा
 कन्याग्रतो रुद्यते नन्वेतन्मम वा तवामि दयिता
 नास्मीत्यतो रुद्यते ॥ १८ ॥ अधीरा—यातु यातु किम-
 नेन तिष्ठता मुञ्ज मुञ्ज सपि मादरं कृयाः । प्यिडता-
 धरकलद्धितं प्रियं शम्नुमो न नयनैर्निरीक्षितुम् ॥ १९ ॥
 सार्थं मनोरथयतैस्त्वय धृत्वं कान्ता सैव स्थिना
 मनसि हृदिमहावरम्या । अस्माकमस्ति नहि कश्चि-

हुप नीले कमलौकी मालाके समान सुरोभित है ॥ १३ ॥
 कामवती : कामके आनेगरी नई नदीकी धारसे मतवाली
 नवेलियाँ यद्यपि दूर होनेसे प्रौर धरके बडे लोग-रूपी पुलोंके
 कारण अपनी मनोरथ पूर्ण कर पातीं फिर भी वे प्यारी
 नारिये अपने प्यारके समुप्य होकर नेत्र रूपी कमलिनोदी
 नालसे र्थचकर अपने चित्रिन आँसुसे प्रियका रस पी रही हैं
 ॥ १४ ॥ मध्या-सभोग : रतिके समय इन नवेलियोंके हान-
 नाव तभीतक भले जान पड़ते हैं जतक कमलके समान स्वच्छ
 कान्तिवाले इनके नेत्र सुंद नहीं जाते ॥ १५ ॥ मध्याके मनकी
 रुचि : कोई नायक किसी दूसरी स्त्रीके साथ रमण करके
 वहाँसे बुद्ध मुन्दर पने वटोरकर ले आया है और अपनी स्त्री
 हुई प्रेयमीको पत्ते डेकर भनागा चाहता है, इसपर वह उसे
 पटककारी हुड बुहरे अर्थके माय कहती है कि 'आप जो पत्ते
 लाए हैं उन्हें ले जाकर उसी चुचकी सार्थ आइए जो इनके
 सहारे पानी मीचता है और उनकी रखा करता है । हम इन्हें
 लेने योग्य नहीं हैं । ये चुचके साथ रहेंगे तो उसके साथ उनका
 ठीक मेल भी होगा ।' दूसरे अर्थमें वह कहती है कि 'ये पत्ते
 हमारे किम कामके हैं ? जाइए, इन्हें ले जाकर उस विटप
 (तुम्हारे जैसे विदा अर्थात् धूर्त्तोंके पालनेवाली) को जाकर
 दे आइए, जो अकेलेमें तुम्हारे जैसेको दियाकर रगती है
 और तुम्हारे अटोंका रस लेती है । इन्हें ले जाकर उसीको
 दीजिए जिसके जमेरी हैसा देखे तुम्हारी अरुची जोड़ी बैठ
 जाय' ॥ १६ ॥ मध्या अधीरा : दूसरी स्त्रीसे सम्भोग करके
 लौटे हुए और उसकी धाती लपटे हुए अपने प्रियसे नायिका
 कहती है—'आपने मुझे ठीक ही कहा था कि तुम मेरी प्रिया ही
 इसीलिये तो मेरी प्यारी (अथवा सीत) के पढ़ने हुए वच

लपेकर उसे मुझे दिगानेके लिये यहाँ ले आए हो क्योंकि
 कामियोंका श्वाहर तो प्यारीके श्रेयनेपर ही सफल होता है' ॥ १७ ॥
 अधीर और अधीर मध्या : दूसरी स्त्रीसे सम्भोग करके लौटा
 हुआ नायक अपनी प्रेयमीसे पूछ रहा है और वह उचर दे
 रही है—'नायक : वाले नायिका : हाँ, नाय । नायक :
 हे रुठनेवाली । यह रुठना छोडो । नायिका : रुठूंगी भी तो
 आपका क्या बिगाड लूँगी ? नायक : तुम्हारे रुठनेसे मेरा
 जी कसमसाने लगता है । नायिका : जी हाँ, आपका कुछ
 दोष थोडे ही है, सन अंपराय मेरा ही है । नायक : तब यह
 रूँचे गलेमें मुनक-मुनकर आँसु क्यों बहा रही हो ?
 नायिका : मेरा कौन है जिसके आगे आँसु उडाऊँगी ?
 नायक : क्यों, अभी मेरे ही मामले तो रही हो । नायिका :
 पर मैं आपकी होती कौन हूँ ? नायक : क्यों, तुम मेरी प्यारी
 ही न ? नायिका : अर प्यारी नहीं रह गई यही तो रोना हो
 गया है ॥ १८ ॥ अधीरा : किसी दूसरी स्त्रीमें भोग करने
 आए हुए प्रियको नायिकाकी जो सची बहला पुसला रही है,
 उसपर गीमकर नायिका कहती है—'अभी जाने भी दो, इनपे
 यहाँ बैठने रदनेमे क्या होगा ? छोड दो, इन्हें वरुण गिरपर न
 पटाओ । इनके निचले थोडपर यह पाप नहीं श्रेयनी हो,
 ऐसा भी कहीं प्रिय होता है ? ऐसीकी शोर गो मैं और
 उडाकर भी नहीं देखना चाहती' ॥ १९ ॥ नगरी स्त्रीके साथ
 सम्भोग करके लौटा हुआ पूत्र नायक अपनी प्रेयमीकी मनामेके
 लिये उसके परोंपर गिर रहा है, इसपर वह कहती है—'जाइए,
 यह परोंपर गितेका नाइर किंगी औरकी दिगाइएगा । वरु
 रहने कीपिध धूर्त्तराज । आपके किम हृदयमें किधुं प्रकाशके
 कामब्रीदाने मनोरथके साथ बनायी क्षय साथ टिकाके-

दिह्यवकाशास्तस्मात्कृतं चरत्पातविडम्बनाभिः ॥२०॥
 त्रीडावपु हतामध्याव्यम्हारा—स्वेदान्मःकणिकाञ्चित्तेऽपि
 वदने जातेऽपि रोमोद्गमे विश्रम्भेऽपि गुरौ पयोधर-
 भरोत्कम्पेऽपि वृद्धि गते । दुर्वारस्मरनिर्भरेऽपि हृदये
 नैवाभियुक्तः प्रियस्तन्वद्बन्धा हृदयेश्वरार्णघनाश्लेषा
 मृते लुब्धया ॥ २१ ॥ प्रगल्भ्यागद्वयीवना—अत्युन्नत-
 स्तनमुरो नयने च दीर्घे चक्रे भ्रुवावतितरां वचनं
 ततोऽपि । मध्येऽधिकं तनुरतीय गुरुर्नितम्बो मन्दा
 गतिः किमपि चाद्भुतयौवनायाः ॥ २२ ॥ स्मरान्धा—
 घन्यासि या कथयसि प्रियसङ्गमेऽपि विश्रम्भचाटुक-
 श्रतानि रतान्तरेषु । नीवीं प्रति प्रणहिते तु करे प्रियेषु
 सत्यः शपामि यदि किञ्चिदपि स्मरामि ॥ २३ ॥

भावप्रगल्भा—न जाने सम्मुखायते प्रियाणि वदति
 प्रिये । सर्वाण्यङ्गानि किं यान्ति नेत्रतामुत कर्ण-
 ताम् ॥ २४ ॥ रतप्रगल्भा—कान्ते तल्पमुपागते
 विगलिता नीवी स्वयं चन्धनाद्वासः प्रश्लथमेख-
 लागुणभूतं किञ्चिन्नितम्बे स्थितम् । एतावत्सखि
 वेधि केवलमहं तस्याङ्गसङ्गे पुनः कोऽसौ कास्मि रतं
 तु किं कथमिति स्वल्पपि मे न स्मृतिः ॥ २५ ॥
 क्वचिच्चाभूलाकः क्वचिदगच्छपङ्काङ्गमलिनः क्वचिच्चू-
 र्णोद्गारी क्वचिदपि च सालककपदः । वलीभङ्गाभो-
 गैरलकपतितैः शीर्षकुसुमैः स्त्रियाः सर्वावस्थं कथयति
 रतं प्रच्छदपट ॥ २६ ॥ वल्लवर्षाडा—दर्पणेषु परिभोग-
 दशिनीर्नमूर्ध्वमनुवृष्टसंस्थितः । छायाया स्मितमनोज्ञया

कोई दूसरी पूर्त खी वसी हुई है, उसमें हमारी कैसियोंके
 लिये कहाँ स्थान होगा' ॥ २० ॥ लज्जासे युक्त मध्याके
 व्यवहार : यद्यपि उस दुषली-पतली नायिकाके मुखपर
 पसीनेरी वृद्धि मूलक आई है, रोपे फरफरा उठे हैं, वह अत्यन्त
 प्रेम और विश्वास भी दिखला रही है, उसके बड़े बड़े स्तन
 भी वेगसे बाँधने लगे हैं, उसके हृदयमें कामका वेग भी प्रचल
 हो गया है और वह यत्पूर्वक धाल खींचकर और कसकर
 छातीसे लगानेवा रस लेनेके लिये भी व्याकुल है, फिर भी
 दूसरी छोसे सम्भोग करके छाया हुआ उसका प्रिय लज्जाके
 मारे उससे खुलकर प्रेमलीला नहीं कर पा रहा है ॥ २१ ॥
 प्रगल्भा : गाढयौवना : उस नवेलीकी छातीपर उठे
 हुए स्तन बड़े-बड़े हैं, उसमें आँसे अत्यन्त रमीली और बड़ी-
 बड़ी हैं, उसकी भीड़ कामदेवके धनुषके समान डेढ़ी हैं, उसके
 बोलनेवा दग्न और उसरी बातें उन भीड़ोंसे भी अधिक डेढ़ी
 हैं, उसकी कमर अत्यन्त पतली है, उसके नितम्ब अत्यन्त
 भारी भारी हैं और उसकी बाल राजहंसके समान मनको
 मोहित करनेवाली अत्यन्त घीमी हैं । सपसुच उस अनोरे
 यौवनवालीका सप सुष्ट निराला ही है ॥ २२ ॥ कामान्धा :
 एक भावी किसी नायिकाको पता रही है कि अपने प्रियके
 साथ सम्भोग करते समय मैं हूँ प्रनारके हाव-भाव और
 मीठी-मीठी बातें किया करती है । हने सुनकर वह नायिका
 कहती है—'हे सानी ! सपसुच धन्य है कि अपने प्रियके
 साथ सम्भोग करते समय हूँने पीरजके साथ सँकड़ों नये-नये
 हाव-भाव और प्रेमकी बातें किया करती है । मेरी तो यह
 दया हो जाती है कि जैसे ही प्रियतम मेरी कमरकी गाँठमें हाथ

लगता है वैसे ही सौगन्ध खाकर कहती हूँ कि मैं सप सुषुषुच
 भूल जाती हूँ' ॥ २३ ॥ भाव-प्रगल्भा : एक नायिका अपने
 प्रियसे मिलनेके समयकी दशा बता रही है कि 'नय प्रियतम मेरे
 पास आकर मुझे प्यार भरी बातें करने लगते हैं तब मुझे
 यही नहीं समझ पड़ता कि मेरे सारे अङ्ग नेत्र बन गए
 हैं या कान बन गए हैं अर्थात् मैं एकटक होकर उन्हें
 देखती रहती हूँ और उनकी बातोंमें अपनी सब सुषुषुच
 खोकर मग्न हो जाती हूँ' ॥ २४ ॥ रतप्रगल्भा :
 अपनी सखीसे अपने सम्भोगका वर्णन करती हुई नायिका
 कहती है—'हे सखी ! जैसे ही मेरा प्रियतम पलँगपर आता है
 वैसे ही मेरी धोतीकी गाँठ अपने-आप ढीला पड़ जाती है
 और पैरोंके नीचेतेक पहने हुए चख अपने आप मेरी करघनीकी
 धोरिमें फँसकर नितम्बके ऊपर ही रह जाते हैं, बस इतना
 तो मैं जानती हूँ, इसके पश्चात् जब मेरा प्रियतम मेरे अङ्ग चूने
 लगता है तब तो मुझे यह भी सुध नहीं रह जाती कि यह कौन
 है, मैं कौन हूँ और यह सब क्या हो रहा है ॥ २५ ॥ नायक-
 नायिकाके जो कई आसनोंसे सम्भोग किया है उसके चिह्नमें
 सजी हुई चादरका वर्णन कोई सखी करती है कि 'पलँगपर
 बिछे हुए हूँ हस विद्यावनपर कामिनीने अपने प्रियके साथ अनेक
 आसनोंके साथ अनेक प्रकारकी काम-आँदाएँ की हैं क्योंकि
 यह विद्यावन कहीं तो पानसे रँगा है, वहाँ अगरेके छेपसे
 काला पद गया है, वहाँ गालों और बालोंपर लगा हुआ
 पूर्ण विगारा पड़ा है, कहीं पैरके महावरकी टाप बनी है, कहीं
 उसके पेटकी प्रिवलीकी टाप है और कहीं उसके बालोंमें
 रिसके हुए फूल पड़े हुए हैं' ॥ २६ ॥ भँपेनेवाली : जब कभी

घृहीनिमीलितमुखीश्चकार सः ॥२७॥ आक्रान्तनायका—
स्वामिन्महुरयालकं सतिलकं भालं धिलासिन्कुरु
प्रादेशं वृष्टितं पयोधरतटे हारं पुनर्योजय । इत्युक्त्या
सुरतायसानसमये सम्पूर्णचन्द्रानना स्पृष्टा तेन तथैव
जातपुलका प्राप्ता पुनर्मोहनम् ॥२८॥ अस्या कोपचेष्टा—
अह्नु लीकिसलयाप्रतर्जनं भ्रूविभङ्गकुटिलञ्च वीक्षितम् ।
मेघपलाभिरसहच वन्धनं वञ्चयन्प्रणयिनीरवाप सः
॥ २६ ॥ सावहित्या दारा—एकत्रासनसंस्थितिः परिहृता
प्रत्युद्गमाद्हरतस्ताम्बूलाहरणच्छलेन रभसाश्लेषोऽपि
संधिञ्चितः । आलापोऽपि न मिश्रितः परिजनं व्यापा-
रयन्त्यान्तिके कान्तं प्रत्युपचारतश्चतुरया कोपः कृता-

धीकृतः ॥ ३० ॥ रतावुदासीना—आयस्ता कलहं पुरेय
कुर्वते न र्संसने वासतो भग्नभ्रूगतिखण्ड्यमानमधरं
घत्ते न केशग्रहे । अज्ञान्यर्पयति स्वयं भ्रमति नो वामा
दृष्टालिङ्गते तन्व्या शिञ्जित एव सम्प्रति कुत । कोपप्र-
कारोऽपर ॥ ३१ ॥ अघीरप्रगल्भा—कोपात्कोमललोल-
याहुलतिकापाशेन यद्वा दृढं नीत्या वैलिनिनेतनं द्रवि-
तया सायं सखीनां पुरः । भूयोऽप्येवमिति स्वलत्कल-
गिरा संसृज्य दुश्चेष्टितं धन्यो हन्यत एव निहृतिपर-
प्रेयान्दन्त्या हसन् ॥ ३२ ॥ धीराधीरप्रगल्भा—कोपो
यत्र भ्रुकुटिरचना निग्रहो यत्र मोनं यत्रान्योन्यस्मित-
मनुनयो दृष्टिपातः प्रसादः । तस्य प्रेम्णस्तदिदमघुना

नायककी प्रेमिकाएँ दर्पणके आगे खड़ी होकर आपसमें दौत काटने
या चूँटने आदिके सम्मोग-चिह्न देखने लगती थीं तब वह नायक
उनके पीछे चुपकेसे आकर खड़ा हो जाता और मुस्करा देता
था । अतः जब उसका प्रतिनिम्ब भी दर्पणमें उन नखेलियोंको
दिखाई दे जाता तो वे मोंपकर लजा जाती थीं ॥ २७ ॥
आक्रान्तनायका : सम्मोग कर चुकनेके पश्चात् चन्द्रमुखी
नायिका अपने प्रियसे कहती है "हे विलासी स्वामी ! मेरे
बाल तो ठीक कर दीजिए, मेरे माथेपर तिलक तो लगा
दीजिए और स्तनोपर दृटे हुए इस हारको पुनः बाँध तो
दीजिए ।" यह मुनकर उ्यों ही नायकने यह सब करनेके लिये
उसका स्पर्श किया त्यों ही उस नायिकाके शरीरमें रोमाञ्च हो
आया और वह फिर अपने प्रियपर लड़ू हो गई ॥ २८ ॥
इसकी कोप-चेष्टाएँ : जब कभी वह नायक उन
कामिनीयोंको धोखा या चकमा दे जाता था तब वे विगडकर
अपनी लाल-लाल डँगलियाँ घमकाकर उसे घमकाती
थीं, उसपर भीँहिँ तरेती थीं और अपनी कपधनीसे उसे
घोंप रखती थीं ॥ २९ ॥ सावहित्या दारा : किसी
नायिकाका प्रिय जब दूसरी स्त्रीके साथ सम्मोग करके लौटा तो
उसने यह कौशलसे उसके प्रति अपनी क्रोध प्रकट किया ।
वैसे ही उसने अपने प्रियतमको आते देखा वैसे ही वह तत्काल
उठ खड़ी हुई और आगे बढ़कर स्वागत करनेके बहानेसे उसने
प्रियतमकी यह हृच्छा नहीं पूरी होने दी कि वह नायिकाके
पास आकर उसके साथ एक ही आसनपर बैठ जाता, जब
वह नायक गले लगानेके लिये आगे बढ़ा तो उससे पहले
ही पात खे आदिके बहाने उसने गले लगानेमें भी बाधा बाल
दी और जब प्रियतमने कुछ बात चलाई तो उसकी बातका

उत्तर न देनेके लिये उसने यह उपाय रचा कि वहाँ पासमें
खड़े दास दासियोंको अनेक छात्राएँ देने लगी कि मेरे प्रियके
लिये यह करो, वह करो इत्यादि । इस प्रकार उसने अपने
प्रियको बाहरी आदर भी दिखला दिया जिससे सेवकगण यह
न समझें कि स्वामिनी रुठी हुई हैं और साथ-साथ धपना
क्रोध भी जता दिया ॥ ३० ॥ रतिमें उदासीन : जब इस
कोमल अश्रुवाली नायिकाका प्रिय उसके पक्ष खोलने लगता
है तब यह तनिक भी विरोध नहीं करती, जब वह बाल छूटा है
तो भीँहिँ नहीं तरेती, न अश्रु दबाकर सी-सी करती है, वरन्
अपने थाप अपने सच अश्रु धीले कर देती है और जब वह
बलपूर्वक गले लगाना चाहता है तब भी कुछ आगा-पीछा नहीं
करती । न जाने रुठनेका यह नया उद्ग हसने कहाँसे सीख लिया
है ॥ ३१ ॥ अघीर प्रगल्भा : धन्य है वह पुरेय, जिसे
सायङ्काल उसके लौटनेपर उसकी प्रियतमा (दूसरी स्त्रीके साथ
उसके सम्मोग करनेका समाचार पाकर) खीम्ने रोती हुई अपनी
कोमल और बखल मुञ्जा-रूपी लताधोंमें कसकर, सखियोंके
सामने ही उसका सच कुकर्म सुना-सुनाकर, लटपटाती हुई सुन्दर
वाणीसे "फिर ऐसा करोगे ?" कहकर डाटती हुई क्रीडामवनमें
ले जाकर उसकी कुटमस करती है और वह भी हँसता हुआ
कृती बातें बना-बनाकर अपनी धरपराध द्विपाएँ जाता है ॥ ३२ ॥
धीरधीर प्रगल्भा : दूसरी स्त्रीके साथ सम्मोग करके आपू
हुए अपने प्रियसे नायिका कहती है—"जहाँ हम लोगोंमें इतना
गाढ़ा प्रेम था कि यदि हममेंसे कोई रुठ भी जाता था तो
अधिकसे अधिक भीँहिँ-भर देती कर लेते थे, मनचाही बात न
हुई तो चुप हो रहते थे, रुठनेपर मुस्करा भर देनेसे मान जाते
थे और जहाँ एक दूसरेको देखते थे वहाँ जिल उठते थे । वह

वैशसं पश्य जातं त्वं पादान्ते लुठसि न च मे मन्यु-
मोक्षः खन्यदाः ॥ ३३ ॥ उषेष्टं मंगष्टे—दृष्ट्वाकासनसं-
स्थिते प्रियतमे पश्चादुपेत्यावरादेरुस्या नयने निमील्य
चिहितक्रीडानुबन्धच्छूलः । ईषद्वक्रितकन्धरः सपुलकः
प्रेमोल्लसन्मानसामन्तर्हासलसत्कपोलफलकां धूर्त्तौऽ-
परां चुम्पति ॥ ३४ ॥ नायकान्तरसम्बन्धनी—दृष्टिं हे
प्रतिवेशिनि क्षणमिहाप्यन्यस्मिन्गृहे दास्यति प्राये-
णास्य शिशोः पिता न विरसः कौपीरपः पास्यति ।
एकाकिन्यपि यामि तद्वरमितः स्रोतस्तमालाकुलं
नीरन्ध्रास्तनुमालियन्तु जरठच्छेदानलग्रन्थयः ॥ ३५ ॥
कन्या—मन्दफाकिनीसैकतवेदिकाभिः सा कन्दुकैः कृत्रि-
मपुप्रकैश्च । रेमे मुहुर्मध्यगता सखीनां क्रीडारसं निर्वि-
शतीव चाल्ये ॥ ३६ ॥ परकाया—स्वामी निःश्वसितेऽ-

प्यस्यति मनोजिघ्रः सपत्नीजनः श्वधूरिङ्कितदैचतं नय-
नयोरीहालिहो यानरः । तद्वाद्यमञ्जलिः किमधुना
दग्भङ्गिभावेन ते वैदग्धीमधुरप्रवन्धरसिक व्यथोऽप्य-
मत्र ध्रमः ॥ ४७ ॥

अष्टनायिकाः

अभिसारिका—अन्नमोजाच्याः पुरनवलताधाक्षि
सङ्केतभाजश्चेतोनाथे चिरप्यति श्रृंगं मोहनिद्रां गतायाः ।
स्वच्छं नाभीहृदयलयितं कान्तरत्नांशुजालं तोयभ्रा-
न्त्या पियति हरिणी विस्मयञ्च प्रयाति ॥ १ ॥ उरसि
निहितन्तारो हारः कृत्वा जघने घने फलकलयती
काञ्ची पादौ रणन्मणिन पुरौ । प्रियमभिसरस्येवं मुग्धे
त्वमाहृतडिण्डिमा यदि किमधिकत्रासोत्कम्पं दिशः
समुदीक्षसे ॥ २ ॥ जनो दुर्लभ्योऽयं कुलममलिनं वर्यं

गादा प्रेम श्रय यहाँतक विगढ़ गया है कि तुम मेरे पैरोंपर
लोट रहे हो और मुझ दुःशका क्रोध ही नहीं ठगदा हो पा रहा
है ॥ ३३ ॥ बड़ी और छोटी प्रियसी एक साथ : किसी
धूर्त नायककी छोटी और बड़ी प्रेमिकाएँ साथ-साथ एक परलोगपर
पैठी हुई थीं । उसने उनके साथ प्रेमभरी ऐह-साह करनेके
लिये परिवेसे आर खेलेके बहाने एककी तो शॉलें सूँद लीं
(जिसने उसे विरवास हो गया कि मेरा प्रिय मुझे ही चाहता
है) और थोड़ा सिर घुमाकर प्रेमसे पुलकित और मुन्कगनी
हुई दूसरी प्रेममीका सूँह घूम लिया ॥ ३४ ॥ दूसरे नायकले
प्रेम करनेवाली स्त्री : एक नायिका किसी दूसरे पुरयने
घावनुसके घृषोंसे छाप छाप सोतेपर मिलनेका वचन दे आई
है । यहाँ जानेका कुछ दूसरा ही कारण अपनी पक्षोसिनकी
समझती हुई वह कहती है कि 'हे पक्षोसिन ! मेरा घर देवती
रदना बघोंकि खरकाके बाध (मेरे पति) यहाँके लुँपका बेस्वाद
पानी नहीं पीने हमलिये शीघ्रताके मारे मुझे थकेले ही उस
घावनुसके घृषोंसे छाप छाप पानीके सोतेपर जाना पड़ रहा है,
भले ही यहाँ पुराने नरकोंके सूरे हुए कई शरीरको छेद क्यों
न डालें (अर्थात् यहाँ जो नरकोंके पिद्ध हाँगे उन्हें छिपानेकी
उसने पहलेसे ही भूमिका बधि ली) ॥ ३५ ॥ कन्या :
वह कन्या कभी तो अपनी सखियोंके साथ गद्गाजीके बलुये
तदपर बेदिर्घा बनती थी, कभी मँद लेवती थी कभी मुदिर्घा
बनाकर सज्जानी थी । इसी प्रकारके खेल-पदमें उसका पूरा
बधन भीगने लगा ॥ ३६ ॥ परकीया : किसी नायिकाका
दूसरा प्रेमी उसके पाम आया है, उससे वह कहती है कि

'मेरे पति तो मेरे सॉस लेनेपर ही खीक उठते हैं, सौतें
दिनरात मेरा मन टडोलती रहनी हैं, सास बात-बातमें उँगली
उठाय करती है और देवराती-जेठानी भी हर घड़ी मेरी
शॉलें भाँपती रहती हैं । इसलिये हे चतुर रसिक ! प्रव आपकी
इन भावभरी चित्तबनौकी यहाँ डाल नहीं गलेगी, श्रय आप ये
व्यथकी मीठी-मीठी धाटुवारी-भरी बातें कृपया यहाँ न चलाएँ
और दूरसे ही मेरा प्रणाम स्वीकार करके यहाँसे नौ-
ग्यारह होइए' ॥ ४७ ॥

आठ नायिकाएँ

अभिसारिका : वह नायिका पहलेसे निरचय किए हुए
नगरके नये लता-मयडपमें पहुँच गई किन्तु जब बहुत देर हो
जानेपर भी उसके प्रियतम नहीं आएँ तब वह कमलनयनी
निराश होकर मुचिञ्जुत हो गई । उस समय उसनी गहरी
नाभिपर उसके हाथके बदनमें जड़े हुए रत्नोंकी चमकसे ऐसा
प्रकाश हुआ मानो किसी जलाशयमें जल भरा हो । इसी प्रममे
एक हरिणी यहाँ पहुँचकर जल पीनेके लिये सूँह बढ़ाती
और आरचय करती जाती थी कि मेरी प्यास क्यों नहीं
सुक रही है ! ॥ १ ॥ हे नायिका ! तुमने अपनी छातीपर
वह पतनयनानेवाला लम्बा हार डाल रक्खा है, अपने बड़े-बड़े
नितम्बोंपर सूँधरुदार करघनी बधि रक्की है तथा पैरोंमें रन-
सुन करनेवाले पापल पहन रक्के हैं । इसलिये ज़प मुझ इस
प्रकार रड्डा बनाकर अपने प्रियतमसे अभिसार करने निडर
हो तब धरयन्त दरसे कौपती हुई चारों ओर देर क्या रही हो !
॥ २ ॥ एक नायिका अपने प्रियसे मुसतके लिये पहलेसे निग्रप

विषमं पतिश्चिद्रान्धेयी प्रणयिवचनं दुःपरिहरम् । अतः
काचित्तन्त्री रतिधिहितसङ्केतगतये गृह्याद्धारंवारं निर-
गमदथ प्रायिशब्द ॥३॥ पल्लीनामधिपस्य पङ्कजदशां
पर्वोत्सथामन्त्रेण जाते सध्वजना मिधः कृतमहोत्साहं
पुरः प्रस्थिताः । सव्याजं स्थितयोधिहृदस्य गतयोः
युद्धान्तमन्त्रान्तरे यूनोः स्विक्रफपोलयोविजयते
फोऽप्येष कण्टग्रहः ॥ ४ ॥ भ्रानः कङ्कण कि कदाप्यसि
घनाश्लेषेपु विश्लेषितं दूरे किङ्किणि कि कृताप्यसि
रतारम्भे रण्णकारिणि । किन्मञ्जीर वहिः कुतोऽप्यसि
रहस्तल्पाधिरोहे मया सङ्केताध्वानि वद्वयैरमिष यन्मा-
खर्यमालम्ब्यते ॥ ५ ॥

हृष्यामिसारिका—इह जगति रतीशमक्रियाकौश-
लिन्यः कति-कति न निशीये सुभ्रुवः सञ्चरन्ति । मम

तु चिधिहताया जायमानस्मितायाः सद्बचरिपरिपन्थी
हन्त दन्नांशुरेव ॥ १ ॥ उन्निर्गतं करकङ्कुराद्भयमिदं वद्धा
ददा मेखला यत्नेन प्रतिपादिता मुखरयोर्मञ्जीरयोर्म-
कता । आरब्धे रमसाम्भया प्रियसखि क्रीडाभिसारो-
त्सवे चाण्डालस्तिमिरावगुण्डनपटजेपं विधत्ते विधुः
॥ २ ॥ उद्दामाम्मुद्वर्धितान्धतमसि प्रभ्रष्टदिश्र्भ्रएडले
काले यामिकजाप्रदुप्रसुभटव्याकीर्णकोलाहले । कर्ण-
स्यासुहृदार्णवाम्मुचडवावह्रैवदन्त-पुरादायातासि तद-
म्बुजात्ति कृतकं मन्ये भव्यं यापिताम् ॥ ३ ॥ एषा फुल्ल-
कदम्बनीपसुरमौ काले घनोद्भासिते कान्तस्यालयमा-
गता समदना हृष्टा जलाद्रालफा । विमुद्धारिर्दिगर्जितैः
सचकिता त्वद्दर्शनाकङ्किणी पादां नूपुरलग्नकर्दमधरो
प्रचालयन्ती स्थिता ॥ ४ ॥ किमुत्तीर्णः पन्थाः कुपित-

किं हुए स्थानपर जानेके लिये घरसे बाहर पैर रखती है और
फिर भीतर आ जाती है क्योंकि उसका दुविधामें पड़ा हुआ मन
सांच रहा है कि 'उसके पास जाना भी अवरय चाहिए
क्योंकि ऐसी प्रेमी मिलता बड़ी कठिनाईसे है, उधर मेरा कुल
भी पवित्र है, मार्ग भी बौद्ध है और मेरे पति भी बहुत मीन-
मेस निकालनेवाले हैं, साथ ही अपने प्रेमीकी बात भी
नहीं टाली जाती' ॥ ३ ॥ किसी गाँवके मुखियाके घरकी
खियों कोई उसव मना रही थीं, जिसके निमन्त्रणपर
परके सभी लोग यहीं घूमनामके साथ गाँवके बाहर चले गए
थे किन्तु वे सरण्य और तरण्यो, दोनों किसी बहानेसे रक
गए और घरके भीतर परानेसे तर-यतर गालवाले वे दोनों
विचित्र रूपसे एक दूसरेके गले लगने लगे ॥ ४ ॥ अपने
प्रियसे मिलनेके लिये जाती हुई नयेली अपने बजते हुए
गहनोंसे कहती है—'हे माई कद्रन ! अपने प्रियसे कसकर
आलिङ्गन करते समय क्या कमी मैंने तुम्हें उतार दिया था ?
हे दुँधरु ! मुरतके प्रारम्भमें जब तुम बजती थीं तब क्या तुम्हें
मैंने अपने शरीरसे कमी अन्नक दिया था और हे पायल ! अपने
प्यारके पलङ्गपर चढ़ते समय क्या मैंने कमी तुम्हें दूर निकाल
फेंका था कि जिसमें आज तुम सय सङ्केतके मार्गमें शयु बनकर
घरावर चिखलाते जा रहे हो' ॥ ५ ॥

हृष्यामिसारिका : एक नायिका अपनी सखीसे अपनी
कठिनाई बताती हुई कहती है कि 'इस संसारमें न जाने कितनी
कामक्रीडामें चतुर खियों रातको अपने प्रेमियोंसे मिलनेके लिये
घूमती रहती हैं पर मैं ऐसी अभागिनी हूँ कि (मैं काली

रातमें काले कपड़े पहनकर भी चलती हूँ तो) मेरी हँसीसे
रिले हुए मेरे दाँतोंकी बमक ही मेरा शयु बन जाती है
(अर्थात् मुझे पचचनवा देती है)' ॥ १ ॥ एक नायिका अपनी
सखीसे कहती है कि 'हे प्यारी सखी ! अपने प्यारसे मिलनेके
लिये मैंने इतने उपाय किए कि अपने हाथके दोनों कड़े ऊपर
कसकर तिसका लिए, करघनी कसकर बाँध लीं, अपने बजते
हुए पायलाको बड़े कौशलसे चुपकर रखना पर इस चाण्डाल
चन्द्रमाका ता देखा कि ज्यों ही मैं मटपट अपने प्रियके पास
जानेका तैयार हुई त्योंही इस निगादेने श्रंधेरेका परदा साँचकर
चारों ओर चौदनी फैला दी ॥ २ ॥ मिलनेके स्थानपर पहुँची
हुई अपनी प्यारोसे भायक कहता है कि 'इस समय उमड़ते हुए
बादलोक कारण इतना घनघार शँभरा हां गया है कि दिशाएँतक
नहीं सूफ पड़ रही, जिस समय तुम चली हो उस समय चारों
ओर जागत हुए बलवान् पहरेदारगला फाड़-फाड़कर चिल्ला रहे
थे, ऐसे समय ही हे कमलनयनी ! जब तुम शयु-रूपी समुद्रके
जलका तपानेवाले बद्धानलके समान प्रतापी कर्णके रनियाससे
निकलकर चली आई हो तो मैं समझता हूँ कि त्रिघोंका
सारा दर दिखावटी होता है' ॥ ३ ॥ खिले हुए कद्रमोंकी सुगन्ध
फैल रहा है तथा बदली भी फिर आई है, ऐसे समय अपने
प्रियतमसे मिलनेका साथ लेकर वह जा बिजली और बादलोंकी
गडगडाहटसे घबराई हुई, भौंके बालोंवाली, कामातुर तथा
प्रसन्न-चित्तवाली युवता आई है, वह खड़ी-खड़ी कीचड़से सने
हुए पायलोंवाले अपने पैर धो रही है ॥ ४ ॥ अपने प्रियसे
मिलनेके लिये ज्योंही उस नायिकाने घरको देहतीसे बाहर पैर

भुजगीभोगविषमो विसोढा भूयस्यः किमिति कुलपालीकृद्गिरः । इति स्मारं स्मारं दरदलितशीतघृतिरुचौ सरोजाक्षी श्यां दिशि नयनकोष्ं विकिरति ॥ ५ ॥
 द्विद्वान्चेपणत्परः प्रियसखि प्रायेण लोकोऽधुना रात्रिश्चापि घनान्धकारवहला गन्तुं न ते युज्यते । मामैवं सखि बल्लभः प्रियतमस्तयोत्सुका दर्शने युक्ता-युक्तविचारणा यदि भवेत्स्नेहाय दत्तं जलम् ॥ ६ ॥
 दृती विधुदुपागता सहचरी रात्रिः सहस्थापिनी देवज्ञो दिशति स्वनेन जलदः प्रस्थानवेलं शुभाम् । घाचं माङ्गलिकीं तनोति तिमिरस्तोमोऽपि भ्रूल्लरीरवैजांतोऽयं दयिताभिसारसमयो मुग्धे विमुञ्च त्रपाम् ॥ ७ ॥
 प्रत्यावृत्त्य यदि व्रजामि भवनं घाचां भवेत्प्रच्यवो निर्गच्छामि निकुञ्जमेव यदि वा को वेद किं स्यादितः । तिष्ठामो यदि वा फवचिद्वनतटे किञ्जातमेतायता मध्ये

वर्त्म कलानिधेः समुदयो जातः किमातन्यताम् ॥ ८ ॥
 प्राणेशेन विना वृथैव वयसस्तौभाग्यलाभोऽप्ययं किं त्वासत्तिरमुष्य नास्ति तदिति प्रेम्णा विधेया मया । इत्यालोच्य विहाय भीतिमभितः प्रौढा सरोजेक्षण प्रेयांसं समुदेतुमुद्यतवती भङ्गे निशीथे क्षणत् ॥ ९ ॥
 भीतासि नैव भुजगात्पथि मद्भुजस्य सङ्गे पुनः किमपि कम्पमुरीकरोषि । अम्भोधरध्वनिभिरनुभितासि तान्य मद्वाचि साचिवदनासि किमाचरामि ॥ १० ॥
 मार्गं पङ्कचिते घनान्धतमसे निःशब्दसञ्चारया गन्तव्या च मया प्रियस्य वसतिमुग्धेति कृत्वा मतिम् । आजानुदूतनूपुरा करतलेनाच्छाद्य नेत्रे भृशं कृच्छ्रेणापदस्थितिः स्वभवेन पन्थानमभ्यस्यति ॥ ११ ॥

युक्ताभिसारिका—द्वित्रैः फेलिसरोरुहं त्रिचतुरैर्धम्मिलमल्ललीस्रजं करठान्मोक्तिकमालिकाञ्च तदनु

रक्ता ल्यांही पूर्वं दिशामं चन्द्रमा निकल श्राया । उसकी और लाल-लाल शक्ति निकलकर नायिका मधुवदात हुप कहती है कि 'बताइए, एक तो क्रायसे भरी हुई नागिनके समान भयङ्कर मार्ग (पगड्यडी) भी पार करे उसपर घरकी मालकिनकी खरी-रोटी दस बातें भी सहनी पडें तो लाभ क्या होगा ?' (क्योंकि यह निगोड़ा चन्द्रमा तो निकलकर मेरे सब किए-धरेपर पानी पेर ही चुका है) ॥ ५ ॥ अपने प्रियके पास रातको जानेवाली सरासे उसकी सखी कह रही है कि 'हे सखी ! एक तो आजकल यों ही लोग बहुत प्रकारकी बातें करने लगे हैं उसपर रात भी बहुत घनी धंधेरी है इसलिये तुम्हारा यहाँ जाना ठीक नहीं है ।' इसपर वह उत्तर देती है—'पैसी बातें न कहो, सखी ! मेरा प्रियतम मुझे बड़ा प्यारा है । उसके दरानके लिये मैं मरी जा रही हूँ । ऐसे समय यदि मैं भले-बुरेका विचार करने लखूंगी तो समझो कि प्रेमको ही तिलाजलि दे दी गई ॥ ६ ॥ हे सुन्दरी ! देखो, आकाशमें चमकनेवाली चित्रली तुम्हारे प्रियका सन्देश लानेवाली दूती बनकर आ गई है, यह बाली रात भी तुम्हारी सखीके समान तुम्हें सहायता ही देगी, ये गतनेवाले बादल भी ज्योंतिथी बनकर चिल्ला-चिल्लाकर तुम्हारे प्रस्थानका सुन्दर सुहृत्तं बना रहे हैं और यह धंधेरा भी मींगुंरांकी ऋतारसे मद्रल-पाठ कर रहा है, इसलिये धन सजा छोटकर मियके पास जानेके लिये शीघ्र ही प्रस्थान करो । इससे मद्धर सुन्दर धयसत्र अब कर मिलेगा ॥ ७ ॥ अपने प्रियमें मिलनेके लिये जानेका विचार करनेवाली एक नायिका

कुछ दूर जाकर सखीसे सम्मति लेती है—'क्यों सखी ! यदि मैं अब लौटकर घर जाती हूँ तो मेरी बात जाती है, यदि उस झाड़ीमें जाती हूँ तो कौन जाने यहाँ क्या हो ? और यदि यहीं बनके किनारे ही जाकर ठहर जाऊँ तो इससे लाभ क्या होगा ? देख तो, मार्गमें ही चन्द्रमा निकल श्राया और सब किया-धरा मिट्टी हो गया ! बता अब क्या करूँ ?' ॥ ८ ॥ 'उस प्राणप्यारेके बिना यह मेरा जीवन ही व्यर्थ है ! किन्तु जिसे मैंने बड़े प्रेमसे साधा है उसका साथ मुझे मिल नहीं रहा है,' यह सोचकर वह प्रौढा कमलनयनी सब भय छोड़कर सुन्दर आधी रातके समय अपने प्रियसे मिलनेको तैयार हो गई ॥ ९ ॥ हे दुबले शरीरवाली ! तुम मार्गमें तो सोंपसे भी नहीं घबराई और तुम्हें मेरी बाँह छु जानेसे ही इतनी काँपी जा रही हो ! कहाँ तो तुम बादलके गर्जनसे भी नहीं घबराई और कहाँ अब मेरी बातें सुनकर भी झूँह कर रही हो, बताओ मैंं तुम्हें कैसे प्रसन्न करूँ ॥ १० ॥ किसी नायिकने यह सोचा कि कीचदसे भरे हुए शयन्यत धंधेरे मार्गमें बिना शब्द किए चुपचाप प्रियके घर मुझे जाना है इसलिये वह अपने घरमें ही घुटनौतक पायल खीचकर तथा हथेलियाँसे अपनी भाँटें टककर धीरे-धीरे बहुत लोल-लोलकर पैर रखती हुई उसी प्रकार चलनेका धन्यस्त कर रही है ॥ ११ ॥

युक्ताभिसारिका : अपने प्रियसे मिलनेके लिये चलती हुई नायिका अपने शरीरपरसे सब योमिल धरपुई उतार रही है जिससे वह शीघ्रसे शीघ्र अपने प्रियसे जाकर मिल सके ।

त्यन्त्या पदैः पञ्चमिः । श्रान्तः कान्तधियोगकातरनया
द्वारमिसारातुरा तन्वङ्गी निरुपायमध्वनि परं श्रोणी-
भरं निन्दति ॥ १ ॥ लोलच्योलचमत्कृति प्रविलसत्का-
ञ्चीलताम्लकृति न्यञ्जत्कञ्जकवन्धवन्धुरचलद्रजोजु-
म्मोन्नति । स्फूर्जद्दीधिति धिस्फुरद्रति बलचामीक-
राललृकृति क्रीडाकुञ्जगृहं प्रयाति कृतिनः कस्यापि
वाररङ्गना ॥ २ ॥ शीतांशुवुद्धिते च कूजति पिके मन्दं
समीरे सति स्वात्मानं परिलिप्य चन्दनरमैराच्छाद्य
वासः सितम् । निःशब्दामलहरीरकामृतिभृता दन्तप्रभां
सर्वतो वपन्ती शनकैः प्रयाति दयितावाचं कुरङ्गेज्जला
॥ ३ ॥ सितं वसनमपितं वपुषि नीलचोलभ्रमान्मया
मृगमदाश्रया मलयजद्रव्यः सेधितः । करेण परियोधितः
स्वजनशङ्कया दुर्जनः परं परमपुण्यतः सखि न लङ्घिता
देहली ॥ ४ ॥

स्वाधीनमर्तुका—श्रम्याकं सखि यामसी न रुचिरे
श्रेयैकं नोज्ज्वलं नो वना गतिरुद्धतं न हस्मिन्
नैयान्ति कञ्चिन्मदः । किं त्यन्तेऽपि जना वदन्ति
सुमनोऽप्यन्याः पतिर्नान्यनो दृष्टिं निक्षिपतीति विश्व-
मियता मन्यामहे दुःखितम् ॥ १ ॥ एतन्किं प्रणयि-
न्यपि प्रणयिनी यन्मानिनी जायते मन्ये मानधिर्वा
मधिष्यति सुखं किञ्चिद्धिष्टं रसात् । धान्द्या तस्य
सुखस्य मेऽपि हृदये जागत्ति नित्यं परं स्वनेऽप्येव न
मेऽपराध्याति पतिः कुप्यामि तन्मं कथम् ॥ २ ॥ मध्ये
न कश्चिमा स्तने न गरिमा देहे न वा कान्तिमा श्रोत्रौ
न प्रथिमा गतो न गरिमा नेत्रं न वा वज्रिभा । लास्ये न
द्रुहिमा न वाचि पटिमा हास्ये न वा स्फोतिमा प्राणै-
शस्य तथापि मञ्जति मनो मण्येव किं करणम् ॥ ३ ॥
मा गर्धमुद्रह कपोलतले चकान्ति कान्तस्थहस्तलि-

अतः द्रोवीन पग चलकर उसने अपने हाथका म्रीडाकमल
फेंक दिया, तीन-चार दग बद्कर बालामें गुंथा हुई बेलैकी
माला बतार फेंकी, पीँचवाँ दग भरते ही गलेसे मोतीकी माला
भी निकाल दी, अपने मनमें पतिके वियोगका दुःख होनेमें
श्रीर मार्ग लम्बा होनेमें यह इतनी यक चली थी । इतनी
सब वस्तुएँ उतार फेंकनेपर भी जग उसकी चाल नहीं बढ़ा
तब वह शरकर सारा दोग अपने भारी नितम्बोंको देने लगी
॥ १ ॥ अपना चमकदार पल्लू उहाराती हुई, अपनी
चमकीली करचनको बराबर रनसुन करती हुई, अपनी चोलीमें
कसे हुए पदकें समान पड़े-पड़े सुन्दर स्तनोंका शोभाके साथ
हिलाराई हुई तथा अपना चटकाला चालके कारण अपने स्वर्णके
गहने झुलावाी हुई वह बेरया किसी भाग्यशालाके सङ्केतपर
म्रीडाकें कुञ्जमें पर बढ़ाए चली जा रही है ॥ २ ॥ जिस समय
चन्द्रमा निकल आए है, कांयलकी कूक मुनाई दे रही है और
मन्द-मन्द पवन चल रहा है, उस समय अपने शरीरपर
चन्दनका चांवा लेपकर और श्वेत वस्त्र पहनकर स्वर्ण हारके
दोस धाम्पणोंसे सुसज्जित वह श्राननयी चारों धार अपने
दोँतीकी चमक फैलाती इन्हें धार-धार अपने मियके भवनकी धार

निकल नहीं आई' ॥ १ ॥

स्वाधीनपतिफा : हे सखी ! न तो मेरे वस्त्रोंका
जोड़ा ही सुन्दर है, न मेरे गलेका हार ही बहुत अच्छा है,
न चाल ही बहुत चटक-मटक-भरी है, न हँसी ही बहुत
खिलखिलाहटमें भरी है और न तो मुझमें कोई मतवालापन
ही है, फिर भी लाग कहते यहाँ हैं कि इसका सुन्दर पति
किसी भी दूसरा स्त्रीको धार श्रोत्र नहीं उड़ाता । जान पड़ता
है ससारका यहाँ सबसे बड़ा दुःख है ॥ १ ॥ हे सखी ! बरस बात
है कि स्त्रियों अपने प्रभासे रह-रहकर भी रुठ जाया करती हैं । मैं
समझती हूँ कि रतनेमें प्रेमसे भी अधिक बढ़कर कुछ आनन्द
होता है (मा इत्सालिये यह सुन पानेकी इच्छा मेरे मनमें भी
नित्य उठा करता है । पर मेरे पति स्वप्नमें भी कोई ऐसा काम
नहीं करत कि मुझे रुठना पड़े, तो यथाशो भी रुठनेका
अवसर कैसे निकालूँ ॥ २ ॥ हे सखी ! न तो मेरी कमर ही
पतली है, न मेरे स्तन ही बहुत बड़े-बड़े हैं, न मेरे शरीरमें ही
कोई चमक है, न मेरे नितम्ब ही बहुत मोटे हैं, न मेरी चाल
ही कोई अलभेनी है, न मेरी आँखोंमें ही बँकानन है, न मुझे
भाचनेका ही अभ्यास है, न शीतलेका ही तब काल है और न

खिता मम भङ्गरीति । अन्यापि किं न सखि भाजन-
मीदृशानां वैरी न चेद्भवति वेपथुरन्तरायः ॥ ४ ॥
यदपि रतिमहोत्सवे नकारो यदपि करेण च नीविधा-
रणानि । म्रियस्यपि पतिरेप पाश्वेदेशं तदपि न मुञ्चति
तत्किमाचरामि ॥ ५ ॥ वक्त्रस्याधरपदलवस्य वचसो
हास्यस्य हास्यस्य वा धन्यानामरविन्दसुन्दरदृशां
कान्तस्तनोति स्तुतिम् । स्वप्ननापि न गच्छति श्रुति-
पथं चतःपथ इकपथ काप्यन्या दयितस्य मे साखि कथं
तस्यास्तु भेदग्रहः ॥ ६ ॥ वपुषि तव तनोति रत्नभूपां
प्रभुरिति धन्यतमासि किं ब्रवीमि । साखि तनुनयना-
न्तरालभीष्टः फलयति मे न विभूषणानि कान्तः
॥ ७ ॥ श्वश्रूः पश्यति नैव पश्यति यदि भ्रूमङ्गवक्रेक्षणा
मर्मच्छेदपट्ट प्रतिक्षणमसौ ब्रूते ननान्दा वचः । अन्या-
सामपि किं ब्रवीमि चरितं स्मृत्वा मनो वेपते कान्तः
जिग्म्वदृशा विलोकयति मामेतावदागः सखि ॥ ८ ॥

जो कँपवैपी उठती है वह तत्काल शत्रु वनवर बाधा डाल देती
है अथात् मेरा पति भी मेरे गालपर ऐसे ही बेल बूटे बना
सकता है वह जैसे ही हाथ लगाता है जैसे ही सारा
शरीर कम्प (सात्विक भाव) से कँप उठता है और
बेल-बूटे धरे रह जाते हैं ॥ ४ ॥ हे प्यारी सखी ! यद्यपि
सम्भोगके समय मैं अपने म्रियको 'ना ना' भी करती रहती
हूँ और हाथसे कन्धरपरकी धोतीकी गाँठ भी पकड़े रहती
हूँ फिर भी यह वह मेरे पाससे हटनेका नाम नहीं लेता,
बताओ मैं क्या करूँ ॥ ५ ॥ सखि ! मैं सुना करती हूँ कि
दूसरे-दूसरे लोग सदा कमलके समान सुन्दर शौंवाली
द्विपोंके मुए, श्रोत्र, धोलधाल, हँसी और नाचकी प्रशंसाके
गुल बाँधते अघाते नहीं । परन्तु मेरे पतिके वानोंमें किसा दूसरी
स्त्रीका स्वर, मनमें किसा दूसरी स्त्रीका रूप और शौंवाके
सामने किसा दूसरी स्त्रीका सौन्दर्य स्वप्नमें भी नहीं आया,
तब उन्हीं दूसरा द्विपोंके गुणोंका ज्ञान ही क्या हा सकता है ॥ ६ ॥
हे सखि ! तुम अत्यन्त धन्य हो, मैं क्या तुम्हारी प्रशंसा करूँ
कि तुम्हारा स्वामी तुम्हारा शरीर रनोले सजाता है; किन्तु मेरा
स्वामी तो इस इतले मुझे गहने नहीं पहनता । क कहों वे
उनका साँसके और मेरी देहके बीच बाधा बनकर न राखें हो
जायँ ॥ ७ ॥ हे सखी ! सात ता मुझे बूटी धौंवा नहीं
देगना चाहती, यदि बर्मा देवती भी है ता भीहें तोरेकर ही
देखती है, नन्द भी दिन-रात जो चलनी करनेवाली बातें

सन्त्येव प्रतिमन्दिरं युवतयो यासां सुधासागरस्रोतः-
स्यूतसरोजसुन्दरचमत्कारा दृशोविभ्रमाः । चित्रं
किन्तु विचित्रमन्मथकलावैशद्यहेतोः पुनर्विचित्रं चित्तहरं
प्रयच्छति युधा मन्थेव किं कारणम् ॥ ६ ॥ स्वीया
सन्ति गृहे गृहे मृगदृशो यासां विलासकवणत्काश्री-
कुण्डलहेमकङ्कणभ्रूणत्कारो न विश्राम्यति । को हेतुः,
सखि कान्ते पुरपथे साँधे सखीसन्निधौ आम्यन्ती
मम चल्लभस्य परितो दृष्टिर्न मां मुञ्चति ॥ १० ॥

वासकसज्जा—कृतं वपुषि भूषणं चिकुरधोरणी
धूपिता कृता शयनसन्निधौ क्रमुकवीटिकासमृतिः ।
अकारि हरिणीदृशा भवनमेत्य देहद्विपा स्फुरत्कनक-
केतकीकुसुमकान्तिभिर्दुर्दिनम् ॥ १ ॥ चोली नीलनि-
चोलकर्षणविधौ चूडामासि सुम्वने याचिष्ये कुचयोः
करार्पणविधौ काञ्ची पुनः काञ्चीनीम् । इत्थं चन्दन-
चर्चितैर्मृगमदैरङ्गानि संस्फुरती तत्किं यन्न मनोरथं

बोलती रहती है । परकी और भी खियाँ मुझे कैसे कैसे सताती
हैं उसे स्मरण करके ही मन वीप उठता है । अथात् मेरा इतना
है कि मेरे पति मुझे सदा प्रेमभरी ओखोसे देखते हैं ॥ ८ ॥
घर-घरमें ऐसी नबेलियो हैं जिनकी शौंवाकी चितवनं प्रकृत-
सागरके प्रवाहमें खिले हुए कमलके समान मनोहर हैं किन्तु
आश्चर्यकी बात तो यह है कि अनेक प्रकारकी वामकलाके
विस्तारके लिये मनको ललचानेवाला धन लाकर मेरा तरथ पति
सब मुझे ही दे देता है (किन्ती दूसरीको नहीं) । यताओ, क्या
कारण है ॥ ९ ॥ हे सखी ! घर-घरमें ऐसी अनेक सुलीन सुग-
नयनी खियाँ हैं जिनकी वजती हुई वरधनी, स्नपनवाले
हुए कानके जुरदल और कनकनाले हुए सोनेके कलनोंकी भर-
वार कमी बन्द नहीं होती, पर न जाने क्या कारण है कि मेरे
पतिकी दृष्टि, वनमें, नगरकी गलियोंमें, घरमें और सखियोंके
पास चारों ओर चक्कर लगाती हुई भी सदा मेरे ही पीछे पड़ी
रहती है ॥ १० ॥

वासकसज्जा : उस कमलनयनी नायिकाने अपने घरमें
पुसकर शरीरपर गहने सजाए, यालोंमें धूपकी गन्ध भरी,
पलङ्गके पास पानके पीछे सजाकर रखे और फिर चमकते हुए
सुनहरे बन्दके फलाका पराग पेटता पिरोता कि मेघ पितले-
ने जान पड़ने लगे ॥ १ ॥ जिस समय वेरयाई ग्यार-भवनमें
अपने शरीरपर चन्दनमें कस्तूरी मिलाकर लेप करती है उस
समय वे मनमें बीच-बीचनी धावाँपाई नहीं करती । वे सोचती

वितनुते धारेषु धाराङ्गना ॥ २ ॥ दृष्ट्वा दर्पणमण्डले
निजयपभूर्णो मनोहागिणीं दीप्ताचिःकपिशञ्च मोहन-
गृहं चस्यत्कुण्ड्रीदृशा । एवं नौ सुरतं भविष्यति
चिरादयोति सानन्द्या कामं कान्तदिदृक्षया च
ललिता द्वारेऽपिता दृष्टयः ॥ ३ ॥ निजपाणिपल्लवत-
टस्खलनाद्भिनामिकाविवरमुनपतितैः । अपरा परीक्ष्य
शनकैर्ममुदे मुखवासमास्यकमलश्वसनैः ॥ ४ ॥ नेदं
समीगितमकारि कला न च्येमित्याकुलाः कथमपि
प्रथमाद्यमहः । एवं त्रिधेयमथ वाच्यमिदं मयेति शेषं
प्रियाः सुरुतिनामतिवाहयन्ति ॥ ५ ॥ विदूरे कैयूरे कुच
करयुगे रत्नवलधैरत्नं गुणैः श्रीवाभरणलतिकेयं किम-
नया । नयामेकामेकावलिमयि मयि त्वं विरच्येयं
नेपथ्यं पथ्यं यद्दुतरमनङ्गोत्सवधिधी ॥ ६ ॥ शिल्पं
दर्शयितुं करोति कुतुकात्कह्लारहारस्रजं चित्रप्रेक्षणै-

तयेन किमपि द्वारं समुद्गीचते । गृहान्यामरणं नवं
सहचरीभूयाजिगीषामिपादिव्यं पञ्चदशः प्रतीत्य
चरितं स्मेराननोऽभूस्मरः ॥ ७ ॥ श्वश्रुं स्वावयति
च्छलेन च तिरोधत्ते प्रदीपाङ्कुरं धत्ते सौधकपोतपोत-
निन्दैः साङ्केतिकं चोद्धृतम् । श्वन्पाश्र्वविधितिताङ्गल-
तिकं लोलकपोलदुधुति कयापि-कयापि कगम्बुजं प्रिय-
धिया तल्पान्तिके न्यस्यति ॥ ८ ॥ द्वारं शुभ्रकति तार-
कान्तिकचरिं मथ्नाति काञ्चीलतां दीपं न्यस्यति
किन्तु तत्र यद्गुलं ज्येष्ठं न धत्ते पुनः । आलीनामिति
वासकस्य रजनौ कामानुरूपं क्रियां साचिस्मेरसुयी
नवोदसमुखी दूरात्समुद्गीचते ॥ ९ ॥

उक्ता—अम्मोरुहाणि शम्भोश्चरणावाराधितौ केन ।
यस्मै विधलितयदना मदनकृतं विभावयसि ॥ १ ॥
आनेतुं न गता किमु प्रियसखी भीतो भुजङ्गात्किमु

हैं कि जगदह मेरी नीली चोली रींचेगा तब मैं चोली
मार्गगी, सुबनके समय चूडामणिका प्रक रक्खींगी और
स्नानीय हाथ रपते समय मोनेकी करघनी रपवा लूंगी ॥२॥
उस डरी हुई हरिणीके समान नेत्रोंवाली नवेली नायिकाने
दर्पणमें अपने शरीरको सुन्दर सजावट देकर तथा जलते हुए
दिपकी लौमें भूरे रङ्गके दिग्गई देनेवाले क्रीडाभयनको देखकर
यह सोचा कि आज यत्रत दिनोपर हम लोगोंकी कामक्रीडा जमर
होगी और फिर उस आनन्दमें अपने प्रियको देखनेकी इच्छासे
उसने अपनी रसीली श्रोणों द्वारकी ओर घुमा लीं ॥ ३ ॥ एक
एत्री अपने मुँहके सामने हथेली करके अपने मुख-कमलकी
सौंस नारक्री ओर उठाकर अपने मुखकी मुगन्धकी परीचा करती
हुई मन ही मन उसका आनन्द ले रही है ॥ ४ ॥ भाग्यवाद्
लोगोंकी सिरियां श्राधा दिन तो इस चिन्तामें विता देती हैं कि
प्रियसे मिलनेके समय मैंने ये बातें नहीं कहीं और इस
कलाका प्रयोग नहीं किया और शेष श्राधा दिन इस
उपेक्ष-धुनमें बिताती हैं कि प्रियके मिलनेपर अब यह-यह
कहूंगी और यह-यह कहूंगी ॥ ५ ॥ वह नवेली अपनी
दासीसे कह रही है—'दोनों भुजगन्द उतार दे, ये रत्नके
कदं भी दोनों हाथोंमें पहनानेकी आवश्यकता नहीं है और
इस भारी गलेके हासे भी कोई लाभ नहीं है । तुवस इतना
फर कि मेरे लिये एक एकलदा हार बना दे क्योंकि रति-
क्रीडाके समय बहुत सी सजावट बाधा ही पहुँचाती है ॥ ६ ॥
यह नवेली अपने प्रियकी अपनी कला दिखानेके लिये

यहें प्रेमसे कमलकी माला बना रही है, प्रकाशमें छिद्र
देखनेके वहाने द्वारकी ओर देख रही है तथा अपनी
सगियोंके श्राभूपणोंको नीचा दिवानेके लिये गहने पहन रही
है । उस कमलनयनीकी इस प्रकारकी बालें देवकर कामदेव
फूलकर लुप्ता हो चला है ॥ ७ ॥ वह नायिका अनेक वहाने
करके अपनी सामकी मुला रही है, दीपकी लौ मन्दी कर रही
है, कथनके बच्चोंके समान शब्द करके अपने प्रियको संकेत
कर रही है और करवटें ले-लेकर अपने गाल चमकाती हुई
बिमौनेपर पतिको टटोलनेके विचारसे हृष-उधर हाथ फैला
रही है ॥ ८ ॥ वह मन्दर नहीं दुलहिन अपने पतिकी प्रतीक्षामें
बैठी शर मूँच रही है, अपनी चमकती हुई सुन्दर करघनी
घुमावा जा रही है, दिया उठाकर रख तो रही है किन्तु उसमें
बहत तेल नहीं ढालती । उसकी सखिमेंने मुहागरात्के लिये
वहाँ जो कामकीवाके शत्रु रूप सजावट कर दी है उसे मुकराहटके
साथ मुँह घुमा-घुमाकर दूरसे देख रही है ॥ ९ ॥

उदास नायिका ! हे कमलके समान श्रोणोंवाली !
ऐसा कौन तुम्हारा प्रिय है जिसके लिये तुम मुँह मोड़-मोड़कर
प्रेमकी श्राकांचा कर रही हो और जो शिवजीके चरणोंकी सेवा
कर रहा है (अर्थात् ऐसा कौन व्यक्ति है जो कामदेवको जला
ढालनेवाले शिवकी श्रांरार्थना करता हुआ तुम्हारे मनमें उपलब्ध
धामनी श्रवहेलना कर रहा है) ॥ १ ॥ एक नहीं ब्याही हुई
नायिकाने अपनी एक सखीको प्रियके पास भेजा, किन्तु देरतक
उसके न लौटनेपर वह सोच रही है—'क्या मेरी प्यारी सखी उसे

क्रुद्धो वा प्रतिप्रेषवाचि किमसौ प्राग्भरो वसते ।
 इत्थं कर्णसुवर्णकैतकरजःपातोपघातच्छलादन्वोः कापि
 नचोदनीरजमुयी वाष्पोदकं मुञ्चति ॥ २ ॥ किं रुद्धः
 प्रियया कयाचिदथवा सख्या ममोद्वेजितः किं वा
 कारणात्तरयं किमपि यन्नाद्यागतो वदलभः । इत्यालोच्य
 मृगीदृश्या फरतले विन्यस्य वक्राम्बुजं दीर्घनिःश्वसितं
 चिरञ्च रुदितं क्षिप्ताश्च पुष्पत्रजः ॥ ३ ॥ भ्रूभङ्गे रुचि-
 तेऽपि दृष्टिरधिकं सोःकरदमुद्रीक्षते रुद्धायामपि
 वाचि सस्मितमिदं दग्धाननञ्जायते । कार्कश्यं गमि-
 तेऽपि चेतसि तनू रोमाश्चमालम्बते दृष्टे निर्वहणं
 भविष्यति कथं मानग्य तस्मिन्ने ॥ ४ ॥ यन्नाद्यापि
 समागतः पतिरिति प्रायः प्रपेदे परामिदं चेतसि
 चिन्तयन्त्यपि सखी न म्रीडया पृच्छति । दीर्घनिःश्व-
 सितं दधाति चकितं न प्रेक्षते केवलं किञ्चित्पक्वप-

लासदुपासदुरर्चि धत्ते कपोलस्थलीम् ॥ ५ ॥ सखि स
 विजितो वीणावाद्यैः कथाप्यपरस्त्रिया पणितममवत्ता
 भ्यां तत्र क्षपाललितं ध्रुवम् । कथमितरथा शोफालीपु
 स्वलत्कुसुमास्वपि प्रसरति नभोमण्येऽपीन्द्री म्रियेण
 विलम्ब्यते ॥ ६ ॥ स्नानं वारिदवारिभिर्विरचितो वासो
 घने कानने शीतैश्चन्दनविन्दुभिर्मनसिजो देवसम्भारा-
 धितः । नीता जागरणव्रतन रजनी म्रीडा कृता दक्षिणा
 तप्तं किं न तपस्तथापि स कथं नायाति नेत्रातिथिः
 ॥ ७ ॥

लपिडता—अनलङ्कृतोऽपि सुन्दर हरसि मनो मे
 यत. प्रसभम् । किं पुनरलङ्कृतस्त्वं सम्प्रति नखर-
 तैस्तस्याः ॥ १ ॥ उरस्तव पयोधराङ्कितमिदं कृतो मे
 क्षमा ततो मयि विधीयतां वसु पुरा यदङ्गीकृतम् ।
 इति प्रचलचेतसः प्रियतमस्य वारस्त्रिया क्यण्कन-

लिवाने ही नहीं गई या यही साँपके डरके मारे नहीं आया, या
 हमसे ही कोई उलटी बात सुँहसे निकल गई जिससे वह रुठ
 गया है ।' इस प्रकारकी उधेद-नुनमें पड़ी हुई वह नायिका
 अपने धानपर धरे हुए सुनहले केवड़ेका पराग धौलमें पड़
 जानेका बहाना लेकर भर-भर धौल बहा रही है ॥ २ ॥ अपने
 प्रियके न धानपर वह नवेली सोचती है कि—'क्या उनकी
 किसी दूसरी प्रेमिकाके उन्हीं रोके लिया है या मेरी ही किसी
 सखीने उन्हीं भक्षवा दिया है या कोई ऐसा बडा काम ही था
 पदा कि मेरे प्रिय आज नहीं था पाए ।' मनमें यह सब
 सोच विचार करते हुए उस मृगनयनीने अपनी हथेलीपर धपना
 मुख-कमल रखकर लम्बी साँस लीची, देरतक धौल बहाए और
 अपने प्यारकी पहनानेके लिये जो माला गूँधी थी उसे भी
 तोड़ फेंका ॥ ३ ॥ सखीके पड़नेपर वह नायिका कहती
 है कि 'उसके धानपर मैं अपनी भीँई बहुत पड़ाती हूँ फिर
 भी मेरी धौलें उसे यहीं उलुकताके साथ देरती रह जाती
 हैं; मैं चुप रहनेका प्रयत्न करती हूँ पर यह जला सुँह फटसे
 मुझका देता है तथा मैं अपने मनको बडा कडा कर लेती हूँ
 किन्तु शरीरमें रोंगटे उठ खड़े होते हैं । ऐसी दशामें हे सखी !
 बताओ तो उस प्रियकी देगदर मैं उससे कैसे रुठी रह सकती
 हूँ ॥ ४ ॥ उस नवेलीके मनमें यहीं उथल-पुथल हो रही है
 कि जब धमनीक भी मेरे प्रिय नहीं आए तो जान पड़ता है
 कि किसी दूसरी प्रेमिकाके परेमें पड़ गए हैं । इस लाजके मारे
 न तो वह अपनी किसी दूसरी सखीसे उनका टिकाना पद रही

है, न लम्बी साँस ही ले रही है, न तो सकपकाकर हथर-उधा
 भौंक ही रही है, फिर भी चिन्तासे ऐसी घुल गई है कि उसके
 गाल पके हुए प्यारके समान पीले पड़ गए हैं ॥ ५ ॥ हे सखी !
 मेरे प्रियतम जो अभीतक नहीं आए हैं उसका कारण यही
 होगा कि वे या तो किसी दूसरी स्त्रीके बोधा बजायेपर मोहित
 हो गए होंगे या जुएमें रातभरकी म्रीडाको ही दाव लगाए
 हार गए होंगे इसीलिये अबतक नहीं आए, नहीं तो धाकारमें
 चन्द्रमा निकल धानेपर और शोफाली (निगुण्डी) के फूल
 फडनेके समय वे कहीं भी बैठे रुक सकते हैं ॥ ६ ॥ एक नवेली
 सोच रही है कि मैंने बादलके जलसे स्नान किया, घने जलमें
 निवास किया, शीतल चन्दनकी सुँहसे कामदेवकी पूजा की,
 रातें जाग-जागकर बिताईं और दक्षिणामें अपनी लज्जानक
 दे दी, इसपर धय कौन-सी तपस्या शेष रह गई कि मेरे नेत्रोंको
 आनन्द देनेवाला मेरा प्यार अबतक नहीं आया ॥ ७ ॥

पारिडता नायिका : हे सुन्दर ! तुम ही बिना किसी साव-
 श्चकारके ही मेरा मन हर लेते हो, फिर उस (दूसरी नायिका)
 के नरोंके चिह्नमें श्चकार कर लेनेपर तो बहना ही क्या
 है ॥ १ ॥ एक बेरया अपने किसी यारमें कहती है कि 'तुम्हारी
 दातीपर किसी स्त्रीके स्तनोंका यह चिह्न देखकर मैं कैसे जमा
 कर सकती हूँ ? इसलिये मुझे तुमने जो पहले धन देनेका
 वचन दिया था वह पहले धर भवाओ !' यह सुनकर मायका
 चित्त र्शविकोल हो गया और उसके हाथमें भ्रतमनने हुए
 स्तनेके बंगन उस बेरयाने निकाल लिए ॥ २ ॥ अपनी दूतीके

ककङ्कणं करतलात्समाकृष्यते ॥ २ ॥ कान्तं निरीक्ष्य
 वलयवाङ्कितकण्ठदेशं मुक्तास्तथा परमिया परया न
 वाचः । दूतीमुखे मृगदशा स्वलदम्बुपूरा दूरात्परं
 निदर्धिरे नयनान्तपाताः ॥ ३ ॥ कान्तं योक्ष्य विपक्ष-
 पद्मलक्ष्मः पादाभ्युज्जालककैरालिखानमनमतीकृत-
 मुखी चित्रापितेवाभवत् । रुद्धं नोकवती न या कृत-
 वती निःश्यासकोष्णी दृशौ प्रातर्मङ्गलमङ्गना करतला-
 दादशमादर्शयत् ॥ ४ ॥ जातस्ते निशि जागरो मम
 नयनत्राम्बुजे शोचिमा नि पीतं भवता मधु प्रविततं
 व्याघूर्णितं मे मनः । आभ्यङ्गद्वये निकुञ्जमन्वेने ल-
 चं त्वया श्रीफलं पञ्चोपुः पुनरेप मां बहुतरैः क्रूरैः शरैः
 कृतन्ति ॥ ५ ॥ नयनखपदमङ्गं गोपयस्थंशुकेन स्थग-
 यसि पुनरोष्ठं पाणिना दन्तदृष्टम् । प्रतिदिशमपर-
 खीसङ्गशंखी विसर्पन्नवपरिमलगन्धः केन शम्भो

वरीतुम् ॥ ६ ॥ प्रातः प्रातरूपागतेन जनिता निर्नि-
 त्रिता चक्षुषोर्मन्दाया मम गौरवं व्यपहृतं प्रोत्पादितं
 लाघवम् । किं तद्यन्न कृतं त्वया रमण भीर्मुक्ता मया
 गम्यतां दुष्टं तिष्ठसि यच्च पथ्यमधुना कस्तोस्मि
 तच्छ्रोष्यसि ॥ ७ ॥ भवतु चिदितं व्यर्थात्परलं प्रिय
 गम्यतां तनुरपि न ते दोषोऽस्माकं विधिस्तु पर-
 क्ष्वलः । तव यदि तथा रुद्धं प्रेम प्रपन्नमिमां दृशं
 प्रकृतितरले का न पीडा गते हतजीविते ॥ ८ ॥ वचः
 किमु कलशाङ्कितमिति किमपि प्रष्टमिच्छन्त्याः
 नयनं नयोढसुदृशः प्राणेशः पाणिना पिदधे ॥ ९ ॥
 वचोञ्जचित्तमुरो दयितस्य वीक्ष्य दीर्घं न निःश्वसति
 जल्पति नैव किञ्चित् । प्रातर्जलेन वदनं परिमार्ज-
 यन्ती चाला विलोचनजलानि तिरोदधाति ॥ १० ॥
 शङ्किताय कृतवाष्पनिपातामीर्ष्याया विमुञ्चितां दयि

साथ नायकको आया देवकर नवेलीने उसके गलेपर उस
 दूतीके हाथके कङ्कनकी छाप देखकर दूसरोंके सङ्केचके मारे
 मुँहसे तो कोई कड़ी बात नहीं निकली पर वह आँखोंसे आँसू
 बरसाती हुई पृष्ठक दूतीको और देखने लगी ॥३॥ प्रातः काल
 जब उस नवेलीका प्रिय घर लौटा तो उसके मुखपर टेढ़ी भौंहों-
 वाली सौतेके पैरके महावरीकी छाप देखकर नायिका अपना
 सिर झुकाकर ऐसी चित्रलिखी सी रह गई कि न तो उसने उसे
 खरी-खोटी ही सुनाई और न अपनी गरम साँसोंसे अपनी आँखें ही
 कुलसाईं बरन् अपने हाथका दर्पण उठाकर उसके मुँहके सामने
 कर दिया ॥ ४ ॥ किसी दूसरी स्त्रीके घरसे लौटे हुए मियको
 देखकर हृदयी हुई- वह नायिका कहती है कि 'रातमें जागे तो
 तुम हो पर आँखें हमारी लाल हो रही हैं, मदिरा तुमने पी है
 पर सिर हमारा चकरा रहा है तथा उड़ते हुए भीरोंसे भरे
 हुए घने कुञ्जमें श्रीफल (बेल, स्तन) तो तुमने पाया
 किन्तु कामदेव अत्यन्त निर्दयताके साथ अपने पैने बायाँसे बेधे
 हमें डाल रहा है ॥ ५ ॥ दूसरी स्त्रीसे सम्भोग करके प्रातः
 लौटे हुए अपने प्रियसे नायिका कहती है कि 'उस सौतेके
 नयनोंसे बने हुए चिह्नोँसे धरती हुई अपनी देह तो तुम वस्त्रोंसे
 लपेट लोगे ही उसके दौँवके घाववाले श्रोतोंको हाथसे दबा
 लोगे पर यह तो बताओ कि उसे खालिङ्गन करनेसे जो छुद्दारे
 शरीरपर पराग धा गया है उसकी फेलती हुई गन्ध भला कैसे
 शोक पाया?' ॥६॥ प्रातः लौटे हुए प्रियसे नवेली कहती है कि
 'हे मियतम ! सवैरे-सवैरे आकर अपने मेरी आँखोंसे नींद भगा

दी (वैचैन कर दिया), सुक भ्रमागिनका भारीपन हटाकर
 मुझे हल्का कर दिया (मेरा सारा मौख नष्ट करके मुझे सबके
 सामने खलित कर दिया), अपने मेरे लिये इतना सन कर
 दिया है इसलिये मेरा भी सब भय जाता रहा (अब मैं
 आपसे नहीं बोलूँगी), जाहू, आपको भी वहाँ सड़े रहनेमें
 दुःख होता होगा। अब मैं अपनी भलाईके लिये जो कुछ
 करूँगी (आत्महत्या कर लूँगी) उसे आप औरोंसे सुन ही लेंगे'
 ॥ ७ ॥ दूसरी स्त्रीका सम्भोग करके जब उस नवेलीका प्रिय
 घर लौटा तो अनेक प्रकारकी बातें बनाने लगा, उसपर
 वह कहती है—'अच्छा-अच्छा, मैं सन समक गई, व्यर्थ
 बातें बना रहे हैं ? आप जाहू, आपका इसमें क्या दोष
 है, मेरा भाग्य ही मुझसे रूठ गया है। जब आपके इतने सच्चे
 प्रेमकी यह दृशा हो गई है और स्थिर प्रेम भी जाता रहा तब
 यह स्वभावसे ही चञ्चल तथा तुच्छ जीवन भी जाता रहे तो
 कौन बदी चिन्ता है' ॥ ८ ॥ किसी दूसरी स्त्रीका सम्भोग
 करके लौटे हुए पतिको देखकर ज्यों ही नई ब्याही नवेलीने
 यह पशुना चाहा कि 'आपको छातीपर क्या घड़ेकी साँट पड़
 गई है ?' त्यों ही उसके पतिने दोनों छायाँसे उसकी आँखें
 ढक हीं ॥ ९ ॥ अपने पतिकी छातापर किसी दूसरी स्त्रीके
 स्तनोंकी छाप देखकर न सो उस नवेलीने लम्बी साँस ही
 ली और न मुँहसे ही कुछ कहा, बरन् प्रातः काल पानीसे मुँह
 धोनेके बहाने वह अपने आँसू डियानेमें लग गई ॥ १० ॥
 दूसरी स्त्रीसे सम्भोग करके लौटा हुआ उस नवेलीका पति

ताय । मानिनीमभिमुखाहितचित्तान् शंसति स्म घनरो-
मविभेदः ॥ ११ ॥ सत्यमेव गदितं त्वया विभो जीव
एक इति यत्पुरावयोः । अन्त्यदारनिहिता नखत्रणा-
स्तावके वयुपि पीडयन्ति माम् ॥ १२ ॥ सव्यलीकमव-
धीरितयिन्नं प्रस्थितं सपदि कोपपदेन । योषितः
सुहृदिव स्म ऋणद्धि प्राणनाथमभियाप्यनिपातः ॥ १३ ॥
सुभग कुरवकस्त्यं किं ममालिङ्गनोत्कः किमु मुखम-
दिरेच्छुः केसरी नो हृदिस्थः । त्वयि नियतमशोके
युज्यते पादघातः प्रियमिति परिहासात् पेशलं
काचिद्वृत्ते ॥ १४ ॥

कलहगतारिता—अनुनयति पतिं न लज्जमाना कथ-
यति नापि सखीजनाय किञ्चित् । प्रसरति मलयानिले

नवोढा वहति परन्तु चिराय शून्यमन्तः ॥ १ ॥
आनन्दं स्वचिदञ्च मुञ्च हृदयं चातुर्यं धैर्यं त्वया स्थेयं
क्वेति विचार्यतां रसिकते निर्याहि पर्याकुला । रक्ता-
म्भोजपरीतपट्पदनदत्पन्नोपमानत्तमनुभ्यत्पदमचलात्-
लेक्षणयुगं पश्यामि तस्या मुखम् ॥ २ ॥ आशङ्क्य
प्रणति पटान्तपिहितौ पादौ करोत्यादराद्वायजेनागत
मावृणोति हसितं न स्पष्टमुद्वीचते । मय्याहापवति
प्रतीपवचनं सख्या सहाभापते तन्व्यास्तित्प्रतु निर्भर्य
णयिता मानोऽपि रम्योदयः ॥ ३ ॥ एकस्मिन्श्रयणे
विपत्तरमणीनामग्रहे मुग्धया सद्यः कोपपरिग्रहलपि-
तया चाट्टनि कुर्वन्नपि । आवेगादवधीरितः प्रियत-
मस्तूर्ण्यो स्थितस्तत्क्षणं मा भूत्सुप्त इचेत्यमन्दवलित-

पथि वरा खडा या परन्तु उस नवेलीसे प्रेम भी करना
चाहता था । उधर नायिका खालोंसे आँसू भी बहा रही थी
और उसकी करनीपर खीमकर मुँह भी फेरे बैठी थी, पर इतना
रुठनेपर भी उसके शरीरपर उठ खड़े हुए रोंगटे यह भी प्रकट
कर रहे थे कि वह नायकके आनेसे प्रसन्न अथरय है ॥ ११ ॥
फोई नवेली अपने अपराधी पतिसे खीमकर कहती है कि 'हे
सर्वेश्वर पतिदेव ! आपने जो पहले कहा था कि हम दोनोंका
जी एक ही है यह आज सचमुच सत्य निकला क्योंकि आपके
शरीरपर नलोंसे घाव तो किया किसी दूसरी स्त्रीनि पर उसकी
टीस हो रही है मुझे' ॥ १२ ॥ उस नवेलीका पति अपराध
जो करके छाया ही था, अतः जब उसकी प्रियाने उसका
अपमान कर दिया तो यह उदास होकर मूढपट बनावटी क्रोध
करके वहाँसे ज्योंही चलनेको पैर बढ़ाने लगा त्योंही उस
नवेलीकी खालोंसे निकलते हुए आँसूघोंने मित्र बनकर उसे रोक
दिया ॥ १३ ॥ 'हे सुन्दर प्रिय ! तुम स्वयं उरबक (लाल फूल,
प्रमिय बोझनेवाले) हो तब फिर मुझे गले लगानेके लिये क्यों
प्याकुल हो ? जब तुम्हारे हृदयमें केसरी (मयका चिह्न और
केसर की गन्ध) है ही तब मेरे मुखकी मदिरा खेकर क्या
करोगे ? तुम्हारे जैसे अशोक (निश्चिन्द, अशोकका वृक्ष) के लिये
तो छात ही ठीक होती है' । इस प्रकार खेपकी हँसिले किसी
नवेलीने ये अनुगार्ह-भरी चोटें कीं ॥ १४ ॥

पलटान्तरिता : यह नई धारी नवेली न तो लानके
मारे अपने पतिको ही मनाती है न अपनी सखियोंसे ही डुप
करती है पर इतना अथरय है कि जब दृष्टिका सुगन्धित
कीर रीतख मापु चलने लगता है तब बहुत देरतक उसका

मन कुछ खोया खोया-सा हो जाता है ॥ १ ॥ एक नायक
अपनी रूठी हुई नायिकाको मनानेके लिये चलता हुआ
कहता है—'हे आनन्द ! तुम थोड़ी देर कहीं सरक जाओ । हे
चतुरते ! तुम भी हमारा हृदय छोड़ो । हे धैर्य ! तुम भी सोच
लो कि कुन्हीं कहीं जाकर बसना है और हे रसिकते ! तुम भी
तयतक धीरेसे कहीं छिप बैठो जबतक मैं काली काली चन्द्र
पलकोंवाले अपनी प्यारीके नेत्रोंसे युक्त उसका श्रोत्रों
लाल मुख देख लूँ, जो ऐसा जान पड़ता है मानो
लाल कमलपर पहुँच फैलाकर गुआर करते हुए भीरे मँडरा
रहे हो' ॥ २ ॥ एक नायक अपनी रूठी हुई प्यारीका
वर्णन करता है—'ज्योंही मैं पहुँचा त्योंही उसने अपने पैर
परसे टँक लिए कि कहीं मैं उसके पैर न छू लूँ, मुझपर
थाई हुई हँसि किसी यहानेसे छिपा ली, मेरी श्रोत्र न
झौल देतातक नहीं और मेरी धाँतें सुनी अननुनी करके
अपनी सखियोंसे यातधीत आरम्भ कर दी । उसका इष्ट
प्रकारका मोक्ष करना मुझे उसके प्रेम करनेसे भी अधिक
सुन्दर जान पड़ता है' ॥ ३ ॥ पति-पत्नी दोनों एक विधानेन
लेते हुए थे, इतनेमें नायकने भूलसे उसकी सौतका नाम
ले लिया । इतना सुनना था कि वह नायिका हुरत आन-
बधुला हो गई और इतनी धारसे बाहर हो गई कि पदनि
उसका पति बहुत थकलावा पुसलाता रहा फिर भी उसने रने
प्रयत्न करारी फटकार सुनाई । यह भी गुप माहक कर्त्त
मँदकर पढ़ रहा । किन्तु नायिकाने शीघ्र ही अपना लि
धुमाकर इस विचारसे उसकी ओर देखा कि कहीं वह खो हो
नहीं गया ॥ ४ ॥ करे हुए हरियके समान अथल नेत्रोंवाली

श्रीघं पुनर्वाञ्छितः ॥ ४ ॥ चकितहरिणलोललोचनायाः
 क्रुधि तरुणाङ्गणतारहारकान्ति । सरसिजमिदमान-
 नञ्च तस्याः सममिति चेतसि सम्मदं विधत्ते ॥ ५ ॥
 चरणपतनप्रत्याख्यानात्प्रसादपराङ्मुखे निभृतकफिताया-
 चारित्युक्त्या रूपा परपीडिते । प्रजति रमणे निश्च-
 स्योच्चैः स्तनस्थितहस्तया नयनसलिलच्छन्ना दृष्टिः
 सपीपु निवेशिता ॥ ६ ॥ चलञ्चैतः पुंसां सहज-
 सरलाः पङ्कजदृशो भयत्येव क्रोधः क्वचिदपि कदा-
 चिचक्षणयोः । दहेदङ्गं भृङ्गी विधुरपि विदध्यात्परि-
 भवं स्मरो मां मन्थीयादिति किमपि नाशासिपमहम्
 ॥ ७ ॥ ततश्चामिश्राय स्फुरदरुणगदरुणलक्ष्मणा मन-
 स्विन्या रोपप्रणयरभसाद्गद्गदिगिरा । अहो चित्रं-चित्रं
 स्फुटमिति निगद्यश्रुकलुपं रूपा ब्रह्माखं मे शिरसि
 निहितो वामचरणः ॥ ८ ॥ तत्तद्दृश्यपि यथावसरं

हस्तप्यालङ्घनेऽपि न निवेशति घुम्यनेऽपि । किन्तु
 प्रसादनमयादपि निहुतेन कोपेन कोऽपि विहितोऽप्य
 रसाचतरः ॥ ६ ॥ तरुपोपान्तमुपेयुषि प्रियतमे
 वकीकृतप्रोचया फाकुप्याकुलवाचि साधिदसितस्फु-
 र्तकपोलश्रिया । हस्तन्यस्तकरे पुनर्मृगइत्या लाद्या-
 रसत्तालितप्रोष्टीष्टमृगमूलमांसलक्ष्मो विस्फारिता
 दृष्टयः ॥ १० ॥ तारल्यं मुखमेलने न च यच्चो वैद-
 ग्यमन्यादृशं न भ्रूमङ्गपरिग्रहो न च रहःप्रश्नेऽपि
 मौनस्थितिः । एवं सम्प्रति तर्क्यते तु सुदृशः
 कोपस्तु महस्तुनि स्वाधिनेऽपि पुरेव पङ्कजदृशो
 यत्र प्रभुत्वग्रहः ॥ ११ ॥ दूरादुत्सुकमागतौ वियलितं
 सम्भाषिणि स्फारितं संश्लिष्यत्यरुणे गृहीतवसनं
 कोपाञ्चितभ्रूलतम् । मानिन्याश्चरणानतिव्यतिकरे
 वाष्पाम्बुपूर्णाक्षं चञ्जुजातमहो प्रपञ्चचतुरं जाता-

उस नायिकाका जो मुख चमकते हुए स्वच्छ लाल मणियोंके हारसे
 सुषोभित था वह क्रोधके समय बैसै ही मनको प्रसन्न कर रहा था
 जैसे कमल ॥ ५ ॥ जब रुठी हुई नायिकाने नायकको जी-भर
 फटकारा तो उसने भी दान लिया कि मैं भी नहीं मनाऊँगा ।
 इसपर नायिकाने श्रत्यन्त क्रोधसे उसे 'द्विपकर घोड़ेका व्यवहार
 करनेवाले!' कहकर शीर भी रूठ कर दिया । अतः जब वह
 लोभकर आने लगा तो नायिकाने अपनी छातीपर हाथ रखकर
 लम्बी साँस भरकर-अपनी आँसुआँसे भरी आँखें सलियोंकी
 ओर घुमा लीं (कि तुम्हीं मना लो) ॥ ६ ॥ कोई नायिका अपनी
 सारीसे कहती है कि 'पुरपोंका चित्र यद्वा चञ्चल होता है और
 स्त्रियाँ स्वभावसे ही बढ़ी सरल होती हैं इसलिये कभी-कभी
 नायक-नायिकामें झटपट भी हो ही जाती है । पर यह मैं नहीं
 जानती थी कि पियसे अनयन हो जानपर भौंती भी मेरा जो
 जलावेगी, चन्द्रमा भी मुझे दुःख देगा और कामदेव भी मुझे
 भय डालेगा' ॥ ७ ॥ फटकते हुए लाल-लाल सुन्दर गालोंवाली
 मनस्विनी प्रियाने मेरी सब करतूत जानकर श्रत्यन्त क्रोधपूर्वक,
 गद्गद कण्ठसे, आँखोंसे आँसु गिराते हुए पहले तो हतना हो
 कहा कि 'बाद ! क्या नये-नये बहाने निकाले हैं !' और फिर
 मेरे सिरपर प्रह्लासत्रके समान अपनी बाईं लात जमा दी ॥ ८ ॥
 उस नायिकाने एक निराले ही दहका संयोग-श्रद्धार रस उपपन्न
 कर डाला है जिसमें वह रुठनेपर बातचीत भी करती है, बीच
 बीचमें हँसती भी जाती है, आसिद्धन तथा सुगुन करते समय
 विरोध भी नहीं करती और इस तरह कि 'कहीं मेरा पिय मुझे

मनाने न लगे' वह अपना क्रोध भी ठिपापू रहती है ॥ ९ ॥
 ज्योंही नायक पलङ्गपर आया त्योंही नायिकाने अपना मुँह
 फेर लिया । जब वह धराराकर (मनानेके लिये) कुछ
 अश्रुसख्य बातें करने लगा तो नायिकाके गालोंपर उठिल
 हँसी छा गई । पर ज्योंही नायकने नायिकाके हाथपर हाथ
 रखपा त्योंही वह महावरके रसमें रँगो हुई मङ्गलकी
 पीठके समान चमकती हुई अपनी लाल-लाल आँखें फाड़कर
 बसकी ओर देखने लगी ॥ १० ॥ मुँहसे मुँह मिलानेमें भी
 वह बैसै ही चुलचुली है, उसकी बोलचालके दहमें भी कोई
 नयापन नहीं आया है, उसकी भौंहें भी चढ़ी हुई नहीं हैं
 और कोई भेदकी बात पूछनेपर वह बातनेमें भी नहीं चूकती ।
 इन सब बातोंसे तो उसके कायका कोई परिचय नहीं मिलता,
 पर हाँ, अपनी सब वस्तुएँ जाँ मैंने उसे दे रखाँ हैं उर्ध्व वह पराया
 समझने लगी है, यही उसके क्रोधकी एकमात्र पहचान दिखाई
 पड़ रही है ॥ ११ ॥ ज्योंही उस नवेलीके पतिने उसका भनादार
 किया त्यों ही उसकी आँखें अनेक रङ्ग दिखाते लगीं । पहले तो
 वे आँखें उसे दूरसे ही देखनेको मचलौं, जब पति सामने पास
 आ गया तो उसके शरीरपर झटपट चिह्न देखकर वे दूरी-
 ओर घूम गईं, जब उसने बातचीत चलाई तो वे बीड़ी होकर
 फैल गईं (उसने कायसे आँखें फाड़कर देखा), ज्यों ही उसने
 गले लगानेको यद्वा त्यों ही वे खाल हो उठीं, जब वह उसके
 बखर हाथ लगाने लगा तो उन नेत्रोंकी भौंहें देखीं हो चलीं
 और जब वह नायक उसके पैरपर गिर पड़ा तब वे श्रीघ्ने नर

गसि प्रेयसि ॥ १२ ॥ द्वारि चक्षुरधिपाणि कपोलौ
जीवितं त्वयि कुतः कलहोऽस्याः । कामिनामिति
वचः पुनरुक्तं प्रीतये नवनवत्वमियाय ॥ १३ ॥ न
तिर्यगवलोकितं भवति चक्षुरालोहितं वचोऽपि पर-
पाक्षरं न च पदेषु सङ्गच्छते । हिमार्चं इव वेपते
सकल पव विम्बाधरः प्रकामयिनते भ्रुवौ युगपदेव
भेदं गते ॥ १४ ॥ न वरीभरीति कवरीभरे सजा न
चरीकरोति सृगनाभिचित्रकम् । विजरीहरीति न
पुरेव मत्पुरो विवरीवरीति न च विप्रियं प्रिया
॥ १५ ॥ न वृत्ते परुषां गिरं वितनुते न भ्रूयुगं
भङ्गरं नोत्तंसं क्षिपति क्षिती श्रवणतः सा मे स्फुटे-
ऽप्यांगसि । कान्ता गर्भगृहे गवाक्षविघरव्यापारि-
ताह्यग वह्निः सत्या वक्रमभिप्रयच्छति परं पर्य-
श्रुणां श्लोचने ॥ १६ ॥ निःश्यासा वदनं दहन्ति

हृदयं निर्मूलमुन्मथ्यते निद्रा नैति न दृश्यते प्रिय-
सुर्यं नक्तन्दिवं रुद्यते । अङ्गं शोपमुपैति पादपतितः
प्रेर्यास्तयोपेक्षितः सत्यः कं गुणमाकलय्य दयिते
मानं वयं कारिताः ॥ १७ ॥ नो चाटुश्रवणं कर्तुं न
च दृशा हारोऽन्तिके चीक्षितः कान्तस्य प्रियहेतवो
निजसखीवाचोऽपि दूरीकृताः । पादान्ते विनिपत्य
तत्क्षणमसौ गच्छन्मया मूढया पाणिभ्यामवबुध्य
हन्त सहसा कण्ठे कथं नापितः ॥ १८ ॥ पयःपीठं
दत्ते त्वरितमभिधत्ते न च वचः समाज्ञामाधत्ते
शिरसि न विधत्ते च मिलनम् । इति स्वान्ते गोपा-
यितनिविडकोपा प्रतिपदं कृशोदर्याश्चर्यां प्रियमहह
पर्याकुलयति ॥ १९ ॥ पुरस्तन्व्या गोत्रस्खलनवकि-
तोऽहं नतमुखः प्रवृत्तो वैलक्ष्यात्किमपि लिखितुं
दैवहतकः । स्फुटो रेखान्यासः कथमपि स ताडय-

रिणतो गता येन व्यक्तिं पुनरवययैः सैव तरुणी
 ॥ २० ॥ प्रयच्छतोच्चैः कुसुमानि मानिनी विपल-
 गोत्रं दयितेन लम्बिता । न किञ्चिद्दूचे चरणेन
 केयलं लिलेख वाष्पाकुललोचना भुचम् ॥ २१ ॥
 भ्रूमेदो रचितश्चिरं नवनयोरभ्यस्तमामीलनं रोद्धुं
 शिक्षितमादरेण हसितं मानेऽभियोगः कृतः । चैर्यं
 कर्तुमपि स्थिरीकृतमिदं चेतः कथञ्चिन्मया बद्धो
 मानपरिग्रहे परिकरः सिद्धिस्तु दैवे म्यिता ॥ २२ ॥
 भय्यायाते सपदि नयनाडुविधितं चाट्ट वाक्पयं वद्ध्वा
 पाणी बहु निगदितं ज्ञालितं पादपद्मम् । दत्त्वा
 वीटीं सविनयमथोद्गीजितं तालवृन्तैर्ब्रूते कापं कुचल-
 यदशो भूयसी भक्तिरेव ॥ २३ ॥ मानम्लानमना
 मनागपि नतं नालोकते वल्लभं निर्याते दयिते निर-
 न्तरमियं बाला परं तप्यते । श्रान्तिरे रमयं दलात्प-

रिजनैर्मौनं समालम्ब्यते धत्ते फण्टगतानसन्मियतमे
 निर्गन्तुकामे पुनः ॥ २४ ॥ विरमति कथनं विना न
 खेदः सति कथने समुपैति कापि लज्जा । इति कन-
 ह्मघोमुषी सखिभ्यो लपितुमनालपितुं समाचकाह
 ॥ २५ ॥ शोणं वीच्य मुपं विच्युच्यितुमदं यातः
 समीपं ततः पादेन प्रहृतं तथा सपदि तं धृत्या
 सहासे मयि । किञ्चिच्च विधातुमन्मत्तया वाप्यं
 यजन्त्याः सखे ध्यातश्चेत्सि कौतुकं चित्तुते कोपोऽपि
 घामभुचः ॥ २६ ॥ स्फुटतु हृदयं कामः कामं करोतु
 तनुं तनुं न सखि चट्टलप्रेम्णा कार्यं पुनर्दयितेन मे ।
 इति सरमसं मानोद्रेकादुदीर्यं बचस्तया रमणपदवी
 सारङ्गाद्या ससम्भ्रममीक्षिता ॥ २७ ॥

विप्रलम्बा—अन्यत्र प्रजतीति का यत्तु कथा ना-
 प्यस्य तादृक्सुहृद्यो मां नेच्छति नागतश्च दृष्टा

ज्यांही उसकी सौतका नाम लिया त्यों ही मैं घबरा गया और
 फिर लाजने सिर झुकाकर मैं धमागा धरती डरेदने लगा ।
 उन धरतीपर बनी हुई रेखाओंने कुछ ऐसा गदयद-घोडाला
 कर दिया कि (उन रेखाओंके द्वारा भी अनजाने उसकी
 सौतका नाम लिए गया अतः उसे देकर) उस तरुणीने
 भी अपने क्रोध-भरे अङ्ग फड़का-फड़काकर अपने मनका क्रोध
 प्रकट कर दिया ॥ २० ॥ नायकने प्रेमके कारण नायिकाको
 पूछ देते समय भूलसे उसकी सौतका नाम ले लिया,
 इसपर रुठकर वह नायिका मुँहसे तो कुछ नहीं बोली पर
 आँगोंमें आँसू भरकर धरती डरेदने लगी ॥ २१ ॥ एक
 नायिका कहती है—‘मैंने बहुत देरतक अपनी भीड़ें देदी किप
 रत्नीं, आँसूँ मुँह रहनेका भी अभ्यास किया, हँसी रोक ररना
 भी सीगा, चुप रहनेका भी अभ्यास किया और धीरज
 बर्तनेका भी निश्चय किया, इस प्रकार ज्यों त्यों करके मैंने
 रुठनेके लिये बमर तो कर्सी है पर देरें क्या होता है, क्योंकि
 सफलता तां इसरके हाथ है’ ॥ २२ ॥ नायक कहता है—‘मेरे
 धानेपर वह स्त्री हुई नायिका अपने आसनसे उठ गई,
 हाथ जोड़कर उसने बड़ी मीठी-मीठी बातें भी कहीं, पैर धोए,
 बड़े आदरके साथ पानका पीड़ा दिया और पट्टा डुलाया । इस
 प्रकारकी धर्मी भक्ति दिनाकर ही उस कमलनयनीने अपना
 क्रोध रपट कर दिया’ ॥२३॥ स्ठ जानेके कारण उस नवेलीका
 मन ऐसा उदास हो गया है कि उसका पति सामने भुक्कर
 उसे मना भी रहा है फिर भी वह उधर देपतीतक नहीं,

सदा दुःखभरी साँसें लिया करती है, यदि सखियाँ बलपूर्वक
 उसके पतिको पास ले भी जाती हैं तो वह बातक नहीं
 करती, फिर भी अपने पतिसे उसका प्यार इतना है कि जब
 उसके पति बाहर जानेको तैयार होते हैं तो उसके प्राण बाहर
 निकलनेके लिये गलेतक आ पहुँचते हैं ॥ २४ ॥ एक नायिका
 दुविधामें पड़ी हुई है और नीचा मुँह किप सोचती है कि
 विना कहे दुःख दूर नहीं होता और कहनेमें लज्जा आती है,
 इसलिये वह अपने मगदंका समाचार सखियोंसे कहना भी
 चाहती है और क्षिपाना भी ॥२५॥ नायक कहता है कि ‘ज्योंही
 मैं उसका क्रोधसे लाल मुप चूमनेके लिये उसकी ओर बढ़ा त्यों
 ही उसने मुम्पर लात चला दी, बस मैं भट उसके पैर पकड़-
 कर हँसने लगा । इसपर भी जब उसका कुछ बस न चला तो
 वह भर-भर आँसू बहाने लगी । हे मित्र ! उस देदी भीहोंवाली
 अपनी प्यारीके उस क्रोधका जव-जव मैं स्मरण करता हूँ
 तब तब मुझे एक अपूर्व आनन्द मिलता है’ ॥ २६ ॥ यद्यपि
 उस मृगनयनी नायिकाने मोषकी भौकमें बड़े उत्साहसे यह
 कह डाला कि ‘भले ही हृदय फट जाय और भले ही कामदेव
 मेरे शरीरको घुला-घुलाकर तुबला कर दे पर इस पथिक
 प्रेम करनेवाले पतिसे मैं कोई सम्बन्ध नहीं रखूँगी’, फिर भी
 वह धबरा-धबराकर अपने पतिके धानेका भाग देसती ही
 रही ॥ २७ ॥

ठगी हुई : किसी नायिकाको धपन-गृहमें पड़े-पड़े
 नींद नहीं आ रही है । वह कवटें बदल-बदलकर मनमें

गसि प्रेयसि ॥ १२ ॥ द्वारि चक्षुरधिपाणि कपोलौ
जीधितं त्वयि कुतः कलहोऽस्याः । कामिनामित्ति
वचः पुनरुक्तं प्रीतये नवनवन्वमियाय ॥ १३ ॥ न
तिर्यग्बल्लोकितं भवति चक्षुरालोहितं वचोऽपि पद-
पाक्षरं न च पदेपु सङ्गच्छते । हिमार्चं इव वेपते
सकल एव विम्बाधरः प्रकामयिनते भ्रुवौ युगपदेव
भेदं गते ॥ १४ ॥ न वरीभरीति कवरीभरे स्त्रजा न
चरीकरोति सृगनाभिचित्रकम् । विजरीहरीति न
पुरेव मत्पुरो विवरीवरीति न च विप्रियं प्रिया
॥ १५ ॥ न व्रते पर्यां गिरं वितनुते न भ्रूयुगं
भङ्गुरं नोत्सं क्षिपति क्षिती श्रवणतः सा मे स्फुटे-
ऽप्यागसि । कान्वा गर्भगृहे गवाक्षविचरव्यापारि-
ताव्या वहिः सख्या यक्त्रमभिप्रयच्छति परं पर्य-
श्रुणी लोचने ॥ १६ ॥ निःश्वसा वदनं दहन्ति

हृदयं निर्मूलमुन्मथ्यते निद्रा नैति न दृश्यते प्रिय-
सुपुं नकन्दिवं रुधते । अङ्गं शोभमुपैति पादपतितः
प्रेर्यास्तथोपेक्षितः 'सख्यः कं गुणमालकस्य दयिते
मानं वयं कारिताः ॥ १७ ॥ नो वाटुअवचं कृतं न
च दशा हारोऽन्तिके धीक्षितः कान्तस्य प्रियहेतवो
निजसखीवाचोऽपि दूरीकृताः । पादान्ते यित्तिपत्य
तत्क्षणमसी गच्छन्मया मूढया पाणिभ्यामवबन्ध
हन्त सहसा कण्ठे कथं नापितः ॥ १८ ॥ पयःपीठं
दत्ते त्वरितमभिधत्ते न च वचः समाहाभाधत्ते
शिरसि न विधत्ते च मिलनम् । इति स्वान्ते गोपा
यितनिविडकोपा प्रतिपदं कृशोदर्याश्रयां प्रियमहह
पर्याकुलयति ॥ १९ ॥ पुरस्तन्ध्या गोश्रलनवकि-
तोऽहं नतमुखः प्रवृत्तो वैलव्यात्किमपि लिखितुं
देषहतकः । स्फुटो रेखान्यासः कथमपि स सादृश्य-

वर्षा ॥ १२ ॥ जब किसी नायिकाकी दूसी नायकसे आकर
कहती है—'वह नबेली तुम्हें देखनेके लिये द्वारपर आँख लगाए
रहती है, द्योलीपर गाल रखे रहती है, तथा तुम्हारे भरोसे
जीवन धारय किए हुए है (तब भला बताओ वह क्यों भगवा
करेगी ?)' तब दूतके मुखसे बार-बार ऐसी बातें सुनकर
कामियाँके मनमें कुछ नई-नई सी प्रसन्नता जहरें लेने
लगती है ॥ १३ ॥ एक रूठी हुई नायिकाका वर्णन करते
हुए कवि कहता है—'उस रूठी हुई नायिकाके दंष्ट्र चितवनसे
देखा भी नहीं, पर उसकी आँखें लाल हो उठीं, उसकी बातें
थीं यही कबी पर उनमें कोई मेल नहीं था, उसका सारा
श्रोत ऐसा काँप रहा था मानो शीत खा गया हो और उसकी
शुकी हुई भौहें एकाएक आपसमें सट गईं थीं' ॥ १४ ॥ अपनी
रूठी हुई नायिकाका वर्णन करते हुए नायक कहता है—'उस
रूठी हुई प्रेयसीने मालासे अपने बाल नहीं सजाए, कस्तूरीसे
अपना शरीर नहीं चीता, न पहलके समान मेरे सामने
कोई चटक-मटक ही दिखलाई और न मुझे कोई उलटी-
सोधी बातें ही सुचाईं' ॥ १५ ॥ एक नायक अपनी रूठी हुई
नायिकाका वर्णन करता है—'मेरे अपराधका भण्डाफोड़ हो
जानेपर भी उसने न तो मुझे कुछ नीच-ऊँच कहा, न अपनी
भौहें चढाईं और न अपने कानके आभूषण निकालकर धरतीपर
पटकें, किन्तु द्रतना श्रवण किया कि लिङ्गकीसे बाहर देखती
हुई अपनी आँसुओंसे भरी आँखें सखीकी श्रोत फेर दीं
(जिसका अर्थ यह था कि सारे भगवैजी जद तुम्हीं

हो)' ॥ १६ ॥ हे सखी! मेरी तपी हुई सारें मेरी देह जलाए
बाल रही हैं, मेरा हृदय उलझा उलझा-सा हो रहा है, मेरी
आँखोंमें नींद नहीं समाती, प्रियतमका मुख मुझे दिखाई नहीं
देता, रातदिन मुझे रुलाई ही श्रांती रहती है और सब श्रद्ध
सूखते जा रहे हैं, तब बताओ मुझमें कौनसी ऐसी बात रह
गई जिसके बलपर मैं अपने प्रियतमसे रुठने चली हूँ ! हाँ
मेरी मूलतः ! प्रियतमने मेरे पैरों पड़कर मुझे इतना मरणा
पर देखो तो सही कि मैंने उनकी एक-भी न सुनी और
उन्हें ठुकरा दिया ॥ १७ ॥ एक नायिका अपने दुःसका
वर्णन करती हुई कहती है—'मेरा प्रिय मेरे सामने झूठा
गिड़गिड़ाया पर मैंने उनकी सब बातें सुनी-अनसुनी कर दीं,
उन्होंने जो हार दिया था उसे फूटी आँखों नहीं देखा,
प्रियतमका भला चाहनेवाली अपनी सखीकी बातोंपर भी
कान नहीं दिया, हाय रे ! मैं कितनी बड़ी मूर्ख हूँ ! जब मेरे प्रिय
मेरे चारोंपर गिरकर चले जा रहे थे, उस समय मैंने उन्हें पकड़
कर सहसा झारतेसे बर्षा नहीं लगा लिया' ॥ १८ ॥ जब दूसरी
स्त्रीसे राति करके उस पतली कमरवालीके पति आए तो उसने उन्हें
पानी-पीड़ा तो दिया पर मुँहसे एक भी बात न ही कही ।
सिर चुकाकर उनकी आज्ञा तो मानी पर गले लगनेकी बात
स्वीकार नहीं की । इस प्रकार जो नायिका अपने मनका बड़ा
दुःखा शोच दयाकर इस प्रकार सत्कार करती जा रही है
वही इस समय उसके पतिके व्याकुल किए डाल रहा है
॥ १९ ॥ नायक कह रहा है कि 'नायिकाके प्रागे मैंने

रिखते गता येन व्यक्तिं पुनरचयवैः सैव तच्छणी
 ॥ २० ॥ प्रयच्छुतोच्चैः कुसुमानि मानिनी विपक्ष-
 गोत्रं द्युतितेन लम्बिता । न किञ्चिद्दृचे चरणेन
 केवलं लिलेप वाष्पाकुललोचना भुवम् ॥ २१ ॥
 भ्रूभेदो रचितश्चिरं नयनयोरभ्यस्तमामीलनं रोद्धं
 श्लिष्टितमादरेण हसितं मानेऽभियोगः कृतः । धैर्यं
 कर्तुमपि स्थिरीकृतमिदं चेतः कथञ्चिन्मया वद्धो
 मानपरिग्रहे परिकरः सिद्धिस्तु दैवे स्थिता ॥ २२ ॥
 मथ्यायाते सपदि नयनाडुस्थितं चाट्ट वाक्पयं वद्धा
 पाणी यद्गु निगदितं क्षालितं पादपद्मम् । दत्त्वा
 वीटीं सधिनयमथोद्धीजितं तालवृत्तैर्भूते कोपं कुशल-
 यदशो भूयसी भक्तिरेव ॥ २३ ॥ मानस्मानमना
 मनागपि नतं नालोकते वल्लभं नियांते द्युतिते निर-
 न्तरमिय वाला परं तप्यते । आनीते रमणे दलात्प-

रिजनेमौंनं समालम्ब्यते घृते फण्टगतान्धुम्निग्रयते
 निर्गन्तुकामे पुनः ॥ २४ ॥ विरमति फणनं विना न
 वेदः सति फणने समुपैति कापि लज्जा । इति फल-
 हमधोसुर्या सखिभ्यो लपितुमनालपितुं समाचकाह
 ॥ २५ ॥ शोणं वीच्य सुर्यं विद्युम्बितुमहं यातः
 समीपं ततः पादेन प्रहृतं तथा सपदि तं धृत्वा
 सहासे मयि । किञ्चित्त्र विधातुमचमतया वाष्पं
 यजन्त्याः सखे घ्यातश्चेतसि कौतुकं चित्तुते कोपोऽपि
 वामध्रुवः ॥ २६ ॥ स्फुटतु हृदयं कामः कामं करोतु
 तनुं तनुं न सपि चट्टस्रमेष्णा कार्यं पुनर्दयितेन मे ।
 इति सरभसं मानोद्रेकादुदीर्यं चञ्चस्तया रमणपदवी
 सारङ्गाद्या ससम्भ्रममीचिता ॥ २७ ॥

विपलव्या—अन्यत्र यजतीति का यलु कथा ना-
 प्यस्य तादृक्स्तुह्यो मां नेच्छति नागतश्च हहटा

ज्यांही उसकी सौतका नाम लिया त्यों ही मैं अपना गया और
 फिर लाजसे सिर झुकाकर मैं भ्रमगा धरती जुरेदने लगा ।
 उन धरतीपर बनी हुई रेखाओंने कुछ ऐसा गद्बद् बोला
 कर दिया कि (उन रेखाओंके द्वारा भी अनजाने उसकी
 सौतका नाम लिख गया अतः उसे देखकर) उस तरफ़ीने
 भी अपने क्रोध-भरे अङ्ग फटका फटकाकर अपने मनका क्रोध
 प्रकट कर दिया ॥ २० ॥ नायकने प्रेमके कारण नायिकाको
 पूछ देते समय भूलसे उसकी सौतका नाम ले लिया,
 इसपर रुठकर वह नायिका मुँहसे तो कुछ नहीं बोली पर
 आँसूमें आँसू भरकर धरती जुरेदने लगी ॥ २१ ॥ एक
 नायिका कहती है—'मैंने बहुत देरतक अपनी भीड़ देदी किप
 रक्ती, आँसू मुँह रहनेका भी अभ्यास किया, हँसी रोक रखना
 भी सीखा, सुष रहनेका भी अभ्यास किया और धारज
 बाँधनेका भी निश्चय किया, इस प्रकार ज्यों त्यों करके मैंने
 रुठनेके लिये कसर तो कर्सी है पर देखें क्या होता है, क्योंकि
 सफलता ता हेरवरके हाथ है' ॥ २२ ॥ नायक कहता है—'मेरे
 आनेपर वह रुटी हुई नायिका अपने आसनसे उठ गई,
 हाथ जोड़कर उसने बड़ी मीठी-मीठी बातें भी कहीं, फिर पीप,
 पद आदरके साथ पानवा वीधा दिया और पट्टा डुलाया । इस
 प्रकारकी बघी नक्ति दिखाकर ही उस कमलनयनीने अपना
 क्रोध स्पष्ट कर दिया' ॥ २३ ॥ रुठ जानेके कारण उस नवेलीका
 मन ऐसा उदास हो गया है कि उसका पति सामने भुजक
 उठे मना भी रहा है फिर भी वह उपर देखतीतक नहीं,

सदा दुःखमरी साँसें लिया करती है, यदि सखियाँ बलपूर्वक
 उसके पतिके पास ले भी जाती हैं तो वह बाततक नहीं
 करती, फिर भी अपने पतिसे उसका प्यार इतना है कि जब
 उसके पति बाहर जानेको तैयार होते हैं तो उसके प्राण बाहर
 निकलनेके लिये गलेतक आ पहुँचते हैं ॥ २४ ॥ एक नायिका
 दुविधामें पड़ी हुई है और नीचा मुँह किप सोचती है कि
 बिना कहे दुरा दूर नहीं होता और कहनेमें लजा आती है,
 इसलिये वह अपने मगड़ेका समाचार सखियोंसे कहना भी
 चाहती है और छिपाना भी ॥ २५ ॥ नायक कहता है कि 'ज्यांही
 मैं उसका क्रोधले लाल मुल चूमनेके लिये उसकी ओर बढ़ा त्यों
 ही उसने मुम्पर लात चला दी, बस मैं भूट उसके पैर पकड़-
 कर हँसने लगा । इसपर भी जब उसका कुछ बस न चला तो
 वह भर-भर आँसू बहाने लगी । हे मित्र ! उस देदी भीड़वाली
 अपनी प्यारीके उस क्रोधका जट-जव मैं स्मरण करता हूँ
 तब तब मुझे एक अर्ध आनन्द मिलता है' ॥ २६ ॥ यद्यपि
 उस सृगनयनी नायिकाने क्रोधकी कोंकमें बड़े उत्साहसे यह
 कह डाला कि 'भले ही हृदय फट जाय और भले ही कामदेव
 मेरे शरीरको गुला-गुलाकर हुबला कर दे पर इस क्षणिक
 प्रेम करनेवाले पतिसे मैं कोई सम्बन्ध नहीं रखूँगी', फिर भी
 वह चबरा-चबराकर अपने पतिके आनेका मार्ग देखती ही
 रही ॥ २७ ॥

ठगरी हुई : किसी नायिकाको शयन-गृहमें पड़े-पड़े
 नींद नहीं आ रही है । वह कवरटें बदल-बदलकर मनमें

कोऽयं विधेः प्रक्रमः । इत्यल्पेतरकल्पनाकवलित-
स्वान्ता निशान्तान्तरे याला वृचयिवर्चनव्यतिकरा
नाप्नोति निद्रां निधिः ॥ १ ॥ आलीभिः शपथैरेक-
कपटैः कुञ्जोदरं नीतया शय्यं तच्च निरीक्ष्य विवृणु-
तया न प्रस्थितं न स्थितम् । न्यस्ताः किन्तु नयो-
दनीरजटशा कुञ्जोपकण्ठे रूपा तादृग्भृङ्गकदम्बडम्बरच-
मत्कारस्फुरो दृष्टयः ॥ २ ॥ उत्तिष्ठ दूति यामो यामो
यातस्तथापि नायातः । यातः परमपि जीवजीवित-
नाथो भवेस्तस्याः ॥ ३ ॥ कपटवचनभाजा केनचि-
द्धारयोपा सकलरसिकगोष्ठीव्यञ्जिका वञ्चितासौ ।
इति विहसति रिङ्गद्भङ्गध्वजितवज्जुचिकचकुसुमका-
न्तिचञ्चुधना केलिकुञ्जः ॥ ४ ॥ तर्कि कामपि कामि-
नीमभिरुतः किं वा कलाकेलिभिर्धञ्जो वन्धुभिरन्ध-
कारिणि वनोपान्ते किमु भ्राम्यति । कान्तः फला-

न्तमना मनागपि पथि प्रस्थातुमेवाक्षमः सङ्केतीकृत-
मञ्जुवज्जललताकुञ्जोऽपि यन्नागतः ॥ ५ ॥ द्रव्या धैर्यं
भुजङ्गमूर्ध्नि चरणावुल्लङ्घ्य लज्जानदीमङ्गीकृत्य घनाध-
कारपटलं तन्व्या न दृष्टः प्रियः । सन्तापाकुलया
तया च परितः पाथोधरे गर्जति क्रोधाक्रान्तकृता-
न्तमत्तमहिपद्भ्रान्त्या दृशो योजिते ॥ ६ ॥ नायातो
यदि निर्दयः सखि शशस्त्वं दूति किं दूयसे स्वच्छन्दं
वहुवल्लभः स रमते किं तत्र ते दूषणम् । पश्याद्य
प्रियसङ्गमाय दयितस्याकृष्यमाणं गुरौकण्ठगण्डासिभ-
रादिव स्फुटदिदञ्जितः स्वयं यास्यति ॥ ७ ॥ निःस्नेह
निष्करुण निरल्प निनिमित्तं मद्भञ्जक त्वमपि सम्प्रति
वञ्चितः स्याः । इत्यन्तराणि लिखितानि समीक्ष्य
काश्चित्सङ्केतकेतकदले नितरामताम्यम् ॥ ८ ॥ शून्यं
कुञ्जगृहं निरीक्ष्य कुटिलं विश्वाय चेतोभुवं दूती नापि

इस प्रकार अनेक तर्क-वितर्क कर रही है कि मेरे पति कहीं
दूसरे स्थानपर चले जायेंगे इसकी तो आशङ्का ही नहीं है
क्योंकि उनका कोई ऐसा मित्रजन भी नहीं है जो मेरा डरा
चाहता हो, फिर भी हाय ! वे भ्रातृभयं नहीं ? मेरे भाग्यने यह
क्या पलटा खायो है' ॥ १ ॥ उस नई ब्याही हुई नवेलीकी
सखियाँ बहुत सौगन्ध दिलाकर और बहुत सी कपट भरी बातें
करके नायिकाको उस कुञ्जतक पहुँचा तो आई पर जब उसने
वह कुञ्ज सूना देखा तो इतनी दुखी हुई कि न वहाँसे हट ही
सकी न वहाँ रुक ही सकी वरन् मँडराते हुए भौराँके
समान अपनी सुन्दर चितवनसे अत्यन्त मोघपूर्णक कुञ्जकी
ओर धरने लगी ॥ २ ॥ हे दूती ! चलो चलो, एक पहर बीत
गया फिर भी अभीतक वे आए नहीं । शय तो वे उसीके प्राथ-
नाय होंगे जो इतनी बाट जोहकर भी जाती रह जाय ॥ ३ ॥
कृदा विश्वास दिलानेवाले किसी नायकने सभी रसिकोंका
सामान लूटनेवाली किसी बेरयाको चकमा दे दिया और सङ्केत
किए हुए कुञ्जतक नहीं पहुँचा इसलिये वह भाड़ी, जिसमें भीरे
उड़ रहे थे और फूल खिले हुए थे, ऐसी जान पड़ती थी मानो
वह अपनी मीराँ-रूपी आँखें चलाकर खिले हुए फूलोंके वहाने
उस बेरयाकी हँसी उड़ा रही हो ॥ ४ ॥ जब उस नायिकाका
प्यारा उस कुञ्जतक नहीं पहुँचा तब वह सोचती है कि 'मेरा
मित्र क्या किसी दूसरी कामिनीके पास रम गया या मेरी
सखियाँने ही तो उसे खोलनेके लिये नहीं रोक लिया या इस
धैर्ये वनमें मार्ग न मिलनेसे कहीं वह भटक तो नहीं रहा है

अथवा जान पड़ता है कि प्रियतम इतने थक गए हैं कि उनमें
चलनेकी शक्ति नहीं रह गई, इसीलिये तो पहलसे निश्चय किए
हुए इस सुन्दर बँतके कुञ्जतक अभीतक नहीं आ पाए' ॥ ५ ॥
उस नायिकाने धैर्य-रूपी सौंपके मस्तकपर रैर रक्त्वा, लज्जारूपी
नदी पार की, घने धैर्येकी भी तनिक चिन्ता नहीं की पर कुञ्जमें
आकर जब उसने वहाँ अपने मित्रको नहीं पाया तब कामके तापसे
तपो हुई उसको गरजता हुआ बादल ऐसा डरावना जान पड़ा
मानो यमराजका मतवाला बैसा ही क्रोधसे हँकड़ रहा हो ॥ ६ ॥
हे दूती ! यदि वह मेरा निर्दय और धूर्त प्रिय अभीतक नहीं
आया तो तुम्हारा मुँह क्यों सूखा जा रहा है । उसकी बहुत सी
प्यारियाँ है, वह मनमाने ढङ्गसे कहीं रम रहा होगा । इसमें
तुम्हारा क्या दोष है ? देखो, आज मित्रके गुणोंसे उसकी
ओर लिखा हुआ और उत्सुकता तथा पीड़ाकी प्रपिकतासे
दबकर फूटा हुआ मेरा मन उससे मिलने स्वयं जाया ॥ ७ ॥
जब निश्चित किए हुए स्थानपर वह नायक देखे पहुँचा
तब वहाँ केवढेके पतेपर यह बात लिखी हुई देखकर वह
बहुत दुखी हुआ कि 'हे प्रेमशून्य, निर्धुवी, निर्लज्ज और मुझे
व्यर्थ धाखा देनेवाले ! तुम भी कभी यो ही धोखा खाओगे' ॥ ८ ॥
उस नायिकाने जब मिलनेके स्थान (कुञ्ज) को सूना पाया
और कामदेवकी कुटिल कर्तव्य समझ की तब आनेवाली दूतीके
न तो उसने कुछ कहा न कुछ पूछा ही वरन् उस समय उस
कमलनयनाने इस प्रकार शंकरकी स्तुति प्रारम्भ कर दी
कि 'हे शम्भो ! हे गङ्गा ! हे चन्द्रशेखर ! हे हर ! हे

निवेदिता सहचरी पृष्ठापि नो वानया। शम्भो शङ्कर
चन्द्रशेखर हर श्रोत्रण्ड शूलजिह्व त्रायस्वेति परन्तु
पङ्कजदृशा भर्गस्य चक्रे स्तुतिः ॥ ६ ॥ सङ्केतफेलि-
गृहमेत्य निरीक्ष्य शन्यमेणीदृशो निभृतनि श्वसिता-
धरायाः। अर्धाक्षरं वचनमर्धविकासि नेत्रं ताम्बूलम-
र्धकवलीकृतमेव तस्यौ ॥ १० ॥ साक्षे मा हुरु लोचने
विगलति न्यस्तं शलाकाञ्जनं तीत्रं नि श्वसितं निव-
र्त्तय नवास्ताम्यन्ति कण्ठम्रजः। तल्पे मा लुङ् कोम-
लाङ्गि तनुतां हन्ताङ्गरगोऽश्रुते नात्तीतो द्यतितोप
यानसमयो मा स्मान्यथा मन्यथा ॥ ११ ॥

श्रोतमत्तृका—अर्पयति प्रतिदिवसं प्रियस्य पथि
लोचने वाला। निक्षिपति कमलमालाः कोमलमिय
कर्तुमिच्छानम् ॥ १ ॥ आकस्मिकस्मितमुखीषु सखीषु
विद्या विज्ञास्वपि प्रणयनिह्वयमाचरन्ती। तत्रैव रङ्ग-
नयना नयनारविन्दमस्पन्दमाहितवती द्ययिते गतेऽपि

॥ २ ॥ आदृष्टिमसरात्मियस्य पदवीमुद्गीय निचि-
रणया विश्रान्तेषु पथिव्यहपरिणतौ धरान्ते समुत्स-
र्पति। इत्रैकं सयुचा गृहं प्रतिपदं पान्यत्रियामि-
न्क्षणे मा भूदागत इत्यमन्द्रवलितप्रीतं पुनर्गन्धितम्
॥ ३ ॥ कान्ते कल्पिप वासराणि गमय त्वं मौलयित्वा
दृशौ सत्यं नाम निमीलयामि नयने यावत् शन्या
दृशः। आयाता वयमागमिष्यसि सुहृद्भर्गस्य माग्यो-
दयैः सन्देशं वद कस्तचामिलापितस्तीर्थेषु तोयाञ्जलिः
॥ ४ ॥ ताञ्जानीथाः परिमितकथां जीवित मे द्वितीयं
दूरीभूते मयि सहचरे चक्रवाकीमिवैकाम्। गढो-
त्कर्षां गुरुषु दिवसेष्वेषु गच्छत्सु वालां जातां मन्ये
शिथिरमथितां पश्चिर्ना वान्यरूपाम् ॥ ५ ॥ ध्रातः
प्राणायण प्रयाणसमये प्राणाधिनाथस्य मे कुप्यः स्वैर्य-
मपि क्षणं कण्ठया कण्ठस्थलेऽपि स्थितः। याचक्षो-
चननीरनिर्मितनदीचन्याभिरन्यादृशं पन्थानं परिकल्प-

श्रीकण्ठः। हे शूलिन, हे शिव, मेरी रचा करो! ॥ ६ ॥
जय पहलेसे निश्चित किए हुए मीढाङ्गुलें उस नायिकाने
अपने प्रियको नहीं देखा तो उसकी साँस श्रोत्रोंपर था गई,
बातें आधी रह गईं, आँसैं अचलुती रह गईं और मुँहमें
पान भी आधा चराया हुआ रह गया ॥ १० ॥ हे कोमलाङ्गी!
आँसोंमें आँसू न मरो क्योंकि सलाहसे लगाया हुआ आँजन
छूट रहा है, लम्बी लम्बी साँसें लेना बन्द करो क्योंकि
गलेकी नई माला मुरझाई जा रही है, बिड़ोनेपर बरवटें न
बदलो क्योंकि शरीरमें लगा हुआ केशर आदिका रह छूटता
जा रहा है। अग्नी तुम्हारे प्रियके आनेका समय बीता नहीं है,
अभीसे तुम उलटा न समझ बैठो ॥ ११ ॥

श्रोतित पतिका (परदेश गण ह्युप पतिकी स्त्री) :
उस नवेलीका प्रतिदिन अपने पतिके मार्गकी ओर पृष्ठक
देपना ऐसा जान पड़ता है मानो वह अपने पतिके मार्गकी
कोमल बनानेके लिये कमलकी माला गिद्धा रही हो ॥ १ ॥
हरियुकी आँसोंके समान नेत्रवाली चतुर नायिकाने शुकुराती
रहनेवाली अपनी चण्ड सखियोंसे भी अपने प्रेमकी बात नहीं
कही और पतिके चले जानेपर भी केवल उसके मार्गकी ओर
दृष्टकी ध्यानकर देपती रही ॥ २ ॥ जहाँतक मार्गमें दृष्टि जाती
थी सहाँतक दिनभर अपने प्रियका मार्ग देखती देपती वह
पादेसीकी नवेली पत्नी थक गई और सन्ध्या समय जब अंधेरा
फैलने लगा और मार्ग चलना भी बन्द हो गया तब उन्हीं

उसने एक पैर अपने घरके भीतर रक्खा त्योंही उसने पुनः
अपना सिर घुमाकर फिर बाहरकी ओर दृष्टि डाली कि कहीं वे
आ तो नहीं रहे हैं ॥ ३ ॥ लिये आते समय पतिपत्नीमें बाँटें
हो रही हैं : पति—हे प्रिये ! तुम वियोगके कुछ दिन आँसैं
सूँदकर बिता लेना। पत्नी—हाँ नाथ ! जनक आँसैं न पट
जायँगी तबतक आँसैं सूँद ही रहूँगी। पति—प्रिये ! मुझे बस
आधा ही समझो ! पत्नी—आहूँपना अपने प्यारके भाग्यसे,
मेरा क्या है ? पति—यदि कुछ कहना चाहती हो तो कहो।
पत्नी—यही कहना चाहती हूँ कि जिन तीर्थोंमें जाहूँपना बहो
मेरे नामसे अञ्जलियोंमें भरकर पानी दे दोगिपना ॥ ४ ॥
बादलकी अपनी पत्नीका परिचय देते हुए यह कह रहा है—
‘अपने साथीसे बिजुड़ी हुई चकतीके समान अकेली रहनेवाली
और कम बोलनेवाली उस मुन्दरीकी देखकर तुम समझ
जाओगे कि वह मेरा दूसरा प्राण ही है। विरहके कठोर दिन
बढ़ी उतावलीसे बिताते बिलाते उसका रूप भी बदल गया
होगा, उसे देखकर तुम्हें यह झम हो जायगा कि यह कोई
वाला है या पालेसे मारी हुई कमलनी है ॥५॥ हे माईप्राणो !
जब मेरे प्राणनाथ जाने लगें उस समय तुम निकल भागनेके
लिये हटवकी न मचा देना बरन् दया करके मेरे कण्ठक
आकर थोडा रुक जाना क्योंकि तबतक तो मेरे आँसुआँसे नदीमें
पैसी बाढ़ आ जायगी कि उनका मार्ग जलमग्न हो जायगा
और वे न जा सकेंगे। इस प्रकार तुम्हारे और मेरे दोनोंके

यामि भविता येनावयोर्वाञ्छितम् ॥ ६ ॥ माला बाला-
म्बुजदलमयी मौक्तिकी हारयष्टिः काञ्ची याते प्रभवति
हरौ सुभ्रुवः प्रस्थितैव । अन्यद्रुमः किमपि धमनी
वर्त्तते वा न वेति ज्ञातुं बाहोरहह बलयं पाणिमूलं
प्रयाति ॥ ७ ॥ विरहवद्वितमन्तः प्रेम विज्ञाय कान्त-
पुनरपि वसु तस्मादेत्ये मे दास्यतीति । मरिचनिय-
ममच्छोर्न्यस्य वाणोदविन्द्विस्त्रजति पुरयोपिद्वार-
देशोपविष्टा ॥ ८ ॥ श्वश्रुः पद्मदलं ददाति तदपि
भ्रूसंज्ञया गृह्यते सद्यो मर्मरशङ्कया न च तया संस्पृ-
श्यते पाणिना । यातुर्वाचि सुहृद्गणस्य घचसि प्रत्युत्तरं
दीयते श्वासः किन्तु न मुच्यते हुतवहमूरः कुरङ्गीदृशा
॥ ९ ॥ समर्प्य हृदि दाक्षणां मदनवेदनां भूयसीमनेन तव
वर्त्मना प्रचलितः स मे चल्लभः । न वामदिशि
शब्दितं किमिति बालया वायस त्वया मदनसारिके
किमिति वा कृतं न जुतम् ॥ १० ॥

मनकी हो जायगी अर्थात् न तुम मुझसे बिलुङ्गो मे न मैं
प्रियतमसे ॥ ६ ॥ अपने स्वामी कृष्णके चले जानेपर सुन्दर
भौंहवाली गोपीकी कमलकी कलियोंकी माला, मोतीका हार
और कधनी सब चले हैं । और अधिक क्या कहें, उसके
हाथका कदम भी यह जाननेके लिये हथेलीके पास पहुँच
गया कि इसकी नाड़ी चल रही है या नहीं ॥ ७ ॥ 'मेरा
प्रिय यही समझता होगा कि विरहके समय मेरे मनमें उसके
लिये बड़ा प्रेम रहता है और इसलिये वह लौटकर मुझे फिर
बहुतसा धन देगा', इसी आशयसे कोई वेदया श्रौंखोंमें
मिचैका चूँच लगाकर अपनी देहलीपर बैठी श्रौंखू टपका रही है
(बनावटी प्रेम दिखा रही है) ॥ ८ ॥ बिलोहके समय उस
मृगनयनी नवेलीकी जब उसकी सास कमल लाकर देती है तब
वह भौंहोंके सङ्केतसे स्वीकार तो कर लेती है किन्तु उसे
इसलिये हाथ नहीं लगाती कि कहीं मेरे शरीरके तापसे वह
झुलस न जाय । उसकी बेवरानी-जेठानी और सखियों जो कुछ
कहती हैं उसका उत्तर तो देती है किन्तु वह आगके समान
तपती हुई लम्बी साँस नहीं लेती ॥ ९ ॥ बिड़ोहमें व्याकुल
नायिका कौबे और मैनासे कहती है कि 'हमारे मिय हमारे
हृदयमें अत्यन्त भयालक कामपीड़ा छोड़कर तुम्हारे पाससे ही
तो गए हैं । उस समय हे कौबे ! तूने बाईं ओर पहुँचकर
कौबे-कौबे क्यों नहीं किया ? और हे कामकी साधिन मैना !
उस समय तूने भी धींक क्यों नहीं दिया' ॥ १० ॥

स्त्री चेष्टाः

कटाक्ष — अस्याः करसहस्रखण्डितकाण्डपप्रकट-
निर्गता दृष्टिः - । पटधिगलितनिःफल्गुया स्वदते
पीयूषधारेव ॥ १ ॥ क्वचित्कृष्णार्जुनगुणा क्वचित्क-
र्णान्तगामिनी । अपाङ्गथीस्तवाभाति सुभ्रूर्भारत-
गीरिव ॥ २ ॥ दिनान्ते ज्ञान्तीनां कनककलशाकार-
कुचयोरुपर्यस्यन्तीनां कमलकलिः काकोमलकरौ । समु-
द्यत्कालिन्दीतरलतरकल्लोलकुटिलः फटाक्षः कान्तानां
कमिह कमितारं न कुरुते ॥ ३ ॥ नयनाञ्जलचञ्च-
रीकूपरो चलतेऽप्ययत एव पद्मलावयाः । तत एव
भवन्ति नीलपद्मप्रकराणां ननु वृष्ट्या नवीनाः ॥ ४ ॥
पिपासुरिव चञ्चलं विकटकण्ठकूपपाञ्जलं ततः प्रति-
चलन्मुहुः श्रवणपाशभीतोऽभितः । तनोति तरलाकृ-
तिस्तरललोचने सन्ततं गतागतकुट्टलं मुहुर्पान्क-
रङ्कुस्तथ ॥ ५ ॥ प्रणालीदीर्घस्य प्रतिपदमपाङ्गस्य

स्त्रियोंकी चेष्टाएँ

तिरछी चितवन : अपनी डँगलियोंसे हटाए हुए बूँधकी
शोढसे शस्पद निकलती हुई उस नायिकाकी मधुर चितवनको
लोग ऐसे चावसे देखते हैं मानो वरभ्रमं ज्ञानकर निर्मल को हुई
अमृतकी घारा पी रहे हों ॥ १ ॥ हे सुन्दर भौंहवाली ! तुम्हारी
चितवनकी शोभा कहीं तो कृष्ण (काली) और अर्जुन (उजली)
के गुणोंसे भरी और कहीं कर्णकी मृत्यु (कानके कोनेतक पहुँचने)
के समाचारसे भरी महाभारतकी कथा जैसी है अर्थात् तुम्हारी
काली, उजली और कानके कोनेतक फैली हुई चितवन
हत्याकाण्ड मचाए हुए है ॥ २ ॥ यमुनाकी उड़लती हुई अत्यन्त
पञ्चल लहरोंके समान लहरानेवाली उन स्त्रियोंकी चितवन
किसे व्याकुल नहीं कर देती जो सन्ध्याके समय स्नान करती हुई
अपने सोनेके घड़ोंके समान स्तनोंपर कमलकी कलियोंके समान
सुन्दर तथा कोमल हाथ धरे हैं ॥ ३ ॥ जिस-जिस ओर इस
सुन्दर बरौनियोंसे सजी हुई श्रौंखोंवाली नायिकाकी चितवन-
रूपी भौरोंकी पाँत चलती है उसी ओर मानो कृष्णपत्रके
समूहोंकी गई वर्षा होने लगती है ॥ ४ ॥ हे पञ्चल श्रौं
वाली ! तुम्हारा कटाक्ष-रूपी मृग बड़े-बड़े कान-रूपी कुँबेसे
जल पीनेके लिये पहले तो बहुत मचलर, पर चारों ओरसे घिरे
हुए कान-रूपी जालको देखकर डरकर लौट पड़ा । अब वह
घबराया हुआ लोभ और भयके बीचमें पड़ा निरन्तर आगा-
पीड़ा कर रहा है ॥ ५ ॥ हे मित्र ! कमलके समान श्रौंखोंवाली

सुहृदः कटाक्षव्याप्तौपाः शिशुशफरफालमतिभुवः ।
 सुयानाः सर्वस्वं कुसुमधनुषोऽस्मान्प्रति सप्ये नभं
 नेत्राद्भ्रैतं कुवलयदृशः सन्निदधति ॥ ६ ॥ भवनभुवि
 खजन्तस्तारद्वारावतारान्विशि दिशि विकिरन्तः
 केतकानां कुट्टम्यम् । वियति च रचयन्तश्चन्द्रिकां
 दुग्धमुग्धां प्रतिनयननिपाताः सुभ्रुवो विश्रमन्ति
 ॥ ७ ॥ यत्र यत्र बलसे शनैः शनैः सुभ्रुवो नयनको-
 णविभ्रमः । तत्र तत्र शतपद्मधोरणी तोरणीभवति
 पुष्पधन्वन् ॥ ८ ॥ यान्तो शुरुजनैः सार्धं स्मयमान-
 मुद्यान्तुजा । तिर्यग्भ्रौवं यद्द्राक्षीक्षिष्पन्नाकरोज-
 गत् ॥ ९ ॥ यासां कटाक्षविश्लैः स्मरचरैरेण
 ताडिताः । हृतचैतन्यसर्वस्वा मोहान्ते मुग्धकामुकाः
 ॥ १० ॥ रे रे घरट्ट मा रोद्रीः कं कं न भ्रामय-
 न्यमूः । कटाक्षवीक्षणदेव करारुप्रस्य का कथा
 ॥ ११ ॥ वसन्तनीलोत्पलपद्पदानां गीतामृतं श्रोतु-

मियोत्तरङ्गौ । नतभ्रुवो लोचनकण्णसारी कर्णान्तिकं
 सन्ततमाश्रयेते ॥ १२ ॥ विशालाक्षीकटाक्षस्य साक्षी-
 ज्यलो मदेश्वरः । नाद्यापि प्रकृति याति येन विद्धौ
 दिग्म्बरः ॥ १३ ॥ शिलासम्पद्यौतोऽज्यलधवलधारा-
 परिसरानिमानन्तः श्यामानिव विपमयाणस्य विशि-
 पान् । दृढप्रधावर्माण्यपि हृदयमर्माणि रुजतः कटा-
 क्षानेतस्या मुनिरपि न सोढुं प्रभवति ॥ १४ ॥ सन्मार्गं
 तावदास्ते प्रभवति पुरुषस्तावदेवेन्द्रियाणां हृजां
 तावद्विधत्ते चिनयमपि समालम्ब्यते तावदेव । भ्रूयापा-
 रुप्रमुकाः श्रवणपथयुषो नीलपद्ममाण पते यावत्तीला-
 चतीनां हृदि न भृतिमुषो दृष्टिवायाः पतन्ति ॥ १५ ॥
 हत्वा लोचनविश्लैर्गर्वा कतिचित्पद्मानि पद्माक्षी ।
 जीवति युवा न वा किं भूयो भूयो विलोकयति ॥ १६ ॥
 अश्रुणु-अश्रुकञ्चलेन सुदृशो हृतपाथकधूमकलुपाद्याः ।
 अत्रान्य मानभङ्गे विगलति लावण्यचारिपूर इव ॥ १७ ॥

नायिकाकी उस चितवनकी मार हम लोगोंमें प्रतिक्षण एक
 नये वक्रक श्रद्धैत (आँखोंकी टक्की) उलट कर रहे हैं जो
 वालीके समान लगे नेत्रकी कोरसे निकल रहे हैं, मछलीके
 बच्चोंके समान उछल रहे हैं और हमारे मनमें काम-विकार
 उभाड़ रहे हैं ॥ ६ ॥ उस सुन्दर भीहोंवाली नवेलीकी प्रत्येक
 चितवन घरमें चमकीले द्वारोंकी लदियोंकी विद्युत्ती हुई,
 चारों ओर केवड़ेके फूलसी बिपेरती हुई और आकाशमें दूधसी
 मनोहर चाँदनी धितकाती हुई दिखाई दे रही है ॥ ७ ॥ वह
 सुन्दर भीहोंवाली नवेली जिस-जिस ओर अपनी चितवन चलाती
 है उधर-उधर मानों कामदेवके स्वागतके लिये कमलोंकी वन्दन-
 वार लटक जाती है ॥ ८ ॥ अपने माता-पिताके साथ जाते समय
 मुस्कराहटसे भरे मुख कमलवाली उस नवेलीने जो तिरछे
 धूम करके चितवन चलाई उसीसे सारा संसार श्रमीतक छटपटा
 रहा है ॥ ९ ॥ कामदेव-रूपी धोरने हन जियोंके चितवन-रूपी
 बाणोंसे भोले-भाले कामियोंको मारकर उनका हृदयरूपी
 सर्वस्व लूट लिया है इसीसे वे पागल हो गए हैं ॥ १० ॥ धूँ-धूँ
 करके धूमते हुए रहटकी सन्गोधन करके बधि कहवा है—
 'हे रहट! तू रो मत! देर, ये जियेँ अपनी चितवन
 चलाकर किते चकरमें नहीं बालती फिर ये जिते अपने
 हाथसे घुमा रही हों (रहट चला रही हों) उसकी
 ती बात ही क्या है ॥ ११ ॥ इस मुझी हुई भीहोंवाली
 नायिकाके नेत्र-रूपी श्या सदा कानोंकी ओर ऐसे दौड़े जा रहे

हैं मानो, उसके कानोंपर लटके हुए भीरोंका अमृत-मान
 सुननेके लिये बढ़े जा रहे हों ॥ १२ ॥ हन बढ़ी-बढ़ी आँखोंवाली
 जियोंकी चितवनके साक्षी तो तीन आँखोंवाले भगवाद् शंकर
 ही हैं जो उनकी चोटके मारे बख उतारकर नंगे नाच
 रहे हैं और श्रमीतक भी सँभल नहीं पाए हैं ॥ १३ ॥ पथरपर
 भलों-भँति बिसनेसे चमकनेवाले, ताँखी धारवाले और
 भीतरसे काले-काले जो इस नवेलीके कटाक्षरूपी कामके बाण
 हैं वे (तपस्वियोंके) स्थिर बुद्धिरूपी कवचसे सुरक्षित हृदयोंके
 मर्मको भी फाड़ डालते हैं अर्थात् उन्हें मुनि भी नहीं सह
 सकते ॥ १४ ॥ मनुष्य तभीतक अच्छे मार्गपर चलता है, अपनी
 इन्द्रियोंको बशमें रखता है और लज्जिता तथा विनयी रहता
 है जबतक भीह-रूपी घनुसे तानकर छुँछे हुए कानोंकी ओर
 निकलते हुए और धँचकें उड़ाड़नेवाले लीलामरी ललनाओंके
 चितवनरूपी काली नोकवाले बाण उनका हृदय नहीं क्षेप
 देते ॥ १५ ॥ वह कमल-सी आँखोंवाली नायिका अपने चितवन-
 रूपी बाणोंसे निसीकी अथमरा करके लुछ ही डग धागे चलकर
 बार बार सिर घुमाकर देख रही है कि वह युवक अभी जी रहा
 है या ठंढा हो गया ॥ १६ ॥

आँखूः हृदयके धुरैसे लाल-लाल होकर मर जानेवाली
 नायिकाकी आँखें ऐसी जान पड़ती हैं मानों उसके हीन्दिर्यके
 जलका प्रवाह जो उसके शरीरमें नहीं समा पाया वही आँखू
 बनकर बाहर निकला पड़ रहा हो ॥ १७ ॥

निद्रा—श्रामीलक्षयनीलनीरजतुनामालम्ब्यते लोचनं
श्रीधर्यं नवमस्रिकालसदृशैरङ्कुरिण्यि स्थीकृतम् ।
श्रालापादधरः स्फुरत्कलयति प्रेङ्खत्प्रवालोलोपमामान-
न्दममवाञ्छ वाष्पकणिका मुक्ताश्रयं विभ्रति ॥ १ ॥
उत्तानामुपधाय बाहुलतिकामेकामपाङ्कश्रिताऽन्या-
मन्यलसां निधाय विपुलाभोगे नितम्बस्थले । नीचीं
किञ्चिदवश्रुत्यां विदधती निध्याललोलालका तल्पे-
त्पीडनतिर्यगुग्रतकुचं निद्राति शातोदरी ॥ २ ॥
निद्रार्धमीकृतदृशो भद्रमन्यराणि नान्यथेवन्ति न च
यानि निरर्धकानि । अद्यापि मे स्मृग्दशो मधुराणि
तस्यास्तान्यत्तराणि हृदये किमपि ध्वनन्ति ॥ ३ ॥
सार्थकानर्थकपदं प्रयती मन्थराक्षरम् । निद्रार्धमी-
लिततर्ही सा लि खनेवास्ति मे हृदि ॥ ४ ॥

सितम्—अद्वितीयं निजं लोके विलोक्य वहतो
मुद्रम् । प्रमदावदनस्थायं दंपाद्रिको न तु स्मितम् ॥ १ ॥

नन्दः उस नवेलीके मँपे हूप नेत्र कुञ्ज-कुञ्ज सुँदते हूप
नये नीले कमलके समान दिखाई पड़ते हैं, बिल्लीनेपर बिलखे
हूप बेलके फूलोंके साथसाथ शररके अश्रु भी नींदसे ढीले
पड़ गए हैं, नींदमें बोलते समय फड़कना हुआ उसका नीचेका
आँठ भी हिलते हुए सूँगेके समान जान पड़ता है और नींदमें
आनन्दके कारण निकलें हुई आँसुआँकी बूँदें भी मांती-सी
झलक रही हैं ॥ १ ॥ वह पतली कमरवाली नवेली इस प्रकार
नींद ले रही है कि नींदमें एक करवट होनेसे उसकी आँलके
पास ही एक बाँह मुड़कर तो उसका भक्रिया बन गई
है, दूसरी ढीली बाँह चौड़े नितम्बपर फैली है, उसकी
सादीका नादा बीला हो गया है, उसकी साँसोंसे उसके
यात्र हिल रहे हैं तथा करवट लेकर बिल्लीनेपर सोनेके कारण
उसके स्तन निरुद्धे तथा उँचे हो रहे हैं ॥ २ ॥ मेरी प्यारी मद्र
पी लेनेके कारण उनींदी अवस्थामें जो कुछ अचटवचट कुञ्ज
अपनेमे और कुञ्ज वै-सिर-परके अचर बड़बड़ा रहा थी वे धाज
भी मेरे कानोंमें गूँज रहे हैं ॥ ३ ॥ नींदमें अचट-सचट बरसी
हुई वह उनींदे नयनोंवाली नवेली मेरे मनमें चित्रके समान
बनकर बस गई है ॥ ४ ॥

मुस्कानः इस नवेलीके मुखपर जो अलौकिक प्रसन्नता
नाच रही है उसे आप मुस्कान न समझिए, यह तो उसके
पौवनकी मस्तीका उठान है ॥१॥ युवकोंके जो हृदय पग-पगपर
कामके बायाँकी भारसे व्याकुल हुए रहते हैं वे तहसी मारियोंके

कामबाणप्रहारेण भूच्छित्तानि पदे पदे । जीवन्ति युव-
चेतांसि युवतीनां स्मितामृतैः ॥२॥ ताद्यदेव मनोजस्य
शरैस्तिग्मे वजाजिता । न यावन्नपतेयुस्ते कान्ते स्मि-
तसुधांशवः ॥ ३ ॥ धवलीकरोति हरितां मल्लिनीकुचते
मनः सपत्नीनाम् । अस्या हास्यविकासो मम तु मनो
रक्तमाचरति ॥४॥ निरीक्ष्य परदाय पतिं प्रयच्छन्कृपा-
प्रशसायुतसिद्धपारदम् । वभूव वैद्यस्य प्रियानपत्या
रहस्यपूर्णस्मितवक्त्रयुक्ता ॥ ५ ॥ पुष्पं प्रवालोलोपहितं
यदि स्यान्मुक्ताफलं वा स्फुटविद्रुमस्थम् । ततोऽनुकु-
र्याद्विशदस्य तस्यास्ताप्राष्टयस्तदरुचः स्मितस्य ॥ ६ ॥
मधुरः कुसुमविकासो विशद्ः पीयूषदीधितेरुदयः ।
वर्यणिनीस्मितं तु क्षमं न निर्वक्तुमीदृगिति ॥ ७ ॥ मां
जितं ननु सम्दाध्य स्मयते सुभगामुखम् ॥ इति सम्भा-
व्यधनतधन्द्रोऽष्टेषु प्रधावति ॥ ८ ॥ यदि प्रसादी-
कुरत सुधांशुरेया सहस्रांशमपि स्मितस्य । तत्का-

मुस्कानरूपी अमृतसे अच्छे होते रहते हैं ॥ २ ॥ कामदेवके
बाण तभीतक अपना पराक्रम नहीं दिखा पाते जबतक प्यारपर
प्रियनमाकी मुस्कानकी किरणें नहीं पड़तीं ॥३॥ इस नवेलीकी
हँसीकी चोंचनी चारों दिशाओंको तो चमका रही है किन्तु
साँतोंका मन मिला कर रही है और हमारे मनको भी एक
(रहनी, प्रेमपूर्ण) बनाए डाल रही है ॥ ४ ॥ किसी
दौधने किसी नपुंसक शोभीसे अत्यन्त घन लेकर उसे धामारी
करके बड़ी सराहनाके साथ पारा दिया उस समय वैद्यकी
निःसन्तान पत्नी बड़ी भेद-भरी मुस्कानसे अपने पतिका
मुँह देखने लगी (कि यदि पारमें यह गुण है तो धाप ही क्यों
नहीं सेवन करके अच्छे उपलब्ध कर लेते, आप भी तो पेटे ही
नपुंसक हैं ।) ॥ ५ ॥ इस नवेलीके लाल-लाल आँठोंपर
झलकती हुई उजली मुस्कानकी बराबरा तभी कुञ्ज-कुञ्ज हो
सकती है जब नई लाल कोंपलॉपर उनले फूल लगा दिए जायें
या धमकीले लाल रूंगेपर मोती टाँक दिए जायें ॥६॥ वसन्तमें
फूलोंका खिलना और अमृतमयी किरणोंवाले अमृतमाका
निकलना दोनों यद्द सुखदायक होते हैं किन्तु श्रेष्ठ विह्वलेंते
सजी हुई नवेलीकी मुस्कान तो कुछ ऐसी अनोखी होती है
कि उसका कुञ्ज कहकर वर्णन नहीं किया जा सकता ॥ ७ ॥
नवेलीकी मुस्कान देखकर यह अमृतमा मानो यही समझकर
बादलोंमें छिपनेके लिये दौध जा रहा है कि 'यह सुन्दरी मुझे
हारा हुआ समझकर ही मुसका रही है' ॥८॥ यह नवेली यदि

मुदीनां कुरुते तमेव निमित्त्य देवः सफलं स्यजन्म ॥ ६ ॥ सुधासिन्धोर्मुपस्येयं फेनलेपा वहिर्गता । प्रवदन्त्ययथाप्रहास्तव स्मितपरम्पराम् ॥ १० ॥

ह/सतम्—अक्रस्मादेव तन्व्यी जहासयदियं पुनः । नूनं प्रसूनवाणाऽप्यं स्वाराज्यमर्धातिष्ठति ॥ १ ॥ स्म-पमानमायताद्याः फिर्द्धिभिव्यकदशनशामि मुखम् । असमप्रलन्यकेसरमुच्छ्रसद्व पङ्कजं ६८८म् ॥ ५ ॥

वाणी—अमृतद्रव्याधुरीधुरीणां गिरमाकरये कुर-ङ्गलोचनायाः । मुहुरभ्यसन कपायकएठी फलकएठी कुरुत कुहुरुतेन ॥ १ ॥ करटे घसन्ती चतुरा यदस्थाः सरस्वती दादयते विपञ्चीम् । तदेव चाम्भूय मुखे मृगाद्याः श्रांतुः श्रुतां यात सुधास्तत्त्वम् ॥ २ ॥ पद्माङ्कसन्मानमवद्य लक्ष्मीकस्य । चण्डोः श्रयणा-स-पत्नीम् । आस्येन्दुमस्या भजत जिता-जं सरस्वती

तद्विजिगीषया यिम् ॥ ३ ॥ प्रसूनवाणाद्वययादिनी सा कापि द्विजेनोपनिपिपिनेन । अस्याः किमास्य-द्विजगजते वा नाथीयत मैत्रमुजा तदभ्यः ॥ ४ ॥ शिरीषकोपादपि कोमलाया वेधा विधायाङ्गमश्रेय-मस्याः । प्राप्तमर्षं सुकुमा सर्गे समापयद्वाचि मृदुत्वमुद्राम् ॥ ५ ॥ सरस्वती दीव्यति विधवाभ्रा समं सराजे यदने त्वदीये । तत्काफलद्विपरसा गभीराः श्रमानुरोधादिव निस्सरन्ति ॥ ६ ॥ स्वरंण तस्याममृतस्मतेव प्रजदिपतायामभिजातवाच । अन्य-न्यपुष्टा प्रतिकूलश-दा श्रातुवितन्त्रीरिय ताव्य-माना ॥ ७ ॥

जृम्—आस्येन्दोः परिवेषयद्वातिपतेभ्याम्पेयो-द्वद्वयद्विभ्राम्युमुचः क्षण्यतिवदासज्जा क्षिपन्ती भुजा । विदिलिप्यद्दलि लव्यनाभि विगलप्रोद्युधमन्म-

कृपा करके अपनी मुसकानका सहघर्षी भाग भी चन्द्रमाको दे देती तो वह उसे अपनी चाँदनीमें धोलकर अपना जन्म सफल कर लेता ॥ ६ ॥ तुम्हारे इस अमृतके समुद्रके समान मुझे जो फेन यहकर बाहर था रहा है उसे डीक-डीक न समझ सकनेवाले लोग तुम्हारी मुसकान कह बैठते हैं ॥ १० ॥

हूँस्ती : इस पतला कमरवाली नवेलीका अचानक खिल-खिलारक हँसत देखकर जान पड़ता है कि अब निश्चय हा इसपर कामदेव अपना अधिकार जमानेवाला है ॥ १ ॥ उस वधा-वर्षी श्रौलौवाली नायिकाका मुस्कराता हुआ और कुङ्कु-कुङ्कु फलकम-वाले दृष्टिसे सुहावना लगनेवाला मुख उस कमलके उमान दिग्गई दे रहा है जा थादासा खिला हुआ हा और जिसके केसर भी थादे-थादे दिखाई पड़ते हैं ॥ २ ॥

वाणी : हरिणीके भेड़ोंके समान श्रौलौवाकी उस नायिकाका जो वाणी अमृतके रसकी मिठाससे भी बढ़-बढ़कर है उसे सुनकर धार धार 'कू-कू' करनेवाली यह मिठवाली कायल ऐसी जान पड़ती है मानो उस नवेलीके समान धालनेका अभ्यास कर रही हो ॥ १ ॥ इस मृगनयनी नवेलीके गलेमें वैठी हुई सरस्वतीजी जो बीया बजा रहा है उसकी तानें ही इसके मुसकी वाणी बनकर सुननेवालाका कानामें अमृतक रसका बूँद बनकर टपकता है ॥ २ ॥ अकले विष्णुका धाकक बलपर कमलके बीच बैठा हुई अपनी सात लक्षमाका दलकर हा क्या सरस्वतीने उसे जातनेके लिये कमलका शाभा जात लेनेवाले इसके मुखचन्द्रमें थाकर घेरा डाल दिया है ॥ ३ ॥ इस नवेलीका वाणी

सुनकर ऐसा क्या बड़ा जान पड़ता है कि पैदोसे भिदा मोंगकर अपना पेट पालनेवाला द्विज (पर्षा, ग्राहण) पिक् (कायल) इसके मुखरूपी द्विजरज (चन्द्रमा, श्रेष्ठ ब्रह्मज्ञानी) से कामदेव और ससाराकी आपसमें एकता बतानेवाला उपनिपद् सीप रहा है ॥ ४ ॥ जिस ब्रह्मज्ञाने कोमल वस्तुई बनानेमें यद्गुन नाम कमा रक्सा है उसने शिरीषके फूलके भीतरी भागसे ग्री कोमल इसके सब अंग बनाकर, बर्षी हुई कोमलतासे इसको वाणी बनाई ॥ ५ ॥ तुम्हारे मुखसे निकली हुई मधुर वाणी ऐसी जान पड़ती है मानो तुम्हारे मुँहके भीतर ब्रह्माके साथ काम-क्रीड़ा करते समय सरस्वतीके मधुर कण्ठसे जा आनन्दकी भाँकमें देवी स्वर निकलता है वही तुम्हारे मुँहसे वाणी बनकर बाहर निकल रहा हो ॥ ६ ॥ जब उस नवेलीकी वाणी कुङ्कु-कुङ्कु सुली तो ऐसा खगा मानो उसके स्वरसे अमृत चू रहा हो । उसके सामने कोयलकी कूक ऐसी रूखी जान पड़ती थी मानो कोई बेसुरी धीया छेड़ी जा रही हो ॥ ७ ॥

जैभाई : यहाँके समान स्तनोंवाली उस नवेलीने जिस समय जगई लेकर श्रीगदाईके लिये अपने दोनों हाथ मिलाकर बाँहें ऊपर उठाई उस समय वे गाल की हुई बाँहें ऐसी जान पड़ती थीं माना मुखरूपी चन्द्रमाका मखल हा, चम्पेके फूलसे बना कामदेवका घणुप हा या तिरके गूँद-गपी बादलोंपर बिजलीका घेरा हा । इस प्रकार श्रीगदाई क्षेते समय उसके पेटपरकी सिकुड़नें मिट गई, पागि दिलाई

ध्यमं किञ्चित्किञ्चिदुदञ्च दञ्चलमद्वो कुम्भस्तनी जूम्भते
॥ २ ॥ चक्रीकृतभुजलतिकं धक्रीकृतवक्त्रमुन्नमद्गी-
वम् । नो हरति फस्य हृदयं हरिण्यदशो जूम्भणा-
रम्भः ॥ २ ॥

गमनम्—गुरुतरकलन् पुरानुनादं सललितनर्ति-
त्वामपादपथा । इतरदनतिलोलमादधाना पदमथ
मन्मथमन्थरं जगाम ॥ १ ॥ दूरयन्त्या जनं सर्वं निरा-
गसमवज्ञया । मातङ्गानां गतिर्यादृक्पाटादगसीदसं
शयम् ॥ २ ॥ मारयन्त्या जनं सर्वं निरागसमिवा-
ज्ञया । मातङ्गानां गतिर्यादृक्पाटादगसीदसशयम् ॥ ३ ॥
सहोत्तमियमायाति कामिनी गजगामिनी । उन्नतं हि
नखज्योतिः पुष्पैर्भुवमिवाचर्त्तौ ॥ ४ ॥ सा राजहलै-
रिव सन्नताङ्गी गतपु लीलाञ्चितचिक्रमेपु । व्यनीयत
प्रत्युपदेशलुब्धैरारित्सुभिर्नूपुरसिञ्जितानि ॥ ५ ॥

देने लगी, नाड़ा खुल गया, कमर सीधी हो गई और
छातीपरका आँचल कुछ कुछ उड़लने और उठने लगा
॥ १ ॥ जैभाई लेते समय जब उस मृगनयनी नवेलीके दोनों
हाथ ऊपर उठकर गोल हो जाते हैं, मुँह देड़ा हो जाता है और
गला सीधा हाकर उठ जाता है तब वह किसका मन नहीं हर
लेती ॥ २ ॥

चालू : कोई नवेली अपने पतिके बाईं ओर उसके
शरीरसे सटकर चलती हुई अपनी पैजनी भ्रमभ्रमावो है, बायों
पैर बहुत सँभाल-सँभालकर रखती चलती है और इस प्रकार
कामके बोझसे बहुत धीरे-धीरे चल रही है ॥ १ ॥ इस नवेलीकी
मतवाली और बिना अपराधके ही सय मनुष्योंको दूर
हटानेवाली मद्माती चाल मतवाले हाथियोंकी चालसे
मिलती-जुलती है क्योंकि हाथी भी ऐसे ही झूमते हुए और मुँह
फटकारत चलत है माना वे संसारमें किसाका कुछ नहीं
समझते ॥ २ ॥ वह नायिका अपनी आज्ञासे सबका बिना
अपराधके ही मारे डाल रही है इससे निश्चित है कि इसकी
गति (चाल, व्यवहार) मार्तण (हाथी, पायडाल) जैसी
ही है ॥ ३ ॥ हाथाक समान चालवाली यह नायिका जब
चमक-मटकके साथ चलती है और धरतापर इसके पैरका नखोंकी
चमक पड़ती है तब ऐसा जान पड़ता है माना उस चमकरूपी
पुष्पीसे धरतीका पूजा करती चल रही है ॥ ४ ॥ यौवनके
भासे मुकी हुई वह नवेली जब वधि उठक मटकके साथ
चलती है तब ऐसा जान पड़ता है माने उसके पायलोंसे

उड़ीपनविभावः

प्रभातवर्णनम्—अभिरजनिमुले यः सान्द्रलाक्षातु-
रागैर्व्यतिकरित इवोद्यैः पाटलत्वं दधानाः । उपसि स
खलु दीपः पाननिधूतरागः स्फुरदधर इवायं धूसरत्वं
विभक्ति ॥ १ ॥ अनुनयमगृहीत्या व्याजसुता पराची
रतमय कृत्वाकोस्तारमाकर्ण्य कल्पे । कथमपि परि
वृत्ता निद्रयान्धा फिल खी मुकुलितनयनैवाशिलप्यति
माण्नाथम् ॥ २ ॥ अन्तर्हिते शशिमि सैव कुमुदतीयं
दृष्टि न नन्दयति संस्मरणीयशोभा । इष्टप्रवासजनि-
तान्यवलाजनेन दुःखानि नूनमतिमात्रदुरुद्धहानि ॥ ३ ॥
अन्यत्र यापितनिशं परिलोहिताङ्गमन्याङ्गनागतमिवा
गतमुष्णपरिमम् । प्रातनिरीच्य कुपितेव हि पञ्चनीय-
मुकुलहल्लकसुलोहितलोचनाभूत् ॥ ४ ॥ अप्रयान्तीनाम
धुना सङ्केतनिकेतनान्मृगाक्षीणाम् । वासस एव न केव

निकलनेवाली 'रुम्भन' ध्वनि सीलनेके लिये ललचाप हुए
राजहँसोंने अपनी हाव-भरी चाल उसे पहले ही बदलेमें सिखा
डाली हो ॥ ५ ॥

उड़ीपन विभाव

प्रातःकालका वर्णन : जो दीपक रातको महाबके
रङ्गके समान लाल-लाल प्रकाश दे रहा था उसको लौ
प्रातःकाल होनेपर वैसा ही मन्द पड़ गई है जैसे सुम्न
लेनेके पश्चात् निचले ओठका रङ्ग फीका पड़ जाता है
॥ १ ॥ रातमें जो म्रियतमा अपने म्रियतमके बहुत मनानेपर
भी नींदका बहाना करके मुँह फेरकर सो गई थी उसने
प्रातःकाल जब मुर्गेकी बाँग सुनी तो वह म्रियतमसे विशेष
होनेके भयसे घबराकर गहरी नींदका बहाना करती हुई करक
बदलकर आँखें बिना खोले ही अपने प्राणनाथका आलिंगन
करने लगी ॥ १ ॥ इस उमुदनीकी जो शोभा वह पहले आँखों
सुख दे रही थी, चन्द्रमाके छिप जानेपर जाती रही क्योंकि
म्रियतमका बिदाह छियाँ किसी प्रकार भी सहन नहा कर पाती
॥ ३ ॥ तालमें खिले हुए लाल कमलके पीछे और लाल कमलोंके
देखकर ऐसा जान पड़ता है कि प्रातःकाल खिले हुए लाल
सूर्यको देखकर कमलिनियों (कमलके पीछों) ने अपनी-
अपनी कमलरूपी आँखें इसलिये लाल कर ली हों कि सूर्य
रातभर किसी दूसरी नायिकाके साथ रहा है और उस सीपके
शरीरमें पुत हुए कैसरके रंगसे अपनेको रङ्गकर प्रातःकाल चला
आ रहा है ॥ ४ ॥ प्रातःकाल अपने फोड़ा-भवनोंने निकलकर

लमभयन्मनसोऽपि परिवर्त्तः ॥ ५ ॥ अश्रुभ्राची पिङ्गा
रसपतिरिव प्राप्रय कनकं गतच्छायश्चन्द्रो बुधजन इय
प्राप्त्यसदसि । तृणात्कीणास्तारा नृपतय इवानुधम-
परा न दीषा राजन्ते द्रविणरदितानामिध शुषाः
॥ ६ ॥ अयमुद्यमहीभृन्मृभि पाणिं गृहीत्या दिवस-
पतिरहौपीदिन्द्रुपादान्धर्वापि । अरुणकिरणयहाँ
कन्यका पांशुहती हरिद्विप किमकार्योत्तारकाजाल-
होमम् ॥ ७ ॥ अयं मृदुमृणालिनीवनविलासवेदासिक-
स्त्वियां वितपते पतिः सपदि द्रप्रयमाना निजाः ।
स्ननौ पुलकयन्ति चोत्पलदशां प्रियोरःस्थले विपर्ययि-
तवृत्तयो युश्रणपङ्कपत्राङ्कुराः ॥ ८ ॥ अरुणजलदराजी-
मुग्धहस्ताप्रपादा बहुलमधुपमालाकजलेन्द्रीवराक्षी ।
अनुपतति विराचैः पद्मिणां व्याहरन्ती रजनिमचिर-
जाता पृथस्तन्ध्या सुतेय ॥ ९ ॥ अश्रित्तमधिरामा रा-
गिणां सर्वरात्रं नवनिधुवनलोलाः कांतुकेनाभिविद्य ॥

इदमुद्यसितानामस्कुटातोः सम्पन्नयनमिव सनिद्रं
घूर्णते दैपमन्त्रिः ॥१०॥ आद्ये जम्मुपि तां च चूडारचिते
श्रोत्रं प्रवृत्ता जघात् किञ्चिद्वासावदिक्रमं प्रतिकस-
द्रूपा गथाक्ताध्वना । सन्नासेन समीरिता प्रियत-
ममेम्णा च रक्षा शनैरुत्थानोपनिवेशानि कुर्वते तदंशे
सुहृः पांसुला ॥ ११ ॥ आपाटलैः प्रथममङ्कुरितैर्मयूरी-
रहां पतिः प्रथमशैलविहारिणीनाम् ॥ त्राज्यं कपोति
सुरपुङ्गवसुन्दरीणां कर्णेषु कल्पतरुपल्लयमङ्गलचर्मा
॥ १२ ॥ आलोकेरतिपाटलैरचरमां विस्तारयद्रिद्विद्वं
नक्षत्रद्यतिमाक्षिपद्रिचरिचाराशङ्क्य सूर्यदियम् ।
पुक्षीभूय भयादिवान्धतमसं मन्ये द्विरेफच्छलाग्नी-
लभालसरोरुहोदरकुटीकोष्णान्तरे लीयते ॥ १३ ॥
आश्लेषशेषा रतिरङ्गनानामामोदशेषा कुचकुङ्कुमश्रीः ।
दृषीरशेषेः कुसुमायु घाऽपि प्रभातशेषा रजनी वरुच
॥ १४ ॥ आसीत्स्यं निशिराजरक्तहृदयेतीप्यालुता

आती हुई मृगनयनी मवेलियोंके केवल वरु ही नहीं बदल
जाते वरन् उनका मन भी बदल जाता है और भोगविलाससे
मन हट जाता है ॥ ५ ॥ प्रातःकाल पूर्व दिशा बेंसी ही
पोली पद गई है जैसे पारसे मिला हुआ सोना, चन्द्रमा बैसा
ही फीका पद गया जैसे मूलोंकी समामें पधित तथा तारे जैसे
ही मन्द हो गए जैसे दूरिद्रके गुण ॥ ६ ॥ प्रातःकालका हरय
पेसा जान पड़ता है मानो उदयाचलके शिपरपर पूर्व दिशारूपी
कन्याके साथ विवाह करता हुआ सूर्य, छात्र किरणरूपी
आगमें चन्द्रमाकी किरणरूपी हबिकी आहुति दे रहा हो । क्या
पूर्व दिशारूपी कन्या भी सूर्यके साथ साथ उठी आगमें
तारेरूपी धानकी खोलें होम करती जा रही है ? ॥ ७ ॥
प्रातःकाल कोमल कमलिनियोंके वनमें क्रीडा करनेका व्यसन
सूर्य भ्रमरने लगा है और कमलके समान आँसुवाली बियाँ
जब अपनी छातीपर केसरसे बने हुए बेलवूँटोंकी छाप अपने
पतियोंके छातीपर लगी देरती है सो उनके स्तनोंपर रामाश
हो उठता है ॥ ८ ॥ लाल कमल ही जिसके सुन्दर हाथपर है,
भीरोंका सुपद ही काजल है, तिले हुए नीले कमल ही नेत्र हैं,
पतियोंके कलारपके रूपमें जो अपनी मीका पुकार रही है वह
प्रातःकालकी ललाईरूपी तत्काल उत्पन्न हुई बघी अपनी माता
रात्रिके पीछेपीछे दौड़ी चली जा रही है ॥ ९ ॥ प्रातःकाल
हस भुँवले दीपकका देवकर पेसा प्रतीत होता है मानो धरकी
आँप बनकर जो यह सारी रात बड़े चावसे कामियोंकी निरन्तर

होनेवाली कामकीड़ाएँ देखा हुआ सारी रात जागता
रहा इसलिये प्रातःकाल भ्रमरकी आनेसे उसकी देरनेकी
शक्ति भी मन्द पड़ गई हो और उसकी बालें भी जा
रही हों ॥ १० ॥ तदके-तदके सुगंधकी बाँग सुनकर म्द
नींद सुल जानेपर वह नवेली भरोलेसे दिन निकला देकर
अपने प्रियतमसे विद्योह होनेके दरके मारे सटियापर करवट
बदल हीं रही थी कि इतनेमें पूर्व दिशामें लाललाल
सूर्य दिखाई पड़ गया ॥ ११ ॥ पहले-पहल फूट निकलने-
वाली सूर्यकी लाल-लाल त्रिरणें ऐसी शोभा दे रही हैं मानो
उदयाचलपर टहलनेवाली देवियोंके कानोंपर कल्पवृक्षकी कोंपलें
ढींगी हुई हों ॥ १२ ॥ प्रातःकाल सूर्यकी लाल-लाल किरणोंसे
पूर्व दिशा फैल ही गई और तारोंकी चमक भुँधली पड़ गई ।
इस प्रकार सूर्य निकलनेके समय उड़-उड़ तिले हुए नीले
कमलके भीतर बँटे हुए मीरे ऐसे जान पड़ते हैं मानो सूर्यके
दरसे सारा अँधेरा इकट्ठा होकर उस नील कमलरूपी कुटीके
कोनेमें छिपा जा रहा हो ॥ १३ ॥ अथ बियाँकी सब क्रीड़ाएँ
समाप्त हो गईं, केवल (अपने प्यारके) गले लगाया-भर गच
रहा है, स्तनपर पुता हुआ केसर छूट गया है और उसकी
सुगन्ध-मात्र गच रही है तथा कामदेवके सारे बाण छूट चुके हैं
और छूँ पावर्णार मात्र शेष रह गया है । अतः जान पड़ता है कि
रात भी बीत बगई है और अब ठमका आगिन पहर (उत्पन्न
मात्र शेष रह गया है ॥ १४ ॥ प्रातःकाल निकलः इ

वञ्जिणा प्रातः शङ्कितयेव दिव्यपदवीं गत्वात्मनः
शुक्रये । श्रौवाँत्तापितयाधितापकतलादादाय मुक्तो
वहिः प्राच्याऽसौ दिवि तप्तमापक इव प्रद्योतनो
द्योतते ॥ १५ ॥ इतः पौरस्त्यायां ककुभि विदृणोति
क्रमदलत्तमिन्नामर्माणं किरणकलिवाम्बरमणिः ।
इतो निष्प्रामन्ती नवरतिगुरोः प्रोञ्जति वधूः स्वक-
स्तूरीपद्माङ्कुरमकरिकामुद्रितमुरः ॥ १६ ॥ इतः शुक्ला
चन्द्रयतिभिरिह रक्ताक्षकस्तमिन्मैरव्यन्तः स्वलि-
तगतिभिर्मैचकरुचिः । प्रमातश्रीरेषा विलसति
पुरस्था सुकृतिनां मिमङ्कृत्तूणां जङ्घ्युमणिविधिजासङ्गम
इव ॥ १७ ॥ इतः शोचिः प्राच्यां दिशि दिशति भानो-
ररुणतामितो भृङ्गः कूजन्नभिकमलिनीं प्रोञ्जलति
च । इतो नियान्त्युच्चैर्विहितसुरतकान्तिशिथिल-
स्त्रलत्पादन्यासन्नखरणितमञ्जीरमवलाः ॥ १८ ॥ उर्या-
योन्नतवासायप्रिशिखरे विस्तारिताकुञ्जितं विभ्रत्या-

दमुदस्तकेसरसटः किञ्चिद्विन्द्रेक्षणः । दूराद्विन्त-
कन्धरः शमवशाद्याधूय पतद्भयं मानम्लानिकरः
कुरङ्गकदशा फोक्यते कुफकुटः ॥ १९ ॥ उत्फालं
हेल्लैव द्रुतमभिपततः पूर्ववृष्वीधराप्रादुर्धरचिध-
पेटाहतिभिरिव हरेर्ध्वान्तदन्ती विदीर्णः । रफताः
कुम्भैर्विमुक्ता इव सकलदृशां विस्मय सन्दधानाः
सन्ध्याशाण्विषयस्ताः सपदि निपतितास्ताः रफताः
समस्ताः ॥ २० ॥ उन्मीलन्ति निशा.नशाचरवपूयो-
चाटनामान्त्रिकाः सायं सालससुप्तपङ्कजवनप्रादोप
वैतालिकाः । कुल्लपङ्कजमोशगर्भकुहरप्रोद्भूतभृङ्गवि-
लीभङ्गाप्रणवोपदेशगुरवस्तीव्रयत्नेरंशयः ॥ २१ ॥ एत-
द्विप्रभृतिक्रमेण गणनामेयामिवास्तं यतां कुर्वाणस्य
कोचयद्दृशयतान्यम्भोजसंवत्तिकाः । भूयोऽप क्रमशः
प्रसारयति ताः सम्प्रत्यमूनुग्रता सह्युवातु सकुपु-
लेव नलिनी भानोः सहस्रं करान् ॥ २२ ॥ एतच्छक्या

ऐसा दिखाई पड़ता है मानो जब इन्द्रने अपनी प्रियतमा पूर्व
दिशापर यह सन्देह किया कि 'तुम चन्द्रमासे प्रेम करने लगी
हो', तब वह तपस्या करके यह कलङ्क छुड़ानेके लिये पाताल
लोकका चली गई और अपने पवित्र हों जानेका प्रमाण देनेके
लिये बद्धानलसे तपे हुए समुद्रतलसे जो दृक्ता हुआ
सानेका गाभा हाथमें लेकर आई है वहा यह सूर्यक रूपमें
चमक रहा है ॥ १५ ॥ इधर ता पूर्व दिशामें सूर्य क्रमशः
अधेरेका हृदय फाड़ देनेवाली अपनी किरणोंकी कज्यां फंला
रहा है और उधर अपने झाड़ाभवनेसे त्वकलती हुई
नायिका अपने शरारसे छूटकर अपने साथ नियत-वहै रात
करनेवाले प्रेमाकी छातीपर लगी हुई कस्तूरके बेल-बूटाकी
छाप पाठवा जा रहा है ॥ १६ ॥ प्रातःकालकी छटा
ऐसी निराली है कि कहीं तो द्रवत हुए चन्द्रमाका चौंदमाका
पुंजलापन छाया हुआ है, कहीं सूर्यकी किरणोंकी ललाई
छाई हुई है और कहीं-कहीं एके हुए अन्धकारसे कालापन भी
दिखाई दे रहा है । इसलिये प्रभातकी छटा स्नान करनेवाले
पुण्यात्माओंके लिये गन्ना, यमुना और सरस्वतीके सङ्गमके
समान पवित्र हो गई है ॥ १७ ॥ पूर्वमें एक ओर तां
सूर्यकी ललाईकी चमक शोभा दे रही है, दूसरी ओर
यमुगुवाता हुआ भीरा कमलिनीकी शरीर बदा जा रहा है
और इधर ध्रुवयन्त वेगसे रात करनेके परिश्रमसे थकी हुई
नारियों बगमग पैरोंसे चलनेके कारण रुक-रुककर, बिबुप

यवाती हुई अपने क्रीडा-भवनोंसे निकल रही हैं ॥ १८ ॥
तदके तदके उठकर, लेंके अङ्गपर चक्कर, एक-एक पैर उठाकर
सिकोड़ता-फैलता हुआ, अपने गलेपरके रोंपे उठाकर कुप
उनींदी श्रौंलोसे देखता हुआ तथा अपने कंधे उचककर,
अपने दोनों पङ्क भरपूर फुलाकर शान्तिके साथ उन्हें फडफटा
हुआ, यह हरिणकी-सी श्रौंलोवाली कामिनियोंका मान भङ्ग
करनेवाला मुर्गा 'कुकू' 'सूँ' 'सूँ'की देर सुना रहा है ॥ १९ ॥ पूर्वतोंके
पूर्वी ढालपर वाली फैलाता हुआ, अपनी किरणके उजालेसे
अधेरेरूपी ऐरावत हाथीके दाँत उखाड़ता हुआ, लाल लाल
चमकता हुआ और रात्रि तथा दिनके मिलनकी ललाई धारव
करनेवाला सूर्य ज्यों ही उदय हुआ क्यों ही सबकी चकित
करते हुए तारागण पेसे कड़ गए मानो घड़ोंसे रत्न गिर गए हों
॥ २० ॥ तदके-तदके चारों ओर फैलनेवाली सूर्यकी किरणें ऐसी
जान पड़ती हैं मानो रातरूपी राचसीको भगानेके लिये मन्त्रज्ञ
अप करनेवाले तान्त्रिक हों, या आलस्यसे सोए हुए कमलोंको
जगानेवाले वैतालिक (चारण) हों अथवा खिले हुए कमलोंके
बीचसे निकलते हुए औरोंकी गैतरूपी प्रणव (श्रॉम) का
उपदेश करनेवाली आचाया हों ॥ २१ ॥ प्रातःकाल क्रमसे अपनी
पङ्कडियाँ खालती हुई कमलिनी ऐसी जान पड़ती है मानो
सन्ध्या समय सूर्यके साथ सिमटनेवाली किरणोंकी जो गिनती
कमलिनीने अपनी पङ्कडियोंको क्रमसे सिकोड़-सिकाड़कर की थी,
पहो थव निकलती हुई किरणका बड़े प्रेमसे एक एक करके

चक्रवाकसुहृद्दशामाश्वत्थानादायिनः प्रौढध्वान्तपयोधि-
मञ्जगतीदत्तावलम्बोत्सवाः । दीप्तांशोविकसन्ति
दिङ्मृगदृशां काश्मीरपद्भोदकव्यान्त्युक्षीचतुर्गः सरो-
रुहवनश्रीकेलिकागाः कराः ॥ २३ ॥ एते केतकधूलि-
धूसररुचः शीतद्युतेरंशवः प्राप्ताः सम्प्रति पश्चिमस्य
जलधेस्तीरं जराजर्जरा । अण्येते धिकसत्सरोरुहद्व-
नीदृक्पातसम्भाविताः प्राचीरागमुदीरयन्ति तरणे-
स्तारण्यभाज कराः ॥ २४ ॥ का कायला निषुय-
नश्रमपीडिताङ्गी निद्रां गता दयितवाहुलतानुबन्दा ।
सा सा तु यातु भवनं मिहिरौद्रमोऽयं सङ्गतवाक्प-
मिति काकचया वदन्ति ॥ २५ ॥ किञ्चिद्विश्लथ-
केशवान्तकुसुमाः क्रीडाविलोलांशुका लुप्तालुप्तशरीर-
चन्दनतया लोकेकनेत्रोत्सवाः । सम्भागश्रमविहलैर-
व्यवैः सङ्केतशाहान्तरान्निद्राशेषकपायितार्धनवमा
निर्यान्ति वाराङ्गनाः ॥ २६ ॥ कुक्कुटे कुर्वाति काण-

माननं दिलष्टयोस्तयोः । दिवाकरफरात्तानं शशिका-
न्तमिवावधौ ॥ २७ ॥ कुमुदवनमपथि श्रौमदमोज-
खण्डं न्यजति मुदमुलूकः पीतिमौञ्जकवाकः । उदयम-
ह्निमनेचिर्याति शीतांशुरस्तं हतविधिलसितानां ही
विचित्रो विपाकः ॥ २८ ॥ कुवन्नामुत्रपृष्टो मुयनिकट-
कटीस्करुधरोमा तिरश्चां लोलैनाह्न्यमानस्तुहिनक-
णमुचा चञ्चता केशरेण । निद्राकण्डूकपायं कपति
निवडितश्रोत्रशुक्तित्पुरस्त्पङ्कपचमाप्रलप्रतनुसुस-
कर्णं कोणमक्षयः खुरेण ॥ २९ ॥ कृतधयात्ममेदैः
कुङ्कुमेनेव किञ्चिन्मलयरुहरजोभिर्भूयन्पश्चिमाशाम् ।
हिमरुचिररुणिष्ठा राजते रज्यमानैर्जटकमलफण्ड-
च्छेदगारैर्मयूलेः ॥ ३० ॥ कोकानुद्गीवयन्तः पथि
पथ कुलटामानसं कम्पयन्तः प्रस्थातारं प्रमाते प्रिय-
तममवला गाढमालिङ्गयन्तः । उधातुं चाङ्गमङ्गीः
कुलकमलदृशां कारयन्तो निशान्ते कूङ्काराः कुपकु-

गिनते हुए क्रमशः एक-एक पल्लुड़ी जोल रही हो ॥ २२ ॥
यह देखो, चकवेकी सुनयनी नवेलियाँ (चकवियाँ) का ढाढ़स
देधानेवाली, घने अन्धकाररूपी समुद्रमें डूबे हुए संसारको
सहारा देनेवाली, दिशारूपी नाभिकार केशरके पानाका द्रोडा
हालनेवाली तथा कमल-वनकी शोभासुपी नाभिकाके साथ
क्रीडा करनेमें रस लेनेवाली सूर्यकी किरणों चमकने लगीं
॥ २३ ॥ एक थोर तो केवड़ेके फूलके परागके समान धुँधली
चन्द्रमाकी किरणों पुरानी पद जानेके कारण चूर-चूर होकर
पश्चिम-सागरके किनारे जा पड़ी हैं और दूसरी थोर सूर्यकी वे
चमकती हुई नई-नई किरणों पूर्व दिशाको लाल बनाए दे रही
हैं जिनका आदर जिली हुई कमलिनियाँ अपनी चितवन-द्राया
क्रिया करती हैं ॥ २४ ॥ प्रातःकाल कौवे जो कौव-कौव कर
रहे हैं वे मानो रँग ली नवेलियाँकी चेतावनी दे रहे हैं कि
'सम्भोगसे यकट्टर पतिकी धाओंमें लिपटी हुई कौन खी श्रवतक
सो रही है ? अथ दिन निकल आया है, अतः उसे अपने घर
चले जाना चाहिए' ॥ २५ ॥ देखो, जिनके सुखे हुए जूँहोंसे
फूल सारक-सारकवर सिर रहे हैं, जिनके वक्ष रति-क्रीडासे
मैले हो गए हैं, जिनके शरीरके कहीं-कहीं लगे रह गए चन्द्रनके
चकरो देखकर लोग अचानक ले रहे हैं, जिनके अङ्ग सम्भोगकी
धकायटसे हीले पड़ गए हैं और जिनकी शॉलें गीद परी न
होनेसे ढाल-ढाल धीरे झँपी-सी लग रही हैं वे बेरयाएँ अपने-
अपने प्रेमियोंसे मिन्ननेके क्रीडा-गुहाँसे तदके-तदके निकली

धली जा रही हैं ॥ २६ ॥ ज्यों ही प्रातःकाल सूर्यकी बाँग
सुनाई पड़ा त्यों ही नायक और नायिकाके आपसमें सटे हुए
सुँह ऐसे फीके पड़ गए जैसे सूर्यकी किरणोंके आगे चन्द्रकान्त
मणिकी चमक धुँधली पड़ जाती है ॥ २७ ॥ प्रातःकाल कुमुदका
वन गुरफा गया, कमल खिल गए, उज्ज्व उदास हो गया,
चकवा फूल उठा, सूर्य निकल आए और चन्द्रमा अस्त
होने लगा । सचमुच भाग्यहीनोंके बमौका फल बड़े दिचित्र
दङ्गका होता है ॥ २८ ॥ प्रातःकाल अपने शरीरपर पड़ती
हुई अस्त होते हुए चन्द्रमाकी तिरछी किरणोंसे चौककर घोड़ा
अपनी पीठ हानकर तथा कन्धा मोड़कर, अपनी कमरके पास
हितते हुए अयालोंवाला गला बांध-वार घुमा रहा है और
अपने कान घिपटाकर खुरसे अपनी कब्जुआई हुई उर्तीरी
शॉलके कोने सुनला-सुनलाकर बरीनियोंमें लगे हुए भूसे
(या लीद) के नन्हें-नन्हें कण धुंदा रहा है ॥ २९ ॥
प्रातःकाल रँगो हुई-सी किरणोंवाला, कमलकी पुरानी जड़के
डुकड़ोंके समान उजला और लाल-लाल-सा बड़ चन्द्रमा ऐसा
शोभित हो रहा है मानो केशरके पीले रङ्गसे चन्द्रनका पीला
करके उसके चूर्णसे पश्चिम दिशाका अङ्गार कर रहा हो
॥ ३० ॥ रात बीतनेके समय सूर्यकी कुकड़-हँ, मधुके समान
मधुर, गम्भीर और ऐसी लँची सुनाई पड़ रहा है कि उसे सुनकर,
चपवे उतावलेपनके साथ सिर उठा रहे हैं, ध्वनिचारिणी
स्त्रियोंके हृदय काँप रहे हैं, बिराँ परते जाते हुए नायकोंको गले

दातां मधुमधुरसमारम्भगम्भीरधीराः ॥ ३१ ॥ चन्द्र-
कान्तगलदम्बुनाधुना हा चकोरनयने समाश्रिते ।
कोकलोकहृदयानलः पुनः सूर्यकान्तमणिमाश्रयत्वहो
॥ ३२ ॥ चिरतररतलेदप्राप्तनिद्रासुखानां चरममपि
शयित्वा पूर्वमेव प्रयुञ्जाः । अपरिचलितगात्राः
कुर्वन्ते न प्रियाणामशिक्षितभुजचक्राश्लेषभेदं तरण्यः
॥ ३३ ॥ जाता, पक्वपलाएहृपाएहृमधुरच्छायाकिर-
स्ताएकाः प्राचीमङ्कुरयन्ति किञ्चन रुचो राजीव-
जीवातयः । लूतातन्वुवितानवर्तुलमिता विन्वं दध-
च्युम्बति प्रातः प्रोपितरोचिरम्बरतलादस्ताचलं
चन्द्रमाः ॥ ३४ ॥ जूम्भारम्भप्रचिततदलोपान्तजालप्र-
विष्टैर्हस्तैर्भानानृपतय इव स्पृश्यमाना विबुद्धाः ।
स्त्रीभिः सार्धं घनपरिमलस्तोकलक्ष्याङ्गरागा मुञ्च-
न्येते चिकचनलिनीगर्भशय्यां द्विरेफाः ॥ ३५ ॥
ततोऽरुणपरिस्पन्दमन्दीकृतवपुः शशी । दग्ने काम-
परिचामकामिनीगण्डपाएहताम् ॥ ३६ ॥ तमोभिः

पीयन्ते गतवयसि पीयूषवपुषि ज्वलिष्यन्मार्तण्डोप-
लपटलधूमैरिव दिशः । सरोजानां कर्पूरालिमयमय-
स्कान्तमणिवत्क्षणादन्तःशल्य तपति पतिरद्यापि न
रुचाम् ॥ ३७ ॥ तरुणां दिवाकरमयूखमञ्जरीमरुणाम-
शोकशिखरायलम्बिनीम् । कामनीयपुष्पमनसा समा-
श्रितां मधुपो घिडम्बयति मञ्जुभाषिणीम् ॥ ३८ ॥
दिग्भ्रमण्डलीमुकुटमण्डनपद्मरागरत्नाङ्कुरे किरणमा-
लिनि गभितेऽपि । सोख्यप्रसुप्तिकमधुव्रतचक्रवालावा-
चालपङ्कजवनीसरसाः सरस्यः ॥ ३९ ॥ दिशि दिशि
मृगयन्तः वल्गुना घासमेते मुहुरपगतनिद्रा, सप्तयो
ह्रैपतेन । अयमपि च सरोपैः कामिभिः श्रूयमाणो
नदति मधुरतारं ताप्रचूडो विहङ्गः ॥ ४० ॥ द्रुत
तरकरदत्ताः क्षिप्तवैशाखशैले दधति दधनि धीरा-
मारवाग्वारिणीच । शशिनमिव सुरौघाः सारमुद्-
तुमेते कलशिमुदधिगुर्वा वल्लवा लोडयन्ति ॥ ४१ ॥
द्रुमाः पाण्डुमाया धृतनिविडगर्भाः स्त्रिय इव प्रकृ-

लगा रही हैं और कुल-वपुर्षि विद्योनेसे उठनेके लिये अँगड़ाइयाँ
ले रही हैं ॥ ३१ ॥ प्रातःकाल चन्द्रकान्तमणिले निकला हुआ
सारा जल तो चकोरकी आँखोंमें पहुँच गया और चकवा-चकवीके
हृदयकी आग सूर्यकान्त मणिमें समा गई ॥ ३२ ॥ सुखसे
जी-भर सोकर भी जो नवेलियाँ कुछ पहले ही उठ गईं हे वे बहुत
देरतक रति करनेसे थक जानेके कारण गहरी नींदका सुख लेते
हुए अपने प्रियतमोंकी अपनी भुजाओंमें कसकर निश्चिन्त होकर
आलिङ्गनका सुख ले रही हैं, उन्हें छोड़तीं नहीं ॥ ३३ ॥
प्रातःकालके तारोंमेंसे पके हुए प्याजकी-सी पीली पीली सुन्दर
चमक निकल रही है, कमलोंकी जिलानेवाले सूर्यकी किरणें पूर्व
दिशाको सुहावनी बना रही हैं तथा मकड़ीके जालके समान
गोल-गोल चन्द्रमा घुँधला होकर अस्ताचलकी ओर बढ़ा चला
जा रहा है ॥ ३४ ॥ प्रातःकाल ज्योंही कमलकी पसुवियाँ खुलने
लगीं त्योही उसी मार्गसे सूर्यकी वे किरणें हाथ बनकर उन
कमलोंमें समा घुसीं जिनके घूँटे ही वहाँ सोए हुए सब भीरे,
राजाओंके सजामे जाग उठे और अब कमलके परागसे
अदराग लगे हुएसे शरीरवाले वे भीरे अपनी भीरियोंके
साथ कमलजनीके खिले हुए फूलरूपी विद्योनेको छोड़ रहे हैं ॥ ३५ ॥
सूर्यके निकलते ही चन्द्रमा घुँधला पदकर कामकी पीड़ासे
बुझकी नायिकाके गालके समान पीला दिखाई पड़ने लगा
है ॥ ३६ ॥ यद्यपि चन्द्रमाके थस्त हो जानेपर सब दिशाओंपर

धारा हुआ अँधेरा जले हुए सूर्यकान्त मणिका धुँसा-सा जाग
पड़ने लगा है फिर भी कमलोंके भीतर बाणके समान बुने
हुए भीरोंको चुम्बकके समान बाहर खींच लेनेवाला सूर्य
अभीतर भी निकला नहीं है ॥ ३७ ॥ एक मिठवोली नायिका
अशोकके पर्शोर पढ़कर चमकती हुई प्रातःकालकी लाल लाल
किरणोंको फूल समझकर ज्योंही उन्हें तोड़नेकी इच्छासे बनी
त्योही भौंरे उसके पीछे पड़ गए ॥ ३८ ॥ जिस सूर्यकी किरणें
दिशाओंके मुकुटोंपर जड़े हुए पोखरादकी किरणोंके समान
चमकती हैं, वह अभी निकला भी न था कि सभी तालाव उन
खिले हुए कमलोंसे सज गए जिनपर सुखसे सोकर जगे हुए
भौंरे मस्तीसे गुनगुना रहे थे ॥ ३९ ॥ प्रातःकाल एक आर तो
जगे हुए सभी घोड़े बार-बार हिनहिनकर और हँदू-हँदूकर घात
घरते हुए बढ़े भले लग रहे हैं और सुगौने भी ऊँचे स्वर्ते
'कुडूँ कुँsss' करना प्रारम्भ कर दिया है जिते सुनकर कामी
लोग क्रोधसे जल उठे ॥ ४० ॥ जैसे चन्द्रमाको निकालनेके लिये
देवताओंने मन्दर पर्वतको मथानी बनाकर समुद्र मथा था
वैसे ही प्रातःकाल वेगसे हाथ चलानेवाले बगले मरुतन
निकालनेके लिये मटकेमें मथानी ढालकर दही मथ रहे हैं और
उसमेंसे 'घरँवों-घरँवीं' की मयुर गम्भीर गूँज निकल रही है
॥ ४१ ॥ प्रातःकाल पेड़ वैसे ही पीले दिखाई पड़ रहे हैं
जैसे गर्भ पूरा होनेपर बियाँ पीली पड़ जाती हैं; कन्ध वैसे

ज्ञास्ते कन्दा नृपतिकृतमाना इव जनाः । पिको
मन्दं मन्दं हृदि मदननामानि जपति प्रभोरग्रे
पूर्वापरचित्तसभा कविरिव ॥ ४२ ॥ द्वित्रैव्यांस्त्रि
पुराणमौक्तिकमणिच्छ्रयैः स्थितं तारकैर्ज्योत्स्नापा-
नभरालसेन धृपया मत्ताश्चकाराङ्गना । यातोऽस्ता-
चलचूलमुद्रसमपुच्छवृच्छविश्रन्तमा प्राची बालवि
डाललोचनरुचां जाता च पात्रं ककुप् ॥ ४३ ॥
नक्तं निग्ङ्कुशतया वृशसञ्चिमेधो यः सवेतस्त्रिभुय-
नेऽपि ममौ कथञ्चित् । मातिस्म सोऽपि दृशि धूक-
विहङ्गमस्य भानोर्भायाङ्कटिति सङ्कुचितोऽन्धकारः
॥ ४४ ॥ नमसि विरलताग मोंक्तिकानीव भान्ति
स्फुटतगमयमस्तवमाधरं चुम्नतीन्दु । रधिरदशधरि-
नीधारिर्मुधानमेतुं हृदयमनु नितान्तोल्लासमङ्गीकरोति
॥ ४५ ॥ नमोघनं नक्तमसौ चिगाह्य नक्षत्रसेनासहितः
शशाङ्कः । करान्मलान्कतिचित्प्रहृत्य पान्थान्भभते

प्रपलायतेऽद्य ॥ ४६ ॥ निर्यान्त्या रतिवेश्मनः परिणत-
प्रायां विलोक्य क्षणं गाढालिङ्गनचुम्नानि यदुशः
कृत्वाप्यसन्तुष्टया । एकं भूमितले निधाय चरणं तल्पे
प्रकल्प्यापरं तन्वद्भवा परिवर्तिताङ्गलतया प्रेयोश्चिरं
चुम्बितः ॥ ४७ ॥ निषेद्य यद्दु वारुणो जलनिषी
स्वलन्तं क्षणं विगलितान्शुकं द्विजपति विलोक्य
ध्रुयम् । इयं प्रियतमा हरेर्दिगच्छोदयस्य च्छुलाकुसु-
म्भवसनाञ्जलैः स्वमुखमात्रोति हिया ॥ ४८ ॥ पत्नी
पात्रे कतानां व्रजति विधिवशादस्तमिन्दो व्रमेण
क्रन्दन्ती पत्रिनादैर्दिगलिततमिरस्तोमधभिम्बभारा ।
प्रभ्रश्यत्स्थूलमुस्ताफलनिकपरिस्पर्धितागुग्निन्दुः
प्रोमीलतपूवेसन्ध्याहुतभुजि रजनी पश्य देह जुहोति
॥ ४९ ॥ पञ्चिन्ध्या . सकलां विधाय विकलां ताराधिपः
सम्पदं तत्प्रैयस्युदयोन्मुखे सति रवातुद्विप्रतामा-
श्रितः । ताराः स्वस्य करैर्विकृष्य सहसा गच्छन्वि-

फूल थाप है जैसे राजसे सम्मान पाए हुए मनुष्य फूल उठते
हैं और कोकिल भी वैसे ही धीरे-धीरे कूकर कामदेवका नाम
जप रहा है, जैसे कोई अनजान कवि पहले-पहल सबामें आकर
स्वामीके सम्मुख झेंपके साथ धीरे-धीरे कविता-पाठ करता
है ॥ ४२ ॥ प्रातःकाल आनासमें पुराने मारोके समान
धुँधली चमकाले दो तीन तारे रह गए हैं, भरपेट चौदनी
पी लेनेमें मतगाली चकौरियोंका शरीर अलसा गया है,
चन्द्रमा भी मधु निकल जानेपर पीले पडे हुए मधुके छेके
समान पीला सा होकर अस्ताचलकी ओर जा रहा है और पूर्व
दिशाकी शोभा तिलीठने (तिरलीके बच्चे) की आँलोकें समान
लाल-लाल दिगाई पड़ रही है ॥ ४३ ॥ सुईसे भी न वेधा
जा मरुनेगाला जो घना शैथरा रातमें निडर होकर फैलता
हुया तीनों लोकोमें नहीं समा रहा था वही शैथरा, सूर्यके
उदय होनेपर सिद्धकर उल्लेके नेत्रमें जा पैठा है ॥ ४४ ॥ प्रात-
काल आनासमें कहीं-कहीं टिमटिमाते हुए एकाध तारे मोतिले
समान चमक रहे हैं, यह चन्द्रमा प्रत्यक्ष ही अस्ताचलको
चूमने जा रहा है और सूर्य भी उदयाचलने शिरपर चढ़नेके
लिये मनेमें फूला नहीं समा रहा है ॥ ४५ ॥ रातको चन्द्रमा
अपनी तारोंकी सेना लेकर आनास-रूपी वनको रीदता-बुचलता,
हाथ थाप हुए हुए पथियों (राहियों अथवा विगोंगियों)
को मारकर प्रात काल भागा चला जा रहा है ॥ ४६ ॥
नायिकाने जय देखा कि रात बीत गई है और दिन निकल

आया तब वह क्रीडागृहसे निकलते निकलते भी बार-बार
अपने मियको छ्पातीसे लगाने तथा चूमने लगी । फिर भी
उसे सन्तोष नहीं हुआ और वह अपनी एक पैर धरतीपर और
दूसरा परलंगपर रखकर अपनी देह घुमाकर अपने मियको चूमती
ही रह गई ॥ ४७ ॥ बहुत मदिरा पीनेके (मर्दके)
कारण, समुद्रमें गिरते हुए डगमग चलते हुए नहे,
(बिना किरणोंवाले) चन्द्रमा (ब्राह्मण) को देखकर मानो
इन्द्रकी प्यारी पूर्व दिशा लजाकर गुलाबी साड़ीके आँचलसे
अपना मुँह ढक रहा हो ॥ ४८ ॥ देखो, प्रातःकालकी
लगाई वैसी जान पडती है मानो रात्रिरूपी नायिका अपने
कलावातु प्रियतम चन्द्रमाके हुमान्गवश धीरे धीरे समाप्त होनेपर
अपने घने अन्धकाररूपी बाल बिलेकर, बड़े-बड़े मोतियोंके
समान चमकनेवाले ताररूपी श्रॉसू गिराती हुई और
विडियोंकी चहचहाइटके स्वरोंमें बिलरती हुई, पूर्व दिशा
रूपी कुएडमें जलती हुई प्रातःकालकी लालिका-रूपी
श्रिमिमें अ-नेकों कोंककर सती हानेकी लैयारी कर रही हो
॥ ४९ ॥ चन्द्रमाने रातके समय कमलिनीकी सारी शोभा
नष्ट कर डाली । अतः जय कमलिनीके पति सूर्यको चन्द्रमाने
उदित होते देखा तो उसके हाथ पाँव फूल गए और वह
अपनी किरणों (हाथों) से अपनी तारिका रूपी छिगोंको
पकड़कर वेगसे अस्ताचलकी ओर खींच ले चला । उस समय
सूर्यके कर (किरण तथा हाथ) में जो दो बार तारिकाएँ

तोऽस्ताचलं लक्षाः फाक्षन ता' प्रभाकरकरे पश्यन्प-
रिम्हायति ॥ ५० ॥ पारशधिलितकृष्णोयमामोलि-
ताक्षः क्षणमयमनुभय स्वप्रदध्वर्जुरेव । रिरसयिपति
भूयः शप्यमग्रे विगीर्णं पटुतरचपलौष्ठ प्रम्फुरयोध-
मथः ॥ ५१ ॥ फौन्वा भृशं कमलकूडमलशक्तिकोपा
दोगतनीं तिमिरवृष्टिमथ स्फुटन्तः । निर्यन्मधुद्रतक-
दम्बमिपाह्रमन्ति विभ्रन्ति वारणखुरानिय मौक्त-
कानि ॥ ५२ ॥ प्रत्यग्रज्वलितैः पतङ्गमण्डिभिर्नाराजिता
भानवः सावित्राः कु र्वाण्यन्दकन्दलरुचः प्राचीमलङ्क-
र्यते । प्रौढध्यान्तरालितस्य षडुपपद्यायाञ्जलेन क्षणा-
दप्रह्वालितनिर्मलं जगद्दो निर्माकमुन्मुञ्चति ॥ ५३ ॥
प्रत्यासन्नसुरेन्द्रसिन्धुरशिरःसिन्दूरसान्द्रावणाय यत्ते-
जस्सरेणुवो विद्यदितः प्राचीनमाचिन्वते । शङ्के
सम्प्रति यावदभ्युदयते तत्तुष्टेद्वीन्धुज्जारज्यद्विभ्र-
-

जम्बुद्वायलयितो देवस्विपामीश्वरः ॥ ५४ ॥ प्रयात-
वति दामिनोरमण्णचन्द्रनागाथसि प्रशान्तमिव भासते
सग्सकर्मामं नभ । प्रवेष्टुमिह शङ्कितेरिव रवेस्तु
रङ्गैर्धृतः क्षणं त्यजति नोदयाचलविटङ्कवीथो रथ
॥ ५५ ॥ प्रहरकमपनीय स्वं निदिद्रासतोच्चै प्रतिपद-
मुपहतः केनचिज्जागृहोति । मुहुरघिशद्वर्णं निद्रया
शय्यशय्यां दददपि गिरमन्तुर्ध्वते नो मनुष्य ॥ ५६ ॥
प्राचीं वासकसज्जिकासुपगते भानो दिशां घटलेभे
पश्येता रुचयः पतङ्गदपदामाग्नेयनाडिन्धमाः । लाकस्य
क्षणादानिरङ्गशुश्रां सम्भोगनिद्रागमौ कौकहन्द्रकुमु
द्वनीघ्रिपिनयोनिक्षेपमातन्वते ॥ ५७ ॥ प्राची दिग्ग-
रमणौ द्यते विभाते प्रान्तेऽभ्यर्चं सृश्रति वासकस
ज्जिकेयम् । धीरा जगाद रमणस्य न भूपणानि रोपा-
वणा त्यजति तारकभूपणानि ॥ ५८ ॥ प्राचीविभ्रमक

पद गई उन्हें देख-देखकर चन्द्रमा जो दुली हो रहा है
उसीसे उदास लग रहा है ॥ २० ॥ प्रातःकाल अपने
कान और भ्रौवाको धोला करके, आँख मूँदकर तथा धुन्ना
मोढ़े हुए थोड़ी नींद लेकर वह घोटा अपने चबल घोड़ों
और कबूतरे हुए धुनेसे सामने वाली हई घास खा रहा
है ॥ २१ ॥ प्रातःकाल खिले हुए कमलोंसे निकलते हुए भौरे
ऐसे जान पड़ते हैं मानो कमलकी कलारूपी सीपोंमें रातको
अन्धकार-रूपी जल पड़ जानेसे उसमेंसे काले-वाले मोती
निकल रहे हों ॥ २२ ॥ सूर्योदय होते ही सूर्यकान्त माणसे
निकली हुई चमकसे सूर्यकी जिन किरणोंकी आरसी-सी हाती
जान पड़ती है उन पोलराजके समान चमकती हुई । किरणोंसे
पूर्व दिशा चमक उठी है, सप्तरकी सभी वस्तुएँ विना धोए
ही निर्मल हो गई हैं और अथ सूर्यके निकलनेपर उन
यग्नूषोंकी जो परछाई पड़ रही है वह ऐसी जान पड़ती
है मानो सूर्योदयसे पहले जो अन्धकार उन्हें घेरे हुए था वही
परछाईके थडाने अथ छूट रहा हो ॥ २३ ॥ सूर्यके जा किरण-
रूपी कण पूर्वमें अपने पास रहनेवाले इन्द्रके हाथी ऐशरातके
माथेका सिन्दूर लग जानेसे अधिक खाल हा गप हैं, वे
आकाशमें फैले हुए ऐसे जान पड़ते हैं माना आकाशकी गरमत्त
बर रहे हों । इसे देखकर मुझे तो यह शका होती है कि कहीं
किरणोंपर विरवकर्माकी छेनी चलानेसे ही तो उससे दित्कर
ये चमकते हुए छोटे-छोटे कण चारों आर नहीं बिखर गप हैं
॥ २४ ॥ प्रातःकाल आकाश ऐसा जान पड़ रहा है मानो

रात्रिरूपी नायिकाके स्वामी चन्द्रमाका चँदनीरूपी सारा जल
वह जानेपर अथ उसमें केवल कीचड़ रह गया हो इसलिये
सूर्यके घोड़े उसमें घुसनेसे हिचकिचा रहे हों और हमने
सूर्यका रथ उदयाचलमें ही एक क्षणकी रक गयो ॥ २१ ॥
प्रातःकाल कोई पहरेदार अपने पहरेकी बारी बितारकर साना
चाहता है और अपने स्थानपर काम करनेवाले दूसरे व्यक्तिको
चिल्ला चिल्लाकर जगा रहा है—'जागा-जागो !' किन्तु
वह दूसरा व्यक्ति गहरी नींदमें बराता हुआ 'अरे जागना
हूँ, उठता हूँ' तो कहता है पर जागता नहीं ॥ २२ ॥ देखो,
दिशाओंका प्रियतम सूर्य जब विद्यौना बिद्धाकर प्रतीक्षा
करनेवाली प्यारी (पूर्व दिशा) की ओर पहुँचा तो उसका
प्रकाश पाते ही सूर्यकान्त मणियोंमें ऐसी ज्वालामुखी कूट उठी जो
रातमें चारों ओर उडडगतासे फैले हुए भोग तथा नींदको
अथ चन्द्रमा-चकवी तथा कुमुदवनके पास धरोहर-सा रख रही है
अथात् चकवा चकवी या आपसमें मिलकर आनन्द मना रहे हैं
और कुमुद सङ्कुचित होकर सो रहे हैं ॥ २३ ॥ पूर्व दिशाकी
नायिका विद्यौना सजाकर सारी रात प्रतीक्षा करती रही,
किन्तु जब उसका पति सूर्य प्रातःकाल आफर आकर
(आकाश या वज्र) छूने लगा तो उसकी छेड़-छाड़ने पूर्व
दिशाने गम्भीर होकर उससे शान्तक नहीं की, बर
मोक्षसे लाल होकर अपने तारेरूपी गहने हृदय-उपर उतार
फेंके ॥ २४ ॥ उग्री ही आकाशमें उठती हुई सूर्यकी वी
सान किरणें पूर्व दिशाके वानपर रक्की हुई कमलकी पल्लुदिकोंके

शिंकाकमलिनीसम्बन्धिकाः सम्प्रति ह्ये तिक्तो रमणी-
यमम्यरमणेशामुचरन्ते रुचः । सूत्रमोच्छ्वाससमीपदमु-
त्तुकतया सम्भूय कोपाह्वद्विनिष्कामङ्गमरीचसम्भ्रम-
भरादम्भोजमुज्ज्वलते ॥ ५६ ॥ प्रालेयमिथ्रमकरन्दक-
रालकोशैः पुणैः समं निपतिता रजनी प्रयुञ्जैः । शर्का-
शुभिन्नमुकुलोदरसान्द्रमन्धसंस्चितानि कमलाय-
लयः पतन्ति ॥ ६० ॥ प्रालेयांशुरितश्चकीरविपदामार्द्रं
प्ररोहैर्जर्काश्रमी विचदनादनाकुलतया दीर्भाग्यमभ्य-
स्यति । भासां भर्तुरितश्च कोकस्तुक्रतैरङ्गीयिकां
विभ्रति द्वित्राः शुक्लमकेसरैकसुहृदो मन्दं मयूषाङ्कुराः
॥ ६१ ॥ प्रियवसन्तेरपयान्यो मिथः करम्बितकराम्यु-
जन्मानः । करजपदमणधिरलस्तनपुलकममूः किमपि
विवदन्ते ॥ ६२ ॥ भिन्दानो मानिनीनां पतिषु रूपमयं
हर्म्यपारावतेभ्यो वाचालत्वं ददानः कवित्तु कविता-

प्रानिभं सन्दधानः । प्रातस्त्यस्तूर्यानादः स्यगयति
गगनं मांसलः पांशुतल्पादस्यल्पादुन्धितानां नरवर-
करिणां शृङ्गहासिञ्चितेन ॥ ६३ ॥ मालिन्धं परिट्ठयते
हिमरुचौ मन्दश्रियस्तारका । शीता केचन सञ्चरन्ति
कमलामोददृष्ट्यो मादताः । आसां दन्ति च चक्रवारु-
मिथुनान्यन्योन्यमुक्कण्डया पादैस्ताडितकैद्या मधु-
सहितो गच्छन्ति पचाटवीम् ॥ ६४ ॥ यः सैन्ये स्मरपा-
थियस्य विरहिप्रत्यधिनामप्रणीन्यांस्नानिकरमुज्ज्वति
स्म जगतां यस्तापनिवारणम् । सोऽयं तारकनायकः
किमपरं शृङ्गारसञ्जीवनं जातः पृष्ठपरागपाण्डुरज-
त्कृष्णारण्डपिण्डाकृतः ॥ ६५ ॥ यद्दृशं शब्दं रति-
प्रलयतो रात्रौ विलोलध्रवा तत्संस्मारयति प्रिये स्मर-
मयं प्रातः प्रतिच्छन्दकैः । लोलाप्या स्मितधातग-
ण्डफलके पत्रावलीतु लफान्यापारैचिनिवारणात्तरम-

समान दिखाई दीं र्योंही हृदबद्धीसे एक साथ जो कमलोंके
भीतरसे भीरोंकी भीड़ निकली उन्हीं देखकर ही मनो धीरे-धीरे
साँस लेकर कमल जैभाई ले रहा हूँ ॥ २१ ॥ जिन फूलोंका
भीतरी भाग रातकी आँससे मिले हुए रससे भरा हुआ है,
उनके खिलनेके साथ-साथ रात बीत गई और इस समय
सूर्यकी किरणोंसे जिन कमलोंका खिला हुआ है किरणोंसे सुगन्ध
निकल रही है उनपर भीरे मैडराने लगे हैं ॥ ६० ॥
प्रातःकाल एक धोर तो शीतल किरणोंवाला चन्द्रमा अपनी
भीगी-सी किरणोंके द्वारा आँसू बहाता हुआ और पके हुए
केशरकासा पीला मुँह बनाकर दुःभाग्यवश विपत्तिमें पड़े हुए
चक्रोंके प्रातः समवेदना प्रकट कर रहा है और दूसरी आँसू
केशर और हुक्कमके पृष्ठमात्र साथी परम तेजस्यो सूर्यकी
किरणों धीरे-धीरे सिर उठानर चक्रवाचकविराचिकी प्रसन्नतासे
गिन्ती जा रही है ॥ ६१ ॥ अपने-अपने पतिके साथ क्रीड़ा करके
अपने घरोंसे बाहर निकली हुईं जो स्त्रियाँ एक दूसरेका हाथ
पकड़े हुए हैं और मल्लके चिह्नके कारण जिनके रत्नोपर कहीं-
कहीं रत्नान्न दिखाई पड़े रहा है, वे न जाने किस बातपर सङ्के-
तदके आपसमें लड़ म्हाड़े रही हैं ॥ ६२ ॥ हे नरश्रेष्ठ ! अपने
पतियोंसे कृती हुईं स्त्रियोंका शीघ्र भगानो हुईं, वकी-वकी
आचारियोंपर दैते हुए कर्तृके नलोंमें मयुत गुदरगँ भरती हुईं,
कवियोंमें कविता बनानेका हुलास भरती हुईं और लम्बे-
चौड़े धूलरूपी विद्युत्तैसे उठे हुए हाथियोंके सर्किलकी कनकना-
हरसे धीरे भी अधिक बढ़ती हुईं प्रातःकाल बगते हुए मार्गोंकी

मङ्गल ध्वनि झाकारोंमें गूँज रही है ॥ ६३ ॥ इस समय चन्द्रमा
पीला दिखाई दे रहा है, तारे धुँपले पड़े हुए हैं, कमलकी
सुगन्ध लेकर शीतल वायु धीरे-धीरे बह रहा है, चक्रके जाड़े
बड़े प्रेमसे आपसमें मिल रहे हैं और भीरे कुमुदोंका परसे
ढेलते हुए कमल-वनकी ओर उठे चले जा रहे हैं ॥ ६४ ॥
जो चन्द्रमा, महाराज कामदेवकी सेनामें विरहिणोंसे बँर
करनेवाले सैनिकोंका नेता था, जो सप्ताका ताप दूर
करनेके लिये अपनी चाँदनीकी धारा बरसाता रहता था
और जो शृङ्गाररसको जिलानेकी सञ्जीवनी जड़ी था,
वही चन्द्रमा प्रातःकाल पीली धूलसे लिपटे पके हुए
काँहदके समान पीलापीला दिखाई दे रहा है ॥ ६५ ॥
एक चञ्चल नेत्रोंवाली नवेली जब प्रातःकाल दर्पणके सामने
बैठी अपने मुखुराहटसे चमकते हुए गालोंपर त्रिकालसे चिन्-
कारी करने लगी, उसी समय उसका पति उसीके शब्दोंमें
वे कामभरी बातें दुहरा-दुहराकर स्मरण कराने लगा जो उसने
रातमें रतिके चावमें भरकर भौंहे नचा-नचाकर पलिते
गुपगुप कही थीं । उस समय पतिका नदसदपन शोकनेके
लिये वह नवेली अपने कपोलोंपर घुमे अक्षर लिखने लगी
जिनका अर्थ होना था 'नहीं' और उसीके साथ उसी 'नहीं'
के अर्थ में अपनी आँसू भी नचाती जा रही थी । इस प्रकार
मुँहसे बिना कुछ बड़े ही उसने अपने पतिको रातको काममयी
बातें कहनेसे राक दिया ॥ ६६ ॥ प्रातःकाल एक धोर तो
धीपथियोंका स्वामी चन्द्रमा पस्ताचक्रकी ओर बगता जा

राकारा विक्रीणी दृशः ॥ ६६ ॥ यात्येकतोऽस्तशिल्परं
पतिरोपधीनामाविष्कृतारुणपुरःसर एकतोऽर्कः ।
तेजोद्वयस्य युगपद्यसनोदयाभ्यां लोको नियम्यत
इवैव दशान्तरेषु ॥ ६७ ॥ ये कुण्डीकृतवल्लभमणयः
शस्त्रैरनङ्गस्य ये न प्राप्ताश्च निशीथिनीपतिकरः शोथि-
त्यवीथीमपि । ते निःशङ्कवितङ्कतालुतुमुलभोतसुतहा-
चित्तशिल्पनाः कुक्कुटकृजितैर्मृगदृशां मानग्रहग्रन्थयः
॥ ६८ ॥ रतिरभसविलासाभ्यासतान्तं द यावन्नयन-
युगममीलतायदेवाहतोऽस्तौ । रजनिविरनिशंसी कामि-
नीनां भाङ्गप्याङ्गिरहविहितनिद्राभङ्गमुच्चैर्मृदङ्गः ॥ ६९ ॥
लुठत्यपरवारिधो कमठनिविधेषः शशो प्ररूढमुदया-
चले चुलुकमात्रमुष्णं महः । ज्ञाणं गगनवेदिकाभिद्-
मनङ्कुर्यं गाहते कलिन्दगिरिकन्यकातटतमालनीलं
तमः ॥ ७० ॥ लुलितनयनताराः क्षामपक्त्रेन्दुविभवा

रजनय इव निद्राङ्कान्तनीलोत्पलादयः । तिमिरमिव
दधानाः क्षंसिनः केशशाशानवनपतिगृहेभ्यो यान्त्य-
मूर्धारवधयः ॥ ७१ ॥ विफसितसङ्कुचितपुनर्धिकस्य
रेध्वमुजेषु तुल्यद्वयाः । कलिकाः कथयति नूतनविक्रा-
सिनीमंधुलिहामर्धः ॥ ७२ ॥ विगततिमिरपङ्कं पश्यति
व्योम यावद्युवतिविरहखिन्नः पचति यावदेव । रथ-
चरणसमाहस्तावदोस्तु फयनुक्षा सरिदपरतटान्तादा
गता चक्रवाकी ॥ ७३ ॥ विपुलतरनिताम्बोमगह्वरे
रमण्याः शयितुमनधिगच्छञ्जीविततोऽवकाशम् । रति-
परिचयनश्यन्नैद्वतन्द्रः कथञ्चिद्रमयति शयनीये शर्वरी
किं करातु ॥ ७४ ॥ घिरलखिरलीभूतास्ताराः कला
सुजना इव व्यपसरति च ध्वान्तं चिन्तास्ततामिष
जुर्जनः । मन इव मुनेः सर्वत्रापि प्रसन्नमभून्नमो विग-
लति निशा क्षिप्रं लक्ष्मीरनुद्यमिनामिव ॥ ७५ ॥

रहा है, दूसरी और अपने सारथी अश्वके साथ सूर्य
सामने चला चला आ रहा है । जब ये दोनों इनने तेजस्वी
भी एक साथ उत्थान और पतनके चक्रमें पड़े हैं तब सारे
संसारको सुख-दुःखके चक्रमें पड़ा रहना तो अनिवार्य ही
है ॥ ६७ ॥ नागिकाके कोषकी जो गाँठें नायकके लास्य
अनुनय-विनय करने और हाथ-पैर जोड़नेसे भी न खुल पाईं
और कामके वाण-रूपी चन्द्रमाकी किरणोंसे भी जो ढीली न
पड़ सकी, वे तालुमें धक्का देकर झटकेसे ऊँचे स्वरमें निकली
हुई सुरोंकी कुकड़-हँसी सुनते ही अचानक सहज ही खुल
गईं ॥ ६८ ॥ निरन्तर देरतक सम्भोग करनेके कारण अलसाईं
हुई स्त्रियोंकी आँखें अभी लग भी न पाईं थीं कि रात बीतनेकी
सूचना देनेवाला वह मृदङ्ग वेगसे बज उठा, जिसे सुनकर उन
कामिनियोंको धाती हुई नींद भी धोड़ी देरके पश्चात् आनेवाले
विरहकी चिन्तामें उचट गईं ॥ ६९ ॥ प्रातःकाल पश्चिमके समुद्रमें
दृवता हुआ चन्द्रमा तो ऐसा जान पड़ता है मानो समुद्रके उस
पार कोई मटमैला कछुआ लोट रहा हो, उदयाचलकी
चोटीपर उदय होता हुआ सूर्य ऐसा जान पड़ता है मानो उस
चोटीपर अञ्जली भर उजालेका अद्भुत निकल रहा हो और
समुना-तटके तमाल वृक्षोंके समान काला-काला आँधेरा
मानो निदर होकर आकाश-रूपी बेदीपर एक चणके लिये
भँडरा रहा हो ॥ ७० ॥ प्रातःकाल उँधले तारोंके समान उदात्त
पुनर्विद्योवाली आँखें लिए हुए, चन्द्रमाके समान मजिन मुल-
वाली, गीले कमलके समान अश्रुमूर्दी आँखोंवाली और पीठपर

अन्धकारके समान बिल्वे हुए बालोंवाली बेरयाँ रात बीतनेके
साथ ही राजाओंके घरसे निकली चली जा रही है ॥ ७१ ॥ जो
कमल दिनमें बिलकर रातमें मुँद गए थे और अब फिर खिल
रहे हैं उनकी पहचान और उसी समय खिली हुई तथा कमलोंके
बीच न दिखाई देनेवाली कलियोंकी पहचान, निकलकर
उदनेवाले भारोंसे ही हो रही है अर्थात् जो कमल रातमें मुँद
गए थे उन्हींमेंसे भीरे निकल रहे हैं ॥ ७२ ॥ अन्धकाररूपी
कीचड़से छूटे हुए आकाशको देखकर विरहसे दुखी चक्रवा,
अपनी चक्रवाके पास उड़ चलनेके विचारसे अपने पङ्क लोल
ही रहा था कि उसी समय उत्सुकतासे भरी हुई चक्रवा,
नदीके दूसरे किनारेसे उड़कर उसके पास आ ही तो पहुँची
॥ ७३ ॥ नागिकाके चौड़े नितम्बोंसे सारा बिड़ौना हलना
घिर गया था कि नायकको सोनेके लिये स्थान ही नहीं मिल
पाया हसलिये उसने अपनी नाँद और आलस्य दूर भागनेके
लिये सारी रात सम्भोगमें ही काट दी, और चारा ही बना
था ॥ ७४ ॥ प्रातःकाल तारे उसी प्रकार कहीं-कहीं रह गए हैं
जैसे कलियुगमें सज्जन वहाँ-कहीं मिलते हैं । अन्धकारके लिये
जैसे ही कहीं स्थान नहीं रह गया जैसे सज्जनके मनमें दुर्जनकी
स्थान नहीं मिलता, सारा आकाश भी वैसा हा स्वप्न
दिलाई देने लगा जैसे सुनियोंके मन निर्मल हते हैं और रात
भी जैसे हां शीघ्रताके साथ चल दी जैसे उदागहान व्यक्तिके
पाससे लक्ष्मी चल देती है ॥ ७५ ॥ अभी सूर्य सामने आए
भी न थे कि सूर्यके सारथी अश्वने ही सारा अन्धकार निरा

व्रजति विषयमन्त्रांशुमाली न यावत्तिमिरमपिल
मस्तं तावदेवाहयेन । परपरिभवि तेजस्तन्वतामाशु
कर्तुं प्रभवति हि विषत्तोच्छेदमत्रेसरोऽपि ॥ ७६ ॥
व्रजत्यपरवारिधिं रजतपिण्डपाण्डः शशी न भान्ति
जलदुद्रदद्युतिसपत्निकास्तारका । कुरएटरुविपाण्डुं
दधति धाम द्रोपाङ्कुराश्रकोरनयनारुणा भवति दिन्व
सौत्रामणी ॥ ७७ ॥ शिथिलयति सरागो यावदकों
नलिन्याः कमलमुकुलनीवीप्रान्थिमुद्रां करेण । प्रथिरुस
दलामाला गुञ्जितैर्मञ्जुशब्दा जनयति मुदमुञ्जैः कामिनां
कामिनीच ॥ ७८ ॥ शिशिरकिरणान्तं घासरान्तेऽभि-
सार्यं श्वसनसुरभिगन्धिः साम्प्रतं सन्वरेव । व्रजति
रजनिरेपा तन्म्यूषाङ्गरागैः परिमलितमन्ध्रैरभ्य-
रान्तं वहन्तो ॥ ७९ ॥ सद्यः सङ्घटमानकोकमिथुन-
व्याजेन पीनस्तनद्वन्द्वव्यञ्जितयोवनाञ्ज्वलरुचा निर्माय
दिक्कन्यकाः । दुर्दवाचरमालिकामिव भटित्या

कृप्य भृङ्गावलीं लक्ष्मीमम्पुजिनीजनम्य तनुने देव-
न्वियपामीश्वरः ॥ ८० ॥ सन्निगृह्य चितुरं तमोमयं
यामिनी तदनु फेलिविच्युतम् । कुर्वती श्रवसि चन्द्र-
मण्डलं कुण्डलं गगनकेलिमुज्झति ॥ ८१ ॥ सारभ्ये
चलिते रसे विगलिते चात्तालिपंगं गते म्नानातीय
कुमुद्वतीयमधुना मूच्छुं परामृच्छति । तामुद्रोदय
तथाविधां कमलिनी जाता महासोन्मुषी हन्तो-
दीदय विषन्नरैरिवनितां का धान सन्तुष्यति ॥ ८२ ॥
स्तोकारकनक्षत्रणा स्तनतटीं धापि स्पलच्चन्दनं
वत्तः कुर्वुरिताञ्जने च नयने विश्रान्तरागाऽधरः ।
श्रायासोदयमन्थरञ्च गमन प्रातः प्रभङ्गालस जाया
दङ्गमनङ्गसङ्गरपरिच्छेदे कुरङ्कीदृशः ॥ ८३ ॥ स्तो-
कोन्निद्रनिद्राधर्माधिर्धितमहस्तन्द्रात्रुचन्द्रातपास्तायन्ते
ककुभो रथाङ्गगद्विशीगार्हस्थ्यगर्हाभिदः । अद्यापि
स्त्रकुलायशाशिशिरसि स्थित्वा द्यन्तो मुहुस्तूष्ण्यां

दिया । शीक ही है । जिनका तेज-मात्र ही शशुओंको दवा
देता है उनके श्रागे श्रागे चलनेवाले सेनक भी उनक शशुओंका
शीघ्र ही नाश कर डाल सकत हैं ॥ ७६ ॥ प्रात काल
चाँदीके गोलेके समान उजला चन्द्रमा पश्चिमके समुद्रकी धार
जा रहा है, छोटे छोटे पानीके बुलबुलोंके समान चमकनेवाले
तारे श्रव नहीं दिमदिमा रहे हैं, दीपककी लौ कटसरैयाके
फूलके समान उजली दिखाई दे रही है और पूर्व दिशा भी
चकोरके नेत्रोंके समान लाल लाल दिखाई दे रही है ॥ ७७ ॥
प्रात काल जवतक ललाई (अशुराग) से भरा सूर्य (नायक)
द्वार अपनी किरण (हाथ) से कमलिनीरूपी नायिकाओंके
कलीरूपी नाइके छीला करे-करे तयतक उधर गुनगुनाती हुई
भौरोंकी पॉत भी कामिनी नायिकाके समान अपनी गुञ्जारसे
कामी पुराँकों प्रसन्न करने लगी ॥ ७८ ॥ सन्ध्या समय
चन्द्रमारूपी पतिके पास पहुँचकर निहार करके सुपथित
सौंसवाली जिस रात्रिरूपी नायिकाका अन्वर (आकाश,
पख), चन्द्रमाके किरणरूपी उत्तम केशरके लेपसे रँग सा गया
है वह श्रव प्रातःकाल होते ही शीघ्रताके साथ निकली चली
जा रही है ॥ ७९ ॥ सूर्यादय होनेपर आपसमें मिश्रत हुए चक्रवी-
चक्रवे-रूपी स्तनांसे दिशाएँ कन्धाश्रमों युवावस्थाका सु-रता
मरते हुए सूर्यादय, कमलिनीश्रमोंसे दुःसायके अश्रुके समान
काला भौरका पॉतें निकालकर उन्हें तुरन्त धा (शामा)
प्रदान कर रहे हैं ॥ ८० ॥ प्रात काल देसा जान पड़ता है

मानो रातको आकाशमे रति-श्रीकाके समय खुले हुए
अन्धकार रूपी केश समेटकर और कानोंमें चन्द्रमण्डलरूपी
कुण्डल पहनकर श्रव रात्रिरूपी नायिकाने कहीं चुटी ली
है ॥ ८१ ॥ प्रात काल सुगन्ध निकल जानेपर, रस चू जानेपर
और प्रेमी भौरोंके हट जानेपर जो कुमुदिनी श्रत्यन्त दुःपी
और मूच्छुत हो रही है उम्मे देलकर ही मानो गिली हुई
कमलिनी हँस रही है । भला शशुकी छीको विपत्तिमें पकी
देतकर कौन छी प्रसन्न नहीं होगी ॥ ८२ ॥ रातमें कसकर
सम्भोग करनेके कारण नई पुरी न हो पानेसे जो मृगनयनी
नवेलियाँ प्रात काल रह रहकर आलसके मारे श्रंगझाई ले रही
हैं, उनके जिन स्तनोंपर नखोंके लाल-लाल चिह्न चमक रहे हैं,
उनकी जिन ध्यातिपाँवर लगा हुआ चन्द्रमाके लेप तथा जिन
नेत्राका आँजन कहीं लगा है कहीं पुञ्ज गया है, उनके जो
नीचेके आठ फाके पद गए हैं और अधिक धक जानेके
कारण उनके जा पैर डगमगा रहे हैं उन सब सुन्दर अङ्गोंको
जय हो ॥ ८३ ॥ प्रात काल दिशाएँ पैल सी गई हैं और
उनमें बुद्ध-कुञ्ज निकले हुए सूर्यके प्रकाशसे चन्द्रमाका प्रकाश
पुँपला पड गया है तथा उन्होंने (दिशाओंमें) रातमें अपने
प्रियसे दूर गई हुई चक्रवीकी दरावर चिन्ता करना छुड़ दिया
है । श्रव भी कौनसे पदोंपर बने हुए अपने घाँस जोपर शान्तिके
साथ डटे हुए बार-बार कँव-कँव करके चिद्र सुप होकर

प्रत्यभिजानते वलिभुजो भीताः स्वयूथ्यस्वरान् ॥८४॥
 प्रभातवायुवर्णनम्—अधोन्त्यङ्गवसङ्गजङ्गकवलक्लेशादि-
 वेशाचलप्रालेयस्रवनेच्छयानुमरति श्रीखण्डशैलानिलः।
 किञ्च स्निग्धरसालमौलिमुकुलान्यालोक्य हर्षोदया-
 दुन्मीलन्ति कुहः कुहुरिति कलात्तालाः पिकानां गिरः
 ॥ १ ॥ अनन्यनुगणश्रीमल्लयवनजन्मायमनिलो निपीय
 स्वेदाम्बु स्मरमकरसम्भुक्तयिभवम् । विदर्शाणां भूरि
 प्रियतमपरीरम्भरभसप्रसङ्गाद्भ्रान्ति द्विगुणपुलकासञ्चि
 तनुते ॥ २ ॥ अपहाय शनैः पटीरवाटीरिह लाटीज-
 नमानलुण्ठनाय । समुदेति मनाजरजघाटापरिपा-
 टीपट्टये गन्धवाहः ॥ ३ ॥ अमी तटसमीपनिर्भरतर-
 ङ्गरिङ्गपयोजडोक्तपटीरभूहकुटीरसञ्चारिणः । मनो
 विधुरयन्ति मे मलयमेखलामेदुरादुरासदवनप्रियप्रिय-
 तमाहता मारुताः ॥ ४ ॥ अरविन्दवृन्दमकरन्दतु-
 न्दितो मरुदेति मन्दमिह मन्दराचलात् । सुरतान्त-

तान्तसुदनीमतलिकाकरुग्रीपरीमलभूरीपरीवृतः ॥५॥
 आदाय धकुलगन्धानन्धीकुर्वन्पदे पदे भ्रमरान् ।
 त्रयमेति मन्दमन्दं कायेरीवारिपादनः पवनः ॥ ६ ॥
 उत्सार्य कुन्तलमपास्य दुकूलकूलमुन्नाभ्य बाहुलित-
 कामलसास्तरुयः । स्वेदाभ्युत्सिकतनयः स्पृहपति
 यस्मै तस्मै नमः सुकृतिने मलयानिलाय ॥ ७ ॥
 उत्सिकः कुसुमासवै कुसुमिनीं राजप्रियां पुष्पिणी-
 मालिङ्गनिशि निर्भयं पारचयं कुर्वन्पुनः पहलवैः ।
 यावत्पङ्कजसौरभस्वमखिल गृहल्लघु प्रस्थितस्ताव
 त्कल्प उपस्थिते मरुदयं विष्वग्भयाह्वयति ॥ ८ ॥
 उपसि मलयवासी जालमार्गप्रविष्टो चिकचकमलरेणुं
 व्याकिरन्माहचूर्णम् । सपदि शमितदीपा वायुचोरो
 वधूनां हरति सुरतपेदस्वेदमुक्ताफलानि ॥ ९ ॥
 पते पाटीरवाटीनवविटपनटीलास्यशिक्षातिद्वि
 दालापेलत्पुरन्धीश्रमजलकणिकाजालपातिप्रतानाः ।

हरते हुए साधियोंकी बोली पहचान रहे हैं (उड़नेका साहस
 नहीं करते) ॥ ८४ ॥

प्रातःकालके पवनका वर्णन : मलयाचलका पवन
 उत्तरकी आर आता हुआ पूसा जान पड़ता है मानो वह इस
 डरसे कैलास पर्वतके हिमसे मिलनेकी चाहसे द्धरका आ रहा
 हो कि कहीं मलय पर्वतके सँघ हमें पी न जायँ और उसके
 झोंकेमें हीरे-भरे आमपर नया बौर देखकर कोयल भी उँचे स्वरसे
 प्रसन्नताके मारे कूक उठा हो ॥ १ ॥ सुन्दरतामें निशाले और
 मलय-वनमें उत्पन्न हुए वायुने आकर गाबके पत्तीनेकी
 वे बूँदें पी डालीं जिन्हें कामका वाहन मगर (कानका मकरा-
 कृति कुण्डल) पहले ही चट कर चुका था । अब वही पवन
 पतिको कसकर द्वातीसे लगाई हुई विदर्भ देशकी छियोंके
 अङ्गोंमें हुपुनी फुर-फुरी भर रहा है ॥ २ ॥ महाराज
 कामदेवके लयमाका पालन करानेमें चतुर यह सुगन्धित वायु
 चन्दनकी वाटिका छाड़कर विलासिनी नायिकाओंका मान
 दूर करनेके लिये धीरे-धीरे चला आ रहा है ॥ ३ ॥ मलय-
 पर्वतके बीचकी भूमिमें रह-रहकर पुष्ट होनेवाले तथा
 जङ्गली पुरुषोंकी यकी हुई नारियोंसे बुलाए हुए वे पवन हमारा
 मन भकभोर रहे हैं जो पास बढ़ते हुए भरनोंके लहरात हुए
 जलकी फुहारसे ठके किए हुए चन्दनके वृक्षकी सुटीमें घूम रहे हैं
 ॥४॥ कमलोंके रससे लदा हुआ और सम्भोगसे थकी हुईरसीली
 नवेलियाँके बालोंकी तीम गन्धसे गमकता हुआ वायु मन्दरा

चलसे द्धरको चला आ रहा है ॥ १ ॥ मौलसिरीकी सुगन्धसे
 लदा हुआ तथा डग-डगपर औरोंकी श्रॉल्लोंमें पराग झँककर
 उन्हें अन्धा करता हुआ वह कावेरी नदीके जलमें डुबकी लगाने
 वाला वायु धीरे-धीरे चला आ रहा है ॥ ६ ॥ पत्तीनेकी बूँदोंसे
 लयपथ और आलस्यमें भरी हुई नवेलियाँ अपने बाल डार
 उठाकर, वज्र समेटकर और बाहे उचकाकर जिस मलयचलके
 पवनका स्वागत करती हैं उस भाग्यशाली पवनको नमस्कार
 है ॥ ७ ॥ फूलोंके रस-रूपी मंदिरसे मतवाला होकर वह
 वायु चन्द्रमा-रूपी रात्राके फूनी हुई (रजस्वला) पत्नी
 कुमुदिनीका जो आलिङ्गन कर रहा था और रातमें निर्भय
 होकर पल्लवों (नये पत्तों तथा स्त्रीके प्रेमीजनों) के साथ
 बराबर अठलेलियाँ कर रहा था वही जय कमलोंकी सुगन्ध
 रूपी सारी सम्पत्ति लेकर वेगसे चम्पत होने लगा, उसी समय
 प्रभात हो जानेसे अब वह भयसे चारों आर भागता फिर रहा
 है ॥ ८ ॥ यह मलयका पवन-रूपी चोर तद्दके तद्दके लिङ्गकी
 राह चुसकर, खिले हुए कमलकी पूलका मोहन (बेसुव करनेवाला)
 चूर्ण डालकर, फटपट दीपक बुझाकर, छियोंका सम्भागी
 थकावटसे निकले हुए पत्तीनेके बूँद रूपी माली चुराए लिए जा
 रहा है ॥ ९ ॥ इस समय बहनेवाले जिस पवनके पीछे-पीछे
 सुगन्धसे ललचाए हुए भीरे उड़ रहे हैं, जो कामकी शक्ति
 भङ्गकानेके लिये मन्त्रके समान है और जो सदा विधागिनी
 सिधियोंकी सत्तावा करता है वही पवन चन्दनके उपवनके नये

सौरभ्यादापतद्भिर्मधुकरपटलैः पृष्ठतोऽनुमयाताः
 कामाग्नेः स्फारधाभ्याः पथिकुलवधूवद्धवेराः
 सर्माः ॥१०॥ एष क्रीडान्तताम्यकुसुमपुरवधूवध्वत्र-
 सौरभ्यवन्धुमुग्धं निद्राजटानां रसितमनुसरो द्राघय-
 न्सारसानाम् । आवाप्यङ्गानुकूलश्चलितविचकिलश्रेणि-
 गन्धानुधावद्रोलम्बोदधुप्यमाणस्मरजयविफटाडम्बरो
 मातरिभ्या ॥११॥ कावेरीचारिरेलललहरिपरिकरती-
 डनफ्लान्तशान्तस्फीतश्रीस्यगडखण्डभ्रमणमरमवद्भिरि-
 सौरभ्यगर्भाः । चोलस्त्रीचीनचेलाञ्जलकलनकलान्त-
 कान्ताकुचान्ता वान्ति प्रेमाशिकीलाकलितवरवधूव-
 द्धवेगः समोराः ॥१२॥ कृप्यल्लङ्केश्याहुमकरनिय-
 मितारोपलेधाम्बुजाकीशापतीणाः क्षन्त क्षणगरे-
 कलिताः केकिन्तां कामिनोभिः । वाण्टीनामकाण्डे
 मृगमदमसृणं केशपाशं स्पृशन्तः पम्पासम्पातसम्पा
 मलयजमरुतो जातकम्पाः पतन्ति ॥१३॥ कुसुमप-

रिमलेनामो देतालिर्लतानां चलितकिसलयानां ह्याम्य-
 लीलोपदेश्या । लुलितकमलवृन्दः श्रीकरासारयोदा
 मृदुमलयसमीरो वानि वैभानिकोऽयम् ॥ १४ ॥ कृप्या
 वाण्टीकान्ताकृचरुनकागिरिप्रान्तसञ्चारलीलां मम्पा-
 मासाद्य पम्पापयसि धनभुवि क्षिप्तमल्लीरजम्पाः ।
 आरुपन्तः पुरन्तान्निगडामय कलध्वानपुष्पध्रयाली
 धावन्त्येते मदान्धा मदननरपतेः सिन्धुग मन्धवाहाः
 ॥ १५ ॥ चञ्चलर्चनीरा मलयगिरिरुद्रावहा-
 दादवाता मन्दानन्दैर्मिलिन्दैरहमहमिरुद्रादीर्घ
 पान्थाः । कावेरीचारिण्ये म विरलतरतरसौरवानीर-
 सिका मुन्ताद्राः स्वेदिनाद्वलय इव पवनस्तामन्या
 विशन्ति ॥ १६ ॥ चूतश्रेणीगरिमलयश्चञ्चरीकानु-
 यातां भूयो भूयः कुचलयकृटीकोटरे लोयमातः । मन्दं
 मन्दं सुरतविरतौ वान्ति सीमन्तिनीनां गण्डाभोग-
 भ्रमजलवधुप्रादिणो गन्धवाहाः ॥१७॥ चोलाङ्गना-

नये घोटे-घोटे पीचोंको नर्तकी बनाकर नचा रहा है और कूला
 झूलती हुई खियोंके शरीरपर झककते हुए पसोनेके बूँद-रूपी
 जालमें सुनके समान दिखाई पड़ता है ॥१०॥ सम्भोगसे श्रवन्त
 यकी हुई लुनुमपुर (पठने) की स्त्रियोंके मुखकी सुगन्धमें बसा
 हुआ, साँवलेके तटपर नीदमें अलसाए हुए सारसोंकी घीमी
 बूँदकी बढाकर फैलानेवाला तथा हिलते हुए अशोककी सुगन्धके
 पंघि दीर्घनेवाले भीरोंकी गुञ्जारमें भरी हुई कामदेवकी प्रशंसाको
 चारों ओर फैलानेवाला यह वायु शरीरमें लागकर बड़ा मुहायना
 जान पड़ रहा है ॥ ११ ॥ वे पवन इस समय चलने लगे
 हैं जो कावेरी नदीकी लहरोंके साथ खेल-खेलकर चककर
 मन्द हो गए हैं, हरे-भरे चन्द्रोंके जहलमें घूमनेसे बड़ी
 तीव्र सुगन्धमें बस गए हैं, चोलदेशकी खियोंकी देशमी
 चोली हटाकर उनके स्तनोंपर विहार कर रहे हैं और
 विरहाग्निकी लपटोंसे घिरी हुई नायिकाओंसे सदा टपटा
 टाने रहते हैं ॥ १२ ॥ इस समय वे वायु बड़े झककते साथ
 पड़ रहे हैं जो क्रीवी राज्यके हागों वन्दे किए हुए
 देवताओंकी सभी देवियोंके शापसे दुबले हो गए हैं, मोरनीके
 द्वारा पी लिए जानेसे जिनकी चाल धीमी पड़ गई है, जो
 कनाट देशकी खियोंके कम्बुमें बसे हुए केरोंको समयसे
 पहले ही घुने जा रहे हैं और जो पम्पा सरारपरके जलमें दुबकी
 लहानेसे बर्ग रहे हैं ॥ १३ ॥ प्रातःकाल यह मलय पवनका
 मन्द वायु जलकी कुदरों बाप चला आ रहा है, जटाश्राके

कूजोंकी सुगन्धसे भीरोंको प्रसन्न कर रहा है, हिलते हुए नये
 पत्तोंकी नचाना सिया रहा है तथा कमलोंको झुला रहा है
 ॥ १४ ॥ कामदेव रूपी राजाके मतवाले हाथोंके समान ये
 हृष-उधर डोलनेवाले पवन कनाटक देशकी खियोंके स्तन-
 रूपी पर्वतपर घूमते रहते हैं, पम्पा सरोवरमें कूद कूदकर दुबकी
 लगाते रहते हैं, वन-भूमिपर घेलेके फूलका पराग बिखेरते रहते
 हैं और मयुर गुञ्जार करनेवाले भीरोंको हस प्रकार अपनी
 ओर लुमा रहे हैं मानो बेडोंमें बाँधकर खींच रहे हों ॥ १५ ॥
 इस समय तालके वनमें वे पवन घुसे जा रहे हैं जिन्होंने
 पीले हुए कपूर चुरा लिए हैं, जो मलय पर्वतकी विराल
 चट्टानोंसे लगनी यात्रा करके शाप हैं, जिनके पीछे मस्त भीरे
 होड़ लगा-जगाकर दौड़ रहे हैं, कावेरी नदीके जलसे सींची
 हुई घनी बेतकी भाडियोंमेंसे होकर श्राते हुए जो तर हो गए
 हैं और जिनकी धीमी-धीमी चालसे जान पड़ना है मानो वे
 नीदमें मग्न रहे हों ॥ १६ ॥ प्रातःकालके ये पवन चरि-चरि
 बह रहे हैं जिन्होंने मानो श्रापके बीरकी सुगन्ध चुरा ली हो
 इसलिये भीरे उनका पीछा कर रहे हों और बार-बार कमल-रूपी
 कुटियोंमें टिपे रहे हों, फिर भागकर खियोंके रतिक परचाट उनके
 नाजोंपर छाई हुई पसोनेकी बूँद सुवा रहे हों (कि वे इन
 भीरे-रूपी राजसेवकोंसे हनं बचा लें) ॥ १७ ॥ देखो, चाल
 देशकी खियोंके स्तनोंपरकी चोलीमें घुमनेवाला, केरज देशकी
 नवेलियोंके कितराए हुए चालोंका लहरानेवाला, वाट देशकी

कुचिनचोललतागुलीनो द्रान्केरलीविरलकन्तलरूप-
लोलः । लाटीललाटतटशोपयमानसोऽय फुल्लारवि-
न्दयनवन्धुसुपैति वायुः ॥ १८ ॥ भ्रन्मानिलोऽपि
सुरतान्तनितान्तान्तकान्ताकुचान्तघनधर्ममपाकरो-
ति । भूयोऽभिलापजननी पुनरन्यथैव स्वेदाप-
नोदनकला मलयानिलस्य ॥ १९ ॥ दरफुल्लरुमलका-
ननसौरभसम्भारमन्थरः पवनः । द्यितोरसि शयिता-
मपि द्यिता सन्तापयाञ्चरु ॥ २० ॥ दरविगलितम-
ल्लयान्निचञ्चत्परागप्रकृष्टिपट्टयासेवांसपन्काननानि ।
इह हि दहति चेतः केतकोगन्धन्धु प्रसदसम-
वाण्णाएद्यन्धवाहः ॥ २१ ॥ धुवानाश्चन्दनालीं
वकुलमुकुलजां धूलिमुदुलयन्तश्चुन्वन्तश्चूतयष्टीः परि-
मलयहृल्लोश्चम्पकान्कम्पयन्तः । आरादररामसामातट-
घटितघटीयन्त्रनिमुक्तवारा धारामाधारयन्तः श्रमश-
मपट्टया चान्यमी गन्धवाहा ॥ २२ ॥ नारीणां मृग-
नामिबुङ्कमरसप्रज्ञालनश्यामलान्सम्भानश्रमशोकरान्य

रिद्वरआकम्पयन्कुन्तलान् । पुष्पामोदमनोरमान्विग-
लितानन्भोजगन्धं चहन्प्रातस्त्यः पवनो वहत्ययमलं
स्वान्तप्रमोदमदः ॥ २३ ॥ पुरातनपरीमलप्रकरमेदुरा
मारुता न चान्ति मुकुलीभवत्कुमुदगर्मलीना इव ।
चरन्ति नयसौरभाः पुनरमी समीराङ्कुराः सङ्गमण
सरोजिनीसरसिजास्यमुक्ता इव ॥ २४ ॥ प्रातः सोम
न्तिनीनां निधुयनलुखितान्ध्रन्मयकेशपाशानुन्मोक्ष
ङ्गजान्त परिमलसुरभि स्फारयन्नामलीलाः । स्य
च्छाश्यापविन्दून्दिशि दिशि विकिरन्स्थूलमुका
फामान्धूहीभि केतकीनां धवलिनभुवनो घाति
मन्दं नमस्वान् ॥ २५ ॥ भिक्षितरुमलकुडुम्गाः शिञ्जित-
गजगामिनोगतयः । लक्षितहिमगिरिपादाः प्रातरमी
मातरिध्वानः ॥ २६ ॥ भृङ्गालीरुण्डमालाः स्फुटितकाम
लिनीधूलिभिर्धूसराङ्गाश्चञ्चन्तश्चन्द्रकल्पलघुतरलहरी
शीकरासारलालाः । अङ्गादङ्गं व्रजन्तो विकसित
धिलसत्केतकीमालतीनां मोदन्ते मन्दमन्दं मलयगिरि

कामिनिधौके माथेका पसीना सुखानेवाला और खिले हुए
कमलोंसे मेल-जोल बढ़ानेवाला यह पवन बढ़ा चला आ रहा है
॥ १८ ॥ सम्भोगसे अत्यन्त थकी हुई स्त्रियोंपर द्वापे हुए
पसी-की तो थोथोका वायु भी सुखा देता है किन्तु सम्भोगकी
इच्छाको जगानेवाला मलयानिल जिस कलासे पसीना सुखाता
है वह कला कुछ और ही है ॥ १९ ॥ कुछ कुछ खिले हुए
कमलवनकी सुगन्धके बोझसे धीरे-धीरे डग भरनेवाला पवन
उन नायिकाओंको भी सम्भोगके लिये उकसा रहा है जो
अपने पतिकी छातीसे लिपटी हुई सो रही है ॥ २० ॥ खिले
हुए बेलकी लतासे पराग उड़कर सारे जङ्गलका गमकता हुआ,
वेवड़ेकी गन्धमें बसा हुआ और प्रभावशाली कामदेवके प्राणके
समान यह वायु हमारा जो जलाप डाल रहा है ॥ २१ ॥
प्रात काल चन्द्रके जङ्गलको हिला देनेवाले, मौलसिराके
कलियोंका पराग उड़ा देनेवाले, श्रमके पदोंका गलेसे लगाने-
वाले, सुगन्धसे भरी हुई चम्पेकी लताका कँपा देनेवाले, पासके
उपवनमें लगे हुए रहस्ये निकलती हुई जलधारासे मिलकर
चलनेवाले ये शातल पवन थकावट दूर करत हुए बह रहे हैं
॥ २२ ॥ देखो, प्रात कालका यह कैसा सुन्दर वायु बह रहा है
जो सम्भोगकी थकावटसे उत्पन्न हुए तथा शरारतमें लगे हुए केशर
और बरतूरीके रससे मिलकर काले पड़े हुए पसानेरु पाँचुता
जा रहा है, जो नवैन्द्रियोंके फूलोंकी सुगन्धसे मन हरनेवाले और

विखरे हुए बालोंको लहरा रहा है और जो कमलकी सुगन्धमें
बसा हुआ हमारा मन प्रसन्न कर रहा है ॥ २३ ॥ पहलेकी
सुगन्धसे भरे हुए वायुके अब न चलनेसे जान पड़ता
है कि वे कुमुदोंके भीतर घुस गए हैं और इस समय फिर
नई सुगन्धवाली कमलनालपर खिले हुए कमलोंसे निकलकर
वे नया गन्ध लेकर बहने लगे हैं ॥ २४ ॥ सम्भोगके
समय स्त्रियोंके जो जूड़े खुल गए थे उन्हें और भी लहराता
हुआ, खिले हुए कमलोंकी गन्धमें बसकर कामलीलावनी उर
साता हुआ, मोतीके यड़े-यड़े दानेके समान स्वच्छ ओसका
बूँदें इधर उधर छितराता हुआ और कैबडेका पराग फेलाकर
ससारका उजलासा बनाता हुआ वायु प्रातःकाल धीरे धीरे बह
रहा है ॥ २२ ॥ हिमालयकी पहाड़ियोंसे शीतलता लेकर,
हाथीके समान भूमकर चलनेवाली नायिकाओंसे धीमी चब
सीलकर और कमलासे सुगन्धकी मिठा लेकर यह शीतल, मन्द-
सुगन्ध बधरा चल रही है ॥ २३ ॥ खिले हुए कमलोंके पराग-
रूपी धूलमें लिपटे हुए भोरोंकी पौतों ही जिसके कण्ठहार हैं,
चन्द्रमाके समान चमकनेवाली लहरोंकी बूँदें ही जिनकी लार
हैं, जो खिलकर सुन्दर लगनेवाली मालती तथा केतकीकी पं
गोदसे दूसरे गोदपर फूट रहे हैं वे मलय-पर्वतकी कन्दराओंमें
जन्म लेनेवाले वायु-पुत्री बच्च धीरे धीरे सरकते हुए अल्लेखियों
कर रहे हैं ॥ २४ ॥ वसन्तके महीनेमें प्रात कालका यह वायु

दरीगर्भेनो घातपोताः ॥ २७ ॥ रामाणां रमणीयवक्त्र-
शशिन श्वेदोदविन्दुसूतो व्यालोलालकमञ्जरीः प्रचल-
यन्वृन्वन्नितन्वाभ्यग्म् । प्रातर्वाति मधो प्रकामधि-
कसद्रात्रीवराजीरजःपुञ्जामोदमनोहरो रतिरसग्लानि
हरन्मारुतः ॥ २८ ॥ लनां पुष्पवतीं सृष्ट्वा स्नातो
विमर्षागिषा । पुनः सम्पर्कशुद्धीय मन्दं चरति
मारुतः ॥ २९ ॥ लताकुञ्जे गुञ्जन्मद्वदलिपुञ्जञ्चपल-
यन्समालिङ्गन्नङ्गं दृढतरमनङ्गं प्रचलयन् । मधममन्दं
मन्दं दलितमरचिन्दं तरलयन्रजोवृन्दं विन्दन्किरति
मकरन्दं दिशि दिशि ॥ ३० ॥ लवङ्गलतिकामङ्गदया-
लुर्दक्षिणानिलः । कथमुन्मूलयत्येष मानिनीमानपर्व-
तान् ॥ ३१ ॥ लीलादोहानिषेत्तारसरभसलसद्वालचे-
लाञ्चहानाञ्चोलीनामापिपयन्ता मृगमदसुरभस्वेदवि-
न्दूनमन्दान् । लोलन्तः केरलीनां कुचकलश्लसकङ्कु-
मालेपनेपु श्लिष्यन्तो मालयीनां मलयजमधुराः कञ्चु-

कीर्वान्ति घाताः ॥ ३२ ॥ वारंवारं धृतकुसुमितारण्य-
रेवानटे वा मेवापुष्यं परिगुणमिदं तावकं तर्कयामि ।
यस्यां मन्यान्तिकमुपगतं कामयामामिराभा रामाः
स्वैरं कुचकलशतो वल्लमुन्सारयन्ति ॥ ३३ ॥ वालो
विधूय स्तनयोरमुष्याः कपोलकीर्णां कगरीमुदस्य ।
अवारितः प्रोञ्जति वारिधारां मुने मृगादयाः सुकृती
समीरः ॥ ३४ ॥ विरुचकमलगन्धैरन्वयन्श्रुङ्गमालाः
सुरभितमकरन्दं मन्दमावाति घातः । प्रमदमदनमाद्य-
घीयनोहामगामारमणरभसखेदस्वेदविच्छेददन्तः ॥ ३५ ॥
विलुलितकमलोद्य फोण्यंरलीधितातः प्रनियनमवधू-
ताशेषशशिप्रसूनः । कचिद्वयमनवस्थः स्थान्मृता-
मेति वायुयेनकुसुमविमदंद्भिन्धियेश्मान्तरेणु ॥ ३६ ॥
वृथा धूलोघाराः परिकिरति वान्या प्रथयसे नवा-
वेगः कोऽयं पवन तव ह्य नवसमये । रतान्तश्रा-
न्ताभिः स्तिमितनयनान्ताभिरनियं स्मृतो यत्कान्ता-

चल रहा है जिसमें स्त्रियोंके मुखपर कलके हुए पर्सनीकी
धुँद भरी है, जो उनके लहरते हुए बालोंको लहरा रहा है, जो
नितम्बोंपर पड़ी हुई साड़ीकी धार-धार हटा रहा है, जो पूर्ण खिले
हुए कमलोंके परागकी सुगन्धमें बसकर मन हर रहा है और जो
मम्मोगकी धकावट दूर कर रहा है ॥ २८ ॥ प्रातःकाल यहा
हुआ शीतल, मन्द, सुगन्ध वायु पैसा जान पड़ता है मानों खिले
हुए फूलोंवाली (रजस्वला) लताका स्पर्श करके अपवित्र हो
जानेसे वह निर्मल जलसे स्नान करके शुद्ध हुआ हो और अथ
इस ढरसे धीरे-धीरे बच बचकर चल रहा हो कि कहीं उससे
फिर न छू जाय ॥ २९ ॥ फूलके परागमें बसकर चारों ओर
फूलकी गन्ध बिखेरता हुआ, मतवाले भीरुसे गूँजती हुई
लताकी आधियोंको हिलाना हुआ, शरीरमें लगकर कामको
उत्साहाना हुआ और खिले हुए कमलोंको मुञ्जाता हुआ यह पवन
मन्द मन्द यहा चल आ रहा है ॥ ३० ॥ दक्षिणका जो पवन
लवङ्ग-लताके दृढ जानेके ढरसे उत्सर्प दया करके धीरे-धीरे चल
रहा है वह रूठी हुई नवेलियोंके क्रोध-रूपी पदादुंका न जाने
कैसे उठाए फेंकना है ॥ ३१ ॥ नई सादियोंके आँचल
उड़ा-उड़ाकर मूकनेवाली चाल देशकी स्त्रियोंकी कल्पुंरसे
सुगन्धित पर्सनीकी धुँद पीनेवाले, केरल देशकी स्त्रियोंके
मनोपार पोते हुए केशरके लेपपर दहलनेवाले तथा मालव
देशकी नवेलियोंकी चन्दनके रसमें घसी हुई चोलियोंसे
रगड़ ग्यानेवाले वायु इस समय यह रहे हैं ॥ ३२ ॥

हे पवन ! तुम्हें पास आया देखकर कामदेवसे मतवाली
सुन्दर स्त्रियों जो अपने स्तनोंपरसे सहसा बस्य हटा लेती
है, इसे देखकर मैं अनुमान करता हूँ कि तुमने नर्मदा नदीके
तटके बनोंके फूल दिलाकर जो नर्मदाकी सेवा करके पुण्य
सञ्चय किया है यह उसीका फल है ॥ ३३ ॥ इस पुण्यशाली
वायुको तो देगो कि इसने पहले तो मृगनयनीके स्तनोंपरसे
वम्र हटाए, फिर गालोंपर लहराते हुए बाल कपर उठाए
और अथ बिना कोई रोक-टोकके उसके मुखपर बहाता
हुआ पर्सिना पोंछ रहा है ॥ ३४ ॥ खिले हुए कमलोंकी
गन्धमें भीरोंको मतवाला कर देनेवाला और फूलोंके रसको
गन्धमें बसा हुआ वह वायु यह रहा है जो नई कामान्ध
नवेलियोंके सम्मोगकी धकावटसे निकले हुए पर्सनीको चतुरतासे
पोंछ रहा है ॥ ३५ ॥ कमलोंकी मुला देनेवाला, लतायोंको
मुका देनेवाला और वनके प्रत्येक वृक्षके फूलोंको कँसा
देनेवाला जो वायु कहीं टिक नहीं पाता वही जहली फूलोंकी
तोंग गन्धसे भरे हुए घरोंके भीतर टक्कर चल रहा है
॥ ३६ ॥ हे पवन ! इस समय तो तुम इतनी असमयकी मूक
लेकर व्यर्थकी धूल-घकड़ उड़ाते हुए आँधि बनकर द्वा
रहे हो ? पर जब सम्मोगके अन्तमें घडी और चलसाईं
आँखावाली नवेलियों तुम्हारे लिये तरसती रहती हैं उस
समय तो तुम कहीं दूँद नहीं मिलते ॥ ३७ ॥ जागकर अलसाईं
हुईं खियोंसे जो पुनः पुष्पोंके समान आचरण करनेका नाटक

भिर्न सुलभतरः कापि च भयान् ॥ ३७ ॥ वैभ्रा-
तिको मरुदनुक्रमवर्धमानपद्माटवीपरिमलप्रसारामुमेय ।
श्रायाति सोऽयमलसाथितसारसाहोपुम्भाननुत्यपुन
रुचमस्तुनधारः ॥ ३८ ॥ सललितमलकाना चलरौ
नर्तयन्तो मधुसुरभिमुख-जोच्छ्वासगन्धानुगन्धाः ।
नघतरतभाजां योपिता स्वेदविन्दून्सल्लुप इव पियन्तो
घान्ति मन्द समोराः ॥ ३९ ॥ सुरतमरखिन्नपन्नगवि-
लासिनोपानकेलजर्जरित । पुनरपि चिरहिम्वासैर्म-
लयमरन्मांसलीक्रियते ॥ ४० ॥ स्तनपरिसरभागे दूर-
मावर्तमाना स्फुटतानमनि मध्ये । कर्णश्लेषे स्खलन्तः ।
वधुरलपुनितभगाभोगरुद्धा वधूना निधुवनरसखेदच्छे-
दिनः प्राह्वयताः ॥ ४१ ॥

सूर्योदयक्षणम्—श्रुतिहिनरुचिनासो केवलं नोद
याद्रिः क्षणमुपरिगतेन प्साभृतः सर्व एव । नवकर-
निकरेण स्पष्टबन्धुकस्तनस्तवकरचितमेते शेखर विभ्र-
तीव ॥ १ ॥ अयमुदयति मुद्राभञ्जनः पद्मिनीनामुद-

यगिरिवनालीवालमन्दारपुष्पम् । विरहविध्वरकोक
द्वन्द्ववन्धुर्विभिन्दन्कुपिनफपिकपोलफोडताप्रस्तमासि
॥ २ ॥ श्रागन्य सम्प्रति वियोगविसस्तुलाङ्गीममो
जिनीं क्वचिदपि क्षापितत्रियामः । एतां प्रसादयति
पश्य शनैः प्रभाते तन्वङ्गि पादपतनेन सहस्ररश्मि
॥ ३ ॥ श्रायान्त्या दिवसत्रयः पदतलसपर्शांशुभागा
दिव व्योमाशोकतरोर्नवीनकलियगुच्छु समुज्ज-
म्भते । श्रातन्धन्ववर्तसविभ्रममसाशाशाकुरङ्गीदशपु
न्मीलत्तरुणप्रभाकरकरस्तोमः समुद्भावेते ॥ ४ ॥ उद-
यति चिततार्ध्वरश्मिरज्जवायहिमरुचो हिमधात्रि
याति चास्तम् । वहति गिरिरयं विलम्बिष्यटाद्वय
परिवारितवारणेन्द्रलीलाम् ॥ ५ ॥ उदयमयते दिग्वा
लिन्य निराकुरुतेतरां नयति निधनं निद्रामुद्रां प्रवर्त्त-
यति क्रियाः । रचयतितरां स्वैराचारप्रवर्त्तनचर्त्त-
यत वत लसत्तेजःपुञ्जो विभाति विभाकरः ॥ ६ ॥
उदयशिखरिद्विह्वामङ्गण्वेव रिङ्गन्तकमलमुहदास

करानेकी योजना करनेवाला यह प्रात कालका वायु सूत्रधार बनकर
था पहुँचा है जिसका चारुका श्रुतमान द्वारा वारीसे लिलत हुए
कमलकी फीलती हुई सुगन्धसे क्रिया जा सकता है ॥ ३७ ॥
प्रात कालके समय बद्ध प्रमसे छियोंके भालोंको लहरानेवाला,
मदिराकी गन्धसे गमकत हुए स्त्रियोंके मुल कमलसे निकली
हुई साँसकी गन्धमें बसा हुआ और नये सम्भागमें जुटी हुई
छियोंके पसानेकी बूँदाका ध्यासेक समान पा जानेवाला पवन
इस समय धार धार बह रहा है ॥ ३८ ॥ सम्भागके पारभ्रमसे
थकी हुई साँपनन जा दक्षिणका वायु पालिया उससे वह पवन
बड़ा पट गया था पर इस समय वह विरहिणीकी लम्बी साँसोंसे
फिर पुट हा गया है ॥ ४० ॥ इस समय श्रियाक स्तनोपर
चक्कर लगानेवाले, नवेलियोंका पतली कमरमें कुछ रक-रककर
चलनेवाले, विशाल नितम्बोंके विस्तारक कारण रुके हुए और
सम्भागकी यकादट दूर करनेवाले ये प्रातःकालके पवन बह रहे
हैं ॥ ४१ ॥

सूर्योदयका चर्णन : प्रात कालके सूर्यकी नई किरणोंका
जो समूह ध्रुवी ऊपर उठ आया है उसने पाखन न छानेके
कारण अपनी निर्मल चमकसे नेवाल उदयाचलको ही नहीं वरन्
सारे पहाडको ही चमका दिया है और अब वे किरणें खिले हुए
फूलोंके गुच्छोंके समान इस पहाडकी थोटीपर सजने लगी हैं
॥ १ ॥ यह देखा, प्रोचित घन्दरके गालोंके समान लाल,

उदयाचलपर नन्हेंसे मन्दार पुष्पके समान खिलनेवाला,
कमलिनियोंकी आँखें खोलनेवाला और विरहसे व्याकुल
चन्चकेके जोडका दिलीपी यह सूर्य, श्रयकारका चौरा हुआ
उदय हो रहा है ॥ २ ॥ है पतली कमरवाली प्रिये !
देखो, यह सहस्रों किरणोंवाला सूर्य, रातके पिछले तीन पर
न जाने वहाँ बिलाकर अब प्रात काल अपने वियोगमें व्याकुल
कमलिनियोंके पास धीरे धीरे आकर उसके पैरोंपर गिरकर उसे
मना रहा है ॥ ३ ॥ प्रात काल उदय हाते हुए सूर्यका किरणें
(हाथ) ऐसी शोभित होती हैं मानो प्रात काल चलो छाती
हुई दिनकी शोभारूपी नायिकाके तलवेसे धू जानेके कारण
आकाररूपी श्रयोक वृक्षमें जो नई नई कलियोंके गुच्छे निकल
आए हैं उनसे वे दिशारूपी सुगानयनी नवेलियोंके कर्णुन
सजा रही हों ॥ ४ ॥ प्रात काल पहाडके एक श्रार घसत हात
हुए चन्द्रमा और दूसरी श्रार अपनी किरणें ऊपरकी ओर
फैलाकर उदय होते हुए सूर्यके कारण पहाड ऐसा लगता
है मानो किसी मतवाले गजराजकी पीठके दोनों श्रार द
घट्टे लटक रहे हों ॥ ५ ॥ देखो तो, प्रात काल यह कलन
तेजस्वी सूर्य कैसा श्रच्छा लग रहा है, जिसने उदय हात
ही दिशाश्रोक श्रच्छेरा मिटा टाला, निद्रा नष्ट कर ही
संसारके सप काम-काज पुनः प्रारम्भ कर दिए तथा नेलके
होनेवाले चोरी, व्यविचार आदि सव घुरे काम समाप्त कर दिए

वीक्षितः पद्मिनीभिः । विततमुद्रकराग्रः शब्दयन्त्या
वयोभिः परिपतति दिवोऽङ्गे हेलया यालस्यैः ॥ ७ ॥
उन्निद्रकोकनदरेखुपिशङ्किताङ्गा गायन्ति मञ्जुमधपा
गृहदीर्घिकासु । एतच्चकास्ति च रवेर्नववन्धुजीवपु-
ष्पच्छदाभमुदयाचलसुम्बि धिम्यम् ॥ ८ ॥ एतत्तर्क्य
चक्रवाकहृदयाभ्यासाय तारागणशासाय स्फुटदिन्दु-
मण्डलपरीहासाय भासां निधिः । दिक्कान्तात्कुच-
कुम्भकुङ्कुमरसन्यासाय पङ्कुरहोल्लासाय स्फुटवैरकैर-
वचनत्रासाय विद्योतते ॥ ९ ॥ करनखरविदीर्घध्वान्त-
कुम्भीन्द्रकुम्भासुहिनकणमिपेण क्षिप्तमुक्ताप्रारोहः ।
श्रयमुदयधरित्रीधारिर्मूर्धाधिर्कुहो नयनपथमुपेतो
भानुमन्केसरीन्द्रः ॥ १० ॥ कीलालैः कुङ्कुमानां सकल-
मपि जगज्जालमेतन्निपिकं मुक्ताश्रान्मत्तभृङ्गा विध-
टितकमलक्रोडकारागृहेभ्यः । उत्सृष्टं गालह्रस्वं किमुत

कलकलः श्रूयते च द्विजानां भाष्यैर्द्वन्द्वारकाणां हरि-
हयहरिता सृगते पुत्ररत्नम् ॥ ११ ॥ क्षणमयमुपविष्टः
स्मातलन्यस्तपाद्ः प्रणतिपग्मवेक्ष्य प्रीतमहाय
लोकम् । मुचनतलमश्रेणं प्रत्यवेक्षिष्यमाणः क्षितिधर-
तटपीडादन्धिनः सप्तसति ॥ १२ ॥ घटमानकोरुनुच-
मासृश्रुकरैर्विस्तन्यप्योजनयनावलोकितः । परिचुम्ब्य-
तीदमरुणप्रभाधरं रविचर चारवनिनामुचं मुहुः ॥ १३ ॥
ततः कोकवधूयन्धुर्वधूककुसुमप्रभः । उदयाद्रिशिरो-
रत्नमुचयै तेजसां निधिः ॥ १४ ॥ नयनकनपिशङ्क
घासराणां विधातुः ककुभि कुलिशपाणैर्भानि भासां
यितानम् । जनितमुचनद्धारम्भमम्भांसि दग्ध्या
ज्वलितमिच महाभेरुर्धर्मोवांनलाचिः ॥ १५ ॥ निर्जा-
शुकावृतां प्राचीं चुम्बन्यकैऽनिरागिणीम् । लज्जयेव
ययौ यथापि श्यामा मौलितलोचना ॥ १६ ॥ निसर्ग-

॥ ६ ॥ प्रातःकाल उदयाचलकी चोटीके अङ्गनमें रँगता
हुया, अपने किरणरूपी कोमल हाथ फैलाता हुया तथा
पक्षियोंके कलरचके स्वरमें बोलता हुया वह सूर्यरूपी बालक
लटपटाकर आकाशकी गोदमें गिर रहा है जिसे कमलिनियाँ
और कमल हैंस हैंसकर देख रहे हैं ॥ ७ ॥ प्रातःकाल रिले हुए
कमलोंके परागसे रँगी देहवाले ये भीरे, घरकी बाबदियोंमें
मधुर गुआर कर रहे हैं तथा जपाकुसुम की पंखुदियोंके समान
लाल-लाल मूर्धमण्डल उदयाचलकी और बढ़ता हुया शोभा
पा रहा है ॥ ८ ॥ यह देखो, प्रातःकाल ये परम तेजस्वी सूर्य-
देव चक्रवा-चक्रवीको ढाढ़स देनेके लिये, तारोंको निगल
जानेके लिये, सिमटिमाते हुए चन्द्रमण्डलकी हँसी उड़ानेके
लिये, अपनी प्यारी दिशाओंके घट्टोंके समान स्तनोंको कुकुमके
लेपसे सजानेके लिये, कमलोंको बिखरित करनेके लिये तथा
प्रत्यक्ष ही वीर करनेवाले कोहँके समूहोंको सतानेके लिये उदय
होते हुए चमक रहे हैं ॥ ९ ॥ प्रातःकाल अपने तीक्ष्ण मधों
(किरणों) से घने अँधेररूपी मत्तवाले गजराजका मस्तक फाड़-
कर उसमेंसे थोसकी बूँदके मोती बिखेरकर ये सूर्यरूपी
सिंहराज, उदयाचलके शिखरपर बढ़ते दिखाई दे रहे हैं ॥ १० ॥
कोई प्रातःकालकी शोभाका बयान करना है—'देवताओंके
भाग्यसे पूर्व दिशासे प्रगल्भको जन्म दिया, उस उत्साहमें
मानो यह सारा संसार कुकुमके जलसे सींचा गया है, कमलके
कोशरूपी कागानारसे मत्तवाले भीररूपी बन्दी छोड़ दिए गए
हैं, सहर्षों शीर्ष दान की गई हैं (सूर्यकी सहस्रों किरणों फैल

रही हैं) और इसी प्रसन्नतामें मानो माह्वण (पक्षी) जहाँ-जहाँ
हा-हल्ला मचा रहे हैं ॥ ११ ॥ प्रातःकाल सब लोगोंकी प्रार्थना
सुनकर उनकी विपत्ति दूर करनेके उद्देश्यसे सारे संसारना
निरीक्षण करनेके लिये महाराज सूर्यदेव उदयाचलके शिखररूपी
सिंहासनसे उठकर धरतीपर पैर रखकर एक क्षण दहर गए हैं
॥ १२ ॥ इस समय (प्रातःकाल) सूर्य, लाल-लाल मुँहवाली
उस वेश्या (दिन-रूपी नायिका) के आपसमें सटे हुए चक्रवा-
चक्रवीरूपी स्तनोंपर हाथ (किरण) फेरना फैलाता हुया वार-
वार उसका मुँह चूम रहा है जो खिले हुए कमल-नेत्रोंसे उसे
ताक रही है ॥ १३ ॥ तदनन्तर (रात बीतनेपर) चक्रवीके हिलेपी,
जपाकुसुमके समान लाल तथा उदयाचलके शिखररूपी मुकुटमें
जड़े रत्नके समान परम तेजस्वी सूर्य उदय हुए ॥ १४ ॥ प्रातः
काल पूर्व-समुद्रके ऊपर, दिनोंकी रचना करनेवाले सूर्यका जो
नये सोनेके ढ़की घनी चमक फैल रही है उसे देखकर ऐसा
जान पड़ता है मानो बड़बानलकी लपटें सारे जलको सुखाकर
अथ सारे संसारको जलानेकी इच्छासे आगे बढ़ी आ रही हों
॥ १५ ॥ प्रातःकाल जब सूर्य अत्यन्त शत्रुवागसे भरी (लाल
रहवालो) पूर्व दिशाको अपनी किरणों (वस्त्र) से ढँककर
उसका मुँह चूमने लगा तब मानो लजाकर ही रात्रि अपनी
अँखें मूँदकर धीरेसे वहाँसे खिसक गई ॥ १६ ॥ प्रातःकाल
दिनके स्वामी सूर्यके उदय होते ही स्वामाविक सुगन्ध
फैलाती हुई तथा भीरोंकी गुआरके स्वरमें गीत गाती हुई
कमलिनी मुस्कराने लगी ॥ १७ ॥ जान पड़ता है रातकी

सौरभोजान्तभृङ्गसङ्गीतशालिनी । उदिते वासराधीशे
स्मेराजनि सगोजिनी ॥ १७ ॥ पयसि सलिलरशेनक-
मन्तनिर्मग्नः स्फुटमनिशमतापि ज्वाह्या वाडवाघ्रेः ।
यदयमिदमिदा-नीमङ्गमुचन्दधाति ज्वलितखदिरमाष्टा-
ङ्गारयोरं विषेस्वान् ॥ १८ ॥ पृच्छतदिगङ्गना प्रस्ता
रचिमुद्गामसुतं चिरादुपेतम् । अलिनो नालनोदराद्वि-
मुक्ताः प्रियवाहुद्वयवन्धनान्नघोटाः ॥ १९ ॥ भूयो
निपीय लघणान्धुधमप्रभातं पुञ्जीभवन्नुदयते तपन-
च्छलेन । श्रौवांश्रिभ्यरपथोर्नाधमय पातु हीनोडुवु-
द्दुदकदम्बमिति प्रतीमः ॥ २० ॥ मञ्जिष्टारुच्यदोध-
तिर्मधुकरैर्माङ्गल्यगीतिस्ततः कोकाह्लादपटुः सरारुह-
वर्नं प्रीत्या समुज्जम्भयन् । लोकालोककरः करैश्च
तमसां स्तोमं समुत्सारयन्कारोहृत्युददाचलं रविरयं
यन्धूकगुच्छुच्छुविः ॥ २१ ॥ मालकैरवलौचनं प्रवि-
गलत्ताराच्छृङ्गारावर्त्ता ग्लायच्चन्द्रमुखं विष्टङ्गल-
तमःकेशां सशेषाम्बराम् । प्रातः सचरामित्वरोमिव

समुद्रमें समाए हुए सूर्यको बड़वानलकी ज्वालाएँ उसे
जलाती रही है, इसीसे इस समय (प्रातःकाल) उस
समुद्रसे निकलता हुआ वह सूर्य जली हुई सैरकी लकड़ीके
अङ्गारोंके समान दहक रहा है ॥ १८ ॥ प्रातःकाल पूर्व दिशा-
रूपी नायिकाने बड़ी लम्बी प्रतीचाके पश्चात् यह सूर्यरूपी
तेजस्वी पुत्र उत्पन्न किया है, इसी प्रसन्नतामें मानो कमलके
कोशोंसे भीरे और प्रियतमकी दोनों भुजाओंके बन्धनसे
नवेलियाँ मुक कर दी गई हैं ॥ १९ ॥ हमें तो ऐसा जान पड़ता
है कि रात भर खारे समुद्रकी पीकर थय तारानी बुलबुलोंवाले
आकाश-सागरको पाँचोंके लिये यह बड़वानल अपनी सारा तेज
बटोरकर प्रातःकाल सूर्यका रूप धारण करके उदय हो रहा
है ॥ २० ॥ जपाकुसुमके समान कान्तिवाला, मँजीठके रङ्गके
समान लाल किरणवाला तथा चकवे-चकवीको सुल
देनेवाला यह सूर्य कमलवनको प्रेमपूर्वक खिलाता हुआ तथा
अपनी किरणोंसे सारे घने श्रेष्ठोंको हटाता हुआ उदयाचलपर
चढ़ता जा रहा है जिसके स्वागतके लिये भीरे माङ्गलिक गीत
गाता जा रहे हैं ॥ २१ ॥ [यह प्रातःकालना दरय ऐसा जान
पड़ता है माना] कमलिनीयोंका स्वामी सूर्य, घने प्रेमके कारण
बलपूर्वक अपनी लाल-लाल किरणों (हाथों) से उस रातको
पकड़नेके लिये उसके पाछे दौड़ा आ रहा है जिसके ताररूपी
मोतियोंका स्वच्छ हार टूट-टूटकर गिर रहा है, चन्द्रमुख मज्जिन

यलादुद्रादरागैः फरैराकर्पन्निच यामिनीमनुपतत्य
भोजिनीयल्लभः ॥ २२ ॥ यावन्नोरनिधेः प्रभात
समयः प्रोद्भूत्य लोकत्रयीमाश्रिण्यं रचिविषमम्भवत्
श्रिण्वीथोपथे न्यस्यति । तावत्कर्तुमिधास्य मृत्यु
मुचितं पश्चाकरेण स्वयं लक्ष्मीर्लब्धविकासपद्मवत्कर-
न्यस्ता पुर-स्थाप्यते ॥ २३ ॥ धिततपृथुवरचातुत्य
रूपैर्मयूखैः फलत्या इव गरीयान्दिग्भिरारुण्यमाणः ।
कृतचपलविहङ्गालापकोलाहलाभिर्जलनिधिजलमध्या
देव उतार्धतेऽर्कः ॥ २४ ॥

सूर्यास्तमनवर्षेणम् — अंशुपाणिभिरतीव पिपासु
पद्मजं मधु भृशं रसयित्वा । क्षोषतामिव
गतः क्षितिमेष्टैरलोहितं वपुश्चाह पतङ्ग ॥ १ ॥
अप्रसानुपु नितान्तपिशङ्गेभूंहान्मुदुकरैरवलम्ब्य ।
अस्तशैलगाहनं नु विवस्वानाविवेश जलधिं नु
महं नु ॥ २ ॥ अथ सान्द्रसान्ध्यकिरणरु-
णितं हरिहेतिहृत्तिमिधुनं पतताः । पृथगुपतपात

हो रहा है, काले काले श्रेष्ठोंरूपी बाल बिखरे जा रहे हैं,
आकाशरूपी बच्च खुलकर गिरा जा रहा है और जो अपनी
कुमुदिनीरूपी श्रॉलें मूँदकर वेगले भागी चली जा रही हैं
॥ २२ ॥ जैसे ही प्रातःकाल-रूपी यनिया समुद्रमेंसे तनों लाकेंके
मानिक सूर्यको निकालकर बाजारमें लाकर रखता है वैसे ही
गलाब भी मानो उसका ठीक मोल करनेके लिये अपने लिये
हुए कमलरूपी हाथोंपर रखी हुई लक्ष्मी (द्रव्य, गोभा)
सामने ला रखता है ॥ २३ ॥ ऐसा जान पड़ता है मानो
फुदकते हुए पक्षियोंके कलरवके स्वरोंमें हैंसती बोलती कोलाहल
करती हुई दिशासूरपी नवेलियाँ, किरणरूपी लम्बी लम्बी
रसिसर्पोंसे समुद्रके भीतरसे सूर्यरूपी भरा हुआ घड़ा लीव
रही हों ॥ २४ ॥

सूर्यास्तका वर्णन : सन्ध्या समयका लाल सूर्य ऐसा
दिसाई पड़ रहा है मानो अधिक प्यास लगानेपर उसने अपने
किरणरूपी हाथसे कमलका मधु (रस, मदिरा) भरपेट में
लिया हो और उससे पागल होकर धरतीपर गिरा पड़ जा
हो ॥ १ ॥ अस्त होते हुए सूर्यको देखकर कवि साचता है कि
'अपने अत्यन्त पतले और कोमल कर्तों (हाथों, किरणों) से
पहाड़की चोटिके पेड़ोंको धामकर सूर्य अस्ताचलके जड़लोंमें डुल
गया था समुद्रमें कूद गया था पृथ्वीमें समा गया है' ॥ २ ॥
सॉफ होते ही जो चकवा-चकवीका जोड़ा अलग हो रहा था

विरहातिदलदभृद्भयस्तुतास्रगनुल्लिप्तमिव ॥ ३ ॥
 अध्यानं नैकचनः प्रभवति भुवनध्रान्तिदोषं विलङ्घय
 प्रातः प्राप्तुं रथो मे पुनरिति मनसि न्यस्तचिन्ता
 तिभारः । सन्ध्याकृष्टाप्रशिक्षस्वकरपरिकरैः स्पष्टहे-
 मारपङ्क्ति व्याकृष्यावस्थितोऽस्तक्षितिभृति नयतावैप
 दिक्चन्द्रमर्कः ॥ ४ ॥ अनुरागवतो सन्ध्या दिवसस्त-
 त्पुरःसरः । अहो देवगतिश्चिन्ता तथापि न समागमः
 ॥ ५ ॥ अनुरागवन्तमपि लोचनयोर्दधत्तं चपुः सुखम-
 तापरम् । निरकासयद्रविमपेतचसुं वियदालयादप-
 रदिग्गणिका ॥ ६ ॥ अनुलेपनानि कुसुमान्यवलाः
 कृतमन्यवः पतिपु दीपशिखा । समयेन तेन परिसुप्त-
 मनोभवयोधनं समययोधिपत ॥ ७ ॥ अपराहृष्टातल-
 तरेण शनैरनिलेन लोलिततलताङ्गुलये । निलयाय
 शाखिन इवाह्वयते ददुराकुलाः खगकुलानि गिरः

॥ ८ ॥ अभितापसम्पदमयोप्यगचिनिजतेजसामसद्-
 मान इव । पयसि प्रपित्सुरपराभ्युनिवेरधिराडुमस्त-
 गिरिमभ्यपतत् ॥ ९ ॥ अभितिभ्यरगिम चित्रा विर-
 माद्वधानतद्विश्रमनिमेषतया । विगलन्मधुमत्तकुलाशु-
 जलं न्यमिमांलदञ्जनयनं नलिनी ॥ १० ॥ अभिभूय
 सतामयस्थिति जडजेतु प्रतिपाय च श्रियम् । जग-
 तीपरितापकृत्कथं जलधां नावपतेदसौ रविः ॥ ११ ॥
 अयमपि परयोपित्कर्णं नापायमीपद्विखुरमरतिमिरोर्णा-
 जर्जरोपातन्तमविः । मदकलकलधिङ्गीषाकुनान्दीक-
 रेभ्यः क्षितिरुहशिखरेभ्यो भानुमानुचिचनोति ॥ १२ ॥
 अयमपि पुकृहृतप्रयसोमूर्ध्नि पूषः कलय इव सुधांशुः
 साधुरल्लालसीति । मदनविजययात्राकालविद्यापनाय
 स्फुरति जलधिमध्ये ताप्र प्राचीव भानुः ॥ १३ ॥ अय-
 मसा गगनाङ्गपदीपकस्तरलकालमुजङ्गशिषामणिः ।

वह उस समयकी घना किरणोंके लाल रहसे रँगा हुआ ऐसा
 जान पड़ता था मानो विद्योग्री वेदनासे उनका हृदय फट
 गया हो और उससे निकले हुए रक्तसे वे सन गए हों ॥ ३ ॥
 सन्ध्या समय अस्त होते हुए सूर्य ऐसे लग रहे हैं मानो वे इस
 चिन्तामें डूब गए हों कि 'यह हमारा एक पहिएवाला रथ
 सारे संसारका अत्यन्त लम्बा मार्ग पार करके प्रातःकाल यहाँ
 नहीं पहुँच सकता ।' इसीलिये मानो वे दिशाओंके मण्डलरूपी
 उस पहिएकी धौंचकर धस्ताचलकी ओर ले जा रहे हैं
 जिसमें सन्ध्या समय कुछ कुछ बची हुई किरणें ही सुनहरे
 आरंभके समान दिखाई दे रही हैं ॥ ४ ॥ यद्यपि अनुराग
 (प्रेम या ललाई) से भरी हुई सन्ध्या दिनके पीछे-पीछे लगी
 दीवनी रहती है और दिन भी सन्ध्याके ठीक आगे ही आगे
 चलता रहता है, पर दीवकी विचित्र लीला तो देखो कि
 वे दोनों कभी साथसमें मिल नहीं पाते ॥ ५ ॥ जैसे आध्यात्मिक
 चाहनेवाले, नेत्रोंको शीतलता देनेवाले तथा शरीरको सुख
 देनेवाले अपने सुन्दर नायकको भी उसके पास घन न
 रहनेपर वेरया धरसे निकाल देती है उसी प्रकार पश्चिम
 दिशाने भी लाल रङ्गवाले, ध्रौवीको कष्ट न देने वाले तथा सुप्र-
 दायक रूपवाले सूर्यमें जब किरणें न बच रहती तो उसे आकारा
 रूपी धरसे निकाल दिया ॥ ६ ॥ सन्ध्या समय जब बहुत
 देरतक सोया हुआ कामदेव जाग उठा तब चन्द्रन-केशर आदिके
 लेप और पूज आदि दृक्छे निए जाने लगे, पतिपर रुठी हुई
 नवेलिर्षा प्रसन्न हो गई और दीपक भी अल उठे ॥ ७ ॥

सन्ध्या समय पचियोंकी चहचहाहट ऐसी जान पड़ती है मानो
 जब वनके वृक्ष, शीतल वायुसे धीरे धीरे दिखाई हुई अपनी
 डाली रूपी डँगलियोंको हिला-हिलाकर पचियोंका बसेरोंके लिये
 बुलाने लगे तो पची भी उसुक होकर अपने कलरवसे उठे उठार
 दे रहे हों कि हम आ रहे हैं ॥ ८ ॥ झिपता हुआ सूर्य ऐसा जान
 पड़ता है मानो अपने ही तेजकी भयहृत् गरमी न सह सकनेके
 कारण यह पश्चिमके समुद्रमें कूदनेके लिये अस्ताचलकी चाटीपर
 चढ़ गया हो ॥ ९ ॥ सन्ध्या समय सुँदरे हुए कमलोंमें निकलते
 हुए और ऐसे जान पड़ते हैं मानो दिन भर सूर्यके अस्त हानेतक
 कमलके पीनेने सूर्यके सामने एकटक देखनेसे थलसाए हुए अपने
 कमलरूपी नेत्र सुँदे तो उसमेंसे भौररूपी आँसु निकल पड़े हों
 ॥ १० ॥ सज्जनोंकी रहन-सहनमें बाधा पहुँचानेवाला (संसारमें
 फैला हुआ धैर्या दूर करनेवाला), नीचाँको मुल देनेवाला
 (कमलोंको खिला देनेवाला) और संसारको लगानेवाला (यकाय
 देनेवाला) यह सूर्य भला समुद्रमें क्यों नहीं डूबेगा ? अथवा
 ऐसा लुकम करनेवालेको तो दूब ही मरना चाहिए (विश्राम
 लेना ही चाहिए) ॥ ११ ॥ जो वृक्ष गौरैयाकी चहचहाहटमें
 सूर्यकी भ्रष्टासा कर रहे हैं उनकी धंठियोंपरसे सूर्य, गधौरे
 कानके समान भटमेठी और फैलते हुए अन्धकारसे भुँघली
 पदी हुई अपनी किरणें समेट रहा है ॥ १२ ॥ सन्ध्या समय
 पूर्व दिशाके माथेपर धरे हुए चौंकीके घड़ेके समान चमकता
 हुआ चन्द्रमा कामदेवकी विजययात्राके समयकी सूचना
 दे रहा है और समुद्रके बीचमें डूबता हुआ सूर्य तबिके

क्षणविडम्बितवाड्यविग्रहः पतति चारिनिधौ विधुरो रविः ॥ १४ ॥ अविभाव्यतारकमट्टद्विभ्रद्युतिविम्बमस्तमितमानु नमः । अत्रसन्नतापमनिस्त्रमभादपदापतैव चिगुणस्य गुणः ॥ १५ ॥ अस्तं गतयति सवितरि मंतरि मधुपं निवेश्य कोशान्ते । कमलिन्योऽपि रमन्ते किमत्र चित्रं मृगाक्षीणाम् ॥ १६ ॥ अस्तावलम्बिरविविम्बतयोदयाद्रिचूडोन्मिपत्सकलचन्द्रतया च सायम् । सन्ध्याप्रनृत्तहरहस्तगृहीतकौस्पतालद्वयैव समलक्ष्यत नाकलक्ष्मीः ॥ १७ ॥ अस्तोदयाचलावलम्बिरवीर्यधिम्बव्याजान्तरां श्रवणयोनिहितारविन्दा । ताराच्छलेन कुसुमानि समुत्तिपन्ती सन्ध्येमागतवती प्रमदेव काचित् ॥ १८ ॥ आकुलश्चलपत्रिकुलानामारक्षैरनुदितोपसरागः । आयावहरिद्वधावपाण्डस्तुत्यता दिनमुखन दिनान्तः ॥ १९ ॥ आट्टिष्टास

व्यथयति मनो दुर्बला चासरश्रीरेखाक्षिण्ण क्षपय रजनीमेकिका चक्रवाकि । नान्यासक्तो न खलु कुपितो नानुरागच्युतो वा दैवाधीनस्तदिह भवतीमस्यतन्त्रस्यजाभि ॥ २० ॥ आवासोःसुकपक्षिणः कलघटं कामन्ति वृक्षालयान्कान्ताभावावियागभीदर्शकं क्रन्दत्ययं फातरः । चक्रादो मधुपा. सरोजगहनं धावन्त्युलूको मुदं धत्ते चारुणतां गतो रविरसावस्ताचलं चुम्बति ॥ २१ ॥ आविशिञ्चि रटजाङ्गणं मृगैर्मूलसेकसरसैश्च वृक्षकैः । आथमाः प्रविशद्मृगधेनवो विभ्रति श्रियमुदीरिताम्रयः ॥ २२ ॥ आस्थतः स्थनितवारिदण्डाया सन्ध्याया गगनपश्चिमभागः । सौमिविद्रुमायितानविभासा रक्षितस्य जलधेः श्रियमूहे ॥ २३ ॥ उच्चैस्तटादम्बश्रीलामालेश्च्युतो रविर्गौरकण्णशैलः । तस्यैव पातन वचूणातास्य

घड़ेके समान लाल लाल चमक रहा है ॥ १३ ॥ देखो, यह आकाश-रूपी श्रौंगनका दीपक, अरिहर कालरूपी सूर्यके मस्तकका मणि तथा समुद्रकी बध्वाग्निके समान ज्वलन्त सूर्य आज निराधार होकर समुद्रमें डूब रहा है ॥ १४ ॥ सन्ध्या समय अमी आकाशमें तारे नहीं निकले थे, चन्द्रमा भी नहीं उगे थे, सूर्य भी अस्त हो रहे थे और न तो धूप थी, न छँपरा था, फिर भी आकाश बड़ा भला जान पड़ता था क्योंकि जिनमें गुण नहीं है उनमें दोषोंका न रहना ही गुण हो जाता है ॥ १५ ॥ जब अपने पति सूर्यके अस्त हो जाने पर कमलिनियों अपने कोशोंमें भौंतोंको घुसाकर क्रीड़ा कर रही हैं तब यदि हरिणके समान आँखोंवाली नायिकाएँ भी वैसा ही करें तो क्या आश्चर्य है ॥ १६ ॥ सन्ध्या समय जब एक और अस्ताचलपर सूर्य अस्त हो रहे थे और दूसरी ओर उदयाचलपर चन्द्रमा उदय हो रहा था, उस समय नीला आकाश ऐसा जान पड़ता था मानो सन्ध्या समय नृत्य करते हुए शङ्करजीने दोनों हाथोंमें दो कौंसकी भौंसें ले रक्कीं हों ॥ १७ ॥ उदयाचल और अस्ताचलपर अलग अलग लटके हुए चन्द्रमा और सूर्यका कनफूल पहनकर तारे-रूपी फूल उड़ालती चलती हुई सन्ध्या-रूपी नायिका आ पहुँची है ॥ १८ ॥ सन्ध्याका समय भी प्रातःकालके समान लगने लगा था क्योंकि दिन-छिपे भी उड़ते हुए पक्षी चहचहा रहे थे, ललाई मिट गई थी और सूर्यके न रहनेपर भी उजसापन बना हुआ था ॥ १९ ॥ सन्ध्या होते देखकर

चकवीसे चकवा कहता है—‘हे चकवी ! मैं प्लुता हूँ कि तू जो क्यों छोटा किए जा रही है । अमी सोम होनेवाली है अतः आकर मेरे गले लग जा और किसी प्रकार यह रात अकेली काट ले । (दुखी न हावा क्योंकि) न तो मैं किसी दूसरी चकवीसे प्यार करता हूँ, न तुम्हसे रट हूँ, न तारे लिये मेरे मनमें प्रेम ही कम है, पर क्या करूँ, मेरे हाथमें कुछ नहीं है । इसलिये न चाहत हुए भी तुम्हें अकेली छोड़ रहा हूँ ॥ २० ॥ लाल-लाल सूर्य जिस समय अस्ताचलको छू रहें उस समय चहचहाते हुए पक्षी बेलोंके लिये पड़के घासलोकी आर उड़े चले जा रहें हैं, चकवासे अलग हानेके दरसे दुखी होकर चकवा ऊँचे स्वरसे चिल्ला रहा है, और कमलोपर मेंढरा रहे हैं और उल्लू मन ही मन प्रसन्न हो रहा है ॥ २१ ॥ मुनिगोकी कुटिगोके श्रौंगनमें हरिण चले आ रहे हैं, सींचे जानेके कारण वे हरे-भरे दिखाई पड़ रहे हैं, सुन्दर गौरवै जाड़लसे आश्रमकी ओर लौट रही हैं और अग्निहोत्रके लिये आग जगाई जा रही है । इस प्रकार सन्ध्या समय आश्रम बड़ा ही मनोहर लग रहा है ॥ २२ ॥ सन्ध्याकी ललाईसे जब बादलोंकी रेखाएँ ढक गईं उस समय पश्चिम दिशाका आकाश उस समुद्रके समान सुन्दर दिखाई देने लगा जिसकी पतली पतली लहरोंपर सैगोकी लाल-लाल छाया पड़ रही हो ॥ २३ ॥ सौंभकी ललाई ऐसी जान पड़ रही है मानो आकाश-रूपी पर्वतको ऊँची चोटोसे गैरूकी चट्टानके समान लाल सूर्यके गिरकर चूर-चूर हो

सन्धारजोराजिरियोज्जिहीते ॥२५॥ उत्तरन्ति चिन्-
कीर्यं पत्वलं गाढपद्ममतिवाहितातपाः । दंष्ट्रिणो यन-
यराहयूथपा दृष्टमङ्गरविसाङ्ग इय ॥ २५ ॥ उदय-
गिरितटस्थः पद्मिनीयांधयिवा मृदुतरकिरणप्रैस्ताः
म्वयं चोपयुज्य । मलिनमधूपसङ्गात्तासु सजातकोपः
कृतकधिरविरोनिर्भानुरस्वं प्रयातः ॥ २६ ॥ उदयाद्रे-
रुड्डीनो दिवं भ्रमिन्था पतङ्कोऽयम् । अद्य प्रदोपसमये
वडयाज्यलने जुहोति देहं स्वम् ॥ २७ ॥ उद्राठ-
प्रणये रुचां परि ढे धिर्लंसमानेऽम्बरश्रीचूडामणि-
भूमिकामधिगते चक्षुःपथं मुञ्जति । भीलत्तामरस-
प्रधिष्टमधुपय्याजेन हात्ताहलप्रन्थीनम्युजिनो विधाय
फयलान्मृच्छ्यामिवागच्छति ॥ २८ ॥ उपसन्ध्यमास्त
तनु सानुमतः शिरोरेषु तच्छरणमशीतकचः । फरजा-
लमस्तसमयेऽपि सतामुचितं खलूच्चतरमेत्य पदम्

॥ २६ ॥ एष वृक्षशिखरे कृताम्पदो जानकरामगौर-
मण्डलः । हीयमानमहरत्ययातपं पीयगक पित्रनीय
वहिणः ॥ ३० ॥ फरिष्यति कलानाथः युतुक्तो कर-
मम्बरे । इति निर्वाणयामास रविदीपं निराहना ॥ ३१ ॥
कान्तदूत्य इय कुङ्कुमनात्राः सायमगडन-
ममि त्वरयन्त्यः । सादरं दृष्टशिरं यनितामिः मीघ-
जालपतिता रविभासः ॥ ३२ ॥ कृतोपयानं मिय-
यन्धुमर्कं मा टाचम हीनांशुप्रयः पतन्तम् । इतीय
मत्वा नलिनीवधूमिनिर्मलितान्यन्युक्तेक्षणात् ॥ ३३ ॥
कन्या प्रयुद्धकमलामखिलां प्रिलोमीमभोनिर्विद्यति
गर्ममसाधिदानीम् । अन्तःप्रसुतहरिनाभिसरोजगोच-
कौतूहलीय भगवानारविन्दयन्धुः ॥ ३४ ॥ श्रीऽप्र भूमि-
वल्पे जनान्मुचा तापयन्सुचिरमेति सन्पदम् । वेद-
यन्निति दिनेन मानुमानाससाद चरमाचलं ततः

जानेते उसीकी उड्डी हुई धूलसे चारों ओर बलाई छा रही हो
॥ २७ ॥ धूपका समय विताकर सन्ध्याको जहली सूअर
कीचदसे भरे पोखरोंमें लोट-लोटकर वाहर निकल रहे हैं और
उनके छोटे-छोटे दाँत ऐसे जान पड़ते हैं मानो कमलनालको
तोड़ तोड़कर रानेसे उसके टुकड़े उनके मुपमें लगे हुए हों
॥ २६ ॥ उदयाचलपर पहुँचकर सूर्यने अपने कोमल किरण-
रूपी हाथोंमें कमलिनियोंको जगाकर उनके साथ बिहार किया
पर जब उसने देखा कि इनका मनुष्यों (भौरों या मदिरा पीने-
वालों) से संसर्ग हो गया है तो क्रोधसे लाल होकर वह उनसे
दूर होकर जा दिया ॥ २७ ॥ यह पतङ्ग (सूर्य, फतिहा)
उदयाचलसे उठकर दिनभर उड़ता रहा और अथ सन्ध्या
समय (मरती समाप्त होनेपर सूर्य और अग्निकी और प्रेम
होनेके कारण फतिहा) यदवागिमें अपनी देह हवन किए
दे रहा है ॥ २७ ॥ सन्ध्या समय कमलमें घुमते हुए भौर
ऐसे जान पड़ते हैं मानो आकाशके चूडामणि तथा अत्यधिक
प्रेम करनेवाले अति वैजसकी मियतम सूर्यके शरीरोंसे धीरे-धीरे
होते देखकर कमलिनो, (उसका नियोग न सह सकनेके
कारण) मानो भौरोंके रूपमें विपकी गोलिथी बना-बनाकर
निगलती हुई मृच्छित होती चली जा रही हों ॥ २८ ॥
सूर्यकी किरणें प्रातःकाल भी पर्वतकी चोटियोंपर भी और
सन्ध्याकाल भी धस्त होते समय अस्ताचलकी चोटियोंपर ही
जाकर उतरतीं । यह ठीक ही है क्योंकि वे लोगोंको जो सदा
ऊँचा स्थान मिला ही करता है ॥ २९ ॥ हे माटी जाँवोंवाली !

यह पढ़की चोटोपर बैठा हुआ और सूर्यको किरणोंकी
चमकसे मुनहरा सा दिवाई पढ़नेवाला भौर ऐसा जान
पड़ता है मानो धीरे धीरे मुरझाती हुई सन्ध्याका धूप निप
ढाल रहा हो ॥ ३० ॥ रात्रिरूपी नायिकाने जब देखा कि
कलानाथ (चन्द्रमा या कामकी कन्या जाननेवाला) अथ
अम्बर (आकाश या वस्त्र) में अपनी कर (किरण या हाथ)
लगाने ही वाला है तो उसने मूट सूर्य-रूपी दीपक बुझा
दिया ॥ ३१ ॥ सुन्दरी नरेनिकोंने अपनी अटारियोंके मरोंमेंपर
पडी हुई सूर्यकी किरणोंको ऐसे आदरपूर्वक देखा मानो वे
सन्ध्या समयकी सजावटके लिये उतावली करनेवाली उनके
पतिकी भेजी हुई दूनियों गरीमें केसारा लेप
पोत रक्खा हो ॥ ३२ ॥ सायंकाल कमलकी लतारूपी
नायिकाने अपने कमलरूपी नेत्र मानो इनलिये मूर्त लिए
कि मैं अपनी मलाई करनेवाले अपने प्यारे वन्द्य सूर्यको
किरणोंसे रहित होकर नीचे गिरने न देन पाऊँ ॥ ३३ ॥
सन्ध्या समय समुद्रमें पड़ते हुए सूर्य ऐसे जान पड़ते हैं मानो
सारे जगत्के कमलोंको मिलाकर इस समय वे समुद्रके भीतर
सोए हुए विरपुकी नाभिपर निकले हुए कमलको गिरानेके
लिये चले जा रहे हों ॥ ३४ ॥ अन्नाचक्रकी शीर जाना हुआ
सूर्य मानो यही उपदेश देता है कि संसारमें लोगोंको बिना
वातके तपानेवाला कोई व्यक्ति बहुत दिनोंतक सुखी नहीं रह
सकता ॥ ३५ ॥ अपने पतिले सम्भाग करनेको उमड़ी हुई चाहने
भरी हुई नायिका, सामने गिद्धकीनमे प्रस्तावचक्र और सूर्यके

॥ ३५ ॥ गतया पुरः प्रतिगवाक्षमुखं दधनी रतेन
 ध्रुवमुत्सुकताम् । सुदुरन्तरालभुवमस्तगिरेः सवि
 तुक्ष योपिदमिमीत दशा ॥ ३६ ॥ गतवति दिननाथे
 पश्चिमद्वाराधरान्तं शिशिरकरमयुखैर्निर्भरं दृष्टमाना ।
 परिहृतमिलितालिः पान्थकान्तेव दीना सपदि कम-
 लीनीयं हाम्यहीना यभूव ॥ ३७ ॥ गतवत्यराजत
 जपाकुसुमस्तवकृद्युतौ दिनकरेऽयनतिम् । बहला-
 नुरागकुचयिन्द्वदल्पतिवद्धमध्यमिव दिग्बलयम् ॥ ३८ ॥
 नाढं प्रौढाङ्गनाभिः सुरतरतमनःसम्मदोत्सारिताहं
 मुग्धाभिः स्रस्तनेत्रं रतिसमरभयं चिन्त्ययन्तोभिरे-
 चम् । पान्थानामङ्गनाभिः ससलिलनयनं शून्यचिन्ताभि-
 रुचैः कष्टं दृष्टोऽस्तरीलं भृशमभजदयं मण्डलध्वज-
 रश्मेः ॥ ३९ ॥ जगदिव बहुलातपाभितसं जनयितुमद्य
 जलाभिपेकशीतम् । परिधृतरविशातकुम्भकुम्भा मज-
 लति पश्चिमवार्तिधं दिनधोः ॥ ४० ॥ जम्भारेः
 प्रियया फयापि फकुभा पूर्वाचलप्रान्ततः श्रीमान्मीढ-

पतङ्गको चियति य प्रातः समुद्घायितः । आ सोऽयं
 स्युतरश्मिबन्धुलुलितः पारेनभो न्यकपतन् सप्रत्यु-
 त्क्षपितोऽस्तपर्वतदगीदोघदुशाखान्तरे ॥ ४१ ॥ तद्गो
 दोऽन्तरस्तन्तान्धतमसं निर्भिद्य तिम्रमांशुभि सञ्जुं
 बलिसन्नगं कृतमात्तर्भातुर्गाहोऽभ्युधिम् । शन्यत्स-
 मप्रति सन्निपत्य वृणुते लोके तमोमण्डलं किञ्चित्तस्य
 नयत्यहो परिभवं पाथोजिनां वल्लभाम् ॥ ४२ ॥ ताप-
 नैरिव तेजोभिर्दग्धनिर्वाशमेचकाः । दिशो जाताः
 प्रतोची तु समुदाचरति क्रमान् ॥ ४३ ॥ दिनभर्तुरस्त-
 मयतः स्थन्दनतुरगेणु घननमोमहिपः । धातावसर-
 मिवेच्छन्पृष्टे निभृतं परिभ्रमति ॥ ४४ ॥ दिनाचसाने
 तरणेरकस्मात्त्रिमज्जनाश्चिद्विलोचनानि । अस्य
 प्रसादाडुङ्गुपस्य नूनं तमोमयद्वोपवतां तरन्ति ॥ ४५ ॥
 दिवसोऽनुभिन्नमगमद्विलयं किमिहास्यते चत भयाव-
 लया । रुचिभर्तुरस्य विरह्याधिगमादिति सन्ध्यापि
 सपदि व्यानाम् ॥ ४६ ॥ दूरलनपरिभेयरश्मिना

वीचका अन्तर नाप रही है अर्थात् यह घाट जोह रही है कि
 मूर्धं दूधनेत्रं कितनी देर है ॥ ३६ ॥ सूर्यके अस्ताचलकी ओर
 चले जानेके पश्चात् चन्द्रमाकी किरणोंसे जलाई हुई और अपनी
 सारी भौंतियोंसे विद्वुर्दी हुई कमलकी लता, हुली वियोगिनोके
 समान मुरका गई और उसका हँसना बन्द हो गया ॥ ३७ ॥
 जिस समय लाल-लाल मूर्धं अस्ताचलपर जपाकुसुमके पुच्छके
 समान लटक रहे थे उस समय वे ऐसे लगतथे माना दिशाधिकांकी
 मालामें अत्यन्त धमकीला लाल मणिका सुमेरु लटक रहा हो
 ॥ ३८ ॥ आह ! सन्ध्या समय ये सूर्य अस्ताचलकी ओर जा
 रहे हैं जिन्हें नवेलियों पतिये समागमकी आशासे प्रसन्न होकर
 भौंसें उठाकर देख रही थीं, नई ब्याही यहुँ पहेले-पहेले पति-
 समागमके भयसे चिन्तित होकर अष्टतुली शौंलोंसे देप रही
 थीं और जिन्हें परदेस गए हुए लोगोंकी स्त्रियाँ शौंस भरकर
 प्याहुल होकर देख रही थीं ॥ ३९ ॥ सन्ध्या समय अस्त होता
 हुआ सूर्य ऐसा लगता है मानो दिवकी शोभा-रूपी स्त्री
 आयन्त गर्मीसे तपे हुए संसारकी नहाकर बंदा करनेके लिये
 सूर्यरूपी सोनेका पद्मा हाथमें लेकर समुद्रकी ओर उसे
 भजने चली जा रही हो ॥ ४० ॥ वह सुन्दर बलवान्
 मूर्धं जो पृथ्वीके पास इन्द्रकी मितयमा १५दिशासे प्रेम
 करके आकाशमें उड़ा था, हाय ! वही सन्ध्या समय अपने
 चिरयूपकी बन्धुमोमें विहीन होकर आकाशके उस पार

अस्ताचलकी गुफाओंके बड़े-बड़े वृक्षोंकी शाखाओंमें गिरा जा
 रहा है ॥ ४१ ॥ सन्ध्या समय सूर्यास्त देखकर देता जान
 पड़ता है मानो आकाशमें भरे हुए बने अंधकारकी अपनी तीली
 किरणोंसे फाड़कर अब पातालका अन्धकार भी भगानेके लिये
 सूर्य तो समुद्रमें कूद रहा हो और उसके चले जानेसे संसारमें
 एक दूसरा अन्धकार सूर्यकी प्यारी कमलिनिका अनादर
 कर रहा हो ॥ ४२ ॥ सन्ध्या समय सारी दिशाएँ तो सूर्यके
 तेजसे जलकर और बुझकर काली पड़ गईं पर पश्चिम दिशा
 इस समय सूर्यका समागम पाकर ठीक व्यवहार कर रही है
 अर्थात् लाल होकर प्रसन्नता दिता रही है ॥ ४३ ॥ सन्ध्या
 समय बड़ना हुआ शौंधेरा ऐसा जान पड़ता है मानो दिवके
 स्वामी सूर्यके अस्त होनेपर घना अन्धकाररूपी डीसा उनके
 रथके घोड़ोंपर वार करनेकी घात देता हुआ पाँछे-पीछे
 चुपचाप चला जा रहा हो ॥ ४४ ॥ सन्ध्या समय
 अवाक तरणि (नाव या सूर्य) के दूध जानिये
 संसारभरके नेत्र अब इस उद्युप (चन्द्रमा या शकटियाँ
 जोड़कर बनाई हुई दांगी) के सहारे ही अन्धकाररुपी नदी पार
 कर रहे हैं ॥ ४५ ॥ सूर्यके विरहमें सन्ध्या भी यहाँ साधक
 मत्-पत चल दी कि अब मित्र (सूर्य) के पाँछे-पीछे दिन भी
 पला गया तो मैं अबला (स्त्री या पत्नी) हाकर भला कैसे
 दूर सकनी हूँ ॥ ४६ ॥ सन्ध्या समय साज धर्याका सूर्य और



वारुणी दिग्गणने भातुना । भाति केशरवतेव मण्डिता
 तन्धुजोधतिलकेन कन्यका ॥ ४७ ॥ दोषाकरं द्विजपति-
 प्रतिमं नयत्नं निर्लज्जवत्स्यपदमात्मवशं विधातुम् ।
 श्रालोक्य धामनिधिरेप युचेव दूनो लोकान्तरे क्षप-
 यितुं समर्थं प्रयाति ॥ ४८ ॥ द्रामैन्द्रीमनुचुम्ब्य
 सस्मितमुखोमामोदिनीं पश्चिनां कृत्वात्सौ परिरन्मस
 म्भ्रमपरिश्रान्ताञ्च वारस्त्रियम् । संरको हिमभातु-
 रथ चरमां शिलप्यत्यहो रागिणीं काग्मीरोपलसत्पयो-
 धरमरां कान्तां दिशं वारुणीम् ॥ ४९ ॥ द्रुतशातकुम्भ-
 निभ्रमंशुमतो वपुरधर्ममवधुपुः पर्यास । रुहचे
 विरञ्चिनखभिन्नदृहजगदरकैकतरखण्डमिव ॥ ५० ॥
 द्वावप्येतावनिभनवजपापुण्यभासां निवासं तिष्ठत्येत
 द्द्वयमपि धियन्मण्डलस्योपसन्ध्यम् । अस्तं को
 यात्युदयति च क. को रधिः कः शशाङ्कः का च

प्राची तद्विह न वयं का प्रतीचीति विप्रः ॥ ५१ ॥ न-
 कुम्भारुणपयोधरया स्वकरावसकचरिचरन्त्या ।
 अतिसकिमेत्य वरुणस्य दिशा शृशमन्वरज्यदतुपार-
 करः ॥ ५२ ॥ निर्यद्वासरजीवपिण्डकरिणं विभ्रत-
 योष्णैः करैर्माञ्छिष्टं रचिधिन्मन्वरतलादस्ताचलं
 चुम्बति । किञ्च स्तोकोतमः कलापकलनाश्यामायमानं
 मनाभूमश्यामपुराणचित्ररचनारूपञ्जगज्जायते ॥ ५३ ॥
 निलयः श्रियः सततमेतदिति प्रथितं यदेव जलजन्म
 तया । दिवसात्ययात्तदपि मुक्तमदो चपलाजनं मति
 न चोद्यमदः ॥ ५४ ॥ निलीयमानैर्विहगैर्निमीलद्भिश्च
 पङ्कजैः । विक्सन्त्या च मालत्या गतोऽस्त दायते
 रधिः ॥ ५५ ॥ नो रधिर्न च तमो न तर्माशो न द्युतिर्ग
 ह्यायो न च सन्ध्या । यादृशी प्रथमतः किल सृष्टेस्ता-
 दगेव भुवनं श्रियमूढे ॥ ५६ ॥ पचेलिमं दाडिममर्क-

उसकी पीली पीली किरणें पश्चिम दिशामें ऐसी जान पड़ती
 थीं मानो किसी कन्याने केशर लगे हुए टुपहरियाके फूलकी
 विन्दी लगा रखी हो ॥ ४७ ॥ सन्ध्या समय निकलते हुए
 चन्द्रमा और हृदते हुए सूर्यको देखकर ऐसा जान पड़ता है
 मानो श्रेष्ठ द्विज (ब्राह्मण, चन्द्रमा) का रूप धारण करने-
 वाले इस दोषाकर (दोषोंके भण्डार, रात्रि करनेवाले चन्द्रमा)
 को अपने (सूर्यके) स्थान (आकाश) पर इस निर्लज्जताके साथ
 रामखिच करते देखकर ही तेजके भण्डार सूर्यको हतना हुआ
 हुआ कि वे दूसरे लोकमें अपने दिन काटनेके लिये चले जा रहे
 हों ॥ ४८ ॥ सूर्यने पहले तो चमकीली और हँसती हुई पूर्व
 दिशाकी नायिकाका मुँह चूसा, फिर सुगन्ध और हँसीसे
 भरी हुई कमलिनीरूपी बेरपाको कसकर छातीसे लगाकर
 यका दिया और इस समय केशरके लेपसे रँगे हुए स्तनोंवाली
 (लाल बादलवाली या प्रेम-भरी) अपनी प्यारी परिचम
 दिशाको बड़े प्रेमसे छातीसे लगा रहा है ॥ ४९ ॥ समुद्रके जलमें
 आधे हृदते हुए सूर्यका सोनेके समान दमकीला गोला ऐसा
 जान पड़ता है मानो ब्रह्मने अपने नरसे सोनेके ब्रह्माण्डका एक
 षड्द-सा टुकड़ा उखाड़कर ला घरा हो ॥ ५० ॥ सन्ध्या समय
 यस्त होते हुए सूर्य और उदय होते हुए चन्द्रमा दोनों ही
 जालकुसुमके समान लाल-लाल दिखाई पड़ते हुए उदयाचल
 और अस्ताचलपर एक रूपमें विराजमान हैं इसलिये न तो यही
 जान पड़ता है कि कौन अस्त हो रहा है, कौन उदय हो रहा है
 न यही पहचानमें आता है कि कौन सूर्य है, कौन चन्द्रमा है

और न यही समझमें आता है कि कौन-सी पूर्व दिशा है और
 कौन-सी पश्चिम ॥ ५१ ॥ केशरके लेपसे रँगे हुए स्तनोंवाली
 (केशरके समान लाल-लाल बादलोंवाली) तथा अपने हाथोंसे
 अपनी सुन्दर साड़ी सँभाले रखनेवाली (अपनी ओर सूर्यकी
 किरणें फैलानेसे सुन्दर लगनेवाली) वरुणकी दिशा (पश्चिम)
 से मिलकर सूर्य अत्यन्त अनुरक्त (प्रेमपूर्ण, लाल) हो रहे हैं
 ॥ ५२ ॥ दिनकी समाप्तिपर अपनी कुछ कुछ गरम किरणोंसे
 उसके साथ समवेदना दिखलानेवाला सूर्य-मंडल अथ
 आकाशसे हटकर अस्ताचलकी ओर चला जा रहा है और
 कुछ-कुछ आँधरा छा जानेसे श्रृंखला दिखाई देनेवाला सप्तर
 ऐसा जान पड़ता है मानो धुआँ लगनेसे कोई बिय काला
 पट गया हो ॥ ५३ ॥ जो कमल सब ओर इसलिये
 प्रसिद्ध था कि यह सप्तमीका निवासस्थान है वहाँसे भी
 सन्ध्या समय श्री (लक्ष्मी, शोभा) उठकर चल दीं, किन्तु
 चञ्चल शिखोंका काम ही यही होता है अतः उनके विपर्यय
 कुछ करना ही व्यर्थ है ॥ ५४ ॥ इस समय चिदिपै
 अपने-अपने घोंसलोंकी ओर जा रही हैं, कमल मुरम्भ रहे
 हैं और मालतीके फूल खिल रहे हैं । अतः जान पड़ता है कि
 अथ सूर्य अस्त हो गए हैं ॥ ५५ ॥ सन्ध्या समय सप्तरकी
 वही दया दिखाई पड़ने लगी जो सृष्टिसे पहले थी अथाव न
 सूर्य था न आँधरा, न चन्द्रमा था न चाँदीनी, न तारे
 थे न सौंभ ॥ ५६ ॥ दिन छिपनेपर जान पड़ता है कि
 कालने सूर्य-नदरुद्धरूपी पका हुआ अन्नर तोड़कर, उसके

विष्णुमुत्तार्य सन्ध्या त्वगिवोऽज्जिताऽस्य । तारावलि-
वीजभुजाऽदसीयं कालेन निष्कृतमिवास्ति यूथम् ॥ ५७ ॥ पतति रविर्पूर्वचारिराशी हृदि पथिकस्य
यथान्मभूहुताशः । प्रसरति चरमां तमःप्ररोहः प्रति-
पदमद्य यथा मनोविमोहः ॥ ५८ ॥ परां रागाकुले
प्राप्य जाते कमलिनीपती । शोकादिव तमोप्रस्ता
पूर्वेषा प्रतिभासते ॥ ५९ ॥ परिपतति पयोनिधौ पतङ्गः
सरसिद्वहामुदरेषु मत्तभृङ्गः । उपवनतरकुण्डोटे विहङ्ग-
स्तरुणितेषु शनैः शनैरनङ्गः ॥ ६० ॥ पश्य पश्चिम-
दिगन्तलम्बिना निमित्तं कथमिदं विधस्वता । दीर्घया
प्रतिप्रया सरोम्भसांतापनीयमिध सेतुवन्धनम् ॥ ६१ ॥
पादा तस्य सहस्रं सोऽपि न तिष्ठति समागते
यस्मिन् । हन्त प्रदोषसमयो दोषाकरसम्पदे सोऽद्वा
॥ ६२ ॥ पाध्यात्याम्बुधिदृष्टपूर्वधडयासन्दर्शनोक्तवडया
धावद्रथ्यतुरङ्गनिष्ठुरखुरलुण्णयोऽस्तशौलस्थले । तस्मा-

हुचलितेन धातुरजसा लिप्तानुरकाङ्गको मन्दाशुः
प्रियदर्शनः खलु सहस्रांशुर्दृष्टयते ॥ ६३ ॥ पुराण-
श्रिभ्रजालेषु स्रस्तेष्वस्ताचलम्बनम् । विष्णाम्बुह्रान्
नेतुरम्बरादवलम्बते ॥ ६४ ॥ पूर्वभागतिमिप्रवृत्तिभि-
र्व्यक्तपङ्कमिध जातमेकतः । संहृतातपजलं विधस्वता
भाति किञ्चिदिव शेषवत्सरः ॥ ६५ ॥ पूर्वां क्षणक्रम-
नारितसमस्तरागां हित्वा निजान्तिकमुपेत्य रवीं
सराने । आलोकतः पुनरमुष्य धृतप्रसादा जाता
चिरेण चरमा परमानुरक्ता ॥ ६६ ॥ पूर्वाहं विहितो-
दयाऽहमसकृत्तन्मां विहायाधना यस्यामस्तमुपैति तां
कथमसौ रागी जघन्यामगात् । इत्येवं श्लथितांशुने
दिनपती याते दिशं पश्चिमाभीष्यांसोपविपादिनोव
तमसा प्राची ककुब्जलक्ष्यते ॥ ६७ ॥ पृथु गगनकञ्च-
स्कन्धचक्रं किमेतत्किमु रघिरकपालं कालाकापालि-
कस्य । कललभरितमन्तः किं नु तार्ध्याण्डलार्ध

सन्ध्यारूपी छिन्नका फेंक दिया और दानोंका रस चूसकर
तारे-रूपी बीज इधर-उधर थूककर छितरा दिए हैं ॥ २७ ॥ जैसे
ही सूर्य पश्चिम समुद्रमें डूबा जैसे ही वीरिहीके हृदयमें कामान्ति
जाग उठी और पश्चिम दिशामें अँधेरा फैलनेके साथ-साथ
कामियोंके मनमें भी घबराहट वेगसे बढ़ गयी ॥ २८ ॥ जब
पूर्व दिशाने देखा कि पश्चिम दिशाके पास पहुँचकर सूर्य अधिक
अनुरागमुक्त (प्रेमपूर्ण, लाल) हो गया है तब वह शोकके
भारे तमोगुण (शोक, अँधेरे) से भरकर उदास हो गई
है ॥ २९ ॥ सन्ध्या समय पूर्व समुद्रमें डूब रहा है,
मतवाले भीरे कमलोंके भीतर घुसे जा रहे हैं, उपवनके
पेड़ोंके घोंसलोंमें चिड़िँएँ बसेरा ले रही हैं और नवेलियोंके
हृदयमें कामदेव धीरे-धीरे अपने पैर बढ़ा रहा है ॥ ३० ॥
देखो, परिचमकी धार लटकते हुए सूर्यकी लम्बी परछाईं
सरोवरके जलपर पड़ी हुई पेली जान पड़ रही है मानो
सोनेका पुल बना दिया गया हो ॥ ३१ ॥ एक सहस्र
पैरोंवाला सामंथ्यवान् (सूर्य) भी जिसके धानेपर उधर
नहीं पाता वह प्रदोष- समय (भयंकर दोषोंका समय,
सन्ध्याकाल) निरपच ही दोषाकर (पापोंके डेर, चन्द्रमा)
की हृदि करना चाहता है ॥ ३२ ॥ सन्ध्या समय
सूर्यके लाल-लाल होकर सुन्दर दिग्दर्श पड़नेका कारण
यह है कि सूर्यके रयके धोंदोंने जब पहले-पहल समुद्रमें
बषयानलकी लपटें (धोंदों) देरीं तो उन्हें देखनेकी उमंगमें ये

पेले सरपट दौड़े कि उनकी करारी टापोंसे अस्ताचल पिस गया
और उनसे जो गेरु धादि धातुओंकी धूल उड़ी उससे सूर्यका
शरीर रँग उठा और किरणें पुंघली पड़ गईं ॥ ३३ ॥ अपनी
सब किरणें ऋद्ध जानेके कारण सूर्य निराधार हो गया है
हूसीलिये सन्ध्या समय उसका मण्डल आकाशसे नीचेकी
ओर लटका जा रहा है ॥ ३४ ॥ सन्ध्या समय जब पूर्व दिशामें
कुड़-कुड़ अँधेरा छाने लगा और धूप मन्दी पड़ने लगी उस
समय आकाश उस सूले तालावके समान दिखाई देने लगा
जिसमें कोधड़-भर बची रह गई हो ॥ ३५ ॥ समयके बरने
जिस पूर्व दिशा-रूपी नायिकाका सारा राग (प्रेम, लज्जा)
दूर हो गया है उसे छोड़कर जब सूर्य अनुराग सहित
(लाल होकर) परिचम दिशाके पास पहुँचे तो परिचम
दिशा भी प्रसन्न होकर उनपर ध्यानत अनुरक्त (लाल)
हो उठी ॥ ३६ ॥ सन्ध्या समय विना किरणोंवाले सूर्यकी
पश्चिम दिशामें अस्त होते देखकर मानो हूसी चिन्तामें
घुलकर पूर्व दिशा उदास (अँधेरेसे भरी) दिखाई पड़
रही है कि-अँ ही पूर्व दिशा (प्रथम पत्नी) हैं, मैंने
ही सूर्यका उदय (उलति) किया है फिर भी वह मुँ
कैसा कामान्ध (लाल) है कि बार-बार मुझे सोदकर
उसी नीच परिचम (दूसरी) दिशा (नायिका) के पास
जाता रहता है जहाँ उसे अस्त हो जाना पड़ता है !
॥ ३७ ॥ सन्ध्या समय सूर्य-मंडलको देखकर यह विच

प्रजनयति वितर्कं सान्ध्यमर्कस्य विभ्रम् ॥ ६८ ॥ प्रदो-
पसमयो कस्य हृते न स्याद्भयवहः । यस्मिन्माते
प्रजत्यस्तं तेजसां निधिरप्यहो ॥ ६९ ॥ प्राचीमालम्ब्य-
माने घनतिमिरचये यान्धय वन्धकीनां सम्प्राप्ते च
प्रतीचीं शशिकरनिकरे वैरिणि स्वैरिणीनाम् । अर्ध-
श्यामोपलार्धस्फटिकमिव दिशामन्तरालं विधत्ते कालि-
न्दीजङ्घुकन्यामिलदमलजलस्यन्दसन्दोहमैत्रीम् ॥ ७० ॥
प्राञ्जलावपि जने नतमूर्ध्नि प्रेम तत्प्रणयचेतसि हित्वा ।
सन्ध्यायानुविधत्ते चिरमन्त्या चापलेन सुजनेतरमैत्री
॥ ७१ ॥ वद्धकाशमपि तिष्ठति क्षण सायशेषविधरं
कुशेशयम् । पट्पदाय वसतिं श्शीष्यते प्रीतिपूथमिव
दातुमन्तरम् ॥ ७२ ॥ भानुविम्बमिदमस्तगाभि च
प्रोद्यतं कुमुदवन्धुमण्डलम् । दृश्यते रतिपतेः प्रवा-
सिनां क्रोधरकमिव लोचनद्वयम् ॥ ७३ ॥ मध्यमोपल-

निमे लसदंशात्रेकतन्च्युतिमुपेयुपि मानो । चौघयाद्
परिवृत्तिघिलोलां हार्यप्रिभिन् वासरलक्ष्मीम् ॥ ७४ ॥
मन्त्रसंस्कारसम्पन्नास्तन्द्वादन्वतीरपः । एतन्नयीमयं
ज्योतिरादित्याख्यं निमज्जति ॥ ७५ ॥ महद्भिरोघेस्त-
मसामभिद्रुतो भयेऽप्यसम्मूढमतिर्भ्रमन्तिता । प्रदीप-
धेयेण गृहे गृहे स्थितो विश्वएव देहं बहुधेव भास्करः
॥ ७६ ॥ मुकमूललघुरुन्मिक्तपूर्वः पश्चिमे नभसि
सम्भृतसान्द्रः । सामि मज्जति रघो न चिरेजे (पत्र-
जिह्व इव रश्मिसमूहः ॥ ७७ ॥ मुग्धस्य केलियिजित
स्मरचापयष्टेरातन्वती रुचिमतीव सुधाकरस्य ।
रागोद्भुरा स्फुटमुदञ्चिततारकश्रीः सन्ध्याविरस्ति
ननु कापि पतिवरेव ॥ ७८ ॥ यातोऽस्मि पन्ननयने
समयो ममैव सुता मयैव भवती प्रतियोधनोया ।
प्रत्यायनामयमितीव सरोरुहिएयाः सूर्याऽस्तमस्तक-

हाता है कि यह आकाशरूपी धृक्का सिर है या काल-
रूपी अघोर्षीके हाथकी रक्तभरी खापड़ी है या भीतर माससे
भरा दुग्धा वह अडा है जिसमेंसे गरुड उत्पन्न हुए थे ॥ ६८ ॥
वह प्रदोप (सन्ध्या, अत्यन्त दापी) का समय किसके
लिये भयानक नहीं होता जिसके धा पढ़नेपर बड़े-बड़े
तेजस्वा (सूर्य, तेजस्वियोंकी निधि) भी अस्त (समाप्त)
हो जात हैं ॥ ६९ ॥ जिस समय व्यभिचारिणां छियोंकी
पीठ टोकनेवाला अंधेरा पूर्व दिशामें फैल रहा था और उजले
बख पहनकर अपने प्रेमियोंसे मिलने जानेवाली नवेलियों
(शुक्लाभिसारिकाओं) के शत्रु (चन्द्रमा) की किरणों
परिचम दिशामें फैल रही थीं उस समय आकाश ऐसा जान
पड़ता था मानो वह आधा नीलमले और आधा सगमर्मसे
जड़ा हुआ हो अथवा रागा और यमुनाका संगम बन रहा
हो ॥ ७० ॥ अपने सामने हाथ जोड़कर उड़े हुए और ध्यान
लगाए हुए (सन्ध्या करते हुए) लोगोंका निरादर करती हुई
बञ्जल सन्ध्या चल दी और उस समय उसने दुर्जनोंसे अपनी
मित्रता जोड़ ली ॥ ७१ ॥ सायङ्काल उँदे हुए कमलका
धोड़ा-सा सुला हुआ उँद ऐसा जान पड़ता है मानो वह अलेरा
बाहनेवाले भीतरीके अत्यन्त प्रसन्नताके साथ स्थान देनेके
लिये प्रस्तुत हो ॥ ७२ ॥ सायङ्काल अस्त होते हुए सूर्य
और उदय होते हुए चन्द्रमा दोनों लाल लाल ऐसे जान पड़ते
हैं माना कामदेवपर काध किए हुए विद्यागिमांके दाखाल लाल
नेत्र हैं ॥ ७३ ॥ लालमणिके सुमेरुके दानेके समान पक और

लटके हुए जाल सूर्यकी किरणों सायङ्काल जब कपर उठ रही थीं
उस समय आकाश ऐसा जान पड़ता था मानो उसमें हारकी
लरियां उलटकर हिल रही हों ॥ ७४ ॥ सायङ्काल ऋग्वेद,
यजुर्वेद तथा सामवेदका साक्षात् रूप जो सूर्य नामका
प्रकार है वह समुद्रके जलकी मन्त्रोंसे पवित्र करता हुआ
समुद्रमें डूब रहा है ॥ ७५ ॥ सायङ्काल जब अंधेरा
बढ़ा भारी आक्रमण हुआ तब सूर्य उस आपत्तिके समयमें
भी बिना धीरज खाए अपने शरीरके अनेक टुकड़े करके
घर परमें दीपकका वेश धारण करके भूमण्डलपर ही चक्कर
लगाते रहे ॥ ७६ ॥ जब सायङ्काल सूर्य आगे ढूब गए
उस समय सूर्यकी जो किरणें लड़ कट जानेसे छूटकर
आकाशमें छा गईं थीं वे हतनी दुखी और उदास जान
पड़ती थीं कि उनमें पहलेकी सी चमक नहीं रह गई था
॥ ७७ ॥ कामदेवके लिये हुए धनुषसे भा धपिक सुन्दर और
मनोहर चन्द्रमाहारी नायकसे रुचि (प्रेम, शोभा) रखने-
वाली सन्ध्या उस स्वयम्बर भूमिमें आई हुई नायिकाके समान
जान पड़ती है जिसमें राग (प्रेम, लज्जा) भरा है और
जिसके तारे (पुतलियाँ), डिमटिमा रहे हैं (चञ्चल हैं)
॥ ७८ ॥ सायङ्काल अस्ताचलपर जात हुए सूर्य ऐसे जान
पड़ते हैं माना वे अपनी लाल किरणें फला फलाकर कमलका
जताको यह कहकर वादस दे रहे हा कि 'हे कमलके नेत्रवाली !
अब मैं चल रहा हूँ क्योंकि भरे जानेका समय आ गया है,
प्रातःकाल मैं ही दुःखें सातसे जगाऊँगा (चिन्ता न करना)'

निविष्टकरः करोति ॥ ७६ ॥ खेरस्तं तेजः प्रमुदयति
खद्योतपटली मराहासी मूका कलकलपरोलुक्-
पटती ॥ इदं कष्ट दृष्ट्वा चिरमसहमाना कमलिनी
भ्रमदभृङ्गव्याजाकचलयति हालाहलमिव ॥ ८० ॥
लोमपरयेद्य परया पतङ्गुल्लुण्ठित विलोक्य सखे ।
चन्द्रमिपात्पुनरन्यं पूर्वं प्रोड्वायत्येषा ॥ ८१ ॥
रुचिघाञ्जि भर्तारं भृशं विमलाः परलोकमभ्युपगते
विशिशुः । ज्वलनं त्विषः कथमियेतस्था सुलभोऽन्यज-
न्मनि स एव पतिः ॥ ८२ ॥ विरलातपच्छ्विविरुण्णयपुः
परितो विपाण्डु दधदध्रगिरिः । भ्रमवद्गतः परिश्रान्तिं
शिथिलः परिमन्दसूर्यनयनो दिवसः ॥ ८३ ॥ विलोक्य
सङ्गमे रागं पश्चिमाया विषस्वतः । कृतं कृष्णं मुखं
प्राच्या नहि नार्यो विनेर्ष्यया ॥ ८४ ॥ विश्लेषाकलचक्र-
वाकमिथुनेरुःपक्षमाक्रन्दितं फाटययादिष भीलितानु
नलिनीप्यस्त्रच्च मित्रे गते । शोकेनेव दिगङ्गनाभिर-

मितः श्यामायमानैर्मुद्गैर्निःश्वालानिलधूमवर्त्य इवो
द्वीर्णास्तमोराजयः ॥ ८५ ॥ विहिताञ्जलिजनैतया
दधती विकसत्कुसुम्भकुसुमारुणताम् । चिरमुज्जि-
तापि तनुरौज्ज्वलसौ न पितृप्रसूः प्रकृतिमात्मभुवः
॥ ८६ ॥ व्योम्नस्तापिच्छुगच्छ्वावलिभिरिव तमोवह-
रीभिर्वयन्ते पर्यन्ताः प्रान्तवृत्त्या पयसि वसुमती नूतने
मज्जातीव । वाक्यासंवेगविष्वन्विततवलयितस्त्रीतपू-
न्याप्रकाशं प्रारम्भेऽपि त्रियामा तरुण्यति नित्र
नीलिमानं वनेषु ॥ ८७ ॥ शुचिरिति परितः प्रसिद्धि
भाजि प्रकटिततेजसि दुर्जये कृशानौ । निजवसुनिकु
रम्भमस्तवेलाव्यतिकरवाञ्छिदधे सरोजवन्धुः ॥ ८८ ॥
सन्ध्याताएडवचरडदएडपरशुमारब्धभीमभ्रमीवेगस
स्तकपर्द्वासुकिफणाणाणिक्यशङ्कावहम् । मग्नं पापसि
पश्चिमस्य जलधेर्मात्तएडविन्धं ततो ध्वान्तैर्भूतगणै-

॥ ७६ ॥ कमलिनीमें सुस्तते हुए भँरे ऐसे जान पड़ते हैं मानो
सन्ध्या समय जब सूर्यका प्रकाश जाता रहा, जगुनु चमकने
लगे, हसोंका मुख खुप हा गया और उरुलू धू-धू करने लगे
तब यह सब डलदफर देखकर कमलिनीसे न रहा गया और
पह अपने ऊपर बैठे हुए भँरोंके रूपमें विपकी गोलियाँ घूँटने
लग रही हो ॥ ८० ॥ हे मित्र ! ज्यों ही पूर्व (पूर्व दिशा,
पहली) ने देखा कि लोभके कारण सूर्य किसी दूसरी नायिकाके
साथ करवट बदल रहा है त्यों ही वह भी चन्द्रमारूपी दूसरे
नायिकके साथ भाग निकली ॥ ८१ ॥ सूर्यको नित्य प्रातः
जो उनकी ज्योति मिल जाती है इसपर कवि रुढ़ता है कि जब
सूर्यरूपी पति दूसरे लोकमें चला जाता है तब उनकी अत्यन्त
पवित्र ज्योतिरूपी स्त्री ग्राममें (सन्ध्याकी लज्जामें) प्रवेश
कर जाती है, नहीं तो दूसरे जन्ममें (प्रातःकाल) उसे वही
पति बैसै मिल पाता ॥ ८२ ॥ सन्ध्या समय दिन यूँदा सा
दिखाई देने लगा, दिनकी पूव कम हो गई (बुँके शरीरपर
झरियाँ पड़ गईं), गर्मी शान्त हो गईं । शरार ठण्डा पड़
गया), चारों ओर आकाश उजला हो गया (सिरके बाल पक
गए), अन्तिम दशामें पहुँचकर दिन मन्दा पड़ गया (बुँदापेमें
शरीर ढाला पड़ गया) और सूर्य अस्त होने लगा (यौँलोंकी
ज्योति जाती रही) ॥ ८३ ॥ स्त्रियोंके मनसे कभी ढाह नहीं
दूर हो सकती क्योंकि देखो ! सायङ्काल ज्यों ही पूर्व दिशामें देखा
कि सूर्यके साथ पश्चिम दिशाका राग (लहराई, प्रेम) हो गया
त्यों ही उसका मुँह काला पड़ गया ॥ ८४ ॥ सन्ध्या समय

विद्योहके डरसे घबराए हुए चकवा-चकवी अपने पढ़ कर
फड़ाकर चिल्ला रहे हैं, मानो उनकी यह विपत्ति न देख
सकनेके कारण ही कमलिनीने करपासे अपनी कमलरूपी
झाँझें मुँह ली है और जब सूर्य अस्त हो गए तब दिशाक्षी
नायिकाओंका मुख मानो शोकेसे काला पड़ गया और उन्हीं
अपनी साँसों द्वारा शुश्रूँ उगल उगलकर चारों ओर छँपता
फैला दिया ॥ ८५ ॥ खिले हुए केसरके फूलके समान लाल
वर्णकी उस ब्रह्माके शंशरूपी सन्ध्याको सभी लोग प्रणाम कर
रहे हैं जिसने बहुत पहले ब्रह्माते छोड़े जानेपर भी अपना
स्वभाव नहीं बदला है क्योंकि अतीतक इसमें बचपनकी लज्जा
है अतः यह ब्रह्माके समान ही पृथ्व है ॥ ८६ ॥ सारा आकाश
तमालके गुच्छोंके समान काले शँधेरेसे ऐसा भर गया मानो
पृथ्वी गँदले पानीमें डूब गई हो और सन्ध्याते ही रात्रि अपने
उस शँधेरेकी जड़लोकमें बड़े वेगसे फैला रही है जो ऐसा जान
पड़ता है मानो वायुके वेगसे चारों ओर फैल रहा हो और
धिर धिरकर उड़ रहा हो ॥ ८७ ॥ जैसे अन्तिम समय करों
अपनी सम्पत्ति किसी सज्जनको दे डालता है उसी प्रकार अब
अस्त होनेका खबर आया तब सूर्यने भी पवित्रतामें गरा पाए
हुए, चारों ओर प्रभावशाली तथा किस्से भी न दूब
सकनेवाले अतिको अपनी किरणरूपी धन सम्पत्ति सौंप दी
॥ ८८ ॥ सन्ध्या समय डूबते हुए सूर्य और बड़ते हुए
शँधेरेको देखकर ऐसा लगता है मानो जब शङ्करजीने सन्ध्या
समय गौपटव चूष्य करते हुए अपने विनाश डरतेवाँ

गाहि भुवनं मन्ये तदन्वेषिभिः ॥ ८६ ॥ सन्ध्यावध्वक्ष-
शोणं तनुदहनचित्ताङ्गारमन्दाकर्मिभ्यं तारानारास्थि-
कीर्णं विशदनकरङ्गायमाणोज्ज्वलेन्दु । हृष्यध्रकञ्ज-
रौघं घनतिमिरमहाधूमधूप्रानुकारं जातं लीलायम-
शानं जगदखिलमहो कालकापालिकस्य ॥ ९० ॥
सान्ध्यमस्तमितशेषमातपं रक्तलेखमपरा विभति
दिक् । सम्परायवसुधा सशोणितं मण्डलाग्रमिव तिर्य-
गुत्थितम् ॥ ९१ ॥ सान्ध्यरागरुधिरारुणमारात्रिःपपात
रधिमण्डलमध्वौ । झुरकालकरवालधिलूनं वासरस्य
सहसैव शिरो नु ॥ ९२ ॥ सैरन्धीकरकृष्टकङ्कणसरञ्जी-
रध्वनिः सञ्चरद्दूतीस्र्त्रितसन्धिविग्रहविधिः सोल्ला-
सलीलाधरः । धारस्त्रीजनसज्जमानशयनः सन्नद्धपुष्पा-
युधः श्रीखण्डद्रवधातसौधशिखरो रम्यः क्षणो वर्तते
॥ ९३ ॥ स्थानमाह्निकमपस्य दन्तिनः सल्लकीचित्प-

भङ्गावासितम् । आग्निभातचरणाय शुकते घारि घारि-
रुद्वयद्वयद्वयद्वयम् ॥ ९४ ॥ स्पृष्टोत्सत्किरणेसरसूर्य-
यिम्प्रयिस्तीर्णैकणिकमयो दिवसारधिनन्दम् । शिलाष्ट-
दिग्दलकलापमुपावतारवद्धान्यकारमधुपावलि सञ्ज-
कोच ॥ ९५ ॥

रजनिर्वाणम्—उन्मुक्ताभिर्दिवसमधुना सर्वतस्ता-
भिरेव स्वच्छायाभिर्निजुलितमिव मेघ्यते विश्वमेतत् ।
पर्यन्तेषु ज्वलति जलधौ रत्नलानां च मध्ये चित्रा-
ङ्गीयं रमयति तमःस्तोमनीला धरिनी ॥ १ ॥ जगत्ता-
पकरे लीने शयानास्वभिज्जनीपु च । निशा कुवलयामोदं
विधातुमियमुद्यता ॥ २ ॥ ज्योत्स्ना भस्मच्छुरणधवला
विभ्रती तारकास्थीन्यन्तर्धानव्यसनरसिका रात्रिका-
पालिकीयम् । द्वीपाद्वीपं भ्रमति दधती चन्द्रमुद्रा-
कपाले न्यस्तं सिद्धाञ्जनपरिमलं लान्छनस्य चक्षुलेन

फरसेको वेगसे घुमाया तव उसके वेगसे वासुकि नागके फयाका
जो मणि गिरकर पश्चिम समुद्रके जलमें डूब गया उसी सूर्य-
रूपी मणिको अन्धकार रूपी भूतगण संसार-भरमें घूम
घूमकर हँद रहे हों ॥ ८६ ॥ सूर्यास्तके समय सारा संसार
कालरूपी अघोड़ीकी सायनाका वह रमशान बन गया जहाँ
सौंफकी ललाई ही रचिर थी, सूर्य ही चिताके अहारे थे, सारे
ही हृदयोंके टुकड़े थे, चन्द्रमा ही मनुष्यकी उजली खोपड़ी था,
प्रसन्न होकर रातमें चलनेवाले (राक्षस, चोर आदि) ही
भूत-पिशाच थे और घना अँधेरा ही धुआँ था ॥ ९० ॥ पश्चिम
दिशामें कुट्ट-कुट्ट बची हुई और तिरछी होकर उठी हुई लाल-
लाल धूप ऐसी दिशाई पढ़ रही है मानो युद्ध-भूमिमें रचिरसे
तर कोई तलवार तिरछी पड़ी हो ॥ ९१ ॥ सन्ध्याकी ललाई-
रूपी रचिरसे रँगा हुआ और समुद्रमें डूबता हुआ सूर्यमण्डल
ऐसा जान पड़ता है मानो निपटुर यमराजकी तलवारने दिनका
सिर काट गिराया हो ॥ ९२ ॥ क्या ही सुन्दर समय है कि
एक ओर मायिकाको सजानेवाली रँगीली छियाते जा मायिकाके
हाथसे कड़े खोचकर निकाले है उनकी मञ्जुर मन-मन सुनाई
पढ़ रही है, वधर दूतियाँ पति-पत्न्यामें मेल मिलाप और लड़ाई-
मगड़का बोल बँटा रही हैं, कहीं अनेक नर-नारी प्रसन्नवासे
आनन्द काँडा कर रहे हैं, बेरपाएँ अपने बिछीने सजा रही हैं,
कामदेव अपनी कमर कस रहा है और कहीं चन्द्रनके पानीसे
अटारियोंकी घुँते पोई जा रही हैं ॥ ९३ ॥ यह ठीक ही है
कि हाथी अपनी दिनभरका खेल-कूद करके सजईकी टूटी हुई

ढालियोंसे महकते हुए स्थान छोड़कर प्रातःकालतकके लिये वह
जल पी रहे हैं जिसके कमलोंपर भीरे गूँज रहे हैं ॥ ९४ ॥ सन्ध्या
समय वह दिनरूपी कमल सुँदने लगा जिसमें सूर्यमण्डल ही
उसका गद्दा (बीजकोप) है, सूर्यकी किरणें ही जिसमें पराग
(केसर) हैं, प्रकार न रहनेसे परस्पर मिलो हुई धाड़ों दिशाएँ
ही जिसकी पंखुदियाँ हैं और घिरा हुआ अन्धकार ही जिसमें
भीरोंका समूह है ॥ ९५ ॥

रातका वर्णन : संसारने दिनभर जो अपनी परदाही
छोड़ी थी, उसी परदाहीसे रातको वह चारों ओर घिरा हुआ
ऐसा दिखाई पढ़ रहा है मानो पृथ्वीके आस पास समुद्रमें
बदवानलकी लपटें चमक रही हों, और बीचमें पहाड़ोंपर
रत्नोंकी चोटियाँ जगमगा रही हों किन्तु पृथ्वी स्वयं अन्धकारसे
ढककर काली हो गई हो । इस प्रकार यह विचित्र प्रचारेके
रङ्गोंवाली रात बढ़े सुहावनी लग रही है ॥ १ ॥ सूर्यके द्विप
जानेपर (संसारको ताप देनेवालोंके समाप्त हो जानेपर) और
कमलिनियोंके सौ जानेपर यह रात्रिप्यारे कुमुदके साथ आनन्द
करनेकी तैयारी कर रही है (कुमुदमें गन्ध भरनेकी तैयारी
कर रही है) ॥ २ ॥ यह रात्रिरूपा अघोरपंथी स्त्री चाँदनीरूपी
भस्म पोतकर उजली बनी हुई है, तारेरूपी हड्डीके टुकड़ोंकी
माला पहने हुई है, सभी बस्तुओंको अँधेरेमें द्विपाप हुए है
(अन्तर्धान हो जाती है), कज्जलरूपी सिद्ध काजलवाली चन्द्रमा-
रूपी खोपड़ी लिए हुए है और इसी रूपमें एक द्वीपसे दूसरे द्वीप
(एक स्थानसे दूसरे स्थान) पर चकर लगा रही है ॥ ३ ॥ अत्यन्त

॥ ३ ॥ निविडलमनमस्तोमस्तिमितमिस्राचिमि-
श्रवेलायाम् । अम्बरवाटीकुसुमाकारास्तारास्तार
विमान्ति सस्फाराः ॥ ४ ॥ नृपतिपुरुषशङ्खितप्रचारं
परशुहृदपणनिश्चितेकघोरम् । घनतिमिरनिरुद्धसर्व-
भावा रजनिरियं जननीय संवृणोति ॥ ५ ॥ रात्रिर्भ-
वित्री बहुदुःखदात्री दीर्घा ननु प्रोपितभर्तृकाणाम् ।
इतीव निश्चित्य मनस्यशेषोऽप्येषा प्रियामा विहित्वा
विधात्रा ॥ ६ ॥ व्योमपात्रमपि चैकपाणिना विस्फुटो-
डुकुसुमानि विश्रतो । अन्यपाणिकलितेन्दुदर्पणा
कामिनीय रजनीयमागता ॥ ७ ॥ शशङ्के सचन्दे भरत
इध सन्ध्यायवनिका तिरोभूत्वा पुष्पाञ्जलिमिव विकी-
यांडुनिकरम् । कलं गायन्तीभिः कुमुदघनभृद्भोभिर्धुना
नभो रक्षं प्राप्ता विहरति निशालासिकचभूः ॥ ८ ॥
मध्याश्रकावावर्णनम्—रतिकृति गते भायानिद्रां

घने अन्धकारके समूहसे भरी हुई अंधेरी रातमें आकाशकी
फुलवारीके फूलके समान टिमटिमाते हुए तारे ऐसे जान पड़ते
हैं मानों अँधिले फाड़ फाड़कर अँधेरीमें देल रहे हों ॥ ४ ॥ रातके
तिम घने अन्धकारके कारण कुछ भी दिखाई नहीं दे सके है,
उस समय रात्रि ऐसे व्यक्तियोंकी माता बनकर उनकी रक्षा कर
रही है जिनके बाहर निकलनेपर राजाके पहरेदार उनपर सन्देह
करते हैं और जो अपने दुराचारोंसे दूसरोंका घर विगाड़नेमें
प्रसिद्ध हैं ॥ ५ ॥ मन्वाने यही सोचकर यह रात प्रियामा
(तीन ही पहरेकी) बनाई है कि यदि कहीं और बंदी कर दी
गई तो परदेशमें गए हुए लोगोंकी पत्नियोंको बहुत कष्ट देने
लगेगी ॥ ६ ॥ चाँदनी रात ऐसी कामिनी नायिकाके समान
प्रतीत हो रही है जो एक हाथमें उगे हुए तारेरूपी खिले हुए
पुल्लोंसे भरी आकाशरूपी पिटाही लिए हुए है और दूसरे हाथमें
चन्द्रमाल्परी शीशा लिए हुए है ॥ ७ ॥ जय रातके समय
चन्द्रमा शीशाचार्पणके समान अपनी कला दिखानेके लिये
उपस्थित हुआ उस समय सन्धारूपी परदेके पीछेसे ही रात्रि
रूपी नटीने फूलके समान तारे अञ्जलिमें भरकर विचारे लिए
और फिर उजुदके घनमें गुनगुनाती हुई भीरीरूपी सत्तियोंके
साथ आकाशरूपी रत्नमयपर नाच्य करने लगी ॥ ८ ॥

श्रापों रातको मीढ़ाश्रोक पाण्डुनः श्रापी रातके
समय जब अग्रथिके धाहनवाले प्रियतम बनावटी नींद करके
सो गए, तब उसकी प्रियतमा बार-बार उनका मुँह धूमने लगी
जिससे उसके शरीरमें रोमांच और पसीना हो आया और वह

प्रवर्तितचुम्बना पुलरूपयसा तस्वं मत्वा सुखाद्-
हृतानना । कृतकशयना निप्राह्णोऽसोत्युर्ध्वं कलं
वधूर्ध्वशितमधरं कृत्वा दन्तैरपूरयत इष्टानाम् ॥ १ ॥
वदनशशिनः स्पर्शे शीतादिवागतवेपथुस्तनयुगले
भ्रान्त्या तुङ्गे निषिष्ट इव भ्रमात् । उल्लितमदनाङ्गारे
तन्ध्यास्ततो जवनस्थले सपुलकजलः पत्युः पाणि
विलीन इवामघत् ॥ २ ॥ शमितनिखिलदोषे सुप्तनिद्रा
लुलोके रतपरचशचित्ता मध्यरात्रे वितुङ्गा । प्रथम
सुरतखिलां मुग्धिकां बोधयन्तो बहुदृढपरिरमै
कामुकाः वेदयन्ति ॥ ३ ॥

तमोवर्णनम्—अमुपि मनुद्यानद्रुमकुहरनीरन्ध्रभरिते
तम खण्डे पिण्डोक्तवहलकालायसवने । यतामद्या
स्माकं कथमपि पुरोन्पस्तचरणं निमेषेऽप्युन्मेषे नहि
नहि विरोधो नयनयोः ॥ १ ॥ अम्बरविपिमिदानीं

नवेली समझ गई कि ये निरचण ही भूट सूट नींदका यहाना कर
रहे हैं, इसलिये उसने प्रियतमके मुँहसे सटा हुआ घनना मुँह
अलग न करके यह कहते हुए 'कि आप बनावटी नींदमें सोए
हुए हैं । आपको तो पास भी नहीं आने देना चाहिए !'
अपने दाँतोंसे प्रियतमके श्रोत्र काटकर ही अपनी इच्छा
पूरी कर ली ॥ १ ॥ किसी नवेलीके पतिने जब अपनी
प्रियतमके मुँहपर हाथ फेरा तो उसकी ठडकले कण हो आया
और हाथ पसीज उठा । उस समय ऐसा जान पड़ा मानों
मुलचन्द्रकी ठडकके कारण ही वह हाथ काँपने लगा हो, फिर
वहाँसे हाथ हटाकर स्तनोंपर हाथ फेरते हुए जो उसने स्तनोंके
अग्र भागपर हाथ रोक लिए तो ऐसा जान पड़ा मानों उसका
हाथ ऊँचा-सा स्थान देखकर विभ्राम कर रहा हो, तथा फिर
वहाँसे हटाकर कामाग्निसे दहकते हुए अङ्गारके समान जवन
स्थलपर आकर जो उसका हाथ रुक गया तो ऐसा जान पड़ा
मानों उसका जलमय हाथ उस कामाग्निके अङ्गारकी झुंकर बनी
धुनधुनाकर खल गया हो ॥ २ ॥ श्रापी रातको जब दीर्घ
षट् गए और सब लोग गहरी नींदमें सो गए उस समय रतिके
फेरमें जागते हुए कामी पुरुष पहले एक बार रति करनेसे अन्ध
सोई हुई अपनी नवेली प्रियायोंको जगा-जगाकर, कस-कसकर
पातीसे खगा लगाकर उन्हें सन्न कर रहे हैं ॥ ३ ॥

अन्धकारका घर्षणः श्रमराद्योंके पैरोंके बीचके
स्थानमें टसाटस भरे हुए और गलाकर ठोस बनाए हुए हल
काशे-वाले सोहरेके समान घने अँधेरीमें हम सँभलकर हैं

तिमिरवराहोऽवगाहते जलधेः । रोमसु यदस्य
लज्जास्तारकजलविन्द्वो भान्ति ॥ २ ॥ अघघार्थ
कार्यगुरुतामभवन्न भयाय सान्द्रतमसन्तमसम् ।
सुतनोः स्तनी च दयितोपगमे तनुरोमराजिपथवे-
पथवे ॥ ३ ॥ अघिज्ञातविशेषस्य सर्वतेजोपहारिणः ।
स्वामिनो निर्विकेकस्य तमसश्च किमन्तरम् ॥ ४ ॥
आपूरितमिदं श्यामतमसन्तमसैरलम् । ब्रह्माण्डम-
ण्डलं भाति सकज्जलकरण्डवत् ॥ ५ ॥ आभाति धूस-
रतरं तिमिरं पुस्तादन्तःस्फुरद्विरलतारकभारमेतत् ।
दग्धुं धियोगिधिपिनं सितरश्मिवद्वेधुंमो ज्वलित्यत
इवानुगतस्फुल्लिङ्गः ॥ ६ ॥ आहिकोत्तापदधानां
प्रयाणां जगतां वत । तपनाधिपि' शान्ते तद्रस्मेदं
तिमिरं तु न ॥ ७ ॥ इदं नभसि भीषणभ्रमदुल्लफको-
लाहलैनिशाचरविलासिनीनिघहृदचनेत्रोत्सवम् । परि-
स्फुरति निर्भरप्रचुरपङ्कमशोभसद्वराहकुलमांसलप्रध-
लन्यमन्धं तमः ॥ ८ ॥ उत्खातच्छिन्नसन्ध्याद्य-

कमलचनो ध्योमकासारमध्यं मन्ये मत्तो निशीधाद्य-
चनमहिपो मध्यधित्तिन्मिचुः । तत्कालोद्भिद्भ्रमानः
सह तनुपुष्टुभिन्तारकापुद्बुदोवैस्तम्मादेवोच्चिद्विदिते
कलुपितभुयधनं भीषणो घ्यान्तपङ्कः ॥ ९ ॥ उद्दाम-
द्विद्विरदचञ्चलकर्णपूरगण्डस्यलोच्चलदलित्त्ववकाठ-
तीनि । मीलजभांसि शृगनाभिममानभांसि दिक्कन्द-
रेषु विलसन्तितमां तमांसि ॥ १० ॥ एकतामिय
गतस्य विवेकः कस्यचिन्न महताऽणुपलेभे । भास्यता
निदधिरे भुयनानामात्मनीव पतितेन विशेषाः ॥ ११ ॥
एतद्योमवनीवराहघलयं विश्वेकवीरस्मरस्फुन्धावारम-
दान्धलिन्युरकुलं श्यामावधूकैशिकम् । वजुप्याञ्जन-
वस्तु धूसदसां विशिलप्रचक्राड्यस्तोमान्तर्गतधूम-
फेतनमहाधूम्या तमस्तार्यते ॥ १२ ॥ आंषतातपभया-
दपलीनं वासरच्छुधिविरामपटोयः । सन्निपत्य शून-
कैरिय निम्नादन्धकारमुदवाप समासि ॥ १३ ॥
काकोलं कलकण्ठका कुचलयं कादम्बिनी कर्दम-

तो ज्यां-त्यां रर लेते हैं किन्तु अँगि खोलने और मूँदनेमें कोई
अन्तर नहीं दिखाई पड़ रहा है ॥ ११ ॥ अघघकाररूपी वह सूधर
अन समुद्रसे निकलकर आकाशरूपी जङ्गलको हिलोदू रहा है
जिसके तारे ही मानो बालोंमें उलझी हुई जलकी बूँदें हों
॥ २ ॥ उस नवेलीने अपने पतिके साथ समागम करनेको
इतना यद्वा काम समझा कि अत्यन्त घने अन्धकारसे भी उसे
दर न लगा और वह ऐसी इहृदयदांमें चली कि उसके विशाल
स्तन भी उसकी पतली कमरको चलनेमें थापा नहीं दे सके
॥ ३ ॥ जैसे विवेकहीन स्वामी अग्ने-द्वारेकी परर न करके
सभीको अपनी धांसमें दबाए रखता है वैसे ही अंधेरेमें
भी किसी वस्तुका भेद नहीं दिखाई देता और प्रकाश नष्ट
हो जाता है ॥ ४ ॥ अत्यन्त घने काले अंधेरेसे भरा हुआ
यह ब्रह्माण्ड ऐसा जान पड़ता है मानो काजलसे भरा हुआ
यद्वा-सा कण्डाल हो ॥ ५ ॥ छिट्फुट तारोंके साथ यह सामने
बढ़ता हुआ घना अंधेरा ऐसा जान पड़ता है मानो वियोगी-
रूपी वनको जलानेके लिये चन्द्रमारूपी अग्निकी चिनगारियोंके
सहित धुआँ उठ रहा हो ॥ ६ ॥ यह अंधेरा ऐसा जान पड़ता
है मानो दिनके तापसे जलाए हुए तीनों लोकोंके आगकी
लपटों (सूर्य) के मुक्त जानेपर उनकी भस्म बच रही हो
॥ ७ ॥ इस समय आकाशमें उड़ते हुए भयवने उल्लू पू-पू
कर रहे हैं, रात्रिमियोंकी आँसैं डपटी हो रही हैं और गाढ़

कीचदमें लोटकर निकले हुए मोटे-से सूधरके समान काला
घना अंधेरा चारों ओर फैल रहा है ॥ ८ ॥ ऐसा जान पड़ता
है मानो यह अंधरात्रिन्पी मजगला जङ्गली भँसा सन्ध्यारूपी
लाल कमलके वनको उजाड़ पजाहकर उसका पानी धँसोलनेके
लिये आकाशरूपी तालाबमें घुस गया हो जिसके पानी
हिलोदूनेसे उठे हुए बुलबुले ही तारे हों और संसारको
काला कर देनेवाला भयानक अंधेरा ही उससे उठो हुई
कीचद हो ॥ ९ ॥ रासका अंधेरा उन कस्तूरीके रङ्गके भारीके
समान हो गया है जो मतवाले दिग्गजोंके माथोंपर बैठकर उनके
फटफटाते हुए कानोंसे उड़कर सारे आकाशमें भरकर फैल गए
हैं ॥ १० ॥ अंधेरेमें छोटी-बढ़ी सब वस्तुएँ जो एक-सी हो
गई हैं (सब धान बाहस पसेरी हो गए हैं) इससे जान
पड़ता है कि यहाँसे जाते समय संसारका सारा विवेक
सूर्य अपने साथ लिए चला गया हो ॥ ११ ॥ चारों ओर
झाया हुआ घना अंधेरा ऐसा जान पड़ता है मानो आकाश-
रूपी जङ्गलके सूधर या लुटे हों, संसारके अद्वितीय वीर
कामदेवकी सेनाके मतवाले हाथी रुढ़े हों, सुवती स्त्रियोंके
केश बिलसे हुए हों, उल्लूओंकी आँसैं खोलनेवाला अग्निन रस्सा
हो या एक दूसरेसे अलग हुए चकवी चकवेके हृदयकी आगका
धुआँ हो ॥ १२ ॥ जो अघघकार पहले प्रातःकालकी धूपके
बरसे भाग गया था वही इस समय दिनके प्रकाशको निर्मूल

वंसारिः कयरी कृपाणलतिका कस्तूरिका कज्जलम् ।
 कालिन्दी कपपट्टिका करिघटा कामारिकण्डस्थली
 यस्यैते करदा भवन्ति सखि तद्वन्द्ये विनिद्रं तमः ॥ १४ ॥
 काश्मीरगौरवपुष्यामभिसारिकाणांमावद्धरे-
 खमभितो मणिमञ्जरीभिः । एतत्समालदलनीलतमं
 तमिन्द्रं तत्प्रेमहेमनिकपोपलतां तनोति ॥ १५ ॥ कि
 भूमौ परितः स्फुरन्ति करिणः कस्तूरिकाया रसैः
 सिक्ताः किं निखिला दिशः किमखिलं व्याप्तं मयी-
 भिर्नमः । किं व्याप्तं भुवन् समस्तमपि च श्रीकण्ठ-
 कण्ठत्वपा कालिन्दीजलकान्तिभाजि निविडे जातेऽ-
 न्यकारेऽधुना ॥ १६ ॥ किमलभ्यताभ्यरचिलग्रमधः
 किमवधत्तौर्ध्वमवनीतलतः । विससार तिर्यगथ दिग्भ्य
 इति प्रचुरीभवन्न निरधारि तमः ॥ १७ ॥ घटितमिवा-
 खनपुञ्जं पूरितामयं मृगमदक्षोदैः । ततमिव तमालतरु-
 भिर्यतमिव नीलांशुकैर्मुच्यन्म् ॥ १८ ॥ चरमगिरिर्निरुज्ज-

मुष्णमानो भगवति गच्छति विप्रयोगखिन्ना । मुकुति
 तनयनाम्बुजा धरित्री वपुषि यभार तमांसि शैलानि
 ॥ १६ ॥ चिन्वञ्चोर्चिकोर्पितानि घटयद्वेतालग्रीषुसुसु-
 तन्यान् शशसाधनोद्धतरसं निर्व्याजवीरात्मताम् । इयं-
 त्कामकृशानुतप्तमनसां गुप्ताङ्गनासङ्गमं दृष्यत्कोकिल
 कालकण्ठमलिनं ध्वान्तं समुज्जृम्भते ॥ २० ॥ चूडारत्नै
 स्फुरद्भिर्विपधरविद्यारायुज्ज्वलान्युज्ज्वलानि प्रेद्यन्ते
 चक्रवाकीमनसि निविशते सूर्यकान्तात्कृशानुः । कि
 चामी शय्यन्तस्तिमिरमुभयतो निर्भराहस्तमिच्छा-
 सङ्घट्टोत्पिपदसन्ध्याकण्ठनिकरपरिरुपधिनी भान्ति दीपाः
 ॥ २१ ॥ तनुलग्ना इव ककुभः च्मावल्यं चरणचार्या-
 त्रमिव । वियदपि चास्त्रिकदग्धं मुष्टिश्राहं तमः कुण्ठे
 ॥ २२ ॥ दृश्येऽपि भास्कररुचि न यः स तमी
 तमोभिरभ्रमग्न्य तताम् । द्युतिमग्रहीद्वृद्ग्रहण्यो लघवः
 प्रकटीभवन्ति मलिनाश्रयतः ॥ २३ ॥ नाकाशं न दिशो

करनेका बीडा उठाकर धीरे-धीरे नीचेसे ऊपरकी उठ रहा है ।
 ॥ १३ ॥ हे सखी ! जिस प्रयत्न अन्धकारको माफ़ो (विप),
 कोयल, नीलकमल, जलभरे मैघ, कीचड़, कृष्ण भगवान्,
 काले कैरा, तलघार, कस्तूरी, काजल, यमुना, कसौटीका परपर,
 हाथियाँका भुएड और शङ्करजोंका गला आदि कर (लगान) दे
 रहे हैं (घटकर हैं) उस घने अंधेरेको प्रणाम है ॥ १४ ॥ जब घने
 अंधेरेमें स्त्रियाँ अपने शरीरपर केदारका लेप लगाकर अपने
 पतियोंके पास आ रही थीं उस समय अंधेरेमें उनके गहनोंके
 चमकते हुए मणिये जान पड़ते थे मानो तमालके पत्तोंके
 समान काले अन्धकाररूपी कसौटीपर सोनेकी लोक बनी हो
 ॥ १५ ॥ यमुनाके जलके समान काले अंधेरेके थड़ जानेसे यह
 संदेह हो रहा है कि ये पृथ्वीपर चारों ओर हाथी टहल रहे हैं
 या सारी दिशाएँ कस्तूरीके पानीसे रँग दी गई हैं, या
 आकाशमें कालिल ही कालिल भरी हुई है या सारा संसार
 ही शंकरजोंके गलेकी काली चमकने भर गया है ॥ १६ ॥
 चारों ओर फैलते हुए घने अंधेरेके समन्वयमें कोई भी यह
 निश्चित रूपसे नहीं कह पाया कि यह आकाशसे उतरकर नीचे
 लटका है या परतीमे उठकर ऊपर धारा हुआ है या चारों
 दिशाओंमें निकलकर धारा होकर फैला है ॥ १७ ॥ चारों
 ओर अन्धकारमे भरा हुआ संसार इस समय काजलसे सना
 हुआ-सा ऐसा जान पड़ता है मानो चारों ओर कस्तूरीका
 डरादा फैला दिया गया हो या चारों ओर तमालके पैदोंसे

घिरा हुआ हो या नीले रंगकी चादरसे ढक दिया गया हो
 ॥ १८ ॥ जब सूर्य भगवान् अस्ताचलकी भाङ्गियोंमें जा विपे
 तव उनके विरहमें डुली होकर धरतीमे अपनी आँलें मूँद लीं
 और अपने ऊपर अंधेरेके रूपमें लहराही हुई सेवार फैला
 ली ॥ १९ ॥ चारोंको चोरोंके लिये उरसानेवाला, भूत
 प्रेतोंकी सभा जुटानेवाला, साहसि साधकोंको प्रेत-सिद्धिके
 लिये उरसाहित करनेवाला, कामान्तिसे व्याकुल पुरुषोंमें
 व्यभिचारिणी स्त्रियोंसे मिलानेवाला और मत कोयलके गलेके
 समान काला-काला अंधेरा चारों ओर फैलता आ रहा है
 ॥ २० ॥ साँपोंकी चमकनी हुई मणियोंके कारण साँपके
 बिल कहीं उजले और कहीं काले दिखाई दे रहे हैं, जालाएँ
 सूर्यकान्त मणिको छोड़कर चकवीके मनमें घुस रही हैं और
 अंधेरेको फाड़कर चमकनेवाले दीपक ऐसे जान पड़ते हैं मानों
 रात्रिकी चपेटसे पिसी हुई सन्ध्याके नन्हें-नन्हें टुकड़े चमक
 रहे हों ॥ २१ ॥ इस समय अंधेरा हतना गाढ़ा हो गया है
 कि वह मुझीसे पकड़ा जा सकता है, सारी दिशाएँ मानों
 शरीरसे लिपटी हुई हों, भ्रमपटल पँतोंके नीचे धा गया हो
 (पिर आगे पड़ता ही नहीं), सिर मानो आकाश पुर रहा हो
 (सिरके ऊपर कुछ दिखाई ही नहीं देता) ॥ २२ ॥ जो तारे
 सूर्यके प्रकाशसे दूषकर दिनमें दिखाई नहीं पड़ रहे थे वे
 अंधेरेसे भरी हुई रात पाकर चमक उठे, क्योंकि कोपे
 लोग तो नीचोंका सहारा पाकर ही प्रसन्न होते हैं ॥ २३ ॥

न भूधरकुलं नाम्मोघयो न चित्तिर्न द्यौर्नाम्बुधरा न
तोमाकिरणो नेन्दुर्न तारागाणः । पतैः पटपद्कायका-
न्तिपटलीपाण्डित्यवैतसिद्धिः क्लोलेस्तमसामसाम्प्रत-
मयं विभ्रव्ययः कल्प्यते ॥२४॥ नीताः काव्यभिसारिका
इव दिशोऽप्युद्गाढरागोदया येनोत्प्लावितमन्मयेन
तदिदं निःशङ्कमुद्गम्भते । सम्भोगान्तशयाशुशैलतनया-
दो पाशनिर्भस्तिनीलीमलनीलिमनीलकन्धरगलस्पर्धा-
वल्लिं तमः ॥ २५ ॥ नोर्ध्वमील्लणगतिनं चाप्यधो
नामितो न पुरतो न पृष्ठतः । लोक एव तिमिरीयवे-
ष्टितो गर्भवास इव वर्तते निशि ॥ २६ ॥ पतिते पत-
ङ्गमुराजि निजप्रतिविम्बरोपित इद्याम्बुनिधौ । अथ
नागयूथमलिनानि जगत्परितस्तमांसि परितस्तारिरे
॥ २७ ॥ पिपृधति तिमिरे समस्तलोक प्रलयमद्याधि-
निमे भृतोच्यनोचे । व्यदचतुडुगणो यलचरोचिर्वहुवि-
धफेनस्तमूहतुल्यरूपः ॥ २८ ॥ पुरः पूषामिव स्थगयति
ततोऽन्यामपि दिशं क्रमात्क्रामन्नद्रिद्रुमपुरविभागांस्ति-

रयति । उपेतः पीनत्वं तदनु भुवनस्येक्षणाप्यं तमःस-
द्वातोऽयं हरति हरकण्डयनिहरः ॥ २६ ॥ भवति हृदि-
रगूढः कौस्तुमीयैर्मयूरीः पत्तिमपि च पशूनां श्रेयरे-
न्दुर्व्यनक्ति । इति मनञि न कश्चिन्निश्चयो यत्तदन्य-
ज्जगदिदं तमसैव प्रस्तमव्यक्तमास्ते ॥ ३० ॥ यच्चेद-
म्बुधिभामानन्ति फयथस्तद्विन्दुतां विभ्रते वैकुण्ठान्तक-
कालकायजलदश्रीकण्टकगुण्डादयः । सुसालोकमुलुकद-
ष्टितिमिरप्रध्वंसिसिद्धाञ्जनं तद्रगद्विपितभूदिगन्तरिमि-
नैशं तमो जृम्भते ॥ ३१ ॥ योगिनामपि हृत्तो धत योगः
कल्पमेण हृततेजसि येन । कापि भास्वति गते प्रपयेथ
सर्वतो जयति तस्य विलासः ॥ ३२ ॥ रञ्जिता तु
विधिधास्तशुशैला नामितं तु गगनं स्थगितं तु ।
पूरिता तु चिपमेपु धरित्री संहता तु ककुभस्तिमि-
रेण ॥ ३३ ॥ रात्रिरागमलिनानि विकारसं पङ्कजानि
रहयन्ति विद्याप । स्पष्टतारफमिपाय नमःश्रीवस्तुमि-
च्छति निरापदि सर्वः ॥ ३४ ॥ लिम्पतीय तमोऽङ्गानि

यह ठीक नहीं हो रहा है कि भँडारेकी काली चमकको भी नीचा
दिखानेवाली ये अँधेरेकी लहरें संसारको मिटाए डाल रही हैं
क्योंकि इस समय न तो आकाश ही दिखाई पड़ रहा है, न
दिशाएँ समझमें आ रही हैं, न पहाड़ सुन्हाई पड़ रहा है न
समुद्र पदचानमें आ रहे हैं और न पृथ्वी, स्वर्ग, बादल, सूर्य
और चन्द्रमाका ही कोई ठौर-ठिकाना मिल रहा है ॥ २४ ॥
कामदेवके वेगमें भरकर अत्यन्त प्रेममयी (लाल लाल)
दिशाओंरूपी अमिसारिकाओंको न जाने कहाँ ले जाने-
वाला तथा सम्भोग करके सोना चाहती हुई पार्वतीकी
सुजाओंके बन्धनसे छूटकर फरवट बदलते हुए नीलकण्ठ
(शिवजी) के गलेसे होड़ करनेके मदमें चूर यह अँधेरा
निबर होकर चारों ओर छा रहा है ॥ २५ ॥ घने
अँधेरेसे थिरा हुआ संसार ऐसा जान पड़ता है मालो यह
वेसे गर्भमें लिपटा हो जिसमें ऊपर-नीचे, दाएँ-बाएँ, आगे, पीछे,
कहीं भी कुछ न दिखाई पड़ता हो ॥ २६ ॥ अँधेरा ऐसा लाता
है मानो सूर्यरूपी सिंह जब समुद्रमें पड़ी हुई अपनी परछाईंको
दूसरा सिंह समझकर उसपर झपटनेके लिये झोंपमें भरकर
समुद्रमें कूद पड़ा तब हाथियोंके झुपटके समान काला अँधेरा
निश्चित होकर चारों ओर फैल गया ॥ २७ ॥ अँधेरे-नीचे सभी
स्थानोंमें भरा हुआ जो प्रलयके समुद्रके समान अँधेरा सारे
संसारपर छाया हुआ है उसमें चमकते हुए तारे फेनके समान
उजले दिखाई पड़ रहे हैं ॥ २८ ॥ शहरजीके गलेकी काली
चमककी क्षान्तिवाले इस अँधेरेने पहले तो पर्व दिशाको ढका,

फिर बारी-बारीसे शेष दिशाओंमें फैला और फिर पहाड़, वृक्ष
और नगरोंपर छाया मारकर अन्तमें घना होकर लोगोंकी
आँसोंके आगे मार्ग रोककर खड़ा हो गया ॥ २९ ॥ अँधेरेमें
हृये हुए संसारको देखकर यही नहीं निश्चय हो रहा है कि
यह विष्णुमय है या शिवमय है क्योंकि यदि विष्णुरूप होता
तब तो कौस्तुभ मणिकी चमकसे स्पष्ट हो जाता और यदि
शिवरूप होता तो मस्तकपर घरे चन्द्रमाकी चाँदनीसे स्पष्ट हो
जाता किन्तु यह तो अँधेरेसे भरा कोई निराला ही अस्पष्ट
संसार है ॥ ३० ॥ उल्लूके नेत्रोंका अँधेरा दूर करने के लिये
सिद्ध अञ्जन घने हुए, आकाशसे पृथ्वीतकको अपने मुँहमें
ठुल्लेके समान भर लेनेवाले तथा प्राकारको मिटा खालनेवाले
अँधेरेको यदि कवि लोग सागरके समान मानते हैं तो साँवले
शरीरवाले विष्णु, यमराज, बादल और शिवजीका गला ये
सब सूर्यके समान जान पड़ते हैं ॥ ३१ ॥ कल्पम (पाप,
अन्धकार) तो योगियोंका योग भी छुड़ा देता है इसीलिये
उस कल्पसे हारकर और तेजहीन होकर जब सूर्य लाभके मारे
कहीं चला गया तब अँधेरा सुलकर चारों ओर फैल रहा
है ॥ ३२ ॥ अँधेरेमें सभी वृक्ष और पहाड़ ऐसे जान पड़ते हैं
मानो अँधेरेने उन्हें स्याहीसे रँग दिया हो, आकाशको सुका
दिया हो, घरतीका अँधा-नीचा स्थान पाठकर बराबर कर
दिया हो और सब दिशाओंको समेटकर इकट्ठा कर दिया हो
॥ ३३ ॥ जो शोभा रातके अँधेरेसे उँचली पड़ गई थी वह
सुँदें हुए कमलोंको धोड़कर चमकते हुए तारोंसे भरे आकाशमें

वर्षतीवाञ्जनं नमः । असत्पुरुषसेवेव दृष्टिनिष्कलतां
गता ॥ ३५ ॥ विवस्वतानायिपतेव मिश्राः स्वगोसह-
स्रेण समं जनानाम् । गावोऽपि नेत्रापगनामधेयास्तेने-
दमान्ध्यं खलु नान्धकारैः ॥ ३६ ॥ विश्वं चान्नुपमस्त-
मस्ति हि तमःकैवल्यमीपाधिकमाच्यादिव्यवहारवीज-
धिरहादिद्वयात्रमेव स्थितम् । गृह्यन्ते भयहेतवः पटु-
भिरप्यक्षान्तरैर्भाति च ध्वान्तेनातिघनेन वस्तु वचसा
घातः स्वरेणामुकः ॥ ३७ ॥ व्यसनित इव विद्या क्षीयते
पङ्कजश्रीर्गुणिन इव विदेशे दैन्यमायान्ति भृङ्गाः ।
कुन्तुपतिरिव लोकं पीडयत्यन्धकारो धनमिव रूपणस्य
व्यथतामेति चक्षुः ॥ ३८ ॥ व्यसरन्तु भूधरगुहान्तरतः
पदलं वहिर्वहलपङ्करचिः । द्विघसावसानपटुनस्तमसो
वहिरेत्य चाधिकममक्त गुहाः ॥ ३९ ॥ व्योम्नि प्राङ्गण-
स्तीम्नि सान्ध्यकिरणं विस्तार्य चेलाञ्जलं ध्वान्तैः
कामर्णपांसुभिश्च जगतां द्राष्टोहृदित्वा दशौ । तारा-

शौक्तिकमौक्तिकानि विहगश्रेणीरवच्छ्रयाना जिज्ञिह-
कृत्य च मायिकः स्मरन्टो वक्ररुद्ध हिर्यर्षति ॥ ४० ॥
शुद्धमाविलमवस्थितं चलं वक्रमार्जवगुणान्वितं च
यत् । सर्वमेव तमसा समीकृतं धिक्काहृत्त्वमसतां हता-
न्तरम् ॥ ४१ ॥ सद्यः सान्द्रमपीविलुप्तककुम्भः क्षिण्णे
न्द्रनीलद्रवव्यामीलन्नभसो निरन्तरमिलन्नीलीरस
श्रयोतिनः । एते कोकिलकायकालिमहदो लुम्पति
वृत्तिं दशोरुन्निद्राञ्जनपुञ्जमेचकरुचो भीमास्तमःप्र
क्रमाः ॥ ४२ ॥ सर्वं कुवलयं सूर्यो दग्धवान् स्वकरेण
यत् । तेनेदं सर्वतश्छुल्लं तिमिरं नाप्यदीक्षते ॥ ४३ ॥
सर्वं ध्वान्तमिदं वदन्तु यद्गुहा सिद्धान्त एव तु नः
स्वाधारेषु करेषु पुष्करमणैः क्वन्तेषु नूनं शनैः ।
अस्तालभ्यतयाम्भरेण पतता अस्ते समस्ते जगत्युन्मी-
लत्करकन्दलैरपि विधोस्तसावदुसार्थते ॥ ४४ ॥
स्थगिताम्बरक्षितितले परितस्तिमिरे जनस्य दृशम्-

जा पहुँची क्योंकि सभी लोग पापा-रहित स्थानमें ही निवास
करना चाहते हैं ॥ ३७ ॥ इस समय छँधेरा अश्रोंमें लिपटा था
रहा है, आकाशसे मानो अश्रुजन बरस रहा है और जैसे दुष्टकी
सेवा निरर्थक होती है वैसे ही दृष्टि भी निरर्थक होती जा रही
है ॥ ३८ ॥ अँधेरेको देखकर कवि कहता है कि 'अँधेरा-अँधेरा
वहाँ कुछ नहीं है वरन् सूर्यने जब जाते समय अपनी सहस्रों
निरणुरूपी गौँएँ साथ ले जानेके लिये हाँकीं तब उन्हींके साथ-
साथ वे संसारकी आँलरूपी गौँएँ भी हाँके ले गएँ जिससे
संसार अन्धा हो गया और उसे कुछ भी नहीं दिखाई देता'
॥ ३९ ॥ चारों ओर अँधेरेका साघ्राय फैल जानेसे आँलोंकी
शक्ति जाती रही, पूर्व-परिधमकी पहचान भिद जानेसे दिशाएँ
केवल नामको दिशाएँ रह गई हैं, भयानक वस्तुओंका ज्ञान भी
आँलसे न होकर दूसरी इन्द्रियोंसे हो रहा है, यहाँतक कि
यस्तुओंका ज्ञान मतलबनेसे होता है और व्यक्तियोंकी पहचान
उनका स्वर सुनकर होता है ॥ ३७ ॥ इस समय कमलोंकी शोभा
घसरावधान व्यक्तिकी विधाके समान दृज रही है, विदेशमें
गएँ हुए सुखियोंके समान भीरोंका वहाँ आदर नहीं हो रहा
है, दुष्ट राजाके समान यह अँधेरा सभीको कष्ट दे रहा है और
कन्धूसके धनके समान चारों ओर व्यर्थ हो रही है ॥ ३८ ॥ गहरे
कीचड़के समान काले और दिग्भ्रमके समाप्त करनेवाले अँधेरेको
देखकर यही नहीं समझमें आता कि यह पहाड़की शीखोंके
निकलकर बाहर फैल रहा है या बाहरसे आकर गुफाओंमें भर
रहा है ॥ ३९ ॥ यह अँधेरा ऐसा जान पड़ता है मानो इन्द्रजान

करनेवाले कामदेवरूपी बाजीगरने आकाशरूपी अश्रुजने
सन्ध्याकी किरणोंका वज्र फैलाकर उसपर अँधेरेका बगीकरण
चूर्ण छिड़कर लोगोंको आँलोंपर जादू कर दिया और फिर
चिड़ियोंकी चहचहाहटके स्वरोंमें क्लमकनाकर ताररूपी मोती
जुँहसे निकाल रहा हो ॥ ४० ॥ इस अँधेरेने उजले और मीले,
घर और अचर, देहे और सीधे सब पदार्थोंको एकसा कर
दिया है । इस प्रकार विवेक नष्ट करनेवाले नाँवोंके
प्रभावको धिक्कार है ॥ ४१ ॥ वाजलके समान चमकते हुए
भयानक काले अन्धकारकी वादसे आँलोंकी ज्योति नष्ट हो
गई है, दिशाओंमें स्वाही-सी पुत गई है और आकाशमें जो
नीलमन्त्रा चिक्कना रस-सा पुत गया है, उसमेंसे जो निरन्तर
नीला रस चू रहा है वही मानो यह अँधेरा है जिससे
कोयलका कालायन भी हार खा गया है ॥ ४२ ॥ यह और ऊँच
नहीं है, वरन् सूर्यने अपनी किरणोंसे जो लुप्तियोंको जला दिया
था उसीकी कालिल चारों ओर काला-काला अँधेरा बनकर
फैली हुई है ॥ ४३ ॥ लोग यदि इसे अन्धकार कहते हैं तो
भले ही कष्ट पर हम तो समझने हैं कि आकाशको धाने
रपनेवाले सूर्यके कर (हाथ, किरणें) जब एक एक बढ़ते
वह पड़े तो टेक न रहनेसे अम्बर (वज्र, आकाश) भी
गिर गया और उससे सारा संसार टुक गया, उसी दके हुए
संसारको मानो चन्द्रमाके उठते हुए कर (हाथ, किरणें)
उपाड़ रहे हैं ॥ ४४ ॥ आकाश तथा पृथ्वीको चारों ओर
घरनेवाले अँधेरेने जब लोगोंकी अँति अन्धी कर दी तब

न्धयति । दधिरे रसाञ्जनमपूर्वमतः प्रियवेदमवर्त्म
सुदशो ददशः ॥ ४५ ॥

नक्षत्रोदयवर्णनम्— आकाशभ्रमखिन्नभास्करहृद्यमो-
द्धान्तफेनच्छटाधिच्छिन्नस्तवका इयाम्बरतलश्रीहार-
मुका इव । सन्ध्यानृत्यनटोन्तोत्ज्वलजटाजूटज्वल-
जाह्वधीधाराभोच्छलदच्छविन्द्व इव स्फूर्जन्ति तारा
श्रीमी ॥ १ ॥ उद्भूता मथनक्षोभात्फेनराजिः पयोदधेः ।
तारकावलिखित्यङ्गैरियं सखि निवेद्यते ॥ २ ॥ उद्भूतं
किल शैलकेलिरभसस्रस्तानि पाथोनिधेरन्तर्भूपणमौ-
किकानि दिविजस्त्रीभिः समुत्कण्डया । गाढं तत्र निम-
ज्जितेन रविणा वज्रा दढं रश्मिभिः प्रोत्क्षितानि निपत्य
तानि गगने तारापदेशं दधुः ॥ ३ ॥ घनतरतिमिरधु-
णोत्करज्जगानामिव पतन्ति काष्ठानाम् । छिद्रैरमीभि-
रुडुभिः किरणव्याजेन चूर्णानि ॥ ४ ॥ सिन्धोः सुधां-
शुशकलं परिगृह्य सन्ध्याक्षेमङ्करी निपतिताम्बरभूध-

हाध्रे । चञ्चुपटेन चपलेन तथा विकीर्णांस्तारामिषेण
पतिता इव पद्मपण्डः ॥ ५ ॥

चन्द्रोदयवर्णनम्— अद्भुलीभिरिव फेजसञ्चयं सधि-
यम्य तिमिरं मरीचिभिः । कुड्मलीकृतसरोजलोचन-
धुन्वतीव रजनीमुखं शशी ॥ १ ॥ अथ पथिकवधूदहनः
शनकैरुदभून्निशाकरालोकः । कुमुदमनोधूतौ व्यसन-
गुरुश्चक्रधाकीणाम् ॥ २ ॥ अथ मन्मथवाहिनीपरागः
किमपि ज्योतिरुदस्फुरत्पुरस्तात् । तिमिरस्य जरा
चकोरकूरं कुलटाकेलिवनीदवानलाचिः ॥ ३ ॥ अथ
लक्ष्मणानुगतकान्तवपुर्जलधि विलङ्घ्य शशिदाशरथिः ।
परिधारितः परित भ्रूज्जगणैस्तमिराधराक्षसकुलं
विभिदे ॥ ४ ॥ अथापि स्तनशैलदुर्गाधिपमे किं मानिनीनां
हृदि स्थातुं चान्छति मान एव भागिति भ्रोधादिव्या-
लोहितः । उच्यन्मूरतरप्रसारितकरः कर्पत्यसां तत्त्व-
णात्कुल्लरकैर्यकोशानिःसरदलित्प्रेणीरुपायं शशी ॥ ५ ॥

समय उस अँधेरे नवेलियाँकी आँतोंमें ऐसा अनोखा
आँजन-सा लगा दिया जिससे उन्हीं उस अँधेरेमें भी अपने
प्रेमियोंके परका मार्ग भली-भाँति पा लिया ॥ ४५ ॥

तारोंके उदय होनेका वर्णन : ये तारे ऐसे चमक
रहे हैं मानो आकाशमें शम्बर लगा-लगाकर यके हुए सूर्यके
बोझोंके मुगमोंसे निकले हुए फेनकी कुहारों हों, आकाश-लक्ष्मीके
हारके टिठके हुए मोती हों अथवा सायद्काल तापडव नृत्य
करते हुए शिवजीके उजले-उजले ऊँचे जटानुत्पर उडलती
हुई गङ्गाकी धूँदें हों ॥ १ ॥ समुद्र मथनेसे जो बेर-सा फेन
उठा उसे ही मूर्त लोग तारोंका मूषक कहते हैं ॥ २ ॥
अत्यन्त चाहसे देवताओंकी प्रियाओंके साथ पर्वतोंमें विहार
करते समय जो उनके आभूषणोंके मोती मकमोरनेमें टूट
गए थे वे जब समुद्रमें गिर गए तो उन्हें निरालनेके लिये
मूर्पने तहतक गोता लगाकर अपनी किरणरूपी रस्तीसे
उन्हें बाँधकर जो बाहर उद्याला वे ही आकाशमें पहुँचकर वारे
कहलाने लगे ॥ ३ ॥ अत्यन्त घने होकर फैले हुए अन्धकार-
रूपी घुनोंने परोद-परोदकर जो काटके चूरे फँके हैं वे ही
हून तारारूपी धुँदोंसे किरण बनकर निकल रहे हैं ॥ ४ ॥
मन्थ्यारूपी धोलने सागरमेंसे चन्द्रमाकी कलारूपी पत्नीको
पकड़कर आकाशरूपी वृषकी चोटीपर बैठकर जो अपनी चञ्चल
बाँधसे उसे मकमोरा, उससे जो उसके पङ्क टूटकर पितरा
गए, वे ही तारोंके रूपमें चमक रहे हैं ॥ ५ ॥

चन्द्रमाके उदय होनेका वर्णन : निकलता हुआ
चन्द्रमा ऐसा जान पड़ता है मानो वह, सकुचे हुए
कमलरूपी आँवोंवाली रात्रिरूपी नायिकाके अन्धकाररूपी
केस-समूहको अपनी किरण रूपी रँगलियाँसे समेटकर
उसका मुँह घूम रहा हो ॥ १ ॥ जो, अथ विदेश
गए हुए लोगोंकी छियाँका जो जलानेवाला और चक्रवैको
जगानेके लिये दूतका काम करनेवाला और चक्रवैको
सन्ताप देनेवाला चन्द्रमा धीरे-धीरे निकल आया ॥ २ ॥
पूर्व दिशामें कामदेवकी विजयसेनाके चलनेसे उड़ी हुई
धूलके समान यह उदय होता हुआ चन्द्रमा अँधेरेके लिये
सुहापा बनकर, चकोरका भोजन बनकर और प्यमिचारियों
रिश्रयोंके आनन्दवनके लिये आगकी लपट बनकर एक
विचित्र ज्योतिके रूपमें फूट पड़ा है ॥ ३ ॥ लक्ष्मण
(कलक) से युक्त और मूक (तारे, भालू) के समूहसे घिरे
हुए रामचन्द्र (सुन्दर चन्द्रमा) ने समुद्र पार करके
(समुद्रसे निकलकर) अन्धकार रूपी राक्षस-समूहको मट
कर दिया ॥ ४ ॥ उदय होता हुआ चन्द्रमा ऐसा जान
पड़ता है मानो वह इस बातपर आधसे लाल हो गया हो
कि 'मुझे धिक्कार है कि मेरे उदय होनेपर भी स्तनरूपी
पर्वतोंके मुगम किलेके समान युवतियोंके हृदयोंमें उनका स्थान
बना रहना चाहता है !' इसलिये नवेलियाँका मानभंग करनेके
लिये दूरतक अपने किरणरूपी हाथ फैलानेवाला यह चन्द्रमा

अन्तिकान्तिकगतेन्दुविष्ट्रे जिह्वातो जहति दीधिति-
जाले । निःसृतस्तिमिरभारनिरोधादुच्छ्रसन्निव रराज
दिगन्तः ॥ ६ ॥ अन्धकारगरलं यतो जगन्मोहकारि
भृशमत्ति नित्यशः । उज्ज्वलं जटरमोषधीपतेरक्षनाभ-
मभवत्ततः प्रिये ॥ ७ ॥ अमलात्मसु प्रतिफलन्ममित-
स्तकृषीकपोलफलकेषु मुहुः । विससार सान्द्रतरमि-
न्दुश्चामधिकावभासितदिशां निकरः ॥ ८ ॥ अमुष्मि-
न्पञ्चोस्त्रिभुवनजिगीपोस्सहचरे मुखं रात्रेरेस्तनु-
भुवि रहश्चुम्यति सति । ज्वलन्तीर्ष्यारोषोदयमयतये-
घोषधिलताः पतद्भृङ्गभङ्गया दधति कुमुदिन्यः कलु-
पताम् ॥ ९ ॥ अमृतद्रवैविधधदञ्जहशामपमार्गमोषधि-
पति स्म करैः । परितो विसर्पिं परितापि भृशं वपु-
योऽवतारयति मानविषम् ॥ १० ॥ अयं नेत्रादत्रेरजनि
रजनीघल्लभ इति भ्रमः कोऽयं मद्रापरिचयपराधीनम-

नसाम् । सुधानामाधारः स खलु रतिविम्बाघरसुधा-
रससेकान्निग्धादजनि नयनात्पुष्पधनुषः ॥ ११ ॥ अय-
मुदयति चन्द्रश्चन्द्रिकाधौतयिभ्यः परिणतविमलिभि
व्योम्नि कर्पूरगौरः । ऋजुरजतशलाकास्पर्धिभिर्भयस्य
पादैर्जगदमलमृशालीपञ्जरस्थं विभाति ॥ १२ ॥ अय
मुदयति चन्द्रो वारिधेरम्बुगर्भादमृतकणकरालैरंशुभि
दीप्यमानः । भुजगशयनवक्षोहर्षदेशे ललन्त्या वदन-
मिव यदृच्छोचानितं चिभ्रमातुः ॥ १३ ॥ अविभावि-
तेषुविषयः प्रथमं मदनोऽपि नूनमभवत्तमसा । उदिते
दिशः प्रकटयत्यमुना यदधर्मधाम्नि धनुराचक्षुषे
॥ १४ ॥ आकाशवापीसितपुण्डरीकं शाशोपलं
मन्मथसायकानाम् । पश्यादितं शारदमम्बुजावि
सन्ध्याङ्गनाकन्दुकामिन्दुविम्बम् ॥ १५ ॥ आदा-
यामृतपूर्णमर्कचपकं शोणारविन्दप्रभे पाणारविन्द-

उसी चण खिले हुए कुमुदकी कलारूपी भ्यानसे निकलते हुए
भीरोंकी पाँतरूपी तलवार खींच रहा है ॥ ६ ॥ ज्यों-ज्यों पास
चन्द्रमा आता जा रहा था त्यों-त्यों उसकी किरणें अपनी
तिरछापन छोड़कर सीधी होती जा रही थीं और ऐसा जान
पड़ रहा था मानो घने छँधरेके घेरेसे मुक्त होकर दिशाएँ
सन्तोषकी लम्बी सँस ले रही हों ॥ ६ ॥ हे प्यारी ! यह
चन्द्रमा प्रतिदिन संसारकी मूर्च्छित कर देनेवाला (अन्धकारमें
ढालनेवाला) छँधेरारूपी विष खाता रहता है इसीलिये
इस औषधियोंके पति चन्द्रमाका चमकदार पेट काजलके
समान काला हो गया है ॥ ७ ॥ नवेलियोंके अत्यन्त सुन्दर
और चिबने गालोंपर प्रातर्विभित होकर भीचेकी फेजकर
सब दिशाओंकी घौरी भी अधिक चमकता हुआ यह
चन्द्रमाका प्रकार धीरे-धीरे घना होकर चारों ओर फैल गया
॥ ८ ॥ चीनों लोकोंको जीतनेकी हृद्भावले कामदेवके साथ
चलनेवाला यह अग्नि प्रतिका पुत्र चन्द्रमा जो एकान्तमें
रात्रिरूपी नायिकाका मुख भूम रहा है, इसीसे कोपित होकर
बाहके मारे मानो औषधियों (जड़ो-मूर्धियों) तो चमक उठी हैं
और कुमुदिनियोंका मुण भी उनके ऊपर बैठती हुई भीरोंकी
पाँतेके रूपमें काला पड़ गया है ॥ ९ ॥ चन्द्रमाने अमृतके घोलके
समान अपनी शीतल किरणोंसे कमलके समान नेत्रवाली रूठी
हई नायिकाओंके सारे शरीरमें फैला हुआ और जलानेवाला
मानरूपी विष दूर करके उन्हें ठीक मार्गपर ला दिया
॥ १० ॥ इच्छिने चक्रमें पड़े हुए लोगोंका यह वधा भारी

अम है कि रात्रिरूपी नायिकाका प्रेमी यह चन्द्रमा महर्षि
अधिके नेत्रोंसे उत्पन्न हुआ है । सच पूछिए तो अमृतके
भरा हुआ यह चन्द्रमा रतिके विम्बाफल जैसे श्रोतोंके अमृत-
रससे लिचकर मतवाले बने हुए कामदेवके चिबने नेत्रोंसे
उत्पन्न हुआ है ॥ ११ ॥ कपूरके समान उजला चन्द्रमा संसारको
अपनी चाँदनीसे धोता हुआ निर्मल आकारमें चढ़ आया है
और रुपहली, लम्बी तथा सीधी सलाइयोंसे होद करनेवाली
उसकी किरणोंकी गोदमें सोया हुआ संसार ऐसा जान पड़ता
है मानो स्वच्छ कमलनालके पिजड़ेमें बह रक्ता हो ॥ १२ ॥
समुद्रके जलके भीतरसे निकलता हुआ और अपनी अमृतके
भरी किरणोंसे चमकता हुआ चन्द्रमा ऐसा जान पड़ता है मानो
भगवान् विष्णुके वक्षस्थलरूपी शयनागारमें लेटी हुई जगदरा
लक्ष्मी अपने आप अपनी सुँह ऊपर उचका रही हों ॥ १३ ॥
चन्द्रमाका उदय होनेसे पहले कामदेवको 'अ' घेरेमें अपने
बाएँका लक्ष्य नहीं दिखाई पड़ रहा था किन्तु जब दरती
किरणोंवाला चन्द्रमा उदय हो आया और चारों ओर चाँदनी
फैल गई तब कामदेवने भी अपनी बाएँ निकालकर लक्ष्य साथ
लिया ॥ १४ ॥ हे कमलनयनी ! देख तो यह शरदके चन्द्रमाका
विष्य ऐसा जान पड़ता है मानो आकाशरूपी सरोवरमें श्वेत
कमल खिला हो या कामदेवके बाणोंकी पीना करनेके निचे
सानका पत्थर हो चपवा सायकालरूपी नायिकाके लेबनेकी
मँद हो ॥ १५ ॥ हृद्वाणीने अपने लाल कमलके समान
सुन्दर हाथोंमें अमृतने भरे हुए जिस मूर्त्यकी प्यानेमें

वधुचिलोक्य च पुनस्तस्मिन्नमःश्यामिकाम् । चिले-
पोपरि कोपतः परिजनेऽसंशोधय दत्ता सुधेत्येनं तं
शशिनं प्रशंसति जनस्वत्पाणिमुकार्जुनम् ॥ १६ ॥
आननानि हरिणीनयनानामद्भुतानि च स्मीप्य जग-
त्याम् । लज्जयैव धनमएडललीनो मन्दमन्दमहद्हेन्दुरु-
देति ॥ १७ ॥ आनन्दं कुमुदादीनामिन्दुः कन्दलय-
न्त्यम् । लङ्घयत्यम्बरभोगं हनुमानिध सागरम् ॥ १८ ॥
आनीलां करपल्लवैरपनयन्नच्छां तमःकञ्चुकीमाशां
सम्प्रति वासधीमनुसरन्नक्षीणरागः शशी । अस्याश्च
स्तनसङ्घिनीमिय वहन्नङ्गेन कस्त्रिकामालिङ्गत्य-
यमादरेण रजनीमधीनिपचारकाम् ॥ १९ ॥ इदमा-
भाति गगने भिन्दानं सन्ततं तमः । अमन्दनयनानन्द-
करं मण्डलमैन्दधम् ॥ २० ॥ इन्दुरिन्दुरिति किं दुरा-
शया विन्दुरेप पयसो विलोक्यते । नन्दिदं विजयते
मृगीदृशः श्यामकोमलकपोलमाननम् ॥ २१ ॥ उज्ज-

म्भते कुमुदिनीसुकृतं मृगाह्वो विष्वविक्कीर्णपरिपाट
लरश्मिदण्डः । रत्सुतयिट्टमकुलो जलधेस्तरद्वादुत्ति-
प्यमाण इय कश्चन राजकम्बुः ॥ २२ ॥ उज्जनी शुचमि-
यायु तमिस्रामन्तिकं व्रजति तारकगजे । दिग्भसाद्-
गुणमएडनमूहे रश्मिहासविशदं मुखमैन्द्री ॥ २३ ॥
उदमज्जि कैटभजितः शयनादपनिद्रपाएडुरसरोज-
रुचा । प्रथमप्रभुद्धनदराजसुतावदनेन्दुनेय तुहिन-
द्युतिना ॥ २४ ॥ उद्यततान्तरितमियं प्राची सूचयति
दिट्ठनिखानाधम् । परिपाएडुना मुलेन प्रियमिय
हृदयस्थितं रमणी ॥ २५ ॥ उद्यति कलमन्द्रं कण्टता-
लैरलीनां कुमुदमुकुलकेपु व्यञ्जयन्नङ्गहारान् । मद्मुस-
रचकोरीनोयकर्मान्तिकोऽयं तुहिनरुचिरधामा दक्षिणं
लोकचक्षुः ॥ २६ ॥ उद्भतेन्दुमधिभिन्नतमिन्नां पश्यति स्म
रजनीमविद्युतः । व्यंशुकस्फुटमुक्तीमतिजिलां व्रीडया
नवधधुमिव लोकः ॥ २७ ॥ उद्भमैह्वानरुणीरमणोपमर्द-

आकाशकी कालिमाका प्रतिविम्ब देकर उसे अपने सेवकोंपर
यह कहते हुए दे मारा कि 'तुम लोग बिना घोप और
बिना भली प्रकार देखे ही मुझे अमृत दे देते हो !' वह
फेंका हुआ प्याला ही यह सुन्दर चन्द्रमा है जिसकी
लोग इतनी प्रशंसा करते हैं ॥ १६ ॥ देखो, संसारमें
मृगनयनी नायिकाओंके सुन्दर मुख देखकर जो चन्द्रमा
लजाकर आदलमें छिप गया था वहां अब धीरे-धीरे फिर
निकल रहा है ॥ १७ ॥ जैसे हनुमान्जोने हुसुद आदि बन्दरोंको
आनन्द देते हुए सागर पार कर लिया था वैसे ही कुमुद
आदिको आनन्द देता हुआ चन्द्रमा भी इस लम्बे चौड़े
आकाशको पार कर रहा है ॥ १८ ॥ उदय होता हुआ
चन्द्रमा ऐसा लगता है मानो अपने पत्तोंकेसे रत्नवाली लाल-
लाल किरणोंके हाथोंसे पूर्व दिशारूपी नायिकाकी अन्धकार-
रूपी सुन्दर नीली धौलीको हटाता हुआ और उसके स्तनपर
बगी हुई कस्तूरीको (म्पर्णके कारण) अपने अङ्गोंपर धारण
करता हुआ पूर्ण अरुणगसे भरकर अधरिली तारिका (तारा,
पुगली) याजी रात्रिरूपी नायिकाको गले लगा रहा हो ॥
१९ ॥ देखो, आकाशमें चारों ओर फैले हुए अंधेरोंको दूर
करनेवाले और आँखोंको अत्यन्त मुखराने लगनेवाले चन्द्रमाका
विषय बमरुने खाया है ॥ २० ॥ यह आप लोग भूलते चन्द्रमा-
चन्द्रमा किये कहते जा रहे हैं ? यह तंग जलकी वह बूँद है
जो अपनी शोभासे मृगनयनी नायिकाके सोंवले और बोंमल

गालवाले मुखको हरा रही है ॥ २१ ॥ अपने चारों ओर फैली
हुई सुन्दर किरणोंकी छद्दिधौवाला और मूँगेके वंश (समुद्र)
में उवन्न चन्द्रमा उदय होता हुआ ऐसा सुहावना जान पड़ता
है मानो समुद्रकी तरङ्गोंने बाहर फेंका हुआ सुन्दर शल हो या
कुमुदिनीका पुण्य हो ॥ २२ ॥ तारोंके स्वामी चन्द्रमाके पास
आते ही पूर्व दिशाने अन्धकाररूपी शोक छोड़ दिया, दिशाएँ
स्वच्छ होकर खिल उठीं और किरणोंके प्रकारके रूपमें हँसने
लगीं ॥ २३ ॥ लिले हुए श्वेत कमलके समान उजला चन्द्रमा
विन्दुके शयनस्थान समुद्रसे ऐसे निकला जैसे पहले पहल
समुद्रसे लक्ष्मीका मुखचन्द्र निकला था ॥ २४ ॥ पूर्व दिशामें
निकलते हुए चन्द्रमाका पीलापन ऐसा जान पड़ता है मानो
पूर्व दिशा सूचित कर रही हो कि मेरे हृदयमें निवास
करनेवाला प्रियतम चन्द्रमा अभी उदयाचलमें छिपा है ॥ २५ ॥
मदसे चढ़चढ़ाती हुई बकीरीके रदनको समाप्त करनेवाला
और शीतल तथा रचिकर किरणोंवाला यह संसारके दाहिने
नेत्रके समान चन्द्रमा उदय हो रहा है जो भीतर मूँजनेवाले
भीरोंके अस्पष्ट, मधुर और गम्भीर शब्दोंके साथ हिलती-मटकती
हुई कुमुदकी कलियोंको नचाए डाल रहा है ॥ २६ ॥ जिस प्रकार
धूँध सरक जानेसे मूँह मोहकर लगानेवाली नई बहूकी लोंग
धूर-भूरकर देखते है उसी प्रकार इ-उ-अ-अंधेरोंसे बरी हुई और
पूर्वमें निकले हुए चन्द्रमावाली रातको लोंग अत्रस होकर आँव
गड़ाकर देखने है ॥ २७ ॥ पत्रिके हाथने मसले हुए गर्भवती हृष्य

भुयोन्नतस्तननिवेशनिर्भं हिमांशोः । ध्रिष्यं कठोरविस-
काण्डकडारमेतद्रम्भापदं प्रथममग्रकरैर्व्यनक्ति ॥ २८ ॥
उन्नतावनतभागवत्तया चन्द्रिका सतिमिरा गिरिरि-
यम् । भक्तिर्निर्वहुविधाभिरपिता भाति भूतिरिव
मत्तदन्तितः ॥ २९ ॥ उन्नेतेपु शशिनः प्रभा स्थिता
निम्नसंश्रयपरं निशातमः । नूनमात्मसदृशो प्रकल्पिता
वेषसैव गुणदोषयोगतिः ॥ ३० ॥ उपगूढवेलमलघूमि-
भुजैः सरितामञ्जुलुभदधीशमपि । रजनीकरः किमिव
चित्रमहो यदुरागिणां गणमनङ्गलघुम् ॥ ३१ ॥ उप-
जीवति स्म सततं दधतः परिमुग्धतां वणिगिद्योडु-
पतेः । घनवोधिवीथिमवतीर्णवतां निर्धरम्भसामुपच-
याय कलाः ॥ ३२ ॥ उपोढरागेण घिलोलतारकं तथा
गृहीतं शशिना निशामुखम् । यथा समस्तं तिमिरांशुषं
तथा पुरोऽपि रागाद्भलितं न ललितम् ॥ ३३ ॥ एकिकेव
निजवृन्दमध्यगाऽप्युच्युकुज सभयं सितच्छुदी । दन्त-

मूलमसकृच्च संशयादाममर्शं करिणः करेणुका ॥ ३४ ॥
एतत्कोककुटुम्बिनीजनमनः शयश्चकोराङ्गनाचञ्चको-
टिकपाटयोर्घटितयोस्वद्धाटिनी कुञ्जिका । दग्धस्यापि
नवाङ्कुरः स्मरतरोरार्द्रांगसां प्रेयसीमानोद्दामगजाङ्कुरो
चिजयते मुग्धं सुधांशोर्वपुः ॥ ३५ ॥ एतदुच्छ्रितपोत-
मैन्दवं सोडुमत्तममिव प्रभारसम् । मुक्तपट्टदधिराव-
मञ्जसा भिद्यते कुमुदमा नियन्धनात् ॥ ३६ ॥ एतद्वि-
भाति चरमाचलचूडयुम्बिडिण्डीरपियडुठचिशीतम
रीचिध्रिष्यम् । उज्ज्वालितस्य रजनीं मदनानलस्य
धूमं दधत्प्रकटलाञ्छनकैतवेन ॥ ३७ ॥ एतस्य कला-
मेकाममृतमयूखस्य पार्वतीरमणः । वर्णावलिमिव
वहति प्रतिमासं घट्ट्यमानस्य ॥ ३८ ॥ एष स्वर्ग-
तरङ्गिणोजलमिलद्दिग्दन्तिदन्तद्युतिर्ध्रश्यद्राजकुम्भ-
विभ्रमधरः शीतांशुरभ्युचतः । हंसीयत्यमलामञ्जु-
यति लसद्दिण्डीरपिण्डीयति स्फारस्फाटिककुण्डली-

युवतीके तिरछे तथा बड़े-बड़े स्तनोंके समान दिपाई
देनेवाला यह चन्द्रमाका ध्रिष्य अपनी पहली किरणोंसे कठोर
कमलनालके तानुके पोरोंके चमकाकर रग्भा (अप्सरा,
केला) घनाप दे रहा है ॥ २८ ॥ पहाड़पर फैली हुई
यह चोईनी उसके ऊँचे-नीचे भागमें पड़नेसे कहीं-कहीं
खँपेरी होकर ऐसी जान पड़ रही है मानो मतवाले हाथियोंकी
पीठपर बैठके उड़ने पूल लगी हुई हो ॥ २९ ॥ ऊँची-
ऊँची वस्तुओंपर चन्द्रमाकी किरणें फैली हुई हैं और नीची-
नीची वस्तुओंपर रातमा खँपेरा भरा हुआ है । सचमुच
मद्धाने-गुण और दोषोंका स्थान ठीक उनके अनु रूप ही
बना दिया है ॥ ३० ॥ जिस समुद्रने अपनी बड़ी-बड़ी लहर-
रूपो बाहोंने अपनी तट धाम रक्खा था उसे भी जब
चन्द्रमाने मिचलित कर दिया तब यदि उसने कामदेवके हाथों
छोटे किए हुए प्रेमियोंको विचलित कर दिया हो तो आश्चर्य
ही क्या है ॥ ३१ ॥ जैसे अत्यन्त भोले-भाले लोगोंको ठगकर
बनिया निरन्तर मोटा होता जाता है वैसे ही घाकाश-मार्गमें
उतरे हुए चन्द्रमाकी कजाएँ लुट-लुटकर समुद्र भी बहुत फूलता
जा रहा है ॥ ३२ ॥ लाल-खाल घामागाला (प्रेमसे भरा हुआ),
अच्छल तारोंवाला (अच्छल धर्मोंकी पुतलीवाला) रात्रिरूपी
पाविवाटा मुण जब चन्द्रमाने स्पर्श किया तब यह प्रेममें हतनी
मनवाली हो गई कि सामने सुखकर गिते हुए अपने अन्धकार-
रूपी अन्धों भी नहीं मैंमान पाई ॥ ३३ ॥ चन्द्रमाको निकलते

देखकर अपने भुण्डमें घेरी हुई भी वह हंसिनी अकेली इतके
मारे पिल्ला उठी (कि यह मेरा प्यारा हंस ही तो उड़कर
आकाशमें नहीं चला गया) और हथिनी भी अत्यन्त संशयसे
प्यारे हाथोंका दाँत बार-बार टटोलने लगी (कि मेरे प्यारे
हाथोंका दाँत ही तो टूटकर ऊपर नहीं चला गया है) ॥ ३४ ॥
चक्रवर्ते परिवारके मनमें विघते हुए कौंटेके समान, चक्रीके
पाँचरूपी बन्द द्वारको खोलनेकी कुञ्जिके समान, जले हुए
कामदेवरूपी घृषमें निकले हुए नये अङ्कुरके समान और नया
अपराध करनेवाले प्रेमीकी प्रेमिकाके मानरूपी शिगदेल हाथोंके
लिये अङ्कुरके समान यह दूजका चोई अत्यन्त सुन्दर होकर
चमक रहा है ॥ ३५ ॥ खिलते हुए कुमुदोंमेंसे निकलनेवाले
भौरे प्रेये जान पड़ते हैं मानो कुमुदोंने जो चन्द्रमाका कान्तिरूपी
रस दिया था उसे न पचा सकनेके कारण वे भीरोंके गुआररूपी
सकनेके साथ उलटी करके याहर निकल रहे हैं ॥ ३६ ॥
अत्ताचलके शिपरको घूमनेवाले फेनके पिँकेसे चमकते हुए
चन्द्रमामें कलक ऐसा दिपाई पड़ता है मानो रात्रिको जलनेके
लिये इसने जलते हुए कामदेवरूपी अग्निका धुआँ धारण
कर रक्खा हो ॥ ३७ ॥ प्रत्येक मासमें निरन्तर पड़ते हुए इस
अमृतमयी किरणवाले चन्द्रमाको केवल एक कजाकी शिपनी
इस प्रकार धारण किए रहते हैं मानो वह उनकी कीर्तिके रत्ना
हो ॥ ३८ ॥ देखो, यह निकला हुआ चन्द्रमा ऐसा जान पड़ता है
मानो आकाश-मार्गाके जलमें खेल करनेवाले दिगमोंके दृष्टिके

यति दिशामानन्दकन्द्रीयति ॥ ३६ ॥ अकारो मदनद्वि-
जस्य गगनक्रोडैकदंष्ट्राङ्कुरस्तारामौकिकशुक्तिरधतम-
सस्तम्भेरमस्याद्गुशः । शृङ्गारगालकुञ्चिका विरहि-
शीमर्मच्छिदा कर्तरी सन्ध्यावाच्यधूनपक्षतिरियं
चान्द्री कला राजते ॥ ४० ॥ श्रोजसापि रलु नूनम-
नूनं नासहायमपयाति जयश्रीः । यद्भिः शुशिमयूर-
सप्तः सन्नाददे विजयि चापमनङ्गः ॥ ४१ ॥ फकुभां
मुपानि सहस्रोद्धलयन्दधदाकुलत्वमधिकं रतये ।
श्रदिदीपदिन्दुरपरो दहनः कुसुमेपुमन्निनयनप्रभवः
॥ ४२ ॥ कपाले मार्जारः पय इति करंल्लेडि शशिनस्त-
रुच्छिद्रप्रोतान्विसमिति करी सङ्कलयति । रतान्ते
तल्पस्थान्दरति घनिताप्यंशुकमिति प्रभामत्तश्चन्द्रो
जगद्विद्रमहो विसवयति ॥ ४३ ॥ कमितुरभिच्छ्वरीणां
गौराङ्गीणामिहेन्दुधवलसु । उड्यमानानामिव रज-

निपु परमीद्यते छाया ॥ ४४ ॥ फकुमुदयमहीधरस्त-
नाप्रे गलिततम-पटलांशुके निवेश्य । विकसितकुमुदे-
क्षणं विचुम्बन्त्ययममरेशदिशो मुगं सुधांशुः ॥ ४५ ॥
कलया तुपारकिरणस्य पुरः परिमन्दभिधतिमिराघ-
जटम् । क्षणमभ्यपद्यत जनैर्न मृया गगनं गणाधिपति-
मूर्तिरिति ॥ ४६ ॥ कलानिधिरयं रवेः समुपलभ्य
रूपं स्वयं दिनान्तसमयेऽपृष्टग्रन्थपदि पश्चिन्ता राग
वान् । धवान्यकरसङ्गमान्मुकुलितेति पूर्वांशुति
समीक्ष्य जहसुः मिया ध्रुवमभूदतः पाण्डुरः ॥ ४७ ॥
कलितमभ्यरमाकलयन्करैर्मुदितपङ्कजकोशपयोधरः ।
विकसदुत्पलनेत्रविलोकितः सपि निशां सरसीकुक्ते
विद्युः ॥ ४८ ॥ कल्लोलक्षिप्तपङ्कजिपुरहरशिरःस्वःश्रय-
न्तीमृणालं कर्पूरक्षोदजालं कुसुमशरयधूसीधुम्भार-
नालम् । एतद्गुह्याधिध्वन्धोर्गगनकमलिनीपत्रपानीय-

समान चमकते और गिरते हुए चांदीके घडेका भ्रम उत्पन्न
करता हो, हंस हो, स्वच्छ कमल हो, सुन्दर स्फटिकका साँप हो
और दिशाशोकके आनन्दका फल हो ॥ ३६ ॥ चन्द्रमाकी यह कला
कामदेवरूपी ब्राह्मणके जयके आँकारके समान, आकाशरूपी
बराहके दँवके समान, ताररूपी भोतियौकी सीपीके समान, घने
अन्धकाररूपी हाथीके अङ्गुशके समान, शृङ्गाररूपी फाटकी
कुआँके समान, विरहिनियोंके हृदयको काटनेवाली वैचिके
समान और सायङ्कालरूपी बेरयाके हृदयपर लगे हुए नखरतके
समान चमकती है ॥ ४० ॥ यदि शक्तिशाली कामदेवने चन्द्रमाके
किरणरूपी मित्रोंको साथ लेकर अपना विजयी धनुष उठाया है
तो ठीक ही है क्योंकि विजयश्री जिस शक्तिशाली व्यक्तिको यश
देना चाहती है उसके लिये सहायक भी ला जुटाती है ॥ ४१ ॥
महर्षि अत्रिके नयनोंसे उत्पन्न चन्द्रमाने दूसरी अग्निके समान
दिशाशोकके मुखोंको अचानक चमकाते हुए और सारे सप्ताहको
रतिके लिये व्याकुल करते हुए सबके हृदयमें कामदेव जगा दिया
है ॥ ४२ ॥ अपनी चमकसे मतवाला चन्द्रमा सारे सप्ताहको इस
प्रकार घोसेमें डाले दे रहा है कि खोपड़ीपर पड़ी हुई चन्द्रमाकी
किरणोंको दूध समझकर अल्ली चाटनेका प्रयत्न कर रही है,
पृथक पत्तोंसे छन-छनकर आनेवाली किरणोंको कमलकी लपटल
समझकर उन्हें खानेके लिये हाथी मपट रहे हैं और बिद्युदेनेपर
पड़ी हुई किरणोंको बछ समझकर क्षिणों रतिके अन्तमें
घार-घार उठा रही है ॥ ४३ ॥ चन्द्रमाके प्रकारसे उजली
रातोंमें अपने अपने प्रियतमसे मिलनेके लिये आतुर होकर बली

जाती हुई गोरी-गोरी नवेलियोंकी छाया ऐसी प्रतीत होती
है मानो वे उठी बली जा रही हों ॥ ४४ ॥ अथशरकी
बखसे रहित तथा खिले हुए कुमुदरूपी नेत्रोंवाली पूर्व
दिशांरूपी नायिकाके उदयाचलरूपी स्तनोंपर हाथ रखकर
चन्द्रमा उसका मुख चूमने लगा है ॥ ४५ ॥ टण्डी
किरणोंवाले चन्द्रमाकी कलासे धीरे-धीरे दूर हटते हुए अन्धकार
रूपी जटावाले आनाशको जब लोगोंने देखा तो थोड़ी देरके
लिये वे लोग उसे सचमुच यशोराजीकी मूर्ति समझ बैठे ॥ ४६ ॥
सुधांस्तके समय इस चन्द्रमाने सुदौसे अपना रूप पाकर अत्यन्त
अनुतागसे कमलिनीका स्पर्श किया किन्तु दूसरे पुरके हाथका
स्पर्श होते ही कमलिनी मुँद गई और चन्द्रमा लजाकर फिर
अपने रूपको प्राप्त हो गया अथात् श्वेत पड़ गया । इसपर
उसकी प्यारी कुसुदिनियों हँस पड़ीं, अतः चन्द्रमा लजाकर
पीला पड़ गया ॥ ४७ ॥ हे सखी ! देखो, यह चन्द्रमा अपने
नरों (किरणों, हाथों) से रात्रिरूपी नायिकाके सुन्दर बछ
(आकाश) हटाता हुआ (दूता हुआ), कमलके कोपरकी
स्तनोंको मसलता हुआ और उसके खिले हुए कुमुदरूपी नेत्रोंसे
देखा जाता हुआ रात्रिरूपी नायिकाको अत्यन्त रसाली बना
रहा है ॥ ४८ ॥ शङ्करजीके सिरपर बहती हुई गङ्गाजीमें क्रीड़ासे
पके हुए और कीचड़से लिपटे हुए कमलके नालके समान,
बपूरके बूणोंके समान, कामदेवकी पत्नीके प्यालेके हत्येके ममान,
और आकाशकी कमलिनीके पतेपर पड़ी हुई जलके दूँरके
समान यह सप्ताहको सुराभित करनेवाला पुरसागरका प्याल

विन्दोरन्तस्तोपं न केपां किसलयति जगन्मखडनं
खण्डमिन्दोः ॥ ४६ ॥ कुमुदेष्वधिकं भान्ति पतिनाश्च-
न्द्ररश्मयः । अतिप्रकृष्टशीलेषु कुलेष्विव समृद्धय-
॥५०॥ कैलासायितमद्रिभिर्विदपिभिः श्वेतातपत्रायितं
मृत्युङ्केन दधीयितं जलनिधौ दुग्धायितं चारिभिः ।
मुक्ताहारलतायितं व्रततिभिः शङ्खयितं श्रीफलैः
श्वेतद्वीपजनायितं जनपदैर्जाते शशाङ्कोदये ॥ ५१ ॥
कोकानाकुलद्वैश्चकोरतरुषीवैकल्पमुन्मूलयन्मोजानि
निमीलयन्कुमुदिनीरुन्मीलयन्सर्वतः । पान्थानाकुलतां
नयन्कुलवधूजेतः समुल्लासयन्सन्तं याति दिवापतिः
समुदयं यात्येव दोषापतिः ॥ ५२ ॥ क्रमादेकद्रि-
त्रिप्रभृतिपरीषाद्या प्रकटयन्रुलाः स्वैरं स्वैरं
नचनलिनरुन्दाङ्कररुचः । पुरन्धीणां प्रेयोविरहदहनो-
द्दीपितहर्षां कटाक्षेभ्यो विभ्यग्निभूत इव चन्द्रोऽभ्यु-
दयति ॥ ५३ ॥ कैतन्मार्तण्डविभ्यं सरसि सरसिज-

श्रेणिहास्यं क यातं कैते याता रथाङ्गाः सपदि गत-
ह्रियः क प्रविष्टा मरालाः । सन्ध्यारागासण्डाङ्गः कुपित
इव पतिः प्रोद्यतोऽयं हिमांशुर्मन्यं हर्षोदिवेयं हसति
कुमुदिनी जाग्रतोवालिनादैः ॥ ५४ ॥ क्षीराब्धेर्लहरीषु
फेनध्रवलाश्चन्द्रोपलेषु स्रवत्पाथःस्तीकरिणो विकोसि-
कुमुदक्रोडे रजःपिञ्जराः । उन्मूलन्ति चकोरचञ्च-
गहने छिन्नप्रकूटाश्चमरकुर्वन्तः प्रियविप्रयुक्तमणी-
गात्रे सुधांशोः कराः ॥ ५५ ॥ ह्यता वयं समधुषा
मधुकोशवत्यश्चन्द्रः प्रसारितकरो द्विजराज एषः ।
अस्मत्समागमकृतोऽस्य पुनर्द्वितीयो मा भूत्कलङ्क इति
सद्बुद्धिना नलिन्यः ॥ ५६ ॥ गगनविपिनिसिंहः काम-
भूपातपत्रं निखिलदिगवलानां कन्दुकं क्रोडनाय ।
मणिरिच रतिभर्तुः कामण्यं पार्वणोऽयं जयति कुमुद-
वन्धुर्वन्धुश्चन्द्रविभ्यः ॥ ५७ ॥ चन्द्रपादजनितप्रभृ-
त्तिभिश्चन्द्रकान्तजलविन्दुभिर्गिरिः । मेघलातह्यु

चन्द्रमा किसके मनमें मस्ती नहीं भर रहा है ॥ ४६ ॥
जैसे शुद्ध आचरणवाले परिवारमें संपत्ति बढ़ती है वैसे
ही कुमुदिनीयोंपर पडी हुई चन्द्रमाकी किरणें भी बहुत अधिक
चमक रही हैं ॥ ५० ॥ चन्द्रमाके उदय होनेपर पहाड़ तो कैलासके
समान, पृथ्वी भी खेत धतूरीके समान, वीचड़ भी दहीके
समान, समुद्रका जल भी दूधके समान, लताएँ भी मोतीके
हारकी जड़ियोंके समान, बेलके फल भी शङ्खके समान और
नर-नारी भी खेत द्वीप (योरों) के लोगोंके समान जान पड़ते
हैं ॥ ५१ ॥ एक ओर तो चक्रे-चक्रवियोंको व्याकुल करता हुआ,
कमलोंको मूँदता हुआ और पथिकोंको शर्षीर करता हुआ सूर्य
अस्ताचलकी ओर जा रहा है और दूसरी ओर चकोरियोंको
प्रसन्न करता हुआ, कुमुदोंको खिलाता हुआ और अच्छे
जुआँकी नई बहुओंके मनमें हुलास बढ़ाता हुआ यह चन्द्रमा
उदय हो रहा है ॥ ५२ ॥ नये कमलका जड़ोंके अँडुएके समान
कान्तिवाली अपनी एक-एक किरणें बारी-बारीसे फैलाता
हुआ चन्द्रमा ऐसा लगता है मानो सदाचारिणी नवेलियोंके
प्रियतमकी बियोगासिसे दूहते हुए नेत्रोंकी तिरछी चितवनसे
रत्ना हुआ धीरे-धीरे चुपचाप उदय हो रहा है ॥ ५३ ॥
सुरपङ्कज होते ही सूर्यका विन्म कहीं चला गया ? तालाकोंके
कमलोंकी सुन्दर हँसी कहीं छिप गई ? अथवाक चक्रेके कहीं
उड़ गए और लाज छोड़कर सब हस भी वहाँ छिप गए ? मैं
समझना हूँ कि सन्ध्याकी लालीमे खाल अर्धोंवाले चन्द्रमाको

कोपसे लाल होकर उदय होते देखकर ये सब तो भाग गए हैं
और अपने पतिके आगमनसे प्रसन्न होकर भौंतीकी गुजाले
जापती हुई-सी कुमुदिनीयों हँसने लगी हैं ॥ ५४ ॥ क्षीरसागरी
लहरोंपर उठे हुए फेनको चमकाती हुई, चन्द्रकान्त मणियोंमे
जलकी बूँदें बहाती हुई, खिली हुई कुमुदिनीयोंकी मोदका
पराग पीला करती हुई और चकोरकी चोंचके वनमें कटकर पिया
उगी हुई-सी ये चन्द्रमाकी किरणें अपने प्यारोंसे बिलुड़ी हुई
सुवर्णियोंके अर्धोंपर छटलेखियाँ करती चारों ओर फैल रही हैं
॥ ५५ ॥ चन्द्रमाके उदय होनेपर मुरझाई हुई कमलिनीयों
मानो इस डरसे सङ्कुचित हो गई हैं कि 'हम लोगोंसे समागम
करनेपर कहीं इस बेचारे चन्द्रमाको एक दूसरा कलङ्क न लग
जाय क्योंकि यह चन्द्रमा द्विजराज (ब्राह्मणोंका राजा) है और
हम सब मधुषु (शराबी, भँरे) रूपी विटों (धूर्तों, भँडुवाँ)
तथा मधुकोष (मदिरापात्र, मधुके भण्डार) से युक्त
हैं ॥ ५६ ॥ आकाशरूपी धनके सिद्धके समान, कामदेवकी
राजाके छत्रके समान, सन्ध्याई दिशाकी नायिकाओंके लेडकी
गेंदके समान, कामदेवके मणिके समान और कुमुदके हितोंके
समान यह सुन्दर भाग्यशाली पृथ्वीमाका चन्द्रमा चमक रहा है
॥ ५७ ॥ अपनी तलहटीके छूटोंपर सोए हुए मोरोंपर चन्द्रमाकी
किरणोंसे चन्द्रकान्तमणियें निकली हुई जलकी बूँदें बरस-
बरसाकर पहाड़ उन्हें अचानक जगाए दे रहा है ॥ ५८ ॥ अपनी
किरण-रूपी जटाएँ फैलाए, हाथमें कलंककी रत्नपत्थी मारा

निद्रितानमून्योद्यत्यसमये शिखरिणः ॥५॥ जटा-
भामिर्भामिः करधृतकलङ्काण्डलयो वियोगिव्यापत्ते-
रिय फलितवैराग्यविशुद्धः । परिप्रेक्ष्य चारापरिकरकपा-
लाङ्कितसले शशी भस्मापाण्डुः पितृवन इव व्योम्नि
वरति ॥ ५६ ॥ जाते यौवनपीनघास्त्रि शशिनि ध्राम्य-
न्तमाराद्विप आन्त्या श्वेतपतत्रिण्यं सहचरं फोकाङ्गना
मुञ्चति । कुर्वन्नस्तमितोपलम्भविधुरो हंसः प्रियान्वे-
पयं हर्षोत्सङ्कितमानसः पुनरिस्तमालोभय सञ्जायते
॥ ६० ॥ ज्योत्स्नाचयः पयःपूरस्तारकाः कैरवाणि च ।
राजति व्योमकासारराजहंसः सुचाकरः ॥ ६१ ॥
ततः कुमुदनायेन कामिनीगण्डपाण्डुना । नेत्रानन्देन
चन्द्रेण माहेन्द्री दिगलङ्कृता ॥ ६२ ॥ तथा पौरस्त्या-
यां दिशि कुमुदकेदारकलिकाफवाटजमिन्दुः किरण-
लहरीमुल्लसयति । समन्तादुन्मीलद्वहलजलविन्दुस्त-
यकिनो यथा पुञ्जायन्ते प्रतिगुडकमेणाङ्गमणयः ॥ ६३ ॥

तारात्तान्प्रतिकिरणकलकण्डनादान्मन्त्राचाराणि निग-
दन्कुसुमेपुरेपः । लामाय वासरमणैर्मुपितस्य सायं
सञ्चारत्यत्यमृतदीधितिकास्यपात्रम् ॥ ६४ ॥ तैः सयं-
शीभवदभिसृतानेत्रसिद्धाङ्गनैर्वा नीरन्ध्रैर्वा त्रिभुवनह-
शामन्घपट्टैस्तमोभिः । व्याप्तं पृथ्वीवलयमपिलं क्षाल-
यन्नुच्छ्रुलङ्घिर्वात्साजालैर्यमुदयते शर्वरीसायंमौमः
॥ ६५ ॥ त्रिनयनचङ्गारकं मित्तं तिन्धोः कुमुद्वतीद-
यितः । अयमुदयति घुसृणाण्णरमणोद्यद्वनोपमध्वन्द्रः
॥ ६६ ॥ त्रिनयनजटावल्लीपुष्पं निशावदनस्मितं ब्रह्म-
किसलयं सन्ध्यानारीनितम्बनप्रकृतिः । तिमिरमिदुरं
व्योम्नः शृङ्गं मनोमवकासुंफं प्रतिपदि नभस्तेन्द्रोर्विस्यं
सुस्रोदयमस्तु नः ॥ ६७ ॥ दर्पोद्रेकः कुसुमघनुषो
जीवतं कैरवाण्यं जीवज्जीवप्रणयगरिमा भाग्यराशिनि-
शायाः । शृङ्गारधीललितहसितं पानपात्रं सुराणां
पौरस्त्याद्रेर्जयति शिखरं किं तमः स्यातुमोषे ॥ ६८ ॥

क्षिप, वियोगी खोगोंकी विपत्ति देखकर वैराग्य धारण किए
और भस्म धारण करनेसे आर्यन्त उज्जवा दिखाई देता हुआ
चन्द्रमा चमकते हुए तारोंके समूह रूपी कपाळोंसे भरे हुए
आकाशरूपी रमशानमें घूम रहा है ॥ ५६ ॥ रात्रिमें जब
चन्द्रमामें यौवन आ गया अर्थात् उसमें पूरा प्रकाश आ गया
तो उसकी उज्जवी चमकसे चकवीको प्रातःकाल होनेका भ्रम हो
गया अतः यद्यपि यह अर्पणी प्रिया (चकवी) के आस-पास
चक्कर लगाता रहा किन्तु चकवीने उसे छोड़ ही दिया । इसी
प्रकार हंस भी आर्यन्त प्रसन्नतासे अपनी प्रिया (हंसिनी) को
देख रहा था, जब उसने चकवीको देखा तो उसे भी स्मरण हो
आया कि अभी यह चन्द्रमा अस्त नहीं हुआ, मुझे भ्रम हो
गया है ॥ ६० ॥ किरणोंके समूहरूपी जलसे भरे हुए तथा
ताररूपी कुमुदोंसे लिये हुए आकाशरूपी सरोवरमें यह
चन्द्रमा रामहंसके समान शोभा पा रहा है ॥ ६१ ॥ इसी बीच
विराहियोंके गालके समान पीले, कुमुदियोंके स्वामी और
आँखोंको मुञ्ज देनेवाले चन्द्रमाने पूर्व दिशाको सुखोन्मित कर
दिशा ॥ ६२ ॥ ज्यों-ज्यों चन्द्रमा पूर्व दिगामें कुमुदकी
बयारियोंके मुँह खोलनेवाली किरणोंकी लहरें बढ़ा रहे हैं त्यों-
त्यों प्रत्येक मुदिशाके सिरपर टँकी हुई चन्द्रकान्तमणियोंके ऊपर
हँसोंके मुखे सन रहे हैं ॥ ६३ ॥ इस चन्द्रमाको देखकर
पेसा जान पड़ता है मानो खोरी गय हुए दिनके सूर्य
(सूर्य) का चोर पकड़नेके लिये कामदेवने ताररूपी अर्पण
दिशकर, कोयलकी पृष्ठके मंत्र पढ़कर, अमृतरूपी किरणोंसे

भरा हुआ यह कौंसेका कठोरा चला दिया हो ॥ ६४ ॥ उदय
होते हुए चन्द्रमाको देखकर पेसा जान पड़ता है मानो अर्पणे
ही प्रकाशसे सप कुछ देखनेवाला यह रात्रिका राता चन्द्रमा,
आँखोंमें सिद्धाङ्गन लगाकर सब कुछ जान खेनेवालेके समान
सर्वज्ञ होकर, इस त्रिभुवनकी आँखोंको अन्धा करनेवाली पट्टीके
समान पीले हुए घने आँधरेसे भरे हुए पृथ्वीरूपी कहनको
अपनी चमकती हुई किरणोंसे धोता हुआ निकट रहा हो
॥ ६५ ॥ शृङ्गारकीके जटाजूटका रत्न, सयुद्धका मित्र और
कुमुदिनियोंका स्वामी चन्द्रमा किसी सुरदरी नायिकाके मुखके
समान लाल लाल-सा उदय हो रहा है ॥ ६६ ॥ शृङ्गारकीकी
जटाजूटकी जताके कून्नके समान, सदा सुरद्वाराती रहनेवाली
रात्रि-रूपी नायिकाके मुखकी सुरकानके समान, नभशोंकी
कवीके समान, सन्ध्यारूपी सुवतीके नितम्बपर घने
हुए नखचिह्नके समान, आँधेरा नष्ट करनेवाले आकाशके
शिखरके समान तथा कामदेवके घनुषके समान इस
प्रतिपदा तिथिमें उदय होनेवाले चन्द्रमाका विश्व हमारे
लिये सुखदाई हो ॥ ६७ ॥ जब आकाशमें कामदेवका
धुलकता हुआ अभिमान, कुमुदोंका प्राण, संसारके प्राणियोंके
प्रेमका महश्च, रात्रिका भाव, शृङ्गारकी लपनीका सुन्दर
हास्य और देवताओंके अमृत पीनेका पात्र यह चन्द्रमा
उदयाचलके शिखरपर आ बपसित हुआ है तब भी क्या
कहीं अन्यकार ठहर सकता है ! ॥ ६८ ॥ यह कुमुदियोंका प्रेमी
चन्द्रमा इस समय निकला हुआ पेसा जान पड़ता है मानो

दिग्बालाकरबन्दुकः स्मरवधूसीमन्तमुक्तामणिः काम
 क्षोषिपतेविहारखलभीनिव्यूहपारावतः । हृद्व्योस्रि
 विकीर्णतारकमणिः श्यामा वधिक्नुभ्रुवः स्फार
 स्फाटिकसम्पुटः कुमुदिनीकान्तोऽयमुन्मीलति । ६६ ॥
 दिग्मन्त्रतस्तिमिरचूर्णविशेषपूर्णाद्रुद्रवरोडमथरञ्जक
 विस्फुलिङ्गात् । कालेन पूर्वगिरिदुर्गजुषा प्रयुक्तो
 वृत्तपोलो विधुमिपात्पथि नान्दिहस्तित् ॥ ७० ॥ दिवसं
 श्लोष्णरुचिपाद्दत्तां रुद्रतीमिधानवरतालरुद्रैः । मुहु-
 रागृश्वन् मृगघरोऽप्रकरैरुदशश्वसत्कुमुदिनीवनिन्तम्
 ॥ ७१ ॥ दीपयक्षय नमः किरणोद्यैः कुङ्कुमारुण
 पयोधरनौरः । हेमकुम्भ इव पूर्वपयोधेरुन्ममज्ज शनकै
 स्तुहिनांशुः ॥ ७२ ॥ दूरमंशुप्रमाजालं प्रसारयति
 चन्द्रमाः । राशौ नववयाः कामी मनोरथमिवाधनः
 ॥ ७३ ॥ चां निदन्धदतिनोलघनाभं ध्वान्तमुद्यतकरेण

पुरस्तात् । क्षिप्यमाणमसितेतरभासा शम्भुनेव करि
 चर्म चक्रासे ॥ ७४ ॥ ध्वन्त्वौघे शितिकण्डकरुमहसि
 प्राप्ते प्रतीचीमुखं प्राचीमञ्जति किञ्च दुग्धलहरीमुखे
 विधोर्धामनि । पतत्कोकचकोरशोकरभसम्लानप्रसन्नो
 ल्लसद्दृक्पातोर्मिकदम्बुक्षुभ्रितमिव प्रेलोकप्रभाभासते
 ॥ ७५ ॥ न प्रसादमुचितं गमिता चोर्नोद्धतं तिमिर
 द्विघनेभ्यः । दिङ्मुखेषु न च ग्राम विकीर्णं भूपतेव
 रजनो हिमभासा ॥ ७६ ॥ नभोलताकुङ्कुमुपागतायाः
 प्रमोदयथाकुलतारकायाः । निशाङ्गनायाः स्फुरता
 करेण शशो तम कञ्चुकुमुमुमोच ॥ ७७ ॥ नयमानन्द-
 दायीन्धोर्विम्बमेतत्प्रसोदति । अघुना विनिद्विदाशं
 प्रविशोर्णमिदं तमः ॥ ७८ ॥ नवकुङ्कुमवर्चिका रजया
 गगनाशोकरतोः प्रवालपङ्क्तिः । मणिकुन्तलता स्मरस्य
 मन्ये शशिनः प्राथमिकी मयूखलेखा ॥ ७९ ॥ नवचन्द्रि

दिशाक्षुपी बालिकाके हाथकी गेंद हो, कामदेवकी पत्नीके केशों
 का मुकुटामणि हो, कामदेवकी राजाके विहार भवनके गोलेमें
 पैठा हुआ शान्त कवच हो, आकाशरूपी हाटमें फैलाप
 हुए तारोंका मणि हो, रात्रिरूपी वैश्य पत्नीकी टेढ़ी भोंईकी
 मधुर चितवन तथा स्फटिक मणिले बनी द्विधिया हो
 ॥ ६६ ॥ पूर्वके पर्वतरूपी दुर्गमें रहनेवाले कालने शंभेरूपी
 बाहूदेके चक्राकर तारेरूपी चमकीली चिनगारियोंके साथ जो
 यह दिशाक्षुपी तोपसे पथरका गोळा चलाया है वही चन्द्रमा
 बघकर पथिकोंको मारे ढाळ रहा है ॥ ७० ॥ चन्द्रमाने अपनी
 कुमुदिनीरूपी उस नायिकाको सहजाते और समझते हुए बदा
 पीरज बंधाया जो दिन भर सूर्यकी बहुत तपी हुई किरणोंकी
 जातें खाकर भीरोंके गुञ्जनके रवोंमें रो रही थी ॥ ७१ ॥ कुङ्कुमसे
 रंगे हुए गोरे-गोरे स्तनोंके समान सुन्दर चन्द्रमा अपनी
 किरणोंसे आकाशको जली-भाति चमकाता हुआ पूर्व समुद्रमेंसे
 सोनेके पथके समान धीरे-धीरे निकल आया ॥ ७२ ॥ रात
 रहे ही चन्द्रमा उसी प्रकार अपनी किरणों दूर-दूर तक फैलाने
 लगा नीसे कोई चवती हुई जवानोवाळा कज़्जल कामी मनोरथोंके
 नये-नये पुख बाँधता है ॥ ७३ ॥ उजली किरणोंवाले चन्द्रमाकी
 चवती हुई किरणोंसे ऊपर उठकर आकाशमें घिरनेवाले अत्यन्त
 काळे काळे बादलोंके समान दिखाई पदनेवाळा कंधेरा ऐसा
 जान पड़ता है मानो भगवान् शङ्करने हाथीकी स्तब्ज ऊपर
 भोंदू खी हो ॥ ७४ ॥ शिवजीके कपडके समान नीले शंभेरने
 जब परिघम दिशाक्षो पेर लिया और दूषकी बहरोंके समान

उजली चन्द्रमाकी किरणें पूर्व दिशामें जा गईं, उस समय
 यह त्रिलोक ऐसा जान पड़ा मानो एक घोर सघातक चक्केकी
 शोकसे मुरकाई आँखोंकी पलकरूपी जहर्ते ठसे (त्रिलोकके)
 चूमने लगी हों और दूसरी ओर प्रसन्नतासे खिन्नी हुई
 चकोरकी आँखोंकी पलकरूपी जहर्ते चूमने लगी हो ॥ ७४ ॥
 सभी आकाश पूरा रचक भी नहीं हो पाया था, पहाड़ी
 जङ्गलोंसे सभी पूरा पूरा कंधेरा भी नहीं छुँट पाया था और
 दिशाक्षोंके मुखपर सभी किरणें भी ठीक-ठीक नहीं पहुँच पाईं
 थीं कि चन्द्रमाकी शीतल कान्तिमानसे ही रात लिख डली
 ॥ ७५ ॥ चन्द्रमाकी खिलती हुई किरणें ऐसी जान पड़ती हैं
 मानों चन्द्रमाने अपने किरणरूपी हाथ फेलाकर, आकाशकी
 जतापटपटमें तारिकाक्षुपी सत्त्वियोंके साथ कण्डलेजिर्णो काली
 हुई रात्रिरूपी नायिकाकी अन्धकाररूपी चोखी उबाड़ ही हो
 ॥ ७६ ॥ आँखोंको सुख देनेवाले चन्द्रमाका यह विषय जब लिख
 डटा है और दिशाक्षों (आशाक्षों) को नष्ट करनेवाला
 कंधेरा छुँट चला है ॥ ७७ ॥ चन्द्रमाकी किरणोंकी पहली-
 पहली रेखाएँ ऐसी जान पड़ रही हैं मानो रात्रिरूपी नायिकाकी
 धातीपर नये कुङ्कुमकी सूँदें हों या आकाशरूपी चकोरके हृदके
 पत्तोंकी चन्दनवाह हो या कामदेवके मणिले बने हुए
 भाजोंकी पत हों ॥ ७८ ॥ चन्द्रमाकी किरणोंके देखा
 खोगोंने समझा कि नई चन्द्रनीके पूखों (तारों) से सभी हुई
 अन्धकाररूपी केशोंवाली, इन्द्रकी प्यारी पूर्व दिशाक्षकी
 नायिकाके मुखपर यह मजबूत चन्द्रमा खेर लगा हुआ है

काकुत्सुमकोर्षतमः फयरीभृशो मलयजार्द्रमिव । दृष्टे
ललाटतटहारि हरेर्हरितो मुखे तुद्दिनरश्मिदलम् ॥८०॥
नाशयन्तो घनघ्नान्तं तापयन्तो वियोगिनः । पतन्ति
शशिनः प्रादा भासयन्तः क्षमातलम् ॥ ८१ ॥ नीलनीर-
जनिभे द्विमगौरं शैलरुच्यपुपः सितरश्मिः । खेरराज
निपतरकरजालं धारिधेः पयसि गाङ्गमियाम्भः ॥८२॥
पश्चिन्या दयितेऽनुधावति दया स्वं पश्चिनीद्रोहिणं
भ्रान्त्वा भीतमना दिगन्तमखिलं चन्द्रो जगाद्देऽभ्यु-
धिम् । गाढे तत्र च तत्र विह्वलममुं कर्षन्ति ताराः
पति सोऽयं तच्छ्रमवारिकुङ्कुमरत्नैः सिक्तोऽद्यो
दश्यते ॥ ८३ ॥ पश्य पकफलिनीफलत्विपा शिष्यला-
ञ्छितवियत्सरोम्भसा । विमरुष्टविधरं हिमांशुना
चक्रवाकमिथुनं विडम्ब्यते ॥ ८४ ॥ पश्योदेति वियो-
गिनोदनमणिः शृङ्गाररत्नामणिस्तारामौकिकह्वारनाथ-
कमणिश्चण्डीशचूडामणिः । प्रौढानङ्गभुजङ्गमस्तकमणिः

कन्दर्पसोमन्तिनीकाञ्चीमध्यमणिश्चरोपरिपश्चिन्ताम-
णिश्चन्द्रमाः ॥ ८५ ॥ पिनष्टोय तरङ्गाग्नेः समुद्रः फेन-
चन्दनम् । तदादाय करैरिन्दुलिम्पितीय दिगङ्गनाः
॥ ८६ ॥ पोयुपाश्रयणं जगत्त्रयदशमालानलेधातयो
विश्वोन्माद्यहृताशनस्य फकुमामुद्घाटिनी कुञ्जिका ।
पीरुपु प्रथमा च पुष्पघनुयो रेखा शृगाचीमुखभीर्णां
च प्रतिराजयोजमधिकानन्दी नयश्चन्द्रमाः ॥ ८७ ॥
पुश्यरह्लोकमणेजगतत्रयपरिफलेशप्रशान्तेः हृते सद्य-
त्नस्य पयोददामसुषुयमासम्भारिणः शीपतेः । श्लोको
मोदयतेऽसकी कुचलयं या श्यामतास्मिन्पुनः प्रोत्रेत्तुं
स्वतदीयतापरिचयं न त्वन्यथात्वं स्थिना ॥ ८८ ॥
प्रतिकामिनीति दृष्टश्चकिताः स्मरजन्मधर्मपयसोप-
चिताम् । सुदशाऽभिमर्तुशगिरिमगलजलविन्दुमिन्दु-
मणिदारुचधुम् ॥ ८९ ॥ प्रथमं कलामयदधार्धमथो
द्विमदीधितिर्महदभूदुदितः । दधति ध्रुवं क्रमशः पय न

॥ ८० ॥ घना शंघेरा मिटातो हुई, वियोगियोंके हृदयमें दाह
वपजाती हुई और सारी श्रृष्टीको चमकाती हुई चन्द्रमाकी
किरणें चारों ओर फैल रही हैं ॥ ८१ ॥ नीलकमलके समान
घने नीले आकाशमें पर्यंतोंसे भरे शरीरवाले चन्द्रमाकी किरणें
समुद्रके जलपर स्वच्छ दिमके समान पड़ती हुई ऐसी जान
पड़ती थीं मानो गङ्गाजीके जलकी धाराएँ गिर रही हों ॥ ८२ ॥
रातमें अपने द्वारा कष्ट पाई हुई कमलिनीके प्यारे सूर्यको
कोपसे आकाशमें दौड़े आते देखकर डरके मारे जिस चन्द्रमाने
चारों दिशाओंमें भी कहीं शरण न पाकर समुद्रमें डुबकी
जगा ली थी उसी अपने विह्वल पति (चन्द्रमा) को
सूयांशुके परचाह समुद्रके आधा जलमेंसे चारिकाएँ ध्वर-
वधारसे खींचकर उठा रही हैं और वह उनके पसीनेसे
बहे कुंडलके रससे भींगकर जाल-जाल दिखाई पड़ रहा
है ॥ ८३ ॥ देखो ! पकी हुई फलिनीके प्रियंगु फलके
समान जाल विश्रवाञ्जा यह चन्द्रमा आकाशमें और सरोवरके
जलकी परछाईमें रातके समय अलग होकर दूर-दूर बैठे हुए
चक्रके जोड़ेके समान दिखाई पड़ता है ॥ ८४ ॥ देखो !
यह चन्द्रमा विराहिणोंके लिये सूर्य, शृङ्गारके लिये सुन्दर
रत्नामणि, वारेरूपी मोतियोंकी माडाका प्रधान चमकीला मणि,
शहरजीके सिद्धांत मणि, तदृश्य कामदेवरूपी संपंके मस्तकका
मणि, कामदेवकी पत्नीकी कर्चनीका मणि और बकोर पत्नीकी
सभाके लिये चिन्तामणि बनकर उदय हो रहा है ॥ ८५ ॥

समुद्रपर पड़ती हुई चाँदनी इस समय ऐसी जान पड़ती है
मानो समुद्र अपने तरङ्गरूपी डोंडियोंसे फेनरूपी चन्द्र
घिस रहा हो और चन्द्रमा अपने किरणरूपी हाथोंसे उठा-
उठाकर दिशाओंकी नायिकाओंके शरीरपर उसका लेप कर रहा
हो ॥ ८६ ॥ संसारकी शालोंकी शरतके समान सुख देनेवाञ्जा,
संसारको मयनेवाली कामाग्निके लिये रूँटेका टुकड़ा, दिशाओंकी
खोजनेकी कुञ्जी, वीरोंकी गिनतीमें कामदेवकी पहला बताने
वाली रेखा तथा शृगणनी नवेलियोंके लिये शतुताका बीज
यह शरयन्त आनन्द देनेवाञ्जा चन्द्रमा उदय हो रहा है ॥ ८७ ॥
चन्द्रमामें जिसे आप कलङ्क समझते हैं वह कलङ्क नहीं चारु
विष्णुकी देहका सौंदर्यायन है क्योंकि तीनों जाँकोंका सन्ताप
दूर करनेके लिये, मेघोंकी सी परम सुन्दर कांतिवाले परम पवित्र
विष्णु भगवायु ही तो बहुत बनठनकर चन्द्रमाके रूपमें उदय
हुए हैं । बही सौंदर्यायन उनको पहचान है जिसे देखकर समुद्र-
समूह (श्रृष्टी-मयबल) रिज उठता है ॥ ८८ ॥ अपने पतियोंके
साथ वीठी हुई जिन सुन्दर नेत्रवाली युवतियोंकी देहपर काममे
दल्पन स्वेदजल (पसीने) की बूँदें निकल रही थीं उनके
सामने जब चन्द्रकान्त मणिसे बनी पुतलियोंपर चन्द्रमाकी
किरण पड़नेसे जलकी बूँदें हवा गईं तो उन पुतलियोंको
देखकर लियोंकी बड़ा आश्चर्य हुआ कि ये हमारी सीतें कहाँसे
निकल आईं ॥ ८९ ॥ चन्द्रमा पहले एक कटा खेकर उदय हुआ
फिर आधा दिखाई दिया और इसके परचाह वह पूरा गोल

सु द्युतिशालिनोऽपि सहसोपचयम् ॥ ६० ॥ प्रथममरु
णच्छायस्तायत्ततः फनकप्रभस्तदनु विरहोत्ताम्यत्त-
न्वीकपोलतलद्युतिः । उदयति ततो ध्वान्तध्वंससूचमः
क्षणदासुते सरसविसिनीकन्दच्छेदच्छ्रविर्मृगलाञ्छुतः
॥ ६१ ॥ प्रसारणपरैः करैः प्रकटितानुरागोदये सुधा
किरणकामुके त्वरितमम्बरालम्बिनो । तदा विगलितो
ल्लसत्तिमिरजालनीलांशुका पुरन्दरदिगङ्गना पुलकितैव
तारागणैः ॥ ९२ ॥ प्राचीनाचलसुभ्यचन्द्रमणिभिर्नि
र्व्यूढवाद्यं निजैर्निर्यातैरुदभिर्निजेन वपुषा दत्तार्घला
जाञ्जलि । अन्तःप्रोढकलङ्कतुच्छमभितः सान्द्रं परिस्ती-
र्यते विभ्यादङ्कुरभञ्जनैश्श्रुतमःसन्दोहमिन्द्रोर्महः ॥ ६३ ॥
प्राचीभागे सरागे धरणिषि (द्विषो) क्लान्तधक्रे समुद्रे
निद्रालो नीरजालो विकसति कुमुदे निविक्षारे चकोरे ।
आकाशे साधकाशे तमसि शतमिते नागलोके सशोके
कन्दर्पे मन्दर्पे वितरति किरणाश्शर्षरीसार्वभौमः ॥ ६४ ॥

हो गया । हीक है, तेजस्वी लोग भी अचानक बहुत बढ़े
नहीं हो जाते, इनकी भी उन्नति धीरे-धीरे ही होती है ॥ ६० ॥
अन्धकारका नाश करनेवाला और रसमयी कमलिनिकी जड़के
टुकड़ेके समान उज्जवा चन्द्रमा रातके पहले पहरमें कुछ कुछ
जाग, फिर सुनहरा और उसके परवात् विरहियोंके गाँवके
समान हलका पीलापन लेकर उदय हो रहा है ॥ ६१ ॥
चन्द्रमारूपी कामीने अपने किरणरूपी हाथ चञ्चल करवाई-
रूपी प्रेम प्रकट करके जब शोभतासे अन्धर (आकाश, वज्र)
पकड़कर धींचा उस समय इन्द्रकी प्यारी पूर्वा दिशारूपी
नायिकाके शरीरसे चमकीले शँधेरूपी काले वज्र लिसक गए
और वह ऐसी प्रतीत हुई मानो तारोंके रूपमें उसके रोपे
ठट लड़े हुए हों ॥ ६२ ॥ उदयाचलकी चमनेवाली चन्द्रकान्त
मणियों (चँदनी पद्मेसे रिसनेवाले अपने जलसे) जिसे
पैर धोनेकी जग दे रही हैं, निकरकर चारों ओर छिंटके हुए
तारे भी धानकी सीलें बरकर जिसे अर्प दे रहे हैं और जिसकी
किरणों रातके शँधेरकी पूरामिया चुकी है वह चन्द्रमाकी चँदनी
उस चन्द्रमरुदलसे निकरकर चारों ओर फैल रही है जिसके
भीतरकी काँचिमा ऐसी खगती है मानो वह नीचसे खोलखल
हो ॥ ६३ ॥ जिसके आते ही पूर्वे दिशास्त्री नासिका रागयुक्त
(खाज, मेषपुंज) हो गई, विरहियोंके दुःखसे समुद्रके
सुधार सुर्गियों (लहरें) पड़ गईं, कमल सी गए, कुमुदि-
निर्घो विलग गईं, चकोर प्रसन्न हो गए, आकाश स्वप्न

प्राणायामोपदेष्टा सरसिबहुनेर्षोवनोन्मादतीलागो
ष्टीनां पीडमर्दस्त्रिभुवनवनितानेत्रयोः प्रातराग ।
कामायुष्टोमयज्वा शमितकुमुदिनीमौनमुद्रानुरागः
शृङ्गाराद्वैतवादी प्रभवति भगवानेषु पीयूषभाः
॥ ६५ ॥ प्रेरितः शशचरेण करौघः संहतान्यपि नुनेद
तमांसि । क्षीरसिन्धुरिव मन्दरभिन्नः काननाम्यविर
लोचतकण्ठि ॥ ६६ ॥ प्लुष्टानां सखि चण्डांशुदु सशो
दीप्तदीप्तिभिः । सुधांशुर्जगतां दाहं निराकचुमुपस्थित
॥ ६७ ॥ भवनोद्रेषु परिमन्दतया शयितोऽलक्ष
स्फटिकयष्टिसूचः । अवलम्ब्य जालकमुषोपगतानुद
तिष्ठन्दिङ्कुरिणान्मदनः ॥ ६८ ॥ भानावभ्युदिते तथा
मयि गते किं स्यान्मम प्रेयसी हा हेत्यस्तमितः शशो
रसवशादिन्द्रोवरियाः स्मरन् । सोऽयं सम्प्रति
नीलिमाङ्किततनुस्तस्माद्दूरोदृश्यते ये वैयतिकल संस्म
रन्ति चरमे तद्दृपमेधयन्ति ते ॥ ६९ ॥ भूयस्तरापि

हो गया, अन्धकार नष्ट हो गया, सपने ब्याकुल हो गए और
कामदेवका धमक हूट गया वह रात्रिका स्वामी सम्राट् चन्द्रमा
अपनी किरणों चारों ओर फैलाने लगा ॥ ६० ॥ कमलकी
सुनिके प्राणायामका उपदेश देनेवाले (मुश्कानेवाले)
वीनके मद्धकी खीलाओंके सहायक, तीनों लोकोंकी सुनिर्घो
नेत्रोंके कलिया, कामायुष्टोम (काम उत्पन्न करनेवाला)
यज्ञ करनेवाले, शांत कुमुदिनकी मौन मुद्राके अनुग,
शृङ्गारके साथ चद्रवैत माननेवाले (चुन-मजहर करनेवाले)
और अश्रुतमयी किरणोंवाले भगवान् चन्द्रमा उदय हो री
हैं ॥ ६१ ॥ चन्द्रमाकी किरणोंने घने शँधेरको हली प्रका
शिया दिया है जैसे मन्दराचलसे मयकर दिखोये जाते सम
चोर-समुद्रने बड़े बड़े घने बुझावाले वनोंका उजाड़ दिया
था ॥ ६२ ॥ हे सखी ! सूर्यकी अस्तहनीय किरणोंके आने
जले हुए संसारका दाह दूर करनेके लिये ही यह अश्रुतमयी
किरणोंवाला चन्द्रमा पा पहुँचा है ॥ ६३ ॥ भवनोंके नीचा
शँधेरा पाकर वहाँ सीमा हुआ और भाङ्गलसे भरा हुआ
कामदेव, सिद्धियोंमेंसे होकर भीतर पदती हुई स्वर्गकी
पुष्टियोंके समान चमकती हुई चन्द्रमाकी किरणोंका शशा
लेहर ठट लखा हुआ ॥ ६४ ॥ चन्द्रमा यही स्मरण काला हुआ
अस्त हुआ था कि 'सूर्यके उदय होनेपर और मेरे बजे जनैरा
मेरी प्रेयसी नीली कमलिनिकी कथा होगी !' इसीबिने उसका
दृश्य काला पड़ गया है क्योंकि अन्तिम समय जो जिने

यद्मूनि तमस्विनीषु ज्योत्स्नीषु च प्रविरलानि ततः
प्रतीमः । सन्ध्यानलेन भृशमम्बरमृषिकायामार्थतैतै-
दुभिरेव कृतोऽयमिन्द्रुः ॥ १०० ॥ मनोजराजस्य
सितातपत्रं श्रीखण्डचित्रं हरिदहनायाः । विराजति
च्योमसरःसरोजं कर्पूरप्रममिन्द्रुविभ्रम् ॥ १०१ ॥
मयूखनपरशुदत्तिमिरकुम्भिकुम्भस्यलोच्छ्रलत्तरलता-
रकागणविकीर्णमुकागणः । पुरन्दरहरिद्रीकुहरगर्भ-
कुसोदित्यस्तुपारकरकेसरी गगनकाननंगाहते ॥ १०२ ॥
मानिनोजनविलोचनपातानुष्णवाप्यकलुषान्प्रतिशून् ।
मन्दमन्दसुदितः प्रययो पं भीतभीत इव शीतमयूखः
॥ १०३ ॥ मृगराजकरजमङ्गरकियुक्तसुमावर्तसिकाः
सुदृशः । भयसङ्कुचदङ्कमृग यद्दलाऽयसत्सिन्धुमीचन्ते
॥ १०४ ॥ मृगाङ्गाऽयं धत्ते गगनजलतः फेनतुलनां
सितच्छुभ्राकारां मदनमृपतेर्विष्वजयिनः । त्रियामारा-
मायां मलयजविशेषप्रतिकृतिं जगद्धात्रीदेव्या मणिसु-

कुटलचमोज्ज्विमलाम् ॥ १०५ ॥ यं मादमय्यगयाशु-
द्विज ककुमां नामानि सन्निधत्तं ज्योत्स्नाजालकजन्म-
लामिरमितो सुभ्रन्तमन्धं तमः । माथीनादचलादित-
स्त्रिजगतामालोकयोजाद्व्यहिनर्पान्तं हरिपाद्मङ्कुर-
मिव द्रष्टुं जनो जीयति ॥ १०६ ॥ यः कालागदप्र-
भङ्गरचनावासैकलारायते गौराङ्गीकुचकुम्भमूरिसु-
गामोमे सुधाधामनि । विच्छेदनेनलदोपितोरक्यनिता-
चेतोऽविद्यासोद्भवं सन्तापं विनिनीषुरेव यिततरङ्गेन-
ताह्नि स्मरः ॥ १०७ ॥ यः श्रीखण्डतमालप्रति दिद्यः
प्राच्या स्मरन्मपातेः पाण्डुकुच्छ्रप्रति दन्तप्रति वियत्त-
घनीकुट्टोदृशः । फेलिभ्यतसद्वस्त्रप्रति रतेः किञ्च
क्षपायोपितः क्रोडाराजतसाधुगणित शय्यो सोऽयं
जगन्नेत्रति ॥ १०८ ॥ यत्पयोप्यमयूखमालिनि तम स्तो-
माचलतोढायुषां नेत्राणामपमृत्युहारिणि पुरः सूर्योद-
प्यातिथी । अमोज्ञानि पराञ्च तत्रिजमयं दत्तैव

स्मरण करता है, धगळे जन्ममें उसे घेसा हो रू मित्र जाता
है ॥ १११ ॥ विटकी हुई चिदनीवाजी रातोंमें जो वे विट-कुट तारे
दिसाई परते हैं वृत्ते हमारी समकर्म पक्षी भावा है कि सन्धा
रूपी भ्रमिने देसे तातोंको आकाशरूपी सविमें दाबकर ही यह
चन्द्रमा बना दाबा है ॥ १०० ॥ कामदेवके उज्ज्वे ध्रुवके
समान, दिशारूपी नायिकाके स्तनोपर मलय चन्द्रने बने हुए
चित्रके समान, आकाशरूपी सरोवरके कमलके समान और
कर्णके देवके समान उज्ज्वे चन्द्र बिम्ब कमल रहा है ॥ १०१ ॥
इन्द्रकी प्यारी पूर्व दिशारूपी कन्दराके मोहर सोहर उठा
हुआ, अपने किरणरूपी नखोंसे अन्धकाररूपी हाथीका मस्तक
फाड़कर उससे निरुळे हुए चन्द्र तारेरूपी मोतो विलेरता
हुआ यह शीतल किरणोंकी अयाजोवाजा चन्द्रमारूपी सिंह
आकाशरूपी वनमें विचरण कर रहा है ॥ १०२ ॥ यह उष्यो
किरणोंवाला चन्द्रमा रूठी हुई नायिकायोंकी आँखोंसे दले
हुए कुङ्कुम गम आँखरूपी पापोंके शोफने दरे हुएके समान
धारे-धारे आकाशमें उदय हुआ ॥ १०३ ॥ मृगराज (सिंह) के
नखोंके समान दिशाई पदनेवाले टेपूके फूलोंसे सजी हुई
सुनपनी नखेलियाँ रूस अरपन्त उज्ज्वे चन्द्रमाके देख रही हैं
जिसकी गोदमें मृग बरके मारे सिकुड़ा जा रहा है ॥ १०४ ॥
यह चन्द्रमा आकाशरूपी जलके फेनके समान, सारे ससारपर
विजय पाए हुए कामदेवरूपी राजाके उज्ज्वे चक्रके समान, रात्रि-
रूपी नायिकाके छातीपर चन्द्रके खेपके समान और पृथ्वीरूपी

देवीके स्वयं सुकुटकी मणिके समान सुन्दर प्रतीत हो रहा है
॥ १०५ ॥ जो चन्द्रमा दिशाओंके पूर्व, पश्चिम, उच्चर, दक्षिण नाम
धारण करता है, चन्द्रो नखेवा है, किरणोंसे पापों और धारे
हुए आँधरेको नष्ट करता है तथा प्रकाशके बीजरूपी उदयरचसे
निरुळे हुए अङ्गुके समान जगता है उसे देखनेके लिये हो
मगने सारा संसार जो रहा है ॥ १०६ ॥ है कुके हुए अङ्गोवाजी ।
काळे अगरीचित्रकारोंमें निवास करनेवाला यह कामदेव, गौरी
गौरी नखेलियोंके घटों जैसे अरपन्त सुन्दर स्तनोंके समान तथा
अशुभप्रकाशवाले चन्द्रमामें भी धरने हाथ (किरण) फैला-
फैलाकर वियोगानिसे कट पाती हुई नखेलियोंके जो बभनेवाली
भाग भरे दे रहा है ॥ १०७ ॥ पूर्व दिशाके मलय चन्द्र
और तमाजके पतोंके समान, कामदेवरूपी राजाके पीले ध्रुवके
समान, हिरनके समान आँखोंवाली आकाशका जपनीके दन्त-
पत्र (कण्ठ) के समान, रतिके हाथोंमें नेलके लिये द्विये
हुए रवेत कमलके समान और रात्रिरूपी नायिकाके कौकामे
चन्द्रीके रुधिरागके समान प्रतीत होनेवाला यह चन्द्रमा अगम
ससारका नेत्र बन रहा है ॥ १०८ ॥ सूर्यने जो अष्टावसरपी
किरणोंवाला तथा बने आँधरेके कारण दम घुटकर मरनेवाले
नेत्रोंकी रुकावट मीतसे बचानेवाला अतिथि पुष्पावा उगके
आनेपर इन कमलोंने अलि मूँदकर जो बरका बनाकर देवा
उसके कारण चन्द्रमाने अरना पाए कमलवा है दिवा और
वनके पुरव लेकर यह पञ्जादा प्यारी चन्द्रमा गौरा

तेभ्यस्ततो गौराङ्गीवदनोपमासुकृतमादत्ते पतिर्यज्व
 माम् ॥ १०६ ॥ यथा ताराचक्रं चरति परित शीकर
 निर्भं कलङ्कव्याजेन स्फुरति यदयं धूमनिवह । तथा
 मन्ये चण्डीपतिनयनचण्डाश्रिचशगञ्जकारास्त्रिभ्रम्भापं
 हिमकरतटाके मनसिजः ॥ ११० ॥ यातस्यास्तमनन्तरं
 दिनकृटो वेपेण रागान्वित स्वैरं शीतकर करं कम
 लिनोमालिङ्गितुं योजयन् । शीतस्पर्शमुपेत्य सम्प्रति
 तया रुद्धेमुखाभ्योवहे हासेनेव कुमुदतीवनिनतया चैल
 च्यपाण्डकृतः ॥ १११ ॥ युगपद्भिकासमुद्ययद्गमिते
 शशिनः शिलीमुखगणोऽलभत । द्रुतमेत्य पुष्पघनुपो
 घनुषः कुमुदेऽङ्गनामनसि चावसरम् ॥ ११२ ॥ ये पूर्वं
 यवस्यचिप्रसुहृदो ये केतकाप्रचङ्कदच्छायासाम्यभृतो
 मृगाललतिक्कावाययभाजोऽत्र ये । ये धाराम्बुचि
 डम्बिन क्षणमथो ये तारहारधियस्तेऽमी स्फाटिकद-
 रहडम्बरजितो जाताः सुधांशोः कराः ॥ ११३ ॥

मवेष्टिषोके सुहृदी वरावरी पावेका पुण्य भोग रहा है
 ॥ १०६ ॥ मेरी समझ में तो यह आता है कि चण्डीपति
 भगवान् शङ्करके तीसरे नेत्रकी अग्निसे जब कामदेव जल
 उठा तब वह इस चन्द्रमाके ताजामें कूद पडा, उसका
 घुर्घा ही इसमें फलक बन गया है और कामदेवके कूदनेसे
 उड़ी हुई धूँद आज भी इसके चारों ओर तारोंके रूपमें झिंठकी
 झुर्रें हैं ॥ ११० ॥ सूर्यके अस्त हो जानेपर उसका रूप घरकर
 भयुगाभ भरे (जाळ) चन्द्रमाने पक्षी चाहते कमलिनीका
 आश्रितन करनेके लिये उभों ही हाथ पढ़ाया र्थोही उसके
 दृष्टे हाथों (किरणों) का स्पर्श पाकर कमलिनीकी नायिकाका
 सुन्दर मुख सङ्कुचित हो गया । यह देखकर चन्द्रमाकी
 कुमुदिनीरूपी पत्नी हँस पक्षी और उस हँसीके कारण चन्द्रमा
 जलाकर पीला पद गया ॥ १११ ॥ चन्द्रमाके उदय होनेपर
 कामदेवके धनुषका कुमुद और युवतियोंके मन दोनों एक साथ
 बिकसित हुए और इन दोनोंपर ऋतपद भीरे और बाणोंने
 पहुँचकर अपनी स्थान और अपने लक्ष्य साथ लिए ॥ ११२ ॥
 जो किरणें पहले जोकी नोकके समान, फिर केतकीके मुकीके
 तिरके समान, उसके परचाए कमलकी नाजके समान, तब
 जबकी पाराके समान और अन्तमें चञ्चल हारके समान बढ़ीं
 ये ही चन्द्रमाकी किरणें जब स्फटिकके दृष्टेकी शोभा जीतने
 पायी हो गई हैं ॥ ११३ ॥ जब चन्द्रमा अपनी छाडी छोड़कर
 स्वच्छ हो गया है । क्षण ही है दृष्ट रवमाववालोंमें जो

रक्तभावमपहाण चन्द्रमा जात एव परिशुद्धमण्डलम् ।
 विक्रिया न खलु कालदोषजा निर्मलप्रकृतिपु स्थिरो
 द्या ॥ ११४ ॥ रक्तोऽयं क्षणदाप्रियः समुदितो ज्योम
 प्रपद्याभितो विभ्वं वीक्ष्य च पद्मिनीमुखरसें सुव्य
 प्रपातुं चिरम् ॥ निद्राणां बहुधा करैः परिशुश्रुत्या
 यत्ततामचमोनेतुं पाण्डुरतां दधत्कुमुदिनीमात्राधयस
 क्षण ॥ ११५ ॥ रजनीमवाप्य रुचमाप शशो सपदि
 व्यभूषयदसावपि ताम् । अविलम्बितक्रममहो महता
 मितरेतरोपकृतिमच्चरितम् ॥ ११६ ॥ रुचनिर्गमनमा
 दिनक्षयापूर्वदृष्टतनुचन्द्रिकास्मितम् । पतद्भिर्द्विरति
 रंश्रिचोदितो दिग्दृश्यमिव चन्द्रमण्डलम् ॥ ११७ ॥
 लक्ष्मीक्रीडातडागो रतिधवलगृहं दर्पणो दिग्घनूना
 पुष्पं प्रयामालतायास्त्रिभुवनजयिनो मन्मथस्यापत्रम्
 पिरङ्गीभूतं हरस्य स्मितममरसरित्पुण्डरीकं मृगान्नी
 ज्योत्स्नापीयूषवापी जयति सितवृषस्तारकागोकुलस्य

समयके दोषसे विकार उत्पन्न हो जाते हैं वे बहुत दिनोंतक
 नहीं ठहर पाते ॥ ११४ ॥ रातके मियतम चन्द्रमाने (प्रेमसे
 भरकर, जाळ होकर), उदय होकर, आकाशमें चारों ओर
 धूमकर सारे ससारको सोता देखकर कमलिनीके चर्चोंका तब
 देरतक पीनेके लिये जलचाकर अपनी किरणों (हाथों) से
 उसे अपनी वशमें जानेका बधा उपाय करनेपर भी सफल
 नहीं पाई तब वह उदास (पीला) पद गया और तुरन्त ही
 कुमुदिनीकी मनाने लगा ॥ ११५ ॥ रात्रिके क्राण्य चन्द्रमानमें बमड
 आ गई अतः उस चमकीले चन्द्रमाने भी रात्रिरूपी नायिकाको
 सना दिया । ठीक भी है, बड़े जोग शीघ्र ही एक दूसरेके डर
 कारका बदला चुका देते हैं ॥ ११६ ॥ दिन हूबनेतक जो निश्च
 नहीं पा रहा था और पहलेसे ही जिसकी थोड़ी सी चर्चनीरूपी
 सुहराहट दिखाई दे रही थी उसे चन्द्रमण्डलको रात्रिकी प्रेरणा
 पाकर पूर्व दिशाने ऐसे बाहर निकाला मानो कोई हदय सौत्र
 रही हो ॥ ११७ ॥ लक्ष्मीकी क्रीडाका सरोवर, कामदेवकी पत्नीका
 स्वच्छ घर, दिशाकी नायिकाओंका दर्पण, रथामा नामकी
 लताका फूल, तीनों लोक जीत देनेवाले कामदेवका धनु,
 शिवजीकी मुसकानका हृष्टा किया हुआ विषद, देवताओंकी
 नदीका कमल, किरणरूपी अमृतकी यावदी और तारोंकी
 गौंधीके समूहका वजला सौंदर्यरूपी चन्द्रमा चारों ओर दिव्य
 पा रहा है ॥ ११८ ॥ जिस प्रकार बाराहावठारमें विष्णुने
 अपने सोनेके दृष्टके समान सुनहरे दर्पणसे धृष्टी मयहकी

॥११॥ लेखया चिमलविद्रुममासा सन्ततं तिमिरमि-
न्दुददासे । दंष्ट्रया कनकटङ्कपिङ्गयशा मण्डलं मुख
श्चाद्रियराहः ॥ ११६ ॥ लोचनैर्न कुमुदं स्म पीयते
चन्द्रिकातपतिरोहितच्छुद्रम् । प्रादुरास परभृत्पिय-
घ्नलिः सौरभं निरवलम्ब्यमभ्रुनि ॥ १२० ॥ वसुधापत-
निःसृतमिवादिपतेः पटलं फणामणिसद्वचाम् ।
स्फुरद्दंशुजालमथ शीतवचः ककुभं समस्कुतं माघ-
चनीम् ॥ १२१ ॥ विद्यापीठं स्मरस्य त्रिपुरद्वरजटाव-
ल्लिसन्तानवानमप्रयो मानदृमरणासुधयमपरशुः । पांशु-
लाघन्दिकारः । नेत्राणां चन्द्रान्द्युगंगनमभुवः फोक-
स्लोकप्रणादस्वाध्यायाध्यापकोऽयं विलसति कुलटा-
कालपाशो द्विमांशुः ॥ १२२ ॥ विशदप्रमाणरिगतं
विषमाहुद्रयाचलव्यवहितेन्दुवपुः । मुलमप्रकाशदशयनं
शनकैः सविलासहासमिथ शकद्विष्टः ॥ १२३ ॥ श्रीधीपु-
षीधीपु विलासिनीनां मुधानो संवोदय शुचिस्मिदानि
जालेषु जालेषु करं प्रसार्य लावण्यमिन्नामटनीत चन्द्रः

॥ १२४ ॥ ध्यानये शशचरेण विमुक्तः फेतकीकुसुमके-
सरपाण्डः । चूर्णमुष्टिरिव लम्बितकान्तिर्यौतवस्य
दिशमंशुसमूहः ॥ १२५ ॥ शङ्करार्धतनुयवधार्पतीकुङ्कु-
माककुचकोरकाकृतिः । सूच्यते कमलिनीमिदमम-
रवन्नकोशकरलीलया शशुः ॥ १२६ ॥ शारतां गमितया
शशिपादैश्चयाया विटपिनां प्रतिपेदे । न्यस्तशुक्रयलि-
चिप्रतलाभिस्तुल्यता वसतिचेदममहोभि ॥ १२७ ॥
शीतार्थस्फटिकालयालवयद्रागुलसरकौमुदीवलीनू-
तनपल्लवाञ्जितमिवा प्राप्य चणं ताप्रताम् । चञ्चल-
चचकोरचञ्चुपटनाच्छिन्नाप्रकाएद्वस्तुतोरस्यन्दनिर-
न्तरासुतमिथ श्वेतं चियद्भासते ॥ १२८ ॥ शुचीनां
हंसानां हरति मलिनानां मधुलिदां मनो चेदयादेश्या
द्रवियमखिलं या कमलिनी । तमस्येवाद्ये भवति
विमुखो तच्छ्रियमसौ कलाधानादृते प्रथममनुरागप्र-
कटने ॥ १२९ ॥ श्वेतेऽद्यापि न पद्मिनी कुमुदिनी
सान्द्रःस्मितता वर्तते रागातिकञ्चन किञ्चिदेव गण-

ऊपर उठा लिया था उसी प्रकार चन्द्रमाने चमकते हुए सूर्योकी
कान्तिवाली किरणोंसे धँसेता दर कर दिया ॥ १११ ॥ यद्यपि पुरी
चौदनी न पढ़नेसे सुँदे हुए कुमुदको शोभा देखनेमें नहीं आ-
रही थी किन्तु उनको गन्ध पोता हुआ मीरा बिना सधारे ही
बलके उपर मेंढराने लगा ॥ १२० ॥ शेषकाके सदर्शों कर्णोंका
मणियोंकी चमक लेकर, पृथ्वीको फोड़कर निकले हुए कान्तिपुत्रके
समान चन्द्रमाको किरणोंने पूर्व दिशाकी शोभा बढ़ाई ॥ १२१ ॥
कामदेवका विद्यालय, शिवजीकी जटाघोंमें वानप्रस्थ आश्रम
विमानेवाला, नखेलियोंके मानरूपो पृषोंको काटनेका फरस,
व्यभिचारियोंके क्रियेका कारागार, नेत्रीका द्वितीय, आकाशरूपी
महत्त्वका मतीरा, चक्रे चकवियोंको बोलना सिलासिवाला
अध्यापक तथा कुञ्जा खियोंका कालपाय चन्द्रमा बड़ी शोभा
पा रहा है ॥ १२१ ॥ सुन्दर चमक-दमकके साथ उदवाचत्रमें
छिपे हुए चन्द्रमाका शरीर ऐसा प्रतात हांता है मानो
हृद्रको प्यारी पूर्व दिशाका वह हाव-भावसे भरी मुसकानसे
समा हुआ सुख हो जिसमें दौत न दिखाई देते हैं ॥ १२२ ॥
चन्द्रमाको फेरी हुई किरणें (हाथ) ऐसी जान पड़ती हैं
मानो वह गली-गलीमें रमणियोंके पवित्र मुसकान-नरें सुख
देकर उनको निश्चिन्तोंके आगे अपने हाथ (किरणें) फैला-
केबाकर उनसे सौन्दर्यको मिषा मँग रहा हो ॥ १२३ ॥
केवरेके फूलेके परागके स्रस्रए परेकी वटा दूरक फैली हुई
चन्द्रमाकी किरणों ऐसी जान पड़ती हैं मानो हृद्रको प्यारी पूर्व

दिशाकी चमकके भीर अधिक चमकानेके छिपे चन्द्रमाने
सुदोमें मरकर चूर्ण फेंक दिया हो ॥ १२५ ॥ अर्धनारीशर
मगवान् शङ्कराके आगे शरीरमें पार्वतीजीके कुंकुम-युते
स्तनके समान कलीके आकारवाले चन्द्रमाकी शीर कमलकी
नाई अपने कमलके कोररूपी हाथ उठा-उठाकर दिखा रही हैं
॥ १२६ ॥ पृषोंकी शारताघोंमें पड़न कर घाती हुई चन्द्रमाकी
किरणें पृथ्वीपर पड़ी हुई ऐसी जान पड़ती हैं माना अनेक रंगोंसे
चीती हुई मन्नकोंके भीताको भूमि हो ॥ १२७ ॥ चन्द्रमारूपी
स्फटिकके पॉबलेका गोलार्धमें निकली नई चँदनीरूपी बटाके
नये पछोंके समान जा यह आकाश योही देरके छिपे तर्बिके
रङ्गा (लाल) हा गया है उससे ऐसा जान पड़ा है मानो
चन्द्रमारूपी पॉबलेमें डगी हुई चँदनीरूपी बटाको कोपलमें
चकॉरकी बाँच लग जानेसे जा दूध बहा है उसीने आकाश
स्वच्छ दिखाई दे रहा है ॥ १२८ ॥ जो कनखिनी रूपी बेरया
पवित्र हंसोंका मन भीर छुट मौतोंका सारा घन लुटे बैठी थी,
वह जब तम (अन्धकर, सुद्वारे) के कारण विमुखी (सुरमाई
हुई, कुरूपी) हो गई थीर उसे घन भी मिलना बन्द हो गया
तब कदावाच (चन्द्रमा, चंद्र-पूत) उससे अनुराग (बबाई, प्रेम)
दिखा-दिखाकर उसकी सारी बटोरी हुई थी (शोभा, सगर्भ) लुटे
खे रहा है ॥ १२९ ॥ अमी कनखिनियाँ सौरी या, कुमुदिनी
भी भीतर-ही-भीतर मुसका रही थी कि इसी बीच चन्द्रमाको
लाल होकर (ममपूर्वक) घारे-वीरे प्रपनो कलनाल कुसोमक

यत्येव सृष्टयाम्बरम् । इत्युद्भिन्नमृणालकोमलभरे
शितद्युतो तत्क्षणाद्यामिन्या नवयोपितेव शमितो
दीप्तस्त्विष्यामीश्वरः ॥ १३० ॥ श्लिष्यतः प्रिय
वधूपकपण्डं तारकास्ततकरस्य हिमांशोः । उद्ध
मद्यभिरराज समन्तादङ्गराग इव लोहित-
रागः ॥ १३१ ॥ संरम्भोद्विकनक्तसमयदशमु-
खोच्चण्डदोर्दण्डहेलाकैलास सतलोकीजयमुदितम-
नोजमवादित्रशङ्ख । लोलाक्षीगरण्डपालीलवणिमज
लघेध्रुतः फेनपिण्डः पश्य व्योमावकाशं विश्रुति
विरहिणं दत्तशङ्खः शशाङ्कः ॥ १३२ ॥ संविद्यानुम-
भिपेकमुद्रासे मन्मथस्य लसदंशुजलौघः । यामिनीव
नितया ततबिह सोरपलो रजतकुम्भ इवेन्दुः ॥ १३३ ॥
सद्यश्चन्दनपङ्कपिच्छुल्लमिव व्योमाङ्गलं कल्पयन्पश्यै-
रावतकान्तदन्तमुसलच्छेदोपमेयाकृतिः । उद्वगच्छत्य-
यमच्छुमौक्तिकलतामालम्ब्यलम्बेः करैर्मुग्धानां स्मर
लेखवाचनकलाकेलिमदीपः शशी ॥ १३४ ॥ समुन्मी-

तरपूर्वावलशिखरदूर्वावनमृगोपरीरम्भक्रीडारसपुलाक-
तोस्सङ्गद्वरिणः । पुलिन्दीकन्दर्पकूममपनयच्छुपटले
पतिर्नक्षत्राणां श्रद्धह भगवानभ्युदयते ॥ १३५ ॥
स श्रीकण्ठकरीटकृष्टिमपरिष्कारप्रदीपाङ्कुरो देवः
कैरवधुन्धुन्धतमसप्राग्भारकुचिम्भरिः । संस्कृतां
निजकान्तिमौक्तिकमणिश्रेणीभिरेखीदृशां गोवांणाधि-
पतेः सुधारसवतीपौरोगवः प्रोदगात् ॥ १३६ ॥
सायं नायमुदेति घासरमणिश्चन्द्रो जु चण्डयति
दावाग्निः कथमभ्यरे किमशनिः स्वाच्छान्तरित्ते
कुत । हन्तेदं निरणाधि पान्धरमणीप्राणानिलाशा
शया धावदधोरविभावरीविपधरीभोगस्य भोमो मणि
॥ १३७ ॥ सुधयेव हरत्येव सन्तापं गृह्णिषां सदा ।
तदेव द्विजराजेति प्रथिताऽस्यामिघाऽभियः ॥ १३८ ॥
सुधारश्मिः सद्यस्तिभिरनिकरान्तं विरचयन्नलि
न्देभ्यः स्यन्दं शशिमणिसमुत्थं च वितरन् । उदेत्यादौ
रक्ताभ्युजसमरुचिः कैरवधने प्रमोदं तन्यानो मधुप

किरणै (हाथ) कैलाकर अम्बर (आकाश, वज्र) द्युते देखकर
रात्रिरूपी नायिकाके तत्काल तेजस्वी सूर्यरूपी दीपक उभय
दिया ॥ १३० ॥ चन्द्रमाके निकलनेपर चारों ओर छाई हुई
जलाई देसी जान पड़ती है मानो अपनी प्यारी सारिकारूपी
बहुशोको गले खगानेकी जब चन्द्रमाने राग (जलाई, प्रेम) से
अपने कर (हिरण्य) कैलाप तो उससे चारों ओर अगाराग (कुङ्कुम)
वितर गया हो ॥ १३१ ॥ देखो, रातके समय विरहीजनोंको
प्रास देनेवाला यह चन्द्रमा राबणके प्रचण्ड हाथोंसे खेल-खेलमें
अपानक उछाले हुए कैलासके समान, सातों ओरोंकी विजयसे
प्रसन्न कामदेवके शरके समान तथा चंचल शौलोंवाली
नायिकाके गालरूपी खारी समुद्रसे निकले हुए फेनके गोलके
समान दिखाई देता हुआ आकाशरूपी विलुत्त चैत्रमें प्रवेश कर
रहा है ॥ १३२ ॥ कामदेवके शय्यामिपेकके लिये सुन्दर हिरण्य-
रूपी जलसे भरे हुए, रात्रिरूपी नायिकाके हाथोंसे चीत-चीतकर
सजाए हुए और सुंदर कमल रखे हुए चर्दिके घड़ेके समान
यह चन्द्रमा बर्षी शोभा दे रहा है ॥ १३३ ॥ देवों चन्दनके
चोबेसे आकाशरूपी आगनमें पिंसखन भरता हुआ, पुरावत
हाथोंके सुन्दर दस्तरूपी मूसलके दुकड़ेके समान दिखाई देने-
वाला और कामदेवके खेल पढ़नेकी कलाके लिये म्हीला दीप-
रूपी यह चन्द्रमा रणच्छु मोलियोंकी छड़ीके समान दिखाई
पढ़नेवाले अपने पुत्रोंपर खम्बे हिरण्यरूपी हाथोंसे सहारा

लेकर ऊपर आकाशमें चढ़ रहा है ॥ १३४ ॥ चँदीसे त्रिभे हुए
उदयाचलकी चोटीके दूबके वनमें खड़ी हुई सूर्योका आङ्गिन
करनेके आनन्दसे जिन चन्द्रमाकी गोदमें बैठा हरिन पुष्पिक
हो रहा है वे नक्षत्रोंके स्वामी चन्द्रमा अपनी किरणोंसे नवेनी
गीलनीकी कामक्रीडाकी यकावट मिटासे हुए उदय हो रहे है
॥ १३२ ॥ शिवजीके मुकुटमें जड़े रत्नकी चमकानेवाले दीनेनी
की, कुमुदोंके खिलानेवाला, चँधेरेकी रीती कोल भरनेवाला,
अपनी चमकीली मोती और मणिकी पतियोंके समान किरणोंके
सुगनयनी नखेलियोंका गूढार करनेवाला तथा देवराज हृदके
अच्छलके रसोईपरका स्वामी चन्द्रमा उदय हो गया ॥ १३५ ॥
किसी पयिककी प्रियाने चन्द्रमाको देरकर अपने मनमें सोचा
कि 'सायंकाल सूर्य उदय नहीं होता' चन्द्रमाकी किरणों परम
नहीं होती, जंगलकी आग्नि आकाशमें उड़ती नहीं और यज्ञ भी
'स्वच्छ आकाशमें नहीं होता' अतः जीवित रहनेकी प्रारा बनाये
रखनेके लिए उसने यही निरचय किया कि हो न हो, यह सौरजी
हुई रात्रिरूपी नायिकके कण्ठका बच्चा-सा मणि ही होगा ॥ १३६ ॥
यह चन्द्रमा अपने अछलसे सदा गृहस्थोंका संतार डाल
रहा है इसीलिए मानो सब लोग हूसे 'द्वितराज' (माधुर्यमि)
(धेय) कहने लगे । यह रीक ही है ॥ १३८ ॥ पद्य भरने
अन्याके समूहको मिटाता हुआ, चारों ओर चन्द्रमा
मणिले रिसती हुई जबकी बूँदे सिद्धता हुआ, कुमुदके

घनितापीतिमधुरम् ॥ १३६ ॥ स्वर्गामामृतपानचा-
चपकं किं कामदेवाङ्गनाक्रीडाकन्दुक एव किं सुरन्द-
दिएडीरपिएडः किमु । किं ह्यनं स्मरमूपतेः किमु
यशः पुत्रं पुरस्तादिदं चेतःसंशयकारकं समुदितं
शीतयुतेर्मण्डलम् ॥ १४० ॥ स्वैरं कैरवकोरकान्विद-
लयन्यूनं मनो दोलयधम्मोजानि निमीलयन्युगदशां
मानं समुन्मूलयत् । ज्योत्स्नां कन्दलयन्दिशो धवल-
यधम्मोधिमुड्रेलयनकोरानाकुलयैस्त्वमः कयलयन्दिनुः
समुज्जम्भते ॥ १४१ ॥ हंसो यथा राजति पत्ररस्यः तिहो
यथा मन्दरकन्दरस्यः । वीरो यथा दपितकुञ्जरस्य-
श्चन्द्रोऽपि यन्नाम तथान्यरस्यः ॥ १४२ ॥

सरुगङ्गचन्द्रवर्षानम्—अङ्गं केऽपि शशङ्किरे जल-
निधेः पङ्कं परे मेनिरे सारङ्गं कतिचिच्च सज्जगद्विरे
भृच्छ्यायमैच्छुनपरे । इन्द्रोर्ध्वदलितेन्द्रनीलयशकलप्रयामं
दरीदृश्यते तत्सान्द्रं निशि पीतमन्यतमसं कुञ्चिस्य-

माचदमहे ॥ १ ॥ अच्युप्रकाशरति चन्द्रमसि
प्रियेऽस्मिन्नाहादकारिणि सुधावति पूर्णविभ्रे । धाता
विचिन्त्य मनसापिलदृष्टिपातं ह्यु चकार किमु
कज्जलयिन्दुयोगम् ॥ २ ॥ अत्रान्तरे च हलटाउल-
वर्मापातसन्जातपातक इव स्फुटलान्द्युनश्रीः । वृन्दा-
वनान्तरमदीपयदंशुजालैर्दिन्दुमुन्दरीयदनचन्द्रयिन्दु-
रिन्दुः ॥ ३ ॥ अयं पुरः पार्श्वशर्वरीशः किं दर्पणोऽयं
रजनीरमण्याः । यतस्तदीयं प्रतिविभ्यमस्मिन्लक्ष्यते
लान्द्युनकैतवेन ॥ ४ ॥ अघातः प्रागल्भ्यं परिणतदचः
शैलतनये कलङ्को नैघायं विलसति शशाङ्कस्य घणुपि ।
अमुप्येयं मन्ये विगलदन्तस्यन्दुशिथिरे रतिश्रान्ता
श्रेते रजनिरमणी गाढमुरसि ॥ ५ ॥ अस्तं गतयति
सवितरि पायसपिएडं सुधाकरं प्राची । विरच्यद-
भ्यरकुशमुचि चरति फलङ्कस्तदन्तरे वाकः ॥ ६ ॥
आयताप्रसितरश्मिनियदं लान्द्युनच्छुचि-मपीरसदि-

वनोमं भीरिपाके गीतोंका सुमधुर रस फैलाता हुआ और
निकलते समय लाल कमलके समान दिखार्हे देनेवाला चन्द्रमा
अब ऊपर उठता जा रहा है ॥ १३६ ॥ देखनेवालोंके मनमें यह
सन्देह उत्पन्न करते हुए चन्द्रमा उदय हुआ कि 'यह आकाश-
गङ्गाका अमृत पीनेके लिये सुन्दर प्याला है, या कामदेवकी
पत्नीकी खेलेके गेंद है, या गङ्गाके फेनका गोला है या
कामदेवरूपी राजाकी कीर्तिका देर है' ॥ १३७ ॥ मनमाने दहसे
कुमुदकी कलियाँ खिलवाता हुआ, युवकोंके मन कुलाता हुआ,
कमलोंको सुरम्हता हुआ, हरिषके समान नेत्रोंवाली युवतियोंका
मान नष्ट करता हुआ, चाँदनी यद्वाता हुआ, दिशाओंको
स्वच्छ करता हुआ, समुद्रकी लहराना हुआ और चकवेको
व्याकुल करता हुआ यह चन्द्रमा गिला पड़ रहा है (शोभा
दे रहा है) ॥ १३९ ॥ जैसे पिंजरेमें बन्द हस, पर्वतकी
शुभामें बैठा हुआ सिंह और मतवाले हाथीपर बैठा हुआ
वीर शोभा देता है वैसे ही आकाशमें निकला हुआ चन्द्रमा
भी शोभाके साथ घूमने लगा है ॥ १४२ ॥

कालङ्कयाले चन्द्रमाका घर्षणः चन्द्रमाके भीतर जो
इन्द्रनील-मणिकी कान्तिको भी नीचा दिखानेवाला सौविलापन है
उसे देखकर कुङ्कुषोर्गने समझा कि यह बिड़ल बग गया है,
कुङ्कुषोर्गने मान लिया कि यह समुद्रका कीचड़ है (यह
समुद्रका पुत्र है अतः पिताके कीचड़का अर्थ इसमें भी आ
गया है), कुङ्कुषे कहा कि यह भृगु है और कुङ्कुषे साँचा कि यह

घरतीकी छाया है, पर हम तो समझते हैं कि चन्द्रमाने
अनी जो घना श्रेणी या ढाला है, वही इसकी कोसमें रक्खा
भलक रहा है ॥ १ ॥ उज्ज्वली चाँदनीवाले, अत्यन्त प्यारे, मन
प्रसन्न करनेवाले और अमृतसे भरे-भरे गोल चन्द्रमानमें
लोगोंकी कुटीर बचानेके लिये ही तो ब्रह्माने यह काजलका
डिठौना नहीं लगा दिया है? ॥ २ ॥ दिशारूपी सुन्दरियोंके माथेपर
खगे हुए चन्द्रनके टीकेके समान उस गोल चन्द्रमाने अरनी
किराँयोंकी चाँदनीसे वृन्दावनको नहला दिया, जिसने अपनी
छातीपर कुलटाओंके पापसे उत्पन्न बाले कलङ्कके समान कालिमा
धारा कर रक्खी थी ॥ ३ ॥ यह जो सामने पूर्णमासा चन्द्रमा है
वह क्या रात्रिरूपी नायिकाका दर्पण है जिसमें उस नखेलीका
प्रतिविम्ब कलङ्कके रूपमें दिखाई पड़ रहा है ॥ ४ ॥ चन्द्रमाके
शरीरमें यह जो सौविलापन कीट होकर चमक रहा है उसे
कलङ्क न समझो, वरन् यह तो रतिले पकी हुई रात्रिरूपी नखेली
है जो चन्द्रमाकी अमृतके मरनेसे शीतल बनी हुई छातीपर पकी
गहरी नींद ले रही है ॥ ५ ॥ चन्द्रमामें कलङ्क ऐसा जान पड़ता
है मानो सूर्यके अस्त होनेपर उसकी प्यारी पूर्व दिशारूपी
नायिकाने चावल और दूधसे बनी खीरके पिशुदके समान
दिखार्हे देनेवाले चन्द्रमाको आकाशरूपी कुशासनपर रख दिया
हो और उसके बीचमें यह कलङ्करूपी बीजा उसे बैठा खा
रहा हो ॥ ६ ॥ चन्द्रमाके कलङ्कको देखकर कवि कहता है कि
'यह कामदेवका पुत्र ही तो नहीं है जो बन्नी, उज्वली किरप-

श्वम् । चन्द्रकैतवमरुपटचक्रं क्रीडयोत्सृजति किं स्मरवालाः ॥ ७ ॥ इन्दोरेककलाया रुद्रयोद्भूय मूर्धनि भूतायाः । स्थानमिव तुच्छमेतत्कलङ्कुरीणं परिणमति ॥ ८ ॥ कलाधिनाथानयनाय सायं कुसुमदीपेपित एव भृङ्गः । किमिन्दुनालिङ्गय सरागमङ्के कृतः कलङ्कभ्रम-मातनोति ॥ ९ ॥ काशमीरेण विद्वानमभ्यरतलं वामभ्रु-वामाननद्वैराज्यं विद्वानमिन्दुदुपदां भिन्दानमम्भः-सिराः । प्रत्युद्यत्पुरुहन्तपत्तनवधूदसाध्वीङ्करहीयो-त्सङ्गकुरङ्गमेन्दवमिदं विभ्यं समुज्ज्वभते ॥ १० ॥ कृष्णवर्णहृदयं सितदीप्तिं दुर्धियः किल कलङ्किन-माहुः । कृष्णवर्णसमुदीरण्यामात्रादेव यद्रलति दश्य-कलङ्कः ॥ ११ ॥ तरुणतमालकोमलमलीमसमेतदयं कलयति चन्द्रमाः किल कलङ्कमिति भ्रुवते । तदनृत-मेव निर्दयविधुन्तुदन्तपदवणविचरोपदशतमिदं हि विभाति नभः ॥ १२ ॥ दृष्टे जगद्रूपि कालभुजङ्गमेन

तत्रान्धकारमिपमाविरभूद्विषं यत् । सजातलक्ष्मणि तदिन्दुमणौ निपाप्य ज्योत्स्नामये पयसि तत्किपति स्म धाता ॥ १३ ॥ दोषागमनमाशङ्क्य रविरेप तिरो-हितः । कथमिन्दुः समायाति कुतः शङ्का कलङ्किन-॥ १४ ॥ नेदं नभोमण्डलमन्बुराशिनैताश्च तारा नव फेनभङ्गाः । नाय शशी कुण्डलितः फणीन्द्रो नासी कलङ्कः शयितो मुरारिः ॥ १५ ॥ प्रदोषमातङ्गमनङ्ग-देवस्तुङ्गं समारुह्य समागतोऽयम् । सिन्दूरिते तस्य सुधाशुकुम्भे किमङ्कुशो लक्ष्ममिषेण दत्तः ॥ १६ ॥ मधुवर्तौघः कुपितः स्वकीयमधुप्रापापन्ननिमीलनेन । विभ्वं समाक्रम्य वलात्सुधांशोः कलङ्कमङ्के भ्रुवमात-नोति ॥ १७ ॥ मन्थानभूमिधरमूलशिलासहस्रसङ्घटन ब्रह्मफिणः स्फुरतीन्दुमध्ये । छायामृगः शशक इत्य तिपामरोक्तिस्तेषां कथञ्चिदपि तत्र हि न प्रसाकः ॥ १८ ॥ मम मियां कैरविर्यां करेण सन्तापयामास

रूपी चोरमं बंधे हुए तथा काली स्याहीसे चीते हुए पतङ्गको ही चन्द्रमा बनाकर उड़ा रहा है ! ॥ ७ ॥ कलङ्कसहित चन्द्रमाको देखकर ऐसा लगता है कि शङ्करजाने चन्द्रमामेंसे उसकी जो एक कला निकालकर अपने सिरपर धारण कर ली उसीका स्थान रीता हो जानेसे वह काला दिखाई पड़ने लगा ॥ ८ ॥ चन्द्रमाका कलङ्क ऐसा जान पड़ता है मानो चन्द्रमाकी प्यारी कुसुदिनियोंने चन्द्रमाको बुलानेके लिये जो भोरा भेजा उसे चन्द्रमाने बड़े प्रेमसे गले लगाकर अपनी गोदीमें धर लिया हो ॥ ९ ॥ केशरसे आकाशको रँगता हुआ, तिरछी शितवनवाली नवेलियोंके मुँहोंपर चमकर अपनी दूसरा राज्य स्थापित करता हुआ तथा चन्द्रकांत मणियोंके भीतरकी जलधाराएँ बहाता हुआ चन्द्रमाका वह विभव खिलता हुआ उदय हो रहा है जिसे अमरावतीकी घण्टसारएँ वह अर्घ्य दे रही हैं जिसमें दूधके थड्कर देखकर चन्द्रमाकी गोदमें बैठे मृगके मुँहमें पानी आ रहा है और वह मस्त हो रहा है ॥ १० ॥ उजली किरणवाले चन्द्रमाको मुखं लोग काला हृदयवाला कहते हैं इसीलिये मानो यह चन्द्रमा कृष्ण पदमें अपना बलङ्क बराबर गलाया करता है ॥ ११ ॥ जो लोग सोचते हैं कि चन्द्रमाने यह बड़े बड़े तमाल-पत्रोंकी हरकी सी काखिमाके समान दिखाई देनेवाला कलङ्क है उन्हें चन्द्रमा उत्तर देता है कि 'यह भात मूठ है । निष्ठुर राहुने जो अपने घने दाँत गड़ाए उन्हींके छेदसे यह आरपार आकाश दिखाई दे रहा

है' ॥ १२ ॥ यह कलङ्की चन्द्रमा ऐसा जान पड़ता है मानो जब समयरूपी सर्पने ससारको इस लिया ता उससे चँपेके रूपमें जो विष प्रकट हुआ उसे ब्रह्माज्ञाने पहले तो चन्द्रमारूपी मणिके डुब्नाया किन्तु उसमें चिह्न लगा देखकर चँदीनरपी दूधमें वे उसे धोए डाल रहे हैं ॥ १३ ॥ दोषा (रात्रि, पाप) के आनेकी सम्भावना जानकर जब पूर्व भी अस्ताचलको चला गया, तब यह चन्द्रमा क्यों निकला चला आ रहा है ? हाँ, ठीक है, कलङ्कीको तो इसी समय चँदी है ॥ १४ ॥ कलङ्कसहित चन्द्रमाको देखकर कवि कहता है—'यह आकाशका मण्डल नहीं बरन् ससुद्र है, ये तारे नहीं बरन् फेनके छोटें-छोटे टुकड़े हैं, वह चन्द्रमा नहीं बरन् कुण्डलित मारे हुए शेषनाग हैं और वह कलङ्क नहीं बरन् शेषनागपर सोए हुए विष्णु हैं' ॥ १५ ॥ यह कामदेव ही तो ऊँचे प्रदोष (रात्रिके प्रागम्भ) रूपी हाथीपर चढ़कर नहीं आ रहा है जिसके सिन्दूर-भरे चन्द्रमारूपी माथेपर यह कलङ्कके रूपमें अङ्कुश दिखाई दे रहा है ॥ १६ ॥ जब भौरोंके मधुकी पानशाला अर्थात् कमल सिकुड़ गए तब उन्हींके हठपूर्वक चन्द्रमाके विभवपर आक्रमण कर दिया । यही भौरोंका कुण्ड कलङ्क-सा दिखाई पड़ रहा है ॥ १७ ॥ चन्द्रमाकी छातीपर मन्दराचलकी पेंदीके पत्थरोंकी रगड़से घाव हो जानेके कारण जो चिह्न पट गए हैं उन्हींको मुखं लोग छायाम, हरिण और त्रागोण कहा करते हैं, पर इन वस्तुओंकी पहुँच भला चन्द्रमातक हो ही कैसे सकती है ॥ १८ ॥ चन्द्रमामें कलङ्क ऐसा जान पड़ता है मानो

दिनाधिनाथः । शतीव दुःषैविकलः कलायान्पयो
विपं लक्ष्ममिषेण सद्यः ॥ १६ ॥ यत्नं विरहितं कञ्चि-
त्प्राप्तयामास तेजसा । यत्नं पय विलोमेन सँल्लभोऽभू-
द्विधौ क्षयः ॥ २० ॥ रङ्गावङ्कगते त्रिविष्टपवनीपेलकृ-
रङ्गोणैः साकं क्रीडनकौतुकेन रमसादुत्सुम्नं याते
दियम् । तच्छायायुगतात्ममूर्तिरधुना धर्तुं तमेनं
शशी मन्दं व्यायतरश्मिजालकलितः खात्रं समारोहति
॥ २१ ॥ रुचिभिरमितप्रहृष्टोत्कीर्णैरिव प्रसरेणुभिर्यदु-
दुभिरपि च्छेदैः स्यूतैरिव भ्रियते स्वरः । प्रयतिप्र-
लिनो भास्वद्विम्योन्मृजाकृतकर्मणस्तदयमपि द्वित्वपुष्टः
कुन्दे भविष्यति चन्द्रमाः ॥ २२ ॥ शम्भारारिरमृतं
विषगमं चन्द्रविम्बकपटान्प्रयुनक्ति । यद्वहिः सित-
मयासितमन्तः प्रीयितान्दहति दर्शनमाघ्नात् ॥ २३ ॥
शिवभालानलौत्येन धूमयोगेन कालिमा । विधौ
शुक्लतरे किं वा इति मन्मानसाशयः ॥ २४ ॥ समय-
शयदो व्योमारण्ये सुधाशयनमचिकासुविहितसुधावि-

म्वजोद्रस्फुरत्पटलं प्रति । फलयति फलद्वाग्यं धूमं
निपीड्य पुनश्च तत्किरति मधुरज्योत्स्नाजोद्रं मही-
तलमाजने ॥ २५ ॥

चन्द्रश्लोचणम्—अकलङ्कचन्द्रकलाया कलिना सा
भाति चादशी तदशी । भातस्थलीय शुम्भोः
सन्ध्याव्यानोपविष्टस्य ॥ १ ॥ नेदं व्योम यतो न तत्र
सुशकं गन्तुं जनैस्तत् किं स्थानं पुण्यकृनामनश्च
न विधुर्दोषाकरोऽस्ती यतः । किं त्वम्योऽनुचुर्यश्च
तस्य सज्जिह्वोद्वाराय मिन्नाङ्गनाचितो रश्मिभिरुज्य-
लैरनुगतः कुम्भो महान् राजतः ॥ २ ॥

ज्योत्स्नावणम्—अपि पिवत चकोराः कृत्स्नमु-
घ्राय्य फण्टं कामकवलनचञ्चच्चञ्चवश्चन्द्रिकाम् ।
चिरहृषिधुरितानां जीयितत्राणहेतोर्मयति ह्रिरपलवना
येन तेजोदरिद्रः ॥ १ ॥ श्रालोभ्य चन्द्रमसमभ्युदितं
समन्तादुद्गल्लदूर्मिविचलत्कलश्याम्युरागैः । विष्वग्नि-
सारिपत्माणुपरम्परे ज्योत्स्नात्मना जगदिदं धय-

उसने इस दुःखसे ब्याकुल होकर तत्काल कलङ्करूपी विप पी लिया
हो कि सूर्यने अपने किरणरूपी हाथसे मेरी प्यारी कुमुदिनीको
यहुत झकझोर डाला ॥ १६ ॥ चन्द्रमाने अपने तेजसे किसी विरही
यक्को कष्ट दिया होगा वही श्रव्य अपना नाम उलटकर
(अर्थात् पय बनकर) चन्द्रमाको छग गया है ॥ २० ॥ मन्दन
वनमें धौकड़ी भरती हुई सृष्टियोंके साथ खेलनेकी इच्छासे जब
चन्द्रमाको गोदमें बैठा स्या वेगसे छल्लों भरता जला तो
चन्द्रमा उसे पकड़नेके लिये उसीकी छायाके पीड़े-पीछे हाथमें
अपना किरणरूपी जाल लेकर स्वयं आकाशमें चला आ
रहा है ॥ २१ ॥ सूर्यके गोलेको शायपर चढ़ाकर चमकनेवाले
विषकमाने चन्द्रमाके गोलेमें जो टोंकी लगाई, उससे जो पद-
पद हुम्डे टूटकर गिरे वे तारोंके रूपमें तथा जो सूचन कथ गिरे
वे किरणोंके रूपमें आकाशमें भर गए हैं अतः जान पड़ना है
कि श्रव्य यह स्वभावसे मलिन चन्द्रमा भी विरवकमाने शायपर
चढ़ाया जानेवाला है ॥ २२ ॥ यह चन्द्रमा नहीं है, ब्रह्म तो
चन्द्रमाके रूपमें विप-भरा अमृत है जिसे कामदेव परदेशियोंको
जलानेके लिये काममें ला रहा है । यह बाहरसे उजला यौरी भीतर
काला है और हसे देरते ही लोग जल जाते हैं ॥ २३ ॥ मुझे ऐसा
खगता है कि 'शहरजीके माथेकी आगसे निकला हुआ धुआँ
खगनेसे ही तो स्वच्छ चन्द्रमामें यह कालिमा नहीं लग गई
॥ २४ ॥ कलङ्कसहित चन्द्रमा ऐसा जान पड़ता है भागै-

काररूपी भीजने आकाशरूपी वनमें अमृत पीनेवाली
मधुमक्खियों-द्वारा बनाए हुए अमृत-विष्य (चन्द्रमा) रूपी
मधुके छुरेको कलङ्करूपी धुआँ दिखाकर उसमेंसे चाँदनी-
रूपी मधु निकालकर पृथ्वी-रूपी पात्रमें भरना प्रारम्भ कर दिया
हो ॥ २५ ॥

चन्द्रमाकी कला : कलङ्क-सहित चन्द्रमाकी कछाने सज्जी
हुई परिचम दिशारूपी सुवती ऐसी सुरोमित हो रही है जैसे
सन्ध्या समय प्यानमें बैठे हुए शङ्करजीका जलाट हो ॥ १ ॥
चन्द्रमाको देखकर कवि कहता है 'यह आकाश नहीं है क्योंकि
वहाँ तो किसीकी पहुँच ही नहीं है तथा पुण्यतामाओंका स्थान
भी नहीं है क्योंकि वहाँ तो दोषोंका मण्डार (राशि करनेवाला)
चन्द्रमा बैठा हुआ है किन्तु यह जलसे भरा हुआ वह कुआँ है
जिसका जल हीचनेके लिये ऊपरसे सिद्धोंकी पनियोंने
किरणरूपी रस्सियोंमें फँस कर चाँदिका विशाल पट्टा लटकया
है ॥ २ ॥

चाँदनी : कुतर-कुतरकर जानेके लिये अपनी चञ्चल
ठोर चलानेवाले है चकोरो ! अपनी सिर उठाकर चाँदनीरूपी
जल भरपेट पी लो क्योंकि विरहसे दुखी लोगोंके जीवनकी
रक्षाकी चिन्तामें चन्द्रमा अपनी किरणोंसे रहित हो रहा है
(निस्तेम हो रहा है) ॥ १ ॥ चन्द्रमाको उदय हुआ देखकर
चतुर-भारते उडकते हुए समुद्रकी कदरेंकी, कुदरेंकी, चतुरेंकी, चतुरेंकी

लीकरोति ॥ २ ॥ इन्दोरस्य त्रियामायुयतिकुचतटी-
चन्दनस्थासकस्य व्योमश्रीचामरस्य त्रिपुरहरजटाव-
ल्लीकोरकस्य । कन्दर्पक्षोणिपालस्फटिकमणिगृहस्यै-
तदाखण्डलाशानासामुकाफलस्य स्थगयति जगती
फोऽपि भासां विलासः ॥ ३ ॥ उन्मीलन्ति मृणाल-
फोमलरुचो राजीवसंयतिकार्सवर्तम्रतवृत्तयः कतिपये
पीयूषमानोः फराः । अण्युसैर्घवलीभवत्सु गिरिपु
त्रुधोऽयमुन्मज्जता विश्वेनेवतमोमयो निधिरपामहाय
फेनायते ॥ ४ ॥ एतत्कर्क्य कैरयक्लमहरे शृङ्गारदीक्षा-
गुतं विकान्तामुकुटे चकोरसुहृदि भ्रौडे तुपारत्विपि ।
फूर्ः किमपूरि कि मलयजैरलेपि कि पारदैरञ्जलि
स्फटिकोपलेः किमघटि चावापृथिव्योर्षुः ॥ ५ ॥ कि
त्रु ध्वान्तपयोधिरेप कतकक्षौदैरिचन्दोः करैरत्य-
च्छोऽयमधश्च पङ्कटलं छायापदेशाद्भूत् ॥ कि वा

तत्करकर्तरीभिरभितो निस्तत्तृणादुज्ज्वलं व्योमेवेद-
मितस्ततश्च पतितारश्चायच्छ्रुतेन त्वचः ॥ ६ ॥ दल
चिततिभ्रूतां तले वरुणामिह तिलतएडुलितं मृगाह
रोचिः । मदचपलचकोरचञ्चुकोटीकवलनतुच्छमिवा-
न्तरतन्त्रभूत् ॥ ७ ॥ नैवायं भगवानुदञ्चति शशी गव्य-
तिमात्रीमपि धामद्यापि तमस्तु कैरचकुलश्रीचाट्टकारा
फराः । मथनन्ति स्थलसीमि शैलगहनोत्सङ्गेपु संव-
न्यते जीवभ्राह्मिष क्वचित्कचिदपि च्छायासु गृह्णन्ति
च ॥ ८ ॥ पौलोमीकुचकुम्भकुम्भरजस्तम्पर्कदूरो
द्धताः श्रोतांशुद्युतयः पुरन्दरपुरीसीमामुपस्कृष्यते ।
एतामिलिहतीभिरन्धतमसान्युद्धधनतीभिविशः क्षोणी-
मास्वृषतीभिरन्तरतमं व्योमेदमोजायते ॥ ९ ॥
भास्वत् कर्कशशाण्वकक्रकपणैराकाशकालायसावधुणै
निविडं निपत्य तम इत्याख्यां जगत्यामगात् ।

चाँदीकी रूपमें उदकर ससारको उजला बना रही हैं ॥ २ ॥
रातरूपी नवेलीके स्तनोपर पुते चन्दनपर जमकर बंटे हुए तथा
धाकाररूपी लक्ष्मीके खँवरके समान, शङ्करजोकी जटाशोंकी
लताशोंके जुड़ेके समान, कामदेवरूपी राजाके स्फटिक पत्थरसे
बने घरके समान और पूर्व दिशारूपी नायिकाके नाकमें मोतीके
बेसरके समान दिखाई देनेवाले चन्द्रमाकी किरणोंका फैलाव
सारे संसारको बाँधे चाल रहा है ॥ ३ ॥ असृतमयी किरणोंवाले
चन्द्रमाकी कमलनालके नीमल तन्तुशोंकी सी कान्तिवाली वे कुछ
किरणें चमक रही हैं जिन्होंने कमलकी नई-नई पल्लुदियोंपर
प्रलय डानेकी ठान ली है । उन किरणोंके पदते ही जब पर्वतकी
चोटियाँ चमचमाने लगती हैं तो ऐसा जान पड़ता है मानो
सारा ससार धुन्ध होकर खँभेरेके समुद्रमें दूबकर दिनके लिये
छटपटा रहा हो और उसीसे तत्काल उस समुद्रमें तन उठलने
लगा हो ॥ ४ ॥ कुमुदिनियोंकी धकावट नूर करनेवाले, शृङ्गार
रसकी शिषा देनेवाले, दिशारूपी नायिकाके दर्पण, चकोर
परीके मित्र और ठण्डी किरणोंवाले तएण चन्द्रमाके सव्यधमें
वह तो जादर समझो कि उसने क्या धाकार और पृथ्वीका
शरीर कपूसे भर दिया है या मलय चन्दनसे पोत दिया है या
पारसे धो डाला है या सङ्गरमरसे सजाकर नया कर दिया है
॥ ५ ॥ धाकारपर चिटकी हुई स्वप्न चाँदीको देलकर कवि
सोचता है कि 'यह निर्मलीके बीजके प्याररूपी चन्द्र-किरणोंसे
निपारकर निर्मल किए हुए अण्वकारके समुद्रके नीचे धायाके
रूपमें जमा हुआ कीचड़ा बेर है या चन्द्रमाकी किरणरूपी

कैबीसे छिले हुए उजले आकारके चारों ओर बिलरा हुआ
उसका छिला हुआ मैल ही छाया बनकर फैल गया है' ॥ ३ ॥
पर्वतवाले वृक्षोंसे छनकर धरतीपर पड़ी हुई छायाके साथ मिलकर
धावल और तिल मिले हुए बेरके समान दिखाई देनेवाली
चन्द्रमाकी किरणें ऐसी जान पड़ती हैं मानो मद्दे चञ्चल चकोरे
अपनी ठोरोंसे किरणें चुन ली हों और बीच-बीचमें स्थान गे
बच गया हो ॥ ७ ॥ भगवान् चन्द्रमा धमी धाकार-भागमें दो
कोस भी नहीं चल पाए थे कि कुमुदिनियोंके समूहकी शोभास
गुण धानेवाली किरणोंने धरतीकी सीमापर छाया हुआ अण्वकार
पथ कर दिया, पहाड़की भयावनी गोदमें कहीं कहीं छिपे हुए
खँभेरेको घेर लिया और कहीं-कहीं अण्वकारको इस प्रकार
पकड़ लिया जैसे कोई प्राणी किसी दूसरे प्राणीको पकड़ता
हो ॥ ८ ॥ चाँदीको देलकर हम समझते हैं कि कलशके समान
यदे यदे हन्द्रायीके स्तनोपर कुकुमकी धूलसे मिलकर जो
चन्द्रमाकी किरणें गर्वसे फूली नहीं समा रही थीं वे हन्द्रकी
नारो (पूर्व दिशा) की सीमापर चढ़ती हुई, खँभेरेको घाटी
हुई, दिशाशोंकी बँधती हुई और पृथ्वीको लिखाती हुई
धाकारको चमकाए दे रही हैं ॥ ९ ॥ कठोर शायके चमके
हुए चक्के (चन्द्रमा) की रगड़से धाकाररूपी खोरों
जो हुरादा (चर) चारों ओर गिरा वह तो खँगा
कहलया थी जो सिद्ध पारकी यद्दी-पद्दी चञ्चल धूँँके समान
चन्द्रमाके सामने पडकर चाँदीके चूरेके समान स्वच्छ हो
गया, उसे ही हम लोग चाँदीनी कह रहे हैं ॥ १० ॥ ये लिखे

यच्चेन्द्रोश्चलसिद्धिपारदमहाचिन्द्रोः समायोगतो जातं
रूप्यरजोमयं चयमिदं ज्योत्स्नां समाचचन्दे ॥ १० ॥
मुग्धा दुग्धधिया गवां विदधते कुम्भानयो वल्लयाः
कणैः कैरवशङ्कया कुचलयं कुर्वन्ति कान्ता अपि ।
कर्कशुफलमुच्चिनोति श्रमती मुकाफलाकाङ्क्षया
सान्द्रा चन्द्रमसो न कस्य कुरुते चितभ्रमं चन्द्रिका
॥ ११ ॥ यन्त्रद्राघितकेतकोद्दरद्वलस्रोतदिश्रयं विभ्रती
थेयं मौक्तिकद्रामगुम्फनविधो ग्यग्च्छविः प्रागभूत् ।
उत्सेच्या कलशोभिरङ्गलिपुटैर्ब्राह्म्य मृपालाङ्कुरैः
पातव्याश्च शशिन्यमुग्धविभवे सा चन्द्रिका वर्तते ॥ १२ ॥
सहकुमुदकन्दमैः काममुल्लासयन्तः सह धनतिमिरांधै-
र्धैर्यमुत्सारयन्तः । सह सरसिजपट्टैः स्वान्तमामील-
यन्तः प्रतिदिशममृतांशोरंश्रयः सञ्चरन्ति ॥ १३ ॥ सित-
किरणरूपोलीमालिमालोकयन्ती तिमिरविरहतापव्या-
कुलां व्योमलक्ष्मीम् । रजनिरमलताराशीकरैः सिक-
मस्याः परिमलयति गात्रं चन्द्रिकाचन्दनेन ॥ १४ ॥

चन्द्रास्तवर्णनम्—श्रवणकिरणजालैरन्तरिक्षे गतत्वं
चलति शिशिरवाते मन्दमन्दं प्रमाते । युधति-
जनकदम्ये नाथमुकोप्रचिन्त्ये चरमगिरिनितम्ये चन्द्र-
चिन्त्यं ललप्ये ॥ १ ॥ अस्ती हि दत्त्वा विमिरायनाश-
मस्तं यज्ञत्युघ्रतकोटिरिन्द्रुः । जलायगादस्य वनदि-
पत्य तीक्ष्णं विपाणाग्रमिवावशिष्टम् ॥ २ ॥ उदयमु-
दितदीप्तियार्ति यः सङ्गती मे पतति न चरमिन्द्रुः
सोऽपरामेप गत्वा । स्मितवचिरिव सद्यः साम्यस्यं
प्रमेति स्फुरति विशदमेपा पृथकाप्राङ्गनायाः ॥ ३ ॥
फलङ्काशो गगनाम्बुराशीं प्रसार्य चन्द्रातपवन्तु-
जातम् । लग्नोद्गुमीर्नाल्लु सुखिधूलुश्चन्द्रस्यस्यश्चरमा-
न्धिमेति ॥ ४ ॥ चरमगिरिकुरङ्गाशुङ्ककस्यैवनेन
स्वपिति सुखमिद्रानीमन्तरिन्द्रोः कुरङ्गः । परिपुत-
रविगर्भव्याकुला पौरुहृती दिगपि धनकपोतीहुँवैः
कृप्यतीय ॥ ५ ॥ जरउ इव मरालो जर्जराग्रैर्मयूखैः
स्खलति शिशिरमातुः पश्चिमाम्भोधिपारे । प्रलय-

हुए चन्द्रमाकी किरणें किसको घोसेमें नहीं डाल रही हैं क्योंकि
एक मोती-माली नवेली उन्हें दूधकी धार ममम्बर गीर्वाके
थनोंके नीचे पदा ले जाकर रख रही है, दूसरी नवेली उन्हें
कुसुदिनी समम्बर कानोंपर रखनेके लिये हाथ बढ़ा रही है और
एक मीलनी उन किरणोंसे चमक उठनेवाले बेरोंको मोती
समम्बर बटोरें ले रही है ॥ ११ ॥ जो चर्दिनी पहले धन्यसे दवाकर
निचोड़े जाते हुए कंचदके पूलके कोशसे भरते हुए रसके समान
तथा गूँधी जाती हुई मोतीकी मालाके समान सुन्दर लग रही
थी वही अब चित्ते हुए चन्द्रमामें भरकर कलसियोंमें भर-भर
सँचने योग्य, अत्रिजिमें रख लेने योग्य तथा कमलनालसे पीने
योग्य हो रही है ॥ १२ ॥ कुसुदके पूलोंके तिलानेके साथ-
साथ कासदेवको भी जगाती हुई, चौंधरा नष्ट करनेके साथ
विद्योगियोंका पीरन भी ठोपती हुई तथा कमलोंको सङ्कुचित
करनेके साथ सब लोगोंके हृदय भी दूसरे निपणोंसे हटाकर
कामश्रीदामें खगाती हुई चन्द्रमाकी किरणें सब दिशाओंमें फैल
रही हैं ॥ १३ ॥ अन्वकाररूपी विरहके तापसे व्याकुल आकाशरूपी
लक्ष्मीकी देग भाल करती हुई रात्रि ताराएँपी दूँदोमे सँचि
हुए उसके शरीरपर चन्द्रमा लेप कर रही है ॥ १४ ॥

चन्द्रके अस्त होनेका वर्णन : जब थानेवाली सूर्यकी
किरणोंने साराँको भगा दिया, प्रातःकालका वायु धीरे धीरे
बहने लगा, प्रेमियोंने अपनी प्यारियोंके श्रोत घूमना बन्द कर

दिया, उस समय चन्द्रमा भी पश्चिमाचलकी ओर बढ़ चले ॥ १ ॥
श्रीपरेको धाराँ श्रोत फैलनेका अक्सर देकर हृदये हुए चन्द्रमाकी
एक कला भर दिखाने पड़ रही है उस समय ऐसा जान पड़ता
है मानो कोई ऐसा जगली हाथी पानीमें डूब गया हो जिसके
पेने दाँतकी कोर भर बाहर बची रह गई हो ॥ २ ॥ पूर्वे दिशा
रूपी नायिकाके मुखपर आई हुई चमक ऐसी जान पड़ती है
माने वह बाहसे प्रसन्न होकर कह रही हो कि 'जिस
चन्द्रमाका प्रकाश मेरे साथ रहनेमे बढ़ता था और उसकी
उपति होती थी वही चन्द्रमा दूसरी नायिका (पश्चिम
दिशा) के सम्पर्कमें जाकर पतित हो रहा है (डूब रहा है)'
॥ ३ ॥ शँपरे-रूपी मनुवेने आकाश-रूपी समुद्रमें चर्दिनी-रूपी
वाल बिद्युत्कार तारे-रूपी मद्गुलियों फँसाई और अब उन्हें
बटोरनेके लिये चन्द्रमा-रूपी छोटी बोंगीपर चढ़कर परिचम-
समुद्रकी ओर चला जा रहा है ॥ ४ ॥ परिचमाचलपर
रहनेवाली हरिणोंने अपने सँगाते चन्द्रमाके कलङ्करूपी
मृत्को जो खुजलाया तो उस धानन्दमें मस्त होकर वह
अब भी चन्द्रमाकी गोदमें सुलकी नाँद ले रहा है । उसे
सोते देगकर क्यूतरियोंके गलेके गुदरगुँसे पूर्व दिशा उस सोते
हुए शूगको ढाँट रही है क्योंकि उसके गर्भसे सूर्य निष्पत्ती
ही वाले हैं ॥ ५ ॥ चन्द्रमाकी किरणें उँचली पद गई हैं और
यह अब बढ़े हँसके समान परिचम-समुद्रके पार गा रहा है ।

गरुत इषाम्भूत्तत्र तन्त्रान्तरिक्षे विरलविरलमासाः किञ्च
तारा लुठन्ति ॥६॥ नक्षत्रक्षितिनायकोऽयमधुना रुद्रः
प्रमातागमे सप्ताश्वेन वलीयसातिमहसा रोपावद्यज्यो-
तिषा । अश्वयुजान्तशिरोरुहां प्रविगलत्तारालिहारा-
वलीमादाय क्षणदां प्रियां क्षितिधरं पाश्चात्यमारोहति
॥ ७ ॥ नवकुमुदवनश्रीहासकेलिप्रसङ्गादधिकरुचिरशे-
पामन्युषां जागरित्वा । अयमपरदिशोऽङ्के मुञ्चति
रुस्तद्वस्तः शिशयिपुरिष पाण्डुम्लानमात्मानमिन्दुः
॥ ८ ॥ प्रकटमलिनलक्ष्मा मृष्टपत्रावलीकैरधिगत-
रतिशोभैः प्रत्युषःप्रोषितधीः । उपहसित इयासौ
चन्द्रमाः फामिनीनां परिणतशरकाण्डापाण्डभिर्गण्ड-
भागैः ॥ ९ ॥ मन्दमग्निमधुर्यमोपला दशितभययु
चाभयत्तमः । दृष्टयस्तिमिरजं सिपेधिरे दौपनोपधिप-
तेरसन्निधी ॥ १० ॥ विकसितमुख्यां रागासङ्गाद्गल-

त्तिमिरावृतिं दिनकरकरस्पृष्टामैन्द्रां निरीत्य दिशं
पुरः । जरुठलवलीपाण्डुच्छायो भृशं कनुपानतः
श्रयति हरितं हन्त प्राचेतसां बुहिनच्युतिः ॥ ११ ॥
वृन्देन तारावलिपण्डुलानामङ्गेन च श्रीफलपत्नेन ।
अश्वचर्यं जागेश्वरमिन्दुचिभ्यं विसर्जयत्येव नभो-
मुनीन्द्रः ॥ १२ ॥ संश्लिष्टा सानुरागं स्वकरपरिव-
प्राप्तभूमिसादा या पूर्वा भुक्तपूर्वा रविकरकलिनां
तामुदीच्यामृतांशुः । निस्तेजाः पश्चिमाश्वो प्रथिगति
हि सतां दुःसहो मानभङ्गः किं वक्तव्यं सितांशोः स
तु सकलसतां मण्डलस्यापि नेता ॥ १३ ॥ सपदि
कुमुदिनीभिर्मालितं हा क्षपापि क्षयमगमदपेतास्ता-
कास्ताः समस्ताः । इति द्यितकलत्रश्चिन्तयन्तङ्गमि-
न्दुर्यद्वति कृशमशेषं अष्टशोभं शुचेच ॥ १४ ॥

कोकदशावर्णनम्—अपि तेजोनिधिर्हन्त पतितो

आकाशमें जां क्षिप्रुत्त तारे टिमटिमा रहे ईं वे ऐसे जान
पढ़ते हैं मानो आकाशमें जहाँ-तहाँ उसके पङ्क बिखरे हुए
हैं ॥ १ ॥ जब प्रातःकाल सात घोंदोंवाले शय्यन्त तेजस्वी
और शोषसे लाल-लाल चमकवाले सूर्यने नक्षत्रोंके राजा
चन्द्रमाको रोके दिया तब वह अपनी उस रात्रिरूपी प्यारीको
लेकर परिचमाचलकी ओर जा रहा है जिसके अन्धकार-रूपी
केस विपर गूँध हैं और ताररूपी हार टूट-टूटकर गिर पड़े
हैं ॥ ७ ॥ खिले हुए कुमुदोंकी शोभारूपी नायिकाके साथ
धानन्द करता हुआ यह चन्द्रमा मस्त होकर रातभर जागा है
घतः घब सोनेके विचारसे अपने किरणरूपी हाथ ढीले
करके अपने उजले तथा घुँघले शरीरको परिचम दिया
रूपी नायिकाकी गोदमें डाल रहा है ॥ ८ ॥ प्रातःकाल
फामिनियोंके पके हुए सरकपड़ेके समान उजले-उजले गाल
मानो चन्द्रमाकी शिखरी उड़ा रहे पे क्योंकि चन्द्रमामें फलक
दिखाई दे रहा था और उनके गालोंपरके सय बेल-भूटे
मिट गए थे; चन्द्रमाकी शोभा फीकी पड़ गई थी और
उनके गालोंमें मुरतसे चमक था गई थी ॥ ९ ॥ जैसे वैद्यके
न रहनेपर किसीको मन्दाग्नि, किसीको सूजन और किसीकी
छाँसोंमें धुन्ध घा जाता है इसी प्रकार शोषधियोंके स्वामी
चन्द्रमाके न रहनेपर सूर्यकांक्ष-मयिमें उगला घाने खगी,
संसारमें चँपेरा फीकने लगा और सबकी छाँसोंके सामने चँपेरा
पा गया ॥ १० ॥ जैसे कोई सुवच जब देगता है कि कोई दूसरा
सुवच किसी ईंसती हुई और खतरसे बच गिराती हुई

नायिकाको छू रहा है तब वह हृदयमें कुदकर और बिनापे
पीला पक्कर किसी दूसरी नायिकासे नाता जोड़ लेता है वैसे
ही जिसका आगेका भाग लक्षाईसे खिल गया है, जिसके
छँपेरा हट रहा है, ऐसी पूर्व दिशाको सूर्यकी किरणोंने मित्रके
देखकर पुरानी दरफारेवड़ीकी जड़के समान उजला तथा कर्ब
पाला चन्द्रमा दुखी होकर पश्चिम दिशामें जा रहा है ॥ ११ ॥
यह आकाशरूपी श्रेष्ठ मुनि, ताररूपी अष्टतोंसे तथा कर्ब-
रूपी बेलके पत्तोंसे चन्द्रमा-रूपी शंकरकी पूजा करके मानो
उसका विसर्जन कर रहा है ॥ १२ ॥ जब चन्द्रमाने देखा कि
जिस पूर्व दिशाका मैंने अनुराग-पूर्वक (लाल होकर, प्रेम्ने
साथ) आलिङ्गन किया था, अपने कर (किरण, हाथ) से
पूकर जिसपर कृपा की थी और जिसका उपभोग किया था उसे
सूर्यके कर (किरणें, हाथ) पकड़े हुए हैं तो वह उदास होकर
पश्चिम समुद्रमें डूबनेकी तैयारी कर रहा है। ठीक भी है, क्योंकि
जब साधारण सज्जन भी अपनी मानि-दानि नहीं सह सके
तब सभी दिनों (नक्षत्रों, माहस्यों) के राजा चन्द्रमाको
कहना ही क्या है ॥ १३ ॥ यह प्रेमी चन्द्रमा मानो इसी
चिन्ता और शोकमें अपना दुबला और सुँघला शरीर तो
रहा है कि 'हाय ! कुमुदिनीने खाल नूँद छोड़ी, हाव भी हट
गई और मेरी सारी प्यारी तारिकाएँ भी मौनो-मगार
हुईं' ॥ १४ ॥

अपनेकी दशाका वर्णन : सन्ध्या समय चन्द्रमा-पदकी
मानो इसी वैराग्यके कारण ही अलग हो आते हैं कि जब

यदि जायते । सुरतं किमिवास्माकमिति फोकैर्वि-
युज्यते ॥ १ ॥ आतपे धृतिमता सह वध्वा यामिनी-
विरहिणा विदग्धेन । नेहिये न किरणा हिमरश्मेर्दुःखिते
मनसि सर्वमसहम् ॥ २ ॥ आयाति याति पुनरेव
जलं प्रयाति पद्माङ्गुरन्व विचिनोति धुनोति पद्मम् ।
उन्मत्तवद्भ्रमति कूजति मुक्कण्डः कान्तावियोग-
विधुरो निशि चक्रवाकः ॥ ३ ॥ इच्छतां सह यधूमिरमेदं
यामिनीविरहिणां विदग्धानाम् । आपुरेव मिथुनानि
वियोगं लह्यते न खलु कालनियोगः ॥ ४ ॥ एतेना-
ङ्गा प्रविततरुपा योचते लम्बमानं भानोर्विम्बं जल-
विलुलितेनापरेण स्वकान्तम् । अद्भ्युदेदं दयितविर-
हायद्भिनी चक्रवाकी द्वौ सङ्कोर्षौ रचयति रसौ नर्वकीय
प्रगल्भा ॥ ५ ॥ गम्यतामुपगते नयनानां लोहितायति
सहस्रमरीचौ । आससाद् विरहस्य धरित्रीं चक्रवाक-
हृदयान्मितापः ॥ ६ ॥ चम्राहो विरही हतोऽपि

हृदये वायेन न त्यक्त्वान्प्राणान्प्राणसमाप्तमागमसुख-
ध्यानैकतानश्चिरम् । स्नां द्यायामयलोत्पद्यारिणि
गलद्रकामवेदय प्रियां भ्रान्तस्तद्रूपेदनापरिगतः
कष्टं मृतं साम्रतम् ॥ ७ ॥ तीरतीरमुपैति रीति
कण्ठं चिन्तां समालम्बते किञ्चिद्वायति निश्चलेन
मनसा योगोष युक्तेक्षणः । स्नां द्यायामलोक्य
कूजति पुनः कान्तेति मृग्यः खगो घन्यास्ते भुवि ये
निवृत्तमनसो विग्दुःखितान्कामिनः ॥ ८ ॥ दृष्टताम-
रसनेसरत्पजोः क्रन्दतोविपरिवृत्तकण्ठयोः । निम्नयो-
सरसि चक्रवाकयोरल्पमन्तरमनल्पतां गतम् ॥ ९ ॥
मद्भ्रुत्वा भोस्तुं न भुङ्क्ते कुटिलविसलताकोटिमि-
न्दोवितकांत्ताराकारास्तृपतः पियति न पयसां विप्रयः
पत्रसंस्थाः । द्यायामम्मोहहाणामलिङ्गुलसवलां वेत्ति
सन्ध्यामसन्ध्यां कान्ताविप्रलेपमीरविन्दनमपि रजनीं
मन्यते चक्रवाकः ॥ १० ॥ मित्रे कापि गते सरोरुहयने

दूतने वने तेजस्वी सूर्यका पतन हो गया तब हम लोग क्या
रति करेंगे ॥ १ ॥ जो चक्रवा दिनमें अपनी चक्रवाकी साथ
रहनेके कारण पूर में भी प्रसन्न था वही रातमें चक्रवासे अलग
होनेपर चन्द्रमाकी डंडी किरणें भी न सह सका क्योंकि जब
चित्त दुखी रहता है तब कोई भी वस्तु अरुजी नहीं लगती
॥ २ ॥ रातमें चक्रवाकी वियोगसे दुग्नी होकर चक्रवा हृष-
यय मटकता हुआ कमी जलके पास पहुँचता है, कमी
कमलके अङ्कुर उँवता है, कमी पक्ष फड़फड़ाता है, कमी
पागल-सा घूमता है और कमी गला फाट-फाटकर चिल्लाता
है ॥ ३ ॥ न चाहते हुए भी जो चक्रवा-चक्रवाकी अलग
रहना ही पढ़ता है, उसका कारण यह है कि होनहारको कोई
मेह नहीं सकता ॥ ४ ॥ सन्ध्या समय अपने प्यारसे विदुग्धनेके
दरसे चक्रवाकी मोच-भरी एक आँखसे तो दूखते हुए सूर्यको देण
रही है और दूसरी ओर आँसू-भरी आँखोंसे अपने प्यार
चक्रवाकी देण रही है । उस समय ऐसा जान पड़ता है मानो
यह आयन्त बीड नदीके समान रीद तथा कण्ठ रसका एक
साय अभिनय कर रही हो ॥ ५ ॥ सन्ध्या-समय जब सूर्य
लाग हो गया और उसका तेज मन्द पड़ जानेसे उसपर
क्षोभाकी आँखें भी उदरने लगीं उस समय सारा ताप एश्वीकी
धोइकर चक्रवाके हृदयमें जा बसा ॥ ६ ॥ कामके बाणोंसे
हृदयके पिप जानेपर भी वियोगी चक्रवाके अपनी प्यारी चक्रवासे
मिलनेके मुलका ध्यान करके तो अपने प्राण नहीं छोड़े, पर

जलमें पड़ी हुई अपनी परझाईको रधिरमें डूबी हुई अपनी
चक्रवाी समझकर जब उसके पावकी कल्पना की तो वह दुखी
होकर मर गया ॥ ७ ॥ अपनी चक्रवासे विदुग्धा हुआ चक्रवा
नदी-तीरके एक छोरसे दूसरे छोरतक जाता है, दुःखसे रोता है,
चिन्ता करता है, सोचता रहता है, सब ओरसे दृष्टि हटाकर
रिधर चित्तसे योगीके समान ऊँड ध्यान किया करता है
और जलमें पड़ी हुई अपनी परझाईको चक्रवाी समझकर
पागल हो होकर उसे सुलाता है । कवि कहता है कि 'हन
दुखी कामियोंकी चिन्तार है । घन्य तो वे ही लोग हैं जिनका
मन सब ओरसे इट चुका है ॥ ८ ॥ दुर्भाग्यसे तालाबके आर-
पार श्रेष्ठ हुए चक्रवाी चक्रवाके बीचमें यद्यपि अन्तर बहुत कम था
पर उतना ही उन्हे बहुत बढ़ा जान पड़ता था और वे मुलमें
लिप हुए कमलके केदारको गिराकर हटना चिल्ला रहे थे कि
चिल्लाते-चिल्लाते उनके गले बैठ गए थे ॥ ९ ॥ अपनी प्यारीके
विधोहसे दरा हुआ चक्रवा दिनको भी रात समझे बैठा है
क्योंकि खानेके लिये तोड़े हुए टेढ़े कमलनालको चन्द्रमा समझ-
कर वह खा नहीं रहा है, प्यासा होनेपर भी कमलके पत्तोंपर
पड़ी हुई जलकी बूँदोंको तारे समझकर पी नहीं रहा है और
आँसूके फालेपनसे मिली हुई कमलोंकी ललाईको बिना
सन्ध्याके ही सन्ध्या समझ रहा है ॥ १० ॥ जब सूर्य ढिप
गए, कमलोंका समूह मुँह उककर उदास हो गया, भीरे बेसहारे
होकर चिल्लाते लगे उस समय सारा पक्षीकी अपनी

चक्षान्ते ताम्यति क्रन्दत्सु भ्रमरेषु वीक्ष्य दयिताश्लिष्टं
 पुरः सारसम् । चक्राङ्गेन वियोगिना विसलता
 नास्वादिता नोष्णता चक्रो केशलमग्लिय निहिता
 जीवस्य निर्गच्छतः ॥ ११ ॥ यच्छ्रुति प्रतिमुखं दयि-
 तायै वाचमन्तिकगतेऽपि शकुन्तौ । नीयते स्म नति-
 मुष्णितहर्षं पङ्कजं मुखमिवाम्बुरुहिरया ॥ १२ ॥
 वापीतोयं तटरुहयनं पद्मिनीपत्रशय्या चन्द्रालोको
 विकचक्रुसुमामोददृष्टयः समीरः । यत्रैतेऽपि प्रियविर-
 हिनो दाहिनश्चक्रनासस्तत्रोपायः क इव भवतु प्राण-
 सन्धारणो यः ॥ १३ ॥ सवितैव समाराध्यः कर्मसाक्षी
 प्रयोधकः । न त्वन्तर्मलिनश्चन्द्र इति कोकास्तप-
 स्थिनः ॥ १४ ॥

पङ्कितुवर्णनम्

वसन्तवर्णनम् — अग्रे खीनखपाटलं कुरवकं श्यामं
 द्वयोर्भागयोर्वालाशोकमुपोढरागसुभगं भेदोन्मुखं
 तिष्ठति । ईषद्वन्द्वरजः कणाग्रकपिशो चूते नवा मञ्जरी

सारसनीके साथ सामने देखकर विरहिणी चक्रेकी यह दशा
 हुई कि मुखमें रखे हुए कमलनालके टुकड़ोंकी न तो वह खा
 ही पाया, न छोड़ ही पाया, मानो उसने बाहर निकलते हुए
 अपने प्राणोंको रोकनेके लिये गलेमें उसका बंधा लगा लिया
 हो ॥ ११ ॥ जब सामने चिल्लानेवाला चकवा अपने दुःखभरे
 शब्दोंमें चक्रेकी दुःखभरी चिल्लाइटका उत्तर दे रहा था
 उसे देकर ही कमलकी मालका कमल-रूपी मुख उदास हो
 गया और दुःखसे मुक्त गया ॥ १२ ॥ जब त्रिदुद्रे हुए चक्रेके
 सामने थावदीम जल, तटका उपवन, कमलके पत्रेवा विद्वीना,
 चन्द्रमाका प्रकाश और तिले हुए कमलकी सुगन्धमें बसा हुआ
 पवन ये सभी वस्तुएँ दुःख देनेके लिये उपस्थित हैं ही तो
 उसके जीनेका उपाय ही क्या रह जाता है ॥ १३ ॥ सन्ध्या
 समय त्रिदुद्रे हुए चक्रेवा-चक्रेकी मानो यही सोचकर तपस्या
 करने लगे हैं कि लोगोंके अन्धे घुरे कामोंके साक्षी और सबको
 ज्ञान देनेवाले (जगनेवाले) सूर्य ही उपासना करने योग्य हैं,
 यह काले हृदयवाला चन्द्रमा नहीं ॥ १४ ॥

छुदो म्रसुअंका चर्णन

वसन्तकी रंगरेलियाँ : सामने वी नवयुवतीके नलोंके
 सामन हाल फूलवाला कटसरीवा फूल रहा है, हृष-उधर
 ये दोनों ते सुन्दर, खाल-खाल तथा चामी खिल उठनेवाले
 अयोधके वृष खड़े हैं और उधर कामके वृषमें थोड़ेसे

मुग्धत्वस्य च यौवनस्य च सखे मध्ये मधुश्रीरिव ॥१॥
 अन्नानि निद्रालसविभ्रमाणि वाक्यानि किञ्चिन्मदि-
 रालसानि । भूदोपजिह्वानि च वीक्षितानि चकार
 कामः प्रमदाजनानाम् ॥ २ ॥ अनुभवन्नवदोलम्बु-
 त्सवं पट्टरपि प्रियकरठजिघृक्षया । अनयदासनच्छु-
 परिग्रहे भुजलतां जलतामवलाजनः ॥ ३ ॥ अपतुपा-
 तया विशदप्रभैः सुरतसङ्गपरिश्रमनोदिभिः । कुसुम-
 चापमतेजयदंशुभिर्हिमकरो मकरोजितकेतनम् ॥ ४ ॥
 अभिनयान्परिचेतुमिवोद्यता मलयमासतकम्पितप-
 ल्लवा । अमदयत्सहकारलता मनः सकलिका कलिका-
 मजितामपि ॥ ५ ॥ अमदयन्मधुगन्धसनायया किस
 लयाधरसन्ततया मनः । कुसुमसम्भृतया नवमल्लिका
 स्मितरुचा तरुचारविलासिनी ॥ ६ ॥ अरुणारागनि
 पेचिमिरंशुकै श्रवणलब्धपदैश्च यवाङ्कुरैः । परभृतावि
 दतैश्च विलासिनः स्मरवल्लैरयलैकरसाः कृताः ॥ ७ ॥
 अरुणिताखिलशैलवना मुहुर्विदधती पथिकान्परिता-

परागकणोंसे मटमैले रङ्गके बीर आ गए हैं अतः मित्र । इस
 समय वसन्तकी शोभा ऐसी जान पड़ती है जैसे वह खचरन
 और जवानोके बीच खड़ी हुई हो ॥ १ ॥ इस वसन्त ऋतुमें
 लियों कामसे अलसा जाती हैं, मदके कारण उनका चलना
 थोला भी कठिन हो जाता है और टेढ़ी भौंहोंके कारण उनकी
 चितवन बढ़ी कटीली लगने लगती है ॥ २ ॥ जो चपु
 स्त्रियाँ वसन्तमें मूला मूल रही थीं उन्होंने अपने पतिके
 गलेसे लगनेकी इच्छासे मूलेको रस्सी धामनेवाली शपनी बाँह
 ढीली कर दी ॥ ३ ॥ जाड़ा बीत जानेपर वसन्तमें जिस
 चन्द्रमाकी किरणोंकी चमक बढ़ गई थी और जो सुतर्की
 यकावट दूर कर रही थीं उन किरणोंसे चन्द्रमाने प्रतीती
 कामदेवको और भी अधिक उस्ताहित कर दिया ॥ ४ ॥
 वसन्तमें दक्षिणके वायुसे नाचते हुए पत्तोंमें बीरी हुई
 धामकी डालने उन सुनिषोंका मन भी मतवाला कर दिया
 जिन्होंने कलियुगके प्रभाव तथा कामदेवपर विजय पा ली थी
 ॥ ५ ॥ पदोंपर लिपटी हुई नवमल्लिकाकी मनोहर लकने
 खिले हुए फूलोंकी मधु (मकरन्द, मदिरा) की गंध से
 गमकती हुई और कोमल पत्रे-रूपी घोड़ोंपर पैठी हुई
 सुसकानने लोगोंका मन मतवाला कर दिया ॥ ६ ॥ सूर्यकी
 किरणोंसे भी अधिक खाल धरुने, कानपर सने हुए जीके धनुर्वा
 (जरह) और कोपलकी चूने, कामदेवके सैनिक बनना

पिनः । विकचकिशुकसंहतिरुचकैरुदयहृदयहृदयव्यह-
श्रियम् ॥ ८ ॥ अलिभिरञ्जनविन्दुमनोहरैः कुसुमपङ्क्ति-
निपातिभिरङ्घ्रितः । न खलु शोभयति स्म वनस्थलीं
न तिलकं तिलकः प्रमदामिच ॥ ९ ॥ अचिरलकमलवि-
कासः सकलालिमदश्च कोकिलानन्दः । रम्योऽयमेति
सम्प्रति लोकोत्कण्ठकरः फालः ॥ १० ॥ अस्त सद्यः
कुसुमान्यशोकः स्कन्धात्प्रभृत्येव सपल्लवानि । पादेन
नापैजत सुन्दरीणां सम्पर्कमासिञ्जितनूपुरेण ॥ ११ ॥
असौ मरुचुम्बितचारुकेसरः प्रसन्नताराधिपमण्ड-
लाप्रणीः । विद्युकरामातुरदृष्टिधीक्षितो वसन्तकालो
हनुमानिवागतः ॥ १२ ॥ अस्मिन्वसन्ते न नराः सहन्ते
वधुविधोगञ्ज वलासरोगम् । कुरङ्गनामिद्रवलेप-
माभिर्भजन्तु हस्ताः प्रमदाः प्रलिप्ताः ॥ १३ ॥
आकम्पयन्कुसुमिताः सहकारशाखा विस्तारयन्पर-
मृतस्य वचांसि दिवु । वायुर्विवाति हृदयानि हरप्र-

राणां नीहारपातुविगमात्सुभगे वसन्ते ॥ १४ ॥
आकम्पितानि हृदयानि मनस्थिनीनां चातैः प्रकुल-
सहकारकृताधिवासेः । उक्तजितैः परमृतस्य मदाकु-
लस्य श्रोत्रत्रियैर्मधुकरस्य च गीतनादैः ॥ १५ ॥ आर्मां
मन्मथचक्रवर्त्तिन्पतेरादाय निःशुद्धधीश्राम्यद्भुङ्गम-
हाजनापिकगिरा साकृतमाकायन् । कुड्डोटे च्युत-
पत्रसंस्तरवति श्रीमान्वसन्नामिधो व्यापारी सुमनो-
भरन्दयसुमिर्वाणियमालम्ब्यते ॥ १६ ॥ आताप्राः
किरणा रयेर्नवदलत्वक्पल्लवाः पादपाः बल्ल्यस्तारक-
तुल्यकान्तिसुमनस्सौरम्यसम्माविताः । वाल्यस्मिन्म-
धुमत्पट्टपदपदव्याधृतचूतद्रुमभङ्गारप्रपतत्परागपट-
त्तामोदी मरुहाक्षिणः ॥ १७ ॥ आदीतवह्निसदृशैर्न-
रतावधूतैः सर्वत्र किशुकवनैः कुसुमायनघ्नैः । सद्यो
वसन्तसमयेन समाचिद्येयं रक्तांशुका नयवधूरिव
भाति भूमिः ॥ १८ ॥ आमूलतो चिद्रुमरागात्रं सप-

कामियोंका चित्त केवल एक नवेलीमें लगा दिया ॥७॥ वसन्तमें
सारे पहाद और वनको लाल-लाल बना देनेवाली, वियोगियोंको
निरन्तर उपानेवाली और खिले हुए टेसुरोंसे लड़ी पलासकी
दालियों आग जैसी लग रही है ॥ ८ ॥ जैसे काला तिलक
माथेपर लगकर खियोंको सुन्दर बना देता है उसी प्रकार आँजनके
विन्दुके समान दिखाई देनेवाले भौरोंसे बिरा हुआ तिलकका
रुच भी वनस्थलीको सुन्दर बना रहा है ॥ ९ ॥ संसारको
स्त्रियोंसे प्रेम करानेवाला यह सुन्दर वसन्त आ रहा है जिसमें
निरन्तर कमल खिल रहे हैं, और मतवाले हो रहे हैं और
कोकिल आत्यन्त प्रसन्न होकर बूक रहा है ॥ १० ॥ वसन्तमें
आशोकका वृच नीचेसे ऊपरतक फूल-पत्तियोंसे इतने वेगसे
लड़ चला है कि उसने सुन्दरियोंके वजते हुए पायलोंवाले
चरणोंके प्रहारकी भी प्रतीक्षा न की ॥ ११ ॥ जिसमें वायुसे
सुन्दर नागकेशर हिल रहे हैं (वायुसे जिसके कन्धेके बाल
हिल रहे हैं), स्वच्छ चन्द्रमण्डल जिसके आगे है (वार
नामका प्रसन्न बन्दर जिनकी सेनाके आगे-आगे चल रहा है)
देसा वियोगिनी स्त्रियोंकी दुःखमयी आँखों (वियोगी रामकी
दुःखमयी आँखों) से देखा जाता हुआ वसन्त यहाँ हनुमान्के
समान आ पहुँचा है ॥ १२ ॥ इस वसन्तमें जो मनुष्य न तो
अपनी प्रियतमाओंका वियोग सह सकते, न कफके प्रकोपसे
बहान्न रोग ही सह सकते, उन्हें जो कष्टरोंके लेपसे सजी
हुई मतवाली नवेलियोंकी ही सेवन करना चाहिए ॥ १३ ॥

वसन्त ऋतु में पाला तो पड़ता नहीं है, इसलिये आशुक्ल
मंजरियोंसे लड़ी आमकी दालियाँ हिलानेवाला और कोयलके
सदृश चारों ओर फैलानेवाला सुन्दर वसन्तों पवन बलोंका
मन हरता हुआ यह रहा है ॥ १४ ॥ और हुए आमके पैदोंमें
यसे हुए पवनसे, मद्रमस्त होनेवाले कोकिलकी बूकने और
भौरोंकी मनभावनी गुञ्जरोंसे मनस्विनी स्त्रियोंके मन भी दिग
जाते हैं ॥ १५ ॥ चक्रवर्ती सम्राट् कामदेवकी आज्ञा लेकर
यह धनवान् (शोभायुक्त) वसन्त-रूपी व्यापारी निरर होकर
मँडराते हुए भौरों-रूपी महाजनोंमें कोयलकी बूकने रूपमें
दौड़ते पिठवाता हुआ पतकदसे बिड़े हुए पत्तोंके विद्युनेवाली
कुञ्जोंमें पुण्य और परागरूपी सम्पत्तिका व्यापार कर रहा है
॥ १६ ॥ वसन्त आते ही सूर्यकी किरणें कुछ लाल-लाल हो
चली हैं, वृषाचों नये-नये फूल, दाल और पत्ते निकल आए
हैं, लताओंपर तारोंके समान चमकीले फूलोंकी सुगन्ध लड़ी
जा रही है, मधु पीकर मतवाले और आमके वृषापर बैठकर
अपनी टंगदियोंसे बौर दिखा रहे हैं और दृषियका पवन उस
वृषके पुराने पत्ते गिराता हुआ मंजरियोंका सुगन्धित पराग
दोता हुआ मस्तीसे यह रहा है ॥१७॥ वसन्तके दिनोंमें पवनके
मोंकोंसे हिलती हुई जिन पलासके वृषोंकी फुली हुई शाखाएँ
जलती हुई आमकी लपटोंके समान दिखाई देती हैं, उन
पलासके जंगलोंसे बकी हुई प्रयुती ऐसी लग रही है मानो लाल
सादी पहने हुए कोई नई दुलहिन हो ॥ १८ ॥ आशोकके जिन

ह्लावाः पुष्पचयं दधानाः । कुर्वन्त्यशोका हृदयं सशोकं
निरीक्ष्यमाणा नवयौवनानाम् ॥ १६ ॥ आश्री मञ्जुल-
मञ्जरी घरशरः सार्कशुकं यद्भुज्यां यस्यालिकुलं कल-
ङ्करहितं छत्रं सितांशुः सितम् । मत्तमो मलयानिलः
परंभृता यद्वन्दिनो लोकजित्सोऽयं यो वितरीतरीतु
वित्तुभ्रं दं वसन्तान्वितः ॥ २० ॥ आश्री पल्लविते
स्थित्या कोकिला मधुरस्वरम् । सुकूज कामिनां चित्त-
माकर्षन्तीव दृष्टिका ॥ २१ ॥ आयाता मधुरजनी
मधुरजनीगीतिहृद्येयम् । अङ्कुरितः स्मरविटपो स्मर
विट पीनस्तनीमयलाम् ॥ २२ ॥ आरूढो मलयानिल-
द्विपवरं युक्तो विलासायुगैः पीतः पुष्पविलोचनैर्नवल-
तापौराङ्गनानां गणैः । अध्राम्यद्वनपत्तने मधमहीपाल-
स्ततः कोकिलालीलालापमिलङ्गमङ्गरिकाभाङ्गारभे-
रीरवैः ॥ २३ ॥ आलम्बिते मरसनाः स्तनसकहाराः
कन्दर्पदर्पशिथिलीकृतगात्रयष्ट्यः । मासे मधौ मधुर-
कोकिलभृङ्गनादैर्नार्यो हरन्ति हृदयं प्रसभं नराणाम्

॥ २४ ॥ आस्वादितं स्वादुमरन्दविन्दुस्वच्छन्दमिन्दी-
वरसुन्दरीभिः । माकन्दपुष्पं प्रमदाजनस्य प्रमोदमा-
मोदभरैरकापीत् ॥ २५ ॥ इह मधुपवधूनां पीतमल्लो-
मधूनां विलसति कमनीयः काकलीसम्प्रदायः । इह
नटति सलीलं मञ्जरी वञ्जुलस्य प्रतिपदमुपदिष्टा दक्षि-
णेनानिलेन ॥ २६ ॥ इह हि नववसन्ते मञ्जरीरेणुः
पुञ्जङ्करणधवलदेहा वन्दहेलं सरन्ति । तरलमलिसमूहा
हारिद्रुङ्गारिकण्ठा बहलपरिमलालोसुन्दरं सिन्दुवारम्
॥ २७ ॥ ईपत्तुपारैः कृतशीतहृम्यैः सुवासितं चाप
शिरश्च चम्पकैः । कुर्वन्ति नार्यांऽपि वसन्तकाले स्तनं
सहारं कुसुमैर्मनोहरैः ॥ २८ ॥ उच्छ्वासयन्त्यः श्लथ-
वन्धनानि गात्राणि कन्दर्पसमाकुलानि । समीपवर्ति-
त्वधुना प्रियेषु समुत्सुका एव भवन्ति नार्यः ॥ २९ ॥
उत्कृष्टपङ्कजनिपकलसद्द्विरेफः किञ्चिद्विनिद्रकुमुदो-
त्करसम्भृतश्रीः । आमूलनद्धविधाद्भुतमाल्यमाल-
त्रिचं न कस्य तनुते ललितस्तमालः ॥ ३० ॥ उत्सृष्ट-

बुधोंमें कोंपलें फूट निकली हैं और जिनमें मूँग-जैसे लाल-लाल
फूल नीचेसे ऊपरतक खिल आए हैं, उन्हें देखते ही नवयुव-
तियोंके हृदयमें शोक होने लगता है ॥ १६ ॥ आमके
बौर ही जिसके माथ हैं, देव ही घनुप हैं, भीरोंकी पीत ही
दोरी है, मलयोचखते आया हुआ पवन ही मतवाला हाथी
है, कोयल ही गायक है और शरीर न रहते हुए भी जिसने
संसारको जीत लिया है, वह वसन्तके सहित कामदेव सदा
दासपाक कल्याण करे ॥ २० ॥ बौरें हुए आमके पेड़पर बैठी हुई
कोयल कामिनियोंके मनको खींचनेवाली दूतीके समान अत्यन्त
मधुर शब्दोंमें बूकने लगी है ॥ २१ ॥ स्त्रियोंके सुन्दर गीतोंसे
सबका मन हरनेवाली यह वसन्तकी रात आ गई जिससे काम-
रूपी बुधमें शङ्कर निकल आए हैं, इसलिये हे कामी ! तू बड़े-
बड़े स्तनोंवाली नायिकाको स्मरण कर ॥ २२ ॥ दक्षिणके वायु-
रूपी मतवाले हाथीपर चढ़ा हुआ, हाव-भावासे युक्त पुष्प-
रूपी हाथोंवाली गई लताओंके समान नगरकी स्त्रियोंके समूहमें
धूमता हुआ और उससे सभेमें देखा जाता हुआ वह वसन्त-रूपी
राजा वन-रूपी नगरमें ब्रमण्य कर रहा है जिसके चारों ओर
कोयलकी मधुर ध्वनिते मिले हुए, मँडारने हुए भीरोंके गुञ्जन-
रूपी नगरके शब्द हो रहे थे ॥ २३ ॥ चैतमें जब कोयल
बूकने लगता है, भीरें गूँजने लगते हैं, उस समय कमरमें
सोनेकी बरपनी बाँपे, स्तनोंपर मोतोकें धार . लटकाने और

कामकी उभेजनासे डीले शरीरवाली स्त्रियाँ धलपूर्वक लोणोंध
मन अपनी ओर खींचे लेती हैं ॥ २४ ॥ कमलके समान कामल
स्त्रियोंने जो भरकर स्वारिष्ट फूलके रसोंको बूँदें पी लीं और
आमकी बौरोंने अपनी तीली सुगन्धसे उन स्त्रियोंको मतवाला
कर दिया ॥ २५ ॥ एक और वसन्तमें मल्लिकाका रस पीनेवाली
भीरियोंकी मीठी गुञ्जर निरग्नर सुनाई पड़ रही है, दूसरी
ओर दक्षिणके वायुरूपी गुहसे नृत्यकला सीखकर आमकी मञ्जरी
वार-वार प्रेमसे मूम-मूमकर नाच रही है ॥ २६ ॥ इस नये नये
वसन्तके समयमें जिनका शरीर मञ्जरीकी फूलसे उभजा हो
गया है और जिनके गलेसे मनोहर गुञ्जर निकल रही है, वे भीरे
अत्यन्त गन्धसे भरे हुए निर्गुण्डीके पेड़की ओर बड़े प्रेमसे उठे
पले जा रहे हैं ॥ २७ ॥ वसन्तमें धारोंकी धुतोंपर ठण्डी घोंस
छा गई है, चम्पके फूलोंसे सबके जूड़े महकने लगे हैं और
स्त्रियों भी अपने स्तनोंपर मनोहर फूलोंकी मालाएँ पहनने
लगी हैं ॥ २८ ॥ कामवासनासे पीड़ित स्त्रियाँ अपने प्रेमियोंके
सामने अपने धन उपादाती हुईं उन्हें ललचा भी रही हैं और
अपनी अघोरता भी दिखा रही हैं ॥ २९ ॥ विले हुए कमल-
पर बैठे भीरें गूँज रहे हैं, रातमें कुछ विले हुए कुमुद सोनाने
मालाओंसे लद गए हैं । वसन्तकी यह शोभा किते अचञ्चल
नहीं बाल देती ॥ ३० ॥ आमके पेड़ोंपर उड़ते हुए भीरें और

मन्थुजदशामिव मानरत्नमादाय पद्मपदतिलान्मधुधा-
रिपूरान् । पुँस्कोकिलस्य कलकृजितकैतयेन सहृदय-
धान्यमयमातनुते रसालः ॥ ३१ ॥ उद्यद्भिद्रुमका-
न्तिभिः किलसलयेस्ताप्रां त्विष्यं विभ्रतो भृङ्गालीविषतैः
कलैरविशुद्धव्याहारलीलाभृतः । भ्राम्यन्तो मलयानि-
लाहतिचलैः शाखासहस्रैर्मुहुर्भान्ति प्राप्य मधुप्रसङ्ग-
मधुना मत्ता इवामी द्रुमाः ॥ ३२ ॥ उपचितावयवा
शुचिभिः कणैरलिकदम्बकयोगमुपेयुषी । सदृशकान्ति-
रलचयत मञ्जरी तिलकजालकजालकमौकिकैः ॥ ३३ ॥
उपययौ तनुतां मधुखण्डिता हिमकरोदयपाण्डुमुख-
च्छृङ्खलः । सदृशमिष्टसमागमनिर्द्देति धनिनयानितया
रजनीवधुः ॥ ३४ ॥ उपहितं शिशिरापगमश्रिया मुकुल-
जालमशोभत किशुके । मणयिनीव नखक्षतमण्डनं प्रम-
दया मदयापितलजया ॥ ३५ ॥ कनककमलकान्तैरा-
ननैः पाण्डुगण्डैरुपरिनिहितद्वारैश्चन्द्रानर्द्रैः स्तनान्तैः ।
मद-जनित-चिलासैर्दृष्टिपातैर्मुनोन्द्रान्स्तनभरन्वनार्याः

कामयन्ति प्रशान्तान् ॥ ३६ ॥ कमलिनी मलिनी दयितं
यिना न सहते सह तेन निषेधितुम् । तमधुना मधुना
निहितं हृदि स्मरति सा रतिसारमहनिशम् ॥ ३७ ॥
कर्णेषु योग्यं नयकणिकारं चलेषु नीलेष्वलकेष्वयोकम् ।
पुष्पञ्ज कुञ्जं नवमालिकायाः प्रयान्ति कान्ति प्रमदा-
जनानाम् ॥ ३८ ॥ कान्तामुपयुतिजुषामचिरोद्गतानां
शोभां परां कुरवकद्रुममञ्जरीणाम् । दृष्ट्या मिये सहद-
यस्य भवेद् कस्य कन्दर्पबाणपतनव्ययितं हि चेतः
॥ ३९ ॥ किं किशुकैः शुक्रमुखच्छृङ्खलिभिर्न भिन्नं किं कर्षि-
कारकुसुमैर्न कृतं नु दग्धम् । यत्कोकिलः पुनरयं मधु-
रैर्वचोभिर्युनां मनः सुचदनानिहितं निहन्ति ॥ ४० ॥
किंशुककालकान्तर्गतमिन्द्रुकलार्षधिकेसरं भाति ।
रत्ननिचोलकपिहितं धनुरिव जतुमुद्रितं वितनोः
॥ ४१ ॥ किंशुकक्षितिरुहां धिलसन्तः फुडमलाः
फुटिलतां फलयन्तः । पान्थवारण्युदिदारणताप्राः
कामकेसरिनखा इव रेजुः ॥ ४२ ॥ किंशुकसुमयक-

कृते हुप कोकिलको देखकर ऐसा जान पड़ता है मानो वह वृष
मकरन्द-रूपी जलके साथ भौरी-रूपी-तिल लेकर श्रियाका
क्रोध-रूपी रत्न किसीको दान देनेके लिये कोयलकी मधुर
कृतेके स्वरोंमें सहृदय पद रहा हो ॥ ३१ ॥ वसंतका संयोग
पाकर ये वृष मतवालेसे दिखाई दे रहे हैं क्योंकि सूर्यके समान
धमकवाली कोपलसे ये लाल हो चले हैं, सुन्दर भौरोंकी
गुजारसे ऋषटप धोल रहे हैं और मलयके वायुसे हिलती हुई
अनगिनत ढालियोंके रूपमें मानो ये सब दगमगाकर चल रहे हैं
॥ ३२ ॥ तिलकेके वृषकी जिस मञ्जरीपर ओसकी धूँई फलक
झाई थी और भौर बैठे हुए ये वह ऐसी जान पड़ती थी मानो
भोतीसे गुँथी हुई काली-काली अलकें हों ॥ ३३ ॥ चन्द्रमाके
उदय होनेपर जिसका प्रभातरूपी सुर फीका पड़ गया है वह
वसंतकी शक्तिरूपी सुन्दरी अपने पतिके मिलनका सुख न
पाई हुई नवेलीके समान हुयली पड़ने लगी है ॥ ३४ ॥
वसंतकी शोभारूपी नवेलीने पलासके वृक्षोंमें जो कलियाँ
लगाईं वे ऐसी सुन्दर जान पड़ती थीं मानो किसी मतवाली
छीने मदके कारण लज्जा छोड़कर अपने प्रियतमके शरीरपर
नगोंके सुन्दर चिह्न बना दिए हों ॥ ३५ ॥ स्तनोंके भारसे
झुकी हुई नवेलियाँ अपने सोनेके कमलके समान गालोंवाले
सुँहले, गीले चन्दनसे पुते और मोतियोंके हार पड़े
हुए स्वरोंसे तथा मतवाली चञ्चल चित्तनसे शान्त

चित्तवाले तपस्वियोंका भी मन बिगाए दे रही हैं ॥ ३६ ॥ वसंतके
समय जो भौरी गूल रही है वह इस समय अपने मनमें
प्यारे भौरोंकी ही स्मरण कर रही है क्योंकि वह अपने भौरके
बिना कमलके पास जाना अच्छा नहीं समझती और चाहती
है कि दिन-रात उसीके साथ रमण करती रहे ॥ ३७ ॥
नवेलियोंके कानोंमें लटके हुए सजाले कनैरके फूल बड़े
सुधाघने दिखाई पड़ रहे हैं और उनकी चञ्चल, काली घुँघराली
लटाँमें शरीरके फूल और नई मल्लिकाकी 'खिली हुई
कलियाँ बड़ी सुहावनी लगने लगी हैं ॥ ३८ ॥ है प्यारी !
अभी तिलके हुए और छियोंके मुखके समान सुन्दर लगनेवाले
हुरवकके फूलोंकी अगोखी शोभा देखकर किस रसिकका मन
कामदेवके बाणसे घायल नहीं हो जाता ? ॥ ३९ ॥ अपनी
मियाँके मुखद्वीपर सेके हुए प्रेमियोंके हृदयको सुमीकी
ठोरके समान लाज देके फूलोंने ही कुछ कम टुक-टुक कर
रखा था या कनैरके फूलोंने ही कुछ कम जला रखा
था कि यह कोयल भी अपनी मीठी कूक सुना-सुनाकर
उन्हें और मार डालनेपर उताऊ हो रही है ॥ ४० ॥ पलासकी
कबीके नीचर दूबके चन्द्रमाके समान देहा केसर ऐसा सुन्दर
दिखाई पड़ रहा है मानो लाल रङ्गके यैलेमें कामदेवका घनुप
रखकर उसपर जापकी सुदर मार दी गई हो ॥ ४१ ॥ वसंतके
समय लाज-लाज धमकती हुई देरी-देरी पलासकी कलियाँ

नखो मदनप्रह्लादपक्षपातपदः । मानवतीमानदि-
तिजमिच्छति हन्तुं वसन्तनरसिंहः ॥ ४३ ॥ कुन्दैः
सविभ्रमवधूहसिताधदातैरुद्योतितान्युपवनानि मनो-
हराणि । चित्तं मुनेरपि हरन्ति निवृत्तरागं प्रागेव
रागमलिनानि मनांसि यूनाम् ॥ ४४ ॥ कुपितापि
मनःपतिना सह का सहकारविलोकनजातरसा ।
तरसा रमते स्म न हा रमणी रमणीयतनुः सुननुः
सुरभौ ॥ ४५ ॥ कुबेरमुत्तं दिशमुष्णरश्मौ गन्तुं प्रवृत्ते
समयं विलङ्घय । दिग्दक्षिणा गन्धवहं मुलेन व्यली-
कनिःश्वासमिवोत्ससर्ज ॥ ४६ ॥ कुसुमकामुं ककामुं क-
संहितद्रुतशिलीमुखखरिडतविप्रहाः । मरणमव्यपराः
प्रतिपेदिरे किमु मुहुर्मुमुहुर्गतमर्तुकाः ॥ ४७ ॥ कुसु-
मजन्म ततो नवपल्लधास्तदनु पटुपदकोकिलकूजितम् ।
इति यथाक्रममाधिरभूमधुर्धुमवतीमवतीर्थं वनस्थ-
लीम् ॥ ४८ ॥ कुसुमनगवनाभ्युपैकामा किसलयिनी-

मवलम्ब्य चूतयष्टिम् । कणदलिकुलनूपुरा निरासे
नलिनवनेषु पदं वसन्तलक्ष्मीः ॥ ४९ ॥ कुसुममेव न
केवलमार्तैवं नवमशोकतरोः स्मरदीपनम् । किसलय-
प्रसवोऽपि विलासिनां मदयिता दयिताश्रवणापितः
॥ ५० ॥ कुसुम्भरागाहयितैर्दुकूलैर्नितम्बयिभ्यानि
विलासिनीताम् । तन्मयुकैः कुङ्कुमरागगौरैरलङ्कियन्ते
स्तनमण्डलानि ॥ ५१ ॥ कूजितानि कलयन्वनप्रियो न
प्रियो धिरहियामजायत । मन्मथाशिरपि भस्मना दरं
सादरं मुनिमनोऽभ्युजं व्यधात् ॥ ५२ ॥ फोकिलधत-
शिखरे मञ्जरीरेणुपिञ्जरः । गदितैर्व्यकतामेति कुली-
नश्रोष्ठितैरिव ॥ ५३ ॥ गर्भप्रन्थियु वीरुधां सुमनसो
मध्येऽङ्कुरं पल्लवा वाञ्छामात्रपरिग्रहः पिकवधूकण्ठी-
दरे पञ्चमः । किञ्च त्रीणि जगन्ति जिष्णु-दिवसैर्विने-
र्मनोजन्मनो देवस्यापि चिरोजिभ्रतं यदि भवेदभ्यास-
चर्यं धनुः ॥ ५४ ॥ गीतान्तरेषु श्रमवारित्तैः

ऐसी जान पड़ती है मानो वियोगी पुरुष-रूपी हाथीको फाड़नेवाले
कामदेव-रूपी सिंहके रक्तपे रंगे लाल-लाल नख हों ॥ ४३ ॥
देवके फूल-रूपी देवे नखोंवाले तथा कामदेवरूपी प्रह्लादका
पक्ष लेनेवाले वसन्तरूपी दसिंह इस समय रूठी हुई नवेलियोंके
मानरूपी दैत्य (हिरण्यकशिपु) को मारनेपर उतारू हो गए
हैं ॥ ४३ ॥ कामिनियोंकी मस्ती-भरी हँसिके समान उजले
कुन्दके फूलोंसे घमकते हुए मनोहर उपवन जब मोह-मायासे
दूर रहनेवाले मुनियोंका भी मन हर लेते हैं तब नवयुवकोंके
प्रेमी हृदयकी तो बात ही क्या ! ॥ ४४ ॥ वसन्तके दिनोंमें
ऐसी कोई सुन्दरी न दिखाई दी जो रूठी होनेपर भी धीरे
हुए धामको देखकर प्रेमसे न भर गई हो और उतावली
होकर अपने प्रियतमके साथ क्रीडा न करने लगी हो ॥ ४५ ॥
वसन्तके झाले ही जब सूर्य घसमयमें हो दक्षिणापनसे
उत्तरायण होने लगे उस समय दक्षिणसे आता हुआ मलयका
यातु ऐसा जान पड़ता था मानो अपने पति सूर्यके चले
जानेपर दक्षिण दिशा डुकी होकर लम्बी-लम्बी सर्पोंसे घेरे
रही हो ॥ ४६ ॥ कामदेवके पतुपपर चढ़कर घूटे हुए भीरे-
रूपी धापोंसे जिनका शरीर विभ गया था ऐसी बुद्ध वियोगिनी
धिपों तो चल बसीं, किन्तु मां बची रह गईं ये यदि बार-
बार मूर्च्छित रही हों तो आश्चर्य क्या है ॥ ४७ ॥ वनके
पूषोंमें वसन्त क्रमः पैसे पैठा पड़ेले उनमें फूल निकले,
फिर नये पत्ते निकले, फिर भी रूखने लगे और फिर

कोयलकी कूक सुनाई पढ़ने लगी ॥ ४८ ॥ नई-नई कोंपलोंवाले
श्रामके पेड़के सहारे वनके श्रम्य विले हुए पेड़ोंपर पहुँचनेकी
चाहसे वसन्तकी शोभाने जो कमलके वनोंपर अपना पैर
रक्खा उस समय गुनगुनाते हुए मीरे ऐसे जान पड़े मानो
उसकी पायल रुन-रुन कर रही हो ॥ ४९ ॥ वसन्त ऋतुमें
केवल शरीरके फूले हुए नये-नये फूल ही कामके नहीं
जगा रहे थे वरन् सुन्दरियोंने अपने कानोंपर जो धामकी
मञ्जरियों टाँग ली थीं वे भी कामियोंको मतवाला बनाए बाज
रहे थीं ॥ ५० ॥ कामिनियोंने अपने गोल-गोल नितम्बोंपर
उसुमके लाल फूलोंसे रंगी रेशमी साड़ी पहन ली है और
स्तनोंपर केदारमें रंगी हुई महीन कपड़ेकी खोली बाँध ली
है ॥ ५१ ॥ वसन्तमें कोयलकी कूक एक तो यों ही वियोगियोंको
नहीं भा रही थी, उसपर कामदेवकी धामने ऋटपट मुनियोंके
मनरूपी कमलकी भी भली-भौंति जलाकर टाल कर बाज
॥ ५२ ॥ धामकी डालीपर बैठा हुआ कोकिल बौरके पाराले
ऐसा रँग गया है कि वह केवल अपनी चूकले ही परधान
पड़ता है । डीक भी है, किसी स्पष्टिनी कुलीनताका नाम
उसके व्यवहारोंसे ही होता है ॥ ५३ ॥ वसन्तमें जताकों-
पर फूल तिल धाप, कोंपलोंसे पचो फूट धाप, कोंपलके
गलेमें उसके चाहने-भरसे ही पद्मम स्वर गूँज उठा । और हो
क्या, यदि कामदेव भी धानकल बहुत दिनोंसे पोरे हुए पतु-
को चकानेका अभ्यास कर ले तो दो ही तीन दिनोंमें ली-

[किञ्चित्समुच्छ्वासितपत्रलेखम् । पुष्पासवाघृणितने-
त्रयोमि म्रियामुयं विम्बुरूपशुभ्रुम् ॥ ५५ ॥ शुकणि
वासंसि विहाय तूर्णं तनूनि लाक्षारसरञ्जितानि ।
सुगन्धिकालागुरुधूपितानि धत्ते जनः काममदाल-
साङ्गः ॥ ५६ ॥ चूताङ्कुरास्वादकपायकण्डः पुँस्कोकिलो
यन्मधुरं चुक्कृतः । मनस्विनीमानविधातदक्षं तदेध
जावं वचनं स्मरस्य ॥ ५७ ॥ चूतानां चिरनिर्गतापि
कलिका यन्नाति न स्यं रजः सन्नद्धं यदपि स्थितं
शुकणिकं तत्कोरकावस्थया । कण्डेषु स्थलितं गतेऽपि
शिशिरे पुँस्कोकिलानां रुवं शङ्गे सदहरति स्मरेऽपि
चक्रितस्त्वर्णाकर्षुं शरम् ॥ ५८ ॥ छायां जनः सम-
म्रियान्ध्रति पादपानां नक्तं तथेच्छति पुनः किरणं
सुधांशोः । हर्म्यं प्रयाति शयितुं सुखश्रीतलञ्च
कान्ताञ्च गाढमुपगृहति शीतलत्वात् ॥ ५९ ॥ जगं
विद्याहावसरे धनस्थलीवसन्तयोः कामहुताशसाक्षिणि ।

पिकद्विजः प्रीतमना मनोरमं मुहुर्मुहुर्मङ्गलमन्त्रमा-
दरात् ॥ ६० ॥ तनूनि पाण्डूनि मदालसानि मुहुर्मुहु-
जृम्भणतत्परणि । अङ्गान्यनङ्गः प्रमदाजनस्य करोति
लायण्यससम्भ्रमाणि ॥ ६१ ॥ ताप्रमदालस्तयकामन-
त्राश्चूतद्रुमाः पुष्पितचारुशाखाः । धुर्यन्ति कामं प-
नारयधृताः पयुत्सुकं मानसमङ्गलानाम् ॥ ६२ ॥ त्यजत
मानमलं वत विप्रदैर्न पुनरेति गतं चतुरं घयः । पर-
भृताभिरितीव निवेदिते स्मरभते रमते स्म घषुजनः
॥ ६३ ॥ दत्ते जनोऽर्सां यत्तु विद्यमानमविद्यमानं तु
न कोऽपि तावत् । वियोगिनां पुष्पनमश्रुशोकः शोक-
प्रदोऽमृदतिचिन्मेतत् ॥ ६४ ॥ ददौ रसात्पङ्कजरे-
खुगन्धि गजाय गण्डपजलं करेणुः । अर्धोपमुकेन
विसेन जायां सम्माययामास रयाङ्गनामा ॥ ६५ ॥
द्रुमाः सपुष्पाः सलिलं सपत्रं खियः सकामाः पवनः
सुगन्धिः । सुखाः प्रदोषाः दिवसाश्च रम्याः सर्वा

लोक जीत ले ॥ ५४ ॥ वसन्तमें जिस किन्नरीके मुखपर
गानेके परिश्रमसे मलकी हुई पसिनेकी बुँदोंने गालकी
चित्रकारी मिटा दी थी और जिसके नेत्र फूलोंकी मटिरासे
मतवाले होनेके कारण सुन्दर दिग्दर्श दे रहे थे उसे किन्नर
चूमने लगा ॥ ५५ ॥ इन दिनों कामदेवके मदमें अलसाई
हुई नवेलियाँ अपने मोटे वक्ष उतारकर महावरसे रँगें हुए
श्रीर काळागुरुके धुँएँसे सुगन्धित किए हुए मीने वस्त्र पहनने
लगी हैं ॥ ५६ ॥ जिस कोयलका स्वर श्रामीकी वीर खानेसे
रतीला ही गया था उसकी कूकने म्ठी हुई खियोंका मान इस
प्रकार दूर कर दिया मानों अपनी वृकके स्वरमें उसने कामदेवकी
आज्ञा ला सुनाई हो ॥ ५७ ॥ वसन्तके प्रारम्भमें अभीकुछ ही दिन
पहले निकली हुई श्रामीकी बीरमें पराग नहीं था पाया है, हरी-
भरी वटसरंधामें धमी कलियाँ ज्योंकी त्यों बैधी हुई हैं तथा
टपटप भीत जानेपर भी कोयलकी वृक धमी गलेके मीठर ही
गूँज रही है, इससे जान पड़ता है कि श्रामी कामदेवने भी
अपना तूथीरसे आधा निकाला हुआ बाण धरराकर रोक
लिया है ॥ ५८ ॥ इन दिनों लोग दिनमें तो वृषोंकी
शीतल छाया चाहते हैं, रातमें चन्द्रमाकी किरणोंका आनन्द
खेना चाहते हैं, सोनेके लिये सुहावनी टपटी अटारियों पर
पहुँच जाते हैं और थोड़ी थोड़ी टपटप पदनेके कारण अपनी
प्रियतमाओंको कसकर घुलितसे लिपटाय रहते हैं ॥ ५९ ॥
वस नमें कोयलकी वृक ऐसी जान पड़ती है मानो कामदेव-

रूपी अग्निको साधी बनाकर जब धनकी मृमि तथा वसन्तका
बिवाह हो रहा हो उस श्रवसपर कोयल-रूपी द्विज (पक्षी,
आलस्य) प्रसव होकर अत्यन्त आदरसे बार-बार सुन्दर मङ्गल
मन्त्र पढ़ रहा हो ॥ ६० ॥ इन दिनों खियोंमें इतनी काम-
वासना भर आती है कि उनके चर्र दुबले और पीले पड़ जाते
हैं, वे मद से अलसाई-सी हो जाती हैं, बार बार जैनाइयाँ
लेती हैं और उनके सारे शरीरमें कुड़ अनोखा ही रसोबापन
आ जाता है ॥ ६१ ॥ लाल लाल कोंपलोंके गुच्छोंसे कुके
हुए और सुन्दर मञ्जरियोंसे लदी हुई शाखाओंवाले श्रामके
पेठ वज्र पवनके मोंकेसे हिलने लगते हैं तब उन्हें देख-देखकर
खियोंके मन उड़लने लगते हैं ॥ ६२ ॥ जैसे ही कोयलने अपनी
वृकमें यह कह सुनाया कि 'क्रोध छोड़ दो, लडाई-फाँटा करना
ठीक नहीं है और यह बीती हुई बचानी फिर नहीं लौटती,'
जैसे ही स्त्रियोंका कामदेवकी आज्ञा पालन करने लगीं ॥ ६३ ॥
सत्साराकानियन है कि जो वस्तु जिसके पास होती है वही देता है,
जो नहीं होती उसे नहीं देता, किन्तु आश्रय तो यह है कि
फूलों से लदा हुआ अशोक (जिसके पास शोक नहीं है) भी
वियोगियोंको शोक देने लगा ॥ ६४ ॥ हृदिनीने वसन्तमें बड़े
प्रेमके साथ अपने प्यारे हाथोंको अपनी सूँवसे कमलके
परागकी गन्धमें बसा हुआ जब दिया और चक्कने आधा खाया
हुआ कमलनाज अपनी चक्कीको देकर उसपर प्यार दिखाया
॥ ६५ ॥ देखो प्यारी ! वसन्तके आते ही सब वृष फूलोंसे लद

प्रिये चारुतरं वसन्ते ॥ ६६ ॥ ध्रुवन्त्यमूनि मदम्-
 च्छुद्वलिध्वनीनि धृताध्वनीनहृदयानि मघोर्दिनानि ।
 निस्तन्द्रचन्द्रचदनावदनारविन्दसोरभ्यसौहृदसगर्धस-
 मीरणानि ॥ ६७ ॥ ध्वजपटं मदनस्य धनुर्भूतशुक्वि
 करं मुपचूर्णंमृतुश्रियः । कुसुमकेसररेणुमणित्रजाः
 सपवनोपवनोत्थितमन्वयुः ॥ ६८ ॥ न तज्जलं यद्य
 सुचारुपङ्कजं न पङ्कजं तद्यदलो नपटपदम् । न पटप-
 दोऽसौ फलगुञ्जितो न यो न गुञ्जितं तद्य जहार
 यन्मनः ॥ ६९ ॥ नयगुणोपचितामिव भूपतेः सनुप-
 फारफलां श्रियमर्धिनः । श्रमिययुः सरसो मधुसम्भृतां
 फमलिनीमलिनीरपतत्रिणः ॥ ७० ॥ नचपलाशपलाश-
 धनं पुरः स्फुटपरागपरागतपङ्कजम् । मृदुलतान्तल-
 तान्तमलोकयत्स सुरभिं सुरभिं सुमनोभरैः ॥ ७१ ॥
 नानामनोद्यकुसुमद्रुमभूपितान्ताम्हृष्टान्यपुष्टनिनदाकु-
 लसानुदेशान् । शैलेयजालपरिणञ्जशिलातलान्ताम्हृष्टा

जनः क्षितिभृतो मुदमेति सर्धः ॥ ७२ ॥ निर्वाण-
 क्षारसङ्घैरिव मधुपकुलेः कालिमानं वहद्भिर्भ्रमावातै-
 रिवोद्यन्मलयगिरिशुद्धानिर्गतैस्त्वैर्गङ्गिः । उदीप्यो
 हाममन्तर्धिरद्भुतमुजं निर्मिमीतेऽत्र पौषान्याणान्
 क्षुण्णधारान्मधुरयमधुना लोहकारः स्मरस्य ॥ ७३ ॥
 नेत्रे निमीलयति रोदिति याति शोकं घ्राणं करेण
 विरुणक्ति विरौति चोचैः । कान्तावियोगपरिवेदितं
 चित्तवृत्तिर्घ्नाऽध्वगः कुसुमिनान्सहकारवृद्धान् ॥ ७४ ॥
 नेत्रेषु लोलो मदिरालसेषु गण्डेषु पाण्डुः कठिनः
 स्तनेषु । मध्येषु निम्नो जघनेषु पीनः स्त्रीणामनह्नो
 बहुधा स्थितोऽद्य ॥ ७५ ॥ पतङ्गपाकसमये पतङ्गपति-
 विक्रमाः । पतङ्गस्योदये चेलुः पतङ्गा इव धानरा
 ॥ ७६ ॥ पथि पथि शुकचञ्चूचागरामाङ्गराणं दिशि
 दिशि पद्यमानो धीरुधां लासकञ्च । नरि नरि किरति
 द्राकसायकान्पुण्यधन्वा पुरि पुरि चिन्विचृष्टा मानिनी-

गए हैं, जलमें कमल खिल गए हैं, स्त्रियों मतवाली हो
 चली हैं, धायुमें सुगन्ध धाने लगी है, सौंमें सुहावनी हो चली
 हैं और दिन लुभावने हो गए हैं । सचमुच सुन्दर वसन्तमें
 सब कुछ सुहावना ही लगाने लगता है ॥ ६६ ॥ वसन्तके जिन
 दिनोंमें मतवाले भौरे गूँज गूँजकर विपोगियोंका मन दहलाते
 रहते हैं और जिन दिनों पूर्ण चन्द्रमाके समान सुखवाली
 स्त्रियोंके सुपकमनकी सुगन्ध पाकर धायु भी फूले नहीं
 समाले उन दिनोंमें रसिकोंका हृदय बाँसों उड़ल रहा है ॥ ६७ ॥
 वसन्तके दिनोंमें भौरे उड़ उड़कर फूलोंके केसरके उस पराग-
 पर मैंदराने लगे जो धनुषंर कामदेवकी मयथीका वरप तथा
 वसन्तकी शोभा-रूपी नयेलीके मुखकी चमक यदानेवाला
 पूर्ण धनकर धायुसे हिलते हुए उपवनके ऊपर उड़ रहा था
 ॥ ६८ ॥ वसन्तके दिनोंमें ऐसा कहीं जल नहीं था जिसमें सुन्दर
 कमल न तिले हों, ऐसा कोई कमल नहीं था जिसपर
 भौरे न बैठें हों, ऐसा कोई भीरार नहीं था जो मधुर गुजार न
 कर रहा हो और ऐसा गूँजन भी नहीं था जिसने मन न हर
 लिया हो ॥ ६९ ॥ जैसे भिगमगे लोग अत्यन्त नम्रतासे
 गुपानुवाद करते हुए राजाके पास उसकी उपकारकी भावनासे
 भरी हुई संपत्ति माँगनेके लिये जाते हैं वैसे ही भौरे भी
 सरोवरमें मधुसे भरी हुई कमलिनीके पास सुगुणवाते हुए जा
 पहुँचे ॥ ७० ॥ रामने दिलाई देता हुआ वसन्त नई कोंपलोंसे
 खदे हुए पञ्जासके बनों, सिधे हुए और परागसे भरे हुए

कमलों और सुगन्धित फूलोंसे लदी हुई कोमल पतली बत्ताओंसे
 बड़ा भला दिखाई पड़ रहा है ॥ ७१ ॥ जिन पर्वतोंकी चोटियोंके
 ओर ओरपर सुन्दर फूलोंके बिरवे पड़े हैं, जिनपर कोयलोंकी
 कूक और भौरोंकी गूँज सुनाई दे रही है और जिनपर जहाँ-तहाँ
 परपर फीले हुए हैं, उन पहादोंको देख देखकर सबको आनन्द
 मिलता है ॥ ७२ ॥ कामदेवका वसन्तरूपी लोहार कावे-नादे
 भौरे रूपी बुने हुए अहारोंको मलयाचलकी गुफा रूपी धौंढीने
 धौंढीकर प्राणियोंके हृदयकी प्रचण्ड विरहाग्नि जगाकर तीली
 धारवाले ये फूलके बाण बनाता जा रहा है ॥ ७३ ॥ धरती
 सिरियोंसे दूर रहनेके कारण जिनका जी बेचैन हो रहा
 है वे यात्री जय अजरियोंसे लदे हुए धरामके पैद देखते हैं
 वो धरती शौल बन्द करके रोते हैं, पछताते हैं, धरती नाक
 बन्द कर लेते हैं कि कहीं अजरियोंकी भीनी भीनी महक नाकमें
 पहुँचकर प्यारीकी याद न दिला दे और फिर फूट-फूटकर रोते
 लगते हैं ॥ ७४ ॥ इन दिनों कामदेव भी स्त्रियोंकी मदमाती
 शौलोंमें घबलता बनकर, उनके गालोंमें पीलापन बनकर,
 स्तनोंमें कठोरता बनकर, कमरमें गहरापन बनकर और निम्नोमें
 भारीपन बनकर घा डटा है ॥ ७५ ॥ वसन्तके दिनोंमें सब
 पकनेके समय प्रातःकाल सूर्यके उदय होनेपर स्त्रियोंके
 समान दौड़नेवाले धानरोंका प्राक्रम गण्डके वेगके समान
 दिलाई पड़ रहा था ॥ ७६ ॥ वसन्तमें माती-मातीमें
 सुगंधी टोरके धराम सुन्दर अहुर निकल पाए, बारां और

मानचर्चा ॥ ७७ ॥ परभृतकलगीतेहार्दिभिः सद्बर्चांसि
स्मितदशनमयूरान्कुन्दपुष्पभ्रमाभिः । करकिसलय-
फान्तिं पल्लवैर्विद्युत्तुम्बुपहसति वसन्तः कामिनीनामि-
दानीम् ॥ ७८ ॥ परिचुम्बति संश्लिष्य भ्रमरश्चूतम-
ञ्जरीम् ॥ नवसङ्गमसंहृष्टः कामी प्रणयिनीमिव ॥ ७९ ॥
पर्याप्तपुष्पस्तयकस्तनाभ्यः स्फुरत्प्रयालोपमनोह-
राभ्यः । लतावधुष्यस्तरयोऽप्यवापुधिनप्रशाखाभुज-
यन्धनानि ॥ ८० ॥ पुँस्कोकिलश्चतरसासवेन मत्तः
प्रियां चुम्बति रागहृष्टः । कूजद्विरेफोऽप्ययमभ्यु-
जस्यः प्रियं प्रियायाः प्रकरोति चाट्ट ॥ ८१ ॥ पुँस्को-
किलैः कलयचोभिरुपात्तहर्षैः कूजङ्गन्मदकलानि
वर्चांसि भृङ्गैः । लज्जान्वितं सधिनयं हृदयं लोनेन पर्या-
कुलं कुलग्रह्णेऽपि कृतं वधूनाम् ॥ ८२ ॥ पुष्पाणि प्रथमं
ततः प्रकटिता स्यान्तोत्सवाः पल्लवाः पद्मवाहुन्मद-
फोफिलाखिललनाकोलाहलः कोमलः । इत्थं प्रादुरभू-

दुषेव्य परितः प्राज्यप्रमोदमदः मोहामद्भुमराजिताजि-
तयनचोणीमृतुत्तुमापतिः ॥ ८३ ॥ प्रथममन्यभृताभि-
रुदीरिताः प्रधिरला इव मुग्धवधुकथाः । सुरमिग-
न्धिपुशुश्रुचिरे गिरः कुसुमितासु मित्तापनराजिपु
॥ ८४ ॥ प्रफुल्लचूताङ्कुरतीवणसायफो द्विरेफमालाधि-
लसद्भुगुणैः । मर्नांसि भेत्तुं सुरतप्रसङ्गिनां वसन्त-
योद्धा समुपागतः प्रिये ॥ ८५ ॥ प्रसल्य चम्पफो भृङ्गा-
धिष्कासयति दूरतः । स्वमुग्रतो द्वि संसर्गं मधुपैः
कोऽभिनन्दति ॥ ८६ ॥ प्रसूनकलिकाकलैः किसलयैः
करस्पाधिभिः स्फुरन्मधुमदभ्रमङ्गमरकोफिलाङ्कुरितैः ।
इति क्रमसमुद्भूतरूपयनावलीमण्डलीमण्डयदिव प्रिया-
मृतुयसुन्धरावल्लभः ॥ ८७ ॥ प्रसूनशृङ्गैर्मकरन्दतोषं
सलीलमादाय वसन्तकामी । धनस्थलीवामहृष्टां
सुरानि सिञ्चत्यसौ मन्दमरुत्करेण ॥ ८८ ॥ प्रस्फुरत्प्र-
चुरवालपल्लवा वीरुधश्च तरलाश्वकाथिरे । प्रीडिता

वहनेवाला पवन लताश्रीको नचाने लगा, प्रत्येक मनुष्यको
ताक-नाककर कामदेव बाण छोड़ने लगा और प्रत्येक नगरसे
श्रव स्थियोंके रुठनेकी बर्चा जाती रही ॥ ७७ ॥ इस समय
जी हुलसानेवाला कोयलका गीत सुना सुनाकर यह वसन्त
सुन्दरियोंकी रसभरी बातोंकी खिल्ली उड़ा रहा है, अपने
हुन्दके फूलोंकी चमक दिखाकर नवेलियोंकी सुसकान-
पर चमक उठनेवाले दार्तोंकी दमककी हँसी उड़ा रहा है और
सूँगे जैसी लाल-लाल कोमल पत्तोंकी ललाई दिखाकर उन
कामिनियोंकी कोंपलों-जैसी कोमल और लाल हथेलियोंको हरा
रहा है ॥ ७८ ॥ जैसे अपनी प्यारीसे पहले पहल मिलनेपर
कामी लोहा उसे लिपट लिपटकर चूमते हैं उसी प्रकार भौरा भी
वसन्तमें आमकी बौरसे लिपट-लिपटकर उसे चूम रहा है ॥ ७९ ॥
फूलोंके गुच्छे ही जिनके बड़े-बड़े स्तन थे और चमकती हुई नई
कोंपलें ही जिनके सुन्दर श्रोत्र थे, उन लता-रूपी नवेलियोंने
अपनी मुक्की हुई शाखा-रूपी भुजाओंसे बूँतोंको गले लगा लिया
॥ ८० ॥ देखो ! यह नर-कोयल आमकी मञ्जरियोंके रसमें मद्-
मत्त होकर बड़े प्रेमसे प्रसन्न होकर अपनी प्यारीको चूम रहा है
और कमलपर बैठकर गुणगुमाता हुआ यह भौरा भी प्यारीका
मनचाहा कर रहा है ॥ ८१ ॥ मगन होकर सती स्वर्गमें दूकनेवाले
नर-कोयलोंने और मस्तोसे गँजते हुए भौरोंने सती स्थियोंके लाज
और मर्यादा-भरे हृदयोंको भी धीरे धीरे के लिये चर्चार्ण कर दिया
है ॥ ८२ ॥ वसन्तमें पहले फूल खिले, फिर मन प्रसन्न करने-

वाले पत्ते फूट निकले, तब मतवाले कोयलकी दूक उठी और
फिर भौरोंकी मधुर गुञ्जर चारों ओर द्वा गई । इस प्रकार
आगन्द देनेवाली वसन्त ऋतु हरे भरे वृषोसे सुगोमित वन-
भूमिमें पहुँचकर चारों ओरसे फूट पड़ी ॥ ८३ ॥ जैसे मोली-
भाली नवेलियों कभी-कभी कुछ कुछ अपने प्रेमकी चर्चा कर
दिया करती हैं वैसे ही फूलोंसे लड़ी हुई सुगन्धित वनकी
दालियोंमें कहीं-कहीं पहले-पहल कोपलकी दूक सुनाई देने
लगी ॥ ८४ ॥ लो प्यारी ! फूले हुए आमकी मञ्जरियोंके पैने
बाण लेकर और अपने धनुषपर भौरोंकी पतियोंकी डोरी चढ़ाकर
वीर वसन्त सम्भोग करनेवाले रसिकोंकी बेचने द्वा पहुँचा है
॥ ८५ ॥ वसन्तमें चम्पने भौरोंको अपने पाससे राखे दिया ।
ठीक भी है, कोई भी भला आदमी मधुपों (भौरों, मधुपों)
से मेल जोड़ रखना ठीक नहीं समझता ॥ ८६ ॥ मूलके
प्यारे वसन्त रूपी छैलेने फूलोंकी कलियोंके साथ निकली हुई
और हाथके समान दिखाई देनेवाली लाल-लाल कोंपलोंसे,
अधिक मकरन्द पीकर मतवाले भौरोंसे और कोयलकी मधुर
ध्वनिसे वनस्थलीकी रूपी नवेलीको भली-भाँति सजा दिया ॥ ८७ ॥
यह कामी वसन्त अपनी फूल-रूपी पिचकारीसे फूलोंके रस
रूपी जलको प्रेमसे लेकर वन भूमि रूपी नवेलियोंके मुखपर
मन्द वायु-रूपी श्वापोंसे छोड़ रहा है ॥ ८८ ॥ जिन चम्पल
लताओंमें वसन्तमें नई-नई कोपलें फूट आई थीं वे पैसी
दिखाई पड़ रही थीं मानो वसन्तके आनेपर उन्होंने केसरके

इव कुसुम्भवारिभिः काममित्रसमये समागते ॥ ८६ ॥
 प्रियङ्गु कालीयककुङ्कुमाकं स्तनेपुगौरैपुविलासिनीभिः ।
 आलिप्यते चन्दनमङ्गनाभिर्मदालसाभिर्मृगनाभियुक्तम् ॥ ९० ॥
 प्रियसखीसदृशं प्रतियोधिताः किमपि काम्य-
 गिरा परपुष्टया । प्रियतमाय वपुर्गुणमस्तरच्चिद्रुरया
 दुरप्याचितमङ्गनाः ॥ ९१ ॥ वकुलकुलमिलिन्मिलिन्दमा-
 लामदकलकोकिलकूजितोदयेन । अहह नियमिनोऽपि
 तत्र्यचिन्ताच्युतमतयो मतयापितो वभूवुः ॥ ९२ ॥
 वायानङ्कुर्यन्ति पुष्पधनुषो वीरस्य चूतद्रुमाः वास-
 न्तीमुवृलानि सम्प्रति मुपैभिन्दन्ति शृङ्गाङ्गनाः ।
 गण्डैश्च प्रतिपालयन्ति सुदृशां पुष्पोद्गमे केसरस्तासां
 च स्तनमण्डलैः कुर्यका गाढं तदालिङ्गनम् ॥ ९३ ॥
 वालेन्दुषक्रार्णविकासभावाद्भुषः पलाशान्यतिलोहि-
 तानि । सद्यो वसन्तेन समागतानां नखचतानीव वन-
 स्थलीनाम् ॥ ९४ ॥ मत्तद्विरेफपरिचुम्बितचारुपुष्पा

मन्दानिलाकुलितनम्रमृदुमवालाः । कुर्वन्ति कामि-
 मनसां सहस्रोत्सुकत्वं बालातिमुकलतिकाः समवेद्य-
 माणाः ॥ ९५ ॥ मधुकरैरपवाद्करैरिव स्मृतिवु-
 पधिका हरिणा इव । कलतया वचसः परिवार्दिनी
 स्वरजिता रजिता वशमाययुः ॥ ९६ ॥ मधु द्विरैफः
 कुसुमैकपात्रे पपी प्रियां स्वामनुवर्त्तमानः । शृङ्गेण
 च स्पर्शनिमीलिताक्षी मृगीमकरद्वयत रुष्णसार-
 ॥ ९७ ॥ मधुपराजिपराजितमानिनीजनमनःसुमन सु-
 भिश्रियम् । अभूत धारिस्तवारिजविश्वं स्फुटितताम्र-
 तताम्रवनं जगत् ॥ ९८ ॥ मधुरया मधुवोधितमाधवी
 मधुसमृद्धिसमेधितमेधया । मधुकराङ्गना मुद्गुन्म
 दध्वनिभृता निभृताक्षरमुजगे ॥ ९९ ॥ मधुसुरभि
 मुखाध्वं लोचने लोभ्रताम्रे नवकुरवकपूर्णैः केशपाशो
 मनोह्रः । गुरुतरकुचयुग्मं श्रोणिविश्वं तथैव न भवति
 किमिदानीं योषितां मनमधाय ॥ १०० ॥ मन्दोऽयं

पानीसे होली खेली हो ॥ ८६ ॥ मन्दे अलसाई हुई रसीली
 रित्राणं प्रियङ्गु, कालीयक और केसरके धोलमें कस्तूरी मिलाकर
 अपने गोरे-गोरे स्तनोंपर चन्दनका लेप कर रही हैं ॥ ९० ॥
 मानिनियोंका गहारा रोप दूर करनेवाले और मनोहर कूक
 सुनावेवाले कोकिलने जब अपनी कूकमें प्यारी सखीके समान
 कुङ्कु समझा दिया तो नवेलियोंने अपने प्रेमियोंकी प्रार्थनाके
 बिना ही अपनी शरीर उन्हें समर्पित कर दिया ॥ ९१ ॥ जब
 वसन्तमें मौलसिरीके नीचे बैठे हुए और गूँज उठे और मत-
 वाला कोकिल कूक उठा उस समय आरचर्चं तो यह हुआ कि
 इन्द्रियोंको वशमें रखनेवाले सुनियोंकी बुद्धि भी भ्रामचिन्तनसे
 हटकर शरीर चिन्तनमें लग गई ॥ ९२ ॥ वसन्त ऋतुमें ग्रामके
 वृक्षोंने धीरेके रूपमें पुष्पके धनुषवाले वीर कामदेवके बाणोंके
 झट्टुर निकालना प्रारम्भ कर दिया, भीरियोंका धान्तराकी
 कल्पियोंको चूम चूमकर रिलाने लगीं, कटसरैया इस आशामें
 सदाही गई कि सुनयनी नवेलियों सुम्भुर मदिराकेकुल्ले करेगी
 और केसर (पुष्पोंका पराग) उनके स्तनोंपर लिपटकर उन्हें
 धातीसे लगानेको मचल उठा ॥ ९३ ॥ द्वितीयाके चन्द्रमाके
 समान देदे और अत्यन्त लाल-लाल अर्धखिले पलासके फूल
 पेसे जान पड़ते थे मानो वसन्तने धनरथखियोंके साथ विहार
 करके उनपर नखके चिह्न लगा दिए हैं ॥ ९४ ॥ जिन छोटो-
 छोटो प्रतिमुक्त कटाधोंके फूलोंको मतवाले भीरे चूम रहे हैं
 और जिनके नये क्रोमल पत्ते मन्द-मन्द पवनमें झूल रहे हैं,

उन्हें देख-देखकर कामिनियोंका मन भ्रमानक ढाँबाशेल हो
 जाता है ॥ ९५ ॥ वसन्तमें गूँजते हुए और मानो पथिक
 रूपी हरियोंको मोहक बाजा बजाकर भँसायेवाले कामके दास
 हैं कि उनकी घोषणाकी स्वरसे भी अधिक मधुर गुणसे हरियेके
 समान वियोगी उसपर लट्टू होकर कामके फन्दमें धा पड़े
 ॥ ९६ ॥ वसन्तमें धर भँरा तो अपनी प्यारी भीरीके साथ
 साथ एक ही फूलपर बैठकर मकरन्द पीने लगा, उधर हरिय
 भी अपनी उस प्यारी हरियोंकी सींगसे सुजलाने लगा जिसने
 अपने प्यारे हरियके रशरके आनन्दसे धौलें मूँद लीं ॥ ९७ ॥
 वसन्त आते ही संसारको रूठी हुई रित्राणं भीरीकी गुण
 सुनकर रूठना भूलकर खिल उठी हैं, कमलोंका सारा हट
 (पाला) जाता रहा और चारों ओर ग्रामके वृक्ष लाल-लाल
 दिखाई देने लगे ॥ ९८ ॥ वसन्तमें खिली हुई मधुरी
 लताके फूलोंके रसका स्वाद लेनेसे जिस भीरीको उद्विष्ट
 गई है वह मधुर और मतवाली ध्वनिमें गूँजनेवाली
 भीरी बार-बार धीरे-धीरे गुनगुनाने लगी ॥ ९९ ॥ आसन्ने
 मद्दकता हुआ खियोंका कमलके समान मुख, लोप डीलो
 उनकी लाल-लाल धौलें, नये कुरवकके फूलोंसे सजे हुए
 उनके सुन्दर जूदे, बड़े-बड़े गोल-गोल उनके स्तन और बैसे ही
 बड़े-बड़े गोल-गोल निराग्य क्या लोगोंके मनमें कामदेवको
 नहीं जाना रहे हैं ॥ १०० ॥ सुबकौकी पर्वोंकी इन्द्रियोंकी पूर
 साथ बाँध लेनेके लिये वसन्तने मन्द-मन्द चलनेवाला मन्वता

मलयानिलः किसलयं चूतद्रुमाणं नवं माघत्कोकिलं-
कृजितं चित्रकिलामोदः पुराणं मधु । वाणानित्युपदी-
करोति सुरभिः पञ्चैय पञ्चैप्ये यूनामिन्द्रियपञ्चकस्य
युगपत्सम्मोहसम्पादिनः ॥ १०१ ॥ मलयपवनचिदः
कोकिलालापस्यः सुरभिमधुनिपेकाल्लघ्वगन्धमयन्यः ।
विधिधमधुपयैवेष्ट्यमानः समन्ताद्भवतु तव वसन्तः
श्रेष्ठकालः सुखाय ॥ १०२ ॥ मलयानिलमिलनेत्कट-
मदकलकलकण्टकलकलापः । मधुमधुविधुरमधुयो
मधुरयमधुना धिनोति धराम् ॥ १०३ ॥ माकन्देपुत-
पुष्परेणुपटलीकल्लतालवालोदरे मन्दस्यन्दिरन्दपूर-
भरिते घातोदपुष्पस्यैः । खेलन्तो ललितं मधोर्गुण्य-
गणान्नायन्ति पुष्पन्ययाः कान्तानामधरे धयन्ति मधुरं
सकं मधूलोरसम् ॥ १०४ ॥ माकन्देपु न यद्यपि प्रति-
दिनं गर्माङ्कुरग्रन्थयो मिघन्ते न च यद्यपि प्रतनुते
पुष्पाण्यगोक्तद्रुमः । धत्ते नान्यभूतस्य यद्यपि कलः
कण्टे पदं पञ्चमो भ्रातः पश्य तथाप्ययं हतमधुञ्चेतः

करोत्युत्सुकम् ॥ १०५ ॥ मानप्रग्निकदर्थनाय कथिता-
स्त्वर्थं पुँस्कोकिलाः श्रोडाकर्मणि दाक्षिणात्यमनना-
मध्यजमायोऽपिनः । पुष्पास्यस्य जगत्त्रयेऽपि विर-
हित्पत्सद्देवाकिनः सन्तद्वोऽयमसाध्यसाधनविधौ
सात्राज्यमन्त्री मधुः ॥ १०६ ॥ मालतीविरहाश्रान्ताः
पश्य भृङ्गा मुन्यैवः । श्रात्मानं प्रतिपन्तीय किञ्चक-
प्रभवानले ॥ १०७ ॥ मुद्गुरनुपतता विधूयमानं विर-
चितसंहति दक्षिणानिलेन । श्रिलकुलमलकाकृतिं प्रपेदे
नलिनमुषान्तविसर्पिपङ्कजिन्याः ॥ १०८ ॥ मृगाः
प्रियालद्रुममञ्जरीणां रजःकर्षुर्विघ्नितदृष्टिपाताः । मदी-
द्धताः प्रत्यनिलं विचेर्यनस्थलीर्मर्मरपत्रमोक्षाः ॥ १०९ ॥
यत्परम्भविज्जम्भितो रतिपतिः शृङ्गारसञ्ज्ञयर्ना धत्ते
द्वयविशृङ्खलां त्रिमुघनप्रक्षोभार्णं प्रक्रियाम् । उत्सर्पत्स-
द्वकारपुष्पमधुरामोदप्रपञ्चाञ्जिते तस्मिन्सन्तु वसन्त
एव सुलभस्थानाः कवीनां गिरः ॥ ११० ॥ याचकाय
मधवे तरुदानी दत्तवान् किसलयान्याखिलानि । तेन

वायु, आमकी नई कोपलें, मतवाले कोकिलकी कूक, अशोक
वृक्षकी सुगन्ध और अत्यन्त देर-सा मकन्द काभदेवके
बापोंको भेंट कर दिया ॥ १०१ ॥ मलयका वायु बहानेवाला,
कोकिलकी कूकसे जी लुमानेवाला, सदा सुगन्धित मधु
बरसानेवाला और चारों ओर भीरोंले घिरा हुआ वसन्त थापको
सुली और प्रसन्न रहले ॥ १०२ ॥ जिस वसन्तमें मलयाचलके
वायुसे मतवाले और मधुर ध्वनि करनेवाले कोकिलकी सुन्दर
कूक सुनाई दे रही है और जिसमें भीडे फूलोंका रस पीकर
भीरे मतवाले हो चले हैं वह वसन्त शुष्कीके अत्यन्त आनन्दित
कर रहा है ॥ १०३ ॥ जिन आमके वृक्षोंमें धीरे-धीरे फूलोंके
रसकी धाराएँ टपक रही हैं, उनसे कूककर गिरे हुए परागोंसे
जी नीचे धाबले वन गए हैं उधमें वायुसे हिलनेवाले फूलोंके
साथ खेलेते हुए भीरे अत्यन्त मधुर स्वरोंमें वसन्तके गुण
भी गाते जा रहे हैं और नवेलियोंके भोडोंमें भरा हुआ मधुर
मकन्द भी पीते जा रहे हैं ॥ १०४ ॥ देहो भाई ! यद्यपि
धमी आमोंमें नित-नई बीरकी गोंडें भी नहीं फूट पाई हैं, न
अशोक वृक्ष ही अभी फूल पाया है, न कोपलके कण्टमें सुन्दर
पत्रम स्वर ही भर पाया है फिर भी यह निगोदा वसन्त
मनमें रह-रहकर गुदगुदी उठाए ही दे रहा है ॥ १०५ ॥ सब
खोग मानते हैं कि रुठी हुई सुवर्तियोंका मान केवल कोपल ही
कूक-कूककर नट करते हैं और बनव-शृंगारके कामोंका प्रथान

सुलिया दक्षिणका पवन ही है । इस प्रकार तीनों लोकोंके
विशेषगियोंका सारा कट दूर करनेवाले और फूलके बाणवाले
कामदेवके सभी अन्धोंने काम लुटकी-भरमें पूरे कर देनेके
लिपे यह कामदेवके राज्यका मन्त्री वसन्त था पहुँचा है
॥ १०६ ॥ देहो देयुके फूलोंपर मैंडराते हुए भीरे ऐमे लग
रहे हैं मानी मालतीके फूलका विशेष न सह सकनेके कारण
ये आमहत्या करनेके लिपे देयुके फूल-रूपी अहारांमें फूटकर
प्राण दे रहे हैं ॥ १०७ ॥ जो भीरे दक्षिणके वायुके साथ
बार-बार एक पंक्तिमें मूखते हुए कमलपर उड़ रहे थे वे ऐमे
जान पढ़ते थे मानो कमलके पीधपर खिले हुए कमल-रूपी
सुखके चारों ओर लहराते हुए बाल हों ॥ १०८ ॥ विषय
अर्थान् चित्रीकीके वृक्षकी संजरियोंकी पूल श्रौंतिमें पद जानेसे
ठीक-ठीक देल न सकनेवाले हरिण, वायुके सामने उन वनस्प-
तियोंमें दौड़ रहे थे जहाँ चरमर करते हुए पत्ते वसन्तकी
पत्रभङ्गमें नीचे बिड़ गए थे ॥ १०९ ॥ जिसके अगते ही
कामदेव शृंगारई खेभर शृङ्गार रसको जिलानेवाली तथा तीनों
लोकोंको मय डालनेवाली कोइ निराली कडा दिरणने लगत्रा
है और आमके वृक्षोंमें फूटते हुई बीरोंकी सुगन्ध चारों ओर
छा जाती है ऐसे निराले वसन्तकी प्रगंसा करते कवि बने-
प्रधाने नहीं ॥ ११० ॥ मिथुक पसन्तकी दानी दृष्टके कर
पत्ते दे दाढे, किन्तु लकाव उधमें देर-सी नई-नई

नूतनदलेः सहितोऽभून्निष्फलं भवति जातु न दत्तम्
 ॥ १११ ॥ रक्ताशोकविकल्पिताधरमधुर्मत्तद्विरेफस्वनः
 कुन्दापीडविशुद्धदन्तनिकरः प्रोत्कुलपधाननः चूता-
 मोदसुगन्धिमन्द्रपवनः श्टद्गारदीक्षागुरुः कदपान्तं
 मदनमियो दिशतु वः पुष्पागमो मङ्गलम् ॥ ११२ ॥
 रणत्कङ्कणानां भ्रणक्षुपुराणां चलत्कण्डलानां कण्टिक-
 ङ्किणीनाम् घधूनां मुखाम्भोरहं द्रष्टुकामो रथं मन्थरं
 चक्रवन्धुश्चकार ॥ ११३ ॥ रतिपतिप्रहितेव कृतकृपः
 मियतमेव वधूरनुनायिका । वकुलपुष्परासासवपेशल-
 धनिरगाक्षिरगान्मधुपावलिः ॥ ११४ ॥ रथस्थितानां
 परिवर्तनाय पुरातनानामिव वाहनानाम् । उत्पत्ति-
 भूमौ तुरगोत्तमानां दिशि प्रतस्थे रविरुत्तरस्याम्
 ॥ ११५ ॥ रम्यः प्रदोषसमयः स्फुटचन्द्रभासः पुँस्को-
 फिलस्य विरुतं पवनः सुगन्धिः । मत्तालिपूथविरुतं
 निशि सौषुपानं सर्वं रसायनमिदं कुसुमायुधस्य

॥ ११६ ॥ रुचिरकनककान्तीन्मुञ्चतः पुष्पराशीन्मुहुषं-
 नविधूतान्पुष्पितांश्चतवृक्षान् । अभिमुखमभिरीत्य
 क्षामदेहोऽपि मार्गं मदनशरनिघातैर्माहेमेति प्रवासी
 ॥ ११७ ॥ लग्नद्विरेफाञ्जनमक्तिचित्रं मुले मधुप्रीस्ति
 लकं प्रकाश्य । रागेण थाला हणकोमलेन चूतप्रवालौष्ठ-
 मलश्चकार ॥ ११८ ॥ ललितविभ्रमवन्धविवचनं
 सुरभिगन्धपराजितकेसरम् । पतिपु निर्विद्युर्मधु-
 मङ्गनाः स्मरसखं रसक्षेण्डनवर्जितम् ॥ ११९ ॥ वदन
 सौरभलोभपरिभ्रमङ्गरसरसम्भृतसम्भृतशोभया । चलि
 तया विदधे कलमेखलाकलकलोऽलकलोलदृशान्यया
 ॥ १२० ॥ चर्णप्रकपे सति कर्णिकारं दुनोति निर्गन्ध-
 तया स्म जेतः । मायेण सामग्र्यविधां गुणानां परा-
 ङ्गाखी विश्वसृजः प्रवृत्तिः ॥ १२१ ॥ वार्षीजलाना
 मणिमेखलानां शशाङ्कभासां प्रमदाजनानाम् । चूतद्रु-
 माणां कुसुमान्वितानां ददाति सौभाग्यमय वसन्तः

फूट भाई । ठीक है, दिया हुआ दान कभी निष्फल नहीं
 होता ॥ १११ ॥ अमृत-भरे अशरोंके समान लाल अशरोंके,
 मतवाले भौरोंकी गूँजसे, दाँतोंकी चमकती हुई पतियों जैसे उजले
 कुन्दके हारोंसे, भली-भँति खिले हुए कमलके समान सुखोंसे
 और आमके धौरोंकी सुगन्धमें बसे हुए मन्द-मन्द पवनसे यह
 श्टद्गारकी शिषा देनेवाला और कामका मित्र वसन्त आप
 लोगोंको सदा प्रसन्न रखे ॥ ११२ ॥ अमृतके हुए कगर्मावाली,
 कनफनाते हुए पायलोंवाली, फूलते हुए कुण्डलोंवाली और
 रन-फुन करती हुई किङ्किरियोंवाली नई ललनाओंके मुख-
 कमल देखनेकी ललकसे सूर्यने भी अपना रथ धोना कर दिया
 अर्थात् वसन्तमें दिन बढ़े होने लगे ॥ ११३ ॥ मौलसिरीके
 फूलोंके रसरूपी मदिरा पीनेसे जिन भौरोंकी गुनगुनाहट और
 भी मधुर हो गई थी उनकी पतों पेड़ोंसे ऐसे निकल पड़ीं
 मानो रुठी हुईं नवेलियोंकी मनानेके लिये कामदेवकी भेजी
 हुई दृष्टिपट्टी ॥ ११४ ॥ वसन्तमें उचरकी धोर पूमे हुए
 सूर्यको देखकर ऐसा जान पड़ना है मानो अपने रथमें जुते
 हुए पुराने घोड़ोंको बदलकर नये घोड़े लेनेके लिये सूर्य उत्तम
 घोड़े उपलब्ध करनेवाली उचर दिशाकी धोर चल पड़े है ॥ ११५ ॥
 सुमावनी सौमं, विदकी हुई चाँदनी, कोयलकी शूक, सुगन्धित
 पवन, मतवाले भौरोंकी गुहार और रातमें पीनेके लिये भ्रासव,
 वे सब कामदेवकी जगाए रखनेवाले रसायन ही हैं ॥ ११६ ॥
 परदेसमें पड़ा हुआ मार्ग एक नो धों ही विद्योहरसे हुएला

हुआ रहता है तिसपर जब वह मन्द-मन्द बहनेवाले पवनके
 भोंबेसे हिलते हुए और सुन्दर सुनहले बौर गितानेवाले धौर
 हुए आमके बुल अपने सामने मार्गमें देखता है तो
 कामदेवके बाणोंकी चोट खाकर मूर्च्छित होकर गिर पड़ता है
 ॥ ११७ ॥ तिलक वृक्षके फूलोंपर बैठे हुए भौरों और आतके
 जाल कोपलोंको देखकर ऐसा जान पड़ता था मानो वसन्तकी
 शोभा-रूपी नायिकाने अपने माथेपर धौंजनका तिलक लगा
 लिया हो और उगते हुए सौंगकी सुन्दर लालके समान लाल
 लाल आमकी कोंपलोंके रूपमें अपने श्रोत रँग लिए हैं ॥ ११८ ॥
 वसन्तमें नवेलियाँ अपने पतियोंके साथ वह मदिरा पीने
 लगीं जो उनमें मनोहर हाव-भाव भरता जा रहा था, अपनी
 सुन्दर गन्धसे मौलसिरीकी गन्धको भी परास्त कर रहा था और
 प्रेम बढ़ानेमें किसीके कम न था ॥ ११९ ॥ जब वसन्तमें उच
 नवेलीके मुखकी सुगन्धके लोभसे चारों ओर भौर
 मँह्राकर उसकी शोभा बढ़ाने लगे उस समय अपनी गिता
 हुई थलकोंमें अपनी चबल धालें उलझाती हुईं वह ऐसे बनीं
 कि उसकी कमरमें दौंधी हुई करधनी मधुर रनकुणके साथ
 बज उठी ॥ १२० ॥ वसन्तमें चूले हुए कनैरके फूल देखनेमें
 तो बड़े भले लगते थे पर सुगन्ध न होनेसे ये मरको तिरक
 भी नहीं भा रहे थे । प्रायः देखा गया है कि प्रमा टिमि की
 पत्तुमें पूरे गुण कमी नहीं भरता ॥ १२१ ॥ वसन्तके जानेने
 बावदियोंके जल, मयियोंसे जड़ी करवनिर्वा, चाँदनी, तिरक

॥ १२२ ॥ चारुह्मीय वनस्थलो नवनयां शोभां वमारा-
न्वहं पांन्यान्पीडयति स्म तस्कर इव क्रूरैः शूरेर्म-
न्मथः । शृङ्गारः संगुणः क्षमापतिरिव प्राप्तः प्रतिष्ठां
परां रात्रिः स्वीकुरुते स्म सुगन्धललनालज्जेव कार्थ्यं
क्रमात् ॥ १२३ ॥ विकसति सहकारे स्फारसौरभ्यसारे
वहति ध्रुतपट्टीरे मन्दमन्दं समीरे । कलयति कलवाचं
कोकिलोकोऽपि रष्टः क्षणमपि न मृगाद्यथा चल्लभो
दुर्लभोऽभूत् ॥ १२४ ॥ विकसितकुसुमापरं हसन्तीं
कुरयकराजिवधूं विलोकयन्तम् । दृष्टयुरिव सुराङ्गना
निपण्यं सशरमनङ्गमशोकपल्लवेषु ॥ १२५ ॥ विकसित-
सहकारभारह्यारिपरिमलपुञ्जितगुञ्जितद्विरेफः । नय-
किसलयचारुचामरश्रीर्हरति मुनेरपि मानसं वसन्तः
॥ १२६ ॥ धिरचिता मधुनोपवनश्रियामभिनवा इव
पत्रधियोपकाः । मधुलिहां मधुदानविशारदाः कुरयका

स्वकारखतां ययुः ॥ १२७ ॥ विलासिभिर्बियोन्मदै
रचितरम्यगुञ्जारधैः प्रस्नसुरभीकृतैर्विगलितत्रपा-
स्तापसाः । अशोकशिखरन्धितैः सुनयनान्यनैः
पट्टपदैर्निरन्तरनिषेचितामितमर्धौ मर्धा रेमिरे ॥ १२८ ॥
व्यतीतकल्पे शिशिरैकवात्ये सङ्कल्पुप्पोद्गमयन्ध-
राङ्गी । इयं लवङ्गी युवसृङ्गसङ्गाडुच्छृङ्गुच्छस्त-
निकेय भाति ॥ १२९ ॥ द्रणगुरुममदाधरदुः-
सहं जघननिधिपयोदृतमेखलम् । न यत्तु तावदश्रेप-
मपोहितं रचिरलं चिरलं कृतवान्दिमम् ॥ १३० ॥ श्यु-
भिरे स्मितचारुतराननाः स्त्रिय इव श्लथशिक्षितमे
खलाः । विकचतामरसा शृद्दोधिना मद्कलोदकलो-
लविहङ्गमाः ॥ १३१ ॥ श्रुतसुखधमरस्वनगीतयः
कुसुमकोमलदन्तरुचो वसुः । उपवनान्तलताः पवना-
हृतैः किसलयैः सलयैरिव पाणिभिः ॥ १३२ ॥ श्वसन-

श्रीर मञ्जरीसे लक्ष्मी श्रामांकी दालें सब श्रीर भी सुहावती लगने
लगी है ॥ १२२ ॥ वसन्तके दिनोंमें बेरवाके समान वनकी
भूमि प्रति दिन नई नई शोभा पाने लगी, कामदेव भी
चोरके समान अपने निर्दय शोभामें विभोगियाँपर प्रहार करने
लगा, शृङ्गारने गुणवाद् रात्राके समान बढ़ा सम्मान पाया
श्रीर रात्रि भी मोली-माली नारीकी लज्जाके समान धीरे-धीरे
पीय होने लगी ॥ १२३ ॥ फीलती हुई सुगन्धके साथ जब
श्रामका घृष्ट दौर गया, चन्दनके घुँघोंकी हिलानेवाला वायु
धीरे-धीरे वहने लगा श्रीर कोपल भी जब मधुर स्वरोंमें फूक
उठी, उस समय रूडा हुआ नायक भी नायिकाकी क्षण-भरके
लिये भी दुर्लभ नहीं हुआ अर्थात् तत्काल प्राप्त हो गया
॥ १२४ ॥ तिले हुए फूलोंके श्रोतोंसे हँसती हुई कटसरैयाकी
पंक्तिरूपी नायिकाश्रीसे निहारा जानेवाला तथा अशोकके पत्तोंमें
भाय लेकर बैठा हुआ कामदेव ऐसा सुन्दर जान पड़ता था
मानो देवियाँ उसे देर रही हों ॥ १२५ ॥ जिस वसन्तमें
श्रीरी हुई श्रामकी बालियाँका मार कम करनेवाले (बालियाँसे
फड़े हुए) परागमें लोट-पोटकर भीरे गुनगुना रहे हैं श्रीर नई-
नई सुन्दर कोंपलें जिसके सिरपर बैर-सी जान पड़ती है वह
वसन्त आकर सुनियोंका भी मन हर रहा है ॥ १२६ ॥
कटसरैयाके जो पीधे उपवनकी शोभारूपी नायिकाके शरीरमें
वसन्तरूपी चैलेके हाथ रधी हुई धिक्कारोंके समान दिखाई
पड़ते थे उनके फूलोंमें नरे हुए रसपर ऊँह होकर भीरे गूँजने
लगे ॥ १२७ ॥ वसन्तके जिन दिनोंमें विलासियोंके समान

मलवाले, मधुर गुञ्जार करनेवाले, फूलोंकी सुगन्धमें लिपटे हुए
तथा अपनी भौरियाँके साथ अशोकके पेड़पर बैठे हुए भीरे जो
भरकर फूलोंका रस पी रहे थे, उस समय तपस्वी भी लजा
छोड़कर शीदामें लग गए ॥ १२८ ॥ जिस लवङ्ग लताके विले
हुए फूलके गुच्छे ही उसके स्तन हैं, शिशिर ऋतुमें जिसका
लदकपनयिता है तथा जिसमें मनचाहे फूल खिल आए हैं (ऋतुके
निकलनेसे जिसके अङ्ग सुन्दर हो गए हैं) वह लवङ्गलता तरण
भीरेका सङ्ग पाकर श्रीर भी सुन्दर दिखाई पड़ने लगी ॥ १२९ ॥
जिस ठण्डकको पतिके दन्तवचने फूले हुए नवेलीके श्रोत नहीं
सह सकते थे श्रीर जिसके कारण कमरपरसे सगड़ी खोल दी
गई थी उस ठण्डकको यद्यपि वसन्तके सूर्यने मली भीति दूर तो
नहीं किया था किन्तु कम श्रवण्य कर दिया ॥ १३० ॥ तिले
हुए लाल कमलोंसे मरे हुए श्रीर चञ्चल जल-पत्तियोंसे गूँजनी
हुई घरकी यावदियों उन स्त्रियाँकी नाँति मनोहर दिखाई
पड़ रही है जिनके सुन्दर मुँहोंपर हँसी छाई हुई है श्रीर
जिनकी बीली करपनियाँ बज रही हैं ॥ १३१ ॥ उपवनकी
वे लताएँ वसन्तमें सुन्दर दिखाई देने लगी थीं जिनपर
भीरोंकी मधुर गुञ्जार गाँत-सी सुनाई पड़ती थी, जिनके कामल
फूल दौंतेके समान सुन्दर दिखाई पड़ते थे श्रीर वायुके
करीबसे हिलता हुई जिनकी कोंपलें अभिनय करती हुई
शुजायोंके समान डिल रही थीं ॥ १३२ ॥ बूचकी लता-रूपी
उस नवेलीके फूल-रूपी मुखको भीरा चूमने लगा जिसके
वायुरूपी साँसे हिलते हुए पते ही श्रोत थे, जिसमें मधु

चलितपल्लवाघरोष्ठे नवनिहितेर्ष्यमिवावधूनयन्तो ।
 मधुसुरभिणि पट्पदेन पुणे मुख इव शाललतावधूश्च-
 चुम्बे ॥ १३३ ॥ सद्यः प्रवालोद्गमचादपत्रे नीते समाप्तिं
 नवचूतवाणे । निवेशयामास मर्षाद्दिरेफाश्रामाक्षराशीघ
 मनोभवस्य ॥ १३४ ॥ सन्तु द्रुमाः किसलयोत्तरपुष्प-
 भाराः प्राप्ते घसन्तसमये कथमित्थमेव । न्यासैनेव-
 द्युतिमतोः पदयोस्तवेयं भूः पुष्पिता सुतनु पल्लवितेव
 भाति ॥ १३५ ॥ सपत्रलेपेषु विलासिनीनां वक्त्रेषु
 हेमाम्बुरुहोपमेपु । रत्नान्तरे मौक्तिकसङ्ग्रम्यः स्वेदा-
 शमो विस्तरतामुपैति ॥ १३६ ॥ सपदि सखीभिर्निभूतं
 विरहवतीखानुमन्न भज्यन्ते । सहकारमखरीणां शिखो-
 द्रमग्रन्थयः प्रथमे ॥ १३७ ॥ समदमधुकराणां फोकि-
 लानाञ्च नदौः कुसुमितसहकारैः कणिकारैश्च रम्यः ।
 इपुमिरिच सुतीक्ष्णैर्मनसं मानिनीनां तुदति कुसुम-
 मासो मन्मथाङ्गीपनाय ॥ १३८ ॥ समभिस्त्वय रसाद-

वलन्वितः प्रमदया कुसुमावचिचीपया । अचिनमश
 रराज वृथोद्यकैरनुतया नृतया वनपादपः ॥ १३९ ॥ सह
 कारकुसुमकेसरनिकरभराभोदमूर्च्छितुद्विगन्ते । मधु
 रमध्विचुम्बधुपे मधौ भवेत्कस्य नोत्कटा ॥ १४० ॥
 साम्यं सम्पति सेवते विचिकिलं पादमासिकैर्मौक्तिकै-
 र्धाहीकी दशनप्रणाक्षतरैः पत्रैरशोकश्चितः । भृङ्गा-
 लङ्घितकोटि किञ्चकमिदं किञ्चिद्विद्युन्तापते माडिष्ठ
 स्तयकैश्च पाटलितरोरन्यैश्च काचिह्लिपिः ॥ १४१ ॥
 सुभगे कोटिसंख्यत्वमुपेत्य मदनशुभैः । घसन्ते पञ्चता
 त्यक्ता पञ्चतासीद्वियोगिनाम् ॥ १४२ ॥ सुघदनाघदना-
 सवसम्भृतस्तदनुवादिगुणः कुसुमोद्गमः । मधुकरैरक-
 रोन्मधुलोलुपेवंकुलमाकुलमायतपङ्क्तिभिः ॥ १४३ ॥ सुद-
 दस्तदक्षीनखक्षतानां प्रतिपन्नाः पथिकाङ्गनाजनानाम् ।
 दहनद्युतिदस्यवः समन्ताद्विपिन किञ्चककुम्भला
 विरेजुः ॥ १४४ ॥ स्तनेषु हाराः सितचन्दनाद्रां भुजेषु

(मकरन्द, मदिरा) की सुगन्ध थी और जो मानो उसी समय
 रुटकर अपनी शरीर हिला रही थी ॥ १३३ ॥ सुन्दर घसन्तने
 गई कोपलोकें पहुँ लगाकर शमशर्मा उन मञ्जरियोंको बाण बना
 दिया जिनपर बैठाए हुए भीरे ऐसे जान पड़ते थे मानों उन
 बाणोंपर धामदेवके नामके अक्षर लिख दिए गए हों ॥ १३४ ॥
 हे सुन्दरी ! घसन्त भक्तु घानेपर केवल वृष ही फूल-पत्तोंसे
 नहीं सजे गए हैं वरन् नई-नई शोभावाले गुहारके चरण्य दू-सुकर
 यह परती भी फूल-पत्तोंसे सजी हुई-सी जान पड़ रही है
 ॥ १३५ ॥ सुन्दर कमलके समान सुहावने और बेलघूटे
 चोंते हुए छिपोंके सुघोंपर पैली हुई पसिनेकी सूँद्रे ऐसी
 दिखाई पड़ती हैं मानों धनेक प्रकारके रनोंके बीच बहुतसे
 मोती जड़ दिए गए हों ॥ १३६ ॥ वियोगिनी रिश्योंकी
 रपाके लिये इस घसन्तमें उनकी सखियाँ भटपट धामके
 बाँतोंके ऊपरकी पहली फूटी हुई गाँठें धीरे धीरे तोड़ ले
 रही हैं ॥ १३७ ॥ कोपल और मदमाते भीरोंके शेरोंसे
 दूँजते हुए तथा भीरे हुए धामके वेदोंसे भरा हुआ यह
 क्षणत मनोहर दर्दरके पत्नीवाले अपने घने बाणोंसे
 मानिनी रिश्योंके मन इसलिये बाँध रहा है कि उनमें प्रेम
 लग जाए ॥ १३८ ॥ वृष तोड़नेकी चाहसे एक नवेलीने वेद
 प्रेमने धागे बद्धकर एक वृषको धाम लिया फिर भी यह मुक्ता
 नहीं इसलिये उसका पुदरप मुठा और व्यर्थ जान पड़ा
 क्योंकि पुदर होता तो शरीरके सामुग्र्य भरपूर ही झुक जाता

॥ १३९ ॥ जिस घसन्तमें धामके बीरकी मदकसे सारी
 दिशाएँ गमक उठी थीं और मोठे फूलोंके रसोंसे भीरे मल
 होकर फूम रहे थे उस समय कौन ऐसा क्षमाग था जो
 अपनी स्मारीके लिये मचल न उठा हो ॥ १४० ॥ मदन
 वृषका फूल घसन्तके दिनोंमें छुः महानेके मोतीके समान
 बड़ा-बड़ा दिखाई पड़ने लगा, शरोरका वृष बलकी
 रिश्योंके दन्तघतके समान लाल-लाल पत्तोंसे भर गया, दू
 पर भीरोंके बैठ जानेसे उनकी हँसियाँ ढीली पड़ गईं और
 लाल-लाल गुच्छोंसे पाटल वृषकी शोभा कुछ और विचित्र बन
 गई ॥ १४१ ॥ हे सुन्दरी ! घसन्तमें कामके बाणोंने धरनों
 पॉपकी संख्या पदलकर करोड़ोंकी संख्या प्रहण कर ली और
 उनकी पञ्चता (पॉपकी संख्या, मृत्यु) अब वियोगियोंके पास
 चली गई ॥ १४२ ॥ मौलीसिरीके ये पैद फूल उठे जिन्हें सुन्दरी
 नाथिकाने अपने मुसली मदिरासे सींचा था, फूलोंके साथ ही
 उनमें मदिराकी गन्ध भी छा गई और इसीलिये वृषके रसके
 क्षोभी भीरोंने झुपट पॉपकर उठे घेर लिया है ॥ १४३ ॥ ये
 पलासकी लाल-लाल कलियाँ जङ्गलमें धारों धोर पड़ उठीं
 जो नवेलियोंके शरीरपर भरघिदके समान देवी की
 वियोगियोंको जलानेवाली चाहते भी अधिक चमकीली दिशा
 दे रही हैं ॥ १४४ ॥ अपने प्रेमीसे सम्भोग करनेको उदात्तकी
 नाथियोंने अपने स्तनोंपर पीले चन्दनसे भीगे हुए मोतीके हुए
 पदन लिए हैं, हाथोंमें सुनवन्ध और बहन हाथ विद्वे

सङ्गं बलयाङ्गदानि । प्रयान्त्यनङ्गातुरमानसानां नित-
म्बिनीनाञ्जघनेषु कान्चयः ॥ १४५ ॥ स्तोत्रं चैत्रगुणो-
दयस्य विरहिप्राणप्रयाणानकष्टहारः स्मरकार्मुकस्य
सुदृशां शृङ्गारशिखामुदः । दोलाकेलिकलासु मङ्गल-
पदं वन्दी वनान्तश्रियां नादोऽयं फलरुष्टरुष्ट-
कुहृत्प्रेहोलितः श्रुयते ॥ १४६ ॥ स्थलकमल-
तरुणां कामिनोलोचनेषु क्षिपति मुकुलमुष्टया
धूलिजालं विशालम् । तदनु हरति हन्त स्थान्तस-
र्वस्वमासामयमनयधिदग्धो धूर्तवर्गमीनरेतुः ॥ १४७ ॥
स्थाने स्थाने मलयमरुतः पूरयन्त्यङ्कपालां पुष्पालीषु
स्मरगजरजःस्नानयोग्याः पत्तगाः । जातं चूते मधुमधुक-
रमेयसंजातुदग्धं निर्धिन्नत्वं सपदि भवते रागराज्या-
भिपेकः ॥ १४८ ॥ स्फुटमियोज्यलकाञ्चनकान्तिभिर्यु-
तमशोकमशोभत चम्पकैः । विरहिणां हृदयस्य भिदा-
भूतः कपिशितं पिशितं मदनाग्निना ॥ १४९ ॥ स्मरहृ-
ताशनमुर्मुचूर्णतां दधुरिचात्रघणस्य रजःकणाः ।
निपतिताः परितः पथिकम्रजानुपरि ते परितेपुरतो

मृशम् ॥ १५० ॥ हिमव्यपायाद्विशदाघरतामापाएह-
रीतमुपचञ्चयोनाम् । स्वेदोद्गमः किम्पुदपाङ्गनानां
चक्रे पदं पञ्चविधेपकेषु ॥ १५१ ॥ हुतहुताशनदीति
वनश्रियः प्रतिनिधिः फनकामरणस्य यत् । युवतयः
कुसुमं दधरादितं तदलके दलकेसरेपेशलम् ॥ १५२ ॥
मदनपूजा—कुसुमसुकुमारमूर्तिर्दधती नियमेन
तनुतरं मध्यम् । आभाति मकरकेतोः पादवस्था
चापयष्टिरिव ॥ १ ॥

कुसुमावचय—अताडयत्पल्लवपाणिनेकं पुष्पोच्चये
राजघघूरशोकम् । तच्छेदहेतोरलिपङ्क्तिमङ्गला विरु-
न्तिता बाललता स्मरेय ॥ १ ॥ अमुमवत युवत्यो
भाग्यवत्यो नितान्तं कुसुमचलयधेलासङ्गलेलासुखानि ।
मम तु मधुकराणां बाटपाटचाराणां सपदि पतति घाटी
पुष्पाटीनिवेशे ॥ २ ॥ अन्यत्र यूयं कुसुमावचार्यं
कुब्धमत्रास्मि करोमि सत्यः । नाहं हि दूरं भ्रमितुं
समर्थां प्रसीदतायं रचितोऽञ्जलिर्धः ॥ ३ ॥ असङ्ग-
पुष्पोऽपि मनोभवस्य पञ्चैव वाथार्यमयं ददाति । पर्यं

श्रीर अपने नितम्बोंपर करघनी बाँध ली है ॥ १४५ ॥ वसन्तमें
वनकी शोभाकी प्रशंसा करनेवाले कोयलके गलेसे निकली हुई
कूक पेसी जान पड़ती है मानो चैत्रके सुन्दर गुच्छोंका स्तोत्र
हो, विरहियोंके प्राण लेनेवाले कामके घनुपकी टङ्गा हो,
स्त्रियोंको शृङ्गार सिखानेका पाठ हो और मूला मूलनेकी
कलाका मङ्गल-गान हो ॥ १४६ ॥ लुटेरे कामदेवने पहले स्थल-
कमल तथा वृक्षांकी कलीरूपी मुट्टीमें परागरूपी धूल लेकर
स्त्रियोंकी श्रित्तोंमें मोंक दिया श्रीर तब टगकी भौति उनका
हृदयरूपी रत्न लूट लिया ॥ १४७ ॥ प्रेमरूपी राजाके
राज्याभिषेकमें अब कोई कमी नहीं रह गई क्योंकि कामदेवरूपी
हामीको धूलसे स्नान करानेके लिये फूलोंका पर्याप्त पराग इस
समय चारों ओर मलयके बायुकी गोद भर रहा है और
शामके बीरमें भीरोंके घुटने-घुटने-भर रस भर गया है
॥ १४८ ॥ सुन्दर सुनहरे चम्पके फूलोंके साथ अशोकके फूल
ऐसे जान पड़ते थे मानो विरहियोंके फटे हुए हृदयका मास
कामकी श्रित्तसे मुनकर पीजा हो गया हो ॥ १४९ ॥ शामके
वनमें बीरके पराग ऐसे जान पड़ते थे मानो कामरूपी प्राणसे
जले हुए मूसीके कण हों इसलिये वे त्रियोगियोंके ऊपर
चारों ओरसे ऋदकर उन्हें तपाए जा रहे थे ॥ १५० ॥ जाड़ा
वीतनेसे जिनके श्रोत्र चिकने और गाल चमकीले हो गए हैं

उन किन्नरियोंके सुलपर घनी हुई चित्रकारीपर वसन्तमें
पसीनेकी बूँदें फलक धाई हैं ॥ १५१ ॥ हविसे प्रज्वलित श्रित्तकी
चमकसे भरी हुई वनकी शोभा रूपी नायिकाके सुनहरे गहनोंका
प्रतिनिधित्व करनेवाली कोमल कोंपलें नवेत्रियोंने अपने जूझोंमें
सोंस लीं ॥ १५२ ॥

कामदेवकी पूजा : फूलके समान कोमल और पतली
कमरवाली नवेली कामदेवकी मूर्तिके पास खड़ी हुई उसके
घनुपके समान दिखाई पड़ रही है ॥ १ ॥

फूल चुनना : किसी शानोने फूल तोड़ते समय अपने
कोमल हाथसे किसी अशोककी टहनोको ऋक्कोर दिया,
इसका बदला लेनेके लिये कामदेवने भीरोंका कुण्ड
भेजकर कोमल लतापर धावा बुलवाकर उसे बढ़ा वह
किपा अर्थात् शरीरके दुःखसे कामदेवको दुःख हुआ और
लताको पीड़ित देखकर शानोको कष्ट हुआ ॥ १ ॥ फूल
कहता है 'हे नवेलियो ! तुम बड़ी भाग्यशालिनी हो, इसलिये
वसन्तकी अटलेश्रित्तोंका जी भरकर आनन्द ले लो ! मुझे
तो यह सुख मिलनेवाला नहीं है क्योंकि ये दाढ़ भीरे
फूलोंके उपवनमें एकाएक घुसकर मैंदराने लगे हैं' ॥ २ ॥ एक
नवेलीने अपने म्रियको उपवनमें बुलाया है, उसकी प्रतीचा
करती हुई वह अपनी सखियोंसे कहती है—'हे सखियो !

हृदयत्वमिवाधधार्थं सर्वस्वमप्राप्तिं मयोर्वधूभिः ॥ ४ ॥
 हृदिमिदमिति भूरुहां प्रसूनैर्मुहुरतिलोभयता पुरः
 पुरोऽन्या । अनुरहसमनायि नायकेन त्वरयति स्तु-
 महो जनं मनोभू ॥ ५ ॥ उच्चित्ये प्रथममवस्थितं
 मृगाचीं पुष्पाद्यं ध्रितवित्पं प्रहोतुकामा । आरोह
 पदमदधादशोकयद्यामूलं पुनरपि तेन पुष्पिता सा
 ॥ ६ ॥ उपरिजतयज्ञानि याचमानां कुशलतया परिरेम्भ
 लोलुपोऽन्यः । प्रथितपृथुपयोधरां शृङ्गाण्य स्यमित्ति
 मुग्धवधुमुदास दोभ्यर्भम् ॥ ७ ॥ निजनयनप्रतिविम्बैर-
 म्बुनि वह्युः प्रतारिता कापि । नीलोत्पलेऽपि विम्बु-
 श्चि त्करमर्पयितुं कुसुमलावी ॥ ८ ॥ पाणौ पद्मधिया
 मधूककुसुमभ्रान्त्या तथा गण्डयोर्नीलेन्दीवरशङ्कया
 नयनयोर्वन्धूकवृद्ध्याधरे । लीयन्ते कवरीभरे गिजकु-
 लव्यामोहजातरुपृहा दुर्गारा मधुषाः कियन्ति तरुणि

स्थाननि रक्षिष्यसि ॥ ६ ॥ पूर्वं द्विरेफपरिभूतिमया
 द्रवत्या यन्केशुप्पभरणं हरिणात्ति मुक्तम् । व्यर्थं
 तदथ पुनरप्यलकेषु भृङ्गाः पुञ्जीमत्रिजकुलश्रमत-
 पतन्ति ॥ १० ॥ मुखकमलकुमुद्रमय्य यूना यदभिनयो
 ढवधूर्वालादचुम्बि । तदपि न किल घालपल्लवाप्रदह्य
 रया विधिवे दिग्दधसख्या ॥ ११ ॥ मृदुचरणतलाप्रदु-
 स्थितत्वादसहतरा कुचकुम्भयोर्भरस्थ । उपरि निरय
 लम्ननं मियस्य न्यपतदधोच्चतरोधिचीपयान्या ॥ १२ ॥
 सललितमवलम्ब्य पाणिनांसे सहचरमुच्छ्रितगुच्छुग
 ञ्छुयान्या । सकलकलभकुम्भविभ्रमाभ्यामुरसि रसा
 द्यतस्तेरे स्तनाभ्याम् ॥ १३ ॥

वसन्तयोग्य — अतिमन्दचन्दनमहोदरवातं स्तरका
 भिरामलतिकातरुजातम् । अपि तापसाउपवनं मद्
 नातान्मदमज्जुगुञ्जदलिपुञ्जमकापीत् ॥ १ ॥ आलिङ्गने

श्राप लोग कहीं और जाकर फूल चुनं, मैं तो यहीं चुनूंगी
 क्योंकि मुझे दूर जाना नहीं जाता, इसलिये हाथ जोड़ती हूँ
 मुझपर कृपा करो' ॥ ३ ॥ अपने पास अनगिनत फूल होते
 हुए भी यह निगोदा पसन्त बाध बनानेके लिये कामदेवको
 कुल पाँच ही फूल देता है, उसकी यह सुदृता देपर ही
 नवेलियोंने सब फूल उतार लिए हैं ॥ ७ ॥ नायकने अपनी
 प्यारीको इस प्रकार ललचा-ललचाकर कि 'इसका फूल
 बरदा है, उसका फूल बरदा है' आगे यदाया और एकान्तमें
 से गया, सचमुच रस लेनेके लिये कामदेव लोगोंको उतावला
 बना ही देता है ॥ ५ ॥ उस मृगनयनीने शयोक्के नीचेकी
 रहनियोंमें लगे हुए फूल तोड़कर जैसे ही ऊपरके फूल
 तोड़नेके लिये वालीपर पैर रक्खा त्यों ही वह शयोक्का वृष्ट
 फिर जड़तक फलोंसे लड़ गया ॥ ६ ॥ जब नवेलीने ऊपरके
 फूल तोड़नेके लिये अपने प्रियसे प्रार्थना की तब उस शत्रु
 नायकने गले लगानेके लोभमें नायिकासे कहा कि 'तुम स्वयं
 क्यों नहीं तोड़ लेतीं' और यह कहकर उसने अपनी बड़े-बड़े
 स्तनोंवाली भोलीभाली नायिकाको अपनी बाँहिमें फँसकर
 ऊपर उठा दिया ॥ ७ ॥ एक नवेली जलमें पड़ी हुई अपनी
 धौलौची परदारकी बार बार नीला कमल समझकर उसे
 तोड़नेके प्रयत्नमें जब बहुत बार घोया या चुकी तो यह
 सचमुच भीले कमलपर भी हाथ लगानेमें सोच-विचार करने
 लगी कि यह कमल ही भी था नहीं ॥ ८ ॥ एक भीरा किसी
 नवेलीको गह कर रहा है, उसपर बलि करना है कि 'दे

नवेली । ये भीरे कमलके धोलेमें तुम्हारे हाथोंपर, महुनेके
 फूलके धोलेमें गालोंपर, नीले कमल समझकर धौलौची,
 जपाकुसुमके धोलेमें श्रोतोंपर और दूसरे भीरेके धोलेमें उठने
 मिलनेकी चाहते बालोंपर आ-आकर बैठ रहे हैं, ऐसी दृशनें
 तुम कर्त्तक इनसे अपनेको बचा पाओगी' ॥ ३ ॥ हे
 मृगनयनी ! तुमने भीरेके डरसे ही जो अपने बालोंमें फूल नहीं
 गूँथे यह निरर्थक ही सिद्ध हुआ क्योंकि ये भीरे तुम्हारे बालोंको
 ही धौलौचीका मूण्ड समझकर हकूठे हो होकर तुमपर मीठा
 रहे हैं ॥ १० ॥ किसी दैगीलेने बलपूर्वक नई दुलरिना
 सुपरमल ऊपर उठाकर इस प्रकार चूम लिया कि होमत्र
 पत्ते तोड़नेमें लगी हुई चणुर सती भी यह बात नहीं भरी
 सकी ॥ ११ ॥ ऊपरके फूलोंको तोड़नेके लिये जब वह नवेली
 अपने बड़े बड़े स्तनोंके भारीपनके कारण अपने कामल पंक्ति
 पञ्जोंपर सड़ी न रह पाई तब कोई सहारा न होनेसे वह पालनें
 बड़े हुए अपने प्रियके ऊपर ही भद्रा पड़ी ॥ १२ ॥ हुने
 ऊपर खिले हुए फूलोंके गुच्छे तोड़नेके लिये किसी नवेलीने
 अपने हाथसे नायकके कन्धेका बड़े प्रेमसे सहारा लिया किन्तु
 हाथीके भरतकके समान बड़े बड़े स्तनोंका बोझ न समझ
 पातेसे यह बड़े रसके साथ अपने प्रियतमकी धातापर ही भरत
 पड़ी ॥ १३ ॥

घसन्तये पयन : वसन्तके समय जिन उपवनोमें मन्
 मन्द मलयका वासु बह रहा था, वृष्ट और छटापै फूलोंके
 सुन्दर गुच्छोंसे लड़ गई थी और जिनमें मतवाले भीरे मनें

मलयजतदनास्थजन्ते घनान्तानापृच्छन्ते विरपरिचि-
तान्मालयाभिर्मतौघान् । अथ स्थित्वा द्रविडमहिला-
भ्यन्तरे श्वः प्रभाते प्रस्थातारो मलयमद्यतः कुर्वते
सन्निधानम् ॥ २ ॥ उदञ्चत्कावेरोलहरिपु परिप्यङ्करङ्गे
नटन्तः फूहकरटीकएटीरघरघलवत्रासितप्रोपितेभाः ।
अमी चैत्रे मैत्रावरुणितरुपीकेलिकङ्कैल्लिमल्लीचलद्गङ्गी-
हल्लीस्रसुरभयश्चरिड चञ्चन्ति घाताः ॥ ३ ॥ उपवन-
तरुन्त्याध्यापने लब्धवर्षीं विरचितजलफेलिः पद्मिनो-
कामिनीभिः । मियसुहृदसमेपोरायथौ योगियोगस्थि-
तिविदलधदचो दक्षिणो गन्धवाहः ॥ ४ ॥ कावेरीतोऽ-
भूमीरुहभुजगवधूमुक्तमुकावशिष्टः कर्णाटीचीनपीनस्त-
नयसनद्रान्दोलनस्पन्दमन्दः । लोलह्लाटीललाटालक-
ललितलतालास्यलीलाविलोलः कष्टं भो दाक्षिणायुः
प्रसरति पयनः पान्यकान्ताकृतान्तः ॥ ५ ॥ रुतमकोपाः
पयनाशुनानां निधासदानादिव पन्नगानाम् । विनिर्यु-

ध्वन्दनशैलकृष्णादाशासुदीर्घा प्रति गन्धवाहाः ॥ ६ ॥
तन्वानरश्रीतलस्यं जलधितटयनोचालतालासयानां
दोलाव्यालोलचोलीगुडरमणरोत्फालहेलासहायः ।
वायुप्राप्त्येव दन्तमणमधरदले लालयन् केरलीना-
मुन्मीललक्ष्यशिक्षाश्रमकुसुमधनुर्दक्षिणो दाक्षिणा-
त्यः ॥ ७ ॥ पथि पथि लतालीलाचीभिः अयनमधु-
सीकरं कुसुमनिकरं वर्पन्तीभिः सहर्षमिवाचितः ।
मधुकरघृगीतासकं कुरङ्गकमास्थितः प्रसरति घने
मन्दं मन्दं वसन्तसमीरणः ॥ ८ ॥ पानीयं नारिकेलीफ-
लकहरुकुहृत्कारि कङ्गोलयन्तःकावेरीतीरतालद्रुमभरि-
तसुराभारडभाङ्गाखरगडाः । एते तन्वन्ति वलायन-
ललितलताताएडर्धं द्राविडकोकपूर्वापाएडुगएडस्थल-
लुठितरया वायव्यो दाक्षिणात्याः ॥ ९ ॥ प्रासः प्राञ्च-
मिव श्रमं जलजिनीसंरभ्यमारं वहन्नुद्दामस्तयकान-
मध्वलतालदन्नामिचालोकयन् । स्थोकुर्वन्मदमन्यरागिव

गुजार कर रहे थे वे तपस्वियोंको भी कामसे पीड़ित बनाए
बाल रहे थे ॥ १ ॥ मलय पर्वतके वे पवन जो बर्षोंके चन्दनके
बूझोंको गले लगाते हैं, हरे-भरे वनोंके छोरोको छूते चलते
हैं, अपने साथी मलय पर्वतके भरनौसे रमरमी करते चलते हैं
और जो आम कुडू देरतक द्रविड-नवेलियोंके बीच छोड़ी देर
दहरकर प्रातःकाल ही चल पड़े हैं, वे पास आ पहुँचे हैं ॥२॥
हे स्तनेवाली नवेली ! चैत्रके महीनेमें वे पवन चारों ओर बह
चले हैं जो उद्युलती हुई कावेरीकी लहरोंको गले लगा-लगाकर
नाच रहे हैं, कोयलकी कूकुरूपी सिंह-गर्जनसे जिन्होंने वियोगी-
रूपी हाथियोंको दहला दिया है, जिनमें उस अशोककी
सुगन्ध है जिसके साथ अगस्यकी खी जोपासुद्रा कीड़ा
करती थी और जिनमें हिलती और साचती हुई चमेलीकी गन्ध
यसती हुई है ॥ ३ ॥ वनके बूझोंको नाचना सिप्राणेवाला,
कमलिनी-रूपी नायिकाओंके साथ जलक्रीड़ा करनेवाला तथा
पोगियोंका मन धोणसे हटानेवाला यह कामदेवका मित्र
दक्षिणका वायु अथ वा पहुँचा है ॥ ४ ॥ कावेरी नदीके तीरके
बूझोंपर लिपटी हुई सौंपिनिके पीनेसे बचा हुआ, कर्णाटकी
नवेलियोंके बड़े-बड़े स्तनोंपर ठके हुए रेशमी बखोंकी धीरे धीरे
सिसकाता हुआ, छाट देशकी नवेलियोंके माथेपर लहराते हुए
केरुपपी लताओंको झुलता हुआ और वियोगियोंकी पतियोंकी
हाया करता हुआ यह दक्षिणका वायु बढता चला आ रहा है
॥ ५ ॥ चन्दनके वनोंके कुञ्जोंकी छाँदकर ये पवन उत्तरकी

ओर माने इसलिये भागे चले जा रहे हैं कि उस वनने वायु-
मचण करनेवाले सौंपोंको अपने कुञ्जोंमें आश्रय दिया है
॥ ६ ॥ समुद्रके किनारेके वनोंमें जो बड़े बड़े ताड़ हैं उनके
रसको शीतल करता हुआ, झूला झूलती हुई नवेलियोंकी
चोली हिलाकर उनके पति-सहमके उत्साहमें सहायता
पहुँचाता हुआ, केरल देशकी तरपियोंके छाँटोंपर लगे दौलके
चिह्नों (धावों) को सहलाता हुआ तथा कामदेवके धनुषको
लक्ष्य साधनेकी शिष्टा देता हुआ दक्षिणका पवन बह रहा है
॥ ७ ॥ वसन्तका यह पवन धीरे-धीरे वनमें फैल रहा है
जिसकी मार्ग-मार्गमें वन लतारूपी नायिकाओंने प्रसन्नता-पूर्वक
पूजा की है जिनमेंसे मकन्दकी बूँदें टपकानेवाले फूलोंकी
वर्षा होती रहती है और जो पवन वन हिरण्योसे मिलवा चल
रहा है जो ध्यान-पूर्वक भौरियोंकी गुनगुनाहट सुननेमें मग्न
है ॥ ८ ॥ नारियलके फलोंके भीतरके अलको उड़ावते हुए,
कावेरीके तीरपर ताड़के पत्तोंमें लटकती हुई ताड़ोंसे भरी खमनिर्वा
(ताड़ीके घट्टों) में भौं-भौं करते हुए तथा द्रविड
नवेलियोंके कपूरके समान उजले गालोंपर लगनेसे कम वेग-
वाले दक्षिणके पवन समुद्र-तटके वनोंकी सुन्दर लताओंकी
नचा रहे हैं ॥ ९ ॥ कमलिनीकी सुगन्धके चोकसे बका हुआ,
बड़े-बड़े पुष्पोंसे झुकी हुई नई लताओंकी शोभा निदाराता हुआ
तथा नवेलियोंके समान धीरे-धीरे चलता हुआ वसन्तका वायु
चन्दनके वनसे धीरे-धीरे चला आ रहा है ॥ १० ॥ सिंह

गतेषामध्रुवां पित्रमानन्दं मन्दसुपाजगाम पवनः
पाटीरवाटीतटात् ॥१०॥ मलयगिरिसमीराः सिंहलद्वी-
पकान्ता मुखपरिचयलम्बस्फारकर्पूरवासाः । द्रविड-
युवतिदोलाकेलिलोलन्नितम्बस्थलशिथिलितवेगास्ते -
व्यतामान्बुवन्ति ॥ ११ ॥ मलयशिखरादाकैलासं मनो
भवशासनाद्भुवनलयं जेतुं वाञ्छन्वसन्तसमीरयः ।
चिह्नितवसति कैलासाप्रे भुजङ्गधरं हरं मनसि विमृश-
न्मीतः शङ्के प्रयाति शनैः शनैः ॥ १२ ॥ ये दोलाकेलि-
फाराः किमपि मृगदशां मानतन्तुच्छिद्रो ये सद्यः
शृङ्गारदीक्षाव्यतिकरगुरयो ये च लोकत्रयेऽपि । ते
फण्टे लोटयन्तः परभृतवयसां पञ्चमं रागराजं वान्ति
स्वैरं समोराः स्मरविजयमहासाक्षिणो दाक्षिणात्याः
॥१३॥ धिलुलितालकसंहतिरामृशमृगदशां श्रमवारि-
जलाटजम् । तनुतरङ्गतं सरसां दलकुवलयं वलयन्मरु-
दावधौ ॥१४॥ हेमाम्भोरुहपत्तने परिमलस्तेयी वसन्ता-
निलस्तप्रत्यैरिव यामिकैमधुकरैरारब्धकोलाहलः ।

निर्यातस्त्वरया व्रजन्निपतितः श्रीखण्डपङ्कद्रवैलितो
केरलकामिनो कुचतटे खञ्जः शनैर्गच्छति ॥ १५ ॥
वसन्तपथिका — अर्धचन्द्रस्य चर्ध्वर्वियोगविधुरा मनुः
स्मरन्ती यदि प्राणानुज्जति कस्य तत्त्वलु महत्सञ्जा-
यते पातकम् । यावन्नो कृतमध्यगेन हृदये तावन्नरो-
मूर्धनि प्रोदद्युष्टं परपुष्टया तव तवेत्युच्चैर्वचोऽनेकशः ।
॥ १ ॥ अर्धचन्द्रैर्मकरन्दशीकरसुरामत्तकण्ठकोफिले
मार्गं मार्गनिरोधिनी परिहृता शङ्केऽशुभाशङ्कया ।
पान्थस्त्रीवधपातकादुपनतं चण्डालचिह्नं मधोरेया
खिङ्खिणिकेव पट्पदमयी भाङ्कारिण संहतिः ॥ २ ॥
श्रमो हेलोन्मेपव्यसनिषु पलाशेषु परितः पियन्ति
स्वच्छन्दं मधु मधुलिहो माघति जनः । अयं च
प्रत्यत्रं दशति सहकारं परभृतो यदोदं मर्मान्तविदलति
फ एप व्यतिकरः ॥ ३ ॥ अस्थितोदवतीव कन्दसुप्तैः
कुक्षैः पलाशद्रुमैः साङ्गारप्रकरेव धूमकलुषेवोपा-
तिभिः पट्पदैः । रक्ताक्षुतिभिस्सशेषदहनलातेव

द्वीपकी सुन्दरियोंके मुँहासे घू जानेसे जिनमें उन्कट कपूरकी-
सी गन्ध बसी है और द्रविड देशकी झूलती हुई नवेलियोंके
नितम्बोंमें लगनेसे जिनका वेग कम हो गया है ऐसे मलय
वनके पवन सेवन करने योग्य हो रहे हैं ॥ ११ ॥ कामदेवरी
शाखा पाकर मलयपलकी धोटीसे खेवर कैलास पर्यंततकके
सारे पृथ्वी-मण्डलकी जीतनेकी इच्छासे चले हुए वसन्तके
पवनने जब कैलास पर्यंतपर रहनेवाले संपंधारी शङ्करका स्मरण
किया तो वह डरके मारे धीमा पड़ गया और हस्रीलिये मानो
अब यह धीरे-धीरे बह रहा है ॥ १२ ॥ दक्षिणके जो वायु
झूला झूलनेको उकसा रहे हैं, नवेलियोंके मानरूपी सूप तोड़
रहे हैं, हीनों खोंकोंको शृङ्गारका उपदेश दे रहे हैं वे संसारपर
कामदेवकी विजयके प्रायश्चर्यां वायु कोयलके गलेमें पद्मम स्वर
भरते हुए धीरे-धीरे बह रहे हैं ॥ १३ ॥ नवेलियोंके पालोंको
खटाता हुआ, उनके माथेका पसीना पोंछता हुआ, कमलोंको
खिलाता हुआ धीरे सांझागोंमें हल्की-हल्की खहरें उठाता हुआ
वसन्तका पवन बहने लगा ॥ १४ ॥ वसन्तका पवन रिले
हुए कमलरूपी नगरसे जब गन्ध सुगन्धे लगा तो यहाँके
रत्नवाले भीतोंने हल्का मचाकर उसे घेर लिया । अतः वह
बहने ही शीघ्रतापूर्वक निकलकर भागा तो सारी किन्तु केरल
देशकी खलनामोंके उन हलनांपर फिसलकर गिर पड़ा जिनमें
पद्मका गीष्ठा घेर लगा हुआ था, हर्षाजिये वह खँगड़ाकर

चल रहा है अर्थात् लहराता हुआ धीरे-धीरे चल रहा है ॥१५॥
वसन्तके पथिकः परदेसमें गए हुए अपने पतिके
वियोगमें दुखी और उन्हें स्मरण करती हुई नवेलियाँ परि-
अपने प्राण छोड़ती है तो इसका महापराप त्रिसे लगना है ?
इस बातपर परदेसमें गया हुआ मनुष्य सोच ही रहा था कि
इतनेमें बूचकी धोटीपरसे कोयलने बार-बार जैसे स्वरसे 'धु-
धुधु' कहकर कूक दिया ॥ १ ॥ जिस मार्गमें फूलोंके रसही
मदिरा पीकर मतवाला कोकिल कूक रहा था उसमें सामने
दिगाई पड़ते हुए भीरोंके मुण्डकी अशुभ सामककर गरी
उससे बचकर चला क्योंकि वह भीर्य-भीर्य बजनेवाली धारराज
धीमा थी जो वियोगियोंकी खियोंको मारनेका पाप करने
कारण कामदेवको चाण्डालका चिह्न बनाकर दे दी गई थी
॥ २ ॥ सदा सहज ही तिल उठनेवाले टेम्बुके फूलोंका रस
तो स्वच्छन्द होकर भीरे पी रहे हैं किन्तु उससे मतवाले हो
रहे हैं मनुष्य । इधर भ्रमके नये-नये बौरको पूमाता हो
कोयल है किन्तु हृदय फटा जा रहा है हमारा । बह गण
उल्टी बात हो रही है ? ॥ ३ ॥ पथिकोंने वनभूमिकी बातें
धोले देखा तो उन्हें यह बेसी दिगाई दी मानो सुन्दरी
कलियोंके रूपमें उसकी हडिबर्षी कित्तूर रही हों, तबने हुए
टेम्बुके बूच ही उसकी चित्तके अहार हों, मँदराते हुए भीतोंने
रूपमें उसपर पुष्पों मँदरा रहा हो तथा रक्षापकी बन्धि ही

पुँस्कोकिलैर्दृष्टा प्राणसमाचितेव पथिकैराराधनान्त-
स्थली ॥ ४ ॥ उन्मीलन्मधुगन्धलुधमधुपथ्याधृतचू-
ताङ्कुरश्रीडन्कोकिलकाकलीकलकलैर्द्रोणैर्कर्णैश्चराः ।
नोयन्ते पथिकैः कथं कथमपि ध्यानायधानक्षणात्-
प्राणसमासमागमरसोह्लासैरमी वासराः ॥ ५ ॥ एत-
स्मिन्दक्षिणाशानिलचलितकृतालीनमचामालापापञ्च-
क्षोभायधृतच्युतयहलरजोह्लादिदृष्टे घसन्ते । प्रमस्वेदा-
द्रंयाहृदयधलयलसर्पटोडसीमन्तिनीनां मन्दः कण्ठ-
ग्रहोऽपि ग्लपयति धृदयं किं पुनर्विषययोगः ॥ ६ ॥
वधिरितचतुरायाः प्रीतहारीतनादैर्यहलयकुलपुष्पै-
रन्व्युपपन्धयाऽस्ती । निधुयनविधिमोहान्मूककोका
वनध्रीः कथमित्य पथिकानां नैव वैकल्पहेतुः ॥ ७ ॥ रे
पान्थाः स्वयह्राणि गच्छन्त सुखं सेवाक्षणे मुच्यतां मानं
मानिनि मुञ्च वल्लभजनैः कोपायुयन्धेन किम् । आयातः
कुसुमाकरः क्षपयति प्राणान्वियोगातुरेचित्वैयं परमु-

ष्टनादपदक्षो वक्तव्य कामाजया ॥ ८ ॥ वक्रेण शिखि
पतता नित्यं रथिरारणेन दुर्यारः । मरुद्विप इय
पथिकः किञ्चुकुकुसुमाङ्गुष्ठेन भृतः ॥ ९ ॥ वसन्तमारम्भे
विरविरहक्षिणा सहचरी यदि प्राणान्मुञ्चेचदिह यव-
भागी भवति कः । वधो वा खेदो वा कुसुमविशिषो
धेति विमृशैस्तुहीति प्रत्यक्तं पिकनिरुमहाह्वारमष्ट-
णोत् ॥ १० ॥ समवलोक्य विलासवनस्थलां न पथिकैः
पथि कैः पतितं भुवि । मलयजद्रुमसौरभमेदुरोदरस-
मीरसमीरितवल्लरीम् ॥ ११ ॥ सत्याचेः कृपता वृतस्य
रथिरं दृष्टस्य लालास्युतिः किञ्चिन्नैतदिहास्ति तत्कथ-
मसौ पान्थस्तपस्वी सृतः । आ ज्ञातं मधुलम्पटैर्मुक-
रैरारब्धकोलाहले नूनं साहसिकेन चूतमुकुले दष्टिः
समारोपिता ॥ १२ ॥ सा तन्वीति घनस्तनीति विकसशी-
लान्जनेत्रेति च स्वैरं सञ्चरतीति वक्ति मधुरां वाचं
बिचित्रामपि । इत्थं विद्रुमपाटलाचरपुटां सीमन्तिनीं

अपनकी लकड़ियाँ हों किन्तु केवल नरकोकिलोंकी कृष्णे ही
वह पेसी जान पड़ रही थी कि उसमें प्राण बच रहे हों ॥ ४ ॥
जिन दिनोंमें उरती हुई मकरन्दकी गन्धके लोभी भौंरे मू-
कमकर आमकी बीर हिला रहे थे और उन बीरोंपर फुदकते हुए
कोकिलकी मनोहर कूक लोगोंके कानोंमें पड़कर ताप उत्पन्न कर
रही थी पेसे दिनोंको राहिल लोग अपनी प्रियाके समागमकामन
ही मनमें प्पान करके ही भगन होकर किसी-किसी प्रकार पिता
लेते थे ॥ ५ ॥ दक्षिण दिशाके वायुने हिलती हुई खतापर बैठे हुए
मनवाले भौंरोंके पंखोंसे गिराए हुए परागकी ढेरके कारण सुन्दर
दिलसाई देनेवाले और चित्त प्रसन्न करनेवाले वसन्तके समयमें
जय उन नरैलियोंके, चालिंगनकी शिथिलता भी मन दुखी
कर देती है जिनकी यादोंके कहन प्रेमके पसीनेके कारण ही
नीले पड़ जाते हैं, तब उनके वियोगमें मनकी दशाका तो
कहना ही क्या है ॥ ६ ॥ वनकी यह शोभा राधियोंको क्यों न
व्याकुल करे जिसने मद्रमाते जख्खी कञ्चुओंकी चिन्ताहटसे स्रव
दिसाएँ बहती कर दी हैं, मौलसिरीके ढेरसे फूलोंके परागसे
जिसने सबको अन्धा बना रखसा है तथा जिसमें बकने-चकवी
घुपनी साधकर सम्मोहकी खीलामें मस्त है ॥ ७ ॥
कोयलकी कूक पेसी जान पड़ती है मानो कामदेवकी आशासे
वह अपनी कूकके नगादमे लखकारकर बह रहा हो कि 'हे
परदेसियो ! देखो, यह वियोगियाँके प्राण हरनेवाला वसन्त था
पहुँचा है इसजिपे वृम लोग आनन्दसे अपने घर जाओ,

दूसरोंकी सेवाका काम छोड़ दो तथा हे रुठनेवालियो ! अपना
रुठना छोड़ दो । कहीं अपने विपतमसे भी रुठा जाता है ?'
॥ ८ ॥ जैसे सुदृढ़ हुए और रक्षसे लाल शंभुव लगनेपर भी
भतवाला हाथी रोके नहीं सकता वैसे ही रथिके समान
लाल, देव्रे और नित्य सिरपर ऋदते हुए पलासके फूलोंसे
विरा हुआ वियोगी भी रोका नहीं जा सका ॥ ९ ॥ वसन्तके
प्रारम्भमें ही बहुत दिनोंका विछोही नायक यह सोच ही रहा
था कि 'बहुत दिनोंके वियोगसे दुखी होकर मेरी प्यारी यदि प्राण
छोड़ दे तो इसकी हत्याका दोष वियोगकी अवस्थाको लगेगा या
कामकी या खेदको' कि कोयलने कूककर स्पष्ट रूपसे कह दिया
'तुमको, तुमको, तुमको' ॥ १० ॥ शींदाकी वनभूमिके जिस
मागमें चन्दनके वृक्षकी सुगन्धपे भरे हुए वायु मञ्जरियों
हिला रहे हैं उस वनभूमिको देखकर ऐसा कौन राही होगा
जो मूर्च्छित होकर धरतीपर गिर न पड़े ॥ ११ ॥ किसी भरे
हुए प्रवासीको देखकर कोई कह रहा है कि 'तोगसे मरनेवाला
मनुष्य हुबला दिसाई पड़ता है, चाबसे मरा हो तो शरीरमें रथिर
दिसाई देता है और सौंफ आदिके काटनेपर मरा हो तो मुँहसे
काग निकलता है पर इस प्रवासीमें तो पेसे कोई चिद्र ही
नहीं दिखाई पड़ रहे हैं तब यह बेचारा कैसे मर गया ?
अच्छा, अब समझमें आया, इसने साहस करके उन आमकी
बीतोंको भर सौंलों अवश्य देख लिया होगा, जिनपर मकरन्दके
लोनी भौंरे मँडराते हुए गुलगुना रहे हैं' ॥ १२ ॥ परदेसमें

ध्यायतो रोमाञ्चो रुदितं स्मितं प्रलपितं पान्थस्य
सञ्जायते ॥ १३ ॥

वैशिलालापः यः श्रोत्रामृतनिर्भरैकवसतिं निर्ध्या-
जमारूढवान् यसस्सञ्जीवनमन्त्रितां त्रिण्यनस्पृष्टस्य
चेतोभुवः । वीणायन्मसृणो ध्वनिश्चतसृणां पात्रं ध्रुती-
नामभूसोऽयं कोकिलकण्ठेषु विचरव्यापारितः पञ्चमः
॥ १ ॥ यश्चूताङ्कुरकन्दलीफलयलनात्कर्णामृतग्रामणी
च्छ्यायामात्रपरिग्रहोऽपि जगृहे पञ्चेषु जैत्रेपुताम् ।
ताम्यत्तालुचिटङ्कसङ्कटवटीसञ्चारितः पञ्चमः सोऽयं
कोकिलकामिनीगलयिलादामूलमुनीलति ॥ २ ॥

सहकार — किं द्वारि दैवहतिके सहकारकेण सम्ब-
धितेन विवृच्छक पप पापः । यस्मिन्मनागपि धिकास-
विकारभाजि घोरा भवन्ति मदनज्वरसन्निपाताः
॥१॥ नेयञ्चूतलता विराजति धनुर्लेंखा स्थितेयं पुरो
नासौ गुञ्जति भृङ्गपद्मतिरियं मोर्षं ट्पत्कारिणी । नैते

नूतनपल्लवाः स्मरभटस्यामी स्फुटं पत्रिणः शोणास्त-
त्क्षणमिषापान्थद्वयप्रस्यन्दिभिशोणितैः ॥ २ ॥ पुष्ये
पोरस्त्रकोशः शुक्पठनमठः स्वस्तिवासः पिकानामात्रः
साम्राज्यलक्ष्मीमनुभवतुतमामत्र कान्ते वसन्ते ।
पाकप्रतिप्रकर्षाक्षुण्णुक्षुण्ण यत्फलानां रसेन शीला-
भागेन जिन्ये मरकतकुतुपक्रोडजाम्बूनदाम्बु ॥ ३ ॥
मदमधुरविलासानदपभृङ्गाभिरामा ललितमुकुललीलो-
द्भिद्भ्रदन्ताङ्कुरश्रीः । मलयपवनवेल्लतपर्णकर्णाग्रभागा
लसति वत वसन्ते मञ्जरी कुञ्जरीव ॥ ४ ॥ सृष्टा धर्म
यदि ततः किमियं मृगाची सेयं वयं यदि ततः किमियं
वसन्तः । सोऽप्यस्तु नाम जगतः प्रतिपक्षभूतश्चूत-
द्रुमः किमिति निर्मित पप धात्रा ॥ ५ ॥

श्रीभगवद्गीता — अङ्गं चन्दनपाण्डु पल्लवमुकुलान्-
लताप्रोऽधरो धारायन्त्रजलाभिषेककल्पे धौताञ्जने
लोचने । अन्तः पुष्पसुगन्धिरार्द्रकवरी सर्वाङ्गलाम्बारं

बैठे हुए नायकने अपनी मूर्गेके समान लाल ओठोंवाली
पत्नीका जब इस प्रकार ध्यान किया कि 'वह तुम्हारी है,
यह-यह रानीवाली है, जिले हुए कमलके समान उसके नेत्र
हैं, यह धीरे-धीरे चलती है और यही मीठी तथा प्यारी वाणी
बोलती है, तब उसके शरीरमें रंगटे उठ खड़े हुए, वह रोने
लगा, हँसने लगा और प्रलाप करने लगा ॥ १३ ॥

फोपलपती धूक : कानोंमें अमृत-सी स्वरलहरी उपजावे-
वाले तथा शिवजीके तीसरे नेत्रसे जले हुए कामदेवको
जिहानेवाले मन्त्रोंके समान कोयलके कण्ठरूपी वंशीके
धेनुंसे गूँगर निकलता हुआ पञ्चम स्वर वीणाके स्वरके
समान मधुर तथा चारों वेदोंके तत्वसे भरकर गूँज रहा
है ॥ १ ॥ ग्रामका और खा खेनेसे जो पञ्चम स्वर कानोंके जिधे
सुन्दर अमृत हो गया है, जो बिना शरीरके ही कामदेवकी
विजय बना जा रहा है यह कोयलकी कामिनीके गलेके छिद्रसे
नोचे नाभितक उमड़कर उसके फड़कते हुए तालरूपी दृढ़के
सँकरे मार्गसे चल पड़ा है ॥ २ ॥

ग्रामका वृष्ट : धरती ग्रामाग्नि । द्वारपर ग्रामका वृष्ट
जगद्धर पालनेसे क्या लाभ है क्योंकि यह पापी भी तो विपका
ही बिरया है क्योंकि इसके घोषा-सा वीरते ही कामज्वरका
पागलपन और भी भयङ्कर होकर बढ़ जाता है ॥ १ ॥ यह
सामने ग्रामकी ढाख नहीं है, यह तो कामदेवका धनुष है,
जिसे वृष्ठाओंकी गुन्जार समक रही है यह उस धनुषकी

शरीरकी टहलर है और इसमें जिन्हें वृष्ठा लाल लाल कोंपलें
समके बैठी है वे भी वीर कामदेवके खुले पाण्डु हैं जो
परदेसियोंके हृदय फाड़कर उनसे बड़े हुए लहसे लयपथ होकर
लाल-लाल दिखाई दे रहे हैं ॥ २ ॥ वसन्तरूपी त्रिपतनके
आते ही कामदेवके बायाँका तरकस, तोतेकी पाटशाग,
धीर कोकिलोंका कल्याणकारी झुन्ना बना हुआ यह ग्राम
राजलक्ष्मी पावे जिसके पके हुए फलोंकी लाल-लाल रसरूपी
शोभा (सम्पत्ति) इस समय नीलमकी कुष्पीमें भरे हुए
सुन्दर जलकी शोभाको भी जीत रही है ॥३॥ देखो, वसन्तमें
मदकी गन्धसे मतवाले भीरोंके बैठे हुए सुपटोंसे सुन्दर
लगनेवाली, सुकीले बौरूपी दाँतोंवाली तथा मलयपर्वके
पवनसे हिलते हुए परतेरूपी कानोंवाली ग्रामकी मञ्जरी
हमिनीके समान दिखाई पड़ रही है ॥ ४ ॥ यदि महाने हम
लोगोंको बनाया तो ठीक था पर यह मृगनयनी नवेली बनातेकी
क्या आवश्यकता थी? यदि हमें धीर भवेदियोंको बना
भी दिया तो यह वसन्त क्यों गढ़ा? चलते वह भी सारी
पर हम पड़ते हैं कि सारे संसारका घेरी बना हुआ यह ग्रामका
वृष्ट क्यों महाने बना दिया ॥ ५ ॥

गर्मीके दिनोंका वर्णन : गर्मीमें सर्मीके समय पन्दर
जगानेसे उजले-उजले धूम्र, कोंपलोंके समान कोमल और
पानकी खालीसे रंगे हुए खाल चोठ, पुराहोके जलसे स्नान
करनेके कारण अग्नि धुली हुई लाल-खाल चालें, पृथ्वी

रामाणां रमणीयतां विदधति श्रीम्पापराहागमे ॥ १ ॥
 अङ्गारैः स्रक्षितेव भूविषयद्वि ज्वालाकारालं करेस्ति-
 र्माशोः किरतीव तीव्रमभितो धायुः कुकूलानलम् ।
 अश्रुम्भांसि नयम्पचानि सखितामाशा ज्वलन्तीव च
 श्रीम्पेऽस्मिन्नवधद्विदीपितमियाशेषं जगद्दत्ते ॥ २ ॥
 अत्यच्छं सितमंशुकं शुचि मधुस्वामोदमच्छं रजःकार्पूरं
 विधृतद्रचन्दनकुचदन्दा कुरङ्गीदृश । धारावेदम
 सपाटलं विचकिलस्त्रन्दाम चन्द्रत्विषो धातः सृष्टिरियं
 वृषेय तच न श्रीम्पोऽभविष्यदधि ॥ ३ ॥ अश्रुजसद्वि-
 सरहस्ययुजा भुजेन वक्त्रेण शारदसुधांशुसरोच्छेय ।
 पोयूपोपसुमगेन च भाषितेन त्वं वेत्प्रसोदसि मृगालि
 कुतो निदायः ॥ ४ ॥ अपि तरुधनान्यूप्यायन्ते तप
 त्यपि यामिनीं दहति सरसोधातोऽप्येव ज्वलन्ति जला-
 न्यपि । इति समधिकं श्रीम्पे भीम्पे न पुण्यवतां भयं
 मलयजरसैर्दिग्धं लन्ध्या चधूस्तनमण्डलम् ॥ ५ ॥

अपि शिशिरतरोपचारयोग्यं द्वितयमिदं युगपन्
 सद्यमेव । जरदितरविदीधितश्च फालो दयितजेनेन
 समं च विप्रयोगः ॥ ६ ॥ असहायातोद्धतरेणुमण्डला
 प्रचण्डसूर्यातपतापिता मद्रो । न शन्यते द्रष्टुमपि
 प्रवासिभिः प्रियापियोमानलदधमानसैः ॥ ७ ॥ अस्म-
 द्द्रिपूषामनिलाशयानां दृष्टो निगास यलु चन्दनेन ।
 इतीय रोपाद्यजनस्य चायुर्व्यशोपयचन्दनमङ्गसंस्थम्
 ॥ ८ ॥ अश्वघोषायः पिकानां मदनमरसमारम्भगुण्या-
 धिमासो निद्राया जन्मलस्रं किमपि मधुलिहां कोऽपि
 दुर्मिचकालः । विप्रियांजोत्सुकानां मलयजमर्दानं
 पान्यकान्ताकृतान्तः पालेयान्मूलमूलं समजनि
 समयः कश्चिदौत्पातिकोऽयम् ॥ ९ ॥ उच्यतेऽयमु-
 ङ्गमः शिखितसच्छायां समालम्बते वैरं साहजिक
 विहाय च शिखी मूलं तरोगेच्छति । याचन्ते च जल
 निकुञ्जभवने वृष्णातुराः सारिकास्तते वारिणि पद्-

सुगन्धसे भरी भीगी चोटी और सारे शरीरपर विपका हुआ
 मीना वक्ष छिंयोंको सुन्दर बनाए दे रहा है ॥ १ ॥ सारी
 पृथ्वी मानो जलते हुए अङ्गारोंसे भरी हुई है, आकाश भी
 सूर्यकी किरणोंसे मिलकर मानो आगकी लपटोंसे भर गया है,
 गरम-गरम वायु भी मानो चारों ओर भस्तीकी आग बिलेर
 रहे है, नदियोंके जलमें भी हाथ डालें तो नख पक उठते है
 और सारी दिशाएँ जल-सी रही हैं, यहाँतक कि इस गर्मीमें
 सारा संसार धयकती हुई आगसे चिरा जान पड़ता है ॥ २ ॥
 हे ब्रह्मानी ! यदि गर्मीकी श्रुतु न होती तो अत्यन्त स्वच्छ
 और उजवा वक्ष, बढ़िया बली हुई मदिश, सुगन्धिव त्च-य
 कपूरका चूरा, अपने स्तनोंपर बिसा हुआ चन्दन लगाए हुए
 मृगमयनी, कुहारोंका स्नानागार, गुलाबके फूलोंसे मिली हुई
 मदन वृद्धके फूलोंकी माला और चन्द्रमाकी निर्मल चाँदनी
 आदि धापकी यह सारी सृष्टि व्यर्थ हो जाती ॥ ३ ॥ हे मृग
 मयनी ! सुन्दर तथा कोमल कमलनालके समान बाँहोंसे,
 शरदूके चन्द्रमाके समान मुखकमलसे तथा अमृतके समान
 मधुर और मनोहर बोलोंसे यदि तुम सुकर रूप कर दो
 अर्थात् यदि तुम मेरा आलिङ्गन कर लो, अथवामृत पी लेने दो
 तथा प्यारी बोल बोल दो तो यह भीम मेरा क्या निगाड सकता
 है ॥ ४ ॥ गर्मीके दिनोंमें वनके वृक्षोंमें भी ताप भर जाता है,
 रात्रि भी अपने लगती है, तालाबोंका वायु भी जलने सा लगता
 है और जल भी खीलता-सा रहता है । किन्तु गर्मीके इन

मयंकर दिनोंमें भी उन पुण्यात्माओंको तनिक भी मय नहीं
 होता किन्हे नई नबेलोंके चन्दनसे जुते स्तन प्राप्त हैं ॥ ५ ॥
 जिन दो अवस्थाओंमें ठडी ठडी वस्तुओंका उपयोग आररयक है
 वे यदि एक साथ आ पड़ें तो असहा हो जाती हैं, इनमेंसे एक
 तो है गरमीका समय, जिसमें सूर्यकी किरणें अत्यन्त प्रचण्ड
 हो जाती हैं और दूसरा है अपने प्रियतमका मित्रोह ॥ ६ ॥
 परदेसमें गए हुए जिन प्रेमियोंका हृदय अपनी प्रेमिकाओंके
 मित्रोहकी तपनसे गुलस गया है, वे जब श्राँधीके मोंकोंसे ठगी
 हुई भूलके वयवदरोंवाली शीर कडी पूरकी लपटोंसे तपी हुई
 परतोंकी ओर देखते हैं तो उनसे देखा नहीं जाता ॥ ७ ॥
 पट्टेके वायुने गर्मीके दिनोंमें शरीरमें लगा हुआ चन्दन मानो
 इस श्रोषसे सुखा डाला कि यह चन्दन हमारे वैरी वायु पाने-
 वाले सोंपोंको रहनेके लिये स्थान देता है ॥ ८ ॥ सर्दोंकी जडसे
 उदा देनेवाला और उथल पुथल भवानेवाला यह अनोखा ही
 समय आ गया है जिसमें कोयलकी चूक बन्द हो गई, जो
 यज्ञ करनेवालोंके लिये यलमासके समान है, नींदका जन्म
 खान है, मीरोंके लिये शकान है, थाप्राके लिये चलनेवाले
 दक्षिण चापुके लिये मद्रा है और विरदिशी छिंयोंके लिये
 साचाव धम है ॥ ९ ॥ गर्मीसे सताया हुआ सोंप मोरके पंखोंके
 तले धाया ले रहा है, अपना स्वामाविक वैर जोड़कर मोर भी
 पंकेके तले जा बैठा है, प्यासी मैना माधियोंमें बैठकर पानोंके
 लिये दृष्टपटा रही है और तपे हुए जलमें कमलोंको अकेला

जानि मधुपास्त्यपत्वा श्रयन्ते लताः ॥ १० ॥ उदधुय धूलीर्धवला रसातलाद्वात्या लगन्ती गगने व्यवर्तत ।
 फुत्कारयन्त्येव भुवोदधुता भुजा निदाघतापाकुलया
 तपात्ये ॥ ११ ॥ उष्णालुः शिशिरे निषीदति तरोर्भू-
 लालवाले शिषी निमिषोपरिकर्णिकारकुसुमान्वाशोरेते
 पटपदाः । तप्तं घारि विहाय तीरनलिनीं कारण्डवः
 सेवते क्रीडावेश्मनिवेशिपञ्चरशुकः क्लान्तो जलं याचते
 ॥ १२ ॥ एष सूर्योऽसन्ततो मृगः कुतस्माश्रितः ।
 साधुर्भाग्यपरिप्रीणो नीचं प्राप्येव सीदति ॥ १३ ॥
 कथमिव तव सम्मतिर्भविषी सममृतुभिर्मुनिनावधी-
 रितस्य । इति धिरचितमह्निकाधिकासः स्मयत इव
 स्म मधुं निदाघकालः ॥ १४ ॥ कमलवचनचिताम्बुः
 पाटलाभोदरस्यः सुषसलिलनिषेकः सेव्यचन्द्रांशुहारः ।
 यजतु तव निदाघः कामिनीभिः समेतो निशि सुललि-
 तगतिं हर्ष्यष्टे सुपेन ॥ १५ ॥ कानि स्थानानि दग्धान-
 न्यतिशयगदनाः सन्ति के वा प्रदेशाः किं वा शेषं

चनस्य स्थितमिति पचनासङ्घविस्पष्टतेजाः । चर-
 ज्वालावलीढस्फुटिततनुलताग्रन्थिमुकाट्टहासो दावा-
 ग्निः शुष्कवृक्षे शिखरिणि गहनेऽधिष्ठितः पर्य
 तीव ॥ १६ ॥ काश्मर्याः कृतमालमुद्रतदलं फोयष्टिक्रौ-
 फते तीराश्मन्तकशिन्धुचिम्बितमुखा धावन्यप.
 पृष्िकाः । दात्युहैस्तिनिशस्य फोटरवति स्फुभे
 निलीय स्थितं वीरुनीडकपोतकूजितमनुकन्दन्त्यध-
 कुबुटाः ॥ १७ ॥ कापि कापि दिगन्ते कृशघवसः
 कोऽपि कोऽपि घनलेशः । तिग्मद्युतिदग्धानां ताराणां
 भस्मघद्गाति ॥ १८ ॥ गजगवयमृगेन्द्रा घडिसन्तसेह
 सुहृद् इव समेता द्रन्धभावं विहाय । हुतवहपरिपेदा-
 दायु निर्गत्य कक्षद्रिपुलपुलिनदेशां निम्नगां संवि
 शन्ति ॥ १९ ॥ छाया विद्योगिवनितेव गता कृशन्त्यं
 तप्तं पयः पिशुनमानसघ्नभूव । फेनाधुना दत मनाग-
 पलोकनीयः फुद्धोत्तमर्णसुखमयजलवत्पद्मः ॥२०॥ जहा
 दाः शप्पाणां धिसकिसल्यैः कैलिवलयाः शिरीषेरुत्सा

छोड़कर भीरे भी लताओंमें जा छिपे हैं ॥ १० ॥ पृथ्वीसे
 उदकर वायुके सहारे आकाशतक पहुँची हुई धूल ऐसी जान
 पड़ती है मानो गर्मोंके तापकी अधिकतासे पृथ्वी अपने हाथ
 (उठार) ढौंक रही हो ॥ ११ ॥ गर्मोंसे तपा हुआ मोर
 टपडे घायलमें जा बैठा है, भीरे कबीरके फूलमें घुसकर सो रहे
 हैं, कारण्डव नामका जलवधी तपे हुए जलको छोड़कर तीरपर
 रिखी हुई कमलिनीके नीचे छाया ले रहा है और घरमें
 रहते हुए पिअरमें बैठा हुआ सोता उदास होकर पानी माँग
 रहा है ॥ १२ ॥ सूर्यकी किरणोंसे तपा हुआ हरिया यिना
 टाल-पातवाले पेड़के नीचे रक्ता हुआ उसी प्रकार लुखी हो
 रहा है जैसे कोई भावहीन सज्जन किसी नीचके पास जाकर
 दुग्री हो रहा हो ॥ १३ ॥ गर्मोंके दिनोंमें त्रिले हुए बेलके
 फूल ऐसे जान पड़ते हैं मानो भीष्म ऋतु उन फूलोंके महाने
 पसन्दगी ईसी उदा रहा हो कि उन्हें तो मुनिपोंने अपमानित
 कर रक्खा है, तुम क्या दूसरी ऋतुओंकी दरबारी बनोगे !
 ॥ १४ ॥ जिस गर्मोंकी ऋतुमें कमलोंसे भरे हुए घौर त्रिले
 हुए गुलाबकी सन्धमें बसे हुए जलमें स्नान करना बहुत
 मुशकला है और जिस दिनों षण्द्रमाधी चाँदनी और मोतीके
 डार बहुत हुए देते हैं, यह ऋतु चापकी ऐसी बाने कि रातकी
 चार अपने घाटी सुनकर खेते हैं, सुन्दरिचा चापको धरे बैठी
 हैं और मनोहर सहीन दिवा हुआ हो ॥ १५ ॥ प्रचय

वायुके चलनेसे जो जंगलकी छाग श्रयन्त तीव हो गई हैं
 और जो अपनी भयङ्कर ज्वालाओंसे पतली-पतली लताओंकी
 गोंडे चटना-चटकाकर षटहास कर रही है यह सूखे पैसाँजे
 ऊँचे जङ्गलमें बैठकर मानो यह देख रही है कि इस जङ्गलका
 कितना भाग जल गया है, कितना घना भाग बच गया है और
 अभी घनका कितना भाग जलाना शेष है ॥ १६ ॥ टिटिरी भी
 रम्भरीके घने-घने उगे हुए पत्तोंमें घुसी जा रही है, मास-
 छिरी विद्या जलके तटपर पथरफोटके बीचमें निकले हुए
 कद्दुपर अपनी चौंफ चला रही है, परीहे भी पीढ़की मोटी-मोटी
 मारपाओंके खोललोंमें जा छिपे हैं और मुगं लताओंके दूगोंके
 नीचे बैठकर कद्दुपरके समान गुटरगुं कर रहे हैं ॥ १७ ॥ हुए
 आकारमें कहीं-कहीं बादलोंके छोटे-छोटे उजले टुकड़े ऐसे
 घमकते हैं मानो सूर्यसे जलाए हुए तारोंकी रात हो ॥ १८ ॥
 शागसे घपराए हुए घौर कुलसे हुए हाथी, बिल और विर,
 धाज मित्र बनकर साथ-साथ हूट्टे होकर पासके जंगलमें
 कूटपट निकल आए हैं और नदीके चोड़े घौर बहुत तीव
 थाकर विधाम कर रहे हैं ॥ १९ ॥ विद्योगीकी कीके समान
 धाया दुबकी हो गई है, माँचोंके हृदयके समान पानी लट
 गया है और ऋय देवोयले क्रोधी महाजनके गुटरके समान सूर्य-
 मण्डल भी हतना तेजस्वी हो गया है कि उससे कोई बल नहीं
 मिला सकता ॥ २० ॥ कमलकी नाख और कोंपलोंके साथ

विचकिलमयी ह्याररचना । शुचवेणात्तीषां मलयजर-
साद्रांश्च तनवो विना तन्त्रं मन्त्रं रतिरमणमृत्युञ्जय-
विधिः ॥ २१ ॥ ज्वलति पवनवृद्धः पर्वतानां दरीषु
स्फुटति पट्टनिनादः शुष्कंश्शस्थलीषु । प्रसरति वृण-
मध्ये लन्धवृद्धिः क्षणेन ग्लपयति मृगवर्गं प्रान्तलग्नो
दवाग्निः ॥ २२ ॥ ततः प्राधिरभृङ्गीपम्स्तपन्यसुमतीमि-
माम् । सपिण्डः कालकूटस्य सप्तजिह्वस्य सोदरः
॥ २३ ॥ तदात्यन्नातानां दरदलितमल्लीमुकुलिताः
ऋजो विश्राणानां मलयजरसाद्रांर्द्रघपुपाम् । निदाया-
ग्निहोपग्लपितमभिसायं मृगदृशां परिष्कञ्जीनङ्गं पुन-
रपि शनैरङ्कुरयति ॥ २४ ॥ तपनं विश्रदाकाशो जग-
त्काथविष्टशूलम् । स्फुरल्ललाटनयनं ह्रं नाटयति
स्फुटम् ॥ २५ ॥ तप्ता मही विरहिणामिव चिचवृत्ति-
स्तृष्णाध्वगेपु कृपणेष्विव वृद्धिमेति । सूर्यः करैर्दहति
दुर्वचनैः खलो नु द्याया सतीव न विमुञ्चति पादमूलम्

॥ २६ ॥ तरुणतरपितेजः पुञ्जसन्तसदेहः पतति जट-
वङ्गः पत्वले पङ्कलेदः । हरिरपि सलिलार्थो शङ्कया
तस्य नीरं न पिबति न च याति क्लिश्यति प्राप्य तीरम्
॥ २७ ॥ तापायसन्नशयितं सरणां तरज्जुमुल्लङ्घय
धावति मृगे मृगवृष्णिकायै । तर्कोपितो मुखमुदञ्चि-
तमेप धर्मसोपात्रसन्नयनमप्य तथैव शेते ॥ २८ ॥ वृषा
महत्या हतविक्रमोचमः श्वसन्मुहुर्दूरविदारिताननः ।
न ह्यन्यदूरेऽपि गजान्मृगेश्वरो धिलोलजिह्वस्वलि-
ताग्रकेसरः ॥ २९ ॥ दुःप्रेक्ष्यमुच्चैर्गनं निदाय
कोपाकुलस्येव मुखं नृपस्य । हरेः शयानस्य मृषा-
लवृद्धया कर्षन्ति पुच्छं करिणः करेण ॥ ३० ॥
देशे देशे जडिमकुरङ्गास्तेजोमल्लैर्दिनकरमिल्ले । धाघं
धाघं प्रहरति राक्षं धारगेहं शरणमवापुः ॥ ३१ ॥
निजां कायच्छायां श्रयति महिषः कर्ममधिया च्युतं
गुञ्जापुञ्जं रुधिरमिति काकः कलयति । समुत्सर्पंसर्पः

हरी घास मिलाकर पीसे हुए जलसे भोगे कढ़न, सिरसके
फूलोंसे बने हुए चूडामणि, मदनके फूलोंसे बने हार और
चन्दनके रससे युता हुआ मृगनयनीका शरीर, ये सभी वस्तुएँ
विना तन्त्र-मन्त्रके ही गरमीके दिनोंमें कामदेवको जिलानेके
लिये मृत्युञ्जयके जपका काम करने लगीं ॥ २१ ॥ वनके
बाड़ेसे उठी हुई और वायुसे और भी भडकी हुई अग्निकी
लपट, पहाड़की घाटियोंमें फैलती हुई ससभी पशुओंको जलाए
ढाल रही है, सृष्टे पाँसोंमें चटचटा रही है और चण भरमें
भाग बढ़कर घास पचूद ले रही है ॥ २२ ॥ तदनन्तर काल-
कूट नामके भयङ्कर विप और अग्निके संगे भाई अरयन्त भयङ्कर
सूर्य पृथ्वीको तपते हुए उदय हुए ॥ २३ ॥ गरमीके दिनोंमें
स्नान करके कुण्ड-कुण्ड गिरे हुए बेंजेकी कलियोंकी माला पहने
हुए और चन्दनके रससे भोगे हुए शरीरोंवाली नवेलियोंके
आदिहिनसे प्रीप्सरुपी आगमें जले हुए कामदेवमें फिर धीरे-
धीरे अङ्कुर निकल रहे हैं ॥ २४ ॥ अपने तापसे सारे संसारका
काड़ा बनाकर बेचैन हुए सूर्यको धारण करता हुआ आकाश
प्रेमा शोभित हो रहा है मानो प्रत्येक ही भस्तरुपर धीसरा
मेघ धारण किए शिवजी हों ॥ २५ ॥ गरमीके दिनोंमें
विशोंगियोंके हृदयोंके समान धरती तपी जा रही है, कञ्चुकोंके
खोमके समान परदेसियोंका प्रेम बढ़ता जा रहा है, सूर्य भी
रूपनी किरणोंसे उसी प्रकार सवकी जला रहा है जैसे नीच
जोग अपने गोटो पचनोंसे जलता करता है और धाया भी

पतिमता स्त्रीके समान पेड़की जड़ नहीं छोड़ रही है ॥ २६ ॥
गर्मीके दिनोंमें सूर्यकी प्रचण्ड गर्मांसि तपे हुए शरीरवाला
एक बूढ़ा गैंडा कीचड़ चाटता हुआ तालाबमें घुस रहा है,
एक पोड़ा भी वहाँ पानी पीनेके लिये पहुँचकर उस गैंडेके भयसे
डरा हुआ न तो पानी ही पी रहा है न वहाँसे हट ही रहा
है ॥ २७ ॥ मार्गमें ही सोए हुए चीतेको लौघर मृग गर्मांसि
प्याकुल होकर चालूको भ्रमसे जल समझकर दौड़ा जा रहा
था, इससे चीतेको क्रोध तो आया और उसने मुँह भी उठाया
किन्तु कहीं धूपके ढरसे उसने फिर अपना मुँह लटका लिया
और जहाँका तहाँ सो गया ॥ २८ ॥ देखो ! हाथियोंके पास
होनेपर भी यह सिंह उन्हें मार नहीं रहा है क्योंकि गर्मां
हतनी यद्द रही है कि तीस प्यासके मारे इसका सब साहस
उपदा पड़ गया है, अपना पूरा मुँह खोलकर यह बार-बार हॉक
रहा है, अपनी जीभसे अपने थोट चाटता जा रहा है और
हॉकनेसे इसके कन्धेके बाल हिलते जा रहे हैं ॥ २९ ॥ गर्मीके
दिनोंमें श्रोणी राजाके सुलके समान तपे हुए आकाशकी धोर
कीई आँख वहाँ उठा सकता और सब जीव हतने निस्तेज हो
गए हैं कि सिंहकी पँडुको कमलकी नाल समझकर हाथी उसे
अपनी सूँघसे रींच रहा है ॥ ३० ॥ गरमीके दिनोंमें जब सूर्यहरी
नील दौड़-दौड़कर अपने किरणरूपी बायाँसे चारों ओर प्रहार
करने लगा उस समय टपटकरूपी हरियोंको राजाओंके
कुहारोंके धरोंमें घुसनेपर ही शरण भिजी ॥ ३१ ॥ गर्मीके

सुपिरधिवर्षं तापचिचशः सचीत्काराधृतं प्रविशति फरं
कुञ्जरपतेः ॥ ३२ ॥ नितम्बधिम्यैः सदुकूलमेखलैः स्तनैः
सहाराभरसैः सचन्दनैः । शिरोरुहैः स्नानकपायवा-
सितैः स्त्रियो निदाघं शमयन्ति कामिनाम् ॥ ३३ ॥
नितान्तलात्तारसरागरञ्जितैर्नितम्बिनीनां चरसैः सन्-
पुरैः । पदे पदे हंससुतानुकारिभिर्जानस्य चित्तं क्रियते
समन्मथम् ॥ ३४ ॥ निदधिरे द्यितोरसि तत्क्षणक्षप-
नवारितुपासृत्तस्तना । सरसचन्दनरेणुरजुत्तणं विच-
फरे च फरेण यरोरुभिः ॥ ३५ ॥ निशाः शशाङ्कक्षतनी-
लराजयः कचिद्विचित्रं जलयन्त्रमन्दिरम् । मणिप्र-
काराः सरसञ्च चन्दनं शुचौ प्रिये यान्ति जनस्य
सेव्यताम् ॥ ३६ ॥ पच्यन्ते स्थलचारिणः क्षितिरजस्य-
ङ्गारभूयङ्कते कथ्यन्ते जलजन्तवः प्रतिनदं तापोल्यणै-
र्यारिभिः । भज्यन्ते खचराः खरातपशिखापुञ्जे तदेभि-
दिनैर्मास्पाकः क्रियते दिनेऽथ नियमाद्वैयस्वताय ध्रुवम्

॥ ३७ ॥ पट्टतरदवदाहोच्छ्रुफसस्यप्ररोहाः पक्षपवन
वेगोत्तितसंशुष्कपर्णाः । दिनकरपरितापहीणतोयाः
समन्ताद्विदधति भयमुच्चैर्वीक्ष्यमाणो वनान्ताः ॥ ३८ ॥
पञ्चक्रायासु हंसा मुकुलितनयना दीर्घिकापत्रिनीनां
सौधान्यत्यर्थतापाद्वलभिपरिचयद्वेषिपारसवतानि ।
विन्दून्तेपिपिपासुः परिसरति शिष्यो भ्रान्तिप्रदावि-
यन्तं सर्वैरुक्षैः समग्रस्तुमिव नृपगुणैर्दीप्यते सप्तसति-
॥ ३९ ॥ पयोधराश्चन्दनपङ्कचर्चितास्तुपासगोरापिंहहा-
रशेखराः । नितम्बदेशशश्च सहैममेखलाः प्रकुर्वते करर-
मनो न सोत्सुकम् ॥ ४० ॥ पान्थानां प्रमदा इव प्रति-
दिनं दैन्यं हृदिन्यो ययुर्दृश्यन्ते स्म दिग्मन्वरा इव धने
पत्रोज्ज्वलाः पादपाः । निःश्वासा इव दुःसहा विप-
हिष्णां वाता वज्रुः सर्वतः पायं पायमिव प्रियाधरत्तं
पाथः पपुः प्राणिनः ॥ ४१ ॥ पाश्चात्यैर्मन्मत्तैर्लि-
जगतान्मुमूलयन्नाद्रूतां दायागिन्ज्वलितरपारगहनां

दिनमें मैंसा अपनी परछाईको ही बीच समझकर उसमें
खोटा जा रहा है, पक्षी हुई छुँपचीको बीया रखकी बूँद
समझ रहा है, तथा गर्माँसे दुखी साँप हाथीकी सूँझको ही
बिल समझकर उसमें घुस रहा है और हाथी उठे देखकर
धिगायते हुए सूँद फटकार रहा है ॥ ३२ ॥ इन दिनों
सब प्रेमिकाएँ अपने गर्माँसे सताए हुए प्रेमियोंकी तपन
मिटानेके लिये उन्हें अपने उन नितम्बोंपर लिटाती हैं जिनपर
रेशमी पक्ष और चरघनी पक्षी होती है, अपने उन चन्दन
सुते हुए टण्डे स्तनोंसे लिपटाती हैं जिनपर हार और ग्रन्थ
गहने पड़े होते हैं और अपने उन जूँदोंकी गन्ध सुँघाती हैं
और उन्होंने स्नानके समय सुगन्धित धुलेलोंमें बसा लिए थे
॥ ३३ ॥ आजकल जियोंके उन महावरसे रँगै पैरोंको देखकर
खोगोंका भी मचल उठता है जिनमें हंसोंके समान रनकुन
करनेवाले विदुष पजा करते हैं ॥ ३४ ॥ गर्माँसे दिनोंमें जियोंने
ताकाल स्नान करके जलकी सूँदोंसे भरे हुए स्नान अपने
पतियोंके चपरधरपर लगा दिए और जिसे हुए चन्दनका घोवा
खेर अपने हाथसे दूधर-उधर मज दिया ॥ ३५ ॥ देखो
प्यारी ! आजकल तो खोग यह चाहते हैं कि चारों ओर सिले
हुए चन्द्रमाकी चाँदनी बिटकी हुई हो, रा-बिरहके प्रध्वारोंके
सखे हम खोग धँडे हुए हों, दूधर-उधर बह-बहके रन बिधारे
पड़े हों और सुगन्धित चन्दन चारों ओर बिटका हुआ हो
॥ ३६ ॥ धरतीकी पृथ जभ चर्रातोंके समान धपकने लगती

है तो उसमें धरतीपर रहनेवाले सब प्राणी जलने (पत्रे)
लगते हैं, जलाशयोंके खोलते हुए पानीमें जलघोंका काम
यने लगता है तथा आगकी लपटोंके समान कड़ी धूपमें
आकाशचारी भुनने लगते हैं । यह सब देखकर ऐसा जान
पड़ता है कि सूर्यके लिये प्रतिदिन ये नियमसे मांसका
भोजन तैयार किया करते हैं ॥ ३७ ॥ धरजकल बन तो और भी
धरावने लगने लगे हैं क्योंकि वहाँ जलकी आगकी बड़ी बड़ी
लपटोंसे सब वृक्षोंको दहनियों कुलस गई हैं, चन्धकमें पड़का
सूखे हुए पत्ते ऊपर उड़े जा रहे हैं और सूर्यकी गर्माँसे चारों
धोरका जल सूख गया है ॥ ३८ ॥ हे राजन् ! गर्माँकी दुआहोंने
हम शीर्ष सूँदकर यावद्दिके कमलोंके पत्तोंकी छायामें आरं
द है, यही हुई गर्माँके मारे कथूर घरका ऊपरी भाग धोए
नीचेके तखलोंमें धा धँडे हैं, कुहाराँसे निकलती हुई सूँद पोंके
लिये मोर धूमता-धामता कुहारेके पास जा रहा है और शी
पाप सभी राजगुणोंसे युक्त हैं धीसे ही यह सूर्य भी बनती
पूरी किरणोंसे भरकर चमक रहा है ॥ ३९ ॥ इन दिनों तिनके
समान उजले और चमूटे हासले सने हुए जियोंके चन्दन सुँ
स्नान देकर और सुनहरी चरघनीसे रँगें हुए निवग सेगार
भला किसका मन नहीं जलच उठेगा ॥ ४० ॥ गर्माँके तिनमें
परदेसियोंकी स्त्रियोंके समान बायबी भी दिनदिन मृतनी ज
रही हैं, पनके टूट नत्रसे दिलाई पड़ते हैं, विभोविभोभी रन
सँसके समान पापु चारों ओर बह रहे हैं और बन

न्यन्यान्वन्विवस्मताम् । चात्याभिस्त्रुणपत्रधूलिनिकरा-
 न्धुन्वन्विहायःस्थले प्रीष्मः शुष्यदपुच्छपत्वयसलुठ-
 न्मत्स्यः समभ्यागतः ॥ ४२ ॥ प्रचण्डसूर्यः स्पृहणोप-
 चन्द्रमाः सदावगाहत्तचारिसञ्चयः । दिनान्तर-
 म्योऽभ्युपशान्तमन्मथो निदाघकालोऽयमुपागतः मिये
 ॥ ४३ ॥ प्रतिगतमर्थिजनानां चिच्छिद्यशां समूहमव-
 लोक्ष्य । स्फुटितमपयसस्तापादिव हृदयमलं तडागस्य
 ॥ ४४ ॥ प्रायश्चरित्वा वसुधामशेषो ह्यायासु विश्रम्य
 ततस्तरुणाम् । प्रौढिं गते सम्प्रति तिग्ममानो शैत्यं शनै
 रन्तरपामयासीत् ॥ ४५ ॥ चलवदपि चलं मिथोविरोधि
 प्रभवति नैव विपक्षनिर्जयाय । भुवनपरिभयो न यत्त-
 दानो तस्मृत्तुगणः क्षणमुन्मनीचकार ॥ ४६ ॥ बहुतर
 इव जातः शात्मलीनां यनेषु स्फुरति फनफगौरः फोट-
 रेणु द्वुमाणाम् । परिणतदलश्याघ्रातुत्पतन् प्रांशुवृक्षा-
 न्ध्रमति पवनधूतः सर्वतोऽग्निर्नान्ते ॥ ४७ ॥ धाले

मालेयमुच्चैर्भवति गगनन्यापिनो नीरदानां किं त्वं
 पद्मान्तगान्तेर्मलिनयसि मुधा वक्रमश्रुमवाहैः । एषा
 प्रोद्बृचमत्तद्विपकटफणक्षुण्णचिन्व्योपलानां दावाग्नेः
 सप्रवृद्धा मलिनयति दिशां मण्डलं धूमलेपा ॥ ४८ ॥
 मानोः पादैर्देहनपर्यवेदहमानान्तराणामुत्क्रामन्तः किल
 विटपिनां प्राणपिण्डा इवामी । गाढोदन्याकुलितम-
 नसो भिन्नचञ्चुपुटान्ताः कोकूयन्ते विहगशिशवः
 कोटराणां मुखेषु ॥ ४९ ॥ भ्रमन्त्यः परितयद्वायाः
 पततां भ्रास्यतां दिवि । विभ्रान्ति धर्मतसोर्वाँस्पश्यंजा-
 तव्यथा इव ॥ ५० ॥ माकन्दद्रुममखरीपुषसतिस्तत्प-
 ल्लवैर्वर्तनं सा नो मञ्जुलता घच.सु मधुना सव सद्
 प्रस्थितम् । पतच्छिप्रतु दुःध्रवं मृदुहृदां निःस्वामिन
 स्तत्सखे प्रोन्मीलतकरुणो द्विजोऽयमिति हि त्वं प्रीष्म
 मुष्णाहि नः ॥ ५१ ॥ मुखकृतविस्रण्णैश्चपडमार्तएड-
 तापात्सितजलजतलस्यो राजते राजहस्तः । रजतघट

नवेलियाँके अचरके समान बार-बार जल पी रहे हैं ॥ ४१ ॥
 वह प्रीष्म ऋतु आ पहुँची है जो पच्छिमके मरत्यलसे आती
 हुई लूसे मिथुवनकी नमी सुजा रही है, अग्निकी जपटोंसे
 बढ़े बढ़े जलकोंको जलाकर राख कर रही है, बवएदर उठाकर
 घास-पत्तां और धूलको आकाशमें उड़ा रही है और झिझले
 ताजायोंमें पदी मधुलियाँ जिसके कारण तदुफड़ः रही हैं
 ॥ ४२ ॥ हे श्रिये ! को, यह गरमीका ऐसा समय था गया
 जिसमें सूर्य तपने लगा है, चन्द्रमा सुहावना लगने लगा है,
 पानी देग्कर यह हृद्यता होने लगी है कि यस सदा हसीमें पदा
 रहा जाय, सन्ध्या बदी सुहावनी होने लगी है और कामका
 प्रभाव भी बहुत खीला पद गया है ॥ ४३ ॥ गरमीमें खूले
 हुए ताजायोंका फटा हुआ पेठा ऐसा लगता है मानो यह
 देवकर दु पसे ठसका हृदय फट गया हो कि 'पानीकी आशासे
 जो प्यासे खोग मेरे पास आए उनकी आशापर पानी फिर
 गया' ॥ ४४ ॥ हेमन्तमें जिस ठण्डकने सारी घरतीपर
 चकर लगाया था, जिसने वसन्तमें घृषोंकी छायामें विश्राम
 किया था वही ठण्डक अब गर्मीके दिनोंमें जब सूर्य बहुत
 तपने लगा तो धीरे-धीरे पानीमें जा घुसी ॥ ४५ ॥ जिस
 सेनामें थापसमें घूट होती है वह अत्यन्त शक्तिशाली होते
 हुए भी शत्रुको नहीं जीत सकती क्योंकि गर्मीके दिनोंमें जो
 सय ऋतुएँ थापसमें लड़ रही थीं वे प्रीष्म ऋतुका बालतक
 न बर्बाद कर सकीं ॥ ४६ ॥ पवनसे भटकाई हुई और

सेमरके घृषोंके कुजोंमें फैली हुई आग घृषके खोखलोंमें
 अपना सुगहला पीला प्रकाश चमकाती हुई और उन ऊँचे
 घृषोंपर उड़लती हुई वनमें चारों ओर घूम रही है जिनकी
 बालियाँक पत्ते बहुत गर्मा पदनेसे एक पककर भड़त जा रहे
 हैं ॥ ४७ ॥ हे ओकी-भाती ! जिसे तुम आकाशमें फैला हुई
 धादुलाका घटा समझ रहा हा वह घटा नहा है इसलिये
 अपनी बरीनियाँसे बहते हुए आँसुओंसे तुम व्यर्थ क्यों अपना
 सुख मलिन कर रही हा, यह ता जहलकी अत्यन्त प्रचण्ड
 आगके घुएँका अम्बार है जा वन दिशाओंका काळा करता
 जा रहा है जिनमें अत्यन्त मतवाले हाथियोंके सिर खुजलानेसे
 विन्ध्याचलकी चट्टानें चूर हुई पट्टा हैं ॥ ४८ ॥ गर्मीके दिनोंमें
 आगके समान तपती हुई सूर्यकी किरपास म्रिय पेड़ाका
 भीतरी भाग भी कुलस गया था उनक माना प्राण निकल-ने
 रहे हैं और चिदियाँके बच्चे अत्यन्त प्यासे घबराकर अपना
 चोंच खोलकर खाललोंके मुँहपर बैठे चूँ चूँ कर रहे हैं ॥ ४९ ॥
 घरतीपर बैठते तथा फिर उड़त हुए पथियोंकी घूमती हुई
 छायाएँ देवकर जान पड़ता है माना घामसे तथा धृष्वीको
 घूते ही गर्मीके मारे हो वे पुन. उड़ जाते हैं ॥ ५० ॥
 काँकिल कह रही है - 'ग्रामके घृषोंकी मजतियाँपर बसेरा,
 ग्रामके पत्तोंके साथ उठना-बैठना और हमारी बोलीकी
 मिठास ये सारी बातें वसन्तके साथ-साथ चली गईं । घसु,
 दयालुओंके लिये भसहनीय यह बात जाने दो किन्तु हे मित्र

द्वयार्थं विदुमवावद्धधाराविवरविगलदम्बुः फम्बुकण्डि
प्रतीहि ॥ ५२ ॥ मूलं बालकवीर्यां सुरभयो जातीत-
रूणां त्वचः सारश्चन्दनशास्त्रिनां किसलयान्याद्रार्णय-
शोकस्य च । शैरीपी कुसुमोन्नतिः परिणमन्मोचश्च
सोऽयं गयो श्रोमेणोष्महः पुरा किल वदे दग्धाय
पञ्चपवे ॥ ५३ ॥ मृगाः प्रचाण्डातपतापिता भृशं वृषा
महत्या परिशुष्कतालचः । घनान्तरे तोयमिति प्रधा-
चिता निरीक्ष्य भिन्नाञ्जनसन्निभं नमः ॥ ५४ ॥ रज-
निचरम्यामेव्यादिशन्ती रतेच्छां किमपि कठिनयन्ती
नालिकेरीफलाम्भः । अपि परिणमार्णयनी राजरम्भा-
फलानां दिनपरिणतिभोग्या वर्तते श्रोमिलचमीः ॥ ५५ ॥
रवितुरङ्गतनू रहतुल्यतां दधति यत्र शिरीषरजो रुचः ।
उपययौ विदधन्मवमङ्गिकाः शुचिरसौ चिरसौरभ-
सम्पदः ॥ ५६ ॥ रविप्रमोङ्गिन्नशिरोमणिप्रभो विलो-
लजिह्वाद्रयलीढमादतः । विपाद्भिर्स्यातपतापितः

फणी न हन्ति मण्डककुलं वृषाकुलः ॥ ५७ ॥ रवेर्म्य-
शैरभितापितो भृशं विदुह्यमानः पथि ततपांसुभिः ।
श्रवाक्फणो जिह्वगतिः श्वसन्मुहुः फणी मयूरस्य तले
निपोदति ॥ ५८ ॥ रवेस्समस्तक्षितिमध्यां रसं निपोय
पीनत्वमतीव विभ्रतः । भरेण वाजिप्विव मन्दगामिपु
क्रमेण वैश्वं दिवसाः प्रपेदिरे ॥ ५९ ॥ रिक्तेषु वारिक-
थया विपिनोदरेषु मध्याह्नजृम्भितमहातपतापताः ।
स्कन्धान्तरोत्थितदवाग्निशिखाच्छलेन जिदां प्रसार्य
तरवो जलमर्थयन्ते ॥ ६० ॥ रेजे पुष्यश्रोमसाय
मङ्गी मङ्गी सद्यः संश्रयन्ते स्म मृगाः । भृष्टैस्तवारिभि
हर्षेण गानं गाने लौढ्यं लेभिरे योगिनोऽपि ॥ ६१ ॥
वर्षत्यग्निक्षणिवोष्णकिरणः काष्ठास्तु दावानलन्ना-
लाजालजटालभूधरमितलङ्गम्यान्धकाराविलाः । वृषा
जीर्णविशीर्णपर्णपटलाः शुष्यन्तलालिक्षिता नयस्तत्र-
करीन्द्रकेलिकलुषा श्रोमो मरुत्रैर्घृतः ॥ ६२ ॥ यद्वद-

श्रीम ॥ दया करके मुझे द्विज (पत्नी, ब्राह्मण) समझकर तुम
मुझ अशरणाको संसारसे विदा कर दो ॥ ११ ॥ कोई राजहंस
चाँचमें कमलनालका टुकड़ा लेकर श्वेत कमलके नीचे बैठा है
निसके ऊपर सूर्यकी प्रचण्ड किरणें पड़ रही हैं । उसे इस दशमें
देखकर कोई अपनी प्रेयसीसे कह रहा है कि 'हे शङ्खके समान
गलेवाली ! ऐसा जान पड़ता है मानो वह कोई चाँदीका घड़ा
हो जिसकी मुँगीसे घनी टाँटीसे जल निकल रहा हो' ॥ १२ ॥
धोमल लताश्रीकी जड़, चमेहीके सुगन्धित छिलके, चन्दनका
रस, अयोक्की नई-नई फीपलें, सिरसके फूल और पका
हुआ फेला, ये सब गर्मी दूर करनेवाली वस्तुएँ प्रीम्नसे पहले ही
जले हुए कामदेवको दे दानीं थीं ॥ १३ ॥ जलते हुए सूर्यकी
किरणोंसे कुलसे हुए जिन जलली पशुश्रीकी जीभ प्याससे बहुत
मूख गई है वे धोरेमें उन जंगलोंकी ओर दौड़े जा रहे हैं जहाँके
श्रावणके समान नीले आकाशकी ही वे पानी समझ बैठे हैं
॥ १४ ॥ रात्रिके अन्तिम प्रहरमें सम्भोगकी इच्छा जगानेवाली,
नारियलका जल सुपानेवाली, बेलके फलोंकी पकानेवाली
और संध्या समय सुख देनेवाली यह प्रीम्नकी शोभा फील
रही है ॥ १५ ॥ यह प्रीम्न अतु आ गई जिसमें सिरसके
फूलका पराग सूर्यके हरे फोंदके बालोंके समान दिखाई पड़ता
है और जिसमें नयमखिलकाही लता गहरी सुगन्धसे भर गई
है ॥ १६ ॥ जिस प्यासे सौंपकी मणि सूर्यकी चमके और
भी चमक उठी है वह अपनी सपलपाती हुई दोनों जीमोंसे

पवन पीता जा रहा है और धूपकी लपटों और अपने विषमें
भारसे जलनेके कारण मेढकोंको नहीं मार रहा है ॥ २० ॥
देखो, भूलसे अत्यधिक तप हुआ और चैदकी गरम पृथ्वी
कुलसा हुआ यह सर्प अपना मुँह नीचे झिपाकर मान-
सुकुणकारता हुआ मोरकी छायामें कुण्डल भारे बैठा हुआ है पर
मोर भी गर्मीके मारे उसे कुछ कह नहीं रहा है ॥ २८ ॥ सीरी
पृथ्वीपर फैला हुआ सूर्यका रस (घाम) पी-पीटा दिन
क्रमशः मोटे होते जाते हैं और उनका भार बढ़नेके कारण पौं
क्रमशः धीरे-धीरे चलने लगे हैं ॥ ३५ ॥ जलकी ताबानोंमें
जप पानीका नाम नहीं रह गया उस समय भी हुएरामें
प्रचण्ड धूपसे कुलसे हुए पैद मानो अपनी शब्जियोंकी रगड़ने
उठी हुई आगकी लपटोंके रूपमें जीम निकाल-निकालकर पानी
मॉग रहे हैं ॥ ६० ॥ गर्मीके दिनोंमें मेलेकी लताएँ फूलोंसे
खिल उठीं, फूलोंपर और घा बेटे, चैटकर वे मरतींमें गुनगुनने
लगे और उनकी गुनगुनाहट सुनकर योगियोंका चित्त भी
विचलित होने लगा ॥ ६१ ॥ गर्मीके इन दिनोंमें सूर्यकी
धूप हतनी कड़ी है मानो वह आदरके बरसा रहा हो, बर्तने
लगी आगकी लपटोंकी जटा पहले हुए पर्वतपर मँडाने हुए
पुष्टरूपी बँधरेसे लकड़ियों मर गई हैं, धूपोंके सब पत्ते हुए
सूख कर मड़ गए हैं और उनमें सूती-मूली लताएँ जिरटी
हैं, नदियाँ पृथ्वीसे तपे हुए हाथियोंके हिलोइनेसे रँदीकी हो
गई हैं और कैवल्य दिखाते राचलकी भीति पवन बर ता है

हलमारुतप्रसरद्विनध्रएडैरिच स्फुरदशुमषिमएडलद्यु-
त्तिवितानकैस्तापिता। विसारि धपुरातमनः सपदि
यासदश्रीरियं चलन्मरुमरोचिकासिवयपल्लयेनाञ्जति
॥ ६३ ॥ विकचनवकुसुम्भस्वच्छसिन्दूरभासा प्रयल-
पधनधेगोद्भूतवेगेन तूर्णम्। तदधिदपलनाग्रालिङ्गन-
व्याकुलेन दिशि दिशि परिदग्धा भूमयः पावकेन
॥ ६४ ॥ धिवस्यता तीक्ष्णतरांशुमालिना सपद्गतोया-
त्सरसोऽभितापितः। उखुल्य भेरुस्तृपितम्य भोगिनः
फणातपत्रस्य तले निपीदति ॥ ६५ ॥ विशन्तीनां
स्रातुं जघनपरिधेपैर्मृगदृशां यदम्भः सम्प्राप्तं प्रमदघन
वाप्यास्तदभुवम्। गभीरे तन्नाभीकुहरपरिणाहाध्वनि
रसत्कुहृष्टारस्फाटं रचयति निनादं नयति च ॥ ६६ ॥
विशुष्ककण्टोद्गतसीकराम्भसो गभस्तिभिर्मातुप्र-
तोऽनुतापिताः। प्रवृद्धदृष्योपहता जलाधिनी न
दन्तिनः केसरिणोऽपि विभ्यति ॥ ६७ ॥ विशुष्यन्तो

यान्तप्रशयितमदिपद्माण्डुकरं प्रतिश्यायङ्गिन्नं विशति
शफरस्तापविधयः। अनिच्छन्तो धर्मक्षयनपरुप
वारि सरितां लिहन्ति स्याद्भानि भ्रमजलकणादृशि
हरिणः ॥ ६८ ॥ श्वसिति विद्वगवर्गः शीर्षोपण्डुमम्यः
कपिकुलमुपयाति क्लान्तमद्रेनिगुडम्। भ्रमति गद्य
ययूथः सर्वतस्तोयमिच्छन्त्यरभतुलमजिह्वं प्रोद्धरत्यमु
कृपात् ॥ ६९ ॥ सचन्दनाम्बुव्यजनोद्भवानिलै सहार-
यष्टिम्ननमएडलापणैः। सखल्लकीकाकालिगोननिम्ब-
नैर्विवोधयते सुत इवाद्य मन्मथः ॥ ७० ॥ सञ्जातपत्रम-
करान्वितानि समुद्रहन्ति स्फुटपाटलत्वम्। विरुह्य-
राण्यर्ककराभिर्मशांदिनानि पद्मानि च वृद्धिमीयुः
॥ ७१ ॥ सफेनलालातृयकप्रसम्पुटं विनिःसृतालोहि-
तजिह्वमुन्मुखम्। तृपाकुलं निःसृतमद्रिगद्वरादेरव
माणं महिपीकुलं जलम् ॥ ७२ ॥ सभद्रमुस्तं परिशुष्क
कर्मं सरः वनन्नायतपोजमण्डलैः। रवेर्मयूरीरभिता-

॥ ६३ ॥ चञ्चले हुए वायुके कारण धधकते हुए अन्तरेके
समान चमकते हुए सूर्यमण्डलकी किरणोंसे तपी हुई यह
दिनकी शोभा अपने विशाल शरीरको तपे हुए बालूकी
आँचलसे एकाएक ढके ले रही है ॥ ६३ ॥ पूरे खिले हुए नये
कुसुमीके फूलके समान और स्वच्छ सिन्दूरके समान लाल-
लाल चमकनेवाली, आँधीसे और भी धधक उठनेवाली और
तीरपर लड़े हुए वृक्षों और जताघ्रांकी फुनगियोंकी चूमती
जानेगाली जङ्गलकी आगमे जहाँ-तहाँ धरती सुलस गई है
॥ ६४ ॥ मँदले जलवाले पीरोंसे बाहर निकल-निकलकर
धूपमे तपे हुए अँदक, प्यासे साँपोंके फनकी छतरीके नीचे आ-
आकर बैठ रहे है ॥ ६५ ॥ गर्मीके दिनोंमें पासके उपवनकी
बावड़ोंमें जय खियाँ स्नान करनेके लिये घुसीं तब उनके चौड़े-
चौड़े जघनके धक्केसे पानी तटकी और जाने लगा और फिर
धीधमं ही उनकी विशाल तथा गहरी नाभिमें उलटकर वह
जल दब-दब करत हुआ आगे बढ़ रहा है ॥ ६६ ॥ जो हाथी
धूप और प्याससे बेधेन होकर अपने खूबे मुँहसे काग फँकते
हुए पानीकी खोजमें इधर-उधर घूम रहे है वे इस समय
तिहसे मी नर्दा बर रहे है ॥ ६७ ॥ पानीके लिये तदकदाती
हुई शफरी (पोठी) मण्डली विषय होकर खूबे हुए जलाशयके
कीचदमें सोए हुए भँसके ककले भरे नधुनोंमें घुस रही है और
हरिण भी कड़ी धूपसे तपे हुए काढ़के समान गरम नदियोंका
जल न पीकर, दौड़कर धकनेसे बहे हुए पसीनेसे तर अपने

धनोंको ही चाटे दाज रहे है ॥ ६८ ॥ पत्रहीन वृक्षोंके टूँडोंपर
बैठी हुई सभी चिड़ियाँ हॉक रही हैं, उदास बन्दोंके झुपट
पहाड़की गुफाओंमें घुसे आ रहे हैं, पशुओंके झुपट चारों ओर
पानीके लिये बिललाते घूम रहे हैं और घाट पैंरावाले गरमोका
शुण्ड एक कुएँसे गटागट पानी पीता जा रहा है ॥ ६९ ॥
आजकल रमणियों अपने सोए हुए प्रेमियोंको चन्दनमें बसे हुए
ठण्डे जलसे भीगे हुए पशुओंकी टण्डाँ बपार कलकर या
माँतियोंके हारोंकी लट्कती हुई कालरोसे सजे हुए अपने
गोल गोल स्तन उनकी छातीपर रखकर या धीपाके साथ
अपने भीठे गलेसे गीत गा गाकर पेसे जगाती रहती है मानों
कामदेवको अया रही हों ॥ ७० ॥ गर्मीके जिन दिनोंमें पेंकोंपर
हरे-भरे पत्ते लड़ गए थे, गुलाबके फूल बिल गए थे और जो
सूर्यकी किरणोंके कारण चमक रहे थे, एक ओर तो वे बड़े दिन
होते चले जा रहे थे, उधर दूसरी ओर बहुतसी पहाड़ियोंवाले,
लाज द्रनवाले और न्यूकी किरणोंम खिले हुए कमल
नी बेरके ढेर फूल उठे ॥ ७१ ॥ जुगाली करनेमे जिन भँसोंके
मुँहसे काग निकल रही है और खार बह रही है वे अपना मुँह
खोलकर अपनी लाल-लाज जीभें बाहर निकाले हुए प्यासके मारे
मुँह उठाए पहाड़की गुफासे निकल-निकलकर जलकी और लपटी
चली जा रही है ॥ ७२ ॥ धूपसे एकदम जलता हुआ यह जङ्गली
शुभ्रोंका झुपट अपने लये लम्बे धूयनोंसे नारगोंधेसे भरे
हुए बिना कीचड़वाले तानाबको खोडता हुआ, पैसा खगता है

पितो भृशं वराहयूथो विशतीव भूतलम् ॥ ७३ ॥ समु-
द्रतस्वेदशिताङ्गसन्धयो विमुच्य वासांसि गुरुणि
साम्प्रतम् ॥ स्तनेषु तन्व्यंशुकमुन्नतस्तना निवेशयन्ति
प्रमदाः सयौवनाः ॥ ७४ ॥ समुद्रधृताशेषमृणालजा-
लकं विपन्नमीनं द्रुतभीतसारसम् ॥ परस्परोत्पीडनसं-
हृतेर्गजैः कृतं सरः सान्द्रविमर्दकर्मम् ॥ ७५ ॥ सवि-
धैः सस्मितजिह्वावीक्षितैर्विलासकयो मनसि प्रवा-
सिनाम् ॥ अन्नङ्गसन्दीपनमाशु कुर्वते यथा प्रदोषाः
शशिचारुभूषणाः ॥ ७६ ॥ सितेषु हर्म्येषु निशासु
योपितां सुखप्रसुप्तानि मुखानि चन्द्रमाः ॥ विलोक्य
नूनं भृशमुत्सुकश्चिरं निशाक्षये याति ह्रियेव पारङ्-
ताम् ॥ ७७ ॥ सुभगसलिलावगाहाः पाटलसंसर्गसुर-
मिधनवाताः ॥ प्रच्छायसुखभनिद्राः दिवसाः परिणाम-
रमणीयाः ॥ ७८ ॥ सुवासितं हर्म्यतलं मनोहरं प्रिया-
मुखोच्छ्वासविकम्पितं मधु ॥ सुतन्त्रिगीतं मदनस्य

दोषनं शुचौ निशीथेऽनुभवन्ति कामिनः ॥ ७९ ॥ स्फु-
न्धान्सिन्धुरयूथगण्डकपर्णव्यासक्तदानोदकान्तेवने
मधुपा महीरुहशिरः पुष्पाणि हित्वा भृशम् ॥ लीयन्ते
यलभीकुलायकुहरे निस्पन्दमेते खगा जिह्वालीढयू-
मुखो मृगगणश्छायासु विश्राम्यति ॥ ८० ॥ स्पृशति
तिग्मच्छौ ककुभः करैर्दयितयेव विजृम्भितपापया ॥
अतनुमानपरिग्रहया स्थितं रुचिरया चिरयायिद्वि-
श्रिया ॥ ८१ ॥ स्फीतं शीतं गतं क क शिशिरकिरणः
कास्ति हेमन्तमासः कैते पानीयपूर्णा मलिनजलधराः
काद्य विद्युत्प्रमोदः ॥ इत्युच्चैर्लपमानैरिव मुखरुल्ल-
भिंस्त्रिद्वैतैरुपेतो वातोद्यध्वागतोऽसौ प्रकटितविजयस्त-
म्भचिह्नैर्निदाघः ॥ ८२ ॥ हरन्ति हृदयानि यच्छ्रवण-
शोतला वेणुवो तदर्दति करम्बिता शिशिरवायुना
वारुणी ॥ भवन्ति च हिमोपमाः स्तनभवो यदेष्टीष्टो
द्वचेरुपरि संस्थितो रतिपतेः प्रसादो गुरुः ॥ ८३ ॥

मानो धरतीमें घुसा जा रहा हो ॥ ७३ ॥ ऊँचे-ऊँचे स्तनोंवाली
जिन युवतिशोंके अङ्गोंके जोड़-जोड़के गर्मोंके मारे पसीना
घूटा करता है वे इस गर्मोंमें अपने मोटे-मोटे वस्त्र उतारकर
पतले-पतले वस्त्र पहनने लगी हैं ॥ ७४ ॥ यह देखो, यहाँपर
हाथियोंके इकट्ठे होकर आपसमें लड़-भिड़कर इस तालके सब
कमल उपाड़ ढाले, मछलियाँ रौंद झालीं और सब सारसोंको
डरावर भगा दिया है ॥ ७५ ॥ चन्द्रमाके समान उजले
चन्द्रहार खादि आभूषणोंसे सजकर बड़ी प्यारी लगनेवाली
सुन्दरियाँ बड़ी षटक-मटक और सुकराहटके साथ अपनी
चितवन चलाकर परदेसियोंके मनमें ऋत्से उसी प्रकार
काम जगा रही हैं जैसे चमकते हुए चन्द्रमावाली सन्ध्या
॥ ७६ ॥ रातके समय उजले भवनमें मुखसे सोई हुई
युवतीका मुख निहारनेको उतावला रहनेवाला चन्द्रमा जब
बहुत देरतक उनका मुँह देख चुकता हैतो मानो लाजके मारे ही
यह रातके पिछले पहरमें उदास हो जाता है ॥ ७७ ॥ गर्मोंके
दिनोंकी सर्तमें बड़ी सुहावनी दिखाई देती है क्योंकि उस
समय जलमें घेरे रहना बड़ा भला लगता है, वनके पवन
आवासे मिलकर सुगन्धित हो जाते हैं और छायामें पदते ही
नींद आ जाती है ॥ ७८ ॥ प्रेमी लोग भी इन दिनों खाद्यी
रातके समय ऐसी-ऐसी कामको उभारनेवाची यस्तुशोंका आनन्द
लेते हैं जैसे सुन्दर सुगन्धित जलसे छुला हुआ भवनका तल,
पगारोंके मुँहकी भापसे उफनती हुई मदिरा और सुन्दर

बीणाके साथ गाए हुए गीत ॥ ७९ ॥ मीरे ऊपरके फूलोंको
झोकर पकड़े उन मोटे तनोंपर जा बैठे हैं जिनपर हाथियोंका
सिर रगड़नेसे मज्जल लिपट गया है, उधर पक्षी भी बरोंके
ऊपर बने हुए घोंसलोंमें चुपचाप आकर घुस रहे हैं और हरिण
भी अपनी जीभसे हरियालीका मुख चाटते हुए छायामें विश्राम
कर रहे हैं ॥ ८० ॥ जैसे अपने पतिको किसी अन्य स्त्रीका
स्पर्श करते देखकर कोई स्त्री दुखी होती है वैसे ही जब सूर्य
भी दिशारूपी नायिकाशोंका स्पर्श करने लगा तब दिनकी
शोभारूपी उसकी सुन्दर पत्नी मानो प्रबल क्रोधमें आकर
धरन्त जलने लगी और उसीसे इतनी गर्मी हो गई है ॥ ८१ ॥
यह भीष्मका समय अपने उन पवनरूपी भोल-दूतोंके साथ
था पहुँचा जो उड़ते हुए तिनकों और धूलके विजयस्तम्भका
चिह्न लिए हुए थे और जो हरहराकर मानो ऊँचे स्वर्ग
लजकार रहे थे कि 'कहाँ गया वह बड़ा दुष्ठा शीत ! कहाँ गया
चन्द्रमा ? कहाँ गए हेमन्तके दिन ? कहाँ गए जलसे भरे हुए
काले-काले बादल और कहाँ गई वह विजलीकी तड़प !' ॥ ८२ ॥
गर्मोंके दिनोंमें यदि मन हरनेवाली और कानोंकी भजी
लगनेवाली बंधीकी तान सुनाई पड़ जाय, शीतल पवनसे
मिली हुई मदिरा मिल जाय, सुगन्धनियोंके पालके समान
शीतल स्तन मिल जायें तो पक्षी कहेंगे कि कामदेवने हमारी
हृदयसे कहीं अधिक कृपा कर दी है ॥ ८३ ॥ इबनकी चमिके
समान जलते हुए सूर्यको किरणोंसे जिन मोतोंके तन और

हुताग्निक्लपैः सवितुर्गमस्तितिः कलापिनः क्लान्तशरीरचेतसः । न भोगिनं प्रान्ति समीपवर्तिनं कलापचक्रेषु निवेशिताननम् ॥ ८४ ॥

मध्याह्नवर्णनम्—आदौ मनपरिग्रहेण गुह्यणा दूरं समुत्सारितां पश्चात्तापमेण तामतिदृशां नीतां परं लाघवम् । उत्सङ्गान्तरवर्तिनीमनुगतां सम्पीडिताङ्गीमिमां सर्वाङ्गप्रणयमियामित्यत्र शृङ्गार्यां समात्मयते ॥ १ ॥ उद्दामद्युमश्लिष्युतिव्यतिकरप्रभ्रीडदकौपलव्यालाजालजटालजाङ्गलतटोनिष्कूजक्रीयष्टयः । भौमोष्मस्रवमानसूर्यकिरणा. क्रूरपकाशा दशामायु. क्रमं समापयन्ति विष्णुमूर्धन्याह्नश्या दिशः ॥ २ ॥ किरतिमिहिरे चिम्पद्रौचः करानतिवात्मनी स्थलकमठवद्देहच्छाया जनस्य विचेष्टते । गजपतिसुखोद्गोर्णैरथैरथ प्रसरेणुभिः शिशिरमधुरामेणा. कच्छस्थलामधिरोरते ॥ ३ ॥ छाया संश्रयते तलं विटपिनां श्रान्तेव पान्थैः समं मूलं याति सरो जलस्य जडता रत्नानेव मीनैः

सह । आचामत्यह्निमांशुदोघितिरपस्तत्रेण लोकैः समं निद्रा गर्भगृहं सह प्रविशति क्लान्तेव क्लान्ताजनैः ॥ ४ ॥ दुःसहसन्तापमयात्सम्प्रति मध्यस्थिते दिवसनाथे । छायामित्यत्र वाञ्छन्ती छायापि गता हतयत्नानि ॥ ५ ॥ अत्रे प्रकलतादलेषुदपरि स्थं फणतालं द्विपः शृण्वस्तम्भरसाश्रित्यच्छति शिखी मध्येशिषाहं शिरः । मिथ्या लेदि मृणालकोटिरभसाहंद्राह्वरं शृङ्गरो मध्याह्ने महिपश्च वाञ्छति निजच्छायामहाकर्दमम् ॥ ६ ॥ मध्याह्ने चलतालवृन्तमनिलः सर्वात्मना सेवते वारि स्वेदमिषेण शीतलवधूवन्नोजमालम्बते । निद्रा नेत्रमुपेति पद्मयुगलच्छायाभितादैहिकी पाप्मानामथ पादयोनिपतति छायापि मा यान्तिवति ॥ ७ ॥ मध्याह्ने नूनमानपोऽपि तिग्मतापोपशान्त्ये । दधुः कमलिनीपञ्चमानपत्रमिवोपरि ॥ ८ ॥ मध्याह्ने हरितो हुताशनमुचः कामोऽपि चामभ्रुवा पाटोरद्वयचचित्तांस्तनवटीमासाद्य निद्रायते । एषाः केसरिणोऽपि केसरसदो-

मन दोनों मुक्त पद गए हैं, वे अपने पास कुएडल मारकर घेठे हुए साँपोंको भी नहीं मारते वरन् उल्टे धूपसे अपना मुँह बचानेके लिये अपना गला उनकी पूँछकी कुएडलमें डाले हुए चाप पड़े हुए हैं ॥ ८४ ॥

ग्रीष्मकी दुपहरिः : गर्मीके दिनमें दोपहरके समय बूचके नीचे बसते सटी हुई छपर देखकर ऐसा जल पबता है कि बूचने मानके कारण जिसे पहले थपनेसे दूर कर दिया था और जिससे वह पड़ताती हुई दुबली पद गई थी उसी छायासे अथ मान छोड़ दिया हो और बूच भी अब उस प्राण्यपत्तीकी गोदमें घिसकर मगनो उसे बसकर छातासे लगा रहा हो ॥ १ ॥ गर्मीमें दोपहरके समय सूनी सूनी दिशाएँ श्रॉतिं चौधिया रही हैं और प्राण सुलाए डाल रही हैं, प्रचण्ड सूर्यके तापके कारण सूर्यकान्तमणिले लपटें निकल रही हैं, तपे हुए जइलमें टिटि हिरिचाँ गर्मीके मारे चिल्ला रही हैं और सूर्यकी किरणें माना घरतीकी गर्मीमें तीर-सी रही हैं ॥ २ ॥ गर्मीकी दुपहरामें चारों ओर सूर्यकी किरणें फैल रही हैं, कोणोंके शरीरकी नन्ही-सी परछाईं घरतीपर घेठे हुए कलुपके समान हिल रही हैं और सबके पासकी जो घासें हाथीकी सूँसे डिडबकी हुई पानीकी फुहारसे टपटी और मीठी हो गई हैं उनपर हरिय नींदले रहे हैं ॥ ३ ॥ गर्मीकी दुपहरामें पदोंकी छाया भी मानो थककर यात्रियोंके साथ साथ पदोंके तले घा वैठी है, तालाबके जलकी ठणक

भी मानो मछलियोंके साथ-साथ डुली होकर नीचे गहरे पानीमें चली गई है, सूर्यकी किरणें भी तपे हुए लोगोंके साथ साथ पानी पी रही हैं और नींद भी श्रालसमें भरकर बियोंके साथ मगनो थके भीतर चली जा रही है ॥ ४ ॥ गर्मीकी दुपहरामें जब सूर्य ठीक सिरपर आ गए हैं उस समय छाया भी मानो असह्य गर्मीके दरसे ही पड़ों के नीचे घा वैठी है ॥ ५ ॥ दोपहरके समय हाथी अपने कानको कमलका पत्ता समझकर छायाके लिये ऊपरकी उठाए हुए हैं, मोर अपनी पूँछको ही घास समझकर उसमें अपना सिर धँसाए डाल रहा है, जगली मुचर अपने दातोंको ही कमलकी जड़ समझकर चाटे जा रहा है और भैंसा अपनी परछाईंका ही कीचड़ समझकर उसमें लोटा जा रहा है ॥ ६ ॥ गर्मीकी दुपहरामें बाबुने पूर्ण रूपसे पट्टेका ही सहारा ले लिया, जलने भी बहने हुए पत्तानेके रूपमें बियोंके ठण्डे स्तनोंका सहारा ले लिया, नींद भी बरीनियोंकी छाया देखकर श्रॉलोंके पास आ पहुँची है और यात्रियोंकी परछाईं भी उधे घर से निजलनेको रोकनेके लिये ही मानो उनके पैर पकड़े पड़ी है ॥ ७ ॥ गर्मीकी दुपहरामें सूर्यकी अथर्व गर्मसि बचनेके लिये ही मानो जलने अपने ऊपर कमलके पत्तेका छाता लगा लिया है ॥ ८ ॥ गर्मीकी दुपहरामें चारों ओरसे आग बरस रही है, स्त्रियोंके चन्दन पुते हुए स्तनोंपर कामदेव भी नींद ले रहा है, हरिय भी सिहके भयालकी

पितो भृशं वराहयुधो विशतीव भूतलम् ॥ ७३ ॥ समु-
द्रतस्वेदशिताङ्गसन्धयो विमुच्य वासांसि गुरुणि
साम्प्रतम् । स्तनेषु तन्वंशुकमुन्ततस्तना निवेशयन्ति
प्रमदाः सयौघनाः ॥ ७४ ॥ समुद्रधृताशेषमृणालजा-
लकं विपन्नमीनं द्रुतभीतसारसम् । परस्परोत्पीडनसं-
हृतेर्गजैः कृतं सरः सान्द्रयिर्मर्दकर्मम् ॥ ७५ ॥ सवि-
श्रमैः सरिमतजिह्ववीक्षितैर्विलासकृतयो मनसि प्रचा-
सिनाम् । अन्नङ्गसन्दीपनमाशु कुर्वते यथा प्रदोषाः
शशिचारुभूषणाः ॥ ७६ ॥ स्तितेषु हर्म्येषु निशासु
योपितां सुखप्रसुप्तानि मुसानि चन्द्रमाः । विलोक्य
नूनं श्रुशुभ्रसुकधिरं निशाक्षये याति ह्रियेव पाण्डु-
ताम् ॥ ७७ ॥ सुभगसलिलावगाहाः पाटलसंसर्गसुर-
भियनवाताः । प्रच्युत्सुखभनिद्राः दिवसाः परिणाम-
रमणीयाः ॥ ७८ ॥ सुवासितं हर्म्यतलं मनोहरं प्रिया-
मुपोच्छ्वासाधिकम्पितं मधु । सुतन्त्रिगीतं मदनस्य

दोषनं शुचौ निशीथेऽनुभवन्ति कामिनः ॥ ७९ ॥ स्फु-
न्धान्सिन्धुरयूथगण्डकपराव्यासपतदानोदकास्त्रेवते
मधुपा महीरुहशिरः पुष्पाणि हित्वा भृशम् । सौम्ये
वलमीकृलायकुहरे निस्पन्दमेते खगा जिह्वालीढगु-
मुखो मृगगणशृङ्गायासु विश्वाभ्यति ॥ ८० ॥ स्पृशति
तिग्मरुचौ ककुभः करैर्दयितयेव विजृम्भिततापया ।
अतनुमानपरिग्रहया स्थितं कचिरया चिरयायित-
धिया ॥ ८१ ॥ स्फूर्तितं शीतं गतं क क शिशिरकरणः
कास्ति हेमन्तमासः कैते पानीयपूर्णां मलिनजलधराः
काद्य विद्युत्प्रमोदः । इत्युच्चैर्लपमानैरिव मुल्लसुलै-
र्भिस्त्रिदूतैरुपेतो वातोद्यध्वागतोऽसौ प्रकटितविजयस्त-
म्भचिह्नैर्निदाधः ॥ ८२ ॥ ह्रन्ति हृदयानि यच्छ्रवण-
शीतला वेणवो तदर्दति करन्धिता शिशिराद्युन
वारुणी । भवन्ति च हिमोपमाः स्तनभयो यदेदीष्टो
रुचेरुपरि संस्थितो रतिपतेः प्रसादो गुणः ॥ ८३ ॥

मानो धरतीं घुसा जा रहा हो ॥ ७३ ॥ ऊँचे-ऊँचे स्तनोंवाली
मिन युवतियोंके चर्माँके जोड़-जोड़ते गर्माँके मारे पसीना
घूटा करता है ये हस गर्माँमें छपने मोटे-मोटे वस्त्र उतारकर
पतले-पतले वस्त्र पहनने लगी है ॥ ७४ ॥ यह देखो, यहाँपर
हाथियोंने दृष्ट होकर घ्रापसमें लक्ष्-भिक्षकर हस ताबलेके सब
कमल उपाद झाले, मण्डलियाँ रँद डालीं और सब सारसोंको
इराकर भागा दिया है ॥ ७५ ॥ चन्द्रमाके समान उजले
चन्द्रहार आदि आभूषणोंसे सजकर बड़ी प्यारी छगनेवाली
सुन्दरियाँ बड़ी चटक-मटक और मुक्कराहटके साथ छपनी
विगवन चलाकर परदेसियोंके मनमें भ्रष्टे उल्ले प्रकाश
बाम जगा रही हैं जैसे धमकते हुए चन्द्रमावाली सन्ध्या
॥ ७६ ॥ रातके समय उजले भयनमें सुससे सोई हुई
सुपनोका सुग निहारनेकी उतावला रहनेवाला चन्द्रमा जब
बहुत देरतक उनका मुँह देख चुकता है तो मानो जानके मारे ही
यह रातके पिपले परमें उदास हो जाता है ॥ ७७ ॥ गर्माँके
दिनोंकी मर्मिं बड़ी सुखावनी दिग्गाई देती हैं क्योंकि उस
समय ऋतमें घैरे रहना बड़ा भला लगता है, वनके पवन
गुलाबसे मिच्छकर सुगन्धित हो जाते हैं और घावामें पड़ते ही
नींद प्या मारी है ॥ ७८ ॥ प्रेमी लोग भी इन दिनों भापी
रातके समय देगी-देगी कामको उभारनेवालों वस्तुओंका ध्यान
धेते हैं जैसे सुन्दर सुगन्धित लजने पुष्पा हुषा मदनका लक्ष,
प्यारीके मुँहकी भापसे उचनगी हुई मदिता और सुन्दर

धीयाके साथ गाए हुए गीत ॥ ७९ ॥ मीरे उपरके कुञ्जोंके
छोड़कर पेड़के उन मोटे तनोंपर जा बैठे हैं मिनपर हाथियोंका
सिर रगड़नेसे मजजल लिपट गया है, उधर पत्ती भी धरते
उपर बने हुए बोंसलोंमें लुपचाप जाकर घुस रहे हैं और हाथ
भी छपनी जीभसे हरिणीका मुख चाटते हुए छत्रामें विश्राम
कर रहे हैं ॥ ८० ॥ जैसे छपने पतिकी किसी अन्य कीम
स्पर्श करते देखकर कोई स्त्री दुली होती है वैसे ही जब सुर्ष
भी दिग्गारूपी नायिकाओंका स्पर्श करने लगा तब दिनमें
शोभास्त्री उसकी सुन्दर पत्नी मानो प्रयत्न कोषमें धार
धारयन्त जलने लगी और उसीसे हृत्तनी गर्माँ हो गई ॥ ८१ ॥
यह भीष्मका समय छपने उत पवनरूपी मील-भूतोंके हाथ
या पहुँचा तो उड़ते हुए तिनकों और पूरके विवरातममा
चिद्र लिप्ट हुए थे और लो हारहारकर मानो ऊँचे स्वने
खलकार रहे थे कि 'कहाँ गया वह बड़ा हुषा शीत ? कहाँ गया
चन्द्रमा ? कहाँ गए हेमन्तके दिन ? कहाँ गए जलसे मरे हुए
कावे-कावे वादक और कहाँ गई वह विजलीकी तड़प ? ॥ ८२ ॥
गर्माँके दिनोंमें यदि मन हरनेवालों और कामाँकी मत्री
छगनेवाली बंधीकी तान सुनाई पड़ जाय, शीतक परने
मिळी हुई मदिता मिळ जाय, श्रुतनपनीके पावेके लजने
शीतक हतन मिळ जाय तो यही कहेंगे कि कामदेवने हमारी
रुपधारे कहीं कचिर हुषा कर दी है ॥ ८३ ॥ इतनी हीनके
समान जलते हुए सुर्षकी किरणोंमें मिन मीरोंके लन ली

हुताशिकल्पैः सचिदुर्गमस्तिमिः कलापिनः क्रान्तशरीरस्वेतसः । न भोगिनं भ्रन्ति समोपवर्तिनं कलापचक्रेषु निवेशिताननम् ॥ ८४ ॥

मध्याह्नवर्णनम्— आर्द्रा मानपरिग्रहेण गुरुणा दूरं समुन्सारितां पश्चात्तापमरेण तामतिवृशां नीतां परं लाघवम् । उरुसङ्घान्तरवर्तिनीमनुगतां सम्पीडिताङ्गीमिमां सर्वाङ्गप्रणयमियामिष तदृश्रद्धायां समालम्बते ॥ १ ॥ उद्दाममयुग्मिद्युतिव्यतिकरप्रकीर्णदकौपलज्यालाजालजटालजाङ्गलतटीनिष्कूजकोषयः । भीमोष्मस्रघमानसूर्यकिरणः क्रूरप्रकाशा दशमायुः । फर्म समापयन्ति धिममूर्ध्व्याङ्गस्युत्था दिशः ॥ २ ॥ किरतिमिहिरे विष्वद्रीचः कपानतिवामनी स्थलरुमदवद्देहच्छाया जनस्य विचेष्टते । गजपतिमुपोद्गौर्णैरात्पैरथ असरेणुभिः शिशिरमधुरामेषाः कच्छुस्थलांमधिरोरते ॥ ३ ॥ छाया संश्रयते तलं विटपिनां भ्रान्तेव पान्थैः समं मूलं याति सरो जलस्य जडता ग्लानेव मीनैः

मन दोनों मुस्त पढ़ गए हैं, वे अपने पास कुछदल मारकर बैठे हुए सर्पोंको भी नहीं मारते वरन् उल्टे घूसे अपना मुँह बचानेके लिये अपना गला उनके पूँछकी कुछदलमें डाले हुए चाप पड़े हुए हैं ॥ ८४ ॥

श्रीष्मकी दुपहरती : गर्मीके दिनोंमें दोपहरके समय बृषके भीचे उससे सटी हुई छाया देखकर ऐसा जान पड़ता है कि बृषने मानके कारण जिते पहले अपनेते दूर कर दिया था और जिससे वह पड़ताही हुई दुबली पड़ गई थी उसी छायाने अब मान छोड़ दिया हो और बृष भी अब उस प्रायःप्यारीको गोदमें बैठाकर मानो उसे कसकर छायाते लगा रहा हो ॥ १ ॥ गर्मीमें दोपहरके समय सूनी-सूनी दिशाएँ शीतल चौधिया रही हैं और प्रायः सुलाएँ डाल रही हैं, प्रचयड सूर्यके तापके कारण सूर्यकान्तमण्डले लपटें निकल रही हैं, तपे हुए जहलमें टिटि हिरियाँ गर्मीके मारे चिल्ला रही हैं और सूर्यकी किरणें मानो परतीकी गर्मीमें ठर-सी रही हैं ॥ २ ॥ गर्मीकी दुपहरोंमें चारों ओर सूर्यकी किरणें फैल रही हैं, खोंगोंके शरीरकी नग्ही-सी परछाईँ धरतीपर बैठे हुए कण्टकके समान हिल रही हैं और सलके पासकी जो घासें हाथीकी सूँसे छिद्रकी हुई पानीकी छुहारोंसे ठण्डी और मीठी हो गई हैं उनपर हरिय नींदले रहे हैं ॥ ३ ॥ गर्मीकी दुपहरोंमें पढ़ीकी छाया भी मानो थककर यात्रियोंके साथ-साथ पैदोंके तले या बैठी है, तालाबके जलकी ठण्ठक

सह । आचामत्यहिमांशुदीधितिरपस्तपेव लोकैः समं निद्रा गर्भशृहं सह प्रविशति क्रान्तेव क्रान्ताजनैः ॥ ४ ॥ दुःसहसन्तापमयात्सम्प्रति मध्यस्थिते द्विषसनाथे । छायामिष वान्धुन्ती छायापि गता तदतलानि ॥ ५ ॥ धचे पत्रलतादलेसुरुरपरि स्थं कर्णतालं द्विषः शष्पस्तम्बरसाश्रियच्छति शिखी मध्येशिण्वडं शिरः । मिथ्या लेढि मृणालफोटिरभसाद्दृष्टाङ्कुरं शुकरो मध्याह्ने महिपश्च वान्धुति निजच्छायामहाकूर्दमम् ॥ ६ ॥ मध्याह्ने चलतालवृन्तमनिलः सर्वात्मना सेवते वारि स्वेदमिषेण शीतलघधूवन्नोत्तमालम्बते । निद्रा नेत्रमुपैति पद्मगुलच्छायाश्रितादैहिकीपान्थानामथ पादयोनिपतति छायापि मा यान्तिवति ॥ ७ ॥ मध्याह्ने नूनमापोऽपि तिग्मतापोपशान्तये । द्युः कमलिनीपभ्रमानपत्रमिधोपरि ॥ ८ ॥ मध्याह्ने हरितो हुताशनमुचः कामोऽपि वामभ्रुवां पाटोरद्रवचर्चित्वांस्तननटीमास्ताद्य निद्रायते । पणाः केसरियोऽपि केसरसटो-

भी मानो मड़कियोंके साथ-साथ हुट्टी होकर नीचे गहरे पानीमें चली गई हैं, सूर्यकी किरणें भी तपे हुए लोगोंके साथ-साथ पानी भी रही हैं और नींद भी प्रालसमें भरकर बियोंके साथ मानो घरके भीतर चली जा रही हैं ॥ ४ ॥ गर्मीकी दुपहरोंमें जब सूर्य ठीक सिरपर था गए हैं उस समय छाया भी मानो थसल गर्मीके दरते ही पैदों के नीचे या बैठी है ॥ ५ ॥ दोपहरके समय हाथी अपने कानोंको कमलका पत्रा समझकर छायाके लिये ऊपरको उठाए हुए हैं, मोर अपनी पूँछको ही घास समझकर उसमें अपना सिर धँसाए डाल रहा है, जंगली मुचर अपने दातोंकी ही कमलकी जड़ समझकर चाटे जा रहा है और भँसा अपनी परछाईको ही कीचड़ समझकर उसमें लोटा जा रहा है ॥ ६ ॥ गर्मीकी दुपहरोंमें वायुने पूर्ण रूपसे पहुँचा ही सारा ले लिया, जलने भी बहते हुए पसीनेके रूपमें बियोंके ठण्डे स्तनोंका सहारा ले लिया, नींद भी बरीनियाँकी छाया देखकर शीलोंके पास था पहुँची है और यात्रियोंकी परछाईँ भी उन्हें घर से निकलनेको रोकनेके लिये ही मानो उनके पर पकड़े पड़ी है ॥ ७ ॥ गर्मीकी दुपहरोंमें सूर्यकी भयङ्कर गर्मीने चचनेके लिये ही मानो जलने अपने ऊपर कमलके पत्रेका घाता लगा लिया है ॥ ८ ॥ गर्मीकी दुपहरोंमें चारों ओरसे आग बरस रही है, त्रिप्योंके चन्दन पुतें हुए स्तनोंपर कामदेव भी नींद ले रहा है, हरिय भी सिंहके भयाङ्क

पान्तध्रिताः शेरते ह्यायामङ्गतां न सुञ्जति तरुचोदा
नवोद्दामिष ॥ ६ ॥ सर्पत्सारिणि धारिशीतलतले
धिन्यस्तपुष्पोत्करे नीरन्ध्रे कदलीवने मुखदलच्छायाह-
तावन्विपि । कर्पूरामरुपङ्कपिच्छ्रतघनोचुङ्कस्तनालि-
ङ्गिभिः फान्ताकेलिरतेरहो सुकृतिभिर्मध्यन्दिनजीयते
॥ १० ॥ सौहित्यस्तिमितरुदञ्चदलसमीचाभिरामं मुहु-
र्मध्याह्नेस्फुरत्कर्कशकचिमान्तस्थलीयतिभि । दत्ताः
सिन्धुपु माह्विपैः क्रमकृशस्रोतस्तसु पङ्कजैरे निद्रामी-
लितपद्मपद्मतिपरिच्यक्ताद्याः हृष्टयः ॥ ११ ॥ स्वं
स्वे कर्मणि सान्द्रयोज्य सुहृदो भूमोसुरान्मन्त्रिणश्चक्रं
निर्भयमारच्यय भगवान्स्वप्नभ्रातराभोदयः । स्वालोकज्ञ-
णकान्दिशीकमधुनोत्पात विचिन्वन्निव ध्वान्तं क्वापि
मिलीनमन्मरमणिच्युत्वांमाम्रासरोहति ॥ १२ ॥

जलक्रीडा—अञ्जलो जलमधीरलोचना तोचनप्रति-
शरीरलाञ्छितम् । आत्तमात्तमपि पान्तमुचितुं फातरा

घोट लेबर नींद ले रहे है और नई नवाही नयेलोके दूहेके
समान दूध भी अपनी छाया नहीं छोड़ रहे है ॥ ६ ॥
गमले दिनोंमें पुण्यवान् लोग पानी सींचकर ठण्डे विप हूप
फूल बिलेरकर, बिना भरोखोवाले केलेके वनमें घने पत्तोंकी
साक सुपरी छायामें, अपनी मियतमाथोंके कपूर और अगरके
लेपसे सजे हुए जैसे तथा सोटे रत्नोंका आलिङ्गन करके
रतिप्रीडाका ध्यानद लेते हुए दुपहरी बिताते है ॥ १० ॥
दुपहरीके समय बिलचिलाती हुई भूपायले मैदानोंमें सन्तोपके
साथ स्थिर चढ़े तथा जैसे हुए जैसे आलसले तिर घुमाकर
धीरे-धीरे सूते हुए सोतोवाले तालाबोंके काचपुकी और बार-
बार अपनी अघरुली झाल-लाल झालें दीपा रहे है ॥ ११ ॥
भगवान् सूयने पहले अपने मित्र कमलोंको रिलाया (निकसित
रिया) फिर मन्त्र पढ़नेवाले प्राणियोंको अपने काममें लगाया
अर्थात् वे पूजा पाठमें लुट गए, फिर देशसे अन्पकार भागाया
धीरे अथ अधिक राग (खालिमा, मोष) से शुफ होकर
भागो हुए, उगादे हुए और ह्पर-उधर विपे हुए धंधेरेकी
दूँपनेके लिये ही मागा वे आरात्तके धीचमें रथ लेकर आ पहुँचे
हैं ॥ १२ ॥

जलप्रीडा : कोई चमल झौँतोवाली नयेली पतिपर
उपायनेके लिये बार बार अपनी अञ्जलिमें पानी उठा रही थी
धिन्य उसमें पपी हुई अपनी झौँतोंकी परदादीकी मणुकी
सामन-सामनकर बरकर गिरा देती थी ॥ ११ ॥ मणुसियोंकी अपेक्षे

शकरशङ्किनी जहो ॥१॥ अथ स्फुरन्मीनविधूतपद्मज
धिपङ्कतीरस्खलितोर्मिसंघति । पयोऽयगानु कलदंश
नादिनी समाजुहावेव वधूः सुरापगा ॥ २ ॥ अन्त्युनं
गुणमस्तुतस्य धारयन्ती सम्कुलस्फुरितसरोरुहाय
तंसा । प्रयोभिः सह सरसी निषेव्यमाण रक्तव
व्यधित वधूदशां सुरेव ॥ ३ ॥ अमी शिरीषप्रसवाय
तंसाः प्रभ्रंशिनेो धारिविहारिणीनाम् । पारिसवा
स्रोतसि निम्रगायाः शैवाललोलांश्छलयन्ति मीनाद
॥ ४ ॥ अचिरलमिदमममः स्वेच्छुयोच्छ्रालयन्त्या विक्र
चकमलशोभोत्तानहस्तद्वयेन । परिकलित इषां
कामवाणातिथिभ्यः सलिलमिष वित्तीर्णं वालतीला
सुरोभ्यः ॥ ५ ॥ अस्मंशयं न्यस्तमुपान्तरक्तां यदेव
रोद्भुं रमणीभिरजनम् । हृत्तेऽपि तस्मिन्सलिलेन
शुक्लतां निरास रागो नयनेषु न श्रियम् ॥ ६ ॥
आरूढः पतित इति स्वसम्भवोऽपि स्वच्छानां परि

पानीमें कमल हिल रहे थे, उससे उठी हुई लहरें सूले तीरप
टकरा टकराकर लौट रही थी और हँसोका रन-मुनका कून
सुनाई दे रहा था जिसे सुनकर ऐसा जान पड़ता था माना
नदी अपने जलमें प्रवेश करनेके लिये स्रियोंकी बुला रही है
॥ २ ॥ जिस तालाबमें स्रियों अपने पतियोंके साथ जलमग्न
कर रही थी उस तालाबने उन स्रियोंको झौँले ऐसी झाल कर ही
मानो वे अदिरा पीकर थाई हंर क्योकि मद्रिरामें अत्युत्कम पुप
राता है और लिले हुए कमलोंका सत झला जाता है इसी प्रभा
तालाबमें भी स्वच्छ जल होता है और कमल लिले हुए हन
हैं ॥ ३ ॥ जलप्रीडा करनेवाली स्रियोंके कानोंपर सब हुए
शिरीषके जो फूल नदीकी धारामें गिरकर तीरने लगे उन्हें
मणुसियों सेवारके धौलेमें लींच ले जाना चाहती है ॥ ४ ॥
लिले हुए कमलके समान सुन्दर अपने दोनों हाथ फैलाया
बिना रोक-टोकके निरन्तर जल उड्याली हुई मायिका पेशी जान
पड़ती है मानो पालकीडा करनेवाले (चमल) कामदेवके
माय्यरूपी स्रियिको जलका अर्घ्य दे रही हो ॥ ५ ॥ झौँतोंकी
खाली रोक रखनेके लिये स्रियोंने जो अञ्जन झौँलेमें अना
जिया था उसके घुल जानेपर भी वह झाली बनी रही,
जिससे झौँलोका उजलापन तो जाता रहा पर सुन्दरता
मिट पाई ॥ ६ ॥ स्रियोंके कानोंसे गिरे हुए नीले कमलकी
जहरोंने तीरकी ओर उड्याकर यह सञ्चेत दिया कि अति
अपना पुत्र भी नीचे गिर पड़े तो सञ्जनोंकी बारिफ कि रहे

हरणीयतामुरैति । कर्णम्यश्च्युतमसितोत्पलं घृणानां
 धीचीमित्तदमनु यन्निरासुरापः ॥ ७ ॥ आघर्तेशोभा
 नतनामिकान्नेर्मङ्गयो भ्रूयां ऽण्डचराः स्तनानाम् ।
 जातानि कपाचयथोपमानान्यदूरचरानि विलासिनीनाम् ॥
 ८ ॥ आसां जलास्फालनवत्पराणां मुक्ताफलरूपधिपु
 शीकरेषु । पयोघरोत्सर्पिषु शौर्यमाणः सैल्लक्ष्यते न
 च्छुदुरोऽपि द्वारः ॥ ९ ॥ आस्माको युयतिदशमसौ
 तनोति च्छ्यायैव श्रियमनपायिनीं किमेभिः । मर्त्यैषं
 म्यगुणधिषानसाभ्यस्यैः पानीयैरिति विदधाचिरेऽञ्ज-
 नानि ॥ १० ॥ उदस्य धैर्यं दक्षितेन सादरं प्रसादितायाः
 कस्यारियारितम् । मुपुं निर्मालप्रयनं ननभ्रुयः श्रियं
 सपत्नीददनादधाददे ॥ ११ ॥ उदम्यकेश्च्युतपत्र-
 लेखो विदशेपिमुक्ताफलपत्रवेष्टः । मनोत्पन्न प्रमदासु-
 खानाममभोविहाराकुलितोऽपि वेपः ॥ १२ ॥ उन्मुष्ट-

पद्माः कलितालकान्नाः कश्येपु लम्बा जयनं मृगान्तः ।
 स्तनस्थलेष्वामिनामिदाधना गता घृणानां म्रियतां
 जलांघाः ॥ १३ ॥ एतस्याः करिकुम्भमधिमुच्यन्ना-
 म्भारपृष्ठे सुदशुद्रागमर्गजेन्द्रमीकिरुमश्रेणीमनोहा-
 रिणी । दुराद्रेय तरङ्ग एव पतितो देगादिलीनः फयं
 को वाय्मोऽपि विलीयते न सरसः सोमन्तिनीसङ्गम
 ॥ १४ ॥ एताः करोत्पीडिनवारिधारा दपांसघोमि-
 र्घदनेषु सिक्ताः । यन्तेतराप्रैरलकैस्तक्यपद्मूणादपा-
 न्यारिलवान्यदन्ति ॥ १५ ॥ एता गुरुभ्रांरिपयाचर-
 त्यादात्मानमुद्धोद्धुमशकृपत्यः । गाढाद्दशैषांहुमिरप्यु-
 पालाः ज्ञेयोत्तरं रागघशात्सयन्ते ॥ १६ ॥ करां
 युवानां नचपल्लवाकृती पयस्यगाये किल जातस-
 न्धमा । सखीषु निर्वाच्यमघापर्ष्यर्द्धपतं म्रियाङ्गसंश्ले-
 पमवाप माननी ॥ १७ ॥ कस्याश्चिन्मुच्यते धातपत्र-

अपने पाससे हटा दें ॥ ७ ॥ जलक्रीड़ा करनेवाली स्त्रियोंके
 अङ्गोंके समान वायुपूँ वही आस-पास दिग्दर्श दे रही थी क्योंकि
 जलमें घड़ी हुई और उनकी गहरी भाँसिके समान थी, लहरें
 मौहोंके ममान और चक्की-चक्के स्तनोंके समान थे ॥ ८ ॥
 जलक्रीड़ा बरती हुई स्त्रियाँ जय हाथसे पानी धपपयाने लगीं
 और मोतीके ममान जलकी बूँदें उनके स्तनोंपर उड़ाने
 लगीं तो उनके द्वार टूटकर गिरर गए पर उन पानीकी
 घुँसोंके घोषमें द्वारका टूटना और मोतियोंका गिरना किसीकी
 दिग्दर्श न पदा ॥ ९ ॥ अपनेमे उपजाई हुई निर्मलताको उपानेवाले
 शौजनसे दाह करके ही मानो जलने जलक्रीड़ा करनेवाली
 नवेलियोंकी शौनमें लगे हुए शौजनको यह समझकर धो
 दाबा कि जय हमारी दी हुई शोभासे ही स्त्रियोंकी शौनमें
 सुन्दरता भरी हुई है तब शौजनकी आयरपकना ही क्या
 है ॥ १० ॥ रुठी हुई मियतमाको देखकर प्रियतमाका धीरज
 टूट गया और उसने बड़े आदरके साथ अपनेहाथोंमें मियतमाके
 मुखपर पानी उड़ाकर उसे प्रसन्न कर लिया, उस समय
 पानीके छीटे पड़नेसे उसकी शौन मुँदी जा रही थीं यतः
 बौकी भीहँसवाली उस सुन्दरीका मुख सहसा ऐसा सुन्दर जान
 पया मानो सौताके मुपोंकी सारी सुन्दरता उसके ही मुखपर
 था छाई हो ॥ ११ ॥ जलक्रीड़ा करते समय स्त्रियोंके जूँदे खुल
 जानेमे उनमें गुपे हुए पल्लवके मोचे गिरर गए और मोती
 अलग जा गिरे इस प्रकार उनका वेष्टा तो पहल्ले-सा नहीं रह
 गया फिर भी उनका मुख उभोका यों सुन्दर बना रहा ॥ १२ ॥

जलक्रीड़ा करते समय जलके प्रवाह भी स्त्रियोंके म्रिय (पति)
 बन गए क्योंकि उन्होंने स्त्रियोंके शरीरको रगदर उसपर
 बने हुए वेष्ट-भूटे धो दिए, उनकी लटकती हुई चोटियाँ धान
 लीं, उनके गलेसे लिपट गए, उनके जयन-भागको दू दिए
 और स्तन भी धपपया दिए ॥ १३ ॥ जलक्रीड़ा करते समय
 स्त्रियोंकी धानीपर हाथोंके मन्मकके समान उठे हुए तथा
 घुँसियोंके रङ्गी गजमुच्छ्रांशोंकी हिलती हुई माछामे सजे
 हुए बड़े-बड़े स्तनोंपर एक लहर दूरमे आकर उनमे टकरा
 कर तन्वाल गिरर गईं । ठीक ही है, कौन ऐसा रसिक है जो
 सर्जी-पत्री नवेलीका सनागन पाकर अपनेको उसपर न्योड़ावर
 न कर दे ॥ १४ ॥ जलक्रीड़ा करते समय नवेलियोंहाथमे पानी
 उड़ाकर-उड़ाकर बड़े गर्बके साथ अपनी जिन सन्धियोंके
 मुपपर पंक रही हैं उनको मींगी और साँघी लटकी हुई
 चोटीके बालोंमें लगे हुए लाल-त्राल चूँपे मिलकर लजकी
 बूँदें लाल-लाल होकर उफर रही हैं ॥ १५ ॥ वो लक्ष्मियों
 पड़े-बड़े नितम्ब और स्तनोंके कारण चल-फिर भी नहीं सकतीं
 धीं वे तैरनेके वायमे अपनी सुजवन्दये कर्मा हुईं बौहें बड़ी
 बढिनाईसे फेंक-फेंकर पानीमें तैर रही हैं ॥ १६ ॥ एक
 रुठी हुई नवेली गहरे पानीमें घुसकर ऐसे हाथ हिलाने लगीं
 मानो बवरा गई हो और वह ऋतु अपने पतिके शरीरसे ऐसे
 लिपट गईं मानो हृदयके डामे उने पकड़ लिया हो । ऐसा
 दशामं न तो सन्धियोंके बीच उरसों हैंसो ही उड़ाई गईं कि
 यह रुने चक्की भी और न दिखाईका ही दोष लगा कि यह

लेपं व्यातेने सलिलभराबलभ्रिनीभिः । किञ्चलकन्य-
तिकरपिञ्जरान्तराभिश्चिन्नधरीरलमलकाग्रवल्लरोभिः
॥ १८ ॥ किं तावत्सरसि सरोजमेतद्वाराद्वाहोस्विन्मु-
राममभासते तरुण्याः । संशय्य क्षणमिति निश्चिकाय
कश्चिद्विद्ध्योवैर्बकसहवासिनां परोक्षैः ॥ १९ ॥ गतेः
सद्वाहैः फलहंसविभ्रमं कलत्रभारैः पुलिनं नितम्बिभिः ।
मुदीः सरोजानि च दीर्घलोचनेस्सुरस्त्रियस्साम्यगुणा-
न्निरासिरे ॥ २० ॥ जलविलुलितयस्त्रय्यकनिन्नोन्न-
तभिः परिगततटभूमिस्त्रानामत्रोत्थिताभिः । कनक-
रुचिरकुम्भधूमदाभोगतुङ्गस्तनविनिहितहस्तस्वस्ति-
फाभिर्वधुभिः ॥ २१ ॥ तथा न पूर्वं कृतभूषणदरः
प्रियापुरागेण विलासिनीजनः । यथा जलाद्रौ नख
मण्डनधिया ददाह दृष्टीश्च विपद्योपिताम् ॥ २२ ॥
तिरोहितान्तानि नितान्तमाह्लुरेयां विगाहादलकैः

नवके सामने अपने पतिसे लिपट गई ॥ १७ ॥ जलक्रीडाके
समय किसी नवेलीके मुखपर चींती हुई चित्रकारी तो घुब
गई पर पानीके बोक्से सीधी लटकी हुई और फूलका केशर
लगनेसे पीली बनी हुई चोटोसे उसके मुखकी शोभा और भी बढ़
गई ॥ १८ ॥ कमलसे भरे हुए जलाशयमें नहाती हुई नवेलीका
मुख देखकर रिंसीका यह सन्देश हुआ कि यह कमल है या किसी
नवेलीका मुख, पर जब उसने देखा कि बगुलोके साथ रहनेजाले
कमलमें यह शोभा कहाँ था सकती है तब उसकी समझमें
आया कि यह सपमुच नवेलीका मुख ही है ॥ १९ ॥ नदीमें
स्नान करनेवाली नवेलियोंने अपनी घटक मटक भरी थालसे
हँसीकी थालका, अपने भारी फँसे हुए नितनयसे नदीके
तटके और अपनी बड़ी बड़ी आँसुवाले मुखसे कमलोजाँ हरा
कर दिया दिया कि तुम हमारी बया बराबरी करोगे ॥ २० ॥
स्नान करनेके परधाय गिन नवेलियोंके जलसे भांगे हुए वस्त्र
शरीरमें लिपट जानेसे उनके सभ ऊँचे नीचे भाग स्पष्ट दिखाई
दे रहे हैं वे सानेके सुन्दर शरीरके समान अपने सुन्दर तथा
ऊँचे स्नानकी दोनों भुजाओंसे स्वमिक बनाकर दबती हुई
तटकी घोर पत्ती भा रही हैं ॥ २१ ॥ पतिके प्रेमके कारण
गहनीमें लगी हुई नवेलियोंको देखकर उनकी सौतोंको उतना
दुःख नहीं होभा था जितना कि नहानेपर दिग्दर्शनेवाले
गलके पिच्छ उनकी आँसुमें गटखते थे ॥ २२ ॥ जलमें डुबकी
लगानेसे गिर्योंके बिन्दु हुए बाहोंमें बका हुआ उनका मुख
देगा जात पढ़ मानो आँसुमें गिरा हुआ कमल हो ॥ २३ ॥

प्रसारिभिः । ययुर्वधूनां वदनानि तुल्यतां द्विरेफनुन्दा
न्तरितैः सरोक्षैः ॥ २३ ॥ तीरस्थलीर्षद्विभिरुत्त-
लापैः प्रक्षिण्यकेकैरभिनन्द्यमानम् । श्रोत्रेषु सम्मुञ्च्यति
रक्तमासां गीतानुगं धारिमुद्गुवाद्यम् ॥ २४ ॥ दन्ता
नामधरमयावकं पदानि प्रत्यग्रास्तनुमविलेपना
नखाङ्काः । आनिन्धुः श्रियमघितेयमङ्गनानां शोभायै
विपदि सदाश्रिता भवन्ति ॥ २५ ॥ द्युतिं वहन्तो वनि
तावतंसका हृताः प्रलोभादिव धेगिभिर्जलैः । उपप्लु
तास्तत्क्षणशोचनीयतां च्युताधिकाराः सचिवा एषा
ययु ॥ २६ ॥ नारीभिर्मुञ्जघनस्थलाहृतानामास्यधौ
विजितविकासिवारिजानाम् । लोलत्वादपहरतां तद
ङ्गरागं सञ्ज्वे सकलुप आशयो जलानाम् ॥ २७ ॥
निजमियमुखश्रान्त्या हर्षेणाच्युम्बदम्बुजम् । दृष्टाधरा
तु भृङ्गेण सीत्कारमकरोन्मुदु ॥ २८ ॥ निमीलदाक्षेकर

जलक्रीडा करते समय गाती हुई स्त्रियोंकी तानसे वाक मित्रका
बोलता हुआ जलका मुद्गुन जैसा शब्द इतना भला जान
पड़ता है कि तीरपर बैठकर मधुर बोली बोलनेवाले मोर पक्ष
उठा उठाकर उसका अभिनन्दन कर रहे है ॥ २४ ॥ मय पीनेवाला
स्त्रियोंके श्रोतोंकी मदकी लाली तो जल-क्रीडासे छूट गई
पर दौतोंके चिह्नोसे ही वे सुन्दर दिखाई देते गये ।
इसी प्रकार शरीरपर युता हुआ चन्दन तो छूट गया पर
नदोंके चिह्नोसे उनकी शोभा बनी ही रही । ठीकही है,
सज्जनोंके सहारे रहनेवाले लोगोंकी शोभा विपत्तिमें भी बनी
रहती है ॥ २५ ॥ जलक्रीडाके समय उद्यलते हुए बलने मान
लोभसे स्त्रियोंके कानपर बसे हुए जो फूल सींचे लिपट
पानीपर बैठते हुए उस मन्त्रीके समान दयनीय दिखाई देने
लगे जो अपने अधिकासे गिरा दिया गया हो ॥ २६ ॥ जो
जल स्त्रियोंके चोदने जघनसे टकरा रहे थे, जिसमें लिपट हुए
कमल नवेलियोंके मुखकी शोभासे हार सा रहे थे और जो
अपनी चञ्चलतासे स्त्रियोंके शरीरपर लगे हुए केसरके रङ्ग
रंगे जा रहे थे, वेसे जलों (जड़ों, मूलों) का धारण (रवान,
मन) धारण जलाशय, कलुप (चञ्चल, काळा) हो गया
॥ २७ ॥ जलक्रीडाके समय एक नायिका कमलको अपने
प्रियका मुख जानकर जब प्रसन्नतासे घूमने लगी और उसमें
बैठे हुए आँसुने उसका चोट काट लिया तब वह उसे अपने
प्रियका दन्तवज समझकर ही धीरे धीरे सी-सी करने लगी
॥ २८ ॥ जलमें अपने पतिके साथ डुबकी लगना लगनी

लोलचक्षुषां मियोपकरुणं हृत्तगात्रयेपथुः । निमज्जतीनां
भ्यसितोद्धतस्तनः श्रमो तु तासां भद्रानो तु पमये
॥ २६ ॥ निजानामिहुरेपु यदग्मः प्राधितं चलदृशां
सहरीभिः । तद्वैः कुहुरुतैः सुरनार्यैः स्मारिताः
सुरतकण्ठयतानाम् ॥ ३० ॥ निरखने साचिविलोकितं
दृशाचयामयकं वेपथुरोष्टपः धम् । नतध्रुवो मण्डयति
स्म विग्रहे बलिफ्रिया चातिलकं तदास्पदम् ॥ ३१ ॥
निरोध्य वेणीप्रतिविम्बेणीदृशो भुजङ्गभ्रमभावहन्त्यः ।
पतदुकूलं ध्रुतवाहूमूलं भ्रमप्रापकम्पाकुलिताः प्रचलुः
॥ ३२ ॥ निर्धैते सति हरिचन्दने जलाधैरापाण्डोगत-
पत्मागवाङ्गनाथाः । अहाय स्तनकलशद्वयादुरये
विच्छेदः सहदभयेय द्वाख्यप्यः ॥ ३३ ॥ परिस्फुरन्मी-
नविद्यद्वितोरचः सुराङ्गनास्त्रासचिलोलदृश्यः । उपा-
ययुः कम्पितपाणिपल्लवाः सखीजनस्यापि यिलोकनी-

यताम् ॥ ३४ ॥ पर्यच्छे सरसि हृतं शुक्रे पयोमिलो-
लाहे सुरनगुरावपप्रपिण्डोः । सुधोण्या दलयन्तेन
वीचिदस्तन्यन्तेन द्रुतमहृताञ्जिनीमपिन्यम् ॥ ३५ ॥
प्रधष्टैः सरभसमभसोऽप्यगाह्रुकोडानिर्विद्वलिनयूधि-
कापिशङ्गैः । आकलयैः सर्गसि द्विरगमयैर्धुनामीयां-
भिद्यनिशकलैरिय व्यराजि ॥ ३६ ॥ प्रशान्तघर्षोमिमयः
शर्नयियान्विलासिनोभ्यः परिमृष्टपङ्कजः । ददां मुजा-
लम्बमिधात्तशोऽरुस्तरङ्गमालान्तर्गोचरोऽनिलः ॥ ३७ ॥
मियेष सत्यग्र्य चिपलसत्प्रिधावुपाहितां यत्सिमिपीयर-
स्तने । स्रजं न काचिद्विजदां जलायिलां यसान्नि हि
प्रेमिण गुण न यस्तुनि ॥ ३८ ॥ मियेष सिक्ता चरमं
चिपलतश्चुकोप काचिन्न तुनोप सान्धनैः । जनम्य
रूढप्रणयस्य चेतसः किमप्यमर्षोऽनुनये मृशायते
॥ ३९ ॥ मिथैः सलीलं करचारिचारितः प्रवृद्धनिःश्यास-

नहानेवाली और कुछ निपी हुई तथा चञ्चल शौंखावाली
स्त्रियोंके शरीरको जो कँपा रहा था और बढ़ी हुई साँसे
उनके स्तनोंको उधाले दे रहा था वह परिश्रम था या कामदेव,
या वह समझमें नहीं आया ॥ ३१ ॥ स्नान करते समय
चञ्चल नयनोंवाली स्त्रियोंकी गहरी नाभिपर उठरानेवाली
लहरिते जो शब्द निकला उसे सुनकर देवियोंकी सुरतके
समय अपने गलेसे निकलनेवाली ध्वनिका स्मरण्य हो आया
॥ ३० ॥ स्नानके पश्चात् शौजन शुली हुई शौंखोंको
तिरछी चितवनने, महावर घूटे हुए श्रोतको कम्पनने
और घूटे हुए तिलकवाले ललाटको सिङ्गडनने मिलकर
उस नवेलीके पूरे शरीरको सुन्दर बना दिया ॥ ३१ ॥
नदीमें स्नान करती हुई मृगनपनी स्त्रियोंने जलमें पड़ी हुई
अपनी चोटीकी परदाहीकी साँप समझ लिया और इस
घोलेमें डरकर योंही फँकती हुई, कँपती हुई, घबराकर बूढ़ी-
फाँदती इस वेगसे जलसे बाहर निकल आई कि ठन्ढीने
लिखकर गिरते हुए अपने बरसीकी भी चिन्ता नहीं की ॥ ३२ ॥
जलके प्रवाहसे रमणीके शरीरपर लगे हुए जाल चन्दनके
घूटनेसे उनका स्नान ऐसा उजवा हो गया कि उसपर लटके
हुए उजले हारकी सारी शोभा जाती रही, हसीलिये मानो वह
हार, जान-भूझकर ही तुल्य टूटकर छिटा गया ॥ ३३ ॥
जलमें उड़लती हुई मधुबियोंकी उसक अपनी जाँघपर लागनेसे
घबराकर जिनकी शौंखें चञ्चल हो गई थीं और जिनके हाथ
काँप रहे थे, वे नवेलियाँ अपनी सन्मियोंको भी उस समय बढ़ी

सुन्दर लँच रही थीं ॥ ३४ ॥ निर्मल जलवाली नदीमें जलके बहावमें
जब नायिकाके वस्त्र घूटकर गिर गए तब उभे देवनेके लिये उनके
नायककी शौंखें मचल उठीं । वह देवकर सुन्दर नितम्बवाली
नायिका बलित हो गई और उस समय कमलने अपने सरङ्ग
रूपी हाथसे अपने पत्थररूपी वस्त्र देकर उस नवेलीके साथ
अपना सखीपन निमा दिया ॥ ३५ ॥ निर्मल जलमें हुबकी
लगाते समय स्त्रियोंके लिखाई हुई जूहीके समान पीले-पीले
सोनेके गहने अचानक बुल-बुलकर जो पानीमें जा पड़े वे
उसमें बद्धानलकी लपटोंकी भाँकोंके समान दिखाई दे रहे थे
॥ ३६ ॥ धूपकी तपन कम करनेवाला, कमलसे घटनेलिपी
करनेवाला, कुशारोंसे भरा हुआ तथा लहरोंके बीच घुसकर
पीरे-पीरे बहता हुआ पवन ऐसा जान पड़ता है मानो
जलक्रीड़ा करती हुई स्त्रियोंको हाथका सहारा दे रहा हो
॥ ३७ ॥ अपनी नवेलीकी सीतको देखते ही पतिने एक माळा
गुँथकर अपनी नवेलीके मोटे मोटे स्तनोंवाली छातीपर पहना
दी, यद्यपि वह माळा पानीमें भीगकर फीकी पड़ गई थी फिर
भी नायिकाने उभे नहीं उतारा क्योंकि गुण तो प्रेममें रहते हैं,
बस्तुमें नहीं ॥ ३८ ॥ जलक्रीड़ा करते समय नायकने अपनी नवेलीकी
साँतपर पहले जल उधाला और उसके पश्चात् उस नवेलीपर
उधाला इससे वह नवेली इतनी रूठ गई कि मनानेमें भी न
मानी क्योंकि जब अचान्त प्रेममें मरे हुए किसीके मनमें क्रीप
भर आता है तो वह मनानेपर और भी बड़ जाता है ॥ ३९ ॥
निज नवेलियोंको उनके पनियाने बड़े प्रेमसे पानी उधालकर

विकम्पितस्तनः । सविभ्रमाधृतकराग्रपङ्क्तयो यथाध-
 तामाप विलासिनोजनः ॥ ४० ॥ भयादिवाश्लिष्य
 भगाद्वहेऽम्भसि प्रियं मुदानन्दयति स्म मानिनी ।
 अरुप्रिमप्रेमखाहितैर्मनो हरन्ति रामाः कृतकैर्पी-
 दितैः ॥ ४१ ॥ योग्यस्य त्रिनयनसौचनानलार्चिर्निर्दग्ध-
 स्मरधृतनाघिराज्यलक्ष्म्याः । कान्तायाः करकलशो-
 घतैः पयोभिर्वक्त्रेन्दोररुत महाभियेकभेकः ॥ ४२ ॥
 ललितमुरसा तरन्ती तरलतरङ्गौघचालितनितम्ब्या ।
 विपरीतरतासका किमदृश्यत सरसि या सख्या ॥ ४३ ॥
 विगाढमात्रे रमणाभिरम्भसि प्रयत्नसम्बाहि-
 तपीथरोरभिः । विभिद्यमाना चिससार सारसानुदस्य
 त्तिरेपु तरङ्गसंहतिः ॥ ४४ ॥ विधूतकेशाः परिलालित-
 स्रजः सुराङ्गानां प्रविलुत्तचन्दनाः । अतिप्रसङ्गादि-
 दितागता मुहुः प्रकम्पमीयुः सभया इवोर्मयः ॥ ४५ ॥

विपद्चिचोन्मथना नखव्रणास्तिरोहिता विभ्रम-
 एडनेन ये । हृतस्य शेषानिव कुङ्कुमस्य तान्विकल्प-
 नीयान्दधुरन्मथा स्त्रियः ॥ ४६ ॥ विपद्गलेखा निरल-
 ककाधरा निरञ्जनाक्षीरपि विघ्नती । धियम् । निरोक्ष
 रामा वुवुधे नभश्चरैरलङ्कृतं तद्गुपैव मरुडनम् ॥ ४७ ॥
 विभिन्नपर्यन्तगामीनपङ्क्तयः पुरो विगाढाः सखिभिर्-
 रत्नतः । कथञ्चिदापः सुरसुन्दरोजनैः सर्भीतिमित्त
 त्रयमं प्रपेदिरे ॥ ४८ ॥ विहस्य' पाणौ विधूते धृता
 म्भसि प्रियेण वध्या मद्नाद्र्येतसः । सखीव पाञ्चो
 पयसा घनीकृता वभार धीतोश्चयवन्धमंशुकम् ॥ ४९ ॥
 शिलाघनेनांकसदासुरःस्थलेर्षुहनिवेशश्च वधूपयोधरैः ।
 तटाभिनीतेन विभिन्नवीचिना रूपेव भेजे कलुपत्वम
 म्भसा ॥ ५० ॥ शुभाननाः साम्बुकुहेपु भीरवो विलो
 लहाराश्चलफेनपङ्क्तपु । नितान्तगोप्यो हृतकुङ्कुमेपुलं

रोका, जिनकी बड़ी हुई साँससे उनके स्तन हिल रहे थे, जो
 धरयन्त हाव-भावके साथ अपने हाथ कँपा रही थीं उन
 स्त्रियोंका विलासिनी (अठथेलियोंसे भरी) नाम सच्चा हो
 गया ॥ ४० ॥ जलमें पहुँचनेपर जैसे ही रुठी हुई नायिकाके
 शरीरमें कोई मधुरी छू गई जैसे ही उसने चरफा बहाना लेकर
 ऋतु अपने पतिसे लिपटकर उसे प्रसन्न कर लिया । सच्चे
 प्रेमसे भरी हुई स्त्रियोंका बनावटी व्यवहार भी बड़ा लुभावना
 होता है ॥ ४१ ॥ किसी नायकने अपने हाथरूपी कलशसे
 उठाए हुए जलसे भायिकाके मुखरूपी चन्द्रमाका यह समझकर
 भलोभाँति अभिप्रेक किया कि शङ्करके नेत्रोंकी अभिक्री लपटसे
 जले हुए कामदेवकी सेनाका सेनापति बनने योग्य यही
 (मुख) है ॥ ४२ ॥ जिस समय वह नवेली पानीमें धरयन्त
 मस्तीके साथ क्षातीके बल तैर रही थी वीर चञ्चल लहरोंमें
 उसका नितम्ब हिल रहा था, उसे देखकर उसकी सखीको
 ऐसा प्रतीत हुआ मानो वह विपरीत रतिमें लगी हुई हो
 ॥ ४३ ॥ जब नवेलियाँ अपने मोटी जाँघें उठा-उठाकर बड़ी
 कठिनाईसे जलमें शुर्नी उस समय जलमें उठी हुई जहरें
 सास पपियोंकी बहाकर तीरकी चोर हटा ले गईं ॥ ४४ ॥
 जलकीटा करते समय कँपती हुई लहरोंको देखकर ऐसा जान
 पड़ता था मानो पहले तो उन्होंने नवेलियोंके बाल हिलाए,
 फिर उनके गंधेकी मालाएँ हिलाई थीं फिर उनके शरीरपर
 गुला दूमा चन्दन पाँ दिया । इस प्रकार बार बार चरफाप
 करनेसे ही वे चर गईं ॥ ४५ ॥ केशरकी छायामें दिपे

हुए जिन नव चिह्नोंको देखकर मन जल उठते थे, वे केशके
 धुल जानेपर ऐसे जान पड़ते थे मानो केशरका कुट्ट बंधनी
 धुल पाया । यद्यपि वे उस समय उतने सुन्दर नहीं थे फिर
 भी ऐसे लुभवाने लग रहे थे कि कहा नहीं जाना ॥ ४६ ॥
 जलमें स्नान करनेसे जो नवेलियाँ शरीरपर बनी हुई सारी
 चित्रकारीके धुल जाने, श्रोतका महावर टूट जाने की
 श्रॉखोंका श्रॉजन धुल जानेपर भी पहलेकी-सी ही सुन्दर
 जान पड़ती थी उन्हें देखकर देवताओंने सोचा कि इसका
 तो सारा शरीर ही आभूषणोंका काम कर रहा है ॥ ४७ ॥
 इन्द्रकी प्यारी अप्सराएँ जैसे ही जलमें घुसनेको चलीं वैसे ही
 जलाशयमें उद्दल-उद्दलकर भागती हुई सारी मधुलियोंके
 देखकर वे ऐसी दर गईं कि बड़ी कठिनातासे किसी-दिकी
 प्रकार वे जलमें घुस पाईं ॥ ४८ ॥ जलकीटाके समय जब
 मियतमने हैसकर पानी उड़ावती हुई नायिकाका हाथ पक
 लिया तब उसका मन कामके वेगसे मचल उठा, जिसने
 उसकी सादीकी गाँठ गुल तो गईपर पानीमें भीगनेके कारण काँ
 पड़ी हुई करघनीने सखी बनकर उस सादीको गिरा देनेके रूप
 लिया ॥ ४९ ॥ चट्टानके समान बठोर देवताओंकी धारोंने क्या
 स्त्रियोंके विशाल स्नानसे टकराकर पानीकी बहरें तीरत
 पहुँचकर टूट गईं इसीलिये मानो प्रोथित होकर जब बहूनि
 (चुप, गन्धला) हो गया ॥ ५० ॥ जलकी चञ्चल बहारी
 कीटा करती हुई नवेलियाँ उन जहरोंसे किसी प्रकार बच
 नहीं थी क्योंकि जलकी तरङ्गोंने जैसे जैसे हुए बमक वि

न लेभिरे ताः परभागमूर्मुपि ॥ ५१ ॥ श्रिया हसद्भिः
कमलानि सस्मितैरलङ्कृतान्भुः प्रतिमागतैर्मुपैः ।
कृतानुकुल्या सुरराजयोपितां प्रसादसाकल्यमवाप
जाह्वयी ॥ ५२ ॥ पयसि पुनर्मदैभकुम्भश्रीमाजा कुच-
युगलेन नीयमाने । विश्लेषं युगमगमद्रघाङ्गनासोर-
द्वृत्तः क इव सुधावहः परेषाम् ॥ ५३ ॥ सन्दष्टय-
रूप्यवलयानितम्बेष्विन्दुप्रकाशान्तरितोद्भुतल्याः । अमी
जलापूरितसूत्रमार्गं मौनं भजन्ते रशनाकलापाः
॥ ५४ ॥ सीगन्धर्वं दधदपि फाममङ्गनानां दूरत्याद्गतम-
हमाननोपमानम् । नेदीयो जितमिति लज्जयेव तासा-
मालोले पयसि महोत्पलं ममज्ज ॥ ५५ ॥ चान्तीनां
मृद्धमलोद्विन्दुचित्रौ रेजाते चरिचरदशामुरोजकुम्भौ ।
द्वाराणां मणिमिषाप्रथितौ समन्तादुत्सृष्टैर्गुणवदुषमका-
म्ययेव ॥ ५६ ॥ हृतोऽङ्गरागस्तिलकं विमृष्टं लघ्वान्त-

रैरेभिरतीय मत्वा । सुसंहितेनेति तदा जलानामद्रपि
मध्यं न कुचद्वयेन ॥ ५७ ॥ इयामसि व्यसन्यधूकरा-
हते रयं मृद्धमन्धनिधीरमुज्जति । मुहुः स्ननेस्ताल-
समं समाददे मनोरमं नृत्यमिव प्रवेधितम् ॥ ५८ ॥
प्रपापालिका—अङ्गुल्यप्रनिरोधतस्तनुतरां धारा-
मियं कुर्यती कर्कर्या नितरां पयोनिपुषिका दातुं
प्रपापालिका । विश्लिष्टाङ्गुलिना करेण दशनापीडं
शनेः पान्य हे निस्पन्दोर्ध्वघिलोचनस्त्वमपि हा
जानासि पातुं पयः ॥ १ ॥ कस्येयं तरुणि प्रपा पथिक
नः किं पोयतेऽस्यां पयो घेनूनामथ माहिरं पथिक रे
घारः कथं मङ्गलः । सोमो घाय शनेश्चरोऽमृतमिदं
तत्तेऽधरे दृश्यते भो भोः पान्य विलाससुन्दर सखे
यद्रोचते तरिपय ॥ २ ॥ गन्तुं सत्वरमीहसे यदि
पुनर्व्यालोलवेणीलतां द्रष्टुं वा स्वकुटुम्बिनीमनुदिनं

रहे थे वैसे ही इनके चरे हुए सुन्दर गुण भी थे, लहरोंमें
उजला फेन जहरा रहा था सो इनकी द्युतीपर उजले-उजले
हार हिल रहे थे और उधर लहरें उजली थीं तो स्वभावसे
ही गोरी थे नवेलियों केशर सुल जानेसे धीरे भी अधिक
गोरी निकल आई थीं ॥ १३ ॥ यदि गंगाजिने देवराज
इन्द्रकी देवियोंको अपना स्वच्छ जल भेंट करके उनपर
कृपा की तो उन्होंने भी अपने मुस्कराहटसे भरे तथा
अपनी शोभासे कमलोंकी हँसी उड़ानेवाले सुखोंकी परछाईं
गङ्गाजीके जलमें डालकर उस जलकी शोभा बढ़ाकर उसका
बदला चुका दिया ॥ १२ ॥ विशाल हाथीके मस्तककी शोभा
धारण करनेवाले नवेलियोंके स्तनोंने जब पानीको घँघोलकर
खजल कर दिया उस समय पास-पास सतकर बैठे हुए चक्की-
चक्के भी अलग-अलग हो गए क्योंकि अहङ्कारियोंके किसीको
सुख नहीं मिलता ॥ १३ ॥ स्नान करनेसे नवेलियोंके
निवन्धनपर वस्त्र चिपक गए हैं । तितम्बपर पड़ी हुई
करधनी के हँसुरुशोंका मुँह पानीसे भर जानेके कारण उनमें
रुनरुन नहीं हो रही है, अतः उस समय वे ऐसे दिखाई
दे रहे हैं मानो चन्द्रमाकी चाँदनीसे दूधे हुए सारे हों ॥ १४ ॥
खजल जलमें दूधे हुए कमलको देखकर ऐसा प्रतीत होता है
मानो वह इस लज्जासे हूब गया हो कि जबतक मैं दूध था
तबतक अपनी पुरान्धके कारण मैं ब्रिचोंके मुलका उपमान
बना हुआ था पर उनके पास अपनेपर मैं उनके मुखसे हार
गया हूँ अतः अब क्या अपना मुँह दिखाऊँ ॥ १५ ॥ स्नान

करती हुईं सुनपनी नवेलियोंके बड़े-बड़े स्नानपर पड़ी हुईं
पानीकी बड़ी-बड़ी बूँदें ऐसी जान पड़ती थीं मानो बोता
दूट जानेपर भी सुन्दर स्थान पानेके खोमसे हारके मण्यि
घारों और लिपटे पड़े हों ॥ १३ ॥ नवेलीके घ्राणसमं अन्यत
सठे हुए दोनों स्तनोंने ललको मानो इन क्रोपसे बीचमें
घानेका अबसर नहीं दिया कि इसने अबसर पाकर शरारमें
जगी हुईं केशरकी जाली पाँधु बाजी और तिलक भी घो
बहाया ॥ १४ ॥ लज-क्रीड़ा करनेवाली नवेलियोंके हाथमें
थपथपाए जानेपर जलाशयके जलमें मृद्धकों-सी घमक उठ
रही थी । उस समय दिलते हुए स्तन ऐसे जान पड़ते थे मानो
तालके साथ-साथ नाचने लगे हों ॥ १५ ॥
प्याऊवाली : यह प्याऊवाली नवेली पानी पिलानेमें
बड़ी चतुर है इसलिये अपनी उँगलियोंसे गदुएकी टोंटी
रोककर पतली धारसे पानी पिला रही है पर हे पथिक !
तुम भी कम चतुर नहीं हो, तुम भी हाथकी उँगलियाँ चौड़ाकर,
दाँत दबाकर और एकटक ऊपर देखते हुए धीरे-धीरे पानी
पीना जानते हो ॥ १ ॥ यात्री और प्याऊवालीमें बात-चीन
हो रही है । यात्री : कहां नवेली ! यह किसका प्याऊ है ?
नवेली : मेरा है यात्री । यात्री : यहाँ क्या पिलाया जाता
है ? नवेली : पय (पानी, दूध) । यात्री : गायका या मँसका ?
नवेली : भरे यात्री ! बार (जब, सोमवार आदि दिन) ।
यात्री : मङ्गल, सोम या शनिवार ? नवेली : वह असुन
(जब, प्रसृत) है । यात्री : वह तो तुम्हारे अर्धरामें है ।

फान्तां समुत्कण्ठसे । तनुष्यन्नपि मुग्धमन्थरवलक्षे
 ग्रान्तरुद्धाध्वगामेतां द्रुत एव हे परिहर भ्रातः
 प्रपापालिकाम् ॥ ३ ॥ दूरादेव कृतोऽङ्गलिर्न तु पुनः
 पानीयपानोचितो रूपालोकनकौतुकाम्प्रचलितो मूर्धा
 न शान्त्या त्वयः । रोमाञ्जोऽपि निरन्तरं प्रकटितः
 प्रोत्या न शैत्यादपामन्नुणो विधिरध्वगेन विहितो
 वीक्ष्य प्रपापालिकाम् ॥ ४ ॥ दृशं प्रपापालिकया प्रका-
 शिते निवेशयन्कुम्भधिया कुचद्वये । विषेद पान्थः
 फलशात्परिच्युतां न चारिधारां मुखसङ्गिनीमपि ॥ ५ ॥
 पिवन्नमः प्रपापालीमनुरक्तं धिलोकयन् । अगस्त्यं
 चिन्तयामास चतुरस्सापि सागरान् ॥ ६ ॥ मध्याह्नं गमय
 त्यज भ्रमजलं स्थित्वा पयः पीयतां मा शून्येति विमुञ्च
 पान्थ विद्यशः शीतः प्रपामण्डपः । तामेव स्मर चस्म-
 रस्मरशप्रस्तां निजमेयसां त्वधिर्त्तं तु न रज्जयन्ति

नवेली : दे क्रीडांमं हुवाज मित्र यात्री । तुहें जो अच्चा
 लगे वही पीना ॥ २ ॥ हे भाई ! यदि शीघ्र घर पहुँचना
 चाहो और अपनी उस प्यारीकी प्रतिदिन देखना चाहो जिसकी
 चोटि वियोगमें सुजी पड़ी है तो प्याऊपर बैठी हुई उस
 नवेलीको दूरसे ही नमस्कार कर लो जिससे तुम सन्तुष्ट भी हो
 और जिसने अपनी सुन्दरचितवन फलाकर धाँपोंके दोरोंमें धीरे-
 धीरे सय यात्रियोंको बाँध लिया है ॥ ३ ॥ प्याऊवालीको
 देखकर यात्रीने जो उसे प्रसन्न करनेके लिये दूरसे ही अक्षजि
 बाँध ली, वह जल पीनेकी इच्छासे नहीं बरन् उसकी सुन्दरता
 देखकर, पानी पीकर उसने जो सिर हिलाया, वह प्यासकी
 शान्तिसे नहीं बरन् आश्चर्यमें पढ़कर और उसके शरीरमें जो
 शौंते उठे वे भी पानीकी शीतलतासे नहीं बरन् प्यारसे उठ पड़े
 हुए ॥ ४ ॥ कोई पीसरेपर पानी पिजानेवाली अपने दोनों
 स्तन उधाड़कर उन्हींके पास हाथ ले जाकर यात्रीको पानी
 पिजाने लागी, उन दोनों स्तनोंपर उस यात्रीकी दृष्टि पेशी
 गढ़ गई कि उसके पाससे हा निकलकर मुँहमें पदवी
 हुई जलकी घाटाका भी उसे भान न हुआ ॥ ५ ॥ पानी पीते
 हुए किसी चतुर यात्रीने अपने ऊपर रीमी हुई प्याऊवालीको
 देखते हुए आगस्य मुनिका ध्यान किया कि सब पानी सोख
 जाओ और उस प्याऊवालीने भी सयुद्धोंको स्मरण किया
 कि वह धारा कभी टूटे ही नहीं ॥ ६ ॥ प्याऊवाली किसी
 यात्रीसे कहती है—हे यात्री ! इस ठण्डे पीसरेमें थोड़ी देर
 दुपहरी बिताकर, पसीना सुगाकर और थोड़ा ठहरकर पानी

पथिक प्रायः प्रपापालिकाः ॥ ७ ॥ मध्याह्नेऽतिष्ठे
 निदाधसमये तापोऽध्वनो घर्तते शीते कुञ्जतटे विचि
 त्रविटपे भोः पान्थ विश्रम्यताम् । एकाकी च भवा-
 नहञ्च तद्वणी शून्या प्रपा घर्तते लज्जेऽहं द्रुयती स्वयं
 न चतुरो जानासि कालोचितम् ॥ ८ ॥ यद्योर्वाचः
 पिवत्यम्बु पथिको विरलाङ्गुलिः । तथा प्रपापालि-
 कापि धारां वितनुते तनुम् ॥ ९ ॥

श्रीधवायव — आध्मातोक्षतदावयङ्गिसुहृदः कौर्णो-
 ष्यरेणुत्कराः सन्तसाध्वगमुक्त्वेदविपमश्वालोष्णसंवा-
 दिनः । वृष्णात्ताजगरायतास्यकुहरक्षिमप्रवेशोक्तटा
 भ्रूमङ्गैरिच तर्जयन्ति पचना दग्धस्थलीकजलेः ॥ १ ॥
 कार्ज्वां कुञ्जयन्तो निजजरठरघष्यजितावीरकौशा-
 त्पाकान्कृष्णलानां पृथुसुपिरगताग्निभ्यिकान्पाट
 यन्तः । भिक्षीकामङ्गरीणां यधिरितकुकुभं भ्रूहृतं से

पीना, क्योंकि तुम थके हुए हो । मुझे थकेली समझकर यहाँसे
 बरकर भागो मत, पर हों, कामके तीले बाणोंसे बरी हुई
 अपनी उस प्यारीको मत भूलना क्योंकि मैं समझती हूँ, कि
 प्रायः प्याऊवाली स्त्रियों तुम्हारा मन नहीं लुभा पा सकती
 ॥ ७ ॥ प्याऊवाली कह रही है—हे यात्री ! गर्मीके दिन हैं,
 कड़ी दुपहरीका समय है, मार्ग भी तप रहा है इसलिये
 बलो, धरे नरे पेटोंकी ठण्डी छुँहमें थकावट मिटा लो, क्योंकि
 तुम भी थकेले हो, मैं भी सुवती हूँ, प्याऊ भी सूना है,
 मुझे भी कुछ कहते हुए लज्जा आ रही है, तुम स्वयं सम-
 दार हो और समझते ही हो कि इस समय क्या करना चाहिए
 ॥ ८ ॥ कोई यात्री यात्री ज्यों-ज्यों अपनी उँगलियाँ फँसकर
 प्याऊवालीकी ओर ऊपर थाँल उठाए हुए धीरे-धीरे पानी पी
 रहा है त्यों त्यों सतीली प्याऊवाली भी पानीकी धार पत्रती
 करके देरतक उसे पानी पिजाती जा रही है ॥ ९ ॥

गर्मीके पचन : ५-५ करती हुई आगकी छपटोंके सम-
 गरम-गरम धूल बिलेरनेवाली तथा तपे हुए यात्रियोंकी दुःख
 यरी भयङ्कर गरम सौंसके समान जो लू, प्यासे अजगके सु
 हुए मुसमें मुसनेसे और भी अधिक असह्य हो उठी है वह माने
 अलकर काली पड़ी हुई धरतीरूपी काजलवाली देवी मैं
 खरेकर लोगोंको डाँट रही है ॥ १ ॥ करजकी खटाको सहा
 कालनेवाली, अपने भयङ्कर शब्दसे धापीकी कठिनी खिजा देने-
 वाली, सुले हुए विद्याल भीदानमें पड़ी हुई सुँबपीकी कठिनीको
 पटका देनेवाली, अपनी पूँसेसे दिशाधर्मोंकी बरता कर देनेवाली,

क्षिपन्तः सिञ्जानाश्वत्यपत्रमकरभ्रूणभ्रूणाराधिवो
वान्ति वाताः ॥२॥ दलितकोमलपाटलकुड्मले निजयधू-
श्वसितानुविधायिनि । मरुति वाति विलासिभिव-
न्मदध्रमदलौ मदलौल्यमुपाददे ॥ ३ ॥ व्योमव्यालो-
लमुकाफलघवलगलद्दिन्द्रिसन्दोहगर्भानभोदान्मर्त्स-
यित्वा दिशिर्विधि शुचने भीतिमुद्रावयन्तः । एते
रक्षोमृगाक्षीगतलुलितमदक्षोभसंरम्भरुचा वाताः
पातालकुक्षिस्थितमपि सलिलं तत्तत्पानाद्गच्छयन्ति ॥ ४ ॥

श्रीधूपयिक्ता — श्रीधूमोष्मस्रोपयुप्यत्यसि चक्रभयो-
ञ्चान्तपाठीनभाजि प्रायः पद्भ्रूकमात्रं गतवति सरसि
स्वल्पतोये लुडित्वा । कृत्वा कृत्वा जलाद्रोहितमुत्सि
जरत्कर्षटाध्रं प्रपायां तोयं जग्ध्वापि पान्थः पथि वहति
हहा हेति कुर्वन्निपासुः ॥ १ ॥ आश्रयञ्चीत्कारचक्रभ्र-
मभरितघटीयन्त्रचक्रप्रमुकस्रोतःपूर्वमणालीपथसरणि-
शिरसासि सीत्कारि वारि । कौपं पान्थाः प्रकामं

शितमणिमुसलाकारविस्फारधारं विलिप्तसुगणमुक्ता-
फणिकरनिभासारपातं पियन्ति ॥ २ ॥ वाताकीर्ण-
विशीर्षीधीरणलणश्रेणीभ्रूणत्कारिणि श्रोत्रे सोष्मणि
चरडसूर्यकिरणपक्वाश्रमामान्मसि । चिचारोपित-
कामिनीमुत्तरशिज्योत्साहृतक्लान्तयो मध्याह्नेऽपि सुर्वं
प्रयान्ति पथिकाः स्वं देशमुत्करिडताः ॥ ३ ॥ सर्वान्या-
रुधि दग्धवीरुधि सदा सारङ्ग यद्गुर्धु चामदमारुहि
मन्दमुन्मथुलिहि स्वचन्द्रन्दकुन्दद्रुधि । शुष्यत्स्रोतसि
तप्तभूमिरजसि ज्वालायमानार्णसि श्रोत्रे मासि
तताकतेजसि कथं पान्थ व्रजञ्जीयसि ॥ ४ ॥

वर्षावर्षान्म् — अतिशयितकदम्बोऽयं मोदकदम्बा-
निलो वहति । वियदम्बुदमेदुरितं मे दुरितं पद्य
नागतो दयितः ॥ १ ॥ अत्यन्तकामाकुलसर्वरामा
लोकस्य लक्ष्म्याधृतपूरभदया । एषा सखि श्रावणजा
विमिश्रा हर्षविविश्रा भ्रुवमद्वितोया ॥ २ ॥ अथ

भोग्यरूपी डमरुकी मंकारको आकाशमें फैला देनेवाली और
पीपलके खडखडाते हुए सूले पत्तोंमें झन-झन करके चलनेवाली
ए बेगसे बह रही है ॥२॥ शुभाचकी कोमल कलियों खिला देनेवाले
तथा अपनी मारियोंकी सौंसके समान सुगन्धित और मन्द-मन्द
चलनेवाले जिस वायुकी और मतवाले भौरे दीदे जा रहे हैं
उसके बहते ही विलासी पुरुष मस्त हो गए ॥ ३ ॥ बज्रल
मोतियोंके समान उजली जलकी बँदें धारण किए हुए जो
बादल आकाशमें घाए हुए थे उन्हें फटकारती हुई, संसारके
कोने-कोनेको दराती हुई तथा गर्मसे जिनका प्रबल मद शान्त
हो गया है ऐसी राक्षसियोंके क्रोधसे मिलकर रुखी बनी हुई
ए इस समय पातालके जलको भी तत्काल सुसाए डाल
रही है ॥ ३ ॥

गर्माँके यात्री : जिस थोड़े जलवाले ताबावमें गर्माँकी
जलनसे पानी सूख गया है, जिसमें बगुलेके मयसे मछलियाँ
हथर-उभर भाग रही हैं और जिसमें केवल कीचद-भर रह गया
है, उसमें जाकर पहले तो यात्री लोटकर नहाया, फिर अपने फटे-
पुरानेपखका आधा भाग मिगोकर उसने अपनी छातीपर रक्सा
तथा प्याऊपर जाकर पानी पिया फिर भी उसकी प्यास नहीं
गई और अथ भी वह प्यासके मारे हाय-हाय कर रहा है ॥ १ ॥
धूम-धूमकर, चीं-चीं करते हुए और चनकेके समान चलते
हुए रश्मके भरे हुए घड़ेसे निकला हुआ जो दुर्बुका पानी
माखियोंमें भरकर हरहराता हुआ उजले मणिके मूसलके

समान लम्बी धारामें बहता हुआ, पीसकर बिखरे हुए मोतीके
पूरके समान उजला दिखाई पड़ता है उस जलकी यात्री
भरपेट पी रही है ॥ २ ॥ बायुके भौंकेसे बिखरे हुए उसमेंसे
बहकर झन-झन करता हुआ पानी भी जब प्रचण्ड सूर्यकी
किरणोंसे उबला-सा जा रहा है उस तपी हुई गर्माँकी दुपहरीमें
भी मनमें बसी हुई नवेलीके मुखरूपी चन्द्रमाकी चँदनीसे
जिनकी थकावट दूर हो रही है वे उत्कण्ठित यात्री सुखसे अपने
घर लौट रहे हैं ॥ ३ ॥ हे पथिक ! गर्माँके इन दिनोंमें
यात्रा करते हुए तुम कैसे जी रहे हो जब कि चारों ओर फीले
हुए और रिले हुए कुन्दके फूलोंसे भैर करनेवाले सूर्यके
प्रचण्ड तापसे सारी दिशाएँ उजड़-सी रही हैं, लम्बी-लम्बी
जलाएँ जल गई हैं, हरिये ऋषिसे खींक रहे हैं, पेंद-पींधे
खुलस रहे हैं, भौंरोंकी प्रसन्नता नष्ट हो रही है, भरने सुख
रहे हैं, धरतीकी धूल तप रही है और पानी तो इतना गरम है
मानो खौल रहा हो ॥ ४ ॥

बरसातका धूर्वन : हे सखी ! देखो कदम्बको लिलानेवाला
और मस्त कर देनेवाला बरसातका पवन बहने लगा और
आकाशमें बादल भी धिर धिरकर आने लगे पर मेरा दुर्भाग्य तो
देखो कि अमीतक भी मेरे प्रियतम नहीं लौट रहे हैं ॥ १ ॥ श्रावणकी
धूप-चूँह मिली वर्षा निश्चित रूपसे अनोखी होती है जिसमें
सय दिग्दर्शों कामसे व्याकुल हो जाती हैं और सब लोग अपनी-
अपनी गृहलक्षिमियोंके हाथसे बनाए घेवर खा-खाकर मस्त

नमसि निरीच्य व्यासदिक्चक्रवाले सजलजलदजालं
 प्राप्तहर्षप्रकर्षः । विहितविपुलवर्हाडम्बरो नीलकण्ठो
 मद्मद्दुकलकण्ठो नाट्यमहोचकार ॥ ३ ॥ अथ मन
 सिजद्विजयाभिर्गंसी जलधरदुन्दुभिराततान शब्दम् ।
 नदनु तदनुजोर्धिभिः कदम्बैः कवचित्तमुनदपट्टपद-
 षट्त्रलेन ॥ ४ ॥ अनुययौ विविधोपलकुण्डलद्युतिवितान-
 नकसंघलितांशुकम् । धृतधनुर्वलयस्य पयोमुचः शय-
 लिमा वलिमानमुषो वपुः ॥ ५ ॥ अन्योन्यवारिघटितौ
 घनधारिपाताङ्गीतौ शृशं मृगवधूर्मृगयूपथय ॥
 वित्तस्तया घटनया रुतसोख्यमोहो नैवाभ्युवाहजल-
 शोकरपातपीडाम् ॥ ६ ॥ अभिनययधसधीशालिनि
 द्मातलेऽस्मिन्घतिशयपरभागं भेजिरे जिष्णुभोपाः ।
 शुचलयशयनीये मुग्धमुग्धेक्षणाया मणय इव विमुक्ताः
 कामकेलमिसङ्गात् ॥ ७ ॥ अभिभवति मनः कदम्बवायो
 मद्मधुरे च शिखण्डिनां निनादे । जन इव न धृतेक्ष-

चाल जिष्णुर्न हि महतां सुकरः समाधिभङ्गः ॥ ८ ॥
 अभीक्षणमुच्चैर्ध्वनता पयोमुचा घनान्धकारीरुतशरती
 च्वपि । तडित्तप्रभाद्दशितमार्गभूमयः प्रयान्ति रागा-
 दभिसारिकाः स्त्रियः ॥ ९ ॥ अम्भोदस्तनितं निशय
 करिणां वृद्धेति रंहोयुतस्सघस्यक्तमहोर्ध्रकन्दरुपहः
 कौतूहली निर्गतः । एतस्मिन्क्षय पव चण्डमशेरो-
 कणयं शब्दं क्रुधा तं प्रत्युत्पतति स्वगर्जितजितं धीरो
 मृगाणां पतिः ॥ १० ॥ अर्धेन जलदश्याममर्धेनातपि
 द्रतम् । अर्धनारीश्वराकारं न को मन्येत घासरम्
 ॥ ११ ॥ अस्थिरमनेकराणां गुणरहितं नित्यदुष्पाम् ।
 प्रावृषि सुरेन्द्रचापं विभाव्यते युवतिचित्तमिव ॥ १२ ॥
 आकर्ण्य स्मरयौवराज्यपटहं जीमूतपीरध्वनिं नृत्य
 त्केकिकुटुम्बकस्य दधतं मन्दां मृदङ्गमियाम् । उन्मी-
 लन्मवनीलकन्दलदलव्याजेन रोमाञ्चिता हर्षसेव समु-
 स्थिता वसुमती दधे शिलीन्ध्रध्वजान् ॥ १३ ॥ आकाशे

रहते हैं ॥ १२ ॥ सावनेके महीनेमें धारों धरं आकाशमें विरे हुए जलसे
 भरे हुए बादलोंकी घटा देखकर यह मोर अत्यन्त हर्षसे अपने पट्ट
 फैलाकर कोमल मतवाली कूक कूकता हुआ नाचने लगा है
 ॥ १ ॥ कामदेवके द्विविजयकी घोषणा करनेवाले मेघरूपी
 नगाड़ेने वैसे ही गर्जना की वैसे ही उस शब्दके धनुसार
 चलनेवाले कदम्बरूपी सैनिकोंने मँदराते हुए भीरोंके कवच
 पहन लिए ॥ २ ॥ इन्द्र धनुषसे सजे हुए रत्न-विराटें बादलने
 राजा वलिका घहड़ार चुर-चुर करनेवाले भगवान् विष्णुके
 उस शरीरकी शोभा पा ली है जिनके पीताम्बरपर रत्न-
 विराटें रानीसे जड़े कुण्डलकी आभा चमक रही है ॥ ३ ॥
 मूसलाधार वर्षासे बरे हुए बड़े मृग भी सारी दोनों एक
 छोटी सी गुफामें अत्यन्त सटकर खड़े हुए थे और इस
 डरानेवाली घटनासे जिन्हें सुख और मोह प्राप्त हो गया था
 उन्हें फिर बादलोंकी जलवर्षासे तनिक भी लेद नहीं हुआ ॥ ४ ॥
 मई-मई पासकी हरिपाकीसे मुहावनी खगनेवाली धरतीपर
 धारपट्टिर्षा पेंसी मुन्दर जान पड़ती है मानो कमलके
 पत्तोंके बिड़ोनेपर कामकीजाके समय किसी अत्यन्त मुन्दर
 नेत्रोवाशी नयेनाके विरारे हुए साख मण्यि हों ॥ ५ ॥
 कदम्बके धूकोटी गन्धमें बसा हुआ वायु जिस समय मन
 हरे छे रहा था और मन्थे मत्त भीरोंकी गुमगुमारद् धारों और
 मरनी भर रही थी उस समय ध्वन्तका धैर्य साधारण
 मनुष्योंके समान बिगा मरी क्योंकि महापुरुषोंकी समाधि

तोड़ना कोई हँसी-उठ्ठा नहीं है ॥ ६ ॥ देखो, गरबते हुए
 बादलोंसे धिरी हुई इस रातकी घनी अंधियारीमें भी अपने
 प्यारेके पास प्रेमसे लुक-छिपकर जानेवाली कामिनी
 बिजलीकी चमकके सहारे ही चांगेका मार्ग टटोळती चली आ
 रही है ॥ ७ ॥ मेघाकी गद्गदाहट सुनकर उसे इधियोंकी
 चिंगाद समझकर मृगोंका स्वामी खिलारी सिंह, वेगसे पर्वतकी
 गुफा छोड़कर निकला और फिर अपनी गर्जनासे भी बरकर
 कदम्बनेवाली बिजलीकी तड़प सुनकर वह धीरे सिंह कोपसे उठा
 उद्युत रहा है ॥ १० ॥ एक साथ ही काले-काले बादल और
 भूरे रत्नकी पूल छाहें रहनेसे ये वर्षाके दिन किते अर्धनारीश्वरके
 समान नहीं जान पड़ते ॥ ११ ॥ शोषी देर रहनेवाला
 (अस्थिर), रत्न-विराट (चटुतोसे प्रेम रहनेवाला), निना
 कोरीवाला (गुणकी परख न करनेवाला) और सदा न दिशा
 देनेवाला (दुर्लभ) इन्द्रधनुष बरसातेके दिनोंमें मरेडके
 मनके समान जान पड़ता था ॥ १२ ॥ वर्षाके दिनोंमें बादलों
 जो गद्गदाहट कामदेवके रागशमियेडके समवदा गणा
 और नाचते हुए भीरोंके लिये मृदङ्गकी गगरी, वर्ष
 यमी हुई थी, उसे सुनकर यह धरती रखे हुए नरे हो
 कन्दलीके पत्तोंके रूपमें रोमाञ्चित होकर हर्षमें दृक्क
 कुटुम्बोंके रूपमें ध्वजा धारण किए हुए थी ॥ १३ ॥ हेनो!
 आकाशमें ये काली-काळी बादलोंकी घटाएँ नहीं उमड़ रही हैं,
 ये तो बान्दने भरी विदारियाँ हैं; उनके ऊपर वे हए-

इतोऽपि यदि नागतः प्रियतमो नु मन्येऽपुना दधाति
मकरध्वजस्तुटितशिञ्जिनीकं धनुः ॥ २३ ॥ कदम्बसर्जा-
र्जुनकेतकीधनं विकम्पयँस्तत्कुसुमाधियासितः । ससी-
कराम्भोधरसङ्गशीतलः समीरणः कं न करोति सोऽस्तु-
कम् ॥ २४ ॥ का तारैर्म गजितैरुपरता धाराभ्युभिः
का हता का मोहं गमिता वियोगविधुरा का वा कद-
म्यानिः । नीता का च विलोलातां मदकलैः फेकारथै-
र्वह्निष्णामित्यं पान्थगृहेषु पश्यति घनो विद्युत्प्रदीपैरिव
॥ २५ ॥ काप्यङ्घ्रो रङ्गपत्र्याऽरुणयति रमणो भूयथै-
र्भाति काचिद्वायत्यन्या पराऽपि प्रलसति लहरीलक्ष्म
वासो वसाना । यथान्या स्नेहपूरान्वितरति च मुदं
याति दोलाभिरन्या सा शृङ्गारद्वितीया रचयति न
मनः फस्य शृङ्गारमग्नम् ॥ २६ ॥ कामेन कामं प्रहिता
जयेन प्रावृट् च्छाल चिजगद्विजेतुम् । किं चन्द्रविम्बं
दधि भक्षयन्ती सन्धारयन्ती हरितः शुभाय ॥ २७ ॥

फालागुरुमञ्चुरचन्दनचञ्चिताङ्गुः पुष्पावतंससुरभो-
कृतकेशपाशाः । श्रुत्वा ध्वनिं जलमुचां त्वरितं प्रदोषे
शय्यागृहं गुरुगृहात्प्रविशन्ति नार्यः ॥ २८ ॥ फाले
नीलवल्गाहके सतडिति प्रीतिप्रदे वह्निष्णामाश्रयं कथ-
यामि वः शृणुत भो यद्बृहत्तमस्मद्गृहे । सौभाग्यव्यय-
शङ्कयैकशयने कान्तामियाभ्यामहो मानिभ्यां वत
रात्रिमेव सकलां चीर्णं प्रयासिप्रतम् ॥ २९ ॥ किञ्चि-
न्सुद्रितपांसवः शिखिकुलैरकण्टमालोकिता जीर्णोवा-
सवद्द्विरिन्द्रगृहिसीश्वसाग्निलैर्जराः । एते ते निप-
तन्ति नूतनघनात्प्रावृड्भरारम्भिणो विच्छायीकृतवि-
प्रयुक्वनितावकत्रेन्दवो विन्दवः ॥ ३० ॥ कुवलपद-
नीलेषुप्रतेस्तोयनम्रैर्मुदुपवनविधुतैर्मन्दमन्दं चलद्भिः ।
श्रपहृतमिव चेतस्तोयदैः सेन्द्रचापैः पथिकजनवधूर्ता
तद्वियोगाकुलानाम् ॥ ३१ ॥ क्ष्पां क्षामीकृत्य प्रसम-
पहत्याम्बु सरितां प्रताप्योर्वी कृत्वां तरुगहनसुच्छोष्य

पहने लगा है, ऐसे समयमें भी यदि प्रियतम न आए तो मैं
समझ लूंगी कि कामदेवके अनुपकी डोरी टूट गई है ॥ २३ ॥
कदम्ब, सर्ज, अर्जुन और केतकीसे भरे हुए जङ्गलको कँपाता
हुआ, उन वृक्षोंके फूलोंकी सुगन्धमें बसा हुआ और चन्द्रमाकी
किरणों तथा बादलोंको धूकर टपटा होकर बहनेवाला वायु
किसे मरना नहीं कर देता ॥ २४ ॥ वर्षा-श्रुतुमें बिजलीरूपी
दीपक लेकर बादल मानो परदेसियोंके घरोंमें यह देखता-
फिरता है कि मेरी धोर गर्जनासे कौन टपकी पड़ गई, कौन
पानीकी धाराओंसे भर गई, कौन वियोगिनी कदम्बके पवनके
कोंकणसे मृच्छित हो गई तथा मदमाते मोरोंकी धुकसे कौन
नवेली चञ्चल हो उठी ! ॥ २५ ॥ यह श्रावण शुक्ल द्वितीया
(शृङ्गार-दोषज) किस पुरुषके मनको शृङ्गार रसमें मग्न
नहीं कर देती जिसमें कोई नवेली सो मेंदरीसे अपने पति
रहा रही है, कोई पहने पहनकर चमक रही है, कोई लहरिया
धारीवाले वस्त्र पहनकर हड़ला रही है, कोई अपने स्नेहियोंको
धानन्द दे रही है और कोई मूला मूल रही है ॥ २६ ॥
कामदेवके द्वारा भेजी हुई वर्षा जय तीनों लोकोंको जीतनेके
लिये बड़े योगसे चलने लगी उस समय उसने द्रुम शङ्कु
शामककर दिशाओंकी हरियालीकी पूषका चतुर बनाकर
दायमें खे लिया और चन्द्रमाकी रदी पी लिया ॥ २७ ॥ जिन
कामिनियोंके चन्द्रांशु भगर मित्रा हुआ चन्दन पुता हुआ है
और जिनके बाल वृक्षोंके गुच्छोंमें मरक रहें हैं, वे बादलोंकी

गद्गड़ाहट सुनकर मूट धपने घरके बड़े-बूढ़ोंके पाससे उठकर
सही-सही ही अपने शयन-घरमें घुस जाती हैं ॥ २८ ॥ हे
भाई ! आप लोप सुनिए ! वपकि जिन दिनोंमें काले बादलोंकी
घटा उड़ती है, बिजली चमकती है, और मोर हंगे नाचते हैं
उन दिनों हमारे घरमें एक ऐसी बड़ी अचरज-भरी घटा
हुई कि मानवानिके डरसे एक ही बिज्जानेवर बैठे हुए एक
दूसरेसे रुटे नायक-नायिकासे सारी रात परदेसोंके नियमका
पालन किया ॥ २९ ॥ नये-नये बादलोंसे ऐसी दूँर बरस रही
हैं जिन्होंने धूल दबा दी है, जिन्हें मोर बड़े चावसे देत
रहे हैं, जो टूटी छानीके तले रोती हुई किसी दरिद्र छोटी
सौंसोंसे टूट-टूटकर बिलर रही हैं, जो परसात प्रातन
कर रही हैं और जिन्होंने वियोगिनी नारियोंके सुखकर
सुरमा दिए हैं ॥ ३० ॥ कमलके पत्तोंके समान काले पानीके
बोक्से झुक जानेके कारण बहुत थोड़ी ऊँचाईपर झप झप
और धीमे-धीमे पवनके सहारे धीरे-धीरे चलनेवाले जिन
बादलोंमें इन्द्रधनुष निकल आया है, उन्होंने परदेरामें गप झप
खोगोंकी उन दुःखदियोंकी सब सुध-सुध हर ली है जो प्रातने
प्यारोंके बिदोहमें व्याकुल हुई बैठी हैं ॥ ३१ ॥ वरसाके
दिनोंमें बादलोंमें चमकती हुई बिजली ऐसी जान पड़ती है
मानो बादल अपने बिजलीरूपी दीपकके प्रशारमें सुपरी
द्वैते हुए पारों और यह कड़कड़कर खलकारते हुए पूर रहे हैं
कि 'वह मर्य करी जा दिया है जिसने रातें छोटी कर दी,

सकलम् । पच सम्प्रत्युष्णांशुर्गत इति तदन्वेषणपरा-
स्तडिहीपालोका दिशि दिशि चरन्तीव जलदाः ॥३२॥
गजकदम्बकमेघकमुच्चकैर्नभसि धीष्य नवाम्बुदमम्बरे ।
श्रभिससार न वल्लभमङ्गना न चकमे च कमेकरसं
रहः ॥ ३३ ॥ गम्भीरोद्गर्जितेन त्रिभुवनविचरं व्याप्य
भूकम्पदेन प्राचीमाक्रम्य विश्वं परिपिपति पयोमैदुरे
कालमैधे । दृष्टा धाराकदम्बस्तवकधवलताः प्रोपितै-
रन्मयूरा मूर्च्छांश्यामायमाना यममहिपकुलाकृष्णमाणा
इवाशाः ॥ ३४ ॥ गर्जति वारिदपटले वर्पति नयनार-
विन्दमवलायाः । भुजवलिमूलसेके विरहलला पल्लवं
सृते ॥ ३५ ॥ गोकर्णं गाहमानाः पृथुतरपृथतप्राहियः
शम्बुरौधानाकर्णन्तो दिगन्तानपि व विदधतः क्रन्दली-
सुप्रचारान् । पते धावन्ति धार्धश्रवसमुधनुधोर्यन्तः
समन्तादावृण्वन्तोऽध्रघोधि घनमिव शबरध्रान्तिभा-
जोऽम्बुवाहाः ॥ ३६ ॥ घनतरघनवृन्दच्छादिते व्योम्नि
लोके सवितुरथ हिमांशोः सङ्घथैव व्यरंसीत् । रजनि-

दिवसमेदं मन्दवाताः शशंसुः कुमुदकमलगन्धानाह-
रन्तः क्रमेण ॥ ३७ ॥ घनतरघनवृन्दच्छादिते व्योम्नि
लोके सवितुरथ हिमांशोः सङ्घथैव व्यरंसीत् । विरह-
मनुभवन्ती सङ्गमञ्चापि भर्ना रजनिदिवसमेदं चक्र-
घाकी शशंस ॥ ३८ ॥ घनसमयमहीभृत्पत्तनस्याम्बरस्य
त्रिभुवनपतिचापं गोपुस्तवं प्रपेदे । अपि विरसयचोभिः
प्राप्तपङ्काभिपेकाः कुकयव इव भेकाः रोदयन्ति स्म
लोकान् ॥ ३९ ॥ घनोद्यमे गाढतमेऽन्वकारे न कोऽपि
निर्णेतुमहः शशाक । स्थान्मुहुः किन्तु फरेण नामोस-
रोजमाभीरकुलाधिनाथः ॥ ४० ॥ चञ्चद्विद्युद्वलया
विरचितघनकृत्तिपात्रजलसेका । प्रावृड्भ्रजकी परितः
प्रज्ञालनमम्बरस्य विदधाति ॥४१॥ चन्द्रविम्बरविधि-
म्यतारकामण्डलाय घनमेघडम्बरैः । भक्षितानि जल-
दोदरेषु तद्गोदनध्वनिरिषेव गर्जितम् ॥ ४२ ॥ चलद्व-
लाकादशनाभिरामः परिरूपद्वारिमदांम्युधारः । आह-
न्यमानस्तडिद्वङ्कुशेन स्मरस्य दध्यान् घनद्विपेन्द्रः

जो चल-पूर्वक नदियोंका जल उठा ले गया और जिसने सारी
धरतीको तपाकर सब पेड़ भी सुखा दिए' ॥ ३२ ॥
सावनके महीनेमें हाथीके झुण्डके समान काले-काले बादल
आकाशमें घिरे देखकर देसी कौन नबेला है जो अपने पतिके
पास स्वर्च न चली गई हो और प्रेमके साथ पकान्तमें उससे
रम न गई हो ॥ ३३ ॥ जिस समय पानी-भरे काले-काले
बादल धरतीको कँपा देनेवाली गर्जना करते हुए, पूर्व दिशापर
रूपद्वर शैलोरथमें घुसकर मानो सारे विश्वको गिप जा रहे
थे उस समय पानीकी गिरती हुई धाराओंसे उजली-
उजली और मोरोंसे सजी हुई दिशाओंको परदेसियोंने इस
रूपमें देखा मानो यमराजके भैंसे उन दिशाओंको घसीटे ले
जा रहे हों और वे मूर्च्छित हो-होकर फाली पड़ रही हों
॥ ३४ ॥ बादल धमनी गरजे ही थे कि नायिकाके नेत्र-
कमल बरसने लगे, बाहुएकी लताकी जड़ (कण्या) सींची
जाने लगी और विरहरूपी लतामें पत्तं निकल आया ॥ ३५ ॥
गोकर्ण-लेखको धरे हुए, बट्टी-बट्टी बूँदोंसे भरे हुए, सब थोर
जलकी यावू लानेवाले, चारों ओर क्रन्दलीकी हरियाली
देखानेवाले, इन्द्रधनुषकी छाप धारण किए हुए और चारों
ओरसे आकाशको घेरकर फीले हुए बादल वनमें दीवृते हुए
मीलोंके समान दिखाई पड़ रहे हैं ॥ ३६ ॥ बरसातके दिनोंमें
जब आकाशमें घने बादलोंकी घटा छा गई और सूर्य-चन्द्रमाकी

चरचा ही जाती रही, उस समय वायुमें घाटी-घाटीसे कुमुद
और कमलकी सुगन्धि सूँधकर ही लोग दिन और रातकी
पहचान कर पाते थे ॥ ३७ ॥ जब काले-काले घने बादलोंसे
आकाश घिर गया और सूर्य तथा चन्द्रमा दोनोंका कोई
ठिकाना न रहा, उस समय चन्द्र-चक्रवीके मिलने और अलग
होनेको देखकर ही रात और दिनकी पहचान होती थी
॥ ३८ ॥ बरसातरूपी राजाके आकाशरूपी नगरमें इन्द्रधनुष
ही कलाक बड़ा-सा फाटक जान पड़ता है और कौचदमें
दर-दर करते हुए मँडक मूँव कविके कविता-पाठके समान
लोगोंके कान फोड़े डाल रहे हैं ॥ ३९ ॥ घटापूँ घिर आनेपर
जब चारों ओर घना शँपेरा छा जानेके कारण दिन-रातकी पहचान
असम्भव हो गई तब लोगोंके स्वामी भगवान् विष्णु अपनी
नामिपर उगे हुए कमलको ही टटोलकर जान लेते थे कि
दिन है या रात ॥ ४० ॥ चमकती हुई विजलीका कर्जन
पहने हुए यह बरसातरूपी घोविन बड़े-बड़े बादलरूपी घमड़ेके
खोल (मयक) से जल डाल डालकर चारों ओरसे अम्बर
(आकाश, वक्) को चोपू डाल रही है ॥ ४१ ॥ बरसातके
दिनोंमें घिरे हुए बादलोंने जो चन्द्रमा, सूर्य और तारोंको हटपू
कर लिया, वही उनके रोकती छनि मानो इस गर्जनके
रूपमें सुनाई दे रही है ॥ ४२ ॥ यह बादल नहीं गमन
रहा है वरन् कामदेवका हाथी चिन्वादि मार रहा है, जिसमें

॥ ४३ ॥ जलद्रुपङ्क्तिरनर्तयदुन्मदं फलविलापिकलापि-
फदम्यकम् । द्रुतसमाजर्जनमदलमदलध्वनिजया
निजया स्वनसम्पदा ॥ ४४ ॥ जलधरस्य तटे तडितो
यमुद्ग्रहणप्रसनानि वितन्वतः । उदरमागु विभिद्य
यिनर्गतारविःररा इव काञ्चनरोचिपः ॥ ४५ ॥ जलभ-
रनमितानामाश्रयोऽस्माकमुच्चैरयमिति जलसेकैस्तोय-
दास्तोयनन्नाः । अतिशयपरुषाभिर्ग्राम्बद्धे शिखाभिः
समुपजनिततापं ह्यादयन्तीव विन्ध्यम् ॥ ४६ ॥ जीमूत-
मालाप्रधितैकजाला विद्युद्विशालाः स्मरमत्तवालाः ।
हंसप्रघर्षाः द्रुतलोकहर्षाः सन्तापघर्षाः सरिप भान्ति
घर्षाः ॥ ४७ ॥ तडिदुल्कामुपा मेघाश्चवितानां वियो-
गिनाम् । उद्गमन्त्यस्थिरपण्डानि फरकाश्मच्छलादमी
॥ ४८ ॥ तडिल्लताशमयन्धिभूषिताः पयोधरास्तोय-
भरायलम्बिनः । स्त्रियश्च फान्चीमणिकुण्डलोज्ज्वला

हरन्ति चेतो युगपत्प्रवासिनाम् ॥ ४९ ॥ दृष्टोत्करै-
द्रुतकोमलाङ्कुरैश्चितानि नीलैर्हरिण्यीमुखचतैः । घनानि
वैन्ध्यानि हरन्ति मानसं विभूषितान्युद्गतपल्लवैद्वैभैः
॥ ५० ॥ दृष्टाकुलैश्चातकपर्चिणां कुलैः प्रयाचितास्तोय-
भरायलम्बिनः । प्रयान्ति मन्दं बहुधारवर्षिणो घला-
हकाः शोत्रमनोहरस्वनाः ॥ ५१ ॥ दधति धरकुचाप्रै-
न्नतैर्हार्याधिं प्रतनुसितदुकूलान्यायतैः श्रोणिभिः ।
नयजलकण्ठेकादुद्गतां रोमराज्जीं ललितवलिभिर्भ्रमै-
ध्यदेशैश्च नार्यं ॥ ५२ ॥ दलितमौकिककूर्णेषुविपाद्वनः
स्फुरितनिर्भरशीकरचारवः । कुटजनुपपरागकणाः
स्फुटं विदधिरे दधिरेणुविडम्बनाम् ॥ ५३ ॥ दिदृता-
रीकवरीभरध्रमकराः प्रावृड्वधूटीनटीनीलीरूपदाः ।
प्रसूतधनुषः फार्णायलाः फङ्कटाः । व्योमोचालतमात
मांसलदलप्रयामायमाना घनाः प्रोन्नीलन्ति सतैसकञ्ज-

बद्धे हुए यगुले ही उस हाथीके सुन्दर दाँत हैं, बरसात
हुआ जल ही मदकी धारा है और बिजली ही उसपर
बार-बार चलता जाता हुआ चट्टुण है ॥ ४३ ॥ यादलोंकी
निस घटाने भलीभाँति मिले हुए रुद्रदत्तकी ध्वनि जीत
घी है, उसने अपने गर्जनसे सुन्दर बोलनेवाले मतवाले
मोरोंको नषा दिया है ॥ ४४ ॥ बादलोंके किनारे-किनारे
धमककर तारा-नक्षत्र आदिको निगलती हुई ही बिजलियाँ
पेसी जान पड़ती हैं मानो घुनहली कान्तिवाले सूर्यकी विरथें
ही बादलोंका पेट फाड़कर निकल आईं हों ॥ ४५ ॥ गर्माँकी
धाराकी धति भयङ्कर लपटाँसे मुलसे हुए विन्ध्याचलकी
तपनको पानीके बोझसे मुके हुए बादल अपने ढपडे जलकी
पुकारोंसे मानो बर्षी समभकर बुम्मा रहे हैं कि अब हम
पानीके बोझसे छडे आते हैं उस समय पड़ी ऊँचा होकर
हमें राहता देना है ॥ ४६ ॥ हे सानी ! अब क्या फलुके
ये सुन्दर दिन था गए जिनमें बादलोंकी घटायाँसे
भरा आकाश जाल-सा लग रहा है, उनमें रह-रहकर
बिजलियाँ चमकने लगी हैं, नबेलियाँ कामकी मर्ताँसे मतवाली
हो रही हैं, हंस भाग गए हैं, हंसारा प्रमथ हो उठा है
और गर्माँका तारा तार मिट गया है ॥ ४७ ॥ बिजली और
बन्ध्याने भरे बादल ऐसे जान पड़ते हैं मानो उन्हांसे जिन
विद्योतियोंको बसा बाजा है उन्हींकी दृष्टियोंको धोखोंके
रूपमें बनाए रहे हों ॥ ४८ ॥ एक धारें तो दृष्टयनुष और
बिजलीके चमकते हुए पलके चौराँसे सनी हुई तथा पानीके

भारसे मुकी हुई काली-काली घटाएँ और दूसरी ओर बरपती
तथा रन-जड़े लुण्डलोंसे सनी हुई जियाँ, दोनों ही परसेमें
बैठे हुए लोमाँका मन एक साथ हरे ले रही हैं ॥ ४९ ॥
हरिणियोंके मुँहसे लुसरी हुई हरी हरी घासों और नई नई
कॉपलोंवाले घुँघोंसे छाए हुए विन्ध्याचलके जंगल बासतमें
किसका मन नहीं लुभा लेते ॥ ५० ॥ देवो, पानीके बोझसे नीचे
मुके हुए, सुँघाँधार पानी बरसानेवाले ये बादल हाँकी
भली लगनेवाली गद्गद्वाहट करते हुए धीरे-धीरे बरे बरे
था रहे हैं जिनसे पयोधे 'पीठ-पीठ' करके पानी बरि
रहे हैं ॥ ५१ ॥ बरसातके दिनोंमें जब नबेलियाँ अपने बड़े
बड़े गोल-गोल उठे हुए सुन्दर स्वनाँपर नितम्बोंपर मीन
और अपने भारी-भारी गोल-गोल नितम्बोंपर मीन
उजळी देवमी साँदियाँ पहन लेती हैं, उस समय उनके
पेटपर दिपाईं पड़नेवाली सुन्दर तिहरी सिङ्कुरनाँर ह
घर्षाँकी नई पुहार पड़ती है तो वहाँके नरों-नरों शेरों का
पद होत है ॥ ५२ ॥ पिसे हुए मोतीके पुरोंके समान उठे
तथा कुदकती हुई मण्डलियोंसे वझाळे हुए जलकी बूँदोंके
समान सुन्दर नन्दे-नन्दे सुरैयाके बूँदोंके पराग पेटे तिनईं
देते थे मानो वहाँके धाँडे पड़े हों ॥ ५३ ॥ ठेज बिले हुए
कामल और स्याहीके कीचट्टके डेरकी-सी कान्तिवाले नारायण
ये बादल, जो दिपायनी नायिकाधर्मोंके भारी बूँदोंके समान
दिसाईं पड़ने हैं ऐसे जान पड़ते हैं मानो, बरसाँकी नाशनी
दूर बहूँके भीडे-भीडे पल हों, कामदेवके हाँके चौराँसे

समपोजम्यालजालत्वियः ॥५५॥ दिग्भस्त्रानुपुच्यमान-
नपयनमेहोलनायचित्तज्यालाजालजटालवैद्युतशिथि-
प्रद्योतमानात्मभिः । नोरन्ध्रं रसगर्भितैरकलुपव्योमार्क-
चन्द्रान्मुहुः कालोऽयं धमतीथ तोयदमहामूपासहस्रै
दिवि ॥ ५५ ॥ द्विरदन्दनयलक्षमलक्ष्यत स्फुरितभृङ्गमृ-
गच्छुचिक्वेतकम् । घनघनौघविघट्टनया दिवःकृशशिथिं
शशिपण्डमिव च्युतम् ॥ ५६ ॥ दिशां हाराकाराः
शमितशमभाराः शमघतामसूचीसञ्चाराः कृतभद्वि-
काराश्च शिरिनाम् । हताश्वध्यापारास्तुहिनकणसारा
विरहिणीमन.कोर्णाङ्गाराः किरति जलधारा जलधरः
॥५७॥ द्रुतसमीरचलैः क्षणलक्षितव्ययहिता विठपैरिव
मञ्जरी । नयतमालनिभस्य नभस्तरोरचिररोचिररोचत
वारिदैः ॥ ५८ ॥ दृष्टादम्बरमन्वरे घनस्रुतं सौदामिनी-
नर्तकीनुत्वारम्भमृदङ्गमङ्गलखरं श्रुत्वा च तद्गर्जितम् ।

पुण्यत्पुष्पभरानताङ्गुतकस्तन्यात्रसद्वायसन्नापाक-
रुणसोस्तवप्रियतमं पान्था ययुर्मन्दिरम् ॥ ५९ ॥
देवे कुर्वति दुर्दिनव्यतिकरं नास्त्येव तन्मन्दि' यथा-
हारयेपणाय बहुशो नासीदृता वायसी । मन्तु माप
न किञ्चन फवचिदपि प्रस्वापदेतोस्तथाऽन्युद्भिन्नाम-
कचञ्चुपु भ्रमयति स्वं रिक्कचञ्चूपुटम् ॥ ६० ॥ देवे
वर्षत्यश्रनपयनन्यापृता यद्विहेतोर्गाहात्रे हं फलरुनिधितः
सेतुभिः पङ्कभोताः । नोभ्रभान्तानयिरलजलान्पाणि-
भ्रिस्ताडयित्वा शूर्पचन्द्रत्रस्यगितशिरसो योपितः सञ्ज-
रन्ति ॥ ६१ ॥ घृतविषयलययालिर्हन्तो क्रुमुदघनैक-
दुक्कलमाचवाणा । शरदमलतले सरोजपाणौ घनसमयेन
यधूरियाललम्ने ॥ ६२ ॥ नन्दयति कस्य न मनश्चपलै-
र्वनभूलिधूसरचञ्चायैः । आरुम्य पुत्रकैरिव मलिनीरु-
तमम्बरं जलदैः ॥ ६३ ॥ नयकदम्बरजोदणिताम्बरै-

कवच हों अथवा आकाशके बड़े ऊँचे तमाल वृक्षोंके मोटे-मोटे
काले पत्ते हों ॥५४॥ वर्षाकालके आकाशको देखकर ऐसा जान
पड़ता है मानो कालने स्वच्छ आकाश, सूर्य और चन्द्रमाको
रस (जल, धी) से लयालय भरी हुई सहस्रों बादलरूपी
बढ़ी-बढ़ी घन कड़ाहयोंमें बालकर स्वच्छ करनेके लिये आगको
घोंकना प्रारम्भ किया हो जो दिशारूपी घोंकनीके पवनके वेगसे
निकलती हुई विजलीरूपी चिनगागिरियोंसे घिरकर घषक रही हैं
॥५५॥ हाथोंके दौलके समान उजले केवदेपर धारांका मँवरागा
देखकर ऐसा लगता था मानो बादलोंके धक्केसे चन्द्रमाका
कोई टुकड़ा टूटकर अपने कलकके साथ-साथ आकाशसे गिर
पड़ा हो ॥ ५६ ॥ बादलोंसे ऐसी जलकी धारा बरस रही है
जो दिशाधोंकी हार-सी लगती है, जिसने तपस्वियोंकी शान्ति
मङ्ग कर डाली है, जिसमें सुहृदक नहीं घुस पा सकती,
जिसने मोरोंको मतवाला बना दिया है, लोगोंका आना-जाना
बन्द कर दिया है, जिसमेंसे नहीं-नहीं उड़ती फुहारें घूट
रही हैं और जो विद्योगिनी नारियोंके मनपर अङ्गारे बरसा
रही है ॥ ५७ ॥ बादलोंमें लुकती-चमकती हुई विजली हरे-
भरे तमालके समान नीले आकाशरूपी धूममें ऐसी शोभा
पा रही थी मानो आँवीसे झिलती हुई बालियोंमें कभी
दिखाई देती थीर कभी छिपती हुई मंजरी हो ॥ ५८ ॥ अधिकने
ज्योंही आकाशमें घिरे हुए बादलोंको देखकर उसमें विजली-
रूपी नर्तकीके नाचके प्रारम्भमें यत्नेवाले मृदङ्गकी मङ्गलध्वनिके
सफल बसकर बरसने सुना योंही कर्णिकमें खिले हुए वृक्षोंके

भारसे झुके हुए पेदपर घेडे हुए कौएकी काँच-काँचसे गूँतले हुए
अपने उस प्यारे धरमें जा पहुँचा जहाँ उसकी परनी उसे बुलानेके
लिये कौधोंको बलि दे रही थी ॥ ५९ ॥ बादलोंसे घिरे हुए
बरसातके दिनोंमें ऐसा एक भी घर न बचा जहाँ कौची चुगगा
हुँदने न पहुँची हों किन्तु उसे कहींपर भी इतना तक न मिल
पाया जिसे टाकर वह नींदभर सो रहे, फिर भी जब उसके बचे
उपर उठा-उठाकर अपनी चौंच फैलाते हैं तो वह अपनी रीती
चौंच ही उनकी चौंचोंमें ढालकर उन्हें फुसलाती रहती है ॥६०॥
पानी बरसते समय छिछाँ रसोईके लिये इतनी उतावली थीं
कि छुपरकी ओरीसे गिरते हुए जलको हापसे बचती हुई,
सिरपर सूप रजकर कीचडके दरसे काठके पट्टेपरसे चलती हुई
आग लेनेके लिये एक घरसे दूसरे घर जा रही थीं ॥ ६१ ॥
शरदरूपी जो नाविका कमलनालका कङ्कन और कुमुदकी
साढ़ी पहने हुए थी, उस नीली कटसरैयाके धूलके रूपमें
बाण खोंसी हुई तुलहिनका कमलरूपी हाथ वर्षा रूपी धूलैने
पकडकर उसके साथ विवाह कर लिया ॥ ६२ ॥ जैसे धूल सने
हुए वर्षासे मिले किए हुए वष देखकर सबका जी रिल
उठता है वैसे ही धूलके समान मडमैले काले बादलोंसे घिरे
हुए आकाशको देखकर किसका मन हर्षसे नहीं नाच उठता
॥ ६३ ॥ कदम्बके नये नये वृक्षोंके परागसे आकाशको लाल
कर देनेवाले तथा बुकरमुत्तैकी गन्धसे भरे हुए धनके बायुने
कामियोंके मनमें छिछाँके प्रति नया नया प्रेम डपजा दिया
॥ ६४ ॥ वर्षाके नये-नये जलकी फुहारोंसे उड़ता बना हुआ

धिपुरन्ध्रि शिलीन्ध्रसुगन्धिभिः । मनसि रागवताम-
 नुरागिता नवनवा घनवायुभिरादधे ॥ ६४ ॥ नवजल-
 कणसङ्गाच्छीततामादधानः कुसुमभरनतानां लासकः
 पादपानाम् । जितिरुचिररागन्धः केतकीनां रजोभिः
 परिह्वरति नभस्वाम्प्रोपितानां ॥ ६५ ॥ नवपयः-
 कणकोमलमालतीकुसुमसन्ततिसन्ततसङ्घिभिः । प्रच-
 लितोडुनिभैः परिपाण्डिभा शुभ्रजोभरजोऽल्लिभिराददे
 ॥ ६६ ॥ निजरजः पटवासमिवाकिरद् धृतपटोपमवारि-
 मुचां दिशाम् । म्रियवियुक्कयधूजनचेतसमानवनी नव-
 नीपयनायलिः ॥ ६७ ॥ नितान्तनीलोत्पलपत्रकान्तिभिः
 फ्यचित्प्रभिमन्नाञ्जनराशिसन्निभैः । फ्यचिःसगर्भप्र-
 दास्तनप्रभैः समाचितं द्योमघनैः समन्ततः ॥ ६८ ॥
 निद्रितस्य वत शम्बरद्विपो जागराय किमु वारिवा-
 हकः । ऊजितं दधवतीच गजितं सम्भ्रमन्नर्भास सम्भ्र-
 माययी ॥ ६९ ॥ निपातयन्त्यः परितस्तटद्रुमान्प्रवृद्ध-
 वेगैः सलिलैरनिर्मलैः । खियः सुदुष्टा इय जातविभ्रमाः

प्रयान्ति नद्यस्त्वरितं पयोनिधिम् ॥ ७० ॥ निरीत्य
 विद्युन्नयनैः पयोदो मुखं निशायामभिसारिकायाः ।
 धारानिपातैः सह किं नु वान्तश्चन्द्रोऽयमित्यार्त्तनं
 ररास ॥ ७१ ॥ नृपतेरहो महोभिः प्रायः पंतानि
 नाकनीराणि । नो जेत्प्रजल्प जलदाः प्रागिय वर्णासु
 किं नु वर्धन्ति ॥ ७२ ॥ नेमाः सीमन्तिन्यः सौदामिन्य-
 पयोदमालायाः । निर्गत्य सौधलप्रा विलसन्ति महे
 नभस्तृतीययायाः ॥ ७३ ॥ नैतद्धारिदगजितं रत्तिपति-
 प्रस्थानढकारनो नैते वारिधराः स्यन्मदजलास्तसि
 न्धुराः प्रोद्धराः । नैवा विद्युदियं विभाति रुचिरा
 तच्चन्द्रहासप्रभा मन्ये मानिनि मानदुर्गमयुना जेतुं
 किमायायसौ ॥ ७४ ॥ पञ्चोपजयघोषणा गुणनि-
 धिस्रैलोक्यचिचारातधिस्तृत्यं तारुडवसमिध्यासु
 शिखिनां हंसप्रवासानकः । स्रुतिस्वस्त्ययनं विह्वरस्यु-
 धारलाङ्कुराणामयं गम्भीरस्तनितध्वनिजलमुचां रोदो
 गृहं गाहते ॥ ७५ ॥ पटलमम्बुमुचां पथिकारुना सपदि

पवन फूलोंके घोमते मुझे हुए पेंदोंको नचा रहा है, केतकीके
 फूलोंका पराग लेकर चारों ओर मन-भावनी सुगन्ध फैला रहा
 है और परदेस गए हुए प्रेमियोंके मन चुराए ले रहा है ॥ ६४ ॥
 नये-नये जलकी बूँदें पड़नेसे जो मालतीके फूल खिल गए हैं,
 उनपर बैठे हुए भीरे परागसे उजले होकर उड़ते हुए ऐसे
 जान पड़ते हैं मानो तारोंके सुन्दर लड़े चले जा रहे हों ॥ ६५ ॥
 पियोगिनी नवेलियाँका मन मकमोर देनेवाले फूले हुए कदम्बके
 घुट्टाने बादलरूपी साही पहनी हुई दिशाओंपर पटवास
 (कपड़ोंको सुगन्धित करनेवाले घुटां)के समान अपनी पराग
 सिद्धक दिया ॥ ६७ ॥ वहाँ तो श्यन्त नीले कमलकी
 पद्मसी जैसे नीले, वहाँ गर्भियोंके स्तनोंके समान पीले
 और वहाँ घुटे हुए अजिनकी पियरीके समान काले-काले
 बादल धाकाराने हुए-उपर फैल रहे हैं ॥ ६८ ॥ गद्गदाहट
 मघाता और धाकाराने वरकर लगता हुआ बादल क्या
 सोए हुए कामदेवकी जगानेके लिये एकपटक या धमका
 है ॥ ६९ ॥ जैसे हुलटा चिन्मं प्रेममें अन्धी होकर बिना
 सोचे-विचारे अपनेको रो बैठती है ईसे ही ये नदियाँ
 भी अपने मरमैले पानीकी बाधसे जहाँ-तहाँ तीरके घुट्टांको
 बहाती हुई वेगसे समुद्रकी ओर सीधे चली जा रही
 हैं ॥ ७० ॥ बाइबका गर्जन ऐसा जान पड़ता है मानो
 बादलने अपनी बिजलीरूपी आँगोंसे रातको भ्रमिसारिकाओंका

मुख देखकर और समझकर कि जलधाराके साथ-साथ बन्दना
 ही धरतीपर गिर गया है, श्यन्त दुःखके साथ बिल्ज-
 चित्कावर रोना प्रारम्भ कर दिया हो ॥ ७१ ॥ हमारे महादेव
 तेजसे ही आकाशका जल सूख गया है, नहीं तो धरती
 यताओ, आजकल बरसातमें पहले जैसा पानी बर्षा रही
 बरसता ॥ ७२ ॥ जिन्हें तुम बादलोंकी बिजली समझ रहे हो
 वे वास्तवमें वे सुहागिन नवेलियाँ हैं जो धावण श्रुत शृंगी
 (सिगर-तीज)के उत्सवमें निकल-निकलकर अपनी अपनी
 घुट्टीपर खड्गें रँगेलियाँ बर रही हैं ॥ ७३ ॥ यह बादलोंकी
 गद्गदाहट नहीं है वरन् कामदेवकी यात्राके नगादोंकी बमबन
 है, ये बादल भी नहीं हैं वरन् मद् बरसाते हुए बड़े-बड़े हाथी
 हैं और यह बिजली भी नहीं है वरन् सुन्दर ललवारोंकी बम
 है अतः है रुदनेवाली ! वहाँ तुम्हारे मानरूपी दुर्गको जीतने
 लिये कामदेवने चढ़ाई तो नहीं कर दी है ॥ ७४ ॥ धावण-
 पातालकी कँपाए डालनेवाले बादलोंकी प्रचण्ड गद्गदाहट ऐसी
 जान पड़ती है मानो कामदेवके जीतकी हुम्मी हो, सद्गुणोंसे भा
 होनेके कारण तीनों लोकोंमें रहनेवाले प्राणियोंके बिलका भ्रमि
 हों, मोरोंका साइबण मूख्य मारमन बरानेवाली तुम्हारी हो, वहाँकी
 भयानिका नगादा हो तथा शृंगीपर बंधुं मण्डि जैसे रोते
 बन्दुरकेपी रत्नोंके जन्म समयका रत्निन-भावन ॥ ७५ ॥
 अपनी सखियोंकी बधबधारी हुई आँगें देगनेसे धरापर ब

जीवितसंशयमेप्यती । सनयनाभ्युसखीजनसम्भ्रमाद्भि-
धुरयन्धुरवन्धुरमैत्रत ॥७६॥ पतत्यधिरतं धारि नृत्यन्ति
च कलापिनः । अथ कान्तः कृतान्तो वा दुःखस्यान्तं
करिष्यति ॥ ७७ ॥ पयोधरैर्भोगमीरनिस्वनैस्तडिङ्गि-
रद्वेजितचेतसो भृशम् । कृतापराधानपि योषितः
प्रियान्परिष्वजन्ते शयने निरन्तरम् ॥ ७८ ॥ परिसुर-
पतिस्तुत्रधाम सद्यः समुपदधन्मुकुलानि मालतीनाम् ।
धिरलमपजहार वद्धधिनदुः सरजसतामघनेरपांनिपातः
॥ ७९ ॥ पापं केऽपि जगुर्निदानमनिलं प्राहुः परे नैऋतं
नक्षत्रं कतिचिज्जलपुरितरे दुर्द्वेषमुच्युर्नृणांम् । यत्तु
प्रावृषि वैपरीत्यमधुना लोके समुज्जम्भते तत्सुते जग-
दोश्वरे जलमुचामन्याय उच्योयते ॥ ८० ॥ प्रणयकोपभृ-
तोऽपि पराङ्मुखाः संपदि चारिधाराख्यमीरवः । प्रण-
यिनः परिरद्भुमथाङ्गना यथालिरे यलिरेचितमध्यमाः
॥ ८१ ॥ प्रतिदिशमभिगच्छतामिभृष्टः ककुभविकास-
सुगन्धिनानिलेन । नव इय धियमौ स चित्तजन्मा गत-

धृतिराकुलितश्च जीवलोफः ॥ ८२ ॥ प्रभिप्रवैदू-
र्यनिमैस्त्वुणाङ्कुरैः समाचिता मोरिद्यतकन्दलीदलेः ।
विभाति शुक्लेतररत्नभूषिता घराङ्गनेय चित्तिरिन्द्र-
गोपकैः ॥ ८३ ॥ प्रौढमौरिक्कचः पयोमुचां विन्दवः
कुटजपुष्पवन्धवः । वियुतां नमसि नाट्यमण्डले
कुर्वते स्म कुसुमाञ्जलिश्रियम् ॥ ८४ ॥ बहुगुण-
मणीयः कामिनीचिच्छहारी तरुघिटपलतानां बान्धवो
निर्विकारः । जलदसमय एष प्राणिनां प्राण-
भूतो दिशतु तव हितानि प्रायशो वान्द्रितानि
॥ ८५ ॥ मन्दं मुद्रितपांसवः परिपतत्कङ्कारिक्कम्भा-
मरुद्वेगध्वस्तकुटीरकाग्रनिपतच्छिद्रेषु लब्धान्तराः ।
कर्मव्यग्रकुट्टुम्बिनीकुचभरस्वेदच्छिद्वदः प्रावृषः प्रारम्भे
मदयन्ति कन्दलदलोष्णाः पयोविन्दवः ॥ ८६ ॥ मलि-
न-ह्नमुग्धमश्यामैदिशो मलिना घनैरधिरलदणश्यामा
भूमिर्नयोद्गतकन्दलैः । सुरतसुभगो नूनं कालः स एष
समागतो मरणशरणा यस्मिन्नेते भवन्ति वियोगिनः

उसने हुती होकर बादलोंकी ओर देखा तो उस वियोगिनीका
जीवन तत्काल सङ्कटमें पड़ गया ॥७६॥ ऐसे बरसाते दिनोंमें
जब धुआंधार पानी बरस रहा है और मोर नाच रहे हैं तब
या तो प्रति ही मेरा दुःख हरंगे या यमराज ही ॥ ७७ ॥
बादलोंकी भयङ्कर गद्गदाहट और विजलीकी तड़पनेसे चौकी
हुई स्त्रियाँ सोते समय अपने अपराधी पतियोंसे भी लिपट
ही जाती हैं ॥ ७८ ॥ मालतीकी बेलमें कलियाँ खिलते हुए
और आकाशमें चारों ओरसे बूँदें बरसाते हुए पानीने धरतीपर
उड़ती हुई सारी धूल भटपट दबा डाली है ॥ ७९ ॥
बरसाते दिनोंमें आँधी, पानी, बबलहर आदि जो दिखाई
पड़ते हैं उसका दोष पवनकी, रासक नैऋतकी, नक्षत्रको तथा
मनुष्योंके दुर्भाग्यको लोग देते हैं किन्तु सच तो यह है कि
जगदीश्वर भगवान् विष्णुके सोए रहनेके कारण ही बादल यह
सब उत्पात करनेपर उतारू होते हैं ॥ ८० ॥ स्त्रियाँ अपने
प्रियतमोंसे रूठकर क्रोधमें भरी, मुग फरे बैठी थीं कि इतनेमें
अचानक बादलकी गद्गदाहट सुनकर वे ऐसी डर गईं कि
उन्होंने जो अपनी कमर घुमाई उससे उनके पेटकी सिकुड़न
मिट गई और वे अपने प्रियतमोंसे लिपट जानेके लिये
मगल उठीं ॥ ८१ ॥ चारों ओर पहाड़ी चमेलीके फूलोंको
छू-छूकर जो सुगन्धित वायु बह रहा था उसका स्पर्श पाकर
कामदेव बुद्ध ऐसा नया-सा हो गया कि संसारके सभी प्राणी

सद्गता धवरा उठे ॥ ८२ ॥ क्षितराईं हुईं वैदूर्य मणिके
समान हरी पासके कोमल शँकुयाँसे भरी हुईं, ऊपर निकले
हुए कन्दलीके पत्तोंसे रँगी हुईं और बोरबहुटियाँसे घाईं हुईं
धरती उस नवेली जैसी दिखाई दे रही है जो उजले रत्नके
अतिरिक्त अन्य सभी रत्नोंके रत्नोंवाले आभूषणोंसे सजी हुईं हो
॥ ८३ ॥ बड़े-बड़े मोतियोंके दानों तथा कुटजके फूलोंके समान
दिखाई देनेवाली चमकीली बादलोंकी बूँदें ऐसी जान पड़ती
थीं मानो आकाश-रूपी रत्नमञ्जर पर विजली-रूपी नदियोंने
उप्याञ्जलियाँ छोड़ी हों ॥ ८४ ॥ अपने अनेक सुन्दर गुणोंके
कारण सुहावनी लगनेवाली, स्त्रियोंका जी चुरानेवाली, पेटोंकी
टहनियों और बेलोंकी सच्ची सखी तथा सभी जीवोंका प्राण
बनी हुईं यह वर्षाशत्रु थापके मनकी सब साधें पूरी करे ॥ ८५ ॥
बरसातेके प्रारम्भमें उड़नेवाली धूल बैठाती हुईं, हरहरते हुए
बरसाती पवनके वेगसे टूटी हुईं मद्दशके घेदोंसे टपकती हुईं,
सम्भोगमें मग्न स्त्रियोंके स्तनोंका पसना मुखाती हुईं और
कन्दलीके पत्तोंको खिलवाती हुईं जलकी बूँदें बरस रही हैं
॥ ८६ ॥ सुँडुघाती हुईं आगके धुँपके समान काले-काले बादलोंसे
सारी दिखाएँ घिर गईं हैं, घनी पासकी हरिवालीने धरती
हरी हो उठी है और उसमें नये-नये मट्टर निकट रहे हैं अतः
सम्भोगके लिये निश्चित ही यह शत्रु वर्षा सुहावनी है । ऐसे
समय भी जो अपनी प्यारीने विद्वहें रहने हैं उनके लिये

॥ ८७ ॥ महीमण्डलोमण्डपीभृतापाधोधारावधर्षासु
 वर्णासुसद्यः । कदम्बे प्रसूनें प्रसूने मरन्दो मरन्दे मिलिन्दो
 मिलिन्दे मदोऽभूत् ॥ ८८ ॥ मालाः कदम्बनवकेसर-
 केतकीभिरायोजिताः शिरसि विभ्रति योपितोऽथ ।
 कर्णान्तरेषु फकुमद्भ्रमजरीभिरिच्छान्तुकूलरचितानव-
 तंसकांश्च ॥ ८९ ॥ मुकुलितमतिशय्य यन्धुजीवं धृतज-
 लविन्दुषु शाद्वलस्थलीषु । अचिरलवपुषु सुरेन्द्रनोपा
 धिकचपलाशचयश्रियं समीयुः ॥ ९० ॥ मुदित इव कद-
 म्बैर्जातपुष्पैः समन्तात्पथनचलितशारेणः शाखिभिर्नृत्य
 तीव्र । हस्तितमिष विषसे सुचिभिः केतकीनां नवसलिल-
 लनिषेकच्छिद्यतापो घनान्तः ॥ ९१ ॥ मेघकृष्णाजिनधरा
 धारायशोपधीतिनः । मारुतापूरितगुहाः प्राधीता इव
 पर्वताः ॥ ९२ ॥ मेघाटोपैः स्तनितसुभगं धीक्ष्य खं
 हस्तिदन्तैः कृत्वा भिक्तीनुपरिसद्वनं चामरैश्छाद्य-
 यित्वा । फर्पूरैस्ता मृगमद्रसैर्भूमिमालिष्य श्वेतै संद्धे

चर्मणुरसि दयिताबाहुरूढः पुलिन्दः ॥ ९३ ॥ या
 कामिनी सा यदि मानिनी स्वात्मरसस्य राशो ह्यपरा-
 धिनी स्यात् । इतीव दण्डैः किमु ताडयतेऽसौ काद-
 म्बिनी कामनृपस्य ढका ॥ ९४ ॥ यो गात्रापरमध्यं
 निविशते मेघाम्बुधाराभयात्रातुं पोतमचञ्चलैव करिरी
 तं वत्सला भ्राम्यति । तत्कुम्भस्थलपातिनं परिहरप्रा-
 सारमग्नेजिनीपत्रच्छत्रमुदस्य गर्जति मुहुः कृप्यत्र
 घनेभ्यो गजः ॥ ९५ ॥ रटन्तु जलधरः पतन्तु धाराः
 स्फुरन्तु तडिन्मरुतोऽपि धान्तु शीताः । इयमुरसि महौ-
 पधीय फान्ता निखिलभयमतिघातिनी स्थिता मे
 ॥ ९६ ॥ वज्रेण विज्रनतपतेर्वलरिपोरच्छिन्नपत्ताः पुत्र
 ये भीता निममञ्जुरधिजठरे तौल्लनपत्ताङ्गिरीन् ।
 श्राश्वस्य द्रण्यदुःखजां शमयितुं तेषामुद्रप्रयथामुच-
 स्थुर्जलदच्छलेन जलधेरुर्ध्वेऽम्भसः पर्वताः ॥ ९७ ॥
 घनद्विपानां नवचारिदस्वनेर्मदान्वितानां ध्वनतां मुहुः

मरुता छोड़कर और रह गया जाता है ॥ ८७ ॥ जिस वर्णमें
 धरतीके चैदीये बने हुए बादल मस्तीसे झूमते दिलाई देते हैं,
 उसके कारण कदम्बके छत्रमें फूल, फूलोंमें रस, रसपर और और
 औरमें मरती मूट आ समाई है ॥ ८८ ॥ इन दिनों नई केशर,
 केतकी और कदम्बके नये फूलोंकी मालाएँ गूँथकर छियाँ
 अपने जूदे सँवारती है और बकुभके फूलोंके मनचाहे ढंगसे
 बनाए हुए कर्णफूल अपने कानोंमें पहनती है ॥ ८९ ॥
 दुपहरियाके पृथ्वी कलियोंसे भी अधिक लाल तथा जलकी
 धारासे छाई हुई हरी घासवाली धरतीपर घनी बिछी हुई-सी
 बौर-बहुरियाँ ऐसी दिलाई पद रही थीं मानो पलासके फूल
 खिले हुए हों ॥ ९० ॥ वनमें चारों धार खिले हुए कदम्बके
 पूर ऐसे लग रहे हैं मानो वर्षाके नये जलसे गर्मी दूर हो जानेके
 कारण जल भगन हो उठा हो, पवनेसे मूढी हुई शाराएँ
 ऐसी लगती हैं मानो पूरा जल हाथ मटका-मटकाकर नाच
 रहा हो और केतकीके उजली कलियाँ ऐसी लगती हैं मानो
 सारा जल मित्र-मिगलाकर हँस रहा हो ॥ ९१ ॥ काले बादलोंके
 काले मृगमं धाराएँ बिपु हुए, पानीकी धाररूपी जनेऊ पहने
 हुए तथा गुप्ताओंमें भरे पवनसे प्राणायाम करते-से ये पर्वत
 मध्यधारियोंके समान दिलाई दे रहे हैं ॥ ९२ ॥ चिरे हुए
 बादलोंकी गद्गद्दाहटसे गुप्ताभने दिलाई पदनेवाले धारारूपी
 देवते ही कोई उजली भीख हाथी-झोंकी पूर्ती गादकर, ऊपर
 चँवरमें धार, बर और कान्दरीने धरती सीपर और

सिंहकी खाल बिद्याकर अपनी नवेलीकी बाँह अपनी दातीन
 रखकर बड़ी मस्तीसे नाँद ले रहा है ॥ ९३ ॥ ये गरजते हुए बाज
 क्या बिजलीरूपी ढण्डसे महाराज कामदेवका नगाड़ा बजा
 बजाकर यही घोषणा कर रहे हैं कि इन दिनों जो कामिनी रुकी
 है वह राजा कामदेवका यद्वा अधराध करती है इति
 ऐसे समय किसीको नहीं रुटना चाहिए ॥ ९४ ॥ मूसलान
 वर्णसे वचनेके लिये हाथीका वच्चा हथिनीकी देहमें घुसा
 रहा है और हथिनी भी स्थिर होकर प्यारसे उसे हुबहु पेलती
 है, फिर भी उसके मस्तकपर पक्षी हुई जलधारको रोकेगा
 प्रयत्न करता हुआ हाथी उसे छाता छोड़नेके लिये कमर्षिनीका
 पत्ता तोड़ता है और उन बादलोंपर क्रोध करके बार-बार
 चिगाड़ता है ॥ ९५ ॥ भले ही बादल गरजे, मूसलान
 पानी बरसे, बिजली तड़के और टपटा वायु भी बजे, पर
 जबतक सब प्रकारका भय दूर करनेवाला सुन्दर जीतीने
 समान मेरी प्यारी मेरी दातीसे लगी हुई है तबतक मुने
 किसीकी चिन्ता नहीं है ॥ ९६ ॥ त्रियुवनके स्वामी हुए
 बजते जिनके पट्टु नहीं कट पाए थे और जो इन्द्रके हाथ
 समुद्रमें जा पिपे थे वे पर्वत, बाहर पड़े हुए पट्टुके पर्वतके
 शवस सँघातेके लिये और उनके घावकी कसक मिटानेके लिये
 ही मानो समुद्रके जलसे बादलोंके रूपमें निच्छ-निच्छकर मो
 था रहे हैं ॥ ९७ ॥ नये-नये बादलोंके गरजनेसे सब दान
 हाथी भगन हो जाते हैं और उनके माथेसे बरने हुए मरुता भी

सुहृः । कपीलदेशा विमलोत्पलप्रभाः सभृङ्गयूर्ध्वैर्नवा-
रिभिश्चिताः ॥ ६८ ॥ वर्षासु जाता नवयौवनधोराशा-
वधुः प्रौढपयोधराभूत् । पुष्पोद्गमोऽजायत माल
तीनां यभृशुरस्त्वृश्यतमास्तदित्यन्तः ॥ ६९ ॥ घला
हकाश्वाशनिशन्दमर्दलाः सुरेन्द्रचापं दधतस्तद्विदु-
शम् । सुतीक्ष्णधारापतनोत्स्रायकैस्तुदन्ति चेतः
प्रसभं प्रवासिनाम् ॥ १०० ॥ वसन्तविश्लेषम-
पारयन्त्या मुयो निदाघस्मरतापशान्त्यै । आशावय-
स्यामिस्वदाह्वियन्ते पयोदनीलोत्पलपल्लवानि ॥ १०१ ॥
वहन्ति वर्षन्ति नदन्ति भान्ति व्यायन्ति नृत्यन्ति
समाश्रयन्ति । नद्यो घना मत्तगजा घनान्ताः प्रियावि-
ह्वीनाः शिथिनः प्लवङ्गाः ॥ १०२ ॥ विगतरागसुषोऽपि
जनो न कश्चलति वाति पयोदनभस्वति । अभिहि-
त्तेऽलितमिरेवमिथोश्चकैरननृते ननृते नचपल्लवैः ॥ १०३ ॥
विद्युत्पङ्कजपण्डपङ्कपटली व्योमस्वर्लीशाद्वलः कैदारः

कलमाङ्करप्रतिमुद्युं धारातलानामयम् । शैवालावलि-
द्रिम्भि सरितां स्वयन्दुकारागृहं कन्दपोत्सव्यैजयन्ति
भवतु प्रीत्यै तवाम्मोधरः ॥ १०४ ॥ विपत्रपुष्पां नलिनीं
समुत्सुका विहाय भृङ्गाः श्रुतिहारिनिस्वनाः । पतन्ति
मूढाः शिखिनां प्रनृत्यतां कलापचक्रेषु नयोत्पलाश्रया
॥ १०५ ॥ विपारहुरं कौटरजस्वृणान्वितं मुजङ्गयद्भृ-
गतिस्रस्रपितम् । सखाध्यसैर्मेकदुलैर्निरीक्षितं प्रयाति
निन्नाभिमुद्यं नयोदकम् ॥ १०६ ॥ विलोचनेन्दीवरवा-
रिविन्दुभिर्निपिकविभ्याधरचारुपल्लवा । निरस्तमा-
ल्यामरणानुलेपनाः स्थिता निराशाः प्रमदाः प्रवासि-
नाम् ॥ १०७ ॥ विलोलनेत्रोत्पलशोभिताननैर्मृगः सम-
न्तादुपजातसाध्यसैः । समाचिता सैकृतिनी घनस्थली
समुत्सुकत्वं प्रकरोति चेतसः ॥ १०८ ॥ व्यथितमपि
भृशं भनो हरन्ती परिखतजम्बुफलोपभोगहृष्टा । पर-
भृतयुवतिः स्वयं वितेने नवनवयोजितकण्ठरगरम्यम्

आकर लिपट जाते हैं उस समय उन हाथियोंके माथे सुन्दर
स्वच्छ नीले कमलों जैसे दिग्गर्द देने लगते हैं ॥ १०१ ॥ वर्षांमिं
विशाल पयोधरों (शादलों, स्तनों) वाली दिशारूपी नाथिकामें
नई जवानी आ गई, मालतीकी बेलमें पुष्प (फूल, ऋतुधर्म)
दिग्गर्द देने लगा और नदियाँ अट्टश्रया (गँदली,
रजस्वला) हो गईं ॥ १०२ ॥ भृदङ्गके समान गडगड़ाते हुए
और विजलीकी बोरोवाला इन्द्रधनुष चढाए हुए ये वादल
अपनी पंने बाण बरसा-बरसाकर परदेशमें पहुँचे हुए लोपांका
मन कसमसा रहे हैं ॥ १०० ॥ वसन्तर्षी माघकका विद्योह
न सख सखनेके कारण धरती गर्मीरूपी कामसे तप गई थी
इसीलिये उसकी तपन बुझानेके लिये दिशारूपी सखियाँ
मानो उसे वादलरूपी नीलकमलके पत्ते दे रही हैं ॥ १०१ ॥
बरसातमें नदियाँ मत्तीसे सहती हैं, बादल बरसते हैं, मतवाले
हाथी विग्याहते हैं, जङ्गल हरे भरे हो जाते हैं, अपने प्यारसे
विद्युद्गर्द हुई नपेलिथी रोती-रुखपती है, मोर नाचते हैं और
चन्द्र पुष्प मारकर गुफाओंमें जा बैठते हैं ॥ १०२ ॥ जब
भरिंरि जैसे स्वरसे गुनगुनाकर यह घोषणा करने लगे कि
'बरसाती पवन चलनेपर जिस विरक्त मनुष्यका मन नहीं
दिग जाता ! तब नये पत्ते भी फूम फूमकर नाच डटें ॥ १०३ ॥
हे कामदेवके टासवकी पतादा (सर्वाङ्ग-सुन्दरी) ! विजली-
रूपी कमलकी वरपन्न करनेवाले कीचकका डेर, आकाश-रूपी
भयारीकी इरियाली, घानसे सखलहाते हुए धरतीके खेतका

लोबीदार, पहाड़की चोटीपर बहनेवाली नदियाँपर छाई हुई
सेवार और चन्द्र-सूर्यकी बन्दी रपनेवाला कारागार बना हुआ
यह बरसातका बादल तुम्हारे मनमें मस्ती भरे ॥ १०४ ॥
कानोंको सुहानेवाली मीठी तारें भरकर रूँजते हुए भरिंरि उस
कमलको छोड़कर चले जा रहे हैं जिसके पत्ते और फूल भङ्ग
गए हैं और इस हृदयद्वीमें भूलसे वे नाचते हुए मोरोंके
सुले पङ्क्तोंको नये कमल समझकर उन्हींपर दूटे पड़ रहे हैं
॥ १०५ ॥ छोटे-छोटे कोंडे, भूलके कण और घास बहाहा
हुआ मटमैला बरसाती पानी जो टंडा मेडा घूमता हुआ
ढालसे यद्वा जा रहा है उसे सौंप समझकर बेचारे मेंढक
बरे जा रहे हैं ॥ १०६ ॥ परदेशमें गए हुए लोगोंकी
खियाँ अपने मित्राके फल-जैसेलाल और नई कोंपलों जैसे
कोमल श्रोतोंपर अपने कमल-जैसे नेत्रोंसे खींचू बरसाती
हुई माला, आमुपण, तेल, फुल्लेल, उबन्न आदि सब
हुड़ छोड़कर गालेपर हाथ धरे बैठी है ॥ १०७ ॥
कमलके समान सुधावनी चबल खींचते सगे सुन्दर मुखवाला
तथा बरे हुए हरियाँसे भरा हुआ रोतीला जङ्गल मनको बरसव
खींचे ले रहा है ॥ १०८ ॥ पके हुए जामुनके फल खाकर
मस्त कौटिल अपने गलेमें नया राग भर-भरकर रूँजता हुआ
विपयोगियोंके दुखी मनको भी अपनी ओर खींचे ले रहा है
॥ १०९ ॥ वर्षां ऋतुमें इन्द्र-नोलमणिके टुकड़ोंकी-सी कान्ति-
धाले तथा विजली चमकते हुए बड़े-बड़े घने मेघोंके और

॥ १०६ ॥ व्याप्तं भिन्नेन्द्रनीलद्युतिभिरिव घनैर्मैघजालै-
विशालैरुद्यद्भिद्यद्विलासैः सुरधनुरनुगैर्व्यामं वेष्मङ्ग-
लाकैः । उर्वीं गुर्वीं शिलोन्द्राजुंनकुटजहृष्यैर्भाति सत्यैः
प्रशस्यैः कादम्बामोदवाही जलधरसमये वारुणो वाति
घातः ॥ ११० ॥ शमयति जलधरधारा चातकयूतां
तृपं चिरोपनताम् । क्षपयति च वधूलोचनजलधारा
कामिनां प्रवासरुचिम् ॥ १११ ॥ शमिततापमपोढमही-
रजः प्रथमधिन्दुभिरभ्युमुचोऽम्भसाम् । प्रधिरलैरचला-
ङ्गनमङ्गनाजनसुगन्ध सुगन्धि न चक्रिरे ॥ ११२ ॥ शिरसि
वकुलमालां मालतीभिः समेतां विकसितनवपुष्पैर्यु-
थिकाकुङ्कुमलैश्च । विकचनवकदम्बैः कर्णपूरं वधूनां रच-
यति जलदौघः कान्तवत्काल एषः ॥ ११३ ॥ शिरोरुहेः
श्रोणितटावलम्बिभिः कृतावतंसैः कुसुमैः सुग-
न्धिभिः । स्तनैः सहारैर्वन्दनैः ससोधुभिः स्त्रियो रतिं
सज्जनयन्ति कामिनाम् ॥ ११४ ॥ शीतलाद्रिय सन्ध्रस्तं
प्रावृषेणान्नभस्यतः । नभो वभार नोरन्ध्रं जीमूतकुल-

कम्बलम् ॥ ११५ ॥ सजलजलधरं नभो धिरेजे विवृति
मियाय रुचिस्तडिल्लतानाम् । व्यवहितरतिविध्रैर्वि-
तेने जलगुरुभिः स्तनितैर्दिगन्तरेषु ॥ ११६ ॥ सदा
मनोऽं स्वनदुत्सवोःसुक्तं विकीर्णविस्तीर्णकलापयोमि
तम् । ससम्भ्रमालिङ्गनचुम्बनाकुलं प्रभृत्तनुत्वं कुलमय
वर्हिषाम् ॥ ११७ ॥ सन्नन्येव निरन्तरं निवसतिर्नि-
चायनालोकनं पन्थाः पङ्कसमाकुलः कलुपतां वापं
सदा दुर्दिनम् । एवं यद्यपि वृषणानि तदपि स्वभूज
नोल्लासकृतस्योत्पत्तिनिमित्ततैकगुणतः प्रावृष्ट् प्रपेदे
यशः ॥ ११८ ॥ समदशिखिरतानि हंसनादैः कुमुद-
वनानि कदम्बपुष्पवृक्ष्या । श्रियमतिशयिनी संतत्य
जग्मुगुणमहतां महते गुणाय योगः ॥ ११९ ॥ सज्ज
समपहाय केतकीनां प्रसवमुपान्तिकनीपरेखुकीर्णम् ।
श्रियमधुरसनानि पट्टदाली मलिनयति स्म विनील
वन्धनानि ॥ १२० ॥ सरसाशया सतडिद्व्युष्णगौरा
परिवेष्टिताभ्यरोत्कर्षा । उद्गतपयोधरश्रीमुखधधूरिव

आकाश-गङ्गाके आसपास मँडराते हुए बगुलौसे आकाश भर
गया है, शिलीन्द्र, अश्रुंन, कुटज और उच्चम धानोंके सुन्दर
शङ्करौसे धरातीका कलेवर फूल उठा है तथा हस्तोंको आनन्दित
करनेवाला परिचमका पवन बहने लगा है ॥ ११० ॥
बादलौसे निकली हुई जलकी धारा पपीहँकी बहुत दिनोंकी
प्यास बुझा रही है और नवेलियोंकी धौलौसे निकली हुई
जलकी धारा कामियोंकी यात्राका हुलास टण्डा कर रही है
॥ १११ ॥ बादलौकी वही-वही पड़ती हुई पहली वृद्धीने
तपन बुझा दी है, उदती हुई पूल दया दी है और
पहाड़ी धरतीको सौंधी करके उसे नवेलियोंके चलनेके लिये
सुगम बना दिया है ॥ ११२ ॥ जैसे कोई प्रेमी अपनी प्यारीके
लिये दह-दहके फूलोंके आभूषण बनाता है वैसे ही वर्षा-
काल भी मानो अपनी प्रेमिकाके लिये जूहीकी नई-नई
कलियों तथा मालती और मौलसिरीके फूलकी माला गूँथ
रहा है और मिले हुए नये कदम्बके फूलोंके कर्णफूल बना
रहा है ॥ ११३ ॥ आनन्दकल स्त्रियाँ अपने भारी भारी नितम्बोंपर
घोटियाँ लटकाकर, अपने कानोंमें सुगन्धित फूलोंके बनफूल
पहनकर, अपनी छातिवोंपर माखण्ड डालकर और मंदिरा पीकर
अपने प्रेमियोंके मनमें प्रेम उकसा रही हैं ॥ ११४ ॥ वर्षाके
दण्डे पवनसे हरकर ही मानो हंस आकाशने यह घना बादल
रूपी मोटा कण्ठ धोए लिया है ॥ ११५ ॥ आकाशमें जलते

भरे बादल छा गए, चारों ओर बिजलीका प्रकाश फैलने लगा
और रतिके समय खियोंका रुठना रोकनेवाले तथा जलसे भरे हुए
गम्भीर बादलौकी गर्जन चारों ओर सुनाई पड़ने लगी ॥ ११६ ॥
देखो, सदा मीठी बोलों बोलनेवाले, गरजते हुए 'बादलौकी
शोभापर रीमकर मगन हो उठनेवाले और अपने पशु खोलकर
फैलानेसे सुहावने लगनेवाले ये मोरोंके मुण्ड भटपट धरनी
प्यारी मोरिनियोंको गले लगाते और चूमते हुए नाच डंटे
हैं ॥ ११७ ॥ यद्यपि बरसातमें यह दीप है कि सबको सदा
घरमें ही बैठे रहना पड़ता है, मित्र (सूर्य, मित्र) दिखाई
नहीं पड़ते, मागोंमें कीचड़ भरा रहता है, पानी गँदवा
हो जाता है और सदा दुर्दिन (श्राद्धी-पानी, घुरा दिन)
छाया रहता है फिर भी वर्षाका यश इसी गुणके कारण बड़ा
हुधा है कि वह देवताओं तथा मनुष्योंको प्रसन्न करनेवाली
देवीको लहलहा देता है ॥ ११८ ॥ मत्तवाले मोरोंकी दृजन्ते,
हस्तोंकी रत्नसुनसे और कुण्डके धनमें बदन्यके फूलोंकी धरिमें
एक निराली ही शोभा आ गई है क्योंकि गुरुयानोंका सरव
सदा सुन्दर ही होता है ॥ ११९ ॥ परागसे भरे हुए केशरोंके
फूलपर पासके कदम्बका पराग ही कड़ रहा था इसलिये भी
उसे छोड़कर मिय और मयुर रसवाले तथा नीली हँसीवाले
असनके फूलोंपर जा बैठे ॥ १२० ॥ अपने भीतर पानी
भरी हुई (रसीले भावोंवाली), बिजली चमकनेसे उज्ज्वली

विर्भाति घनवेला ॥१२१॥ सर्वप्रोद्गतकन्दरा वसुमती
वृद्धिर्जलानां परा जातं निष्कमलं जगत्सु मलिनैर्लब्धा
घनैरुन्नतिः । सर्पन्ति प्रतिमन्दिरं द्विरसनाः संत्यक्त-
मार्गो जनो-धर्पाणां च फलेश्च सम्प्रति जयत्येकैव
राज्यस्थितिः ॥ १२२ ॥ ससौकराम्भोघरमत्सुकुञ्जरस्त-
डिपताफोऽशनिशुध्मर्दलः । समागतो राजघदुद्धत-
द्युतिर्धानगमः कामिजनप्रियः प्रिये ॥ १२३ ॥ सितोत्प-
लाभाम्बुदचुम्बितोपलाः समाचिताः प्रलयणैः सम-
न्ततः । प्रवृत्तचत्यूयैः शिपिभिः समाकुलाः समुत्सुकत्वं
जनयन्ति भूधराः ॥ १२४ ॥ स्कन्धं तरोर्यनदलस्थ-
गितोर्ध्वभागमध्यास्य गाढकलितशिशुवृक्षभाभ्याम् ।
श्रम्भो यतः पतति मूर्ध्नि निजे कपिस्तत्पत्रं विलोक-
यति हुड्कृतिपूर्वलोह्यः ॥ १२५ ॥ स्फुरदधीरतडिन्-
यना मुहुः प्रियमिवागतितोरुपयोधरा । जलधरावलि

प्रतिपालितस्वसप्रयासमयाजगतोधरम् ॥ १२६ ॥
स्फुरद्ग्रीवामोघस्तक्ष्णमह्विपस्फन्धमलिनो ललच्छि-
ञ्जिह्वः कृतकटकटध्याननिन्दः । दिशन्नुद्ययापध्रु-
टिघटनाभिः प्रतिभयं घनर्तुं प्रारम्भे प्रसितुमिव
विश्वं व्यवसितः ॥ १२७ ॥ स्फुरन्तः पिङ्गलाभासो
धरण्यामिन्द्रगोपकाः । सरकवान्तापान्थस्त्रीजीवा इव
चकाशिरे ॥ १२८ ॥

दोलाकेलि — उद्यम्य दूरं मुहुरानमन्यः कान्ताः
श्लथीभूतनितम्बयिभ्यारः । दोलाविलासेन जितध्रम-
त्वात्प्रकर्षमापुः पुरुषायितेषु ॥ १ ॥ प्रत्यासन्नमुखी
कराम्बुजयुगमेङ्गोलितां प्रेङ्खिकामारुह्येयमुदस्तहारल-
तिकाम्यावृत्ततुङ्गस्तनी । एष्टाष्टप्रमुखी गतागतयश-
दातोलामानांशुका तन्वङ्गी गगने करोति पुरतः शात-
ह्रदं विध्रमम् ॥ २ ॥ प्रसार्य पादो विहितस्थितोना

दिपाई पडती हुई (विजलीरूपी बोरेसे गोरी लगनेवाली),
आकाशकी ऊँचाईके उबती हुई (मूल्यवान् वर्षासे घिरी
हुई) तथा उमडते हुए बादलोंवाली (उठे हुए सतनोंवाली)
यह काली घटा गई दुलहिन-सी दिखाई देती है ॥ १२१ ॥
वर्षाके दिनोंमें बरसात और कलियुग दोनोंका राज एक-सा
जान पड़ता है क्योंकि धरतीपर चारों ओर कन्दल (निरर्थक
लोग) उत्पन्न हो गए हैं, जल (पानी, मूर्खों) की बाढ़ है,
सारा संसार निष्कमल (कमलसे रहित, विधेन) हो गया है,
मूर्खों (काले बादलों, श्रयन्त नीचों) की उन्नति हो गई, घर
घर टिजिद्ध (सॉप, युगलखोर) धूम रहे हैं और लोगोंने मार्ग,
(धर्मका मार्ग, चलनेका मार्ग) छोड़ दिया ॥ १२२ ॥ देखो प्यारी!
जलकी पुहारोंसे भरे हुए बादलोंके मतवाले हाथीपर चढ़ा
हुआ, चमकती हुई निजलियोंकी ऋषिदर्या फहराता हुआ
और बादलोंकी राजके भगाड़े पजाता हुआ यह कामिनियोंका
प्यारा पायस, राजाशोक-सा ठाट थाट बनारर आ पहुँचा
॥ १२३ ॥ धीले कमलके समान उजले बादल जिन पहाड़ी
पट्टानोंको चूमते चलते हैं और जिनपर मोर नाच रहे हैं
उनपरसे बहनेवाले सैरहों भरनोंको देखकर प्रेमियोंके मनमें
हलचल-सी मच जाती है ॥ १२४ ॥ डेर से नये पत्तोंसे जिसका
ऊपरी भाग ढका हुआ था ऐसे घूषके सनेपर कोई थन्दर अपनी
पत्नी और श्वे सहित बैठे था, पानी बरसनेपर जब पत्तेसे
होकर उसके सिरपर भी पानी पड़ने लगा तो वह खों-खों
करके पड़ते उस पत्तेकी ओर ही झोंपित होकर देखने लगा अर्थात्

उसे पानीपर नहीं, पत्तेपर ही झोपे आया ॥ १२५ ॥ बार-बार
चमकती हुई विजली ही जिसकी आँखें हैं और बादल ही
जिसके ऊँचे-ऊँचे स्तन हैं ऐसी वर्षा श्वसरकी प्रतीक्षा न
करके ही अपने पति पर्वतके पास था पहुँची है ॥ १२६ ॥
भयङ्करताओंसे भरा हुआ यह वर्षाकाल जो मतवाले
मैंसोंके कन्धोंके कालेपनसे बड़ा मलिन दिखाई पड़ रहा है,
लपलपाती हुई विजली ही जिसकी जीभ है और बादलोंकी
गडगडाहटके स्वरमें ही जो दहाड़ रहा है वह मानो अपने प्रारम्भ
कालमें ही संसारको निगल जानेको तैयार है ॥ १२७ ॥ धरतीपर
रेंगती हुई लाल-लाल चीरबूटियों ऐसी जान पड़ती हैं
मानो वियोगियोंकी नवेलियोंके वमन किए गए रधिरसे लिपटे
हुए उनके प्राण हैं ॥ १२८ ॥

भूला : फूलेकी पेंगोंपर ऊँचे उठने और नीचे आनेसे
जिनके नितम्ब धीले पड़े गए हैं और जिन्होंने भूला फूलनेकी
थकावट सह ली है वे नवेलियों इतनी सशक्त हो गईं कि
सुरतमें पुरुषके समान व्यवहार कर सकती थीं ॥ १ ॥ अपने
दोनों करकमलोंसे फूलेकी डोरियाँ पकड़कर वह फूलेपर
मुस्कराती हुई बैठी है, फूलेकी पेंगोंके कारण उसके ऊँचे-ऊँचे
स्तनोंपर धार उड़ल रहे हैं, झोंकेके कारण कभी तो उसका
मुख दिखाई पड़ जाता है कभी नहीं और उसकी सादी भी
हिल-डिलकर चमक रही है । इस प्रकार फूलती हुई वह नवेली
सामने आकाशमें विजली-सी चमक रही है ॥ २ ॥ फूलां
भूलते समय पैर पसारकर बैठी हुई और सादियोंके पल्ले

दोलासु लोलांशुकपल्लवानाम् । मनोरथानामपि यत्र
गम्यं तद्द्रष्टुमापुः सुदृशां युवानः ॥ ३ ॥ सोन्दर्यमि-
न्दीवरलोचनानां दोलासु लोलासु यदुल्लास । यदि
प्रसादाल्लभते फचित्वं जानाति तद्धर्षयितुं मनोभू ॥ ४ ॥
वर्षावायव - अमोदेन कदम्बकन्दलभुवा लिम्पन्न-
श्रेयं नमः मीतिस्फीतमयूरवृन्दनटनप्रस्ताघनापरिडतः ।
अम्बोदप्रथमोदधिनुरचनानिर्भूटघर्मशशयैर्वायुर्वाति
भयङ्करः प्रवसतां मेघङ्कराडम्बरः ॥ १ ॥ एते केतक
मृच्चिसौरभमुपः पोरमगलभाङ्गनाव्यालोलालकवल्हरो-
धिलुलनव्याजोपभुक्तानना । किञ्चोत्रिद्रकदम्बकुडूम-
लकुटोपूलीलुडपदपदव्युहव्याहृतिहारिणो विरहिणः
कर्पन्ति वर्षानिला ॥ २ ॥ एते ते दुरतिक्रमक्रममिल-
द्वर्षमोमिमर्मच्छिद्रः फादम्बेन रजोभरेण ककुभो
रुन्धन्ति मङ्गमानिला । गाढारम्भनिगूढनीरदघटास-
हृदनीलीभवद्योममोडकटाहपातुकपयोवेणीकणप्राहिणः

॥ ३ ॥ धाराधौतं धुनाताः शशधरधवलं फेसरं केत-
फीनां कैलासे किन्नरीणां चलदलकलतालास्यलीलां
दधानाः । आमूलं मानिनीनां मनसि विनिहितं मान-
मुन्मूलयन्तो वान्त्वेते वारिवाहव्यतिकरशिष्टाः
प्रावृषेयाः समीराः ॥ ४ ॥ प्रवसतः सुतरामुदकम्पय
द्विदलकन्दलकम्पनलालितः । नमयति स्म धनानि
मनस्विनीजनमनोनमनो धनमारुतः ॥ ५ ॥

वर्षापथिका - उपरि घनं घनपटलं तिर्यग्गिरयोऽपि
नर्तितमयूराः । क्षितिरेपि कन्दलधवल दृष्टि पथिकः
क पातयतु ॥ १ ॥ उपरि पयोधरमाला दूरे दयिता
किमेतद्वापतितम् । हिमवति दिव्योपधय, कोपाधिः
फणो शिरसि ॥ २ ॥ किं गतेन यदि सा न जीवति
प्राणिति प्रियतमा तथापि किम् । इत्युद्योच्य नवमेघ-
मालिकां न प्रयाति पथिकः स्वमन्दिरम् ॥ ३ ॥
प्राग्मेऽस्मिन्पथिकाय पान्थ वसतिर्नयाधुना क्षीयते

हिजातो हुई नवेलियोंकी यह सुन्दरता नवयुवकाने देखी जहाँ
मन भी नहीं पहुँच सकता था ॥ ३ ॥ झूलते हुए हिडोलेपर
कमलनयनी नवेलियोंकी जो सु दूरता उमड़ रही थी उसका
पर्यन्त कामदेव भी तभी बर सकता है जब वह प्रसन्न मनसे
कविता करने बैठ जाय ॥ ४ ॥

पुरवेया : बादलोंको उभाड़नेवाला तथा परदेसियोंको
भयभीत करनेवाला यह पवन यह रहा है जिसने कदम्ब और
कन्दलीकी मनोहर गन्धसे सारे आकाराको भर दिया है, जो
प्रेमसे मतवाले मोरोंका नाचनेके लिये उरकसानेमें यड़ा चतुर
है और जिसने बादलोंकी परजीयुँदोंने ही धीरे-धीरे तपन
मिटा दी है ॥ १ ॥ विरहियोंका मन हारते हुए ये वे बरसाती
पवन यह रहे हैं जो केवड़ेकी सुगन्धसे भरे हैं, जो गोंधोंकी
हृदयती हुई नवेलियोंके चमल बाल विनैरेके वहाने
उनके सुगन्ध सुगन्ध कर रहे हैं और जो जिले हुए कदम्बके
नीलके पानमें छोट पोटकर गानेवाले भीरोंकी गुहार सुरा-
पुराष्टर भागे जा रहे हैं ॥ २ ॥ बरसातकी जो शीघ्र है बहुत हुआ
पराना सुगन्ध रहा थी, चारों ओर घिरे हुए बादलोंमें चँपियाले
चाकाराकी कड़ाहने बरसाती हुई जलपाराकी युँदोंने भरे
हुए थे, वे कदम्बके सुगन्ध पतंग लेकर सय दिशाओंको भर
रहे थे ॥ ३ ॥ जो बामाना पवन जलपारासे पृथकर,
चन्द्रमाके समान उजले केवड़ेके पृथके केसर हिजाकर, ईजास
पर्यन्तकी किन्नरियोंकी म्मनी हुई लताओंके समान नचाकर, रुठी

हुई नवेलियोंके मनमें जमे हुए क्रोधको जड़से उड़ाकर तथा
बादलोंसे मिलकर ठगते हो गए थे वे हर-हराकर यह रहे हैं
॥ ४ ॥ खिली हुई कन्दलीको कँपानेवाले और रुठी हुई
नवेलियोंका मन डीला करनेवाले बरसाती पवनने परदेसियों
नीचेसे ऊपरतक कँपा दिया और सारे पनको मुक्त
दिया ॥ २ ॥

बरसातके पथिक : ऊपर घने बादल हैं, आसपास
चारों ओर पड़ाई हैं जिनपर मोर नाच रहे हैं और चारों
ओरकी चरती उगे हुए कन्दलसे उजली हुई पड़ी है, ऐसी दृष्टाने
पेचारा प्रवासी दृष्टि वाले भी तो किसपर वाले ॥ १ ॥ हुए
राम ! यह कैसी विपदा था पड़ी कि ऊपर बादल मैंतर रहे हैं
और प्यारी दूर बैठी है ! यह तो ऐसा ही हुआ कि धीरे-धीरे
हिमालयमें हों और पुफकारता हुआ सर्प सिरपर भा बग
हो ॥ २ ॥ आकारामें उमड़े हुए नये-नये बादलोंको देवरा
पेचारा परदेसी यही सोचता हुआ अपने घर नहीं लौट पा
है कि बरसातमें यदि उस मित्रने अपने प्राय दे दिए तो पर
जानेसे खाम क्या ! और इतना यड़ा विद्वोह होनेपर यदि बा
जी रही है सब भी जाना धर्म्य है (क्योंकि उसका प्रेम कम हो
गया होगा ॥ ३ ॥ हे परदेसी ! बरसातके दिनोंमें हम लोग
गोंधमें किमी परदेसीको नहीं टिकने देते क्योंकि कन्न राग पतके
उपवनमें पड़े हुए एक दृढ़ सुषक परदेसीने बादलकी लज
सुनकर अपनी प्यारीका मरग कर बरके गले हुए दे

रात्रायत्र विहारमण्डपतले पान्यः प्रसुप्तो युवा ।
तेनोद्गीय खलेन गर्जति घने स्मृत्या प्रियां तच्छृतं येना-
द्यापि करङ्कदण्डपतनाशङ्की जनस्तिष्ठति ॥ ४ ॥ धीरं
वारिधरस्य वारि किरतः श्रुत्वा निशीथे ध्वनिं दीर्घो-
च्छ्वासमुदश्रुणा विरहियां वालां चिरं ध्यायता । अध-
न्येन धिमुक्ककण्डकरुणं रामौ तथा वन्दितं ग्रामीणैः
पुनरध्वगस्य वसतिग्रामे निगिद्धा यथा ॥ ५ ॥ निशीथे
लीनानां भ्रष्टिति तडितां वीच्य विपर्यं घनानामाभोगं
रसिकपथिकेनोन्मुपदृशा । न गीतं सौत्कण्डं न च
रुदितमुत्कण्टतरलं न मुक्ता निःश्वासाः स्फुरद्वृत्तमत्
किं तु हृदयम् ॥ ६ ॥ नृत्यचन्द्रकिणि कण्ठमधुलिहि
श्यामायमानचितौ धीरध्यानपयोमुचि प्रविलसत्सौ-
दाभिनीन्द्रामनि । धाराम्मःकण्ठवाहिशीतमरुति प्राणा
नपयोदागमे हा हा हास्यति मुग्धका नववधूरित्य-
ध्वगः कन्दति ॥ ७ ॥ यहीं रौति वका रटन्ति तडितो

भ्रान्त्यन्त्यतिव्याकुला विभोयन्ति घना घना च विल-
पत्युच्चैर्यलाकावलिः । आत्मानं मरुतः क्षिपन्ति सलि-
लासारः पतत्यप्रतो मुक्त्वा प्रावृषि साहसैररसिके
याति प्रियामध्वगे ॥ ८ ॥ भद्रात्र ग्रामके त्वं वससि
परिचयस्तेऽस्ति जानासि वार्त्तामस्मिन्नध्वन्यजाया
जलधररसितोक्ता न काचिद्विपन्ना । इत्थं पान्यः
मयासावधिदिनविगमापायशङ्की प्रियायाः पृच्छन्तु-
त्तान्तमारात्स्थितनिजमयनोऽप्याकुलो न प्रयाति
॥ ९ ॥ भ्रातः पान्य कुतो भयाभ्रगरते वार्त्ता नया
वर्त्ते, वादं ब्रूहि युधा पयोदसमये त्यक्त्वा प्रियां
जीवति । सत्यं जीवति जीवतीति कथिता वार्त्ता
मयापि श्रुता, विस्तीर्णा पृथिवी जनोऽपि विविधः
किं किं न सम्मान्यते ॥ १० ॥ भ्रातः पान्य प्रसीद
प्रतिविरम समुत्सृज्य बालामकारण्डे, गन्तुं वाप्यान्मुप-
प्युतनयनमुखीं प्रेयसीं ते न युक्त्म् । वृत्तं ग्रामेऽतिकर्त्तं

उपद्रव कर दिया कि आज भी यह दर बना हुआ है कि कहीं
लोगोंके हाथसे बरतन-भाँडे न छूट पड़े अर्थात् उसकेविनाश-
भरे भागेको सुनकर लोग मुग्धित हो-होकर गिर न पड़े ॥४॥
जगातार बरसते हुए बादलकी गरज सुनकर आधोरातमें अपनी
वियोगिनी स्त्रीका स्मरण करके सुबक-सुबककर रोने हुए
परदेसीने गला फाड़-फाड़कर पेंसी चिल्लाहट मचाई कि तभीसे
गाँववालोंने इस गाँवमें परदेसियोंको ठिकाना बन्द कर दिया॥५॥
जब बरसातकी आधी रातको रसिक परदेसीने बादलोंमें कौंप्रती
हुई बिजली देखकर ऊपर अँरिं ठठाई उस समय न तो
उसने प्रेमका राग अलापा, न गला फाड़ फाड़कर रोया, न उसने
कन्ध लम्बी साँस ही ली, वरन् चुपचाप अपना हृदय टटोलने
लगा कि हृदयकी घड़कन तो बन्द नहीं हो गई ॥ ६ ॥
जब बरसातके समय मीर नाचने लगे, मीरि मूँजने लगे,
धरती हरी हो गई, बादल गरजने लगे, बिजली चमकने लगी
और पानीकी फुहारोंने लता शीतल पवन राने लगा, उस
समय देवारा प्रवासी यहीं धीरे धीरे चोचकर बोने लगा कि
'हाथ हाथ ! मेरी मोली-भाबी नहीं बहू इन उमड़ते हुए
बादलोंकी देखकर अब जीती नहीं बचेगी' ॥ ७ ॥ वर्षा
प्रदुर्भवं ज्यों ही एक मनुष्य बढ़ा साहस करके अपनी प्यारीको
धोड़कर चला त्यों ही मायमें मोरनी रोने लगी, सारस डु-
कुराने लगे, बिजली प्याडुल होकर छपलपाने लगी, बादल
पिचवा पिचवाकर राने लगे, बालोंकी पति विहलने लगी,

पवन हरहरकर बहने लगे और तत्काल मूसलाचार पानी बरसने
लगा ॥ ८ ॥ परदेससे लौटनेके लिये परदेसीने अपनी पत्नीको
जो अबपि दी थी उसके भीत जानेपर जब वह गाँवमें लौटा
तो घर पास होते हुए भी वह इस धवराहटके मारे घर नहीं
जा रहा है कि कहीं मेरी स्त्री अबपि भीत जानेके कारण
बल न बची हो। इसलिये वह दूसरे व्यक्तिने पूछ रहा
है—हे सज्जन ! आप तो इस गाँवमें रहते हैं, इसलिये
आप सभीको जानते भी होंगे और यहाँका कुशल-समाचार
भी आपसे छिपा न होगा । भ्रातः, यह बतलाइए कि इस गाँवमें
बादलकी गरजसे धवराकर किसी प्रवासीकी नबेजीने प्राप्य तो
नहीं दे डाले है ? ॥ ९ ॥ कोई पुरण एक परदेसीसे इस
प्रकार वार्त्त कर रहा है—पुरण—क्यों भाई राही ! आप कहाँने
बले आ रहे हैं ? राही—नगरसे । पुरण—क्या कोई नया
समाचार है ? राही—हाँ । पुरण—कहिए ! राही—एक
नवयुवक बरसातके दिनोंमें अपनी प्यारीको धोड़कर मीं अपनी
तक जी रहा है ! पुरण—क्या सचमुच जी रहा है ? राही—हाँ,
उसके जीनेकी जो बर्त्ता वार्त्ता छोड़ दो रही थी, वही मैं भी
सुनकर आ रहा हूँ । पुरण—हाँ भाई ! पृथ्वी इतनी लम्बी-
बौदी है और उसमें लोग भी बड़े विचित्र-विचित्र प्रकारके रहते
हैं, इसलिये यहाँ लो हो जाय सच थोका है ॥ १० ॥ हे परदेस
जानेवाले भाई ! अब मी मान जाओ और परदेस जानेका विचार
धोड़ दो क्योंकि गुहारी जिस प्यारीका मुख और अँरिं

यद्विह गृहपतेः प्रोषितस्य प्रियाया, मुक्ताकन्दौस्तदेता-
न्सलिलवितरणे निर्गतान्पश्य यन्धूम ॥ ११ ॥ यथा
रन्ध्रं व्योम्नश्चलजलदधूमः स्थगयति स्फुल्लिङ्गानां रूपं
दधति च यथा कीटमण्यः । यथा विद्युज्ज्वालोऽल्लसि-
तपरिपिङ्गाश्च ककुभस्तथा मन्ये लग्नः । पथिकतरुखण्डे
स्मरदयः ॥ १२ ॥ रसति तरुणीकेशप्रयामे पयोभृति
निभेरं स्फुटति चपले चारंवारं क्षणद्युतितेजसि । उप-
गुहजनं मन्ये दैन्यात्पराङ्मुखसुतया निभृतनिभृतं
मन्दोच्छ्वासं तथा वत रुद्यते ॥ १३ ॥ रात्रौ चारिभरा-
लताम्बुदरवोद्भिन्नेन जाताशुष्या पान्येनात्मवियोगदुः-
रुपिशुनं गीतं तथोत्कण्ठया । आस्तां जीवितहारिण्यः
प्रयसनालापस्य सङ्गीतनं मानस्यापि जलाञ्जलिः सर-
भलं लोकेन दत्तो यथा ॥ १४ ॥ शिष्टिनि कूजति
गर्जति तोयदे स्फुटति जातिलताकुसुमाकरे । अहह
पान्य न जीवति ते प्रिया नभसि मासि न यासि गृहं

यदि ॥ १५ ॥ श्रुत्वा वालमृगीविलोलनयना श्रु-
घनानां पुरा भीत्या वक्षसि संश्रितापि निषिद्धं भूयः
समालिङ्गति । या वक्त्रादपहृत्य रोषितवती कले
ममैवाननं सा द्रव्यत्यधुना कथं नु विरहे. वाला पयो-
दावलीम् ॥ १६ ॥

वर्षापथिककाविति—अष्टद्वर्षमममाभिर्यदेतदृश्य-
तेऽधुना । विषं विषधरैः पीतं मूर्च्छिताः पथिशाङ्गता
॥ १ ॥ अम्बोवाहसुरद्विपो निवसतं ध्वान्ताद्रिदिव्यौ
पथी कन्दर्पस्य विलासचम्पकधनुर्वर्षालतामञ्जरी ।
लेखा व्योमकपोपले विरचिता चामीकरस्य स्फुर-
द्भासः पान्थविलासिनीजनमनःकम्पाय शम्भामन्व
॥ २ ॥ आकण्ठितानि रसितानि यथा प्रसर्पन्मृगुरा
जरथनि.स्वनसोदराणि । उच्चै रणुषरणुपुराणा
पुरन्ध्या क्षिप्रं मियं कुपितयापि तयाभिससे ॥ ३ ॥
आवासेऽस्मिन् विदग्धाः कचिदपि न विभो नापि

श्रोत्रिणोस्ते तर हैं उसे ऐसे समयमें छोड़कर जाना ठीक नहीं
है । देवो, भ्रमी गौविंमं एक ऐसी दुर्घटना हो चुकी है कि
एक गृहस्थ अपनी पत्नीको छोड़कर चला गया और वह
बेचारी विद्योहमें चल पसी, उसीको जलाञ्जलि देनेके लिये
लोग रोते बलपते हुए उसे कन्धेपर उठाए ले जा रहे हैं
॥ ११ ॥ जब चन्द्र बादल रूपी धुर्धो आकाशको ढके हुए हो,
चमकते हुए सुगुन आगकी उदती हुई चिनगारियोंके समान
दिग्राह दे रहे हों और सभी दिशाएँ बिजलीकी चमकसे सुन्दर
और पीली हो रहें हों उस समय जान पड़ता है मानो प्रवासी-
रूपी एक काम-रूपी आगसे जल उठा हो ॥ १२ ॥ जिस समय
काले-काले बादल गरज रहे हैं और बार-बार बिजलीकी कपक
काँप रही है ऐसे समयमें मैं समझता हूँ कि वह बेचारी
पद्मके सामनेसे हटकर चुपचाप छोटी हुई, दुखी होकर
लम्बी-लम्बी साँस लेती हुई तिसक तिसककर रो रही होगी
॥ १३ ॥ शाममें पनियल बादलोंकी गरजसे घबराकर होते हुए
परदेसीने विद्योहके दुःगसे भरा हुआ माना गाकर ऐसी कलकके
साथ चलाए भी कि उस समय प्राणघाती प्रवासकी
बर्षा तो दूर रही, प्रेमी प्रेमिकाओंने आपसमें रुझेको भी
विलाञ्जलि दे दी ॥ १४ ॥ हे प्रवामी ! सावनके जिस महानेमें
गोर घोटा रहे हैं, बादल गरज रहे हैं और मालतीके फूल
लिये रहे हैं उस समय भी यदि तुम घर नहीं छोड़ रहे हो
तो तमम छो. कि दुर्गतराँ मिया गौनी न बधेगी ॥ १५ ॥

नहीं तो हरिणीके समान चञ्चल नेत्रोंवाली जो बार परने
बादलकी गरज सुनकर भेरी छातीपर पड़ी हुई भी बरके मारे
कसकर लिपट जाती थी और अपनी मुठ मेरे मुँहसे
हटाकर बरके मारे मेरे गलेमें डाल देती थी वह इस समय
मेरे विद्योहमें भला यादलोंकी घटा कैसे देख पावेगी ! ॥ १६ ॥

वर्षान्मृगुके परदेसीकी नवेली : क्या बताऊँ ! इस
समय जो विचित्र बात देखनेमें आ रही है वैसे तो मैंने रात्रे
कभी देखी ही नहीं क्योंकि, देखो ! विष (जल) तो फिर
बादलोंने और मूर्च्छित हुई पड़ी है परदेसीकी ही ॥ १ ॥
जो बिजली, बरसातके दिनोंमें बादल-रूपी कृष्णकी पीली
कड़ौटी बनी हुई थी, अन्धकार-रूपी पहाड़की चमकती हुई बूँद
थी, चमके फूलसे बनी हुई कामदेवकी धनुषीकी बर्षा-रूपी लम्बी
मञ्जरी थी तथा आकाश रूपी कसीटीपर लिखी हुई चमकते
हुए सोनेकी रेखा थी, उसने विद्योगिनी द्विषाँका मन अकर्मण्य
कैवा डाला ॥ २ ॥ जिस बादलका गर्जन राजा कामदेवके रूपे
शब्दके समान हो रहा था, उसे सुनकर स्त्री हुई भेजे
भी अपने पैरके पायल बजाती थापने प्रियतमके पास पहुँचने
लिये स्वयं चल पड़ी ॥ ३ ॥ कोई बगोही रात रहनेके नि
मिस्त्रिके घर पहुँचा, वहाँ कोई स्त्री उससे बहने लगी—
न शराय ! इस घरमें मैं ही एक विद्योगिनी हूँ । इस कल्पने
अतिरिक्त कहीं भी नौद लेने योग्य विद्योगिनी नहीं है, लम्बे
लो बिजलीकी चमकती थी वह भी अब क्षुप्त हो गई है वर

निद्रोपभोगयोग्यत्वं स्वस्तरास्था विलयमुपगता सम्मुपे विद्युदेपा। प्रोक्ष्वायं पयोभृत्तदिति यदि रचिर्नशवासे तदास्वेत्युक्तः पान्थः सुदत्या हतमदनमयस्तत्र मुग्धोऽतिमुग्धः ॥ ४ ॥ पण्यन्त्यघश्यमधुना हृदयाधिनाथा मुग्धा मुग्धा कुसुत मा विविधं विलापम् ॥ इत्थं शशंसुरिच गजितकैतवेन पायोधराः पथिकपङ्कजलोचनाभ्यः ॥ ५ ॥ नमसि जलदलधर्मं सास्रया वीच्य दृष्ट्या प्रवससि यदि कान्तेत्यर्थमुक्त्वा कथञ्चित्। मम पटमयलम्ब्य प्रोल्लिखन्ती धरित्रीं तदनु कृतघती सा यत्र वाचो निवृत्ताः ॥ ६ ॥ प्रणतिभिरपि पत्युः प्रार्थनाभिश्च सख्याः क्षणमपि न मनस्तो मानिनी मानमौजम्भत। तमसमशरशस्त्रीभूतगानप्रकारः फणिनमिव शिखण्डी किन्न खण्डीचकार ॥ ७ ॥ प्रसरदलकाकीर्णं कर्णं न केकिरुतं श्रुतं श्रसितविजितो वातो धातो न वा कुदजोत्कटः। न च परिचितासाघासन्पशुताश्रुधि लोचने तदपि किमपि प्रावृट्श्यामा

धुनोति वियोगिनीः ॥ ८ ॥ मेघैर्योम नगाम्बुभिर्वसुमती विद्युलताभिर्दिशो धाराभिर्गगनं धनानि कुटजैः पूरैर्यूना निम्नगाः। एकां घातयितुं वियोगविधुरां द्नीनां वराकां स्त्रियं प्रावृट्काल हताश वर्णय कृतं मिथ्या किमाडम्बरम् ॥ ९ ॥ वाता वान्तु कदम्बैरेणुशरला नृत्यन्तु सर्पाद्विप सोत्साहा नयधारिर्गमर्भुरयो मुञ्चन्तु नादं घनाः। मशं कान्तवियोगशोकजलधामां वीच्य दानाननां विद्युत्कि स्फुरसि त्वमन्यकरणे स्त्रोत्वे समाने सति ॥ १० ॥ विरमन घना किं वो वृष्ट्या मुधैव विष्टृष्ट्या, व्रजत ककुम्भं कामप्यन्यां मनोरुचिरामतः। न तदिह घनं नासौ मार्गो न तच्च धरातलं विरहगलितैस्तन्या यत्र प्लुतं नयनाम्बुभिः ॥ ११ ॥ शिशिरसीकरयाहिनि मास्ते चरति शीतमयादिघ सत्वरः। मनसिजः प्रथिवेश वियोगिनीहृदयमाहितशोकहुताशनम् ॥ १२ ॥ श्रुत्वा तन्या निशीथे नचघनरसितं विप्लथाङ्गं पतित्वा शय्यायां भूमिपृष्ठे

भी घुमद रहे हैं, श्रुतः यदि रात काटनी हो तो उठर जाओ' यह सुनते ही उसका सारा कामदेवका डर छूट गया और वह प्रसन्न होकर धरती रह गया ॥ ४ ॥ बादल अपने गर्जनसे मानो प्रवासियाँकी कमलनयनी नवेलियाँको यह दाइस वैधा रहे हैं कि 'हे भोली-भाली नवेलियो ! ऐसे बरसातके समय तुम्हारे प्राणप्यारे श्रवण्य श्रावणे, तुम व्यर्थ रोना-कलपना न करो' ॥ ५ ॥ परदेस जानेवाला कोई व्यनित कह रहा है कि 'मेरी प्रियाने अपनी श्रौं-भरी श्रौंसे आकाशमें बादलकी शोभा देकर मुझसे किसी-किसी प्रकार यह थापी सी बात कही कि 'हे प्यारे ! यदि आप चले जायेंगे...' और फिर मेरा वस्त्र पकड़कर पैरोंसे धरती डुबेने लगी। इस प्रकार उसने कुछ ऐसा किया कि मुझसे कुछ कहते ही नहीं बन पड़ा ॥ ६ ॥ कूडी हुई नयैलीका जो शोध पतिके बार बार हाथ जोड़ने और सखियाँके समझाने मुझानेपर भी चण भरके लिये दूर नहीं हुआ, उसी शोधको, कामदेवकी तलधारके समान जी कपोतनेवाले किसी विद्योहीके गीतने, इस प्रकार डुकड़े डुकड़े कर दिए जैसे साँपको मोर डुकड़े-डुकड़े कर देता है ॥ ७ ॥ यद्यपि लटके हुए पालोंसे बके हुए कानोंमें मोरकी झूक भी नहीं पड़ी, उसकी लम्बी-लम्बी साँसोंसे डुरैयाके फूतकी तीली गन्ध भी हार मानकर उसकी नाकतक नहीं पहुँची और उसकी शौंमरी शौंसे सामने परिचित सुन्दर पशुपै भी नहीं आई

फिर भी बादलोंसे शौंधियाली वर्षा करतु वियोगिनीयोंने सताए ही डाल रही है ॥ ८ ॥ हे मोच वर्षाकाल ! निजोदसे हुक्की थीर दुखी बेचारी एक नवेलीका प्राण लेनेके लिये यह तुमने क्या व्यर्थका पसारा फैलाया है कि बादलोंसे आकाश भर दिया, नये जलसे धरती भर दी, निजलीकी लताशोंसे दिशाएँ पूर दीं, जल-धारश्रोसे सारा आकाश छा दिया, डुरैयासे जङ्गल भर दिए और बादले नदियाँ भर दीं ॥ ९ ॥ प्रियतमके वियोगकूपरी दुःखसागरमें डूयी हुईं मुक्त दीन वियोगिनीको देकर कदम्बके परागसे लदे ये पवन बहना चाहें तो मुझे ही बहें, मोर भी बडे चावके साथ नाचना चाहें तो मझे ही गच्छ और जलसे भरे हुए गम्भीर बादल गरजना चाहें तो मझे ही गरजें पर धरी निद्रु विजनी ! तू तो मरी है, नू क्यों यमके जा रही है ! मैं भी तो तेरी ही वीसी स्त्री हूँ ॥ १० ॥ हे बादलो ! अपना घरसना बन्द कर दो, दुग्दारी व्यर्थकी चपमे यहाँ कोई काम नहीं है। तुम जहाँ चाहो, किसी दूसरी दिशामें चले जाओ क्योंकि यहाँ ऐसा कोई वन, मार्ग या धरतीका स्पष्ट नहीं गया है जो विरहियाँ नवेलियाँके श्रामुश्रोसे भर न गया हो ॥ ११ ॥ जिस समय टपटे जलकी पुहारें लिए हुए शीतल पवन बहने लगा उस समय उसकी शीतलताके बन्ने शोककूपी आगकी मुलगती हुईं भट्टीपारले नियमितिके हरन्ने कामदेव मानो मय्यन्त शीप्रताके साथ प्रवेश कर

फरतलधृतया दुःखितालीजनेन । सोत्कारं मुक्तकण्ठं
फटिनकुचतटाघातशीर्णाश्रुविन्दु स्मृत्वा स्मृत्वा
प्रियस्य स्वलितमृदुवचो वचते पान्यवध्वा ॥ १३ ॥
सपि हे पश्य रसमयं जलधरसमयं समुद्रजम् । विल-
सति कापि यलाका कापि यलाका मुदं धत्ते ॥ १४ ॥

खद्योतः—प्राचीमहीधरशिलाविनिवेशितस्य धारा-
धरस्फुरदयोधनताडितस्य । तस्मात्सस्य तपनस्य
कणा विकीर्णाः खद्योतपोतसुपमां स्फुटमावहन्ति ॥ ११ ॥

हंसः—तटमुपगतं पद्मे पद्मे निवेशितमाननं प्रति-
पुटकिनीपत्रच्छायां मुहुर्मुहुःसितम् । मुहुःरुपगतैरल्लैः
फोष्णीकृता जलयोचयो जलदमलिनानां हंसेनाशां
विलोप्य पिपासता ॥ १ ॥ हन्त्येयं परितः प्रसारित-
तमःपुञ्जा पयोदावली गर्जन्ती पुरतः पिशाच-
दयिताकाराऽऽगता दृश्यते । तस्मान्नात्र सुखाय
हन्त वसतिः स्यादित्यतिव्याकुलो हंसो याति

॥ १२ ॥ आप्री रातके समय बादलकी गरज सुनकर विभोगिनी
नायिकाके हाथ-पैर फूल गए और वह घबराहटके भारे धरतीपर
विष्टे विद्यावनपर गिर पड़ी, उस समय उसकी सखियोंने
दुखी होकर उसे हाथका सहारा देकर सँभाल लिया और
तब वह अपने कठोर स्तनोंपर आँसुकी बूँदें गिराती हुई
मिथसमकी पुरानी प्रेम-भरी धातोंका स्मरण कर-करके धाड़
मार-मारकर रोने लगी ॥ १३ ॥ हे सखी ! रस (जल, अंगार)
से भरी हुई इस वर्षाको तो देखो, जिसमें कोई बगुली तो
भट्टरीलिप्याँ कर रही है और कोई बगुली हँसने नाच रही है ॥ १४ ॥

छुगुनु : उदयाचलकी चट्टानपर बादल-रूपी लोहेके घनसे
जो वह तपे हुए कोहेके समान लाल सूर्य पीटा गया उसीकी
उषी हुई धिनगारियाँ छुगुनु बनकर चमक रही हैं ॥ १ ॥

हंस : प्यासे हंसने देखा कि सब दिशाएँ बादलोंसे छाई
हुई हैं, अतः उसने जलराखके तौरपर जाकर वहाँ प्रत्येक
कमलपर अपनी बाँच लगाई, बार बार एक एक कमलिनीकी
घुँहमें बैठे और जब वहाँ भी उसे चैन न मिली तो उसने
बार-बार बहते हुए आँसुओंसे वह सारा जलका प्रवाह गरम
कर दिया ॥ १ ॥ 'बाह ! धीरे स्नयकर फैलाती हुई यह
मेघोंकी घटा पिशाचिनोकी भीति गद्गद्वाती हुई चली धार
रही है अतः भय यहाँ रहनेमें सुल नहीं है !' यही सोचकर
मानो हंस अपना सारा पुरगर्भ छोड़कर प्याकुल होकर अपने
मानसरोवरकी उद् गया ॥ २ ॥

विहाय सर्वकरणोद्योगं निजं मानसम् ॥ २ ॥
शरद्वर्णनम्—अतिश्लथालम्बिपयोधरेयं शुभीम
वत्काशविकासिकेशा । अतीतलावण्यजलप्रवाहा
प्रावृट् जरां प्राप शरच्छलेन ॥ १ ॥ अथ-प्रसन्नोद्गुभी
सिताम्बरा समायायुत्पलपत्रलोचना । सपङ्कजा
श्रीरिच गां निषेवितुं सहस्रयालव्यजना शरद्वधूः ॥ २ ॥
अथोपगृहे शरदा शशाङ्के प्रावृड्चयौ शान्ततडित्क
टात्ता । फालां न सौभाग्यमुखोऽङ्कनानां नयः परिभ्र-
पयोधराणाम् ॥ ३ ॥ अत्रुवनं घनराजिवधूसुखे वहल-
रागजवाघरचावणी । विकचवासुदालालयोऽधिकं
रुचिरे रुचिरेक्षयविभ्रमाः ॥ ४ ॥ अप्राकृत्यारोप-
ण्यपि च घनजालानि परितस्तमोधूमस्तोमोद्भवमस्ति-
निमानं च तदनु । शरद्वन्द्वः शिल्पी रतिपतिमुदेऽसी
निजकरैः सुधासन्दोहद्वैर्भुवनभवनं पाण्डुरयति ॥ ५ ॥
अपामुद्धृतानां निजमुपदिशन्त्या स्थितिपदं ददत्या

शरद्वृक्षा वर्णन : ठीले होकर लटके हुए बादलरूपी
स्तनोंवाली, उजले होकर बिलते हुए कौसरूपी केशोंवाली तथा
जलप्रवाहरूपी सौन्दर्यसे रहित यह वर्षा अब शरद ऋतु
आगमनके रूपमें बूद हो रही है ॥ १ ॥ कमलके साप होने
लक्ष्मी-सी जान पड़नेवाली, निर्मल चन्द्रमारूपी सुलवाली,
निर्मल आकाश-रूपी बस्त्रोंवाली तथा कमलकी पट्टियोंकी
आँसुओंवाली शरद्वरूपी नवेली अपने हंसरूपी पँवरोंके साथ
पृथ्वीपर घसनेके लिये आ पहुँची है ॥ २ ॥ शरद्वरूपी नायिकाने
जब चन्द्रमाको गले लगाया तब वर्षारूपी नायिकाकी खिली-
रूपी चितवन ठण्डी पड़ गई क्योंकि गिरे हुए पयोधर (सप,
बादल) वाली किन दिश्योंकी शोभा नष्ट नहीं हो जाती
॥ ३ ॥ वनमें गहरे खाल रङ्गके जपाकुसुम ही जिसके सुगन्ध
ओठ थे, उस वाटिका रूपी नायिकाके मुखमें खिले हुए इन
सँरैयाके फूलोंमें गूँठते हुए भीरे ही सुन्दर आँसुओंके समान नर
जुभा रहे थे ॥ ४ ॥ शरद्वके चन्द्रमारूपी चतुर करीगरने कामरेहो
प्रसन्न करनेके लिये पहले तो चारों ओर हाथ हुए बादलरूपी
जाल हटाए, फिर पँधरे-रूपी धुँपका कालापन मिटाया और
फिर अपने सुधा (अमृत, चूनेकी घारा) से जीते बँ
(किरणों, हाथों) से त्रिभुवन-रूपी घरको उजला कर दिना ॥
५ ॥ शरद्व ऋतुने उड़लकर बहते हुए जलकी स्थाप देना
यहना सिताराया, धातके पीधोंमें बालें आ जानेपर उन्हें मुझे
रहना सिलाराया तथा मोहोंका मदरूपी विष हर दिया । १५

शालीनामवनविमुदारे सति फले । मयूराणामुग्रं विप-
मिथ हरन्त्या मदमहो कृतः कृत्स्नस्वायं विनय
इव लोकस्य शरदा ॥ ६ ॥ अपीतक्षीवकादम्नसंखृष्टा-
मलाम्बरम् । अमसादितसूत्रमान्पु जगदास्मिननोरम् ॥
७ ॥ अमी पृथुस्तम्बभृतः पिशङ्गतां गता विपाकेन
फलस्य शालयः । विकासि वमाम्भसि गन्धसूचितं
नमन्ति निघ्रातुमिवास्यतोत्पलम् ॥ ८ ॥ अमी समुद्धृत-
सरोजरेणुना हता हतासारकणेन वायुना । उपा-
गमे दुश्चरिता इवापदां गतिं न निश्चेतुमलं शिलीमुषाः
॥ ९ ॥ अर्घ्यं सुप्तो निशायाः सत्प्रससुरतायाससन्न-
श्लथाङ्गः प्रोद्भूतासहस्रप्लो मधुमद्विरती हर्म्यपृष्टे
प्रयुद्धः । सम्भोगङ्गान्तकान्ताशिधिलमुजलतायजितं
कर्करीतो ज्योत्स्नाभिन्नाच्छुधारं न पिबति सलिलं
शारदं मन्द्रपुण्यः ॥ १० ॥ असावनास्थापत्यावधीरित-
सरोरुहिएया शिरसा नमन्नपि । उपैति शुष्यन्कलभः

सहान्भसा मनोमुषा तप्त इयामिपाएहनाम् ॥ ११ ॥
असितनयनलक्ष्मीं लक्ष्मिव्योत्पलेषु कण्ठिनकनकफाञ्जां
मच्छंसस्वनेषु । अघररुचिरशोभां वन्धुजीवे प्रियायां
पथिकजन इदानीं रोदिति भ्रान्तचित्तः ॥ १२ ॥ अहो
वाणस्य सन्धानं शरद्वि स्मरभूपतेः । अत्रि सोऽयं
त्विपामोशः कन्याराशिमुपागतः ॥ १३ ॥ आकम्पय-
न्फलभरान्तशालिजालान्प्यानर्त्यस्तद्वरान्मुसामयन-
प्रान् । उत्कृष्टपङ्कजवनां नलिनां विधुन्वन्धूना मनश्च
लयति प्रसभं नमस्वान् ॥ १४ ॥ आसादितमकटनिर्म-
लचन्द्रहासः प्रातः शरत्समय एव विशुद्धकान्तः ।
उत्प्राय गाढतमसं घनकालमुग्रं रामो दशास्यमिव
सम्भृतवन्धुजीव ॥ १५ ॥ इतश्चन्द्रस्सान्द्रः स्मरमय-
वयस्सन्धिमधुरः स्फुरन्मुग्धाकेलिस्मितमिव मयूरीः
सुपयति । चकोराणान्चक्रं कुमुदसमुद्रायोऽपि च
शरन्निशारम्भेऽमुष्मिन् समसमयमन्तर्दिकसति ॥ १६ ॥

प्रकार उसने सारे संसारको मानो नम्रताका पाठ पढ़ा दिया
है ॥ ६ ॥ शरदके आते ही हंस विना मदिराके ही मतवाले
हो गए, आकाश भी विना घोष ही निर्मल हो गया और
पानी भी विना धाने ही स्वच्छ हो गया ॥ ७ ॥ मोटे-मोटे
बण्डलोंमुले तथा पक्कर पीले पड़े हुए ये धान, ब्यारियोंके
जलमें खिले हुए सुगन्ध-भरे नीले कमलको सूँघनेके लिये ही
मारते मुके जा रहे हैं ॥ ८ ॥ कमलके परागमें बसे हुए और
श्रोसकी बूँदोंसे भरे हुए वायुकी शोर झिंचे हुए भारे इस
प्रकार अपने मार्गका निर्णय नहीं कर पा रहे हैं जैसे विपत्ति
पढ़नेपर दुश्चित्र च्यवित्रा कहीं और-ठिकाना नहीं लगता
॥ ९ ॥ सम्भोगकी अत्यन्त थकावटसे वीले शरीरवाला वह
मनुष्य अत्यन्त अभाग्य है जो अभी राततक नांद लेनेके
पश्चात् मदिराका मद डतर जानेपर झुत्तर प्यासके मारे
जागकर सम्भोगसे थकी हुई नाथिकाके कोमल कोमल हाथोंसे
गह्रुपसे उठका हुआ और चाँदनीकी धारसे मिला हुआ
शरद ऋतुका जल पीनेकी नहीं पाता ॥ १० ॥ मुकी हुई
धानकी बाँकोंके प्रथाम करनेपर भी अज गुमान-भरी कमलिनी-
ने उसकी धोरसे शौलें फेर लीं तो वे धानकी बालें जलके
साथ-साथ सूख-सूखकर कामसे तपे हुए प्यवितके समान
पीकी पड़ गई हैं ॥ ११ ॥ परदेसमें गए हुए लोग अज नीले
कमलोंमें अपनी प्यारीकी काली-काली शौलोंकी मूलक पाते
हैं, मतवाले हंसोंके कृन्तनमें अपनी प्यारियोंकी सुनहरी

करघनीकी रनसुनकी मूकक पाते हैं और दुपहरियाके फूलोंमें
उनके निचले थोंगोंकी रसमरी चमक पाते हैं तब तो वे बेघारे
अपनी सब सुष-पुष मूलकर बाढ़ मारकर रोने लगते हैं ॥ १२ ॥
शरद ऋतुमें महाराज कामदेव और कठसरैयाके फूलरूपी बायोंका
कैसा थच्छा मेल है कि उस बाणके लगते ही तेजस्वी सूर्य
भी कन्या राशि (कन्याश्रांका सुशद, कन्या राशि) में जा
पहुँचते हैं ॥ १३ ॥ दारोंसे भरी हुई बालियोंके मारसे मुके हुए
धानके पीधोंकी कँपाता हुआ, फूलोंसे लदे हुए सुन्दर बूँदोंको
नचाता हुआ और कमलोंसे भरे हुए तारोंकी कमलिनीयोंको
दिलालता हुआ शीतल वायु वलपूर्वक युवकोंका मन मूकमारे डाल
रहा है ॥ १४ ॥ चमकती हुई तलवार धारण करनेमें अत्यन्त
सुन्दर लगनेवाले और अपने वन्धुशोंके जीवनकी रक्षा करनेवाले
रामने जैसे अत्यन्त अधिमानी रावकका नाश किया था वही
प्रकार निर्मल चन्द्रमाके प्रकाशसे युक्त तथा अत्यन्त सुन्दर
दुपहरियाके फूलको खिलानेवाला यह शरत्काल, धन्धकारसे
भरे हुए मयङ्कर वर्षाकालका नाश करके आ पहुँचा ॥ १५ ॥
शरद ऋतुकी रात्रि प्रारम्भ होते ही बचपन और जीवनके
पीचकी काममरी धवस्थाके समान तथा इठलाकर शीघ्रा करती
हुई नवेलीकी मुस्तकानके समान मनोहर चन्द्रमा जैसे ही अपनी
किरणोंसे मुख देने लगा वैसे ही चकोर और कुमुदोंके समूह
मीतर-ही मीतर खिल उठे ॥ १६ ॥ धान पक्कर मुहावने
दिखाई देने लगे हैं, नदियोंका पानी उतर गया है और अब

उपैति सस्यं परिणामरम्यतां नदीरनौद्धत्यमपङ्कता
महीम् । नवैर्गुणैः सम्प्रति संस्तवस्थिरं तिरोहितं प्रेम
यनागमश्रियः ॥ १७ ॥ एकेन तुलुकेनाधिनिपीतः
कुम्भजेन यत् । तस्योदयेऽन्तःकालुष्यं त्यजन्त्यापो
भयादिव ॥ १८ ॥ येन्द्रं धनुः पाण्डुपयोधरेण शरहृद्या-
नार्द्रनखततामम् । प्रमोदयन्ती सकलङ्गमिन्दुं तापं
रवेरभ्यधिकञ्चकार ॥ १९ ॥ कदा नु कन्यागमनप्रवाहं
प्रत्नालयेयञ्जगति प्ररूढम् । इतीव भास्वान्परिवृद्ध-
तापस्तुलां विशुद्धयर्थमिवारुरोह ॥ २० ॥ कनकमङ्ग-
पिशङ्गदलैर्दधे सरजसारुणकेसरचारुभिः । प्रियवि-
मानितमानवतीरपां निरसनै रसनैरवृथार्थता ॥ २१ ॥
करकमलमनोशाः कान्तसंसकहस्ता वदनविजित-
चन्द्राः काश्चिद्वन्यास्तरुण्यः । रचितकुसुमगन्धि
प्रायशो यान्ति वेश्म प्रथलमदनहेतोस्त्यक्तसङ्गीतरागाः
॥ २२ ॥ कह्लारपद्मकुसुदानि मुहुर्बिधुन्वैस्तत्सङ्गमाद-

धिकशीतलतामुपेतः । उत्कण्ठयत्यतितरां पवनः
प्रभाते पत्रान्तलद्गनुहिनाम्बुविधूयमानः ॥ २३ ॥ कार-
ण्डवाननविघट्टितवीचिमालाः कादम्बसारसकुलाकु-
लतीरदेशाः । कुर्वन्ति हंसविरुतेः परितो जनस्य प्रीतिं
सरोरुहरजोहणित्तास्तटिन्यः ॥ २४ ॥ काशांशुवा-
विकचपद्ममनोक्षवक्रा सोन्मादहंसवर्णपुरनादरम्या ।
श्रापकशालिरुचिरानतगात्रयष्टिः प्राप्ता शरन्नवधूरिव
रूपरम्या ॥ २५ ॥ काशाः क्षौरनिकाशा दधिसरवर्णानि
सप्तपर्णानि । नवनीतनिभश्चन्द्रः शरदि च तद्रप्रभा
ज्योत्स्ना ॥ २६ ॥ काशैर्मही शिशिरदीधिताना रजन्यो
हंसैर्जलानि सरितां कुमुदैः सरांसि । सप्तच्युदैः कुमु-
मभारनतैर्वनान्ताः शुक्लीकृतान्युपवनानि च माल-
तीभिः ॥ २७ ॥ कृतमदं निगदन्त इवाकुलीकृतजगत्र-
यमूर्जमतङ्गजम् । वधुर्युक्लङ्गदुच्छुसुगन्धयः सतत
गास्ततगानगिरोऽलिभिः ॥ २८ ॥ कृतावधानं जितव-

शरदके नये गुण देलकर लोगांका मन भी वर्षाकी शोभासे उचट
गया है ॥ १७ ॥ शरदमें अगस्त्यके उदय होते ही जलने मानो
हसी दरसे अपने भीतरकी मलिनता छोड़ दी कि इस अगस्त्यने
एक ही खुल्ले सारा समुद्र सोख लिया था ॥ १८ ॥
जैसे किसी नवेलीके स्तनोपर किसी दूसरेके हाथसे लगे हुए
नखलतकी देतकर व्यभिचारी तो प्रसन्न होता है हिन्दु उसका
पति बुझी होता है, उसी प्रकार उनले पयोधर (बादल,
स्तन) पर तत्काल लगे हुए नरलतके समान दिखाई देनेवाले
हृन्मधुपर्वी छाप लिए हुए शरदने कलङ्को चन्द्रमाही प्रसन्न
(स्वच्छ) कर दिया और सूर्यका ताप बटा दिया अर्थात्
शरदमें चन्द्रमा निर्मल हो गय और सूर्यकी किरणोंमें तीव्रता
था गई ॥ १९ ॥ 'कन्या (कन्या, कन्याराशि) से संयोग
करनेका जो मेरा अपवाद सप्तारमें पैला है, इसे मैं बच मिटा
दाऊँ !' इसी चिन्ता में तपता हुआ सूर्य मानो अपनी
दृष्टिके लिये तुला (तुला राशि, तराजू) पर चढ़ गया
॥ २० ॥ सोने के टुकड़ेके समान पीली पशुबिर्गोवाले तथा
परागसे भरे हुए छाल केसरवाले असनके गुण, मियतमोंसे
ढुकराई जानेके कारण रुठी हुई चियाँका मोष बर करते हुए
अपना नाम सार्थक कर रहे थे ॥ २१ ॥ चन्द्रमासे भी अधिक
सुन्दर सुपवाली नवेलियाँ शरद ऋतुमें अपना सब गाना-
बजाना छोड़कर अत्यन्त कामातुर होकर अपने प्रेमियोंके
हाथोंमें अपने कमल जैसे हाथ डालकर पूँकोंकी रोजवाले

घरोंमें पेठी चली जा रही है ॥ २२ ॥ प्रातःकाल पर्वोपर
पक्षी हुई श्रोसकी चूँदें टपकाता हुआ, श्वेत और खाल कमलों
तथा कुमुदोंको बार बार हिला हिलाकर उनसे छू जानेके कारण
अधिक शीतल होकर धीमे धीमे बहता हुआ पवन अत्यधिक
मस्त बना देता है ॥ २३ ॥ जिन नदियोंका जल कमलके
परागसे लाल हो गया है, जिनपर हंस पूज रहे हैं, जिनकी
लहरें जल पक्षियोंकी चौंचोंसे टकरा रही हैं और जिनके
तीरपर वदम्ब और सारस पक्षियोंके कुण्ड घूम रहे हैं वे नदियाँ
शरद ऋतुमें पक्षी सुहावनी लगती हैं ॥ २४ ॥ फूले हुए कोंसेके
कपड़े पहने, मस्त हसांकी खोलीके सुहावने पायल बाँधे, पके
हुए धानसे अर्थिक मनोहर शरीरवाली और खिले हुए
कमलके समान सुन्दर मुखवाली शरद ऋतु थय नई न्यायी
हुई रूपवती तुलुहिनके समान था पहुँची ॥ २५ ॥ शरद ऋतुमें
बाँसेके फूल तो दूधके समान, जितवनके फूल दहीकी मलाईके
समान, चन्द्रमा मखलनके समान और चौदनी मट्टेके समान
दिखाई देने लगी ॥ २६ ॥ कोंसकी ऋषियोंने धरतीमें,
चन्द्रमाने राताँकी, हसाँने नदियोंके जलको, कमलोंने
तालायोंको, फूलोंके पोस्ते मुके हुए छुटियनके चियाँ
जङ्गलको और मालतीके फूलोंने फुलवातियोंको उज्जा कर
ढाला है ॥ २७ ॥ शरदके जिस पवनमें द्वितवनके पूँके
गुच्छोंकी सुगन्ध भती थी और जो भीरोंके स्तरोंमें गीत गाता
पल रहा था वह मानो त्रियुवनको प्यावृल कर देनेवाले

ह्रिण्ध्वनौ सुरक्तगोपीजनगीतमिःस्वने । इदं जिघत्सामपहाय भूयसीं न सम्यमभ्येत मृगीकदम्यकम् ॥२२॥
 केदार एव कलमाः परिखाभनघ्राः प्राचीनमामलक-
 मृध्यति घालनीलम् । उर्वायकं स्फुटति निर्गत-
 गर्भगन्धमस्त्रीभवन्ति च जरद्रपुस्तीफलानि ॥ ३० ॥
 केशान्तितान्तघननीलविद्युञ्चितताग्रानाधुर्यन्ति वनिता
 नवमालतीभिः । करौषु च प्रवरकाञ्चनकुण्ड-
 लेषु नीलोत्पलानि विविधानि निवेशयन्ति ॥ ३१ ॥
 कापि कापि तिरोहत् शुचि भयादम्भोमुचामा-
 गतेऽर्षोत्क्लासञ्चयमिन्दुना गतघनास्कन्दाय तस्मै
 पुनः । पृथ्वी सर्वमदीदृशत्ततमिव प्रक्षीयमाण-
 म्मसा सिन्धूनां पुलिनचञ्चलेन कुमुदप्रस्ताररूपेण च
 ॥ ३२ ॥ सुण्णमौक्तिकपरदगयाह्वरः शोभते स्म दिवि
 चन्द्रिकामरः । मेघवन्धनविसुकमीक्षितं क्षीरनीरधि-

ग्विन्दुमागतः ॥ ३३ ॥ गोधूमसर्पिर्घमुद्रुधान्यं रक्त-
 स्मृती रचनमस्ति मान्यम् । हंसोदकं तिक्तकपायमिष्टं
 घनान्तकाले लघु दुग्धमिष्टम् ॥ ३४ ॥ चञ्चलाम्बु-
 क्षमचलितकुमुदस्तोमसारभ्यतुभ्यजाम्यदृङ्गमसन्नप्र-
 टितयुगपत्कोमुदीध्वान्तपूरैः । कासारं छातिताङ्गः
 शुचिसिचयद्विमोशीर्गर्भरमुकामालाशाली प्रदोष
 शरदि शशिरानाश्रयस्ताघपृष्टे ॥ ३५ ॥ चञ्चलमनो-
 घशफरीरसनाकलापाः पर्यन्तसंन्यतसिताण्डजपक्कि-
 हाराः । नद्यो विशालपुलिनान्तनितम्बधिन्ना मन्दं
 प्रयान्ति समदाः प्रमदा इवाद्य ॥३६॥ चन्द्रायते शुक्ल-
 रुचापि हंसो हंसायते चादगतेन कान्ता । कान्तायते
 स्पर्शसुप्तेन वारि वारोयते स्वच्छतया विहायः ॥ ३७ ॥
 चेतः कर्पन्ति सतच्छुद्धकुसुमरसासारभ्यलुभ्यन्-
 श्लोसह्रीतमङ्गिश्रुतिसुभगदिशो वासराः शारदीनाः ।

मतवाले कार्तिकरूपी हाथीके धानेकी सूचना दे रहा था
 ॥ २८ ॥ बड़े मीठे गलेवाली गोपियोंके जिस गीतकी ध्वनियोंने
 मोरकी मधुर कूजको भी हरा दिया है उन्हें ध्यान देकर सुनता
 हुआ यह हरिणियोंका झुण्ड ऐतौ चरनेकी प्रबल हृच्छाको
 रोककर ऐतौकी धीर न जाकर गीतोंमें कान लगाए खड़ा है
 ॥ २९ ॥ साठी धानकी घाले खेतोंमें ही पक्कर फुक गई है ।
 ऐतकी बरहोंमें धाँवलेके छोटे छोटे नीले-नीले पौधे शोभा पा
 रहे हैं, कचरी अपने भीतरसे गन्ध फौकता हुआ फट रहा
 है और खीरेके फल पक्कर लड़े हो रहे हैं ॥ ३० ॥
 शरदमें खियाँ अपनी घनी धुँधराली काली लटोंमें नये
 मासुतीके फूल गूँथ रही हैं और अपने जिन कानोंमें वे सानेके
 बधिया झुण्डल पहना करती थीं -उनमें अनेक प्रकारके नीले
 कमल खटका रही हैं ॥ ३१ ॥ बादलोंके धा जानेसे धरके मारे
 पृथीपर कहीं-कहीं चाँदनीका जो देर छिप गया था उसे ही
 मेघोंका हर बीत जानेपर चन्द्रमाने मानो सूखे हुए जल, ससुदका
 तट और खिले हुए कुमुदोंके फौलाके पहने (उस चाँदनीको)
 सारी विसृत्त पृथ्वीके दर्शन करा दिए ॥ ३२ ॥ शरद
 ऋतुमें पिसे हुए शोतियोंके चूर्णके समान उजली चाँदनी-
 वाला चन्द्रमा आकाशमें देसा सुन्दर दिखाई दे रहा था
 मानो मेघोंके बन्धनसे छूटे हुए अपने पुत्र चन्द्रमाको देखनेके
 लिये धीरसागर (वृषका ससुद) था पहुँचा हो ॥ ३३ ॥
 शरद ऋतुमें गेहूँ, धी, जौ, मूँग आदि अन्न और रक्तसुति तो
 उत्तम रेशक (शुद्ध शीघ्र जानेवाले) माने गए हैं तथा

ठंडा जल, बहुधा, कसैला, मीठा रस तथा थोड़ा दूध हितकारी
 माना गया है ॥ ३४ ॥ जिस तालाबमें उदके हुए हंसोंके पंहुँगे
 दिलते हुए कुमुदोंपर सुगन्धके लोभने आकर लड़े हुए भीरे ऐसे
 जान पड़ते हैं मानो एक साथ चाँदनी और शोधता फूल
 रहा हो उस तालाबमें स्नान करके पवित्र बस्त्र धीरे पालेके
 समान उजले शीतल गन्ध, कपूर और मोतियोंकी माला
 पहने कोई पुरुष शरद ऋतुकी रातके प्रथम पहरमें धुवर
 जाकर चाँदनीका ध्यानन्द लेने जगा ॥ ३५ ॥ उदककी
 हुई सुन्दर मछलियाँ ही जिनकी करघनी हैं, तीरपर
 बैठी हुई उजली खिचियोंकी पारतें ही जिनकी माजाएँ हैं और
 ऊँचे-ऊँचे रेतोले डीले ही जिनके बड़े-बड़े गोल नितम्ब हैं, वे
 नदियों, शरद ऋतुमें उसी प्रकार धीरे-धीरे बह रही हैं जैसे
 बड़े बड़े नितम्बोंवाली मद्रमाती नवेली कामिनियों कर घनी
 और माला पहने हुए धीरे-धीरे चली जा रही हैं ॥ ३६ ॥ शरदमें
 अपने उजलेपनसे इस भी चन्द्रमासा दिखाई पड़ता है, नवेली
 भी अपनी सुन्दर चालसे हंसकी बराबरी कर रही है, धुनमें बरदा
 लगनेवाला जल खीके समान शीतल लग रहा है और स्वच्छ
 हो जानेके कारण आकाश भी जलके समान ही हो गया है
 ॥३७॥ शरद ऋतुमें दितवनके पलकी रसधाराओंके सुगन्धकी
 लोभी भीरियोंकी गानेकी ध्वनिले सग दिशाएँ गूँथ रही हैं
 और तरण सूर्य भी खिले हुए कमलके मुचवाली, तथा उदके
 हुए भौरोंकी चोटोवाली कमलिनियोंके साथ अटलैलियों करने
 लगा है ॥ ३८ ॥ सूर्यने अपनी किरणोंमें सशारमें फैले

किञ्च व्याकोशपङ्केरुहमधरमुखीं सञ्चरञ्चञ्चरीकश्रे-
णीवेशीसनाथां रमयति तरुणः पद्मिनीमंशुमाली ॥३८॥
जगति नैशमशीतकरः करैर्विथिति वारिद्वन्द्वन्दमयं
तमः । जलजराजिपु नैद्रमदिव्रवन्त महतामहताः फव
च नात्यः ॥ ३९ ॥ जगरप्रसृतिर्जगदेकपावनी व्रजोप-
कण्डं तनयैरुपेयुपी । द्युति समग्रां समितिर्गंधामसाडु-
पेति मन्त्रैरिव संहिताडुतिः ॥ ४० ॥ जीमूतेषु महत्सु
लोकमपरं यातेषु तद्दान्धवाः केचिद्धारिमुचः कृशाः
प्रचलतरस्तनाशशोकादिव । मौनस्था इव शान्तगजित-
तया भस्मानुलिप्ता इव श्वेताः प्राप्य तपोमयीमिव
दशामाशान्तभाजोऽभवन् ॥ ४१ ॥ तनुरुहाणि पुत्रोचि-
जितध्वनेर्धवलपत्तचिह्नहङ्गमकृजितैः । जगलुरत्तमयेव
शिप्रदिडनः परिभवोऽरिभवो हि सुदुःसहः ॥ ४२ ॥
तारागणप्रवरभूषणमुद्रहन्ती मेघावरोघपरिमुक्तशशा-
ङ्गध्वजा । ज्योत्स्नाडुकूलममलं रजनी दधाना द्युक्तिं
प्रयाप्यनुदिनं प्रमदेव चाला ॥ ४३ ॥ तीक्ष्णं रविस्तपति

नीच इवाचिराढ्यः शृङ्गं रुरुस्त्यजति मित्रमिवा-
कृतज्ञः । तोयं प्रसीदति मुनेरिव चित्तवृत्तिः कामं
दरिद्र इव शोषमुपैति पङ्कः ॥ ४४ ॥ ददतमन्तरिता-
हिमदीर्घिति खगकुलाय कुलायनिलायिताम् । जलद-
कालमयोधकृतं दिशामपरथाप रथावयवायुधः ॥ ४५ ॥
दर्शयन्ति शरद्वचः पुलिनानि शनैः शनैः । नवसङ्गम-
सञ्जीवा जघनानीव योपितः ॥ ४६ ॥ दिवसकरमयूतै
बौध्यमानं प्रभाते वरयुवतिमुक्ताभं पङ्कजं जूम्भतेऽथ ।
कुमुदमपि गतेऽस्तं लीयते चन्द्रयिम्ये हसितमिव
वधूनां प्रोपितेषु प्रियेषु ॥ ४७ ॥ दूरं तोयधरान्धकार-
करिणां यूथेषु नष्टेष्वितो निष्कामन्मुदयाद्रिकन्दर-
भुवः कृत्यैकमङ्गं मृगम् । तत्त्वोदन्नतजैरियारुणकर-
प्राप्तप्रकृष्टोदयः पश्यायं शरदिन्दुरघ कुर्वते शार्दूलवि-
क्रीडितम् ॥ ४८ ॥ द्वयमिदमत्यन्तसमं नीचे प्रमधि-
प्युता शरद्वेयम् । क्षेत्रेभ्यः प्राप्य फलं खलेषु निवि-
प्यते यस्याम् ॥ ४९ ॥ धन्याः शरदि सेवन्ते प्रोक्षस-

हुए रात्रिके अन्धकार, आकाशमें छाए हुए बादलरूपी
अन्धकार और कमलोंमें बसे हुए नींदके अन्धकारको भगा
दिया । प्रतापी लोगोंके शत्रु भला कहीं नहीं मार खाते हैं
॥ ३९ ॥ शरद् ऋतुमें संसारकी माता, संसारको पवित्र
करनेवाली और अपने वधुओंके साथ गोठमें पहुँची हुई यह
गायोंकी टोली ऐसी सुन्दर दिखाई पड़ रही हैं मानो मन्त्रोंके
साथ ही हुई आहुतियाँ हीं । ४० ॥ शरद् ऋतुमें आकाशमें
छिंटफुट दिखाई देनेवाले बादल ऐसे जान पड़ते हैं मानो
उनके जो वर्षाभूतके बड़े-बड़े बादल भाई दूसरे लोकोंको षले
गए हैं उनके वियोगके दुःखमें ये हुबले पड़ गए हैं, अपनी
गणगाहट बन्द करके मीन हो गए हैं, वैराग्यके कारण भस्म
पोतकर उजले हो गए हैं तथा इस प्रकार तपस्वी जैसा वेप
बनाकर धरतीके क्षीरपर जा बसे हैं ॥ ४१ ॥ शरद्में मीनोंके
पट्ट मानो इस जलनते गिर गए कि जलले पहुँचाने हँसोंकी
दृजन्ते हमारी घोड़ी हार गई है । सचमुच शत्रुसे किया हुआ
अपमान बढ़ा अक्षय होता है ॥ ४२ ॥ तारोंके सुहावने गहने
पत्ते हुए और चाँदनीकी उजली साँझी छपटे हुए अलबेली
नखेलीके समान शरदके दिनोंमें बादल हटे हुए चन्द्रमाके
मुँहवाली शय, दिन-दिन बढ़ती चली जा रही है ॥ ४३ ॥
शरद् ऋतुमें नीच नये धनीके समान सूर्य अत्यन्त तपने
लगे है, जैसे उपकार न माननेवाला मनुष्य अपने मित्रको

घोड़ देता है वैसे ही रुरु मृग भी अपनी सींगें गिराता
है, मुनियोंके मनके समान जल निर्मल हो रहा है और
दरिद्रके समान कीचड़ अत्यन्त सूखता जा रहा है ॥ ४४ ॥
जिस वर्षाने सूर्यको छिपा दिया था, चिदियोंको बँसलोंमें ही
बन्द रहनेका आदेश दे दिया था और जिसमें दिशाओंका
ज्ञान नहीं हो पा रहा था उस वर्षाको चक्रवर्ती कृष्णने
शरदके रूपमें पाया ॥ ४५ ॥ शरदके दिनोंमें नदियाँ अपने
दोनों तटोंको इस प्रकार धीरे-धीरे छोड़ती हैं जैसे अपने
पतिके नये-नये समागमसे लजाली हुई स्त्रियाँ अपना अवन
धीरे-धीरे खोलती हैं ॥ ४६ ॥ शरद्में प्रातःकाल जप सूर्य
अपने करों (किरणों) से कमलको जगाता है तब वह कमल
सुन्दरी युवतीके मुखके समान खिल उठता है और जैसे
प्रियके परदेस चले जानेपर स्त्रियोंकी मुस्कुराहट जाती रहती
है वैसे ही चन्द्रमाके छिप जानेपर कोई रुझुचा जाती है
॥ ४७ ॥ देखो, पतियल बादलोंके अन्धकाररूपी हावियोंके
समूहोंके पूर भाग लुकनेपर, अपनी गोदमें एक मृग खेच
उस मृगके रकले जपयच करो (किरणों) को लीलाए हुए
अत्यधिक शोभित होता हुआ यह शरद् ऋतुका चन्द्रमा ही
सिद्ध जैसा आचरण करता हुआ उदयाचलकी गुफामें निहल
रहा है ॥ ४८ ॥ नीचोंकी प्रभुता और शरद् ऋतु दोनों एक-ही
दिखाई देती हैं, वर्षाके दोनोंमें ही क्षेत्र (सत्यम्, क्षेत्र) से

च्चित्रशालिकात् । प्रासादाँलीसपाः पोराः केदारोँथ
 रुपीयलाः ॥ ५० ॥ नद्यो वहन्ति इटिलनम्युकिशुकि-
 रेपाङ्गवालपुलिनोदरसुसकुर्मा । एतामस्तरङ्गितनुतोय-
 पलायमानमीनानुसारिवकदचकरालफालाः ॥ ५१ ॥
 नमिताः फलभारेण नमिताः शालमञ्जरी । केदारेषु
 हि पश्यन्त, के दारेषु चिनिःस्पृहा ॥ ५२ ॥ नद्यं धनु
 र्वलभिदो जलदोदरेषु सौदामिनी स्फुरति नाद्य त्रिय-
 त्पताका । धुन्वन्ति पद्मपवनैर्न नभो वलाकाः पश्यन्ति
 नोन्नतसुखा गगनं मयूराः ॥ ५३ ॥ नारीनयननिराश-
 तमम्युजमम्भसि निमज्जति प्रपया । मधुलुन्धा, पुनर-
 लयः फरणं क्रन्दन्ति सुखितव्याजात् ॥ ५४ ॥ नीलनी
 रदनिचोलकोज्जिते व्योमदर्पणते शरद्वधुः । चन्द्रमा-
 ननमिव व्यलोरुयसत्तृणोन्मिपितकैरवेक्षणा ॥ ५५ ॥
 नृत्यप्रयोगरहिताश्रिखिनो विहाय हंसानुपैति मदनो
 मधुरप्रगीतान् । मुक्त्वा कदम्बकुटजार्जुनसर्जनीपान्स

सच्छुद्रानुपगता कुसुमोद्गमश्रीः ॥ ५६ ॥ नेत्रोत्सवो
 हृदयहारिमरीचिमाल, प्रह्लादक शिशिरसीररवारि-
 वर्षां । पत्यु वियोगविपद्विद्यशरच्छानाना चन्द्रो दहन्यति-
 तरां तनुमङ्गनानाम् ॥ ५७ ॥ पतन्ति नास्मिन्निशदाः
 पतन्निशो धृतेन्द्रचापा न पयोदपद्मय । तथापि
 पुष्पाति नम, धियं परां न त्यमहाहार्यमपेक्षते गुणम्
 ॥ ५८ ॥ पयोदकेषु विरुष्य गोपाभिन्पाम्य सा
 फोकनदायताली । वर्षावधूं च्यां धियमुच्चयन्ती प्रोढा
 सपत्नोय शरच्चकारो ॥ ५९ ॥ पायोदजालजटिलं
 मलिनं शरदङ्गना । श्रमरं धान्यमास चन्द्रिकाचय-
 वारिभिः ॥ ६० ॥ पूर्वं वारिधरप्रमद्गसमयेनापूर्वितः
 कुक्षिभिर्यां गभिर्य इयातिभारगुरयो निम्नेव्यतामा-
 गता । एतास्तस्मरति ता जिभान्यकलुषा । क्षामाभि-
 रामाङ्गिका, कृजत्सारसपोतपीतपयसो नद्यः प्रस्ता
 इव ॥ ६१ ॥ भिन्नाञ्जनप्रचयकान्ति नभो मनोमं वन्धू

फल (घन, धनाज) लेकर खल (नीच, रलिहान) में रक्ता
 जाता है ॥ ४९ ॥ वे पुरासो धन्य है जो शरदूमं रत्न विरजे
 चित्रोत्सवार्थे हुई अदारियोंमें अपनी नवेलियोंके साथ
 आनन्द लेते हैं और वे किसान धन्य है जो अपनी खियोंको
 साथ लेकर लहलहाते हुए घानोंवाली ब्यारियोंका धानन्द
 लेते हैं ॥ ५० ॥ शरद्वक्तुमें वे नदिधार् डेरी मेठी यह रही हैं
 जिनके सीपोंसे चमकते हुए तटोंमें कद्गुप सो रहे हैं तथा
 जिनके लहराते हुए थोड़ेसे जलमें भागती हुई मछलियोंको
 पकड़नेके लिये बगुले भयङ्कर रूपदा मार रहे हैं ॥ ५१ ॥
 ब्यारियोंमें आनन्दके बोझसे मुकी हुई आनगितत धानकी
 बालियोंको देखकर बीन ऐसे लोग हैं जो नवेलियोंका रस लेनेकी
 इच्छा न करने लगते हैं ॥ ५२ ॥ शरदके बादलोंमें न तो
 शरद्वधुपक रह गए हैं, न बगुले ही अपने पहु हिला हिलाकर
 आकाशको पहुआ फल रहे हैं और न मोरोंके सुयह ही अपनी
 बाँधें उडा-उडाकर आकाशकी और निहार रहे हैं ॥ ५३ ॥ मवेलोंके
 नेत्रोंसे अपनीमति होकर लाजके कारण कमल पानीमें डूब मरा
 है और परागके लोभी भीरे उसके विद्योहमें अपनी गुजारके स्वरमें
 विलस-विलसकर रो रहे हैं ॥ ५४ ॥ नीला बादलरूपी परदा
 हटते ही आकाशरूपी दर्पणमें खिले हुए सुन्दररूपी नेत्रोंवाली
 शरद-रूपी यह अपनी चन्द्रसुख देतने लगी ॥ ५५ ॥ शरदके
 कारण जिन मोरोंने नाचना बन्द कर दिया है उन्हें छोडकर
 अब कामदेव बड़ी मीठी मोतीमें रन-गुन करनेवाले हसोंके

पास पहुँच गया है और फूलोंकी सुन्दरता भी कदम्ब, कुट्टम,
 अर्जुन, सर्ज और अशोकके बूषोंकी छोडकर छविबन्धके तिरवों-
 पर जा बसी है ॥ ५६ ॥ सबकी आँसोंको मुहानेवाले जिस
 चन्द्रमाकी किरणें भरस अपनी शोर मन खींच लेती हैं वही
 सुहावना और ठण्डी किरणें बरसानेवाला चन्द्रमा शरदके
 दिनोंमें उन नवेलियोंके शर्ज भूने डाल रहा है जो अपने
 पतियोंके विद्योहके विपत्रुके ब्यारोंमें घायल होकर अपने
 परोमें पडी कलप रही है ॥ ५७ ॥ शरदके आकाशमें बरापि
 उजले हस नहीं उड़ रहे हैं और बादलोंमें इन्द्रधनुष भी नहीं
 निकला है फिर भी आकाशकी शोभा देखते ही बनती है
 क्योंकि जो बस्तुएँ स्वभावसे ही सुन्दर हाती हैं उनमें बनावटी
 सुन्दरता लानेकी आवश्यकता नहीं होती ॥ ५८ ॥ कमल ही
 जिसके बड़े बड़े नेत्र थे उस नहीं नई ब्याहकर थाई हुई शरद
 धनु-रूपी सौतेने क्रोधपूर्वक बगरूपी नवेलीके बादलरूप्या
 बाल पकडकर उसे बाहर निकाल दिया और अपनी अप्रिकार
 जमाकर प्रसन्न दिराई देने लगी ॥ ५९ ॥ शरदरूपी नवेलीने
 बादलोंकी मैलसे भरे हुए आकाशको चँदनीके जलमें घो
 दिया है ॥ ६० ॥ पहले बादलोंके सयोगमें तिनकी कोणें भर
 गई थीं और जो गभियोंकी भति अधिक भारवाली हो
 जानेसे उपभोग करने-योग्य नहीं रह गई थीं वे ही नदियों
 अब स्वच्छ, टुनली पतली और सुन्दर शरीरवाली हो गई हैं
 तथा उनमें सारसके बच्चे जो कूज-कूचर पानी पी रहे हैं

फणुपुपरजसाऽरुशिता च भूमिः । घमाश्च पक्ककलमा-
 वृतभूमिभागाः प्रोक्तकण्टयन्ति न मनो भुवि कस्य यूनः
 ॥६२॥ मधुभाषिताशयानां सत्यपमानेऽपि नैव निर्वेदः ।
 जीवनरुचि पश्यान्जं न्यफरुतमपि नागरीनयनैः ॥६३॥
 मधुमधुरिमभङ्गौ भेजिरे हंसनादास्तुहिनपटललीलां
 लेभिरे वारिवाहाः । क्षितिरभयदपद्मा किञ्च रोलम्ब-
 यालायलिकलितनलिन्यः शैवलिन्यस्त्वदासन् ॥ ६४ ॥
 मन्दागिलाकुलितचारतराप्रशापः पुष्पोद्गममचयको-
 मलपल्लवाद्यः । मत्तद्विरेफपरिपीतमधुमसेकश्चित्तं
 विदारयति फस्य न कोविदारः ॥ ६५ ॥ मयूखैरेकद्वैः
 फलभद्रशानच्छेद्विशिष्टैर्लिखाद्भिर्गंधान्ते तिमिरसुरसा
 प्रेयमधुना । हरिन्माहेन्द्रीयं नवनिकपनियैर्हरजतस्कु-
 रद्धतीवर्णैः फलयति निशाभत्तैरुदयम् ॥ ६६ ॥ मुखस-
 रोजरचं मदपाटलामनुचकार चकोरदशां यतः । धृत-
 नयातपसुस्तुक्तामती न कमलं फमलम्भयदम्भसि

॥ ६७ ॥ सुपौरसौ विदुमभङ्गलोहितैः शिखाः पिशङ्गीः
 कलमस्य विभ्रती । शुकावलिव्यकशिरीषकोमला धनुः-
 श्रियं गोत्रभिदोऽनुगच्छति ॥ ६८ ॥ यशसो वर्धमा-
 नस्य जयतामिव भ्रुजाम् । श्रवकाशाय वैपुल्यं प्रापु-
 र्वातियना दिशः ॥ ६९ ॥ रम्यं हर्म्यतलं नवाः सुनयना
 गुञ्जद्विरेफा लताः प्रोन्मीलघामालतीसुरभयो धाताः
 सचन्द्राः क्षपाः । यद्येतानि जयन्ति हन्त परितः
 शूलाण्यमोघानि मे तद्गोः कीदृगसौ विवेकविभवः
 कीदृक्प्रयोधोदयः ॥ ७० ॥ राजीवमिव राजीवै जलं
 जलमियाजनि । चन्द्रश्चन्द्र इवातन्द्रः शरत्समुदयोमे
 ॥ ७१ ॥ वधूनयननिर्जितं मधुपकैतवाभोरजं शिवाल-
 वलयं दध्नुस्वरितं तदुवृञ्जितैः । विधाय तपसि
 स्थिति वननिवासि पोतात्पञ्जयाय जपति ध्रुवं कमपि
 मन्दमन्दं मनुम् ॥ ७२ ॥ चिकचकमलवक्त्रा फुल्लनी-
 लोत्पलाक्षी विकसितनयकाशश्वेतवासो वसता ।

उससे पेसा जान पड़ता है मानो शब उन्होंने बच्चे जन
 दिए हैं ॥ ६१ ॥ घुटे हुए आँजनकी पियडीके समान नीला
 सुन्दर आकार, दुपहरियाके फूलोंसे सजी हुई लाल-लाल
 परती और पके हुए सुन्दर छेत इस संसारमें किस सुबकका मन
 रौंवाचोल नहीं कर देते ॥ ६२ ॥ जो मधु (मदिरा) पीकर मस्त
 पड़े रहते हैं उन्हें थपमान होनेपर भी दुःख नहीं होता । इस
 कमलको ही देखो, नयेलीके नयनोंसे थपमानित होकर भी
 यह प्रसन्नतापूर्णक रूपि जा रहा है ॥ ६३ ॥ शरद ऋतुके फारण
 हंसोंकी फुल्लमें बड़ी मिठास घा गई, बादल भी जमे हुए हिमके
 समान उजले दिराई देने लगे, घरतीपर कीचड़ नहीं रह
 गया और गदियोंकी कमलिनियोंपर भीतोंके सुपट नैहराने
 लगे ॥ ६४ ॥ जिस कोविदारके रूपकी दहनियोंकी भङ्गी-भङ्गी
 पुनगियोंकी घामा-घामा पवन झुलाए झल रहा है, जिसपर
 वेरके-वेर फूल तिले हुए हैं, जिसकी परियाँ बड़ी कोमल हैं
 और त्रिमसेसे बहते हुए मधुकी धारकी मस्त और धरे-धरे
 प्यार रहे हैं वह शरद ऋतुमें किसका हृदय टुकड़े-टुकड़े नहीं कर
 देगा ॥ ६५ ॥ नई बसोंतीपर उड़की हुई पौड़ीकी चमड़ीकी देवाके
 समान रह बानी, हाथोंके चपके दाँतके टुकड़ोंके समान उजली
 तथा बादलोंके बीच-बीच भरे हुए घने धौंयेपर हुए गिबती
 दुर्-सी एक-दो किरणोंसे हरे रामय हृदकी दिशा (पूर्व)
 रातके स्वामी चन्द्रमाका उदय होना गृहित कर रही है ॥ ६६ ॥
 बजमें बिधा हुआ और नई धरते चमककर चरारके समान

शौलोंवाली बियोंके मद्दे जाल मुख-कमलकी-सी काविरागा
 कमल शरदमें किसके हृदयमें झलचल नहीं मचा देता ॥ ६७ ॥
 मूँगेके टुकड़ेके समान लाल ठोरोंमें धानकी भूरी-भूरी बनें
 खिप हुए सिरसके फूलके समान कोमल सुगंधी धान
 थाकारमें हृदयनुप-स्ती होना वे रही हैं ॥ ६८ ॥ तिराई
 मानो इसीखिये बादलोंकी हटाकर विलुप्त हो गई कि
 दिग्विजय करनेवाले महाराजोंके बच्चे हुए पराको कैत्रके
 खिये स्थान मिल सके ॥ ६९ ॥ कामदेय कहता है कि 'सुन्दर
 अटारियोंवाली छतें, नई नयेखियों, मूँगेके हुए भीतोंकी भी
 वेतें, मालकीकी सुगन्धसे भरा हुआ पवन और बरतनी रात
 भादि सदा ठीक चोट पहुँचानेवाले ये हमारे शरीर पर कानों
 और कानों ही हुए हैं तो हमारे सामने किसीका हींग मार
 और जान छोड़ना दोनों ब्यर्थ ही है' ॥ ७० ॥ शरद ऋतु
 धाते ही कमल यथायथमें कमलके समान, जल शकके समान और
 चन्द्रमा चन्द्रमाके समान सुन्दर हो गया ॥ ७१ ॥ नयेरितोंके
 नेत्रोंसे हारा हुआ कमल भीतोंकी परितोंके रूपमें पराके
 माला धारण करके उनकी गुञ्जाके स्वरमें उड़ पाए कर
 हुआ, धन (धानी, धन) में खिलत होकर, धूप रंजा हुए
 तथा धरे-धरे कोई विजयसन्त्र धरता हुआ विजय हो गई
 भीतनेके खिये तपस्या कर रहा है ॥ ७२ ॥ मायावत् कर, वह जिसे
 हुए उजले कमलके सुभवाती, फूले हुए भीले कमलकी ब्रह्मलोकी,
 सुन्दर कोहँके शरीरवाली और फूले हुए बालकी बनी

हुमुदरुचिरकान्तिः कामिनीरोम्भदेयं प्रतिदिशतु शर-
द्रघ्नेतसः श्रीतिमग्रधाम् ॥ ७३ ॥ विगतसन्ध्याजिघत्स-
मर्धदृयत्कलमगोपयधूर्नं मृगवज्रम् । श्रुततदीरिनफोम-
लगीतकध्वनिमिपेऽनिमिपेक्षामग्रतः ॥ ७४ ॥ विद्यु-
क्षिप्रिपावलीविलसितं निर्वाण्य सर्वोत्तमा भित्वा
कज्जलकालिकाप्रणयिनीन्मोदमुपासामपि । उन्मीलान्-
वचन्द्रमण्डलमिपात्सङ्घान्तरागोज्वलश्रीमार्जं रस
पिण्डमेव सहसा वर्षोत्थयः कर्षति ॥ ७५ ॥ विद्यु-
घटनाचदनजितं प्रमोदितमपि प्रसह्य मित्रेण । फिचि-
नोति कवलनार्थं पद्ममलिच्छुभ्रतो गरलम् ॥ ७६ ॥
विपारब्धुभिर्मलानतया पयोधैरेश्च्युतांचिरामा शुण्डे-
मदामभिः । इयं कदम्ब्यानिलग्नर्तुरत्यये न दिग्घूर्नां
कृशता न राजते ॥ ७७ ॥ विहाय घाञ्छामुदितेमदात्य-
याद्वरककण्ठस्थं रुते शिपारिहिनः । ध्रुतिः श्रयत्युन्म-
दहंसनिःश्वनं गुणाः म्रियत्येऽधिकृता न संस्तवः

॥ ७८ ॥ विहारभूमेरमिधोपमुन्मुनाः शृगीरजेभ्यश्च्यु-
तयूपपङ्कयः । अस्तकमूर्धांसि अप्य चरन्व्यमूरापायना-
नीय नयन्ति घेननः ॥ ७९ ॥ वृद्धाङ्गनेत्र विजह्नी सरि-
उद्धतवर्षं घेदान्तिनामिध मनः शुचि नीगमासीन् ।
चन्द्रे प्रभा युवतिप्रक श्वाद्भुनामृद्धिद्वन्मिन्मि
केकिरुतं न रजे ॥ ८० ॥ व्योम कचिद्रजतशङ्खमृपाल
गौरैस्त्वकाम्युर्भिल्लद्युतया शनश प्रयातं । सैलनयेते
पथनोर्गचलैः पयोदै राजेव चामरशूनैरुपजोष्यमान
॥ ८१ ॥ व्योम्नि विश्रान्तजीमूते ताग्वरः प्रचनशिरे ।
प्रशिधानहतध्यान्ते चेतसीय चिनिप्रभा ॥ ८२ ॥
शरदि हुमुद्वह्नाद्वायुनो धान्ति शीता विगतजलद-
च्युन्दा दिग्प्रभागा मनोदा । विगतवलयुपमग्मः श्रयान
पङ्का धरित्री विमलकिरणचन्द्रं व्योम तारात्रिचम्रम्
॥ ८३ ॥ शरस्तामर्थ्यं शरदि स्मरवीरयोजितं पश्य ।
अप्याजगाम स्तोऽयं कन्यां मोन्तुं त्विषां नाथः ॥ ८४ ॥

पहननेवाली कामिनी बनकर जो मस्त शरद् ऋतु आई है वह
आप लोगोंके मनमें नई-नई उमर्हें भरे ॥ ७३ ॥ अग्रहणके
सहानेमें धानकी खवाली करनेवाली नवेलीके गलेसें उठी
हुई मद् भरे गीतकीं तान सुनकर उसकीं श्रौर कान लंगार
एकटक देसते हुए जो हरिण रोती चरनेकी हृच्छा रोके खडे
ये उन्हें उस नवेली ग्यालिनकी हँकनेकी आवायकता ही नहीं
रही ॥ ७४ ॥ वर्षाका अन्तिम समय विजली रूपी अग्निकी चमकती
हुई लपटोंको उष्णकर तथा काजलकीं कालिमावाली बादलों-
रूपी धरियाकीं सजावटको मली-भौति काडकर अत्र उदय होते
हुए नये चन्द्रमण्डलके रूपमें अत्यन्त प्रेम श्रौर उजली
गीभासे भरे रसके घडेको सहसा खींचने लगा है ॥ ७५ ॥
वन्द्युसीके मुँहने जब कमलको जीत लिया तो उसके मित्र
(धूर्व) ने उते वधपि बहुत समझाया दुमाया फिर भी
वह भरनेके लिये भौरीके रूपमें विप बटोर ही रहा है ॥ ७६ ॥
कदम्बकी गणसे भरे हुए अपने वायुरूपी पतिके चले जाने
पर दिशाकूपी नायिकाओंके पयोधर (बादल, स्तन) उनकी
दुर्बलताके कारण उजले पद गए हैं श्रौर उनकी विपलीरूपी
तगाई भी विसरकर गिर पडी है, फिर भी उनकी दुर्बलता
शौंसिंको मली लगती ही है ॥ ७७ ॥ मद् न रहनेके कारण
जिन मोरीके गलेकी मिठास चली गई थी उनकी बोली
सुननेकी हृच्छा छोड़कर आप लोगोंके कान भतवाले ह्रत्तोंके
आशोंका सहारा लेने लगे क्योंकि सब खँदिए तो प्यारके

गुण प्यारे होते हैं, उनकी कोरी प्रशंसा नहीं ॥ ७८ ॥ चरकर
घरकी श्रौर जानेकी उतावलीमें जो गीए अपने सुयदकी उपेक्षा
करके भागी चली जा रही हैं वे अपने निरन्तर बहनेवाले
दूधसे भरे थन अपने वड्डोंके लिये मानो धनसे उपहारके रूपमें
ले जा रही हैं ॥ ७९ ॥ शरदमें वृषी स्थिरोंके समान नदियोंका
उदुलना बन्द हा गया है, वेदानियोंके मनके समान जल
स्वच्छ हो गया है, तरणोंके मुखक समान चन्द्रमार्ग एक
अनोखी चमक था गई है श्रौर किसी विद्वान्की कोर
कनितके समान मोरकी बोली अथ सुहाती नहीं ॥ ८० ॥
चौडीं, शङ्ख श्रौर कमलके समान उनले जो सहयोग बादल
पानी घरसाकर इत्के हो जानेसे पवनके सहारे इधरउधर
मूल रहे हैं उनसे भरा हुआ शरदका आकाश कहीं कहीं
पेसा लगने लगा है मानो किसी राजापर सैककों चौर एक
साथ डुलाए जा रहे हों ॥ ८१ ॥ बादलोंके समत हो चुकनेपर
आशायमें तारे उसी प्रकार चमकने लगे जैसे प्रात्यापामके
द्वारां पावन्पी शौषेता नष्ट होते ही पित्तमें ज्ञानका प्रशय
चमकने लग ॥ है ॥ ८२ ॥ शरदमें कमलोंको छूता हुआ शीतल
पवन वर रहा है, बादलोंके उड जानेसे चारों धार सय त्रिशार्ण
सुहावनी दिवाई पद रही है, पानीका गैदलापन दूर हा चना
है, घरतीपर सारा कीचड मूल गया है श्रौर आशायमें स्वन्त्र
किरणोंवाला चन्द्रना श्रौर तारे टिडक आए हैं ॥ ८३ ॥
शरद ऋतुमें कामदेवके पारोंके धायोंका सामर्थ्य वो देना कि

शुभ्राभ्रं व्योम लोमः स्फुरदमलकलः पिङ्गलस्तिग्मरो-
चिर्मध्व्युह्वयपायाह्लासदसिसदृशः सावकाशा इवाशा ।
आसाराः स्वच्छनीराः कमलधनमिलदभृद्भृज्जान्ध-
काराः मेघाते घान्ति सप्तच्छदकुसुमरजोवाहिनी
गन्धवाहाः ॥ ८५ ॥ शेफालिकाकुसुमगन्धमनोहराणि
स्वस्थस्थिताएजकुलप्रतिनादितानि । पर्यन्तसंस्थि
तम्बुगोनयनोत्पलानि प्रोत्कण्ठयन्त्युपवनानि मनांसि
पुंसां ॥ ८६ ॥ शोणैः परिवृत्तः पद्मैर्हंसो हव्यवहैरिष ।
चरन्निघ तपो भाति लब्धुं वरधधुगतिम् ॥ ८७ ॥
श्यामा लताः कुसुमभारततप्रवालाः स्त्रीणां हरन्ति
धृतभूपणवाहुकान्तिम् । दन्तावभासविशदस्मितचन्द्र-
कान्ति कङ्कैलिपुष्परुचिरा नवमालती च ॥ ८८ ॥ समं
पायैः कान्तैर्घनसमयसङ्केतघटितैश्चिरोत्कण्ठापौनः
पुनिकरतनिव्यूढमनसाम् । करैः पीयूषार्द्रैश्शरदि
शरद्वदद्युतिहरैर्मृगाक्षीणां क्षीणां तनुमुपचरत्योपधि-

पतिः ॥ ८९ ॥ समय एव करोति वलावलं प्रणिगदन्त
इतीव शरीरिणाम् । शरदि हंसरत्नाः पवपीकृतस्वरम-
यूरमयूरमण्योयताम् ॥ ९० ॥ समुज्ज्वलत्पङ्कजलोचनेन
चिनोदयन्ती तरुणानशेषान् । शुद्धाम्बरा गुप्तपयोध-
रश्रीः शरन्नवोद्वेव समाजगाम ॥ ९१ ॥ सम्पदशालि-
निचयावृतभूतलानि स्वस्थस्थितप्रचुरगोकुलशोभि-
तानि । हंसैः ससारसकुलैः प्रतिनादितानि सीमान्त-
राणि जनयन्ति नृणां प्रमोदम् ॥ ९२ ॥ स विक्रान्त-
लचलुपमैक्षत चित्तिभृतोऽङ्कगतां दयितामिष । शब्द-
मच्छलगद्वदनोपमास्रमघनामघनाश्रनकीर्तनः ॥ ९३ ॥
सुरतरसविलासाः सत्सखीभिः समेता अलमशरवि-
नोदं सूचयन्ति प्रकामम् । अरुणममुखरागा रात्रिमध्ये
चिनोदं शरदि तरुणकान्ताः सूचयन्ति प्रमोदान् ॥ ९४ ॥
सोन्मादहंसमिथुनैरुपशोभितानि स्वच्छुप्रफुल्लकमलो-
त्पलभूषितानि । मन्दप्रभातपवनोद्गतवीचिमालान्युत्क-

परम तेजस्वी सूर्य भी कन्या (कन्याराशि) का उपभोग करने
का पक्षेष्ट है ॥ ८५ ॥ शरद् ऋतुमें आकाशमें उजले-उजले
बादल चमक रहे हैं, चन्द्रमाकी कला उजली होकर चमक रही
है, सूर्य भूरा-भूरा दिखाई दे रहा है, बादलोंकी घटाएँ दृष्ट
जानेसे उधड़ी हुई निर्मल दिशाएँ तलवारोंसी चमक रही हैं,
तालाबोंका जल स्वच्छ हो गया है, कमलके पत्तोंमें मँडराते
हुए औरोंसे अँधेरा सा छा गया है और दृष्टिवनके फूलोंका पराग
लेकर सुगन्धित पवन बहने लगे हैं ॥ ८६ ॥ जिन उपवनोंमें
शेफालिकाके फूलोंकी मनभावनी सुगन्ध फैली हुई है, जिनमें
निश्चिन्त वैठी हुई चिदियोंकी खड्कवाहट चारों ओर गूँज रही
है और जिनमें कमल जैसी शौंलावाली हरिणियाँ जहाँ तहाँ
बँधी पगुरा रही हैं, उन्हे देल देखकर लोगोंके मन हाथसे निकले
पद रहे हैं ॥ ८७ ॥ अन्नारोंके समान लाल-लाल कमलोंसे
पिरी इस पेसा जान पड़ता है मानों वह श्रेष्ठ नवेलीकी गति
पानेके लिये तपस्या कर रहा हो (पद्माभि ताप रहा हो) ॥ ८८ ॥
फूलोंके चोभते सुधी हुई हरी लताओंकी टहनियोंकी सुन्दरताने
स्त्रियोंकी गहनोंसे सजी हुई बँहोंकी सुन्दरता छीन ली है
और दाँतोंकी चमकसे तिल टठनेवाली नवेलियोंकी सुकराहटकी
चमकको प्रशोक तथा नई मालताके सुन्दर फूलोंसे लजा
दिया है ॥ ८९ ॥ शरद् ऋतुमें शोषधियोंके स्वामी चन्द्रमाको
देखकर पेसा जान पड़ता है मानों वह सरकपडेकी कान्तिकी
भीषा दिग्गनेवाली तथा अमृतसे भरी अपनी सुन्दर

किरणोंसे शीघ्र आनेकी शपथ खाकर परदेश गए हुए पयोधियोंके
साथ साथ उन सृगनयनी नवेलियोंकी देहकी भी चिड़िया
कर रहा हो जो अपने पतियोंसे मिलनेकी ललकसे धा धा
हड़बड़ा रही हैं ॥ ८९ ॥ शरद्में हंसके मधुर शब्द और मोंगोंकी
रुखी ध्वनि मानो लोगोंको यह समझ रही थीं कि समय ही
लोगोंको बलवान् और दुर्बल बनाया करता है ॥ ९० ॥ नई स्याही
हुई नवेलीके समान वह शरद् ऋतु धा गई जो अपने लिये
हुए कमल रूपी नेत्रसे सभी युवकोंका मन हरण कर रही थी,
जो निर्मल आकाशका वस्त्र पहने हुए थी और जो अपने
पयोधर (बादल, स्तन) की शोभा छिपाए हुए थी ॥ ९१ ॥
शरद्में वे स्थान लोगोंको बड़े अच्छे लगते हैं जहाँ खेतोंमें
भरपूर धानके पीछे लहलहा रहे हों, घासके मैदानोंमें बहुतेरी
गोएँ चर रही हों और जहाँ सारसों तथा हंसोंके जोड़े जोड़े
बोली बोल रहे हों ॥ ९२ ॥ जिनका नाम लेनेसे सब पाप
नष्ट हो जाते हैं उन कृष्ण भगवान्ने शरद्को पेसा पाना
मानो खिले हुए कमलकी शौंलावाली और सारकते हुए उन्हे
यादलरूपी घञ्जावाली कोई नवेली पर्वतरूपी पतिकी गोदोंमें बैठी
हो ॥ ९३ ॥ शरद्में सम्भोगका रस लेनेवाली और ऋतु
प्रकारसे अपने मुँह चीतनेवाली नवेलियाँ जब अपनी सखियोंके
साथ घैटती हैं तो भावसमे एक दूसरीको सब धाँत बना
बाजती है कि रातमें कैसे-कैसे धानन्द लूटा गया ॥ ९४ ॥
जिन तालाबोंके तीरपर मस्त हंसोंके जोड़े घूम रहे हैं, जिनमें

एठ्यन्ति सहसा हृदयं सरांसि ॥ ६५ ॥ स्त्रीणां विहाय
वदनेषु शशाङ्कलक्ष्मीं काम्यं च हंसवचनं मणिन्-
पुरेषु । यन्धूकफकान्तिमधरेषु मनोहरेषु क्वापि प्रयाति
सुभगा शरदागमश्रीः ॥ ६६ ॥ स्त्रीमुपक्रमलेन वलाहि-
स्तुलितकमलं सखे कमलम् । अश्रूणि मुञ्चति रयादमन्द-
मकरन्दकैतवतः ॥ ६७ ॥ स्फुटं स्फुटपलाशवत्सुभग-
भासिचञ्चुपुटे धिपाककपिशोरुताः कलममञ्जरीधि
श्रती । यत्रां दिशि शकाचलिः कुलयलच्छुविर्जङ्गमा
स्वभावहृदयङ्गमा विबुधचापलक्ष्मीरिव ॥ ६८ ॥
स्फुटकुमुदचितानां राजहंसाश्रितानां मरकतमणि-
भासा वारिणा भूयितानाम् । श्रियमतिशयरूपां व्योम
तोयाशयानां वहति चिगतमेधं चन्द्रतारावकीर्णम्
॥ ६९ ॥ हंसश्चन्द्र इवाभाति जलं व्योमतलं यथा ।
चिमलाः कुमुदानीय तारकाः शरदागमे ॥ १०० ॥

स्वच्छ खिले हुए उजले और नीले कमल शोभा दे रहे हैं
और जिनमें प्रातःकालके धीमे-धुंधले पवनसे लहरें उठ रही हैं
वे तालाव अचानक हृदयका मस्त बनाए डाल रहे हैं ॥ ६५ ॥
शरदकी मनोहर शोभा कहीं तो चन्द्रमाकी चमककी छाँदकर
खियोंके मुखपर जा पहुँची, कहीं हंसोंकी मोटी बाली छाँदकर
उनकी रत्न-नदी पायलामें चली गई और कहीं दुपहरिपाके
फूलोंकी लाली छाँदकर उनके निचले श्रोतोंमें जा पहुँची
॥ ६६ ॥ हे मित्र ! सुन्दरीके मुख-कमलसे बलपूर्वक मली-भौंति
जीता हुआ कमल वेगसे देर-सा पराग गिरानेके वहाने मानो
शरत् बहा रहा है ॥ ६७ ॥ खिले हुए टैसूके फूलके समान अपनी
अत्यन्त लाल टोंटोंमें पकी हुई पीली-पीली धानकी बालियाँ लिए
हुए जो नीले कमलकी कान्तिवाली सुगोंकी पोंतें उड़ रही थीं
वे स्वभावसे ही सुन्दर इन्द्रधनुषके समान दिखाई दे रही थीं
॥ ६८ ॥ खिले हुए चन्द्रमा और झिंके हुए तारोंसे भरा
हुआ शरदका आकाश उन तालावोंके समान दिखाई पड़
रहा है जिनमें नीलमके समान चमकता हुआ जल भरा हो,
जिनमें एक-एक राजहंस वैर रहा हो और जिनमें यहाँ-वहाँ
बहुतसे कुमुद खिले हों ॥ ६९ ॥ शरदके आनेपर आकाशके
समान स्वच्छजलमें तैरता हुआ हंस तो चन्द्रमाके समान और
उसमें खिले हुए उजले कुमुद तारोंके समान मनोहर दिखाई
देने लगे ॥ १०० ॥ शरदमें हंसोंने सुन्दरी नवेलियोंकी मनभावनी
पाल, कमलिनियोंने उनके चन्द्रमुखकी चमक, नीले कमलोंने
उनकी मद्मरी भाँसें और छोटी बहरियोंने उनकी भाँसेंकी

हंमंजिता सुललिता गतिरङ्गानामम्मोक्षैःपिकानिने-
मुपचन्द्रकान्तिः । नीलोत्पलैर्मदकलानि धिलोचनानि
भ्रूविभ्रमाश्च रचिरात्मनुभिन्तरङ्गैः ॥ १०१ ॥ हारैः
सचन्दनरत्नैः स्तनमण्डलानि श्राणोतटं सुधिपुरां
रसनाकलापैः । पादाभ्युजानि कलन्पुरोत्पलरैश्च
नार्यैः महृष्टमनसोऽत्र विभूषयन्ति ॥ १०२ ॥

अलिकैलि — करी घनाना नवपल्लवाहनी वृथा कृया
मानिनि मा परिश्रमम् । उपेयुपी कल्पलनाभिशङ्कया कयं
न्यतश्रस्यति पट्टदायलिः ॥ १ ॥ चेलाञ्जलेन चलदार-
लतामकाट्टैर्वैशीगुणेन च चलदलपीकृतेन । देलाहित-
भ्रमरकभ्रमण्डलीमिश्रद्वयत्रयं रचयतीव चिरन्तभ्रः
॥ २ ॥ परिभ्रमन्त्या भ्रमरीधिनादे नितम्बविभ्राङ्गि-
लङ्कूलम् । विलोम्य कस्याश्चन फोमलाङ्गथाः पुम्भा-
घमन्याः सुदृशो ववान्दुः ॥ ३ ॥ भ्रमात्मकीर्णं भ्रम-

सुन्दर चटक-मटकको हरा दिया है ॥ १०१ ॥ शरदमें खिपी
बड़ी उमङ्गले अपने स्तनोंपर मोतियोंके हार बाँधती और
चन्दन पातली हैं, अपने बड़े-बड़े नितम्बोंपर तागदियाँ बाँधती हैं
और अपने कमल जैसे कोमल मुन्दर पैरोंमें धम-धम बजनेवाले
पायल पहनती हैं ॥ १०२ ॥

भाँटोंकी आठपोंसियों : श्रती ऋत्नेवाली ! इन
मँडराते हुए भाँटोंका हटानेके लिये तुम अपने नये पत्तोंके
समान कोमल हाथ दिला-मुञ्जाकर स्पर्श क्यों परिश्रम
कर रही हो ? क्योंकि जब ये भाँटे तुम्हें कल्पलता समझें बैठे
हैं तब तुमसे दूरगे क्यों ॥ १ ॥ सुमन्धके कारण नापिकार
जो भाँटोंके झुण्ड मँडराने लगे, उन्हें उढ़ानेके लिये उसने जो
अपना शौचल उठाया उस समय उसकी चाँटी भी उड़लकर
गोल हो गई और उसके गलेमें झूलती हुई हारोंकी बहियाँ
भी ऊपर उठकर पैसों जान पड़ने लगीं माना उसके ऊपर तीन
छुतरियाँ लग गईं हों—एक ता भोराका, दूसरा चाँटीको और
तीसरी हारकी लड़ियोंकी ॥ २ ॥ भाँटियोंने फिरकर
घबराई हुई और ह्यर-उपर भागती हुई किसी कोमल
अङ्गवाली नवेलीके नितम्बसे सरच्छे हुए बस्यको देनकर
दूसरी नवेलियोंके मनमें भी यह ललक उठी कि
हाय ! इस समय मैं पुरप न हूँ, नहीं तो इसका उपनोग
करके हटाया हो जाती ॥ ३ ॥ जिस समय अपने ऊपर उढ़ती
हुई भाँटियोंसे घबराकर वह नवेली अपनी पञ्चल श्रानिं
पलाकर अपने शौचलसे उन्हें उढ़ा रही थी उस समय

रीपु किञ्चिधेलाञ्जले चञ्चललोचनायाः । कुक्षो कदा-
चिज्जघनं युधानो विलोभ्य साफल्यमवापुरदणोः ॥३॥
मुके काञ्चनकुण्डले निपतिते माणिक्यभूपामसौ कीर्णौ
केलिसरोरुहे विगलिते मुक्ताकलापे सति । निःश्वस्या-
भ्युजलोचनाभ्रमरिफानृत्वावसाने पुनः प्राणेशच्युति-
शङ्कयेव हृदये हस्तारविन्दं ददौ ॥ ५ ॥ यतो यतः
पद्मचरणोऽभिवर्तते ततस्ततः प्रेरितलोललोचना ।
पिपतितधूरियमघ शिञ्जते भयादकामापि हि दृष्टिधि-
भ्रमम् ॥ ६ ॥

शरदनिवा.—कुर्वाणाः कैरवाणां मधुकणहरणं
कृतं रजयन्तो हंसातीकरटनालीष्विवरुतकलमा-
भोदमैत्रीपवित्राः । शेफालीकुलपालीपरिमलमिलना-
च्युम्रिताश्रयंशकैः फरद्वाराहादकाराः कुवलयसुहृ-
द्वशरदा घान्ति घाताः ॥ १ ॥ गतो यो वर्षासु क्रफ-
चनिशितां फेतकयनीमिदानां पञ्चत्वं दधदिव समा-
लम्ब्य निभृतम् । करान्पीयूषांशोः किमपि पवनः

शरदनिशामुखेऽमुष्मिन् सप्तच्छदमृदुलमार्गे विलसति
॥ २ ॥ रतिभ्रमं दूरतरं नयन्तः प्रामोदसम्भारमुदा-
हरन्तः । स्त्रीत्कारशिक्षां परिचर्धयन्तः प्रयान्ति तथाः
पवनाः समन्तात् ॥ ३ ॥ घान्ति कद्धारसुभगाः सप्त
च्छदसुगन्धयः । वाता नवरत्नम्लानवधुगमनमन्यराः
॥ ४ ॥ घान्ति रात्रौ रतिक्लान्तकामिनीसुहृदोऽनिलाः ।
ललनालोलधम्मिलमल्लिकामोदवासिताः ॥ ५ ॥ हसि-
तकमलगन्धाकर्षिणो वासरेषु स्फुटितकुमुदगमानी
दधन्तः क्षपासु । जगद्भिरमयन्तः शरदा घान्ति
सद्यस्तुटितशुवतिमानग्रन्थयो गन्धवाहाः ॥६॥

शरदपान्थः—इह निजुलनिकुञ्जे वंशसम्भारभाञ्जि
स्वपिपि यदि मुहूर्ते पश्यति क्षेत्रमेतत् । इति पथिकम-
कस्मान्मार्गं पथोपविष्टं वदति तरुणकान्तं गोपिका
साङ्गमङ्गम् ॥ १ ॥ पङ्कानुपङ्गं पथि विस्मरन्तः कथाश-
शेषे च पयोदधृन्दे । मार्गेषु चन्द्रातपपिच्छलेषु पदे
पदे चखलुरध्वनीनाः ॥ २ ॥

तरणोने कभी उसफे स्तन धीर कभी उसका जवन देखकर
धरनी-धरनी धौंलें सफल कर हीं ॥ ४ ॥ भीरोंसे
पिर जानेसे पथराई हुई नवेलीका सोनेका कुण्डल जव फानसे
निकल गया, गहनोंके मथि बिलर गए धीर रेलका कमल
भी नीचे जा पड़ा उस समय भीरोंके हट जानेपर जव उसने
धपना यह धटपटा वेप देखा तो उसे यह घोषा हो गया कि
मैं धरने पतिते विद्युद्दी हुई हूँ धीर यह सोचकर उसने
सम्मी लौल लौचकर 'हाय !' करके धपनी धातीपर हाय
रस लिया ॥ २ ॥ भीरोंसे धिरो हुई नवेली धपनी भीई चलाती
हुई धपनी चञ्चल धौंलें दरके मारे उधर-उधर घुमा रही
ई त्रिधर त्रिधर भीरा जाता है । उस समय यह पेसी जान पड़ी
मानो कामदेवकी प्रेरणाके बिना ही केवल मयके कारण यह
पितवन चलानेका बल सीध रही हो ॥ १ ॥

शरदके पवनः इमुदसे पराग उड़ाता हुआ, हंसोंके
गणोंमें कून भरता हुआ, घानकी सुन्दर घालियोंकी सुगन्ध
लेकर पत्रिभ होता हुआ, सालकमलोंकी सिलाता हुआ धीर
इमुदोंका मित्र वह शरद कुञ्जका पवन वह रहा है जिसमें
निमुदोंके पृथ्वी गन्ध भरी रहनेके कारण भीरे उभे बा-
पस रहे हैं ॥ १ ॥ वर्षा ऋतुमें धारके समान देने केवन्दके वनमें
जानेने जो पवन मानो उँगादा हो गया था वह धव शरद
ऋतुकी रात प्रारम्भ होत ही मधुमयकी किरणोंवाले चन्द्रमाकी

किरणोंका सहारा लेकर चुपचाप छुतिवनके कोमल मार्गमें
दहल रहा है ॥ २ ॥ रतिकी धकावट दूर करतें हुए, धनी
सुगन्ध फैलाते हुए तथा स्त्री-स्त्री करना सिखाते हुए पवन
नदीके आस-पास बर रहे हैं ॥ ३ ॥ कमल धीरे धीरे
सुगन्धसे भरे तथा नये सम्भोगसे थकी हुई नवेलीके
समान धीरे-धीरे चलनेवाले शरदके वायु मन्द मन्द बर
रहे हैं ॥ ४ ॥ नवेलीके लहराते हुए पालोंमें गुप्ते हुए
पेलेके फलकी गन्धमें बसे हुए तथा सम्भोगसे थकी हुई
नवेलीको सुप्त देनेवाले पवन शरदकी रातमें धीरे-धीरे बर
रहे हैं ॥ ५ ॥ दिनमें पियले हुए कमलोंकी गन्ध रूचनेवाले
तथा रातमें खिले हुए इमुदोंके भीतरकी सुगन्ध लेनेवाले
वे शरद ऋतुके पवन संसारको प्रसन्न करते हुए बर रहे हैं
जिनोंने तब्यल रूठी हुई नवेलियोंका मान दुष्टा दिया है ॥६॥

शरदके रात्रीः पौषदाई लेती हुई कोई भावित
मार्गमें घेडे हुए किसी जवान धौलेसे बिना पड़े ही बर
रही है कि 'वैसपारसे धिरी हुई हस धनकी कुनमें है
राही । यदि तुम चलकर छेड लोगे तो मुझे हस स्याक
परा मानन्द मिल जायगा' ॥ १ ॥ बापूज न रनेने
भी धात्री यह भूख गए थे कि धव मार्गमें कीचर नहीं है
इसलिये धौंदनीसे धमकने हुए मार्गमें वे धन उगार निज-
किमसकर गिर रहे हैं ॥ २ ॥

कलमस्यैहनी - गीतं पान्थमनोहरं वत श्रुत्काले
 धितन्वत्यलं धोत्कण्डस्तनमारयन्धुगलत्तुत्पद्यतित्या-
 ह्वतिः । शक्तिं आमयधूर्ननूत्तुसमपि व्यालोक-
 यन्ती दृग्वा सद्यः कोकनदच्छदच्छद्विजुषा नोत्कण्डनं
 मुञ्चति ॥ १ ॥ विलासप्रसृणोत्ससन्मुसललोहदीःकन्द-
 लोपरस्परपरिस्खलललयनित्यनोद्वन्द्वुराः । लसन्ति
 कलहृक्कृत्प्रिसमकम्पितोरस्थलतुडङ्गमकसङ्कलाः कल-
 मस्यैहनीगीतयः ॥ २ ॥

हेमन्तवर्णनम् - अथ शीतं घरीयति सर्वास्वति समी-
 रणः । अपत्नीका मरीमति नरोनति कुचोभयान् ॥ १ ॥
 अन्या प्रकामसुरस्तभ्रमखिन्देद्वा रात्रिप्रजागरत्रिपाट-
 लनेत्रप्रभा । चस्तांसदेवशुलितानुलकेऽपथा निद्रां
 प्रयाति सृष्टसूर्यकरामितता ॥ २ ॥ अन्या प्रियेण
 परिमुक्तमन्त्रेण गात्रं हर्षान्विता विरचिताधरचाच-
 शोभा । कृपांसकं परिदधाति नखज्जवाद्गो द्यालम्बि-

नीलललितवालकमुञ्चिताद्यौ ॥ ३ ॥ अन्याश्रितं सुग-
 केलिपरिश्रमेण खेदं गताः प्रशियिली रुनगाययन्त्यः ।
 संदध्यमाणपुलनोदपयोघरान्ता अभ्यञ्जनं विदधति
 प्रमदाः सुशोभाः ॥ ४ ॥ अन्ये हि दुःपमूनयः प्रय-
 यन्त्यहोमिः सूर्याशुनुसतितिरैरमिसारिकाणाम् ।
 हेमन्त एव हिमरुद्धसद्वह्नयामा कामं करोति दिवसे-
 ष्वपि शर्मं तासाम् ॥ ५ ॥ अथि दिनमपिरेण ज्ञेयिनः
 शीतसङ्घैरथ निशि निजमार्या गाढमातिङ्गय
 दोर्भ्याम् । स्वपिति पुनरुद्रेतुं सालसाङ्गनु तस्मात्किमु
 न भवतु दीर्घां हेमनी यामिनीयम् ॥ ६ ॥ अमयध-
 तोभ्याणः शीतव्यासे जगद्वये । स्ननोत्सङ्गा मृगाकीर्णां
 स्थानं मन्मथतेजसः ॥ ७ ॥ अन्तरमेव रमत्ये यामिन्ये
 वासरः प्रेयान् । अधिकं वृद्धौ निजाद्वाद्य सङ्घचितः
 स्वयं तस्यो ॥ ८ ॥ अलं हिमानीपरिदीर्घायात्रः समा-
 पितः फाल्गुनसङ्गमेन । अन्यन्तमाकाङ्क्षितरुण्यवर्ता

सौनिद्वारिन (धान काढनेवाली) : देखो तो, चाहते
 मरी हुई जिस गाँवकी नवेलीके स्नानोंके मारते जैसे-नीचे गलेकी
 सुन्दरता देखकर सुनियौका भी बच-पच (ध्यान) दृष्ट जाता
 है वह शरद ऋतुमें जो घोसकर बयोदियौका मन हरनेवाले गीत
 गा रही है तथा लाल कमलकी पंखुङ्गीकी कान्तिके समान
 कान्तिवाले नेत्रसे भूषी घुटे हुए घालके कमकती जा रही है
 किन्तु धान काढना बन्द नहीं करती ॥ १ ॥ धान काढनेवालीके
 वे सुन्दर गीत बंदे मजे जग रहे हैं जो चिकने तथा धमकीजे
 मूसलकी दाव-भावके साथ खदानेसे चखल बाहुस्फी कोमल
 लताके धागपसे हिलनेसे बजते हुए कङ्गनीकी ध्वनिसे अधिक
 सुन्दर जग रहे हैं तथा वह जो हँसारी भर रही है उससे
 धूर्ताके काँप उठनेसे टूटी हुई गमकमे मिले हुए हैं ॥ २ ॥

हेमन्तका वर्णन : आज यद्वा ही कदाकेका जाका पद रहा
 है और सनसनात्रा हुआ ठपका पवन चल रहा है । ऐसे समय
 निम्के पास स्त्री नहीं है वह तो डिडुकर मरा जा रहा है
 और जिते नवेलीके स्नानोंकी गर्मी मिल रही है वह मल्लासे
 नाच रहा है ॥ १ ॥ जो नवेली अन्त्यत सम्मोलेसे एक
 जानेके कारण अबसाई हुई है, जिसकी कमल जैसे शीत
 रात भरके जागपसे लाज हो रही है, कपड़े कीजे पद हुए हैं
 और बाह हृत्पर-उपर विहार गए हैं वह प्रातःकाके सुपुंकी
 कोमल किरणोंमें धूप खाती हुई सो रही है ॥ २ ॥ पियतमके
 तारोंके धावोंसे मरे हुए झड़ोवाकी और बरकरी हुई

सुन्दर अबकामे दकी हुई शीतोंवाली एक नवेली,
 प्यारसे उपमोग किए हुए अपने शरीरको देख-देखकर बड़ी
 मगन होती हुई अपने श्वरोंको फिर पहनेकी भाँति सुन्दर
 बनाकर खोली पहन रही है ॥ १ ॥ बहुत देरतक
 सम्मोग करने-करते जो युवतियाँ थक गई हैं, जिनके कोमल
 लचकीले शरीर कीजे पद गए हैं और जिनकी बोंबों और
 स्तनोंपर रोमाञ्च हो आया है वे धूपमें बैठे अपने शरीरपर
 तेल मजवा रही हैं ॥ २ ॥ जिन जिनमें सूर्यको किरणोंमें
 घोंघरा नष्ट हो जाता है उन दिनोंके द्वारा अन्य ऋतुएँ तो
 अभिसारिकाओंका कष्ट ही बढ़ाती हैं किन्तु हेमन्त ऋतु ही
 पेशी है जो अपने पाखेले सूर्यको बँककर दिनके समय में
 उन्हे पूरा सुख पहुँचाती है ॥ ३ ॥ हेमन्तमें सूर्यको भी हतनी
 ठपक लगी कि रातमें अपनी दोनों बाँहोंमें अपनी पानीको
 लिपटाकर वे पूरे सोए कि उन्हे उठनेमें ब्राह्मस करते-करने
 हतनी देर हो गई । तब मज्जा हेमन्तकी रातें हतनी बड़ी क्यों
 न हैं ? ॥ ४ ॥ जब तनों लोकीमें ठपक भर जाती है उस
 समय श्वगनबनियोंके कामदेवके तेजसे मरे हुए स्नानोंमें एक
 विचित्र ही प्रकारकी गर्मी भर जाती है ॥ ५ ॥ हेमन्तमें दिन-
 र्भनी नापकने रात्रिभनी नापिकाको अपने शरीरका अधिक
 धमक (धाकारा, बल) दे डाला हुआखिये वह स्वयं ठपकमे
 डिडुरा जा रहा है ॥ ६ ॥ मापका महाना महामा भीमके ही
 समान है क्योंकि जैसे वे बंदे ही गवाँडे और प्रविष्टावाडे में,

भोष्मो'महात्माजनि माघतुल्यः ॥ ६ ॥ अघिरत्नफलिनोवनप्रसूनः कुसुमितकुन्दसुगन्धिगन्धवाहः । गुणमसमयजं चिराय लेभे विरत्नतुपारकणस्तुपारकालः ॥ १० ॥ अर्व्युत्पन्नस्वभावानां नारीणांमिव साम्प्रतम् । सीत्काराचार्यकं कर्तुमयं प्राप्ते हिमागमः ॥ ११ ॥ अहो कथमसीमेदं हिमनाम विजुम्भते । चरत्येव सहस्रांशी धवलं तिमिरान्तरम् ॥ १२ ॥ आसत्यलोकादाभूमेः स्वैरचाराकृतभ्रमाः । तेजुरिन्दुकराः स्वेदं द्रुतनीहारभूमिकम् ॥ १३ ॥ इदमयुक्तमहो महदेव यद्हरतनो. स्मरत्यन्विलोऽन्यदा । स्मृतसयौवनसतोष्मपयोधरान्सतुहिनस्तु हिनस्तु वियोगिनः ॥ १४ ॥ कन्याप्रसूतस्य धनुःप्रसङ्गादङ्गाधिकासादितविक्रमस्य । धनजयाधीनपराक्रमस्य हिमस्य कर्णस्य च को विशेषः ॥ १५ ॥ कम्पन्ते कपयो भृशं कृतजडं गोजालकं म्लायति श्वा

चुल्लीकुहरोदरं क्षणमपि प्राप्तेऽपि नैवोद्भति । शीतातिव्यसनानुरः पुनरयं दीनो जनः कूर्मवत्स्वान्यङ्गानि शरीर एव हि निजे निहोतुमाकाङ्क्षति ॥ १६ ॥ काचिद्विभूयति दर्पणसक्तद्वस्ता चालातपेषु वनिता यद्वनारविन्दम् । दन्तच्छृङ्गं प्रियतमेन निपीतसारं दन्ताप्रभिन्नमवकृष्य निरीक्षते च ॥ १७ ॥ काञ्चीगुणैः काञ्चनरत्नचित्रैर्नो भूययन्ति प्रमदा नितम्बान् । न नृपुरैर्हसरुतं भजद्भिः पादाम्बुजान्यम्बुजकान्तिभाञ्जि ॥ १८ ॥ कामिनो हन्त हेमन्तनिशि श्रुतिज्वरातुराः । जीवन्ति हरिणाक्षीणां वक्षोजश्लेषरक्षिता ॥ १९ ॥ गजपतिद्वयसोरपि हैमनस्तुहिनयन्सरितः पृथताम्पतिः । सलिलसन्ततिमध्वगयोपितामतनुतातनुतापकृतं दृशाम् ॥ २० ॥ गात्राणि कालीयकर्चिन्तानि सपत्रलेखानि मुखाम्बुजानि । शिरांसि कालागुच्छूपितानि कुर्वन्ति

अर्जुनके साथ युद्ध करनेसे उनका शरीर चाणोसे छिड़ गया था और वे सदा भगवान्की याद जोहते रहते थे जैसे ही मावका महीना भी अपनी ठण्डकसे लोगोकी देह फाड़े डाल रहा है, फागुन आनेपर वह समाप्त हो जाता है और इस महोत्सवमें आग तापनेकी यद्दी आवश्यकता पड़ जाती है ॥ ३ ॥ जिन दिनों पर्वतपर अर्जुन तपस्या कर रहे थे उन दिनों बहुत दिनोंतक बिना समयके ही जाड़ेके लक्षण दिखाई देने लगे क्योंकि प्रियङ्गु जाता घने फूलोसे ढक गई, वायु भी खिले हुए कुन्दके फूलोकी सुगन्धसे भरकर चलने लगे और कहीं-कहीं शोसकी धूँड़ भी दिखाई देने लगी ॥ १० ॥ जिन स्त्रियोका स्वभाव कोई समझ नहीं पा सकता, उन्हें 'सी' करना सिखानेके लिये ही मानो यह हेमन्त ऋतु आ पहुँची है ॥ ११ ॥ ओहो !! यह पाला कैसा निःसीम होकर फैल रहा है ! जान पड़ता है सहस्रों किरणोवाले सूर्यको कोई उजला कपेरा धरे हुए हो ॥ १२ ॥ इन चन्द्रमाकी किरणोंने स्वर्गपरिधम ऋके साथ लोकेसे लेकर धर्तातक यह अपना सब पाला बिखेर रक्खा है ॥ १३ ॥ यह बहुत ही भड़ी बात है कि दूसरे समयमें भी पवन सुन्दरी नवेलियोकी सुधि दिखाने लगता है ! हाँ, जिन्होंने अपनी प्यारीके जवानोसे गरम रतनोका स्मरण किया है उन वियोगियोको हेमन्त मर डाले तो ऋतुपित नहीं है ॥ १४ ॥ जाड़ा और राजा कर्ण दोनो एकमे हैं । कर्ण तो कुर्भोकी कुन्तोसे उलफ हुए थे और जाड़ा कन्या रासि (धारियनके मरिने) से उलफ हुआ है । कर्णने

धनुविद्याकी श्रेष्ठ शिक्षा पाकर अङ्ग देशपर अधिभार जमाया और जाड़ेने धनु राखिपर सूर्यके आनेसे अपना प्रभाव बढाया । कर्णके पराक्रमको अर्जुनने दबाया और जाड़ेकी तीमताको अग्निने ॥ १५ ॥ जाड़ेके दिनोंमें चन्द्र अत्यधिक कर्प रहे हैं । गौड़ें टिड्डरकर मलिन पड़ गई हैं । कुत्ता चूहेका भीतरी भाग पाकर कट्टुएकी भौँति उसे एक क्षणको भी नहीं छोड़ता और ठण्डकसे कष्ट पाता हुआ निर्धन मनुष्य सारे ऋतु अपनी देहमें ही डाल लेना चाहता है ॥ १६ ॥ देखा, एक नवेली अपने हाथमें दर्पण लिए हुए प्रातःकालकी धूममें बैठी अपने कमल जैसे मुँहका शृङ्गार कर रही है और उसके जिन श्रोतोंका रस पीकर उसके प्यारेने उनपर धपने दौंगेके पाव बना दिए हैं उन श्रोतोंको खींच-खींचकर देख रही है ॥ १७ ॥ हेमन्तमें नवेलियो न तो अपने निगमोंपर रतने जदी हुई सोनेकी तगदियो पहनती हैं न अपने कमल जैसे सुन्दर पैरोंमें हंसके समान ध्वनि करनेवाले पागल ही डालती हैं ॥ १८ ॥ हेमन्तकी रातमें जाड़ेएकी वस्त्रसे परिधत कामी लोग मृगनयनी नवेलियोके गरम स्तनोसे जिह्वार सुरचित हुए जीते रहते हैं ॥ १९ ॥ हेमन्तके पवने हायो-कुणव पानीवाली गहरी नदियोको भी ठण्डा कर दिया और जलको पैसा कर दिया जिससे वियोगियोकी खल्लि अपन तपने लगीं ॥ २० ॥ हेमन्तमें अपने पतिसे सम्भोग करनेकी तीव्रतीमें नवेलियो अपने शरीरपर चन्दन मज रही हैं, अपने कमल जैसे मुखपर अनेक प्रकारके बेत-बूटे चीत रही हैं और

नार्यः सुरतोत्सवाय ॥ २१ ॥ गौरन्ति ननु कल्पान्ते
जलानाम्निघयो जगत् । कल्पमध्ये गिरत्येव कथमन्यो
महाएषः ॥ २२ ॥ चक्रे चण्डरुचा समं रणमसौ हेम-
न्तपृथ्वीपतिर्ये ये तत्र जिता दिवाकरकरास्ते तेऽमुना
तत्क्षणात् । कान्तानां कुचभूयरे निदधिरे मन्पेऽहमेयं
तदा नो चेन्मन्दकरः कथं दिनकरस्ततश्च तन्वीस्तनः
॥ २३ ॥ जडात्माऽपि स्वकालोत्थः क्लिन्नाति बलि-
नोऽप्यरीत् । आक्रामति सहस्रांशुं हिमो हेमन्तजु-
म्मितः ॥ २४ ॥ जरीजृम्भतमौदद्युमणिकरसन्दोहसह-
शस्करुद्वीप्तिमातप्रगुणरतारुण्यसुभगाम् । हसन्ती
हेमन्ते परिजनयुतां वा सुचदनां हसन्ती सेवन्ते परि-
णतमहामाग्यनिचयाः ॥ २५ ॥ दन्तच्छुद्धैः सत्रण्डन्ते-
चिद्धैः स्तनैश्च पाण्यप्रकृतामिलेखैः । संसृच्यते निर्दय-
मङ्गनानां रतोपभोगो नवयौवनां नाम् ॥ २६ ॥ दुराशेषं
दरिद्रस्य, तृण्येव रूपस्य च । अहो न घिरमत्येषा

हन्त हेमन्तयामिनी ॥ २७ ॥ द्विप्रियुक्तुन्मुकुलत्रि-
चतुरकुसुमक्रमेण लयलोपु । पञ्चपफलिनीकलिको
जयति हिमर्तुर्नयावतरः ॥ २८ ॥ न प्रस्तावस्त-
पनमहसानानलस्त्यायकायो नैव क्षेमं किमपि च
घनैः कन्वलैः कञ्चुकैर्वा । नैयान्योन्यं प्रमथति
जनो यीक्षितुं योतसीमा हैमः पुरो हरति मुचन-
व्यकिमाः किन्तु कुर्मः ॥ २९ ॥ न बाहु-
युग्मेपु विलासिनीनां प्रयान्ति सङ्गं बलयाद्भदानि ।
नितम्बविन्म्येपु नवं दुकूलं तन्वशुकं पीनपयोयरेपु
॥ ३० ॥ नवप्रवालोद्गमसस्परम्यः प्रकुल्ललोत्रः परि-
पक्यशालिः । विलीनपद्मः प्रपतत्पुपारो हेमन्तकालः
समुपागतोऽयम् ॥ ३१ ॥ निर्माल्यद्राम परिमुक्तमनोव-
गन्धं मूर्ध्नोऽपनीय घननोलशिरोरुहान्ताः । पीनो-
प्रतस्तनभरानतगात्रयष्ट्यः कुर्वन्ति केशरचनामप-
रास्तरुण्यः ॥ ३२ ॥ पाकं व्रजन्ती हिमजात-

काले अगारकी धूप देकर अपने बाल सुगन्धित कर रही हैं ॥ २१ ॥
कस्यान्त (महाप्रलय) के समय संसारकी समुद्र निगलने
जगते हैं किन्तु कल्पके बीचमें यह निराला समुद्र (पावा)
संसारको निगलने कहाँसे था पहुँचा ॥ २२ ॥ राजा
हेमन्तने सूर्यके साथ युद्ध करते समय उस युद्धमें हारी हुई
सूर्यकी किरणोंको खिणोंके स्तनरूपी पर्वतमें बन्दी कर
दिया । यदि यह बात न होती तो हेमन्तमें सूर्यकी किरणें
इतनी मन्द क्यों पड़तीं और नायिकाके स्तन इतने गरम
क्यों होते ॥ २३ ॥ सूर्य प्राणियों भी समय पाकर अपने
शत्रुओंको कष्ट देता ही है । हेमन्त ऋतुको पाकर पावों
भी सूर्यको डकने लगा ॥ २४ ॥ उगले हुए सूर्यकी
किरणोंके समान वमकर्ता हुई कान्तिसे निसर्कौ तंख्याई
दमक रही है और जो अपनी सखियोंके साथ घुब-मिलकर
खिल-खिला रही है ऐसी सुन्दर सुखवाली नवेलीका उपभोग
हेमन्तमें कोई भाग्यशाली ही पाते हैं ॥ २५ ॥ नवेलियोंके
श्रोतोंपर बने हुए दौतके धार और उनके स्तनोंपर बने हुए
नखोंके चिह्न यह सूचना दे रहे हैं कि इनके प्यारे इनका
जी-जानसे उपभोग कर रहे हैं ॥ २६ ॥ ओह ! यह हेमन्तकी
रात दरिद्रकी निरफ्त आशा और कपूसके खोमके समान
बीत नहीं पा रही है, बर्तनी ही जा रही है ॥ २७ ॥ मुकुन्दमें
यो-तीन कलियाँ लग रही हैं, हरफारेवहीकी लतामें क्रमशः तीन-
चार फूल निकल रहे हैं और फलिनमें भी पंच-सात कलियाँ

लग रही हैं । इस प्रकार नया अवतार लेकर आनेवाली
हेमन्त ऋतुकी जय हो ॥ २८ ॥ ऐसी कड़ाकेकी टण्डक
पड़ रही है कि उसे दूर करनेमें न तो सूर्यकी गर्मीका
बल चबता, न आगका ही सामर्थ्य है और न मोटे
कन्वल या बरही-मिरनई आदि पहननेसे ही प्राय बचते ।
यह असीम कुहँरा भी ऐसा घना छाया है कि मनुष्य एक
दूसरेको देख भी नहीं पा सकते और यही नहीं जान पड़ता कि
संसार है भी या नहीं । ओह ! श्रव क्या किया जाय ॥ २९ ॥
हेमन्तमें ये कामिनियाँ न तो अपनी दोनों मुजाओंपर रुदन
और सुजबन्द् ही बाँधती हैं, न अपने गोल-गोल नितम्बोंपर
नये रेशमी वस्त्र ही लपेटती हैं और न अपने मोटे-मोटे स्तनोंपर
महीन कोठियाँ ही कसती हैं ॥ ३० ॥ देखो, पावा गिराता
हुई यह हेमन्त ऋतु था पहुँची है जिसमें गेहूँ, जौ आदिके
नये-नये अङ्गुरोंसे चारों ओरकी धरतां हरी-भरी हो गई है,
लोषके पेट फूल उठे हैं, धान पक चला है और कमल
सुरमा चले हैं ॥ ३१ ॥ लम्बे, काले और घने केनोंवाली जिन
नवेलियोंके शरीर उनके मोटे और उठे हुए स्तनोंके कारण
मुक गण हैं, वे जिन मालाओंकी मञ्जर सुगन्धका शानन्द
रातमें ले चुकी हैं, उन सुरमाई हुई मालाओंकी सिरसे
उठावकर धिरेसे अपने बाल सँवार रही हैं ॥ ३२ ॥ हे
प्यारों ! पालेसे भरे टण्डके पवनसे हिलती हुई यह पंकी
हुई प्रियहुकी लता वैसे ही पीली पड़ गई है जैसे अपने

शीतैराधूयमाना सततं मरुद्भिः । प्रिये प्रियङ्गुः
प्रियविप्रयुक्ता विपाएदृतां याति विलासिनीव
॥ ३३ ॥ पीनस्तनोरःस्थलभागशोभामासाद्य तर्पी-
उनजातपेदः । तृणाश्लग्नैस्तुद्भिः पतद्भिःराक-
न्दतीवोपसि शीतकालः ॥ ३४ ॥ पुष्पासवामोद-
सुगन्धियक्त्रो निःश्यासवातैः सुरभीरुताङ्गः ।
परस्परद्रव्यतिपद्गशायां शेते जनः कामरसात्रुविद्धः
॥ ३५ ॥ प्रफुल्लनीलोत्पलशोभितानि सोन्मादकादम्ब-
विभूषितानि । प्रसन्नतोयानि सुशीतलानि सरांसि
चेतांसि हरन्ति पुंसाम् ॥ ३६ ॥ प्रभृतशालिप्रसवैश्चि-
तानि भृगाङ्गनायूथविभूषितानि । मनोहरक्रीञ्चनिना-
दितानि सोमान्तराण्युस्तुकयन्ति चेतः ॥ ३७ ॥
प्रांशुः प्रालेयपूरः प्रसरति गगने प्रावृताशाकंचन्द्र-
स्तोयाधाराः सवाष्पास्तुद्भिर्नघघटालीनमोनद्धि-
जोषाः । दसास्सतीभकोलच्छुगलवलिभुजः कुन्दपुष्पा-
गलोद्भाः प्रोत्कुल्लाः शीतकाले हिमकणगणभृद्वात्युदी-

व्यस्समीरः ॥ ३८ ॥ प्रालेयशैलशिखरानिलसम्प्रयोगः
प्रोत्कुल्लकुन्दमकरन्ददृतालिवृन्दः । कालोऽयमातपति
कुङ्कुमपङ्कपिङ्गमोत्तुङ्गरम्परणीकुचसङ्गोयः ॥ ३९ ॥
प्रियतमेन यथा सरुपा स्थितं न सहसा सहसा परि-
रभ्य तम् । श्लथयितुं क्षणमक्षमताङ्गना न सहसा
सहसा कृतवेषुः ॥ ४० ॥ प्रोद्यत्प्रौदारविन्दयुतिभृति
विदलत्कुन्दमाद्यद्विरेफे काले प्रालेयवातमवलविक-
सितोद्गाममन्दारदन्नि । येषां नो कण्ठलम्ना क्षणमपि
तुद्भिर्नक्षोदद्वा भृगाक्षी तेषामायामियामा यमसदनः
समा यामिनी याति नूनम् ॥ ४१ ॥ बहुगुणरमणीयो
योपितां चित्तहारी परिणतवहुशालिव्याकुलप्राप्त-
सोमा । विनिपतिततुपारः क्रीञ्चनादीपगीतः प्रदिशतु
हिमयुक्स्त्वेष कालः सुखं चः ॥ ४२ ॥ भृशमदूषत
याऽधरपल्लवदतिरनावरणा हिममारुतैः । दशनरिम्-
पटेन च सीतकृतैर्निवसितेन सितेन सुनिर्वयो ॥ ४३ ॥
ध्रमति हिमानीसैन्ये विमुक्तदैन्ये जिगीषया जगतः ।

पतिते विदुषी हुई युवती पीली पद् जाती है ॥ ३३ ॥
प्रातःकाल पासपर फैली हुई शोसकी बूँदें देवकर
पेसा जगता है मानो युवतियोंकी छातियोंपर मोटे-मोटे स्तन
देवकर सुख पानेवाला हेमन्त प्रेमियोंके धामों उन स्तनोंको
मले जाते देवकर दुःखसे शोसू पहा रहा हो ॥ ३४ ॥
हेमन्तमें फूलोंके आसवकी भीनी और मीठी सुगन्धवाले
सुंदरे सुंद सदयर और सोंसोंसे सुगन्धित अर्धोंसे अर्ध
मिलाकर साथ शरी-पुरण एक दूसरेसे लिपटकर हेमन्तमें सम्भोग
करते हुए सोते हैं ॥ ३५ ॥ जिन तालायोंमें पिले हुए नीले कमल
भरे हुए हैं, मत्त कजहंस हृषर-उपर तैर रहे हैं और ठण्डा
निर्मल जल भरा हुआ है उन्हें देखकर लोगोंका जी खिळा
पड़ता है ॥ ३६ ॥ गाँवके बाहर जिन रेतोंमें भरपूर धान
जहरा रहा है, हरिणियोंके मुँहके मुँह चौरुदियाँ भर रहे
हैं उन्हें देख-देवकर मन हाथसे निकला जाता है ॥ ३७ ॥ जादूके
दिनोंमें पाकारामें इतना अधिक पाला फैल रहा है कि दिसाएँ
और गर्द-पद् भी सुख हो गए हैं, जलारण्योंसे भाग उठ रही
है, बुढ़रेकी पत्नी घरामें मण्डियों और पत्नी घुने पड़े हैं,
घोड़े, हाथी, गूधर, बकरे तथा कौए मनवाले हो रहे हैं, हुन्द,
जायफल और लोपमें पूज गिल रहे हैं और पालेके
बच्चोंसे भरा उल्टी पवन स्तनसमाप्त बर रहा है ॥ ३८ ॥
हेमन्तकी बर ऋतु धा गई जिसमें हिमाच्छयकी चोरीसे

धानेवाला पवन बहाता है, खिले हुन्दके फूलका रस भीतोंसे
अपनी और धींचता है और जिसमें छैले खोग पूरमें सुन्दरी
नवेलीके केसरसे रंगे हुए मोटे तथा सुन्दर स्तनोंसे लिपटे परे
रहे हैं ॥ ३९ ॥ जो नवेली रूठकर अपने पतिके साथ गयी
रहना चाहती थी उसने भी अगहनके महीनेमें जादूसे हरिण
हँसेतु हुए सुन्दर ही अपने पतिके बाँहोंमें पेटा कसकर धर
लिया कि फिर वह वही वली करकेका नामतक नहीं गया
॥ ४० ॥ जिस हेमन्त ऋतुमें खिले हुए कमलोंकी शोभा न
जाती है, खिले हुए हुन्दपर मतवाले मीरे मँदराने लगते हैं
और शीतल पवनसे पारिजातके फूल खिल उठते हैं उस
समय सारी ठण्डक दूर करनेवाली शृगनयनी चणभा भी
जिसके गले नहीं लगी उसके लिये हेमन्तकी लम्बी-चौड़ी शू
सापाव बसपुरी ही समझिए ॥ ४१ ॥ भगवान् बने, बने
अनेक गुणोंसे मन लुभा देनेवाली यह हेमन्त ऋतु आपकी मुल दे
जो स्त्रियोंका चित्त पुराती है, जिसमें गाँवोंके आस-पास बने
हुए धानोंके रेत जहलहाते हैं, पाला पड़ता है और सार
फूलते हैं ॥ ४२ ॥ अपने शोचपर प्रियतमके दृष्टिसे बने हुए
घाँवर ठण्डा पवन लगनेसे बहुत पीडा होनेपर नवेलीने उन
सी-सी किया उस समय उसके उजले दूर्तोंके स्त्रियरूपी बरने
ही उस धावकी मानो ऐसी मरहम-पही होगई कि उसकी छाती
पीडा जाती रही ॥ ४३ ॥ जब पालेकी सेना सारे सँसारको भीतनेकी

भयविद्वलमौष्ण्यमिदं तरुणीस्ननदुर्गामश्रयति ॥ ४४ ॥
 महैरिणः कठोरंशोरियं प्रणयमृरिति । रोपाविष तुपा-
 रेण परभूयत पञ्चिनी ॥ ४५ ॥ मनोहरेश्चन्दनरागगौ-
 रैस्तुपारकुन्देन्दुनिमैश्च हारैः । विलासिनीनां स्ननशा-
 लिनीनां नालट्क्रियन्ते स्ननमण्डलानि ॥ ४६ ॥ मार्गं
 समीक्ष्यातिनिरस्तनीरं प्रयासखिन्नं पतिमुद्रहन्त्यः ।
 श्रवेद्यमाणा हरिणेक्षणाद्यः प्रबोधयन्तीव मनोरथानि
 ॥ ४७ ॥ यो घातुमश्राति सञ्चद्धिमर्ता तन्मैव शीतं
 व्ययते कदाऽपि । गृह्णन्ति याः प्रत्यहमेव घातुं स्त्रीणां
 कुतः स्याद्वत शीतवाघा ॥ ४८ ॥ रतिश्रमक्षामविपा-
 ण्यपञ्जाः सम्प्रातहर्षाम्बुदयान्तरुण्यः । ह्रसन्ति
 नोर्षेर्दशनाप्रमिधान्प्रपीड्यमानानधरातनवेव्य ॥ ४९ ॥
 लघुनि वृणकुटोरे क्षेत्रकोणे यवानां नयकलमपलाल-
 सस्वरे सोपधाने । परिहरति सुपुङ्गं हालिकद्वन्द्वमा-
 रात्कुचकलशमहोष्मावजरेरस्तुपारः ॥ ५० ॥ लज्जा

मौढमृणीदशामिव नरस्त्रीणां रतेच्छा इव स्मैरिण्या
 नियमा इव स्मितरुचः कुल्याङ्गनानामिव । दम्पन्योः
 कलह्या इव प्रणयिता चाराङ्गनानामिव प्रादुर्भूय तिरो
 मयन्ति सहसा हैमन्तिका वामराः ॥ ५१ ॥ विरुमति
 सूर्ये विकसति मुकुलति चास्तं गते तन्मिन्द्र । शिशोरे
 नि.स्वकुटुम्बः पङ्कजलीलां समुद्रहति ॥ ५२ ॥ प्रण-
 वृता सुतनोः कलसीकृतस्फुरितदन्तमरीचिमयं दये ।
 स्फुटमिवाचरणं हिममारुतंमृदुतया वृत्तयाचरलेपया
 ॥ ५३ ॥ शरत्कालातपक्रान्तकान्तावस्त्रेन्दुवल्गमः ।
 आजगामाथ हैमन्तः सामन्तस्मरभूभुजः ॥ ५४ ॥
 शीतांशोरिव नूतनस्य रुचयो विद्या श्यामेपसां चिप्रा
 तिक्रमिणां विभूतय इव क्षीम्य बोधा इव । भावै.
 सन्वलिता इव प्रियतमे दम्भङ्गयः सुभ्रुवां प्रादुर्भूय
 तिरोभवन्ति सहसा हैमन्तिका वासराः ॥ ५५ ॥
 युक्हरितयवानां सांनि नोहारभासः सपदि विगत-

हृद्पासे ससारपर छा गई तो गरमो भी भयसे घबराकर युवतीके
 स्ननरूपी तुर्गामें जा डिपे ॥ ४४ ॥ पालेने मानो इनी क्रोधसे
 कमलत्रनको नष्ट कर डाला कि 'यह मेरे शत्रु सूर्यकी प्रेमस्थली
 है' ॥ ४५ ॥ हैमन्तके दिनोंमें श्रलथेली नवेलिखीं अपने बड़े-बड़े
 गोल-गोल स्तनोंपर दिन, कोई और चन्द्रमाके समान दजले
 और कुटुमके रङ्गमें रँग हुए हार नहीं पहनतीं ॥ ४६ ॥ जिन
 मृगनयनी स्त्रियोंके पति परदेस चले गए हैं वे खुसे हुए
 मार्ग देखकर परदेसमें पड़े हुए अपने दुखी पतियोंके आनेकी
 याद जोहती हुई यह सोचती हैं कि 'जब हमारे पति आवेंगे
 तब हम यों मिलेंगी, यों बातें करेंगी और यों स्टेगी' ॥ ४७ ॥
 टंढके दिनोंमें जो एक बार भी रसायन राग लेता है उसे ठण्डक
 तक नहीं सतावी, फिर जो प्रतिदिन नवेलियोंका घातु ग्रहण
 किया करता है उसे ठण्डक क्या कष्ट दे सकेगी ? ॥ ४८ ॥
 सम्मोगकी यथावतमे पीले और सुरम्प हुए सुपुंवाली
 नवेलियाँ हैंसकी वातपर भी यह समझकर सुँह खोलकर नहीं
 हैंसतीं कि कहीं प्यारेके पीने दाँतोंसे काटे हुए थोठ दुखने
 न लगे ॥ ४९ ॥ हैमन्तके दिनोंमें जीके सेतके कोनेमें डाली
 हुई पूसकी घोंटीसी भईयामें धानके पुध्यालके बिड़ौने
 और कचिपपर थपनी नवेलीके साथ सोते हुए हलवादेकी
 सारी ठण्डक उस नवेलीके मनकी गर्मासे दूर इटकर एक

रेखाके रूपमें तो दिव्याई दे रही है पर ठमके पास नहीं आती
 ॥ ५० ॥ तरुणी नायिकाकी लज्जाके समान, नई नवेलीकी सम्मोगकी
 हृद्पाके समान, व्यभिचारियोंके नियमोंके समान, कुल्याङ्गनाओंकी
 हैंसीके समान, पति पत्नीके क्लेशके समान और वेदयाओंके
 प्रेमके समान हैमन्तके दिनोंका निकलत और द्विपते
 देर कुछ नहीं खपती ॥ ५१ ॥ हैमन्तके पालेमें दरिद्र
 परिवारकी दशा कमलके समान हो जाती है, दोनों ही सूर्यके
 निकलनेपर खिल उठते हैं और सूर्यके अस्त होनेपर मिट्ट
 जाते (टिडरने लगते) हैं ॥ ५२ ॥ जब ठम नवेलीने
 अपने कामल श्रोत्रोंपर बने हुए प्यारेके दाँतोंके धावमें हैमन्तके
 ठण्डे पवनसे पीडा होनेके कारण सी सी करनेके लिये सुँह
 खोला तो उसके दाँतोंकी धमकने उसके श्रोत्रको गरमाइत
 देकर उसे कुट्ट शान्ति दी ॥ ५३ ॥ शरद् ऋतुकी कहीं धूपसे
 मियाके सुरम्प हुए सुपचन्द्रका प्यारा तथा महाराज कामदेवका
 सामन्त हैमन्त काल था पहुँचा है ॥ ५४ ॥ हैमन्तके दिन
 उसी प्रकार अथन्त शीघ्रतासे निकलते और बीतते जाते हैं
 जैसे दूजके चन्द्रमाका प्रकाश, मूर्खकी विद्या, प्राइयोंका
 अपमान करनेवालोंका सपत्ति, पागलका ज्ञान और पतिपर
 पदती हुई नायिकाओंकी भावभरी तिरछी चितवन ॥ ५५ ॥
 रात बीतनेपर सोतेके रङ्गके समान हो-करे जीके भोगोंमें शोकर

निद्राः क्रौञ्चकान्ताः क्षपान्ते । विदधति कमनीय-
 फवाणमुद्यत्कारं सरलितगलनालं जर्जरस्फाररेफम् ॥ ५६ ॥ समत्तमपि सूर्यस्य पर्यभूयत पद्मिनी । तेज-
 स्विनोऽपि कुर्वन्ति किं कालवशमागताः ॥ ५७ ॥
 हसन्ती वा हसन्ती वा हसन्ती वामलोचनाम् । हेमन्ते
 ये न सेवन्ते ते नूनं दैवघञ्जिताः ॥ ५८ ॥ हिमन्तृता-
 वपि ताः स्म भृशश्विदो युचतयः सुतरामुपकारिणि ।
 प्रकटथत्यत्रुरागमकृधिमंस्मरमयं रमयन्ति चिलासिनः ॥ ५९ ॥ हिमघवलदन्तकेशी मन्द्युतितारका बृहत्चि-
 मिरा । द्विशुणीभृता रजनी वृद्धेव ज्ञनैः शनैर्याति ॥ ६० ॥ हेमन्तकालेऽथ वियोगिकाले शीतस्य रुक्-
 पयय न तस्य यस्य । अङ्गे हसन्ती द्ययिता हसन्ती
 पार्श्वे हसन्ती वसनानि सन्ति ॥ ६१ ॥ हेमन्तहिमनि-
 स्पन्दमवलोक्य मनोभवम् । प्रहर्तुं सुभ्रुवां चेतो रवि-

द्वेणो घनुर्द्वौ ॥ ६२ ॥ हेमन्ते दधिदुग्धसर्पिण्यना
 माक्षिष्ठवासोभृतः काश्मीरद्रवलिप्तवाक्यपुरः सिन्धु
 विचित्रै रतैः । वृत्तोदस्तनकामिनीजनकृतरत्नेषा
 गृहाभ्यन्तरे ताम्बूलीदलपूगपूरितमुखा घन्याः सुखं
 शेरते ॥ ६३ ॥ हेमन्ते बहुदोषाढ्ये द्वौ गुणौ सर्वस-
 म्मतौ । अयत्नशीतलं वारि सुरतं स्वेदवर्जितम् ॥ ६४ ॥
 हे हेमन्त स्मरिण्यामि त्वय्यतीते गुणद्वयम् । अयत्न-
 शीतलं वारि निशाश्च सुरतद्वयम् ॥ ६५ ॥

कन्दुकक्रीडा— अमन्दमण्डिन् पुरकणनचारुचारिकमं
 ऋणज्मणितमेखलास्खलिततारहारच्छटम् । इदं तरल-
 कङ्कणावलिचिशेषवाचालितं मनो हरति सुभ्रुवः
 किमपि कन्दुकक्रीडनम् ॥ १ ॥ अस्याः स्वेदाभ्युविन्दु-
 च्युततिलकतया व्यक्तवक्त्रेन्दुकान्तेर्वारोरेण वेगप्र-
 हणनगणनाकेलियाचालितायाः । तत्पातोऽथानतालक-

उठी हुई क्रीडा शोसकी भीति चमककर अपनी गला सीधा
 करके धरधराती हुई कैं-कैं शब्द कर रही है ॥ २६ ॥
 हेमन्त ऋतुमें सूर्यके सामने ही कमलिनीकी यह हुईशा हो
 गई । ठीक है, बड़े-बड़ेकालके बरा ही सुकनेपर तेजस्वीके क्रिप भी
 बया हो सकता है ॥ २७ ॥ जिन्होंने हेमन्तमें हर्षसे हँसती
 हुई तिरछी पितवनवाली नवेली, भौंगीठी तथा रुईसे भरी
 बएडीके उपभोगका आनन्द नहीं उठाया वह निरपय ही
 भाग्यहीन है ॥ २८ ॥ इस आप्यन्त उपकारी और बिना
 परिश्रम ही सम्भोगकी रचि उत्पन्न करनेवाले हेमन्तके आते
 ही नवेलियोंकी देह पसीनेसे भर गई और वे अपने-अपने
 विजाली साजनोंको सम्भोगसे सुख पहुँचाने लगीं ॥ २९ ॥
 हेमन्तकी दुगुनी बड़ी हुई रात उस मोठी बुद्धियाके समान
 धीरे-धीरे जा रही है जिसके लिये पाखा ही उजले धाँत और
 बास हों, जिसकी साठोंरूपी पुनर्बियोंका प्रकार मन्द हो गया
 हो और जिसके नेत्रमें धीरे-धीरे रतींधी बढ़ गई हो ॥ ३० ॥
 देरी, पियोगियोंके लिये काजरूप इस हेमन्त-ऋतुमें उन्हींको
 जादा नहीं आता तिनकी मोक्षमें हँसती हुई नवेली हो,
 पासमें गिराई हो और रुई-भरे वस्त्र हों ॥ ३१ ॥ हेमन्त-
 ऋतुमें कामदेवको आरुने दिडुरते हुए देसकर भगवान् सूर्यके
 ही नवेलियोंके मनपर प्रहार करनेके लिये स्वयं प्रतुप
 बटा दिया (धनु-राशिपर पसे गए) ॥ ३२ ॥ वे लोग

धन्य हैं जो हेमन्तमें दही, दूध और घी खाते हैं, लाल वस्त्र
 पहनते हैं, शरीरपर केसरका लेप लगाते हैं, अनेक प्रकारसे
 रति कर-करके थके रहते हैं, अपनी देहसे लिपटी हुई बने-
 बड़े स्तनोंवाली नवेलियोंकी गले लगाए रहते हैं और अपने-
 अपने भवनोंके भीतर सुँहमें पानके बीड़े जमाए सुखसे सोते
 हैं ॥ ३३ ॥ अनेक दोषोंसे भरे हुए इस हेमन्तमें दो गुण
 पैसे हैं जिनका जोड़ा सब लोग मानते हैं, एक तो बिना श्रमके
 उषदा पानी और दूसरे बिना पसीनेका सम्भोग ॥ ३४ ॥
 हे हेमन्त ! तुम्हारे भीत जानेपर तुम्हारी दो बातें सदा स्मर-
 भाती रहेंगी, एक तो स्वभावसे ही उषदा जब और दूसरी
 सम्भोगके योग्य रातें ॥ ३५ ॥

गँवका खेल : हेमन्तके दिनोंमें नवेलीका यह गँवका विनो
 खेल मन मोह रहा है जिसमें मणिकी पायलोंकी दलदलके
 साथ वह अपने सुन्दर पैर चढ़ा रही है, उसकी तगरी प्र-
 कना रही है, उजले द्वारकी चमक धाँत और कील राती
 और दिबले हुए कङ्कन धमधमना रहे हैं ॥ १ ॥ हेमन्तमें
 श्रापका आनन्द देनेवाला यह नवेलीका गँव खेलना ब-
 प्यपर इमारा मन खींचे ले रहा है जिसके कारण पसीनेकी
 रूँतोंसे मिटे हुए तिलकवाला उसका श्रुण चन्द्रमाके समान
 स्पष्ट चमकने लगा है, जो वेगने गँवका गहा गिरने हुए
 इज्जा मचा रही है और जो गँव गिरते तथा बढते समय

भनमितदशस्ताण्डवोचालतालीलालित्याल्लोभिताः स्म
प्रतिकलममुना कन्दुकक्रीडितेन ॥ २ ॥ चञ्चलेलाञ्ज-
लानि प्रतिसरणिचलन्यस्तवेणीनि बाहोर्विधोपादक्षि-
णस्य प्रचलितवलयस्फारकोलाहलानि । श्यासउत्पद्म-
चांसि द्रुतमितरकरोन्धेपहोलालकानि चस्तचञ्चि
प्रमोदं दधति मृगदृशां कन्दुकक्रीडितानि ॥ ३ ॥
पयोधराकारधरो हि कन्दुकः करेण रोपादिव ताड्यते
सुदुः । इतीव नेत्रकृतिभीतमुत्पलं तस्याः प्रसादाय
पपात पादयोः ॥ ४ ॥ भ्रमचरणपल्लवकवणदमन्दमजी-
रकं परिस्खलदुरोदहस्तवककम्पमानांशुकम् । रणत्क-
नकमेखलं करसरोरुहाभ्यां पुरः पतन्तमपराददे कु-
मकन्दुकं सुन्दरी ॥ ५ ॥ वक्रभीजितलज्जितेन्दुमलिनं
कृत्वा करे कन्दुकं व्रीडाकौतुकमिश्रभावमनया तिर्यग्य-
हन्त्याननम् । भृङ्गाग्रहङ्कणकेतकदलस्पर्धावतीनां
दृशां दीर्घापाङ्गतरङ्गैकसुहृदां कोऽप्येव पात्रोक्ततः

॥ ६ ॥ वनिताकरतामरसाभिहतः पतितः पतितः पुन
कृतपतसि । विदितं सलु कन्दुक के हृदयं वनिताधर-
सङ्गमलुग्धमिव ॥ ७ ॥ व्यावल्गारकृचभारमाकुलश्चं
व्यालोलहारावलि प्रेङ्खत्कुण्डलयोभिगणद्वयुगलं मस्ये-
दिवक्त्रान्मुजम् । शश्वद् चकरप्रहारमधिकभ्यासं रसा
देतया यस्मात्कन्दुक सादरं सुभगया संसेवयते
तत्कृती ॥ ८ ॥ सानन्दकन्दुकविहारविधां चधुनां
दोलायमानमणिकण्डणनिकषयेन । उद्धायितेषु युवचि-
चविहङ्गमेव श्येना इव स्मृतिमुघो विशिखा विलग्नाः
॥ ९ ॥ स्मरशरघिनिकायां कर्णोपाशं कृताङ्गी रपविग-
लिततालीपत्रताटङ्गमेकम् । वहति हृदयचोरं कुङ्कुम-
न्यासगौर वलयितमिव नालं लोचनेन्द्रीधरस्य ॥ १० ॥
हेमन्ताय — अन्तर्यहं नयति वर्धितरोमहर्षं
स्पर्शेन सीत्करणगर्भमुखीः करोति । किञ्चाधरवण-
वतीः कुरुते पुरन्धीः किं वल्लभः किमुत हेमन पप

वसीके साथ साथ चपती धौलें नीचे-ऊपर चला रही है ॥२॥
उस मृगनयनीका वह गेंद खेलना सकका जी लुभा रहा है
जिसमें उसके झल्लत उड़े जा रहे हैं, दग दगपर लहराते
हुए बाल बिखरे पड़ रहे हैं, बार-बार दाहिनी बाँह उठानेसे
हिलते हुए कङ्कन पनपना रहे हैं, साँस बढ़ जानेसे
खोलना रुक गया है, बाएँ हाथसे अपने लटकते हुए बाल
ऊपर उठा रही है और जिसमें सिरमें रूँधी हुईं गालाएँ
गिर-गिर पड़ रही हैं ॥ ३ ॥ स्तनांकी समानता करनेवाली
गेंदको यह नवेली श्रोत्रसे धार धार पीट रही है इतीलिये
मानो नेत्रकी स्पर्शा करनेके कारण बरा हुआ नीलकमल उसे
प्रसन्न करनेके लिये उसके कानसे खिसककर उसके पैरोंपर
जा पड़ा ॥ ४ ॥ जिस समय उस नवेलीने अपने सामने
आती हुईं फूलकी गेंद अपने हाथरूपी कमलोंसे पकड़ ली
उस समय उसके चलते हुए पैरोंमें पायल यग उड़े, हिलते
हुए स्तनांका मल्ल उड़ चला और सोनेकी तगड़ी भी झनझना
उठी ॥ ५ ॥ जिस समय उस नवेलीने उसके मुखकी कान्तिसे
हारकर लजित चन्द्रमाके समान मलिन गेंद अपने हाथमें
ली उस समय खेलनेके बावसे उसका मुख कुछ तिरछा
हो गया और वह अपने उन कजरारे वयनोंकी चितवनसे
बंध प्रेमसे गेंदको देखने लगी जो ऐसे जान पड़ते थे मानो केवड़ेके
पत्तोंपर भीरे बैठे हों ॥६॥ हे गेंद ! हम ताड़ गए कि नायिकाके
हाथरूपी कमलसे छोट साकर तुम धार-धार गिर गिरकर

भी फिर फिर इसलिये उड़ल रहे हो कि तुम उसके श्रोत्र
चूम्ना चाहते हो ॥ ७ ॥ हे गेंद ! तुम सचमुच बड़े म ग्य-
शाळी हो कि यह सीमायवती नवेली अत्यन्त प्रेम और
आदरके साथ तुम्हारी दहल करनेमें हतनी व्यस्त हो रही है
कि उनके स्तन हिल रहे हैं, बाल बिखरे जा रहे हैं, हार
मूल रहे हैं, कानके दोनों कुण्डलोंके हिलनेसे दोनों गाल
सुन्दर लगने लगे हैं, मुखकमलपर पसीना झलक गया
है, चिरन्तर हाथ चलाती जा रही है और उसका साँस चूला
जा रहा है ॥ ८ ॥ जिस समय नवेलियाँ मस्त हाकर गेंद खेल
रही थीं उस समय उनके मणि जड़े कङ्कनोंकी पनपनाहटसे
तरुणोंके मगरूपी पची जो उड़े ता उनपर बाजके समान
कामदेवके घाय आ टूटे ॥ ९ ॥ वह दुबली पतली नवेली
अपने कानमें गेंद देखते समय ऐसा एक कनकासा पढ़ने
हुए है जिसकी पतिथी गिर गई हैं और जो कामदेवके तरकसके
समान लग रहा है । उसे देखकर लोणोंका मन मुग्ध हो
जाता है और ऐसा जान पड़ता है कि केसरके रत्नसे रेंगा
हुया गोल-गोल श्राल-रूपी नीले कमलका नाल हो ॥ १० ॥

हेमन्तके पवनः हेमन्त ऋतुका यह वायु नवेलियोंके
साथ ठीक उनके पतिथोंके समान व्यवहार करता है क्योंकि
वह उनकी देहमें रोमाञ्च उत्पन्न करता हुआ घरके भीतर
ले जाता है, जैसे ही यह उन्हें चूता है तो वे सी सां
कर उठती हैं और उनके श्रोतोंमें झगकर यह उनमें पाव भी

घातः ॥ १ ॥ आग्नेयीमेति शीतादिव दिशमवरोषास-
रास्सङ्घचन्तीघासंस्पर्शोऽपि तोयाद्दहति तनुशिषी
शीतपीडां प्रमाष्टि । तल्पेऽनल्पप्रकोपप्रविदलित-
दृढालिङ्गनग्रन्थिवन्धे लब्ध्या सन्धानरन्ध्रं निविडयति
जडो दम्पती मातरिश्वा ॥ २ ॥ गौरौविंशमधूपधूम
पटलश्यामायमानोदराः कण्ठद्वोदभयान् ये कवलिताः
श्रीकण्ठकण्ठरगैः । स्फारोन्मीलितशारदागृहवृह-
द्द्वारात्रघण्टारवास्ते श्लाघामलभन्त सन्ततमभी
फैलासशैलानिलाः ॥ ३ ॥ दधत्यधरधुम्बन नयनपङ्कजं
मुद्गयत्यमन्दपुलकं मनागमलमङ्गमालिङ्गते । विचाल-
यति चालकं चपललोचनानां हठाचनोत्ययिनर्यं मरु-
त्प्रिय इवैप हैमन्तिकः ॥ ४ ॥ घृततुषारकणस्य
नमस्यतस्तुरुलताङ्गलितजर्नविभ्रमाः । पृथुनिरन्तर-
मिष्टमुजान्तरं चनितयानितया न विपेहिरे ॥ ५ ॥
निचयिनि स्वधलीलताविकासे जनयति लोभ्रसमीरयो

कर देता है ॥ १ ॥ शीतके दिनोंमें ऐसा क्षान पड़ता है मानो
उपद्रवके मारे ही सूर्य, अग्निही दिशा (पूर्व और दक्षिणके
पीचकी आग्नेय दिशा) को चला जाता है (दक्षिणायन हो
जाता है), दिन भी मानो शीतके कारण ही सिबुद्धते जाते (छोटे
हो जाते) हैं, जलका स्पर्श न होनेपर भी आग शीतसे टिडुरती
हुई धीरोंकी उपद्रव दूर कर देती है तथा जिस पलंगपर पति-
पत्नी श्लोकके कारण रुठकर एक दूसरेसे अलग पड़े हुए हैं उसके
पैरसे घुसकर पालेसे टिडुरा हुआ (मूर्ख) पवन उन्हें वेगपूर्वक
एक दूसरेसे लिपटा देता है ॥ २ ॥ सारस्वतीजीके घरके द्वारपर डैंगे
हुए भड़े भारी घण्टेकी धमटनाहटसे भरे हुए उन ईशवास पर्वतके
उपरै पयनोंकी इस समय प्रशंसा हो रही है जो पार्वतीजीके
बाओंको गुगन्धित करनेवाले घने पुष्पोंसे ढाके-ढाके हो रहे
हैं तथा महादियत्राके गलेमें पड़े सर्पोंसे जिन्हें इस तरहसे
नहीं पिपा कि कहीं (उपद्रवके मारे) गला न फट जाय
॥ ३ ॥ यह हैमन्तका पवन हठीं धँलेके समान पहाड़ नेत्रों-
पार्षी भवेत्किपोंके साथ बड़ा बलाकार कर रहा है क्योंकि
यह हट करके उनके घांठ घूमता है, उनके कमलनयन रूँदता
है, उनके रोमाघ्रित निर्मल चन्द्रोंका धरिरे आलिङ्गन करता है
और उनके बास खटा देता है ॥ ४ ॥ धोसकी मुँदोंसे खदा
हुआ पवन पैरों और छाताघोंछी चण्डी रहनियोंकी पैमे
मुखा रहा था मानो डैंगी उदा-उदाकर पटरका रहा हो । उन
पटरघातोंके केवल बेई गिराव न सहपाईं को अपने साननोंकी

घ हर्षम् । विकृतिमुपययी न पायइसतुद्यलति
नयान्न जिगीपतां हि चेतः ॥ ६ ॥ नीचोद्यैर्विधिपन
कृततुहिनकणासारसङ्गान्परागान्कौन्दानान्दितालो-
नतितरसुरभीन्भूरिषो दिङ्मुपेपु । एते ते कुङ्कुमाव-
स्तनकलशभरास्फालनादुच्छ्रलन्तः पीत्या सौत्वारि-
चक्रं शिशुहरिणेश्यां हैमना यान्ति घाताः ॥ ७ ॥
हृणीसीमन्तमुद्रां सपदि तरलयनकीरकान्ताकुचान्त-
स्वच्छन्दस्तस्तव (?) स्त्री चलचपलतया लोलपन्हास्य
ललीम् । प्रालेयावासपृथ्वीधरशिखरचलच्चाद्यारि-
प्रवाहप्रदोभप्रतिमथ्रीः प्रसरति परितो हैमनो गन्ध
वाहः ॥ ८ ॥

हैमन्तपथिक — अन्योन्याहतिदन्तनादमुपरं वरं
मुयं कुर्यता नेत्रे साशुकरो निमील्य पुलकन्यासहि
काएह्यता । हाहाहेति सुनिष्ठुरं विपदता वाह प्रसायं
क्षयं पुण्याग्निः पथिकेन पीयत इव ज्वालाहतश्मभुण

मोटी-मोटी बुजाओंमें कसी लिपटी नहीं पड़ी थीं ॥ १ ॥
हरकारेवड़ीकी लताको लिलानेवाला और खिले हुए लोभमें बना
हुआ मन्द-मन्द पवन जब हैमन्तमें लोगोंको प्रसन्न कर ला
या उस समय अर्जुनका मन तनिक भी दिग्ग नहीं ब्योकि
जो लोग विजय चाहते हैं उनका मन अपने निरवधसे गीं
दिग पाता ॥ ६ ॥ शोसके कर्णोंसे लड़े हुए, धरयन्त सुगन्धित
तथा भीरोंको मस्त कर देनेवाले कुन्दके फूलके परागको डग
उठानर हैमन्तके पवन धारों और बिछेर रहे हैं, केसरसे जिं
हुए स्तनोंपर टकरा-टकरकर उछल रहे हैं और ग्यानरनी
नवेनियोंके सी-सी करते हुए चोटोंको घूम-घूमकर बहो
हैं ॥ ७ ॥ हैमन्तके जिस पवनकी शोभा हिमालयकी पारिपों
बहते हुए जलकी धारा धू लेनेसे बहुत बढ़ गई है वह पवन
हुए देशकी नवेनियोंकी सौन्दर्यी सजावट विगाड़ता हुण,
कीर देशकी नवेनियोंके स्तनोंपर स्वच्छन्द घूमता हुआ तथा हन्य
देशकी गुन्दरियोंके हारोंको मुखाता हुआ धारों और श्रेष्ठ ला
है ॥ ८ ॥

हैमन्तके यात्री : जादके कारण जिसके दान बर तो है
तथा जो अपनी धर्म-धर्मि धर्मोंमें रूँदकर अपने उठे हुए शोभने
शरीरको सुजला रहा है, वह परदेसी जब उँधे स्वतः 'पार
दाय !' कहता हुआ बौद्ध फैलाकर जलगी हुई प्राणके
रूँद बढ़ाकर पैमे प्राण जापने छागा मानो प्राणकी निद
रहा हो, उन मनव प्राणकी जपटोमे बसकी दातीके बह बह

॥ १ ॥ आहूतोऽपि सहायैरेमोत्पुफ्तया विमुक्तनि-
द्रोऽपि । गन्तुमना अपि पथिकः सङ्कोचं नैव श्रियि-
लयति ॥ २ ॥ हे पान्थ प्रियधिमयोगहृतभुञ्ज्याताम-
भितोऽसि किं किंचा नास्ति तव प्रिया गतयुगः किंचा
विहीनो धिया । येनास्मिन्नयत्कुङ्कुमारुणश्चिन्व्यासङ्ग-
धर्मोचिते कुन्दानन्दितमत्तपट्पङ्कुले फाले गृहधि-
र्गतः ॥ ३ ॥ हेमन्ते पथिकजनताः प्रियाधियुक्ता लोकीनां
गृहवहिरङ्गणे शयानाः । कन्दर्पाकुलमनसां निष्ठासु
तेषां शीतं किं लगति जगत्प्रकम्पकारि ॥ ४ ॥ हेमन्ते
हिमकरचिन्मन्त्राचरुसुखा रामाया मृदुमुज्ज्वलरे
शयानाः । ये कालं परमसुखं नयन्ति तेषां शीतं किं
लगति जगत्प्रकम्पकारि ॥ ५ ॥ शीतार्तिप्रसर-
स्तथाकुलपदन्यासैः समुत्कम्पिभिः पान्थैर्नन्दिय-
तुच्छुग्रीधननद्व्यापारवैः सूचिताः । प्राप्यन्ते
हिमपीडितानि निभृतप्रोद्घाटधूमा धनस्तोकील-

कुन्दोरकाः कथमपि प्राप्ता गिरिप्रामकाः ॥ ६ ॥
शिशिरवर्णनम्—शंशु कामिय शीतमयान्दम्भ्यातय-
च्छलेन हिमधवलम् । अन्मोभिरपि गृहीतं पश्यत
शिशिरस्य महाहत्यम् ॥ १ ॥ अगुणसुरभिधूपामोदितं
केशपार्श्वं गलितकुसुममालं कुञ्चितपत्रं चन्दन्ती ।
त्यजति गुरुनितम्गा निम्ननाभिः सुमध्या उपसि
शयनमन्या कामिनी चारुश्यामा ॥ २ ॥ अङ्गरहासिषु
विलासशुद्धोदरेषु तल्पेषु तूलपटकलिपतयेष्टेषु ।
उप्येषु च प्रणयिनीकुचमण्डलेषु शान्ति जगाम
शिशिरस्य तुपारवर्गः ॥ ३ ॥ आंचितवन्नमनी रजसा-
धिर्कमलितानुसुमनोदलतालिनः । स्फुटमिति प्रसंघन
पुरो हसन्सपदि कुन्दलता दलतालिनः ॥ ४ ॥ अपगत-
मदरागा योपिदेहा प्रभाति कृतनिविडकुचाप्रा पर्युसा-
लिङ्गनेन । प्रियतमपरिभुक्तं वीक्षमाणं स्वदेहं व्रजति
शयनधासाद्वासमन्यं हसन्ती ॥ ५ ॥ अभिपिपेष्णियुषुं भुव-

वटे ॥ १ ॥ किसी हेमन्तके यात्रीको उसके साथियों सबनेके
लिपे पुकारा, उसकी आँपि भी सुल गई थीर उसने उचर
भी दिया कि 'मैं था रहा हूँ' किन्तु जाना चाहते हुए भी वह
आलसमें लिपटा करवटें बदल रहा है ॥ २ ॥ हे शायी !
अपनी प्यारीकी वियोगकी आगकी लपटोंसे तुम अभी अज्ञान
हो क्या ? या क्या तुम्हारी कोई प्यारी है ही नहीं ? या हे
निर्दयी ! क्या तुम्हें तनिक भी सुधि नहीं है ? क्योंकि जिस हेमन्तमें
नये केसरके समान लाल-लाल किरणोंवाली धूप निकलती
हो थीर जिसमें कुन्दके फूलोंपर भीरे प्रसन्न थीर मस्त होकर
मँडरा रहे हों उस समय तुम्हें घरसे निकलनेकी सूझी है ?
॥ ३ ॥ हेमन्तमें अपनी नखेलियाँसे विदुष्ट हुए परदेसी रातको
किसीके घरके बाहर धीनमें सोए हुए थे फिर भी उन्हें
संसारको टिट्टरा देनेवाली टपटक इसलिये नहीं लग पाई कि
उनके हृदयमें कामाग्निकी ज्वालणें घषक रही थीं ॥ ४ ॥
जो लोग हेमन्तकी रातोंमें चन्द्रमाके समान सुन्दर सुलकीली
नखेलीकी कोमल मुजाओंके पन्थनमें लिपटकर सुखसे समय
विताते हैं उनका यह संसारको टिट्टरा देनेवाली टपटक क्या
विगाद सकती है ॥ ५ ॥ कदकड़ाते जाड़ेसे टिट्टरते थीर खट्टरपाते
हुए परदेसियोंको देखकर और दरिद्रोंकी दुबली गार्गीका
रँसाना सुनकर यह समझा जा सकता है कि टपटक झितनी
बढ़ गई है, साथ ही पास-पास यसे हुए जिन पहाड़ी गर्बियों
की-की उभरी निकल रहा है उनसे किसी होनेके कारण कद-

उद्य दिगाई देनेवाली कोपदियों भी पाबसे दयी जान पड़ती
है ॥ ६ ॥

शिशिरका चर्चन : देलो ! जल भी शिशिरके प्रभावके
कारण ऐसा टपटा हो चला है कि उसपर उनका उजवाला पावा
फैल गया है जिससे जमकर बढ़ विष्टे हुए निद्राके समान दिगाई
दे रहा है ॥ १ ॥ मारी नितम्बवाली, गहरी श्रमिवाली,
लचकदार कमरवाली थीर मनभावनी सुन्दरतावाली एक
नखेली अगरेके धुर्रमें बसी हुई मालाघोसे विना गुँधी हुई धनी
धुँधवाली लटोंको धामे प्रातःकाल पलंग छोड़कर उठ रही
है ॥ २ ॥ अपनी गर्मसे अङ्गारोंकी हँसी उड़ानेवाले विजास-
घरोंके भीतर रहूँके गहोंमे ढके हुए पलंगों तथा प्राणप्यारीके
गरम-गरम स्तनोत्क पट्टेचकर शिशिर जलुका प्रभाव ही लुप्त
हो जाता है ॥ ३ ॥ जैसे किसी सुखके बंधोंमें किसी रमस्वजाका
रक लगा देखकर दूसरी स्त्री उसकी हँसी उड़ानती है उसी
प्रकार लींगकी लताके परागमे लिपटे हुए थीर लींगके शृंखर
ही बैठे हुए भीरोंको देखकर कुन्द-लता मानो अपने भिले हुए
फूलोंसे उसकी हँसी उड़ा रही है ॥ ४ ॥ देवो, प्रातःकाल होनेपर
जो नखेली प्रियतमसे उपभोग किए हुए अपने शरीरको देवती हुई
अपने गयन-धरमे दूसरे घरको जा रही है उसके सुखपरमे
मदकी लाठी जाती रही है थीर पत्नीकी झल्लसे खगे
रहनेके कारण उसके स्तनोंकी धुँधियों भी कड़ी पड़ गई है
॥ ५ ॥ पत्नी, हुई येगली, धरने समान, मरमेका धोषण,

नानि यः स्मरन्निवाव्यत लोधरजञ्जयः । लुभितसैन्य-
परागविपाएडरद्युतिरयं तिरयन्नुद्भृद्भिः ॥ ६ ॥
प्राञ्चुन्य विम्बाधरमङ्गवल्लीमालिङ्गय संस्पृश्य कपो-
लपालिम् । श्रीधएडमादाय करेण कान्तः सन्त्रासया-
मास सरोरुहात्नीम् ॥ ७ ॥ उपचितेपु परेष्वसमर्थतां
प्रजति कालयशाद्बलवानपि । तपसि मन्दगभस्तिर-
भीपुमात्रहि महाहिमहानिकरोऽभवत् ॥ ८ ॥ पते
समुल्लसद्भासो राजन्ते कुन्दकोरकाः । शीतभीता
लताकुन्दमाश्रिता इव तारकाः ॥ ९ ॥ कतिपयसह
कारपुपरम्यस्तनुतुहिनोऽपविनिद्रसिन्दुवारः । सुर-
भिमुपहिमागमान्तशंसी समुपययौ शिशिरः स्मरैक-
पन्धुः ॥ १० ॥ कनककमलकान्तैश्चाकृताप्राधरोष्ठैः
ध्वणुतटनिपत्तैः पाटलोपान्तेनैः उपसि घनविम्बै-
रंससंसककेशैः धिय इव गृहमध्ये संस्थिता योपि
तोऽथ ॥ ११ ॥ कारणोत्पन्नकोपोऽपि साम्प्रतं प्रमदा-

जनः । निशि शीतापदेशेन गाममालिङ्गति प्रियम्
॥ १२ ॥ कृतापराधान्वृशोऽभितजितान्स्वेषुपृष्ठाध्व
सलुप्तचेतसः । निरीक्ष्य भर्तृन्सुरतामिलापिण-
स्त्रियोऽपराधान्समदा विसस्मरः ॥ १३ ॥ गृहीतताम्बु-
लविलेपनरजः पुष्पासघामोदितवक्त्रपङ्कजाः । प्रभा
मकालागुरुधूपवासितं विशन्ति शय्यागृहसुसुताः
स्त्रियः ॥ १४ ॥ चुल्लोसीमनि गोरसार्द्रमशनं भुक्त्वा
परीत्याऽर्भकैरभ्याशे स्वरूपीलुपन्ननिनदं हर्षात्समाक-
र्षयन् । शेते संहतगोगण्योष्मणि गृहे क्स्ताम्बरं गेदि-
नीमालिङ्ग-यागण्यधिशशासु तुहिनं मोडामरः पामः
॥ १५ ॥ तपनस्तपति स्म मन्दमन्दं ज्वलतोऽपि ज्वलति
स्म किञ्चिदेव । शरपं शिशिरेऽथ किञ्च पूर्नां युपतीर्तां
स्तनयुग्ममात्रमासीत् ॥ १६ ॥ तुपारसद्वातनिपात-
शीतलाः शशाङ्कमाभिः शिशिरीकृताः पुनः । विपाएऽ-
तारागणचारभूषण जनस्य सेव्या न भवन्ति रात्रय-

पराग शिशिरमें घातों घोर दिशाघोंको दकृता और
फैलता हुआ मानो इस बातकी सूचना दे रहा है कि राजा
कामदेव भय संसारपर चढ़ाई करने ही वाले हैं ॥ ६ ॥
शिशिरमें एक धैलेने अपनी नवेलीके लाल-लाल छोठ
पूने, उसे घातते लगाया, उसके गाल मसले और भय
अपने हाथसे घिसा हुआ पन्धन लेकर उस कमलनयनीको
धमका रहा है कि 'यह तुम्हारे शरीरमें पोतने ही वाला हूँ' ॥ ७ ॥
अब गणु प्रबल हो जाता है तब उस विपत्तिके समय बलवान्
भी अपना कष्ट दूर करनेमें असमर्थ हो जाता है । देखो, माघ
मासमें तेजस्वी सूर्यकी किरणें हृत्तनी फीकी पड़ गईं कि यह
प्रबल हिमको दूर नहीं कर पा रहा है ॥ ८ ॥ कुन्दकी
कमकठी हुई कछियाँ पृष्ठीपर ऐसी सुन्दर दिखाई पड़
रही हैं मानो टहलते डार सारोंने कुन्दके विरूपेपर बसेरा
बाज दिया हो ॥ ९ ॥ बुध विजे हुए कामके बीतने सुन्दर
अनेवाली, छोटी टपकवाली और ऊपु विजे हुए सिन्दुवारों-
वाली शिशिर जल सुगन्धमें खड़ी हुई है मन्थ जलका अन्त
मूचित बनती तथा कामको उचोत्रित करती हुई आ पहुँची
है ॥ १० ॥ इन दिनों प्रातःकाल गिरणोंके सुन्दर
बाज-बाज चोंटोंवाले, छाज चोंटोंमें घरी हुई बड़ी बड़ी
चोंटोंवाले, कंधेपर बड़े हुए चालोंवाले और सुन्दरके कमलके
समान कमलनेवाले गोख-गोख सुगोंको देखकर ऐसा अगत
है मानो धर धरमें अपनी आ बहाई हो ॥ ११ ॥ जो शिशवों

किसी कारण अपने प्यारोंसे रूठ गई थीं वे भी शिशिरों
रातमें टहलकका यहाना लेकर अपने पतिमेंसे छिपी या
रही हैं ॥ १२ ॥ मदमाती नवेलियोंने अपने चिन पतिमेंसे
अपराध करनेपर डाँटा-फटकारा था, वे जब कौतूहे हुए और
बरसे घबराए हुए शिशिर जलमें उनके पास आते हैं तो
उन्हें देखते ही वे नवेलियों उनका साथ अपराध भूलकर बने
सम्भोग करने लग जाती हैं ॥ १३ ॥ फूलोंका आसव पीनेसे
जिनका सुखकमल सुगन्धित हो गया है वे छिपीं पन
चबाकर, फुल्लेख लगाकर और मालाएँ पहनकर, काने काने
पुणैसे महकनेवाले अपने शयन घरोंमें बड़े चावसे बड़ी
आ रही हैं ॥ १४ ॥ अपने बाल-बघोंके साथ पूरेके पत्र
पैठकर, सूर्यमें टोटी सानकर, लापीकर अपने लेवकी ईतके
कोल्हकी चर-चर सुनता हुआ पास ही बैठी हुई मालोंकी
गमोंसे गरम मदीयोंमें जादेकी चिन्ता न करता हुआ कीं
प्रामीण रातमें अपनी नहरी कीसे छिपटा हुआ मन्थ टोन्
से रहा है ॥ १५ ॥ शिशिरमें सूर्य चरि-चरि तप तो है
और भाग भी घीमी ही जब रही है इसलिये हम कानोंकी
शीतमें तरखोंकी रबाके लिये नवेलियोंके दोनों सन ही तेज
रह गया है ॥ १६ ॥ इन दिनों घने पालेमें बाजने
आड़ोंवाली, पद्ममाथी किरणोंने और भी टपकी बनी हुई
और पीके-पीके पुँषेके तारोंवाली रातोंमें कोई भी मजा कानोंकी
वार नहीं निकलता ॥ १७ ॥ शिशिर जलमें कौनसे

॥ १७ ॥ द्वारं गृहस्य पिहितं शयनस्य पार्श्वं ब्रह्मिर्ज्वल-
न्युपरि तूलपटो गरीयान् । अङ्गात्रुकूलमत्रुरागवशं
कलत्रमित्थं करोति किमसौ स्वपतस्तुपारः ॥ १८ ॥
नक्षपदचित्तमागन्वीक्षमाणाः स्तनान्तानधरकिसल-
यात्रं दन्तभिन्नं स्पृशन्त्यः । अमिमतरत्वेपे नन्द्यन्त्य-
स्तरुण्यः सधितुद्यकाले भूपयन्त्यानानानि ॥ १९ ॥
न चन्दनं चन्द्रमरीचिश्रीतलं न हर्म्यपृष्ठं शरदिन्दुनि-
र्मलम् । न वायवः सान्द्रतुपास्थीतला जनस्य चित्तं
रमयन्ति साम्प्रतम् ॥ २० ॥ निरुद्धवातायनमन्दिरो-
दरं हुताशनो मातुमतो गमस्तयः । गुरुशिव वासांस्य-
वलाः सयौधनाः प्रथान्ति कालेऽत्र जनस्य सेव्यताम्
॥ २१ ॥ पयोधरैः कुङ्कुमरागपिञ्जरैः सुखोपसेव्यैर्नव-
यौघनोष्मभिः । यित्तासिनीभिः परिपोडितोरसः
स्वपन्ति शीतं परिभूय कामिनः ॥ २२ ॥ परमप्रमदा
प्रमदा भ्रमरी भ्रमरीतिकोचिदा धिपिने । पवनो
विभाति जवनोमदनः शिशिरे चियोनिनां कदनः ॥ २३ ॥

लोगोंके लिये हूतनी वस्तुएँ इकट्ठा हो जाती हैं—धरका द्वार
बन्द हो जाता है, विद्युद्दीनेके पास श्रैंगिटी जलाई जाने लगती है,
पर्लंगपर भारी रजाई पकी रहती है और प्रेम-भरी नवेली भी
अपने मनके अनुकूल हो जाती है ॥ १८ ॥ म्रियतमके नरोंके
घावोंसे भरे अपने स्तन देखती हुई, म्रियतमके दर्तासे बटे
हुए कोंपलोंके समान अपने कोमल श्रोत धूर्ती हुई और इस
प्रकार अपने मनवाहे सम्भोगके वेशपर शिलखिलाती हुई
नवेलियाँ प्रातःकाल अपने मुँह सजा रही हैं ॥ १९ ॥
इन दिनों न किसीको चन्द्रमाकी किरणोंसे टपटाया हुआ
चन्दन ही सुहाता है, न शरदके चन्द्रमाके समान निर्मल
धूर्तें ही अच्छी लगती हैं और न घनी ओससे टपटा बना
हुआ वायु ही मनको भाता है ॥ २० ॥ आजकल लोग
अपने घरोंके भीतर लिङ्कियाँ बन्द करके, तपनी तापकर,
थूप खाकर, मोटे-मोटे वस्त्र पहनकर और सुवती नवेलियाँसे
लिपटकर दिन बिताते हैं ॥ २१ ॥ इन दिनों प्रेमी लोग
केसरसे रंगे लाल स्तनोंवाली और सुखसे लुटी जानेवाली
जवानाकी गर्मासे भरी हुई कामिनीयोंके कसकर द्वातीसे
बिपटाप हुए जादा भगाकर सोते हैं ॥ २२ ॥ शिशिर ऋतुमें
नवेलियाँ उन्मत्त हो जाती हैं, भौरियाँ भी वनमें भञ्जी-भौंति
मँडराना सीप जाती हैं, पवन वेगसे बढ़ने लगता है और
कामदेव भी वियोगियोंके प्राण हरे जाता है ॥ २३ ॥ यदि

पीनोत्तुङ्गपयोधराः परिलसत्सम्पूर्णचन्द्राननाः फान्ता
नैव गृहे गृहे न च दृढं जात्यं न फायमीरजम् ।
ताम्बूलं न च तुलिका न च पटी तैलं न गन्धाविलं
सद्यो गोघृतपाचिता न वटकाः शीतं कथं गन्धते
॥ २४ ॥ पृथुजघनमराताः किञ्चिदान्नप्रमथ्याः स्तनभ-
रपरिखेदान्मन्दमन्दं प्रजन्त्यः । सुरतसमपयेपं नैश-
माशु प्रहाय दधति द्वियसयोग्यं चेपमन्यास्तरुण्यः
॥ २५ ॥ प्रकामकामैर्युधभिः सुनिर्दयं निशाशु दोषा-
स्वभिरामिताश्चिरम् । भ्रमन्ति मन्दं भ्रमरेदितोरचः
क्षपावसाने नवयौधनाः स्त्रियः ॥ २६ ॥ प्रचुरगुदधि-
कारः स्वादुशालीजुरम्यः प्रयत्नसुरतेकेलिजातकन्दर्प-
दर्पः । म्रियजनरहितानां चित्तसन्तापहेतुः शिशिर-
समय पप श्रेयसे घोऽस्तु नित्यम् ॥ २७ ॥ प्ररुद्धशाली-
क्षुचयावृत्तार्हितं फथचित्स्थितमौञ्जनिनाद्राजितम् ।
प्रकामकामं प्रमदाजनप्रियं वरोरु फालं शिशिराह्वयं
शृणु ॥ २८ ॥ प्रायारैरङ्गारैर्गम्यगृहेः स्तनतटैश्च द्यि-

घर-घर बदे-बदे उठे हुए स्तनोंवाली तथा चमकते हुए पूर्ण
चन्द्रमाके समान सुरतवाली नवेलियाँ न हों, चमेलांकी मोटी
माळा, केसर, पान, रजाई (सौद) और सुगन्धित तेल
तथा गीके धीमें पकाए हुए बदे न हों तो शिशिरका जादा
बिताप न बीते ॥ २४ ॥ नवेलियाँ प्रातःकाल मोटी-मोटी
जॉर्जें कटसे रँगले हुए तथा स्तनोंका भार अधिक होनेसे
धीरे-धीरे कुछ कम सुकाए हुए चल रही हैं । कुछ
दूसरी नवयुवतियाँ रातके रति-समयका वेश उतार-उतार दिनके
योग्य वेश धारण कर रही हैं ॥ २५ ॥ जिन नवयुवतियाँने
युवकोंके साथ शिशिरकी लम्बी रातोंमें बहुत देरतक जी भरकर
और कसकर सम्भोगका आनन्द लुटा है, वे नवेलियाँ रातकी
थकावटसे दुखती हुई जॉर्जोंके कारण प्रातःकाल बदे धीरे-धीरे
चल रही हैं ॥ २६ ॥ जिस शिशिर ऋतुमें बहुतायतसे मिठाह्वयों
मिलती हैं, धातोंशोर स्वादिष्ट चावल और ईपकी भरमार होती है
लोग घुस्त्रापर सम्भोग करते हैं, कामदेव भी पूरे वेगसे बढ़
चलता है और प्यारोंके बिना अकेले दिन काटनेवाले लोग मन
मसोसकर रह जाते हैं, यह शिशिर ऋतु सदा आप लोगोंका
मका करे ॥ २७ ॥ हे सुन्दर जॉर्जियाँवाली ! सुनो ! जिस ऋतुमें घान
और हंगके देव लहलहा उठते हैं, कनी-कनी नारसकी घोली
भी गूँज जाती है और कामका वेग भी बहुत बढ़ जाता है, यह
नवेलियोंकी प्यारी शिशिर ऋतु आ पहुँची है ॥ २८ ॥ जिन

तानाम् । सन्तजितमाख्यानां निपतति शीतं दृरिद्रेपु
॥ २६ ॥ मनोरञ्जकपांसकपीडितस्तनाः सरगमकौशेयक-
भूषितोरवः । निवेशितान्तःकुसुमैः शिरोरुहैर्विभूषय-
न्तीव हिमागमं स्त्रियः ॥ ३० ॥ मानिन्या ननु मानः
शीतभयाद् दूरगो भवेच्छिगिरे । नेदं हन्त सुचित्रं किं
तूष्णांशुष्णताऽप्येवम् ॥ ३१ ॥ वद्वेः शक्तिर्जलमिव गता
दर्शनाद्वाहृष्टोत्तेनित्योद्गन्धे नवमरुपके वर्तते पुष्पकार्यम्
शीतघ्रासं दधदिव रघियाति सिन्धोः कृशागुः शीतै-
र्भीता इव च दिवसाः साम्प्रतं सङ्कुचन्ति ॥ ३२ ॥
विरतसुकृतपाका चान्दनी हन्त चर्चा भवति वरतनूनां
दूर पय स्तनेभ्यः । उपनतफलपुण्यस्तेषु लघ्वप्रतिष्ठो
मदयति युवलोके कुङ्कुमालेषु पय ॥ ३३ ॥ शिशिरमा-
समपास्य गुणोऽस्य नः क इव शीतहरस्य कुचो-
ष्मणः । इति धियास्तरुपः परिरेभिरे घनमतो नम-
तोऽनुमतान्निप्रयाः ॥ ३४ ॥ सुगन्धिनिःश्यासविक-

म्पितोत्पलं मनोहरं कामरतिप्रबोधकम् । निशासु
दृष्टा सह कामिभिः स्त्रियः पिबन्ति मद्यं मदनीय
मुत्तमम् ॥ ३५ ॥

हृद्ग्रीलनक्रीडा — न पाणिप्रच्छाद्यं नयनयुगमत्या
यतमिदं नितम्बस्वोदायात्स्वरितगतियोगोऽप्यसुलभः ।
अतिस्वरूपो पाणी स्तनभरनिरौघाघ्न मिर्लितौ निर्मोक्ष
क्रीडायां कलुषयसि मुग्धे किमिति नः ॥ १ ॥ नैतस्याः
प्रवृत्तिद्वयेन सरले शक्ये पिघातुं दृशौ सर्वत्रैव विलो-
क्यते मुखशशिय्योत्साधितानैरियम् । इत्थं बालतया
सखीभिरसङ्गदृङ्मूलनाकेलिषु व्यापिद्धा रजनीषुषे
च नयने स्वे गर्हते फन्वका ॥ २ ॥

शिशिरवायु — कुसुमयन्फलिनोरलिनीरुचैर्मदविषा-
सिभिराहितहृद्भ्रुतिः । उपवनं निरभ्रत्संयत प्रियाग्नि-
युवतोर्धुवतीः शिशिरानिलः ॥ १ ॥ केशानाकुलपन्दरी
सुकुल्यन्यासो वलादाक्षिपघातन्वन्पुलकोद्गमं प्रकट-

क्षोभांने गरम पद्य, बिना पुष्पैकी आग, बन्द घर और
मियतमायोंके स्तनोंसे ठण्डक भागा ही है उनकी ठण्डक भागकर
दरिद्रोंके घर जा पहुँची है ॥ २१ ॥ सुन्दर खोलियोंसे अपने
स्तन कसे हुए, जोधोपर रेशमी वस्त्र डाले हुए और बालोंमें
पूज गूँथे हुए नवेलियों पेसी लग रही है मानो जाड़ेके
स्वागतका उत्सव मनानेके लिये वे गह्वार कर रही हों ॥ ३० ॥
शिशिर ऋतुमें रुठनेवाली नवेलियोंका रुठना तो जाड़ेके दरकर
घृष्टता ही जाता है किन्तु यह तो बड़े धनर्थकी बात है कि सूर्यकी
गर्मी भी जाड़ेके दरसे सूर्यको छोड़े दे रही है ॥ ३१ ॥ शिशिरमें
जल भी जवाने-सा खगता है, इससे जान पड़ता है मानो
आगकी शक्ति जलमें छली गई, ठण्डक गन्धवाली गई मान्यतुलसीके
पूलमें ही हाथ पूज जा समाए हैं, सूर्य भी मानो ठण्डकके
मारे बध्वावलके पास जा रहे हैं और दिन भी मानो
ठण्डकके दरसे सिनुद्धर छोड़े हो गए हैं ॥ ३२ ॥ इस
शिशिर ऋतुमें जिसके सारे पुण्य नष्ट हो चुके हैं ऐसे चन्दनका
नामसक भी कोई स्तनोंपर खगानेके लिये नहीं खेता । अथ तो
कुंडुमका ही पुण्य भोगनेका समय है अतः उसीका लेप
नवेलियोंके स्तनोंपर खगकर पुण्यकोंको मस्त करता रहता है
॥ ३३ ॥ नवेलियोंके शिशिर ऋतुमें अपना सब शोध छोड़कर
पने सामने हाथ जोड़े रहने हुए दलियोंको यह समझकर कसकर
घासीसे लगा दिया कि शिशिरके भीत जानेपर इन ठण्डक दूर
दरनेवाले स्तनोंका फिर उपभोग ही क्या होगा ? ॥ ३४ ॥

इन दिनों नवेलियों मस्त कर देनेवाली और कामवासना
जगानेवाली यह बहिया स्वादिष्ट मदिरा बड़े हर्षसे अपने
प्रेमियोंके साथ रातको पीती है जिसमें पड़े हुए कमज
कामिनियोंकी सुगन्धित साँसे बराबर हिलते रहते हैं ॥ १ ॥

आँख मिचौनीका खेल : हे सखी ! आँख मिचौनी
खेलनेके लिये तुम मुझे क्यों तह कर रही हो । देखो, न हो
मेरी बड़ी-बड़ी आँखें ही कोई अपने हाथोंसे ढक पाती है, व
मैं अपने नितम्बोंके भारीपनके कारण वेगसे दौड़ ही सकी है
और स्तन भी हस्तने ऊँचे हो गए हैं कि मैं किसीको पकने
भी पहुँचूँ तो हाथ आपसमें मिला नहीं पाते और और पकनेमें
नहीं आ पाता ॥ १ ॥ सखियों किसी नवेलीके निरपने का
रही है—'इस नवेलीकी दोनों आँखें दानों हथेलियोंसे ढकी गई
जा पाती, इसके मुखरूपी चन्द्रमाका प्रकाश ऐसा विरहता
है कि यह कहीं भी लुके किन्तु दिखाई पड़ जाती है, इसलिये
इसे आँख-मिचौनीके खेलमें नहीं खेना चाहिए।' इस प्रकार
नवेलीको सखियोंके आँख मिचौनीके खेलसे हटा दिया है व
सन्ध्या समय पैठी अपनी बड़ी-बड़ी आँखोंको कोस रही है ॥ १ ॥

शिशिरके पवन : मियहु जताके पूज विधानेनाग
शिशिर ऋतुका पवन उन कुलोंपर बैठकर गुजारा करती है
भंगियोंकी गुजाराके स्वरमें 'हूँ हूँ-हूँ' करता हुआ ऐसा वन
पड़गा है मानो मियतमाँसे विदुही हुई नवेलियोंको हँसे जाता
हो ॥ १ ॥ शिशिरका पवन इस समय नवेलियोंके वन

यद्यद्येगकम्पं गतेः । वारंवारमुदारसीत्कृतभरैर्दन्त-
च्छुद्धं पीडयन्प्रायः शैशिर एष सम्प्रति मरुत्कान्तासु
कान्तापते ॥ २ ॥ चुम्बन्तो गण्डभिर्तीरलकवति मुखे
सीत्कृतान्यादधाना वचःसूत्रकञ्चुकेषु स्तनभरपुलको-
द्भेदमापादयन्तः । ऊरुनाकल्पयन्तः पृथुजघनतटात्कं-
सयन्तोऽशुकानि व्यक्तं कान्ताजनानां विटचरितभृतः
शैशिरा वान्ति वाताः ॥ ३ ॥ स्पृष्टाः स्तोकं वितस्ता-
तटतुहिनकणैः पिएडयन्तः पयोर्ष्यां चञ्चन्तश्चन्द्रभा-
गालहरिषु यमुनावीचिर्मैत्रीपवित्राः । धूम्रानास्त्रिङ्क-
सिन्धोरुमयतटगतां देवदाशुहुमालिं लोकमोत्सै वभू-
वुम्नुहिनगिरितटीकेलिङ्कारास्समीराः ॥ ४ ॥

शिशिरापान्य — श्रारत्कारोपवह्नेर्विरचितसुहृत्प्रस्त-
रान्तनिपत्तयैः संशौर्यप्रथिक्न्याविवरवशविशुच्छीत-
वाताभिभूतैः । नीताः कृच्छ्रेण पान्यैः श्वभिरिद्य
निविडं जानुसद्भोचकुञ्जैरन्तर्दुर्वारदुःप्रक्षिगुणतरु-
त्तायामयामास्त्रियामाः ॥१॥ पुरयास्रा पूर्णवाञ्छुः प्रथम-

मगणितसोपदोयः प्रदोपे पान्यः सुप्या यथेच्छं तद्वु
तनुत्पुणे धामनि ग्रामदेव्या । उत्कम्पी कर्पटाद्यै जरति
परिजडे छिद्रिणि छिद्रनिन्द्रे वाते याति प्रवामं हिम-
कणिनि फवण्कोणतः कोणमेति ॥ २ ॥ पृष्टारोपित-
कर्पटस्य विसरद्वाप्पाम्बुसिकात्मनः कुञ्चीभृततनो-
निविष्टवदनस्याश्वन्तरे जानुनोः । निस्सहं मुजयुग्म-
पीडनयशाच्छुश्वत्कवोष्णो रसः पान्यस्योद्वतवहिरा-
शिनिचये याति क्षपा शैशरी ॥ ३ ॥ सम्यद्यो ग्राम-
देव्याः कुटघटितकुटीकुटवकोरैकदेशे शाते सम्प्राति
वायी हिमकणिनि रण्डन्तपङ्क्तिद्वयाग्रः । पान्यः कन्यां
निश्राये परिकुथितजरन्तनुसन्तानगुर्वी त्रीयापादाग्र-
जानुप्रहणचटतटकर्पटां प्रावृणोति ॥ ४ ॥

संयोग शृङ्गारः

नायकदर्शनम् — काञ्चिद्वियारितवह्निर्गमना जनन्या
द्रष्टुं म्रियं भवनजालकमाससाद् । तस्या विलाचनम-
दृश्यत दाशुदत्तयन्त्रोपरुद्धशफरोपमितं क्षुण्ण ॥ १ ॥

हिलाता हुआ, उनकी आँसुँ सँदता हुआ, हटपूर्वक उनकी
पक्ष म्नाचता हुआ, उनके रोंगटे पिजाता हुआ, उनकी चालमें
कम्पन उपजाता हुआ तथा बार-बार सी-सी करनेवाले उनके
श्रोत दबाना हुआ, उनके साथ पतिका-सा व्यवहार कर रहा
है ॥ २ ॥ लटकते हुए बालोंसे सजे हुए सुपोंवाली नवेलियोंके
गाल चूमते हुए, उनसे सी-सी कराते हुए, उठी हुई
खोलीवाले छातीके रतनोंपर रोंगटे लड़े करते हुए, उनकी
जोंबें कँपाते हुए और उनके नितम्बोंसे साड़ी सरकाते हुए
ये शिशिरके पवन नवेलियोंके साथ विलासी नायकके-से
व्यवहार करते हुए यह रहे हैं ॥ ३ ॥ वितस्ता नदीके
तटके पालके फलोंके स्पर्श-मात्रसे पयोष्यी नदीका जल जमाते
हुए, चन्द्रभागा नदीकी लहरें छलकाते हुए, यमुनाकी लहरोंकी
मिश्रतासे पवित्र हुए, तथा सिद्ध-समुद्रके दोनों तटोंपरके
देवदाके घूर्णोंकी पौँकोंके कर्कशोरते हुए हिमालयकी तलहटीपर
अटलेलियाँ करनेवाले पवन संसारके मस्त करते हुए यह
रहे हैं ॥ ४ ॥

शिशिरके यात्री : कचेपकी आगके पास घासके
पिछौनेपर बैठे हुए, फटी हुई गुदफीके छेदमेंसे घुसते हुए
उधेके पवनसे टिडुरते हुए और अपने घुटने मोंड़े हुए यात्रियोंने
कुञ्जोंके समान यही कटिनाईसे ये लम्बी-लम्बी रातें बिताईं
जो हुगुनाईं विभोगके दुःप्रसे बूनी जाल पद रही थीं ॥ १ ॥

शिशिरकी ऋतुमें बाहर गया हुआ यात्री चलनेकी चिन्ता न
करके भी सौँमके जलती हुई आग तापकर गाँवके देवीके
मन्दिरमें घासके बिड़ौनेपर जमकर सो तो रहा किन्तु टपटा
पवन चलते ही उसकी नींद टूट गई और वह टिडुरता
हुआ अपने पुराने, उधेके, फटे वस्त्रोंमें लिपटकर बापुसे
जाग हुए ओसके कणोंसे भीगे हुए कोनेसे हटकर दूसरे कोनेमें
जा हुबका ॥ २ ॥ कोई यात्री पीठपर कथरी लादे, पैले हुए
कुहरेके जलसे भीगा, धूबद निकालकर घुटनोंके बीचमें सिर
ढाले तथा उदासीन भावसे अपनी दोनों कोरोंमें मुट्टी
दाबकर गरमाता हुआ, जलती आगके पास बैठा बैठा ही
शिशिरकी रात बिताए डाल रहा है ॥ ३ ॥ पैदोंसे घिरे हुए
किसी ग्रामदेवीके मन्दिरके भीतके एक कोनेमें कोई यात्री
शिशिरकी रातमें सो तो गया पर जब ओसकी बूँदोंसे लदा
हुआ टपटा पवन चलने लगा तो उसके दौँत बजने लगे ।
उस समय आधी रातको उसने पुराने ढाँरोंसे तागी हुई बह
भारी गुदफी छोड़ ली जिसका पुराना बख, सिर, पैरके पजे और
घुटनोंमें अद्-अद्कर चरचराकर फटा जा रहा था ॥ ४ ॥

संयोग शृङ्गार

नायकसे मँट : जिस नायिकाको उसकी मँने बाहर
निकलनेसे रोक दिया था वह जब अपने प्यारको देखनेके लिये
पारकी जादीदार सिद्धकीपर आँसुँ जगाकर खर्पा हुई, उस

किञ्चित्कुञ्चितहारयष्टि सरलभ्रूवलि साचिस्मितं
 प्रान्तध्रान्तविलोचनद्युति भुजापर्यस्तकर्णोत्पलम् ।
 श्रद्धया स्फुरदङ्गुलीयकरुचा कर्णस्य करुहयनं
 कुर्वाणा नृपकन्यका सुकृतिर्न स्वयाजमालोकते ॥ २ ॥
 कृच्छ्रेण कापि गुरुणैव जने निरोधमुख्ये नयकस-
 मीपभुवं प्रतस्थे । हा हन्त शीघ्रगमनप्रतिरोधहेतु-
 स्तस्याः पुनः स्तनमरोऽपि गुरुर्वभूव ॥ ३ ॥ नान्तः-
 प्रवेशमरुणद्विमुखी न चासीदाचष्ट दोषपरुपाणि न
 चान्तराणि । सा केवलं सरलपद्मभिरक्षिपातैः कान्तं
 विलोकितवती जननिर्विशेषम् ॥ ४ ॥ यां यां प्रियः
 प्रैल्लत कातराक्षी सा सा हिया नम्रमुखी वभूव ।
 निःशङ्कमन्याः सममाहितेर्ष्यास्तत्रान्तरे जञ्जुरमुं
 कटाक्षैः ॥ ५ ॥

नायिकादर्शनम् — अचिच्छन्नामृतविन्दुवृष्टिसदृशीं
 प्रीतिं दद्यात् दृशीं याताया विगलत्पयोधरभराद्रष्ट-

समय उसके मेव ऐसे जान पड़े मानो किसी मधुपूके जालमें
 दो मधुलियों फँसी पड़ी हों ॥ १ ॥ जिसके गलेमें लटके हुए
 हारकी लई उलक गई थीं, भीहँ सीधी थीं, जो तिरहे मुस्कान
 रही थी, हृष-उपर चितवन चला रही थी और जिसके
 कानपर धरे हुए कमल बौहलक लटक थाप थे, वह राजकन्या
 अपनी चमकती हुई श्रेणीवाली उँगलीसे कनपटी खुलवाती
 हुई किसी भाग्यवान्को देख रही है ॥ २ ॥ कोई नवेली अपने
 गुरजननों (घरके बड़े बूढ़ों) का कहना न मानकर अपने
 प्यारके पास जानेके लिये चली तो, पर वहाँ भी गुरुआने
 पिरह न छादा क्योंकि वहाँ भी शीघ्रतासे चलनेमें रुकावट
 डालनेवाला स्तनका बोक ही गुरु (भारी) हो गया ॥ ३ ॥
 उस नवेलीने न तो अपने प्यारके घरके भीतर धानेमें
 रुकावट डाली, न मुँह ही फँरा, न उसे अपराधी ही बताया
 परन्तु अत्यन्त साधारण बहूसे उसकी और ऐसे देखती रही
 जैसे यों ही अकारण किसीकी ओर देख रही हो ॥ ४ ॥ उस
 प्रियने अपनी जिस-जिस चञ्चलनयनी मियाकी ओर देखा
 उस-उसका मुख तो लगजसे नीचे झुक गया और जिस-
 जिसकी ओर नहीं देखा वे उसी समय काह करती हुई एक
 साथ प्रियकी ओर देवी चितवनसे धूर-धूरकर देवने लगीं ॥ ५ ॥

नायिकासे भेंट : यह आरभ्यकी बात है कि निरन्तर
 होनेवाली अमृतवर्षाके समान आँसुको सुन देनेवाली, बदली
 न होनेसे एषट् प्रतीत होनेवाली, छोड़े-छोड़े स्तनोपासी थीर

व्यतां कामपि । अस्याञ्चन्द्रमसस्तनोरिव करस्पशां
 स्पदत्वं गता नैते यन्मुकुलीभवन्ति सहसा पद्मास्तदे
 वाद्भुतम् ॥ १ ॥ अन्यत्तमभुर्न स्मितं नयनयोः
 सञ्चारणञ्चेतरत्सञ्चारः पदयोः स मन्वमितरस्त
 स्याश्च भाषाऽपरा । किं प्रयां प्रिय तादृशी क्लितले
 नान्येति लोकान्तरेऽव्यन्या नास्ति न वा भवि-
 प्यति न वा काचिद्भताभूत् फ्वचित् ॥ २ ॥ अमृतम
 मृतं चन्द्रञ्चन्द्रस्तथाभुजमभुर्जं रतिरपि रतिः काम-
 कामो मधूनि मधून्यपि । इति न भजते वस्तु प्रायः
 परस्परसङ्करं तद्वियमयला धत्ते लवमा कुतः सकला-
 त्तिकाम् ॥ ३ ॥ अमृतममृतं चन्द्रं चन्द्रं रतिं च रतिं
 तथा प्रथितमतयः कामं भूयुर्भूधूनि मधून्यपि । यदि
 न सुभगास्पशांमोदं विना प्रमुदे ततः सकलमकल
 तेपां व्यूहं ध्रवीभि पुनः प्रिये ॥ ४ ॥ अये केयं लीला
 धवलगृहवातायनतले तुलाकोटिकवारैः कुसुमविशितं

साधारण चन्द्रमाके समान दिखाई देनेवाली उस नवेलीके हर
 (किरण, हाथ) से छू जानेपर भी कमल (नेत्र) मुँह नहीं रहे है
 ॥ १ ॥ हे प्यारे ! उसकी मधुर मुस्कान, नेत्रोंकी चितवन, शीकी
 भीमी धीमी चाल तथा बोली सब निराली ही है । और क्या
 कहूँ ? न तो बैसी कोई दूसरी सुन्दरी इस परतीकी पीठपर ही
 है, न दूसरे लोकोंमें है न आगे कभी होगी और न पारके
 कभी कहीं हुई ही है ॥ २ ॥ अमृत भी अमृत ही है, चन्द्रमा
 भी चन्द्रमा ही है, कमल भी कमल ही है, रति भी रति ही
 है, काम भी काम ही है और मधु भी मधु ही है । वे सब
 वस्तुएँ कहीं एक साथ मिलती भी नहीं, तब वे सब
 इस नायिकाके एक साथ कैसे दिखाई पड़ रही हैं ? (अपने
 इसके अर्थमें अमृत, मुलमें चन्द्रमा, हाथ-पैरमें कमल, प्रेमें
 रति, इच्छा में काम और चितवनमें मधु है) ॥ ३ ॥ हे प्रिये !
 बड़े-बड़े बुद्धिमान् लोग अमृतको अमृत, चन्द्रमाको चन्द्रमा,
 रतिका रात तथा मधु (शहद) को मधु भले ही माना कर
 किन्तु मुझे तो जयतक उस नवेलीकी गले लगाकर सुली होनेका
 आनन्द नहीं मिल पाता तबतक मैं इन वस्तुओंके समूह
 रूप ही समझता रहूँगा ॥ ४ ॥ धरे ! अपनी दोनों आँसुके
 धुति (कान, वेद) को लॉपनेवाली धयाएँ कानतक कैसे
 हुए नेत्रोंवाली यह कीन है जो अपने सुहावने काँटानके
 आँसुपर पायलकी फनकारसे कामदेवको जगाए दे रही है ? भग
 धव यह मुस्करीता हुआ कामदेव तीनों लोकोके क्यों नहीं

जागरयति । अहो नेत्रद्वन्द्वं चिकसति विलङ्घ्य श्रुति-
महो कथं न त्रैलोक्यं जयति मदनः स्मेरवदनः ॥ ५ ॥
अर्कच्छायं तिरयति सुधालितविद्युन्मतङ्गी चक्रप्रत्यं
महति सुपमामण्डले दूरमग्नम् । रकादर्शप्रतिफलमिव
श्रीसदङ्गं वहन्ती दृष्टा काचित्तरलनयना देवतेषु
स्मेरस्य ॥ ६ ॥ अर्धस्मितेन विनिमन्त्र्य दशार्धवाण-
मर्धं विधूय वसनाञ्जलमर्धमार्गं । अर्धेन नेत्रविश्रिजेन
निवृत्य सार्धमर्धाधमेव तरुणी तरुणञ्जकार ॥ ७ ॥
अस्यां नेत्रपथं मन्ये गतायां लोलचक्षुषि । भवन्ति
पञ्चबाणस्य स्वबाणा एव वैरिणः ॥ ८ ॥ अस्या धाम
सरोवरे भुजविसे वक्रारविन्दे भ्रमन्नैत्रभ्रमरे सुयो-
वनजले फस्तूरिकापङ्किले । यक्षोजप्रतिकुम्भिकुम्भ-
दलनक्रोधादुपेत्य द्रुतं मग्नश्चित्तमतङ्गजः कथमसाधु-
त्थाय निर्यास्यति ॥ ९ ॥ आघाय कोमलराम्भुजके-
लिनालीमालीसमाजमधिकृत्य समालपन्तो । मन्द

स्मितेन मयि साचिविलोकितेन चेतश्चकोरनयना
शुलुकीचकार ॥ १० ॥ आनन्दोर्मिभ्यतिकरदस्मेर-
संसक्तपद्मेभेभोऽरप्रवणमसृणारेचितस्निग्धतारम् ।
अन्तश्चिन्ताभरपरिचयाकुञ्चितभ्रूलतान्तं चक्षुष्येतो
हरति हरिणीलोचनायास्तदेतत् ॥ ११ ॥ इदमसी
तरलायतलोचना गुरुसमुन्नतपीनपयोधरा । पृथुनित-
म्यभरालसगामिनी म्रियतमा मम जीवितहारिणी
॥ १२ ॥ इयं भुजगिनीश्रिता लसदनेकपुष्पाश्रिता
द्विरेफततिसेविता प्रमदप्रञ्जनालङ्कता । फलद्वयभर-
नता विलसिता नयैः पल्लवैविलोचनपथं गता मयति
कापि हेमी लता ॥ १३ ॥ इयं सुस्तनी मस्तकन्यस्त-
कुम्भा कुसुम्भारुणं चारु वासो वसना । समस्तस्य
लोकस्य चेतःप्रवृत्तिं गृहीत्वा घटे न्यस्य यातीव भाति
॥ १४ ॥ उत्तुङ्गस्तनशैलदुस्तरमुरो निम्नातिनाभिस्थली
भीमं देहघनं स्फुरद्भुजलतं रोमालिजालाकुलम् ।

जीत लेगा ? ॥ ५ ॥ अपने विशाल घेरेमें जड़े हुए पड़ पड़के
समान कान्तिहीन सूर्यकी चमकको वह अश्रुते भरी हुई
विजली (नवेली) दृष्ट बना रही है जो इस समय लाल
शीशेमें पड़े हुए अपने प्रतिविम्बके समान सोमासे स्रग्पन्न
अह्रॉंवाली, तथा चञ्चल नेत्रॉंवाली कामदेवकी देवी रतिके समान
दिपाई दे रही है ॥ ६ ॥ यह युवती अपनी मन्द मुस्कानके
साथ-साथ अपनी साडीका आधा पल्लू षया हिला रही है मानो
कामदेवको बुला रही है और फिर बीचसे ही घूमकर अपने
ऊँचे हुए नेत्रोंके बाणोंसे उस नवयुवकके दो टुकड़े किए डाल
रही है ॥ ७ ॥ यदि कामदेवको भी कहीं इस चञ्चल नयनॉंवाली
नवेलीकी झलक मिल जाय तो उसके पाँचों बाण स्वयं उसे
ही घेय डालें ॥ ८ ॥ इस नायिका शरीर षया है एक
तावाय है जिसमें इसकी दोनॉं वॉं हैं ही कमलनाल हैं, मुँह
ही कमल है, चञ्चल आँतें और भीँ हैं ही अँरि हैं, यौवन ही
जल है तथा शरीरपर फस्तूरिका लेप ही कीचड़ है अब उसमें
स्तनरूपी हाथीके मस्तकका मर्दन करनेके लिये क्रीपसे
हसिकोंका मनरूपी जो हाथी आ चुसा है यह भला कैसे रट-
कर निकल सकता है ॥ ९ ॥ चकोरके समान नेत्रॉंवाली जो
नवेली अपनी सहेलियाँके साथ बैठी बातें करती हुई अपने
कोमल करकमल नचा रही थी, उसने अपनी वॉंरूपी नलीसे
मन्द मुस्कान-भरी तिरछी चितवन चलाकर मेरा मन ही
बाला ॥ १० ॥ इस शृगनयनी नवेलीकी वह चितवन मेरा

मन हरे ले रही है जिसमें प्यारसे मिलनेकी चिन्ताके बोझने
भीँ हैं सिद्ध नहीं हैं, आनन्दके कारण आँसू छलक आनेके
वर्से जिसमें उसकी पलकें बरबस खिले रहनेका प्रयत्न कर
रही हैं और जिसमें भीतरसे प्रेम ऐसा छलका पड रहा है कि
रसभरी पुतलियाँ भी नाचने लगी हैं ॥ ११ ॥ यह चञ्चल
और वड़ी बड़ी आँलॉंवाली, बड़े-बड़े ऊँचे और मोटे-मोटे
स्तनॉंवाली और अपने चौड़े-चौड़े नितम्बोंके बोझने धीरे धीरे
चलनेवाली प्यारो मेरा प्राण ही पाँचे डाल रही है ॥ १२ ॥
यह (नवेली) एक अनोखी सोनेकी लता-जैसी दिखलाई दे
रही है जिसमें सॉपिन (चोटो) भी हैं, जो खिले हुए अनेक
पुष्पों (नेत्र, श्रोत आदि) से लड़ी भी है, जिसपर भीरोंके
मुण्ड (पुतली आदि) से भीँटा रहे हैं, जिसपर मतवाले राजन
(नेत्र) भी बैठे हुए हैं, जिसमें दो फल (स्तन) भी लटके
हुए हैं और नये नये पत्ते (अँगुलियाँ) भी नूट रहे हैं ॥ १३ ॥
फेसरिया और लाल रङके यज्ञ पढ़ने हुए तथा सिरपर घड़ा
रखते हुए जो यह सुन्दर स्तनॉंवाली नवेली जा रही है, उसे
देखकर ऐसा जान पड़ना है मानो वह सारे संसारके मनकी
गति पढ़नें भरकर लिए खड़ी जा रही हो ॥ १४ ॥ ऊँचे स्तन-
रूपी पर्यतोते तुर्गम छात्रीवाडी, नामि-रूपी गहरी चारु-
पॉंहणी खगाधॉंवाली तथा रॉनायत्री रूपी पान्वाडी रंने-
शरीरणी यनमें बैठा दृष्टा कामरूपी यदेत्रिया वद

यिगधनक्रीं मान खगातार दोंदे जा रहा है वद है

ध्याधः पञ्चशरः किरत्यतितरंस्तीक्ष्णान्कटाक्षाशुगौ-
स्तन्मे ग्रहि मनःकुरङ्ग शरणं कं साम्प्रतं यास्यसि
॥ १५ ॥ उपप्राकारां प्रहियु नयने तर्क्य मनागना-
काशे फोऽयं गलितहरिणश्शीतकिरणः । सुधायद्भ्रा-
सुरपवनचकोरैरनुत्तां किरञ्ज्योन्मामच्छां नवलव
लिपाकमणयिनीम् ॥ १६ ॥ उभौ रम्भास्तम्बावुपरि
विपरीतौ कमलयोस्तदूर्ध्वं रत्नशमस्थलमथ दुरुहं
किमपि तत् । ततः कुम्भौ पश्चाद्वसिकसलये कन्दल-
मयो तदन्विन्दाविन्दीवरमधुकराः किं पुनरिदम्
॥ १७ ॥ कपूर्धूलिषवलयुतिपूर्धौतदिङ्मण्डले
शिथिररोचिपि तस्य यूनः । लीलाशिरोऽशुकनिवेशवि-
शेषफलसिन्धुवृक्षस्तनोघ्रतिरभून्नयानावनौ सा ॥ १८ ॥
फाचिद्विहृत्य किल फन्दुककेलिरङ्गाङ्गुरेणभूषिततनु-
निरगाम्नुगात्पी । उत्कुलपङ्कजवने सुचिरं विहृत्य
किल्लकरेणुपरिपूसरितेय लवणीः ॥ १९ ॥ कृच्छ्रेणो-
दयुगं विलह्य सुचिरं भ्रान्त्वा नितम्बस्थले

मध्येऽस्त्यास्त्रिवलीतरङ्गविषमे निष्पन्दतामांगता ।
मद्दृष्टिस्तपितेव सम्प्रति शनैरास्त्र ह्रौ स्तनौ
साकाङ्क्षं सुपुरीक्षते जललयमस्पन्दिनी लोचने ॥ २० ॥
केयं श्यामोपलविरचितोक्तेवहेमैकरेखालस्रैः कुर-
कदलीकन्दलीगर्भगौरैः । हारिद्रामृद्भवसहचरं कान्ति-
पूरं वहद्भिः कामक्रीडामवनचलभोदीपिकेयाविरिति
॥ २१ ॥ कैसुरैः केन शैलेन कुतोऽधेमेधनादियम् ।
अजायत नवा लक्ष्मोरमृतेन्दुकलामयी ॥ २२ ॥ शी-
सागरकल्लोललोललोचनयानया । अलारोऽपि हि
संसारः सारवानिव लक्ष्यते ॥ २३ ॥ खेलत्खञ्जनेत्रया
परिलसत्स्वर्षारविन्द्यास्यथा पौनोत्सुक्यनिरन्तरस्तन-
भ्रव्यालोलसन्मध्यथा । स्फीतस्फीतनितम्बया द्र-
मपि व्यालोकितभ्यानया किं न स्याद्विशिनां वरः स्मर-
हरः स्मारैः शरैर्जर्जरः ॥ २४ ॥ गच्छति न वृत्तिभे-
त्सुललितमस्याः समापियद्रूपम् । नयनयुगं मम नूनं
सम्प्रति समुपैति सफलताञ्चैवम् ॥ २५ ॥ जानीम

रूपी हरिया ? मर कहां पचवर निकल पाओगे ? ॥ १५ ॥ ऊपर
मुँदेपर झालें उठाकर देजो तो सही कि यह धरतीपर बिना
हरियाका कौन सा चन्द्रमा निकल आया है जो नई पकी हुई
हरकारेपदीको पिखा देनेवाली ऐसी निर्मल चाँदनी कैला रहा
है जिसे उपवनमें बैठे हुए चकोर, अमृत समककर पीते जा रहे
हैं ॥ १६ ॥ यह क्या है जिसमें दो कमलों (चरणों) के ऊपर
दो केलेके तगमे (तोंगें) उलटे लगे हुए हैं, उसपर कोई
हुगंम रत्न-जड़ परधरावाली धरती (धरणी) दिखाई दे रही
है, उसपर दो घड़े (स्तन) रखे हैं, उसके साथ कमलकी ऐसी
मालें (मुजायें) लगी हैं जिनमें दो नये अक्षर (उँगलियाँ)
फूटे हुए हैं और उसपर एक चन्द्रमा (मुख) है जिसमें डँके
हुए नीले कमलों (नेत्रों) पर और (पुतालियाँ) बैठे हुए हैं
॥ १७ ॥ जिस समय कपूर्वी भौति उजली चन्द्रमाकी किरणें
चपनी चमकते दिशाओंको चमका रही थीं, उसी समय मेरी
झालेंके सामने वह नयेकी या पदी जिसके स्तनोंकी ऊँचाई
पूँट हीमात्रते समय स्पष्ट दिखाई दे गई थी ॥ १८ ॥ भूखसे
भरी देहवाली कोई शूगनपनी, गंद खेलकर खोटी हुई ऐसी
दिखाई दी मानो लिखे हुए कमलोंके वनमें बड़ी देरतक विहार
करके कमलोंके परागसे धूसरित लक्ष्मी विकड़ी पछी घा रही
हो ॥ १९ ॥ मेरी प्यासी दृष्टि किसी-किसी प्रकार बड़ी
बढ़ियाँमे उध नयेकीकी शोभें जाँपे पाकर पार, फिर उसके

नितम्बोंपर देरतक घूमकर तीन सलवटोंवाली सहारोंके फाय
ऊँचे-नीचे घेटर जाकर जमी रही, वहाँसे चलकर धीरे-धीरे
उसके ऊँचे स्तनोंपर चढ़कर उसके उन नेत्रोंको बार-बार
लजचाकर देखने लगी जिनमेंसे थोड़ा-थोड़ा पानी भर रहा
था ॥ २० ॥ कामदेवके कौदागृहकी अटारीपर बनी हुई
कोठरीके भीतरके दीपकके समान यह कौन नयेकी चमक रही
है जिसके सब अक्षर कसौटीपर खिंची हुई सोनेकी रेखाके समान
चमक रहे हैं और सोनेके केलेकी जड़के गुदेकी भौति गी
और हृदयी-धुले पानीके समान सुनहरे लग रहे हैं ॥ २१ ॥ जिस
देवताओंने किस पर्वतको मधानी बनाकर किस समुद्रको मसा
कि जिससे यह अमृतमय चन्द्रमाकी कलाघाते भरी कौं
नई लक्ष्मी (नयेकी) उत्पन्न हो गई ॥ २२ ॥ यद्यपि संसारमें
सार तो कुछ भी नहीं है फिर भी दूषको लहरके समान चञ्चल
नेत्रोंवाली इस नयेकीने ही इस संसारको सारमय बना दिया
है ॥ २३ ॥ खञ्जनेके समान चञ्चल नेत्रोंवाली, सोनेके कमलोंके
समान सज्जोमे मुखवाली, मोटे, ऊँचे, आपसमें चरे हुए
स्तनोंके भारसे झुकी हुई सुन्दर कमरवाली और माँ
नितगपवाली यह नयेकी यदि इन्द्रियोंको परामें रखनेवाले
और कामदेवको भस्म करनेवाले शिवजीकी ओर लज्जित-सा
भी साक दे तो क्या वे कामके बाधोंसे बिना धायक हुए सब
पायेंगे ? ॥ २४ ॥ यद्यपि इस नयेकीकी आरयने बिना मनोहर सुन्दरता

हेऽस्याः पलु सारसाद्या विराजतेऽन्तः प्रियवक्र-
चन्द्रः । तत्कान्तिजालैः प्रसृतेस्तदङ्गेष्वापाण्डता
कुङ्कुमलताक्षिपन्ने ॥ २६ ॥ तडिल्लेखा नेयं विलसति
परं सोधशिपरे वसन्त्याः कस्याश्चित्कनकरुचिरा
गाप्रलतिका । अर्षीर्दं नोन्मज्जत्कुचलयवनं मीनतरलं
परं तस्या प्व स्फुरति नयनालोकललितम् ॥ २७ ॥
तापकाटिन्य चलतापरिम्लानीरकल्पयत् । दीपरक्त-
डित्पुष्पेष्यस्याः प्रव्यक्तये विधिः ॥ २८ ॥ न त्वरा
श्रेयसे पुंसां किमद्य क्रियतां हरिः । इमामजानन्ने-
प्यन्तीं जग्राह सहसा श्रियम् ॥ २९ ॥ नेयं नागविला-
सिनी न दिविपत्कान्ताऽपि काचिद्यतो नास्या लीन-
निमेपता न च शशिशीर्यक्ष सत्कल्मषा । नो या
हेममयी यताऽपरिसरत्सोरभ्यभाराऽपि नो तन्मन्ये
विधिना व्यधायि सुहृदाम्मोदाय काचित्कला ॥३०॥
नेयं विद्यद्बुधमधिगता काञ्चनी नापि वल्ली मन्द मन्दं

प्रचलति यतो नापि या पद्मगस्य । चूडारक्तस्फुरदुस-
शिखा क्वापि घत्ते सरोजं का वा तर्हि प्रकृतिस्तुभगा
तत्सपे न प्रतीमः ॥ ३१ ॥ पातालाद्भुवनावलोकनपरा
किं नागकन्योत्थिता मित्या तत्त्वलु दृष्टमेव हि मया
तस्मिन्कुतोऽस्तीदृशी । मूर्ता स्यादिह कौमुदी न घटते
तस्या दिवा दर्शनं क्रेयं हस्ततलस्थितेन कमलेना-
लोच्यते श्रीरिच ॥ ३२ ॥ पुरः स्थित्या किञ्चिद्वलित-
मुपमालोक्य सपे सखेदा. स्यास्यन्ति ध्रुवमिदमदृष्ट्वा
तद्य दृशः । इतश्चञ्चत्काञ्चीरणितमुपरात्सौधशिखरा-
द्राकायां कोऽयं क्वलयति चान्द्रेण महसा ॥ ३३ ॥
प्रियादर्शनमेवास्तु किमन्यैर्दर्शनान्तरैः । प्राप्यते येन
निर्वाणं सरागेणापि चेतसा ॥ ३४ ॥ भाया पीयूषभूया
हृद्यमकरुण कायकान्तिश्च काचित् सम्पत्तिश्चरुतायाः
सकलजनमनोहारिणी चैव हृष्टिः । आस्यं शीतंशुभ्रदा
निभृतविपभराऽपाङ्गसम्पातशैली पादौ रक्तौ नखानां

जयति कुटिलता तत्किलेयं विचित्रा ॥ ३५ ॥ मदन-
मपि गुणैर्विशेषयन्ती रतिरिव मूर्तिमती विभाति
वेद्यम् । मम हृदयमनङ्गवद्विगतं भृशमिव चन्दनशीतलं
फरोति ॥ ३६ ॥ मन्ये पार्श्वेष्वन्ध्रमध्याशक्लेनासन्नितैपा
चिरादङ्गैरद्भुतमङ्गभिः परिणतव्युत्पत्तिना वेधसा ।
योपित्तसर्गधिलक्षणाकृतिरियं यद् दृश्यते भाति च
क्षिप्रद्वारविलोक्यमानगगनेवाद्यापि चान्द्री तनुः
॥ ३७ ॥ यत्रिणीष्य विरिञ्चनं स्यन्दितैपा मधुसूतिः ।
मन्ये तत्क्षौद्रपटलं त्यक्तं तेनेन्दुमण्डलम् ॥ ३८ ॥
लक्षं पादतले नखेषु विलुटसंसक्तमूर्ध्यांयुगे विश्रान्तं
जघनस्थले निपतितं नाभोसरोमण्डले । शून्यं मध्यम-
घेद्य रोमलतिकामालम्बमानं क्रमादारूढं स्तनयोः
प्लुतं नयनयोर्लीनं मनः कैशिके ॥ ३९ ॥ लावण्यसिन्धु-
रपरैव हि केयमत्र यत्रोत्पलानि शशिनो सह सम्प्र-
पन्ते । उन्मज्जति द्विरदकुम्भतटी च यत्र यत्रापरे

कमलकारण्डमृणालदण्डाः ॥ ४० ॥ लीलाधुतपथा
कथयन्ती पक्षपातमधिकं नः । मानसमुपैति केयं चित्र
गता राजहंसीव ॥ ४१ ॥ वक्रश्रीजितजरेन्दुमलितं
कृत्वा करे कन्दुकं क्रीडाकौतुकमिभ्रभावमनया ताम्रं
वहन्त्याननम् । भृङ्गाप्रग्रहकृष्णकेतकदलस्पर्धावतीनां
दशां दीर्घापाङ्गततरङ्गितैकसुहृदामिषोऽस्मि पात्रोत्सः
॥ ४२ ॥ वक्रोपान्तं नयनयुगलं सर्वतो निक्षिपन्ती
श्रीणीभाराच्छिथिलशिथिलन्यस्तपादारविन्दा । श्रापं
दालीकरकिसलये दत्तहस्तावलम्बा काचित्कान्त्या
विकसितमहीचक्रमायाति तन्वी ॥ ४३ ॥ श्रीणीभार
भरालसा दरगलम्मात्यापवृत्तिच्छलाह्लोरीरिणसु
जोपर्दाशतकुचोन्मीलन्नपाङ्कावलि । नीलेन्दीवरदाम
दीर्घतरया दृष्ट्या धयन्ती मनो दूरान्दोलनलोकक-
ण्मणकारोत्तरं सर्पति ॥ ४४ ॥ सखे साय ज्ञाता
कनकचविकीसुम्भवसनं वसानायास्तिर्यग्यलितचिकुर-

सुन्दरताका भाण्डार है, वृष्टि सब लोगोंके मनको हरे ले रही है, मुख भी चन्द्रमा ही है, विपसे भरी तिरछी खिलवन धीरे-
धीरे पड़ रही है, पैर लाल हैं तथा नख टेढ़े हैं ! इस प्रकार
इसकी सारी वस्तुएँ विजयी ही हो रही हैं ॥ ३५ ॥
अपने सुन्दरता आदि गुणोंसे कामको उत्तेजित करनेवाली जो
यह साक्षात् रतिके समान नवेली दिखाई दे रही है वह
कामाग्निसे जले हुए मेरे हृदयको मानो चन्दनसे शीतल कर
रही हो ॥ ३६ ॥ मैं तो समझता हूँ कि नवेलियोंकी सृष्टिमें
जो यह अनोखे रूपवाली सुन्दरी दिखाई पड़ रही है, इसे कुशल
द्रव्याने चन्द्रमाके बीचके भागसे बहुत दिनोंमें धग्-प्रत्यग्-
सहित बनाया है । इसीलिये आज भी चन्द्रमाके बीचके छेदसे
उस पारका धाकरा (चन्द्राङ्ग) स्पष्ट झलक रहा है ॥ ३७ ॥
मैं समझता हूँ कि द्रव्याने अमृतकी ईल पारकर, अमृत-रससे
तो यह नवेली बना ढाली और बची हुई कोई इस
चन्द्रमण्डलके रूपमें वाहर निक दी ॥ ३८ ॥ किसी नवेलीको
देखकर कवि कहता है—'मेरा मन पहले तो उस नवेलीके
पैरोंमें आ टिका, फिर उसके पैरके नखोंमें खोटेने लगा, फिर
दोनों आँखोंका सहारा लेकर उसके जपनमें पहुँचकर विधाम
करने लगा, भागे चलकर नाभिरूपी ताजापमें जा डूबा और
फिरके पतला और सूना देखकर रोमायकीका सहारा लेकर
धरिसे रथनपर चढ़ गया और फिर तो उसके नेत्रोंपर उचककर
उसके केशमें जा समाया ॥ ३९ ॥ यह कौन-सा नया

सुन्दरताका समुद्र (नवेली) है जिसमें चन्द्रमा (मुख) के
साथ कमल (नेत्र) उठल रहे हैं, जिसमें हाथीका मल्ल
(स्तन) आदिका हुआ है तथा जहाँ और भी अनेक कमलोंके
नाल निकदि (बुजाईं आदि) दिखाई दे रहे हैं ॥ ४० ॥ पर
कौन लीला-कमल नचाती हुई (कमलोंकी हिलाती हुई) बैस
पक्षपात करती हुई (पक्षु खोलती हुई), विचित्र चालवाली
(चित्रमें बनी) हसिनीकी भोंति मन (मानसरोवर, मन) में
पैठी चली आ रही है ॥ ४१ ॥ मुँहकी शोभासे द्राप हुए मजिन
चन्द्रमाके समान मैली गँद हाथमें लेकर, खेलनेके चाबमें मरी
हुई लाल लाल मुखवाली नवेलीने अपने नेत्रकी कोरोंसे मुक्त
बार-बार अपनी सह तिरछी खिलवन चलाई जो भोंरोंसे धरी
हुई केवड़ेकी पंखुधियोंसे होड़ कर रही थी ॥ ४२ ॥ धारों को
थपने दोनों नेत्र धुमाती हुई, नितम्बके भारसे धरी धरी
धरतीपर चरण-कमल रखती हुई, पासमें सारी सर्पोंके हाथ
सहारा लेती हुई तथा अपनी सुन्दरतासे सारे भूचरवृक्षोंके
शोभित करती हुई यह कोई दुबली-पतली नवेली क्या पत्ती
आ रही है ॥ ४३ ॥ नितम्बके भारसे धरी-धीरे चलनेवाली,
नीलकमलके समान बड़े-बड़े नेत्रोंसे मनको धी जनेवाली वा
नवेली अपने डीले कड़न फत्रभनाती हुई चली जा रही है
जो हटी हुई मालाको सँभालनेके लिये जब हाथ उठाती है
तो उसके मुखे हुए स्तनोंपर जगे हुए नख चिद्र स्पष्ट दिखाई
दे जाते हैं ॥ ४४ ॥ दे मित्र ! आज सायङ्काव भाष्यर

स्यन्दिसलिलम् । दिशन्त्या दृष्टेयं कुसुमशरकोदण्डल-
 तिकामकस्मादस्माकं मृगशिशुदृशो दर्शनमभूत् ॥४५॥
 सरस्यामेतस्यामुदरचलिबीचीचिलुलितं यथा लाव-
 एयम्भो जघनपुलिनेल्लह्वनपरम् । यथा लव्यश्चायं
 चलनयनमीनव्यतिकरस्तथा मन्ये मग्नः प्रकटकुकुम्भः
 स्मरगजः ॥ ४६ ॥ सायञ्चन्द्रकलाभृतोदयगिरिस्पर्धां
 दधानः स्तनस्पर्शोत्तुङ्गतरो नखाङ्कुरचिरः शोणाम्बरा-
 भ्यन्तरे । अस्याः कं न विलोकनोत्कमकरोत्तीदपः
 कटाक्षः क्षणं भृङ्गाहृष्टगरिष्टकेतकदलध्रान्ति वहन्न-
 प्ययम् ॥ ४७ ॥ सेयं ममाङ्गेषु सुधारसच्छट्टा सुपूर-
 कपूर्वशलाकिका दृशोः । मनोरथश्रीर्मनसः शरीरिणी
 प्राणेश्वरी लोचनगोचरं गता ॥ ४८ ॥ सेयं सीधुमयी
 वा सुधामयी वा हलाहलमयी वा । दग्भ्यां निर्पोत-

मात्रा मद्यति मोदयति मूर्च्छयति ॥ ४६ ॥ स्कन्धे
 विन्यस्य सख्या मुजमपरकरस्यार्धचन्द्रेण मयं
 विभ्राणा धूयमानस्तनतटयसना गन्धवाहिन मन्दम् ।
 पन्थानं दृग्विलासीरिव नलिनदत्तैः कोमलोरास्टरुण्ती
 सौधाम्रे कस्य साक्षात्परिणमति तपःसिद्धिरेषा सुषेया
 ॥ ५० ॥ स्वैरं सस्मितमौक्षते क्षणमलं व्याज्जन्मते वेपते
 रोमाञ्चं तनुते मुहुः स्तनतटे व्यालभ्यते नाभ्यरम् ।
 आलिङ्गत्यपरां तनोति चिकुरं प्रत्युत्तरं याचते केयं
 कामकलाविलासवसतिर्लोलिच्छया भायिनी ॥ ५१ ॥
 परस्परदर्शनम्—आघ्रातं कमलं प्रियेण सुदृश्या
 स्मित्वापनीतं मुखं दत्तं विभ्रमकन्दुके नखपदं स्तौत्य
 गूढी स्तनी । दत्ता चम्पकमालिकोरसि मुजानिर्भिन्न-
 रोमाञ्चया मीलल्लोचनया स्थितं प्रणयिनोर्दूरैःपि पूर्णो

सहसा एक ऐसी मृगनयनीका दर्शन हुआ जो स्नान करके
 सोनेके समान केशरिया रङ्गकी साड़ी पहन रही थी और
 जिसके बिपरे हुए केशोंसे जलकी बूँदें टपक रही थीं । उसके
 केशोंको देखकर ऐसा लग रहा था मानो वह अपने घुँघराके
 पालोंके रूपमें कामदेवके घनुप कुला रही हो ॥ ४६ ॥ इसके
 पेटपरकी सिद्धकनरूपी लहरें चञ्चल हो रही हैं, सुन्दरतारूपी
 अल नितम्बरूपी तटको भी लोंचे जा रहा है तथा चञ्चल
 नेत्ररूपी मद्युबिर्या फड़फड़ाती रही हैं । अतः जान पड़ता है
 कि प्रत्यक्ष दिव्याई देनेवाले स्तनरूपी मस्तकवाला कामदेवरूपी
 हाथी इस नयेलीकी देहरूपी तालावमें घुसा हुआ है ॥ ४६ ॥
 पतिके हाथोंसे छू जानेके कारण ऊँचे-ऊँचे तथा नखोंके गोल
 चिह्नोसे सुन्दर लगनेवाले इस नयेलीके स्तन ऐसे जान पड़ते
 हैं मानो सायङ्कालके उस उदयाचलसे होद कर रहे हों जिसपर
 देवा चन्द्रमा उदय हो रहा हो । बाल बच्चोंसे वका हुआ
 बसका वह स्तन तथा भीरोसे लिपि हुई केबदेकी पंखुड़ीका
 भ्रम उत्पन्न कर देनेवाली तिरछी चितवन किते अपनी ओर
 देखनेके लिये बरबस उरमुक नहीं कर देती ॥४७॥ मेरे आँखोंपर
 रहनेवाली अश्रुतकी धारा, आँतोंके लिये कपरकी मोटी सजाई
 तथा मेरे मनके सफल मनोरथोंकी साक्षात्शोभाके रूपवाली यह
 प्राणप्यारी मेरी आँलोकके ध्याने या पशुँकी ॥४८॥ समझमें नहीं
 आता कि मेरी यह प्राणप्यारी मदिरामयी है या अश्रुतमयी
 या विषमयी; क्योंकि जैसे ही मेरे नेत्र इसकी शोभा पीने
 जागते हैं धीसे ही यह मत्तयाका बना देती है, जिखा देती है
 ४८

तथा मूर्च्छित कर देती है ॥ ४६ ॥ यह मुँहरेपर सजभनकर
 लड़ी हुई नयेली किसकी तपस्याका फल है जो एक हाथ
 अपनी सखीके कन्धेपर धरे है दूसरा हाथ आधे चन्द्रमाके
 आकारका बनाकर कमरपर रखे हुए है, पवन जिसके स्तनपरसे
 धीरे-धीरे बह रहा है और जो मार्गकी ओर ऐसी देर रही
 है मानो कमलिनीकी पंखुदियोंके समान अपने कोमल नेत्रोंकी
 चितवन मार्गपर बिछाप डाल रही हो ॥ ५० ॥ कामदेवकी
 कलाघ्रोंसे भरी, चञ्चल नेत्रवाली तथा कुछ सोचती हुई-सी
 यह कौन नयेली है जो स्वच्छन्द होकर मुस्कराती हुई चितवन
 चला रही है, बार-बार जँभाई ले रही है, काँप रही है, जिसके
 स्तनोंपर बार-बार रोमाञ्च हो रहा है, जो बह नहीं सँभाल
 पा रही है, जो दूसरी नवयुवतीको गले लगा रही है, थाल
 सँवार रही है तथा अपनी बातोंका उत्तर चाह रही है ॥ ५१ ॥

चार आँखें करना : नायकने प्रेमपूर्वक नायिकाको
 देखकर उसे दिखाते हुए कमल सँधा । इससे लुग्गनका सङ्केत
 पाकर उस सुनयनीने मुस्कराकर मुँह मोड़ लिया । नायकने
 गँद्वर हाथ रखकर गले गवाप । इससे नायिकाने स्तनोंपर
 हाथ लगानेका सङ्केत पाकर ही सके स्तन टँक जिए ।
 नायकने चम्पेकी माला दृश्यसे लगाई तो अलिङ्गनका सङ्केत
 पाकर नायिकाकी मुजाघ्रोंमें रोमाञ्च हो आया और उसने
 आनन्दसे आँतें मुँद थीं । इस प्रकार एक दूसरेसे पूर रहनेपर
 भी दोनोंने अपना-अपना प्रेम-रस पूरा कर लिया ॥ १ ॥
 मनकी कल्पनाके कारण कई बार स्वप्नमें होनेवाले दृडे

रसः ॥१॥ स्मरतोरभिलाषकल्पितान्यहुशः स्वममुच-
समागमान् । अपि दृष्टिपथं प्रपन्नयोर्निविशश्चास
चिरं मनस्तयोः ॥ २ ॥

देशान्तगोपगतो नायक — दिदृक्षमाणः क्षणमायताव्या
मुपाभ्युजं मञ्जुलमध्वनीनः । मुहूर्तमात्रं सुमुहूर्तकालं
सवर्षकालं कलयञ्चकार ॥ १ ॥ निशम्य केलीभवने-
पकरटे मञ्जीरमञ्जुध्वनिमध्वनीनः । यथा तथा यद्-
कथावशेषं समापयामास समं सुहृद्भिः ॥ २ ॥ मुपं
प्रियायाः सुमुदीक्षमाणः कान्तो दिनस्यान्तमपेक्ष-
माणः । सुमुहुह्वर्योमनि तिग्मभानौ निवेशयामास
विलोचने स्वे ॥ ३ ॥

विरह — समानकुलशीलयोः सुवयसोः परायत्तयोः
परस्परविलोकनाकुलितचेतसोः प्रेयसोः । तनुत्वम-
नुचिन्दतोर्धुविधां व्यथां चिन्दतोर्शक्यविनिवेदना
विरहवेदना धर्षते ॥ १ ॥

समागमका स्मरण करके नायक-नायिकाको साक्षात् होनेवाले
सम्बन्धे समागमपर भी विरवास न हो पाया ॥ २ ॥

घर लौटा हुआ परदेसी : अपनी और एकटक
निहारती हुई बड़े-बड़े नेत्रोंवाली प्रियतमाका सुन्दर सुल-
कमल देवकर परदेससे लौटे नायकने वियोगमें धीरे हुए एक
परसो भी एक क्षणके समान समझा ॥ १ ॥ जैसे ही परदेससे
लौटे नायकने अपने मीमा-भवनके पास पहुँचकर मँजीरकी मधुर
ध्वनि सुनी वैसे ही उसने अपने मित्रोंसे चलती हुई यात
यद्गकर ऋषट् जैसे-जैसे बातें समाप्त कर दीं ॥ २ ॥ परदेससे
लौटेकर अपनी प्रियतमाका मुँह देखता हुआ नायक यही
सोचता है कि 'कब रात हो जाए !' और इसीजिसे वह बार-
बार आकाशमें सूर्यको देखता है कि धरती कहीं पहुँचा है ॥ ३ ॥

घिलोद : समान कुलमें पैदा हुए, एक जैसे स्वभाववाले,
नई धरतयावाले, माता पिताके अधीन रहनेवाले, एक
सूर्यको देखनेके जिसे दृष्टपटानेवाले तथा दुबले होकर अनेक
प्रकारके कष्ट पानेवाले नायक और नायिकाके हृदयमें वियोगके
कारण जो म्लजबली मची हुई है उसका धर्षण नहीं किया जा
सकता ॥ १ ॥

वियोगिनीकी दशाका धर्षण : वह नयेजी अपने
पतिके वियोगमें अपने सुन्दर परामें बिना चन्द्रपञ्जावाले
चिबकीका चित्र बनाती है (त्रिगमे देदे चन्द्रमाको देवकर
प्रियतमके मधुविहोंका स्मरण न हो जाये), भ्रोगोंपर सौंपके

वियोगिव्यवस्थावर्णनम् — अगारेऽस्मिन्कान्ते गिरिः-
मनिशानाथशकलं भुजङ्गानुसुक्लान्सकलमपि वाताय-
नपथे । निकुञ्जेपु श्रेयानानधिगृह्यशितो राहुवलयं लिल-
न्त्या नीयन्ते शिव शिव तथा हन्त दिवसाः ॥ १ ॥
अङ्गासङ्गिष्णुशालकावृद्धमयते भृङ्गावलीनां वचं नासा-
मौकिकमिन्द्रनीलसरणिं श्वासानिलाद्वाहते । क्षिप्ता सा
हिमवालुकापि कुचयोर्धत्ते क्षणं क्षीपतां ततायःपतिता
म्बुवत्करतले धाराम्बु संक्षीयते ॥ २ ॥ अग्निदेहलि
हन्त हेमवल्ली शरदिन्दुः सरसीवहे शयानः । उपवृद्ध-
नचञ्चु मौकिकाली फलितं कस्य सुजन्मनस्तपोभिः
॥ ३ ॥ अन्तस्तारं तरलतरला, स्तोकमुत्प्रीडनाजः
पद्माम्रेपु ग्रथितपृपतः फीर्णधाराः क्रमेषु । चिचार्तद्वं
निजगारिमतः सम्पगाःस्रयन्तो निर्पान्त्यस्याः कुबल
यदशो वाप्पवारां प्रवाहाः ॥ ४ ॥ अपसारय घनसारं
कुरु हारं दूर पय किं कमलैः । अलमलमालि मृणालै-

चित्र बनाती है जिससे वायु न जा सके (क्योंकि सौंप वायु
पी जाते हैं), आङ्घ्रियोंमें बाजका चित्र टांग देती है (जिसके
कोयल न कूकने पावे) तथा छतपर राहुका चित्र बना देती
है (जिससे चन्द्रमा यहाँसे बरकर भाग जाय) । सपुत्र
बड़े दुःखकी बात है कि उस बेचारीको इतने कष्टे फिर
बिताने पड़ रहे हैं ॥ १ ॥ उस वियोगिनीके अङ्गोंसे खो हुए
कमलनालके टुकड़े तापके मारे भौंरोंके समान काले पड़ जाते हैं,
तपी हुई सौंसके कारण बेसरका माती नीलम बन-बन जाता है,
स्तनोंपर लगाया हुआ कपूरका घूर्ण सत्काल सपने जाता है
और हायोंपर छोड़ी हुई पानीकी धार सपे हुए खोरेपर पड़ी
हुई पानीकी सूँदकी भौंति छनसनाकर सूख जाती है ॥ २ ॥ वह
देहजीपर क्या कोई सोनेकी जवा फैली (नयेजी लड़ी) हुई
है ? या शरदका चन्द्रमा कमलपर सो रहा है (कोई नयेजी
हथेलीपर सिर धरे सो रही है) ? या सज्जनकी टो
(नासिका) के पास मोतीकी माळा (दाँतोंकी पॉव) मँजि
हो रही है ? यह सब किस पुण्यपामाकी उपरपाका कष्ट है ?
॥ ३ ॥ उस कमलनयनोंके सौँस परखे तो सौँसके मीन ही
उजले-उजले मलमलजाते हुए दिखाई दिए, फिर ऊँच बना
निकलकर शरीरिणोंमें सूँदके रूपमें दिखाई दिए धरत बन
गए । इस प्रकार बहते हुए उन बड़े बड़े सौँसोंको देखकर
देखनेवालेके मनमें पचराहट होने लगी ॥ ४ ॥ वह वियोगिनी
राज दिन पही कर्ती रहती है कि 'कारको दूर करो, ता'

रिति वदन्ति दिवानिग्रं बाला ॥ ५ ॥ अपि मरुत्सुपैति
सा मृगाङ्गे विलसति कैव कथा रसान्तरस्य । अपि
कथमधुना दधातु शान्ति विपमशरज्वरतीप्रदेहदाहः
॥ ६ ॥ अथला नितराम्मुग्धा बाला हन्त ह्रिया
जिता । हन्त्यते द्विजराजाचैरशरत्वं ततो जगत् ॥ ७ ॥
अस्तमितविषयसङ्गा मुकुलितनयनोत्पला मुहुः
श्वसिता । ध्यायति किमप्यलक्ष्यं बाला योगाभियु-
क्तं ॥ ८ ॥ अखं विमुच्य सकलं प्रथमप्रयोगे भूयोऽपि
हन्तुमबलां । विहितोद्यमस्य । पुष्पायुधस्य वपुरेव
तदीयमेकं लक्ष्यं हन्त शरधिश्च तदा वभूव ॥ ९ ॥
अस्मिन्मर्षेण न वर्तत । इदं यत्कामदेवोत्सवे स्थेयं
पुत्रि निरध्रया तदधुना किञ्चिन्मुले दीयताम । इत्युके
ज्वरतीजेन कथमप्यध्वन्यध्या ततः पर्यस्तेऽहनि
कल्पितश्च फलतो धौतश्च घातान्निः ॥ १० ॥ अस्या-
स्तनौ विरहताण्डवरङ्गभूमौ स्वेदीद्विन्दुकुसुमाञ्जलि-

माधिकीर्यं । नान्दीं पपाठ पृथुवेपथुवेपमानकाञ्जील-
ताफलरवैः स्मरस्त्रधारः ॥ ११ ॥ आदातुं सङ्गृही-
तेऽपि कुसुमे हस्ताग्रमालोहितं लाञ्छारखनवार्तयापि
सहसा रक्तं तलं पादयोः । अङ्गानामनुलेपनम्रणम-
प्यत्यन्तप्रेदायहं हस्ताधीरदशः किमन्यदलक्षामोदोऽपि
भारायते ॥ १२ ॥ आलीचालितर्पाभनादलक्षलस्यो-
द्धमङ्गीकृतस्याङ्गालिङ्गनमर्मरीकृतनयाम्नोजालिशय्या
चिरात् । चैतन्यं कथमप्युपेत्य शनकैरन्मोत्य नेत्राञ्चलं
बाला केवलमेव शून्यहृदया शून्यं जगत्पश्यति ॥ १३ ॥
इतो विद्युद्गङ्गाविलसितमितः केतकरजः स्फुरद्गन्धं
मोघञ्जलदग्निनदस्फुजितमितः । इतः फेकिनीडाकल-
फलमरः पद्मलक्षशां कथं यास्यन्त्येते विरहदिवसाः
सम्भ्रमरसाः ॥ १४ ॥ उद्भूयेति तनूलेतेति
विसिनीपत्रेण नो धीज्यते स्फोटः स्यादिति
नाह्नकं मलयजोदाभमसा सिच्यते । स्याद-

हृदाग्रो, ये सव कमल लेकर मैं क्या कहूँगी ? हे सखी ! इन
कमलमालोंकी भी उपर ही रहने दो" ॥१॥ जिस वियोगिनीकी
यह द्रष्टा हो गई है कि चन्द्रमाके उदय होते ही प्राण दे
बाहेगी उसके आगे शृङ्गार, हास्य इत्यादि रसोंकी चर्चा की
ही कैसे जा सकती है ? इस समय तो यही सोचना है कि कामके
बाणोंसे उलपन्न भयङ्कर ज्वरका सन्तप्य शान्त कैसे हो ? ॥ ६ ॥
जब भोली-भाळी नवेलीको खाने जीत लिया तो चन्द्रमा
आदि भी कहीं भी शरण न पानेवाले संसारके प्राणियोंको मारने
लगे ॥७॥ संसारके विषयोंसे मन हटाकर, शौचें अग्रमुँदी करके,
बार-बार साँस हींवरकर वह नवेली योगिनीके समान बिना
किसी लक्ष्यके ही न जाने किसका ध्यान कर रही है ॥८॥ उस
अबलाके प्राण खेनेके लिये कामदेवने सारे अण-अण एक ही
धारा बहा दिए । अतः उसे जब उसने कितो डुबारा मारना
पाहा तो उस नवेलीकी देह ही कामदेवका लक्ष्य भी बनी
और बाण भी अभी ॥ ९ ॥ किसी परदेस गए हुएकी परलौकी
जब बड़ी-बूढ़ी खिदोने कहा कि 'येती । इस वयं कामदेवके
बसवके समय जो तू अन्न दोगे वैठी है, यह ठीक नहा है ।
कुछ सुँहमें दाब ले', सब किसी-किसी प्रकार इतल वावत-
वावते वह सुँहक प्रास ले तो गई पर वह पूरा मदन भोगुधौसं
भीग गिरा ॥ १० ॥ इस वियोगिनीके शरीरमें कामदेवरूपी
सूपपारने विरह-रूपी नटके अभिनयके लिये रत्नमञ्च-रूपी
नायिकाके देहमें पत्नीके विन्दुरूपी फूल बिरेकर शरीरके

कॉपनेसे ढिलती हुई करघनाके सुन्दर शब्दसे मानो नान्दीपाठ
कर डाला ॥११॥ हाय ! वह नवेली मियतमके वियोगमें इतनी
दुखली हो गई है कि ज्यों ही फूल उतारनेके विचारसे देखती
है त्यों ही उसकी उँगलियाँ थकावट होनेके बरसे लाल हो
उठती हैं, ज्योंही कोई महावरसे उसके पैर रचनेकी चर्चा चलाना
है त्योंही मारके भयसे उसके पैर लाल हो उठते हैं तथा शरीरमें
चन्दन आदिका लेप लगाए जानेका स्मरण करते ही वह अत्यन्त
दुखी हो जाती है । अधिक क्या बहें, उसके बालोंमें बसी हुई
मुगन्ध भी उसे भारी जान पड़ रही है ॥ १२ ॥ उस मुँदित
वियोगिनीको उरठकै पहुँचानेके लिये सखियाँ जब कमलके
पत्रे हलाती हैं तो उसका शरीर हिलने लगता है और उसके
शरीरसे लगकर कमलोंका विद्रौता सूप जाता है । वह
वियोगिनी कितो प्रकार जगी और उसने शौचें भी खोलीं परन्तु
उसका हृदय सूना था इसलिये उसे सारा संसार सूना दिखाने
पड़ने लगा ॥ १३ ॥ अथ विरततो चमक रही है, उपर
केवदेका मुगन्धित पराग उड़ रहा है, बादल गद्गदा रहे हैं
तथा मीर कूककूकर नाच रहे हैं, ऐसे चबराहट उलपन्न
करनेवाके समयमें वियोगिनी नवेलियाँके दिन कैसे बीत पावेगे
॥ १४ ॥ इस वियोगिनीका दुखका-पतला शरीर उद न जाय
इस बरसे कमलके पत्रोंसे बनाया हुआ पट्टा नहीं डुलगाया
जा सकता, पानीकी चोटसे इसके अङ्ग न टूट जायें इस बरसे
चन्दन निखा हुआ जल भी नहीं सींचा जा सकता और इसकी

स्यातिभरात्परामय इति त्रासाद्य वा पल्लवारोपो
 वल्लसि तत्कथं घटतनोराधिः समाधीयताम् ॥ १५ ॥
 पतस्या विरहज्वरः करतलस्पर्शैः परीच्यो न यः
 क्षिभेनापि सखीजनेन भयतः प्रस्थम्पचः पाथसाम् ।
 निद्रशक्तीकृतचन्दनौपधिविधो तस्मिंस्तडत्कारिणो
 लाजस्फोटमभी स्फुटन्ति मणयो विश्वेऽपि द्वारस्रजः
 ॥ १६ ॥ कण्ठे मौक्तिकमालिकाः स्तनतटे कार्पूरमच्छुं
 रजः सान्द्रं चन्दनमङ्गके वलयिताः पाणौ मृणाली-
 लताः । तन्वी नक्तमिर्यं चकास्ति तनुनी चीनांशुके
 विभ्रती शीतांशोरधिदेवतेव गलिता व्योमाग्रमारोहतः
 ॥ १७ ॥ कथमपि कृतप्रत्याधुसौ प्रिये स्खलितोत्तरे
 विरहकृश्या छत्वा ध्याजं प्रकल्पितमश्रुतम् । असहन-
 सखीधोत्रप्राप्तिप्रमादसम्भ्रमं प्रचलितदृशा शून्ये
 नेष्टे समुच्छ्वसितं पुनः ॥ १८ ॥ कपोलफलकावस्थाः कथं

भूत्वा तथाविधौ । अग्रशयन्ताविधान्योन्यमोदज्ञां क्षामतां
 गतौ ॥ १६ ॥ कपोले पाण्डुत्वं किमपि जलधारानं नय-
 योस्तनौ काश्यं दैन्यं वचसि हृदि दावानलशिखाम् ।
 अग्रज्ञां प्राणेषु प्रकृतिषु विपर्योलमधुना किमन्यद्दे
 राग्यं सकलविषयेष्वकलयते ॥ २० ॥ कमले निघाय
 कमलं कलयन्ती कमलवासिनं कमले । कमलयुगादु
 द्भूतं कमलं कमलेन धारयति ॥ २१ ॥ कार्पूराम्बुनिपे-
 कभाजि सरसैरम्भोजिनीनां दलैरास्तीर्णैऽपि विवर्त-
 मानवपुपः स्रस्तस्रजि स्रस्तरे । मन्दोन्मेषदृशा किम-
 न्यदभवत्सा काप्यवस्था तदा यस्याश्चन्दनचन्द्रबपक
 दलश्रेण्यादि वल्लयते ॥ २२ ॥ किसलयमिव मुग्धं
 वन्धनाद्रिमल्लं हृदयकुसुमशोपी दाबुणो दीर्घशोकः ।
 ग्लपयति परिपाण्डुक्षाममस्याः शरीरं शरद्वज इव
 धर्मः केतकीगर्भपञ्चम् ॥ २३ ॥ कुसुमितलताभिरहता-

छातीपर नये-नये कोमल पत्ते भी इस ढरसे नहीं रखे जा
 सकते कि उनके भारसे कहीं यह दब न जाय । तब बताइए भला,
 इस सुन्दरी विरहिणीकी तपन बुझाई कैसे जाय ! ॥ १२ ॥
 इस विरहिणी नवेलीको मियतमके विछोड़का ताप इतना तीव्र
 है कि प्रेममयी सखियाँ उसके मारे छूकर उसका ताप नहीं
 परत सकतीं वरन् दूरे जो पानीका छीटा भारती है वह
 तत्काल सूख जाता है । उसपर चन्दन तथा श्रीपत्रियोंका भी
 कोई बस नहीं चलता तथा उसकी देहपर पड़े हुईं हार और
 मालाओंकी मणियाँ तद तद करके ऐसी चटक रही हैं मानो
 धानकी खेतों पर रही हों ॥ १३ ॥ गलेमें मोतियोंकी माला पहने,
 स्तनोपर कपूरका धूप मले, शरीरपर चन्दनका गाढ़ा लेप किए,
 हाथोंमें कमलतन्तुके कढ़न पहने तथा उजले, पतले रेसमी वस्त्र
 पहने हुए वह नवेली रातके समय ऐसी जान पड़ती है मानो
 आकाशपर चढ़ते हुए चन्द्रमाकी अघिष्टाश्री देवी धृन्वीपर टपक
 पड़ी हो ॥ १४ ॥ बड़ी कठिनताके परचाट मियतम परदेसले लीटें
 भी सो उन्हींने दूसरोंका नाम लेकर मियतमाको बुलाया, इस
 बातसे चिढ़कर विरहसे दुखली-पतली उस नवेलीने न सुननेका
 बहाना करके धनमुना कर दिया । किन्तु मियतमके बुलानेका
 राग्य हसीके कानमें पड़ ही गया । अतः उससे पह सप न
 सहा गया और वह बचराकर भाँटें तरेती हुईं सूने घरमें
 बाहर लम्बी-लम्बी सँसँ लेने लगी ॥ १८ ॥ इस नवेलीके
 गाल काप्यपिक बड़ हो गए किन्तु एक दूसरेकी न देख
 सकनेके कारण ही मानो ये दोनों दुबले पड़ गए ॥ १३ ॥

उस वियोगिनी नवेलीके गाल पीले पड़ गए हैं, बालोंसे
 धाराएँ बहती रहती हैं, शरीर दुबला हो गया है, बालोंमें
 दीनता आ गई है, हृदयमें दावाभिकी ज्वालाएँ भर गईं
 हैं, प्राणोंका कोई मोह नहीं रह गया तथा स्वभाव भी
 बदल गया । अधिक क्या कहें, उसे संसारके सभी वियोगि-
 वैराग्य हो गया है ॥ २० ॥ कमलके समान कोमल और
 लाल शायर मुख-कमल रत्नकर हृदय-कमलमें हृदयेशका
 ध्यान करती हुई वह वियोगिनी दोनों नेत्र-कमलोंसे बरग
 हुआ आँसुरूपी जल दूंसरे कमल-जैसे हाथसे पोंछ रही
 है ॥ २१ ॥ कपूरके जलसे सँचे हुए, कमलके गीले पत्रों
 वके हुए तथा मालाओंसे भरे हुए विद्युनिपर भी निरुद्ध
 शरीर छड़पटा रहा है तथा जो बड़ी कठिनाईसे भाँटें खोल पा
 रही है उस वियोगिनीकी श्रव यह दशा हो चुकी है कि चन्दन,
 चन्द्रमा, चन्पाके फूलकी पंखुदियाँ आदि सभी बटुएँ
 उसके लिये ध्याग बनी जा रही हैं ॥ २२ ॥ हृदय-रूपी सूबकी
 मुला डालनेवाला भयंकर वियोगका दुःख उस वियोगिनीके
 बडलसे तीपे हुए कोमल किसलयके समान दुबले-पतले बने
 शरीरको ऐसे सुलाए डाल रहा है जैसे शरद ऋतुकी बूँद
 धूप केबड़ेकी कोमल पंखुदियोंको मुला डालती है ॥ २३ ॥
 उस वियोगिनीकी ऐसी दशा हो गई है कि सूबकी हुईं
 लताओंका घबका न लगनेपर भी उसे पीड़ा होती है, और
 उसे काटते भी नहीं फिर भी वह मूय जाता है और बाबूनी
 लहरें तनिक सा पूं भर गईं कि वह उनकी ओर धूर धूर

प्यघत्त रुजमलिऋलेरदृष्टापि । परिवर्तते स्म नलिनी
लहरीमिलौलिताप्यधूर्णत सा ॥ २४ ॥ केशैः फोम-
लमालिकामपि चिरं या विभ्रती पियते या गाधेषु
घनं विलेपनमपि न्यस्तन्व योहुं क्षमा । दीप-
स्यापि शिखां न चापि भयने स्वप्रेरुपि या
वीक्षितं तापं सा विरहानलस्य महतः सोढुं कथं
शक्यते ॥ २५ ॥ क्षामक्षामकपोलमाननमुरः काठिन्य-
मुक्कस्तनं मध्यः झान्ततरः प्रकामचिन्तायंसौ छुविः
पाण्डुरा । शोच्या च प्रियदर्शना च मदनगलनेयमाल-
दयते पद्माशामिव शोषणेन मरुता स्पृष्टा लता माधवी
॥ २६ ॥ खण्डिता मा भवन्वेताः कदाऽपीत्युक्क-
स्पया । नदीनिनीपतीवाधि साऽशुभ्रैरनिरन्तरेः
॥ २७ ॥ गण्डे पाण्डो कलयति पुनश्चान्दनापत्रमङ्गा-
धिद्रालामे स्वयमरुणदृक्पृच्छति त्यां निदानम् ।
प्रत्यासन्ने मधुरलपिते शृङ्खके कीरशाये कण्ठे घन्ते

कमलनयना चाद्य वैदूर्यद्वारम् ॥ २८ ॥ घनोऽयञ्जेद-
ऋदुपरि विकिरैश्चन्दनरसानुनाराधेहारी सखिदुरसि
हारीमयति हा । समन्तान्प्राणाली चिरमुपननाली
मिलति या तदप्यस्यान्त्यापः प्रियविरहजः किं विर-
मति ॥ २६ ॥ चन्द्रो वद्विमलपयनो मोगिकृन्कारपात-
स्तिम्माभ्रान्तनिपतनमदो मालतिः पुष्पश्या । कस्तू-
र्यादिर्मधुरसुरमेश्चन्दनस्य प्रलेपो ज्वाला तन्व्या इति
यत् कथं जीयनं भो विमाध्यम् ॥ ३० ॥ जीयेन तुलितं
प्रेम सखि मूढेन वेधसा । लघुर्जायो यया कण्ठं शुभ्र-
प्रेम हृदि स्थितम् ॥ ३१ ॥ तन्वद्भवा शुभ्रसन्निधौ
नयनजं यद्धारि संस्तम्भितं तेनान्तर्गतितेन मन्मथ-
शिखो सिको वियोगोद्भवः । मन्ये तस्य निरस्यमान-
किरणस्यैषा मुखेनोद्रता श्वासायाससमागतालितर-
णिन्याञ्जेन धूमावली ॥ ३२ ॥ तस्याः स्तनान्तरे न्यस्तं
चन्दनं तापशोपितम् । मनोभयाग्निद्रग्धस्य यमी भस्मेव

देखने लगती है ॥ २४ ॥ सजी हुई कोमल फूलकी माला
केशोंमें देरतक रखनेसे जो गक जाती है, जा शरीरमें
लगे हुए चन्दन आदिक घने लेपका भार नहर सह सकती
तथा जा धरमें जलते हुए दीबेकी ली तकका स्वप्नमें भी नहीं
देख सकती वह वियागकी आगिका भयकर ताप कैसे सह
पावेगी ॥ २५ ॥ पत्तोंकी मुखावेवाले वायुके झू जानेसे माधवी
जटाकी जैसी दया हा जाती है वैसे हा देखनेमें मर्दी
जगनेवाली तथा शोचनीय दशावाली इस त्रियोगिनीकी
कामसे पीड़ित हानेके कारण ऐसी दया हा गई है कि
इसके मुँहमें दोनों गाल सूख गए हैं, बच स्थलपर दानों
स्तन पिचक हो गए हैं, कमर लचक गई है, कन्धे झुक गए
हैं तथा देहका रंग उजला-सा हा गया है ॥ २६ ॥
वह त्रियोगिनी अपने सदा बहनेवाले आँसुओंकी सहायतासे
नदियोंकी समुद्रतक माना इस दयाके कारण ले जाता है
कि मेरी भौति ये कमा खण्डिता (विरहिया, सूखी
धारावाली) ग होने पावे ॥ २७ ॥ यह त्रियोगिनी अपने विरहके
तापसे उजले गाळोंपर चढ़नेसे वेद-भूटे बनाती है, चिन्ताके
कारण नींद न आनेसे जो आँसू लाल हो आई हैं उनका
हमसे कारण पड़ती है (अपनी विरह म्ययाका छिपानेके
लिये) तथा मधुर बोलनेवाला पावल सुमोका बच्चा जब
पास आकर बोलने लगता है तब उसे सुप करानेके लिये
यह कमलनयनी अपने गलेमें नीलमका हार पहन लेती

ई जिससे रात हुई जानकर धँधरेमें यह तोंटेका बच्चा
न बोले ॥ २८ ॥ भले ही बादल ऊपरसे चन्दनके रसकी
बपा करें, शिशिर श्रुतीकी टवी नदी धातोंपर हार बनकर
जटक जाय और इस त्रियोगिनीके प्राय चारों आरके हरे-भरे
बनमें मिल जायें फिर भी क्या प्रियतमके वियागमें उलझ
इसका ताप शान्त हा पावेगा ? ॥ २९ ॥ इस त्रियोगिनीकी
जब चन्द्रमा आगिके समान, दृषियका पवन सौंसाका
कुक्काके समान, मालताके फूलोंका विद्वीना बिदे हुए
अगारोंके समान तथा कस्तूरी आदि मधुर सुगंधित वस्तुएँ
और चन्दनका लेप लपटाके समान उरट जान पड़त
हैं तब इसके पचनेकी कैसे आशा की जाय ? ॥ ३० ॥
हैं सखी ! मूर्ख भवाने प्रेमका बराबरो प्रायोंके साथ की
किन्तु प्राण ता लघु (हल्क, पुद्) हात है अतः ये गलेतक
आ पहुँच किन्तु प्रेम गुर (भार, श्रेष्ठ) है अतः वह हृदयमें ही
जमा रहा ॥ ३१ ॥ बर्दोंके सामने सदा हुई त्रियोगिनीके
रोके हुए आँसुओंने जब भीतरकी और मुद्कर त्रियोगिने उलझ
कामागिन उष्मा दी तो उसका पुष्पी ही मानो मुखकी सुगन्धित
सौंसक कारण उड़ते हुए भारोंके रूपमें दित्वा पं दरहा है ॥
३२ ॥ उस त्रियोगिनीके स्तनोंपर लगा हुआ चन्दनका
लेप जो तापके कारण सूख गया है वह ऐसा जान पड़ता
है मानो कामागिनेने जले हुए उस त्रियोगिनीके बिचकी राख
हो ॥ ३३ ॥ सुकी हुई नौहानेवाली त्रियोगिनीके तापको

चेतसः ॥ ३३ ॥ तापापनोददक्षाणि मृगालानि नत-
 ध्रुयः । नाभूयन्दीर्घसूत्रेभ्यो याञ्छ्रुतं प्राप्यते कुतः
 ॥ ३४ ॥ दूरललितहरिद्राभ्रान्धिगंगारे शरारे स्फुरति
 विरहजन्मा कोऽप्ययं पाण्डुभावः । चलति सति हि
 यस्मिन्सार्धमाधत्यं देना रजतमिव मृगाद्याः कलिपता-
 न्यङ्गकानि ॥ ३५ ॥ दहामानेऽपि हृदये मृगाद्या
 मन्मथाग्निना । ज्ञेहस्तथैव यत्तस्यौ तदाश्चर्यमिधाभवत्
 ॥ ३६ ॥ दुःखं दीर्घतरं वहत्यपि सखीवर्गाय नो भापते
 शैवालैः शयनं रजत्यपि पुनः श्रेते न धा लज्जया ।
 फण्टे गद्गदवाचमञ्चति दशा धत्ते न वाणोदकं सन्तापं
 सहते यदभ्युजमुषी तद्वेदं चेतोभवः ॥ ३७ ॥ दुःखानि
 सन्दिशन्त्यास्तस्याः फण्टं मुहुर्मुहुर्वाप्यः । स्वल्पाव-
 श्रेयसीधितनिर्वाणभियेव निरुणद्धि ॥ ३८ ॥ न क्रीडासु
 कुतूहलं धितनुते नालङ्कृता सादरा नाहारेऽपि च
 सस्पृहा न गणपत्यालापलोलां सखीम् । चाला केचल-

कमलनाल धादि भी शान्त न कर सके । ठीक ही है, दीर्घसूत्रियों
 (ब्राह्मसियों, जन्मे-जन्मे सूत्रवालों) से क्या किसीकी हृच्छा
 पूरी हो पाई है ? ॥ ३४ ॥ पिसी हरीके रङ्गके समान
 देहवाली शृगनयनी वियोगिनीके विरह-वेदनासे उजले पड़ते
 हुए अर्ध ऐसे जान पड़ते हैं मानो वे सोनेके साथ चाँदी
 मिलाकर गढ़े गए हों ॥ ३५ ॥ यह यद अचरजकी बात है कि
 पचपि उस शृगनयनीका हृदय कामाग्निसे जल रहा था फिर भी
 उसमें स्नेह (पी-वेज, प्रेम) उषोंका था यथा रह गया ॥ ३६ ॥
 यह कमलमुखी वियोगिनी जो घोर कष्ट सहते हुए भी सखियोंसे
 नहीं कटती, सेवार्थका विधौना विद्याधर भी खाजके कारण
 उसपर छेदती नहीं तथा गला भर घानेपर स्पष्ट बोल न
 पानेपर भी चाँदोंमें चाँद नहीं घाने देती, उसका सब
 सन्ताप केवल कामदेव ही जानता है ॥ ३७ ॥ जब यह नयेकी
 अपनी दुःख दूसरोंकी भवधाने खगती है उस समय इस दरसे
 ही मानो चाँद उसका गधा रोकने लगते हैं कि उसका
 क्या हुआ पोड़ा-सा जीवन भी समाप्त न हो जाय ॥ ३८ ॥
 वह विरहिया न तो रोखना चाहती, न चाबसे अपनी ग्यहार
 करती, न ओसनेकी हृच्छा करती और न बातचीत करनेवाली
 अपनी सखीके ही ऊपु समझती है, परन्तु प्रविष्टप दुखसे होते
 हुए अज्ञोवाची वह बाबा केवल हृदयमें किसीका ध्यान करती
 हुई सदा एकान्तमें गुमगुम बैठी रहती है ॥ ३९ ॥ उस
 वियोगिनी शृगनयनीके विषयमें उसके पास जो कमलका

मङ्गकैरनुकलतामैविधिकस्थले ध्यायन्ती किल किञ्चि-
 दन्तरधुना निस्पन्दमास्ते सदा ॥ ३९ ॥ न नीतमुप-
 नासिकं परिमलव्ययाशङ्कया न हन्तं विनिवेशितं
 विरहयद्विकुण्डे हृदि । दशोर्वहिरिति ध्रुतो न निहितं
 प्रियप्रेषितं करे कमलमपितं मृगदशा दशा पीयते
 ॥ ४० ॥ नयनोत्पलचलधारारं दृष्ट्वा धाराधिधिभ्रान्त्यां ।
 बडवानल इव भगवान्वसति तनी कृशतनोस्नापः
 ॥ ४१ ॥ नवकिसलयतल्पं कल्पितं तापशान्त्यै करस-
 सिजसङ्गातेक्यलं म्लापयन्त्याः । कुसुमशंरुकाशुमा-
 पिताङ्गारतायाः शिवशिव परितापं को यदेत्कोम-
 लाङ्कयाः ॥ ४२ ॥ नलिनोदलमाहितं सखीभिः परिता-
 पोपशमाय यद्यदङ्के । अरुनप्रतिकारलज्जयेव परितो
 म्लानिमुपैति, तत्तदस्याः ॥ ४३ ॥ निःश्वासानलविद-
 दन्तवसना नेत्राम्बुसिक्तस्तनी हस्तन्यस्तकपोलदीन-
 धना हारेकभूपावती । विभ्राणांसपदेन तुङ्गजघना

पूज भेजा है उसे वह नाकसे इसलिये नहीं लगाती कि उसका
 सारा पराग सॉसके वेगसे उड़ जाता, हृदयसे इसलिये नहीं
 लगाती कि जलती हुई वियोगाग्निके कुण्ड बने हुए हृदयमें
 कमल कुलस जायगा और कानोंपर इसलिये नहीं रखता कि
 नेत्रोंसे आँकल हो जायगा, अतः यह अपने हाथमें ही बिड़
 हुए प्रेमभरी आँखोंसे उसे पिपू जा रही है ॥ ४० ॥ वियोगिनीके
 कमलनयनोंसे चाँदुघोंकी धारबहती देखकर यद भारी सन्ताने
 उसकी देहको समुद्र समझकर बडवानलके समान उस बेचारीके
 दुखले-पतले शरारमें ही देरा जमा लिया है ॥ ४१ ॥ अपना
 सन्ताप दूर करनेके लिये नहीं-नहीं कौण्डलोंसे बने हुए विद्युती
 केवल करकमलसे झुकर कुण्डला देनेवाली तथा कामाग्निके
 अहार-सी जलती हुई कोमलाङ्गीके सन्तापका धर्यान मजा कर
 कर सकता है ॥ ४२ ॥ विरहकी तपन शुम्भनेके लिये उस
 वियोगिनीके अर्धपर सखियों जो कमलिनिके पसे रहती हैं
 वे मानों इसी खाजके कारण चारों ओरसे कुण्डलाने लगते हैं
 कि 'हम इस बेचारीका ताप नहीं दूर कर पाए' ॥ ४३ ॥ किन्तु
 विरहियाकी दशाका धर्यान कवि करता है—'इस विरहिके
 थोडा गरम सॉससे कुलस गए हैं, स्नान चाँदुघोंसे भीन पड़
 गई, थोड़ी कन्धेपर फैल गई है तथा मुँह स्पूरा गया है और
 जब यह उजले, सुन्दर, बाले अज्ञोवाची तथा मोटे नितावकी
 विरहिया द्योलीपर गाल बरसे, केवल एक हार पढ़ने विरहा-
 उपासनपर पड़ी रहती है' ॥ ४४ ॥ कामाग्निके सन्ताने ॥

चिह्नसिनीं वैष्णिकामास्ते स्थण्डिल एव पाण्डमधु-
क्षामालसैरङ्गकैः ॥ ४४ ॥ निकामं क्षामाङ्गी सरसकद-
लीगर्भमुभगा कलाशेषा मृत्तिः शशिन इव नेत्रोत्सव-
करी । अथस्थामापत्रा मदनदहनोद्वाहविपुरामियं
नः कल्याणी रमयति मनः कम्पयति च ॥ ४५ ॥
नित्तिव्य काऽपि शयने धियशं शरीरं संविश्य तत्र
भ्रूटिति स्वयमेव यत्नात् । उत्थाय सौधमधिरुह्य
गवाक्षरन्ध्रैः पत्युधिलोक्य पदवीं भजति प्रमोहम्
॥ ४६ ॥ निविशते यदि शुकशिखा पदे सृजति सा
क्रियतोमिय न व्यथाम् । मृदुतनोर्वितनोतु कथं न
तामयनिभृषु निविश्य हृदि स्थितः ॥ ४७ ॥ नीचीव-
न्धोच्छसनमधरस्पन्दनं दोर्विपादः स्वेदश्चक्षुर्भ्रूणम-
धुराकेकरक्षिग्धमुग्धम् । गात्रस्तम्भः स्तनमुकुलयो-
रुत्प्रयन्धः प्रकम्पो गण्डामोगे पुलकपटलं मूर्च्छुना
चेतना च ॥ ४८ ॥ परिमृदितमृणालीम्लानमङ्गं प्रवृत्तिः

कथमपि परिवारपार्यनाभिः क्रियासु । कलयति च
दिमांशोनिष्कलङ्कस्य लक्ष्मीमभिनयकरिन्दन्च्छेद-
कान्तः कपोलः ॥ ४९ ॥ परिम्लानं धीनस्तनजघनस-
ङ्गाद्भवतस्तनोर्मध्यस्यान्तःपरिमिलनमप्य हृत्-
तम् । इदं व्यस्तन्यासं श्लथमुजलताक्षेपयलनैः
कृशाङ्गथाः सन्तापं चदति चिसिनीपत्रशयनम् ॥ ५० ॥
पातयति हृदयदेशे प्रियजनगर्भं पुनः पुनर्मुग्धा । धर्षि-
तमदनातङ्गा वाष्पयतीं भावमन्धरां दृष्टिम् ॥ ५१ ॥
पोनोत्सुकस्तनकलशयोस्तारहारं न घचे हस्तेनापि
स्पृशति सहसा नैव कर्पूरवीटीम् । मञ्जं नापि श्रयति
शयितुं हंसवृत्तास्तराह्यं तादृक्कन्यी गुरुजनमयाद्भोषु-
कामा स्वतापम् ॥ ५२ ॥ प्रयातेऽस्तं भानी श्रितशुकु-
निनीडेपु तक्षु स्फुरत्सन्ध्यारागे शशिनि शनकैश्च-
सति च । प्रियप्रत्याख्यानद्विगुणचिरहोत्कण्ठितदृशा
तदारब्धं तन्व्या मरणमपि यत्रोत्सवपदम् ॥ ५३ ॥

वियोगिनीकी यह दशा कर दी है कि केलोके लग्नेके भीतरके
सुदेकी भौति यह कोमल तथा उजली हो गई है तथा अत्यन्त
दुबली होकर एक कलामात्र बचे हुए चन्द्रमाके समान नेत्रोंके
मुख पहुँचा रही है । इस प्रकार यह सुन्दरी मनको प्रसन्न भी
कर रही है तथा कँगाप भी डाल रही है ॥ ४५ ॥ कोई
विरहिणी विषय हीकर अपनी देह विद्योनेपर डालकर पद
रहती है, फिर शीघ्र ही प्रयत्न करके उठती है, छुतर जाती
और वहाँ क्तोखोंसे उस मार्गकी ओर देखती हुई मूर्च्छित
हो जाती है जिससे उसका पति आनेवाला है ॥ ४६ ॥ धानकी
वालका हँदक वैरमें गढ़कर बड़ा कट देता है ! फिर इस
कोमलाङ्गके हृदयमें तो बिड़ोहरूपी पहाड़ (राना) घुसा पड़ा
है ! तब इसे क्यों न असह्य पीड़ा हो ! ॥ ४७ ॥ उस विरहिणीकी
धोतीकी गाँठ डीली पद गई है, नीचेका ओठ फटक रहा है,
मुजाई शिथिल पद गई हैं, पसीना छूट रहा है, अँखों कोमल,
मधुर, भावपूर्ण, चिकनी तथा भोली हो गई हैं, देह जकड़-सी
गई है, उठे हुए स्तन फटक रहे हैं, कपोल कँप रहे हैं,
कभी-बह मूर्च्छित हो जाती है और कभी चेतमें आ जाती
है ॥ ४८ ॥ इस विरहिणीके अन्न मसले हुए मृणालकी भौति
मखिन हो गए हैं, सरियोंके विशेष आग्रह करनेपर वह किसी-
किसी प्रकार काम-काजमें हाथ भी लगाती है, तो तत्काल काटे
हुए हाथी-दाँतके टुकड़ेकी कान्तिके समान उसका गौर-गौर
गाल बिना कलङ्कवाले चन्द्रमाकी-सी शोभा देने लगता है ॥ ४९ ॥

कमलके पत्तोंके विद्योतेका छोर तो वियोगिनीके मोटे-सोटे
स्तन तथा नितम्बोंकी रगड़ खाकर कुहला गया है, पेटके दुबले
होने और रगड़ न लगनेसे उसका बीचका नाग हरा-भरा है
तथा शिथिल भुजाओंके हृष-उधर फेकनेसे कुछ भाग उलट-
पलट गया है । इस प्रकार विद्योतेकी देपट्ट ही जान पड़ता
है कि उस दुबली-पतली विरहिणीको कितना अतिक कष्ट है
॥ ५० ॥ कामदेवने उस भोली-माली सुन्दरीको जो कष्ट दिए
हैं उनका बर्णन करती हुई वह अपने उस हृदयपर आँसू-भरी
तथा भाव-भरी चितवन चला रही है जिसके भीतर प्रियतम
विराजमान हैं ॥ ५१ ॥ वह दुबली-पतली सुन्दरी मोटे तथा
ढँचे बघोंके समान स्तनोंपर मोतियोंका उजला हार नहीं
पहनती, कपूर डाले हुए पानके बाँड़े हाथसे धूतोतक नहीं,
हंसके समान उजली रहेंके गदे-बिड़े पलंगपर सोनेके लिये बैठती
भी नहीं और ऐसी दरारों भी बघोंके ढरसे अपने वियोगका
कष्ट विपाना चाहती है ॥ ५२ ॥ जब सूर्य अस्ताचलकी ओर जा
रहे थे, पत्तियोंके धोसलोंवाले पृष्ठीकी चोटियोंपर सॉफ़की खलाई
छा रही थी, चन्द्रदेव धारे-री निकले छा रहे थे, ऐसे समय
प्रियतमको फटकार देनेमें दुगुनी बड़ी हुई विरह, वेदनावाली-
प्रियतमको देपनेके क्रिये खाटावित रटियाली तथा दुबले
पहोंवाली सुन्दरीको उस समय प्राण देना भी मुलक्ष प्र-
दुषा ॥ ५३ ॥ मतवाले कीर्त्तिकके गलेकी सुन्दर हस्ते
दिनों दिशाईं भयङ्कर खग रही है तथा चनेके

मद कल-कलकण्ठ कण्ठनादव्यतिकरमैरवदिङ्मुखानि तन्वी । कथमिव गमयेद्विदग्धमल्लीपरिमलकञ्चुकि-
त्तानि वासराणि ॥ ५४ ॥ मदनदहनशुभ्यः क्लान्तकान्ता-
कुचान्तघनमलयजपङ्के गाढबद्धाखिलाङ्घ्रिः । उपरि-
यिततपक्षो लक्ष्यतेऽलिनिमग्नः शर इव कुसुमेपारेप
पुङ्खायशेषः ॥ ५५ ॥ मरालश्रेणीभिर्नियतमुपनीतं सफ-
लतां गतिस्पर्धावैरं मृदुकलरवैरम्बुजदृशः । यदेताञ्च-
रवत्याः प्रियविरहवत्याः कृशतनोरगादस्याः स्तम्भा-
दहह गतिसम्भावयमपि ॥ ५६ ॥ मुफत्वानङ्गः कुसुम-
विशिखान्पञ्च कुण्डीकृतान्प्रान्मन्ये मुग्धां प्रहरति हृटा-
त्पत्रिणा वारुणेन । वारां पूरः कथमपरथा स्फारनेव-
प्रणालीयक्रोदान्त्वन्निखिलिचिपिने सारणीसाम्यमेति
॥ ५७ ॥ मुग्धा स्वप्रसमागते प्रियतमे तयाणिसंस्पर्-
शनं रोमाञ्जाञ्चितया शरीरलतया सम्भाव्य कोपा-

पराग चारों और उन दिनोंके अग्रमैं चोलीकी भौंति कसा
जा रहा है अर्थात् छाया हुआ है, ऐसे वियोगके दिन वह दुवली-
पतली नायिका कैसे वाट पावेगी ? ॥ २४ ॥ दुबले अग्रोवाली
वियोगिनी सुन्दरीके स्तनोंपर लगा हुआ जो चन्दनका गाढ़ा
लेप तापके कारण सूखा जा रहा है उसकी सुगन्धसे खिचकर
उसपर बैठे त्रिस भौरके पैर उस गाढ़े लेपमें धँस गए हैं और
जो उड़नेके लिये अपने पङ्कजपरकी घोर फड़फड़ा रहा है वह
पेसा दिखाई पड़ रहा है मानो कामदेवका सारा बाण उस
नवेलीके स्तनमें घुस गया हो और उस बाणकी पूँजभर बाहर
निकली रह गई हो ॥ २१ ॥ हसोंकी पंति और कमलनयनी
नवेलीकी मधुर ध्वनिवाली चालमें जय होइ होने लगी तो हसोंकी
पंति जीत गईं क्योंकि उस प्रियतमके विद्योहमें दुबले अग्रो-
वाली नवेलीने जैसे ही हसोंकी दनमुन सुना तो वह जकड़ सी
गई अतः उससे सुन्दर चालकी धारा भी नहीं की जा सकी
॥ २९ ॥ जान पड़ता है कामदेवके पाँच पलोंके बाणोंकी धार
टूट हो गई है अतः वह उन्हें छोड़कर धारण (जलनय) बाणसे
उस मोली-भाळी नवेलीको बंध रहा है, नहीं तो उसके पीले
हुए नेत्ररूपी नालीसे निकलता हुआ जल पेटकी सिड्ढन-रूपी
बनतक पहुँचकर नदीका रूप क्यों धारण कर लेता ॥ २७ ॥
दिसी मोली सुन्दरीने स्वल्पमें प्रियतमको धरणी देह धुले देखा
तो उसकी सारी देह रोमांचित हो उठी और वह धार-धार बद्धबदाने
लगी कि 'प्रिय ! मुझे मत धुयो।' उसकी यह दरा देखकर
उसकी सती प्रसन्न नहीं हुई परन्तु धार-धार चितित होकर

त्किल । मा वा वल्लभ संसृशेति सहसा शय्यं घन्ती
मुहुः सख्या नो हसिता सचिन्तमसकृत्संशोचिता
प्रत्युत ॥ ५८ ॥ यावत्प्रियतमसङ्गः प्रमदा प्रमदा
निश्चयतां तावत् । असति पुनर्वत तस्मिन्प्रवला ह्य-
लेति किञ्चिन्नम ॥ ५९ ॥ लतामूले लीनो हरिणपरि-
होने हिमकरः स्खलन्मुकाफारा गलति जलधारा
कुचलयात् । धुनोते बन्धूकं तिलकुसुमजन्मा द्वि पवने
गृहद्वारे पुरयं परिणमति कस्यापि कृतिनः ॥ ६० ॥
लिखति न गणयति रेखा निर्भरवाप्यान्धुधौतयण्ड
तटा । अर्वाधिदिवसावसानं मा भूदिति शङ्कित्वा बाला
॥ ६१ ॥ लीनानस्त्सरोरुहद्वेष्टेन्वेधुमेप कुसुमेपुः ।
भ्रमति द्वाग्धपुरन्तः सन्तापं दीपमादाय ॥ ६२ ॥
लीलावल्लभयनकुहरे पत्ररन्ध्राद्यकोरीचञ्चुस्तं
शशिकरणं वीथ्य मूच्छांमुपैति । लीलारामात्यकु-

हुली होने लगी (कि जागेपर अपने प्रियसे स्वप्नमें
मिलनेकी बातका स्मरण कर-करके न जाने इसकी क्या
दर्शा हो जाय) ॥ २८ ॥ जबतक सुन्दरी पतिके साथ रहती है
सभीतक वह मतवाली रहती है, पतिका विद्योह हो जानेपर
तो वह अथला (बिना बलवाली) हो जाती है, पर कौी
विचित्र माया है ॥ २९ ॥ कौी सुन्दरी हथेलीपर गाड़ रखे
आँखोंसे आँसू बहाती हुई देहलीपर बैठी है, उसके फों
साँसके वेगसे हिल रहे हैं । ऐसी अवस्थाका वर्णन कवि करता
है—लता (अनुवा) की जड़ (हथेली) पर बिना हरिय (अङ्ग)
का चन्द्रमा (मुख) विराजमान है, कमल (नेत्र) से मते
हुए मोतिपोंके समान जलधारा (आँसूकी धार) बह रही है
तथा तिल के फूल (नाक) का पवन जपाकुसुम (धार)
को हिला रहा है । जान पड़ता है किसी प्रययागताके द्वारा
उसके मुखका फल प्रवृत्त हो गया है ॥ ६० ॥ मनेकी
भौंति बहते हुए आँसुओंसे ढुके हुए गालोंवाली कौी नवेली
वियोगके दिनोंकी गिनती रखनेके लिये प्रतिदिन देखा ही
बनाती चलती है किन्तु उन्हें इस संकासे नहीं गिनती कि
देखाधीकी गिनती अर्वाधिके दिनोंसे कहीं अधिक न हो गई हो
॥ ६१ ॥ कमलनयनी वियोगिनीकी देहमें धिये हुए उसके प्राणोंके
द्वन्द्वके लिये कामदेव अथ सन्ताप-रूपी दीपक क्षेत्र उसकी रात्रे
भीतर वेगसे चकरार लगा रहा है ॥ ६२ ॥ लीलेके लिये बने हुए
लतामवनके भीतर अकोरीकी चोंचसे बची हुई और पत्तोंके बंधों
धुनकर होकर धाती हुई चन्द्रमाकी किरण देतकर जो बह

खरितात्का कथा सा विभेति स्यालापेभ्यश्चकितनयना
यत्सु ह्युक्तेमलेभ्यः ॥ ६३ ॥ यक्रो यां मृगनाभिपङ्कचरुचानं
खिन्नेय घञ्चे परं यस्यास्सान्द्रमु.स्यले निपतितं
भापयते चन्दनम् । अज्ञान्ययतिलालसा वहति या
क्लेरोन तस्यामपि न्यस्तशूक्रभरोऽपरः कथमहो
निर्क्षिणता वेद्यतः ॥ ६४ ॥ बल्लभोत्सङ्गसङ्गेन विना
हरिणचतुषः । राकाविभात्रीजानिर्विपज्जालाडु-
लोऽभवत् ॥ ६५ ॥ विवृद्धतापोपशमार्थमङ्गे न्यस्तं
यदिन्दीवरदाम तस्याः । मुक्तेषुषा पञ्चशरेण भाति
व्यापारितं धौतमिवास्तिपञ्चम् ॥ ६६ ॥ विध्रम्य विध्रम्य
यनद्रुमाणां द्यायासु तन्वी विचचार काचित् । तनूत्
रीयेण करोद्धृतेन निगारयन्ती शशिनो मयूखान् ॥ ६७ ॥
विश्रान्तो दिवसः प्रपञ्चितरतैर्वाचालितः फोकिलैः
सख्यस्सम्प्रति निर्भयाऽस्मि जहत प्राणेषु मे संशयम् ।
इत्यन्ते विषसस्य इन्त विगतत्रासामिवाभाषिषी

ज्योत्स्नाकैर्यमैरयो नयति तां मोहं प्रदोषो हृतः ॥ ६८ ॥
विषयविधुरा दृष्टिः श्वासानिलाश्लपिताधरास्तुरपि
भृशं म्लाना लुनेज पल्लवमञ्जरी । अपि च लज्जितापाको
द्वैधाभिरामथदावदः स्फुरति कुचयोर्मूले गाण्डे च
कश्चन पाण्डिमा ॥ ६९ ॥ शोणामद्वे कथमपि सखीमा-
थनामिर्विधाय स्वैरं रत्यां सरसिजदशा गातुमारभ्य-
मेव । तन्नीवुद्ध्या किमपि विरहद्वीणदीनाङ्गवल्लीमेना-
मेव स्पृशति बहुशो मूच्युना चित्रमेतत् ॥ ७० ॥
व्यजनमदतः श्वासश्रेणोमिमासुपचित्रते मलयजरसो
धारात्राप्यं प्रपञ्चयितुं प्रभुः । कुसुमशयनं फामाखाणां
करोति सहायतां द्विगुणगरिमा कामोन्मादः कथं नु
विरैस्वति ॥ ७१ ॥ शय्या पुष्पमयी परागमयतामङ्गा-
र्षणादश्रुते ताम्यन्त्यन्तिकतालवृन्तनलिनीपत्राणि दाहो-
ष्मणा । न्यस्तञ्च स्तनमण्डले मलयजं शोणान्तरं
दृश्यते कथादाशु भवन्ति फेनिलमुखा भूपामृणाला-

नेत्रोंवाली विरहिणी भूर्चिद्रुत हो जाती है वह यदि कोयलकी
कूकसे भरे खेलके उपवनको देखकर बरे तो ठीक ही है पर वह
तो कोयलकी कूकके समान मनोहर अपनी योर्लोककसे बरी
जा रही है ॥ ६३ ॥ जो वियोगिनी मुखपर कन्दूरीकी चित्रकारी
धारण करनेतकमें थकी जा रही है, जिसकी छातीपर चन्दनका लेप
भी भारी जान पड़ता है और जो अपने आलस-भरे अङ्गोंको भी
कटसे दौ रही है उसपर बहाने यह शोकका भार कहाँसे
ला पड़का है । जान पड़ता है ब्रह्मा इन विरहिणियोंको
भारनेके लिये हाथमें नङ्गी तलवार लिए खड़ा है ॥ ६४ ॥
प्रियतमकी गोदसे विधुडी हुई मृगनयनी नवेलियोंको पूर्णिमाका
चन्द्रमा विप्ली लपटाँसे विरा सा जान पड़ता है ॥ ६५ ॥
वियोगके कारण थड़े हुए तापको दूर करनेके लिये उस
विरहिणीको जो नीले कमलकी माला पहना दी गई है वह ऐसी
दिलसाई दे रही है मानो कामदेवने उसपर नङ्गी तलवार चला
दी हो ॥ ६६ ॥ काईं दुबले अङ्गोंवाली विरहिणी चूलोंकी दायामें
रक रककर चलती हुई धनमें घूम रही है और हाथसे आँचल
उठा उठाकर चन्द्रमाकी आती हुई किरणें बचा रही है ॥ ६७ ॥
'हे सखियो ! जो दिन कोयलोंके स्वर्णमें बहुत बोल रहा था
वह अब धीयाकी मङ्गारोंसे विश्राम कर रहा है । अतः अथ
मुझे कोई बर नहीं है, तुम मेरे मरनेकी सझा छोड़ दो' । दिन
बलते समय विदर होकर कोई विरहिणी पैसा कर ही रही थी कि
सिखी हुई चोदनी और कोईवाला सायफाय बसे फिर

मूर्च्छित करने लगा ॥ ६८ ॥ उस वियोगिनीकी आँसू
सम्भोगके लिये तरस सी रही हैं, सँसके पवनसे थोड़ा फीका पद
रहा है, देह कनी हुई है कोमल पत्तोंवाली कुनगीकी भाँति सुरभा
रही है, लज्जली (हरफारेबधी) के पके और सोड़े हुए पलकी
भाँति स्तनोंके नीचेका भाग और कपोल उनले रहके हो रहे
हैं ॥ ६९ ॥ सखियोंके प्रार्थना करनेपर किसी किसी प्रकार उस
विरहिणी कमलनयनीने बीया गोदमें रखी और प्रेमपूर्वक
गाता भी आरम्भ किया किन्तु अचरन्की बात तो यह है कि
मूर्च्छना (स्वरों के उतार चढाव, मूर्च्छा) उस विरहिणीको
ही दुबली पतली होनेके कारण बीया समझकर धार-धार दूने
लगी (अर्थात् वह गाते गाते बार-बार मूर्च्छित होने लगी है)
॥ ७० ॥ जब पट्टेकी बयासे भी इस विरहिणीकी आँसू
फूलने लगती है, चन्दनके रससे आँसू और अधिक बहने लगते
हैं और निद्रीनेमें बिड़े फूल कामदेवके बाण जैसे सुमने लगते हैं
तब इसका दुगुना बढ़ा हुआ कामका वेग कैसे शान्त हो सकता
है ॥ ७१ ॥ इस विरहिणीकी देहसे दू जानेके कारण चूलोंका
विप्लीन (सूखकर) चूर चूर हो गया, उसके तापसे पासमें
हुलाया जाता हुआ कमलिनिके पत्तोंका पट्टा सुरभा गया,
स्तनोंपर लगाया हुआ चन्दनका लेप पटा जा रहा है और
देहपर सजाए हुए कमलनारकके गहने येमे उबके जा रहे हैं कि
उनपर भाग छाने क्या गई है ॥ ७२ ॥ इन विरहिणीकी देह-
रूपी सिखी हुई अगदीय कामकीय मालाके कोमल किच्छर

कुराः ॥ ७२ ॥ शशभृच्चवपल्लवे शशाङ्गे मकरन्दसृति-
चारिणी सरोजे । अत्रि चास्य मरुद्गणाभ्रसृते तिलकु-
सुमं स्फुटचम्पकौघदाद्भि ॥ ७३ ॥ श्रीधं भूमिगृहे
गृहाण वसति प्राणैः किमु क्रीडसि प्रातां पश्यसि
किं न दैवदृष्टिकां ज्योत्स्नां गवाक्षोदरे । इत्थं मन्मथ-
तीव्रसञ्ज्वरयुषो गेहेषु यामभ्रुवामुद्गच्छन्ति कुरङ्गला-
ञ्जुनभयाहीनाः सखीनां गिरः ॥ ७४ ॥ श्रुत्वा वहिः
कचन कञ्चन काऽपि शब्दं मत्वा नियतैर्नमहो दयि-
तस्य मुग्धा । तत्पादुदौघ च नियम्य च पार्श्वेशब्दान्
धत्ते ततः श्रुतिमनल्पकुत्सहलाक्षी ॥ ७५ ॥ श्लिष्यति
पश्यति सुष्यति पुनः पुनः पुलकमुकुलितैरङ्गैः । प्रियस-
ङ्गाय स्फुरितां वियोगिनीं वामबाहुलताम् ॥ ७६ ॥
सन्ध्यां कोपं तत उपगतां हन्त रात्रिं कृपार्थी चन्द्रं
चक्रं धिरहविधुरा तारकापङ्क्तिमुग्राम् । तूष्णीरान्तर्ग-
तरातति प्रज्वलत्पुद्गभागां सन्नद्धाखं कलयति पुनर्म-

न्मथं रात्सेन्द्रम् ॥ ७७ ॥ सा तोरयान्तिकमुपेत्य
दिशोऽवलोक्य निःश्वस्य दीर्घमुपधाय करं कपोते ।
मत्वा च तं पुरत एव ससम्भ्रमत्वाज्जात्वाऽऽस मोह-
लिखितेव न किं किमासीत् ॥ ७८ ॥ सोन्मेषो न सखी-
जनः परिजनः प्रागल्भ्यभूमिर्न वा वात्सल्याद्द्विभा-
वितस्फुटवयोऽवस्थाविशेषो गुरुः । आयाता नवम-
ल्लिकापरिमलकुराः शरद्भासराः कस्याख्यातु नित-
म्बिनी पितृगृहावस्थानदुःस्थं जनुः ॥ ७९ ॥ स्तनन्य-
स्तोशीरं प्रशियिलमृणालैकचलयं प्रियायाः सावापं
तदपि कमनीयं वपुरिदम् । समस्तापः कामं मनसिज-
निदाघप्रसरयोर्न तु ग्रीष्मस्यैवं सुभगमपराजं युषतिषु
॥ ८० ॥ स्थगयति नयमानं छुन्नना धूमधूत्रं प्रथयति
च नितान्तं काश्यंमङ्गप्रकृत्या । अहह विरहबाधां
छादयत्यन्वुजाक्षी तदपि वदति साक्षी पाण्डरो गण्ड-
देशः ॥ ८१ ॥ स्थितमुरसि विश्रालं पथिनीपत्रमेतत्

(ह्येली) में चन्द्रमा (सँह) रक्ता हुआ है, उस चन्द्रमा
(सँह) में दो कमल (नेत्र) टँके हैं जिनमेंसे फूलका रसरूपी
जल (श्रौच) बह रहा है तथा तिलका फूल (नाक)
मरुद्गणों (पवन, देवता) को अन्म दे रहा है ॥ ७३ ॥
परके भीतर तिरछी चितवनवाली सत्रियों किसी विरहिणीको
कामञ्जरेके वेगसे भरी हुई तथा चन्द्रमाके भयसे दीन
बोलीमें बह रही हैं कि 'धरे, तुम शीघ्र ही धरती-रजोह
(तद्गगनेमें) में जाकर छिप रही, प्राणोंसे क्यों खेल रही हो ?
क्या मरोगेसे धाती हुई इस धरमागी चोंदनीको नहीं देख रही
हो ? ' ॥ ७४ ॥ जैसे ही किसी विरहिणीको बाहर कहीं कोई घाट
खगी हो उस भोलोने समझ लिया कि प्रियतम या गए हैं ।
अतः, वह पल्लवसे उठकर आसपासका फोंलाहल शान्त करके
कुन्नुहल-भरे नेत्रोंसे बाहर ही कान लगाए बैठे ही ॥ ७५ ॥
कोई विरहिणी प्रियशक्तके समागमके लिये फटकती हुई
धरती पाईं मुजाको गले खगती है, उसे देखती है और
गदगद होकर पुलकित होती हुई बार-बार चमती है ॥ ७६ ॥
द्विती विरहिणीने कामदेवको देखे बर-शरणांसे सजे हुए
राजमारागके रूपमें देखा जिसका सबसे पहले सन्ध्यारूपी
बोरा (ग्यान) चमका, जिससे रात्रिरूपी तलवार निकल
आई, जो चन्द्रमारूपी चक्र धारण किए हुए है तथा जिसके
गुप्तीर (तरङ्ग) में शम्भे बाघोंकी पूँछें ही तारोंके रूपमें
चमक रही हैं ॥ ७७ ॥ यह विरहिणी प्रियसे मिलनेकी आशासे

धरके द्वारतक गई, उसने वहाँ चारों ओर दृष्टि दीर्घ की
लम्बी साँस खींचकर माथेपर हाथ रख लिया । फिर वषाटमें
उसे लगा मानो प्रियतम सामने खड़े हों और फिर वषाट
दूर हुई तो (अथवा) दशा देखकर) वह मोहके काय छ
रह गई । इस प्रकार उसकी कथा-कथा दशा नहीं हुई ॥ ८० ॥
पिताके घरमें पढ़ी हुई वह भारी नितम्बोंवाली नवेली बच्चे
दुःप्रका वर्णन किससे करे ? क्योंकि न तो वहाँ नयनोंका सङ्केत
समझनेवाली सखियों ही हैं, न अत्यन्त डीठ सेवक-सिर्मा
ही हैं, और न यहाँको प्यारके कारण उसकी चतुरी बचपना
ही बोध है तिसपर नई मल्लिकाके परागसे भरे हुए शरद् ऋतु
कठोर दिन भी सिरपर था पहुँचे हैं ॥ ७९ ॥ उस विरहिणीके
स्तनोपर लगा हुआ शरीर (रस) का लीप सूज गया है और
हाथपर पहनाया हुआ मृणालका कङ्कन हीका पटू तार
है किन्तु इस प्रकार कट्टमें पड़ी होनेपर भी उसकी देह सुगर
दिग्गम है पढ़ रही है । यद्यपि गर्माँकी ऋतु और कामदेवका तन
दोनों बराबर ही होते हैं फिर भी गर्माँकी ऋतु नवेलियोंपर देखी
घोट नहीं करती जैसी कामदेवका ताप करता है ॥ ८० ॥ यद्यपि वा
कमलनयनी विरहिणी विद्योहके कटसे निकलते हुए कौण्डिन्यके
दिगानेके लिये पुच्छों जगनेका बहाना करती है तथा पुच्छों
होते हुए चक्रोंके लिये धरने शरीरकी प्रकृतिको दोष देती
है, फिर भी उसके उजले-उजले गाल साँचोंके समान तितने
सम्पायका गान करा ही देखे हैं ॥ ८१ ॥ उस विरहिणीके इतने

कथयति न तयान्तर्मन्मयोत्थामवस्थाम् । अतिशय-
परितापम्लापिताभ्यां यथाऽस्याः स्तनयुगपरिणाहं
मण्डलाभ्यां व्रथीति ॥ ८२ ॥ स्विस्रौ गण्डी स्फुरित-
मधरं स्पन्दितं चञ्चुकाग्रं सञ्जी वाह मखणमुकुले
लोचने भ्रूञ्जलैव । अद्वाद्दद्वाद्दजनि पुलकश्रेणिरू
सकम्पी किं च श्वासास्तरलितदुकूलाञ्जलाश्चञ्ज-
लास्याः ॥ ८३ ॥

वियोगिनीविश्रलापा — अजनि प्रतिदिनमेपा कर्दम-
शेषा मदङ्गसङ्गेन । प्रतिनिशमपूरि पन्पा दक्षिणसम्पा-
तिभिः सलिलैः ॥ १ ॥ अनलस्तम्भनविद्यां सुभग
भवाद्ययतमेव जानाति । मन्मथशराश्रितसे हृदि मे
कथमन्यथा वससि ॥ २ ॥ अन्तर्गता मदनयक्षिण्शिष्या-
घली या सा बाधते किमिह चन्दनचर्चितेन । यः
कुम्भकारभयनोपरि पङ्कलेपस्तापाय केवलमसौ न च
तापशान्त्यै ॥ ३ ॥ अथलाघनपर एको सुवनचितयेऽपि

रवने कमलिनीके बड़े-बड़े पत्ते उसके हृदयकी कामपीठाको
उत्तना नहीं बता रहे हैं जितना कि अत्यधिक तापसे मुरम्बाप
हुए इसके दोनों स्तनोंका घेरा बता रहा है ॥ ८२ ॥ उस
चञ्चल नयनवाली वियोगिनीके गाल परसनेसे भीगे हैं,
श्रोत कौंप रहे हैं, स्तनकी छुपिठ्यौं पङ्क रही हैं, सुजाएँ
कीली-कीली हैं, श्राँतें चिकनी तथा सिन्दुबी सी हैं, भीँ
चञ्चल हैं मत्थेक अङ्गमें रोमाञ्च हो रहा है, जाँपें कौंप रही
हैं तथा उसकी साँस श्राँचलको हिला रही है ॥ ८३ ॥

विरहिरिष्यौका विलापः यह पन्पा-सरोवर दिनके
समय मेरे अङ्गसे छूते ही इतना सूख जाता है कि उसमें
कीचद भर पच रहता है और रातके समय मेराँसे गिरे
श्राँतुघाँसे प्रति दिन प्रातःकालतक भर जाता है ॥ १ ॥
हे सुन्दर प्रियतम ! तुम निरवय ही कोई आग बाँधनेकी
विधा जानते हो, नहीं तो कामदेवके बापोंकी आगमे तपे
हुए मेरे हृदयमें आकर तुम कैसे निवास करते ॥ २ ॥ हृदयमें
जो कामाग्निकी लपटें उठ रही हैं वे क्या स्तनोंपर चन्दन
खगानेसे शान्त हो सकती हैं ? इन्द्रादिके श्राँवेपर जो
मिठी लीपी जाती है उससे उसके भीतरका ताप बढ़ता
ही है, घटता नहीं ॥ ३ ॥ हम अबलाश्रीकी रचा करनेवाला
कोई एक भी स्वामी यदि तीनों लोकोंमें होता तो अमृतके
भयदार बने हुए चन्द्रमा-सैसी श्रेष्ठ वस्तु भी हमें बसों अप्रिय
खगुली ॥ ४ ॥ जो तो धवरा रहा है, नींद था नहीं रही

चेतदा भर्ता । कथमन्यथा सुधाकरचन्दनमुख्याप्रि-
यत्यं न्यात् ॥ ४ ॥ अरतिरियमुपैति नापि निद्रा
गणयति तस्य शुशान्मनो न शोपान् । विगलति रजनी
न सङ्गमाशा प्रजति तनुस्तनुनां न चानुरागः ॥ ५ ॥
अथचिद्विचसः प्राप्तश्चायं तनोविरहस्य वा रविरयमु-
पैत्यस्तं सप्यो ममापि च जीवितम् । तद्वलमफलेरा-
शावन्यैः प्रसीद नमोऽस्तु ते हृदय सहसा पाकोत्पीडे
विडम्बय दाडिमम् ॥ ६ ॥ अहमिह स्थितवत्यपि
तायकी त्वमपि तत्र वसन्नपि मामकः । न तनुसङ्गम
पय सुसङ्गमो हृदयमङ्गम पय सुसङ्गमः ॥ ७ ॥ आदी
हालाहलहुतमुजा दचहस्तावलम्बो वाल्ये शम्भोर्निदि-
लमहसा बद्धमैत्रोनिरूढः । प्राढो राहोरपि मुखयिपे-
णान्तरङ्गीकृतो यः सोऽयं चन्द्रन्तपति किरणैर्मामिति
प्रातमेतत् ॥ ८ ॥ आयाता मधुधामिनी यदि पुनर्ना
यात पच प्रभुः प्राणा यान्तु विभावसौ यदि पुनर्जन्म-

है, मन प्रियतमके गुणोंकी ही सोचता रहता है, दुर्गुणोंको
नहीं, रात बीती जा रही है, मिलनेकी कोई आशा नहीं
दिखाई देनी तथा शरीर भी दुःखला हुआ जा रहा है किन्तु
इस विद्वोहसे प्रेममें तनिक भी कमी नहीं आ रही है ॥ ५ ॥
हे सखियाँ ! प्रियतमके विरहका तथा मेरे शरीरका अन्त
था गया है । यह सूर्य तथा मेरा जीवन दानों अन् अस्त
होना चाहते हैं । अतः, हे हृदय ! व्यथेकी निष्कल आशाएँ
करनेसे क्या लाभ है ! मैं तुम्हें प्रणाम करती हूँ, प्रसन्न
हो जाओ और अब सहसा पककर फट हुए अनारकी बरानरी
कर लो अघाँप फट जाओ ॥ ६ ॥ हे प्रियतम ! यहाँ रहती
हुई भी मैं आपकी हूँ और मुझसे दूर रहते हुए भी आप
मेरे हैं । हम दोनोंके शरीरका समागम होना समागम नहीं
है, यथार्थमें हृदयका समागम ही समागम है ॥ ७ ॥ जो
चन्द्रमा जन्मके समय विपके मेल जालमें था, फिर जिससे
वचनमें शङ्कके भाषेकी आगमे मिश्रता हो गई और
युवावस्थामें जिसका राहुके मुँहके त्रिपमे संयोग हा गया
वह यदि अपनी किरणोंसे मुझे सन्तस करता हो तो ठीक
ही है ॥ ८ ॥ वसन्त फलतुकी रात्रि तो आ गई पर प्रायनाथ
नहीं आए, पृथी स्थितिमें यदि मेरे प्राण अग्निमें जलन लगें
तो मैं आगले जन्मके लिये यह प्रार्थना करती हूँ कि वैरिन
कोयलको फँसानेके लिये मुझे बहैलियुका जन्म मिले,
चन्द्रमाको प्रसनेके लिये मैं राहु बूँ, कामदेवका नाश करनेके

प्रहं प्रार्थये । व्याधः कोकिलबन्धने द्विमकरध्वंसे च
 राहुप्रहः कन्दर्पं हरेनेत्रदीपितिरहं प्राशेभ्यरे भ्रममघः
 ॥ ६ ॥ श्रालि चालिशयता वलिरस्मै दीयतां वलिमुजे
 न कदापि । केवलं हि कलकण्ठशिशुनामेप पञ्च कुश
 लेपु निदानम् ॥१०॥ इदानीं तीव्राभिदंहेन इव भाभिः
 परिवृतो ममाश्रयं सूर्यः किमु सखि रजन्यामुदयति ।
 अयं मुग्धे चन्द्रः किमिति मयि तापं प्रकटयत्यना
 धरानं बाले किमिय विपरीतं न भवति ॥ ११ ॥ एतानि
 निःसहस्रतनोरसमञ्जसानि शून्यं मनः पिशुनयन्ति गवा-
 गतानि । एते च तीरतरवः प्रथयन्ति तापमालम्बितो-
 भिक्ततरुगलापितेः प्रयाहोः ॥ १२ ॥ कति न सन्ति
 जना जगतीतले तदपि तद्विरहाकुलितं मनः । कति
 न सन्ति निशाकरतारकाः कमलिनी मलिनी रविणा
 यिना ॥ १३ ॥ कलयति मम वेतस्तत्पद्मद्वारकरुपं
 ज्वलयति मम गात्रं चन्दनं चन्द्रकक्ष । तिरयति मम

नेत्रे मोहजन्मान्धकारो विकृतयदुविकारं भ्रमयो मां
 हुनोति ॥ १४ ॥ कालं पुरा गरलमभ्युनिषेददृश्या-
 द्येभ्यनुनाम चवलं विपमभ्युदेति । अघादिं स
 गिरिशो यदि हन्त हन्यात्कार्ण्यं स्वकण्ठनिहितं
 सखि मन्द्रयञ्च ॥१५॥ किं ते न सन्ति गिरयशिशुपु
 येषामुत्सङ्गलोलतडितो विह्वरन्ति मेघाः । किं तस्य
 वर्त्मनि न सन्ति वनानि तानि प्रस्थानसाहस्ररसैकं
 परायणस्य ॥ १६ ॥ क्षोणीभूत्कटकप्रयाणसमये प्रेमा-
 कुला प्रेयसी हस्तम्यस्तविशुद्धतण्डलकण्ठान दार्ढ्यं
 शिरस्यागत । संस्वेदाद्विरहाभिलाकरूपे जातं
 च पकोदनं तं दृष्ट्वा गुह्यसन्निधौ हृतवती गीतरुनं
 लज्जया ॥ १७ ॥ गतोऽस्तं धर्मोऽर्जुन सहचरीनीडम-
 धुना सुखं सुप्या भ्रातः स्वजनचरितं वायस हृतम् ।
 मयि स्नेहादाप्रस्थसितनयनानां गतघृणो वदन्त्या
 यो यातस्त्वयि स विलपत्येप्यति कथम् ॥ १८ ॥

लिये शङ्करजीके तीसरे नेत्रकी घ्राग बर्नू तथा प्राणनाथको
 भी वियोगके तापका अनुभव करानेके लिये कामदेव बर्नू
 ॥ ३ ॥ दे सखी ! इस कीपकी बलि (भोजन) देनेकी मूर्खता
 वभी न कर बैठना क्योंकि दूक-दूककर सतानेवाली कीयलके
 पशोकी यही पाल-पोसकर बड़ा करता है ॥ १० ॥ किसी
 वियोगिनी और उसकी सखीमें वातें हो रही हैं । विरहिणी :
 दे सखी ! मुझे यह अचरज हो रहा है कि इस समय रातमें
 चागकी बड़ी बड़ी लपटें लेकर यह सूर्यं बयां निकला आ रहा है ?
 सखी ! अरौ पगली ! यह तो चन्द्रमा है । विरहिणीः
 वो यह मुझे तपा क्यों रहा है ? सखी : अरी भोजी ! अनाथों
 (विरहिणियों, असहायों) के लिये सभी वस्तुएँ उल्टा
 काम करती हैं ॥ ११ ॥ मेरी देह मेरे लिये बोझ बन रही
 है, स्वयं रूप-वपुर् घूमने-घामनेसे लोग मेरे मनको बिना
 सपपम (उड़ा हुआ) समझते हैं तथा ये तीरके लटके
 हुए हुए अपने नये-नये किसलय गिरा गिराकर मेरे मनका
 सन्ताप और अधिक बढ़ा रहे हैं ॥ १२ ॥ यद्यपि संसारमें
 बहुलसे मनुष्य हैं फिर भी उस एक ही विषयतमके वियोगमें मेरा
 मन दुखी हो रहा है क्योंकि यद्यपि आकाशमें अनेक चन्द्रमा तथा
 तारे हैं फिर भी बमदिनी वो बिना सूर्यके ही दुखी रहती है
 ॥ १३ ॥ विद्वानां मुझे अज्ञानके समान लग रहा है, बन्दन
 तथा चन्द्रमा मेरा हृदय अजगत् बाव रहे हैं और मनमें धार्या
 हुआ अज्ञाने धर्मोंमें समाया आ रहा है । इस प्रकार अनेक

प्रकारके उपद्रव करके कामदेव मुझे सन्तप्त कर रहा है ॥११॥
 हे सखी ! बहुत समय पहले जो विप सगुह्यमें छिप दिपा
 गया था वही विप आज उजले-उजले चन्द्रमाके रूपमें सगुह्यमें
 निकल रहा है । हाय ! यदि शिवको इस चन्द्रमाके
 विपको खा दाखते तो उनके गलेका साँवलापन और मंता
 भय दोनों दूर हो जाते ॥ १२ ॥ अत्यन्त साहसपूर्वक परदेके
 लिये प्रस्थान करनेवाले मेरे मिथतमके मार्गमें क्या ऐसे परत
 या वन नहीं हैं जिसकी घोटियाँपर लपलपारी हुई चिन्तको
 भरे वादल उमड़ रहे हों ॥ १३ ॥ महाराज जब लेना सखि
 प्रस्थान करने लगे तो उनकी मिथतमा प्रेयसे व्याकुल होकर
 हाममें शुद्ध चावल (अद्यत) लेकर उनके मातकार
 तिलक करनेके लिये आई । किन्तु विरहसूत्री प्रसिके का
 और हाथोंमें निकले पसीनेसे उन चावलके दानोंको पकटा
 भात बने देकर बड़ीके सामने लावके कारण उलझे बेच
 आरती भर कर दी ॥ १० ॥ हे भाई कीप ! तुमने आत्मिक
 होनेके नाते मेरा बड़ा साथ दिया (मली-मौति भ्रमनाम
 सङ्घिनोके घोंसलेमें जाकर मुझसे सोचो, क्योंकि जब प्रेय
 मारे मेरे नेत्र धाँसुधोंसे टपटपा रहे थे और मैं तो रती
 उस समय भी जो (मिथतम) निद्रुर होकर चले गए, मैं
 दुन्दरे विह्वल-विह्वलकर रोने-चिन्तानेसे धैरे और आगे
 ॥ १८ ॥ विपके हुएकी जड़के समान चन्द्रमा बनकर था

गरलद्रुमकन्दमिन्दुविभ्यं कदण्णवारिजवारणो वसन्तः।
रजनो स्मरभूपतेः कृपाणी फरणीयं किमतः परं
विधातः ॥ १६ ॥ गुञ्जन्ति प्रतिगुञ्जमभ्युज्जलद्रोणेषु
शृङ्गाङ्गनाः कुञ्जत्पुष्परसानवीथिशिखरे कृजन्ति माय-
त्पिकाः। कामः काममयं करोति विशिखैर्हनुं मुहुर्दु-
र्दिनं का सा तन्मलयानिलस्य सखि मे भीतिस्त्वयो-
द्भाव्यते ॥ २० ॥ ज्वलतु गग्ने राशौ राजायज्जङ्कलः
शशी दृहतु मदनः किं वा मृत्योः परेण विधास्यति।
मम तु द्युतितः श्लाघ्यस्तातो जनन्यमलान्वया कुल
ममलिनं न त्वेषायं जनो न च जीधितम् ॥ २१ ॥
ज्योत्स्नां पिपेयुः कियतीं चक्रोराः किं नात्र धात्रा
करिणो नियुक्ताः। शोभ्रं यदेयंकरपूररोज जायेत चन्द्रः
प्रमया विहीनः ॥ २२ ॥ तरुणीनां कृते प्रेयान् यदि
स्याद्भयनत्रये। तदा प्रेयः परिष्वङ्गः केवलः सखि
नेतरः ॥ २३ ॥ दहनजा न पृथुर्दव्युर्ध्या विरहजैव

यथा यदि नेदशम्। दहनमायु विशन्ति फयं स्त्रियः
प्रियमपासुमुपासितुमुदुराः ॥ २४ ॥ दाक्षिण्यं मलया-
निलस्य विदितं शैत्यं मुधाटीचितेर्धाचामेय न गोचरे
मलयजस्यापि स्फुटं सौष्टवम्। विश्लेषे तव के न मे
परिचिताः प्राणेश तत्तत्कयाविष्णरे पुनरप्रमाणयति
मामव्याहृतेयं तनुः ॥ २५ ॥ दुर्वाराः स्मरमार्गणाः
प्रियतमो दूरे मनोऽन्युत्सुकं गाढं प्रेम नयं वयोऽसि-
कठिनाः प्राणाः कुलं निर्मलम्। स्त्रीत्वं येयंविरोधि
मन्मयसुदृढकालः कृतान्तोऽहमी नो सख्यश्चतुराः
कथं नु चिरहः सोढव्य इयं मया ॥ २६ ॥ निश्वासैस्सह
साम्प्रतं सखिगता वृद्धिं ध्रुवं रात्रयस्ताषं लोचन-
वारिणा विगलितं तत्प्राप्तनं मे सुराम्। प्राणाशा
तनुतामुपैति च मुहुर्नूनं तनुस्पर्द्धया कन्दर्पं परमेक
एव विजयी यातेऽत्र कान्ते स्थितः ॥ २७ ॥ पञ्चत्वं
तनुरेति मूतनिवहाः स्वाशैर्मिलन्तु ध्रुवं धातारं

है, कदण्णारूपी कमलकी नट करनेके लिये हाथीके समान बसन्त
था पहुँचा है तथा महाराज कामदेवकी बटारके समान यह रात
भी था पहुँची है। हे शशा! अब और तुम्हें क्या करना है ॥ १६ ॥
प्रत्येक गुञ्जमें कमलकी पंशुद्विपौर भौरियाँ गुञ्जार कर रही
हैं, सिधे हुए श्यामके वीरोंपर मतवाला कोकिल कूक रहा है
और कामदेव भी बड़े वेगमें बार-बार मुझे मारनेके लिये
अपने बाण बरसा रहा है। हे सखी! इतना सब दुःख जब
मैं भोग चुकी हूँ तब तुम मलयपर्वतके पवनका मुझे क्या दर
दिखा रही हो ॥ २० ॥ आकाशमें प्रत्येक रात्रिको मले ही यह पृथ्वी
चन्द्रमा जला करे तथा कामदेव भी अले ही मुझे जलाता रहे।
यह मुझे मार डालनेके लिये और कर ही क्या सकता है। मेरे
प्राणनाथ बर्दाई करने योग्य हैं, पिताजी भी प्रशंसाके योग्य
हैं, निर्मल वंशमें उत्पन्न हुई माता भी प्रशंसाके योग्य हैं
और मेरा वंश भी निर्मल तथा प्रशंसाके योग्य है, एक मैं
और मेरा जीवन ही प्रशंसाके योग्य नहीं है, अतः इनका
शत्रु हो जाना ही अच्छा है ॥ २१ ॥ ये पक्षी अथवा कितनी
चौदनी पिदंगे। ब्रह्मणे चौदनी पीनेके लिये हाथियोंको क्यों
नहीं मरदा दिया जिससे उनके रूँदमें भर भरकर पीनेसे
गौरु ही चन्द्रमाकी सारी चौदनी सूख जाती ॥ २२ ॥ हे सखी!
नन्दिश्योंका नियतम सीनों लोकोंमें कहीं भी हो पर ये केवल
उषोका आशिङ्गन करना चाहेंगे, दूसरेका नहीं ॥ २३ ॥
अग्निमें जलनेमें उतनी पीदा नहीं होती जिननी विरहके

तापमें जलनेसे होती है। यदि ऐसा न होता तो विरहके
तापको अस्वल्प जानकर पतिव्रता स्त्रियाँ अपने पतिपोंके
भर जानेपर उनसे मिलनेके लिये सुखपूर्वक आगमें क्यों झूठ
पढतीं ॥ २४ ॥ मलयपर्वतसे बड़े हुए पवनकी चतुराई
प्रसिद्ध है, चन्द्रमाकी टण्डक भी प्रसिद्ध है तथा चन्द्रकी
सुन्दरताका भी वर्णन नहीं किया जा सकता। इनमेंसे मैं
किते नहीं जानती। किन्तु हे प्राणनाथ! आपके विरहमें जन
इनकी बाल चलती है तो मेरी देह मेरे इस अशुभवको नहीं
मानती धर्याद इन सभी बलुध्रोंका मुझपर विपरीत प्रभाव
पढ़ने लगता है ॥ २५ ॥ कामके। बायोंको कोई रोक नहीं
सकता, प्राणनाथ दूर हैं, मन अत्यन्त बरसुक है, प्रेम बढ़
रहा है, अवस्था नहीं है, प्राण बड़े कठोर हैं, वंशमें कोई
कलह नहीं है, स्त्रियोंमें धीरज होता ही नहीं, वसन्तका समय
कामदेवको बढ़ानेवाला है, यमराज कभी चला नहीं कर सकते
तथा चतुर स्त्रियों भी पास नहीं हैं। अब ऐसी दशामें मैं यह
विरह सहूँ भी तो कैसे सहूँ ॥ २६ ॥ हे सखी! मेरे नियतमके
चले जानेपर इस समय मेरी लम्बी सौँतोंके छाय रातें भी
लम्बी हो चली हैं, आँसुओंके साय मेरा पहलेका सारा सुख भी
यह शाय और जीवनकी धारा भी शीघ्र हो गई। इस प्रकार
सब तो चले गए किन्तु मेरी देहके साय होइ करके यह एक
कामदेव ही सयको जीतकर यहाँ बटा रहा है ॥ २७ ॥ अब
मेरे शरीरका अन्त होनेवाला है। मेरे शरीरमें रहनेवाले पृथ्वी,

प्रणित्य हन्त शिरसा तत्रापि याचे धरम् । तद्वापीपु
पयस्तदीयमुकुन्दे ज्योतिस्त्वदीयाङ्गनव्योत्रि व्योम तदी-
यधर्मनि धरा तच्चालवृन्तेऽनिलः ॥ २८ ॥ पिकाली
घाचालीभवति बहुधाऽलीकवचने सृणाली व्यालोव
व्यथयतितरामङ्गमनिशम् । विपञ्चालाजालं सखि
किरति पीयूषकिरणो जगत्प्राणः प्राणानपहरति केयं
परिणतिः ॥ २९ ॥ प्रसर शिशिरामोदं मन्दं समीर
समीरय प्रकटय शशित्राशाः कामं मनोभव जन्मताम् ।
श्रयधिदिवसः पूर्णस्वरूपो विमुञ्चत तत्कथां हृदय-
मधुना किञ्चत्कर्तुं ममान्यदिहेच्छति ॥ ३० ॥ प्रिय-
सखि न तथा पटीरपट्टो न च नलिनीदलमास्तोऽपि
शीतः । श्रमयति मम देहदाहमन्तः सपदि कथा हि
यथा नरेन्द्रसूनोः ॥ ३१ ॥ प्रियाभलेपं विना हन्त
भारायन्तेऽस्योऽपि यत् । तत्कथं विरहे तस्य विन्देयं
स्वस्थतां सपि ॥ ३२ ॥ यकुलमालिकयापि मया न

सा तनुरभूयि तदन्तरभीरुणा । तदधुना विधिना
कृतमावधोर्गिरिदरीनगरीशतमन्तरम् ॥ ३३ ॥ वत
सखि क्रियदेतत्प्रथय वैरं स्मरस्य प्रियविरहकुरोऽस्मि-
न्नागिलोके तथा हि । उपवनसहकारोद्गासिभू-
ङ्गच्छलेन प्रतिविश्रवमनेनोद्दृङ्कितं कालकूटम् ॥ ३४ ॥
विभेमि सखि संघोष्य भ्रमरोभूतकीटकम् । यद्वा-
नादागते पुंस्त्वे तेन सार्धं रतिः कथम् ॥ ३५ ॥
भस्मीभूतः कुसुमविशिशः शम्भुनेत्राश्रिनाभूञ्जाला-
दायी तदनु मनसि प्राप्तजन्मा यभूव । भूयस्त्वस्मि-
न्विरहदहनेर्दाहितोऽसौ मयैवं कुञ्चोत्पन्नो व्यथयति
पुनर्मांमहो तन्न वेध ॥ ३६ ॥ मदकलकलानकास-
खुरपुटनिर्धूतधूलिसङ्काशम् । फेतकरजो नियायं सखि
यदि कार्यं मम प्राणैः ॥ ३७ ॥ मनोरोगस्तोत्रं निप
मिव विसर्पत्यविरतं प्रमाथी निर्धूमं ज्वलति विधुतः
पावक इव । हिनस्ति प्रत्यङ्गं ज्वर इव गरीयानर्ति

जल, अग्नि, वायु तथा आकाश अपने-अपने भागोंमें मिल जायें
इसकी मुझे घिन्ता नहीं है किन्तु मैं ईश्वरको मस्तक नवाकर
मप्याम करके यही परदान माँगती हूँ कि मेरे शरीरके जलका
भाग प्रियतमकी वायुधूमिं, अग्निका भाग प्रियतमके दर्पणमें,
आकाशका भाग प्रियतमके चाँगनके छुले स्थानमें, पृथ्वीका
भाग प्रियतमके मार्गमें तथा वायुका भाग प्रियतमके पहुँचमें
जा मिले ॥२८॥ अरी मूढ सोलनेवाली! यह कीयल बहुत बड़-
बड़ा रही है, यह कमलनाज नागिनके समान निरन्तर शरीरकी
कट दे रही है, हे सखी! चन्द्रमा भी अपनी लपटें बिखेरे डाल
रहा है तथा सारे संसारका प्राण (पवन) भी मेरे प्राण हर रहा
है । यह सब क्या हो रहा है ? ॥२९॥ हे शीतल और मुगन्धित
पवन! तुम धीरे-धीरे बहो । हे चन्द्रमा! तुम टिटाओंकी
बमकाओं तथा हे कामदेव! तुम भी जी खोलकर पैंठो क्योंकि
प्रियतमके आनेका दिन भी पीत गया । सखियो! अब तुम भी
इसकी बात न सुनो, मेरा मन तो अब बुद्ध और हो करनेकी
उत्तार हो चला है ॥३०॥ हे प्यारी सखी! पिते हुए चन्द्र
तथा कमलके पत्तोंके टपटे-टपटे पवनसे मेरे हृदयके भीतरका
समस्त उठना शक्य नहीं होता जितना उस राजपुत्रकी
पत्नीसे भीषण शान्त हो जाता है ॥३१॥ हाय सखी! जिस
प्रियतमके गंवे छगे—विना प्राय भी भारी हो रहे हैं
इसके बिदोहमें मैं कैसे स्वल्प रह सच्यी हूँ ॥ ३२ ॥
पडोने साम्राज्य करने समय कीधमें बाध पड़नेके वरते मैंने

अपने शरीरकी मौलसिरीकी मालसे भी नहीं सजाया किन्तु
आज दुर्भाग्यने हम दोनोंके बीचमें पर्वत, गुफाओं तथा
सैकड़ों नगरोंका अन्तर डाल दिया ॥ ३३ ॥ हे सखी! देनो
तो, प्रियतमके बिछोहमें तुलसे हुए प्रेमियोंके साथ कामदेव
कैसी शत्रुता करता है कि अमरार्द्धमें आमकी बीतोंपर ईशाने
हुए भीरोंके रूपमें उसने प्रत्येक वायुमें कालकूट विर बना
रक्ता है ॥३४॥ अग्नी कीड़ा गुणगुनाकर दूसरे कीर्तियों को
अग्नी बना लेते हैं । उनको यह किया देपकर कोई विरिणी
बह रही है—'हे सखी! कीर्तियों को अग्नी बनने देखकर मुझे
यह दर लग रहा है कि सदा प्रियतमका प्याज बरते बरते
यदि मैं भी पुरप बन गई तो उनके साथ मेरी कामकीर्ती
होगी!' ॥ ३५ ॥ सबको जलानेवाले कामदेवको पहले तो
शहरजीके सीसरे नेत्रकी अग्निने मरम कर डाला । इसके परन्त
उसने मनमें जगम लिखा किन्तु उस मनमें भी मैंने तितारो
प्राण जलाकर उसे जला डाला । अब फिर वह बहती उगल
होकर मुझे जलाए डाल रहा है, यह मेरी समझमें नहीं
था रहा है ॥ ३६ ॥ हे सखी! यदि तुम्हें मेरे प्राण बचने
हों तो परमारके मतवाले मैंसेके सुरसे उड़ी हुईं पृथके
समान इस कैवर्देके पूजका पराग अटपट धरतीसे दूर हारा
॥ ३७ ॥ मनका प्रेम भयंकर विषके समान सारे रीतों
फैला जा रहा है तथा शरीरको मप देनेवाला बरी प्रेम विर
पुर्णकी भागके समान भीतर ही भीतर मुझग रहा है ॥ ३८ ॥

इतो न मां व्रातुं ततः प्रभवति न चाम्या न भवती ॥ ३८ ॥ यदीयचलमालोक्य गतः प्रेयाभ्वियुज्यते । आलोकये कथं सख्यस्तस्य चन्द्रमसो मुखम् ॥ ३९ ॥ याः पश्यन्ति प्रियं स्वप्ने धन्यास्ताः सखि योपितः । अस्माकं तु गते कान्ते गता निद्रापि वैरिणी ॥ ४० ॥ यात्रामङ्गलसंविधानरचनाद्यत्रे सखीनां जने वाप्या- भ्यःपिहितेक्षणे गुरुजने तद्दत्सुहृन्मण्डले । प्राणेशस्य महीक्षणापितृदृशः कृच्छ्रादपि क्रामतः किं मोडाह- तया मया मुजलतापाशो न कस्तेऽपितः ॥ ४१ ॥ यास्यामीति समुद्यतस्य गदितं विश्रब्धमाकर्णितं गच्छन्दुरमुपेक्षितो मुहुर्लसौ व्यावृत्य तिष्ठन्नपि । तच्छून्ये पुनरागतास्मि भवने प्राणास्त एते दडाः सख्यस्तित्थन जीवितव्यसनिनो दम्मादहं रोदिमि ॥ ४२ ॥ रात्रिमें द्विषसायते हिमरुचिश्चण्डांगुलत्ता- यते तारापङ्क्तिरपि प्रदीप्तवज्रवायुद्विसुफुलिङ्गायते ।

धीरो दक्षिणामारुतोऽपि दहनज्वालावलीढायते हा हा चन्दनविन्दुरद्य जलवत्सञ्चारिरिह्वायते ॥ ४३ ॥ रिपु- रिय सखीसंवाप्तोऽयं शिखीय हिमानिलो विपमिय सुधारशिमर्थस्मिन्दुनोति मनोगते । हृदयमदये तस्मि- न्नेवं पुनर्वसते थलात्कुवलयदृशां वामः कामो निकाम- निरङ्कुशः ॥ ४४ ॥ रोलम्बाः परिपूरयन्तु हरितो मङ्गारकोलाहलैर्मन्दं मन्दपुपैतु चन्दनवनीजातो नम- स्वानपि । माचन्तः कलयन्तु चूतशिखरे केलोपिकाः पञ्चमं प्राणाः सत्यरमश्मसारकठिना गच्छन्तु गच्छ- न्त्यमी ॥ ४५ ॥ रोलम्बो मधुपः पिकस्तु परमृदन्धा- तुसारी मरुञ्जसाः केवलपद्मपातनिरताश्चन्द्रोऽपि दोषाकरः । चेतो नैति शुक्रस्तिथैकपठिताप्यायी पयोदो जडः कं बाह्रं प्रहियोमि हन्त कठिनस्यान्ताय कान्ताय मे ॥ ४६ ॥ वरमसौ दिवसो न पुननिशा ननु निशैव वरं न पुनर्दिनम् । उभयमेतदुपेत्ययवा क्षयं

भयंकर ज्वरके समान प्रत्येक अङ्गको मरोदे डाल रहा है । ऐसी स्थितिमें न तो पिता मेरी रक्षा कर सके, न मेरी माता और न भ्राता (सखी) ही ॥ ३८ ॥ यात्रामें चन्द्रमाका बल देखा जाता है । इसीपर कोई विरहिणी कह रही है कि 'हे सखियो ! जिस चन्द्रमाका बल देखकर मेरे प्रियतम मुझमें दूर हो गए, उस चन्द्रमाका-सुँह मैं कैसे देखूँ ! ' ॥ ३९ ॥ हे सखी ! वे सखियाँ घन्य हैं जो स्वप्नमें ही अपने प्रियतमका दर्शन पा लेती हैं पर प्रियतमके चले जानेपर तो मेरी वैरिन नाँद भी जाती रही ॥ ४० ॥ कोई विरहिणी इस प्रकार चिन्ता करती हुई पड़ता रही है कि 'प्रियतमको यात्राके समय जब सखियाँ महलाचार करनेमें लगी थीं, घरके बड़े-बूढ़ों तथा मित्रोंकी आँखें बँधी-बँधीसे डबडबा रही थीं और प्राणनाथ जब नीचे आँखें किए हुए बड़े कष्टसे निकले जा रहे थे उस समय मुझे लज्जा क्यों लगी, मैंने उनकी भुजाएँ लेकर अपने गलेमें क्यों नहीं डाल लीं ! ' ॥ ४१ ॥ हे सखियो ! जब प्रियतमने कहा कि 'मैं जाऊँगा' तो उनकी इस बातको मैंने सावधान होकर सुन लिया । जब वे दूर चले गए और बार-बार धूम-धूमकर रुके होने लगे तब भी मैंने कोई ध्यान नहीं दिया और प्रियतममे रहित मूने घरमें मैं फिर था गई और मेरे प्राण वैसे ही कठोर बने हुए हैं । इससे जान पड़ता है कि मैं जीना चाहती ही हूँ और यह मेरा रोना-धोना केवल दिखावा-मात्र है ॥ ४२ ॥ प्राणनाथके विषेहमें रात्रि मुझे दिनके समान गरम लगनी

है, चन्द्रमा लक्षों सूर्योंके समान तप रहा है, तारोंकी पाँतें जलते हुए बहवागलकी विनगारियाँ-सी जान पड़ती हैं और धीरे-धीरे चलनेवाला दक्षिणका पवन आगकी लपटोंसे विरा-स्ता जान पड़ता है । हाय ! हाय !! ये चन्दनकी सूँदें भी इस समय गरम जलके समान कष्टप्रद लग रही हैं ॥ ४३ ॥ जब प्रियतमका स्मरण आता है तब सखियाँ वैरिनके समान, पीतल धातु अग्निके समान तथा चन्द्रमा विषके समान जान पड़ता है और जब उस प्रियतमकी निद्रुताका स्मरण आता है तो कमलजनवनी नवेलियोंके हृदयपर यह मूँर कामदेव बिना शोक-टीकके बलपूर्वक आक्रमण करने लगता है ॥ ४४ ॥ सखे ही भीरे अपनी गुञ्जारसे दिशाओंको भर दें, चन्दनके वनसे निकला हुआ पवन धीरे-धीरे बहता रहे, मतवाला पालतू कोकिल आमके पृष्ठापर पन्नम स्वरसे कूटता रहे तथा पत्थरके समान कठोर थे मेरे प्राण भी शीघ्र निकल जायँ पर मुझे कोई चिन्ता नहीं ॥ ४५ ॥ भीता मधुप (बूँदोंका रस, मदिरा पीनेवाला) है, कोयल परमृत् (दूसरोंसे पाखी हुई, इसी नामवाली) है, पवन रघुनाथसारी (दोष दूँदनेवाला, सिद्धोंमें घुसने वाला) है, इस केवल पञ्चपाती (पञ्चपात करने वाले, पंशोंमें टपनेवाले) है, चन्द्रमा भी दोषाघर (दोषोंका घर, रात्रि बनानेवाले) है, विष खीटनेका नाम नहीं के मूँ है, सुग्गा केवल सीनी-पड़ी बातको ही दुरन्त है, बादल जड़ (मूर्ख, शीतल) है । हाय ! देखो

प्रियजनेन न यत्र समागमः ॥ ४७ ॥ धार्यन्तां मन्दमन्दं
मधुकरनिकरप्रौढभङ्गारधारः क्षिप्यन्तां यत्र कुत्र
प्रतिदिशमधुना भूरिभाराश्च हाराः । दह्यन्तां सर्वं
एते कमलदलयुताः किञ्च हा पुष्पभारास्तारा नारा-
चधारा विकिरति हृदये मन्मथोऽयं हताशः ॥ ४८ ॥
धिरमत धिरमत सख्यो नलिनीदलतालवृन्तपवनेन ।
हृदयगतोऽयं वकिर्भोटिति कदाचिज्ज्वलत्येव ॥ ४९ ॥
शयत्तत्त्वयिविधोयत्कुसुमवतीयूपवन्मिब्रवचान्यासन्भ-
जति प्रिये मृगदृशोऽथ प्रस्थिते तत्त्वणात् । गेहं तन्मु-
कुरं तदेव यलयं तद्वन्दनं सा निशा कारावत्करवाल-
वत्करकचयत्काकोलयत्कालवत् ॥ ५० ॥ शल्यानि मर्म-
ण्यपि फोलितानि गलन्त्ययस्कान्तमयेः प्रभावात् ।
हृदि प्रधिष्टस्य पुनर्जनस्य न लभ्यते निर्गमनाभ्युपायः
॥ ५१ ॥ श्रुत्या नामापि यस्य स्फुटघनपुलकं जायतेऽङ्गं
समन्ताद्गृह्णा यस्याननेन्दुं भवति वपुरिदं चन्द्रकान्ता-

नुकारि । तस्मिन्नागत्य कण्ठग्रहणसंभ्रमस्थायिनि
प्राणनाथे भग्ना मानस्य चिन्ता भवति मम पुनर्वज्र-
मय्याः कदा नु ॥ ५२ ॥ श्वासो वाष्पतरङ्गितस्सकरणा
मार्गे च नेत्रापणा केनेदं न क्लृप्तं प्रियस्य विदेहे कस्या-
सवो निर्गताः । सख्येवं यदि तेन नास्मि कथिता
पान्थः कथं प्रोपितः प्राणास्सम्प्रति मे कलङ्गमलिना-
स्तित्प्रन्तु वा यान्तु वा ॥ ५३ ॥ स्वप्नेनाच मया पुः-
प्रियतमो वृष्टश्चिरादागतो यत्नेनाप्यनुकूलयत्रपि मया
मानाद्य सम्भाषितः । पश्चाद्यावदुपेभि मन्मथपथा
रुढा तमालिङ्गितुं तावन्मे सहसैव मृत्युसदृशः प्रातः
प्रवोधोदयः ॥ ५४ ॥ स्वयमज्ञातदुःखो यः स हुनोति
न विस्मयः । त्वं स्मर प्राप्तदाहोऽपि दहसीति किमु-
च्यते ॥ ५५ ॥ हन्तालि सन्तापनिवृत्तयेऽस्याः किं
तालवृन्तं तरलीकरोपि । उच्चाप एपोऽन्तरदाहहेतुर्न-
श्रुवो न व्यजनापनोद्यः ॥ ५६ ॥ हारो नारोपितः कण्ठे

चित्तवाले प्रियतमके पास भेजूं भी वो कित्ते भेजूं ॥ ४६ ॥
कोई विरहिणी केचैन होकर सोच रही है 'किं दिनका
समय श्रच्छु है, रातका नहीं । नहीं-नहीं रात श्रच्छु है,
दिनका समय नहीं । नहीं, हन दोनोंका ही नाश हो जाय
क्योंकि प्रियका समागम न तो रातमें हो रहा है न दिनमें'
॥ ४७ ॥ ये भौंतीकी वेगमरी गुंजारें रोक दो, ये हार इस
समय भार हो रहे हैं अतः इन्हें यहाँ-वहाँ चारों ओर बिखेर
दो, कमलके पत्तोंके साथ फूलोंको भी जला दो क्योंकि यह
नीच कामदेव मेरे हृदयपर तारे-रूपी तीले बाण छोड़नेकी
तैयारीमें है । ये सब वरतुपें कामके साथी हैं अतः इनके न
रहनेपर यह मुझे नहीं देण पावेगा ॥ ४८ ॥ हे सखियो ! ठहरो,
ठहरो ! कमलके पत्तोंका पट्टा चखाना बन्द कर दो । ऐसा न हो
कि हृदयमें घुसी हुई प्राण पवन लगनेसे और भी वेगसे जल
उठे ॥ ४९ ॥ प्राणनाथके पास रहते समय जो घर भ्रान्तदायी
था, वही उनके चले जानेपर कारागार-सा हो रहा है । जो दर्पण
उस समय तत्वज्ञानके समान जान पड़ता था वह अब
तखवारके समान चमक रहा है । जो कङ्कन फूलके समान थे वे
अब धारके समान शुभ रहे हैं । जो चन्द्रन अश्रुतके समान
खगता था वह विप-न्ता खग रहा है और जो रात सतीके
समान जान पड़ती थी वही भ्रान मेरा काज बनी हुई है ॥ ५० ॥
देहके कोमल भागमें गदाई हुई कीलें भी खीहकान्तमणिके
प्रभावसे गड जाती हैं किन्तु हृदयमें घुने हुए मनुष्यको

निकालनेका कोई उपाय ही नहीं मिल रहा है ॥ ५१ ॥ जिस
प्रियतमका नाम-भात्र सुन लेनेपर शरीर सब थोरसे रोमाञ्जित
हो उठता है और जिसका चन्द्रमुख देखकर शरीर चन्द्रकान्त-
मणिके समान पिघलने लगता है वही प्रियतम जब धारक गलेमें
दाथ ढाळकर खड़ा हो जाता है उस समय सारा मान टूट जाता
है पर मुझ वज्रके हृदयवालीका ऐसा भाव्य कहीं कि यह सब
देखनेको मिले ! ॥ ५२ ॥ हे सखी ! यदि मेरे प्रियतमने मुझे
पेसी बात न कही होती कि 'प्रियके विद्योहमें किसकी सौति
असुओंके साथ नहीं भर उठती ? कौन चिन्तित होकर मार्गमें
असिं नहीं विद्याए रहती ? किन्तु आजतक क्या कोई शरी
है ? तो मैं उसे क्यों परदेस जाने देती ? अथ मेरे ये कड़वी
प्राण रहें या जायें मुझे चिन्ता नहीं ॥ ५३ ॥ भ्रान स्वप्नमें
मैंने देखा कि बहुत दिनोंके परचात प्रियतम धाप और मुझे
माननेका प्रयत्न करने लगे किन्तु मैं रुठी बैठी रही और मानके
कारण मैंने उनका तनिक भी स्वागत-सत्कार नहीं किया । फिर
कामदेवके वरामें होकर मैं जैसे ही उनके गले लगनेको बड़ी
वैते ही मृत्युके समान मेरी नोंद खुल गई ॥ ५४ ॥ जिने
पीदा न जानी हो वह यदि किसीको कट दे तो अघात नती
किन्तु हे कामदेव ! तुम तो एक बार जल चुके हो, फिर भी
मुझे जलाते हो ! अतः तुम्हें क्या कहा जाय ॥ ५५ ॥ हे
सखी ! इस विरहिणीका ताप दूर करनेके लिये पट्टा क्यों
डूबा रही हो ? इस झुकी हुई भीहवाली नवेलीकी जो दात

मया विरलेपभीरुणा । इदानीमन्तरे जाताः पर्वताः
सरितो द्रुमाः ॥ ५७ ॥

दूतीगुणा — मिथः वियुक्तं मिथुनं समानं माधुर्य-
सोह्लाससुभक्तिभिर्या । सा याग्मिता नर्म-कला-मनो-
व्रतासुक्षौशलैर्यौजतीह दूती ॥ १ ॥

स्वयदूती — स्फुरयसि कथमधरं स्वं लक्षयसि तसो
हि पान्थ रसलुब्धः । घनरससर इह लब्ध्वा कथमय-
गाहनसंस्तुष्याय नोत्सहसे ॥ १ ॥

दूतीं प्रति स्वावस्थाकथनम् — अकस्मादेकस्मिन्पथि
सखि मयासुं घनतटं वज्रन्या हृद्यो यो नवजलधरश्या-
मलतनुः । स दम्भङ्गया किं धाकुरुत नहि जाने तत
इदं मनो मे व्यालोलं कथंचन गृहकृत्ये न चलते ॥ १ ॥
अद्विसंवीक्षणं चचुरद्विसम्मोहनं मनः । अद्विसंस्पर्शनं
पाणिरथ मे किं करिष्यति ॥ २ ॥ कान्तः कृतान्तच-
रितः कुटिला तदम्बा वज्रापमानि वचनानि च दुर्ज-

नानाम् । प्रत्यङ्गमन्तरतनोः प्रहरन्ति वाणाः प्राणाः
पुनस्सखि यदिनं खलु प्रयान्ति ॥ ३ ॥ कालो मधुः
कुपित एष च पुष्पधन्वा धीरा वहन्ति रतिपेदहराः
समीरा । केलीयनोयमपि चञ्जुलकुञ्जमञ्जुदूरे पतिः
कथय किं करणीयमथ ॥ ४ ॥ किं स्वप्नः किमु जागरः
किमथवा रात्रिः किमासीदिनं मोहावस्थितया मया
न किमपि ज्ञातं किमेतत्सखि । यन्नामश्रवणादनन्तर-
मिदं वृत्तं तमेव प्रियञ्चोते तुर्लभमप्यपास्तसकलज्या-
पारमाशङ्कति ॥ ५ ॥ गते प्रेमावन्धे प्रणयवहुमानि
विगलिते निवृत्ते सद्भावे प्रणयिनि जने गञ्जुति पुरः ।
तदुद्रेच्योत्प्रेष्य प्रियसखि गतांस्तोश्च दिवसात्र जाने
को हेतुदंलति शतथा यत्र हृदयम् ॥ ६ ॥ तुष्यन्तु मे
द्विद्रमवाप्य श्रनचः करोतु मे शान्तिभरं गृहेश्वरः ।
मखिस्तु वल्लोहहमध्यभूपर्णं ममास्तु सौन्दर्यनिकेतनं
प्रियः ॥ ७ ॥ नि स्नेहः पतिरज्जिभता कचखया श्वश्रू-

भीतर ही भीतर जला रहा है यह पहुँचे दूर नहीं होगा, यह
तो नये प्रियतमके समागमसे दूर होगा ॥ २१ ॥ प्रियतमसे
सम्भोग करते समय उनसे अन्तर होनेके बरसे मैं गलेमें हार
भी नहीं पहना करती थी पर इस समय तो हम दोनोंके
बीचमें कितने ही पहान, नदियों तथा वृषोंका अन्तर हो
गया ॥ २७ ॥

दूतीके गुणः जो प्रेमी श्रीर प्रेमिका मधुरता, उब्लास
धीर परस्पर प्रेममें एक से होनेपर भी आपसमें वियुक्त जाते
हैं उन्हे अपनी नीठी नीठी बातें, चटक मटक, नग्नता तथा
पतुरतासे जो मिला देती है, वही सखी दूती है ॥ १ ॥

स्वयं दूतीका काम करनेवालीः हे रसीले राही !
उस सन्तस (प्यासे, कामके तापसे तपे हुए) दिखाई दे रहे
हो अतः अपनी ओठ क्यों फड़कड़ा रहे हो ? यहाँ अत्यन्त
त्वादृष्ट रस (जल) का भयदार (तालाप, मुझे) पाकर
भी उसमें क्यों नहीं डुबकी लगा लेते (मेरा आनन्द क्यों
नहीं ले लेते) ! ॥ १ ॥

दूतीसे अपनी दशा कहनाः हे सखी ! इस वनके
गसले जय मैं जा रही थी उस समय संयोगसे जलभरे मेथके
पमान सौंके रज्जका एक छेला मुझे दिखाई पड़ा, उसने
अपनी चितवनसे क्या क्या किया, यह तो मैं नहीं जानती
किन्तु उर्मा कामसे मेरा मन न जाने कैसा हो गया है कि धरके
किसी काममें मेरा मन ही नहीं लग रहा है ॥ १ ॥ उस प्रियतमके

न रहनेपर आज देखना है कि दूसरेको न देखनेकी प्रतिज्ञा
करनेवाली श्रॉलें, दूसरेंमें न लगनेवाला मन तथा दूसरेको न
छूनेवाले ये हाथ कैसे रहते हैं ॥ २ ॥ हे सखी ! प्रियतमका
व्यवहार यमराजके व्यवहारके समान कठोर है, उनकी माता
बड़े डेढ़े स्वभावकी है, छुट्टोंकी बातें वज्रके समान लगती हैं श्रीर
शरीरके प्रत्येक अङ्गपर कामदेव बाण चुभोए डाल रहा है, फिर
भी प्राण बाहर नहीं निकल पा रहे हैं ॥ ३ ॥ हे सखी ! वसन्तका
समय है, कामदेव मानो क्रोधित हो रहा है, सुरतकी यमवाट
दूर करनेवाला वायु मन्द-मन्द वह रहा है, यह क्षीयुक्ता
उपवन भी शेतकी भाड़ियोंसे सुन्दर दिखाई दे रहा है किन्तु
पतिदेव बहुत दूर हैं । कहे, ऐसी दशामें क्या करना चाहिए ?
॥ ४ ॥ हे सखी ! मैं ऐसी मोहमें पडी कि वही नहीं समक
पार्ई कि यह स्वप्न है या जागरण, रात है अथवा दिन, क्योंकि
जिसका नाम सुननेके पश्चात् मेरी यह दशा हो गई उस न
प्राप्त होनेवाले प्रियतमकी भी मेरा मन तब काम छोडकर
चाहने लगा है ॥ ५ ॥ हे सखी ! प्रेमके बन्धन जीटा
जानेपर, प्रेममे ही कठना समाप्त हो जानेपर तथा प्रेम हीका
समाप्त हो जानेपर जब प्रियतम सामनेसे चले गए तब उन
पीती बातोंके सोच सोचकर भी मेरी समझमें नहीं था रहा
है कि हृदय टूक टूक क्यों नहीं हो जाता ॥ ६ ॥ अबसर
पाकर भले ही मेरे शत्रु प्रसन्न हों पर मेरे सममें यही
अमिलापा रहती है कि वही सुन्दरताका भयदार प्रियतम

प्रियजनेन न यत्र समागमः ॥ ४७ ॥ धार्यन्तां मन्दमन्दं
मधुकरनिकरप्रौढभङ्गरधाराः क्षिप्यन्तां यत्र कुत्र
प्रतिदिशमधुना भूरिभाराश्च हाराः । दह्यन्तां सर्वं
एते कमलदलयुताः किञ्च हा पुष्पभारास्तार नारा-
चघारा यिकरिति हृदये मन्मथोऽयं हताशः ॥ ४८ ॥
धिरमत विरमत सख्यो नलिनीदलतालवृन्तपवनेन ।
हृदयगतोऽयं बह्निर्भोटिति कदाचिज्ज्वलत्येव ॥ ४९ ॥
शयत्तत्त्वयिविधोयत्कुसुमवत्पीयूषवन्मिञ्जवचान्यासम्भ-
जति प्रिये मृगदृशोऽथ स्थिष्यते तत्क्षणात् । गेहं तन्मु-
कुरं तदेव यलयं तदधन्दनं सा निशा कारावत्करवाल-
यत्करकचयत्काकोलवत्कालवत् ॥ ५० ॥ शल्यानि मर्म-
ण्यपि कोलितानि गलन्त्ययस्कान्तमण्येः प्रभावात् ।
हृदि प्रविष्टस्य पुनर्जनस्य न लभ्यते निर्गमनाभ्युपायः
॥ ५१ ॥ श्रुत्या नामापि यस्य स्फुटघनपुलकं जायतेऽङ्गं
समन्ताद्गृह्णा यस्याननेन्दुं भवति वपुरिदं चन्द्रकान्ता-

नुकारि । तस्मिन्नागत्य कण्ठग्रहणसुरभसस्यापिनि
प्राणनाथे भग्ना मानस्य चिन्ता भवति मम पुनर्वज्र-
मस्याः कदा नु ॥ ५२ ॥ श्वासो वाष्पतरङ्गितस्वरुपा
मार्गं च नेत्रापणा केनेदं न कृतं म्रियस्य विरहे कस्या-
सवो निर्गताः । सख्येवं यदि तेन नास्मि कथिता
पान्थः कथं प्रोपितः प्राणास्सम्प्रति मे कलङ्गमलिना-
स्तिष्ठन्तु वा यान्तु वा ॥ ५३ ॥ स्वप्नेनाथ मया पुर-
प्रियतमो हृष्टश्चिरादागतो यत्नेनाप्यनुकूलपक्षि मया
मानात्र सम्भाषितः । पश्चाद्यावदुपैमि मन्मथपया
रुढा तमालिक्षित्तु तावन्मे सहसैव मृत्युसदृशः प्रातः-
प्रवोषोदयः ॥ ५४ ॥ स्वयमज्ञातदुःखो यः स हुनोति
न विस्मयः । त्वं स्मर प्राप्तदाहोऽपि दहसीति किमु-
च्यते ॥ ५५ ॥ हन्तालि सन्तापनिवृत्तयेऽस्याः कि
तालवृन्तं तरलीकरोपि । उच्चाप एषोऽन्तरदाहहेतुर्वत्-
श्रुवो न व्यजनापनोद्यः ॥ ५६ ॥ हारो नारोपितः कण्ठे

चित्तवाले प्रियतमके पास भेजूं भी ठो किसे भेजूं ॥ ४६ ॥
कोई विरहिणी केचैन होकर सोच रही है 'कि दिनका
समय घण्ट्या है, रातका नहीं । नहीं-नहीं रात थरथरी है,
दिनका समय नहीं । नहीं, इन दोनोंका ही नाश हो जाय
क्योंकि प्रियका समागम न तो रातमें हो रहा है न दिनमें'
॥ ४७ ॥ ये भीरौकी बेगमरी गुंजारें रोक दो, ये हार इस
समय भार हो रहे हैं घतः इन्हें यहाँ-वहाँ चारों ओर बिखेर
दो, कमलके पत्तोंके साथ फूलोंको भी जला दो क्योंकि यह
बीच कामदेव मेरे हृदयपर तारे-रूपी तीखे बाण छोड़नेकी
तीवारीमें है । ये सब परतुपुं कामके साथी हैं घतः इनके न
रहनेपर यह मुझे नहीं देण पावेगा ॥ ४८ ॥ हे सखियो ! ठहरो,
ठहरो ! कमलके पत्तोंका पट्टा चखाना बन्द कर दो । ऐसा न हो
कि हृदयमें घुसी हुई आग पयन खगनेसे भीरी वेगसे जल
उठे ॥ ४९ ॥ प्राणनाथके पास रहते समय जो धर भ्रान्तवायी
था, वही उनके चले जानेपर कारागार-सा हो रहा है । जो दर्पण
उस समय तत्त्वज्ञानके समान जान पड़ता था यह अब
तखवारके समान चमक रहा है । जो कङ्कन फूलके समान थे वे
अब धारके समान लुभ रहे हैं । जो चन्दन अणुलके समान
खगता था वह विष-सा खग रहा है और जो रात सपत्तोंके
समान जान पड़ती थी वही आज मेरा काज बनी हुई है ॥ ५० ॥
देरके कामदेव भागमें गढ़ाई हुई बीछें भी औरकान्तमणिके
प्रभावसे गह्र जानी है किन्तु हृदयमें पुने हुए मनुष्यको

निकालनेका कोई उपाय ही नहीं मिल रहा है ॥ ५१ ॥ जिस
प्रियतमका नाम-मात्र सुन लेनेपर शरीर सब धोरसे रोमाञ्जित
हो उठता है और जिसका चन्द्रमुख देखकर शरीर चन्द्रकान्त-
मणिके समान पिचलने लगता है वही प्रियतम जब धाकर गठमें
हाथ डालकर खड़ा हो जाता है उस समय सारा मान दूट जाता
है पर मुझ वज्रके हृदयवालीका ऐसा भाग्य कहीं कि यह सब
देखनेको मिले ! ॥ ५२ ॥ हे सखी ! यदि मेरे प्रियतमने मुझे
पेसी बात न कही होती कि 'प्रियके विद्योहमें किसी सति
आसुओंके साथ नहीं भर उठती ?' कीन चिन्तित होकर मार्गमें
धरिं नहीं विद्याप रहती ? किन्तु आजतक क्या कोई सती
है ?' तो मैं उसे क्यों परदेस जाने देती ? प्रय मेरे वे कडवी
प्राण्य रहें या जायें मुझे चिन्ता नहीं ॥ ५३ ॥ आज स्वप्नमें
मैंने देखा कि बहुत दिनोंके प्रचयाप प्रियतम धाप और मुझे
मनानेका प्रयत्न करने लगे किन्तु मैं रुठी पैठी रही और मानके
कारण मैंने उनका तनिक भी स्वागत-सत्कार नहीं किया । फिर
कामदेवके घरमें होकर मैं जैसे ही उनके गले छावनेको चूरी
वैसे ही शत्रुके समान मेरी भाँद लुल गई ॥ ५४ ॥ जिन्ने
पीडा न जानी हो वह यदि किसीको कट दे तो प्रपत्र नती
किन्तु हे कामदेव ! तुम तो एक धार जल तुके हो, फिर भी
मुझे जलाते हो ! घतः तुम्हें क्या कहा थाय ॥ ५५ ॥ हे
सखी ! इस विरहिणीका ताप दूर करनेके लिये पट्टा लाने
बुधा रही हो ! इस कुकी हुई भीरवाकी नवेखीकी जो ताप

मया विखलेपभीरुणा । इदानीमन्तरे जाताः पर्वताः
सरितो द्रुमाः ॥ १७ ॥

द्वृत्युष्णा — मियः वियुक्तं मिथुनं समानं माधुर्यं
सोलाससुभक्तिभिर्या । सा वाग्मिता नर्म-कला-मनो-
व्रतासुकोयलैर्जोतीह द्वृती ॥ १ ॥

स्वयंद्वृती — स्फुरयसि कथमधरं नं लहयसि तसो
हि पान्य रसलुब्धः । घनरससर इह लब्धा कथमय-
गाहनसंसुखाय नोत्सहसे ॥ १ ॥

द्वृती प्रति स्वावस्थाकथनम् — अकस्मादेकस्मिन्पथि
सखिं मया मुं घनतटं व्रजन्त्या दृष्टो यो नवजलधरश्या-
मलतनुः । स दम्भङ्गया किं बाकुवत नहिं जाने तत
इदं मनो मे व्यालोलं फवचन गृहकृत्ये न चलते ॥ १ ॥
अद्विजवीक्षणं चतुरद्विसम्मीलनं मनः । अद्विसस्पर्शनः
पाणिरथ मे किं करिष्यति ॥ २ ॥ कान्तः एतान्तच-
रितः कुटिला तदम्ना वञ्चोपमानि वचनानि च दुर्ज-

नानाम् । प्रत्यङ्गमन्तरतनोः प्रहरन्ति दाणाः प्राणाः
पुनस्सपि बहिर्नं चलु प्रयान्ति ॥ ३ ॥ फालो मधुः
कुपित एष च पुष्पधन्या घोरा वहन्ति रतिरेदहराः
समोराः । केलीवनोयमपि घञ्जुलकुञ्जमञ्जुदूरे पतिः
कथय किं करणीयमथ ॥ ४ ॥ किं स्वप्नः किमु जागरः
किमथवा रात्रिः किमासीद्दिनं मोहावस्थितया मया
न किमपि ज्ञातं किमेतत्सपि । यन्नामश्रयणादानन्तर-
मिदं वृत्तं तमेय प्रियश्चेतो दुर्लभमप्यपास्तकलन्या-
पारमाशङ्कति ॥ ५ ॥ गते प्रेमावन्ते प्रलयवदुमानि
विगलिते निवृत्ते सङ्गावे प्रणयिनि जने नञ्जुति पुरः ।
तदुत्प्रेक्षयोपेक्ष्य प्रियसपि गतांस्तांश्च दिवसांश्च जाने
को हेतुर्दलति शतधा यत्र हृदयम् ॥ ६ ॥ तुष्यन्तु मे
द्विद्रमथाप्य शनवः करोतु मे शान्तिभरं सृष्टेभ्यरः ।
मणिस्तु वञ्चोदहमध्यभूषणं ममास्तु सौन्दर्यनिर्गमनं
प्रियः ॥ ७ ॥ नि स्नेहः पतिरुज्जिता कथयथा भ्यधूरः

भीतर ही भीतर जला रहा है वह पहुँसे दूर नहीं होगा, वह
तो नये प्रियतमके समागमसे दूर होगा ॥ १६ ॥ प्रियतमसे
सम्भोग करते समय उनसे अन्तर होनेके डरसे मैं गलेमें हार
भी नहीं पहना करती थी पर इस समय तो हम दोनोंके
बीचमें कितने ही पहाड़, नदियाँ तथा पृष्ठाँका अन्तर ही
गया ॥ १७ ॥

द्वृतीके गुणु : जो प्रेमी श्रीर प्रेमिका मधुरता, उल्लास
धीर परस्पर प्रेममें एक से होनेपर भी आपसमें निवृद्ध जाते
हैं उन्हें अपनी मीठी मीठी बातें, बटक मटक, नम्रता तथा
घनुरतासे जो मिला देती है, वही सच्ची द्वृती है ॥ १ ॥

स्वयं द्वृतीका फाम करनेवाली : हे रतीके रादी !
तुम सन्तस (प्यासे), कामके तापसे तपे हुए) दिखाई दे रहे
हो अतः अपनी श्रोत्र कर्णों कदकवा रहे हो ? यहाँ अत्यन्त
ल्लादिट रस (जल) का भयदार (तालाय, सुम्मे) पाकर
भी उसमें कर्णों नहीं हलकी लगा लेते (मेरा ध्यानन्द कर्णों
नहीं ले लेते) ! ॥ १ ॥

द्वृतीसे अपनी दृशा कहना : हे सपि ! इस वनके
पाससे जब मैं जा रही थी उस समय संयोगसे जलभरे मेवके
समान सखिले रहका एक लूँबा सुम्मे दिखाई पदा, उसने
अपनी बितबनसे क्या क्या किया, यह तो मैं नहीं जानती
किन्तु उसी समयसे मेरा मन न जाने कैसे हो गया है कि घरके
किसी काममें मेरा मन ही नहीं लग रहा है ॥ १ ॥ उस प्रियतमके

न रहनेपर आज देवना है कि दूसरेको न देखनेकी प्रतिज्ञा
करनेवाली श्रौंठें, दूसरेमें न लगनेवाला मन तथा दूसरेको न
छूनेवाले ये हाथ कैसे रहते हैं ॥ २ ॥ हे सखी ! प्रियतमका
व्यवहार यमराजके व्यवहारके समान कठोर है, उनकी माता
बड़े टेढ़े स्वभावकी हैं, दुष्णोंकी धातें बज्रके समान लगती हैं और
शरीरके प्रत्येक अङ्गपर कामदेव बाण चुभोए डाल रहा है, फिर
भी प्राण बाहर नहीं निकल पा रहे हैं ॥ ३ ॥ हे सखी ! वसन्तक
समय है, कामदेव भानो क्रोधित हो रहा है, सुरतकी धकावट
दूर करनेवाला वायु मन्द मन्द यह रहा है, यह लीलाका
उपवन भी बेतकी फाड़ियोंसे सुन्दर दिखाई दे रहा है किन्तु
पलित्वे बहुत दूर है ॥ ४ ॥ कहां, ऐसी दशामें क्या करना चाहिए ?
॥ ५ ॥ हे सखी ! मैं ऐसी मोहमें पड़ी कि वही नहीं समझ
पाई कि यह स्वप्न है वा जागरण, रात है अथवा दिन, क्योंकि
जिसका नाम सुननेके पश्चात् मेरी यह दशा हो गई उस न
प्राप्त होनेवाले प्रियतमकी भी मेरा मन सब काम छोड़कर
चाहने लगा है ॥ ६ ॥ हे सखी ! प्रेमके बन्धन टूट
जानेपर, प्रेममें ही रूठना समाप्त हो जानेपर तथा प्रेम बीजा
समाप्त हो जानेपर जब प्रियतम सामनेसे चले गए तब उन
धीती बातोंकी सोच-सोचकर भी मेरी समझमें नहीं आ रहा
है कि हृदय टूक टूक कर्णों नहीं हो जाता ॥ ७ ॥ जबसद
पावर भले ही मेरे शत्रु प्रसन्न हों पर मेरे मनमें यही
अभिधापा रहती है कि वही सुन्दरताका भयवार प्रियतम

जत्रं वृथा धान्वाणैर्हृदयं भिनत्ति कलहोत्तालाः पुन-
र्यांतरः । नित्यं निन्दति नैव नन्दति कदाप्येषा नना-
न्दापि तन्मातः कं शरणं प्रजामि तरुणी दीनाहमेका
किनी ॥ ८ ॥ स्वामी कुप्यतु कुप्यतां परिजना निन्दन्तु
मामन्यवर्तिक तावत्प्रथतामयन्तु जगति प्रौढो प्रमोष-
द्रवः । आशास्यं पुनरेतदेव यदिदञ्चलुश्चिरं वर्धतां
येनेदं परिचीयते सुररिपोः सोन्दर्यसारं वपुः ॥ ९ ॥
हन्त कान्तमपि तं दिदृक्षते मानसं मम न साधु
यत्यते । इन्दुिन्दुमुपि मन्दमारुतश्चन्दनञ्च वितनोति
वेदनाम् ॥ १० ॥

नायिकां प्रति सखीवचनम्—अधिकरतलतल्पं कल्पि-
तस्यापलीलापरिमिलननिमीलत्पाण्डिमा गण्डपाली ।
सुतनु कथय कस्य व्यञ्जयस्यञ्जसैव स्मरनरपतिलीला-
यौधराज्याभिप्रेकम् ॥ १ ॥ अनुदिनप्रधिकं ते कम्पते
कायवह्नी शिव शिव नयनान्तप्रायुधारा जहाति ।

परका स्वामी होकर मुझे शान्ति दे और वही मेरे हृदयके
आभूषणका मणि बना रहे ॥ १० ॥ हे भौं ! पति मुझे चाहते ही
नहीं, सासने दुयाका नाम नहीं, वह सदा स्वयं ही बाणके
समान सुभती हुई यातांते हृदय बेधा करती हैं, देवदानी-
जैरानी सदा भगवती ही रहती हैं, नन्द सदा मेरी निन्दा ही
करती रहती है और कभी सांघे मुँह बात नहीं करती । ऐसी
दुरांग मैं असहाय दीन नवेली बतारो, जिसकी शरण लूँ !
॥ ८ ॥ कोई गोपिका कह रही है—'भले ही स्वामी मुझपर
रुठे रहें, बुढ़ायी लोग क्रोध करते रहें, मेरी सुराई फीलाते रहें,
हसते भी बड़े-बड़े कोई उपद्रव आत हों तां आते रहें, किन्तु
मेरी तो अभिलाषा यही है कि मेरी ये श्रांतं और भी यही-वही
हो जायं जिससे धीकृष्णजीकी निःसीम सुन्दरताका मुझे दूरान
तो होता रहे' ॥ ९ ॥ हे चन्द्रमुरी सखी ! मेरा मन उस
प्रियतमको देखना तो चाहता है पर कोई सत्था उपाय नहीं
कर रहा तथा चन्द्रमा, मन्द पवन और चन्दन ये सभी मुझे
पीड़ा पहुँचा रहे हैं ॥ १० ॥

गयेलीसे सपत्नीको तातन्योतः कोई नयेकी हथेलीपर
छपना गाल रमकर बुध सोच रही है, येमे समय उसकी सखी
उससे बहनी है कि 'हे सुन्दरी ! हथेलीरूपी विधुनीपर सोनेवाले
तुम्हारे जिस गालका उज्ज्वलन रक गया है, वह सहसा
जिग पीछेके कामकीदा-करी रागमें होनेवाले राग्याभिप्रेककी
गूचना दे रहा है ?' ॥ १ ॥ हे कीमल चन्द्रावली ! तुम्हारा

कथय कथय कोऽयं यत्कृते कोमलाङ्गि त्यजति न परि-
ण्डं पाण्डिमानं कपोलः ॥ २ ॥ अभ्यस्तेऽपि निनग
भारफलके खेदालसेयं गतिः किञ्चित्संयतितार्थपद-
विरलालोका दृशोऽन्तर्गताः । तन्मध्ये निभृतं त्ययाऽप
हृदये कश्चिद्भूतो वल्लभो निश्वासाः कथमन्यथा द्विगुण
तामेते तथैवं गताः ॥ ३ ॥ अयं विपाको यद कस्य
यूनः कल्याणि कल्याणपरम्पराणाम् । यदक्षिकोणश-
वदञ्छुधाराहारावतारो गुणमन्तरेण ॥ ४ ॥ अतसव
लितैः प्रेमाद्राद्रिंमुहुमुकुलीकृतैः क्षणमभिमुखैलंज्रातो
लेनिमेषपराद्भुजैः । हृदयनिहतं भावाकृतं धमद्विः-
वेक्षणैः कथय सुकृती कोऽयं मुग्धे स्याद्यद्य विलीयते
॥ ५ ॥ आसन्नामवलम्ब्य फेसरलतामेकेन पुष्पोऽन्तर्ग-
तस्यं निःसहृद्या नितम्बफलके कृत्वा कराम्भाकम् ।
आमीलनयनान्तघान्तसलिलं श्लाघ्यस्य निन्दस्य वा
कस्येदं दृढसां हृदे प्रतिदिनन्दीनं त्यया स्मर्यते ॥ ६ ॥

शरीर प्रतिदिन और अधिक कौपता जा रहा है और हाँसुआं
तार बन्द ही नहीं होता ! कहो तो, वह कौन है जिसके जि
तुम्हारे गाल हृत्मे अधिक उजले पदते चले जा रहे हैं ॥ २ ॥
बड़े-बड़े निनग होनेपर भी तुम्हें चलनेका सम्भवसं तो था ही
किन्तु आज तुम धकी हुई-सा धारे-धारे चल रही हो, तुम्हारी
पलकें भँप रही हैं तथा श्रांतं भी भीतर ही भीतर धमक रही है
अतः जान पड़ता है कि तुमने किसी प्रियतमको सुपकसे इतना
बसा लिया है, नहीं तो तुम्हारी साँतें क्यों इस प्रकार दुःख
वेगसे फूलने लगतीं ॥ ३ ॥ हे महलमयी ! पर निज
नचयुवकके देर-से सुख्योका फल है कि तुम्हारे नेत्रोंके होनेके
निकलती हुई श्रांसुआंकी धार बिना बरेका शर बन ती
हैं ॥ ४ ॥ हे सुन्दरी ! तुम अपनी उस वितनमे जिस
भाग्यवान्को देख रही हो जो प्रमेसे रसीली एवं बा-बा
संयुचित हा-हाकर मन्द-मन्द चल रही है, जो कभी सामने में
पड़ जाता है, कभी छात्रके कारण घबरा होता है, जिसमें पड़-
सक नहीं गिर रही है और जिन्हें देखनेसे हृदयका मास नील
जान पड़ रहा है ॥ ५ ॥ हे प्रगाढ़ प्रेम करनेवाली ! दारिने हाँ
पूजांसे जन्मी मीलसिरीकी दाजी परकड़े हुए, शर्बी ॥
पुन्हेपर जमाय हुए पदा कुण्ड मुँदी हुई श्रांतंमे कौन का
हुए तुम प्रतिदिन जिस प्रतीला छपवा निन्दकें योग्य रक्क
पिन्न होकर रमण क्रिया करती हो ? ॥ ६ ॥ हे सखी !
तो बतारो कि तुम योगिनी हो या वियोगिनी, बर्तीकें में

आहारे विरतिः समप्रविषयग्रामे निवृत्तिः परा ना-
साग्रे नयनं यदेतदपरं यच्चैकतानं मनः । मोनञ्चेद-
मिदञ्च शून्यमखिलं यद्विभ्रमाभाति ते तद्द्रव्याः सपि
योगिनी किमसि भोः किं वा वियोगिन्यसि ॥ ७ ॥
उज्ज्वलमानममुल्लसत्कुचतटं लोलकमञ्जलतं स्वेदाम्भः
क्षपिताङ्गयष्टि विगलद्वीडं सरोमाञ्जया । धन्यः
कोऽपि युवा स यस्य वदनं व्यापारिता साम्प्रतम्मुग्धे
दुग्धमहाविधफेनपटलप्रप्याः कटाक्षच्छुटाः ॥ ८ ॥
उत्पादयत्यलमिदं मनसो विपादं सीदत्सरोरुहनिभं
वदनं त्वदीयम् । शात्वा निदानमहमथ समानदुःखा
प्राणैरपि प्रियतमे प्रवितुं समोहे ॥ ९ ॥ को धन्यस्तपि
सुस्थितेन मनसा को वेद्यसा निर्मितः कः मेयान्मद-
नस्य कस्य फलितः प्राचीनपुण्यद्रुमः । एतद्यस्य कृते
दिवानिशमविश्रान्तस्खलद्वारिभिर्मानाज्ञोचनगडङ्गैः
क्षपयसे वज्रोजलिद्वयम् ॥ १० ॥ क्षामं गात्रमतीथ

तुम्हारी रचि नहीं है, संसारके सभी विषयोंसे तुम्हारा मन हट
रहा है, नाककी नोकपर तुम श्राँखें गड़ाए रहती हो, तुम्हारा मन
पका और लगा हुआ है, सुन मीन भी दिखाई पड़ रही हो और
सारा संसार तुम्हें सुना दिखाई दे रहा है । ये सब बातें जो
योगिनी और वियोगिनी दोनोंमें ही पाई जाती हैं ॥ ७ ॥ हे
सुन्दरी ! तुम्हें बारवार जैमाई आ रही है, स्तन फटक रहे हैं, भौंहें
चञ्चल हो रही हैं, शरीर पसीनेसे नहाया जा रहा है, लज्जा
भाग गई है और शरीर रोमाञ्चित हो रहा है । ऐसी दशामें
धीरसागरके फेनके समान तुम्हारी विषयवन जिसपर पड़ रही
है वह अवरय ही बोई धन्य युवक होगा ॥ ८ ॥ हे प्राण-
प्यारी सखी ! तुम्हारा सुरमाप कमलके समान सुँह देखकर
मेरे मनमें धारयन्त खेद उत्पन्न हो रहा है । बसाधों, तुम्हारे
बदास होनेका क्या कारण है ? क्योंकि काश्या जानकर
मैं अपने प्ररयतक देकर भी तुम्हारा दुःख बँटाना चाहती हूँ
॥ ९ ॥ हे सखी ! यह कौन भाग्यवान् है, किते महाने अपने
हार्मों रचा है, यह कौन कामदेवका प्यारा है तथा किसके
पूर्वजन्मके पुण्यरूपी वृक्षमें फल खा रहे हैं जिसके लिये तुम
अपना चित्त स्थिर करके दिन-रात, मीन होकर अपने नेत्ररूपी
गड्ढासे लगातार पानीकी धार बहाती हुई झूलतीपर स्थित
सोनी लिङ्गों (स्तनों) का अग्निपेक कर रही हो ? ॥ १० ॥ हे
सखी ! तुम्हारी देह दुर्बल है, मुख उजला है और गात्र पिचक
गए हैं । अतः यह धताधो कि यह कौन युवक तुम्हारे मनमें

पाएडुवदनं क्लिष्टा कपोलम्यली कोऽर्भा चेतसि यतेते
तव युवा लोकैकमान्याकृतिः । त्यक्त्या किञ्चिदपप्रपां
कथय मे पिन्नासि किं त्वं वृथा घोरः पञ्चशरो यदि
त्वमयला वक्ष्यामि नातः परम् ॥ ११ ॥ गोपायन्ती
चिरहृजनितं दुःखमग्रं गुरुणां किं त्वं मुग्धे नयनगलितं
वाष्पपूर्ं कृणत्सि । नक्तं नक्तं नयनसलिलैरेव आर्द्रो-
कृतस्ते शय्योपरान्तः कथयति दशामातये श्यामपणः
॥ १२ ॥ चिन्ताभिः स्तिमितं मनः करतले लीना
कपोलम्यली प्रत्यूषक्षणेदशपाएडुवदनं भ्रासैकफि
न्तोऽधरः । अन्न-शुंकरपाश्र्नांफिसल्यैर्नापैति तापः
शमकोऽस्याः प्राथितदुर्लभाऽस्तिसहते दानां दशामीद-
शीम् ॥ १३ ॥ जानीमस्तथ गौरि चेतसि विरं शम्भुः
समुज्जम्भते तापा नेत्रतनूनर्पादिव तनां हीयः समु-
न्मोलति । अक्षोररुमिषेण गच्छति यहिर्गङ्गातरङ्गा-
यलिः पारिदम्भः कपटेन चन्द्रकलिकाकान्तिः समु-

यसा है जिसकी सुन्दरताका सब लोग आदर करते हैं ? जान
छोटकर मुझसे कहो, व्यर्थमें क्यों कष्ट सह रही हो ! हाँ,
इतना अवश्य कहूँगी कि यदि यह बलवान् कामदेवका दिया
हुआ कष्ट है तब तो तुम अबला हो, हमसे अधिक कुट्ट न
कहूँगी अर्थात् तुम्हें बलवती बननेके लिये किसीकी सहायता
लेनी ही पड़ेगी ॥ ११ ॥ हे भोली-भाली ! अपने बदाँके
सामने विरहकी वेदना द्विपानेके लिये श्राँखेंसे गिरती हुई
श्राँखी धारा क्यों रोक रही हो क्योंकि प्रत्येक रात्रिमें तुम्हारे
नेत्रोंसे गिरे हुए श्राँखियोंसे भीगा हुआ तथा फिर धूपमें
सुखाया हुआ बिंदुना तो तुम्हारी दशा बता ही देता है ॥ १२ ॥
इस नवेलीका मन चिन्तासे भरा हुआ है, यह हथेलीपर
गाल रखते हुए है, इसका मुख प्रातःकालके चन्द्रमाके
समान कान्तिहीन तथा उजला है, नीचेका थोट सौंसका
गर्भसे उगला रहा है, शीतल जलकी सूँड़ें तथा कमलके
नये पत्तोंसे भी इसका सन्ताप शान्त नहीं हो रहा है अतः
प्रार्थना करनेपर भी न प्राप्त होनेवाला यह कौन व्यक्ति है वा
इसकी ऐसी दोन दशाको भी सहता जा रहा है ? ॥ १३ ॥ हे
गौरि-गौरि यहँवाबाँ ! ऐसा जान पड़ता है कि बहुत दिनोंसे
शिश्रवा तुम्हारे मनमें बस रहे हैं क्योंकि उनके नेत्रका अग्नि-
के समान तपहारे शरीरमें सन्ताप उठ रहा है, श्राँखीके रूपमें
श्राँखीके बाहर गङ्गाकी लहरें छलक रही हैं तथा देखके
उजलेपनके रूपमें चन्द्रकलाकी कान्ति दिसाई पड़ रही है

हस्तस्य सैव जघनस्य च रत्नकाशी । याचालभृङ्गसु-
भगे सुरभी समस्तमद्याधिकं भवति ते सखि किञ्चिदा-
नम् ॥३१॥ वियोगवह्नि कुण्डेऽस्मिन्दृश्ये ते वियोगिनि ।
प्रियसङ्गःसुखायैव मुक्ताहारस्तपस्यति ॥३२॥ विलुलि-
तमतिपूरैर्वीषमानन्दशोकप्रभवमवसृजन्तीं वृष्णयो-
त्तानदीर्षां । क्षपयति हृदयेशं ज्योहनिव्यन्दिनी ते धव-
लपहलमुग्धा दुग्धकुलयेव दृष्टिः ॥ ३३ ॥ विश्रान्तो
दिवसस्तटीमयमटल्यस्ताचलस्थांशुमान्सम्प्रत्यङ्कुरिता-
न्धकारपटलेर्लम्बालकाधारभूत् । पृथ्वन्तर्विश चेशमनः
शशिमुखि द्वारस्थलीतो रणस्तम्भालम्बितवाद्युवलि
रुदती किं स्वं पथः पश्यसि ॥३४॥ शोणौ कोणा सखि
नयनयोरुद्यतौ गोपनाय शङ्कामेव स्फुटय्यतितरं ज्येद्वि-
न्दुप्रचारः । श्रन्तः प्रेमाङ्कुरपरिकरारम्भकं कन्दमस्याः
किञ्चित्किञ्चित्कथयति पुनः फापि दिव्या मुखश्रीः
॥३५॥ श्वासास्ते सखि सूचयन्त्यविरताः सन्तापवाधां
परं विभ्रस्तत्र न फारणं धयमिति स्वान्तेऽतिचिन्ता-

भरः । किं वा धर्मान्पोडिता तव तनूवह्नी निकामे
प्रिये पुष्पादप्यतिकोमला मलिनतां याता मृणाली
यथा ॥ ३६ ॥ सखि पतिविरहहुताशः किमिति प्रसमं
न याति नयनोद्वैः । शृणु फारणं नितान्विनि
मुञ्चसि नयनोदकस्तु सन्नेहम् ॥ ३७ ॥ सहचरि
शयथाः शतं मदीया वद विरहदल्पितां निजा-
मवस्थाम् । सहचरि परिपृच्छ मानुकन्यानयदलिनीन-
लिनीनिकुञ्जशय्याः ॥ ३८ ॥ सहसा हृदये निधाप
चेतो नयनादिन्द्रियमुद्रणं विधाय । अग्रि फण्टकिता-
ङ्गदृष्टि सत्यं कथय ध्यायसि किं रहो निपण्णा ॥३९॥
सायं दामप्रथनसमये लग्नया कर्णमूले सत्या मन्द-
स्मितसुभगया सादरं सूच्यमानः । धन्यः कोऽयं
कमलनयने यत्कथायाः पुरस्तादङ्गुलप्रभं निजमपि
मुहुः सूचिचिह्नं न वेत्सि ॥ ४० ॥ स्फुरति यदिदमुधै-
लौचनं सुधु चामं स्तनतटमपि धत्ते चाह रोमाञ्जना-

गुनारसे शयन्त मनोहर लगनेवाले इस वस्तुमें ये सबके सप
धपने नापसे भड़े क्यों होते जा रहे हैं अथवा बीले क्यों पड़ते
जा रहे हैं ? ॥३१॥ हे वियोगिनी ! विरह-रूपी धमिके कुण्डरूपी
गुहारे हृदयपर गुहारे प्रियतमके समागमका सुख पानेके लिये
ही यह उपवास करने वाला मोतीका हार मानो तपस्या कर
रहा है ॥ ३२ ॥ धनमें रामसे मिली हुई वियोगिनी जानकीसे
उनकी सरती (धनदेवता) यह रही है कि 'हे सीते ! पतिके
मिलनेके ध्यानद् तथा विरहके शोक इन दोनोंके कारण
वेगसे गुहारे आँसू यह रहे हैं, प्रियतमका दर्शन पानेकी
हृदयसे ये नेत्र ऊपरकी उठ रहे हैं जिनमें प्रेम टपक रहा
है, गुहारी पितृवत उजली, भनोहर सथा वेगसे बहनेवाली
उस दुपकी धाराके समान है जो प्रियतमकी मानो नहला
रही है ॥३३॥ हे चन्द्रमुखी ! दिन चल रहा है ! सूर्य चरतापलकी
घोर जा रहे हैं, अन्धकार केशोंके समान आकाशमें फैल रहा
है, आसो भीतर खलें, द्वारकी शीशर दायसे धामकर मार्गकी
घोर क्या साक रही हो ॥३४॥ हे सखी ! मनमें बसे हुए प्रेमकी
दिपानेके कारण इस नवेलीकी आँसूके कौने खाल हो गए हैं,
किर भी आनन्दके कारण देखते निखलता हुआ पर्साना सारी पोख
शोखे दे रहा है और इसके अँधेरी निराखी दृश हृदयमें अटुरित
होते हुए प्रेमके मदकी सूचना दे ही रहा है ॥३५॥ हे सखी !
निरन्तर खजनेवाली गुहारी धमकी-धमकी सर्तिं गुहारे भीतरके

सन्तापसे होनेवाली पीड़ाकी सूचना रही है । ऐसा क्यों हो रहा
है, यह तो मैं नहीं जानती, किन्तु मनमें बड़ी चिन्ता हो रही
है, क्योंकि हृदय में देख रही हूँ कि फूलसे भी अधिक कोमल
गुहारा शरीर कड़ी धूपमें पड़े हुए सृणालके समान धारधिक
मलिन होता जा रहा है ॥३६॥ हे सखी ! पहले हुए आँसूमें
धारोंसे विरहकी धारा इसलिये नहीं निकल पा रही है क्योंकि
गुहारे आँसू सन्नेह (धी-युक्त, प्रेम-युक्त) हैं ॥ ३७ ॥ कौन
सखी किसी नवेलीसे कहती है कि 'हे सखी ! गुहारे सी धार
मेरी शयप है जो तुम विरहके दुःखसे भरी धपनी रहा मुझे
कह न सको ।' नवेली-'हे सखी ! तुम यमुना नदीके कमलोंके
नये पत्तोंसे बने हुए बिछौनेसे ही मेरी दृश क्यों नहीं पृथु होती'
॥३८॥ हे रोमाञ्जित अङ्ग-रूपी सतावाली सखी ! सच बताओ
तुम हृदयमें ही धपना चित्त बाँधकर सथा नेत्र आदि इन्द्रियोंमें
धपने-धपने कामोंसे हटाकर यहाँ पृकान्तमें बैठकर जिसका
ध्यान कर रही हो ? ॥३९॥ हे कमलनयनी ! सन्ध्या समय ॥
तुम माला गूँथ रही थीं, उस समय गुहारे कानके पास बगल
शुक्रवाती हुई सरतीने जिसका सङ्केत किया था और जिसमें
वर्षां सुनते समय तुम्हें अँगलामें सुनी हुई सुर्घा भी ध्यान कर
रहा यह कौन भागवान् है ? ॥४०॥ हे गुहारे भीहँवाली ! तू
जो गुहारी बाहें आँसू वेगसे पटक रही है, सन रोमाञ्जित
हो रहे हैं और आँसू भीतर ही भीतर धप रही हैं, वे क्या

सम् । फलयति च यदन्तःकम्पितामूढकाण्डं ननु
यदति तद्वच प्रेयसा सङ्गमं ते ॥ ४१ ॥

नायकं प्रति दूतीप्रेषणम्—अपूजितैवास्तु गिरिन्द्र-
फन्या किं पद्मपातेन मनोभवस्य । यद्यस्ति दूती सर-
सोकिद्विधा दासः पतिः पादतले वधूनाम् ॥ १ ॥ अयि
दूति सखी त्वमेव मे भद्रानो हन्ति शिनैः शिलीमुचैः ।
दयितं तमुपानयायु तत्सुशुको जीयितानिर्गमोऽप्यथा
॥ २ ॥ उल्लङ्घ्यापि सखीयचः समुचितामुल्लङ्घ्य
लज्जामलं भिरया भीतिभरं निरस्य च निजं सौभाग्य-
गर्भं मनाक् । आशां केवलमेव मन्मथगुरोरादाय नूनं
मया त्वं निःशेषविलासिवर्गगणनाचूडामणिः सम्भृतः
॥ ३ ॥ कामं दहन्तु मरुतो मलयाचलस्य चन्द्रोऽपि
पातयतु वा नितरां स्फुल्लिह्वान् । दूरे मियो विमलशंश-
मणिः पतिमै तत्साम्प्रतं स्वरितमानय तं कथञ्चित् ॥ ४ ॥
कामः कुप्यति चन्द्रमा श्रपि चलान्मां दग्धुमभ्यु-

यतो वाना याऽपि समागता यमदिशः प्रापान्निहन्तुं
तथा । रक्षाऽन्वेष्यत्यन्ति तान्परभृताः स्यैः कूजनै-
र्दूति तत्त्रेयांसं तमुपानयाऽऽभ्यनरया प्रापं न मे
कुशचिह्नं ॥ ५ ॥ जीवामीति वियोगिनी यदि लिपेद्-
प्रेय वृत्ताः कथा श्रद्य भ्योऽथ मरिष्यतीति मरुतो
कालात्ययः किं ह्यनः । आगन्तव्यमिदंनि सम्प्रति सग्रे
सम्भावना निष्फला भ्रातस्सम्प्रति याहि नास्ति
लिपितं तद्गृहि यत्ते क्षमम् ॥ ६ ॥ तस्य त्वया फलश-
वादिनोऽपि प्रकाशनीयं मण्युण्यमेव । प्रेम्णोऽस्ति
मग्नस्य न हि प्ररोहः पुण्यस्य वृन्तादिव विच्युतस्य
॥ ७ ॥ दिशि दिशि परिह्रासगूढगर्भाः पिशुनगिरो
शुक्रगङ्गनञ्च तादृक् । सहचरि हृदये निवेदनीयं
भयदनुतोषवशादयं विपाकः ॥ ८ ॥ दुर्वारां कुसुम-
शरद्व्याप्तं वदन्त्या तन्वद्व्याथा यदभिहितं पुरस्सर्पानाम् ।
तद्भयः शुक्रशिशुसारिकाभिदक्तं घन्यानां शयणपथा-

यता रहे हैं कि आज प्रियतमसे तुम्हारा समागम अवश्य
होगा ॥ ११ ॥

प्रियतमके पास दूती भोजना : मनोरथ सफल करनेके
लिये न तो पार्वतीकी पूजा करनेकी आवश्यकता है और न
कामदेवकी सहायताकी ही, क्योंकि यदि मीठी-मीठी बातें
बनानेवाली चतुर दूती हो तो सभी प्रियतम अपनी प्रेयसियोंके
पैरोंतले दासके समान खोदने लगें ॥ १ ॥ हे दूती ! तू ही मेरी
सखी है, कामदेव मुझे अपने तीखों धारोंसे बेधे ढाल रहा
है अतः शीघ्र ही प्रियतमको ले आ, नहीं तो ये निकलते हुए
प्राय किसी उपायसे भी रोके न सकेंगे ॥ २ ॥ कोई नवेखी अपने
प्रियतमके पास सन्देश भेज रही है, 'हे प्रियतम ! मैंने सखियोंकी
बातोंपर तनिक भी ध्यान नहीं दिया, कुलवधू होकर भी लाज
नहीं की, किसीसे भी तनिक दूरी नहीं तथा अपने सौहागपर
हताहता भी नहीं छोड़ा और केवल अपने गुण कामदेवकी आज्ञा
सिरपर धरकर मैंने सभी रसिकोंकी समाजमें आपको सिरमौर
समझा (अप तो आप मुझपर दया कीजिए) ॥ ३ ॥ सखीसे कोई
विरहिणी कह रही है—'मलयाचलके पवन मुझे जी-भर जलते
रहें और चन्द्रमा भी चिनगारियँ बरसाता रहे किन्तु निर्मल
कुलका मण्यि मेरा जो प्यारा पति मुझसे दूर है उसे इस
समय शीघ्र ही जैसे हो वैसे बहाने ले आ' ॥ ४ ॥ हे
दूती ! कामदेव मुझसे दूर है, चन्द्रमा भी बलपूर्वक मुझे
जकानेके लिये उदय हो गया है और मेरे प्राय हरनेके लिये

ये दक्षिण दिशाके पवन भी लाल-लाल धालें निकाले आ गए हैं
जिन्हें कोकिल अपनी कृष्ण शीघ्रता करनेके लिये टकसा रहा
है, अतः तू शीघ्र ही प्रियतमको ले आ, नहीं तो मेरे प्राय सब
किसी उपायसे भी नहीं बच पावेंगे ॥ ५ ॥ हे मित्र ! यदि वह
वियोगिनी लिखती कि 'मैं जी रही हूँ' तब तो आर निश्चिन्त
हो जाते और सारी कथा ही समाप्त हो जाती, यदि आपको यह
समाचार भेजा जाता कि 'वह आज अथवा कलमें मर जायगी',
तो आप कदवे कि यदि हतना असह्य कष्ट था तो मारनेमें
हवनो देरी क्यों हो रही है । यह भी लिखना व्यर्थ था कि
'आपको आ ही जाना चाहिए' क्योंकि आपके जानेकी वसे कोई
प्राया नहीं है । अतः हे भाई ! मेरे पास टकसा कोई खेल तो नहीं
है पर आप झटपट चले जाइए और जो उचित समझ पड़े उसे
कहिए ॥ ६ ॥ उस निद्रुव बोलनेवालेसे भी तुम्हें चिन्तनी-पुपही
बातें ही करनी चाहियें क्योंकि टूटा हुआ प्रेम फिर उसी प्रकार नहीं
बढ़ता जैसे दण्डलते टूटा हुआ फूल फिर कभी नहीं खिलता ॥ ७ ॥
हे सखी ! चारों ओर बीच जोग हँस-हँसकर मेरी गिल्दी
उड़ा रहे हैं, धरके बड़े-बूढ़ोंकी इष्टि भी मुझपर अहङ्कारके समान
गढ़ी हुई है अतः उस हृदयके स्वामीको समझ देना कि तुम्हारे ही
प्रेमके कारण उसकी यह दुर्दशा हो रही है ॥ ८ ॥ वे जोग धन्य हैं
जिनके कानोंमें कामदेवके बाणोंकी घोटकी पीड़ा सहनी हुई
दुबले अज्ञावाली नवेखीकी सखियोंके सामने कही हुईं वे बातें
पढ़ती हैं जिन्हें मुझेके रूपसे और मैगढ़ी दुरता देती

तिथित्वमेति ॥ ६ ॥ दूति त्वं तरुणी युवा स चपल-
श्यामामास्तमोभिर्दिशस्सन्देशस्स रहस्य एव विपिने
सङ्केतकावासकः । भूयोभूय इमे घसन्तमरुतश्चेतो
न्यन्यन्यथा गच्छ सैमसमागमाय निपुणे रत्नस्तु ते
देवता ॥ १० ॥ न च मेऽवगच्छति यथा लघुतां
कृष्णां यथा च कुरुते स मयि । निपुणं तथैनमचगम्य
वदेरभिवृति काचिदिति सन्दिदिशे ॥ ११ ॥ ननु सन्दि-
शेति सद्यशोदितया त्रपया न किञ्चन किलाभिदधे ।
निजमैत्रि मन्दमनिशं निशितैः कृशितं शरीरमशरीर-
शरैः ॥ १२ ॥ पत्रं न श्रवणेऽस्ति वाग्पुगुण्योनां
नेत्रयोः कज्जलं रागो नाधरपल्लवे चरणयोर्युग्मे न
चालककः । वार्ताच्छित्तिपु निष्ठेति भवता मिथ्यैव
सम्भाव्यते सा लेखं लिखतु च्युतोपकरणं न्यायेन
फेनायुना ॥ १३ ॥ वाच्यं तस्मै सहचरि भवद्भूरिवि-
श्लेषवद्वी सैहैरिद्धे मम घपुरिदं कामहोला जुहोति ।
प्राणानस्मे तदिहमुचितां दक्षिणां दातुमीह तत्रादेशो

भवतु भवतां यत्तमेपामधीशः ॥ १४ ॥ विरक्तमन्य-
प्रमदानुरक्तं विमुक्तदाक्षिण्यलवं शठञ्च । या संतु-
ष्योते खलु दूतिका सा कोऽस्या समभेसिण्य जने प्रकप्यः
॥ १५ ॥ दूथा गाथाश्लोकैरलमलमलीकां मम वृत्तं
कदाचिद्धर्तौऽसौ कविध्वजनमित्याकलयति । इदं पाठ्यं
तस्य प्रदिशु परिलम्नाञ्जनचयस्वद्यद्वाप्योपीडस्यपि-
तलिपि ताटङ्कयुगलम् ॥ १६ ॥ तन्देशं मे शृद्धात्वा
कुवलयनयनं कान्तमभ्येऽपि दूति ! वासन्त्योऽमी
त्रियामा मलयजपवनान्दोह्यमानान्ध वल्लभः । उद्यौः-
ञ्जिति शृङ्गा सुममधुरमधुस्वादनं प्रमचास्त्वं कान्ता
च प्रगदभा तदिति न युवयोर्जातुचित्स्यात्प्र-
सक्तिः ॥ १७ ॥

नायकं प्रति नायिकासन्देश — अद्यष्टे दर्शनोत्कण्ठा दृष्टे
विश्लेषपीभयता । नादृष्टे न च दृष्टेन भवता विघते
सुखम् ॥ १ ॥ आलीभिः सह भासितं किमपि तदः
त्वापि संवीक्षितं पञ्चेषुः कुसुमैरपूजि कथमप्यापाय

हं ॥ १ ॥ हे दूती ! तू नवेली है, वह भी चञ्चल चूँटा है,
पारों धीरे धँपेरा छाया हुआ है, सन्देशमें वनमें मिलनेके लिये
सङ्केत है, सन्देशमें गुप्त बात है, ये वसन्तके पवन भी चित्तको
झाड़ल कर रहे हैं अतः जाओ, कुशलतापूर्वक तुम दोनोंका
समागम हो, देवता तुम्हारी रक्षा करें ॥ १० ॥ कोई
नवेली दूतीके द्वारा प्रियतमको यह सन्देश भेज रही है
कि 'हे दूती ! प्रियतमके पास जाकर ऐसी चतुराईसे बात करना
जिससे वह मुझे नीच न समझने लगे और मेरी दूरापर
उसे तरस भा जाय ' ॥ ११ ॥ जब सखीने नवेलीसे पूछा
कि प्रियतमके लिये कुछ सन्देश भी दो तो यह नवेली कुछ भी
बोली नहीं वरन् अपनी उस देहकी घोर धीरसे देखने लगी जो
कामदेवके तीपे पायोले मुरझाई खली जा रही थी ॥ १२ ॥
'वह बड़ी निपुण होकर बोलती भी है' ऐसा सोचकर आप
उसकी सारी पीढ़ाकी शूटा हो समझ रहे हैं पर न उसके
कानोंमें कनकूट है, न हृदयवर्गें छाँटोंमें काजल है, न घोठमें
खलाई है और न पैरोंमें आलता हो है । यह पत्र लिखे
तो किन्तु आपापर लिखे ॥ १३ ॥ हे सखी ! प्रियतमसे
जाकर यह कहना कि हवन करनेवाला कामदेव रनेह
(प्रेम, धी) से जगी हुई आपकी वियोगाग्निमें उसके
शरीरकी धामुनि दे रहा है । पर उस कामदेव - रूपी
दुरोहितको वह प्रायोंकी दण्डना देना चाहती है अतः

आपकी आज्ञा होनी चाहिए क्योंकि प्रायोंके स्वामी तो
आप ही हैं ॥ १४ ॥ विरगनी, दूसरी छोसे प्रेम करनेवाले तथा
निर्दयी (हठी) हुए को भी जब दूती वशमें ले जाती है तो
प्रेम करनेवाले मनुष्योंपर उसका वैसा जादू चलता है,
यह भी बताने की बात है ॥ १५ ॥ हे सखी ! प्रियतमके
पास कविता लिखकर भेजना व्यर्थ है । हो सकता है कि वे उसे
पूर्व कविकी अत्युचित समझकर मेरे कटकको मूढा मान लें, अतः
उनके पास मेरे कानके दोनों कनकूल भेज दो, जिनमें लिखे हुए
अक्षर काजलसे मिले हुए आँसुओंके जलसे पुते हुए हों
॥ १६ ॥ तुम जा तो रही हो किन्तु हे दूती ! मेरे अमल कर्म
नेत्रवाले प्रियतमके पास मेरा सन्देश भी लेती जाओ किन्तु
वसन्तकी रातों आ गई हैं, मलय पर्वतका पवन सतारं रिसा
रहा है, फूलोंका मधुर रस पीकर भीरे मतवाले होकर ईशे
स्वरसे गूँज रहे हैं, तू भी नवेली और ठीक है अतः साधन
रहना, कहीं थयसर पाकर तुम्हीं दोनों न विघटने लगना ॥ १७ ॥

प्रियतमके पास प्रेयसीका सन्देश : कोरं नवेजं
अपने प्रियतमके पास सन्देश भेजती है कि 'हे प्रियतम ! आगे
देखने तथा न देखने दोनोंमें ही सुख नहीं मिलता क्योंकि न
देखनेपर देखनेकी इच्छा होती है अतः कष्ट होता है और देख
नेपर वियोग हो जानेका दुःख बना रहता है' ॥ १ ॥ हे
प्रायनाय ! सतियोंके साथ बातचीत करते हुए भी मैं आपका

चित्ते मनाक् । तेनापि प्रिय चेत्तथा मयि कृपाकार्पण्य-
मालम्ब्यसे प्राणेश प्रयत्नं तदत्र निषिद्धं तन्मातिवृत्त्यं
चिधेः ॥ २ ॥ इन्द्रं कैरधिणीय कोकपटलीवाम्भोजि-
नीवान्धयं मेघं चातकमण्डलीय मधुपश्रेणीय पुष्पाकर-
म् । माकन्दं पिकसुन्दरीय तदणीयं प्राणेश्वरं प्रोषितं
चेतोवृत्तिरियं मम प्रियसखे त्वां द्रष्टुमुत्कण्ठते ॥ ३ ॥
नाथ त्वद्विरहे-सुघानिधिरपि द्वेडाक्षयो भाव्यते
शीतो दक्षिणमारुतोऽपि घत हा ज्वालाऽयलीढायते ।
चेतोहार्यपि सौरभं सुमनसां दुर्हत्प्रसङ्गोपमं किं भूयो
निन्दयेमेतदस्योऽप्येतेऽय भाराय मे ॥ ४ ॥ नित्यं
प्रह्ला यथा स्मरन्ति मुनयो हंसा यथा मानसं सानन्दा-
स्पृष्टसल्लकीयनयुतां ध्यायन्ति रेवां गजाः । युष्मद्दर्श-
नलालसाः प्रतिदिनं युष्मान्स्मरामो वयं घन्त्यः कोऽपि
स घासरोऽत्र भविता प्रत्रायवयोस्सङ्गमः ॥ ५ ॥ यथा
कुमुदिनी चन्द्रश्चक्रयाकी विभाकरम् । ततः प्रभृति
कान्त त्वां चिन्तयामि तथाऽनिशम् ॥ ६ ॥

मार्गं देवती रहती हूँ तथा किसी-किसी प्रकार फूलोंसे कामदेवकी
पूजा करती रहती हूँ । हतनेपर भी यदि आप मुझपर दया
नहीं करते तो यही कहना पड़ेगा कि भाग्य ही बलपूर्वक मेरा
विरोध कर रहा है ॥ २ ॥ हे प्रियतम ! जैसे कुमुदिनी चन्द्रमाको,
चक्री सूर्यको, पर्षीहोंकी मण्डली बादलको, भीरोंके समूह
वसनतकी, कोकिल ग्रामके घृषोंकी तथा नवेली नारी अपने
पतिको देखनेके लिये उतावली रहती है उसी प्रकार मेरा मन
भी तुम्हें देखनेके लिये मचल रहा है ॥ ३ ॥ हे नाथ ! आपके
विद्युहमें अमृतका समुद्र भी विषके समुद्र सा जान पड़ता है,
दक्षिणका शीतल पवन भी लपलपाती लपटों-जैसा लगता है
और चित्त हरेनेवाली फूलोंकी सुगन्ध भी दुर्गोंके समागमकी भाँति
दुखदाई हो रही है । अधिक क्या कहूँ, धात मेरे प्राण भी
तुम्हे भाग जान पड़ रहे हैं ॥ ४ ॥ हे प्रियतम ! जैसे मुनि लोग
प्रतिदिन मन्नाका, हंस मानसरोवरका और प्रसन्न हाथी पूजा
हुई सलईके वनसे घिरी मर्मदाका पान करते हैं उसी प्रकार
आपके दर्शनकी लालसासे मैं प्रतिदिन आपका ध्यान किया
करती हूँ । यह दिन हमारे लिये कितने पुण्यका होगा जब हम-
सुम दोनों गले मिलेंगे ॥ ५ ॥ हे प्रियतम ! जबसे आप गए हैं
तबसे मैं दिन-रात आपका वैसे ही ध्यान करती रहती हूँ जैसे
कुमुदिनी चन्द्रमाकी और चक्री सूर्यकी वाट ओहती रहती
है ॥ ६ ॥

नायकस्यामे दृष्टुक्यः—अगणितगुणेन सुन्दर कृत्वा
चारित्रमप्युदासीनम् । भयतानन्यगतिः सा विदिता-
वर्तेन तरणिरिव ॥ १ ॥ अहानि मे दहतु कान्तवियां-
गयद्भिः संरुततां प्रियतमो हृदि वर्तते य । इत्याशुया
शशिसुपी गलदधुविन्दुधाराभिरुष्णमभिपिञ्जति हृत्प्र-
देशम् ॥ २ ॥ अङ्गुणज्वरदुतयदधुघुपि ध्यानमुद्रा
करते जीवः फरकिसलये दीर्घशायी फपोल । अंगे
वेषी कुचपरिसरे चन्दनं वाचि मौनं तस्यास्सर्पे
स्थितमपि न तु त्वां धिना क्यापि चेतः ॥ ३ ॥ अङ्गे-
प्याभरखं करोति बहृशः पत्रेऽपि सञ्चारिणि प्रासं त्वां
परिश्रुते चित्तनुते शय्यां चिरं ध्यायति । इत्याकल्प-
चिकल्पतत्परचनासङ्कटपलीलाशतव्यासकापि धिना
त्वया वरतनुर्नया निशां नेष्यति ॥ ४ ॥ अचक्रमत
सपल्लायां धरित्रीं मृदुसुरभिं विरहव्य पुष्पशय्याम् ।
शृशमरतिमवाय्यं तत्र चास्यास्तव सुपश्यातमुपेतुम-
ङ्कमिच्छा ॥ ५ ॥ अचिद्ध्रं नयानाम्यु वस्तुपु रतं

नायकसे दूतीकी यात-चीत : हे सुन्दर ! आपने उसके
गुणोंपर कोई ध्यान न देकर बड़ी उदासीनताका व्यवहार किया
और इस प्रकार उस नवेलीको आपने भँवरमें पड़ी हुई नैयाके
समान बना दिया जिसे आपके सियाय कोई दूसरा सहारा नहीं
है ॥ १ ॥ वह चन्द्रमुखी अपने नेत्रोंसे वरते हुए आँसुओंकी
धारासे तपे हुए हृदयको यह सोचकर सींचती रहती है कि
प्रियकी विरहामि मेरी देहको भले ही जला डाले पर हृदयमें
बसनेवाले प्रियतमकी रक्षा तो करनी ही है ॥ २ ॥ उम
नवेलीके शरीरमें काम रूपी कामि, नेत्रोंमें ध्यानका चिह्न, गर्भमें
प्राण, हथेलीपर देरतक रहना हुआ गाल, कर्णोंपर बाल,
स्तनोपर चन्दनका लेप तथा सुगंधमें मौन है, फिर भी उसका
चित्त तुम्हारे सिवाय और कहीं नहीं लग पाता ॥ ३ ॥ वह
नवेली बार-बार अपने अङ्गोंमें गहने पहनती है, तुम्हारा
पथ पानेपर तुम्हेंको पाया हुआ समझती है तथा विज्ञाना
विद्वान्कर देरतक तुम्हारा ध्यान किया करती है । इस प्रकार
विज्ञाना विद्वान्, गहने पहनने तथा सँकड़ों सङ्कर विकल्पमें
कीन वह बेचारी तुम्हारे बिना रात नहीं काट पायेगी ॥ ४ ॥ वह
नवेली कोमल तथा सुगन्धित फूलोंके विद्युनेको धुँदुकर परती-
पर बिड़े हुए पत्तोंके विद्युनेपर बैठने लगती है । फिर अत्यन्त
ब्याकुल होकर उससे भी ऊप उठती है और आपकी सुख देनेवाली
शीतल गोद पानेके लिये सरसने लगती है ॥ ५ ॥ तुम

तापः सखीप्याहितो दैन्यं न्यस्तमशेषतः परिजने
चिन्ता मुदभ्योऽपिता । अद्य श्वः किल निर्वृति
व्रजति सा श्वासेः परं खिद्यते विश्रब्धो भव विप्रयोग-
जनितं दुःखं विभक्तं तथा ॥ ६ ॥ अनयनपथे प्रिये न
व्यथा यथा दृश्य एव दुःप्रापे । भ्लानैव केवलं निशि
तपनशिला चासरे ज्वलति ॥ ७ ॥ अनुरागवर्तिना
तव विरहेषोभ्रेण सा गृहीताङ्गी । त्रिपुररिपुण्येव गौरी
वस्तनुरर्धोवशिष्टेव ॥ ८ ॥ अभिनवनलिनीकिसलय-
मृणालवलययादि दचदहनराशिः । सुभग कुरङ्गद-
शोऽस्या विधिवशतस्वद्वियोगपविपाते ॥ ९ ॥ अभ्र-
धानैर्मुपरितदिशः श्रेण्यस्तोयदानां धारासारेर्ष-
णिवल्यं सर्वतः सावयन्ति । तेन खेहं चहति विपुलं
मत्सखीयुक्मेतत्वं निःखेहो यदसि तदिदं नाथ मे
विस्मयाय ॥ १० ॥ अविस्मयपरिवादैरश्रुणुः सारणीनां
स्मरदहनशिपोप्यश्वासपूरैश्च तस्याः । सुभग वत

कृशाङ्गयाः स्पर्धयान्योन्यमेभिः कियत इव पुरोमूः
पङ्किला पांमुला च ॥ ११ ॥ अस्मिञ्चन्द्रमसि प्रस-
न्नमहसि व्याकोचकुन्दविविधि प्राचीनं रमुरेयुषि त्वयि
गते दूरं निजप्रेयसि । श्वासः कैरवकौरकोयति मुणं
तस्यास्सरोजीयति क्षीरोदीपयति मन्मथो दगपि च
द्राक्चन्द्रकान्तीयति ॥ १२ ॥ आदावञ्जनपुञ्जलितव
पुपां श्वासानिलोल्लासितप्रोत्सर्पाद्विरहानलेन च ततः
सन्तापितानां दशाम् । सम्प्रत्येव निपेकमश्रुपयसा
देवस्य चेतोमुचो भङ्गीनामिव पानकमे कुरते कामं
कुरङ्केक्षणा ॥ १३ ॥ आद्यः कोपस्तदनु मदनस्वादि-
योगस्तृतीयः शान्त्यै द्रुतीवचनमपरः पञ्चमः शीत-
भातुः । इत्थं वाला निरर्वाध परं त्वां फलं प्राथयन्ती
हा हा पञ्चज्वलनमधुना सेवते योगिनीव ॥ १४ ॥
आलम्ब्याङ्गुष्ठापापिकापरिचरे चूतद्रुमे मञ्जरीं सर्पात्ता-
न्द्रपरगलम्पटरण्यद्रुङ्गाङ्गनाशोभिनीम् । मन्ये स्वां

उसके विषयमें चिन्ता न करो, अथ वह आजकलमें सुखी हो
जायगी (मर जायगी) क्योंकि उसने अपने दुःखका बटवारा
इस प्रकार कर दिया है कि निरन्तर गिरते हुए आँसू तो उसने
अपने भाई-पन्थुयोंको दे दिए, सन्ताप सखियोंको दे डाला, सारी
दीनता परिवारको दे दी तथा चिन्ता अपने बड़े-बूढ़ोंको समर्पित
कर दी । अथ उसे केवल एक ही कष्ट है कि उसकी साँसें धड़े
वेगसे चलने लगी हैं ॥ ६ ॥ प्रियतमको सामने देखते हुए
भी उनसे न मिल पानेपर जो पीड़ा होती है वह उन्हें न
देगनेमें नहीं होती, जैसे रातमें सूर्यकान्तमणिवि केवल मलिन-
ही रहती है किन्तु दिनमें तो सामने दिखाई देते हुए भी
सूर्यसे न मिलनेके कारण जल उठती है ॥ ७ ॥ प्रेमी शङ्करजी
(अर्धनारीश्वर) से जुटो हुई पार्वतीजी जैसे आधी ही
बन्ध रहती है उसी प्रकार प्रेमसे भरे हुए तुम्हारे विशाल विरहसे
जड़बू हो गई यह सुन्दरी भी आधी रह गई है अर्थात् दुखली हो
गई है ॥ ८ ॥ हे भाग्यशाली ! उस मृगनयनीके लुभायसे
उसपर तुम्हारा विरह-रूपी वज्र गिर पड़ा इसलिये कमलके नये-
नये पते तथा कमलनालसे बने कद्रन आदि शीतल वस्तुएँ भी
उसके लिये दायानलके समान कष्टग्रह हो रही हैं ॥ ९ ॥ अपने
पूरा गर्जनसे सारे संसारमें कोलाहल मथा देनेवाले बादल अपने
मृगच्छाया वषति धरतीको सब धोखे भरे दे रहे हैं, अतः मेरी
सागी भी त्वेह (जल, प्रेम) धाराएँ कर रही हो तो ठीक ही
है, पर हे नाथ ! तुम्हें अचरम तो इस बातपर हो रहा है कि

आपमें तनिक भी स्नेह (जल, प्रेम) क्यों नहीं है ॥ १० ॥ हे
सुन्दर ! निरन्तर बहनेवाली आँसुवाँकी नदीका प्रवाह तथा
कामाग्निकी लपटोंसे तपे हुए साँसेके पवनका प्रवाह वे दोनों
परस्पर होड़ करके उस दुबली पतली नवेलीके सामने ही
धरतीको एक साथ कीचड़वाली तथा धूलवाली बनाए दे रहे
हैं ॥ ११ ॥ हा प्रियतम ! खिले हुए कुन्दकी-सी आतिषाठा
चन्द्रमा अपनी निर्मल चाँदनी फैलाता हुआ जिस समय रुके
आकाशपर बंध रहा है उस समय तुम यहाँ उससे दूर भागें
हो, इसीलिये उसकी साँसें काँहकी कली हुई जा रही है (बूढ़
रही है, बूढ़ रही है), उसका मुँह कमलके समान सङ्कुचित
हो रहा है, कामदेव चौरसागरके समान उमड़ा पड़ रहा है
और अर्धोत्तं चन्द्रकान्तमणिवि—जैसी तिस रही है ॥ १२ ॥ वह
मृगनयनी पहले तो अपनी आँसुओंपर आँजनका लेप चलाते
है, फिर साँसेके पवनसे जगाई हुई तथा बढ़ती हुई विरहकी
आगसे उन्हें तपाती है और फिर आँसूके जलसे जब जेठोंसे
साँचती है । यह सब देसा जान पड़ रहा है मानो वह
कामदेवके दाशोंपर विषका लेप चढ़ाकर फिर उन्हें कान्ते
तपाकर पानीमें डुभा रही हो ॥ १३ ॥ वह नवेली कोप-रूपी
अग्नि, कामरूपी अग्नि, मियोग-रूपी अग्नि, शान्त रहनेके लिये
द्रुतीके वचन-रूपी अग्नि और चन्द्रमा-रूपी अग्निकी पंचाग्नि माने-
वाली योगिनी बनकर इस तपस्याके फलके रूपमें केच हुन
चाह रही है ॥ १४ ॥ सोनेका स्वर होबनेके कारण जिस नवेलीकी

तनुमुत्तरीयशकलेनाच्छाद्य वाला स्फुरत्कण्ठध्याननि-
रोधश्चम्पितकुचध्यासोद्गमा रोदिनि ॥ १५ ॥ आले
ख्यस्थं कमलनयन त्वां कथञ्चिद्विधाय यावच्छ्रे
सफलजमुपी सेहते संविधातुम् । तावत्ताभ्यां बहति
विमलो हन्त पूरः सुदीर्घः पाण्डुरेष्टव्यवहतिरियं
भाग्यचक्रानुसर्त्रां ॥ १६ ॥ आवासो विपिनायते म्रिय-
सलीमालापि जालायते तापो निःश्वसितेन दाषदहन-
ज्वालकरालायते । सापि त्वद्विरहेण हन्त हरिणीरू-
पायते हा कथं कन्दर्पोऽपि यमायते विरचयश्चादृल-
विक्रीडितम् ॥ १७ ॥ उदितं म्रियां प्रदि सद्वादमिति
श्रद्धीयत म्रियतमेन वचः । विदितेङ्गिते हि पुर एव
जने समुदीरिताः खलु लगन्ति गिरः ॥ १८ ॥ उद्धूयेत
नतभूः पद्मनिपातोद्भवैः पयने । इति निर्निमेषमस्या
विरहव्यसया विलोकते वदनम् ॥ १९ ॥ उन्मीलन्ति नखै-

र्तुनीहि बहति क्षोमाञ्जलेनायुषु क्रीडाकाननमाधयन्ति
वलयकवाणैः समुद्रासय । इत्थं घञ्जुलदक्षिणानिलकु-
हकण्ठीषु साङ्केतिकव्याहाराः सुभग त्वदीपयिस्ते
तस्यास्सर्पोनां मिथः ॥ २० ॥ उपताप्यमानमलघूणि-
मभिश्चसितैस्सितेतरसरोजदृशः । द्रवतां न नेतुम-
धरं क्षमते नवनागवद्विदलरागरसः ॥ २१ ॥ कन्दर्प-
ज्वरसञ्ज्वराकुलतनोराश्वर्धर्मस्थाश्चरं चित्तञ्चन्दन-
न्द्रमःकमलिनीचिन्तासु सन्ताम्यति । किन्तु क्षान्ति-
वशेन शीतललजुं त्वामेयकेनं प्रियं ध्यायन्ती रहसि
स्थिता कथमसौ क्षोणा क्षणं प्राणिति ॥ २२ ॥ काश्यपे
चेत्प्रतिपत्कला हिमवचः स्थूलैव चेत्पाण्डिमा लीना
एव मृणालिका यदि पुनर्यप्यः कियानम्युधिः ।
सन्तापो यदि शीतलो हुतबहस्तस्याः कियद्वर्यतां
किं तु त्वत्स्मृतिमात्रमेव शरणं लायत्यशेषं वधुः ॥ २३ ॥

साँस फूल रही है और स्वन कौंप रहे हैं यह चादरले अपनी
देह बककर आँगनकी यावदीके तटपर लगे हुए उस आमकी
डालको धामे रोती रहती है जिसमें बीरके फँले हुए घने परागमें
झिपटी हुई औरियाँ गुञ्जार करती हुई शोभित हो रही हैं ॥ १३ ॥
हे कमलके समान नेत्रोंवाले ! वह किसी-किसी प्रकार तुम्हारा
चित्र बनाकर और जैसे ही उसे देख-देखकर अपने नेत्र सफ़क
करने लगती है व्योंही उसके नेत्रमें निर्मल जलकी घनी बाढ़ आ
जाती है । इसी प्रकार भाग्यके फेरके अनुसार वह अपने रसक
और भ्रुकके, दोनोंके बीच पड़ी रहती है ॥ १४ ॥ तुम्हारे वियोगमें
उसे अपने रहनेका स्थान जहलके समान जान पड़ता है, प्यारी
सखियाँ जाबके समान जान पड़ती हैं और उसके भीतरकर
सन्ताप साँसेके पवनकी सहायतासे क्षान्तिजलीकी भयङ्कर लपटोंके
समान हो रहा है । इस प्रकार वह विरहियाँ जहलके दानानलसे
घिरी हुई मृगीके समान हो रही है तथा सिंहके समान घूमता
हुआ कामदेव भी उसके लिये यमराज बन रहा है ॥ १७ ॥

उसकी सखियाँ संकेतोंमें बातें करती हैं । वेंत उस आनेपर एक
सखी कहती है कि 'उग रहे हैं' तो दूसरी कहती है कि 'नखोंसे
चूँट दो ' पवनके लिये एक कहती है—'बह रहा है' तो दूसरी
कहती है—'आँचलसे रोक दो !' कोयलके लिये एक कहती
है—'घरकी फुलवारीमें घुस रहा है' तो दूसरी कहती है कि
'कौंगोंकी फनकारसे डरा दो' अर्थात् कोई उसके सामने बँत,
दृष्टिणके पवन तथा कोयलका नामतक नहीं लेता ॥ २० ॥
नीले कमलके समान नयनोंवाली उस नवेलीका अचर
श्लथधिक गरम धाँसोंसे ऐसा पपड़िया गया है कि साए हुए
पानके बोदका रस भी उसे नहीं मिंगो पाता ॥ २१ ॥ यह
अचरजकी बात है कि कामञ्जरके वारसे घरी हुई देहवाली
उस नवेलीका चित्त चन्द्रन, चन्द्रना तथा कमलिनीके
स्मरणसे भी हुरी हो जाता है, किन्तु सहनशीलताके कारण
शीतल शरीरवाले केवल चन्दन चिन्तनका अपात्र आश्रय
ध्यान करती हुई एकान्तमें बँद बैठी रहती है । न जाने वह

किं पृष्टेन द्रुततरमितो नम्यतां सा प्रिया ते दृष्टा
 मार्गे दिवसमखिलं साक्षमेका भवैवम् । पान्ये पान्ये
 त्वमिति रमसोऽङ्गोवमालोकयन्ती दृष्टे दृष्टे न भवति
 भवानित्युदश्रुवन्लन्ती ॥ २४ ॥ कितव्यप्रपञ्चिता सा
 भवता मन्दाक्षमन्दसञ्चार । बहुदायैरपि सम्प्रति
 पाशकसारीव नायाति ॥ २५ ॥ कुशलं तस्या जीवति
 कुशलं पृच्छामि जीवतीत्युक्तम् । पुनरपि तदेव कथ-
 पत्सि मृता न कथयामि या श्वसिति ॥ २६ ॥ कुसुमश-
 प्पनेऽप्यङ्गं ताम्यत्यनङ्गविवर्तनं धदनपयनेश्यामच्छायो
 धभूव सपीजनः । हृदयनिहितः शीतो लेपपशुमीति
 रयं करोत्यहह कठिनापस्था तस्यास्त्वयैवमुपेक्षते
 ॥ २७ ॥ कुसुमादीपि स्मितदृशः सुतरां सुकुमारमङ्ग-
 मिति नापरया । अशिशं निजैरकक्षयः कश्चन कुसुमे-
 पुक्षपति यद्विश्रियैः ॥ २८ ॥ फोदण्डो विशिष्यो

मनोनिवसतिः कामस्य तस्या अपि भ्रंवल्लो नयनाञ्जलं
 मनसि ते वासः समुन्मीलति । इत्यं साम्यविषयी तयोः
 प्रभवति स्वामिस्तथा स्निह्यतां तन्वना तनुतां क्रमा
 दतनुतां नैपा यथा गच्छति ॥ २९ ॥ क्षणं मूच्छति
 भ्रमति परितोऽथ क्षणमपि क्षणं प्रैति स्तम्भं निरवधि
 भवत्त्वाननिरता । क्षणं स्वप्ने धाला तव सुभग योतां
 च लभते क्षणं तेजः शम्भोर्नयनजमथ ध्यायति यमम्
 ॥ ३० ॥ क्षणमपि विरहः पुरा न सेहं नयननिमीलन-
 खिन्नया यया ते । श्वसिति कथमसौ रसालशाखां
 चिरविरहेण विलोक्य पुष्पिताग्राम् ॥ ३१ ॥ क्षणे दिवं
 दिनं मासो मासः संवत्सरं तथा । अपि फलं
 भवत्सङ्गमन्तराऽस्याः प्रतीयते ॥ ३२ ॥ गन्तुं प्राङ्गणो
 ददाति न मुहुःस्तम्भः कुरङ्गोदृशः साकृतं स्वप्न-
 विभ्रमकला दत्ते न वक्तुं क्रियत् । मार्गं यान्तमवेति

करोगे ? मत्पट चले जाओ, वदोकि मार्गमें मैंने तुम्हारी
 प्यारीको हूँ इस दशामें देखा है कि वह अकेले दिनभर रोती
 हुई प्रत्येक राहोको यह समझ-समझकर धीर सिर ऊँचा
 कर-करके देखती रही कि तुम हो पर जब यह जान
 पाती थीकि तुम नहीं हो तो आँखोंमें आँसू भरकर एकाएक
 पड़दा उठती थी ॥ २४ ॥ हे भूल ! लाजके कारण धीरे-धीरे
 चलनेवाली उस नवेलीको तुमने ऐसा धोखा दिया है कि
 हूँस समय भौति-भौतिके लालच देनेपर भी एक बार जालमें
 पँसकर पुरी हुई मीनाके समान वह सामने नहीं आ रही है
 ॥ २५ ॥ नायक धीर सखीमें बातघोत हो रही है नायकः
 कहाँ यह पुरालसे तो है ? सखीः (उदासीसे) जी हाँ, जी
 रही है । नायकः मैं उसका कुशल पूछ रहा हूँ । सखीः
 मैंने तो पहले ही कहा कि जी रही है । नायकः तुम तो
 बार-बार कहाँ दुहरा रही हो । सखीः तो धीर क्या कहूँ ?
 जिसकी साँसें चल रही हैं उसे क्या मरो कह दूँ । ॥ २६ ॥
 पूछोके विधानोंपर कामकी पीड़ासे पटपटते रहनेके कारण
 उसके सब पह पहले पड़ गए हैं, उसके मुगकी गरम-गरम
 साँसेंमें सतिपतिच बाकी पड़ गई है तथा पानीमें लगाया
 हुआ टपडा छेप भी तापके कारण 'तम-तम' शब्द कर रहा
 है । हाय ! उसकी तो यह दयनीय दशा हो रही है धीर
 तुम्हारे बातपर आँसू नहीं रंगते ॥ २७ ॥ यह बात सुन
 देई कि तिले हुए मेथनकी मधेकीका शरीर सूक्ष्म भी
 बदर बोजक है, इसीविषे तो निष्ठुर कामदेव अपने पूजके

बाणीसे सदा उसे ऐसा सन्ताप दे रहा है कि देखकर इस
 आने लगती है ॥ २८ ॥ हे स्वामी ! कामदेवके पास पतु-
 बाण हैं और वह मनमें बसता है । हृषर उस नवेलीके पाद
 भी मौहोंका धनुष और चितवनके बाण हैं तथा वह तुम्हारे मनमें
 बसती है; इस प्रकार वह नवेली तथा कामदेव दोनों पकड़े हैं।
 अतः, उसपर इस ब्रह्मसे अतुराग कोजिए कि दुबली शक्ति
 हुई वह नवेली कहाँ धततु (कामदेव, विना शरीरवाली) रह
 हो जाय अर्थात् मर न जाय ॥ २९ ॥ तुम्हारे विषे
 यह नवेली कभी तो मूर्च्छित हो जाती है, कभी साँसें टपे
 चकर काटने लगती है, कभी सदा तुम्हारा ही ध्यान करती
 हुई निष्चेष्ट हो जाती है, कभी स्वप्नमें तुम्हारा समान बन
 जाती है, कभी कामको जलानेवाले शिबजीके तीरने देना
 अधिका ध्यान करने लगती है तथा कभी अपनी श्चुके जिने
 यमराजका ध्यान करने लगती है ॥ ३० ॥ जो पण मरने
 तुम्हारा विद्रोह नहीं सह सकती थी और तुम्ही होकर साँसें ही
 लेती थी यह इस क्षम्ये विचोर्गमें वीरिमें भरी घामकी हाँसी
 देखकर भला कैसे जीती रह पायेगी ॥ ३१ ॥ हे सुन्दर ! काम
 समागम न मिलनेके कारण उसे एक पण भी दिनके समय,
 दिन भी मासके समान धीर मर्दाना भी बर्षके समान बन
 पड़वा है ॥ ३२ ॥ कोई नायक अपनी ध्यातीमें इसविषे
 गया है कि मैं जब उसके यहाँसे चलने लगा, उस समय
 न तो मुझमें मिलने चाहै, न मुझमें एक लक्ष शंकी, न
 उसने साँसें घुमाकर मेरी ओर देना और न सेवकी-शाता

न सहते त्वां थाप्यवारिण्यस्तस्याः क्रन्तुकिनो भवन्ति
सुभग त्वद्दर्शने सास्थिकाः ॥ ३३ ॥ गलत्येका मूर्च्छा
भवति पुनरन्या यदनयोः किमप्यासीनमप्ये सुभग
सकलायामपि निशि । लिखन्त्यास्तत्तस्याः कुसुमशर-
लेखं तव कृते समाप्तिं स्वस्तोति प्रथमपद्मभागेऽपि
न गतः ॥ ३४ ॥ गायति गोते शंसति चंशे वाद्ययति
सा धिपञ्चीषु । पाठयति पञ्जरशुकं तव सन्देशाक्षरं
रामा ॥ ३५ ॥ गृहीतं ताम्बूलं परिजनयचोभिः कथ
मपि स्मरत्यन्तःशून्या सुभग तव मूर्तिं प्रतिदिनम् ।
तथैवास्ते हस्तः कलितफणिवल्लोकिसलयस्तथैवासी-
त्तस्याः क्रमुकफलकालीपरिचितम् ॥ ३६ ॥ गेहादङ्ग
शमङ्गणादपि यद्विद्यां ह्याद्य पृथ्वीतलं तामार्तिं यदि
चेत्सि सेव सुमुखो किञ्चान्यदाचमहे । पर्यङ्केऽपि

तथाङ्गसङ्गसुभगैः स्वेदाग्मसां निर्मरैर्धाराशयपताम-
नीयत तथा तस्मिन्द्यत्या मुहुः ॥ ३७ ॥ चन्द्रञ्जन्दन-
कदमेन लिखितं सम्भाषि दद्याधरा कामः पुष्पशरः
फिलेति सुमनोर्यं लुनीते च यत् । यन्त्रं निन्दति यद्य
मन्मथमसौ भट्कत्याप्रहस्ताद्गुलीस्तकामं सुभग
त्वया धरतनुवांतूलतं लम्बिता ॥ ३८ ॥ चित्राय
त्वयि चिन्तिते स्मृतिभुषा सज्जीकृतं स्यं घनुर्गतिं
धर्तुमुपागतेऽङ्गुलियुगे बाणा गुणै रोजिताः । प्रारब्धे
तद्य चित्रकर्मणि पुनस्तद्वाणमिन्द्रा सती भित्तिं द्राग-
घलमन्य सिंहलपते सा तत्र चित्रायते ॥ ३९ ॥ चित्रो-
त्कीर्णादपि विपधराद्रीतिभाजो निशायां किं नु ब्रम्-
स्त्वदभिसरणे साहसं नाथ तस्याः । ध्यान्ते यान्त्या
यदतिनिधृतं बालया समकाशयासात्पाणिः पथि

सन्देश ही भिजवाया । इसका चतुरतापूर्वक समाधान करती हुई
दूती कहती है—हे सुन्दर ! जब तुम चलने लगते हो तो उस
शृगनयनीका स्तम्भ सात्विक भाव उसे आँगनसे धागे नहीं
बढ़ने देता, अर्थात् वह ठक रह जाती है, आगे पैर नहीं बढ़
पाते और तुमसे मिलनेतक नहीं आ पाती । उसका स्वरभङ्ग
सात्विक भाव उसका कण्ठ गदगद कर देता है अतः वह ऊँछ
धोल भी नहीं पाती और उसके नेत्रोंमें आँसुआँकी ऐसी
वाद् आ जाती है कि वह जाते समय तुम्हें देख भी नहीं
सकती । ये स्तम्भ, स्वरभङ्ग और शशु सात्विक भाव उसमें
हृतनी अधिकतासे उमड़ आत हैं कि रनिवासके सेवक भी
उसकी दशा देख-देखकर वैसे ही हुए रहते हैं अतः वे भी
वेधारे क्या सन्देश लावें ! ॥ ३३ ॥ हे सुन्दर ! रातमें
वह नवेली एक बार मूर्च्छित होकर जगी कि फिर उसे
मूर्च्छा घा गई । इन दोनों मूर्च्छाओंके बीचमें जो हुआ उसे
सुन लीगिए । उसने आपके लिये कामकी पंजाके समाचारसे
भरा पत्र लिखना प्रारम्भ किया किन्तु पत्रके प्रारम्भमें
'स्वस्ति' शब्द-तक भी न लिख पाई थी कि उसे तुरन्त मूर्च्छा
आ गई ॥ ३४ ॥ वह नवेली तुम्हारे सन्देशके शब्दोंके गीत बना
बनाकर झलापा करती है, बँसुरीके सुरोंमें उसीकी गान लिया
करती है, बीणापर उसी लयसे बजाया करती है तथा पालक
सुरोंकी वे ही शब्द पढ़ाया करती है ॥ ३५ ॥ हे माग्यवान् !
उस नवेलीका मन किसी भी बातमें नहीं लगता । जब सखियाँ
बार-बार आग्रह करती हैं तब वह किसी किसी प्रकार पानका
पीना छे तो लेती है किन्तु सदा तुम्हारे ही स्वरूपका ध्यान

करते रहनेके कारण हाथमें रक्ता हुआ पान तथा सुपारीके
टुकड़े ज्योंके ज्यों धरे रह जाते हैं ॥ ३६ ॥ वह सुन्दर
मुलवाली नवेली धरमें बैठती है तो आँगनकी ओर देखती है,
आँगनमें बैठती है तो बाहरकी ओर झँकती है और बाहर आती
है तो चारों ओर दृष्टि घुमाती है । सचमुच अपनी विपत्ति वही
समझती है । अधिक कहाँतक कहें ? सदा रोती रहनेवाली उस
नवेलीने सङ्कल्पसे पाए हुए तुम्हारे समागमके सुखसे निकले
हुए पसीनेकी धारसे पपलौंके भी बरसातका बैंगला बना
लिया है ॥ ३७ ॥ हे सुन्दर ! तुमने उस सुन्दरीको परा
पागल बना डाला है क्योंकि वह तुम्हारे वियोगमें बिले
हुए चन्द्रनसे बने हुए चन्द्रमाके मित्रा डालती है, फूलोंके
कामका बाण समझकर उन्हें तोड़ डालती है तथा दोनों हाथकी
उँगलियों मटका मटकाकर प्ररासा करनेके योग्य कामदेवकी
निन्दा किया करती है ॥ ३८ ॥ हे सिंहल देयके महाराज ! जब
वह सुन्दरी तुम्हारा चित्र बनानेको सोचती है तब उसी समय
कामदेव अपना घुनुप सँभालने लगता है, वह जब दोनों
उँगलियोंसे तुलिका (हँची) पकड़ना चाहती है तो
कामदेव अपने घुनुपकी दोरीपर बाण चढ़ाने लगता है अर्थात्
जब वह चित्र बनाना आरम्भ करती है तबतक कामदेव उसे
अपने बाणोंसे ऐसा वेधता है कि वह भीतसे चिपककर
स्वयं चित्र बन जाती है ॥ ३९ ॥ हे नाथ ! जो नवेली
चित्रमें बने हुए साँपसे भी डरती है, उसने रातमें आपके
पास आते समय जो साहस किया उसका मैं क्या वर्णन
करूँ ! वह आँधरेमें चुपकेसे चली जा रही थी, मार्गमें साँपके

फणिफणारक्षरोधी व्यधायि ॥ ४० ॥ चिरमपि कलि-
ताम्यपाभ्यन्त्या परिगदितुं परिशुष्यता मुखेन । गत-
घृण गमितानि सत्सखीनां नयनयुगैः सममार्द्रतां
मनांसि ॥ ४१ ॥ चूडारक्षमपाक्षिधियर्दि भवेत्केकु-
न्तलं गण्डकी कावेरी यदि कङ्कणं यदि पुनर्ध्रैवैयर्कं
गौतमी । मुक्ताक्षमसुरनिज्ञगा यदि यदि स्थान्मेखला
नर्मदा कौशेयं यदि कौशिकी कृशतनोस्तापस्तदाप्येति
वा ॥ ४२ ॥ ज्योत्स्ना मौक्तिकदाम चन्दनरसः शीतां-
शुकान्तद्रवः कर्पूरं कदली मृणालधलयाभ्यन्मोजिनी-
पल्लवाः । अन्तर्मानसमास्त्वया प्रभवता तस्याः
स्फुल्लिकोत्करव्यापाराय भवन्ति हन्त किमनेनोकेन
न द्रुमहे ॥ ४३ ॥ तन्वङ्ग्यास्त्वमिति प्रसादविशदं
नासोति खेदालसं चक्षुर्द्रोपथावतारिणि जने व्यापा-
र्यन्त्या मुहुः । हर्षोत्तिप्रभवाः प्रतिक्षणभुवः स्वेदाम्बु-

दाहज्वरे नेत्राम्भःकणिकाः पयोधरतटे पुष्पन्ति
शुष्यन्ति च ॥ ४४ ॥ तव विरहमसहमाना सा तु
प्राणान्विमुकवती । किन्तु तथाविधमङ्गं न सुलभ-
मिति ते न मुञ्चन्ति ॥ ४५ ॥ तव विरहे मलयमद्द-
वानलः शशिवचोऽपि सोष्माणः । हृदयमरुतमपि
भिन्ते नलिनीदलमपि निदाघरधिरस्याः ॥ ४६ ॥ तव
विरहे विधुवदना मदनाधिक फा न सोदन्ति । सोदसि
विरहे यस्यास्साधु तपस्याफलं तस्या ॥ ४७ ॥ तव
विरहे हरिणाक्षी निरीक्ष्य नयमालिकां वलिताम् ।
हन्त नितान्तमिदानीमाः किं हतजल्पितैरथवा ॥ ४८ ॥
तव सा कथासु परिघट्टयति श्रवणं यदङ्गुलिमुत्सेन
मुहुः । घनतां ध्रुवं नयति तेन भवद्गुणपूगपूरितमद-
सतया ॥ ४९ ॥ तस्या महाविरहवक्रिश्चिपकलापतते
स्थितोऽसि हृदये सततं प्रियायाः । प्रालेयशीकरसमे

फणमें जो मणि चमक रहा था, उसे उसने इस विचारसे
अपने हाथसे टक दिया कि इसके प्रकाशमें कहीं कोई सुके
देख न ले ॥ ४० ॥ कामदेवके सन्तापसे उसका मुँह
खुल गया था इसलिये वह बहुत देरसे सोची हुई बातोंको
भी वह कह नहीं सकती थी । हे निन्दुर ! उसकी ऐसी दशा
देखकर उसकी सखियोंकी भाँति शोशुभ्रंति डबडबा धाई
तथा मन दबाते भर आया ॥ ४१ ॥ यदि उस नवेलीके
मस्तकका मणि ही समुद्र, पेश ही गण्डकी नदी, कङ्कन
ही कावेरी, गलेकी सिक्की ही गोमती, मोतीकी माला ही
गङ्गा, बरघनी ही नर्मदा तथा साढ़ी ही कौशिकी नदी
बन जायँ तब कहीं उस दुखली-पतली देहवाली नवेलीका
सन्ताप दूर हो सकता है ॥ ४२ ॥ हाय ! धौंन्तो, मोतीकी
माला, चन्द्रमका रस, चन्द्रवातमणिका जल, कपूर, बेला,
कमलनाल तथा कमलके पत्ते उस विरहिणीके लिये धामकी
चिनगारियाँ बने जा रहे हैं क्योंकि उसके मनमें तो तुम
बसे हुए हो । आह ! पर यह सब कहनेसे लाभ क्या !
धय मैं तुझ भी नहीं कहूँगी ॥ ४३ ॥ यह पतले
धर्मोवाली नवेली द्वारपर आनेवाले मनुष्यको देख-देखकर
सब समझनी है कि तुम हो तो उसकी भाँति प्रसन्नतासे
सिख उठती है, पर जब देखने है कि यह कोई दूसरा है
तब दुखी होकर मुँह जानेवाले नेत्रोंसे प्रतिघय हर्ष और
वेदनासे निवृत्तते हुए आमुखाँकी मुँह (मिथनकी धारासे)
पराँगें हुए तथा (वियोगके कटक) तापसे भरे हुए उसके

स्तनोपर गिरकर खिल भी रही हैं तथा खूब भी रही हैं
॥ ४४ ॥ तुम्हारा विद्योह न सह सकनेके कारण उस
नवेलीने तो अपने प्राण छोड़ दिए किन्तु उसके प्राण ही वह
सोचकर उसे नहीं छोड़ रहे हैं कि ऐसा सुन्दर शरीर संसारमें
कहाँ मिल पावेगा ॥ ४५ ॥ तुम्हारे विरहमें उसके लिये मलय-
पर्वतका पवन दावानल बन गया है, चन्द्रमकी झरनें भी
उसे गरम जान पड़ती हैं, भौंरोंकी गुआर रूकर उसका हार
फटा जाता है तथा कमलके पत्ते भी उसे प्रीत्य ऋतुके सुनै
समान उष्य जान पड़ते हैं ॥ ४६ ॥ हे कामदेवसे भी कषि
सुन्दरतावाले ! ऐसी कौन चन्द्रमुखी है जो तुम्हारे विरहमें दुखी
न होती होगी, किन्तु तपस्याका फल तो उसीका धरो
समझना चाहिए जिसके विद्योहमें तुम दुखी हो आते हो
॥ ४७ ॥ हाय ! यह मृगनयनी विरहिणी तुम्हारे विद्योहमें
खिली हुई नयमल्लिकाको देखकर धाई !... (मर जावती)
पर शशुभ वचन कहना उचित नहीं इसीलिये भागे मैं कुछ
नहीं कहती ॥ ४८ ॥ धापकी चर्चा सुनते समय उँगाखीसे का
सुजजाती हुई उस नवेलीको देखकर ऐसा जान पड़ता है
मानो उस चर्चाको सुननेसे न आघाती हुई यह आपके गुल्फे
भरे हुए उस काममें धापके भीरे भी गुण हँस हँसकर भाग
पावती हो ॥ ४९ ॥ भयंकर विरहाग्नि की लपटोंसे तपे हुए
उस प्राणप्यारीके हृदयमें तो धाप सदा बसे रहते हैं पर है
हृपाकी ! पालेकी मुँहके समान शीतल अपने हृदयमें धाप उस
नवेलीको चप्य भरेके लिये भी नहीं बसाते, यह क्या उचित है !

हृदि सा कृपालो वाला क्षणं वसति नैव फलु त्वदीये ॥ ५० ॥ तस्यास्तापमहं नृशंस कथयाम्येणोदशस्ते कथं पश्चिन्यास्तरसं दलं विनिहितं यस्यास्सतापो- रसि । आदौ शुष्यति सङ्कुचत्यनु ततश्चूर्णयन्वमापघते पध्यान्मुर्तुरतां दधद्दहति च श्वासावधृतं सरोम् ॥ ५१ ॥ तापोऽन्मःप्रसृतिमपचः प्रचयवान्यापः प्रणा- लोचितः श्वासाः कम्पितदीपवतिकलिकाः पारिडम्भि ममं वपुः । किञ्चान्यत्कथयामि रात्रिमखिलां त्यन्मार्गावातायने हस्तचक्षुरनिरुद्धचन्द्रमहसस्तस्याः स्थितिवर्षते ॥ ५२ ॥ तोम्रः कौऽपि विडम्भते धरतनोस्त्वह्निप्रयोगज्वरः किं द्रूमः सुभग त्वया परिजनः कौतूहलाददृश्यताम् । कण्ठे शेषमर्धयं- गद्गदगिरा कृत्या सपीनां तया गौराङ्घ्रिवमनङ्ग- तापमुहदस्सर्वाः परित्याजिताः ॥ ५३ ॥ त्वं विनि- जितमनोभवरूपः सा च सुन्दर भवत्यनुरका ।

पञ्चभिर्युगपेव शरैस्तां नापयत्यनुशयादिव कामः ॥ ५४ ॥ त्यध्विन्तापरिकल्पितं सुभग सा मन्माव्य रोमाञ्जिता ग्न्यालिङ्गनसञ्चलद्भुजयुगेनात्मानमालि- ङ्गति । किञ्चान्प्रहिरुद्व्यघाप्रशमनीं सम्प्राप्य मूच्छ्यौ चिरात्पत्युज्जीवनि कर्णभूलपठितैस्त्वधाममन्त्राचरैः ॥ ५५ ॥ त्वद्विरहे धिन्तारितरजनो जनितेन्दुचन्दन- द्वेषे । विसिनीव माघमाने विना हुतायेन सा दग्धा ॥ ५६ ॥ त्वद्देशगतमारुतेन मृदुना सञ्जातरोमाञ्जया त्वद्रूपाङ्कितचारुचित्रफलकेनावजयन्त्या दृशम् । त्वन्ना- मामृतसिक्तकर्णपुटया त्वन्मार्गावातायने नीचे । पञ्चम- गोतिगर्भितगिरा नक्तन्निर्वं स्थापते ॥ ५७ ॥ त्वयि दृष्ट- एव तन्म्या निर्धाति मनो मनोभवज्वलितम् । आलोके हि हिमांशोचिकसति कुमुदं कुमुद्वत्याः ॥ ५८ ॥ त्वयि दृष्टे कुम्भान्दयाः चंसते मदनव्यथा । यथा ह्युदयमा- जोन्द्री श्लानिः कुमुदसंहतेः ॥ ५९ ॥ त्यामन्ननीयति

॥ ५० ॥ हे अत्याचारी ! मैं उस सुगमनीका सन्ताप तुझें क्या बताऊँ ! उसके तपे हुए हृदयपर जो कमलिनीका हरा पत्ता रक्ता जाता है वह पहले तो सूखता है, फिर सिक्कने लगता है, फिर चूर हो जाता है तथा फिर उसकी साँसके पवनसे फुर-फुर उड़कर उस सलीकी ही जलाने लगता है ॥ ५१ ॥ उसकी देखके तापसे चिल्लूमर पानी भी सूख जाता है, थड़े हुए आँसू नालीमें बहने योग्य हो जाते हैं, उसकी साँसोंके वेगसे दीबेकी जौ हिजने लगती है और उसका शरीर भी उजला हो गया है । अधिक क्या कहें, सारी रात हाथसे चन्द्रमाकी किरणोंकी श्रोत किये हुए वह तुम्हारे मार्गकी ओर सुजनेवाले भरोषेपर ही घेरी रहती है ॥ ५२ ॥ हे सुन्दर ! उस सुन्दरीको आपके विद्योदका जो भयङ्कर सन्ताप है उसे क्या कहें ! आप उसके पास रहनेवालोंकी ही दया थोड़ा देख लें—उसके तापसे उसके पास बैठी हुई संदेखिवाँकी गौराईं कहने-मात्रकी रह गईं (लुप्त हो गईं) अर्थात् वे उसकी गर्मोंके कारण काजी पड़ गईं अतः उसने कामदेवके सन्तापमें साय देनेवाली अपनी उठ- न सब सखियोंको भी शरीर हाकर गद्गद धारोंसे कन- मुनकर अपने पाससे हटा दिया ॥ ५३ ॥ हे सुन्दर ! धुमने कामदेवकी सुन्दरता जित की है और वह ननेली तुमपर रीझी हुई है । इसी दाहसे मानो कामदेव एक साय अपने पाँवों बाणोंसे उसे बेधे डाल रहा है ॥ ५४ ॥

हे सुन्दर ! वह सदा तुम्हारा ध्यान करती हुई अपनेको तुम्हारा ही स्वरूप समझती है, अतः अपनी दोनों सुनारों उठाकर अपनी ही देखको लपेट लेती है और इसी प्रसन्नतामें रोमाञ्जित भी हो उठती है । अधिक क्या कहें ! तुम्हारे विद्योदके सन्तापकी वृद्धि देर दबाए रखनेवाली मूच्छ्योंमें अब वह पढ़ी रहती है उस समय उसके कानमें तुम्हारे नामके अपररूपी मंत्र जब सुनाए जाते हैं तो वह फिर चौंकर जाग उठती है ॥ ५५ ॥ तुम्हारे विद्योदमें उस नवेलीको रातें बड़ी लम्बीजान पड़ती हैं । वह चन्द्रमातया चन्दन दोनोंसे छुदती है और मानके महीनेमें कमलिनीकी रसि विना आगके ही जली जा रही है ॥ ५६ ॥ वह विरहियों आपके देगसे आते हुए घीमे-घीमे पवनसे रोमाञ्जित होती हुई, आपके परम सुन्दर चित्रमें दृष्टि उलझाती हुई तथा आपके नामरूपी अमृतसे अपने कान सींघती हुई आपके मार्गकी ओरके भरोसेमें लेंके स्वरासे बिलसती हुई रात-दिन धरतीपर पढ़ी रहती है ॥ ५७ ॥ तुम्हारा दर्शन हो जानेपर कामदेवसे जलाया हुआ उसका मन वैसे ही शीतल हो जाता है जैसे चन्द्रमारूपी प्रियतमका दर्शन पाकर कुमुदिनीका कुमुदरूपी मुल बिल उठता है ॥ ५८ ॥ तुम्हें देखते ही यदि उस सुगमनीकी कामपीदा भाग जाय तो ठीक ही है क्योंकि चन्द्रमाके उदय होनेपर क्या कुमुदोंमें सङ्घेच (खेद) रह जाता है ! ॥ ५९ ॥ पूर्ण चन्द्रमाके समान मुखवाली

कलासु चित्तोकयन्ती त्वां शृण्वती कुवलयीयति कर्ण-
पूरम् । त्वां पूर्णिमाविधुमुखी हृदि भावयन्ती वक्षोनि-
लीननयनीलमणीकरोति ॥ ६० ॥ त्वामन्तः स्थिरभाव-
नापरिणतं मत्वा पुरोऽवस्थितं यावद्दोर्वलयं करोति
रभसान्मुग्धा समालिङ्गितुम् । तावत्तां निजमेव देह-
मचिरादालिङ्ग्य याधातुर्गं दृष्ट्वा वृष्टिजलच्छलेन
रुदित मन्ये पयोदैरपि ॥ ६१ ॥ दत्तोऽस्याः प्रणयस्व-
यैव भवता चैवञ्चिन्नं लालिता दैवादद्य किल त्वमेव
कृतयानस्या नयं विप्रियम् । मन्युर्दुःसह एष यात्युप
शमं नो सान्त्वयादैः स्फुटं हे निर्विंश विमुक्तफणक-
रुणं तावत्सखो रोदितु ॥ ६२ ॥ दधति स्फुटं रतिपते-
रिपवः शिततां यदुत्पलपलाशदशः । हृद्यं निरन्तर-
वृहत्फणिनं स्तनमण्डलावरणमभ्यनित् ॥ ६३ ॥ दृष्टे
चन्द्रमसि प्रलनतमसि व्योमाङ्गस्थेयसि स्फूर्जन्निर्म-

वह नखेली जब अपनी शरीर सजाने लगती है तो तुम्हारे
लिये धौंसें फैलाकर देपती हुई तुम्हें ही अपने नेत्रोंका धौंसन
यना लेती है, तुम्हारी चर्चा सुनती हुई तुम्हें ही अपने कानमें
कमलका कनफूल बना लेती है और अपने हृदयमें तुम्हारा
ध्यान करती हुई छातीपर तुम्हें ही नये नीलमणिका हार बना
लेती है ॥ ६० ॥ जब वह विरहिया जमकर आपका ध्यान
करती है तो उसे ऐसा लगता है कि आप उसके सामने ही
बढ़े हैं । उस समय जैसे ही आपका आलिङ्गन करनेके लिये वह
अपनी गुजाएँ ऋकेसे मढ़ाती है वैसे ही उसीकी देह उसकी
गुजाओंमें धा जाती है । मुझे तो ऐसा लगता है कि उसे
आपके विरहमें इस प्रकार कट पाती देखकर ये बादल भी
माने दुस्ती होकर धर्षांरूपी धौंसु बहाकर रो रहे हैं ॥ ६१ ॥
हे दृष्ट ! तुम्होंने उसे प्रेम दिया, तुम्होंने बहुत दिनतक
उसे प्यार किया और दुर्भाग्यवश तुम्होंने ध्याज उसका नये
बहसे आपका किया (उसकी सीतसे प्रेम किया)
इसलिये उसे क्रोध धा गया । ऐसा दुःसह क्रोध वादसकी
बाँसोंसे पाँदे ही शान्त होता है । भवतः जबतक तुम उससे
आकर मिल न लोगे तबतक यह बेचारी गला फाड़-फाड़कर
रोती ही रहेगी ॥ ६२ ॥ निश्चय ही कामके वायु कड़े तीरे
होते हैं क्योंकि उस कमलनयनीके बड़े-बड़े कठोर स्तनोंसे
सदा बके रहनेवाले हृदयको भी ये पाँदे बाध रहे हैं ॥ ६३ ॥
अपने प्रियतम (तुम्हारे) दूर हो जानेपर जब आकाशमें
पम्पकारको नर करनेवाला तथा म्बप्य धौंसनी बिगेरनेवाला

लतेजसि त्वयि गते दूरं निजप्रेपसि । भ्वासं कैरथको-
रकीयति मुखं तस्यास्सरोजीयति क्षीरोदीयति प्रमथो
मृगादृशो दृक्चन्द्रकान्तीयति ॥ ६४ ॥ घत्ते दृष्टिमघो-
तविभ्रमलथां सा पुष्पलावोजने चैत्रस्य जलमादरेप
महता मौहृतिकान्पृच्छति । श्येनासुप्यति कोकिल-
ध्वनिरुपा सन्त्यज्य लीलाशुकाग्निशोको त्वयि दुर्लभे
किमपरं शक्यं वराक्या तथा ॥ ६५ ॥ धातुः शिल्पा-
तिशयनिकपस्थानमेपा मृगाक्षी रूपे देवोऽप्ययमनुपमो
दत्तपादः स्मरस्य । जातं दैवात्तदृशमनयो सहतं
यत्तदेतच्छृङ्गारस्योपनतमधुना राज्यमेकातपन्नम् ॥ ६६ ॥
न सघणैर्न च रूपं न संस्क्रिया नैव सा प्रकृतिः ।
याला त्वद्विरहापदि जातापभ्रंशभावेव ॥ ६७ ॥ न हारं
नाहारं कलयति विहारं विपमिव स्मरन्ती सा रामा
सुभग भवतश्चागमदिनम् । परं क्षीणा दीना पत्न

चन्द्रमा दिखाई पड़ा उस समय उस मृगनयनीकी हाँसों
कुसुदकी कलियोंके समान खिलने लगीं अर्थात् अपने
लगीं, मुख भी कमलके समान मलिन होने लगा, काम
पीड़ा भी धीरसागरके समान बढ़ने लगी तथा धौंसों भी
चन्द्रकान्त मणिके समान गीली होने लगीं ॥ ६४ ॥
वह विरहिया हृदयक्षीले भरी धौंसोंसे चैतमें फूल तोड़नेकी
मालिनीको देखती है, बड़े आदरसे उद्योतियोंसे पृथ्वी
है, कोयलकी कूक सुनकर मोहित होकर खेलेके मुगामें
छोड़ देती है और बाज़को देखकर प्रसन्न होती है । हे
निर्दयी ! तुम्हारे न मिलनेपर वह बेचारी और कर ही बना
सकती है ॥ ६५ ॥ यह मृगनयनी महाकी कलाही बहोती
है तथा कामदेवको पराजित करनेवाले आप भी सुन्दरतने
बेजोषु हैं, संयोगवश जो आप दोनोंका समागम हो गया है
इससे अद्भार रसका इस समय पकृष्टुत्र रात्र हो गया
है ॥ ६६ ॥ तुम्हारे विद्योह-रूपी विपत्तिमें पड़ी हुई वह
नखेली बिगड़े हुए शब्दोंके समान हो रही है क्योंकि न तो
उसका पहलेका-सा रत्न रह गया, न सुन्दरता रह गई, न
शरीरकी सजावट रह गई और न वह पहलेका सा स्वमर ही
रह गया तथा आपभ्रंश शब्दोंकी भी कहीं समानता नहीं
मिलती, न तो शुद्ध शब्दोंकी भाँति उनका रूप ही बजग,
न तो सुगौसे उनकी सिद्धि ही होती और न उनका डूब डूब
ही मिलता है ॥ ६७ ॥ हे सुन्दर ! यह दुःखकी, अपनी, दुर्लभ,
सुन्दर गुणवाली तथा पद्मल नेत्रवाली रमयी पत्नी

सुखहीना सुचक्षुः कुहपतग्लौघचपलनयनाङ्गीकृत-
गतिः ॥ ६८ ॥ नायं मुञ्चति सुध्रुवामपि तनुत्यागे
धियोज्वरस्तेनाहं विहिताञ्जलिर्धनुषते पृच्छामि सत्यं
यद् । ताम्बूलं कुसुमं पटीरमुदकं यद्द्रुमुभिर्दण्डिते
स्यादत्रैव परत्र तत्किमुचित्तज्वालावलीडुःसहम् ॥ ६९ ॥
निश्वासा अपि मन्दतां घत गताः को हन्त वाचां
क्रमस्ते ते दर्शनविभ्रमा अपि हताः सञ्चारशैली क
सा । श्रोत्रयोर्वा स्तनयोः पृथुन्धमगमत कुभोदं तत्
पुनन्धवपादैकगतेर्दशैयमधुना देवः प्रमाणं पुनः ॥ ७० ॥
निधसति यदि तव हृदये सा वाला सुभग वज्रघटि-
तेऽस्मिन् । तत्पल्लु कुशलं तस्या मदनशरैस्ताड्यमा-
नायाः ॥ ७१ ॥ नीरागा मृगलान्छुने मुपमपि स्वं
नेक्षते दर्पणे त्रस्ता फोकिलकूजितरापि गिरं नोन्मुद्र-
यत्यात्मनः । चित्रं दुःसहदाहदायिनि धृतद्वेषापि
पुण्यायुधे सा वाला सुभग प्रति प्रतिपदं प्रेमाधिकं

पुप्यति ॥ ७२ ॥ नैष्टुर्यं फलकरडकोमलमिगं पूर्णस्य
शीतघृतेस्तित्मत्वं घत दक्षिणस्य मरुतो द्वाक्षिगृह्या-
निश्च ताम् । स्मर्तव्याकृतिमेव कर्तुमवलतां सभादमा-
तन्वते तद्विभ्रः क्रियते वृणाद्वचलनोद्भूतेस्त्वदातिध्रमः
॥ ७३ ॥ परस्मिन्नापि गोष्ठीषु कान्त त्वयासि विप्रते ।
सहसा सज्जकर्णाऽसी जायते मृगलोचनां ॥ ७४ ॥
पाणिर्नोवकङ्कणः स्तनतटी निष्कम्पमानांशुका दृष्टि-
निश्चलतारका समभयान्निस्तारणं कुण्डलम् । कश्चि-
न्नापितया समं कृशतनोर्भेदो भवेन्नो यदि त्वन्नामस्म-
रणेन कोऽपि पुलकारम्भः समुज्ज्वमते ॥ ७५ ॥ पोयू-
पाकरमालतीमलयभृमुष्या मताः शीतला हन्तामी
अपि तीव्रदाहकतया जाता ममाशान्तये । तन्मन्ये
सुभग त्वमेव शरणं वैद्यस्तवैवं करस्पर्शां नैपजमित्य-
नुग्रहदशा तां साम्प्रतं जीवय ॥ ७६ ॥ प्रभो याचे
भिन्नां घत नताशरास्त्वामहमिदं न चंदस्ति प्रीतिः

आनेके दिन गिनती हुई हार नहीं पहनती, भोजन नहीं
करती तथा खेलकी भी विप समझती है । इस प्रकार यह
अमावास्याके चन्द्रमाके समान समाप्त हुई जा रही है ॥ ६८ ॥
हे यदुर्वंशके स्वामी ! सुन्दर भीहावाली नवेलियाँको यह
वियोगका ताप देह-त्याग करनेपर भी नहीं छोड़ता हस्तजिये
में हाथ जोड़कर आपसे पृथ्वी हूँ । आप सच बताइए कि
पान, फल, चन्दन तथा उरु आदि पदार्थ जो आपमें
भाई-बन्धु दिया करते हैं उसके साथ क्या यह वियोगका
असह्य ताप भी परलोकमें प्राप्त होता है ? ॥ ६९ ॥ एक
मात्र आपके चरणमें शरण्य पानेवाली उस विरहिणीकी
बोलीकी तो बात क्या, उसकी सर्तों भी धोमी पद गाई हैं,
यह चित्तपवनकी सुन्दरता और चलनेका ढङ्ग तथा नितम्ब
और स्तनोंकी मोटाई भी न जाने कहाँ चली गई, पंथकी
क्या बात है ! उसकी पेशी दशा हो गई है, आगे
आप जो उचित समझें ॥ ७० ॥ हे सुन्दर ! कामदेवके
याण उसे बंधे ढाल रहे हैं । अतः यदि आपके इस वज्रसे
वने हृदयमें यह रदने धरगे, तभी उसका कल्याण हो
सकता है ॥ ७१ ॥ उस नवेलीको चन्द्रमासे घृणा हो गई
है, अतः यह चन्द्रमाके समान दिखाई देनेवाले दर्पणमें
अपना सुँह नहीं देपती, कोयलकी बूकेसे डर जानेके कारण
अपने मुखसे भी घेसा बोली नहीं निकालता पर अचरज तो
यह है कि अस्त्र ताप देनेवाले कामदेवसे विरोध करती हुई

भी यह अपने प्रियतमपर अत्यधिक प्रेम यदाती जा रही है
॥ ७२ ॥ कोयलकी बूकेरी निदुरता, पूर्ण चन्द्रमाकी गर्मां,
दक्षिणके पवनकी कठोरता, ये सभी उस नवेलीको समाप्त करनेके
लिये कमर कसे हुए हैं, पर तिनके-पत्ते आदिके त्वदकनेसे जो
उसे आपके आनेका भ्रम हो जाता है वही उसके प्राण देनेमें
याचक हो जाता है ॥ ७३ ॥ हे प्रियतम ! जहाँ भी कुछ मनुष्य
इकट्ठे बैठे रहते हैं और उसमें आपका नाम कोई-के-चेला है
तो वह मृगनयनीवहीं ही अपने कान लगाने लगती है ॥ ७४ ॥
उसके हाथके कंगन बजते नहीं, स्तनोंपर दका हुआ वज्र भी
नहीं हिलता, नेत्रोंकी पुतलियाँ एकदक रह जाती हैं तथा कुंडल
भी नहीं डोलते । अथ यदि तुम्हारे नामके स्मरणसे उसकी
देहमें रोंगटे न उभर आते तब चित्रलिखी नवेलीमें और उसमें
कोई अन्तर न रह जाता ॥ ७५ ॥ हे सुन्दर ! मैं जानती हूँ कि
चन्द्रमा, मालती और चन्दन ये बड़े शीतल होते हैं । किन्तु हाथ !
उस विरहीके सन्तापको तो ये सब भी अत्यधिक द्राहक होनेसे
नहीं शान्त कर पाते । तब तो मैं समझती हूँ कि आप ही उसकी
शरण्य हैं, आप ही वैद्य हैं तथा आपके हाथका स्पर्श ही उसकी
श्रीपथि है । अतः अपनी कृपाभी चितवनसे इस समय चलकर
उसे शिला हीजिए ॥ ७६ ॥ हे नाथ ! मैं स्तिर नदाकर आपसे मीळ
माँगती हूँ कि यदि उसपर आपका प्रेम न भा हो तब भी आप
इस समय उसपर दया कजिए क्योंकि वह भोले हृदयवाली
आपका नाम जपती हुई प्राण छोड़ देती । अतः, हे पुष्यवन्ता !

कुत्र तदपि काश्यपमधुना । जपन्ती त्वां प्राणोस्त्यजति
 वत सा मुग्धहृदया तदभ्येत्येदानीं यितर नयने
 तत्र सुरुतिम् ॥ ७७ ॥ प्राणश तव विरहिणी हिम-
 फरकिरणेषु हर्ममिलितेषु । सन्तापनि-सहाङ्गो
 मुञ्चति निचयं चकोरणम् ॥ ७८ ॥ प्रादुभूते
 नयजलधरे त्वन्पथं द्रष्टुकामाः प्राणाः पङ्कह-
 दलदृशाः फण्टदेशं मयान्ति । अन्यत्रिकं वा तव
 मुपविधुं द्रष्टुमुद्दीय गन्तुं वचः पदं रजति बिसिनी-
 पल्लवस्य च्छलेन ॥ ७९ ॥ विश्राणा हृदये त्वया विनि-
 हितं प्रेमाभिधानं नयं शल्यं यद्विद्धाति सा विधु-
 रिता साधो तदाकर्ण्यताम् । शेते शुष्यति ताम्यति
 प्रलपति प्रस्तायति प्रह्वति भ्राम्यत्युल्लुठति प्रणश्यति
 गरात्पुनर्मूर्च्छति वृद्धयति ॥ ८० ॥ भयता मदना विजि-
 तस्तेन च निहताऽथला चलात्सुमुख । अथ यदि
 शरुं भुवनत्रये भवान्केवलो दयितः ॥ ८१ ॥ मम
 रूपकीर्तिमहत्पद्भु वि यस्तदनुप्रविष्टहृदयेयमिति । त्वयि

मत्सरादिव निरस्तदयः सुतरां क्षिणोति क्षतु तां
 मदनः ॥ ८२ ॥ मृगशिशुदृशस्तस्यास्तापं कथं कथ-
 यामि ते दहनपतिता दृष्टा मूर्तिर्मया न हि वैधवी ।
 इति तु विदितं नारीरूपः स लोकदृशां सुधा तव
 शठनया शिल्पोत्कर्षां विधेर्विचट्टिष्यते ॥ ८३ ॥ मृण-
 लीव क्षामा तदपि तव साहाय्यविधुरा मुहुः स्मारी-
 खैर्गलनिभृतेस्ताडिततरा । व्रजत्येवा मूर्च्छामप यदि
 न तामेत्य सहसा विदध्यास्तद्राचां कथमिय भविषी
 स्मर मनाक ॥ ८४ ॥ मुहुर्व्यजनवीजनैस्सरसचन्दनासेचनै-
 स्सरोजदलवेष्टनैरपि न चेष्टते सुन्दरी । तथापि तव
 नामनि मियसखाभिरावेदिते निवेदयति जीवितं श्रयण-
 सीञ्चि रोमोद्गमः ॥ ८५ ॥ या चन्द्रस्य कलङ्किनो जनयति
 स्मेराननेन प्रयां वाचा मन्दिरीरसुन्दरीगरो वा
 सर्वदा निन्दति । निःश्वासेन तिष्ठस्फुरोति कमलामो-
 दान्वितान्यानिलान्सा तैरेव रहस्त्वया विरहिता
 काञ्चिदृशां नीयते ॥ ८६ ॥ या दक्षिणा त्वमस्यामद-

कटपट चलकर उसपर अपनी दृष्टि डाल चाहिए ॥ ७७ ॥ हे प्राण-
 माय ! विद्योगका सन्ताप न सह सकनेके कारण वह विरहिणी
 घृतपर पड़ती हुई चन्द्रमाकी किरणोंको समाप्त कर डालनेके
 लिये यहाँ चकोरोंका समूह छोड़ देती है ॥ ७८ ॥ नये बादलोंके
 दिग्गर्ह देते ही तुम्हारा मार्ग देखनेके लिये उस कमलधनीके
 प्राण गलतक था जात है । थापक क्या कहूँ ? तुम्हारा मुखचन्द्र
 देखनेकी चाहमें उदकर तुम्हारे पास पहुँचनेके लिये उसका
 मण्डल धरने ऊपर रखे हुए कमलके पत्रोंके रूपमें मानो
 पङ्कलगा रहा है ॥ ७९ ॥ हे सज्जन ! उसके हृदयमें तुमने जो
 प्रेमकी गई कील गदा दी है उसे धारण करती हुई वह क्या
 करती है उसे सुनिपगा ' वह खेतती है, मृगती है, मित्र रहती
 है, वरुनी है, अग्रसल रहती है, हृष-उपर फिरती रहती है,
 चक्रर गायती है, दुष्टपटाती है, मरी-सी हो जाती है, गलने-सी
 लगती है, मूर्च्छित हो जाती है और इस प्रकार दुबली होनी
 जा रही है ॥ ८० ॥ हे सुन्दर सुधवाले ! आपने जिस
 कामदेवको जीत लिया है वह वल्लभके उस चबलाको
 मारे डाल रहा है, जब यदि तीनों जोकोंमें उसे कोई
 बचानेवाला है तो उसके पक्षमात्र निपतय कर ही है ॥ ८१ ॥
 निष्टुर कामदेव मानो इसी चाहसे उसे धार कर देना जा
 रहा है कि जिस पौधेने मेरी सुन्दरता तथा कीर्तिको भीषा
 दिखाया है उतारों इस मनेकीका मन खगा है ॥ ८२ ॥ उस

मृगयनीके सन्तापकी दशाका मैं किस प्रकार बर्णन कर
 सकूँकि मैंने आगमें पड़ी हुई चन्द्रमाकी मूर्ति देखी ही नहीं,
 नहीं तो उसकी समता दे ही डालती । हाँ, इतना प्रसर
 जानती हूँ कि लोगोंकी आँखोंके लिये अत्यन्त समान वा
 प्रह्लाकी एक प्रति उत्तम कला बनी हुई मनेकी तुम्हारी मीचगने
 कारण सूरती चली जा रही है ॥ ८३ ॥ एक तो वह वेले ही
 कमलनालकी भाँति दुबली तथा उजली है, दूसरे तुम्हारा
 समागम भी उसे नहीं मिल रहा है । तिसपर कामदेव ने
 अपने विप-बुके बाणोंसे ऐसा वेध रहा है कि वह मूर्च्छित हो ही
 जा रही है । जब भी यदि चलकर तुम उसकी रक्षा करती
 तो तुम ही योद्धा सौको कि उसकी क्या दशा होगी ॥ ८४ ॥
 उस सुन्दरीकी यह दशा हो गई है कि बार-बार पङ्कल
 गीले चन्द्रनका लेप करने और कमलके पत्रे छपेटनेसे भी
 नहीं हिलती-दुबली । बस जब सखियाँ उसके कानमें तुम्हारा
 नाम सुनाती हैं तो उसके कानके पास उठे हुए राँगे देखा
 ही लोग समझते हैं कि वह जीवित है ॥ ८५ ॥ वह बनेको
 अपने निर्मल मुखसे जिस चन्द्रमाको सज्जित किया करती थी,
 अपनी मीठी बोलीसे परके जिस सुगन्धो मधुर वादोंकी नीषा
 दिगाती थी तथा अपनी सुनिधित सर्तियोंने कमलकी सुगन्ध
 भरे जिस पवनको भीषा दिगाती थी, वे ही सब धार तुम्हारे
 बिदाहमें उस मनेकीकी दुर्गा किन् डाल रहे हैं ॥ ८६ ॥

क्षिणो क्षिणस्तदितरस्याम् । जलधिरिय मध्यसंशो
न वेलयोस्सदृशमाचरति ॥ २७ ॥ यावदावद्भवति कलया
पूर्णकामः शशाङ्कस्तावत्तावद्दशुतिमयघुः क्षीयते
सा मृगाक्षी । मन्थे धाता घटयति चिधुं साम्नादाय
तस्यास्तस्माद्याघघ भवति सये पूर्णिमा तावदेहि
॥ २८ ॥ राकासुधाकरकरैर्नलिनीदलैश्च नीहारहारघ-
नसारभरैः किमैतैः । किं वा भयेन हरिचन्दनपङ्कसेकैर्न
न्यां चिन्ता मृगच्छः परितापशान्तिः ॥ २९ ॥ रुष्टे का
परपुष्टे मन्थे का हन्त मारुते चर्चा । त्वयि गतयति
हृदयेथे जोवनदातापि जीवन् हरति ॥ ३० ॥ वर्षन्ति
स्तनयिन्नायो न सरले धारागृह्णते नर्जन्ति प्रति
कूलवादिनि न ते द्वारि स्थिता दन्तिनः । इत्येवं
गमितो घनव्यापकः सा राजपुत्री पुनर्वातो वाति
कदम्बपुष्पसुरभौ केन प्रतारिष्यते ॥ ३१ ॥ वाचस्ता-
वदपेक्षते पिकमुद्या लम्ब्यालकानां श्रियः भृङ्गाली

विरुण्क्षि चूतमलिना सोभाग्यमार्शमनि किञ्चान्तर-
थयामि निदय दशा नम्यान्तथा घर्तते निध्यासानपि
हन्तुमिच्छति यथा क्रूणे यसन्तानिल ॥ ३२ ॥ विह-
न्नाम्नि निवेदनं तव पुरो यन्नापि तन्नाम्यथा दाप-
स्तेन तथापि कः परपता युक्तैव ते चैतसि । किं त्वया
प्रष्टेतरतीय सरला त्वग्न्यन्नाचिन्ताऽथलाऽधीरा मुग्ध-
मतिः प्रयाति सलिलं देयं त्वयेत्यर्थते ॥ ३३ ॥
विपुलपुलरूपासिः स्फोटसोत्तारमन्तर्जनिजडिदम-
काकुट्याकुलं व्याहरन्ती । तव कितव विधायामन्द-
फन्दर्पचिन्तारसजलनिधिमद्गा ध्यानलम्बा मृगाक्षी
॥ ३४ ॥ विमुञ्चन्त्या प्राणैश्चिरविरहदुःखासहनया
तथा सन्दिष्टं ते षडिनहृदयापश्चिममिदम् । अपत्यं
वालेना मम विधिहृतायास्सलिलदा तथा नेयं सेध्या
व्यसनरुचये दायत इति ॥ ३५ ॥ विरहविषयः कामः
कामं तनुं कुरुते तनुं दिवसगणनादक्षिणायं व्यपेतघ-

तुम्हें चाहती है उसे तुम चाहते नहीं किन्तु जो तुम्हें नहीं
चाहती उसे तुम चाहते फिरते हो। बीचमें रहनेवाला समुद्र जैसे
दोनों फूलोंसे समान व्यवहार करता है वैसे तुम क्यों नहीं
करते ॥ २७ ॥ हे मित्र ! पूर्णिमाके आनेसे पहले ही उससे
जाकर मिल जाओ क्योंकि ज्यों ज्यों चन्द्रमा एक-एक कलासे
बढ़ते जाते हैं व्यों-व्यों वह सुन्दर शरीरवाली नवेली दुबली जाती
जा रही है। अतः, जान पड़ता है कि प्रज्ञा उसकी सुन्दरता
ले-लेकर ही चन्द्रमाको पुष्ट कर रहा है ॥ २८ ॥ पूर्णिमाके
चन्द्रमाकी किरणों, कमलके पत्तों, पाला, मोतीके हार तथा
कपूरके ढेर, और कहनेमें डर किस बातका, यहाँतक कि
मन्दन वनके चन्दनके घने लेपसे भी उस मृगनयनीका सन्ताप
बिना तुम्हारे नहीं शान्त हो सकता ॥ २९ ॥ क्रोधित कोयल
तथा भीमे बहनेवाले पवनकी तो बात ही क्या है, तुम्हारे
(प्राणनाथके) चले जानेपर जीवन (जल, प्राण) देनेवाला
(मेघ) भी उसका जीवन हरे ले रहा है ॥ ३० ॥ बरसात हाते
समय तो उस राजकुमारीको हमलोग यहकहकर बहका लेती हैं कि
'हे भोले स्वभाववाली ! यह बादलोंके बरसनेका शब्द नहीं है,
वरन् धरमें फुटारे चल रहे हैं । हे उलटी बात बोलनेवाली !
ये बादल नहीं गरज रहे हैं वरन् द्वारपर हाथी विरजद रहे हैं ।'
अतः वर्षाका समय तो वह किसी-किसी प्रकार बिता लेती
है किन्तु बिले हुए कदम्बके फलोंकी सुगन्धसे भरा हुआ जो
मर्षाका पवन इस समय बह रहा है उसके विषयमें उसे क्या

कहकर बहलाया जाय ! ॥ ३१ ॥ युवक कोयल उसकी बोली
झीन रहा है, भौंरोही पौत उसके लम्बे लम्बे बालोंकी शोभा
झीन रही है और आमका बीर उसके सोहागपर मारक लगाए
बैठा है, हे निर्दयी ! मैं और कहति क उसकी दशा बनाऊँ ?
अब कठोर वसन्तका पवन उसकी सोंसों भी झीननेको मचल रहा
है ॥ ३२ ॥ हे विद्वान् ! मैं आपके सामने क्या निवेदन करूँ ?
जो होगा सो ठीक ही होगा, उसमें आपका दोष भी क्या है ?
आपका वित्त जो कठोर हो गया है वह भी उचिन ही है, किन्तु
वह सरल प्रकृतिकी भोली-भाली नवेली आपमें ही वित्त लगाकर
अब प्राण दे देना चाहती है । उसने आपसे यही प्रार्थना की
है कि 'मुझे आप पानी दे दीजिएगा' ॥ ३३ ॥ कामदेवकी
चिन्ताके महासागरमें डूबी हुई वह मृगनयनी अब तुम्हारा
ध्यान करने लगती है उस समय उसका शरीर रोमाञ्चित ही
उठता है, वह आनन्द-विभोर होकर सी सी करने लगती है
तथा उसके मुँहसे ठीक-ठीक शब्द भी नहीं निकल पाते ॥ ३४ ॥
हे कठोर हृदयवाले ! बहुत दिनोंके विरहके दुःखको सहनेमें
असमर्थ होकर प्राण छोड़ती हुई उस नवेलीने तुम्हारे त्रिये
यह अन्तिम सन्देश भेजा है कि 'मैंने मरनेके पश्चात् मुझ
अभागिनकी पानी देनेवाली मेरी सन्तान यहाँ एक लड़की है
अतः इसकी सेवा करते रहना तथा इसे किसी प्रमादीको न
दे बैठना' ॥ ३५ ॥ इस विरहके समय कामदेव भी प्रबल
होकर उसकी देह आपत्त दुबली किए ढाक रहा है, निपुत्र

सोपम । त्वमपि घशगो मानव्याधेविचिन्तय नाथ हे
 किसलयमृदुर्जीवत्येव कथं प्रमदाजन ॥ ६६ ॥ चिरद्वे
 तव तन्वद्वा कथं क्षपयतु क्षाम् । दारुणव्यवसायस्य
 पुरस्ते भणितान् किम् ॥ ६७ ॥ तिलासिन्नासिने प्रति
 पक्षतिमध्यं त्वया तदा दशा दासा कृत्वा गृहमनु
 पदान्येत्य कतिचित् । मरुत्सन्तर्वाति द्रुतमिति भवद्
 शनधिया प्रदापोद्धारणा शतमिति तथा किञ्च शमित
 ॥ ६८ ॥ विलिम्पत्येतस्मिन्मलयजसद्रोणमहसा दिशा
 चप चन्द्रे सुश्रुतमथ तस्या मृगदृश । दशोर्गोप्य
 पाणी वदनमस्य वण्डगुहरे हृदि त्य ही पृष्ठे वचसि
 च गुणाय एव भवत ॥ ६९ ॥ विपत्ता निषेधितमपक्रि
 पया समुपैति सजमिति सत्यमद् । अमृतस्युतोऽपि
 चिरहाङ्गवतो यदमृ दहन्ति हिमरश्मिरुच ॥ १०० ॥
 व्यजन व्यजन जल जल घनसारो घनसार इत्यपि ।
 अयरोधगृहेषु सुभ्रुवा क्षुरराणामिव कातरो ध्वनि

॥ १०१ ॥ शोकोत्पत्तिरशोकत सुमनसो यद्वैमनस्यो
 द्यो वैरस्यञ्च रसालतो विकलता तापत्कलाना
 निधे । किञ्चान्यत्रलदो भवत्यनलदो निर्णोतमुनोपते
 घाम केजलमेक एव न भयानस्यामशेष जगत् ॥ १०२ ॥
 श्वासान्मुञ्चति भूतले विलुटति त्वन्मागमालोके
 दार्ध रोदिति निक्षिपत्यत्रित तामा भुजाङ्गगीम् ।
 किञ्च प्राणसमा न काङ्क्षितवता स्वप्नेऽपि ते सङ्गम
 निद्रा वाञ्छति न प्रयच्छति पुनर्दग्धो विधिस्तामपि
 ॥ १०३ ॥ श्वासेषु प्रथिमा मुख करतले गण्डस्थले
 पाण्डिडमा मुद्रा वाचि विलोचनेऽश्रुपटल देहे च दाह
 दय । एतावत्कथित यदस्ति हृदये तस्या शशाङ्क्या
 पुनस्तज्जानासि ननु त्वमेव सुभग श्लाघ्या स्थिति
 स्तत्र या ॥ १०४ ॥ श्वासेऽस्तुत्यति वेगिभिनयनयोऽप्या
 भ्युभि क्लाम्यति स्वेदाभ्मालधवाहिना कर्तलेनार्वाचि
 ता म्लायति । इत्यालाप्य तथा चलद्दन्तया तियप्यत

यमराज भी उसकी मृत्युके दिन गिन रहा है और तुम भी
 उससे लठ फेंक दो, धत ह नाथ । तुम ही साचो कि कापलाके
 समान कामल यह नबला इस प्रकार कैसे जाचित रह पावगी
 ॥ ६६ ॥ यह दुखले शरीरवाली नवली तुम्हार बिजाहमें
 कैसे रात यिताय ? पर आयत भर व्ययहार करनेवाले तुम जैसे
 निद्राक सामन ये घात कहनेसे क्या लाभ ॥ ६७ ॥ हे
 विलासा ! तुम्ह देरनक लिये यह उल्लाहने यह हाथमें दापक
 लक्ष्म, वहाँ उक्साकर कुड़ पग चला किन्तु जब उसने दला
 कि तुम कुड़ नबेलायाक साथ राग रगमें मस्त हा और
 पथन भा यह घगस उन सँकड़ा द्वारासे हाकर यह रहा है
 सा थापका दरान करनक लिये क्या उसन भटते हाथका
 दापक नहा पुष्पा दिया ? अथ ल पुष्पा हा दिया ॥ ६८ ॥
 चन्दनक रसक समान चर्दनात्पा लपसे जब यह चन्द्रमा
 सारा । दशाभाक रूपम इस घृगनयना नबलाक पुष्य हा जाप
 दाख रहा था उस समय उसक नयमें छाँस, हायमें मुँह,
 गलम प्राय, हृदयम तुम, पाठर छात्र और वचनमें तुम्हार
 गुण हा थ ॥ ६९ ॥ यह सच है कि अनुचित रातसे उपयाग
 करनेपर सार्ध चण्डु विप हा जाली है क्योंकि थापक बिदाहमें
 चन्द्रमाका व अमृतवा पार बहानवाली धियाँ भा उसे जलाय
 दाख रहा है ॥ १०० ॥ 'पट्टा छाया पट्टा, जल छाया नज,
 कूर छाया कूर,' इस प्रकार अन्त पुरमें पुरराक समान
 विषयनी हुई मखियोंक दु प भर अन्ध दृष्ट रह है ॥ १०१ ॥

अशोक वृक्षसे उसे शाक हाता है, पूजासे उसका पैर है
 भ्रामसे उसे घृया है, चन्द्रमाको देखकर वह श्वाङ्गु हा जात
 है । अधिक क्या, उशीर (खस) से भी उसे ताप ही हात
 है । फिर भी, मैंने तो यह निरयय किया है कि यदि भा
 उसके प्रतिकूल न रहे ता सारा ससार प्रतिकूल हाय भा
 उसका कुड़ नहा विगाड़ पावगा ॥ १०२ ॥ हे प्राणपर !
 यह नायिका लम्बी चम्बी सौँसे लेती है, धरतापर छाटता
 है, तुम्हारा मार्ग दलता रहता है, जैसे स्वयसे विज्ञाप करती
 है, अपना पतली पतली थौँ है धर उधर फँकती रहती है तथा
 स्वयनमें तुम्हारा समागम पानेकी इच्छासे यह चाहता है कि
 नींद आ जाय । पर उसका दुर्भाग्य उसे नींद भी नहीं दाने
 दता ॥ १०३ ॥ हे सुन्दर ! उस विरहिणिका सौँसे कूज ली
 है, यह हथेलापर गाल धरे रहती है, उसके गाँजापर पाँज
 छा गया है, वाली अन्ध हा गई है और नेत्रोंमें क्षीणुषोंका प
 था रही है । इतना ता मैंने बता दिया, अब उस तुम्हें
 भ्रातायाका कृदपमें क्या है और उस हृदयकी क्या सारतन
 दशा है, यह सा केवल तुम्हीं जानत हा ॥ १०४ ॥ हे निर ।
 भापकी छाडाजात उसके छाँसुषोंके वेगसे टूटने लगना है
 मश्राक शरम गरम छाँसुषोंसे गुरम्भान लगता है तथा ब
 पसनात हुय हाय चिरानसे भी बुग्बुजान लगती है, का
 जब उसन यह दया हा यह उस खताकी धारसे बहना ही
 फरबर, निरधी चित्तपनसे उम देवनी दुर्, करने ल

श्रेयसा दूरोत्सारितहस्तया तव सप्रे क्रीडालता सिञ्चय-
ते ॥ १०५ ॥ सपि दयितमिहानयेति सा मां प्रहितवती
कुसुमेपुष्पाभितसा । हृदयमहृदया न नाम पूर्वं भयदु-
पकण्डमुपागतं विवेद ॥ १०६ ॥ सखीभिर्ज्ञां याच वत
नतगिरास्वामिदमहं न चेदस्ति प्रीतिः क्रुद तदपि
कारणयकणिकाम् । श्रयस्था सा तस्याः सुकृतमय-
मस्यां किमपरं प्रमोहो विश्रामस्त्वमथ मरणं वा प्रति-
कृतिः ॥ १०७ ॥ सङ्केतकुलमुचि सा श्यनोपधा-
नव्यालङ्कृतं सुभग कुरङ्गलिन न वेद । तत्करडलभ्रघ
नचन्दनगन्धलुब्धस्तत्रैव निश्चलमुवासाचिराय साऽपि
॥ १०८ ॥ सम्प्राप्तेऽयधिवासरे ञ्जमसा त्वद्वर्मावता-
यनं वास्वामुपेत्य निष्कपतया निश्चिन्त्य किञ्चिच्चि-
रम् । सम्प्रत्येव निवेद्य फेलिकुररीः साक्षं सखीभिः
शिशोर्माधव्यास्सहकारकेण करुणः पाण्डुरहो निमित्तः

॥ १०६ ॥ सा न ज्ञाति न घानुलिम्पति न वा
नेशेषु घन्ते स्त्रजं न त्रीडासु मना दधानि न सखीरा-
लोफते च्चाट्टपु । किं तु न्यम्य मुपास्युजं फरतले
वाण्पायमाण्जुणं निःश्यासगल्पिताधरं च श्यने
जागति ते चिन्तया ॥ ११० ॥ सा रोमाञ्जति सौत्क-
रोति विलपत्युत्कम्पते ताम्यति ध्यायत्युञ्जमति
प्रमीलति पतत्युधाति मूर्च्छत्यपि । एतायत्यतनुङ्गरे
वरतनुजोविन किं ते रसात्सर्व्येद्यप्रतिम प्रसीदसि
यदि त्यकोऽन्यथा हस्तकः ॥ १११ ॥ सा विरद्वदहन
दूना मृत्वा मृत्वापि जीवति वराकी । सारीय कितय
भवतानुकूलिता पातिताक्षेण ॥ ११२ ॥ सा सव्येय
रक्ता राग गुञ्जव न तु मुपे वहति । वचनपटोस्तय
रागः फेवलमास्ते शुक्रस्येव ॥ ११३ ॥ सा सुन्दर तद्य
विरदे सुतनुरियन्मात्रलोचना सपदि । एतायतोम-

दूर किए हुए ही उसे सींचती है ॥ १०५ ॥ कामके
बाणोंसे बेधी हुई उस तुम्हारी मियतमाने यह कहकर
मुझे तुम्हारे पास भेजा है कि 'हे सखी ! मेरे मियतमको यहाँ
ले आओ !' किन्तु उस हृदय-गुन्यने यह नहीं समझा कि
पेसा कहनेसे पहले ही उसका हृदय आपके पास पहुँच चुका
॥ १०६ ॥ मैं आपके प्रथामके आपके आपसे अपनी सखीके
लिये यह सीख माँग रही हूँ कि यदि आपका उसपर प्रेम
नहीं है तभी मैं उसपर कुछ तो दया करनी ही चाहिए क्योंकि
उसकी दया बड़ी शोचनीय है । दूसरा कुछ पुराय तो उसका
दिखाई नहीं देता, जब वह मूर्च्छित होती है तभी उसे चैन
मिलता है । इस प्रकार उसका दुःख दूर करनेका या तो
मृत्यु ही उपाय है या आप ही ॥ १०७ ॥ हे सुन्दर ! तुमने अपनी
प्यारीसे मिलनेके लिये जिस आधीमें सङ्केत किया था वहाँ
जब यह पहुँची तो वहाँ पड़े हुए सौंपको लकिया समझकर
उसीपर सिर रखकर लेट गई थी और सौंप भी उसके गलेमें
छगे हुए चन्दनकी सुगन्धके लोभसे बधी देवतक चिन्ता दिल्हे-
हुले वहाँ पदा रह गया ॥ १०८ ॥ हे निष्ठुर ! जब तुम्हारे
आनेका अन्तिम दिन आ गया तो तुम्हारा भार्या देखनेके लिये
वह बार-बार भरोसेपर गई किन्तु जब तुम दिखाई न दिए
तो बहुत देरतक सोचकर उसने अपने मनमें कुछ निश्चय
किया, इसके पश्चात् अपने साथ खेलनेवाली उत्तरियाँका
बिदा देकर रोती हुई, सखियोंके साथ छोटी सी माधवी लताका
आमके पृष्के साथ विवाह कर दिया, इसलिये कि कहीं मेरे

मरनेके पश्चात् मेरा जाना हुआ यह काम रह न जाय ॥ १०९ ॥
इस समय वह विलिखी न तो स्नान करती, न शरीरको चन्दन
आदिके लेपसे सजाती, न बालामें माळा रूँधती, न खेलमें मन
लगाती और न आमोद प्रमोदकी बातोंमें ही सखियोंकी शोर
देखती वरन् ह्येजीपर अपना मुखकमल रखकर आँखोंमें शक्ति
भरकर गरम-गरम सँसले शार्ङ्गको भुङ्गसाली हुई आपकी
चिन्तामें विद्योनेपर जागती हुई पढ़ी रहती है ॥ ११० ॥ हे
भरिवनीकुमारके समान (सुन्दर तथा वैद्य) ! उसका शरीर
रोमाञ्जित हो उठता है, वह सी सी करती है, विलसती है,
कौंपती है, उदास हो जाती है, आँसें मूँद लेती है, गिरती है,
उठती है तथा मूर्च्छित हो जाती है । इस प्रकारकी काम-वेदनामें
वह सुन्दरी आपसे रस (प्रेम, प्रीति) पाकर ही जी सकनी
है । अतः यदि आप उसपर प्रसन्न न होते तो यही कहना
होगा कि आपने अपना हाथ (यत्न) खो दिया ॥ १११ ॥
हे धूर्त ! विरहकी श्रमिते तपी हुई वह बेचारी भर भरकर
भी रही है, तुमने उसपर चितवन चलाकर उसे मैनाके समान
अपने वशमें कर लिया है ॥ ११२ ॥ वह सुँघुचीके समान
सारे शरीरमें तो राग (प्रेम, लज्जाई) धारण करती है पर
मुँहपर नहीं और तुम बात बनानेमें बड़े चतुर हो इसलिये
सुगमकी भाँति तुम्हारे केवल मुखमें ही राग (प्रेम, लज्जाई)
है (हृदयमें नहीं) ॥ ११३ ॥ हे सुन्दर ! तुम्हारे विद्योहमें
इतने बड़े मैत्रोवाली उस सुन्दरीकी सहसा इतने ही दिनोंमें
यह दया हो गई ॥ ११४ ॥ हे नायकाजी ! तुम्हारी चर्चा

पस्थां याता दिवसैरियन्मात्रैः ॥ ११४ ॥ सुभग त्वत्क-
थारम्भे कर्णकण्डितलालसा । उज्जम्भवदनाम्भोजा
भिनत्याङ्गानि साङ्गना ॥ ११५ ॥ सौधादुद्विजते त्यज-
त्युपवनं द्वेषि प्रभामैन्दवीं द्वारात्रस्यति चित्रकेलिस-
दसो वेपं विपं मन्यते । आस्ते फेवलमभिनोकिस्त्राय-
मस्तारशय्यातले सङ्करोपनमस्वदाकृतिरसायत्तेन चि-
त्तेन सा ॥ ११६ ॥ स्पृशन्त्याः क्षामत्वं मदनशरटङ्कव्यति-
फरात्कुकराद्यास्तस्याश्वशु सुभग कौतूहलमिदम् ।
अपूर्वति प्रासातपरिहरति तां कौलहरिणीं न विश्वेऽ-
प्याभ्यासं दधति गृहलीलाशकुनय ॥ ११७ ॥ स्मरद्वयथु-
निमित्तं गृहमुनेनुमस्यास्सुभग तव कथायां प्रस्तुतायां
सखीभिः । भवति विततपृष्ठोदस्तपीनस्तनाप्रा ततय-
लवितयाहुर्ज्ज्मितस्साङ्गभङ्गः ॥ ११८ ॥ स्मरशरशत-
यिधुराया भणामि सख्याः कृते किमपि । क्षणमिह
विश्राम्य सखे निर्दयहृदयस्य किं वदाम्यथवा ॥ ११९ ॥
हस्ताम्भोजे घदनमलकानाथतान्वाहुमूले द्वारि स्वैरं

होते ही वह नवेली काम चुनलाने लगती है, उसका मुखकमल
जैसाई खेने लगता है तथा वह देह तोड़ने लगती है ॥ ११४ ॥
इस समय यह विरहिणी नवेली महलोंसे घबराती है, उसने
पासका वर्गीचा भी छोड़ दिया है, वह चन्द्रमासे आह करने
लगी है, द्वारकी धोर देखकर वह डर जाती है तथा चित्रमें
बने हुए श्रीदा करनेवाले पुरपके वेपकी विपके समान देपती
है । अब यह बेथल कमलके कोमल पत्तोंसे बने विष्णुनेपर
पद्मी-पद्मी ध्यानमें देरे हुए धापके स्वरूपमें मन लगाए बैठी
रहती है ॥ ११५ ॥ हे सुन्दर ! कामदेवके बाणोंकी घाटसे
दिन दिन दुबली जाती हुई उस मृगनयनी विरहिणीकी यह
दशा हा गई है कि रोजकी हरिया उसे पराई सामककर डरके
मारे छोड़ देती है तथा घरके सब रोजके पपी भी उसे देखकर
न पढ़वानेके कारण घबरा जाते हैं ॥ ११६ ॥ उसकी विपि
हुई काम-नीदा उठसानेके लिये जब सखियाँ तुम्हारी चपा
करने लगती हैं, उस समय वह नवेली जैसाई तथा धौंदाई
छेती हुई अपनी सखीकी पीठ धपने स्तनोंसे दबाती है
तथा मुजाई पीजाकर उसे झिपटा छेती है ॥ ११७ ॥ कामदेवके
शिकों बाणोंसे बिपि हुई उस सखीके विपयमें मुझे धापसे डुप
बहना है ! धाप धौंदा देर विभ्राम कर खें तव कहूँ । किन्तु हे
मित्र ! निपट्ट हृदयबाधके सामने डुप बहनेसे लाभ ही नवा
है ! (धनः डुप भरी बरती) ॥ ११८ ॥ हथेलीपर मुख, कीजने

नयनमधरे तर्जनीं सन्निधाय । दीर्घोच्छ्वासं विरत-
विपया स्वादमुत्कण्ठितोष्णं मुग्धाक्षी त्वां हृदि विद-
धती चापमवाचिष्करोति ॥ १२० ॥ द्वारावशेषा ननु
कण्ठनाला त्वन्नामशेषा रसना तदीया । लायवशेषा
तनुमात्रयष्टिस्त्वङ्गानशेषं परम तदायुः ॥ १२१ ॥

दूतीं प्रति नायिकाप्रश्ना — अथलाशरयं जगन्त्रये पर
मेको दयितोऽग्निसाक्षिकः । अथ सोऽपि यदा न
सम्मुखो वत किं दूति सुखं ततोऽन्यतः ॥ १ ॥ अल
मलमघृणस्य तस्य नाज्ञा पुनरपि सैव कथा गतस्स
कालः । कथय कथय वा तर्थाप दूति प्रतिवचनं
द्विपतोऽपि माननीयम् ॥ २ ॥ उल्लापयन्त्या दयितस्य
दूतीं यध्वा विभूपाञ्च निवेशयन्त्या । प्रसन्नता कापि
मुखस्य जक्षे वेपथ्रिया नु प्रियवातया नु ॥ ३ ॥ कथय
निपुणे कस्मिन्हृष्टः कथं नु कियधिरं किमभिलिखिं
किं तेनोक्तं कदा स इहैष्यति । इति बहुविधमेमालः
पमप्रञ्चितविस्तराः प्रियतमकथाः स्वल्पेऽप्यर्थे

बिखरे हुए बाल, द्वारपर शालें तथा शोपर तर्जनी उंगली
रखकर लगनी-लगनी सतिं खींचती हुई, सभी विपयोंसे क्षाम
करती हुई तथा मुमसे मिलनेकी अप्यन्त चाहसे भरी हुई वह
मुनयनी नवेली, तुम्हारा ही ध्यान करती हुई धौंदा बहाती रहती
है ॥ १२० ॥ उसके गलेमें केवल हार, उसकी जीभमें केवल
तुम्हारा नाम और उसकी दुबली-पतली देहमें सुन्दरता-भा
रह गई है तथा उसकी आयु तुम्हारे ध्यानके कारण ही बनी
हुई है ॥ १२१ ॥

दूतीसे नवेलीके प्रश्न : हे दूती ! तौनों कोऊं
वही एक प्रियतम मुझ अथलाक लिये शरण है जिनके साथ
यमि हे धीर जब वे ही रूठ बैठे हैं तो सुखकी धारा बहती
की जाय ॥ १ ॥ हे दूती ! उस निर्दोषका नाम भी न खेना,
न खेना ! तुम फिर उसकी चर्चा चलाती हो ! धरे, वह सन
नहीं रहा ! अघृणा, फिर भी बहो, कहो, क्योंकि शत्रुके उलाह
भी धादर तो करना ही चाहिए ॥ २ ॥ कोई नवेली रसि
भेजी हुई दूतीसे बातें भी करती जाती थी धीर गहने भी परत
जाती थी । उस समय उसके मुखपर जो प्रसन्नता पाच रही है
वह शरीरके सजनेसे वा प्रियतमकी चर्चा सुननेसे, पर भी
समकमें धाया ॥ ३ ॥ 'हे शत्रु दूती ! बरो, मुझे उने
कहो, कैसे धीर बिपनी देरतक देना ! उहोंने क्या किया !
नवा कहा ! मे यहाँ कब पायेंगे !' इस प्रकार बोधा कर्

प्रयान्ति न नष्टताम् ॥४॥ किं त्वं दूति गता गताऽस्मि
सुभगे तस्यान्तिकं कामिनः दृष्टः किं सुचिरं फरोति
किमसौ वीणाविनोदक्रियाम् । सौभाग्योद्यगार्धिनः
किमवदन्नैयोचरं दत्तवार्तिकं गर्वांश हि वाष्पगद्गद-
तया धूर्तस्य माया हि सा ॥ ५ ॥ जानामि हृदयं
तस्य निर्दयं दूति निर्मरम् । अथापि तत्पदद्वन्द्वान्न
विरज्यते मे मनः ॥६॥ तव दूति वचः श्रुत्वा किमुक्तं
शठचेतसा । अलं वा चर्चया तस्य मिथमन्यन्निवेद्य
॥ ७ ॥ नेत्राभ्यां यत्कमलवदनं काममापाय सुभ्रून्त-
त्सम्भायाऽमृतमपि चिरं मानसान्तनिधाय । आया-
तासौत्यतनुसुकुते दूति धन्या त्वमस्मात्तत्सन्देहीः
सुमुग्धि सहसा जीवयैतां निपिच्य ॥ ८ ॥

दृत्सुपहासप्रश्ना —अधरेणोन्नतिभाजा भुजङ्गपरि-
पोदितेन ते दूति । सङ्गाभितं मनो मे जलनिधिरिय

मन्दरागेण ॥ १ ॥ अनेन वीतरागेण युद्धेनेवाचरेण ते ।
दूति निर्भ्यांजमाख्याता सर्ववस्तुषु शून्यता ॥ २ ॥
किं त्वं निगूहसे दूति स्तनौ वक्रञ्च पाणिना ।
परिडता एव शोभन्ते शूराधरपयोधराः ॥ ३ ॥ त्वं
दूति निरगाः कुञ्जं न तु पापोयसो गृहम् । किमुक्ता-
भरणं देहे दृश्यते फयमन्यथा ॥ ४ ॥ दूति त्वया कृत-
महो निखिलं मद्रुकं न त्वादृशी परहितमवशास्ति
लोके । आन्तासि हन्तमृदुलाङ्गि गता मदर्षं सिष्यन्ति
कुत्र सुकृतानि विना अश्रेण ॥ ५ ॥ दूति श्वासविश्रेण
एष किमहो चरिड त्वराधावनान्निभ्रष्टालकृयल्लरी
कथमहो त्वन्नाथपादापेणान् । निर्दृष्टाधररागपल्लवध-
चित्स्वयत्का सङ्कल्पनाद्वासस्तस्य किमङ्गसङ्गतमदो
विश्वासद्वैतोस्तथ ॥ ६ ॥ दूतीदं नयनोत्पल्लवयमदो
तान्तं नितान्तं तव स्वेदाग्भःकणिका ललाटफलके

रहनेपर भी अनेक प्रकारकी प्रेमभरी बातोंसे बड़ी हुई
प्रियतमके स्तनग्रन्थकी चर्चार्थे क्षमास ही नहीं होती ॥ ४ ॥
कोई नवेली प्रियतमके पाससे आई हुई दूतीसे पड़ती है—
क्यों दूती ! तू गई थी उस कामीके पास ? दूती : हाँ,
सुन्दरी ! मैं गई थी । नवेली : तूने उन्हें दूती ? वे क्या
कर रहे थे ? दूती : वे वीणा बजाकर बड़ी देरतक अपना मन
बदलाते रहे । नवेली : ठीक है, वे अपने भाग्यपर इतरा
रहे हैं । क्या कहा उन्होंने ? दूती : उन्होंने कोई उत्तर नहीं
दिया । नवेली : क्या घमण्डके कारण नहीं दिया ? दूती :
नहीं, आँसुओंसे गद्गद हो जानेके कारण । नवेली : यह तो
उस धूर्तकी दिलावेकी बातें हैं ॥ ५ ॥ हे दूती ! मैं जानती
हूँ कि उनका हृदय आवण्त निर्दयी है किन्तु फिर भी
उनके चरणोंसे मेरा मन हटता नहीं ॥ ६ ॥ क्यों दूती ! तेरी
बातें सुनकर उस कठोर चित्तवालेने क्या कहा ! किन्तु छोड़
वचनं उनकी । देखी कोई दूसरी बात कर, जो अच्छी
फले ॥ ७ ॥ हे सुन्दर भौंहोंवाली दूती ! तू घन्य है ! तूने
बड़े पुण्य किए हैं जो अपने नेत्रोंसे उन कमल जैसे मुखवाले
प्रियतमका जी भरकर दर्शन किया है तथा उनकी अमृत-
जैसी बोली मनमें धारण कर आई है । अतः हे सुमुखी ! अब
इसके कामोंमें सँदेसा सुनाकर इसे जिजा ले ॥ ८ ॥

दूतीसे हँसीकी बातें पूछना : हे दूती ! तेरे सौंपसे
इसे हुएके समान तथा ऊँचे उठे हुए थोंकोंके देखकर मेरा मन
पैसे ही मया आ रहा है जैसे सौंपसे जिपटे हुए मन्दराचलसे

समुद्र मया गया था ॥ १ ॥ हे दूती ! बुद्धके समान वीतराग
(विना लज्जाई का, आसक्तिसे रहित) तेरा यह आठ भलों
भोंति बता रहा है कि संसारकी सब वस्तुएँ सूनी हैं ॥ २ ॥
हे दूती ! अपने स्तन सया मुख हाथसे क्यों छिपाए जा रही है !
वीर लोग अथर तथा स्तन पाववाले ही सुन्दर लगते हैं ॥ ३ ॥ हे
दूती ! जान पड़ता है, तू उस पापीके घर न जाकर सङ्केत
की हुई भाड़ीमें चली गई नहीं तो तेरी देह देखके फूँकोंसे
सजो क्यों दिलाई देनी ! ॥ ४ ॥ हे दूती ! तूने मेरी कदो
सारी बातें कर दिलाईं । संसारमें तेरे जैसी परोपकार
करनेवाली दूसरी कोई नहीं है । हे कोमल ब्रह्मवाली ! मेरे
कामके लिये जाकर तू थक गई ! किन्तु ठीक है, विना परिश्रम
किए पुण्य कहाँ प्राप्त होते हैं ! ॥ ५ ॥ दूतीका वेप देखकर
उसपर सन्देह करनेवाली नवेली और दूतीमें इस प्रकार
बातें हुईं—नवेली : अरी दूती ! तेरी सौंप क्यों फूल रही
है ? दूती : हे क्रोध करनेवाली ! वेगसे दौड़नेके कारण सौंप
फूल रही है । नवेली : अरी, तेरे बाळ क्यों विस्तर गए हैं ?
दूती : आपके प्रियतमके पैरोंपर गिरनेसे । नवेली तेरे
श्रोतकी लज्जाई भी क्यों मिट गई है ? दूती : आपका काम
सफल करनेके लिये बहुत बोलनेसे लज्जाई फूट गई है ।
नवेली : और उनका बळ क्यों तेरी देहमें उलभा है ?
दूती : आपके विश्वास दिलानेके लिये ही मैं इसे खेती आई
हूँ ॥ ६ ॥ हे सुन्दर रूपवाली दूती ! तेरे कमलके समान
दोनों नेत्र अत्यधिक अजसा रहे हैं, तेरे माथेपर पसीनेकी

मुक्ताश्रियं विभ्रति । निःश्वासाः प्रचुरीभवन्ति नितरां ॥ ११ ॥ रजन्यामन्यस्यां सुरतपरिवृत्तावनुचितं
 हा हन्त चन्द्रातपे यातायातवशाद्बुधा मम कृते
 श्रान्तासि कान्ताकृते ॥ ७ ॥ निःशेषच्युतचन्दनं स्तन
 तटं निर्मुष्टरागोऽधरो नेत्रे दूरमनञ्जेने पुलकिता तन्वी
 तवेयं तनुः । मिथ्यावादिनि दृष्टि वाग्ध्वजनस्याज्ञात
 पीडागमा धार्षां क्लान्तमितो गतासि न पुनस्तस्याध-
 मस्यान्तिकम् ॥ ८ ॥ पार्श्वीभ्यां सप्रहाराभ्यामधरे
 यणुराण्डिते । दृष्टि सङ्ग्रामयोग्यासि न योग्या दृढ-
 कर्मणि ॥ ९ ॥ चहुनात्र किमुक्तेन दृष्टि मत्कार्यसिद्धये
 भ्यमांसान्यपि दत्तानि वक्तव्येषु तु का कथा ॥ १० ॥
 त्रिभ्योऽस्तव खण्डितध्वजलता दृग्भङ्गिणा चायता
 निःश्वासो बहुलो मुखं धमजलचञ्चलं च हन्त स्फुटम् ।
 वासोऽभ्येतद्वदो पटञ्चरसमं छिन्नं समन्तादिति कापि
 त्वं स्फलिता कचित्रिकमथवा विन्दाऽसितैः कण्टकैः

॥ ११ ॥ रजन्यामन्यस्यां सुरतपरिवृत्तावनुचितं
 मदीयं यद्वासः कथमपि हतं तेन सुदृदा । त्वया
 प्रत्यानीतं निजवसनदानात्पुनरिदं कृतस्त्वाद्यद्भूति
 स्खलितशमनोपायनिपुणः ॥ १२ ॥ श्वासाः किं त्वरिता
 गता पुलकिता कस्मात्प्रसादः कृतः क्वस्ता वैश्यापि
 पादयोर्निपतनाधीवी गमादागमात् । स्वेदाद्रं मुख
 मातपेन गलितं क्लामा किमत्युक्तिभिर्दृष्टि म्लानसरो
 बृहाकृतिधरस्यां प्रत्यक्ष किं वक्ष्यसि ॥ १३ ॥ सायं क्लान-
 मुपासितं मलयजेनाङ्गं समालेपितं यातोऽस्ताचलमी-
 लिमम्बरमणिविश्रब्धमन्नागतिः । आश्रयं तव सोढु-
 मार्यमभितः क्लान्तासि येनाधुना नेत्रद्वन्द्वममीलन
 व्यतिकरं शक्नोति ते नासितुम् ॥ १४ ॥ स्थिनं क्लेन
 मुखं दिवाकरकरैस्ते रागिणी लोचने रोपासद्वचनो-
 स्थिताद्विलुलिता नीलालका वायुना । भ्रष्टं कुङ्कुममुच-

वृद्धं मोतीके समान कलक रही हैं, अरे ! चाँदनीमें भी तेरी
 साँसें पूल रही हैं ! हाय ! मेरे कामसे बार-बार आने जानेके
 कारण व्यर्थ ही तुम्हें हलना कष्ट हुआ ॥ ७ ॥ तेरे स्तनोंपरका
 समूचा चन्दन छूट गया है, थोठकी सारी ललाई मिट गई
 है, आँसोंमें आँजन नहीं रह गया तथा तेरी यह पतली
 देह भी रोमाञ्चित हो रही है । अतः, हे कृष्ट बोलनेवाली तथा
 सखियोंके कटकी कुछ न समझनेवाली दूती ! जान पड़ता
 है तू यहाँसे उस पापीके घर न जाकर बावर्द्धीमें गइने चली
 गई थी ॥ ८ ॥ हे दूती ! तेरी देहमें दोनों ओर (स्तनोंपर) घाय
 (नरके चिह्न) लगे हैं तथा थोडा भी (दाँतसे) कटे हुए
 हैं अतः तू दूतीका काम करने योग्य नहीं वरन् लदाईका
 काम करने-योग्य है ॥ ९ ॥ हे दूती ! अधिक क्या कहूँ, मेरा
 काम साधनेके लिये तुने अपना मांसतक दे डाला, सन्देहा ले
 जाना तो बहुत छोटी-सी बात है ॥ १० ॥ हाय दूती ! तेरे विधाके
 समान चोटमें घाय लग गया है, तेरी आँसोंकी कोर आत्यधिक
 नीली-नीली-सी लग रही है, साँस पूल रही है और प्रत्यक्ष ही
 यह मुख भी पसीनेसे भीग रहा है । धरे, यह वच भी कथरीकी
 भाँति बाराँ बोरसे पट गया है ! यह तो बत कि तू
 कहीं गिर पड़ी है या काले-काले (हृत्पत्र) कटते तेरे दिग्द गप
 रही ? ॥ ११ ॥ हे दूती ! एक रातमें रतिके पथान् जो उस
 प्रियतमने न आने दैमे मेरा वक्ष बदलकर अनुचित काम
 किया था सो तू अपना वक्ष देकर मेरा वक्ष पक्ष ले चार्हे ।
 बिगड़ी बात बनानेमें तेरे पैसी चतुर कोई दूसरी नहीं

मिलेगी ! ॥ १२ ॥ प्रियतमसे सम्भोग करके जोटी हुई दूतीने
 नवेली पृथ्वी है : हे दूती ! तेरी साँस क्यों कूल रही है !
 दूती : मैं यद्ये वेगसे गई थी । नवेली : रोमाञ्चित क्यों हो
 रही है ? दूती : उन्हींने कृपा की है, इसी प्रसवताके कारण !
 नवेली : बाल क्यों बिलरहे हैं ? दूती : उनके पितरपर गिनेके
 कारण । नवेली : तेरी गोवी (नादा) क्यों ढीली हो गई !
 दूती : धार-धार आने-जानेके कारण ! नवेली : मुखमें पसीना
 क्यों आ रहा है ? दूती : धूप लगानेके कारण ! नवेली : तू
 मिथिल क्यों हो रही है ? दूती : बहुत बोलनेके कारण ।
 नवेली : अथ बहुत बातें न बना, तेरा थोडा ओ मुख
 कमलके समान हो रहा है, इसका क्या समान
 करेगी ? ॥ १३ ॥ मार्गमें उपनायक-द्वारा उपभोग कर लिए जाने
 परचाय स्नान आदि करके सखीके पास पहुँची हुई दूतीने सखी
 श्रंगमसे कहती है : 'हे दूती ! सूर्य तो अस्ताचलकी बँटीत
 पहुँच गए अर्थात् धूप भी नहीं रह गई । तुने सायंहाइ लप
 करके चन्दनका लेप भी लगा लिया है और पीरे-पीरे मानन-
 पूर्वक चली आ रही है अतः धरुनेका कोई कारण न होनेन
 भी तेरी सारी देह बकी जान पड़ रही है और तेरी आँसोंमें
 बिना बार-बार झुँडे नहीं टहर पा रही हैं, अतः तेरी प
 निराली सुमुखतापर तो तुम्हें क्या धारण्य हो रहा है !
 ॥ १४ ॥ दूतीने नवेली पृथ्वी है : तेरे मुखपर पसीना रों
 आ रहा है ? दूती : थप बहुत छाती है । नवेली : आँसों में
 आल है ? दूती : उनकी बातोंसे तुम्हें क्रोध आ गया है ।

रीयकपणाङ्कान्तासि गत्यागर्तयुक्तं तत्सकलं किमत्र
यद् दृष्टिं श्रुतस्याधरे ॥ १५ ॥

त्रियोगिनोऽन्यथावर्णनम्—अत्राशितं शयितमत्र
निपीतमत्र तोयं तथा सह मया विधिवञ्चितेन ।
इत्यादि हन्त परिचिन्तयता वनान्ते हा तस्य लोचन-
पयोमिरभूत्पयोधिः ॥ १ ॥ कान्ताऽऽश्लेषपराङ्मुखं
यदि दहेद्दोषाकरः कञ्चन स्थाने तर्हि यत्स हन्त
विधिना हन्तुं व्यधायीदृशान् । कर्णं यत्पुनरेप चन्द्रन-
भुयो लम्बप्रभाषोऽभितः स्वरुंघ्रायवगाहको मरुद्वयं
द्वयं प्रचण्डो ज्वलन् ॥ २ ॥ गमनमललं शून्या दृष्टिः
शरीरमनौघं श्वसितमधिकं किं न्वेतत्स्यात्किमन्य-
दितोऽथवा । भ्रमति भुवने कन्दर्पांशु विकारि च
योवनं ललितमधुरास्ते ते भावाः क्षिपन्ति च धीर-
ताम् ॥ ३ ॥ 'चन्द्रमाश्चन्द्रमास्तावत्पुरमिः सुरमि-
स्था । संयोगो यदवशिष्या वैपरीत्यमतः परम्

॥ ४ ॥ चन्द्रश्चण्डकणायते मृदुगनिर्यातोऽपि यज्ञायते
माल्यं सचिकुलायते मलयजालेपः स्फुलिङ्गायते ।
रात्रिः कल्पशतायते विधिवशान्प्राणोऽपि भारायते
हा हन्त प्रमदावियोगसमयः संहारकालायते ॥ ५ ॥
धत्ते चक्षुर्मुकुलिनि रणक्वोकिले घालचूते मार्गं नाशं
क्षिपति धकुलामादगर्मस्य धायोः । दाहमेष्णा सरस-
यिसिनीपत्रमात्रान्तरायस्ताम्यन्मूर्तिः श्रयति यद्गो
मृत्यवे चन्द्रपादान् ॥ ६ ॥ प्रत्यादिष्टविशेषमण्डनवि-
धिर्वाग्मकोष्ठे श्लथं विश्रन्नाश्नमेकमेव घलयं श्यासा-
परक्ताधरः । चिन्ताजागरणप्रताप्रनयनन्तेजोगुले रा-
त्मनः संस्कारोल्लिखितो महामणिरियि क्षीणाऽपि नाल-
यते ॥ ७ ॥ प्रियाघिरहितस्याभ्य हृदि चिन्ता समा-
गता । इति मत्या गता निद्रा के कृतप्रमुपासते ॥ ८ ॥
मन्दं मरुहहति गर्जति पारिवाहो विस्मृता चलति
मृत्यति नोल्कणः । एतावति व्यतिकरेतरुणस्य तस्य

नवेली : बाल कर्णों विपरीते हैं ? दूती : पवन वेगसे यह रहा
था । नवेली : देहका वेसर कैसे छूट गया ? दूती : यह तो
शॉचलकी रगड़ खारर छूट गया है । नवेली : इतनी थक
कैसे गई ? दूती : बार-बार आने-जानेसे । नवेली : यह तो
सब ठीक है, किन्तु थोठमें लगे घायना क्या उलर है ? ॥ १५ ॥

वियोगीको दशाकावर्णन : 'मैं वनी अर्धभाग हूँ जिसने
उस प्रियतमाके साथ साया, पिया तथा निद्रा ली !' जहलमें
इन सब बातोंको सीचते हुए उसके नेत्रोंसे जो आँवू बहे,
उसीसे समुद्र बन गए - ॥ १ ॥ अपनी प्रियतमाको गले
लगानेके सुखसे विदुदे हुए किसी विरहीको चन्द्रमा यदि जलाता
है तो ठीक ही है, क्योंकि प्रह्वाने उसे ऐसे लोगोंको जलानेके
लिये ही रचा है । किन्तु कर्णकी बात तो यह है कि चन्द्रनके
वनमें धूमकर प्रभावशाली बना-हुआ तथा आकाश गद्गा
थादि नदियोंमें गोता लगानेवाला यह पवन भी दहकता
हुआ जला रहा है ॥ २ ॥ बाल धीमी हो जाय, चितवन
अटपटी हो जाय, शरीर मलिन हो जाय तथा सौंस फूलने
लगे, यही नहीं, इससे भी बुरकर जो होता हो, हो जाय, किन्तु
चिन्ता तो हरे हलनकी है कि सत्तारमें कामकी आशा चलने
लगी है, युवावस्थामें दोष आते चले जा रहे हैं और सुन्दर तथा
आकर्षक वस्तुएँ धीरज तोड़े डाल रही हैं ॥ ३ ॥ जबतक श्रेष्ठ
रूपवाली नवेलीसे संयोग रहता है तर्भातक चन्द्रमा और सुगन्ध
यथाधर्म, चन्द्रमा और सुगन्ध रहते हैं, उससे विद्योह होनेपर

तो ये सभी शयु बन जाते हैं ॥ ४ ॥ जिस समय प्राणप्यारने
विद्योह हो जाता है उस समय चन्द्रमा सूर्यके समान गरम
तथा पवनका छू जाना बज्र-सा जान पड़ने लगता है, माला
मुड़के समान जुमने लगती है, चन्द्रनका लेप आगकी
बिनभारियोंके समान लगता है, रातें लकड़ों कर्णोंके समान
वीतती हैं और दुर्भाग्य-वश प्राण भंग भारी जान पड़ने लगने
है, हाय ! वियोगका समय तो प्रलयकाल-सा ही पीता
है ॥ ५ ॥ प्राणप्यारने विदुदा हुआ कोई युवक मरनेकी चाहने
बार-बार चन्द्रमाकी किरणोंका सारा लेता है, वीर हुए
आमके उस मये वृषको देखता है जिसमें कोयल बूक रही
है, मौलसिरीकी सुगन्धसे भरे हुए पवनके मार्गमें लेटता है
तथा जलनेके लिये कमजके हरे-हरे पत्ते देहपर रखता
है ॥ ६ ॥ किसी विरहीने अपने सब गहने उतारकर केवल वाई
शुभामें सोनेका एक डीला कङ्कन-भर पड़न छोड़ा है, गरम
सौंसोंसे उसका थोठ फीका पड़ गया है और चिन्ताके कारण
जागते रहनेसे उसकी आँसू लाल हो गई हैं, किन्तु दुबला
हो जानेपर भी वह अपने स्वामाविक तत्रके कारण सरादे हुए
मणिके समान दुबला लख नहीं पड़ता ॥ ७ ॥ प्यारसे
विदुद्धते ही इस विरहीके हृदयमें चिन्ता-रूपी नवेली था
धमकी, यह जानकर नींदरूपी सुन्दरी भी चल दी। ठीक भी है,
कृतनकी सेवा कौन करना चाहता है ? ॥ ८ ॥ पवन धीरे-धीरे
बह रहा है, वादल गरन रहे हैं, दिनली चमक रही है

मूर्च्छंय केवलमभूदवलम्बनाय ॥ ६ ॥ माकन्दाचित्प
मा मरन्दनिकरं मूको भव त्वं शुफ स्फारं कोकिल
कोमलं कलरयं भ्रातः क्षणं संहर । सौगन्ध्यं वह गन्ध-
वाह न मनाकसर्वैः क्षणं क्षम्यतां जानीध्वं तरुणस्य
तस्य यदयं कालः करालो महान् ॥ १० ॥ यदिन्दा-
वानन्दं प्रणयिनि जने वा न भजते व्यनक्त्यन्तस्तापं
तदयमतिधीरोऽपि गहनम् । प्रियद्दृश्यामाङ्गप्रकृति-
रपि चापाएडमधुरं धनुः क्षामं क्षामं धहति रमणीयश्च
भवति ॥ ११ ॥ रम्यं द्रेष्टि यथा पुरा प्रकृतिभिर्न
प्रत्यहं सेव्यते शय्योपात्ताविचर्तनैर्विगमयत्युन्निद्र
एष क्षपाः । दाक्षिण्येन वदाति वाचमुचितामन्त-
पुरेभ्यो यदा गात्रेषु स्थलितस्तदा भवति च व्रीडा-
वनप्रध्वरम् ॥ १२ ॥ ह्योघानमरुत्तरङ्गितसरस्तारे
तरुणांमधस्तल्पेऽनल्पसरोजिनीनवदलमायेऽपि खिन्ना
त्मनः । धीरस्यापि मनाङ्गनस्तृणकुटोकोषान्तराले

तथा मोर नाच रहे हैं । ऐसे समय मूर्च्छाने ही उस युवकके
प्राण बचा लिए ॥ ३ ॥ हे धाम ! तुम अपने बौराका रस मत
खिलो । भरो सुगो ! सुप हो जा । हे भाई कोयल ! अपनी
ऊँधी तथा कौमल बूक बन्द कर दे । हे पवन ! तुम सुगन्धि
न फैलाओ, धाज तुम सभी यह समझकर चमा करो ।
उस युवकके लिये यह वदा भयङ्कर समय बीत रहा है ॥ १० ॥
यक्षिण युवक अत्यन्त धीर है किन्तु मियतमाके विद्योहमें उसकी
यह दशा हो गई है कि यह चन्द्रमाको देखकर भी प्रसन्न नहीं
होता, किसी प्रिय मित्रकी देलते ही उससे अपने हृदयका
धोर सन्तान कहने लगता है, मित्रगुके समान साँघले रहकी
उसकी देह पीली पड़ती जा रही है और वह दिनों-दिन
हुबला होता जा रहा है, फिर भी वह सुन्दर ही लग रहा
है ॥ ११ ॥ वह विरही युवक सुन्दर धनुषीसे चिदता है,
अपने सेहकीसे पहले जैसी सेवा कराता या वैसी प्रब नहीं
कराता, विद्योनेपर करवट बदल-बदलकर जागता हुआ शतें
बिताता है और रनियासकी मवेजिपाँसे जब सरबतापूर्वक धातें
करने लगता है तो धोनेसे प्यारीका नाम मुलमें भा जानेसे देरतक
छानके कारण सिर मुकाए पदा रहता है ॥ १२ ॥ पुत्रवारीके
आपन्त सुगन्धित पवनसे रिखाई हुई खरारावाजे तालाबके
रिनारे बूकोंकी धायमें कमजिर्माके देरते मने-मने पचाँसे
विदाए विद्योनेपर भी हुपां होकर पदें हुए उस धीर विरहीकी
देखकर देसा जान पड़ता है मानो उसके धीनोंके परवरा देखकर

यलाङ्गोऽस्येति विभाव्यते परवशैरङ्गैरनङ्गानतः
॥ १३ ॥

वियोगिनो विप्रलापा — अद्यापि तत्प्रचलकुएडलम्-
ष्टगण्डं वक्रं स्मरामि विपरीतरताभियोगे । श्रावो-
लनश्रमजलस्फुटसान्द्रविन्दुमुक्ताफलमकराचिन्तुरितं
प्रियायाः ॥ १ ॥ अद्यापि तां कनकचम्पकदामगौरौ
फुल्लारविन्दनयनां तनुरोमराजिम् । सुतोषितां मदन
विद्वललालसाङ्गी विद्यां प्रमादगलितामिव चिन्तयामि
॥ २ ॥ अद्यापि तिष्ठति दृशोर्दिदमुत्तरीयं धर्तुं पुरः
स्तनतटात्पतितं प्रवृत्ता । घाचं निशम्य नयनं नयनं
ममेति किञ्चित्ता यदकरोत्स्मितमायतावी ॥ ३ ॥
अद्यापि सा मनःस सम्प्रति धतते मे रात्रौ मयि सुत-
वति क्षितिपालयुज्या । जीवेति मङ्गलवचः परिहृत्य
कोपात्कार्यं कृत कनकपत्रमनालपन्त्या ॥ ४ ॥ अप्रुत
परिपतत्रिञ्चोत्पन्नं मुपितनकारमवकदृष्टिपातम् ।

उसके मनरूपी तिनकोंकी कुटियाके कोनेमें बलपूर्वक हाथमें
भटक उठी हो ॥ १३ ॥

विरहीका रोना-धोना : कोई विरही विज्ञाप कर रहा है
कि 'श्राज भी विपरीत रतिमें लगी हुई प्राणप्यारीका वर हुई
स्मरण आ रहा है जब उसके गालोंपर कानके बचल कुडब तिर
रहे थे और जो अधिक धक्कीसे धक जानेके कारण मोड़ी
दानेके समान निकली हुई पसानेकी बूँदोंसे सज रहा था' ॥
श्राज भी असावधानीके कारण हाथसे निकली हुई विद्याके सन्त
उस मियतमाकी मैं चिन्ताकर रहा हूँ जो सुनहली चपाके सन्त
गोरी है, जिसकी धाँसे तिले हुए कमलोंके समान है, जिसकी
रोमायकी पतली है और सोकर उठते समय सिरके धीप
रतिकीबासे धक्कर डीले पड़ गए थे ॥ २ ॥ वह विद्याके ने-
पाकी नवेकी जवोही स्तनसे लिप्तका हुमा धौषक सँभारने
चली र्योंही मैंने कहा कि 'मेरे ही नेत्र, नेत्र हैं धायों मैं
नेत्र सफल हो गए ।' और मेरी इस बातको सुनकर वह मे
मुस्करा उठी थी, वह हरप धाज भी मेरे सामने नाच-सा
रहा है ॥ ३ ॥ जब उस राजपुत्रीसे मैं मिलनेके लिये ला
तो रातमें मुझे धुँक भा गई । उस समय जात बिना इन्नेके
धरने उसने 'जीव' यह मङ्गल वचन तो न कहा वरद उते भंष
भा गया तथा और सुप न बहकर उसने वह बनदूष रिते
पहन लिया जिसे पहले उतार दिया था । वह राजपुत्री का
भी मेरे विषपर चढ़ी है ॥ ४ ॥ गाँधी मवेजीकी उर बने

प्रकटहसितमुन्नतास्य विष्वं पुरसुदृशः स्मरचेष्टितं
स्मरामि ॥ ५ ॥ अनिशमपि मकरकेतुर्नसो रजमाय-
हन्मिमतो मे । यदि मदिरायतनयनां तामधिकृत्य
प्रहरतीति ॥ ६ ॥ अयसरति न चतुषो मृगाळी रजनि-
रियं च न याति नैति निद्रा । प्रहरति मदनोऽपि
दुःखितानां यत बहुशोऽभिमुखीमन्यन्त्यापायाः ॥ ७ ॥
अपूर्वां दृश्यते वहिः कामिन्याः स्तनमण्डले । दूरतो
दृढते गात्रं हृदि लग्नस्तु शीतलः ॥ ८ ॥ अभिमुखे मयि
संहतमीक्षितं हसितमन्यनिमित्तं कथोदयम् । चिनय-
वाधितचृचिरतस्तया न विवृतो मदनो न च संवृतः
॥ ९ ॥ अरविन्द्रमिदं वीक्ष्य खेलत्पञ्जनमञ्जुलम् ।
स्मरामि यदनं तस्याश्चार चञ्चललोचनम् ॥ १० ॥
अलसयलितमुग्धस्निग्धनिस्पन्दमन्दैरधिककविकसदन्त-
विस्मयस्मेरतारैः । हृदयमशरणं मे पद्मलाद्याः कटा-
क्षैरपहतमपविद्धं पीतमुन्मूलितञ्च ॥ ११ ॥ अलस-

विलसितानामुल्लसङ्कलतानां मञ्जुमुकुलितानां प्रान्त-
विस्तारितानाम् । प्रतिनयननिपाते किञ्चिदाकुञ्चि-
तानां विविधमहमभूवं पात्रमालोकितानाम् ॥ १२ ॥
असुलभा सकलेन्दुमुखी च सा किमपि चेदमनङ्गवि-
चेष्टितम् । अभिमुखीप्यव वाञ्छितसिद्धिषु प्रजति
निवृत्तिमेकपदे मनः ॥ १३ ॥ अस्थाने जनसङ्घे मयि
मनाक्काञ्चीं समास्कन्दति व्यासोले रशनांशुके
विगलिते नीते च नामेरघः । धन्योऽयं स करः कुक्कु-
कदशा तस्मिन्प्रवस्थान्तरे कम्पातङ्ककरम्बिताङ्गलतया
यस्यावकाशः कृतः ॥ १४ ॥ अद्वा अद्दं नमा मद्दं यद्दं
वीक्षितोऽनया । यालया अस्तसारङ्गचपलायतनेत्रया-
॥ १५ ॥ आः पात्रो स्यामकृतकधनमेमाविस्फारितानां
समीडानां सकलकरणान्दनाडन्धमानाम् । तेषां
तेषां हृदयनिहिताकृतानप्यान्दनत्रय्यापाराणां पुनरपि
तथा सुभ्रूयां विभ्रमाणाम् ॥ १६ ॥ आकन्दाः स्तानि-

भरी चेठाश्रौका स्मरण था रहा है जिनमें उसने पोलों जाती हुई
घोटीकी नाँठ भी नहीं धामी, जिनमें उसने 'नहीं' भी नहीं की,
वरन् जिनमें वह भोली-भाली चितवनसे देखती हुई अपना मुँह
उठाए, मुलफर हैंसती रही ॥ ५ ॥ जगतातर मेरे मनको पीड़ित
करनेवाला कामदेव यदे-यदे मतवाले नयनोंवाली उस नवेलीका
सहारा जेकर यदि मुझे मार रहा है तो मुझे स्वीकार है ॥ ६ ॥
श्रीलोकें सामनेसे यह मृगनयनी हटती नहीं, रात भीतरी नहीं,
नींद आती नहीं और कामदेव भी माया चलानेसे चूकता
नहीं । ठीक ही है, दुखी प्यारियोंके ऊपर एक साथ देर-सी
विपत्तियाँ पड़ जाती हैं ॥ ७ ॥ इस नवेलीके स्तनोंमें कोई
निहाली ही आग है जो दूरसे तो जलाती है किन्तु हृदयसे
जगानेपर उचरी जान पड़ती है ॥ ८ ॥ जब यह मेरे सामने
पड़ जाती थी तो नीचे मुग्ध करके धीरेसे देण लेती थी और जब
उसे हँसी आती थी तो यह दूरसी धागोंके यहाने हँस देती थी ।
उसके रबमायमें देखी नश्रता भरी थी कि न तो वह कामदेवका
वेग धिया ही पा रही थी, न मुलकर पता ही पा रही थी ।
॥ ९ ॥ इस लिले हुए कमलपर गेजते हुए राजनको देलकर
उस चञ्चल नेत्रोंवाली नवेलीका मुँह स्मरण आने लगा
है ॥ १० ॥ उस सुन्दर शीप्यवाली नवेलीकी उस चितवनने
मेरे हृदयको असहाय कर दिया, हर लिया, भेष दिया, पी
लिया तथा दण्ड दिया जो चलसाहँ हुई, सुन्दर, चिकनी,
नकदी हुई-सी, धीरे-धीरे डोल रही थी तथा जिसके भीतर

अपरनसे भरी पुतलियाँ विकसित हो रही थीं ॥ ११ ॥
वह नवेली अपनी कनखियाँ धीरे-धीरे मटका-मटकाकर, भँहें
उचका-उचकाकर, शँलें मारती, खोलती, प्रेमसे देखती और
फिर ऊँपाती हुई मुकपर बार-बार चितवन चला रही थी
॥ १२ ॥ वह चन्द्रमुली मिलनेवाली नहीं और मुकपर
कामदेवका यह श्रयाचार ही रहा है किन्तु मन उछला पड़ रहा
है । इससे जान पड़ता है कि मनोरथ सिद्ध अवश्य हानेवाला
है नहीं तो मन एकाएक कैसे सन्तुष्ट हा जाता ॥ १३ ॥
एक बार बहुतसे लोगोंकी मीढ़में प्रवसर न रहल हुए भी मैंने
उस मृगनयनीकी तगड़ी खीच दी, जिससे करधनाक नाँचेकी
सादी बीली पड़ गई और उस सादाका मैंने नामिके नाचेक
सरका दिया । यद्यपि ढरके मारे उसकी देहरूपों लता कोंपने
लगी थी फिर भी ऐसी दशामें उसने भरे जिस हाथका अवसर
दे दिया उस हाथका धन्य है ! ॥ १४ ॥ अद्वा ! मैं धन्य हूँ ।
मुझे नमस्कार है क्योंकि रेरे हुए मृगका बदा-बदा चञ्चल
शँलिकें समान शँलोंवाली इस नवेलाने मेरा श्रार देल
तो दिया ! ॥ १५ ॥ आह ! सुन्दर भाइवाला नवलाके
स्वभाविक तथा शायधिक प्रेमसे भरे हुए, जजाले, सभी
हृदियोंमें आनन्द भर देनेवाले तथा हृदयके मित्र-भित्र श्रामिमाय
प्रकट करनेवाले हाव-भाव आदिसे भरी चेष्टाएँ क्या मुझे ! फर
देखनेको मिलेंगी ॥ १६ ॥ हे मित्र थादल ! तुम दग्गदा रादे
हो तो मैं भी पात्र मारकर रो रहा हूँ, तुम जगतातर जलकी

तैदिलोचनजलान्यथ्रान्तधाम्बुभिस्तद्विच्छेदमवाश्च
शोकशिपिनस्तुत्यास्तद्विद्धिभ्रमैः। अन्तर्म दयितामुखं
तव शशी धृत्तस्समैवावयोस्तर्कि मामनिशं सखे जल-
धर त्वं दग्धुमयोद्यतः ॥ १७ ॥ आनन्दममन्दमिमं
कुचलयदललाचने ददासि त्वम्। विरहस्तवैध्व जनि-
स्तापयतिनरां शरारमे ॥१८॥ आसन्नमागमतिलङ्घ्य
नतेन मूर्ध्ना पश्चात्प्रसङ्गवलितेन मुखेन यान्त्या। आरो-
पिता. कतिपये मयि पङ्कजाद्या साकूतहासमनतिप्रक-
टाः फटात्ता ॥१९॥ आसानश्यायितस्स्थितः प्रचलितः
स्वमायिता जागृतः पश्यन्मीलिनलोचनो व्यवहरन्मोनं
प्रपन्नाऽथवा। तां प्रमाकुलयोचित्तां स्मितमुखा सनी-
डमन्दागमां श्लिष्यन्ता प्रणयाद्रेमुग्धलपितां पश्यामि
नक्तन्दियम् ॥ २० ॥ आस्ता दूरतया तदीयवदनाम्भो-
जामृतास्वादनं नादत्तेव मनारथाऽपि हृदये सत्सङ्ग-
माशा प्रति। उत्कण्ठाशिथिलाकृताङ्गलतिकं चाक्षेत्
मामेकदा सखेहं याद सा सराजवदना धन्योऽस्म्यहं

तावता ॥ २१ ॥ इदमशिशिरैरन्तस्तापाद्विचरणमखीर्तं
निशि निशि भुजन्त्यस्तापाङ्गप्रवर्तिभिरधुभिः। श्रुति-
लुलितज्याघाताङ्गं मुहुमणियन्धनात्कनकचलयं स्रसं
स्रस्तं मया प्रतिसार्यते ॥२२॥ ऊरू रम्भा हगपि कमलं
शेचलं केशपाशो वक्रं चन्द्रो लपितममृतं मण्यदेशो
मृणालम्। नाभिः कूपो वलिरपि सरित्पत्रवः किञ्च
पाणिर्यस्यास्ता चेदुरसि न कथं हन्त तापस्य शान्तिः
॥ २३ ॥ फटाक्षेणापोपत्तणमपि निरोक्षेत् यदि सा
तदानन्दसान्द्र. स्फुरति निहृताशेषविषयः। सरोमा
श्रीदश्रुकुचकलशनिमिश्रवसनः पटीरम्भारम्भः क
इव भविताम्भोरुहदृशः ॥ २४ ॥ कदा फान्तागारे
परिमलमित्तुपपशयने शयानश्यामायाः कुचयुगमदं
चक्षति चहन्। श्रये क्षिण्णे मुग्धे चपलनयने चन्द्रधरने
प्रसीदेत्याक्रोशनिमिपमिव नेण्यामि दिवसान् ॥ २५ ॥
कान्तामुप सुरतकेलिचिर्मर्दुपेदसज्जातधर्मकण्विचु-
रितं रतान्ते। आपाएण्डरं विलसदधनिमीलितार्तं

धारा धारा रहे हो तो मेरे नेत्रांसे भी लगातार आँसुधाँको धारा
बह रहा है, तुममें बिजली लपलपा रही है ता मेरी देहमें भी
उस नवेलीके विद्योहके दुःखकी अग्निकी लपटें उठ रही हैं
तथा तुम्हारे भीतर चन्द्रमा है तो मेरे हृदयमें भी मेरी
त्रिपतमात्रा मुखचन्द्र है। इस प्रकार हम-तुम दोनोंकी दशा
एक ही-सी है फिर भी तुम मुझे क्यों सदा जनाएँ आननेको
तिथार बैठे रहत हा ? ॥ १० ॥ हे नीले कमलके समान
आँसुवाली। तुम ता मुझे बहुत मुख दे रही हा किन्तु
तुम्हारे उदग्न दुःखा विद्योह मेरा शरार जलाएँ डाल रहा है
॥ ११ ॥ यह कमलनयनी धार-धार मुँह घुमाकर तथा हँसीके
एहाने मनके भाव प्रकट करके सुम्भार वितान चलाती हुई
घपना सिर मुकाएँ मेरे पाससे निकर गई ॥ १२ ॥ जिसकी
चित्रवनमें प्रेम भरा है, जिसके मुखमें मुस्कंराहट है,
जो सजाती हुई धारे-धारेचलती है, गले लगती है तथा प्रेमभरी
बोलीसे मो हत कर देता है, उसे मैं बैठते, सोते, टहाते,
चलते, सपना देवते, नागते, देवते, धर्म मूर्ते, काम करते
तथा पुत्र रहते, रात-दिन देना करता हूँ ॥ १० ॥ उत्कण्ठासे
जिसके चन्द्र शिथिल पड़ गए हैं वह कमलमुखी नवेली
यदि मुझे एक बार आ प्रेमसे देव भर जेतो ता उतनेमे ही मैं
कानेका देना धन्य समझता हूँ उसके मुखकमलके चमकना
बधा पाना गो बूर रहा, उससे मित्रबन्धी आशाके भी भाव

मनमें न उठते ॥२१॥ रातमें हृदयके तापसे गरम हुईँ बँहता
रकथे हुए नेत्रके कोनेसे निकरते हुए आँसुवांसे जिसम
मणि मलिन हो गया है, जिसमें प्रणयाकी रागका विद्योह बना
हुआ है, यह सोनेका कणन बार-बार उसकी कलाईसे नीचे
जिसकरा रहता है और मैं उठे ऊपर उठता रहता हूँ ॥ २२ ॥
जिसकी जाँवें केलेके रम्भे, नेत्र कमल, बाल सेवार, मुख
चन्द्रमा, बोली अमृत, कमर कमलनाल, नाभि कुर्वा, पायी
सिक्कड़न नदी तथा हाथ नये पचे हैं ऐसी नवेली यदि धारने
लग जाती तो सन्धाप क्यों न बूर हो जाता ? ॥२३॥ जब इस
नवेलीको तिरङ्गी विनयनेले चयभार तनिक-सा देव बिप्रासे
भरते ऐसा घना आनन्द हा आभार है कि सभीविषयोंके धान्य
उसमें समा जाते हैं, तब कमलनयनीके उस आश्रितके
आनन्दके तो कहने क्या जिसमें रतनीएँ उठे हुए गिन्ने
बलकट दिद जाते हैं ॥ २४ ॥ यह समय कथ धारोना ज
प्रायःप्यारीके धरमें मुगन्धित पृथ्वीके विद्योनेवर पदा हुआ, उस
नवेलीके दोनों रतन धारनी धारतीसे लगाएँ हुए मैं यह बहने हुए
एक पण्यके समान दिन बिता हूँगा कि 'हे प्रेममे भरि मुर्ती!
हे चन्द्र नेत्रवाली ! हे चन्द्रमुखी ! प्रसन्न हो जकी'
॥ २५ ॥ हे हृदय ! प्यारीके उस मुखकी स्मरण करते हुए
हम तिकड़ों टुकड़े क्यों नहीं हो जाते जो मुख-किरणों से
गानेने निकरते हुए पसीनेमे भरा धा, जो मुखके कण्ठ

संस्मृत्य हे हृदय किं शनधा न यासि ॥ २६ ॥ किं
निद्रामि किमु ब्रजामि किमहं जागमि निद्रामि किं किं
जानामि किमु भ्रमामि किमु वा सुरयामि दुःखयामि
या । किं नास्वस्मि किमित्यनल्पकलिते न कापि
पत्ने स्थितः प्राप्यानिर्घञ्जनीयमेव ऋषिं क्रूरं विकारं
सखे ॥ २७ ॥ किं पत्नं सुकृतं किमहं इति मे
नाद्यापि संवेद्यते तन्व्याश्चेतसि किंस्विदस्मि कलितः
किं नेति नैव स्फुटम् । एतत्किञ्चिद्भूचदा मयि
मरुद्वत्त्वा कटाक्षं ततः क्षिग्धव्याकुललाचनं तर-
लया सत्पयस्तया धीन्विताः ॥ २८ ॥ किं मे सदगुरु-
नेवतैः प्रतिदिनं किं व्यामकेशाचनैः किं स्यादध्य-
यनेन वा सुरपुरप्राप्त्याथवा किं फलम् । एतस्याः
कुचकुम्भनिर्भरपरीरम्भप्रभावोद्भवस्वेदाम्भोभिरनङ्गव-
हिरघुना निर्वापितो नो यदि । १ २६ ॥ कुतः प्रेमल-
योऽन्यस्ति पत्ने मे हृदये खलु । सुन्दरं तामनालोक्य
यदहं प्राणिमि प्रिय ॥ ३० ॥ कुन्दं दन्तैर्मधु निगदितैः

पट्टपदं दृग्विलासैरेभिर्हारैरमृतलहरं कुन्तलैरमुया-
हम् । इन्द्रोर्विभ्रं यदनशशिना पङ्कजं च स्तनाभ्यां
त्यं जित्वा तान्वससि हृदये तेन मां विद्विषन्ति ॥ ३१ ॥
कुसुमशयनं न प्रत्यग्रं न चन्द्रमरोचयो न च मलयजं
सर्वाङ्गैरं न वा मणियुग्यः । मनसिजङ्गं सा वा
दिव्या भ्रमालमपोहितं रहसि लघयेदारन्धा वा तदा-
श्रयिणी कथा ॥ ३२ ॥ क्रमसगलिनकण्डप्रकमोला-
सितोरस्तरलिनधलिलेखासूत्रसर्वस्यमस्याः । स्थित-
मतिचिरमुच्चैःप्रपादाङ्गुलीभिः फरकलितसस्रोकं मां
दिदृक्षोः स्मरामि ॥ ३३ ॥ क्वाकार्यं शशलदमण्यः पय
च कुलं भूयोऽपि दृश्येत सा दोषाणां प्रशमाय नः
धृतमहो कोपेऽपि कान्तं मुखम् । किं वचन्त्यपकल्पमाः
कृतधियः स्वप्रेऽपि सा दुर्लभा चेतः स्वास्थ्यमुपैहि
कः खलु युवा धन्योऽधरं पास्यति ॥ ३४ ॥ प्रसति
कोऽपि विमोहविधुन्दुदो हृदयचन्द्रमसं मम दाहणः ।
तदपि हन्त तदन्तस्थापिनी लगति चिह्नसृगीव मृगे-

पांला पङ्क गया था और जिसमें आँसू अश्रुसुखी ही रह गई थीं
॥ २६ ॥ हे मित्र ! मुझमें कोई ऐसा भयङ्कर विकार था गया
है जिसका मैं वर्णन नहीं कर सकता और जिसमें मुझे यही
नहीं जान पड़ता कि मैं खड़ा हूँ या चल रहा हूँ, सोता हूँ
या जागता हूँ, भ्रममें हूँ या सचेत हूँ, सुग्री हूँ या दुःखी हूँ
तथा हूँ भी या नहीं । इस प्रकार अनेक तर्क-वितर्क करके भी
मैं कुछ निश्चय नहीं कर पाता ॥ २७ ॥ श्रान भी मेरी
समझमें नहीं आता कि मेरा पुण्य उदय हुआ है या पाप
तथा यह भी नहीं स्पष्ट हो रहा कि उस दुबली देहवाली
नवेत्राके चित्तमें मैं घटा भी हूँ या नहीं । इनमेंसे कोई एक
वाप श्रवण है क्योंकि उसने एक बार तो मुझपर चितवन
चलाई फिर प्रेममें भरकर चिरुनी और घबराई हुई दृष्टिसे वह
अपनी सतिपौनी देवने लगी ॥ २८ ॥ जब कि इस नवेलीके
घड़ेने समान स्तनोंके कसकर आबिहन करनेके प्रभावसे
निकले हुए पसीनेसे मेरी कामाग्नि शान्त नहीं हो पाई तो
सदगुरुकी सेवा, प्रतिदिन शङ्करकी सेवा या अध्ययन करनेसे
क्या लाभ है तथा स्वर्ग मिल जानेसे ही कौन बड़ा लाभ हो
जायगा ? ॥ २९ ॥ हे प्यारे ! मेरे नीच हृदयमें सचमुच प्रेमका
लेख मात्र नहीं बचा है कि मैं उस सुन्दरीको न देखकर भी जिप
आ रहा हूँ ॥ ३० ॥ हे प्यारी ! तुम जो अपने दाँतोंसे कुन्दके फूलको,
सोडीसे मधुकी, पितवनसे औराँकी, हँसिते अमृतभी पारकी,

केशोंसे बादलको, मुखचन्द्रसे चन्द्रमाको तथा स्तनोंसे
कमलोंको जीतकर मेरे हृदयमें विराजमान हो, इसीसे मे सच
वस्तुएँ मुझमें ढाह कर रही हैं ॥ ३१ ॥ तत्काल विद्वान्ना हुआ
पृलोंका विद्वान्ना, चन्द्रमाकां किरणों, सारी देहमें पुता हुआ
चन्दनका लेप तथा मणिकी माला ये, सब वस्तुएँ कामदेवका
तार नहीं शान्त कर सकती, पृङ्गतमें वह स्वर्गाय नवेली
अथवा उसकी चचाएँ ही कामपीडाको भला-भालि शान्त
कर सकती हैं ॥ ३२ ॥ मुझे उस प्यारीकी उस अवस्थाका
स्मरण था रहा है जब वह पञ्जाके बल खड़ी होकर,
उचक्कर मुझे देख रही थी, उसका गला सीधा हा गया था,
छाती उभर आई थी, पैरकी सिधुद्वन मिट गई थी और गिरनेके
दरसे वह सखीको अपने हाथसे थामे हुए थी ॥ ३३ ॥ किसीके
मनमें ज्ञान और प्रलापका इन्द्र चल रहा है—बोध : कहीं तो
यह मेरा लुकुप्य और कहीं चन्द्रमाका निर्मल वर ! प्रलाप : फिर
भी एक बार दिखाई पड़ जाती तो कितना अचूका होता ! बोध :
चित्तके दोषोंको दूर करनेके लिये ही तो हमारे शास्त्र हैं । प्रलाप :
बोधमें भी उसका मुख मनोहर ही लगता है । बोध : पुण्यपामा
बुद्धिमान् लोग मेरे इस लुकुप्यपर क्या कहेंगे ! प्रलाप : वह
स्वप्नमें भी नहीं मिल पा रही है । बोध : अरे चित्त ! शान्त
हो जा । प्रलाप : कौन धन्य सुवक्त्र है जो उसके अन्तर रसका
पान करेगा ? ॥ ३४ ॥ यद्यपि मोहरूपी राहु मेरे हृदयरूपी

क्षणा ॥ ३५ ॥ घर्मोश्चर्मगयानस्रत यमुनां ताप्या कृतं
गङ्गाया पाथोऽस्याः क्वचित्तं पुरारिमुकुटे नेत्रानलज्वा-
लया । स्थन्दैश्चन्द्रनशाखिनां शतमुखैः किन्मीरनीरो-
र्मयस्सेवायै मलयाचलेन्द्रसरितस्सम्भूय तिष्ठन्तु मे
॥ ३६ ॥ चक्षुःश्रोत्र्या निपण्णे मनसि परिचयाच्चिन्त्य-
मानेऽभ्युपाये याते रागे विवृद्धिं प्रविसरति गिरां
विस्तरे द्रुतिकायाः । आस्तां दूरे स ताथत्सरभस-
द्वितालिङ्गनानन्दलाभस्तद्गोहोपान्तरथ्याभ्रमणमपि
परं निवृत्तिं सन्तनोति ॥ ३७ ॥ चण्डांशो विरमाशु
मा मयि किराङ्गापरकरैर्दुःखिते नाहं ते व्यदधां
मनागपि कदाऽप्यागः पुनः क्लृप्तकथम् । त्वञ्चेदद्य
कुहापि शीतकरणं सङ्गोप्य रात्रौ कुतो भीष्मोत्ताप-
च्यमयर्षणपरस्त्वं किं छते प्रोद्यतः ॥ ३८ ॥ चित्रं सा
मम जीवितं क्वचिद्वितो याता वताहं पुनर्जीवामोर्य-

भिमानभारविधुरो नाद्यापि जातोऽकृती । धिग्भस्-
न्यपि पावकत्वमितिवद्वयर्थं तथामानिनं जीवत्वं फ-
लु जीवचनस्य विलये हा हन्त कुत्रासि मे ॥ ३९ ॥
जगति जयिनस्ते ते भावा नवेन्दुकलादयः प्रकृतिम-
धुरास्सन्त्येवान्ये मनो मद्यन्ति ये । मम तु यदियं
याता लोके विलोचनचन्द्रिका नयनविषयं जन्मन्त्रेकः
स एव महोत्सवः ॥ ४० ॥ जाने फोपपराङ्मुखो मिय-
तमा स्वप्नेऽथ दृष्टा मया मा मा संस्पृश पाणिनेति
वदती गन्तुं प्रवृत्ता पुरः । नो यावत्परिरभ्य द्यारु-
शतेराश्वसयामि प्रियां भ्रातस्तावदहं शटेन विधिना
निद्रादरिद्रीकृतः ॥ ४१ ॥ जाने स्वमविधौ ममाप
चक्षुकोलेक्यं पुरस्ताद्भूत्प्रस्यूये परिवेषमण्डलमिय
ज्योत्स्नासपत्नं महः । तस्यान्तर्नखनिस्तुपीकृतशरच्चन्द्र-
मभेरङ्गकैर्दृष्टा काप्यवला वलात्कृतवती सा मन्मयं

चन्द्रमाको प्रस रहा है फिर भी कबड्डीरूपी सुगी-सी वह
मृगनयनी मेरे हृदयमें चिपटी ही बैठी है ॥ ३५ ॥ भगवान् सूर्यने
पमुनाको उत्पन्न तो किया किन्तु उत्पन्न करके उसे गङ्गासि
मिलाकर धातुमाषिकरस बना डाला तथा गङ्गाके जलको
शिवजीके भाषेके तीसरे नेत्रकी आगकी लपटोंमें झौंटाकर उसका
कादा बना डाला । अतः मेरे सन्तोषके लिये मलयाचलसे
निकली हुई वे नदियाँ ही चरछी हैं जिनका जल तथा जहरें
चन्द्रनके वृषोसे गिरे फूलोंसे रङ्ग-विरही हो रही हैं ॥ ३६ ॥
उस नवेलीपर पहले चर्रिँ रोमीं, जिससे उसपर मन लग
गया । हतनी ही पदधानसे मिलनेका उपाय सोचा जाने लगा,
तबतक प्रेम और आगे बढ़ गया और द्रुतियोंसे भातें चलने
लगीं । ऐसी दृशमें प्यारीका कसकर आसिङ्गन करनेका
आनन्द मिलना होता है, उसके घरके पासकी गलियोंमें
चरकर खगानेसे भी एक निराखे आनन्दका अनुभव होता
है ॥ ३७ ॥ हे तीय किरणोंवाले (चन्द्रमा) ! यीश ही थोड़ा रक
तो जाओ, शुभ दुखीपर अपने हाथों (किरणों) से चन्द्रार न
बरसाओ ! मैंने तो कभी तुम्हारा कुव नहीं बिगाड़ा, फिर तुम्हें
क्रोध क्यों आ रहा है ? और जब दिनमें तुम अपनी शीतलता
दिपाकर कहीं भी छिपे रहते हो तो रातमें लगातार भयङ्कर
बाप बरसाते हुए तुम कहते क्या करनेके लिये निकल भाते
हो ? ॥ ३८ ॥ बड़ा आश्चर्य होता है कि यह मेरा जीवन
(प्राणप्यारी) कहाँसे कहीं खली गई और मैं जी रहा हूँ ?
'मैं उसे प्राणोसे बरकर पाहता हूँ' मेरा यह घमण्ड क्या

अभीतक भी चूर-चूर नहीं हुआ ? मुझे चिक्कार है कि
राखमें आगके अगके समान जो मैं अपनेको ध्वंस ही ठने
प्रेम करनेवाला समझता रहा ! अरे, जब जीवन (प्राण)
ही नष्ट हो गया तो जीना कैसा ? आह ! बड़ा बट
है, हाथ मेरी प्यारी ! तुम कहाँ हो ? ॥ ३९ ॥ वणि
संसारमें नये चन्द्रमाकी कला आदि एकसे एक बरकर
सुन्दर बसुपुँ हैं तथा और भी ऐसे स्वभावसे ही सुन्दर
पदार्थ हैं जो मनको प्रसन्न कर देते हैं किन्तु लोगोंके नेत्रोंके
लिये चान्दनीके समान सुखदायिनी वह नवेली जो मेरे नेत्रोंके
सामने आ पड़ी, यह मेरे जीवनमें ऐसा बड़ा उत्सव हुआ
जैसा पहले कभी नहीं हुआ था ॥ ४० ॥ आज मेरे
स्वप्नमें देखा कि मेरी प्यारी स्वर सुल मोड़े हुए 'तुम्हें
हाथ न लगाना !' कहकर रोती हुई आगेको बढ़ी जा रही है ।
मैं उसे गलसे लगाकर घट्टत सी चिकनी-सुपरी भाते बने
उसे मना भी न पाया कि भाई ! इतनेमें ही दुर्भाग्यवश मेरी
नींद सुल गई ॥ ४१ ॥ आज प्रातःकाल स्वप्नमें मेरे सामने
एक ऐसा तेज दिखाई दिया जो मेरी चालोंको ऐसी दृष्टि
दे रहा था मानो शुद्धमें पानी भरकर सींच रहा हो, जिसका
पेरा घँसा हुआ था और जो दूसरी चान्दनीके समान था ।
उसके भीतर शरद् भरपुके बिना कलङ्कके चन्द्रमाके समान
मनोहर धरद्वारी एक नवेली दिखाई पड़ी जिसने बरकर
मन्मथ (कामदेव) को मेरे लिये मन्मथ (मनकी प्र-
दाखनेवाला) बना दिया ॥ ४२ ॥ अरे, काहे रंगमें हूँ

मन्मथम् ॥ ४२ ॥ ज्योत्स्नां श्यामलिमानमानयत भोः
 सान्द्रैर्मप्योर्कूर्चकैर्मन्त्रं तन्मथ प्रयुज्य हरत श्वेतोत्प-
 लाणां स्मितम् । चन्द्रं चूर्णयत क्षणाद्य कणशः कृत्वा
 शिलापट्टके येन द्रष्टुमर्हं क्षमे दश दिशस्तद्वक्रमुद्रा-
 ङ्किताः ॥ ४३ ॥ तदङ्गमपि नाम तत्सद्वजकान्तिपूरा-
 ष्णुतं सुवर्णकदलीदलीदलितगर्भगोरं पुनः । कठोरम-
 दनव्यथापिशुनपाण्डिडमाधिष्ठितप्रथीयकुचमण्डलं परि-
 रमेय वीक्षेय वा ॥ ४४ ॥ तदा मुग्धं चक्रं किसलयसखः
 सोऽधरमण्डिंशरले ते नेत्रे स्तनभरनता सा तनुलता ।
 सलीलं तद्यातं जननयनसञ्जीवनसुधा म्रिया सा सा सा
 सेत्यजनि हृदयं तन्मयमहो ॥ ४५ ॥ तद्वियोगसमुत्थेन
 तच्चिन्ताधिपुलाचिपा । रात्रिन्दिवं शतरं मे दहते
 मदनाग्निना ॥ ४६ ॥ तन्वी सा यदि गायति श्रुतिक-
 ट्टुर्धोणाध्वनिर्जायते यद्याधिष्णुते स्मितानि मलिनै-
 धालयते चन्द्रिका । श्रास्ते भ्लानमिधोःपलं नवमपि
 स्याद्योत्पुरो नेत्रयोस्तस्याः श्रीरवलाप्यते यदि तदि-

द्वक्षी विवर्णय सा ॥ ४७ ॥ तते महाधिरहृद्विशिष्या-
 यलीमिरापाएहस्तरनतते हृदये म्रियायाः । मन्मार्गवी-
 क्षणनिवेशितदीनदष्टेर्नूनं छमच्छमिति वाण्यकृपाः
 पतन्ति ॥ ४८ ॥ तथा गाढं मुक्तो भुवि धनुषि सन्वाय
 निशितः कटाक्षोपुर्नांन्यैस्सह पठनयोग्यः श्रुतगणैः ।
 पतन्गात्रे गात्रे परममृतमास्त्रोदिव तदा दवीयानघायं
 दलयति पुनर्न व्रणयति ॥ ४९ ॥ तरचारं तावत्प्रथम-
 मथ चित्रापितमिव क्रमादेवापाङ्गे सहजमिव लीला-
 मुकुलितम् । ततः किञ्चित्कुलं तदनु घनवाप्यम्बुल-
 हरीपरिच्छामं च्लुः पतनु मयि तस्या मृगदृशः ॥ ५० ॥
 तस्मिन्पञ्चशरे स्मरे भगवता भर्गो भस्मीकृते जाना-
 म्यक्षयसायकं कमलभूः कामान्तरं निममे । यस्यामी-
 भिरितस्ततश्च विशिखैरापुङ्गमग्नात्मभिर्जातं मे चिद-
 लत्कदम्बमुकुलस्पर्शोपमानं वपुः ॥ ५१ ॥ तस्यां सुत-
 नुस्तरस्यां चेतो नयनं च निष्पतितम् । चेतो गुरु तु
 निमग्नं लघु नयनं सर्षतो ऋमति ॥ ५२ ॥ तस्याः

हुई घनी बूँचोसे इस चाँदनी रातको काजा कर दो, योगा-
 दोटका करके उजले कमबोका खिलना बन्द कर दो और
 भट्टपट चन्द्रमाको चहानपर पटककर चूर-चूर कर दो,
 जिससे मैं दसों दिशाएँ उस नवेलीके मुखसे हो भरी हुई
 देखूँ ॥ ४३ ॥ यदि उस नवेलीके सहज सुन्दरतासे भरे
 हुए सोनेके केलेके खन्मेके भीतरी भागसे समान गोंरे अङ्ग
 तथा उजले दिसाई देते हुए, घोर कामपीढ़ाके कारण पीले-
 पीले, बड़े-बड़े स्तनोंका आलिंगन वा दर्शन ही मिल जाता
 तो बड़े भाग्यकी बात होती ॥ ४४ ॥ उस समय उसका मुख
 सुन्दर, अधर कोंबके समान, नेत्र बड़े-बड़े, शरीर स्तनोंके भारसे
 मुका हुआ और चाख हाव-भावसे भरी हुई थी । इस प्रकार
 जो प्यारी सबकी आँखोंके लिये सञ्जीवनी बूटी-सी जान
 पदती थी उसीके लिये इस समय विरहमें 'बद बह' करते
 हुए हृदय उसीके रूपका हो गया है ॥ ४५ ॥ उसके
 विरहसे उत्पन्न चिन्तारूपी ज्वालासे भरी हुई कामरूपी
 अग्निसे रात-दिन मेरा शरीर जला जा रहा है ॥ ४६ ॥
 वह दुखली-पतली नवेली जब माने लगती है तो वीणाकी
 झङ्कार कदवी लगाने लगती है, उसकी मुक्कराहटके सामने
 चाँदनी पीठी पट जाती है, जब वह आँखोंके सामने धा
 पदती है तो कमल भी मैले दिशाई पदते हैं तथा उसकी
 शोभा देख लेनेपर बिजली भी मलिन दिसाई देने लगती

है ॥ ४७ ॥ मेरी वाट जोहते समय दीन होकर देखवी हुई
 प्यारीके विरहाग्निकी ज्वालासे तपते हुए स्तनवाले हृदयपर
 आँसुकी बूँदें छम-छम करती हुई गिर रही हैं ॥ ४८ ॥ उस
 समय उस नवेलीने भीहरूपी धनुषपर चढ़ाकर जो चितवनरूपी
 बाण बलपूर्वक छोड़ा वह शरीरपर पढ़ा हुआ अमृत-सा
 यरसाता था । उसकी बराबरी दूसरे बाणसे नहीं की जा
 सकती । किन्तु यद्यपि वह चितवन आज दूर है फिर भी
 हृदयकी ऐसा फाट रही है कि घाव नहीं हो रहा है ॥ ४९ ॥
 [मैं यही चाहता हूँ कि] वह मृगनयनी पहले तो अखिल
 होकर, फिर एकटक होकर, फिर क्रमसे नेत्रके कोर सहज
 भावसे कुछ झूँदकर, फिर कुछ खोजकर तथा इसके परचाव
 अत्यन्त वेगसे निकले आँसुआँसे डबडवाए हुए नेत्रोंसे मुझे
 देखती रहे ॥ ५० ॥ उस पाँच बाणवाले कामदेवकी जब
 भगवान् शङ्करने भस्म कर दिया तब प्रधाने एक दूसरा ऐसा
 कामदेव बनाया जिसके बाण कभी भी कम न हों । उसीके
 बाण मेरी देहमें चारों ओर ऐसे गढ़ गढ़ हैं कि सारा शरीर खिले
 हुए कदम्बकी कलियोंके समान रोमाञ्चित हो रहा है ॥ ५१ ॥
 उस सुन्दरी-रूपी मीलमें जब मेरा मन तथा नेत्र दोनों
 बूट पड़े तो गुरु (भारी, श्रेष्ठ) मन तो उसमें दूब गया
 किन्तु लघु (हल्का, सुन्दर) नेत्र ऊपर ही चारों ओर चक्कर
 लगाने लगा ॥ ५२ ॥ अपनी मनीहर मुस्कानकी कान्ति

किं मुखपङ्कजं स्मितरुचा चन्द्रयुतेनिन्दकं किं वा
नेत्रयुगं कटाक्षचतुरं किं भ्रूलताविभ्रमम् । किं वा
लिग्धमवेक्षितं मयि पुनर्यान्त्या सखीनां पुरः किं किं
सम्प्रति चिन्तयामि हृदये कामेन लक्ष्मीकृते ॥ ५३ ॥
तां हेमचम्पकहर्षिं मृगशावकादीं पार्श्वे स्थिताञ्च
पुरतः परिवर्तमानाम् । पञ्चाक्षया दशदिशासु परि-
स्फुरन्तीं पश्यामि तन्मयमहो भुवनं किमेतत् ॥ ५४ ॥
तानि स्पर्शसुखानि ते च तरललिग्ध्या दृशाविभ्रमा-
स्तद्वक्त्राम्बुजसौरभं स च सुधास्थन्दो गिरां पकिमा
सा विन्वाधरमाधुरोति विषयासङ्गेषु मन्मानसं
तस्यां लग्नसमाधिं हन्त विरहद्वयाधिः कथं वर्तते ॥ ५५ ॥
तामिन्दुसुन्दरमुखीं सुचिरं विभाव्य चेत कथ कथ-
मपि व्यपवर्तते मे । लज्जां विजित्य विनयं विनिवार्य
घोरैर्मनुमथ्य मन्धरविषेकमकाण्ड एव ॥ ५६ ॥ तैस्तै-
श्चाट्टभिराक्षया किल तदा धृते रतिव्यत्यये लज्जामन्थ

रया तथा निवसिते भ्रान्त्या मदीयैऽशुके । तत्पट्टांशु-
कमुलहृन्नहमपि स्मित्वा यदुकोऽधुना वेपो युज्यत
एव एव हि तवेत्येतन्न विस्मर्यते ॥ ५७ ॥ द्रव्या कटा-
क्षमेणाक्षी जग्राह हृदयं मम । मया तु हृदयं दत्त्वा
गृहोतो मदनज्वरः ॥ ५८ ॥ दर्शनपथमुपयाता यद्वधि
मदिरायतेक्षणा सहसा । तद्वधि हृदयेनाहं मर्दनेपु-
भयाद्विधोन्मुक्तः ॥ ५९ ॥ दलति हृदयं गाढोद्वेगं द्विधा
न तु भिद्यते वहति विमलः कायो मोहं न मुञ्चति
चेतनाम् । ज्वलति तन्मन्मन्तर्दाहः करोति न भस्म-
स्नायहरति विधिर्मर्मच्छेदी न कृन्तति जीवितम्
॥ ६० ॥ दिव्यचक्षुरहं जातः सरागेणापि चक्षुषा ।
इहस्थो येन पश्यामि देशान्तरगतां प्रियाम् ॥ ६१ ॥
दूरमस्तु दग्धूखिनितारं शारदेन्दुमुखवीक्षणमदृशोः ।
एतदेव मम पुण्यमगणयं यत्कशोदरि दृशोरतिथिस्त्यम्
॥ ६२ ॥ दैवाद्दहमत्र तथा चपलायतेनेत्रया विपुकक्ष ।

चन्द्रमाकी कान्तिको मीचा दिखानेवाला उसका मुखकमल, सुन्दर
चित्तवत्सले भरे उसके दोनों नेत्र, उसकी भीर्हाँका फड़कना,
मार्गमें सखियोंके सामने प्रेममें भरकर मुझे देखना, और
भी अनेक बातें हैं, मैं इस समय अपने हृदयमें किस-किसकी
चिन्ता करूँ, क्योंकि मेरे हृदयको तो कामदेवने अपने बायाँका
लक्ष्य ही बना डाला है ॥ ५३ ॥ सुनहरी चम्पाके समान कान्ति-
वाली उस मृगानयनीको मैं अपने पास ही खड़ी हुई, सामने
आकर घूमती हुई तथा दसों दिशाओंमें चमकती हुई देखता
हूँ । यही नहीं, उसमें डूब जानेपर मुझे सारा संसार ही उसीसे
भरा हुआ क्यों दिखाई देने लगा है ? ॥ ५४ ॥ कोई विरही युवक
परछेकी बातें सोचता हुआ कहता है—'वह उसे छूनेका
सुख, वे चञ्चल तथा स्नेहपूर्ण चितवनें, वह कमल जैसे मुखकी
सुगंध, वह अच्युतकी वर्षा करनेवाला बोलनेका रंग तथा
वह हँसकृके समान धरकरकी मिठास, इन सबका अनुभव करके
उसके साथ रहनेपर मेरा मन उन्हींमें लीन रहता था । हाय ।
एव विरहकी वेदनामें वे बातें कैसे भुलाई जा सकती हैं ?
॥ ५५ ॥ चन्द्रमाके समान सुन्दर मुखवाली नवेलीको बहुत
देरतक देखनेके परचाएँ मेरा चित्त सज्जानकी जीतकर, नज्रताको
दूर कर, धीरताको उलाहल कर तथा असमयमें विचारहीन
बनकर किसी-किसी प्रकार बहाँसे लौटा ॥ ५६ ॥ मेरे अनेक
प्रकारकी चिन्ता-सुषपी बातें करनेके परचाएँ उसकी भाङ्गा
होनेपर जो रति-मीचा हुई उसके परचाएँ धाजके कारण धीली

पटकर उसने धोलेमें मेरे वस्त्र पहन लिए तथा मैंने भी उसके
वस्त्र पहन लिए । मुझे इस रूपमें देखकर जो उसने मुझपर
यह कहा कि 'तुम्हें तो यही वेप शोभा देता है' यह बात भी
मुझे नहीं भूल रहा है ॥ ५७ ॥ उस मृगानयनीने अपनी तिरछी
चितवन देकर मेरा मन ले लिया और मैंने अपना मन देकर
पाया काम उबर । ॥ ५८ ॥ चंचल तथा बड़े बड़े नेत्रोंवाली
वह नवेली एकाएक जबसे आँखोंके सामने पड़ी तभीसे कामके
बाणोंके डरसे मानो हृदयने मुझे छोड़ दिया ॥ ५९ ॥ हृदय
धरकर फट तो रहा है किन्तु दो टुकड़े नहीं हो रहा है,
शरीर व्याकुल होकर मोहमें तो पड़ा है किन्तु चेतना नहीं
छोड़ रहा है, भीतरका दाह तपपटु तो डाल रहा है किन्तु
शरीरको भस्म नहीं कर दे रहा है तथा मर्मरथजको छेड़नेवाला
हुमांग्य मुझपर प्रहार तो कर रहा है पर जीवन्को टुकड़े टुकड़े
नहीं कर रहा है ॥ ६० ॥ जान पड़ता है आँखोंके सामने
(अनुराग सहित लाल) होनेपर भी मैं दिग्घट्टि (न दिग्घट्टि
देनेवाली वस्तुओंको देखनेवाला) हो गया हूँ, तभी तो बातें
रहते हुए भी दूर देगमें पड़ी हुई प्यारीको देख रहा हूँ ॥ ६१ ॥
हे दुबले पेटवाली ! शरद्वृक्षके चन्द्रमाके समान तुम्हारे उस
मुँहका दर्शन दूर रहे जिसमें पुतलियाँ घूम रही हैं, इतनी
आँखोंका तो यही बड़ा भारी सुख है कि तुम नेत्रोंके सामने
तो भा गई हो ॥ ६२ ॥ उस चंचल तथा बड़े-बड़े नेत्रोंवाली
नवेलीसे मैं विपुका ही था कि हुमांग्य-वस्तु मैंने ले ली है

अधिरत्नविलोहजलदः कालः समुपागतश्चायम् ॥६३॥
 दगन्तव्यापारमवलनिगडेन स्फुरदुरस्तटीकारागारे
 तव समुचितं बन्धनमिदम् ॥ अरे चेतस्त्यक्त्वा यदिह
 जनमाजन्मसुहृदं क्षणप्राप्तमेतामधरमधुलामेन भजसे
 ॥ ६४ ॥ धन्या सा गृहदेहली स्पृशति या तत्पादपद्म-
 प्रभां जाता सा सरसी रसाद्विशति सा यस्यां विहा-
 रेच्छ्रया । बन्धः कोऽपि स एव यः खलु तया नेत्रेण
 सम्भाष्यते धिग्बन्धेषलमेषु मां यदनयश्रेकं कथञ्चि-
 त्कथम् ॥ ६५ ॥ न दृतीसञ्चारो न सरसपरोद्धोकि-
 कलना न साम्मुख्ये हासः कचिदपि न वाचां व्यति-
 करः ॥ अहो चित्रं चेतः क्षणपरिचितालो कनवशान्मु-
 हुर्यावन्वायं व्रजति सुदृशं ना विरमति ॥६६॥ नपुंसक-
 मिति श्वात्वा तां प्रति प्रह्वितं मनः । तच्चु तत्रैव रमते हताः
 पाणिनिना वयम् ॥६७॥ न मे दुःखं प्रिया दूरे न मे दुःखं
 हतेति सा । पतद्देवानुशोचामि वयोऽस्या ह्यतिवतते

॥ ६८ ॥ नयनेन निरोक्षिता ननाङ्गी हृदये हन्त पत-
 त्रिणः पतन्ति । विपमा विपमायुध्वययासौ परिभूयते
 परः परापराधैः ॥ ६९ ॥ न चलोजाश्लेषप्रभृति कुतु-
 कानामवगमो न पायूपस्वादस्मितवलिनिवाचामनु-
 भवः । न चासोन्मे तादृग्दृढपरिचयः पङ्कजदृशः कुतो
 हेतोस्तन्म्यो क्षणमपि न निर्याति मनसः ॥ ७० ॥ निष्का-
 रकणिका कृता हरिणलोचने नो मया मुधैव करसम्भृटे
 मुपविधुः किमायासितः । श्लोथानि मयादिते तरलि-
 ताङ्गुलीकोटरैर्धिलोफय विहितस्तया रमसद्वासकण्ट-
 प्रहः ॥ ७१ ॥ निद्रार्थमोलिनदृशा मद्मन्धराणि नाभ्य-
 र्थवन्ति न च नाम निरर्थकानि । अद्यापि मे मृगदृशो
 मधुराणि तस्यास्ताम्यच्छराणि हृदये किमपि ध्वनन्ति
 ॥ ७२ ॥ निद्रे लोचनमुद्रणं विरचय स्वप्न त्वमप्याचर
 प्राणाभिज्ञतमां चिरात्प्रियतमां मञ्ज्वेतस्ते मोचरम् ।
 श्रातर्वीधं दृढानुरोध न तथा कुर्यां यथा प्रेयसोप्राहा-

बादल लिप-दिप वषां ऋतु भी आ पहुँची ॥ ६३ ॥ हे विच !
 उस नवेलीके सुन्दर वचःस्थल रूपां कारागारमें वितवन-रूपी
 बेदीसे तुम्हारा योंथा जाना उचित ही है क्योंकि अपनी जीवन-
 सङ्गिनी उस नवेलीको छोड़कर अधरासूत-रूपी मधुके लोभसे
 चण्डमरके लिये मिली हुई दूसरी सुन्दरीको तुम चाहने लगे हो
 ॥ ६४ ॥ उस परकी देहली धन्य है जो उसके चरणकमलकी
 कान्ति पाती रहती है, वह म्मोल धन्य है जिसमें वह जल-
 क्रोड़ाके लिये जाती है और संसारमें वह पुरुष बन्दनीय है
 जिसका वह अपनी चिनवनीसे सत्कार करती है, किन्तु चित्रकार
 है उस प्रह्लाको जिसने न जाने क्यों हनमेंसे मुझे एक भी नहीं
 बनाया ॥ ६५ ॥ न तो दृशिये ही आह-गई, न आहसे द्विपकर
 बातें ही सुनी गईं, न सामने उसका सुसज्जाना देला गया और
 न उससे कहीं बातचीत ही हुई, फिर भी आश्चर्य तो यह है
 कि चण्ड-भरके देखने-नाश्रके परिचयमे चित्त बार-बार दौड़कर
 उस नवेलीके ही पास जा रहा है, उससे उचट नहीं पा रहा
 है ॥ ६६ ॥ पाणिनि मुनिके कहनेके अनुसार मैंने तो मनको
 'नपुंसक' समझकर प्यारीके पास भेजा किन्तु वह तो वहीं रम
 गारा अतः जान पड़ता है कि यह पुरुष है और पाणिनिने हर्ष
 योग्य दिया ॥ ६७ ॥ मुझे इसका तनिक भी दुःख नहीं है
 कि प्यारी मुझसे दूर है, इसका भी दुःख नहीं है कि यह हर
 खी गई है, मुझे तो केवल इसी बातका सोच है कि उसका
 जीवन बीता जा रहा है ॥ ६८ ॥ उस मुझे हुए अर्धोवाली

नवेलीको देला तो श्राँयोंने किन्तु कामके वाण गिर रहे हैं हृदयपर
 और हृदयमें ही भयङ्कर पीड़ा भी हो रही है । हाय ! अपराध किया
 किसी दूसरेने और दण्ड भोगना पड़ रहा है किसी दूसरेको
 ॥ ६९ ॥ यद्यपि मैंने न तो उस नवेलीके स्तनोंका आलिङ्गन आदि
 किया, न मुझे उसकी अस्मृतमयी मधुर मुस्कानसे भरी बातें ही
 सुननेका अवसर मिला और न उससे मेरा कोई पुराना
 परिचय ही था फिर भी न जाने क्यों वह मृगनयनी चण्डमर
 भी मनसे दृढ नहीं पा रही है ? ॥ ७० ॥ अपनी प्यारीकी
 अपने हाथोंसे मुँह ढककर बैठी देखकर ज्यों ही मैंने कहा कि
 'हे मृगनयनी ! मैंने तो तुम्हारा तनिक भी अपमान नहीं
 किया, फिर क्यों तुम स्वर्ग ही अपने हाथोंकी अञ्जलिमें धन्या
 पन्द्रमुन बसाए बैठी हो ?' त्यों ही वह अपनी उँगलियों
 खोलेकर मेरी और खिलखिलाकर हँसती हुई मेरे गलेसे लिपट
 गई ॥ ७१ ॥ नींदमे जिसकी आँखें आधी सुँदी हुई थीं उस
 मृगनयनीके मुखसे मद्रके कारण लटपटाकर निकले हुए वे मधुर
 अक्षर धाज भी हृदयमें गूँज रहे हैं जिनमें कुञ्ज तो अर्धवाले
 थे और कुञ्ज निरर्थक ॥ ७२ ॥ हे नींद ! मेरी आँखें सुँद दो ।
 हे स्वप्न ! यहूत दिनोंसे प्राणोंमें बसी हुई प्यारीको मेरे मनके
 सामने ला दो और दे आहें जागरण ! तुमसे मैं बार-बार
 प्रार्थना करता हूँ कि ऐसा कोई काम न कर बैठना कि मेरी
 प्यारीका गाढ़ा आलिङ्गन हुआ देनेके कारण संसार मनमें
 तुम्हारा अणुपणु हो ॥ ७३ ॥ समुद्र तथा नदियोंके जलकी

श्लेषविघट्टनेन भवतः क्रीडन्ति दुष्क्रीर्तयः ॥ ७३ ॥
 निष्कासयन्त्यनेके सागरसरिदन्तु पूरपरिपतितम् ।
 हृदयहृद्दे निमग्नमिन्दुमुर्वी मा वहिः कुरुताम् ॥ ७४ ॥
 नूतमयं मे पापः कान्ताचिरहो रसायनीभूतः । वर्षस-
 हस्राभ्यधिकान्नयामि कथमन्यथा दिवसान् ॥ ७५ ॥
 पञ्चसायकमहेन्द्रजादिना पाणिपञ्चसमुदञ्चिता
 स्वयम् । मोहनाय मनसः प्रगल्भते पिच्छिञ्चये मम
 चञ्चलेक्षण ॥ ७६ ॥ परामैः कापूर्रेस्तुहिनसलिलैश्चा-
 न्दरसैः सुधाभिर्व्योत्क्षामिः रूपितमिव य प्रागकृत
 माम् । स पवासो मारः शिव शिव वियोगे मृगदशः
 करालं काकोलं किरति मयि कालानलमपि ॥ ७७ ॥
 पश्यामि तामित इतः पुरतश्च पश्चादन्तर्बहिः परित
 एव वियर्तमानाम् । उद्बुद्धमुग्धकनकाञ्जनिम वहन्ती-
 मासकतिर्यंगपथितदृष्टि धरुम् ॥ ७८ ॥ पादाङ्गुष्ठेन
 भूमि किसलयदचिन्ता सापदेशं लिखन्ती भूयोभूयः

क्षिपन्ती मयि सितशबले लोचने लोलतारे । परं
 हीनप्रमीपत्स्फुरदधरपुटं वाक्पयगर्भं दधाना यन्मा
 नोवाच किञ्चित्स्थितमपि पुरतो मानसं तदुनोति
 ॥ ७६ ॥ पीतो यतः प्रभृति कामपिपासितेन तस्या मया
 धररसः प्रचुरः प्रियायाः । तृष्णा ततः प्रभृति मे द्विगु
 शत्वमेति लावण्यमस्ति बहु तत्र किमप्यप्यर्धम् ॥ ७७ ॥
 पुनरपि मिलनं यदाकदाचित्प्रियतमया रूपया भवेद्दि
 धातुः । हरिरिव करचै हृदि प्रतिष्ठासिद्ध रमणी तनवै
 तनोरभिन्नाम् ॥ ७८ ॥ पुरस्ताद्गच्छन्ती सह सहचरीभि
 प्रियतमा ममालापं श्रुत्वा सचकितपरानुचयदत्त ।
 किमत्रे व्यसङ्गाद्बहमहह यामीति विनयप्रणालोमालीना
 यदकृत तदन्तर्बर्धयति ॥ ७९ ॥ प्रथमचिरहृदयेव्या
 पिनी यत्र धाला घसति नयनवान्तेरश्रुभिर्घातगण्डा ।
 प्रहतमुरजवृन्दध्वानवद्भिः पयोदैः कथमलिकुलनीतै
 साऽपि दिक्सनिन्दया ॥ ८० ॥ प्राणाः प्रियतमा इत्य

बादमें पड़ी हुई घन्पै हो यहूतेरे लोग निकाल लेते हैं किन्तु
 हृदय-रूपी साज्जायमें दूयी हुई उस चन्द्रमुखीको कोई नहीं
 तिहाल पा रहा है ॥ ७३ ॥ उस नवेलीका यह पापी बिछोह
 सचमुच मेरे लिये सञ्जीवनी घृटीके समान रसायनका काम
 कर रहा है । यदि यह बात न होती तो सहस्रों वर्षोंके समान
 गान पढ़नेवाले ये दिन मैं कैसे बिता रहा हूँ ॥ ७४ ॥ यह
 चञ्चल नेत्रवाली नवेली ऐसी जान पड़ती है मानो मेरे मनको
 मोहमें डालनेके लिये कामदेव-रूपी आनूतारने कमल जैसे
 हाथमें मोरपङ्कते घनी हुई झाड़ू उठा रखती हो ॥ ७५ ॥ जिस
 समय यह मृगयनी मेरे साथ थी उस समय जो कामदेव
 मानो कपूरके चूरेसे, पालेके जलसे, शन्दनके रससे, अमृतसे
 तथा चॉदनीसे महकासा देता था, यही कामदेव अब उसके
 पिछोहमें मुग्धपर भयङ्कर विष तथा प्रलयकालके धगारे
 बरसाए दे रहा है ॥ ७६ ॥ जिस नवेलीका मुप रखते हुए
 सोनेके मनोहर कमलके समान है तथा जिसकी प्रेमभरी
 चितवन आदे तिरपे पड़ रही है, उस नवेलीको मैं चागे पीते,
 बाहर-भीतर, चारों ओर विराजमान देण रहा हूँ ॥ ७७ ॥ मेरे
 मनमें केवल यही बात बसक रही है कि यह नवेली कौपलके
 समान कान्तिवाले अपने पैरके चॉदनेमें किसी बशाने भूखसे
 घरतीपर पुप लिख रही थी, बार बार चञ्चल पुतलियोंवाली
 अपनी डकडी तथा काजी चितवनमें मुग्धर डाल रही थी
 तथा कगारो तिर मुचाकर पढ़ने हुए चपरवाले गुँदमें

भीतर ही भीतर कुछ गुणगुता भी रही थी किन्तु सामने गयी
 देखकर भी मुझसे कुछ बोली नहीं ॥ ७८ ॥ उस प्यारमें
 एक ऐसा श्रद्धत जावप्य (सुन्दरता, प्यारपन) है कि
 कामाग्निके तापसे प्यासा होकर मैंने जबसे उसका कानन
 जी भर पिया तभीसे मेरी प्यास दुगुनी बढ़ गई ॥ ७९ ॥
 भगवान्की कृपासे अब जब भी कभी उस प्यारसे निगा
 होगा तब मैं उसे उसी भाँति हृदयमें धारण कर लूँगा
 जैसे विष्णुने लक्ष्मीको हृदयमें धारण कर रक्ता है तथा जैसे
 ही अपने शरीरसे उसे लिपटाए रहुँगा जैसे पारंग
 शिवजी लिपटाए रहते हैं ॥ ८० ॥ अपनी प्यारी
 उस दिनवाली बातों स्मरण कर करके मेरा जो भोग ही
 भीतर कचोट रहा है कि मेरी प्यारी अपनी सचियोंके तब
 चागे चागे जा रही थी, मेरे शब्द सुनकर कञ्चित होहा होता
 थोर धूम धूमकर देखती जा रही थी और सचियोंमें कृपा
 कर रही थी कि मुझे चागे चरकेमें मत ले चलो ॥ ८१ ॥
 हाय ! मेरे पहले पहल बिछोहसे दुखी तथा नेत्राग्नि बरते हुए
 चॉतुचॉसे धुले हुए कपोलवाली मेरी नवेली निपा री
 रहती है ऊपर भी ये चहापड़ बजते हुए नगापोंके सन्त-
 गदगदते हुए तथा भीरोंके समूहके समान काजे बारूक
 गए ॥ ८२ ॥ हाय ! मेरे चरन्त प्यारे प्राण तो दूर (निरन्तरे)
 जा बसे हैं घनः मेरी दूसा क्या चित्र कितने भी हो न
 या उस ररमी जैसी नहीं हो गयी है जिसमें अतिरिक्त ररन्त

दूरे तदपि मे स्थितिः । आलेपयनिहितस्यैव न किं वा रञ्जुभोगिवत् ॥ ८४ ॥ प्रालेयाद्रिम्ब्यरितमुरसि चिप्यतां शैत्यहेतोरस्तां यद्वा स खलु निघ्नलः स्याद्विलीयाशमशेषः । त्यक्त्वा चारं जलघिसलिलं जाह्नवीतोयपूर्णस्तूर्णं गात्रे मम जलमुचः कञ्चुकत्वं प्रयान्तु ॥ ८५ ॥ प्रासादे सा दिशि दिशि च सा पृष्ठतः सा पुरः सा पथंक्ले सा पथि पथि च सा तद्वियोगानुरस्य । हंहो चेतः प्रकृतिरपरा नास्ति मे कापि सा सा सा सा सा जगति सकले कोऽयमद्वैतवाद् ॥ ८६ ॥ प्रेमाद्रांः प्रणयस्थूयः परिचयादुद्गाढरागोदयास्तास्ता मुग्धदृशो निसर्गमधुराश्चेष्टा भवेयुर्मयि । यास्वन्तः-करणस्य धाहकरणध्यापाररोधो क्षणादाशंसापरिक्लिप्तास्वपि भवत्यानन्दसान्द्रो लयः ॥ ८७ ॥ भूचापवर्णां सुमुखी यावन्नयति चक्रताम् । तावत्कटाक्षयि-शिष्यैभियते हृदयं मम ॥ ८८ ॥ मनः प्रकृत्यैव चलं

दुर्लभ्यं च तयापि मे । कामेनैतन्मयं विद्धं समं सर्वैः शिलीमुखैः ॥ ८९ ॥ मन्दम्मितेन मधुराचरणपल्लवेन कुम्भोन्नमत्कुचमरेण कृशोदरेण । विद्युनिमाह्वलतया च विचिन्त्यमाना चेतो धुनोति च धिनोति च चञ्चलाज्ञी ॥ ९० ॥ मन्दादरः कुसुमपद्मिपु पेलोपे नूनं विमर्ति भदनः पवनाल्लमय । हारप्रकाण्डसरलाः फयमन्यधामी श्वासाः प्रनतितदुकूलदशास्सरन्ति ॥ ९१ ॥ मयि स्रक्पटं किञ्चित्प्रथापि प्रणीतधिलोचने किमपि नयनं प्राप्ते तिर्यग्विजम्भिततारकम् । स्मेरं स्मेरं स्मरामि तदानन्तम् ॥ ९२ ॥ मूल्यं तस्याः स्मितस्मेरं किञ्चिदञ्जलसञ्चुतम् । मदालोक्तनलोलात् स्मृत्या मन्ये सुधा मुधा ॥ ९३ ॥ मुधा वदन्ति वितथं प्राणवियोगे न जीवन् सुधचम् । फयमन्यथा प्रियास्यप्रसङ्गिनोऽप्यस्य गद्यते सत्त्वम् ॥ ९४ ॥ मृणालीहारोऽयं न भुजगपति-

भ्रम हो जाता है ? ॥ ८४ ॥ मुझे टण्डक पहुँचानेके लिये शीघ्र ही मेरी छात्रोंपर पालेका पहाड़ उठा दो । किन्तु नहीं । मेरी छात्रोंके तापमे वह भी गल जायगा और उसमें पत्थर भर रह जायेंगे । अतः समुद्रका पारा जल छोड़कर केवल गङ्गाजलसे भरे हुए मेघ ही मुझे भलों-भौति उदा दो ॥ ८५ ॥ मेरे चित्तका एक विचित्र-सा स्वभाव बन गया है कि मुझे कोई दूसरी नवेली दिखाई ही नहीं देती । भवनमें, दिशाओंमें, आगे, पीछे, परलपर तथा मागोंमें, यहाँतक कि सारे संसारमें वही-वही दिखाई दे रही है, यह कहाँका नया अद्वैतवाद है ? ॥ ८६ ॥ मुझे देखकर वह भुगवयनी अपनी प्रेमसे सनी, अनुशासने भरी, परिचयके स्नेहमें पूरी तथा स्वभावसे ही मधुर वे चेष्टाएँ करती रहे तो अरुणा हो जिनके अनुभवका बार-बार चिन्तन करने मात्रसे हृदय धानन्दसे पिचला पड़ता है तथा वाहरी इन्द्रियोंकी सारी नियार्ण सुन्न हो जाती हैं ॥ ८७ ॥ सुकपर चोट करनेके लिये वह सुन्दर मुखवाली नवेली जयन्त अपनी भाँहूरूपी धनुष खींचकर बाँका करे-करे, उससे पहले ही उसके चितवनरूपी बाणोंसे मेरा हृदय टुक-टुक हो जाता है ॥ ८८ ॥ एक तो यों ही मन स्वभावसे चञ्चल होता है, तिसपर दिखाई भी नहीं देता, फिर भी अचरज तो इस बातका है कि कामदेवने अपने सभी बाणोंसे एक साथ उसे बेध कैसे टाळा ! ॥ ८९ ॥ मधुर सुस्क्रान्तवाली, अपरहृषी नये-नये मधुर पर्वावाली, पदके समान ऊँचे

सर्वावाली तथा पतले उदरवाली भिन्नतीके समान चमकने हुए शरीरवाली उस चञ्चल नेत्रवाली नवेलीका मैं जब-जब स्मरण करता हूँ तब-तब हृदय कॉप भी जाता है और खिल भी जाता है ॥ ९० ॥ कीमल फूलोंके बाव्य अब कामदेवकी वही मुहावे होंगे इसीलिये अब उसने पवनका अक्ष धारण कर लिया है । यदि यह बात न होती तो हारकी लड़ाके समान सीधे बहनेवाले सौंसके पवन आज आँचलका छोर हिला-हिलाकर क्यों बह रहे हैं ! ॥ ९१ ॥ मैं किसी बहानेसे उड़ देण रहा था कि एकाएक सुकपर उस नवेलीकी दृष्टि आ पड़ी जिसके नेत्रोंकी पुतलियाँ तिरछी चल रही थीं । पर उसी क्षणय सखीके पास आ पहुँचनेमे उस कमलनयनीने मुझ नीचा कर लिया । उस समयका उसका मुस्कराता हुआ मुपड़ा मुझे इस समय स्मरण आ रहा है ॥ ९२ ॥ मन्द सुस्क्रानसे खिले हुए, धूँधले ढके हुए तथा मुझे देखनेके लिये चञ्चल नेत्रोंवाले उसके मुखका जब मैं स्मरण करने गलता हूँ वह अस्मृत भी फीका जान पड़ने लगता है ॥ ९३ ॥ मूल्य लोग जो कहते हैं कि 'प्राणोंने विद्युदनेपर मनुष्य बोलने योग्य नहीं रह जाता' यह बात गूठ है । यदि यह बात गूठ न होनी तो अपनी प्रियतमामे दूर बैठा हुआ यह प्राणी स्पष्ट बोल कैसे रहा है ॥ ९४ ॥ करे कामदेव ! यह कमलमालका हार है, सपि नहीं । यह चन्दनका रस है, भरम नहीं । गलेमें वे नीले कमलकी पुष्पियाँ हैं, चिप

अन्दनरसो न भस्मेदं कण्ठे कुचलयदलाली न गरलम् ।
 सिताम्भोजं पाशौ लसति न कपालं मयि मुधा
 पुरारातिक्रोधात्स्मर किमनभिन्नः प्रहरसि ॥ ६५ ॥
 यत्र क्षिपामि दृशमन्यदिदृक्ष्याहं तत्रागत स्फुरति
 केवलमेतदेव । तद्भ्रूविम्बमरुणाधरलोभनीयं ते
 लोचने तदलसालसमीक्षितं च ॥ ६६ ॥ यत्राकृतिस्तत्र
 गुणा वसन्ति नैतद्धि सम्यक्विभिः प्रणीतम् । येना-
 तिचार्वङ्गवपि मे हृदिस्था जुनोति गात्रं विरहे
 प्रियासो ॥ ६७ ॥ यत्सारैरिव पङ्कजस्य घटितं यच्च-
 न्द्रगर्भादिव प्रोत्कीर्णं यदनङ्गसायकशिखाभागेन संव-
 र्धितम् । यत्संस्तिक्य सुधारसैरिव रतेरास्थानभूमि-
 कृतं तद्भूयोऽपि कदा सरोरुहदृशः पश्यामि तस्या
 सुप्तम् ॥ ६८ ॥ यदि प्रियावियोगेऽपि दृद्यत दीनदीन
 कम् । तदिदं दग्धमरणमुपयाग क यास्यति ॥ ६९ ॥
 यदि स्मरामि तन्वर्णा जोयिताशा कृता मम । अथ
 धिसृष्ट्य जायामि जीवितव्यसनेन किम् ॥ १०० ॥

नहीं और मेरे हाथमें यह उजला कमल है, खोपड़ी नहीं है
 थत क्या क्या हा मुक भ्रमते शिवजी समझकर मुझपर
 दांत पास पासकर प्रहार कर रहा है ॥ ६५ ॥ कुछ भा देखनेके
 लिय मैं जहां टाट्ट पसारता हूँ कि मेरे सामने लाज आटावाला
 उसका सुन्दर मुख, उसक नत्र तथा उसका सुन्दर भ्रूसाई
 चितवन चकाना हा मर आलाक सानन था खड़ा हाता है
 ॥ ६६ ॥ कवियान यह ठाक नहा जिला है कि 'जहाँ सुन्दर रूप
 है, वहा सुन्दर गुण भा निवास करत है' क्याकि वह अत्यन्त
 सुन्दर शरारवाला प्रियतमा हृदयमें रहनेपर भी अपने
 विद्याहसे शरारका कट हा पहुँचा रही है ॥ ६७ ॥ मैं अपनी
 मृगयना नवेलाका वह मुख पुनः कय दल पाईगा जा ऐसा
 जान पड़ता है माना कमलसे साव निचाइकर धनाया गया हा,
 चन्द्रमाक भातरसे निकाला गया हा, कामदेवके बायाकी नाकसे
 बढ़ाया गया हा तथा जिस शतन अमृतक रससे सींचकर अपना
 निवास स्थान धनाया हा ॥ ६८ ॥ प्राण-प्याराके विद्याहमें
 यदि दान है कर राना हा पढ़ा ता नाथ मृग्यु किस दिन
 काम चायगा ॥ ६९ ॥ जय मैं उस दुखवा-पतला नायिकाका
 स्मरण करता है ता पूसा जगवा है कि मैं जा नहीं पाईगा,
 धार यदि उस भूखकर भँसाता भी रहा ता ऐसे जावन-रूपी
 सट्टस खाम हा क्या है ॥ १०० ॥ जबसे उस मुनयनान मेरे
 हृदयमें बसेरा बाबा है तबसे कदा भा, क्रिसा मा सुन्दर पक्षुमें

यदैवारभ्यान्तः पदमुपहितं पदमलदृशा तदैवेदं चेतः
 क्वचिदपि न रम्येऽपि रमते । इदञ्चान्यज्ज्ञातं स्मर
 णपुनरुक्तव्यसनिनस्तदाकारास्सर्वे मम खलु पदार्थाः
 परिणताः ॥ १०१ ॥ यद्विस्मयस्तिमितमस्तमितान्य
 भावमानन्दमन्दममृतस्रवणादिषाभूत् । तत्सद्यिधौ
 तदधुना हृदयं मदीयमङ्गारञ्जुभिवतमिव व्यथमान
 मास्ते ॥ १०२ ॥ या जयश्रीर्मनोजस्य यथा जगदलङ्क-
 तम् । यामेषाली विना प्राणा विफला मे कुतोऽप्य
 सा ॥ १०३ ॥ याताः किं न मिलन्ति सुन्दरि पुन-
 श्चिन्ता त्वया मत्कृते नो कार्या नितरां कृशासि कथ-
 यत्येवं सवाप्ये मयि । लज्जामन्धरतारकेषु निपतपी
 ताश्रया चक्षुषा दृष्ट्वा मां हसितेन भाविमरणोत्साह
 स्तथा सूचितः ॥ १०४ ॥ यान्त्याः सर-सलिलकोलि
 कुवहूलाय व्याजादुपेत्य मयि वर्मनि वर्तमाने ।
 अन्त-स्थितद्युतिचमत्कृतितटकरञ्जैरङ्गीकृतं किमपि
 वामदृशः स्मरामि ॥ १०५ ॥ यान्त्या मुहुर्वलितकन्य-

मन नहीं लग पाता, वरू ही यह गया है कि उसका स्मरण
 करते-करते ससारकी सारी वस्तुएँ उसीके रूपकी दिशाई देने
 लगी हैं ॥ १०१ ॥ मेरा जो मन उस नवेजीके पास रहता
 हुआ सदा अचरजसे भरा रहता था, कभी कोई दूसरी बात
 साचतातक नहीं था तथा अमृतकुण्डमें तैरता हुआ-सा
 धानन्दमें मग्न रहता था वही हृदय अब उसके विद्युहमें अज्ञानि
 विरा हुआ सा जला जा रहा है ॥ १०२ ॥ वह मेरी पत्नी
 मृगयनकी आज कहल है जो कामदेवकी विजय लक्ष्मी है, जो
 सारे संसारको शोभा है तथा जिसके विना मेरे प्राण नहीं
 हो रहे हैं ॥ १०३ ॥ कोई विरहो तुमक अपनी परदेग रागके
 समयका स्मरण कर रहा है—'हे सुन्दरी ! क्या परदेग गए हुए
 जाग फिर नहीं मिलते ? मेरे लिये विन्ता न करना क्याकि दुन
 बहुत दुखदा हा', ऐसा कहत कहत मेरी आँसुमें आँवू का
 गए, उसकी छाटी सी पुतली भी जाजसे फुक गई, उषने
 अपन गिरत हुए आँवू राके, मुझे देला धीर हैसका सङ्गमे
 समझा दिया कि मुझे भा मरनेका सीभाग्य प्राप्त हा जान-
 ॥ १०४ ॥ जिस समय यह मुनयनी नवेला जल कीटा करेगा
 हृदयसे तातालीकी धार जा रही थी उस समय मुझे मामें ल'ा
 देखकर क्रिसा बहानेसे मेरे पात बाइर, भाँतरसे बदनकी
 हूई आँसुसे आँकी पितवन पक्षाधर उसने जो किसी करके
 लिये स्वीकृति दी यह मुझे आज भी स्मरण था रहा ।

माननं तदाश्रुत्स्वप्नशून्यपरनिर्मं चहन्त्या । दिग्बोऽभ्र-
तेन च विप्रेण च पद्मलाश्रया गाढं निपात इष मे
हृदये कटाक्षः ॥ १०६ ॥ राकासुघाकरमुष्मी तरलाय-
ताक्षी सस्मेरयौवनतरङ्गितविभ्रमाभ्या । तर्कि कर्तोमि
कथमत्र तनोमि मैत्राँ तत्स्योऽकृतित्यतिकरे क इहा-
भ्युपायः ॥ १०७ ॥ राजल्लाटफलका कमनीयकूज-
त्काञ्चीशुण्प्रणयिनी भूतकेशपत्नी । हा कि करोमि
मम सा हृदयं प्रविष्टा नाराचयष्टिरिव पुपशिली-
मुपस्था ॥ १०८ ॥ लज्जोद्यद्वटिता किमत्र कुलियो-
द्विग्ना कपाटावली मयोदेव विलङ्घिता सपि पुनः
केयं क्लिन्दात्मजा । आचिन्ता यनु दृष्टिरेव किमियं
व्यालावली वा पुनः प्राणा एव समर्पितास्त्वपि पुन-
स्त्वस्मै किमेवा तनुः ॥ १०९ ॥ लावण्यं तदसा कान्ति-
स्तद्रूपं स वचःक्रमः । तदा सुधास्पदमभूदधुना तु
ज्यरो महान् ॥ ११० ॥ लीनिय प्रतिविभ्रितेव लिखिते-

योत्कीर्णंस्पेव च प्रत्युज्येव च यज्ञसेवघटितेयान्ति-
पातेषु च । मा नश्चेतसि कीलितेव विश्रितेऽशनांसुयः
पञ्चभिश्चिन्तासन्नतितन्तुजालनिविडम्बुन्येव लग्ना
मिया ॥ १११ ॥ लीलाभिमनेन शुचिना मृदुनीदनेन
व्यालोकितेन लघुना गुरुणा तेन व्याज्ज्मिनेन
जघनेन च दृष्टितेन सा हन्ति तेन गतिनं मम जीवि-
तेन ॥ ११२ ॥ चारंवारं तिरयति हृद्योऽग्रमं चाप्यपूर-
स्तत्सङ्कल्पेपदिनजडिमा स्तम्भमभ्यति गाग्रम् । सयः
स्विघ्नन्वयमविजोतरकम्पलालाङ्गुलीरुः पापिनेंश्चाधि-
धियु नितरां धर्तते कि करोमि ॥ ११३ ॥ विपतिरन्धुं
वन्धुं विगलितजलं नेत्रयुगलं सयाकं भूतोक्तं सुयन-
चलरं येदन्तिलवम् । अतद्गं गोत्तं विपटितधनं काश-
भयनं विधातुं कि धातन्त्यव हृदि न लग्ना प्रमगति
॥ ११४ ॥ विलोयेन्दुः साक्षादमृतस्ववापो यदि भयंक-
लङ्कस्तन्त्या यदि च विरुचेन्दोचरयनम् । ततः

॥ १०५ ॥ देवी कलावाले कमलके समान सुलवाली उस
सुनयनी नवेजोने सुँह घुमाकर चाते समय मानो भ्रमन तथा
विपसे मरी हुई (सुन तथा दुःख देनेवाली) तिरड़ी
वितवन मेरे हृदयमें गाइ सीं दो ॥ १०६ ॥ उस नवेजोका सुँह
पूँपिमाके खिले हुए चन्द्रमाके समान है, आँखें बंदो नहीं तथा
चम्बल है और उसके सुपपर खिले हुए यौवनकी सुलजुजाहट
नी दिखाई पड़ रही है । क्या कहे ? कैसे उसे चरणमें कहे
और यदि उसे मेरी मित्रता स्वीकार न हुई तब क्या किया
जायगा ? ॥ १०७ ॥ हाय ! मैं क्या कहूँ ? वह चमकते हुए
मायेबाबी, मधुर स्वनकुन करवी हुई तगदीवालों तथा हायले
अपनी चौथी धामे हुए नवेजो मेरे हृदयमें कामदेवका
वाप्य बनकर चुभ गई है ॥ १०८ ॥ कोई विरहो युवक दूतीसे
अपनी दया बता रहा है—'हे सखी ! जब मैंने लज्जाका हाँ दार
खोल दिया, तब कौलाँसे जड़े हुए किवाड़की तो पात ही क्या
है ! जब मैंने कुवकी मर्यादा ही तोड़ दी तो मेरे लिये
यसुना लौएँ जाना कौन बड़ो बात है । जब मैंने अपनी रटि
ही उस शोर चक्का दी तो सौँपका क्या दर है ! और जब मैंने
उसे अपने प्राण ही सौँप दिए तब देहका तो कहना ही क्या है
॥ १०९ ॥ उस नवेजोकी सुन्दरता, उसकी चटक-मटक,
उसका सुन्दर रूप तथा उसके बोलनेका ढङ्ग उस समय तो
अमृत जैसा जान पड़ता था किन्तु इस समय भयङ्कर
रुदके समान कट दे रहा है ॥ ११० ॥ मुझे ऐसा लगता

है मानो मेरे मनमें उस प्यारीकी छाया-सी पड़ रही हो,
वह मेरे मनमें चुकी-सी खिली-सी, सुदीसी, जड़ी-सी
चञ्चलेके समान चिरकी सी, भीतर खोदकर गाड़ी हुई-सी,
कामदेवके पौँचों बापोंमे जड़ी-सी तथा चिन्ता-रुकी खोरे-
मे मली-नाँति सदाके लिये सी-सी दी गई हो ॥ १११ ॥
वह नवेजो अपनी जघन भाग बार-बार दिना-दिनाकर,
अपनी मन्द मुस्कानसे, पवित्र तथा कामक बोलाँसे, मनोहर
दर्शनसे, गमभीर चालसे तथा जैमाँसे मुझे ऐसा मारे डार
रही है कि मेरे प्राण निकरें जा रहे हैं ॥ ११२ ॥ धब मैं क्या
कहूँ ? क्योंकि आँखें लगातार ऐसे निकर रहे हैं कि धौँएँ
सुँदी जा रही हैं, उसके चिन्तनसे शरीर बड़का-सा जा रहा
है और उसका चित्र बनते समय रँगबिचामें पसोना-सा
था जाता है तथा वे कौँपने लगती हैं ॥ ११३ ॥ बिजोहके
सन्तापसे मरती हुई नवेजोको देखकर कोई युवक ईश्वरको
उवाहना दे रहा है—'हे ईश्वर ! उसक परिवारका परिचित
हुबोते, नेत्रोंको धमिमाँसे मरते, सारी धरतीको डुबोते, चीदहो
सुवनोँको चिन्तासे मरते, कामदेवको उदास बनाते तथा
निचिके मयभारको घनहीन बनाते हुए क्या तुम्हारे हृदयको
तनिक भी लज नहीं आ रहा है ? ॥ ११४ ॥ यदि चन्द्रमा
गलकर स्वयं अमृत-रुकी लजकी बावटो बन जाता और उसका
कलङ्क यदि खिले हुए नीलकमलका वन हो जाता तो ही सक्ता
था कि उसमें स्तान कर लेनेमे मेरे पत्र गीतर होकर

ज्ञानश्रीडाजनितजडभावैरवयवैः कदाचिन्मुञ्च्यं मद्-
नशित्पिण्डाव्यतिकरम् ॥ ११५ ॥ विशालाक्ष्याः
कटाक्षेण विकृष्टं रश्मिनेव मे । हृदयं किं करिष्यामि
न पुनर्विनिवर्तते ॥ ११६ ॥ ब्राह्मयोगान्तवदनया
स्निग्धाने गुरुणां वञ्चकम्पस्तनकलशया मन्थुम-
न्तर्निगृह्य । तिष्ठेत्युक्तं किमिव न तथा यत्समु-
त्सृज्य धार्ष्णं मन्यासक्तश्चकितहरिणोहारिनेत्रत्रिभागः
॥ ११७ ॥ शरीरं क्षामं स्यादसति दयितातिङ्गनसुप्ते
भवेत्सार्क्षं चक्षुः क्षणमपि न सा दृश्यत इति । तथा
सारङ्गाक्ष्या त्वमसि न कदाचिद्द्विरहितं प्रमके निर्वाणे
हृदय परितार्षं वहसि किम् ॥ ११८ ॥ शीतांशुविपसो-
दरः फणभृतां लीलास्पर्दं चन्दनं हारः क्षारपयोभवः
मियसुहृत्पङ्केरुहं भास्वतः । इत्येषां किमिवास्तु वस्तु
मदनज्यालाविधाताय यद्वाह्याकारपरिभ्रमेण तु वयं

तत्त्वत्यजो वञ्चिताः ॥ ११९ ॥ शीतांशोरमृतचञ्चुता
यदि करास्तस्मान्मनो मे दृशं सम्भ्रुथन्त्यथ
कालकूटपटलीसंवाससंदूषिताः । किं प्राणान्
हरन्त्युत म्रियतमासञ्जल्पमन्त्राचरै रव्यन्ते किमु मोह
मेमि हृहहा नो वेदि केयं गतिः ॥ १२० ॥ भ्यासा एष
मृगोदृशो न गणिताः के नाम भञ्जानिलास्तोर्षां
वाष्पपरम्परैव सरितां वृन्देषु कः सम्भ्रमः । सोढा
कातरदृष्टिरेव कियती वञ्चाभिधातव्यथा प्रमेयायमु-
पेक्षितो यदि तदा प्राणेषु कोऽनुग्रहः ॥ १२१ ॥ सह
मविरहवितर्कं वरमिह विरहो न सङ्गमस्तस्याः ।
सङ्गे सैव तथैका त्रिभुवनमपि तन्मयं विरहो ॥ १२२ ॥
सम्भूयैव सुखानि चेतसि परं भूमानमातन्वते यथा
लोकपथावतारिणि रतिं प्रस्तौति नेत्रोत्सवः । यद्वाते-
न्दुकलोचयादपचितेस्सारैरिवोत्पादितं तत्पश्येयमन

कामाग्नि के सुतापसे छूट जाते ॥ ११२ ॥ उस बड़े-बड़े नेत्रोंवाली
नवेलीकी तिरछी चितवन-रूपी रस्तीसे बंधकर खिचा हुआ
मेरा मन लीनेका नाम नहीं ले रहा है । अब मैं क्या कहूँ ?
॥ ११३ ॥ जिस समय नवेली बड़े-बूढ़ोंके बीचमें बैठी थी और
पुस्क यहाँ पहुँच गया था उस समयकी उस नवेलीकी दशाका
स्मरण वह पुस्क कर रहा है—'बड़े लोगोंके पास रहनेसे
जामके कारण उस नवेलीका सुल झुक गया, बड़ेके समान
बड़े बड़े स्तन कपि उड़े, धवसर न रहते हुए भी मेरे यहाँ
पहुँच जानेके कारण उसे जो काष्ठ धाया उसे भीतर ही भीतर
पीछर उसने मुझे रोका तो नहीं किन्तु धाँव यहाती हुई मुझे
पैली घातन पितवनसे देखने लगी जैसे ढरी हुई मृगी देखती
है' ॥ ११० ॥ हे हृदय ! जिस प्यारीको गले लगानेका सुल
थ पानेपर शरीर दुर्बल हुआ जाता था, जिसे चण-भर भी न
देखनेपर धाँव था ज्ञाते थे और जिस मृगनयनीसे तुम
कभी भी छलग नहीं हुए, धाम उसके बिद्योहमें सुपदायी
मृगुके धपसरपर तुम मृगी क्यों हुए जा रहे हो ? ॥ ११८ ॥
चन्द्रमा तो हाहाहल विपदा भाई है, चन्द्रके वृषपर सौर
विपटे रहते हैं, हारके मोती समुद्रके पारो जलते उत्पन्न
होते हैं और कमल स्पर्धा प्यारा मित्र है । घतः हनमेंसे एक
भी वस्तु पैसी नहीं है जो कामाग्निही उगला शांत कर
सके । हम लोग तो ऐसे ठगे गए कि बाहरी दौमटामके पोतोंमें
पद्म क्षयताके मुख ही होते ॥ ११४ ॥ यदि चन्द्रमाकी
बिरतें समुपमयां हैं तो वे मेरे मन और नेत्रको क्यों मुग्ध

दाक रही हैं । घतः जान पड़ता है ऐसा नहीं है । वे कावट्ट
नामक भयङ्कर विषके संयागसे (समुद्रसे चन्द्रमा और शि
दोनों निकले थे) विपमयी हो गई हैं । किन्तु वे मेरे प्राय क्यों
नहीं हर रही हैं ? या मियतमाकी मन्त्र-रूपी बोलोंके धपर ही
मेरे प्राणोंको बचा रहे हों ? या मैं माहित हो रहा हूँ ? हाय !
समझमें ही नहीं आता कि मेरी दशा क्या हो रही है !
॥ १२० ॥ उस मृगनयनीकी साँसोंको जब मैंने ऊँच नहीं समझ
तो शौधी मेरा क्या कर सकती है ! जब मैंने उसकी
धौतुशोंकी धार भी पार कर ली तो नदियाँ पार बना
कीन बढ़ी बात है ! जब मैंने उसकी दुःख-भरी चिनवन सा
ली तो वञ्चकी मारकी पीदा क्या है तथा जब मैंने उसका
प्रेम डुका दिया तब अपने प्राणोंपर कृपा करनेका प्रश्न ही
उठता है ? ॥ १२१ ॥ जब मैं यह विचार करता हूँ कि उसका
समागम अर्द्धाहै या विद्योह, तब उसका विद्योह ही मुझे कृपा
खता है, क्योंकि समागममें तो केवल वह एक ही रदानता
मिलती थी किन्तु बिद्योहमें तो मुझे सारा संसार उतोंके रूप
दिखाई देने लगता है ॥ १२२ ॥ उस नवेलीसे मिलनेकी बात
सोचते ही ऐसा सुल हाता है कि विषमें एक प्राण
सा फैल जाता है और उस प्रकाशमें एक पैसी रतिने
समान सुन्दरी दिखाई देने लगती है कि मेरा मन उबड़ने
भरकर उसकी स्तुति करने लगता है । अब ऐसा लगता है
कि दूतके चन्द्रमाकी कलाओंके निषोर्षे हुए सार भागने बनना
हुआ तथा कामदेवका मन्त्रजनवन बनी हुई उस नवेलीका सुल

द्रुमश्लथुर्ह भूयोऽपि तस्या मुपमम् ॥ १२३ ॥ सति
प्रदोपे सत्यग्नो सत्सु तारात्स्वीन्दुषु । विना मे मृग-
शायाद्या तमोभूतमिदं जगत् ॥ १२४ ॥ स सन्तापः
क्रूरः दुःसुमसुभगा साऽङ्गलतिका विपञ्चात्तचाव-
द्भयमततु लज्जासहचरम् । कथं तन्न प्राणानहद्व
दयिता शान्तमथना शिवं शिल्पाश्चर्ये नियतमिह नि-
ध्यास्यति विधिः ॥ १२५ ॥ सन्तापो हृद्य स्मरानल
कृतः स प्रत्यहं सद्यतां नास्त्यवोपशमोऽस्य सम्प्रति
पुनः किं त्वं मुधा ताम्यसि । यन्मूढेन मया तथा
कथमपि प्रातो गृह्यत्या पर विन्यस्तस्त्वयि सान्द्रच
न्दनरसस्पर्शो न तस्याः करः ॥ १२६ ॥ समुत्तीर्णं
तन्व्या निश्चितनयनान्तेन मृदिते स्तनद्वन्द्वस्पर्न्दै-
स्मितललयसुधाभिः प्लुतमति । मदन्तःकेदारे मदनक
पिकारेण जनिता चिरादाशावल्ली किमिति न फल
हन्त लभते ॥ १२७ ॥ सम्फुल्लामलनील रुञ्जविलसत्लाघर्य-

लीलानस्ताश्च शरत्पञ्जनमञ्जुतच्छुद्धियुगः बन्धुपदयो-
द्धुराः । पीयूषकृपिता इषाच्छुद्धिस्तुच्छिन्नाप्रणास-
म्भृता भूयोमावृताः कदा तु मयि ते दमिभ्रमा
भायिनः ॥ १२८ ॥ सव्याजं तिलकालकान्निरत्यैल्लो-
लाह्वलिः संस्पृशन्तारंवारमुदअन्नुच्छुगुगमोदञ्जिनी-
लाञ्जलम् । यद्भङ्गनरङ्गिताञ्जितदृशा सागमालो-
कितं तद्वर्णादवधोरितोऽस्मि न पुनः कान्ते एतार्था-
कृतः ॥ १२९ ॥ सा ब्राह्मा धयमप्रगल्भमनसः सा स्त्री
वयं क्वातराम्सा पीनोन्तन्निमत्पयोधरयुगं धत्ते सखेद्वा
वयम् । सान्नाता जघनस्थलेन गुरुणा गन्तु न शक्वा
वयं दोषैरन्यजनाश्रयेरपटनो जातः स्म इत्यद्भुतम्
॥ १३० ॥ साभिभाय प्रख्युषातरं श्रद्धामाकुरातं
पश्यन्ती मां यिकचकमलश्रीमुपा लोचनम् । सखया-
कणं किमपि किमपि व्याहरन्ती हसन्ती मन्द मन्द
ललितललितं मन्दिरं सा जगाम ॥ १३१ ॥ सा मे

में कब फिरसे देखूँगा ! ॥ १२३ ॥ दीपक, अग्नि, तारे, सूर्य
तथा चन्द्रमाके रहते हुए भी सारा ससार मुझे उस मृगतयनीके
बिना चँपेरेते भरा दिखाई दे रहा है ॥ १२४ ॥ कोई
विरही अपनी प्रेयसीके विषयमें सोचता है—'यह निष्ठोहका
सन्ताप बड़ा कठोर है। उसके लता जैसे अङ्ग तो फूलसे
भी कोमल हैं, शत्रुओंसे उसे सदा ही लाजसे मिला हुआ कर
बना रहता है, फिर भी वह प्राण क्यों नहीं छोड़ बैठी ?
किन्तु इस तर्कके विकर्षते ज्ञान क्या है। ब्रह्माने अपनी रचनामें
उस मेरी प्यारीके रूपमें अचरजमयी मूर्ति जो वाली है इसके
लिये वे जो कुछ ठीक समझेंगे, वह स्वन करेंगे ॥ १२५ ॥
हे हृद्य ! अब प्रतिदिन कामागिनिका ताप सहते रहो। इस
समय इसके शान्त होनेका कोई उपाय नहीं है, अतः
तुम व्यर्थ ही क्यों खटपात रहे हो ? क्योंकि लुनेमें सुन्दर
बन्दनके रसके समान शीतल जगनेवाला उस नवेलीका इाय
मैंने पाया भी तो उसे लेकर तुमपर नहीं रहता ॥ १२६ ॥
नवेलीकी तीली चितवन-रूपी हलसे जांती गई, दोनों
स्तनोंसे मसली हुई (हँगाई हुई) तथा सुवक्रान-रूपी
जलसे सींची हुई मेरे हृद्य-रूपी ब्यारीमें कामदेव रूपी
किसानसे खगाई हुई धारा रूपी लतामें फल क्यों नहीं लग
रहे हैं ? ॥ १२७ ॥ वह दिन कब आवेगा जब खिले हुए
स्वच्छ नीले कमलके समान सुन्दर तथा नटखटपनसे भरे
और अलसाए हुए, फुदकते हुए पञ्जनकी सुन्दर शोभा

सुरानेवाले, कामदेवकी मस्तीसे मतवाले, अमृतसे घोए गएके
समान स्वच्छ, मधुर, रसीले, लजीले तथा हल भागसे भरे
हुए नेत्रोंकी वे चितवनमें बार बार मुझपर पड़ेंगी ॥ १२८ ॥ क्रमसे
विरही नायककी बोधावस्था तथा अयोवास्थाका वर्णन—
हे प्यारी ! यहाना करके चञ्चल रँगलियोंसे बार-बार बालोंको
छूते हुए तथा स्तनोंसे हटे हुए नीले बख्को बार-बार टकाते
हुए जा मुझे तुमने देदी नीहोंसे विरी हुई छाँलसे मेरा
अपमान करत हुए देवा, इससे मैं जान गया कि तुमने मेरा
मनोरथ तो सफल किया नहीं, उलटे अहंकारमें आकर मेरा
अनादर किया ॥ १२९ ॥ देखो तो, यह किन अचरजकी
घात है कि तुमरेके दोषोंसे हम दोषी बने हुए हैं, क्योंकि
लक्ष्मी तो वह है किन्तु दूबे-दूबेसे हम रहते हैं, खोबद है किन्तु
कायर हम हा रहे हैं, सोते तथा ऊँचे स्तन उसके हैं किन्तु
थके जा रहे हैं हम और बड़े-बड़े नितम्बोंके भारसे तो वह दूबी
है किन्तु चल नहीं पाते हम ॥ १३० ॥ वह प्रेममें भरी हुई
नवेली प्रेमके रसके साथ तथा कुछ रहस्यमय दृश्यसे खिले हुए
कमलोंकी शोभा सुरानेवाले नेत्रोंसे मेरी ओर मली-मौति देवती
हुई, सखीके कानमें धीरे धीरे कुछ कहती हुई तथा मुस्कराती
हुई सुन्दर चालसे धरकी ओर चली गई ॥ १३१ ॥ भगवान्
कामदेवकी पत्नी (रति) के समान वह सुन्दरी यद्यपि न तो सोते
या जागते ही समय मेरी छाँलके सामने पड़ी फिर भी उसे
देसी विपत्तिमें पडी हुई सुन्दर मेरा मन आनन्द, आश्रय,

ज्ञानभोडाजनितजडाभावैरवयवैः कदाचिन्मुञ्च्यं मद-
नशिरिपोडाव्यतिकरम् ॥ ११५ ॥ विशालाद्याः
कटाक्षेण विकृष्टं रश्मिनेव मे । हृदयं किं करिष्यामि
न पुनर्विनिवर्तते ॥ ११६ ॥ प्राडायोगान्तवदनया
सन्निधाने गुरुणां यज्ञोक्तमस्तनकलशया मन्थुम-
न्तर्निपुण्य । तिष्ठेन्मुक्तं किमिद्यं न तथा यत्समु-
त्सृज्य वाप्यं मर्यासक्तश्चकितहरिणाहारिनेत्रत्रिभागः
॥ ११७ ॥ शरीरं चामं स्यादसति दयितातिङ्गनसुषे
भयैस्सार्धं चक्षुः क्षणमपि न सा दृश्यत इति । तथा
सारद्वाद्या त्वमसि न कदाचिद्विरहितं प्रसक्तं निर्गले
हृदयं परित्यागं बहसि किम् ॥ ११८ ॥ शोतांशुविपसो-
दरः फणभृतां लीलास्पदं चन्दनं द्वारः क्षारपर्योभवः
प्रियसुहृत्पद्मे रहं भास्वतः । इत्येषां किमिवास्तु वस्तु
मदनज्वालाविधाताय यद्वाह्याकारपरिभ्रमेण तु वयं

तत्त्वत्यजो वञ्चिताः ॥ ११९ ॥ शोतांशोरमृतचन्द्रा
यदि करास्तस्मान्मनो मे दृशं सम्पुण्यन्यथ
कालकृत्पटलीसंवाससंदूषिताः । किं प्राणान्
हरन्त्युत प्रियतमालज्जपमन्वात्तरे रच्यन्ते किमु मोह
मेमि हहहा नो वेदि केयं गतिः ॥ १२० ॥ श्वासा एव
मृगोदशो न गणिताः के नाम भ्रूकानिलास्तोर्पा
वाष्पपरम्परैव सरितां वृन्देषु कः सम्भ्रमः । सोढा
कातरट्टिरेव कियती वज्राभिधातव्यथा प्रमेवायु-
पेक्षितो यदि तदा प्राणेषु कोऽनुग्रहः ॥ १२१ ॥ सङ्ग
मविरहवितकं वरमिह विरहो न सङ्गमस्तस्याः ।
सङ्गे सैव तथैका त्रिभुवनमपि तन्मयं विरहे ॥ १२२ ॥
सम्भूयैव सुखानि वेतसि परं भूमानमातन्वते यथा
लोकपथावतारिणि रतिं प्रस्तौति नेत्रोत्सवः । यद्वाले-
न्दुकलोचयादपचितेस्सारेरिवोत्पादितं तत्परशेयमन

कामाग्निं सुतापसे छूट जाते ॥ १११ ॥ उस बड़े बड़े नेशोंवाली
नवेलीकी तिरछी चितवन-रूपी रससे बँधकर लिखा हुआ
मेरा मन लौटनेका नाम नहीं ले रहा है । अब मैं क्या करूँ ?
॥ १११ ॥ जिस समय नवेली बड़े घुंकाके बीचमें बैठी थी और
सुवक बहाँ पहुँच गया था उस समयकी उस नवेलीकी दशाका
स्मरण वह सुवक कर रहा है—'बड़े लोगोंके पास रहनेसे
जाजके कारण उस नवेलीका मुख झुक गया, बड़ेके समान
बड़े बड़े स्तन फँप उठे, अबसर न रहते हुए भी मेरे वहाँ
पहुँच जानेके कारण उसे जो कोंध थाया उसे भीतर ही भीतर
पीकर उसने मुझें रोका तो नहीं किन्तु धीरे धीरे मुझे
ऐसी चञ्चल चितवनसे देखने लगी जैसे बरी हुई मृगी देखती
है' ॥ ११० ॥ हे हृदय ! जिस शरीरको गले लगानेका सुप
न पावेपर शरीर दुर्बल हुआ जाता था, जिससे पण-भर भी न
देखनेपर धीरे धीरे जाते थे और जिस मृगनयनीसे तुम
कभी भी प्रलग नहीं हुए, आज उसके विद्योहमें सुखदायी
सूयुके भवसरपर तुम डुरी क्यों हुए जा रहे हो ? ॥ ११८ ॥
चन्द्रमा तो दालाहल विपन्न भाई है, चन्दनके छूपपर सौंप
खिपरे रहते हैं, हारके मोती समुद्रके पारे जलसे उलपन्न
होते हैं और कमल सूर्यका प्यारा मित्र है । घतः हनमेंसे एक
भी बरत ऐसी नहीं है जो कामाग्निकी जगता शान्त कर
सके । हम लोग तो ऐसे ठगे गए कि बाहरी दौमटामके पोलमें
पढ़कर सपताको शुभा ही बँडे ॥ ११९ ॥ यदि चन्द्रमाकी
किरों भ्रममयी हैं तो वे मेरे मन और नेत्रको क्यों सुगाए

डाल रही हैं । अतः जान पड़ता है ऐसा नहीं है । वे बावहू
नामक भयङ्कर विषके सयागले (समुद्रसे चन्द्रमा और वि
दोनों निकले थे) विषमयी हो गई हैं । किन्तु वे मेरे प्राण क्यों
नहीं हर रही हैं ? या प्रियतमाकी मन्त्र-रूपी बान्जीके कपट ही
मेरे प्राणोंको बचा रहे हों ? या मैं माहित हो रहा हूँ ? हाँ !
समझमें ही नहीं आता कि मेरी दशा क्या हो रही है !
॥ १२० ॥ उस मृगनयनीकी सौंसोंकी जब मैंने कुछ नहीं समझ
तो शौंधी मेरा क्या कर सकती है ! जब मैंने उसकी
धौंसुधौंसकी धार भी पार कर ली तो नदियाँ पार कर
फौन यड़ी बात है ! जब मैंने उसकी दुःख-भरी चितवन स
ली तो वज्रकी भारकी पीड़ा क्या है तथा जब मैंने उसका
भ्रम डुकरा दिया तब अपने प्राणोंपर कृपा करनेका प्रभ होकर
उठता है ? ॥ १२१ ॥ जब मैं यह विचार करता हूँ कि उसका
समागम अच्छा है या बिछोह, तब उसका बिछोह ही मुझे ब्रण
जगता है, क्योंकि समागममें तो केवल वह एक ही रूपार
मिलती थी किन्तु बिछोहमें तो मुझे सारा संसार उतीके रूप
दियाई देने लगता है ॥ १२२ ॥ उस नवेलीसे मिलनेकी उ
सौचते ही ऐसा सुल होता है कि चितमें एक प्रकाश
सा फैल जाता है और उस प्रकाशमें एक ऐसी रति
समान सुन्दरी दिखाई देने लगती है कि मेरा मन बदन
भरकर उसकी स्तुति करने लगता है । अब ऐसा ब्रण
कि दूजेके चन्द्रमाकी कलाओंके निचोड़े हुए सार भागने बनता
हुआ तथा कामदेवका मन्त्रभवन बनी हुई उस नवेलीका मुख

हमङ्गलपूर्व भूयोऽपि तस्या सुप्रम् ॥ १२३ ॥ सति प्रदोषे सत्यग्नौ सत्सु ताराः रवीन्द्रसु । विना मे मृग-
शायाद्या तमोभूतमिदं जगत् ॥ १२४ ॥ स सन्तापः
करः कुसुमसुभगा साऽङ्गलतिका विपद्वात्तया-
द्रयमननु लज्जासद्वचरम् । कथं तन्न प्राणानदह
दयिता शान्तमथवा शिवं शिल्पाश्रयं नियमिह नि-
ध्यास्यति विधिः ॥ १२५ ॥ सन्तापो हृदय स्मरणल-
क्षतः स प्रत्यहं सयतां नास्त्येवोपशमोऽस्य सम्प्रति
पुनः किं त्वं मुधा ताभ्यसि । यन्मूढेन मया तथा
कथमपि प्रातो मृष्टीत्या परं विन्यस्तस्वयि सान्द्रव-
न्दनरसपशो न तस्याः करः ॥ १२६ ॥ समुत्तीर्णै
तन्व्या निशितनयनान्तेन मृदिते स्तनद्वन्द्वस्पन्दैः
स्मितलयसुधाभिः प्लुतमति । मदनतःकेदारै मदनरु-
पिकारेण जनिता विरादाशावल्ली किमिति न फलं
हन्त लभते ॥ १२७ ॥ सम्कुलमलनोलकजविलसल्लावपय-

लीलालसाश्च श्रत्यञ्जनमञ्जुलच्छदिमुपः कन्दर्पदण्डो-
दधुराः । पीयूषकृपिता रघाच्छमशुरक्रिग्धात्त्रपान-
भृता भूयोमायशृताः कदा तु मयि ते दग्धिम्रमा
भाविनः ॥ १२८ ॥ सव्याजं तिलकालकान्धिरालयलो-
लाङ्गलिः संसृष्टग्यारंघरमुदञ्चयन्कुचयुगमोदंश्रीनी-
लाञ्जलम् । यद्भूमङ्गनरङ्गिनाञ्जिनदगा सायममालो-
कितं तद्वयोदवधोरितोऽस्मि न पुनः कान्ते कृतायां-
कृतः ॥ १२९ ॥ सा वाला वयमप्रमलमनमः सा स्त्री
वयं कानरास्ता पीनोन्नतिमत्योघरयुगं घचे संग्दा
वयम् । साऽनाना जघनन्धलेन गुरुरा गन्तुं न शका
वयं दंपैरभ्यजनाश्रयैरपटया जाताः स्म इत्यद्भुतम्
॥ १३० ॥ सामिमायं प्रत्यसरसें प्रादमकरुदरागं
पदयन्ती मां विकचकमलथोमुपा लोचनेन । सख्याः
कण्ठं किमपि किमपि व्याहरन्ती हसन्ती मन्द मन्दं
सलितललितं मन्दिरं सा जगाम ॥ १३१ ॥ सा मे

मैं कब फिरसे देखूँगा ! ॥ १२३ ॥ दीपक, अग्नि, तारे, सूर्य
तथा चन्द्रमाके रहते हुए भी सारा संसार मुझे उस मृगनयनीके
बिना अंधेरेसे भरा दिखाई दे रहा है ॥ १२४ ॥ कोई
विरही अपनी प्रेयसीके विषयमें सोचता है—'यह विद्योहका
सन्ताप बढ़ा कठोर है। उसके जता जैसे अन्न तो फूजसे
भी फोमल है, शत्रुओंसे उसे सदा ही लाजसे मिला हुआ बर
बना रहता है, फिर भी वह प्राण क्यों नहीं छोड़ बैठी ?
किन्तु इस तर्क-वितर्कमें लाम क्या है । प्रह्वाने अपनी रचनामें
उस मेरी प्यारीके रूपमें अचरजमयी मूर्ति जो वाली है इसके
लिपे ये जो हृद् शोक समझेंगे, वह स्वतः करेंगे ॥ १२५ ॥
हे हृदय ! अथ प्रतिदिन कामाग्निका ताप सहते रहो । इस
समय इसके शान्त होनेका कोई उपाय नहीं है, अतः
तुम धर्य ही क्यों छुटपटा रहे हो ? क्योंकि धूममें सुन्दर
चन्दनके रसके समान शीतल लगेनेवाला उस नवेलीका हाथ
मैंने पाया भी तो उसे लेकर तुमपर नहीं रक्ता ॥ १२६ ॥
नवेलीकी तीखी चितवन-रूपी हलसे जोती गई, दोनों
स्तनोंमें मसली हुई (हँगाई हुई) तथा सुसकान-रूपी
जलसे सींची हुई मेरे हृदय-रूपी क्यारीमें कामदेव-रूपी
किसानसे लगाई हुई धारा-रूपी जलामें फल क्यों नहीं लगा
रहे हैं ? ॥ १२७ ॥ वह दिन कब आवेगा जब खिले हुए
स्वच्छ नीले कमलके समान सुन्दर तथा मटलटपनसे भरे
और घलसाए हुए, फुदकते हुए राजनकी सुन्दर शोभा

पुरानेवाजे, कामदेवकी मन्तमें ननवाजे, शत्रुने घोए गएके
समान स्वच्छ, मधुर, रसोले, जजोले तथा हाव भावने भरे
हुए नेत्रोंकी ये चिनबने बार-बार सुनकर पढ़ेंगे ॥ १२८ ॥ कमने
विरही नायककी बोधातरथा तथा अघोधारस्याका वर्षण—
हे प्यारो ! यहाना करके चखज उँगलियोंके बार-बार पालोंके
धूले हुए तथा स्तनोंसे हटे हुए नीले वरको बार-बार उठावे
हुए जा मुझे तुमने देदी भाँहोमें पिरी हुई चोलोंमें भेरा
अपमान करते हुए देगा, इससे मैं जान गया कि तुमने भेरा
मनोरथ तो सफज किया नहीं, उलठे अहँकारमें भाकर मेरा
अनादर किया ॥ १२९ ॥ देखते तो, वह किने अचरनकी
यात है कि दूमरेके दोयोंसे हम दापी बने हुए हैं, क्योंकि
लडकी तो वह है किन्तु दे-दे-ने हम रहते हैं, खीवह है किन्तु
कायर हम हो रहे हैं, मोटे तथा अँचे स्तन उसके हैं किन्तु
यके जा रहे हैं हम और बड़े-बड़े नितरवाँके मारने तो वह दुर्बी
है किन्तु खज नहीं पाते हम ! ॥ १३० ॥ वह प्रेममें मरी हुई
नवेली प्रेमके रसके साथ तथा हृद् रदन्मय दहमें खिले हुए
कमलोंकी शोभा पुरानेवाजे नेत्रोंमें मेरी और मली-भौं नि देखती
हुई, सव्योंके कानमें धीरे-धीरे उड़ कङ्गी हुई तथा मुन्करती
हुई सुन्दर चाखसे परकी और चखी गई ॥ १३१ ॥ भगवान्
कामदेवकी पत्नी (रति) के समान वह सुन्दरी यद्यपि नती सोले
या आगते ही समय मेरी श्रोतोंके सामने पकी फिर भी उसे
ऐसी विपत्तिमें पकी हुई सुनकर मेरा मन आनन्द, आश्रय,

यद्यपि सुन्दरी भगवतो मामेव चेतोभुवो न स्वप्ने न
 च जागरे नयनयोः पन्थानमासादित्वा । तामाकर्ण्य
 तथापि ताह श्रद्धशैथिल्यमासेदुपीमानन्दान्द्रुतशोक-
 फौतुकभयमीडाकुलं मे मनः ॥ १३२ ॥ सा विद्याधर-
 कन्यका किमु भुवं पुण्यैः प्रपन्ना नृणां लावण्यामृत-
 सागराद्धिमथिता लक्ष्मीः किमन्योत्थिता । आः श्रावं
 घनसारचन्दनसुधाज्योत्स्नामृणालादिभिः प्रारब्धा
 हृदयं मम भ्रमयितुं पोष्येयवी शाम्भरी ॥ १३३ ॥ सा
 सञ्चारचमत्कृतिर्नयनयोः स भ्रूलताधिभ्रमस्तद्विभ्या-
 धरपाटलस्मितयुनस्यास्यस्य सा वैखरी । सेयं चञ्चू-
 मचातुरी चरणयोः सोऽप्यङ्गहारक्रमो विष्ट्या तन्मम
 नेत्रप्राप्रमखिलं जायेत जीवामि च ॥ १३४ ॥ सा सौन्दर्य-
 निर्धिधिलासमयतं मीनध्वजस्यापि वा कान्तीनामधि-
 देयताधिकरणं माधुर्यसारस्य वा । तामुठ्ठीव्य सखे
 तदादि गतयान्सर्वेन्द्रियाणामहं सार्धं तद्गतमानसेन
 गलितोत्साहः किलानीशताम् ॥ १३५ ॥ सौमित्रे ननु

सेव्यतां तद्वत्तलं चण्डांशुरज्जृम्भते चण्डांशोर्निशि का
 कथा रघुपते चन्द्रोऽयमुन्मीलति । धरसेतद्विदितं कथं
 तु भयता धत्ते कुरङ्गं यतः क्वासि मेयसि हा
 कुरङ्गनयने चन्द्रानने जानकि ॥ १३६ ॥ सौवर्ण
 ननु वल्लरी कुह गता सा यत्र राजपतिर्नित्यं
 सन्निहितः पुरा सलिलजङ्घनं गृहीत्वाऽभवत् ।
 यस्या दर्शनमात्रतश्च सुमनोवयैरपि प्रार्थिता मन्यो-
 द्रेकपरम्परामनुभवन्धन्यो जनैः कौतितः ॥ १३७ ॥
 स्वलदंशुकमव्यवस्थयतारं स्मितकान्तिकापितापर-
 मवालम् । असमाप्तनकारमाप्तशोभं हरिणाद् हरि-
 शीदशः स्मरामः ॥ १३८ ॥ स्त्रीति श्रुते गतं धैर्यं सुरु-
 पेति किमुच्यते । कष्टं सहदया सा चेत्ससृहेत्य-
 त्तिदुस्सहम् ॥ १३९ ॥ स्निग्धं वीक्षितमन्यतोऽपि नये
 यत्प्रेरयन्त्या तथा यातं यच्च नितम्बयोर्गुरुतया मयं
 चिलासादिव । मागा इत्यवकृदया यद्यपि सा साद्य-
 मुक्ता सखी सर्वे तत्किल मत्परायणमहो कामो स्वतो

शोक, धमिलापा, भय तथा लज्जासे भरा जा रहा है ॥ १३२ ॥
 यह नवेली लोंगोंके पुत्रके टुप्कीपर आई हुई विद्याधरकी
 कन्या है या सुन्दरता-रूपी अमृतके समुद्रके मथकर निकाली
 हुई दूसरी लक्ष्मी है ? ओ हो, अब मेरी समझमें आया । यह
 तो मेरे मनको चक्करमें डालनेके लिये कपूर, चन्दन, अमृत,
 चाँदनी तथा कमलनाल आदिसे बनाई हुई कामदेवकी
 यह माया है जिसे कामदेवसे शम्बर दैत्य हीन जाया था
 ॥ १३३ ॥ यह चाँदोंके चलनेका जादू, वे भीलोंके हावभाव,
 यह धोंदोंपर मुस्कानके साथ मोलना, यह घटक-भटक-भरी चाख
 और यह शरीर तथा हारका झिलना यदि भाग्यसे मेरे नेत्रोंके
 सामने जा जाते तो मैं सचमुच जी जाता ॥ १३४ ॥ हे मित्र !
 यह नवेली सुन्दरताका भयहार है या कामदेवकी क्रीडाका
 पर है या सुन्दरताकी देधी है या मधुरताका निवास-स्थान
 है ? क्योंकि जबसे मैंने उसे देखा तभीसे मेरा मन उसमें ऐसा
 रम गया कि मेरा सारा उत्साह भी टंडा पड़ गया और मेरी
 सारी इन्द्रियों भी मेरे हाथसे निकल गईं ॥ १३५ ॥ जानकीका
 रूप ही जानेके परभाव रामचन्द्रजी लक्ष्मणसे कहते हैं कि
 'हे लक्ष्मण ! देगो यह सूर्य तप रहा है । घतः, खजो धूपके
 भीपे खजे खजें । लक्ष्मणसे कहा—'हे रघुवंशके स्वामी ! रातके
 समय सूर्य बरौ ? यह तो चन्द्रमा निकल रहा है । रामचन्द्रजी
 बोधे—'बस ! यह सुनने हैने परक्षता !' इसपर रघोई

लक्ष्मणसे कहा कि इसकी गोदमें हरिय है ल्योंही चन्द्रमा
 और हरियका नाम सुनकर विरही रामचन्द्र यह बह-ब-
 कर बिलखने लगे कि 'हे हरियके समान नेत्रवाली ! चन्द्रमाके
 समान मुखवाली प्यारी जानकी ! तुम कहाँ हो ?' ॥ १३६ ॥
 यह सोनेकी लता (प्यारी) कहाँ चली गईं जिसमें दो
 कमलोंका जोड़ा (नेत्र) लिये हुए पुनोका चन्द्रमा (मुख)
 विराजमान था, जिसके लिए देवता भी तरसते हैं और जिसे
 देवकर मस्ती-भरे पानन्दका अनुभव करनेवाले स्वर्गिक
 लोग धन्य समझते हैं ॥ १३७ ॥ सुगनयनीके उस चन्द्रमुखता
 मुझे स्मरण था रहा है जिसपरसे धूँधट हट गया था,
 जिसकी चाँदोंकी पुतलियाँ चञ्चल थीं, जिसके मूँसेके समान
 शोर्टोंपर मुस्कानकी झलक थी, जिससे 'नहीं-नहीं' टाग
 निकल रहा था तथा जो धरवन्त शोभायमान था ॥ १३८ ॥ 'य
 की है' यह सुनते ही पीरत भाग जाता है, 'यह सुन्दर है' वा
 सुनकर तो पृथुना ही क्या है, फिर 'यह सहदया है' (मुरा
 हदयवाली) है यह जानकर तो बड़ा कष्ट होता है तथा वा
 मुझे चाहता भी है यह जानकर तो हनना कष्ट होता है कि
 किसी प्रकार भी सहा नहीं जाता ॥ १३९ ॥ दूसरी स्त्रोते
 धर्मिं शुभाकर जो उसमें प्रेम-भरी बितयन चक्राई, दिन
 भारी होनेके कारण जो मानो मटपटपनसे धीरे धीरे बनी
 तथा शर्मासे जो उसने गदगद होकर भीड़ें गचान-चाकर वह वा

पश्यति ॥ १४० ॥ स्पर्शाः स्तनतटस्पृशोः वीक्षणं घक्व-
वीक्षणम् । तस्याः केलिकथात्तापसमयः समयः सरो
॥ १४१ ॥ स्मेरं विधाय नयनं विकसितमिव नीतमु-
त्पलं मयि सा । कथयामास कृशाङ्गी मनोगतं निरि-
लमाकृतम् ॥ १४२ ॥ स्वप्ने दृष्टा किमपि पिशुनाशङ्कया
नैव पृष्टा स्पृष्टा नीवी न प्लु भयतः किङ्किणोनिक्-
शानाम् । आश्लेषाय स्पृहयति मयि द्राग्य्यरंसीद-
सीमा निद्रामुद्रा शिव शिव दशोरीदशो दुविपाकः
॥ १४३ ॥ हा धिक्सा किल तामसी शशिमुषी दृष्टा
मया यत्र सा तद्विच्छेदरुजान्धकारितमिदं दग्धं दिनं
कल्पितम् । किं कुर्मः कुशले सदैव विधुरो धातान
चेत्तत्कथं तदव्यामयतीमयो भवति मे नो जीवलो-
कोऽधुना ॥ १४४ ॥ हा हा देवि स्फुटति हृदयं कंसते
देह्यन्धः शून्यं मन्ये जगद्विरतज्वालमन्तर्ज्वालामि ।

सौदम्येतेतमसि विधुरो मज्जतीवान्तरात्मा विध्य-
छोहः स्थगयति कयं मन्दभाग्यः करोमि ॥ १४५ ॥
दृष्ट्वा पश्यनधृतिं प्रियतमेयेयं दिनधीर्गता रागोऽस्मि-
न्मम नेतसीय सधितुंयिन्मेऽधिकं सदयते । यत्ता-
दोऽहमिव स्थितः सहचरं ध्यायप्रलिन्यास्तटे
सञ्जाताः सहसा ममैव भुवनस्थाप्यन्धकारा विशः
॥ १४६ ॥ हृदयमिषुभिः फामस्यान्तः सशल्पमिदं
सदा कथमुपलभे निद्रां स्वप्ने समागमकारिणीम् । न
च सुष्यदनामालेख्येऽपि मियामसमाप्य तां मम नयन-
योरुद्गाप्यवसे सखे न भविष्यति ॥ १४७ ॥ हे यामिनीश
जडिमा फतमस्तवैव सहर्षमावहसि येन मुरोव
तस्याः । त्वं घट्टिमृद्भिरसि तद्विरटे करोति पीयूषपप-
मिह तद्वचता यिनापि ॥ १४८ ॥

नायिकी प्रति सम्देशप्रेषणम्—द्वैवात्पश्येर्जगति विचर-

कि 'मत जात्रो,' यह निश्चय ही उसने मेरे लिये ही कहा है
सचमुच कामी पुरुष समझता है कि सय मेरे ही लिये किया
जा रहा है ॥ १४० ॥ हे मित्र ! उसके स्तनोंका स्पर्श ही तो
सच्चा स्पर्श है, उसके मुखका दर्शन ही सच्चा दर्शन है तथा
उसके रागरंगकी चर्चा करनेका समय ही सच्चा समय है
॥ १४१ ॥ दिले हुए कमलके समान मुसकाती चितवन
मुखपर चलाकर उस कोमल श्रद्धावाली नवेलीने अपने मनकी
सारी बातें मुझे बता डालीं ॥ १४२ ॥ कोई विरही युवक
यद कहकर झंझ रहा है कि 'मैंने उस नवेलीको रूपनमें
देखा तो सही किन्तु इस तरहके कारण उससे कुछ नहीं पूछ
पाया कि कोई चुगलखोर न छिपकर चुन रहा हो, मैंने उसकी
साड़ीकी गाँठ भी इस तरहसे नहीं छुई कि कहीं वरपणीके
सुँपकन बज उठें । इसलिये ज्योंही मैं उसे गले लगानेके लिये
खलकर आगे बढ़ा त्योंही मेरी गहरी नींद ही टूट गई ।
हाय ! हाय ! कैसी अभागो निकलीं ये मेरी श्राँलें ! ॥ १४३ ॥
हाय ! कितने दुःखकी यात है कि जिस समय उस चन्द्रमुखी
नवेलीको मैंने देखा उस समय प्रदाने रात थँपेरी कर थी

मेरा जीवन क्यों नहीं बना दिया ? ॥ १४४ ॥ हे देवी ! हृदय
फटा जा रहा है, शरीरके जोड़-जोड़ तुले पड़ रहे हैं, संसार
सूता जगन पड़ने लगा है, शरीर धक्क रहा है, सारी मुषमुष
मनमारी-सी होकर थँपेरेमें डूबी जा रही है और चारों ओरसे
सूँपों घेरे चली जा रही है । हाय ! हाय ! कब मैं
अभागो क्या करूँ ? ॥ १४५ ॥ कमलके पगरी सारी शोभा
मिटकर दिनकी शोभा भी मेरी प्यारीके सामग चली गई,
मेरे चित्तके सामग धूममें भी अपिक राग (अनुराग,
लगाई) रिनाईं देने लगा है, चन्दतीका ध्यान करता हुआ
बह बनना मेरे सामन भावकीके तटपर चा धिडा है तथा सजी
रिशाईं मेरे सामन रीसारके लिये पकापक सम्पकारते भर-सी
गईं हैं ॥ १४६ ॥ हे मित्र ! मेरे हृदयमें कामके बाण धुवें जा
रहे हैं । रूपनमें प्यारीको गिलागोवाली मीठका भी क्या
उलाहना हैं ? हे मित्र ! जब मैं उस सुन्दर सुगवाली
प्यारीका चित्र बनाने जाता हूँ, तब समय कभी देना नहीं
होता कि उस चित्रके पूरा होंमेमे पढ़ूँ ही श्राँलेंमें ऑनू ल
उमड़ धायें ॥ १४७ ॥ हे रात्रिके न्यामी (अम्गना) ! दाहात

त्रिचञ्चुया मत्प्रिया चेदाश्वास्यादौ तदनु कथये-
मर्मकीनामवस्थााम् । आशातन्तुनो च कथयतात्यन्त-
मुच्छ्वेदनीयः प्राणत्राणं कथमपि करोत्यायताद्वयाः स
पकः ॥ १ ॥ सा द्रुति धत्ते यदि रोपणत्वं तद्द्रुणत्वेन
न शङ्कनीयम् । साधुत्वमायाति रसान्तरेण करम्यिता
पुण्ड्रकशर्कराऽपि ॥ २ ॥

नायिकां प्रति नायकसन्देशः—अद्यापि सुन्दर तयान-
नचन्द्रधिम्यं चन्द्रेष्ठताम्युजयुगं परिच्युभ्य चेतः ।
त्वत्सहस्रोद्भवसुखं तनुते तथापि वैरं करोति कथया-
यिकलो विधेयः ॥ १ ॥ आस्तां तावद्भ्रजनरचनाभाज-
नत्वं विदूरे दूरे चास्तां तव तनुपरोरम्भसम्भावनापि ।
भूयो भूयः प्रणतिभिरहं किन्तु याचे विधेया स्मारं
स्मारं स्वजनगण्येनापि लेखा ममापि ॥ २ ॥ इतो
विद्युत्पुञ्जस्फुरितमसृजद्भाययतु मामितः केकानेका

हरतु हृदयं निर्दयमिदम् । इतः कामो वामः प्रहरतु
मुहुः पुङ्खितशरो गतासित्यं दूरं चपलतयने प्राप्तरिति
कुतः ॥ ३ ॥ उद्वेष्ट्य स्वयमेव लेपमुदितप्रस्वेदकम्पा
ङ्गुलिस्तस्मिन्नेकविलुप्तशेषशिथिलं दृष्ट्वा लिपिप्रक-
मम् । एतत्किन्तु हताऽस्मि सम्प्रति दशा तस्यैवमा-
सीदयं धाण्यो हन्त कस्य कम्पितमिदं हन्तेति सा
रोदिति ॥ ४ ॥ एतस्मान्मां कुशलिनमभिधानदाना-
द्धित्वा मा कौलीनादसितनयने मय्यविश्वासिनी
भूः । स्नेहानाहुः किमपि विरहे ध्वंसिनस्ते धयोगा-
विष्टे यस्तुन्युपचितरसाः प्रेमराशीभवन्ति ॥ ५ ॥
एते त्वद्दनानुकारिद्वययो राकासुधांश्चादयो मोक्षा
ते स्मरणं दहन्ति वत मामन्तः स्फुरन्त्यास्तव । त्वं
स्वामिन्यसि तज्जहीहि जहि वा नेदं पुनस्साम्प्रतं
यत्स्वस्पर्धिभिरेव मर्दयसि प्रामेतेर्जघन्यैः प्रिये ॥ ६ ॥

देखना तो पहले उसे दादस बँधाना तब कहीं उससे मेरी दशा
बहना और इस दशासे उससे बातें चलाना कि वह यद्ये बड़े
नेत्रोंवाली नवेली मेरे मिलनेकी जिस धाशासे अपने प्राणोंकी
रक्षा कर रही है वह उसका जीनेका एकमात्र साहाय्य कहीं
सहसा टूट न जाय ॥ १ ॥ हे दूती । यदि मेरा सँदेश सुनकर
उसे (मेरी प्यारीकी) मोघ ध्या जाय तो तुम उसके प्रेममें
सन्देह न कर बैठना क्योंकि जैसे नीबूका रस ढाल देनेसे पीँदे
(मोटी ईँद) की चीनी और भी स्वादिष्ट हो जाती है वैसे
ही उसके मोघ करनेका धर्म होगा कि उसका प्रेम और भी
धधिक बढ़ रहा है ॥ २ ॥

नवेलीके पास युधकफा सन्देशः हे सुन्दरी! तुम्हारा
प्यान करते समय धात्र भी दो कमलोंकी चन्द्री कर रखनेवाले
तुम्हारे सुगन्धस्त्री चन्द्रमण्डलका मनमें सुगन्ध करके मेरा चित्त
पेसा तुम्ही हो जाना है मानो उसे तुम्हारे समामग्नका सुख
मिल रहा हो किन्तु निष्पूर विधेय मुझसे वैर करके मेरे इस
त्रिपु वरापपर पानी फेर देता है ॥ १ ॥ जब तुम मुझे मोटी-
मोटी बातें करने योग्य भी नहीं समझती हो तो तुम्हें गले
खगानेकी तो धारा ही कहीं रह जाती है किन्तु मैं बार-बार
हाथ जोड़कर इतनी प्रार्थना करता है कि जब तुम स्मरण
कर-करके अपने धामांगी जनकोंके गिनने खगो तो उनमें
बहीं न बहीं मुझे भी गिन खेना ॥ २ ॥ एक और तो
धमकना हुई बिजली मुझे बार-बार धराप दे रही है,
दुगरी और मोतीकी यह निष्पूर बूक मेरा मन करे ले रही

है और इधर यह लुटिल कामदेव धाय चला-चलाकर मुझे
बेधे ढाल रहा है । हे चञ्चल नेत्रवाली ! ऐसे संकटमें मुझे
छोड़कर तुम कहीं चली गई हो ! मैं कहीं गुम्हें दूँ ! ॥
किसी विरहिणी नवेलीने अपने पसंजते और कर्पित हुए
हाथोंसे प्रियतमका पत्र उठा लिया किन्तु उसीके पर्माने
पत्रकी लिखावट लिप-पुत गई और उसे यह मन होया
कि प्रियतमके हाथ इतने अधिक कर्पित हैं और इतने धीरे
बहते हैं कि पत्रकी यह दशा हो गई है ! अतः वह सब
कह-कहकर रोने लगी कि 'हाय भगवान् ! क्या मेरे
प्रार्थनायकी ऐसी दशा हो रही है !' ॥ २ ॥ हे बाजी-बाजी
आँलोंवाली ! इस पहचानसे ही तुम समझ लेना कि मैं
बुरालसे हूँ । लोगोंके कहनेसे तुम मेरे प्रेममें सन्देह न कर
बैठना । न जाने लोग क्यों ऐसा कहते हैं कि निरर्मे प्रेम
धम हो जाता है । सचची बात तो यह है कि जब
मनचाही वस्तुपुँ नहीं मिलती तभी उन्हें पानेके जिदें ध्या
इतनी बढ़ जाती है कि वैरका-वैर प्रेम धाकर दृष्टा हो जाता है
॥ ३ ॥ हे प्यारी ! तुम्हारे मुखकी बराबरी करनेवाली ने पृथिवीके
चन्द्रमाकी किरणों मेरे नीतर धमकनी हुई तुम्हारा स्तन
दिखाकर मुझे जलाया करता है । तुम स्वामिनी हो, आ क्यों
करो, तुम्हें धधिकार है किन्तु यह उचित नहीं है कि
अपनेसे होकर करनेवाली इन नीच किरणोंसे तुम मुझे जला
डाल रही हो ॥ ४ ॥ अपने मनकी ध्याना किमे तुम्हारा
दृष्टा करे ? हम दोनोंके इन गहरे प्रेमकी बात इतना

कस्याप्याय व्यतिक्रमिमं मुक्तदु यो भवेयं को जानीते निघृतमभयोरपद्योः खेदसारम् । जानात्येकं शशधरमुखि प्रेमतत्त्वं मनो मे त्वामेवैतच्चिरमनुगत तत्प्रिये किं करोमि ॥ ७ ॥ फान्ते ! हन्त ! सुकोमला घत मता प्राग्ध्वयमेव भ्रमात्किन्तु त्वं भुवि निष्ठुरा निरुपमा पश्यस्यपीमं न माम् । तस्माद्भक्षिते ते पयो धरमिपाञ्जना निखायार्पितो शैलेन्द्राविति साम्प्रतं न हि चिरं सारयं परङ्कोशितुः ॥ ८ ॥ किमकारि मन्द-मतिना रतिपतिना कामतन्त्रनिपुणेन । म्यूतासि हरि-णनयने हन्त हृदि खेदहन्तुना न तनौ ॥ ९ ॥ कृष्णा ते कचसंहतिरभ्युजनयने नवाधरः शोणः । त्वं सुरतर-ङ्गिणी कथमभितस्तापी न ते वियोगः स्यात् ॥ १० ॥ गृद्धालिङ्गनगण्डबुभनकुचम्पशोदिलीलायितं सर्वं चिन्मृतमेव धिस्तनघतो गाले खलेभ्यो भयात् । संलापस्त्यधुना सुदुर्घटतमस्तत्रापि नातिव्यथा वस्य-

दर्शनमप्यभूदसुखमं तेनैव द्रुये भृशम् ॥ ११ ॥ चन्द्रो द्वादश मान्करा समवयन्गत्रियुगानात् धनं मिष्टं तिकरत्वं विलेपनमहो दोषानलो मे तय । धिच्छ्रेदान्म-लपानिल मियमेमे किं कालकूट श्रुती गतिनादिध्य निरेव यज्ञसदृशोऽरण्यं विविचं गृहम् ॥ १२ ॥ जीम्-तमश्रमाशुशोकवहदश्रोतः पुरो माननः पृथ्वीं प्रोढ-निदायचण्डकिरणलोपायसन्नामिव । तामाभ्यासम-लम्भयत्कथनतुं प्रस्थापितः प्रेयसा सन्देशः परिपो-डितः प्रणतिभिस्तस्याम्सपानामपि ॥ १३ ॥ तपति तनुगायि मदनस्वामामिगं मां पुनर्दह्येव । स्लपयति यथा शशाङ्कं न तथा हि कुमुदतो दिवसः ॥ १४ ॥ त्वं दूरमपि गच्छन्ती हृदयं न जहासि मे । दिनायसाने ध्यायेव पुरो मूलं वनस्पतेः ॥ १५ ॥ त्वदास्वश्रोत्रान्द्रे-वरतनु तद्वारभ्य वसति व्यधात्तल्लक्ष्मामा तव कच-कुले तत्प्रभृति सा । तथा दृष्टिलक्ष्मा त्वयि मम तदा-

जानता कौन है ? हे चन्द्रमाके नमान मुखवाली ! मैं तुम्हें किनात्र अधिक प्रेम करता हूँ, यह केवल मेरा मन ही जानता था पर वह भी हम समय तुम्हारे पास चला गया है । अथ यताश्रो प्यारो ! मैं कहीं तो क्या कहीं ? ॥ ७ ॥ हे प्यारो ! पहलेके घोपमें पढ़कर मैं तुम्हें ध्यय ही कोमल समझे बैठा था पर हाथ ! तुम तो ऐसी निर्दय निकलीं कि मेरी शरीर श्रॉलितक उठाकर नहीं देखतीं । जान पड़ना है तुम्हारी कठोरता देयकर ही प्रमाने तुम्हारी छातीपर मनोंके रूपमें शो पर्वन जाकर गये कर दिए हैं । ठीक ही हुआ । जो दूसरोंको कलपाता है वह बहुत दिनोंतक थोड़े ही कल पा सकता है ॥ ८ ॥ कामराष्ट्रमें चतुर होनेपर भी इस मूर्ख कामदेवने यह क्या मूल कर दी कि डमने तुम्हें मृगतयनीके प्रेम-रूपी शरीरे मेरे हृदयमें ही रखकर सी दिया, शरीरपर नहीं सिया ॥ ९ ॥ हे सुन्दर ! जब तुम्हारी लटे कृष्णा (काली, कृष्णा नदी) है, तुम्हारे श्रोत शोण्य (लाल, सोन नदी) है और तुम स्वयं सुरतरङ्गिणी (गङ्गा, सुरत-श्रीदामं रस लेनेवाली) हो तब तुम्हारा वियोग साक्षी (सन्ताप देनेवाला, साक्षी नदी) क्यों न हो ? ॥ १० ॥ हे नवेली ! सुगलभारोंके डरके बारे मैं तुम्हें गले लगाता । नरुहारे गाल चमना तथा तुम्हारे म्दन धूना भी

हे प्यारो ! तुम्हारे जिदोहमें यह चन्द्रमा मुझे बारहों रूपाँके नमान तपाता रहता है, एक-एक रात सौ-सौ युगोंके समान बीतती है, भीशी वस्तुएँ तीती लगती है, चन्द्रमा आदिका लेप आगकी लपटके नमान जलाता है, दक्षिणका पवन हलाहल निपके समान सन्ताप देना है, गानेकी तान बज्जके समान कान फोड़े डालती है और अपनी सजा-सजाया सुन्दर पर भी जङ्गलके समान खमने लगा है ॥ ११ ॥ बादलोंकी गड़े-नई कुहारों जोमेरे टपका शरीर पृथ्वीके ऊपर बइता हुआ परन ऐसा जान पड़ना है मानो वह गर्मोंके मयङ्कर मूर्यके तापसे सूजी हुई और हुबली देहवाली धरती-रूपी विरहप्योके नियतमके द्वारा भेजा हुआ आकर उले डादुस रँधा रहा हो किन्तु सवियोंकी प्रार्थना और गिहृगिहाइटेके फेरमें वह सन्देश ही मूल बैठा हो ॥ १३ ॥ हे दुखले शरीरवाली ! तुम्हें तो पागदय निरन्तर सन्ताप ही देना रहता है किन्तु मुझे तो यह जलाप डाल रहा है । देवी न, दिनल्पो वियोगका समय आनेपर तिनना मलिन चन्द्रमा हो जाता है उसनी मजिन उमकी प्यारी कृमुर्गिनी नहीं होती अर्थात् कामदेव तुममें अधिक मुझे गया रहा है ॥ १४ ॥ हे प्यारो ! जैसे सन्धा समय दूर जानी हुई रँधकी छाया भी जड़को नहीं छोटीनी धीरे ही गल कर जानेना सी सं-

रभ्य तद्यपि स्मरेयुषां ज्वाला मयि तव कटाक्षाननु-
गता ॥ १६ ॥ त्वदीयमुखपङ्कजं यदि विधोरलं वार्तया
तवाधरसुधा यदा भवति किं सुधा नो मुधा । त्वद्
द्रपरिरम्भणं भण कृतं सुधागाहनेस्त्वदोयदगनुग्रह-
स्तदपि धिग्धौगैन्द्रं पदम् ॥ १७ ॥ त्वद्द्रामृतपानदु-
र्ललितया दृष्ट्या क्व चित्रम्यतां त्वदाक्यध्रवणाभियो-
गपरयोः श्रव्यं कृतः श्रोत्रयोः । एभिस्त्वत्परिरम्भ-
निर्भररसेरङ्गैः कथं स्थीयतां कष्टं त्वद्दिरहेण सम्प्रति
घर्षं कष्टामवस्थां गतर. ॥ १८ ॥ त्वया मम समेतस्य
कल्पः अपि समासमाः । भयत्या विप्रयुक्तस्य कल्प-
कल्पः क्षणोऽपि मे ॥ १९ ॥ त्वामालिष्य प्रणयकुपितां
धातुरागैः शिलायामात्मानं ते वरपणितं याचद्
क्षामि कर्तुम् । श्रस्तेस्तावन्मुसुरपचितैर्द्विप्ररात्रुष्यते
भे श्रुस्तस्मिन्नपि न सहते सद्गमं नौ कृतान्तः ॥ २० ॥
दूरं मुक्तालतया विससितया विप्रलोभ्यमानो मे ।

हंस इव दक्षिताशो मानसजन्मा त्वया नीतः ॥ २१ ॥
धन्वस्तन्धि स एष पाण्डिमधरप्रभुभ्यन्पीतस्त्व
धन्यं तन्धि तदेव काश्यमिह यत्प्रत्यङ्गमालिङ्गति ।
धन्यो षं विरहानलस्तव मनो यस्यानुवृत्तेः पदं हरे
हन्त तया तु पातकितया मादृजनः सोदति ॥ २२ ॥
न खानं न च भोजनं न पत्रं नान्यत्र सोष्यं धृतिनां
न्यखोजनसेवनं न च कथानिद्राविलासोयमः । किन्तु
त्वां परिचिन्तयामि सततं ध्यानेन चेतःस्थितां रामा
लोकनकामकेलिाविधिना जीवामि कान्ते तव ॥ २३ ॥
नित्यं त्वदसुखकीर्तनेन निविडं रोमाञ्जितेरङ्गैस्त्व
द्वक्त्रेन्दुविलोकनं कमनसः कान्ते सुखेनास्महे । किन्तु
त्वद्दिरहेत्थितोद्हरशिविज्वाला उताङ्गे मयि प्रस्थाप्य
क्षुपया निजाङ्घ्रिकमलोदन्ताभ्युदः शान्तये ॥ २४ ॥
याष्पस्तस्य न जायते किमु न किं लेपे करः कम्पने
जानोपे किमु सारम्भतं न्वयि तथा निद्रं तदीयं मन ।

शालिं तुमसे लगीं तभीसे कामदेवके बाणीकी लपट तुम्हारी
तिरछी चितवनके साथ लगर मुझमें समा गई ॥ १६ ॥
तुम्हारे मुखकमलके रहत चन्द्रमाकी भात करनातक व्यर्थ है,
तुम्हारे अधरात्रुके रहते अमृतका नाम लेना भी व्यर्थ है,
तुम्हारे शरीरके चालिङ्गनके आगे अमृततुपदमें दुबकी लागनेकी
भात निरर्थक है और यदि तुम एक बार हृषर देखने मायका
हवा कर दो तो मैं झन्डासनकी भी लात मार दूँ ॥ १७ ॥
है नभेली । वह कितने दुःखकी भात है कि तुम्हारे विद्वाहमें
मेरी हतनी दुर्गाति छुड़े जा रही है, क्योंकि तुम्हारी सुन्दरताका
प्रभुत पां छेनेसे हमारी रटि ऐसी ललच गई है कि वह वहाँ
दूसरी छीर टहरती ही नहीं, तुम्हारी भाते सुननेवाले ये
धाम धर दूसरी कोई भात सुनना ही नहीं चाहते और तुम्हीं
वताओं कि तुम्हारे शरीरके चालिङ्गनका स्वाद ले चुकनेवाले
मेरे बाह भी भ्रम हैसे वरामें रह सवते हैं ? ॥ १८ ॥ जब मैं
तुम्हारे साथ रहता हूँ उस समय एक कल्प भी एक क्षणके
समान बीत जाता है और जब मैं तुमसे अलग रहता हूँ तो
एक-एक क्षण भी एक-एक कल्प बन जाता है ॥ १९ ॥ जब मैं
गेहके छेनेसे ऐसा विप्र बनाना चाहता हूँ कि तुम मेमसे लटक
वैठो हूँ तो और मैं तुम्हारे पीरों पदकर तुम्हें मना रहा हूँ
वस समय बार-बार शीरें भर छातीं है और निर्दोष यमराज
विप्रमें भी हम लोगका मिश्रण नहीं सह सकता ॥ २० ॥
तुममें अपने गलेमें बमबकी आदये सामान उल्लेख योगियोंकी

मालासे हमारे हंसके समान कामदेवका ललाचलतबाग
अपने पास बुला लिया है ॥ २१ ॥ हे सुन्दरी ! वह गगान
भागवान् है जो तुम्हारे गाल चूम रहा है, वह तुम्हारे
पुण्यशाली है जो तुम्हारे सारे शरीरसे लिपटा हुआ है और
वह विद्योद्दकी आग भी धन्य है जिसे तुम्हारा मन स भरा
रहता है । वस, एक मैं ही ऐसा पापी बच रहा हूँ जो तुम्हें
दूर रहनेकी सोसत सह रहा हूँ ॥ २२ ॥ हे प्यारी ! हम सब
मैं नहाना, खाना, पढ़ना, विश्राम करना, शाना, दुःख
नवेलोके साथ राग-रुद्र, यातवीत, नीद, शरीरके बला-
श्रद्धारके प्रयत्न आदि सब काम छोड़कर केवल तुम्हारा प्यार
करके तुम्हें अपने चित्तमें घेठाकर सदा तुम्हारी ही चिन्ता मि-
करता हूँ और स्वप्नमें तुम्हें देवराज तुम्हारे साथ बाम्भट
करते हुए किसी किसी प्रकार दिन बट रहा हूँ ॥ २३ ॥
हे सुन्दरी ! जब भी मैं तुम्हारे गुणोंकी चर्चा करने ल-
हूँ तभी मेरे शरीरमें कँपकँपी उठ गईं जाती है । मैं
प्रकार मैं अपने मनमें तुम्हारा सुगन्ध देवनेकी लज्जा
हुए सुनते दिन बिता रहा हूँ । फिर भी तुम्हारे विरामे
हुई प्रचण्ड चान्दिकी लपटें रह रहकर मेरा शरीर उजड़-
रही हैं अतः उन्हे शान्त करनेके लिये तुम हवा करके
परशोंके समानारने भरे हुए धाँदेसे बादल भेज देना ॥ २४ ॥
एक दौड़ सामने एक मधेलोकी हाथमें वह कबल
मियतमका पत्र भटव जिया कि 'यवा उरके चीमू मरी त

इत्थं तामभिधाय तत्करतलादादाय पत्रं सखी काचि-
द्वाचयति प्रगल्भयचना कौतुहलेऽपि क्रमात् ॥ २७ ॥
भवतु विदितं व्यथालापैरलं प्रिय गम्यतां तनुरपि
न ते दोषोऽस्माकं विधिस्तु पराद्ब्रह्मः । तव यदि
तथाभूतं प्रेम प्रपन्नमिमां दशां प्रकृतितरले कानः
पीडा गते हतजीविते ॥ २६ ॥ भवत्या विघ्नलेपे गुरु-
हृदयखेदेन तनुतां तनुनित्यं घत्ते सदृशमिति मत्तेभ-
गनने । इदं तावच्चित्रं कमलमुपि सर्वैरयययैः सुरुपा
त्यं लोके नियतमसुरुपा भवसि नः ॥ २७ ॥ भित्त्वा
सद्यः किसलयपुटान्देवदारुक्रुमाणां येतत्तीरस्मृतिसुर-
भयो दक्षिणेन प्रवृत्ताः । आलिङ्गयन्ते गुण्यति मया
ते तुपाराद्रियाताः पूर्वं स्पृष्टं यदि किल भवेद्द्रुमेभि-
स्तवेति ॥ २८ ॥ मामाकाशप्रणिहितभुजं निर्दयाश्ले-
पहेतोर्लज्यायास्ते कथमपि मया स्वप्नसन्दर्शनेषु ।
पश्यन्तीनां न जलु वृष्टो न स्थलीदेवतानां मुका-

स्थूलाम्नचक्रिन्मलयेश्वलेगाः पन्ति ॥ २६ ॥ मार्गे
मे निरपायतां परिष्कृतिं कार्यस्य मद्रोत्तरां श्रुता
लेवहराननान्मम परावृत्तिं च नदीयसीम । स्वस्व-
याम्भ तव क्रमे मम दशा या पूर्वमुक्ता मया भूयस्वं
स्मर तां च मानिनि परो माभूद्द्विपामुत्सवः ॥ ३० ॥
यतःप्रभृति ते कान्तं सुखमालोकितं मया । कामः
कामं ममाह्वानि व्यथयत्यभिनशरैः ॥ ३१ ॥ यत्रश्रे
प्रसमानकान्ति सलिले मत्रं तदिन्द्रोवरं मेघैरन्तरितः
प्रिये तव मुपच्छायातुकारो शशी । येऽपि त्वद्रमना-
नुकारिगतयस्ते राजहंसा गतास्यत्साहृष्यधिनाद्-
मात्रमपि मे दैवेन न क्षम्यते ॥ ३२ ॥ यदिन्द्रोर्लक्ष्मीन्ते
यदनक्रमले चासमकरात्तमस्तामम्येमा तव तरुणि
धम्मिल्लमभजन् । अतुमात्ता हारायलिमपि च ताराय-
लिहृदि शरख्यायाः कन्ते मम शरणदाने परिभवः
॥ ३३ ॥ यदि प्राणा एव प्रणयपरिवाहः कथमय

या जिरते समय उमका हाथ नहीं कौपता ? तुम क्या
समझोगी कि तुम्हारे लिये उसका जी कैसा तदप रहा
है ! और उसका कृतुहल होनेपर भी वह बहुत धीरे-धीरे
पत्र पढ़ने लगी ॥ २६ ॥ अच्छा जाने दोजिय, व्यर्थकी
वातांसे क्या लाभ है ! हे प्रिय ! जाइए, आपका हसमें
कोई दोष नहीं, इस समय तो हमारा भाग्य ही हमसे
रूटा हुआ है । जब आपके अटल प्रेमकी यह दशा हो रही
है तब हमारे इस स्वभावसे ही अस्थिर तुच्छ जीवनके चले
जानेपर हमें क्यों दुःख हीगा ? ॥ २६ ॥ हे मतवाले हाथीके
समान चालवाली ! तुम्हारे वियोगसे घबराए हुए मनकी
धकावटसे हमारे शरीरका नित्य दुखला होता जाना ठाक ही
है । पर कमलमुषी ! यह तो बताओ कि तुम अपने सभी
अङ्गसे सुरुपा होते हुए भी हमारे लिये असुरुपा (असुन्दर,
प्रायरूप) क्यों हो रही हो ? ॥ २७ ॥ हे सुन्दर गुण्यवाली !
देवदारके नये पत्ते तोड़कर उससे निकले हुए दूधके साथ
लगनेसे सुगन्धित होकर दक्षिण दिशाकी ओर बहनेवाले
हिमालयके वायुका हम हसलिये स्वागत करत है कि सम्भव है
कि वह तुम्हारे शरीरका स्पर्श करके इधर चला आ रहा हो
॥ २८ ॥ हे प्यारी ! जब मैं स्वप्नमें किसी-किसी प्रकार तुम्हें
पाकर तुम्हें धृतांसे लगानेके लिये अपने हाथ ऊपर उठाता हूँ
तब मेरी इस श्वरधामकी धार धार देवनेवाले वनदेवता
अपने मोगीके समान पड़ी-पड़ी शर्मिषी वृद्धे पदोंके पत्तों-

पर दुलकाया करते हैं ॥ २६ ॥ हे प्यारी ! मेरा सारा काम
यदि अच्छे उहसे मार्गमें ही बन गया और मैं अब शीघ्र हा
लीट आऊँगा यह बात तुम पत्रअहकसे सुन ही लोगी
किन्तु तबतक स्वप्न ही रहना, घबरावना नहीं, क्योंकि
तुम्हारी घबराहट सुनकर मेरी जो दशा हो जाती है वह मैं
तुम्हें पहले ही बता चुका हूँ । उसे ही फिर स्मरण
करके हे मानिनि ! ऐसे उहसे रहना जिससे हमारे
धैरियोंको हँसनेका अवसर न मिल पावे ॥ ३० ॥ जिस
समयसे मैंने तुम्हारा सुन्दर मुँह देखा है उसी समयसे
कामदेव अपने बाण लेकर ऐसा पादू पड़ा है कि हमारे
अङ्ग चारों ओरसे छेदे ढाल रहा है ॥ ३१ ॥ हे प्यारी !
तुम्हारी शींगोंके समान सुन्दर नीलकमल पानोंमें डूब गए,
तुम्हारे मुँहको परदाहँके समान दिखाई देनेवाला चन्द्रमा
बादलोंमें जा छिपा और तुम्हारी चालका अनुकरण करने-
वाले राजहस भी मानससोबरको उड़ गए इसलिये तुम्हारे
समान जिन वस्तुओंको देव-देवकर मैं मन बहलाया करता
था, दुर्भाग्यसे वे सभी एक-एक करके मिटी जा रहा
है ॥ ३२ ॥ हे नबेली ! जब कि तुम्हारे सुखकमलने चन्द्रमाकी
शोभामें स्थान पा लिया, जब अन्धकारने तुम्हारे केशोंमें
अपना देहा आ जमाया और तारोंकी चमकने तुम्हारे हारम
स्थान पा लिया तब शायद देनेमें इतनी प्रसिद्धि पा चुकनेपर
भी तुम मुझे शरण देनेमें इतनी कन्वृषी क्यों कर रण

विभिन्ना तेभ्यश्चेत्कथमियमभेदव्यवसितिः । न भिन्ना
नाभिन्ना यदि भवसि किं नाम तदपि त्वमेकासि त्वं
मे कुचलयदलश्रेणिनयने ॥ ३४ ॥ यदेकः कासारं रच-
यति तथा कूपमथया तदाकाङ्क्षा देवो वितरतितरं
श्रीपतिरपि । मया तु त्वद्धेतोः कमलमुखि सान्द्राश्रु-
सलिलैः कृताः पारावारास्तदपि गणना ते न हृदये
॥ ३५ ॥ रात्रिः कालयुगोपमा मलयजो गन्धानिलः
किं विपं सोमः सूर्य इवाभवन्मलयजालेपः स्फुल्लिको-
पमः । तिक्तः सुस्वरगीतवाद्यपरभृःपारावतादिव्यनि-
र्वृजस्याहतिरेव कर्णयुगले विच्छेदतो मे तव ॥ ३६ ॥
यज्ञोजाग्रां कनककलशो रम्यरोमावलीयं श्लक्ष्णा
रञ्जुर्लसति सरसो नाभिकूपो गभीरः । प्रोढा वृष्णा
मम नयनयोनीं रजाङ्घ्रि प्रशाम्ये देषामेपा सिचयरचितर
नैव गुप्तियंदा स्यात् ॥ ३७ ॥ चलत्कचानि चलानां स-
हमच्यमानि फण्टोदयरकलखतरानि गलत्कुचानि ।

आस्वादिताधरदलान्यलसेक्षपानि तान्येव तन्नि
सुरतानि तव स्मरामि ॥ ३८ ॥ चेक्षीवन्धनशेषितैर्विभु-
लितैरुत्सितः कुन्तलैर्विन्ध्यस्तः कुचकुम्भयोरशिशि-
रैर्वाप्याम्बुभिस्ततयोः । अच्योस्सन्ततरोदनादरयो-
राश्लेषितश्लाघितो लेखः किं तदकारि यत्र सद्यो
प्रेम्णोऽतिसीम्नस्तया ॥ ३९ ॥ श्यामास्वर्ह
चकितहरिणीं प्रेक्षणे दृष्टिपातं यक्कच्छायां शशिनि
शिखिनां बर्हभारेषु केशान् । उत्पश्यामि प्रतनुषु
नदीधीचिषु भ्रूविलासान्धनैकस्मिन्कचदपि न ते
चरिह सादृश्यमस्ति ॥ ४० ॥ सङ्घ्वेत तत्र इव
कथं दीर्घयामा त्रियामा सर्वोयस्थास्वहरपि कथं
मन्दमन्दातपं स्यात् । इत्थं चेतश्चञ्चलनयने दुर्लभमा-
थनं मे गाढोष्माभिः कृतमशरणं त्वद्विद्योगव्यथामिः
॥ ४१ ॥ सुमध्ये वाग्भ्रूवर्चनविधिमङ्गीकुच न वा
स्मितज्योत्स्नाकान्तं कुच वदनमेतन्मयि न वा । त्रिलो-

हो ! ॥ ३३ ॥ हे नीले कमलके समान शौचवाली ! यदि
तुम सधुमुच मेरे प्राण हो तब यह प्रेमका भमेला कैसा
बर्षोकि प्रेम तो तब होता है जब दोहें हों । यदि तुम प्राणोंसे
अलग हो तब तुम्हें यह एक होनेका ज्ञान कैसे हो रहा
है ? इसलिये न तो तुम अलग हो, न एक हो । तब वताश्रो,
तुम हो क्या ! मुझे तो जान पड़ता है कि तुम मेरे लिये
इन दोनोंसे कोई निराली ही वस्तु हो ॥ ३४ ॥ जब कोई
व्यक्ति तालव्य या कुर्छा रूढ़पाता है तो भगवान् जन्मी-
पति उसके सब मनोरथ पूरे कर देते हैं पर हे कमलके
समान सुचवाली प्यारी ! मैंने तो तुम्हारे लिये अपने
भौतुषांभे न जाने कितने समुद्र बना डाले, फिर भी तुम्हारा
हृदय न पसीजा, न पसीजा, न पसीजा ॥ ३५ ॥ हे प्यारी !
तुम्हारे विद्रोहमें यह रात प्रलयकी रातके समान हो रहा
है, मलय पर्वतसे आनिवाला वायु विप विचरता-सा जान
पड़ता है, चन्द्रमा भी सूर्यके समान तपने लगा है, चन्द्रनका
श्रेय भी चिनगारी बनकर जला रहा है और मनाहर
बूढ़नेवाले कीपल और क्यूतर आदिही मधुर ध्वनि भी पत्रके
समान मेरे कान फोंड़े डाल रहा है ॥ ३६ ॥ हे कमलनयनी !
तुम्हारे दोनों स्तन दोनोंके पक्षे हैं, सुन्दर रोमापली बढ़िया रसों
हैं और नाभि रवादिप्य जल्मे भरा गहरा कुर्छा है । यदि उस
कुर्छके धासपास यह पक्षोंकी चहारदीवारी न होती तो मेरे
दोनों नेत्रोंकी यह गहरा प्यास कुभ जाती ॥ ३७ ॥ हे दुबले

शरीरवाली ! तुम्हारी उन कामकीषाश्रोका मुझे सदा स्मरण
होता रहता है जिनमें तुम्हारे बाल लहराते थे, तुम्हारी
कमर हिल-डुल नहीं पाती थी, गलेसे कुछ मीठी-मीठी
ध्वनि निकला करती थी, स्तन कुछ डीले पड़ जाते थे,
श्रोत्र चूमे जाते रहते थे और शरीर चलसाई-सी हुई
रहनी थी ॥ ३८ ॥ मेरी प्यारीने जो विना चोटी बिप हुए
विलसे हुए बालोंसे इस लेखको सजाया, गरम-गरम
शौचुर्छासे तपे हुए दोनों स्तनोंपर इसे रक्का और सदा
रोते रहनेके कारण लाल-लाल शौचोंसे लगाकर इसे सारा
यह क्या उसने पैसा नहीं किया जैसा सीमाका कर्षि
हुए प्रेममें किया जाता है ? ॥ ३९ ॥ हे प्यारी !
यद्यपि मैं श्यामा जतामें तुम्हारे चन्द्रनी समानता, बरी हुई
हरिणीकी चितवनमें तुम्हारी चितवन, चन्द्रमामें तुम्हारे
सुपत्री शोभा, मोरोंकी पूँछमें तुम्हारे बालोंकी समता की
नर्दाकी नन्दी-नन्दी लहरोंमें तुम्हारी भीलोंकी कपकप वा
लेता है फिर भी हे रुठनेवाली ! दुःख यहाँ है कि तुम्हारे
सब चन्द्रोंकी समानता मुझे कहीं हृदय नहीं मित्र पाने
॥ ४० ॥ हे चञ्चल नेत्रवाली ! आरपन्त सन्तान देनेवाले सुपत्री
विद्रोहकी पीड़ाके कारण मेरे मनकी कहीं टिकाना बरा
मिख रहा है और यह दिन-रात यहाँ दुर्घम प्रार्थना करता
करता है कि 'यह धाम्ये-लव्ये पहरवाली राग किसी रूप
पच-भरके समान घोरों हो जाय और यह दिनकी पूर आ

कीमूर्धन्या यदि विविधपुण्याधिकतया मया दृष्टासि
त्वं तद्विह सकलं मेऽजनिं जनुः ॥४२॥ स्थानान्निर्गत्य
दूरं व्रजति मयि चिरं मुक्तकरुणं रुदित्वा पश्चादनुन्मुञ्च्य
नेत्रे प्रणतिमुपगता धेपमानाङ्गयष्टिः । कान्ते यन्नाम-
बोधः प्रलयघनघटाटोपवद्भान्धकारे काले कापालि-
कोऽपि प्रवसति न शृद्धास्त्वनमो मे तुनोति ॥ ४३ ॥
स्मर्तव्योऽहं त्वया कान्ते न स्मरिष्याम्यहं तव । स्मरणं
चेतसो धर्मस्तचेतो भयदाहृतम् ॥ ४४ ॥ स्वप्नेऽपि
देवि रमसे न मया विना त्वं स्वापे त्वया चिरहितो
मृतयद्रवामि । दूरोऽकृतासि विधिदुर्ललितैस्तथापि
जीवत्येवेहि मन इत्यसवा दुरन्ताः ॥ ४५ ॥ स्निग्धमा-
लप सुकृत्तमेव वा त्वत्कथैव सपि मे रसायनम् ।

सब अथस्थामे मन्दी पढ जाय' ॥ ४१ ॥ हे सुन्दर
कमरवाली ! मेरा निवेदन टुकड़ाकर तुम मेरी बात मानो
या न मानो, अपनी मुष्कान रूपी चाँदीसे गिला हुआ
अपना मुखदा मेरी शोर फेरो या न फेरो पर मेरा जन्म
तो हुआसे सखल हो गया कि मैंने अपने पूर्व जन्मोंके
पुण्योंके प्रभावसे तुम्हारे रूपमें तीनों लोकोंमें सबसे बढ़कर
सुन्दरीके दर्शन कर लिए ॥ ४२ ॥ हे प्यारी ! जिस समय
प्रलयङ्कर बादलोंसे चारों ओर ऐसा भयानक घँघेरा छाया
हुआ था कि अघोरी भी घासे बाहर नहीं निकलता था,
ऐसे समय मैं जब कुछ दूर चला गया तब तुम घासे निकलकर
देरतक फुका फाड़-फाड़कर रोती रही और फिर अपनी आँसुओं
पोंछकर काँपते हुए तुमने मुझे प्रखाम किया । उसीको
स्मरण कर करके आज मेरा हृदय फटा जा रहा है ॥ ४३ ॥
हे प्यारी ! तुम मेरा स्मरण करती जाना किन्तु मैं तुम्हारा
स्मरण नहीं कर पाउँगा क्योंकि जिस मनसे स्मरण किया
जाता है वह मन तो तुम अपने पास खींच ले गई
हो ॥ ४४ ॥ हे देवि ! स्वप्नमें भी हमारी-तुम्हारी भेंट नहीं
होती इसलिये न तो तुम्हें सुख मिल पाता है और न
मुझे हो । इसीलिये मैं तुम्हारे विना मरा सा रहता
हूँ । आज दुर्दैवने तुम्हें मुझसे दूर कर दिया है, फिर भी प्राण
इसलिये नहीं निकलते कि मन तो तुम्हेंमें लगा हुआ है
॥ ४५ ॥ हे सखी ! तुम मीठी बातें करो या खली,
तुम्हारी सब प्रकारकी बातें मुझे रसायन बना पड़ती हैं
क्योंकि पानी चाहे ठण्डा हो या गरम, पर वह आगको तो
जुमा ही जाता है ॥ ४६ ॥ हे सुन्दर सुपवाली ! तुम्हारे

शीतलं सलिलमुष्णमेव वा पावकं हि शमयेदसंशयम्
॥ ४६ ॥ हिमांशुश्चाण्डांशुर्नयजलघरो वायदहनः सरि-
ञ्जीचीवातः कुपितफणिनिःश्यासपवनः । नया मल्ली
भल्ली कुचलयवनं कुन्तगहनं मम त्वद्विभ्लेपात्सुमुखि
विपरीतं जगदिदम् ॥ ४७ ॥

नायिका प्रति नायिकांशुश्चयनम्—पदशन्दलीनहृदयो
रूपालङ्कारभावनानिपुणः । कविरिव सचिन्तमुद्रन्त-
रुणितवार्ये परं स युवा ॥ १ ॥ परिहरति रति मति
लुनोते स्थलतिवरां परिघर्तते च भूय । इति तय
धिपमा दृशास्य देहं परिभयति प्रसभं किमत्र कुर्मः
॥ २ ॥ पूर्वं यत्र समं त्वया रतिपतेरासादिताः सिद्ध-
यस्तस्मिन्नेव निःकुलमन्मथमहातीर्थे पुनमाधवः ।

विद्योदमें यह सारा ससार मुझे ऐसा उलटा दिखाई पड़ता
है कि चन्द्रमा तो सूर्य सा जान पड़ता है, नये बादल आगकी
लपटोंके समान लगते हैं, नदियोंकी लहरोंसे मिलकर बहता
हुआ पवन कौषभमें भरे सोंपकी फुफकारोंके समान लगता है,
नये मेलेका फूल बाण्यके समान बेचता है और गोला कमल वा
भाजा बनकर शरीरमें घुसता सा जान पड़ रहा है ॥ ४७ ॥

नचेत्कोके आगे नायकको दृशाका वर्णन : हे
नवेली ! तुम्हारे श्लय ता वह युवक आज कवि बन गया है,
पल-पल उसके कान तुम्हारा पगध्वनिम लग हुए है कि कदा
तुम थार न रही हो, वह दिनरात तुम्हारा सुन्दरता और
तुम्हारी सजावटक गीत गाता रहता है और उस दृखा ता
ऐसा जान पड़ता है मानो तुम्हारी चिन्तामें घुला जा रहा हो,
अर्थात् वैसे कवि पद तथा शब्द जादुनेमें लगा रहता है,
शब्दके रूप श्रलङ्कार तथा अनुकूल क्रियाश्रौंका मेल बैठता
रहता है और अपनी रचनाको सुन्दर बनानेके लिये सदा
चिन्ता किया करता है वैसे ही वह युवक भी तुम्हारी पगध्वनि,
तुम्हारा रूप, तुम्हारे श्रलङ्कार और तुम्हारी क्रियाश्रौंका
चिन्तन करता रहता है ॥ १ ॥ किसी बातमें उसका मन
नहीं लगता, उसकी बुद्धि झटकी जा गई है, वह बार बार
ढगमगाकर चलता है, तुम्हारी यह कठारता देखकर उसकी
देहकी जो दशा हो गई है वह मैं क्या बताऊँ ! हमारे किए तो
कुछ नहीं हो रहा है ॥ २ ॥ कामदेवके बड़े भारी तीर्थ-
रूपी निस्त कुञ्जमें उसने तुम्हारे साथ कामदेवकी सिद्धियों
प्राप्त की थीं, उसी कुञ्जमें वह माचव अथ तुम्हारा स्मरण
करता और तुम्हारी बातचीत-रूपी मन्त्रके भ्रमर जपता

ध्यायँन्त्वामनिशं जपन्नपि तवैवालापमन्त्राधलीर्भूय
स्वत्कुचकुम्भनिर्भरपरोरम्भामृतं वाञ्छति ॥ ३ ॥
विकिरति मुहुः श्वासाश्वासां पुरो मुहुरीक्षते प्रविशति
मुहुः कुञ्जाकुञ्जं मुहुर्वह्नुं ताम्ब्यति । रचयति मुहुः
शय्यां पर्याकुलं मुहुरीक्षते मदनकदनकान्तः कान्ते
प्रियस्तव वर्तते ॥ ४ ॥ सा मां द्रक्ष्यति यक्ष्यति स्मर-
कथां प्रत्यङ्गमालिङ्गनैः प्रीतिं यास्यति रस्यते सखि
समागयेति चिन्ताकुलः । मार्गं पश्यति वेपते पुल-
कयानानन्दति स्विद्यति प्रत्युद्बुध्यति मूर्च्छति स्थिर-
तम-पुञ्जं निवृत्तप्रियः ॥ ५ ॥ हा कान्ते स परिष्वङ्गो
भूयोऽपि वत दीयताम् । इत्येव विपलनरात्रि कान्त-
न्तेऽपनयत्यहो ॥ ६ ॥

नायकं प्रति नायिकीकथ - एतस्मिन्सहसा वसन्तसमये
प्राणेश देशान्तरं गन्तुं त्वं यतसे तथापि न भयं तापा-
त्प्रपद्येऽधुना । यस्मात्कैरवसारसोरभमुपा साकं सरो-

हुश्रा तुम्हारे घटस्तमोका बसकर आलिङ्गन करेकेवा अमृत-जैसा
सुख पाना चाह रहा है ॥ ३ ॥ हे सुन्दरी ! तुम्हारा प्रियतम
कामदेवके उपद्रवोंसे इतना दुखी हो गया है और उसकी ऐसी
दशा हो गई है कि वह बार-बार लक्ष्मी-लक्ष्मी सौँसे खींचता
रहता है, सामनेकी ओर प्यारक देखा करता है, बार-बार उठ-
उठकर इस झाड़ोमें उस झाड़ोमें आता-जाता है, बार-बार मन
मसोसकर बैठ जाता है, बार-बार बिल्लीना सजाता है और
बार बार घबराकर इधर-उधर देखता है ॥ ४ ॥ हे सखी ! वह
वेचारा युवक इस चिन्तामें पचराया रहता है कि वह प्यारी मुझे
देतेगी, वृद्ध प्रेमकी धातें बरेगी, गले लगेगी, पिल उडेगी
और मेरे साथ लेलेगी । इसी चिन्तामें वह भार्य्यामें घुसकर
रहनेवाले मयङ्कर सौँधरेमें बैठा तुम्हारी बात जोहता है, बोलता
है, रोमोचित हाता है, प्रसन्न होता है, पसीनेसे तर हो
जाता है, तुम्हारी अगवानाके लिये बहता है और फिर मूर्च्छित
होकर गिर पड़ता है ॥ ५ ॥ हे सुन्दरी ! तुम्हारा पति यही
बह-बहकर बिलख बिलखकर रात बिता देता है कि 'हे प्यारी !
फिर भी तो एक बार बैसे ही गले लग जाओ !' ॥ ६ ॥

नायकसे नवेलीया कथन : हे प्राणनाथ ! इन
वसन्तके दिनोंमें जो तुम अघानक विदेश जानेकी बात चला
दे हो, इस बातसे उतना बत नहीं है किन्तु कष्ट इस बातका
अधिक है कि इमुदकी नीम सुगन्धिसे भरे हुए सरोवरोंकी
पपारके साथ निर्मल चन्द्रमाकी विरयें स्वप्नचर होकर

वायुना चान्द्री दिक्षु विजृम्भते रजनिषु स्वच्छा
भयुखच्छुटा ॥ १ ॥ गच्छ गच्छसि चैतान्त पन्थानः
सन्तु ते शिवाः । ममापि जन्म तत्रैव भूयाद्यत्र गतो
भवान् ॥ २ ॥ न चिरं मम तापाय तव यात्रा भवि-
ष्यति । यदि यास्यसि यातव्यमलमाशङ्कयापि ते
॥ ३ ॥ भाश्वंश्चूततर्गुर्दमनसिजः कोऽप्येव मृद्-
स्तमो मन्दो गन्धवहः सिता मलयजो दोषारणे
माधयः । अङ्गारो नवपल्लवः परभृता विना गुपो
ज्ञया निर्यातोऽसि विचारिताः कथममी कुरा प्रहा
न त्वया ॥ ४ ॥ मा याहीत्यपमङ्गलं व्रज किल खेदो
शून्यं वचस्तिष्ठेति प्रभुता यथाहचि कुरुध्वेषाप्युदा-
सीनता । नो जीवामि विना त्वयेति वचनं सम्पाद्यते
वा न वा तन्मां शिष्य नाथ यत्समुचितं यकतुं त्वयि
प्रस्थिते ॥ ५ ॥ लोलैर्लोचनधारिभिश्च शयैः पाद-
प्रणामैः परैरन्यास्ता विनिवारयन्ति कृपणाः प्राणेश्वरं

चारां शोर फैल रही है ॥ १ ॥ हे प्रियतम ! यदि प्राण
जा रहे है तो अवश्य जाहए, आपका मार्ग महलमय हो ।
मेरी वस एक ही अमिलाया है कि जहाँ आप जायें वहाँ
मेरा जन्म हो (अर्थात् आपके जानेपर मैं जीवित नहीं
पाऊँगी) ॥ २ ॥ हे प्रियतम ! यदि आप जाना ही चाहें
हों तो अवश्य जाहए, उसमें तनिक भी सोच-विचार न कीजिए
क्योंकि आपकी यह यात्रा मुझे देरतक दुःख नहीं देगी (धर्य्य
आपके जानेके पश्चात् मैं शीघ्र ही प्राण छोड़ दूँगी) ॥ ३ ॥
हे प्रियतम ! वीरा हुआ अामका वृत्त ही सूर्य है, प्रणाम
कामदेव ही वृहस्पति है, भीरा ही राहु है, मन्द पवन ही
शनैश्चर है, श्वेत चन्दन ही शुक्र है, चाँदीनी रातोंका
वसन्त ही चन्द्रमा है, लाल रगध नया पत्ता ही मंगल है
और चतुर कोयल ही बुध है तथा माता-पिताकी आज्ञा
आप विदेश जा रहे हैं । क्या आपने यात्राके समय इन सब
ग्रहोंका तनिक भी विचार नहीं किया ? ॥ ४ ॥ हे प्रियतम ! यदि
वहूँ कि 'आप न जाहए' तो यह अमङ्गल तथा मेरीसे शून्य बात
होगी । यदि वहूँ कि 'एक जाहए' तो जान पड़ेगा कि मैं आपका
अधिकार जना रही हूँ । यदि वहूँ कि 'जो आपके मनमें होवों
कीजिए' तो इससे उदासीनता भलसनी है और यदि वहूँ कि
'आपके विना मैं जीवित न रहूँगी' तो आप यह सोचने लगेंगे कि
यह सम्भव है या नहीं । इसलिये हे प्रिय ! अब प्राण ही मुझे
बताहए कि आपकी इस यात्राके समय मुझे क्या बहना चाहिए

प्रस्थितम् । पुण्याहं मज्जलं सुदिवसः प्रातः प्रया-
तस्य यत्पत्न्ये होचितमिदं हितं मिय मया त्वं निर्गतः
श्रोष्यसि ॥ ६ ॥ सहिष्ये विरहं नाथ देहदृश्याञ्जनं
मम । यदुक्तनेत्रां कन्दर्पः प्रहृतं मां न शयति ॥ ७ ॥
नायकं प्रति सखीवाक्यम्—उद्यद्द हिमि दुर्दरारवपुषि
प्रक्षीणपाण्यायुषि श्चयोतद्विभुषि चन्द्ररुडमुषि सखे
हंसद्विषि प्राद्युषि । मा मुञ्चाच्च कुच्चात्सन्ततगलद्वा-
प्याकुलां चालिकां काले कालकरलनीलजलद्वय्यालुप्त-
भास्वनिवापि ॥ १ ॥ किमिति सखे परदेशे गमयसि
दिवसान्धनाशया लुब्धः । धर्यति भौक्तिकनिकरं नद्य
भवनद्वारि काञ्चनो घल्लो ॥ २ ॥ मा गच्छ प्रमदाप्रिय
प्रियशूतैरभ्यर्धितस्त्र्यं मया घाला प्राङ्गणमागतेन
भवता प्राप्नोत्ववस्थां पराम् । किं चास्याः कुचभार-
नि सहतरैरङ्गैरनङ्गाकुलैस्तुष्टवत्कञ्चुकजालकैरनुदिनं

निःसूत्रमसमदृग्दृहम् ॥ ३ ॥ या विभ्र्याद्युचिः फ्य
विद्रुममपिः स्वप्नेऽपि तां लन्वयान् हासश्रीसदृशैस्त्न-
पोभिरपि किं मुक्ताफलैर्भूयते । तत्कान्तिः शतशोऽपि
वहिषपनैर्हेङ्गः कुतः सेत्स्यति त्यक्त्वा रत्नमयीं
प्रयासि द्युतितां कस्मै धनापाध्वग ॥ ४ ॥

सखी प्रति नायिकावाक्यम्—आयाता जलदायली सर-
भसं विद्युत्समालिङ्गिता शैलानां परितः सशन्दमहिमु-
क्त्रेण्यी नरीन्द्रन्यति । एवं सत्यपि हन्त सम्प्रति पति-
देशान्तरं प्रस्थितस्तदुत्सः चिनिवेद्यतां सखि कथं
कस्याधुनाप्रे मया ॥ १ ॥ कान्तो यास्यति दूरदेशमिति
मे चिन्ता परं जायते लोकानन्दकरो हि चन्द्रचन्दने
वैरायते चन्द्रमाः । किं चायं चितनोति कोकिलकला-
लापो विलापोदयं प्राणनेव हरन्ति हन्त नितरामारा-
ममन्दानिलाः ॥ २ ॥ ययो नद्यं स्वान्तं विषयतरलं

॥ २ ॥ हे प्रियतम ! वे जिन्यों कोई और ही होंगी जो अत्यन्त
निद्रगिहङ्कर रूपने विदेश जतते हुए प्रियको आँसू बहाते हुए,
सौगन्ध देते हुए और परंपर गिर-गिरकर शेकती हैं । पर मैं तो
बढ़ी भाग्यशालिनी हूँ । आप अथर्व जाहूय, आपका मज्जल
हो । इस यात्राके समय आपका सुप्रभात हो । आपके प्रेमके
योग बननेके लिये जो कुछ मैंने करनेका विचार किया है उसे
आप विदेशमें जाकर सुन ही लेंगे (अर्थात् मैं प्राण छोड़ दूँगी)
॥ १ ॥ हे प्रियतम ! मुझे वह आँजन दीजिए जिससे मैं
अथर्व हो जाऊँ, तब मैं आपका विरह अथर्व सह लूँगी
क्योंकि उस आँजनको आँखमें लगा लेनेपर न तो कामदेव
मुझे देर पावेगा न सुम्बर प्रहार ही कर पावेगा ॥ २ ॥

युधकले सखीकी बातें : हे मित्र ! जिस वर्षाकालमें
कुण्ड फूट-फूटकर निकल रहे हैं, मँडक टारं रहे हैं, विरही
प्राण दे रहे हैं, वृद्धें भरत रही हैं, चन्द्रमा उदास हो
गया है, हंस उड़ गये हैं और कालके समान नयातक नीले
बादलोंमें सूर्यका प्रकाश लुप्त सा हो रहा है, ऐसे वर्षाकालमें
गुम विशाल स्तनोंके बीच निरन्तर गिरते हुए आँसूधरोसे
भरी हुई उस नवेलीकी मत छोड़ो ॥ १ ॥ हे मित्र ! तुम
धनके बोझसे परदेशमें क्यों दिन बिता रहे हो ? तुम्हारे
घरके द्वारपर तो यों ही सोनेकी लता (नवेली दिन-रात सोती
बरसा रही है अर्थात् रो रही है ॥ २ ॥ हे नवेलियोंके प्यारे
मित्र ! घर छोड़कर मत जाओ, मैंने सैकड़ों बार प्रेम-भरी
बातेंसे आपसे प्रार्थना की है कि आप आँगनतक भी निकलकर

जाते हैं तो उस नवेलीकी बड़ी विचित्र दशा हो जाती है । यहाँ-
तक कि उस नवेलीके अपने ही भारसे दये हुए स्तनोंपरकी
घोलीके बन्द कामकी पीढाके कारण ऐसे टूटते हैं कि हमारे
घरमें तो नाम-मात्रको भी सूत नहीं बच पाया ॥ १ ॥ हे
विदेश जानेकी सैयारी करनेवाले ! तुम उस रत्नसे बनी प्रियाको
छोड़कर किस धनकी आशासे बाहर जा रहे हो जिसके शोथकी
चमकको मूँगा स्वप्नमें भी नहीं पा सकता, जिसकी हँसीकी
शोभाकी बराबरी मोती तपस्या करके भी नहीं पा सकता और
आगमें सैकड़ों बार तपानेपर भी सोना जिसकी सुन्दरताकी
धाह नहीं पा सकता ॥ २ ॥

सखीसे नवेलीकी बातें : हे सखी ! एकाएक विजलीसे
भरे हुए बाउल वेगसे गुमड़ आए, पर्वतोंके चारों ओर मोरके
सुगंध चूक चूककर नाचने लगे, हाय ! यह सब होनेपर भी
पतिदेव विदेश जानेकी सैयार हैं, अब मैं किसके आगे
कैसे अपना दुःखड़ा रोऊँ ! ॥ १ ॥ प्रियतम बहुत दूर विदेशको
जा रहे हैं, इस बातसे बड़ी चिन्ता हो रही है, क्योंकि सारे
संसारको आनन्द देनेवाला चन्द्रमा चन्द्रमुखी नवेलियोंका वैरी
बन जाता है, कोकिल अपने मधुर चूके स्वरमें विलयने
लगता है और उपवनोंके धामे पवन तो प्राण ही हर लेते हैं
॥ २ ॥ हाय ! नई अवस्था है, भागकी अभिलाषासे सदा हो
मन चञ्चल रहता है, पति विदेशमें है, पिताके यहाँ पहुँचना भी
अत्यन्त कठिन है और यहाँके लोग भी अत्यन्त दुष्ट हैं । इस
प्रकार जब धनधरकी सारी सामग्री उपस्थित है तब ही सखी !

हन्त सततं प्रियो दूरे देशे जनकनगरं दुर्लभतरम् ।
जनश्चायं दुष्टो भृशमिदमनर्थाय सततं कथङ्कारं पारं
कथय सखि यामोऽस्य वयसः ॥ ३ ॥

सलाय प्रति नायकीकि — श्रेते शीतकरोऽभ्युजे कुव
लयद्वन्द्वद्विनिर्गच्छति स्वच्छा मौक्तिकसंहतिर्षव-
लिमा हैर्मि लतामञ्जति । स्पर्शात्पङ्कजकोशयोरभिनवा
यान्ति स्रजः क्लान्ततामेषोत्पातपरम्परा मम सखे
यात्रास्पृहां कृतन्ति ॥ १ ॥

नायिका प्रत सखावाक्यम्—घारंवारमुदधु लोचन-
सुगं पर्याकुलं जायते निःश्वासा धिरमन्ति न क्षणममी
व्याक्लिष्टदन्तच्छ्रदाः । प्रस्थानध्रवणादपि प्रियतम-
स्याहो तवेयं स्थितिर्नो जानि निलयं गते तु दयिते
कीदृग्दशामाप्यसि ॥ १ ॥

मदनं प्रशुक्यम्—अद्यापि नूनं हरकोपवद्विस्त्वयि
ज्वलत्पौर्यं इवाम्बुराशौ । त्वमन्यथा मन्मथ मद्विधानं

तुम्हीं बताओ कि यह नहीं ध्वस्तथा मैं कैसे बितार्ज ॥ ३ ॥
मित्रसे नायकके चचन : हे मित्र ! कमल (हथेली)
पर शन्द्रमा (मुख) पदा है, दोनों नीले कमलों (नेत्रों) से
उजाले-उजाले मोती (आँसू) टुकक रहे हैं, सुनहरी लता
(देह) उजली हो रही है और कमलके कोशों (स्तनों)
से लग-लगकर नये फूलकी मालाएँ लुहला रही हैं । इस प्रकार
ये निरन्तर होनेवाले थपशकुन मेरी यात्राकी हृच्छामें बाधा
ही डालते जा रहे हैं ॥ १ ॥

नवेलीसे सतीके चचन : परकीया नायिकासे कोई
उसकी सखी कह रहा है—“हे सखी ! आँसूमें बार-बार आँसू
पड़ रहे हैं और आँसू चराल हैं, ये बढ़ी हुई सोंसैं छयाभर भी
नहीं रक पा रही हैं और ओलोंकी मजिन बनाए दे रही हैं । अतः
समझमें नहीं आता कि जब मियतमकी यात्राकी बात सुनते
ही तुम्हारी यह दशा हो रही है तब उनके पहले जानेपर तो
तुम्हारी न जाने क्या दशा हो जायगी ॥ १ ॥

कामदेवके प्रति उक्तिर्यौ : हे कामदेव ! जान पड़ता
है आज भा शंकरकी कंधागिन तुममें बैसी ही धयक रही
है जैसे समुद्रमें बटुवानज जलता रहता है । यदि यह बात
न होगी तो भस्म होकर भी तुम हमें इतने दादक क्यों
जान पड़ते ? ॥ १ ॥ हे कामदेव ! अरयन्त प्रसिद्ध पतियत्ता
रति तुम्हारे भस्म होनेपर तुम्हारे साथ ही क्यों नहीं सती
हो गई ? इसका यह कारण तो नहीं है कि अनाथ

भस्मावशेषः कथमेवमुष्णः ॥ १ ॥ अनुममार न मा
कथं नु सा रतिरतिप्रथितापि पतिव्रता । अयमनाथ-
वधुवधपातकी इयितयापि तयासि किमुष्णतः
॥ २ ॥ अपि विधिः कुसुमानि तवाशुगौस्मर विधाप
स निर्वृतिमासवान् । अदित पञ्च हिते स नियम्य
ताँस्तदपि तैर्वत जर्जरितञ्जगत् ॥ ३ ॥ अस्माकमाल-
भूर्भूत्वा हन्तास्मानेव हंसि यत् । रे रे कन्दर्प तन्नित्य-
मनङ्गत्वं सदाऽस्तु ते ॥ ४ ॥ आपुष्णाग्रममी श्रप
मनसि मे मग्नाः समं पञ्च ते निर्दग्ध धिरहाग्निना वपु-
रिदं तैरेव सार्धं मम । तत्कन्दपे निरायुषोऽसि भवता
जेतुं न शकः परो दुःखी स्यामहमेक एव सकलो लाकः
सुख जीवतु ॥ ५ ॥ काममेकाकिनो हन्याः प्रियाश्लेष-
चिवजितान् । यदि ते विक्रमः फध्वन्न किं हंसि तद-
न्यथा ॥ ६ ॥ क रजता हृदयममाथिनी क्व च ते विध-
सनीयमायुधम् । मृदुतीक्ष्णतरं यदुच्यते तदिदं मन्य

नवेलियोंको मारनेवाला पापी समझकर उस रतिने भी तुम्हें
छोड़ दिया ? ॥ २ ॥ हे कामदेव ! तुम्हारे लिये बेगने
चलनेवाले फूलोंके बाण बनाकर मद्दाने तुम्हें केवल पौर्य
ही बाणोंके प्रयोगका अधिकार दिया किन्तु हाथ ! उतने ही
बाणोंसे यह संसार बिधकर चलनी हो गया है ॥ ३ ॥ ओ
कामदेव ! कितने खेद की बात है कि वृ हमारे अन्तःकरणमें
उत्पन्न होकर हमें ही मारे डालता है अतः भगवान् को वृ
सदा बिना अङ्गका ही बना रहे ॥ ४ ॥ हे कामदेव ! तुम्हारे
पौर्यों बाण ऐसे सच्चे दहते मेरे हृदयमें भिड़ गए तथा मेरा
शरीर उन बाणोंके साथ-साथ विरहकी आगसे जल भी गया
कि तुम अश्वहीन हो गए हो और अब तुम दूसरोंको जीत
नहीं सकते । अच्छा हुआ कि केवल एक मेरे दुखिया बने
रहनेसे सारा संसार तो सुखकी नींद सोएगा ॥ ५ ॥ हे
कामदेव ! प्यारीके गलेसे न लगे हुए एक एक प्राणीकी
थलथल-थलथा मारनेमें क्या पुरपार्थ है ! तुम्हारा सामर्थ्य
है तो हम तब समझें जब तुम मियतमाके गलेसे निपटे हुए
प्राणियोंपर आकर प्रहार करो ॥ ६ ॥ कहाँ तो हरदोनों
फाट देनेवाली पीड़ा और कहाँ विश्वास उपजानेवाला तुम्हारा
फूलका अङ्क ! दोनोंमें कितना अन्तर है ! इतनीसे मेरे
कामदेव ! “जो कोमल होता है वह बढ़ा तीला होता है” का
कहावत तुमपर बहुत सटीक घट रही है ॥ ७ ॥ हे कामदेव !
मुझे थोलेने शिवकी समझकर वृ मुझे क्यों सताए बाध रहा है !

दृश्यते त्वयि ॥ ७ ॥ जटा नेयं धेणीकृतकच-
कलापो न गरलं गले कस्तूरीयं शिरसि शशिलेखा
न कुसुमम् । इयं भूतिर्नाङ्गे मियविरहजन्मा
घवलमा पुरारातिभ्रान्त्या कुसुमशर किं मां
व्यथयसि ॥ ८ ॥ तद्विच्छेदकृशस्य कण्डलुडितप्रा-
णस्य मे निर्देयं क्रूरः पञ्चशरः शरैरतिशितैर्भिन्न्मनो
निर्मरम् । शम्भोभूतकृपाविधेयमनसः प्रोद्गमिनेत्रानल-
ज्वालाजालकरालितः पुनरसाधास्तां समस्तात्मना
॥ ९ ॥ तव कुसुमशरत्वं शीतरश्मित्वमिन्दोर्द्वयमिदम-
यथायं दृश्यते मद्भिद्येषु । चिरञ्जिति हिमगर्भैरग्निमि-
न्दुर्मयूखैस्त्वमपि कुसुमयाणान्ध्रजसारीकरोपि ॥१०॥
त्यमुचितं नयनाक्षिपि शम्भुना भुवनशान्तिकहोमद्वविः
कृतः । तव धयस्यमपास्य मधुं मधुं हतवाटा हरिणा
यत किं कृतम् ॥ ११ ॥ दग्धारमपि जित्वाऽहं पुरा-
रारतिं पिनाकिनम् । कृतायांऽस्मि रतिं प्रात इति

दसो निर्हासि माम् ॥ १२ ॥ पञ्चत्वं यान्तु थापाः
समयपरिणतस्ते विदीर्षोऽन्तु चापः क्रूरः क्रुगहि-
वक्त्रं विशन्तु तव रथो मा भव त्वं शरीरो ।
किं ते शोपेन मादृग्युधनिधमहापातकिन्मीनकेतो
शय्यः पायोजयोनिः स खलु रचितयान्पापिनो
दीर्घमायुः ॥ १३ ॥ पाणौ मा क्रुव चूतसायकमसुं
मा चापमारोपय क्रीडानिर्जितविश्व मूर्च्छितजननाघा-
तेन किं पौरुषम् । तस्या पथ मृगोदृशा मनसिजमेह्लक्-
टाज्ञानलश्रेणीजर्जरितं मनागपि मनो नाघापि सन्धु-
क्षते ॥ १४ ॥ बाणाः पञ्च मनोभवस्य नियतास्तेषाम-
सह्यो जनः प्रायोऽस्मद्विषय लक्ष्य इति यज्ञोक्ते
प्रसिद्धि गतम् । दृष्टं तत्त्वयि विमतीपमधुना यस्माद्-
सह्यैर्यथं विद्धः कामिजनः शरैरशरणो नोतस्वया
पञ्चताम् ॥ १५ ॥ बाणाग्निमस्तकचणा विकिरन्ममाङ्गे
प्रायो न घेत्सि विपमास्त्रवर स्वपीडाम् । सन्ताप पथ

मेरे सिरपर यह जटा नहीं है, ये तो बिना कंबी किए हुए
पाल हैं, यह गलेमें बिप नहीं बरन् कस्तूरी है, मागपर
चन्द्रमाकी कला नहीं बरन् फूल है और यह शरीर भी भस्म
लगनेसे उजला नहीं हुआ है बरन् पित्रवतकं वियोगसे ऐसा
हो गया है ॥ ८ ॥ उस नवेलीके विरहमें मेरे इस दुबले
मनको निपुत्र कामदेव अपने तीखे बाणोंसे निर्देयतापूर्वक
भली-भाँति बेधे ढाल रहा है, जब कि प्राय गलेतक आ गए
हैं । अतः मैं तो यह चाहता हूँ कि प्रायियोंपर कृपा करनेवाले
शिवजीके तीसरे नेत्रकी अथवा अग्निकी लपटोंसे यदि वह
दूसरी बार भी भली-भाँति जल जाता तो बड़ा अच्छा होता
॥ ९ ॥ हे कामदेव ! तुम्हारा बाण धूनोका है और चन्द्रमाकी
किरणें शीतल हैं । ये दोनों बातें हम विद्वोदियोंकी समझमें बूझी
जान पड़ती हैं क्योंकि चन्द्रमा तो अपनी शीतल किरणोंसे
भाग विभरे रहा है और तुम भी अपने फूलके बाणोंमें बज्रकी-
सी कटोरता भर लाए हो ॥ १० ॥ संसारमें शान्तिकी स्थापना
करनेके लिये शिवजीने जो अपने तीसरे नेत्रकी अग्निकी
ज्वालामें तुम्हारी आहुति दे डाली, वह उचित ही किया किन्तु
तुम्हारे मित्र मधु (वसन्त ऋतु) को झोहर मधु नामक द्रव्यको
मारकर भी विध्युने क्या किया ! अर्थात् कुद नहीं ॥ ११ ॥
'सारे संसारको जलानेवाले, पुर राक्षसके शत्रु तथा पिनाक
धनुष धारण करनेवाले शिवजीपर विजय पाकर भी मैं रतिको
पुनः प्राप्त करके कृतकृत्य हो गया' क्या इसी पमपकमें चू

होकर तुम मुझे मारे ढाल रहे हो ? ॥ १२ ॥ मेरी जैसी दूसरी
नवेलियोंको मारनेका पाप ठोनेवाले तथा मज्जनोंकी सवारी
करनेवाले धरे कामदेव ! तैरे बाणोंका नाश हो जाय, तेरा पुराना
धनुष टूक-टूक हो जाय, तेरी निपुत्र सवारों (मज्जनों) साँपके
भयङ्कर मुँहमें पड़े और तुम्हें फिर कभी शरीर न मिले ! पर
तुम्हें शाप देनेसे लाभ क्या है, शाप तो उम निगोड़े भ्रमाको ही
देना चाहिए किन्तु तुम जैसे पापियोंकी इतनी लम्बी धारु
बना दी है ॥ १३ ॥ खेल-खेलमें ही सारे संसारको जीत
लेनेवाले धरे कामदेव ! आमके बौर-रूपी बाण हाथमें
मन उठा तथा धनुष भी न सँभाल । धायकोंको मारनेमें
भला क्या बीरता की बात है ? धरे कामदेव ! उस सृणवनीकी
बज्रल बाँकी चितवनरूपी अग्निकी ज्वालासे जला हुआ मेरा
मन आजतक तनिक सा भी तो नहीं पनप पा रहा है ॥ १४ ॥
हे कामदेव ! संसारमें यह बात प्रसिद्ध है कि कामदेवके
पास गिने गिनाए कुल पाँच ही बाण हैं और प्रायः हमारे जैसे
असंख्य लोग ही उन-उन बाणोंके लक्ष्य हैं । यह बात मुझे
उलटी ही दिखाई दे रही है ! क्योंकि तुमने अनगिनत बाणोंसे
मार-मारकर असहाय विद्वोदियोंके पास पञ्चना (शत्रु, पाँचकी
संख्या) पहुँचा दी है ॥ १५ ॥ हे कामदेव ! ऐसा बात पढ़ता
है कि जब तुम निर्देय होकर मेरे शरीरपर बाणरूपी अग्नि
बिखेरने लगे हो तब तुम्हें अपनी पीड़ाका स्मरण नहीं
जाता होगा । शिवजीके मस्तककी नेत्राग्निमें पढ़कर क्या तुमने

हन्त सततं प्रियो दूरे देशे जनकनगरं दुर्लभतरम् ।
जनश्चाय दुष्टो भृशमिदमनर्थाय सततं कथङ्कारं पारं
कथय सखि यामोऽस्य वयसः ॥ ३ ॥

सखाय प्रति नायकीक - शेते शीतकरोऽम्बुजे कुव
लयद्वन्द्वद्विनिर्गच्छति स्वच्छा मौकिकसहतिर्धव-
लिमा हैमीं लतामञ्जति । स्पर्शात्पङ्कजकोशयोरभिनवा
यान्ति सज्जं क्लान्ततामपोत्पातपरम्परा मम सखे
थात्रास्पृहां क्लन्तति ॥ १ ॥

नायिका प्रत सखावाचयम्—चारंवारमुदश्रु लोचन-
युग्ं पर्याकुलं जायते निःश्वासा विरमन्ति न क्षणममी
व्याकिलपृष्टन्तच्छ्रुदाः । प्रस्थानश्रवणादपि प्रियतम-
स्याहो तवैयं स्थितिर्नो जाने निलयं गते तु दयिते
कीदृशशामाप्स्यसि ॥ १ ॥

मदन प्रत्युक्तम्—अद्यापि नूनं हरकोपवह्निस्त्वयि
ज्वलत्यैवै इवाम्बुराशी । त्वमन्यथा मनमथ मद्विधानां

भस्माद्येवः कथमेवमुष्णः ॥ १ ॥ अनुमत्तार न मात
कथं नु सा रतिरतिप्रथितापि पतिव्रता । श्रयमनाथ
वधूवधपातकी दयितयापि तयासि किमुञ्जित
॥ २ ॥ अपि विधिः कुसुमानि तवाशुगोस्मर विधाय
स निर्वृतिमातवान् । अदित पञ्च हि ते स नियम
तोस्तदपि तैर्यतं जर्जरितञ्जगत् ॥ ३ ॥ अस्माकनाम
भूर्भूव्या हन्तास्मानेव हसि यत् । रे रे कन्दर्प तस्मिन्
मनङ्गत्वं सदाऽस्तु ते ॥ ४ ॥ आपुङ्गाग्रममी शप
मनसि मे मग्नाः सम पञ्च ते निर्दग्ध विरहाग्निना वपु
रिदं तैरेव सार्धं मम । तत्कन्दर्पं निरायुषोऽसि भवता
जेतुं न शकः परो दुःखी स्वामहमेकपव सकलो लोक
सुख जीघत्सु ॥ ५ ॥ काममेकाकिनो हन्याः प्रियारतेषु
विवजितान् । यदि ते विक्रमः कश्चिन्न किं हसि तद
न्यथा ॥ ६ ॥ क रजा हृदयप्रमाथिनी क्व च ते विश्व
सनीयमायुधम् । मृदुतीक्ष्णतरं गडुज्यते तदिदं ममथ

तुम्हीं वताशो कि यह नई अवस्था में कैसे बिताऊँ ॥ ३ ॥
मित्रसे नायकके चचन : हे मित्र ! कमल (हथेली)
पर चन्द्रमा (मुख) पड़ा है, दोनों नीले कमलों (नेत्रों) से
उजले-उजले मोती (आँसू) टुलक रहे हैं, सुनहरी लता
(देह) उजली हो रही है और कमलके कोशों (स्तनों)
से लग-लगकर नये फूलकी मालाएँ खुदला रही हैं । इस प्रकार
ये निरन्तर हानेवाले अपशकुन मेरी यात्राकी इच्छामें बाधा
ही डालते जा रहे हैं ॥ १ ॥

नवेलीसे सखीके चचन : परकीया नायिकासे कोई
उसकी सखी कह रहा है—'हे सखी ! आँसूसे बार-बार आँसू
बह रहे हैं और आँसू चञ्चल हैं, ये बहूँ दुई सौलें चणभर भी
नहीं रक पा रही हैं और श्रोतोंको मलिन बनाए दे रही हैं । अतः
समझमें नहीं आता कि जब प्रियतमकी यात्राकी बात सुनते
ही तुम्हारी यह दशा हो रही है तब उनके चले जानेपर तो
तुम्हारी न जाने क्या दशा हो जायगी ॥ १ ॥

कामदेवके प्रति उक्तियाँ : हे कामदेव ! जान पड़ता
है आज भा शकरीको ऋषाणानि तुममें वैसी ही घषक रही
है जैसे समुद्रमें बड़वानल जलता रहता है । यदि यह बात
न होती तो भस्म होकर भी तुम हमें इतने दाहक क्यों
जान पड़ते ॥ १ ॥ हे कामदेव ! अण्यन्त प्रसिद्ध पतिव्रता
रति तुम्हारे भस्म होनेपर तुम्हारे साथ ही क्यों नहीं सती
हो गई ? इसका यह कारण तो नहीं है कि अनाथ

नवेलीको मेरे जानेवाला पापी समझकर उस रतिने भी तुम्हें
छोड़ दिया ? ॥ २ ॥ हे कामदेव ! तुम्हारे लिये वेनेसे
चलनेवाले फूलोंके बाण बनाकर अज्ञाने तुम्हें केवल पौं
ही बाणोंके प्रयोगका अधिकार दिया किन्तु हाय ! उतने ही
बाणोंसे यह ससार बिधकर चलनी हो गया है ॥ ३ ॥ ओ
कामदेव ! कितने खेद की बात है कि तु हमारने अन्त करणों
उत्पन्न होकर हमें ही मारे डालता है अतः भगवान् करे
सदा बिना अज्ञका ही बना रह ॥ ४ ॥ हे कामदेव ! तुम्हारे
पाँचों बाण ऐसे सच्चे बल्लसे मेरे हृदयमें भिद गए तथा मेरा
शरीर उन बाणोंके साथ-साथ विरहकी आगसे जल भी गया
कि तुम अखडीन हो गए हो और अब तुम दूसरोंको जल
नहीं सकते । अच्छा हुआ कि केवल एक मेरे दुखिया बने
रहनेसे सारा ससार तो सुखकी नींद सोएगा ॥ २ ॥ हे
कामदेव ! प्यारीके गलेसे न लगे हुए एक एक प्राणोंके
थलाग-अलग मारनेमें क्या पुररपार्थ है ! तुम्हारा सामर्थ्य
है तो हम तब सम्मर्मे जब तुम प्रियतमके गलेसे लिपटे हुए
प्राणियोंपर आकर प्रहार करो ॥ ६ ॥ कहाँ तो हरशरीर
फाड़ देनेवाली पीड़ा और कहाँ विश्वास उपजानेवाला दुःखा
फूलका अक्ष ! दोनोंमें कितना अन्तर है ! इसलिये हे
कामदेव ! 'जो कौमल होता है वह बड़ा तोला होता है' यह
कदाचित् तुमपर बहुत सटीक घट रही है ॥ ७ ॥ हे कामदेव !
शुभे पोखिले शिवजी समझकर तु मुझे क्यों सताए पाव रहा है !

दृश्यते त्वयि ॥ ७ ॥ जटा नेयं घेणीकृतकच-
कलापो न गरलं गले कस्तूरीयं शिरसि शशिलेपा
न कुसुमम् । इयं भूतिनांके मियथिरहजन्मा
धवलिमा पुरारतिभ्रान्त्या कुसुमशर किं मां
व्यथयसि ॥ ८ ॥ तद्विद्वेदकृशस्य फटलुडितमा-
णस्य मे निर्दयं क्रूरः पञ्चशरः शरैरतिशितैर्भिन्दन्मनो
निर्मरम् । शम्भोभूतरूपाविधेयमनसः प्रोहामनेघानल-
ज्वालाजालकरालितः पुनरसावास्तां समस्तात्मना
॥ ९ ॥ तव कुसुमशरत्वं शीतरश्मित्वमिन्दोर्हृदयमिदम-
थयार्थं दृश्यते मद्दिधेयु । विरुजति ह्रिमगर्भैरग्निसि-
न्दुर्मयूरैस्त्वमपि कुसुमवाणान्वज्रसारीकरोपि ॥ १० ॥
त्वमुचितं नयनाचपि शम्भुना भुवनशान्तिकहोमह्वयिः
कृतः । तव वयस्यमपास्य मधुं मधुं हतवता हरिणा
वत किं कृतम् ॥ ११ ॥ दधधारमपि जित्वाऽहं पुरा-
रातिं पिनाकिनम् । कृतायंऽस्मि रतिं प्राप्त इति

दसो निर्हसि माम् ॥ १२ ॥ पञ्चत्वं यावु यागाः
समयपरिणतस्ते धिदीर्घोऽन्तु चापः क्रूरः क्रगदि-
वक्रं विशुतु तव रथो मा मय त्वं शरीरो ।
किं ते शापेन मादृग्युयनियघमहापातविन्मनकेनो
शप्यः पाथोजयोनिः स यतु रचितयान्पापिनो
दीर्घमायुः ॥ १३ ॥ पाणौ मा क्रु कृतसायकमसुं
मा चापमारोपय क्रीडानिजिनविभ्य मूर्च्छितजनाघा-
तेन किं पारुषम् । तस्या एव मृगोदशा मनसिजमेद्गृक-
टाजानलश्रेणीजर्जरितं मनागपि मनो नाघापि सन्धु-
क्षते ॥ १४ ॥ वाद्याः पञ्च मनोभवस्य नियतास्तेषाम-
सहृयो जनः प्रायोऽस्मद्विध एव लय इति यज्ञोके
प्रसिद्धिं जतम् । दृष्टं तत्त्वयि विप्रतीपमधुना यस्माद्-
सहृयैर्यं विद्वः कामिजनः शरैरशरणो नांतस्यया
पञ्चताम् ॥ १५ ॥ वाणाग्निमस्तकदण्डा विकिरन्ममाङ्गे
प्रायो न वेत्सि विपमास्त्रघर स्वपीडाम् । सन्ताप एव

मेरे सिरपर यह जटा नहीं है, ये तो बिना कंधी किए हुए
पाल हैं, यह गलेमें विप नहीं बरन् कस्तूरी है, माथेपर
चन्द्रमाकी कला नहीं बरन् फूल है और यह शरीर भी भस्म
लगनेसे उजला नहीं हुआ है बरन् मियतमके वियोगसे ऐसा
हो गया है ॥ ८ ॥ उस नवेलीके विरहमें मेरे इस दुबले
मनको निन्दुर कामदेव अपने तीले बाणोंसे निर्दयतापूर्वक
भली-भाँति घेधे डाल रहा है, जब कि प्रायः गलेतक धा गए
हैं । अतः मैं तो यह चाहता हूँ कि प्राणियोंपर क्रुपा करनेवाले
शिवजीके तीसरे नेत्रकी मयङ्कर अग्निकी लपटोंसे यदि वह
दूसरी बार भी भली-भाँति जल जाता तो यदा ध्वंसा होता
॥ ९ ॥ हे कामदेव ! तुम्हारा बाण पूर्वोका है और चन्द्रमाकी
किरणें शोतल हैं । ये दोनों बातें हम विद्योदियोंकी समझमें कूटी
जान पड़ती हैं क्योंकि चन्द्रमा तो अपनी शीतल किरणोंसे
भाग विलेख रहा है और तुम भी अपने फूलके बाणोंमें धजकी-
की कठोरता भर लाए हो ॥ १० ॥ संसारमें शापितकी स्थापना
करनेके लिये शिवजीने जो अपने तीसरे नेत्रकी अग्निकी
ज्वालामें तुम्हारी आहुति दे डाली, यह उचित ही किया किन्तु
तुम्हारे मित्र मधु (वसन्त ऋतु) को छोड़कर मधु नामक दैत्यकी
भासकर भी विष्णुने क्या किया ? अर्थात् बुद्ध नहीं ॥ ११ ॥
'सारे संसारको जलानेवाले, सुर राक्षसके शत्रु तथा पिनाक
भनुष धारण करनेवाले शिवजीपर विजय पाकर भी मैं रतिको
पुनः प्राप्त करके कृतकृत्य हो गया' क्या इसी धमयद्वमें चू

होकर तुम मुझे मारे डाल रहे हो ? ॥ १२ ॥ मेरी जैसा दूसरी
नवेलियोंको मारनेका बाण होनेवाले तथा मयुलीकी नवारी
करनेवाले अरे कामदेव ! तेरे बाणोंका नाश होजाय, तब तुम्हारा
धनुष टुक-टुक हो जाय, तब निन्दुर सवारी (मयुकी) साँपके
भयङ्कर मुँहमें पड़े और तुम्हें फिर कभी शरीर न मिले । पर
तुम्हें शाप देनेसे लाभ क्या है, शाप तो उस विगोदे प्रह्लादो ही
देना चाहिए जिसने तुम्ह जैसे पापियोंको इतनी खरवी प्राणु
बना दी है ॥ १३ ॥ खेल खेलमें ही सारे संसारको जीत
लेनेवाले अरे कामदेव ! अमकें बौर-रूपी बाण हाथने
मत उठा तथा धनुष भी न सँभाल । धापजाँको मारनेमें
भला क्या बौरता की बात है ? अरे कामदेव ! उस शृगनपनीकी
चञ्चल बाँकी चित्तजनरूपी अग्निकी ज्वालासे जला हुआ मेरा
मन आजतक तनिक-सा भी तो नहीं घनप पा रहा है ॥ १४ ॥
हे कामदेव ! संसारमें यह बात प्रसिद्ध है कि कामदेवके
पास गिने गिनाए कुल पौँच ही बाण हैं और प्रायः हमारे जैसे
असंख्य लोग ही उन-उन बाणोंके लक्ष्य हैं । यह बात मुझे
डलती ही दिखाई दे रही है क्योंकि तुमने अगमिगत बाणोंसे
मार-भासकर असहाय विद्योदियोंके पास पञ्चना (शत्रु, पाँचकी
संख्या) पहुँचा दी है ॥ १५ ॥ हे कामदेव ! ऐसा जान पड़ता
है कि जब तुम निर्दय होकर मेरे शरीरपर बाणरूपी अग्नि
विक्षेपने लगते हो तब तुम्हें अपनी पीडाका स्मरण नहीं
जाता होगा । शिवजीके मस्तककी नेत्राग्निमें पड़कर क्या धुनने

भवता किमु नान्वभावि चरडीपतेरलिकलोचनगोच-
रेण ॥ १६ ॥ बाणान्संहार मुञ्च कामुकलतां लक्ष्यं तव
व्यम्यकः के नामात्र वयं शिगीपकलिकाकल्पं यदीयं
मनः । तत्कारणपरिग्रहात्कुच दयामस्मिन्विधेये जने
स्वामिन्मन्मथ तादृशं पुनरपि स्वप्नाद्भूतं दर्शय ॥ १७ ॥
भयनेत्रभवो वह्निरद्यापि त्वयि मन्मथ । ज्वलतीवा-
न्यथा किं ते विशिखास्तन्कणा इव ॥ १८ ॥ भुवनमोह-
नजेन किमेनसा तव परेत वभूव पिशाचता । यदधुना
विरहाधिमलीमसामभिभवन्ममसि स्मर मद्रिधाम् ॥
१९ ॥ माधवाल्लब्धजन्माऽर्हं नास्ति रुद्रस्य साध्व-
सम् । इति किं धृतदर्पस्त्वं व्यापादयसि मां धत ॥२०॥
रे रे निर्दय दुर्निवार मदन मोक्षुः पङ्कुरुहं वाणं संवृणु
संवृणु त्यज धनुः किं पारुषं मां प्रति । कान्तासङ्ग-
धियोगादुःखदहनज्वालावलीदं यपुः शरणां सृतमारणे
न हि परो धर्मः प्रयुक्तो बुधैः ॥ २१ ॥ रे रे यथापि
दग्धा ते तनुर्हन्त पुरारिणा । तथाऽपि परमर्मान्त-

कारिता न व्यलीयत ॥ २२ ॥ विधिरनशममेघमनेक्ष
ते जनमनः खलु लक्ष्यमकल्पयत् । अपि स वज्रमदा-
स्यत चेत्तदा त्वदिपुभिर्व्यदलिप्यदसावपि ॥ २३ ॥
वृथैव सङ्कल्पशतैरजसमनङ्ग नीतोऽसि मयातिवृद्धिम् ।
आकृष्य चापं श्रवणोपकण्ठे मन्थेव युक्तव वाप-
मोक्षः ॥ २४ ॥ सह तथा स्मर भस्म भटित्यभूः पशु-
पतिं प्रति यामिपुमग्रहीः । भ्रुवमभूदधुना वितनोः
शरस्तव कटुस्वर पव स पञ्चमः ॥ २५ ॥ स्मर नृगं-
तमस्त्वमतो विधिः सुमनसः कृतवान्भवदापुधम् ।
यदि ददं धनुरायसमाशुगं तव सृजेत्रिजगत्प्रलयं व्रजेत् ॥
२६ ॥ हृदयमाश्रयते यदि मामकं ज्वल्यपीत्य-
मनङ्ग तदेति कम् । स्वयमपि क्षणदग्धनिजेन्धनः क
भवितासि हताश हुताशवत् ॥ २७ ॥

चन्द्रं प्रत्युक्तयः—अभिलपसि यद्विन्दो वक्रलक्ष्मीं
सृगाच्याः पुनरपि सङ्कद्वयौ मज्ज सङ्गालयाङ्गम् ।
सुधिमलमथ विभ्यं पारिजातस्य गन्धैः सुरभय वद

सन्तापका अशुभव नहीं किया था ? ॥ १६ ॥ हे प्रभु कामदेव !
बाणोंकी लौटा लो, धनुष हाथले छाड़ दो, तुम्हारा लक्ष्य तो
शहरजी हैं, भला उनके सामने मेरा क्या गिनता ? मेरा मन
तो सिरसकी कर्लाके समान कामल है, और फिर मैं तो सदा
तुम्हारी आज्ञा मानता रहा हूँ, इसालये मुझपर दया करो और
फिर बैसा ही सपना-सा अचरज दिखा दो ॥ १७ ॥ हे कामदेव !
जान पड़ता है कि शिवजीके नेत्रकी आग्न आज भां तुमम जल
रही है, यदि पर्सों बात न हाता ता तुम्हारा बाण !चनगारथाक
समान क्यों लगते ॥ १८ ॥ हे मर हुए कामदेव ! तुम जो
संसारको मोहमें डाल देते हो, क्या इसा पापसे तुम !पशाव
हो गए हो ? क्योंकि वियागकी चवथाते दुखा हमारी जसा
नवेतियोंको कष्ट देत हुए तुम दिनरात चक्कर लगात रहत हा
॥ १९ ॥ हे कामदेव ! क्या तुम इसा पमपदम चूर होकर मुझ मार
डाल रहे हो कि मैं कृष्णका पुत्र हूँ अतः शिवजात मुझ क्या
दर है ? ॥ २० ॥ हे निर्दयी और द्रोह कामदेव ! अपने लिखे
हुए बमलक बाण उतार ला, धनुष नाच रख दो । भला मुझपर
क्या चारता दिख रहे हा ? मरा शरार त प्यारके !बिद्वाहसे
डपन्न हुए अमिकी लपटोंमें यो हा शून गया है । पापदताने
बीरोंके लिय मेरे हुएका मारना कहा उचित नहीं बतलाया है
॥ २१ ॥ अरे कामदेव ! यद्यपि शिवजीने तेरे शरारको राख
कर दिया फिर भी दूसरोंके हृदय धैषनेवादी तेरी शक्ति नष्ट

नहीं हुई ॥ २२ ॥ न तो मनके टुकड़े हो सकते न वह फाड़
ही जा सकता, यही समझकर ब्रह्माने मनको ही तुम्हारे
बाणोंका लक्ष्य बनाया । यदि उन्होंने तुम्हारे बाणोंका लक्ष्य
वज्रको बनाया होता तो वह तो कभीका चूर-चूर हो चुका
होता ॥ २३ ॥ हे कामदेव ! मैंने लगातार तीक्ष्ण सङ्कल्प कर-
करके व्यर्थ ही तुम्हें बढ़ाया । भला तुम्हें बताओ कि कानलक
धनुष खींचकर मुझपर ही बाण बरसाना क्या तुम्हें शोभा
देता है ? ॥ २४ ॥ हे कामदेव ! शिवजीपर जोड़नेके लिये
तुमने जा बाण लिया था उसके साथ ही तुम भस्म हा गए ।
इस समय जान पड़ता है कि अब बिना शरीरके हो जाते
कारण कायलका कूकड़ी तुम्हारा पाचकों बाण बन गई है ॥२५॥
हे कामदेव ! तुम्हारा इतनी कठारता देखकर ही ब्रह्माने तुम्हारे
अस्र फूलके बना दिए हैं । यदि उन्होंने तुम्हारा धनुष क्यों
तथा बाण लाहके बना दिए होते तब तो श्रवतक तीनों लकोंका
बिनाश हो गया हाता ॥ २६ ॥ अरे कामदेव ! यदि तुम हमारे
हृदयमें रहते ही हो तो उसे इस प्रकार जलापु क्यों डाब रहे
हो ? अरे मूर्ख ! स्वयं अपने ही धनको जला डालनेवाले प्रतिके
समान फिर तुम कहाँ जाकर रहोगे ? ॥ २७ ॥

चन्द्रमाके प्रति उक्तिः— हे चन्द्रमा ! यदि तुम उर
भूगनयनाके मुखकी सुन्दरता पाना चाहते हो तो एक बार
फिर समुद्रमें दुबकी लगामो और अपना कलत्र यो डालो,

नो चेत्त्वं क्व तन्या सुखं क्व ॥ १ ॥ किं रे विषो मृग-
दृशां सुखमद्विनीयं राजीव दृष्यसि दृग्मुजमन्यदेव ।
भङ्गास्माचहसि वृद्धतनुर्न तादृजमपि चिद् न पुन-
रोदृशमीक्षणीयम् ॥ २ ॥ चण्डीशचूडामरणं चन्द्र-
लोकतमोपह । विरहिमाणहरणं कदर्यथं न मां वृथा
॥ ३ ॥ तारापते कुमुदिनीमनुकूलमन्तां पादेन पीड-
यसि कम्पयसि द्विजातीन् । विद्वेषमाचरसि किं च
वियोगिलोके नक्तञ्चरस्य भवतः कर्षणा कुतः स्यात्
॥ ४ ॥ द्विजराज इति भ्रान्त्या पादस्पर्शं तव व्यधाम् ।
हतोऽस्मि वत चाण्डालप्रसङ्गादिव सर्वथा ॥ ५ ॥
मियविरहमहोष्मामर्मरामङ्गलेखामपि दृढक हिमांशो
मा स्पृश क्रीडयापि । इह हि तय लुप्तः शोषपीडां
भजन्ते दरजरटमुणालीकाण्डमुग्धा मयूखाः ॥ ६ ॥
मुग्धस्य ते वद धिष्णुद किं वदामि किं त्यक्तयानसि
मुखे पतितं शशाङ्कम् । अस्यार्द्रनिम्बगलितेन सुधा-

रमेन सन्धानमेति तव किं न जरत्कण्ठः ॥ ७ ॥
यत्वं हन्त कलङ्कितो मलिनतापात्रं प्रदोषे तथा रक्तः
चोडसहोदरः शिवशिरोधार्योऽपि वनो विषो । तहो-
पाकरतोचितैव भवतो युक्तं च मादृग्घोगो गित्तं
वत किन्तु हा द्विजपतिव्यं त्रैलं दुःसहम् ॥ ८ ॥
सन्तापय चिरं चन्द्र न तत्र प्रनिषिध्यमे । नियारय
करस्पर्शं रामस्याहं परिग्रहः ॥ ९ ॥ सुतिर्दुग्धस-
मुद्रतो भगवतः श्रीक्रीम्तुर्भो सोदरो लीहार्द्रं कुमु-
दाकरेण किरणाः पीयूषधाराकिरः । स्पर्धां ते वदना-
भ्युजैर्मुग्धदृशां तस्पाणुचूडामणेषु हंहो चन्द्र कथं तु
सिञ्चसि मयि ज्वालामुचो रोषिणः ॥ १० ॥

रोहिणी प्रत्युक्ति — भो रोहिणी त्वमसि रात्रिचरस्य
भार्याथैनत्रिवारय पतिं सखि दुर्नियारम् । जालान्त-
रेण मम सन्ननि सन्निधिष्टः श्रोणीतटं स्पृशति किं कुल-
धर्मं पयः ॥ १ ॥

फिर अपने निर्मल रूपमें पारिजातके फूलोंकी गन्ध बसाओ ।
यदि इतना न करोगे तो तुम्हीं बताओ कि कहीं वसकर मुँह
ओर कहीं तुम ? ॥ १ ॥ अरे चन्द्रमा ! मृगनयनी नवेलियोंका
मुख कुद्द निराळा ही होता है । अरे कमल । वे कमलनयन
कुद्द और ही होते हैं, अरे मंरि ! तू गुजार अवश्य करता है
पर तेरा शरीर वैया कहीं है ! धिक्कार है तुम सबके कापोंको !
यह सब तो देखना भी नहीं चाहिए ॥१॥ हे शङ्करके मस्तकके
भूषण ! संसारका अँधेरा दूर करनेवाले तथा वियोगियोंके
प्राण हरनेवाले चन्द्रमा ! मुझे व्यर्थ ही क्यों सता रहे हो ॥३॥
हे तारोंके स्वामी चन्द्रमा ! तुम अपने वगमें रदनेवाली प्यारी
कुमुदिनीपर पाद (किरण, पैर) प्रहार करके उसे कूट दे रहे हो,
द्विजातियों (पत्तियों, माइयाँ) को रँधपाए डाल रहे हो और
वियोगियोंसे बाह रखते हो । ठीक है, तुम नवतार (रात्रिमें
चलनेवाले, राक्षस) टहरे, तुममें भला दया कहीं ! ॥ ४ ॥
हे चन्द्रमा ! तुम द्विजराज (माइयाँ) हो इस घोषमें भिने
तुम्हारा पाद (पैर, किरण) स्पर्श कर लिया किन्तु वह तो
वैया कण्टापी हो गया मानो किसी चाण्डालसे सयोग हो
गया हो ? ॥५॥ हे नीच चन्द्रमा ! मियतमके विरहरूपी आगके
तापसे सृष्टे हुए इस शरीरको लेखके बराने भी न दूना ।
देखते नहीं, इस शरीरमें जोउठे हुए आघ पके कमल-नालके
ढुकड़ोंकी भाँति सुन्दर तुम्हारी किरणें भी सुखसी आ रही हैं
॥६॥ हे राहु ! तुम यहें मूर्य हो । मैं तुमसे क्या कहूँ । सुयमं

आपके हुए इस चन्द्रमाको भला तुमने छोड़ क्यों दिया ? इसके
गले शरीरसे टपकते हुए अमृतसे क्या तुम्हारा धड़ तुमसे न
जुट जाता ? ॥ ७ ॥ हे चन्द्रमा ? तुम जो कलड़ी हो सो ठीक
ही है क्योंकि तुम मलिनताके भण्डार हो । प्रदोष (बदे बदे
दोषों, रात्रिके प्रथम प्रहर) में रक्त (अतुरक, जाल) हो वह
भी ठीक है क्योंकि तुम विषके सगे भाई हो । शिवजीने तुम्हें
सिरपर धारण कर लिया फिर भी तुम डटे हो अतः तुम्हारा
दोषाकर (दोषोंका भण्डार, रात्रिको बनानेवाला) होना और
मुग्ध जैसे लोगोंको मारनेका उपाय करना भी ठीक ही है
किन्तु हाय ! केवल यही नहीं सहा जाता कि तुम द्विजपति
(माइयाँ) बने हुए हो ॥ ८ ॥ रामचन्द्रजीके वियोगमें सीता
चन्द्रमासे कह रही हैं — 'हे चन्द्र ! तू मली भाँति मुझे तथा
डाल, मैं तुम्हें रोक्ती नहीं, किन्तु अपने कर (किरण, हाथ)
से मुझे घुना मत, क्योंकि मैं रामकी पत्नी हूँ अर्थात्
पतिव्रता हूँ' ॥ ९ ॥ हे चन्द्रमा ! तुम पीरसागरसे तो
जन्मे हो, लघुभी तथा कोस्तुममणिके भाई हो, कुमुदोंके मित्र
हो, तुम्हारी किरणें अमृतकी पार बरसानेवाली हैं, मृगनयनी
नवेलियोंके मुखकमलसे तुम्हारी बराबरी की जाती है और तुम
शिवजीके मस्तकके भूषण हो फिर कैसे इन चपकती हुई
किरणोंसे मुझे जलाए डाल रहे हो ? ॥१०॥

रोहिणीके प्रति उक्ति : हे सखी रोहिणी ! तुम
रात्रिचर (राक्षस, चन्द्रमा) की पत्नी हो इसलिये अपने

पवनं प्रत्युक्तय — उन्मीलनमुकुलकरालकुन्दकोशप्र-
च्योतदधनमकरन्दगन्धवन्धो । तामोपप्रचलविलोचनां
नताङ्गीमालिङ्गनपवन मम स्पृशाङ्गमङ्गम् ॥ १ ॥ व्याधूय
यद्गदनमस्पृजलोचनाया चन्द्रोजयोः कनककुम्भधिला-
समाजोः । आलिङ्गसि प्रसभमङ्गमशेषमस्या धन्यस्त्व-
मेव मलयचलगन्धवाह ॥ २ ॥

मेघं प्रत्युक्तय — मलयमरुतां प्राता याता धिकासि-
तमल्लिका परिमलभरो भद्रो ग्रीष्मस्त्वमुत्सहसे यदि ।
घन घटयितुं तं निःश्रेहं य एव निवर्तने प्रभवति गवां
किं नश्लिङ्गं स एव धनञ्जयः ॥ १ ॥ भो मेघ गम्भीर-
तरं नद त्वं तव प्रसादात्स्मरपीडितं मे । संस्पर्शरोमा-
ञ्चितजातरागं कदम्बपुष्पत्वमुपेतु गात्रम् ॥ २ ॥
अमय जलदानम्भोगर्भान्प्रमोहय चातकान्कलय
शिखिनः केकोत्कण्टाङ्कटोरय केतकान् । विरहिणि

श्रत्यन्त दीठ पतिको समझा दो कि यह भरोखोंसे हमारे घरमें
घुसकर हमारे नितम्ब न छूया करे । तुम्हीं बताओ, क्या उँचे
कुलवालोंकी यही करनी होती है ? ॥ १ ॥

पवनके प्रति उक्तियाँ : हे पवन ! लिली हुई
कलियोंसे भरे हुए कुन्दके गुच्छोंसे निकलते हुए घने रसकी
सुगन्ध लेकर पहले तनिक चञ्चल नेत्रवाली तथा झुके हुए
अङ्गवाली उस नवेलीकी छूकर फिर हमारे अङ्गोंको छू तो जाओ
॥ १ ॥ हे मलयचलसे आए हुए पवन ! उस कमलमयनी
नवेलीके सोनेके चंद्रांके समान स्तनोंपरसे वषट्कार तुम
जो उसके सारे शरीरका आलिङ्गन कर रहे हो इसलिये तुम्हीं
धन्य हो ॥ २ ॥

मेघके प्रति उक्तियाँ : हे बादल ! मल्लिकाको
खिलानेवाले मलय पर्वतके पवन और फूलोंकी गन्धसे भरी
गरमी, ये सब समाप्त हो गए । ऐसे समयमें उस स्नेहहीन
नियतमकी मुझसे तुम्हीं मिला सकते हो । मैं तुम्हें ही सबसे
बड़ा सहायक मानूँगी क्योंकि विराट् नगरमें हरी हुई गौश्रांकों
जो लौटा जावे, वही अर्जुन है । इसमें मेरी हानि क्या होती है
॥ १ ॥ हे बादल ! तुम भरपेट गरजो जिससे कामदेवसे
पीड़ा पाया हुआ मेरा शरीर तुम्हारी छत्रपत्ते नवेलीके स्पर्शसे
रोमाञ्चित होकर राग (खलाई, अतुराग) से भरकर कदम्बका
फूल बन जाय ॥ २ ॥ हे मेघ ! जलसे भरे हुए अपने
डुङ्गी बादलोंको चारों घोर घेर लो, चातकोंको प्रसन्न कर
दो, मोतोंकी शोजनेके लिये ढकसा दो तथा केवदको खिला

जने मूच्छ्यां लब्ध्वा विनोदयति व्यथामकरण पुनः
संज्ञाव्याधि विधाय किमीहसे ॥ ३ ॥

अशोकं प्रत्युक्तयः — रक्तस्त्वं नवपल्लवैरहमपि श्लाघ्यैः
प्रियाया गुरौस्त्वामाथान्ति शिलोमुखा स्मरघनुर्मुका
स्तथा मामपि । कान्तापादतलाहृतस्तव मुदे तद्रम
माप्यावयोस्त्वर्वं तुल्यमशोक केवलमहं धात्रा सशोकः
कृतः ॥ १ ॥ रक्ताशोक कृशोदरी क तु गता त्यक्त्वा-
नुरक्तं जनं नो दृष्टेति मुधैव चालयसि किं वातायतं
शिरः । उत्कण्ठाघटमानपट्टघटासङ्घट्टदण्डदण्डदस्त
त्पादाहतिमन्तरेण भवतः पुष्पोद्गमोऽयं कृतः ॥ २ ॥

तमालं प्रत्युक्तयः — धन्यस्त्वमसि तमाल स्पृष्ट-
स्तन्वया लतावदनया यत् । अथ स्थावरजन्मा जात-
स्त्वं जङ्गमाधिकः ॥ १ ॥

मृषालहारं प्रत्युक्ति — परिच्युतस्ताकुचकुम्भ-

दो, इसमें मेरी हानि नहीं किन्तु विरही लोग जब मूर्च्छित
होकर अपनी विरह-वेदनाका समय बिता रहे हैं ऐसे समयमें
हे निर्दयी ! तुम उन्हें अपनी गर्जनासे जगा-जगाकर उनकी स्था-
वशा करना चाहते हो ? ॥ ३ ॥

अशोकके प्रति उक्तियाँ : हे अशोक ! तुम नयेने
पत्तोंसे रक्त (लाल) हो, मैं भी बड़ाई करने योग्य पत्तोंके
गुणोंमें रक्त (रीमा हुआ) हूँ, तुमपर शिलोमुख (मीरे)
मैंडरा रहे है, मुझपर भी कामदेवके धनुपसे निकले हुए शिलोमुख
(बाण) बरस रहे हैं, नवेलीके पैरकी चोटसे तुम्हें भी
प्रसन्नता होती है, मुझे भी । अतः, हम तुम सब प्रकारसे
समान हैं । किन्तु भेद इतना ही है कि तुम अशोक
(शोकरहित) हो तथा मुझे मल्लामे सशोक (शोकरहित)
बना रखा है ॥ १ ॥ हे लाल अशोक ! मुझे प्रेममें भरा छोड़कर
बहु दुखसे शरीरवाली प्यारी कहीं चली गई ? बाणके सारे
व्यर्थ ही अपना सिर हिला-हिलाकर क्या कह रहे हो कि मैंने नहीं
देखा । यदि यही बात है तो बताओ कि बिना उसकी बात
खाए तुममें ये फूल कैसे निकल आए, जिनपर बड़े प्रेमसे मैंने
आ-आकर मैंडरा रहे है ? ॥ २ ॥

तमालके प्रति उक्ति : हे तमाल पृथ ! तुम पवन
हो क्योंकि लताके समान उस नवेलीने तुम्हें छू तो
खिला । आज स्थावर (जड़) होते हुए भी तुम वन्य
(चलने फिरनेवाले, वाएडाल) से भी बड़ गए ॥ १ ॥

कमलकी उदटलके द्वारके प्रति उक्ति : हे सृष्टाके

ध्यात्किं शोभमायासि मृषालहार । न सूक्ष्मतन्तोरपि
तावकस्य तत्रावकाशो भवतः किमु स्यात् ॥ १ ॥

मधुकरं प्रत्युक्तय — उन्मोत्तन्नयनान्तकान्तिहरीनि-
पीतयोः केवलाद्रामोद्रादृषधारणीयधुपोः कान्तासखे
न क्षणम् । यत्कण्ठोत्पलयोः स्थितेन भवता किञ्चित्प-
मुद्गुञ्जितं भ्रातस्तिष्ठति कुत्र तत्कथम मे कान्तं
प्रियाया मुसम् ॥ १ ॥ चलापाङ्गं द्रष्टिं स्पृशसि वृष्ट्यो
शेषधुमतीं रहस्याख्यायीव न्वनसि मृदु कर्णांतिरु-
चरः । करौ व्याधुच्यत्याः पिवसि रतिस्वर्वस्वमधरं
वयं तत्त्वान्चेपाङ्गमधुकर हतास्यं खलु कृती ॥ २ ॥
भ्रातद्विरेफ भवता भ्रमता समन्तात्प्राणाधिका प्रिय-
तमा मम योचिता किम् । ध्रुपे किमोमिति सखे कथ-
याशु तन्मे किं किं व्ययस्यति कुतोऽस्ति च फीटशोयम्
॥ ३ ॥ वदनमिदं न सरोजं नयने नेन्द्रीपरे ह्येति । इह
सखिषे मुग्धदृशो मधुकर न मुषा परिधाम्य ॥ ४ ॥

हंसं प्रत्युक्ति — हंस प्रयच्छ मे कान्तां गतिरभ्या-
स्त्वया हता । विमायिवैकदेशेन देयं यत्रमियु-
ज्यते ॥ १ ॥

चकोरं प्रत्युक्ति — चुलुकयसि चन्द्रदीधितिमविरल-
मन्नासि नूनमङ्गारार । अधिपरणमुत्पन्नयोः
किमिह चकोरावधारयसि ॥ १ ॥

उत्पन्नार प्रत्युक्ति — स्नेहं स्वीकुरु कृष्णसार कथय
क्वागान्मम प्रेयसी नो जानासि यदावयोः समजनि
व्यापारतो मित्रता । स्फीते यत्किञ्चल मण्डले हिमरुचे-
जातं त्वया लाञ्छनं भव्ये भास्करमण्डले तद्युवा
दत्तः कलङ्को मया ॥ १ ॥

सारङ्गं प्रत्युक्ति — रे सारङ्गा वनवसतयस्वत्वमा-
र्यात् यूयं कुञ्जाद्योतं त्रिमुपनमनोहारि चाञ्जल्य-
मव्योः । श्रां जानीमो गमनसमये हन्त कान्तारसीम-
न्येकाकिन्याः कुचलयदृशो लुपिष्ठता यौवनश्रीः ॥ १ ॥

हार । उस नवेलीके स्तनोंके पीचते गिरकर मुझे क्यों जा रहे हो ?
तुम्हारे पतले-पतले रेशोंके खिमे भी वहाँ स्थान नहीं मिल
सकता, तुम्हारी वो बात ही क्या है ! ॥ १ ॥

भौरके प्रति उक्तिर्याः तिरङ्गी चित्तन चलाते हुए,
नयनोंकी काली कान्तिकी तरङ्गोंसे ढके हुए, सुगन्धिमात्रये
निवासस्थानका निश्चय करानेवाले, उस नवेलीके कानोंपर
पहने हुए कमलोंपर बसनेवाले तथा उस प्यारीका साथ
न छोड़नेवाले हे भौर ! तुम्हारे गुनगुनानेसे जान पड़ता
है कि तुम उसका समाचार जानते हो । अतः हे माई ! तनिक
बताओ वो सही कि मेरी प्यारीका सुन्दर मुग्धा कहाँ है ॥ १ ॥

हे भौर ! तुम सचमुच बड़े माग्यवान् हो, क्योंकि इस
चञ्चल तथा कैंपती हुई चित्तवन्वाली नवेलीको बार-बार
पूते जा रहे हो, उसके कानोंके पास जाकर घोंरे घोंरे ऐसे
गुनगुना रहे हो मानो उसे कोई बड़ी भेद-भरी बात
सुनाना चाहते हो और बार-बार उसके हाथोंके थपेड़े
पारकर भी तुम उसके रसिले अधर पीते जा रहे हो । हम
तो तबकी खोज करते रह गए अर्थात् हम तब-बोध ही
हुषा और न सुन्दरी नवेलीका उपभोग ही मित्र
पाया ॥ २ ॥ हे माई भौर ! चारों ओर पूमते समय
कल्पने कहीं मेरी प्राणप्यारीको देना है ? क्या आप गुन-
गुनाकर 'हाँ' कह रहे हैं ? तो मित्र ! मुझे शीघ्र बताइए
कि यह कहाँ है, क्या कर रही है और कैसे है ? ॥ ३ ॥

हे भौर ! यह नवेलीका सुँह है, कमल नहीं और ये नेत्र
हैं, नीले कमल नहीं हैं अतः इस सुनयनोंके आस पास
क्यों खर्य चकर लगाए जा रहे हो ! ॥ ४ ॥

हंसके प्रति उक्ति : हे हंस ! तुम्हारी खालसे रूढ़ है कि
तुमने उस नवेलीकी चाल खुराई है, इससे जान पड़ता है कि
उसे भी तुम्होंने खुराया होगा । उसकी चोरीका अपराध तुम्हारे
लगाया गया है इसलिये मुझे मेरी प्यारी लौटा दो ॥ १ ॥

चकोरके प्रति उक्ति : हे चकोर ! तुम अहारे भी
खा जाते हो और चन्द्रमाछा किरणें भी पी जाते हो तो
क्या तुमने यही समझ लिया है कि दोनोंके आचार उल्टे
हैं ॥ १ ॥

काले हरिणके प्रति उक्ति : सीताके विद्योहते दुखी
सूर्यवंशी रामचन्द्र कहते हैं—'हे काले मृग ! तुम मेरा प्रेम
स्वीकार करके यह बतानो कि मेरी प्यारी कहाँ गई ? तुम
यह नहीं जानते कि मेरे तुम्हारे व्यवहार एक-से हैं अतः हम
दोनों मित्र हैं । विशाल चन्द्रमण्डलमें तुमने कलङ्क लगाया
और निर्मल सूर्यमण्डल (सूर्यवंश) में मैंने ॥ १ ॥

मुग्गके प्रति उक्ति : वनमें रहनेवाले हे हरिण ! सच
कहो कि तीनों लोकोंके मन हरनेवाली यह नेत्रोंकी
चञ्चलता तुमने कहाँ पाई ? हाँ, अब समझमें आया कि
जब वह कमलजननी जङ्गलमें श्रेकोली भटक रही थी तभी
तुम लोगोंने उसके यौवनकी सुन्दरता लूटी होगी ॥ १ ॥

मयूरविषयकोक्तिः—मृदुपवनविभिन्नो मत्प्रियाया
विनाशाद्घनचरिचकलापो निःसपत्नोऽथ जातः । रति-
धिगलितघन्ये केशपाशे सुकेश्याः सति कुसुमसनाये
किं हरेदेष वर्धः ॥ १ ॥

मुक्ताकलाप प्रत्युक्तिः—सूचीमुखेन सखदेव कृतप्र-
णस्त्वं मुक्ताकलाप लुटसि स्तनयोः प्रियायाः । बाणैः
स्मरस्य शतशो घिनिकृतमर्मां स्वमेऽपि तां कथमहं न
विलोकयामि ॥ १ ॥

अभिसारिकासञ्चारकथनम्—अग्रे धनुश्शरकरः स्वय-
मस्ति कामः पश्चात्स्वरा शशधरोदयसंशयोन्था ।
ध्वान्तं दिनान्तयिकसद्विभवं समन्तार्किकं केवला
पथि चधूर्दयिताभिसारे ॥ १ ॥ अधियामिनि गजगा-
मिनि कामिनि सौदामिनीच यं प्रजसि । जलदेनेव न
जाने कति कति सुकृतानि तेन विहितानि ॥ २ ॥
अभिसारणरसः कृशाङ्गयष्टेरयमपरत्र न वीक्षितः

मोरके विषयमें उक्तिः आज प्यारीके न रहनेपर
धीमे पवनसे हिलते हुए मोरके घने सुन्दर बालों (पूँछ)
का कोई बैरी नहीं रह गया, पहले रतिके समय जब उस
सुन्दर केशवालीके बाल खुलकर बिखर जाते थे और
उनमें फूल खांस दिए जाते थे उस समय यह मोर
कैसे भाता था ? ॥ १ ॥

मोतीकी मालाके प्रति उक्तिः अरे मोती ! तुकीबी
सुईसे जो तुम एक बार बेचे गए थे उसकी पीढ़ा शान्त
करनेके लिये तो तुम प्यारीके स्तनोंपर खोदते रहते हो, भला
बताओ कि कामदेवके बाणोंसे सैकड़ों बार बेधा हुआ मैं
स्वप्नमें भी प्यारीको कैसे न देखूँ ? ॥ १ ॥

मियतमसे गुपचुप मिलनेका वर्णन : आगे तो
हाथमें धनुष-बाण लेकर त्वचं कामदेव खड़ा हुआ है, पीछेसे
शीघ्र ही चन्द्रमाके उदय हो जानेकी शङ्काके कारण उतावली
मची हुई है और दिनका अन्त हो जानेसे चारों ओर घने
अन्धकारका साघ्राज्य है । ऐसे समय यह क्या कोई नई बहू
है जो मियतमसे मिलने ला रही है ? ॥ १ ॥ हे हाथीके समान
चाखवाली कामिनी ! रातमें बिजलीके समान चमकती हुई
तुम जिस बादलके समान प्यारके पास जा रही हो,
उसेने पिछले जन्ममें न जाने क्या-क्या पुण्य कर्म किए
होंगे ॥ १ ॥ इस दुबले अज्ञांवाली नवेलीका पतिले गुपचुप
मिलनेमें कैसा चाब है वैसा नतो कहीं देखा गया, न

श्रुतो वा । अहिमपि यदियं निरासनाद्भ्रमिभिदि-
तन्पुमात्मनीनवुद्ध्या ॥ ३ ॥ उत्संसः केकिपिचैर्मर
कतवल्लयैश्शमामले दोःप्रकारेड हारः सान्द्रेन्द्रनीलै-
र्मृगमदरचितो वक्रपत्रप्रपञ्चः । नीलाञ्जैः शेषरधीः-
सितवसनता चेत्यभोकाभिसारे सम्प्रत्येखेनशातां
तिमिरभरसखी वर्तते वेपलीला ॥ ४ ॥ फवप्रस्थितासि
करभोद घने निशीथे प्राणाधिपो वसति यत्र मनःमिपो
मे । एकाकिनी वद कथं न विभेपि वाते नन्वलि
पुङ्खितशरो मदनः सहायः ॥ ५ ॥ गर्ज वा वर्प वा मेघ
मुञ्च वा शतशोऽशनिम् । न शक्या हि लिखो रोदु
प्रस्थिता दयितं प्रति ॥ ६ ॥ चन्द्रोदये चन्दमङ्गकेषु
विहृत्स्य विन्यस्य विनिर्गतायाः । मनो निहन्तु मर
नोऽपि यागान्करेण कोन्दान्धिमराभ्यभूव ॥ ७ ॥
जनो दुर्धञ्चपोऽयं कुलममलिं धर्मं विपमं पतिरिद्ध
द्रान्वेपी प्रणयिवचनं दुष्परिहरम् । अतः काचित्तयो

सुना हो गया क्योंकि नूपुरमें लिपटे हुए सारंगको भी इधने
अपना नूपुर ही समझकर घेरते झटक दिया ॥ १ ॥
मियतमसे गुपचुप मिलनेको चली हुई शृगानयनी नवेलीको
मोरपङ्के कुण्डल, मरकत मणि जड़े कर्णोंसे सौंभली सुनौप,
इन्द्रनील मखिका हार, सुँहपर कस्तूरीकी चित्रकारी, नौके
कमलोंसे सजा मुकुट तथा काली घोती यह सब उनका वेप
माणे श्रीधरेकी सखी बन रहा है ॥ ४ ॥ हे हाथीकी पूँके
समान डलुवाँ जीववाली ! इस श्रीधरी आधी रातमें तुम इहाँ
चली ? नवेली : जहाँ हमारे मिय पाणनाथ रहते हैं । सखी :
हे बाले ! कहो तो, तुम अकेली डरती नहीं ? नवेली : धनुषपर
बाण चढ़ाए हुए कामदेव हमारे साथ ही हैं, फिर श
कैसा ! ॥ ५ ॥ हे बादल ! तुम चाहे गरजो वादे बरसो चाहे
सैकड़ों ब्रह्म छोड़ो किन्तु अपने मियतमसे मिलनेको चली हुई
नवेलियोंको कोई नहीं रोक सकता ॥ ६ ॥ चन्द्रमाका उदय
होनेपर अभिसारिका जब हँसकर अपने शरीरमें चन्दन पीतल
निकली उस समय कामदेवने भी उसका मन बेचनेके लिये
अपने हाथोंमें खिले हुए कुन्दके फूल-रूपी बाण धारण कर
लिए ॥ ७ ॥ गुपचुप अपने प्रेमीसे रति करनेके लिये सहे
किए हुए स्थानपर जानेके लिये कोई पतले अज्ञांवाली नवेली
चली तो सही, किन्तु यही सोच-सोचकर वह बार-बार
घरसे निकलती और घुस जाती थी कि घरके जोगोंको
चकमा देकर निकल जाना देदी खीर है, मार्ग बड़ा कठिन,

गनिविहितसङ्केतगतये गृहद्वारं धारं निरस्मरदध
 प्राविशदध ॥ ८ ॥ जलधर निर्लज्जस्यं यन्मां दयितस्य
 वेष्टम गच्छन्तीम् । स्नानितेन भीपयित्वा धाराहन्तैः
 पगामृशमि ॥ ११ ॥ जाताः प्रासादपाली रजस्वलयभिन्ना-
 न्यन्तमाग्निभ्यस्त्रीपच्छ्रायाविच्छद्वर्तुच्छ्रीकृतविरलतमा
 ये निशीयान्धनागः । तेऽभी स्फागीनियन्ते प्रतिवि-
 शिपमितः कान्तसङ्केतधावङ्गामभ्रमुकनेनोत्पलनरल-
 तन्तारकामेचमिन्ना ॥ १० ॥ तमः शान्तं शान्त्यव्य-
 मुदित पधेन्दुरुडियान्मया गम्यं तत्र मियसति स
 यत्र मियतमः । गृहप्रादोत्सङ्गे शनमिव युगानां गत-
 महो निशा चेत्यं म्यादयि कथय धो सृत्सुरपरः
 ॥ ११ ॥ न जल्प दशनन्धिया भवति ते तमिन्नक्षति-
 स्तरङ्गय दगञ्जलं भवतु तेन गार्दं तमः । श्रपीह सयि
 साध्वसं पथि जटोहि निक्षोभते स्मरं समदसिन्धुरं
 समधिच्छय निर्गच्छसि ॥ १२ ॥ नयस्य पारं पुलिनद्व-
 यानुगां नरङ्गडोलामधिरौथ्य मामितः । प्रसोद यावध

निशा प्रदीयते यशांसि ते गायतु पांमुलाजनः ॥ १३ ॥
 प्राणेशमभिसरन्तीं पथि स्थलन्ती सुपिच्छिन्ने मुग्धा ।
 श्रयलयन्ताय चागं धारामु नर प्रमाग्यति ॥ १४ ॥
 मस्यं निघेदि चरणीं परिघेदि चासो नीलं पिघेदि
 यन्थावलिमञ्जलेन । मा जल्प साहनिनि शरदन्त्र-
 कान्तदन्तांशुमस्तय तत्रांसि ममापयन्ति ॥ १५ ॥
 मलयजरसविलिततनधां नरद्वारलनाधिभूयिता मिन-
 तरदन्तपत्रकृतयक्रुचया रुचिरामलांशुना । शृशृशुनि
 विततधात्रि धवलयनि धगामिमाव्यतां गनाः मिय-
 वसति प्रयान्ति सुखमेव निरग्नभियोऽमिमागिका-
 ॥ १६ ॥ मल्लिनाचितधमिन्नाश्वारचन्दनचयिना ।
 अधिमाव्याः सुख यान्ति चन्द्रिकान्वभिसारिकाः
 ॥ १७ ॥ मल्लिनामात्यमारिष्यः सर्गाङ्गीषार्द्रचन्दनाः ।
 सोमवत्यो न लघ्नन्ते ज्योत्स्नायामभिसारिका ॥ १८ ॥
 सुकं मांकिक्त्राम हेमवलयश्रेणी समुत्सारिता धालो
 नीलमुरीकृतं नियमितो मञ्जीरकोलाहलः । गच्छुन्त्या

देवा देवा श्रीर कर्णमे भरा है, पति सदा मीनमेव
 निक्वाला करते है श्रीर प्यारेकी बात भी छोटी नहीं जाती'
 ॥ ८ ॥ हे बादल ! तुम बड़े ही निर्लज्ज हो क्योंकि प्रियतमके
 घर जाती हुई मुझे अपने गर्ननेसे दूरा दराकर जलधारारूपी
 हाथमे छू रहे हो ॥ ११ ॥ घरके छनपर धनी हुई सोनेकी कोठीमें
 रक्मे हुए मणिकी दीपकोंका फैलती हुई चमकसे आधी रातके
 समय जो शँधेरा हलका सा जान पड़ रहा था वही इस समय
 पनिमे मिलनेके लिये गली-गलीमें दौडतो हुई नवेलियाँकी
 आँसोंकी काली पुतलियाँकी चमकसे गहरा होता जा रहा है
 ॥ १० ॥ शँधेरा मिट रहा हो तो मिटे, चन्द्रमा निकल आया हो
 तो निकल आये किन्तु हे प्यारी सखी ! मैं तो वहाँ अवरय लाऊँगी
 जहाँ प्यार बैठे हैं क्योंकि घररूपी घडियाकी गोदमें बैठे बैठे
 यह रात सैकड़ों युगोंके समान लम्बी बीत रही है । यदि पैमा
 ही होता रहा तो कहे, मृत्यु नामकी दूसरी क्या वस्तु है ?
 अर्थात् इस प्रकार तो मृत्युमे भी अधिक कष्ट हो रहा है ॥ ११ ॥
 हे सखी ! बोलो मत, क्योंकि तुम्हारे दोँसोंकी चमकमे शँधेरा
 दूर रहा है, तनिक अपनी काली पुतलीको मटक दो तो
 इससे शँधेरा घना हो जाय और ऊँचे-नीचे मार्गमें गिरनेका
 भय यहाँ छोड़ दो क्योंकि तुम तो कामदेवरूपी मतवाले
 धार्मीपर बैठकर चले रही हो न ॥ १२ ॥ हे भाई ! प्रसन्न हो जा,
 रात बीतनेसे पहले ही मुझे इस सहाररूपी दोषेपर बैठाकर

उस पार पहुँचा दे, ध्यमिचारिणी नवेलियाँ तेरा बहुत गुण
 गावेंगी ॥ १३ ॥ अपने प्राणनायके पास जाती हुई सोजी भाली
 अभिसारिका पिमलन-भरे मार्गमें जगपिसलकर गिरने लगी तो
 सहारा पानेके लिये गिरती हुई जलकी धाराकी ओर हाथ बटा
 रही है ॥ १४ ॥ हे साहस करनेवाली ! धीरे धीरे पैर रक्ते, नीले
 रङ्गकी साड़ी पहन लो, आँचलसे चूड़ियाँ दकलो तथा बोला मत,
 क्योंकि शरद् भक्तके चन्द्रमाकी भीति सुन्दर तुम्हारे दोँसोंकी
 किरणों अन्धकारकी मिटाए डाल रही है ॥ १५ ॥ जब चन्द्रमा
 अपनी चौदनी बिखेरकर सारे भूमण्डलको उजला किए दे
 रहा था उस समय अपनी देहमें चन्द्रका लेप किए, मोनाके
 हारोंमे शरीर सजाए, कपोलीपर हाथीदोँतके बने कनपूत्र
 लटकाए तथा उजली साधियाँ पहने हुए अभिसारिकाएँ
 किसीको न दिखाई देनेके कारण सुकमे अपने अपने त्रियतमोंके
 घर चली जा रही है ॥ १६ ॥ अपने शरीरमें चन्द्रका लेप
 किए हुए अभिसारिकाएँ बालोंको वेलेके फूलोंसे सजाकर
 चौदनी रानोंमें भी किसीको न दिखाई देती हुई बैसटके चली
 जा रही है ॥ १७ ॥ बेलेकी माळा पहने हुए, सारे शरीरमें
 चन्द्रका लेप किए हुए तथा उजले रेशमी वस्त्र पहने हुए
 अभिसारिकाएँ चौदनीमें भी दिखाई नहीं पड़ती ॥ १८ ॥ हे
 हक्के शरारवाली ! तुमने मोतीकी माळा उतार दी, मानके
 कड़े हाथसे निक्वाल दिए, नाली साड़ी पहन

स्तथ साहस न सहते तन्वद्भिः सङ्गोपनं धम्मिल्लच्यु-
 तमल्लिकापरिमलप्रौढो निशीथानिल ॥ १६ ॥ मूढे
 निरन्तरपयोधरया मयैव कान्त सहाभिरमते यदि
 किं तवात्र । मा गजितैरिति मुहुविनिवारयन्ती मार्गं
 ऋण्णि कुपितेव निशा सपत्नी ॥ २० ॥ मूर्तिनांलडुकू-
 लिनीं मृगमदै प्रत्यङ्गपत्रक्रिया बाहू मेचकरत्नरङ्गण
 भृतो कण्ठेऽभ्युसारावली । व्यालम्बालकमञ्जरीकम-
 लिक कान्ताभिसारोत्सवे यत्सत्य तमसा मृगात्ति
 विहित वेपे तवाचार्यकम् ॥ २१ ॥ मेधा वर्पन्तु गर्जन्तु
 मुञ्चन्वशनिमेव वा । गण्यन्ति न श्रोतोप्य रमशाभि
 मुखा स्त्रिय ॥ २२ ॥ यदि गर्जति धारिधरो गर्जतु
 तन्नाम निष्ठुरा पुरुषा । अयि विद्युत्प्रमदाना त्वमपि
 च तु ख न जानासि ॥ २३ ॥ यद्दहदहत्याहेतोर्मृषा
 वदसि शक्र गौतमोऽस्मीति । तद्भ्रममापि तु ख निर-
 वेद्य निवार्यता जलदः ॥ २४ ॥ रभसादभिसर्तुमुच

तानां वनितानां सखि धारिदो धिवस्वान् । रजनी
 दिवसोऽन्धकारमर्चिधिपिनं धेसम विमार्ग एव मार्गं
 । २५ ॥ वातोदधूतमुखी प्रनष्टतिलका तोयाद्ग्लोना
 शुका मेघाना गिनदेन भीतहृदया गत्वा प्रियस्थाल
 यम् । द्वार नेच्छति लज्जया प्रलपितु देहीति वर्णहता
 पादौ नूपुरकर्मप्रतिहती सशब्दयन्ती स्थिता ॥ २६ ॥
 सञ्चरन्ति मृगनाभिचर्चिता मेचकाभ्रकृतावगु
 ण्ठना । प्राणनाथमभिसन्तमुद्यता सुभ्रुवस्तिमिरदेवता
 इव ॥ २७ ॥ स्फुरदुरसिजभारभङ्गुराङ्गी किसलयकोम-
 लान्तिना पदेन । अथ कथय कथ सहेत गन्तु यदि
 न निशासु अनोरथो रथः स्यात् ॥ २८ ॥ हृदये दधि
 तेन हृते वपुषि सवेपथुनि पथि निरालम्बे । अथि
 कथय कथमनङ्ग प्रियशुद्धमभिसारिका नयसि ॥ २९ ॥

नायकमगवावस्थावर्णनम् - अभ्युन्नतस्तनयुगा तर-
 लायताङ्गी द्वारि स्थिता तदुपयानमहोत्सवाय ।

पायलोंकी रुन भुन भी वन्द कर दी, इस प्रकार साहस करके
 प्रियसे मिलनेके लिये तुम जा तो रही हो किन्तु तुम्हारे बालोंसे
 निरे हुए बेलके फलोंकी प्रबल शक्तिसे बसा हुआ यह आधी
 रातका पवन तुम्हारा सारा भेद खाले दे रहा है ॥ १६ ॥ 'हि
 मूर्ख ! मुझ उमड़े हुए बादलवाली (उठ हुए स्तनवाली) से ही
 यदि वह नायक सम्भोग करता है तो इससे तुम्हें क्या ?'
 ऐसी गर्जनासे मुझे बार बार राकती हुई क्रोधित सीतके समान
 यह रात मेरा मार्ग रोक रही है ॥ २० ॥ तुमने सारी देहमें
 काळा वस्त्र पहन लिया है, अर्ध अर्धपर कस्तूरीसे चित्रकारी
 कर ली है, हाथमें सविले रत्नके रत्न जड़े वस्त्र पहन लिए
 हैं, गलेमें नीलमकी माला धारण कर ली है तथा अत्यधिक
 लम्बे बालोंमें मञ्जरीयों खोस ली हैं । इस प्रकार है मृगनयनी ।
 प्रियतमसे गुणगुण मिलनेकी तुम्हारी इस वेप रचनाका कर्ता धर्मा
 अन्धकार ही है, यह बात सत्य जान पड़ती है ॥ २१ ॥ बादल
 चाहे गरजें, बरसें या वज्र गिरावें, किन्तु जब नवेलियाँ अपने
 प्रियतमसे मिलनेको फरार फस लेती हैं तब वे सर्वोर्गमी
 छुड़ नहीं समझती ॥ २२ ॥ यदि बादल गरजते हैं तो ठीक है,
 क्योंकि रिष्ट तो निष्ठुर होते ही हैं किन्तु अरी विजली ! क्या
 नूयी विद्ययांका तु ख नहीं समझती ? ॥ २३ ॥ हे इन्द्र ! जैसे
 अदहत्यासे मिलनेके लिये तुमने मूढ ही कह दिया था कि 'मैं
 ही प्रहारा पति गौतम हूँ' उसी प्रकार मेरे तु ख देखकर
 भी बादलोंको बरसने गरजनेसे रोक दीजिए ॥ २४ ॥ हे सखी !

शाप्रतासे पतिते पास जानेको तत्पर नवेलियोंके लिये मेघ ही
 सुख है, रात ही दिन है, अन्धकार ही प्रकाश है जङ्गल ही
 घर है तथा जहाँ मार्ग न हो वही मार्ग भी है ॥ २५ ॥
 बरसती पवनसे तिलक मिट जानेके कारण रूले मुँहवाला
 जलसे भीने वस्त्रोंवाली तथा बादलोंकी गडगडाहटसे डरे हुए
 हृदयवाली नवेली जब प्रियतमके घर पहुँची तो लाजके कारण
 यह तो न बोली कि 'द्वार खोलिए' वरन् बरसत हुए पानमें
 ही खड़ी-खड़ी कीचकले भरे पागलोंवाले पैर पटक पटककर
 आहट देने लगी ॥ २६ ॥ शँधेरी रातमें शरीरमें कस्तूरीका
 लेप लगाकर तथा काले वस्त्रोंसे शरीर ढककर प्राणवायुके
 पास जाती हुई सुन्दर भौंहवाली नवेलियाँ अन्धकारका
 देवता सी जान पड़ती हैं ॥ २७ ॥ बड़े-बड़े स्तनके बालसे
 ढकी हुई तथा नये पत्तोंके समान कोमल पैरोंवाली उस
 नवेलीके पास यदि प्रियतमसे मिलनेकी उल्ट दृष्ट्याकर
 रथ न होता तो भला यह कैसे चला पाती ! ॥ २८ ॥
 हे कामदेव ! जिस नवेलीका हृदय प्रियतमने पुरा लिया है
 और जिसकी देह काँप रही है, - उस प्रियतमसे गुणगुण
 मिलनेवाली नवेलीको तुम सुनसान मार्गसे कैसे लिए चले जा
 रहे हो ? ॥ २९ ॥

प्रियतमके आनेके समयका वर्णन : बड़े बड़े स्तन
 नेत्रोंवाली तथा ऊँचे ऊँचे दोनों स्तनोंवाली नवेली पतिते
 स्वागतपर उल्टसे लिये द्वारपर खड़ी होकर बिना परिधमके ही

मा पूर्णकुम्भनयनीरजतोरणस्रजसम्भारमङ्गलमयलङ्कृतं
धिघञ्ते ॥ १ ॥ आगच्छन्सूचितो येन येनानीतो गृहं
प्रति । प्रथमं सखि कः पूज्य किं कारुः किं क्रमेत्क
॥ २ ॥ आयतो दयितस्तथेति सहस्रान् अर्धघ्ने भाषितं
सद्यः सम्मुखतं गतेऽपि सुमुषी भ्रान्तिं निजां मन्यते ।
कण्ठाश्लेषिभुजेऽपि शून्यहृदया स्वभ्रान्तरं शङ्कते
प्रत्यावृत्तिमियं प्रियस्य कियता प्रत्येतु शतोदरी
॥३॥ द्वारोपान्तनिरन्तरे मयि तथा सौन्दर्यसारश्रिया
मोह्लास्योरुमुगं परस्परसमासक्तं समासादितम् ।
आनीतं पुरतः शिरोशुक्रमघः क्षित्ते चले लोचने वाय-
स्तद्य निधारितं प्रसरणं सङ्कोचिते द्रोहते ॥ ४ ॥
श्रुत्यायान्तं वहिः कान्तमसमाप्तविभूषया । भालेऽञ्जनं
दशोर्लाक्षा कपोले तिलकः कृतः ॥ ५ ॥ सञ्जितसरल
शरीरा क्षणे क्षणे मनसि किमपि गणयन्ती । उत्सव-
मिव सं दिवसं मनुते मुग्धा प्रियरामने ॥ ६ ॥

नायकागमने नायिका प्रति सखीवचनम्—अप्राङ्गसं
सर्गि तरङ्गितं दशोर्भुवोरालान्तविकासि घेल्लनम् ।

मङ्गल-कलश, नये कमलकी बन्दनवार और कमलके फूलोंकी
मालाकी शोभा बढ़ाए दे रही है ॥ १ ॥ हे सखी ! जिस कीपने
पतिके आनेकी सूचना ही वह पहले पूजाके योग्य है, था ऊँट
जो उन्हें घर ले आया ? ॥ २ ॥ 'तुम्हारा पति आ गया' यह
सुनकर भी वह सुन्दर मुखवाली नवेली एकाएक विश्वास नहीं
कर रही है, पतिके सामने आनेपर भी उसे भ्रम ही समझ रही
है, गलेमें आलिंगनके लिये हाथ पड़नेपर भी वह शून्य
हृदयवाली उसे मया सपना ही समझ रही है । बताइए वह
पतली कमरवाली नवेली प्रियतमके आनेकी बातपर भरोसा
करे तो कैसे करे ! ॥ ३ ॥ जैसे ही मैं द्वारके पास पहुँचा जैसे
ही सुन्दरनाकी सार-झिरी बह सुन्दरी भी आरसमें सठी हुई
और पिली हुई अपनी जीर्ण हिलाती बर्षा आ गई । उसने
धूँट काढ़ लिया, चञ्चल नेत्र नीचे कर लिए, बायीं रोक ली
और अपने लता जैसे कोमल हाथ भी सिंकीड लिए ॥ ४ ॥
कौड़ी नवेली अपना शङ्कर भ्रमी पूरा न कर पाई थी कि उसने
सुना बाहर प्रियतम आ गए हैं बस उसे ऐसी हृदयवी पढ़ी कि
उसने माथेपर अँगूठन, नेत्रोंमें महावर तथा गालपर तिलक
लगा दाला ॥ ५ ॥ सजघनकर बैठी हुई तथा मनमें कुछ
सौखीनी-विचारती हुई कौड़ी भोली भाळी नवेली प्रियतमके
आनेके दिनको टसके समान मान रही है ॥ ६ ॥

विसारि रोमाञ्चितकन्धुकंतनोस्तनोति योऽस्तां सुभगे
तवागतः ॥ १ ॥ आयातं सपि दयितं चिरात्प्रया
सात्त्वामाङ्गं तव विरहानलेन तप्तम् । सयोऽमुं निज-
मुदुलाङ्गसङ्गदानात्सन्दृष्टि नय भय सम्मुषी किमे
यम् ॥ २ ॥ कलय वलयं धम्मिल्लेऽस्मिन्प्रियेश्य
मल्लिकां रचय सिचयं मुक्ताहारं विभूषय सत्वरम् ।
गृगमदमपीपजालेपं कुरुष्व कपोलयोः सहचरि समा
यात प्रात स ते हृदयप्रियः ॥ ३ ॥ धैर्यमाधाप लजां
च व्यपनीय विलासिनम् । सम्भावयसि किं नैनं
दिष्ट्वा स्वयमुपस्थितम् ॥ ४ ॥ नित्यं मनोरथ-
स्यापि सपि दुर्गम एव यः । अभवत्साम्प्रतं कामं
प्रत्यक्षेण विभाति सः ॥ ५ ॥

नायकातिथयर्णनम्—अश्रुमिः पाद्यमाकल्प्य प्रणीय
हृदयासनम् । उपेतं दयिते कान्ता परिपङ्कमुपायन्
॥१॥ आपाते दयिते मरुस्थलभुवामुप्रेक्षत दुर्लक्ष्यता
गेहिन्या परितोपवाप्यकलिलामासज्य दृष्टि मुने ।
दत्त्वा पीलुशमीकरीरकचलं चेलाञ्जलेनादरादुन्दृष्ट

प्रियतमके आनेपर नवेलीसे सखीकी बातें : हे
सुन्दरी ! कानतक फैली हुई तुम्हारी आँवोंको छलकनेवाला,
दूरतक फैली हुई भौंहोंको विकसित करनेवाला और तुम्हारे
शरीरके रोमाञ्जसे चुक चोलीको फैलानेवाला तुम्हारा प्रियतम
आ गया है ॥ १ ॥ हे सखी ! बहुत दिनोंपर परदेससे लौटे हुए
अपने उक्त प्रियतमके पास जाकर तत्काल अपने कोमल
अङ्गोंका स्पर्श कारक उसकी सपन मिटाओ जो तुम्हारे वियोग-
रूपी अश्रिते तपकर डुबला हो गया है । क्यों, ठीक है न ? ॥२॥
हे सखी ! हाथोंमें बड़न पहन लो, जूठेमें बेलेके फूल गुंथ लो,
अपने वस्त्र सँभालकर पहन लो, मोतीका हार मटपट गलेमें
ढाल लो और कस्तूरीके घोलसे गालोंपर चित्रकारी कर लो
क्योंकि तुम्हारे हृदयका प्रियतम आज प्रात काल आ गया है
॥३॥ अरी ! धीरज धरकर तथा लाज छोड़कर अपने प्रियतमका
संस्कार क्यों नहीं करती जो भाग्यवश स्वयं ही यहाँ चला आया
है ? ॥ ४ ॥ हे सखी ! सदा मनाते रहनेपर भी चिन्का धाना
कठिन था वह इस समय आँवोंके आगे आ पहुँचा है ॥ ५ ॥

प्रियतमके स्वागत-संस्कारका चर्णन : प्रियतमके
आनेपर सुन्दरीने अपने आँसुआसे उनके पैर धोए, उन्हें
हृदयासनपर बैठाया और तत्परचाट उन्हें गले लगाया ॥१॥
पतिके आनेपर मरुस्थलकी कठिनाइयाँ सोचकर पड़ते तो

करभस्य केसरसटाभाराभ्रलस्रं रजः ॥ २ ॥ किञ्चित्क-
म्पितपाणिकङ्कणखरैः पृष्टं ननु स्वागतं व्रीडानघ्रमुखा-
ब्जया चरयोर्न्यस्ते च नेत्रोत्पले । द्वास्तथस्तनयुग्मम-
ङ्गलघटे दत्त प्रवेशो हृदि स्वामिन्कि भवतोऽतिथेः
समुचितं सन्धानयानुष्ठितम् ॥ ३ ॥ दीर्घा वन्दनमा-
लिका विरचिता हृत्पथेव नेन्द्रीधरे पुष्पाणां प्रकरः
स्मितेन रचितो नो कुन्दजात्यादिभि । दत्तः स्वेद-
मुचा पयोधरभरेणाष्यो न कुम्भाभ्रसा स्वैरेवावयवैः
म्रियस्य विश्रुतस्तन्व्या कृतं मङ्गलम् ॥ ४ ॥ वाला
वन्दनमालिकाफिसलयप्रन्थीनधः कुर्वतः श्रुत्वा वल्ल-
भवाहनस्य रटितं दासेरकस्याङ्गने । आक्रन्दत्सुहृदो
यनादगुरुजनं नासाप्रसङ्गादसूक्तान्तं स्त्रीवधपातका-
त्स्मरमसक्तितैः परावर्तयत् ॥ ५ ॥

नायिका प्रति नायकस्य प्रश्नः—अङ्गानामतितानघ्नं

गृहिणीने उसके मुखपर ओससे भरी सन्तापकी दृष्टि टाली
फिर ऊँटको पीले, शमी और करीलकी पत्तियोंका चारा
ढालकर वह अपने चञ्चल शींचलके छारसे ऊँटके गलकेगोंपर
छाई हुई थूल झाड़ने लगी ॥२॥ हे स्वामी! आप जैसे ही पधारे
वैसे ही कोंपल हुए हाथोंके कन्ननोंकी भनकारके स्वरमें उसने
कुशल पूछा, लजाकर नीचे मुँह करके आपके चरणोंपर अपने
नेत्ररूपी कमल चढ़ाए और हृदय द्वारपर सजे हुए दो स्तनरूपी
मङ्गल कलशवाले हृदय मन्दिरम आपको ला बैठाया । यह
क्या सखीने आपका कम उचित सत्कार किया है ? ॥ ३ ॥
घरमें प्रवेश करते हुए अपने म्रियतमका मङ्गलाचार अपने
अङ्गोंसे ही करनेके लिय सुन्दराने कमलके फूलोंक बदले अपनी
चितवनकी ही लम्बी वन्दनवार बनाई । कुन्द और चमेलाके बदले
अपनी मन्द सुसक्तानके ही फूल बरसाए और चढ़के जलके
बदले अपने स्तनोंक पसीनक जलसे हा अर्घ्य दिया ॥ ४ ॥
नवेलीने शोभानमे बन्दनवारका मालाके पंचाकी गोंठ खालते
समय जा अपने म्रियतमका सबारा (ऊँट) का शब्द सुना
ता उसने मिश्रांका रानेसे, गुरुजनोंका वनसे, प्रायाको
नाकके छारसे, म्रियतमका स्रा वषक पापसे और कामदेवको
निन्दाके पचा जया ॥ ५ ॥

नवेलीसे नायकके प्रश्नः 'हे भोली-भाली ! तुम
इतनी दुबली क्यों पद गई हो ? इतनी कोंप क्यों रही हो ?
और तुम्हारे गाल और मुँह पीले क्यों पद गए हैं ? इस
भकार प्रायनाथने पूछा तो सुन्दरीने कहा—'यह सब यों ही

कथमिदं कम्पश्च कस्मात्कुतो मुग्धे पाण्डुकपोलमानन
मिति प्रायोश्चरे पृच्छति । तन्व्या सर्वमिदं स्वभावज-
मिति व्याहृत्य पचमान्तरज्यापी चापभरस्तया चलि
तया निःश्वस्य मुक्तोऽन्यतः ॥ १ ॥ कृशा केनासि त्व
प्रकृतिरियमङ्गस्य ननु मे मलाधूम्रा कस्माद्गुरुजनगृहे
पाचकतया । स्मरस्यस्मान्कश्चिन्नहि नहि नहीत्येवम
वदच्छिरःकम्पं वाला मम हृदि निपत्य प्रकृतिता
॥ २ ॥ कृशासोत्यालीना मलिनवसनासोत्यवनता
चिराद्दृष्टासीति स्तनकलशकम्पं प्रकृतिता । परि-
श्वक्ता यावत्प्रणयपदवीं कामपि गता ततः सारङ्गाया
हृदयसदने सोनमभवत् ॥ ३ ॥

प्रणयकलाहे नायिकानुनयः—अङ्गानि खेदयसि कि
शिरीषकुसुमपरिपेलवानि मुधा । अयमीहितकुसुमाना
सम्पादयिता तवास्ति दासजन. ॥ १ ॥ अनिदेशोप

हो गया है? और फिर वह लम्बी सोसों खींचकर ज्यों हा
चलनेकी हुई कि ओसोंके कोनोंतक भरे हुए श्रोत्रों सँभल न
सकी और श्रोत्रों छलककर डुलक ही पड़े ॥ १ ॥ नीते
ही मैंने अपनी पत्नीसे पूछा—तुम इतनी दुबली क्यों
पद गई हो ? तो उसने उत्तर दिया—भैरों अंग ता ऐसे है
हो । मैं : तुम धुँके रंगके समान सौवली क्यों पद गई हो ?
वह : बड़े-बड़ेके लिये भोजन बनाते-बनाते मेरा रंग धुँसा
सा हो गया है । मैं : क्या तुम्हें भी कभी स्मरण करती थी? ऐसा
पूछते ही वह नवेली सिर हिलार-हिलाकर 'नहीं नहीं' कती हुई
मेरी छातीपर सिर रखकर राने लगी ॥ २ ॥ जब मैंने उस
प्यारीसे पूछा कि तुम बहुत दुबली हो गई हो ता वह
लजा गई । जब मैंने कहा कि तुम्हारे वल बहुत मेले हा
गए हैं तो उसने सिर झुका लिया । फिर जब मैंने कहा कि
बहुत दिनोंमें दिखाई पदी हो तो उसके घड़ेके समान
ऊँचे ऊँचे स्तन कोंप उठे और रोंकर मेरे गले
लगकर जबतक प्रेमकी पदवीतक पहुँचे पहुँचे तबतक लो ब
हरियके समान श्रोत्रोंवाली नवेली मेरे हृदय-रूपी मन्दिरमें
लीन हो गई ॥ ३ ॥

खेलमें रुठनेपर नवेलीको मनाना : सिरसके पूबके
समान कोमल श्रोत्रोंके व्यर्थ ही क्यों थकाए ढाल रही हो ?
तुम्हारे मनचाहे फूल लानेवाला यह सेवक तो उपस्थित हो
दि ॥१॥ कहीं तुम्हारा रूप इतना मनोहर और कोमल ! फिर
यह तुम्हारा चित्त सिरसके बगलके समान क्यों इतना कठोर

भोगस्य रूपस्य मृदुनः कथम् । कठिनं प्लु ते चेतः
 शिरीषस्यैव बन्धनम् ॥ २ ॥ अपराधी नूनमहं मसीद
 रम्भोद विरम संरम्भात् । सेव्यो जनश्च कुपितः कथं
 नु दासो निरपराधः ॥ ३ ॥ अपराधो मया कान्ते
 कृतो यदि त्वया मतः । निपात्य गिरिशृङ्गोची कुवी
 किञ्च निपीड्यते ॥ ४ ॥ अस्तं याति शशी शशाङ्कवदने
 मानं विमुञ्चाधुना किं मानेन मुधा नतभ्र गगनाङ्क-
 श्यन्त्यमृस्ताकाः । इत्थं त्वामनुशिक्षयन् चितितलादु-
 द्घाम्य पादं शनैः क्षीणां धीष्य निशां निसर्गसुभगं
 गायत्यसौ कुक्कुटः ॥ ५ ॥ आताप्रतामपनयामि
 विलक्ष्य एष लाक्षाकृतां चरण्योस्तव देधि मूर्ध्ना ।
 कोपोपरागजनितां तु मुपेन्दुविष्ये हृतौ क्षमो यदि परं
 करुणा मयि स्यात् ॥ ६ ॥ इदं दूर्वाकाण्डयुतिमुपि
 फपोले कतिपर्यः श्रमाम्भोभिः कीणं सहजवकुलामोद-
 सुभगम् । समाकाङ्क्षे तात्राधरमनुमनुष्य प्रियतमे
 मनोर्द्धं ते पातुं मुखरुमलमात्रातुमथया ॥ ७ ॥ इन्द्रीव-

रेण नयनं मुद्यमस्युजेन कुन्देन दन्तमघरं नवपल्लयेन ।
 अङ्गानि चम्पकदलेः स विधाय पेधाः कान्ते कथं
 घटितयागुपलेन चेतः ॥ ८ ॥ उत्तरङ्गय कुरङ्गलोचने
 लोचने कमलगर्वमोचने । अस्तु सुन्दरि फलिङ्गनन्दि-
 नीवीचिडम्बरगभीरमम्बरम् ॥ ९ ॥ उदङ्गय द्दगञ्जलं
 चलतु चञ्चरीकोचयः प्रपञ्चय घचःसुधा श्रवणपालि-
 मालिङ्गतु । भ्रुवं नटय नागरि त्यजतु मन्मथः कामुनेः
 मुखं च कृप्य सम्मुपं व्रजतु लाघवं चन्द्रमाः ॥ १० ॥
 कठिनहृदये मुञ्च भ्रान्ति व्यलीककथाश्रितां पिशुनव-
 चनेदुं-खं नेतुं न युक्तमिमं जनम् । किमिदमथया सत्यं
 मुग्धे त्वया हि धिनिश्चितं यदभिरुचितं तन्मे कृत्वा
 प्रिये सुधमास्यताम् ॥ ११ ॥ कपोले पत्राली करतल-
 निरोधेन मृदिता निपीतो निःश्वालेरत्यममृतहृद्योऽघ-
 ररसः । मुहुः फण्डे लग्नस्तरलयति वाण्यः स्तनतटं
 प्रियो मस्युजातस्तव निरनुरोधे न तु घयम् ॥ १२ ॥
 कल्याणाङ्गुरचानुरकमनसा त्वं येन सम्प्राप्यसे

हो गया है । ॥२॥ हे केलेके लम्बेके समान जौबाँवाली ! मान
 जाग्रो, क्रोध न करो । मैं सचमुच अपराधी हूँ । यदि स्वामी
 क्षोभित हो जायँ तो यह कैसे माना जा सकता है कि सेवक
 निरपराध है ॥ ३ ॥ हे सुन्दरी ! यदि तुम समझता हो
 कि अपराध मेरा है ही है तो पवतकी चाटाक समान ऊँचे-ऊँच
 हन दोनों स्तनासे मुझे चपेट क्यों नहीं डालता ॥४॥ हे चन्द्र-
 वदनी ! रात बीतता जानकर यह मुगा धरतासे एक पर धारसे
 डटाकर सहज सुन्दर स्वरम गाकर तुम्हें यह सास दे रहा है
 कि चन्द्रमा अब हूँ यह है, अतः इस समय रूठना ठाक
 नहीं है । हे वीक्षा भाइवाला ! व्यव रूठनस क्या लाभ है ?
 देखा, ये तारे भी आकाशसे गिरत चल जा रहे हैं ॥५॥ हे देवि !
 यह लजित श्रमाग महावत्से रँगें हुए तुम्हारे बाल चरणोंकी
 खलाइको अपने सिरसे पाँव रहा है । यदि इस दासपर तुम्हारा
 कृपा हो जाय तो चन्द्रमाके समान मुद्र-मयदलपर क्राधसे जो
 खलाइ लपन हो गई है उसे भी दूर करनेमें यह सेवक समर्थ
 है ॥ ६ ॥ हे श्रायधिक प्यारी ! दूबकी शोभाको नोंचा
 दिग्गनेवाले, पसनेकी धँदँसे सजे हुए गालोंवाले और
 मीक्षसिरीके फूलोंकी स्वाभाविक सुगन्धमें बसे हुए लाल-
 खाल ओठोंवाले तुम्हारे सुन्दर सुपुसुपी कमलको सर पीने
 या ठसे सँघनेके लिये मैं तरस रहा हूँ अतः तुम मुझे आजा
 दे दो ॥ ७ ॥ हे सुन्दरी ! जिस प्रणामे नीले कमलसे तुम्हारी

आँखें, लाल कमलसे मुख, कुंदकी कलियाँसे दाँत, नये कौमल
 पंचसे थोठ और चम्बकी पैसुदियाँसे तुम्हारे दूसरे अङ्ग बनाए,
 उसने तुम्हारा चित्त कैसे पथरसे बना डाला ? ॥ ८ ॥ हे
 मृगनयनी ! कमलोंका घमण्ड चूर करनेवाले अपने नेत्र ता तोल
 दो जिससे यह नाला आकाश बर्दा-बर्दा लहरावाली यमुनाके
 जलके समान जान पड़ने लगे ॥ ९ ॥ हे अनुर नवेली ! तनिक
 अपनी थाँसें तो डटाआ, जिससे जान पड़े कि मार डाल रहे है ।
 अपने मुँहसे बाबी ता निकाला, जिससे जान पड़े कि कानामें अमृत
 बरस रहा है । अपना भँई ता चलाआ जिससे कामदेवक हाथका
 धनुष कूट पड़े और अपना मुल ता तनिक इधर घुमाआ जिससे
 यह चन्द्रमा भा तुम्हारे सामने पाना भर ॥ १० ॥ हे
 कठोर हृदयवाला ! मूडी-मूठा बाँसें सुनकर सुकर सन्दह न
 करा, सुगललारोंकी वातवर विश्वास करक मुझे साँसत न
 दा ॥ हे सुन्दरी ! यदि तुमने निश्चय हो कर लया है कि
 मैं बाँसें सख है ही ता तुम्हें जा द्यद उचित जान पड़े
 वही मुझे देकर सुखी हो जाओ ॥ ११ ॥ हे प्रार्थना न
 माननेवाली ! तुमने हथेलीकी रगसे गालोंपरके बेल-बूटे हया
 दिए, अमृतके समान तुम्हारे मधुर अघरको तुम्हारी सँसें
 मखिन किए डाल रही हैं, बार-बार गलेमें लगगर बहते हुए
 आँसु तुम्हारा स्तन झू रहे हैं अतः जान पड़ता है कि तुम्हें
 ये ही (आँसु) प्यारे हैं, हम नहीं ॥१२॥ हे सुन्दर मुखवाली !

यस्याथं सुमुपि त्वया पुनरुत्थागेऽपि सन्नहते ।
 सोऽयं सुन्दरि पञ्चवाख्यशिशुव्यालाददोरन्तरस्वैरो-
 त्पीडितपीचरस्तनतटस्त्वहोर्लतापञ्जरे ॥ १३ ॥ किं
 कण्ठे शिथिलीकृतो भुजलतापाशः प्रमादान्मया निद्रा-
 च्छेदविवर्तनेऽप्यभिमुषी नाद्यापि सन्भाविता । अन्यह्यो-
 जनसङ्घात्पलघुरहं स्वप्ने त्वया लक्षितो दोषं पश्यसि
 किं प्रिये परिजनोपालम्भयोग्ये मयि ॥ १४ ॥ किं ते
 निसर्गोदचिरो चरणौ कराभ्यां संवाहयामि नयने च
 तवाङ्गनेन । किं रञ्जयामि किमु ते स्तनयोर्विचित्रां
 पद्मावलीं विरचयाम्यचिरेण तन्वि ॥ १५ ॥ किं त्वां
 भग्नामि विच्छेददाय्यायासकारिणि । कामं कुरु वरा
 रोदि देहि मे परिरेम्भणम् ॥ १६ ॥ किं मुक्तमासनमलं
 मयि सन्भ्रमेण नोन्थातुमित्यमुचितं मम तन्तुमध्ये ।
 दृष्टिःसादाविधिमात्रहृत्तो जनोऽयमत्यादरेण किमिति
 म्रियते विलसः ॥ १७ ॥ किं शाकरैः क्लमचिमदिभिरा-

द्र्वातं सञ्जालयामि नलिनीदलतालवृन्तम् । अद्दे
 विधाय चरणावृत पद्मताम्रो संवाहयामि करमो-
 यथासुखं ते ॥ १८ ॥ किमपि किमपि शब्दे मङ्गलेभ्यो
 यदन्यद्विरमतु परिहासश्चरिडि पर्युत्सुकोऽसिम् ।
 कलयसि कलितोऽहं वल्लभे देहि वाचं भ्रमति हृदय
 मन्तविदलं निर्दयासि ॥ १९ ॥ कृतोऽप्याशामहे कप
 मिच मया ते प्रणतयो धृताः स्मित्वा हस्ते विवृणुषि
 रूपं सुधु वहुशः । प्रकोपः कोऽप्यन्यः पुनरयमसोमाय
 गुणितो वृथा यत्र क्लिग्धाः प्रियसहचरीणामपि
 गिरः ॥ २० ॥ कृतो दूरादेव स्मितमधुररम्युद्गमविधि
 शिरस्थाहा न्यस्या प्रतिवचनमुद्यैः प्रणमितम् । न
 दृष्टेः शौधिल्यं मिलत इति चेतो दहति मे निगुहान्न
 कोपा कठिनहृदये संवृत्तिरियम् ॥ २१ ॥ कोऽय को
 विधिः प्रयच्छु करुणागर्भं यद्यो जायतां पीयूषदण्डो-
 धिकापरिमलैरामोदिनी मेदिनी । आस्तां वा स्पृष्टावपि

तुम्हारे अहोंकी सुन्दरतापर मन ही मन लहू होकर जिसने
 तुम्हारी विनती की, जिसके लिये तुम प्राण देनेको भी तत्पर
 रहती हो, यही कामके यागोंमें विधे हुए हृदयवाला और
 तुम्हारे पदे स्तनोंको दवानेवाला तुम्हारा प्यारा तुम्हारी
 भुजाओं रूपी लताओंसे घेया हुआ है ॥ १३ ॥ मैंने भूलसे
 गलेमें पदी हुई पादरूपी लताको ढीली क्यों कर दी, चीदमें
 कावट सेते समय मैंने अपनी ओर मुप किए हुए तुम्हारा
 आदर भी नहीं किया और तुमने स्वप्नमें दूसरी स्त्रीके विषयमें
 बोलनेसे मुझे तुरपु समझ लिया । हे प्रिये ! तुमने मुझमें
 मेरे हीन-हीनसे दोष देते जो सब लोगोंमें मुझे उलाहना
 दिलाया रही हो ? ॥ १४ ॥ हे सुन्दरी ! कहो तो अपने दोनों
 हाथोंसे तुम्हारे सहज सुन्दर दोनों चरण दबाऊँ, क्या तुम्हारे
 नयनोंमें काजल आत्रि दूँ अथवा कहो तो तुम्हारे स्तनोंपर शीघ्र
 ही विभिन्न बेजबूटे रेश डालूँ ॥ १५ ॥ विदाहके समय भयद्वर
 साँसत दनवाला हे सुन्दरी ! मैं तुमसे क्या कहूँ तुम जा चाहा
 सो करो किन्तु एक बार मेरे गले धवरव लग जाया ॥ १६ ॥
 हे डोरके समान पतली कमरवाली ! मेरे घात ही पवराकर
 इस प्रकार पलंग छोड़ना और उठ लड़े होना दोनों ही ठीक नहीं
 है । क्योंकि जिसपर विनयन पडाकर तुमने कृपा करके डसे
 धपना दिया है उसे इतना धपिक आदर दियाकर क्यों खरिजत
 किए आज रही हो ॥ १७ ॥ हाथोंका रूँदके समान जोंधोंवाली
 हे नरेजी ! पुराणोंमें मेरे हुए तथा यद्यत्त विधानेवाले

कमलनीके पचेके पहुँचे शीतल पवन हलाऊँ या तुम्हें गोंदें
 वैशाकर आनन्दपूर्वक तुम्हारे कमलके समान लालखार ली
 दवाऊँ ॥ १८ ॥ हे क्रोध करनेवाली ! मुझे यही शत्रु हो गई
 है कि कहीं तुझे अन्धित न हो जाय, इसलिये शय यह हँसी बन
 पर दो । अथर्वैवहुत बचरा उठा हूँ । अत मेरे स्तनोंके डिने
 शय कुछ धोल ही दो क्योंकि मेरा हृदय शय विद्वान होकर बरा
 पाने लगा है । श्रोह ! तुम सचमुच यही निर्दय हो ॥ १९ ॥
 हे सुन्दर भीहोंवाली ! मैंने तुम्हारी आजायाका इतना उन्नत
 क्रिया तिसपर भी तुम जो प्रणाम करती जा रही हो और बात पर
 हाथ पकडनेपर भी मुग्करानर क्रोध दियाए जा रही हो, या
 तुम्हारा असीम क्रोध यद्वा अनोपा ही जान पड़ रहा है कि
 सविधाँकी मधुर वाणीका भी तुमपर कोई प्रभाव नहीं प
 रहा है ॥ २० ॥ हे बजार हृदयवाली ! मेरे घात ही तुमने मे
 दूरसे ही मधुर सुस्वानके साथ मेरी अगमानी की, तिर सुष्वा
 मेरी आजाएँ पालन की, घात घातमें नग्नता दियाई, तेने
 समय धरिँतें नहीं फेरिँ और मुझमें निश्चनेपर भी जा तुम्हें
 धपना क्रोध भीतर ही भीतर दियाकर इस प्रकारका आदर
 दिया यह मेरे मनका जलाए जात रहा है ॥ २१ ॥ हे सुन्दरी !
 यह क्रोध करनेका तुम्हारा कौन-सा दण्ड है ! मुझे कुछ हा
 मेरे पचन हो कहीं कि यह धरनी अमृतकी वासुकी विद्वान
 हुए गन्धमें सुगन्धित-सी हो जाय । अथवा, रहने दो, कन्ने
 मरी चिन्धन करकर तुम तिसपर क्रोध करती हो नहीं

लोचनमिदं व्याचर्तयन्ती मुहुर्दस्मे कुप्यसि तम्य
 सुन्दरि तपोऽन्धानि चन्द्रामहे ॥२२॥ क्षीणः क्षीणोऽपि
 शशी भूयो भूयोऽभिवर्धते नित्यम् । विरम प्रसीद
 सुन्दरि योवनमनिवर्ति यातं तु ॥ २३ ॥ क्षीणशुः
 शशलाञ्छनः सपि पुनः क्षीणो न मानस्तव स्मेरं पञ्च-
 वनं मनागपि न ते स्मेरं मुखाम्मोरुहम् । पोतं श्रोत्र-
 युगेन पट्टपदरतं पोतं न ते जल्पितं रक्ता शकदिग-
 ङ्गना रधिकरैर्नाद्यापि रक्तासि किम् ॥ २४ ॥ गतप्राया
 रात्रिः कृशतनु शशी सीदत इव प्रदीपोऽयं निद्रावश
 मुपगतो घूर्णत इव । प्रणामान्तो मानस्त्यजसि न
 तथापि क्रुधमहो कुचप्रत्यासत्या हृदयमपि ते चरिड
 कठिनम् ॥ २५ ॥ ब्रह्मजोड्यमपैतु मानिनि मुपं सन्द-
 र्शय श्रात्रयोः पीयूषसूतिसोर्यमस्तु मधुरां वाच म्रिये
 व्याहर । तापः शान्त्यनु मे प्रसादशिशिरां दृष्टि शनः
 पातय त्यक्त्या दीर्घमभूतपूर्वमचिराद्रापं सज्जोदोपजम्

॥ २६ ॥ चरणकमलदासस्त्वेष सद्दल्पसङ्गे सुमुखि
 यदभिधत्से त्वं बलात्कारधूर्तम् । प्रसमविधृततपः
 पीडयाम्यात्मनैव द्विरद इव स्वरोजं पाणिमापाटलं ते
 ॥ २७ ॥ जाते कैलिकलाहते कमतरि व्यर्थाऽनुनीतो
 चिरान्माने म्लायति मन्मये विकसति क्षीणे त्रपाने-
 हसि । स्वमव्ययजमुपेत्य तन्निपुणया निद्रान्ध्यामाचे-
 धितं मानम्लानिरभूच्च येन च नचाप्यासीद्द्रहःप-
 र्जनम् ॥ २८ ॥ तरङ्गय दृशोऽद्वेने रचय दन्ध्यमिन्दो-
 धरं क्षणं धपुर्पावृणु स्पृशतु काञ्चनं कालिमा ।
 स्फुटोऽङ्कुर रदच्छुद्धं प्रजतु विद्रुमः श्वेततामुदञ्चय मुपं
 मनाग्भवतु लज्जितश्चन्द्रमाः ॥ २९ ॥ त्वयि नियद्धरतेः
 म्रियवादिनः प्रणयभङ्गपराऽऽमुपचेतसः । कमपराघ-
 लवं मयि पश्यसि त्यजसि मानिनि दासजनं यतः
 ॥ ३० ॥ त्वामयमायद्वाञ्छति दासजनस्तमिममर्थमर्थ-
 यते । स्वपिहि मया सह सुरतव्यतिकरयिन्नेव भा

तपस्याघ्रांको ही मैं प्रणाम करता हूँ ॥ २२ ॥ हे सुन्दरी !
 चन्द्रमा तो पूरा क्षीण होकर फिर सदा बढ़ जाता करता
 है किन्तु बीता हुआ यौवन फिर हाथ नहीं आता इसलिये
 मान जाओ, क्रोध न करो ॥ २३ ॥ हे सखी ! चन्द्रमाकी
 किरणें चली गईं पर तुम्हारा क्रोध न गया, कमलके वन
 म्लिज गए पर तुम्हारा मुखकमल खिलकर न हँसा, कानोंमें
 भीनोंकी गुंथार सुनाई पड़ गई पर तुम्हारी वोजी न सुनाई
 पड़ी और मूर्खकी किरणोंसे पूर्व दिशा भी जाल हो उठी किन्तु
 तुम्हारे मुखपर प्रसन्नताकी जाली न छाई ॥ २४ ॥ हे
 चन्द्रमाके समान मुखवाली ! रात बीती जा रही है,
 चन्द्रमा मलिन पड़ गए, यह दीपक भी मानो नींदके परा होकर
 उँध रहा है । क्रोधकी अन्तिम अवधि तुम्हें प्रणाम
 है (अर्थात् मैंने तुम्हारे पैर भी पड़े, फिर भी तुम क्रोध
 नहीं छोड़ रही हो) अतः हे रुठनेवाली ! जान पड़ता है कि
 पत्थर स्तनके साथ रहते-रहते तुम्हारा हृदय भी कठोर
 हो गया है ॥ २५ ॥ हे रुठनेवाली ! तनिक अपना मुखदा
 तो दिया दो, जिससे हमारी आँसें शीतल हो जायँ । हे
 म्रिये ! अपनी मधुर वाणी तो तनिक सुना दो जिससे कानोंको
 अमृत पीनेका सुख प्राप्त हो, मुखपर प्रसन्नतासे शीतल
 अपनी ये चित्तबनें धीरे-धीरे चला दो जिससे मेरे मनका
 सन्ताप दूर हो और सखियोंकी लुगलीसे मनमें थड़ा हुआ
 यह विशाल क्रोध तो छोड़ दो जो पहले तुममें बनी भी गई

देता गया ॥ २६ ॥ हे सुन्दर मुखवाली ! तुम्हारे चाहने
 मात्रसे तुम्हारा साथ देनेवाला तुम्हारे चरणकमलका यह दास,
 जिससे तुम बलात्कार करनेवाला धूर्त कहती हो, अत्यधिक
 सन्तप्त होता हुआ तुम्हारे गुलाबी हाथको उसी प्रकार अपने
 थाप दिया रहा है जैसे हाथी कमलको पकड़ लेता है ॥ २७ ॥
 रतिकी इच्छा करनेवाले म्रियतमके मना-मनाकर द्वार चुकनेपर
 बहुत देरके पश्चात् जन नवेलीका मान उड़ कम हुआ,
 कामदेवका वेग बढ़ने लगा और रातका विधाता चन्द्रमा क्षीण
 हो चला, उस समय उस चतुर नवेलीने स्वपका पहाना
 करके विद्युत्नेपर इस प्रकार नींदकी वेसुधीमें म्रियतमकी ओर
 करवट बदल ली कि न तो सच्ची बात ही तुल पाई और न
 उसका मान ही हूट पाया ॥ २८ ॥ हे म्रिये ! तनिक चितवन
 चलाओ जिससे वे आँगनमें गिरे हुए नीले कमलकी जान पड़े,
 ओठोंपर तनिक सुस्कराहट-सी ले आओ जिससे वे उजले
 सँगेके समान जान पड़ें, अपना शरीर तनिक उठा दो जिससे
 तुम्हारे सामने सोना भी मलिन जान पड़े और तनिक अपना
 मुख उठा दो जिससे आकाश में चन्द्रमावाला धन जाय
 ॥ २९ ॥ हे रुठनेवाली ! एकमात्र तुम्हेंमे प्रेम करनेवाले, म्रिय
 बोधनेवाले और रनेह टूट जानेके भयसे भयभीत मतवाले
 अपने हृग मेयकमें क्या तुम अत्रान देव्य रही हो जो इमे
 पोंपे दे रही हो ? ॥ ३० ॥ हाथ जोड़कर यह दास केंद्र
 क्षीणिये तुम्हारी शरीरान कर रहा है कि मगमोमके करवट

मैवम् ॥ ३१ ॥ दयिते कठिनं चेत इत्युरोजौ तथेदृशौ ।
 अथ लज्जयसे किं तु शिरीषमृदुलां तनुम् ॥ ३२ ॥
 दाक्षिण्यं नाम विभ्रोजि नायकानां कुलव्रतम् । तन्मे
 दीर्घाक्षि ये प्राणास्ते त्वदाशानियन्धनाः ॥ ३३ ॥ भृष्ट
 किं पुरतोऽवख्य विहसन्गृह्णामि कण्ठे प्रियां किं वा
 चाद्रुशतप्रचण्डरचनामीतां करिष्यामि ताम् । किं
 तिष्ठामि कृपाङ्गलिर्निपतितस्तस्याः पुरः पादयोः सत्यं
 सत्यमहो न वेदम्यनुनयस्तस्याः कथं स्यादिति ॥ ३४ ॥
 परिलुडति ललाटे भङ्गुरा भ्रूलता किं मदनजयपताका-
 विभ्रमं रिभ्रतोयम् । स्फुरति च किमकाण्डे चरिडि
 विन्वाधगाऽयं मृदुपवनविधूतोन्निद्रवन्धूकयन्धुः ॥ ३५ ॥
 परिहर कृतातङ्गे शङ्कां त्वया सततं घनस्तनजघनया-
 क्रान्ते स्वान्ते परानयकाशिनि । विशति वितनोरन्यो
 धन्यो न कोऽपि ममान्तरं स्तनभरपरीरम्भारम्भे
 विधेहि विधेयताम् ॥ ३६ ॥ पादासके सुचिरमिह ते

वामता कैच कान्ते सन्मार्गस्थे प्रणयिनि जने कोपे
 कोऽपराधः । इत्थं तस्याः परिजनकथा कोपेनोप-
 शान्तौ वाष्पोद्भेदैस्तदनु सहसा न स्थितं न प्रयातम्
 ॥ ३७ ॥ पुरोदिगनुरागिणी तदपि नानुरागोदयः
 कृशोदरि निशा कृशा तदपि ते न मानः कृशः । प्रस
 धमिदमन्वरं तदपि न प्रसन्नं मनो ननाद् चरणायुष
 स्तदपि मोनमालम्बले ॥ ३८ ॥ प्रसादे वर्तस्व प्रकटय नुरं
 सन्तज रूपं प्रिये शुष्यन्त्यङ्गान्यमृतमिव ते सिञ्चतु
 वचः । निधानं सोऽथानां क्षणमभिमुपं स्थापय मुषं
 न मुग्धे प्रत्येतुं प्रभवति गतः कालहरिणः ॥ ३९ ॥
 प्रसोदेति म्र्यामिदमसति कोपे न घटते करिष्याम्येव नो
 पुनरिति भवेदभ्युपगमः । न मे दोषोऽस्तोति त्वमिद-
 मपि हि ज्ञास्यसि मृषा किमेतस्मिन्वक्तुं क्षमप्रिति न
 वेधि प्रियतमे ॥ ४० ॥ प्रहिणु रमणि मानं मौनमुत्सृज्य
 साचीकृतशिरसि ममास्मिन्नर्पयस्याऽपिमुग्धम् ।

हुईं तुम मेरे साथ ही सोचो और ऐसा न करो, न करो, न करो
 ॥ ३१ ॥ हे प्रिये ! तुम्हारा चित्त अत्यन्त कठोर है इसीलिये
 तुम्हारे स्तन भी ऐमे हैं । अतः हुन्हीं लगाकर तुम सिरसके
 समान अपनी देहको धर्यां लजा रही हो ! ॥ ३२ ॥ हे ऊँदरूके
 नमान धोठवाली ! प्रेमियांकी सज्जनता ही उनके कुलका
 मत है इसलिये हे बड़े बड़े नेत्रोंवाली ! मेरे प्राण तुम्हारी ही
 छायाके सहारे टिके हुए हैं ॥ ३३ ॥ क्या मैं सामने दिखाईसे
 सुस्काराकर जातां हुईं अपनी प्यारीको गलबहियाँ देकर रोक लूँ या
 चिरनी-घुपदीं वातें करके उसे प्रसन्न कर लूँ या हाथ जोड़कर
 उसके चरणोंपर गिर पदूँ ? सधमुप मुझे सूक्त नहीं पदू रहा है
 कि उसे मनाऊँ तो कैसे मनाऊँ ! ॥ ३४ ॥ हे क्रोध करनेवाली !
 तुम्हारे माथेपर जो बाँकी भाँह-रूपी क्षता दिग्गाईं दे रही है वह
 क्या कामदेवकी विजय-पताका बनकर योग्या दे रही है और हम
 असमयमें ही ऊँदरूके समान तुम्हारा जो धोठपरफरा रहा है वह
 क्या मन्द पवनके आँसे तिमिले हुए बन्धूक (दोषहरिया पूल) का
 बन्धु मुझ है ? ॥ ३५ ॥ हे मनमें भय उत्पन्न करनेवाली !
 गुहा मत करो। बड़े-बड़े स्तन तथा भारी जघन (पेहू) वाली !
 मृष्ट जब हमारे मनमें पैठी ही हो ता बहो दूसरेको स्थान देने
 मिछ सकता है । कामदेवके अतिरिक्त ऐसा कौन धन्य व्यक्ति
 है जो हमारे हृदयमें प्रवेश पा सके । इसलिये अब ऐसा
 करो जिनमें मैं तुम्हारे स्तन अपनी क्षान्तिसे लगा सऊँ
 बिनां भवेलीकी सगिर्वां समया रही हैं : 'हे सुन्दरी !

जब तुम्हारे प्रियतम इतनी देरसे तुम्हारे पैरोंपर खोट रंगे हैं
 तब भी तुममें यह देहापन कैसा ? हे क्रोध करनेवाली ! क्या
 प्रियतम अच्ये मार्गसे चल रहे हैं तब उनका अपराध ही क्या
 है ? ज्योंही सलियोंने इतना कहा कि उस नवेलीके नेत्रोंमें मेरे
 हुए आँसू न तो रक ही सके, न गिर ही सके ॥ ३० ॥ मैं
 दुपले शरीरवाली ! पूर्वं दिखा खान हो गई किन्तु तुममें कौन
 प्रेमकी लाली न फलकी । रात समाप्त हुई जा रही है किन्तु
 तुम्हारा क्रोध अभी शान्त नहीं हुआ । आकाश तो स्वप्न ही
 गया किन्तु तुम्हारा मन प्रसन्न न हुआ और तुम
 भी बोलने लगा किन्तु तुम अभी सुष्पी साथ पैठी हो ॥ ३१ ॥
 हे प्यारी ! मनसे सन्देश दूर करो, मान जाओ, क्रोध छोड़ दो,
 तुम्हारे क्रोधके कारण मेरे अन्न अन्न सूते जा रहे हैं । अब ऐसा
 करो कि उनपर तुम्हारी अत्यन्तके समान वातें पदूँ, अपने कुपण
 भयवार मुलको कुछ देर इधर घुमा लो । धरो पागड़ी ! क्या
 हुआ समयरूपी हरिण फिर खोटेकर नहीं जानेवाला है ॥ ३२ ॥
 प्यारी ! मुझे सूक्त नहीं पदू रहा है कि इस समय क्या करूँ
 क्या न करूँ क्योंकि यदि यह कहता हूँ कि 'मनन हो जाना'
 तो बिना क्रोधके ऐसा कहना उचित नहीं मान पड़ता । वह हूँ
 कि 'फिर ऐसा न करूँगा' तो इसका अर्थ यह है कि मैंने अपने
 मूल स्वीकार कर ही और यदि कहूँ कि 'मैरा कोई दोष नहीं
 तो ऐसे तुम मृष्ट मानोगी ॥ ३० ॥ हे सुन्दरी ! अपना स्तन
 तोड़कर स्तना छोड़ दो और मेरे मुँके हुए विरपर अपनी पैरों

अपि सुमुखि मयूषाः पथ्य पीयूषभानोर्वक्षणनगरत्तारोनेत्रपात्रीभवन्ति ॥ ४१ ॥ भ्रुवालकं स्मितपराजितचन्द्रलेखं दृग्लीलया बुचलयश्रियमाददानम् । पतन्मुखं दिविपदामपि दुर्निरीक्ष्यं तन्वाङ्गि मामिष सुधा किमधःकरोपि ॥ ४२ ॥ भ्रूमङ्गं न करोपि रोदिति मुहुमुग्धेषु केवलं नातिप्रस्फुरिताघरानवरत्तं निःश्यासमेधोऽङ्गसि । वाचं नापि ददासि तिष्ठसि परं प्रध्यातनम्रानना कोपस्ते स्मितोऽतिपोडयति मां गृहप्रहारोपमः ॥ ४३ ॥ भ्रूमङ्गैः क्रियते ललाटशशिनः कस्मात्कलङ्को सुधा वाताकम्पितश्वधुष्यसमतां नीतोऽधरः किं स्फुरन् । मध्यध्याधिककम्पितस्तनभरेण्यार्थं पुनः सिद्यते कोपं मुञ्च तवैव चित्तहरेणायैतन्मया क्रीडितम् ॥ ४४ ॥ मधुघारेव न मुञ्चसि मानिनि रुचापि माधुर्नं सदजाम् । कृतमुखमङ्गापि रसं ददासि मम निम्नगा यथाम्भोधेः ॥ ४५ ॥ मयि ते पादपतिते

किङ्करत्यमुपागते । म्रिये कामातुरः कोपं कान्ते कोऽन्योऽपनेप्यति ॥ ४६ ॥ माण्ड्यैर्देशनश्रियं घटयता विष्णवर्चं विद्रुमेर्मुकाभि स्मितमिन्द्रनीलशरुलतोदैश्च केशोद्ययान् । शयं रत्नमयं विधातुमपिलं दुर्मेघसा वेधसा तेनैवाचनताङ्गलि विहितं वज्रेण वेतस्तव ॥ ४७ ॥ मानं मानिनि मुञ्च देनि दयिते मिथ्या वचः श्रयते किं कोपो निजसेवके यदि वचः सत्यं त्वया गृह्यते । दोष्यो यन्वनमाशु दन्तदलनं पीनस्तनास्फालनं दोषश्चेन्मम ते कटाक्षविशिष्टे । शल्लैः प्रहारं कुरु ॥ ४८ ॥ मा मा सलाघ्यसमपेहि विलोलनेत्रे दासे जने किमित सम्भ्रमकवातरासि । किं युज्यते वत मया चिरकाङ्क्षितस्य मध्ये घराङ्गि परिरम्भसुखस्य मङ्गः ॥ ४९ ॥ मुखमिन्द्रुर्धया पाणिः पल्लनेन समः म्रिये । वाचः सुधा इषोष्ठस्ते विम्बतुल्यो मनीऽश्मयत् ॥ ५० ॥ मुग्धे मानिनि कोपतीतिरियती

लाले' जमा दो बर्षांकि हे सुमुखि ! देखो, चन्द्रमाकी अमृतमयी किरणें अथ पश्चिमकी घोर दली जा रही हैं जहाँ उनपर बरफके नगरकी नवेजियाँकी चित्तवनें पड़ेंगी ॥ ४१ ॥ हे दुबली पतली देहवाली तथा मिले हुए बालोंवाली ! मन्द सुस्वराहटसे चन्द्रमाकी जीतनेवाला, चञ्चल चित्तवनेसे कोईकी गोमाको नीचा दिखानेवाला और देवताओंकी भी देखनेकी न मिल सकनेवाला अपना यह सुख मेरे ही लिये क्यों पर्थमें नीचे किए हुए हो ! ॥ ४२ ॥ हे सुनयनी ! तुम अपनी बाँकी चित्तवनें चलानेके बदले बड़े बार बार रोप जा रही हो, थोठ फट्टकानेके बदले तुम केवल लम्बी-लाठीसँसे छोड़ रही हो, कुछ बोलने-बालानेके बदले अपना सुल-कमल फुलाप, और सुकाप वैधी हो । इस प्रकार तुम्हारा यह छिपा हुआ क्रोध भीतरी चोटके समान मुझे कबोटे डाल रहा है ॥ ४३ ॥ तुम्हारी बाँकी भीसँसे तुम्हारे अस्तकरूपी चन्द्रमासँसे क्यों व्यर्थ है । कलङ्क बन रही हैं ! इस फट्टके हुए थोठको पचनसे हिलाटा हुआ जपातुसुम क्यों बनाप डाल रही हो ? देखो, हिलते हुए पत्तोंके कोम्मे तुम्हारी कमर दबी जा रही है । अतः क्रोध छोड़ दो । मैंने तो तुम्हारा मन बहलानेके लिये ही यह सय तिलवाट किया था ॥ ४४ ॥ हे मान करनेवाली ! क्रोधकी दशामें भी तुम अपनी स्वभाविक मधुरता नहीं छोडती क्योंकि अपना मुँह घुमाकर भी तुम मुझे वैसे ही रस दे रही हो जैसे नदियाँ समुद्रको देती हैं ॥ ४५ ॥ हे सुन्दरी ! अथ कि मैं कामाच्य होकर तुम्हारे पँरोपर

मत्पा टेके हुए तुम्हारा दास बना पवा हूँ तब हे प्यारी ! और दूसरा कौन तुम्हारा क्रोध दूर करेगा ? (अर्थात् मेरे अतिरिक्त कोई और दूसरा तुम्हें नहीं मनावेगा) इसलिये प्रसन्न हो जाओ ॥ ४६ ॥ हे लकीले अङ्गोंवाली ! जिस प्रधाने तुम्हारे दाँतोंकी शोभा माणिक्यसे, लुँदरूके समान शधरको मूँगेसे, सुरकानकी मोतियाँसे और दाढ़ोंको इन्द्रनीलमणिके चूर्णसे बनाया उसी मूर्त्यने तुम्हें रत्नमयी बनानेके परेमें तुम्हारा विल मी वज्र (हीरे) का बना दिया ॥ ४७ ॥ हे क्रोध करनेवाली ! क्रोध छोड़ दो । हे म्रिये ! तुमने जितनी बातें सुनी हैं सब झूठी हैं । अपने सेवकपर भी कहीं क्रोध किया जाता है ? फिर भी यदि तुम सुनी हुई बातोंसँ सच ही मानती हो तथा मुझे अपराधी ही समझ रही हो तो मुझे दंड देनेके मुझे अपनी बाँहोंसे जकड़ लो, दाँतोंसे काट लो, मोटे स्तनसे मसल डालो तथा अपनी चित्तवन रूपी बायाँसे मुझे वेध डालो ॥ ४८ ॥ हे चञ्चल नयनोंवाली ! मुझसे दरकर मुझे छोडो मत । मुझे देखकर इतना शक्ति क्यों घराई जा रही हो । हे सुन्दरी ! तुम्हें गले लगानेके जिस सुखके लिये मैं बहुत देरसे तरस रहा हूँ उसे बीचमें ही भटककर तोड़ डालना कहतव उचित है ? ॥ ४९ ॥ हे प्यारी ! तुम्हारा मुख भी चन्द्रमाके समान, हाथ भी कोमल किसलयके समान, बोली भी अमृतके समान, चोट भी विष्णु फलके समान है किन्तु चित्त पत्थरके समान है ॥ ५० ॥ हे भोली भाकी घोर क्रोध करनेवाली ! रुठ बैठनेका तुम्हारा यह दग

युक्ता न तथ्यं त्विदं कान्ते किं त्वदुपेक्षिता मम तनुः
शोभेत नेहाद्भुतम् । अन्यथायो भवति च्छलस्य करणे
दक्षे जनेऽन्यादशंकोहेति प्रतिरुद्धवागकरवं वाक्स्त-
म्भानं सुम्भनैः ॥ ५१ ॥ मृग्ये विधेहि मयि निर्दयदन्त
दंशं क्षोर्धलितघ्नानिधिडस्तनपीडनानि । चरिड
त्वमेव मुदमञ्चय पञ्चवाणचण्डालकाण्डदलनादसयः
प्रयान्ति ॥ ५२ ॥ मुहुर्मुहुर्वेक्षणं सरसमञ्जसा संस्तवः
समुच्चलतरङ्गिणि प्रचुरनर्ममर्मस्पृहा । मुहनिविड-
नप्रता परिजनव्यपेक्षापि नो कुतः सुमुखि शिक्षिता
कथय कोपरीतिस्त्वया ॥ ५३ ॥ मोहान्मया सुतनु
पूर्वमुपेक्षितस्ते यो वाष्पविन्दुरधरं परिवाधमानः ।
तं तावदाकुटिलपद्मविलसमद्य कान्ते प्रमृज्य विगता-
नुशयो भवामि ॥ ५४ ॥ यदिदमगणयित्वा दुर्बहं
श्रोणिभारं मद्भिस्तरणलोभात्प्रस्थितं पद्मताम्रम् ।
श्रयमहमभिवाञ्छाम्यप्रमृज्यैव पातुं सुमुखि पदतलं ते

चूडितं बुभ्यितुं च ॥ ५५ ॥ यदि प्रिये वेरिल तव प्रभुं
मामनस्यसाधारणदासमद्ब्रथाः । तदय वक्षो मम
पात्रमस्तु स्वयंग्रहाश्लेषमहोत्सधानाम् ॥ ५६ ॥ यद्गम्यं
गुरुगोरवस्य सुहृदो यस्मिन्लभन्तेऽन्तरं यदाक्षिण्य-
घशात्प्रसह्य सहते नमोपचारानपि । यज्ञज्ञा निरुण्डि
यत्र शपथेरुपाचते प्रत्ययस्तर्त्तिक प्रेम स उच्यते परि-
चयस्तत्रापि कोपेन किम् ॥ ५७ ॥ हाथयकान्ति-
परिपूरितदिडमुपे स्मिन्स्मेरेऽधुना इव मुपे तरलाय-
ताक्षि । क्षोभं यदेति न मनागपि तेन मग्ये सुव्यक-
मेव जलराशिरयं पयोधिः ॥ ५८ ॥ विकिर धवलदी-
र्घपाङ्गसंसर्पिं च्छु परिजनपथवर्तित्यत्र किं सम्भ्र-
मेण । स्मितमधुरमुदारं देवि मामालपोषैः प्रभवति
मम पाश्वोरञ्जलिः सेवितुं त्वाम् ॥ ५९ ॥ वितरय
कुचयोस्त्वद्दर्शनेपक्रमार्णां मदनशररुजानां शान्तये
मामफीनाम् । सङ्घटपिपरिरम्भं सुभ्रु दोर्मूलकूलक-

ठीक नहीं है । हे प्यारी ! सच तो यह है कि यदि तुम डुवरा
दोगी तो मेरे शरीरकी शोभाका क्या मूल्य रह जायगा । इसमें
कुछ आश्चर्य न समझे । इसलिये यह सब छल जान छोड़े ।
ये तुमसे उल्टी सीधी बातें कहीं किसने ? मैं तो यह
सुनकर स्वयं अवाक् रह गया था । किन्तु लो, अब सुम्भनसे
तुम्हारी भी वाणी बन्द निए दे रहा हूँ ॥ ५१ ॥ हे मोली
भाली ! चाहे मुझे निर्दयतापूर्वक अपने दर्तासे काट डालो, चाहे
हाथ-रूपी लताके बन्धनमें मुझे बसकर स्तनोसे मसल डालो ।
हे क्रोध करनेवाली ! चाहे तुझ भी करो किन्तु अब शीघ्र ही प्रसन्न
हो जाओ क्योंकि चाण्डाल कामदेवके तीखे बाणोकी चोटसे
मेरे प्राण निकले जा रहे हैं ॥ ५२ ॥ हे चञ्चल चितवनवाली
सुमुखी ! धार धार रसीली चितवन चलाऊ, चटपट धामभगत
करने लगना, धरपन्त रसीली बातें बचानेका डौल हूँदना,
धार धार इतनी अधिक नम्रता दिखाते रहना और सुखियोंकी
भी कोई बात न सुनना, यह सब क्रोध करनेका निराला
वज्र तुमने सीख कहाँसे लिया है ! ॥ ५३ ॥ हे
सुन्दरी ! तुम्हारे श्रोतोंका कष्ट पहुँचानेवाली जो शौल्की
पूँदें मैंने शूर्यताके कारण छुका दी थी, आज योंकी
बारीयोंमें उलझी हुई ये शौल्की पूँदें पाँदुकर उस पापका
प्रापरिचय निए डाल रहा है ॥ ५४ ॥ हे सुन्दर सुजवाली !
मैं चाहता हूँ कि नितामके भारकी दपेरा करके भरे पास
सम्भोगके लोभमे धाए हुए जो तुम्हारे पैर कमलके समान

लाल हो गए हैं उन्हे बिना पाँदु ही धूलसहित अपने
मस्तकर चढ़ा लूँ और चूम लूँ ॥ ५५ ॥ हे प्यारी ! यह तो
मैं तभी समझूँ कि तुम मुझे अपने चरणोंका असाधारण
दास समझती हो जब आज अपने आलिङ्गनके महोत्सवका
आधार तुम मेरी छातीको बना लो ॥ ५६ ॥ जहाँ प्रेमी एक
दूसरेसे अधिक सम्मान पानेके फेरमें रहते हों, जहाँ मित्रोंको
भी सम्मानने युक्तानेकी आवश्यकता पड जाती हो, जहाँ हैंसीकी
बातमें भी यह कहा जाता हो कि 'मैंने अपनी सज्जनतासे इसे
सहन कर लिया', जहाँ लाजकी खावट आती रहती है और जहाँ
शपथ दिलाकर विश्वास कराया जाता है वह भी क्या प्रेम
कहलाता है ? नहीं, वह तो परिचय-मात्र होता है । ऐसे
परिचयमें धर्य शौल लाल करनेसे क्या लाभ ? ॥ ५७ ॥ हे
बड़ी-बड़ी रसीली शौलवाली ! सलोनेपन और बमकते भरे
हुए इस पूर्व दिशाके समान मुखको देखकर भो जो ये पयोधि
(स्तन, समुद्र) तनिक भी नहीं उछल रहे हैं, इससे तो मैं
यही समझने लगा हूँ कि ये स्पष्ट ही जड़ (मूर्ख, पानीसे भरे)
हैं ॥ ५८ ॥ हे देवी ! मैं तो तुम्हारा सेवक हूँ, मुझमे क्यों
घबराए जा रही हो, अपनी रसीली, अपनीदार और
कातक पैली हुई शौलें तनिक ह्दर फेरकर मन्द
सुस्वानसे भरी अपनी मधुर और उदार बातें तनिक
ऊँचे स्वरसे तो कहो, यह मेरे दोनों हाथोंकी ब्रजलि
तुम्हारी सेवा करनेके लिये प्रस्तुत है ॥ ५९ ॥ हे सुन्दर भौँदो-

पद्यनपरिणाहृत्यातयोरेतयोस्ते ॥ ६० ॥ विराममेवा-
नलयातितोपात्तथापि रोपारुणितेय दृष्टिः । निशा-
पतिः श्लिष्यति पश्चिमाशामये किमाशां विफलीक-
रोपि ॥ ६१ ॥ विसृज सुन्दरि सङ्गमसाध्वमं ननु
चिरात्प्रभृति प्रययोन्मुपे । परिगृहाण गते सहका-
रतां त्वमतिमुकलताचरितं मयि ॥ ६२ ॥ विहाय पूर्वा-
मधुना यतायं निशापतिः श्लिष्यति पश्चिमाशाम् ।
अहं तु कान्ते त्वदधोनजोवस्तथाऽपि किं तऽरुखिता
दृशेया ॥ ६३ ॥ व्यथयति वृथा मौनं तन्वि प्रपञ्चय
पञ्चमं तरुणि मधुरालापैस्तापं विनोदय दृष्टिभिः ।
सुमुखिं विमुखीमायं तावद्विसुश्रु न वञ्चय स्वय-
मतिशपक्षिणो मुखे प्रियोऽहसुपस्थिनः ॥ ६४ ॥
व्यावृत्तं खलु सर्वतो विपवतस्त्वय्येष लीनं
मतो नित्यं च त्वदधोनमेव नियतं मजीवितं
मानिनि । मत्स्यैव मयि नूनमन्यविपया शङ्का त्वया

त्यज्यतां किंवात्यत्र निशाकरोऽभिरमने सु-
फीमुदीम ॥ ६४ ॥ शशिमुचि तव भाति मधु-
यजनमोहकरालकालसर्पः । वदुदितममज्जना-
त्वदधरस्तीधुसुधैव सिद्धमन्त्रः ॥ ६६ ॥ मुपे-
मुपेले तव दृशौ पद्मानुकारां करां रम्या-
नयोऽरुगलं बाहू मृशालोपमौ । स्थापितव-
लाङ्गि रममान्निःशङ्कामलिङ्गय मामङ्गानि
पविधुरापयेहोहि निर्घापय ॥ ६७ ॥ सरुद्विद्य
याले मम हस्ते मदनधर्मतत्तन्य । अपहरमे
कुम्भं दृष्टिफरादस्मृतकुम्भमिव ॥ ६८ ॥
गृहे गृहे युवतयस्ताः पृच्छ गत्याधुना प्रयासः
मन्ति किं तव पुनर्दासो यथा वर्तते । मने-
दुर्जनप्रलपितं कथं वृथा मां शयारिधुन्यजे-
भवन्ति पुरुषा दुःखानुयत्यां यतः ॥ ६९ ॥
साहसरागं परिहर रम्भोर मुञ्च संरम्भम् ।

वाली । तुम्हारे दर्शन पानेके लिये अनेक उपाय करनेवाले और
अपने कामदेवके बाणोंसे विषे हुए मुझ प्रेमीकी तपन बुझानेके
लिये उन दोनों स्वनोंका आलिङ्गन एक बार मुझे दे डालो
जिनका घेरा कर्णोत्तक पहुँच रहा है और जो कठोरता और
विशालताके लिये प्रसिद्ध है ॥ ६० ॥ यद्यपि तुम वड़े सन्तोषकी
सर्तों ले रही हो तथापि तुम्हारी दृष्टि श्रोत्रसे लाल है, देपो
चन्द्रमा पश्चिम दिशाको छातीसे लिपटा रहा है, अतः हे
सुन्दरी ! अब तुम्हारी क्यों मेरी आत्मा ककभोरे डाल रही हो !
॥ ६१ ॥ हे सुन्दरी ! बहुत देरसे मुझ प्रेमीने पहले-पहल मिल
रही हो इसकी किम्क छोड़कर मुझसे जैसे ही था लिपटो जैसे
आमके बूषसे अतिसुखता नामकी लत लिपट जानी है ॥ ६२ ॥
देखो प्यारी ! यह रातका स्वामी चन्द्रमा पूर्वको छोड़कर
अब पश्चिम दिशाको नवेलीकी गले लगा रहा है, अतः
जिसका जीवन ही तुम्हारे हाथमें है उसपर यह तुम्हारी
स्वतन्त्र क्यों देवी हुई जा रही है ? ॥ ६३ ॥ हे तुम्हारे
शरीरवाली ! तुम्हारी यह सुष्पी व्यर्थ सताए डाल रही है । हे
तरुणी ! कोयल जैसे अपनी रसीली बाणों सुनाकर और
मेरी ओर अपनी आँखें फेरकर मेरी तपन बुझाओ । हे सुन्दर
सुखवाली ! यों मुझे न सोचो । हे सुन्दरी ! मैं अत्यन्त
प्रेमाकुल होकर तुम्हारे सामने आया हूँ, मुझे पोछा न
दो ॥ ६४ ॥ हे श्रोत्र करनेवाली ! मेरा मन सभी विषयोंसे
हटकर तुममें लीन हो गया है और अब यही सम्मो

कि मेरा जीवन भी सब प्रकारसे सदा तुम्हारे ही
है । यह सम्मोह मेरे विषयमें किसी प्रकारकी कौह
मत करो । भला चन्द्रमाका मन क्या चाँदीको
किसी दूसरेमें लग सकता है ? ॥ ६२ ॥ हे चन्द्रमुखी !
जो सुन्दर भाँहें युवकोंको हमनेके लिये भयङ्कर
सर्प है उनसे उत्पन्न हुए भयको दूर करनेके लिये
अपर-रसरूपी अमृत ही उनके लिये सिद्ध
॥ ६६ ॥ तुम्हारा सुप्त चन्द्रमा है, आँखें कमल हैं,
लाल कमल हैं, तुम्हारी दोनों जाँघें कैलेके रंगके
समान हैं और सुनाएँ कमलनालके समान हैं ।
प्रकार है सूर्यपूर्ण सुपदाक अर्धव्याली । तुम शीघ्र ही
कामके सन्तापसे जले हुए मेरे अङ्गमें लिपट जाओ ।
आओ, मेरी तपन मिटाओ ! ॥ ६७ ॥ हे बाले !
तापसे तपे हुए मेरे हाथोंमें अपने स्नन-रूपी धड़े
बार सौंपकर अब व्यालेके हाथसे अमृतका घड़ा लेनेके
उन्हें क्यों धीने ले रही हो ! ॥ ६८ ॥ यहाँ घर-घर नवेलियाँ हैं
उनसे जाकर पृथ्वी, कि क्या किताब मित्रतम में
कर-करके मनाता है जैसा मैं तुम्हारा दास मना
हूँ ? हे अपनी ही बुराई करनेवाली ! लबातों रस
बातोंपर मत कात दिया करो क्योंकि प्रेमरूपी रस
हो जानेपर पुरुष बड़ी कठिनाईसे मुक्त होते हैं (७५)
एक बार भद्रकाकर पुनः उन्हें फन्नेमें लाना बड़ा कठिन है

युक्ता न तथ्यं त्विदं कान्ते किं त्वदुपेक्षिता मम तनुः
शोभेत नेहाद्भुतम् । अन्यायो भवति उच्छलम्य करणे
दत्ते जनेऽन्यादृशं काहेति प्रतिरुद्धवागकरचं वाक्स्त-
म्भनं सुम्भवेः ॥ ५१ ॥ मुग्धे विधेहि मयि निर्दयदन्त-
दंशं दोषोर्विलयन्घनिविडस्तनपीडनामि । चरिड
त्वमेव मुदमञ्जय पञ्च वाणचरुडालकारुडदलनादसवः
प्रयान्ति ॥ ५२ ॥ मुहुर्मुहुरेत्सुखं सरसमञ्जसा संस्रवः
समुच्चलतरङ्गिणि प्रचुरनर्ममर्मस्फुहा । मुहुर्निविड-
नम्रता परिजनव्यपेक्षापि नो कुतः सुमुखि शिञ्जिता
कथय कोपरीतिस्त्वया ॥ ५३ ॥ मोहाम्नया सुतनु
पूर्वमुपेक्षितस्ते यो वाप्यविन्दुरधरं परिवाद्यमानः ।
तं ताघदाकुटिलपद्मविलग्नमद्य कान्ते प्रसृज्य विगता-
नुशयो भवामि ॥ ५४ ॥ यदिदमगाण्यिरेवा दुर्वहं
श्रोत्रिभारं मदमिसररणुलोभात्प्रस्थितं पषाताम्रम् ।
श्रयमहमभिवाञ्छाम्यप्रसृज्यैव पांसुं सुमुखि पदतलं ते

चूडितं चुम्बितं च ॥ ५५ ॥ यदि प्रिये वेत्सि तव प्रभुं
मामनन्यसाधारणदासप्रभङ्गयाः । तदय वल्लो मम
पात्रमस्तु स्वयंप्रहाश्लेषमहोत्सवानाम् ॥ ५६ ॥ यद्भयं
गुरुगौरवस्य सुहृदो यस्मिन्लभन्तेऽन्तरं यदाक्षिण्य-
वशात्प्रसह्य सहते नमोपचारानपि । यत्तज्जा निरुणद्धि
यत्र शपथैरुत्पाद्यते प्रत्ययस्तरिक प्रेम स उच्यते परि-
चयस्तत्रापि कोपेन किम् ॥ ५७ ॥ लावण्यकान्ति-
परिपूरितदिङ्मुने स्मितस्मरेऽधुना इव मुखे तरलाय-
ताक्षि । क्षोभं यदेति न मनागपि नेन मन्ये सुव्यक्त-
मेव जलराशिरयं पयोधिः ॥ ५८ ॥ विकिर धवलदी-
र्घापाङ्गसंसर्पि चक्षु परिजनपथवर्तिन्यत्र किं सम्भ्र-
मेण । स्मितमधुरमुद्गारं देवि मामालपोषैः प्रभवति
मम पाण्योरञ्जलिः सेवितुं त्वाम् ॥ ५९ ॥ वितरय
कुचयोस्त्वहृशैनोपक्रमाणां मदनशररुजानां शान्तये
मामकीनाम् । सखुदपिपरिरम्भं सुभ्रु क्षोभूर्लकूलक-

ठीक नहीं है । हे प्यारी ! सच तो यह है कि यदि तुम ठुकरा
दोगी तो मेरे शरीरकी शोभाका क्या मूल्य रह जायगा । इसमें
कुछ आश्चर्य न समझो । इसलिये यह सब तुल जान छोडे ।
ये तुमसे उठती सीधी बातें कहीं किसने ? मैं तो यह
सुनकर स्वयं थवाक् रह गया था । किन्तु लो, अब सुम्भनसे
तुम्हारी भी वाणी बन्द किए दे रहा हूँ ॥ २१ ॥ हे भोली
भाली ! चाहे मुझे निर्दयतापूर्वक अपने दौंठोंसे काट डालो, चाहे
हाथ-रूपी लताके बन्धनमें मुझे बसकर स्तनोंसे मसल डालो ।
हे मोघ करनेवाली ! चाहे तुझ भी करो किन्तु अब शपथ ही प्रसन्न
हो जाओ क्योंकि चारुडाल कामदेवके तीखे बाणोंकी चोटसे
मेरे प्राण निकले जा रहे हैं ॥ २२ ॥ हे चञ्चल चितवनधाली
सुमुखी ! बार बार रसीली चितवनं चलाना, चटपट आवभगत
करने लगना, आरम्भ रसीली बातें चलानेका डौल हूँदना,
बार-बार हतनी अधिक नम्रता दिखाते रहना और सखियोंकी
भी कोई बात न सुनना, यह सब मोघ करनेका निराला
उद्गमने सीप कहाँसे लिया है ? ॥ २३ ॥ हे
सुन्दरी ! तुम्हारे दोठोंको कष्ट पहुँचानेवाली जो आँसुकी
धूँदें मैंने मूर्खताके कारण ठुकरा दी थीं, धाज बाँकी
परीनियोंमें उलझी हुई ये आँसुकी धूँदें पोंचकर उस पापका
प्रायश्चित्त किए डाल रहा हूँ ॥ २४ ॥ हे सुन्दर मुखवाली !
मैं चाहता हूँ कि नितम्बके भारकी उपेक्षा करके भरे पास
सम्भोगके क्षोभसे घाय हूँ जो तुम्हारे पैर कमलके समान

लाल हो गए हैं उन्हें बिना पोंछे ही धूलसहित अपने
मस्तकपर चढ़ा लूँ और चूम लूँ ॥ २५ ॥ हे प्यारी ! यह तो
मैं तभी समझूँ कि तुम मुझे अपने चरणोंका असाधारण
दास समझती हो जब आज अपने आलिङ्गनके महोत्सवका
आधार तुम मेरी छातीको बना तो ॥ २६ ॥ जहाँ प्रेमी एक
दूसरेसे अधिक सम्मान पानेके फेरमें रहते हों, जहाँ मित्रोंको
भी सम्मानने बुझानेकी आवश्यकता पड़ जाती हो, जहाँ हँसोंको
बातमें भी यह कहा जाता हो कि 'मैंने अपनी सज्जनतासे इसे
सहन कर लिया', जहाँ लाजकी रुकावट आती रहती है और जहाँ
शपथ दिलाकर विश्वास कराया जाता है वह भी क्या प्रेम
कहलाता है ? नहीं, वह तो परिचय-मात्र होता है । ऐसे
परिचयमें न्यर्थ आँलें लाल करनेसे क्या लाभ ? ॥ २७ ॥ हे
बड़ी बड़ी रसीली आँखोंवाली ! सलीनेपन और चमकले भरे
हुए इस पूर्व दिशाके समान मुखको देखकर भी जो ये पयोधि
(स्तन, ससृष्ट) तनिक भी नहीं उछल रहे हैं, इससे तो मैं
यही समझने लगा हूँ कि ये स्पष्ट ही जड़ (मूर्ख, पानीसे भरे)
हैं ॥ २८ ॥ हे देवी ! मैं तो तुम्हारा सेवक हूँ, मुझसे क्या
घरघर जा रही हो, अपनी रसीली, अनौदार और
कानतक पैली हुई आँलें तनिक इधर फेरकर मन्द
सुस्त्रानसे भरी अपनी मधुर घीर उदार बातें तनिक
ऊँचे स्वरसे तो कहो, यह मेरे दोनों हाथोंकी बंजलि
तुम्हारी सेवा करनेके लिये प्रस्तुत है ॥ २९ ॥ हे सुन्दर भीँ-

पद्यनपरिणाहृष्यात्तयोरेतयोस्ते ॥ ६० ॥ चिराममेवा-
नलयातितोपात्तथापि रोपारुणितैव दृष्टिः । निशा-
पतिः श्लिष्यति पश्चिमाशाशये किमाशां विफलीक-
रोपि ॥ ६१ ॥ विस्त्रज सुन्दरि सङ्गमसाध्वनं ननु
चिरात्प्रभृति प्रणयोन्मुगे । परिशुद्धान गते सहका-
रतां त्वमतिमुकलताचरितं मयि ॥ ६२ ॥ विहाय पूर्व्या-
मधुना वतायं निशापतिः श्लिष्यति पश्चिमाशाम् ।
अहं तु कान्ते त्वद्योनजोयस्तथाऽपि किं तंऽरुणिता
दंगया ॥ ६३ ॥ व्यययति वृथा मौनं तन्वि प्रपञ्चय
पञ्चमं तरुणि मधुरालापैस्तापं विनोदय दृष्टिभिः ।
सुमुग्धिं विमुखीभायं नावद्विमुञ्च न वञ्चय स्वय-
मतिशयस्त्रिगुणो मुग्धे भियोऽहमुपस्थितः ॥ ६४ ॥
व्यावृत्तं खलु सर्वतो विपद्यतस्त्वय्येव लीनं
मनो नित्यं च त्वदधीनमेव नियतं मज्जीवितं
मानिनि । मत्वेयं मयि नूनमन्यविपया श्लाघा त्वया

त्यज्यतां किवान्यत्र निशाकरोऽभिरमते मुन्ध्या चणुं
कौमुदीम् ॥ ६५ ॥ शशिसुगि तव भाति भङ्गुभ्र्यु-
वजनमोहकरालकालसर्पः । यदुदितमयमङ्गनाय यूनां
त्वदधरतोधुसुवैव सिद्धमन्त्रः ॥ ६६ ॥ शीतांशुर्मर-
मुत्पले तव दृशां पञ्चानुकारी करौ रम्मागर्मनिर्मं
तवोरुयुगलं वाह सृणालोपमी । इत्याहादकरापि-
लाङ्कि रभमान्निःशङ्कमाश्लिङ्गथ मामङ्गानि त्वमनङ्गता-
पविशुरारणेस्येहि निर्वापय ॥ ६७ ॥ सङ्कदिव्य समर्थं
थाले मम हस्ते मदनचर्मतन्मय । अ्रपहरसे कुच
कुम्भं त्वपितकरादमृतकुम्भमिव ॥ ६८ ॥ सन्त्येवात्र
गृहे गृहे युवतयस्ताः पृच्छ्य गत्वाधुना प्रयांसः प्रणु-
मन्ति किं तव पुनर्दासो यथा वर्तते । आत्मद्रोहिणि
दुर्जनप्रलपितं कथं वृथा मा कृथाश्लिङ्गन्नेहरसा
भवन्ति पुरुषा दुःखातुयत्यां यतः ॥ ६९ ॥ सरले
साहसरागं परिहर रम्भोद मुञ्च संरम्भम् । विरसं

वाली ! तुम्हारे दर्शन पानेके लिये अनेक उपाय करनेवाले और
अपने कामदेवके बाणोंसे विधे हुए मुझ प्रेमीकी तपन बुझानेके
लिये उन दोनों स्तनोंका आश्लिङ्गन एक बार मुझे दे डालो
जिनका घेरा कर्णोत्तक पहुँच रहा है और जो कटोरता और
विशालताके लिये प्रसिद्ध हैं ॥ ६० ॥ यद्यपि तुम यद्द सन्तोषकी
सौख्य ले रही हो तथापि तुम्हारी दृष्टि क्रोधसे लाल है, देखो
चन्द्रमा पश्चिम दिशाकी क्षातीसे लिपटा रहा है, अतः हे
सुन्दरी ! अब तुम्हीं क्यों मेरी आशा झूठकरे डाल रही हो !
॥ ६१ ॥ हे सुन्दरी ! बहुत देरसे मुझ प्रेमीसे पहले-पहल मिल
रही हो इसकी किम्क झोड़कर मुझसे वैसे ही आ लिपटा जैसे
आमके बूषसे अतिमुक्ता नामकी लान लिपट जाती है ॥ ६२ ॥
देखो प्यारी ! यह रातका स्वामी चन्द्रमा पूर्वकी झोड़कर
अब पश्चिम दिशाकी नवेलीकी गले लगा रहा है, अतः
जिसका जीवन ही तुम्हारे हाथमें है उसपर यह तुम्हारी
चित्तवन क्यों देवी हुई जा रही है ! ॥ ६३ ॥ हे दुबले
शरीरवाली ! तुम्हारी यह सुष्पी व्यर्थ सत्वाए डाल रही है । हे
तरुणी ! कोयल जैसी अपनी रसीली बाणी सुनाकर और
मेरी और अपनी आँखें फेरकर मेरी तपन बुझाओ ! हे सुन्दर
मुखवाली ! यों मुँह न मीढ़ो ! हे सुन्दरी ! मैं अत्यन्त
प्रेमाकुल होकर तुम्हारे सामने आया हूँ, मुझे छोधा न
यो ॥ ६४ ॥ हे क्रोध करनेवाली ! मेरा मन सभी विषयोंसे
हरकर तुममें लीन हो गया है और अब यही समझो

कि मेरा जीवन भी सब प्रकारसे सदा तुम्हारे ही हाथमें
है । यह ममककर मेरे विषयमें किसी प्रकारकी कोई बड़्हा
मत करो । भला चन्द्रमाका मन क्या चँदीकी झोड़कर
किसी दूसरेमें लग सकता है ? ॥ ६१ ॥ हे चन्द्रमुखी ! तुम्हारी
जो सुन्दर आँखें युवकोंको अपनेके लिये भयङ्कर काल
सौंप हैं उनसे उत्पन्न हुए मयजो दूर करनेके लिये तुम्हारा
अधर-रमरूपी अमृत ही उनके लिये सिद्ध मन्त्र है
॥ ६६ ॥ तुम्हारा मुख चन्द्रमा है, आँखें कमल हैं, हाथ
लाल कमल हैं, तुम्हारी दोनों आँखें केलके एगोकी तुम्हारेके
समान हैं और सुनाएँ कमलनालके समान हैं । इस
प्रकार हे स-पूर्ण सुपदाक अज्ञांवाली ! तुम शीघ्र ही वेवटके
कामके सन्तापसे जले हुए मेरे अङ्गोंसे लिपट जाओ । आओ,
आओ, मेरी तपन मिटाओ ! ॥ ६७ ॥ हे बाले । कामदेवके
तापसे तपे हुए मेरे हाथोंमें अपने स्तन-रूपों यद्द एक
बार सौंपकर अब व्यासेके हाथसे अमृतका घड़ा ले लेनेके समान
उन्हे क्यों सुँने ले रही हो ! ॥ ६८ ॥ यहाँ घर-घर नवेलियाँ हैं ।
उनसे जाकर पूछ लो, कि क्या किसीका प्रियतम ऐसे प्रणाम
कर-करके मनाता है जैसा मैं तुम्हारा दास मना रहा
हूँ ? हे अपनी ही बुराई करनेवाली ! लबाटोंकी फूटी
बातोंपर मत कान किया करो क्योंकि प्रेमरूपी स भङ्ग
दो जानेपर पुरण यदी कठिनाईसे मुझमेंसे है (पुराणोंका
एक बार भङ्गाकर पुनः उन्हे फूटनेमें जाना बड़ा कठिन है)

युक्ता न तथ्यं त्विदं कान्ते किं त्वदुपेक्षिता मम तनुः
शोभेत नेहाद्भुतम् । अन्त्यायो भवति च्छूलन्य करणे
दृष्टे जनेऽप्यादृशं फाद्रेति प्रतिगच्छवागकरवं धाफन्त-
भानं चुम्पनैः ॥ ४१ ॥ मृग्ये विधेहि मयि निर्दयदन्त-
दंशं द्यौर्यल्लियन्पनिविडन्तनपीडनानि । नरिड
त्यमेघ मुदमञ्जय पञ्ज पाणचण्डालकाण्डदलनादसयः
प्रयान्ति ॥ ४२ ॥ मुहुर्मुहुर्देवज्ञानं मरसमञ्जसा संस्तवः
समुच्चयसतरङ्गिणि प्रच्युरनर्ममम्पूहा । मुहुर्निविड-
नघ्नता परिजनव्यपेक्षामि नो कुनः सुमुनि शिञ्जिना
कथय कोपरीतिस्त्रयया ॥ ४३ ॥ मोहान्मया तुतनु
पूर्वमुपेक्षितन्ते यो याण्यनिन्दुरधरं परिधाघमानः ।
तं तायादाकुटिलपदमचिलश्रमघ वान्ते प्रमृज्य विगता-
नुशयो भवामि ॥ ४४ ॥ यदिदमराण्यिवा दुर्घटं
धोषिभारं मदमिसरगुणोभात्तस्थितं पयताम्रम् ।
श्रयमहममियान्द्वाभ्यममृज्यैय पांशुं सुमुनि पदतलं ते

रीक नहीं है । हे प्यारी ! सद्य तो यह है कि यदि तुम टुकरा
दोगी तो मेरे शरीरकी शोभाका क्या मूल्य रह जायगा । इसमें
कुछ धारण्यं न समझो । हमलिये यह सब छल जान छोड़े ।
ये तुमसे उठती-सीधी बातें बहो विचरने ? मैं तो यह
सुनकर स्वयं क्या कह रहा था । किन्तु लो, अब सुननेसे
तुम्हारी भी बायो बन्द किए दे रहा हूँ ॥ २१ ॥ हे भोली
भाखी ! चाहे मुझे निर्दयतापूर्वक अपने दिलीसे काट डालो, चाहे
हाथ-रपी सताके बाधनमें मुझे बसकर स्तनमेंसे मसल डालो ।
हे शोष करनेवाली ! चाहे वृद्ध भी करो किन्तु अब शोष ही प्रसूय
हो जाओ बयौरि थाण्डाल कामदेवके सींगे बायोकी चोंटसे
मेरे प्राण निकले जा रहे हैं ॥ २२ ॥ हे चण्डल पितृवन्ध्याकी
सुमुनी ! बार-बार हमीली पितृवनें पञ्जाना, चटपट चावभगत
करने लगना, चरण्य रसीली बातें पचानेका बील हूँदना,
बार-बार हमनी अधिक मग्रता दिताते रहना और सतिपोंकी
भी कोई बात न सुनना, यह सब शोष करनेका निरासा
रह मुमने सींग बहोति लिया है ? ॥ २३ ॥ हे
मुन्दरी ! तुम्हारे चोरेको बच पहुँचानेवाली जो भाखीकी
दूरे मैंने मूर्खताके कारण टुकरा दी थी, आज बौकी
बौनियोंमें उलझी हुई है भाखीकी दूरे पीपुदर उस पापका
मापरिचय किए बाख रहा है ॥ २४ ॥ हे मुन्दर मुग्धवाली !
मैं चाहता हूँ कि निताके भारकी उदपाय करके भरे पाप
मगधोपके छोमने काए हुए जो तुम्हारे पैर बमलके समान

चूडितं चुम्बितुं च ॥ २५ ॥ यदि प्रिये वेत्सि तव प्रभुं
मामनन्मयाधारण्दासमङ्गलधाः । तदय वल्लो मम
पात्रमस्तु स्वयंप्रहादश्लेषमहोत्सवानाम् ॥ २६ ॥ यद्भ्रम्यं
गुरुगौरवस्य सुहृदो यस्मिन्लभन्तेऽन्तरं यदाक्षिण्य-
यशात्प्रसह्य सहते नमोपचारानपि । यल्लज्जा निरुणदि
यत्र शपथेरुपायते प्रत्ययस्तर्कि प्रेम स उच्यते परि-
चयस्तत्रापि कोपन किम् ॥ २७ ॥ लावण्यकान्ति-
परिपूरितदिङ्मुपे स्मिन्स्मेरेऽधुना इव मुपे तरलाय-
ताक्षि । क्षीमं यदेति न मनानपि तेन मन्ये सुव्यक्त-
मेव जलराशिर्यं पयोधिः ॥ २८ ॥ विकिर धवलदी-
र्घापाङ्गसंसर्पि चतुः परिजनपथवर्तिन्यत्र किं सम्भ्र-
मेण । स्मितमधुरमुदारं देवि मामालपोषैः प्रभवति
मम पाण्योरञ्जलिः सेधितुं त्वाम् ॥ २९ ॥ वितरय
कुचयोस्त्वदर्शनीपद्ममाणं मदनशररुजानां शान्तये
मामकीनाम् । सख्यपिपरिरम्भं सुधु दोर्मूलकूलक-

लाज हो गए हैं उन्हें बिना पोंछे ही धूलसहित अपने
मस्तकपर चढ़ा लूँ और चूम लूँ ॥ २५ ॥ हे प्यारी ! यह तो
मैं तभी समझूँ कि तुम मुझे अपने चरकोटा घसाधारण
दास समझती हो जब आज अपने आलिङ्गनके महोत्सवका
घाघार तुम मेरी छातीकी बना लो ॥ २६ ॥ जहाँ मेरी एक
दूसरेसे अधिक सम्मान पानेके परमै रहते हों, जहाँ मित्रोंको
भी सम्मानने मुझकोकी आवश्यकता पड़ जाती हो, जहाँ हँसीकी
बातमें भी यह कहा जाता हो कि 'मैंने अपनी सज्जनतासे तुम्हें
सहन कर लिया', जहाँ आजकी दबावट घाती रहती है और जहाँ
शपथ दिलाकर विरवास कराया जाता है यह भी क्या प्रेम
कहालाता है ? नहीं, यह तो परिषय-भार होता है । ऐसे
परिषयमें व्यर्थ धर्मों लाज करनेसे क्या लाभ ? ॥ २७ ॥ हे
बही-बही रसीली भाखीवाली ! सखीनेपत और चमकते भरे
हुए इस पूर्व दिशाके समान मुग्धकी देपकर भी जो वे पयोधि
(स्तन, सुमुद्र) तनिक भी नहीं टपक रहे हैं, इससे तो मैं
यही समझने लगता हूँ कि ये स्पष्ट ही जड़ (मूर्त, पानीते भरे)
हैं ॥ २८ ॥ हे देवी ! मैं तो तुम्हारा सेवक हूँ, मुझसे क्यों
पचारा जा रही हो, अपनी रसीली, धनीदार और
बानतक पैली हुई धर्मों तनिक रूपर पेरकर मन्द
मुग्धानसे भरी अपनी मधुर और उदार बातें तनिक
उपे पचाने नो करो, यह मेरे दोनों हाथोंकी चञ्चल
तुम्हारी सेवा करनेके लिये मन्तुन है ॥ २९ ॥ हे मुन्दर भीति-

पधनपरिणाहृष्यातयोरेतयोस्ते ॥ ६० ॥ चिराममेवा
नलयातितोपात्तथापि रोपादखितेव दृष्टिः । निशा-
पतिः श्लिष्यति पश्चिमाशामये किमाशां विफलीक
रोपि ॥ ६१ ॥ विशुज सुन्दरि सङ्गमसाध्वमं ननु
चिरातप्रमृति प्रणयोन्मुगे । परिग्रहाण गते सहका-
रतां त्वमतिमुकलताचरितं मयि ॥६२॥ विहाय पूर्वा-
मधुना चतार्यं निशापतिः श्लिष्यति पश्चिमाशाम् ।
अहं तु कान्ते त्वदधोनजोयस्तथाऽपि किं तऽरुषिता
रोगो ॥ ६३ ॥ व्यथयति वृथा मौनं तन्वि प्रपञ्चय
पञ्चमं तरुणि मधुरालापैस्तापं विनोदय दृष्टिमिः ।
सुमुग्नि विमुषीमार्यं नावद्विमुञ्च न वञ्चय स्वय-
मतिशयक्षिण्धो मुग्धे प्रियोऽहमुपम्विधतः ॥ ६४ ॥
व्यावृत्तं रालु सर्वतो विपवतस्त्वय्येष लीनं
मनो नित्यं च त्वदधोनमेय नियतं मज्जीवितं
मानिनि । मत्वेधं मयि नूनमन्यविपया शङ्का त्वया

त्यज्यतां किवाव्यत्र निशाकरोऽभिरमते मुन्वा क्षणं
कौमुदीम् ॥ ६५ ॥ शशिमुग्नि तव भाति भङ्गुरभ्रयु-
यजनमोहकरालकालसर्पः । यदुद्रितमयमञ्जनाय यूनां
त्वदधरसोधुसुधैव सिद्धमन्त्रः ॥ ६६ ॥ शीतंशुम्भ-
मुपले तव दृशां पञ्चानुकारो करो रम्भागर्भनिर्म
नवोरुयुगलं बाहू मृणालोपमो । इत्याहादकरापि-
लाङ्गि रभनान्निःशङ्कमालिङ्गय मामङ्गानि त्वमनङ्गता-
पविधुरारयेहोहि निर्वापय ॥ ६७ ॥ सद्दिव्य समर्प्य
वाले मम हस्ते भदनधर्मतस्य । अपहरने कुच
कुम्भं वृषितकरादमृतकुम्भमिथ ॥ ६८ ॥ सन्त्येधात्र
गृहे गृहे युयतयस्ताः पृच्छ गत्याधुना प्रयांसः प्रण-
मन्ति किं तव पुनर्दासो यथा वर्तते । ग्रामद्रोहिणि
दुर्जनप्रलपितं कर्णे वृथा मा कृथाश्छिन्नन्नेहरसा
भवन्ति पुरुषा दुःखानुघर्त्या यतः ॥ ६९ ॥ सरले
साहसरगं परिहर रम्भोरु मुञ्च संरम्भम् । विरसं

वाली ! तुम्हारे दर्शन पानेके लिये अनेक उपाय करनेवाले और
अपने कामदेवके बाणोंसे विषे हुए मुझ प्रेमीकी तपन बुझानेके
लिये उन दोनों स्तनोंका आलिङ्गन एक बार मुझे दे डालो
जिनका घेरा कण्ठोतक पहुँच रहा है और जो कटोरता और
रियालताके लिये प्रसिद्ध है ॥६०॥ यद्यपि तुम यत्र सन्तोषकी
सौलें ले रही हो तथापि तुम्हारी रश्मि क्रोपसे लाल है, देसो
चन्द्रमा पश्चिम दिशाको छातीमे लिपटा रहा है, अतः हे
सुन्दरी ! अब तुम्हें क्यों मेरी आग्रा मूढमोरे डाल रही हो !
॥६१॥ हे सुन्दरी ! बहुत देरसे मुझ प्रेमीमे पहले-पहल मिल
रही हो इसकी किम्क छोड़कर मुझमे बैसे ही आ लिपटो जैसे
आमके धूपसे अतिमुक्ता नामकी लत लिपट जागी है ॥६२॥
देसो प्यारी ! यह रातका स्वामी चन्द्रमा पूर्वके छोड़कर
अप पश्चिम दिशाके नयेकीको गले लगा रहा है, अतः
जिसका जीवन ही तुम्हारे हाथमें है उसपर यह तुम्हारी
चितवन क्यों देवी हुई जा रही है ? ॥ ६३ ॥ हे दुबले
शरीरवाली ! तुम्हारी यह पुष्पी ध्वयं सताप डाल रहा है । हे
तरुणी ! कोयल जैसी अपनी रसीली वाणी सुनाकर और
मेरी और अपनी शौलें फेंकर मेरी तपन बुझाओ । हे सुन्दर
सुष्मवाली ! थोँ मुँह न मोंड़ो । हे सुन्दरी ! मैं अत्यन्त
प्रेमाकुल होकर तुम्हारे सामने आया हूँ, मुझे धोखा न
दो ॥ ६४ ॥ हे मोघ करनेवाली ! मेरा मन सभी विषयोंसे
दूरकर तुममें लीन हो गया है और अब यहाँ समझो

कि मेरा जीवन भी सब प्रकारसे सदा तुम्हारे ही हाथमें
है । यह समझकर मेरे त्रिपथमें किसी प्रकारकी कोई शङ्का
मत करो । मला चन्द्रमाका मन क्या चाँदनीको छोड़कर
किसी दूसरेमें लग सकता है ? ॥६५॥ हे चन्द्रमुग्धी ! तुम्हारी
जो सुन्दर भीहें युगकोंको डमनेके लिये भयङ्कर काले
सर्प हैं उनसे उत्पन्न हुए मयको दूर करनेके लिये तुम्हारा
प्रथर-रसरूपी अमृत ही उनके लिये सिद्ध मन्त्र है
॥ ६६ ॥ तुम्हारा मुख चन्द्रमा है, शौलें कमल हैं, हाथ
लाल कमल है, तुम्हारी दोनों जधि केलेके रगभेकी गुहाके
समान हैं और भुजाएँ कमलनालके समान हैं । इस
प्रकार हे स-पूर्ण सुपदाक अर्द्धावाली ! तुम रीति ही बेगडके
नायके सन्तापसे जले हुए मेरे अर्द्धोंसे लिपट जाओ । आओ,
आओ, मेरी तपन मिटाओ ! ॥ ६७ ॥ हे वाले । कामदेवके
तापसे तपे हुए मेरे हाथोंमें अपने स्तन-रूपी घड़े एक
बार सौंपकर अब प्यासेके हाथसे अमृतका घड़ा ले लेनेके समान
उन्हें क्यों छुने ले रही हो ! ॥६८॥ यहाँ घर-घर नवेलियाँ हैं ।
उनसे जाकर पूछ लो, कि क्या किसीका प्रियतम ऐसे प्रणाम
कर-करके मनाता है जैसा मैं तुम्हारा दास बना रहा
हूँ ? हे अपनी ही सुराई करनेवाली ! लबारोंकी मूठी
बातोंपर मत कान किया करो क्योंकि प्रेमरूपी रस मद्द
हो जानेपर पुरुष बड़ी कठिनाईसे सुखमन्ते हैं (पुरुषोंका)
एक बार मद्दकाकर पुनः उन्हें पन्डेमें लाना बड़ा कठिन है)

विरहायसं बोद्धुं तव चित्तमसहं मे ॥ ७० ॥ सुतनु
जहृदि मौनं मुञ्च वाचो जडत्वं प्रणयिनि मयि कोपं
किङ्करे किं करोषि । अथ यदि तव चित्ते सापरा-
धोऽस्मि वामे निजमुजयुगवल्लीवन्धनं मां विधेहि
॥ ७१ ॥ सुतनु हृदयतप्रत्यादेश्यलीकमपैतु ते किमपि
मनसः सम्मोहो मे तदा चलवानभूत् । प्रवलतमसा-
मेवंप्रायाः शुभेषु हि वृत्तयः स्रजमपि शिरस्यन्धः
क्षिप्तं धुनोत्यहिशङ्कया ॥ ७२ ॥ सुभ्रु त्वं कुपितेत्य-
पास्तमशनं त्यक्ताः कथा योषितां दूरादेव मयो-
ज्जिताः सुतमयः स्नग्मन्धधुपादयः । रागं रागिणि
मुन्व मय्यवनते हृष्टे प्रसीदाधुना सथस्त्वद्विरहे
भवन्ति सुभगे सर्वा ममान्धा दिशः ॥ ७३ ॥ सुभ्रु त्वं
नवनीतकल्पहृदया केनापि दुर्मन्त्रिणा मिथ्येव प्रिय-
कारिणा मधुमुखेनास्मासु चण्डीकृता । कित्वेतद्वि-
मृश क्षणं प्रणयिनामेणाक्षि कस्ते हितः किं धात्री-

॥ ६९ ॥ हे भोली भाली ! केलेके खम्बेके समान जाँबी-
वाली ! यह साहस और हृदयदी सब छोड़ दो क्योंकि मेरा
चित्त तुम्हारा बिक्रोह वानेका नीरस परिश्रम नहीं कर सकता
॥ ७० ॥ हे सुन्दर देववाली ! अपनी मौन भङ्ग करके अपनी
बैधी हुई बाणी तो खोलो । मुझ प्रेमी दासपर क्यों इतना रुठ
गई हो ? हे नवेली ! यदि मैं तुम्हारी समझमें सचमुच अपराधी
हूँ तो तुम्हें अपनी सुजा रूपी लताके बन्धनोंसे कस क्यों
नहीं लेती हो ॥ ७१ ॥ हे सुन्दर शरीरवाली ! मैंने भूलसे जो
तुम्हारा निरादर कर दिया था, उस बातको हृदयसे निकाल
दालो । उस समय मेरे मनमें अनजाने ही कुछ नासमझी आ
गई थी । जनमें तमागुण अधिक हाता है (जिन्हे कोई बात
सूझ नहीं पड़ती) वे अन्धे कामामे प्रायः ऐसे ही व्यवहार
किया करते हैं क्योंकि अन्धा पुरुष सिरपर पढ़ी हुई मांजाका
भी साँप समझकर दूर कूद देता है ॥ ७२ ॥ हे सुन्दर
भाँदवाली ! तुमने क्रोध किया ता मैंने भी भोजन छोड़
दिया, खियोंकी चर्चा छोड़ दी, सुगन्धित माळा, चन्दन,
धूप फाँद सब छोड़ दिया । हे राग (क्रोध, जलाई)
रखनेवाला ! राग (माघ, जलाई) छोड़ दो, मुझ सेवक-
पर शीघ्र ही प्रसन्न हो जाओ । हे प्यारी ! आज तुम्हारे
बिछोड़में मेरे लिये सारी दिशाएँ अन्धकारसे भरी जान पड़
रही हैं ॥ ७३ ॥ हे सुन्दर भाँदवाली ! तुम्हारा हृदय मखनके
समान कोमल है पर मूठे ही द्वैतीय धननेवाले तथा मीठी-

तनया वयं किमु सखी किं वा किमस्मत्सुहृत् ॥ ७४ ॥
सूर्यऽस्ताचलमोलिमालिनि गृहे दीपाचलीशालिनि
प्राणस्वामिनि मानिनि प्रतिपदं सत्कारमातन्वति ।
यन्मानं न जहासि कोपकलनादाहोहितस्तत्क्षणा-
दिन्दुः सुन्दरि पूर्णपर्वतशिरः सीमानमारोहति ॥ ७५ ॥
सोडुमलमस्मिं नाहं सुन्दरि मन्दागमाद्विलम्बं ते ।
पञ्चशराखहतं मां सखीषय चाद्यगात्रि परिरम्भैः
॥ ७६ ॥ क्षिग्धं यद्यपि वीक्षितं नयनयोस्ताप्रा
तथापि द्युतिर्माधुर्यापि सती स्खलत्यनुपदं ते गद्गदा
वागियम् । निःश्वासा नियता अपि स्तनभरोक्क-
म्पेन संलक्षिताः कोपस्ते प्रकटं प्रयत्नविधृतोऽप्येव
स्फुटं लक्ष्यते ॥ ७७ ॥

तस्यनुगत — अद्भुत्यग्रनखेन वाष्पसलिलं निक्षिप्य
निक्षिप्य किं तूष्णीं रोदिपि कोपने बहुतरं फूट्कृत्य रोदि-
प्यसि । यस्यास्ते पिशुनोपदेशवचनैर्मानेऽतिभूर्मि गते

मीठी बातें करनेवाले किसी उलटी समझि देनेवालेने तुम्हें
सुझपर क्रोधित कर दिया है । किन्तु हे सुगनयनी !
तुम स्वयं भी तो सोच-विचार कर देख लो कि तुम्हारा
सच्चा द्वैतीय कौन है—धामके लड़के, या सखियाँ, या
मेरे मित्र या मैं ॥ ७४ ॥ हे क्रोध करनेवाली ! जब
कि सूर्य अस्ताचलकी चोटीपर चले गए, घरोंमें दीये जलने
लगे और प्राणनाथ बार-बार तुम्हें मना रहे हैं तब भी जो तुम
क्रोध नहीं छोड़ रही हो इसीलिये यह चन्द्रमा मानो क्रोधसे
जाल होकर तुरन्त उदयाचलकी चोटापर चढ़ा आ रहा
है ॥ ७५ ॥ हे सुन्दरी ! तुम्हारे धीरे-धीरे आनेका विलम्ब
सुकसे नहीं सहता जा रहा है इसलिये हे सुन्दर शरीरवाली !
कामदेवके बाणसे बिधे हुए मुझ दीनको गले लगाकर जिला लो
॥ ७६ ॥ यद्यपि तुम्हारी चितवन रसीली है पर श्रॉलोंमें
जलाई झलक रही है, यद्यपि तुम्हारी गद्गद बाणियोंमें मथुरता
है फिर भी वह लड़कलहाकर निकल रही है और यद्यपि तुम
सर्तों रोके जा रही हो फिर भी स्तनोंके हिलनेसे वे स्पष्ट
दिलवाई दे रही हैं । इस प्रकार यदि प्रयत्नसे दयाया हुआ
तुम्हारा क्रोध भी स्पष्ट दिलवाई पड़ रहा है ॥ ७७ ॥

सखीकी प्रार्थना : हे क्रोध करनेवाली ! अपनी
उँगलियोंके नलोंसे आँसू धिड़क धिड़ककर क्यों सिसक रही
हो ? लघाँके बहकानेपर जब तुम्हारा क्रोध अत्यधिक
बढ़ जायगा तब तुम्हीं होकर तुम्हारा प्रियतम तुम्हें मनाया

निर्विण्णोऽनुनयं प्रति प्रियतमो मध्यन्धतामेत्यति ॥१॥
 अञ्जति रजनिरुदञ्जति तिमिरमिदञ्चञ्जति मनोभू ।
 उक्तं न त्यज युक्तं विरचय रक्तं मनस्तम्मिन् ॥ २ ॥
 अनालोच्य प्रेम्णः परिणतिमनादत्य सुहृदस्त्यया-
 काण्डे मानः किमिति सरले सम्प्रति कृतः । समा-
 कृष्टा ह्येते प्रलयदहनोद्गासुरशिखा स्वहस्तेनाङ्गारास्त-
 दल्मधुनारण्यरुदितैः ॥ ३ ॥ त्रयेऽन्तमयते शशी नहि
 कृशीमवत्याग्रहो विनश्यति तमो हठं किमणुमप्य-
 पास्ते मनः । सखि प्रकटितोऽरुणो न करुणोदयस्ते
 मनाकप्रयाति खलु यामिनी न विमनीकृष्या नायकम्
 ॥ ४ ॥ अरुणो च तरुण्ये नयने तव मलिनं च प्रियस्य
 मुखम् । मुखमानतञ्च सखि ते ज्वलितश्चास्यान्तरे
 स्मरज्वलनः ॥ ५ ॥ असद्भूतो नायं न च खलु गुणै-
 रेप रहितः प्रियो, मुकाह्वारस्तव चरणमूले निपतितः ।
 गृहार्थेनं मुग्धे यजतु निजकण्ठप्रणयितामुपायो
 नास्त्यन्त्यस्त्व हृदयसन्तापशमने ॥ ६ ॥ आयातः

कुमुदेश्वरो विजयते सर्वेश्वरो मार्गो वृद्धः स्फूर्जति
 भैरवो न निकटं प्राणेश्वरो मुञ्जति । ण्णे सिद्धरसाः
 प्रस्तुविशिष्यो वैद्योऽनवद्योन्सयो मानन्याधिरयं
 कृशोदरि कथं त्वच्चेतसि स्याम्यति ॥ ७ ॥ कुपि-
 तानि यदा तन्वि निधाय करजङ्गम् । यथान भुज-
 पाशाम्यां कण्ठमस्य दृढं तदा ॥ ८ ॥ चपलदृश्ये किं
 स्वातन्त्र्यात्स्वयं गृहमागतश्चरणपतिनः प्रेमाद्राद्रं
 प्रियः समुपेतितः । तदिदमधुना यावज्जीवं निरस्त-
 सुखोदया कदितशरणा दुर्जातानां सहस्य रुपां फलम्
 ॥ ९ ॥ जहोहि कोपं द्युयितोऽनुगम्यतां पुराऽनुजेते
 तव चञ्चलं मनः । इति प्रियं काञ्चिदुपैतुमिच्छती
 पुरातुनिन्ये निपुणः सखीजनः ॥ १० ॥ त्यां चित्तेन
 चिरं वहन्नयमतिश्रान्तो भृश तापितः कन्दर्पण च
 पातुमिच्छति सुधासंवादि विम्याधरम् । अस्याङ्कं
 तदलङ्कृत्य क्षणमिह भ्रक्षेपलभमीलवकीते दासजनेऽपि
 सेवितपदाम्भोजे कुतः सम्भ्रमः ॥ ११ ॥ नो तल्पं

भी शोच देगा और तब तुम्हें फूट-फूटकर रोना ही हाथ लगेगा
 ॥ १ ॥ हे प्यारी ! रात हो चली है, अँधेरा बढ़ चला है, कामदेव
 भी तुम्हें सताए ढाल रहा है । ऐसी दशामें यही अचछा है
 कि तुम अपनी यातपर अर्द्धी रहो, और उसीमें रमी रहो
 ॥ २ ॥ हे सरल स्वभाववाली ! प्रेमका परिणाम न सोचकर
 थी सपिण्णोंकी काज सुनी-अनसुनी काके यह तुमने
 कहाँसे असमयमें ही श्लोच टान लिया है ? ऐसा करके
 मानो तुम अपने हायसे प्रलय कालकी जलपपाती हुई अग्निके
 अग्नारे सींच रही हो । अत्र तुमसे कुछ भी कहना वैसे ही
 व्यर्थ है जैसे जहलमें रोना ॥ ३ ॥ देखो ! चन्द्रमा
 अस्त हो रहा है पर तुम्हारा दुराग्रह नहीं कम हो पा रहा
 है । अँधेरा मिटा जा रहा है किन्तु तुम्हारे मनका हठ
 तनिक भी नहीं मिट रहा है । हे प्यारी ! जाकी छा गई
 किन्तु तुमपर तनिक भी करुणा न दार्ह ! इधर रात भी बीती
 जा रही है, इसलिये अब तो प्रियतमको न सताओ ॥ ४ ॥
 हे तर्कणी ! तुम्हारी आँसू लाल हुईं कि प्रियतमका मुख फीका
 पड़ा और ज्योंही तुम्हारा मुख सुका कि तत्काल उसके
 मनमें कामाग्नि धधकी ॥ ५ ॥ तुम्हारा यह मोतीका हार और
 मूला पति दोनों न तो दुराचारी ही है, न गुण (सूत,
 सु-धरता आदि) से रहित ही है तिसपर भी ये दोनों
 तुम्हारे चरणोंमें पड़े हैं । अतः हे पगली ! इन्हें उठाकर गले

लगा लो क्योंकि तुम्हारे हृदयका ताप शान्त होनेका दूसरा
 कोई उपाय नहीं है ॥ ६ ॥ हे दुबली-पतली ! कुसुमोंके
 स्वामी चन्द्रमा आ पहुँचे हैं, सबका स्वामी पवन बहने लगा
 है, खलकर गूँजेबाबा भारा पास ही उड़ रहा है और
 प्राणनाथ भी पासमें ही है । जय ये सब सजीवनी श्रीयधियाँ
 और सिद्धहस्त वैद्यराज कामदेव तुम्हारे पास ही उपस्थित है
 तब यथाश्रो तुम्हारा कौचरूपी रोग तुम्हारे चित्तमें टिक कैसे
 पावेगा ? ॥ ७ ॥ हे दुबले शरीरवाली ! यदि प्रियतमपर तुम्हें
 कोप है तो इसके शरीरपर अपने नल चला-चलाकर अपनी
 मुजाके बन्धनसे इसका गला कसकर जकड़ लो ॥ ८ ॥ हे
 चञ्चल हृदयवाली ! स्वयं धरमें थाप हुए चरणोंपर पड़े हुए
 और प्रेमसे भरे हुए प्रियतमकी भला तुमने पेटमें धाकर क्यों
 उपेक्षा की ? अब जीवन मर चुकी होकर केवल आँसू बहाते
 हुए अपने निरर्थक कौचका फल भोगो ॥ ९ ॥ पतिके पास
 जानेकी चाहसे मरी किसी नबेलीकी उलकी चट्टर सखियाँ
 यह कहकर पहलेसे ही मना रही हैं कि 'कौच छोड़ दो, पतिको
 अनुकूल बना लो नहीं तो तुम्हारे चञ्चल मनमें अन्तमें पड़तावा
 ही पड़तावा रह जायगा' ॥ १० ॥ हे सखी ! मनमें तुम्हें बसनेबाजे
 इस प्रियतमकी बहुत दुःख है तथा कामदेवने इसे अत्यधिक
 तपाया है इसलिये अब यह तुम्हारा अधरामृत पान चाहवा
 है तो कुछ देरतक इसकी गोदमें तो जा बैठो ! तनिकसी

भजसे न जल्पसि सुधाधारानुकारा गिरो दृक्पातं
 कुरुपे न वा परिजने कोपप्रकाशच्छलात् । इत्थं केत
 कर्मगोति द्युते कोपस्य सङ्कोपनं तत्स्यादेव न
 चेत्पुनः सहचरो कुर्वीत साचिस्मितम् ॥ १२ ॥ पादा
 नते प्रणयपेशलवाचि कान्ते त्यक्तस्त्वया यदति-
 कोपनया न मन्थुः । तोमानुतापगलितः स्वथ-
 भेव मन्ये नियाति ते तदयमश्रुजलच्छलेन ॥ १३ ॥
 पुरश्चर्रागस्तदनु मनसोऽनन्यपरता तनोर्ग्लानियस्य
 त्वयि समभवद्यत्र च तथ । युवा सोऽयं प्रेषान्हि
 सुवदने मुञ्च जडतां विधातुं वैदग्ध्यं विलसतु सका-
 मोऽस्तु मदनः ॥ १४ ॥ प्रकारो मानस्य प्रियसखि
 यदीदृक्कचिदपि श्रुता वा दृष्टो वा । कथयतु तदाऽयं
 परिजनः । प्रियं पादप्रान्तप्रणतमवधूय स्वमधुना
 वृत्तिच्छिद्रैः पश्यन्त्यपसर हसिष्यन्त्यसुहृदः
 ॥ १५ ॥ मानं मानिनि मुञ्च मानसमुवः साप्राज्यम्-

उज्जम्भतां हा हा गच्छति यामिनी न समयो यातः
 पुनः प्राप्यते । अत्यल्पार्गास कल्पिताधिकमये कान्ते
 पदान्तानते कोऽयं कोकिलवाणि केसिसमये कोपस्त्व-
 यालम्बितः ॥ १६ ॥ मुग्धे कि नखरैः त्रिपश्यविरतं
 नेत्राभ्यु मानोन्नेते पर्यैनं चरणान्नन्नशिरसं स्व
 कान्तमात्ताञ्जलिम् । अग्रहे तव चेतसि प्रणयिनि
 प्राप्तेऽतिनिर्विण्णतामन्यासक्तमनस्युपेक्षितगता फूट्ठत्य
 रोदिष्यति ॥ १७ ॥ मुग्धे मानं न ते कर्तुं युक्तं
 प्राणाधिके प्रिये । धत्से मत्स्यां कियत्कालं जीवितं
 जीवनं विना ॥ १८ ॥ मुग्धे मुग्धतयैव नेतुमखिलः कालः
 किमारभ्यते मानं धत्स्व धृतिं वधान श्रुजुतां दूरी-
 कुरु श्रेयसि । सख्यैवं प्रतिबोधिता प्रतियवस्तामाह
 भीतानना नीचे शंस हृदि स्थितो हि ननु मे प्राणे-
 श्वरः श्रोष्यति ॥ १९ ॥ यत्पादं प्रणतः प्रिय- परुषया
 वाचा च निर्कोटितो यत्सख्या न कृतं वचो जडतया

भौहों चला देनेपर ही वरमें आ जानेवाले तथा चरणमलकों
 सेवामें लगे हुए ऐसे सेवकपर भी यह क्रोध कैसा ? ॥ ११ ॥
 हे केन्द्रकी कोमल पङ्कथीके समान गोरो ! क्रोधका बहाना
 लेकर जा तुम विद्विनेकी शोर नहीं बढ़ रही हो, मुखसे
 अत्युत्ताराके समान बातें नहीं निकाल रही हो और अपनी
 सखियोंसे आरिं नहीं मिला रही हो, यह तुम्हारा पनावटी
 मोघ भी दिप जाता यदि तुम्हारी सखी मुँह फेरकर
 हँस न पड़ती ॥ १२ ॥ तुम्हारे पैरोंपर पडकर प्रेमसे चिकना
 सुपदी बातें करनेवाले प्रियतमपर भी जो तुमने अत्यधिक
 मोघी होनेके कारण मोघ नहीं छोड़ा, यहाँ क्रोध मेरी समकम
 श्रायधिक तापसे गलकर आँसुमोने रूपमें स्वयं बाहर आ
 रहा है ॥ १३ ॥ हे सुन्दर सुखवाली ! तुम्हारे लिये पहले
 जिसकी आँसुं काल हो उठती है, फिर एकमात्र तुममें जिसका
 मन लीन होकर शरीर मलिन हो जाता है और जिसे देखकर
 तुम्हारी भी ऐसी ही दशा हो जाती है वही तुम्हारा प्यारा
 पुत्रक यह आ पहुँचा है अतः अब तुम तिल उठो, मझकी
 चट्टाई फले-फुले और कामदेव भी समनुष्ट हो जाय ॥ १४ ॥
 हे प्यारी सखी ! ये तुम्हारे आस-पास बैठे हुए खोग हो भला
 बात हो ई कि ऐसा रुटना भी बर्हा किर्तिने देखा पा सुना
 है कि प्रियतम तो तुम्हारे पैरोंपर गिरकर तुम्हें मनाते रहे और
 तुम रुद्धे दुःखदा दो ! घप मटपट सरक जाओ यहाँसे, नहीं तो
 द्वारके भरोखोमें पैरी पैरोंमें गीर हँसेंगे ॥ १५ ॥ हे मोघ

करनेवाली ! रुटना छोड़ दो, कामदेवकी आज्ञा सिर-माथे
 बँधाओ, हाय ! हाय ॥ रात बीती जा रही है । बीता हुआ
 समय फिर हाथ नहीं आता, हे कोयलके समान बोलनेवाली !
 पतिके तनिकसे अपराधकी भी अत्यधिक समझकर अब पैर
 पडनेवाले प्रियतमपर भी सभोगके समय तुममें यह क्रोध कहाँसे
 आ गया ! ॥ १६ ॥ हे भोली-भाली सखी ! बार-बार अपने
 नखोंसे बर्षां श्रोसु छिड़के जा रही हो ? हे रुठनेवाली ! हाय
 जोड़कर तुम्हारे पैरोंपर सिर झुकाए हुए प्रियतमको देखो ! अब
 भी यदि तुम्हारा मन न पसीजा तो ऐसी दशामें लिग्न होकर
 यदि यह किसी दूसरी नवेलीपर रीझकर तुमसे मुल मोद
 लेगा तब तुम्हें जनमभर केवल फूट-फूटकर रोना ही हाय
 लगेगा ॥ १७ ॥ अरों पगली ! प्रायोंमे भी अधिक प्यारे
 पतिपर मोघ करना उचित नहीं है ; भला, जलके बिना मट्टकी
 कितनी देर जावित रह सकती है ? ॥ १८ ॥ 'हे भोली-भाली !
 अपना सिबाईमें हा साता समय व्यर्थ बर्षां बिताए डाल रही
 हो ? कुछ रुटा, कुछ मनमें धीरन बाँधो और पतिपर ऐसा
 सरलताका व्यवहार छाड़ दो ।' जैसे ही सखीने इस प्रकार
 समझाया, जैसे ही नवेलीके मुलमें भयके चिह्न दिखाई देने
 लगे और उसने हलना ही उत्तर दिया कि 'शरी धीरे कह !
 नहीं तो मेरे मनमें बसे हुए प्राणनाथ सब बात सुन खेंगे'
 ॥ १९ ॥ ऐसे पदकर मनानेवाले प्रियतमको भी जो हसने फटोर
 स्वरसे पडकर दिया, मूर्खके जगह सखीकी बातें भी जो

यन्मन्युरेको धृतः । पापस्यास्य फलं तदेतदधुना
यध्वन्द्वेन्दुद्युतिप्रालेयाम्युसमीरपद्भजविलैर्वाञ्चं गृह-
र्दधते ॥ २० ॥ यदि कुप्यसि नास्ति रतिः कोपेन
विनाऽथवा कुतः कामः । कुप्य च कोपय च त्वं
प्रसीद च त्वं प्रसादय च कान्तम् ॥ २१ ॥ रमणे चर-
णप्रान्ते प्रणतिप्रवणेषुधुना । घवामि सगि ते तस्यं
कदाचिन्नोचिताः क्रुधः ॥ २२ ॥ लिपन्नास्ते भूमि
वहिरवन्तः प्राणदयितो निराहाराः सख्यः सततरु-
दितोच्छ्रन्ननयनाः । परित्यक्तं सर्वं हसितपठितं पञ्जर
शुकैस्तवावस्था चेयं विशुज कठिने मानमधुना ॥ २३ ॥
विमुञ्चामुं मानं सफलप वचस्माधु सुदृदां मुधा
सान्तापेन ग्लपयसि किमङ्गं स्मरभुवा । प्रियं पाद-
प्रान्तप्रणतमधुना मानय भृशं न मुग्धं प्रत्येतुं प्रभवति
गतः कालहरिणः ॥ २४ ॥ विषदत्तमलिनाम्युगर्भ-
मेयं मधुकरकोकिलकूजितैर्दिशां श्रीः । धरणिर्भिन-

वाङ्मुराङ्कटङ्का प्रणतिपणे दयिते प्रसीद मुग्धे ॥ २५ ॥
सभयचकितं चिन्त्यम्यन्तीं दृगं तिमिरे पथि प्रतितरु-
मूहुः स्थित्या मन्दं पदानि वितन्वतीम् । कथमपि
रहःप्राप्तमङ्गैरनङ्गतरङ्गिभि सुमृपि सुभग स त्वां
पश्यन्नुपेतुं कृतार्थताम् ॥ २६ ॥ क्षिण्ये यत्परपानि
यत्प्रणमति स्तब्धान्य यद्रागिणि द्वेषस्थासि यदुन्मुने
विमुपगतं यातासि तस्मिन्प्रिये । तन्मुग्धे विपरोतका-
रिणि तव श्रीगण्डचचा विपं शीनांशुभतपनो हिमं
हृतवहः क्रीडामुद्रो यातनाः ॥ २७ ॥ स्मरराजीवनयने
नयने किं निर्मोहिते । पश्य निर्जितकन्दर्पं कन्दर्पवश्यां
प्रियम् ॥ २८ ॥

कलहान्तरिताप्रलापार्यागम्— शकरोः किमु नेत्रशो-
णिमानं किमकार्षीः करपल्लवावरोधम् । कलहं
किमधाः क्रुधा रसश्चे हितमर्थे न विदन्ति देवदृष्टाः
॥ १ ॥ अद्यारभ्य यदि प्रिये पुनरहं मानस्य चान्यस्य

हसने नहीं मानीं और हठ करके जो यह क्रोध ही किप रही उसी
पापका यह फल है कि चन्दन, चाँदी, पालेका जल, पवन,
कमल और कमलनालसे भी इसबा शरीर सदा भुनक्ता रहता है
॥ २० ॥ हे सखी ! यदि क्रोध बर रहा हो तो फिर प्रेम कहाँ और
बिना क्रोधके काम कैसा ! इसलिये तुम स्वयं भी क्रोध करो
तथा अपने पतिदेवसे भी क्रोध कराओ और फिर स्वयं प्रस-
न होकर उन्हें भी प्रसन्न करो ॥ २१ ॥ हे सखी ! मैं तुमसे यह
तखकी बात बतपा देती हूँ कि जब प्रियतम प्रणाम करनेके लिये
चरणोंपर पड़े उस समय क्रोध भुला देना चाहिए ॥ २२ ॥
हे कठोर हृदयवाली ! तुम्हारे प्रियतम बाहर सिर मुकाए
हुए धरती डरेद रहे हैं, सदा रोते रहनेसे बूली आँसुवाली
सतियों उबवास कर रही हैं और पिजड़ेमें पड़े हुए सुगंधोंने
हँसना-बोलना छोड़ दिया है, फिर भी तुम्हारी यह दया
है ! अरे थप तो क्रोध छोड़ दो ॥ २३ ॥ अरी पगली ! यह
रूठना छोड़ो और सतियोंकी बातें मान लो । स्वर्ग ही
कामके सगतापसे क्यों अपने अङ्ग सुपाए ढाल रही हो ?
थप भटसे पैरोंपर पढ़कर मनाते हुए प्रियतमको भलीभाँति
मना लो क्योंकि गया हुआ समयरूपी हरिण फिर हाथ नहीं
घाता ॥ २४ ॥ अरी पगली ! काले-काले भीरोंके समान
इन जलसे भरे हुए बाढ़तोंसे आकाश विरा हुआ है, भीरे
तथा कोयलकी ध्वनिते दिशाएँ मानभावनी हो रही हैं और
निकलते हुए नये अद्भुतसे धरती हरी हो गई है, इसलिये

प्रणाम करते हुए प्रियतमपर प्रसन्न हो जाओ ॥ २५ ॥ हे
सुन्दर सुखवाली ! श्रेष्ठमें ठरके कारण घबराइते भरी हुई
आँसुं घडर-उधर नचानेवाली और मागमें धुँकोंके सामने
बार-बार गयी होकर धीरे-धीरे पैर रखनेवाली तुम्ह नवेलीको
किसी प्रकार एवन्तमें पावर अपने कामसे तपे हुए अङ्गाले तुम्ह
लिपटाता हुआ तेरा प्रियतम कृतार्थ हो जाय ॥ २६ ॥ तुम
जो उस देवी प्रियतमपर कठोरता दिख रही हो, उसके प्रणाम
करनेपर भी पसीज नहीं रही हो, उसके अनुसारा करनेपर भी
उसपर तुनकनी जा रही हो और उसके सम्मुख होते ही मुख
फेरकर उलटा काम कर रही हो इसलिये यदि तुम्हारे लिये
चन्दनकलेप भी विपके समान हो जाय, चन्द्रमा भी सूर्य बन
जाय, पाला आग बन जाय और खेलकी प्रसन्नता भी विपति
बन जाय तो उचित ही है ॥ २७ ॥ हे पिले हुए कमलके समान
नेत्रोंवाली ! तुमने आँसुं क्यों मूँद बरवाई है ? अपने उस
प्रियतमको देवो जो कामको जीतवर भी इस समय कामके
घसमे हो रहा है ॥ २८ ॥

लडुकर पैटी हुई नवेलीका रोना कलपना :
हे सखी ! उस समय क्रोध करके पतिने लडुकर तुमने
अपनी आँसुं क्यों लाल कर लीं और जब वे टूटते दू-
रहे थे उस समय उनके हाथ क्यों रोक लिए थे ?
हे प्रेमचर हँस जाननेवाली ! सचमुच आगमें लगे अपने
दितकी बातें तनिक नहीं समझते ॥ १ ॥ हे सखी ! तुम्हारे

या गृहीयां शठ दुर्नयेन मनसा नामापि संज्ञोभतः ।
तत्तेनैव विना शशाङ्ककिरणस्पष्टाद्दृष्टासा निशा एको
वा दिवसः पयोदमलिनो भूयान्मम प्राड्वपि ॥ २ ॥ इदं
रुष्णं रुष्णं प्रियतम ननु श्वेतमथ किं गमिष्यामो यामो
भवतु गमनेनाथ भवतु । पुरा येनैवं मे चिरमनुच्यता
चित्तपदयो स एवान्यो जातः सखि परिचिताः कस्य
पुरुषा ॥ ३ ॥ उपचारानुनयास्ते कितवस्योपेक्षिताः
सपीयचसा । अधुना निष्ठुरमपि यदि स वदति
फलकैतवाद्यामि ॥ ४ ॥ एषा दोषा यथाऽर्था प्रियतम
भवतो हन्त जाता विधोमे स्त्रीहत्यापातकीति प्रथि-
तिमुपगते लान्दुनोति त्रिलोक्याम् ॥ नैवं भूयोऽपराधं
यत दयित कदाऽप्याचरिष्यामि सत्यं त्वस्यक्तं मा
सुतिर्मेर्मसिजशमनः सायकैर्हन्तुमुक्तः ॥ ५ ॥ कथ-
मपि सपि श्रीडाकोपाद्भजेति मयोदिते कठिनहृदय-
स्यफस्या शृण्यां यलाहृत एव सः । इति सरभसध्व-
स्तमेण्यि व्यपेतघृणे स्पृहां पुनरपि हतमीडं चेतः

करोति करोमि किम् ॥ ६ ॥ केकाभिः कलयन्तु केकि
निवधा सम्भूय कर्णज्वरं विद्युद्भिः सह भीषयन्तु
परितः पायोधराणां घटाः । पञ्चोपर्वथिरीकरोतु ककुभः
सवाः शराणां रथैर्नाहं दग्धदुरन्तजीवनकृते कस्यापि
वश्या सखि ॥ ७ ॥ जीवितनाथेन तदा बहुशोऽनुनयो
व्यधाधि हा हन्त । रोपविमुद्धा सशपथमथाप्यहं तं
निराकार्यम् ॥ ८ ॥ तद्वक्त्राभिमुखं मुपं विनमितं
दृष्टिः कृता पादयोस्तस्यालापकुतूहलाकुलतरे श्रोत्रे
निरुद्धे मया । पाणिभ्यां च तिरस्कृतः सपुलकः स्वेदो
द्भ्रमो गरुडयोः सख्यः किं करवाणि यान्ति शतशो
यत्कञ्चुके सन्धयः ॥ ९ ॥ पदोपान्ते कान्ते लुठति
तमनादत्य भवनाम्रया निष्क्रामन्त्या सखि किमपि
नाल्लोचितमभूत् । अयं श्रोणीभारः स्तनयुगमिमो
निर्भरगुरु तदानोमेताभ्यां कथमियं विलम्बो न
विहितः ॥ १० ॥ प्रयाहि तत्रैव ययानुरज्यसे किमग्र
निस्त्रिंश तव प्रयोजनम् । न कञ्चुकप्रन्थिमपाकुदध्य

सामने मैं यह कह रही हूँ कि मूर्खता तथा मनकी चञ्चलताके
कारण यदि मैं आजसे अपने प्रियतमके विषयमें क्रोध या
हस प्रकारकी दूसरी बातोंका नाम भी लूँ तो मेरी यह दगा हो
कि चन्द्रमाकी किण्वोंके प्रकारसे उजली रातें तथा वर्षामें घिरे
हुए बादलोंके चन्द्रकारसे भरे हुए दिन उनके विना ही बीतें
॥ २ ॥ पहले जब मैं कहती थी—'उजला है' तो वे थे कहते
थे—'हाँ' । मैं कहती थी—'जाऊँगी' तो वे कहते थे—'चल
रहा हूँ' । मैं कहती थी—'बया धीनिपगा चलकर' तो वे कहते
थे—'ठीक है आने दो' इस प्रकार जो पहले मेरे कहेंमें चलता था
आज बहो पराया बन गया । हे सखी ! पुरूप कभी किसीसे सधा
प्रेम नहीं करते ॥ ३ ॥ सखियोंकी बातपर और उस धूर्त प्रियके
बनादही अनुनय विनयपर उस समय मैंने प्यान नहीं दिया
किन्तु इस समय यदि वह रुग्णी बातें भी करे तो भी क्वाड़ा
करनेके ही बहाने मैं वहाँ चली जाऊँगी ॥४॥ हे प्रियतम ! जब
कितीनों ओकोंमें आपके वियोगका यह रूपपरा पील रहा है कि
'यह छोड़ो' हरया करनेवाला पारी है और दोषी है' उस
समय यह दोषा (रात, दोषोंसे भरी) भी अपने सचें धर्यावालीं
हो गई है । हे प्रियतम ! मैं सत्य कहती हूँ कि कथ
पेसा धरपराध कभी भी नहीं करूँगी क्योंकि अब आप मुझे
प्राड्व देते हैं तो कामदेव मुझे अपने तौरों बाधोंसे बेधनेके
बिपू म्प्ट या बटता है ॥२॥ हे सखी ! रोखमें क्रोधसे जब मैंने

वहा 'जाधो' तो वह कठोर हृदयवाला विश्वाना छोड़कर हट
करके चला गया । उसका सारा प्रेम जाता रहा, उसमें तनिक
भी दया नहीं रह गई, फिर भी यह निगोड़ा मन उसीके पीछे
पागल रहता है बतानो क्या करूँ ? ॥ ६ ॥ हे सखी ! चाहे
ससारके सारे मोर इकट्ठे होकर अपनी बोली बोल-बोलकर
मेरे कान फाड़ डालें, चाहे बादलके मूषइके मूषइ घिर-घिरकर
बिजली चमका-चमकाकर मुझे डरावें और चाहे कामदेव अपने
बाधोंकी मूर्खसे सब दिखाएँ बहरी कर दे, पर मैं इस पुत्र तथा
चञ्चल जीवनके लिये किसीके धारो माया नहीं रगडूँगी
॥ ७ ॥ हाय ! कैसे दुःखकी बात है कि प्रयणनाथने तो सौगन्ध
या खाकर अनेक प्रकारसे मुझे मनाया किन्तु क्रोधमें मेरी बुद्धि
पेसी अट हो गई कि इतनेपर भी मैंने उन्हें फटकार दिया ॥८॥
हे सखियो ! ज्यों ही वे मेरे सामने आए मैंने अपना सिर मुका
जिया, शरीर पैरों गड़ा लीं, उसकी बातें सुननेको उतावले
कान ढक लिए और डटे हुए रंगोंके साथ गालोंपर टाया
हुआ पसीना भी हाथसे पोंच लिया, पर मेरी चोखोंमें जो वे
सिकड़ें पेटे हुए जा रहे हैं इतना मैं क्या उपाय करूँ ? ॥ ९ ॥
हे सखी ! जिस समय प्रियतम पैरोंपर खोट रहे थे उन
समय उनका चनारुं करके धरसे बाहर निकलते समय मुझे
बुध भी नहीं दिखाई दिया और वे इतने भागी नितग्न तथा
मोटे मोटे स्तनोंमें भी उस समय तनिक-सी आती न पहुँचाई

मे कथं हृदि ग्रन्थिमापाकरिष्यसि ॥ ११ ॥ भर्तृव्यस्य
कृते गुरुल्लघुरभूद्रोष्ट्री कनिष्ठीरुता धैर्यं कौषधनं गतं
सहचरी नीतिः कृता दूरतः । निर्मुक्ता वृणयत्रपा परि-
चिता स्त्रोतस्विनी धिन्दुधत्स काद्यादयधोरितो हत-
धिया मातर्वल्लीयान्धिः ॥ १२ ॥ मया तावद्रोत्रम्प-
लितहतकोपान्तरितया न रुद्धो निर्गच्छुग्रयमतिवि-
लसः प्रियतमः । अग्रं त्वाकृतसः परिणतिपरामर्शकु-
शलः सखीलोकोऽप्यासील्लिखित १५ चित्रेण किमिदम्
॥ १३ ॥ मानव्याधिनिपीडिताहमधुना शक्नोमि तस्या-
न्तिकं नो गन्तुं न सतीजनोऽपि चतुरो यो मां यला-
न्नेष्यति । मानी सोऽपि जनो- न लाघवभयादभ्येति
मातः स्वयं कालो याति वरं च जोधितमिदं वृणुं
मनश्चिन्तया ॥ १४ ॥ मानोऽनतेत्यसहनेत्यतिपरिद्वेतेति
मध्येध धिक्कृतिरनेकमुखो सखीनाम् । दाक्षिण्यमात्र-
मसुरेण विचेष्टितेन धूर्तस्य तस्य हि गुणात्पवर्षयन्ति

॥ १५ ॥ यत्पङ्केरुहलक्ष्म पाणिफ्रमत्तां भाग्यालये यद्गु-
र्यन्तं या मम यल्ललाटफलके भाग्याचरं देवता ।
तरस्यं सपि यो यथार्थमरुतोत्तस्मिन्प्रकोपः कृता
चिह्नां धिद्वाम जोधितं धिगतनुं धिन्चेष्टिनं
धिन्वयः ॥ १६ ॥ स्फुरसि वाहुलने किमनर्थकं त्यमपि
लोचनभायमहो गता । तमहमागतमप्यपराधिनेन परि-
न्धुमलं न च धीक्षितुम् ॥ १७ ॥ हन्त पुनो यो निरुतः
स पुनः सुभगः कथं समायायान् । कुमुदिन्यो ननु
सुलभा दुर्लभं पङ्कः सुधासिन्धुः ॥ १८ ॥

नायकावुनयः- धनधनमपि दृष्टं व्योम वाता मरु-
त्वाच्छिखिकुलकलवाचां श्रोत्रमासीनिघास । अशु-
सम न मृताहं त्वच्छियोगेऽपि जाते तय धनपरिरम्भ
प्रार्थनाश्रायशेन ॥ १ ॥ त्वं तावद्दुहयल्लभो नययुवा
कान्तः सुतो निर्दुणो नो जानासि परव्यथां श्रमते
नैवासि दुःखी यतः । किं त्वन्याः परिपृच्छन्ममय-

॥ १० ॥ हे निर्दयी ! जिने तुम चाहते हो उसीके पास
जाओ न ! यहाँ तुम्हारा क्या काम है ? तुम मेरी चौकीकी
गाँठ भले ही खोल दो किन्तु मेरे हृदयमें पड़ी हुई गाँठें
कैसे खोल पाओगे ? ॥ ११ ॥ जिस प्रेमीके लिये मैंने अपने
घरके बड़े-बूढ़ोंकी यात न मानी, समाजकी भी बुद्ध नहीं
समझा, अपना धीरज-रूपी धन भी एते दिया, सखियोंकी यातें
भी सुनो-धनसुनो कर दीं, आज भी तिनकेके समान दूर फेंक
दाली और नदियोंकी भी बूँदके समान डुब् न समझकर लाँच
दाला उस प्रियतमको भी मैंने अपनी मूर्खतासे रट कर दिया ।
सचमुच मैं ! सब बातोंमें भाग्य ही यदा प्रबल होता है ॥ १२ ॥
प्रियतमने ज्यों ही दूसरी नवेलीका नाम लिया त्यों ही मुझे तो
इतना क्रोध था गया कि मैं रुठकर चले जाते हुए अति सुन्दर
प्रियतमको न लौटा पाई किन्तु मेरे मनकी बात समझनेवाली
तथा समझाने-बुझानेमें चतुर सखियाँ क्यों चित्र लिखीं सी
खड़ी ताकती रह गई ॥ १३ ॥ हे माता ! मैं इस समय क्रोधरूपी
रागसे इतनी जली हुई हूँ कि उसके पास नहीं जा सकती । मेरी
सखियाँ भी कोई ऐसी चतुर नहीं है कि जो मुझे हठ करके लाँचकर
उसके पास ले जा पहुँचावे । वह अस्मिन्मानी भी अपनी बुद्धताके
बलसे स्वयं कोई आवेगा नहीं । समय भी बीतता था रहा है ।
जीवनका कोई रिकाना नहीं । यही सब सोच-सोचकर मैं
चिन्तासे घुली जा रही हूँ ॥ १४ ॥ ये सखियाँ मेरा ही दोष
बता-बताकर मुझे कहती हैं कि मैं दिन-रात रुठती ही रहती

हूँ, किसीकी एक बात नहीं सहती और अपनेको बरा बुद्धिमान
समझती हूँ, उधर वह धूर्त ऐसी चतुराईकी बात करता है कि ये
सखियाँ उसे ही अचढ़ा समझकर उसीके गुन बखाना करती
हैं ॥ १५ ॥ हे सखी ! जितने मेरे हाथमें बनी हुई कमलकी
देखा, भाग्यके स्थानमें बैठे हुए घृहस्पति और मस्तकमें
लिखे हुए विघनाके लेखको सत्त्वा कर दिखाया उस प्यारको
भी जब मैंने रट कर दिया तो मुझे, मेरे जीवनको,
कामदेवको, मेरी करनीको और मेरी इस अवस्थाको सीसी बार-
धिक्कर है ॥ १६ ॥ हे मेरी बौद्धि बौद्धि ! वृ भी मेरी बौद्धि
श्रॉलके समान स्वयं क्यों फटक रही है ? मैं बताए देती हूँ
कि यदि वह अपराधी प्रियतम था भी गया तो न मैं उसे
गले लगाऊँगी और न मैं उसकी ओर श्रॉल उठाकर देऊँगी
॥ १७ ॥ हाय ! जो पहले रुठकर चले गए थे वे प्रियतम
निर कैसे बुलाए जायें ! कोई तो डेर-सी निला सकता है,
किन्तु अमृतका समुद्र कहाँ मिलता है ॥ १८ ॥

प्रियतमसे प्रार्थना : हे प्राणप्यारे ! मैंने बादलाले घिरे
हुए आकाशको देखा, पहले हुए पवनका स्वयं किया और
कानोंसे मीरोंकी मधुरकृक सुनी, पर इतना सब होनेपर भी मैंने
तुम्हारे वियोगमें इसी धारासे प्राय नहीं छोड़े कि किसी न
किसी दिन तो तुम्हें गलेसे लगा ही पाऊँगी ॥ १ ॥ परे पूर्ण
प्रियतम ! मैं जानती हूँ कि तुमपर बहुत सी नवविधयें प्राय देती
हैं, अभी तुम्हारी नई जवानी है, तुम सुन्दर हो, सुखी हो, पर हो

शरैः पीडामसह्यामिमां व्रता नो भव येन सज्जनजनैः
कापालिको नोच्यसे ॥२॥ मयि मलयसमीरो वर्षतीय
स्फुल्लिङ्गानदहह हिमरुणो मामग्निना सिञ्चतीव ।
किमिति मकरकेतोः किं नु वदये कठोरे कथमपि तदहं
ते नाथ नोपेक्षणीया ॥ ३ ॥ मुक्तो मानपरिग्रहः सह
सखीसायेंन तन्मन्त्रिणा शक्ता त्वचरखप्रसादरहिता
नाहं क्षयं प्राणितुम् । पश्य त्वं सुकृशं शरीरकामिदं
यां यामवस्थां गातं सेषाहं तव पादयोनिपतिता नाथ
प्रसीदाधुना ॥ ४ ॥

नायकयोरु कप्रयुक्तय — अकरवमधिमो। लपादपष्ठा-
वपनय मानिनि मानितामकाएडे । यदि पररमयीं
गतस्त्वदाऽथ स्तनयुगलिङ्गयुगं स्पृशामि तन्वि ॥ १ ॥
श्रद्धानेन पराङ्मुखी परिभवादाश्लिष्य मां दुःखितां
किं लब्धं चट्टलं त्ययेह नयता सांभाग्यमेतां दशाम् ।
पश्यैतद्दयिताकुचव्यतिकरोन्मृष्टाङ्गरागरुणं वक्षस्ते

मलतैलपङ्कशयलैर्वैणोपदैरङ्कितम् ॥ २ ॥ अर्घोके भय-
मागतोऽसि किमिदं कएटश्च किं गद्गदश्चाटोरस्य न च
क्षणेऽयमनुपक्षितेयमास्तां कथा । ब्रूहि प्रस्तुतमस्तु
सम्प्रति महत्कर्णं सखीनां मुखैस्तुतिर्निर्भरमेभिरक्षर-
पदैः प्रागेव मे सम्भृता ॥ ३ ॥ एवं यथाह भवतीं मम
सर्वदोषाः कः स्वामिना कुवलयान्ति सहानुबन्धः ।
एवोऽञ्जलिधिरचितः कुरु निग्रहं मे दासेऽपराधयति
कोऽयसरः क्षमायाः ॥ ४ ॥ कामस्यापि शराहतिर्नि
गणिता त्वं जीवनं संस्मृता नो दग्धो धिरद्वानलेन
भ्रष्टिति त्वत्सङ्गमाशामृतैः । नीतोऽयं दिवसो विचित्र-
ल्लितैस्सङ्कटपरूपैर्माया किञ्चान्यन्मनसि स्थिताऽस्ति
भवतीं तत्र स्वयं साक्षिणी ॥ ५ ॥ किं पादान्ते
पतसि धिमानः स्वामिनो हि स्वतन्त्राः कश्चिद्वकालं
कश्चिदभिरतस्तेन कस्तेऽपराधः । आगस्कारिष्यह-
मिह यथा जीवितं त्वद्वियोगे भर्तुः प्राणास्त्रिय इति

बड़े निर्दयी । इसलिये न तो तुम दूसरोंकी पीर ही समझते हो
न स्वयं तुम्हें किसी बातकी पीर होती है । फिर भी दूसरी
स्त्रियोंसे ही एव तो देखो कि कामके धारणसे किजनी पीडा हाती
है । अथ तुम मुझे बचा लो जिससे तुम्हें सज्जन लोग मसान
जगानेवाला अधोरी न कहने लगें ॥ २ ॥ हे प्यारे ! तुमने जो
अपना हिया पत्थरका बना रखा है, इसीलिये यह मलयाचलका
पवन मुझपर चिनगारियां बरसा रहा है । यह देखो, चन्द्रमा
भी आग बरसाए जा रहा है और कामकी तो पूछो मत कि वह
क्या चाहता है । इसलिये जो भी समझो, तुम्हें आकर
मुझे उबार ही लेना चाहिए ॥ ३ ॥ हे प्यारे ! सखियोंके
बहने-सुननेपर मैंने अपने मनसे क्रोध निकाल फेंका । अथ मैं
आपके चरणोंकी कृपाके विना लयभर भी जी नहीं सकती ।
मेरे इस तुवैल शरीरकी तो देखो कि यह कैसा हुआ जा रहा
है ! इसलिये हे नाथ ! मैं आपके पैरों पदती हूँ, मुझपर प्रसन्न
हो जाइए ॥ ४ ॥

नायक-नायिकाकी आपसकी यातचीत : हे रुठने-
वाली ! मैंने तुम्हारे दोनों पैर अपने माथेपर लगा लिए हैं,
अथ तो यह इसमयका रुठना छोड़ दो । तुम्हारे दोनों
स्तनोंसे अपनी छाती तथा तुम्हारी योनिसे अपना लिङ्ग छूकर
शपथ खाता हूँ जो धाजसे कभी किसी दूसरी स्त्रीके
पास जाऊँ ॥ १ ॥ हे भूत ! भ्रनधाने ही स्वभावसे मुख
पेरकर बैठी हुईं मुझ सुखियाको बलपूर्वक गलेसे लगाकर और

मेरे सुभागको इस दशातक पहुँचाकर बतारो तुम्हारे हाथ क्या
लभ ? देखो, यह तुम्हारा वक्षस्थल जो तुम्हारी किसी
दूसरी प्यारीके स्तनपर लगे हुए देशरसे खाल है उसपर
उसकी मेला तथा सेलमरी चोटिके चिह्न भी बने हुए है ॥ २ ॥
‘तुम आ गए !’ यह वाक्य पूरा करनेसे पहले ही तुम इतना
घबराए क्यों जा रहे हो ? और तुम्हारा गला क्यों अभीसे
भर्राया जा रहा है ? अथ यह सब इधर-उधरकी वे सिर-पैरकी
बातें छोड़ो । भले आदमी ! तुम्हें जो कुछ कहना हो वह सीधे-
सीधे कह क्यों नहीं डालते ? ये सब बातें तो सखियोंके मुँहसे
मैं इतना सुन चुकी हूँ कि सुनते-सुनते मेरे कान पक गए
हैं ॥ ३ ॥ हे कमलनयनी ! तुम जो कह रही हो वही ठीक है ।
सारा दोष मेरा ही है । स्वामीके साथ भला क्या बराबरी !
मैं हाथ जोड़े रहा हूँ, तुम मुझे दख दो । अपराधी सेवकपर
क्षमाकी बात ही क्या ॥ ४ ॥ तुम्हारा स्मरण करते हुए मैंने
कामके धारणकी चोटको कुछ नहीं समझा, तुम्हारे मिलनेकी
आशासे ही मैं विरहकी आगमें भस्मसे जल उठनेसे बच गया
और अनेक प्रवारके लैकड़ों विचित्र सङ्कल्प कर करके मैंने इतने
दिन बिता दिए । अधिक क्या कहूँ, मेरे मनमें तो तुम ही
बसी हो और इस बातको स्वयं तुम जानती भी हो ॥ ५ ॥ तुम
इतने उदास होकर क्यों मेरे पैर पड़ रहे हो ? स्वामी तो स्वतन्त्र
होते हैं । यदि कुछ देर कहीं रम ही गए तो तुमने कौन बड़ा
अपराध कर दिया । अपराध तो मैंने किया है जो तुम्हारे

ननु त्वं भयैवानुनेयः ॥६॥ किं किं वफत्रमुपेत्य चुम्बसि
 वलाभिल्लज्ज लज्जा क ते वस्त्रान्तं शठ मुञ्च मुञ्च
 शपथैः किं धूर्तं वाग्बन्धनैः । पित्राहं तत्र रात्रिजागर-
 वशात्तमेव थाहि प्रियां निर्माल्योऽम्बितनुपुपद्मनिकरे
 कः पट्टपदानां रतिः ॥ ७ ॥ कृतं मिथ्यावादैर्विरम
 विदितः कामुक चिरात्प्रियां तामियोश्चैरभिसर यद्दी-
 यैर्नयपदैः । विलासैश्च प्राप्तं तव हृदि पदं रागवह्नुले
 मया किं ते कृत्यं भ्रुवमकुटिलाचारपरया ॥ ८ ॥ कृत-
 क.कृतकैर्मायाशास्त्रैस्तययाप्यतिवर्तितं निभृतनिभृतैः
 कार्यालापैर्मयान्युपलक्षितम् । भवतु विदितं नेष्टा
 तेऽहं ब्रथा परिचिद्यते अहमसहना त्वं नि.ःक्रोहः संमेन
 समं गतम् ॥ ९ ॥ तथाऽभूदस्माकं प्रथममविभक्ता
 तनुरित्यं ततो नु त्वं प्रेयान्वयमपि हताशाः मिय-
 तमाः । इदानीं नाथस्त्वं वयमपि कलत्रं किमपरं
 मयाप्तं प्राणानां कुलिशकठिनानां फलमिदम् ॥ १० ॥

तवेदं पश्यन्त्याः प्रसरदनुरागं चक्षुरिव प्रियापादात्-
 कचक्षुरितमरुणयोतिहृदयम् । ममाद्य प्रकृशातप्रगुण-
 भरमञ्जैन कितय त्यदालोकः शोकाद्यपि किमपि लज्जां
 जनयति ॥११॥ हृष्टिं रुपा क्षिपसि भामिनि यद्यपीमां
 क्षिण्ये थमेत्यति तथापिन रुद्रभावात् । त्यङ्गना न्वरां
 व्रज तवस्खलितैरयं तु चेदं कश्चिप्यति गुरुनियनं
 नितम्बः ॥१२॥ मान निराधारस्त्वं गच्छाम्नु शिष्टस्तु
 पन्थाम्ते । अमुना चडाञ्जलिना हृदयमशेषं निपीतं
 मे ॥ १३ ॥ यत्राकांयितमिन्दुना सरसिजैर्ङ्गारपुञ्जा
 यितं कृद्धायां मयि नाथ ते कदलिःकारणैर्ङ्गलातायि-
 तम् । कालोऽन्य रज्जु कोऽपि सोऽमृतमयो जातेो
 विपाक्तोऽधुना धिक्प्राणानिति निर्यदधुरवला मोहं
 वदन्तीं गता ॥ १४ ॥ यदा त्वं चन्द्रोऽभूः शिशुरक-
 सम्पर्कचरिस्तदाहङ्गता द्रान्शशयचरमणोनां प्रति-
 कृतिः । इदानीमर्कस्त्वं चरुचिसमुत्सारितरसः

विद्योहमे भी जीती रही। अब तो मुझे चाहिए कि मैं तुम्हें मनाऊँ
 क्योंकि लोग कहते हैं कि छियाँ ही पुरयोकी प्राण होती है ॥६॥
 हे निर्लज्ज ! मेरे सुँहके पास लग लगकर चूमनेके लिये क्या
 सुँह बधा रहे हो, तुम्हें लज्जा नहीं आती ? छोटो-डोबो, धूर्त !
 मेरे आँचलका छोर छोडो ! अरे कपटी ! मैं तुम्हारे इस सौगन्ध
 खाने और उलटी-सीधी बातोंमें आनेवाली नहीं हूँ । देव रही
 हूँ, रातभर तुम्हें नींद नहीं आई । मुझे बडा तरस आता है
 तुमपर ! जाओ, अपनी उसी प्यारीके पास चले जाओँ जहाँ
 सारी रात बिताई है ? कहीं श्वाकर उतारी हुई फूलकी मावा-
 पर भीरे थोड़े ही मँडराते हैं ॥ ७ ॥ हे कामी ! बहुत अटपट
 बातें न बनाओ, मैं बहुत पहलेसे ही सब समझ चुकी हूँ । अब
 ऋपट अपनी उसी प्यारीके पास जा पहुँचो जिसके नजो, देरों
 और हाव-भावोंने अत्यधिक प्रेमपूर्वक तुम्हारे हृदयमें धर कर
 लिया है । मुझ सीधी-सादी प्रेम करनेवालीको तुम क्या
 करोगे ? ॥ ८ ॥ तुमने छल-ऋपट करके अपनी बात क्षिपानी
 तो बहुत चाही पर मैं भी तुम्हारा सारा कच्चा चिट्ठा ताद गई
 हूँ । मैं जान गई कि तुम मुझे तनिक भी नहीं प्यार करते
 हो । यह ऋट्टून पड़तावा दिवाना मुझे तनिक नहीं भाता ।
 तुम्हारे प्रेममूठ मनसे इसका मेल अचड़ा बैठ गया है
 ॥ ९ ॥ एक समय वह था कि हम दोनोंका शरीर एक था,
 उसके पश्चात् तुम चाहनेवाले हो गए और मैं अभागिनी
 तुम्हारी प्यारी हो गई, और अब तो आप स्वामी हैं और

मैं पत्नी हूँ, और क्या कहूँ, मैंने अपने वज्रके समान
 कठोर प्राणोंका फल पा लिया ॥ १० ॥ तुम्हारी दूसरी
 प्रेयसीके पीरोंकी महातरसे ईगा हुआ तुम्हारा वषट्मल
 ऐसा जान पड़ रहा है मानो तुम्हारा प्रेम हृदयके बाहरतक
 छलका पड़ रहा हो । अरे धूर्त ! तुम्हारे इस दिखारटी प्रेमसे
 मेरे हुए रूपको देखकर बड़ी चिन्ता और लज्जा हो रही है
 ॥ ११ ॥ हे प्यारी ! यद्यपि तुम क्रोध कर-इरके अपनी चितवन
 चला रही हो किन्तु यह चितवन स्वभावसे ही इतनी रसीली
 है कि यह रुली नहीं पट सकती । अतः अब हृदयकी छोटकर
 धीरे-धीरे चलो नहीं तो ये भारी नितम्ब हिल-हिलकर निश्चय
 ही तुम्हें यका डालेंगे ॥ १२ ॥ हे मान ! अब तुम यहाँसे
 भागो, तुम्हारा भारी कर्षणाकारि हो, क्योंकि हाथ जोड़कर
 खड़े हुए इस (प्रियतम) ने मेरा सारा हृदय ही पो डाला है
 ॥ १३ ॥ 'हे नाथ ! जो समय पहले ऐसा अमृतमय था कि
 मेरे क्रोचिप हो जानेपर आपके लिये चन्द्रमा भी सूर्य बन जाता
 था, कमल भी अङ्गारे और केलेके खरमे भी जलती हुई लूक बन
 जाते थे, वही अब विपमय हो गया है । चिन्कार है प्राणोंको !'
 इस प्रकार कहती हुई तथा प्राँव बदाती हुई एक भबज्जा
 मूर्च्छित होकर गिर गई ॥ १४ ॥ कोई सनय था जब तुम वह
 चन्द्रमा थे जिसके कर (किरण, हाथ) का स्वयं अत्यन्त शीतल
 होता था, वह चित्त चुराए डेता था और मैं भी उस चन्द्रमाके
 लिये चन्द्रहान्त-मणिकी पुतली बनी उसे देख देखकर

वक्त्रं प्रसीदत्कमात् ॥३॥ परिम्लाने माने मुखशशनि
तस्याः करधृते मयि क्षीणोपाये प्रणिपतनमात्रैकक-
रणे । तथा पद्मप्रान्तत्रजपुटनिवहनेन सहसा प्रसादो
वाष्पेण स्तनतटविशीर्णेन कथितः ॥ ४ ॥ भवति
विततभवासोन्नाहप्रपुत्रपयोधरं हृद्यमपि च क्षिप्रं
चञ्चुनिजमष्टतौ स्थितम् । तदपु वदन् नूच्छांच्छेदात्म-
सादि विराजते परिगतमिद्य प्रारम्भेऽहः श्रिया सर-
सीरहम् ॥ ५ ॥ सत्यं भामिनि दुर्जनोऽस्मि दयिते
पाल्यस्तथाऽपि त्वया तद्वोपश्रयतशो मृगाक्षि नियतं
दीने मयि क्षम्यताम् ॥ इत्थं जल्पति बल्लभे मृगदृशा
चञ्चुर्लसत्सम्भृतं रक्तवं घिरलीकृतं च वदने वृत्तं न
किञ्चिद्वचः ॥ ६ ॥

परस्परप्रसादः—अनुदेहहमागतयतः प्रतिमां परिष्ठा-
यकस्य गुरुमुद्रहता । मुकुरेण वेपथुभृतोऽतिभरात्क-
थमप्यपाति न वधूकरतः ॥ १ ॥ अवनम्य वल्लसि

कमले प्रसन्न होता हुआ इस सुन्दरीका मुख राहुके मुखसे
घूटे हुए चन्द्रमाकी शोभा पा रहा है ॥ ३ ॥ प्रसन्न करनेके
लिये सारे उपाय निष्फल हो जानेपर जब मैंने उसे झुककर
प्रणाम किया तब हथेलीपर रखले हुए उसके मुखपर
क्षोषके चिह्न कुछ कम हुए, उसकी बतौनियोंमें उलझे
हुए आँसू स्तनोंपर ढुलक पड़े और इससे अनुमान हो गया
कि वह प्रसन्न हो गई है ॥ ४ ॥ लम्बी साँसोंके चलनेसे
हिलते हुए स्तनवाला बल्लस्थल स्नेहसे भर रहा है, आँसू
झपने पहलके-से रूपमें आ गई है, मूच्छां नट हो
जानेसे मुखपर भी चमक चढ़ आई है । अतः वह
मुख पाला पढ़नेसे पहले शोभासे भरे हुए खिले हुए कमलकी
भाँति सुन्दर दिखाई पढ़ने लगा है ॥५॥ 'हे सुन्दरी! सचमुच
मैं अत्यन्त दुष्ट हूँ फिर भी हे प्यारी! तुम मुझपर कृपा करों
और हे मृगनयन! मुझ सैकड़ों अपराधासे भरे हुए दीनकी
तुम क्षमा कर दो ।' इस प्रकार प्रियतमके कहत ही मृगनयनकी
नवेलीकी आँखोंमें प्रसन्नता झलकने लगी, घुँसे कापकी ललाई
ढलने लगी और उसने कोई उत्तर नहीं दिया ॥ ६ ॥

एक दूसरेपर प्रसन्न होना ; कोई नवेली हाथमें दर्पण
लेकर मुँह देख रहा था, तबतक प्रियतम भी पाछे आकर
छड़े हो गए । उनकी परछाई पढ़नेसे ही मानो वह दर्पण
इतना भारी हो गया कि उस नवेलीका हाथ काँपने लगा
किन्तु निरी-किराँ प्रसार उस नवेलीने दर्पणकी सँभाल

निमग्नकुचद्वितयेन गाढमुपगूढवता । दयितेन तत्क्षण-
चलद्रशनाकलकिङ्किणीरवमुदासि वधूः ॥ २ ॥
आगत्य प्रणिपातसान्त्वितसखीदत्तान्तरे सागसि स्वैरं
कुर्वति तल्पपार्थ्वनिभृते धूर्तेऽङ्गसंवाहनम् । ज्ञात्वा
स्पर्शवशात्प्रियं किल सखी भ्रान्त्या स्वमञ्जं शनैः खिन्ना-
सीत्यभिधाय मीलितदृशा सानन्दमारोपितः ॥ ३ ॥
इह स्फुटं तिष्ठति नाथ करटक शनैश्शनैः कर्पं नखाश्र-
लीलया । इति च्छलात्काचिद्वल्लसकरटकं पदं तदुत्स-
हतले न्यवेशयत् ॥ ४ ॥ उदितोरुसादमतिधेषुधुमस्तु
दृशोऽभिर्मर्तं विधुरं त्रपया । वपुरादरातिशयगंसि
पुनः प्रतिपत्तिमूढमपि बाढमभूत् ॥ ५ ॥ उपनेतुमुच्च-
तिमतेव दिवं कुचयोर्युगेन तरसा कलिताम् । रभ-
सोरिथितामुपगतः सहसा परिरेभ्य कश्चन वधूमरुह-
धत् ॥ ६ ॥ एकस्मिन्शयने पराङ्मुखतया धीतोत्तरं
ताम्यतोरन्योन्यस्य हृदि स्थितेऽप्यनुनये संरक्षतोर्गौ-

खिया और वह धरतीपर गिरने-गिरते बच गया ॥ १ ॥ प्रियतम
कुछ ऊँचे थे अतः जब उन्होंने झुककर नवेलीको कसकर गले
लगाकर ऊपर उठा लिया उस समय प्रियतमके बचःस्थलसे
नवेलीके स्तन दब गए और हिलती हुई कर्धनीके
घुँघरुओंकी मधुर-मधुर ध्वनि हाने लगी ॥ २ ॥ अपराधी
प्रियतमने पैरों पड़-पड़कर सखियोंकी मनगाथा, किं सखियों
जब अबसर दिया ता वह अपनी प्याराके बिछौनेके पास
धीरे धीरे आया और उसके अङ्ग दवाने लगा । उस रूपसे
ही नवेलीने समझ लिया कि ये पतिदेव है, फिर भी सखीका
बनावटी भ्रम दिखाती हुई 'अरे तुम थकी जा रही हो'
ऐसा कहकर आँसू मुँदे ही मुँदे प्रेमपूर्वक धीरेसे प्रियतमका
अपने बिछौनेपर बेटा लिया ॥ ३ ॥ 'हे नाथ ! मेरे पैरोंमें
कौटा गड़ गया है, इसे अपने नखसे धीरे-धीरे खींच लीजिए !'
इस प्रकार कहकर कौटा न लगनेपर भी किन्हीं नवेलीने दूध
बहाने पत्तिकी गोदमें अपना पैर रख दिया ॥ ४ ॥ पतिके
आते ही नवेलीकी नज्जिं जकड़-सी गई, शरीर काँपने लगा
और लजासे दब-सा गया । इस प्रकार यद्यपि उसका शरीर
सत्कारके कामोंमें नहीं लग रहा था फिर भी प्रियतमपर
अधिक प्रेम होनेकी सूचना तो दे ही रहा था ॥ ५ ॥ एकाएक
प्रियतमके घर आ जानेसे हृद्यवाकर उठी हुई नवेलीके स्तन पेने
उड़ल पड़े मानो वे उस नवेलीको पकड़कर आकाशमें उड़ा ले
जाना चाहते हों । ऐसी दशा में प्रियतमने तत्काल उसका आशिर्हान

रयम् । दम्पत्योः शनकैरपाङ्गयलनाग्निश्रीभयघलुपो
भैशो मानसलिः सहासरभसव्यासककण्ठप्रहः ॥ ७ ॥
एकस्मिन्शयने सरोरुहदृशोधिनाय निद्रां तयोरेकां
पल्लयितायगुण्डनवतीमुन्मन्धरो दृष्टवान् । अन्यस्थाः
सविधं समेत्य निभृतव्यालोलहस्ताङ्गुलिख्यापारैर्वस-
नाञ्चलं चपलयन्स्यापच्युतिं क्लृप्तवान् ॥ ८ ॥ कररुद्ध-
नीधि द्युतितोपगतां गलितं त्वराविरहितासनया ।
क्षणदृष्टहाटकशिलासदृशस्फुरद्रुमिसिन्धु वसनं ववसे
॥ ९ ॥ कान्ते घोरकृतान्तवस्त्रकुहरास्त्रं पुण्यपुञ्जेन मे
सुक्ता कृतं तदर्जनश्रमभरं प्रत्यङ्गमालिङ्गय माम् ।
इत्याकर्ण्य निमीलितार्धनयनं स्मेरं शनैरानतं सोल्लासं
वदनाभ्युजं मृगदृशः स्वैरं चुचुम्ब प्रियः ॥ १० ॥
कृत्या विप्रदमश्रुपातकलुपं शय्यासनादुत्थिता क्रोधा
च्चापि विहाय गर्भमयनद्वारं रुपा प्रस्थिता । दृष्ट्वा
चन्द्रमसं प्रभाविरहितं प्रत्यूषघाताहता हा रात्रिस्व-

रिता गतेति पतिता कान्ता प्रियम्योरनि ॥ ११ ॥
चञ्चुलुप्तमपीरुणं कथलितमताम्बूलरानोऽधरे विश्रान्ता
कचरी कपोलफलके लुतेव गात्रद्यतिः । जाने मम्प्रति
मानिनि प्रणयिना कैरप्युपायन्मैर्भैशो मानमहातरु-
स्तरुणि ते चेतःम्यलीयधितः ॥ १२ ॥ जाता नोत्क-
लिका स्तनौ न लुलितौ गात्रं न रोमाञ्जितं वक्त्रं
स्वेदकणाञ्जितं न सहसा यावच्छृङ्खेनामुना । दृष्टेनैव
मनो हृतं धृतिमुपा प्राणेश्वरेणाद्य मे तत्रेनापि निरु-
प्यमाणनिपुणो मानः समाधीयताम् ॥ १३ ॥ तदेवा-
जिह्वालं मुपमविशदमन्ता गिर इमाः स एवाङ्गप्लेपो
मयि सरसमाश्लिष्यति तनुम् । तदुक्तं प्रत्युक्तं यदपटु
शिरःशम्पनपरं प्रिया मानेनेर्यं पुनरपि कृता मे नव-
घट्टः ॥ १४ ॥ तस्याः सान्द्रविलिपनस्तनयुगप्रश्लेषमु-
द्राङ्कितं किं घत्तश्चरणानतिव्यतिकरव्याजेन गोपा-
य्यते । इत्युक्ते कं तदित्युदीर्यं सहसा तत्सम्प्रमाप्टं

करके उसे शीघ्रतामे यथा लिया ॥ ९ ॥ एक ही विद्युत्नेपर
पति-पत्नी मुँह फेरकर चुपचाप पड़े हुए हुए ही हो रहे थे ।
एक दूसरेको मना लेनेकी चाह हृदयमें होते हुए भी दोनों
अपने सम्माननी रक्षा कर रहे थे किन्तु करवट वरुलते समय
जैसे ही धीरेसे उनकी आँसों आपसमें मिलीं तो उनकी कोप-
रूपी कली बिसर गई तथा हँसकर वे बेगमे एक दूसरेसे
चिपट गए ॥ ७ ॥ एक ही विद्युत्नेपर दो नवेलियाँ सोई हुई
थीं । नायकने अपना सिर उठाकर जैसे ही देखा कि एक नवेली
वस्त्रसे मुँह ढके सो रही है वैसे ही तत्काल उसने दूसरीके पास
जाकर चुपकेसे अपने हाथकी उँगलियोंसे उसके वस्त्र रींचकर
उसे जगा दिया ॥ ८ ॥ पतिके आनेपर नवेली एकाएक अपना
आसन छोड़कर उठ पड़ी हुई । यद्यपि यह सादीका नाबा याने
हुए भी फिर भी उसकी साक्षी नीचे सरक गई और जतक वह
उसे सँभालकर पहने पहने तबतक तो सोनेकी चट्टानके समान
चमचमती हुई उसकी जाँवोंकी घनी चमकने ही वस्त्रका काम
कर दिया अर्थात् चमचमकाहटके कारण उसकी कोई जाँव न देखा
पाया ॥ ९ ॥ 'हे प्रिये ! तुम हमारे पुण्योत्सवमराजके भयङ्कर मुख-
रूपी गहङ्गेने छुटकारा पा गई हो अतः मेरे प्रत्येक अङ्ग आलिङ्गन
करके उस पुण्यके सञ्चयसे पाई हुई यथावत् दूर कर दो ।'
प्रियतमको ऐसा कहते सुनकर नवेलीकी आँसों धापी मुँह गईं,
उसने सुन्दरतासे हुए अपना प्रसन्न मुख धीरेसे मुका दिया और
प्रियतम उस मृगमयनीने मुखका देरतक पुण्यन करते रहे ॥ १० ॥

भगवा करके रोती हुई नवेली अपने विद्युत्नेसे उठी और क्रोधसे
घरका भीतर द्वार खोलकर बाहर निकली, उसने चन्द्रमाको फोका
देखा तथा उसके शरीरमें प्रातःकालका पवन भी लगा अतः
वह सोचने लगी कि 'हाय ! अथ तो यह रात शीघ्र ही बीती
जा रही है !' और यह जानकर वह लौटकर अपने प्रियतमकी
गोठमें जा गिरी ॥ ११ ॥ हे क्रोध करतेवाली ! तुम्हारे नेत्रोंमें
काजल नहीं दिखाई देता, आठमे पानकी ललाई भी निट गई
है, बाल भी गालोंपर बिग्नर आए हैं और शरीरकी कान्ति भी
मलिन पट गई है, इससे जान पड़ता है कि हे तरुणी ! तुम्हारे
प्रियतमने किन्हीं उपायोंसे तुम्हारे मनरूपी भूमिपर बड़े हुए
क्रोधरूपी विशाल वृक्षको उखाड़ डाला है ॥ १२ ॥ जबतक मेरे
मनमें उसके लिये ललक नहीं थी, तबतक व तो शरीरमें
रोमाञ्च हुआ, न स्तन फड़के और न सुगममें पसीना ही आया,
किन्तु तत्काल धीरज तोड़ देनेवाले उस पतं प्रियतमको देखते
ही एकाएक मन उसकी ओर ही रींच गया । अथ क्रोध करना
उचित भले ही हो किन्तु वह किया कैसे जा सकता है ?
॥ १३ ॥ यह प्यारी नवेली क्रोध करके मानो फिर नहीं बह-
सी हो गई है, क्योंकि इसके मुँहपर नई बहूके सभान ही सीधी
चितवनवाली आँसों गोभित हो रही हैं, वैसी ही स्पष्ट बातें
हैं तथा मेरे आलिङ्गन करनेपर वैसा ही प्रेममें भरकर गले
लगाना, वैसी ही बातचीत और वैसी ही सिपाईके साथ सिर
हिलाना आदि भी है ॥ १४ ॥ दूसरी कीका सदवाह करके लौटे

मया संश्लिष्टा रभसेन तत्सुखवशात्तन्व्यापि तद्विस्मृ-
 तम् ॥ १५ ॥ दृष्टे शोचनवचनात्समुकुलितं पार्श्वस्थिते
 वक्रवन्धनभूतं चहिरासितं पुलकवत्स्पर्शं समातनवति ।
 नीवीयन्धवदागतं शिथिलतां सम्भाषणमात्रे क्षणान्माने-
 नापसृतं ह्रियेव सुदृशः पादस्पृशिशि प्रेयसि ॥ १६ ॥
 नापेतोऽनुनयेन यः प्रियसुदृष्टाक्यैर्न यः संहतो यो
 दीर्घं दिवसं विपद्य हृदये यस्मात्कथञ्चिद्भूतः । अन्यो-
 न्यस्य हृते मुखे विहितयोस्तियं कथञ्चिद्दृशोः सम्भेदे
 सपदि स्मितव्यतिकरे मानो विहृत्स्योऽज्जितः ॥ १७ ॥
 निपपात सम्भ्रमभूतः श्रवणादसितभ्रुवः प्रणदितालि-
 कुलम् । द्युतितावलोकिविकसन्नयनप्रसरप्रयुञ्जमिष
 वारिच्छम् ॥ १८ ॥ पदप्रणतमालोक्य कान्तमेकान्तका-
 तरम् । सुञ्जन्ती वाष्पसन्तानं सुमुखी तेन चुम्बिता
 ॥ १९ ॥ परिमन्धराभिरलक्ष्मू रभरादधिवेश्म, पत्युरप-

चारविधौ । स्खलिताभिरप्यनुपदं प्रमदाः प्रख्यातिभू-
 मिमगमन्गतिभिः ॥ २० ॥ पश्यामः किमियं प्रपद्यत
 इति स्थैर्यं मया लभ्यितं किं मां नालपतीत्यर्थं खलु शठः
 कोपस्तवाप्याधितः । इत्यन्योन्यविलसद्दृष्टिचतुरे
 तस्मिन्नवस्थान्तरे सव्याजं हसितं मया धृतिहरो
 मुकस्तु वाष्पस्तया ॥ २१ ॥ पिदधानमन्यगुपगमन्य
 दशौ ब्रुवते जनाय वद कोऽयमिति । अमिघातुमध्य-
 वससौ न गिरा पुलकैः प्रियं नववधूर्न्यगदत् ॥ २२ ॥
 मधुरोन्नतभ्रु ललितं च दशोः सकरप्रयोगचतुरञ्च
 वचः । प्रकृतिस्थमेव निपुणागमितं स्फुटनृत्यलीलमभ-
 वत्सुतनोः ॥ २३ ॥ लीलातामरसाहृतोऽन्यवनितानिः-
 शङ्कदुग्धाधरः कश्चित्केसरदूपितेक्षण इव व्यमील्य
 नेत्रे स्थितः । मुग्धा कुडमलिताननेन दधती धारुं
 स्थिता तस्य सर्वा भ्रान्त्या धूर्ततया च वेपथुमती तेना-

हुए सुकले वैसे ही मेरी पत्नीने कहा कि 'तुम्हारे जिस
 वस्त्रस्थलपर उस नवेलीके स्तनोंके आलिङ्गनसे चन्दन, केशर
 आदिके चिह्न लग गए हैं, उसे मेरे चरखोंपर गिरनेके बहाने
 भुकाकर क्यों छिपा रहे हो ?' वैसे ही 'कहाँ लगा है !' कहकर
 उसे पाँछनेके लिये मैंने उसका आलिङ्गन किया और वह
 पतली नवेली भी इसी सुखमें मेरा सारा अपराध भूल गई ॥ १५ ॥
 प्रियतमको देखनेपर नेत्रोंके साथ-साथ उस नवेलीका क्रोध
 सिमट गया, पासमें खड़े होनेपर मुखके साथ-साथ
 क्रोध फुक गया, स्पर्श करनेपर रोमाञ्चके साथ वह बाहर आ
 गया, वातघीत बरनेपर नाथिके समान डीला हो गया तथा
 पैर छूनेपर लज्जाके साथ उस सुनयनी नवेलीका क्रोध भाग
 खड़ा हुआ ॥ १६ ॥ बहुत मनानेपर भी जो क्रोध दूर नहीं हो
 सका, सखियोंके समझाने-बुझानेपर भी निट न सका, पति-
 पत्नी जिसे किसी प्रकार सहन करके हृदयमें रक्खे हुए थे और
 जिसके कारण दोनों मुख फरे बैठे हुए थे वह क्रोध किसी
 प्रकार दोनोंकी छाँसें मिलते ही और हँसते-सुस्कारते ही न
 जाने कहीं चला गया ॥ १७ ॥ प्रियतमको देखकर उसके
 स्वागतके लिये उठते ही नवेलीके कानसे वह कमल गिर पड़ा
 जिसपर औरें गूँज रहे थे, अतः उसे देखकर ऐसा जान पड़ा
 मानो छाँसेंके विरसित दीवर फैलनेपर उन छाँसेंका धक्का
 लग जानेसे ही वह गिर पड़ा हो ॥ १८ ॥ आत्यधिक भयसे
 पैरपर गिरते हुए प्रियतमको देखकर जब सुन्दर सुखवाली
 नवेलीने लगामातार छाँचू वरसाए तो प्रियतमने उसका पुनव

कर लिया ॥ १९ ॥ घरमें आए हुए पतिके सत्कारके लिये
 यद्यपि नवेलियाँ बड़ी बड़ी जाँचोंके भारसे धीरे धीरे तथा पग-
 पगपर लक्ष्मदाती हुई चल रही थीं फिर भी अपनी चालकी
 सुन्दरताके कारण वे प्रियतमके प्रगाढ़ प्रेमकी पात्र बन ही
 गईं ॥ २० ॥ मैं इस विचारसे चुप रह गया कि देखें यह
 क्या करती है, और वह इस विचारसे रुठ गई कि यह धूर्त
 मुझसे बातेंतक क्यों नहीं कर रहा है ! ऐसी अवस्थामें जब कि
 हम दोनों विना मनके इपर-उधर देख रहे थे तबतक मैं किसी
 बहाने हँस पड़ा और वह भी मेरा धीरज तोड़नेवाले छाँचू
 बहाने लगी ॥ २१ ॥ बैठी हुई नवेलीके पाँछसे आकर
 प्रियतमने उसकी आँसें मूँद लीं और पूछा कि 'बतलाओ
 कौन है ?' तो नवेलीने इसपर मुँहसे तो कड़ नहीं कहा किन्तु
 शरीरपर उठे हुए रोमाञ्चसे ही उसने बत दिया कि 'आप
 प्रियतम हैं' ॥ २२ ॥ मनोहर तथा बाँकी भीहाँवाली आँसेंका
 चलाना तथा हाथ मटका-मटकाकर बातें करना यद्यपि ये दोनों
 ही उस सुन्दरके स्वाभाविक गुण थे किन्तु वे ही चतुर आचार्य
 कामदेवके सिखला देनेपर नृत्यके समान जान पड़ने लगे
 ॥ २३ ॥ दूसरी नवेलीने किसी नायकके छोठपर दौँतका चिह्न
 लगा दिया था यह देख उसकी प्रियतमाने उसे कमलसे मारा
 और कमलका पराग छाँसेंमें पड़ जानेका बहाना करके
 वह आँसें मूँदकर बैठ गया अतः उसकी भोली-भाली प्रियतमा
 इसे सत्य समझकर अपने मुँहसे उसकी आँसें छूँकने लगी और
 अममें पदकर उसकी धूर्तताको न समझनेके कारण भयसे

निशं चुम्बिता ॥ २४ ॥ लोलांशुकस्य पयनाकुलितांशु-
कान्त तद्दृष्टिद्वारि मम लोचनयान्धवस्य । अघ्रा-
सितुं तव चिरं जघनस्थलस्य पर्याप्तमेव करभोक्त मयो-
दसुग्मम् ॥ २५ ॥ वचोवीचीघोदानं स्फुरद्दधरपानं विचि-
नयं कृशीभूते माने मयि सुगयमानो सुगदशः । वभृथ
भ्रमङ्ग सनयनतरङ्गः सपदियः प्रभुश्लथं व्यालेने जगदुपरि
तेनेह मदनः ॥ २६ ॥ वाचो वाग्मिनि किं तवाद्य परुषाः
सुभ्रु भ्रुवो विभ्रमोऽप्युज्ज्वलन्तः कृत एष लोलनयने किं
लोहिते लोचने । नास्त्यागो मयि किं मुधैव कुपिते-
स्युक्ते पुनः प्रेयसा मानिन्या जलचिन्दुदन्तुरपटा दृष्टिः
सलीप्याद्विता ॥ २७ ॥ सत्यं दुर्लभ एष बल्लभतरो
रागो ममास्मिन्पुनः कोपोऽस्यातिगुरुर्न चातिनि-
पुणाः सख्योऽपि सम्बोधने । सञ्चिन्द्येति भृगोदृशा
प्रियतमे दृष्टे श्लथां मेपलां यमन्त्या न गतं स्थितं न
च चलद्वास्तोऽथवा संवृतम् ॥ २८ ॥ सा यावन्ति पदा-

न्यलीकवचनैरालीजनैः पाठिता तावन्त्येव कृतागसो
द्रुततरं संलप्य पत्युः पुरः । प्रारभे पुरतो यया मन-
सिजस्येकञ्चा तथा घर्तितुं प्रेम्णो मौग्ध्यधिभूषणस्य
सहजः कोऽप्येव कान्तः क्रमः ॥ २६ ॥ र त तु जदिदि
मोनं पश्य पादानतं मां न खलु तव कदाचिन्नकोप एव-
विधोऽभूत् । इति निगदति नाथे तिर्यगामोलितादया
नयनजलमनलए मुक्तमुक्तं न किञ्चित् ॥ ३० ॥

प्रियचातुकयः - अत्रङ्गोऽयमङ्गल्यमय निन्द्यप्यति
ध्रुयम् । यदनेन न सम्प्रातः पारिस्पशोत्सयस्तव ॥ १ ॥
अनधिगतमनोरथस्य पूर्वं शतगुणितेव गता मम
वियामा । यदि तु तव समागमे तथैव प्रवर्तति सुभ्रु
ततः कृतो भयैयम् ॥ २ ॥ अनयोरनवधाज्ञो स्तनयो-
र्जन्ममाख्योः । अथकाशो न पर्याप्तस्तव वाहुलतान्तरे
॥ ३ ॥ अन्तःकृजद्वारकएठमसकमुञ्चेति लोलेक्षणं
प्रायः स्मेरकपोलमूलममृतमस्यन्दि विन्याधरम् ।

काँपने लगी । यह सब देखकर भायक वही देखत उसका
पुन्यन करता रहा ॥ २४ ॥ हे चिकनी जाँघोंवाली ! तुम्हारे
नितम्ब रगनेके छिमे मेरी जाँघें ही उचित स्थान हैं क्योंकि जैसे
तुम्हारे नितम्बपर वस्त्र हिल रहे हैं वैसे ही मेरी जाँघपर भी
पवनसे वस्त्र हिल रहे हैं और जैसे तुम्हारे नितम्ब मेरे नेत्रोंको
प्यारे लगते हैं वैसे ही मेरी जाँघें भी तुम्हारी आँखोंको प्यारी लग
रहीं हैं ॥ २५ ॥ मात्रके थोड़ा कम होते ही वह सुगनयनी एकाएक
आं प्रेमसे बोलने लगी, शान्तिपूर्वक श्रोतका पुन्यन करने लगी
और प्रेमसे भाँदें बाँधी करने लगी उससे जान पड़ता है मानो
कामदेवने संसारपर सांसार्य स्थापित कर लिया ॥ २६ ॥ 'हे
बहुत बोलनेवाली ! आन तुम इतनी कूली-कूली क्यों बोल रही
हो ? हे सुन्दर भाँदोंवाली ! तुम्हारी भाँदें ऐसे भयानक रूपसे
क्यों फड़क रही हैं ? हे चखल आँखोंवाली ! तुम्हारी आँखें
काल क्यों हैं ? विना अंपराधके ही मुझपर क्यों व्यर्थ ही क्रोध
त्रिप डीठी हो ?' मित्तमके ऐसा कहनेपर कूटी हुई नवेलीने
आँप-भरी आँखोंसे सखियोंकी ओर देखा ॥ २७ ॥ 'सचमुच
ऐसा प्यारा प्रियतम पाना बड़ा करिण है । मैं इससे प्रेम भी
बहुत करती हूँ, किन्तु यह मोपी है और मेरी सखियों
भी सतम्काने-सुकानेमें कुपल नहीं हैं ।' यह सोचकर वह
सुगनयनी अपने प्रियतमको देखकर अपनी दाँली करघनी
कसती हुई आगे नहीं बँधी, वहाँ ठहर गई और उसने अपने
बीबे बध भी न संभासे ॥ २८ ॥ सखियोंने नवेलीको

जितनी कूटी-कूटी बाँधें सियाई थीं उतनी ही बाँधें अंपरापी
पतिके सामने शीघ्रनासे कहकर उस नवेलीने कामदेवकी
हृदयके धनुसार न्यवहार करना प्रारम्भ कर दिया । सियाई
ही जिसका भूषण है उस प्रेमका यह एक सामाजिक तथा
सुन्दर निराळा दङ्ग है ॥ २६ ॥ 'हे सुन्दरी ! क्रोध छोड़ दो,
पैर पड़े हुए मुझे देखो, तुम्हारा इस प्रकारका क्रोध तो मैंने
कभी नहीं देखा था ।' ऐसा प्रियतमके कहते ही तत्रिङ्ग
पुनः नवेली आँखें खूँटकर आँसुओंकी धार बरसाने लगी
किन्तु बोली कुछ नहीं ॥ ३० ॥

प्रियतमको चिकनी-सुपड़ी दाँतें : अन्तः (विना
अङ्गका, कामदेव) अपनी अन्तःताकी आज धवरेय निन्दा
करेगा क्योंकि उसने तुम्हारे हाथका स्पर्शरूपी उत्सव नहीं
पाया ॥ १ ॥ हे सुन्दर भाँदोंवाली ! पहले जब मैं तुम्हारे साथ
नहीं था तो मुझे रात सौगुनी रहने जान पड़ती थी । हस्त
समय तुम्हारे साथ रहनेपर भी यदि पहलेकी ही भाँति
सौगुनी बढ़ जाती तो मैं धन्य हो जाता ॥ २ ॥ हे निर्दोष
अङ्गोंवाली ! तुम्हारे ये दोनों स्तन इतने बड़ गूढ़ हैं कि तुम्हारी
दोनों भुजाओंके बीच (वक्षस्थल) में वहाँने ठनिक स्थान
नहीं छोटा ॥ ३ ॥ हे सुन्दरी ! वह पुरप (मैं) धन्य है जिसने
'मुझे छोड़ दो' ऐसे अस्वल्प शब्द कहनेवाला तुम्हारा वह मुख
चूम लिया जिसकी आँखें चखल थीं, मात चिन्तित थी, श्रोत्रोंसे
मानो अमृत पृथा वा और जिसमें दिव्यता हुई रंगलियोंके

आधृताङ्गुलिपङ्गवाग्रमलमित्यानर्तितभ्रूलतं पीतं येन
मुपे त्वदीयमथले सोऽहं हि धन्यो युवा ॥ ४ ॥ अन्ते
नार्जुनतां दधाति नयनं मध्ये तथा कृष्णातां द्वैरूप्यं
दधताऽमुना विरचिता कर्णेन वे विग्रहः । तत्कर्णाङ्गुलि-
कृष्णविग्रहवती साक्षात् रुक्मेत्रतां यातासि त्वद्वर्षाति
रेष तरुणि श्रेयः परं गश्यते ॥ ५ ॥ अपूर्व चोर्धमभ्यस्तं
त्वया चञ्चललोचने । दिवैव जाग्रतां पुंसां चेतो हरसि
दूरतः ॥ ६ ॥ अयि मन्मथचूतमञ्जरि ध्वजणायतचारु-
लोचने । अपहृत्य मन क यासि तत्किमराजकमग्र
राजते ॥ ७ ॥ आकर्ण्य सरोजाञ्चि वचनीयमिदं भुवि ।
शशाङ्कस्तव वक्त्रेण पामरैरुपमीयते ॥ ८ ॥ आञ्चि-
पन्त्यरविन्दानि मुग्धे तव मुखधियम् । कोपदण्डसम-
न्त्राणां क्लिपामस्ति दुष्करम् ॥ ९ ॥ आञ्चिपसि कर्ण-
मद्वशा यस्मिंरपि बद्धस्तवया त्रिधा मध्ये । इति जितस-
कलवदान्ये तनुदाने लज्जसे सुतनु ॥ १० ॥ आरुह्य

शैलशिपरं त्वद्दनापहृतकान्तिसर्वस्वः । पूकर्तुमि-
धोर्ध्वकर. स्थित पुरस्ताच्चिशानाधः ॥ ११ ॥ आयतं
एव नाभिस्ते नेत्रे नीलसरोरुहे । तरङ्गा घलयस्तेन त्वं
स्वावश्याम्बुधापिका ॥ १२ ॥ इन्दुः किं क कलङ्कः
सरसिजमेतत्किमम्बु कुत्र गतम् । ललितसधिलाल-
घचनेमुखमिति हरिणाञ्चि निश्चितं परतः ॥ १३ ॥
उचितं गोपनमनयोः कुचयोः कनकाद्रिकान्तितस्क-
रयोः । अवधीरितविधुमण्डलमुखमण्डलगोपनं
किमिति ॥ १४ ॥ उद्भिन्ना कलकण्ठकण्ठकुहरात्
कर्णांमृतस्यन्दिनी हृद्या यद्यपि मार्दवैकवसतिः सा
काकलीहुङ्कतिः । अन्यस्तन्वि तथाऽपि ते त्रिणयन-
प्लुदस्य जीघार्षण पञ्चोरोचितप्रपञ्चितरसः पाका
ञ्चितः पञ्चमः ॥ १५ ॥ उन्मेषं यो मम न सहते जाति-
चैरी निशायामिन्दोरिन्द्वीचरदलदशा तस्य सोन्दर्य-
दर्पः । नीत. शान्ति प्रसभमनया वक्त्रकान्त्येति

साध औहं भी नाच-सी रही थीं ॥ ४ ॥ हे तरुणि ! तुम्हारे नेत्र
आस पास तो अर्जुन (उजले) हैं और बीचमें कृष्ण (काले)
हैं । इस प्रकार वो रूप धारण करनेवाले कर्ण (कान)
ने तुम्हारी देह देखी सजा दी है कि तुम कर्ण, अर्जुन और
कृष्णसे युक्त साक्षात् कुक्षेण हो रही हो । इसलिये तुम्हें
पा लेनेसे परम कल्याण मिल जाता है ॥ ५ ॥ हे चञ्चल
आँखोंवाली ! तुमने यह कोई निराले डङ्ककी चोरी साँधी है
कि दिनदहाड़े जागते हुए लोगोंके मनको दूरसे ही लूट
लेती हो ॥ ६ ॥ हे कामदेव-रूपी आमकी मञ्जरी (और)
तथा कर्णोंतक कैले हुए सुन्दर नेत्रोंवाली ! तुम हमारे
मनको सुराकर वहाँ भागी जा रही हो ! क्या वहाँ लूट
मची हुई है ? ॥ ७ ॥ हे कमलके समान आँखोंवाली ! सारे
संसारमें कैली हुई यह निन्द्याकी बातको तो सुनो कि मूर्ख
लोग चन्द्रमाको तुम्हारे मुँहके समान बखला रहे हैं ॥ ८ ॥
हे सुन्दरी ! कमल यदि तुम्हारे मुखकी कान्तिकी निन्दा किया
करें तो ठीक है क्योंकि इनके पास तो कोप (सजाना, कमलका
भीतरी भाग) और दण्ड (कमल, सेना) दोनों ही हैं
फिर इनके लिये क्या कठिन रह जाता है ॥ ९ ॥ तुमने अपनी
आँखोंके फैलावसे कर्ण (कान, राजा वरुण) को दया रक्खा है
और पेटमें तीन बार बलि (सिवुद्ग, राजा बलि) को बाँधा
है, इस प्रकार सभी दास्योंको जीतनेवाली हे सुन्दरी ! तुम
उभे अपना शरीर सँपनेमें क्यों सजुवा रही हो ! ॥ १० ॥

तुम्हारे मुखने जिसकी सुन्दरता छान कर ही है वह चन्द्रमा
पहाड़की चोटीपर चढ़कर तुम्हसे अपने ल (हाथ, किरण)
उठा-उठाकर कानों सामने रड़ा हाइराहर कर रहा है
॥ ११ ॥ जान पड़ता है तुम सुन्दरता-रूपी जलका धावकी
हो क्योंकि तुम्हारी नाभि ही प्रावर्त्त (भँवर) है, नेत्र ही
नीले कमल है और पेटकी सिङ्कडन ही लहरें हैं ॥ १२ ॥ हे
मृगनयनी ! तुम्हारा मुख देखकर पहले तो लोग यह तर्क करने
लगे कि 'क्या यह चन्द्रमा है ? यदि हाँ, तो इसका कलङ्क कहाँ
है ? तो क्या वह कमल है ? यदि हाँ, तो इसका पानी कहाँ
चला गया ?' फिर जब सुन्दर धाव-भावसे भरी हुई बाँतें सुनीं
तब वहाँ उन्होंने निश्चय किया कि यह मुख ही है ॥ १३ ॥ सोनेके
पहाड़ (सुमेरु) की शोभा सुरानेवाले इन स्तनोंको छिपा
लेना तो उचित है किन्तु अपनी शोभासे चन्द्रमण्डलको छिपा
देना वहतिक उचित है ? ॥ १४ ॥ कोयलके गलेसे
निकलनेवाली तथा अमृत बहाती हुई अत्यन्त कोमल दूक
यद्यपि अत्यन्त मनोहर होती है किन्तु हे दुबली पतली
देहवाली ! शिवजीके तीसरे नेत्रसे जलकर भस्म हुए कामदेवको
अग्नि जला देनेवाली तथा अथले रससे भरी हुई तुम्हारी
बोली दुष्क निराली ही है ॥ १५ ॥ 'जन्मका वैरी यह चन्द्रमा
जो रातमें मेरा जिलना नहीं-सह सकता उसकी सुन्दरताके
अभिमानको इस कमलनयनी नेवलीने अपने मुखकी सुन्दरतासे
पलपूर्वक चू चू कर ढाळा ।' इसी प्रसङ्गतासे हे

दृष्यान्ना मन्ये ललिततनु ते पादयोः पद्मलवनीः
 ॥ १६ ॥ एको हि खञ्जनवरो नलिनीदलस्यो दृष्टः
 करोति चतुरङ्गवलाधिपत्यम् । किंवा करिष्यति भव-
 द्दद्वन्द्वारविन्दे जानामि नो नयनपञ्जनयुग्ममेतत्
 ॥ १७ ॥ कमलाक्षि विलम्ब्यतां क्षणं कमनोये फचभार-
 यन्धने । दृढलक्ष्मिर्दं दृष्टोर्युगं शनकैरथ समुद्रारम्य-
 हम् ॥ १८ ॥ कमले कमलौत्पत्तिः श्रूयते न च दृश्यते ।
 याले तव मुखाम्भोजे दृष्टमिन्द्रीचरद्वयम् ॥ १९ ॥
 फभ्युकसिद्ध चरणः शनैश्चरो राहुरेव तव केशकलापः ।
 न च्युतं तदपि योयनमेतत्सा पयोधरगुरोर-
 नुकम्पा ॥ २० ॥ काशमीरद्वयगौरि हन्त किमयं
 भूयोऽङ्गरागे ब्रह्मः को वा नीलसरोरुहाक्षि नितरां
 नेत्राङ्गने सम्भ्रमः । रक्ताशोकदलौपमेयचरणे किं
 लाक्ष्या दत्तथा नो रागान्तरमीहते निजदत्त्वा विश्रा-
 जमानो मणिः ॥ २१ ॥ किं पद्मस्य रवि न हन्ति

नयनानन्दं विपत्ते न किं वृद्धिं वा भ्रूयकेतनस्य
 कुचते नालोकमात्रेण किम् । घफयेन्दो तय सन्ध्यं
 यदपरः शोतांशुकज्जम्भते दर्पः स्यादमृतेन चेदिह
 तदप्यस्थेव विम्बाधरे ॥ २२ ॥ कुतः कुचलयं कर्णं
 करोवि कलभापिणि । किमपाङ्गमपयोत्तमस्मिन्क-
 र्मणि मन्यसे ॥ २३ ॥ कुमुदकमलनीलनीरजालिल्लि-
 तधिलासजुपोर्दृशोः पुरः फा । श्रमृतममृतारश्मिरभ्यु-
 जन्म प्रतिहन्तमेकपदे तयाननस्य ॥ २४ ॥ कृष्णार्जुना-
 नुरक्तापि दृष्टिः कर्णांघ्रिलम्बिनी । याति विष्वत्सनी-
 यत्वं कस्य ते कलभापिणी ॥ २५ ॥ केशाः संयमिनः
 श्रुतेरपि परं पारं गते लोचने हान्तर्धक्त्रमपि स्वमाध-
 शुचिभिः कोर्णं द्विजानां गणैः । मुक्तानां सततं
 निवासदक्षिचरं यज्ञोजकुम्भद्वयं चेत्यं तन्वि घपुः
 प्रशान्तमपि ते रागं करोत्येव नः ॥ २६ ॥ कोप-
 स्त्वया हृदि कृतो यदि पङ्कजाक्षि सोऽस्तु प्रियन्तव

सुन्दरी ! कमलकी शोभा मानो तुम्हारे पैरोंमें आ लिपटी
 है ॥ १६ ॥ यदि कमलको पट्टहीपर एक ही पञ्जन बैठे देत
 जेनेपर तो मनुष्य चतुरंगिणी (हाथी, घोदा, रथ, पैदल)
 सेनाका स्वामी (राजा) बन बैठता है किन्तु यहाँ तुम्हारे सुप-
 कमलपर तो दो-दो नेत्र-रूपी खञ्जन दिखाई पड़ रहे हैं ।
 देविषु हमें हस्तका क्या फल मिलता है ! ॥ १७ ॥ हे कमल-
 नयनी ! अपने सुन्दर भाल कृद्ध और देरतक रॉधती रहो
 जिससे उन बालोंमें उलझी हुई दृष्टिको मैं धीरे-धीरे उतार
 सँझूँ ॥ १८ ॥ हे नवेली ! यह तो सुना जाता है कि कमलते
 कमल उत्पन्न होता है किन्तु देखा नहीं जाता पर तुम्हारे सुप-
 कमलसे तो दो नीले कमल (नेत्र) निकलते प्रत्यक्ष दिखाई दे
 रहे हैं ॥ १९ ॥ हे शङ्गके समान कण्ठवाली ! तुम्हारे पैर शनैश्चर
 (शनि शब्द, धीरे चलनेवाले) और केश राहु है, फिर भी
 विशाल स्तन-रूपी वृद्धस्वतिकी कृपाके फलसे ही यौवनकी
 शानि नहीं हो रही है । (जिसकी कृपाडलीमें वृद्धस्वति अच्छे
 स्थानमें रहता है उसपर नीच ब्रह्मका वृद्धभाज नहीं पड़ता)
 ॥ २० ॥ हे केशरके लेपके समान गोरे श्रद्धवाली ! तुम
 शरीरमें उदयन लगानेके लिये हठ क्यों कर रही हो ? हे नीले
 कमलके समान श्रॉंलावाली ! तुम श्रॉंलामें श्रॉंजन लगानेका
 प्रयत्न क्यों कर रही हो ? हे लाल श्रॉंरुके पत्तेके समान
 चरणवाली ! पैरोंमें महाावर लगानेसे क्या लाभ होगा ! क्योंकि
 अपनी ही कान्तिसे घमक्नेवाले मणिको बनाया रहने

आवश्यकता थोड़े ही पड़ती है ? ॥ २१ ॥ तुम्हारा मुखचन्द्र क्या
 कमलोंकी कान्ति मलिन नहीं कर देता ? क्या वह श्रॉंलांकी
 आनन्द नहीं देता ? क्या वह देपने भरसे कामदेवकी नहीं
 उकमा देता ? फिर इसके रहते दूसरे चन्द्रमाके उदय होनेकी
 क्या आवश्यकता आ पड़ी ? क्योंकि यदि उसे श्रमृतपर घमपट
 हो तो वह भी तुम्हारे श्रॉंलांमें भरा ही है ॥ २२ ॥ हे मयुर
 बोलनेवाली ! तुमने कानोंपर नीले कमल क्यों लटका रखे
 हैं ? क्या तुम्हारी श्रॉंलांके कोर उससे किसी बातमें कम
 हैं ? ॥ २३ ॥ हे सुन्दरी ! चित्तको रॉंचनेवाली किवाश्रॉंसे
 भरी तुम्हारी श्रॉंलांके सामने कोई, कमल और नीले कमलकी
 क्या बिसात है जब श्रमृत, चन्द्रमा तथा कमल सभी तुम्हारे
 सुपसे एक साथ पराजित हो गए हैं ॥ २४ ॥ हे मयुर बोलने-
 वाली ! कृष्ण तथा श्रुंन (सॉंवेले और उजलेपन) पर
 प्रेम रगनेवाली (से भरी) तुम्हारी चित्तवन कर्ण (कान)
 का सहारा ले रही है (नक फैली हुई है) तब इसपर
 कीन विश्वास कर सक्ता है ! (श्रॉंले उजली, काली तथा
 लाल हैं और कानोंतक फैली हुई हैं) ॥ २६ ॥ हे
 सुन्दरी ! तुम्हारे बाल रंधे हुए (नियम धाचारेने रहनेवाले)
 हैं, श्रॉंले श्रुति (कान, वेद) के पारतक पहुँची हुई हैं,
 तुम्हारे मुखके भीतर जन्मसे ही स्वच्छ दिज (दाँत,
 मादण्य) भरे हुए हैं और तुम्हारे दोनों स्तन मुक्त (मोतियं,
 जीवमुर्छों) के निवासस्थान हैं । इस प्रकार तुम्हारा परम

इमङ्कपालि रचय ममाङ्कमुपेत्य पीवरोरु । अमुद्वर
हरिणात्ति शङ्कराङ्कस्थितहिमशीलसुताधिलासलक्ष्मीम्
॥ ३६ ॥ दासे कृतागसि भवेदुचितः प्रभूणां पादप्रहार
इति मानिनि नास्मि दूये । उच्यतकोरपुलकाङ्कितक-
रटकाश्रयैर्द्विद्यते तव पदं ननु सा व्यथा मे ॥४७॥ दिन-
करकरामृष्टं विभ्रद्भ्यति परिपाटलां दशनकिरलौकस्त-
पङ्क्तिः स्फुटीकृतकेसरम् । अयि मुपमिदं मुग्धे सत्यं
समं कमलेन ते मधु मधुकरः किं त्येतस्मिन्पिबन्न
विभाव्यते ॥ ४१ ॥ दृशो तव मदालसे चदनमिन्दुम-
त्यान्वितं गतिर्जनमनोरमा विधुतरम्भमूरुद्वयम् ।
रतिस्तव कलावती रुचिरचित्रलेपे भ्रुवाघहो विबुध
यौवनं वहसि तन्वि पृथ्वीगता ॥ ४२ ॥ दृष्टिं देहि
पुनर्वाले कमलायतलोचने । श्रयते हि पुरा लोके
विपस्य विपमौपघम् ॥ ४३ ॥ द्वेषा विधाय विधु-

मण्डलमानताङ्गि कर्तुं विधातरि कपोलपुंगं प्रवृत्ते ।
तत्पण्डयुग्मगलितामृतविन्दुपङ्क्तिसन्दोह्यत्तय विरा-
जति द्वारचल्ली ॥ ४४ ॥ घत्ते यद्दभरे शिगी तय न
किं धम्मिल्लभारश्रियं सारङ्को भजते न किं तय
दृशोः सौभाग्यमालोकते । मत्तेभ्यश्च शिरःपदे वहति
ते यक्षोजलदर्मी न किं तन्मन्ये तरुणि त्वया यितृ
सुते साम्यं चनश्रीरियम् ॥ ४५ ॥ न ताघद्विम्बोष्ठः
स्फुरति न च रागोऽयमघरे न चामी ते दन्ता. सुदति
जितकुन्देन्दुमहसः । इमां मन्ये मुद्रामतनुतरसिन्दूर-
सुभगामिदं मुकारत्नं मदनमुपतेमुद्रितमिव ॥ ४६ ॥
नयननिपातेऽङ्कुरितः पल्लवितो वचसि पुष्पितो हसिते ।
फलतु कृशाङ्गि तवाङ्गस्पर्शेन मनोरथोऽस्माकम् ॥ ४७ ॥
नारदं कुचपरिरम्भणेषु चाम्यं वैमुप्यं किमपि
न सुमन्ये कदाचित् । किं नोवीगनमवले रुणसि

पुप निर्मल कोमल कमलकी पंखुवी समककर वारन्वार
उसीपर दूटा पङ्क रहा है ॥ ३८ ॥ हे मोटी जौवांवाली ! मेरी
गोदमें आकर, नरपिहोंसे सुशोभित अपने स्तनोंसे दबाकर
मुझे लिपटा लो । हे मृगनयनी ! अब तुम शिवजीकी गोदमें
बैठी हुई पार्वतीजीके समान ही सुन्दर ध्वजहार करो ॥ ३९ ॥
हे क्रोध करनेवाली ! सेवक यदि अपराध करता है तो उसे
कातसे मारना स्वामीके लिये उचित ही है, इसमें मुझे
कोई दुःख नहीं है । मुझे दुःख तो इस बातका है कि
मेरे कठोर बालरूपी उठे हुए कोंटोंसे तुम्हारे पैर छिड़े जा
रहे हैं ॥ ४० ॥ हे सुन्दरी ! तुम्हारे जिस मुखकी गोभा
सूर्यकी किरणोंकी चमकसे लाल है और जिसमें दाँतोंसे
निकलनेवाली किरणें ही केसरके समान दिपाई दे रही हैं
ऐसा तुम्हारा मुख दिपाई तो कमलके समान दे रहा है
किन्तु उसमें रस पीनेवाले भीरे क्यों नहीं दिखाई दे रहे
हैं ? ॥ ४१ ॥ हे दुःखली-पतली ! तुम्हारी आँखें यौवनके
मत्से अलसाई हुई हैं (मदागलसा नामकी अप्सरा हैं),
तुम्हारा मुख अपनेनो चन्द्रमा समके बैठा है (द्युतुमती
नामकी अप्सरासे युक्त है), तुम्हारी चाल सभी जोगोंको प्यारी
लगती है (मनोरमा है), तुम्हारी जौवांने अपनेमें केलके रमने
यस्य रमते हैं (रमा नामकी अप्सरा है), तुम्हारे प्रेममें
मिचित्र कलाएँ हैं (तुम कलावती हो) और तुम्हारी आँहोंकी
रेखा पौर्षी तथा सुन्दर है (चित्रलेपा नामकी अप्सरा है),
इस प्रकार तुम रहती तो धरतीपर हो किन्तु अपनी देहमें

स्वर्गकी सारी अप्सराएँ बसाए बैठी हो ॥ ४२ ॥ हे कमलके
समान विशाल नेत्रोंवाली नवेली ! एक बार फिर भी
मेरी और देख तो दो । बहुत पहलेसे ही यह बात सुनी
जाती है कि विपसे ही विप नष्ट होता है अथात् विद्वोहका
दुःख भी विप है और तुम्हारी चितवन भी विपके समान
ही जोगोंको मृच्छित कर देती है ॥ ४३ ॥ हे मुझे हुए
अङ्गवाली ! तुम्हारी छातीपर लहराती हुई हारकी लक्षियाँ
पेसी दिखाई दे रही हैं मानं ब्रह्मा जप चन्द्रमण्डलका
बीचसे दो टुकड़े करके तुम्हारे गाल बनाने लगे उस समय उन
दोनों टुकड़ोंसे टपका हुई अमृतकी बूँदें हों ॥ ४४ ॥ क्या
यह मोर अपनी पूँछमें तुम्हारे बालोंकी चमक नहीं धारण कर
रहा है ? क्या हरिया भी अपनी आँखोंमें तुम्हारी आँखोंकी
कान्ति नहीं धारण कर रहे हैं ? और क्या यह मतवाला
हाथी भी अपने मस्तकपर तुम्हारे स्तनकी गोभा नहीं
धारण कर रहा है ? हे तरुणी ! यह सब देखकर तो ऐसा
जान पड रहा है मानो यह वन-लक्ष्मी तुम्हारी बराबर
करनेका स्वर्ग रच रही हो ॥ ४५ ॥ हे सुन्दर दाँतोंवाली !
तुम्हारे मुँहमें ये श्रोत न तो तुम्हारे शिब्य फलके समान हैं, न
इनमें यह ललाई है और न दाँत ही सुन्दर तथा चर्दनीका
जीतनेवाले हैं । मैं तो समझता हूँ कि यह महाराज
कामदेवकी सिन्दूरसे रची हुई वह मुद्रा है जिसमें उन्होंने
नीती और रत्न रत्नकर सुंदर मार दा है ॥ ४६ ॥ मेरे
मनोरथ रूपी बीजपर तुम्हारी चितवन पडते ही अङ्कुर आ

किमत्र विधेयमन्यत् । श्राश्लेषमर्षय मदीपितपूर्वमुच्चै-
र्दन्तत्तं मम समपये चुम्यनञ्च ॥ २७ ॥ फोटिल्यं
फचनिचये फरचरणाधरदलेषु रागस्ते । काठिन्यं
कुचयुगले तरलत्वं नयनयोवंसति ॥ २८ ॥ गोत्रे
साक्षादजनि भगवतेप यत्पश्रयोनिः श्रयोत्थायं यद-
पिलमहः प्रीण्यन्ति द्विरेफान् । एकाग्रां यद्घृति
भगवत्युष्णभानीं च भक्तिं तत्रापुस्ते सुतनु ददनाप-
म्यमम्भोरुहाणि ॥ २९ ॥ जधान धारैदशभिर्दशास्य-
शिरांसि सीताहरण्ये स रामः । त्वदङ्गसङ्गाय सदाशु-
रके प्रयातु मे मस्तकमेकमेव ॥ ३० ॥ तन्वि त्वद्वद-
नस्य विभ्रमलक्षं लावण्यवारानिधेरिन्दुः सुन्दरि
दुग्धसिन्धुलहरौविन्दुः फर्यं चिन्दतु । उत्कङ्खालाय-
सोचने क्षणमयं शोभांशुरालम्ब्यतामुन्मीलन्यनीलनी
रजयनीपेलनमरासश्रियम् ॥ ३१ ॥ तल्लोकाऽतिशयो-
क्तिमेघ यदतु स्तोत्रं पुनर्मेन्यतां स्रष्टुं त्वां सुभगे
यफार मदने भूतानि चैतानि यत् । पृथ्वी चम्पक-

पारिजातमन्त्रं पायो महः शाश्वदः प्रालेयांशुरथा-
निलो मलयभूर्ज्योत्सनावलितं नभः ॥ ३२ ॥ तव
कुचलयांसि वक्षसि कुण्डलिता कापि काञ्चनी
कान्तिः । कुसुमेपोविजिनीपोभ्रयति च भवतीह
भूयसी फरुहः ॥ ३३ ॥ तघातनं सुन्दरि फुल्लपङ्कजं
स्फुटं जपापुष्पमसौ तवाधरः । विनिद्रपधं तव
लोचनद्वयं तवाङ्गमन्यत्किल पुष्पसञ्जयः ॥ ३४ ॥
ताम्बूलरागोऽधरलोलुपो यद्यदङ्गनं लोचनचुम्बनी-
त्सुकम् । हरश्च फरुहप्रहलालसो यत्स्वार्थः स तेषां
न तु भूयसं ते ॥ ३५ ॥ त्वदङ्गमादर्वे दृष्टे फस्य
चित्ते न भासते । मालतीशयभृत्त्रैखाकदलीनां फडो-
रता ॥ ३६ ॥ त्वद्वदुल्लसुधूलसुवर्णाकान्ति रम्यस्तन-
श्रीफलयुग्मेतत् । दृष्ट्वा वने श्रीफलमाकुलं किं लज्जा-
भिरालम्बितमेव दृष्टे ॥ ३७ ॥ दलदमलकोमलोत्पल-
पलाशशङ्खाकुलोऽयमलिपोतः । तव लोचनयोरनयोः
परिसरमनुचेलमनुसरति ॥ ३८ ॥ दलितकुचनखा

शान्त शरीर देवकर भी सुमे धनुराग हो रहा है ॥ २६ ॥
दे कमलनयनी ! मनमें जो सुमने प्राय किया है यदि वह तुम्हें
प्यार हो तो रोक है, सुमे इस विषयमें कुछ नहीं कहना है,
किन्तु दूसरे पहले जो मैंने सुने गले लगाया, छाठोंपर दन्तघट
किए तथा सुभन किया वह सब सुमे जोटा दा ॥२७॥ तुम्हारे
काष्ठोंमें भीकापन, हाथ, पैर तथा छाठपर जलाहं, दानं
स्वनोंमें फटोरता और श्रोतामें चञ्चलता यसां हुई है ॥ २८ ॥
दे सुन्दरी ! जिसक वंशम साबाव धवान् हा जन्म लिया है,
जा प्रातः,वाल जागकर सारा दिन भाराका सुत किया करता
है और सदा एकामावत होकर भगवान् सूर्यका भक्ति
करता रहता है उस कमलने अपना तपस्याक बलपर ही
नुदारे सुखका समता पाई है ॥ २९ ॥ सीताशंका जब
रायच हर के गया तब रामचन्द्रजाने उसके दशों सिर दस
बाणोंसे काट काळे किन्तु तुम्हें पानेके लिये जो मैं सदा ही
खखणया रहता हूँ फलतः सुमे एक सिर खले जानेकी कोई
पिन्ता नहीं है ॥ ३० ॥ हे दुखले शरीरवालो ! तुम्हारा
सुख तो सुन्दरताका समुद्र है, फलतः फोरसागरकी एक बूँदके
समान यह चन्द्रमा भला उसकी सुन्दरता फेने पा सकता
है ? दे चञ्चल नेत्रवाली सुन्दरी ! माले चाकावमें रहनेवाला
यह चन्द्रमा गिले हुए माले कमलके धनमें फीका करता हुआ
हस ही बना रह ॥ ३१ ॥ हे सुन्दरी ! इते संसार भले ही

यदा-चदाकर कही हुई बात माने किन्तु तुम इसे सधी स्तुति
ही समझो कि कामदेवने तुम्हें बनानेके लिये पाँचों महामूर्त्तोंसे
द्वतनी वस्तुएँ हर चालीं कि पृथ्वीसे धरया और पारिजात,
जलसे द्यमृत, तेजसे शरदका धन्द्रमा, पवनसे पाला और चन्द्र
तथा चाँदनीसे सारा आकाश छा दिया ॥३२॥ हे कमलनयनी !
तुम्हारी छातांमें कुछ ऐसी निराली सुन्दरता जमकर पैठी हुई
है कि उसके बलपर संसारको जीतनेके लिये कामदेवका शरीर
सदा सुजलाता ही रहता है ॥ ३३ ॥ हे सुन्दरी ! तुम्हारा
मुद तो रिला हुआ कमल है, तुम्हारा फोट जपाहुसुमका
पूल है, तुम्हारी दानों फालें लिले हुए नीले कमल है और
तुम्हारे दूसरे फरु लिले हुए दूसरे-दूसरे फूल है ॥ ३४ ॥
हे प्यारी ! पानकी लज्जाई जो तुम्हारे फोटपर ललघाती
है, ध्यान जो फालोंको पूननेके लिये लखपता रहता है और
हार जो तुम्हारे गलेमें छटके रहनेको तरसता रहता है यह
सब उनका अपना स्वार्थ है, उनते तुम्हारी कोई शोभा
नहीं होती ॥ ३५ ॥ तुम्हारे फटोंकी कामलता देवकर मालती,
चन्द्रमाकी कखा तथा केला किले फटोर नहीं जान पवत
॥ ३६ ॥ हे प्यारी ! तुम्हारे गोल-गोल, मोटे मोटे तथा
शोनेके समान पीले-पीले स्तनरुपी दानों बेल देवकर हा बना
ये बेल टुली होकर खानके बापय धनमें पाकर पैदपर छटके
हुए है ! ॥ ३७ ॥ यह भीरके वरया तुम्हारी फालोंमें गिले

इमङ्कपालि रचय ममाङ्कमुपेत्य पीयरोरु । अनुहर
हरिणाक्षि शङ्कराङ्कस्थितद्विमशैलसुतायिलासलवनीम् ॥ ३६ ॥ दासे कृतागसि भवेदुचितः प्रभूणां पादप्रहार
इति मानिनि नास्मि दूये । उद्यत्कठोरपुलकाङ्कितक-
ण्टकाग्रैर्येङ्गिघते तव पदं ननु सा व्यथा मे ॥४०॥ दिन-
करकरामृष्टं विभ्रद्दृश्यति परिपाटलां दशनकिरणैरुत्स
र्पङ्गिः स्फुटीकृतकेसरम् । अथि मुपमिदं मुग्धे सत्यं
समं कमलेन ते मधु मधुकरः किं त्वेतिस्मिन्पियन्न
विभाव्यते ॥ ४१ ॥ दृशो तव मदालसे वधनमिन्दुम-
त्यान्वितं गतिर्जनमनोरमा विधुतरम्भमूरुद्वयम् ।
रतिस्तव कलावती रुचिरचित्रलेखे भ्रुवावहो विबुध
योधनं वहसि तन्वि पृथ्वीगता ॥ ४२ ॥ दृष्टिं देहि
पुनर्वाले कमलायतलोचने । अयते हि पुरा लोके
विपस्य विपमौपधम् ॥ ४३ ॥ द्वेषा विधाय विधु-

मण्डलमानताङ्गि कर्तुं विधातरि कपोलयुगं प्रयुते ।
तत्पण्डयुग्मगलितामृतविन्दुपङ्किसन्दोहयत्तव विरा-
जति ह्यारवल्ली ॥ ४४ ॥ घत्ते यद्भरे शिगी तव न
किं घम्मिल्लभारश्रियं सारङ्को भजते न किं तव
दृशोः सौभाग्यमालोकते । मत्तेमथ शिरःपदे वहति
ते वक्षोजलधर्मां न किं तन्मन्ये तरुणि त्वया यितृ
सुते साम्यं वनश्रीरियम् ॥ ४५ ॥ न तावद्विम्बोष्ठः
स्फुरति न च रागोऽयमधरे न चामी ते दन्ताः सुदति
जितकुन्देन्दुमहसः । इमां मन्ये मुद्रामतनुतरसिन्दूर-
सुभगामिदं मुकारत्नं मदननृपतेमुद्भ्रतमिव ॥ ४६ ॥
नयननिपातेऽङ्कुरितः परलवितो वचसि पुष्पितो हसिते ।
फलतु कृशाङ्गि तथाङ्गस्पशेन मनोरथोऽस्माकम् ॥ ४७ ॥
नारद्व्यं कुचपरिरम्भणेषु घाम्यं वैमुत्प्यं किमपि
न चुम्बने कदाचिन् । किं नौवीगतमवले रणत्सि

हुप निर्मल कोमल कमलकी पङ्खडी समक्कर वारन्वार
उसीपर दृटा पक्ष रहा है ॥ ३८ ॥ हे मोटी जाँवोंवाली ! मेरी
गोदमें आकर, नखचिह्नोसे सुशोभित अपने स्तनोसे दवाकर
मुझे लिपटा लो । हे मृगनयनी ! अब तुम शिवलीकी गोदमें
बैठी हुई पार्वतीजीके समान ही सुन्दर व्यवहार करो ॥ ३९ ॥
हे क्रोध करनेवाली ! सेवक यदि अपराध करता है तो उसे
जातसे मारना स्वामीके लिये उचित ही है, इसमें मुझे
कोई दुःख नहीं है । मुझे दुःख तो इस बातका है कि
मेरे कठोर बालरूपी उठे हुए कोंदोंसे तुम्हारे परे ढिंढे जा
रहे हैं ॥ ४० ॥ हे सुन्दरी ! तुम्हारे जिस मुखकी शोभा
सूर्यकी किरणोंकी चमकसे लाल है और जिसमें दाँतोंसे
निकलनेवाली किरणें ही केसरके समान दिखाई दे रही हैं
ऐसा तुम्हारा मुख दिखाई तो कमलके समान दे रहा है
किन्तु उसमें रस पीनेवाले भीरे क्यों नहीं दिखाने दे रहे
हैं ? ॥ ४१ ॥ हे दुबली-पतली ! तुम्हारी आँवें यौवनके
मदसे थलसाईं हुई हैं (मदालसा नामकी अप्सरा है),
तुम्हारा मुख अपनेको चन्द्रमा समझे बैठा है (इन्दुमती
नामकी अप्सरामें युक्त है), तुम्हारी चाल सभी लोगोंको प्यारी
लगती है (मनोरमा है), तुम्हारी जाँवोंने अपनेमें केलेके चमके
पसा रसके हैं (रम्भा नामकी अप्सरा है), तुम्हारे प्रेममें
विचित्र कलाएँ हैं (तुम कलावती हो) और तुम्हारी भाँहोंकी
रेखा चौकी तथा सुन्दर है (चित्रलेखा नामकी अप्सरा है),
इस प्रकार तुम रहती तो धरतीपर हो किन्तु अपनी देहमें

स्वर्गकी सारी अप्सराएँ बसाए बैठी हो ॥ ४२ ॥ हे कमलके
समान विशाल नेत्रोंवाली नवेली ! एक बार फिर भी
मेरी ओर देप तो दो । बहुत पहलेसे ही यह बात मुनी
जाती है कि विपसे ही विप नष्ट होता है अथात् विद्रोहका
दुःख भी विप ही और तुम्हारी चितवन भी विपके समान
ही लोगोंको मूर्च्छित कर देती है ॥ ४३ ॥ हे मुझे हुए
अङ्गोंवाली ! तुम्हारी छातीपर लहराती हुई हारकी लवियों
पेसी दिखाई दे रही हैं मानों ब्रह्मा जब चन्द्रमण्डलका
बीचसे दो टुकड़े करके तुम्हारे गाल बनाने लगे उस समय उन
दोनों टुकड़ोंसे टपका हुई अमृतकी दूँदें हों ॥ ४४ ॥ क्या
यह मोर अपनी पूँवमें तुम्हारे बालोंकी चमक नहीं धारण कर
रहा है ? क्या हरिया भी अपनी आँखोंमें तुम्हारा आँखोंकी
कान्ति नहीं धारण कर रहे हैं ? और क्या यह मतवाला
हाथी भी अपने मस्तकपर तुम्हारे स्तनकी शोभा नहीं
धारण कर रहा है ? हे तरुणी ! यह सब देखकर तो ऐसा
जान पड़ रहा है मानो यह वन-जन्मनी तुम्हारी बराबरा
करनेका रसोम रच रही हो ॥ ४५ ॥ हे सुन्दर दाँतोंवाली !
तुम्हारे मुँहमें ये ओठ न तो तुम्हारे विष्व फलके समान हैं, न
इनमें यह ललाई है और न दाँत ही सुन्दर तथा चौदनीको
जातनेवाले हैं । मैं तो समझता हूँ कि यह महाराज
कामदेवकी सिन्दूरसे रची हुई वह मुद्रा है जिसमें उन्होंने
मोती और रत्न रत्नकर मुहर मार दा है ॥ ४६ ॥ मेरे
मनोरथ-रूपी यौवनपर तुम्हारी चितवन पड़ने ही अङ्कुर आ

पारिणि विप्रोते करिणि किमङ्कुरे विवाद्ः ॥ ४८ ॥
 निर्येतुं शन्यमस्तीति तव मध्यं नितम्बिनि । अन्यथा
 नोपपद्येत पयोधरमरस्थितिः ॥ ४९ ॥ नीतानामाकु-
 लीभायं लुन्धैर्भूरिशिलीमुपैः । सहरो वनदुःखानां कम-
 लानां त्यदीक्षणे ॥ ५० ॥ पद्मात्पत्ररत्निके सरसोरु-
 द्वस्य किं वोजमर्पयितुमिच्छति वापिकायाम् । कालः
 फलजगदिदं न कृतघमस्ये स्थित्वा हरिष्यति मुखस्य
 तथैव लक्ष्मीम् ॥ ५१ ॥ पातालमिव ते नाभिः स्तनो
 क्षितिधरोपमं । वेशीदण्डः पुनरयं फालिन्दीपात-
 सन्निभः ॥ ५२ ॥ पादास्त एव शशिनः सुखयन्ति
 गात्रं वाणस्त एव मदनस्य ममात्सुकूलाः । संरम्भ-
 रुक्षमिव सुन्दरि यद्यदासौच्यसङ्गमेन मम तत्तद्विवा-
 नुनीतम् ॥ ५३ ॥ प्रिये सदा पूर्णतरं मनोहरं ते निष्क-
 लङ्कं सुपचन्द्रमण्डलम् । विलोक्य सवीडतया निशा-
 पतिगतः प्रतप्तो जलधेर्जलान्तरम् ॥ ५४ ॥ वन्धूक-

द्युतिवान्धयोऽयमधरः स्निग्धो मधूकच्छविर्गण्डे
 चरिड चकास्ति नीलनलिनभीमोचनं लोचनम् ।
 नासान्धेति तिलमसूनपदवीं कुन्दाभदन्ति प्रिये प्राय-
 स्वन्मुखसेवया विजयते विश्वं स पृष्णायुध ॥ ५५ ॥
 वाले तवाधरसुधारसपानकाले चेतो मदीयमभिया-
 ञ्छति शेषभावम् । आलिङ्गने तव चिरोचनपौत्रभा-
 वमाखण्डलत्वमखिलाङ्गनिरोक्षणे ते ॥ ५६ ॥ विम्बोष्ठ
 एव रागस्ते तन्वि पूर्वमदृश्यत । अपुना हृदयेऽप्येप
 मृगशावाक्षि दृश्यते ॥ ५७ ॥ भन्त्यते पञ्जनमशु-
 लाक्षि शिरो मद्रोर्यं यदि याति यातु । नीतानि नारां
 जनकात्मजायं दशाननेनापि दशाननानि ॥ ५८ ॥
 भ्रुवापि निहितः कटाक्षविशिखो निर्मातु मर्मव्यथां
 श्यामात्मा कुटिलः करोतु कयरीभारोऽपि भारोद्य-
 मम् । मोहं तावदयं च तन्वि तनुतां विन्ध्याधरो
 रागवान्सद्भुतः स्तनमण्डलस्तव कथं प्राणैर्मम क्रीडति

गए, तुम्हारे शोलते हां पत्ते लग गए और हैंसते ही फूल भी
 लग गए । हे दुबले पतले यज्ञोवाली ! श्रव मैं चाहता हूँ
 कि तुम्हारा शरीरका स्पर्श पाकर उसमें फल भी लग
 जायें ॥ ४८ ॥ हे सुन्दरी ! न तो तुमने स्तन-मर्दन करते समय
 ही ना-न् किया और न तो चूमते समय ही हृथर उधर
 किया, अब नाड़ेपर यदा हुआ हाथ क्यों रोक रही हो ?
 हाथी विक जानेपर चन्द्रशके लिये ऋगादा कैसा ? ॥ ४९ ॥
 हे सुन्दर नितम्बवाली ! यदि तुम्हारे कमर न होनी तो ये बड़े-
 बड़े स्तन बिना आधारके बैठे लटक रहते ! यही इस बातका
 कारणे यदा प्रमाण है कि तुम्हारे कमर है ॥ ४९ ॥ हे सुन्दरी !
 झालधी भीरोंमें धिरे हुए और जलमें बड़े हुए कमलोंके
 समान तुम्हारी छाँमें ऐसी है जैसी बहेलियोंके बाणसे घबराई
 हुई और जगलमें पकी हुई हरिषिधोंकी छाँमें होती है ॥ ५० ॥
 हे कमलका पुत्र चाहनेवाली ! तुम वावड़ीमें कमलके बीज क्यों
 बोप दे रही हो ! सारी येममम् । यह कलियुग है, आजकल
 संसार में कोई उपकार नहा मानता ! ये कमल इस वावड़ीमें
 उगकर तुम्हारे ही मुखकी शाभा घराने खगेंगे ॥ ५१ ॥
 तुम्हारी नाभि तो पातालके समान गहरी है, स्तन पहाड़के
 समान ऊँचे हैं और बाह यमुनाके जलके समान धाले
 हैं ॥ ५२ ॥ हे सुन्दरी ! ये ही चन्द्रमाकी छिरयें इस समय
 गुग दे रही हैं और चरी कामके बाप इस समय हमें बड़े
 बग रहे हैं (जो तुम्हारे विषोहमें पातक थे) । इतना ही

नहीं, तुम्हारे न रहनेपर जो-जो वस्तुएँ कष्ट दे रही थीं वे
 सब तुम्हारे साथ रहनेपर सुखदायी हो गई हैं ॥ ५३ ॥
 हे प्रिये ! तुम्हारे इस सदा पूर्ण रहनेवाले सुन्दर और कलक-
 रहित मुख-रूपी चन्द्रमण्डलको देखकर यह चन्द्रमा लजाते
 दुखी होकर समुद्रके जलमें घुसा जा रहा है ॥ ५४ ॥ हे
 प्रिये ! तुम्हारे थोड़ोंमें जपाहुमुमकी लाली है । तुम्हारे
 चिक्ने गाल मधुएके फूलके समान सुन्दर हैं, तुम्हारे नेत्र भी
 नीले कमलकी शोभा घटा रहे हैं, तुम्हारी यह नाक भी तिलके
 फूलके समान है और तुम्हारे दाँत भी कुन्दके फूलके समान हैं
 इसलिये केवल तुम्हारे मुखमें ही घननीं सारी सामग्री पाकर
 फूलके पाप पारण करनेवाला कामदेव संसारको जीते जा रहा
 है ॥ ५५ ॥ हे वाले ! तुम्हारा अपराधून पीते समय यदि कहीं
 मैं सहज जीमोंवाला शेषनाग बन जाता, चाञ्चिनके समय
 सहज बहिँवाला वायानुभ बन जाता और देरते समय महर
 धीमोंवाला हृदय बन जाता तो किन्तन शय्या होता ! ॥ ५६ ॥
 हे दुबले देहवाली नवेली ! पढ़ने तो तुम्हारे चोट ही बिम्बाके
 समान झाल थे पर हे मृगनयनी ! इस समय तो तुम्हारे
 हृदयमें भी राग (प्रेम, लखार) दिग्गई दे रहा है ॥ ५७ ॥
 हे लङ्कनके समान पाखल धीमोंवाली ! तुम्हारे लिये यदि
 मेरा सिर भी उतर जाय तो मुझे धिन्ता नहीं । क्या सागाके
 लिये शायदके दसों सिर मट नहीं हो गए र्थ ! ॥ ५८ ॥ हे
 नवेली ! तुम्हारी भीह-रूपी पञ्जुपर रखने हुए गिरवीं विनवन

॥ ५६ ॥ मालिन्यमञ्जशशिनोर्मधुलिट्कलङ्कौ धचो
मुपे तु तय दकिलकाङ्गनाभाम् । दोषावितः कचन
मेलनतो गुणत्वं धनुर्गुणो हि धर्चास भ्रमधिप्रलम्भौ
॥ ६० ॥ मुग्धे धानुक्ता केयमपूर्वा त्वयि दृश्यते ।
यया विध्यसि चेतांसि गुणैरेव न सायकैः ॥ ६१ ॥
मुद्गुलकनककान्ति श्वाससीरभ्यरम्यं यदनकमलमेत-
त्रेभ्रमचद्विरेफम् । तव किमु सुसमोद्य व्रीडया पद्मवृन्दं
सरसि सलिलपूर्णे मर्तुकामं धियेश ॥ ६२ ॥ ग्लानस्य
जीवकुसुमस्य धिकासनानि सन्तर्पणानि सकलेन्द्रिय-
मोहनानि । एतानि ते सुवचनानि सरोरुहाक्षि कर्णा-
मृतानि मनसश्च रसायनानि ॥ ६३ ॥ यः प्रागासीद-
भिनवधयोधिभ्रामाघातजन्मा चित्तोन्माथी विगतधि-
पयोपप्लयानन्दसान्द्रः । वृत्तीरन्तस्तिरयति तवाश्ले-
पजन्मा स कोऽपि प्रौढप्रेमा नय ह्य पुनर्मानमयो मे
धिकारः ॥ ६४ ॥ यत्पद्ममादित्सु तवाननीयां कुरङ्ग-

लक्ष्मा च मृगाक्षि लक्ष्मीम् । एकार्थलिप्ताकृत पय
मन्ये शशाङ्कपङ्केरुहयोधिरोधः ॥ ६५ ॥ यया वहिः
कण्टकितं वपुस्तय नितम्बिनि । तथा निष्कण्टकं राज्यं
वर्ततेऽन्तर्मनीभुवः ॥ ६६ ॥ यन्मध्यदेशादपि ते
सूक्ष्मं लोलाक्षि दृश्यते । मृणालसूत्रमपि ते न
सम्माति स्तनान्तरे ॥ ६७ ॥ ये ये पञ्जनमेकमेव
कमले पश्यन्ति दैवात्कचित्ते सर्वे फलयो भयन्ति
सुतरां प्रख्यातभूमिभुजः । त्वद्दक्षत्राम्बुजनेत्रपञ्जन-
युगं पश्यन्ति ये ये जनास्ते ते मन्मथयाणजालधिकला
मुग्धे किमत्यद्भुतम् ॥ ६८ ॥ राकाधिभायरीकान्त-
संक्रान्तद्युति ते मुखम् । तपनीयशिलाशोभी कटिश्च
हरते मनः ॥ ६९ ॥ लावण्यपूरपरिपूरितदिङ्-
मुखेऽस्मिन्स्मेरेऽधुना तव मुखे तरलायताक्षि । क्षीमं
यदेति न मनागपि तेन मन्ये सुव्यक्तमेव जडराशि-
र्यं पयोधिः ॥ ७० ॥ लावण्यामृतवर्षिणि प्रतिदिशं

रूपी बाण हृदयपर भले ही चोट करें, काले तथा धुँधराले बाल
भले ही मार डालनेका प्रयत्न करें, ये डाह करनेवाले लाल-
लाल श्रोत्र भले ही लोगोंको मूर्च्छित कर दें परन्तु ये तुम्हारे
गोल-गोल (सदाचारी) स्तन भला हमारे प्राणिके साथ क्या
खेलवाद् किए जा रहे हैं ? ॥ ५६ ॥ भौंरा तो कमलको
कसमसा देता है और कमल भी चन्द्रमाको कलङ्कित कर देता
है पर ये ही तुम्हारे मुखपर पहुँचकर आँसू, काली बिन्दी और
आँजिन बन जाती हैं । सच है, कहीं-कहीं दोष भी मिलकर
गुण बन जाते हैं जैसे बोलनेवालेकी बाणीमें भूल और धोखा
भी गुण समझा जाता है ॥ ६० ॥ हे भोली-भाली नबेली !
यह तुमने धनुष चलानेकी नई कला कहाँसे सीप ली है कि
बिना बाण चलाए केवल गुण (धनुषकी डोर, सुन्दरता आदि
गुण) से ही मनको वेध डालती हो ॥ ६१ ॥ कहो ! तुम्हारा
यह कोमल, सोनेके समान चमकीला, रवासकी सुगन्धसे
मंनोहर तथा नेत्र-रूपी मतवाले भौरोंसे भरा हुआ मुखकमल
देखकर ही तो कमल लज्जाके मारे जलसे भरे हुए तालाकमें
दूब मरनेकी इच्छासे नहीं घुस गया है ? ॥ ६२ ॥ हे कमलके
समान शौंखोंवाली ! मुर्भाए हुए प्राणरूपी फूलको खिलानेवाले,
रस कर देनेवाले तथा सभी इन्द्रियोंको मोहनेवाले ये तुम्हारे
वचन भरे कानोंके लिये श्रमृत और मनके लिये सञ्जीवनी
घृती हैं ॥ ६३ ॥ तुम्हारी इस नई श्रवण्याके हाव-भावमे पहले
जिसका जन्म हुआ और सफल न होनेके कारण जो मनमें

खलबली उत्पन्न करता रहा वही कामका विकार धान तुम्हारे
उपभोगमें किसी प्रकारकी घाघान रहनेमे आनन्द दे रहा है,
तुम्हारे आलिङ्गनसे उत्पन्न होकर प्रवल प्रेम बढ़ा रहा है
धीरे नया-सा होकर बाहरी चेष्टाएँ रोक्कर चित्तका
पुकाप्र बनाए दे रहा है ॥ ६४ ॥ हे मृगनयनी ! कमल तुम्हारे
मुखकी जो कान्ति पाना चाहता है वही चन्द्रमा भी पाना
चाहता है । एक ही वस्तुको पानेकी चाह दोनोंमें है इसीलिये
टाहके कारण दोनोंमें घोर विरोध है ॥ ६५ ॥ हे वन्दे-वन्दे
नितम्बवाली ! जिस प्रकार तुम्हारा शरीर बाहर रोमांचित
हो रहा है उसी प्रकार भीतर भी कामदेवका पुरुषद्वय
साम्राज्य है ॥ ६६ ॥ हे पञ्जल नयनोंवाली ! कमलकी जड़के
जो डोरे तुम्हारी कमरसे भी पतले दिखाई दे रहे हैं वे भी
तुम्हारे स्तनोंके बीचमें स्थान नहीं पा रहे हैं ॥ ६७ ॥ जिन
लोगोंने भाग्यसे कहीं कमलपर एक ही खञ्जन देव लिया
है वे कवि अनायास ही प्रसिद्ध राजा बन बैठते हैं । किन्तु
हे सुन्दरी ! यह कैसी विचित्र बात है कि जिन लोगोंने तुम्हारे
मुखकमलपर दो नेत्र-रूपी खञ्जन देले हैं वे सभी कामके
बाणोंसे विषकर मूर्च्छित हो गए हैं ? ॥ ६८ ॥ पृथिव्याके
चन्द्रमाके समान कान्तिवाला यह तुम्हारा मुख तथा सोनेकी
चटानके समान सुन्दर तुम्हारी कमर दोनों ही मनको हरे
ले रही हैं ॥ ६९ ॥ हे रसीली धीरे बड़ी-बड़ी शौंखोंवाली !
सुन्दरताकी बाढ़से भरा हुआ और सुन्दरता हुआ तुम्हारा मुख-

कृष्णागदश्यामले वर्षाणामिध तेषो धरभरे तन्वद्वि
दुरोन्वते । नासायंशमनोऽकेतकतनुभ्रुपधगभौल्लस-
त्पुष्पध्रीस्तिलकः सहैलमलकैर्धृङ्गैरिवापोयते ॥ ७१ ॥
वदनेन निजितं तव निलीयते चन्द्रविषममन्वुधरे ।
शरविन्दमपि च सुन्दरि निलीयते पाथसां पूरे
॥ ७२ ॥ विनिश्चेतुं शक्यो न सुखमिति वा दुःख-
मिति वा प्रमोहो निद्रा वा किमु विपविस्पर्षः किमु
मदः । तव स्पर्शं स्पर्शं मम हि परिमृष्टेन्द्रियगणो
विक्रान्तश्चैतन्यं भ्रमयति च सम्मिलयति च ॥ ७३ ॥
विभ्रमेविश्वहृद्यैस्त्वं विधयाप्यनवधया । केनापि हेतुना
मन्ये प्राप्ता विधधरी चित्तिम् ॥ ७४ ॥ देणों तेष-
मीदृश चित्रकुसुमैरुद्भासितां यद्विणो लज्जन्ते निज-
यहृद्वन्दमधिर्कं भारं विदित्वा म्रिये । निर्याताः शन-
कैरिति स्वनिलयाद्दूरे निलीय स्थिताः पश्येतामपि
लज्जायेष मधुपान्बह्वीविहायोद्भ्रतान् ॥ ७५ ॥ शिल्-

रिणि क तु नाम कियच्चिरं किमभिधानमसावक-
रोत्तपः । सुमुखि येन तवाधरपाटलं दशति विभ्व-
फलं शुक्रशावकः ॥ ७६ ॥ सत्यं तपः सुगत्यै यत्त-
प्याम्बुपु रविप्रतीक्षं सत् । श्रनुभवति सुगतिमर्जं
त्वत्पद्मजन्मनि समस्तकमनीयम् ॥ ७७ ॥ सदा प्रदोषो
मम याति जाग्रतः सदा च मे निःश्वसतो गता
निशा । त्वया समेतस्य विशाललोचने ममाद्य शोका-
न्तकरः प्रदोषकः ॥ ७८ ॥ साहजिकरूपधत्या भवति
भवत्या विभूपणं भारः । सर्वोद्भसोरभियया दमन-
कवल्क्याः किमालि कुसुमेन ॥ ७९ ॥ स्तुमः कं
वामालि लणमपि विना यं न रमसे विलेभे कः
प्राणान्तरणमखमुखे यं मृगयसे । तुलसे को जातः
शशिमुपि यमालिङ्गिस्ति वलात्तपःध्रीः कस्यैवा मद-
ननगरि ध्यायसि तु यम् ॥ ८० ॥ स्मितज्योत्स्ना-
भिस्ते धवलयति विश्वं शशिमुपि दृशस्ते पीयूषप्रदय-

चन्द्र देवकर भी जो यह पयोधि (समुद्र, रतन) तनिक भी
नहीं उड़ल रहा है इसीसे जान पड़ता है कि यह महासूर्य
है ॥ ७० ॥ हे दुखले शरीरवाजी ! सुन्दरता रूपी
जलकी प्यां करनेवाले तथा काले शगरके लेपसे सॉवले
रत्नवाले सुहारे स्तनरूपी बादलके उमड धानेपर तुम्हारी
नाक बॉसकी कोंपलके समान तथा तुम्हारी देह केबड़ेकी
छताके समान विल रही है और तुम्हारे मन्तकपर भीह-
रूपी पत्तोंके बीच तुम्हारे समान विले हुए निलकको भीरोंके
समान बाल माने चारों ओरसे प्रसन्न होकर घेर रहे हैं ॥ ७१ ॥
हे सुन्दरी ! तुम्हारे मुखसे हारा हुआ यह चन्द्रमा मेघोंके बीचमें
द्विप रहा है और कमल भी जलके यहावमें दूब रहा है ॥ ७२ ॥
जब जब तुम्हारा स्पर्श होता है तब-तब मेरी हृदिग्योको मोहमें
छालनेवाला कोई बिहार उसी-उसी समय मेरी चेतनाको ध्रममें
बाल देता तथा दबा होता है । उस समय यह निर्णय नहीं
रिचा जा सकता कि यह सुगंध अथवा दुःख, मृच्छा है
या भीद अथवा विषया वेग है या मदरी मस्ती ॥ ७३ ॥
ममीके मम हरनेवाले सुन्दर स्पन्दहारोंसे, निर्दोष शानसे और
न जाने किम विरस कारणसे तुम ऐसी जान पड़ती हो मानी
परीतीपर विधाधरी (एक देवी) का उतरां हो ॥ ७४ ॥
सुन्दर पृष्ठोंसे सुगन्धित तुम्हारी चोटी देगदर धरनी पँसुके
बाजोंको भार समझकर मे मोर बजायू से आ रहे हैं । हे प्यारी !
इसीविधे से धरने निगम-न्यायनसे धीरसे इच्छर दूर द्विप

गप है और इन भीरोंको भी देवो जो लाकके मारे छतार्पे
छोड़-छोड़कर भागे जा रहे हैं ॥ ७५ ॥ हे सुन्दर सुखवाजी !
यह सुगंधका बरचा (तुम्हारी नाक) किस पहाड़पर, कितने दिन-
तक, कौन सा नाम जपकर तपस्या कर आया है, जिसके फल-
स्वरूप तुम्हारे हँसुके फलके समान लाल लाल थोड़ा सदा
स्वाद लेता रहता है ! ॥ ७६ ॥ तपस्यासे उत्तम गति मिलती है
यह बात सच है क्योंकि जलमें तपस्या करता हुआ तथा
सूर्यको देखता हुआ कमल तुम्हारे धापनत सुन्दर पराक
जन्म पाकर उत्तम गतिका सुख भोग रहा है ॥ ७७ ॥ हे वन्दे-
यदे नेत्रोंवाली ! पहले तो (जब तुम सुम्ने खलग थी) सदा
मेरे आगते-जागते रातका पहला पहर धीत जाता था और
लखी सॉमं भरते हुए रात भी धीत जाती थी किन्तु आज
तुम्हारे साथ रहनेसे यही दोष भरा समय मेरे सारे दोष दूर
छिप दे रहा है ॥ ७८ ॥ हे सती ! तुम्हारी सद्गम सुन्दरनाके
भाग्ये तुम्हारे आभूषण तो भार है क्योंकि जिम मरुपृथी
छताके समी धर सुगन्धिने भरे होते हैं वते पूलकी बवा
आपश्यवता है ॥ ७९ ॥ हे सुन्दर अँगवाली ! यह कौन सा
प्रवास करने योग्य प्राण्यो है जिसके बिना सुगंध पच भर भी
पैन नहीं मिल रही है ? रणरूपी यशमें किसने प्राय पाया
है जिसे सुगंध रही हो ! हे चन्द्रसुग्री ! किसने सुन्दर
खानमें क्लम प्रदह्य किया है जिसका सुम आभिन्नन करती हो !
धीर हे कामदेवकी मगरी ! किसने प्रसन्न तपस्या की है

मिव विमुञ्जति परितः । वपुस्ते लावण्यं किरति
मधुरं दिवु तदिदं कृतस्ते पारुष्यं सुतनु हृदये-
नाथ गुणितम् ॥ ८१ ॥ स्मितपुष्पोद्गमोऽयं ते हृष्य-
तेऽधरपल्लवे । फलं तु जातं मुग्धाक्षि चक्षुषोर्मम पश्यतः
॥ ८२ ॥ हस्तस्त्वदक्षपित इव यश्चन्दनचोदवृन्दैरालि-
तोऽद्भुतपरिसरः कुल्लकह्वारहारैः । आराधीत्थं तव
नयकुन्दाक्षि चक्षोजशम्भुः साक्षात्कारं तदपि न दिश-
त्येव किं वा करोमि ॥ ८३ ॥ हुङ्कारैर्द्वैवता मया प्रति-
चक्षो यन्मौनमासेवितं यद्वाद्यानलद्वितीभिस्तुरियं
चन्द्रार्तपैस्तापिता । ध्यातं यत्सुबह्वन्यनन्यमनसा
नक्तंदिनानि प्रिये तस्यैतत्तपसः फलं मुपमिदं
पश्यामि यत्सेऽधुना ॥ ८४ ॥

नवधूसङ्गम - अंसाष्टपदकुलया सरभसं गूढां
भुजाभ्यां स्तनावाकूपे जघनांशुके कृतमधःसंसकम्-
कद्वयम् । नाभीमूलनिवद्धचक्षुषि तया म्रीडानताङ्गया

जिसका सुम ध्यान क्रिया करती हो ! ॥ ८० ॥ हे चन्द्रमुखी !
तुम्हारा सुय अपनी मुस्कान-रूपी चँदीनीसे संसारको उजला
पना रहा है, तुम्हारी आँसें' मानो चारों ओर श्रमृतकी धाराएँ
घरमा रही हैं और तुम्हारा शरीर मानो चारों दिशाओंमें मधुर
मनोहरता विलेर रहा है किन्तु हे सुन्दरी ! यह नहीं समझमें
आता है कि तुम्हारा मन यह कठोरता कहाँसे सीध आया है !
॥ ८१ ॥ हे सुनयनी ! तुम्हारे ओठ-रूपी पत्तेपर मुस्कान-रूपी
फूल खिला देयते-देखते उसमें ये फल (स्तन) भी लग गए !
॥ ८२ ॥ हे हरिणके छीनेके समान आँसोंवाली ! मैंने तुम्हारे
स्तन-रूपी शङ्करजीको हाथके पसीने रूपी गद्गाजलसे नहलाया,
चन्दनका लेप लगाया और खिले हुए कमलोंका हार पहनाया ।
इस प्रकार इनकी मैंने सेवा तो की किन्तु ये दिखाई नहीं
दे रहे हैं ! ॥ ८३ ॥ तुम्हारी प्रत्येक बातपर केवल 'हूँ-हूँ'
करके जो मैंने मौन धारण किया, दावानलके समान घबकते
हुए चन्द्रमाके प्रकाशमें जो शरीरको तपाया और बहुत समयतक
एकाग्र चित्त होकर दिनरात ध्यान करता रहा, हे प्यारी ! यह
उसी तपस्याका फल है कि इस समय मैं तुम्हारा सुल निहार
रहा हूँ ॥ ८४ ॥

नई पल्लिसे सम्भोग : जब नायकने नवेलीके कंधेसे
बध खींच लिया तो नवेलीने शीघ्र ही अपनी आँसोंसे स्तन
बक सिप, जब उसने कमरपरका बध खींचा तो उसने
अपनी आँसों सदा ही, जब नायकने नामिपर आँसों डालीं

प्रिये दीपः फुट्कतिवातवेपिनशिरः फणोत्पलेनाहत.
॥ १ ॥ अय्यौत्सुक्ये महति दयितप्रार्थनासु प्रतोपाः
फाङ्गन्योऽपि व्यतिकरसुपुं फातराः स्वाङ्गदाने ।
आयाध्यन्ते न यलु मदनैनेय लब्धान्तरत्वादायाधन्ते
मनसिजमपि क्षितकालाः कुमार्यः ॥ २ ॥ अन्भमुगा
लोकनमामिमुष्यं निपेध पवानुमतिप्रकारः । प्रत्युत्तरं
मुद्रणमेव याचो नवाङ्गानानां नय एव पन्थाः ॥ ३ ॥
आभाति बालिकेयं पाण्डुरपङ्गं पुलकिनाययवा ।
अभिनयवसन्तसङ्गादाविमुकुलेव बालचूतलना ॥ ४ ॥
इत्थं तल्पतलाधिरोहणमियं पर्णापणप्रक्रिया शय्याया
वचनक्रमस्य दयितस्यैवं विद्याराधना । एवं फेलिगृहो-
पदेहलि यलादानीयमाना मुहुश्चाट्टकप्रकरैश्चिरं नय-
वधुरालीभिरध्याप्यते ॥ ५ ॥ फण्डामलेपिणमुप्रतस्त-
नमरश्रोणीतटप्राद्विणं संसक्तोरुयुगं गृहीनजयनप्रा
कारमप्यन्ततः । द्रागेव श्लथयधमिन्दुवदना गाढा-

तो लाजके मारे मुककर नवेलीने दीपककी लौ फूँककर
झिला दी और कानसे कमल उतारकर दीपकपर इनखिये
फँक मारा कि वह झुक जाय ॥ १ ॥ पल्लिसे मिलनेकी प्रयत्न
उत्कण्ठा रहनेपर भी नई बहुरे प्राथना नहीं करती और पल्लि
शरीरके स्पर्शसे सुख पाना चाहते हुए भी वे अपनी गरीर
उन्हें अपेक्ष करनेमें बरती हैं । इन प्रकार नई ल्याही हुई
बहुरे कामसे केवल स्वतः ही कट नहीं पातीं वरन् ऐसी
दशामें दिन काटती हुई कामदेवको भी दुर्मी बना
देती हैं क्योंकि वह भी सफल नहीं होने पाता ॥ २ ॥ नई
नवेलियोंका एक निराला ही मार्ग है, उनका सम्मुख न
देखना ही सामने देखना है, 'नहीं' करना ही 'हाँ' करनेका
दङ्ग है और मौन रहना ही उचर है ॥ ३ ॥ हाथसे छूनेपर
उस बालिकाकी देहमें रोमाञ्च हो आया अतः थव वड ऐसी
दिखाई देने लगी है मानो तत्काल थाए हुए वस्तुके
समागमसे नये आमके श्चुचमें सङ्गरियाँ फूट आईं हों ॥ ४ ॥
श्रीदायुहकी देहलीके पास बलपूर्वक नई बहुरे लाकर
सखियोंने नदी मीठी-मीठी बातें करके बहुत देरतक उसे
सिखाया कि 'निंदीनेपर इस प्रकार चढ़ना चादिप, बियका
पान इस प्रकार देना चादिप, सोनेका, बोलनेका तय'
वियतमको अपने अनुबद्ध करनेका यह दङ्ग है' ॥ ५ ॥
यद्यपि नई बहुरे लाजसे मरी हुई थी फिर भी जब उसने देखा
कि उसका सुनहला बध प्रबल लोका नहीं सह सकता

वमर्दासहं विद्यायात्यजदाशु 'काञ्चनपटं व्रीडाकुलापि
 क्षणम् ॥ ६ ॥ काञ्चया गदतराययद्भवसनप्रान्ता
 किमर्थं पुनर्मुग्धानो स्वपतिरिति तपपरिजनं स्वैरं प्रिये
 पृच्छति । मातः सुतिमपीह लुम्पति ममेत्वारोपित-
 क्रोधया पर्यस्य स्वपनच्छलेन शयने दत्तोऽवकाशरतया
 ॥ ७ ॥ कान्ते काञ्चुलिकावलोरिनि कलावप्या
 नमन्त्या स्थितं तस्मिन्मोमलकाकुम्भापिणि तया
 स्पन्दो निरुद्धोऽधरः । उत्थायाथ करस्पृशि प्रियतमे
 यूनोर्नये सङ्गमे काञ्चीकृजितकैतवेन मदनो घोःशान्ति-
 मभ्यस्यति ॥ ८ ॥ खिद्यति क्लृणति वेष्मति विचलति
 निमिषति विलोकयति तिर्यक् । अन्तर्नन्दति सुम्बि-
 तुमिच्छति नयपरिणया धधुः शयने ॥ ९ ॥ सुम्बनेषु
 परिवर्तिताधरं हस्तरोधि रसनाविघट्टने । विप्रितेच्छु-

मपि तस्य सर्वतो मन्मथेन्धनमभूद्भ्रूतम् ॥ १० ॥
 चुम्बनेष्वधरदानवर्जितं सन्नहस्तमद्योपगृह्णते । क्रिष्ट-
 मन्मथमपि श्रियं सदा दुर्लभप्रतिकृतं बधूरतम् ॥ ११ ॥
 दृढनिविडनव्याजात्काञ्चीलता शकलीकृता मियन-
 यनयोर्न्यस्तो हस्तो तदा तरलाङ्गुली । जघननिहितो
 रुद्धः पाणिः प्रलथं न निवारितः प्रथितमुभयं लज्जारा-
 गागमो नवयोपिता ॥ १२ ॥ निर्धाणतां नयसि किं
 हरिणात्ति दीपमाधिर्भवन्नवरतप्रपया विलोला ।
 ज्योत्स्नां वितन्वति सदा तव वक्त्रचन्द्रो गाराङ्गि
 तर्क्य कुतस्तिमिराचकाशः ॥ १३ ॥ नीवीदृढापितकरं
 निविडीकृतोर्न व्रीडानतां तत इतो वदनं हरन्तीम् ।
 आरोप्य वक्षसि सुखं परिरब्धुमेनां यालां वलादभिल-
 पामि न पारयामि ॥ १४ ॥ पटालमे पत्या नमयति

तो उसने उसे तत्काल उतार दिया क्योंकि वह पहले गलेमें
 लिपटा था, वहाँसे उड़कर उसने स्तनोका सहारा लिया ।
 जब वहाँ भी ठिकाना न लगा तो नित्यवपर आकर टहर
 गया, फिर जाँघोंमें जा लिपटा और अन्तमें उसने पेड़-रूपां
 चारदीवारीकी भी शरण ली। पर अन्तमें जब कोई चारा न रह
 गया तो वह विद्यश होकर नीचे गिर गया ॥ ६ ॥ जैसे ही
 प्रियतमने बाहरसे आकर प्रियतमको सोते देखकर सखियोंसे
 पूछा कि 'अरे, यह भोजि नयनोंवाली अपनी कमरके बखोंकी
 करघनीसे कैसे हुए स्तौ क्यों रही है ?' वैसे ही वनावटी
 क्रोध दिखाकर 'अरी माँ ! ये ध्रुव मेरी नाँद भी छीने ले
 रहे हैं !' ऐसा कहकर नवेलीने वनावटी क्रोध दिखाकर
 करघट बदलकर बिछौनेपर प्रियतमको भी सोनेके लिये स्थान
 दे दिया ॥ ७ ॥ जब नायकने चलीपर दृष्टि डाली तो
 कामकलाओं चतुर नवेली भुक्कर बैठ गई, जब नायक
 दीनतासे भरी मीठी-मीठी बातें सुनाने लगा तो नवेली
 अपना फटकता हुआ श्रोत हाथसे छिपाने लगी। इसके
 परचाह जब नायकने उठकर नवेलीका हाथ पकड़ लिया
 और सम्भोग करने लगा तो ऐसा जान पड़ रहा था मानो
 करघनीकी अन्वकारके रूपमें कामदेव शान्तिपाठका अभ्यास
 कर रहा हो ॥ ८ ॥ नई व्याही हुई वह बिछौनेपर पड़ी है,
 उसके शरीरसे पसीना छूट रहा है, खोंखें खँपी जा रही
 हैं, वह धर-उधर करवटें बदल रही है, शोंखें भूँद रही है,
 तिरछी चितवन घला रही है, मन ही मन प्रसन्न हो रहा
 है तथा प्रियतमको धूम जेना चाहती है ॥ ९ ॥ सुम्बनके

समय श्रोत हटाना और करघन खिसकाते समय हाथकी
 आड़ देना आदि क्रियाओंसे यद्यपि नायककी दृष्ट्या पूरी
 होनेमें बाधा बढ़ी फिर भी नवेलीके सुरतके समय चारों
 ओरसे ये ही सब बातें नायकके मनमें काम जगानेके लिये ईधन
 बन गई ॥ १० ॥ यद्यपि सुम्बन करते समय नई बटुएँ
 सुँह घुमाने लीं हैं और आलिङ्गन करते समय हाथकी आड़
 देती हैं तथापि नई बटुका ऐसा प्यारा संभोग दुर्लभ ही
 होता है ॥ ११ ॥ जैसे ही नई बटुसे प्रियतम संभोग करने
 चला वैसे बलपूर्वक पकड़नेके चहाने उसने अपनी बरघनी
 तोड़कर उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिए, प्रियतमके नेत्रोंपर हाथ
 रखते तो सही किन्तु उँगलियों डीली कर लीं और वह
 जघनपरसे प्रियतमका हाथ हटानेकी अपनी हाथ ले तो गई
 किन्तु हाथ डीला पड़ गया और प्रियतमका हाथ न हटा
 पाई। इस प्रकार उसने एक साथ ही लज्जा और प्रेमके
 भाव प्रकट कर दिए ॥ १२ ॥ प्रियतमने पूछा : 'इं
 युगनयनी ! दीपक क्यों बुझाए दे रही हो ?' पत्नी : 'नई-
 नई रतमें लाज लगती है।' प्रियतमने कहा : 'हे गोरी !
 सुन्दरारा सुखचन्द्र तो स्वयं ही चोंदनी बिखेरे दे रहा
 है, तब भला यहाँ कैसे शँधेरा हो पायेगा !' ॥ १३ ॥
 यद्यपि मैं उस नई नवेलीकी छातीसे लगाकर बलपूर्वक सुनसे
 उसका आलिङ्गन करना तो चाहता हूँ पर इसलिये नहीं कर पाता
 कि तत्काल वह अपनी साड़ीका नाड़ा कसकर पकड़ लेती है,
 जोंघें करी कर लेती है, लाजसे मुक्त जाती है- तथा धर-उधर
 सुँह घुमाने लगती है ॥ १४ ॥ जब पहले पहलके रागरंगमें

मुखं जातविनया हठाश्लेषं वाञ्छत्यपहरति गात्राणि
निभृतम् । न शक्नोत्याख्यातुं स्मितमुखसप्तोदत्तनयना
द्विया ताम्यत्यन्तः प्रथमपरिहासे नवयधूः ॥ १५ ॥
प्रायो नवयधूः कान्तमालिङ्गित शनैः शनैः । चित्ताङ्क-
रितकन्दर्पकदलीभङ्गशङ्कया ॥ १६ ॥ यलात्रीता पार्श्व
मुखमभिमुखं नैव कुरुते धुनाना मूर्धानं हरति बहुश-
शुभ्यनविधिम् । हृदि न्यस्तं हस्तं क्षिपति गमनारो-
पितमना नवोद्धा घोढारं सुखयति च सन्तापयति च
॥ १७ ॥ भुजपञ्जरे गृहीता नवपरिणीता चरेण रहसि
यधूः । तत्कालजालपतिता बालकुरङ्गीय वेपते नित-
राम् ॥ १८ ॥ यावकरसार्द्रपादप्रहारशोषितकचेन
दयितेन । मुग्धा साध्यसतरला विलोक्य परिचुम्बिता
सहसा ॥ १९ ॥ विरम नाय विमुञ्च ममाञ्जलं शयय

दीपमिमं समया सखीम् । इति नवोदवधूवचनेयुधा
सुदमगादधिकां सुरतादपि ॥ २० ॥ शयिता सवि-
धेऽप्यनीश्वरा सफलीकर्तुमहो मनोरथान् । दयिता
दयिताननामद्भुजं दरमीलनयना निरीक्षते ॥ २१ ॥
समाकृष्टं वासः कथमपि हठात्पश्यति तदा क्रमादृष-
द्वन्द्वं जरटशरगौरं मृगदृशः । तथा दृष्टिं दृष्ट्या महति
मणिकीपे निपुण्या निरुद्धं हस्ताभ्यां ऋटिति निजने-
त्रोत्पलयुगम् ॥ २२ ॥ स्फुरद्गोमोद्रेदस्तरलतरतारा-
कुलदृशो भयोत्कम्पोत्तङ्गन्ननयुगभरासङ्गसुभगः ।
अधीराच्या गुञ्जन्मण्डिलयदोर्वाङ्गिरचिः पतोरम्मो
मोदं जनयति च सम्मोहयति च ॥ २३ ॥ हर्षादुत्पुलकं
विकासि रभसादुन्नामितं कोतुकाच्यङ्गारादलसं भया-
त्तरलदङ्गन्त्रं च लज्जामरार्त् । आलीचन्नवसङ्गमे मृग-

प्रियतम नईं ब्याही हुईं वहूकी साड़ी धीचने लगते हैं तो वह
नम्रता दिखाताती हुई अपना मुँह झुका लेती है और जब प्रियतम
बलपूर्वक आलिगन करना चाहते हैं तब वह धीरेसे अपने अङ्ग
सिकोद लेती है । इस प्रकार यद्यपि वह कुछ बोल नहीं पाती
किन्तु मुस्कराती हुई सखियोंपर अपनी आँखें चलाकर वह भीतर
ही भीतर लजाती हुई खेद किया करती है ॥ १५ ॥ चित्तमें
उगे हुए कामके कोमल अँटुपके टूट जानेके डरसे ही प्रायः
नईं बहू अपने प्रियतमका धीरे-धीरे आलिगन करती
है ॥ १६ ॥ बलपूर्वक सामने ले आई जानेपर भी वह नवेली
प्रियतमके सामने अपना मुँह नहीं करती, बार-बार ऐसा
सिर दिखाती है कि शुभन भी नहीं करने देती और
प्रियतम जब छातीपर हाथ रखते हैं तो वह उनका हाथ
हटाकर धरमे बाहर निकल जाना चाहती है । इस प्रकार
नईं ब्याही हुईं बहू अपने प्रियतमको सुप भी देती है
तथा उनका मन भी चित्त करती है ॥ १७ ॥ नईं ब्याही
हुईं नवेलीको प्रियतमने जब एकान्तमें अपनी दोनों भुजाओंसे
कसकर पकट लिया उस समय वह जानमें पकड़ हुईं छाँटाँसी
हरिणीके समान अत्यधिक कौपने लगी ॥ १८ ॥ महावरके
रसमे नवेलीके जो पिर अमी-अमी रंगे गये थे उन्हे उसने
अपने प्रियतमके सिरपर ऐसा चलाया कि उसके बाल लाल
हो गए । तब तो वह सुन्दरी नवेली डरकर घबड़ा उठी
किन्तु उसकी यह दशा देखकर प्रियतमने उसका एका
एक शुभन कर लिया ॥ १९ ॥ 'हे नाथ ! शास्य रहिए, मेरा
आँख छोड़ें बंशिय, दीवा शुभा दीशिय । देविय, सखी

पासमें ही खड़ी है ।' नईं ब्याही हुईं बहूकी इन बातोंमें
सुबक प्रियतमको रतिस्त्रीइसे भी अधिक खानन्द आया
॥ २० ॥ बिछोनेपर पड़ी हुईं नईं ब्याही हुईं ब्याही नवेली
सम्भोगके उद्गमं हाथ बँटानेमें असमर्थ होनेके कारण अपने
मनोरथ सफल करनेके लिये दरके कारण आँसूँ मुँदे-मुँदे
ही प्रियतमका मुखकमल देखने लगी ॥ २१ ॥ प्रियतमने
किसी-किसी उपायसे हठपूर्वक नवेलीके बल खींच लिये और
अब वह पके हुए सरकण्डेकी भँटि गोरे रङ्गकी उस
मृगनयनीकी जाँचिं देपने खगा । ऐसी दशामें उस नवेलीने
अत्यन्त चमकते हुए मणिके दीपकपर दृष्टि तो डाली किन्तु
वह झुक नहीं सकता था । फिर जब उसे कोई उपाय न
सूझा तब ऋपट उसने अपने दोनों कमलतयन हाथोंसे
पक लिए ॥ २२ ॥ जब चञ्चल आँखवाली नवेली अपने
कङ्कन बजते हुए हाथोंसे कसकर गले लग जाती है तो
प्रियतमका मन अत्यधिक प्रसन्न भी हो जाता है और वह
उसपर रीक भी उठना है । उस समय नवेलीकी देहमें रोमाञ्च
हो आता है, आँसूकी पुतलियाँ चञ्चल हो आती हैं और
भयके कारण कपटे हुए ऊँचे-ऊँचे स्तन धू लिए जानेसे
उसे उस समय अत्यधिक सुप मिलता है ॥ २३ ॥
नये-नये समानाममें प्रियतमको अपेय कर देनेके लिये उसको
मृगनयनी नवेलीका सुन्दर सुप हर्षसे रोमाञ्चित हो गया,
वेगसे दिल उठा, रोज़बगइसे ऊपर उठा लिया गया, सिङ्गारसे
अलसा गया, उसकी आँसूँ डरसे शिथिल हो गईं, जात्रसे
वह झुक गया और सोनेके समान गोरे गोरे गाँधोपर उड्य-उड्य

दृशः कान्तापराणयोत्सुकं किञ्चित्काञ्चनगौरगण्डगलि-
तस्वेदाभ्यु रन्ध्रं मुखम् ॥ २४ ॥ हस्तं कम्पयती कण्ठि
रशनाभ्यापारलोलाङ्गुलिं हस्ती स्वौ नपति स्तनाभर-
यतामालिङ्गयमाना वलात् । पातुं पद्मलचक्षुरक्षम-
यतः साचीकरोत्याननं व्याजेनाभ्यभिलापपूर्णासुखं
निर्वर्तयत्येव मे ॥ २५ ॥

नववधूसङ्गमे सखीवापयम्—कण्टकिततनुशरीरा
लज्जामुकुलायमाननयनेयम् । तव कुमुदिनीच वाञ्छति
नृचन्द्र याला करस्पर्शम् ॥ १ ॥ नार्यस्तन्वि हटाङ्क-
रन्ति रमणं तिष्ठन्ति नो वारितास्तर्कि ताम्यसि कि
च रोदिपि मुधा तासां प्रियं मा कथाः । कान्तः केलि-
रुचिर्युवा सहृदयस्तादृक्पतिः कातरे कि नो वर्धरक-
कर्मैः प्रियशतेराक्रम्य विक्रियते ॥ २ ॥ नीरन्ध्रं परि-
रभ्यते प्रियतमो भूयस्तरां चुम्ब्यते तद्गाढं क्रियते
यदस्य रुचिरं चाद्रूकरैः स्यूयते । सख्या मुग्धवधुरसां

रतविधौ यत्नेन सा शिञ्जिता निभ्रान्तं गुरुणा पुनः
शतगुणं पञ्चेपुणा कारिता ॥ ३ ॥ याला तन्वी मृदु
तनुरियं त्यज्यतामत्र शङ्का दृष्टा कापि भ्रमरभरतो
मञ्जरी भयमाना । तस्मादेवा रहसि भवता निर्दयं
प्रीडनीया मन्दाक्रान्ता विस्त्रजति रसं नेच्युष्टि सम-
ग्रम् ॥ ४ ॥ मानः कामं पुरस्कार्यः परिष्वङ्गस्तु पृष्ठतः ।
न चासौ न च संरम्भः सुन्दरीणां रती हितो ॥ ५ ॥
मुग्धे नैव भयं धेयं प्रमोदायसरो ह्ययम् । त्वराऽपि
न परिष्वङ्गदाने कार्या शुचिस्मिते ॥ ६ ॥ यत्तापयन्ति
शिशिरांशुन्वो यदेते त्वां मोहयन्ति च विनिद्रसरोज-
घाताः । यत्स्थिद्यते तनुरियं च तदेप दोषः सत्यं तथैव
सुतनु प्रचुरन्नपायाः ॥ ७ ॥ रत्नामालिकया बाले
वन्द्या किं प्रयोजनम् । अथश्यम्भाविनाचेतो कुचप्रह-
कचप्रहा ॥ ८ ॥

सम्भोगाविष्कारणम्—अयमेकोऽहमेकेति ज्ञानं तत्स-

पसीना भी आ गया ॥ २४ ॥ कौपती हुई नवेलीने करघनीकी
धोर बड़ी हुई मेरे हाथकी उँगलियों आम लीं और जब मैं
हृदयवक आलिङ्गन करने लगा तो उसने अपने हाथोंसे स्तन
वक लिए । ज्योंही मैंने उसकी सुन्दर बरौनीवाली आँखें
चूमनेके लिये उसका सिर उठाना चाहा, उसने मुँह फेर
लिया । इस प्रकारके अपने वनावटी व्यवहारोसे भी वह मेरी
इच्छा पूरी होनेका सुख ही मुझे दे रही है ॥ २४ ॥

नई वहसे सम्भोग करते समय सखीकी वार्ते :
हे भनुर्योमें चन्द्रमाके समान सुन्दर ! कोहूँके समान इस
नवेलीके दुबले पतले शरीरमें रोमांच हो आया है और लाजके
कारण इसके नेत्र मुँह जा रहे हैं । अब यह आपके हाथरूपी
किरणोंका स्पर्श खाए रही है ॥ १ ॥ हे सुन्दरी ! रिश्रप्रां तो
अपने अपने पतियोंको हट करके रोक्ती हैं और रोकनेपर भी
रन्ती नहीं हैं इसलिये तुम क्यों रो-झील रही हो और
उन्हीका मनचाहा कर रही हो (तुम अपने प्रियको रुट कर
दोगी सो दूसरी रिश्रप्रां उसे फाँस ले जायेंगी) क्योंकि तु-
म्हारा प्रियतम बड़ा खिलाड़ी, जवान और रसिक है इसलिये पगल !
पूँसे पतिका क्या भयन् रिश्रप्रां बोलियाँ बोलकर और चिकनी-
सुपदी बातें बनाकर तुम्हारे विरह भटका नहीं देंगी ॥ २ ॥
'पतिका कसकर आलिङ्गन किया जाता है, बार-बार उनका
सुम्बन किया जाता है, प्रियतमको भले जान पड़नेवाले
व्यवहार किए जाते हैं और मीठी मीठी बातोंसे प्रियतमको
मरुसा भी जाती है ।' इस प्रकार भोली-भाजी नई बहूको

बड़ी ही सावधानीके साथ सखियोंने सुरत-क्रियाके लिये शिक्षा
दी । किन्तु इसके पश्चात् तो आचार्य कामदेवने बेजटके
उस उपदेशसे भी सौ गुना अधिक सिला दिया ॥ ३ ॥
हे सुन्दर ! यह शङ्का छोड़ दो कि यह अभी छोटी है,
दुबली तथा कोमल शरीरवाली है । क्या कहीं भीरुके बोझसे
आमकी मञ्जरी टूटा करती है ? इसलिये आप इसे एकान्तमें
ले जाकर जमकर इसका आलिङ्गन कीजिए, क्योंकि धरिसे देवाई
हुई ईंख सारा रस नहीं छोडती । उसे भरपूर बल लगाकर
दबाना पड़ता है ॥ ४ ॥ पहले कुछ मान करना चाहिए
तत्पश्चात् प्रियतमका आलिङ्गन करना चाहिए । सुन्दरियोंकी
रतिकीदामें दर और पबराहट दोनों ही बाधक हुआ करती हैं
॥ ५ ॥ हे भोली-भाजी ! यह तो आनन्दका समय है यतः इसमें
दरना नहीं चाहिए और हे पवित्र सुम्बानवाली ! आलिङ्गन
करनेमें बहुत शीघ्रता भी नहीं करनी चाहिए ॥ ६ ॥ हे सुन्दरी !
चन्द्रमाकी शीतल किरणों भी जो तुम्हें तथा रही हैं, खिले हुए
कमलोंकी सुगन्धमें बसा हुआ पवन जो तुम्हें सूँघत कर रहा है
और तुम्हारा शरीर जो पिच हुआ जा रहा है यह सब तुम्हारी
आत्यधिक कौपका ही दोष है, यह मैं सत्य कह रही हूँ ॥ ७ ॥
हे भाजे ! स्तन तथा बालोंकी रखवालीके लिये उनपर मालाएँ
क्यों लपेट रही हो ? इनकी चाहे जितनी रचा करो किन्तु ये
पकड़े अथरप ही जायेंगी ॥ ८ ॥

सम्भोगकी वार्ते : प्रियतमने सम्भोग करते समय मुझे

इमे न मे । राग एवाधिकस्तत्र हरिद्राचूर्णयोरिध
॥ १ ॥ अर्कामिमुल्यसलिलम्वितिसाधनानि रचाम्नु
जस्य कलितान्धुना तपांसि । यद्रीर्य तस्य परिभूति-
करं पदं त्वं लाक्षारसाङ्कुरितरागमिमं करोपि ॥ २ ॥
अहं तेनाहता किमपि कथयामीति विजने समीपे
चासीना सरलहृदयत्वाद्वहिता । ततः कर्णोपान्ते
किमपि वदताऽऽश्राय वदनं शृद्धीत्वा घम्मिह्ने मम
सखि निपीतोऽधररसः ॥ ३ ॥ श्रामुष्मिकैहिकसुरे-
च्युभिरर्चनीयं लिङ्गद्वयं पुररिपोरधिनामितीर्थम् ।
प्रेथः कराग्रहभाषितचन्द्ररेपं मोदाय कस्य छतिनो
न चिराय लोके ॥ ४ ॥ उपसि परिवर्तयन्त्या मुका-
दामोपवीततां नीतम् । पुरुपायितवैदग्ध्यं लज्जावति
कैर्न कलितं ते ॥ ५ ॥ कान्ते सागसि यापिते प्रियस-
खीवेषं विधायागते भ्रान्त्याऽऽलिङ्ग्य मया रहस्यमु

दितं तत्सङ्गमाफाह्वया । मुग्धे दुष्करमेतदित्यतितरा-
मुन्त्या सदासं वलादालिङ्ग्य च्छुलिताऽस्मि तेन
कितयेनाथ प्रदोपागमे ॥ ६ ॥ किमपि पान्नमुजान्त
रवतिनी कृतयती यदियं कलभापिणी । तदनुकृत्य
गिरा गुरुसन्निधौ हियमनीयत सागिक्या यधूः ॥ ७ ॥
गाढाश्लेषविशीर्षचन्दनरजःपुल्लप्रसारादियं शय्या
सम्प्रति कोमलाङ्क परुषेत्यारोप्य मां वक्षसि । गाढा-
प्रग्रहपूर्वमाकुलतया पादाप्रसन्नंशकेनाकृप्याम्बरमा-
त्मनो यदुचितं धूर्तेन तत्प्रस्तुतम् ॥ ८ ॥ चन्दनं स्तन-
तटेऽधरविम्वे थायकं घनतरं च सपत्न्याः । प्रातरित्य
कुपितापि मृगाक्षी सागसि प्रियतमे परितुष्टा ॥ ९ ॥
तस्याः पाटलपाणिजाडितमुरो निद्राम्रपाये दृष्टी
निर्धृताधरशोणिमा धिलुलितघस्तस्त्रजो मूधंजाः ।
काञ्चीदाम दरप्लथाञ्जलमिति प्रातर्निपातैर्दृशारेभिः

यह ज्ञान ही न रहा कि एक थे हैं और एक मैं हूँ । वहाँ तो
हम दोनोंका प्रेम ऐसा प्यारका होकर छा गया था जैसे हल्दी और
चूना मिलकर लाल हो जाते हैं ॥ १ ॥ हे भीरु ! सूर्यके सामने
जलमें खड़े होकर तपस्या करनेका फल इस लाल कमलको
अब मिल रहा है क्योंकि इसका पेश्वर बदानेवाले पैरमें तुम
महावरके रहस्ये लाल-लाल अक्षर बना रहा हों ॥ २ ॥ हे
सखी ! उसने मुझे एकान्त स्थानमें यह कहकर बुला लिया
कि 'मैं तुमसे कुछ कहना चाहता हूँ' और मैं भी भोला
स्वभाव होनेके कारण उसके पास बैठ गई फिर उसने कुछ
कहते हुए मेरे कानके पास मुँह जाकर मेरा मुख सूँघा और
मेरा जूटा थामकर मेरा अक्षर रस पी लिया ॥ ३ ॥ लोक और
परलोकमें सुख चाहनेवालोंको चाहिए कि वे नामिरूपी तीर्थके
ऊपर स्थित शिवजीके दोनों लिङ्गों (दोनों स्तनों) का पूजा करें ।
भला बताइये, नदीके विहगरूपी चन्द्रकलाको धारण करनेवाले
वे जिह्वा ससारमें किस पुण्यात्माको सदा आनन्द नहीं देत
रहेंगे ? ॥ ४ ॥ हे लज्जानेवाली ! जनेऊके समान पहनी हुई
मोतीकी मालाको जा तुम प्रातःकाल शोक करके पहन रही
हो इससे कौन नहीं समझ लेगा कि रातमें तुमने पुरुषके
समान आचरण किया है (अर्थात् विपरीत रति की है) ॥ ५ ॥
ज्योंही प्रियतम दूसरी नवेलीका भांग करके मेरे पास थाप
ल्योही मैंने ठन्डे निकाल बाहर किया, किन्तु वे प्येमे चट निकले
कि भट मेरी प्यारी सखीका वेष बनाकर चले थाप और मैंने
अगममें पदकर उन्हे अपनी सखी समझकर उनका आलिङ्गन

करके उन्हींसे मिलनेकी इच्छाके रहस्यकी यात यह समझकर
कह दी कि वह मेरी सखी है । तब तो वे बोल उठे
कि 'अरी पगली ! यह तो बहुत कठिन है' और यह
कहकर हैंसते हुए बलपूर्वक मेरा आलिङ्गन करके आज
सायकाल उन धूर्ताराजने मुझे अचड़ा दृष्टया ॥ ६ ॥ पतिकी
मुजाओंमें जकड़ी हुई तथा मोठी बोलनेवाली नवेलाने जा
कुड़ बाँते कीं उन्हींकी मुग्धीने उसके पास ससुरके सामने
दुहराकर उसे लजित कर दिया ॥ ७ ॥ 'हे कामल अङ्गवाली !
कसकर आलिङ्गन करनेके कारण गिरा हुई चन्दनकी धूलके
फेले जानेसे इस समय यह विद्वैता रूखा पड़ गया है', ऐसा
कहकर प्रियतमने मुझे अपनी गोदमें बैठा लिया, शीघ्रता-
पूर्वक मेरे श्रोत्रका पुम्पन करते हुए पैरकी उँगलियोंरूपी
सँदमसे मेरी साईं खींच ली और इसके पश्चात् उस धूर्तने
अपनी मनमानी करनी प्रारम्भ कर दी ॥ ८ ॥ यद्यपि अपराधी
प्रियतमको देखकर नवेली रुड़ी हुई थी किन्तु वह प्रातःकाल
सौतके स्तनपर चन्दनका लेप तथा श्रोत्रोंपर गाढ़ी लाली
देखकर प्रसन्न हो गई क्योंकि उसने समझ लिया कि यदि
प्रियतमने उससे सम्भोग किया हाता तो अवश्य ही वह
चन्दन और लाली छूट गई होती ॥ ९ ॥ नयके लाल चिह्नमें
युक्त उस नवेलीकी छाती, नौदसे अलसाई हुई थीं, बजाई
छूटा हुआ श्रोत्र, फूलोंकी मालामे रहित चोटा और कुछ दाढ़ी
हरयनी, ये सभी कामदेवके बाण गड़ ता प्रियतमकी शीलमें
किन्तु आरम्भकी तो यह है कि इससे विध गया उसके मन

दशः कान्तार्पणायोत्सुकं किञ्चित्कामञ्जनगौरगमडगलि-
तस्वेदाम्भु रम्यं मुखम् ॥ २४ ॥ हस्तं कम्पयती कणाञ्च
रथनाव्यापारलोलाङ्गुलिं हस्तौ स्वीयति स्तनापर-
णतामालिङ्गधमना वलात् । पातुं पद्मलचक्रुह्रुधम-
यतः साचीकरोत्याननं व्याजेनाप्यभिलाषपूरणसुखं
निर्यतयत्येव मे ॥ २५ ॥

नवपत्रसङ्गमे सलीवाक्यम्—कण्टकिततनुशरीरा

लज्जामुकुलायमाननयनेयम् । तद्य कुमुदिनीव वाञ्छति
नृचन्द्र वाला करस्पर्शम् ॥ १ ॥ नार्यस्तन्यि हठाङ्क-
रन्ति रमणं तिष्ठन्ति नो वारितास्तर्किकं ताभ्यसि किं
च रोदिषि मुया तासां प्रियं मा कृथाः । कान्तः केलि-
रुचिर्युवा सहृदयस्तादृक्पतिः कातरे किं नो वर्धक-
केशैः प्रियशतेराक्रम्य विक्रियते ॥ २ ॥ नीरन्ध्रं परि-
रभ्यते प्रियतमो भूयस्तरां शुभ्रयते तद्गाढं क्रियते
यदस्य रचिरं चाट्टकरैः स्तूयते । सख्या मुग्धवधूरसां

पसीना भी आ गया ॥ २४ ॥ कौपती हुई नवेलीने करधनीकी
घोर यद्दी हुई मेरे हाथकी उँगलियों धाम साँ और जब मैं
हठपूर्वक थालिङ्गन करने लगा तो उसने अपने हाथोंसे स्तन
दक किया । ज्योंही मैंने उसकी सुन्दर बरौनीवाली आँखें
चूमनेके लिये उसका सिर उठाना चाहा, उसने मुँह फेर
लिया । इस प्रकारके अपने यनावटी व्यवहारोंसे भी वह मेरी
दृष्ट्या पूरी होनेकासुख ही मुझे दे रही है ॥ २५ ॥

नई घट्टसे सम्भोग करते समय सखीको पारतै ;
हे मनुष्योंमें चन्द्रमाके समान सुन्दर ! कोइके समान इस
नखेलीके दुबले पतले शरीरमें रोमांच हो आया है और लाजके
कारण इसके नेत्र मुँदे जा रहे हैं । अब यह आपके हाथरूपों
किस्कोंका स्पर्श चाह रही है ॥ १ ॥ हे सुन्दरी ! स्त्रियों तो
अपने अपने पतिवोंको हठ करके रोक्ताई घोर राकनेपर भी
रहती नहीं हैं इसलिये तू हम क्यों रो-मोहल रही हो और
उन्हीका मनचाहा कर रही हो (तुम अपने प्रियको हठ कर
दोगी तो दूसरी स्त्रियों हसे फाँस ले जायँगी) क्योंकि तू द्वारा
प्रियतम बन्दा लिखाया, जवान और रसिक है इसलिये पगली !
पूँसे पाँतका क्या चम्य रियत्रों बालियाँ बालकर और चिहनी-
नुपद्दां बाने बनाकर तुम्हारा विरह भइहा नहीं देंगी ॥ २ ॥
'पतिका कसकर आलिङ्गन किया जाता है, बान-वार उनका
शुभन किया जाता है, प्रियतमको भले जान पदनेवाले
व्यवहार किए जाते हैं और मीठी-मीठी बातोंसे प्रियतमको
प्रहासा ही जाती है।' इस प्रकार मोहली माजी भई बहूकी

रतविधौ यत्नेन सा शिञ्जिता निश्चान्तं गुरुणा पुनः
शतगुणं पञ्जेषुणा कारिता ॥ ३ ॥ धाला तन्वी मृदु-
तनुरियं त्यज्यतामत्र शङ्का दृष्टा कापि भ्रमरभरतो
मञ्जरी भ्रम्यमाना । तस्मादेवा रहसि भवता निर्दयं
पीडनीया मन्दाकान्ता विस्तृजति रसं नेत्रुयष्टि सम
ग्रम् ॥ ४ ॥ मानः कामं पुरस्कार्यः परिष्वङ्गस्तु पृष्ठत' ।
न प्राप्सो न च संरम्भः सुन्दरीणां रतौ हितौ ॥ ५ ॥
मुग्धे नैव भयं घेयं प्रमोदावसरो हायम् । त्वरापि न
परिष्वङ्गदाने कार्यं शुचिस्मिते ॥ ६ ॥ यत्तापयन्ति
शिशिरांशुकचो यदेते त्वां मोहयन्ति च विनिद्रसरोज-
घाताः । यत्किञ्चते तनुरियं च तदेव दीपः सत्यं तथैव
सुतनु प्रसुररुपायाः ॥ ७ ॥ रत्नामालिकया वाले
यद्यथा किं प्रयोजनम् । अवश्यम्माविनावेतौ कुचग्रह
कचग्रहा ॥ ८ ॥

सभोगीविधकरणम्—अयमेकोऽहमेकेति ज्ञानं तत्स-

बड़ा ही सावधानीके साथ सखियोंसे सुरत-क्रियाके लिये सिखा
दी । किन्तु इसके पश्चात् तो आचार्य कामदेवने बेरहके
उस उपदेशसे भी सौ गुना अधिक सिखा दिया ॥ ३ ॥
हे सुन्दर ! यह शङ्का छोड़ दो कि यह अभी छोटी है,
दुबली तथा कोमल शरीरवाली है । क्या कहीं मोरके बोझसे
शामकी मञ्जरी टूटा करती है ? इसलिये आप इसे एकान्तमें
ले जाकर जबकर इसका आलिङ्गन कीजिए, क्योंकि धीरेसे दियाई
हुई ईँख सारा रस नहीं छोडती । उसे भरपूर मल लगाकर
दधाना पडता है ॥ ४ ॥ पहले कुछ माल करना चाहिए
तापश्चात् प्रियतमका आलिङ्गन करना चाहिए । सुन्दरियोंकी
रतिकीर्तनमें दर और धराराहट दोनों ही बाधक हुआ करती है
॥ ५ ॥ हे मोली-माजी ! यह तो चानन्दका समय है धतः इसमें
दरना नहीं चाहिए और हे पतिप्र मुस्कानवाली ! आलिङ्गन
करनेमें बहुत शोभता भी नहीं करना चाहिए ॥ ६ ॥ हे सुन्दरी !
चन्द्रमाकी शीतल किरणों भी जो तुम्हें तथा रही हैं, लिये हुए
कमलोंकी सुगन्धमें बसा हुआ पवन जो तुम्हें मूर्च्छित कर रहा है
और तुम्हारा शरीर जो तिरछ हुआ जा रहा है यह सब तुम्हारी
आयधिक भौंपका ही दोष है, यह मैं सरय कह रही हूँ ॥ ७ ॥
हे माजे ! स्नन तथा बालोंकी रामबालोंके लिये उनपर मालार्प
क्यों जपेट रही हो ? इनकी पाई जिनकी रक्षा करो किन्तु वे
पकड़े धरवय ही जादेंगे ॥ ८ ॥

सम्भोगकी पारतै : प्रियतमसे सम्भोग करते समय मुझे

झमे न मे । राग एवाधिकस्तत्र हरिद्राचूर्णैर्योरिय
॥ १ ॥ शर्काभिमुख्यसलिलम्यतिसाधना नि स्ताभ्यु
जस्य फलिदान्यधुना तपांसि । यद्ग्रीय तस्य परिभृति-
करं पदं त्वं लात्तारसाद्हरितरागमिमं करोषि ॥ २ ॥
अहं तेनाहता किमपि कथयामीति विज्जने समीपे
चासीना सरसहृदयत्वादवहिता । ततः कर्णोपात्ते
किमपि यत्ताऽऽप्राय यदनं गृहीत्वा धम्मिल्ले मम
सखि निपोतोऽधररसः ॥ ३ ॥ आमुष्मिकैहिकसुषे-
च्छुभिरर्चनीयं लिङ्गद्वयं पुररिपोरधिनामितीर्थम् ।
प्रेयः कराग्ररुहभाधितचन्द्ररेखं मोदाय कस्य कृतितो
न चिराय लोके ॥ ४ ॥ उपसि परिचर्यन्त्या मुका-
दामोपवीततां नीतम् । पुरपायितवैदग्ध्यं लज्जावर्तित
कैर्न कलितं ते ॥ ५ ॥ कान्ते सागसि यापिते प्रियस-
खीवैपं विधायागते भ्रान्त्याऽऽलिङ्ग्य मया रहस्यमु

दितं तत्सङ्गमाकाङ्क्षया । मुखे दुष्करमेतदित्यतितरा-
मुक्त्या सहासं यत्तादातिङ्ग्य चञ्चलिताऽस्मि तेन
कितवेनाद्य प्रदोपागमे ॥ ६ ॥ किमपि कान्तमुजान्त
रचतिनी कृतवती यदियं क्लमापिण्णो । तदनुगम्य
गिरा शुद्धसखिधौ द्वियमनीयत सागिक्या यधूः ॥ ७ ॥
गाढाद्वलेपयिशीर्षचन्दनरज-पुल्लप्रसारादियं श्रय्या
सम्प्रति कोमलाङ्ग परुषेत्यारोप्य मां यत्सि । गाढा-
ग्रथहपूर्धमाकुलतया पादाप्रसन्नंशकेनाकृष्याम्बरमा-
त्मनो यदुचितं धूर्तेन तत्प्रस्तुतम् ॥ ८ ॥ चन्दनं स्तन-
तटेऽधरचिख्ये याद्यकं धनतरं न्य सप्तन्याः । प्रातरिच्य
कुपितापि मृगान्ती सागसि प्रियतमे परितुष्टा ॥ ९ ॥
तस्याः पाटलपाणिजाङ्गितमुपो निद्राकपाये रज्या
निर्धृताधरशोणिमा विलुलितस्त्रस्तस्त्रजो मृधंजाः ।
काञ्चीदाम दरश्लपाञ्चलमिति प्रातर्निपातैर्दृशारेभिः

यह ज्ञान ही न रहा कि एक थे हैं और एक मैं हूँ । वहाँ तो
हम दोनोंका प्रेम ऐसा एकरंग होकर छा गया था जैसे हृदी और
चूना मिलकर लाल हो जाते हैं ॥ १ ॥ हे भीरु ! सूर्यके सामने
जलमें खड़े होकर तपस्या करनेका फल इस लाल कमलको
अब मिल रहा है क्योंकि इसका पेश्वर्य यदुनेवाले पैरमें तुम
महावरके रङ्गसे लाल-लाल अद्भुत बना रही हो ॥ २ ॥ हे
सखी ! उसने मुझे एकान्त स्थानमें यह कहकर बुला लिया
कि 'मैं तुमसे कुछ कहना चाहता हूँ' और मैं भी भोला
स्वभाव होनेके कारण उसके पास बैठ गई फिर उसने कुछ
कहते हुए मेरे कानके पास मुँह लाकर मेरा मुख मुँहा और
मेरा जूटा धामकर मेरा अग्रर रस पी लिया ॥ ३ ॥ लोक और
परलोकमें सुख चाहनेवालोंको चाहेदि कि वे नामिरूपी तीर्थके
ऊपर स्थित शिवजीके दोनों लिङ्गों (दोनों स्तनों) का पूजा करें ।
भला बताइये, नल्लोके चिह्नरूपी चन्द्रकलाको धारण करनेवाले
वे लिङ्ग ससारांसे किस पुण्यात्माको सदा आनन्द गद्दी दते
रहेगे ॥ ४ ॥ हे लज्जनेवाली ! जनेऊके समान पहनी हुई
मोतीकी मालाको जो तुम प्रातःकाल ठोक करके पहन रहा
हो इससे कौन नहीं समझ लेगा कि रातमें तुमने पुरपके
समान आचरण किया है (अर्थात् विपरीत रति का है) ॥ ५ ॥
ज्योंही प्रियतम दूसरी नवेलीका भोग करके मेरे पास आए
एवही मैंने उन्हीं निकाल बाहर किया, किन्तु वे ऐसे बट निकल
कि ऋतु मेरी प्यारी सखीका वेप बनाकर चले आए और मैंने
भ्रममें पड़कर उन्हे अपनी सखी समझकर उनका आलिङ्गन

करके उन्हींसे मिलनेकी इच्छाके रहस्यकी यात यह समझकर
कह दी कि वह मेरी सखी है । तब तो वे बोल उठे
कि 'श्रीर पगली ! यह तो बहुत कठिन है' और यह
कहकर हँसते हुए पलपूर्वक मेरा आलिङ्गन करके आज
सायकाल उन धूर्तारामने मुझे अचट्टा दुकाया ॥ ६ ॥ पतिकी
सुजाओंमें जकड़ी हुई तथा मीठी बोलनेवाली नवेलाने जा
कुड़ बातें की उन्हींकी सुगमिने उसके सास ससुरके सामने
दुहराकर उसे लजित कर दिया ॥ ७ ॥ 'ह कामज अहवाली !
कसकर आलिङ्गन करनेके कारण गिरा हुई चन्दनकी धूलके
फैल जानेसे इस समय यह बिद्वाना रूपा पढ गया है', पूसा
कहकर प्रियतमने मुझे अपनी गोदमें बैठा लिया, रागप्रता-
पूर्वक मेरे ओठका पुरचन करते हुए पैरकी उँगलियों रपी
सँभलसे मेरी साड़ी खींच ली और इसके पदचाप उस धूर्तने
अपनी मनमानी करनी प्रारम्भ कर दी ॥ ८ ॥ यद्यपि अपराधी
प्रियतमको देखकर नवेली रुठी हुई थी किन्तु वह प्रातःकाल
सीतके स्तनपर चन्दनका लेप तथा आठोंपर गाड़ी लाली
दणकर प्रसन्न हो गई क्योंकि उसने समझ लिया कि यदि
प्रियतमने उससे सम्भोग किया होता तो अवश्य ही यह
चन्दन और लाली छूट गई होती ॥ ९ ॥ नवके लाल चिह्नोमें
सुख उस नवेलीकी छाती, नींदसे अजसाई हुई घाल, लजाई
छूटा हुआ ओठ, फूलोंकी मालासे रहित चौड़ा और कुड़ दाँवी
करघनी, वे सभी कामदेवके बाण गड़ ता प्रियतमकी आँसुओंमें
किन्तु आरधर्य तो यह है कि इससे बिच गया उसका मन

कामशरैस्तदद्भुतमहो पत्युर्मनः कीलितम् ॥ १० ॥
ताडीदलं काचन कर्णपाशे निवेशयन्ती सुतनुः करा-
भ्याम् ॥ रराज कर्णान्तविसपिदष्टिः शाश्वे ददानेय
कटाक्षयाखान् ॥ ११ ॥ दम्परत्योर्निशि जल्पतोर्गृह्यशुके-
नाकर्णितं यद्वचस्तत्प्रातर्गुरुसन्निधौ निगदतस्तस्या-
तिमात्रं वधुः । कर्णालम्बितपश्चरागशकलं विभ्यस्य
चञ्च्वाः पुटे व्रीडातां प्रकरोति दाडिमफलव्याजेन
याम्बन्धनम् ॥ १२ ॥ घन्यास्ताः सखि योषितः प्रिय-
तमे सर्वाङ्गलस्रेऽपि याः प्रागल्भ्यं रचयन्ति मन्मथ-
विधायालम्ब्य धैर्यं महत् ॥ अस्माकं तु तदीयपाणि-
कमलेनोन्मोचयत्यंशुकं काऽयं का वयमत्र किं च सुरतं
नैव स्मृतिर्जायते ॥ १३ ॥ नखचतसुरःस्थलेऽधरदले
रदस्य व्रणं च्युता घकुलमालिका विगलिता च
सुकायली । रतान्तसमये मया सकलमेतदालोकितं
स्मृतिः क्व च रतिः क्व च क्व च तवालि शिश्वा-

॥ १० ॥ कोई सुन्दर शरीरवाली नवेली ताड़के पनेको कनफूल
बनाकर हाथोंसे जब पहन रही थी उस समय उसके कानोंतक
फैली हुई चितवन ऐसी जान पड़ रही थी मानो वह अपने
चितवनरूपी बाणोंको तीक्ष्ण करनेके लिये शान-पर चढ़ा रही
हो ॥ ११ ॥ रात्रिमें परस्पर बातचीत करते हुए पति-पत्नीकी
जो बातें पालवू सुगने सुनीं वहाँ यातोंका वह प्रातः-
काल बढ़े-चूढ़के सामने बुझाने लगा । यह सुनकर नवेली
जजा गई और उसने अपने कानमें लटकके हुए पश्चराग
(लालमणि) का टुकड़ा उसकी चोंचमें भँटके रूपमें डाल
दिया जिसे तोंने खदातका दाना समझा । इस प्रकार
नवेलीने सुगमेंको बाँजनेसे रोक दिया ॥ १२ ॥ हे सखी ! वे
जिष्यौ धन्य है जो रतिक्रीड़ाके समय प्रियतमके द्वारा अपनी
सारी देहका आलिङ्गन किए जानेपर भा गम्भीर हाकर टिठाई
दियेजाता है । मरी तो यह दशा है कि वैसे ही पतिदेव अपने
हाथोंसे मेरे वक्ष जोखने लगते हैं वैसे ही मैं ऐसी सुप-सुप
थो ऐसी हूँ कि मुझे यही स्मरण नहीं रह जाता कि कहीं
प्रियतम हैं, कहीं मैं हूँ और यह सब क्या हो रहा है
॥ १३ ॥ हे सखी ! छातीपर नपके चिह्न, थ्रोडपर दंतके
चिह्न, गिरी हुई मौखसिरी और मोतियोंकी माळा, इन सब
पद्युषोंको मैंने सुरतके अन्तमें देखा । सुरतके समय तो मुझे
स्मरण ही नहीं रहा कि यह सुरत-क्रीडा हो फैली रही है और
उस समय दुग्धारी सिप्राई हुई बातें भी न जाने कहीं लुप्त हो

विधिः ॥ १४ ॥ निद्रातुन्दिलशोणलोचनयुगं दत्ताङ्क-
दन्तच्छुद्धं पर्यस्तालकयलि धर्मपटलप्रासृष्टपत्रायलि ।
जम्भाजृम्भितसीधुसौरभमिलद्रुङ्गीभिरक्रीकृतस्तोत्रं
शंसति वक्त्रमेव रजनीघृत्तान्तमेखीदशः ॥ १५ ॥ नीचीं
प्रति प्रखिहिते नयनेऽपि तेन पचाननेन दयितेन रदो-
गतेन । शय्याश्रयोऽपि चत दुर्लभतां प्रयाति बुद्धिः
सखी क्वचन लीयत एव सख्यः ॥ १६ ॥ पादन्यासं
कृतवति बहिः श्रोत्रयोरस्मि लीना प्राप्ते दृष्टिप्रसर-
पदवीं दृष्टिरेवाहमासम् ॥ तल्पान्तस्थे हसितपुलकस्वे-
दकम्पाकुलाङ्गी सञ्जाताऽहं तदपु सखि मे विमलुतो
विवेकः ॥ १७ ॥ प्रभाते पृच्छन्तोरनुरहसवृत्तं सहच-
रीर्नयोढा न व्रीडामकुलितमुखीर्यं सुखयति । लिख-
न्तीनां पद्माङ्कुरमनिशमस्यास्तु कुचयोश्चमत्कारो गूढं
करजपदमासां कथयति ॥ १८ ॥ बहु जगद पुरस्ता-
त्तस्य मत्ता किलाहं चकर च किल चाट्ट प्रौढयोपिद्व-

गई थीं ॥ १४ ॥ इस नवेलीकी दोनों आँखें नाँदके कारण
अत्यधिक लाल हो रही हैं, इसके थ्रोडपर दंतके चिह्न लगे
हुए हैं, बाल बिखरे हुए हैं, देहपर बनी हुई चित्रकारी पसीनेसे
गुल गई है और जैभाई कंते समय उसके मुखसे जो
मदिराकी गन्ध निकलकर चारों ओर फैल रही है उसकी
गन्धके जोभमें चारों ओर भीरे गूँजते हुए भँडरा रहे हैं ।
इस प्रकार उस मृगनयनी नवेलीके शतके व्यवहार उसका
मुल ही भ्रष्ट किए दे रहा है ॥ १५ ॥ हे सखियों ! एकान्तमें
बैठे हुए कमल-जैसे मुखबाले प्रियतम जैसे ही नादेकी गाँठकी
घोर चितवनभर लजाते हैं वैसे ही विद्योनेपर वैठी हुई सखी
तथा बुद्धि वे सब न जाने कहीं लुप्त हो जाती हैं ॥ १६ ॥ हे
सखी ! जहाँही मुझे याद प्रियतमके आनेकी आहट लगी
एवोंही मैं कान लगाकर बैठ गई, फिर जब वे आँखोंके सामने
आ गए तो मानो मैं स्वयं उन्हें देखनेके लिये दृष्टि ही बन
गई और जब वे पर्जन्यपर धा बैठे तो मैं हँसने लगी, मेरे
रोंगटे खड़े हो गए, मैं कौपने जहाँ और दूसके परचास ता
मेरा विवेक ही लुप्त हो गया कि कहीं क्या हो रहा है ॥ १७ ॥
किसी नई ब्याही हुई नवेलीसे उसकी सखियों प्रातःकाल
रातका समाचार पूछने लगीं । पर जब उसने जजाकर रापना
सिर नीचे मुका लिया तो सखियोंको संतोष नहीं हुआ ।
इसी बीच यह चमत्कार हुआ कि जब वे सखियोंसे उस
नवेलीके स्तनोंपर चित्रकारी करने लगीं तो दरपर खों हुए

दस्य । विदितमिति सखिभ्यो रात्रिवृत्तं विचिन्त्य
व्यपगतमदयाहि मीडितं मुग्धघञ्चा ॥ १६ ॥ मुग्धा
त्वं सुभगे न वेत्सि मदनव्यापारमध्यापितं नूनं पश-
दलैषियुऽथमलिना द्यो न भर्त्राऽधरः । सत्येदं
हसितं वर्धुं प्रति तदा सानन्दमाविर्भवद्ब्रजान्तर्घन-
शोषुगन्धरसिकैर्भृङ्गैर्यदा गुञ्जितम् ॥ २० ॥ यद्रात्रो
रहसि व्यपेतनियतं वृत्तं रसात्कामिनोरन्योन्यं शयनी-
यमीहितरसावासिप्रवृत्तस्पृहम् । तत्सानन्दमिलदृशोः
कथमपि स्मृत्वा गुरुणां पुरो हासोद्भेदनिरोधमन्धर-
मिलत्तारं फथञ्चिस्थितम् ॥ २१ ॥ यानि द्रवन्ति
चिरद्वे विदलन्ति यानि योगे हरेण सखि किं घल्यैः
फलं ते । नैवास्ति धैधिपदि सम्पादं चोपयोगस्तेः
सङ्गमं न खलु वाञ्छन्ति कोऽपि मत्स्यैः ॥ २२ ॥ रतसि
श्रतुं प्रातर्लज्जानम्रमुखीं वधूम् । स्मरन्तीं रात्रि

चरितं हृद्भाप्रोति न को मुदम् ॥ २३ ॥ राजते राज-
रामाया एष विभ्याधरमणः । सुधां पीयेय कान्तेन
तच्छ्लेषोऽयं स मुद्रितः ॥ २४ ॥ लाक्षां विधातुमवल-
म्बितमात्रमेव सख्याः करेण तरुणाम्बुजजकोमलेन ।
कस्याश्चिदप्रपदमाशु वभूय रक्तं लाक्षारसः पुनरभूत्
पुनरुक्तदृष्यः ॥ २५ ॥ वक्षस्ते हृदलप्रकर्षशुक्रचन्द्रा-
घमनान्तरं कण्ठः कङ्कणरत्नकोटिकलनासुव्यक्तमुद्रा-
ङ्कितः । ध्यत्यासव्यतिपञ्चितश्च तिलकः फाले तथायं
सखे कस्याश्चित्कटीकरोति सुरतमौर्द्धि परां सुभ्रुवः
॥ २६ ॥ शशपदमणिमाल चन्द्ररेखाभिरामं ललितपुल-
कजालं लक्ष्यचिन्दुप्रवालम् । वपुरनघममुष्या वक्ति
कस्यापि यूः सुरतकलहलीलासूत्रमार्गाभियोगम्
॥ २७ ॥ संघरणाय वधूटी बहूपरिपाटीं करोतु किं
तेन । सम्प्रति रजनिरहस्यं नयनालस्यं निवेद्यति

नखके चिह्नाने हो धारे-धारे उसकी सारी पोल खोल दी
॥ १६ ॥ प्रातःकाल मद् उतर जानेपर उस नवेलीको
हस बातपर बड़ी लज्जा हुई कि 'रातमें अत्यन्त मतवालेपनमें
मैंने प्रियतमके सामने न जाने क्या क्या बक डाला, अत्यन्त
दीठ नवेलीके समान बहुत चापलूसी की थीर मेरे इस सब
व्यपहारको सखियोंने जान लिया है ।' ॥ ११ ॥ ध्यानदृष्टिक
वैठी हुई नवेलीके मुखसे निकलवा हुई मदिराकी घनी गन्धका
रस लेनेके लिये जब भीरे सूँघने लगे तो सखीने उस बहूने ऐसी
हँसी की कि 'हे सुन्दरी ! तू बड़ी भोली है, सिपानेपर
भी तू कामका व्यवहार नहीं जान पाई, तभी तो कमलकी
पैलकीके खोली इस रसिक भीरे रूपी प्रियतमने तेरे थोठका
सुग्धन नहीं किया' ॥ २० ॥ जिस समय प्रेमी और प्रेमिका
दोनों बड़े धूर्तोंके सामने बैठे हुए थे उस समय जब उन
दोनोंकी ध्यानदृष्टे भरी हुई थीं तो आपसमें मिठीं तो उन्हें
निर्जन युद्धमें निर्जङ्गमताके साथ और शत्रुतागसे भरे हुए
रातके व्यवहारोंका और अभिलाषा पूरी हो जानेसे अत्यधिक
प्रेम बढ़ानेवाली शय्याका स्मरण हो आया जिससे उनकी फेजी
हई थीं कि 'हे सुन्दरी ! पुनर्लियाँ नीची हो गई' और वे लज्जाके
कारण किसी-किसी प्रकार यहाँ उठर सके ॥ २१ ॥ हे सखी !
जो प्रियतमके चिह्नोंके दिनोंमें खीले पद जाते हैं और उनके
पास रहनेपर फटने लगते हैं ऐसे ऋगनोंसे भला क्या लाभ
है ? सगपति या विपत्तिके समय जो किसी काम न धावें
पैसोंका साथ क्या संसारका कोई मनुष्य चाहता है ? ॥ २२ ॥

रतिके परिश्रमसे बकी हुई, रातके चरित्र स्मरण करती हुई और
लाजसे नीचे मुल की हुई बहूको देखकर कीन प्रसन्न नहीं होता
॥ २३ ॥ इन सुन्दर नवेलीके कुँदरूने समान थोठमें जो
दृष्टिना चिह्न लगा है वह ऐसा जान पड़ रहा है माना
प्रियतमने जिस अधरका अग्रत पी लिया है उसकी सीठी बहाँ
पची रह गई हो ॥ २४ ॥ महावर लगानेके लिये सखीने अपने
चिले हुए तरण कमलके समान कोमल हाथसे नवेलीके पैरका
आगोका भाग छूँसा ही था कि पैर लाल हो उठे । इसके
परचात् जो महावर लगाया गया वह तो उस दोपके समान
प्रतीत हुआ जैसे एक बार कही हुई बात फिर दुहरा दी गई हो
॥ २५ ॥ हे मित्र ! तुम्हारी छातीपर धर उधर लगे हुए
किसीके स्तनोंके लेपकी छाप, तुम्हारे गलेपर उमड़ा हुआ
किसीके कंगनके रत्नोंकी कोरकी साठ और तुम्हारे मस्तकपर
लगी हुई यह उलटी बिन्दी ये सब किसी सुन्दर मँहवाजी
नवेलीकी लीठतासे भरी रतिनीटा प्रकट कर रहे हैं ॥ २६ ॥
मालाकी मण्य देव जानेसे जिसमें परदेके पैरके चिह्नके
समान चिह्न दिखाई दे रहे हैं, जिसमें चँदवे (सिरवन्धी)
के दावका सुन्दर चिह्न बना हुआ हो, जिसमें उठे हुए
रोंगटे सोमा दे रहे हैं और जिसमें सूँगेके समान लाल बिन्दी
लगी हुई हो, ऐसे बुबकके शरीरको देखकर भोले भाजे लोग
भी यही कहते हैं कि यह रतिकरुणकी लीलाओंके सूत्रमसे
सूत्रम बद्ध जाननेवाला है ॥ २७ ॥ यह नई बहू अपनी
रातकी बातें सिपानेके लिये कितने भी उपाय क्यों न करे

॥ २८ ॥ सख्यस्तानि घचांसि यानि बहुशोऽधीतानि
 युष्मन्मुखाद्बन्धेऽहं बहुशिक्षिता क्षणमपि ध्यात्वाऽस्मि
 मौनं गता धूर्तनैव च मण्डलीकृतकुचं गाढं परिष्वज्य ।
 मां पीतान्येव सदाधरेण सहसा वक्रस्थिताभ्येव मे
 ॥ २९ ॥ सुतोऽयं सखि सुष्यतामिति गता सख्यस्त-
 तोऽनन्तरं प्रेमावेशितमा मया तरलया न्यस्तं मुखं
 तन्मुपे । धातेऽस्तीकनिमीलने नयनयोर्धूर्तस्थ रोमा-
 ञ्चतो लज्जाऽऽसीन्मम तेन साऽप्यपहृता तत्काल
 योग्यैः क्रमैः ॥ ३० ॥ हारेण च स्तनयुगं परिवृत्य
 पीनमत्यायतं च जघनं रशनाशुणेन । मध्यस्थ मण्डन-
 विधिं चकार काचिद्रिक्तः सनाभिरपि नैव हि मान-
 नीयः ॥ ३१ ॥

आलिङ्गनम्—अंशुकं हृत्तया तनुवाहृस्वस्तिका-
 पिहितमुग्धकुचाग्रा । भिन्नशृङ्खलवर्णं परिणोज्ञा पर्यं
 रम्भि रभसादाचरोदा ॥ १ ॥ उत्तरीयविनयात्रपमाणा

रन्धती किल तदोक्ष्यमार्गम् । आवरिष्ट विकटेन
 विवोर्दुर्बलसैव कुचमण्डलमन्या ॥ २ ॥ दीपितस्मर-
 मुरस्युपपीडं वल्लभे घनमभिष्वजमाने । यकतां न
 ययतु कुचकुम्भो सुभ्रवः कठिनतातिशयेन ॥ ३ ॥
 न स्म माति धपुपः प्रमदानामन्तरिष्टतमसङ्गमजन्मा ।
 यद्बहुर्बहिरवाप्य विकासं व्यानशे तनुव्हाद्यपि हर्षः
 ॥ ४ ॥ पीडिते पुर उरःप्रतिपेपं भर्तरि स्तनयुगेन
 युधत्याः । स्पष्टमेव दलतः प्रतिनार्यास्तनमप्यत्वमभव
 द्धृदयस्य ॥ ५ ॥ यतिप्रयव्यतिकराद्भिनितानामङ्गजेन
 पुलकेन वभूये । प्रापि तेन श्रामुच्छ्रुसिताभिर्निविभिः
 सपदि घन्धनमोक्षः ॥ ६ ॥ सज्जहार सहसा परिरब्ध-
 प्रेयसीपु विरहव्य गिरोधम् । संहितं रतिपतिः
 स्मितभिन्नक्रोधमाशु तरुणेषु महेषुम् ॥ ७ ॥ सम्प्रवे-
 ष्टुमिव योपित ईपुः श्लिष्यतां हृदयमिष्टतमानाम् ।
 आत्मनः सततमेव तदन्तर्वर्तिनो न खलु नूनमजान्म्

किन्तु इस समय इसके नेत्रोंका आलस्य ही रातका सारा भेद
 खोले दे रहा है ॥ २८ ॥ हे सखियों ! तुम लोगोंके मुखसे
 जो बातें मैंने धार-धार सीधी थीं उन्हें रातमें म्रियतमसे कहनेके
 लिये मैं क्षणभर मौन होकर सोच ही रही थी कि इतनेमें
 उस धूर्तने मेरे उठे हुए रतन पकपकर, मेरा कसकर आलिङ्गन
 करके, मेरे अश्रोणके साथ-साथ ही मेरे मुँहमें बसी हुई वे
 सारी बातें पी डाली ॥ २९ ॥ हे सखी ! मेरे म्रियतमको
 सोते देखकर सर्वाप्यं सो यह कहकर चली गई कि 'हे सखी !
 यह तो रहा है अतः इसे सोने दो' और मुझमें ऐसा प्रेम
 उमड़ आया कि मैंने उसके मुखपर अपना मुख रख दिया ।
 फिर जब उसके शरीरमें रोमाञ्च दिखाई पड़ा तब मैंने समझा
 कि यह धूर्त फूट-फूट खींचे मुँदे हुए दे और मुझे बड़ी
 लज्जा आ गई किन्तु उसने उस समयकी अनुकूल किरणोंसे
 मेरी बह लज्जा भी छीन ली ॥ ३० ॥ किसी नवेलीने हारसे
 तो अपने दोनों स्तन सजा लिए और बड़े-बड़े मोटे नितम्बका
 बरपनीसे सजा लिया किन्तु नाभिको इसलिये नहीं सजाया
 कि यह तो रीती है इसका क्या आदर किया जाय ॥ ३१ ॥

गले लगाया : ज्योंही नायकने नवेलीका बख रींचा
 त्योंही नवेलीने अपने दोनों हाथ कर्णोंपर रखकर अपने सुन्दर
 रतन ढक लिए और नायकने भट उसे गले लगा लिया, जिसपर
 उस नाई बहूने ऐसे हाथ हिलाए कि इसके रत्नके पड़े बज
 उठे ॥ १ ॥ ज्योंही नायकने बख रींचे कि नवेली धानसे गढ़

गई और नायककी आँख बचानेके लिये उसने नायकके विशाल
 बखस्थलसे अपने स्तन भिदाकर उसके गले लगकर स्तन छिपा
 लिए ॥ २ ॥ अत्यन्त कामोत्तेजित होकर नायकने नवेलीके
 स्तन दबाते हुए जब कसकर उसे छूतीसे लगाया तो सुन्दर
 भौंहोंवाली नवेलीके दोनों स्तन अत्यन्त कठोर हो जानेके कारण
 तनिक भी उससे मस न हुए ॥ ३ ॥ पतिके गलेसे लगनेके
 कारण प्रसन्नचित्त नवेलीको शरीरमें जब हर्ष न समा सका
 तो उसने बाहर खड़े हुए रोंगटे भी प्रसन्न करके खड़े कर
 दिए ॥ ४ ॥ उस नवेलीने अपने स्तनोंसे नायककी छाती
 दबाकर उसे गले लगाया तो सीतका हृदय इस मकर दूक-
 दूक हो गया मानो पतिके चिन्तनसे जा उसका हृदय तन्मय
 हो गया था वह सीतके स्तनोंसे दबकर टुकड़े-टुकड़े हो
 गया हो ॥ ५ ॥ पतिके गले लगनेसे नवेलीको शरीरसे
 रामाञ्च रूपी पुत्र उलपन्न हुआ इसलिये इस प्रसन्नतासे बँधे
 हुए नादे लुटकारा या गए क्योंकि जब पुत्र उत्पन्न होता है तो
 उस प्रसन्नतामें शत्रु भी बन्धनसे खोल दिए जाते हैं ॥ ६ ॥
 पुराणोंसे सब ऋगदा उन्वा मिटाकर जब नवेलीकाको गलेसे लगाया
 तो नद्य मुरझानसे उन्हाने रुठना धाढ़ा दिया और कामदेवने
 भी उन लोगोंपर बहाए हुए अपने विशाल बाणोंका लार्थ
 समझकर उतार दिया ॥ ७ ॥ छातीसे लगते हुए पतिके
 हृदयमें नवेलीका मानों घुस जाना चाहती थी पर ये यह नहीं
 जान पाई कि ये सदा उनके हृदयमें ही निवास करते हैं ॥ ८ ॥

॥ ८ ॥ अंसमानमुपयन्तरी वध्वाः शिलपृथ्व्युपसपन्निरसेन । आत्मनैव रुधे कृतिनेव स्वेदमङ्गि पत्तनं जघनेन ॥ ६ ॥ स्नेहनिर्भरमध्वं च धृत्वा मर्दतां वपुरंशयमन्तः । यूनि गाढपरिरम्भिषि वरुक्तोपमभ्यु चवृषे यदनेन ॥ १० ॥ ह्रीतया गलितनीचि निरस्यन्नतरीयमथलभ्यितकाञ्चि । मण्डलीकृतपृथुस्तनभारं सस्वजे द्यितया हृदयेशः ॥ ११ ॥

सुभ्यनम्—आहता नयपदैः परिरम्भाश्चुम्बितानि घनदन्तनिपातैः । लोडुमार्यशुणसम्भृतकीर्तिर्वाम एव सुरतेष्वपि कामः ॥ १ ॥ केनचिन्मधुरसुखवृणारगं वापततमधिकं धिरहेषु । श्रोष्ठपल्लवमपास्य मुहूर्तं सुभ्रुवः सरसमक्षि चुञ्चये ॥ २ ॥ पल्लवोपमिति साम्यसपत्नं दृष्टवत्यधरविन्ममभोपे । पर्यकृजि सरुजेव नरुण्यास्तारलोलवलयेन करेण ॥ ३ ॥ लोलहृष्टि घदनं

द्यितायाश्चुम्बयति प्रियन्ते रभसेन । मोहया नह चिनोचि नितम्बाद्दंशकं शिथिलतामुपेदे ॥ ४ ॥ ह्रीमरादघनतम्परिरम्भे रागवानयदुजेष्ववृण्य । अर्पितोष्ठदलमाननपत्रं योपितो मुकुलिताद्यमधासौत् ॥ ५ ॥

विहारः—अन्वरं विनयतः प्रियपाण्येषांपिताश्च करयोः कलहस्य । वारणांमिव विधातुमभीक्ष्णं कश्यपा च वलयैश्च शिशिजे ॥ १ ॥ आम्शुशङ्करिभितो वलि-वोचीलोलमानवितताङ्गुलिहस्तैः । सुभ्रुवामनुभवान्प्रतिपेदे मुष्टिमेयमिति मध्यमभीष्टैः ॥ २ ॥ आयताङ्गुलिरभूदतिरिक्तः सुभ्रुवां प्राशिमशालिनि मये । श्रोणिषु प्रियकरः पृथुलासु स्पर्शमाप सकलेन तलेन ॥ ३ ॥ आवृताभ्यापि निरन्तरमुच्चैर्योपितामुरसिजङ्घितयेन । रागिणामित इतो विमृशद्भिः पाणिभिर्गर्जहिरे

नायकने सौतेके सामने ही जब बड़े तपाकसे नवेलीकी गले लगाया तो उसके वरु सरकने लगे, वह पसीनेसे पहा बढी किन्तु वरु पेंडपर ही ऐसे अटक गया मानो सनकदार पेदने उसे स्वयं धाम लिया हो ॥ ६ ॥ नवेलियोंका शरीर स्नेह (प्रेम, चिकनाहट) से भरा था और भीतर आर्द्र (गीला, प्रेमभरा) था क्यों कि ज्योंही पतिने कसकर छातीसे लगाया त्योंही हृदना जल शरीरसे निकल पया कि सब रूपदे तर हो गए ॥ १० ॥ नायकने ज्योंही नवेलीका वरु रोंचा कि उसका नादा खुल गया और वह लजित होकर अपनी करयन धामे हुए अपने विशाल स्तनोंसे अपने प्राणप्यारेकी छाती देवाती हुई उसके गलेसे लिपट गई ॥ ११ ॥

सुभ्रुवनः नयने चिह्नोने छातीसे लगनेका आदर किया, दूर्तिके चिह्नोने सुभ्रुवनका सम्मान किया और सुदुमारताके लिये बहुत प्रसिद्ध कामदेव भी सुरतके समय वाम (उल्हा, कुडिल) व्ययदार करने लगा ॥ १ ॥ विरहिणी नवेलीके ओठ सुन्दर तथा अत्यन्त लाल थे । किन्तु हृदना होनेपर भी वे गरम आँसुओंसे तप गए थे । इसलिये नायक उसे छोड़कर पदे प्रेमते योही दैरक्त उसकी रसीली आँखें ही चूमता रहा ॥ २ ॥ जिस समय नायक उस नवेलीके ओठ अपने दूर्तिके काट रहा था उस समय मानो उसके हाथ 'दुबली होकर कड़नकी खनकनाहटके बहाने चिपलाने लग रहे थे क्योंकि हाथ और ओठ दोनों ही नई कोंपलोंके

समान जाल थे इसलिये दोनों एक दूसरेके मिश्र थे ॥ ३ ॥ जिस समय नायक उस चञ्चल आँसुवाली नवेलीका सुँह चूमे जा रहा था उस समय नवेलीका नादा खुला जा रहा था और लागनेके साथ-साथ उसके वरु भी नितम्बके नीचे सरके पड़ रहे थे ॥ ४ ॥ प्रेमी पतिने नवेलीका नूदा यामर लाजसे कुका हुआ उसका वह सुँह चूम लिया जिसके ओठ नायकके मुखके पास पहुँच गए थे और आँसुं क्लिप गई थीं ॥ ५ ॥

विहारः जब पतिने नवेलीकी साक्षी खींची और नवेलीने अपने हाथसे उसे रोका उस समय उन दोनोंके हाथोंकी लड़ाई देखकर करघन तथा कड़न दोनों मानो बज्र-बजकर उन्हे फगड़ेसे रोकने लगे ॥ १ ॥ पेंडकी सितुङ्गरूपी लहरोंके चारों ओर नायकने पहले अपना हाथ फेरा, इस हाथकेरमें हाथकी उँगलियाँ चञ्चल होकर आगे बढ़ती जा रही थीं और इस प्रकार पुराने श्रम्यासके कारण जब उसने उसकी कमर सुटोसे नापी तब वही वह कमरका भेद समझ पाया ॥ २ ॥ नवेलीकी कमर हतनी पतली थी कि नायककी उँगली उसे लपेटकर भी बडी पड़ गई अर्थात् पूरी उँगली भी कमरको न लपेट सकी । पर नितम्बपर तो पूरी हथेली ही लमकर बैठ गई ॥ ३ ॥ विशाल स्तनोंसे बारी बारीसे घिरे हुए छियोंके हृदयोंके इपर-उपर देँदनेवाले नायकके हाथोंने उनके हृदय पा लिए अर्थात् स्पर्शके मुखसे छियाँ प्रसन्न हो उठीं ॥ ४ ॥ नायककी उँगली

हृदयानि ॥ ४ ॥ आशु लङ्घितघतीष्टकराग्रे नीधिमर्ध-
मुकुलीकृतदृष्ट्या । रक्तवैणिकहस्ताधरतन्वीमण्डल-
पवणितचारु चुक्रुजे ॥ ५ ॥ ऊरुमूलचपलेक्षणमण्डनैर्व-
तंसकुसुमैः प्रियमेताः । चक्रिरे सपदि तानि यथार्थं
मन्मथस्य कुसुमायुधनाम् ॥ ६ ॥ कामिनः कृतरतो-
त्सवकालक्षेपमाकुलवधूकरसङ्गि । मेखलागुणविलम्ब-
मस्यार्थं दीर्घसन्नमकरोत्परिधानम् ॥ ७ ॥ कामिनामस-
कलानि विभुसैः स्वेदचारिभृद्भिः करजाग्रैः । अक्रि-
यन्तु कठिनेषु कथञ्चित्कामिनीकुचतटेषु पदानि ॥८॥
प्रन्धिमुद्राचयितुं हृदयेषु वाससः स्पृशति मानध-
नाथाः । अयुगेण सपदि प्रतिपेदे रोमभिश्च सममेव
विभेदः ॥ ९ ॥ चक्रुरेव ललनोरुषु राजीः स्पर्शलोभय-
शलोलकराणाम् । कामिनामनिभृतान्यपि रम्भास्त-
म्भकोमलतलेषु नखानि ॥ १० ॥ प्राप्य नाभिनदमज्ज-
नमाशु प्रस्थितं निवसनप्रहृषाय । श्रौपनीविकमरुन्ध

जब एकाएक नायिकाके नाड़ेपर पहुँची तब नायिकाकी
छाँलें छिप गई और जब नायकने उसके श्रोतपर दौँत लगाया
उस समय उसके गलेसे ऐसा स्वर निकला जैसे धीला
पत्र उठी हो ॥ १ ॥ जौँकी जड़ देखनेके लिये नायककी
छाँलें चञ्चल हो रही थीं, इसपर खियाँने अपने कानपर
रक्के हुए फूलसे जो नायकको मारा वे उसे बाणके समान लगे ।
उस समय कामका 'प्लववालाधारी' नाम सचमूच सार्थक हो
गया ॥ ६ ॥ जिस समय नायक सम्भोगके लिये तैयार
हूया उस समय नवेलीके चञ्चल हाथ और धरधनमें पैसा
हूया लम्बे सतवाला चञ्च ऐसा प्रतीत हूया मानो डाढ़
करके सूरतोसवमें बाधा पहुँचा रहा हो ॥ ७ ॥ नायकके
नर पसीनेसे कोमल पद गए थे इसलिये नायिकाके कठोर
स्तनोंपर लगकर वे ऐसे मुड़ गए कि स्तनोंपर बहुत हल्के चिह्न
खग पाए ॥८॥ कठी हुई नवेलीका नरडा खोजनेके लिये उर्वाँही
नायकने हाथ बढ़ाए कि उस नायिकाकी भीँहें चढ़ गईं और
घनुरागके कारण शरीरके रोंगटे भी खिल उठे ॥ ९ ॥ कामी
पुएयोंके हाथ नवेलियोंकी जौँहें छूनेके लिये इतने मचल
रहे थे कि उन्होंने नवेलीके छेलेके खगमेंके समान चिकनी
जौँधपर अपने स्तनोंसे खरोचनेकी रेखाएँ बना ही दीं ॥ १० ॥
पदछे तो नवेलीके हाथने नायिकाके नाभि-रूपी तालमें हुबकी
खगारं, फिर पद छेनेके लिये घागी बढ़ा पर अब वह नवेलीके
नाड़ेके पास पहुँचा तब नवेलीने अपने इयसे मूठ-मूठकी

किल खी वल्लभस्य करमात्मकराभ्याम् ॥ ११ ॥
सोपशान्तनशिलाशिखराप्रादासधर्मसलिलैस्तकणाना-
म् । उच्छङ्कस्तम्भमलचारुषु हस्तैर्निम्ननाभिसरसीषु
निपेते ॥ १२ ॥ हिमलवसदृशः श्रमोदविन्दूनपनयता
किल नृतनोदवध्वाः । कुचकलशकिशोरकौ कथञ्चित्-
रलतया तरुणेन पस्पृशाते ॥ १३ ॥

सुरतकेलिकथनम्—अकृत्रिमविलासाङ्कमशिक्षितक-
लाकमम् । अविभागाङ्कसुभगं वभूव सुरतं तयोः
॥ १ ॥ अन्यकालपरिहार्यमजलं यद्द्वयेन विदधे द्वय-
मेव । भृष्टता रहसि भर्तुषु ताभिर्निर्दयत्वमितरैरव-
लासु ॥ २ ॥ अभिनवपुलकासीमण्डिता गण्डपाली
निगदति घिनिगूढानन्दहिन्दोलिचेतः । सुदृति वदति
पुण्यैः कस्य धन्यैर्मनोजपसरमसकृतेदञ्च।पल्लं लोचनस्य
॥ ३ ॥ अविदितसुखदुःखं निर्गुणं वस्तु किञ्चिज्जड-
मतिरिह कश्चिन्मोक्ष इत्याचक्षे । मम तु मतमनङ्क-

रुकावट ढाल दी ॥ ११ ॥ पहले तो युवकके हाथ नवेलीके
गरम स्तन-रूपी चट्टानकी चौटीपर पहुँचते-पहुँचते पसीनेसे
तर हो गए और फिर खिले हुए कमलके समान सुन्दर
नवेलियोंके नाभि रूपी गहरे तालमें कूट पड़े । क्योंकि यों
भी लोग जब पसीनेसे तर हो जाते हैं तब खिले हुए कमलसे
भरे जलाशयमें धूकर अपनी तपन मिराते ही हैं ॥ १२ ॥ नई
व्याही बहूकी छातीपर छाई हुई ठण्डी पसीनेकी धूँहें पॉछते हुए
वह युवक छाड़ी मस्तीसे उसके नन्हें-नन्हें स्तन-रूपी कलश
मसने डाल रहा था ॥ १३ ॥

रति-प्रीडाका धर्षणः । उन दोनों प्रेमी-प्रेमिकाओंकी
रतिक्रीडा ऐसी हुई कि उसमें स्वाभाविक रूपसे डाव-भाव
हो रहे थे, बिना सीसी-पदी कलाएँ हो रही थीं और पूरे अङ्ग न
दिखाई देनेसे वह और भी सुन्दर लग रही थी ॥१॥ नवेलियोंने
अपने प्रियतमोंके सम्मुख विदाई की तथा पुन्योंने नवेलियोंके
साथ आलिङ्गन आदि कामोंमें निर्दयताका व्यवहार किया ।
इस प्रकार उन्होंने वे दो ऐसे काम किए जो रतिक्रीडाके
धर्षणिक दृशे समयमें कभी भी नहीं करना चाहिए ॥ २ ॥
हे सुन्दर दौँतोंवाली ! धभी उठे हुए रोमाञ्चसे भरे
तुम्हारे गाल सूचित कर रहे हैं कि तुम्हारे मनमें घानन्द
छिपर हूया भरा पड़ा है । और यह तो बताओ कि तुम्हारे
नेत्रोंकी चञ्चलता किसके प्रबल पुएयसे वह सूचना दे रही है कि
तुमपर कामदेवका प्रभाव भरपूर पड़ गया है ॥ ३ ॥ उषु मूर्ध

स्मेरताकथयघूर्णमदकलमदिराक्षीनीचिमोक्षो हि मोक्षः
 ॥ ४ ॥ श्रीमीलितालसचिचर्तिततारफाक्षीमुक्तएउथ-
 न्धनदरश्लथवाहुचक्षीम् । प्रस्वेदवारिकणिकाचितग
 एडधिम्यां संस्मृत्य तामनिशमेति न शान्तिमन्तः
 ॥ ५ ॥ आयाते दयिते मनोरथशैतमेति कथाञ्जिद्विने
 वैदग्ध्यापगमाञ्जे परिजने दीर्घा कथां कुर्वति । दधा-
 स्मीत्यभिधाय सत्वरपदं व्याधूय चीनांशुकं तन्वट्या
 रतिकारतरेण मनसा नीतः प्रदीपः शमम् ॥ ६ ॥ आस्तां
 दूरेण विश्लेषः प्रियामालिङ्गतो मम । स्वेदः किं नु
 सतिशायो रोमाञ्जः किं नु पर्वतः ॥ ७ ॥ आहतं कुच-
 तटेन तरुण्याः साधु सोढमधुनेति पपात । वृष्यतः
 मियतमोरसि ह्यारामुप्पवृष्टिरिव मोकिकवृष्टिः ॥ ८ ॥
 ईपत्कम्पयोधरं गुरुकटिमौढप्रहारान्द्रुतं स्थिचद्माल-

मनेऋहास्यसरसं संरम्ममन्दव्ययम् । वारंवारमुरः-
 प्रहारसुभगं सन्दश्यमानाधरं किञ्चिदृचनितम्यदेशन-
 परं धन्यो रतं सेवते ॥ ६ ॥ ईदृशस्य मयत कथमेत-
 ज्ञाघवं मुहुरतीव रतेषु । क्षितमायतमदर्शयदुर्व्यां
 फाञ्जिदाम जघनस्य महत्त्वम् ॥ १० ॥ ईपन्मीलितदृष्टि
 मुग्धहसितं सारकारधारायशाद्व्यक्ताकुलकेलिनाशु-
 थिकसहन्तांशुर्घाताधरम् । श्वासोत्कम्पियोगेधगेपि
 परिष्वङ्गात्कुरङ्गीदृशो हर्षोत्कर्षयिमुक्कनःसहतनो-
 र्धन्यो धयत्याननम् ॥ ११ ॥ उग्ररूपं कुचद्वन्द्वं हारग-
 ङ्गाधरं तव । चन्द्रचूडं करिष्यामि कुच तावद्विगम्भ-
 रम् ॥ १२ ॥ उद्धतैर्निभृतमेकमनेकैश्चेद्वयमृगदशामधि-
 रामैः । श्रयते स्म भणितं फलकाञ्जीनूपुष्ट्वनिमिरत्त-
 तमेव ॥ १३ ॥ उरोरुहाम्नोरुहदर्शनाय विमुञ्चतः

पेसी वस्तुको मोक्ष कहते हैं जिसमें सुप या दुःखका अनुभव ही
 नहीं होता और जिसमें सच, रज, तम गुणोंमेंसे किसी एक
 भी गुणका सम्बन्ध नहीं रहता । हमारी समझमें तो कामदेव
 तथा विकसित यौवनसे मतवाली और चञ्चल आँखोंवाली
 नवेलीके नाड़ेका मोक्ष (खोलना) ही यथार्थमें मोक्ष है
 ॥ ४ ॥ सुँदी हुई, आजलरूपसे भरी हुई और हिलती हुई
 पुतलियोंसे युक्त आँखवाली उस नवेलीका स्मरण करके
 मेरे मनको किसी भी समय शान्ति नहीं प्राप्त होती
 जिसकी भुजाएँ मेरा गला जपेटनेके लिये कुछ शिथिल
 थीं और पसीनेकी बूँदोंसे जिसके गाल भरे हुए थे ॥ ५ ॥
 बहुत दिनोंके बिछोहके पश्चात् प्रियतम ध्याप, अनेक प्रकारके
 सङ्कल्प करते हुए किसी प्रकार दिन बीता और रात आई
 किन्तु सखियों ऐसी मूर्ख थीं कि उन्होंने मूर्खताके कारण बड़ी
 लम्बी कहानी छेद दी । इसपर नवेलीने यह कहकर अपना
 आँपल दिखाकर दीपक बुझा दिया कि 'अरे मुझे कीड़ेने
 काट खाया' क्योंकि उसका मन तो रतिक्रीड़ाके लिये
 छुटपटा रहा था ॥ ६ ॥ नवेलीसे दूर रहकर वियोगी
 बने रहना ही अच्छा है क्योंकि प्यारीके आँखिगानके
 समय पसीना ही समुद्र हो जाता है और उठे हुए
 रोंगठे पहाड़ बन जाते हैं ॥ ७ ॥ जब नवेलीने कसकर
 नाथकका आलिङ्गन किया तो उसका हार टूट गया
 और बिचरे हुए भोती ऐसे दिखाई देने लग गे मानो फूलोंकी
 वर्षा हो रही हो । यह फूलोंकी वर्षा मानो इस प्रसङ्गतामें
 हुई कि नवेलीके कटोर स्तनोंके धक्के नाथकके वष-

स्थलने सह लिए थे ॥ ८ ॥ जिसमें धीरे-धीरे स्तन हिल
 रहे हों, भारी नितम्बोंपर वेगसे धक्के लग रहे हों, माथेपर
 पसीना छा रहा हो, अनेक प्रकारसे रसीली हँसी हो रही हो,
 आलिङ्गनसे कुल-कुल बकावट हो रही हो, बार बार धातोंपर
 हाथ फेरा जा रहा हो, दंतोंसे आँठ काटे जा रहे हों और
 नितम्बोंपर नखोंसे खरोंछे लग रहे हों ऐसी सुख कोई
 पुण्यपामा ही पाता है ॥ ९ ॥ घरतीपर गिरी हुई लम्बी
 करघनीकी लड़ नवेलीके नितम्बकी चौड़ाई बतला रही थीं
 और मानो प्रियतमसे यह भी कह रही थी कि 'ई तो
 आप इतने भारी किन्तु रति करते समय इतने हल्के कैसे
 हों जाते हैं ।' ॥ १० ॥ सौँस फूलनेके कारण कौँपल हुए
 स्तनोंपर हाथ रखनेसे आनन्द-विभार हानेबाधा और
 अपना देह ढाली कर देनेवाली मृगनयनियोंके उस सुखका
 कोई पुण्यपामा ही सुभन कर सकता है जिसमें आँसू
 अथलुला हों, मनाहर हँसा झिटका हुई हा, सा-सा
 शब्द निकल रहे हों और रतिक्रीड़ाके समय दूरी-पूरा
 दीन वाष्या निकलनेक कारण जिसके आँठोंपर दंतकों
 किरणें पड़ रही हों ॥ ११ ॥ तुम्हारे स्तन स्वयं हा उग्र
 (विशाल, शङ्कर) हैं, वे हाररूपी गङ्गाओंको धारण करके
 गङ्गाधर भी बने हुए हैं अतः अब तुम अपने वक्ष हटाकर इन्हें
 उवाड़कर दिगम्बर बना दो और मैं इनपर नलामे विद्ध
 बनाकर इन्हें चन्द्रचूड बना दूँ ॥ १२ ॥ हिल हिलकर
 निरन्तर बज उठनेवाली नवेलीकी करघनी तथा नूपुरकी मधुर
 ध्वनिते धीरे-धीरे उठनेबाधा तथा बीचमें दृ-दृद जानेबाधा

कञ्चुक्यन्धनानि । श्रानन्दनोराकुललोचनस्य प्रियस्य
जातो विपुल परिश्रमः ॥ १४ ॥ कचप्रहमनुग्रहं दशन
एण्डनं मण्डनं दण्डनमचञ्चनं सुखरसार्पणं तर्पणम् ।
नरादानमदत्तं निविडपीडनं क्रीडन करोति रतिस
ङ्गमे मकरकेतन. कामिनाम् ॥ १५ ॥ कान्तया सपदि
कोऽप्युपगूढः प्रौढपाणिरपनेतुमियेष । संहतस्तनतिर
रुक्तदृष्टिर्भ्रष्टमेव न दुःखलमपश्यत् ॥ १६ ॥ कान्ते
फलितचोलान्ते दीपे वैरिणि दीप्यति । आसीदसित-
पद्माद्या. पद्मे नयनमुदणम् ॥ १७ ॥ कोक स्तोत्र
विमुक्तमौक्तिकभरो निस्यन्दमिन्दीवरं चापं चापलव-
जितं ह्रिमकरकोडे तमः शोडति । चात. कातरयत्य-
पाकृतसं बन्धूकमेतावती चातो क्वापि कदापि
पाणिपिहित्ता कस्यापि धा तिष्ठति ॥ १८ ॥ गाढालिङ्ग
नवामनीष्टकचमोद्भिधरोमोद्भवा सान्द्रश्रेहरसाति

रेकविगलञ्छोमश्रितभ्याम्बरा । मा मा मानद माति
मामलमिति क्षामाक्षोपिनी सुता किं नु मृता नु
किं मनसि मे लीना विलीना नु किम् ॥ १९ ॥
गाढालेपनिपीडनाश्रितपतितामालोक्य हारावलीं
स्थातु हन्त भिया ज्ञर्ण निविडया नीव्यापि न व्यापृ
तम् । विश्लेषज्वरवेदनासहनयोः कारुण्यकीर्त्तना
क्वापि प्रापितयो. समागमसुख यूनोर्मनीजन्मना
॥ २० ॥ गाढोपगूहनरसालसलोचनानामेयीदृशां
पुलकदन्तुरकुडमलेपु । गण्डस्थलेपु वदनानि निवेश
यन्तो धन्याः सुखेन दिवसानतिवाहयन्ति ॥ २१ ॥
चारुनुपुररणत्कृतं स्ते कामिनां हरति मानसं यथा ।
नो तथा मधुरगीतवादिस्त केकिचातकपिकस्थना अपि
॥ २२ ॥ चिरचिरहियो रत्युत्कण्ठा श्लथीकृतगात्रयो
र्नवमिच जगज्जातं भूयश्चिरादभिनन्दतोः । कथमपि

गलेका शब्द दवा ही नहीं वरन् और भी स्पष्ट सुनाई
देने लगा ॥ १३ ॥ स्वनरूपी कमल देलनेके लिये प्रियतमने
ज्योंही श्वेलीकी चालीकी गोंठ खाली खोई उनका शौखिम
श्रानन्दका जल भर थाया धन. ठोई खालनेमें उन्हीं बदा
कट उठाना पदा ॥ १४ ॥ रतिक समय प्रेमा द्वारा प्रेमिकाके
कश पकड़ना हा कामद्वका उनपर कृपा है, द-तपत करना
हा सुशाभित करना है, शौखि मूदना हा स्नह है,
अधरासृतका दान हा नृसि है, नखचत करना हा रपा
कशना है और कसकर दयाना हा खेज है ॥ १५ ॥ किसा
नायकन जैसे हा नखलाका सादा खोचनो चाहा चले है
नखलान भट उसका घालान्न कर लिया । धय ७. च रतनाक
कारण नायकका हाट ऊपर हा ऊलक गई, अत. बह यह
दख हा नहीं पाया कि साँा पहल हा नाच गिर चुका है ॥ १६ ॥
मिस समय प्रियतमने शौचल पकड़ो उस समय भा बैरा दापक
जल हा रहा थर । अत. नाख कमलक समान शौखधला
नखलीके पास एक हा उपाथ रह गया कि उसन
घपना काले मूँदली ॥ १७ ॥ चटथेके समान गाल स्तनापरस
माताही माळा तिसक गई, नाले कमलक समान नत्र
निश्रव हा गप, कामक धनुषक समान भीहोमें पञ्चबला
नहा रह गई, चन्द्रमास्या सुपपर बालरूपी अन्धकार पग
गप और जपातुसुमके समान घाटका रस सुपात हुए पवनन
थाड मखिन बना दिया । हतनी पस्तुई क्या कभी
कही बिसाक हापसे बाकी जा सधती है ? ॥ १८ ॥

नायकने जब कसकर प्यारीका श्रालिगन किया तो उसके
स्तन चिपट गप, उसकी देखमें रामास्र हा गया और प्रेमके
अत्यधिक बह जानक कारण उसक सुन्दर नितम्बसे साड़ी भी
सरक गई । तत्पश्चात् 'हे अत्यधिक आदर करनेवाले प्रियतम !
बस, बस, मुझे अधिक न दबाधा !' हस प्रकार टूट-टूट
अपरोंमें बालती हुई वह न जाने सो गई या भर गई या
मेरे मनमें समा गई या लुप्त हो गई ॥ १९ ॥ विवाग रूपी
उरकी पाश न सह सकनेवाले प्रेमा और प्रेमिकाके
परस्पर मिलनक सुखका दवाएँ कामद्वने जब अत्यधिक
ऊँचापर पहुँचा दिया उस समय कसकर श्रालिगनके दबावमें
पदकर दारकी लदियाँ टूटकर खिलर गई । उनका यह दया
देखकर कसो हुई मावी (सादाकी गोंठ) पसा दर गई कि
बह प्यमर भा ठहर न पाई ॥ २० ॥ वे जाल ध-व है जा
कसकर श्रालिगन करनेके श्रानन्दस्र अलसाई हुई श्रालवाला
मृगनयना नवलज्योक्त रामाश्रित कृपाबापर धपना
श्रेह रक्त्त हुए सुपस्वक दिन बितत है ॥ २१ ॥ सुरतक
समय नवेलाके परके पायलका मनकारने मिस प्रकार
प्रियतमका मन बशमें किया उस प्रकार मधुर गाने बजान और
मार, पपाह तथा कायलका मधु. धनि मनका बशमें नहा
कर पाई ॥ २२ ॥ यहूत दिनत जा एक बूत्तसे विदुद्दुपु ये,
मिलनेकी चिन्तामें जा दुबले हा गप ये, जा परस्पर मिलनेपर
पह कहे-कहकर अर्पनी प्रसन्नता प्रकट कर रहे थे कि 'आज
हमार लिये यह ससारा-विर नया सा हो गया', किसी किसी

दिने दीर्घे याते निशामधिरुद्रयोः प्रसरति कथा बह्वी
 यूनोर्यथा न तथा रतिः ॥ २३ ॥ टङ्कारः स्मरकासु-
 कन्य सुरतनीडापिनीनां रयो ऋशो रतिमञ्जरीमधु-
 लिंगं केलीचकोरीस्वयनः । तन्व्याः कन्धुलिकापसार-
 ग्मुजानेपस्फुरत्तद्गुणकषाणः प्रेम तनोतु यो नघद्यो-
 लास्याय धेगुध्वनिः ॥ २४ ॥ तत्र तन्त्रि तरुणपुर्याद-
 म्यरमणिमकरसंनमो जातः । अधिवेषि भवति नियमः
 फलमधिलभ्येन भाधि कामस्य ॥२५॥ वृषितः सृष्ट्यति
 प्रेयान्यधदङ्गं मृगोदृशः । तत्तत्सङ्घुचति स्वैरं मनमथः
 दनरत्यहो ॥ २६ ॥ त्वं मुग्धाञ्चि विनैव कन्धुलिकया
 धत्मे मनोहारिणीं लक्ष्मीमित्यभिधापिनि प्रियतमे
 तद्वीटिकासंनृष्टि । शय्योपान्तनिधिप्रसस्मितसखीने-
 प्रोत्सवानन्दिता निर्यातः शनकरलीकचनोपन्यास-
 मालोजनः ॥ २७ ॥ डुकूलं दौर्मूलात्मण्यिनि परीर-

म्बरसिके हरत्यम्भोजाञ्जी निधुननिधुनं नम्रघटना ।
 प्रियाप्लेयद्वेषिएप्यसरतु लज्जा स्फुटमिति स्मितकी-
 रेणैव स्तनफलशशम्भुं ऋपयति ॥ २८ ॥ दृशा सपदि
 मीलितं दशनरोचिया निर्गतं करेण परिवेषितं धलय-
 कैर्याक्रन्दितम् । प्रियैः समदयोपितां नतु विखण्डन-
 मानेऽधरे परव्यसनमातराः किमिचकुचेतां साधव-
 ॥ २९ ॥ दोर्ध्या संयमितः पयोधरभरेणापडितः
 पाणिजैपाधिदो दशनैः क्षताधरपुटः श्रोणीतेनाहत् ।
 हस्तेनानमितः करेऽधरसुधास्यन्नेन सम्मोहितः कान्तः
 कामपि वृत्तिमाप तदहो कामस्य धामा गति । ॥ ३० ॥
 धम्मिल्लो मङ्गमेतु प्रविशतु तिलरुः केशपाशान्धकारं
 पत्राली गण्डपालीं त्यजतु च विवर कण्ठ्यार्गन्तु-
 काम । धामायाः कान्तदन्तक्षतततिसहने एक एवा-
 धरोऽसा वीरः कामाह्वेऽस्मिन्निति वदति मुहुर्नृपु-

प्रकार अनेक प्रकारके विचार कर-करके बड़ी कठिनाईसे जन्मे
 दिन बिताकर जिन्होंने रात पाई थी, उन तरण तथा तर्पणने
 आपसमें ऐसी खन्वी बातें छेड़ीं कि रतिके लिये जिवना समय
 चाहिए उताना न मिल पाया ॥२३॥ कामदेवके धनुषकी टकार,
 रतिके दा-रूपी कोयलोंका म्वर, रतिके रीं संजीका रस लेनेवाले
 मीरोंकी गुताइ, मीदा करती हुई संकोरियोंकी एक और
 वंशोंकी ध्वनिके समान दुबली-पतली नवेलीके थोड़ी उतारत
 समय ह्वर-ध्वर हाथ फेंकनेमें बने हुए कर्णोंकी ऋनकार
 नई लजालोंकी कीलारोंमें आपका मन खगावें ॥२४॥ हे दुबले
 शरीरवाली ! युवक प्रियतमके भाग्यसे ही तुम्हारा देहपर
 बध तथा मणिके शान्मूयणमें बने हुए मगरका भी संघाम हो गया
 है और बाव भी सुघरे हुए है इसलिये शीघ्र ही कार्य
 सफल होगा जब सूर्यका संक्रान्ति मकर राशिये जाति है
 उस समय जो खाग प्रियेण्यीम स्नान-ध्यान करत है उसका
 उन्हे शीघ्र फल यह मिलता है कि उनका मनाकामना शीघ्र पूरी
 होती है ॥ २५ ॥ कामातुर हाकर प्रियतम मृगनयनी नवेलीका
 जो-जो अन्न छूते है वह-वह तो सिजुड़ जाता है किन्तु कामदेव
 स्वयन्दुन्द हाकर पीलता जाता है ॥ २६ ॥ 'ह सुनयनी
 नवेली ! विना चांखा पहन ही तुम मनको लुभावेवाली
 सुन्दरता धारण किए हुए हो' ऐसा कहकर नीते हा नायकन
 आलीकी गोंठ धुनका हाथ बद्धाया धैम ही बिद्वानके पास थैडा
 और मुग्धमार्ता हुई मर्लीक विज्ञा हुए नयाका संकेत पाकर
 किसी बातका बहाना करके सविन्यो धीरमें विसन गईं ॥२७॥

आलिंगनकी इच्छामे नायकने नवेलीकी कोखमें जब आँबल
 रींचा तो कमलनयनी नवेलीका मुख धीरेसे ऊक गया और
 वह मुस्कराने लगी । उस समय ऐसा जान पदा मानो 'पतिके
 आलिंगनकी धैरिन यह लाज दूर हो जाय' यह सकरव लेकर
 अपनी मुस्कराहट-रूपी दूधमे वह स्तनरूपी शिवलिंगका
 स्नान करा रही हो ॥२८॥ जन युवक उन कामिनी नवेलियोंके
 श्रोतोंका सुग्गन करने लगे उस समय तत्काल उनका आँसू
 म्लि गईं, दूर्ताकी किरणें बाहर निकल पड़ीं, हाथ काँपन
 लगे और कर्णन चिल्लाने लगे । दूररकी विपत्तिमें दुःख
 माननेवाले सज्जन इससे अधिक और कर ही क्या सकत है
 ॥ २९ ॥ कामसे मतवाली नवेलीने श्रपना शुभायासे नायक-
 का घोंप लिया, स्तनसे दवाया, नयास पराटा, दूर्तास काया
 श्रपने नितम्बोंसे श्रयधिक घनके लगाए और नवेलीके
 हाथोंसे दवाया हुआ श्रपामृत पीनर माहित हानेसे उसे एक
 निराशा भ्रानन्द प्राप्त हुआ । कामदेवकी सचमुच ईसती उटती
 रीति है ॥ ३० ॥ नवेलीके पीरका पायल श्रपनी ऋनकारके
 स्वरमें मानो बार-बार यहाँ पुकारे जा रहे है कि 'बाव भले हा खुल
 जायें (दार जायें), माथेका तिलक भले हा बावरुपा अन्धकारम
 छिद्र जाय और बेल-भूटे भी गालोंकी छादकर भले हा कानोंके
 झिद्रमें घुस जाता चाहे किन्तु कामके युद्धमें नवेलीका यदा
 एक श्राठरुपी धीर ही ऐसा है जो पतिके दन्तक्षत श्रटल हाकर
 सह सकता है' ॥ ३१ ॥ कामका प्रबल योग रहनेपर भी
 नवेलियाँ प्रियतमके पास उदास ही रहती थीं, शरीरको

क्याणमङ्गया ॥ ३१ ॥ धैर्यमुल्लवणमनोभवभावा वामतां
च चपुरर्पितवस्यः । प्रोडितं ललितसौररथाफ्वास्ते-
निरेऽभिवचितेषु तत्त्वयः ॥ ३२ ॥ नैषा वेगं मृदुत-
रतनुस्तावकीनं विखोडुं शका नैनां चपल नितरां
स्वेदयेन्दीवराक्षीम् । रत्यभ्यासं विदधत इति प्राण-
नाथस्य गत्वा कर्णोपान्ते निभृतनिभृतं नूपुरं शंसतीथ
॥ ३३ ॥ पत्युः प्रवृत्तस्य रतौ जिगीषावचो निशम्याथ
न किञ्चिद्वचे । फलायती किं तु विद्वस्य तस्य कपो-
लवोः स्वेदमपाचकार ॥ ३४ ॥ पश्यन्तीं परिणामके-
लिपु मुहुर्निःशङ्कमालिङ्ग्य तां प्रोत्कृजत्कलमप्रहोप-
मघरं स्पथावती सायभूत् । नाहं वेदिन न वेत्ति वा
च दयिता तत्रावयोश्चेष्टितं शय्या वेत्ति न वेत्ति वा
स तु कुतः सङ्ग्रामलोलः स्मरः ॥ ३५ ॥ पश्यन्नर्ध-
निमीलितात्सिमुगलं वक्त्रार्धविन्दं मुहुः विम्बोष्ममृ-
मापिबन्मृगदृष्टौ जिघ्रन्मुले सौरभम् । आलिङ्गति-

निर्भरं स्तनतटं सौत्कारमाकर्णयन्नेवं पञ्चभिरिन्द्रियै-
र्निधुवने प्राप्नोति धन्यो मुदम् ॥ ३६ ॥ पाणिः कम्प-
मवाप काञ्चिरपतङ्गस्ता त्रपा नूपुरैरकन्दाम्बिकु-
रैर्दधे विधुरता यत्रातिशीणोऽधरः । एको वीरतरस्स
कामसमेरे वक्षोभवः सुभ्रूवां येनात्याहतिजर्मरेख न
मनाकशौथिल्यमालम्बितम् ॥ ३७ ॥ पाणिपल्लवविधुन-
नमन्तः सौकृतानि नयनार्धनिमेषाः । योपितां रहसि
गद्गद्वाचामखतामुपययुर्मदनस्य ॥ ३८ ॥ पृष्टे
कञ्चुकमुक्त्यै सुतनुरसव्यं प्रहिएयति पाणिम् ।
हन्तुमिव चित्तहरिणं यूनस्तृणादिवेषुमादत्ते ॥ ३९ ॥
प्रत्यूहः पुलकाङ्कुरेण निविडाश्लेषे निमेषेण च कौडा
कृतविलोकिन्तेऽधरसुधापाने कथाकेलिभिः । आन-
न्दाधिगमेन मन्मथकलायुजेऽपि यस्मिन्नभूद्दुद्भूतः स
तयोर्वभूव सुरतारभ्यः प्रियन्मन्त्राणुफः ॥ ४० ॥ प्राप्यते
स्म गतच्चित्रकचित्रैश्चित्रमार्द्रनखलक्ष्म कपोलैः । दधि-

सौंप वेनेपर भी प्रतिकूलता दिखती थी और रतिके समय
विदाई करती हुई भी लज्जा रही थी ॥ ३२ ॥ रतिक्रियामें
जगे हुए प्रियतमके कानोंके पास जाकर नवेलीके पीरके पायल
धीरे-धीरे मानो यह कह रहे हैं कि 'इस नवेलीका शरीर बहुत
ही मुकुमार है, यह तुम्हारे धरके नहीं सह सकती । मतः दे
बचल पुरए ! इस कमलनयना नवेलीका बहुत न सताओ'
॥ ३३ ॥ रतिक्रीडामें जगे हुए प्रियतमने जब अपने जातनेकी
बात कही ता वह चदुर नवेली मुँहसे ता कुछ नहीं बोली किन्तु
उसने दिसकर प्रियतमके गालोंपर छाया हुआ पसोना पोंछ
दिया (अर्थात् वह बतखा दिया कि जीत जाते तो मुँहपर
पसोना क्या आता) ॥ ३४ ॥ रतिक्रीडाके समय जब वह
नवेली बार-बार मेरी बार टाक रही थी उस समय मैंने बेलके
बसका आलिङ्गन किया, वह मुँहके भीतर ही भीतर कुछ
गुनगुना रहा था, फिर भी मैंने अपने दाँतोंसे उसका चोट
जकड़ लिया । इसपर भी जब वह होड़ करने लगी ता
उसके परचाएँ हम दोनोंने बना-बना किया वह न तो मैं
ही समझ पाया न वही जान सकी । बिधौना जानता है या
नहीं यह नहीं कहा जा सकता । तब अज्ञा युद्धमें जगा हुआ
काम उसे बसा जलेगा ॥ ३५ ॥ यह पुरए पन्ध है जो अपनी
मृगनयनी प्रियतमाकी आधी मुँही हुई आँखोंवाले मुलकमलको
देखता हुआ, अपरामृत पीता हुआ, उसके मुखकी मुगध
भूषता हुआ, आरगत कसकर उसके रनमोंका आलिङ्गन करता

हुया और उसकी सो-सो सुनता हुआ अपनी पाँवों (नेत्र,
जीभ, नाक, रवचा, कान) से रतिका छुल पाता है ॥ ३६ ॥
कामयुद्ध (रति) के समय हाथ कर्पने लगे, करघनी गिर
पड़ी, लान चूर-चूर हो गई, नूपुरोंकी बिजलाहटके स्पर्शमें बाल
बिलर गए और अवर तो क्षिप्र-भ्रंस हो गया । ऐंसे
समयमें सुन्दर भीहोंवाली नवेलियोंके रतन ही ऐसे परम
वीर निकले कि आर्यधिक चोट खाकर भी टलते मस
नहीं हुए और अकडे लड़े रहे ॥ ३७ ॥ मुँहसे टूटी
फूटी बालें धोखनेवाली नवेलीके हाथोंका कौटना, मुँहके
भीतर ही सो-सो करना और अग्रसुली छालें ये सय ही
एकान्तमें कामके बाप बन गए ॥ ३८ ॥ खोलीकी गीठ
खोजनेके लिये नवेलीने जो अपना दाँदिना हाथ कन्धपरसे
पाठकी ओर घुमाया उस समय ऐसा जान पड़ा मानो मुक्कके
मनरुवा हरिणकी मारनेके लिये वह तरकससे बाण निकाल
रही हो ॥ ३९ ॥ प्रेम और प्रेमिकाकी आपसके प्यारी
रतिक्रीडा प्रारम्भ होने लगी जिसमें रामान्ध-रुपा चट्टोरसे
कसकर आलिङ्गन करनेसे बाधा पड़ी, प्रेमपूर्वक एक दूसरेका
देवते समय गिरती हुई पलकसे बाधा पड़ा, अपरामृत पीनेम
अनेक प्रकारकी कष्टानिवृत्तिसे कामकलाके युद्धमें आनन्द
मिबनेसे बाधा हुई ॥ ४० ॥ नवेलीके गालपर गने हुए बेल-
पूटे पूटे गए और उनमें 'केवल गाँडे मल जगनेके चिद्र
दिखाई पदने लगे । बालोंके पूख गिर गए तो

रेऽथ रमसच्युतपुष्पाः स्वेद्यन्टुकुस्मान्यलकान्ताः
 ॥ ४१ ॥ प्राप्य मन्मथरसादतिभूमिं दुर्बहस्तनभराः
 सुरतस्वर । शशमुः श्रमजलाद्रललाटदिलक्ष्मेशमसिता-
 यतकेऽयः ॥ ४२ ॥ बाहृपीडनकचप्रहृशाभ्यामाहतेन
 नखदन्तनिपातैः । बोधिनस्तनुशयस्तरुणीनामुन्मिमील
 विशदं विपमेपुः ॥ ४३ ॥ ब्रह्मानन्दप्रचुरं किमपीदं
 नेति रतिपु वचनेन । श्रुतिसीमसङ्गताज्ञो मुग्धे सार-
 ङ्गमादिशसि ॥ ४४ ॥ भजन्त्यास्तल्पान्तं कृतकपटक-
 ण्डकतिपिहितस्मितं याते गेहाद्वाद्द्विरवहितालीपरिजने ।
 मियास्यं पश्यन्त्याः स्मरशरसमाकृतसुभगं सलज्जाया
 लज्जा व्यगमद्विष दूरं मृगदृशः ॥ ४५ ॥ मत्तैभकुम्भप-
 रिणाहिनि कुङ्कुमाद्रं कान्तापयोधरयुगे रतिखेद-
 खिलः । वक्तो निघाय भुजपञ्जरमध्यवर्ती घन्यः क्षपां
 क्षपयति क्षणलन्घनिद्रः ॥ ४६ ॥ यद्यदेव रुचये रुचि-
 रेभ्यः सुभ्रुवो रदसि तत्तदकुर्वन् । श्राजुकूलिकतया
 हि नराणामाक्षिपन्ति हृदयानि तरुण्यः ॥ ४७ ॥

रतिरमसनितान्तश्रान्तकान्ताकुचान्तध्वलदमलकराया
 नाभिदेशेष्वधो घा । स्मितमधुसमुद्योतां हीणनेत्रोत्प
 लानामधरमधु घघृनां भाग्ययन्तः पियन्ति ॥ ४८ ॥
 धारणार्थपदगद्गद्वाचाभीर्ध्वया सुहुरपत्रपया च ।
 कुर्वते स्म सुदृशामनुकूलं प्रातिकूलिकतयैव युधानः
 ॥ ४९ ॥ विघृताः मियम्य केशाः फण्टे लग्नं भुजे
 यलितम् । मलन्त्या रससिन्धौ किं किं न कृतं तथा
 सुदृशा ॥ ५० ॥ समादिष्टं शिष्टैः परममिह यद्विद्वृत्ति-
 पदं पुनर्दग्धोऽप्याशु प्रभवति यतो मन्मथतरुः । श्रुते
 यस्मिन्कामी भवति कृतकृत्यो रतिमुग्रं स सीत्कारः
 पायादमृतविजयी सुन्दरदृशाम् ॥ ५१ ॥ सिन्दूरं रचि-
 मिन्दुमाननमसौ घम्मिल्लराहुन्मय्यं यद्वाढं प्रसतीय
 तत्प्रियतमे निर्णीतमौत्पातिकम् । चोले चञ्चलता
 भविष्यति मुहः स्यात्कुन्तले कर्पणं नीवी स्यास्यति
 न स्थिरा समुदयेदङ्गे महान्स्फङ्गरः ॥ ५२ ॥ सीत्कृतानि
 भणितं करुणोक्तिः श्लिग्धमुक्कमलमर्थव्यासि । हास-

फूलके स्थानपर पसीनेकी वूँटें मूलक आईं ॥ ४१ ॥ बड़े-
 बड़े स्नानवाली नवेलियाँ कामदेवसे मतवाली होकर रतिशियाकी
 चौटीपर पहुँच गईं तथा लम्बे-लम्बे केशवाली वे नारियाँ
 थक गईं इसलिये उनके पसीनेसे भरे हुए माथेपर बाल चिपक
 गए ॥ ४२ ॥ प्रियतमने हाथोंसे दयाकर, बाल पकड़कर,
 धरके देकर, नखसे खरोंटकर तथा दूर्तिसे काटकर नवेलियोंके
 शरीरमें रहनेवाले कामदेवको लगा दिया । इसके पश्चात् तो वह
 कामदेव खुले रूपमें वेष्टके अपनी प्रभाव दिखाने लगा
 ॥ ४३ ॥ हे सुन्दरी ! कानों-तक अपनी शक्तिं पैलाकर
 तुम सुरतके समयकी यह बात पक्कीकी सिखा रही हो
 कि यह यह मुख क्या श्लक्ष्मेके दर्शनके मुखसे बदकर नहीं है ?
 ॥ ४४ ॥ जब सखियों सुप सुजवानेके बहाने अपनी
 मुन्कान छिपाकर घरसे बाहर निकळ गईं उस समय
 विद्युनेपर बैठो हुईं नवेलीका अपने पतिकी और देवना
 क्या या मानों कामका बाण ही बरस रहा था । फिर
 वो उस लजानेवाली मृगनयनी नवेलीकी लाज भी मानो
 बहरीसे दूर भाग गईं ॥ ४५ ॥ मतवाले हाथीके मस्तकके
 समान रँधे, चौड़े और केशरके लेपसे सजे हुए नवेलीके दोनों
 स्नानोपर रतिकी थकावटके समय अपनी छाती रखकर उसकी
 मुजाघोंसे रँधा हुआ, भपकी लेता हुआ कोई भाग्यवान् पुरुष
 ही रात बिताता है ॥ ४६ ॥ प्रियतमको जो-जो काम भरपे

लमें बही-बही काम सुन्दर भाँडोवाली नवेलियोंने पकान्तमें
 किए क्योंकि तरुणी नवेलियाँ अनुकूल आचरणके द्वारा ही
 पुरुषोंका मन अपनी ओर खींच लेती हैं ॥ ४७ ॥ रतिके
 परिधमसे अत्यधिक थकी हुईं नवेलीके स्नानोपर जिनके हाथ
 फिर रहे हैं और नाभि तथा उसके नीचे भी जिनके हाथ
 पहुँच रहे हैं ऐसे कोई-कोई भाग्यशाली ही उस नवेलीका
 अचरामृत पीनेका अवसर पाते हैं जिसके मुखमें मधुर मुन्कान
 और शक्तिमें लज्जा भरी हो ॥ ४८ ॥ कसकर किए जाते हुए
 श्रालिगनको न सह सकने तथा लाजके कारण नवेली
 टूटी-फूटी बोलीसे प्रियतमको रोक रही थी और दिखावटी
 प्रतिकूल आचरण करते हुए भी प्रियतम सचमुच सुनयनी
 नवेलियोंके साथ बैठे ही आचरण कर रहे थे जो उन्हीं भा
 रहे थे ॥ ४९ ॥ रति क्रीराके समय प्रेमके सागरमें लुबका
 लगाती हुईं नवेलीने क्या-क्या नहीं किया । उसने पतिके बाल
 पकड़े, पतिको गले लगाया और उसकी मुजाघोंमें लिपट भी
 गईं ॥ ५० ॥ सुनयनी नवेलियोंकी वह अमृतको भी जीतने-
 वाली 'सी-सी' ध्वनि रहा करे जिसे सजनोंने परम मोच ही
 मान लिया है, जिससे जला हुआ कामदेवरूपी वृष भी
 लहलहा उठता है और जिसे सुनकर कामो निहाल हो जाता
 है ॥ ५१ ॥ हे प्यारी ! यह जो केशरूपी राहु सिन्दूररूपी
 सूर्य तथा मुखरूपी चन्द्रमाको भ्रमे ले रहा है इससे उपात

भूपरारवाश्च रमण्याः कामसूत्रपदतामुपजग्मुः ॥१३॥
 रंजदलपिच्छलाभिस्तनुभिर्यानां च शिथिलमाश्लेषम् ।
 विपलं पुस्तकशलाकापटलं भट्टिति प्रतिकरोति ॥१४॥
 रामिन्प्रभो प्रिय गृहाण परिष्वजस्व किं चि
 शठोऽस्यकर शोऽसि सुखोचितोऽसि । हा दुःखपस्य-
 लमलं विरमेति वाचः स्त्रीणां भवन्ति सुरते प्रणयानु-
 कलाः ॥ ४४ ॥ स्विन्नं मण्डलमैन्दवं विगलितं स्रग्भा-
 रवद्धं तमः प्रागेव प्रथमानकेतकशिखावीरारयितं च
 स्थितम् । शान्तं कुण्डलताण्डवं कुचलयद्वन्द्वं तितरो
 मीलितं धीतं विदुमसीकृतं नहि ततो जाने किमासी-
 दिति ॥ ४६ ॥ स्वैरं पश्यति वल्लभे सरभसं हृत्वा
 दुकूलं बलादङ्गानां रतिसङ्करव्यतिकरे सौन्दर्यरेखाक-
 मम् । यत्तन्त्याः परिरेभ्यमाणमदनधीडाविलासाल-
 सैरङ्कैरङ्गपिधानमुत्पलदृशः कस्यापि तद्गोचरम् ॥४७॥

हारस्तुभ्यति कङ्कणं निपतति स्रक्मोदी क्लिश्रति
 ध्वान्तं धावति सीत्करोति रजनीजानिवेलो भज्यति ।
 काञ्ची लुभ्यति काञ्चनचित्तधरे किं च चतं चञ्चति
 प्राग्भमे मदनाहवस्य विजयी देवो मनोभूरभूत् ॥ ४८ ॥
 हेमकुम्भमिव तुङ्गमुरोजं वल्लभे स्पृशति चोरवदस्याः ।
 जाग्रति स्म सहसैव तदानीं यामिका इव तनूवह
 सद्वाः ॥ ४९ ॥

विपरीतरतक्रिया — अभिसुखपतयालुभिर्ललाटश्रम-
 सलिलैरपनीतपत्रलेखः । कथयति पुरुषायितं वधूनां
 मुदितद्विमच्युतिनिर्मलः कपोलः ॥ १ ॥ आचम्याधर-
 सिसुधवारि कवरीसम्भारसमाजिते स्वेदाम्भस्त्रपिते
 कपोलविगलत्काशमीरपङ्कोज्ज्वले । काञ्चीमन्त्रदतेन
 निर्भरगलन्मुकाकलापस्रजा धन्यस्योरसि धूर्णमानन
 यना पञ्चोपमभ्यर्चति ॥ २ ॥ आलोलामलकावलीं

होनेका निरचय हो रहा है कि चोल (चोली, चोल देश) में
 अराजन्ता फौल जायगी, कुन्तल (केश, कुन्तल देश) ठहर
 न सकेगा और अन्न (शरीर, विहार प्रान्त) में भयङ्कर बुद्ध
 मच जायगा ॥२२॥ नवेलीका सी-सी करना और गलेके भीतर
 गुँ गुँ शब्द होना, प्रार्थनासे भरी बोली, प्रेमसे भरी हुई बातें,
 रोक्नेरी बातें हैंसी तथा गहनेकी भनकार ही कामशास्त्रके स्पष्ट
 सूत्र बन गए ॥२३॥ पसीनेसे अधिक फिसलनके कारण नव-
 युवकोंका वीला आलिंगन भी नवेलीके शरीरपरके रंगदे दबाए
 दे डाल रहा है ॥२४॥ 'हे स्वामी ! हे प्रभो ! हे प्रियतम ! मुझे
 धाम लो, शरीरसे चिपका लो, तुम कैसे पूर्ण हो, निर्दय हो, सुख
 ही लेना जानते हो ? हाय ! क्यों हुए देते हो, बस करो, हट
 जाओ !' इस प्रकारकी रतिके समयकी नवेलियोंकी बातें सुन-
 नुनकर रसिक प्रियतमका मन सदा प्रसन्न ही होता रहता है
 ॥२५॥ रतिके समय चन्द्र-मण्डलके समान नवेलीके मुखपर
 पसीना आ गया, अन्धकारके समान काले बालोंमें बँधी हुई
 माला गिर गई, कानोंके कुण्डलोंका नाचना बन्द हो गया,
 नीले फमलके समान अँसि भिन्न गई और भ्रूँके समान
 चोंचों परसे सी सी शब्द लुप्त हो गए । इसके पचाव में नहीं
 जानता क्या - क्या हुआ ॥ २६ ॥ काम युद्ध (रतिव्रीडा)
 हो चुकनेपर जब प्रियतम वल्लभके वस्त्र रसिककर नवेलीके
 धाँकी सुन्दरता देगने लगे, उस समय आलिंगन करनेकी
 पचाव घोर लगाने धलसाए हुए अपने अङ्गोंसे कमलजननीने
 जो अपने अङ्ग तक छिपे उसे क्या कोई देल पाया ! ॥ २७ ॥

जब काम-युद्ध होने लगा उस समय कामदेवकी विजय
 हुई क्योंकि उस युद्धमें हार हूट गए, कङ्कन गिर पड़े,
 मालारूपी चाँदनी फौकी पड गई, केशरूपी अन्धकार तितर-
 वितर हो गए मुखरूपी चन्द्रमा सी सी बरने लगा, पेंदकी
 सिक्कड़नें टूट गई, करपनी टुकड़े-टुकड़े हो गई और सुमेर
 पर्यंतके समान स्तनोंपर भी छत (पाव) हो गए ॥ २८ ॥
 चोरके समान छिपकर जब प्रियतम अपनी प्यारीके सोनेके
 घड़ेके समान ऊँचे स्तन छू रहा था उसी समय एकाएक
 पदोदारोंके समान रंगदे जा गए (नवेलीकी रोमाञ्च हो
 आया) ॥ २९ ॥

विपरीत रतिव्रीडा : मसले जानेके कारण चन्द्रमाकी
 चमकके समान उनले नवेलियोंके चे गल 'उनके पुरए
 जैसे व्यवहार प्रकट किए दे रहे हैं जिनमें यने हुए
 बेल वृदे सामनेसे गिरते हुए मसलके पसीनेसे छूट गए
 हैं ॥ १ ॥ विपरीत रति करती हुई किसी नवेलीकां देपकर
 कवि कह रहा है 'यह पुरुष धन्य है जिसकी छातीको अपने
 सुले हुए बालोंसे भाद पर्युकर, पसीनेके जलसे धोकर
 तथा अपने कपोलोंपरसे भरकर गिरे हुए केसरसे उजली करके
 उसपर जमकर अधरागृत्त रूपी समुद्र जलका धापमत्त बरके
 नेत्र घुमाती हुई नवेली करपनीके शनसुन-रूपी मन्त्रोंसे भगवान्
 कामदेवकी पूजा करती है' ॥ २ ॥ उजली रतिक्रियाके समय
 जिसमें वृषके साथ उवच्युद बाल दिखते रहते हैं, कानके
 हुपडल डोलते रहते हैं, माथेपर पसीनेकी बूँदें धा जानेते

सकुसुमां विश्रच्चलत्कुण्डलं किञ्चिन्मृष्टविशेषकं तनु-
तरैः स्वेदाम्मसः सौकरैः । तन्व्या यस्वरतान्ततान्त-
नयनं चक्रं रतव्यरथये तत्त्वां पातु चिराय किं हरिहर-
प्रह्लादिभिर्द्वैयतैः ॥ ३ ॥ चलहारलताश्रिया चिरं रम-
शोर स्थलरङ्गनतनेन । भणितध्वनिदम्भरेण सा कृत-
वाद्येव बभूव कामिनी ॥ ४ ॥ तद्भास्ति कारयति यद्य
मनोभवस्य सा शक्तिरप्रतिहता भुवने तथा हि ।
उद्वाद्येव पीवरपयोधरमण्डलांश्रं चरन्ति यत्पुरुषप-
त्रमदा अपीह ॥ ५ ॥ तमःस्तोमं सोमं गिलति वम-
तोयोडनिकरं रथाङ्गद्वन्द्वेऽस्मिन्नमरतरटिनीं खेलति
मुहुः । लतायामुत्सम्पो मदनवसतीकाञ्चनगिरिधिप-
यति प्रायो रतिपतिमते सर्वमधुना ॥ ६ ॥ निःशेषं
व्यपनीय नीधियसनं मन्वुन्वयणभ्रमेरलं क्रोडान्दोलन-
खिन्नमध्यलातकं किञ्चित्प्रकम्पस्तनम् । उद्यत्कुण्ड-
लताण्डवं च रुचिरं विक्रम्य कान्तोपरि क्लान्ता

वक्षसि कामिनां मुकुलितमान्ताक्षिकं शेरते ॥ ७ ॥
पततु तयोरसि सततं दयिताधम्मिल्लमल्लिकानिकरः ।
रतरसरभसकचप्रङ्खलितालकवज्जरीगलितः ॥ ८ ॥
प्रशान्ते नूपुराराये श्रूयते मेघलाघनिः । कान्ते नून
रतश्रान्ते कामिनी पुरुषायते ॥ ९ ॥ प्रागल्भ्यं पुरुषा-
यिते मम पुरः पश्येति सप्रज्ञया तन्व्या ताम्यदुरोज-
यापि सुचिरं विक्रम्य रम्यं तथा । श्रान्ता वक्षसि
मे निपत्य च पुनः सापत्रपं सस्मितं साकृतं च समी-
क्षितं मृगदृशा यत्तत्कथं कथयते ॥ १० ॥ प्रारब्धे
रतिकेहिसङ्कलरवारम्भे तथा साहसप्रार्थं कान्तजयाय
किञ्चिदुपरि प्रारम्भि तत्सम्भ्रमात् । यिन्ना येन
कटोटटी शिथिलिता दोर्बल्लिच्छन्कम्पितं वक्षो मीलित-
मैक्षि पादरसरः स्त्रीणां कुतः सिध्यति ॥ ११ ॥ प्रारब्धे
विपरोतनामनि रते सर्वे तदाभूच्छशात्साङ्ग्यां
विपरीतमेव कुटिला मुक्ताः सुवृत्ता अपि । मुक्ता

जिसमें मायेछा तिलक मिट जाता है और रतिक्रीड़ा समाप्त
होनेपर जिसकी आँसु अलसा जाती हैं वैसे नवेलीका मुख
सदा तुम्हारी रखा करे । कि प्रह्ला, विष्णु और शिव आदि
देवनाथाकी कृपाकी आवरणकना ही क्या है ? ॥ ३ ॥ रतिके
समय प्रियतमकी छातीरूपी रङ्गमण्यपर चञ्चल हारकी लक्ष्मि
नक्षानी हुई नवेली मानो गलेमें निकले शब्दोंमें धारा
बना रही थी ॥ ४ ॥ किसीसे भी न एक सक्नेवाली
कामदेवकी शक्ति इस संसारमें क्या नहीं करा देती ! देखो,
नवेलीकी भी अपने बड़े-बड़े स्तन उवाड़कर पुरुषके सामने
ही उड़ल रही हैं ॥ ५ ॥ कामदेवकी आज्ञा मानकर इस
समय मानो 'सभी बरहूँ उड़ते ही काम कर रही हैं
वर्षोंके केशरुकी आम्बुकार चन्द्रना (मुख) की निगलकर
पसोनेकी दूँररूपी तारे उगल रहा है । स्तनरुकी चक्रवा-
चक्रीमें हाररुकी आकाश-गङ्गा खेले जा रही है और
नवेलीकी स्नेहरुकी लतामें कामदेवके रहनेका सोनेका
पहाड़ (नितम्ब) दिख रहा है ॥ ६ ॥ गॉँड खोलकर
सादेसे हटा दो गई, कपडो धीरे-धीरे खोलने लगी, अधिक
हिलानेसे कमरमें धकावट घा गई और स्तन भी कुड़-
कुड़ हिलने लगे । इस प्रकार प्रियतमके ऊपर चढ़कर
भली-भाँति ज्ञानना पराक्रम दिवानेके कारण नवेली धरु
गई और प्रियतमकी छातीपर ही पड़ी-पड़ी मरफकी लेकर सी
गई ॥ ७ ॥ भगवान् करे, नवेलीके साथ सुरतके समय धनुनाग

तथा वेगसे गाल खींचनेके कारण हिली हुई बोटीसे गिरे
हुए बेलके फूल सदा तुम्हारी छातीपर बरसते रहें ॥ ८ ॥
पायलोंकी झनकार शान्त हो गई है और कपडोकी मजुर
ध्वनि सुनाई पड़ रही है । इससे जान पड़ता है कि प्रियतम
धरु गए हैं और अब नवेली ही प्रियतमके समान घाघरा
करने लगी है ॥ ९ ॥ 'देखो', मैं भी पुरुषके सामने कैसा
पराक्रम करती हूँ' यह कहकर नवेली विपरीत रतिमें लुट
गई किन्तु बहुत देरतक भली-भाँति परिश्रम करती रहनेसे
धरु गई और मेरी छातीपर पड़े पड़े उस मृगनपनीने
जन्मा, मुस्कान और लज्ज मनके भावके साथ जो मेरी
शोर देखा उस चितवनका मैं वर्णन क्या करूँ ॥ १० ॥
जब रतिक्रीडारूपी प्रबलपुत्र सिद्ध गया तो प्रियतमकी
जीत लेनेकी इच्छासे नवेली उसके ऊपर पडकर ही आर्यविक
प्रदान करने लगी जिससे उसकी कमर धरु गई, सुनाई
ठीकी पड़ गई, छाती काँपने लगी और आँसु सुँट गई ।
भला, स्त्रियोंका पुरुष-वैसा प्रयत्न कहीं संभव हुआ है ? ॥ ११ ॥
जब विपरीत रति प्रारम्भ हुई, उसी समय उम दुबले
अङ्गवाली नवेलीमें सभी वस्तुएँ उड़ती हो गईं, कुटिल (देहे,
नीच) बालबन्धनसे लुट गए, गोल-गोल मोती टूटकर पैसे गिर
गए मानो सदाबारी मुक्त (मोती, सत्कारसे लुटकारा पानेवाले
खोग) भी चित्तकी चञ्चलतासे पतित हो गए हैं, स्तनरूपी
पहाड़ हिलने लगे, कानके ऊपर लगे हुए फूल वेद आननेवाले

भूपणरायाश्च रमण्याः कामसत्रपदतामुपजग्मुः ॥२३॥
 स्त्रेदजलपिच्छलाभिस्तनुभिर्वृन् च शिथिलमाश्लेषम् ।
 विपलं पुराकशलाकापटलं भटिति प्रति करोति ॥२४॥
 श्वाग्निप्रभो म्रिय गृहाण परिपञ्चस्व किं किं
 शब्दोऽभ्यवक्रन्तोऽसि सुखोचितोऽसि । हा दुःखस्य-
 लमलं विरमेति वाचः स्त्रीणां भवन्ति सुरते प्रणयानु-
 दृलाः ॥ २५ ॥ स्विन्नं मण्डलमैन्दवं विगलितं स्रग्मा-
 रवद्धं तमः प्रागेव प्रथमानकेतकशिपावोरायितं च
 स्थितम् । शान्तं कुण्डलताण्डवं कुयलयद्भ्रं तिम्रो
 मोहितं वीतं चिद्रुमसीकृतं नह्यि ततो जाने किमासी-
 दिति ॥ २६ ॥ स्वैरं पश्यति यक्षभे सरभत्तं हृत्वा
 दुकृतां यलाद्वह्नीनां रतिसङ्करव्यतिकरे सौन्दर्यैरखाक्र-
 मम् । यत्तन्व्याः परिरभ्यमाणमदनवीडाविलासाल-
 सैरङ्कैरूपिधानमुत्पलदशः कस्यपि सद्भोचरम् ॥२७॥

होनेका निश्चय हो रहा है कि चोल (चोली, चोल देश) में
 धराजन्ता फूल जायगी, हुस्तल (केश, हुस्तल देश) वहर
 न सकेगा और यद् (शरीर, विहार प्रान्त) में भयङ्कर युद्ध
 मच जायगा ॥२३॥ गवेलीया सी-सी करना और गलेके भीतर
 गूँ गूँ शब्द होना, प्रार्थनासे भरी बोली, प्रेमसे भरी हुई बातें,
 रोबनेकी बातें हैंसी तथा गहनेकी कनकार ही कामशास्त्रके स्पष्ट
 मृत् बन गए ॥२३॥ पसीनेसे श्रमिक किसलनेके कारण नय-
 नुपराँवा कीला खालिगन भी नवेलीके शरीरपरके रोंगटे दबाए
 दे काल रहा है ॥२३॥ 'हे स्वामी ! हे प्रभो ! हे प्रियतम ! तुझे
 धान लो, शरीरसे थिपका लो, तुम कैसे भूतें हो, निर्दय हो, सुख
 ही लेना जानते हो ? हाय ! क्यों तु पर देते हो, पस करो, छट
 जाओ ।' इस प्रकारकी रतिके समयकी नवेलियोंकी बातें सुन-
 सुनकर रतिके प्रियतमका मन सदा प्रसन्न ही होता रहता है
 ॥२४॥ रतिके समय चन्द्र-मण्डलके समान नवेलीके मुखपर
 पसीना प्य गया, चन्द्रकारके समान काले बालोंमें धँधी हुई
 मासा गिर गई, कानोंसे कुयल्लोंका नाचना पन्द हो गया,
 नौले बमलके समान शोभि स्त्रिय गई और गूँगेके समान
 भोगों परने सी सी राष्ट्र लुप्त ही गए । इसके पश्चात् मैं नहीं
 जानना क्या - क्या हुआ ॥ २६ ॥ काम-युद्ध (रतिम्रीडा)
 ही नृजनैर तय प्रियतम बलपूर्वक पक्ष रीचकर नवेलीके
 रसोंकी मृन्दता देगने लगे, उस समय खालिगन करनेकी
 पश्चात् और लज्जामे चलसाए हुए अपने कर्णोंसे कमजबनोने
 को अपने कर्ण एक छिपे दमे क्या कोई देव पावा । ॥ २७ ॥

हारस्थुव्यति कङ्कणं निपतति स्त्रकौमुदीं क्षिश्यति
 ध्वान्तं धावति सीत्करोति रजनीजानिर्वलो भज्यति ।
 काञ्ची लुभ्यति काञ्चनचित्तिधरे किं च तृतं चञ्चति
 प्रारम्भे मदनाहवस्य विजयो देवो मनोभूरभूत् ॥ २८ ॥
 हैमहुम्भमिय तुङ्गसुरोर्जं वक्षभे स्पृशति चोर्ष्वदस्याः ।
 जाग्रति स्म सहसैथ तदानीं यामिका इव तनूयह-
 स्र्वाः ॥ २९ ॥

विपरीतरतक्रिया— अग्रिसुरपतयातुभिर्ललाटश्रम-
 सलिलैरपनीतपत्रलेखः । कथयति पुरुषायितं यधूनं
 मृदितद्विमद्युतिनिर्मलः कपोलः ॥ १ ॥ आचम्याधर-
 सिन्धुधारि कवरोलम्भारसम्माजिते स्वेदान्मःक्षपिते
 कपोलधिगलत्काशमीरपङ्कोऽज्वले । काञ्चीमन्त्ररुतेन
 निर्भरगलन्मुक्ताकलापञ्जजा धन्यस्योरसि धूर्णमानन
 यना पञ्चैमुभ्यर्चति ॥ २ ॥ आलोलामलकावली

जब काम-युद्ध होने लगा उस समय कामदेवकी विजय
 हुई क्योंकि उस युद्धमें हार दूट गए, वहन गिर पड़े,
 मालारूपी चाँदनी पीकी पड़ गई, केशरूपी श्रमकार तितर-
 वितर हो गए मुखरूपी चन्द्रमा सी-सी करने लगा, पेटकी
 सिकुडमें दूट गई, करपनी दुकड़े-डुकड़े हो गई और सुमेर
 पर्वतके समान स्तनोंपर भी छत (धाव) हो गए ॥ २८ ॥
 चोरके समान द्विपकर जब प्रियतम श्वपनी व्याप्रीके सोनेके
 पदेके समान उँचे स्तन छू रहा था उसी समय एकएक
 पहरोदारोंके समान रोंगटे जात गए (नवेलीको रोमलक्ष हो
 पाया) ॥ २९ ॥

विपरीत रतिम्रीडा : भसले आनेके कारण चन्द्रमाकी
 चमकके समान उजले नवेलियोंके वे गाल उनके पुर-
 णसे व्यवहार प्रकट किए दे रहे हैं गिनमें ये हुए
 बेल गूटे सामनेसे गिरते हुए भस्तरके पसीनेसे छूट गए
 हैं ॥ १ ॥ विपरीत रति करती हुई छिपी नवेलीमें देवकर
 कवि कह रहा है 'यद् पुरं पच्ये दै मित्सी द्वातीनीं चपने
 सुले हुए बालोंसे काद पाँदकर, पसीनेके जलसे धोकर
 तथा चपने कपोलोंपरने भरकर गिरे हुए केशरसे उजळी करके
 उसपर जमकर क्षपराश्रुतरूपी सपुद जलना धापमत्त कारके
 नेत्र घुमाती हुई नवेली करपनीके दनघुन-रूपी मन्त्रोंसे भावाय
 कामदेवकी पूता करता है' ॥ २ ॥ वजरी रतिक्रिडाके समय
 विसमें पृथके साथ प्रपन्न बाल दिखते रहते हैं, कामके
 शुद्धक होजते रहते हैं, माथेपर पसीनेकी गूँ च्य आनेसे

रथ मुक्तास्ति मिरनिकरमराः । प्रणनाम शीतरोचिस्त-
घपाठं मेखला विदधे ॥ २३ ॥ स्थगयति तमः शशाङ्कं
चलति गिरिः स्रवति तारकापटलम् । कथयति मन्ये
काञ्चीपुरसीमनि किमपि सङ्क्षोभम् ॥ २४ ॥

सुरतवर्णनम्—आकाशे नटनं सरोरुहयुगे मञ्जीर-
म्बुध्वनिः शीतांशो फलकूजितं किसलये पायूपपा-
नोत्सवः । स्वर्गद्वोषिधरे नखात्परिभवो ध्वान्ते करा-
कर्णं रम्भायां रसनाश्चस्तुरुषयोः पुण्यानि मन्यामहे
॥ १ ॥ किञ्चैतेर्गुरुसेवनेः किमप्यव्योमार्चनेः किं
फलं किं स्यादध्ययनेन मे सुरपदप्राप्त्याथ किं वा
फलम् । एतस्याः कुचकुम्भसम्भ्रमपरीरम्भमवाहोद्गम-
स्वेदाम्भोभिरनङ्गघङ्गिरधुना निर्वापितो नो यदि ॥२॥
गिरो यत्राधीरा भुजयुगलमाश्लेषचतुरं लुठद्वाप्या-
पीडं प्रसरति च चञ्चुस्तरभसम् । न तन्मन्ये प्रेम प्रण-
यिनि चिराद्दृष्टिपथगे क्षणं मूकोऽन्यो वा भवति न

जडो यदिप्रयजनः ॥ ३ ॥ नरैर्विकलजन्मभिर्गिरिद्री
न किं सेव्यते न चेच्छृणुणोचरीभवति जातुचिञ्ज-
न्मनि । कपोतरवमाधुरीधिरचनातुकाराद्रीरतासद-
कृशोद्रीवचनकाकुरोतिध्वनिः ॥ ४ ॥ प्रतिद्वेष-
समुल्लसन्नयकलाकलापान्वितक्षपाकरविलोकने यदि
तथास्ति कोवृहलम् । विलोक्य तदा सपे सुरतसङ्ग-
रालोकनप्रहृदयितामुखं निविडकृच्छुकोत्तारणे ॥ ५ ॥
प्राङ्मा मेति ततो नवोदयगुणं मानामिलापं ततः
सद्योऽतं तदनु श्लथोयममथ प्रच्छेयैः पुनः । प्रेमार्द्र-
स्पृहण्योनिभरतरं क्रोडाप्रगलनं ततो निःसङ्गाद्यिमि-
र्शनाधिकसुखं स्वयं कुलखीरतम् ॥ ६ ॥ यत्र न यदन-
त्रिकारः सद्भावसमपेणं न गात्राणाम् । तस्मिन्नुद्धत-
भावोपशुकर्माणि पश्य पद्य रज्यन्ते ॥ ७ ॥ यत्र स्पन्द-
जलैरलं विलुखितैर्व्यालुप्यते चन्दनं सच्छेदैर्मणितश्च
यत्र रणितं निद्रूपते नापुरम् । यत्रायान्यचिरेण

घरके ऊपर बैठे हुए क्यूतर बार-बार दुहराते हुए ऐसे जान
पढ़ते थे मानो वे नवेलियोंके शिष्य बन गए हों ॥ २३ ॥
स्तनरूपी मल्लाका दर्शन होनेपर जब केशरूपी अन्धकार मुक्त
हो गए उस समय सुपका कुठना ऐसा जान पड़ा मानों
चन्द्रमा प्रणाम कर रहा हो श्रीर वज्रती हुई करधनी उनकी
शक्ति पढ़ रही हो ॥ २३ ॥ श्रीधरेके समान बिखरे हुए बाल
चन्द्रमाके समान सुपका बके ले रहे हैं, पर्वतके समान स्तन
दिलते जा रहे हैं श्रीर हाररूपी सारागय गिर रहे हैं । इन
सब बातोंसे जान पड़ता है कि काञ्ची नगरकी सीमापर
(कमरमें) श्ववर्य कोई उपद्रव होनेवाला है ॥ २४ ॥

रतिका चर्णनः आकाशमें (हाथ) नधाना, कमलोंमें
मंजीरे (दोनों पैरोंमें पायल) की मयुर ध्वनि, चन्द्रमा
(सुपके) में मनाहर शब्द, नये पत्ते (श्रोत) में भ्रमरुतपात्रका
वसव, स्वर्गके पहाड़ (स्तनों) पर नखकी रेखा, अन्धकार
(बालों) का उँगलियोंसे रोंधा जाना श्रीर केलेके लम्बे
(जोंधों) पर करधनीकी फनफनाहट, यह सब तो हमारी
समझमें सुपती श्रीर सुचकोंके सुपयका फल है ॥ १ ॥ यदि
इस समय इस नवेलीके एकाएक स्तनके आलिङ्गनसे निकले
हुए पर्सानेके प्रवाहसे कामाग्नि न सुफ जाती तो गुरुकी
सेवाश्रोते, दूतों देवताओंके व्यर्थ पूजनसे, पढ़ने-पढ़ानेसे तथा
स्वर्ग जानेसे भी क्या लाभ होता ? ॥ २ ॥ बहुत दिनोंके
पथात् मिला हुआ प्रियतम जिसे देखकर चय मरके

लिये मूँगा या अन्धा न हो जाय वा ठक न रह जाय यह तो
मेरी समझमें प्रेम नहीं है । सच्चा प्रेम तो यह है जिसमें
वियतमके देपते ही बाणों चखल हो उठे, दोनों सुनाएँ गले
लगानेको व्याकुल हो जायें शॉलोंमें आवू भर चावें श्रीर
वे वेगसे घूमने लगें ॥ ३ ॥ क्यूतरकी गुदरगुँकी मिठासका
अनुकरण करनेवाली श्रीर रतिका परिश्रम सङ्गमें असमर्थ
नवेलीके प्रार्थनासे भरे हुए वचनोंकी ध्वनिकी जिसने जावनमें
कभी नहीं सुनी उन मनुष्योंका तो जन्म ही व्यर्थ है ।
ये मला पदतका कन्दराशामें क्यों नहीं चले जाते ? ॥ ४ ॥
हे मित्र ! प्रतिचय उपजाँ हुईं नई-नई कलाओंसु फुल
चन्द्रमा उतापत समय रति-रूपी युद्ध देखनेसे प्रसन्न सुलवाला
अपना प्रियतमका सुल क्यों नहीं देख लेत ? ॥ ५ ॥ कु-वसुओंकी
यह रतिक्रीड़ा अत्यन्त मनाहर हाता है जिसमें पढ़ते ही 'नहीं-
नहीं' शब्द सुनाई पड़ते हैं, फिर कभी राप धार कमा टकट
दृष्टा दिखाई पड़ती है, फिर लज्जा आ जाता है, पीरज छोड़कर
प्रयत्न बीजा पड़ जाता, प्रेमपूर्वक चाबसे मरी हुईं कोड़ाएँ
होती हैं श्रीर फिर बिना सँकाचके ही अङ्ग घूमें अर्धधिक
सुल मिलता है ॥ ६ ॥ जिसमें सुपकों आनन्द देनेवाली
(सुगम आदि) क्रियाएँ नहीं हुईं तथा प्रेमसे यशोरका आदान-
प्रदान नहीं हुआ यह जहकी रतिक्रीड़ा तो पशुओंकी ही होती
है श्रीर उससे पद्य ही प्रसन्न होते हैं ॥ ७ ॥ हे सखियों !

निःपतिता भवन्ति तरलास्तो वाचलौ चेलतुः सोदन्ति
 श्रुतिपारगाः सुमनसः कान्ता तु कान्तायते ॥ १२ ॥
 मधुपानसमुल्लसत्प्रवालं चलहेमाचलफान्तिभिर्जटा-
 लम् । विधुनिःपतदन्धकारजालं श्मकालं क्व पुन-
 विलोकयामः ॥ १३ ॥ मुक्ताः पतन्ति भूमौ घालाः
 फलयन्ति केयलां मुकिम् । सुम्यत्यम्बरमवनिं विपरीते
 किं न विपरीतम् ॥ १४ ॥ सुग्धे तयास्मि दयिता
 पुरुषो भव त्वमित्युक्तया नहि नहीति शिरो विधूय ।
 स्वस्मात्करादिप्रयकरे वल्यं क्षिपन्त्या वाचं विनाभ्यु-
 पगमः कथितो मृगाद्या ॥ १५ ॥ स्त्रीहाचामरडम्बरो
 रतिपतेर्नीलाम्बुधाहागमो रागोद्धारशिखरिण्डनो मुख-
 विधूधूतस्तमोविभ्रमः । तारुण्योन्मददन्तिद्वानविसरो
 रोलम्बमालाकुलो धम्मिल्लो हरिशीडशां विजयते
 रुस्तो रतिव्ययथे ॥ १६ ॥ वक्रस्यन्दिस्वेदविन्दुप्रघ-
 न्येष्ट्रं भिन्नं सुङ्कमं कापि कण्ठे । पुंस्त्वं तन्व्या

विद्यामोंके समान चञ्चल हो गए और नवेली भी नायकके
 समान व्याहार करने लगी ॥ १२ ॥ यह सुन्दर दृश्य देखनेका
 फिर क्या सौभाग्य प्राप्त होगा जिसमें मदिरा पीनेसे मूँगेके
 समान झोटा खिल जाते हैं, जब रतन भी हिलते हुए सुमेरु
 पर्वतके समान शोभा देने लगते हैं और चन्द्रमाके समान
 सुपर बालरूपी ग्रन्थकार बिसर जाता है ॥ १३ ॥ मुक्ता
 (मोती, मोच प्राप्त किए हुए लोग) धरतीपर गिरे जा रहे हैं,
 घाला (नवेलियाँ, वस्त्र) केवल भोग (रति, भोजन) में जुटे हैं और
 घायर (चाकाश, वस्त्र) धरती छुए खे रहा है । उलटी रति-
 मीढामें कहाँ उलटकर नहीं हो जाता । ॥ १४ ॥ प्रियतमने कहा—
 'हे सुन्दरी ! हम तुम्हारी प्यारी हैं और तुम हमारे प्रियतम
 हो ।' प्रियतमके ऐसा कहते ही उस मृगनयनीने सिर दिवालकर
 'नहीं, नहीं' तो कहा कि-तु तत्काल अपने हाथसे बहान
 निकालकर प्रियतमके हाथमें डाल दिए और बिना कुछ कहे
 ही प्रियतमकी बात स्वीकार कर ली ॥ १५ ॥ विपरीत रति
 काते समय मृगनयनी नवेलियोंके उन बिहारे हुए बालोंकी
 ञप हो जो या तो उन्हीं नवेलियोंपर धीरे-धीरे हलाए जाते
 हुए खँवर हैं, या कामदेवके काले बादल हैं, या अत्यधिक प्रेममें
 भरे हुए मोरोंकी पूँछ हैं, या सुपरचन्द्रके प्रकारसे हटता हुआ
 धँपेरा है या वीरनके मरते मतवाले हाथियोंके उस
 मजबूतकी धाराएँ हैं जिनपर भीरे या छुटे हैं ॥ १६ ॥
 नवेलीके गाँवोंसे बची हुईँ केसरसे मिथी हुईँ पर्सानेकी रेखा

व्यञ्जयन्ती वयस्या स्मित्वा पाणौ खड्गरेखां लिलेख
 ॥ १७ ॥ घटगत्कुचं व्याकुलकेशपाशं स्थिचन्मुखं
 स्थीकृतमन्दहासम् । पुण्यातिरेकात्पुरुषा लभन्ते
 पुम्भावमम्भोरुहलोचनानाम् ॥ १८ ॥ विपरीतमधिप-
 रीतं यद्गतमन्यचक्षेय विपरीतम् । तरुमारोहति
 लतिका नारोहति च लतिकं तरुः क्वापि ॥ १९ ॥
 वियति विलोलति जलदः खलति विधुश्चलति कूजति
 कपोतः । निष्पतति तारकाततिरान्दोलति चीचिरम-
 र्वाहिन्याः ॥ २० ॥ विहायसि विहारिणी भवतु नाम
 सौदामिनी सुमेरुशिखराद्यः पततु नाम मन्दाकिनी ।
 परं तदिदमद्भुतं यद्यमेत्य भूमीतलं नमश्मृतदी-
 धितिः कमलसारमाकर्षति ॥ २१ ॥ वीरायितेषु
 मृगशाविलोचनानां कण्ठोदितान्यचरमं कलफूजि-
 तानि । आग्नेडयङ्करथ सौधगतैः कपोतैः शङ्के गृहीत
 इति सम्प्रति शिष्यभाचः ॥ २२ ॥ सात्ताद्भूत्स्वयम्भू-

गलेतक पहुँची देखकर उसके पुरुषके समान व्यवहारोंको खोल
 देनेके विचारसे सखीने हँसकर उसके हाथमें तलवारका चित्र
 बनाकर उसने बतलाया कि तुमने पुरुषके समान व्यवहार
 किया है इसलिये पुरुषोंके हाथमें शोभित होनेवाली यह तलवार
 धारण करो ॥ १७ ॥ स्तन हिल रहे हैं, बाल बिखर गए
 हैं, मुख पर्सानेसे भर गया हो और मन्द-मन्द सुस्काराहट
 छाई हुई हो, ऐसा पुरुषके समान व्यवहार कोई कमलनयनी
 किसी पुरुषके साथ करे तो उसे समझना चाहिये कि उसने
 बड़े पुरुष किए हैं ॥ १८ ॥ जिस रतिक्रीडाको लोग उलटी
 करते हैं वही वास्तवमें सीधी है और जिसे सीधी कहते हैं
 वही उलटी है क्योंकि खता ही-पेड़पर चढ़ती है, पेड़ नहीं
 खतापर चढ़ता ॥ १९ ॥ चाकाशमें बालरूपी बादल चल रहे
 हैं, मुखरूपी चन्द्रमा खँप रहा है, कण्ठरूपी कव्ठर गुटरगूँ
 कर रहा है, मोतीकी मालारूपी तारिकाएँ गिरी जा रही हैं और
 पेटकी सिकुड़नरूपी गद्दारी लहरें हिल रही हैं ॥ २० ॥ नवेली-
 रूपी विजली चाकाशरूपी प्रियतमके ऊपर चमके तो ठीक है ।
 स्तनरूपी सुमेरुकी चोटोंसे हाररूपी गद्दारा नीचे गिरना भी
 ठीक समझमें आता है किन्तु अरारचर्चकी बात तो यह है कि
 वह नवेलीका मुखरूपी चन्द्रमा धरतीपर आकर, सुस्कार
 प्रियतमके मुखरूपी कमलका रस खे रहा है (उसे घूम रहा
 है) ॥ २१ ॥ मृगनयनी नवेलीने रतिक्रीडामें जो पुरुषके समान
 व्यवहार किया उसके गलेके गुटरगूँका अन्तिम मनोहर ग्रन्थ

रय मुक्तास्तिमिरनिकरमराः । प्रणनाम शीतरोचिस्त-
घपाठं मेघला विदधे ॥ २३ ॥ स्थगयति तमः शशाङ्कं
चलति गिरिः स्रयति तारकापटलम् । कथयति मन्ये
काञ्चीपुरसीमनि किमपि सङ्घोमम् ॥ २४ ॥

सुरतार्थनम्—श्राकाये नटनं सरोरुहयुगे मञ्जीर-
मञ्जुध्वनिः शीतांशी फलकूजितं किसलये पोयूपपा-
नोरसवः । स्वर्गज्ञोशिधरे नपात्परिभवो ध्वान्ते करा-
कर्षणं रम्भायां रसनाखस्तरुणयोः पुण्यानि मन्यामहे
॥ १ ॥ किञ्चैतैर्गुरुस्वयनैः किमपरख्योमाचर्नैः किं
फलं किं स्याद्ध्ययनेन मे सुरपद्मप्राप्त्याथ किं वा
फलम् । एतस्याः कुचकुन्मसन्नभपरीरम्ममवाहोद्भ्रम-
स्वेदाम्भोभिरनद्गवहिरधुना निर्वापितो नो यदि ॥ २ ॥
गिरो यत्राधीरा मुञ्जुगलमाश्लेषचतुरं लुठद्वाप्पा-
पोडं प्रसरति च चक्षुस्वरमसम् । न तन्मन्ये प्रेम प्रण-
यिनि चिराद्दृष्टिपथगे क्षणं मूकोऽन्यो वा भवति न

जडो यत्प्रियजनः ॥ ३ ॥ नरैर्विकलजन्मभिर्गिरिद्वी
न किं सेव्यते न चेच्छृङ्गरोचरीमयति जातुचिञ्च-
न्मनि । कपोतरचमाधुरीचिरचनानुकारादरोरतासद-
कृशोद्रीयचनकाकुरोतिध्वनिः ॥ ४ ॥ प्रतिघाप-
समुल्लसन्नयफलाकलापान्वितत्पाकरयिलोक्तेन यदि
तथास्ति कौतूहलम् । धिलोक्तय तदा सपे सुरतसङ्ग-
रालोकनप्रदृष्टयितामुषं निविडकञ्चुकोचारणे ॥ ५ ॥
प्राङ्मा मेति ततो नयोदयगुणं मानामिलापं ततः
सत्रोडं तद्वत् श्लयोचममय प्रदृष्टैर्यं पुनः । प्रेमाद्र-
रुहणोयनिमरतरं श्रोडाप्रगलनं ततो निःसङ्गाद्भयिम-
शानाधिकसुखं रम्यं कुलखीरतम् ॥ ६ ॥ यत्र न यदन-
विकारः सङ्गायसमपणं न गात्राणाम् । तस्मिन्मुद्धत-
भावेऽपशुकर्माणेषु शय एव रज्यन्ते ॥ ७ ॥ यत्र स्वेद-
जलेरलं धिलुलितैर्व्यालुप्यते चन्दनं सच्छ्रेदैर्निर्णतैश्च
यत्र रणितं निह्वयते नापुरम् । यत्रायान्यचिरेण

घरके ऊपर बैठे हुए क्वतर बार-बार दुहराते हुए ऐसे जान
पदते थे मानो ये नवेलियोंके शिष्य बन गए हों ॥ २२ ॥
समरूपी ब्रह्माका दर्शन होनेपर जब केशरूपी अन्धकार मुक्त
हो गए उस समय मुखका झुन्ना ऐसा जाता पदा मानो
चन्द्रमा प्रणाम कर रहा हो और बजती हुई जान पड़ती
स्तुति पद रही हो ॥ २३ ॥ श्रेष्ठेरेके समान बिसरे हुए बाल
चन्द्रमाके समान मुखको ढके ले रहे हैं, पर्वतके समान स्तन
हिलते जा रहे हैं और हाररूपी तारागण गिर रहे हैं । इन
सब बातोंसे जान पड़ता है कि काञ्ची नगरकी सीमापर
(कमरमें) अवरय कोई उपद्रव होनेवाला है ॥ २४ ॥

रतिका धर्षणः श्लाशमं (हाथ) नचाना, कमलोंमें
मँजीरे (दानों पैरोंमें पायल) की मयुर ध्वनि, चन्द्रमा
(मुखपे) में मनोहर शब्द, नये पत्ते (श्रोत्र) में अमृतपानका
वसय, स्वर्गके पहाड़ (स्तनों) पर नखकी रेखा, अन्धकार
(बालों) का उँगलियोंसे खींचा जाना और केलेके खन्ने
(जोंधों) पर कदपनीकी रून्मन्नाइट, यह सब तो हमारा
समकमें सुवती और सुवकोंके पुण्यका फल है ॥ १ ॥ यदि
इस समय इस नवेलीके पृष्ठाएक स्तनके आलिङ्गनसे निकले
हुए पसीनेके प्रवाहसे कामाग्नि न बुक जाती तो गुरकी
सेवाश्रिते, दूसरे देवताओंके धर्म्य पूजनसे, पढ़ने-पढ़ानेसे तथा
स्वर्ग पानेसे भी क्या लाभ होता ? ॥ २ ॥ बहुत दिनोंके
विद्योहेके पश्चात् निजा हुआ प्रियतम जिसे देखकर पण भरके

लिये गूँगा या अन्धा न हो जाय वा ठक न रह जाय वह तो
मेरी समकमें प्रेम नहीं है । सच्चा प्रेम तो वह है जिसमें
प्रियतमके देखते ही बाणों चञ्चल हो उठे, दोनों मुझपै गले
लगनेको व्याकुल हो जायें आँखोंमें आँसू भर आँवें और
वे बेगस घूमन लगें ॥ ३ ॥ क्वतरका गुटरगैकी मिठासका
अनुकरण करनेवाली और रतिका पारश्रम सहनमें असमर्थ
नवेलीके प्रार्थनसे भरे हुए बचनोंकी ध्वनिको जिसने जावनमें
कमी नहीं सुनी उन मनुष्योंका तो जन्म ही व्यर्थ है ।
वे भला पदतका कन्दराश्रामें क्यों नहीं चले जात ? ॥ ४ ॥
हे मित्र ! प्रतिघाप उपजर्जा हुई नह-नह कलाभोग मुख
चन्द्रमा द्पनका यदि तुम्हें बड़ा टकथडा हा वा कसा हुई
छालों उठात समय रति-रूपा बुद्ध दखनसे प्रसन्न मुखवाला
अपना प्रियतमाका मुख क्या नहा दख लेत ! ॥ १ ॥ कुच-वज्रकोंकी
वह रतिकोंपा अत्यन्त मनाहर हाता है जिसमें पहले तो 'नहीं-
नहीं' शब्द सुनाई पड़ते हैं, फिर कर्ना राप आर कमा टकट
हुन्दा दिखाई पड़ती है, फिर लज्जा आ जाता है, पौरन द्रोहकर
प्रयत्न खाला पड़ जाता, प्रेमपूर्वक चाबसे भरी हुई काड़ापै
होती है और फिर विना संकाचके ही अङ्ग धूनेमें अत्यधिक
मुख मिलता है ॥ ६ ॥ जिसमें मुखको आनन्द देनेवाली
(आधुन्य आदि) क्रियाएँ नहीं हुईं तथा प्रेमसे शरीरका आदान-
प्रदान नहीं हुआ वह जङ्गली रतिकीवा तो पशुओंकी ही होती
है और उससे पण ही प्रसन्न होते हैं ॥ ७ ॥ हे सलियो !

सर्वविषयाः कामं तदेकाग्रतां सख्यस्तरसुरतं भणामि
धृतये शेषा तु लोकस्थितिः ॥ ८ ॥ यायद्वैतं बहिर्द्वे-
ष्टियायचोद्भ्रियलोलता । यावन्नास्तमिता चित्तवृत्ति-
स्तावन्न सौरतम् ॥ ९ ॥ शङ्कामृदुल्लितेन यत्र नयन-
प्रान्नेन न प्रेक्ष्यते केयूरघनिभूरिभीतर्चाकितं नो यत्र
वाश्लिष्यते । नो वा यत्र शनैरलक्ष्मदर्शनं विम्बाधरः
पीयते नो वा यत्र विधीयते च मणितं रत्निकं रतं
कामिनोः ॥ १० ॥ सन्द्याधरपल्लवा सचकितं हस्ता-
प्रमाधुम्भतां मा मा मुञ्च शठेति कोपवचनैरानतित-
भ्रूलता । खोन्कारञ्जितलोचना सरमलं यैश्चुम्बिता
मानिनी प्राप्तं तैरमृतं श्रमाय मथ्यते मूढैः सुरैः
सागरः ॥ ११ ॥ सुरते च समाधौ च माया यत्र न
सोयते । ध्येनेनापि हि किं तेन किं तेन सुरतेन
य ॥ १२ ॥

सुरतनिवृत्ति — अग्रभूतमतनीयसि तन्वी काञ्चि-

धाञ्चि पिहितैकतरोरु । क्षीममाकुलकरा विचरुर्ष
क्रान्तपल्लवमभीष्टतमेव ॥ १ ॥ आयाहि रे मलयमा-
रुत मन्दमन्दमान्दोलयन्कनकचम्पकनानानि ।
कन्दर्पदर्पदलेन परिपोष्यमाने हारे हरे हिमकरे मकरे
करे च ॥ २ ॥ आश्रयवाना ऋटिति जघन सा दुकूला-
ञ्जलेन प्रेङ्खन्तीडाकुलितकयरीघन्धन्यग्रपाणिः ।
ऊर्ध्वोचट्टासस्फुटनखपदैश्चिद्विताभ्यां स्तनाभ्यां दृष्टा
धाप्यस्मृतिनतमुखो मोहनान्ते प्रियेय ॥ ३ ॥ आस्ट-
तेऽभिनवपल्लवपुष्पप्यनारतरताभिरताभ्यः । दोयते
स्म शयितुं शयनीये न क्षणः क्षणदयापि वधुभ्यः
॥ ४ ॥ उपवर्द्धमश्रुजटशो निर्जं भुजं विरचन्त्य वक्र-
मपि गण्डमण्डले । निजसक्थि सक्थिनि निधाय
सादरं स्वापिति स्तनापितकराम्बुजो युवा ॥ ५ ॥
करक्सिलयं धृत्वा धृत्या विमार्गति दाससी क्षिपति
सुमनोमाहारोपे मदीपशिखां प्रति । स्थगयति मुहुः

वैसे तो संसारमें अनेक प्रकारकी रतिक्रीड़ा होती रहती है
किन्तु यथार्थमें जितानेवाली रतिक्रीड़ा तो वही है जिसमें
पतनीकी घनी दूरसे चन्दनका लेप छूट जाता है, जिसमें नूतुराकी
घनि भी नाथिकाके शर्द्धरूपत शब्दसे दब जाती है और बहुत
देरतक सारी इन्द्रियाँ उसी सुखमें डूबी रह जाती हैं ॥ ८ ॥
जबतक प्रेमी और प्रेमिकामें बिलगाव रहता है, वे दोनों एक
प्राय दो शरीर नहीं हो जाते, जबतक मन यहाँ-वहाँ लगा
रहता है, अक्षरक इन्द्रियाँ चञ्चल रहती हैं और जबतक
चित्तवृत्ति एकत्र नहीं होती तबतक सखी रतिक्रीड़ा होती
कहाँ है ? ॥ ९ ॥ जब शकासे मरी हुई आँखोंके बरसे देखा
न जा सकता हो, भुजाओंके भ्रूणोंकी खनलनाइटके दरसे
घबराकर आँखाना न किया जा सकता हो, बिना दाँत
छगाए धारे-धारे छोटीका सुन्नन न किया जा सकता हो
और गलेसे एक शब्द न निकल पाता हो वह कामी और
कामिनीकी रतिक्रीड़ा किस कामकी ? ॥ १० ॥ जिसके
शोड मियतमने दाँतसे पकड़ लिए हों, जो सकपकाकर
रँगलियाँ हिला रही हो, जो 'हे पूर्ण ! छोड़ो, यह मत करो,
मत करो' इस प्रकारकी अर्पणं धातें कहती हुई भीड़ें नचा रही
हो, जिसके नेत्र चञ्चल हों और जो सी-सी कर रही हो ऐसी
रुकी हुई नवेलियोंकी जो वेगसे घूम लेते हों उन्हींका वास्तवमें
चमूत मिजा है ; मूर्ख देवताओंने तो केवल भक्तेके लिये ही
समुद्र मथा है ॥ ११ ॥ जिस सुरतमें माया (कपट) दूर न

हो और जिस समाधिमें अज्ञान दूर न हो वह सुरत और वह
समाधि दोनों ही व्यर्थ हैं ॥ १२ ॥

रतिक्रीड़ाकी समाप्ति : प्रियतम साक्षी खींच रहे
थे इसलिये शीघ्र निताब ढकनेके लिये बख पूरा नहीं पढ़
रहा था, केवल एक ही जौन ढकी जा सकती थी इसलिये
नवेलीने अपने चञ्चल हाथसे ऋट बख खींच लिया ॥ १ ॥
हे मलयाचलके पवन ! जब कामदेवका घमड चूर हो जाय
और हाड, रतेन, मुख, कुण्डल और हाथ ये सभी भली भली
मसले जा चुकें उस समय तुम सोनेकी चम्पाके बन (नवेली)
के सुनहले रंगटे धीरे-धीरे हिलाते हुआते चले आना ॥ २ ॥
सुरतके अन्तमें प्रियतमने अपनी प्यारीको इस रूपमें देखा कि
वह ऋटपट झुपट्टेके छोरसे अपना पैर ढक रही है, रतिक्रीड़ामें
सुजा हुआ जूड़ा बाँधनेमें उसके हाथ उलझे हुए हैं, साँस
खींचने और धाँदनेमें उसके स्तनापर लगे हुए नखके चिह्न
दिलवाई पढ़ रहे हैं और रतिकालकी दिशाईका स्मरण हो आनेसे
वह लजाकर नीचे मुख ढर ले रही है ॥ ३ ॥ नये-नये पत्ते
तथा फुलेसे सजे हुए बिछौनेपर लगातार रतिक्रीड़ामें लगी हुई
नवेलियोंको रातने भी सोनेका अदसर नहीं दिया ॥ ४ ॥ किसी
युवकने अपनी बाँहसे नवेलीके लिये तकिवा बनाया, उसके
गालपर अपना मुख, जौधपर अपनी जौध और उसके स्तनों-
पर अपना कमलके समान हाथ रक्खा और प्रेमसे क्षो गया
॥ ५ ॥ कोई सुन्दरी नवेली रतिक्रीड़ा समाप्त हो जानेपर

पत्युर्नभ्रे विहस्य समाकुला सुरतधिरतो रम्या तन्वी
मुहुमुहुरीचते ॥ ६ ॥ फामसङ्गरविधौ मृगोदशः
प्रौढपौरुषधरे पयोधरे । स्वेदराजिरुदियाय सर्वतः
पुष्पवृष्टिरिव पुष्पधन्वनः ॥ ७ ॥ छिन्नालसनयनान्तं
छिन्नालिकलद्रुकन्तलस्तवयम् । वदनमवलुप्ततिलकं
मदनं नेदयति दययति धृतं मे ॥ ८ ॥ तन्द्रानुन्दिल-
शोणलोचनयुगं दत्ताङ्कदन्तच्छुद्धं पर्यस्तालकवाङ्गि
घर्मपटलमोद्भिन्नपत्रावलि । जम्भोज्जम्भितसीधुसौर-
भमिलङ्क्रीभिरङ्गीकृतस्तोत्रं शंसति वृत्तमेव रजनी-
वृत्तान्तमेणीदशः ॥ ९ ॥ निर्लौपो कुचकुड्मलो कचमर-
स्तत्याज यन्धं ययौ काञ्ची निर्गुणतारिखनदश
दम्भ्यां समासादिता । नीरागोऽधरपल्लवश्च गुरुणा
केनापि गौराङ्गि ते शङ्के शम्बरशासनोपनिपदं तस्या-
वयोधः कृतः ॥ १० ॥ निवृत्ते सुरतोत्सवे बहुविधे

जातेऽधिकेऽङ्गुलमे तल्पे स्वेदजलार्द्रचन्दनमये
किञ्चिद्गृहीतेऽम्बरे । सान्द्रज्जोहवशाग्निशोपविषयव्या-
सङ्गजिह्वात्मनोर्दम्पत्योः स्मरचम्भरातुरतया भूयोऽपि
जाता स्पृहा ॥ ११ ॥ नीच्यां संयमनं कचे नियमनं
श्रीणीतले चासनं निःश्वासाभ्यसनं सुरे समभवत्प्र-
त्याह तन्भूषणे । ध्यानं प्रेमणि धारणा स्मनतटे तन्व्याः
समाधिः भिये निर्वेदादिव कि रतान्तमुलभात्सर्वाङ्ग-
योगोत्सवः ॥ १२ ॥ नेपथ्यादपि राजते हि नितरां
व्यालुप्तभूपा तनुः सम्भोगश्रममीलितं विजयते चक्षुः
कटाक्षादपि । गाढालिङ्गनकीतुकादपि नयं दीर्घलि-
विघ्नसनं प्रीन्यालापरसादपि प्रियतमं मौनं कुरङ्गी-
दशः ॥ १३ ॥ पपात गङ्गा हरमौलिसङ्गादन्यन्तमोऽभूत-
मपेतवन्धम् । तडिल्लता चञ्जलतामहासीदस्पन्दमासां-
दरविन्दयुग्मम् ॥ १४ ॥ पपात मेरोः सुरसिन्धुधारा

वार-वार हृदर-उधर हाथ फेंक-फेंकर वच हँद रही है, माला !
बिलर जानेसे बचे हुए फूल दिपकी लौगर फेंक रही है,
हँसती हुई वार-वार प्रियतमके नेत्र टक रही है और चकपकाकर
वार-वार हृदर-उधर देख रही है ॥ ६ ॥ कामयुद्ध (रतिक्रीड़ा) में
मृगनयनीके स्तनोत्तरे श्रवणिक पादाङ्कन दिखाया था इसजिये
स्तनोपर धाई हुई पसीनकी धँदें देखकर ऐसा जान पड़ता
था मानो उनके पराक्रमपर प्रसन्न होकर कामदेवने उनपर
फूल बरसा दिए हैं ॥ ७ ॥ शालिं यककर अलसाईं हुई हैं,
फोके पड़े हुए मरतकूपर बाल बिलरे हुए हैं और तिलक छूट
गया है, ऐसा नवेलीका मुल कामदेवको पास ले आ रहा
है और मेरा धीरेज तोड़े बाळ रहा है ॥ ८ ॥ आलस्यसे अरी
हुई लाल-लाल दोनों श्रोतों, दाँतके चिह्नोसे सुक्य थोठ, बिलरे
हुए बाळ, पसीनेसे छूटी हुई येज-बूटेकी रचना, और जैभाईं खेते
समय मुखसे निकली हुई मदिराकी सुगन्धपर दृष्टी पड़ती हुई
भौरिगोंके द्वारा की हुई प्रशंसा, ये सभी मिलकर प्रकट
कर रहे हैं कि नवेलीने रात कैसे बिताई ॥ ९ ॥ हे गौरे
शङ्गांवाली ! तुम्हारे स्तन निर्जोष (चन्दन आदिके लेपसे
रहित, संसारमें आसक्तिसे रहित) हो गए, बालाँके बन्ध
(बाँधना, संसारका बन्धन) कट गए । बरघनी भी निर्गुण
(बिना डोरेकी, सख, रज, तम तीनों गुणोंसे रहित)
हो गई । श्रोतों निरखन (बिना श्रवणकी, दोष-रहित)
हो गई । कोंपलके समान थोठ नीराग (बिना ललाईके,
रागद्वेषसे रहित) हो गए । इससे जान पड़ता है कि

द्विसी गुरु (वीचन) ने तुम्हें कामोपनिपट्टका पूरा ज्ञान
करा दिया है ॥ १० ॥ रतिक्रीड़ा-रूपी उत्सव समाप्त हो
जावेपर भी, शरीरकी थकावट बंद जावेपर भी, पसीनेसे छूटे हुए
चन्दनसे बिक्रीना भीग जावेपर, तनिकसा बच घू जावेपर
अत्यधिक प्रेमके कारण उपभोग करनेके लिये छटपटाते हुए
प्रेमी-प्रेमिकाओं भूले कामकी घबराहट होनेपर भी सम्भोगकी
हृच्छा जाग ही गई ॥ ११ ॥ रतिक्रीड़ा समाप्त होनेपर (वैराग्यसे)
योगके धाठों अङ्ग नवेलीमें था गए । क्योंकि नाईका बाँधना
ही बम, बालोंका बाँधना ही नियम, नितगपका रिपय हो
जाना ही आसन, साँसका आना-जाना ही प्राणायाम, गहनोंका
समेटना ही प्रथाहार, प्रेमका स्मरण ही ध्यान, स्तनोंका
सँभालना ही धारणा और प्रियतमका चिन्तन ही समाधि
बन गया ॥ १२ ॥ रतिक्रीड़ा समाप्त होनेपर सृगपयनी नवेलीका
बिना गहनोंवाला शरीर, सजे हुए शरीरसे भी अधिक सुन्दर
जान पड़ता था, तनिके परिश्रमसे मुँदी हुई श्रोतों तिरधों
चितवनसे भी अधिक सुन्दर लग रही थीं, हाथोंकी शिथिलता
कसकर बालिङ्गन करनेसे भी अधिक मनोहर जान पड़ रही थीं
और प्रेमसे वातकीत करनेकी अपेचा लुप रहना ही अत्यधिक
प्रिय जान पड़ रहा था ॥ १३ ॥ रतिक्रीड़ा समाप्त होनेपर
स्तनसे हर गिर गए, बाल सुलकर बिलर गए, नवेली
शान्त हो गई और उसके नेत्र भी स्थिर हो गए, उस
समय ऐसा जान पड़ रहा था मानो उदरजीके मन्तकसे
गङ्गाजी गिर रही हों, बन्धकारका बन्धन फूट गया हो, बिजली

वचर्षं तारागणमन्धकारः । वभूष भृङ्गावलिरप्यकम्पा
शशाम शम्पालतिकाधिलासः ॥ १५ ॥ प्रियकृतपट-
स्तेयत्रीडाविलम्बनविह्वलां किमपि रूपणालापां वालां
विलोक्य ससम्भ्रमः । अपि विचलिते स्कन्धावारे
गते सुरताह्वये त्रिभुवनमहाधन्वी स्थाने न्यवर्तत
मममधः ॥ १६ ॥ प्रियायाः प्रत्युपे गलितकवरीवन्धन-
विधापुदञ्चदोर्वल्लीदरदलितचेलाञ्चलमुरः । घनाकृते
प्रभयत्यथ मयि समन्दाक्षिवलितं नमन्त्या यद्रूपं नहि
लिखितुमीशो मनसिजः ॥ १७ ॥ प्रेक्षणीयकमिव क्षण-
मासन्दीविभङ्गुरविलोचनपाताः । सम्भ्रमद्रुतगृहीत-
दुकूलच्छाद्यमानवपुपः सुरतान्ताः ॥ १८ ॥ भातु
नाम सुदृशां दशनाङ्कः पाटलो धवलगण्डतलेपु ।
दन्तवाससि समानगुणश्रीः सम्मुखोऽपि परभागम-
वाप ॥ १९ ॥ मुक्ताभूषणमिन्दुविन्मयजनि व्याकीर्ण-

तारं नमः स्मारं चापमपेतचापलमभूदिन्द्रोचरे
मुद्रिते । व्यालीनं कलकण्ठकण्ठनिन्दैर्मन्दानिलैर्मन्दितं
निफरूपस्तवकापि चम्पकलता साभूच जानेऽथ किम्
॥ २० ॥ मुखं जम्भारम्भि प्रसरति मदामोदलहरी
दशोस्तन्द्राभारः स्फुरति विगलत्यङ्गलतिका । त्वमे-
तादृक्कान्तिः कमलमुपि धन्यैव नितरामसौ धन्यो
यस्ते सकलरजनीं जागरयिता ॥ २१ ॥ मृष्टचन्दन-
विशेषकभक्तिभ्रंष्टभूषणकदधितमाल्यः । सापराध
श्च मण्डनमासीदात्मनैव सुदृश्यामपभोगः ॥ २२ ॥
योषितः पतितकाञ्चनकाञ्चौ मोहनातिरभसेन
नितम्ये । मेखलेय परितः स्म धिचित्रा राजते नवनख-
क्षतलक्ष्मीः ॥ २३ ॥ रतान्ते प्राणेशे चसनमददाने
कथमपि स्थिताया याचन्त्या वितर मम चेलं गुण-
निधे । सरोपं पश्यन्त्याः किमपि च हलन्त्याः परि-

शान्त हो गई हो तथा दो कमल, बिना हिले-डुले स्थिर खड़े
हैं ॥ १४ ॥ रतिके पश्चात् जब बिल्लीके समान दमकीली
नवेलीकी चेष्टाई शान्त हो गई, उस समय उसके स्तनसे गिरा
हुआ धार ऐसा जान पड़ रहा था मानो सुमेरु पर्वतसे
गङ्गा गिर रही हों, बालोंसे गिरे हुए फूल ऐसे जान पड़
रहे थे मानो अन्धकारसे तारोंकी वर्षा हो रही हो और
आँखोंमें आँसू हुई स्थिरता ऐसी जान पड़ती मानो धी भीरे स्थिर
हो गए हों ॥ १५ ॥ प्रियतमने नवेलीके वक्ष सुरा लिए इसलिये
वह लज्जित हो गई, वक्ष मिलनेमें विलास होनेसे घबरा सी
गई और प्रार्थना करने लगी । ऐसी दशामें एकाएक अपने
हैनिकोंके चले जानेपर सुरतरुपी शुद्ध रुमात्त होते ही तीनों
लोकोंमें प्रसिद्ध धनुषधारी कामदेव अपने स्थानपर लौटकर
उसने उचित ही किया ॥ १६ ॥ प्रातःकाल खुले हुए बाल
धँधले समय नवेलीके हाथ जो ऊपर उठे तो उससे उसकी
छातीपरसे तनिक-सा वक्ष हट गया । उस समय धीरेसे
अपनी आँखें नचाकर जब मैं वक्षे चावसे उसे देखने लगा तो
पह देखते ही वह झुक गई । उसकी उस समयकी सुन्दरताका
वर्णन करनेमें कामदेव भी समर्थ नहीं है ॥ १७ ॥ लज्जके
कारण आँखें पूरी खुल न पा रही थीं, घबराहट तथा शीघ्रताके
साथ पकड़े हुए वक्षसे शरीर ढका जा रहा था, ऐसी सुरतके
अस्तीकी क्रियाई नाटकके समान दर्शनीय बन गई ॥ १८ ॥
सुनयनी नवेलीधँधले गीरे-गीरे गालोंपर लगे हुए दाँतके
झाल-झाल चिह्न सुन्दर जाने तो ठीक ही है क्योंकि

उन दोनोंका रङ्ग एक दूसरेसे भिन्न था पर लाल लाल
श्रोतपर प्रत्यक्ष लाल चिह्न सचसुच उत्तसे बढ़ गया ॥ १९ ॥
मुखरुपी चन्द्रमाके भूषण गिर गए, बालरुपी आकाशसे
पुष्परुपी तारे बिलर गए, भींदरुपी कामके धनुषकी चञ्चलता
जाती रही, नेत्ररुपी नीले कमल खुँद गए, गलेकी धनिलरुपी
कमूतरकी गुटरगू शान्त हो गई, ससिसे पवन धीमे बढ़ गए और
नवेलीरुपी चम्पाकी लताके स्तनरुपी गुच्छोंका हिलना बन्द
हो गया । इसके परचाव क्या हुआ, मैं नहीं जानता ॥ २० ॥
हे कमलमुखी ! तुम्हारे मुखपर जा बार-बार जँभाइयाँ आ रही
हैं, प्रसन्नताकी लहरें कबो जा रही हैं, आँखोंमें झालस्य
छाया जा रहा है और सब अङ्ग बाले पड़ जा रहे हैं, पद तुम्हारी
कुड़ अनांखो हों याभा है । तुम सचमुच धन्य हो और तुम्हें
सारी रात जगानेवाला तुम्हारा वह प्रियतम भी धन्य है ॥ २१ ॥
सम्भोगके कारण नवेलीका शरारमेंसे अन्दनके बेल-बूटे भिंद
गए, गहने तथा मालाई शरीरसे अलग हो गईं इसलिये
अपनेकी अपराधी समझकर स्वयं सम्भोग ही नवेलीकी देहमें
गहनेका काम करने लगा ॥ २२ ॥ रति करनेशी उतावत्रीमें जब
नवेलीके नितम्बसे सोनेकी कारधनी सरक गई, उस समय
नितम्बपर लगे हुए नखके चिह्न ही सुन्दर करधनीके समान
शोभित होने लगे ॥ २३ ॥ रतिक्रीडाके पश्चात् सद्यपि वह
अनेक प्रकारकी प्रार्थना करती हुई खड़ी होकर रोपसे देखने
लगी किन्तु प्रियतमने किसी प्रकार वक्ष नहीं जाँटाए ।
इसपर वह हँसने लगी और झुककर खड़ी हो गई । उस

घलघमन्त्यान्तद्रूपं नहि लिपितुमीशो मनसिजः
॥ २४ ॥ लुलितकुसुमसम्पत्नेशपाशस्तवण्या मुकुलि-
तनयनान्तं द्रीडया नम्रमाभ्यम् । फरतलपरिधानं
नामिभूलं रतान्ते पुनरपि रतनीलां प्रेयसः सन्तनोति
॥ २५ ॥ विश्रमार्थमुपगूढमजर्जं यतिप्रयैः प्रथमरत्यव-
साने । योपिनामुदितमन्मथमादौ तद्द्वितीयसुरतस्य
वभूय ॥ २६ ॥ धीतोष्टरागाणि हृताञ्जनानि भास्वन्ति
लोहैरलकैर्मुद्यानि । प्रातः कृतार्थानि यथा विरेजुस्तथा
न पूर्वधूरलङ्कृतानि ॥ २७ ॥ व्याधूतहारमणयः परि-
धूतमाल्याः मन्दस्मितप्रसरसत्रपट्टिपाताः । तस्या-
जयन्ति लुलितश्रमधारिलेशाः सौत्कारमुभयमणित-
ध्वनयो रतान्ताः ॥ २८ ॥ व्यामिश्रैकैकवाहु प्रवलित-
पृथुलैकैरुचारुदन्तारुणं दध्ना दध्नाधरोष्ठं दरशियलित-
सुरलेपमालिङ्ग्य पान्ताः । शश्वानि श्वासवेगस्फुरि-
तगुरुकचन्द्रसङ्ख्युद्रवचाः श्रान्तः शेते रतान्ते सुप-

मिह सुकृती लीलया कामिलोक ॥ २६ ॥ व्यालोलः
केशपाशस्तरलितमलकैः स्नेदलोली कपोली क्रिष्टा
विम्बाधरश्रीः कुचकलशय्या हारिना हारयष्टिः ।
काञ्ची काञ्चिद्वताशां स्तनजघनपदं पाणिना द्वाद्यन्तो
भूपाहोनापि वाचिरिप्रियहृदयमहो मीणयत्येव मुग्धा
॥ ३० ॥ शयानस्योत्थानं हृदि निहितवक्षोवहभरा
तिरश्चोने वस्त्रे निविडकलितात्मोपवदना । समाफ-
स्योदश्यामतिदृढतरं सफियगुलं स्वपित्यम्नोजादी
शिथिलमुजवन्धेयमधुना ॥ ३१ ॥ शान्ते मन्मथसङ्करे
रणभ्रूनां सत्कारमातन्वती वासोऽज्ञाजघनस्य पौनकु-
चयोर्हारं ध्रुतेः कुण्डलम् । विन्धोष्ठस्य च धोटिकां
सुनयना पाण्यो रणत्कङ्कणे पश्चात्तन्निनि केशपाश-
निचये युको हि बन्धनम् ॥ ३२ ॥ संन्यासमकृत काञ्ची
जहौ फलत्रं दुकूलमवलायाः । तत्याज रागमधरो
मुकिमुतीचमिरे चिकुराः ॥ ३३ ॥ सङ्गतामिचचित्तश्च-

समयकी उसकी सुन्दरवाकी लिखनेके लिये विचलित हुआ
कामदेव भी सफल नहीं हो सकना ॥ २४ ॥ रतिनीला समाप्त
ही चुकनेपर उस नरेलीके वे बाल जिनकी फूल लयी संपत्ति
बिखरकर गड़ हो गई, जिसमें आँटें सुँई जा रही थी ऐसै
जजासे सुके हुए उसके सुँई, हाथके तकिप और नामिके
गीचेके भाग सयने मिलकर फिरसे प्रियतममें रति करनेकी
चाह जगा दी ॥ २५ ॥ पतिने विश्रामके लिये प्रथम सुरतके
अनन्तर बार-बार नवेलीका आलिङ्गन किया जिससे फिर धीरे-
धीरे ऐसा काम लगने लगा मानो दूसरी बारके सुरतका प्रारम्भ-
सा होने लगा हो ॥ २६ ॥ रति हो चुकनेपर प्रातःकाल नवेलीके
जलाई छूटे हुए श्रोत, आँगन छूटे हुए नेत्र और बिखरकर
दहराते हुए बालोंसे सजा हुआ मुख ये सब जितने अधिक
सुन्दर लग रहे थे ॥ २७ ॥ सुन्दरीके उस रतिके अन्तिम समयकी
जय हो जिसमें हारके मथि बिखर गए हों, मालाएँ उलक-
पुलक गई हों, मन्द मुस्कानके साथ लजीली चितवनं चल रही
हों, पसीनेकी सूँई हलक रही हों और 'सी सी'के साथ मधुर
भोजी-भाजी ध्वनि निकल रही हो ॥ २८ ॥ रतिकोटा समाप्त
हो चुकनेपर प्रेमी और प्रेमिका दोनोंने पुरु दूसरेपर हाथ रप
लिया हो, एक दूसरेसे जाँचें चिपका ली हों, एक दूसरेके श्रोत
ध्रुमने लगे हो, श्रोत चूमते समय आलिङ्गनमें दिलाई देसकर
नाथकने नाथिकाका कलकर आलिङ्गन कर लिया हो और

नाथिकाकी प्रवल सँसके कारण स्तन द्विजनेसे नाथकके
वक्षस्थलपर उनकी राग लग रही हो । इस प्रकार सुरत-कीडामे
थककर कोई भाग्यशाली हो सुपकी नौद सोवा है ॥ २६ ॥
जिस सुन्दरीके बाल झलकर बिखर गए, गालोंपर पसीना छा
गया, श्रोतकी जलाई फीकी पड़ गई, स्तनोंपरसे हार गिर गया,
करघमी न जाने कहाँ चली गई, वह अपने स्तन तथा पेंच्
हाथसे टक रही है और यद्यपि उसके शरीरपर कोई गहना नहीं
रह गया फिर भी वह अपने प्राणनाथको वशी अरुनी लग रही
है ॥ ३० ॥ प्रियतम ऊपरको सुँई करके जेते हुए थे, कि वह
कमलनयनी नवेली उसकी छातीपर अपने दोनों स्तन और
उसके तिरछे मुखपर अपना मुख सटाकर अपनी जाँसेमें
प्रियतमकी जाँसें बलपूर्वक दबाकर हाथ ढीले करके ब्रम
सो रही है ॥ ३१ ॥ कामसुद्धके समाप्त हो जानेपर सुन्दर
आँलेंवाली नवेलीने युद्धमें भाग लेनेवाले सैनिकोंका सत्कार
करते हुए, पेंडूको बच, स्थूल स्तनोंको हार, कानोंको कुपडक,
सुँईरुके समान श्रोतको पानका चोड़ा और हाथोंको बजते हुए
कङ्कण देकर पीछे लटकनेवाले बालोंको बाँध लिया यह उचित
ही किया ॥ ३२ ॥ करघमीने छूटकर मानी संन्यास ले लिया,
नवेलीके वक्षसे कलत्र (नितम्ब, पानी) को छोड़ दिया, श्रोतने
हाथ (लहाई, बलत्र) छोड़ दिया और बाज ऐसै छूट गए
मानो मुकि पा गए हों ॥ ३३ ॥ रतिके समय प्रियसे मिळी हुई
नवेलीयोंने पहले जिसे छोड़ दिया था और जो चली गई थी

लितापि प्रागमुच्यत विरेण सखीष । भूय एष सम-
गन्त रतान्ते हीर्षधूमिरसहा धिरहस्य ॥ ३४ ॥
सज्यासन्वीरुवाहुश्चितकरमधुरं कूर्परन्यस्तशीर्षं संस-
कास्याञ्जयुग्मश्चसितहृतचलचाटनासाविभूयम् ।
भूयो निद्रातिरेकात्क्रमशिक्षिलभुजाश्लेषदत्तावकाशो-
च्छ्वासोदञ्चत्कुचाप्रप्रतिहृतहृदयं शेरतेऽमी रतान्ते
॥ ३५ ॥ सुतनु श्रुतिसेवनतो मन्ये नयनं निरक्षणं
जातम् । मुग्धा क्लेहात्कवरो युकां मुक्तिं कथं प्राप
॥ ३६ ॥ ह्यभुवाप्रधिपयोधरपीठं पीडनेऽनुदितवत्यपि
पर्युः । मुक्तमौक्तिकलगुणुणेषा द्वारव्यष्टिरभवद्गुण-
रेव ॥ ३७ ॥ सुरतविरतक्रीडावैश्वश्रमश्लयहस्तया
रहसि गलितं तन्मया प्राप्तुं न पारितमंशुक्म् । रति-
रसजडैरङ्गैरेके पिधातुमशक्या म्रियतमतनो सर्वाङ्गोर्ण
प्रविष्टमघृष्टया ॥ ३८ ॥

प्रियप्रस्थानावस्थाऽथनम्—आयाते श्रुतिगोचरं प्रिय-

वही लजा सूरतके परचात् विरह न सह सकी श्रीर फिर
नवेलीगोंके पाम आ गई ॥ ३४ ॥ सुरतके परचात् प्रेमी श्रीर
प्रेमिया दोनों सी रहे हैं, एककी दाहिनी तथा दूसरेकी बाईं
बाँधें तथा बाँधें परस्पर सटी हैं । बाँहकी बुहनीपर सिर धरा
है, दोनोंके मुख परस्पर मिले हैं, चलती हुई साँससे नाकके
प्राभूषण हिल रहे हैं और गहरी नींदके कारण आलिङ्गन डीजा
पढ़ गया है जिससे स्तनका केवल आगोका भाग प्रियतमकी
छातीपर लगा रह गया है ॥ ३५ ॥ हे सुन्दरी ! कानतक पहुँचे
हुए नेत्र मानो श्रुति (वेदों) के अभ्याससे मोच पा गए वह
तो ठीक हुआ किन्तु तेज लगानेसे चिकने (संसारमें) धासक
रहनेवाले) बाल (मूर्ख) कैये सुखित (मोच) पा गए (छुल
गए) ? ॥ ३६ ॥ प्रियतमके घने आलिङ्गनसे सुन्दर भाँहवाली
नवेलीगोंके स्तनपर लटकती हुई हारकी लक्ष्मिं टूट गई और
मोती बिखर जानेसे केवल दोरा ही रह गया फिर भी वह गुण
(भारी, छादरणीय) बनी रही ॥ ३७ ॥ रतिलीजा समाप्त
हो जानेपर दुवली-पतली नवेलीका हाथ लाभ, आवेश श्रीर
परिश्रमसे थक गया या अतः पकान्तमें पदा हुआ बख
वह न पा सकी श्रीर रतिक्रीडाके आनन्दकी मस्तीमें उसके
सक चढ़ भेसे क्षिणिल हो गए कि वह अपने दूसरे चढ़ न
हक सकी इसलिये वह सकुचाती हुई अपने प्रियतमसे ही
सिमटकर चिपक गई ॥ ३८ ॥

प्रियतमके प्रस्थान करनेके समयका धर्षण :

तमप्रस्थानकाले बलात्तदपान्तःस्थितया तथा जनमलं
दृष्ट्वा चिरं मुग्धया । सोच्छ्वासं दृढमन्युनिर्भरगलद्वा-
ष्पाशुधौतं तथा स्वं वनत्रं विनिवेश्य भर्तृहृदये निः-
शब्दकं रुचते ॥ १ ॥ कान्ते कथञ्चिद्द्विदिनमयाए चणं
विनम्रा धिरद्वादिताङ्गो । ततः समालोक्य कदाग-
तोऽसौत्याखयाय कान्ता मुदमाससः ॥ २ ॥ कान्तो
यास्यति दूरदेशमिति मे चिन्ता परं जायते लोकान-
न्दकरो हि चन्द्रवदने वैरायते चन्द्रमाः । किञ्चायं
चितनोति कोकिलकलाहापो विलापोदयं प्राणानेव
हरन्ति हन्त नितरामाराममन्दानिलाः ॥ ३ ॥ गच्छा-
मीति मयोक्तया मृगशया निःश्वासमुद्रेकियं त्यक्त्या
सिर्गन्धेदय वाष्पकलुषेणैकेन मां चक्षुषा । अथ प्रेम
मदपितं प्रियसणो वृन्दे त्वया वध्यतामित्थं स्नेहविव-
धितां मृगशिशुः सोऽप्रासमाभापितः ॥ ४ ॥ गन्तुं
प्रिये वदति निःश्वसितं न दीर्घमासीन्न वा नयनयोर्ज-

प्रियतमकी यात्राका समय और यात्राकी बात ज्योंही कानोंमें
पकी त्योंही बिड़ोनेर बैठी हुई सुन्दरी नवेलीने कुछ देरतक
तो प्रियतमको भली-भाँति देखा तथा लम्बी साँस ली फिर
निरन्तर चषकते हुए शोकामिनसे निकलते हुए आँसुओंसे
धुला हुआ मुँह प्रियतमकी छातीमें लगाकर सिसक-सिसककर
रोना प्रारम्भ कर दिया ॥ १ ॥ प्रियतमने नवेलीके
सामने किसी-किसी प्रकार (डरते-डरते) अपने जानेकी बात
छेदी तो यह सुनते ही वह नवेली कुछ देरतक तो सिर झुकाए
बैठी रही और उसके अग्र विरहकी वेदनासे डीले पढ़ गए ।
कि प्रियतमकी ओर देखकर उसने पूछा कि 'आर कर आप ?'
इससे पतिकी यात्रा रुक गई और वह नवेली प्रसन्न हो
गई ॥ २ ॥ हे चन्द्रमुग्धी सखी ! प्रियतम बहुत दूर परदेस
जानेवाले है इस बातकी मुझे ऐसी चिन्ता है कि सारे विश्वकी
आनन्द देनेवाला चन्द्रमा भी धैर कर रहा है, यह कांयलकी
कूक ऐसी जान पड़नी है मगनो कोई विलाप कर रहा हो
और ये उपवनके शोणल पवन तो प्राय ही हरे ले रहे
हैं ॥ ३ ॥ जैये ही मैंने कहा कि 'मैं जा रहा हूँ' वैसे ही
प्रियतमने लम्बी साँस ली, आँसुमें भरी हुई एक आँसु
तिरछी करके मेरी ओर देखा, फिर बढ़े स्नेहसे पाजे हुए
हरियके छीनेसे कुछ दूसरे ही अभिमायसे कहने लगी कि
जो प्रेम आनन्द तुम मुझसे करते रहे वही प्रेम अथ मेरी
दूसरी सखियाँते किया करो था, मैं मर जाऊँगी ॥ ४ ॥

लमाधिरासीत् । आयुर्लिपि पठितुमेष्टदशः परन्तु
भालस्थलीं किमु करः समुपाजगाम ॥ ५ ॥ गन्तुर्विष-
स्वदुदये हृदयेश्वरस्य प्रत्युपपत्तिनिन्दश्रमजातकम्पा ।
निद्रां जलैरशशिरैर्नयनाञ्जजातैः कान्ता तदंसशि-
खरे पतितैर्जहात् ॥ ६ ॥ चिन्तामोहविनिश्चलेन मनसा
मौनेन पादानतः प्रत्यास्थानपराङ्मुपः प्रियतमो गन्तुं
प्रवृत्तोऽधुना । सर्वोडैरलसैरिन्तरत्तुड्ढाप्पाकुलैर्लो-
चनैः श्वासात्कम्पकुचं निरीद्व्य सुचिरं जीवाशया
यारितः ॥ ७ ॥ दूरं इन्द्रि निर्गतासि नगरद्वेप
द्रुमः क्षीरवानस्मादेव नियत्यंतामिति शनैरुक्त्वाध्व-
गेन प्रियाम् । गाढालिङ्गनचक्रितस्ततन्टाभोगस्फुट-
त्कञ्चुर्कं वीष्योरःस्थलमधुश्रुरितदशः प्रस्थानभङ्गः कृतः
॥ ८ ॥ दृष्टः कातरनेत्रया चिरतरं यत्नाङ्गलि याचितः
पश्चादंशुकपल्लवेन विभूतो निर्व्याजमालिङ्गितः ।
इत्याक्षिप्य समस्तमर्यमघृणो गन्तुं प्रवृत्तः शठः पूर्वं

प्राणपरिग्रहो दयितया मुकुन्ततो वल्लभः ॥ ६ ॥
पितुरधिपुरं त्यक्त्वाः सत्यः समं निजवाम्भ्यवैर्न च
परिचितिर्जाता पत्युर्गृहेऽपि कयाचन । कतिपयदिनो-
दञ्जद्रेमिण् प्रिये प्रचसत्यसौ कथयतु मनस्तापं कम्मे
नवं नयकामिनी ॥ १० ॥ प्रस्थानं चल्यैः कृतं प्रियस-
खैरक्षैरजसं गतं धृत्या न क्षणमासितं व्यवसितं
चित्तेन गन्तुं पुरः । यातुं निश्चितचेतसि प्रियतमे सर्वे
समं प्रस्थिता गन्तव्ये सति जीधितप्रियसुहृत्सार्थः
किमु त्यज्यते ॥ ११ ॥ प्रहरविरता मध्ये ब्राह्मस्ततोऽपि
परेण वा किमुत सकले यातेऽप्यह्नि प्रिय त्वमिहैष्यसि ।
इति दिनशतप्राप्यं देशं प्रियस्य प्रियासतो ह्रति
गमनं बालालापैः सवापम्भलज्जलैः ॥ १२ ॥ प्राणेश्वरे
किमपि जल्पति निर्गमाय क्षामाद्री वदनमानमयाञ्च-
कार । आली पुनर्निभृतमेत्य लतानि कुञ्जमुग्मसक्तोकि-
लकलध्वनिमाततान ॥ १३ ॥ थाप्पाकुलं प्रलपतोर्गु-

प्रियतमने अय जानेकी बात हैदी तो नुवेलीने न तो
लम्बी सास ही रींची और न उसकी आँखोंसे आँसू
ही निकले किन्तु उसके मस्तकमें लिपि हुई थायुकी वर्षामाला
पड़नेके लिये ही मानो हाथ मस्तकपर पहुँच गए ॥ ५ ॥
मूर्खादय होते ही प्रियतम जानेवाले थे अतः प्रातःकाल पत्रियोंके
गट्ट सुनकर नवेली कौपने लगी और साँसे हुए प्रियतमके
कंधेपर उसके कमलनयनोंसे गरम-गरम आँसू निकलकर
गिर पड़े जिससे उसकी नींद टूट गई ॥ ६ ॥ जानेका विचार
करते ही प्रियतमका मन चिन्ता तथा मोहसे भर गया इसलिये
वे कुछ देर चुप बैठे रहे, धीरे पढ़ते रहे, शोकनेपर भी रुकते न
रहे और आप चल्नेको प्रस्तुत ही गए । नायिकाकी आँखें भी
लज्जा, निःशक्ता तथा निरन्तर बहनेवाले आँसूओंसे भर गईं,
उसके स्तन वेगसे साँसे चलनेके कारण हिलने लगे । अतः
बहुत देरतक जय नवेलीकी यह दशा देखी तो उसको जीवित
रगनेके लिये प्रियतमको रक ही जाना पड़ा ॥ ७ ॥ प्रस्थान
करते हुए प्रियतमने अपनी प्रियसाँसे कहा—'हे सुन्दरी ! तुम
नगरसे बहुत दूर निकल आई हो । देखो यह सटका घृच आ
गया । अथ तुम लौट जाओ । इसके पश्चात् जय जायकने उसका
कसकर आलिङ्गन किया तो नवेलीके स्तन चाकके समान फैल
गए जिसने उसकी बोलीके पद टूटने लगे । ऐसी दशामें
आँखोंसे आँसू बहानेवाली नवेलीकी छाती देरकर उसने अपनी
प्राया रोक दी ॥ ८ ॥ प्रियतमके जाते समय प्रियतमाने

अपनी चञ्चल आँखोंसे बहुत देरतक उसे देखा, हाथ जोड़-
कर प्रार्थना की, उसका वक्ष पकड़ लिया और प्रेमने
उसके गले लगी फिर भी वह निर्दयी भूत पति विदेश जाने
लगा किन्तु नवेलीने प्रियतमका विद्याह होनेसे पहले ही
अपने प्राण छोड़ दिए ॥ ६ ॥ अपने भाई-भन्पुआँके साथ-
साथ पतिके गाँवमें सखियों भी दूर गईं, पतिके घरमें भी
अभी किसीसे परिचय नहीं हो पाया और कुछ ही दिनोंसे
जिस प्रियतमसे प्रेम लग रहा है वह भी विदेश चले जा रहे
हैं ऐसी दशामें बेचारी नहीं बहू अपने मनकी तपन क्रिये
सुनाये ॥ १० ॥ प्रियतमकी याया निश्चित हो जानेपर
कोई नवेली कह रही है कि 'कङ्कण पहले ही निकल गए,
प्यारे मित्र आँसू भी टुलक गए, धीरज भी नी-दोः ग्यारह हुआ
और मन भी आगे चलनेके लिये प्रस्तुत हो गया इस चलाचलतामें
हे जीवन ! जब जाना ही है तो अपने प्यारे मित्रांका साथ क्यों
छोड़े दे रहे हो अर्थात् उनके साथ अभी क्यों नहीं चल देते ?
॥ ११ ॥ 'एक पहर या दोपहर या दिन बीते आप यहाँ अन्तर
लौट आहएगा' यह कहकर वह नवेली अपने गिरते हुए आँसूओंके
साथ पतिकी उस प्रायाकी रोक रही है जहाँ पहुँचने-पहुँचनेमें सी
दिन लगते हैं ॥ १२ ॥ प्रियतमने ज्योंही जानेकी बात हैदी र्योंही
नवेलीने सिर मुका लिया । इस बीच उसकी सखी धीरेसे
लताकी झाड़ीमें जाकर चुपकेसे मतवाली कोपकके समान
मधुर पवन करने लगी । इससे सखीने यह सूचित किया कि

द्विषि निवर्तस्व कान्त गच्छेति । यातं दम्पत्योर्दिन-
मनुगमनावधि सरस्तीरे ॥ १४ ॥ मनसि निविशते स
कोऽपि तापः प्रणयिनि याहुलतान्तरस्थितेऽपि ।
सरसिजमकरन्दगन्धवन्युर्वहति यदेव शनैः शनैः
समीर ॥ १५ ॥ सुग्धा कान्तस्य यात्रोक्तिश्रवणदेव
मूर्च्छित्वा । वृक्ष्वा वकि प्रियं दृष्ट्वा किं चिरेणागतो
भवान् ॥ १६ ॥ यामि न यामीति घये वदति पुर-
स्तात्कृणो न तन्वद्भ्याः । गलितानि पुरोयलयान्य-
पराणि मयैव दलितानि ॥ १७ ॥ यामि प्रियसि वारि-
दागमदिने जानीहि मामागतं चिन्तां चेतसि मा
विधेहि कथयत्येवं सवाण्ये मयि । नि श्वासैः पवना-
यितं धरतनोरङ्गैः कदम्बायितं कान्त्या केतकपत्रका-
यितमहो हृद्यभ्यां पयोदायितम् ॥ १८ ॥ यामीति प्रिय-
पृष्टायाः कान्तायाः करुणवर्त्मनि । वयोजीवितयोरा-
सीद्वह्निनिःसरणे रणः ॥ १९ ॥ यामीत्यप्रियवादिनि

प्रियतमे मुद्राभवत्कङ्कणं केलीसद्यद्विर्हितैकवरो
भूमो शरीरस्थितिः । अन्तर्धानगते पुनर्मृगदृशो
वाच्या किमन्या दशा लाजास्फोट इव स्फुटत्यविरलं
हारोऽपि वामभ्रुवः ॥ २० ॥ यामीत्युक्ते हृदयपतिना
पञ्चशः शङ्खभृपां स्वैरं स्वैरं भ्रुदिति गलिताः पाणि-
पङ्केसहाप्रात् । नो यास्यामीत्यनुपदमिमां वाचमाक-
र्णयन्त्यास्तन्व्याः शेषा अपि चटचटेत्येव भ्रङ्गं समीयुः
॥ २१ ॥ लशा नांशुकपल्लवे भुजलता नो द्वारदेशेऽर्पिता
नो वा पादयुगे तथा निर्पातितं तिष्ठेति नोकं वचः ।
काले केवलमम्बुदालिमल्लिने गन्तुं प्रवृत्तः शठस्तन्व्या
वाष्पजलसौधकल्पितनदीपूरेण रुद्धः प्रियः ॥ २२ ॥ लजां
विहाय रुदितं विधृतः पटान्ते मा गास्त्वमित्युदितम-
ङ्गुलयो मुखेऽस्ताः । स्थित्या पुरः पतितमेव निवर्त-
नाय प्राणेश्वरे ध्वजति किं न कृतं कृशाङ्गया ॥ २३ ॥
सान्वयप्रायैः प्रणयवचनेर्गन्तुमापृच्छमाने कान्ते तिर्य-

वसन्त ऋतु आ गई है अतः अब परदेश जाना उचित नहीं
है ॥ १३ ॥ जब प्रियतम परदेस चले जा रहे थे तब नवेली
उन्हें पहुँचानेके लिये तालाबतक उनके पीछे-पीछे गई । फिर
प्रियतमने आँखोंमें आँसू भरकर कहा—'गृहस्वामिनी ! लौट
जाओ' तो नवेलीने कहा कि 'हे प्रियतम जाओ !' इसी प्रकार
कहते-कहते उर दोनोका पूरा दिन सही बीत गया ॥ १४ ॥
इस समय जब वसलका रस लेकर पवन धीरे-धीरे बह रहा
है तब वहाँमें प्रियतमके रहनेपर भी हृदयमें एक विचित्र सी
तपन उठी जा रही है ॥ १५ ॥ पत्तिका यात्राकी बात सुनते ही
सुन्दरी नवेली मूर्च्छित हो गई । फिर आगकर पत्तिका सामने
देखते ही कह उठी—'क्या आपके आँसू बड़ी देर हो गई ?' ॥ १६ ॥
जैसे ही प्रियतमने कहा कि 'मैं जा रहा हूँ' वैसे ही नवेलीकी
आँसूकी चूड़ियाँ जिसककर तुरन्त गिर गईं और 'न जाऊँगा'
यह कहते ही प्रसन्नताके कारण नवेलीका शरीर ऐसा फूल गया
कि जो चूड़ियाँ वची थीं वे भी टूट गईं ॥ १७ ॥ 'हे प्यारी ! मैं
जा रहा हूँ ! वरान् ऋतु आते ही मैं लौट आऊँगा ! मनमें चिन्ता
न करना !' इस प्रकार आँखोंमें आँसू भरकर मैंने जैसे ही कहा
वैसे ही उस सुन्दरी नवेलीके रवास आँधी बन गय, अङ्ग
फट्फटके फूलके समान खिल उठे, रङ्ग केवड़ेके पत्तेके समान
पीला पड़ गया और आँखें बादल बन गईं ॥ १८ ॥ जैसे ही
प्रियतमने जानेके लिये नवेलीसे पूछा वैसे ही गले-रूपी
रणधैरमें पार्थी तथा जीवनका यह सङ्घर्ष होने लगा कि पहले

कौन बाहर निकलता है ॥ १९ ॥ 'मैं जाता हूँ', यह अग्रिय बात
ज्योंही प्रियतमने सुनाई त्योंही नवेलीकी रँगड़ी कङ्कया बन
गई, जब उन्होंने क्रीडा-गृहके बाहर एक पैर रक्खा तो नवेली
धरतीपर गिर पड़ी और जत्र प्रियतम आँसूके श्रोक्ल हो गए
तो उस मृगनयनीकी और क्या दशा कई ? अरे, उस सुन्दर
भौंहवाली नवेलीका द्वार धानकी खालके समान चट-
चट करके तड़क उठा ॥ २० ॥ प्रियतमने ज्योंही जानेकी बात
छेडी त्योंही नवेलीकी शङ्खकी घनी हुई पाँच छः चूड़ियाँ तत्काल
हाथसे गिर पड़ीं । फिर जैसे ही प्रियतमने कहा कि 'मैं नहीं
जाऊँगा', वैसे ही वह प्रसन्नतासे इतनी फूल उठी कि उसकी
बची-खुची चूड़ियाँ भी चट-चट करके टूट गईं ॥ २१ ॥ जिस
समय बादल आकाशमें भरे पड़े थे उस समय नवेलीने न
तो प्रियतमके वक्क पकड़े, न अपनी मुजाओसे द्वार ही रोका, न
उसके पैरों पड़ी, न उनसे रुकनेके लिये ही कहा किन्तु केवल
बहते हुए आँसू रूपी नदीके प्रवाह मात्रसे ही उस जाते हुए धूर्त
नायकको उसने लौटा लिया ॥ २२ ॥ पत्तिका यात्राके समय
उस दुबले शरीरवाली नवेलीने उसे लौटा लेनेके लिये क्या-
क्या उपाय नहीं किए ? लजा छोड़कर रोने लगी, प्रियतमके
वक्का छोर पकट लिया, कई बार कहा कि 'मत जाहूँ',
दाँतों तले डँगली दवाई और सामने खड़ी होकर गिर भी
पड़ी ॥ २३ ॥ वादस तथा प्रेससे भरी हुई बाँतें चलाकर
जब प्रियतम जानेके विषयमें पूछ रहे थे तो नवेलीने अपना

डनमितवदना रुन्धती वाष्पपूरम् । वीर्घोङ्गासस्यगन-
विकलोत्कम्पि नासापुटान्ता संख्याशून्यं गणयति
मृगीलोचना कङ्कयानि ॥ २४ ॥

नायिकानिर्गमनम्— एषा का मुकुमुका विलुलित-
वसना स्वेदलघ्नान्तवस्त्रा प्रत्युपे याति याला मृग
इय चकिता सर्वतः शङ्कयन्ती । केनेदं वफ्रप्रपन्नं
हायरमधुरसं परिहितं केन पीतं स्वर्गः केनाद्य भुक्तो
हरनयनहृतो मन्मथः कस्य तुरः ॥ १ ॥ गुरुवासा-
दासादितभयदुपालम्भवचसा मुहुः स्मारं स्मारं कथ-
मपि निशीथे समगमम् । इदानीं मुञ्च त्वं दयित
पुनरेष्यामि समभूदुपःकालीनोऽयं चटुलघटकालीकल-
कलः ॥ २ ॥ धम्मिल्लं परिवधती नयमुलैः सीमन्त-
मातन्यती पश्यन्ती नखरोत्सवं कुचयुगे सव्यापसव्यं
मुहुः । नामीसीमनि कुञ्जिताङ्गुलिदलं नीवीमरं
रुन्धती शय्यागारविनिर्गतापि हृदयान्नाद्यापि

निष्कामति ॥ ३ ॥ निद्रानिद्रातुदिते धृत्ते सखी-
जने द्वारपदं परास्ते । श्लयोऽकृताश्लेपरसे भुजङ्गे
चचाल नालिङ्गनतोऽङ्गना सा ॥ ४ ॥ प्रवृद्धायाः
प्रातर्लसदलसदोर्वाङ्गिलयल्यं गलन्मल्लोदास्रः शिथिल-
कवरीवन्धसमये । मियालोके धूर्णत्रयनमखूपस्मेरम-
धुरो मुपे जम्भारम्भी जयति भृशमिन्दीवरदृश ॥ ५ ॥
प्राणेशेन प्रहितनखरेष्वङ्गकेपु क्षणान्ते जातातद्वा रच-
यति चिरं चन्दनालेपनाति । धत्ते लानामसकृदधरे
दन्तदन्तावघाते क्षामाङ्गीयं चकितमन्तश्चलुपी
विच्छिपन्ती ॥ ६ ॥

पानगोष्ठेनर्षणम्— अश्रयान्ययनितानतचित्तं चित्त-
नाधमभिशङ्कितवत्या । पीतभूरिसुरयापि न मेदे
निर्वृतिर्हि मनसो मदहेतुः ॥ १ ॥ अम्रसन्नमपराङ्गि-
रित्यो कोपदीप्तमुरीरुतचैर्षम् । क्षालितं तु शमितं
तु वधूनां द्रावितं तु हृदयं मधुवारैः ॥ २ ॥ अपितं

मुख तिरछे धुमा लिया, निक्कलते हुए धाँसुआँकी धार रोक
लो, लम्बी साँस रोकनेके कारण उसकी नाकके आगेका भाग
कँपने लगा और वह उदासोन होकर अपनी चूँधियाँ गिजने
लगी (कि कितनी डीली होकर निकल गई') । २४ ॥

नवेलीका बाहर निकल : पबराई हुई मृगीके समान
सर्मासे शका करती हुई यह कीन नवेली प्रात काल चली जा
रही है जिसे किसने उपभोग करके छोड़ दिया है, जिसके
पत्र सिकुड़ गए हैं जिसका अन्नल पसीनेसे देहमें चिपक गया
है । इसके अघरूपी अमृतसे भरे हुए मुखरूपी कमलका
किसने उपभोग किया है अर्थात् किसने इसने मुखका सुभ्रन
लिया है और ओठमें दाँत लगाए हैं ? किसने आज स्वर्गका
उपभोग पाया है और शिवजीके नेत्रसे जला हुआ कामदेव
किसपर आज प्रसन्न हो गया है ? ॥ १ ॥ यद्यपि मैं सास ससुरसे
कर रही थी फिर भी आपने मुझे जो उलाहना दिया था उसका
स्मरण करके किसी किसी प्रकार रातमें मैं यहाँ चली आईं ।
हे प्रियतम ! इस समय मुझे छोड़ दो, मैं फिर धा जाऊँगी ।
देखो तद्का हो गया क्योंकि चञ्चल गीर्यौकी चहचहाहट
सुनाई पढ़ने लगी है ॥ २ ॥ बाल सनेटकर बाँधती हुई, नखोंसे
मँगिँ साँघारती हुई, दोनों सतनोंपर लगे हुए नलके चिह्नोंकी
बार-बार दाँप-बाँधें सुँह धुमाकर देखती हुई और उँगलियाँ
देवी करके नामिपर नादेंको रोकती हुई वह प्यारी यद्यपि
शयनागारसे तो बाहर निकल गई किन्तु मनसे नहीं निकल

पा रही है ॥ ३ ॥ सूर्य निकल आया, नाँद सुल गई, सखियाँ
द्वारपर आ खड़ी हुईं, प्रियतमने आलिंगन शिथिल कर
दिया, फिर भी नवेली आलिंगनसे सुँह नहीं मोड़ रही है
॥ ४ ॥ प्रात काल जब नवेली जागी तो उसके बालोंसे बेलके
फूल रुद रहे थे, उसकी बाँहें आलस्यसे ढीली थीं, वह अपने
बिखरे हुए बाल बाँध रही थी, उसी समय जो उसने प्रियतमकी
देखा तो देखते ही उसकी आँखें नाचने लगीं और मन्द
मुस्कराहटके साथ ही बार-बार वह जैमाहवाँ लेने लगी ।
उसका यह वेप अत्यन्त सुन्दर जान पड़ता रहा था ॥ २ ॥
रातमें प्रियतमने जिन अङ्गोंपर लँगोँचे लगा दिए थे उन्हें
प्रात काल किसीके देख लेनेके भयसे नवेली चन्दनके लेपसे
छिपाने लगी, दाँतसे द्विध्र-भिन्न हुए ओठपर लाली चढ़ाने
लगी और यह सब करती हुई वह डुबले पतले शरीरवाली
नवेली चकपकाकर चारों ओर देख भा रही है कि कहीं कोई
देख तो नहीं रहा है ॥ ६ ॥

मदिरा पीनेवालोंकी गोष्ठी : अपने प्राणनाथके
साँतपर मन लगाए देखकर नवेलीका उसपरसे निरवास
हट गया । इसलिये मदिरा पीकर भी यह मतवाली न हट पाई
क्योंकि मनकी प्रसन्नतासे ही तो मस्ती आती है ॥ १ ॥
प्रियतमके अघराव करनेके कारण जो हृदय टुटो या, क्रोधसे
जल रहा था और जिसमें कशेरता आ गई थी वही
नवेलीका हृदय बार-बार मदिरा पीनेके परचाट धो दिया

रसितघन्यपि नामग्राहमन्ययुधतेर्दधितेन । उज्ज्वलित
स्म मद्मप्यपिबन्ती वीक्ष्य मद्यमितरा तु ममाद्
॥ ३ ॥ आगतानगणितप्रतियतान्वल्लभानभिसिसार-
यिपूषाम् । प्रापि चेतसि स विप्रतिसारे सुभ्रुवाम-
वसरः सरकेण ॥४॥ आननैर्विचकसे हृपिताभिर्वल्लभा-
नभितनू भिरभावि । आद्रंतां हृदयमाप च रोषो लालति
स्म वचनेषु वधूनाम् ॥५॥ आहिते नु मधुना मधुरत्वे
चेष्टितस्य गमिते नु विकासम् । आवभा नव इवो-
द्धतरागः कामिनीष्ववसरः कुसुमेपोः ॥ ६ ॥ श्रोष्ठ-
पल्लवध्वदशरुचीनां हृद्यतामुपययां रमणानाम् । कुल-
लान्वनविनीलसरोजेरङ्गनास्यचपकैमधुवारः ॥ ७ ॥
उद्धतेरव परस्परसङ्गादीरितान्युभयतः कुचकुम्भैः ।
योपतामतिमदेन जुघूर्णुंविभ्रमातिशयपुंषि चपुंषि
॥ ८ ॥ कस्याचरत्समदन मदनोयमेयसीवदनपानपरस्य ।

स्वादितः सहृदिविवासय एव प्रत्युत क्षणविदंशप-
देऽभूत् ॥ ६ ॥ कान्तसङ्गमपराजितमन्यो वारुणीर-
सनशान्तविवादे । मानिनीजन उपाहितसन्धौ सन्धे-
धनुषि नेपुमनङ्गः ॥ १० ॥ कान्तानवाधररसामृत-
तृष्णयेव विम्वं पपात शशिनो मधुमाजने यत् । निःशो-
पिते मद्यनि लज्जितचित्तवृत्ति तत्तन्मुखापजितकान्त
तयेव नष्टम् ॥ ११ ॥ कापिशायनसुगन्धि विघूर्णुं
न्मदोऽघिशयितुं समशत । कुल्लष्टि घृदनं प्रमदानाम-
ञ्जचारु चपकं च पडङ्गिः ॥ १२ ॥ कुप्यताशु भय-
तानतचित्ताः कोपितंश्च वरिवस्यत यूनाः । इत्यनेक
उपदेश इव स्म स्वाद्यते युवतिभिर्मधुवारः ॥ १३ ॥
कुर्वता मुकुलिताच्छिद्युगानामङ्गसादमवसादितवा-
चाम् । ईर्ष्ययेव हृरता ह्यियमासां तद्गुणः स्वयम-
कारि मदेन ॥ १४ ॥ कोपयत्यनुनयानगृहीत्वा प्रागधा

गया या शान्त कर दिया गया या पिवला दिया गया ! अथात्
अत्यधिक प्रसन्न हा गया ॥ २ ॥ नवेलीको प्रियतमने सौतेके
नामसे पुकारकर जा मादरा दा उसे पाकर भी वह मतवाली न
हुई । ननु दूसरा मादरा न पाभवाली जा नवेली देख रहा था
वह कबल देखकर हा मतवाला हो गई क्याकि मतवाले-
पनका कारण ता मन हाता है ॥ ३ ॥ जब नवेलाने पासमें
आए हुए प्रियतमकी आव-भगत नहीं की तो वह लौट गया ।
इसपर उसने स्वय ही उसके पास जाना चाहा । उस समय
परधात्ताप करनेवाले उस नवेलीके मनमें घटनेका मदिराको
अच्छा अवसर मिल गया ॥ ४ ॥ मदिरा पीनेसे स्थिरांक
मुख लक्ष भप, पीतेके सामने शरारमें रोमाच हो आया, हृदय
पिघल गया और बात करत समय क्रोधका नामतक नहीं रह
गया ॥ ५ ॥ मदिराने जब नवेलीको अधिक सुन्दर बना
दिया और वे खुलकर व्यवहार करने लगीं, उस समय
कामदेवका नवेलीयापर प्रभाव डालनेका एक नया अवसर मिल
गया क्योंकि उस समय दानोंमें ही अत्यधिक प्रेम बढ़ गया
था ॥ ६ ॥ खिले ईई आँखोंरूपी कमलवाले नवेलीके मुख-

पीते समय चाट लेते ही है, किन्तु कामके वेगमें मतवाला
बना देनेवाले नवेलीके मुखका चुम्बन करते हुए किसी छैलेके
लिये मदिरा ही उलटे चाटका काम करने लगी ॥ ६ ॥ पीतेसे
मिलनेपर जब सुन्दरियोंका क्रोध शान्त हो गया, मदिरा पीनेसे
जब उनका कलह पूरा हो गया तथा क्रोध करनेवाली
नवेलियोंका पीतियोंके साथ मेल मिलाप हो गया तब कामदेवने
व्यर्थ समझकर धनुषपर बाण ही नहीं रक्खा ॥ १० ॥ कोई
सुन्दरी हाथमें मधुका कटोरा लेकर जो मधु पी रही थी उसमें
चन्द्रमाकी परछाईं पड़ रही थी । जब मधु समाप्त हो गया तो
मानो नवेलीके मुखकी कान्तिसे ही उसकी कान्ति समाप्त हो
गई और वह कान्ति मनमें लजाती हुई मानो स्वयं नष्ट हो गई
॥ ११ ॥ खिले हुए नेत्रवाले तथा मदिराकी गन्धसे भरे हुए
नवेलियोंके मुख और कमलसे सुरोभित मदिराका पात्र इन
दोनोंको एक समान देखकर घूमता हुआ मतवाला भीरा इस
दुविधामें पड़ गया किमें कहाँ बैठे ! अर्थात् वह यही नहीं जान
पाया कि कौन मदिरा-पात्र है और कौन नायिकाका मुँह ॥ १२ ॥
मदिरा पाती हुई नवेलियोंको देखकर ऐसा जान पड़ता था

मधुमदाहितमोहा । फोपितं विरहखेदितचिन्ता कान्त-
येव कलयन्त्यनुनिम्पे ॥ १५ ॥ कान्तकान्तयदनप्रति-
विम्बे मग्नवालसहकारसुगन्धौ । स्वादुनि प्रणदिता-
ल्लिनि शीते निर्वधार मधुनोन्द्रियवर्गः ॥ १६ ॥ क्षोण-
यावकरसोऽप्यतिपानैः कान्तदन्तपदसम्भृतशोभः ।
॥ १७ ॥ क्षीयतामुपगतास्यनुयेलं तासु रोपपरितोप-
यतीपु । अग्रहोक्षु सशरं धनुकजभामास नूज्जितनि-
पङ्कमनङ्गः ॥ १८ ॥ गण्डभित्तिपु पुरा सदृशापु व्याञ्जि
नाञ्चितदृशां प्रतिमेन्दुः । पानपाटलितकान्तिपु
पश्चात्प्रोक्षचूर्णतिलकाकृतिरासीत् ॥ १९ ॥ चायता
घपुस्मृयदासां तामनूननवयोवनयोगः । तं पुनमेक
रकेतनलवमीस्तां मदे द्यितसङ्गमभूपः ॥ २० ॥ चित्त-
निर्वृतिनिघायि विधिकं मन्मथो मधुमदः शशिमासः

सङ्गमश्च द्यितैः स्म नयन्ति प्रेम कामपि भुवं प्रम-
दानाम् ॥ २१ ॥ द्युदितः कथमपि प्रपयान्त्यर्थः प्रियं
प्रति चिराय रमण्याः । वारुणीमदविशङ्कमयाविश्र-
जुपोऽभवदसाविध रागः ॥ २२ ॥ तुल्यरुपमसितो-
त्पलमदयोः कर्णं निरुपकारि दिदित्वा । शोयितः
सुहृदिव प्रथिमेजे लम्बितेक्षणकचिर्मदरागः ॥ २३ ॥
दत्तमाचधनं द्यितेन व्यातमातिशयिकेन रसेन ।
सस्वदे सुखसुरां प्रमदाभ्यो नाम रुढमपि च व्युदपादि
॥ २४ ॥ दत्तमिष्टतमया मधु पत्युर्वाढमाप पियतो
रखवत्ताम् । यत्सुचर्णमुकुटांशुमिरासीचेतनाधिरदितं-
रपि पीतम् ॥ २५ ॥ दृश्यते पानगोष्ठीपु कान्तावकप्र-
गतं मधु । स्मरं सहायमासाद्य प्रस्तो राहुरिचेन्दुना
॥ २६ ॥ घाष्णलङ्कितयथोचितभूमौ निर्दयं विलुलि-
तालकमालये । मानिनीरतिविद्यां कुसुमेपुमंभतम

पद गप ॥ १७ ॥ नवेलीने पहले तो क्रोध किया और
प्रियतमकी प्रार्थनाईं टुकरा दीं । फिर विरहसे हुली होकर
तथा मदिराके प्रभावसे अममें पदकर उसने वह समझा
कि मैंने ही पतिके साथ अग्रपथ करके उठईं हट कर
दिया है अतः वह पतिको मनाने लगी ॥ १५ ॥ जिसमें पतिके
मुखकी परछाईं पड़ी हुई थी, जिसमें आमके बीरकी सुगन्ध
बसी हुई थी, जो अग्रयन्त स्वादित थी और जिसमें और
गुन्मार कर रहे थे, ऐसी शीतल मदिरा पी लेनेपर नाक कान
आदि सभी इन्द्रियों सुखी हो गईं ॥ १६ ॥ बार-बार मदिरा
पीनेसे श्रोत्रमें लगी हुई लाली छूट गई, फिर भी प्रियतमके
दौतके चिह्ने उसकी शोभा बढ़ ही रही थी और नवेलीके
श्रोत्रपर पहले भी अधिक ललाई दिखाई पड़ रही थी ॥ १७ ॥
मदिराके प्रभावसे क्षण-क्षणपर मतवाली तथा प्रसन्नता और
क्रोध करनेवाली नवेलियोंपर मानो कामदेवने पहले वायु-
सहित धनुष उठाया, फिर उसे तूणीर-सहित छ्दां भी
दिया ॥ १८ ॥ सुन्दर नयनवाली नवेलियोंके गोरे गालपर
पड़ी हुई चन्द्रमाकी परछाईं पहले समान रङ्ग होनेके कारण
अलग नहीं दिखाई पड़ रही थी किन्तु मदिरा पीनेसे जब उसके
गाल जाल-जाल हो गए तब वही उजली परछाईं लोचके
चूर्णके समान अलग दिखाई देने लगी ॥ १९ ॥ सुन्दरताने
नवेलियोंके शरीरकी, बढ़ी हुई नई जवानिने सुन्दरताकी,
कामदेवकी शोभाने उस जवानिकी, मदने कामदेवकी शोभाकी
तथा पतिके समागमने मद्को अलङ्कृत कर दिया ॥ २० ॥ मनको

प्रसन्न करनेवाला एकान्त स्थान, कामदेव, मदिराका मद,
चन्द्रमाका प्रकाश और प्रियतमका समागम ये सब नवेलीके
प्रेमको बहुत ऊँचे चढ़ा ले गए अर्थात् उसका प्रेम बहुत उच्च
कोटिका हो गया ॥ २१ ॥ कामसे मतवाली नवेलीने पतिके
सामने आँखोंका जो अनुराग बहुत देरतक लाजके कारण
झिपा रक्खा था वही राग (ललाई, प्रेम) मदिरा पी लेनेपर
आँखोंमें स्पष्ट क्लृप्तक उठा ॥ २२ ॥ कानके पास
कजरारी आँखोंके रहते कानके ऊपर पड़े हुए नाँबे कमल
व्यर्थ हैं मानो यही समझकर मित्रके समान मद्की लालीने
नवेलीकी आँखें लाल करके उठईं कमलसे निवृत्त रंगना बना
दिया ॥ २३ ॥ जब प्रियतमने प्रेमिकाका सुख पकड़कर
उसमें अग्रयन्त स्वादित मदिरा उँकेली और वह उसे बहुत ही
रवादित जान पड़ी, उसी समय उसका 'प्रमदा' नाम सार्थक
हो गया अर्थात् वह मदिरा पीकर मतवाली बन गई ॥ २४ ॥
प्रेमिकाके हारमें ही हुई मदिरा पीते हुए प्रियतमको वह बहुत
ही स्वादित जान पड़ी तभी तो सोनेके मुकुटकी निर्जोव किरयोंने
भी उसे पी डाला (पीली बना दिया) ॥ २५ ॥ मदिरा
पीनेवालीकी वैठकमें, नवेलीके मुखमें पड़ी हुई मदिरा ऐसी
दिखाई दे रही है मानो कामदेवकी सहायता पाकर चन्द्रमाने
राहुको प्रस लिया हो ॥ २६ ॥ नवेलियोंकी जिस रतिक्रीडाने
दिखाईके कारण मयादाका ध्यान नहीं रह गया था और कसकर
होचनेसे बालोंके फूल बिखर गए थे उसमें पहुँचकर कामदेव
पागलका-सा व्यवहार करने लगा ॥ २७ ॥ मदिरा पीते

रसितवत्यपि नामग्राहमन्ययुयतेर्दयितेन । उज्झति
स्म मद्मन्थपियन्ती योक्ष्य मघमितरा तु ममाद् ॥ ३ ॥
आगतानगणितप्रतियातान्वल्लभानभिसिसार-
यिपूणाम् । प्रापि चेतसि स चिप्रतिसारे सुभ्रुवाम-
वसरः सरकेण ॥४॥ आननैर्विचकसे हृपिताभिर्वल्लभा-
नमितनू भिरभाधि । आद्रेतां हृदयमाप च रोषो लालति
स्म वचनेपु वधूनाम् ॥५॥ आहिते नु मधुना मधुरत्ये
चेष्टितस्य गमिते नु विकारसम् । आवभा नव इयो-
द्धतरागः कामिनीप्यवसरः कुसुमेपोः ॥ ६ ॥ श्रोष्ठ-
पल्लवाद्यदंशकूर्चानां हृद्यतामुपययां रमणानाम् । फुल्ल-
लांचनघिनीलसरोजैरङ्गनास्यचपकैर्मधुवारः ॥ ७ ॥
उद्धर्ताव परस्परसद्भादीरितान्युभयतः कुचकुम्भैः ।
योपितामतिमदं नु सुधुण्विभ्रमातिशयपुपि वपूयि ॥
८ ॥ कस्यांचित्समदन मदनोपमेयसीवदनपानपरस्य ।

गया या शान्त कर दिया गया था पिचला दिया गया ? अथात्
अत्यधिक प्रसन्न हा गया ॥ २ ॥ नवेलीको प्रियतमने सीतेके
नामसे पुकारकर जा मादरा ही उसे पाकर भी वह मतवाली न
हुई । इन्हीं दूसरा मादरा न पानवाली जा नवेली देख रही थी
जब कवल देखकर हा मतवाली हो गई क्योंकि मतवाली-
पनका कारण ता मन हाता है ॥ ३ ॥ जब नवेलीने पासमें
आप हुए प्रियतमकी आव-भगत नहीं की तो वह खीट गया ।
इसपर उसन स्वयं ही उसके पास जाना चाहा । उस समय
परधात्ताप करनेवाले उस नवेलीके मनमें ईदनेका मदिराको
अच्छा अवसर मिल गया ॥ ४ ॥ मदिरा पानेसे रिश्रयोके
मुख लखल गए, पालके सामने शरारमें रोमांच हो आया, हृदय
पिचल गया और बाट करत समय क्रोधका नामतक नहीं रह
गया ॥ ५ ॥ मादराने जब नवेलीकोके अधिक सुन्दर बना
दिया और वे खुलकर व्यवहार करने लगीं, उस समय
कामदेवका नवेलियापर प्रभाव डालनेका एक नया अवसर मिल
गया क्योंकि उस समय दानोंमें ही अत्यधिक प्रेम बढ़ गया
था ॥ ६ ॥ खिली हुई प्रालीरूपी कमलवाले नवेलीके मुख-
रूपी मधुपात्रसे ली गई मदिरा बीच-बीचमें नवेलियाकी शोठ-
रूपाघाट चखनेवाले कर्मियोंको भ्रान्त भली जान पड़ी
॥ ७ ॥ मदिराका प्रभाव बढ़ जानेपर अनेक प्रकारके हाव-
भाव करता हुई नवेलीयोके डगमगाते हुए शरीर ऐसे जान
पड़ रह थे मानों एक दूसरेका सहारा पाकर मद्में चूर स्तन
उसे दोनों भ्रोक्री लीच रहे हों ॥ ८ ॥ यों तो लोग मदिरा

स्वादितः सक्कदियासव एव प्रत्युत क्षणचिदंशप-
देऽभूत् ॥ ९ ॥ कान्तसङ्गमपराजितमन्यौ चाक्षीर-
सनशान्तविवादे । मानिनीजन उपाहितसन्धौ सन्दधे
घनुपि नेपुमनङ्गः ॥ १० ॥ कान्तानवाधररसामृत-
तृण्येय चिन्व पपात शशिनी मधुभाजने यत् । निःशे-
पिते मच्चि लज्जितचिसवृत्ति तत्तन्मुखापजितकान्ति-
तयेव नष्टम् ॥ ११ ॥ कापिशायनसुगन्धि विधुण्वन्नु-
न्मदोऽधिष्यति समशेत । फुल्लदृष्टि वदनं प्रमदानाम-
ध्वजरा चपकं च पडङ्गभिः ॥ १२ ॥ कुप्यताश्च भव-
तानतचित्ताः कोपितश्च वरिवस्यत यूयः । इत्येक
उपदेश इव स्म स्वाद्यते युवतिभिर्मधुवारः ॥ १३ ॥
कुर्वता मुकुलिताङ्गिदुगानामङ्गसादभवसादितवा-
चाम् । ईर्ष्येयव हरता हियमासां तद्गुणः स्वयम-
कारि मदेन ॥ १४ ॥ कोपवात्यनुनशानशुद्धीत्वा प्रागथा

पाने समय चाट लेते ही है, किन्तु कानके वेगमें मतवाला
बना देनेवाले नवेलीके मुखका चम्बन करते हुए किसी छैलेके
खिचे मदिरा ही उलटे चाटका काम करने लगी ॥ ६ ॥ पतिते
मिलनेपर जब सुन्दरियोंका क्रोध शान्त हो गया, मदिरा पीनेसे
जब उनका कलह पूरा हो गया तथा क्रोध करनेवाली
नवेलियोंका पतियोंके साथ मेल-मिलाप हो गया तब कामदेवने
स्वयं समझकर अनुपपर बाण ही नहीं रक्वा ॥ १० ॥ कोई
सुन्दरी हाथमें मधुका कदोरा लेकर जो मधु पी रही थी उसमें
चन्द्रमाकी परछाईं पड़ रही थी । जब मधु समाप्त हो गया तो
मानो नवेलीके मुखकी कान्तिसे ही उसकी कान्ति समाप्त हो
गई और वह कान्ति मनमें लजाती हुई मानो स्वयं नष्ट हो गई
॥ ११ ॥ खिले हुए नेत्रवाले तथा मदिराकी गन्धसे भरे हुए
नवेलियोंके मुख और कमलसे सुरोमित मदिराका पात्र इन
दोनोंको एक समान देखकर वृमता हुआ मतवाला भौरा इस
दुविधामें पड़ गया कि मैं कहाँ बैँहूँ ? अर्थात् वह यही नहीं जान
पाया कि कौन मदिरा-पात्र है और कौन नायिकाका मुँह ॥ १२ ॥
मदिरा पाती हुई नवेलियोंको देखकर ऐसा जान पड़ता था
मानो वे मदिराके रूपमें इस प्रकारके अनेक उपदेश दिए जा
रही हों कि शीघ्र ही क्रोध करो और सरल चित्त बन जाओ,
रूठ बनाए हुए प्रियतमको थपने अनुकूल बना लो ॥ १३ ॥
मदिराका मद् नवेलीकी लाज भगाकर डाहके कारण मानो
स्वयं ही लजाका काम करने लगा । तभी तो उस समय
नवेलीकी प्रालि हुई गईं, यानी एक गई और अन्न ढीले

चारणीमतिरसां रसयित्वा । ह्रींघिमोहविरहादुपलेभे
पाठं च तु हृदयं तु वधुभिः ॥ ४० ॥ भर्तृपुंससखि
निक्षिपतीनामात्मनो मध्मदोद्यमितानाम् । व्रीडया
विफलया वनितानां न स्थितं न विगतं हृदयेषु ॥ ४१ ॥
भ्रूलिलासमुभगाननुकुर्वन् विभ्रमानिव वधूनयथानाम् ।
श्राद्धे मृदुविलोलपलारौक्तेपल्लेभ्यपक्रवीचिषु कम्पः
॥ ४२ ॥ मद्यमन्दविगलत्रपमोच्चक्षुस्मिपितपद्म
दधत्या । वीक्ष्यते स्म शनर्नैर्नववध्या कामिनो मुख-
मधोमुखयैव ॥ ४३ ॥ मा गमन्मदविमृढविधियो नः
भोज्ज्मय रन्तुमिति शङ्कितनाथाः । योपितो न मदिरां
मृशमोषुः प्रेम पश्यात भयान्यपदेऽपि ॥ ४४ ॥ मान-
मङ्गपटना सुरतेच्छ्यां तन्त्रता प्रथयता दृशि रागम् ।
लेभिरे सपदि भावयथान्तर्योपितः प्रणयिनेव भदेन
॥ ४५ ॥ मा पुनस्तमभिसीसरमागस्कारिणं मध्विमो-

हितचिन्ता । योपिदित्यभिललाप न हारां दुस्त्यजः
रज्जु सुखादपि मानः ॥ ४६ ॥ मूर्तिमन्तमित्र रागर-
सौधं ते परस्परसमपितवन्नाः । श्राननासत्रमिपेण
तदानीमक्षिपन्त हृदयेषु युवानः ॥ ४७ ॥ या कथञ्चन
सखीवचनेन प्रागभिप्रियतमं प्रजगल्भे । व्रीडजात्रम-
भजन्मधुषा सा स्वां मदात्यकृतिमेति हि सर्वं ॥ ४८ ॥
योपिदुद्धतमनोभयरागा मानत्रयपि यथो दृथिताङ्कम् ।
कारयत्यभिभृता गुणदोषे वारुणो खलु रहस्ययिभे
दम् ॥ ४९ ॥ रागकान्तनयनेषु नितान्त विद्वुमारुण
कपोलतलेषु । सर्वगापि दृशे वनितानां दर्पणेन्द्रिय
मुषेषु मद्दधीः ॥ ५० ॥ रुन्धती नयनवाञ्छयिकासं
सादितोभयकरा परिरम्भे । व्रीडितस्य ललितं युव
तीनां क्षीयता बहुगुणैरनुजङ्हे ॥ ५१ ॥ रूपमप्रतिवि
धानमनोर्द्धं प्रेम कार्यमनोपेक्ष्य विकासि । चाट्ट चाट्ट

पीकर सुन्दरियोंकी लजा तथा उनका भोजापन दूर हो गया ।
उस समय यह नहीं जान पड़ता था कि नवेलियोंमें यह कोई
नई चतुरता या गई है या उन्हें कोई दूसरा सुन्दर-सा हृदय
मिल गया है ॥ ४० ॥ नवेलियोंमें मदिरा पीनेसे उत्साह
था गया और उन्होंने मदिराओंके सामने ही अपने शरीर
प्रियतमोंको सौंप दिए । उस समय उनके हृदयमें रहनेवाली
जान ऐसी व्यर्थ हो गई कि न तो वह ठहर ही सकी, न जा
ही सकी ॥ ४१ ॥ मदिराके पाश्र्वमें दिलती हुई कोमल बखल
पहुँचियाँ ऐसी खगती थीं मानो नवेलियाँकी दिलती हुई भाँहाँसे
मनाहर शौँलोंकी चेताशोक श्रुत्तरण्य कर रही हों ॥ ४२ ॥
मदिरा पीनेसे जिसकी लजा कम हा गई है और जिसकी
शौँलोंकी बरीनियों बुद्ध ऊपर उठी हुई है ऐसी गई वधाही
हुई नवेली नीचे मुन्य करके छिपे छिपे पतिका मुप देव रही
है ॥ ४३ ॥ जिन नवेलियोंको अपने प्रियतमोंपर वह सन्देह
था कि मदिरा पीकर जब हम मदमें पुर हो जायेंगी तो हमें
छोड़कर वे कहीं दूसरी स्त्रीसे संभोग करने न चले जायें उन्होंने
मदिरा ही नहीं पी क्योंकि प्रेम तो बिना कारणके भी धीरूना
रहता है ॥ ४४ ॥ प्रियतमके समान ही मदिराके प्रभावने
नवेलीका क्रोध दूर कर दिया और उसमें समागमकी इच्छा
व्यपन्न कर दी, शौँलोंमें राग (खलाई, प्रेम) ला दिया तथा
हृदयमें प्रेम भर दिया ॥ ४५ ॥ मदिराके प्रभावसे अचेत
शेकर और यह निश्चय करके कि 'निर उस अघराओके पास न
जाऊँगी' नवेलीने मदिरा नहीं पीनी वधाही क्योंकि नवेलियों

सुखको उतना महत्त्व नहीं देती जितना रुन्धेकी देती है
॥ ४६ ॥ एक दूसरेके सुखसे सुख मिलाकर अपने अपने
सुखकी मदिरा एक दूसरेके सुखमें डालते हुए प्रेमी-प्रेमिका
प्रेमे जान पड़ रहे हैं मानो उस समय मदिराके रूपमें वे
एक दूसरेके हृदयमें दर्शनीय प्रेमरसका प्रवाह डाल रहे हों
॥ ४७ ॥ जो नवेली पहले सखियोंके समकानेपर किसी-
किसी प्रकार पतिले शौँलें मिलाती थी वही नवेली मदिरा
पी लेनेपर लज्जीली तथा सरज हो गई क्योंकि सभी लोग
मदिरा पीकर अपने स्वभावमें आ जाते हैं अथाव् मनका
सारा भेद भाव बाहर निकाल देते हैं ॥ ४८ ॥ मदिरा
पीकर रुठी हुई नवेली काम तथा प्रयत्न प्रेमके वशमें
थाकर पतिकी गोदमें आ पडी क्योंकि मदिराका वह
स्वभाव होता है कि वह गुण तथा दोषपर विचार न करके
मनके छिपे हुए भावोंको प्रकट करा देती है ॥ ४९ ॥ यद्यपि
सुन्दरीके सारे शरीरमें मद्की शोभा थी किन्तु दर्पणके
समान वह उसके उस सुखमें ही रुकक रही थी जिसमें लाल-
लाल सुन्दर नेत्र शोभित थे और गाल रूंगेके समान गाँडे
लाल रङ्गके हो जानेके कारण रसिले हो गए थे ॥ ५० ॥ अपने
गुणोंके कारण मद्की मस्ती ठीक लजा जैसी चेताएँ करने लगी
क्योंकि उस समय नवेलियोंके नेत्र सुँदने लगे, बायीं रुक गई
और आसिगनके समय दोनों हाथ डीले पड़ गए ॥ ५१ ॥
बिना बनावटवाला सुन्दर रूत, अकारण वटा हुआ प्रेम,
नवेलियोंकी स्वामयिक चिकनी सुपटी पाँते ये सब उनके

इव विधममाप ॥ २७ ॥ नियतमिह पतन्ति दन्तघाटा
मदनमदोद्धतयोरिति च भीत्या । अधरकिसलयं
विहाय यूनोर्मधु पिवतीर्नयान्मुपास्त रागः ॥ २८ ॥
पातुमाहितरतीन्मिलेभुस्तर्पतन्त्ययोरुत्तरसानि ।
सस्मितानि वदनानि घृणतां सोरपलानि च मधूनि
युवानः ॥ २९ ॥ पानघोतनवयावकरागं सुभूयो
निभृतचुम्बनदक्षाः । प्रेयसामधररागसेन सर्वं किला
भरमुपालि ररञ्जुः ॥ ३० ॥ पिपि प्रिय सस स्वयं
मुमु मुखासवं देहि मे तत त्यज दुडु द्रुतं भभम भाजनं
काञ्चनम् । इति स्खलितजल्पितं मदवशात्कुरङ्गीदृशः
प्रगे हसितहेतवे सहचरीभिरभ्येयत ॥ ३१ ॥ पीतव-
त्यभिमतं मधुतुल्यस्वादमोष्ठरुचकं विददङ्गो । लभ्यते
स्म परिरेकतयात्मा वाचकेन वियतापि युधत्याः ॥
३२ ॥ पीतशीधुमधुरैर्मिथुनानामाननैः परिहृतं
चपकान्तः । व्रीडया रुदद्विवालिचिरावैर्नलनीरजम-

समय प्रेमी-प्रेमिकाके कोंपलोंके समान ओठोंकी लाली मानो
हूसी दरसे श्रोत्र झोड़कर नयनोंमें जा बसी कि अब कामके
मदमें चूर होनेपर इन दोनोंके दाँतोंकी धारें निमित्त ही
मुष्पर टूट पड़ेगी ॥ २८ ॥ नित, नये स्वादवाले, खुमा
लेनेवाले श्रौर मनमें प्रेम बढ़ानेवाले नबेलियोंके मुस्कराते
हुए मुख श्रौर कमलसे सजी हुई मदिरा दोनोंका ही तरुण
पुरुष स्वाद लेना चाह रहे थे ॥ २९ ॥ चूमनेसे नबेलियोंके
ओठोंकी लाली छूट गई थी इसलिये उन्होंने सखियोंके सामने
ही चुपकेसे प्रियतमोंके मुख चूमकर उनके श्रोत्रोंपर लगी हुई
पानकी लालीसे अपने श्रोत्र हैंग लिए ॥ ३० ॥ हे पि...
पि... प्रियतम] आप स-स... स्वयं अपने मु-मु...मुखसे
म... म... मदिरा पिनाइए और शी-शी... शीघ्र ही सोनेका
प-प... पात्र न... न... नीचे रख दीजिए' इस प्रकार मृगनयनीने
रातमें मदके कारण लड़कहाती हुई बोलियोंमें जो बातें पतिले
वही थीं वे ही बातें प्रातःकाल सखियों हैंसी करनेके
लिए वैसे ही दुहराने लगीं ॥ ३१ ॥ श्रोत्र चूमनेकी हृद्वावाला
पति जब मदिराके समान स्वादवाले सुन्दर श्रोत्रको
चूमने लगा तो यद्यपि श्रोत्रकी लाली छूट गई थी फिर भी
शुभ्रनसे वह मुद्रा लाल हो गया ॥ ३२ ॥ प्रेमी श्रौर प्रेमिका
दोनोंके मुख मदिरा पीनेसे सुगन्धित हो गए थे अतः सुगन्धिके
जिबे बाजे हुए जिस नीले कमलकी उन्हीं मदिरा-पात्रमें ही
पीए दिया था उसपर गूँते हुए भीरेको देखकर जान पड़ा

गच्छद्वयस्तात् ॥ ३३ ॥ पीतस्तुपारकिरणो मधुनेव
सार्धमन्तः प्रविश्य चपकप्रतिविम्बवर्ती । मानान्धका-
रमपि मानवतीजनस्य नूनं विभेद यदसौ प्रससाद्
सद्यः ॥ ३४ ॥ प्रातिभं त्रिसरकेण गतानां चक्रवाक्य-
रचनारमणीयः । गृहसूचितरहस्यसहासः सुभ्रुवां
प्रवृत्ते परिहासः ॥ ३५ ॥ प्राप्यते शुण्वतापि गुणातां
व्यक्तमाश्रयवशेन विशेषः । तत्तया हि दयिताननदत्तं
व्यानशे मधु रसातिशयेन ॥ ३६ ॥ वद्धकोपविद्धतीरपि
रामश्चास्तामितततामुपनिन्ये । वश्यतां मधुमदी
दयितानामात्मवर्गहितमिच्छति सर्वः ॥ ३७ ॥ बिम्बितं
भृतपरिस्मृति जानम्भाजने जलजमित्यवहायाः ।
प्रातुमक्षि पतति भ्रमरः स्म भ्रान्तिभाजि भवति क
चिवेकः ॥ ३८ ॥ बिम्बितो मधुरतामितामत्रं रागिभिर्गु-
गपदेव पपाते । आननैर्मधुरसो विकसद्भिर्नासिकाभि-
रसितोत्पलगन्धः ॥ ३९ ॥ भर्तृभिः प्रणयसम्भ्रमदत्तं

था मानो नबेलीके मुखसे विडुड़नेके कारण वह रोता हुआ
जलासे मुख छिपानेके लिये नीचे चला गया हो ॥ ३३ ॥
मदिरा-पात्रमें चन्द्रमाकी जो परछाईं पडी थी उसके साथ
ही नबेलियोंने मदिरा पी डाली । अतः इस चन्द्रमाके
भीतर जाकर रूठी हुई नबेलियोंका कोषरूपी अन्धकार
हटा दिया जिससे वे अन्ध प्रसन्न हो गईं ॥ ३४ ॥ तीन बार
मदिरा पीनेसे नबेलियों हुद्धि बढ़ गई अतः वे एक दूसरेपर
अत्यधिक लुडीजी बोली बोल-बोलकर श्रौर छिपी हुई भेदकी
बातें खोल खोलकर आपसमें हैंसी करने लगीं ॥ ३५ ॥
गुणवानोंके भी गुण सुन्दर सदाश पाकर बढ़ जाते हैं इसीलिये
तो नबेलियोंके मुखमें पड़ी हुई मदिरा भी अत्यन्त स्वादिष्ट
हो गई ॥ ३६ ॥ मदिराके मद (पुलिङ्ग) ने कोंपसे बिगडी
हुई नबेलियोंको अत्यन्त सुन्दर बनाते हुए उन्हें प्रेमियोंके
बचमें कर दिया । क्योंकि अपने पच्छाहित सभी चाहते हैं
(अर्थात् मद पुलिङ्ग है श्रौर पुरुष पुरुषकी ही भलाई चाहते
हैं) ॥ ३७ ॥ मदिराके भर हुए पात्रमें नबेलीके नेत्रको
परछाईंको कमल समझकर भौरा सूँघनेके लिये दीढ़ रहा
था । भला भ्रममें बड़े हुएको कहीं विचार रह जाता है ।
॥ ३८ ॥ अत्यधिक प्रेममें भरे हुए प्रेमীগण्य एक साथ ही प्रसन्न
मुख श्रौर फुलाए हुए नयनोंसे अत्यन्त स्वादिष्ट मदिराका
रस पीने लगे श्रौर नीले कमलकी सुगन्ध सूँघने लगे ॥ ३९ ॥
अत्यधिक प्रेमसे प्रियतमने जो अत्यन्त स्वादिष्ट मदिरा दी, उसे

वारुणीमतिरसां रसयित्वा । हीमिमोहविह्वलादुपलेभे
पाटवं तु हृदयं तु वधूमिः ॥ ४० ॥ भर्तृपूषसपि
निक्षिपतीनामात्मनो मध्मदोचमितानाम् । व्रीडया
विकलया धनितानां न स्थितं न विगतं हृदयेषु ॥ ४१ ॥
भ्रूलिलाससुभगाननुक्तुं विभ्रमानिव वधूनयनानाम् ।
आददे मृदुविलोलपलाशौक्यपलैश्चपकवीचिषु कल्पः
॥ ४२ ॥ मयमन्दविगलत्रपमापच्चक्षुरन्मिपितपचम
दधत्या । वीक्ष्यते स्म शनकैर्नवपध्वा कामिनो मुख-
मधोमुखयैव ॥ ४३ ॥ मा गमन्मद्विन्दुदधियो नः
प्रोन्मय रन्तुमिति शङ्कितनाथाः । योपितो न मदिर्वा
मृशमीषुः प्रेम पश्यत भयान्यपदेऽपि ॥ ४४ ॥ मान-
भङ्गपटुना सुस्तेच्छ्यां तन्त्रता प्रथयता दृशि रागम् ।
लेभिरे सपदि भावयतान्तयौपितः प्रणयिनेव मदेन
॥ ४५ ॥ मा पुनस्तमभिर्सीसरमागस्कारिणं मद्विमो-

हितचिन्ता । योपिदित्यमिललाय न हारां दुस्म्यजः
एतु सुखादपि मानः ॥ ४६ ॥ मूर्तिमन्तमिष रागर-
सौघं ते परस्परसर्मापितयन्त्रा । आननासमपिणेण
तदानीमक्षिपन्त हृदयेषु युवानः ॥ ४७ ॥ या कथञ्चन
सरलोचनेन प्रागभिप्रियतमं प्रजगत्मे । व्रीडजाट्यम-
भजन्मधुषा सा स्यां मदाप्रकृतिमेति हि सर्वं ॥ ४८ ॥
योपिदुद्धतमनोभररागा मानय्यपि ययो दयिताङ्कम् ।
कारयत्यनिभृता गुणदोषे वारुणी एतु र्दुस्म्यजिमे
दम् ॥ ४९ ॥ रागकान्तनयनेषु नितान्त विदुमाद्यण
कपोलतलेषु । सर्वगापि दृश्ये वनितानां दर्पणेष्विष्य
सुरेषु मद्भ्योः ॥ ५० ॥ रुन्वती नयनवाक्यविक्रासं
सादितोभयकरा परिस्मै । व्रीडितस्य ललितं युव
तीनां वीचता बहुगुणैरनुजहे ॥ ५१ ॥ रूपमप्रतित्रि
धानमनोई प्रेम कार्यमनपेक्ष्य विक्रासि । चाट्ट चाट्ट

पीकर सुन्दरियोंकी लजा तथा उनका भोजापन दूर हो गया ।
उस समय यह नहीं जान पड़ता था कि नवेलियोंमें यह कोई
नई चतुरता था गई है या उन्हें कोई दूसरा सुन्दर-सा हृदय
मिल गया है ॥ ४० ॥ नवेलियोंमें मदिरा पीनेसे उत्साह
था गया और उन्होंने सखियोंके सामने ही अपने शरीर
प्रियतमोंको सौंप दिए । उस समय उनके हृदयमें रहनेवाली
लाज ऐसी च्यर्थ हो गई कि न तो वह ठहर ही सकी, न जा
ही सकी ॥ ४१ ॥ मदिराके पायोंमें हिलती हुई कौमल चञ्चल
पहुँचियाँ ऐसी लगती थीं मानो नवेलियाँकी हिलती हुई भाँहोंसे
मनोहर श्रॉलोंकी चेटाओंका अनुकरण कर रही हों ॥ ४२ ॥
मदिरा पीनेसे जिसकी लजा कम हा गई है और जिसकी
श्रॉलोंकी वरीनियों लुप्त रूपर उठी हुई हैं ऐसी नई देवाही
हुई नवेली नीचे मुद्र करके छिपे छिपे पतिका मुख देव रही है ॥ ४३ ॥ जिन नवेलियोंको अपने प्रियतमोंपर यह सन्देह
था कि मदिरा पीकर जब हम मदमें चूर हो जायँगी तो हमें
छोड़कर ये कहीं दूसरी स्त्रीसे संभोग करने न चले जायँ उन्होंने
मदिरा ही नहीं पो क्योंकि प्रेम तो बिना कारणके भी धौरुन्ना
रहता है ॥ ४४ ॥ प्रियतमके समान ही मदिराके प्रभावने
नवेलीका ऋष दूर कर दिया और उसमें समागमकी हृष्टा
उत्पन्न कर दी, श्रॉलोंमें राग (खलाई, प्रेम) ला दिया तथा
हृदयमें प्रेम भर दिया ॥ ४५ ॥ मदिराके प्रभावसे अचेत
होकर और यह निश्चय करके कि 'फिर उस अपराधीके पास न
जाऊँगी' नवेलीने मदिरा नहीं पीनी चाही क्योंकि नवेलियों

सुलको उतना महत्त्व नहीं देती जितना रुन्वेको देती है
॥ ४६ ॥ एक दूसरेके सुनते सुख मिलाकर अपने अपने
सुपकी मदिरा एक दूसरेके सुखमें डालते हुए प्रेमी-मैमिका
ऐसे जान पड़ रहे हैं मानो उस समय मदिराके रूपमें वे
एक दूसरेके हृदयमें दर्यानीय प्रेमरसका प्रवाह दाज रहे हों
॥ ४७ ॥ जो नवेली पहले सखियोंके समझानेपर किस्सो-
किस्सो प्रकार पनिसे श्रॉलें मिलाती थी वही नवेली मदिरा
पी लेनेपर लजीली तथा सरत हाँ गई क्योंकि सभी लोग
मदिरा पीकर अपने स्वभावमें धा जाते हैं अथवा मनका
सारा भेद-भाव बाहर निकाल देते हैं ॥ ४८ ॥ मदिरा
पीकर रुठी हुई नवेली काम तथा प्रयत्न प्रेमके वरामें
आकर पतिका गोदमें धा पकी क्योंकि मदिराका यह
स्वभाव होता है कि वह गुण तथा दोषपर विचार न करके
मनके छिपे हुए भावोंको प्रकट करा देती है ॥ ४९ ॥ यद्यपि
हृन्दरीके सारे शरीरमें मदकी शोभा थी किन्तु दर्पणके
समान वह उसके उस सुखमें ही क्लृप्त रही थी जिसमें लाञ्छ-
लाल सुन्दर नेत्र शोभित थे और गाल झुँकके समान गाडे
लाल रङ्गके हो जानेके कारण रसीले हो गए थे ॥ ५० ॥ अपने
गुणोंके कारण मदकी मस्ती ठीक लजा वैसी चेष्टाएँ करने लगीं
क्योंकि उस समय नवेलियोंके नेत्र मुँदने लगे, वारुणी रक्त गईं
और आलिंगनके समय दोनों हाथ धीले पड़ गए ॥ ५१ ॥
बिना बनावटवाला सुन्दर रून, अक्षराय बदा हुआ प्रेम,
नवेलियोंकी स्वामाविक चिन्की सुपकी वारुणी से सब उनके

तकसम्भ्रममासां कार्मणत्वमगमन्मणेषु ॥ ५२ ॥
 लब्धसौरभगुणो मदिरासामङ्गनास्यचपकस्य च गन्धः ।
 मोदितालिरितरेतरयोगादन्यतामभजतातिशयं तु
 ॥ ५३ ॥ लीलपैव सुतनोस्तुल्यित्वा गौरवाढ्यमपि
 लावणिकेन । मानवञ्जनविदा वदनेन क्रोतमेव हृदयं
 दयितस्य ॥ ५४ ॥ लोचनाधरकृताहृतरागा वासिता-
 ननविशोषितागन्धा । वादुषी परगुणात्मगुणानां व्यत्ययं
 विनिमयं तु वितेने ॥ ५५ ॥ वाससां शिथिलतामुप-
 नाभि हीनिरासमपदे कुपितानि । योपितां विदधती
 गुणपक्षे निर्ममार्जं मदिरा वचनोपम् ॥ ५६ ॥ धीद्वय
 रत्नचपकेष्वतिरिकां कान्तदन्तपदमएडनलक्ष्मीम् ।
 जङ्घिरे बहुमताः प्रमदानामोष्ठयावकनुदो मधुवाराः
 ॥ ५७ ॥ शङ्कयान्ययुधतां वनिताभिः प्रत्यभेदि दयितः
 स्फुटमेव । न क्षमं भवति तत्त्वविचारे मत्सरेण हत-

संवृति चेतः ॥ ५८ ॥ शीघ्रुपानविधुरासु नियुहन्मान-
 माशु शिथिलीकृतलज्जः । सङ्गतासु दयितेषुपलेभे
 कामिनीषु मदनो नु मदो नु ॥ ५९ ॥ शीघ्रुपानविधुरेषु
 वधूनां भिन्नतामुपगतेषु वपुषु । ईहितं रतिरसाहि-
 तभावं वीतलक्ष्यमपि वामिषु रेजे ॥ ६० ॥ सज्जितानि
 सुरमीलयथ यूनामुल्लसद्यनधारिर्कहाशि । आययुः
 सुघटितानि सुरायाः पात्रतां प्रियतमावदनानि ॥ ६१ ॥
 सन्तमेव चिरमप्रकृतत्वाद्प्रकाशितमदियुतदङ्गे ।
 विभ्रमं मधुमदः प्रमदानां धातुलोनुपसर्गं श्वार्थम्
 ॥ ६२ ॥ सागसि प्रियतमे कृतकोपा याद्विभ्रियुगमपति-
 तेऽपि न तुष्टा । सैव मद्यपरिलुप्तविधेका तं तथैव
 परितोपयति स्म ॥ ६३ ॥ सावशेषपदमुक्तमुपेक्षा
 त्रस्तमालयवसनाभरणेषु । गन्तुमुत्थितमकारणतः
 स्म द्योतयन्ति मद्भिन्नममासात् ॥ ६४ ॥ सोपचार-

पतियोंके लिये वशीकरण बूटी बन गई ॥ १२ ॥
 नवेलीके मुख-रूपी पात्रसे मदिराका संयोग होनेपर जो
 सुगन्ध अधिक बढ गई उससे भीरे अधिक प्रसन्न थे अतः
 वह नहीं जान पडा कि उस गन्धमें ही नवीनता आ गई यह वह
 गन्ध ही कुछ अधिक बढ गई ॥ १३ ॥ जैसे तौलमें घोखा
 देनेवाला कोई दमकका व्यवसायी तौलकर भारी बस्तु
 ले लेता हो उसी प्रकार सुन्दरीका अहंकार दूर करनेवाले
 मुखने प्रियतमके गभीर हृदयको भी सरलतासे हल्का करके
 वशमें कर लिया ॥ १४ ॥ मदिराने बस्तुओंके गुणोंमें क्या
 उलटफेर या अदला बदली कर दी क्योंकि थोठकी ललाई
 श्रॉलोंमें छा गई और मुखमें रहनेसे मदिरामें भी अत्यधिक
 सुगन्ध आ गई ॥ १५ ॥ नाभिपरका बख डीला होना,
 लज्जाका दूर हो जाना और अस्मयमें क्रोध करना ये सब पि
 सुन्दरियोंके लिये अत्यन्त निन्दनीय बातें हैं किन्तु मदिराने
 इन सभी दोषोंको उस समय गुण बना दिया ॥ १६ ॥
 श्रोत्रपर लगी हुई लालीका रङ्ग छुट्टा देनेवाली भी मदिरा
 कामिनीयोंको अत्यधिक प्यारी जान पड़ी क्योंकि लाली छूट
 जानेपर श्रोठमें प्रियतमके दाँतका जो चिह्न स्पष्ट हो गया था
 उसकी परछाईं रत्नसे बने मदिरा पात्रमें झलकने लगी थी
 ॥ १७ ॥ दूसरी खीपर पतिका प्रेम होनेके सन्देहमें नवेलीने
 पतिको फटकार दिया । जिन लोगोंका हृदय डारसे भरा होता
 है वे सत्य-असत्यका विचार नहीं कर पाते ॥ १८ ॥ मदिरा
 पीनेसे भतवाली तथा पतियोंके साथ रहनेवाली नवेलियोंका

क्रोध शान्त करनेवाला और लज्जाको शिथिल करनेवाला
 कौन था ? कामदेवका प्रभाव या मदिराका प्रभाव ? ॥ १९ ॥
 मदिरा पीकर मतवाली नवेलियोंका शरीर जब बशमें आ
 गया तो पुरुषोंको और तो कुछ न सूझा, उनका मन
 केवल रतिक्रीडामें ही लगकर शोभित होने लगा ॥ २० ॥
 सुन्दरीका मुख मदिराके लिये एक उचित पात्र बन गया
 क्योंकि मदिरा फूलसे सजी थी, सुगन्धित थी और उसमें
 कमल पडे हुए थे, इधर सुन्दरियोंके मुख भी फूलोंसे सजे थे
 थे, सुगन्धित थे और उनमें भी नेत्ररूपी कमल खिले
 हुए थे ॥ २१ ॥ अभ्यास न रहनेके कारण नवेलियोंके जो
 हाव भाव भीतर ही छिपे पडे थे उन्हें मदिराके प्रभावने
 बैसे ही बाहर शरीरमें ला रक्खा जैसे धातुके छिपे हुए
 अर्थको उपसर्ग (प्र, परा आदि) प्रकट होने देते हैं ॥ २२ ॥
 प्रियतमके अपराध करनेपर जो स्त्री क्रोधित हो गई थी
 और प्रियतमके वैरोंपर गिरनेपर भी जो प्रसन्न नहीं हो
 रही थी वही नवेली मदिरासे विचारशक्ति नष्ट हो जानेपर
 स्वयं अपने प्रियतमको मना रही है ॥ २३ ॥ मुखसे
 अधूरी बातें निकलना, बिहारी हुई माया, बख तथा
 गहनोंकी चाह न करना और गिरर्थक जानेके लिये उठना
 इन सब बातोंसे नवेलियोंमें मदिराका प्रभाव प्रत्यक्ष ही
 प्रकट हो रहा है ॥ २४ ॥ वे प्रेमी मना-मनाकर, वैरटके
 अत्यधिक चाहते मदिराके रूपमें अपने प्रियायोंका
 क्रोध दूर कर-करके मानो उन्हें अनोखा प्रेम पिना रहे थे

मुपशान्तविचारं सानुतर्पमनुतर्पपदेन । ते मृहूर्तमथ
मूर्तमयीव्यन्तरेम मानमयधुय वधुः स्वाः ॥ ६५ ॥
स्तस्तः सन्नामशोभां त्यजति विरचितामातुल केश
पाशः क्षीनाया नृपुरौ च द्विगुस्तरमिवावन्दतः पाद-
नम्रौ । व्यस्तः कम्पाजुवन्धादनधरतरमुरो हन्ति
हारोऽयमस्याः क्रीडन्त्याः पोडयेव स्तनभरदिनमन्म-
ध्यभागानपेक्षम् ॥ ६६ ॥ स्वादनेन सुतनोरविचारा
दोष्ठतः समचरिष्ट रस्तोऽन । अन्यमन्यदिव यन्मधु
यूनः स्वादमिष्टमतनिष्ट तवेव ॥ ६७ ॥ स्वादितः
स्वयमथैधितमानं लम्भितः प्रियतमैः सह पीतः ।
आसवः प्रतिपदं प्रमदानां नैकरपरसतामिध भेजे
॥ ६८ ॥ हावहारि हसितं वचनानां कौशलं दृशि
यिकारविशेषाः । चक्रिरे शृशमृजोरपि घघ्वाः कामि-
नेव तरुणेन मदेन ॥ ६९ ॥ द्वीविमोहमहृरद्वयिताना-
मन्तिकं रतिस्वुखाय निनाय । सप्रसादमिध सेवित-

मासीत्सद्य एव फलदं मधु तासाम् ॥ ७० ॥
घृतनीडावर्णनम्—अच्छेदयनपर्णोद्धृतेऽधरे कान्त-
योर्जयपराजये सति । अथ वन्तु यदि चेत्ति
मन्मथो कस्तयोर्जयति जीयतेऽपि वा ॥ १ ॥
अथ घृतजिताधरप्रहृदिवाधोयोऽसि तत्पण्डना-
दाधिक्ये चद को भवानिति मृपा कोपाञ्जितभू-
लता । सद्यः स्त्रिधरराप्रहृन्तलपरायत्तीकृतास्यस्य
भे मुग्धाक्षी प्रतिकृत्य तत्कृतवती दृतेऽपि यत्राजि-
तम् ॥ २ ॥ आश्लेषच्युम्पनरतोत्सवकौतुमानि क्रीडा
दुरोदरपणः प्रतिभूरनङ्ग । भोगः स यद्यपि जये च
पराजये च यूनोर्मनस्तदपि घञ्जुति जेतुमेव ॥ ३ ॥
आश्लेषे प्रथमं क्रमेण विजिते हृद्येऽधरस्यापणे नर्म-
द्यतविधौ पूर्णं प्रियतमे कान्ता पुनः पृच्छति । अन्त
ह्रांसनिरोधसम्भृतरसोद्रेदन्पुरद्वण्डया स्वैर सारि-
विसारणाय विहितः स्वेदाम्युगर्मः करः ॥ ४ ॥

॥ ६५ ॥ जब मदिराके मदमें चूर होकर नवेली क्रीडा करने
लगी तो उसका जूदा गुल गया और बिचरे हुए बालोंने मानो
पीसाके कारण सजी हुई मालाकी शोभा छोड दी, पैरोंमें लगे
हुए नूपुर दुगुने वेगसे चिखला चिखलाकर रोने लगे और जैसे
जैसे उसका हृदय कॉपनेके कारण ऊपरनीचे होता था वैसेवैसे
सर्गोंके भारसे द्यो जाती हुई कमरका ध्यान रखते पिना ही
हार उसकी छातीपर लगातार थोट करने लगा ॥ ६६ ॥
नवेली जब मदिरा पी रही थी तो शत्रुदय उसमें उसके
थोटका स्वाद आ गया होगा क्योंकि वही मदिरा उस
पुवक प्रेमीको बड़ी आनोपी लग रही है और कुछ विचित्र ही
स्वाद दे रही है ॥ ६७ ॥ बदे ही सम्मानसे दी हुई मदिराको
पनियाँके साथ पीकर कामिनिर्था मतवाली हो गई और
पण-पणपर उस मदिरामें मनको प्रसन्न करनेवाला नया
स्वाद आने लगा ॥ ६८ ॥ मदिराके प्रभाव (मद) ने किसी
पुवक कामीके समान सीधी सादी नवेलीकी हँसीको हाय-
भागोंने सजायो, उसकी बातोंमें चतुरता ला भरी और धीरोंमें
थटक मटक ला दी ॥ ६९ ॥ कामिनिर्धाने जो मदिरा बढी
प्रसन्नतासे पी थी उसने ठन्डें शीघ्र ही फल दिया क्योंकि ठनकी
खान उसी समय भाग गई और वे रतिक्रीडा करनेके लिये
आपने-आपने प्रियतमोंके पास जा पहुँचीं ॥ ७० ॥

उपपे: रोलाका चर्यनः । जय प्रेमी- प्रेमिकाने थोट
पुमनेका दाँव खाकर जथा श्लेखना आरम्भ किया उस

समय औरकी बात तो दूर, स्वयं कामदेव ही भला आकर
बता ता दें कि उनमें कौन जीतेगा कौन हारेगा ! ॥ १ ॥
‘आपने जब केवल चुम्बन मात्रका दाँव लगाया था तो
अप मेरे हार जानेपर उससे आगे बढनेवाले आप होते कौन
हैं?’ ऐसा कहकर बनावटी क्रोधसे भाँडें डेडी करते हुए उक्ताल
अपनी पसीजती हुई डँगलियाँ और बालोंसे मेरा मुख ढककर
बैवस करते हुए उस सुनयनी नवेलीने मेरे विरोध करते रहते
हुए भी बह-बह कर बाला जो उसने लुपमें नहीं जीता था
॥ २ ॥ प्रेमी और प्रेमिकाने लुपके रोबमें आलिंगन, चुम्बन
और रतिक्रीडाकी ही वाजी रक्खा थी और कामदेव मन्वस्य
ये ही । यद्यपि हार जीतमें दोनोंको उपभोगका लाभ बराबर
ही था फिर भी दोनोंका मन एक दूसरेको जीत लेनेके लिये
प्याडुल था ॥ ३ ॥ लुपमें पहले आलिंगनका दाँव लगा,
फिर सुन्दर थोटके चुम्बनका दाँव लगा, फिर हार जानेपर
प्रेमीने प्रेमिकासे दूसरा दाँव पूछा । इसपर नवेलीने अपनी
हँसी भीतर ही भीतर किसी प्रकार रोक ली तथा प्रेमके अत्य-
धिक बढ़ावसे उसके लाल-लाल गाल फडकने लगे और उसने
आपने पसीनेसे भीगे हुए हाथोंसे साड़ी नीचे सरकानेका सङ्केत
किया ॥ ४ ॥ प्रियतमने लुपमें वाजी जीत ली । इसपर
नवेलीने कसकर आलिंगन और चुम्बन कर लेने दिया, फिर
प्रियतमके हार जानेपर उसने भी बैसा ही किया, फिर हार
जानेपर पतिने भी बैसा ही किया । इस प्रकार बैसा नहीं,

गाढालिङ्गनपूर्वमेकमनया घृते जिते सुम्वनं तत्कि-
ञ्चित्परिरभ्य दत्तममुना प्रत्यर्पितं चानया । नैतत्ताद-
गिदं न तादृशमिति प्रत्यर्पणप्रकृतैर्वनोश्चुम्वनमेक-
मेव बहुधा रात्रिर्गता तन्वतोः ॥ ५ ॥ स्मितेनोपायनं
दूरदागतस्य कृतं मम । स्तनोपपीडमाश्लेषः श्रुतो
घृते पशस्तया ॥ ६ ॥

सज्जाविधानम्

अभ्यङ्गारम्भः—अस्याः पीठोपविष्टाया अभ्यङ्गं
वितनोत्यसौ । लसच्छोषि चलेद्रेषि नटद्गुरुपयो-
धरम् ॥ १ ॥ श्रावत्यै फरुणं सिचयेन सम्भगायद्व्य
वचोहृद्कुम्भयुग्मम् । कासौ फरालम्बिततैलपात्रा
मन्दं समासीदति सुन्दरीं ताम् ॥ २ ॥ वचोजो
निषिद्धं निरुध्य सिचयेनाकुञ्च्य मध्यं शनैः कृत्वा
चम्पकतैलसेकमवला सम्पीड्य मन्दं शिरः । पाणिभ्यां
चलाकङ्कणोद्यतभ्रूणत्कारोत्तराभ्यां करोत्यभ्यङ्गं परि-
पश्यतः सफुलुकं दोरन्तरं प्रेयसः ॥ ३ ॥ सुवर्णकदली-

वैसा नहीं कहते हुए और क्रम-क्रमसे चूमते हुए प्रेमी-
प्रेमिकाओंका एक ही जुबन छनेक प्रकारका हो गया और
ऐसा ही करते-करते रात बीत गई ॥ २ ॥ कोई प्रेमी अपने
निभते वह रहा है—'जब मैं दूरसे आया तो उस सुन्दरीने मुझे
सुस्कारादृष्टकी भेंट दी और कसकर स्तन दबाते हुए बलपूर्वक
आलिंगन करनेको ही लक्ष्मं दौंवर लगा दिया ॥ ६ ॥'

सजावट

तेल मलना : चौकीपर बैठकर जब यह नवेली तेल
लगाने लगती है तब इसकी कमर चमचमाने लगती है, चोटी
हिलने लगती है और बड़े-बड़े रतन उड़लने लगते हैं ॥ १ ॥
गलेमें साड़ीका पल्ला लपेटकर तथा घड़ेके समान स्तनोंको
भली भाँति बाँधकर हाथमें तेलका पात्र लिए हुए यह कौन
नवेली उस सुन्दरीको तेल मल रही है ? ॥ २ ॥ वह सुन्दरी
आँचलसे अपने स्तन कसकर बाँधे हुए, कमर थोड़ी झुकाकर,
अपने प्रियतमके सिरपर चम्पेका तेल डालकर जब धीरे-धीरे
माथा दवाने लगी, उस समय उसके हाथोंके कन्नन हिल-
हिलकर भ्रमकनाने लगे और उसका प्रियतम बड़े चावसे
उसकी दोनों भुजाओंके बीचमें आँखें गड़ाकर देखने लगा ॥ ३ ॥
सोनेके केल्लेके धामेके समान जौंवाँवाली यह कमलनयनी
जब स्वयं दृप्तनी सुन्दर है तब इसे तेल मलवानेकी क्या
भावश्यकता है ॥ ४ ॥

स्तम्भचारुरुः कमलेक्षणा । स्वभावादेव तद्भूयः किं
तद्भूयङ्गमर्दनम् ॥ ४ ॥

श्रीमत्तरचनम्—श्रधान्तं दृढयन्त्रणेन कुचयोरत्य-
न्तफाटिन्योरायद्भ्रुकुटमण्डलोप्रतिमिलयोलं विमु-
च्योरसः । नीधीयिच्युरितं विधाय तमस्य चामस्तना
लम्बिन्यं घेषी पाणिन्याश्लैः शिथिलयत्याक्रम्य
पीठं पदा ॥ १ ॥ आमुद्राङ्गुलिपल्लयी कचभरे व्यापा-
रयन्ती फरौ वन्योत्कर्षनिवद्भ्रामनसतया शून्यां
दधाना दशम् । वाहन्तेपसमुद्यते कुचतटे पर्यस्तचो-
लांशुफा हीसङ्कोचितयाहमूलसुभगा ध्रुभाति जूर्ती
यधुः ॥ २ ॥ केशान्यामकरावलम्बितशिष्यान्भूयो
रण्णकङ्कणं व्याधूयाथ फनिष्टिकातनपमुपेनाकुञ्जिता-
न्याङ्गुलि । सोमन्तं विरचय्य तस्य फरमेणोन्मृज्य
पार्श्वद्वयं तान्पश्चाद्युगपरप्रणीय करयोर्युग्मेन ध्रु-
त्यसौ ॥ ३ ॥ जानुभ्यामुपविश्य पार्श्विनिहितश्रोणो-
भरा मोक्षमहोर्व्वीक्षी नमदुष्मत्कुचतटी दोग्यप्रयाङ्गा-

माँग सँवारना : कोई नवेली कसकर बाँधे जानेसे ऊपर
उठे हुए अत्यन्त कठोर और ऊपरतक एक दूसरेसे सटे
हुए स्तनोंकी चोली खोलकर, नादेकी गॉट दीली करके,
एक पैर चौकीपर रखकर बाएँ स्तनपरसे लटकती हुई
चोटी अपनी उँगलियोंसे खोल रही है ॥ १ ॥ कोई सुन्दरी
अपने हाथोंकी उँगलियाँ देदी करके बाल सँवार रही है,
बाल सँवारनेमें मन लग जानेके कारण उसके स्तन भी ऊपर
सुनी-सी है, सुजाएँ ऊपर उठानेसे उसके स्तन भी ऊपर
उठ गए हैं अतः उनपरसे पल्ल हट गए हैं और वह लाजके
कारण अपनी बगलें कुछ सिकोड़कर जूड़ा बाँध रही है
॥ २ ॥ यह नवेली बाएँ हाथपर लटकते हुए छोरवाले
बाल झाड़कर, कानी उँगली नवाकर, माँग सँवारकर, माँगके
दोनों भागोंके हथेलियोंसे चिकनानेके परचाट् अपने दोनों
हाथ पीड़े ले जाकर जूड़ा बाँध रही है ॥ ३ ॥ सुन्दरीके बल
बैठकर, नितामंला भार पड़ीपर रखकर, यह हिलते हुए
स्तनों और चमचमाते हुए नखोंवाली नवेली अपनी
भुजाएँ उठाकर भ्रमभनाते हुए कन्ननोंवाले पल्लुओंसे फाट-
फाड़कर न जाने अपने बाल बाँध रही है या मेरा मन ही
बाँधे डाल रही है ॥ ४ ॥ सुन्दरीपर दुर्पथ रखले हुए, गला
नबाएँ हुए, सुजाएँ उठाएँ हुए और हाथ मोड़े यह जो चञ्चल
नेत्रवाली नवेली हाथोंसे बालोंके दो भाग करके माँग सँवारने

यलिः । पाणिभ्यामवधूय कङ्कणमण्यत्कारयतारोचरं
वाला नद्यति किं निजालकभरं किं वा मदीयं मनः
॥ ४ ॥ जाजुम्यापितदर्पणं परिणमङ्गीयं समुद्यद्भुजं
न्यञ्चत्कूर्परं सुभ्रमद्भुजलसत्कचान्तरोदहकुचम् । पाणि
भ्यां प्रथिमज्य केशनिचयं सीमन्तकर्मोद्यता चेतः
कस्य दशीकरोति न यलाहाला विलोलोद्यणा ॥ ५ ॥
यथा यथाऽयं बलते भुजोऽस्या उदञ्जितः संयमने
कचानाम् । तथा तथा यलगति काममेकः स पञ्च
यजोरुह उदपलाद्याः ॥ ६ ॥ सन्प्राप्तचिकुरभायः
कचनिचयो वा युवा करे लग्नः । स्त्रीभिर्दंडं निवध्यो
न चेत्यरक्लत्रमनुसरति ॥ ७ ॥ स्नेहसंयधितान्यालान्
दण्डं यध्नाति सुन्दरी । करुणा हरिणावीणां कुतः
कठिनचेतसाम् ॥ ८ ॥

सीमन्तसिन्दूरम् अये मातर्दृष्टा मुखममृतभानुभ्र-
मयशारकचच्छुभा राहुर्धसति किमु त्प्रापतरलितः ।
किमेवं कन्दर्पान्तकतरणि सिन्दूरसरणिच्छुलाङ्गीन्तुं
भूयो बहिरिव रसज्ञां कलयति ॥ १ ॥ न सिन्दूरं न

वा रही है और हाथ उठानेसे जिसके स्तनोंकी अनोखी गोमा
हो रही है वह किसका चिच बलपूर्वक वरमं नहीं कर लेती !
॥ १ ॥ बाल बाँधनेके लिये जैसे-जैसे इस कमलनयनीका एक
हाथ ऊपर उठता है वैसे-वैसे हृषका एक-एक स्तन भी उद्वल-
द्बन करने लगता है ॥ ६ ॥ स्त्रियोंकी चाहिए कि वे लम्बे-लम्बे
बाल और मनचले छैलोंको बाँधकर ही रखें, नहीं तो बाल
कमरकी ओर तथा पुरप दूसरी स्त्रियोंकी ओर बढ़ने लगते हैं
॥ ७ ॥ यह सुन्दरी स्नेहसे (तेल लगाकर, प्रेमपूर्वक) बड़ाप
हुए बालोंको भी बसकर बाधे डाल रही है । भला कठोर
चिचवाकी मृगनयनी नवेलियोंकी कहीं दया होती है ! ॥ ८ ॥

मौगका सिन्दूरः श्रमं नौ सुँहकी भ्रमसे चन्द्रमा
समभकर उसका अमृत पीनेके लालचसे ही क्या राहु बालोंका
रूप परकर था पहुँचा है ? हे कामदेवको पराजित कर देनेवाले
(पित जी) की पत्नी ! सिन्दूरकी रखाके रूपमें क्या बड़ी राहु
अमृत चारनेके लिये बार-बार बाहर सीम लपलप रहा है ॥ १ ॥
स्वभावसे ही विपरीत इन नारियोंके सिरपर न तो ये बाल
ही हैं और न यह सिन्दूर ही है वरन् यह तो यदोदियोंकी
रह्याका यह काला पाप है जो उर्ध्वकी रवलेसे सना हुआ इनके
सिरोंपर जमा बैठा है ॥ २ ॥ सिन्दूरसे सजी हुई तुम्हारी वह
मौगकी रखा हम खोगोंका कल्याण करे जो पेशी जान पदती

वा केशा वामानां शिरसि स्थिताः । पाग्धानां सह
रत्नेन वृजिनं हननोद्भवम् ॥ २ ॥ वहन्ती सिन्दूरं
प्रवलकवरीभारतिमिरतिपिणं वृन्दैर्दन्दीकृतमिव नवीना-
कर्मरणम् । तनोतु क्षेमं नस्तव यदनसौन्दर्यलहरीपरी-
वाहच्छ्रोतःसरणिरिव सीमन्तसरणिः ॥ ३ ॥ विलो
चनशूरैस्तिमैर्निर्दंडसि प्रमदे जान् । वृत्तमन्यथ
तल्लग्नं न त्विदं नागसम्भवम् ॥ ४ ॥

तिलक — अस्याः संयमान्कचो मयुकरैरभ्यर्थ्य-
मानो मुहूर्धङ्गीगोपनजाभिशापमचिरादुन्मापृष्टकामो
निजम् । सीमन्तेन करेण कोमलरुचा सिन्दूरविन्दु-
च्छुलादातसायसपिएडमएडलमसावादातुमाकाऽञ्जिन
॥ १ ॥ अस्याः सुगन्धिनयकुङ्कुमपदत्तो सुगन्धमा-
स्ति तिलको मदिरैच्छपायाः । श्राविष्टरागमभिराममु-
शारविन्दनिप्यन्दलग्नमिव मे हृदयं द्वितीयम् ॥ २ ॥
अस्या ललाटे रचिता सखीभिर्धाम्यते चन्द्रनपत्र-
लेपा । श्रापाएडरुचामकोलभित्वाचनङ्गवापुत्रणपट्टि-
केय ॥ ३ ॥ अस्यास्तनुस्यन्दनसंस्थितो वै स मीनेने-

है मानो तुम्हारे सुँहकी सुन्दरताकी नदीका बहता हुआ भरना
हो या घने बालरूपी शँघेरेके हाथों द्वारा बन्दी बनाई हुई
बाल-सूर्यकी क्षिरप हो ॥ ३ ॥ है मतवाली नवेली !
अपने बितवन्रूपी तीक्ष्ण बाणोंसे जो इम मनुष्योंको
मारा करती हो पही बाणका लक्ष्य, चूकर तुम्हारे
माथेपर जा लगा है; यह नागसे उदय सिन्दूर नहीं
है ॥ ४ ॥

विन्दुः बालोंने हमारी भौरियाँ छिपा ली हैं यह सन्देह
करके जब मैंने बालोंसे अपनी भौरियाँ मँगीं, उस समय
अपना भौरा छिपानेका कलंक मिटानेके लिये यह बालोंका जूदा
अपना कोमल कान्तिवाला मौगरूपी हाथ बड़ाकर सिन्दूरकी
विन्दुरूपी गरम जोहेका गोला लेना चाहता है ॥ १ ॥ इस
मदमरी श्रौलोंवालीके माथेपर सुगन्धित नये कुँडुमके धोखसे
यनी हुई जो सुन्दर विन्दी शोभित हो रही है वह ऐसी जान
पदती है मानो मेरा दूसरा हृदय लाल होकर (प्रेममे
भरकर), उसके सुन्दर मुलारविन्दुमें निहडकर माथेपर
चिपक गया हो ॥ २ ॥ सखियोंके द्वारा इसके ललाटेपर
चन्द्रसे रचे हुए बेज-यूदे रंगे लगा रहे हैं मानो इसके गोरे-
गोरे भरे हुए कोपलरूपी चित्ररत्नकर कामदेवके बाणोंके
धारोंकी पही हो ॥ ३ ॥ इस नवेलीके शरीररूपी रमपर चढ़े

तुर्जगतीं विजेतुम् । सङ्कुङ्कमालेखमिषेण वीरो व्यमो-
चयच्चाद्यतरं पताकाम् ॥४॥ कस्तूरीतिलकं बाले भाले
मा कुह मा कुह । अथ सान्यं भजामाति जन्मते शश-
लान्छुनः ॥ ५ ॥ केयूरं न करे पदे न कटकं मालां न
माला पुनः कस्तूरीतिलकं तथापि सजुते संसारसारथि-
यम् । सर्वाधिचन्दमलेखि भालफलके यत्सुभ्रुवो घेषसा
जानीमः किमु तत्र मन्मथमहीपालेन मुद्रा कृता ॥६॥
नासावंशविनिर्मुक्तमुकाफलसनाभिना । भाति भालत-
लस्थेन बाला चन्दनविन्दुना ॥७॥ बाले ललामलेख्यं
भाले भल्लीव राजते । भ्रूलताचापमाकृष्य न चिन्नः
कं हनिष्यति ॥ ८ ॥ लोचनकुलाम्भोजद्वयलोभान्दो-
लितैकमनाः । कस्तूरीतिलकमिपाद्यमलिकेऽल्लिः
समुल्लसति ॥ ९ ॥ विराजतेऽस्यास्तिलकोऽयमञ्जितो
विकुञ्जितभ्रूलतिकाद्वयान्तरे । विजित्य लोकाद्वितयं
दिव्यं प्रति स्मरेण वाणो धनुषीव योजितः ॥ १० ॥

श्यामलेनाङ्कितं भाले बाले केनापि लदमया । मुखं
तयान्तरासुप्तभुङ्गकुलाम्बुजायते ॥ ११ ॥

कर्णभूषणम्—ताटङ्कमस्यास्तरलेक्षणया मुकाफ-
लैश्चाद्यरुचि विधत्ते । मुखप्रिया चन्द्रमियामिभूय
वन्दीकृतं तारकचक्रबालम् ॥ १ ॥ मुकाताटङ्कयुगं
प्रतिमुक्तं कर्णपार्श्वयोरस्याः । मुखकमलमिव निपे-
यितुमागतममृतान्शुचिन्वयुगम् ॥ २ ॥ शशी हर्तु
लोभान्मुखकमलशोभां श्रुतिफलं सिपेवे सातङ्कस्तव
तरुणि ताटङ्कपटात् । तदन्तःपीयूषं निखिलमथ
निक्षेप्तुमघरे मनोजन्मा मुष्णन्मुहुरदृह तुच्छं तमक-
रोत् ॥ ३ ॥ सौन्दर्यपात्रे वक्त्रेन्दौ कुरङ्गासङ्गभोतया ।
सूचितौ श्रोत्रपाशाभ्यां पाशाविव मृगीदृशा ॥ ४ ॥

नासाभूषणम्—अस्याः कामनिवासरम्यभवनं वक्रं
विलोभ्यादुरान्निश्चित्येव सुधाकरं म्रियतमं भूमिगर्त
शोभनम् । नासामाकिककैतवेन रुचिरा तारापि सा

हुप वीर कामदेवने सारे संसारको जीत लेनेकी इच्छासे कुङ्कु-
मकी चित्रकारीके रूपमें मानो अत्यन्त सुन्दर पताका 'कदरा दो
हे ॥ ४ ॥ हे नवेली ! अपने माथेपर कस्तूरीका तिलक न
लगाओ, न लबाओ, क्योंकि 'आज तू मैं इसके समान ही
हुआ जा रहा हूँ', यह साचकर खरहके चिह्नवाला चन्द्रमा
फूला नहीं समाता ॥५॥ न ता इस सुन्दर भोदवाला नवेलीके
हाथमें कन्नन है, न परामें नूपुर है और न सिरपर माला है,
फिर भी संसार भरकी सारी सुन्दरताका सार यह कस्तूरीका
तिलक ही देखकर हम समझते हैं मानो ब्रह्माने जो इसके माथेपर
अत्यधिक महत्वकी बात लिख दी है उसपर महाराज कामदेवने
अपनी मुहर मार दी हो ॥ ६ ॥ इस नवेलीके माथेपरकी
चन्दनकी विद्दी ऐसी शोभित हो रहा है मानो नाकरूपी धोस-
पर निकलकर छिदा हुआ सुन्दर मोती हो ॥ ७ ॥ हे नवेली !
तुम्हारे मस्तकमें यह सुन्दर रेखा (तिलक) बाणके समान
शोभा पा रही है । यह तुम्हारा भौंहरूपी धनुष खींचकर न जाने
किसका वध करेगी ॥ ८ ॥ नेत्ररूपी दो खिले हुए कमलोंपर
छलचाप हुप भारे ही मानो कस्तूरीके तिलकके रूपमें नाच-
नाचकर शोभा बढ़ा रहे हैं ॥ ९ ॥ दोनों बाँकी भौंहरके बीचमें
इसका तिलक ऐसा शोभित हो रहा है मानो कामदेवने दोनों
लोक जीतकर अब स्वर्ग जीतनेके लिये अपने धनुषपर
बाण चढ़ा रक्खा हो ॥ १० ॥ हे बाले ! ललाटपर काळे
रंगवाले चिह्ने युक्त तुम्हारा मुख उस कमलके समान

लग रहा है जिसके भीतर भीरा सो रहा हो ॥ ११ ॥
कनफूलः इस रसीली श्रीलंबाजी नवेलीके कानोंमें
मोती गुंथे हुए सुन्दर कनफूल ऐसे कमलजला रहे हैं मानो
अपने मुखकी शोभासे हसने तारों समेत चन्द्रमाकी बन्दी बना
रक्खा हो ॥ १ ॥ कानोंके नीचे लटकते हुए मोतीसे बने दोनों
कनफूल ऐसे शोभित हो रहे हैं मानो मुखकमलकी सेवा
करनेको आए हुए दो चन्द्रमा हो ॥ २ ॥ हे नवेली ! तुम्हारे
मुखकमलकी शोभा सुरानेके लोमसे चन्द्रमा ही कनफूलका-रूप
धरकर डरके सारे कर्पिता हुआ तुम्हारे कानोंके पास रहने लगा
थोर इपर कामदेवने अवसर पाकर उसके बीचका सारा अमृत
अधरमें डालनेके लिये उसे बार-बार चुराकर ह्राय ! उसे
खालला बना दिया ॥ ३ ॥ उस मृगयनी नवेलीने जो
कानमें कुयडल लटका रक्खे हैं वे मानो दो फन्दे हैं जो उसने
इस डरसे लगा लिए हैं कि कहीं उसके मुखरूपी चन्द्रमामें
हरिये न आ कूटें ॥ ४ ॥

नक घेसरः कामदेवके रहनेके सुन्दर भवनके समान इस
नवेलीके मुखकी बड़े आदरसे देखकर रोहिणी तारने यह निरचय
किया कि वे धरतीपर उतरे हुए मेरे अत्यन्त सुन्दर प्रियतम
चन्द्रमा हैं । इसलिये चन्द्रमाका विरह न सह सकती हुई
वह सुन्दरी वेसरके मोताँके रूपमें उसके पास ही आ बसी
है ॥ १ ॥ हे मृगके दूँनेके नेत्रोंके समान नेत्रवाली सखी ! यह
मोती पहले तो आकाशसे गिरा, फिर बहुत दिनोंतक समुद्रमें

रोहिणी मन्ये तद्विरहासहिष्णुद्वया तत्सन्निधि
 ज्ञेयते ॥ १ ॥ आकाशात्पतितं पुनर्जलनिधौ मध्ये
 चिरं संस्थितं पश्चाद्दुःसहदेहरन्नजनितक्लेशान्वितं
 मौक्तिकम् । याले चालकुरङ्गलोचनयुगे घोरं तपः
 सन्वरन्नासाभूयतामुपैति सखि ते विम्व्याघरापेक्षया
 ॥ २ ॥ नासामौक्तिकमयले किमघरविम्वेन विद्रुमं
 कुम्भे । दृष्ट्या गुलायोजं शिव शिव भूयस्तदेव हसि-
 तेन ॥ ३ ॥ मुक्ता अपि यदास्वादं विहातुं हन्त न
 क्षमाः । अन्यथा लम्बमानत्वमेतदीयं कथम्भवेत् ॥४॥
 ललाटे लोलाद्यास्तिलकमिपधारी विधुरयं स्वमा-
 पूर्णं वान्छन्नघरसुधया देवहितकृत् । अतो नासा-
 प्रेक्षां तदुपहतये मौक्तिकमिपात्स्फुटं दैत्यामात्योऽथ
 रशशृत्तोरन्तरयतः ॥ ५ ॥ श्लेष्मागारे वसतिर्जा-
 तास्माकं तद न मा यात । आन्दोलनच्छलादिह नि-
 वारयन्तीथ मांस्कानि धिटान् ॥ ६ ॥ सुधामयोऽपि
 क्षयरोगशान्त्यै नासाग्रमुक्ताफलकच्छुलेन । अनङ्गस-

क्षीयनदृष्टशक्तिमुष्णामृतं ते पियतीय चन्द्रः ॥ ७ ॥
 कञ्चुकी—उपरि पीनपयोधरपातिता पटकुटीय
 मनोभवभूपतेः । विजयिनस्त्रिपुरारिजिगीषया तत्र
 विराजति भामिनि कञ्चुकी ॥ १ ॥

हारः—एकाधली कलितमौक्तिककैतवेन तन्व्याः
 समुन्नतपयोधरयुग्मसेनाम् । चक्रमर्नासि यमिनाम-
 तिनिर्मलानि कर्दुर्मुकशरपातकृन्तारणि ॥ १ ॥
 श्रोवाहृतंवायदृशाभितापि प्रसाधिता माण्यकेन
 सेयम् । आलिङ्गयतामप्यलम्बमाना सुरुपताभाग-
 पितोर्ध्वकाया ॥ २ ॥ घटीयन्नायते हारो नामिकूपे
 मृगीदृशः । संसेन्तुमिव लावण्यपयसा यौवनद्रुमम्
 ॥ ३ ॥ निविडानुपककुचकोरुदम्पती मुखतारकापरि-
 वृढेन शासितुम् । अयतारितेव निजतारकाधली
 हरिणीदृशः स्फुरति हारवल्ली ॥ ४ ॥ प्राणेश्वरपरि-
 प्वह्विभ्रमप्रतिपत्तिभिः । मुक्ताहारैण लसता हसतीथ
 स्तनद्वयम् ॥ ५ ॥ मणिहारलता विभाति तन्व्याः

पदा रहा, फिर इसने बेधे जानेकी असह्य पीदा भागी तब कहा
 यह तुम्हारे विम्व्याघरके बदले अब नरुन्नेसर बन पाया है
 ॥१॥ है नवेबी ! अपनी नाकके जिस मातीको विम्बके समान
 अघरकी कान्तिसे तुमने मूँगा बना दिया उसे अपनी काली
 चितवनसे धुँवथी क्यों बनाए डाल रही हो ? राम राम ! अब
 तुम उसे अपनी ईसासे फिर मोती बनाए द रही हो ॥३॥ जान
 पदया है सुवता (जीवन्मुवत, मोती) भी इसका स्वाद नहीं
 छोड़ सकत । यदि यह बात न हाती तो यह माती इसकी
 नाकमें क्यों लटकता रहता ? ॥ ४ ॥ इस चन्द्रज श्रीषवाली
 नवेबीके माथेपर विन्दीक रूपमें बैठा हुआ यह दयताघाती
 मलाई करनेवाला चन्द्रमा अघरामृत पीकर पूर्ण बनना
 चाहता है इसलिये नाकके आगेके भागमें वे दैत्योके मन्त्री
 शुक्राचार्य उसे अमृत न पीने देनेके लिये चन्द्रमा (विन्दी)
 और अघरके बीचमें मोतीके रूपमें प्रत्यक्ष ही बाधा बने बैठे
 हैं ॥ २ ॥ नाकर लटके हुए मोती हिल-हिलकर मानो
 आरोंको यह बता रहे हैं कि तुम लोग अब यहाँ न आना
 क्योंकि यहाँ कफके मण्डारमें अब हम रहने लगे हैं ॥ ६ ॥
 यद्यपि चन्द्रमा स्वयं अमृतमय है फिर भी अपनी क्षयरोग
 दूर करनेके लिये यह नाकके आगे मोतीका रूप धरकर तुम्हारा
 गुणामृत पी रहा है क्योंकि उसने तुम्हारे अघरामृतसे
 कामदेवको जीवित होते देर लिया है ॥७॥

चोली : है सुन्दरी ! तुम्हारे ऊँचे-ऊँचे स्तनोंपर पड़ी हुई
 चोली ऐसा सुन्दर जान पदती है मानो त्रिपुरामुरके शत्रु
 शिवजीको जीतनेकी इच्छा करनेवाले अत्यन्त धीर महाराज
 कामदेवका तम्बू हो ॥ १ ॥

हार : नवेबीको एक तरकी मालामें गुँथे हुए मोतियोंके
 रूपमें अत्यन्त निर्मल तथा कामके बाणोंसे त्रिद्विदुप महात्माओंके
 मन दोनों ऊँचे स्तनोंकी सेवा कर रहे हैं ॥ १ ॥ इस नवेबीका
 गला ता बडे अघरममें डाले दे रहा है क्योंकि यह बट्ट
 (गलेका घाटी, बालक) से शमित न हानपर भा माण्यक
 हार, बालक) सहा सजा हुआ है, आलिगन करन याग्य हात हुए
 भी ऊपरसे असुरूप (प्रायरूप) है और मृदगक समान
 होते हुए भी सुन्दर है ॥ २ ॥ मृगनयनाका हार ऐसा
 जान पद रहा है माना नामिरूप कुँके सुन्दरठारुपा
 जलसे यौवनरूपी वृचको संचनेवाला रट्ट हो ॥ ३ ॥
 मृगनयनी नवेबीके स्तनापर मोताके हारको लदियाँ ऐसा जान
 पद रही हैं माना मुखरुपा सारापति (चन्द्रमा) ने आपसमें
 अत्यन्त सटे हुए चकवी-चकवेपर शासन करनेके लिये अपनी
 तारारूपी पकिर्षी भेज दी हैं ॥ ४ ॥ पवित्रा आलिगन-
 रूपी आदर पाकर इस नवेबीके दोनों स्तन चमकते हुए
 मोतीके हारके रूपमें मानो ईस रहे हैं ॥ ५ ॥ दुबली-नतली
 सुन्दरीका मणियोंका हार ऐसा शोभित हो रहा है मानो

स्तनसिंहासनस्त्रीक्षि तस्थिधांसम् । अग्निपेक्तुमनङ्ग-
देवराजं गलशङ्काङ्गलितेव दुग्धधारा ॥ ६ ॥ मातङ्ग-
कुम्भसंसर्गजातपातकशङ्कया । छातीव मुक्ताहा-
रोऽस्याः स्फुरत्कान्तिजले गले ॥ ७ ॥ मुक्तावली
स्मरविद्वाहविपाण्डमूले नद्धा चकास्ति सितकम्बुनि
कण्ठकाण्डे । निश्चिन्वती मृगदृशो वदनं मृगाङ्कं नक्ष-
त्रपङ्क्तिरिव सम्पत्तितान नभस्तः ॥ ८ ॥ सारङ्गाश्या,
कुचकलशयोरन्तराकाशदेशः प्रातश्च्येदः क्वचिदपि
चलनस्पन्दलम्निःपपात । नाभीकूपं समजनि नतस्तस्य
देहच्युतासौ नक्षत्राणां ततिरिव समालम्ब्यते हारश्या
भाम् ॥ ९ ॥ स्तनातटे चन्दनपङ्क्तिरेऽस्या जातस्य
यावद्युवमानसानाम् । हारावलीरक्ष्मयुग्धधाराकाराः
स्फुरन्ति स्पलनस्य रेखाः ॥१०॥ हारः कुरङ्गशायाव्या
राजति स्थूलमौक्तिकः । नाभिलावग्यपानीयघटीयन्त्र
गुणोपमः ॥ ११ ॥ हारोऽयं हरिणाक्षीणां लुटति स्तन-
मण्डले । मुक्तानामव्यवस्थेयं के वयं स्मरकिङ्कराः ॥१२॥

कङ्कणम्—इदं ते केनोक्तं कथय कमलातङ्कवदने
यदेतस्मिन् हेतः कटकमिति धत्से खलु धियम् ।
इदं तद्वदुःसाधाकमणपरमाखं स्मृतिभुवा तव प्रीत्या
चकं करकमलमूले विनिहितम् ॥ १ ॥ कृशाङ्ग्याः
कुचभारेण दूरमुत्सारितौ भुजौ । बहतः कलहायेव
वाचालां घलयावलिम् ॥ २ ॥ गोराङ्ग्या भुजलावण्य-
मीलितं हेमकङ्कणम् । कण्ठपलेपे धयस्याभिः काञ्चिन्या-
दन्वमीयत ॥ ३ ॥ न्यस्तानि दन्तवलयानि करे कद-
म्बितानिन्दुखण्डघटितानि ममेप तर्कं । अस्या निस-
र्गमृदुवाणिसरोजमेषामामोचने भट्टिति यन्मुकुलीव-
भूय ॥ ४ ॥ प्रकोष्ठवन्धे विन्शोष्ठ्यास्तस्याः काञ्चन
कङ्कणम् । नालं वलयितं हस्ते हेमाब्जस्येव राजते
॥ ५ ॥ सहैमकटकं धत्से सा करं पञ्चतस्करम् । पञ्चि-
नोवल्लभस्येव मूले वेष्टितमशुना ॥ ६ ॥ सोवर्णकङ्क-
णश्रेण्या भाति तद्वाहुकन्दली । तृणचम्पकमोठव्यं

स्तनरूपी सिंहासनपर विराजमान कामदेवरूपी देवराजका
अग्निपेक करनेके लिये गले-रूपी शङ्खसे वृषकी धार गिर रही
हो ॥ ६ ॥ मातङ्ग (हाथी, चारुडाल) के मस्तकके
सुरपक्षसे वहाँ पाप न लग गया हो इसी शङ्खसे मानो उस
नवेलीका मोतीका हार सुन्दरता-रूपी जलसे भरे उसके
गलेमें स्नान कर रहा हो ॥ ७ ॥ नवेलीके गलेरुपां उनले
शङ्खमें लटकती हुई मोतीकी माला कामाग्निके तापसे उजली
नक्षत्रोंकी उस पीत सी जान पड़ रही है जो आकाशसे गिरकर
नवेलीके मुखरुपी चन्द्रमाकी रोज कर रही हो ॥ ८ ॥
मृगनयनी नवेलीके घड़ेके समान स्तनोंके बीचका जो आकाश
दृटकर लक्ष्मणसे हुए गिर पड़ा वह तो गहरी नाभि हो गया
श्रीर उस आकाशसे झड़ी हुई तारोंकी पीत ही मानो हारके
रूपमें शोभित हो रही है ॥ ९ ॥ चन्दनके लेपसे सजे हुए
इस नवेलीके स्तनोंपर हारके रत्नोंकी लग्गी किरणें ऐसी जान
पड़ती हैं मानो सभी नवयुवकोंके जन किसलानेवाली रेखाएँ
हैं ॥ १० ॥ मृगके छीनेके समान सयनोंवाली नवेलीका बड़े-
बड़े मोतियांवाला हार मानो नाभि-रुपी इतने सुन्दरता-रूपी
जल खींचनेवाला रहट है ॥ ११ ॥ मृगनयनी नवेलियोंके
स्तन मण्डलपर हार लोट रहे हैं । जब मुक्तां (मोतियाँ,
जीवमुष्णोंकी) यह दृशा है तब हम लोगोंके विषयमें तो
बहना ही क्या है जो सदा कामके दास बने रहते हैं ॥ १२ ॥

कङ्कनः हे कमलके समान मुखवाली ! यह तुमसे
किसने कह दिया कि यह सोनेका कङ्कन है ? श्री ! यह
तो तुम्हारे कमल जैसे पङ्खोंमें तुम्हें प्रसन्न करनेके लिये
कामदेवने न जीते जा सकने योग्य पुरुषोंपर भी विनय
पा लेनेवाला बड़ा भारी चक्र दे रखा है ॥ १ ॥ तुमने
शरीरवाली नवेलीके माटे मोटे स्तनोंमें भुजाओंका दूर हटा
दिया अतः वे मानो कङ्कनोंका कनकनाहटके स्वरामें उनसे
भगाड़ा कर रही है ॥ २ ॥ गोरोंगारी नवेलीकी बाँहकी
सुन्दरतामें छिपे हुए सोनेके कङ्कनको सखियों तब समक
पाई, जब आलिंगन करनेपर गलेमें यह कड़ा-कड़ा सा जान
पड़ा ॥ ३ ॥ इस नवेलीके हाथमें जो हाथी-दंतके कङ्कन कमी
पहन गए थे वे मेरी समझमें चौदनीसे बने जान पड़ते
हैं । इसीलिये तो वन्हें उतारते समय इसके स्वभावसे कामल
कमलके समान हाथ तत्काल सिक्कड़ गए ॥ ४ ॥ पके हुए
डुँडुके समान आठोंवाली नवेलीकी भुजामें खगा हुआ
सोनेका कङ्कन ऐसा सुन्दर जान पड़ रहा है मानो हाथमें
सोनेके कमल (पड़ेचे) का नाख लपेटकर बाँध दिया गया
हो ॥ ५ ॥ सोनेके कङ्कनोंसे सजे हुए श्रीर कमलोंका कान्ति
धुरनिवाले उसके हाथ ऐसे लगते हैं मानो कमलिनीके पति
(सूर्य) की किरणोंने उसकी जड़ लपेट रक्की हो ॥ ६ ॥
सोनेके कङ्कनोंसे सजी हुई उसका बाँह ऐसी सुन्दर लग

पुष्पचापेन वेष्टिता ॥ ७ ॥ हस्ते चकास्ति बालाया-
स्तस्याः कङ्कणमालिका । मनःकुरङ्गवन्धाय पाशालीव
मनोमुचः ॥ ८ ॥

मुद्रिका—अङ्गुलीषु कुरङ्गाद्याः शोभते मुद्रिका-
वलिः । प्रोतेव वायैः पुष्पेषु सृष्टमलक्यपरम्परा
॥ १ ॥ राज्यान्तःकामदेवस्य प्राणिनो निवसन्ति ये ।
तैर्वन्धा राजमुद्रेयं न तु बालाङ्गुलीयकम् ॥ २ ॥

काञ्ची—वन्धा मणिमयकाञ्ची तस्याः परिणाह-
शालिनि नितम्बे । पङ्क्तिरिव सारधानां सुरसरितः
पुलिनमण्डलभोगे ॥ १ ॥ स्रस्तां नितम्बाद्वरोपयन्ती
पुनः पुनः केसरपुष्पाकाञ्चीम् । न्यासीकृतां स्थान-
विदा स्मरेण द्वितीयमौर्वीमिव कर्मुकस्य ॥ २ ॥

कान्ति—अथयथेषु परस्परविम्बितेष्वतुलकान्तिषु
राजति तत्तनोः । अथमयं प्रथिभाग इति स्फुटं जगति
निश्चिनुते चतुरोऽपि फः ॥ १ ॥ आकारस्सुमनोह-
रसस महिमा तद्वैभवं तद्वयः सा कान्तिस्स च विम्ब-

विम्बयकरस्मौमाग्यभायोदयः । एतैरस्य विशेष्यगु-
नविधौ तस्यास्म एव क्षमो यस्यान्मिन्तुरगमनोरिय
भवेज्जिह्वासहस्रद्वयम् ॥ २ ॥ सुन्दरी सा भवत्येवं
विवेकः कस्य जायते । प्रमामानं हि तरलं दृश्यते
नात्र संशयः ॥ ३ ॥

सहजालङ्काराः

मात्रः—तद्रेव वचनं ते चैव लोचने यौवनमपि
तद्रेव । अन्धानङ्कटादमीरन्त्यदेव त्रिमपि साधयति
॥ १ ॥ स एव सुरभिः कालः स एव मलयानिलः ।
सौधेयमथला किन्तु मनोऽन्यदिव दृश्यते ॥ २ ॥ हरस्तु
किञ्चित्परिलुप्तधैर्यश्चन्द्रोदयास्म इवाम्बुराशिः ।
उमामुपे विम्बकलाधरोष्ठे व्यापारयामास विलोच-
नानि ॥ ३ ॥

हाथ—थकिमपि प्रेक्षमाणं भण्यमानं रे यथा
तथैव । निर्धर्या स्रष्टेमुग्धां वयस्य मुग्धां पश्य ॥ १ ॥
विष्टृण्वती शैलसुताऽपि भावमङ्गैः स्फुरद्बालरुदम्ब

रही है मानो कामदेवने अपने तरकससे लगी हुई चम्पके
बोरसे लपेट रक्ता हो ॥ ७ ॥ नवेलीके हाथोंमें कङ्कणोंकी
पाँत ऐसी सुन्दर दिखाई पड़ रही है मानो लोगोंके मनरूपी
हरिय कँसानेके लिये कामदेवके देरसे पाय हों ॥ ८ ॥

श्रृंगुठी—शृंगानयनी नवेलीकी श्रृंगलियोंमें श्रृंगुठियाँ ऐसी
शोभित हों रही हैं मानो अन्धासके लिये कामके बाधाँसे वेधी
हुई सँकरी गोल-गोल चाँदमारी हो ॥ १ ॥ नवेलीकी उँगलीमें
यह श्रृंगुठी नहीं है, यह तो वह राजसुदा है जिसे महाराज
कामदेवके रागमें रहनेवालोंको प्रथाम करना चाहिए ॥ २ ॥

करघनी : उसके विशाल नितम्बमें धँधी हुई उजले
मणियोंकी करघनी ऐसी जान पड़ती है मानो गङ्गाके पीढ़े
तय्यर सारस पक्षियोंकी घाँत हो ॥ १ ॥ खीली होकर
नितम्बसे नीचे सरकती हुई गीलसिरके घृलोंकी जो करघनी
पार पार वह नवेली ऊपर उठा रही है वह ऐसी जान पड़
रही है मानो नितम्बकी ही उचित स्थान समझकर कामदेवने
अपने धनुषकी दूसरी प्रत्यक्षा (बोरी) वहाँ ही बाँध छोड़ी
हो ॥ २ ॥

कान्ति (चमक) : अत्यधिक चमकके कारण एक
दूसरेपर चमक डालनेवाले श्रृंगोंवाले उसके शरीरमें 'पहँसे
पहँसे' अमुक चमक है! यह निश्चय कहेके स्पष्ट बतानेवाला
अतुर मनुष्य संसारमें कौन है? कोई नहीं ॥ १ ॥ उसका

वह मनोहर रूप ! वह महिमा ! वह ऐश्वर्य ! वह आयु ! वह
चमक-दमक ! वह संसारको अचरजमें डाल देनेवाला सौभाग्य
श्रीर वह भाग्योदय ! इन सब एक-एकका वर्णन बड़ी कर
सकना है जिसे शोपनागकी भौँति दो सदस्र जीमें मिली हों
॥ २ ॥ इसमें सन्देह नहीं कि उसकी तो केवल रसीली चमक
मात्र दिखाई पड़ रही है अतः यह ज्ञान तो किसीको हो नहीं
पाता कि वह कोई सुन्दरी है ॥ ३ ॥

स्याभाविक अलङ्कार

भाव : वही उसकी बोली है, वे ही उसकी श्रौँसे हैं श्रीर
वही उसकी जवानी भी है किन्तु यह कामको निराली छटा
उसे कुछ और ही बना डालना चाहती है ॥ १ ॥ वहाँ बसन्त
ऋतु है, वही मलय पर्वतका पवन है श्रीर वही वह नवेली भी
है किन्तु आज इसका मन कुछ और ही दिखाई पड़ रहा है
॥ २ ॥ शिवजीका धीरज कुछ लुप्त हो गया और उन्होंने
पार्वतीजीके सुलपर शिखके समान अशरीरमें बैसे ही अपनी
श्रौँसे जमा दीं जैसे चन्द्रमाका उदय होनेपर समुद्र उसपर
श्रौँसे जमा लेता है ॥ ३ ॥

हाथ : अरे मित्र ! ध्यानपूर्वक उस प्रेमरसमें डूबी हुई
भोली भावली सुन्दरीको देखो जो कहीं कुछ देखती जा रही है
श्रीर कुछ-कुछ बोलती भी जा रही है ॥ १ ॥ इन्द्रकी आज्ञासे
हिमालयपर कामदेवके माया पैलानेपर जब पार्वतीकी देखकर

कल्पैः । साचीकृता चारुतरेण तस्थौ मुखेन पर्यस्त-
विलोचनेन ॥ २ ॥

हेला—तथा तस्या भद्रिति प्रवृत्ता यथा सर्वाङ्ग-
विभ्रमाः सकलाः । संशयितमुग्धभावा भवति चिरं
यथा सखीनामपि ॥ १ ॥

शोभा—तां प्राङ्मुखीं तत्र निवेश्य वालां क्षणं
व्यलम्बन्त पुरो निपण्णः । भूतायेशोभाहियमाण-
नेत्राः प्रसाधने सन्निहितेऽपि नार्थः ॥ १ ॥

कामित—वामं सन्निहितमित्तवल्लयं न्यस्य हस्तं
नितम्बे कृत्वा श्यामावितपसदृशं स्रस्तमुकं द्विती-
यम् । पादाङ्गुष्ठालुलितकुसुमे कुट्टिमे पातितान्तं
नृत्तादस्याः स्थितमतितयां कान्तमृञ्जयायतांधम् ॥१॥
माधुर्यम्—शरकाण्डपाण्डुगाण्डस्थलेयमाभाति परि-
मिताभरणा । माधवपरिणतयत्रा कतिपयकुसुमेव
कुन्दलता ॥ १ ॥

शिवजीका चित्त चञ्चल होने लगा उस समय अपने खिलते
हुए कदम्बके फूलके समान (रोमांचित) कोमल अङ्गुलिसे मनके
भाव प्रकट करती हुई, तिरछी चितवनवाने मुखकमलसे शोभित
पार्वती कुछ तिरछी होकर खड़ी रहीं ॥ २ ॥

हेला : नववधके सब अङ्गके सब विलास ऋत ही ऐसे
प्रवृत्त हुए जिनसे उसकी सखियोंकी भी उसके मुग्धापनपर
सन्देह होने लगा ॥ १ ॥

शोभा : वहाँ उन्होंने पार्वतीको पूरवकी ओर मुँह करके
बैठा दिया । तिगारकी सब सामग्री पासमें रहते हुए भी वे
सब पार्वतीजीकी स्वाभाविक शोभापर ही इतनी लज्जू हो गईं
कि कुछ देरतक तो वे सुच-सुच भूलकर उनकी ओर एकटक
निहारती हुई बैठी ही रह गईं ॥ १ ॥

कान्ति : अहा ! इसने अपना बॉयों हाथ अपने नितम्ब-
पर रख लिया है इसलिये हाथका कदा पहुँचेपर रुककर चुप
हो गया है । दूसरा हाथ श्यामाकी ढालीके समान डीला
खरका हुआ है । नीची अँगुलि किए हुए यह अपने पैरके अँगुठसे
धरतीपर बिखरे हुए फूल सरका रही है । इस प्रकार खड़ी होनेसे
इसके ऊपरका शरीर लम्बा और सीधा हो गया है । नापनेके
समय भी यह ऐसी सुन्दर नहीं लगती थी जैसी अब लग रही
है ॥ १ ॥

माधुरता : इन-गिने आभूषण पहने हुए और सरकण्डके
समान पाल गाजावाला यह सुन्दरी वैसी ही दिखाई दे रही है

दीप्ति—तासुरयस्य विलासः समधिकलावण्य-
सम्पदो हासः । घरणितलस्याभरणं युवजनमनसो यशी-
करणम् ॥१॥ दैवादृष्टा नितान्तसुमुखशशिज्योत्स्नावि-
लुप्ततमोनिवहे । अभिसारिकाणां विघ्नं करोप्यन्यासां
विहताशे ॥ २ ॥

प्रगल्भता—तथा व्रीडाविधेयापि तथा मुग्धापि
सुन्दरी । कलाप्रयोगचातुर्यं सभा स्वाचार्यकं गता
॥ १ ॥ समाश्लिष्टा समाश्लेषैश्चुम्बिताश्चुम्बनेरपि ।
दृष्टाश्च दर्शनैः कान्तं दासीकुर्वन्ति योपितः ॥ २ ॥
औदार्यम्—दिवसं खलु दुःखितायाः सकलं कृत्वा
गृहव्यापारम् । गुरुयपि मन्गुदुःखे भरिमा पादान्ते
सुप्तस्य ॥ १ ॥

धैर्यम्—अथ विश्वात्मने गौरी सन्दिदेश मिथ-
सखीम् । दाता मे भूभृतां नाथः प्रमाणीक्रियतामिति
॥ १ ॥

जैसे वसन्तसे पके हुए पत्तेवाली किसी कुन्दलतामें इने-गिने
फूल बचे रह गए हैं ॥ १ ॥

दीप्ति : यह नवेली तो यौवनका विलास है, बड़ी हुई
लावण्य संपत्तिका मधुर हास है, युवतीका भूषण है और
नययुवकोंके मनको आकृष्ट करनेवाला यशीकरण मन्त्र है ॥१॥
हे रमणी ! प्रसन्न हो जाओ ! देखो तो, सुशारे सुलचन्द्रकी
चँदनीसे अँधेरा नष्ट हो रहा है । लौट चलो, हे मूल ! तुम
दूसरी अभिसारिकाओं (कृष्णाभिसारिकाओं) को भी अपने
प्रियतमोंसे गुपगुप मिलनेमें क्यों विघ्न डाल रही हो ? ॥ २ ॥

प्रगल्भता : यद्यपि वह सुन्दरी अत्यधिक भोली तथा
लज्जाली है फिर भी सभामें कला-प्रयोगकी चतुरता दिखते
समय आचार्य बन गईं ॥ १ ॥ आलिंगन आदिके बदलेमें
स्वयं भी वैसे ही व्यवहार करके रमणियों प्रियतमोंको दास बना
लेती हैं ॥ २ ॥

उदारता : जैसे ही प्रियतम अपनी प्रेमिकाके पैरो पढ़ने
लगे तैसे ही दिनभर घरका कामकाज करके यकी हुई नवेलीका
क्रोध शान्त हो गया ॥ १ ॥

धौरज : जब पार्वतीजीने, घट-घटमें रहनेवाले शिवजीको
अपनी सखीके मुँहसे धीरेसे कहलाया कि मेरा विवाह करने
या न करनेवाले मेरे पिता हिमाञ्च हैं, इसलिये यदि आप
मुझसे विवाह करना चाहते हैं तो पहले उन्हें जाकर मना
जाजिए ॥ १ ॥

हाव

लीला—तथा दृष्टं तथा मणितं तथा नियतं तथा तथा शीर्षम् । अत्रलोकितं सत्पुणं सविभ्रमं यथा सप-
त्नीभिः ॥ १ ॥

विलासः—अत्रान्तरे किमपि धाम्निप्रवातिवृत्त-
वैचित्र्यमुल्लसितविभ्रममायताद्वयाः । तद्भूरिसात्त्विक-
कविकारविशेषरम्यमाचार्यकं विजयि मान्मथमाधिरा-
सीत् ॥ १ ॥

विच्छ्रितिः—कर्णापितो रोधकपायरुक्ते गोरोचना-
भेदनिदान्तगौरैः । तस्याः कपोले परभागलाभाद्बन्ध-
वक्ष्यं यद्यप्ररोहः ॥ १ ॥ स्वच्छाम्भ स्नपनविधौत-
मङ्गमोष्टस्ताम्बूलद्यति विशदो विलासिनीनाम् ।
यासस्तु प्रतनु विविक्रमस्त्रितीयानाकल्पो यदि कुसु-
मेपुषा न शून्यः ॥ २ ॥

विभ्रमः—अभ्युद्वेते शशिति पेशलकान्तदृतीसंला-
पसंयतितलोचनमानसाभिः । अत्राहि मण्डनविधिधि-

हाव

सुलुलुलपनः : उस नवेलीकी चितवन, बोल-बाज,
अपनेको सँभाले रखना और बैठना इस ढङ्का है कि उसकी
सीतें उसे बड़ी चाह और विलासकें साथ देखती हैं ॥ १ ॥

चटक-मटक : इस बीच, बड़ी-बड़ी आँखोंवाली
माखतीका काम-सम्बन्धी विजयका धार्याँव (कामशैशल)
प्रकट हुआ जिसकी विचित्रता मोलनेके ढङ्गोंसे बढ़ गई थी, जो
हाव-भाव तथा चबराहटसे युक्त था और जो स्वेद, रोमाञ्च
आदि सारिषिक भावोंके कारण विशेष सुन्दर हो गया था ॥ १ ॥

धनाय सिंगार : शृङ्गार करते समय पार्वतीजीके कानमें
जो जौका अङ्गुर डगा हुआ था वह लोचके चूर्णके कारण रुने
और गोरोचनके बेलचूर्णसे अधिक गोरे-गोरे कपोलपर विशेष
सुन्दरता प्राप्त करके लोगोंकी दृष्टियाँ अपनी ओर खींच रहा था
॥ १ ॥ यदि विलासवती रमणियाँ कामकलाओंके चमत्कारसे
शून्य न हों तो उनके लिये निर्मल जलके स्नानसे विशुद्ध अङ्ग,
पानकी छायासे सजे हुए झोठ और सुन्दर स्वच्छ पतले वक्षः
बस इतने ही आभूषण बहुत हैं ॥ २ ॥

हृदयङ्गी : चन्द्रमाका उदय होनेपर प्यारे छैलेकी
वृत्तियोंकी सुन्दर धारोंसे विकसित नेत्र और मनवाकी नवेखियोंसे
इस प्रकार गहनों आदिसे अपनी सजावट की कि उनके
गहनोंकी उड़टा-पड़टी सजावट देखकर सँभियाँ हँस पड़ी ॥ १ ॥

५८

परीतमूपाधिन्यासहासिनमखीजनमङ्गनाभिः ॥ १ ॥

विवोकः—यासां मन्थपि मद्गुणानुमरणे दीपानु-
वृत्तिः परा या प्राणान्तरमर्पयन्ति न पुन सम्पूर्णदृष्टिं
मिये । अत्यन्ताभिमतैऽपि वन्तुनि विधियाँसां निपे-
धात्मकस्तास्त्रैलोक्यविलक्षणप्रकृतयो वामाः प्रसीदन्तु
ते ॥ १ ॥

किमकिञ्चितम्—रतिक्रीडाद्यते कथमपि समासाय
समयं मया लब्धे तस्याः फणितकलरुटाधर्मधरे ।
कृतभ्रमङ्गली प्रकटितविललाधर्षकदितस्मितकोधो-
द्धान्तं पुनरपि विदध्यान्मयि मुपमम् ॥ १ ॥

मोहाधितम्—त्रिधर्वात्तिन्यपि नृपे तस्यायेन
नेतसि । श्रीडाधैयलितं चक्रे मुपेन्दुमयशैव सा ॥ १ ॥
कुट्टभितम्—नान्दीपदानि रतिनाटकविभ्रमणा-
माज्ञाक्षराणि परमाण्यथवा स्मरस्य । दूरेऽचरे प्र-
यिना विधुताप्रपाणैः सौत्कारशुष्कदिनानि जयन्ति
नार्याः ॥ १ ॥ पल्लवोपमितिसाम्यसपत्नं दृष्टवत्यधर-

पँठ : [अत्यधिक गर्वके कारण इच्छित वस्तुओंमें भी
अनादर दिखाना] मनमें सद्गुणोंका ध्यान रहनेपर भी जो
वाणीसे प्रायः सब वस्तुओंमें केवल दोष ही ढूँढताती हैं, जो
प्राण भले ही दे दें किन्तु प्रियतमकी ओर पूरी दृष्टि नहीं देनी,
अत्यधिक चाही हुई वस्तुमें जो अपनी चाहको भरचिके द्वारा
प्रकट करती हैं, वे तीनों लोकोंसे विद्वेषण प्रकृतिवाली वामा
तुमपर प्रपन्न हों ॥ १ ॥

नौक-मूँक : रतिक्रीडाके लुपमें जब मैंने उसका नीचेका
झोठ जीन लिया तो दौकी भौहँवाली उस नवेखीने अपने
सुन्दर कण्ठसे अस्पष्ट शब्द किये हुए और लाज, रजार्ड,
मुस्कान तथा कोषके अस्पष्ट मिश्रणसे तर्पिया हुआ मुख
मेरी ओर कर लिया ॥ १ ॥

मूँप : राजाका चित्र देखते समय प्रेमके आवेशमें वह
नवेली मूँक गई कि यह चित्र है और उसने अपना मुखचन्द्र
लाजके कारण कुछ टेढ़ा कर लिया ॥ १ ॥

रोना धोना : प्रियतमके झोठ चूमनेपर हाथ फटकारती
हुई नवेलीका सी-सी कणके वह मूँट-मूँट रोना विजयी हो रहा
है जो रतिक्रीडाके लुप नाटकके दरगोंका मङ्गलाचरण है तथा
कामकी आज्ञाका श्रेष्ठ अक्षर-सम्बुद्ध है ॥ १ ॥ हाथको 'करपल्लव',
और झोठको 'अक्षर-पल्लव', कहते हैं इसीलिये प्रियतमने जब
नवेलीके झोठका बलपूर्वक सुग्धन किया तो उसके मणि जड़े

विन्वमभीष्टे । पर्यैकृजि सरुजेय तरुण्यास्तारलोलवल-
येन करेण ॥ २ ॥

ललितम्—सा राजहंसैरिव सञ्जताङ्गी गतेषु
लीलाञ्जितचिक्रमेषु । व्यनीयत प्रत्युपदेशलुञ्चैरादि-
त्सुभिर्नृपुरसिञ्चितानि ॥ १ ॥

विहतम्—दूरागतेन कुशलं पृष्टा नोवाच सा मया
किञ्चित् । पर्यैश्रुणी तु नयने तस्याः कथयाम्यभूवतुः
सर्वम् ॥ १ ॥

सम्भोगनर्म—सालोके एव सूर्ये गृहिणी गृहस्वा-
मिकस्य गृहीत्वा । अनिच्छतोऽपि पादो धुनोति
हसन्ती हसतः ॥ १ ॥

भयनर्म—अभिव्यक्तालीकः सकलविफलोपायवि-
भवश्चिरं ध्यात्वा सद्यः कृतकृतकसंरम्भनिपुणम् । इतः
पृष्ठे पृष्ठे किमिदमिति सन्त्रास्य सहसा कृताश्लेषं
धूर्तः स्मितमधुरमालिङ्गति बधूम् ॥ १ ॥

तैलापकः—शस्त्रप्रयोगखुरलोकाहले गणानां सैन्यै-

वृतेो विजित एव मया कुमारः । एतावतापि परिरेभ्य
कृतप्रसाद प्रादाद्दुं प्रियगुणो भगवान्गुरुर्म ॥ १ ॥

उत्थापकः—अनन्दाय च विस्मयाय च मया
दृष्टोऽसि दुःखाय वा वैतृप्यं तु कुतोऽद्य सम्प्रति
मम त्वदर्शने चतुपः । त्वत्साङ्गत्यसुरस्य नास्मि
विषयः किं वा बहुव्याहतैरस्मिन्विश्रुतजामदग्न्यविजये
वाहौ धनुर्जम्भताम् ॥ १ ॥

परिवर्तक—हेरम्बदन्तमुसलोह्लिखितैकमिति वज्रो
विशाखविशिखमणलाञ्छनं मे । रोमाञ्चक्रञ्चुकितम-
द्भुतवीरलाभाद्यस्तस्यमद्य परिवञ्चुमिवेच्छुति त्वाम्
॥ १ ॥

वस्तुत्थापनम्—जीयन्ते जयिनोऽपि सान्द्रतिमिर-
प्रातैवियहृत्वापिभिर्मांस्वन्तः सकला रवेरपि रुच-
कस्मादकस्मादमी । पतेञ्चोप्रकवन्धरन्ध्ररिरोरध्मा-
यमानोदरा मुञ्चन्त्याननकन्दरानलमुचस्तीप्राऽऽत्वाः
फेरवाः ॥ १ ॥

कङ्कनवाले कर-पल्लव मानो अपने प्रिय मित्र अधर-पल्लवकी
पीडासे ही कराह (भनफना) उठें हों ॥ २ ॥

लटपट चालः यौवनके भारसे शुकी हुई पार्वतीजी जब
चलती थीं तो ऐसा जान पड़ता था मानो उनके बिलुओंसे
निकलनेवाली मधुर ध्वनि सीलनेके लिये क्षलचाप हुए राजहंसोंने
अपनी हाव भाव भरी चाल उन्हीं पहले ही सिखा दी हो ॥ १ ॥

सकपकाहटः दूर देशसे लौटकर जब मैंने कुशल पूछा
तो वह बोली तो कुछ नहीं किन्तु उसकी आँसू भरी आँखोंने
सभी कुछ कह डाला ॥ १ ॥

छेड़ छ्वाड़ः सूर्यके दिखाई देते रहनेपर भी (दिन रहते
ही) गृहियाँ हैंसती हुई गृहस्वामीकी इच्छा न होते हुए भी
उसके पैर पकड़कर हिला रही है ॥ १ ॥

नटखट भरी छेड़-छ्वाड़ः प्रेमीका अपराध प्रकट हो
जानेसे प्रेमिका मान त्रिप वैठी है । प्रेमी उसे मनानेके कई
उपाय करता है किन्तु वह नहीं मानती । फिर बड़ी देरतक
सौच विचार करनेके पश्चात् यदी चतुराईसे 'अरे, यह पीछे
ब्या है, ब्या है' । ऐसा कहकर उसे डरा देता है और ज्योंही
वह डरकर उसकी ओर मुकती है त्योंही वह धूर्त मुस्कराहट
और मधुरताके साथ उसे गले लगा लेता है ॥ १ ॥

अकफः परशुराम कहते हैं—'शस्त्र प्रयोगकी पीडाका
युद्ध करते समय मैंने देवगणोंकी सेनासे युक्त हुमार कांचिकेयकी

जीत लिया था । मेरी इस जीतसे प्रसन्न होकर मुझे गले
लगाकर सुन्दर गुणोंसे प्रसन्न होनेवाले मेरे गुरु भगवान्
शङ्करने जो परछु मुझे दिया था वही यह परछु है' ॥ १ ॥

हृलासः रामचन्द्रसे परशुराम कहते हैं—'यह तो मैं ठीक
नहीं कह सकता कि तुम मुझे आनन्दके लिये दिखाई पड़े हो
या विस्मयके लिये, या दुःखके लिये, किन्तु आज तुम्हें देखकर
मेरी आँखें न जाने क्यों रूठ हो रही हैं, क्योंकि तुम्हारे सम्भोगसे
मुझे तो सुख नहीं होना चाहिए और अधिक क्या कहूँ !
जमदग्निके पुत्र परशुरामकी जीत लेनेसे प्रसिद्ध तुम्हारे हाथमें
यह पतुप सुयोमित हो' ॥ १ ॥

उभंगः परशुराम रामचन्द्रसे—'यह बात बिलकुल सच
है कि गणेशजीके दौतरूपी मुसलोंके चिह्नोवाला और स्वामी
कांचिकेयके अनगिनत बाणोंके धावोंवाला मेरा वध स्थज तुम
जैसे अद्भुत वीरसे मिलनेके कारण रोमाञ्चित होकर तुम्हारा
आलिङ्गन करना चाहता है' ॥ १ ॥

यातकी उठानः यह क्या बात है कि सारे संसारके
अन्धकारकी जातनेवाली प्रकाशमान सूर्यकी किरणोंकी भी
शकायमें समाए हुए अंधेरेने जीत लिया है और कटे हुए
घड़ोंके ऊपरके छिद्रोंसे निकलता हुआ रक्त पीनेसे पेट खूब
भरे हुए, बलपूर्वक चिल्लाती हुई ये सियारिनियाँ क्षर अपने
शुद्धके बिलोंसे आग उगल रही हैं ॥ १ ॥

श्रवणात्—कण्ठे कृत्वाचशेषं कनकमयमधः शृङ्खलादाम् कर्णन्तान्वा द्वााराणि हेलायलवरणयलक्किष्णीचक्रवालः । दत्तातद्गो गजानामनुग्रहसरणिः सम्भ्रमादश्वपालैः भ्रष्ट्रप्रोऽयं प्लवङ्गः प्रविशति नृपतेर्मन्दिरं मन्दुरातः ॥ १ ।

मौढ्यम्—के द्रुमास्ते क्व वा प्राप्ते सन्ति केन प्ररोपिताः । नाथ मत्कङ्कणन्यस्तं येषां मुक्ताफलं फलम् ॥ १ ॥

निक्षेपः—यच्चिमल्लमर्धमुकतं फलयति तिलकं तथाऽसफलम् । किञ्चिद्भदति रहस्यं चकितं विष्वग्विलोकते तन्वी ॥ १ ॥

कृतहलम् — प्रसाधिकालम्बितमग्रपादमक्षिप्य काचिद्भयरागमेव । उत्तृष्टलोलगागतिरागवाचादलककाङ्कां पदवीं सतान् ॥ १ ॥

अन्तैर्नानिष्टप्रातिष्ठतसम्भ्रमः — चत्सस्यामयचारिचः

भगदृष्टः कयटकी सोनेकी साँकल तोटकर, बची हुई साँकल घसीटता हुआ, अपने पैरोंकी किञ्चिष्की लीलासे पैर चलकर यज्ञता हुआ यह यन्दर तयनेसे घूटकर कई द्वार पार करता हुआ महाराजके महलकी आर घुस रहा है । हमने देखकर हाथी भदक ठठे हैं और भयसे घनराष्ट्र ह्रष्ट्र घोड़ोंके चरकटे उसी मार्गसे उसके पीछे दौड़े जा रहे हैं ॥ १ ॥

मोलापनः हे नाथ । मेरे कर्णनमें जड़े हुए मोठी जिन वृषोंमें फले होंगे वे दंष्ट्र केसे होते हैं, किस गौरवमें है, किसने लगाए हैं ? ॥ १ ॥

श्रकचफः वह रमणी अपना केशपाश (जूड़ा) आधा ही सजाती है, तिलक अर्धरा ही लगाती है, कुछ रहस्यमयी अर्धरी बात कहती है और चकित होकर ह्यार-उचर देखती है ॥ १ ॥

चायः जयशुकके कुमाह अजकी वारात निकली उस समय उसे देखनेके लिये किसी सुन्दरीने महावर लगानेवालीके हाथसे अपने गीले ही पैर भटकर अत्यन्त शीघ्रतासे जहाँसे वारात दिखाई पड़ रही थी उस करोलेतक पहुँचकर करोलेतकके मार्गकी अपने पैरके गीले महावरसे रँग दिया ॥ १ ॥

अनिष्टरी आशङ्क्यासे अनिश्चयः निर्भयताके समुद्र वस्तु लक्षमणको राक्षस भय हो यह मैं कैसे मान लूँ । और यह मुनि बरकर लक्षमणको बचानेके लिये जो विचित्र रहा है,

प्रतिभयं मन्ये कथं राक्षसान्प्रमथ्येव मुनिर्धरीति मनसश्चास्त्रेण्यमे मन्थ्रमः । मा हासोर्जनकाम्यजामिनि मुद्रुः स्नेहादगुरुयांचते न म्यातुं न च गन्तुमाकुलमतेर्मूढस्य मे निपचयः ॥ १ ॥

इष्टप्रातिष्ठतः—परोहि वत्स रघुनन्दन पूर्णचन्द्र शुभ्यामि भूर्धनि चिरस्य परिष्वजे त्वाम् । आगेण्य वा हृदि दिवानिशमुद्रहामि वन्देऽयना चरत्पुष्करकण्ठं ते ॥ १ ॥

वहियः—चिरम चिरम यद्ये मुञ्ज घूमाकुलन्यं प्रस्रस्यसि किमुशैरचियां चक्रवालम् । चिरदहृत्सुजाहं यो न दग्धः प्रियायाः प्रलयदहनमासा तस्य कि त्वं करोषि ॥ १ ॥

करिचः—सच्चिद्रूपयन्त्रतृप्तयुग्मशून्यं भ्रष्ट्राक्षयंस्त्ररथं क्षणेन । रामापरिचाणविहन्तयोधं सेनानियेयं तुमुलं चकार ॥ १ ॥

यह भी कैसे मूढ़ मान लिया जाय । मेरे मनमें भी सम्भ्रम है ही । तुमने स्नेहपूर्णक यह उपदेश दिया था कि 'सीताको कभी अकेली न छोड़ना ।' ये सारी बातें सोचकर तो मेरी बुद्धि ऐसी व्याकुल हो गई है कि मेरी समझमें नहीं आ रहा कि मैं क्या कहूँ, क्या न कहूँ । अतः लक्षमणको सहायता करनेके लिये जाने या टहरनेके विषयमें मैं कुछ भी निश्चय नहीं कर पा रहा हूँ ॥ १ ॥

मियने प्राप्त होनेपर ह्लासतः हे पूर्ण चन्द्रमाके समान सुन्दर, बेटा राम ! आओ, ह्यार आओ । मैं तुम्हारा स्तिर बहुत देरतक चुनवा रहूँ और तुम्हें गले लगाए रहूँ अथवा तुम्हें अपने हृदयमें दिनरात बेटा रहूँ या तुम्हारे दोनों चरणयुक्तमलोंकी वन्दना करता रहूँ ॥ १ ॥

आगसे निश्चिन्तताः हे आग ! शान्त हो जाओ, यह इतना शुभ्र न उमड़ाओ, ये ऊँची-ऊँची छपटें क्यों उठा रही हो ! अरे जब मुझे प्यारीके त्रिदोहकी आग नहीं जवा पाई तब प्रलय-कावली अग्निके समान तेजवाली तुम मेरा क्या विगाड़ जाँगी ॥ १ ॥

हाथीसे भगदृष्टः उस हाथीने वेगले अपने सिद्ध तुषारक एक ही चयमें सेनाके रथोंकी धुरी तोटकर द्विप्र-मिन्न कर दाबी । हाथीके बरसे धरी हुई चियोंकी रचाके लिये सारे योद्धा छुट गए थे और सारी सेनामें भयङ्कर व्याकुलता तथा कोबाहल फैल गया था ॥ १ ॥

श्रावेण—प्रारब्धां तरुणप्रकेषु सहसा सन्त्यज्य
सेकाक्रियामेतास्तापसकन्यकाः किमिदमित्यालोक्य
न्याकुलाः । आरोहन्त्युदजद्रुमोश्च वटवो वाचंयमा
अप्यमी सद्यो मुक्तसमाधया निजदृष्टीष्वेधोच्चपदं
स्थिताः ॥ १ ॥

सा त्वकभावाः—वेपते स्वेदवचना रोमाञ्चं गात्रे
यपति । विलोलस्ततो वलयो लघु बाहुवर्ल्यां रयति
॥ १ ॥ मुख श्यामल भवति क्षणं विमूच्छति विदग्धेन ।
मुग्धा मुणवल्ली तद्य मेग्णा सापि न धैर्यं करोति ॥२॥

तरु-ज्ञाना/चर्षद.—प्राप्ताः श्रियः सकलकामदुघा-
स्ततः किं वचं पदं शिरसि विद्विपता ततः किम् ।
सम्प्राप्ताः प्रणयिनो विभवैस्ततः किं कल्प स्थितं
तनुभृता तनुभिस्ततः किम् ॥ १ ॥

श्रापदः/नर्यद.—राष्ट्रा विपद्भ्युपविद्यागदुःख देश-
च्युतिर्दुःखमार्गदेदः । आस्वाद्यतेऽस्याः कट्टनिष्फ-

लायाः फलं मयैतच्चिरजीवितायाः ॥ १ ॥

ईर्ष्याति.—धिनिधकशक्रजितं प्रवेधितवता किं
कुम्भकण्ठेन घा स्वर्गप्राप्तिकाविलुण्ठनपरैः पीनैः
किमेभिर्मुक्तैः । न्यकारो ह्ययमेव मे यदप्यस्तप्राप्यसौ
'तापसः सोऽप्यग्रेव निहन्ति राक्षसमटाञ्जीवत्यहो
रायणः ॥ १ ॥

वीरशृङ्गारयोर्व्यभिचारी निर्वेदः—ये वाहयो न युधि
वैरिकदोरकरण्ठपीठोच्छ्रलद्रुधिरराजिचिराजितांसाः ।
नापि मियापृथुपयोधरप्रभङ्गसंक्रान्तकुङ्कुमरसाः खलु
निष्फलास्ते ॥ १ ॥

रसानङ्गः स्वतन्त्रो निर्वेदः—कस्त्वं भोः कथयामि
दैवदूतकं मां विधिं शापोटकं वैराग्यादिव वक्ति साधु
चिदितं कस्माद्यतः भ्रयताम् । धामेनात्र वटस्तमप्यग
जनः सर्वोत्तमा सेवते न च्छ्यायापि परोपकारकरणी
मार्गस्थितस्यापि मे ॥ १ ॥

घवराहट्टः पुत्रोके समान स्नेहसे पात्रे गण घृषोको
सौचिना द्वाभ्रक ये तपस्विकोके क-यापै 'यह क्या हो गया !'
कहकर प्रकार प्याकुल हाकर देखने लगी है, प्रहाचारी शिष्य
उत्सुक घृषापर चक्कर दख रह है और महर्षि लाग भा अपनी
समाधि द्वाभ्रकर अपन आसनपर हा बिना वाले-चाले पैर ऊपर
उठा-उठाकर पद हा रह है ॥ १ ॥

सार्धक भावः इ युवक । तरे प्रेमके कारण वह
नवेला तानक भा धारज नहा धरता, उसक मुखपर पसीना
आ जाता है, शरारम रामाञ्च हा आता है, वह कौन लगती
है, उसका चञ्चल कर्णन बाहुस्था जताम धामे-धामे शब्द
करता है, उसका मुँह काला पव जाता है, वह चय भरके
जिय मूच्छत हा जाता है तथा उसका मुँहरूपा क्षता तनिक
भी धारज नहा धरता ॥ १-२ ॥

ज्ञानक कारण मनका शान्तिः यदि सन्पूर्ण इच्छार्प
पूर्ण करनवाला समाध भिन्न भाव तो उससे क्या । शशुष्यके
मस्तकपर पर रखकर उ-ई जात खिया गया हा तो क्या ।
निद्रा तथा स्नहा बन्धुभाका धन आदिसे सन्तुष्ट कर दिया
हो सा भी क्या और शरारधारा मनुष्य प्रलवतक जात रहें
तो भा क्या ॥ १ ॥

विपत्तिमें मनकी शान्तिः यद्यपि विपत्ति, बन्धुओंके
विदारका डु ख, दर सा यठना और भयङ्कर कठिन मार्गोंमें
धूम धूमकर कट सहना ये सब रात्राके लिये विराधी बातें हैं

किन्तु फिर भी मैं इस कदवी, निष्फल और सदा रहनेवाली
प्रकृतिका यह फल खल ही रहा हूँ ॥ १ ॥

झाहसे मनकी शान्तिः यद मेरा सबसे बड़ा अपमान
है कि मेरे जैसे वीरके भी शशु हों, हों भी तो यह तपस्वी
बाबा ! और फिर वह यहीं, मेरे घरमें, जङ्गलमें ही घुसकर
धीर राक्षसोंको मारे जा रहा है । यह तिरस्कार सहकर भी
शय्य जावित है, यह घट्ट ही बड़े दुःखकी बात है । हृन्दको
जातनवाले मेवमादको और उसका वीरताको चिक्कार है ।
हृन्मकणका हा नादसे जगानेसे क्या जान हुआ । और छोटेसे
गोवका भी त स्वर्गका लूटनेवाले से मेरे माटे मोटे हाथ भी
स्यर्थ हा है ॥ १ ॥

घोर आर ट्टकारके व्यभिचारी भावके रूपमें
शान्तः । आ हाथ, न हा युद्धमें वीरोंके कठोर कथठमें
उद्बलत हुए रफस सुशांत हा पाए हैं, और न प्यारीके माटे-
माट स्तनाक यज-घृटाक शुद्धमके रससे हा गिजे हुए हैं ये हाथ
निःसन्देह निष्फल हा हैं ॥ १ ॥

स्वतन्त्र मनकी शान्तिः 'तुम कौन हो भाई !' 'बततरा
हूँ, मैं भगाना शाखाटक हूँ ।' 'तुम तो बड़ी उदासीनताके
साथ बाल रह हा ।' 'तुमने ठाक समझा ।' 'देसा क्यों ?'
'सुना, देखा—उपर वार्हं धार जो एक वटका घूट है उसे बढोही
कई प्रकारसे सेवन करत है और धर मैं यद्यपि सक्कपर खड़ा
हूँ किन्तु मेरो प्राया भी किसीके कामकी नहीं है' ॥ १ ॥

अपस्मारः—आशिलप्रभूमि रसितारमुक्षीलोलङ्क-
जाकारवृद्धचरङ्गम् । फेनायमान पतिमापगानामसाव-
पस्मारिणमाशशङ्के ॥ १ ॥

गवः—मुनिरयमय वीरस्तादृशस्तत्प्रियं मे विर-
मनु परिकल्पः कातरे क्षत्रियासि । तपसि विततकीर्त्त-
र्दपकवृद्धलदोष्णः परिचरणसमर्थो राघवः क्षत्रि-
योऽहम् ॥ १ ॥

शीर्षगर्भः—धृतायुधो यावद्दहं तावदन्यैः किमा-
युधैः । यद्वा न सिद्धमखेण मम तत्केन साध्यताम् ॥ १ ॥

आलस्यम्—चलति कथञ्चित्पृष्ठा यच्चलति वचनं
कथञ्चिदालीनम् । आसितमेव हि भवते गुणगर्भभरा-
लसा सुतनुः ॥ १ ॥ न तथा भूपयत्यङ्ग न तथा भापते
सखीम् । जृम्भते मुहुरासीना वाला गर्भभरालसा
॥ २ ॥

मिरगीः पृथ्वीते मित्रे हुप, घोर शब्द करते हुप,
भुजाधाके समान चञ्चल जहरोवाले तथा फेनसे भरे सद्युद्धको
श्रीशृण्वजने समझ कि इसे मिरगी रोग हो गया है ॥ १ ॥

तेजः सितानि रामजा—ये मुनि परशुराम इतने वीर
हैं ता यह धरुदा बात है और मुझे प्यारी आ लग रही है ।
किन्तु सात ! तुम जानया है । तुम्हारी चबराइट और कैवर्केपी
दाना हा ठाऊ नदी है, तुम इस कपकेपाका राका । तपस्यामे यश
प्राप्त करनेवाले तथा घमण्डक कारण खुजलात हुप हाभावाले
न्यायका परिचयाक जिये मैं पात्रिय राम भजा-भोगत समर्थे ॥ १ ॥

घारताका गवः धधत्यामासे क्रायत कयं—जबतक
मैंने शखल रक्ता इ तबतक दूसर शखधारियोंका आवश्यक्ता
क्या है ? क्याक जा काय मर शखस न सिद्ध हुआ उसे फिर
सिद्ध करनेवाला है हा कोन ? ॥ १ ॥

आलस्यः भारा गर्भक भारस अलसाई हुइ सुन्दरा
किसा प्रकार चञ्चल अवश्य है और सखियाक पशुनपर किंसा
प्रकार उत्तर भा अवश्य दता है किन्तु खच पृथुप ता वट एक
हा स्थानपर बैठ रहता चाहता है ॥ १ ॥ गर्भक भारसे अलसाई
हुइ नचला न ता पद्लका भोगि शाराका सजावट हा करता
है न उस प्रकार सखियास बातें हा करता है, वरन् एक ही
स्थानपर बैठ-बैठा बार-बार जभाई खता रहता है ॥ २ ॥

माघः सधेदयेकं द्वाश पुधाशरसं भासनन यह बात
कहाइ रह है—घारकी आशाका उच्छ्वसन न करनेके काय
में जबतक थापका आशा पावनस्त्री अन्नमें दूधा रहा और

अमर्षः—युष्मच्छ्वासनलङ्घनाम्भसिमया मन्त्रेन नाम
स्थितं प्राप्ता नाम विगर्हणा स्थितिमतं मध्येऽनुजा-
नामपि । क्रोधोल्लासितशोणितक्षणादस्योक्चिन्मन्दतः
कोरवानचैकं दिवसं ममासि न गुरुनाहं विधेय-
स्तत्र ॥ १ ॥

श्रीतुक्थम्—आत्मानमालोक्य च शोभमानमाद-
शीयन्ने स्तिमितायतान्नी । हरोपयाने त्वरिता वभूव
स्त्रीणां प्रियालोकफलो हि वेपः ॥ १ ॥

अर्वाहृथा—पर्ववादिनि देवर्षीं पार्श्वे पितुरधो-
मुखी । लोलाकमलपत्राणि गणयाभास पार्यती ॥ १ ॥

उन्मादः—नयजलधरः सन्नद्धोऽर्थे न दत्तनिशाचरः
सुरधनुरिदं दूराकृष्टं न तस्य शरासनम् । अयमपि
पटुधारासारो न वायुपरम्परा कनकनिकपस्तिग्धा
विद्युत्प्रिया न ममोर्वशी ॥ १ ॥

आपकी आशा पावन करते हुप दूसरे छोटे भाइयोंके बीच मैंने
(भी) निन्दा और तिरस्कार प्राप्त किया । किन्तु आज मैं
कीरवाँसे सारा बदला चुका लेना चाहता हूँ अतः रक्ते रंगी
हुई गदाको क्रोधसे घुमाते हुप तथा कीरवाँका नाश करते हुप
भरे, केवल एक दिनके लिये—एकमात्र आच-भरके लिये, न तो
आप बड़े भाई ही हैं और न मैं आपका आजाकारी सेवक ही
हूँ ॥ १ ॥

उत्सुकताः शिवजीके पास जानेकी तैयारी करती हुई
चञ्चल तथा लम्बे लम्बे नेत्रोंवाली पार्वती अपना सुन्दर
स्वल्प दर्पणमें देखती हैं तथा शिवजीके पास जानेकी शीघ्रता
करती हैं । सच है, जिन्योंकी सुन्दर वेप भूपातमी सफल है जब
कि वह प्रियतमके नयनोंमें उतर जाय ॥ १ ॥

भौषः ससपिथीने जव क्याहकी बात चलाई उस समय
पिताजाक पास नीचा मुँह किए हुप पार्वतीजी कीकाकमबकी
पशुदियाँ गिनने लगीं ॥ १ ॥

पागलपनः भरे नीच रापस ! उहर-उहर ! मेरी प्रियाको
लेकर कहाँ चला जा रहा है ? क्या ! यह तो पानोंके भारसे
मुका हुआ नया बाइल है, यह जीट रापस नहीं है । यह ता
दूरतक फेला हुआ इन्-पत्रुप है, उस रापसका घत्रुप नहा
है । य भी पार पार्योंकी सूँदें हैं, बायोका क्या नहीं और जिसे
मैं उर्वशी समझ रहा हूँ, यह भी मेरी प्रिया उर्वशी नहीं है,
किन्तु सानेकी कसौटीकी रेशाके समान चिकनी और सुन्दर
विभजी है ॥ १ ॥

शुद्धा (स्वदुर्नयात्)—दूराद्दवीयो धरणीधरामं
यस्तादकैर्यं तृणवह्वथधुनोत् । हन्ता सुयाहोरपि ताड-
कारिः स राजपुत्रो हृदि वाधते माम् ॥ १ ॥

शुद्धा (प्राकीर्यात्)—हिया सर्वस्यासौ हरति
विदितास्मोति वदन् द्वयोर्द्वीपलापं कलयति कथामा-
त्मधिपयाम् । सखीषु स्मेरासु प्रकटयति वैलक्ष्यमधिकं
प्रिया प्रायेणास्ते हृदयनिहतातद्द्विषुग ॥ १ ॥

स्मृतिः—मैनाकः किमयं रुशडि गगने मन्मार्गम-
प्याहृतं शक्तिस्तस्य कुतः स वज्रपतनाद्गीतो महेन्द्रा-
दपि । तार्क्ष्यः सोऽपि समं निजेन विभुना जानाति
मां रावणमाः धातं स जटायुरेप जरसा क्लिप्तो धधं
वाञ्छति ॥ १ ॥

मतिः—असंशयं चतुरपरिग्रहजना यदार्थमभ्याम-
भिलाषि मे मनः । सतां हि सन्देहपदेषु वस्तुषु प्रमा-

अपनी दुष्टताके कारण शुद्धा : जिस छोटेसे राज
पुत्रने दूरसे ही पर्वतके समान बौल-बौलवाले ताडकाके पुत्र-
मारीच राक्षसके तिनकेके समान उठा दिया वह सुवाहको
मारनेवाला ताडकाका शत्रु राजकुमार (राम) मेरे हृदयमें चोट
कर रहा है ॥ १ ॥

दूसरेको प्ररताने शुद्धा : यह प्यारी (रत्नावली) अपने
हृदयमें शक्ति होनेके कारण सचमुच ही स्थित कियाई पढ
रही है । लोगोंके आगेमे यह लजाकर अपना मुँह यह समझकर
झिपा लेती है कि उन्होंने हमका गुप्त प्रेम जान लिया है ।
किन्हीं भी तो मनुष्योंको यार्तें करते देखकर वह यही समझती
है कि वे उसीके विषयकी यार्तें कर रहे हैं ! सखियोंको अपनी
धोर सुस्कराने देखकर वह अत्यधिक लजा जाती है । ये
पेटाएँ देखकर यही समझमें आता है कि वह अत्यधिक शक्ति
हो रही है ॥ १ ॥

स्मृतिः मीताको हरकर ले जाता हुआ रावण सोच रहा
है—'क्या मेरे ये रोक रोक मार्गको आकाशमें यह मैनाक रोक
रहा है ? पर मैनाकमें मेरा मार्ग रोकनेकी शक्ति कहाँसे
आई ? वह तो हृद्रके वज्रके दरसे स्वयं समुद्रमें झिपा पडा
है ! यह गरद भी नहीं हो सकता क्योंकि गरद तो क्या,
उसके स्वमी विष्णु भी मेरा यल जानते हैं । (तब यह कौन
है ?) अथा ! समझ गया, यह तो बुद्धा जटायु है जो मेरे
दापों मरनेपर तुला हुआ है ॥ १ ॥

सूक्तः यह तपस्वीकी कन्या (शकुन्तला) शवरय ही

एभन्तः करणप्रवृत्तयः ॥ १ ॥ न पण्डिताः साह्रमिका
मवन्ति अत्र्यापि ते सन्तुलयन्ति नत्यम् । नर्यं समा-
दाय समाचरन्ति स्यार्यं प्रकुर्यन्ति परम्य चार्थम्
॥ २ ॥ सहसा विदधोत न क्रियामवियेकः परमापदां
पद्म् । व्रुणुते हि विमृश्यकारिण्यं गुणानुन्याः स्ययमेव
सम्पदः ॥ ३ ॥

अन्या—अथ तत्र पाण्डुनयेन सद्मि विदितं मधु-
द्विपः । मानमसहत् न चेद्विपतिः परवृद्धिमन्मग्नि मनो
हि भानिनाम् ॥ १ ॥ अर्थित्ये प्रकटीरुनेऽपि न कलमतिः
प्रभोः प्रत्युत द्रहान्दाशरथिविन्दकचरितो युक्तस्तया
कन्यया । उत्कर्षं च परम्य मानयशसोर्विद्यंसनं चान्ननः
श्रीरत्नं च जगत्पतिर्दशमुखो हनः कथं सृष्यते ॥ २ ॥

दीर्जन्यादस्या—यदि परमणा न क्षम्यन्ते
यतस्व गुणाजने नहि परयशोनिन्दाव्याजैरलं परिमा-

अत्रियसे व्याही जाने योग्य है क्योंकि श्रेष्ठ गुणोंपर रीमेनेवाला
मेरा मन हूने चाह रहा है । सन्देहकी बातोंमें श्रेष्ठ पुरषोंका
चित्त जो कहे वही प्रमाण होता है ॥ १ ॥ बुद्धिमान्
तथा विद्वान् व्यक्त साहसी (एकाएक कोई काम कर
बैठनेवाले) नहीं होते । कोई बात चुनकर वे उत्सम तस्य
(रहस्य) जानना चाहते हैं और तस्य पा लेनेपर ही स्वार्थ
या परमार्थवाला काम करना प्रारम्भ करते हैं ॥ २ ॥ बिना
सोच-समके कोई काम एकाएक नहीं करना चाहिए, जानकी
कमी (भूतता) सारी आपत्तियोंका घर ही है । सोच-
समझकर काम करनेवाले व्यक्तिके गुणोंपर रीमेकर सम्पत्ति
स्वयं उसे अपनी लेती है (उसके पास धा विराजती
है) ॥ ३ ॥

जलनः सभामं सुधिष्ठिते जो भगवान् कृष्यका
सबसे पहले पूजन किया, इसे शिष्टपाल न सह सका ।
अभिमानी पुष्पोंका मन दूसरोंकी बर्तता देख ही नहीं सहता
॥ १ ॥ रावणने भिगमंगा धनकर जनकमे सतीता मर्गि फि
भी स्वामी रावणको मिला तो डुडू भी नहीं, उल्टे उनसे
शायला करनेवाले दशरथके पुत्र (रामको) वह कन्या मित्र
गई । शयुकी उन्नति, अपने मान और यशका नाश तथा
कोरलका इस प्रकार हायसे निकट जाना भला वह धनरत्नो
जाल्पति रावण कैसे सह सकेगा ! ॥ २ ॥

दुष्टतावशु जलनः यदि वृद्धोंके गुण नहीं सह
सकता तो अपनेमें वैसे ही गुण ले आनेके लिये प्रयत्न

जितुम् । विरमसि न चेदिच्छाद्वेषप्रसक्तमनोरथो
दिनकरकरान्पाणिच्छुभ्रैर्नुदंश्रममेव्यसि ॥ १ ॥

हर्षः—समीक्ष्य पुत्रस्य चिरान्पिता मुखं निघान
कुम्भस्य यथैव दुर्गतः । मुदा शरीरे प्रवभूय नात्मनः
पयोधिरिन्द्रद्वयमूर्त्तिं यथा ॥ १ ॥

विषादः—एषा कुटिलघनेन चिकुरकलापेन तव
नियन्ता वैशिः । मम सपि दारयति दशत्यायस्यष्टि-
रिच कालोरगोच हृदयम् ॥ १ ॥ नन्वेष राजसपतेः
स्पलितः प्रतापः प्रातोऽद्भुतः परिभयो द्वि मनुष्यपो-
तात् । दृष्टः स्थितेन च मया स्वजनप्रमाथो दैन्यं जरा
च निरक्षिप्तं कथं करोमि ॥ २ ॥

धृतिः—कृत्या दीननिपीडनं निजजने बद्धा बचो-
धिग्रहं मैवालोच्य गरीयसीरपि चिरादासुभ्रिकी-
यौतनाः । द्रव्यौघाः परिसञ्चिताः प्लु मया यस्याः

कर । निन्दा कर-करके इस घटाने दूसरोंके यह घटा देना—
पो देना सरल नहीं है । यदि हृदया और हृदये भरा
पो निन्दा करना नहीं छोड़ेगा तो वैसे ही स्वयं यत्कर हार
देतेगा जैसे मूर्खकी किरणोंके हाथके पुत्रके सहारे राजनेवाला
स्वयं भङ्कर शान्त हो जाता है । इस प्रकार निन्दा कर-
करके तु क्विसीया कुछ बिगाड़ नहीं पावेगा ॥ १ ॥

हर्षः : जैसे कोई दरिद्र पूर्वजोंकी गद्दी हुई धरोहरके
घड़ेका सुख देखकर प्रसन्न हो उठता है वैसे ही बहुत घायु
धीत पुत्रकेपर पुत्रका सुँद देखकर पिता (दिलीप) ऐसे
फूले न समाए जैसे चन्द्रमाका उदय देखकर समुद्र उमड़
पड़ता है ॥ १ ॥

दुःख : दे सखी ! तेरी यह सुँधराजे बाजोंकी घोड़ी
बोढ़ेकी सजाईके समान मेरा हृदय फाड़े बाज रही है तथा
भयङ्कर नागिनके समान उसे खे रही है ॥ १ ॥ हाय ! यह
बया भयङ्कर है कि समुद्रमें खीकियाँ (मूर्खियाँ) डूब रही
हैं और परवर तीर पड़े हैं । ऐसा जान पड़ रहा है कि राक्षसोंके
एवामी (सुम्भ) हावणका प्रताप मन्द पड़ रहा है । तभी तो इस
मनुष्यके बचने मेरी हार हो रही है । मैंने जिते जी अपनी
प्राणोंसे भाई-भ-भुझोंका विनाश देवा है । दीनता और
धुशाया दोनोंने मुझे बेचस कर दिया है । अब मैं क्या
करूँ ॥ २ ॥

धैर्य : दीनोंका गला पोंदकर, घापसी खोंगोंके साथ
फाड़े टानकर भी परखोईमें होनेवाली बड़ीसे बड़ी

कृते साम्प्रतं नीवारणं लीनापि केवलमहो सेयं कृताथी
ननुः ॥ १ ॥

धृतिः (ज्ञानात्)—यद्यमिह परितुष्टा वत्कलैस्त्वं
च लक्ष्म्या सम इह परितोषो निविशेपो विशेषः । स
तु भवतु दरिद्रो यम्य तृष्णा विशाला मनसि च परि-
तुष्टे कोऽथैवान्को दरिद्रः ॥ १ ॥

चापलम्—विनिकपणरत्नकठोरदंष्ट्राककचविशङ्क -
टकन्दोदराणि । अहमहमिकया पतन्तु क्षोपात्समम-
धुनैव किमत्र मन्मुखानि ॥ १ ॥

चिन्ता—कमलेन विकसितेन संयोजयन्ती विरो-
धिन् शशिनम् । करतलपर्यन्तमुखी कि चिन्तयसि
सुमुखि अन्तराहितहृदया ॥ १ ॥

वितर्कः—कि लोभेन विलङ्घित स भरतो येनेतदेवं
कृतं सद्यः खोलधुतां गता किमथवा मातेव मे

यमायातमाका ध्यान न करके जिस शरीरके जिये मैंने ठेर सा
धन इकट्ठा किया वह ध्यान मुठो-भर साँवके धावजोंसे ही
सन्वुष्ट हो रहा है ॥ १ ॥

ज्ञानके कारण धैर्य : हम लोग इन धुँधोंकी छाज
(पत्कल) से ही सन्वुष्ट हैं और तुम सगपत्तिसे सन्वुष्ट हो ।
इस प्रकार तुम्हारा और हमारा सन्तोष समान ही है । दरिद्र तो
यह होता है जिसकी तृष्णा बहुत बढ़ी-बढ़ी होती है । धरे,
मनके सन्वुष्ट रहते कौन धनी और कौन दरिद्र ॥ १ ॥

चापलता : रावण फड़ रहा है—'बार-बार पीसनेसे
शम्भ करती हुई कठोर झाँकीरूपी धारोंसे भयङ्कर कन्दरावाले
मेरे सय सुँद 'पहले मैं खाऊँ, पहले मैं खाऊँ' इस हृदयकीमें
एक साथ ही यहाँ (इस घानर-सेनापर) गिर पड़ें तो कितना
घरघा हो ! अथवा भयसर देखकर ठीक प्रकारसे का
करेंगा' ॥ १ ॥

चिन्ता : हे सुमुखी ! कर-कमलपर सुखपन्द्र रहते
हुए तू माने सराके विरोधी चन्द्रविम्बको तिले हुए
कमलसे निवाती हुई मन ही मन क्या सोच रही है ? ॥ १ ॥

वितर्क : खपमया तर्क करते हैं—'क्या भरत लोभके
परिभूत हो गया जिससे उसने देमा किया (रामको पन
भेजा है) ? या मेरी मँकळी माँ कैकेयी ही दूसरी जियोंके
समान सर्वथा ही खोटे विचारवाली हो गई है ! या मेरी
सोपी हुई ये दोनों बानें भूट हैं क्योंकि भरत भी रामके
पोंटे भाई तथा मेरे बड़े भाई हैं, साथ ही माता कैकेयी तृप

मध्यमा । म्रियैतन्मय चिन्तितं द्वितयमप्यायांनु-
जोऽप्यौ शुरुर्माता तातकलप्रमित्यनुचितं मन्ये विधात्रा
कृतम् ॥ १ ॥

श्रीप्रशंसा—अरुद्रिममेरसा विलासालसगा
मिनी । असारै दग्धसंसारै सारं सारङ्गलोचना ॥ १ ॥
अधरे नवघोटिकानुरागो नयने कञ्जलमुञ्जलं दुक्क-
लम् । इदमाभरणं नितग्न्यनीनामितरङ्गपणमङ्गद्वय
णाय ॥ २ ॥ अयला इत्यघघोया न कदाऽपि विधे-
किमिः । त्रैलोक्यं यद्दृष्टां दासः स्याच्चिन्नैर्यलता कुतः
॥ ३ ॥ अमृतममृतं फः सन्देहो मधुन्यपि नान्यथा
मधुरमधिकं चूतस्यापि प्रसन्नरसं फलम् । सकृदपि
पुनर्मध्यस्थः सन्नसान्तरविज्ञानो यदतु यदिद्वान्यत्स्यादु
स्यादिप्रयारदनच्छदात् ॥ ४ ॥ अमृतस्थेय कृण्डानि
रक्षानामिध राशयः । रतेरिव निधानानि निर्मिताः
केन योपितः ॥ ५ ॥ अलमतिचपलत्वात्स्यप्रमायोपम-
त्वात्परिणतिविरसत्वात्सङ्गमेनाङ्गनायाः । इति यदि

शतकृन्वस्नचमालोचयामस्तदपि न हरिणाघौ विष्म
रत्यन्तरात्मा ॥ ६ ॥ अयलोकनमपि सुन्ययति पुनल-
यदलचारुचपलनयनायाः । किं पुनरमृतममानं सरस
समालिङ्गनं तस्याः ॥ ७ ॥ अविश्वसन्मृत्युस्वयरोऽपि
नरः पुरन्ध्रीपुरतोऽन्व पय । अश्रेयशिक्षाकृतलाऽपि
फाकः प्रतार्यते किञ्च पिनाङ्गनामिः ॥ ८ ॥ आदान-
पानलेपैः काश्चिद्वरलोपतापहारिण्यः । पुरतः स्थितैव
सिद्धौपधियज्ञो कापि जीययति ॥ ९ ॥ आलोलैदप-
गम्यते मधुकरैः केरोषु माल्यग्रहः फान्तिः कापि
कपोलयोः प्रथयते ताम्बूलमन्तर्गतम् । अङ्गानामनुते
पनं परिमलैरालेपनप्रक्रिया वेपः कोऽपि सरोजगुन्द-
दृशः सुते सुखं चक्षुषां ॥ १० ॥ आश्लेषे सुन्दरीणां
स्थितवति सहसा सर्वसन्तुष्टिहेतो व्यर्थः पीयूषमाप्नु-
ञ्जलनिधिमथने यत्न इत्याकलय्य । तस्मादेते विरक्ता
जगति सुमनसो यत्समस्तास्तद्वा स्वर्गस्थानामिधैषां
न कथमितरथा लाघवं स्यात्प्रतोतम् ॥ ११ ॥ आस्यं

पिताकी पत्नी हैं अत रामके छोटे भाई तथा दशरथकी पत्नीसे
ऐसा अनुचित कार्य नहीं हो सकता । ऐसा जान पड़ता
है कि यह सारी अनुचित कर्तव्य विधातकी ही है ॥ १ ॥

श्री-प्रशंसा । इस निगोदे असार संसारमें स्वाभाविक
प्रेम-रूपी वस्तु भरी हुई और हाव-भावसे अलसाकर चञ्चने-
वाली मृगनयनी ही सार है ॥ १ ॥ ओठमें पानके नये बँदिकी
बजाई, नयनोंमें काजल और गलेमें उजला दुपट्टा, यही तो
यथार्थमें नवेलियाँकी सजावट है, इसके अतिरिक्त और
सब तो उन्हें भद्दा बना देते हैं ॥ २ ॥ बुद्धिमान् मनुष्योंकी
चाहिए कि वे स्त्रियोंको धरवा (निर्वा) समझकर न
दुतकारें । भला छीनों लोक जिनकी चितवनका दास है वे
निर्वा कैसे हो सकती हैं । ॥ ३ ॥ इसमें सन्देह नहीं कि
अमृत-अमृत ही है, मधुभी अत्यधिक मधुर होता है । यह
भी ठीक ही है कि ग्रामका फल भी बहुत मीठा होता
है किन्तु इनके अतिरिक्त किसी रसको चखनेवाला ही कोई
निर्यायक धनकर बता दे कि इस ससारमें प्रियतमाके
घोटले बढ़कर क्या कोई दूसरी स्वादिष्ट वस्तु है । ॥ ४ ॥ ऐसी
सुन्दरियाँ भला किसने रहीं जो मानो अमृतकी कुचक हैं,
रनोंकी ढेर हैं और रतिक्रीडाकी मयदा र हैं ? ॥ ५ ॥
'स्वप्नकी मायाके समान अत्यन्त चणिक और नीरस
परिणामवाले स्त्रियोंके सहावासे क्या काम ?' ऐसी बातें सँकड़ों

वार भली-भाँति सोच विचारकर, तब समझकर भी हमारा
अन्तरात्मा उस मृगनयनी नवेलीको सूझता नहीं ॥ १ ॥ कमलकी
पंखुड़ीके समान सुन्दर और चञ्चल नयनवाली जिस नवेलीको
एक बार देख लेने-मात्र ही शरीर सुखी हो जाता है वह
यदि आकर गले लग जाय तब तो कइना ही क्या है ! ॥ २ ॥
सब धूर्तोंका मुखिया और कमी कियोंपर विश्वास न करनेवाला
व्यक्ति भी स्त्रीके सामने अन्ध्या ही है । यदि यह बात न होती
तो सब प्रकारसे चतुर कीपको क्या कोयलियाँ टग पातीं ?
॥ ३ ॥ बुद्ध जहाँ कूटियाँ तो ऐसी होती हैं जो हाथमें लेनेपर,
पीनेपर और लेप करनेपर विषकी गर्मी इराय कर लेती हैं
किन्तु यह नवेली तो कोई ऐसी सिद्ध जड़ी है जो सामने खदी
रहनेपर ही जिलाए दे रही है ॥ ४ ॥ इस कमलके समान
सुन्दर औरवाली सुन्दरीका वह रूप रङ्ग नेत्रोंको सुख दे
रहा है जिसके पीछे पीछे चञ्चल नीरि दीद रहे हैं, माझर्य
सजो हैं, गालोंपर ऐसी कान्ति चमक रही है जिसके भीतर
पानकी छाबी छाई हुई है और जिसके अङ्गोंमें सुगन्धित
द्रव्योंसे उबटन लगाया गया है ॥ १० ॥ 'सब प्रकारकी
सन्तुष्टि देनेवाला सुन्दरियोंका आलिङ्गन जब है ही तब अमृत
पानके लिये समुद्र मथना व्यर्थ है !' ऐसा सोचकर ही मानो
सारे देवता स्वर्ग छोड़कर ससारमें विरक्त होकर धूम रहे हैं ।
यदि ऐसी बात न होती तो ये इतने दुष्ट क्यों जान पड़ते ?

सहास्यं नयनं सलास्यं सिन्दूरविन्दुद्वयशोभि भालम् ।
नया च वेणी हरिणोदशश्रेदन्वैरगवैरपि भूपणोः
किम् ॥ १२ ॥ उडुराजमुखी मृगराजकटिर्गजराजवि-
राजितमन्दगतिः । यदि सा धनिता हृदये निहिता क
जपः फव तपः फव समाधिरतिः ॥ १३ ॥ उपनिपदः
परिपीता गीतापि च हन्त मतिपथं नीता । तदपि न
हा विधुवदना मानससदनाद् द्वितीयं ॥ १४ ॥ कमल-
शरधिरम्भासैकतानुकमाख्यं कनककलशभाराकान्त-
सौदामिनीकम् । किसलयितमृणालं हारगर्भप्रवालं
कुशलवितशशाङ्कं कौशलं सा विधातु ॥ १५ ॥ कार्पा-
सकृतकूर्पासशतैरपि न श्याम्यति । शीतं शातोदरीपी-
नयल्लोज्ज्वलिन्नं धिना ॥ १६ ॥ किमिह बहुभिर्दुर्क्यु-
क्तिशून्यैः प्रलापैर्हयमिह पुरुषाणां सर्वदा सेवनीयम् ।
श्रमिनयमदलीलालालसं सुन्दरीणां स्तनभरपरिचिप्रे
यौवनं वा वनं वा ॥ १७ ॥ गतिर्नागेन्द्राभा वचनरचना

॥ ११ ॥ यदि मृगनयनी नवेलीका मुँह हँसोसे भरा हो,
नयन नाच रहे हों, माथेपर सिन्दूरकी विन्दी चमक रही हो
और उसने तत्काल चोटी मूँघ ली हो तो दूसरे धनमिनत
गहनोंकी उसे धारव्यक्तता ही क्या है ? ॥ १२ ॥ यदि ऐसी
नवेली हृदयमें जमकर बैठ जाय जिसका मुख चन्द्रमाके समान
हो, कमर सिधके समान हो और चाल मतवाले हाथीके
समान मद्मताली धीमी हो तो बहोंका जप, बहोंका तप और
बहोंकी समधि ! ॥ १३ ॥ उपनिपदोंकी हम भजी भौंति
घोंटकर भी गए और अपनी बुद्धि भी हमने सर्वथा गीताके
धनुसार ही बना ली है किन्तु हाय ! इतना सब करनेपर
भी हृदयरूपी घरमें बैठे हुए यह चन्द्रमुखी बाहर नहीं
निकल पाती ! ॥ १४ ॥ कमल (पैर), तरक्य (पिचकी),
केलेके राम्भे (जॉचिं) तथा बालुकी धरती (नितम्ब) वाली
तथा सोनेके धाँदके भारसे लदी हुई (स्तनोंवाली) यह
जो विजकी (नवेली) चमक रही है, जिसमें कमलनाख
(शुभा) पर किसलय (उँगलियाँ) उगी हुई हैं, मूँगे
(अपर) के भीतर मोतीका हार (दाँतोंकी पंति) सजी है
और जिसमें चन्द्रमा कमल (मुँह) बना हुआ है, इसे
महाराणीकी कोई तिराकी ही कलत समझनी चाहिये ॥ १५ ॥
रूँते बनी हुई सैबड़ों सोड़ें भले ही भरो पकी हों किन्तु
पतली कमवाली नवेलीके मोटे-मोटे स्तनोंका धाजिन्न दिष्ट
विना किसी प्रकार भी टपटप मिट नहीं सकती ॥ १६ ॥

वाऽमृतसमा स्मितं ज्योत्स्नारोचिः सुकृतफलवद्दर्श-
नमपि । परिप्लवङ्गस्तापप्रशमनविधौ स्वात्मसुखवत्सदा
यासामद्धा कमलनयनास्ता ननु जुषे ॥ १८ ॥ गति-
वैणी च नागेन वपुरूक च रम्भया । पाणी प्रवालैरोष्ठो
च तस्यास्तुत्यत्वमाययुः ॥ १९ ॥ ज्योत्स्नेव नयनानन्दः
सुरेव मदकारणम् । प्रभुतेव समारुणसर्वलोका
नितम्बिनी ॥ २० ॥ तदवधि केचन वीरा धीरा
वा केचन स्मृताः सन्तु । यदवधि कुरङ्गशाव-
कलोलविलोकाधिलोकिता न स्युः ॥ २१ ॥ तदा-
खण्डलाशा महीमण्डलाशां तथा भोगिभोगानुरागं
त्यजामः । मन-लौभद्वान्धपातः फटाहान्कुरङ्गैणा-
श्चेत्तद्यं पातयन्ति ॥ २२ ॥ तद्वक्रस्य कलङ्क एव
तुलना पीयूषधान्नाऽपि यत्कन्दर्पस्य धनुर्निदर्शनमिदं
निन्दास्पदं तद्वयोः । सा तल्लोचनयोक्षपा कुवल्यै-
स्साधम्यंचिन्ताऽपि या तस्यास्तत्प्रतिविम्बमेव नियतं

व्यर्थ ही बहुत-सी ऊटपटाँग बातें बरनेसे क्या लाभ !
पुरुषोंको चाहिये कि वे इन दोनोंका ही सदा सेवन करें—
एक तो नई मस्ती और शिव-भावसे चतस्राया हुआ तथा
स्तनोंके भारसे थका हुआ यौवन और दूसरा वन ॥ १७ ॥
मैं उन कमलनयनी नवेलियोंको नमस्कार करता हूँ जिनकी
चाल मतवाले हाथीके समान, बोली घट्टके समान, मुस्कान
बाँदनीके समान और दर्शन पुण्याँके फलके समान है तथा सन्ताप
मिटानेके लिये जिनका धाजिन्न मानो प्रह्लाजन्द जैसा ही है
॥ १८ ॥ उस नवेलीकी चाल हाथीके समान, चोटी नागके समान,
देह राम्भा अस्तराके समान, जॉचिं केलेके समान तथा हाथ और
श्रोत मूँगेके समान हैं ॥ १९ ॥ सुन्दरी क्रियाँ सारे संसारको
घानन्द देनेके लिये मानो बाँदनी हैं, मस्त करनेके लिये मदिरा
हैं और घरमें करनेके लिये प्रयुक्ता (राजसत्ता) हैं ॥ २० ॥
लोग तभीतक और धीर समझे जाते हैं जबतक मूंगके
बन्धके समान चन्द्र नैर्गोवाली नवेलीकी चितवन अनपर नहीं
पढ़ पाती ॥ २१ ॥ यदि मृगनयनी सुन्दरियाँ षण्य-भर भी
मनको व्याकुल कर देनेवाली अपनी चितवन हमपर खडा दें
तो हम इन्द्र बननेकी, पृथ्वीपति बननेकी तथा महाराजाधोंके
समान पेश्वर्भोगनेकी सत्प भी सोड़ दें ॥ २२ ॥ उसके मुँहका
तिव चन्द्रमाके ही समान है, उसका भीहोंके रहते कामदेवका
धनुष टपटु है और उसकी धारियोंमें जो बाण है उसकी समवाके
लिये सोचा जाय तो मुझे हुए कमल भी बहुत कम ही समानता

मात्राविसंवादिनी ॥ २३ ॥ तदृणमनि कृतावलोकना
ललितविलासविलम्बविग्रहा । स्मरशरविसराचिता-
न्तरा मृगनयना हरते मुनेर्मनः ॥ २४ ॥ तावदेव
कृतिनां हृदि स्फुरत्येव निर्मलविवेकदीपकः । यावदेव
न कुरङ्गचक्षुषां ताडयते चपललोचनाञ्जलैः ॥ २५ ॥
तावदेव विदुषां विवेकिनी बुद्धिरस्ति भववन्धभेदिनी ।
यावदिन्दुवदना न कामिनी योक्षिता रहसि हंसगा-
मिनी ॥ २६ ॥ दशा द्बन्धं मनसिजं जीवयन्ति दशैव
याः । विरूपाक्षस्य जयिनीस्ताः स्तुये वामलोचनाः
॥ २७ ॥ दशा चिदधिरे दिशः कमलराजिनीपाजिताः
कृता हसिततोचिपा हरति चन्द्रकावृष्टयः । अकारि
हरिणीदृशः प्रवलदण्डकप्रस्फुरद्वपुर्विपुलरोचिपा
वियति वियुतां विभ्रमः ॥ २८ ॥ द्रष्टव्येषु किमुचमं
मृगदृशः प्रेमप्रसन्नं मुपंघ्रातव्येष्वपि किं तदास्यपथनः
श्राव्येषु किं तद्वचः । किंस्वायेपुतदोष्टपल्लवरसः स्पृश्येषु

किं तद्वपुर्ध्वयं किं नययीये सहृदयैः सर्वत्र तद्विभ्रमः
॥ २९ ॥ द्रुतं यस्यालोकाद्विरहजिनशोकापनयनं यद्वे-
सानन्दं नयनमरविन्दं विहरति । न यस्यापति श्रीः
फचनिचयराहोरपिपुरः स मेपेदं रामायदन्दिमधामा
शमयतु ॥ ३० ॥ न हयैर्न च मातङ्गैर्न रथैर्न च
पत्तिभिः । स्त्रीणामपाङ्गदृष्ट्यैव जीयते जगतां प्रथम्
॥ ३१ ॥ नास्तुतं न विपं किञ्चिदेकां मुक्त्वा नितम्बि-
नीम् । यस्याः सङ्गेन जीयेत म्रियेत च वियोगतः
॥ ३२ ॥ नूनं हि ते फविद्यग विपरोतवांधा ये नित्य-
माहुरवला इति कामिनीस्ताः । यामिर्विलोलतरार-
कदृष्टिपातैः श्रमदयोऽपि विजितान्त्ववलाः फर्यं ताः
॥ ३३ ॥ पादसंवाहने वज्रां केशसम्माम्जने फणी । अद्वो
भाग्यं पुरन्धीणां दधिसम्मन्यन्ते रचिः ॥ ३४ ॥ प्रमयति
मनासि चिंचेको विदुषामपि शास्त्रसम्भवस्तावत् ।
निपतन्ति दृष्टिचिशिष्या यावन्नेन्दीचराजीणाम् ॥ ३५ ॥

कर पाते हैं ॥ २३ ॥ युवावस्थामें यहाँ-वहाँ देखनी हुई, सुन्दर
हाव भावोंसे भरे हुए शरीरवाली तथा कामदेवके सैकड़ों वार्योंसे
भरी हुई कमलनयनी मुनियोंका भी मन हर लेती है ॥ २४ ॥
कर्म करनेवाले मनुष्योंके मनमें तबतक ही ज्ञानका निर्मल
दीपक जलना है जबतक मृगनयनी नवेलियोंके चञ्चल चितवन-
रूपी आँचल उसे युष्मा नहीं देते ॥ २५ ॥ विद्वानोंमें संसारके
पन्थन काटनेवाली श्रीर अच्युते-शुभेका विचार करनेवाली बुद्धि
तबतक ही रहती है जबतक एकान्तमें हंसके समान चालवाली
चन्द्रमुखी नवेली नहीं दिपाई पद जाती ॥ २६ ॥ दृष्टिसे
जलाप हुए कामदेवको जो अपनी दृष्टिसे ही जिला देती है उन
शिष्योंको जीतनेवाली बाँकी चितवनवाली सुन्दरियोंकी मैं
स्तुति करता हूँ ॥ २७ ॥ मृगनयनी नवेलीकी चितवनोंने
दिशाओंकी ऐसी शोभा बढ़ा दी मानी वे कमलकी पौतोंसे
सजी हैं, उसका प्रबल दण्ड-सा चमचनाता हुआ शरीर
अपनी सुकरादृष्टकी कान्तिसे चाँदनीकी वषाँकी शोभा भी हर
रहा है श्रीर उसकी चमकने आकाशमें बिजलियाँ-जैसी
चमक भर दी है ॥ २८ ॥ सबसे अधिक देखने-योग्य
वस्तुओंमें मृगनयनीका प्रेम-भरा प्रसन्न मुँह, शल्युत्तम सुँवने-
योग्य वस्तुओंमें उसके सुँहकी साँस, सुनने योग्य उत्तम
वस्तुओंमें उसकी मीठी बोली, चखने-योग्य वस्तुओंमें उसके
किसलय-जैसे थोठका रस और छूने-योग्य वस्तुओंमें उसकी
देह ही सौत्तम है, अतः रसिकोंको चाहिद कि नहीं जानीमें

सदा सर्वत्र उसके हाव-भावोंका ही ध्यान करते रहें ॥ २९ ॥
सुन्दरीका वह चन्द्रमाकी-सी कान्तिवाला मुँह मेरा खेद मिटा
दे जिसे देखकर तत्काल विद्वान्दियोंका शोक लुप्त हो जाता है,
जिसकी गोदमें नेत्ररूपी कमल भ्रानन्दसे ढाखत रहते हैं और
घने बाल-रूपी राहुके रहते भी जिसकी सुन्दरता मखिन नहीं
हो पाती ॥ ३० ॥ स्त्रियोंकी बाँकी चितवन ही जब तीनों
लोकोंको जीत लेती है तो धोड़ा, हाथी, रथ तथा पैदल सेनाको
धावरयफ्ता क्या है ! ॥ ३१ ॥ बड़े-पड़े नितम्बवाली नवेलीके
अतिरिक्त न तो दूसरा कोई अष्टय है, न विप है क्योंकि उसके
संयोगसे ही मनुष्य जी जाता है और विद्वोह हाँते ही मर जाता
है ॥ ३२ ॥ वे महाकवि निरचय हा उल्टी बुद्धिवाले रहे
हैं जिन्होंने स्त्रियोंको अरबा (निर्बल) कहा है । मन्ना बताइए,
जिनके चंचल पुतलियाँ करते ही इन्द्र धादि देवता भी स्वाकुल
होकर वशमें हा जाते हैं वे अरबा कैसे हा सकती हैं ! ॥ ३३ ॥
चन्द है उन श्रेष्ठ नारियोंका भाग्य ! जिनके पैर दुबाने
(पैरोंका मज चुदाने) का काम इन्द्र (इंद्रका सूर्य) करता
है, बाल सँवारनेका काम शेरनाग (कर्वा) करता है और
दूरी मथनेका काम सूर्य (मयनी) करता है ॥ ३४ ॥
विद्वानोंके मनमें भी शास्त्रका ज्ञान तभीतक ठहर पाता है जब-
तक कमलनयनी नवेलियाकी चितवन-रूपी धुरियों उन्हें बंध
नहीं देती ॥ ३५ ॥ वे लोग बड़े मूर्ख हैं जो प्रायः और स्त्रीको
समान बतलाते हैं क्योंकि प्यारीके गले लग जानेसे तो भ्रानन्द

प्राणानाद्य च प्रियायाश्च मूढाः सादृश्यकारिणः । प्रिया कण्ठगतता रत्यै प्राणा मरणाहेतवः ॥ ३६ ॥ भवन्ती वेदान्तमणिहितधियामत्र गुरवो विदग्धालापानां वय- मपि कवीनामनुचराः । तथाप्येतद्भ्रमो न हि परहि- तात्पुण्यमधिकं न चास्मिन्संसारे कुचलयदृशो रम्य- मपरम् ॥ ३७ ॥ भ्रूचातुर्याकुञ्चिताक्ता कटाक्षाः स्निग्धा याचो लज्जिताश्लेष हासाः । लीलामन्दं प्रस्थितं च स्थितं च स्त्रीरामेतद्भूषणं चायुधं च ॥ ३८ ॥ मन- सिजशितशरतापितमनसां मोदाय सुस्मिता वनिता । तपनजतापं श्रमपितुमेका लेखा चिधोनिपुणा ॥ ३९ ॥ मन्दं स्मितं मृदु ध्रुवो नयनेकपातं किञ्चिच्चिरोक्षण महो श्रयलाजनस्य । धीरान्विजेतुमनधानि शितानि धात्रा शोभाण हन्त विरचय्य समपितानि ॥ ४० ॥ मात्सर्यमुत्सार्य विचार्य कार्यमार्ग्याः । समयादमिद पदन्तु । सेव्या नितम्बाः किमु भूधराणामुत स्मरन्मे-

रविलासिनीनाम् ॥ ४१ ॥ जये धरिज्याः पुरमेव सारं पुरे गृहं सन्ननि चैकदेशः । तत्रापि शय्या शयने घटा स्त्रो रत्नोज्ज्वला राज्यसुखस्य सारः ॥ ४२ ॥ यत्र पतत्यबलानां दृष्टिर्निशिताः पतन्ति तत्र शराः । तत्रापरोपितशरो धावत्यासां पुरः स्मरो मन्ये ॥ ४३ ॥ यत्रैता लहरीचलाचलदृशो व्यापारयन्ति भ्रुवं यत्- त्रैव पतन्ति सन्ततममी मर्मस्पृशो मार्गणाः । तच्चक्री- कृतत्वापमञ्चितशरमेद्भुत्करः क्रोधनो धावत्यप्रत पव शासनधरः सत्यं सदासां स्मरः ॥ ४४ ॥ यस्य न सविधे दयिता दवदहनस्तुहिनदीधितिस्तस्य । यस्य च सविधे दयिता दवदहनस्तुहिनदीधितिस्तस्य ॥ ४५ ॥ यावद्दृष्टिर्गोक्षीणां नो नरीनर्ति भङ्गुरा । तावद्भ्रान्तवतां चित्ते विवेकः फुक्ते पदम् ॥ ४६ ॥ यासां नास्त्रापि कामः स्यात्सङ्गमं दर्शनं विना । तासां दृक्सङ्गमं प्राप्य यद्य द्रवति कौतुकम् ॥ ४७ ॥ यासा-

या जाता है किन्तु प्राणोंके गलेतक या जानेसे तो मनुष्यके प्राण ही निकल जाते हैं ॥ ३६ ॥ वेदान्तके द्वारा जिन्होंने अपनी बुद्धि स्थिर कर ली है ऐसे लोगोंमें भी आप लोग यद्यपि श्रेष्ठ हैं किन्तु हम लोग भी पावित्र्यपूर्ण कविता करनेवाले कवियोंके सेवक हैं । फिर भी हृत्ना तो हम अक्षरय कहेंगे कि हृत् संसारमें दूसरोंकी भलाई करनेसे बढ़कर न तो कोई पुण्य है और न कमलनयनीसे बढ़कर दूसरों कोई सुन्दर पद है ॥ ३७ ॥ भाँहें चलानेकी चतुरतासे सिद्धुदा हूँ भौंलें, रसीली चितवनं, खजाजा हँसी, हाव-भावके साथ रहती हूँ धीमी चाल यही सब स्थियोंके गहने हैं और ये हा उनके शरभ भी हैं ॥ ३८ ॥ जैसे चन्द्रमाकी कला हा एकमात्र गर्माँकी सपन बूझा सकता है वैसे हा कामदेवके बायोंसे सन्तप्त मनवालोंका यह सुधराता हूँ एकमात्र नवेली हा आनन्द दे सकती है ॥ ३९ ॥ पाह ! धारोंकी मार गिरानेके लिये ब्रह्मने षषड्बाओंको मन्द मुस्कान, मोठी बोलों, भौंलौका रँपना और बाँकी चितवन रूपी कैसे पवित्र और हीले शरभ सौंप दिए हैं ! ॥ ४० ॥ सज्जनो ! ईर्ष्या छोड़कर तथा विचार करके आप लोग विना मयादा सोपे यह बतायें कि मनुष्योंको पर्यंतपर जाकर बसना चाहिए या बादके मरते दृष्टजाती हूँ श्रेष्ठियोंके निरर्थकोंपर ! ॥ ४१ ॥ सारी परतोंको लोग हँसोखिये जीतते हैं कि इसमें कोई सुन्दर नगर प्राप्त हो, उस नगरमें भी एक पा, घरमें भी एक कोठा, कोईमें भी सुन्दर शय्या और शय्यापर

रत्नोंसे जगमगाती हुई अत्यन्त सुन्दरी नवेली, बस, यही तो राजाओंके सुखका सार है ! ॥ ४२ ॥ मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि कामदेव अपने धनुषपर बाण चढ़ाए हुए शिर्योंके प्रागे-प्रागे दौड़ता रहता है क्योंकि जहाँ इनकी चितवन पड़ी, वहीं धाय बरसे ॥ ४३ ॥ लहरोंके समान चञ्चल नयनोंवाली ये शिरयों जहाँ-जहाँ अपनी भाँहें चलती हैं वहाँ-वहाँ सदा दृढ़प बेपनवाले बाण बरसने लगते हैं । अत यह बात सत्य है कि हायमें लिखा हुआ धनुष और सजा हुआ बाण सँभावे कामदेव शासन करनेके लिये क्रोषित होकर सदा इनके प्रागे-प्रागे दौड़ता रहता है ॥ ४४ ॥ प्रियतमा ! जसक पास रहता है उसके लिये दावानल भी चन्द्रमा बन जाता है और जिसके पास प्रियतमा नहीं रहती उसके लिये चन्द्रमा मा दावानल बन जाता है ॥ ४५ ॥ ज्ञानियोंके विषयमें तमातक ज्ञान जमा रहता है जबतक श्रमानयनी नवेलियोंकी बाँका चितवन भला-मालि नाचने नहीं खग जाती ॥ ४६ ॥ जिनका नाम मुलत हा काम जाग उठता है और जिन्हें बिना देते ही सङ्गम हो जाता है उनका चितवनोंके सामने पढ़कर भी जा नहीं विचलित होता उसीपर आरचयें होता है ॥ ४७ ॥ जिनके भाँचलके पवनसे ही शीत सुषत हो गया (शुभ गया) उनका धाञ्जिन करनेसे मनुष्य भला नरकमें कैसे गिरेंगे ! ॥ ४८ ॥ शिरयों ही रत्नोंकी शोभा बढ़ा देती हैं; रत्नोंकी सभरसे शिरयोंकी शोभा नहीं बढ़ती क्योंकि विना रत्नोंके भी शिरयों

मञ्जलनातेन वीषो निर्याणतां गतः । तासामालिङ्गने
 पुंसां नरके पतनं कृतः ॥ ४८ ॥ रत्नानि विभूषयन्ति
 योषा भूप्यन्ते वनिता न रत्नज्ञान्या । चेतो वनिता
 हरन्त्यरत्ना नो रत्नानि विनाङ्गनाङ्गसङ्गान् ॥ ४९ ॥
 ललाटे कन्तूरीतिलकमण्डलाः कज्जलरुचि दृशोः फर्ण-
 द्वन्द्वे विमलमणितटङ्कयुगलम् । गले मुक्तामालां
 शुचि वसनमङ्गे च सनतं वशीकृत्ुं शिष्यं दधति खलु
 बाह्योपकरणम् ॥ ५० ॥ वचसि भवति सङ्गत्यागमु-
 द्दिश्य यातां श्रुतिमुखमुखाणां केवलं परिष्ठितानाम् ।
 जघनमरुणरत्नप्रश्रियकाञ्चीकलापं कुचलयनयनानां को
 विहातुं समर्थः ॥ ५१ ॥ विजनमिति वलादसुं शृहीत्या
 णमय वीच्य विपक्षमन्तिकेऽन्या । श्रमिपतितुमना
 लघुत्वमीतेरभवदमुञ्जति वल्लभेऽतिगुर्यां ॥ ५२ ॥
 विनयति सुदृशो दृशः परागं प्रणयिनि कोसुममान-
 नानिलेन । तद्विदितयुधतेरभोणमणोर्द्वयमपि रापट-
 जोमिरापुरपूरे ॥ ५३ ॥ विपुलकमपि योवधोद्धतानां
 घनपुलकोदयकोमलं चकाशे । परिमलितमपि प्रियैः

प्रकामं कचयुगमुज्ज्वलमेव कामिनीनाम् ॥ ५४ ॥
 विमुञ्जति बुधो जनः सुकृतचिन्तनं दूरतो जहाति च
 मुनिस्तपस्यजनित धीरतां शङ्करः । पिथिर्मयति चञ्ज-
 लस्त्रिजगतीपतिः क्षुभ्यति क्षरं कुट्टिनदृष्टया यदि
 पतन्ति यामभूषः ॥ ५५ ॥ विलम्बितमनुर्जनां पुरस्ता-
 द्दरणिष्ठहाधिकहो वधूर्लतायाः । गमपशुसुतया पुर-
 सखीनामकलितचापलदोषमालिलिङ्ग ॥ ५६ ॥ शिष्या-
 मित्रपराशरमश्रुतयो याताम्पुपगांशान्तेऽपि स्त्रीमु-
 खपङ्कजं सुललितं द्रष्टव्यं माहं गताः । शाल्यग्रं सधृतं
 पयोदधियुतं ये मुञ्जते मानयान्तेपामिन्द्रियनिग्रहो
 यदि भवेद्दिस्व्यस्नरेत्सागरे ॥ ५७ ॥ प्रततिविततिभि-
 स्तिरोहितायां प्रतिबुधता वदनं मिय. प्रियायाः ।
 यदधयदधरवलोपश्रुत्यत्करवलयस्वनिनेन तद्विषये
 ॥ ५८ ॥ वीडावेलादृक् सागरसलिलमिव योपतां
 हृदयम् । रागेन्दुरुदयमाना भूयो भूयस्तरङ्गयति
 ॥ ५९ ॥ श्रुतं दृष्टं सृष्टं स्मृतमपि नृणां ह्रादजननं न
 रत्नं स्त्रीभ्योऽन्यत्स्वचिदपि कृतं लोकपतिना । तदर्थं

मन हर लेती है किन्तु बिना स्त्रियोंके श्रद्धामें सवे रत्न मन
 नहीं हर सकता ॥ ४६ ॥ माथेपर कन्तूरीका तिलक, नयनोंमें
 काजल, दोनों कानोंमें निर्मल मणिके कनकूज, गलेमें मोतीकी
 मान्ना श्रौर देहपर पवित्र वस्त्र, इस सब बाहरी सजावटको
 स्त्रियाँ सारे संसारको वशमें करनेके लिये हो सदा धारण
 किया करती हैं ॥ ४७ ॥ वेदोंको रट रटकर सुँहोंमें बसाए हुए
 पण्डित लोग 'शासकिके छोडने'के विषयमें जो बातें करते हैं
 वे उनकी बोलीतक ही रहती हैं; सचमुच लाल-लाल रनोंसे
 गुँथी हुई करपनीसे सजा हुआ कमलनयनी सुन्दरियोंका
 जयन-भाग कौन छोड सकता है ? ॥ ४८ ॥ एकान्त देखकर
 किसी स्त्रीने किसी पुरुषको पकड लिया श्रौर कोई बैरी देख
 न ले इस दरसे चारों ओर देखकर उसने गिर पड़ना चाहा
 किन्तु पुरुष दुबला था श्रौर उसे कसकर पकड़े हुए था अतः
 उस स्त्रीने अपनी ही देह शिथिल करके मारी कर दी ॥ ४९ ॥
 जिस समय कोई प्रेमी किसी सुनयनी प्रेमिकाको प्रसन्न
 करनेके लिये उसकी श्रॉलोंमें फूलका पराग फूँककर उड़ा रहा
 था उस समय उसकी श्रॉलें तो फूलका पराग पड़नेसे
 लाल हुई किन्तु उसकी जो बैरिन यह सब देख रही थी
 उसको श्रॉलें छोडके मारे लाल हो उठी ॥ ५० ॥ मदमाती
 नवेलियोंके दोनों स्तन यद्यपि रोमाञ्जित नहीं हुए थे किन्तु

प्रियतमोंने उन्हें मली भाँति मसलकर ऐसे उजाले और कामल
 बना दिए थे मानो उनमें पने रोंगटे उमड आए हों ॥ ५१ ॥
 बाँकी भीहाँवाली सुन्दरीकी तिरछी चिनचन चञ्च भर भी पड
 जाती है तो बुद्धिमान् मनुष्य पुरुषकी चिन्ता छोड देता है,
 मुनि तपस्या छोड बैठता है, शङ्कर धीरज छोड बैठते हैं, श्रद्धा
 चञ्जल हो उठते हैं और तीनों लोकोंके स्वामी (मगवान् विष्णु)
 व्याकुल हो उठते हैं ॥ ५२ ॥ सामने शूचर बिपटी (बढ़ी) हुई
 लताके समान भावस्था करती हुई कोई बहू सवियोंके सामने
 ही सीधे-सादे भावसे बिना चञ्चलताके अपने पतिके गले जा
 लगी ॥ ५३ ॥ पवन और पानी पीकर तथा पत्ते खाकर रहने
 वाले विद्यामित्र, पराशर आदि तपस्वी भी जब स्त्रीका सुन्दर
 कमलमुख देखते ही मोहित हो गए तो सदाधी, दूध और दही
 मिले हुए उत्तम धानके धावज खानेवाले मनुष्य यदि अपनी
 इन्द्रियों वशमें कर रहलें तब तो विष्णु पर्वत भी समुद्रमें तैरने
 लग जाय ॥ ५४ ॥ लताओंकी आदोंमें प्रेमिका और प्रेमी जाकर
 झिप तो गए किन्तु जब प्रेमी अपनी प्रेमिकाका सुँह चूने
 लगा तो उसके ओड सिक्काडने और प्रेमिकाके हाथ दिवानेसे
 कङ्कन बजनेकी ध्वनिने उसका सारा भेद खोल दिया ॥ ५५ ॥
 लाज रूपी तटकी भूमिसे रुके हुए समुद्रके जल-रूपी छिपोंके
 हृदयोंकी प्रेम-रूपी चन्द्रमा उदय (उत्पन्न) होकर बार-बार

धर्माथी विभवधरसौख्यानि च ततो गृहे लक्ष्म्यो
मान्याः सततमवला मानविभवैः ॥ ६० ॥ सम्पन्नर-
मणीशीलसम्पन्नरमणीं विना । इत्यूढवान्नरमणी रमणीं
रुक्मिणीं हरिः ॥ ६१ ॥ संसारेऽस्मिन्नसारे परिणति
तरते स्त्रे गती परिहृतानां तत्त्वज्ञानामृताम्भःपुलकित-
मनसां यातु फालः कदाचित् । नो वेन्मुग्धाङ्गनानां
स्तनजघनभराभोगसम्भोगिनीनां स्थूलापस्थस्यलीपु
स्यगितकरतलस्पर्शलोभोद्यतानाम् ॥ ६२ ॥ संसा-
रेऽस्मिन्नसारे कुन्तपतिभवनद्वारसेवाकलङ्कव्यासङ्ग-
व्यस्तघैर्ये कथममलधिथो मानसं संविदध्वुः । यद्यताः
प्रोद्यदिन्दुद्युतिनिचयभृतो न स्थुरम्भाजनेत्राः प्रेङ्ख
त्काञ्चीकलापाः स्तनभरचिनमन्मध्यभागास्तल्पयः
॥ ६३ ॥ सद्रत्नस्फारहाराऽभयवरदकरा खस्तधम्मिल्ल-
भारा भूलाधाराधिकारा निगमनिधिधरा काव्यकोटि-
मचारा । संसारानल्पकारासदनमयहरा चिद्धनैका-

वतारा तारा शृङ्गारधारा मनसि घसतु ते सर्वदा
सर्वसारा ॥ ६४ ॥ सन्तु विलोकनभाषणविलासपरि-
हासकेलिपरिरम्भाः । स्मरणमपि कामिनीनामलमिह
मनसो विकाराय ॥ ६५ ॥ समदनमचर्तसितेऽधिकर्ण
प्रणयवता कुसुमे सुमध्यमायाः । ब्रजदपि लघुतां
वभूव भारः सपदि हिरण्यमयगण्डनं सपत्न्याः ॥ ६६ ॥
समाश्लिष्टाः समाश्लेषेश्चुम्बिताश्चुम्बनैरपि । दृष्टाश्च
दशनेः कान्तं दासोऽकुर्वन्ति योषितः ॥ ६७ ॥ सुस्मिता
मधुरालापा रुचिरावयवा विधिः । विधाय रमणी-
स्तासां मनोऽपि न व्यधात् कृतः ॥ ६८ ॥ सोमः शोचं
ददो तासा गन्धर्वाश्च शुभां गिरम् । अग्निः सर्गाङ्गका
न्तिव्यं तस्मान्निष्कसमाः स्त्रियः ॥ ६९ ॥ स्फुटमिद-
मभिचारमन्त्र एष प्रतियुधतेरभिधानमङ्गनाना ।
घरतनुमुनोपहृय पत्या मृदुकुसुमेन यदाहताप्यमू-
र्च्छत् ॥ ७० ॥ स्वपरप्रतारकोऽसा निन्दति योऽलीक-

जहराप दे रहा है ॥ ६२ ॥ सुनने, देखने, छूने, यहाँतक कि
स्मरण करते मात्रसे भी आनन्द देनेवाला रत्न खीके अतिरिक्त
ब्रह्मणे दूसरा और वहाँ भी नहीं रचा । उसी स्त्री-रत्नके लिये
घरमें और घरमें वने हैं और उसीके लिये बड़े-बड़े टाट-बाट
और सुख हैं इसलिये घरमें इन अबला-रूपी लक्ष्मियोंकी
सदा ही मान और ऐश्वर्यसे आदर देते रहना चाहिए ॥ ६० ॥
'अत्यधिक शील (नम्रता) से भरी हुई सुन्दरीके विना देरसी
सम्पत्ति भी सुख नहीं दे सकती ।' यही सोचकर क्वरिं
कृष्णजीने भट रविमणीसे विवाह कर लिया ॥ ६१ ॥ धन-
चणपर बदलते रहनेवाले संसारमें परिचर्तोंकी दा ही गति
है—एक तो यह कि ये तब ज्ञान रूपी अमृतजलसे मन
पुलकित करते हुए धपना समय पित्तवें और दूसरा
यह कि रत्न और पैसके भारसे आनन्ददायी सम्भोगका
रस देनेवाली रसीली नवेलियोंके माटे-माटे नितम्बोंपर हाथ
फेरनेके लिये खलघाते हुए समय पित्तवें ॥ ६२ ॥ इस अक्षर
संसारमें यदि उद्य हस्त हुए चन्द्रमाका घनी चाँदना जैसी
कान्तिवाली, धमकती हुई करधनावाला तथा स्तनोंके भारसे

चककी स्वामिनी, वैदोंका भायहार धारण करनेवाली, करोड़ों
कायोंका प्रचार करनेवाली, संसारका विस्तार करनेवाली,
भूत-प्रेतोंका भय दूर करनेवाली, सम्पूर्ण ज्ञानकी एक मात्र
भयहार तथा सब प्रकारकी सजावटोंकी बहती हुई धारा, सबकी
सार भगवती दुर्गा आपके मनमें सदा निवास करें ॥ ६३ ॥
कामिनियोंकी देखना, उनसे बातें करना, और उनसे हाव-भाव-
भरी हैंसी क्रीड़ा और आलिङ्गन करना तो दूरकी बात है; उनका
स्मरण-मात्र ही मनमें विकार उत्पन्न कर देनेके लिये बहुत
है ॥ ६४ ॥ प्रेमसे भरे हुए प्रियतमने कामकी मस्तीमें आकर
जैसे ही सुन्दर मध्यभाग (कमर) वाली सुन्दरीके कानमें
फूल लगाया जैसे ही तत्काज सौतेके सानेके गहने खद्यु (हलके)
हात हुए भा उसे भार जान पदने लगे ॥ ६५ ॥ आलिङ्गनके
बन्धनमें कसा हुई, लुम्बनसे चूसा जाती हुई और दौलतसे
दुपहाई जाती हुई सुन्दारियों प्रियतमकी धपना दास बना लेती
है ॥ ६६ ॥ ब्रह्मणे जब रमणियोंका इतनी सुन्दर मुस्कानवाली,
सुन्दर आलसवाली और सुन्दर अङ्गोंवाली बनाया तो उनका
मन भी वैसा ही (सुन्दर) क्यों नहीं बना दिया ? ॥ ६८ ॥

पण्डितो युधतीः । यस्मात्तपसोऽपि फलं स्वर्गः
स्वर्गेऽपि योषितोऽप्सरसः ॥ ७१ ॥ स्वध्वस्तरूपाऽपि
नवैव नित्यं विनाऽपि हासं हसतीव कान्त्या । मदा-
दत्तेऽपि स्वलतीव भावैर्वाचं विना व्याहरीव दृष्ट्या
॥ ७२ ॥ स्त्रियः पवित्रमत्रुलं नैता दुष्यन्ति कहिचित् ।
मासि मासि रजो यासां दुष्टतान्यपकर्षति ॥ ७३ ॥
स्मितमधुरं परिलोकनमचिरं मन्दं च भाषणं किमपि ।
मन्यरमयनं सुतनोः कस्य न हृदयं विदारयति
॥ ७४ ॥ स्मितेन भावेन च लज्जया भिया पराद्बुधैर-
र्षकटाक्षवोक्षणैः । वचोभिरिष्टीर्ष्याकलहेन खलया सम-
स्तभावैः खलु यन्धनं स्त्रियः ॥ ७५ ॥ स्त्रीमुद्रां कुसुमा-
युधस्य परमां सर्वाथसम्पर्करां ये मूढाः प्रविहाय
यान्ति कुचियो मिथ्याफलान्वेषिणः । ते तेनैव निहत्य
निर्दयतरं नश्रीकृता मुण्डिताः केचिद्रक्तपटीकृताश्च
जटिलाः कापालिकाश्चापरे ॥ ७६ ॥ हरिणप्रेक्षणा यत्र

गृहिणी न विलोभ्यते । सेवितं सर्वसम्पद्भिरपि तद्ग-
यनं घनम् ॥ ७७ ॥ ह्यादननापनशर्की सहजे स्तः
सुभ्रूयां कटाक्षेपु । तत्राद्या प्रयत्ना स्यान्नेदीयस्ये परा
दधीयस्ये ॥ ७८ ॥

सतीवर्णनम्: — अक्षरुण कातरमनसा दृशिननीरा
निरन्तरालेयम् । त्वामनुधावति विमुषं गह्र्येय
भगीरथं दृष्टिः ॥ १ ॥ अम्युरयानमुपागते गृहपती
तद्भाषणे नत्रता तत्पादापितदष्टिरासनधिधन्तस्यो-
पचर्यां स्थयम् । सुते तत्र शयते तत्रमधमतो जटाध
शय्यामिति प्राच्यैः पुत्रि निवेदितः कुलनृषिसिद्धान्त-
धर्मागमः ॥ २ ॥ अमृतमयी निरवधा दृषा गम्भीर-
भावसम्पदा । पतिमनुगच्छति तन्यो गङ्गा भागीरथं
रथं यद्वत् ॥ ३ ॥ असारभूते संसारे सारभूता
नितम्बिनी । इति सञ्चिन्त्यै यै शम्भुरर्षाङ्गे पार्वती
दधौ ॥ ४ ॥ कार्ये दासो रतो घेय्या भाजने जननी-

नामसे पुकारा रथोही वह मूच्छित हो गई ॥७०॥ जो कोई मूठ-
मूठ पण्डित बनकर नवेलियोंको निन्दा करता है, वह अपनेकी
भी धोखा देता है और दूसरोंको भी, क्योंकि तपस्याका फल
तो स्वर्ग है और स्वर्गमें भी अस्तरा-रूपी स्त्रियाँ ही हैं
॥७१॥ यद्यपि हसका रूप वही है जिसे नित्य देखनेका अभ्यास है
कि भी यह सदा ही नहीं सी लगती है, बिना हँसके ही
अपनी कान्तिसे मानो हँस रही है, बिना मदिराके ही अपने
हाव-भावोंसे लक्ष्मदा रही है और बिना बोले ही चितवनके
सहारे मानो बोले दे रही है ॥ ७२ ॥ स्त्रियाँ अत्यधिक पवित्र
होती हैं । ये कभी किसी प्रकार दूषित हो ही नहीं सकतीं
क्योंकि महीने-महीने इनका रज इनके सब पाप नष्ट करता
रहता है ॥ ७३ ॥ सुन्दर शरीरवालीका मधुर मुस्कानके साथ
देखना, थोड़ी देरतक धीरे-धीरे कुछ बोलना और मन्द-मन्द
चलना किसका हृदय नहीं काढ़ देता ? ॥ ७४ ॥ पुरुषोंको
बाँधनेके लिये स्त्रियोंके मुस्कानभरे हाव भाव, लाज, भय,
आँधी बाँकी चितवन चलाकर सुँह मोदना, बोलकी, हाँके
कारण ऋगदा और लीला, ये सब बन्धन ही तों हैं ॥७५॥ जो
नीच बुद्धिवाले लोग कामदेवकी अत्यन्त श्रेष्ठ तथा सब प्रकारकी
अर्थ-सम्पत्ति देनेवाली स्त्रीरूपी मुद्राको छोड़कर मूठ-मूठका
आभ्यासिक फल चाहते हैं वे मूले हैं । इसीलिये कामदेवने ही
मानो उन्हें निर्दयतापूर्वक मार पीटकर, सिर सुँदवाकर, नङ्गा
करके उनमेंसे हड्डीको गेरु घस पहनाकर, हड्डीको जटाएँ

बदा दिया तथा लुङ्को शीव बना दिया है ॥७६॥ जिस घरमें
शृगनयनी गृहिणी नहीं दिखाई पड़नी वह भले ही सब प्रकारकी
सम्पत्तियोंसे भरा हो किन्तु वह घर नहीं, वन ही ॥ ७७ ॥
सुन्दर भाँहावाली नवेलीकी चितवनमें प्रसन्न करने और
सन्तान देनेकी शक्ति स्वाभाविक ही होती है । पहली शक्ति
तो तब बढ़ती है जब वह अत्यधिक सखिक्ट रहती है और
दूसरी शक्ति तब अत्यधिक बढ़ जाती है तब वह बहुत दूर
हो जाती है ॥ ७८ ॥

सतीका वर्णन : हे निर्दयी ! यद्यपि तुम उसकी
ओर नहीं देख रहे हो किन्तु कातर मनसे उसकी आँसू-भरी
चितवन सदा तुम्हारे पीछे ठीक उसी प्रकार दौड़ रही है जैसे
भगीरथके पीछे जलसे भरी गङ्गा दौड़ती जा रही थी ॥ १ ॥
हे पुत्री ! महर्षियोंने कुलवपुषोंके ये सच्चे धर्म बताए हैं —
प्रियतमके आते ही उठ जाना, बातचीतमें नत्रता दिखाना,
बैठे रहनेपर उनके चरणोंपर दृष्टि लगाए रहना, स्वयं उनके
सेवा करना, उनके सो जानेपर स्वयं सोना और उनके
जागनेसे पहले ही बिद्योना द्वाढ़ देना ॥ २ ॥ अमृत (जल,
अधरामृत) से भरी हुई, परम पवित्र, परम सुन्दरी तथा
गम्भीर भावोंवाली (गहरी) दुबली पतली नवेली जैसे ही
पतिके पीछे चलती है जैसे गङ्गा भागीरथके रथके पीछे-पीछे
चलती थी ॥ ३ ॥ इस असार ससारमें माटे-माटे नितम्बवाली
एक नवेली ही सार है । यही सीचकर शिवजीने पार्वतीजीको

धर्मायै धिभववरसौप्यानि च ततो गृहे लक्ष्म्यो
मान्याः सततमवला मानधिभवैः ॥ ६० ॥ सम्पन्नर-
मणी शीलसम्पन्नरमणीं विना । इत्युदवाचन्नरमणी रमणीं
रुक्मिणीं हरिः ॥ ६१ ॥ संसाररेऽस्मिन्नसारे परिणति
तरले ह्ये गती परिडतानां तत्प्रधानामृतारम्भःपुलकित-
मनसां यातु फालाः फदावित् । नो वेन्मुग्धाङ्गानानां
स्तनजघनभराभोगसम्भोगिनीनां स्थूलापस्थस्थलीपु
स्पगितकरतलस्पश्लोभोद्यतानाम् ॥ ६२ ॥ संसा-
रेऽस्मिन्नसारे फनुत्पतिभवनद्वारसेवाकलङ्कव्यासङ्ग-
व्यस्तघर्षे कथममलधियो मानसं संविदधुः । यद्यताः
प्रोद्यद्विन्दुद्युतिनिचयभृतो न स्युरम्भोजनेत्राः प्रेह
त्काञ्चीकलापाः स्तनभरचिनमन्मध्यभागास्तत्रत्यः
॥ ६३ ॥ सद्गन्तस्फारहाराऽभयवरदकरा स्तस्तधमिङ्ग-
भारा मूलाधाराधिकारा निगमनिधिधारा काव्यकोटि-
प्रचारा । संसारानल्पकारासदनभयहरा विद्वधनैका-

वतारा तारा शृङ्गारधारा मनसि घसतु ते सर्वदा
सर्वसारा ॥ ६४ ॥ सन्तु विलोकनभापणविलासपरि-
हासकेलिपरिरम्भाः । स्मरणमपि कामिनीनामलमिह
मनसो विकाराय ॥ ६५ ॥ समदनमवर्तसिन्धेऽधिकर्ण
प्रणयवता वसुमे सुमध्यमायाः । व्रजदपि लघुतां
वभूव भारः सपदि हिररामयमलङ्कनं सपत्न्याः ॥ ६६ ॥
समाश्लिष्टाः समाश्लेषेशुभ्विताशुभ्यनैरपि । दष्टाश्च
दृशनेः कान्तं दाक्षीकुर्वन्ति योपितः ॥ ६७ ॥ सुस्मिता
मयुरालापा रुचिरावयवा विधिः । विधाय रमणी-
स्तासां मनोऽपि न व्यधात् कृतः ॥ ६८ ॥ सोमः शोचं
ददो तासां गन्धर्वाश्च शुभां गिरम् । अग्निः सर्गङ्गका-
न्तित्वं तस्मान्निष्कसमाः खियः ॥ ६९ ॥ स्फुटमिद-
मभिचारमन्त्र एव प्रतिबुधतेरभिधानमङ्गलानां ।
धत्तनुरमुनोपहृय पत्या मृदुकुसुमेन यदाहताप्यमू-
र्छुद् ॥ ७० ॥ स्वपरप्रतारकोऽसां निन्दति योऽलीक-

वहराप दे रहा है ॥ २१ ॥ सुनने, देखने, धूने, बर्हातक कि
स्मरण करने मात्रसे भी ध्यानन्द देनेवाला रत्न स्त्रीके धार्तरिक
प्रदाने दूसरा और कहीं भी नहीं रहा । उसी स्त्री-रत्नके लिये
परम और धर्म बने हैं और उसीके लिये बड़े-बड़े डाट-बाट
और सुख हैं इसलिये धरमें इन शयला-रूपी लक्ष्मियोंको
सदा ही मान और पेशर्षसे आदर देते रहना चाहिये ॥ ६० ॥
'अत्यधिक शील (नम्रता) से भरी हुई सुन्दरीके बिना वेरसी
सम्पत्ति भी सुख नहीं दे सकती ।' यही सोचकर क्वरि
कृष्णजीने ऋतु रश्मियोंसे विवाह कर लिया ॥ ६१ ॥ पण-
पणपर बढ़ते रहनेवाले संसारमें पवित्रताकी दो ही गति
है—एक तो यह कि ये तत्वज्ञान-रूपी अमृतजलसे मन
पुञ्जित करते हुए अपना समय बितावे और दूसरा
यह कि स्तन श्री वेपुके भारसे ध्यानन्दप्राप्ति सम्भोगका
रस देनेवाली रसीली नवेलियोंके मोटे-मोटे नितम्भपर हाथ
पेटनेके लिये झलकाते हुए समय बितायें ॥ ६२ ॥ इस असार
संसारमें यदि उदय हात हुए चन्द्रमाका घना चाँदना जैसा
काम्बिवाली, श्वमकती हुई कर्पनावाली तथा स्तनोंके भारसे
मुके हुए पेटवाली ये कमलनयनी नवेलियाँ न हातीं या दुष्ट
शास्त्राधिकारपर उनका सेवा करनेके कलङ्कने धीमकर धीरज
सो पेटनेवाले तथा निर्मल बुद्धिवाले मनुष्य अपना मन कैसे
बढ़ाते ? ॥ ६३ ॥ उज्ज्वल रत्नोंके धमकावे हाथवाली, हाथमें
अभय-रत्नकी मुद्रावाली, बिहारे हुए बाबोंवाली, मूलाधार

चक्री स्वामिनी, वेदोंका भाण्डार धारण करनेवाली, करोंकी
कारियोंका प्रचार करनेवाली, संसारका विस्तार करनेवाली,
भूत-प्रेतोंका भय दूर करनेवाली, सम्पूर्ण ज्ञानकी एक मात्र
अधकार तथा सब प्रकारकी सजावटोंकी पहती हुई धारा, सबकी
सार भगवती दुर्गा आपके मनमें सदा निवास करें ॥ ६४ ॥
कामिनियोंको देखना, उनसे बातें करना, और उनसे हाथ-भाव-
भरी हँसी मीढ़ा और आश्लिष्ट मनका तो दूरकी बात है; उनका
स्मरण-मात्र ही मनमें विकार उत्पन्न कर देनेके लिये बहुत
है ॥ ६५ ॥ प्रेमसे भरे हुए प्रियतमने कामकी मस्तीमें आकर
जैसे ही सुन्दर मध्यभाग (कमर) वाली सुन्दरीके कानमें
पूज लगाया वैसे ही तत्काल सीतके सीनेके गहने लघु (दलके)
हात हुए भी उसे भार जान पड़ने लगे ॥ ६६ ॥ आश्लिष्टनके
बन्धनम कला हुई, सुबनासे प्यमी जाती हुई और दौंतीसे
दुखार्ह जाती हुई सुन्दरप्रापि प्रियतमको अपना दास बना लेती
है ॥ ६७ ॥ प्रदाने जब रमणियोंका हतनी सुन्दर मुस्कानवाली,
सुन्दर वाहनवाली और सुन्दर चहोंवाली बनाया तो उनका
मन भी बिसा ही (सुन्दर) क्यों नहीं बना दिया ? ॥ ६८ ॥
सुन्दरियोंको चन्द्रमाने पवित्रता दी, गन्धर्वोंने सुन्दर योनों
दा और आश्लिष्ट सारे शरारती सुन्दरता दा इसलिये ये
सदा सीनेके ही समाज हैं ॥ ६९ ॥ स्थिराके सामने उनकी हँसका
नाम घेना उठने पापक करनेका समय बढ़ा मंत्र है क्योंकि
प्रियतमने ग्यौंही उस सुन्दरीको पूजसे मारते हुए हीनेके

समा । विपत्तौ बुद्धिदात्री च सा भार्या सर्वदुर्लभा ॥ ५ ॥ कार्येषु मन्त्री करणेषु दासी भोज्येषु माता शयनेषु रम्भा । धर्मैऽनुकूला जमया धरित्रो भार्या च पाङ्कुरययतीह दुर्लभा ॥ ६ ॥ गतागतकुतूहलं नयनयोरपाङ्गायधि स्मितं कुलनतभ्रुवामधर एव विश्राम्यति । वचः प्रियतमश्रुतेरतिथिरेव कोपक्रमः कदाचिदपि चेत्तदा मनसि केवलं मज्जति ॥ ७ ॥ चतुर्थेऽङ्के ज्ञातां त्रिदिनविरहात्पाण्डुवदनां रजोमुकां तन्वीं चपलनयनां कामकलिताम् । हिमत्वङ्माजरी-मलयभगवन्धमणयिनीमधन्यः को भुङ्क्ते च्युतकुसुम-शेषामिव लताम् ॥ ८ ॥ जीवति जीवति नाथे मृते मृता या मुदा युता मुदिते । सहजक्रेहरसाला कुल-वनिता केन तुल्यरा स्यात् ॥ ९ ॥ ढङ्कामाहत्य मदं वितन्वते करिष्य ह्य चिरं पुरुषाः । स्त्रियां करिणी-

नामिव मदः पुनः स्वकुलनाशाय ॥ १० ॥ तल्पे प्रभु-रिव गुरुरिव मनसिजशाले श्रमे भुजिष्येव । गेहे श्रीरिव गुरुजनपुरतो मूर्तव सा मीढा ॥ ११ ॥ तावत्कुलस्त्रीमर्यादा यावन्नजावगुरात्मन् । हृते तस्मिन्कुलस्त्रीभ्यो वरं वेश्याङ्गनाजनः ॥ १२ ॥ दीप-दशा कुलगुवती वैदग्ध्यै नैव मलिनतामेति । दीपा अपि भूपायै गणिकायाः शशिकलायाश्च ॥ १३ ॥ न कार्येषु न भोगेषु नैश्वर्यं न सुखे तथा । स्पृहा स्याद्य यथा भर्तुः सा नारी सुखभागिनी ॥ १४ ॥ कल्यो-त्थानपरा नित्यं गुरुशुश्रूषणे रता । सुसम्पृष्टगृहा चैव गोशकृत्कृतलेपना ॥ १५ ॥ न गृहं गृहमित्याहु-र्युद्धिणी गृहमुच्यते । गृहं तु गृहिणीहीनं कान्ताराद-तिरिच्यते ॥ १६ ॥ नातः परं कुलमतः परतो न शीलं नातः परं च कल्याणसदनं मृगाव्याः । यद्वाप्यविन्दुर-

अपने चापे याँ अङ्गमें बैठा जिया ॥ १ ॥ ऐसी पत्नी संसारमें सबके लिये दुर्लभ है जो काम था पदनेपर दासीके समान, रतिके समय बेरयाके समान, भोजन करते समय माताके समान और विपत्तिके समय बुद्धि देनेवाली बन जाय ॥ २ ॥ कार्यका विचार करते समय मन्त्री, काम करते समय दासी, भोजनके समय माता, सोते समय रम्भाके समान व्यवहार करनेवाली, धर्म-कार्योंमें सदा साथ देनेवाली और पृथ्वीके समान धमा करनेवाली, इन छः गुणोंवाली पत्नी इस संसारमें दुर्लभ है ॥ ३ ॥ झुकी हुई भौहोंवाली बुद्ध-यष्टुओंके नेत्रोंकी चञ्चलता उनके नयनके कोरोंतक ही आकर रह जाती है, मुस्कराहट अघरतक आकर समा जाती है, वे हतने धीरे बोलती हैं कि उनके प्रियतम-भर सुन पाते हैं और श्लेष यदि कभी उत्पन्न हुआ भी तो वह मनमें ही समा जाता है ॥ ४ ॥ मासिक-धर्मके पश्चात् चौथे दिन स्नान की हुई, पतिके तीन दिनोंके विद्योहसे उजले सुखवाली, दुबकी, चञ्चल नयनोंवाली, कामकी भावनावाली, कामके तापसे तपी हुई तथा पाजा, पेड़की गोखी छाड़, चारपाई और चन्दनका रस आहनेवाली उस बुद्ध चीका उपभोग विना पुण्यके कौन पा सकता है जो उस लताके समान जान पड़ रही हो जिससे सब पूछ ऋग् ग्य हों ॥ ५ ॥ पतिके जीवनके सहारे अविष्ट रहनेवाली, उनके मरते ही मर जानेवाली और उनके प्रसन्न रहते समय प्रसन्न रहनेवाली स्वभाविक स्नेहदृष्टी-रसते भरी हुई बुद्धवर्णी समता कौन कर सकता है ? भार्या

उसकी समता किसीसे नहीं हो सकती ॥ ६ ॥ पुरुष भले ही भयादा बजा-पजाकर मतवाले हाथियोंके समान मर्दमें घूर रहे किन्तु स्त्रियोंका अधिमान तो हृदिनिर्घोके मदके समान अपने बंधका नाश करनेवाला ही होता है ॥ १० ॥ वह सुन्दरी पलंगपर स्वामिनी, कामशास्त्रमें गुरु, धरुनेपर दासी, परमें लक्ष्मी और बर्दोंके आगे तो लजाकी मूर्तिके समान ही जान पड़ती है ॥ ११ ॥ जबतक लजाका घूँघट रहता है तभीतक उत्तम कुलकी स्त्रीकी मर्यादा सुरक्षित रहती है; लजा समाप्त हो लुकनेपर उनसे अच्युती तो बेरयाई ही होती है ॥ १२ ॥ अधिक चञ्चलता और अचरुतासे दीपककी बत्ती और बुलबुल दोनों ही दूषित हो जाती हैं । केवल चन्द्रमाकी कला और बेरयाई ही ऐसी हैं जिनकी सजावट दोषा (रात, दुर्गुणों) से अधिक बढ़ जाती है ॥ १३ ॥ यही स्त्री सुख भोगनेवाली होती है जिसकी कार्यों, भांगों, पेशियों तथा सुखमें पैसां हट्टा नहीं रहती जैसी पतिमें रहती है ॥ १४ ॥ [पदी की सुखी रहती है] जो सदा तड़के सोकर उठती है, बर्दोंकी सेवा करती रहती है और धपना घर गोबरसे क्षीप-पोतकर स्वच्छ रहती है ॥ १५ ॥ केवल घर ही घर नहीं कदलाता; पयायमें गृहिणी ही घर कदलाती है, दिना गृहिणीका घर तो भयानक जंगलसे भी बढ़कर गया-भीता होता है ॥ १६ ॥ मृगनयनी नवेलीकी हससे बढ़कर कुञ्जीवता, शीख और करपाका भयदार और क्या ही सकता है जो कि यह धरपापी पतिके चरण धपना

पराधयतोऽपि पत्युरुत्सङ्गितेन चरणेन तयापनिन्ये
॥ १७ ॥ नास्ति स्त्रीणां पृथग्यद्यो न ध्रतं नाप्यु-
पोपणम् । पतिं शश्रुषते येन तेन स्वर्गं महोयते
॥ १८ ॥ नित्यं स्नाता सुगन्धा च नित्यं च
प्रियवादिनी । अल्पभुङ्क्षमितयन्त्री च देवता सान
मानुषी ॥ १९ ॥ निर्व्याजा दयिते ननान्द्रुषु नता
श्वश्रुषु भक्ता भव स्निग्धा वन्धुषु घत्सला परि-
जने स्मेरा सपत्नीष्वपि । भर्तृमित्रघने सनप्रघ-
चना खिन्ना च तद्वैरिषु प्रायः संवननं नतश्रु तदिद्
वीतीपधं भर्तृषु ॥ २० ॥ पतिर्देवः पतिर्वन्धुः पतिः
स्वर्गः पतिः सुखम् । जीवनं च पतिर्नार्या नान्यत्
किञ्चिज्जगन्ने ॥ २१ ॥ पतिर्हि देवो नारीणां पतिर्वन्धुः
पतिर्गतिः । पत्युर्गतिसमा नास्ति दैवतं वा यथा
पतिः ॥ २२ ॥ पदन्यासो गेहाद्द्विहरिद्विफणारोपणसमो
निजायासादान्यद्घनमपरङ्गीपतुलितम् । वचो लोका-

लभ्यं कृपणघनतुल्यं मृगदृशः पुमानन्यः कान्ता-
द्विधुरिय चतुर्थीसमुदितः ॥ २३ ॥ परपतिनिर्दयकु-
लटाशोपित शठ नेर्षया न कोपेन । दग्धममतोपनत्ता
रोदिमि तय तानयं वीच्य ॥ २४ ॥ पाणिप्राह्मण्य
साध्वी स्त्री जीवती वा मृतस्य वा । पतिलोकमभीप्स-
न्ती नाचरेत्किञ्चिदमियम् ॥ २५ ॥ प्रतिपत्नेणापि
पतिं सेवन्ते भर्तृवत्सलाः साध्व्यः । अन्यरदितां
शतानि हि समुद्रगाः प्रापयन्त्यधिम् ॥ २६ ॥ प्रति-
रजनि प्रतिदिवसं विहर वहिश्चरिद्वि डिगिदमं दत्वा ।
कोणयधृद्ग्यलितैर्विध्वं पुनराकुलोभवति ॥ २७ ॥
वह्निं लोला दग्धाद्भ्रूलुतापैति कृलादिव सागरोमिः ।
न वा सतीनामभिलाषयन्धं व्यनक्ति गन्धं कलिकेश
चेतः ॥ २८ ॥ बालया वा युवत्या वा वृद्धया चापि
योपिता । न स्वातन्त्र्येण कर्त्तव्यं किञ्चित्कार्यं शृद्ध्यपि
॥ २९ ॥ भक्तिः प्रेयसि संश्रितेषु कदया श्वश्रुषु नर्त्त

गोदमें रत्नकर इनपर गिरे हुए अपने ही आँसू पोंछ रही
है ॥ १७ ॥ खियोंके लिये न तो अलगसे किसी यज्ञका विधान
है न उपवासका । केवल पतिकी सेवाके बलपर ही वे स्वर्गमें
जा धमकती हैं ॥ १८ ॥ जो स्त्री सदा स्नान करके सुगन्धित
रहती है, सदा मीठी बोली बोलती है, थोड़ा खाती है
और बहुत कम बोलती है वह मनुष्य नहीं, देवता है
॥ १९ ॥ हे सुनी हुई भौहोंवाली ! पतिसे निरद्वल रहना,
ननदोंके सामने नश्र रहना, सासोंको प्रसन्न रखना, बन्धुओंपर
प्रेम करना, परिवारपर अनुराग रखना, सौतेलसे ईसकर
बोलना, पतिके मिथोंसे नश्रतापूर्वक बातें करना और पतिके
शुश्रूषोंसे विरक्त रहना, प्रायः इन्हीं बातोंका परालन करना
पतिमें विना सामग्रीके ही भक्ति करना कहा जाता है ॥ २० ॥
पति ही परमोका देवता है, पति ही बन्धु है, पति ही स्वर्ग
है, पति ही सुख है और पति ही जीवन है । पतिके अतिरिक्त
तीनों लोकोंमें स्त्रीका कहीं कुछ नहीं है ॥ २१ ॥ पति ही
खियोंका देवता है, पति ही बन्धु है, पति ही गति है, पतिके
अतिरिक्त स्त्रीकी कोई दूसरी गति नहीं है, यहाँतक कि देवता
भी नहीं ॥ २२ ॥ सती खियोंके लिये घरसे बाहर धर रखना
सर्वपके फलपर धर रखनेके समान है, अपने घरके अतिरिक्त
दूसरा घर उनके लिये दूसरे द्वीपके समान है, कृपणके धनके
समान उनकी बोली संसारमें कोई सुन नहीं पाता और
अपने प्रियतमके अतिरिक्त कोई भी दूसरा पुरुष उनके

लिये भादोंकी चौथका चन्द्रमा ही है ॥ २३ ॥ हे मूर्ख ! दूसरोंके
पतियोंको निर्दयतापूर्वक सोख लेनेवाली कुबलासे सुजाप
हुए । मैं तुम्हें देखकर न तो ईर्ष्याके ही कारण रोती हूँ न
क्रोधसे ही । मैं तो इस निगोड़ी ममताके कारण तुम्हीं
होकर तुम्हारी दुर्बलता देख-देखकर रो रही हूँ ॥ २४ ॥ सती स्त्री
यदि पतिका जोरक पाना चाहे तो उसे चाहिए कि चाहे
उसका पति मर गया हो या जीवित हो किन्तु वह कभी भी कोई
देसा कार्य न करे जो पतिको अत्रिय लगता हो या लगा करता
रहा हो ॥ २५ ॥ पतिपर प्रेम करनेवाली साध्वी खियोंकी सौतेली
साथ रहकर भी पतिकी वैसे ही सेवा करती हैं जैसे बड़ी
नदियोंकी सैकड़ों छोटी-छोटी नदियोंको समुद्रके पास अपने साथ
ही पहुँचा देती हैं ॥ २६ ॥ हे वध्वी ! तू भले ही दिन-
रात बराबर दुःखी पीटती हुई बाहर घूमा कर किन्तु यह समझ
रख कि घरके कोनेमें छिपकर बैठी हुई बहूकी चितवनसे ही
संसार व्याकुल होगा, तुझसे नहीं ॥ २७ ॥ पतिग्रहायोंकी
चञ्चल चितवन नेत्रके कोरोंसे बाहर वैसे ही नहीं जाती
जैसे ब्रह्मर समुद्रके तटसे धागे नहीं बढ़ती और उनके मनकी
हृद्धा वैसे ही कोई नहीं समझ पाता जैसे कलीकी गंध
बाहर नहीं फैला करती ॥ २८ ॥ कन्या, युवती तथा वृद्धा
स्त्रीको भी घरमें कोई काम स्वतन्त्रता-पूर्वक नहीं करना
चाहिए ॥ २९ ॥ पतिपर भक्ति, अपने अतिरिक्त रहनेवालोंपर
दया, सासोंके सामने सिर झुका हुआ, देवानी-वेदानियोंपर

शिरः प्रीतिर्यातुप गौरवं गुरुजने ज्ञान्तिः कृताग-
स्यपि । अग्नाना कुलयोपितां प्रतविधिः सोऽयं
विधेयः पुनर्मद्भर्तुर्दयिता इति प्रियसखीवुद्धिः सपत्नी-
प्यपि ॥ ३० ॥ भास्वानुद्गतवाग्शशी विगतवान्
देवाग्निकार्यार्हितः सम्भारो रचितो विशुद्धवसने
कालोन्निते योजिते । भनानं नाथ विधीयतां सुमन-
सोऽर्च्यन्तां शिखी चेज्यतां भोज्यन्तां गृहमागता
इति सती कर्त्तव्यमाभापते ॥ ३१ ॥ मनसा वचसा
सततं भवन्ति या भर्तृवत्सलाः साध्यः । अपि
पतितं परिशीलं नयन्ति ता अक्षर्यं त्रिदिवम् ॥ ३२ ॥
मानाग्निवर्धनमहौषधमेतदेव स्त्रीणां सपत्नवनिताह्वय-
कीर्तनं यत् । अय्याजनिर्भरभयप्रणतोत्तराणां मन्ये
विशेषत इदं कुलकन्यकानाम् ॥ ३३ ॥ यदेवेभ्यो यच्च
पित्रादिकेभ्यः कुर्याद्भर्ताऽय्यर्चनं सन्निधायतः ।
तस्यार्थं वै सा फलं नान्यचित्ता नारी भुङ्क्ते भर्तृशुभ्र-
प-यैव ॥ ३४ ॥ यस्य भार्या शुचिर्दत्ता भर्तारमनुगा-

मिनी । नित्यं मधुरवन्त्री च सा रमा न रमा रमा
॥ ३५ ॥ या नारी सुव्रता दत्ता विमलाऽमृतमा-
पिणी । सदाचारा पतिप्राणा सा स्वर्गादतिरिच्यते ॥ ३६ ॥
रूपसम्पन्नमग्नान्यं प्रेमप्रार्थं प्रियंवदम् ।
कुलीनमनुकुलं च फलत्रं कुत्र लभ्यते ॥ ३७ ॥ लज्जा-
वशावनतमन्धरदृष्टिपातं यैश्चम्वितं कुलवधूवदनार-
चिन्दम् । तेषामनेकपुरुषप्रणिताधरेषु सक्तिः कथं
भवति वेशवधूमुखेषु ॥ ३८ ॥ वश्यभावेन सुमनाः
सुव्रता सुसमाहिता । अनन्यचित्ता सुसुखी भर्तुः सा
धर्मचारिणी ॥ ३९ ॥ वृक्षमूलेऽपि दयिता यत्र तिष्ठति
तद्वृक्षम् । प्रासादोऽपि तया हीनो हारण्यसदृशः
स्मृतः ॥ ४० ॥ शुभ्रपस्य गुरुकुक्कु प्रियसखीवृत्तं
सपत्नीजने भर्तुर्विप्रकृतापि शोषणतया मा स्म प्रतीपं
गमः । भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भोगेष्वनुरसेकिनी
यान्त्येवं गृह्णीषीपदं सुव्रतयो वामाः कुलस्याध्वयः
॥ ४१ ॥ शुभ्रपामनुकन्धती गुरुजने धाक्ये नानान्दः

प्रेम, यदोके प्रति आदरकी भावना और अपराधियोंपर चमा
ये स्वाभाविक गुण तो कुलीन स्त्रियोंमें होते ही हैं, साथ
ही उनमें विशेष वात यह भी होती है कि वे अपनी
सौतेलियों की इसीलिये प्यार करती हैं कि वे मेरे प्रियतमकी
प्यारी हैं ॥ ३० ॥ 'हे नाथ ! सूर्य निकल आया, चन्द्रमा
अस्त हो गया, देवताओंकी पूजा और हवनकी सामग्री
इकट्ठी हो चुकी है और समयानुवृत्त वस्त्र भी रख दिए
गए हैं । अब आप ज्ञान करके देवताओंका पूजन कीजिए,
अग्निमें आहुति दीजिए और अतिथियोंको भोजन कराइए ।'
सती स्त्रियाँ सदा इस प्रकार पतिके कर्त्तव्य धतवाती
रहती हैं ॥ ३१ ॥ जो साध्वी स्त्रियाँ मन और धारणीसे
सदा पतिपर प्रेम करती हैं वे अपने साथ अपने पति
पतिके भी अत्य स्वर्ग-लोक ले जाती हैं ॥ ३२ ॥
स्त्रियोंका क्रोध बढ़ा देनेके लिये सौतेला नाम ले लेना
एक बड़ी सीम औषधि है किन्तु कुलीन नवेलियोंमें यह
विशेषता होती है कि वे सौतेला नाम सुनते ही स्वाभाविक
दरके साथ नीचे सिर झुका लेती हैं ॥ ३३ ॥ देवताओं या
पितरोंका जो भी पूजन आदि सची क्रियासे पति करता है
उसका आधा फल पतिके अतिरिक्त दूसरेपर मन न
लगानेवाली स्त्री केवल पतिकी सेवा करके ही ले लेती
॥ ३४ ॥ जिसकी पत्नी पतिपर, चतुर, पतिके अनुवृत्त चलनेवाली

और मीठी बोलनेवाली होती है वही सचमुच लक्ष्मी
है, लक्ष्मी, लक्ष्मी नहीं है ॥ ३५ ॥ नियमपर अटल रहनेवाली,
चतुर, स्वच्छ, अमृत जैसी मधुर बोलनेवाली, अच्छे
आचारणवाली और पतिके सहारे प्राण रखनेवाली स्त्रीके
रहते स्वर्ग भी तुच्छ है ॥ ३६ ॥ सुन्दरी, सभ्य, प्रेमसे भरी,
प्रिय बोलनेवाली, उत्तम कुलमें उत्पन्न तथा पतिके मनके
अनुसार चलनेवाली पत्नी मिलती कहाँ है ? ॥ ३७ ॥ जिन
जोगियों काजके कारण भुका हुआ और मन्द-मन्द चितवनवाला
कुलीन स्त्रीके मुखकमलका सुग्मन किया है उनका प्रेम
घेरयाओंके उन मुखोंसे झेले हो सकता है जिनपर अनेक
पुरुषोंके दौतोंके घाव बने रहते हैं ॥ ३८ ॥ वशमें रहनेवाली,
प्रसन्न चित्तवाली, नियमोंपर अटल रहनेवाली, स्थिर बुद्धिवाली
और पतिके अतिरिक्त दूसरेमें मन न लगानेवाली सुन्दर
सुलवाली स्त्री ही धर्मका आचरण करनेवाली कही जाती
है ॥ ३९ ॥ यदि पैदके सले भी प्रियतमा साथ हो तो यह
घर ही है किन्तु उसके बिना यद्ये बड़े भवन भी बनके ही
समान हैं ॥ ४० ॥ बेटी ! यदोंकी सेवा करना, सौतेले सखियों
जैसा व्यवहार करना, पतिके अपमानित होकर भी क्रोध
न करना, बुद्धिधर्योति अत्यन्त सज्जनताका व्यवहार करना
और सुप पादक भी न, इतराना यह व्यवहार करनेवाली
स्त्रियाँ घरकी स्वामिनी हो जाती हैं तथा इसके विरुद्ध आचरण

स्यिता दाक्षिर्यैकपरायणा परिजने ज्ञिग्वा सपत्नी-
प्यपि । सन्नद्धातिथिसत्कृतौ गृहभरे नैस्तन्व्यमायि-
भ्रतो घस्ते किं यद्गुना भजस्व कुशलं भर्तुः प्रिये
जाप्रतो ॥ ४२ ॥ श्वश्रूश्वशुरयोः पादौ तोपयन्तो पति-
यता । मातापितृपरा नित्यं या नारी सा पतिप्रता
॥ ४३ ॥ सञ्चारो रतिमन्दिरावधि सखीकर्णावधि
व्याहृतं चेतः कान्तसमीहितावधि महामानोऽपि
मौनावधि । हास्यं चाघरपल्लवावधि पदन्यासावधि
प्रेक्षितं सर्वं सावधि नावधिः कुलमुखां प्रेम्णाः परं
फेवलम् ॥ ४४ ॥ सदा प्रहृष्टया भाव्यं गृहकार्यं च
दत्तया । सुसंस्कृतोपरकरया व्यये चामुकहस्तया
॥ ४५ ॥ साध्वी शीलवती दयावसुमती दाक्षिण्यल-
ज्जावती तन्वी व्याजपराङ्मुखी स्मितवती मुग्धा
प्रियालापिनी । देवप्राह्वणयन्सुसज्जनहिता यस्यास्ति
मार्या गृहे तस्यार्थान्गममोक्षभोगफलदा सैकैव पुण्या

लता ॥ ४६ ॥ सैय माघ्यो सुमन्त्र्य सुनेहः सरनो-
ज्ज्वलः । पाकः सञ्जायते यस्याः करादप्युद्रादपि
॥ ४७ ॥ ज्ञानाम्मो यद् साधिता रम्यघटी देवादि-
कार्योचितः सम्मारो रचितो विद्युत्प्रयसने पादौ
चित्ते योजिते । ज्ञानं नाथ विधीयतामतिथयः
सीदन्ति नान्या त्वरा धन्यं योद्यते शूनैगिति पतिं
मध्याह्नसुप्तं सती ॥ ४८ ॥ देहामाप्रयिस्रितत्रि-
मुधनाः कर्णाञ्जलोत्तमिताम्भारण्यम्य मदस्य च
प्रणिययो लज्जार्थमङ्गोचिताः । तीक्ष्णा हीरफस्-
चयो मुनिमनोमारिण्ययैवोद्धताः कल्पन्तां प्रमदाय
यः कुलवधूलीलाकटाक्षश्रुताः ॥ ४९ ॥
स्त्रीभावनिन्दा—अप्राहृतं हृदयं चतनं यद्दण्डपान्त-
र्गतं भायः पर्यतसध्ममार्गाधिपम स्त्रीणां न विद्ययते ।
विचं पुष्करपत्रतोपतरलं विद्वद्भिरार्यंसितं नारी नाम
विपाङ्कुरैरिव लतादोषैः समं यथिता ॥ १ ॥ अत एव

करनेवाली संशके लिये रोग बन बैठती हैं ॥ ४१ ॥ बेटी !
यद्दोषी सेवा करते हुए, ननदोका कहना मानते हुए, परिवारके
सोमोपर अनुकूलता और सौतेलके साथ स्नेहका व्यवहार
करते हुए, अतिथिसत्कारके लिये सदा प्रस्तुत रहते हुए,
परका भार सँभालनेमें आलस्य न करते हुए; अधिका क्या
कहूँ—अपने पतिके मनका काम करनेमें सदा सजग रहते हुए
एव कल्याणका भोग करनेवाली बनो ॥ ४२ ॥ जो स्त्री माता-
पिताको मानती हुई और सास-ससुरकी सेवा करती हुई
पतिसे प्रेम करती है वही पतिप्रता है ॥ ४३ ॥ कुलीन स्त्रियोंका
चलना रति-भयनतक, बोली सजीके काराँनक, चित्त प्रियतमको
चाहनेतक, अत्यधिक रुठना चुप रहनेतक, हँसी कोमल श्रोतवक
और देवना पग यद्दानेतक सीमित होता है, केवल उनका
प्रेम ही शस्त्रीम होता है ॥ ४४ ॥ पत्नीको चाहिए कि वह
सदा प्रसन्न और घरके काममें सजग रहे, अपने घरकी सय
सामग्री स्वच्छ और सजानर रहे किन्तु कभी तुले हाथ व्यय
न करे ॥ ४५ ॥ जिसके घरमें कुलीन, सुशील, दयालु, चतुर,
लजीबी, मूठ-मूठ सुँह करनेवाली सुस्कराती रहनेवाली, बोली-
भाली, प्रिय बोखनेवाली और देवता, प्राह्वण, भाई-बन्धु तथा
सज्जनाकी भलाई करनेवाली स्त्री होती है उसे धर्म, अर्थ,
काम और मोक्ष-रूपी फल देनेवाली पवित्र लता समझना
चाहिए ॥ ४६ ॥ वही स्त्री साध्वी है जिसके हाथसे चिन्ता,
स्वच्छ और मीठा भोजन (भत) बनता है और जिसकी

कोरमे उत्तम, भक्त, सुन्दर, स्नेह करनेवाला, स्वस्य और
गुणी पुत्र उत्पन्न होता है ॥ ४७ ॥ दोपहरसे सोए हुए किसी
पुरुषवान् पतिको उसकी सती स्त्री यह कहकर धरिसे जगा
रही है कि—'स्नानके लिये जल तैयार है, रमोई बन गई है,
देव-पूजन और इवनकी सामग्री इच्छी रखी है, समयके
अनुकूल न्वच्छ वस्त्र रग दिए गए हैं, हे नाथ ! अब आप
स्नान कर लीजिए । मैंसे तो कोई शीघ्रताकी बात नहीं है
किन्तु अतिथि कट पा रहे हैं !' ॥ ४८ ॥ उत्तम लुब्धकी
यद्दोषीकी लाजसे श्रापी सुँदी हुई आँवोंकी वे स्वामाधिक
चञ्चल धोँकी चिनचनमें श्रापको मस्त किए रखें जो ऐन सेलमें
ही तीनों लोकाँमें इववही उपजा देती हैं, कर्णाञ्जलसे सजी
रहती है, यौवन और मस्तीकी मन्धर हैं तथा सुनियौके मन-
रूपी मारिण्यकी बेचनेके लिये हीरा बेचनेवाली तीली सुँ
हैं ॥ ४९ ॥

स्त्रियोंके स्वभावकी निन्दा : चियोंका हृदय दैते ही
नहीं गहा जा सकता जैसे दर्पणमें पदी हुई सुँकी छाया
नहीं पकदी जा सकती । इनके मनके भाव दैते ही
उलझनसे भरे (विषम) होते हैं जैसे पहादोंपरही
पगढियों । इनका चित्त भी कमलके पतेपर पदी हुई जलकी
सुँदेके समान चञ्चल होता है, इसीलिये विद्वानोंका कहना है
कि नारी नामसे यह विषका चंद्र ही बृकर दोगेने भरी
छताके रूपमें बढ गया है ॥ १ ॥ [इनकी बोलीमें मणु तथा

निपीयतेऽधरो हृदयं मुष्टिभिरेव ताड्यते । पुरुषैः
 सुपलेश्वश्रितैर्मधुलुब्धैः कमलं यथालिभिः ॥ २ ॥
 अनरुह्रितकूर्चकः स तु सितोपलाढ्यं पयः स पय
 भृतकूर्चकः सलवणाम्भुतक्रोपमः । स एव सितकूर्चकः
 कथितगुग्गुलद्वेगुरुद्भवन्ति हरिषीहृशां प्रियतमेपु
 भाधास्त्रयः ॥ ३ ॥ अनर्थात्त्वान्मनुष्याणां भयात्परिज-
 नस्य च । मर्यादायाममर्यादाः स्त्रियस्तिष्ठन्ति सर्वदा
 ॥ ४ ॥ अन्तं सत्यमित्याहुः सत्यं चापि तथानृतम् ।
 इति यास्ताः कथं धीरैः खरध्याः पुरुषैरिह ॥ ५ ॥
 अन्तं साहसं माया मूर्खत्वमितलोभता । अशोचं निर्द-
 यत्वं च स्त्रीणां दोषाः स्वभावजाः ॥ ६ ॥ अन्यं मनुष्यं
 हृदयेन कृत्वा अन्यं ततो दृष्टिभिरादयन्ति । अन्यत्र
 मुञ्चन्ति मदमसेकमन्यं शरीरेण च कामयन्ते ॥ ७ ॥
 अन्तःकराः सोभ्यमुखा अगाधहृदया स्त्रियः । अन्त-
 विधा वृद्धिःसौम्या भव्या विपकृता इव ॥ ८ ॥ अन्त-

विषमया होता वृद्धिश्चैव मनोरमाः । गुञ्जाफलसमा-
 कारा योपितः केन निर्मिताः ॥ ९ ॥ अपरिहृतास्ते
 पुरुषा मता मे ये स्त्रीपुत्र श्रीपु च विश्वसन्ति । श्रियो
 हि कुर्वन्ति तथैव नार्यो भुजङ्गकन्यापरिस्पर्णान् ॥
 १० ॥ अपरतर रे दूरादस्मात्कटाक्षविपानलात्प्रक-
 तिविपमाथोपिस्पर्शद्विलासफणाभृतः । इतरकणित
 दृष्टः शक्यश्चिकित्सितुमीपधैश्चदुलवनिताभोगिप्रस्तं
 त्यजन्ति हि मन्त्रिणः ॥ ११ ॥ अलकको यथा रक्तो
 निष्पीड्य पुरुषस्तथा । अयत्नाभिर्वलाद्रक्तः पादमूले
 निपात्यते ॥ १२ ॥ अलाभात्पुरुषाणां हि भयात्परि-
 जनस्य च । वधवन्धमयाचैव तथा श्रुता हि योपितः
 ॥ १३ ॥ अविह्वासमलं लोके विह्वासमपि वा पुनः ।
 प्रमदा ह्युपथं नेतुं कामक्रोधवशात्तुगम् ॥ १४ ॥ अस-
 र्द्धस्त्वयं स्त्रीणामस्माकं भवति प्रभो । पापीयसो
 तरान्यद्दे सज्जां त्यक्त्वा भजन्ति ताः ॥ १५ ॥ अला-

हृदयमं हाहाहल विप रहता है] हसीलिये तनिकसा सुख
 पानेके केरमं पदे हुए पुरुष इनके अथर तो पीते हैं किन्तु
 हृदय (स्तन) को मुष्टियोंसे मारते हैं, जैसे भीरे कमलका रस
 तो पी लेते हैं किन्तु अपने पैरोंसे उसे कुचल भी डालते हैं ॥२॥
 प्रियतमोंके प्रति शृगानवनी स्त्रियोंके तीन प्रकारके भाव वृद्धा
 करते हैं—१. जब उनके शूँघपर बाल नहीं उगे रहते तब
 यह सुप उन्धं चीनी मिले दूधके समान लगता है, २. जब
 बाल (शूँघ-दाढ़ी) निकल आते हैं तब वही शूँघ खारे पानी
 और मट्टके समान लगते लगता है और ३. जब बाल पककर
 उमले हो जाते हैं तब उसे देखकर ये ऐसी चबराही हैं मानो
 गुञ्जलका फादा सामने आ गया हो ॥३॥ एक तो रति करनेके
 लिये यहनेवाले पुरुष मिलते नहीं और दूसरे सुदुर्मियोंका
 भय बना रहता है, हसीलिये मर्यादांमं न रहनेवाली भी
 स्त्रियाँ सुदा मर्यादांमं रहती दिखाई देती हैं ॥ ४ ॥ जो
 स्त्रियाँ मृतको सत्य तथा सत्यको मृत कहती हैं उनकी रचा
 भाषा चीर पुरुष कर ही कैसे सकते हैं ? ॥ ५ ॥ मृत घोखना,
 बिना विचार साहस कर घैठना, मृडी चिकनी-सुपकी बातें
 पनाना, मूर्खता, अत्यधिक क्रोध, अविप्रता और निर्दयता
 ये अथगुण (स्त्रियोंमें जन्मते ही उत्पन्न रहते हैं ॥ ६ ॥ स्त्रियाँ
 किसी पुरुषको तो हृदयमें बिटाय रहती हैं, किसीको चितवन
 पक्षाधर बुझाती हैं, किसीको देखकर हैंसती-सिक्तपिशातो
 हैं और शरीर देखर किसी दूसरेको हो चाहती रहती हैं ॥ ७ ॥

स्त्रियोंका हृदय बषा वृद्ध होता है, सुख बषा सुहावना
 होता है और हृदयको तो बाह ही नहीं लगती । जान पड़ता
 है ऊपरसे सुन्दर दिखाई देनेवाली विपभरी खानेकी वस्तुके
 समान ही ये भीतरसे विपभरी तथा ऊपरसे इतनी रसीली
 बनाई गई हैं ॥ ८ ॥ इनके भीतर तो विप भरा हुआ है
 किन्तु बाहरसे इतनी सुन्दर हैं । शूँघकीके फलके समान
 रूपवाली इन स्त्रियोंकी बना किसने दिया ? ॥९॥ ये मनुष्य
 मेरी समकर्म मूर्ख ही हैं जो लक्ष्मी और स्त्रियोंमें विधास
 करते हैं । लक्ष्मी तथा स्त्रियोंकी गति नागिनके समान ही
 देदी होती है ॥१०॥ अरे मनुष्यो ! स्वभायसे देहे (सुदिल),
 तिरछी दृष्टिको विपकी आगवाले तथा बिजासरूपी फलवाले
 इस स्त्री-रूपी सर्पको दूरसे ही छोड़कर भागो, क्योंकि दूरसे
 सर्पके रसे हुए प्राणीकी चिकित्सा तो औषधियोंसे हो भी
 सकती है किन्तु चञ्चल स्त्रीरूपी सर्पके रसे हुए प्राणीको
 तो बड़े-बड़े मन्त्र जाननेवाले भी नहीं छेदते ॥ ११ ॥
 रक्त (चासक) पुरुषको स्त्रियाँ महावारकी भौति ही बलपूर्वक
 निचोड़कर पैरों तक मसल देती हैं ॥ १२ ॥ पुरुषोंसे मिल
 न पानेसे, परिवारके रसे तथा मारे जाने और बधि जानेके
 करते ही स्त्रियाँ गुप्त (सुरक्षित) हैं, (वे स्वयं सुरक्षित
 नहीं रह सकतीं) ॥ १३ ॥ काम और क्रोधके बरामें धाप
 हुए विद्वान् या मूर्ख पुरुषको भी सुपन्थमें खे जानेके लिये
 एक रमी ही बहुत समझो ॥१४॥ हे प्रभो ! स्त्रियोंका यह नीप

पैर्मधुरैश्च काञ्चिदपरानालोकितैः सन्निवैरन्यान्वि-
 भ्रमतल्पनामिरितरानङ्गैरनङ्गोऽन्यतैः । आचारैश्चतुरैः
 परानमिनवैरन्यान्ध्रुवः कम्पनैरित्यं काञ्चन रञ्जयन्ति
 मुदश्रीं मन्ये मनस्त्वन्यथा ॥ १६ ॥ श्रावतः संशयाना-
 मयिनयनवनं पत्तनं साहस्रानां दोषाणां सन्निधानं कपट-
 शतशृङ्गं चेन्नमप्रत्ययानाम् । दुष्गणैः यन्महद्भिर्नरवर-
 द्युषभैः सर्वमायाकरण्डं खीयन्तं केन लोके विषममृत-
 मयं धर्मनाशाय सृष्टम् ॥ १७ ॥ आस्तां तावत्किमन्येन
 शैरात्त्येनात्र योपिताम् । विघृतं स्वोदरेपापि ध्नन्ति
 पुत्रमपि स्वकम् ॥ १८ ॥ उत्तमानामपि स्त्रीणां
 विश्वसो नैव विद्यते । राजप्रियाः कैरावय्यो रमन्ते
 मधुषैः सह ॥ १९ ॥ उशना वेदं यच्छास्त्रं यच्च वेदं
 वृहस्पतिः । स्त्रीयुद्धया न विशिष्येत तस्माद्भ्रष्ट्याः
 कथं हि ताः ॥ २० ॥ एकेन स्मितपाटलाधररचो
 जल्पन्त्यनल्पाच्चरं धीक्षन्तेऽन्यमितः स्फुटत्कुमुदिनी-
 फुल्लोत्सस्रलोचनाः । दूरोदारचरित्रचित्रविभवं

ध्यायन्ति चान्यं धिया केनेन्यं परमार्येनोऽध्वंदिध
 प्रेमास्ति चान्ध्रुयाम् ॥ २१ ॥ पत्न्याः स्वार्थपरा नार्यः
 केवलं स्वमुखे रताः । नतासां यत्नमः कोऽपि सुनोऽपि
 स्वसुखं विना ॥ २२ ॥ कामनात्ता निरातेन विनता
 मृदचेतसाम् । नार्यो नरविद्वह्मगानामङ्गकथनयागुराः
 [२३] काकश्यं स्तनयोर्दशोस्तरलताऽलीकं मुले दृश्यते
 कौटिल्यं कचसञ्चये प्रयत्ने मान्यं मित्रे स्पृशता ।
 मौक्त्यं हृदये सदैव कथितं भायाप्रयोगः प्रिये यासां
 दोषगणो गुणान्मृगदृशां ताः किं नराणां प्रियाः
 ॥ २४ ॥ कुर्वन्ति तावत्प्रथमं मियापि यावन्न जानन्ति
 नरं प्रसक्तम् । श्लाघ्याय तं मन्मथपाशयत्नं प्रस्तामिदं
 मीनमियोद्धरन्ति ॥ २५ ॥ कुलीना रूपपत्यश्च नायन-
 त्यश्च योपितः । मर्यादासु न तिष्ठन्ति स दोषः स्त्रीषु
 नारद ॥ २६ ॥ के नाम न चिन्तयन्ति मित्याप्ताना-
 भ्रितभ्यिनीम् । रम्यां बुद्धोपसंपन्ति ये ज्वालं शूलभा
 इव ॥ २७ ॥ गुणाश्रयं कीर्तियुतं च कान्तं पति विधेयं

व्यवहार ही हमारा सबसे बड़ा पाप है कि वे निर्लज्ज होकर
 पापियोंको प्रसन्न करती रहती हैं ॥ १४ ॥ सुन्दर स्त्रीवालोंकी
 स्त्रियाँ किसीको मधुर बोलासे, किसीको सुस्काराद-नरों
 चितवनसे, किसीको कामके मद्दसे भरे गोरे-गोरे श्रगोंके हाव-
 भावसे, किसीको चतुरतासे भरे व्यवहारसे और किसीको भीहँ
 नचानचाकर जब रिक्ताने लगती हैं मैं समझता हूँ कि इनके
 मनमें कुछ और ही है ॥ १५ ॥ शंकाओंकी भँवर, डिठाईका
 घर, साहसका गाँव, दोषोंका भयदार, सैकड़ों कपटोंसे भरा
 हुआ श्रविश्वासका खेत, सारी भायाका धरं तथा विप और
 श्रयसे भरा यह शरी-रूपी यन्त्र धर्मका नाश करनेके लिये
 रच किसने दिया जिसे बड़े-बड़े तथा श्रत्यन्त श्रेष्ठ मनुष्य धूते
 भी नहीं ॥ १७ ॥ इनकी और दुष्टता तो जाने दीजिए, ये
 (१० महीने) पेटमें रखते हुए अपने पुत्रवत्को मार डालती
 हैं ॥ १८ ॥ उत्तम स्त्रियोंका भी विश्वास नहीं रह गया ।
 कुमुदिनियों वषापि प्यारी हैं चन्द्रमाकी, फिर भी वे रमण
 करती हैं मधुषों (मदिरा पीनेवालों, मीरों) के साथ ॥ १९ ॥
 नुक्ताधार्य और घृदरपति जैसे मन्त्री जिस शास्त्रको जानते हैं,
 यह भी जिनके सामने कुछ नहीं है, उनकी रक्षा हो ही कैसे
 सकती है ॥ २० ॥ बाल शोषण सुस्कारादकी मूकक लिप
 हुए स्त्रियाँ किसीके साथ तनिक-सी बातें ही कर लेती हैं,
 किसीको खिली हुई कुमुदिनीके समान विकसित और उल्लाससे

भरी झँलसे देख लेती हैं और कल्पन्त सुन्दर व्यवहार
 तथा श्रत्यधिक धनवाले किसी पुरपको मनसे सोचती-रहती हैं,
 श्रतः यह नहीं जान पड़ता कि सचमुच इनका प्रेम है किसले !
 ॥ २१ ॥ ये परम स्वार्थी नारियाँ केवल अपने गुणमें ही ब्रीन
 रहती हैं । अपना सुख छोड़कर न तो इनका कोई विदतन है न
 पुत्र ही है ॥ २२ ॥ कामदेव नामके धरेलिये मूर्ख गुदिवाले
 मनुष्य-रूपी पशियोंको फौसनेके लिये श्रोत्ररूपी बाल फैला
 रक्खा है ॥ २३ ॥ स्तनोंमें कडोराता, नेत्रोंमें रस, मुँहमें मूत्र,
 बालोंमें बॉकपन, बोजोंमें शिथिलता, नितम्बमें मोटापन, हृदयमें
 दरपोकपन और श्रियतमपर सदा कुल-प्रपञ्चका प्रयोग, ये सब
 दुर्गुण भी जिसके सयोगसे गुण माने जाते हो उन्हें पुरप इतना
 मान क्यों देते हैं ! ॥ २४ ॥ स्त्रियाँ तबक ही पुरपके मनका
 किया करती हैं जयतक वे उसे अपनेमें धासत नहीं जान
 लेतीं । फिर उसे कामदेवके फौसमें बैधा देखकर तो वे (वंशोंमें
 लगे) मांसके तुकड़ेको निगली हुई मधुबोंके समान मूक देती
 हैं ॥ २५ ॥ हे नारद ! स्त्रियोंमें यही एक बड़ा भारी दोष
 है कि वलम कुलमें उत्पन्न, सुन्दर रूपवाली तथा सीमागपती
 होकर भी वे मर्यादामें नहीं रहा करतीं ॥ २६ ॥ जो
 अपने मूठे शानसे ज्वालाके समान स्त्रीको सुन्दर समझकर
 पतंगके समान बसकी और दौड़ पड़ते हैं, उनमेंसे ऐसे कौन
 हैं जो मठ नहीं हो जाते ! ॥ २७ ॥ गुणोंके भयदार, पशुस्वी,

सधनं रतिद्वयम् । विहाय शीघ्रं वनिता व्रजन्ति नरा-
न्तरं शीलगुणादिहीनम् ॥ २८ ॥ चतुरः सृजत पूर्व-
मुपायास्तेन वेधसा । न सृष्टः पञ्चमः कोऽपि गृह्यन्ते
येन योषितः ॥ २९ ॥ जल्पन्ति सार्धमन्येन पश्यन्त्यन्यं
सधिभ्रमम् । हृदये चिन्तयन्त्यन्यं प्रियः को नाम
योषिताम् ॥ ३० ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन नामापि परि-
वर्जयेत् । स्त्रीणामिह हि सर्वासां य इच्छेत्सुखमा-
त्मनः ॥ ३१ ॥ ताडिता अपि दृष्टेन शस्त्रैरपि विव्र
सिद्धता । न वशं योषितो यान्ति न दानैर्न च संस्तवैः
॥ ३२ ॥ तावत्स्यात्पुत्रसन्नास्यस्तावदुद्युज्जने रतः ।
पुरुषो योषितां यावन्न शृणोति वचो रहः ॥ ३३ ॥
दर्शनादरते चित्तं स्पर्शान्द्रासते यत्नम् । सङ्गमाद्रसते
वीर्यं नारी प्रत्यक्षराक्षसी ॥ ३४ ॥ न कामभोगान्वहु-
लान्नालङ्कारार्थं सञ्चयान् । तथा हि बहु मन्यन्ते यथा
रत्या- परिग्रहम् ॥ ३५ ॥ न दानेन न मानेन नार्जवेन न

सेवया । न शस्त्रेण न शस्त्रेण सर्वथा विपमाः स्त्रियः
॥ ३६ ॥ न भयान्नाप्यनुकोशान्नार्थहेतोः कथञ्चन । न
ज्ञाति कुलसम्बन्धान्स्त्रियस्तित्थन्ति भर्तृषु ॥ ३७ ॥ नय-
नविकारैरन्यं वचनैरन्यं विचेष्टितैरन्यम् । रमयति
सुरतेनान्यं स्त्री बहुरूपा निजा कस्य ॥ ३८ ॥ न लज्जा
न विनीतत्वं न दान्तिर्यं न भोक्ता । प्रार्थनाभाष
एवैकः सतीत्ये कारुणं स्त्रियाः ॥ ३९ ॥ न विषेण न
शस्त्रेण नाग्निना न च मृत्युना । अप्रतीकारपाशुष्याः
स्त्रीभिरेव स्त्रियः कृताः ॥ ४० ॥ न स्त्रीणामप्रियः
कश्चिन्प्रियो वापि न विद्यते । गायस्त्वणमिचारण्ये प्रार्थ-
यन्ति नवं मयम् ॥ ४१ ॥ नातिप्रसङ्गः प्रमदासु कार्यो
नेच्छेद्बलं स्त्रीप विवर्धमानम् । अतिप्रसक्तैः पुरुषैर्य-
तस्ताः क्रोडन्ति काकैरिव लनपत्नैः ॥ ४२ ॥ नासां
कश्चिद्गम्योऽस्ति नासां च वयसि स्थितिः । विरूपरूप-
घन्तं वा पुमानित्येव भुञ्जते ॥ ४३ ॥ पङ्कवपि च देवर्षे ये

सुन्दर, आशाकारी, धनवान् तथा रतिकी कला जाननेवाले
पतिको छोड़कर भी स्त्रियाँ बिना गुण, शील आदिवाले दूसरे
पुरुषके पास चल देती हैं ॥ २८ ॥ पहले प्रश्नाने केवल चार
(साम, दाम, भेद, दृष्ट) ही उपायोंकी रचना की । किन्तु पेसा
उसने पंचियाँ कोई उपाय नहीं रचा जिससे ये स्त्रियाँ वशमें हो
सकें ॥ २९ ॥ किसी स्त्रियोंके साथ तो बातें करती हैं, किसीको
हाव-भावके साथ देखती हैं और मनमें किसी दूसरेको ही
सोचती रहती हैं । तब बसाहट्ट इनका प्यारा है कौन ! ॥ ३० ॥
जो मनुष्य अपनी भलाई चाहे उसे आदिप कि वह लाप
प्रयत्न करके भी उनका नामतक लेना छोड़ दे ॥ ३१ ॥ न तो
स्त्रियाँ बपड़ेसे पीटनेसे वशमें आतीं, न शस्त्रोंसे काट डालनेसे,
न दानसे और न स्तुतिसे ही ॥ ३२ ॥ पुरुष समीतक प्रसन्न
रह सकता है और समीतक वह यहाँपर प्रेम रख सकता है
जबतक एकान्तमें वही हुई स्त्रियोंकी बातें उसके कानमें नहीं
पड़तीं ॥ ३३ ॥ नारी तो प्रत्यक्ष राक्षसी ही है क्योंकि वह
देखने-मात्रसे मन हर लेती है, धु जाते ही चल और सम्भोग
करते ही वीर्य हर लेती है ॥ ३४ ॥ मन-चाहा पेशुर्ष और
बरसे गहनोंको भी ये उतना चपट्टा नहीं सम्भतीं जितना
रति-दानको सम्भतीं हैं ॥ ३५ ॥ स्त्रियाँ सभी प्रकारसे
कुटिल (विपम) होती हैं क्योंकि न तो वे दानसे वशमें
होतीं, न आदर देनेसे, न पराक्रमसे, न सेवासे, न शस्त्रसे
और न शस्त्रसे ही ॥ ३६ ॥ न तो स्त्रियाँ बरसे पतिके

भरोसे रहतीं, न दयासे, न धनके लालचसे और न जाति
तथा कुलके सम्बन्धसे ही ॥ ३७ ॥ जो किसीको आँखें
मटकाकर, किसीको बोलोसे, किसीको हाव-भावोंसे और किसी
दूसरेको रतिक्रीड़ासे प्रसन्न रखती है वह अनेक रूपवाली
एत्री भला जिसकी सगी ही सकती है ॥ ३८ ॥ स्त्रियाँ न
तो लालके कारण सती रह जातीं, न मद्यपके, न चतुरता
(अनुबलता) के और न दरपोक होनेके कारण ही । सच तो
यह है कि रति करनेके लिये कोई कहनेवाला पुरुष ही
उन्हें नहीं मिलता इसीसे वे सती रह जाती हैं ॥ ३९ ॥ न तो
स्त्रियोंकी कठोरता विपसे दूर हो सकती, न शस्त्रसे और न
आदिसे ही, यहाँतक कि गीतके बरसे भी उनकी दुष्टता नहीं
मूलती । अतः, जान पड़ता है कि कठोर स्त्रियों ही इन्हें
कठोर बनाया है ॥ ४० ॥ न तो स्त्रियोंका कोई प्यारा
ही है न शत्रु ही । वे तो धनमें गौश्रींकी भाँति सदा तया-
नया ही पुरुष चाहती रहती हैं ॥ ४१ ॥ न तो स्त्रियोंके
साथ आत्यधिक प्रसङ्ग ही करना चाहिये और न यही सोचना
चाहिये कि स्त्रियोंके साथवर्से बल पड़ेगा क्योंकि आत्यधिक
आसक्त पुरुषोंके साथ वे परकटे कौश्रींके समान खेल करती
हैं ॥ ४२ ॥ इन स्त्रियोंकी चापुका कोई भरोसा नहीं है ।
पेसा कोई पुरुष भी नहीं है जिसके साथ वे सम्भोग न
कर सकें । वे तो पुरुष-मात्रका उपभोग करना जानती हैं,
चाहे वह सुन्दर हो या असुन्दर ॥ ४३ ॥ हे देवर्षि (नारद) !

चान्ये कुरिषता जनाः । स्त्रीणामगम्यो लोकेऽस्मिन्नास्ति
कश्चिन्महामुने ॥ ४४ ॥ भर्ता यद्यपि नीतिशास्त्रनिपुणो
विद्वान्कुलीनो युवा दाता कर्णसमः प्रसिद्धविभयः
शृङ्गारदीक्षागुरुः । स्वप्राणाधिकरूपिता स्वयनिता
केहेन संलालिता तं कान्तं प्रविहाय सैव युवती जारं
पतिं वाञ्छति ॥ ४५ ॥ भोजनाच्छादने दद्यादनुकाले
च सहमम् । भूपणाद्यं च नारीणां न तामिमन्त्रयेत्सुधीः
॥ ४६ ॥ माद्यति प्रमदां दृष्ट्वा सुखं पीत्वा न माद्यति ।
यस्माद्दृष्टिमदा नारी तस्मात्तां परिचर्जेयत् ॥ ४७ ॥
मुक्ताहारलता रत्नमणिमया हैमास्तुलाकोटयो रागः
कुङ्कुमसम्भवः सुरभयः पोष्यो विचित्राः राज । वास
श्चिन्नुकूलमदपमतिभिर्नार्यामहो कल्पितं चाह्यान्तः
परिपश्यतां तु निरयो नारीति नाज्जा कृतः ॥ ४८ ॥
यत्र स्त्री यत्र कितवो बालो यत्र प्रशासिता । राजन्नि-
र्मूलतां याति तद्गृहं भार्गवोऽग्रधीत् ॥ ४९ ॥ यदन्त-
स्तत्र जिह्वायां यजिह्वायां न तद्बहिः । यद्बहिस्तत्र

दुर्चन्ति विचित्रचरिताः स्त्रियः ॥ ५० ॥ यदि स्या-
च्छीतलो बहिश्चन्द्रमा वर्णान्मक' । सुभ्याः सागरः
स्त्रीणां तरसतीत्यं प्रजायते ॥ ५१ ॥ यदि स्यान्पायकः
शीतः प्रोष्णो वा शशलाञ्छनः । स्त्रीणां तत्रा सतीत्यं
स्याद्यदि स्याद्दर्जनो हितः ॥ ५२ ॥ यस्य जिह्वामहश्चं
स्याज्जित्साग्रशतं च यः । अनन्यकर्मा स्त्रीदोगान्-
सोऽप्यनुकन्या लयं व्रजेत् ॥ ५३ ॥ यस्य स्त्री तस्य
भोगेच्छा निःस्त्रीस्य क भोगभूः । स्त्रियं त्यक्त्वा
जगत्येकं जगत्येकत्रा सखी भजेत् ॥ ५४ ॥ या भार्या
दुष्टचरिता सततं क्लृप्तप्रिया । भार्यारूपेण सा प्रेया
विद्वन्धैर्दाहणा जरा ॥ ५५ ॥ या हि शय्यदृष्टमना
रक्ष्यन्ते दयिताः स्त्रिय । अपि ताः सम्प्रसजन्ते
कुञ्जान्वज्रडवामनैः ॥ ५६ ॥ यो मोहान्मन्यते मूढो
रक्ष्ये मम कामिनी । स तस्या वशगो नित्यं भवेत्स्त्री-
दाशकुन्तवत् ॥ ५७ ॥ यौघने वर्तमानानां मृष्टाभरण
वाससाम् । नारीणां स्वैरवृत्तानां सृष्टयन्ति कुलस्त्रियः

रे महासुने । संसारमें जितने भी लँगड़े लूढ़े या नीच
पुरप ई उनमेंसे एक भी ऐसा नहीं है जिसके साथ ये
सम्भोग न कर लें ॥ ४४ ॥ पति भले ही नीतिशास्त्रमें बन्दू,
विद्वान्, उत्तम कुलवाला, युवा, कर्णके समान दानी, प्रसिद्ध
पेरवर्षवाला, शृंगारकी कलाशौका गुरु, अपनी पत्नीको
मार्योसे बद्धकर माननेवाला, तथा स्नेहपूर्वक उसका पालन
पोषण करनेवाला हो किन्तु ऐसे प्रियतमको भी छोड़कर
स्त्री जार पतिको चाहती है- ॥ ४५ ॥ बुद्धिमान् मनुष्योंको
चाहिए कि वे स्त्रियोंको भोजन, वस्त्र, श्रद्ध कालमें समागम
और गहने आदि भले ही दें किन्तु उनसे कभी सम्मति न लें
॥ ४६ ॥ स्त्रीको देखकर ही पुरप मतवाला हो जाता है और
मदिराको पीकर भी मतवाला नहीं होता । अतः चित्तवन्-
रूपी मदिरावाली स्त्रीको तो छोड़ ही देना चाहिए ॥ ४७ ॥
मूर्ख मनुष्य भले ही नारियोंके लिये मोतीके हार, सोनेके
मणिके बन्धे बजते हुए विद्युप, केसरका आहाराग, फूलोंकी
सुन्दर, सुगन्धित मालाएँ और रङ्ग बिरङ्गे रेशमी बस्त्र
लुटाया करे किन्तु बाहर-भीतर चारों ओर दृष्टि दौढानेवाले
भले आदमी तो उन्हें 'नारी' नामका नरक ही समझते हैं
॥ ४८ ॥ हे राजन् ! शुकचार्यने कहा है कि जिस धर्ममें
बालक (मूर्ख), स्त्री और धूर्त कदा भी धर्मा होते हैं वह
निर्मूल हो जाता है ॥ ४९ ॥ जो मनमें है वह जीमपर

नहीं, जो जीमपर है वह कहीं नहीं और जो कहीं है वह
कर्ता नहीं । सचमुच स्त्रियाँ बड़े विचित्र स्वभावकी होती
हैं ॥ ५० ॥ यदि आग टपटी हो जाय, चन्द्रमा जड़ने लगे
और समुद्र मीठे बलवाला हो जाय तब स्त्रियाँ भी सती
हो सकती हैं, अर्थात् न कभी यह सब होगा, न कभी
स्त्रियाँ सती होंगी ॥ ५१ ॥ यदि अग्नि शीतल, चन्द्रमा
गरम और दुर्जन हितकारी हो जाय तो स्त्रियाँ भी सती
हो सकती हैं ॥ ५२ ॥ यदि किसीकी एक सहस्र जीमें हों,
सौ वर्षसे भी अधिक धागु हो और सदा सब काम छोड़कर
वह स्त्रियोंके केवल दोष ही दोष गिनता रहे तो भी वह
बिना सारे दोष गिने ही मर जायगा ॥ ५३ ॥ जिसके पास
स्त्री है, उसे भोगकी इच्छा है, जिसके पास स्त्री नहीं है उसे
भोगकर इच्छा होगी ही कहाँसे ! स्त्रीको छोड़ दिया तो सारा
संसार छूट गया और संसार छूट गया तो मनुष्य सुखी हो
गया ॥ ५४ ॥ पण्डितोंको चाहिए कि वे दुष्ट चरित्रवाली तथा
सदा ऋग्दा-द्वेषा चाहनेवाली पत्नीको स्त्री रूपमें भङ्गकर
बुदाया समझें ॥ ५५ ॥ पित स्त्रियोंका सदा बहुत मान
किया जाता है तथा प्यारी समझकर नितकी रक्षा की जाती है
वे भी लुचदे, अन्धे, मूर्ख और बौनासे जा फँसती हैं
॥ ५६ ॥ जो मनुष्य मोहके कारण यह मानता है कि यह स्त्री
मुझसे प्रेम करती है वह परकटे खेजके पत्तीकी भाँति सदाके

॥ ५८ ॥ रक्तोऽभिजायते भोग्यो नारीणां श्राटको यथा । घृण्यते यो दशालम्बी नितम्बे विनिवेशितः ॥ ५९ ॥ रूक्षायां स्नेहसम्भारं कठोरायां सुमार्दवम् । नीरसायां रसं बालो बालिकायां विकल्पयेत् ॥ ६० ॥ श्लोकानामपि दातारं कर्तारं मानसात्मवयोः । रक्षितारं न मृष्यन्ति भर्तारं परमस्त्रियः ॥ ६१ ॥ विधायाली-कविश्रम्भमज्ञेयं त्यक्तसौहृदाः । नवं नवममीप्सन्त्यः पुंश्चल्यः स्वैरधुक्तयः ॥ ६२ ॥ शम्बरस्य च या माया या माया नमुचेरपि । बलेः कुम्भीनसेश्चैव सर्वास्ता योपितो विदुः ॥ ६३ ॥ शास्त्रज्ञोऽपि प्रकटविन-योऽप्यात्मबोधेऽपि गाढं संसारेऽस्मिन्भवति विरलो भाजनं सद्गतीनाम् । येनैतस्मिन्निरयनगरद्वारमुद्घाट-यन्ती वामाक्षीणां भवति कुटिला धूलता कुञ्चि-क्षेप ॥ ६४ ॥ शृणु हृदयं रहस्यं यत्प्रशस्तं मुनीनां न खलु न खलु योपित्सन्निधिः संविधेयः । हरति हि हरिणाक्षी क्षिप्रमस्ति क्षुरमै पण्डितशमस्तनुं चित्तम-

प्युत्तमानाम् ॥ ६५ ॥ सङ्गतानि मृगाक्षीणां तडिद्विल सितान्यपि । क्षणद्वयं न तिष्ठन्ति घनारब्धान्यपि स्थयम् ॥ ६६ ॥ सम्मोहयन्ति मद्यन्ति विद्वन्मयन्ति निर्भर्त्सयन्ति रमयन्ति विपादयन्ति । एताः प्रविश्य सद्यं हृदयं नराणां किं नाम वामनयना न समाचर-न्ति ॥ ६७ ॥ समयज्ञानर्धवतः प्रतिरूपान्वशे स्थितान् । पतीनां तटमासाद्य नालं नार्यं प्रतीक्षितुम् ॥ ६८ ॥ समुद्र-वीचीव चलस्वभावा सन्ध्याभ्रलेखेव मुहूर्तरागाः । स्त्रियो ह्यतार्याः पुरुषं निरर्थं निष्पीडितालककवस्य जन्ति ॥ ६९ ॥ सुमुखेन वदन्ति बलगुना प्रहरन्त्येव सितेन चेतसा । मधु तिष्ठति वाचि योपितां हृदये हालाहलं मद्यक्षिपम् ॥ ७० ॥ सुरुषं पुरुषं हृष्टा भ्रातरं यदि वा सुतम् । योनिः क्लिद्यति नारीणामामपात्र मिवाभ्रसा ॥ ७१ ॥ स्त्रीणां द्विगुण आहारो लज्जा चापि चतुर्गुणा । साहसं पद्मगुणं चैव कामश्चाष्टगुणः स्मृतः ॥ ७२ ॥ स्त्रीणामशिक्षितपटुत्वममानुषीणां

लिये उसके वशमें हो जाता है ॥ ५७ ॥ स्वतन्त्र नवेलियोंकी चमकीले पहने पहने देखकर कुलीन स्त्रियोंके मनमें भी वैसी ही चाह जगने लगती है ॥ ५८ ॥ नितम्बोंपर पहने हुए (बैठाने हुए) दशालम्बी वस्त्रकी भौंति आसक्त पुरुषको भी वे उपभोग करके (फट जानेपर) छोड़ देती हैं ॥ ५९ ॥ मूर्ख मनुष्य हली, कठोर तथा नीरस नवेलीमें श्रयन्त रहस्य, कामलता और रसकी कल्पना करते हैं ॥ ६० ॥ ऊपरके लोकोंमें गति देनेवाले, रुठने और प्रसन्न होनेवाले तथा अपने रचक श्रेष्ठ प्रियतमको भी स्त्रियों कुछ नहीं समझती ॥ ६१ ॥ मूर्खोंकी भूटे विश्वासमें डालकर, उनसे साथ प्रेम न करनेवाली स्वतन्त्र व्यभिचारिणी स्त्रियाँ सदा नया-नया पुरुष ही चाहती रहती हैं ॥ ६२ ॥ शम्बर, नमुचि, बलि और कुम्भीनस जो माया जानते थे वे सब मायाएँ वे स्त्रियों जानती हैं ॥ ६३ ॥ नरकरूपी नगरका द्वार खोलनेके लिये तिरछी चितवनवाली नवेलियोंकी बाँकी भीड़ चाबी बनी हुई है ही इसीलिये बड़े-बड़े शास्त्रोंको जाननेवाले, नश्रता दिखानेवाले और आत्मज्ञानमें क्षीन मनुष्योंमिले कोई विरला ही उत्तम कति पाता है ॥ ६४ ॥ हे हृदय ! मुनियोंकी भी भलाई करनेवाली एक रहस्यवाली बात सुनो—स्त्रियोंका साथ कभी-कभी नहीं करना चाहिए क्योंकि शान्तिरूपी कवचको अपने चितवनरूपी शष्पोंसे बेधकर महात्माओंका मन भी मृगयनवी शीघ्र ही

खींच लेती है ॥ ६५ ॥ कसकर आज्ञान करके नवेलियोंसे किया हुआ सम्भोग और घने उमड़े हुए बादलोंकी बिजलीकी तड़प, वे दोनों दो क्षण भी नहीं उठरती ॥ ६६ ॥ वे बाँके नयनोंवाली स्त्रियाँ पुरुषोंके दयालु हृदयमें घुसकर उन्हीं मोहित कर लेती हैं, मदमें चूर कर देती हैं, फटकारती हैं, उनसे सम्भोग करती हैं और ठुकी कर देती हैं । क्या-क्या वे नहीं कर डालती ? ॥ ६७ ॥ पतियोंका तट पाकर स्त्रियाँ समय जाननेवाले, घरमें रहनेवाले तथा धनार्थके रूप जारोंकी प्रतीक्षा नहीं कर सकती ॥ ६८ ॥ समुद्रकी लहरोंके समान चञ्चल स्वभाववाली तथा सौँकके आकाशकी लहरोंके समान दो घडी प्रसन्न रहनेवाली स्त्रियाँ काम निकालकर निर्धन पुरुषोंको निचोड़े हुए महावरकी भौंति छोड़ बैठती हैं ॥ ६९ ॥ सुन्दर मुखसे तो वे प्यारी बोली बोलती हैं और स्वच्छ हृदयसे मानो प्रहार ही करती हैं । जान पड़ता है इनके मुँहमें मधु तथा हृदयमें भयङ्कर हवाइल विष भरा रहता है ॥ ७० ॥ अपने भाई या पुत्रको भी सुन्दर पुरुषके रूपमें देखकर स्त्रियोंकी योनि वैसे ही गीली हो जाती है जैसे पानीसे भरा कषा घटा ॥ ७१ ॥ स्त्रियोंमें पुरुषोंसे दुगुना भोजन, चौगुनी लज, छहगुना साहस और छठगुना काम होता है ॥ ७२ ॥ स्त्रियोंकी स्वाभाविक चतुरता पशु पक्षियोंमें भी दिखाई देती है, फिर जो ज्ञानवान् है उनका तो पढ़ना

संदृश्यते किमुत याः परिवोचयत्यः । प्रागन्तरिचगम-
नात्स्यमपत्यजातमन्यद्विजैः परभृताः किल पोपयन्ति
॥ ७३ ॥ स्त्रीषु न रागः कार्यो रक्तं पुरुषं स्त्रियः परि-
भवन्ति । रक्तं हि रन्तव्या विरक्तभावा तु द्वातथ्या
॥ ७४ ॥ स्त्रियस्तु यः कामयते सन्निकर्तुं च गच्छति ।
ईपत्यकुरुते सेषां तं तमिच्छन्ति योषितः ॥ ७५ ॥ स्त्रियो
हि नाम शल्येता निसर्गादेव परिडताः । पुरुषाणां तु
पारिडत्यं शास्त्रेणोपोपदिश्यते ॥ ७६ ॥ स्त्रियो हि मूलं
निघनस्य पुंसः स्त्रियो हि मूलं व्यसनस्य पुंसः ।
स्त्रियो हि मूलं नरकस्य पुंसः स्त्रियो हि मूलं कलहस्य
पुंसः ॥ ७७ ॥ स्त्रियो ह्यकरुणाः क्रूर दुर्मर्षाः प्रिय-
साहसाः । घ्नन्त्यवपायैऽपि विश्रब्धं पतिं श्रातरम्प्युत
॥ ७८ ॥ स्थानं नास्ति क्षणो नास्ति नास्ति मार्षयिता
नरः । तेन नारद नारीणां सतीत्यमुपजायते ॥ ७९ ॥
स्वातन्त्र्यं पिहमन्दिरे च वसतिर्थांश्रोत्सवे सन्नति-
गौष्ठीपूरुपसन्निधाननियमो वासो विदेशे तथा । संसर्गः

सद्व पुंश्चलीभिरसकृच्चर्निजायाः क्षतिः पन्थुर्वाचंक्र-
मीणिसतं प्रयसनं नाशस्य हेतुः स्त्रियः ॥ ८० ॥ हसनं
प्रहसन्येता रुदन्तं प्रददन्त्यपि । अमियं प्रिययाकथैश्च
गृह्णन्ति कालयोगतः ॥ ८१ ॥ दासस्तृकलिकामर्दाप-
नपट्टहस्तांघ्रिनेत्राननं तन्वद्गथा विपजानमेव भुजगो
वेणी च रोमावलिः । किं च धौफनमुन्नतस्तननरः
कामं मनस्तामिमां सर्वां कारविषोप्रमूर्तिमवलां प्राययापि
यज्जीयति ॥ ८२ ॥ हृदयं हरन्ति नार्यो मुनेरपि ध्रु-
टाक्षयिज्ञेपैः । दामूलनामिदं प्रदर्शयन्त्या महाचपलाः
॥ ८३ ॥

असती-चरित्रम् : अनार्यप्रधानामिदं जनयधूनां हि
मनसो मद्वाशुल्यं कर्णे तय नयकजन्मृक्तिलयः । धम-
न्मिच्छाहेतोरघिनगरि युद्धोऽसि न मया त्ययेनायक्षेपः
पथिक न विधेयः पुनरपि ॥ १ ॥ अस्य भ्यश्रु यदि
त्यया हतशुकः संवर्धनोपस्तदा लीहं पञ्जरमस्य दुर्मय-
वतो मादान्तरं कारय । अयेनं वदतीमिच्छुकुहरे

ही नया है । दूसरे देशोंको उद जानेसे पहले ही कोयजियाँ
चक्रना देकर दूसरे परिचोसे अपने बच्चोंका पालन-पोषण करा
लेती है ॥ ७३ ॥ स्त्रियोंके काममें कमी नहीं पड़ना चाहिए !
क्योंकि जो वनपर रीक्या है उसे वे बहुत नीचा दिखाती हैं ।
शवः, जो स्त्री स्वयं अपने ऊपर रीक्यी हो उसीसे प्रेम करना
चाहिए, शौरांसे वातकनहीं करनी चाहिए ॥ ७४ ॥ स्त्रियोंका ऊड़
प्रेमा स्वभाव होता है कि जो उन्हें चाहे उनके पास आता-
खाता रहे और उनकी शोधी भी सेवा करता रहे, उसे ही वे
चाहने लगती हैं ॥ ७५ ॥ पुरुष तो कहीं शास्त्र पढ़कर पवित्र
बन पाते हैं पर वे स्त्रियाँ ता पवित्र होकर जन्म ही लेती हैं
॥ ७६ ॥ पुरुषोंकी मृत्यु, दुःख, नरक और बर्दाह-मार्गसे सबका
कारण केवल स्त्रियाँ ही हैं ॥ ७७ ॥ स्त्रियाँ इतनी मिठुर, दुष्ट,
असहनशील तथा साहसी होती हैं कि वे अपने भाँड़ेसे कामके
जिये भी अपने बिकारों पति या माँहकके प्राय ले सकती
हैं ॥ ७८ ॥ हे नारद ! स्त्रियाँ जो सती बनी रह जाती हैं उसका
सौया काया यही है कि न तो उन्हें व्यक्तिचारके जिये कोई
सुना स्थान मित्र पाता, न कोई पुरुष ही संभोगके जिये कहने-
वाला मिल पाता है ॥ ७९ ॥ जो स्त्री अपने पिताके पर स्वतंत्र
पुसती हो, बहुतसी यात्राओं और उत्सवोंमें जाती-जाती हो,
सदा पुरुषोंके साथ उठती-बैठती हो, परदेसमें घूमा करती हो,
व्यभिचारिणी स्त्रियोंके साथ आती-जाती हो, जिसे देखे उसी

पर रीक्य जाती हो, जिसका पति युवा हो या परदेसमें रहता
हो, तो समझ लीजिए कि उसने कुछ हुबोया ॥ ८० ॥ वे स्त्रियाँ
हँसनेवालेके सामने हँसकर, रोनेवालेके सामने तफाक रोकर
और जैसा अवसर देला उसके अनुसार मीठी या कड़वी बात
कहकर पुरुषको सुझोमें कर ही लेती हैं ॥ ८१ ॥ नयेबीकी हँसीमें
काम जगानेका जादू है, उसके हाथ, पाँव, नेत्र और सुँह सब
पुरुषे एक बदकर विरेडे हैं, उसकी बोटी और रोमावलिवाँ
नागिन हैं और उसके ऊँचे-ऊँचे मोटे स्तन देखके समान
कठोर हैं पर अचरन तो यह है कि ऐसी मर्चकर विपकी मूर्ति-
वाजी स्त्रीको पाकर भी मेरा मन भव्नी-नॉति जिए जा रहा
है ॥ ८२ ॥ अस्तन्त बचनत्र नारियाँ अपने भी हैं और चितवन
चक्राकर तथा नामि और कौत्र दिखा-दिवाकर सुनिका भी
मन हर लेती हैं ॥ ८३ ॥

कुलटाके पत्रिका वर्णन : हे पात्री ! सुहारे कानर
टेंगे हुए जामुनके पत्ते बर्राकी खोटी बट्टाओंके मनमें बड़े
काँटेके समान लुभ रहे हैं । इस गाँवमें सीधे भाँगेके त्रिके
धूमते हुए तुमको मैं उठक भी नहीं पढ़वान पाँटूँगी । अतः हर
पेसा वेप कमी न बनाना ॥ १ ॥ हे पात्राओं ! यदि इस मित्र
सुगोंको पाठना ही है तो इस टुकड़े जिये एक टुकड़ा
सँकरा त्रिबदा बनवा लो । आत बेरदी माँहियेमें हे
हँदते जो वे मेरे धंग दिग्द गदू हृदकी तां करे

संज्ञीतमन्वित्यती दष्टा यत्र भुजङ्गमेत तदतिश्रेयः
 किमेभिः क्षैतेः ॥२॥ अग्न्या श्रेतेऽत्र वृद्धा परिणतवय-
 सामग्रणीरत्र तातो नियशेषागारकमथमथिथिलतनुः
 कुम्भदासी तथाऽत्र । अस्मिन् पापाऽहमेका कतिपय-
 दियसप्रोपितप्राणनाथा पाथ्यायेरथं तरुण्या कथितमव-
 सरव्याहृतिध्याजपूर्वम् ॥ ३ ॥ अयं रेधाकुञ्जः कुसुम-
 शरसेवा समुचितः समीरोऽयं धेलानवधिवदलेलापरि-
 मलः । इयं प्रावृष्टं घन्या नयजलद्विन्यासचतुरा पराघोर्न
 चेतः सपि किमपि कर्तुं नृगयते ॥४॥ अये को जानीते
 निजपुरुषसङ्गो नहि तथा यथा स्त्रीणां चेतः परपुरुष-
 सङ्गो रमयति । अपि स्वैरं भुक्ता दिवसमखिलं वासर-
 ङ्कता करस्पर्शादिन्दोर्मुकुलयति नेत्राणि नलिनी ॥५॥
 अये कोऽयं वृद्धो गृहपरिवृष्टः किं तव पिता न मे
 भर्ता किन्तु वृषपगतदृगन्वथ यधिरः । हुहुं आन्तोऽ-
 द्राहं शिशयिपुरिद्वैवापवरके क यामिन्यां यामि

स्वयिमि ननु निर्देशमशक्ते ॥ ६ ॥ आः पाकं न करोपि
 पापिनि कथं पापी त्वदीयः पिता रगडे जल्पसि किं
 तवैव जननी रगडा त्वदीया स्वसा । निर्गच्छ स्वरितं
 गृहाहदिरितो नेदं त्वदीयं गृहं हा हा नाथ ममाद्य
 देहि मरणं जारस्य भाग्योदयः ॥ ७ ॥ आकारेण शशी
 गिरा परभूतः पारावतश्चुम्बने हंसश्चङ्कमणे समं
 दयितया रत्यां प्रमत्तो गजः । इत्यं भर्तारं मे समस्त-
 युचतिश्लाघ्यैर्गुणैः सेविते क्षुण्णं नास्ति विधाहितः
 पतिरिति स्यान्नैव दोषो यदि ॥ ८ ॥ आयातासि
 विमुञ्च वेपथुभरं दृष्टासि नो केनचिच्छीलं चोलममुं
 विमुञ्च हरतु स्वेवं निशोथानिलः । इत्यन्तर्भयसन्नकण्ठ
 मसकृद्यामीति तदपं गता जल्पन्ती परिरभ्यते सुहृ-
 त्तिभिः स्वैरं नवस्वैरिणी ॥ ९ ॥ आरौपिता शिला-
 यामश्मेव त्वं भवेति मन्त्रेण । मशापि परिणयापदि
 जारमुखं धीदय हसितैव ॥ १० ॥ आस्तां धिबसनं

पर यही बहुत समझो कि वहाँ किसी साँपने मुझे बस नहीं
 लिया ॥ २ ॥ किसी बटोहीको कोई नवेजी मिलनेका स्थान
 समझते हुए कहती है—देखो ! यहाँ तो मेरी बुद्धियाँ मॉ पड़ी
 है, यहाँ अत्यन्त बड़े पिता सो रहे हैं और यहाँ सारे घरका
 काम-काज करके यही हुई दासी खी रही है, मेरे प्राणनाथ भी
 कुछ दिन हुए परदेस चले गए हैं । इस घरमें मैं अकेली एक
 पापिन बच रही हूँ ॥ ३ ॥ हे सखी ! कामदेवकी सेवाके लिये
 यह नर्मदाके तटकी भाँड़ी यहीं अटकती है । देखो ! तटपर तिली
 हुई नई हज्जायघोकी गन्धसे खड़ा पवन बह रहा है, नये नये
 बादलोंसे बिरि यह सुहावनी बरसात आ पहुँची है । अतः, मेरा मन
 भी अब हुए घर बालनेके लिये मचल रहा है ॥४॥ धरे ! कौन
 जानता है कि रिश्याके मनको अपने पतिका समानम डतना
 आनन्द नहीं देता जितना परपुरुषका । तभी तो दिनभर सूर्य-
 से जीभर उपभोग करा जेनेपर भी कमजिनी चन्द्रमाकी किरणें
 छू जाते ही चारों मुँदने खगी ॥ ५ ॥ किसी बटोहीने किसी
 नवेजीसे पूछा—‘धरे, यह घरका स्वामी घट्टा क्या तुम्हारा
 पिता है ?’ तो नवेजीने जैसे ही उत्तर दिया—‘नहीं, यह मेरा
 पति है, किन्तु इसकी चारों पूट गई हैं और यह बदरा भी
 है’ जैसे ही वह बटोही बोला—‘हूँस, मैं बक गया हूँ,
 सोना चासता हूँ, यहाँपर मन्दर-बौस भी नहीं है । अतः, अब
 एतमें बहाँ जाऊँगा, यहीं सोया जाता हूँ’ ॥६॥ पति-पत्नीमें
 रया हो रहा है—पति : घाह पापिन ! भगीरथ रसोई क्यों

नहीं बना रही है ? पत्नी : पापी तेरा बाप ? पति : रचही !
 क्या बक रही है ? पत्नी : रचही तेरी माँ, तेरी बहन ! पति :
 अभी इस घरसे बाहर निकल ! पत्नी : चल चल ! यह तेरा घर
 नहीं है । पति : हाय नाथ ! अब मुझे ग्युष्ट दे दो जिपु । अब जारका
 भाग्योदय हो गया है ॥७॥‘मेरा पति चन्द्रमा के समान सुन्दर
 है, कोयलके समान मीठा बोलता है वधुवरके समान चुम्बन
 लेता है, हंसके समान चलता है और मतवाले हाथीके समान
 समर्थ होकर रहित करना है । इस प्रकार नयेजियोंके बचड़े
 लगनेवाले किसी गुण उसमें है पर यदि वह विवाहित
 पति न होता तो उसकी बची-भुची कमी मी पूरी हो जाती ॥८॥
 ‘घा गई ! चन्द्रमा, सुस्ता जा ! किसीने देखा ता नहीं ? ये काले
 वस्त्र उतार दो जिससे आधी शतका ठंडा पवन लगे और पत्नीना
 सूख जाय ।’ इस प्रकार मियतमके बहनेपर मनकी घबराहटके
 कारण रँधे हुए बपटले बार-बार ‘जाती हूँ जाती हूँ’ कहती हुई
 पल्लंगपर जा छेदनेवाली व्यभिचारिणी नवेजीको पुपपागमा लोग
 जो भरकर गले खमाते हैं ॥ ९ ॥ विवाहके समय ‘घरना
 भय’ (तुम पति प्रेममें पत्तरके समान रिध होओ) अत्र
 पढ़कर जब एक व्यभिचारिणी पत्तरपर खड़ी की गई तब उस
 विवाहरूपी विपत्तिमें पड़ी हुई भी वह अपने घरका मुँद देखकर
 मुसकरा उठी ॥ १० ॥ जब उस प्रेमी नायकका चमिप्राय मीने
 जान लिया तब सखियोंपर विरवास करना हो गया, मैं तो
 उसकी और जानके मारे अपनी पितवन भी नहीं बचा सकती ।’

सखीषु विदिताभिप्रायसारे जने तत्राप्यर्पयितुं दृशं
सुरचिरां शक्नोमि न व्रीडया । लोकोऽप्येष परोपहास-
कुशलः सूक्ष्मेद्धित्तनोऽप्यलं मानः कं शूर्यं प्रजामि
दृश्ये जीर्णोऽनुराचानलः ॥११॥ इन्द्रध्वजं न निन्यते न
मधुरं दूतीवचः श्रूयते नोच्छ्वासा दृश्यं दहन्यशिशिरा
नोपैति कार्श्यं वपुः । स्वाधीनामनुकूलिकां स्वगृहिणी-
मालिङ्गय यत्सुप्यते तर्किं प्रेम गृहाश्रमप्रतमिदं कष्टं
समाचर्यते ॥१२॥ इह नगरे प्रतिरथ्यं भुजङ्गसम्वाध-
रचिरसञ्चारे । सुन्दरि मम मतमेतन्नकुलप्रतिपालनं
श्रेयः ॥१३॥ इह षट्पृष्ठे यज्ञः प्रतिवसति दिवापि
यत्र भयशङ्का । तस्मिन्नभिनयवध्या नीता वोतोदयाः
क्षणदाः ॥१४॥ एकान्ते वत नो गृहं शशिसुखोऽप्यन्या-
दृशो दृश्यते त्तिर्मं साधय यातु पुत्रि स दिने भुक्तवा-
न्यमावासाकम् । श्वश्रवा स्मभ्रमिता किलेति बहुशः
सम्प्रेत्यन्या वधुः पान्यं वीष्य वभ्रज सस्मितमुषो
सैवार्धसिद्धोदनम् ॥ १५ ॥ पते वारिकणाः किरन्ति

पुरुषान्वर्षन्ति नाम्मोधराः शैलाः शालसमुद्रमन्ति न
सुजन्त्येते पुनर्नायकान् । प्रैलोक्ये तरय फलानि सुयते
नैवारमन्ते जनान्घातः कातरमालपामि कुलदाहेतो-
स्तयया किं कृतम् ॥१६॥ एषैव योपितां धन्या शीलं च
लभते सुयम् । दिवा पतिप्रता भूयो नक्तं च कुलदा
यतः ॥ १७ ॥ एष्यति मा पुनर्यमिति नमने यद्मङ्गलं
मयाकारि । श्रधुना तदेव कारणमवस्थितं दग्धगेह
पतेः ॥१८॥ कार्येषूपि विलम्बनं परयुद्धे श्वश्रुन सन्म-
न्यते शङ्कामारचयन्ति यूनि भयनं प्राप्ते मिधो यातरः ।
वीधीनिर्गमनेऽपि तर्जयति च क्रुद्धा ननान्दा पुनः
कष्टं हन्त मृगोदृशां पतिगृहं प्रायेण कारागृहम् ॥१९॥
कार्यं सत्यपि जातु याति न वहिर्नाप्यन्यमालोचते
साध्वीरप्यनुकुर्वती गुरुजनं श्वश्रुं च श्रूयते । विप्रममं
कुर्वते च पत्युरधिकं प्राप्ते निशीथे पुननिद्राणे सरुले
जने शशिसुखी निर्याति रन्तुं चिट्टेः ॥ २० ॥
कुलपतनं जनगर्हो वन्धनमतिजीवितस्य सन्देहम् ।

जोग भी दूसरोंकी खिज्की बहानेमें बड़े चतुर हैं और जिपा
हुआ संकेत भी समझ लेते हैं । तो माँ ! अय मैं किसी शरण
जाऊँ, मेरे हृदयमें तो प्रेमकी अग्नि धधक रही है ॥ ११ ॥
बाहों बिछोहके सारे चन्द्रमाकी निंदा नहीं की जाती, दूतीकी
मीठी बोली बर्हों नहीं सुनी जाती, गरम सारों जी नहीं जलातीं,
देह दुबली नहीं होती और अपने वशमें रहनेवाली, आज्ञाकारी
छीकी गले लगाकर जोग सो जाते हैं, वह यया प्रेम है ? वह
तो गृहस्थाश्रमका प्रस है, जिसका जोग बड़े कष्टसे पाबन करते
हैं ॥१२॥ हे सुन्दरी ! नगरकी गलियोंमें दूबने जा रहे कि ठीक-
ठीक चख पाना कठिन है । घतः, मेरी समझमें तो अब कुज-
मर्वादा पाबनेमें कोई भलाई नहीं है । [हस नगरकी गलियोंमें
हवने सपें कि नेववा पाबनेमें ही भलाई दिखाई देती है ।]
॥१३॥ जिस बटवृषपर यच रहता है और जिसके पास दिनमें
भी जाते दर लगाता है उसीके नीचे उस नवेबाने न जाने
कितनी शैथिली रातें बिता जातीं ॥ १४ ॥ 'येरी ! हमारा घर
निराखेमें है और हम चाँदसे सुखदेवाले बटोहीके भी
रंग-रंग कुड़ अच्छे नहीं दिखाई देते, इसलिये ऊपर रसोई
बना ले जिससे यह पान-पीकर किसी दूसरे घरकी राह ले ।'
सासके बार-बार ऐसा कहनेपर घरबाई हुई बहूने घरोहीकी
और देवकर मुस्कराते हुए बही श्रधपके चावल उतार दिए
॥१५॥ ये मेघ पानीकी बूँदें तो बरसाते हैं किन्तु पुरवोंकी वर्षा

नहीं करते, ये पर्वत भी पास तो उगाते हैं, पुरा नहीं और
तीनों लोकोंके ये वृक्ष भी कुज ही खिजाते हैं, पुरा नहीं । घतः,
हे मन्ना ! मैं खिन्न होकर तुमसे पुरती हूँ कि कुजदाओंके लिये
तुमने क्या किया ? ॥ १६ ॥ खियोंमें यही एक धन्य स्त्री
गीज तथा सुप्र प्राती है, क्योंकि दिनमें यह पतिप्रता रहती है
और रातमें शानन्द लेती है ॥१७॥ इस मुँहसे घरके स्वामी-
के घरमें बाहर जाते समय जो मैंने चपराडुन किया था (रोई
थी) कि जिससे यह लोटकर न जाने पाये उसीके कारण मान
पदा है यह लोटकर घर आ गया है ॥१८॥ बर्हों किसी काम-
से दूसरेके घरमें विलम्ब हो गया तो साध उषल पड़े
कोई सुबक घरमें जाने लगे तो देवरात्री-जेठानीके कान
खड़े हो जायँ और ननद तो ऐसी कि मालीमें पैर धरा नहीं कि
दाटा नहीं । सचमुच, मृगनयनी नवेबानेके लिये पतिका घर
बया है कारागार है ॥१९॥ वह चन्द्रसुखी ऐसी बंट है कि काम
पढ़नेपर भी बाहर पैर नहीं धरती, किसीकी धोर भर फाल ताकती
नहीं, घरकी सती-साध्वी रित्रयो-वैश्वी दत्त बनाए रखती है,
घरके बड़े-पुर्तकी और सासकी सेवा करती है और ऐसे बटसे
सब काम करती है कि पतिका उषपर पक्षा विश्वास जमा रहे,
पर नहों श्रध्वीराव हुई और सब जोग सोए कि वह म्ठ जतोंके
रमण करनेके लिये घरसे निकल पड़ती है ॥२०॥ जो स्त्री दूसरे
पुरवमें पासक होती है वह स्त्री अपने कुजका नाश, लोट-

संलीनमन्वयत्यतो दृष्टा यन्न भुजङ्गमेन तदतिश्रेयः
 किमेभिः ज्ञैतः ॥२॥ अग्न्या श्रेतेऽत्र वृद्धा परिणतवय-
 सामग्रणोरत्र तातो निश्रेषापारकर्मश्रमशियिलतनुः
 कुम्भदासी तथाऽत्र । अस्मिन् पापाऽहमेका कतिपय-
 दिवसमोपितप्राणनाथा पान्थायेत्यं तरुण्या कथितमव-
 सरन्याहृतिव्याजपूर्वम् ॥ ३ ॥ अयं रेवाकुञ्जः कुसुम-
 शरसेवा समुचितः समीरोऽयं वेलानवविदलदेलापरि-
 मलः । इयं प्रावृद्धं धन्या नवजलदविन्यासचतुषा पराधीनं
 चेतः सखि किमपि कर्तुं मृगयते ॥४॥ अये को जानीते
 निजपुरुषसङ्गो नहि तथा यथा स्त्रियां चेतः परपुरुष-
 सङ्गो रमयति । अपि स्वैरं भुक्ता दिवसमखिलं वासर-
 कृता करस्पर्शादिन्दोसुकुलयति नेत्राणि नलिनी ॥५॥
 अये कोऽयं वृद्धो गृहपरिवृद्धः किं तव पिता न मे
 भर्ता किन्तु व्यपगतदगन्वष्य यधिरः । हुहुं ध्यान्तोऽ-
 द्धाहं शिशयिपुरिहैवाधवरके क्व यामिन्यां यामि

स्वपिमि ननु निर्देशमशके ॥ ६ ॥ आः पाकं न करोपि
 पापिनि कथं पापी स्वदीयः पिता रण्डे जल्पसि किं
 तवैव जननी रण्डा स्वदीया स्वसा । निर्गच्छ स्वरितं
 गृह्णाह्विरितो नेदं त्वदीयं गृहं हा हा नाथ ममाय
 देहि मरएं जारस्य भाग्योदयः ॥ ७ ॥ आकारेण शशी
 गिरा परभृतः पारावतप्रचुम्बने हंसश्चक्रमणे समं
 दयितया रत्यां प्रमत्तो गजः । इत्थं भर्तरि मे समस्त-
 युचतिप्रलाधैर्गुणैः सेविते द्रुणं नास्ति विवाहितः
 पतिरिति स्याद्यैव दोषो यदि ॥ ८ ॥ आयातासि
 विमुञ्च वेपथुमरं दृष्टासि नो केनचिचीलं चोलमसुं
 विमुञ्च हरतु स्वेदं निशोधानिलः । इत्यन्तर्भवसन्नकण्ठ
 मसकृद्यामीति तल्पं गता जल्पन्ती परिरभ्यते सुक-
 त्तिभिः स्वैरं नवस्वैरिणी ॥ ९ ॥ आरोगिता शिला-
 यामश्मेव रवं भवेति मन्त्रेण । मन्त्रापि परिणयापदि
 जारमुखं वीक्ष्य हसितैव ॥ १० ॥ आस्तां विध्वस्तं

पर यही बहुत समझो कि यहाँ किसी सॉपने मुझे हल नहीं
 लिया ॥ २ ॥ किसी बटोहीको कोई नवेजी मिलनेका स्थान
 समझते हुए कहती है—'देखो ! यहाँ तो मेरी बुढ़िया भ्रौं पड़ी
 है, यहाँ धरपन्त बूढ़े पिता सो रहे हैं और यहाँ सारे घरका
 काम-काज काके थकी हुई दासी सो रही है, मेरे प्राणनाथ भी
 कुछ दिन हुए परदेस चले गए हैं । इस घरमें मैं अकेली एक
 पापिन बच रही हूँ ॥ ३ ॥ हे सखी ! कामदेवकी सेवाके लिये
 यह नर्मदाके तटकी भाँड़ी बर्फी अचड़ी है । देखो ! तटपर विजी
 हुईं नईं इजायतकी गन्धसे छटा पवन बह रहा है, नये नये
 बादलोंसे विरी घट सुहावनी बरसात धा पहुँची है । अतः, मेरा मन
 भी अब कुछ कर डालनेके लिये मचल रहा है ॥४॥ धरे ! कौन
 जानता है कि शिष्योंके मनको अपने पतिका समागम उतना
 आनन्द नहीं देता जितना परपुरुषका । तभी तो दिनभर सूर्य-
 से जोभर उपभोग करा छेनेपर भी कमलिनी चन्द्रमाकी किरणों
 पृ जाते ही धौलें मुँदने लगती है ॥ ५ ॥ किसी बटोहीने किसी
 नवेजीसे पूछा—'धरे, यह घरका स्वामी उट्टा क्या इगहारा
 पिता है ?' तो नवेजीने जैसे ही उत्तर दिया—'नहाँ, यह मेरा
 पति है, किन्तु इसकी धौलें फूट गई हैं और यह बदरा भी
 है' वैसे ही वह बटोही बोला—'हूँऽऽ, मैं थक गया हूँ,
 सोना खाता हूँ, यहाँपर मन्थर-धीठ भी बर्फी है । अतः, अब
 रातमें बर्फी जाऊँगा, यही सोया जाता हूँ ॥६॥ पति-परनीमें
 दयता हो रहा है—पति : चाह पापिन ! भभीतक रसोई बयों

नहीं बना रही है ! परनी : पापी तेरा बाप ? पति : रण्डो !
 क्या बक रही है ? परनी : रण्डो तेरो माँ, तेरी बहन ! पति :
 धर्मो हस घरसे बाहर निकल ! परनी : चल चल ! यह तेरा घर
 नहीं है । पति : हाथ नाथ ! अब मुझे शुकु दे दोजिपु । अब जारका
 भाग्योदय हो गया है ॥७॥' मेरा पति चन्द्रमा के समान सुन्दर
 है, कोयलके समान मीठा बोलता है कन्वरके समान सुगन्ध
 होता है, हंसके समान चलता है और मतवाले हाथीके समान
 समर्थ होकर रति करना है । इस प्रकार नवेजियोंको अचछे
 लगनेवाले सभी गुण उसमें हैं पर धदि यह विवाहित
 पति न होता तो उसकी बची-सुची कभी भी पूरी होजाती ॥८॥
 'धा गई ! अचछा, सुस्ता लो ! किसीने देखा ता नहीं ? वे काले
 वस्त्र उतार दो जिससे आपकी रातका उदा पवन लगे और पसीना
 सूख जाय ।' इस प्रकार मियतमके यहनेपर मनकी घबराहटके
 कारण रँधे हुए दण्डते बार-बार 'जाती हूँ जाती हूँ' कश्ती हुई
 पल्लेपर जा छेठनेवाली व्यभिचारिणी नवेजीको पुत्रयारमा लोण
 जो भर्कर गले लगाते हैं ॥ ९ ॥ विवाहके समय 'धरमा
 भव' (तुम पति भ्रममें परधरके समाद स्थिर होओ) अं
 पढ़कर जब एक व्यभिचारिणी पथरपर खड़ी की गई तब उस
 विवाहरूपी विपत्तिमें पड़ी हुई भी यह अपने वारका मुँद देखकर
 सुसकता उठी ॥ १० ॥ जब उस भ्रमी नायकका प्रतिप्राय भ्रमे
 जान लिया तब सखियोंपर विस्वास करना तो क्या, मैं तो
 उसकी ओर जाजके भारे धपनी पितवन भी नहीं बचा सकती ।'

सखीषु विदिताभिप्रायसारे जने तत्राप्यर्पयितुं दृशं
सुखचिरां शम्भोमिन वीडया । लोकोऽप्येव परोगदास-
कुशलः सुध्मेङ्गित्तनोऽप्यलं मातः कं शरपं व्रजामि
हृदये जीर्णोऽपुरागानलः ॥११॥ इन्दुर्धन न निन्यते न
मधुरं हृतीवचः श्रूयते नोच्छ्वासा हृदयं दृढन्त्यशिशिरा
नोपैति कार्श्यं वधुः । स्वाधीनामनुकूलिकां स्वयुद्धिषी-
भालिङ्गय यरुप्यते तर्कि प्रेम गृहाधममनमिदं कष्टं
समाचर्यते ॥१२॥ इह नगरे प्रतिरथ्यं भुजङ्गसन्वाध-
रचिरसञ्चारे । सुन्दरि मम मत्समेतन्नकुलप्रतिपालनं
श्रेयः ॥ १३ ॥ इह चटचुष्टे यत्नः प्रतिवसति दिवापि
यत्र भयशुद्धा । तस्मिन्मनिमयवध्वा नीता वीतोदयाः
क्षयदाः ॥१४॥ एकांते यत नो गृहं शशिसुखोऽप्यन्त्या-
दृशो दृश्यते क्षिप्तं साधय यातु पुत्रि स दिने भुक्त्वा-
न्यामाघसकम् । श्वश्रवा सम्भ्रमिता किलेति वष्टुः
सम्प्रेत्यन्त्या वधूः पान्यं वीक्ष्य वमज्ज सस्मितसुषो
सैवार्धसिद्धादनम् ॥ १५ ॥ एते धारिकृणाः किरन्ति

पुरुषान्वर्षन्ति नाम्मोघराः शैलाः श्राद्धलमुत्तमन्ति न
युजन्त्येते पुनर्नायक्त्वा । शैतोभ्ये तरय फनानि सुयते
नैवारमन्ते जनान्घातः कातरमालपामि कुलशार्दो-
स्तयया किं कृतम् ॥१६॥ एषेय योपिनां घन्या शोरां च
लभते सुगम् । दिवा पतिप्रता भूयो नक्तं च कुलटा
यतः ॥ १७ ॥ एष्यति मा पुनरयमिनि गमने यदमङ्गां
मयात्तरि । श्रधुना तदेव कारयमवस्थिर्ना दग्धगंह
पतेः ॥१८॥ कार्यपापि वितम्बनं परयुद्धे श्वश्रून मम्म-
न्यते शृङ्गामारचयन्ति वृनि भयनं प्राप्ते मिथो यातरः ।
योधीनिर्गमनेऽपि तर्जयति च कुडा ननान्दा पुनः
कष्टं हन्त मृगोदृशां पतिगृह प्रायेण कारायुद्धम् ॥१९॥
कार्यं सत्यपि जातु याति न बहिर्नाप्यन्त्यामोन्ते
साध्वीरप्यनुकुर्यते गुरुजनं श्वश्रुं च युश्रुपते । विद्यम्भं
कुरुते च पत्युरधिकं प्राप्ते निशीथे पुननिद्रापे सरुले
जने शशिसुखी निर्याति रन्तुं विष्टैः ॥ २० ॥
कुलपतनं जनगद्दं वन्यनमतिर्जायितस्य सन्देहम् ।

लोग भी दूसरोंकी खिल्ली उड़ानेमें बड़े चतुर हैं और दिवा
हुआ संकेत भी समझ लेते हैं । तो माँ ! अब मैं किसी शरय
बादल, मेरे हृदयमें तो भ्रमकी अग्नि घबक रही है ॥ ११ ॥
वहाँ बिड़ोहके मारे चन्द्रमाही निद्रा नहीं की जाती, हृतीकी
भीठी बोझी कहीं नहीं सुनी जाती, गरम सौंते जी नहीं जलायी,
देह दुषब्धी नहीं होती और अपने घरमें रहनेवाली, आज्ञाकारी
कीको गले जगाकर लोग सो जाते हैं, वह क्या प्रेम है ? वह
तो गृहस्थाश्रमका प्रत है, जिसका लोग बड़े कष्टसे पावन करते
हैं ॥१२॥ हे सुन्दरी ! नगरकी गलियोंमें हतने जा रहें कि ठीक-
ठीक खव पाना कठिन है । अतः, मेरी सम्मन्में तो अब कुल-
मर्यादा पावनेमें कोई मरदाई नहीं है । [हस नगरकी गलियोंमें
इतने सर्प हैं कि नेत्रला पावनेमें ही नज्जाई दिखाई देती है ।]
॥१३॥ जिस वटवृक्षपर यत्र रहता है और जिसके पास दिनमें
भी जाते वर लगता है उसीके नीचे उस नवेक्षीने न जाने
कितनी धँसेरी रातें बिता बाळीं ॥ १४ ॥ 'येथी ! हमारा घर
निराश्रमे है और हम चाँदसे सुखदेवाके बघोहीके भी
रंग-रंग कुड़ खच्छे नहीं दिखाई देते, इसलिये ऋतपर रसोई
बना ले जिससे यह खा-पीकर किसी दूसरे घरकी राह ले ।'
सासके बार-बार ऐसा कहनेपर घरवाइं हुईं बहूने बघोहीकी
ओर देखकर मुस्कराते हुए वही यद्यपके चाख उतार दिप
॥१५॥ मे भेष पानीकी धँदें तो बरसाते हैं किन्तु पुरपोंकी वर्षा

नहीं करते, ये पर्वत भी घास तो उगाते हैं, उग्र नहीं कीर
तीनों लोकोके ये वृक्ष भी फूल ही खिजाते हैं, उग्र नहीं । अतः,
हे ब्रह्मा ! मैं विन होकर तुमने पृथ्वी हूँ कि इन्द्राओंके जिये
तुमने क्या किया ? ॥ १६ ॥ जियोंमें यशो एक घम्य स्त्री
शील तथा सुख पावी है, क्योंकि दिनमें यह पतिप्रता रहती है
और रातमें आनन्द लेती है ॥१७॥ इस मुँहजले घरके ग्वाभी-
के घरसे बाहर जाते समय जो मैंने शपथकृत किया था (रोई
थी) कि जिससे यह लौटकर न आने पावे उसीके कारण जान
पड़ता है यह लौटकर घर आ गया है ॥१८॥ कहीं किसी काम-
से दूसरेके घरमें बिलंब हो गया तो साज उधल पड़े
कोई सुबक घरमें आने जाने लगे तो देवरात्री-जेठानके काज
खदे हो जायँ और मनदू तो ऐसी कि गलीमें पैर धरा नहीं कि
बाटा नहीं । सचमुच, सृगनयनी नवेक्षियोंके जिये पतिका घर
गया है कारागार है ॥१९॥ वह चन्द्रमुखी ऐसी बंद है कि काम
पढ़नेपर भी बाहर पैर नहीं धरती, किसीकी ओर सर भ्रॉय ताकती
नहीं, घरकी सखी-साथी मिथी-सैवा पढ़ बनाए रखती है,
घरके बड़े-बूढ़ोंकी और सासकी सेवा करती है और ऐसे दहने
सब काम करती है कि पतिका उधपर पका दिखास जमा रहे,
पर जहाँ आधीरात हुई और सब लोग सोए कि वह ऋत नरांने
रमय करनेके जिये घरसे निकल पड़ती है ॥२०॥ जो स्त्री दूसरे
पुरुषमें आसक्त होती है वह स्त्री अपने कुबका माय, लोह-

अङ्गीकरोति सकलं वनिता परपुरुषसंस्का ॥ २१ ॥
 केलिः प्रदहति मज्जां शृङ्गारोऽस्थीनि चाटवः कटवः।
 वन्धव्याः परितोषो न स्यादनुभीष्टदम्पत्योः ॥ २२ ॥
 ग्रामतरुणं तरुण्या नवचञ्जलमञ्जरीसनाथकरम् ।
 पश्यन्त्या भवति मुहुर्नितरां मलिना मुखच्छाया ॥ २३ ॥
 गोष्ठेपु तिष्ठति पतिर्धरिषा नानान्वा नेत्रद्वयस्य च न
 पाटवमस्ति यातुः । इत्थं निश्चय तरुणी कुचकुम्भ-
 सीम्नि रोमाञ्चकञ्चुकमुदञ्चितमाततान ॥ २४ ॥ चेत्पौ-
 चेद्भिन्नेपि तिमिरस्तोमादपि प्रस्यसि । चेत्कुञ्जादपि
 दूयसे जनघटध्वानादपि लुम्बसि प्रायः पुत्रि हतास्मि
 हन्त भविता त्वत्तः कलङ्कः कुले ॥ २५ ॥ जन्मैव मास्तु
 यदि वा न नितम्बिनीषु तत्रापि चेद्दहह नैव कुलाङ्ग-
 नासु । ह्य धिन्विद्ये कुलवधूरय चेद्भ्रयेयं नैवास्तु च
 कचन मे मनसोऽनुबन्धः ॥ २६ ॥ ज्ञातं ज्ञातिजनैः
 प्रमृष्टमयशो दुरं गता धीरता त्यक्ता ह्रीः प्रतिपादि-

तोऽप्यविनयः साध्वीपदं प्रोज्झितम् । लुप्ता चोभय-
 लोकसाधुपदवी दत्तः कलङ्कः कुले भूयो दूति किमन्य-
 दस्ति यदसावद्यापि नागच्छति ॥ २७ ॥ ज्ञाता मैत्री
 सहजमधुरापातिभिलोचितान्तैः कर्त्वाकश्चिं प्रथित-
 मयशो वन्धुवर्गैरभाणि । सम्प्रयेधं तदपि न मनाञ्जु-
 श्रति प्राणनाथं को जानीते कुचलयदशः कीदृशः
 प्रेमयन्धः ॥ २८ ॥ ताम्बूलाकं दशनमसकृद्दर्शयन्तीह
 चेटी घोटीहेपा चिहृतचिरतं हेतुहीनं हसन्ती । स्थान-
 स्थानस्खलितपदविन्यासमाभासमाना यूनामप्रे
 चसति कुटिलं नर्तितोचैर्नितम्बम् ॥ २९ ॥ तिमिरेऽपि
 दूरदृश्या कठिनाश्लेषे च रहसि मुखरा च । दन्तमय-
 चलयराजो गृहपतिशिरसा सह स्फुटन्तु ॥ ३० ॥ दिवसे
 घटिकास्त्रिशशिश्रिद्धटिकाः परं रजनी । लजं नगर-
 युवानस्तात विधातः किमाचरितम् ॥ ३१ ॥ दुर्दिवसे
 घनतिमिरे दुःसञ्चारान्तु नगरवीथीषु । पत्युर्विदेश-
 गमने परमसुखं जघनचपलायाः ॥ ३२ ॥ दम्भङ्गभङ्ग-

निदा, बंधन यहाँतक कि मृत्युका भी भय नहीं करती ॥ २१ ॥
 सचरित्र पति परनीसे ब्यभिचारिणीको कोई सन्तोष नहीं होता,
 उनकी क्रीडासे उसकी मज्जा और शृंगारसे हड्डियाँ जलने लगती
 हैं तथा उनकी मीठी बोली भी उसे बड़ी कड़वी लगती है
 ॥ २२ ॥ नहीं बँतकी मजरी हाथमें लेकर आप हुए गाँवके छँलेको
 देखते ही नवेलीके सुलकी कानि मजिन हो गई । (क्योंकि
 यह संकेत की हुई बँतकी आँधीसे होकर लौट आया और
 यह वहाँ नहीं पहुँच पाई) ॥ २३ ॥ जैसे ही नवेलीने यह सुना
 कि 'इसका पति गोशालामें डटा रहता है, ननद घरी है
 और जेठानी दोनों आँलोंने खँची है, वैसे ही उसके रतनोंपर
 प्रसन्नतासे रोमांच हो आया ॥ २४ ॥ हे पुत्री ! यदि तुनगरके
 छँलेपर शंका करेगी, चन्द्रमाकी किरणोंसे लजावेगी, चने
 की छँधरे कुजसे भी बरती फिरेगी, मनुष्य मात्रके शब्दसे
 धरावेगी तब तो तू मुझे भी चौपट कर दालेगी और इस डुलकी
 भी धरसकित कर दालेगी ॥ २५ ॥ एक तो मेरा धन्म ही ही
 नहीं, यदि हो भी तो रिश्रयोंमें न हो, यदि रिश्रयोंमें हो ही
 जाय तो मैंके कुलकी रिश्रयोंमें तो कभी न हो । किन्तु हे
 प्रदा ! यदि तेरे किसी दोपसे कुलवधुओंमें मेरा जन्म हो ही
 जाय तो ऐसा करना कि किसी एक पुरपर मेरा मन न
 टिकने पावे ॥ २६ ॥ हे दूती ! सब जातिवाले जान गप, चारों ओर
 बात फैल गई, धीरज जाता रहा, लाज भी छूट गई, टिटाई भी

की गई, पतिप्रता कहलाना छोड़ दिया, लोक-परलोकका संगल-
 भाग्य भी लुप्त हो गया, कुलमें भी कलंक लगाया, फिर अब
 रह क्या गया जिससे वह श्रमोक्त नहीं आ रहा ॥ २७ ॥ रसीली
 चितवनोंसे जोड़ी हुई प्रियतमकी मिश्रता लोगोंने जान ली,
 कानोंकान कौला हुआ अपयश भी भाई-बन्धु कह लुके, ऐसी
 दृशामें भी जब वह अपने प्रियतमको नहीं छोड़ना चाहती, तो
 कौन जाने उस कमलवपनीका प्रेम-बन्धन कैसा है ! ॥ २८ ॥
 वह चेटी पानसे रचाप हुए अपने दाँत चुबकोंको बार-बार
 दिखाती है, बनावटी स्वरमें बिना कारण ऐसे हँस रही है
 जैसे घोड़ी दिनदिनाती है और उनके सामने पगपपर लड़-
 खदाती हुई अपने नितम्ब आड़े-तिरछे उड़ाए-उड़ाकर
 बर्ष ही चमकी जा रही है ॥ २९ ॥ छँधरेमें भी दूरसे दिखाई
 पड़नेवाली और पृकान्तमें कसकर आलंगन करानेपर वन
 उठनेवाली ये हाथीदुँवकी चूड़ियाँ घरके रावानी (पति) के तिर-
 के स्राप ही फूट जायँ ॥ ३० ॥ तीस ही यदिवर्ष दिनमें होती है
 और तीस ही रातमें होती है पर नगरमें युवक ईं जाछों ! बापरे
 बाप ! हे प्रदा ! यह तुने क्या कर दाता ! ॥ ३१ ॥ ध्यनिचारिणी
 छियाँकी तभी परम मुख होता है जब पादलोंकी धटाएँ उमड़ी
 हों, घना छँधरा हो, नगरकी गलियाँ ऐसी सँकरी हों जिनमें
 कोई सरलतासे चल न सके और पतिदेव परदेस चले गप हों
 ॥ ३२ ॥ हे बनावटी मिथुक ! अपने नयनोंकी बाँकी सितवनों

मशतैरसतीरहस्यमन्वेपयन्कपटमिलुक्त लक्षितोऽस्ति । स्वस्य प्रभुर्न च भवामि ततः क्षमस्व मिक्षोपद्रोक्तन-
निपादयमञ्जलिरस्ते ॥ ३३ ॥ दृशा किञ्चित्किञ्चित्त्रिलि-
तमुज्ज्वलाविलसितैः कराघातैः किञ्चिद्वक्षविलसितैः
किञ्चिदधिष्णुम् । स्पृशन्त्यः सम्राधे गुरुभिरनभिप्रे-
क्षितपथे यथेष्टं चोष्टन्ते स्फुटकुचतटाः पश्य कुलटाः
॥ ३४ ॥ देहे दुर्ललितस्य देवरशिशोः स्फोटवृषो
दादणो यातस्तेन वनस्पतित्वचमुपाहर्तुं मया गम्यते ।
दृष्यन्तु श्वसितानि धर्मसलिलैः पत्राणि लुप्यन्तु वा
षट्को वा विलिखन्तु हन्त नघरैः बुद्धाः कपियोग्यः
॥ ३५ ॥ द्वारि स्तम्भचलज्ञा प्रियसखि हृष्टि पथि
क्षिपसि । प्रहृष्टोपि भाग्यभाजि प्रेषसि दूतीमिय
भ्रमरीम् ॥ ३६ ॥ नाभ्युज्जैनं कुसुमैरुपभेयं स्वैरिणी-
नयनपद्मजयगमम् । नोदये दिनकरस्य न चेन्द्रोः वैचलं
तमसि यस्य विकासः ॥ ३७ ॥ नारीणां खलु वन्धु
रन्वतमसं पाथोघरः सोदरः कुञ्जं नाभिगृहं निशा

सहचरी मेघः स्मरः क्षमापतिः । इयं चारुचकोर-
चञ्जलदृशां यासां मतिर्जापते तामामेव पथः सुवांशु-
घवलं तासां च सौख्यं सदा ॥ ३८ ॥ नितम्बिन्यो
नित्यं चिनयपथचिन्त्यन्तमनमः पनाहाः स्युः पुत्रि
प्रतिनियतमेताः स्नकुलयोः । गुरोरित्यादेशं नदनि
सुदृशामोद्धृतयती गनातङ्गं राधा हरिमुगमृगाहं
मृगयते ॥ ३९ ॥ निभृत्ं निभृत्ं निभालयन्त्या चरणा-
शाभरपायितं पतङ्गम् । गुरुयन्त्रितयापि गोपयन्था
नयनान्तेन निमन्त्रिती मुकुन्दः ॥ ४० ॥ न्यस्रं पत्रग-
मूर्ध्नि पादयुगलं भक्तिविमुक्ता गुरोरस्यका प्रीतिर-
कारि किं न भवती हेतोर्मया दुःकृतम् । अज्ञानां शून-
यातना नयनयोः कोऽपि क्रमो राख्यः कुम्भोपाकरा-
भयश्च मनसो युक्तं तपि प्रस्थिते ॥ ४१ ॥ पतिरतीव
धनी सुभगो युवा परविलासवतीषु पराद्मुद्यः ।
शिशुरलङ्कृष्टे भवनं सदा तदपि सा सुदती चदती
कृतः ॥ ४२ ॥ पर्यङ्कः चास्तरणः पतिरनुहृतो मनो-

बजा-बजाकर जो तुम मनचञ्ची नवेलियाँके मनकी ठोह जगाते
फिरते हो, यह बात मैं ताढ़ गई हूँ, किन्तु परवश हूँ हृत्क्षिपे
सुभे क्षमा करी । मोक्ष ढालनेके बहाने मैं तुम्हारे हाथ जोड़ती
हूँ ॥ ३३ ॥ जिस भीड़में धरके बड़े लोगोंकी दृष्टि नहीं पड़ पाती
रसमें वे स्वभित्कारियो खियाँ अपने स्तन टषाड़ टषाड़कर ऐसी
भनधाही घेठाई करती हैं कि किसीपर चितवन बजाती
हैं, किसीको सुजाएँ मटका-मटकाकर दिखाती हैं, किसीको
हाथसे धरके देती हैं और किसीको नखोंसे चूटती चबती
हैं ॥ ३४ ॥ अब चाहे साँस फूले, पसीनेसे देहर बननी हुई
चित्रकारी मिट जाय, चाहे बन्दर भीषित होकर अपने नखोंसे
मेरी छाती नोच ढाले पर जेठानीजी ! देवरके ज़ादके
बषेड़ी देहमें हुए भयंकर जोड़ेके खिपे श्रीपथिकी
झाड़ खेनेके खिपे मैं वन जाऊँगी ही ॥ ३५ ॥ हे प्यारी
सखी ! द्वारपर खमसे सटकर खड़ी हुईं तुम ऐसी चित-
वन बजा रही हो कि जान पड़ता है किसी भाग्यवाग्
प्रियतमके पास तुम अपनी दूतीरूपी भौरी भेज रही हो ॥ ३६ ॥
स्वभित्कारियो खीके दोनों कमलनयन न तो कमलोंकी बराबरी
करने योग्य हैं न दूलोंकी बर्थाकि ये न तो सूर्यके ही उदय होनेपर
खिलते हैं न चन्द्रमाके ही उदय होनेपर । ये तो केवल खँधेरमें
ही खिलते हैं ॥ ३७ ॥ खँधेरा तो खियाँका सगा, बादल सहोदर
भाई, माझी जन्मभूमि, रात प्यारी सखी और स्वामी महा-

राज कामदेव हैं । सुन्दर बकोरके समान बंधव नयनोंवाजी
जिन खियाँकी ऐसी बुद्धि हो जाती है उर्दीका चाँदनी-जैसा
उरजा यश कैलता है और उर्दें ही सदा सुख मिलता है ॥ ३८ ॥
‘हे पुत्री ! जो खियाँ सदाचारमें अपनी मन बगाए रहती हैं
वे अपने दोनों दुर्लोकों पसाका होती हैं, ऐसी अपने कुर्छोंकी
मर्यादा है ।’ बर्दोंकी यह शिष्टा सुनदनी खियाँके सनाबमें तो
राधाने मान ली किन्तु फिर वह बेशरके थोड़प्यका सुमचन्द्र
देहने जगी ॥ ३९ ॥ गोराने जब देखा कि सूर्य धीरे धीरे
पश्चिम दिशाको सजा रहा है तो बर्दोंकी साँसतने पदकच भी
रसने अपने नयनोंकी सँसे गोविन्दको मित्रनेका न्यौता देवाका
॥ ४० ॥ जब चापसे मित्रनेके खिपे मैंने सँपके फणपर पैर रखने,
बर्दोंकी मक्ति छोड़ी, लोगोंसे प्रेम तोड़ा, सारे कुर्म बर
किए । तो अब आपके प्रस्थान करते समय भगोंकी सैरद-
दुर्गावियों, नयनोंकी रौरव नरक पैसी धाँसा और मनकी कुनी
पाक नरक जैसा कष्ट उचित ही है ॥ ४१ ॥ यद्यपि पति धर्यंतों
धनी है, सुन्दर है, युवा है, दूसरी नवेलियाँसे प्रेम भी नहीं
करता और पुत्र भी चरकी सोमा बढ़ा रहा है फिर भी यह
सुन्दर दाँतोंवाजी री बर्दों ही है ॥ ४२ ॥ धीरी चोरों रति
करनेकी खोनी कामनिर्वा सुन्दर विद्वीनेवाके पर्वण, पानाकारी
पति और मनोहर भवनको तिनका समनती है ॥ ४३ ॥ जो
स्वभित्कारि बमचन्दनी खियाँ अपनी मोझी चितवनसे पर-

हरं सद्गन्तम् । तृणमिव लघु मन्यन्ते कामिन्यश्चोयं-
रतिलुब्धाः ॥ ४३ ॥ पश्यन्ति स्निग्धमुग्धं प्रतिकलम-
धुरैर्महोदयन्यद्गद्गद्वारैः साकृतैर्मन्दहासैरपि परपुरुषान्
शब्दानन्दयन्ति । चेष्टन्ते चेत पते किमपि परिवचया-
द्धारयिष्यन्ति तेषां प्राणान्को वेद लोके परजलजदशां
चिन्तयन्तलोलम् ॥ ४४ ॥ पाणौ गृहीतापि पुरस्कृ-
तापि ज्ञेहेन नित्यं परिवधितापि । परोपकाराय
भवेदवश्यं वृद्धस्य भार्या करदीपिकेव ॥ ४५ ॥ पृथ्वी
तावन्निकोषा विपुलनदनदीप्रावरुद्धं तदर्धं तत्राप्यर्धं
युच्यतेः शिशुगतवयसो रोगियो योगिनश्च । त्याज्या-
स्तत्रापि मान्याः श्वशुरपितृमुखाः सन्ति श्रेयाः
कियन्तो मिथ्यावादो ममायं सुखरमुखरवः पुंश्चली
पुंश्चलीति ॥ ४६ ॥ प्रियो भयैवावचितेः प्रसूनेर्हृष्टो
द्वरस्यातनुते सपर्याम् । अतो नतनेकलताधृतामि
यास्यामि सायं विपिनानि सख्यः ॥ ४७ ॥ ब्रह्मैव
सत्यमखिलं नहि किञ्चिदन्यत्तस्मात्त मे सखि परापर
भेदवुद्धिः । जारे तथा निजवरे सदशोऽनुरागो व्यर्थ

किमर्थमसतीति कदर्थयन्ति ॥ ४८ ॥ भद्रं तस्य तरोः
स्वयं चिरकृतप्रस्थानकं कथ्यतां दुर्वारस्तमरएववह्नि-
रदहद्विश्वाद्यं दुर्वचः । मा खिद्यस्व ततः प्रभृत्यनु-
दिनं तस्याः पतङ्गिदंशोरम्भोमिः परिणुत्पलवधन-
च्छायस्तकर्षुर्धते ॥ ४९ ॥ भ्रूभेदे कतिचिद्गिरा कुटि-
लया काश्चित्कियत्यः स्मितैः स्वैरित्यः कथयन्ति
मन्मथरसव्यापारवश्यं मनः । कासाश्चित्पुनरङ्गकेषु
मसृणच्छ्रायेषु मध्यस्थितो भावः काचपुटेषु पुष्कर-
मिव प्रथक्तामसोक्ष्यते ॥ ५० ॥ मया कुमारापि न
सुभोमेकया न जारमुत्सृज्य पुमान्विलोकितः । श्वेन
गोत्रस्थितिपालनेन मे प्रसन्नतामेतु भयोपकारिणी
॥ ५१ ॥ यः कोमारहरः स पथ हि धरस्ता एव चैत्र-
क्षपास्ते चोन्मीलितमालतीसुरभय मौढ्यः कदम्बा-
निला । सा चेवास्मि तथापि चोद्युस्तव्यापारही-
त्वाविधौ रेघारोपसि येतसीतदुत्तले चेतः समुत्कण्ठते
॥ ५२ ॥ यद्वचि विद्युद्धमात्रा विकसितकुक्षुमोःकरा
शृणुश्रेणी । पीतांशुकप्रियेयं तद्वचि पल्लोपतेः पुत्री

पुरपीकी देखती हैं, अगोंकी चटक मटकसे उरहें मोह लेती हैं,
भेदभरी मन्द सुसकानसे उरहें सदा आनन्द देती रहती हैं
और कुछ ऐसे हाव-भाव करती हैं कि परिचय मात्रसे उनके
प्राण निकाल लेती हैं उनके अत्यन्त चञ्चल चित्तकी कौन
समझ सकता है ? ॥ ४३ ॥ जैसे आगे आगे हाथमें रखता हुआ
और सदा तेज डालकर बढ़ाया हुआ दीपक दूसरोंकी भलाई
करता है वैसे ही हाथ पकड़कर आगे-आगे चलती हुई तथा
स्नेहपूर्वक पावन की हुई बूँदोंकी भी अथर्व्य परोपकारके लिये
ही होती है ॥ ४४ ॥ एक तो धरती ही तिकोनी है, उसमें आधी
धरती बहुतेसे नदी नाले और पथरोंसे भरी है, उस आधीकी
आधीमें स्थिराई, बच्चे, बूँदे, रोगी और योगी आदि हैं, उसमें
भी बड़े बूँदे, पूज्य, सुख, विता आदि हैं, अब बच्चे ही कितने
कि बच्चेवादी लोग मुझे 'व्यभिचारिणी' व्यभिचारिणी' कहकर
मूढ़ा दोष लगाते हैं ॥ ४५ ॥ हे सखियो ! पतिदेव
प्रसन्न होकर मेरे लुने हुए कुञ्जोंसे शिवशैली पूजामें
लीन हैं । अतः मैं फिर सक्काको इसी वनमें जाऊँगी
जहाँ बहुत सी उलझाई हुई रताईं उगी हैं ॥ ४७ ॥ हे सखी !
एक दूध ही सत्य है, उसके अतिरिक्त सब मूढ़ है, मुझे तो
अपने-परापमें कोई भेद नहीं जान पड़ता । इसीलिए अपने
मिथतम और जारसे मेरा समान प्रेम है । फिर भी लोग न जाने

वशों मुझे उलझा कह कहकर व्यर्थ सताए डाल रहे हैं ॥ ४८ ॥
नायक और दूतीमें बात चीत है—नायक : कहां, वह वृद्ध वृक्ष
ले को है ? तुम बहुत दिनोंपर धर आईं । एक बड़ी अमिय
कठोर बात सुननेमें आई है कि भयकर दावानलने उस वृद्ध
को जला डाला है । दूती : सीचन करो, उसी दिनसे तुम्हारी
प्यारीके नेत्रोंसे निकले हुए आँसुओंसे जगातार सँचि जानेके
कारण उसमें पत्ते निकल आए हैं, उसकी छाया घनी होती जा
रही है और वह दिनोंदिन बढ़ रहा है ॥ ४९ ॥ कामके रससे भरी
कीषामें लगे हुए अपने मनकी गतिको कुछ व्यभिचारिणी
छिपाईं मोहें नवाकर जताती हैं, कुछ उल्टी सीधी बातों द्वारा
और कुछ अपनी सुसकान-द्वारा । पर किसीके सुन्दर चिहने
अज्ञानमें वर्तमान कामके भाव तो ऐसे मलक जाते हैं जैसे
शीशेर पानी ॥ ५० ॥ छोड़पनसे ही मैं कभी अकेली नहीं
सोई और जाको छोड़कर कभी दूसरे पुरुषका सुँह नहीं
देखा । मेरे हृत् गोत्रस्थिति पावनसे ससारका उपकार करने-
वाली देवी प्रसन्न हों ॥ ५१ ॥ जिसने मेरा कुघ्रापन बुर
किया वही मेरा पति अथ भी है, वे ही चैतकी रातें हैं,
मालतीकी गन्धसे भरे हुए वे ही मयल वायुके फोंके हैं, वही मैं
हूँ फिर भी मर्मदाके तटपर बँतकी भाँवियों तले लुक छिपकर
रति-श्रीदा करनेको मन जानावित हो रहा है ॥ ५२ ॥ यह

॥३३॥ यदि भयति दैवयोगास्तुमान्भिरूपोऽपि यन्वकी
रहसि । न तु हृच्छ्राद्धिभिर्भद्रं निजक्रान्तं सा मज-
त्येव ॥ ३४ ॥ यस्य भार्या विरूपा च कर्मला कलह-
मिया । अधिकाधिकमदा च सा जरा न जरा जरा
॥ ३५ ॥ चर्यं घाल्ये बालांस्तदधिप्रतिन यूनः परिणता-
वपोच्छ्रामो वृद्धान् परिणयधिधो नः स्थितिरियम् ।
त्ययारब्धं जन्म क्षापयितुमनेनैवपतिता न मे गोत्रे
पुत्रो कचिदपि सतीलान्द्वनमभूत् ॥ ३६ ॥ व्यपेत्-
व्याहारे गतविधिविशिष्टपत्यतिकरं करस्पर्शरश्मे विग-
लितदुकूलान्तयसर्वम् । मुहुर्द्यदोत्कर्मणं दिशि दिशि
सुहः प्रेषितदशोरहृदयासुभ्राम्णोः क्षणिकमिष तस्य
ऋतमभूत् ॥३७॥ शिरसि शिरसिजं दशोर्निर्मेपं विट-
पिनि पल्लवमालये तृणं वा । गणयितुमपि पारयन्ति
कैचित्प्रियसखि के कथयन्तु जारत्वंयाम् ॥ ३८ ॥
श्रूयस्व शुरुत्रिवर्तय सखीवन्दस्व वन्धुस्त्रियः काये-

रीतदसन्निधिप्रनयेमुये किमुचामयसि । आम्ने पुत्रि
समीप एव गमनादेलासनादिद्वन्द्वयञ्चद्वालनमाल-
न्तुरदरी तत्रापि गोदाधरी ॥ ३६ ॥ सन्निधये परलोके
जनापवादे च जगति बहुचिन्ने । स्वाधोर्न पररमो
धन्यास्तारकएवकमराजः ॥ ६० ॥ संपत्कस्याद्य तार
भवति तरलिता यत्पुरो नेत्रतारा दृष्टा केनाद्य पात्रो
यदमिमुद्यगता वेपते रत्नकाञ्चो । उग्रः कस्याद्य तुष्टः
सपि यदनुमते कश्चिदुग्रोऽनुतापः स्नातं केनाद्य वेणो-
पयसि विजुलिता यदुठ्ये फापि वेणो ॥ ६१ ॥ सपि
सुवन्मथयकाशे प्रातः प्रेषान् यथा तथा न युदे ।
घातादधारितादपि भयति गयाम्नामिलः शीतः ॥ ६२ ॥
समीडाधर्निरीचणं यदुमयोर्ददूतिसम्प्रेपरां द्यद्य भ्यो
भविता समागम इति प्रीतिप्रसादश्च यः । प्राते काल-
समागमे सरमसं यरुभुम्नाल्लिङ्गं तत्कामस्य फलं
तदेव सुरतं शेषा पश्यतां स्थितिः ॥ ६३ ॥ सुचशय्या

शरीरीकी पुत्री तबतक पीछे पक्ष ही पहनना चाहेगी जवतक
खिजे हुए फूलोंसे भरे सनके खेत ही ॥ ३१ ॥ यदि दैवयोगने
व्यभिचारियोंको कुरुप गुरुप भी एकत्रमें मिल जाय तो वह
उससे प्रेमपूर्वक संभोग कर लेगी किन्तु अपने सुन्दर पतिसे
वह तनिक भी रमण करना नहीं चाहेगी ॥ ३७ ॥ जिसकी
की कुरुवा, पापिन, ऋगादासु और बहुत भोजन करनेवाली
होती है वही उरुके खिजे यथार्थमें बुढ़ाया है, वास्तविक
बुढ़ाया बुढ़ाया नहीं ॥ ३४ ॥ क्याहके विषयमें हमारी तो यह
स्थिति रही है कि वचन में हमने बालकोंको, युवावस्थामें
सुबहोंको और बुढ़ापेमें युवकोंको ही चाहा है पर एक तुम हो कि
हृषी एक पक्षिसे साय जीवन बितानेका निश्चय किए बैठी हो !
बैठी ! हमारे कुरुमें कमी किसीको सनी होनेका कलंक नहीं
जगा ॥ ३६ ॥ यद्यपि शरीरपर भौगि भौतिकी विप्रकारीकी
भी बाधा नहीं थी, हाथ लगाते ही मूट सारीके मोंधका अन्त-
र्वेष (घाया) भी सुख गय, पर हम लोग धार-धार काँरते हुए
चौक-चौककर धारों धारों दौड़ाकर देखते जो आते थे इसलिये
झंझला और हनुके समतामकी भाँति हमारा वह सम्मिलन भी
पेला पक्षिक हुआ कि धारपसमें एक भी धार न हो पाई ॥ ३७ ॥
हे प्यारी सखी ! सिरके माथ, पल्लकोंकी धरीनियाँ, वृक्षके पत्ते
और धरपर धारए हुए घासके तिनके मजे ही कोई भिन ढाले
पर यह बताना कठिन है कि मेरे बाहनेवाले कितने हैं ॥ ३८ ॥
बैठी ! बहोंकी सेवा करना । मय सखियोंको विदा करो । भाई-

वन्धुकी स्त्रियोंको प्रपाम करो । भरो भोबी ! कावेरीके तटपर
धर्मिलानाए वर्षों उदास हो रही है ? वर्षों भी पासमें ही सोया
पलकर गोदावरीके तटपर उन तमात्रके वृक्षोंसे ढकी हुई गुफाएँ
हे जिनपर हृत्पायकीकी खताएँ खिपती रहती है ॥ ३१ ॥ मरनेके
पश्चात् क्या होगा, इसके संबंधमें संसारमें जितने सुँह दतनी
धातें हैं वही परतुरते सम्भोग भी अनायास मिल ही जाता है,
तब वे ही खोग धम्य है जो बेलके खोवनका उषमंग करते
हैं ॥ ३० ॥ यह कीन है जिस पर तारादेवी (लक्ष्मी) देवी
प्रसन्न हो गई हैं कि उरुके सामने पदों हो गये (नेत्रोंकी
पुत्रजियों) गौली हो जाती है, जिसने काजीपुरीका दर्शन
रिया है जिसके सामने पदते हो रनोंकी करवनी (काँची)
काँरने लगती है, किसपर शिव (दम) भी प्रसन्न हो गए
हैं जिसके खिजे किसीके हृदयमें प्रबल (दम) पड़गया हो
रहा है और जिसने धाम त्रिवेणी स्नान किया है जिसके खिजे
किसीकी चोटी (वेणो) सुख सुख जा रहा है ॥ ६१ ॥ हे
सखी ! चारों-चारों धरपर धारया हुआ मिय बैठा मुख देता है
बैठा धरका मियतन नहीं क्योंकि वे रोक-टोक धारयेवालेकी
अपेक्षा ऋगेखेने जानेवाया पवन कहीं अधिक दृष्टता होता
है ॥ ६२ ॥ धारपसमें लाजसे भरी शिरयो चित्तवर्षं पञ्जना,
एक दूसरेके पास दूती मेजना, 'धाम या कञ्च निजान होगा,
हवी प्रसन्नतामें मस्त रहना और मिलनेका समय आनेपर
वेगसे पुनवन, धाडिगत आदि करना यहाँ तो कामका यथार्थ

ताम्बूलं विश्रब्धाश्लेषसुम्बनादीनि । तुल्ययन्ति न
लक्ष्मीं त्वरितक्षणेर्षोर्गुरतस्य ॥ ६४ ॥ सुभगं वदति
जनस्तं निजपतिरिति नैप रोचते मह्यम् । पोयूपेऽपि
हि भेषजभाषोपहिते भवत्यरचिः ॥ ६५ ॥ स्थितिर्गोहो
पान्ते परिजनपरीद्वासफलना मुहुर्यातायाते सरुदपि
गृहे व्याजगमनम् । मुहुस्तद्गोव्येऽपि क्षणपरिचयो
वस्तुनि दशः समुत्पन्नप्रेशः सकलमिदमापातसुख-
दम् ॥ ६६ ॥ हंसैः श्रेयलमञ्जरोति कयरी चञ्चुभिरा-
कपिता चक्रे चन्द्रधिया चकोरवनिता चक्रे नखैरक्र-
मम् । श्रुहैः पङ्कजकोरकप्रतिभया धलोरुहो घोक्षितस्त-
न्मातः करचैः पुनर्न सरसोतोयावगाहोद्यमम् ॥ ६७ ॥

पाथ-संकेतः—अहमिद्य दिनलक्ष्मोः प्रोषितप्राणनाथा
त्वमिक पथिक पन्था मुक्तपान्थानुबन्धः । अयमपि
परदेशः सोऽपि यत्रासि गन्ता मदनमधुरमूर्ते किं

वृथा सत्वरोसि ॥ १ ॥ इयं सुरतरंगिणी न पुनरत्र
नोसंगमो भवेत्तरणिमज्जनं पथिक नैव पान्थ्यागमः ।
निधाय हृदये सदा विपुलचारुकुम्भहृदयं सखे घनघना-
गमे घनरसस्य पारं व्रज ॥ २ ॥ एकाकिनी यद्वला
तरुणो तथाहमस्मिन् गृहे गृहपतिश्च गतो विदेशे ।
कं याचसे तदिह वासमियं वराकी श्वश्रूर्मनान्ध
वधिरा ननु मूढ पान्थ ॥ ३ ॥ किमिति कृशासि कृशो-
दरि किं तव परकीयवृत्तान्तेः । कथय तथापि मुदे
मन कथयिष्यति पान्थ तव जाया ॥ ४ ॥ कुत्रायासोः
किमिवमकरोः साहसं पान्थ बन्धो यद्येतस्मिन्नि-
वससि पुरे सावधानस्तदा स्थारः । अश्रोतालाः सन्ति
यासां विलासेत्पथन्ते सपदि मदनव्याधयो दुर्नि-
वारः ॥ ५ ॥ ग्रामेऽस्मिन्प्रास्तरप्राये न किञ्चित्पान्थ
विद्यते । पयोचरोन्नतिं दृष्ट्वा वस्तुमिच्छसि चेद्दस ॥ ६ ॥

फल है और यही सुन्दर रति-क्रिया है, रोप तो पशुगोंका सा
व्यवहार है ॥ ६३ ॥ सुख देनेवाली श्रया, पान और बेल्ठके
आलिंगन-सुम्बन आदि सय, एक क्षणमें शीघ्रतापूर्वक घोरी-
चोरी होनेवाली रतिक्रीड़ाके लाखवें शंखकी भी वरावरी नहीं
कर सकते ॥ ६४ ॥ यद्यपि लोग उसे सुन्दर कहते हैं किन्तु
मेरा पति होनेसे यह मुझे वैसे ही नहीं दुःखता जैसे अमृतको
भी औपचिके रूपमें लेनेसे घृणा हो जाती है ॥ ६५ ॥ नये-
नये प्रेममें प्रेमिकाके घरके पास खड़े रहना, बार बार
रस गलीसे खाना-जाना, किसी वदने प्रकार बार उसके घर
भी पहुँच जाना, उसके उपयोगकी कोड़े वस्तु तथा भरकी
देखनेको भिन्न जाना और लोभोंका उसीके विषयमें उपहास
करना ये सब बातें आदिसे श्रन्तवक परम सुखदायी होती हैं ॥ ६६ ॥
हे भर्ता ! अथ मैं तालाबके जलमें स्नान करने न जाऊँगी क्योंकि
वहाँ मेरे लूँके सेवारकी मंजरी समझकर हँसने लौं च दाला,
चकोरीसे मेरे नलोंको चन्द्र समझकर चोंचमें दूबा लिया और
कमलकी कली समझकर भौरे मेरे स्तनोंकी ओर देखने लगे
॥ ६७ ॥

यदोहीको संकेतः : हे कामदेवके समान सुन्दर बटोही !
मैंसे मेरे पति परदेशमें है वैसे ही दिनकी शोभाके पति सूर्य भी
परदेश चले गए (अस्त हो गए) । मैंसे तुमने वाशियोंका
साथ छोड़ दिया है वैसे ही मार्गमें भी वाशियोंका साथ छोड़
दिया है । यह भी परदेश ही है और वहाँ तुम जानेवाले हो
यह भी परदेश ही है इसलिये धुम क्यों ध्वंशं जानेकी उठावली

कर रहे हो ॥ १ ॥ हे मित्र बटोही ! यह गंगा आ गई, कोई
नाव नहीं दिखाई दे रही, नाव भी डूब जा सकती है, कोई
और व्यक्ति दिखाई नहीं पड़ रहा इसलिये इस घनी बदलीकी
वेलामें तुम दो बड़े बड़े घड़े छातीसे भली भाँति चिपकाकर
यह अथा जलराशि पार कर लो । [अथवा—हे मित्र बटोही !
यह मैं सुरतिमें रस लेनेवाली] फिर हमारा दोनोका नेत्र क्यों नहीं
हो पा रहा । देखो, सूर्य डूबा जा रहा है । किसीके आनेकी सम्भावना
भी नहीं है । अतः, तुम ये विद्याल सुन्दर स्तन छातीसे जगा-
कर दस घनी बदलीकी वेलामें प्रगाढ़ प्रेमका प्रवाह पार कर लो
॥ २ ॥ अरे मूखे बटोही ! इस घरमें मैं अकेली नवयुवती अबबला हूँ,
मेरे पति परदेश गए हैं और यह मेरी सास बेचारी अम्भी भी
है और बरती भी ; यहाँ तुम किससे रहनेको स्थान माँग रहे
हो ॥ ३ ॥ किसी बटोही और नवेलीमें बात हो रही है—
बटोही : हे पत्नी कमरवाली ! तुम इतनी दुबली क्यों हो ?
नवेली : तुम्हें दूसरीके समाचारसे क्या खेना देना ? बटोही :
फिर भी कुछ ता बलाओ, सुनकर मुझे प्रसन्नता ही होगी ।
नवेली : हे बटोही ! इसका कारण तुम्हारी स्त्री तुम्हें बतावेगी ।
[४] हे भाई बटोही ! तुम कहलिये चले आ रहे हो ? यहाँ आने-
का साहस तुमने कैसे किया ? यदि तुम इस नगरमें रहना ही
चाहते हो तो सावधान होकर रहना क्योंकि यहाँ कुछ ऐसी
मदमाती अलवेली नवेलियाँ हैं जिनके हाव-भावोंसे तरकाज
ऐसी काम आधि उरपन्न हो जाती है जिसकी चिकित्सा होनी
भी कठिन है ॥ ५ ॥ हे बटोही ! इस पथरीके गाँवमें और तो

त्वमिष पथिक प्रियो मे विटपिस्तोमेषु गमयति
 फलेशान् । किमितोऽन्यत्कुशलं मे संप्रति यत्पान्थ
 जीषामि ॥७॥ नाथो मे विपणिं गतो न गणयत्येषा
 सपत्नी च मां त्यक्त्वा मामिह पुष्पिणीति शुरुवः
 माता गृह्णाभ्यन्तरम् । शय्यामात्रसहायिनी परिजनः
 धान्तो व मां सेवते स्वामित्रागमलाक्ष्मीय रजनीं
 लक्ष्मीपते रक्ष माम् ॥८॥ निविडतमतमालमल्लिवल्ली-
 विचकिलराजिविराजितोपकरटे । पथिक समुचित-
 स्तवाद्य तीर्थे सधितरि तत्र सरिच्छते निवासः ॥ ६ ॥
 पान्थ मन्दमते किंवा संतापमनुचिन्दसि । पयोधरं
 समाशास्य येन शान्तिमयामुयात् ॥ १० ॥ भवतमित्र
 मदीयं निर्जनः पान्थ पन्थाः कुसुमशर इवासिंस्त-
 स्करा दुर्निवाराः । गृहप इव पतङ्गोऽप्येव यातो दिग्-
 न्तामन्दनसुभग भूयो नेव गन्तुं समीहे ॥११॥ धातः
 पान्थ पथि स्वया न पथिकः कश्चित्समासादितो बाले
 नैकशतानि कीदृश इति प्रख्यायतां वल्लभः । यं दृष्ट्वा

प्रमदाजनस्य भयतः स्फारे मुदा लोचने स ज्येयो
 द्यितो ममेति पथिकायावेद्य मोहं गता ॥ १२ ॥ भो
 पान्थ त्यरितोऽसि तिष्ठ निमित्तं किञ्चिद्दामो धयं
 मार्गोऽयं पुरतो द्विधा खलु भवेद्भ्रमेन नो गम्यताम् ।
 तत्रास्ते सहकारकोमलतरोर्मूले प्रपापालिका तस्या
 लोचनयागुरानिपतितो न त्वं पुनर्यास्यसि ॥ १३ ॥
 भो पान्थ पुस्तकधर क्षणमत्र तिष्ठ घैद्योऽसि किं
 गणितशास्त्रविशारदोऽसि । केनोपधेन मम पश्यति
 भर्तु रभ्य किंवाऽगमिष्यति पतिः सुचिरप्रवासी ॥१४॥
 यदि गन्तासि दिग्गन्तं पथिक पतिस्तत्र संशोभ्यः ।
 नयनश्रवणविहीना कथमुपचर्या मयैकया जननी ॥१५॥
 यामिन्येषा वहलजलदैर्येन्द्रभीमान्धकारा निर्द्रां यातो
 मम पतिरसो फलेशितः फर्मदुःखैः । याला चादं मन-
 सिजभयारमासगाढप्रकम्पा प्रामथ्यौरैर्यमुपदतः पान्थ
 निर्द्रां जहीहि ॥१६॥ रथ्या रजोदक्षिणधूसरिताङ्गयष्टेः
 कश्चिरपितुः स्मरसि पुत्रक निर्घृणस्य । उपत्यैवमद्गगत-

उष्ण नहीं है, ये ठमड़ी हुई यादलोंकी घटाएँ (ऊँचे ऊँचे स्तन)
 देवकर रहना चाहो तो अवश्य रहो ॥६॥ हे यदोही! तुम्हारे ही
 समान मेरे मियसम भी वृष्टोंके तले पड़े थकान मिटाते
 होंगे-किर भी इससे बड़कर कुशलता और क्या होगी कि मैं
 अभीतरक जी रही हूँ ॥७॥ मेरे पति व्यापार करने गए हैं, यह
 सौत मुझे कुछ समझती ही नहीं, मुझे रजस्वला जानकर सास-
 ससुर भी घरके भीतर चले गए हैं, अब यह विद्यावन-मात्र ही
 मेरा सहाय है, नीकर-चाकर भी सब भके भँदें द्ये सो रहे हैं, मेरी
 सेवा नहीं करते; धतः, हे स्वागत करने योग्य (वेदोंके द्वारा
 स्तुति किए गए) ! धनवान् प्राणेश्वर (विष्णु) ! इस रात मेरी
 रक्षा करो ॥ ८ ॥ हे बटोही! बड़ी कड़ी धूप है इसजिबे अचढ़ा
 हो कि तुम नदीके उस तीरपर चलकर दुपहरी बिलाशो नहाँ
 तमाजके पने वृक्ष छाए हुए हैं और मखिलकाकी जलाशयोरी
 घनी कुँजें हैं ॥ ९ ॥ अरे सूर्यं बटोही! क्यों गर्मी
 (कामकी गरमी) से तपे जा रहे हो! मेघों (स्तनों)की
 प्रभयर्थना करो जिससे शान्ति मिले ॥ १० ॥ हे पथिक ! मेरे
 पथिके समान ही मार्ग भी निर्जन हो गया है, कामदेवके समान
 पथो भी मार्गोंमें बलपूर्वक धाकमय करते हैं, मेरे पथिके समान
 ही यह सूर्य भी दिशाके क्षीरको पहुँच गया है, धतः, हे काम-
 देवके समान सुन्दर ! अब मैं परसे नहीं निकलना चाहती
 ॥ ११ ॥ नखेली : हे माई यात्री ! क्या मार्गोंमें तुम्हें कोई

पथिक मिला था ? यदोही : हाँ-हाँ नखेली ! एक नहीं, सैकड़ों।
 पर यह तो बताओ कि तुम्हारा पति कैसा था ? नखेली :
 जिसे देखकर प्रसन्नताके मारे स्त्रियोंने नेत्र खुले रह जाते हों
 वही मेरा पति है । पथिकसे ऐसा कहते ही वह अचेत हो गईं
 ॥१२॥ हे राहो ! इतनी शोभता क्या है ? पत्रभर रुक जाओ,
 तुमसे कुछ कहना है । प्रागे जाकर हस्त मार्गमें जो दो शाराएँ
 फूटी हैं, उसमें बाँपसे न जाना क्योंकि वहाँ कोबल आमके
 वृष्टके तले प्याऊवर जो प्याऊवाली बैठी है उसकी चितवनके
 जाळमें पबुकर तुम नहीं निकळ पाओगे ॥ १३ ॥ हे पुस्तक-
 धारी यदोही ! पत्रभर उठरो । बलाघो तुम वैद्य हो या पतिविपी ?
 यह बताओ कि मेरी अन्नी सासकी कौन सी औपथि सिखाई
 जाय कि वह देखने लगे और बहुत दिनोंसे परदेस गए हुए मेरे पति
 कब लौटकर आवेंगे ॥१४॥ हे राहो ! यदि तुम्हें बहुत दूर विदेश
 जाना हो तो वहाँ मेरे पतिसे यह सन्देश कह देना कि मैं
 अकेली इस अन्नी और बहरी सासकी हैते सेवा करूँ ॥१५॥
 हे पथिक ! नींद छोड़ो, उठो । देखो यादलों की घटाएँ चिरनेसे
 रात भयानक ऊँधेरी हो गई है, पथिके काम काजसे यद्यपि दृष्ट
 मेरा पति यह सो रहा है, मैं नखेली हूँ, मनमें दर समाया हुआ
 है, मुझे कँपकरी छूट रही है (कामके समयसे मैं कँप रही हूँ)
 और यह गाँव भी कीरोंसे घिरा हुआ है ॥१६॥ हे पुत्र ! क्या
 तुम्हें गलीकी (रथोंसे ढकी हुई) जाळ पृथसे रंगी हुई देखाके

यायतमायतादया पान्थस्त्रिया प्रकृदितं करुणं विनान्ते
॥१७॥ धाणिष्येन गतः स मे गृहपतिर्वातापि न श्रूयते
प्रातस्तज्जननी प्रसूततनया जामातुर्गेहं गता । धालोहं
नवयौवना निशि कथं स्थातव्यमस्मिन्गृहे सायं संप्रति
वर्तते पथिक हे स्थानान्तरं गम्यताम् ॥ १८ ॥
वीक्षितुं न क्षमा श्वश्रुः स्वामी दूरतरं गतः । अहमे-
काकिनी याला तथेह घसतिः कुतः ॥१९॥ श्रयं चेश्म
चिरायितो गृहपतिर्जाताधुना शर्वरी स्थालुं नोचितमग्र
गच्छ निश्रुतं लोकैरनालक्षितः । इत्थं लोलदशा ह्यसा-
धमिहितो दासोमुखेनाश्वगः स्थित्वा किंचिद्विच क्व
यामि रजनी प्राप्तेत्युदीर्य स्थितः ॥ २० ॥ स्मर्तव्या
पयमिन्दुसुन्दरमुखि प्रस्तावतोऽपि त्वया स्यादेवं यदि
नाथ दास्यति विधिर्जातिस्मरत्वं मम । एकस्मिन्नपि
जन्मनि म्रियते जातिस्मरत्वं कुतः प्राणाः पान्थसमं
त्वयैव चक्षिताः फयाघापि जन्मेकता ॥२१॥

वैश्यानिन्दा—अयं च सुरतज्वाला कामाङ्घ्रिः

अपने निर्दयी वित्तका स्मरथ आता है ? येसा कहकर विह्व-
मात्र बची हुई बर्षी-बर्षी शौखिंबाजी परदेसीकी स्त्री सायंकाल
करुण स्वरमें जी-भर रोई ॥ १७ ॥ मेरा पति ध्यापार करने बाहर
गया है, उसका कोई समाचार नहीं मिला, उसकी माँ प्रातः-
काल ही अपने दामादके घर चली गई है, क्योंकि वहाँ बच्चा
हुआ है । मैं नई-नवेली युवती हूँ फिर तुम इस घरमें रातको
कैसे रह सकोगे ? संका हो ही रही है । अतः, हे राही ! तुम
कोई दूसरा स्थान देखो ॥ १८ ॥ साल देख नहीं पतली, पति
बहुत दूर चले गए हैं, मैं अकेली जड़की हूँ, तब यताश्रो तुम
यहाँ कैसे रहोगे ॥१९॥ जब दासोके द्वारा चंचल नयनोंवाली
नवेलीने पथिकको यह कहबाया कि घर सूना है, पति आ नहीं
रहे हैं, रात हो गई है, तुम्हारा यहाँ ठहरना उचित नहीं है
अतः चुपकेसे चले जाओ जिससे कोई देख न पावे, तब वह
थोड़ी देर रुका भीर फिर वह कहकर वहीं ठहर गया कि 'रात हो
गई है, अब कहाँ जाऊँ ?' ॥ २० ॥ परदेया जानेवाले किसी
युवक और नायिकामें बातें हो रही हैं—युवक : हे चन्द्रमाके
समान सुन्दर मुखवाली ! हमें मूक न जाना । नायिका :
माध ! आपकी कही यह बात तो सही हो सकती है जब भग-
वात् मुझे जाति-स्मरत्व (पूर्व जन्मका स्मरण रसने की शक्ति)
दे दें ! युवक : प्यारी ! एक ही जन्ममें पूर्व जन्मके स्मरणका
बया प्ररन ? नायिका : पथिक ! मेरे प्राण तो तुम्हारे साथ ही
चल देंगे, बया क्रम भी एक ही जन्म कहा जायगा ? ॥ २१ ॥

प्रणयेन्धनः । नराणां यत्र ह्ययन्ते यौवनानि धनानि च
॥ १ ॥ इह सर्वस्यकलिनः कुलपुत्रमहादृमाः । निष्क-
लस्यमलं यान्ति वेश्याविहगमक्षिताः ॥ २ ॥ एता
हसन्ति च रुदन्ति च विचहेतोर्विश्वासयस्ति पुत्रं
न च विश्वसन्ति । तस्मान्नरेण कुलशीलसमन्वितेन
वेश्याः श्मशानघटिका इव वर्जनीयाः ॥ ३ ॥ कष्टं
जोधति गणिका गणकोऽपि च राजसेवको वैद्यः ।
दिवसे दिवसे मरणं परस्य यच्चिररज्जं वृत्तिः ॥ ४ ॥
केशः कुन्दमिपादिवोपहसति द्रव्यैर्विहीनाक्षतान्यूनं
प्रन्थिधनं विलोकितुमिवोद्भोवस्तनस्तप्रति । प्रेमच्छे-
दरूपणवदिलसुयमं रोमालिरालम्बते यस्याः सा
कथमस्तु चेतसि चमरकाणय चाराङ्गना ॥ ५ ॥ जात्य-
न्धाय च दुर्मुखाय च जराजीर्णखिलाङ्गाय च प्रामी-
णाय च दुःशुक्रलाय च गलत्कृष्णभिभूताय च । यच्छ-
न्तोषु मनोहरं निजघपुलंक्षमोलवश्रद्धया पर्यखीषु
विवेककल्पलतिकाशस्त्रीषु रज्यते कः ॥ ६ ॥ धनाश

वेश्याकी निन्दा : प्रेम-रूपी इंधवसे जलनेवाली यह
(वेश्या) कामागिनिकी रतिरूपी पवाजा है जिसमें मनुष्योंके यौवन
और धनका हवन होता है ॥ १ ॥ संसारमें चारों ओर फले हुए,
उत्तम कुलमें उत्पन्न पुत्ररूपी महावृष्टीको जब वेश्यारूपी पत्नी
खाने लगते हैं तब ये सर्वथा निष्कल हो जाते हैं ॥ २ ॥
ये वेश्याएँ केवल धनके लालचमें हैंसती भी हैं, रीती भी हैं,
युवकको तो विश्वास दिवाती रहती हैं किन्तु उसका विधास
नहीं करती । इसलिये सदाशरी कुन्दीन मनुष्यको चाहिये
कि ये इन वेश्याओंको श्मशानके घटोंकी भाँति छोड़ दें ॥३॥
वेश्या, पयोतिपी, राजाका सेवक और वैद्य, इनका जीवन बड़ा
कष्टमय होता है क्योंकि दूसरोंका चित्त प्रसन्न करना ही जिसका
धन्या होनेके कारण प्रतिदिन इनकी सृष्ट्य होती रहती है ॥४॥
वह वेश्या सच प्रसन्न करनेवाली कैसे हो सकती है जिसके
बाल अपने सिते हुए कुन्द-फूलोंके सहाने मानो निर्धन लोगोंकी
खिलकी उड़ाले हैं, जिसके स्तन सिर उठाए हुए मानो युवकोंके
धनकी यैजीपरताक जगाए रहते हैं और जिसकी जन्मो रोमावली
प्रेमको काटनेवाली कटार-सी शोभित होती है ॥ ५ ॥ विवेक-
रूपी कल्पवत्याको काटनेवाली कटारी-रूपी इन वेश्याओंपर कीन
रीमे जो जन्मके धर्म, कुरुप, धृदापेसे शिथिल भ्रंगोंवाले,
मूर्ख, नीच और गलित बौद्धवाले मनुष्योंको भी थोड़ेसे धनके
लालचमें अपना मनोहर शरीर सौंप बाजती हैं ॥ ६ ॥ धनका
खालच, कपट-भरा प्रेम और बनावटी बातोंसे चित्त प्रसन्न
करनेका ढंग, इनमेंसे एक भी गुण जब हममें नहीं है तो हम

कैतवज्जेहो वितथैश्चित्ततोपणम् । एकमप्यस्ति नास्माद्यु
कयं वेश्यासमा वयम् ॥ ७ ॥ न पर्वताश्रे नलिनी प्ररो-
हित न गर्दभा घ्राजिधुरं वहन्ति । यथाः प्रकीर्णां न
भवन्ति शालयो न वेशजाताः शुचयस्तथाङ्गनाः ॥८॥
वाप्यां स्नाति विचक्षणो द्विजवर्यो मूर्खोऽपि चर्णाधमः
कुल्लां नाम्यति वायसोऽपि द्वि लतां या नामिता
वर्हिणा । ब्रह्मक्षत्रविशुस्तरन्ति च यया नाया तथैवतेरे
त्वं वापीव लतेव नौरिष जनें वेश्यासि सर्वं भज ॥९॥ द्वार-
होरकद्विरण्यभूपयैस्तोपमेति गणिका घनैपिणी । प्रेम-
कौमलकटाक्षवीक्षितैरेव जीवति कुलाङ्गनाजनः ॥१०॥

वीररसः

अधारभ्य कटोरकार्मुकलताविन्यस्तदस्ताम्युज-
स्तायत्र प्रकटोरकरोमि नयने शोणे निमेषोदयात् ।
यावत्सायककोटिपाटितरिपुद्मपालामौलिस्वल्गन्मल्ली-
माण्यमिलत्परागणपटलैरामोदिनो मेदिनी ॥ १ ॥ अमा
कृतस्य चरितातिशयैश्च दृष्टैरत्यद्भुतैरपहतस्य

तथापि नास्या । कोऽप्येव धीरग्रिशुकाटनिरप्रमे-
यमाहात्म्यसारलसमुदायमयः पदार्यः ॥ २ ॥ अमाप्त-
प्रथमावकर्तनदया ध्यानप्रमूकीमद्यक्रेष्वन्यग्रिरन्तु
यस्य दहने श्लिष्टं शिरो बुद्धनः । उचार्य स्वयमेव
मन्त्रमकरोप्राप्त्याद्वमित्यात्मनस्त्यागं पङ्कमुद्यतः स
विक्रमसुहृद्दीरः कथं वर्यते ॥ ३ ॥ अर्थासने समधि-
रोप्य सुरद्विपस्य शक्रोऽपि ययुधि श्रुत्वा कथयो-
करोति । धीरस्य तस्य सद्गते दृशकन्धरस्य फरसाद्
सैकरसिकः करवालघाराणम् ॥ ४ ॥ अत्रयज्वालायनोद्-
प्रतियलजलधेरन्तरोर्वायमारणे सेनानाथे स्थितेऽस्मि-
न्मम पितरि गुरौ सर्वधनोश्वराणाम् । कर्णालं
सम्भ्रमेण मज रूप समरं मुञ्च हार्दिक्य शङ्कां ताते
चापद्वितीये वहति रणधुरं को मयस्यावकाशः ॥ ५ ॥
अत्र्याणि प्लवगाधिपेन विद्विताः पौलस्त्ययद्यः स्वली-
सङ्घट्टगलदत्तदाघविपदः सीदन्ति भूमिदहः । उतपाठ्य

वेश्याशोकै समान कैसे हो सकते हैं । ॥७॥ जैसे पर्वतकी चोटो-
पर कमखिनी नहीं उगती, चोटोंका काम गधे नहीं कर सकते
और घोए हुए कौ कमी धान नहीं होते वैसे ही वेश्याखयमें जन्म
लेनेवाकी स्त्रियाँ भी पवित्र नहीं हो सकतीं ॥८॥ जैसे बावड़ीमें
विद्वान् प्र.ब्रह्मण, मूख, नीध, सनी नहाते हैं, जैसे फूकी हुई
मिठ बत्ताओ पहले मोर अपने भारसे नवा सुकता है उतपर
कौश भी जाकर बैठता है और जैसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य भी
उसी नावसे पार जाते हैं जिससे और दूसरे लोग जाते हैं,
वैसे ही धरी वेश्या । तू भी बावड़ी, बत्ता और नावके ही
समान है । अतः, सबकी सेवा कर ॥९॥ घनकी इच्छा रखने-
वाकी वेश्या भले ही हार, हीरे और सोनेके गहनोंसे सज्जुत हो
जाय पर कुलीन रिशर्षो जो प्रेममयी रसीली तिरङ्गी वितवनको
ही जीवित रहनेके लिये पर्वत समझती है ॥ १० ॥

वीर रस

आजसे मैं धनुषपर धरने हाथ-रूपी कमलकी कोर रखकर
तबतक अपनी सुखी हुईं शीलों काज न करूँगा जबतक
अपने तीले बायोंसे काटे हुए राजशोकै मस्तकसे गिरी हुईं
नेत्रेकी माखासे मिळी हुईं भूखसे पृथ्वीकी सुगन्धित न बना
हुँगा ॥१॥ यह बाजक साधारण्य नहीं है । इसके अद्भुत धीर
पञ्चौकिक काम देखकर मैं इसपर रीक गया हूँ । फिर भी मुझे
विश्वास नहीं हो रहा है कि यह बाजक है । मुझे तो ऐसा

गान पढ़ता है कि इस धीर बाजकके रूपमें कुञ्ज ऐसी प्रतापकी
राशि इकट्ठी दिखाई दे रही है जो समझमें नहीं आती ॥ २ ॥
सबसे पहले शत्रुका सिर न काट पानेके चोभसे जब दूसरे
वीरोंके सिर बटकर मीन हो रहे थे उस समय युद्धाग्निके कटे
सिरकी आहुति देते हुए जिसने 'मैं इसका नहीं हूँ' इस अपने
त्यागमय कपनको ही मन्त्र बना दिया उस विक्रमके मित्र
मन्त्रमुक्त वीरका वर्णन कैसे किया जा सकता है ॥३॥ जिससे
युद्ध करतेसमय हृन्दी भी ऐरावतकी पीठपारके आधे प्रासनपर
शवीको बैठाकर उसकी मोट (भाङ्) में अपने प्राय बचाना है
उस महाधीर रावणके छहकी धारकी जानपर खेबकर कौन सह
सकता है ! ॥ ४ ॥ अत्रापामा कहता है—'अर्थाँकी चमकने
भरी हुईं शत्रुकी सेनाके रूपमें दिखाई देनेवाजे इस सज्जुदमें
जब सब धनुषधारियोंके गुण मेरे पिता श्रोत्राचार्य सेनापति
बनकर बाहवाग्निके समान उपरिधत हैं तब दे कर्प । बरशाने-
की कोई बात नहीं । हे कृपाचार्य ! तुम भी मनमें रुझा न की । जब मेरे
पिताकी स्वयं धनुष लेकर युद्धका सारा मार सँभाजे हुए हैं
तब हरनेकी क्या बात है ! ॥ ५ ॥ हृर सुमीवने कन्ध
बनाकर जो वृष्ट फेंके थे वे रावणकी छातीकी टकरसे निकली
हुई द्वाग्नितसे कुञ्ज सह ही रहे थे कि बपर बल, हृर फेंके हुए
पर्वतके शिखरको रावणने धरनी मुजाधोंने ऐसा मसज दिया
कि अपने कुञ्ज धीरे अर्धनोंके जलसे ही सगकर वह कीचड़

प्रहितश्च शैलशिखरो लङ्केन्द्रहस्तावंतीपिष्टोऽयं निज-
कुञ्जनिर्भरजलैर्जम्बालपिण्डायते ॥६॥ अस्त्रीधप्रसरेण
रावणिरसौ यं दुर्ग्रशोभागिनं चक्रे गौतमशाययन्त्रित-
शुजस्येमानमाखण्डलम् । कच्छागर्तकुलीरतां गमयता
वीर स्वया रावणं तरसंसृष्टमहो विशल्यकरिणी
जागति सःसुव्रता ॥ ७ ॥ आकर्षणैलितः श्यामो
वयसाऽशीतिपञ्चकः । रणे पर्यचरद्गौणो वृद्धः पोडश-
वर्षवत् ॥ ८ ॥ आजन्मप्रवृत्तौ पृथुलभुजशिलास्त-
म्भविभ्राजमानज्याघातश्रेणिसंज्ञान्तरितवसुमतीचक्र-
जेभ्रप्रशक्तिः । धनुःपीठे धनास्त्रवर्णफिण्णकठिने संत्यु-
वानः पृषत्काऽप्राप्तो राजन्यगोष्ठीघनगजसृगयाकौतुकी
जामकुञ्जं ॥ ९ ॥ उरः कृत्वाऽधैर्ध्वं भण्डिफलकंगाढ-
स्थितकुञ्जं भुजावालम्बैर्हीत्यमरवनिता व्योमगृहणा ॥
अपहृरिणैश्च स्वरितपदमाभाष्य सहसा हतं हस्तालम्बै-
र्हरति-सुरलोकं रणमुखात् ॥ १० ॥ पृकृतश्च सुरसुन्द-

रीजनः श्रीः प्रतीचञ्चति युयुत्सुमन्यतः । पाप्मना सह
पलायतोऽप्यशश्रूकतः कुलकलङ्ककारणम् ॥ ११ ॥ एक-
स्मिन्ननु पातितेऽपि शिरसि क्रोद्योपशान्तिः कुतः
स्थावैकिन्तु तथा स्वमूर्धपतनं दृष्टं न यत्ररिखा ।
एतन्मूर्धबहुत्वतः फलमिदं स्वप्नो मया लम्पयते द्विभ्रं
द्विभ्रमवेदथ राक्षसपते यस्मादसृस्त्ययसि ॥ १२ ॥
कण्ठश्रेणिविश्रीर्मयाखण्डिचिरप्राग्भारभद्रयुत्थेन स्मे-
मुखेन होमशिखिनः सन्पुच्छणाकाङ्क्षिणा । भ्रमङ्कः
शितिकण्ठकण्ठफणिने फूत्कारहेतोः कृतः शौण्डीर्य-
व्रतनुपुर्ज्जटिरर्यं किं वर्यते रावणः ॥ १३ ॥ कपोले
जानक्याः करिकलभदन्तद्युतिमुपि स्मरस्मेरं गण्डो-
द्भ्रमरपुलकं वक्त्रकमलम् । मुहुः पश्यन्पृष्टएवन्जनि-
चरसेनाकलकलं जटाजूटप्रस्थिं द्रव्यति रघूणां परि-
वृद्धः ॥ १४ ॥ काञ्चिद्विपत्कङ्कहतोचमाङ्गः सद्यो विमान-
प्रभ्रुतामुपेत्य । चामाङ्गसंसकसुराङ्गनः स्वं नृत्यरक-

पिण्ड वन गया ॥ ६ ॥ इन्द्रके पुत्र बालिकी प्रशंसा करते हुए
कोई कह रहा है—'गौतम ऋषिके शापके कारण जिसका बाहुबल
काम नहीं कर पा रहा था उस इन्द्रको रावणके पुत्र मेघनादसे
हराकर चारों ओर उसकी दुष्कीर्ति फैला दी। हे वीर ! तुमसे
मेघनादके पिता रावणको जलाशयके तीरपर गढ़में छिपे हुए
केकड़ेके समान ऋषीक बनाकर वह कलङ्क दूर कर दिया और
स्पष्ट कर दिया कि अब भी अपने पिताके अपमानका बदला
देनेवाले पुत्र संसारमें नीवित हैं ॥१०॥ पचासी वर्षकी अवस्थामें
श्यामवर्णके द्रोणाचार्यके बाळ कानतक एक लुके थे किन्तु वृद्ध
होते हुए भी वे युद्ध-वेत्रमें सोलह वर्षके बालकके समान
उज्ज्वल रहे थे ॥ ८ ॥ जन्मसे प्रदाचारी वे परेश्वराम आ रहे हैं
जिनके विशाल बाहुलसी परपरके खममोंपर धनुषकी कोरकी
रगड़के पड़े चमक रहे हैं, भ्रूमण्डलके वित्तयकी भाङ्ग जिनके
नाभके साथ-साथ चलती है, जो अस्त्रीकी घोरसे घटे खाई हुई
कद्दी छातीपर अपने पाणं पैना रहे हैं और जो राजसमाजकी
जंगली हाथियोंका आखेट करनेके लिये सदा जागृत रहते
हैं ॥ ९ ॥ नायककी सुन्दरता कहीं हृदयमें गड़कर अस्पृश-
धर्मको नष्ट न कर दें हृदयमें छौतीपर कठोर स्तनरूपी
भण्डिका पटरा लगाकर हृदयको न बिंध सकने योग्य बनाकर,
स्वर्गके भवनकी अस्पृशता वरसे ही बौद्ध फैलाकर, शीघ्र पाप
पहुँचकर और अचानक 'घाघो' कहकर, अपने हाथका सहारा
देकर, युद्धभूमिमें मरे हुए वीरकी युद्धभूमिसे स्वर्ग ले जा रही

हैं ॥ १० ॥ इधर युद्धके लिये लज्जिते हुए वीरकी प्रतीक्षा
देवलोकोकी सुन्दरी कर रही है; उधर अपनी भी उसीकी
प्रतीक्षा कर रही है। एक ओर उसके पापके साथ उसका
अपयश भाग निकला है तो दूसरी ओर कुञ्जमें कलङ्क
लगनेका ('घिक्कार है इससे शत्रुको पीठ दिखाई' यह
बात-उत्पन्न होनेका) कारण भाग निकला है ॥ ११ ॥ हे
राक्षसपति रावण ! तेरा एक ही सिर काटकर मेरा क्रोध
तबतक भला कैसे शांत हो पायेगा, जबतक तू अपने सब सिर
कटते न देखे। तेरे बहुतेरे सिर होनेका मुझे पही ज्ञान
होगा कि तू अपना एक-एक सिर कटता देख-देखकर अपने
प्राण छोड़ेगा ॥ १२ ॥ लहराती हुई जटाधवाले शिवजीके
सम्मुख सिरोंकी आदृति देते समय गलोंसे बहवा हुआ
अत्यधिक रक्त पड़ जानेके कारण जब क्षमि मन्द होने लगी तब
उसे जगनेकी कूक मारनेके लिये जिसने मुक्कराकर
शिवजीके गलेपर पड़े हुए सॉपिके भीँहके सङ्केतसे आज्ञा दे
दी और अपने अश्लक्ष्णसे ही शिवजीको मसक कर लिया
उस रावणका क्या वर्णन किया जा सकता है ! ॥ १३ ॥
इधर हाथीके बच्चेके दूतिकी कान्तिकी सुन्नड़ करनेवाले
और कामके प्रभावसे घने उठे हुए रोमाञ्चसे भरा सीताका मुख-
कमल देखकर और उधर रापसोंकी सेनाका कोलाहल सुन-
कर काम तथा वीरताके दोनों भावोंमें पड़कर राम-
चन्द्रजी अपनी जटाकी गाँठ बसकर बाँध रहे हैं ॥ १४ ॥

वयं समरे ददर्श ॥ १५ ॥ कृष्ण केयेषु भार्या तथ तव
 च पयोस्तस्य राक्षस्तयोर्धा प्रत्यक्षं भृपतीनां मम सुधन-
 पतेराग्न्या घृतदासी । तस्मिन्चैरानुबन्धे यद् किम-
 पहतं वैर्हताये नरेन्द्रा घाहोर्वीर्यातिभारद्रविणगुरुपदं
 मामजित्तैव गर्वाः ॥ १६ ॥ कोऽप्येष सखिदतशिरा
 धिकसन्मुखश्रीः प्रारब्धताएवधविधिः सुरकामि-
 नीभिः । श्रालोभ्यते निजकरामिनयानुरूपव्यापारि-
 तेक्षणनिवेदितसखसारः ॥ १७ ॥ जुष्टाः संश्रासमेते
 विजहित-हरयो भिन्नमत्तमकुम्भा युष्मद्देहेषु लज्जां
 दधति परममौ सायका निष्पतन्तः । सोमित्रे तिष्ठ पात्रं
 त्वमसि न हि रूपां नन्वहं मेघनादः किञ्चित्संरम्मली-
 लानियमितजलधि राममन्धेययामि ॥ १८ ॥ स्रद्धास्ति-
 ष्णन्तु मत्तमकुम्भकूटादृहासिनः । एकदोर्दण्डयोपेऽपि
 कः सहेत परामवम् ॥ १९ ॥ चत्वारो व्यमृत्यजः स

मगवान्कर्मोपदेशा हरिः संश्रामाध्वरदीक्षितो नर-
 पतिः पत्नी शुद्धोत्पत्ता । कौरव्याः पशवः प्रियापरि-
 भवक्षेशोपशान्तिः फलं राजन्योपनिमन्त्रणाय रसति
 स्फोटं यशो दुन्दुभिः ॥२०॥ चापाचार्यस्त्रिपुरविजयो
 कार्तवीर्यो विजयेयः शस्त्रध्वंसनः सदनमुदधिर्भूरियं
 हन्तकारः । अस्त्वैवैतरिकमु कृतयतो रेणुकारुष्टवाधो
 यक्षस्पर्धस्तव परशुना लज्जते चन्द्रहासः ॥ २१ ॥
 क्षिप्त्रेऽपि शस्त्रभिन्नेऽप्यापत्यतितेऽपि निर्विशेषेऽपि ।
 इतुमति कृतप्रतिघो दैवमदैव यमोऽप्ययमः ॥ २२ ॥
 जन्मेन्द्रोरमले कुले व्यपदिश्वश्रवापि घत्से गदां मां
 दुःशासनकोप्यशोर्णतसुराक्षीयं रिपुं भापसे । धर्मान्चो
 मशुकैटभद्विधि हरावप्युद्धतं चेष्टसे मन्नासानृपयो
 विहाय समरं पङ्केऽधुना लीयसे ॥ २३ ॥ जीयताऽपि
 निहतस्य वा रणे धर्मं एव हि नरस्य योधिनः ।

शुक्र की तब वारासे सिर कटते ही एक वीर तत्काज विमानपर
 बैठकर देवता हो गया, उसके बाँधे भागमें एक घण्टारा था गई
 और उस विमानसे ही वह रणस्थलमें नाचते हुए अपने घण्टा
 ग्राह देखने लगा ॥ १५ ॥ भीमसे दुर्वाचन कहता है—'संसारका
 स्वामी हूँ मैं । मेरी आज्ञासे तुममें जीती हुई इस दासी द्रौपदीकी
 तुम्हारे लीसे भीरु, अर्जुन लीसे नरपशु और राजा युधिष्ठिर,
 भृशुक, सहदेव आदि रामाधीके सामने वाल पकड़कर
 लींचा गया । धातवमें वैरका कारण तो यह है । तब यह
 कथाघो कि जिन राजाओंको तुमने मार डाला उन्होंने तुम्हारा
 क्या बिगाड़ा था ! अपने बाहुके पराक्रमके भारकी सगर्जतिपर
 विशाल अभिमान करनेवाले सुभु दुर्वाचनको विना जीते यह
 तुम क्यों व्यर्थ गात्र बना रहे हो ॥ १६ ॥ जिस वीरका सिर
 कट गया था, सुभु घमक रहा था, घण्टा नाच रहा था, पकड़ते
 हुए भोटोंके साथ-साथ शौलं तुमकर उसके बजका परिषय दे
 रही थीं उसे धरण करनेके लिये स्वर्गकी देवियों प्रतीपा कर रही
 थीं ॥ १७ ॥ मेघनाद कहता है—अरे निर्बल पन्द्रो ! तरो
 भी । मतवाले हाथियोंका मस्तक फाड़नेवाले वे हमारे बाण
 तुम्हारे शरीरपर पड़नेमें भी लज्जते हैं । लपमण्य ! तुम भी लखे
 रशो । मैं तुमपर शोध नही करता । मैं मेघनाद उस रामको
 हँस रहा हूँ, जिसने घोड़े ही प्रयागसे समुद्रको बाँध लिया
 है ॥ १८ ॥ मतवाले हाथियोंके मस्तकपर बरसकर हँसनेवाली
 इन तब वारांकी हो बात दूर रही, केवल एक युवा बची रहनेपर
 ही भीम वीर विघ्नसे अपमान सह सकता है ॥ १९ ॥ भीम

करते हैं—'इस रणपत्रमें यह कैसे खरसे बनता हुआ
 कार्तिका नगाड़ा ही राजाओंको निमन्त्रण है, इम चार
 भाई ही 'शोता' हैं, कर्मका उपदेश देनेवाले मगवान् कृष्ण
 आचार्य हैं, नियम पाबनेवाली द्रौपदीके साथ महाराज युधिष्ठिर
 ही यजमान हैं, लक्ष्मी दुर्वाचन आदि इसमें पद्य हैं और
 द्रौपदीके मनमें अपमानसे जो दुःख उत्पन्न हुआ है उसे
 दूर करना ही इसका फल है ॥ २० ॥ हे परशुराम ! धनु-
 विद्याके आचार्य और त्रिपुरासुरके संहारक स्वयं शूद्र ही
 तुम्हारे आचार्य हैं, स्वामिकाविकेयको तुमने जीत लिया है,
 अपने बाणोंसे समुद्र सुखाकर उसमें तुमने धपना निवास
 बनाया है और बार-बार तुमने इस पृथ्वीको दानमें दिया है,
 ये सब बातें ठीक हैं किन्तु अपने त्रिस फरसेमें तुमने धरती
 माता रेणुकाका गात्र काटा है उससे होड़ करनेमें हमारे सद्रको
 लज्जा लगती है ॥ २१ ॥ बाणोंसे क्षिद्र जानेपर भी, शस्त्रोंमें
 कट जानेपर भी, विपत्तियों पड़ जानेपर भी और धरत्र-गरत्र
 काज देनेपर भी यदि इतुमानजी प्रतिज्ञा करके खड़े हो जायें
 तो माग्य भी दुर्भाग्य हो जाय और यमराज भी यमराज न रह
 जायें ॥ २२ ॥ जबाशयमें क्षिद्र हुए दुर्वाचनसे भीम कहते हैं—
 'तुम अपना जन्म निर्मल चन्द्रवंशमें बतलाते हो । अतः
 गदा तुम्हारे पास है, दुःशासनके नाम रघिर-रुनो मद्रिरासे
 मतवाले सुभु भीमको तुम अपना शत्रु बतलाते हो, अपने
 अभिमानमें चूर होकर तुम मशुकैटमको मारनेवाले मगवान्-
 कृष्णके साथ भी सह्यहताका व्यवहार करते हो, फिर भी हे

निश्चयात् मरणं रणाजिरे नैव भीरुजरातरः क्वचित्
 ॥ २४ ॥ जीवन्नेव श्रुतोऽसौ यस्य जनो वीर्य वदन-
 मन्योन्यम् । कृतमुखमङ्गो दूरात्करोति निर्देशमङ्गुल्या
 ॥ २५ ॥ तात त्वं निजकर्मणैव गमितः स्वर्गं यदि
 स्वस्ति ते ब्रूमस्त्वेकमिदं बहुहृत्कथां तातान्तिकं
 मा कथाः । रामोऽहं यदि तद्दिनैः कतिपयैर्बोडान-
 मत्कन्धरः सार्धं यन्पुत्रजैः सुरेन्द्रविजयी चका स्वयं
 राघवः ॥ २६ ॥ ते क्षत्रियाः कुण्डलिनी युवानः परस्परं
 सायकविद्यताङ्गाः । कुम्भेषु लज्जाः सुसुवर्गजातां
 कुचेपु लज्जा इव कामिनीनाम् ॥ २७ ॥ त्वय्यर्घास-
 नमाजि किन्नरगणोद्गीतैर्भवद्विक्रमैरन्तःसम्भृतमरत-
 रोऽपि भगधानाकारमुतो कृती । उन्मीलद्भवदीय-
 दक्षिणमुजाजोमाञ्ज्विद्धोघरद्वाग्धरेव विलोचनैरभि-
 नयत्यानन्दमाखण्डलः ॥ २८ ॥ धीवरो मास्यवानेकः
 प्रविष्टो वाहिनीमपि । यन्नोतिगुणजालान्तः पतन्त्य-

निमिषाः क्षणात् ॥ २९ ॥ धृतघनुषि शौर्यशालिनि
 शैलान नमन्ति यत्तदाश्चर्यम् । रिपुसंज्ञकेषु गणना
 कैव वराकेषु काकेषु ॥ ३० ॥ न कालस्य न शकस्य
 न विष्णोर्विचक्षस्य च । श्रूयन्ते तानि कर्माणि यानि
 युद्धे हनूमतः ॥ ३१ ॥ न पाहि पाहीति यद्व्रवीदसुं
 ममोष्ट तेनैवमभूदिति कुधा । रणक्षितावस्य विरोधि-
 मूर्धभिर्विदश्य दन्तैर्निजमोष्टमास्यते ॥ ३२ ॥ न यद्द्वै-
 क्षिणावद्भिर्न तपोभिर्न विद्यया । न गच्छति तथा
 स्वर्गं यथा मर्यां रणे हतः ॥ ३३ ॥ नि पोते कलशो-
 द्भवेन जलधौ गौरीपतेर्गङ्गाया होतुं हन्त वपुर्ललाटदहने
 यावत्कृतः प्रक्रमः । तावत्तत्र मया विपदानगदीतारी-
 ङ्गम्भोरुहद्वन्द्वप्रखलदक्षवारिपटलैः शृष्टाः पयोरा-
 शयः ॥ ३४ ॥ नियन्तव्याः केन स्वयमुरसनावलि-
 सुभगाः स्वगाथा गायन्तो निजसदसि के नाम न
 भटाः । न तातुद्भवयामो य इह करवालद्वयमिलजम्प-

नरपुत्र ! त्वम हस समय मेरे ठासे युद्धभूमि छोड़कर वहाँ
 कीचढ़में क्या घुसे बैठे हो ? ॥ २१३ ॥ जीवित तथा मार प्राप्त हुए
 धीर पुरुषका युद्धमें लड़ना ही परम धर्म है क्योंकि युद्धमें
 मृत्यु होना कोई निश्चय नहीं है और कारण भी अज्ञ-धमर
 नहीं होते ॥ २१४ ॥ जिसका मुँह देखकर आपसमें लोग अपनी मुँह
 बनाकर उसे दूरसे ही उँगाड़ी दिखाते हैं वह मनुष्य जीते जी
 मरेके समान है ॥ २१५ ॥ प्राण छोड़ते हुए गटायुसे राम कह रहे हैं—
 'दे तात ! अपने मृत्यु कर्मके बदलकर स्वर्ग जा रहे हो तो जाओ,
 गुहारा मंगल हो ; किन्तु एक बात सुनते जाओ कि विताजीसे
 सीताके हरे जानेकी खर्षा न करना । यदि मैं राम
 हूँ तो भोदे ही दिनोंमें यह दन्द्रकी भीतनेवाला राघव
 अपने वपुर्भौके साथ स्वयं लाकर धीरे लज्जसे सिर कुहाकर
 वनसे ये सब बातें कह देगा ॥ २१६ ॥ एक दूरसेके बाणसे विधे हुए
 शरीरवाले और कुँडल पड़ने हुए तरुण क्षत्रिय, हाथियोंके कटे
 हुए मरतकसे छटकर पड़े हुए ऐसे जान पड़ते हैं मानो नवविधो-
 के रत्नोंसे सटे पड़े हों ॥ २१७ ॥ किसी राजाकी प्रशंसामें कोई
 कह रहा है—'जब आप इन्द्रके भाधे सिंहासनपर बैठते हैं उस
 समय दिग्गज लोग आपके पराक्रमकी जो प्रशंसा करते हैं
 उसे सुनकर इन्द्रकी बाह होता है पर इन्द्र से अपने मनका
 भाव दिवानेमें बड़े श्रुतक हैं इसलिये आपकी उठी हुई दक्षिण
 मुभाके रोमाञ्जके शरभके बहते हुए आँसूमें भरे हुए वैश्रानि
 आभरणका ही प्रशंसा करते हैं ॥ २८ ॥ थोड़े बुद्धिवादा

(धीवरूपी) मास्यवायु यद्वर (मालावाजा) अकेला सेनामें
 (नदीमें) ऐसा पैठा कि उसके नीतिके बोरोंवाले (सूतवाले)
 जाळके राक्षस (बड़े मच्छ) खपमें ही गिरने लगे ॥ २९१ ॥ वह
 बोर पुरुष जब अपने हाथमें धनुष उठा लेता है उस समय
 पदाङ्ग नहीं झुक जाते यही आश्चर्य है, फिर कीर्वाके समान
 बेचारे शत्रु से हैं किस गिनतीमें ॥ ३० ॥ युद्धमें हनुमानजीने
 जो कतव्य दिखा दिया वह यमराज, इन्द्र, विष्णु तथा कुबेरके
 सम्मन्धमें भी कभी नहीं सुनारें पदा ॥ ३१ ॥ शयभूमिमें हस
 धीरके विरोधियोंके सिर माने अपने थोठ हस कोचसे
 दर्ताते चबाए ढाल रहे हैं कि छे मेरे थोठ ! इसके
 सम्मुख तूने 'पचाघो, रचा करो,' नहीं कहा इसीसे यह
 दुहा हुई ॥ ३२ ॥ बहुत दक्षिणाजाले यज्ञसे, तपस्यासे धयदा
 विद्यासे भी मनुष्य वैसा स्वर्ग नहीं पाता जैसा युद्धमें मारकर
 पाता है ॥ ३३ ॥ कोई राजा स्वयं अपनी प्रशंसा करते हुए
 कहता है—जब शरभस्य मुनिने सद्गुरु सोलह खिया तब सद्गुरुकी
 पानी गद्गानी भी शत्रुके मस्तककी धागमें चपना शरीर होम
 कर देनेके लिये तैयार हो गई किन्तु उसी समय मैंने शत्रुओंके
 नगरमें शिवियोंके नेत्र-कमजोसे आँसुओंका प्रवाह बहाकर न
 जाने किन्तु सद्गुरु भर दिव ॥ ३४ ॥ ऐसे खोंकी कीन रोक
 सकना है तिनकी स्वतन्त्र जोगरूपी खता मनमाना दिखती ही
 रहती है अपना अपने घरके किन्तु ऐसे धीर हैं जो अपनी
 पदाङ्ग अपने मुँह गाते ही रहते हैं, किन्तु ऐसे लोग कहीं देखनेके

त्कारे चतुर्भुजिति न विलुम्पन्ति मिलिताः ॥ ३५ ॥
 नो तावत्कलयामि केलिरूपणे वामभ्रुवो लोचने तावत्प्र
 मणयावलीढमनसः पश्यामि मातुमुष्मम् । यावत्तार-
 कुठारपातनिपतप्रत्यधिपृथ्वीपतिभ्राम्यत्स्वर्षिकरीट-
 वक्षशिरसो भ्राम्यन्ति नो फेरवः ॥ ३६ ॥ पूर्णं शत-
 सङ्के द्वे पदातीनां नरोत्तमः । प्रजज्ज्याल रणे भीमो
 विधूम इव पावकः ॥ ३७ ॥ प्रागुच्चैश्शिरसं क्षुरप्रन-
 खरैः क्रौञ्चाद्रिदन्तावलं भित्वा हंसमयानि मौक्तिक-
 फलान्याकीर्य पर्यापिताम् । सैर्हीं वृत्तिमधिष्ठितेऽपि
 हि मयि क्षत्रेण कल्पेन ते दिष्ट्या कौतुकमामिरामिक-
 मसि त्वं कोऽपि वीराङ्कुरः ॥ ३८ ॥ प्रायेण सुकरं
 दानं प्रायेण सुकरं तपः । प्राणानपेक्षी व्यापारः पुन-
 र्धीरस्य दुष्करः ॥ ३९ ॥ भर्तृपिण्डान्दृष्टकरो यशः
 क्रयमहापणः । सुराङ्गनास्वयंमहादो रम्यः फालोऽयमा-
 गतः ॥ ४० ॥ भ्रूमात्रं कियदेतदर्शयमितं तत्साधितं

हार्पते यद्दारेण मयादेशेन चदति त्रिःसप्तहृत्यो जयः ।
 वीरोऽयं नयवाहुरीदृशमिदं धोरं च वीर्यतं तत्क्रो-
 धाद्विरम प्रसीद भगवत्प्रात्यैव पूज्योऽसि नः ॥ ४१ ॥
 भूरेपुदिग्वा नवपारिजातस्रजो रजोपासितवाहु-
 मन्थाः । गाढं शिवाभिः परिरम्यमाणाः सुराङ्ग-
 नादिलष्टभुजान्तरालाः ॥ ४२ ॥ मयासेनो यस्य प्रमद-
 यमदद्रासहचरैः शरैर्मुक्तो जीयन्धिरिव शरजन्मा
 समभवत् । इमां च क्षत्राणां भुजवनमहादुर्गवियमामयं
 वीरो धीमानजयदधिधिंशान्यसुमतीम् ॥ ४३ ॥ मा
 म्प्रे नैते निर्झिशा नीलोत्पलदलत्पियः । एते वीराय-
 लोकिन्या लक्ष्म्या नयनविभ्रमाः ॥ ४४ ॥ मूले पञ्च
 ततश्चतुष्टयमिति स्फुल्लसन्निवेशेः शिरःपुष्पैरभ्यतमाध-
 लोकनमितैरुच्छ्रोणितैरचितैः । हस्तस्पर्शवशेन मूर्ध्नि
 दशमं मूर्धानमारोपयन् शम्भोरद्भुतसाहसैकरसिकः
 कैर्न श्रुतो राघवः ॥ ४५ ॥ यत्कृत्तं दशमुखशिरस्तस्य

नहीं मिलते जो दो तलवारोंकी टकरकी कनकनाइट होनेपर
 झल्लें न मूँदें ॥ ३५ ॥ सुन्दर भीहोंवाली श्रपनी नाथिकाकी
 सूनी झल्लोंपर मैं तबतक ध्यान न दूँगा और प्रेम-भरे
 हृदयवाली श्रपनी माताका मुख भी तबतक न देखूँगा जब-
 तक मेरे तीक्ष्ण कुठारके धावसे गिरते हुए शत्रु-राजाओंके पक्षर
 खाते हुए सोनेके मुकुटमें कैसे हुए सिरोंके चारों ओर गोदङ्क
 न झौङ्कने लगे ॥ ३६ ॥ रथमें दो साहस पैदल सैनिकोंके गिर
 जानेपर वीर भीम पितामह ऐसे चमकने लगे जैसे दिना धुँधकी
 भाग हों ॥ ३७ ॥ जिसके लीले नरोंसे फ्रांच पर्वतके समान हाथीके
 बड़े भारी मस्तकके फरनेसे गिरे हुए हंसमय मोतीरूपी फव
 मानो 'बधाओ, बस करो' ऐसा कहकर रोक रहे हों उस विद-
 धैसी वीरतावाले मुझ वीर पुरपके सामने भी जो तुमने
 अपने चरित्रोचित कार्यसे एक मनोरम कौतुक उपस्थित कर
 दिया इससे जान पड़ता है कि श्रवण ही तुम किसी वीरके पुत्र
 हो ॥ ३८ ॥ प्रायः सब कुछ दान दे देना और तपस्यासे शरीर
 सुखा हाबना दोनों बहुत सरल काम हैं पर प्राणोंकी चिन्ता
 न करके सुदृढ़ कौशल दिखाना पड़ा कठिन है ॥ ३९ ॥ वह
 सुन्दर समय आ गया जब श्रमा पोषण करनेवाले स्वामीके
 ऋणसे उन्मुक्त हुआ था सबता है, यद्य मोक्ष लिया जा
 सकता है और जब म्बयं श्रमसारणं आकर गलेसे छिपट जा सकता
 है ॥ ४० ॥ परशुरामसे दशरथ कहते हैं—'पृथ्वी भरकी तो बात
 ही क्या, बड़े बड़े वीरोंने समुद्रतक फैले हुए अपने राज्य प्राप

जैसे महावीरके चरणोंमें श्रपित कर दिए । इस प्रकार इन्कीस
 बार श्रापकी विजय होती रही है फिर राम जो अभी उगते हुए
 वीर हैं । प्रथम वीरोंका नियम बड़ा कठोर होता है । इसलिये
 भावन् । श्राप क्षोप न कीजिए, मान जाइए, क्योंकि श्राप तो
 जन्मसे ही हमारे पूज्य हैं ॥ ४१ ॥ जो वीर रथमें मारकर देवता
 हो गए थे, जिनकी छातीसे पारिजातकी माळाके परागकी सुगंधि-
 से पूर्ण छातियोंवाली देवियों छिपटो हुई थीं वे भूमिमें गिरे हुए
 अपने उन शरीरोंकी देख रहे थे जिनमें पूज्य छिपटो हुई थी और
 जिन्हें चारों ओरसे गोदङ्कियों घेरे हुए थीं ॥ ४२ ॥ सरपतमें जन्म
 लेनेवाले कार्तिकेयने भी यमराजके भयानक दौतोंके समान जिन
 परशुरामके धावोंसे किसी-किसी प्रकार छुटकारा पाकर मानो फिरसे
 शरसे जन्म पाया उन वीर परशुरामने चरित्रोंके भयानक मुञ्ज-
 रकी मार । ये नीले कमलके समान चमकनेवाली तलवारें नहीं
 हैं, ये तो वीरोंकी ओर शत्रुतागने देखनेवाली लक्ष्मणीके नये-
 नये कटाच हैं ॥ ४४ ॥ अपने सिररूपी कूर्जोंसे पञ्चमुखी
 शिवकी पूजा करते समय जिसने पहले उनके पैरोंपर पाँव सिर
 चढ़ा दिए, फिर शिवजीके चार सिरोंपर रखे सने हुए
 अपने चार सिर माछाकार चढ़ा दिए और श्रव जो शिवजीका
 सर्वश्रेष्ठ पाँवों सिर देखते हुए अपना दसवाँ सिर उस पाँवों
 सिरपर हाथोंसे टटोले-टटोलेकर चढ़ाना चाह रहा है उस
 यदुस्य साहसी रावणका नाम किसने नहीं सुना ॥ ४५ ॥

तस्यैव कान्तो संक्रामन्त्यामतिशयवती शेषवक्त्रेषु
 लक्ष्मीः । यो यः कृत्वा दशमुखमुज्ज्वलस्य तस्यैव धीर्यं
 लक्ष्म्या दृष्यन्त्यधिकमधिकं वाहवः शिष्यमाणाः
 ॥ ४६ ॥ ये लङ्काधिपतिप्रतापदहनैः प्लुष्टास्त एव
 ब्रह्मा दिक्पालाश्च कदम्बकेन हनुमच्चिरैर्घलङ्काच्चि-
 पाम् । श्रीलौढाम्बरदिङ्मुखेन दधिरे सन्तोषमित्यग्निना
 दग्धस्योपघमञ्जिरित्पुत्र्ययं स्थाने जनोक्तिर्गता ॥ ४७ ॥
 येऽहम्पूर्विकया प्रहारमभजन् खड्गस्य मां छिन्धि मां
 छिन्धीत्युक्तिपराः पुरारिपुरतो लङ्कापतेर्मौल्यः ।
 ते भूमौ पतिताः पुनर्भवन्वानालोन्म्य मूर्धनो वरं
 याचिष्यन्त इमे हि नो वयमिति प्रीत्याऽदृष्टासं व्यथुः
 ॥ ४८ ॥ रथेभ्यो गजवाजिभ्यः संग्रामे वीरसङ्कराः ।
 पातितः पात्यमानाश्च दृश्यन्तेऽर्जुनताडिताः ॥ ४९ ॥
 रविमखिरपि निष्प्रेष्टः पादैस्तिग्मयुतेर्नानाकस्पृष्टः ।
 उखलतितरामिति को वा मनु्यं सोढुं क्षमो मानो ॥ ५० ॥
 रामः किं कुरुते न किञ्चिदपि च मातः पयोधेस्तर्ही

कस्मात्साम्प्रतमेवमेव हि ततो बद्धः किमग्मोनिधिः ।
 क्रीडाभिः किमसौ न वेत्ति यदयं लङ्कापतिर्वर्तते जाना-
 त्येव विभीषणः स्वनिकटे लङ्कापदे स्थापितः ॥ ५१ ॥
 लक्ष्मणो लघुसन्धानो दूरपातो च राघवः । कर्णो
 दृढमहारी च पार्थस्यैते प्रयो गुणाः ॥ ५२ ॥ लोकोऽ-
 थमस्तिष्ठतु तावदन्यः पराङ्मुखानां समरेषु पुंसाम् ।
 परम्योऽपि तेषां न द्विया मुखानि पुरः सखीनामपि,
 दर्शयन्ति ॥ ५३ ॥ लोहितायति चादित्ये त्वरमाणो-
 घनजयः । पञ्चविंशतिसाहस्राभ्रिजवान महारथान्
 ॥ ५४ ॥ वयस्याः क्रोष्टारः प्रतिशृणुत बद्धोऽञ्जलिरयं,
 किमप्याकाङ्क्षामः क्षरति न तथा वीरचरितम् । मृता-
 नामस्मार्कं भवति परवश्यं वपुरिदं भवद्भिः कर्तव्यं न
 हि न हि पराचीनमरणम् ॥ ५५ ॥ वीरोऽसौ किम्
 वर्यते दशमुखश्छिन्नैः शिरोभिः स्वयं यः पूजास्रजः
 मुस्तुको घटयितुं देवस्य खट्वाङ्गिनः । सुधार्थी हरः-
 कर्णसूत्रमुज्जगव्याकर्षणायोद्यतः साटोपं प्रमथैः

रावणका जो जो सिर कटता जाता था उसकी कागि वचे हुए
 मुखोंमें समाती जाती थी, अतः, ये वचे हुए मुख वीर भी
 अधिक कागितवान् होते जाते थे वीर उसकी जो-जो मुखा कटती
 चलती थी उसका वच पाकर शेष मुखाएँ पराक्रमते वीर भी
 अधिक पुँडने लगती थीं ॥ ४६ ॥ हनुमान् द्वारा लकाजलाए जानेपर
 सम्पूर्ण दिशाओं वीर आकाश-तक फेला हुआ चिनगारियोंका
 समूह देखकर उन प्रदेशों वीर दिग्बाहोंके यदा सन्तोष हुआ
 तो रावणके प्रतापरूपी अग्निते जब चुके थे । इससे यह कहा-
 वत भी परितोष हो गई कि जलके ही भीषण अग्नि ही है ॥ ४७ ॥
 शिष्योंके सम्मुख रावणके जिन सिरोंने 'पहले मुझे काटो,
 पहले मुझे' ऐसा कह कहकर खट्वाके वार भेजे थे उन्हींने
 पारतोपर गिरकर जब नये सिर उगे देखे तो भ्रमके मारे यह
 कह-कहकर ठडाकर हँसने लगे कि 'ये हम नहीं हैं' अर्थात्
 हमारे धोरेमें इन्हें न काटा जाय, हम वीर थे भिन्न भिन्न हैं
 ॥ ४८ ॥ जब अर्जुनके बाण खजने लगे तब वीरोंके समूह
 रण, हाथी तथा घोड़ोंपरते गिरते वीर गिराए जाते हुए ही
 रिसाई पड़ रहे थे ॥ ४९ ॥ जब बिना प्रायवासा सूर्य-
 बान्त मयि भी सूर्यके पार (दिव्य, पर) धू जानेपर जब
 बट्टा है तब स्वामिमानो पुत्र परमान हो जानेपर भखा धपना
 मध्य देते लोक सकेग ॥ ५० ॥ रावण : राम क्या कर रहा है ?
 उत्तर : हुए भी तो नहीं । रावण : तब समुद्रके धीरेपर नहीं

थाया ? उत्तर : यों ही भा गया है । रावण : समुद्रपर पुत्र
 क्यों बाँधा ? उत्तर : खेज खेजमें बाँध लिया । रावण : क्या वह
 नहीं जानता कि यहाँ लङ्काका स्वामी रावण रहता है ? उत्तर :
 रावण जानता है किन्तु उसने तो अपने समीप ही विभीषणको
 लङ्कापतिके पदपर बैठा लिया है ॥ ५१ ॥ वेगसे बाण खजने-
 में लक्ष्मण प्रसिद्ध थे, रामका बाण दूरतक जाता था वीर
 कर्णके बाणोंका प्रहार प्रथम होता था पर अर्जुनमें ये तीनों
 गुण थे ॥ ५२ ॥ युद्धमें पीठ दिवानेजाके लोग अशुभ क्रोद्धमें
 जायेंगे यह बात तो दूरकी है, यहाँ तो उनको जिष्यो भी अपनी
 सलियोंके सामने खजके मारे मुँह नहीं दिशा पातीं ॥ ५३ ॥
 लघुवध-वधके अवसरपर संध्या समय खज होते हुए सूर्यको
 देवकर उठावके अर्जुनने पचीस सदृश महारथियोंको मार डाला
 ॥ ५४ ॥ दे भाई गीदड़ो ! बाण खीर्णिते हाथ जोड़कर प्रार्थना है कि
 हमारी इतनी बात मान खीर्णित कि मर जानेपर आगमें संस्कार
 हो जानेसे वीरोंकी सद्गति नहीं रहती । इसलिये बाण खीण
 अपने पुराने नियमोंका अर्थात् मृतकोंको आनेका नियम न
 पाएँ ॥ ५५ ॥ उस रावणका कौसे वरदान किया जा सकता है
 जिसने भगवान् संस्कारके लिये अपने हाथते अपने दूध मखक
 काटकर वनकी मुषबमाजा बनानेकी उरकपट्टामें संस्कारके गलेमें
 लिपटे हुए वामुडी नागको होरा बनानेके लिये पीचनेको हाथ
 बढाया वीर संस्कारके गव प्रमचोने मीहें देदो करके कटे

कृतञ्चक्रुदिभिश्चिद्व्यन्तरे धारितः ॥ ५६ ॥ शला-
शस्त्रिकथेय काननमगाद्गोर्वाणपरिष्वगमाः पन्थानो
दिवि संकुचन्ति वसुधा वन्ध्या न सुने भटान् ।
लक्ष्मीरप्यरविन्द्रसौधवलभीनिव्यूहपर्यङ्किवाविश्रान्तै-
रलिभिर्न कुञ्जरघटागण्डोत्करैर्मोदते ॥ ५७ ॥ शूराः
श्रोत्रपथे न नः कति-कति प्राञ्जः पदं चक्षिरे तेपामेव
विलह्य साम्यसरणिं जागति लङ्घाभटः । यद्दोर्मण्डल-
गाढपीडनवशान्निष्ठयूतकच्छटाशङ्कामङ्कुर्यन्ति शङ्क-
रगिरेरघापि चातुद्रथाः ॥ ५८ ॥ सन्तुष्टे तिसृणां पुरा-
मपि रिपी कण्डूलदोर्मण्डलीकोडाकृत्सपुनःप्ररूढशि-
रसो वीरस्य लिप्सोर्वरम् । शरच्छादैत्यपराञ्जि यस्य
कलहायन्ते मिथस्त्वं वृशु त्वं वृषिवत्यभितो सुखानि
स दशग्रीवः कथं वर्यते ॥ ५९ ॥ सम्मूर्च्छितं संयुग-
सम्भहारैः पश्यन्ति सुप्तप्रतिवृद्धतुल्यम् । श्यात्मानम-
ङ्गेषु सुराङ्गानानां मन्दाकिनीमाचलवीजिताङ्गम् ॥ ६० ॥

सन्धानक्षय एव राघवशरैरेव वाहवः पण्डितास्तदा-
शान् परिहृत्य शीघ्रमपरे कर्पन्त्यमर्षाद्भुतः । प्राच्छा-
तु दशाननस्य विदलदण्डमपूर्णं गिरं मूर्धानः परिपूर-
यन्ति विशिखेरन्यत्र नीता अपि ॥ ६१ ॥ सप्तपट्टि
हताः क्रोड्यो वानराणां तरस्विनाम् । पश्चिमेनाक्ष-
शेपेण मेघनादेन सायकैः ॥ ६२ ॥ समरविहरदस्मद्भ-
ल्लिनिःपातभिन्नप्रतिनरपतिभिन्नाद्भास्यतो विन्व-
मध्यात् । वयमहह धरायां पातयामः पताकावसनपय-
नलोलं वारि दिव्यापगयाः ॥ ६३ ॥ सलीलयातानि
न भर्तुरभ्रमोर्न चित्रमुद्यैःश्रवसः पदक्रमम् । अशुद्रुतः
रुंयति येन केवलं वलस्य शत्रुः प्रशंसं शीघ्रताम्
॥ ६४ ॥ स्वर्गस्य मार्गो वहवः प्रदिष्टास्ते कृच्छ्रसाध्याः
कुटिलाः सविघ्नाः । निमेषमात्रेण महाफलोऽयमुद्ध
पन्थाः समरे व्यसुत्वम् ॥ ६५ ॥ स्वेषूत्कृत्य हृतेषु
मूर्धसु जयादश्रेः स्फुटित्वा यद्विव्यांकीर्णेष्वलिकेषु

फटकारे हुए वासुकीकी हीनकर बीचमें ही रोक दिया ॥ ५६ ॥
राजाकी प्रशंसामें कोई कवि कहता है—'आपके प्रभावसे
संसारमें युद्धकी चर्चा ही जंगलकी घोर भाग गई, आकाश
मार्गमें देवताओंका ताजी घजाना बन्द हो गया, पृथ्वीने
बाँक होकर वीर डपटन करना ही छोड़ दिया, खपनी भी
मतवाले हाथियोंके मद टपकारे हुए गाजोंके बदले
रुमालकी छटाखियोंके पर्लंगपर विभ्राम करनेवाले भीरोंके साथ
सुल पाने लगी' ॥ ५७ ॥ धैरे तो हम लोगोंके कानोंमें
बहुतसे अच्छे-अच्छे घोरोंकी कहानियाँ भरी पड़ी हैं
किन्तु इन सबसे बढ़कर तो लंकाका वह वीर है जिसकी
सुभाओंसे निचोड़ी हुईं पातुके शीलोंकी धारणें आज भी
रफके ध्वजारोंका भ्रम उत्पन्न कर रही हैं ॥ ५८ ॥ शिवजीसे
बरदान चाहनेवाले राघवने अपनी प्रयत्न सुजाओंसे जो सिर
काटे थे त्रिपुरके शत्रु शंकरजीकी कृपासे फिर निकल आए, पर
वे सुख शिवजीसे प्रार्थना करके दीन नहीं बनना चाहते थे इस-
लिये त्रिस राघवके मुलोंमें परस्पर हठी घातपर रुग्ण होने
लगा कि पहले तुम बरदान माँगो, पहले तुम माँगो, ऐसे
सीरका मजरा कौन बर्णन कर सकता है ॥ ५९ ॥ युद्धमें प्रहारोंसे
सूर्यद्वय हुए वीर आकाश-मंगाले मिलाकर चकले हुए पवनसे
शीतल हुए अपने आपको अन्तराश्रमोंकी गोदमें लेते देखकर
ऐसा समझते हैं मानों साँझ जागे हों ॥ ६० ॥ धनुषपर बाण
धवाती हुई राघवकी जिन सुजाओंकी रामके बाण काट डालते हैं

उनके बाण छोड़कर राघवकी शंभु मुजाएँ क्रोधमें भरकर दूसरा
धनुष खींच रही हैं और अपनी बोली सुँइसे निकलते ही बाण
लग जानेसे जीम लटपटा जानेपर भी कटक दूर जा पड़े हुए
सिर भी राघवकी उस अघूरी बाणोंकी पूरी कर ही दे रहे हैं
॥ ६१ ॥ अन्तमें सन्ध्या समय मेवनादने सद्सत्त करोड़ बलवान्
धानरोंको बाणोंसे मारकर गिरा ही दिया ॥ ६२ ॥ रणस्थलमें
छोड़े हुए हमारे बाणोंके लगनेसे मरे हुए शत्रुओंने त्रिस सूर्य-
मण्डलको फाड़ दिया है उस सूर्यमण्डलसे हम आकाशगद्गाका
बह जल भूमिपर गिरा रहे हैं जो हमारी पताकाके बर्षोंसे
फड़फड़ाकर निकलते हुए प्रयत्न वेगसे दिल् रहा है ॥ ६३ ॥
हिरण्यकशिपुने जय रणमें हनुका पीड़ा क्रिया उस समय
हनुने ऐरावत हाथोंकी मतवाली चाख तथा उच्चैःश्रवा घोड़ोंकी
सुन्दर घीमी चाखकी प्रशंसा न करके उनके भागनेकी ही
प्रशंसा की ॥ ६४ ॥ स्वर्गके जो बहुतसे मार्ग बताए गए हैं वे
सब कष्टसाध्य, डेढ़े-मेढ़े और बहुत विघ्नोंवाले हैं किन्तु युद्धमें
मर जाना ऐसा सीधा मार्ग है जो पलक मारते बहुत बड़ा
फल देनेवाला होता है ॥ ६५ ॥ अपने सिर काट काटकर आगमें
उनको छाहृति दे देनेके पश्चात् आगकी प्रचण्ड गर्मामें
जब वे चिटक-चिटककर बाहर आ पड़े तो फूटे हुए कपालपर
लिप्टी हुईं देवलिपिद्वारा रामायणकी घटना जानकर भी जो
अर्धकारमें भरकर मरणापर और भी अधिक क्रोधित हो हो उठ
-रहा था उस मागियोंके शिरोमणिय महावीर राघवसे कौन

देवलिपिभिर्दृष्ट्वाऽपि रामायणम् । चित्तेनास्पलितेन
वस्तुदधिकं प्रह्लाणमरीणयत् कस्तस्मै प्रथमाय
मानिषु महावीराय वैरायते ॥ ६६ ॥ स्वैरं कुन्त वै
तावत् सुमनःपातमाहव । अन्वथा सुमनःपातं कुम्भ-
कर्णः करिष्यति ॥ ६७ ॥ स्त्रीषु प्रधीरजननी जननी
तवैव देवी स्वयं भगवती गिरिजापि यस्य । त्यदो
पेशोरुतविश्रायमुखायलोकवीडाविदीर्णहृदया स्पृह-
यामभूवः ॥ ६८ ॥ हतेऽभिमन्यौ क्रुद्धेन तत्र पार्थेन
संयुगे । अक्षौहिणीः सप्त हत्या हतो राजा जयद्रथः
॥ ६९ ॥ हनोऽपि लभते स्वयं हन्ताऽपि लभते यशः ।
उभयं यो वहुगुणं नास्ति निष्फलता रथे ॥ ७० ॥ हा
तात तातेति स चेदनातः फण्डशृङ्गमूत्रकफानुलितः ।
घरं मृतः किं भवने किमाजौ सन्देहदन्तच्छुद्धभोमवक्रः
॥ ७१ ॥

कुरुणरसः अन्नभारि कृताभिमन्युहननप्रोद्धृतीव-
क्रुधः पार्थस्याकृतशाश्रवप्रतिकृतेरन्तःशुवा मुह्यतः ।

वैर जाने ! ॥ ६६ ॥ देवता लोग आपसमें कह रहे हैं—युद्धभूमिमें
जी खोलकर फूल बरसाओ, नहीं तो कुम्भकर्ण देवताओंको
ही गिरा गिराकर मार डालेगा ॥ ६७ ॥ तुम्हारे बाहुबलके
कम बलवाले अपने पुत्र कार्तिकेयका मुख देखकर जिसका हृदय
जलासे फटा जाता है वे भगवता पार्वती भी यहाँ बाहती हैं कि
मेरा भी पुत्र ऐसा ही होना चाहिये था । ऐसे तुम्हारे जैसे वीर
पुत्रको लक्ष्य करनेवाली माना हियोंने केवल एक तुम्हारी ही
मरना है ॥ ६८ ॥ रथस्थलमें अभिमन्यु मरे जानेपर क्रुद्ध
शत्रुनन सप्त अक्षौहिणी सेना नष्ट करके जगद्गुरु भी मार
गिरागा ॥ ६९ ॥ यदि मार जायगे तो स्वयं प्रयागे, यदि
शत्रुसोंका मारोगे तो यश मित्रेगा । दानों प्रकारसे तुम जागो-
का लाभ हा लाभ है, धीरके लिये युद्ध कभी निष्फल नहीं जाता
॥ ७० ॥ यनायो भला मन्त्र शीर कर्ममें क्षिपटक पोंदासे
'हाय बप्या ! हाय बप्या !' चिल्लाते हुए घरेमें मर जाना अच्छा
था भयंकर मुख बनाकर कोठ खवाते हुए युद्धमें मरना
अच्छा ! ॥ ७१ ॥

कुरुण रसः पदियोंके योग्य काम न करनेवाले शत्रुओंके
हाथमें अभिमन्युका वध हो जानेपर शिशुसुनको भयंकर क्रोध
हो चापा पीर कटुका बद्धान न चुका सकेसे जिसका हृदय
शोकसे ब्याकुल था उस शत्रुवही शीघ्र ही चलासे भरी
घरमें घनुपपर पड़ती है धीर यह 'हा मिय पुत्र !' शब्द बहने-

कीर्णं वाष्पकरैः पतन्ति धनुषि श्रीडाजडा दृष्टयो हा
वसेति गिरः स्फुरन्ति न पुनरिनीयन्ति चक्राद्बहिः
॥ १ ॥ अत्राकरुणं विलुठ सलिले निर्जला भूः पुरस्ता-
उज्जहाः शोषं वदनविहितेनामलभ्याः फलेन । स्थाने
स्थाने तदिति पथिकस्त्रीजनः फलान्तगात्रीं पश्यन्
सीतां किमु न रूपया वर्धितो रोदिनश्च ॥ २ ॥ अथ
बद्धजटे रामे सुमन्त्रे शृङ्गमागते । त्यक्तो राजा सुत-
त्यागाद्विष्वस्तैरिवासुभिः ॥ ३ ॥ अथेदं रत्नोभिः
कनकहरिणच्छुभविधिना तथा वृत्तं पापैर्बर्धयति
यथा क्षालितमपि । जनस्थाने शन्ये कर्णकण्ठैरार्य-
चरितैरपि प्राया रोदित्यपि दलति चञ्चलस्य हृदयम्
॥ ४ ॥ अथदस्त्रितवान्धवे स्वया विहितं साहसमस्य
तृष्णया । तदिद्वानपराधिनि प्रिये सलि कोऽयं कर्-
णोऽभिन्नक्रमः ॥ ५ ॥ अर्थो हि कन्या परकीय एव
तामथ सम्प्रेष्य परिश्रद्दीतु । जातो ममार्यं विशुद्धः
प्रकामं प्रत्यर्पितन्यास इवान्तरामा ॥ ६ ॥ अविशी-

को उद्यत तो होता है पर शब्द उसके मुखसे बाहर नहीं निकलते
॥ १ ॥ 'यहाँ गले गलेतक पानीमें हलकर चलो; आगे सूखी
भूमि है, शीर अपने मुँहका रूपावन शबिलेके फलसे दूर कर
लो !' इस प्रकार स्थान-स्थानपर यही हुई सीताजीको देखती
हुई मार्गमें चलते हुए यात्रियोंकी जिर्ण सहायुधुतिके साथ
फूट फूटकर रो रही थीं ॥ २ ॥ इसके पश्चात् जब रामचन्द्र-
जीने जटा बाँध लीं शीर सुमन्त्रजा वनसे घर आ गए तो
मानो पुत्रके परिश्रानसे श्रविरवासी बने हुए प्राणोंने भी राजा-
का परिश्रान कर दिया ॥ ३ ॥ सीतेका हरिण बनकर
पानी-राचसोंने अपने जिस कपट-व्यवहारके शुकृत्यसे अपने
सारे कुकृत्योंकी नीचा दिला दिया उसीको सोच सोच
कर रामके मनमें बढ़ा दुःख हो रहा है । सुने दृढकवचमें
रामचन्द्रका यह कर्णोज्ज्वल व्यवहार देखकर पथर भी रोप दे
रहा था और चञ्चल हृदय भी फटा जा रहा था ॥ ४ ॥ हे
सखी ! अपने बन्धु-भाण्डवोंकी चिन्ता न करके उनके लोभमें
पड़के तुम्हींने साहसका काम किया, यत्र बिना धरारापके ही
अपने प्रियने पुत्र यह कठोर व्यवहार क्यों कर रही हो ॥ ५ ॥
कन्या तो दुस्सती ही समझी होती है । प्राज्ञ ठले पतिके साथ
भेदभर मेरा मन पैसा ही रहता हो गया है जैसे किसीकी
घरीर लीटानेपर हृदय बहता हो जाता है ॥ ६ ॥ हे
सुमुखि ! तुम मेरे परकी बह दीप-कजिका हा मित्रका सुन्दर

एकान्तपत्रे नव्यदशे सुमुखि सम्भृन्स्नेहे । मद्गेह-
दीपकलिके कथमुपयातासि निर्वाणम् ॥७॥ असहायः
सहायार्थो मामनुष्यातवान्भ्रुवम् । पीड्यमानः शरै-
स्तीक्ष्णैर्द्रोणद्रोत्रिणुपादिभिः ॥ ८ ॥ अस्तङ्गते शशिनि
सैव कुमुदतो मे दृष्टि न नन्दयति संस्मरणीयशोभा ।
इष्टप्रयासजनितान्ययलाजनस्य दुःखानि नूनमति-
मात्रसुदुःसहानि ॥ ९ ॥ आदाय मांसमखिलं स्तन-
वर्जमङ्गान्मां मुख चागुरिक यामि कुक् प्रसादम् ।
सोदन्ति शय्यकथलप्रदधानभिन्ना मन्मार्गवोक्षणपराः
शिशवो मदायाः ॥ १० ॥ आपूर्णश्च कलाभिरिन्दुर-
मलो यातश्च राहोर्मुखे सज्जातश्च घनाघना जलधरः
शोर्णश्च वायोर्जघात् । उद्भिन्नश्च फलेप्रहिर्द्रुमथरो
दग्धश्च दायाग्निना त्वंचूडामणितं गतश्च जगतः
प्राप्तोऽसि मृत्योर्व्यग्म् ॥ ११ ॥ इयमिय मयदानच-
नन्दिनो चिदशनायजितः प्रसवस्थली । किमपरं दश-

कन्धरनेहिना त्ययि करोति करह्ययोजनम् ॥ १२ ॥
उत्खातदैवतमिवायननं मुरारेरम्नाचलान्मन्त्रित्मूर्धं
मिथान्तरिक्षम् । हम्भोर्भूमुञ्जि गते मुत्सेरमभ्यधं
पश्यामि हारमिव नाय करस्यह्यम् ॥ १३ ॥ कनकह-
रिणं हत्वा रामो ययौ निजमाश्रमं जनकननयां
प्राणेशोऽपि प्रियामविलास्यन् । दृढमुपगतैर्वापरा-
पूरैर्निर्मोलितलोचनो न विशति कुटोमाशातन्नुमपा-
शमयादसौ ॥ १४ ॥ छनककुपितैर्वापाम्भोभिः सदैव्य-
विलोकितैर्घनमसि गता यस्य मोत्या घृनापि तथा-
भ्यया । नवजलधरय्यामाः पश्यन्दिशो भवतां विना
कठिनहृदयो जीवत्येव म्रिये स तव म्रिय ॥ १५ ॥
कोऽहं ब्रूहि सखे स एव भगवानार्यः सखे राघवः के
पूर्यं वत नाथ नाथ किमिदं दासोऽसि मे लज्जणः ।
कान्तारे किमिहास्महे वत सखे देव्या गतिर्हृद्यते का
देवो जनकाधिराजतनया हा जानकि कासि हा ॥ १६ ॥

पंशुद्विषो अमीनक खुजो भी नहीं है, जो अमीनक नहीं बनो हुई
है और जिसमें स्नेह भरा हुआ है, तब तुम अमीनसे क्यों खुजो
जा रही हो । अथवा-त्रितका पतिरूपी (सुन्दर) पात्र नहीं दटा
है, जिसकी नहीं दटा (युवावस्था तथा बचो) अमी बनी हुई है,
जिसमें स्नेह, प्रेम तथा लज (भी भरा हुआ है ऐसी हे सुखी)
मेरे परके वीरकक्षी शयोति । तुम क्यों शुक गई ॥ ७ ॥ द्रोणा-
चार्य, अश्वत्थामा तथा कृपाचार्य आदि धीरोंके लीले बाणोंसे
पीडित होकर उसने असहाय अवस्थामें निरक्षय ही सहायताके
लिये मेरा स्मरण किया होगा ॥ ८ ॥ अर्द्धमाके अस्त हो जाने-
पर कुमुदिनीको सारी शोभा जाती रही, अथ वद पहलके
भौति भौतियोंको सुख नहीं दे रही है । सचमुच पतिके वियोगमें
खियोंको जो दुःख होता है वह अत्यन्त असह्य होता है ॥ ९ ॥
एक स्त्री बहेलियेसे कह रही है-हे बहेलिये ! स्तन छोड़कर मेरे
शरीरका सारा मांस लेकर मुझे द्रोह दो क्योंकि मेरे बच्चे अमी
पासतक खेना नहीं जानते, वे मेरी बात देखते होंगे और मेरे
न जानेसे व्याकुल हो जायेंगे ॥ १० ॥ कलाभौसे भरा हुआ
स्वप्न अर्द्धमा राहुके सुँहमें चला गया, अत्यन्त घना बादल
भी बायुके वेगसे तितर-वितर हो गया, फलसे लदा हुआ
सुन्दर पृष जंगलकी आगने जल गया और तुम जो संसारके
पूतमणिये थे मृत्युके काराज गल्लमें समा गए ॥ ११ ॥ कोई
रामसे कह रहा है-वह मय दानवकी पुत्री, इन्द्रको जीत लेने-
वाले मेघनादकी माता और अधिक बया कहें, रावणकी पानी

मन्दोदरी आरको हाथ जोड़ रही है ॥ १२ ॥ रजा हम्मीके
स्वर्ग चले जानेपर यह संसार बैसा हो दिखाई दे रहा है जैसे
मूर्ति उखाड़ लेनेपर विष्णु का मन्दिर, अस्ताचलमें क्षिपे हुए
सूर्यवाहा आकाश और बीचके सुमेरु दानेसे रहित हार दिखाई
देता है ॥ १३ ॥ सोनेके हरिय (मारीच) को मारकर रामचन्द्र-
जीने अपने आश्रममें आकर दूरसे ही देखा कि प्राणधारी
सीता बर्दा नहीं है । उस समय आँसूके प्रवाहसे उनकी आँतें
भरी जा रही थीं और वे अपनी आराके अश्वत्थम सीताके न
होनेकी आशंकासे कुटीमें घुस नहीं पा रहे थे ॥ १४ ॥ वियोगमें
विषित रामकी हरी हुई जानकीके प्रति उक्ति : हे म्रिये !
श्लेषका मूडा प्रदर्शन करके, अशुभज गिर.कर तथा दैन्यपूर्ण
दृष्टिवाली माता कौशल्यासे वन जानेके लिये रोकी जानेवाली
आप जिसके स्नेहके कारण वन आईं, वही आपका मिय
नवीन काले बादलोंसे काजी काजी दिशाओंको देखता हुआ
कठिन हृदय आपके विना जी ही रहा है ॥ १५ ॥ सीताके
वियोगमें विषित राम और लक्ष्मणका संवाद-राम : बताओ
मित्र मैं कौन हूँ ? लक्ष्मण : आप स्वयं भगवान् हैं । राम :
क्या कहा, राम ? ठीक है, ठीक है । आप कौन हैं ? लक्ष्मण : यह
आप क्या कह रहे हैं नाथ । मैं आपका दास लक्ष्मण हूँ ।
राम : तो हम लोग जंगलमें क्यों सहे हैं ? लक्ष्मण : देवी
सीताकी खोज कर रहे हैं । राम : कौन देवी ? लक्ष्मण : राजा
जनककी पुत्री । राम : हा जानकी ! हाय ! तुम कहो ॥ १६ ॥

गह्रपाशोयिताधिप्रकटजलचरोत्फालजातस्मितानां
 हेलाकृष्टाकंचन्द्राभिनयकृतमहाकुण्डलाभोगमाजाम् ।
 पीनांसस्थापिताशास्त्रिरदमदमपीमांसलस्थासकानां दूर्
 यातस्य घटस स्मरति दशशिरास्त्वच्छिद्युशुक्तीडिता-
 नाम् ॥ १७ ॥ गृह्णीषी सचिवः सखी मिथः प्रियशिव्या
 ललिते कलाविधौ । कल्याणिसुयेन मृत्युना हरता
 त्वां वत किं न मे हृतम् ॥ १८ ॥ देशे देशे कलत्रायि
 देशे देशे च वान्धवाः । तं देशं नैव पश्यामि यत्र
 भ्राता सहोदरः ॥ १९ ॥ दैवे पराग्वदनशालिनि हन्त
 जाते याते च सम्प्रति दिवं प्रति वधुरक्षे । कस्मै मनः
 कथयितासि निजामघस्थां कः शीतलैः शमयिता
 यचनैस्तवाधिम् ॥ २० ॥ घृत्वा पदस्खलनभीतिवशा-
 र्करं मे वारुडवत्यसि शिलाशुकलं विधाहे । सा मां
 विहाय कथमद्य विलासिनि धामारोहतीति हृदयं
 शतधा प्रयाति ॥ २१ ॥ ध्रुवं ध्वंसो भाधौ जलनिधि-
 मदीशैलसरितामतो मृत्योः शीर्यत्कण्ठघुपु का जन्तुपु

येटा मेघनाद । दस सिरवाजा रावय तुगहारे बीते हुए बच-
 पनकी ये विलवादे रमण करता है जिनमें तुम समुद्रका जल
 कुलेमें भरकर सूटे समुद्रमें उड़कते हुए अजबोंको देव-देवकर
 मुस्कराते थे, सहज ही सूर्य-चन्द्रको धींचकर बुपटल बना लेते
 थे और अपने मोटे मोटे मोसल कर्णोंपर जब दिग्गजोंको खा
 पारते थे तो उनके मद्गजसे तुगहारे शरीरपर कगे हुए ध्वजे
 वेले जान पड़ते थे मानो स्वर्गहीसे खगाए गए छापे हीं ॥१७॥
 मेरी हुई इन्दुमतीकी देलकर धज कर रहे हैं—'तुम मेरी
 पत्नी, मन्त्रिणी, सखी तथा मुद्गर कजाघोंमें मेरी प्रिय शिष्या
 सभी बुध हो । तब बनजाघो, इस निर्दयी मृत्युने मुझसे तुम्हें
 पीनकर मेरा क्या नहीं हर लिया' ॥१८॥ देश-देशमें प्रियमास
 हो सक्ती हैं और देश-देशमें बान्धव भी मित्र सक्ते हैं किन्तु
 ऐसा कोई देश नहीं दियाई देता जहाँपर सगे भाई मिलते हैं
 ॥ १९ ॥ हाय ! जब भाग्यने मुझ मोड़ लिया और हमारे
 बन्धुघोंमें शन यह एक कि भी स्वर्गका राही बन गया तो हे
 मन ! बताओ, कब तुम क्तिसे अपने दशा शताघोंमे और
 अपने शीतल बानोंसे हीन तुम्हारी पीषा गुणत दरेगा ॥२०॥
 विचारके समय पर किसलनेके अपने तुमने मेरा जो हाथ
 पकड़कर पापपर पर रहना या ठसी हाथको छोड़कर गिये !
 तुम चलेकी स्वर्गकी ओर हैते चली चली जा रही हो, वही
 घोष सोचकर मेरा हृदय टूट-टूट हो रहा है ॥ २१ ॥ उद्ग,

कथा । तथाप्युच्चैर्वन्धुव्यसनजनितः कोऽपि विपयो
 विवेकप्रोन्माथो दहत हृदयं शोकदहनः ॥ २२ ॥
 ध्वस्तः काव्योरुमेवः कविविपयिणहारक्षारशिर्वि-
 शोर्णः शुभकः शब्दौघसिन्धुः प्रलयमुपगतो वाक्यमा-
 शिष्यकोशः । दिव्योक्तौर्ना निधानं निघनमुपगतं हा
 हता दिव्यवाणी वारो गीर्वाणवाणीप्रणयिनि विचिन्ता
 शायिते दीर्घनिद्राम् ॥ २३ ॥ पातुं न प्रथमं व्यवस्यति
 जलं युष्मास्वपीतेषु या नादत्ते प्रियमण्डनापि भवतां
 क्रोहेन या प्लवाम् । आद्येवः कुसुमप्रसूतिसमये यस्या
 भवत्युत्सवः सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुहा-
 यताम् ॥ २४ ॥ प्रियस्य सुहृदो यत्र मम तत्रैव
 सम्भवः । भूयाद्मुष्य भूयोऽपि भूयासमनुसञ्जरः
 ॥ २५ ॥ भयान्मन्दं यस्या क्लमयति कपोले परिलुडन्म-
 रुतस्यासचामलकरचर्चां ताण्डययति । समाकृष्टा
 फेशेण्वियमशरणा राजसचयूः स्रवङ्गैर्जन्तूनां दुरधि-
 गमघोरं परिणतिः ॥ २६ ॥ भूमौ स्थिता रमण नाथ

पृथ्वी, पहाड़ तथा नदी सभी एक दिन नष्ट होंगे ही, तब टूटती
 हुई जलकी बूँदके समान सारहीन प्राणियोंके मरनेका महार
 हो क्या है ! फिर भी बन्धुके मरनेपर उठी हुई शोकरूपी भाग
 मेरी विपारशक्तिको जडसे उखाड़ती हुई हृदय जबाए बाव रही
 है ॥ २२ ॥ देवभाषा संस्कृतके प्रेमी बाण कविको जब हम
 लोगोंके चमाग्यने गहरी नींदमें सुजा दिया तो निश्चिन है कि
 आज काव्य-रूपी सागर सूख गया, मोमसा शाखरूपी
 माणिक्यका कोश उड़क गया, खलौकिक उच्छिष्टोंकी सान
 लुट गई और संस्कृतवाणी भी समाप्त हो गए ॥ २३ ॥ शकु-
 न्तलाको विदाई देते समय कवय पृच्छते कह रहे हैं—'जो
 शकुन्तला तुम लोगोंको पहले जब पिलाए विना स्वयं जल
 नहीं पीना चाहती थी, जो पत्तोंके चामूषण बनाना चाहती
 हुई भी तुम्हारे प्रेमके कारण पत्तोंको हाथ नहीं खगाती थी, जो
 तुम्हारे पहले-पहल पृच्छनेके समय उत्सव मनायाकरती थी गहरी
 शकुन्तला आज अपने पतिके घर जा रही है । परत, तुम स्व
 उसे जाने ही अनुमति दार दे दो ॥२४॥ जहाँ प्रिय मित्रघा जन्म
 हां वही मेरा भी जन्म हो, जिससे दूसरे जन्ममें भी मैं फिर
 उसके पीछे पीछे चलूँ ॥ २५ ॥ जिसके इस्ते मन्मोहरीके चके
 हुए कपोलपर पवन धीरे-धीरे चरता हुआ चलेकी रचना
 बनाता था वही मन्मोहरी आज वैसी चरतय हो गई है कि
 बन्दर उससे बाध सोच-धींचकर उसे तह डिय बाव रहे है ।

मनोहरेति सम्बोधनैर्यमधितोपितवत्यसि चाम् । स्वर्गे
गता कथमधि क्षिपसि त्वमेवशावाचितं धरणिभूलिषु
मामिद्वानोम् ॥ २७ ॥ भुविष्ठानि मुत्तानि चुम्बयति
मुजैर्भूयोऽभिरालिङ्गयते चारिप्रवर्तदेवताऽपि मयता
कान्तेन मण्डोदरी । हा लम्बोदरकुम्भमौक्तिकमणि-
स्तोभैर्ममैकाधलीशिलये वागधमर्णकस्य भवतो लङ्केन्द्र
निद्रारसः ॥ २८ ॥ मर्दर्थसन्दर्पमृणालमन्वरः प्रियः
क्रियद्दूर इति त्वयोदिते । धिलोक्यन्त्या रदतोऽप्य
पत्नियः प्रिये स कीदृग्मविता तव क्षणः ॥२९॥ मदेक-
पुत्रा जननी जरासुता नवप्रसूतिर्वरटा तपस्विनी ।
गतिस्तयोरेव जनस्तमर्दयन्नहो विधे त्वां कथया
रुणद्धि न ॥ ३० ॥ मध्याह्ने दूयवहिनोऽपसमये दन्दहा-
मानाङ्गिरेःरुच्छ्राग्निर्गतसुसृपं जलमयो वीक्ष्यैररत्तात्त-
मम् । प्रेम्णा जीययितुं मियः पिय विधेत्युच्चार्य मिथ्या

पिपत्रिमंशाभ्यमपीतयारि हरिणद्वन्द्वं धिपत्रं धने
॥ ३१ ॥ मया प्रत्यादिष्टा स्वजनमधिगतुं व्यवसिता
स्थिता विधेत्युच्चैर्वदति गुरुशिष्ये गुरुसमे । पुनर्दृष्टि
याप्यप्रसरकलुषामर्पितवतो मयि फूरे यत्तत्तविपमिय
शुल्यं दहति माम् ॥ ३२ ॥ मातस्तातः क्व यातः
सुरपतिमवचं हा कुतः पुत्रशोकात् कोऽमी पुत्रश-
तुर्णां त्वमवरजतया यस्य जातः किमस्य । प्रातोऽहो
फाननान्तं किमिति नृपगिरा किं तयाऽती यनापे
मद्वाग्बद्धः फले ते किमिह तव धराधीशता हा हलोऽ-
स्मि ॥ ३३ ॥ मितं ददाति हि पिता मितं भ्राता मितं
सुतः । श्रमितस्य हि दातारं मचारं का न शोचति
॥ ३४ ॥ यस्य स्वया मणवितोपणमिदुर्दानं तैलं न्यधि-
च्यत सुखे कुशस्यचिद्ये । श्यामाकमुषिपरिधितको
जहाति सोऽयं न पुत्रकृतकः पदवीं वृग्स्ते ॥ ३५ ॥

कथा भर्षकर उसकी गति हुई है ॥ २६ ॥ इस पृथ्वीपर रहते
समय ही तुमने मुझे 'दे देमण, दे नाथ, दे मनोहर !' कह-
कर स्वर्गपर चढा दिया था किन्तु दे मृगके बचपोंके समान
झाँझावाली । अब स्वर्गमें जाकर तुम मुझे इस धरतीकी धूलमें
बर्षोंके दे रही हो ॥ २७ ॥ यह मन्दोदरी तुम्हारे सुखका
मी सुभन कर रही है, तुम्हारी मुजाधर्मसे धार्मिगन भी
कर रही है, तुम्हें धरना पति मानकर अपने पत्नी मतको
भी धारण किए हुए है किन्तु गयेछके मस्करके मोतियाँसे
मेरी एक खड़ी माखा रहते हुए तर्जनीताके कारण न खोजने
पाके लँकेय । धापकी यह कैसा विचित्र निद्रा था गयी है
॥ २८ ॥ 'मेरे लिये खोजते काटे हुए मसीपकी छेकर धीरे-धीरे
घाते हुए मेरे पति कितनी दूर है !' इस प्रकार जब तुम पड़ोसी
धीरे उसके उत्तरमें रोते हुए पत्नीकी देखोकी तब दे
लिये । यह क्षण सगुहारा कैसा बीयेगा ! ॥ २९ ॥ घरमें सुक
दृक्कीते पुत्रकी मूर्त्ति मी और श्रमी बरषा देकर निवृत्त हुई
पेधारी हँसी है और उन दोगोंके सहारा देनेवालाकेवत्र मी है ।
पेठी दृशमें मुझे दुःख देते हुए दे भगवन् ! क्या अरकी
वधा रोक नहीं रही है ॥३०॥ दोषदाके समय जब जंगलका एक
कोपट बंद रही थी तब चक्कते हुए पहाड़से हरियरका एक
कोपट । किधी-किधीप्रकार ब्यहर तो निरुद्ध थाथा किन्तु
व्यासके सारे मूकते हुए वन्दोने हलना भीदा-भा जब देखा कि उससे
एकही ही मायापरा हो सकती थी । उस समय एक दूसरेकी
जिह्वीकी धंमिखापासे वे एक दूसरेसे 'तुम पिमो, तुम पिमो'

कहते हुए और मूठ मूठ पीनेका नादय करते हुए कि उनका
सुख भी न दूये, वे दोनों बिना पानी पिप हो जंगलमें
समाह हो गए ॥ ३१ ॥ शकुन्तलाके वियोगमें दुःखत
कहया है—'मेरे द्वारा पिरका किए जानेपर जब तुम
शपने स्वजनोंकी शोर बखनेको उठान हुई और जब तुम्हें गुरुके
शिष्योंने डाटकर कहा कि तुम यही रहो, वर समप पुत्र
मूरकी शोर तुमने शपनी मीसुझोते भीगी हुई जो इष्टि बाजी
बह भान विपेले भाडेके समान मुझे जलाए दाख रही है ॥ ३२ ॥
भरत और कैकेयीमें बातचीत हो रही है—भरतः बर्षों मी,
विताजी कहाँ गए ? कैकेयीः स्वर्गमें ? भरतः हाय बर्षों !
कैकेयीः पुत्रके शोकसे । भरतः वर धारों पुत्रोंमें कौन है ?
कैकेयीः जो तुम लोगोंमें सबसे बड़ा है । भरतः हाँ क्या
हुया ? कैकेयीः वे जन बजे गए । भरतः बर्षों ! कैकेयीः
राजाकी आज्ञायें । भरतः राजाने बर्षों ऐसी आज्ञादी ! कैकेयीः
मेरे धचनसे बंधकर । भरतः दुम्हें क्या फल मिजा ? कैकेयीः
तुम्हारे लिये पृथ्वीका राज्य । भरतः हाय ! तुमने तो मार
बाज । ॥३३॥ पिता, माई और पुत्र वे तो बहुत थोदा-थोदा
देते हैं किन्तु सर्वेश्वर देनेवाले पत्रिके लिये नका कौन शोक नहीं
करती ॥३४॥ लीली तुम्हाराँसे सिपे हुए जिस हरियरके बचके सुख-
पर तुमने धार सुपानेवाळा इंद्रुदीका तेज जगाया था, एक-एक
सुडी लौंके दाने जिखाकर जिसका तुमने पोषण किया था,
यही तुम्हारा पाबा हुआ पुत्र यह हरियरका बचा तुम्हारा माई
रोके लदा है ॥३५॥ जिस कोमल श्रंगराली हृन्दुमजीको पूजकी -

यस्याः कुसुमशब्दायपि कोमलाङ्गया रुजाकरी ।
साधिशेते कथं देवो ज्वलन्नीमधुना चित्ताम् ॥ ३० ॥
या केलिच्युनेकेशलेशविपमां शय्यां न भेजे पुरा या
जालान्तरनिर्गताकर्मकरिण्योतादपि भ्लायते । सेयं
निष्ठुरकाष्टसञ्चितचिन्तां देवोप्यमानानलां सस्मेरा
भजते यदि प्रियमुखं स्नेहस्य किं दुष्करम् ॥ ३१ ॥
यास्यत्यद्य शत्रुन्तलेति हृदयं संस्पृष्टमुक्तपटया कण्ठ-
स्तम्भितबाष्पवृत्तिकलुपश्चिन्ताजड दर्शनम् । वैक्रुःशं
मम तायत्रीदशमपि स्नेहादरयोक्तसः पोष्यन्ते गृह्णियः
कथं न तनयाविश्लेषदुःखैर्नैव ॥ ३२ ॥ रामस्य हृद-
याच्योघो विरहागस्त्यशोपिते । और्वयत्कोऽपि कामा
शिरस्तर्ज्वलति केवलम् ॥ ३३ ॥ लक्ष्मणस्यपुत्रतवाग्ना
णान्मदर्थे मयि जीवति । अहमश्रुणि मुञ्चामि पश्य-
तान्तरमावयोः ॥ ४० ॥ यत्स गच्छ मम पाचिकमेत
द्रामचन्द्रवरणे कथयेथाः । आचयोरिव भवेदजुरागो

नाचयोरिव विधिः प्रतिकूलः ॥ ४१ ॥ वनो मुनीनाम-
दघो तरुणां व्री गिरीणां तु गवेपितैः । अतः परं
रक्षय्य पद्मलाङ्गो प्राणा बहिर्भूय गवेपयन्तु ॥ ४२ ॥
विश्रन्ततीव मर्माणि देहं शोचयतीव मे । दहतीवान्त-
रात्मानं क्रूरः शोकाश्रितस्थितः ॥ ४३ ॥ विधिने क
जटानिवन्धनं तय चेदं क मनोहरं वपुः । अनयोर्घटना
विधिः स्फुटं तनु खङ्गेन शिरीषकर्तनम् ॥ ४४ ॥
शीलानि ते चन्दनश्रोतलानि धृतानि भूमौतलविभ्रु
तानि । तथापि जोर्णो पितरावतस्मिन्विहाय हा सत्स
कथं प्रयासि ॥ ४५ ॥ शैशवात्प्रभृति योपितां प्रियैः
सोहदाद्रूपयगाश्यां प्रियाम् । छुप्रना परिद्वामि
मृ यवे सौनिको गृहशकुन्तिकामिव ॥ ४६ ॥ सद्यः
पुरोपरिवरेऽपि शिरीषमृद्धो गत्वा जवात्रिवनुराणि
पदानि स्वीता । गन्तव्यमस्ति कियदित्यसकृद्गुवाणा
रामाश्रुणः कृतघती प्रथमावतारम् ॥ ४७ ॥ सम्पाद्यः

शय्या भी सुभती भी वह धचकती हुई चितापर भला कैसे
सोएगी ॥ ३६ ॥ जो बिलासके समय गङ्गे हुए धासेसे बालोंके
रुली बनी हुई शय्यापर भी नहीं सो पाती थी, जो क्रीसेसे
एनकर धाती हुई सूर्यकी किरणोंकी गरमीसे भी कुञ्जसी पड़ती
थी, वही आज सूखी कठोर लक्ष्मीकी धचकती हुई चितापर
हैंसती हैंसती पतिका मुल चूम रही है । सचमुच, प्रेमके लिये
कुछ भी कठिन नहीं है ॥ ३७ ॥ कण्ठ प्रापि कह रहे हैं—आज
शकुन्तलाकी विदाई समककर जो घरवाया जा रहा है,
भ्रातृधर्मसे गला भर-भरा भा रहा है और चिन्ताके कारण भ्रातृ
धर्मकी पत्नी हुई है । जब हम जैसे चतवासियोंको प्रेमके कारण
ऐसी घरवाहट हो रही है तब उन गृहस्थोंकी क्या दया होती
हागी जो पहले पहले अपने पुत्राको उसकी सपुत्राल विदा
करते हैं ॥ ३८ ॥ विरह रूपी आगवसे सुखाए हुए रामके हृदय-
रूपी समुद्रमें कोई बहवानलके समान कामरूपी आग्नि ही
केवल हृदयको जलाए ढाल रहा है ॥ ३९ ॥ मेरे जीव जी
लक्ष्मणने मेरे लिये अपने प्राण छोड़ दिए और मैं केवल यहाँ
बैठा उसके लिये भ्रातृ बहा रहा हूँ । हम दोनोंका यह अन्तरतो
देख लो ॥ ४० ॥ अपने पुत्रसे सीताजी कहती हैं—'जाओ पैदा,
रामसे हमारा सन्देश कह देना कि हमारे तुम्हारे प्रेमके समान
सब लोगोंमें प्रेम तो रहे पर हम लोगोंके दुर्भाग्यके समान
किसीका दुर्भाग्य न हो' ॥ ४१ ॥ राम करते हैं—'दे लक्ष्मण !
मुनीनां वन, वृषांके जंगल और पहाड़ोंकी कण्ठाएँ तो हमने

छान मारें । अब स्वयं ही प्राण निकलकर उस सुन्दर
नेत्रवाली सीताको हूँदें तो हूँद पा सकते हैं' ॥ ४२ ॥ भयंकर
शोकरूपी अग्नि हमारे मर्मस्थलोंको काटे ढाल रही है, शरीर
सुखाए ढाल रही है और हृदय जलाए ढाल रही है ॥ ४३ ॥
कहाँ तो यह जगद बाँधकर जंगलोंमें रहना और हकी तुम्हारा
यह सुन्दर शरीर । सचमुच मत्साक्षी यह किया तो ऐसी है जैसे
कोई तलवार लेकर सिरसका फूल काटने चले ॥ ४४ ॥ हे
पुत्र ! तुम्हारा शीतल स्वभाव चन्दनके समान है और संसारमें
तुम्हारा शाश्वत न प्रसिद्ध है फिर भी तुम अपने बूढ़े-माता-
वित्ताको छोड़कर क्यों चले जा रहे हो ॥ ४५ ॥ राम कहते
हैं—'जिसका मैंने बचपनसे ही पाठन किया और प्रेमके कारण
जिस प्यारी सीताको मैंने अपने हृदयसे कभी दूर नहीं किया,
वसीको धोखा देकर मैं मृत्युके हाथमें उठी मकार दे रहा हूँ
जैसे कोई अपनी पाजी हुई विधिया किसी बड़ेलियेके हाथमें
दे दे ॥ ४६ ॥ सिरसके फूलके समान कोमल सीताने अयोध्याके
बाहर तीन चार पग चलकर ही पृथ्वी मारभ किया
'अभी कितनी दूर चलना है ?' यह सुनते ही रामकी भाँखोंमें
पहले-पहले आसुओंकी धारा फूट पड़ी ॥ ४७ ॥ जब सीताजी
चलने लगी तब दग्गने अपने सखीसे कहा—'दे सखी ! इस
बचपका विवाह इस जताये कर देना । ओ हो ! अमी तो मैंने
इस सखिवादी मृगको किसी हरियोंके हाथ देकर गृहस्थ मीनहीं
बनाया ?' इस प्रकार वन जातो हुई सीताने जो माराए गयेसे

सञ्चि चम्पकस्य लतया सार्धं विद्याहोऽनया नायं
केलिसृगः प्रदाय हरिणीं हाहा गृहस्थः कृतः ।
एवमप्रायमगादि गद्गदगिरा निर्गत्य यत्सीतया तेना-
भूदभिभूय घैर्यमिह कः पुर्यां न पर्याकुलः ॥ ४८ ॥
सर्वेऽपि विस्मृतिपथं विषयाः प्रयाता विद्यापि खेद-
कलिता धिमुक्तीवभूय । सा केवलं हरिणश्रावकलोचना
ने नैवापयाति हृदयादधिदेवतेव ॥ ४९ ॥ सात्वान्म-
घवतः पौत्रः पुत्रो गाण्डोघधन्वनः । स्वस्त्रीयो वासु-
देवस्य तं पुत्राः पशुपासते ॥ ५० ॥ इत्वा पतिं नृप-
मधेव्य भुजङ्गदष्टं देशान्तरे विधिघवाश्राणिकास्मि
जाता । पुत्रं पतिं समधिगम्य चितां प्रविष्टा शोचामि
गोपशुद्धिणी कथमथ तक्रम् ॥ ५१ ॥ हा मातस्त्वरि-
तासि कुञ्च किमिदं हा देवताः काशिपो धिकप्राणान्प-
तितोऽग्निर्हुतचहस्तेऽङ्गेषु दग्धे दृशौ । इत्थं घर्घर-
मध्यकककरणाः पौराङ्गनानां गिरश्चित्रस्थानपि रोद-

यन्ति शतघा कुर्वन्ति भित्तोरपि ॥ ५२ ॥ हा वत्स
क गतोऽसि देहि वचनं केनाधुना मद्रिप मज्यन्ता-
मतिदाशुणाः फण्डिपुङ्गवद्वारगालाकोटयः । पौलस्त्योऽ-
स्य न लहते वचनमित्यागत्य पत्या समं पौलोमी क
करोतु रावणरूपः शान्त्यर्थमभ्यर्धनम् ॥ ५३ ॥ हृद-
याघ्रापयातोऽसि दिक्षु सर्वासु दृश्यसे । वत्स राम
गतोऽसीति सन्तापाद्गुमीयसे ॥ ५४ ॥ हे गोदावरि
रम्यवारिरसिका मप्ये न दृष्टा त्वया सा सीता कम-
लानि वा हृतवती नूनं धिनोदाय ते । इत्येतत्प्रति-
पादपं प्रतिलतं प्रत्यापगं प्रत्यगं प्रत्येणं प्रतिवर्द्धिणं
ततइतस्तां मैथिलीं पृच्छति ॥ ५५ ॥

हास्यरसः श्रद्धालिमङ्कविकल्पनविधिघविद्याद्मधु-
त्तपाण्डित्यः । जपचपलीष्टः स जने ध्यानपरो नगर-
रथ्यासु ॥ १ ॥ अतुं वाञ्छति वाहनं गणपतेरारुं
लुघार्तः कृणी तं च प्राञ्चपते. शिखा च गिरिजासि-

बातें कही थीं उससे सारा धोरज जाता रहा और उसे सुनकर
कीन इस अयोध्यामें क्याकुल नहीं है ॥ ४८ ॥ इस समय सब बातें
भूल गई हैं, यहाँतक कि परिश्रमसे पाई हुई विद्याने भी मुझसे
मुख मोड़ लिया है । इस समय तो वह हरिणके बघेके समान
भौंखवाही नायिका ही मेरे हृदयसे देवताके समान नहीं दृष्ट
रही है ॥ ४९ ॥ आह ! जो साघाट् हृद्गका पौर, अञ्जुनका पुत्र
और भगवान् वासुदेवका मानजा है, आज उसने भी चारों ओर
गिद्ध भँहरा रहे हैं ॥ ५० ॥ किसी दही बेचनेवाली खालिन-
का दही गिर गया । उस समय धन्य लोगोंके दुःख प्रकट
करनेपर वह प्रसन्नताके साथ कह रही है—'मैंने अपने राजा
पतिकी हत्या करके एक यतीके साथ निकल भागी । जब उस
पतीको चोपने देस लिया तो मैं भागवश दूसरे देशमें बेश्या
जा बनी । वहाँ अपने पुत्रको ही मैंने अपना पति बनाया और
उस दोपको दूर करनेके लिये मैं चित्तपर जलने लगी । वहाँ-
से भी भागकर अब मैं एक अहीरकी रतेजी हो गई हूँ ।
जिसने जीवनमें इतने उदार-चहाव देते हैं उसे इतनेसे मडके
लिये मन्ना क्या दुःख हो सकता है ॥ ५१ ॥ रानीके मरनेपर
खोग बिखाप कर रहे हैं—'हाय माता ! तुम कहाँ जानेकी
बतावली कर रही हो ? कहां बात क्या हुई ? भाग वे देवताओं
सपा प्योके आशीर्वाद कहाँ चले गए ? प्रायः सचमुच धर्य हैं
जिनपर इतना बड़ा वस्रपात हुआ । आज तुम्हारे शरीरमें आग
लगेगी ? आँतों भी जलेंगी ? इस प्रकार फकक-फकककर भराप

हुए कपटसे रोती हुई नर-नारियोंके बिखापकी ध्वनि विग्रमं बने
हुए व्यक्तियोंको भी खजाए बाज रही है और भीतोंके टुकड़े टुकड़े
किपु बाज रही है ॥ ५२ ॥ मेवनादके मरनेपर मन्दाद्री बिखाप
कर रही है—'हे बेटा ! तुम कहाँ चले गए ? तुम बालो तो
सही । अब कीन है जो मेरी बातपर पाताञ्जके अथयन्त कठोर
फाटकोंकी आगोबाएँ भी तोड़ दे । अब अपने पतिके साथ वह
इन्द्रायी भी आकर रावणके क्रोधकी शान्तिके लिये कहाँ
अभ्यर्थना करेगी जो तुम्हारे पास इसलिये दौड़ी आती थी कि
मेवनादकी बात रावण कभी नहीं टाजता ॥ ५३ ॥ कौशवर्गमी
रामके लियोगमें कष्ट रही हैं—'हे बेटा राम ! तुम मेरे हृदयसे
भी नहीं गए हो और जिवर देखती हैं उधर दिखाई भी दे
रहे हो, इसलिये केवल सन्तापसे ही यह अनुमान होता है कि
तुम चले गए हो' ॥ ५४ ॥ 'हे गोदावरी ! हे परमासर ! क्या
तुमने सुन्दर जलसे प्रेम रखनेवाली उस सीताको नहीं देखा
जो तुम्हारे विनोदके लिये तुम्हारे कमल खे आया करती
थी ? इस प्रकार प्रायिक घृण, जल, नदी, पर्वत, हरिण और
मोरसे जानकीकी पल्लवे हुए राम दृष्ट-उधर घूम रहे
ये ॥ ५५ ॥

हास्यरसः इस समय यह जो बार-बार हँसियाँ
नचाकर और अनेक प्रकारका वाद-विवाद करके अपनी पण्ड-
ताई छुटाना हुआ मन्त्र अपनेका रूपक बनाकर शोठ दिखा
रहा है, यह वास्तवमें नगरकी गलियोंमें रहनेवाली किसी

होऽपि नागाननम् । गौरी जह्नुसुतामस्त्यति कलानाथं
 कपालानलो निविरणः स पयो कुट्टम्बकहादीशोऽपि
 हालाहलम् ॥ २ ॥ अधिकाराभिषेकेषु मृदङ्गवचनं
 शृणु । यद्वा दण्डहता रिफता भविष्यसि यथा चयम्
 ॥ ३ ॥ अश्वस्तेऽपि द्वि नाम वस्तुनि चिराद्ज्ञान
 सम्भाषनं शौचाशौचविवादिता विशरुलस्त्युत्तरा-
 यर्त्तनम् । धारं धारमृणोपघातकथनं कोऽप्येव डम्भा-
 त्मनां प्रायो दग्धदुरीश्वरञ्जनविधौ जागत्यपूर्वः क्रमः
 ॥ ४ ॥ अश्वस्य पवनविजय व्याख्याय च शैवसंहिताः
 सकलाः । मरणसमये गुरुणां पद्वदसवो विनि-
 प्कान्ताः ॥ ५ ॥ अयं पटो मे पितरङ्गभूषणं पितामहा-
 चैरुपभुक्त्यौवनः । अलङ्करीष्वत्यथ पुत्रप्रोत्रकान्
 मयाधुना पुष्पवदेव धार्यते ॥ ६ ॥ अर्थो नाम जनानां
 जोषितमपिलक्रियाकलापश्च । तं संहरन्ति धूर्तारक्ष-

गलगला गायना लोके ॥ ७ ॥ अविदग्धः श्रमकठिनो
 दुर्लभयोपियुवा जडो विमः । अपमृत्युरपमान्तः
 कामिव्याजेन मे रात्रौ ॥ ८ ॥ असारे खलु संसारे
 सारं श्वशुरमन्दिरम् । हरो हिमालये श्रेते हरिः श्रेते
 महोदधौ ॥ ९ ॥ आकुञ्च्य पाणिमशुचि मम मूर्ध्नि
 वेश्या मन्त्राम्भसां प्रतिपदं पृषतैः पवित्रे । तारस्वरं
 प्रहितभूत्कमदात्प्रह्वारं ह्य ह्य हतोऽहमिति रोदिति
 विष्णुशर्मा ॥ १० ॥ आख्यायिकात्रागो व्रजति सदा
 पुण्यपुस्तकं श्रोतुम् । द्रष्ट इव कृष्णसर्पैः पलायते दान-
 धर्मभ्यः ॥ ११ ॥ आदो वेश्या पुनर्दासो पश्चाद्भवति
 कुट्टिनो । सर्वोपायपरिकीर्णा वृद्धा नारो पतिव्रता
 ॥ १२ ॥ आपाण्डुरा शिरसिजस्त्रिचलो कपोले दन्ता-
 वली विगलिता न च मे विपादः । पणोदशो युवतयः
 पथि मां विलोक्य तातेति भाषणपराः पलु वज्रपातः

भाविकके कोमें पदा हुआ है ॥१॥ शहरजीने अपने घरमें जब
 यह उपद्रव देखा कि गणेशजीके चूहेको भूषा सौंप निगल
 जाके उठार है, सौंपके कार्तिकेयका मोर गदगनेको सैपार
 गेडा है, हाथीके मुखवाले गणेशपर पावतीजीवा सिंह भी दाँत
 मड़ा है, पावतीजी भी गङ्गाजीसे सिंधी रहती हैं और
 तीसरे नेत्रकी धाग भी पन्द्रमासे दिन-रात बुदनी रहती है तो
 दुखी होकर ये हज्राहल विप घूँट गए ॥२॥ जो जोग अधिकार-
 के मदमें मतवाले रहते हैं उन्हें गुरुरक्ष कहता है—'सुनो ! तुम
 जोग इतना अकड़ो मत, नहीं तो तुम भी वेते ही बंधे जाकर
 बपेते पीते जाओगे और चोचले कर दिए जाओगे जैसे हम
 किए गए हैं ॥ ३ ॥ अग्न्यास की हुई बातोंके सम्बन्धमें भी यह
 सम्भाषना सदा बनी ही रहती है कि थोड़े दिनोंमें ये स्तुतिले
 उतर जायेंगे । क्या पवित्र है, क्या अपवित्र है, इस सम्बन्धमें
 निरन्तर स्तुतिके अर्थोंको घोखना पदेगा और बार-बार दग्भी
 जोगोंके अपवातकी बात कहनी पदेगी । इस प्रकार प्रायः इस
 जन्मे हुरीशको ठगनेकी विधिमें यह विभिन्न क्रम चखसा ही रहेगा
 ॥४॥ पवन-विनाय (योग) का अग्न्यास कर खेनेपर और सारी
 शीव संहितायोंकी ध्यापना कर सुकनेपर भी श्राणुके समप
 गुरुके प्रायः ऐसे निरुद्ध गए जैसे पाद निरुद्ध जाता है ॥५॥
 कोई द्रविड कह रहा है—'बहो कन्पा मरे पितानोंके शरीरको
 शोभित करता रहा, इसी कपड़ोंको हमारे दादा आदि भी काममें
 धाले रहे और यही कपड़ा हमारे धर्मों धारियोंकी भी शोभित
 करेगा । दुर्लभिके भी भी इस धरणाके दूषके समान धारय

करता हूँ, इसे फटने नहीं देता ॥ ६ ॥ संसारमें बकरेके समान
 'में-में' करनेवाले गवैए भी जोगोंका वह धन हर ले जाते हैं जो
 जोगोंको जीवन देता है ॥७॥ यह कामीके रूपमें रातको मेरी
 अपमृत्यु बनकर जो बुझा माझण यहाँ आया है यह इतना उजड़
 है कि न तो कुछ जानता ही है, न सोधे सोधे फँसने ही वाला
 है और न आत्मक कितनी खोके पाते पढ़ा है ॥ ८ ॥ इस असार
 संसारमें ससुरके घर रहना ही सबसे बड़ा सुख है इसीलिये सो
 महादेवजी दिमाकलमें बटे रहते हैं और विष्णुजी ससुरमें छेद
 लगाए रहते हैं ॥९॥ 'निस सिरपर बार-बार पढ़ी हुई मन्त्रोंके
 जत्रकी दूँने उले पवित्र कर रहता था उसी सिरपर इस
 वेश्याने अपने पगवित्र हाथसे पण्डु भोजमा दिया और थूक भो
 दिया', यही सोच-सोचकर विष्णु जमा 'हाय हाय, मैं नरा'
 कह-कहकर विरजा-विदरकर रो रहे हैं ॥१०॥ कहानी सुननेके
 खोभले जोग धार्मिक ग्रन्थ सुननेके लिये चले तो जाते हैं (कन्यु
 यहाँ जाकर जब दान और धर्मकी बातें सुनते हैं तो वेने माग
 पड़े होते हैं जैसे काका नाग उसने चा पहुँचा दो ॥११॥ व्यभि-
 चारिणी जो पढ़ले वेश्याका काम करती है, तदप्याई 'बोल
 जानेपर दासीका काम करने लगती है, फिर पुत्रो बन जाती है
 और सब पुत्राधेमें कोई वध नहीं चखता तब पतिव्रता बन
 पेटती है ॥ १२ ॥ गुम्मे बाजोंके उगले होने, गाडोंपर सिक्कन
 पढ़ने और दाँत गिरनेका कोई खेद नहीं है । गुम्मे यही बात
 बघ्रपात ही लगती है कि हरिणोंके समान नेत्रोंवाली जिर्णो
 गुम्मे मारने 'बाबा' कर कदकर पुकारते हैं ॥ १३ ॥ बाज र्वेते

॥१३॥ आर्ष्यमाशुपलितं सुभगत्यकामः सार्धं प्रयाति
दयिता पलिताधिकेन । पुष्पेक्ष्णत्वमपि शश्वदपोह्य
साकं याति प्रियो निकटमेव विलोचनेन ॥ १४ ॥
आमन्त्रणजयशब्दैः प्रतिपददृष्टारघर्घरासवैः । स्वय-
मुक्तसाधुवादैरन्तरयति गायनो गीतम् ॥१५॥ उच्चिप्रति
नमति षण्णिकृच्छ्रति कुशलं ददाति च स्थानम् ।
निक्षेपपाणिमार्तं दृष्ट्वा धर्म्याः कथाः कुर्वते ॥ १६ ॥
उदरद्वयमरणमयादर्धाङ्गाहितदारः । यदि नैवं तस्य
सुतः कथमप्यापि कुमारः ॥ १७ ॥ उपमुक्त्वदिरवीट-
कजनिताघररागमङ्गमयात् । पितरि मृतेऽपि द्वि वेश्या
रोदिति हा तात तातेति ॥१८॥ ऋज्वी दृष्टिरनुत्ययं
विद्वसितं मन्दं परिरुपन्दिदं द्वेषो नर्मणि दूरतीर्थग-
मने यत्नो रतिर्लिङ्गेषु । यस्यास्त्यक्तसुखस्पृहं किल
षुः पीनात्पलभ्यस्तनी सतीरा विटचेटकैकमहिषी
रएडा शिवायास्तु वः ॥ १९ ॥ एका भार्या प्रकृतिमु-

ञ्जरा चञ्जला च द्वितीया पुत्रस्तेको मुपनयिजयो
मन्मयो दुर्निवारः । शेषः शय्या शयनमुदयो यादनें
पञ्चगारिः स्मारं स्मारं स्वगृहचरितं दासभूतो
सुगारिः ॥ २० ॥ कटो मुष्टिप्राया द्विपुरुषमुजप्राय-
मुदरं स्तनो घृष्टात्तोलौ जघनमधिगन्तुं व्यवसितौ ।
स्मितं भेरीनादो मुचमपि च यत्तद्भयकरं तथाप्येषा
रएडा परिमयति सन्तापयति च ॥ २१ ॥ कन्यां
घहसि दुर्बुद्धे गर्दभैरपि दुर्घदाम् । शिष्यायश्रोपयो-
ताभ्यां भारः कस्ते भयिष्यति ॥ २२ ॥ कमले कमला
शेते हटः शेते हिमालये । क्षीराभ्यां च हरिः शेते मन्ये
मत्कृणुशङ्कया ॥ २३ ॥ करकजलपूतभूतलनिहितपदो
विहितविह्वलदुष्टारः । अपि यितयमन्त्रगणनाद्यप्रस-
मप्राङ्गुलोपर्यां ॥ २४ ॥ कलमाप्रनिर्गतमपोविन्दुव्या-
जेन साङ्गनाशुक्रणैः । कायस्थलुण्ठ्यमाना रोदिति
क्षिन्नेव राज्यधीः ॥ २५ ॥ काङ्क्षिष्यादुयवःशतेनिजसु-

होनेसे तो शोभा बढ़ ही गई थी, पर साय ही एके बाबोवाजी
डुडिया पत्नी भी खड़ी जा रही है और श्रीलिंगं कृष्ण भी खड़ा
जा रहा है ॥१३॥ सुशोचन तथा जयकारोंसे पद-पदपर हुंकार
तथा धरवराते हुए शश्वसे स्वयं बोली हुई वद-वाहकी ध्वनिते
गवैपुल्लोग गीतको एकदम दबा डालते हैं ॥१४॥ ठगकी देखकर
नयिया उठना है, झुंझता है, कुण्ठन प्युता है, स्थान देता है
और बर्षी घर्मकी बातें करता है ॥१५॥ शहरजीने जब देखा कि
वो पेट पाखना दुमर है तो अपनी स्त्रीको अपने प्राये अङ्गमें
सजेड किया, यदि ऐसा न होता तो उनके पुत्र आजतक बवारि
भर्यां घेरे रहते ॥१७॥ अपने पिताके मरनेपर वह वेश्या अपने घाट-
पर लगी हुई खैर और पानकी लाजी छूनेके मयसे 'हा पिता'
कहनेके बदले 'हा तात, हा तात' कह-कहकर रो रही है कि
कहीं 'पिता' कहनेसे थोठ न सट जायँ और ओठोंकी लाजी न
भूट जाय ॥ १८ ॥ यह रएडा आप लोगोंका कल्याण करे
जिसकी श्रीलिंगं सो री है, हँसना रुखा है, खजना-किरना दुमर
है, बात-बातमें झुंझताई जाता है, दूर तीर्थमें जानेके लिये
मपानशोख रहती है, साधुओंसे प्रेम रखती है, सुखका सप
हूठायँ मिठा चुकी है, शरीर मोटा है, स्तन खटक गए हैं
और विट और घेठ भी जिसे दिन-रान घेरे रहते हैं ॥ १९ ॥
घरमें दो पानिधार्थ हैं जिनमेंसे एक तो बकवारी है और दूसरी
खजल है । एक जो सुवनविजयी पुत्र है भी यह कहनेमें
मही है । सोनेके लिये शय्या भी है तो यह समुद्रमें

सर्पर है । चढ़नेके लिये सबारी भी है तो गरद पञ्जी-
की है । इस प्रकार अपने घरकी श्रवण दरा देखकर भगवान्
विष्णु काठ बनकर रह गए ॥ २० ॥ देवो तो सही—इस
रौंकी कमर हतनी पतखी सुद्धोंमें समा जाय, पेट हतना
मोटा कि दो पुरुषोंकी सुनाश्रोंमें कहीं समा पावे । घपडेके
समान कृच्छे हुए स्तन हतने लखे कि वेदतक लटक आवे हैं ।
हँसी भी ऐसी कनकोद कि नगादेके समान गूँते और सुख भी
देखनेमें बदा भयङ्कर है, फिर भी यह हमारा धरमान काती और
हमें दुःख देती ही बखी जा रही है ॥ २१ ॥ अरे मूर्ख ! सुदवी
तो हतनी मारी मिरपर दो रहा है कि गधेये भी न सँभाजी
जाय, फिर चोटी और खनेऊ तेरे लिये कैसे बोझ बन गए
॥ २२ ॥ अब हमारी समझमें धरया कि जो खदमबके दरके
मारे ही कमलमें लपयो, हिमालयमें शङ्कर और चोरसागरमें
विष्णु जा-जाकर सोते हैं ॥ २३ ॥ एक कुटनी किसी वेश्याको
प्राय हुए कामीका परिचय दे रही है—भरी ! यह वही तो है
जो करवेके जलने धोकर धरतीपर धैर रखता है, पाठ-पूनामें
चिल्लाकर हँसूँ : करना है और मूडे ही अपनी डँगलियोंकी
पोरपर मन्त्र जपनेका बोंग किया करता है ॥ २४ ॥ कजमकी
लीमसे निकलती हुई स्वाहीकी सूँडे ऐसी जान पड़नी है मानो
राज-जषमी अपने काजज-निजे भौंसू बहाती हुई दुषी-सी
होकर रोती हुई कह रही है कि हाय ! मुझे कायस्थोंने लूट
जिया ॥ २५ ॥ कुटनियो इन मूर्ख लोगोंमेंसे किहींको अपनी

मापमयानपुष्यटकानाध्मायमानोदरे फटफटफाडित
पायवीयपवनं योगेश्वरे मुञ्चति । उद्धूतं विहगैर्घटं वि-
घटितं होलायितं भित्तिभिः शिष्यैर्घावितमभेकैर्निप-
तितं कोलाहलोऽभूमते ॥ ३२ ॥ जिह्वायाश्छेदनं नास्ति
न ताण्डुपतनाद्भयम् । निर्विशेषेण वक्तव्यं निहंजः को
न परिहृतः ॥ ३६ ॥ समसि धराकञ्चोरो हाहाकारेण
याति संश्रस्तः । गायनचौरः कपटो हा हा कृत्वा न
याति लक्ष्यं च ॥ ४० ॥ तल्पे नितम्बतलमात्रनिरस्त-
यस्त्रां सङ्गत्य घृष्टघनितां हतकामवेगः । निर्वृत्यमन्ध
इय मन्मथजं समग्रं लज्जाततो भवनतः सपदि व्यपैति
॥ ४१ ॥ तस्मान्महीपतीनामसम्भवे दस्युचौराणाम् ।
एकः सुवर्णकारो निग्राह्यः सर्वथा नित्यम् ॥ ४२ ॥
वस्वा दिशि दिशि दृष्टिं याचकचक्रितोऽवगुण्डनं
कृत्वा । चौर इव कुटिलचारी पलायते कुटिलर-
ष्याभिः ॥ ४३ ॥ दुर्वर्षैः रूपैः पणो यदि भवेद्याला
बलाद्भुज्यते फन्दर्पप्रतिमोऽपि हन्त तरुणो निष्का-

स्यते निर्धनः । आस्ते लोहमयार्गलेषु भवनद्वारे चिरं
जाप्रतोयूर्नोर्भाग्यविपर्ययेण जरती नाद्यापि मृत्युं गता
॥ ४४ ॥ द्विजराजरोपरो यद्ब्रह्मरुदः सदा सदार-
स्त्वम् । चक्रो हर तद्विधिना पुनरुपनयनं लताटघटितं
ते ॥ ४५ ॥ घत्ते घत्सि कौस्तुभोपलमयं मया श्रियः
-सोदरं तन्नामीगृहमाकलय्य मकराघासं मनाङ्गो-
-ज्भक्ति । तन्नामप्रणयाद्य लुम्पति हरिः श्रोत्रसमूहे
स्थितं किं केन क्रियतां स एव यद्भूदेता-
-दृशः स्त्रीघणः ॥ ४६ ॥ धान्याकनागरनिष्ठा-
-द्रं कदाडिमत्वयंकुस्तुभ्यरोलषण्णतैलसुसंस्कृतान्नः ।
मत्स्थान्नुशोततलितभक्तले ददाति स ब्रह्मलोक-
-मधिगच्छति पुण्यकर्मा ॥ ४७ ॥ न विद्या न च
वक्तव्यं नैवा कापि विदग्धता । तथापि घत्ते पात्र-
-त्यमप्रतिप्रहभाचना ॥ ४८ ॥ नाहं स्वर्गफलोपमीग-
-तृपितो नाभ्यर्थितस्त्वं मया सत्पुष्टस्तृणभक्षण सततं
साधो न युक्तं तव । स्वर्गं यान्ति यदि त्वया विनि-

भाग वत्ते, वत्ते भद्रा पदे और मठमें इसी प्रकारका हृदय
मच गया ॥ ३८ ॥ कुछ भी कह देनेसे न जीभ कटेगी, न
तालू गिरेगा इसलिये विना सोचे-समझे जो मनमें आवे वह
कह डालना चाहिए क्योंकि निर्लज्ज बनकर ही लोग परिहृत
बन पाते हैं ॥ ३९ ॥ शैथिल्ये लीगोंके हा-हा करनेपर बेचारा
चोर डरकर भाग खड़ा होता है पर ये भूतं गवैए चोर जो स्वयं
हा-हा करते रहते हैं इनकी चोरी कोई पकड़ नहीं पाता
॥ ४० ॥ विस्तरपर केवल नितम्बक ही धोती सरकानेवाली
हीठ खीसे रमण्य करके कामका सारा वेग नष्ट हो चुकनेपर
यह कामी आधेकी भौंति तत्काल जानसे सिर झुकाए अपने
धर चला जा रहा है ॥ ४१ ॥ रायमें डाकू और चोर न भी
रहें तो सब प्रकारके दूध केवल सुनारोंको ही राजा लोग दे
सकते हैं ॥ ४२ ॥ भिलारीकी प्रार्थनासे दरा हुआ यह मज्ज
पारों चोरसे भौंलें चलाता और अपनी सुँह दकता हुआ चोरके
समान चक्करवार गलियारोंमें होता हुआ वेगसे चला जा रहा
है ॥ ४३ ॥ जिसके पास पैसा ही यह यदि लुप्य भी हो तो
मवेलीको पैसेके बखतर भोग सकना है और यदि कोई काम-
देवके समान सुन्दर तरुण भी हो पर निर्धन हो तो वह धासे
निकाळ दिया जाता है । एक दूसरेसे मिळनेके लिये देरतक
भागते हुए धामने दोनों जवानोंके भाग्यके फेरसे धाके
-धरपर खोरेकी सिक्कड़ बनकर अभी हुई यह सुदिया मरती

भी नहीं ॥ ४४ ॥ हे शंकरजी ! मरतपर चन्द्रमा, सदा
बैलकी सवारी और स्त्रीके साथ रहना ये तीन गुण देवधर
ही प्रदाने आपके मस्तकमें तीसरा नेत्र भी बना बाबा है
॥ ४५ ॥ कौस्तुभ मणिरूपी पर्यारको लक्ष्मीका माई समक-
कर ही भगवान् विष्णु अपनी छातीसे लगाए रहते हैं, लक्ष्मी-
का जन्मस्थान समककर समुद्रको एक चण्यके लिये भी छोड़ना
नहीं चाहते, लक्ष्मीके नामसे प्रेम होनेके कारण उनके नामवाले
श्रीवत्स चिह्नको भी कमी छातीसे नहीं हटाते । यथाइए, जब
स्वयं विष्णु भगवान् ही सदा स्त्रीके फेरमें पड़े रहते हैं तब
औरोंका तो कहना ही क्या ॥ ४६ ॥ धनिर्षो, सौंड, हल्दी,
धरक, अनारका ज्विजका, कुस्तुमरी, नमक और तेजमें
पकाई हुई मज्जिखिं जो मुझे टपड़े उगले मातके साथ
-देता है वह पुण्यपामा मज्जलोकको जाता है ॥ ४७ ॥ न
विद्या है, न बोलनेकी कला आती है, न और ही कोई गुण है
किर भी वह किसीसे कुछ लेता नहीं है इसीसे उसका धादर
हो रहा है ॥ ४८ ॥ एक ककरा किसी यज्ञ करनेवालेसे कह रहा
है—हे साधु ! तुम मुझे क्यों मारे खाळ रहे हो ? न तो मुझे
यज्ञपत्र बचकर स्वर्ग जानेकी इच्छा है, न मैंने इसके लिये तुमसे
प्रार्थना ही की है । मैं तो केवल वास-पात साकर ही सम्भूट
हुआ पड़ा रहता हूँ । यदि सचमुच सुगहरे हाथसे मारे जानेपर
-प्रायी स्वर्ग पहुँच जाते हों तो तुम अपने माता, पिता, पुत्र

ताप्रेमातिरेकेः परानन्यान्वकरवाकमैर्धनघतः प्रापप्य
गेहं निजम् । प्राग्दत्तग्रहग्रमग्रहभक्तिवधयाजादधपृथ्य
तान् कुट्टिन्यः स्फुटमग्रहमचरितानेतानिहन्तुं क्षमाः
॥ २६ ॥ कार्पासकौशोऽज्वलकेशसञ्जवया पयोधरालि-
ङ्गितमन्मथालया । गदलो जरद्रलकसन्निभासुभी
सुथापि रण्डा सुरतं न मुञ्चति ॥ २७ ॥ रुपीधलानां
तथापि कालवर्षादकालमुषोद्भिज्जपजां प्रमोदः । सस्य-
प्रवृत्तिं क्रुते हि पूर्वः प्रजासु रोगप्रचयं द्वितोयः
॥ २८ ॥ केशशुभ्रनसाम्येऽपि हन्त पश्यैतदन्तरम् ।
उपस्थाः कौटमश्नन्ति घृतमर्कं दिग्मवराः ॥ २९ ॥
कोशं कुशेशय विक्रास्य संश्रितालौ प्रीतिं कुचप्य
यदसौ दिवसस्तवास्ते । दोषागमे निविडराज-
करप्रपातदुःस्थे समेष्यति पुनस्तव कः समीपम्
॥ ३० ॥ क्रयविक्रयकूटतुलालाघयनिक्षेपरत्नज्याजैः ।
पते हि दिवसचोरा मुख्यन्ति महारजनं यखिजः ॥ ३१ ॥
यद्व्या नितान्तलघुका शिथिलमताना द्वेष्यः पतिः स

च निरन्तरचाटुकारी । तत्रापि दैवहतिकाः क्लृप्तमाय-
राश्यां हा सहतां फयमयं व्यसनप्रपञ्चः ॥ ३२ ॥ गण-
यति गगने गणकश्चन्द्रेण समागमं यिशाध्यायाः ।
विविधभुजंगक्रीडासकां गृह्णिषीं न जानाति ॥ ३३ ॥
गताः केचित्प्रधोघाय स्वयं तं कुम्भकर्णकम् । तद्वचः-
पयनोत्सर्गादुद्घोय पतितताः फ्वचित् ॥ ३४ ॥ गत्या
द्वारधर्तौ नयामि दिपसानाराधयन्तो हरिं त्यक्त्वा
यानशनेन जीवितमिदं मुञ्चामि भागीरथीम् । प्रातः
प्रातरिति प्रवतितकथा निधेदमातन्वती रण्डा नकम-
नन्तजारसुरतमीता सुखायास्तु घः ॥ ३५ ॥ गौरी
तनुर्नयनमायतमुन्नता च नासा कृशा कटितटी च पटी
विचित्रा । अङ्गानि रोमरहितानि सुखाय भर्तुः पुच्छं
न तुच्छमिति कुत्र समस्तघस्तु ॥ ३६ ॥ कन्याः कदाचन
कदाचन पण्यनार्यः कन्याः कदाचन कदाचन चण्ड-
रण्डाः । इत्थं चिरं विहरतोऽपि सखे परस्त्रीधा-
ञ्छारसे न परित्यज्यति चान्तरात्मा ॥ ३७ ॥ जग्ध्वा

पुत्री वैरयाके प्रेमकी घाते सुना-सुनाकर और कुछ धनबानोंको
पुकार-पुकारकर अपने घरमें ले जाती हैं और अनेक प्रकारके
कुल कपयसे उनका सब कुछ लूटकर उन्हें बेका म कर देती
हैं ॥ २६ ॥ कपासकी कोंडोंके समान जिसके बाध रवेत हो
गए हैं, पैहूतक जिसके स्तन खटक घापे हैं, और गात्र पके
हुए छुहारे जैसे हो गए हैं वह रण्डा फिर भी सुरत करना
नहीं छोड़ती ॥ २७ ॥ किसानोंको समयपर वर्षा होनेसे और
वैलोंको अकाल वर्षासे प्रसन्नता होती है क्योंकि समयपर वर्षा
होनेसे तो धान बढ़ता है और अकाल वर्षा होनेसे जनतामें रोग
बढ़ने हैं ॥ २८ ॥ यद्यपि उपस्थ (जिग, योनि) और नगेजैन साधु
दोनोंके बाज उखाड़े जाते हैं पर भेद इतना ही है कि
उपस्थ तो गंदी वस्तुका उपभोग करते हैं और दिगंबर साधु
बो-भातपर हाथ मारते हैं ॥ २९ ॥ अरे कमल ! इस
समय जब कि भौरे में अंधा रहें हैं, तू अपना कौश विकसित
करके उनसे प्रेम कर ले क्योंकि यह तेरा समय है, नहीं तो
रातके आने और अन्धकारके घिर जानेपर कौन तेरे पास
ध्यावेगा ॥ ३० ॥ मोल खेने, बेचने, चतुराईसे ढकी मारने
और धरोहर रखने आदि अनेक रूपोंसे वे धनिपु प्रत्येक
सपन्नको दिन-दहाड़े लुटेते रहते हैं ॥ ३१ ॥ बड़ी नर्सी-सी
तो खाट है, बिनाघट भी बड़ी डोली हो गई है, प्रेम न
झूनेपर भी पति निरन्तर लक्ष्मी-चर्पा करता ही रहता,

है, उसपर भी वे मावकी राते और भी जी खाए लेती हैं ।
बताएए हूतनी विपत्तियाँ जैसे सही जायें ॥ ३२ ॥ ३४
श्रमोत्थिषो आकाशमें विशाला और चन्द्रमाके समागमपर तो
बैठा विचार किया करता है पर अनेक कामियोंके साथ रसरंग
करनेवाली अपनी स्त्रीकी ओर नहीं देखता ॥ ३३ ॥ कुछ लोग
स्वयं कुम्भकर्णको जगानेके लिये गए तो सही किन्तु उसके
अपानवायुके भीकेसे ऐसे उड़े कि हृत्पर-उपर जा गिरे ॥ ३४ ॥
वह रण्डा आप लोगोंको सुल दे जो प्रतिदिन प्रातःकाल यह
वैराग्य दिखाता है कि मैं द्वारिकापुतीमें जाकर भगवान् कृष्णकी
सेवा करती हुई दिन काटूंगी या उपवास करके और गंगाजोमें
कूटकर अपना जीवन समाप्त कर दूंगी, तथा रातके समय अनेक
जारोंके साथ रमणका आनन्द भी लेती है ॥ ३५ ॥ गोरर रङ्ग, बड़ी-
बड़ी शालिं, ऊँचो नाक, पतली कमर, लुबीली साड़ी, चिकना
शरीर ये सब बातें तो पतिको सुल देती हैं किन्तु यह नहीं
कहा जा सकता कि छोटी सी पूँछके बिना इन बातोंका होना
किसी कामका है या नहीं ॥ ३६ ॥ हे मित्र ! बहुत सी झो-
रियोंसे, वेश्याओंसे और प्रचंड रोंकोसे बहुत दिनों तक विहार
कर लुकनेपर भी हमारा अन्तरात्मा परस्त्री-भोगके रससे
तृप्त नहीं हो पाता ॥ ३७ ॥ किसी मठधारी साधुने उदकके
बड़े खाकर देठ फूल जानेसे पैसा फट फट अपनावायु झोहा
कि चिदियाँ उड़ गईं, बड़े फूट गए, भीतें टूट गईं, जैसे

मायमयानपूपवटकानाध्मायमानोदरे फटफटफाहित
पाययीयपवनं योगेश्वरे मुञ्जति । उद्धीनं विहगैर्घटैर्वि-
घटितं दोलायितं भित्तिभिः शिष्यैर्धायितमभेकैर्निप-
तितं कोलाहलोऽभृन्मते ॥३२॥ जिह्वायाश्छेदनं नास्ति
न तालुपतनाद्भयम् । निर्विशेषेण वक्तव्यं निहञ्जः को
न परिहृतः ॥ ३६ ॥ तमसि वराकञ्चीरो हाहाकारेण
याति संश्रस्तः । गायनचौरः कपटो हा हा कृत्या न
याति लक्ष्यं च ॥ ४० ॥ तल्पे नितम्बतलमात्रनिरस्त-
वर्णां सङ्गत्य घृष्टवनितां हतकामवेगः । निर्वृत्त्यमन्य
इव मग्नयज्ञं समग्रं लज्जानतो भवन्तः सपदि व्यपैति
॥ ४१ ॥ तस्मान्महीपतीनामसम्भवे दस्युचौराणाम् ।
एकः स्रवणकारो निग्राह्यः सवंधा नित्यम् ॥ ४२ ॥
दत्त्वा दिशि दिशि वष्टि याचककक्रितोऽवगुण्डनं
कृत्या । चौर इव कुटिलचारी पलायते कुटिलर-
श्याभिः ॥ ४३ ॥ दुर्दर्शः कृपणैः पणो यदि भवेद्बाला
बलाद्भुज्यते कन्दर्पप्रतिमोऽपि हन्त तरुणो निष्का-

स्यते निर्धनः । आस्ते लोहमयार्गलेषु मयनहारं चिरं
जाप्रतौयून्मोर्माग्यविपर्ययेण जरतीं नाथापि मृन्मुं गता
॥ ४४ ॥ द्विजराजरोधरो यद्वपमारुहः मद्वा सदार-
स्यम् । वक्रो ह्यर तद्विधिना पुनरपनयनं लजाटवटिनं
ते ॥ ४५ ॥ घचे वल्लि सि कौस्तुभोपलम्भं मत्वा श्रियः
सोदरं तस्माभीष्टमाकलय्य मकराधासं मनाङ्गो-
ज्जति । तस्मामप्रणयाद्य लुम्पति हरिः श्रीयन्ममहे
स्थितं किं केन क्रियतां स पथ यद्भूदेता-
दृशः खीयशः ॥ ४६ ॥ धान्याकनागरनिशा-
ट्रकदाडिमत्यक्कुम्भुररोलयपनैलसुमंस्नानान्तः ।
मस्यान्सुशीतसितमक्ततले द्वादति स प्रह्लभोऽरु-
मधिगच्छति पुण्यकर्मा ॥ ४७ ॥ न विद्या न च
यकृत्यं नैवा वापि विदधयता । तथापि घच पात्र-
त्वमप्रतिग्रहभावना ॥ ४८ ॥ नाहं स्वर्गकनोपमोत्त-
रुपितो नाभ्यर्थितस्त्वं मया सर्तुष्टम्बुपमज्जण सन्तं
साधो न युक्तं तय । स्वर्गं याति यदि त्वया विनि-

भाग चले, बच्चे महारा पदे और मठमें हसी प्रकारका इह्कर
मच गया ॥ ३२ ॥ छद्म भी कह देतेन न जीम कटेगी, न
चालू गिरेगा इतिखिये विना सोचे-समझे जो मनमें श्रावे वह
कह बाबना चाहिए क्योंकि निर्लज्ज बनकर ही लोग परिहृत
बन पाते हैं ॥ ३३ ॥ श्रेष्ठमें लोगोंके हा-हा करनेपर बेचारा
चोर बरकर माग खदा होता है पर ये धूर्त गवैए चोर जो स्वयं
हा-हा करते रहते हैं इनकी चोरी कोई पकड़ नहीं पाता
॥ ४० ॥ बिलखपर केवज नितम्बतक ही पोता सरकानेवाजी
ढीठ जोसे रमण करके कामका सारा धेग मट्ट हो चुकनेपर
वह कामी शम्भेडी नाँति तत्काल जानसे सिर मुकाए अपने
घर चला जा रहा है ॥ ४१ ॥ रागमें डाकू और चोर न भी
रहें तो सब प्रकारके दण्ड केवज सुनारोंको ही राजा बोग दे
सकते हैं ॥ ४२ ॥ भिलारीकी प्रार्थनासे दरा हुआ यह मनुष्य
चारों धोरसे धाँसे बचाता और अपना मुँह ढकता हुआ चोरके
समान बकरदार गजियोंमें होता हुआ वेगसे चला जा रहा
है ॥ ४३ ॥ जिसके पास पैसा हो वह यदि लरूप भी हो तो
मन्वेकीकी पैसके बखरप भोग सकना है और यह कोई काम-
पैसके समान सुन्दर लक्षण भी हो पर निर्धन हो तो वह चासे
निकाज दिया जाता है । एक दूसरेसे मित्रनेके जिये देतक
भागते हुए चाहमरे दोनों जवानोंके भाग्यके फासे धाँसे
झारपर कोरेकी सिक्क बनकर जमी हुई यह बुझिया मरती

भी नहीं ॥ ४४ ॥ हे शंकरजी ! मातङ्पर चन्द्रमा, सदा
बैठकी सवारी और जोके साथ रहना ये तीन गुण देमकर
ही बहाने आपके मरनकमें तीमरा नेत्र मो बना दबा है
॥ ४५ ॥ कौस्तुभ मणिरूपी परायको लक्ष्मीका भाई समरु-
कर ही भगवान् विष्णु धरनी धातीमें लगाए रहते हैं, लक्ष्मी-
का जन्मस्थान समरुकर समुद्रको एक पत्रके लिये भी ज्ञेयना
नहीं चाहते, लक्ष्मीके नामसे प्रेम होनेके कारण उनके नामरहित
श्रीवल्लु चिह्नको भी कमी धातीसे नहीं हटाते । बगवद्, जब
स्वयं विष्णु भगवान् ही सदा जोके फेरमें पड़े रहते है तब
श्रीरोंका तो कहना ही क्या ॥ ४६ ॥ पनियों, सोंद, हर्द्री,
घदरक, बनारदा द्विजका, कुम्भुरी, नमक और तेजमें
पकाई हुई मद्धुखियाँ जो मुझे ठपडे उत्रके भात्रके साथ
देता है वह उपयागमा प्रह्लभोको जाना है ॥ ४७ ॥ न
विद्या है, न बोलनेकी कला धावी है, न और जो कोई गुण है
फिर भी वह किसीसे कुछ खेता नहीं है इसीमे लक्षका चादर
हो रहा है ॥ ४८ ॥ एक बकरा किसी यज्ञ कानेवात्रमे कइ रहा
है—“हे साधु ! तुम मुझे क्यों मारे दाब रहे हो ? न तो मुझे
यज्ञपत्र बनकर स्वर्ग जानेकी इच्छा है, न मैंने इसके लिये तुममे
प्रार्थना ही की है । मैं तो केवज घाघ-पाव खाकर ही सन्तुष्ट
हुआ पदा रहता हूँ । यदि सचमुच तुम्हारे हाथसे मारे जानेपर
प्रायी स्वर्ग पहुँच जाते हों तो तुम अपने माता, पिता, पुत्र

हता यद्ये यदि प्राणिनो यद्दं किं न करोषि मातृ-
पितृभिः पुत्रैः सदा बान्धवैः ॥ ४९ ॥ परार्थं प्राप्य
दुयुद्धे मा प्राणेषु दयां कुह । दुर्लभानि पराङ्गानि
प्राणा जन्मनि जन्मनि ॥ ५० ॥ पाणी तान्नघटी कुशः
करतले धीते स्थिते वाससी भाले मृत्तिलकः सचन्दन-
रत्नो न्यस्तैकपुष्पं शिरः । दूरात्तिमपदा गतिर्दृढतर-
व्याश्लिष्टदन्ता गिरः सोऽयं वञ्चयितुं जगद्भगवतो
दम्भस्य देहक्रमः ॥ ५१ ॥ पीठीप्रक्षालनेन क्षितिपति-
कथया सज्जनानां प्रवादैनौत्वा यामाधेयं कुशकुसुम-
समारम्भण्यग्रहस्ताः । पश्चादेते निमज्जरयुरयुवति-
कुचाभोगदत्तेक्षणार्थाः प्राणायामपदेशादिह सरिति
सदा वासराणि क्षिपन्ति ॥ ५२ ॥ पूर्वं चेटी ततो वेटी
पश्चाद्भ्रूवति कुट्टिनी । सर्वोपायपरिशीला वृद्धा वेष्या
तपस्विनी ॥ ५३ ॥ प्रथमं स्ववित्तमखिलं कनकार्थी
भस्मसात् स्वयं कुरुते । पश्चात्स्वधनादधिकं विनाश-

यति वञ्चनानिपुणः ॥ ५४ ॥ प्रेमद्रुमोदहनतीक्ष्ण-
कुठारधारा रूक्षाक्षिवीक्षणवक्रक्षयचित्तवृत्तिः ।
नार्द्रोमयन्मरुधरेव महाप्रवन्धैर्वज्र पिनाष्टि कठिनं खलु
कुट्टनी सा ॥ ५५ ॥ विज्ञाद्वर्द्धिविलस्यान्तःस्थितमार्ज-
रसंपयोः । मध्ये चाखुरियाभाति पत्नीद्रव्ययुतो नरः
॥ ५६ ॥ भक्ते द्वेषो जडे मोतिः प्रवृत्तिर्गुह्यलङ्घने । मुखे
कटुकता नित्यं घनिनां ज्वरिणामिव ॥ ५७ ॥ भगदत्त-
प्रभावाद्या कर्णशृङ्गोरकटस्वना । सेनेव कुरुराजस्य
कुट्टनी किन्तु निष्कुरः ॥ ५८ ॥ भस्मान्हुर्लिवर्कोद्ग्रायी
बालशोचो तथा दिदिः । धारावतीं चक्रवर्तीं पडेते
तुलपाधमाः ॥ ५९ ॥ भार्यायै पतिदेवतापर्यायति शंस-
त्यसत्यै पुमान् कश्चित्तां नियमैर्नियन्तुमपटुः कोपेन
सेन्यस्यति । अन्व्यो गच्छति जाह्नवीमथ परो राजान-
मप्याययोर्वंशं दूषय नेति धीः कथय मे कस्तेषु मानो-
घतः ॥ ६० ॥ मृकुटीकुटिललाटः कण्टकिताङ्गः

और बान्धवोंकी ही वज्रमें बलि क्यों नहीं दे ढालते ? ॥ ४९ ॥
भरे मूर्ख ! दूसरेका अन्न मिले तो अपने प्राणोंपर दया नहीं
करनी चाहिए क्योंकि प्राण तो प्रत्येक जन्ममें मिल जाते हैं
किन्तु पराया अन्न कहीं मिल पाता है ॥ ५० ॥ जिस
मनुष्यके एक हाथमें तौषिका चढ़ा, दूसरेमें कुशा, शरीरपर
उजले खुले हुए वस्त्र, माथेपर चन्दन मिला हुआ मट्टीका
तिलक और सिरपर एक फूल रक्सा हो और वह दृढ़बन्धीसे दूसरे
पैर उठा उठाकर चलता भ्रष्ट हो तथा दौत सटाकर बाँधें
करता हो तो समझ लेना चाहे कि संसारकी शकमा देनेके
लिये साक्षात् भगवान् ही कपट-शरीर धारण किए चले आ रहे
हैं ॥ ५१ ॥ ये महारामा आधा दिन तो देवासन धोने, राजाकी
चापखुशी करने और सज्जनोंकी निन्दामें बिताते हैं, फिर कुछ
समयतक वे कुशा तथा फूल सजाते हैं और इसके पश्चात्
प्राणायाम करनेके बहाने यहाँ स्नान करनेवाली स्त्रियोंके स्तनो-
पर आँख गड़ाए नदीके तीरपर अपना दिन बिता देते हैं
॥ ५२ ॥ वैश्या अपने बचपनमें हासीका, फिर सबकी छोटीका
और शुद्धापेमें हटनीका काम करती है । अन्तमें जब कोई उपाय
नहीं बच रहता तब तपस्विनी बन बैठती है ॥ ५३ ॥ पहले तो
स्वर्णकी चाह करनेवाला व्यक्ति अपना सारा धन स्वयं कूंक देता
है और फिर धूर्णतामें निपुण होकर अपने धनसे अधिक लो
चाहता है ॥ ५४ ॥ प्रेमरूपी वृषको कान्तेमें देने कुहाड़ेकी धाके
-समान, जिसकी रूखी आँखोंसे देखनेमें विचष्टात् रूपो जान

पदाती है वह कभी न पसीज सकनेवाली मरुभूमिके समान
कुट्टनी अपनी बन्धी-बन्धी बातोंसे वज्रको भी पीस ढालती
है ॥ ५५ ॥ दो खर्वोंवत् जगत्पुत्र बिलके मुँहपर बैठे हुए उस
चूहेके समान होता है जिसके लिये बाहर बिल्की और भीतर
सोप बैठे हो ॥ ५६ ॥ भक्त (भात) से द्वेष, मूर्ख (जल) से
प्रेम, बद्धोंकी बात न मानने (अधिक लज्ज न करने) की वान और
मुँहमें सदा कड़वापन से बातें घनिकोंमें वैसी ही पाई जाती
हैं वैसे ज्वरसे पीड़ित शरीरमें पराई जाती हैं ॥ ५७ ॥
योनिके लोभाप्रभावा देनेवाली (पहले भगदत्तके प्रभा-
वाली) कानोंमें आलेके समान कठोर रूपसे चिन्ताकर खोजने-
वाली (कर्ण और शक्यके समान भयंकर शब्द करने-
वाली) यह कुट्टनी भी कौरवोंकी सेनाके समान निर्दयी
(कृपाचार्यसे रहित) है ॥ ५८ ॥ ये कुछ व्यक्ति अथम
होते हैं—डॉगकीं भस्म रमानेवाला, बगुजे उड़ानेवाला,
बाइशीची, ही-की करके हँसनेवाला, धारावती और चक्रवर्ती
॥ ५९ ॥ कोई तो अपनी दुष्टा छोकी पातिभ्रष्टका उपदेश देता
है, कोई व्यक्ति जो अपनी पत्नीकी नियमसे नहीं चला सकता
वह उसे मोचसे ठीक रखता है, तीसरा गंगाकीमें जा दूषता
है, चौथा राजाके पास निपटारके लिये पहुँचता है और कहता
है कि हमारा धन न बिगाड़ो । बताओ, हनमें किसकी नाक रह
गई ॥ ६० ॥ देहे मरत कपर टेढ़ी भौंटे, शरीरपर रौंगटे और धूनती
हुई बन्धी-बन्धी आँखें लिए वह छोपी मास्य बन्धे बन्धे कवल उठा-

कटाक्षविकटाक्षः । फवलयति पृथुलकवलेस्तद्वल-
मचलं द्विजः क्रुद्धः ॥ ६१ ॥ आतस्तर्कं कदंघिनोऽसि
कविते याताऽसि दीनां दशां मोमांसे सखि वञ्चितासि
सुहृदो वेदाः कुतः शर्म वः । धूर्त्तनिस्पृहतामिषेण
भवतामाघाय मौली पदं हत्वा चित्तयतां धनानि
सुधिरं साभ्राज्यमातन्यते ॥ ६२ ॥ मर्कटमुखि मरिच-
स्तनि मुरजोद्विरे मुष्टिभेयकटिदेष्टे । मार्जारशाधनयने
स्मरामि कान्ते तयाङ्गानि ॥ ६३ ॥ मातस्नातस्य
मौली निवसति किमिदं पुत्र शीतांशुलेषा फाले किं
नेत्रमेतज्ज्वलितशिखिशिखिं किं गले कालकूटः । नामे-
भूले किमेतच्चदिति तनयजां भारतीं भावयित्वा तिर्य-
ग्ध्यामीलितान्ना करपिहितमुक्षी पार्वती वः पुनातु
॥ ६४ ॥ सुण्डो जडिलो नम्रदृष्टी दृग्दी कपायचोरी
घा । मसमस्मेरशरीरो दिशि दिशि भोगे विजृम्भते
धूमः ॥ ६५ ॥ मेरुः स्थितोऽतिदूरे मनुष्यभूमिं परां
परित्यज्य । भीतो भयेन चौर्षादघोराणां हेमकाराणाम्

॥ ६६ ॥ यत्नोत्थापनमाश्रयिः सद्गुरुधर्मायज्ञेपदतयध-
श्रयच्छेफसिदुर्बलाह्वयलनय्य शौचमालिङ्गने । राजाधा-
यिनि त्रिधमानयुयतां युद्धस्य कृच्छ्रे ग्ने यन्ध्यात्तन्म-
तिभादप किं तु द्रक्षितुं युक्तं किमारोदितुम् ॥ ६७ ॥
यद्विश्रुतनापाङ्गैः श्रियः कुर्वन्नि चागलम् । जघने-
धेव तत्सर्वं पतस्यनपराधिषु ॥ ६८ ॥ यस्मिन्नास्मि
फचप्रह्वयतिकतो यस्मिन्न पीतस्ननद्वन्द्वश्लेषरमो न
यत्र करजैश्चचावचाः फेलयः । प्रयङ्गं न च यत्र
सुश्रयनविधिर्नो यत्र करणध्वनिः तत्पुंसः कुतानेदिनोर-
तमित्ति स्पष्टो हि विष्टिजम् ॥ ६९ ॥ रण्डा पीनपयो-
धराकृत मया चरढानुरानाहुर्जुं दोर्दण्डव्यपीधरस्न-
नमरं नो गाढमालिङ्गिता । सुलेश्यः शनशः श्रेरे यद्
पुनः कुत्रापि फापालिनीपीनोसुकुक्वावपीढनमरः
भ्रातः प्रयोधोदयः ॥ ७० ॥ रे रे लोकाः क्रुद्ध्यं अचण-
पुटपिचानं द्रुतं हस्तयुग्मं शैलाः सर्वेऽपि शूयं भयत
शुक्तराः सावधाना धिड्याम् । शीघ्रं रे रादप तं

कर सामने पहाड़के सामन परोसा हुआ भात भकोसे चखा जा
रहा है ॥ ६१ ॥ हे भार्द तर्क ! तुम स्वयं हो । हे कविते ! तुम्हारी
भी, कहीं दुर्गति हो चली है । हे सखि नीमांसा ! तुम्हें भी
चोखा हो गया है । हे मित्र वेदो ! अब तुम्हारा भी कोई गुण नहीं
रहा क्योंकि धूर्तने निःस्पृहताका शौंग रक्कर तुम्हारे सिरपर
अपने पैर रखकर धनवानोंका धन लूट-लूटकर अपना साम्राज्य
बना लिया है ॥ ६२ ॥ वन्द्य जैसे सुखवादी, मिरचके समान
स्तनवादी, मुरजके समान पेटवादी, सुह्री मरकमरवादी, बिल्वी
के कचे लैसी आँखोंवादी हे सुनरी ! मैं सदा तुम्हारे शँगोंका
स्मरण करता रहता हूँ ॥ ६३ ॥ गयोशजी पार्वतीसे पड़ते हैं-क्यों
मैं ! यह पिताजीके सिरपर क्या है ? पार्वतीजी : यह चन्द्रमा-
की छेछा है । गयोश : मस्तकपर क्या है ? पार्वती : जखती
हुई आगकी जपटोंसे भरा नेत्र है । गयोश : गलेमें क्या है ?
पार्वती : कालकूट । गयोश : और नाभिले नीचे यह क्या
खटक रहा है ? पुत्रकी यह बात सुनकर और तिरछी आँखें
करके मुँह उकती हुई पार्वतीजी आपको पवित्र करें ॥ ६४ ॥
केवल पालकही लोग ही शनके प्रकारका भोग पानेकी इच्छासे
सिर सुदाधर या जटर रखकर, नंगे होकर, छाता या चपटा
छेकर, गेयद्रा वस्त्र पहनकर और शरीरपर भस्म रमाकर ध्वर-
रकर धूमते-फिरते हैं ॥ ६५ ॥ इन भयंकर सुनातोंकी चोरीके
झरके ऋकरही सुमेरुपर्वतको पृथ्वीतल छाँदकर बहुत दूर

जाकर बसना पड़ा है ॥ ६६ ॥ प्रयत्नमे उठानेरर भी जो
दुर्बल, पुरानी तथा क्रूरते हुए चमदेशाकी इन्द्रिय बीजी पद-
कर गिर जाती है, जिसके दुर्बल शँगोंसे आश्रितग करना भी
कठिन होता है, जिसे देखके भी बज्जा घानो है और जिसे
देख-देखकर तसपी दुखी हुई जाती है उस मरकट वृद्धेमे सुल
करनेकी बातका स्मरण करके बतारप हुईसना चादिप या रोना
॥ ६७ ॥ डिडाई तो करती है शिपोंकी शॉलें, भीहें तथा
नेत्रके कोर, पर इनके अपराधका सारा फल भोगना पड़ना है
वेचारी निरपराय योनिको ॥ ६८ ॥ धरकी पत्नीके साथकी जिस
रतिक्रीडामें न केय हो पकड़े जा सकते हैं, न मोटे स्तन ही
छातीसे जगानेका रस मित्रता है, न उँगलियों (नखों) के ही
हाव-भाव (क्रीडा) होते हैं, न शींग-प्रयत्नका सुभन्ध हो पाता,
न सुले गलेसे वजनि हो निकल पाती है, वह रति-क्रीडा है कि
पुरुषके जिम्मे साधार मदा है ॥ ६९ ॥ मैंने किसी मोटे स्तन-
वादी रचहाकी अपनी सुनाशामें कनी नहीं जगाया, बड़े-बड़े
स्तनोंके बोकूने बोमोकी मुत्राशॉसे प्रबल प्रेममें भरकर कभी
आश्रितग नहीं किया । मैं तुम्होंकी सीगन्ध खाता हूँ जो कहीं
भी मुझे किसी कापञ्चिनीके मोटे उँचे स्तनोंकी कसकर दबाने-
के शानन्दका ज्ञान प्राप्त हुआ हो ॥ ७० ॥ भरे जोगो ! दोनों
हायोंसे ऋपट अरने कान मुँद जो । हे पहाड़ ! तुम भी
भारी बनकर धातीपर सावधान होकर बट जाना । हे रावप !

हता यद्ये यदि प्राणिनो यद्दं किं न करोपि मातृ-
पितृभिः पुत्रैः सदा बान्धवैः ॥ ४६ ॥ पराचं प्राप्य
दुर्वृद्धे मा प्राणेषु दद्यां कुरु । दुर्लभानि पराध्रानि
प्राणा जन्मनि जन्मनि ॥ ४७ ॥ पाशौ ताम्रवटी कुशः
करतले धौते सिते वाससी भाले मृत्तिलकः सचन्द्र-
रसो म्यस्तैकपुष्पं शिरः । दूरास्तिमपदा गतिर्दृढतर-
ध्याश्लिष्टद्वन्ता गिरः सोऽयं वज्रयितुं जगद्भगवतो
दम्भस्य देहक्रमः ॥ ४१ ॥ पीठीप्रक्षालनेन क्षितिपति-
कथया सज्जनानां प्रवादौर्नत्वा यामाधेमेवं कुशकुसुम-
समारम्भणव्यग्रहस्ताः । पश्चादेते निमज्जत्परयुवति-
कुचाभोगदक्षेणार्धाः प्राणायामापदेशादिह सरिति
सदा वासराणि क्षिपन्ति ॥ ५२ ॥ पूर्वं वेटी ततो वेटी
पश्चाद्भवति कुट्टिनो । सर्वोपायपरिक्षीणा घृद्धा वेप्रया
तपस्विनी ॥ ४३ ॥ प्रथमं स्ववित्तमखिलं कनकाथीं
भस्मसात् स्वयं कुरुते । पश्चात्स्वधनादधिकं धिनाश-

यति वज्रनानिपुणः ॥ ४४ ॥ प्रेमद्रुमोहलनतीक्ष्ण-
कुठारधारा रूक्षाक्षिचोक्षुण्णचरुक्षुण्णचित्तवृत्तिः ।
नार्द्रोभ्रवन्मरुधरेय महाप्रयन्धर्वेजं पिनष्टि कठिनं खलु
कुट्टनी सा ॥ ५५ ॥ विलाद्वयद्विर्बिलस्यान्तःस्थितमार्जा-
रसर्पयोः । मध्ये चाखुरियाभाति पत्नीद्वययुतो नरः
॥ ४६ ॥ भक्ते द्वेषो जडे मोतिः प्रवृत्तिर्गुरुलहने । मुखे
कटुकता नित्यं धनिनां ज्वरिणामिव ॥ ४७ ॥ भगदत्त-
प्रभावाया कर्णश्लयोत्कटस्वना । सेनेव कुराराजस्य
कुट्टनो किन्तु निष्कृपा ॥ ४८ ॥ भस्माङ्कलित्वकोड्यायी
वालशोची तथा द्विहिः । धारावर्ती स्रक्वर्ती पडेते
रुक्पाधमाः ॥ ४९ ॥ भार्यायै पतिदेवतापरगतिं शंस-
त्यस्त्यै पुमान् कश्चित्तां नियमैर्नियन्तुमपटुः कोपेन
संन्यस्यति । अन्यो गच्छति जाह्नवीमथ परो राजान-
मप्यायवयोर्वंशं दूषय नेति भोः कथय मे कस्तेषु मानो-
क्षतः ॥ ५० ॥ भृकुटीकुटिललाटाटः कण्टकितान्कः

शौर बाग्यवोकी ही यज्ञमें बलि क्यों नहीं दे ढालते ? ॥ ४६ ॥
धरे मूर्ख ! दूस्तेका अन्न मिले तो अपने प्राणोंपर दया नहीं
करनी चाहिए क्योंकि प्राण तो प्रत्येक जन्ममें मिल जाते हैं
किन्तु पराया अन्न कहाँ मिल पाता है ॥ ४७ ॥ जिस
गुरुपथके एक हाथमें तीरैका घदा, दूसरेमें कुशा, शरीरपर
उजले धुले हुए वस्त्र, माथेपर चन्दन मिला हुआ मट्टीका
तिलक और सिरपर एक फूल रक्का हो और वह हृदयकी से दूरसे
पैर उठा-उठाकर चला आ रहा हो तथा दाँत सदाकर बाँतें
करता हो तो समझ लेना चाहिए कि संसारकी चक्रमा देनेके
लिये साधान् भगवान् ही कण्ट-शरीर धारण किए चले आ रहे
हैं ॥ ४१ ॥ ये महात्मा आधा दिन तो देवासन पोने, राजाकी
चापलूसी करने और सज्जनोंकी निन्दामें बिताते हैं, फिर कुछ
समयतक वे कुशा तथा फूल सजाते हैं और हृदके पश्चात्
प्राणायाम करनेके बहाने यहाँ स्नान करनेवाली स्त्रियोंके स्नानो-
पर आँसु गड़ाए नदीके तीरपर अपना दिन बिता देते हैं
॥ ४२ ॥ वैरया अपने चपचपनमें दासीका, फिर सबकी खोका
और खड़ापेमें कुट्टनीका काम करती है । अन्तमें जब कोई उपाय
नहीं बच रहता सब तपस्विनी बन बैठती है ॥ ४३ ॥ पहले तो
स्वयंकी चाह करनेवाला व्यक्ति अपना सारा धन स्वयं फूँक देता
है और फिर भूततामें निपुण होकर अपने धनसे अधिक खो
डाखाता है ॥ ४४ ॥ मेरुकी बुचकी काटनेमें पैने कुशादेकी धारके
समान, जिसकी रूखी आँसोसे देखनेमें विचष्ट्रुत् रूपी जान

पदती है वह कभी न पसीज सकनेवाली महामूर्खिके समान
कुट्टनी अपनी बड़ी-बड़ी बातोंसे वज्रको भी पीस ढालती
है ॥ ४५ ॥ दो क्षियोंका मनुष्य बिलके मुँहपर बैठे हुए उस
चूहेके समान होता है जिसके लिये बाहर बिल्की और भीतर
सॉप बैठे हो ॥ ४६ ॥ भक्त (मात) से द्वेष, मूर्ख (जल) से
प्रेम, यदौकी बात न मानने (अधिक जपन करने) की बान और
मुँहमें सदा कदवापन ये बातें धनिकोंमें वैसी ही पाई जाती
हैं जैसी उबरसे पीड़ित व्यक्तियोंमें पाई जाती हैं ॥ ४७ ॥
योगिके जोभक्त प्रभाव देनेवाली (पहले भगदत्तके प्रभाव-
वाली) कानोंमें भालेके समान कठोर रूपसे चिक्काकर बोलने-
वाली (कर्ण और श्रव्यके समान भयंकर शब्द करने-
वाली) यह कुट्टनी भी कौरवोंकी सेनाके समान निर्दयी
(कृपाचार्यसे रहित) है ॥ ४८ ॥ ये सृष्ट व्यक्तिके अप्रिय
होते हैं—डँगलीमें मसम रमानेवाला, बगुले उदानेवाला,
बाजशोची, ही-ही करके हँसनेवाला, पारिवर्ती और चक्रवर्ती
॥ ४९ ॥ कोई तो अपनी दुष्टा खोकी पातिमत्यका उपदेश देता
है, कोई व्यक्तिके जो अपनी पत्नीको नियमसे नहीं चला सकता
वह उसे श्रोत्रसे ठीक रखता है, तीसरा गंगातीरमें जा झूबता
है, चौथा राजाके पास निपटारके लिये पहुँचता है और करता
है कि हमारा धन न विगाड़ो । बतानी, दनमें किसकी नाक रह
गई ॥ ५० ॥ देवे मस्त हवर टेढ़ी भीति, शरीरपर रोंगे और धूमठी
हुई बड़ी-बड़ी आँसु लिय वह कोषी मालण बड़े-बड़े कवल उठा-

कटाक्षविकटाक्षः । कवलयति पृथुलकवलैस्तरुडुल-
मचलं द्विजः क्रुद्धः ॥ ६१ ॥ भ्रातस्तर्क कर्दधनोऽसि
कविते याताऽसि दीनां दर्शां भोमांसे सखि यञ्जिनासि
सुहृदो वेदाः कुतः शर्म वः । धूर्त्तैर्निस्पृहतामिपेय
भवतामाघाय मौली पदं हत्वा विचचर्तां धनानि
सुचिरं साम्राज्यमातन्यते ॥ ६२ ॥ मर्कटमुखि मरिच-
स्तनि मुरजोदरि मुष्टिमैयकटिदेशे । मार्जारशायनयने
स्मरामि कान्ते तवाङ्गानि ॥ ६३ ॥ मातम्नातस्य
मौली निवसति किमिदं पुत्र श्रोतांशुलेपा फाले कि
नेत्रमेतज्ज्वलितशिखिशिष्यं कि गले फालकटः । नामे-
भूले किमेतच्चदिति तनयजां भारतीं भावयित्वा तिर्य-
भ्यामीलिताक्षी करपिहितमुखी पार्वती वः पुनातु
॥ ६४ ॥ मुण्डो जटिलो नम्रच्छत्री दण्डो कपायचोरी
षा । भस्मस्मेरशरीरो दिशि दिशि भोगो धिज्जम्भते
दग्धः ॥ ६५ ॥ मेरुः स्थितोऽतिदूरे मनुष्यभूमि परां
परित्यज्य । भीतो भयेन चौर्षाद्घोराणां हेमकाराणाम्

॥ ६६ ॥ यत्नोत्थापनमात्रनिःसदृजरश्मांशुशेयदनचत्र-
श्यच्छेफसितुर्बलाङ्गलनदयर्षोयमासिद्धे । राग्नाधा-
यिनि खिद्यमानयुधर्मा वृद्धस्य रुच्छे रते यत्प्यासत्र-
निमाद्य कि तु हसितं युक्तं किमारोदितुम् ॥ ६७ ॥
यदक्षिभ्रूलनापाङ्गेः रिपयः दुर्बन्ति चापलम् । जघने-
रेव तरस्यं पतयनपराधिपु ॥ ६८ ॥ यस्मिन्नाग्नि
पचग्रहव्यतिकरो यस्मिन्न पीगम्बनद्वन्द्वारोपरस्मो न
यत्र करजैर्यत्रवायवाः फेलयः । प्रत्यक्षं न च यद्
सुम्बनधिघिनौ यत्र कण्डधनिः तरपुंसः कुरांदिनीर-
तमिति स्पष्टो द्वि विधिक्रमः ॥ ६९ ॥ रण्डा पीनपर्या-
धराकृत मया चण्डानुराणाद्वृजं दोर्दण्डय्यपीधग्ना-
नभरं नो नाडमालिङ्गिता । तुल्यैः शनशः शरे यदि
पुनः कुत्रापि फापाशिनीपीनोसुन्नकुचावपीडनभरः
प्रातः प्रवोघोदयः ॥ ७० ॥ रे रे लोकाः कुग्ध्यं श्रवण-
पुटपिधानं द्रुतं हस्तयुग्मेः शैलाः सर्वेऽपि न्यूनं मयत्
शुक्तराः सावधाना धरिड्याम् । शीमे रे राएणं

कर सामने पहाड़के सामन परोसा हुआ भात भकोसे चखा जा
रहा है ॥ ६१ ॥ हे माई तर्क ! तुम व्यर्थ हो । हे कविते ! तुम्हारी
भी बुरी दुर्गति हो चली है । हे सखि भीमांसा ! तुम्हें भी
भोखा हो गया है । हे मित्र वेदो ! अब तुम्हारा भी कोई गुण नहीं
रहा क्योंकि धूर्तोंने निःस्पृहताका ढोंग रचकर तुम्हारे निरपर
अपने पैर रखकर धनवानोंका धन लूट-लूटकर अपना साम्राज्य
बना लिया है ॥ ६२ ॥ चन्द्र जैसे सुन्दरवाली, मिराँके समान
स्तनवाली, सुरजके समान पेटवाली, सुष्टी भरकरमरवाली, बिस्वी
के बन्धे लैडी आँखोंवाली हे सुंदरी ! मैं सदा तुम्हारे आँगोका
स्मरण करता रहता हूँ ॥ ६३ ॥ गणेशजी पार्वतीसे पूजते हैं—'क्यों
मैं ! यह पिताजीके सिरपर क्या है ! पार्वतीजी : यह चन्द्रमा-
की जेबा है । गणेश : मस्तकपर क्या है ! पार्वती : जड़ती
हूँ आगकी लपटोंसे भरा नेत्र है । गणेश : गलेमें क्या है !
पार्वती : कालकूट । गणेश : और नाभिले नीचे यह क्या
बन्द रखा है ! पुत्रकी यह बात सुनकर और तिरछी आँखें
काके मुँह बढती हुई पार्वतीजी आपकी पवित्र करें ॥ ६४ ॥
केवल पाण्डवीकी जोग ही अनेक प्रकारका भोग पानेकी इच्छासे
सिर मुड़ाकर या जटा रखकर, नंगे होकर, छाता या डण्डा
लेकर, गणेश धरपहनकर और शरीरपर भस्म रमाकर इधर-
उधर घूमते-फिरते हैं ॥ ६५ ॥ इन अर्थकर सुनारोंकी चोरीके
फले बरकर ही सुमेरु पर्यंतकी पृथ्वीतल ज़ाँडकर बहुत दूर

जाकर बसना पड़ा है ॥ ६६ ॥ प्रयत्नमे टटानेपर गी जो
दुर्बल, पुरानी तथा कूडते हुए चमड़ेवाली इन्द्रिय बीजी पद-
का गिर जाती है, जिसके दुर्बल अंगोंसे आश्रिगन करना भी
कठिन होता है, जिसे देवके भी लगना धातो है और त्रिमे
देव देवकर तरुपी हुयी हुई जाती है उस गरुड चूनेमे मुगल
करनेकी बातका स्मरण करक बनाए हुए ईश्वना चाँदिए या रोमा
॥ ६७ ॥ डिडाईं तो करती हैं खिपाँकी आँखें, मौँहें तथा
नेत्रके कोर, पर इनके अपराधका सारा फल भोगना पड़ना है
देवारी निरपराध योनिको ॥ ६८ ॥ बरकी पत्नीके साथकी जिस
रतिश्रीधामें न केश हो पकड़े जा सकते हैं, न मोटे स्तन ही
छातोंसे खगानेका रस मित्रता है, न उँगाखिपों (नखों) के ही
हाव-भाव (भीड़) होते हैं, न अंग-प्रपङ्का सुम्बन हो पावा,
न सुते गलेसे प्वनि हो निकल पाती है, वह रति-श्रीदा है कि
पुरुषके लिये साचाई मदा है ॥ ६९ ॥ मैंने किसी मोटे स्तन-
वाली रण्डाकी अपनी सुनारामें कभी नहीं जगाया, बड़े-बड़े
स्तनोंके बोम्बे बोम्बोकी सुनारामें प्रयत्न प्रेममें भरकर कभी
आश्रिगन नहीं किया । मैं सुदोंकी सौगन्ध खाता हूँ जो करों
भी सुमे किसी कापाखिनीके माटे डँबे स्तनोंकी कसकर दवाने-
के धानन्दका ज्ञान प्राप्त हुआ हो ॥ ७० ॥ बरे लोगो ! दोनों
हापोंसे म्हापट अपने कान सूँद लो । हे पहाड़ ! तुम भी
भारी बनकर पार्षीपर सावधान होकर बट जाओ । हे रावण !

विचय्य वसनेर्नास्तिकानां पिधानं सुतोऽयं कुम्भकर्णः
कटुरवविकटं शर्धते दीर्घमुद्यैः ॥ ७१ ॥ लभ्यानङ्गवि-
लेपनानि सुलभास्ताम्बुलसम्पत्तयः कल्प्यन्ते च मृदूनि
चोनवसनान्यभ्येति काऽपि घृतिः । किञ्चोच्चैर्घटते
विमर्दसुलभः सम्भोगलीलारसो रण्डा विचयतीति
हन्त महतः पुण्यस्य पाकक्रमः ॥ ७२ ॥ वर्णनदयितः
कश्चिद्वनदयितो दानकर्मदयितोऽन्यः रत्नादयितश्चान्यो
वेश्यानां नर्मदयितोऽन्यः ॥ ७३ ॥ वाचयति नान्यलि-
खितं लिखितमनेनापि वाचयति नान्यः । अयमप-
रोऽस्य विशेषः स्वयमपि लिखितं स्वयं न वाचयति
॥ ७४ ॥ विनापि तातेन विना जनन्या गजाननः शंभु-
सुताभिधानः । विनैव शास्त्राणि विनैव वेदैर्माध्यंदि-
नानामिव पाठकोऽभूत् ॥ ७५ ॥ विना मद्यं विना
मांसं परस्वहरणं विना । विना परापकारेण दिविरो
दिवि रोदिति ॥ ७६ ॥ वैराग्यमङ्गिरजनान्प्रवचनैः प्रतार्य
रण्डां चिराय विकटस्तनसंभताङ्गीम् । ब्रह्मोपदेशमिप-

सङ्गतगण्डभित्तिनिःशङ्कुचुम्भनरसैः कितवा द्रवन्ति
॥७७॥ शतवेदी मे सिद्धः सदृशवेदी रसोऽपि निर्यातः ।
इति घटति घातुवादी नग्ने मलिनः कृशो रूतः ॥७८॥
शिक्षितापि सखिभिर्मन्तु सीता रामचन्द्रचरणौ न
ननाम । किं भविष्यति मुनीश्वधुयद्भ्रातरनमिदं तद्रं-
जसेति ॥ ७९ ॥ शृणु सखि कोतुकमेकं ग्राम्येण कुका-
मिना यद्य कृतम् । सुरतसुखमीलितान्नी मृतेति
भोतेन मुकास्मि ॥८०॥ अमणः श्रायकवध्याः सुरत-
विधौ दशति नाधरं दत्तम् । मदिराक्षि मांसभक्षणम्-
स्मत्समये निपिद्धमिति ॥ ८१ ॥ सक्वाणं लोतनेर्त्र
कुलयुवतिमुखं दश्यते सातुकम्पे रण्डानामर्षलजाश्चि-
तमधिपुलकं स्फुरयते पोनमङ्गम् । क्लीयानां खाद्यते-
ऽन्तश्चिरविहितधनं काष्ठमूलाश्रितोयैः पूर्वं विद्याक-
लानां सरुलसुखनिधिवैद्यविद्याभिवन्धा ॥ ८२ ॥ सदा
यक्रः सदा क्रूरः सदा पूजामपेक्षते । कन्याराशिसिधो
नित्यं जामाता दशमो ब्रह्मः ॥ ८३ ॥ सामगा-

धुम भी कपड़ेसे नाक बन्द कर लो, क्योंकि यह सोया हुआ
कुम्भकर्ण अत्यन्त दुर्गन्ध-भरा भयंकर तथा दहादसे भरा
अपानवायु बड़े वेगसे छोड़ रहा है ॥ ७१ ॥ जिसके यहाँ अनेक
प्रकारके कामोपेक्षक विलेपन मिल जाते हैं, पानका सामान
मिल जाता है, कामल रेशमी वस्त्र जहाँ पहने जाते हैं, नये-नये रङ्ग
वस्त्र बनाए जाते हैं और जिसके यहाँ रमणका सारा आनन्द भी
संरक्षतासे मिल जाता है ऐसी धनी रथवा बड़े पुण्यसे मिलती
है ॥ ७२ ॥ कोई तो वेश्याओंके वर्णनमें, कोई उसके धनमें, कोई
उसके दानमें, कोई उसकी रथामें और कोई उसमें साथ की हुई
क्रियाओंमें ही रस लेता है ॥ ७३ ॥ यह कायस्थ न तो दूसरोंका
ही लिखा पढ़ पाता है, न उसका ही लिखा कोई पढ़ पाता है
किन्तु सबसे बड़ी बात इसमें एक यह है कि वह स्वयं अपना
लिखा भी नहीं पढ़ पाता ॥ ७४ ॥ हाथीके मुँहवाले गणेशजी-
की न माता पार्वती है, न पिता शिव, फिर भी वे बड़े ही
शिवके पुत्र कहे जाते हैं जैसे विना वेद-शास्त्र जाने ही मन्थाद्धमें
पढ़नेवाले माध्यंदिन शास्त्रावाले बन बैठे ॥ ७५ ॥
मदिरा, मांस, दूसरोंका धन हरनेका अवसर और दूसरोंकी
गुनाई करनेका अवसर न पानेसे यह कायस्थ स्वर्गमें भी पढ़ा
रो रहा है ॥ ७६ ॥ मुझे हुए विशाख स्तनोवाली रथवाकी
वैराग्यकी बातोंमें बलकाकर प्रत्येक उपदेश कानैके वहाने
उसके गालसे मुख लगाकर निर्भय होकर सुनान करते हुए पूर्ण

उसे कुसला रहे हैं ॥ ७७ ॥ स्वयं नंगा, मैलाकुचैला, दुर्बल और
रूखे शरीरवाला यह धातुवादी (रसायनी) वैद्य गाल बजा
रहा है कि मुझे शतवेदी भी सिद्ध है और सदृशवेदी रस भी
मैंने निकाल लिया है ॥ ७८ ॥ सखियोंके सिलानेपर भी सीता-
जीने रामके चरणोंमें सिर नहीं छुवाया क्योंकि उन्हें दर या कि
उनके पैरकी धूल कहीं मल्लकर लगे हुए रनसे लग गई तो
यह ग्रहलयाके समान स्त्री न बन खड़ी हो ॥ ७९ ॥ वैराग्य अपना
सखीसे कह रही है : हे सखी ! आज एक देहाती मुख
कामीकी अचरजमरी बात तो सुन कि मैं तो सुरतेके आनन्दमें
छाँलें मुँदे पड़ी थी और वह मुझे मरी समझकर दरके मारे भाग
छड़ा हुआ ॥ ८० ॥ कोई बौद्ध भिक्षु अपने भक्तकी स्त्रीके
साथ रमण तो कर रहा है पर उसका भोटन चूमनेका कारण देते
हुए कहता है कि—'हे चवल आँखोंवाली ! हमारे धर्ममें
मांस खाना घृणित है' ॥ ८१ ॥ वैद्यकी विद्या ही दूसरी और
विद्याओंमें सबसे अच्छी है क्योंकि वैद्य तो दहके ही घोट कुञ्ज-
वपुषोंके मुख और उनकी चंचल आँखोंकी और दवापूर्वक
देखता है, रथवाओंके आँधे जानसे भरे मोंटे पुत्रकेत बंग छूता
है और कादा पिजा-पिजाकर नपुंसकोंका बहुत दिनोंका छुटा-
छुटाया धन भी हरता है ॥ ८२ ॥ कन्याराशिसमें पड़े हुए हुए
प्रहके समान कन्याके साथ ब्याह हुआ दामाद भी दसवाँ
प्रह ही होता है क्योंकि दोनों ही सदा कुटिल और रूखे

यत्रपूतं मे मोक्षिच्छुभमघरं कुह । उत्कथिततासि चेद्भद्रे
 धामं कर्षुं दशस्य मे ॥८४॥ स्नानं सिन्धुजले विधाय
 जनतासन्ने निपण्यस्तटे कापायेण घनायकुण्डि-
 ततनुः प्रातः परिव्राजकः । स्यापूपधूनोत्तरा मधु-
 मती भिक्षा यतो लभ्यते यस्मिन्वा गतभर्तृका युवतय-
 स्तत्तद्गृहं ध्यायति ॥ ८५ ॥ स्नार्य स्नायमनारतं
 धनवतामत्रे निरीहप्रताः प्रायो मृत्तिलदूर्भेणप्रहयनाः
 सम्मोहयन्तो जगत् । अम्भःकेलिकृतावतारतरुणीनी-
 रन्ध्रयक्षीरहृद्वन्ध्रालोकनकृणितेक्षणयुगं श्यायन्त्यमी
 ढामिकाः ॥ ८६ ॥ स्वयं पञ्चमुद्यः पुत्री गजाननपडा-
 न्तनी । दिगम्बरः कथं जीवेदन्नपूर्णां न वेद्गृहे ॥८७॥-
 ' अद्भुतरसः अद्भुतमद्भुनि जातं न हि दृष्टं जात-
 मद्भुजादद्भु । अद्भुना तद्विपरीतं चरणसरोजाङ्घ्रिनि-
 र्गता गङ्गा ॥ १ ॥ इदं सारथिचरं यद्वयनितले पार्यण-
 शशी कलङ्काहुन्मुक्तः किमपि च तदन्तर्धिलसति ।

प्रवालं माणिक्यं कुवलयदलं मन्मथघुर्मुनीषीणायाद्-
 ध्यनिरिति महद्यन्मघरम् ॥ २ ॥ एके कुटीरको-
 खेऽपि न लक्ष्यन्ते स्थिताः फयचित् । अन्वेषां विमय-
 स्तैतद् ब्रह्माण्डमपि सङ्कटम् ॥ ३ ॥ पपवन्वासुतो
 याति चतुष्पङ्कतेष्वरः । मृगवृणाम्भसि स्नातः शय
 शृङ्गधनुर्धरः ॥ ४ ॥ कथमुपरि कलापिन- कलापी
 धिलसति तस्य तलेऽष्टमीन्दुषण्डम् । कुवलययुगले
 ततो धिलोलं तिलकुसुमं तद्वचः प्रवालमस्मात् ॥ ५ ॥
 कमलमनम्भसि कमले कुवलयमेतानि फनकलाविका-
 याम् । सा च सुकुमारसुभोग्युत्पातपरम्परा कैयम्
 ॥ ६ ॥ कस्मै किं कथनीयं कस्य मनःप्रत्ययो
 भवति । समयति गोपयधूटी कुङ्कुटोरे परं ब्रह्म ॥७॥
 काकुत्स्थेन शिरसि यानि शूनशुद्धिदानि मायाभिधेः
 पीतास्त्यस्य विमानसीमनि तथा भ्रान्तानि नाकीक-
 साम् । तान्येवावश्य घनुःश्रमप्रशमनं कुर्वन्ति सीता-

बने रहते हैं और सदा अपनी पूजा चाहते रहते हैं ॥ ८१ ॥
 हे सुन्दरी ! सामवेदके पासते पवित्र मेरा श्रोत्र न बूझा करो ।
 यदि तुम्हें इतना बालक ही हो तो दाँतोंसे मेरा बायाँ कान
 काट लो ॥ ८२ ॥ समुद्रके जलमें स्नान करके गेहूँ वर्राँसे
 मञ्जी-माँति अपनी शरीर दके हुए यह जो सन्मासी जनताकी
 भीड़मे भरे समुद्र तटपर बैठा है वह उन धरोंके ध्यानमें मग्न
 है जिनमें पूर और भीसे भरे मीठे-मीठे पदार्थ मिषामें मिजा
 करते हैं था जिन धरोंमें ऐसी नखेलियाँ हैं जिनके पति परदेय
 पजे गए हैं ॥ ८३ ॥ बार-बार स्नान करके तथा मिट्टी, तिल
 और कुश मात्र लूटाए रखकर धनवानोंपर अपने त्यागकी
 धार जमानेवाले और संसारकी टगनेवाले ये दुर्गम लोग क्रीडा-
 के लिये जलमें डूबती हुई नखेलियाँके दोनों मोटे स्तनोंपर
 अपनी दोनों छालें गड़ाए उठानेके ध्यानमें मग्न हैं ॥ ८४ ॥
 जिन शंकरजीके पाँच तो अपने मुख हैं, पुत्र गणेशका मुख
 हाथीका है, दूसरे पुत्र कार्तिकेयके छह मुख हैं, ये नगे शिवजी
 कैने भी पाते यदि घरमें अन्नपूर्णा न होती ॥ ८० ॥

- अद्भुतरस : जलमें कमल उलपन्न होता देखा गया है
 पर कमलसे जल उलपन्न होते नहीं देखा गया किन्तु इस समय
 कथमुष लुब्धी बात हो रही है कि भगवान्के चरण-कमलसे
 अन्नमयी गंगा निकल रही है ॥ १ ॥ किसी नायिकाके मुख, मोठ,
 दाँत, छाल तथा बाणीका चर्चन करते हुए कहा गया है—'एक
 निश्चिन्त बात जो यह है कि यह मूढजनों कर्णकरदित पृथिवीका

चन्द्रमा दिखाई देता है उससे अधिक विचित्र बात यह है कि
 उसमें माणिक, नीला कमल, कामका घनुष और वसन्तकी
 शीणकी ध्वनि सब शोभा पा रही है ॥ २ ॥ इस विषयमें
 कुछ लोग तो ऐसे हैं जो कहीं किस कोनेमें सिमते पड़े हैं वा
 नहीं पड़ता और दूसरे वे लोग हैं जिनके देखनेके विस्वारके
 लिये यह सारा ब्रह्माण्ड छोड़ा पड़ता है ॥३॥ आकाशके कूज-
 की माबाले अपनी सिर सजाकर, भरतृपक्षकी मृग-मरीचिकाके
 जलमें स्नान करके, खरहेकी सींगसे बना हुआ घनुष खेकर,
 यह वन्पणका पुत्र चला जा रहा है ॥ ४ ॥ क्या ऊपर मोरकी
 पूँज (केशवर्जि) चमक रही है जिसके नीचे अष्टमीका
 चन्द्रमा (माया) है, नीचे लंबवद दो नीचे कमल (छालें)
 हैं, उसके नीचे तिलका फूल (नाक) है और उसके नीचे
 मूँगे (श्रोत्र) हैं ॥ ५ ॥ बिना जखका एक कमल (मुख) है
 जिसमें नीचे कमल (छालें) खिजे हैं और ये सब जिस
 सीनेकी जता (नायिका) में वे हैं वह भी अत्यन्त सुकुमार और
 सुन्दर है । यह धारचर्चकी श्रेणी तो देखो ॥ ६ ॥ किससे
 क्या कहा जाय, सुनकर भी किसको विश्वास होगा कि जबकी
 मादीरूपी कुटीमें यह गोपी परबहके साथ क्रीडा करती है
 ॥ ७ ॥ नायावी रागणके जो सिर रामचन्द्रजीने काट डाले वे
 देवताओंके विमानोंसे उकरा-उकराकर ऐसे चकरावा रहे ये माली
 उनके उड़ते हुए पाज चँवरके समान हिज-हिजकर रासकी
 घनुष चक्रानेकी यकावट मिटा रहे हैं ॥ ८ ॥ 'यह धानन

पतेः श्रीडाचामरडम्बरात्रुक्तिभिर्दोलायमानैः कचैः ॥८॥ किं क्रमिष्यति किलैव धामनो याचद्विष्यमद्वसन्त वानवाः । तावदस्थ न ममो नमस्त्रले लङ्कितकांशशि-
मण्डलः क्रमः ॥ ९ ॥ किं प्रभो हरिमस्य विश्वमुदरे
किंवा फणान्भोगिनः श्रेते यत्र हरिः स्वयं जलनिधेः
सोऽप्येकदेशे स्थितः । आश्चर्यं कलयोद्भवो मुनिरस्तो
यस्यैकहस्तेऽम्बुधिर्गण्डूपीयति पङ्कजोयति फणी
शृङ्गोयति श्रीपतिः ॥१०॥ चतुर्ष्वपि समुद्रेषु सन्ध्या-
मन्वास्य तत्क्षणात् । कञ्चाक्षितं निशान्ते स्वे वाली
पौलस्त्यमस्यजत् ॥ ११ ॥ चित्रं कनकलतायां पल्लव
पद्यामृतं सृते । कुसुमसमुद्गमसमये नो जाने किं परं
भावि ॥ १२ ॥ चित्रं कनकलतायां शरदिन्दुस्तत्र
खञ्जनद्वितयम् । तत्र च मनोजघनुषो तदुपरि गाढा-
न्धकारिणि ॥ १३ ॥ चित्रं महानेप वतावतारः फव
कान्तिरेषामिनवैध भङ्गिः । लोकोच्चरं धैर्यमहो प्रभावः
फवाप्याकृतिर्नूतन एव सर्गः ॥ १४ ॥ जाता लता हि

शैले जातु लतायां न जायते शैलः । अधुना तद्विपरीतं
कनकलतायां गिरिद्वयं जातम् ॥ १५ ॥ तस्मिन्मुद्धे
क्षयेनैव त्वरितो वानरध्वजः । सरथं सध्वजं सार्धं
भोगमन्तर्वधे शरैः ॥ १६ ॥ दोर्दण्डाञ्चितचन्द्रशेखर-
घनुर्दण्डावमङ्गोद्यतदङ्कारध्वनिरार्यं बालवचरितप्रस्ता-
वनाडिशिडमः । प्राक्पर्यस्तकपालसंपुटमिलद्वद्महा-
एडभाएडादरन्नाभ्यतिपिण्डतचशिडमा कथमहो
नाद्यापि विश्राम्यति ॥ १७ ॥ न केनापि श्रुतं दृष्टं
चारिणा चारि श्रुष्यति । अहो गोदावरीचारा भव-
सिन्धुविश्रुष्यति ॥ १८ ॥ पञ्चात्क्षेपप्रसर्पत्रवलमरुदप-
व्यस्तवारारकराम्नाः पातालाद्दृशीवद्वींकरभयचकित-
मेक्षणीयाद्यतारः । उच्चञ्चञ्जुकोटोविदलितजलदा-
लीकवल्मोकिनर्द्विद्युन्मिथ्याभुजङ्गाकवलनचपलस्तू-
र्यमायात् सुषणः ॥ १९ ॥ पश्यन्तु कौतुहमिदं सकलाः
कञ्चोन्द्राः क्षिप्रं द्विमाद्रिशिखरं रजनोचरेशः । वामि
करे रजतकुम्भवदेष धृतवा धत्ते करेण द्विमनिर्भरपा-

(विष्णु) कितनी धरती नापेगा? यह कह-कहकर दानव हँस ही
रहे थे कि इतनेमें सूर्य और चन्द्रमंडलको ज्वलता हुआ भागवा
वामनका रूप इतना फेड़ गया कि आकाशमें भी नहीं समा
पाया ॥१॥ उन भगवान् विष्णुको क्या कहा जाय जिनके उदर-
में सारा संसार है वे भी जिस शेषनागके गर्भोपर साते हैं, वह
समुद्रके एक कोनेमें पड़ा रहता है और वह समुद्र भी अगस्त्य
मुनिके एक हाथके चिबल्लुमें कुचके जल सा जान पड़ता है,
जिसमें शेषनाग कमलसे जान पड़ते हैं और भगवान् विष्णु
औरके समान दिखाई पड़ते हैं । वहा आश्चर्य है ॥३०॥ अपनी
कालमें दवे हुए शायणको लेकर बालिने चारों समुद्रोंपर जाकर
हँसा वन्दन किया और फिर घरमें आकर उसे अपने भवनमें
छोड़ दिया ॥ ३१ ॥ आश्चर्यकी बात है कि सोनेकी लता
(नायिका) में अभी ही जब पत्ते (अंशुकी) अमृत बरसा
रहे हैं तब फूल उगनेके समय (मत्स्यकाल आनेपर) तो न
जाने क्या होगा ॥ ३२ ॥ आश्चर्यकी बात है कि सोनेकी लता
(नायिका) में एक गारुडा चन्द्रमा (मुख) है, उसमें दो
खंजन (अँलें) हैं, उसपर कामके दो धनुष (भीहें) हैं और
और उसके ऊपर घना अंधकार (केर) है ॥ ३३ ॥ यह कुछ
निराला ही अचतार है, कुछ निराला ही इसकी शोभा और
वाक-वाक है, कुछ भलीकिक ही इसकी भीरता तथा इसका
अद्भुत प्रभाव है और कुछ अद्भुत ही आकार है, यह कुछ

सृष्टि ही नवीन है ॥ ३४ ॥ पहाड़में लता होती है, लतामें
पहाड़ नहीं रहता पर यहाँ तो उल्टे सोनेकी लता (नायिकामें)
दो पहाड़ (स्तन) निकले लड़े हैं ॥ ३५ ॥ उस युद्धमें शत्रु-
नने अत्यन्त शीघ्रतासे चप भरमें ही रय, पताका तथा घोषों-
के साथ भीमपितामहको भी बाँधते डक दिया ॥ ३६ ॥
धनुषके टंकारकी वह श्वनि क्या आन ही शान्त नहीं हो पा
रही है जो विशाल हाथोंसे पकड़े हुए शकारा धनुष टूटनेकी
सूचना दे रही है, जो श्रीरामचन्द्रके लक्ष्मणमें धनुष चबाने-
की चालकी घोषणा कर रही है और जिसकी घोर भयंकरता
तरकाक दूटे हुए मोल्लेके बीच पड़े हुए महाहर्म चकर खा रही
है ॥३७॥ आजतक किसीने जलसे जलका सूखना न देखा है
न सुना, पर आश्चर्यकी बात यह है कि गोदावरीके जलसे
भवसागर सूखा जा रहा है ॥ ३८ ॥ बड़े-बड़े पंखोंकी वेगभरो
चाबले समुद्रका जल हटाले-बढ़ाले और पातालावासी सर्पों
द्वारा भय और अचरजसे सिर उठाकर देखे जाते थे गरुड़ अपनी
पोंचकी नोकसे फटे हुए बाइक रूरी वरभीकमें निकलकर खप-
लपाती हुई बिजलीकी नागिन समझकर उसे खानेकी रूपते चले आ
रहे हैं ॥३९॥ सब श्रेष्ठ कविगण यह अचरम ता देखें कि अत्यन्त
शीघ्रतासे हिमाचलका एक शिखर बाएँ हाथमें चाँदीके चढ़ेकी
भौति धारण किए यह शरण ऐसा जग रहा है मानो पाखेका
भरना पीने आ रहा हो ॥ ४० ॥ इस पर्वतके शिखरपर बैठे

नलीलाम् ॥ २० ॥ पाश्यात्यभागमिह सासुषु सन्नि-
पण्याः पश्यन्ति शान्तमनसान्द्रनरांशुजालम् । सम्पूर्ण-
लम्बललनालपनोपमानुसङ्गसङ्घिहरिणस्य द्विमांशु-
मूर्तेः ॥ २१ ॥ मूकार्थ्यं कमपि यधिराः श्लोकमाक-
र्षयन्ति श्रद्धालुस्तैः विलिखति कुण्डिः श्लाघया वोल-
तेऽन्धः । श्रम्यारोहत्यहह सहसा पङ्कुरप्यद्रिभ्रष्टं
सान्द्रालस्याः शिशुभरयतो मन्द्मगयान्ति बन्धाः
॥ २२ ॥ युगान्तकालप्रतिसंहतात्मनो जगन्ति यस्यां
सविकासमासत । तनी ममुस्तस्य न कैटमद्विपस्तवो-
धनाभ्यामनासम्भवा मुदः ॥ २३ ॥ रत्नमिच्छित्तु संक्रान्तैः
प्रतिविभ्रयशतैर्वृतः । शालो लङ्घेभ्यः कृच्छ्राद्वाङ्गनेयेन
वस्वतः ॥ २४ ॥ शोलाशोलाततो विलोचनयुगे गच्छ-
न्ति मूढार्थमो वक्षत्रे केचन मुद्रणादधरयोः सोदन्ति
शास्त्रासृगाः । ये नासापुटवारिणः श्रवणयोर्वै च
स्थिताः कोटरे युद्धव्यप्रकरस्य ते यदि परं स्वस्याः

क्षयं रक्षतः ॥ २५ ॥ विपुलेन सागरशयस्य कुक्षिणा
मुवनानि यस्य परिरे युगचये । मयधिधमारसकलया
पपे पुनः स पुरस्त्रियैकतनयैक्या दृशा ॥ २६ ॥ सयः
पीत्वा दूरोभिर्जलधिमय चिरं दृष्टमैकक्यभूमीति-
मीढाभूपुरिद्वगुणपद्विमभिर्मनैरेः पूरयतः । ये विन्य-
स्ताः पुरस्ताभिणि निशि निवट्टैरोपवीनां जलद्विस्ते
दृश्यन्ते तदात्वोपितकपिशिविस्मारिणः सेतुशैलाः
॥ २७ ॥ स्थाणुः स्वयं मूलविद्भिन पय प्रभो यियाग्रे
रमणी स्वपर्णा । परोपनीतैः कुसुमैरजस्रं फलत्वमीष्टं
किमिदं विधिप्रम् ॥ २८ ॥

रौद्ररसः—अभ्यन्त्यास्फोलाभिधद्विपसधिवरमानां-
स्मस्तिप्रकपङ्के मप्रानां स्यन्दनानामुपरि कृतपदन्त्यास-
यिक्रान्तपत्तो । स्फोतासुन्पानगाष्टीरसदशियशिया-
तूर्यनृत्यरक्तवन्धे संप्रामैकार्ष्यान्तः प्रविचरितुमलं
पण्डिताः पाण्डुपुत्राः ॥ १ ॥ कतममुत्तं दृष्टं या

हुप जोग मोदने हरिय छिप हुप चन्द्रमाके पीङ्गेका भाग ही
देशवे है जिसमें कलककी काजिमा भर देनेसे कियों धने रूपमें
दिव्याई देतो है श्रीर जो भली भाँति कियोके मुखकी समानता
कर पाता है ॥ २१ ॥ गूँगोंके पदे हुप रज्जोक बढे सुन रहे हैं,
सूजे अद्भुतके साथ जित्त रहे हैं, प्रशंसा करता हुप श्रम्या
जिते देख रहा है, पंगु पृक्षापक पदादकी धोटीपर चढ़ रहा है
और वन्ध्यायूँ गर्भके भारसे धजसाई हुई धारे-धारे खडी का
रही है ॥ २२ ॥ प्रलयके समय सब जीवोंको धरने भीतर
समेत छेनेवासे जिन भगवान्के शरीरमें यह सारा जगत्
विस्तारके साथ समा गया, उसी शरीरमें वे ऊँधके शशु
नापायप श्रीनाराद्वीके श्यामनसे उत्पन्न होनेवाला हर्ष
नहीं समा सके ॥ २३ ॥ राजकी भीतोंपर पदी हुई सिकडों
परदाह्र्यांसे विरे हुप राजकीकी हनुमानजाने बडी कडिनाईसे
पहचाना कि वह रावण है ॥ २४ ॥ युद्धमें कैसे हुप राव-
णाके कुम्भकण्ठी शौर्वासे जो बन्दर समा गए थे वे उसके
सदन नावसे पलक मारनेपर मूर्च्छित होजाते थे बीर जो युँध-
में समा गए थे वे झाडाका चपेसमें पड़े जा रहे थे । किन्तु
जो उसके कान शौर नाकके पोखलेमें समा गए थे वे ही कुड
काज स्वस्थ रह सके ॥ २५ ॥ प्रलयके समय ससुद्रमें साने
वासे जिस भगवान्के विशाल दरनेपर भुवन-मंडलको पी
जिया या ठकी भगवान्की नगरकी एक छाने मदसे शयसुकी
एक शालिये पी दावा ॥ २६ ॥ लंका पहुँचनेके लिये बन्दरोंने

जो पर्वतका पुत्र बाँधा था उसमें जमे हुप पर्वतोंने पक्षे तो
ससुद्रपर पक्षे ही अपनी कन्दारों द्वारा उसका सारा
वज सोल जिया किन्तु जब धरने वन्धु मैनाकके वेगसे बहते
हुप प्रेमके धारूँ देखे तो उससे भी दुगुने वेगसे निकलते हुप
धरने कानेरुपी प्रेमायुधोंसे वहाँसे ससुद्रको भर दिया ।
उस समय रावके धँधरेमें धरनी वमवशाती हुई जदी-
दृष्टियोंके प्रकाशमें रहे गए थे पर्वत श्यामी वन बन्दरोंका
स्मरण दिखाले है जिन्होंने उनपर विधाम किया था ॥ २७ ॥
यह क्या कम विचित्र जान है कि जो स्वयं स्थाणु (हूँठ) है,
जिसके मुख (माता-पिताका) कोई ठिकाना नहीं, जिसके हुप
पियास (काँडिकेय, शाखा रहित) है, और जो अर्षया
(पार्वती, विना पतेवाजी) है वही स्थाणु पूज जाकर चरने-
वासे लोगोंको सदा गनचाहा कर दिप ढाज रहे हैं ॥ २८ ॥

रौद्र रसः परस्पर टकराकर फटे हुप दाबियोंके रचित,
मजा, मांस श्रीर मस्तकके बीचधमें द्रव्ये हुप रशोंपर पीर रक्ष-
रपकर जिसमें बीर वैदक सैनिक चख रहे हैं, बहता हुप
शरिार पीनेके लिये सूकडो होकर अर्धगल च्वनि करनेवाकी
सिचारिनियोंके गानेके साथ-साथ जिसमें घट नाव रहे हैं,
येमे संभ्रम-रूपी ससुद्रमें केवल पाँचव ही बदे मुखसे टहल
सकनेमें समर्थ है ॥ १ ॥ स्वयं मरे हुप द्रोणाचार्यका सिर
काट देनेपर धरवत्यामा कह रहा है—“अब वडाधर पिताके
साथ शत्याचार था आयाचारका शशुमोदन करके तुम जोग

यैरिदं गुरुपातकं मनुजपशुभिर्निर्मयादैर्भवद्भिरुदागुधैः।
नरकरिपुण्यं सार्धं तेषां समीमकिरीटिनामहमयम-
सृष्ट्मेदोमांसैः करोमि दिशां वलिम् ॥ २ ॥ चञ्चद्भुज-
भ्रमितचण्डगदाभिघातसंचूर्णितोर्युगलस्य सुयोध-
नस्य । स्त्यानावनद्धधनशोणितशोषपाणिहस्तसंयि-
प्यनि कर्चास्तव देवि भीमः ॥ ३ ॥ त्रैलोक्यप्राण
शोण्डः सरसिजवसतेः सम्प्रसृतो भुजाभ्यां सुचक्रं
नाम घर्षणैः धुलिशकटिनयोर्षस्य दोष्णोविलीनः ।
ज्वालालाहाकालकालानलकवलभयभ्रान्तदेवासुराणि व्या-
तन्वानो जगन्ति ज्वलति मुनिरयं पार्थवीधर्मपुत्रः
॥ ४ ॥ देशः सोऽयमरातिशोणितजलेर्षस्मिन्हृदाः
पूरिताः क्षत्रादेव तथाविधः परिभवस्तातस्य केश-
शहः । तान्येवाहि तशुखघस्मरगुरुष्यस्त्राणि भास्वन्ति
मे यद्रामिण कृतं तदेव कुरुते श्रोणारमजः क्रोधनः
॥ ५ ॥ नाहं रक्षो न भूतो रिपुरधिंरजलाह्वादिताङ्गः
ऋणाशं विस्तीर्णोऽमतिज्ञाजलनिधिगहनः क्रोधनः

क्षत्रियोऽस्मि । भो भो राजन्प्रवीराः समरशिखिशि-
खाभुक्तशोषाः कृतं घस्त्रासेनानेन लीनैर्हंतकरितुरगा-
न्तहितैरास्यते यत् ॥ ६ ॥ पातालतः किमु सुघारस-
मानयामि निष्पीड्य चन्द्रममृतं किमु घाहरामि ।
उच्यन्तमद्य तपनं किमु वारयामि फीनाशपाशमपया
किमु चूर्णयामि ॥ ७ ॥ यत्सत्यव्रतभङ्गभीरुमनसा
यत्नेन मन्दीकृतं यद्विस्मर्तुमपीहितं श्रमवता शान्ति
कुलस्येच्छता । तद्द्यून्पारणिसंभृतं नृपसुताकेशाम्ब-
रकर्णैः क्रोधज्योतिरिदं महत्कुरुचने यौघिष्टिरं
जूमते ॥ ८ ॥ येन स्वां विनिहत्य मातरमपि क्षत्राल-
पूरासवास्वादोन्मत्तपरश्वधेन विदधे निःक्षत्रिया
मेदिनी । यद्वाणम्रणघर्तनः शिखरिण क्रौञ्चस्य हंस-
च्छलाद्याप्यस्थिकणाः पतन्ति स पुनः क्रुद्धो मुनि-
भार्गवः ॥ ९ ॥ यैः प्राणापहतिः कृता मम पितुः क्रुद्धे-
युधि क्षत्रियै रामोहं रमणीयिहाय वलयाग्निःशेषमेपां
हठात् । भास्वत्प्रौढकुठारकोटिघनकाकाएडभ्रुट्कंध-

मर्पादा तोदनेवाले मये पशु वन गए हो । इसलिये कृष्ण,
भीम तथा अर्जुनके साथ साथ मैं तुम लोगोंका रक्षि, मजा
तथा मांस लेकर अभी दिशाओंको यल्लि चढ़ाए बाळ रहा
हूँ ॥ २ ॥ शीघ्रदीसे भीम कहते हैं—वचल भुजाओंसे घुमाई
हुई भयकर गदाके प्रहारसे दुर्बोधकी जॉयि चूर चूर करके
पानी रक्षि परासे हाथ सांनकर यह भीम तुम्हारी चोटी
बांधेगा ॥ ३ ॥ देखो, यही पार्थवीके धर्मपुत्र परशुराम मुनि अपने
तेजसे धमक रहे हैं जो त्रिशुवनकी रक्षा करनेमें समर्थ हैं,
प्रहाकी भुजासे ठापण हुए हैं और जिनके धनुके समान कठोर
पाहुओंके प्रतापसे क्षत्रिय जाति गल गई और जिनके प्रतापके
आगे पदकर देवता और असुर भी ज्वाला-रूपी जामवाली
मलयकालकी अग्निमें पदनेके भयसे चारों ओर भागते फिरते
हैं ॥ ४ ॥ जिस स्थानपर शत्रुओंके रक्षि से परशुरामने ताळ
भर दिए थे वही आज बाळ पदकर एक क्षत्रियने ही मेरे
पिता (श्रेष्ठ) का अपमान किया है । मेरे पास शत्रुओंको
बधा जानेवाले थे सभी चमकते हुए धनु हैं इसलिये जा काम
परशुरामने कर दियाया वही काम अब श्रेष्ठका पुत्र भरव-
पामा करने जा रहा है ॥ ५ ॥ समशानिकी ज्वालामें जलनेसे
बचे हुए और राजाओं । मैं कोई रापस या भूल मेत नहीं हूँ,
शरीरमें शत्रुओंका रक्षि खगनेसे प्रसन्न तथा सबके सामने
प्रतिपास्वी गंभीर सागर पार करनेवाळा मैं क्रोधी क्षत्रिय

हूँ । ऐसा करना भी किस कामका कि तुम लोग मारे हुए हाथी-
घोड़ोंके पीछे छिपे पड़े हो ॥ ६ ॥ कोई और कहता है—'कहो
तो मैं पातालसे अमृत ले आऊँ या चन्द्रमाको निचोड़कर
उसका अमृत ले आऊँ अथवा उगते हुए सूर्यको रोक दूँ या
यमराजके जाळको ही टूक टूक कर दूँ ॥ ७ ॥ भजातशत्रु
युधिष्ठिरने अपना सत्यव्रत पालन करनेमें बाधा पदनेके भयसे
जो कोपरूपी क्षत्रिही भयंकर ज्वाला दबा रखी थी और जिसे
वे सहनशील, अपने कुलमें शान्ति स्थापन करनेके विचारसे मूळ
भी जाना चाहते थे, जो पहले लूए रूपी अरथीमें बाकी गई
थी तथा शीघ्रदीकी सादी और बाळ लींचकर जगाई गई थी
वही युधिष्ठिरकी क्रोधरूपी अग्निकी ज्वाला अब कीरव रूपी
धर्ममें फैलती जा रही है ॥ ८ ॥ जिसने पहले अपने माताका
सिर काटा, फिर क्षत्रियोंके रक्षिकी प्रवाहरूपी मदिरासे मत-
बाधे फरसेसे टूटकीकी बिना क्षत्रियकी कर दी, जिसके बापसे
बचे हुए अर्धवर्षके दारासे निकलने समय हंस पैसे दिसाई
देते हैं जैसे टूट-टूटकर गिरते हुईं दृष्टिवाँ हों, वही परशु-
रामने आज क्रोध किया है ॥ ९ ॥ परशुराम कह रहे हैं कि
जिन क्षत्रियोंने युद्धमें क्रोध करके हमारे पिताके प्राण छिपे हैं
उनमेंसे जिधोंको छोड़कर मैं परशुराम किसीकी जीता न छोड़ूँगा
और चमकते हुए प्रबळ परसेका धारके ज्वालापर एकपेक
कटे हुए गलेके बिजले निकलती हुईं रंधरीकी धारासे मैं अपने

राक्षोतोऽन्तःस्रुतशोणशोणितभरैः कुर्यां श्रुधां निर्वृ-
 त्तिम् ॥१०॥ यो यः श्रुर्न विमर्ति स्वभुजगुणमदः पाण्ड-
 बीनां चमूनां यो यः पाञ्चालगोपे शिशुचिन्मयया
 गर्भश्रुधां गतो धा । यो यस्तदकर्मसाक्षी चरति मयि
 रणे यश्च यश्च प्रतीपः क्रोधान्धस्त्वस्य तस्य स्वयमिदं
 जगतामन्तःकस्यान्तकोऽहम् ॥ ११ ॥ रकोतःकुम्भविद्या-
 ललोलनयनः कम्पोत्तराङ्गो मुहुर्मुक्त्वया कर्णमपेतघोर्धु-
 तघनुर्वाणो हरेः पश्यतः । आध्मनातः फट्टकोक्तिभिः
 स्वमसहृद्दोषिक्रमं कीर्तयन्संसास्फोटपटवुंषिधिरमसौ
 हर्षुं प्रविष्टोऽर्जुनः ॥ १२ ॥ राक्षो मानधनस्य कामुक
 श्रुतो दुर्गोधनस्याग्रतः प्रत्यक्षं कुरु वान्धवस्य च तथा
 कर्णस्य शल्यस्य च । पीतं तस्य ममाद्य पाण्डववधुके-
 शाभराकवियुः कोष्णं जीवत एष तोदण्णरजज्जुगुणा-
 दस्त्ववज्ञसः ॥ १३ ॥ रे घृष्टा धार्तराष्ट्राः प्रयत्नभुजवृह-
 त्ताण्डवाः पाण्डवा रे रे धार्मण्याः सङ्गुणाः शृणुत
 मम धवो यदप्रवीन्युर्ध्वथाहुः । प्तस्पोरत्तातवाहोऽर्जु-

पदसुपसुतातापिनः पापिनोदं पात हृच्छोषितानां
 प्रभवति यदि वस्तदिकमेतं न पाथ ॥ १४ ॥ स रोपद्-
 षाधरनोद्विताक्षीर्षकोर्ध्वरेषा भृशुष्टोर्ध्वदृष्टिः । तन्पाद
 गां मज्जनिरुक्तकृष्टैर्हृद्भारगर्भकिपतां शिरोभिः ॥१५॥
 स्पृष्ट्वा येन शिरोरुद्धे नृपयुना पाञ्चालराजगमना येना-
 स्याः परिधानमन्वपहत्तं राक्षं कुटुम्बं पुरः । यस्याःर-
 स्थलशोणिनास्रवमहं पातुं प्रतिज्ञातयाद् सोऽयं मृ-
 जपञ्जरे निपतितः संरक्षतां कारयाः ॥ १६ ॥

मयानकरसः—अद्यान्मुनदयातुयानतरणीयं शक्र-
 रास्फालनव्याचलनसूक्ष्मपालतातरपिनर्तुन्यद्विद्याया-
 ज्ञनाः । उद्गायन्ति यशसि यस्य वितनैर्नादैः प्र-
 र्वाणिलप्रभुत्प्रफरिक्कम्भकूटकृहरव्यके रणुशोण्यः
 ॥ १ ॥ अन्नाकल्पचलतरयोधरभरव्याधिस्त्रमेचद्वटा-
 स्त्ववस्थाभिमपृधुनृष्ट्रभ्रमरदास्फालोद्यनमूधजा ।
 ज्यादायाननमृदासविभृटे दूरेण तारापधात्स्वपरिन-
 ज्जपुरंभिवृन्दरभसोनमुक्तादुपजामति ॥ २ ॥ अग्रजनु-

श्रीध-रुवी थाग बुभाङ्गा ॥ १० ॥ अरवधामा कइ रहा ई—
 'पाण्डवीकी सेनामें अपनी युगाधोपर गर्व करनेवाले जो-जो
 व्यक्ति गृह्य पाठ्य करते हैं, हुएके बंधमें जो बंधे-बुद्धे तथा
 गर्भमें हैं श्रीर जिन्होंने हमारे पिताका अपमान होत वधा है
 अथवा मेरे धर्मते समय जो नी मेरे विरोधी मिलेंगे वे संसार-
 का नाश करनेकी शक्ति मझे ही रखते हैं पर मैं क्रोध करनेपर
 उन सबके जिये यमराज बन जाऊँगा ॥११॥ जियके विनाज
 पञ्चत्र नेत्र लाल कमलके समान शिल्पे हुए हैं, जिसका शरीर
 बार-बार काँप रहा है, जो कठोर शब्दोंका प्रयोग किए जा रहा
 है, जो बार-बार अपने बाहुके पराक्रमका वर्णन कर रहा है और
 अभिमानसे लाख शोक रहा है वह अर्जुन अभी कृष्णके देखते-
 देखते कर्णको धोदकर घनुप-वाद्य लेकर निर्भय होकर सुविधिर-
 पर प्रहार करनेके जिये पञ्चा आ रहा है ॥ १२ ॥ अहंकारो
 धनुषपर रामा दुर्गोधनके देखते-देखते कीर्षको द्वितीय कर्ण तथा
 शक्यके सामने धाम मैंने श्रोत्रदीके बाज तथा साक्षी खींचनेवाले
 धीरे ही दुःशासनके वधायज्ञको तीरे नलोंसे फाटकर उसका
 गरम-गरम रुधिर निष्काई ॥ १३ ॥ अरे शीघ्र घृतराष्ट्रके उग्रो)
 अरे मरुत्त बाहुकों वेगसे धुमानेवाले पादपथों । अरे कृष्णके
 सहित गाद्वो । मैं सुजा उठाकर कह रहा हूँ, सुनो ! श्रोत्रदी-
 को अपमानित करनेवाले इस पापी दुःशासनको सुजापे
 रखाकर मैं इसके धरपलक रुधिर पी रहा हूँ । हममेंसे

काई समर्थ हो तो इसकी रचा क्यों नहीं करते ? १ ॥ १४ ॥
 उसने धरने उन शत्रुओंके मस्तकोंसे भूमि फाट दी जो क्रोधमें
 अपने श्रोत्र काटे बाज रहे थे, जिनकी अग्नि लाज-लाज थी,
 जिनकी देही शीर्षोंकी नखें तनी हुई थीं, जिनका गज्जा बालोंने
 कट गया था और उनमेंसे हुंकारका शब्द निकल रहा था
 ॥ १५ ॥ जिस नरपशुने श्रोत्रोंके बाज शींचे, जिसने कौकोंके
 देखते-देखते उसको साक्षी भी खींची और जिसके वधःस्पन्दका
 रुधिर पीनेके जिये मैंने प्रतिज्ञा की थी वही दुःशासन धात
 मेरी मुजायोंके चक्रकर्म आ गया है । कौरवों ! अब कहां जो
 बसकी रचा ॥ १६ ॥

मयानक रत्न मत्वाको राक्षसिनियोंके पञ्चत्र हाथोंमें
 बनाई हुई मानवो खोपडियां जहाँ कद्-कद् काते हुए ताड़ दे
 रही थीं और शिवाचिनियां नाच रही थीं, उलो रदभ्र में धात
 भी हा धायोंके कटे हुए मस्तकमेंने सुसकर निश्चलते हुए प्रबल
 वायुकी सरसाहट उसके पशका गान का रही है ॥ १ ॥
 शैतदियोंको प्राणमें सजी जो बाजूकोंके ठकेके दे रहा है परी
 श्रोत्रोंके पास खोए हुए मस्तके बीसी शिर्षोंका पत्र बगतेसे
 जिसके बाज बद्ध रहे हैं वही राक्षस अहंकारके जिये अना
 मयकर सुंद कौडाकर उस आकार मार्गमें उतर रही है जहाँसे
 वही हुई शिर्षोंको शिर्षोंक अभ्यट सारा खोए-छोदकर भाग गई
 है ॥ २ ॥ सृष्टके समान जो शत्रु तेजस्वी राक्षसोंको घोर देखने

घन्सोडुमधीरलोचनः सहस्ररश्मेरिव यस्य दर्शनम् ।
 प्रविश्य हेमाद्रिशुद्धाद्गुहान्तरं निनाय विभ्यद्वि-
 सानि कौशिकः ॥ ३ ॥ इदं मधोनः कुलिशं धरासं-
 निहितानलम् । स्मरणं यस्य दैत्यस्त्रीगर्भपाताय केव-
 लम् ॥ ४ ॥ किञ्चित्कोपकलाकलापकलनाहुङ्कारविध-
 ङ्गुधोर्विषेपादकरोदसौ रघुपतिलङ्कापतेः पत्ननम् ।
 कन्दल्पेन रटकरेण विघट्टाह स्फुटद्गुग्गुलो मोत्की-
 डत्कपि निःश्वसत्फणि रणज्ज्जिभ्रमद्वीपि च ॥ ५ ॥
 गीर्वाणः प्रतियन्ति नैव पिदधे कर्णौ सुधर्माधिपः
 कर्णाकर्णिकयन्ति हन्त निभृत्तं शंशुस्वयंभूगणाः ।
 दूरादैत्य कृतान्तदूतनिवहाः स्वाकारसङ्कापनैरुदग्रोयं
 कलयन्तिकोणपचमूनाये श्याने रणे ॥ ६ ॥ ततः परामर्श-
 विवृद्धमन्योभ्रं भङ्गदुःप्रेक्ष्यमुद्यस्य तस्य । स्फुरद्भुदूर्चिः
 सहसा तृतीयादक्षणः कृशाजुः किल निःपपात ॥ ७ ॥
 निर्मज्जघ्नुरन्तर्भ्रमदतिकपिलकरतारा नरास्थिप्रस्थि
 दन्तान्तरालप्रयितमधिरतं जिह्वया घट्टयन्ती । धवा-

न्तेऽपि व्यासवक्त्रे ज्वलद्वनलशिखाजर्जरे व्यक्तकर्मा
 निर्मान्ती गृध्रोद्ग्री दिवमुपरि परिक्रीडते ताडकेयम्
 ॥ ८ ॥ प्रचण्डं चामुण्डागृहमिदमुद्राभिरभितः ।
 पताकाभिर्घोरं यममहिषजिह्वातुकृतिभिः ।
 किमेकाकिन्यत्र प्रविशति न किं पश्यति पुरः
 शिरोभिः पास्थानां पथि विरचितं तोरणततिम्
 ॥ ९ ॥ प्रौढच्छेदासुररूपोच्छलनरयवशास्त्रेणिकेयोप-
 मेयजासाकृष्टाश्वतिर्यग्वलितरविरेथेनारुणेनेक्षमाणम् ।
 कुर्वन्काकुत्स्थधीरस्तुतिमिव महतां कन्धरारन्ध्रमाजां
 भाङ्गावैर्भीममेतन्निपतति वियतः कुम्भकण्ठोत्तमाङ्गम्
 ॥ १० ॥ मन्त्रान्मृत्युजितो जपद्भिरसकृद्ब्रह्मायार्द्रि-
 घ्नान् सुरान् श्युपत्तानुनिराकुलाकुलपदैर्निर्वाग्भिष-
 क्त्रिभिः । अघ्नयैरिह जीवितेशमहिषव्याधुर्भ्रूमा-
 विला लह्यन्ते करिमांसघस्मररण्टकौलेयकाः पल्लयः
 ॥ ११ ॥ मन्थायस्ताण्डाम्भः प्रतिकुह्रवल्गमन्दर्धवा-
 नधीरः फोणाथातेषु गर्जत्प्रलयघनघटान्गोप्यसंघट्ट-

में असमर्थ था और जिसके आगे उसकी छाँड़ि चौंधिया जाती
 थी, वह ईद सुमेरु पर्वतकी कन्दराके भीतर दरकर घुसा हुआ
 उखलके समान अपना दिन बिता रहा था ॥ ३ ॥ इन्द्रके जिस
 पञ्चकी चारमें आग रहती है उसका स्मरण करनेसे ही दैत्योंकी
 रिश्योंका गर्भपात हो जाता है ॥ ४ ॥ तनिक-सा क्षोष या
 क्षानेपर रामने हुङ्कारके साथ भीँरे देदी करके रावणकी नगराँकी
 ऐसी निर्जन कर दी कि उसमें गौदूद बोलने लगे, धौल-
 कीप चिखाने लगे, लक्षद्वीपों फटने लगीं, गुणलके पेड़ टूटने
 लगे, बन्दर भागने लगे, सौरि लगी-लगी सीस खींचने लगे,
 भीँगर मन्कराने लगे और बाध धूमने लगे ॥ ५ ॥ कौण्डेयके
 हाजाका सेनापति जब रणभूमिमें गिरा पड़ा था उस समय
 देवता छानेतेवक न आते थे, इन्द्रने अपने कान ढक जिए थे,
 शंकर, प्रता और विष्णु आरि देवता द्विच-द्विपकर काना-फूसी
 बरने लगे थे और यमराजके दूत अपना रूप दिवाकर दूरसे ही
 सिर उधका-उधकाकर देख रहे थे ॥ ६ ॥ इसके अनन्तर
 कामके देवनेपर जिनका क्षोष उबख गया और जिनकी देवी
 भीँसोंकी और देवता कठिन हो गयी, उर्गी शंकराँके वीसरे
 केमरे यमकडी तथा घणकनी हुई आग सहसा भभक उठी
 ॥ ७ ॥ भीतर पँसरी हुई चोलाँके भीतर जिसकी आरपत भूरी
 और भयंकर पुण्डरी चक्कर ला रही है, हाँतीके बीच सरी हुई
 मनुषकी हड्डीकी जो निरस्त जीमसे चक्का दे रही है, चँधेरेमें

भी जलती हुई आगकी ज्वालाते खुजा हुआ सुँद भरकर
 खलके कान कर रही है और जो गिद्धोंकी भयंकरता फीका रही
 है वह तादका आकाशमें चक्कर लगा रही है ॥ ८ ॥ यमराजके
 भीँसेकी जीभके समान भयंकर भविष्योते चासुण्डाका यह
 भयंकर मन्दिर घिरा हुआ है । अरे, अकेली ही इसमें क्यों
 घुसी जा रही है ? क्या देखती नहीं कि आगे मार्गमें बटाहियोंके
 सिराँते कनी बन्दनवार खटक रही है । ॥ ९ ॥ विशाल
 खदगसे षटकर लो उखल रहा था, जिसे देपकर राहुके घाक-
 मयकी शंकासे सूर्यके रथकी चरख थोड़ोंकी रास खींच-खींच-
 कर तिरछे भागा रहे थे और जो गलेके छेरेमें घुसे हुए वायुकी
 कनकासते मानो शमके पराक्रमकी स्तुति कर रहा था, उस
 भयंकर कुम्भकण्ठका मरतक आकाशसे नीचे गिरता था रहा है
 ॥ १० ॥ मारे दरके जिनकी थोडो बन्द हो गई है, जिनके ताज
 खल गए हैं और पैर छटपटाए जा रहे हैं वे कबोही बार-बार
 शुकुशव मन्त्र जपते हुए, इष्ट देवताओंका स्मरण करते और
 कौपते हुए उन पक्षियोंकी छाँये बले जा रहे हैं जो यमराजके
 भीँसेके रंगके समान रङ्गवाले धुँपेसे मरी हैं और जिनमें हाथीके
 मांसपरजुटे हुए कुले भीँक रहे हैं ॥ ११ ॥ मये जाते हुए समुद्रके
 जलसे मन्त्राचखकी बन्दराओंमें गुँजती हुई परघराटके
 समान गम्भीर, ढपडेकी बाँधसे गरवते हुए, परस्पर टकराते हुए
 प्रखण्डाखके बादलोंके समान भयंकर, प्रीपरीके मोंचकी

चण्डः । कृष्णामोघाप्रदूतः वृक्कलनिधनोत्पातनिर्धा-
तचातः केनास्मर्त्सिहनादप्रतिरसितलसपो दुन्दुभिस्ता-
द्वितोऽयम् ॥ १२ ॥ महाप्रलयमारुतजुमितपुष्करावर्त-
कमचण्डघनगर्जितप्रतिरवानुकारी मुहुः । रचः श्व-
यमैरचः स्थगितरोदसीकन्दरः क्रुतोऽथ समरोदधेरय-
मभूतपुष्पैः पुरः ॥ १३ ॥ माद्यन्मातङ्कुम्भस्थलवहलव-
सावासनाविद्यगन्धव्यासकव्यकुमुदाफलशकलल-
त्केसरालीकरालः । पणीवैद्यव्ययोघाः स्वभुजवलयमन्द-
प्रस्ततेजस्विधामा गुञ्जन्कुञ्जे गिरीणां हरिरिह श्वरी-
गर्भपातं विधत्ते ॥ १४ ॥ विनिर्गतं मानदमात्ममन्दि-
राङ्गचतुष्पथ्यय सहदृष्ट्यापि यम् । ससम्भ्रमेन्द्रद्रुत-
पातितागला निमीलिताद्यौय भियामरावती ॥ १५ ॥
धीमत्तरसः-अश्रुप्रोतवृहत्कपालनलककरकषण्णरक-
ङ्कणमायप्रेङ्खितभूरिभूपणरवैराधोपयन्त्यम्बरम् । पीत-
च्छादितरक्तकर्मघनप्रामाभारवोरोल्लसद्व्यालोलस्तन
भारमैरवपुर्दपोद्धतं धावति ॥ १ ॥ अश्रुः कल्पित-

मङ्गलप्रतिसर्गाः खीहन्तरकोरपलव्यकोत्तंसमृतः
पिनल शिरसा ह्यपुण्डरीकप्रज्ञः । एताः शोषिणपद्म-
बुङ्कुमजुपः सम्भूय कान्तेः पियन्त्यस्थिज्जेशुराः कपा-
लचपकैः प्रीताः पिशाचाङ्गनाः ॥ १ ॥ उरत्य्यञ्जलितां
शवात्कथमपि प्रेताशनः पॅश्रितां पेश्रोमश्रमयां निगोयं
सहसा दन्दृष्टमानोदरः । धावन्युत्पलवते मुहुनिपतति
प्रोच्छ्रिति प्रेक्षते विष्यन्नक्रोशति सन्निपाद जडरं
मुष्ट्या चलन्मस्तकः ॥ ३ ॥ उरुत्योऽरुत्य्य ऋतिं प्रथ-
ममथ पृथुच्छोकभूर्यासि मांसान्यसस्किन्पृष्ठपिण्डा-
द्यवयवसुलभान्युप्रपूर्तीनि जग्म्या । आचक्षाप्यन्य-
नेत्रः प्रकटितदग्धनः प्रेतरङ्कः फरङ्गादृष्ट्यावृत्त्यसंस्थं
स्यपुटगतमपि कव्यमव्यग्रमर्चि ॥ ४ ॥ प्रत्येदमलदि-
भ्येन वहता मृशशाणितम् । प्रणेन विटवेनेदं सत्रम-
न्धीकृतं जपत् ॥ ५ ॥ रक्तं नक्तं चरीधः पियति चमति
च अस्तकुन्तः शुकुन्तः प्रत्यं नव्यं गृहीत्या प्रसृष्टति
मुदितो मचचेतालवालाः । क्रौडत्य्यमीडमस्मिन्दधिरम-

सूचना देनेवाले दूतके समान, कौरवोंके नाशके लिये प्रलयकाल-
की आँधी तथा हमारे सिंहनादकी प्रतिध्वनिके समान यह
नगाड़ा कितने बजाया ॥ १२ ॥ महाप्रलयके समय प्रबल
बायुसे उड़ाए हुए पुष्कर तथा आवर्तक नामक मेघोंके मयंकर
गर्जनकी प्रतिध्वनिके समान कान कोदनेवाला, भूमि तथा
आकाशके बीचका भाग भर देनेवाला कीर पहले कभी न सुना
जानेवाला यह समर-सागरका कोनाहल बार-बार आज कहाँसे
सुनाई दे रहा है ॥ १३ ॥ नववाले शायिके अस्तकडी मन्त्राकी
दुर्गन्धसे मिले हुए मोतियोंके टुकड़ोंसे जिसका भयानक अयाब
सजा हुआ था, जिसने अपने मातृबलके शईकारसे बड़े-बड़े
तेजस्विनोंका जेज भी दबा दिया था वह हरिणियोंकी विधवा
बचानेवाला सिंह पहाड़की कन्दारमें परगता हुआ श्वरीका
गर्भ गिरा रहा है ॥ १४ ॥ लोगोंका प्रथिमान पुर करनेवाले
हथमीवकी टहलनेके लिये घरसे निकला हुआ सुनकर इन्द्र
अपनी नगरी अमरावतीके पाठक हंस प्रधार बन्द कर लेता था
माने उसके भयसे अमरावतीने आँसू सूँद ली हों ॥ १५ ॥
धीमत्तरसः : सँतक्षीमें गुभी हुई बड़ी-बड़ी खोपड़ियाँ
तथा आँवोंकी हड्डियाँ ही मिगमें बगुने हुए भयानक कंकण
थीं, जो बड़तेसे दिखते हुए हड्डियोंके आभरणोंके शब्दसे
आकाश गुँगाए ढाल रही थीं, पीकर उगले हुए रुधिरसे जिसके
शरीरका रुपरी भाग रँग गया था, जिसके उड़लते हुए भया-

नक स्तनोंसे शारा अत्यन्त बराबना लग रहा था, वह पिशा-
चिनी अग्निमानसे कूडी हुई इधरसे उधर दौड़ रही है ॥ १ ॥
सँतक्षियोंसे जिन्होंने हाथके मङ्गलचक्र बनाए हैं, त्रिवोंके हाथ-
रूपी लाल कमलके जिन्होंने मस्तकके मूणप बनाए हैं, कलेजे-
रूपी कमलकी मातृएँ तिरपर पहनी हैं, रक्तकी केसरका टीका
बनाकर लगाया है, वे पिशाचिनियाँ असन्न हो-होकर अपने
पतियोंके साथ खोपड़ियोंके कटारोंसे मन्त्राकी मदिरा पी रही हैं
॥ २ ॥ सुदृष्ट खानेवाला प्रेत जबते हुए सुदृष्टकी जलती हुई
मांसकी गाँठ लीचकर खा तो गया पर एकाएक पेट चलनेसे
बड़े दौड़ता है, उड़बुलता है, बार-बार गिरता है, उठता है धारों
धोर देखता है, चिन्ताता है, झीर सिर हिलानकर सुन्शीसे पेट
मरोड़ता है ॥ ३ ॥ दरिद्र प्रेतने पहले सुदृष्टका चमड़ा उधेदा,
किर कन्दे, तिलमय, पीठ तथा रिंछलियोंमें सरबतासे मिलने-
वाला अत्यन्त दुर्गन्धसे भरा फूला मांस खाया, किर नस,
श्वेतती तथा क्राँसिं निकालीं कीर किर कब दित खोचकर सुदृ-
ष्टकी अपनी गोदमें रखकर हड्डियोंके जोड़में सजा हुआ मांस
नोच-नोचकर प्रसन्नतासे खा रहा है ॥ ४ ॥ पसीने, मल मूत्र
तथा रक्तसे भरे हुए और देखनेमें अरे धाव (मोति) ने सारे
सत्तारकी अग्न्या बना ढाहा है ॥ ५ ॥ पिशाच रुधिर पी रहा
है कीर उगल रहा है, अपनी मालेकी निगल रहा है, मत्तवाला
वेताक्षका कालक मांस जे-जेकर प्रसन्नतासे चिन्ता-चिन्ताकर

द्वयश्रातपूतना नूतनाङ्गी योगिन्यो मांसभेदः प्रमुदित-
मनसः शूरशक्तिं स्तुवन्ति ॥ ६ ॥ विकीर्णहृत्त्रिचन्दन-
प्रविण्णि यत्र लीलालसा निपेतुरतिचञ्चलाश्चतुरकामि-
नीरुच्ययः । तदेतदुपरिभ्रमत्रिविद्यगृध्रजालं जनेर्लुण्ठ-
रक्षमि कलेधरं पिहितनासिकैर्धीर्दधते ॥ ७ ॥

श्रातरसः—अकल्पः स्वाङ्गचेष्टायां शुकन्त इव
पञ्चरे । अनुचङ्गसन्मरन्पूर्वं गर्भे किं नाम विन्दते
॥ १ ॥ अग्रे कस्यचिदस्ति कञ्चिदभितः केनापि पृष्ठे
कृतः संसारः शिशुभाषयौचनजराभारावतारादयम् ।
वालस्तं यद्दु मन्वतामलुलभं प्राप्तं युवा सेवतां बृद्ध-
स्तुवं विपयाद्वद्विपृष्टत इव व्याघृत्य किं पश्यसि ॥२॥
अग्रे गीतं सरसकचयः पार्श्वतो दाक्षिणात्याः पृष्ठे
लीलाघलयरक्षितं चामरग्राहिलीनाम् । यद्यस्त्येवं घृष्ट
भयरसास्वाक्ने लम्पटस्थं नो चेच्चेतः प्रथिश सहसा
तिर्षिकल्पे समाधौ ॥ ३ ॥ अङ्गमङ्गेन सम्पीड्य मांसं
मांसेन तु स्त्रियः । पुराहमभवं प्रीतो यत्तन्मोद्विचिज्जु

म्भितम् ॥ ४ ॥ अज्ञानन्दाहार्ति पतति शूलभस्तीवद्-
हने न मोनोऽपि ह्यात्वा वडिशयुतमश्नाति पिशितम् ।
विज्ञानन्तोऽप्येते धयमिह विपञ्जालजटिलाजमुञ्जामः
कामानहह गहनो मोहमहिमा ॥ ५ ॥ अज्ञानं कारणं
न स्याद्विद्यो यो यदि कारणम् । शोको दिनेषु गच्छत्पु-
वर्द्धतामथ याति किम् ॥ ६ ॥ अतिश्रान्तः कालो
ललितललनाभोगसुखदो भ्रमन्तः श्रान्तः स्मः सुखि-
रमिह संसारसरणी । इदानीं स्वःसिन्धोस्तटमुषि
समाकन्दनगिरः सुतारैः फुत्कारैः शिव शिष्य शिवेति
प्रतनुमः ॥ ७ ॥ अद्येवं श्व इदं तथा परदि हृत्यं
परारि त्वद्वचेतश्चिन्तयलीत्थमेव सततं निर्व्याकुलं दे
कृतः । तत्कालं विलसन्मनोरधलताकान्तारदायावलं
यस्मिन्देवधरं स्मरिष्यसि सखे सोऽप्यस्ति कश्चि-
त्क्षणाः ॥ ८ ॥ अद्यैव हसितं गीतं पठितं यैः शरी-
रिभिः । अद्यैव ते न दृश्यन्ते कष्टं कालस्य चेष्टितम्
॥ ९ ॥ अद्वैतोक्तिपट्टनपि धयं वालात्रमस्कर्महे ये

नाच रहा है, विप हूए रक्षिके मद्में घूर होघर पूतना जज्जा
छोड़कर नाच रही है और मांस तथा मज्जा खाकर योगिनी
प्रसन्न चित्तसे वीरोंके पराक्रमकी प्रशंसा कर रही है ॥ ६ ॥
जिस शरीरपर जाल चन्दन पोता जाता था, जिसपर अत्यन्त
धंवल घोर मतवाली सुन्दरियोंकी आँसू पड़ती थीं, उसी
शरीरपर बहुतसे गीघ भँटा रहे हैं, काँदे बज-बजा रहे हैं और
योग उसे नाक सूँद-सूँदकर देख रहे हैं ॥ ७ ॥

श्रान्त रसः गर्भमें प्राणो न तो अपने अंग दिखा सकता
है, न साँस ही ले सकता है । वह विअदेमें बन्द पक्षीके समान
अपने पंख अन्तके धमौका समरय तो करता है पर गर्भमें धँपा
हुया होनेसे उसका क्रिया कुट्ट होता नहीं ॥ १ ॥ यह संसार
जबूदपनमें तो धामे रहता है, जवानोंमें धारों धोर दिखाई
देता है और बुढ़ापेमें पीछे खड़ा जाता है । इसलिये बचपनमें
उस धामे धामेवाले संसारको दुर्लभ समझकर उसका धादर
करना भी ठीक ही है । जवानोंमें भी उसका उपभोग करना
ही ठीक है पर तुम तो घृष्ट हो गए और संसारके भांगोंसे
बाहर निकाल दिए गए हो, फिर क्या उसको धार जोड़-कोट-
बर देते जा रहे हो ॥२॥ यदि सामने गाना हो रहा हो, पासमें
दृष्टिके रसिक कवि बैठे हों, पीछे धँवर हुआनेवाली स्त्रियोंके
अंगमोंकी झरझर हो रही हो सब तो संसारके सुआँका स्वाद
छेते पकें रहो पर यदि ऐसा न हो तो दे मन । तत्काल सब

छोड़-छाड़कर निर्विकर समाधिमें लीन हो चलो ॥ ३ ॥
श्रीके शरीरको अपने शरीरसे धीर उसके मांसको अपने मांस-
से दवाकर जो मैं अपनेको सुखी समझ रहा था वह सब कोरे
अज्ञानकी विदग्धना थी ॥ ४ ॥ जिस प्रकार जलनेकी पीड़ाका
कुल भी ध्यान न करके कतिना जलती धाममें फूट जाता है
और मज्जकी विना समझे-बूझे कँटियामें लगे हुए मांसपर सूँद
भाए देती है उसी प्रकार हम लोग जानबूझकर भी अनेक
विपत्तियोंसे भरे हुए अपने मनोरथ नहीं छोड़ते । ओह ! अज्ञान
कितना प्रबल होता है ॥ ५ ॥ शोकका मूल कारण यदि
अज्ञान नहीं, वरन् वियोग है तो वर्षों-वर्षों दिन बीतते जाते हैं
त्यों त्यों उसे (शोकको) भी बचते जाना चाहिए, किन्तु वह मिट
नहीं जाता है ॥६॥ सुन्दरी स्त्रियोंका भोग-सुल्ल खेनेका समय
निकल गया । मैं तो संसारके भांगमें हूतने दिनों तक चकर
राते-खाते यह इनता गया हूँ कि चल धव तो गंगाजीके तीर-
पर बैठना करुणा भरे डँचे स्वस्वसे 'शिव शिव' पुकारा करता
हूँ ॥ ७ ॥ भरे चित्त ! मुझे आज यह करना है, कष्ट यह,
परतों यह, पीछे दिन यह, सारा ऐसा क्या सोचवा रहता
है ! भरे मित्र ! वह भी एक समय धामेगा जब मनो-
रथ-रुनी खतामोंके घने जंगलके दावानल उस धमराजका
समरय करना पड़ेगा ॥ ८ ॥ कालका यह धायाधार तो
देखो कि जिन देरधारी प्रायियोंके साथ धाम ही हम

तु इन्द्रवदास्तदीयशिरसि न्यस्याम धामं पदम् ।
 सिंहः स्वोयशिशुचिबेद्य हृदये सान्द्रादरादासृशत्या-
 वेशेन मिनत्ति सम्भ्रमपदं मत्तेमकुम्भस्थलम् ॥ १० ॥
 अर्धोत्थ चतुरो वेवान्द्याहृत्याप्यादश ज्येतेः ।
 अर्धस्य वैफल्यमात्मानि कलितो न स्मृतौ ॥ ११ ॥
 अन्तकः पर्यवस्थाता जन्मिनः संततापदः ।
 त्याज्ये भवे भव्यो मुक्ताद्युत्तिष्ठते जनः ॥ १२ ॥ अन्यत्र
 भीष्माद् गाङ्गेयान्यत्र च हन्तः । हरिणीचुरमात्रेण
 बर्मणा मोहितं जगत् ॥ १३ ॥ अश्लु प्लवन्ते पापाणा
 मानुषा प्रन्ति राक्षसान् । कपयः कर्म कुर्वन्ति कालस्य
 कृष्टिला गतिः ॥ १४ ॥ अमीपां जन्तूनां कतिपर्यनिमे-
 पस्थितजुषां वियोगे धीराणां क इह परितापस्य
 विषयः । क्षणादुत्पद्यन्ते विलपमपि यान्ति क्षणममो न
 केऽपि स्यातातः सुरगिरिपयोधिप्रभृतयः ॥ १५ ॥ अये
 स्वर्गः स्वर्गः कतिविचसमार्गः प्रथसतां पुरस्तुङ्गो

स्यातां यदि न कुचकुम्भो मृगहृशः । अथायं पापेयं
 सुलभममयं मूलफलयोः पयः स्थाने स्थाने पथि गति
 च विधामतरयः ॥ १६ ॥ अर्धमाणयिनाशसंश्रयकरौ
 प्राण्यापदं दुस्तरां प्रत्यासक्तमयं न चेत्ति यिमव ह्यं
 जीयितं काञ्चति । उच्चैरिस्तु ततो घनार्धमपरं भूयो
 विश्व्यापदं प्राणानां च घनस्य चाधमवियामन्योन्य-
 भावः पथः ॥ १७ ॥ अधिभ्यः कनकस्य द्रोणकपिश
 विश्राणिता राशयो वादे वादिविपाणिनां प्रतिदत्ताः
 शास्त्रोक्तिगर्वा गिरः । उल्कातप्रतिरापितेनृपतिभिः
 शारैरिच क्रीडितं कर्त्तव्यं हृतमथिता यदि विधेस्त-
 चापि सञ्जा वयम् ॥ १८ ॥ अयश्च यातारदिवरतर-
 मुपित्वापि विषया वियोगे को भद्रस्यजति न जनो
 यत्स्वयममृतः । व्रजन्तः स्यातन्यादतुलपरितापाय
 मनसः स्वयं त्यक्तास्त्वेते शमसुखमनन्तं विद्वयति
 ॥ १९ ॥ अथ्यकादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत ।

हैं ; गाए और पढ़ें, वे आज ही देखनेको नहीं मिल रहे
 हैं ४ ॥ इस आत्माको चर्चा करनेवाले चतुर याज्ञकोंको
 प्रणाम करते हैं और दैतका सिद्धान्त माननेवाले लोगोंके
 सिरपर बाँधा पैर रखते हैं क्योंकि तिरु भी अपने पक्षोंको तो
 क्षातसे छगाकर यदं प्रेससे धपधपाता है किन्तु मतवाले
 हाथीको देखते ही क्रीपसे उसका मस्तक फाड़ डालता है ॥ १० ॥
 यदि आत्माका स्वरूप न समझ पाए तो चारों वेद पढ़ने और
 भगवार्थों श्रुतियोंका व्याप्यमान करनेका परिश्रम करनेसे क्या
 हुआ ! ॥ ११ ॥ श्लु सदा दुखी रहनेवाले प्राणियोंके सिर
 बर्षी रहती है इसलिये बुद्धिमान् लोग इस छोड़ने योग्य
 संसारमें मुक्तिके लिये ही प्रयत्न करते हैं ॥ १२ ॥ भीष्म और
 बृजभानुको छोड़कर यह सारा संसार हरिणोंके सुर गितने
 (शोनि) के मोहमें पड़ा है ॥ १३ ॥ काकको ऐसी उलटी
 गति होती है कि उसके प्रभावसे पाणीपर पापर सैने छगता है,
 मनुष्य भी राजसोंको मानने लगते हैं और बन्दूक भी ऐसे काम
 कर दिखाते हैं जो कोई कर न पाये ॥ १४ ॥ जो प्राणी इस
 संसारमें कुछ ही चय रहने-पाके हैं, उनके विचोगमें बुद्धिमान्
 लोग दुखी क्यों हैं क्योंकि वे प्राणी चण भरमें दयध होतें हैं
 और चण भरमें मर ही जाते हैं, यहाँ तक कि इतना ऊँचा
 सुवैध पर्यंत और इतना गहरा समुद्र ये भी यहाँ टिकनेवाले
 नहीं हैं ॥ १५ ॥ स्वर्गके लिये चले हुए मनुष्यके सामने यदि
 शृगलपनीके ऊँचे-ऊँचे इतनकद्वय न था पदं तो भला उसके

लिये स्वर्ग कितने दिनका मार्ग है ! क्योंकि ठसे मार्गमें कण्डू-
 मूख-फलका भोजन, स्थान-स्थानपर लज और प्रतिभानां
 पर विधाम करनेके लिये बृह तो सखतासे मिल जाते
 हैं ॥ १६ ॥ मनुष्य जब ऐसे संकटमें पड़ जाता है कि उसे घन
 और जीवन दोनोंके न रहनेको शका होने लगती है तब वह
 अपने जीवनके आगे धनको कुछ नहीं समझता पर शरीरकी
 रक्षा होते ही वह पुनः घन जोड़नेके फेामें पड़ जाता है । इस
 प्रकार मूल्यं लोग जीवनको रक्षाके लिये घन और घनकी रक्षाके
 लिये जीवनका दाव निरग्नर लगाते ही रहते हैं ॥ १७ ॥ इनने
 पाचकोंको दीपकको लौके समान रंगवाले लौके देरके देर दान
 किए, उच्च कोटिके शरशायियोंकी शारशौक्तिके गर्भसे सरी बायी
 क्षपित की, सिंहासनसे हटाए और फिर सिंहासनपर बैठाने
 हुए राजासौसे सोतेकी भाँति रखे भी किया । इस प्रकार सो
 करना था, सब कर चुके । अब यदि भाग्यमें रतिदत्ता (वाच-
 कता) ही बड़ी है तो इन उसके लिये भी तैयार हैं ॥ १८ ॥
 कुछ दिनोंमें संसाराके सारे भोग नष्ट हो जायेंगे, तब प्राणीका
 इनसे वियोग हो ही जायगा और रति प्राणों स्वयं हन्तें छोड़
 दें तब भी वियोग ही जायगा । तब इन लौमें अन्तर ही
 क्या रहा ! अन्तर यही है कि यदि भोग स्वयं छोड़ देते हैं तो
 प्राणीके मनमें दुःख होता है पर यदि प्राणी ही भोगको छोड़
 दे तो ये अन्तर्त शान्तिसे पूर्ण सुख देते हैं ॥ १९ ॥ सोच प्राणी
 पहले कारणरूपमें रहकर कार्यरूपमें आते हैं और अन्तमें फिर

अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिदेवना ॥ २० ॥ अशी-
महि वय भिक्षामाराशात्रासो वसोमहि । शयोमहि मही
पृष्ठे कुर्वामहि किमीश्वरः ॥ २१ ॥ अष्टकुलाचलसप्त
समुद्रा ब्रह्मपुरंदरदिनकररुद्रा । न त्वं नाहं नायं
लोकस्तदपि किमर्थं क्रियते शोकः ॥ २२ ॥ अशनं मे
वसनं मे जाया मे वन्धुवर्गं मे । इति मे मे कुर्वाणं
फालवृको हन्ति पुरुषाजम् ॥ २३ ॥ अस्यैकस्यापि
फायस्य सहजा अस्थिखण्डकाः । पृथक्पृथग्गमि-
ष्यन्ति किमुतान्यः प्रियोजनः ॥ २४ ॥ अहंकार
फवापि ब्रज वृजिन हे मा त्वमिह भूरभूमिर्द्वीपाणामह-
मपसर त्वं पिशुन हे । अरे क्रोधे स्थानान्तरमनुसरा
नन्यमनसा त्रिलोकीनाथो नो हृदि वसतु देवो हरिरसौ
॥ २५ ॥ अहमिह कृतवियो वेदिता सरकलानां धन-
पतिरहमेको रूपलावण्ययुक्तः । इति कृतगुणगर्भः
क्षिप्रते किं जनोयं कतिपयदिनमध्ये सर्वमेतन्न किंचित्
॥ २६ ॥ अहमेको न मे कश्चिदाहमन्यस्य कस्यचित् ।

न तं पश्यामि यस्याहं न हि सोऽस्ति न यो मम ॥ २७ ॥
अहह गृही फव तु कुशलो यदा संसारसागरे क्षिप्तः ।
कथमपि लभते पोतं तेनापि निमज्जति नितान्तम्
॥ २८ ॥ अहौ वा द्वारे वा बलवति रिपो वा सुहृदि
वा मणौ वा लोष्टे वा कुसुमशयने वा हृदि वा ।
तृणे वा खेणे वा मम समदृशो यान्तु दिवसाः फवचि-
त्पुरायेऽरराये शिव शिव शिवेति प्रलपतः ॥ २९ ॥
आक्रान्तं मरणेन जन्म जरया यात्युत्थयं यौवनं
संतोषो धनलिप्तया शमसुखं प्रौढाङ्गनाविभ्रमैः ।
लोकैर्मत्सरिभिर्गुणा घनभुषो व्यालेर्तृपा दुर्जनैरस्थै-
र्येण घिपत्तयोऽप्युपहृता ग्रस्तं न किं केन वा ॥ ३० ॥
आत्मघिच्छसि हन्त शाश्वतपुरीमाणं विहर्तुं यदि
आतः संयमवर्मणा कुरु तदा रक्षाविधिं सर्वतः । नो
वेदिन्द्रियतत्करैस्तव हठाचोक्षणाप्रभूरिस्फुरन्धिन्ताम-
लगतैविभिद्य मनसो प्राहो विवेको मणिः ॥ ३१ ॥
आदरेण यथा स्तौति धनवन्तं धनेच्छया । तथा

कारणमें चले जाते हैं इसलिये अर्जुन ! इनकी चिन्ता ही क्या
की जाय ॥ २० ॥ हम भिक्षा माँगकर खाते हैं, नगे रहते हैं और
सुमिपर सोते हैं, फिर हमें धनिकोंसे भला क्या लेना देना
॥ २१ ॥ भाई ! आठों डुल पर्वत, सातों समुद्र, ब्रह्मा, इन्द्र,
सूर्य, शक्र, तुम, हम और यह लोक कुङ्कु भी जब नहीं बचा
रह जायगा तब शोक किसके लिये किया जाय ? ॥ २२ ॥
मेरा भोजन, मेरा वस्त्र, मेरी स्त्री, मेरे भाई वन्धु कद-कदकर
(मैं मैं) करनेवाले पुरुषरूपी बकरेको काजरूपी भेदिना लण-
भरमें घा दूबोचता है ॥ २३ ॥ इस एक शरीरकी साथ उत्पन्न
हुई हृदियोंके एक एक टुकड़े भी अलग-अलग हो जायेंगे, फिर
भला प्रियजनोंका क्या कहना ! ॥ २४ ॥ हे अभिमान ! तुम
सुकसे दूर हो जाओ, हे पापकर्मा ! तुम यहाँ मत ठहरो, हे
दुष्टे ! तू भी भाग खड़े हो क्योंकि अब सुकमें अहंकार नहीं
रह गया । हे क्रोध ! तू भी कोई दूसरी ठौर देख क्योंकि मेरा
मन अब सभी वस्तुओंसे हट गया है । अब तो बस यही इच्छा
है कि त्रिसुवनके स्वामी भगवान् विष्णु मेरे हृदयमें आकर
निवास करने लगे ॥ २५ ॥ इस संसारमें मैं ही विद्वान्,
कलाभौका ज्ञानकार, धनवान्, धीर सुन्दर स्वरूपवाला हूँ, यह
कह-कहकर अपने गुणोंका अभिमान करनेवाला प्राणी भला
क्यों हुआ होता है जब कि इन वस्तुओंमेंसे कोई भी बल
पौदे दिनोंमें नहीं रह नहीं जायगी ॥ २६ ॥ मैं एक भकेजाही हूँ,

न मेरा कोई है, न मैं किसीका हूँ । ऐसा कोई नहा दिखाई देता
जिसका मैं होऊँ या जो मेरा हो ॥ २७ ॥ आह ! बँधकर
संसारसागरमें फँका हुआ गृहस्थ भला क्या कुशलसे रह सकता
है ! किसी प्रकार पोत (नाव, पौत्र) पाता भी है तो उससे
और भी डूबने लगता है ॥ २८ ॥ सौंप हो या हार, बलवान्
शत्रु हो या मित्र, मणि हो या मिट्टीका ढेला, फलका विडोबा
हो या पत्थर, तृण हो या स्त्रियोंका समूह, मैं तो यही चाहता
हूँ कि इन सबमें समान दृष्टि रखते हुए किसी पवित्र जगजमें
"शिव-शिव" जापते हुए अपने दिन बिताऊँ ॥ २९ ॥ सूर्यसे
जन्म, उदयापेसे सुन्दर जवानो, धनके लोभसे सन्तोष, तरुणी
नवेलियोंकी चटक मटकसे शान्ति-सुख ढाह करनेवाले लोगोंसे
गुण, हिसक जीवोंसे जगज, दुष्टोंसे राजा और चंचलतासे
विरति भी दबी रहती है । जब बताइए, कौन किसपर छापाने नहीं
माराता ॥ ३० ॥ भाई आराम ! यदि वैकुण्ठपुरीकी गलियोंमें
विचरना चाहो तो संभररूपी कवचसे सब ओरसे अपनी रक्षा
कर लो नहीं तो इन्द्रियरूपी चौर बलपूर्वक चोले, धमधमाते
हुए चिन्तारूपी सैकड़ों भाजोंसे फाड़कर तुम्हारे मनका विवेक-
मणि चुरा लेंगे ॥ ३१ ॥ जैसे बोग धन पानेकी इच्छासे धन-
वानकी लवली चपटो करते हैं वैसे ही आदरसे यदि बोग
संसारके बनानेवाले ईश्वरकी स्तुति किया करें तो कौन धन्य-
में पढ़ा रह जाय ॥ ३२ ॥ प्रतिदिन सूर्यके उदय और अस्तके

चेद्भिर्बर्क्षारं को न मुच्येत यन्वनात् ॥३२॥ आदि-
त्यस्य गतागतैरद्वहः संक्षीयते श्रौचितं व्यापारैर्बहु-
कार्यभारगुरुभिः कालोऽपि न क्षायते । दृष्ट्वा जन्मज-
राविपत्तिमरणं त्रासश्च नोन्पद्यते पीत्वा मोक्षमयीं
प्रमादमदिरामुन्मत्तमृतं जगत् ॥ ३३ ॥ आधिध्याधि-
शतैर्जनस्य विधिधैरारोग्यमुन्मूल्यते लभोमोत्रं पतन्ति
तत्र विवृतद्वारा इयं व्यापदः । जातं जातमवश्यमाशु
विषयं मृत्युः करोत्यात्मसात्तिकं तेन निरङ्कुशेन
विधिना यार्थमितं सुस्थिरम् ॥ ३४ ॥ आनीयते शरी-
रेण क्षीणोऽपि विभवो पुनः । विभवः पुनरानेतुं शरीरं
क्षणमजमः ॥ ३५ ॥ आपदः क्षणमायान्ति सम्पदः
क्षणमेव च । क्षणं जन्माद्य मरणं मुने किमिव न क्षणम्
॥ ३६ ॥ आयुः कल्लोललोल कतिपयदिवसस्यायिनो
यौवनश्रीरर्थाः संकल्पकरुणा घनसमयतडङ्घ्रिभ्रमा
मोगपूर्णाः । कण्ठाश्लेषोपमूढं तदपि च न चिरं यस्मि-
न्नाभिः प्रणालं ब्रह्मण्यासक्तञ्चत्ता भवत भवभयाम्भा-

धिपारं तरीतुम् ॥ ३७ ॥ आयुर्नोरनरङ्गमङ्गरमिति
द्यात्या सुनेनासितं लक्ष्माः स्यन्विनभरति सततं
भागेयु वद्धा रतिः । अत्रनन्ममधिडमि योपनमिति
प्रेमाऽवगुह्याः स्त्रियों वैरेवाश्च विमुच्यते मयत्सातैरेव
यस्यो जनः ॥ ३८ ॥ आयुधर्षणं नृणां परिमितं रात्रौ
तदङ्गं गतं तस्यार्धस्य परस्य चार्धमपरं बालत्ववृद्ध-
त्वयोः । श्रेयं व्याधिधियागदुःखसहितं सेवादिभिर्नो-
यते जोषे वारितरङ्गवृद्धसमे सौष्यं कृतः प्राणिनाम्
॥ ३९ ॥ आयुर्वायुर्ध्यायिनलिनानापरत्रिमित्रं किमन्यत्सं-
पच्चुम्पाद्यतिसहचरी स्वैर्चारा कृतान्तः । कस्माद्-
स्मिन्भ्रमसि तमसि त्वं प्रयादि प्रयागं पानःपुन्यं भुवि
भगवती स्वर्धुनी ते धुनीते ॥ ४० ॥ आराध्य भूपति-
मवाप्य तनो घनानि मुखामहे वयमिदं प्रसमं सुधानि ।
इत्याश्रया यत विनोदितमानसानां कालो जगाम मत्-
शावधिरेव पुंसाम् ॥ ४१ ॥ आलोचनं च पवनं च
निगूहनं च यासां स्मरन्नमृतवत्सरसं ह्यस्त्यम् ।

साय जीवन चीज होता जा रहा है, बहुत प्रकाश के कामों के
भासे बड़े हुए कर्तव्यों के कारण समय बीतता नहीं जान
पढ़ता और जन्म, बुढ़ाया, विपत्ति और मृत्यु देखकर भी भय नहीं
होता क्योंकि अज्ञानसे भरी हुई असावधानी-रूपी मदिरा पी-
कर सारा संसार आज मतवाला हो बैठा है ॥ ३३ ॥ अनेक
प्रकार के सैद्धांत मानसिक तथा शारीरिक रोगोंसे लोगोंका
स्वास्थ्य नष्ट हो जाता है, अन्वयिके क्षाप-क्षाप विपत्तियोंका
द्वार खुल जाता है अर बार-बार उत्पन्न होनेवाले प्राणीको
आयु भा द्योधती है । तब बवाह्य, मनमानी करनेवाले ईश्वरने
संसारमें किछ बस्तुको विपत्ति-निहित बनाया है ॥ ३४ ॥
नष्ट हुए वैभवको शरीर फिर ले आ सकना है किन्तु नष्ट हुए
शरीरको वैभव पुनः नहीं जा सकता ॥ ३५ ॥ पय-भरके
बिषे विपत्ति आती है, पय-भरका सम्पत्ति आती है, पय-
भय होता है और पयमें जन्म; हे मुनि ! इस संसारमें क्या
चलिक नहीं है ! ॥ ३६ ॥ यह आयु पानीकी बहरके समान
बबब है, तरफार्थकी शोभा भी कुछ ही दिनों तक टहर पाती
है, घन भी मनोरथके समान आते जाते रहते हैं, भोग भी
वर्षाकावकी बिजलीके समान दिखार्थ पड़ते ही नष्ट हो जाते
हैं, स्त्रियोंका आधिगम भी दूरतक नहीं टहरता इसबिषे इस
संसारके मयरूपी सागरको पार करनेके बिषे परमहत्तमें तो चित
व्या हो ॥ ३७ ॥ आयु पानीकी बहरोंके समान भाश्यापू है

यह जानकर लोग सुखसे बैठे रहते हैं, अपनी स्वप्नकी संपत्तिकी
भौति है यह जानकर निरन्तर भोगोंमें बिपटे रहते हैं और नेमोंकी
पदाभोंकी भौति बनानी मिट जानेवाली है यह जानकर भी प्रेमसे
स्त्रियोंका आधिगम करते रहते हैं । इस प्रकार जिन बाहोंके
जानकर मनुष्यको संसारके कष्टमें छूट जाना चाधिष्ट उन्हींसे यह
उल्टे संसारमें बँधता जाता है ॥ ३८ ॥ मनुष्यकी सौ वर्ष
आयुमेंसे आधी तो रातमें बीत जाती है, आधेके आधे भागमें
बद्धकपन और बुढ़ाया बीत जाता है, शेष भाग रोग, विरोग
और दुःखमें बीतता है और कुछ दूषणोंकी सेवामें निकल जाता
है । अतः इस जीवनमें बहर पौर बुजबुझेके समान चणिक
जीवनवाले प्राणियोंको सुख कहाँ मिल पाता है ॥ ३९ ॥ यह
आयु पवनसे हिलते हुए कमचके पत्तेके समान बँधत है, यह
सम्पत्ति भी बिजलीकी चमकके समान चणिक है और पनराजवर
भी क्लिषीका चर नहीं है, पेरनी दशांमें हे जीव ! इस अन्व-
यिके वर नहीं है, पेरनी दशांमें जा रहा है । जा, प्रयाग चला जा ।
कारमें तू क्यों बबकर खराप जा रहा है । जा, प्रयाग चला जा ।
वहाँ गंगाकी तीरे इस बार-बार संसारमें जन्म लेते और
मरनेकी सारी मंजूर ही मिटा देंगी ॥ ४० ॥ अज्ञानी पुरुषों-
का समय मरनेतक इसी आश्यामें बीतता है कि राजाकी सेवा
करके और उनसे घन पाकर मैं इस संसारके सुख भोगूँ
॥ ४१ ॥ हे महाशयकी ! जिन स्त्रियोंके नेत्र, बबब तथा बस्त-
की अश्रुतके समान मधुर समककर तुम उनको चिन्तामें दुबले

तस्यां किमङ्ग पिशितास्तपुतोपपात्रं गात्रं स्मरन्मृग-
दृशं न निराकुलोऽसि ॥ ४२ ॥ आशा नाम नदी मनो-
रथजला तृष्णातरङ्गाकुला रागब्राह्मवती वितर्कविहगा
धैर्यद्रुमध्वंसिनी । मोहावर्तसुदुस्तरातिगहना प्रोचुङ्क-
चिन्तातटी तस्याः पारगता विशुद्धमनसो नन्दन्ति
योगीश्वराः ॥ ४३ ॥ आशा निष्ठा प्रतिष्ठा मम किल
महिलास्तासु सौख्यं कदा स्याद्या प्रान्त्या सा विद-
ध्यादिह किमपि तथा मध्यमा सा परत्र । आधा सा
नोभयत्राप्यहह तदपि किं सक्ततां यामि तस्यां या
प्रौढ्यादप्रगल्भे प्रतिदिशसमुपे ते कदर्थीकरोति ॥ ४४ ॥
आसंसारान्निभुवनमिदं चिन्वतां तात तादृङ्गो
घास्माकं नयनपदवीं श्रोत्रवरमागतो वा । योऽयं घत्से
धिपयकरिणीगाढगूढाभिमानक्षोवस्थान्तःकरणकरिणः
संयमालानलीलाम् ॥ ४५ ॥ आसन्नतामेति मृत्युरा-
र्यातिं दिने दिने । आघातं नीयमानस्य घट्यस्येघ
पदे पदे ॥ ४६ ॥ आस्तामकण्टकमिदं वसुधाधिपत्यं

पदे जाते हो उन्हींके शरीरको मार, रहिर और मजसे भरा
हुधा समरुकर तुम शात क्यों नहीं हो जाते ॥ ४२ ॥ आशा
नामकी जिस नदीमें मनोरथ ही जल है, तृष्णाही ही लहरें हैं,
अनुराग ही ग्राह है, अनेक तर्क ही पची हैं, वह धैर्यरूपी पेद-
को तोड़े डाल रही है । उसकी मोहरूपी अँवरके कारण उसे
पार करना कठिन है । वह बहुत गहरी है और उसमें चिन्ता-
रूपी धड़े ऊँचे-ऊँचे कमार हैं । जो शुद्ध चित्तवाले योगीश्वर
महात्मा उसे पार कर गए हैं वे ही प्रसन्न रहते हैं ॥ ४३ ॥
आशा, ईश्वरकी चिन्ता और प्रतिष्ठा, इन तीनों स्त्रियोंसे मुझे
सुख नहीं मिल पाता क्योंकि अन्तिम स्त्री (प्रतिष्ठा) तो इस
लोकमें सुख देती है, बीचवाली स्त्री (ईश्वरकी चिन्ता) परलोकमें
सुख देती है और पहली (आशा) न यहाँ सुख देती है न चहाँ,
फिर भी न जाने क्यों मैं उसीके फेरमें पड़ा रहता हूँ और वह
दिहाई करके प्रतिदिन उब दोनों सीधी सादी स्त्रियोंको कष्ट
दिया करती है ॥ ४४ ॥ हे भाई ! जबसे संसार चला है तबसे
अथतकके इस त्रिभुवनपर दृष्टि डालनेसे ऐसा एक भी व्यक्तिक न
देख न मुना जिसने विषय रूपी इपिनोके आधिगनकी
कल्पनामें पागल होनेवाले अपने मन-रूपी हाथीको बाँधनेके
जिये इन्द्रिय-निग्रह रूपी खूँटा बना रखा हो ॥ ४५ ॥
जिस प्रकार फाँसी पानेवाले व्यक्तिकी मृत्यु पास आती जाती
है और-उसकी प्रायु दिन-दिन सीध होती जाती है वैसी ही

त्रैलोक्यराज्यमपि नैव तृणाय मन्ये । निःशङ्क सुप्तहरि-
शीकुलसंकुलासु चेतः परं चलति शैलधनस्थलौपु
॥ ४७ ॥ आस्यं यस्याः सुधांशुं कलयति नयनाभ्यां
जितः पुंसमूहः कान्त्या विद्युत्कुचाभ्यां तरुणजलकधे
निजितेऽस्याः सुधांशुम् । कुष्ठं दुर्गन्धियुक्तं लघुकृमि-
विकृतं पूयमज्जाश्लघादिद्वयात् तन्मत्तिकाभिर्गतिरिति
चपुपः कुत्सिता नास्ति लोके ॥ ४८ ॥ आहारः फलमू-
लमात्मरचितं शय्या मही वरुक्तं संवीताय परिकल्पदः
कुशसमितृष्णाणि पुत्रा मृगाः । धृष्टान्नाश्रयदान-
भोगविभवा निर्यन्त्रणाः शाखिनो मित्राणीत्यधिकं
गृहेषु गृहिणां किं नाम दुःखादहे ॥ ४९ ॥ इतः क्रोधो
गृध्रः प्रकटयति पक्षं निजमितः रुगालो तृष्णैवं विवृत-
घटना धावति पुरः । इतः क्रूरः कामो विचरति पिशा-
चश्चिरमहो रमशानं संसारः क इह पतितः स्यास्यति
सुखम् ॥ ५० ॥ इतो न किञ्चित्परतो न किञ्चित्ततो यतो
यामि ततो न किञ्चित् । विचार्यं पश्यामि जगन्न

दृश संसारमें सबकी होती है ॥ ४७ ॥ निर्वाप और निर्विरोध
पृथ्वीके प्रमुखकी बात तो दूर रही, मैं तो त्रिभुवनके राज्यको
भी लूणके समान कुछ नहीं समझता, मेरा मन तो निर्भय हुई
हरियियोंसे भरी पहाड़की वन भूमिमें ही जगता है ॥ ४७ ॥
जिसके मुखने चन्द्रमाको जीत लिया था, जिसकी आँखोंने सब
पुरुषोंको बशमें कर लिया था, जिसके स्तनोंने कमलकी कञ्जि-
योंको जीत रखा था, उसी मुखचन्द्रमें दुर्गन्ध, कीड़े, पीप,
मज्जा और हरिले भरा हुआ कोढ़ फैल रहा है और भविलयों
भिनभिना रही हैं । इससे बढ़कर शरीरकी और कौन सी दुर्गति
संसारमें हो सकती है ॥ ४८ ॥ जब वनमें बिना परिश्रमके
ही भोजनके जिये फल और मूल, बिछौनेके जिये भूमि,
पहननेके जिये पेड़ोंकी छाँव, सन्ध्याके जिये कुरा, लकड़ी और
फूँ, हरिय जैसे पुत्र, अन्न-बन्ध, निवास और भोजन देने-
वाले स्वल्प मित्रोंके समान हृष मिल जाते हैं सब गृहस्थोंको
अपने घरोंमें दुःखके श्रितिरिक हमसे अधिक और मिल क्या
पाता है ॥ ४९ ॥ इस संसाररूपी रमशानमें पदकर भजा
कौन सुख पा सकता है जिसमें एक ओर क्रोधरूपी गोध
अपने पैल फैला रहा है, सामनेसे तृष्णा सियारिन हुई बाए
दौड़ी आ रही है और इधर यह क्रूर पिशाच कामदेव
सदा विचरण कर रहा है ॥ ५० ॥ न तो इस लोकमें ही कुछ
है, न परलोकमें ही, यहाँतक कि मैं जहाँ-जहाँ जाता हूँ वहाँ भी

किञ्चित्स्वात्मावयोधादधिकं न किञ्चित् ॥ ११ ॥ इतो
मृत्युरितो व्याधिरितो विपदितो जरा । चतुरङ्गा
तुल्यवला हन्ति लोकमनित्यता ॥ १२ ॥ इदं युगसह-
स्रस्य भविष्यदभवद्दिनम् । तदप्यद्यत्समापनं का कथा
मरणावधेः ॥ १३ ॥ इन्द्रस्याशुचिश्चक्ररस्य च सुरो
दुःखे च नास्त्यन्तरं स्वेच्छाकल्पनया तथा; जलु सुधा
विष्ठा च काभ्याशनम् । रम्भा चाशुचिश्चक्रो च परम-
मेमास्पदं मृत्युतः सन्नालोऽपि स्रमः स्वकर्मगति-
मिथ्यान्योन्यभायः समः ॥ ५४ ॥ इह शय्यागतेनापि
वन्मुमद्यस्थितेन वा । मयैवैकेन सोढव्या मर्मच्छेदा-
द्विचेदना ॥ १५ ॥ उच्छ्वासावधयः प्राणाः स चोच्छ्वासः
समीरयः । समीरणञ्चलं नास्ति यत्प्राणिति तदङ्गनम् ॥ १६ ॥
उत्तानोच्छ्रुतमयद्दकपाटितोदरसन्निभे ।
क्लेदिनि स्त्रीमणे सक्तिरङ्गमेः कस्य जायते ॥ १७ ॥
उच्चुक्त्वातायनगोपुराणि गृहाणि धिचानि दुरर्जितानि
ज्याद्वाःपातकराणि हन्त चित्तातिरेकस्य निरर्थकानि

॥ १८ ॥ उदधादितनयद्वारे पञ्चरे विदगोऽनिलः ।
यत्तिष्ठति तदाश्चर्यं प्रयासे चिस्रमयः कुनः ॥ १९ ॥
उल्पेन संवृतस्नस्मिन्नाद्भ्यै गहिरावृतः । श्रान्ते छत्या
शिरः कुतो मुग्धवृष्टिशिरोधरः ॥ ६० ॥ एकद्वैः किम-
भावि सूरिभिरथ द्विप्राणि मित्राणि किं व्यापयानि
गताश्च किं त्रिचतुरा घोरा मद्वा-याघयः । सप्ताष्टै-
र्लामिष्टमेतदपि नञ्चेतः क्षणान्पञ्चपाण्ड्यात्मन्येव रमस्य
तेजसि गते कालेऽथ वा सर्वतः ॥ ६१ ॥ एकसाधं प्रया-
तानां सर्वेषां तत्र नामिनाम् । यद्येकस्त्वरितं यातस्तत्र
का परिदेयता ॥ ६२ ॥ एकेऽथ पातरपरे पश्चादप्ये
पुनः परे । सर्वे निःसोकं संसारे यान्ति कः केन
शोच्यते ॥ ६३ ॥ पणाक्षोमृद्वायुलुना न कथमन्यास्ते
विवेकीदयाधित्यं प्रच्युतिशुद्धया लणमपि स्वर्गं न
मोदामहे । अल्पन्येषु विनाशिशुभ्रविषयाभोगेषु
रक्षणा न मे स्वर्नद्याः पुलिने परं हरिपदध्यानं मनो
यान्छति ॥ ६४ ॥ एता याः प्रेक्षते लक्ष्मीद्वन्द्वनघामर-

मुके कुल सत्य नहीं विदाई देता । विचार-पूर्वक देखनेसे वही
पान परता है कि संसार मूढा है और भ्रामन्वानके अनिरीक
दूसरो कोई वस्तु साप नहीं है ॥ ११ ॥ एक श्रोसे मृत्यु, एक श्रो-
से रोग, एक श्रोसे विपत्ति, एक श्रोसे छुड़ीती, इन चार समान
ब्रह्माक्षी सेनाओंके द्वारा अनित्यता संसारको नष्ट करती
रहती है ॥ १२ ॥ जो श्रानेवाले सहजों युगोंका दिन या वह
जब धान था गया तब मरनेकी अवधिकी बात ही क्या
॥ १३ ॥ इन्द्र श्रो गन्दे सुप्रके सुप्र-दुःखमे अन्तर ही
क्या है ! उन दोनोंको- शपनी-शपनी रुचिके अनुसार अमृत
और विषा ही मिय भोजन है । इन्द्रको रम्भा अन्तरासे प्रेम है
तो सुभ्रको सुभ्ररीसे है । मृत्युका भय दोनोंको है और दोनोंमें
अपने कर्मके अनुसार भेद है ॥ १४ ॥ मैं चाहे शप्यार पदा
होऊँ, चाहे भाई-बन्धुओंके बीचमें पैदा होऊँ किन्तु शरीरके
नर्मस्थान कंदनेकी, पीड़ा तो मुझ अकेलेको ही सन्देन पड़ेगी
॥ १६ ॥ उच्छ्वासास तक ही प्राण हैं, और वह उच्छ्वास है
क्या-पवन] जिससे बाहर पचख कोई दूसरी भरत होती
नहीं, अतः प्राणी जो जी रहा है वही श्चरचर्य है ॥ १६ ॥
कठकर फूके हुए मंडकके फटे हुए पैरके समान सद्दी योनिमें
कोईको छोड़कर बीर कीन मनुजाप कोजा ॥ १७ ॥ ऊँची ऊँची
किष्कियो और काटकोंवाले घर, कष्टसे संभ्र किया हुआ धन,
ये सब क्य भरमें मनुष्यको गिरा-देते हैं और चित्तार पहुँचे हुए

प्राणीके लिये तो ये सब स्वर्ण हैं ही ॥ १८ ॥ जिस शरीरकी
विनयेमें इन्द्रिय स्त्री भी द्वार खुले हैं उनमें प्राणीकी पक्षी-
का बहना ही श्चरचर्य है, निकर जाना नहीं ॥ १९ ॥ गर्भमें
प्राणी जरापुसे तो पैदा रहता है, बाहर मांस और रजि
प्रादि पानुप्रांति गिरा रहता है, उसका सिर पैरमें मिठा
रहता है और पीठ तथा गला मुका रहता है ॥ ६० ॥ संसारमें
प्रास-जैसे जो एक दो पण्डित हुए थे भी नहीं रहे, जो गिने-
गिनाए दो तीन मित्र थे वे भी जाते रहे । तीन-चार भयंकर
महास्त्राधिपति यदि चलो भी गईं तो क्या हुआ ? ऐसी दरामें
दे मन ! इम सात-प्राठ क्यकी बात भी नहीं कहते । इस समय
शरीरकी शक्ति भी जाती रहा है और समय भी बीत पजा
है । इसलिये हम इतना ही बाह्वे है कि पुन केवल कुल पाँच-
छह क्य श्रपमें ही विश्राम कर लो ॥ ६१ ॥ जहाँ एक साप
बहुतसे प्राणी चले जा रहे हैं वहाँ यदि कोई पहले चला गया तो
दुःखका क्या बात है ॥ ६२ ॥ इस अथार ससारमें कोई पहले
कोई पीछे, कोई उसके भा पाछे, इस प्रकार समी जाते ही रहते हैं
किर कोई किसीका बर्ण विन्ता करे ॥ ६३ ॥ अथ विचार था
जानेपर मुझे किसी प्रकारकी श्रमन्यनीकी चाह नहीं रही । मिस
स्वर्गसे सदा गिरनेका भय ही उसे पा लेनेमें भी मुझे प्रसन्नता
नहीं होती । दूसरी नरवर वस्तुओं तथा विषयोंका भी श्रय मुझे
कीम नहीं रहा । अथ तो मेरा मन वही चाहता है कि गंगाजीके

चञ्चलाः । स्वप्न एव महाबुद्धे दिनानि त्रीणि पञ्च वा ॥ ६५ ॥ कटुतोषणोष्णलवणक्षाराम्लादिभिरुत्तच्यैः । मादुशुक्लैरुपस्पृष्टः सर्वाङ्गोन्धितनचेदनः ॥ ६६ ॥ कदा भिक्षाभक्तैः करकलितगङ्गाभ्रतरुलैः शरीरं मे स्यास्य-त्युपरतसमस्तेन्द्रियसुखम् । कदा ब्रह्माभ्यासस्थिर-तनुतयारण्यविहगाः पतिष्यन्ति स्याथुभ्रमहतधियः स्कन्धशिरसि ॥ ६७ ॥ कदा चारुणस्थाममरतदिनी-रोधसि वसन्वसानः कौपीनं शिरसि निदधानोऽञ्जलि-पुटम् । अये गौरीनाथ त्रिपुरहर शम्भो त्रिनयन प्रसीदेत्याक्रोशत्रिमिपमिव नेष्यामि दिवसान् ॥ ६८ ॥ कदा वा साकेते विमलसरयूतोरपुल्लिने चरन्तं श्रीरामं जनकतनयालवणयुतम् । अये राम स्वामि ज्ञनकतनयावल्लभ विभो प्रसीदेत्याक्रोशत्रिमिपमिव नेष्यामि दिवसान् ॥ ६९ ॥ कदा वृन्दारण्ये नवधन-निभं नन्दनयं परोत्तं गोपीभिः क्षणरुचिमनोद्धामिर-मितः । गमिष्यामस्तोपं नयनविपयीकृत्य कृतिनो ययं

प्रेमोद्रेकस्खलितगतयो वेपथुभ्रुनः ॥ ७० ॥ कदा वृन्दा-रण्ये विमलयमुनातोरपुल्लिने चरन्तं गोविन्दं हलधर-सुदामादिसहितम् । अये कृष्ण स्वामिन् मधुरमुरली-वादन विभो प्रसीदेत्याक्रोशन्निमिपमिव नेष्यामि दिवसान् ॥ ७१ ॥ कस्मात्तोऽहं किमपि च भवान्कोऽयमत्र प्रपञ्चः स्वं स्वं चेद्यं गगनसदृशं पूर्णतत्त्वमका-शम् । ज्ञानन्द्वाख्यं समरसधने बाह्यमनर्विहीने निरुहैगुण्ये पथि विचरतः को विधिः को निषेधः ॥ ७२ ॥ कस्यानित्येष्वनित्यस्य स्नेहो भवितुमर्हति । येन जन्म-सहस्राणि द्रष्टव्यो न पुनः प्रियः ॥ ७३ ॥ काँश्चित्कल्प-शतं कृतस्थितिलयान्काँश्चिद्युगानां शतं काँश्चिद्रूपशतं तथा कतिपयाञ्जन्तुन्दिनानां शतम् । ताँस्तान्कर्मभि-रारमनः प्रतिदिनं संक्षीयमाणायुषः कालोऽयं कथली-करोति सकलान्भ्रातः कुतः कौशजम् ॥ ७४ ॥ कार्या-कार्यं किमपि सततं नैव कर्तृत्वमस्ति जावन्मुक्तस्थिति-रवगतो दम्बधखायभासः । एवं देहे प्रविलयगते

तदपर शैटकर केवल भगवान्के चरणोंका ध्यान किया करूँ ॥ ६५ ॥ हे विशाल बुद्धिवाले ! यह जो छत्र और चौरसे सजी हुई लक्ष्मीकी ओर तुम टकटकी लगाए देख रहे हो यह स्वप्नके समान हीन-चार दिनसे अधिक ठहरनेवाली नहीं है ॥ ६६ ॥ माता जो कुछ कष्टी, तीती, गरम, नमकीन, खारी तथा लट्टी वस्तुएँ खाती हैं उससे गर्भमें बैठे हुए प्राणीके सब अंगोंमें पीड़ा होती है ॥ ६६ ॥ वह दिन कब होगा जब सब इन्द्रियोंके सुखसे उदासीन इस शरीरका पोषण भिक्षाके अन्नसे और अंशुलिमें लिप हुए गंगाजलसे होगा और ब्रह्मके दर्शनके अभ्यासमें शरीर न हिलानेके कारण कण्ठे तथा शिरपर गंगाली पत्ती सूखे काठके छत्रके भ्रममें आ-आकर बैठेंगे ॥ ६७ ॥ यह दिन कब आवेगा जब काशीमें गंगाके तीरपर लौंगोटी लगाए और हाथ जोड़े मैं हूँ 'हे गौरीनाथ ! हे त्रिपुरासुरके नाशक ! हे शम्भो ! हे तीन नेत्रवाले ! सुम्बर प्रसक्त हो जाओ' यह कहते हुए एक-एक दिन एक-एक चणके समान बिता दूँगा ॥ ६८ ॥ कब मैं अयोध्यामें सरयूके निर्मल तटपर सीता और लक्ष्मणके साथ दहलते हुए रामके सामने हे राम ! हे स्वामी ! हे सीता-पते ! हे ध्यापक भगवान् ! कहते हुए एक-एक दिन एक-एक चणके समान बिताऊँगा ॥ ६९ ॥ वृन्दवनमें ज्ञानन्दमन सुन्दरी गोपियोंसे विरे हुए तथा नवीन बादलके समान स्वामि ध्यायेवाले नन्द-नन्दनको अपनी आँखोंसे देखकर मैं कब सन्तुष्ट

हूँगा तथा अत्यन्त प्रेममें लक्ष्मणसे और कौपते हुए अपना मनोरथ साफल करूँगा ॥ ७० ॥ मैं कब वृन्दावनमें यमुना-जीके निर्मल तीरपर बलराम तथा सुदामा आदि गोपीके साथ दहलते हुए भगवान् कृष्णके सामने 'हे कृष्ण ! हे स्वामी ! हे मधुर मुखी बजानेवाले ! हे ध्यापक भगवान् !' कहते हुए चणके समान दिन बिताऊँगा ॥ ७१ ॥ हम कौन हैं, कहलें आए हैं, आप कौन हैं, यह संसार क्या है, ये सब जानने-योग्य बातें आकाशके समान शून्य हैं। बाहर तथा भीतर ज्ञानन्द नामका प्रकाशरूपी, एक और पूर्ण तत्त्व 'ब्रह्म' समान रूपसे व्याप्त है, ऐसा समझकर मायासे दूर हटकर चलनेवाले व्यक्ति-के लिये कैसा कर्तव्य और कैसा अकर्तव्य ॥ ७२ ॥ अनित्य व्यक्तिका अनित्य वस्तुओंमें स्नेह जोड़ना कर्तव्य उचित है जब कि सदृशों जन्मतक भी फिर अरना प्यारा देखनेको न मिल पावेगा ॥ ७३ ॥ इस संसारमें कुछ लोग सौ कवचक, कुछ सौ वर्षतक और कुछ सौ दिनतक रहते हैं। जिनकी आयु पूर्वजन्मके कर्मके अनुसार प्रतिदिन चोख होती रहती है उन सब जीवोंको काज नहीं करना कवल बनता चलता है। इसमें किसीकी कोई चतुराई नहीं चलती ॥ ७४ ॥ कर्तव्य और अकर्तव्य किसी बातका कर्ता भी आत्मा नहीं है। जीते जो कुछ होनेवालेकी स्थिति जके हुए वलके समान होती है। इस प्रकार जीते-जो संसारके बन्धनसे छूटा हुआ जो व्यक्ति ममता छोड़कर अपने

लिष्टमानो विमुक्तो निखैगुण्ये पथि विचरतः को
विधिः को निपेयः ॥ ७५ ॥ कालेन कितिवाचिह-
पवनव्योमादियुक्तं जगद्वाहाद्याश्च सुराः प्रयान्ति
विलयं विधौ विचारादिति । पश्यामोऽपि विनश्यतो-
ऽनवरतं लोकानेकान्मुग्धा मायामोहमयीं भयप्रश-
यिनीं नास्यां जहोमी वयम् ॥ ७६ ॥ किं कन्दर्पं करं
कदर्यसि रे कोदण्डदङ्कारिते रे रे कोकिल कोमलैः
कतरवैः किं त्वं मुग्धा वरगति । मुग्धे किञ्चविदग्ध-
मुग्धमधुरेलोलैः कटाक्षैरलं चेतस्त्रिभ्यतचन्द्रचुडचर-
शुभ्यानामृतं वर्तते ॥ ७७ ॥ किं ते घनैश्शुभ्रिरेव वा
किं क्षरेच्च किं ब्राह्मणं यो मरिष्यति । आत्मानम-
न्विच्छुर्गुह्यं प्रविष्टं पितामहास्ते क मताः पिता च
॥ ७८ ॥ कुचौ तु परिचचितौ परिचितं चिरं चन्दनं
कृताः परमुरोजयोः परिसरेऽरविन्दश्रियः । स्तुतिर्न-
तिरपि स्तुतिर्वरतनोः कृतेष्वारदादिदं तु निखिलं मया
विरचितं पुनर्नशरे ॥ ७९ ॥ कुट्टम्विन्ताकुलितस्य

पुंसः कुलं च शीलं च गुणाश्च सर्वे । अपकङ्कम्मे
निहिता ह्यापः प्रयान्ति देहेन समं विनाशम् ॥ ८० ॥
कुरङ्गाः कल्याणं प्रतिविष्टपमारोग्यमदवि चयन्ति
क्षेमं ते पुलिनकुशलं मद्रसुपलाः । निदान्ताइस्वन्नात्क-
थमपि विनिष्कान्तमधुना मनोऽस्माकं शोभामिहपति
युष्मत्परिचितम् ॥ ८१ ॥ कृतस्ते कालसाकेन कुलायः
शिरसि ध्रुवम् । यद्वाति पलितन्याजाचसुतोपस्य
शुक्तिमता ॥ ८२ ॥ कृत्वा दीननिपोडनं निजजनने यद्वा
सक्षोविप्रहं नैवालोच्य गरीयसीरपि शिराद्गामुष्मिकी-
र्यातनाः । द्रव्यौषाः परिसञ्चिताः प्लुत मया यस्याः
कृते साम्प्रतं नोपाराडलिनापि केवलमद्वा सेयं कृतार्थो
तनुः ॥ ८३ ॥ कृत्वा शङ्खविभोषिकां कतिपयप्राग्मेपु
दीनाः प्रजा मन्थन्तो विटत्रलितैरेपहृताः शोषोमु-
जस्ते किल । विद्वंशोऽपि यथं किल त्रिजगतांसभ-
स्थितिद्वयापदांमोगस्तत्परिचर्यया न गाणतो यैरेप
नारायणः ॥ ८४ ॥ कृमयो भस्म विष्टा वा निष्टा यस्याः

शरीरं रक्षता ई वष मापाते दूर विचरतेवाजे शक्ति के लिये
कैसा कलेय और कैसा शक्तत्व ॥ ७५ ॥ विचार करनेपर यह
धमकमें आता है कि पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाशके
सहित इव सारे संसारको तथा ब्रह्मा आदि देवताओंको काज
निगल जाता है । हम बहुलसे लोगोंको निरंतर मरते हुए
भी देखते हैं पर संसारके जाळमें कैसानेवाकी और मोहमें
बाधनेवाकी व्यर्थकी नाचा-बुझिको नहीं छोड़ पाते ॥ ७६ ॥
हे काम ! हम अपने धनुषकी टंकारसे अपने हाथको क्यां व्यर्थ
कट दे रहे हो । अरे कोयल ! तू हतकी कोयल मीठी शुकते
क्यों शिवजाप जा रहा है । हे सुन्दरी ! तुम्हारी मीठी सरस
सुन्दर और रवींजी चितवन सब बैकार है क्योंकि अथ मेरा
बिस्व शंकरके चरणोंका प्यान-रूपी श्रमृत पीनेमें जग गया
है ॥ ७७ ॥ हे माण्डव्य ! जिस पग, मण्डु और खोके लिये
तुम प्राण दिए बाज रहे हो उनसे क्या लाभ है ! इस शरीरमें
व्याध होनेवाले आत्माको हँडौ और सोचो कि तुम्हारे
पिता और पितामह सब कहाँ चले गए ॥ ७८ ॥
मैंने बहुत दिनोंतक सुन्दरी मयेकीके स्नानपर चन्दनका लेप
किया, उसपर कमलकी मालाएँ पहिनाईं और आदरसे दसकी
रुत्ति की, दसके हाथ जोड़े और उसे स्मरण किया । यह
सब कुछ करते हुए भी ईश्वरके लिये कुछ नहीं किया ॥ ७९ ॥
परिवारके पावन-पीपयकी कितामें हूये हुए मनुष्यके कुल,

स्वभाव तथा सभी गुण कच्चे बड़ेमें रखते हुए जबके समान
शरीरके सारा ही समाप्त हो जाते हैं ॥ ८० ॥ हे शृंगी !
तुम्हारा कल्याण हो । हे जंगल ! तुम्हारा प्रत्येक वृक्ष मीठाग रहे ।
हे नदी ! तुम्हारा मीठाग हो । हे नदीके तट ! तुम्हारा इशज हो ।
हे पथ्यो ! तुम सुखी रहो, क्योंकि तुरे फल देनेवाले रनिवाससे
किसी-किसी प्रकार टुटकारा पाकर हमारा मन इस समय आप
लोगोंसे मित्रके उतावला हो रहा है ॥ ८१ ॥ काजस्त्री
कौण्डिने निरचय ही तुम्हारे सिरपर अपना चोंसला बना रहा
है, उसीकी भीट यह तुम्हारे बाजोंके उजलेपनके रूपमें दिखाई
पड़ रही है ॥ ८२ ॥ मैंने जिस शरीरके लिये दीनोंकी दुःख
दिया, अपने सम्बन्धियोंसे कगादा किया, परकोकमें हानेवाकी
अभ्यासक दुर्गोतिपर भी विचार नहीं किया और धनकी राशिक
संग्रह करता रहा, वही शरीर इस समय केवल अज्ञानीपर
तिन्नीके चावलसे ही सन्तुष्ट हो रहा है ॥ ८३ ॥ भोगी लोगोंकी
खडकी-सीया बातोंमें धारक जो राजा अपनी हीन प्रजाको
शङ्कना मय दिखाकर दुःख देने हैं, उनकी सेवामें लगकर हमने
सब समझते हुए भी इस मित्रोक्की रचना, पावन और सहार
कानेवाके भगवान् नारायणकी सेवाकी विन्ता नहीं की ॥ ८४ ॥
जो शरीर भूमिमें गाढ़ देनेपर कीदर, जवा देनेपर मरम और
सिधार तथा गिह आदिसे खा लिए जानेपर मज ही जाता है
उस शरीरको दूसरोंको कट देनेमें जगना कहाँकी अण्ठी

यमोदशी । स कायः परतापाय युज्यतामिति को नय
॥ ८५ ॥ कृमिभिः क्षतसर्वाङ्गः सौकुमार्यात्प्रतिक्षणम् ।
मूच्छर्त्तमानोत्यु रुक्नेशो गर्भस्थैः क्षुचितैर्धृशम् ॥ ८६ ॥
कृशः काणः खलुः श्रवणरहित पुच्छुविकलो वणी
पूर्यक्लिन्नः कृमिकुलशतैराक्षिततनुः । क्षुधाक्षामो जीर्ण-
पिटरककपालावृतगलः शुनीमन्वेति श्वा हतमपि
निहन्त्येव मदनः ॥ ८७ ॥ केचिद्धन्ति धनहीनजनो
जघन्यः केचिद्धन्ति गुणहीनजनो जघन्यः । व्यासो
वदत्यखिलवेदविशेषविज्ञो नारायणस्मरणहीनजनो
जघन्यः ॥ ८८ ॥ केनाप्यनर्थरुचिना कपटं प्रयुक्तमेत-
त्सुहृत्तनयवन्धुमर्थं विचित्रम् । कस्यात्र कः परिजनः
स्वजनो जनो वा स्वप्नेन्द्रजालसदृश खलु जीवलोकः
॥ ८९ ॥ केश काशस्तवकाविलासः कायः प्रकटित
करभविलासः । चक्षुर्दग्धयराटककण्ठं त्यजति न चेत-
काममनस्यम् ॥ ९० ॥ को देशः कानि मित्राणि कः
कालः कौ व्ययागमौ । कश्चाहं का च मे शक्तिरिति

वात है ॥ ८२ ॥ गर्भमें निवास करनेवाले सुकुमार प्राणीको
जब गर्भमें रहनेवाले भूले कीडे दिनरात काटते रहते हैं तब वह
घबराकर मूर्च्छित हो जाता है ॥ ८३ ॥ दुबड़ा, काना, लोंगडा,
बहरा, बिना पूँछका, घाव, पीप और कीड़ासे भरा हुआ, भूखा,
बूधा, गलेमें घबेकी सूँदरी खटकाए हुए कुत्ता भी कुतियोंके
पीछे दौड़ता रहता है । कामकी महिमा तो देखिए कि वह मरे
को भी मारता रहता है ॥ ८४ ॥ कोई कहते हैं बिना धनका
मनुष्य व्यर्थ है, कोई कहते हैं बिना गुणके मनुष्य व्यर्थ हैं, पर
सब शास्त्रोंका सिद्धान्त जाननेवाले व्यासजी कहते हैं कि
वास्तवमें व्यर्थ था वही मनुष्य है जो भगवान्‌को स्मरण नहीं
करता ॥ ८८ ॥ यह सब मित्र, पुत्र और वन्धु आदिका धोखा
न जाने किसने फेंका रखा है ! भला यहाँ कौन किसका परि-
वार है, कौन सम्बन्धी है और कौन अपना है ! यह ससार
तो नटके खेलके समान है ॥ ८९ ॥ सुवापेंमें बाल तो
काँसके पूलके समान उजले हो जाते हैं, शरीरमें ऊँटके कोहान-
के समान कृषद निकल आता है और झालें जली हुई कीड़ीके
समान हो जाती हैं फिर भी मनके मनोरथ नहीं छूटते ॥ ९० ॥
मनुष्यको सदा यह सोचते रहना चाहिए कि यह कौन देश है,
कौन हमारे मित्र हैं, कैसा समय है, हमारी कितनी आय और
व्यय है, मैं क्या हूँ और मेरी शक्ति कितनी है ॥ ९१ ॥ जिसकी
कौमोरी और गुणकी सिकड़ी छेदोबाधी और अत्यन्त पुरानी हो,

विन्यन्तं मुहुर्मुहुः ॥ ९१ ॥ कौपीनं शतखण्डजर्जरतरं
कन्या पुनस्तादृशी निश्चिन्तं सुखसाध्यमेक्षमशनं
शय्या शमशाने वने । मित्रामित्रसमानता पशुपतेश्चि-
न्ताथ शय्यालये स्वात्मानन्दमदप्रमोदमुदितो योगी
सुखं तिष्ठति ॥ ९२ ॥ क्लेशत्यागकृतेऽपितेन करणव्यूहेन
देहेन च स्वानर्थं वन जन्तुरर्जयति चेन्मन्तुनियन्तुः
कुत । शस्त्रे शत्रुजयाय नैजगुरुणादत्तंथ तेनैव
चेत्पुत्रो हन्ति निजं वपु कथय रे तत्रापराधी तु कः
॥ ९३ ॥ क्वचित्कन्याधारी क्वचिदपि च दिव्याम्बरधरः
क्वचिद्भूमौ शय्या क्वचिदपि च पर्यङ्कशयनः ।
क्वचिद्धिक्तावृत्ति क्वचिदपि च मृष्टाशनचर्चिर्भ-
हारमा योगिनी न गणयति तु खं न च सुखम् ॥ ९४ ॥
क्वचैतद्भवन्नारविन्दं क्व तद्घरमपु क्वायतास्ते
फटाला क्वालापा कीमलास्ते क्व च मदनधनुर्भुङ्गो
ध्रुविलास । इत्थं खट्वाङ्गकोटीं प्रकटितदशन मञ्जु
गुञ्जत्समीरं रागान्धानामिवोच्चोपहसति महामोह-

जिसे बिना परिश्रमसे भिन्ना मिल जाती हो, बिना चिन्ताके
भोजन चला जाता हो, वनके शमशानमें जाकर जो नींद लेता हो,
जो शत्रु और मित्र सबको समान समझता हो, जो एकान्तमें
भगवान्‌ शकटा स्मरण करता हो और जो आनन्द रूपी
शरमाका साक्षात्कार करके प्रसन्नचित्त रहता हो वही योगी
सदा सुखी रहता है ॥ ९२ ॥ ससारकी विपत्तियोंसे छुटकारा पानेके
लिये ईश्वरने हमें इन्द्रिय तथा शरीर दिया है । यदि प्राणी
उनसे पाप इकट्ठा करे तो इसमें परमेश्वरका क्या अपराध ! यदि
कोई अपने शत्रुपर विजय प्राप्त करनेके लिये अपने पितासे शस्त्र
पाकर उसीसे अपनी हत्या कर ले तो इसमें किसका अपराध है
॥ ९३ ॥ जो योगी महारामा कभी गुदड़ी और कभी सुन्दर रेशमी
वस्त्र पहनते हैं, कभी धरतीपर और कभी पैलोंपर सो रहते हैं,
कभी भिचार्के अन्नसे और कभी स्वादिष्ट भोजनसे पेट भर लेते हैं
ये सुख-दुःखकी चिन्ता नहीं करते ॥ ९४ ॥ मरी हुई स्त्रीके
गिल टिकठाके एक कोनेमें पड़े हुए सुखे सुखके दाँतोंमिसे होकर
सरसराता हुआ वायु प्रेममें अन्धे मनुष्योंके विशाल मोह-
रूपी जालकी मानो यह कहकर हँसी उड़ा रहा है कि देखो !
आज न वह सुख रूपी कमल है, न अशरारत है, न तिरछी
चितवन है, न कोमल आजाप है, न कामके धनुषके समान
देवी भौंहें ही हैं ॥ ९५ ॥ यह प्राणी नटके समान कुछ समय-
तक भासक, कुछ समय-तक कामी वरुण, कुछ समय तक दरिद्र,

जातं कपालम् ॥ ६५ ॥ चणं चालो भूत्वा क्षणमपि
 युवा कामरसिकः क्षणं विचैर्द्वानः क्षणमपि च सम्पू-
 र्णचिम्बः जराजीर्णैरङ्गैर्नष्ट इव बलीमण्डिततनुर्नरः
 संसारारङ्गे विशति यमधानीजवनिकाम् ॥ ६६ ॥ हान्तं
 न क्षमया गृहोचितसुखं त्यक्तं न सन्तोषतः सोढा
 दुःसहशीतवाततपनक्षेशा न तप्तं तपः ध्यातं विचमह-
 निशं निपमितप्राणैर्न शम्भोः पदं तच्छकर्मं कृतं यदेव
 मुनिमित्तेस्तैः फलेर्षञ्जितम् ॥ ६७ ॥ क्षिपसि शुक्रं
 वृषदंशकरदने मृगमर्षयसि मृगावनचदने । वितरसि
 तुरगं महिषविपाये विद्वपघोतो भोगविताने ॥ ६८ ॥
 क्षीणीपर्यटनं श्रमाय विदुषां वादाय विद्याजिता मान-
 घंसनहेतवे परिचितास्ते ते धराधीश्वराः । विश्ले-
 षाय सजोहसुन्दरदशामास्ये कृता दृष्टयः कृसानेन
 मया प्रयागनगरे नाराधि नारायण्य ॥ ६९ ॥ गङ्गातीरे
 हिमगिरिशिलायद्वपद्मासनस्य प्रह्लादानाम्भ्यसनधिचिन्ता
 योगनिद्रां गतस्य । किं तैर्मातृष्यं मम सुविदसैर्यज्ञ ते

निर्विश्रयाः कस्यह्यन्ते जरदडरिणा शुकमङ्गे मदीये ॥ ७० ॥
 गद्गोचुङ्गतर्करिष्णणलघूर्त्सर्पेन्मरुद्रीतसागुञ्जणदृष्ट
 दमन्त्रुयम्बु गलसत्कुञ्जोपकराटाम्बुदा । अध्याय्य प्रथि-
 धाय मानसमदो शम्भोः पदाम्भोर्दो घन्याः प्राप्य परं
 पदं प्रतिदिनं नन्दन्ति योगं यिना ॥ ७० ॥ गतः
 कामकयोन्मादो गलितो याचनञ्जरः । गतो मोहश्च्युता
 दृष्ट्या कृतं पुण्याश्रमे मनः ॥ ७० ॥ गतः फालो
 यत्र द्विचरणपशूनां क्षितिमुजां पुरः स्वस्तीत्युपतना
 विपयसुखमास्यादितमभूत् । इदानीमस्माकं तुगमित्र
 समस्तं फलयतामपेक्षा मित्रायामपि किमपि चैतर-
 पयति ॥ ७० ॥ गतः फालो यत्र प्रपयित्ति मयि
 प्रेमकुटिलः कटाक्षः कालिन्कीलपुलहरिदृष्टिः प्रम-
 यति । इदानीमस्माकं जरदकमट्टीपृष्ठकठिना मनोदृष्टि-
 स्तरिकं व्यसनिति मुच्येत् श्लषयसि ॥ ५० ॥ गतसा-
 रेऽत्र संक्षारे सुखघ्नान्तिः शरीरिणाम् । लालापानमि-
 चाङ्गुष्ठे चालानां स्तन्यविधमः ॥ १०५ ॥ गतास्त्रात-

उद्यु समयतक धनी, कुद्यु समयतक तुवापेसे शिथिल अन्नवाजा,
 कुद्यु समयतक सिद्धे हुपु चमपेदे युक्त शरीरवाजा बनकर इस
 संसाररूपी रंगमंचपर खेळ खेलता हुआ यमपुरी-रूपी परदेके
 नीतर चला जाता है ॥ ६९ ॥ मैंने क्या तो किया किन्तु सहन-
 शीलतापूर्वक नहीं, घरके सुख तो छोड़े, किन्तु सन्तोषपूर्वक
 नहीं, असह्य शीत वायु और धूपका दुःख तो सदा किन्तु तप
 नहीं किया, रातदिन जी-ज्ञानसे घनकी चिन्ता तो करता रहा
 किन्तु शंकरके चरणोंका प्याल नहीं किया । इस प्रकार मैंने
 वे ही कर्म किए जो मुनि लोग करते हैं किन्तु उनके फलसे
 छटा दूर रहा ॥ ७० ॥ भोगोंमें मन लगाना वैधा
 ही है वीसा थिकीके दरतोंमें सुगमा दाब देना, सिद्धके मुँहमें
 हरिया पहुँचा देना और जैसेकी सींगमें मोड़को कँसा देना
 ॥ ७० ॥ मैंने केवल यकनेके द्विपे सारी धरतीका चक्कर
 लगाया, विद्वानोंसे विवाद कानेके द्विपे ही विधा पदो, दुष्टों-
 का सम्मान नष्ट करनेके लिये राजाधिका साथ किया, केवल
 विरोगके दुःखका अनुभव करनेके लिये कमल-नयनी
 नयेक्षियोंपर दृष्टि डाली पर अज्ञानमें पदकर प्रयागमें नारा-
 यणकी सेवा न की ॥ ७१ ॥ क्या तुमके ऐसे सुन्दर दिन
 मित्र पार्वीके जय गंगाके तटपर आनन्दकी छिडी बटानपर
 पद्मपावन लगाकर महाज्ञानके अम्बासमें योगनिद्रा खेनेवाले
 मेरे शरीरको धुँद्रे हरिया निर्मल होकर अपने सींगोंसे धुजजायेंगे

॥ १०० ॥ वे लोग घन्य है जो गंगाकी ऊँची खहरोसे मिल-
 कर उठे हुए वायुसे शीतल बनी हुई, गुंजार करनेवाले भीतोंसे
 सुन्दर लगनेवाली और बेतले चिरी हुई काङ्कियोंके पासवाली
 मूमिमें प्रसन्नवासे बैठकर मगवान् शंकरके चरणकमलमें मन
 लगाकर योगकी क्रीडाके विना ही प्रतिदिन परम-पदका आनन्द
 खेते हैं ॥ १०१ ॥ संन्यासमें मन लगा खेनेसे कामकी चर्चाका
 पागलपन दूर हो जाता है, यौवनका चक्र शान्त हो जाता है
 और अज्ञान तथा लोभ जाता रहता है ॥ १०२ ॥ यह समय
 बीन गया जब मैं दो पैरवाले पशु राजाधोंके सामने 'थापका
 करवाया हो' कहकर विपयोंके सुक्का स्वाद खिया करता था ।
 अब तो मैं सब वस्तुओंको इतना तुमके समान समझता हूँ कि
 मिषाकी भावयकना देखकर भी अब मुझे जाज लगती है ॥ १०३ ॥
 वे दिन जाते रहे जब मुझ प्रेमीपर यमुनाकी नर्तकी-नर्तकी खहरो-
 के समान बचल तथा प्रेमरस्य कटाक्षका प्रभाव पदा करता था ।
 अब तो मेरे मनकी दृष्टि पुराने कलुषकी पीठके समान बनी
 कड़ी पद गई है । इधरलिये हे चंचल मनोदृष्टि ! धम
 प तुमके बर्षी सताप दाब रही है ॥ १०४ ॥ जैसे बच्चेकी
 धपने रँगुठेके हाथ थपनी ही खार पति हुए दूधका प्रस हो
 जाता है जैसे ही इस सत्कारके प्राणियोंको भोगमें खुलका मन
 होने लगता है ॥ १०५ ॥ वित्त, भार्य आदिके मुकसे निकली
 हुई मोठी-मीठी बातें सुननेका समय बीत गया और धनके भोगके

यमीहशी । स कायः परतापाय युज्यतामिति को नयः ॥ ८५ ॥ कृमिभिः क्षतसर्वाङ्गः सौकुमार्यात्प्रतिचक्षणम् । मूर्च्छामाप्नोत्यु रुक्नेशो गर्भस्थेः क्षुचितैर्धृशम् ॥ ८६ ॥ कृशः काणः खञ्जः श्रवणरहितः पुच्छुचिकलो वशी पूर्याङ्गवः कृमिकुलशतैराचिततनुः । क्षुधाक्षामो जीर्णः पिटरककपालावृतगलः शुनीमन्वेति श्वा इतमपि निहन्त्येव मदनः ॥ ८७ ॥ केचिद्भ्रान्ति धनहीनजनो जघन्यः केचिद्भ्रान्ति गुणहीनजनो जघन्यः । व्यासो पद्मयस्त्रिलोकेऽपि शेषविज्ञो नारायणस्मरणहीनजनो जघन्यः ॥ ८८ ॥ केनाप्यनर्थरुचिना कपटं प्रयुक्तमेतत्सुहृत्तनयवन्धुमयं विचित्रम् । कस्यात्र कः परिजनः स्य जनो जनो वा स्वप्नेन्द्रजालसदृशः खलु जीवलोकाः ॥ ८९ ॥ केशः फाशुस्तवकविलासः कायः प्रकटित-करमविलासः । क्षुद्गर्भवराटककल्पं त्यजति न चेतः काममनल्पम् ॥ ९० ॥ को देशः कानि मित्राणि कः कालः कौ व्ययागमौ । कश्चाहं का च मे शक्तिरिति

चिन्त्यं मुहुर्मुहुः ॥ ९१ ॥ कौपीनं शतखण्डजर्जरं कन्था पुनस्तादृशी निश्चिन्तं सुखसाध्यमैक्ष्मण्यं शय्या श्मशाने वने । मित्रामित्रसमानता पश्यपतेक्षि-न्नाथ शम्भालये स्वात्मानन्दमद्रमोदमुदितो योगी सुखं तिष्ठति ॥ ९२ ॥ ज्ञेश्यागकृतेऽपितेन करणव्यूहेन देहेन च स्वानर्थं वन जन्तुर्जयति चेन्मन्तुर्नियन्तुः कुतः । शस्त्रे शत्रुजयाय नैजगुरुणाऽप्युच्यते नैव चेत्पुत्रो हन्ति निर्जं वपुः कथय रे तत्रापराधी तु कः ॥ ९३ ॥ क्वचित्कन्धाघाटी क्वचिदपि च दिव्याम्बरधरः क्वचिद्भूमौ शय्या क्वचिदपि च पर्यङ्कशयनः । क्वचिद्विज्ञानावृत्तिः क्वचिदपि च मृष्टाशनकर्मि-हात्मा योगक्षो न गणयति दुःखं न च सुखम् ॥ ९४ ॥ पचैतद्भवन्नारविन्दं फव तद्दधरमधु फवायतास्ते कटाक्षाः कवालापाः कोमलास्ते फव च मदनधनुर्भङ्गुरो भूविलासः । इत्थं खट्वाङ्गकोटो प्रकटितदशनं मञ्जु-गुञ्जत्समीरं रागाभ्यानामिवोच्चैरुपहसति महामोह-

वात है ॥ ८५ ॥ गर्भमें निवास करनेवाले सुकुमार प्राणीको जब गर्भमें रहनेवाले भूले कीड़े दिनरात काटते रहते हैं तब वह ध्वस्तकर मूर्च्छित हो जाता है ॥ ८६ ॥ दुखड़ा, काना, लँगड़ा, बहरा, बिना पँखका, धाव, पीप और कीड़ोंसे भरा हुआ, भूखा, बूढ़ा, गलेमें घड़ेकी मुँहकी लटकाए हुए कुत्ता भी कुतियोंके पीछे दीड़ता रहता है । कामकी महिमा तो देखिए कि वह मरे-को भी मारता रहता है ॥ ८७ ॥ कोई कहते हैं बिना धनका मनुष्य व्यर्थ है, कोई कहते हैं बिना गुणके मनुष्य व्यर्थ है, पर सब शास्त्रोंका सिद्धान्त जाननेवाले व्यासजी कहते हैं कि वास्तवमें व्यर्थ वा वही मनुष्य है जो भगवान्‌की स्मरण नहीं करता ॥ ८८ ॥ यह सब मित्र, पुत्र और वन्धु आदिका धोखा न जाने किसने फैला रखा है ! भला यहाँ कौन किसका परि-वार है, कौन सम्बन्धी है और कौन अपना है ! यह संसार तो नदके खेलके समान है ॥ ८९ ॥ झुपापमें बाध तो किसके फूलके समान उजले हो जाते हैं, शरीरमें ऊँटके कोहरानेके समान श्वेद निकल आता है और शरीरमें जलवाँ हुई कीड़ोंके समान हो जायीं हैं फिर भी मनके मनोरथ नहीं चूटते ॥ ९० ॥ मनुष्यको सदा यह सोचते रहना चाहिये कि यह कौन देवा है, कौन हमारे मित्र हैं, कैसा समय है, हमारी किसनी प्राय और भय है, मैं क्या हूँ और मेरी शक्ति किसनी है ॥ ९१ ॥ जिसकी रँगोटी और गुद्दी सैकड़ों छेदोंवाली और धरान्त पुरानी हो,

जिसे बिना परिश्रमसे भिन्ना मिल जाती हो, बिना चिन्ताके भोजन चल जाता हो, वनके श्मशानमें जाकर जो नींद लेता हो, जो शत्रु और मित्र सबही समान समझता हो, जो एकान्तमें भगवान् शंकरका स्मरण करता हो और जो आनन्द-रूपी आत्माका साक्षात्कार करके प्रसन्नचित्त रहता हो वही योगी सदा सुखी रहता है ॥ ९२ ॥ संसारकी विपत्तियोंसे छुटकारा पानेके लिये ईश्वरने हमें इन्द्रिय तथा शरीर दिया है । यदि प्राणी उनसे पाप हट्टा करे तो इसमें परमेश्वरका क्या अपराध ! यदि कोई अपने शत्रुपर विजय प्राप्त करनेके लिये अपने पितासे शस्त्र पाकर उसीसे अपनी हत्या कर ले तो इसमें किसका अपराध है ॥ ९३ ॥ जो योगी महात्मा कभी गुददी और कभी सुन्दर रेशमी वस्त्र पहनत है, कभी धरतीपर और कभी पलंगपर सो रहते हैं, कभी भिन्नाके अन्नले और कभी स्वादिष्ट भोजनसे पेट भर लेते हैं वं सुख-दुःखकी चिन्ता नहीं करते ॥ ९४ ॥ मरी हुई स्त्रीके जिस टिकड़ोंके एक कोनेमें पड़े हुए सुले सुखके दौर्तेमिले होकर सरसराता हुआ धातु प्रेममें अग्ने मनुष्योंके विशाल मोह-रूपी जालकी मानो यह कहकर हँसी उड़ा रहा है कि देखो ! ध्यान न वह सुल-रूपी कमल है, न अशरारत है, न तिरछी चितवन है, न कोमल झालाव है, न कामके धनुषके समान देवी भीहँ ही हैं ॥ ९५ ॥ यह प्राणी नदके समान कुछ समय-तक बाहक, कुछ समय-तक कामी तरण, कुछ समय-तक दरिद्र,

जालं कपालम् ॥ ६५ ॥ क्षणं चालो भूत्वा क्षणमपि युवा कामरसिकः क्षणं विचैर्हीनः क्षणमपि य सम्पूर्यमिवः जराजीर्णैरङ्गैर्नैट इय वलीमण्डिततनुर्वरः संसाराङ्गे विशति यमघानीजवनिकाम् ॥ ६६ ॥ क्षान्तं न क्षमया शूद्रोचितसुखं त्यक्तं न स्वतोपतः खोदा दुःसहशीतवाततपनक्लेशा न तप्तं तपः घ्यातं विचमह-विशं नियमितप्राणैर्न शम्भोः पदं तच्छकर्म कृतं यदेव मुनिमिस्तेस्वैः फलेर्वञ्चितम् ॥ ६७ ॥ क्षिपसि शुकं घृष्टशंकरदने मृगमर्षयसि मृगादनवदने। वितरसि सुपुं महिषघिपाणे विदधयेतो भोगविताने ॥ ६८ ॥ क्षीणोपशब्देन श्रमाय विदुषां वादाय विद्यार्जिता मान-ध्वंसहेतवे परिचितास्ते ते धराधीश्वराः। विरले-पाय खरोजसुन्दरदृश्यास्ये कृता दृष्यः कुक्षानेन मया प्रयागनगरे नाराधि नारायण ॥ ६९ ॥ गङ्गातीरे हिमगिरिशिखारूपमासनस्य ब्रह्मक्षानाभ्यसनविधिना योगनिद्रां गतस्य। किं तैर्मांश्वरं मम सुदिवसैर्वज्र ते

विशिशङ्काः फयद्दयन्ते जरटहरिणा शूद्रमङ्ग मन्त्रेण ॥ ७० ॥ मङ्गोत्तुङ्गनरङ्गशिशुखलघूरसर्पेनमरुत्तुङ्गानुजल्पश्रु-दमञ्जुव्यञ्जु लसत्कुञ्जोपस्थात्सुदु। श्रयास्य प्रति-घाय मानसमहो शम्भोः पद्माम्भोरुहे धन्या प्राप्य परं पदं प्रतिदिनं नन्दन्ति योगं विना ॥ १०१ ॥ गतः कामरूपेणमादो गलितो यावन्नवरः। गतो मोहद्वयुता टृप्सा फृतं पुण्याश्रमे मनः ॥ १०२ ॥ गतः कालो यत्र द्विचरणपशुनां चित्तियुजां पुरः स्वस्तीयुत्पत्ना विपयसुखमास्थादितमभूत्। इदानीमस्माकं तुगमिन् समस्तं कलयतामपेक्षा मिश्रायामपि शिष्ये वितर-पयति ॥ १०३ ॥ गतः कालो यत्र प्रययिनि मयि प्रेमकुटिलः फटाशः फालिन्वीतयुत्तरिवृत्तिः प्र-वति। इदानीमस्माकं जट्टकमठीशुद्रकठिना मनामुत्त-स्तर्किकं व्यसननि मुद्येव ग्लपयांस ॥ १०४ ॥ गतसा-देऽत्र संसारे सुखश्रान्तिः शरीरिणाम्। लालापानमि-वाङ्मुष्टे धालानां स्तन्यविभ्रमः ॥ १०५ ॥ गतास्त्वाव-

शुद्ध समयतक धनी, कृष्ण समयतक बुदापेते शिथिल अश्रवाळा, कुब्ज समयतक सिक्कदे हुए वनदेते युक्त शरीरवाळा वनकर इत संसाररूपी रंगमचपर खेल खेलता हुआ यमपुरी-रूपी परदेके भीवर चबा जाता है ॥ ६६ ॥ मैंने क्या तो किया किन्तु सहन-शीलतापूर्वक नहीं, धरके सुख तो छोड़े, किन्तु सन्तोषपूर्वक नहीं, असल गीत बापु और भूपका दुःख तो सहा किन्तु तप नहीं किया, रागदिन जी-जानसे धनकी विन्ता तो करता रहा किन्तु शकके चरयोका ध्यान नहीं किया। इत प्रकार मैंने वे ही कर्म किए जो मुनि लोग करते हैं किन्तु उनके फलसे सदा दूर रहा ॥ ६७ ॥ ओगोंमें मन लगाना वैसा ही है वैसा विश्वीके दौर्भागमें सुगमा दाख देना, सिद्धके मुँहमें हरिय १६६६ देना और भैसेकी सींगमें घोड़ेको फँसा देना ॥ ६८ ॥ मैंने केवल धरुनेके लिये सारी धरतीका चक्कर लगाया, विद्वानोंसे विवाद करनेके लिये ही विद्या पढ़ी, दुष्टोंका सम्मान नष्ट करनेके लिये राजाओंका साथ किया, केवल विभोगके दुःखका अनुभव करनेके लिये कमल-नयनी नवेबिषोंपर इडि खावी पर अज्ञानमें पदकर प्रयागमें नारा-यणकी सेवा न की ॥ ६९ ॥ क्या मुझे ऐसे सुन्दर दिन मिल पायेंगे जब गंगाके तटपर हिमाजलकी किसी चट्टानपर पद्मसन जगाकर ब्रह्मज्ञानके अभ्यासमें योगनिद्रा खेनेवाले नौ शरीरको घड़े हरिय निर्मय होकर अपने सींगसे सुगजायेंगे

॥ १०० ॥ वे लोग अन्य हैं जो गंगाकी ढँधी जहूँसे मिल-कर उठे हुए बापुसे शीतल पनी हुई, गुंजार कानेवाले औरोंसे सुन्दर लगनेवाली और बेतसे बिली हुई आदिनोंके पासवाली भूमिमें प्रसन्नतासे बैठकर जगवात् शकके चरणकमलमें मन जगाकर योगकी क्रियाके विना ही प्रतिदिन परम-पदका ध्यान-उत्ते हैं ॥ १०१ ॥ संन्यासमें मन लगा खेनेसे कामकी चर्बाका पागलपन दूर हो जाता है, बीदनका चर शान्त हो जाता है और अज्ञान तथा लोभ जाता रहता है ॥ १०२ ॥ यह समय बीन गया जब मैं दो पिरवाले पशु राजाओंके सामने 'चापका कलपाण हो' कहकर बिषयोंके सुखका स्वाद जिया करता था। अब तो मैं सब वस्तुओंके इतना दृष्टके समान समझना हूँ कि मिषाकी आवश्यका देखकर भी अब मुझे काम लगती है ॥ १०३ ॥ वे दिन जाते रहे जब मुझ प्रेमोपर यमुनाकी नदीमें-पत्नी जहूँ-के समान चंचल तथा प्रेमपूर्ण कटावका समाव पदा करता था। अब तो मेरे मनकी वृत्ति पुराने कपुपकी पीठके समान बर्षी कपी पठ गई है। इतलिये हे चंचल मनोवृत्ति! अब त् मुझे वर्षों सताप दाख रही है ॥ १०४ ॥ मैंने बन्धुकी अपने औरोंके साथ अपनी ही जार पीते हुए दूधका प्रम हो जाता है वैसे ही इस संसारके प्रायियोंको भोगमें सुखका प्रम होने लगता है ॥ १०५ ॥ विना, मादई आदिके मुखसे निकली हुई नीर-नीरी बातें सुननेका समय बीन गया और बनके भोगके

ध्वात्प्रमुखसुखपीयूषमधुराः पुरा लक्ष्मीक्षेत्रव्यसनस-
रसास्तेऽपि द्विवसाः । अद्ः शान्तं स्वान्तं सपदि
यदि निर्वेदपदवीं भजत्यभ्यासोऽयं जनयति सुखं
भावयिमुद्यम् ॥ १०६ ॥ गतेनापि न सम्बन्धो न सुखेन
भविष्यता । वर्तमानं युष्मातीतं सङ्गतिः कस्य केन वा
॥ १०७ ॥ गन्धर्वनगराकारः संसारः क्षणभङ्गुरः ।
मनसो वासनैवेयमुभयोर्भेदसाधनम् ॥ १०८ ॥ गलि-
तानीन्द्रलक्ष्णाणि बुद्बुदानोव्यचारिणि । मां जीवितनि-
यद्वाशं विहसिष्यन्ति साधवः ॥ १०९ ॥ चर्मखण्डं
द्विधाभिन्नमपानोद्गारधूपितम् । ये रमन्ते नरास्तत्र
कृमिमुल्याः कथं न ते ॥ ११० ॥ चलति गलितधैर्यः
को न मोक्षान्तरालात्कुवलयदलनीला यत्पुरो वक्रि-
ताङ्गी । इममुपशमरूपं मार्गमाद्यद्यन्ती चलति
कुवलाद्या भ्रूलता सर्पिणोऽथ ॥ १११ ॥ चित्त-
भूविचित्रमृत्भूपालकोपालनावासनायासनानाभ्रमेः ।
साधुता सा धुता साधिता साधिता किं तथा

चिन्तया चिन्तयामः शिवम् ॥ १२ ॥ विरं ध्याता
रामा क्षणमपि न रामप्रतिकृतिः परं पीतं रामावर-
मधु न रामकुम्भिसलिलम् । नता यथा रामा यद्विचि-
न रामाय चिन्तितमर्तं मे जन्माश्रयं न दृशपद्ममा
परिगतः ॥ ११३ ॥ जेतोहरा युवतयः स्वजनोऽपुत्रकः
सद्यान्धवाः प्रणतिगर्भगिरिस्थ श्रूयाः । गजानं
दन्तिनिवहास्तरलास्तुरङ्गाः संमोलने नयनयोर्निहि
किंचिदस्ति ॥ ११४ ॥ जडास्तपोभिः श्रमयित् देहं
युषा मनश्चापि विचारदेतुम् । आ सुकर्मलं दृष्टीति
कोपात्तेसारमुद्दिश्य दिनस्ति विदः ॥ ११५ ॥ जनो-
जनकापत्यप्रियरमणीमभृतिशृङ्खलाजालम् । विशृङ्खल्य
सोऽपि सुकृती विहरति गजवन्महामत्तः ॥ ११६ ॥
जनेषु मध्ये जनवद्विज्ञेयते वने सुगैश्चापि समं शृणा-
यते । न भोगमव्यर्थयते न वर्जयत्यवातत्स्वरं न
दुर्ग्रहः फवचित् ॥ ११७ ॥ जन्मपदवलमत्स्यानां चित्त-
कर्मचारिणाम् । पुंसां दुर्वासना रज्जुनीरी वडिपुपि-

शर्कराले भरे हुए दिन भी जाते रहे । इस समय यदि यह
शान्तिपूर्ण चित्त वैराग्य धारण कर जेता तो संसारके विषयोंको
छोड़कर यही अभ्यास सुख देता ॥ १०६ ॥ जब न तो बीते हुए और
भानेवाले सुखमें ही कोई सम्बन्ध है और न वर्तमान सुख
की देरकठ हरनेवाला है तब किसके साथ सम्बन्ध ही किसका है
॥ १०७ ॥ यह संसार गन्धर्वनगरके समान क्षणभङ्गुर है । इसमें
मनकी वासनाके कारण ही ईश्वर तथा जगत्में भेद जान पड़ता
है ॥ १०८ ॥ जब जलके सुखबुल्लेके समान इस जगत्में जासों
हृद्ग गात्र गाप सख सुभे जानेकी प्रार्थनामें देवे देखकर ज्ञानी
योग धारण मेरी हँसी उड़ावे ॥ १०९ ॥ अपान वायुसे
मिले हुए फटे हुए धमड़ेके टुकड़े (योनि) में जो लोग सुख
मानते हैं उन्हें काँहोके समान ही नयां न मान लिया जाय
॥ ११० ॥ माप पाया हुआ भी देता कौन उलट ही जो अपने
सामने कमलवदनकी जालकमञ्जका पंखुदियकों समान धाँकी
भीलोंका पाणिनीकी भाँति शान्तिके मार्गको बरला दुई ही मटकते
हुए देखकर धाराज न प्या दे और चञ्चल न हा जाय ॥ १११ ॥
आम तथा पनके यन्निमानमें मतवाले राजाघोँके सेनाकी
दृष्ट्या, परिधम तथा अनेक प्रकारके अस्त्रोंसे भिने सम्जनताकी
धूर भगाकर मानसिक शौर्गीका संग्रह किया पर अब उनकी
विभ्रताके क्या काम ? अब तो निमित्त दाकर भगवान्का
चिन्तन करें ॥ ११२ ॥ भिने बहुत दिनोंतक कीका तो प्यान

किया पर छय भर भी रामकी सुँका प्यान नहीं किया; कोने
अधराहतका पान तो किया पर रामके चरणोंदकका पान नहीं
किया; रूठी हुई नायिकाके सामने तो सिर झुकाया पर रामके
सामने कीकी सिर नहीं झुकाया । इस प्रकार मेरा यह सुन्दर सम्म
अकार्य होकर बीत गया पर दृगपके पुत्र रामसे भेंट न
हो पाई ॥ ११३ ॥ मनकी मोहनेशाली नवेजिर्वा, विवेकी
सम्बन्धी, प्रेमभरी बातें करनेवाले सेवक, द्वापर विवादाने-
वाले हाथी और पंचव्रत बोदे, ये सब शील सुँद भानेपर कोई
साथ नहीं देते ॥ ११४ ॥ शूलें लोग तरप्याले देहको
वैसे ही गजाले हैं जैसे कुत्ता अपने ऊपर कँडे हुए सबको ही
कोपसे खाने लगता है और बुद्धिमात्र लोग विचारके
कारण मनकी वैसे ही सुखाते हैं । जैसे सिंह कोच काने
अस्त्र छोड़नेवालेपर ही आक्रमण कर देहता है ॥ ११५ ॥
माता-पिता-सन्तान, प्यारी स्त्री धादि सौँक्योंको तोड़-
कर सब पुत्रपामा मनुष्य हाथीकी भीति मस्त होकर विषय
कर रहा है ॥ ११६ ॥ कोई व्यक्ति मनुष्यकोके समीप मनुष्यो
जैसा आचरण करता है और पशुकीके साथ पशुकी जैसा ।
न यह भोग चाहता है, न दोषता है । पथाधर्मं तत्र प्राप्त
किप हुए व्यक्तिका यही दुरामह नहीं रह जाता ॥ ११७ ॥ जन्मरूपी
गढ़केके विररूपी कीचकमें पड़े पुरररूपी मण्डुबिर्वाको रँडतनेके
बिधे हुवाँघनारूपी ररसीमें ररीरूपी माँत-पियद बना हुआ

आतृप्रमुखसुखपीयूषमधुराः पुरा लक्ष्मीवैश्वव्यसतस-
रसास्तेऽपि दिवसा । अद् शान्तं स्वान्तं सपदि
यदि निवेदपदवीं भजन्तभ्यासोऽयं जनयति सुखं
भावविमुखम् ॥ १०६ ॥ गतेनापि न सम्पन्धो न सुखेन
भविष्यता । वर्तमानं गुणातीतं सङ्कति कस्य केन वा
॥ १०७ ॥ गन्धर्वनगराकार' संसारः क्षणभङ्गुर ।
मनसो वासनैरेयमुमयोर्भेदसाधनम् ॥ १०८ ॥ गलि
तानीन्द्रलक्षाणि बुद्बुदानोच चारिणि । मां जीवितनि-
यदाशं विहसि'यन्ति साधवः ॥ १०९ ॥ चर्मखण्डं
द्विधामिन्नमपानोद्धारधूपितम् । ये रमन्ते नरास्तत्र
कृमिमुल्या कथ न ते ॥ ११० ॥ चलति गलितधैर्यः
को न मोक्षान्तरालात्कुवलयदलनीला यत्पुरो वक्रि-
ताङ्गी । इममुपशमरूपं मार्गमाखण्डयन्ती चलति
कुवलयवाद्या भ्रूलता सर्पिणीषु ॥ १११ ॥ चित्त
भूषित्तभूमत्तभूपालकोपालनावासानायासनानाभ्रमे ।
साधुता सा धुता साधिता साधिता किं तथा

घटकारसे भरे हुए दिन भी जाते रहे । इस समय यदि यह
शान्तिपूर्ण चित्त वैराग्य धारण कर लेता तो ससारके विषयोंको
छोड़कर यही अभ्यास सुधु देता ॥ १०६ ॥ जय न तो बीते हुए और
आग्नेवासे सुखमें ही कोई सम्बन्ध है और न वर्तमान सुख
ही देरतक टहरनेवाला है तत्र किसके साथ सम्बन्ध ही किसका है
॥ १०७ ॥ यह ससार गन्धर्वनगरके समान क्षणभङ्गुर है । इसमें
मनकी वासनके कारण ही हैश्वर तथा जगत्में भेद जान पड़ता
है ॥ १०८ ॥ जब जलके बुलबुलेके समान इस जगत्में जायों
हृद्ग गल गए तब मुझे जानेकी आशामें दौधे देखकर ज्ञानी
लोग अवरय मेरी हँसती उड़ायेंगे ॥ १०९ ॥ अपान वायुसे
मिले हुए फटे हुए चमड़ेके टुकड़े (मोनि) में जो लोग सुख
मानते हैं उन्हें काढ़ोंके समान ही वयों न मान लिया जाय
॥ ११० ॥ माच पाया हुआ भी ऐसा कौन पुष्ट है जा अपने
सामने कमखनयनाकी नाइकमजक । पशुदिव्यके समान चौकी
औँहोका नागिनका भीति शान्िके मागको बसता हुई सी मटकते
हुए देखकर धारण न सो दे और चञ्चल न हा जाय ॥ १११ ॥
काम तथा धनके अभिमानमें मतवाले राजाओंके सेनाकी
दृष्टा, परिधम तथा धनेड प्रकारके प्रयासे मैंने सजजनताओ
एक भयाङ्क मानसिक शोर्गोका समूह किया पर अब उनकी
चिन्तासे क्या लाभ ! अब तो निश्चिन्त हाकर भगवान्का
चिन्तन करें ॥ ११२ ॥ मैंने बहुत दिनोंतक चौका सो प्यान

चिन्तया चिन्तयाम् । शिवम् ॥ १२ ॥ चिरं ध्याता
रामा क्षणमपि न रामप्रतिकृति परं पीतं रागाधर-
मधु न रामद्विषसलिलम् । नता दृष्टा रामा यदरवि
न रामाय चिन्तितर्गतं मे जन्माश्रयं न दशरथजन्मा
परिगत ॥ ११३ ॥ चेतोहरा युवतयः स्वजनोऽनुकूल-
सद्बान्धवाः प्रणतिगर्भगिरश्च भूत्याः । गर्जन्ति
दन्तिनिवहास्तरलास्तरुङ्गा संमोलेने नयनयीर्नहि
किंचिदस्ति ॥ ११४ ॥ जडास्तपोभिः शमयन्ति देहं
बुधा मनश्चापि विकारहेतुम् । श्वा सुकमखं दशतीति
कोपात्तेत्तारमुद्दिश्य दिनस्ति सिंह ॥ ११५ ॥ जननो-
जनकापत्यमियरमयोमभृतिःपृष्ठलाजालम् । विदलन्त्य
सोऽपि सुकृती विहरति गजवन्महामत्त ॥ ११६ ॥
जनेषु मध्ये जनवद्विचेष्टते वने ऋगैश्चापि समं ऋगा-
यते । न भोगमप्यर्थयते न वर्जयत्यवाप्ततत्त्वस्य न
दुर्ग्रहः फवचित् ॥ ११७ ॥ जन्मपद्वयलमत्स्यानां चित्त-
कर्दमचारिणाम् । पुंसं दुर्वासना रज्जुर्नारी बडिश्चपि-

किया पर क्षण भर भी रामकी मूर्तिका ध्यान नहीं किया, लोके
अधारायनका पान तो किया पर रामके वरपोदकका पान नहीं
किया, रुठी हुई नायिकाके सामने तो सिर झुकाया पर रामके
सामने कभी सिर नहीं झुकाया । इस प्रकार मेरा यह सुन्दर जन्म
अकारण होकर बीत गया पर दूसरपके पुत्र रामसे भेंट न
हो पाई ॥ ११३ ॥ मनकी मोहनेवाली नवेलिर्पा, हितैपी
सम्बन्धी, प्रेममयी बातें करनेवाले सेवक, द्वारपर विगवाहने-
वाले हाथी और चपत घोड़े, ये सब बाल मुँद बानेपर कोई
साथ नहीं देते ॥ ११४ ॥ मूर्ख लोग तपस्यासे देहको
बेसे ही गलाते हैं जैसे कुत्ता अपने ऊपर फेंके हुए अन्नको ही
क्रोधसे चबाने लगता है और बुद्धिमान् लोग विकारके
कारण मनको बेसे ही सुलाते हैं । जैसे सिंह क्रोध करके
शस्त्र छोडनेवालेपर ही आक्रमण कर बैठता है ॥ ११५ ॥
माता पिता सन्तान, प्यारी स्त्री आदि साँकलोंकी तोड-
कर वह पुत्रपाता मनुष्य हाथीकी भीति मस्त होकर विचारण
कर रहा है ॥ ११६ ॥ कोई व्यक्ति मनुष्योंके समीप मनुष्यों
जैसा आचरण करता है और पशुओंके साथ पशुओं जैसा ।
न वह भोग चाहता है, न छोडता है । धयार्थमें तब प्राप्त
किए हुए व्यक्तिका बर्हा दुराग्रह नहीं रह जाता ॥ ११७ ॥ प्रन्मरूपी
गड्डेके चित्तरूपी कीवशमें पड़े पुरुषरूपी मनुष्योंकी पँसानेके
बिधे दुर्वासनारूपी रस्तीमें स्त्रीरूपी मांस विषय बना हुआ

विडका ॥ ११८ ॥ जन्मान्तरसहस्राणि वियोगः सङ्गमः
 क्षणम् । तथापि निर्घृणं चेतःप्रियसङ्गममिच्छति ॥ ११९ ॥
 जन्मैव व्यर्थतां नीतं भवभोगप्रलोभिना । काचनूत्येन
 चिकीतो हन्त चिन्तामणिर्मया ॥ १२० ॥ जरासुधाते-
 पतिते शरीरान्तःपुरान्तरे । अशकिराविरोपाय तिष्ठ-
 न्ति सुखमङ्गनाः ॥ १२१ ॥ जातोऽहं जनको ममैव
 जननी क्षेत्रं फलत्रं क्लृप्तं पुत्रा मित्रमरातयो वसुधलं
 विद्या सुहृद्व्यान्धवाः । चित्स्वप्नितरूपनामनुभव-
 न्विद्वानविद्यामयीं निद्रामेत्य विधूर्णितो बहुविद्या-
 न्स्वप्नानिमान्प्रयति ॥ १२२ ॥ जानन्येके प्रशुण्णित-
 धियो धर्मकर्मदिशास्त्रं जानन्येके निपुणमतयो देव-
 सिद्धान्तरक्षम् । जानन्येतत्सकलमपरे तत्र जानन्ति
 केचित् लीलारक्षत्रिभुवनजयो जोयते येन मृत्युः
 ॥ १२३ ॥ जिह्वे लोचननासिके अथण्डे त्वक्चापि
 नो वार्यसे सर्वेभ्योऽस्तु नमः कृताङ्गतिरहं सप्रधर्मं
 मार्थये । युष्माकं यदि सम्मतं तदधुना नात्मानमि-

च्छाम्यहं होतुं भूमिभुजां निकारदहनज्वाताकारो
 गृहे ॥ १२४ ॥ तडिन्मालालोलं प्रतिदियसदचान्वत-
 मलं भवे सौख्यं हित्वा शमसुपमुपादेयमनघम् । इति
 व्यक्तोद्गारं चटुलवचसः श्रयमनसो धयं पंतम्रीडाः
 शुक्र इय पठामः परममो ॥ १२५ ॥ तरत्तरलक्ष्णो
 किमिवास्मिन्चरातले । मया न कृतमनेन पश्चात्तापा-
 भिवृद्धये ॥ १२६ ॥ तावदेव कृतिनामपि स्फुरत्येव
 निर्मलविवेकदीपकः । यावदेव न कुरङ्गचक्षुषां ताड्यते
 चटुललोचनाञ्जलैः ॥ १२७ ॥ वृषा शुष्यत्यास्ये विप्रति
 सलिलं स्वाद्गु सुरभिं शुषार्चः सञ्जालीन्फलव्यति
 मांसाज्यकलितान् । प्रदीपे कामाग्रां सुहृदतरमाहित-
 प्यति यधूं प्रतीकारं व्याधेः सुखमिति विपर्यस्यति
 जनः ॥ १२८ ॥ ते तीक्ष्णदुर्जननिकारधरैर्न मिन्ना
 धीरास्त एव शमसौख्यमुजस्त एव । सीमन्तिनीमुज-
 लतागहनं ष्युदस्य येऽवस्थिताः शमफलेषु तपोयनेषु
 ॥ १२९ ॥ तैस्तेः कस्तूरिकाद्यैः स्तयकितमपि यथाति

॥ ११८ ॥ यद्यपि वियोग सहस्रौ जन्मांका इ श्रीर मिडन
 वय मरका, तथापि यह दुष्ट चित्त मियका मिडन ही ब्राह्मता
 है ॥ ११९ ॥ संसारके भोगोंके खोममें पढ़कर मैंने अपना जन्म
 इस प्रकार धर्य कर डाला मानो फँसके मोलपर चिन्तामणि
 रत्न ही पेच डाला हो ॥ १२० ॥ बुढ़ागे-रुगी चूनेसे पुते हुए
 शरीररूपी श्रन्तःपुरमें निर्धरता, पीडा और विपत्ति ये स्थिरयाँ
 सुरलक्षक निवाम करती हैं ॥ १२१ ॥ मैं उष्यन्न हुआ हूँ,
 ये मेरे पिता हैं, यह मेरी माँ है, यह मेरा खेत है, यह मेरी
 स्त्री है, ये मेरे पुत्र हैं, यह मेरा मित्र है, ये मेरे शत्रु हैं, यह
 मेरा घन है, यह मेरा पक्ष है, यह मेरी विद्या है और ये मेरे
 धनु-शान्धय हैं, इस प्रकारकी कल्पनाओंमें डूबा हुआ ज्ञानवान्
 पुरुष भी अज्ञानरूपी निद्रामें पड़ा हुआ बराबर उनके प्रकाश-
 के समने देवता रहता है ॥ १२२ ॥ कुछ अध्याधिक बुद्धिमान्
 ऐमे हैं जो धर्म-कर्म आदिके शास्त्रकी मज्जी प्रकार जानते हैं,
 कुछ ऐमे हैं जो दैवी सिद्धान्तों (ज्योतिष) को मज्जीमानि
 जानते हैं और कुछ ऐमे लोग हैं जो सब कुछ एक साथ
 जानते हैं किन्तु वे यह सब जानकर भी कुछ नहीं जानते
 क्योंकि नेत्र-नेत्रमें ही तीनों लोक जीत लेनेवाली श्रापु किस
 उपायसे जीती वा सकता है यह तो वे जानते ही नहीं ॥ १२३ ॥
 हे जीम ! हे आर्ग ! हे नाक ! हे कान ! हे प्याज ! हम तुम्हें
 रोक नहीं रहे हैं । तुम्हें हमारा नमस्कार है । हम हाथ जोड़कर

तुमसे विनयपूर्वक प्रार्थना कर रहे हैं कि यदि तुम्हारी भी सम्मति
 हो तो थय हम तिरस्कारकी क्षणिकी पशाकासे मेरे हुए
 राजाओंके घरोंमें अपनी छाडुलि नहीं देना चाहते ॥ १२४ ॥
 विनयकी समाल चंचल और प्रतिदिन अंधकारमें डालनेवाले
 इस संसारका सुख छोड़कर निर्दोष शान्ति-रूपी सुखकी खोज
 करनी चाहिए, यह हम लोग लँबे स्वरसे निकलज होकर सुगोकै
 समान कहते तो रहते हैं पर सब थोरसे अपना मन नहीं
 लींचते ॥ १२५ ॥ मयंकर लुप्तामिं पढ़कर मैंने मूर्खतात्रय
 इस पृथ्वीपर अपना पशुतावा बदानेके लिये क्या-क्या नहीं
 किया ॥ १२६ ॥ वदे-वदे पुत्रपात्माशौंछा निर्मल ज्ञान-दीपक
 तमीतक टिमटिमाता है जबतक वसे सुगमयनी नवेत्रियोंके
 चञ्चल नयनी-रूपी शौचकी ऋकोर नहीं लगती ॥ १२७ ॥
 प्याससे मुँह सूखनेपर लोग स्वादिष्ट और सुगन्धित जल पीते
 हैं, मूत्र लगनेपर मांस और घीसे मिठा भात खाने हैं,
 कामाग्नि मद्धनेपर कसकर स्त्रीको प्पातीसे लगते हैं, इस
 प्रकार रोग दूर करनेकी औपचिकी ही प्राचीं सुख समझे बैठ
 है, पर सच्चा सुख तो तब समझना चाहिए जब रोग हो न
 शरपत्र हो ॥ १२८ ॥ छिपौंकी मुजा-रूपी लताका वन छोड़-
 कर जो लोग शान्ति देनेवाले सपोवनमें जा पहुँचते हैं वे ही
 तुर्जनोंके तिरस्कार-रूपी वायोंसे नहीं विच पाते, वे ही धीर हैं
 और वे ही शान्तिके सुखका अनुभव करते हैं ॥ १२९ ॥ थरे

दोर्गन्ध्यमारात् दृष्ट्वा यस्येह निष्ठा कृमिकुलमथवा
भूरि भस्माधयापि । कृत्वा धर्मस्य बाधामनुदिवसमरे
चञ्चलात्किम्परेवामात्मन् कोऽयं विमोहस्तव तदपि
वपुः पादयते यत्त्वयेत्यम् ॥१३०॥ त्यक्त्वा सङ्गमपार-
पर्वतमुद्गागर्भे रहः स्थीयतां रे रे चित्त कुट्टुम्बपालन-
विधौ को वाऽधिकारस्तव । यस्यैते पुरतः प्रसारित-
दृशः प्राणमियाः पश्यतो नीयन्ते यमकिङ्करैः करतला-
दाच्छिद्य पुत्रादयः ॥ १३१ ॥ अग्र्यन्तसिञ्जाननिर्म-
लाक्षैस्तपोधनैरप्यनवेक्षितं यत् । अवेक्षते घाम तदेव
फायामात्प्यन्तिकेनाक्षिनिमीलनेन ॥ १३२ ॥ त्वङ्गां-
सरुधिरस्नायुमेवोमज्जास्थिसंहतौ । विरमूत्रपुष्ये रमतां
कृमीणां कियदन्तरम् ॥ १३३ ॥ दधति तावद्दमी
विषयाः सुखं स्फुरति यावदियं हृदि मूढता । मनसि
तन्वयविदो तु विवेचके क्व विषयाः क्व सुखं क्व
परिग्रहाः ॥ १३४ ॥ दन्तैः प्रस्थितमप्रतस्तदनु भोः

आत्मा ! कस्तूरी आदि न जाने कितनी सुगन्धित वस्तुओंसे
भस्मी-भस्ति चुपड़े जानेपर भी शरीरसे दुर्गन्धि आते देखकर
श्रीर अन्तमें उसमें कोई पदना वा राख होना जानकर
भी भजा धर्मको कुल न समझकर दूसरोंको ठगनेसे तुम्हें क्या
काम है ! अरे ! यह तेरा कैसा मोह है कि तू अभी तक अपने
शरीरको पुट करनेमें लगा है ! ॥ १३० ॥ अरे चित्त ! संसार-
से ब्याह दृष्टकर पर्वतकी गुफाके भीतर एकान्तमें जा बस
क्योंकि जब यमके दूत सामने आलें फैजाकर देखतो हुई
प्राणपशयियों तथा पुत्र आदिको तेरे हाथपे छीन ले जाते
हैं तब भजा कुट्टुम्बके पाछन-पीपण करनेका तुम्हें अधिकार ही
क्या है ? ॥ १३१ ॥ वेदान्तमें बताए हुए सिद्धान्तका
अज्ञान लगा लेनेसे जिनके ज्ञानके नेत्र खुल गये हैं वे
तपस्वी भी जिस प्रपञ्चो नहीं देख पाते उस प्रपञ्च-तेजको
प्राणी केवल काशीमें प्राण देने भरसे देख लेता
है ॥ १३२ ॥ ब्याह, मांस, रूधिर, नहें, मज्जा, हृद्घ्नी,
मज, मूत्र, और पीपसे भरे हुए शरीरमें सुख मानने-
वालोंमें श्रीर कीड़ोंमें अन्तर ही क्या है ॥ १३३ ॥ जबतक
अन्तःकरणमें तमोगुणका प्रभाव रहता है तभीतक प्राणियोंको
विषयोंमें सुखका भान होता है पर जिनके मनमें सत्य श्रीर
निष्पत्ताका ज्ञान हो जाता है उन ज्ञानियोंको विषयोंका सुख
श्रीर संग्रह सब व्यर्थ जान पड़ते हैं ॥ १३४ ॥ दाँत तो पड़ने
ही गिर गए, बालोंमें उजजापन आ गया, धान भी ऐसे हो

शौक्ल्यं धृतं मूध्रजैः कर्णाभ्यामपि वाग्बिलासरवना
कष्टात्समाकरयते । नेत्राभ्यामपि चापलं युवतिपु
त्यक्तं गतं यौवनं सार्धेऽस्मिन्धलिते कथं पुनरहं
यातास्मि तच्चिन्तये ॥ १३५ ॥ दाराः पटिभवकारा
वन्धुजनो बन्धनं विपं विषयाः । कोऽयं जनस्य मोहो
ये रिपवस्तेषु सुहृदाश्च ॥ १३६ ॥ दिनमेकं शशी पूर्णः
क्षीणस्तु बहुधासरान् । सुखाद्बहुः खं सुराणामप्यधिकं
का कथा नृणाम् ॥ १३७ ॥ दिवसरजनीकूलच्छेदैः
पतद्भिरनारतं वहति निकटे कालस्रोतः समस्तभया-
यहम् । इह हि पततां नास्त्यात्मनो न चापि निवर्तनं
तदिह महतां कोऽयं मोहो यदेव मदाविलाः ॥ १३८ ॥
दोनोद्धरणसमुच्चितैरनुपचितैर्यैश्चित्तोऽसि यदि विभवैः
चलितं वनाय तपसे स रिपुर्यस्त्यां निवारयति ॥ १३९ ॥
द्वीतोभयाग्रवातारिद्वारुद्रगकोटवत् । जन्ममृत्युस-
माश्लिते शरीरे वत सीदति ॥ १४० ॥ दृष्ट्वा वेद्यं पर-

गए कि आमोद-प्रमोदकी बात नहीं सुन पाते, अँखिने भी
श्रयनी चंचलता छोड़ दी, यौवन भी जाता रहा ! अब सब
शक्तियोंके चले जानेपर मुझे केवल यही चिन्ता रह गई है
कि मैं किस प्रकार जाऊँ ॥ १३५ ॥ श्रीर तिरस्कारका कारण है,
भाई बन्धु बन्धन हैं, संसारके सब भोग विषयके समान हैं फिर
भी लोगोंका अज्ञान तो देखो कि वे शत्रुओंसे ही मित्रपनेकी
आशा रखते हैं ॥ १३६ ॥ अन्धमा केवल पृथिमाकी ही
पूर्ण रहता है, शेष चौदह दिन क्षीण रहता है । इस प्रकार जब
देवताओंतकको सुलको अपनेका दुःख ही अधिक भोगना
पड़ता है तब मनुष्योंकी तो गिनती ही क्या है ॥ १३७ ॥ इस
जीवनमें पास ही भयंकर कालरूपी प्रवाह बह रहा है, आस-
पास दिन श्रीर रात-रूपी करारे दूट-दूटकर गिर रहे हैं, इसमें
पढ़नेवालोंको न कोई सहारा मित्र पाता न कोई जीट ही
पाता है, फिर भी बुद्धिमान लोगोंमें यह अहंकार भरा हुआ
अज्ञान आ कैसे पहुँचा ॥ १३८ ॥ दरिद्रता बूर करनेमें समर्थ
थोड़े बहुत धनने यदि तुम्हें ठग लिया हो तो तपस्या करनेके
जिये धन चले जाओ । जो तुम्हें रोके वही तुम्हारा मृतु है ॥ १३९ ॥
जन्म श्रीर मृत्युसे युक्त इस शरीरमें प्राणी जैसे ही कष्ट पा रहा
है शीते दोनों सिरोंसे जलती हुई चरहकी लकड़ीकी पोलमें
पड़ा हुआ कीड़ा कष्ट पाता है ॥ १४० ॥ जानने-योग्य आत्म-
ज्ञान-रूपी परम पदको देणकर श्रीर
श्रीर बाहर
केवल धनने एक आत्मान

मथ पदं स्वात्मयोधस्वरूपं बुद्धात्मानं सरुलवयुषामे-
कमन्तर्यहिःस्यम् । भूत्वा नित्यं सदुदिततया स्वप्रका-
शस्वरूपं निस्त्रैगुण्ये पथि विचरतः को विधिः को
निषेधः ॥ १४१ ॥ दृष्ट्वैव विकृतं कार्यं चायुस्पर्शविचिजि-
त्म् । ये तु नित्यं जमासकास्तेभ्योऽपि विधिमो वयम् ॥
१४२ ॥ देशे देशे दुराशाकथलितहृदयो निष्कृपाणां
नृपाणां धावंधावंधं पुरस्तादतिकुमतिरहं जन्म सम्पा-
दयामि । आधायाधाय राधाधव तथ चरणाभोज-
मन्तः समाधायान्येऽरण्येतिपुण्ये पुलकितवपुषो बाल-
रान्वाहयन्ति ॥ १४३ ॥ दैन्यं फयचित्तन्यवन मन्मथजा
धिकाराः क्रुद्राप्यनेकविधघनञ्जुनमपञ्चः । फयापि
प्रभुत्वघनकल्पितमोश्वरत्वमित्येकैकैरुतमिदं जगदा-
धिनाति ॥ १४४ ॥ घनं तावज्जघंधं कथमपि तयाप्यस्य
नियतं विनाशेऽलामे वा तथ सति विशोगेऽप्युभयथा ।
अनुत्पादः श्रेयाङ्किमु कथय तस्याथ विलयो विनाशो
लब्धस्य व्ययपतितरां न त्वनुदयः ॥ १४५ ॥ घनवा-

निनि हि मद्रो मे किं गनधिभवो विपादमुपुषामि ।
करनिहनकन्दुकनमाः पानोत्पाना मनुष्याणाम् ॥
१४६ ॥ घन्यानां गिरिरुन्द्रे निवसनां उगोत्रिः परं
घ्यायतामानन्द्राश्रुजलं पिबन्ति शकुना नि शुकमद्दे-
शयाः । अस्माकं तु मनोरयोपरचितप्रसादाधापोनट-
क्रोडाकाननकेलिकोतुल्लुपामायुः परं क्षायते ॥ १४७ ॥
घर्मे प्रसङ्गादपि नाचरन्ति पापं प्रयत्नेन समाचरन्ति ।
आश्चर्यमेतद्धि मनुष्यलोकेऽमुत्रं परित्यज्य धिपं
पिबन्ति ॥ १४८ ॥ धर्मात्मजेन चरणाधिह वन्दितो मे
भोमेन सार्धमिह सङ्घयिताः कथाश्च । अत्रार्जुनश्च
यमलौ च सहानुयाताः स्थानानि तानि पलु सन्ति
न ते मनुष्याः ॥ १४९ ॥ धावन्तः प्रतिवासरं दिशि
दिशि प्रत्याशया सम्पदां दृष्ट्वा फालघणेन हन्त पलितं
कस्यापि दैवद्रुमम् । आर्यंश्रावमवशयोपहसितं सर्वं
भग्नोद्यमा जीवामः परमार्थगृह्यहृदयास्त्वता मनोमो-
दकैः ॥ १५० ॥ धाचित्वा सुसमाहितेन मनसा दुरा-

रूप होकर और मागसे दूर हटकर चलनेवाले न्यायिके लिये
कैसा कर्तव्य और कैसा अकर्तव्य ॥ १४१ ॥ शरीरके जिस विह्वन
भागको पवन भी नहीं छू जाता उसे देखकर भी जो उसपर
खड्ग हुए रहते हैं उन्हें देखकर ही हमें भय लगने लगता है
॥ १४२ ॥ हे राधापते ! मैं तो अपने हृदयको दुराशामें डाङ्क-
कर देश-विदेश दौड़ता हुआ निर्दयी राजाओंके सामने हाथ
कैला-पैलावर अपना जन्म विताता हूँ और तपर वे लोग दिवने
मागयापूर्व कि अपने मनमें तुम्हारे चरख कमलका ध्यान
करते हुए प्रसन्नतासे रोमांचित होकर अत्यन्त पवित्र वनमें
अपने दिन बिताते हैं ॥ १४३ ॥ इस नश्वर संसारमें कहीं दीनता,
कहीं कामधेरा, कहीं अनेक प्रकारसे धन्य-धान्यवाँका फलेका,
कहीं प्रसुता और कहीं घनका मद्र, यही सब दिखाई देता
है ॥ १४४ ॥ अनेक प्रकारके कष्टसे घन मिळता भी है
पर उसके भी नाश होनेपर या मिळनेपर उसका वियोग
निश्चित है ही, ऐसी दशामें कदाहूँ घनका संग्रह न
करना अथवा वा उसका नाश अथवा है ! मेरी समझमें
तो संग्रह किए हुए घनका नाश हो जानेपर जितना दुःख होता
है उतना घन न पानेपर दुःख नहीं होता ॥ १४५ ॥ पहले
मुझे घनी होनेका अभिमान था तो इस समय विध्वन होनेका
दुःख बरों हो । हाथमें उछाड़ो हुई गैदके समान मनुष्योंकी
दशा ऊपर-नीचे होती ही रहती है ॥ १४६ ॥ पहलकी गुफाओंमें

रहनेवाले और परम ज्योतिष्का ध्यान करनेवाले वे लोग
घन हैं जिनकी गोदमें बैठकर पत्थि बेसटके धौंसका जल पीते
हैं । मनके वनाए हुए भवनके पास भावहीके तटपर बने
हुए उपवनमें खेजका आनन्द लेनेवाले हम-जैसे लोगोंकी
तो केवल आयु मर बीत रही है ॥ १४७ ॥ इस मरत्यकीदमें
आश्चर्यकी बात यह है कि लोग अक्सर पाकर भी घनका
आचरण नहीं करते, जान-बूझकर पापमें लगे रहते हैं और
इस प्रकार, अमृत छोड़कर विष ही पीते हैं ॥ १४८ ॥ यहाँ
सुधिष्ठिरने मेरे दोनों पैरोंको प्रणाम किया था, यहाँ भीमके
साथ अनेक कथाएँ कही गई थीं, यहाँ तक अर्जुन, नकुल
और सहदेव भी साथ आए थे । वे स्थान तो सब वे ही हैं
किन्तु वे मनुष्य एक भी नहीं हैं ॥ १४९ ॥ मैंने प्रतिदिन
चारों ओर घनकी आशासे दौड़ते हुए समयके अनुसार इन
अमाशयके वृक्ष-रूपी पके बाजोंकी देखा, तिरस्कारसे लोगोंको
रिक्कती बढ़ाते भी सुना, चारों ओर किया हुआ मपपन भी
विकल रहा, मनके कदबूझोंसे अघाता भी रहा, फिर भी
हृदयमें सत्यका विचार अभी नहीं आ पाया ॥ १५० ॥ मैंने
दौध-दौड़कर बड़ी सावधानीसे दूरसे सबके धागे सिर मुझाया,
प्रतिध्वनिके समान राजाओंको मिय खानेवाली बाँटें कहीं,
राजाके द्वारपर पहुँचकर द्वारपालसे रोके जानेपर अथमान
समझकर भी सखिन सुए होकर बरों लदा-तक रहा, फिर भी

दोर्गन्धमारात् दृष्ट्वा यस्येह तिष्ठा कृमिकुलमथवा
भूरि भस्ममथवापि । कृत्वा धर्मस्य वाधामनुदिवसमरे
चञ्चनात्किन्परंपेपामात्मन् कोऽयं विमोहस्तव तदपि
वपुः पादयते यत्स्वयेत्थम् ॥१३०॥ त्यक्त्वा सङ्गमपार-
पर्वतसुद्दामर्गे रहः स्वीयतां रे रे बिच कुडुम्बपालन-
विधौ को वाऽधिकारस्तव । यस्यैते पुरतः प्रसारित-
दृशः प्राश्रमियाः पश्यतो नीयन्ते यमकिङ्करैः करतला-
दाच्छिद्य पुत्रादयः ॥ १३१ ॥ अयन्तसिद्धाञ्जननिर्म-
लाद्द्वैस्तपोधनैरप्यनवेदितं यत् । अवेदिते धाम तदेव
काश्यामात्यमित्तेनास्तिनिमीलनेन ॥ १३२ ॥ त्वङ्गां-
सवहिरक्षायुमेक्षेमज्जासिंहसंहतौ । विपमृषपूये रमतां
कृमीणां कियदन्तरम् ॥ १३३ ॥ दधति तस्यदमी
विषयाः सुखं स्फुरति यावदियं हृदि भूढता । मनसि
तन्त्रविदां तु विवेचके फव विषयाः फव सुखं फव
परित्रहाः ॥ १३४ ॥ दन्तैः प्रस्थितमग्रतस्तदनु भोः

आत्मा ! कन्तूरी आदि न जाने कितनी सुगन्धित वस्तुओंसे
भकी-भौंति जुपड़े जानेपर भी शरीरसे दुर्गन्धि आते देखकर
और अन्तमें बसमें कीड़े पढ़ना या राख होना जानकर
भी भज्जा धर्मको कुछ न समझकर दूसरोंको उगनेसे तुम्हें क्या
खाम है । अरे ! यह तोरा कैसा मोह है (कं व्, अमी तव अपने
शरीरको पुट करनेमें लगा है ।) ॥ १३० ॥ अरे बिच ! सप्पार-
से चाइ इटाका पर्वतकी गुफाके भीतर एकान्तमें जा बस
जोंकि जब यमके दूत सामने आँलें फैलाकर देखती हुई
प्राणव्यारियों तथा पुत्र आदिको तेरे हाथसे छीन ले जाते
हैं तब भज्जा कुडुम्बके पावन-पोषण करनेका तुम्हें अधिकार ही
क्या है ? ॥ १३१ ॥ वेदान्तमें बताए हुए सिद्धान्तका
आँजन लगा लेनेसे जिनके ज्ञानके नेत्र खुल गए हैं वे
तपस्वी भी भ्रिप्त प्रसक्तो नहीं देख पाते उस प्रसक्त-नेत्रको
प्राणी केवल काशीमें प्राय देवे भरसे देख लेता
है ॥ १३२ ॥ खाज, मांस, रुबिर, नलें, मज्जा, हृद्दी, मज्ज,
मूत्र, और पीपसे भरे हुए शरीरमें सुख मानने-
वालोंमें और कीड़ोंमें अन्तर ही क्या है ॥ १३३ ॥ जबतक
बन्तःकरणमें तमोगुणका प्रभाव रहता है तभीतक प्राणियोंको
विषयोंमें सुखका भाव होता है पर जिनके मनमें सत्य और
निष्पयाका ज्ञान हो जाता है उन ज्ञानियोंको विषयोंका सुख
और संग्रह सब स्पर्ध जान पड़ते हैं ॥ १३४ ॥ दांत तो पहजे
ही गिर गए, बालोंमें उजड़ापन आ गया, कान भी ऐसे हो

शौक्ल्यं घृतं मूर्धनैः कर्णाभ्यामपि वाग्विलासरचना
फष्टास्माकर्यते । नेत्राभ्यामपि चापलं युवतिपु
त्यक्तं गतं योयनं सार्धेऽस्मिन्धलिते कथं पुनरहं
यातास्मि तच्चिन्तये ॥ १३५ ॥ दाराः परिभवकारा
बन्धुजनो बन्धनं विषं विषयाः । कोऽयं जनस्य मोहो
ये रिपवस्तेषु सुहृदाशा ॥ १३६ ॥ दिनमेकं शशो पूर्णः
क्षीणस्तु धनुवासरान् । सुखाद्दुःखं सुराणामप्यधिकं
का कथा नृणाम् ॥ १३७ ॥ दिवसरजनीकूलच्छेदैः
पतद्भिरनारतं वहति निकटे फालश्लोतः समस्तभया-
वहम् । इह हि पततां नास्त्यालम्बो न चापि निवर्तनं
तदिह महतां कोऽयं मोहो यदेव मदाविलः ॥ १३८ ॥
दोनोद्धरणसमुचितैरनुपचितैर्धञ्जितोऽसि यदि विभवैः
चलितं वनाय तपसे स रिपुर्दस्त्वां निवारयति ॥ १३९ ॥
दीप्तोभयाग्रवातादिद्वारुद्वरगकोटवत् । जन्ममृत्युस-
माश्लिष्टे शरीरे वत सीदति ॥ १४० ॥ दृष्ट्वा वेद्यं पर-

गए कि धामोद-प्रमोदकी बात नहीं सुन पाते, आँलोंने भी
अपनी चंचलता छोड़ ही, जीवन भी जाता रहा । अब सब
शक्तियोंके चले जानेपर मुझे केवल यही चिन्ता रह गई है
कि मैं किस प्रकार जाऊँ ॥ १३५ ॥ स्त्री तिरस्कारका कारण है,
भाई बन्धु बन्धन हैं, संसारके सब भोग विषके समान हैं फिर
भी लोगोंका अज्ञान तो देखो कि वे शत्रुओंसे ही मित्रपनेकी
आशा रखते हैं ॥ १३६ ॥ चन्द्रमा केवल पूर्णिमाको ही
पूर्ण रहता है, शेष चौदह दिन क्षीण रहता है । इस प्रकार जब
देवताओंतकके सुखको अपनेका दुःख ही अधिक भोगना
पड़ता है तब मनुष्योंकी तो गिनती ही क्या है ॥ १३७ ॥ इस
जीवनमें पास ही भयंकर कालखरी प्रवाह बह रहा है, आस-
पास दिन और रात-रूपी करारे दूट-दूटकर गिर रहे हैं, इसमें
पढ़नेवालोंको न कोई सहारा मित्र पाता न कोई जीट ही
पाता है, फिर भी बुद्धिमान लोगोंमें यह अहंकार भरा हुआ
अज्ञान आ कैसे पहुँचा ॥ १३८ ॥ दृष्टिवा बूर करनेमें समर्थ
थोड़े बहुत धनने यदि तुम्हें उग लिया हो तो तपस्या करनेके
लिये वन चले जाओ । जो तुम्हें रोके वही सुम्हारा शत्रु है ॥ १३९ ॥
जन्म और मृत्युसे युक्त इस शरीरमें प्राणी जैसे ही कष्ट पा रहा
है जैसे दोनों सिरोंसे जलती हुई अरंडकी लकड़ीकी पोलमें
पड़ा हुआ कीड़ा कष्ट पाता है ॥ १४० ॥ जानने-योग्य धाम-
ज्ञान-रूपी परम पदको देखकर और सबके भीतर और बाहर
केवल अपने एक आत्माकी सत्ता मानकर, नित्य स्वयं-प्रकाश-

मय पदं स्वात्मयोश्चस्वरूपं बुद्धात्मानं सरुक्त्वयुपामे-
फमन्तर्बहिःस्थम् । भूत्वा नित्यं सद्बुद्धितया स्वप्रका-
शस्वरूपं निस्त्रैगुण्ये पथि विचरतः को विधिः को
निषेधः ॥१४१॥ दृष्ट्वैव चिह्नं कायं वायुस्पर्शविद्यजि-
तम् । ये तु निर्व्याजमालकास्तेभ्योऽपि विभिन्नो वयम्
॥ १४२ ॥ देशे देशे दुराशाक्यलिनहृदयो निष्ठापायां
नृपाणां प्रायवाचं पुरस्ताद्वितकुमतिरहं जन्म सन्वा-
दयामि । आधायाघाय रावाघव तथ चरणाभ्मोज-
मन्तः समाधावन्येऽरूपेतिपुण्ये पुलकितवपुषो वास-
रान्याह्वयन्ति ॥ १४३ ॥ दैव्यं फयचित्स्वचन मन्मयजा
विकाराः कुत्राप्यनेकविधयन्बुजमपञ्चः । फयापि
प्रमुत्त्वघनकल्पितमोश्चरत्वमित्येकवैकृतमिदं जगदा-
विभाति ॥ १४४ ॥ धनं तावत्लब्धं कथमपि तथाप्यस्य
नित्यं विनाशेऽलामे वा तव सति वियोगोऽप्युभयया ।
ऽनुत्पादः श्रेयान्किमु कथय तस्याय विलयो विनाशो
लघ्वस्य व्यययतितरां न त्वनुदयः ॥ १४५ ॥ धनवा-

निनि हि मद्दे मे किं गनयिमयो विपादमुपुयानि ।
करनिह्ननरुद्रुकममाः पानोप्याता मनुप्यायाम्
॥ १४६ ॥ धन्यानां गिरिकन्दरे निवमनां उगोतिः परं
ध्यायतामानन्दश्रुजलं पिवन्ति शकुना नि श्रुमद्दे-
शयाः । अस्माकं तु मनोरथोपरचिनमासादयापीनट-
क्रोडाकाननकेलिकोतु क्युपामायुः परं क्षायते ॥१४७॥
धर्मं प्रसङ्गादपि नावरन्नि पापं प्रयत्नेन ममाचरन्ति ।
आश्चर्यमेतद्धि मनुष्यलोकेऽमृतं परित्यज्य विपं
पिवन्ति ॥ १४८ ॥ धर्मात्मजेन चरणाविह वन्दितो मे
भोमेन सार्धमिह सद्बुधिताः कथाश्च । अश्राज्जुनश्च
यमलौ च सहानुयाताः स्थानानि तानि पशु सन्ति
न ते मनुष्याः ॥ १४९ ॥ धावन्तः प्रतिपासरं दिशि
दिशि प्रत्याशया सम्पदां दृष्ट्वा फालवशेन हन्त पलितं
कस्यापि दैवद्रुमम् । आर्यंआयमवययोपहसितं सर्वथ
मन्नोद्यमा जीवामः परमार्यग्रन्थद्वयास्त्वता मनोमो-
दकैः ॥ १५० ॥ धावित्वा सुसमाहितेन मनसा द्वा-

रूप होकर और मायासे दूर हटकर चञ्चलेवाले व्यष्टिके लिये
कैसा कर्तव्य और कैसा अकर्तव्य ॥१४१॥ शरीरके जिस विकृत
भागको पवन भी नहीं छू जाता उसे देखकर भी जो उसपर
लक्ष्य हुए रहते हैं उन्हें देखकर ही हमें भय लगने लगता है
॥ १४२ ॥ हे राधापते ! मैं तो अपने हृदयको दुरागामों बाज-
कर देश-विदेश दौड़णा हुआ निर्दयी राजाओंके सामने हाथ
फैला-फैलाकर अपना जन्म बिताता हूँ और उपर से जोग दिखने
माणवान् हूँ कि अपने मनमें तुम्हारे चरण कमलका ध्यान
करते हुए प्रसन्नतासे रोमांचित होकर अत्यन्त पवित्र वनमें
अपने दिन बिताते हैं ॥ १४३ ॥ इस नरवर संसारमें कहीं दीनता,
कहीं कामधेरा, कहीं अनेक प्रकारसे बन्धु-बान्धवोंका झमेला,
कहीं प्रभुता और कहीं धनका मद, यही सब दिखाई देता
है ॥ १४४ ॥ अनेक प्रकारके कष्टसे धन मिलता भी है
पर उसके भी नाश होनेपर या मिलनेपर उसका वियोग
निश्चित है ही, ऐसी दशामें बत्ताहूए धनका संग्रह न
करना अच्छा या उसका नाश अच्छा है ! मेरी समझमें
वो संग्रह किए हुए धनका नाश हो जानेपर जितना दुःख होता
है उतना धन न पानेपर दुःख नहीं होता ॥ १४५ ॥ पहले
शुभे घनी होनेका अभिमान या तो इस समय निर्घन होनेका
दुःख क्यों हो । हाथमें उड़ाकी हुई गेंदके समान मनुष्योंकी
दया ऊपर-नीचे होती ही रहती है ॥ १४६ ॥ पहाड़की गुफाओंमें

रहनेवाले और परम प्योविका ध्यान करनेवाले वे जोग
धर्म हैं जिनकी गोदमें बैठकर पत्नी सेहटके श्रावृजा जज पीते
हैं । मनके बनाए हुए भवनके पास भावकीके तटपर बने
हुए उपवनमें खेडका आनन्द लेनेवाले हम-जैसे लोगोंकी
तो केवल आशु भर बीत रही है ॥ १४७ ॥ इस मर्यादोद्धर्म
आश्चर्यकी बात यह है कि जोग अबसर पाकर भी धर्मका
धाचरण नहीं करते, जान-बूझकर पापमें लगे रहते हैं और
इस प्रकार, अमृत छोड़कर विष ही पीते हैं ॥ १४८ ॥ यहाँ
सुधिधरने मेरे दोनों पैरोंकी प्रणाम किया या, यहाँ मीमके
साथ अनेक कथाएँ कही गई थीं, यहाँ तक अर्जुन, नहुज
और सहदेव भी साथ आए थे । वे स्थान तो सब वे ही हैं
जिनसे वे मनुष्य एक भी नहीं हैं ॥ १४९ ॥ मैंने प्रतिदिन
धरती और धनकी आशासे दौड़ते हुए समयके अनुसार इन
धर्माश्चर्यके वृच-रूपी पके बालोंकी देखा, तिरस्कारसे लोगोंकी
खिली उदाते भी सुना, आर्यों और किया हुआ प्रयन भी
विकल रहा, मनके लहसुओंसे घ्राता भी रहा, फिर भी
हृदयमें सत्यका विचार कभी नहीं आ पाया ॥ १५० ॥ मैंने
दौड़-दौड़कर बड़ी सावधानीसे दूरसे सबके आगे सिर झुकाया,
प्रतिपन्निके समान राजाओंकी प्रिय लगनेवाली बातें कहीं,
राजाके द्वारपर पहुँचकर द्वारपालसे रोके जानेपर अपना
सामझकर भी मलिन मुख होकर बहीं रुदा-वक रहा, फिर भी

चिह्नो नामितं भूपानां प्रतिशब्दकैरिव चिरं मोद्घु-
 ग्रमिष्टं वचः । द्वाराध्यक्षनियन्त्रणपरिभवप्रह्लान-
 वक्षत्रैः स्थितं भ्रातः किं करवाम मुञ्चति मनो नाद्या
 प्यविद्याग्रहम् ॥ १५१ ॥ धिग्विषक्तान्कृमिनिविंशेषव-
 पुपः स्फूर्जन्महासिद्धयो निष्पन्दीकृतशान्तयोऽपि च
 तम' काराग्रहेष्व्यासते । तं विद्वान्समिद्ध स्तुमः करपुटी
 भिन्नान्नशाकेऽपि वा बालावकनसरोजिनीमधुनि वा
 यस्याविशेषो रसः ॥ १५२ ॥ धैर्यं यस्य पिता जमा च
 जननी शान्तिश्चिरं मेहिनी सत्यं स्युरत्यं दया च
 भगिनी भ्राता मतःसंयमः । शय्या भूमितलं दिशोऽपि
 घसन ह्यानामृतं भोजनमेते यस्य कुटुम्बिनो वद सखे
 कस्माद्भयं योगिनः ॥ १५३ ॥ न चाकारि कामारि-
 कंसारिसेया न वा स्येष्टमाचेष्टितं हन्त किञ्चित् । मन
 प्रेयसीरूपपङ्के निमग्नं किमन्ते कृतान्ते मयाघेदनीयम्
 ॥ १५४ ॥ न चाराधि राधाघवो माधवो वा न वाऽ
 वृजि पुष्पादिभिद्वन्द्वचूडः । परेषां धने धन्वने नीत-

कालो दयालो यमालोकने कः प्रकारः ॥ १५५ ॥ न
 ध्यातं पदमीश्वरस्य विधिवत्संसारविच्छिद्युत्तये स्वर्ग-
 द्वारकपाटपाटनपदुर्धर्मोऽपि नोपाजितः । नारीपीन-
 पयोधनोऽनुगलं स्वमऽपि नालिङ्गितं मातुः केवलमेव
 यौवनयत्नच्छेदे कुठारा चयम् ॥ १५६ ॥ नन्दन्ति मन्दा-
 श्रियमाप्य नित्यं परं विपीदन्ति विपद्गृहीताः ।
 विवेकदृष्ट्या चरतां नराणां श्रियो न किञ्चिद्विपदो न
 किञ्चिन् ॥ १५७ ॥ नलिनीदलगतजलमतितरलं तद्व-
 ज्जीवितमतिशयचपलम् । विद्धि व्याधिव्यालग्रस्तं
 शोकं शाकृदतं च समस्तम् ॥ १५८ ॥ नवनीलमेघव-
 चिरः परः पुमानवनीमवाप्य धृतनोपविग्रह । नवनी-
 यकीर्तिरमरैरपि स्थय नवनीतभिच्छुरणुना स चिन्त्यते
 ॥ १५९ ॥ न विपयभोगो भाग्यं याग्यं खलु यज जन्तु-
 मात्रमपि । ग्रहोन्द्रकद्रुस्यं भाग्यं विपयेषु वैराग्यम्
 ॥ १६० ॥ न संसारोत्पन्नं चरितमनुपश्यामि कुशलं
 विपाकः पुण्यानां जनयति भय मे विमृशतः । महद्भिः

हे भाई ! मैं क्या करूँ ? मेरा मन आज भी मोहका दृष्ट नहीं
 छोड़ पा रहा है ॥ १५१ ॥ ऐसे व्यक्तियोंको धिक्कार है जो
 बटी-बटी सिद्धियाँ प्राप्त करके और शान्तिको वशमें करके भी
 अज्ञान रूपी कारागारमें कीड़ेके समान बँधे हैं । इस संसारमें
 मैं उसी विद्वान्की स्तुति करता हूँ जो हाथमें रखे हुए भिन्नके
 अन्न और शोकेमें अथवा नायिकके मुख तथा कमजिनीके
 मकन्दमें समान स्वाद समझता है ॥ १५२ ॥ जिसका धैर्य
 ही पिता, सहनशीलता ही माता, शान्ति ही पत्नी, सत्य ही
 पुत्र, दया ही बहन, मनको वशमें करना ही भाई, भूतल ही
 बिल्वीना, दिशाएँ ही वख और ज्ञान-रूपी अमृत ही भोजन है,
 उस कुटुम्बवाले योगीको किससे भय हो सकता है ॥ १५३ ॥
 मैंने न तो कामके शत्रु भँवरकी सेवा की न कसके शत्रु कृष्णकी
 ही, न अपनी ही भलाईका कोई काम किया । मेरा मन
 सदा स्वर्गी-रूपी कीचदमें डूबा रहा है । अब मरनेपर मैं
 यमराजको क्या सुँद दिलाऊँगा और क्या कहूँगा ॥ १५४ ॥ हे
 भगवन् ! मैंने न तो राधारति भगवान् कृष्णकी सेवा की, न
 फल-कृष्ण आदि सामग्रियोंसे शक्रकी ही पूजा की । हे दयामय
 प्रभो ! यमराजके पास पहुँचकर मैं क्या उत्तर दूँगा ॥ १५५ ॥
 मैंने संसार रूपी घृष्टको काटनेके लिये नियमसे भगवान्के
 धरणाँका पान नहीं किया, स्वर्गके द्वारके किंवा ध खोज
 सकेनेवाले धर्मका समझ नहीं किया । नायिकके मोटे स्तन तथा

जाँवोंका भी आलिंगन नहीं किया । इस प्रकार मैं तो अपनी
 माताके यौवन रूपी धनको काटनेवाले कुठारके ही रूपमें उत्पन्न
 हुआ हूँ ॥ १५६ ॥ भूलों ही सम्यक्ति पाकर प्रसन्न और विपत्तिमें
 पड़कर दुखी होते रहते हैं पर विचारशील पुरुषोंके लिये
 न सम्यक्ति ही कुछ होती है न विपत्ति ही ॥ १५७ ॥
 कमलके पत्तेपर पड़े हुए अव्यधिक दिङ्गते डुलते पानीके
 समान जीवन भी अस्थाय चषल है । इस शोकसे भरे
 हुए संसारको व्याधि-रूपी सर्पसे बसा हुआ समझना
 चाहिए ॥ १५८ ॥ नवीन काले मेघके समान सुन्दर और
 गोफके वेशमें ध्रुवतार लेकर घर घर मखन मँगनेवाले
 उस प्रशस्तनीय कीर्तिवाले परब्रह्मका ध्यान इस समय देवता
 भी करते हैं ॥ १५९ ॥ जिन विपथोंमें प्राणी जगे हुए हैं
 उनके भोगको भाग्य न कहकर उस वैराग्यको ही भाग्य कहना
 चाहिए जिसके लिये ब्रह्मा, इन्द्र और शक्र भी तरसते रहते
 हैं ॥ १६० ॥ संसारके किसी व्यवहारमें मगल नई दिलाई
 पडना । सोचनेपर साकर्मके फलका भी अन्त दुःख ही दिखाई
 देता है और जिन वड़े बड़े भोगोंको लोग बड़े पुण्यसे इकट्ठा
 करते हैं उनमें कैसे हुए लोगोंको भी अन्नमें हु ख ही हाथ
 लगना है ॥ १६१ ॥ गिजुवनके स्वामी, देवताओंके सिरमौर
 और मन लगाइ ध्यान किए जाने योग्य पुरपीत्तम नारायणके
 होते हुए यदि हम कुछ गर्विके स्वामी और धोक्ष-

पुण्यौघैश्चिरपरिगृहीताश्च विपया महान्तो जायन्ते
 व्यसनमिव दातुं विपयिणाम् ॥ १६१ ॥ नाथे श्रोपुष-
 पोत्तमे द्विजगतमेकाधिपे येनसा सेव्ये स्थस्य पदस्य
 दातरि सुदे नारायणे सिष्ठिति । यं कञ्चित्पुरुषाधमं
 कतिपयप्राप्तेशमल्पार्थदं सेवार्थे मृगयामहे नरमहो
 मूढा चराका वयम् ॥ १६२ ॥ नाभ्यस्ता भुवि वादि-
 द्दन्द्मनीं घिया विनोतोचिता यद्वाग्निः करिकुम्भ-
 पीठदलनैनानं न नीतं यशः । कान्ताकोमलपल्लयाचर-
 रसः पीतो न चन्द्रोदये तारुण्यं गतमेघ निष्फलमहो
 श्ययालये दीपवत् ॥ १६३ ॥ निःखतोऽहं करिष्यामि
 सुकृतामीति चिन्तयन् । मेदोऽह्निद्विग्यसर्वाङ्गो जरा-
 युपुटसंयुतः ॥ १६४ ॥ निःक्रोहो याति निघाणं सेहोऽ-
 नर्थस्य कारणम् । निःक्रोहेन प्रदीपेन यदेतत्प्रकटीकृ-
 तम् ॥ १६५ ॥ निःखिलं जगदेव नभ्यं पुनरस्मिन्शितरां
 कलेचरम् । अथ तस्य कृते कियानर्थं क्रियते हन्त जनेः

परिश्रमः ॥ १६६ ॥ निजा मुदयं तदमूलमेतदेवा
 सरिचौरशिलातलानि । घनस्थितस्याप्यनुवच्य एव
 सभ्यश्चतुष्टया भयवच्यहेतुः ॥ १६७ ॥ नित्यमाचरतः
 शोचं कुर्वतः पितृत्पर्षणम् । यस्य नोद्विजते चेतः
 शास्त्रं तस्य करोति किम् ॥ १६८ ॥ नित्यातिरथिचा-
 रणा प्रणयिनी वैराग्यमेकं सुहृन्मित्राण्येव यमादयः
 शमदमपायाः सपायो मनाः । मैत्र्यायाः परिचारिका
 सहचरी नित्यं मुमुक्षा यत्नादुच्छ्रेया रिपवश्च मोह-
 ममतासङ्कल्पवैरादयः ॥ १६९ ॥ निवृद्धा रघीयांशा
 जलग्रशिनि कल्लोलवद्गुले क्षणभ्रंशितस्वमः सुचिर-
 मविनाशोति कलितः । यदेतस्मिन् घातप्रतिहतपता-
 काप्रवरले कृता काये प्रीतिः परमपुरुषार्थच्यवकरी
 ॥ १७० ॥ निर्वोदितमतिगहनं विना कलङ्गेन पोषनं
 येन । दीपनिघानि जग्मनि किं न प्राप्तं फलं तेन
 ॥ १७१ ॥ निर्विधेकतया धात्यं कामोन्मादेन पीथनम् ।

सी सम्पत्ति देनेवाले किसी नीच पुरुषकी सेवामें हृष्य-
 रघरा घूमते फिरें तो हमसे यहकर मूलं और दयाका
 पात्र कौन हो सकता है ॥ १६२ ॥ मैंने अन्ते विरोधियोंकी
 हारनेवाली और विजय देनेवाली विद्याका अभ्यास नहीं किया,
 सबवारेते धार्मिकोंके मस्तक फाटकर धपना यश भी स्वर्गनक
 नहीं पहुँचाया, चन्द्रोदयके समय नाविकाले कामल पत्तोंके
 समान घघरके रसका स्वाद भी नहीं लिया, इस प्रकार
 सुने पारमें बढते हुए दीपकके समान मेरा सारा जीवन
 निष्कल ही गया ॥ १६३ ॥ चर्षां तथा रुधिरसे लिपटा हुआ
 और जरायुमें घँसा हुआ यह जीव सोचा करता है कि मैं गनेसे
 निकलनेपर अरुद्धं कर्म करूँगा ॥ १६४ ॥ संसारपर अनुत्पन्न
 न ऊर्ध्वगोत्रा व्यक्तिसंसारके बन्धनोंसे छूट जाता है क्योंकि
 अनुत्पन्न ही सारे अर्थकी जड़ है । देखो ! स्नेह (तीव्र) के
 विना सुकते हुए दीपकमें यह बात दृश्य हो जाती है ॥ १६५ ॥
 भी जो सारा संसार ही नश्वर है पर उसमें भी यह शरीर ती
 प्रायण्य ही नश्वर है । फिर भी देखो, उसी शरीरके जिये लोग
 कितना परिश्रम करते हैं ॥ १६६ ॥ 'यह मेरी पुष्पा है, यह मेरे
 धूपके तलेकी छाया है, नदीके तीरकी ये चहलें भी मेरी हैं'
 इस प्रकार धनमें रहनेवालेको भी धन्य है ही । यथार्थमें नावा
 आंशुनेवाली बुद्धि ही संसारमें फँसानेवाली होती है ॥ १६७ ॥
 प्रतिदिन शरीरकी शुद्धताके लिये प्रयत्न करनेमें और पित्तोंका
 उदय करनेमें जितका मन नहीं ऊषता, सदाका उदार शास्त्र

कर्मोक्त कर सकता है ॥ १६८ ॥ मनुष्यको प्रतिष्ठा मीपकी
 इच्छा रखनी चाहिये और उसीके बलपर मोह, ममता, अनेक
 प्रकारके संस्कार तथा वैर प्रादि मानसिक शशुशोका नाश
 करना चाहिये । साथ तथा मिथ्या वस्तुओंपर विचार करना ही
 मोहके अभिजाती मनुष्यकी छी है, ससारे वैराग्य ही
 उसका एकमात्र मित्र है, यम, नियम, आसन, मायापाम,
 मर्यादा, ध्यान, धारणा तथा समाधि ही इसके हितैषी हैं,
 शान्ति तथा इन्द्रियोंका दमन ही उसके साथी हैं, सज्जनसे
 निम्नता, शोचोपर कष्टता, सधर्ममें प्रसन्नता तथा दुष्कर्मसे
 बचना ही उसके सेवक हैं तथा मोहकी इच्छा ही उसकी
 रागिनी है ॥ १६९ ॥ एवमसे दिखती हुई पताघाकी नोकके
 समान बंधन इस देहपर जो हमने परम पुरुषार्थ-नाशक प्रेम
 किया यह हिसा ही हुआ जैसे 'ध्वज लहरोंसे दिखती हुई जल-
 पर पक्षी हुई चन्द्रमाकी परदाई'पर स्थिर रहनेकी आशा
 बाँचना और चयनमें मिट जानेवाले सपनेको धनन्ताका-सक
 नष्ट न होनेवाला समझना ॥ १७० ॥ दोषोंसे भरे हुए जीवनमें
 जितने धरमन्त गहन ज्ञानो विना कलङ्के विना बी बचने
 क्या फल नहीं पा लिया ॥ १७१ ॥ विचार-शक्ति न रहनेसे
 मनुष्योका लक्ष्यन, कामके पागलपनसे जीवन तथा शरीरकी
 शिथिलतासे सुधाया सदा उद्वृत्तसे ही भरा रहता है ॥ १७२ ॥
 गर्भसे निकलते समय अर्धकर दुःखसे पीठत होकर नोचें मुक्त
 करके विच्छेदाता हुआ जीव ऐसा उठान होकर भूमिपर गिरा

वृद्धत्वं विकलत्वेन सदा सोपद्रवं नृशाम् ॥ १७२ ॥
 निष्कामभृशदुःखार्तो रुदन्नुच्चैरधोमुखः । यन्त्रादिव
 विनिर्मुक्तः पतरत्यु सानशाश्वथ ॥ १७३ ॥ नीलोत्पला-
 भनयनाः परमप्रेमभूषणम् । हासायैव विलासिन्यः
 क्षयभङ्गितया स्थिताः ॥ १७४ ॥ नो धर्माय ततो न तत्र
 निरता नार्थाय धेनेदृशाः कामोऽप्यर्थघतां तदर्धमपि
 नो मोक्षः क्षत्रचित्कस्यचित् । तस्के नाम वयं वृथैव
 घदिता ह्यार्त पुनः कारणं जीवन्तोऽपि मृता इति
 प्रवदतां शब्दार्थसंसिद्धये ॥ १७५ ॥ न्यस्तं यथा मूर्ध्नि
 मुदात्ति मेवो यवाक्षतायं वलिकद्विपतः सन् । मृत्युं
 समीपस्थितमप्यजानन्भुनक्ति मर्त्यां विषयांस्तथैव
 ॥ १७६ ॥ परिच्छेदातीतः सरलवचनानामविषयः
 पुनर्जन्मन्यस्मिन्ननुभवपर्ययो न गतवान् । विवेक-
 प्रध्वंसादुपचितमहामोहगहनो विचारः कोऽप्यन्तर्ज-
 ङ्यति च तापं च कुरुते ॥ १७७ ॥ परिपक्वं समा-
 लोभ्य जराक्षारावधूसरम् । शिरःकृष्णारडकं भुङ्के

पुंसां कालः किलेश्वरः ॥ १७८ ॥ परेषां वेतांसि
 प्रतिदिशसमाराध्य बहुधा प्रसादं किं नेतुं विशसि
 हृदय-फलेशु कलितम् । प्रसन्नो त्वयन्तः स्वयमुदित-
 चिन्तामणिगुणै विविकिः सङ्कल्पः किमिदं हि फलं
 पुष्पति न ते ॥ १७९ ॥ पाणिः पात्रं पवित्रं ध्रमण-
 परिगतं भैक्षमक्षयमर्षं वरुं विस्तीर्णमाशादशकमम-
 लिनं तल्पमस्वलपमुयीं । येषां नि सङ्गताङ्गीकरणपरि-
 त्रितिः स्वान्तसन्तोषिणस्ते धन्याः सन्त्यस्तदैव्यव्यति-
 करनिकराः कर्म निर्मूलयन्ति ॥ १८० ॥ पापाण्यखण्डे-
 प्वपि रक्षनुद्धिः कान्तेति धीः शोणितमालपिण्डे ।
 पञ्चात्मके वर्तमणि चात्मभावो जयत्यसो काचन मोह-
 लीला ॥ १८१ ॥ पुण्यैर्मूलफलैः प्रियप्रणयिनी वृत्ति
 कुरुष्वधुना भूषण्यां नवस्रवैः कुरु तृणैरुत्तिष्ठ
 यामो वने । छुद्राणामविकेकमुद्धमनां यत्रेश्वराणां
 सदा विस्रव्याध्यविकेकसङ्कुलगिरां नामापि न श्रूयते
 ॥ १८२ ॥ पुत्रः स्पादिति दुःखितः सति सुते तस्या-

हे मानो चरकीके पादसे छुटकारा पाकर गिरा हो ॥ १७३ ॥ नीले
 कमलके समान नेत्रोंवाली तथा परम स्नेहसे भरी हुई स्त्रियों
 चय भर्तों ही नष्ट हो जानेवाली हैं । अतः, जो लोग इनसे
 अनुराग करते हैं वे केवल हैंसिके पात्र होते हैं ॥ १७४ ॥ हम
 लोग धर्मके लिये नहीं बनाए गए हैं, इसीलिये हम लोग मन
 नहीं लगाते । धनके लिये भी नहीं बनाए गए क्योंकि हम दूरिद्र
 हैं । काम भी धनवानोंकी ही मित्रता है इसलिये कामके लिये
 भी हमारा जन्म नहीं हुआ । और भोज ता किसी किसीकी ही
 मित्रता पाता है । तो क्या हम लोग अर्थ ही बनाए गए हैं ? नहीं ।
 अब हम समझे कि हमारा जन्म उन लोगोंके शब्दको सार्थक
 करनेके लिये हुआ है जो हमें देखकर कहते हैं कि वे जीवित नरे
 कुरए हैं ॥ १७५ ॥ जैसे बलिके लिये लाया भेड़ा अपने सिर-
 पर रखे हुए जी-प्राणत आदिको बड़ी प्रसन्नतासे खाता है
 वैसे ही पास धाई हुई शयुको न समझता हुआ प्राणी भी
 सांसारिक भोगमें लिपटा रहता है ॥ १७६ ॥ देश और काल-
 का जहाँ सम्भव नहीं, याणीकी जहाँ पहुँच नहीं, किसी जन्म-
 में भोजान अनुभवमें नहीं आया, विचार न होनेके कारण जो
 प्राणत चञ्चलसे भरा हुआ है ऐसा कोई अदभुत विचार
 हमारे मनको जड़ बना रहा है और सन्तोष दे रहा है ॥ १७७ ॥
 जैसे-जैसे मनुष्यके सिरस्त्री हृदय (पंजा), हृदयके उजले-
 पकी रात (पार) से भूरे होते चकते हैं वैसे-वैसे कमरः

उन्हें पका जानकर स्वामी काल उन्हें तोड़ता और खाता चकता
 है ॥ १७८ ॥ हे हृदय ! प्रतिदिन दूसरोंकी सेवा करके उनका
 चित्त प्रसन्न करनेके लिये तुम विपत्ति रूपी दलदलमें क्यों
 घँसे जा रहे हो ! यदि तुम स्वयं प्रसन्न हो जाओ तो तुममें
 चिन्तामयिका गुण आ जाय । फिर तुम्हारे पवित्र संकल्प-रूपी
 वृक्षमें फल आते देर क्या लगेगी ॥ १७९ ॥ जिसका हाथ ही पवित्र
 पात्र है, घूम घूमकर मित्रो हुई मित्रा ही भय है, दूसरों दिशाएँ
 ही जिसके लक्ष्ये चौड़े वक्ष हैं, पृथ्वी ही स्वच्छ और विस्तृत
 पलंग है, जिसने अकेले रहनेका अभ्यास कर लिया है, जिसने
 दीनता डुकरा दो है और जो अपने ही मनमें सन्तुष्ट रहता है
 वही धन्य पुत्रपुत्र कर्मको निर्मूल कर पाकता है ॥ १८० ॥
 अज्ञानका कितना विचित्र प्रभाव है कि लोग परपरोको भी रख
 समझे बैठे हैं, रहिर और मांसके जोधड़ेको प्रिया समझते हैं
 और पंचभूतसे बने शरीरको ही आत्मा माने बैठे हैं ॥ १८१ ॥
 करे मन ! पवित्र कन्द-मूल फलसे अपनी जीविका चढाओ,
 धरतीपर नये-नये पत्ते और घास फेंकाकर विछौना बनाओ,
 उठा, धन चलें जहाँ विचार शून्य तथा मूर्खतापूर्ण हृदयवाले,
 सदा धनके लोभसे बेदंगी यार्त करनेवाले नीच धनवानोंका
 मन तक नहीं सुनाई पड़ता ॥ १८२ ॥ पहले तो मनुष्य पुत्र
 होनेके लिये दुखी रहता है, पुत्र ही जानेपर उसके रोगसे दुखी
 रहता है । यदि पुत्र गुणवान् हुआ तो उसके मरनेके भयसे

मये दुःखितस्तद्दुःखादिकमाजने तदनये तन्मूर्खता-
दुःखितः । जातश्चेत्सगुणोऽथ तन्मृतिभयं तस्मिन्मृते
दुःखितः पुत्रव्याजमुपागतो रिपुरयं मा कस्यचिज्जा-
यताम् ॥ १८३ ॥ पुत्रदारादिसंसारः पुंसां सम्मूढचेत-
साम् । विदुषां शास्त्रसंसारः सद्योगाभ्यासविघ्नकृत्
॥ १८४ ॥ पुत्रमिघ्नफलत्रेषु सक्ताः सोदन्ति जन्तवः ।
सरःपङ्काश्वे मज्ञा जीर्णा घनगजा इव ॥ १८५ ॥ पुनः
प्रभातं पुनरेव शर्वरी पुनः शशाङ्कः पुनरद्यतो रयिः ।
फालस्य किं गच्छति याति योचनं तथापि लोकः
कथितं न बुध्यते ॥ १८६ ॥ पुरंदरसहस्राणि चक्र-
वर्तिशतानि च । निर्यापितानि फालेन प्रदीपा
इव वायुना ॥ १८७ ॥ पूरयित्वाधिनामाशां म्रियं
कृत्वा द्विपामपि । पारं गत्या श्रुतीघस्य घन्वा घन-
मुपासते ॥ १८८ ॥ पूर्वं तावत्कुचलयद्दशां लोललोलैर-
पाङ्कैरार्कपङ्क्तिः किमपि हृदयं पूजिता योचनश्रीः ।
सम्प्रत्यन्तनिहितसदसद्गायलन्ध्रप्रयोघप्रत्याहारैरिंश-

दहदये वर्तते कोऽपि भावः ॥ १८९ ॥ पृथिवी द्रागते
यत्र मेघश्चापि विद्योर्धते । सुशोभं नागगजलं शरीरे
तत्र का कथा ॥ १९० ॥ प्रचण्डवायवनायिनृद्यूता
नौर्मनोमयी । वैराग्यकर्मधारोप विना रोक्षुं न शक्यते
॥ १९१ ॥ प्रातर्मूषपुरोपाभ्यां मध्यादे च्छिपेवातया ।
वृसाः कामेन बाध्यन्ते प्राणिनो निशि निद्रया ॥ १९२ ॥
प्रादुर्भवन्ति वपुषः कति नाम कोटा यान्प्रदातः श्लु
तनोरपसारयन्ति । मोहः क एव जगतो यद्वप्यसंज्ञं
तेषां विधाय परिशोषयति स्वदेहम् ॥ १९३ ॥
प्राता जरा योचनमप्यतीतं बुधा यतश्च परमार्थ-
सिद्धयै । श्रायुर्गतप्रायमिदं यतोऽसौ विधम्य विधम्य
न याति कालः ॥ १९४ ॥ बहवो लाभिनोऽभूयन् यद्वधश्च
यशस्विनः । सह लाभयशामिस्ते न शानः क्व गता
इति ॥ १९५ ॥ बाला मामियमिच्छन्नुवन्दना सानन्दमु-
द्धीक्षते नीलेन्द्रीवरलाचना पृथुजुक्तोपोऽं परीर्यते ।
का त्वामिच्छति का च पश्यति पयो मांसास्त्रियमिर्नि-

दुखी रहता है और फिर मर जानेपर तो वह और भी दुखी हो
जाता है । इसलिये पुत्र तो शत्रु होकर आता है । भगवान् करे
किसीको पुत्र न हो ॥ १८३ ॥ मोहमें पड़े हुए पुरुषोंके लिये पुत्र,
की आदिका संसार सगुरुओंके संगके अभ्यासमें बाधा दाबता
है और ज्ञानियोंके लिये शास्त्रका व्यवसन सुन्दर योगाभ्यासमें
बाधा दाबता है ॥ १८४ ॥ साक्षात्के कीचकमें फँसे हुए दुखी
जंगली हाथीके समान यह जीव भी पुत्र, मित्र तथै स्वामें
आसक्त होकर दुःख भोगता है ॥ १८५ ॥ फिर सबेरा, फिर रात,
फिर चन्द्रमाका उदय, फिर सूर्यका उदय, इसमें समयका क्या
बिगड़ता है, किन्तु योचन पीतता जाता है, फिर भी न जाने
जोग भल्लोंका कदना क्यों नहीं मानते ॥ १८६ ॥ सदृशों हृद्ग्र-
हणार्थ सैकड़ों चक्रवर्ती राजा प्रीतिको काबने उठी प्रकार समाप्त कर
जाता जैसे वायुका झोंका दीपको बुझा डालता है ॥ १८७ ॥
पाचकोंकी आत्मा पूरी करके, शत्रुओंका हित करके तथा शास्त्रोंके
पार पहुँचकर भी जो बनबासी हो जाले हैं वे चण्ड हैं ॥ १८८ ॥
पहले तो कमलके समान नेत्रोंवासी स्त्रियोंकी अत्यन्त चंचल
तथा मन लुभानेवाली वितवनें मेरी तरुणाईकी सुन्दरताको
हृदय-द्वेषमें पृथ्वी थी पर अर वो मेरे निर्मल मनमें कौन
पशु सत्य है और कौन मिथ्या यह ज्ञानकी धारा बहते ही
किसी नये भावका उदय हो गया है ॥ १८९ ॥ जहाँ पृथ्वी
भी दब जाती है, मेरु भी बिखर जाता है तथा सद्युद्धका जल
भी सूख जाता है वहाँ हस्त शरीरकी गिनती ही क्या है

॥ १९० ॥ जब मन-रूपी नीचा प्रबल वासवाकी श्रौंषीसे
दगमगाने लगती है उस समय वैराग्य रूपी मीथीके विना बने
कौन सँभल सकता है ॥ १९१ ॥ ससारके भोगोंमें सुख
माननेवाले लोग प्रातःकाल शीव तथा ज्युष्टीयाने दोपहरमें,
शुक्र और प्यास श्ल होनेपर कामये तथा रातको नींदमें विचल
रहते हैं ॥ १९२ ॥ शरीरमें उपग्रह होनेवाले न जाने कितने
कौशिकोंके लोग सावधानीसे निवाळकर कँठ देते हैं पर संसारके
इस मोहको तो देखो कि उसी शरीरसे निकले हुए कीड़ेका
अपनी सन्तान समझकर उसको चिन्तामें अपना शरीर बुझाए
रहा रहे हैं ॥ १९३ ॥ हे बुद्धिमानो ! बुद्ध्या आ गया, तदुपार्ह
बोत गई, अब तो आभाके बोधके लिये प्रयत्न करो । वायु
मां प्रायः समाप्त ही है और काल भी धीरे-धीरे नहीं आता,
सदमा सिरपर आ चढ़ता है ॥ १९४ ॥ ससारमें बहुत बड़े बड़े
कमानेवाले और यशस्वी हुए किन्तु अपनी कमाई और कीर्तिके
साथ ही वे सब न जाने कहीं गए ॥ १९५ ॥ एक व्यक्ति
कह रहा है कि चन्द्रमाके समान सुखवादी यह नवेनी मुझे
चाहती है, नीचे कमलके समान श्रौंषीवासी यह नवेनी बड़े
चावसे मेरी और निहारती है और अपने विच्छल स्त्रनोंमें
दबाकर मेरा आङ्गिकन करना चाहती है । उलझे कोई कह
रहा है कि पशु ! कौन तुझे चाहती है ! कौन तुम्हें देखती
है ? तु नहीं जानता कि वह मांस और हड्डियोंकी पुतली तो
एक ही मात्र है । वास्तवमें तो व्यापक परमात्मा ही उद्धारता

गिता नारी वेद न किञ्चिदत्र ल पुनः पश्यत्यमूर्तः
 पुमान् ॥ १६६ ॥ बालिकारन्वितवज्रमुत्रिकाक्रीडनेन
 सदृशं सुरार्चनम् । यत्र शाम्यति मनो न निश्चलं
 स्फोटवज्रतथिमज्जनामलम् ॥ १६७ ॥ बाल्ये नार्जन-
 सामर्थ्यं येनासौ यौवने सुखी । चात्यजनेन तारुण्यं
 घृद्धः कामैः फरोति विम् ॥ १६८ ॥ विडालभक्षिते
 दुःखं यादृशं गृहकुफकुटे । न तादृश्यमताश्रये कल-
 विद्वेऽथ मृपके ॥ १६९ ॥ श्रीभर्ता विपया लुगुप्सित-
 तमः पाया वयो गावरं प्राथो वन्धुभिरध्वनीव पथिकै-
 योंगो वियोगावहः । हातव्योऽयमसार एव विरसः
 संसार इत्यादिक्ं सर्वस्यैव दि वाचि चेतसि पुनः
 कस्यापि पुण्यात्मनः ॥ २०० ॥ श्रीभर्ताः प्रतिभान्ति
 किं न विपयाः किं तु स्पृहायुष्मतो देहस्यापचयो मृतौ
 निथियोने नादो शृद्धेऽपु प्रहः । प्रहोपास्यमिति स्फुर-
 त्पि हृदि व्यामर्तिका धासना का नाभेयमतर्क्यहेतु-
 गदना दीवो सतां यातना ॥ २०१ ॥ सुद्धेरगोचरतया

न गिरां प्रचारो दूरे शुरुप्रथितवस्तुकथावतारः तरुं
 क्रमेण विदुषां फणायदाते श्रद्धावतां हृदि पदं स्वय-
 मादधाति ॥ २०२ ॥ प्रहोपानविवेकिनोऽमलधियः
 कुर्वन्स्वहो दुष्करं यन्मुञ्चन्पुण्यभोगवन्त्यपि धनान्ये-
 कान्ततो निःस्पृहाः । न प्राप्तानि पुरा न सम्प्रति न च
 प्राप्ता दृढप्रत्ययो वाञ्छामात्रपरिप्रहायपि परित्यक्तुं
 न शक्ता वयम् ॥ २०३ ॥ प्रहो विष्णुदिने धाति विष्णु
 रद्रस्य वासरे । ईश्वरस्य तथा तोऽपि कः कालं
 लङ्घितुं क्षमः ॥ २०४ ॥ भगीरथाद्याः सगरः कङ्कत्स्यो
 दशाननो राघवत्वमणौ च । सुधिष्ठिराद्याश्च यभुवुरेते
 सत्यं पच याता वत ते नरेन्द्राः ॥ २०५ ॥ भस्मोद्भू-
 तन भद्रमस्तु भवते रुद्राक्षमाले शुभं हा सोपानपर-
 म्परे गिरिस्तुतामन्तालायालङ्कते । अद्याराघनतोपितेन
 विभुना युष्मत्सपर्यासुपालोकोच्छेदिनि मोक्षनामनि
 महामोहे निधीयामहे ॥ २०६ ॥ भिक्वाशनं भयनमाय-
 तनैकदेशः श्रव्य भुवः परिजतो निजदेहभारः ।

सारा करतव देवता है ॥ १६६ ॥ देवताओंकी पूजा तो लक्ष-
 कीवोंकी शुद्धिवाले खेलके समान है जिससे मनको शांति नहीं
 मिलती । मन तो धाम चित्तन-रूपी समुद्रमें लुबकी खगाकर
 ही निर्मल, प्रसन्न तथा निश्चल हो पाता है ॥ १६७ ॥ यदि
 बचपनमें धन कमानीकी शक्ति रहती तो उस समय धन कमा-
 कर मनुष्य जवानोंमें निरिच्छत होकर सुख भोगता, किन्तु धनो-
 पात्रन करते-करते ही जवानी बीत जाती है, तब मला सुदारेमें
 वह काम-सुखोंके लिये बग बरे ! ॥ १६८ ॥ पाले हुए सुगंधी
 यदि बिड़की या ज्ञाय तो उससे जितना दुःख होता है उसका
 गीरेया घोर सूँठके लक्ष्य जानेपर दुःख नहीं होता क्योंकि
 वनपर ममता नहीं होती ॥ १६९ ॥ संसारके सभी भोग पूजा
 करने योग्य हैं । यह शरीर तो घोर भी घृणित है । अथशय
 भी लक्ष्य है । मार्गमें जिसे हुए प्राणियोंके समान मार्ग-शुभो-
 का निश्चता भी विपोगके लिये होता है । यह असाय तथा
 नीरस संसार सोद देनेके योग्य है । ये बातें सुनाई तो सभी-
 के सुँठसे देहांत पर मनमें तो टिमो दुष्प्रयामाके हा रहती हैं
 ॥ २०० ॥ संसारके विषयोंको पूजाके योग्य समझकर भी
 अभिलाषाटी चातु बढ़ती ही जाता है । शरीर जोय होत होत
 सायुक्त पहुँच जाता है फिर भी घरमें छोटीका प्रवृत्त चातुग
 बना रहता है । मनमें भी यह बात जानती है कि प्रदहा
 पिण्डन करना चाहिये किन्तु मनके गुरे धरकार ऊँहें रोक देते

हैं । भाग्यने ओ सज्जनोंको भयंकर भोग दिए हैं उनके कार्यों-
 का भी आजतक कोई ठिकाना नहीं खग पाया ॥ २०१ ॥
 मनकी पहुँच न होनेके कारण जहाँ न तो बायीकी पहुँच हो
 पाती न गुरुका उपदेश ही काम देता है वह धामबोध वन
 श्रद्धावान् प्राणियोंके निर्दिकार शुद्ध हृदयमें स्वयं प्रकाशित हो
 जाता है जो अथय, मनन और निदिष्यासनमें खगे रहते हैं
 ॥ २०२ ॥ सख तथा मिथ्या वास्तुके विषयसे जिन्हें प्रहोपान
 हो गया है वे शुद्ध चित्तवाले खोग ऐसा दुष्कर काम करते हैं
 कि धनका उपभोग छोड़कर सब प्रकारकी इच्छासे रहित हो
 जाते हैं । हमने तो न पहले ही धन पाया, न हस्त समय ही
 पाया, न चागे ही उसे पानेकर निरपय है । केवल मनोरथमें
 पदे हुए धनको नहीं छुड़े पा रहे हैं ॥ २०३ ॥ जब विष्णुके
 एक दिनमें प्रहो, शंकरके एक दिनमें विष्णु घोर ईश्वरके एक
 दिनमें शंकर भी चख बसते हैं तब मला कालको कीन खीं
 सक्तता है ॥ २०४ ॥ यदि सपमुच भगीरथ, सगर, कङ्करथ,
 रावण, राम, खदनय तथा सुधिष्ठिर आदि सभी रामा हुए
 थे ? तो ये सब चले बर्शा गए ? ॥ २०५ ॥ हे भरमजैय !
 दुःखरा मंगल हा ! दे द्वापकी माया ! तुम्हारा सुख हा ।
 दे गिपजाके सुन्दर गिरिर्की खींदिथो ! हमें हृत्त बावला दुःख
 है कि चाय सेबासे प्रसन्न होकर शंकरजी चाय खगोंकी पूजाने
 मिच्छनेवाके सुगुरुको प्रहाशको निर्गुल करनेबाधे मोच नाम-

धासश्च जीर्णपटधण्डनियन्त्रकन्या हा हा तथापि
विपयात्र जहाति वेतः ॥ २०७ ॥ मित्राहात्ममदैव्यम-
प्रतिहतं भीतिचिह्नं सर्वदा दुर्मात्स्यमदाभिमानम-
यनं दुःखोद्यविष्यंसनम् । सर्वत्रान्यद्वहमयत्नसुखमं
साधुप्रियं पावनं शम्भोः सत्रमचार्यमन्त्रयनिधिं शंसन्ति
योगीश्वराः ॥ २०८ ॥ भूः पर्यङ्की निजभुजलतागेन्दुकः
खं चितानं दीपश्चन्द्रो विरलिवनितालध्वयोगप्रमोदः ।
दिकन्यानां च्यजनपवनेर्घोष्यमानोऽनुकूलैर्मित्रुः श्रेते
नृप इव सदा धीतरागो जितात्मा ॥ २०९ ॥ भूत्या
कल्पशतानुपोऽण्डजभुजः सेन्द्राश्च देवासुरा मन्वाद्या
मुनयो महोजलधयो नष्टाः पराः कोटयः । मोहः कोऽ-
यमहो महानुद्वये लोकस्य शोकायहो यन्धोः फेनसमे
गते घणुपि यत्पञ्चात्मके पञ्चताम् ॥ २१० ॥ मेदामेदौ
सपदि गलितौ पुण्यपापे विशोर्णे मायामोहौ च्यमुप-

गनौ नष्टमन्त्रेद्वृत्तेः । शब्दातीतं प्रिगुगदितं प्राप्य
तस्यावयोर्धं निस्त्रैगुण्ये पथि विचरतः को विधिः को
निपेधः ॥ २११ ॥ भोगे मेवयिनातमप्ययितमन्मौदा-
मिनोयञ्जला आयुर्वायुविघटिताध्रपटलोत्तानानु-
यन्त्रद्वारम् । लोला यथनखालसाम्नुभृतामिन्याक-
लप्य द्रुतं योये धैर्यसमाधिसिद्धिसुखेन युद्धि विद्वष्यं
युधाः ॥ २१२ ॥ भोगा न भुक्ता धयमेय मुक्तास्तपो
न तप्तं धयमेय तप्ताः । कालो न यातो धयमेय याता-
स्तृणा न जीर्णा धयमेय जीर्णाः ॥ २१३ ॥ भोगानुद्ग-
तरङ्गमङ्गपपलाः प्राणाः क्षणध्वंसिनः स्ताकान्येय
दिनानि यौवनसुखं स्फूर्तिः क्रियास्वस्थिरा । तप्तं-
सारमसारमेव निपित्तं युद्धा युधा वधका लोकात्-
प्रद्वेषशक्तेन मनसा यत्तः समाधीयताम् ॥ २१४ ॥
भोगे रोगमयं कुले च्युतिमयं विघ्ने नृपात्ताद्वयं माने

के वीर भयकारमें मुझे ढकेडे दे रहे हैं ॥ २०६ ॥ अय
मिषा ही भोजन है, घरका कोना ही निवास-स्थान है, भूमि
ही शरया है, धरना शरीर ही परिवार है और पुराने वस्त्रोंके
ढकड़ोंसे सिखाई हुई गुदड़ी ही वस्त्र है, फिर भी न जाने हमारा
मन विषय-वासनाओंसे क्यों नहीं हट पा रहा है ॥ २०७ ॥
मिषाके भोजनके लिये योगीवर महात्मा कहते हैं कि इसमें
न तो दीनता दिखलानी पड़ती न कोई शोक-शोक या भय है ।
इससे बाह, मद और अभिमान दूर हो जाता है, दुःख राशि-
का विनाश हो जाता है, यह सब स्थानोंपर प्रतिदिन सुखमंदे,
साधुओंका प्यारा है और शंकरका ऐसा पन्थि सत्र है जिसमें
न कोई बाधा है और जो न कमी समाप्त होनेवाली है ॥ २०८ ॥
जिसने भूतलको पल्लव, अपनी सुजाको ही तक्रिया, आकाशको
चंद्रमा और चन्द्रमाको दीपक समझ लिया है, जो वैराग्य-
रूपी हथीके सपकसे प्रसन्न रहता है और दिशा-रूपी कन्याएँ
जिसे सुखकर वायुका पंखा ऋतवी हैं ऐसा मिषा करनेवाला,
संसारमें अशुभाग न रहनेवाला तथा हृन्दिओंको वशमें रखने-
वाला महाराम राजाके समान सुखकी नींद लेता है ॥ २०९ ॥
कागमुशुयहीजी गड़बसे कह रहे हैं—हे गदग! संकड़ोंकरा पुरानी
पद भूमि, इन्द्र, देवता, असुर, मनु आदि मुनि, द्वीपतया पहाद
ये सब करोड़ों वर्षोंसे भी आधिकके हो-दोकर नष्ट हो जाते
हैं फिर भी पंचभूतसे बने हुए ऐतनके समान अपने समर्थोंका
शरीर पञ्चभूतमें मिल जानेपर लोगोंको शोकसे भरा हुआ
बिशाळ मोह क्यों उत्पन्न होता है? ॥ २१० ॥ जिसे किसी

वंशुमें भेद और अन्धेदका विचार नहीं रह गया, जिसके दुःख
और पाप दोनों निरुद्ध गए, माया-मोह दोनों नष्ट हो गए,
मनका सन्देश जाता रहा और जिसने साध, रज और समोगु-
से परे तथा शब्दकी पहुँचने बाहर रहनेकाजे आत्मबोधको
पाकर मायाके उस पारके मार्गमें अग्रय किया है, ऐसे स्थिति
लिये क्या कर्तव्य और क्या अकर्तव्य ॥ २११ ॥ दे बुद्धिमानो !
मेवोंके बीच चमकते हुए बिजलीके समान ही ये सब भोग
भी चमक हैं । वायुसे चरहा खाकर बादलोंमें गिरते हुए जड़-
के समान ही ये प्राण और तरयाईके अनारप सब चमक हैं ।
प्राणियोंके मन दयापूर्ण विचार करते हुए तकाब उस योग-
मार्गमें इन लजा देना चाहिए जिसमें धैर्य, वित्तकी पूजाप्रता
और सिद्धि मित्र बाली है ॥ २१२ ॥ हमने भोग नहीं भोगे
भोगोंने ही हमें भोग लिया । हमने तरस्या नहीं वर्षी, तरस्या-
ने ही हमें तपा दिया । समय नहीं बीता, हमें बीत गए, इसी
प्रकार लूटा नहीं पुरानी हुई, हम ही पुराने हो गए ॥ २१३ ॥
संसारके सब भोग वंभी लहरोंके समान चमक हैं, प्राण भी
पुण्यमगुर हैं, तरयाईके सुल भी मोदे दिनोंके पाहुने हैं, काम
करनेकी शक्ति भी स्थिर नहीं रहती । इसलिये दे बुद्धिमान !
सारे संसारको असार समझकर लोगोंपर कल्याण-बुद्धि रखते
हुए अपना मन कीमल बनाकर कोई ऐसा उचित उपाय क्यों
नहीं करता जिससे शान्ति मिले ॥ २१४ ॥ भोगोंने रोगका भय,
इज्जमें कलकका भय, धनमें राजाका भय, सम्मानमें दीनता-
का भय, चरमें शयुधा भय, सुन्दरतामें दुर्दादिका भय, शकमें

दैन्यभयं धले रिपुभयं रूपे जराया भयम् । शास्त्रे
 वादभयं गुणे यत्नभयं काये कृतान्ताङ्गयं सर्वं घस्तु
 भयान्वितं भुवि नृणां वैरायमेवाभयम् ॥ २१५ ॥
 भ्रातः कष्टमहो महास्रत नृपतिः सामन्तचक्रं च
 तत्पार्श्वे तस्य च सा विदग्धपरिपत्ताश्चन्द्रविभ्राननाः ।
 उद्रिक्तः स च राजपुत्रनिघटस्ते वन्दिनस्ताः कथाः
 सर्वे यस्य यशादागात्स्मृतिपर्यं कालाय तस्मै नमः
 ॥ २१६ ॥ मन्त्रोद्गावितदैवतैर्न विधिवद्वासीकृताः
 सिद्धयो योगाभ्याससमाहितैरनुदिनं तोषीं न मोहा-
 र्णव । बुभ्यन्नुद्गरेन्द्रदत्तचिगलत्सम्पन्नयोज्ञासितै-
 धिच्छुद्धैरिव पशुडैरपि यत्नात्कालः कथं नोयते ॥ २१७ ॥
 मन्ये मायेयमज्ञानं यत्सुखं स्वजनादपि । निदाघवार-
 खायालं निजच्छाया न कस्यचित् ॥ २१८ ॥ मरणं
 प्रकृतिः शरीरेणां विकृतिर्जीवनमुच्यते बुधैः । क्षण-
 भाष्यवतिष्ठते ऋसन्पदि जन्तुर्ननु लाभवानसा ॥ २१९ ॥
 मलयानिलकालकूटयो रमणीकुन्तलभोगिभोगयाः ।
 श्वपचारमनुष्योः किमन्तरं मम भूयात्परमात्मनि

स्थितिः ॥ २२० ॥ महाशय्या भूमिर्मसृणुपधानं
 भुजलता वितानं चाकाशं व्यजनमनुकूलोऽयमनिलः ।
 स्फुरद्दीपश्चन्द्रः स्वधृतियनितासङ्गमुदितः सुखं
 शान्तः श्रेते विगतभवभोतिर्नृप इव ॥ २२१ ॥ मातर्मयि
 भगिनि कुम्भते द्वे पितृभौंहजाल व्याघर्तध्वं भवतु
 भयतामिष दोषो वियागः । सद्यो लक्ष्मीरमणवरणध्रष्ट-
 गङ्गाप्रयाहव्यामिश्रायां दपदि परमग्रह्णदृष्टिर्भवामि
 ॥ २२२ ॥ मातर्मैदिनि तात मासुत सपे ज्योतिः
 सुयन्धो जल भ्रातव्योम निवद्ध एव भवतामन्यः
 प्रणामाञ्जलिः । गुप्त्वत्सङ्घशोपजातसुकृतोद्रेकः स्फुर-
 त्निर्मलक्षानापास्तसमस्तमोदमहिमा लाये परे ब्रह्मणि
 ॥ २२३ ॥ मातलक्षिम भजस्व कश्चिदपरं मरहाङ्घ्रिणी
 मा स्म भूमौगैभ्यः स्पृहयालघो नद्धि वयं का निःस्पृ-
 हाणामसि । सद्यःस्यूनपलाशपत्रपुटके पात्रे पवित्री-
 कृते भिन्नासफ्तुभिरय सम्प्रति वयं वृत्ति समीहामहे
 ॥ २२४ ॥ मातापितृसहस्राणि पुत्रदारशतानि च ।

विवाद्का भय, गुणोंमें दुर्गोंका भय, शरीरमें यमराजका भय,
 इस प्रकार हुए भूजलपर केवल वैराग्यको छोड़कर सभी शेष
 घन्टों भयसे भरी हैं ॥ २१५ ॥ हे भाई ! प्रभावशाली राजा,
 उसके अधीन राजा, पासमें चतुर राजाओंकी सभा, चन्द्रमाके
 समान सुखवाली चित्री, छादके राजपुत्र, स्तुति करनेवाले भाउ
 और उनकी सब कथाएँ जिसके प्रभावसे स्मरणीय हो गए
 उस कालको नमस्कार है ॥ २१६ ॥ जिन्होंने शास्त्रोंके नियमों-
 से मन्त्रोंके द्वारा देवताओंका प्रसन्न करके सादृष्टि नहीं प्राप्त
 की, प्रतिदिनके अभ्याससे मनकी एकप्र करके अज्ञान-रूपी
 सागर भी पार नहीं किया और जो उरमाहमें घ्राय हुए मूर्ख
 राजाओंसे पाई हुई नरवर सगपति लेकर पूजे नहीं समाप्त ऐसे
 पंडित भी मूर्खोंके समान हैंते समय विताते हैं ॥ २१७ ॥
 हम समझते हैं कि यही समझ बैठनेके अज्ञानकी मारा कहते
 हैं कि हमारे सगे संबंधियोंमें हमें सुख मिलेगा क्योंकि अपनी
 ही पुत्रा धूपसे बचानेमें समर्थ नहीं होते ॥ २१८ ॥ मरना
 ही प्राणियोंका स्वभाव है, बुद्धिमान् मनुष्य जीवनका विचार
 ही समझते हैं । जो प्राणी जिनकी देहक सौत खेता हुआ
 संसारमें रह जाय, उसके जिये उत्तना ही काम समझना
 चाहिए ॥ २१९ ॥ जब मैं सारे संसारको यदा समझना हूँ तब
 मेरे जिये मलय पर्वतके पवन और काबूट विषमें, रिपुओंके
 घुम्कर बैठ तथा क्षीयके शरीरमें, पाँदाक तथा प्रदामे प्रन्डर

ही क्या रहा ॥ २२० ॥ जिसने भूमिको ही पल्लव, बाहुकों ही
 कामज तकिया, चाकाशको ही चंद्रमा, वायुको ही सुन्न देने-
 वाला पंखा, चन्द्रमाको ही जलता हुआ दीपक मान लिया है
 और जो अपनी धृति रूमी स्त्रीके असाक्ष हो प्रसन्न रहता है
 वही शांतिपूर्ण स्थिति निर्भय होकर राजाके समान सुखकी
 नीद लेता है ॥ २२१ ॥ हे माता माया ! हे बहन दुर्बुद्धि !
 हे पिता अज्ञान ! आप लोग मुझे छोड़कर चले जायें । आप
 लोगोंका मुझसे भद्राके जिये विधोग हो जाय । अब तो
 मैं मगवान् विष्णुके चारवाँसे निकली हुई गणाके प्रयाहते लड़ी
 हुई अज्ञानपर बैठकर परमलक्षके साक्षात्कारके जिये तत्पर बैठा
 हूँ ॥ २२२ ॥ हे माता भूमि ! हे पिता वायु ! हे मित्र अग्नि !
 हे सुन्दर बन्धु जल ! हे भाई चाकाश ! आप क्षाणिते यह
 दाय जोड़कर अंतिम प्रणाम है कि आप लोगोंके सगर्भते
 तो विशाल पुण्य मिला है उससे मुझमें ऐसा निर्मल ज्ञानका
 प्रकाश हो गया है कि समस्त अज्ञान दूर हो गया और मैं अब
 परमार्थमें खोज हो रहा हूँ ॥ २२३ ॥ हे माता खड्गमी ! किसी
 दूमेके पास खड़ी जाधा, अब मरी चाह मत करो क्योंकि
 मुझे भोगकी तनिक भी इच्छा नहीं । और विरक्तसे गुहारा
 सम्बन्ध ही क्या है ! इस समय सा हम नुरन्त बनाकर घाँव
 हुए पखासके पत्थरे दोनोंमें सत् छाकर ही अपनी जीवन
 पिडा देना चाहते हैं ॥ २२४ ॥ आ सहयो माता-पितव,

तवानन्तानि यातानि कस्य ते कस्य वा भवान् ॥२२५॥ मातुलो यस्य गोविन्दः पिता यस्य घनञ्जयः । सोऽपि कालधर्यं प्राप्तः कालो हि दुरतिक्रमः ॥२२६॥ माद्यन्मित्रकलत्रपुत्रकुतुपश्रेणीरणचङ्कृष्टैलायन्धध्वस्त-
गतैर्निरुद्धमनसः क्रोधादि विद्वपिभिः । आस्तां घान-
सुधारसः किमपरं संसारकाराशुद्धे क्रूरक्रोडनिवासिनो
न सुलभा वार्त्ताऽपि मोक्षं प्रति ॥२२७॥ माने
म्लायिनि रणदिहते च घसुनि व्यर्थं प्रयातेऽपिनि क्षीणे
घन्धुजने गते परिजने नष्टे शून्यैर्घने । युक्तं केवलमेत-
देव सुधियां यज्जङ्घुकन्यापयः पूतप्रायगिरीन्द्र हन्दर-
द्रीकुक्षे निवासः क्वचित् ॥ २२८ ॥ मान्घाता स
महोपतिः क्षितितलेऽलङ्कारभृतो गतः सेतुर्यन महो-
दधौ विरचितः फवासो दशास्यान्तकः । अन्ये चापि
सुधिष्टिप्रभृतयो यावन्त यथाभवैकेनापि समं गता
घसुमतो मुञ्ज त्वया यास्यति ॥ २२९ ॥ मितमायुर्घ-
योऽनित्यं नैति यातं कदाचन । परामृशन्ति तदपि

न मयं भोगलोलुपाः ॥२३०॥ मित्रं क्लृप्तमित्रदः पति-
पारलोको यामि हस्ताघनमिमाः किन्तु मन्त्रदो नः । एकः
क्षणः न तु भविष्यति यत्र मृया नाथं न यूपमन्तरे न
वयं न चैते ॥ २३१ ॥ सुगडा जडी पदकलयास्त्रिदश
कपाययासा व्रतकशिवाङ्ग । त्यक्तैर्दिको वा यदि
नातनस्वस्तदा तु तस्यामयमेव नष्टम् ॥ २३२ ॥ मृग्या-
धिमेपि किं मूढ भोक्तं मुञ्जनि किं यमः । अज्ञानं नैव
शुद्धाति कुरु यत्तमज्जन्मनि ॥ २३३ ॥ त्रियमाण मृतं
वन्धुं शोचन्ति परिदेधितः । आन्मानं नातुशोचन्ति
कालेन कवकोरुनम् ॥ २३४ ॥ यन्मृगिनिः समयं धृतिः
शिव शिवेत्युक्तो मनोनिर्दृतिर्मदं चामिभारोऽधनपु
विरतिः श्रव्यस्तमाघो रतिः । एकान्ते यस्तिर्गुणै
प्रति नतिः सद्भिः समं सद्भितः सत्त्वे प्रीतिरनर्हनि-
र्जितिरसो सन्मुक्तिमार्गं स्थितिः ॥ २३५ ॥ यत्रानेके
ध्वञ्चिदपि गृहे तत्र तिष्ठन्त्येको यत्राप्येकस्वद्वन्दु
बह्वस्वतत्र नैकोऽपि चान्ते । इत्यं चेमो रजनिद्विषयी

सैक्यं पुत्र सुत्रिर्वा और अनन्त सवन्धी चले गए उनमेंसे कौन
चापका या और चाप किसके थे ॥ २२५ ॥ जिसके मामा
साक्षात् मगवान् कृष्ण और पिता अन्त ये वह अभिमन्यु
भी जब काक के गालमें समा गया तब बहाइए काक के पंखसे
कौन छूट सकता है ॥ २२६ ॥ मतवाले मित्र, स्त्री, पुत्र,
हुपुत्र आदिकी मृतकनाती हुई सिकंदरीसे बंधे हुए और क्रोध
आदि नपुत्रोंमें फँसे हुए मनवाले, संसाररूपी कारागारकी
निप्टुर गोदमें पड़े हुए प्राणीके लिये ज्ञानमृत्तपानेकी लो बात
ही दूर है, वह मोचकी चर्वा भी नहीं चला सकता ॥ २२७ ॥
सत्मानकी कमी होनेपर, धन न रहनेपर, जगतके निराश चले
जानेपर, भाई-बन्धु न रहनेपर, परिवार समाप्त हो जानेपर
और फीरे-धीरे जबानी डल जानेपर बुद्धिमानोंके लिये यही
एक उचित मार्ग रह जाता है कि संगानखले पवित्र चट्टानों-
वाली गुफाओंकी छाड़ीमें जाकर बैठ रहे ॥ २२८ ॥ भोजने
अपने चाचा मुञ्जको सन्देश भिनवाया—'इस पृथ्वीके भूपग
रात्रा मान्घाता चले गए, सागापर पुल बंधनेवाले और
रावणकी मारनेवाले राम भी चले गए, सुधिष्टि आदि भी जितने
राजा हुए वे भी जाते रहे पर यह पृथ्वी किसीके साथ नहीं
गई । किन्तु हे मुञ्ज ! जान पढ़ना है वह तुम्हारे साथ अवश्य
जायगी ॥ २२९ ॥ आयु थादा है, भवस्था भी कुण्ड टिकने-
वाली नहीं और धोती धवस्था भा (कैसे बीटकर आनेवाली
नहीं । ऐसी बातें लोग साचते तां हैं पर भोगके लोभसे संसार-

की मरववापर विचार नहीं करते ॥ २३० ॥ मित्र, स्त्री, परि-
वारके लोभ और संसारका व्यवहार चलावेवाकी सम्पत्ति
हमारे पास मले ही हो पर एक समय ऐसा आयेगा ही जब
यह, वम, अग्य लोग तथा हममेंसे कोई न रह जायँगे ॥२३१॥
हम मले ही सिर मुड़ा लें, जटा रटा लें, पैरकी टांग परन
लें, त्रिदूषदी बन जायँ गेरुप्रा वत्स पहनकर नियम-प्रत
रखकर शरीर सुष्मा दें और इस संसारकी सभी वस्तुओंमें
विरक्त हो जायँ पर यदि आत्माका बोध न हुआ हो सम्पत्ता
चाहिए कि यह लोक और परलोक दोनों ही हाथमें निकल
गए ॥२३२॥ अरे मूर्ख ! तू, मृत्युमें क्यों टाट फिरना है ! क्या
दरनेवालेकी यमराज छोड़ देता है ! वह केवल उसी बगिची
नहीं छोड़ता जो सारमें उत्पन्न न हुआ हो । इसलिये तू भी
कुछ ऐसा ही उपाय कर कि फिर जन्म न लेना पड़े ॥ २३३ ॥
लोग मरते हुए तपा भरे हुए बन्धुके लिये ही विज्ञाप करके
शोक प्रकट करते हैं पर काकके सुलमें पड़े हुए अपने चारके
लिये शोक नहीं करते ॥ २३४ ॥ सहनशीलता, समय-समय-
पर शास्त्रका अध्ययन, 'शिव-शिव' कहकर मनकी शान्ति,
मिलामें सुख, धनसे विरक्ति, सदा समाधिमें धरुणा, एकान्तमें
निवास, सज्जनोंका संग, आत्मविभ्रममें प्रेम और कमर
विनय ही मोक्ष मार्गपर पहुँचनेके लक्ष्य हैं ॥ २३५ ॥ जिस
घरमें बहुतेके लोग थे उसमें एक ही रह गया । जिस घरमें
एक ही था उसमें कुछ ही समयमें बहुतेके हो गए और अन्तमें

दोलयन्द्वाविधासौ कालः कात्या भुवनफलके क्रीडति
 प्राणिसारः ॥ २३६ ॥ यत्रैकं श्रुतमचरं पशुपतेर्हनुः
 धुनीनां कृतो सद्यो रोदति चाष्टधा तनुभृतां यत्रैकमु-
 च्छपुः । यत्रैकाभ्रनदीकणोऽपि विधृते सर्वैव सा धार्यते
 सा दृष्टान्द्रुतवैभवा कविगिरां पारे द्वि वाराणसी
 ॥ २३७ ॥ यद्दुस्माभिर्दृष्टं क्षणिकमभवत्स्वप्नमिव तरिक-
 यन्तो भावाः स्युः स्मरणविषयादप्यवगताः । अहो
 पश्यन्पश्यन्स्वजनमपिलं यान्तमनिशं हतधीडं चेत-
 स्तदपि न भवेत्सङ्करहितम् ॥ २३८ ॥ यदा पूर्वं
 नासीदुपरि च तथा नैव भविता तदा मध्यावस्थाक्ष-
 ण्यारचयो भूतनिचयः । अतः संयोगेऽस्मिन्परिणति-
 वियोगे च सहजे किमाचारः प्रेमा किमधिकरणाः
 सन्तु च शुचः ॥ २३९ ॥ यदरसीदद्यानं स्मरतिभिर-
 संस्कारजनितं तदा दृष्टं नारीमयमखिलमेतज्जग-
 दिति । इदानीमस्माकं पटुतरविवेकाञ्जनजुषां समो-

भूता दृष्टिस्त्रिभुवनमपि द्रष्टुं मनुते । २४० ॥ यदास्तौ
 दुर्वारः प्रसरति मदश्चिञ्चकरिणस्तदा तस्योहामप्र-
 सररसरुर्द्वैर्वसितेः । फव तक्षैर्योलानं फव च निज-
 कुलाचारनिगडः फव सा लज्जारज्जुः फव विनयक-
 डोराङ्कुशमपि ॥ २४१ ॥ यदेतस्वच्छन्दं विहरणमका-
 र्पण्यमशनं सहायैः संलापः श्रुतमुपशमैकव्रतफलम् ।
 मनो मन्दस्पर्शं वहिरिपि विरस्यापि चिमुश्रज्ज जाने
 कस्यैवा परित्युक्तिरदारस्य तपसः ॥ २४२ ॥ यद्ब्रह्मघो-
 दधिसमरसौ सागरत्वं ह्यवाप्तौ तद्ब्रह्मजीवालयपरिगतो
 सामरस्यैकभूतौ । भेदातीतं परिलयगतं सच्चिदानन्द-
 रूपं निखौगुण्ये पथि विचरतः को विधिः को निषेधः
 ॥ २४३ ॥ यद्वात्मानं सकलवपुषामिकमन्तर्वह्नि-स्थं दृष्ट्वा
 पूर्णं खमिव सततं सर्वभाण्डस्थमेकम् । नान्यत्कार्यं
 किमपि च ततः कारण्याद्भिन्नरूपं निखौगुण्ये पथि
 विचरतः को विधिः को निषेधः ॥ २४४ ॥ यन्मध्ये

फिर एक भी न रह गया । इस प्रकार काल ही रात और दिनके
 दो पारसे लेकर सत्साररूपी लुपके चौपदपर चलता हुआ
 कीर्तियोंके दीर्घपर लगाकर कालके साथ खेल खेलता रहता है
 ॥ २३६ ॥ काशीमें ऐसी जो बड़ी-बड़ी आश्चर्यजनक घटनाएँ
 होती हैं उनका क्या कोई कवि वर्णन कर सकता है ? वहाँ
 मरते समय शिवजीसे तारक मन्त्रका एक अक्षर सुनकर प्राणी
 तत्काल शंकर बनकर येशोंका निर्माता बन जाता है । उसके
 एक ही शरीरके आठ शरीर (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु,
 आकाश, सूर्य, चन्द्रमा तथा यज्ञका यज्ञमान) हो जाते हैं
 और एक बूँद गङ्गाजल शरीरपर पड़ते ही सारी गङ्गाभी सारपर
 आ बैठती है ॥ २३७ ॥ मैंने जिनकी वस्तुएँ देखीं वे सब
 स्वप्नके सामान नष्ट हो गईं । जिनकी ही वस्तुएँ तो ऐसी हैं
 कि उनका स्मरणनक नहीं रह गया । क्या यह कम आश्चर्यकी
 बात है कि जनोंकी निरन्तर संसारसे चले जाते देखते हुए भी
 यह निर्लज्ज मन संसारका सङ्ग नहीं छोड़ पा रहा है ॥ २३८ ॥
 ये प्राणी न तो पहले थे और न आगे रहेंगे । ये सब तो बीच-
 में लप्यमरके सामी हो गए हैं । इसलिये जब संयोगसे मिलना
 हुआ है और अन्तमें वियोग निश्चित ही है तब किस भरोसे
 इनसे प्रेम किया जाय और किसके लिये शोक मनाया जाय
 ॥ २३९ ॥ जिस समय कामरूपी भयंकर अन्धकारमें अज्ञान
 पड़ा हुआ था उस समय यह सारा संसार श्रोत्रके रुग्में
 दिखाई देता था । किन्तु इस समय दृढ विचाररूपी अग्नि

आँलमें जगा लेनेपर हमारी दृष्टि सबको समान समझने लगी
 और सारा त्रिभुवन ब्रह्ममय दिखाई देने लगा है ॥ २४० ॥
 जब मनरूपी हाथीसे घारा प्रवाह मद निकलने लगता है, उस
 समय उसके प्रबल अहंकारपूर्ण व्यवहारके सामने धीरतारूपी
 खम्भा, कुलके सुन्दर आचाररूपी अजान, लज्जारूपी रस्सी और
 विनयरूपी कठोर शंकुस सब ध्वंस हो जाते हैं ॥ २४१ ॥
 स्वतंत्र ध्यान, यिना मर्गे भोजन करना, सारपुरुषोंसे पातचीत
 करना, शान्ति देनेवाले शास्त्रका चिंतन करना और बाहरी
 वस्तुओंमें बहुत ममता न रखना किसी बड़ी तपस्याके ही फल-
 से होता है ॥ २४२ ॥ जैसे नदी और समुद्रका जल मिलकर
 दोनों पवित्र हो जाते हैं, उसी प्रकार जीव भी ब्रह्म रूप बन
 जाता है । उस समय भेद-रहित, एक रूप, सत्य ज्ञान तथा
 अानन्दस्वरूप आत्माको जानकर मायासे शून्य मार्गमें भ्रमण
 करनेवाले व्यक्ति के लिये कर्तव्य और अकर्तव्यका विचार
 कैसा ॥ २४३ ॥ जो व्यक्ति सभी प्राणियोंके भीतर तथा बाहर
 शिवत, एक, पूर्ण, आकाशके समान सब स्थानोंमें व्यापक,
 सभी वस्तुओंका कारण और जिसके अतिरिक्त कोई कार्य नहीं
 है उस आत्माका साधारण रूपके मायासे दृढकर भ्रमण करने
 लगता है उसके लिये कर्तव्य और अकर्तव्य सब समान हैं
 ॥ २४४ ॥ जो वस्तु पहले, बीचमें और अन्तमें सुंदर दिखाई
 पड़ी वही अचलित, नाशवान्त तथा धृष्टा करने योग्य प्रतीत
 हुई ॥ २४५ ॥ जिन-जिन वस्तुओंमें मेरी ममता है, अर्थात्-

यद्य पर्यन्ते यदापाते मनोरमम् । सर्वमेवापवित्रं
तद्विनाशमध्यदृषितम् ॥२४५॥ यस्मिन्वस्तुनि ममता
मम तापस्त्र तत्रैव । यत्रैवाहमुदासे तत्र मुदासे
स्वभावस्तनुष्टः ॥ २४६ ॥ यस्मिन्मिथुनं सकलमुपनं
सामरस्यैकभूतमुयीं ह्यापोऽनलमनिलपं जीवमेवं
क्रमेण । यत्ताराद्यौ समरसतया सैन्धवैकत्वभूतं
निखैगुण्ये पचि विचरतः को विधिः को निषेधः
॥ २४७ ॥ याञ्चाश्न्यमयज्ञलभ्यमशनं वायुः कृतो
वेधसा व्यालानां पशवस्तृणाङ्कुरभुजः सुस्थाः स्थली-
शाथिनः । संसाराश्वलह्ननक्षमधियां वृत्तिः कृता सा
त्र्यां यामन्वेपयतां प्रयान्ति सततं सर्वे समाप्तिं गुणाः
॥ २४८ ॥ यातं यौवनमधुना वनमधुना शरणमेकम-
स्माकम् । स्फुरदुद्धारमणीनां ह्यारमणीनां गतः कालः
॥ २४९ ॥ यावन्तः कुर्वते जन्तुः सम्बन्धान्मनसः
प्रियान् । तावन्तोऽप्य निखन्यन्ते हृदये शोकश्चङ्खवः
॥ २५० ॥ येषां निमेपोन्मेवाभ्यां जगतां प्रलयोदयो ।
तादृशाः पुरुषा याता मादृशां गणनैव का ॥ २५१ ॥

येषां वल्लभया सह क्षणमपि चिन्मं छाया क्षीयते तेषां
शीतकरः शशो विरहिणा मुलेनैव सन्नापठन् । अस्माकं
तु न वल्लभा न विरहस्तेनोभयभ्रंशितामिन्द्र राजति
दर्पणावृत्तिरसो नोप्यो न चा शीतलः ॥ २५२ ॥ येषां
श्रीमद्योदासुनपदक्रमले नास्ति भक्तिर्नगरां येषामा-
भीरकन्याप्रियगुणकथने नानुरक्ता रमया । येषां
श्रीकृष्णलीलालितगुणरसे सादरां नैव कर्षां चिन्का-
न्चिक्कान्विगेतान् कथयति सततं कीर्तनम्पो मृदुः
॥ २५३ ॥ येषु येषु दृढं यद्वा भावना दृष्टवस्तुपु ।
तानि तानि चिन्तानि दृष्टानि किमिदोचमम् ॥ २५४ ॥
रक्तमांसमयः कायः स्त्रीणां रसशुच्यय नः । तमेवा-
श्रन्ति सिंहाद्या रम्यं नास्तीह वस्तुतः ॥ २५५ ॥
रथ्यान्तश्चरतस्तथा धृतजरकन्यालवस्थाध्वनीः
सत्रासं च सकीतुकं च सदयं दृष्टस्य तैर्नागरेः ।
निर्दयाञ्जीकृतचिरसुधारसमुद्रा निद्रायामापस्य मे
निःशङ्कं करटः कदा कल्पुडीमिच्छां विलुण्टिष्यति
॥ २५६ ॥ रम्यं हर्म्यतलं न किं चसतये ध्वन्यं न गेया-

उन्हीं वस्तुओंमें दुःख है और जिनकी मैं उपेक्षा करता
हूँ वहीं मुझे सन्तोष हो जाता है और मैं प्रसन्न रहता
हूँ ॥ २४६ ॥ पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, जीव, जगत्
और सारा ब्रह्मांड इस ब्रह्ममें इस प्रकार मिला हुआ है जैसे
सारे समुद्रमें मिलकर नमक एक रूप हो जाता है । यह सम-
क जो ध्वजि मायासे दूर हटकर भ्रमण करता है उसके लिये
कर्तव्य और अकर्तव्यका विचार कैसा ॥ २४७ ॥ ईश्वरने
सर्पोंके लिये वायु मोजन बनाया जो बिना माँगे और बिना
परिश्रम ही उन्हीं मिला जाता है, इसी प्रकार वास खाकर वनमें
सुखसे सोनेवाले पशु भी सुखी रहते हैं पर जिनकी बुद्धिने
संसार-सागर पार नहीं कर पाया, ऐसे मनुष्योंके लिये ईश्वरने
ऐसी नीचिका बनाई कि उसके हँदते रहनेमें ही मनुष्यके सारे
गुण समाप्त हो जाते हैं ॥ २४८ ॥ इस समय मेरा यौवन भी
नहीं रहा और शय केवल वनकी शरण लेना भर रह गया है ।
धरो ! वनकीले हार और मखियोंसे सजी हुई दिव्योंके
सज्जका समय भी जाता रहा ॥ २४९ ॥ प्रायोजितना ही अपने
सोसादिक नातेको प्रिय समझता है उतनी ही उसके मनमें
शोक-रूपी कीलें गढ़ती जाती हैं ॥ २५० ॥ जब संसारसे ऐसे
योग ही उठ गए जिनकी पलक गिरते ही संसारका नाश और
पलक उठते ही संसारकी रचना हो जाती थी, तब हम लीलांकी

जिनकी ही क्या है ॥ २५१ ॥ अपनी प्रिय पत्नीके साथ
जिनकी रातें चणके समान शीघ्र हो बीत जाती हैं उन्हींके
लिये विरहमें चन्द्रमा लुकके समान कट देनेवाला हो जाता है ।
पर हमारे पास तो न प्रिय पत्नी ही है न विरह ही, इसलिये
हमारे लिये तो चन्द्रमा दर्पणके समान है, न गरम न ठंढा
॥ २५२ ॥ यशोदानन्दन श्रीकृष्णके चरण-कमलमें जिसका
प्रेम नहीं है, राधापतिके गुणोंका वर्णन करनेमें जिनकी जीभको
अनुराग नहीं है, श्रीकृष्णके चरित्रकी सुन्दर कथा सुननेमें जिनके
कान खगते नहीं उन्हींकी लक्ष्मण काके कीर्तनमें बजता हुआ
मृदंग बहा करता है उन्हीं चिन्कार है उन्हीं विरहार है ॥ २५३ ॥
अपनी धौलामें देखी हुई जिन-जिन वस्तुओंमें मुझे गिरताका
विरवास था उन्हींमें जेव मठ होते देखा तो बत्ताभी फिर उचम
वस्तु है कहाँ ॥ २५४ ॥ हमारे रचि और मांसमे बना हुआ
जो शरीर दिव्योंके रसशुका सुख पाता है उसीको सिंह प्रादि
मांस-भक्षक जीव जब खा जाते हैं तब यही विरवास होता
है कि यह शरीर सबमुच सुन्दर नहीं है ॥ २५५ ॥ यह
समय कब आवेगा जब मैं गङ्गियोंमें पुरानी मुद्रीके डूबदे
खदे घूमता हूँगा, मागमें खडनेवाले नगरवासी मेरी ओर
मप, आदर्य और दयासे देखते होंगे; मैं ब्रह्माके बोध-रूपी
अष्ट रसको पीकर सच्ची प्रसप्ततामें हुआ हूँगा और कौद

दिकं चिन्वा प्राणतमासमागमसुखं नैराधिकं प्रीतये ।
किं तृच्छानपतपतङ्गपनव्यालोलशेषाङ्कुरच्छायाच-
ञ्चलमाञ्जलय सफलं सन्तो घनान्तं गताः ॥ २५७ ॥
रामिण्यपि विरामिण्य त्रियस्तासु रमेत क । अहं
च कल्पे मुक्तिं या विरामिणि रामिणि ॥ २५८ ॥
रात्रिं सैव पुनः स पथ दिवसो मत्वा मुषा जन्तवो
घाचन्त्युद्यमिनस्तथैव निभृतप्रारब्धतच्छक्तिपाः ।
व्यापारं पुनश्चक्रमुक्तविषयैरेवविधेनामुना संसारेण
वदयिताः कथमहो माहात्र जज्ञामहे ॥ २५९ ॥ रेतः
शोषितयोरिय परिणयिर्द्वर्त्म तत्रानवन्मृत्पारास्पद
माश्रयो गुरुशुक्लं रोगस्य विधामभूः । जानन्नयद्यशो
विचेरुविरहान्मज्जन्नविद्याऋषुषो शृङ्गारोयति पुत्रका-
भ्यति वत क्षेत्रायति स्त्रीयति ॥ २६० ॥ लब्धास्य-
काश्च संसारे यावन्तो बान्धवास्तथया । न सन्ति खलु
ताघन्यो गद्गायामपि घालुका ॥ २६१ ॥ लाटोनेत्र-
पुटोपयोधरघटोक्रोडाकुटाशोस्तटीपाटीरद्रुमवर्ष्येन
कविभिर्भूद्वेदिनं नीयते । गोविन्देति जनादनेति जगतां

नाथेति कृष्णेति च व्याहारे' समयस्तदेकमनसां पुंसा-
मसिकामनि ॥ २६२ ॥ लालां चक्रासर्वं वेत्ति मांस-
पिण्डो पथोघरौ । मांवास्थिहूटं जघनं जनः कामप्र-
दातुरः ॥ २६३ ॥ लावण्यं तदसौ कान्तिस्तद्रूपं स
वचःकमः । तदा सुधास्तदमभूदधुना तु ज्वरो महान् ॥
२६४ ॥ घनान्धमूनि न गृह्णायेता नद्या न योपितः ।
द्रुमा इमे न दायवादान्मे नन्दति मानसम् ॥ २६५ ॥
धर्म्येभ्यो जाताश्चिद्वरगता एव खलु ते सर्वं धैः
संयुक्ताः स्मरणपदार्थं तेऽपि गमिताः । इवानोमेते
स्म प्रतिदिवसमासव्रतना गतास्तुत्यावस्थां सिक-
तिलनदातारतस्मिन् ॥ २६६ ॥ यत्तेमानच्छायाङ्घ्रि-
स्थितो कायस्यकाप्रमा । तथाति जीवनायाहो चिन्ता
कल्पावन्तयतनो ॥ २६७ ॥ विद्या नाधिगता कलङ्क-
रहिता विचंच नोपाजितं शुश्रूपापि समाहितेन मनसा
पित्रोर्न सम्पादिता । आलोलायतलोचना युधतयः
स्वमेऽपि नालिङ्गिताः कालोऽयं परपिण्डोलोपतया
पाकेरिव प्रेरितः ॥ २६८ ॥ विपत्प्रशान्त्यै सेव्यन्ते यदि

वेदके हमारे हाथमें पड़ी हुई मिठा लुटेले होंगे ॥ २६९ ॥
क्या सन्तोंको रहनेके लिये सुन्दर भवन नहीं मिलते थे या
सुननेको अच्छे गीत नहीं मिलते थे या प्राण-प्रियाके मुखसे
प्रसन्नता नहीं होता थी किन्तु ये छुड़िमान् लोग उदकर गिरते
हुए पतंगोंके झोंकेसे हिङ्गलौ हुई दीपकके लौके समान जगत्को
चंचल समझकर ही घनमें जा बसे ॥ २७० ॥ ऐसी स्थितियोंपर
कीन समझदार भासक होगा जो अत्राराव करनेवालोंपर वैराग्य
करती है । मैं तो उस मुक्तिको चाहता हूँ जो वैराग्य करने-
वालोंपर धनुषाग करती है ॥ २७१ ॥ फिर वही रात, फिर
वही दिन, यह सब समझते हुए भी लोग लगनसे धरने-
धरने कामोंमें लगे हुए पहलेकी भाँति दीकते रहे हैं । उन्हीं
काम-धर्मोंमें, उन्हीं बार बार भोगी हुई वस्तुधर्मोंमें, तथा उन्हीं
संसारके झमेलोंपदे हुए हम लोग फिर भी धरने मोक्षपर
लजित नहीं हो रहे हैं ॥ २७२ ॥ यह शरीर माताके रज तथा
पिताके धर्मसे बना है, श्वायुका निवास-स्थान है, विशात्र
शोडका चक्र है, रोगका विश्रामस्थान है, यह जानते हुए भी
अज्ञान सागरमें डूबा हुआ विचारहीन प्राणी श्वावर चाहता
है, भूमि चाहता है और शरीरकी चमिछाया करता है ॥ २७३ ॥
संसारमें जतने संघना मिले और मोक्षकर खले गप उठने तो
गंगामें बाएके कथ भी नहीं है ॥ २७४ ॥ सुन्दरी नयैजिदोंके

नेत्र, कलशके समान स्तन, मीढ़ा-शुद्ध, सुजाद और चन्दके
घृच आदिके वर्णधर्म मूळं कवि दिन धिताते हैं किन्तु भगवान्में
मन लगानेवाले पुरप हे गोविन्द ! हे जगद्गर्भ ! हे जगन्नाथ !
हे कृष्ण ! कहते हुए दिन बिताते हैं ॥ २७२ ॥ कामके फेरमें
पड़ा मनुष्य बारको सुलका प्राप्त, मांसके लोपधर्मोंके स्तन
तथा मांस और हड्डियोंके समूहको शरीर समझता है ॥ २७३ ॥
वही सुन्दरता, वही शोभा, वही आकार और वही मोक्षनेका
रंग जो उस समय चरुतसे भरा जान पड़ता था वही
धव कवरके समान ताप दे रहा है ॥ २७४ ॥ ये घर नहीं बने
हुए, वे स्थिर नहीं नदियों हैं और वे आर्ह-वधु नहीं
हुए हैं इसीलिये मेरा चित्त प्रसन्न है ॥ २७५ ॥ जिनसे
हम उरग्न हुए थे बहुत पहले ही खज दिए, जिनके
साथ हमारा पावन-पोषण हुआ वे भी स्मरण- नहीं धाते,
हमारा भी जाना भव प्राप्त ही है, इसलिये इस समय हमारी
दशा नदीके बलुए सतपर लदे घृषके समान है ॥ २७६ ॥ वर्त-
मान चणके परवाह हम शरीरके रहनेका भ्रमा क्या मरोसा !
फिर भी इस जावनके लिये चिन्ता ऐसी है मानो कल्पान्त-तक
जीना हो ॥ २७७ ॥ मैंने न तो अच्छी विद्या पढ़ी, न धन
कमाया, न मन लगाकर माना-विताको सेवा की, न बड़ी बड़ी
धन्य धर्मियावाकी स्थितियोंको गलेसे लगाया, घर, कीपके समान

कष्टेन भूयते । तत्स्फुरिष्यति कष्टापि विपरिक्रमधिकं ततः ॥ २६६ ॥ विवेकः किं सोऽपि स्वस्वजननिता यत्र न कृपा स किं योगो यस्मिन्न भवति पराजुप्रहरसः । स किं धर्मो यत्र स्फुरति न परद्रोहधिरतिः कृतं किं तद्वा स्यादुपशमफलं यन्न भवति ॥ २७० ॥ विवेक एव व्यसनं पुंसो लपयितुं क्षमः । अपहर्तुं समर्थोऽसौ रविरेव निशतमः ॥ २७१ ॥ विशीरोः प्रारम्भो वपुरपि जराव्याधिबिधुरं गतं वृरे विप्रस्वजनभरणं चाद्भित्तमपि । इदानीं व्यामोहाद्दहदह विपरंते हृतविधो विधेयं यत्तत्त्वं स्फुरति मम नाद्यापि हृदये ॥ २७२ ॥ विषं विषयवैषम्यं न विषं विषमुच्यते । जन्मान्तरघ्नाः विषया एकदेहहरं विषम् ॥ २७३ ॥ वेदस्याध्ययनं कृतं परित्यक्तं शास्त्रं पुराणं स्मृतं सर्वं व्यर्थमिदं पदं न कमलाकान्तस्य चेत्कोर्तितम् । उरधातं सद्यशाकृतं धिरचित्तः सेकोऽम्भसा भूयसा सयं निष्फलमालया-सखलये क्षिप्तं न धीजं यदि ॥ २७४ ॥ व्याघ्राय तिष्ठति

जरा परितर्जयन्ती रोगाच्च शून्य इव महरन्ति देहम् । श्रायुः परित्यजति मित्रघटादियाम्ना लोभस्तथाप्य-हितमाचरन्तीति चिन्म ॥ २७५ ॥ व्यामिहान्विहा-रिणोऽपि विदग्धाः सम्भामनन्यापदं ब्रह्मन्ते निगुरैर-नाघसलिलान्तस्याः समुद्रादपि । तुनीतं किमिहास्ति किं सुचरितं वः स्थानलामे र्ण्यः कालो हि व्यसन-प्रसारितकरो शृहाति दूरादपि ॥ २७६ ॥ शृण्या शाह-लमासनं शुचि शिला सदा द्रमाशामघः शोतं निर्कर-घाति पानमशनं कन्दाः सहाया मृगाः । ह्ययमार्षित-लभ्यसर्वाविभवे द्रोपोऽयमेको यने दुष्प्रापार्थिन यत्प-रार्थघटनायन्धैर्दृया स्थीयते ॥ २७७ ॥ शृग्दम्बुधर-ञ्जयागमत्थर्वो यौवनश्रियः । श्रापातरभ्या विषयाः पर्यन्तपरितापिनः ॥ २७८ ॥ शान्तकन्यालसत्कण्डो मनःस्थालोमिलत्करः । त्रिपुरारिपुरद्वारि कदाहं मोक्षमिजुक्तः ॥ २७९ ॥ शुचां पापं घाथी परिणतिर-मेच्यप्रचयभूर्यं भूतायासो विमृश कियतीं याति न

दूसरोंके लिए टुकड़ोंके जोममें जीवन बिताता रहा ॥ २६६ ॥ यदि आत्मी विपत्ति दूर करनेके लिये अधिक कष्ट भोगकर राजाघाँकी सेवा करनी पड़े तो विपत्ति ही इससे बढ़कर क्या कष्ट दे सकती है ॥ २६६ ॥ यह विचार कैसा जिसमें स्वामाधिक कृपा नहीं । यह योग कैसा जिसमें दूसरोंकी भेदाईकी इच्छा नहीं, वह धर्म कैसा जहाँ दूसरोंके विरोधकी शान्ति नहीं, वह शास्त्रका ज्ञान कैसा जिसमें शान्ति न मिले ॥ २७० ॥ जैसे रातके अँधेरेको केवल सूर्य ही दूर कर सकता है वैसे ही केवल विचारसे ही प्राणीकी विपत्ति दूर हो सकती है ॥ २७१ ॥ पहले तो हमारे जीवनका प्रारम्भ ही विषय गया, शुद्ध और रोगने शरीर नष्ट कर बाजा, जगाय और सम्बन्धियोंके पीपणकी बात तो दूर रही, इस समय नीच भाग्यके चपट जानेपर जो काम करना चाहिये वह भी अज्ञानके कारण भेरे मनमें नहीं सूझ रहा है ॥ २७२ ॥ विषयों (रूप, रस, गन्ध, रस, शब्द) की उलझन ही विष है, विष विष नहीं है, क्योंकि विष तो एक ही देहकी नष्ट करता है किन्तु विषय तो आगे आनेवाले जन्मको भी नष्ट कर दाखते हैं ॥ २७३ ॥ यदि कष्टनीपति भगवान्के चरणका कर्तन नहीं किया तो पैदवा किया हुआ अन्धजन, पड़े हुए शास्त्र-पुराणका स्मरण सब वैसे ही व्यर्थ है जैसे गौदेहर बरामर किया हुआ और सँचा हुआ यह धर्मका जिसमें धीन न बोधा गया हो ॥ २७४ ॥ उदाई

हमारे निम्नपर वादिके समान चटका धारां फटकारनी रहनी है, रोग भी शत्रुके समान शरीरपर कोरा फटकारने रहते हैं, श्रायु भी फूटे घरेके पानीके समान निकलती जानी है, फिर भी आश्चर्यकी बात तो देखो कि लोग बुरे काम करते ही चबते हैं ॥ २७५ ॥ आकाशमें उड़नेवाले पक्षीच विपत्तिमें पड़ जाते हैं । बुद्धिमान् लोग अथाह समुद्रमें भी मदुत्रियों पकड़ लेते हैं, इस संसारमें किमोके भले-बुरे कामपर विचार नहीं होता और आलू स्थानपर रहनेसे भी क्या लाभ है ? क्योंकि काज तो सदा विपत्ति देनेवाले बनने लगे हागसे तूरे ही पकड़ लेता है ॥ २७६ ॥ वनमें पहुँचकर धर्ममाता जीमू-वाहन कडता है—यहाँ घास ही विक्रीना है, सुन्दर चटानें ही आसन हैं, देवोंकी छाया ही घर है, पानेके लिये शीतल झरने-का जल है, खानेके लिये कन्दमूल हैं, हरियोंका साग है । इस प्रकार वनमें और सब सुखकी सामग्रियों तो बिना परिश्रमके मिल जाती हैं किन्तु एक हीप यही है कि यहाँ पाचक नहीं मिलते हैं । इसलिये परोपकारका प्रवसर न पानेके कारण यहाँ टिकना व्यर्थ है ॥ २७७ ॥ तरणार्थ शत्रुके बादलकी परछाँहोंके समान ही तुलन्त समाप्त हो जानेवाली होती है । भोग पहले तो अच्छे लगते हैं किन्तु अन्तमें दुःख देते हैं ॥ २७८ ॥ गलेमें शान्तिरूपी गुदरी दाखकर शरीर हृद्यमें मनस्वी यात्री लेकर मैं मोक्षी निषा रगिनेके लिये संहरजीके द्वारपर

दशाम् । तदस्मिन्धीराणां क्षमामपि किमास्थानुमुचितं
 पत्नीकारः कोऽयं यदहमहमेवेति रभसः ॥ २८० ॥
 शमशाने च दिगन्ते च स एव ललनास्तनः । श्वभिरा-
 स्वाद्यते फाले लघुपिण्ड इवाग्धसः ॥ २८१ ॥ श्रियो
 दोलालोला विषयजरसाः प्रान्तविरसा विषदग्नेहं देहं
 महदापि घनं भूरि निघनम् । पृच्छोको लोकः सतत-
 मयला दुःखदहलास्तथाप्यस्मिन्धोरे पथि वत रता
 दन्त कुचियः ॥ २८२ ॥ संसाररात्रिदुःस्वमे शन्ये देह-
 भये भ्रमे । आस्थां चेदुवधामि तन्मूर्खो नास्ति
 मत्परः ॥ २८३ ॥ संसारे पतितानां कुशलं किं पृच्छ्यते
 शरीरश्रुताम् । पतितस्य दहनराशौ दग्धोऽस्ति न वेति
 कः प्रश्नः ॥ २८४ ॥ सत्यं मनोरमा राज्ञाः सत्यं रम्या
 विभूतयः । किन्तु मत्तान्नाप्राङ्मङ्गलोलं हि जीवि-
 तम् ॥ २८५ ॥ सत्यं वक्तुमशेषमस्ति सुलभा वाणी
 मनोहारिणी दातुं दानवरं शरण्यमभयं स्वच्छं
 पिटृभ्यो जलम् । पूजार्थं परमेश्वरस्य विमलं

स्वाध्याययज्ञः परं जुह्वाधेः फलमूलमस्ति शमनं
 फलेशामकैः किं घनेः ॥ २८६ ॥ सन्त्येके घनताममा-
 प्रगहनव्यामोहसम्भूर्द्धिताः केचिद्देवतसुन्दरीस्तनप-
 रीरभमभ्रमव्याकुलाः । अन्तर्भूतसमस्ततत्त्वनिवहं
 चिन्मात्रशेषं शिवं दृष्ट्वा हृष्टतनूकहाङ्करभराः कष्टं
 न शिष्टाः क्वचित् ॥ २८७ ॥ सन्ध्यावन्दन भद्रमस्तु
 भयते भो ज्ञान तुभ्यं नमो भो देवाः पितरश्च तर्पण-
 यिधो नाहं क्षमः क्षम्यताम् । यत्र क्वापि निपद्य
 याद्वकुलोत्सस्य कंसद्विपः स्मारं स्मारमधं हरामि
 तदलं मन्ये किमन्येन मे ॥ २८८ ॥ समाश्लिष्यत्युच्चै-
 र्धनपिशितपिण्डं स्तनधिया मुखं लालाक्लिष्टं पिबति
 चपकं सासवमिव । अमेध्यफलेदारुं पथि च रमते
 स्पर्शरतिको महामोहान्धानां किमिव रमणीयं न
 भवति ॥ २८९ ॥ सम्भोगाद्विषयामिषस्य परितः सौहि-
 र्यमस्ताखिलज्ञानोन्मेषतया कथं तव भवेद्व्यास्पदं
 देहिनः । साध्यं तद्धि तदेव साधनमितो व्यावृत्तिरे-

कष पङ्क्त्या ॥ २९१ ॥ इस पृथ्वीमें शोक ही शोक है, यहाँ
 रहनेका परिणाम भी अमङ्गल होता है, प्राणियोंकी स्थितिमें
 भी न जानै कितने परिवर्तन होते रहते हैं, फिर बताइए तो
 सही कि ऐसे अगवमें बुद्धिमानोंको क्या क्याभर भी ठहरना
 उचित है जिसमें सब जोग मैं-मैं कहते हुए अपनी दुर्गति करा
 रहे हैं ॥ २९० ॥ शमशानमें या विभिल दिखाद्योमें उसी जोकै
 स्तनको चुपे ऐसे खाते हैं जैसे अन्नका छोटा मोटा प्राप्त हो
 ॥ २९१ ॥ जपमी मूखेकी पैंगोंके समान हृष्टर उषर धाया-
 लाया करता है, लोगोंका स्वाद अन्नमें नीरस हो जाता है,
 शरीर भी रोगका निवास-स्थान है, विशाल घनकी राशि भी
 शून्य है, संसार शोकसे भरा पड़ा है, शिष्यों सर्वदा दुःख देने-
 वाली होती है, फिर भी दुर्घुण्डियाके जोग हसी मयकर मार्गपर
 चलनेके लिये ठामुक रहते हैं ॥ २९२ ॥ जो शरीर वस्तुतः
 नहीं है उसका यदि मैं संसाररूपी शस्त्रमें स्वप्न देखता हूँ तथा
 उसकी सत्यतापर विश्वास करता हूँ तो मुझमें यद्वद्वदुत्तरा
 कीहं मूर्ख नहीं ॥ २९३ ॥ जोग संसारमें पड़े हुए प्राणियोंकी
 भञ्जा क्या सुखलता प्रपुते हैं, चागके ढेरमें गिरे हुए स्थितिसे
 भञ्जा पर प्रपुना कदातिक ठीक है कि तुम जले या नहीं
 ॥ २९४ ॥ शिष्यों मजे हो सुन्दर हों, सम्प्रति भी अग्नी हो
 किन्तु यह जीवन भी मत्तवाजी कोकी भाँसकी कोसे कम
 पद्यक नहीं है ॥ २९५ ॥ सार बोलनेके लिये मनोहर वाणी

भी मिथी हुई है, पितरोंको सुन्दर दान देनेके लिये रणा करने-
 वाला तथा भय दूर करनेवाला स्वयंजु जज्ञ भी है, परमेश्वरकी
 पूजा करनेके लिये निर्मज्ज वेदुपाठरूपी यज्ञ भी है, मूलरूपी
 रोगको शान्त करनेके लिये फल-मूल भी हैं तब दुःख देनेवाले
 घनके संग्रहसे क्या लाभ ? ॥ २९६ ॥ बहुतसे जोग घनके
 पाने नामके घने अज्ञानमें पड़े हुए हैं । बहुतसे लोगोंको अस्प-
 राशोंके स्तनके आश्रितनकी आश्रिताया है परन्तु जिसके भीतर
 सभी वस्तुएँ समा जाती हैं, जो ज्ञानस्वरूप है उस शिव
 (कल्याणकारी आत्मा) को देखकर प्रसन्नतासे रोमांचित
 होनेवाले सज्जन कहीं नहीं दिलाई पड़े, यही कष्टकी बात है
 ॥ २९७ ॥ हे सन्ध्यावन्दन ! तुम्हारा मङ्गल हो । हे स्नान !
 तुम्हें प्रणाम है । हे देवताओ तथा पितरों ! तुम्हारा तर्पण
 करनेकी मेरी शक्ति नहीं है, क्षमा करना । धर्म मैं कहीं भी
 पैठकर पादपुत्रुके भूयण तथा कंसके नायक मगधानुका प्यान
 काके अपने पाप दूर करूँगा । घनः, घन मुझे दूसरी वस्तुकी
 आवरणकता ही क्या ? ॥ २९८ ॥ राज्ञ-मुत्तका आनन्द खेने-
 वाले जोग उँचे कष्टे मात्सके विपदको स्तन समभ्रष्टर आदि-
 ज्ञन करते हैं, छारसे लिपटे हुए मुखकी मदिदासे भरे हुए प्याले
 के समान पति हैं तथा अचन्द्रिष्य छाव-भरे गीले मार्गमें अान-
 न्दका अजुमय करते हैं । सचमुच मयंकर अज्ञानसे अन्धे
 लोगोंकी सभी वस्तुएँ मञ्जी ही जान पवती हैं ॥ २९९ ॥

वामिपात्तस्यां ज्योतिरुपैत्य निन्धनमिदं दोषत्रयं
घटयति ॥ २१० ॥ सर्वांशुचिनिधानस्य कृतघ्नस्य
विनाशिनः । शरीरकस्यापि कृते मूढा पापानि कुर्वते
॥ २६१ ॥ सर्वे क्षयान्ता निचया । पतनान्ताः समु
च्छ्रयाः । सत्पुत्राः विप्रयोगान्ता मरणान्तं हि जीवितम्
॥ २६२ ॥ साक्षात्प्रेमावतारः कमलदलदृशो दिक्षु
लवमीरनन्ताः सत्पुत्राः सन्ति मित्राण्यपि विपमविप
त्संविभागी कुटुम्ब्य । एतत्सर्वं हि तावत्सुकृतविल-
सितं दृश्यमानं मनोर्षं यद्यैतत्किंप्रमाशमण्यि वत
मनाङ्ग्लायते तेन चेतः ॥ २६३ ॥ सा बुद्धिधिलयं
प्रयातु कुलितं तत्रापि सम्पात्यतां वदन्तः प्रविशन्तु
ते हृतभुजि ज्वालाकराले गुणाः । ये सर्वे शरदिन्दु-
कुन्दविशदैः प्राप्तेरपि प्राप्यते भूयोऽप्यत्र पुरन्धिगर्भ-
नरकमोडाधिवासव्यथा ॥ २६४ ॥ सार्धमीमभवन्
यनयासी निस्वभावप्रभवभावनया ते । चालिशो हि

विपयेन्द्रियचोरेर्मुपपते स्वमयने च घने च ॥ २६५ ॥
सुरमन्दिरतकमूलनिवास शय्या भूतलमजिनं यास
सर्वपरिग्रहमोगत्याग कस्य सुग्नं करोति विरागः
॥ २६६ ॥ सुकिं कर्णसुधा ध्यनन्तु सुजनस्तस्मिन्
मोदामहे व्रतां वाचमस्यको विपसुचं तस्मिन् विद्या-
महे । या यस्य प्रकृति स तां वितनुतां किं नस्तया
चिन्तया कुर्मस्तत्पलु कर्म जन्मनिगडच्छ्रेयाय यज्जा-
यते ॥ २६७ ॥ सोज्ज्याम्बुमदस्थली सुचरितालेष्यद्यु
भित्तिर्गुण्योस्त्नारुष्ण्यचतुर्दशी सरलतायोगश्वपुच्छ-
च्छ्रुता । धैरेयापि दुराशया क्लियुगे राजायला
सेविता तेषां शूलानि भक्तिमात्रसुलभे सेवा क्रियत्कां-
शलम् ॥ २६८ ॥ स्तनो मासद्वयौ वनककलशाधिर्यु-
पमिती सुचं श्लेष्मागारं तदपि च शशाङ्केन तुलितम् ।
स्वप्नभ्रूक्लिलं करिवरकरस्पर्धि जघनं पर निन्द्यं
रूपं क्वचिजनविशेषैर्गुणं कृतम् ॥ २६९ ॥ स्थिरापायः

सुन्दर-सुन्दर भोगकी सामग्रियाँ पाकर उनके भोगसे सन्तुष्ट
होनेवाले मनुष्यका सारा ज्ञानका प्रकाश जाता रहता है, उससे
मनुष्य लैचा पद नहीं पा सकता । भोगके विषयसे मन हटा
केना ही सुख तथा सुखका उपाय है । उससेले विना ईंधनके
ही ऐसा प्रकाश लग उठता है जो आध्यात्मिक, आधिदैविक तथा
आधिभौतिक तीनों दोषोंको नष्टा टालता है ॥ २६० ॥ सब
प्रकारकी अपवित्रताकी पान और सेवा-रूरी उपकारकी न
माननेवाले इस नाशवान् शरीरके जिये मूर्ख लोग पाप कर्म
क्रिया करते हैं ॥ २६१ ॥ सभी वस्तुएँ अन्तमें नष्ट हो जाती हैं,
ब्रह्मिके परचात् पतन होता है, सधोगके परचात् वियोग होता
तथा जीवनके पश्चात् मरण निश्चित है ॥ २६२ ॥ स्वयं
साक्षात् प्रेमके घवतार, कमलकी पंजुकीके समान चौड़ी ब्रॉल
वाकी जिये, चारों ओर अन्त लक्ष्मी, अच्छे पुत्र, मित्र,
भयंकर विपत्तियों साथ देनेनेवाले परिवार, ये जो सुन्दर
पूर्वजन्मके सुखके फल दिग्गदें देते हैं, ये सभी चणभंगुर
हैं, फिर भी रोदकी बात है कि इन्हींके जिये लोग
श्याकुल हुए रहते हैं ॥ २६३ ॥ उस बुद्धिका नाम ही और
उसपर यज्ञ गिरे तथा शरद फलुके चन्द्रमा और कुन्दके
पूजके समानके स्वच्छ वे अच्छे-अच्छे गुण भी अग्निकी
भयंकर प्लाजामें आ सुखसे जिन्हें पाकर भी फिर नारीके गर्भ
रूपी नरकके भीतर सब्नेका कठ भोगना पड़े ॥ २६४ ॥ सप्तारकी
शुद्ध समझकर आपका ध्यान करनेवालेकी वनयासी चक्रवर्ती

राजाके भयनमें निवास-सा जान पड़ना है पर अज्ञानी मनुष्य
घर तथा वनमें भा भोगकी वस्तुओं तथा इन्द्रिय रूपा चारोंके
हाथ लुट जाता है ॥ २६५ ॥ जिस वैराग्यमें देवमन्दिरों और पेड़ों
के तले निवास है, भूमि ही शय्या और मृगचर्म हा चक्र रहता
है और जिसमें सभी वस्तुओंका संग्रह और भाग होद दिया
जाता है, उस वैराग्यसे किते सुख नहीं मिलेगा ॥ २६६ ॥
कानोंमें अमृतके समान अच्छी लगनेवाकी सज्जनोंकी सुन्दर-
सुन्दर बातोंसे हमें प्रसन्नता नहीं और विप उगजनेवाले नीच
लोगोंकी विप भरी बातोंका हमें दुःख नहीं क्योंकि जिसका
जैसा स्वभाव होगा वह तो वैसा ही जान पड़ेगा । हम तो वही
काम करते हैं जिससे जन्म-मरणकी बेटी टूट जाय ॥ २६७ ॥
जो सज्जनतारूपी जलके जिये महर्षि हैं, सदाचाररूपी
चित्रके जिये आकाशकी भीत हैं, अच्छे गुणरूपी चंद्रनीके
जिये हृण्यपचकी चतुर्दशी हैं, सोधेवनके जिये कुत्तेकी
पूँज हैं ऐसे सुरे विचारवाले राजाओं-सककी जिसने कलियुगमें
सेवा कर की है उसके जिये भक्तिमात्रसे वरमें होनेवाले
शकरजीकी सेवा करना हीन सी बड़ी बात है ॥ २६८ ॥
मांसके पिंडोंकी उपमा सोनेके घडेसे दी जाती है,
कफसे भरे हुए सुखकी चन्द्रमाके समान बताया जाता है,
मूलसे भीगी हुई ज्यों हाथीकी सूँडके समान बचई जाती
है । इस प्रकार इस पण्यित शरीरको कवियाने ध्यने
वर्षानसे महत्त्वपूर्ण बना दिया है ॥ २६९ ॥ कात्राका नाय

कायः प्रणयिषु सुखं स्थैर्यंचिसुखं महाभोगा रोगाः
 कुचलपदशः सर्पसदृशः । महावेशः क्लेशः प्रवृत्ति-
 चपला श्रीरपि खला यमः स्वैरी वैरी तदपि न हितं
 कर्म विहितम् ॥ ३०० ॥ स्मारस्मेरप्रदोन्नमत्कुञ्जतटी-
 फान्ताकारान्दोलितैः पुष्पाभ्भोनिचितैकशोररचितैः किं
 तालवृत्तैर्मम । अन्दानन्दवनं मुखं शिशयिषोरर्धम्री-
 लद्दृशो यातायातपरिध्रमं शमयिता गङ्गातरङ्गाविलः
 ॥ ३०१ ॥ स्वमस्तकसमारूढं मृत्युं पश्येज्जो यदि ।
 आहारोऽपि न रोचेत् किमुतान्या विभूतयः ॥ ३०२ ॥
 स्वार्थारम्भप्रणतशिरसां पक्षपातात्सुराणां हस्तारम्भानं
 करजकुलिशैर्दानधेन्द्रं निहन्तुम् । सिद्धीभूतस्त्रिभुवन-

॥ इति श्रीमन्नारायणस्वामिभिः ।

इत्यभिधानकं सानुवादं द्वितीयप्रकरणं सम्पूर्णम् ॥

गुरुः सोऽपि नारायणोऽस्मिन् रागद्वेषप्रतिहतमतेः
 कस्य न स्यात्पशुत्वम् ॥ ३०३ ॥ हरिष्यमाणो बहुधा
 परस्वं करिष्यमाणः सुखसम्पदादि । परिष्यमाणोऽरि-
 शिरःसु पादं न स्वं मरिष्यन्तमवैति कोऽपि ॥ ३०४ ॥
 हेमनः कार्यं हुतयद्गतं हेममेधेति । यद्दत्तवीरे क्षीरं
 समरसतया तोयमेवाम्बुमध्ये । एवं सर्वं समरसंतया
 तत्पदं तत्पदार्थं निखैर्गुण्ये पथि विचरतः को विधिः
 को निषेधः ॥ ३०५ ॥ हेयं हर्म्यमिदं निकृञ्जमयनं श्रेयं
 प्रदेयं धनं पेयं तोयंपयो हरेर्भगवता गेयं पदाम्भोरु-
 हम् । नेयं जन्म चिराय दर्भशयने धर्मं निधेयं मनः स्थेयं
 तत्र सितासितस्य सविधे ध्येयं पुराणं महः ॥ ३०६ ॥

सङ्कलिते सूक्तिसागरे रसयुक्त्य

इत्यभिधानकं सानुवादं द्वितीयप्रकरणं सम्पूर्णम् ॥

निश्चित है, प्रेमियोंका सुख भी स्थिर नहीं है, विशाल भोग
 भी सब रोग हैं, कमलके समान आँखोंवाली स्त्रियों भी, सर्पके
 समान हैं, किसी वस्तुमें बहुत खगन भी दुःख है, यह जपमी
 भी स्वभावसे चञ्चल है और निरंकुश यमराज भी शत्रु हैं, फिर
 भी मैंने अपने कष्टायाके लिये आजतक कुछ नहीं किया
 ॥३००॥ कामके प्रयत्न मद्दते जिन स्त्रियोंके स्तन बडे हुए हैं
 उनके हाथसे म्लेह हुए तथा फूल और बसके जलसे सुगन्धि
 पंखोंकी हमें क्या आवश्यकता है ? हम तो आमन्दन (कामी)
 में भाषी आँखें मूँदकर सुखसे प्राण दे दें तो गङ्गाजीकी लहरों-
 में मिखा हुआ पवन ही संसारमें आने-जानेकी सब यकावट
 दूर कर देगा ॥३०१॥ अपने भायेपर बैठो हुईं मृत्युको यदि
 जोग देख पावें तो दूसरे सुख तो क्या, भोजन भी उन्हें अन्न
 न लगे ॥ ३०२ ॥ स्वार्थ सिद्ध करनेके लिये सिर नवाप हुए
 देवताओंका पक्षपात करके अत्यन्त कमयधी हिरण्यकशिपुकी
 अपने बच्चे-जैसे नखोंसे फाड़ डालनेके लिये त्रैलोक्यके स्वामी
 नारायण भी सिद्ध बन गए । ठीक ही है, बुद्धिमें राग-द्वेष समा

जानेपर कौन पशु नहीं हो जाता ॥३०३॥ जोग प्रायः दूसरेका
 धन हरना चाहते हैं, पुत्र और सम्पत्ति संग्रह करना चाहते हैं,
 शत्रुओंको पददलित करना चाहते हैं पर कोई यह नहीं कहता
 कि मैं मरूँगा भी ॥ ३०४ ॥ जैसे सोनेकी बनी हुईं सभी
 विभिन्न वस्तुएँ आगमें गलकर सोना हो जाती हैं, जैसे पृकस
 होनेके कारण दूधमें मिखा हुआ दूध और पानीमें मिखा हुआ
 पानी पृकरूप हो जाता है, उसी प्रकार भेद न होनेके कारण
 ममी जीव भी ब्रह्मरूप हैं, यह समझकर जो मायासे हटकर
 चखता है उसके लिये कर्तव्य और अकर्तव्यका विचार कैसा
 ॥३०५॥ ऊँची आँटारियों छोड़कर फाड़ीरूपी धरका सहारा
 लेना चाहिए, धनका दान देना चाहिए, तीर्थका जल पीना
 चाहिए, भगवान् विष्णुके चरण-कमलका अमृत पान करना
 चाहिए, कुशके बिड़ौनेपर सोकर जीवन बिताना चाहिए, धर्ममें
 मन लगाना चाहिए, त्रिषेणीके तटपर जाकर तूना चाहिए
 और सबसे प्राचीन ज्योति (आत्मा) का ध्यान करना चाहिए
 ॥ ३०६ ॥

॥ श्री १०८ नारायण स्वामी द्वारा सङ्कलित सूक्तिसागरका रसयुक्त नामक

द्वितीय प्रकरण नामकी अनुवाद सहित पूर्ण हुआ ॥

